दी इंडियन लॉ रिपोर्ट्स

इलाहाबाद संस्करण

*****

सत्यमेव जयते

इलाहाबाद हाई कोर्ट के सभी प्रकाशन योग्य निर्णय

२०२३ – भाग ६

(जून)

पृष्ठ १ से १२९३

उत्तर प्रदेश सरकार के अधीन प्रकाशित

इंडियन लॉ रिपोर्टर अनुभाग, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित।

इंडियन लॉ रिपोर्टिंग काउंसिल

इलाहाबाद संस्करण

****

अध्यक्ष

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति श्री अरुण भंसाली

******

परिषद

माननीय न्यायमूर्ति श्री सौमित्र दयाल सिंह

माननीय न्यायमूर्ति श्री जयंत बनर्जी

माननीय न्यायमूर्ति श्री नलिन कुमार श्रीवास्तव

****

संपादक मंडल

वरिष्ठ विधि संपादक

१. श्री विनय सरन, वरिष्ठ अधिवक्ता

२. श्री समीर शर्मा, वरिष्ठ अधिवक्ता

कनिष्ठ विधि संपादक

१. श्री अनूप बर्णवाल, अधिवक्ता

२. सुश्री प्रिया अग्रवाल, अधिवक्ता

३.श्री आशुतोष मणि त्रिपाठी, अधिवक्ता

४. सुश्री नूर सबा बेगम, अधिवक्ता

५. श्री सरोज गिरि, अधिवक्ता

६. सुश्री मनीषा चतुर्वेदी, अधिवक्ता

७. श्री अरविन्द कुमार गोस्वामी, अधिवक्ता

८. श्री विनीत दूबे, अधिवक्ता

९. श्री प्रशान्त मिश्रा, अधिवक्ता

१०. श्री अबू बख्त, अधिवक्ता

****

<u>माननीय न्यायमूर्तिगण</u>

मुख्य न्यायमूर्ति माननीय मुख्य न्यायमूर्ति श्री प्रितिंकर दिवाकर	
न्यायमूर्ति	
१. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती सुनीता अग्रवाल	३३. माननीय न्यायमूर्ति श्री नीरज तिवारी
२. माननीय न्यायमूर्ति श्री देवेन्द्र कुमार उपाध्याय	३४. माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश पीडिया
३. माननीय न्यायमूर्ति श्री सूर्य प्रकाश केसरवानी	३५. माननीय न्यायमूर्ति श्री आलोक माथुर
४. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनोज कुमार गुप्ता	३६. माननीय न्यायमूर्ति श्री पंकज भाटिया
५. माननीय न्यायमूर्ति श्री अंजनी कुमार मिश्रा	३७. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ लवानिया
६. माननीय न्यायमूर्ति डा० कौशल ज्ञयेन्द्र ठाकर	३८. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक वर्मा
७. माननीय न्यायमूर्ति श्री महेश चन्द्र त्रिपाठी	३९. माननीय न्यायमूर्ति श्री संजय कुमार सिंह
८. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक कुमार बिरला	४०. माननीय न्यायमूर्ति श्री पीयूष अग्रवाल
९. माननीय न्यायमूर्ति श्री अत्तउ रहमान मसूदी	४१. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ श्याम समशेरी
१०. माननीय न्यायमूर्ति श्री अश्वनी कुमार मिश्रा	४२. माननीय न्यायमूर्ति श्री जसप्रीत सिंह
११. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजन रॉय	४३. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव सिंह
१२. माननीय न्यायमूर्ति श्री अरविन्द कुमार मिश्रा-प्रथम	४४. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान
१३. माननीय न्यायमूर्ति श्री सिद्धार्थ वर्मा	४५. माननीय न्यायमूर्ति श्री करूणेश सिंह पवार
१४. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चन्द्रा	४६. माननीय न्यायमूर्ति डॉ० योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
१५. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक चौधरी	४७. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनीष माथुर
१६. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौमित्र दयाल सिंह	४८. माननीय न्यायमूर्ति श्री रोहित रंजन अग्रवाल
१७. माननीय न्यायमूर्ति श्री राहुल चतुर्वेदी	४९. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजेन्द्र कुमार-चतुर्थ
१८. माननीय न्यायमूर्ति श्री सलील कुमार राय	५०. माननीय न्यायमूर्ति श्री मौ० फैज आलम खान
१९. माननीय न्यायमूर्ति श्री जयंत बनर्जी	५१. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुरेश कुमार गुप्ता
२०. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजेश कुमार चौहान	५२. माननीय न्यायमूर्ति श्री नरेन्द्र कुमार जोहरी
२१. माननीय न्यायमूर्ति श्री इरशाद अली	५३. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजबीर सिंह
२२. माननीय न्यायमूर्ति श्री सरल श्रीवास्तव	५४. माननीय न्यायमूर्ति श्री विपीन चन्द्र दीक्षित
२३. माननीय न्यायमूर्ति श्री जे० जे० मुनीर	५५. माननीय न्यायमूर्ति श्री शेखर कुमार यादव
२४. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव गुप्ता	५६. माननीय न्यायमूर्ति श्री दीपक वर्मा
२५. माननीय न्यायमूर्ति श्री सिद्धार्थ	५७. माननीय न्यायमूर्ति श्री डॉ. गौतम चौधरी
२६. माननीय न्यायमूर्ति श्री अजीत कुमार	५८. माननीय न्यायमूर्ति श्री शमीम अहमद
२७. माननीय न्यायमूर्ति श्री रजनीश कुमार	५९. माननीय न्यायमूर्ति श्री दिनेश पाठक
२८. माननीय न्यायमूर्ति श्री अब्दुल मोईन	६०. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनीष कुमार
२९. माननीय न्यायमूर्ति श्री दिनेश कुमार सिंह	६१. माननीय न्यायमूर्ति श्री समित गोपाल
३०. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव मिश्रा	६२. माननीय न्यायमूर्ति श्री संजय कुमार पचौरी
३१. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक कुमार सिंह	६३. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुभाष चन्द्र शर्मा
३२. माननीय न्यायमूर्ति श्री अजय भनोट	६४. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती सरोज यादव

६५. माननीय न्यायमूर्ति श्री साधना रानी (ठाकुर)
६६. माननीय न्यायमूर्ति श्री सैयद आफताब हुसैन रिजवी
६७. माननीय न्यायमूर्ति श्री अजय कुमार श्रीवास्तव-प्रथम
६८. माननीय न्यायमूर्ति श्री चन्द्र कुमार राय
६९. माननीय न्यायमूर्ति श्री कृष्ण पहल
७०. माननीय न्यायमूर्ति श्री समीर जैन
७१. माननीय न्यायमूर्ति आशुतोष श्रीवास्तव
७२. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुभाष विद्धयार्थी
७३. माननीय न्यायमूर्ति श्री बृज राज सिंह
७४. माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह
७५. माननीय न्यायमूर्ति श्री विकास बुद्धवार
७६. माननीय न्यायमूर्ति श्री ओम प्रकाश त्रिपाठी
७७. माननीय न्यायमूर्ति श्री विक्रम डी चौहान
७८. माननीय न्यायमूर्ति श्री उमेश चन्द्र शर्मा
७९. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ श्रीवास्तव
८०. माननीय न्यायमूर्ति श्री ओम प्रकाश शुक्ला
८१. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती रेनू अग्रवाल
८२. माननीय न्यायमूर्ति श्री मौ० अजहर हुसैन इदरिशी
८३. माननीय न्यायमूर्ति श्री राम मनोहर नारायन मिश्रा
८४. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा
८५. माननीय न्यायमूर्ति श्री मयंक कुमार जैन
८६. माननीय न्यायमूर्ति श्री शिव शंकर प्रसाद
८७. माननीय न्यायमूर्ति श्री गजेन्द्र कुमार
८८. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुरेन्द्र कुमार-प्रथम
८९. माननीय न्यायमूर्ति श्री नलीन कुमार श्रीवास्तव
९०. माननीय न्यायमूर्ति श्री सैयद क़मर हसन रिज़वी
९१. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनीष कुमार निगम
९२. माननीय न्यायमूर्ति श्री अनीश कुमार गुप्ता
९३. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती नंद प्रभा शुक्ला
९४. माननीय न्यायमूर्ति श्री क्षितिज शलैन्द्र
९५. माननीय न्यायमूर्ति श्री विनोद दिवाकार
९६. माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रशान्त कुमार
९७. माननीय न्यायमूर्ति श्री मंजीव शुक्ला
९८. माननीय न्यायमूर्ति श्री अरूण कुमार सिंह देशवाल

मेसर्स ऐक्सिकनो कैपिटल सर्विसेज प्राइवेट लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ- 6**

श्री देवीराम सिंघल और अन्य बनाम श्री मंजीत सिंह और अन्य **पृष्ठ-43**

श्रीमती शांति रानी अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-57**

जेबा परवीन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ-68**

डॉ. कार्तिकेय शर्मा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-74**

जय कांत बाजपेयी @ जय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-83**

अभिषेक सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-100**

गुड्डू वर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-108-**

गजेंद्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-126**

जय किशन @ बबलू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-149**

रामचंद्र कुशवाह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-171**

राधेश्याम गुप्ता एवं अन्य बनाम कमर उद्दीन एवं अन्य **पृष्ठ-188**

मीरा पांडे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ-193**

आरफा बानो बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ-210**

राजस्व बोर्ड एवं अन्य बनाम राम जी शुक्ला **पृष्ठ-212**

नगर निगम मुरादाबाद बनाम एम/एस ए 2 जेड वेस्ट मैनेजमेंट (मुरादाबाद) लिमिटेड एवं अन्य **पृष्ठ-226**

सिद्धार्थ वर्धन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-234**

राम सरोज बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-236**

प्रबोध कुमार पाठक बनाम यू.पी. राज्य **पृष्ठ-240**

कमलेश कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-328**

राम गोपाल लोधी बनाम यू.पी. राज्य और अन्य **पृष्ठ-333**

दया शंकर एवं अन्य बनाम उप संचालक चकबंदी, खीरी, जिला खीरी एवं अन्य **पृष्ठ-344**

मेसर्स अल हक फूड प्राइवेट लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-359**

संदीप एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-392**

अनुवादित

संजय कुमार गर्ग एवं अन्य बनाम अखिलेश प्रताप सिंह एवं अन्य पृष्ठ-399

हीरा लाल छाबड़ा बनाम नवल किशोर अग्रवाल पृष्ठ-408

श्री फिरोज उद्दीन एवं अन्य बनाम श्री अनवर उद्दीन पृष्ठ-415

श्रीमती उर्मिला देवी वार्ष्णेय बनाम गरिमा वार्ष्णेय एवं अन्य पृष्ठ-430

जयवीर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-436

आशाराम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-441

चिंटू @ कुलदीप बनाम यू.पी. राज्य पृष्ठ-453

राहुल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-475

रामेश्वर लाल चौहान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ-498

अब्दुल हई और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ-528

प्रो. आशीष वाखलू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ-547

महेंद्र कुमार एवं अन्य बनाम छवाली देवी एवं अन्य पृष्ठ-570

सरिता वर्मा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-582

रितु तोमर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ-587

श्रीमती विष्णु कुमारी बनाम संदीप कुमार एवं अन्य पृष्ठ-589

जाधव सिद्धोधन अंकुश बनाम भारत संघ और अन्य पृष्ठ-597

मेसर्स मॉडर्न सर्विस स्टेशन बनाम आई.ओ.सी.एल. एवं अन्य पृष्ठ-603

श्रीमती सुधा देवी बनाम भारत संघ और अन्य पृष्ठ-613

श्रीमती राम प्यारी देवी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ-621

राजेंद्र बिहारी लाल बनाम भारत संघ और अन्य पृष्ठ-634

श्री राजू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ-641

वी-मार्ट रिटेल लिमिटेड, गुड़गांव बनाम एल.आई.सी. हाउसिंग फाइनेंस लिमिटेड, लखनऊ और अन्य पृष्ठ-646

प्रबंधन समिति, डी.पी. पब्लिक स्कूल,गौतमबुद्ध नगर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य पृष्ठ-652

अनुवादित

बशिष्ठ मुनि मिश्रा बनाम भारत संघ और अन्य **पृष्ठ-677**

दीपक कुमार यादव बनाम प्रधान आयकर आयुक्त, इलाहाबाद एवं अन्य **पृष्ठ-696**

एम.डी. समीर राव बनाम यू.पी. राज्य और अन्य **पृष्ठ-712**

जगदीश प्रसाद गुप्ता एवं अन्य बनाम श्रीमती सुधा मेहरा एवं अन्य **पृष्ठ-730**

कलाम उद्दीन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ-753**

आकाश सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-761**

निसार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-771**

मुजीम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ-781**

अनुज कुमार पांडे एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-785**

विनोद कुमार मिश्रा बनाम यू.पी. राज्य और अन्य **पृष्ठ-789**

दिलीप कुमार सिंह @ दीपू सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ-791**

यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती उषा रानी एवं अन्य **पृष्ठ-793**

मेसर्स नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती वसीमुन्निशा एवं अन्य **पृष्ठ-803**

न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी बनाम मुरली मनोहर सक्सेना और अन्य **पृष्ठ-813**

आरव शुक्ला एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-824**

सत्यपाल बनाम यू.पी. राज्य और अन्य **पृष्ठ-860**

विनोद कुमार एवं अन्य बनाम श्री वीर बहादुर यादव एवं अन्य **पृष्ठ-864**

राधिका बघेल बनाम यू.पी. राज्य और अन्य **पृष्ठ-902**

श्रीमती विभा पांडे बनाम यू.पी. राज्य और अन्य **पृष्ठ-910**

चमन खान बनाम यू.पी. राज्य और अन्य **पृष्ठ-913**

डॉ. रक्षपाल सिंह बनाम प्रो. चंद्र शेखर एवं अन्य **पृष्ठ-921**

श्री कन्हैया लाल ट्रस्ट एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-932**

अनुवादित

आत्मा प्रसाद शुक्ला बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-959**

शिवानी वर्मा बनाम यू.पी. राज्य और अन्य **पृष्ठ-963**

दया शंकर बनाम यू.पी. राज्य और अन्य **पृष्ठ-977**

इंडियन ओवरसीज बैंक और अन्य बनाम यूनियन ऑफ इंडिया और अन्य **पृष्ठ-985**

डॉ. वैभव शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ-999**

विजय पाल सिंह बनाम यू.पी. राज्य और अन्य **पृष्ठ-1005**

बकर अली खान एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-1016**

करुणा शंकर एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-1024**

कदम सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-1038**

गुलाब सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-1046**

सूरत सिंह बनाम यू.पी. राज्य **पृष्ठ-1056**

अंगद राय @ झुल्लन राय @ फुलक एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-1065**

राम नयन एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-1088**

दिलीप बनाम यू.पी. स्टेट **पृष्ठ-1104**

कृष्ण कुमार एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-1124**

राघवेंद्र बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ-1132**

श्रीमती शैलजा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-1139**

युवराज यादव बनाम अधीक्षक केन्द्रीय कार्यकर्ता नैनी, प्रयागराज एवं अनु **पृष्ठ-1145**

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम सुरेंद्र सिंह एवं अन्य **पृष्ठ-1173**

अंकित चौधरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ-1187**

नानकू एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-1199**

सी/एम श्री पारस नाथ अनुसूचित प्राथमिक पाठशाला इसके प्रबंधक एवं अन्य के माध्यम से बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-1246**

टेक. महिंद्रा लिमिटेड, जी.बी. नगर बनाम पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, नोएडा और अन्य **पृष्ठ-1254**

अनुवादित

पल्लवी सोनी बनाम यू.पी. राज्य और अन्य
पृष्ठ-1262

अवध शुगर मिल्स लिमिटेड बनाम यू.ओ.आई. और अन्य **पृष्ठ-1274**

प्रधानाचार्य एम.आर. जयपुरिया स्कूल, लखनऊ बनाम उप परिवहन आयुक्त पैसेंजर टैक्स लखनऊ एवं अन्य **पृष्ठ-1281**

विजय नारायण बनाम उप निदेशक चकबंदी, बस्ती व अन्य **पृष्ठ-1285**

अनुवादित

(2023) 6 ILRA 5

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 23.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर

सिविल विविध मध्यस्थता आवेदन संख्या 13 वर्ष 2023

और

सिविल विविध मध्यस्थता आवेदन संख्या 15 वर्ष 2023

और

सिविल विविध मध्यस्थता आवेदन संख्या 16 वर्ष 2023

मेसर्स ऐक्सिकनो कैपिटल सर्विसेज प्राइवेट लिमिटेड ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपरीत पक्ष

आवेदक के अधिवक्ता: प्रशांत पुरी, पवन अवस्थी

विपरीत पक्ष के अधिवक्ता: समीर ओम, समीर ओम

ए. सिविल कानून - मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996-धारा 29ए और 2(1)(ई)-धारणीयता-धारा 29ए(4) के तहत समय विस्तार के संबंध में विरोधी पक्षों द्वारा उठाई गई आपत्ति कि ऐसा आवेदन केवल जिले में मूल अधिकार क्षेत्र वाले प्रमुख सिविल न्यायालय के समक्ष ही स्वीकार्य होगा क्योंकि अधिनियम 1996 की धारा 2(1)(ई) के साथ धारा 29ए के तहत परिकल्पित 'न्यायालय' की अवधारणा में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के मामले की तरह मूल सिविल अधिकार क्षेत्र न रखने वाला उच्च न्यायालय शामिल नहीं है-इसलिए, आवेदन स्वीकार्य नहीं है। (पैरा 69 से 70)

आवेदन खारिज किया जाता है। (ई-6)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. निमेट रिसोर्सेज इंक और अन्य बनाम एस्सार स्टील्स लिमिटेड (2009) 17 एससीसी 313
2. के.वी. मुथु बनाम अंगमुथु अम्मल (1997) एआईआर एससीसी 628
3. पी. कासिलिंगम और अन्य बनाम पी.एस.जी कॉलेज ऑफ टेक. (1995) सप(2) एससीसी 348
4. जयंत वर्मा और अन्य बनाम यू.ओ.आई. और अन्य (2018) 4 एससीसी 743
5. इंडियन फार्मर्स फर्टिलाइजर्स कोऑप. लिमिटेड बनाम मेसर्स मनीष इंजीनियरिंग एंटरप्राइजेज (2022) 4 एडजे 162: (2022) एससीसी ऑनलाइन एएलडी 150
6. मेसर्स एलकेओ एजेंसियां और अन्य बनाम यू.पी आवास विकास परिषद और अन्य 2019 एससीसी ऑनलाइन ऑलडी. 4369
7. गढ़वाल मंडल विकास निगम लिमिटेड बनाम कृष्णा ट्रैवल एजेंसी (2008) 6 एससीसी 741
8. महराजगंज के माध्यम से एग्जीक्यूटिव इंजीनियर रोड विकास डिवीजन नंबर 111. पनवेल और अन्य बनाम अटलांटा लिमिटेड (2014) 11 एससीसी 619
9. पश्चिम बंगाल के माध्यम से एससीसी और अन्य बनाम एसोसिएट कॉन्ट्रैक्टर्स (2015) 1 एससीसी

अनुवादित

10. झारखंड के माध्यम से एससीसी बनाम हिंदुस्तान कंजर्वेशन (2018) 2 एससीसी 602
11. एलकेओ एजेंसियां एलकेओ के माध्यम से सोल प्रोप्राइटर और अन्य बनाम यूपी आवास विकास परिषद हाउसिंग कमीशन एलकेओ और अन्य के माध्यम से (2019) एससीसी ऑनलाइन ऑल 4369
12. मेसर्स बीएमजी कंजर्वेशन बनाम नेशनल स्मॉल इंडस. कॉर्प. लिमिटेड (2012) एससीसी ऑनलाइन ऑलडी1042
13. जय बहादुर सिंह बनाम सेंट ऑफ यूपी रिट-सी नंबर 41221 ऑफ 2018
14. अमित कुमार गुप्ता बनाम दीपक प्रसाद (2021) एससीसी ऑनलाइन कैल 2174
15. डीडीए बनाम मेसर्स तारा चंद सुमित कंस. कंपनी ओएमपी (विविध) कमिशन नंबर 236 ऑफ 2019
16. नीलेश रमनभाई पटेल बनाम भानुभाई रमनभाई पटेल (2019) 2 जीएलआर 1537
17. कैबरा इंस्टालेशन वाई. सर्विसेस एस.ए. बनाम मह. सेंट्र इलेक्ट्रिसिटी डिस्ट्रीब्यूशन कंपनी लिमिटेड (2019) एससीसी ऑनलाइन बॉम 1437
18. मेसर्स लॉट्स शिपिंग कंपनी लिमिटेड बनाम कोचीन पोर्ट ट्रस्ट बोर्ड ऑफ ट्रस्टीज (2020) एआईआर केर. 169

(माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर द्वारा दिया गया)

प्रार्थी(प्रार्थीयों) के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रीतीश कुमार, श्री अमल रस्तोगी और श्री प्रशस्त पुरी तथा विरोधी पक्षकारों के विद्वान अधिवक्तागण, सुश्री राधिका वर्मा की सहायता से वरिष्ठ अधिवक्ता श्री संदीप दीक्षित, श्री समीर ओम, श्री भानु बाजपेयी तथा श्री मुकुंद तिवारी को सुना गया।

विचाराधीन विषय 1996 के माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम (एतद्पश्चात 1996 के अधिनियम के रूप में संदर्भित) की धारा 9ए(4) अंतर्गत समय विस्ता र के संबंध में है, जिसमें यह प्रश्न निहित है कि :-

क्या 1996 के अधिनियम की धारा 2(1)(ई) के साथ पठित धारा 29ए के अंतर्गत परिकल्पित 'न्यायालय' की अवधारणा में एक ऐसा उच्च न्यायालय शामिल होगा, जिसके पास इलाहाबाद उच्च न्यायालय की भांति आरंभिक सिविल अधिकारिता धारित नहीं है?

अधिदेश के विस्तार के लिए इस प्रार्थनापत्र की धारणीयता के संबंध में एक प्रारंभिक आपत्ति 1996 के अधिनियम की धारा 29ए के अंतर्गत प्रतिपक्षियों द्वारा उठाई गई है, जिसमें कहा गया है कि ऐसा प्रार्थनापत्र केवल किसी जिले के आरंभिक सिविल अधिकारिता वाले प्रधान सिविल न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय, जो साधारण आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग करता हो, जिसे मध्यस्थता की विषय-वस्तु गठित करने वाले ऐसे प्रश्नों का निर्णय करने का अधिकार है, मानो वह एक वाद का विषय-वस्तु हों, के समक्ष ही धारणीय होगा परंतु चूंकि इलाहाबाद उच्च न्यायालय ऐसी आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग नहीं करता, इसलिए प्रार्थनापत्र केवल वाणिज्यिक न्यायालय के समक्ष ही संज्ञेय होगा, न कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष।

वरिष्ठ अधिवक्ता श्री संदीप दीक्षित ने उपरोक्त प्रस्ताव की व्याख्या करते हुए निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किए हैं:-

अनुवादित

1996 के अधिनियम की धारा 2(1)(e) स्पष्ट रूप से 'न्यायालय' की परिभाषा को किसी जिले के प्रधान सिविल न्यायालय के रूप में इंगित करती है, और इसमें उच्च न्यायालय को केवल तभी शामिल किया जाएगा जब ऐसा उच्च न्यायालय साधारण आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग कर रहा हो और मध्यस्थता की विषय-वस्तु के प्रश्नों का निर्णय करने का अधिकार भी रखता हो, मानो वह एक वाद के विषय-वस्तु रहे हों। प्रस्तुत किया गया है कि 'न्यायालय' शब्द की स्पष्ट परिभाषा के दृष्टिगत, 1996 के अधिनियम की धारा 29ए में इंगित उक्त शब्द ऐसी परिभाषा के लिए संदर्भित होगा, जिसके अनुसार उत्तर प्रदेश राज्य में अधिनियम की धारा 29ए के अंतर्गत दायर आवेदन केवल आरंभिक अधिकारिता वाले प्रधान सिविल न्यायालय के समक्ष ही धारणीय होगा, जो कि इस मामले में वाणिज्यिक न्यायालय होगा, न कि उच्च न्यायालय।

1996 के अधिनियम की धारा 2(1)(ई) में जैसा इंगित किया गया है उसके अनुसार 'न्यायालय' शब्द की परिभाषा में कोई अस्पष्टता न होने के कारण, इलाहाबाद उच्च न्यायालय को कोई आरंभिक अधिकारिता नहीं दी जा सकती और इस प्रकार यह केवल प्रधान सिविल न्यायालय ही है, जहां इस तरह का आवेदन धारणीय होगा।

1996 के अधिनियम की धारा 2(1)(ई) के अनुसार 'न्यायालय' की परिभाषा को 1996 के अधिनियम के प्रावधानों के संदर्भ में बनाए रखा जाना चाहिए और यह प्रत्येक धारा के साथ बदल नहीं सकती।

एक बार जब अधिनियम की धारा 11(6) के अंतर्गत मध्यस्थ की नियुक्ति कर दी जाती है तो उसके बाद, उच्च न्यायालय पदकार्य-निवृत्त हो जाएगा, जिसके अंतर्गत कार्यवाही समाप्त हो जाएगी और अधिनियम की धारा 29ए के अंतर्गत समादेश के विस्तार को शामिल करने के लिए इसे आगे नहीं बढ़ाया जा सकता है।

कि अधिनियम की धारा 29ए के अंतर्गत यह तय करने का कोई प्रावधान नहीं है कि मध्यस्थों को पारस्परिक रूप से नियुक्त किया गया है या 1996 के अधिनियम की धारा 11(6) के अंतर्गत न्यायालय के हस्तक्षेप से।

सादृश्य तैयार किया गया है कि जब मध्यस्थ की नियुक्ति अधिनियम की धारा 11(6) के अंतर्गत की जाती है और एक निर्णय पारित किया जाता है, तो अधिनियम की धारा 34 के अंतर्गत उसे केवल प्रधान सिविल न्यायालय के समक्ष ही चुनौती दी जा सकती है और इसके लिए उच्च न्यायालय को आरंभिक अधिकारिता वाला 'न्यायालय' नहीं माना जा सकता।

यहां तक कि समादेश की समाप्ति के मामले में भी जहां अधिनियम की धारा 14 के अंतर्गत आवेदन दायर करने की आवश्यकता होती है, वह भी केवल वाणिज्यिक न्यायालय में धारणीय होगा न कि उच्च न्यायालय में, और यही सादृश्य अधिनियम की धारा 29ए के अंतर्गत समादेश के विस्तार के मामले में भी लागू होगा।

वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 10(2) और धारा 10(3) के अंतर्गत एक भेद का उल्लेख किया गया है, जिसके अनुसार ऐसी प्रक्रिया का पालन केवल आरंभिक सिविल अधिकारिता रखने वाले प्रधान सिविल

अनुवादित

न्यायालय के समक्ष आवेदन दायर करके किया जाना आवश्यक है।

1996 के अधिनियम की धारा 29ए(9) के अंतर्गत एक विशिष्ट समय सीमा को इंगित किया गया है, जो समादेश विस्तार के लिए अपनी शक्तियों का प्रयोग करने में एक संवैधानिक न्यायालय को बाध्य नहीं कर सकती है और इसलिए ऐसा प्रावधान केवल प्रधान सिविल न्यायालय को ही संदर्भित कर सकता है, न कि उच्च न्यायालय को।

लखनऊ विकास प्राधिकरण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री मुकुंद तिवारी ने निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये हैं:-

माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1940 के अनुसार, न्यायालय की परिभाषा धारा 2(सी) के अंतर्गत प्रदान की गई थी, जो केवल आरंभिक अधिकारिता वाले सिविल न्यायालय से संबंधित थी और इसमें उच्च न्यायालय शामिल नहीं था। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि अधिनियम की धारा 28 के अंतर्गत, मध्यस्थ के समादेश के विस्तार की शक्तियाँ आरंभिक अधिकारिता वाले सिविल न्यायालय को प्रदान की गई थीं, जिसकी समय सीमा 1940 के अधिनियम की अनुसूची 1 के खंड (3) में दर्शाई गई थी।

यह प्रस्तुत किया गया है कि अधिनियम की धारा 29ए को अधिनियम की अधिसूचना के पश्चात जोड़ा गया है और यह एक स्व-निहित प्रावधान नहीं है, बल्कि इसे अधिनियम के अन्य प्रावधानों के साथ भी देखा जाना चाहिए।

यह प्रस्तुत करने हेतु कि पूर्व का आरंभिक अधिकारिता वाले सिविल न्यायालय को सम्मिलित करने वाला प्रावधान अब संशोधन के माध्यम से हटा दिया गया है और अब केवल उच्च न्यायालय ही उक्त धाराओं के अंतर्गत संज्ञान ले सकता है, 1996 के अधिनियम की

धारा 47 और 56 की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है। तर्क प्रस्तुत किया गया है कि विधानमंडल के विवेक के अनुसार, उच्च न्यायालय को केवल विशेष मामलों में ही अधिकारिता धारक के रूप में सम्मिलित किया गया है और विधानमंडल के ऐसे सुविचारित इरादे को नकारा नहीं जा सकता।

यह कि 1996 के अधिनियम की धारा 2(1)(ई) के अंतर्गत 'न्यायालय' की परिभाषा में प्रयुक्त 'अभिप्रेत' शब्द प्रकृति में अपवर्जनात्मक है, समावेशी नहीं है, विशेष रूप से क्योंकि 'अभिप्रेत' शब्द के तुरंत पश्चात 'और के अंतर्गत' शब्द नहीं आते हैं।

यह कि 1996 के अधिनियम के अंतर्गत 'न्यायालय' शब्द की परिभाषा में 1940 के अधिनियम में पहले की परिभाषा से विचलन किया गया है, लेकिन केवल उच्च न्यायालय को ऐसे मामले में शामिल करने के लिए जहां उच्च न्यायालय आरंभिक अधिकारिता का प्रयोग करता है।

यह भी प्रस्तुत किया गया है कि वर्तमान मामले में चूंकि 1996 के अधिनियम की धारा 2(1)(ई) के अंतर्गत 'न्यायालय' शब्द की परिभाषा में कोई अस्पष्टता नहीं है, इसलिए कोई उद्देश्यपूर्ण व्याख्या नहीं की जा सकती।

शब्द 'जब तक कि संदर्भ में अन्यथा अपेक्षित न हो' केवल तभी लागू होंगे जब परिभाषा या इसकी प्रयोज्यता में अस्पष्टता हो और जहां कठोर व्याख्या से असंगत परिणाम सामने आएं।

अनुवादित

यह भी प्रस्तुत किया गया है कि जहां 'अभिप्रेत' और 'के अंतर्गत' शब्दों का संयुक्त रूप से उपयोग नहीं किया जाता है, वहां अर्थ/परिभाषा को सीमित रूप से परिभाषित किया जाना चाहिए।

यह प्रस्तुत करने हेतु कि आरंभिक अधिकारिता न रखने वाले उच्च न्यायालय को धारा 29ए के अंतर्गत परिकल्पित 'न्यायालय' शब्द की परिभाषा में शामिल नहीं किया जा सकता है, विद्वान अधिवक्ता ने 1996 के अधिनियम के उद्देश्य और मंशा को इंगित करने के लिए विभिन्न निर्णयों का हवाला दिया है, जिसमें विभिन्न प्रावधानों की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है।

इसके विपरीत, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रीतीश कुमार ने निम्नलिखित तर्क दिए हैं:

1996 के अधिनियम की धारा 2(1)(ई) के अंतर्गत दी गई परिभाषा का उस लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु एक उद्देश्यपूर्ण अर्थान्वयन किया जाना आवश्यक है जिसके लिए इसे सम्मिलित किया गया था और इसके लिए इसे 1996 के अधिनियम की धारा 11(6) के प्रावधानों के साथ पढ़ा जाना चाहिए।

1996 के अधिनियम के उद्देश्य और मंशा के अनुसार, नियुक्ति और उस आधार पर प्रतिस्थापन या समादेश के विस्तार की शक्तियों का प्रयोग सर्वोच्च न्यायिक प्राधिकरण/न्यायालय द्वारा किया जाना आवश्यक है ताकि कार्यवाही में विश्वास पैदा हो और साथ ही ऐसी मध्यस्थता कार्यवाही को लंबा न खींचा जाए जिसे शीघ्रता से समाप्त किया जाना आवश्यक है।

1996 के अधिनियम की धारा 29ए के अंतर्गत समादेश के विस्तार की शक्ति का प्रयोग उच्च न्यायालय द्वारा किया जाना अपेक्षित है, भले ही उसके पास एक ऐसी असामान्य स्थिति से बचने के लिए आरंभिक सिविल अधिकारिता न हो, जहां मध्यस्थ की नियुक्ति उच्च न्यायालय द्वारा की जाती है और उसे वाणिज्यिक न्यायालय जैसे अधीनस्थ न्यायालय द्वारा भली-भांति प्रतिस्थापित किया जा सकता है।

शब्द 'जब तक कि संदर्भ में अन्यथा अपेक्षित न हो' स्वयं यह इंगित करते हैं कि परिभाषा निर्णायक नहीं है तथा वास्तव में इसे 1996 के अधिनियम की विभिन्न धाराओं के उद्देश्य और आशय के अनुरूप ढाला जाना आवश्यक है।

यह प्रस्तुत करने हेतु विद्वान अधिवक्ता ने विभिन्न निर्णयों का हवाला भी दिया है कि यद्यपि जो न्यायालय एक बार 1996 के अधिनियम की धारा 11(6) के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग कर चुका है, वह पदकार्य-निवृत हो जाता है, लेकिन फिर भी समीक्षा की शक्ति प्रतिधारित रखता है, इसलिए 'पदकार्य-निवृत' शब्द को निश्चयात्मकता नहीं प्रदान की जा सकती।

मध्यस्थ को प्रतिस्थापित करने की 1996 के अधिनियम की धारा 29ए के अंतर्गत परिकल्पित शक्ति स्वतः ही मध्यस्थ नियुक्त करने की शक्ति को संदर्भित करती है, जो परिणामस्वरूप अधिनियम की धारा 11(6) के अंतर्गत प्रयोग की जाने वाली शक्तियों को संदर्भित करेगी।

कि न्यायालय के हस्तक्षेप से धारा 11 के अंतर्गत मध्यस्थ की नियुक्ति के मामले में भी, 1996 के अधिनियम की धारा 11(13) के अंतर्गत एक समय सीमा निर्धारित की गई है और इस प्रकार विपरीत पक्ष के विद्वान

अनुवादित

अधिवक्ता द्वारा उठाया गया तर्क कि उच्च न्यायालय जैसे संवैधानिक न्यायालयों पर समय सीमा लागू नहीं की जा सकती, सही नहीं है।

सिविल विविध मध्यस्थता आवेदन संख्या - 13/2023 में उपस्थित याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रशस्त पुरी ने श्री प्रीतीश कुमार द्वारा दिए गए अधिकांश तर्कों को अपनाते हुए इस तथ्य की ओर भी इशारा किया है कि 1996 के अधिनियम की धारा 29ए के अंतर्गत मध्यस्थ को प्रतिस्थापित करने की शक्ति, धारा 11(6) के अंतर्गत मध्यस्थ की नियुक्ति की शक्ति को संदर्भित करेगी और साथ ही विसंगति के उस पहलू को भी जब उच्च न्यायालय द्वारा नियुक्त मध्यस्थ को उसके अधीनस्थ किसी न्यायालय जैसे वाणिज्यिक न्यायालय द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया जाता है।

मामले के समुचित मूल्यांकन के लिए, 1996 के अधिनियम की धारा 2 और धारा 29 के प्रासंगिक प्रावधानों पर विचार करना समीचीन होगा, जो निम्नलिखित हैं:-

"माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 2

2 परिभाषाएं (1) इस भाग में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, -

(क) "माध्यस्थम्" से कोई माध्यस्थम् अभिप्रेत है चाहे जो स्थायी माध्यस्थम् संस्था द्वारा किया गया हो या न किया गया हो;

(ख) "माध्यस्थम् करार" से धारा 7 में निर्दिष्ट कोई करार अभिप्रेत है;

(ग) "माध्यस्थम् पंचाट" के अंतर्गत कोई अंतरिम पंचाट भी है;

(घ) "माध्यस्थम् अधिकरण" से एक मात्र मध्यस्थ या मध्यस्थों का कोई पैनल अभिप्रेत है;

2[(ङ) "न्यायालय" से, -

(i) अंतरराष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् से भिन्न किसी माध्यस्थम् के मामले में, किसी जिले में आरंभिक अधिकारिता वाला प्रधान सिविल न्यायालय अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत ऐसा उच्च न्यायालय भी है, जिसे अपनी मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग करते हुए माध्यस्थम् की विषय-वस्तु वाले प्रश्नों का, यदि वे किसी वाद की विषय-वस्तु होते, विनिश्चय करने की अधिकारिता प्राप्त है, किंतु ऐसे प्रधान सिविल न्यायालय से अवर श्रेणी का कोई सिविल न्यायालय या कोई लघुवाद न्यायालय इसके अंतर्गत नहीं आता है;

(ii) अंतरराष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् के मामले में, ऐसा उच्च न्यायालय अभिप्रेत है, जिसे अपनी मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग करते हुए माध्यस्थम् की विषय-वस्तु के प्रश्नों का, यदि वे किसी वाद की विषय-वस्तु होते, विनिश्चय करने की अधिकारिता प्राप्त है, और अन्य मामलों में, ऐसा उच्च न्यायालय अभिप्रेत है, जिसे उच्च न्यायालय से अधीनस्थ न्यायालयों की डिक्रियों के विरुद्ध अपीलों की सुनवाई करने की अधिकारिता प्राप्त है;]

2[29क. माध्यस्थम् पंचाट की समय-सीमा- (1) माध्यस्थम् अधिकरण द्वारा पंचाट, निर्देश

अनुवादित

ग्रहण करने की तारीख से बारह मास की अवधि के भीतर किया जाएगा।

स्पष्टीकरण- इस उपधारा के प्रयोजनार्थ, माध्यस्थम् अधिकरण के बारे में यह समझा जाएगा कि उसने उस तारीख को निर्देश ग्रहण कर लिया है, जिसको, यथास्थिति, मध्यस्थ या सभी मध्यस्थों ने अपनी नियुक्ति की सूचना लिखित में प्राप्त कर ली है। (2) यदि पंचाट उस तारीख से, जिसको माध्यस्थम् अधिकरण निर्देश ग्रहण करता है, छह मास की अवधि के भीतर किया जाता है, तो माध्यमस्थम् अधिकरण अतिरिक्त फीस की उतनी रकम प्राप्त करने का हकदार होगा जितनी पक्षकारों के बीच करार पाई जाए ।

(3) पक्षकार, सम्मति द्वारा, पंचाट करने के लिए उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट अवधि को छह मास से अनधिक की और अवधि के लिए बढ़ा सकेंगे ।

(4) यदि उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट अवधि या उपधारा (3) के अधीन विनिर्दिष्ट विस्तारित अवधि के भीतर पंचाट नहीं किया जाता है तो मध्यस्थ (मध्यस्थों) का समादेश, जब तक कि न्यायालय द्वारा इस प्रकार विनिर्दिष्ट अवधि के पूर्व या उसके पश्चात् उस अवधि को बढ़ा न दिया गया हो, पर्यवसित हो जाएगा।

परन्तु यदि इस उपधारा के अधीन अवधि बढ़ाए जाने के समय न्यायालय का निष्कर्ष यह है कि कार्यवाहियों में विलंब माध्यस्थम् अधिकरण के कारण हुआ माना जा सकता है तो वह ऐसे विलंब के प्रत्येक मास के लिए मध्यस्थ (मध्यस्थों) की फीस में पांच प्रतिशत से अनधिक तक की कमी किए जाने का आदेश कर सकेगा ।

(5) उपधारा (4) में निर्दिष्ट अवधि का विस्तारण किसी भी पक्षकार के आवेदन पर किया जा सकेगा और केवल पर्याप्त कारण होने पर तथा ऐसे निबंधनों और शर्तों पर ही, जो न्यायालय द्वारा अधिरोपित की जाएं, मंजूर किया जा सकेगा। (6) उपधारा (4) में निर्दिष्ट अवधि का विस्तारण करते हुए, न्यायालय एक या सभी मध्यस्थों को प्रतिस्थापित करने के लिए स्वतंत्र होगा और यदि एक या सभी मध्यस्थों को प्रतिस्थापित किया जाता है, तो माध्यस्थम् की कार्यवाहियां उस प्रक्रम से, जिस प्रक्रम पर वें हैं और पहले से अभिलेखगत साक्ष्य और सामग्री के आधार पर जारी रहेंगी और इस धारा के अधीन नियुक्त मध्यस्थ (मध्यस्थों) के बारे में यह समझा जाएगा कि उन्हें उक्त साक्ष्य और सामग्री प्राप्त हो गई है।

(7) इस धारा के अधीन मध्यस्थ (मध्यस्थों) की नियुक्त किए जाने की दशा में, इस प्रकार पुनर्गठित माध्यस्थम् की कार्यवाहियों को पूर्व में नियुक्त माध्यस्थम् अधिकरण की क्रमागत कार्यवाहियां समझा जाएगा ।

(8) न्यायालय इस धारा के अधीन किन्हीं भी पक्षकारों पर वास्तविक या निदर्श खर्च अधिरोपित करने के लिए स्वतंत्र होगा ।

(9) उपधारा (5) के अधीन फाइल किए गए आवेदन का निपटारा न्यायालय द्वारा यथा संभव शीघ्रता के साथ किया जाएगा और मामले का निपटारा विरोधी पक्षकार पर सूचना की तामील किए जाने की तारीख से साठ दिन की अवधि के भीतर करने का प्रयास किया जाएगा ।

चूंकि वर्तमान विवाद मध्यस्थ के समादेश के विस्तार के संबंध में संबंधित न्यायालय के अधिकारिता से संबंधित है, इसलिए विवाद के

अग्रवाल

बेहतर परिप्रेक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उक्त प्रावधान का संक्षिप्त विधायी इतिहास भी देखा जाना आवश्यक होगा।

1996 के अधिनियम के प्रादुर्भाव से पूर्व, मध्यस्थता अधिनियम, 1940 प्रभावी था जिसकी धारा 2(सी) के अंतर्गत 'न्यायालय' शब्द की परिभाषा दी गई थी, जो इस प्रकार थी:

'(c) "न्यायालय" से ऐसा सिविल न्यायालय अभिप्रेत है, जिसे निर्देश की विषय-वस्तु बनाने वाले प्रश्नों पर निर्णय करने का अधिकार है, यदि वह किसी वाद की विषय-वस्तु रहा हो, किन्तु धारा 21 के अधीन मध्यस्थता कार्यवाही के प्रयोजन के सिवाय, इसमें लघु वाद न्यायालय सम्मिलित नहीं है;

अधिनियम की धारा 28 में न्यायालय को समय-समय पर पंचाट देने हेतु समय विस्तार के लिए अपने विवेक से समय विस्तार का प्रावधान किया गया है। अनुसूची I खंड 3 में मध्यस्थों को निर्देश दिया गया है कि उन्हे अपना निर्णय निर्देश ग्रहण करने के चार महीने के भीतर या मध्यस्थता के किसी भी पक्ष से लिखित में नोटिस द्वारा कार्य करने के लिए कहे जाने के बाद या न्यायालय द्वारा अनुमत ऐसे विस्तारित समय के भीतर देना होगा।

1940 के अधिनियम के उपरोक्त प्रावधानों को धारा 2(सी) के अंतर्गत परिभाषित 'न्यायालय' शब्द की परिभाषा के संदर्भ में देखा जाए तो उनका स्पष्ट अर्थ निकलता है, एक सिविल न्यायालय जिसे निर्देश की विषय-वस्तु के प्रश्न को तय करने की सिविल अधिकारिता हो। लघु वाद न्यायालय अपवाद था। यह ध्यान देने योग्य है कि 1940 के अधिनियम के तहत इस प्रश्न के संबंध में उच्च न्यायालय की कोई भूमिका नहीं थी।

1996 के अधिनियम के प्रादुर्भाव के साथ, मध्यस्थ के समादेश के विस्तार के संबंध में धारा 29A को पहली बार अधिनियम संख्या 3 के माध्यम से 23.10.2015 से प्रभावी रूप से शामिल किया गया।

यह भी सुसंगत तथ्य है कि 1996 के अधिनियम के अधिनियमन के समय धारा 2(1)(ई) के अन्तर्गत परिभाषित 'न्यायालय' की परिभाषा इस प्रकार थी:

"2 परिभाषाएँ -(1) इस भाग में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, -

2[(ङ) "न्यायालय" से किसी जिले में आरंभिक अधिकारिता वाला प्रधान सिविल न्यायालय अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत अपनी मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग करने वाला उच्च न्यायालय भी है, जो माध्यस्थम् की विषय-वस्तु होने वाले प्रश्नों का, यदि वे वाद की विषय-वस्तु होते तो, विनिश्चय करने की अधिकारिता रखता, किन्तु ऐसे प्रधान सिविल न्यायालय से अवर श्रेणी का कोई सिविल न्यायालय या कोई लघुवाद न्यायालय इसके अन्तर्गत नहीं आता है;."

'न्यायालय' की वर्तमान परिभाषा को भी 2016 के अधिनियम संख्या 3 के माध्यम से 23.10.2015 से प्रभावी रूप से सम्मिलित किया गया है, जिसमें अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् और अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् के अतिरिक्त माध्यस्थम् के मामले में एक विभेद शामिल किया गया है। यह ध्यान देने योग्य है कि 2016 में संशोधन के बाद, धारा 2(1)(ई) में इंगित विभेद यह है कि अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् के अलावा

अनुवादित

अन्य माध्यस्थम् के मामले में, 'न्यायालय' का अर्थ एक जिले में आरंभिक अधिकारिता वाला प्रधान सिविल न्यायालय और अपनी मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग करने वाला उच्च न्यायालय है। अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् के मामले में, केवल अपनी मामूली आरंभिक अधिकारिता का प्रयोग करने वाला उच्च न्यायालय ही 'न्यायालय' की परिभाषा के अंतर्गत आता है, जिसमें आरंभिक अधिकारिता वाला प्रधान सिविल न्यायालय शामिल नहीं है।

1996 के अधिनियम की धारा 2 के अंतर्गत घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय माध्यस्थम् के संदर्भ में 'न्यायालय' शब्द के अर्थ में विभेद काफी स्पष्ट है और इसे उचित महत्व दिया जाना चाहिए। यह नहीं कहा जा सकता कि विधायिका ने अपने विवेक से अनजाने में एक भाग में आरंभिक अधिकारिता वाला 'प्रधान सिविल न्यायालय' शब्द को छोड़ दिया है या शामिल कर लिया है जबकि दूसरे भाग से इसे बाहर रखा है। यह स्थापित कानून है कि किसी विधेय में सम्मिलित शब्दों की व्याख्या शाब्दिक रूप से की जानी चाहिए, जब तक कि इसका परिणाम कोई असंगति न हो या उसके किसी अन्य भाग या क़ानून के विरोधाभास में न हो।

इसलिए, इस न्यायालय की सुविचारित राय में, अंतरराष्ट्रीय माध्यस्थम् के संबंध में, किसी जिले में आरंभिक अधिकारिता वाले सिविल न्यायालय का लोप काफी महत्वपूर्ण है और इसका अर्थ यह होगा कि आरंभिक अधिकारिता वाला ऐसा प्रधान सिविल न्यायालय घरेलू माध्यस्थम् के संबंध में शक्तियों का प्रयोग करेगा और उसे केवल तभी बाहर रखा जाएगा जब ऐसी शक्तियों का प्रयोग समवर्ती अधिकारिता वाले उच्च न्यायालय द्वारा भी किया जाना अपेक्षित हो, लेकिन केवल तभी जब ऐसा उच्च न्यायालय न केवल आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग करता हो बल्कि जो माध्यस्थम् की विषय-वस्तु होने वाले प्रश्नों का, यदि वे वाद की विषय-वस्तु होते तो, विनिश्चय करने की अधिकारिता रखता।

अधिनियम की धारा 29A के संदर्भ में, एक जिले में आरंभिक अधिकारिता वाली सिविल न्यायालय की शक्तियों का उच्च न्यायालय के अपवर्जन से, केवल जब ऐसा उच्च न्यायालय अधिनियम की धारा 2(1)(ई)(i) में इंगित शक्तियों का प्रयोग करता हो, आसानी से अनुमान लगाया जा सकता है।

आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि 1996 के अधिनियम की धारा 2 के आरंभ में आने वाले शब्द 'जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो' महत्वपूर्ण हैं और परिभाषा खंड में लचीलेपन को इंगित करते हैं। हालांकि, उपरोक्त शब्दों को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा (2009) 17 एससीसी 313 में रिपोर्ट किए गए निमित रिसोर्सेज आईएनसी और अन्य बनाम एस्सार स्टील्स लिमिटेड के मामले में निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट रूप से व्याख्या की गई है:

"13. इस बात में कोई संदेह नहीं है कि "न्यायालय" की परिभाषा उस संदर्भ के अधीन होगी जिसमें इसका प्रयोग किया जाता है। इसमें अपीलीय न्यायालय भी शामिल हो सकते हैं। एक बार जब विधायिका ने व्याख्या खंड में किसी शब्द को परिभाषित कर दिया है, तो उसे

अनुवादित

अधिनियम के अन्य प्रावधानों में उसी अभिव्यक्ति का उपयोग करना आवश्यक नहीं है। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि व्याख्या खंड में परिभाषित शब्द को दिए गए अर्थ को तब तक वही अर्थ दिया जाना चाहिए जब तक कि संदर्भ अन्यथा अपेक्षा न करे।"

14. यह भी अच्छी तरह से स्थापित है कि विपरीत इरादे को इंगित करने वाले किसी संदर्भ की अनुपस्थिति में, बाद में इस्तेमाल किए गए शब्द को वही अर्थ दिया जाएगा जो उन्हें पहले के क़ानून में दिया गया है। यह अतिसामान्य है कि संशोधन से पहले और बाद में किसी क़ानून में इस्तेमाल किए गए शब्दों या अभिव्यक्ति को एक ही अर्थ दिया जाना चाहिए। यह एक स्थापित कानून है कि जब विधायिका समान संदर्भ में समान शब्दों का प्रयोग करती है, तो यह अनुमान लगाया जाना चाहिए कि किसी भी विपरीत इरादे को इंगित करने वाले किसी भी संदर्भ के अभाव में, शब्दों को वही अर्थ दिया जाना चाहिए। (लेनन बनाम गिब्सन और होवेस लिमिटेड [1919 एसी 709 (पीसी)], एसी पृष्ठ 711 पर, क्रेज़ ऑन स्टैच्यूट लॉ, 7वां संस्करण, पृष्ठ 141 और जी.पी. सिंह के प्रिंसिपल्स ऑफ स्टैच्यूटरी इंटरप्रिटेशन, 10वां संस्करण, पृष्ठ 278 को देखें)"

उपरोक्त निर्णय 1996 के अधिनियम की धारा 14 के अंतर्गत एक आवेदन के संबंध में 'न्यायालय' की परिभाषा को स्पष्ट करते हुए दिया गया था और यह स्पष्ट रूप से एक प्रस्ताव है कि कानून में प्रयुक्त शब्दों या अभिव्यक्ति को किसी विपरीत आशय को इंगित करने वाले किसी संदर्भ की अनुपस्थिति में समान अर्थ दिया जाना चाहिए। उक्त शब्दों को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा (2007) 1 एससीसी 467 मे रिपोर्ट किए गए पांडे एंड कंपनी बिल्डर्स प्रा. लि. बनाम बिहार राज्य और अन्य तथा (1979) 3 एससीसी 54 मे रिपोर्ट किए गए एस.के. गुप्ता और अन्य बनाम के.पी. जैन और अन्य के मामले में भी स्पष्ट किया गया है, जिनमे यह माना गया है कि तब भी जब शब्द किसी परिभाषा खंड से पूर्व या जाते हैं, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, सामान्यतः धारा में दी गई परिभाषा को लागू किया जाना चाहिए और उसे प्रभावी बनाया जाना चाहिए और किसी परिभाषा का ढांचा अक्सर लचीला बनाया जा सकता है लेकिन कानून में सटीकता और निश्चितता के लिए यह आवश्यक है कि इसे ढीला न बनाया जाए बल्कि यथासंभव कठोर रखा जाए।

आवेदकों के विद्वान अधिवक्ताओं ने स्वयं ए.आई.आर. 1997 सर्वोच्च न्यायालय 628 मे रिपोर्ट किए गए के.वी. मुथु बनाम अंगमुथु अम्मल के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है:

“12. जहां किसी धारा में किसी शब्द या पद की परिभाषा " जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो" जैसे शब्दों से शुरू होती है, जैसा कि वर्तमान मामले में है, तो उस धारा में दी गई परिभाषा को लागू किया जाएगा और उसका प्रभाव माना जाएगा लेकिन यह नियम, जो कि सामान्य नियम है, से हटकर कुछ किया जा सकता है, यदि संदर्भ में ऐसा कुछ पाया जाए जिससे यह पता चलता हो कि परिभाषा को लागू नहीं किया जा सकता।”

अनुवादित

उपर्युक्त निर्णय की प्रयोज्यता पर, यह स्पष्ट है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित सुसंगत कानून यह है कि भले ही जहां परिभाषा खंड के पहले शब्द 'जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो' मौजूद हों, वहां भी कानून में दी गई परिभाषा का तब तक पालन किया जाना अपेक्षित है जब तक कि वह अव्यवहारिक न हो और असंगत न हो।

परिभाषा खंड में आने वाले 'अभिप्रेत' और 'के अंतर्गत' शब्दों पर विचार करना भी प्रासंगिक है। यह इंगित करना भी प्रासंगिक है कि दोनों शब्द परिभाषा खंड के अलग-अलग स्थानों पर स्थित हैं और न कि एक साथ। यह स्थापित कानून है कि जहाँ कहीं भी परिभाषा में 'अभिप्रेत' शब्द आता है, वह अपवर्जनात्मक होता है जबकि 'और के अंतर्गत' शब्द प्रकृति में विस्तारक है। इस संदर्भ में, यह एक प्रासंगिक तथ्य है कि न्यायालय शब्द को परिभाषित करते समय, 'अभिप्रेत' शब्द को बिना सहवर्ती शब्दों 'और के अंतर्गत' के सम्मिलित गया है, जहां उत्तरकालीन शब्द केवल आरंभिक अधिकारिता वाले एक प्रधान सिविल न्यायालय के साथ-साथ उच्च न्यायालय को शामिल करने के लिए आया है।

उपर्युक्त शब्दों को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 1995 के अनुपूरक (2) एससीसी 348 में रिपोर्ट किए गए पी. कासिलिंगम एवं अन्य बनाम पी.एस.जी. कॉलेज ऑफ टेक्नोलॉजी के मामले में निम्नलिखित शब्दों में परिभाषित और स्पष्ट किया गया है:

19. ..... यह आग्रह किया गया है कि नियम 2(बी) में "अभिप्रेत और के अंतर्गत" शब्दावली का उपयोग किया गया है जो दर्शाता है कि परिभाषा प्रकृति में समावेशी है और इसमें वे श्रेणियां भी शामिल हैं जिनका इसमें स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं किया गया है। हम सहमत नहीं हो पा रहे हैं। विधानमंडल द्वारा किसी विशेष अभिव्यक्ति को अक्सर 'अभिप्रेत' या 'के अंतर्गत' शब्द का उपयोग करके परिभाषित किया जाता है। कभी-कभी 'अभिप्रेत और के अंतर्गत' शब्दों का उपयोग किया जाता है। 'अभिप्रेत' शब्द का उपयोग यह दर्शाता है कि "परिभाषा एक कठोर परिभाषा है, और परिभाषा में दिए गए अर्थ के अलावा अभिव्यक्ति को कोई अन्य अर्थ नहीं दिया जा सकता है"। (देखें: गफ बनाम गफ [(1891) 2 क्यूबी 665: 60 एलजे क्यूबी 726]; पंजाब भूमि विकास और पुनर्ग्रहण निगम लिमिटेड बनाम पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय [(1990) 3 एससीसी 682, 717: 1991 एससीसी (एलएंडएस) 71]।) जब 'अभिप्रेत' शब्द का उपयोग किया जाता है, तो यह परिभाषित अभिव्यक्ति का अर्थ विस्तारित करता है ताकि इसमें न केवल उन चीजों को समझा जा सके जो उनके प्राकृतिक अर्थ के अनुसार संकेत करती हैं, बल्कि उन चीजों को भी शामिल किया जा सके जिन्हें उस प्रावधान द्वारा स्पष्ट किया गया है कि वे शामिल होंगी। दूसरी ओर, "अभिप्रेत और के अंतर्गत" शब्द "अर्थ की एक विस्तृत व्याख्या को इंगित करते हैं, जिसे अधिनियम के प्रयोजनों के लिए, इन शब्दों या अभिव्यक्तियों के साथ अनिवार्य रूप से जोड़ा जाना चाहिए"। (देखें: डिलवर्थ बनाम कमिश्नर ऑफ स्टैम्प्स [1899 एसी 99, 105-106: (1895-9) ऑल ईआर रेप एक्स्टेंशन 1576] (लॉर्ड वॉटसन); महालक्ष्मी ऑयल मिल्स बनाम स्टेट ऑफ ए.पी. [(1989) 1 एससीसी 164,

अप्रमाणित

169: 1989 एससीसी (कर) 56]।.....

वर्तमान परिदृश्य में उपर्युक्त निर्णय की प्रयोज्यता और विशेष रूप से इस पहलू पर कि धारा 2 में 'अभिप्रेत' और 'और के अंतर्गत' शब्दों का संयुक्त रूप से प्रयोग नहीं किया जाना स्पष्ट रूप से इंगित करेगा कि न्यायालय की परिभाषा को संकीर्ण अर्थ दिया जाना है और यह केवल उच्च न्यायालय की तुलना मे सिविल न्यायालय की अधिकारिता का पहलू है जिसे व्यापक अर्थ दिए जाने की आवश्यकता है। तब पर भी, व्यापक परिभाषा उच्च न्यायालय की शक्ति की सीमा तक सीमित रहेगी जैसा कि परिभाषा खंड में इंगित है और उससे अधिक नहीं हो सकती।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कई निर्णयों में स्पष्ट रूप से कानून प्रतिपादित किया है कि जब वैधानिक प्रावधान की भाषा स्पष्ट और असंदिग्ध होती है, तो यह विधायी मंशा को दर्शाती है और इसलिए उन्हे उक्त शब्दों से जुड़ा हुआ अर्थ दिया जाना चाहिए। यह भी माना गया है कि किसी प्रावधान की व्याख्या करते समय, न्यायालय कानून नहीं बना सकते हैं, खासकर तब जब क़ानून की भाषा स्पष्ट और असंदिग्ध हो, जिसके बाद "चूक के कारण"(केसस ओमिसस) अवधारणा की प्रतिपूर्ति न्यायिक व्याख्या प्रक्रिया द्वारा नहीं की जा सकती।

कानून का उक्त प्रतिपादन माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भारत संघ एवं अन्य बनाम प्रियंकन शरण एवं अन्य के मामले में दिए गए निर्णय से स्पष्ट होगा, जिसे एआईआर 2009 एससी (सप) 972 में निम्नलिखित शब्दों में रिपोर्ट किया गया है:

"19. विधि का यह सुस्थापित सिद्धांत है कि न्यायालय किसी स्पष्ट और असंदिग्ध वैधानिक उपबंध में कोई नया अर्थ नहीं आरोपित कर सकता है। एक अधिनियम विधायिका का औपचारिक आदेश होता है। एक अधिनियम में प्रयुक्त भाषा विधायी आशय का निर्धारण करने वाला प्रमुख कारक होता है।

20. शब्द और वाक्यांश प्रतीक होते हैं जो संदर्भों को मानसिक रूप से उत्प्रेरित करते हैं। एक विधि की व्याख्या करने का उद्देश्य इसे लागू करने वाली विधायिका की मंशा का पता लगाना है। (इंस्टीट्यूट ऑफ चार्टर्ड अकाउंटेंट्स ऑफ इंडिया बनाम मेसर्स प्राइस वाटरहाउस एवं अन्य (एआईआर 1998 एससी 74) देखें। विधायिका की मंशा मुख्य रूप से प्रयुक्त भाषा से प्राप्त की जानी चाहिए, जिसका अर्थ है कि इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि क्या कहा गया है और क्या नहीं कहा गया है। परिणामस्वरूप, एक ऐसा निर्माण जिसके समर्थन के लिए शब्दों को जोड़ने या स्थानापन्न करने की आवश्यकता होती है या जिसके परिणामस्वरूप शब्दों को अर्थहीन के रूप में अस्वीकार कर दिया जाता है, से बचा जाना चाहिए। जैसा कि क्रॉफर्ड बनाम स्पूनर (1846 (6) मूर पीसी 1) में देखा गया है, न्यायालय, विधायिकाओं द्वारा अधिनियम के दोषपूर्ण वाक्यांश की सहायता नहीं कर सकते हैं, हम जोड़ या सुधार नहीं कर सकते हैं, और निर्माण द्वारा उन कमियों को पूरा नहीं कर सकते हैं जो वहां रह गई हैं। (देखें गुजरात राज्य एवं अन्य बनाम दिलीपभाई नाथजीभाई पटेल एवं अन्य (जेटी1998 (2) एससी 253))। अधिनियम में शब्दों को पढ़ना निर्माण के सभी नियमों के विरुद्ध है जब तक कि ऐसा करना

अनुवादित

नितांत आवश्यक न हो। (स्टॉक बनाम फ्रैंक जोन्स (टिप्टन) लिमिटेड (1978 1 ऑल ईआर 948 (एचएल) देखें। व्याख्या के नियम न्यायालयों को ऐसा करने की अनुमति नहीं देते हैं, जब तक कि प्रावधान अर्थहीन या संदिग्ध अर्थ का न हो। न्यायालय को संसद के अधिनियम का अर्थ निरूपण का अधिकार तब तक नहीं है जब तक कि इसके लिए स्पष्ट कारण अधिनियम की सीमाओं के भीतर नहीं मिलता है। (पेर लॉर्ड लोरेबर्न एलसी इन विकर्स संस एंड मैक्सिम लिमिटेड बनाम इवांस (1910) एसी 445 (एचएल) में, जामा मस्जिद, मेरकारा बनाम कोडिमणिंद्रा देवियाह और अन्य (एआईआर 1962 एससी 847) में उद्धृत।

22. डॉ. आर. वेंकटचलम एवं अन्य बनाम उप परिवहन आयुक्त एवं अन्य (एआईआर 1977 एससी 842) में यह देखा गया कि न्यायालयों को वैचारिक संरचना या योजना की उनकी अपनी पूर्व-कल्पित धारणाओं के आधार पर किसी प्रावधान के अर्थ का पूर्व-निर्धारण करने के खतरे से बचना चाहिए, जिसमें व्याख्या किए जाने वाले प्रावधान को किसी प्रकार से समायोजित किया जाता है। उनके पास व्याख्या के बहाने विधायी कार्य को हड़पने का अधिकार नहीं हैं।

23. किसी प्रावधान की व्याख्या करते समय न्यायालय केवल कानून की व्याख्या करता है और कानून बना नहीं सकता। यदि कानून के किसी प्रावधान का दुरुपयोग किया जाता है और कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग के अध्यधीन किया जाता है, तो यदि आवश्यक समझा जाए तो इसे संशोधित, परिवर्तित या निरस्त करना विधायिका का कार्य है। (कमिश्नर ऑफ सेल्स टैक्स, एम.पी. बनाम पॉपुलर ट्रेडिंग कंपनी, उज्जैन (2000 (5) एससीसी 515 देखें)। विधायी चूक की प्रतिपूर्ति न्यायिक व्याख्यात्मक प्रक्रिया द्वारा नहीं की जा सकती।"

उपर्युक्त निर्णयों पर विचार करने से यह स्पष्ट है कि वैधानिक प्रावधानों की व्याख्या मनमानी या व्यक्तिगत व्याख्या/दृष्टिकोण के आधार पर नहीं की जानी चाहिए, बल्कि उन्हें उनका शाब्दिक अर्थ निरूपित किया जाना चाहिए, जिन्हे विधायिका के विवेक में शामिल किया गया है, खासकर तब जब किसी कानून के प्रावधान में इस्तेमाल की गई सादी और सरल भाषा, स्पष्ट, और असंदिग्ध हो और किसी भी असंगत परिणाम की ओर न ले जाती हो। "चूक के कारण" के सिद्धांतों को संयम से और असाधारण परिस्थितियों में ही लागू किया जाना चाहिए, जैसा कि उपरोक्त निर्णयों में दर्शाया गया है।

वर्तमान मामले में, यह स्पष्ट है कि 1996 के अधिनियम की धारा 2(1)(ई) के अंतर्गत परिकल्पित शब्द 'न्यायालय' की परिभाषा स्पष्ट और असंदिग्ध है, खासकर जब अंतरराष्ट्रीय और घरेलू माध्यस्थम् में संकेतित भेद के संदर्भ में देखा जाता है। केवल उन मामलों में, जहां उसके पास मौलिक अधिकारिता है, उच्च न्यायालय को शामिल करने की विधायिका की मंशा स्पष्ट रूप से समझ में आती है।

इस पहलू की जांच दूसरे दृष्टिकोण से भी की जा सकती है, यानी तत्व और सार के सिद्धांत को शामिल करते हुए, जिसमें वैधानिक प्रावधान की जांच करके उसके वास्तविक

अनुवादित

स्वरूप और चरित्र का पता लगाना शामिल है। यद्यपि उपर्युक्त सिद्धांत का उपयोग आम तौर पर यह निर्धारित करने के लिए किया जाता है कि कोई कानून भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची के अनुसार किसी विशेष सूची के संबंध में है या नहीं, लेकिन चूंकि इसका उपयोग वैधानिक प्रावधान की वास्तविक प्रकृति और चरित्र को निर्धारित करने के लिए किया जाता है, इसलिए इस न्यायालय की सुविचारित राय में, इसे वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों में लागू किया जा सकता है, जिसे (2018) 4 एससीसी 743 मे रिपोर्ट किए गए जयंत वर्मा और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के हालिया निर्णय में निम्नलिखित तरीके से समझाया गया है:

" ..... 35. इसके अलावा, भारतीय संविधान अधिनियम को अधिनियमित करते समय ब्रिटिश संसद को ब्रिटिश उत्तरी अमेरिका अधिनियम और ऑस्ट्रेलियाई राष्ट्रमंडल अधिनियम के कामकाज का एक लंबा अनुभव था। और उन्हें पता रहा होगा कि यह सुनिश्चित करना व्यवहार में संभव नहीं है कि कई विधायिकाओं को सौंपी गई शक्तियां कभी परस्पर अतिव्यापी नहीं होंगी। जैसा कि सर मौरिस ग्वायर, मुख्य न्यायाधीश, ने सुब्रह्मण्यन चेट्टियार बनाम मुथुस्वामी गौंडन, 1940 एससीसी ऑनलाइन एफसी 9: (1940) 2 एफसीआर 188: एआईआर 1941 एफसी 47]: (एफसीआर पी. 201: एससीसी ऑनलाइन एफसी) में कहा था:

'समय-समय पर ऐसा अनिवार्य रूप से होना ही है कि कानून, यद्यपि एक सूची में एक विषय से सरोकार रखने का दावा करता है, फिर भी वह दूसरी सूची के एक विषय को भी छू सकता है, और अधिनियम के विभिन्न प्रावधान इतनी घनिष्ठता से सम्बद्ध हो सकते हैं कि एक सख्त शब्दशः व्याख्या के अंधानुकरण के परिणामस्वरूप कई क़ानून अमान्य घोषित हो सकते हैं क्योंकि यह प्रतीत हो सकता है कि निर्माण करने वाली विधायिका ने एक निषिद्ध क्षेत्र में विधायन किया है। इसलिए न्यायिक समिति द्वारा विकसित नियम जिसके तहत विवादित कानून की जांच उसके "तत्व और सार" या उसके "वास्तविक स्वरूप और चरित्र" को जानने के लिए की जाती है, ताकि यह निर्धारित किया जा सके कि यह इस सूची में शामिल मामलों के संबंध में कानून है या किसी अन्य सूची में:"

36. माननीय न्यायाधीश इस बात पर सहमत हैं कि यह अनुच्छेद उन आधारों का सही वर्णन करता है जिन पर नियम आधारित है, तथा यह प्रांतीय तथा अधिक्षेत्र विधान दोनों पर लागू होता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि पिछली कठिनाइयों के अनुभव ने भारतीय अधिनियम के प्रावधानों को कुछ विशेषताओं में अधिक सटीक बना दिया है, और समवर्ती सूची के अस्तित्व ने उन मामलों जो यह निर्धारित करने में महत्वपूर्ण हैं कि किन्ही विशेष प्रावधानों को किस सूची में रखा जाना चाहिए, और जो केवल आकस्मिक हैं, के मध्य अंतर करना आसान बना दिया है। लेकिन दो सूचियों के स्थान पर तीन सूचियाँ रखने या यहाँ तक कि अधिकारिता के पदानुक्रम की व्यवस्था करने से भी विषय-वस्तु के प्रतिच्छादन से बचा नहीं जा सकता।

37. विषयों में अभी भी प्रतिच्छादन होना चाहिए और जहां ऐसा होता है, वहां यह प्रश्न

अनुवादित

अवश्य पूछा जाना चाहिए कि जिस शिकायत के बारे में अधिनियम बनाया गया है उसका तत्व और सार क्या है और किस सूची में इसकी वास्तविक प्रकृति और स्वरूप को पाया जा सकता है। यदि ये प्रश्न न पूछे जा सकें, तो बहुत से लाभकारी कानून प्रादुर्भाव से ही अवरुद्ध हो जाएंगे, और प्रांतीय विधान को सौंपे गए बहुत से विषयों पर कभी भी प्रभावी ढंग से विचार नहीं किया जा सकेगा।

उपर्युक्त सिद्धांत की प्रयोज्यता पर भी, 1996 के अधिनियम की धारा 2 के तहत न्यायालय की परिभाषा की वास्तविक प्रकृति और स्वरूप स्पष्ट रूप से एक उच्च न्यायालय को 'न्यायालय' के रूप में केवल तभी शामिल करने का संकेत देता है, जब वह न केवल आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग करता हो बल्कि जो माध्यस्थम् की विषय-वस्तु होने वाले प्रश्नों का, यदि वे वाद की विषय-वस्तु होते तो, विनिश्चय करने की अधिकारिता रखता हो। इसलिए, ये दोहरी शर्तें उच्च न्यायालय को 1996 के अधिनियम की धारा 2 के तहत परिभाषित न्यायालय के रूप में शामिल करने के लिए अनिवार्य हैं।

आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने इंडियन फार्मर्स फर्टिलाइजर्स कोऑपरेटिव लिमिटेड बनाम मेसर्स मनीष इंजीनियरिंग एंटरप्राइजेज के मामले में इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ द्वारा दिए गए फैसले का आश्रय लिया है, जो 2022 (4) ADJ 162: 2022 SCC ऑनलाइन इलाहाबाद 150 में रिपोर्ट किया गया है। इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा दिए गए उपरोक्त निर्णय में विशेष रूप से 1996 के अधिनियम की धारा 29ए के तहत परिकल्पित 'न्यायालय' की परिभाषा के पहलू पर विचार किया गया है तथा यह माना गया है कि धारा 29ए के तहत दायर माध्यस्थम् पंचाट के लिए समय विस्तार हेतु आवेदन उच्च न्यायालय के समक्ष स्वीकार्य होगा, भले ही उसके पास आरंभिक अधिकारिता न हो।

उपर्युक्त निर्णय के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि उक्त निर्णय में अनुसरण किए गए विधि के सिद्धांत निम्नलिखित परिच्छेदों में इंगित किये गए हैं:-

"35. एक बार जब मध्यस्थ या मध्यस्थ न्यायाधिकरण की नियुक्ति उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय द्वारा धारा 11 के उप-धारा (4), (5) और (6) के तहत शक्ति का प्रयोग करके कर दी जाती है, तो मध्यस्थ या मध्यस्थ न्यायाधिकरण को प्रतिस्थापित करने की शक्ति, यथास्थिति, केवल उक्त नियुक्ति प्राधिकरण अर्थात् उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय में निहित होती है।

36. विपक्षी पक्ष की ओर से उठाया गया तर्क कि धारा 2(1)(ई) में प्रयुक्त शब्द 'न्यायालय' का तात्पर्य प्रधान सिविल न्यायालय है न कि उच्च न्यायालय, स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि एक बार जब नियुक्ति धारा 11 के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा की गई थी, तो मध्यस्थ को प्रतिस्थापित करने की शक्ति धारा 29ए की उपधारा (6) के अधीन प्रधान सिविल न्यायालय में निहित नहीं हो सकती।

43. यहां, हमारा सरोकार धारा 29ए के तहत माध्यस्थम् पंचाट के लिए समय सीमा के विस्तार से है, जिसमें अधिनियम की धारा 11 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा मध्यस्थ नियुक्त किया गया है। धारा 42 लागू नहीं होगी और केवल उच्च

अनुवादित

न्यायालय के पास ही पंचाट देने के लिए मध्यस्थ न्यायाधिकरण को विस्तार देने की शक्ति है।"

निर्णय के अनुसार, 1996 के अधिनियम की धारा 29ए के तहत अधिदेश के विस्तार के लिए उच्च न्यायालय की अधिकारिता रखने का प्राथमिक पहलू यह है कि एक बार जब मध्यस्थ की नियुक्ति उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय द्वारा धारा 11 की उप-धारा (4), (5) और (6) के तहत शक्तियों का प्रयोग करके कर दी जाती है, तो मध्यस्थ को प्रतिस्थापित करने की शक्ति केवल नियुक्ति प्राधिकारी के पास रह सकती है जो, यथास्थिति, उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय होगा, और इसलिए धारा 2(1)(ई) में आने वाले शब्द 'न्यायालय' की परिभाषा को केवल प्रधान सिविल न्यायालय होना, न कि उच्च न्यायालय होना, स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

प्रारंभिक सिविल अधिकारिता से वंचित उच्च न्यायालय को शामिल करने का पूरा सादृश्य यह प्रतीत होता है कि मध्यस्थ को प्रतिस्थापित करने की शक्ति, मध्यस्थ नियुक्त करने की शक्ति के साथ सह-अवधि होगी। उक्त समन्वय पीठ ने विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा दिए गए निर्णयों के साथ-साथ इस न्यायालय की एक अन्य समन्वय पीठ द्वारा 2019 एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 4369 मे रिपोर्ट किए गए मेसर्स लखनऊ एजेन्सीस एवं अन्य बनाम यूपी आवास विकास परिषद एवं अन्य में दिए गए निर्णयों का भी उल्लेख किया है। हालांकि, उपरोक्त निर्णय को इस तथ्य पर विभेदित किया गया है कि वहां विवाद न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना मध्यस्थ की नियुक्ति से संबंधित था जबकि इंडियन फार्मर्स फर्टिलाइजर्स कोऑपरेटिव लिमिटेड (सुप्रा) में, मध्यस्थ की नियुक्ति 1996 के अधिनियम की धारा 11(6) के तहत न्यायालय के हस्तक्षेप से की गई थी।

हालांकि, इंडियन फार्मर्स फर्टिलाइजर्स कोऑपरेटिव लिमिटेड (उपरोक्त) में उपरोक्त निर्णय के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए प्रासंगिक निर्णयों पर ध्यान दिया गया है, लेकिन इसके विनिश्चय, निर्णयाधार के संदर्भ में विवेचन या मूल्यांकन से बच गए हैं। निर्णय, इस दोहरे आधार पर कि 1996 के अधिनियम की धारा 29ए में दर्शाए गए प्रतिस्थापित करने की शक्ति अधिनियम की धारा 11(6) के तहत नियुक्त करने की शक्ति के समान है और दूसरा यह कि मध्यस्थ की नियुक्ति करने की शक्ति एक बार उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग करने योग्य हो जाने के बाद, ऐसे मध्यस्थों को सिविल न्यायालय द्वारा प्रतिस्थापित करने से असंगत स्थिति पैदा हो जाएगी, 'न्यायालय' की शब्दावली के तहत आरंभिक अधिकारिता नहीं रखने वाले उच्च न्यायालय को भी शामिल करने का प्रयास करता है।

सम्मान के साथ, ऐसे निष्कर्षों के संबंध में, विद्वान न्यायाधीश ने यद्यपि निमेट रिसोर्सेज (उपरोक्त) के मामले में दिए गए निर्णय पर ध्यान दिया है, लेकिन उसमें बताए गए पहलू पर विचार करने में विफल रहे हैं कि मुख्य न्यायाधीश या उनके नामित व्यक्ति 1996 के

अनुवादित

अधिनियम की धारा 11(6) के तहत एक सीमित अधिकारिता का प्रयोग करते हैं और एक बार एक मध्यस्थ को नामित कर दिया जाता है, तो न्यायालय कोई अधिकारिता नहीं रखता है और पदकार्य-निवृत्त हो जाता है। उपरोक्त निर्णय का प्रासंगिक परिच्छेद इस प्रकार है:

"18. 1996 अधिनियम की धारा 11(6) के तहत अधिकारिता का उपयोग एक अलग उद्देश्य के लिए किया जाता है। मुख्य न्यायाधीश या उनके द्वारा नामित व्यक्ति सीमित अधिकारिता का प्रयोग करता है। यह 1940 अधिनियम की धारा 20 की उपधारा (4) जितना व्यापक नहीं है। जब 1996 अधिनियम के तहत एक मध्यस्थ नामित किया जाता है, तो न्यायालय के पास कोई अधिकारिता नहीं रहता है। यह संविधानिक प्रावधानों या सुप्रीम कोर्ट के नियमों के अनुसार अधिकारिता के प्रयोग के लिए पदकार्य-निवृत्त हो जाता है।"

उसी निर्णय में, यह माना गया है कि चूंकि पटना उच्च न्यायालय किसी आरंभिक सिविल अधिकारिता धारित नहीं करता है, इसलिए यह केवल आरंभिक अधिकारिता रखने वाला जिले का प्रधान सिविल न्यायालय होगा जिसे अधिनियम की धारा 37 के तहत अपील सुनने का अधिकारिता होगा।

उपरोक्त विधि का सिद्धांत माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा गढ़वाल मंडल विकास निगम लिमिटेड बनाम कृष्णा ट्रैवल एजेंसी, (2008) 6 एससीसी 741, मामले में दिए गए निर्णयों में भी इंगित किया गया है।

"9.समस्या का एक और पहलू है। पक्षकार माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम की धारा 37(1)(बी) के तहत अपील दायर करने के अधिकार से वंचित हो जाएगा। इसका मतलब है कि अपील का एक मूल्यवान अधिकार खो जाएगा। इसलिए, तमाम परिस्थितियों को देखते हुए, विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिया गया तर्क स्वीकार नहीं किया जा सकता। इस तर्क को एक और तार्किक निष्कर्ष पर ले जाते हुए, जब माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम की धारा 11(6) के तहत उच्च न्यायालय द्वारा नियुक्ति की जाती है, तो उस स्थिति में, धारा 11(6) के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा की गई प्रत्येक नियुक्ति में, उच्च न्यायालय आरंभिक अधिकारिता का प्रधान सिविल न्यायालय बन जाएगा, जैसा कि 1996 अधिनियम की धारा 2(1)(ई) में परिभाषित किया गया है। यह निश्चित रूप से विधायिका का इरादा नहीं है। एक बार मध्यस्थ नियुक्त हो जाने के बाद पंचाट दाखिल करने और उसे चुनौती देने के लिए उपयुक्त मंच, आरंभिक अधिकारिता का प्रधान सिविल न्यायालय होगा। इस प्रकार, पक्षों को 1996 अधिनियम की धारा 34 के तहत आगे बढ़ने और 1996 अधिनियम की धारा 37 के तहत अपील करने का अधिकार होगा। इसलिए, चीजों की योजना में, यदि नियुक्ति उच्च न्यायालय या इस न्यायालय द्वारा की जाती है, तो आरंभिक अधिकारिता का प्रधान सिविल न्यायालय वही रहता है जैसा कि 1996 अधिनियम की धारा 2(1)(ई) के तहत परिकल्पित है।

10. हम आगे दोहराते हैं कि नेशनल एल्युमिनियम कंपनी लिमिटेड बनाम प्रेसस्टील एंड फैब्रिकेशंस (पी) लिमिटेड [(2004) 1 एससीसी 540] और गोवा राज्य बनाम वेस्टर्न

अनुवादित

बिल्डर्स [(2006) 6 एससीसी 239] में इस न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण सही दृष्टिकोण है और हम इस दृष्टिकोण की पुष्टि करते हैं कि यदि उच्च न्यायालय द्वारा धारा 11(6) के तहत मध्यस्थ की कोई नियुक्ति की जाती है, तो आरंभिक अधिकारिता का प्रधान सिविल न्यायालय, जिला न्यायालय रहता है न कि उच्च न्यायालय। और इसी तरह, यदि इस न्यायालय द्वारा मध्यस्थ की नियुक्ति की जाती है, तो उस स्थिति में भी, आपत्ति केवल 1996 अधिनियम की धारा 2(1)(ई) में परिभाषित आरंभिक अधिकारिता के मुख्य नागरिक न्यायालय के समक्ष ही दायर की जा सकती है। अतः, इस मामले को देखते हुए, हम यह मानते हैं कि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा किया गया यह आग्रह कि यह न्यायालय इस न्यायालय द्वारा नियुक्त मध्यस्थ द्वारा दिए गए पंचाट पर विचार करे और उस पर सभी आपत्तियों का निपटारा इस न्यायालय द्वारा किया जाना चाहिए, अस्वीकार्य है और फलस्वरूप, आवेदन में किया गया गया अनुरोध खारिज किया जाता है।"

39.i. (2014)11 एससीसी 619 में रिपोर्ट किया गया अधिशासी अभियंता, सड़क विकास प्रभाग संख्या 111, पनवेल के माध्यम से महाराष्ट्र राज्य और अन्य बनाम अटलांटा लिमिटेड;

24.1. सर्वप्रथम, यदि उपरोक्त निष्कर्ष को स्वीकार नहीं किया जाना था तो "न्यायालय" शब्द की परिभाषा के अंतर्गत "अपने साधारण आरंभिक अधिकारिता का प्रयोग करते हुए" उच्च न्यायालय को शामिल करना निरर्थक हो जाएगा। क्योंकि, "किसी जिले में आरंभिक अधिकारिता वाला प्रधान सिविल न्यायालय", अर्थात, संबंधित जिला न्यायाधीश, उच्च न्यायालय से निम्न श्रेणी का न्यायालय होने के कारण, संबंधित जिला न्यायाधीश सदैव उच्च न्यायालय को मामले पर निर्णय लेने से बाहर रखेंगे। इसलिए, अपीलकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत दलील को स्वीकार नहीं किया जा सकता है, साथ ही यह सुनिश्चित किया जाए कि "अपनी साधारण आरंभिक अधिकारिता का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय" को उसका उचित अर्थ दिया जाए। तदनुसार, माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 2(1)(ई) की व्याख्या करते समय सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 15 में निहित सिद्धांत को लागू नहीं किया जा सकता।

24.2. दूसरा, माध्यस्थम् अधिनियम के प्रावधान किसी भी संदेह के लिए कोई जगह नहीं छोड़ते हैं, कि यह सबसे उच्च न्यायालय है जो आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग करता है, जिसे माध्यस्थम् समझौतों, मध्यस्थीय कार्यवाही और मध्यस्थीय पंचाटों से उत्पन्न होने वाले विवादों का निपटारा करने के लिए चुना गया था। निस्संदेह, "किसी जिले में आरंभिक अधिकारिता वाला प्रधान सिविल न्यायालय", उस जिले में आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग करने वाला सर्वाधिक उच्चतर न्यायालय है, जिस पर उसकी अधिकारिता विस्तारित होती है। यह स्पष्ट है कि माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 2(1)(ई) में "किसी जिले में आरंभिक अधिकारिता वाले प्रधान सिविल न्यायालय" में अधिकारिता निहित होने के कारण, जिला न्यायाधीश के अधीनस्थ न्यायालयों पर अधिकारिता का विकल्प नहीं दिया गया। इसी तरह, "अपने साधारण आरंभिक अधिकारिता का प्रयोग करने वाला उच्च न्यायालय", अपने आरंभिक सिविल

अप्रमाणित

अधिकारिता के दायरे में आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग करने वाला सर्वाधिक उच्चतर न्यायालय न्यायालय है। उसी सादृश्य और उन्हीं कारणों से, जहाँ भी कोई उच्च न्यायालय "साधारण आरंभिक नागरिक अधिकारिता" का प्रयोग करता है, अधिकारिता का चुनाव स्पष्ट रूप से उच्च न्यायालय के दायरे में आएगा।

39.ii. (2015)1 एससीसी 31 में रिपोर्ट किया गया पश्चिम बंगाल राज्य एवं अन्य बनाम एसोसिएट कॉन्ट्रैक्टर्स;

"20. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, धारा 2(1)(ई) में "न्यायालय" की परिभाषा 1940 के अधिनियम की धारा 2(सी) में निहित, इसके पूर्ववर्ती से वस्तुतः भिन्न है। ऐसे कई कारण हैं कि क्यों सर्वोच्च न्यायालय को धारा 2(1)(ई) के अर्थ के अंतर्गत "न्यायालय" नहीं माना जा सकता, भले ही वह माध्यस्थम् कार्यवाही पर नियंत्रण रखता हो। सबसे पहले, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, परिभाषा व्यापक है और धारा 2(1)(ई) के उद्देश्य के लिए "न्यायालय" हो सकने वाले दो संभावित न्यायालयों में से केवल एक को मान्यता देती है। दूसरा, 1940 अधिनियम के अंतर्गत, "दीवानी न्यायालय" शब्द को इतना व्यापक माना गया है कि इसमें एक अपीलीय न्यायालय शामिल हो सकता है और इसलिए, जैसा कि 1940 अधिनियम के अंतर्गत उपरोक्त दो निर्णयों में माना गया था, इसमें सर्वोच्च न्यायालय भी शामिल होगा। यद्यपि यह प्रस्ताव स्वयं संदेह के दायरे में है, क्योंकि अनुच्छेद 136 के अंतर्गत अधिकारिता का प्रयोग करने वाला सर्वोच्च न्यायालय एक सामान्य अपीलीय न्यायालय नहीं है, यह कहना पर्याप्त है कि वर्तमान परिभाषा के अंतर्गत भी यह कारण लागू नहीं होता है, जो या तो प्रधान सिविल न्यायालय या उच्च न्यायालय द्वारा आरंभिक अधिकारिता का प्रयोग करने की बात करती है। तीसरा, यदि कोई आवेदन सीधे सर्वोच्च न्यायालय में प्रस्तुत किया जाना है, तो धारा 9 और 34 के तहत आवेदनों के संबंध में अब तक उपलब्ध अपील, जो अधिनियम की धारा 37 के तहत प्रदान की गई है, उपलब्ध नहीं होगी। अनुच्छेद 136 के तहत उच्चतम न्यायालय के समक्ष कोई और अपील भी उपलब्ध नहीं होगी। एकमात्र अन्य तर्क जो संभवतः दिया जा सकता है वह यह है कि सभी परिभाषा खंड विपरीत संदर्भ के अधीन होते हैं। धारा 42 का संदर्भ किसी भी तरह से इस निष्कर्ष पर नहीं ले जाता है कि धारा 42 में "न्यायालय" शब्द को परिभाषित किए गए रूप के अतिरिक्त किसी अन्य तरीके से समझा जाना चाहिए। धारा 42 का संदर्भ केवल यह देखने के लिए है कि माध्यस्थम् समझौतों के संबंध में सभी आवेदनों पर केवल एक न्यायालय का क्षेत्राधिकार होगा, जो संदर्भ किसी भी तरह से उच्चतम न्यायालय को धारा 42 के अर्थ के अंतर्गत "न्यायालय" बनने में सक्षम नहीं बनाता है। इसे उपयुक्त रूप से कहा गया है कि फोरम कन्वेनिएंस के नियम को धारा 42 द्वारा स्पष्ट रूप से बाहर रखा गया है(देखें जेएसडब्ल्यू स्टील लिमिटेड बनाम जिंदल प्रैक्सेयर ऑक्सीजन कंपनी लिमिटेड [जिंदल विजयनगर स्टील (जेएसडब्ल्यू स्टील लिमिटेड) बनाम जिंदल प्रैक्सेयर ऑक्सीजन कंपनी लिमिटेड, (2006) 11 एससीसी 521], एससीसी पृष्ठ 542, पैरा 59)। धारा 42 भी 1940 अधिनियम की धारा 31(4) से इस

अवधवादिव

प्रकार काफी अलग है, क्योंकि "इसे सुनने के लिए सक्षम न्यायालय में दायर किया गया है" वाक्यांश धारा 42 में नहीं है। ऐसा इसलिए है क्योंकि धारा 2(1)(ई) के तहत सक्षम न्यायालय को आरंभिक अधिकारिता का प्रयोग करने वाला प्रधान सिविल न्यायालय या आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग करने वाला उच्च न्यायालय निर्धारित किया गया है, और कोई अन्य न्यायालय नहीं। इन सभी कारणों से, हम मानते हैं कि 1940 अधिनियम के तहत लिए गए निर्णय 1996 अधिनियम के तहत लागू नहीं होंगे, और धारा 42 के प्रयोजनों के लिए सर्वोच्च न्यायालय "न्यायालय" नहीं हो सकता है।"

"25.....(ए) धारा 2(1)(ई) में एक विस्तृत परिभाषा दी गई है, जिसमें केवल जिले में आरंभिक अधिकारिता वाले प्रधान सिविल न्यायालय या राज्य में आरंभिक सिविल अधिकारिता वाले उच्च न्यायालय को ही चिन्हित किया गया है, तथा माध्यस्थम् अधिनियम, 1996 के भाग 1 के प्रयोजन के लिए किसी अन्य न्यायालय को "न्यायालय" नहीं माना गया है।

(ई) किसी भी परिस्थिति में धारा 2(1)(ई) के प्रयोजनों के लिए सर्वोच्च न्यायालय "न्यायालय" नहीं हो सकता है, तथा चाहे सर्वोच्च न्यायालय मध्यस्थ नियुक्त करने के पश्चात अपने नियंत्रण को बरकरार रखे या नहीं, आवेदन, यथास्थिति, राज्य में आरंभिक अधिकारिता वाले उच्च न्यायालय या जिले में आरंभिक अधिकारिता वाले प्रधान सिविल न्यायालय के समक्ष पहले किये गए आवेदन का अनुसरण करेंगे....."

एसोसिएट कॉन्ट्रैक्टर्स (सुप्रा) के मामले में दिए गए फैसले की पुष्टि उसके बाद (2018)2 सुप्रीम कोर्ट केस 602 में रिपोर्ट किए गए झारखंड राज्य बनाम हिंदुस्तान कंस्ट्रक्शन के मामले में संविधान पीठ के फैसले द्वारा की गई है, जिसमें निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है:

"66. ..... केवल इसलिए कि एक उच्च न्यायालय मध्यस्थ की नियुक्ति करता है या निर्देश जारी करता है या मध्यस्थ को इस न्यायालय में पंचाट दाखिल करने की आवश्यकता रखकर उस पर कुछ नियंत्रण रखता है, इसे प्रथम दृष्टया न्यायालय नहीं माना जा सकता है क्योंकि यह 'न्यायालय' शब्द की परिभाषा के विपरीत होगा जैसा कि शब्दकोश खंड और साथ ही धारा 31(4) में प्रयोग किया गया है। सीधे शब्दों में कहें तो, यह सिद्धांत स्वीकार्य नहीं है क्योंकि यह न्यायालय यह कहते हुए वादी के अपील करने के अधिकार को कम नहीं कर सकता है कि इस न्यायालय के द्वार खुले हैं और इसे आरंभिक न्यायालय की तरह माना जाए। जब तक यह निहित नहीं है और न्यायालय इसे मान लेता है तो न्यायालय वास्तव में उस मंच को समाप्त कर देता है जिसे विधायिका ने एक वादकारी को प्रदान किया है। इसके अलावा, जैसा कि हम देखते हैं, उक्त सिद्धांत कुंभा मावजी [कुंभा मावजी बनाम भारत संघ, 1953 एससीआर 878 : एआईआर 1953 एससी 313] में बताए गए सिद्धांत के भी विपरीत है। यह ध्यान देने योग्य है कि यह न्यायालय सहमति पर मध्यस्थ को संदर्भित कर सकता है, लेकिन इसे एक कानूनी सिद्धांत के रूप में मानना कि यह आरंभिक न्यायालय के रूप में

अनुवादित

आपत्तियों पर भी विचार कर सकता है, अधिकारिता से संबंधित एक मौलिक तर्क-दोष को आमंत्रण देगा।

67. .....यह ध्यान में रखना चाहिए कि जिस न्यायालय को पहली बार आवेदन स्वीकार करने का अधिकार है, वह इस तथ्य द्वारा निर्धारित होता है कि कौन सा न्यायालय अधिकार रखता है और अधिकार बनाए रखता है। इस संदर्भ में एक उदाहरण दिया जा सकता है। जब अधिनियम के तहत मध्यस्थ नियुक्त नहीं किया जाता है और मामला उच्च न्यायालय या, उस मामले में, सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी जाती है और अंततः एक मध्यस्थ नियुक्त किया जाता है और कुछ निर्देश जारी किए जाते हैं, तो यह कहना अनुचित और अनुपयुक्त होगा कि वरिष्ठ न्यायालय के पास धारा 30 और 33 के तहत दायर आपत्तियों से निपटने की अधिकारिता है। किसी विधि के तहत प्रदान किए गए न्यायालय का अधिकार मामले में वरिष्ठ न्यायालय के भिन्न तरीके से हस्तक्षेप करने के कारण स्थानांतरित या लचीला होने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।"

इंडियन फर्टिलाइजर्स (उपरोक्त) के मामले में उपर्युक्त निर्णयों में इस आधार पर भेद किया गया है कि वे धारा 29ए के अनुसार न्यायालय की अधिकारिता के परीक्षण से संबंधित नहीं हैं, तथापि, 1996 के अधिनियम की धारा 2 के अंतर्गत न्यायालय की परिभाषा पर विचार करने के पहलू और उपर्युक्त निर्णयों में दर्शाए गए अनुपात को उनके सही अर्थों में नहीं समझा गया है।

पूर्व निर्णय, विनिश्चय-आधार और निर्णीतानुसरण की अवधारणा को माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने जयंत वर्मा (उपरोक्त) के मामले में निम्नलिखित शब्दों में समझाया है:

"54. इस प्रश्न का उत्तर इस न्यायालय के प्राधिकारपूर्ण कार्यों और निर्णयों का हवाला देकर दिया गया है। क्रॉस और हैरिस (चौथे संस्करण) की प्रीसिडेंट इन इंग्लिश लॉ में "विनिश्चय-आधार" का वर्णन इस प्रकार किया गया है:

"किसी मामले का विनिश्चय-आधार कानून का कोई नियम है जिसे न्यायाधीश द्वारा स्पष्ट रूप से या निहित रूप से उसके द्वारा अपनाई गई तर्क पद्धति को ध्यान में रखते हुए, उसके निष्कर्ष पर पहुंचने के एक आवश्यक कदम के रूप में माना जाता है, या जूरी को निर्देशित करने का एक आवश्यक हिस्सा है।"(पृष्ठ 72 पर)

55. दलबीर सिंह बनाम पंजाब राज्य [दलबीर सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1979) 3 एससीसी 745: 1979 एससीसी (सीआरआई) 848: (1979) 3 एससीआर 1059] में, न्यायमूर्ति ए.पी. सेन के विसम्मत निर्णय यह निर्धारित करता है कि निर्णय का विनिश्चय-आधार क्या है: (एससीसी पृष्ठ 755, पैरा 22: एससीआर पृष्ठ 1073-74)

22. ...पूर्व निर्णयों के सुस्थापित सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक निर्णय में तीन मूलभूत तत्व होते हैं:

'(i) प्रत्यक्ष और आनुमानिक तथ्यों के निष्कर्ष। आनुमानिक तथ्य वह निष्कर्ष है जो न्यायाधीश प्रत्यक्ष या स्पष्ट तथ्यों से निकालता है;

अनुवादित

(ii) तथ्यों द्वारा प्रकट की गई कानूनी समस्याओं पर लागू कानून के सिद्धांतों के कथन; और

(iii) उपरोक्त (i) और (ii) के सम्मिलित प्रभाव के आधार पर निर्णय।'

पक्षकारों और उनके निजी हितों के प्रयोजनों के लिए, घटक (iii) निर्णय में महत्वपूर्ण तत्व है क्योंकि यह कार्रवाई की विषय-वस्तु के संबंध में उनके अधिकारों और दायित्वों को अंततः निर्धारित करता है। यह निर्णय ही है जो पक्षों को विवाद की पुनरावृत्ति से रोकता है। हालांकि, पूर्वनिर्णय के सिद्धांत के प्रयोजन के लिए, घटक (ii) निर्णय में महत्वपूर्ण तत्व है। यह वास्तव में विनिश्चय-आधार है। [आर.जे. वॉकर और एम.जी. वॉकर: द इंग्लिश लीगल सिस्टम। बटरवर्थ, 1972, तीसरा संस्करण, पृष्ठ 123-24।] निर्णय देते समय न्यायाधीश द्वारा कही गई हर बात मिसाल नहीं होती। न्यायाधीश के निर्णय में किसी पक्ष को बाध्य करने वाली एकमात्र चीज़ वह सिद्धांत है जिसके आधार पर मामला तय किया गया है और इस कारण से निर्णय का विश्लेषण करना और उससे विनिश्चय-आधार को अलग करना महत्वपूर्ण है। क्वालकास्ट (वॉल्वरहैम्प्टन) लिमिटेड बनाम हेन्स [क्वालकास्ट (वॉल्वरहैम्प्टन) लिमिटेड बनाम हेन्स, 1959 एसी 743: (1959) 2 डब्ल्यूएलआर 510: (1959) 2 ऑल ईआर 38 (एचएल)] के प्रमुख वाद में यह निर्धारित किया गया था कि निर्णयाधार को कानून के एक कथन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो पाए गए तथ्यों द्वारा उठाए गए कानूनी समस्याओं पर लागू होता है, जिस पर कि निर्णय आधारित होता है। निर्णय में अन्य दो तत्व मिसाल नहीं हैं। निर्णय बाध्यकारी नहीं है (सीधे पक्षों पर छोड़कर), न ही तथ्यों के निष्कर्ष बाध्यकारी हैं। इसका मतलब यह है कि भले ही एक पूर्व के वाद के प्रत्यक्ष तथ्य अदालत के समक्ष वाद के समान प्रतीत होते हों, न्यायाधीश पहले के वाद में प्राप्त निष्कर्ष के समान निष्कर्ष ग्रहण करने हेतु बाध्य नहीं है।"

उपरोक्त के दृष्टिगत, इस न्यायालय की सुविचारित राय में और उचित सम्मान के साथ, उपरोक्त निर्णयों को केवल इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता था कि वे एक अलग धारा से संबंधित हैं क्योंकि उपरोक्त निर्णयों में विचारित सभी धाराओं की शब्दावली 1996 के अधिनियम की धारा 2 के अंतर्गत न्यायालय की परिभाषा से संबंधित थी। मात्र यह पहलू कि अपील किसी पंचाट के विरुद्ध स्वीकार्य है, न कि अधिनियम की धारा 29ए के अंतर्गत किसी आदेश के विरुद्ध, उक्त प्रावधानों में प्रयुक्त भाषा के दृष्टिगत कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं लाएगा। इस पहलू का कि अधिनियम की धारा 29ए के अंतर्गत मध्यस्थ को प्रतिस्थापित करने की शक्ति अधिनियम की धारा 11(6) के अंतर्गत नियुक्त करने की शक्ति से संबंधित होगी, उपरोक्त निर्णयों के मद्देनजर अनुमान नहीं लगाया जा सकता है,जिनमे स्पष्ट रूप से उन बेतुके परिणामों को इंगित किया गया है जो परिणामस्वरूप प्राप्त होंगे, खासकर ऐसे मामले में जहां ऐसा परिणाम लागू किया जाता है और विशेष रूप से जब ऐसे प्रस्ताव को तार्किक निष्कर्ष पर ले जाया जाता है जहां धारा 29ए के अंतर्गत मध्यस्थ को प्रतिस्थापित करने के लिए एक आवेदन भी तब उच्चतम न्यायालय के समक्ष

अनुवादित

होगा, जो अधिनियम की धारा 2 में प्रयुक्त शब्दावली के विरुद्ध होगा।

यहाँ यह भी प्रासंगिक है कि वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 10 के प्रावधानों का उल्लेख किया जाए, जो इस प्रकार है:

"धारा10: माध्यस्थम् मामलों के संबंध में अधिकारिता - जहां किसी माध्यस्थम् की विषय-वस्तु किसी विनिर्दिष्ट मूल्य के वाणिज्यिक विवाद की है और-

(1) यदि ऐसा माध्यस्थम् अंतरराष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् है तो माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (1996 का 26) के उपबंधों के अधीन ऐसे माध्यस्थम् से उद्भूत ऐसे सभी आवेदनों या अपीलों की, जो किसी उच्च न्यायालय में फाइल किए गए हों, सुनवाई और उनका निपटारा उस वाणिज्यिक प्रभाग द्वारा किया जाएगा जहां ऐसे वाणिज्यिक प्रभाग का गठन उस उच्च न्यायालय में किया गया है।

(2) यदि ऐसा माध्यस्थम्, किसी अंतरराष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् से भिन्न है तो माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (1996 का 26) के उपबंधों के अधीन ऐसे माध्यस्थम् से उद्भूत ऐसे सभी आवेदनों या अपीलों की, जो किसी उच्च न्यायालय की मूल शाखा में फाइल किए गए हों, सुनवाई और उनका निपटारा उस वाणिज्यिक प्रभाग द्वारा किया जाएगा जहां ऐसे वाणिज्यिक प्रभाग का गठन उस उच्च न्यायालय में किया गया है।

(3) यदि ऐसा माध्यस्थम् अंतरराष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् से भिन्न है, तो माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (1996 का 26) के उपबंधों के अधीन ऐसे माध्यस्थम् से उद्भूत ऐसे सभी आवेदन और अपीलें, जो सामान्यतया किसी जिले में आरंभिक अधिकारिता वाले किसी प्रधान सिविल न्यायालय (जो उच्च न्यायालय न हो) के समक्ष होते हैं, ऐसे माध्यस्थम् पर राज्यक्षेत्रीय अधिकारिता का प्रयोग करने वाले वाणिज्यिक न्यायालय में फाइल की जाएगी और उसके द्वारा उनकी सुनवाई की जाएगी तथा उनका निपटारा किया जाएगा जहां कि ऐसे वाणिज्यिक न्यायालय का गठन किया गया है।

"

उपरोक्त प्रावधान विशेष रूप से यह प्रवधानित करता है कि अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् के मामले में, ऐसी माध्यस्थम् से उत्पन्न होने वाले सभी आवेदन उच्च न्यायालय में इसके वाणिज्यिक प्रभाग में सुनवाई योग्य होंगे और घरेलू माध्यस्थम् के मामले में, उच्च न्यायालय के मूल शाखा में दायर किए गए ऐसे माध्यस्थम् से उत्पन्न होने वाले सभी आवेदनों को इसके वाणिज्यिक प्रभाग द्वारा सुना जाना है और घरेलू माध्यस्थम् के मामले में आरंभिक अधिकारिता के प्रधान सिविल न्यायालय (उच्च न्यायालय न होने पर) के समक्ष सुनवाई योग्य सभी आवेदनों को वाणिज्यिक न्यायालय द्वारा सुना जाएगा जहां इसका गठन किया गया है।

उपरोक्त धारा स्पष्ट रूप से तीन श्रेणियों को इंगित करती है जिसमें उच्च न्यायालय आरंभिक अधिकारिता का प्रयोग नहीं कर रहा है, उसे केवल अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् के मामले में ही ऐसी अधिकारिता प्रदान की गई है, न कि घरेलू माध्यस्थम् में जहां ऐसे उच्च न्यायालय के पास आरंभिक अधिकारिता नहीं है।

अनुवादित

उपरोक्त पहलू पर भी इस न्यायालय की एक अन्य समन्वय पीठ द्वारा एकमात्र स्वामी के माध्यम से लखनऊ एजेन्सीस लखनऊ और अन्य बनाम हाउसिंग कमिश्नर लखनऊ के माध्यम से उत्तर प्रदेश आवास विकास परिषद और अन्य के मामले में विचार किया गया है, जो 2019 एससीसी ऑनलाइन ऑल 4369 में रिपोर्ट किया गया है, जिसमें अभिनिर्धारित किया गया है कि:

12. उपरोक्त प्रावधान के सामान्य पाठन पर यह स्पष्ट है कि यदि माध्यस्थम् एक अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् के अलावा है, तो ऐसे माध्यस्थम् से उत्पन्न होने वाले सभी आवेदन या अपीलें 1996 के माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (1996 का 26) के प्रावधानों के तहत, जो उच्च न्यायालय की मूल अधिकारिता के अंतर्गत दायर किए गए हैं, वाणिज्यिक प्रभाग द्वारा सुनी और निस्तारित की जाएंगी, जहाँ ऐसा वाणिज्यिक प्रभाग ऐसे उच्च न्यायालय में गठित किया गया है। अब, यह प्रावधान वहां लागू होता है जहां उच्च न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 2(1)(सी) में स्थगित वाणिज्यिक विवाद से जुड़े मुकदमों की सुनवाई के लिए आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग करता है, जैसा कि "उच्च न्यायालय के मूल शाखा में दायर" शब्दों के प्रयोग से स्पष्ट है। इलाहाबाद उच्च न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 2(1)(सी) में परिभाषित वाणिज्यिक विवादों से संबंधित आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग नहीं करता है जैसा कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम, 1952 के अध्याय VIII के नियम 1 से 9 तक स्पष्ट है। इसके अलावा, अधिनियम, 2015 की धारा 10 की उप-धारा 3 बहुत स्पष्ट रूप से यह प्रावधान करती है कि यदि कोई माध्यस्थम् अंतरराष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् के अलावा अन्य है, तो अधिनियम, 1996 के तहत ऐसी माध्यस्थम् से उत्पन्न होने वाले सभी आवेदन या अपील जो सामान्य रूप से किसी जिले में आरंभिक अधिकारिता वाले किसी भी प्रधान सिविल न्यायालय (जो उच्च न्यायालय नहीं है) के समक्ष आते हैं, ऐसे वाणिज्यिक न्यायालय में दायर किए जाएंगे, सुने जाएंगे और निपटाए जाएंगे, जो ऐसे माध्यस्थम् पर क्षेत्रीय अधिकारिता का प्रयोग करता है, जहां ऐसा वाणिज्यिक न्यायालय गठित किया गया है। इसलिए, वर्तमान मामले के तथ्यों में चूंकि इलाहाबाद उच्च न्यायालय वाणिज्यिक विवादों से संबंधित आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग नहीं करता है, इसलिए 1996 के अधिनियम की धारा 29-ए के अंतर्गत एक वाणिज्यिक विवाद से संबंधित आवेदन ऐसे माध्यस्थम् पर राज्यक्षेत्रीय अधिकारिता का प्रयोग करने वाले वाणिज्यिक न्यायालय के समक्ष होगा जहां ऐसा वाणिज्यिक न्यायालय गठित किया गया है और एक गैर वाणिज्यिक विवाद से संबंधित माध्यस्थम् में यह आरंभिक अधिकारिता के प्रधान सिविल न्यायालय अर्थात जिला न्यायाधीश के न्यायालय के समक्ष होगा, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है। इस प्रकार माध्यस्थम् के मामलों में दो अधिनियमों की सामंजस्यपूर्ण समझ पर पहुंचने के लिए अधिनियम 1996 और अधिनियम, 2015 को एक साथ पढ़ा जाना चाहिए।"

उपरोक्त निर्णय को इंडियन फर्टिलाइजर्स के मामले में देखते हुए केवल इस आधार पर विभेदित किया गया है कि उक्त मामले में

अवमानित

मध्यस्थ की नियुक्ति आवास आयुक्त द्वारा की गई थी न कि 1996 के अधिनियम की धारा 11(6) के अंतर्गत, हालांकि लखनऊ एजेंसीज लखनऊ (उपरोक्त) का मामला ऐसा कोई भेद नहीं करता है और उसने 1996 के अधिनियम की धारा 2 के अनुसार धारा 29ए के प्रावधानों पर विचार किया है और इसलिए यह लखनऊ एजेंसीज लखनऊ (उपरोक्त) के मामले में निर्णयाधार था जिस पर जयंत वर्मा (उपरोक्त) के मामले में प्रतिपादित निर्णयाधार के सिद्धांत के दृष्टिगत विचार किया जाना अपेक्षित था।

हालाँकि, इंडियन फर्टिलाइजर के उपरोक्त निर्णय का अवलोकन करने पर यह तथ्य भी सामने आता है कि अन्य समन्वय पीठों द्वारा पूर्व में दिए गए अन्य निर्णय, जैसे कि 2012 एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 1042 में रिपोर्ट किए गए मेसर्स बीएमजी कंस्ट्रक्शन बनाम नेशनल स्मॉल इंडस्ट्रीज कॉरपोरेशन लिमिटेड और साथ ही जय बहादुर सिंह बनाम उ.प्र. राज्य [रिट-सी संख्या 41221/2018] को विद्वान न्यायाधीश के संज्ञान में नहीं लाया गया, यद्यपि उन्होंने इंडियन फार्मर्स फर्टिलाइजर्स कोऑपरेटिव लिमिटेड (उपरोक्त) में दिए गए निर्णय के विपरीत एक विधिक प्रस्थापना का उल्लेख किया है। उपरोक्त निर्णयों के प्रासंगिक परिच्छेद इस प्रकार हैं: -

"11. इस प्रकार 'न्यायालय' की उपरोक्त परिभाषा के स्पष्ट वाचन पर, उच्च न्यायालय को आरंभिक अधिकारिता के प्रधान सिविल न्यायालय में तभी सम्मिलित किया जाता है, जब वह आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग करता है और ऐसे प्रयोग में माध्यस्थम् की विषय-वस्तु का, यदि वह वाद के माध्यम से इसके समक्ष लाया जाता तो, विनिश्चय करने की अधिकारिता रखता हो। इसलिए, आरंभिक अधिकारिता के प्रधान सिविल न्यायालय के अंतर्गत उच्च न्यायालय को सम्मिलित करने के लिए दो शर्तें आवश्यक हैं, यथा:

(i) उच्च न्यायालय को आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग करना चाहिए; और

(ii) आरंभिक अधिकारिता के ऐसे प्रयोग में उसके पास नियमित वाद के रूप में माध्यस्थम् की विषय-वस्तु का विनिश्चय करने का अधिकार भी होना चाहिए।

12. मेरे समक्ष यह विवादित नहीं है कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग नहीं करता है। इसलिए, स्पष्ट रूप से उपरोक्त दो शर्तों में से पहली शर्त इस उच्च न्यायालय द्वारा पूरी नहीं की जाती है ताकि इसे आरंभिक अधिकारिता के सिविल न्यायालय के अर्थ में शामिल किया जा सके। तदनुसार, इलाहाबाद उच्च न्यायालय अधिनियम की धारा 2(1)(e) के तहत एक 'न्यायालय' नहीं है जिसके समक्ष मध्यस्थ के अधिदेश को समाप्त करने के लिए आवेदन किया जा सके।

13. "यदि इस माध्यस्थम् को वाद के रूप में दायर किया जाता, तो भी इस उच्च न्यायालय को इसकी विषय-वस्तु का विनिश्चय करने के लिए आरंभिक अधिकारिता प्राप्त नहीं है।"

यह भी एक सुसंगत तथ्य है कि इंडियन फर्टिलाइजर्स (उपरोक्त) में मध्यस्थ को

अधिवक्ता

प्रतिस्थापित करने की शक्ति को 1996 के अधिनियम की धारा 14 के तहत शक्ति के समान माना गया है, लेकिन इस पहलू पर विचार करने में विफल रहा है कि निमेट रिसोर्सेज (उपरोक्त) के मामले में, अधिनियम की धारा 14 के प्रावधानों पर विचार करते समय माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से माना है कि यह केवल आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग करने वाला एक उच्च न्यायालय है जहां 1996 के अधिनियम की धारा 14 के तहत एक आवेदन संधार्य होगा और इस तरह भी उक्त तर्क माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के साथ असंगत प्रतीत होता है।

यह भी एक उल्लेखनीय कारक है, जिस पर इंडियन फर्टिलाइज़र्स के निर्णय में ध्यान नहीं दिया गया, कि धारा 29ए के तहत आवेदन की ग्राह्यता के संबंध में आरंभिक अधिकारिता न रखने वाले उच्च न्यायालय को बहिष्कृत करना जानबूझकर और इरादतन है, जैसा कि 1996 के अधिनियम की धाराओं 47 और 56 में किए गए संशोधनों से स्पष्ट होता है।

अधिनियम की धारा 47 साक्ष्य से संबंधित है और धारा 47(2) के स्पष्टीकरण में 'न्यायालय' की एक अलग परिभाषा दी गई है जो अधिनियम की धारा 2 के तहत दी गई परिभाषा से भिन्न है। यह प्रासंगिक है कि धारा 47 में अधिनियम संख्या 3 वर्ष 2016 के तहत डाले गए वर्तमान स्पष्टीकरण से पहले, यह किसी जिले में आरंभिक अधिकारिता का प्रधान सिविल न्यायालय था जो न्यायालय की परिभाषा के अंतर्गत आता था और इसमें अपने साधारण आरंभिक अधिकारिता का प्रयोग करने वाला उच्च न्यायालय भी शामिल था, लेकिन 2016 में डाले गए नए स्पष्टीकरण के माध्यम से, अब केवल आरंभिक अधिकारिता वाला उच्च न्यायालय ही स्पष्टीकरण के अंतर्गत 'न्यायालय' शब्द के अर्थ में आता है और किसी न्यायालय में आरंभिक अधिकारिता का प्रधान सिविल न्यायालय हटा दिया गया है।

विदेशी पंचाटों के प्रवर्तन की शर्तों से संबंधित उक्त अधिनियम की धारा 57 के अंतर्गत भी यही स्थिति है, जहां पहले न्यायालय के संबंध में स्पष्टीकरण, 1996 के अधिनियम की धारा 2 के अंतर्गत वर्तमान परिभाषा के समान था, लेकिन संशोधन के माध्यम से, जिले में आरंभिक अधिकारिता वाले प्रधान सिविल न्यायालय को हटा दिया गया है।

उपर्युक्त के दृष्टिगत, 1996 के अधिनियम के विशिष्ट प्रावधानों के अंतर्गत पहलुओं पर विशेष रूप से अधिकारिता वाले उच्च न्यायालय को सम्मिलित करने की विधायिका की मंशा स्पष्ट रूप से चित्रित की गई है। हालांकि, धारा 29ए के संबंध में आरंभिक अधिकारिता के सिविल न्यायालय को बाहर करने के लिए धारा 2 (1)(ई) में ऐसा कोई संशोधन नहीं किया गया है। अधिनियम की धारा 47 और 56 में किए गए संशोधनों के आलोक में विचार करने पर, विधानमंडल का उच्च न्यायालय को केवल तभी शामिल करने का इरादा स्पष्ट और असंदिग्ध है, जब उसके पास आरंभिक अधिकारिता हो और ऐसी परिस्थितियों में, जहां कोई अस्पष्टता नहीं है, किसी कथित कारण को आरोपित करने के लिए किसी उद्देश्यपूर्ण

अनुवादित

व्याख्या का सहारा लेने की आवश्यकता नहीं है, जो वैसे भी अन्यथा चूक नहीं थी।

यह भी स्पष्ट है कि इंडियन फर्टिलाइज़र्स में दिया गया निर्णय एक कथित असामान्य स्थिति को ध्यान में रखता है, जहाँ संवैधानिक न्यायालयों द्वारा नियुक्त मध्यस्थ को जिला न्यायालय द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है। उपर्युक्त प्रतिज्ञप्ति स्पष्ट रूप से ऐसी स्थिति को ध्यान में नहीं रखती है, जहां 1996 के अधिनियम की धारा 11(6) के अंतर्गत नियुक्त मध्यस्थ द्वारा दिए गए पंचाट को 1996 के अधिनियम के साथ पठित 2015 के अधिनियम के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करने वाले वाणिज्यिक न्यायालय द्वारा रद्द किया जा सकता है। एक बार जब वाणिज्यिक न्यायालय को 1996 के अधिनियम की धारा 11(6) के तहत नियुक्त मध्यस्थ के पंचाट को रद्द करने की शक्ति और अधिकारिता प्राप्त है, तो यह तर्क नहीं बनता कि ऐसे मध्यस्थ को अधिनियम की धारा 29ए के तहत शक्ति का प्रयोग करके उसमें दर्शाई गई परिस्थितियों में प्रतिस्थापित क्यों नहीं किया जा सकता। इंडिया फर्टिलाइजर्स के उपरोक्त प्रतिज्ञप्ति को इसके तार्किक निष्कर्ष तक ले जाएँ तो इसका अर्थ यह होगा कि अधिनियम की धारा 11(6) के अंतर्गत नियुक्त मध्यस्थ द्वारा दिए गए किसी भी पंचाट को अनिवार्य रूप से केवल उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय में ही चुनौती दी जानी चाहिए, लेकिन विधि की उक्त प्रतिज्ञप्ति को, अटलांटा लिमिटेड, एसोसिएट कॉन्ट्रैक्टर्स और हिंदुस्तान कंस्ट्रक्शन कंपनी (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पहले ही खारिज किया जा चुका है।

इंडियन फर्टिलाइजर्स में दिए गए निर्णय में यह भी गलत तरीके से माना गया है कि मध्यस्थों की सभी नियुक्तियां केवल अधिनियम की धारा 11(6) के तहत होंगी और इसमें इस बात को ध्यान में नहीं रखा गया है कि धारा 29ए के अंतर्गत आवेदन उस माध्यस्थम् में दायर किया गया है, जहां मध्यस्थों को आपसी सहमति से नियुक्त किया गया है। इस तरह का भेद करना, फिर से अधिनियम की धारा 29ए में ऐसे शब्दों और वाक्यांशों को शामिल करने के समतुल्य होगा, जिन्हें विधायिका के विवेक में जानबूझकर शामिल नहीं किया गया है।

इंडिया फर्टिलाइजर्स मामले में दिए गए फैसले में ऐसी स्थिति को भी ध्यान में रखा गया है, जहां मध्यस्थ न्यायाधिकरण कुछ सदस्यों को आपसी सहमति से नियुक्त करता है और अन्य को अधिनियम की धारा 11(6) के तहत नियुक्त करता है, जैसा कि वर्तमान मामले में हुआ, जहां एक मध्यस्थ को आपसी सहमति से और दूसरे को अधिनियम की धारा 11(6) के तहत नियुक्त किया गया था और बाद में, पीठासीन मध्यस्थ को दोनों मध्यस्थों की सहमति से नियुक्त किया गया था।

पुनरावृत्ति की जाती है कि, इस न्यायालय की सुविचारित राय में, ऐसा भेद धारा 29ए के अंतर्गत न दिए होने के कारण, न्यायिक विधायन द्वारा सम्मिलित नहीं किया जा सकता।

इंडियन फर्टिलाइजर्स के मामले में, अधिनियम की धारा 29ए के अंतर्गत प्रतिस्थापन की शक्ति को अधिनियम की धारा 15 और धारा 29ए के प्रावधानों के तहत मध्यस्थ के

अनुवादित

प्रतिस्थापन में अंतर पर विचार किए बिना अधिनियम की धारा 14 और 15 के लिए संदर्भित किया गया है। यह इंगित करना प्रासंगिक है कि धारा 29ए के अंतर्गत मध्यस्थ का प्रतिस्थापन न्यायालय के कहने पर होता है और उप-धारा (7) के तहत इस प्रकार पुनर्गठित मध्यस्थ न्यायाधिकरण को पहले नियुक्त मध्यस्थ न्यायाधिकरण की निरंतरता में माना जाता है, जबकि अधिनियम की धारा 15 के तहत मध्यस्थ का प्रतिस्थापन न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना और उन नियमों के अनुसार होना चाहिए जो प्रतिस्थापित किए जा रहे मध्यस्थ की नियुक्ति पर लागू थे। अधिनियम की धारा 15 की उपधारा (3) यह संकेत नहीं देती है कि पुनर्गठित मध्यस्थ न्यायाधिकरण पहले से नियुक्त मध्यस्थ न्यायाधिकरण की निरंतरता में होगा। अन्यथा भी धारा 29ए के प्रावधानों को मध्यस्थ के स्वतः प्रतिस्थापन का पूर्वानुमान करते हुए नहीं कहा जा सकता है और इस प्रकार, उपरोक्त निर्णय का मूल आधार, पूरे सम्मान के साथ, त्रुटिपूर्ण प्रतीत होता है।

आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क है कि माध्यस्थम् अधिनियम के प्रावधान, न्यायालय की श्रेणी जहां कार्यवाही पहली बार स्वीकार की जा सकती है, के संबंध में सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 15 के साथ भिन्नता रखते हैं, और इसलिए कार्यवाही को विश्वसनीयता प्रदान करने के लिए धारा 29ए के तहत आवेदन केवल उच्च न्यायालय में ही दायर किया जाना आवश्यक है।

विद्वान अधिवक्ता ने एसोसिएट कॉन्ट्रैक्टर्स (सुप्रा) के निर्णय पर भरोसा किया है, जिसके प्रासंगिक परिच्छेद इस प्रकार हैं:-

"13. .....कानून के निर्माताओं को निश्चित रूप से अधिनियम में 'न्यायालय' की परिभाषा के बारे में सचेत माना जाना चाहिए। यह आसानी से कल्पना की जा सकती है कि वे नहीं चाहते थे कि धारा 11 के तहत शक्ति जिला न्यायालय या आरंभिक अधिकारिता का प्रयोग करने वाले उच्च न्यायालय को प्रदान की जाए। प्रतीयमानतः आशय राज्य और देश में सर्वोच्च न्यायिक प्राधिकारी, उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों और भारत के मुख्य न्यायाधीश को शक्ति प्रदान करना था। इस तरह के प्रावधान अनिवार्य रूप से माध्यस्थम् प्रक्रिया में सबसे बड़ी विश्वसनीयता जोड़ने हेतु आशयित है। यह तर्क कि मुख्य न्यायाधीश को इस प्रकार प्रदान की गई शक्ति को उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय के किसी अन्य न्यायाधीश को भी सौंपा नहीं जा सकता है, केवल किसी अन्य को नामित करने की दी गई शक्ति के कारण नकारा जाता है। विधायिका का इरादा स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे यह सुनिश्चित करना चाहते थे कि अधिनियम की धारा 11(6) के तहत शक्ति का प्रयोग संबंधित राज्य या देश के सर्वोच्च न्यायिक प्राधिकारी द्वारा किया जाए। इसका उद्देश्य मध्यस्थ न्यायाधिकरण के गठन की प्रक्रिया को सर्वोच्च प्राधिकार सुनिश्चित करना है।

18. यह सच है कि अधिनियम की धारा 11(6) के तहत शक्ति सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय को नहीं सौंपी गई है, बल्कि यह भारत के मुख्य न्यायाधीश या उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को सौंपी गई है। मुख्य न्यायाधीश को प्राधिकारी के रूप में निर्दिष्ट करने का एक संभावित कारण यह हो सकता है

अनुवादित

कि यदि यह केवल उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय को शक्ति प्रदान करना होता, तो मामला उस न्यायालय की सामान्य प्रक्रिया द्वारा शासित होता, जिसमें अपील का अधिकार भी शामिल होता और संसद स्पष्ट रूप से उस स्थिति से बचना चाहती थी, क्योंकि इसका एक उद्देश्य माध्यस्थम् प्रक्रिया में न्यायालयों द्वारा हस्तक्षेप को प्रतिबंधित करना था। इसलिए, यह शक्ति राज्य और देश में सर्वोच्च न्यायिक प्राधिकारी को उनके मुख्य न्यायाधीश के रूप में सौंपी गई है। उन्हें अधिनियम की धारा 11 के अंतर्गत आदेश पारित करने की शक्ति या अधिकार प्रदान किया गया है। हमने पहले ही देखा है कि यह कल्पना करना संभव नहीं है कि यह शक्ति मुख्य न्यायाधीश को 'व्यक्तिगत रूप से' सौंपी गई है। इसलिए, यह तथ्य कि शक्ति मुख्य न्यायाधीश को सौंपी गई है, और उनके द्वारा पीठासीन न्यायालय को नहीं, यह स्थापित करने के लिए पर्याप्त नहीं है कि इस प्रकार सौंपी गई शक्ति मात्र एक प्रशासनिक शक्ति है और एक न्यायिक शक्ति नहीं है।"

यह स्पष्ट है कि धारा 11 के आवेदनों को "न्यायालय", जैसा कि परिभाषित किया गया है, के समक्ष नहीं बल्कि यथास्थिति, उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश या उनके प्रतिनिधियों के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए। यह इस तथ्य के बावजूद है कि मुख्य न्यायाधीश या उनके प्रतिनिधि को अब न्यायिक रूप से और न कि प्रशासनिक रूप से निर्णय लेना है। फिर से, धारा 42 मुख्य न्यायाधीश या उनके प्रतिनिधि के समक्ष किए गए आवेदनों पर लागू नहीं होगी, क्योंकि मुख्य न्यायाधीश या उनके प्रतिनिधि धारा 2(1)(ई) द्वारा परिभाषित "न्यायालय" नहीं हैं। पांडे एंड कंपनी बिल्डर्स (पी) लिमिटेड बनाम बिहार राज्य [(2007) 1 एससीसी 467], एससीसी पृष्ठ 470 और 473, पैरा 9 और 23-26 में उक्त दृष्टिकोण को कुछ अलग तरीके से दोहराया गया था।

उपरोक्त तर्क भी सही नहीं ठहरता है क्योंकि उक्त पहलू का ध्यान धारा 2 के तहत परिभाषा में पहले ही रखा जा चुका है, जहां उच्चतम न्यायालय को "न्यायालय" की परिभाषा में शामिल किया गया है, लेकिन केवल तभी जब वह आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग करता है और वहां बताई गई शर्तों के अधीन होता है।

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने इस तथ्य की भी ओर इशारा किया है कि अधिनियम की धारा 11(6) के तहत शक्ति को बाद में समीक्षा के अधीन माना गया है क्योंकि उच्च न्यायालय, एक श्रेष्ठ अभिलेखीय न्यायालय के रूप में, समीक्षा कर सकता है।

उपर्युक्त दलील भी उचित नहीं ठहरती क्योंकि 1996 के अधिनियम की धारा 11(6) के तहत समीक्षा की शक्ति का अधिनियम की धारा 29ए के अंतर्गत मध्यस्थ के अधिदेश का विस्तार करने की शक्ति से कोई लेना-देना नहीं है।

इंडियन फर्टिलाइजर्स (सुप्रा) में दिए गए फैसले में विभिन्न उच्च न्यायालयों के फैसलों का भी आश्रय लिया गया है जैसे कि:

12. उन्होंने अमित कुमार गुप्ता बनाम दीपक प्रसाद 2021 एससीसी ऑनलाइन कैल 2174 के मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय के निर्णय का भी आश्रय लिया है। निर्णय के

अनुवादित

प्रासंगिक परिच्छेद 17 और 18 को नीचे उद्धृत किया गया है:

"17. अधिनियम 1996 की धारा 2(1)(ई) में वर्णित "न्यायालय" शब्द का अर्थ संदर्भ की आवश्यकता के अधीन है। 1996 के अधिनियम की धारा 29ए के संदर्भ में, जिसमें माध्यस्थम् पंचाट को पूर्ण करने और ऐसा करने की समय सीमा के लिए एक मूल प्रावधान निर्धारित किया गया है, उसमें प्रयुक्त "न्यायालय" शब्द का अर्थ समझना होगा। 1996 के अधिनियम की धारा 29ए की उपधारा (6) के अंतर्गत, यदि ऐसा आवश्यक हो तो न्यायालय को मध्यस्थ न्यायाधिकरण के पुनर्गठन में मध्यस्थ या मध्यस्थों को प्रतिस्थापित करने का अधिकार दिया गया है। अधिनियम 1996 की धारा 11 में मध्यस्थ न्यायाधिकरण की नियुक्ति की शक्ति निर्धारित की गई है। 1996 के अधिनियम की धारा 11 में माध्यस्थम् की प्रकृति को देखते हुए दो नियुक्ति प्राधिकारी निर्धारित किए गए हैं। अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् के मामले में, मध्यस्थ नियुक्त करने का प्राधिकारी, 1996 के अधिनियम की धारा 11 के तहत सर्वोच्च न्यायालय निर्धारित किया गया है। घरेलू माध्यस्थम् के मामले में, 1996 के अधिनियम की धारा 11 में निर्धारित किया गया है कि नियुक्ति प्राधिकारी उच्च न्यायालय होगा।

18. मेरे विचार में, 1996 के अधिनियम की धारा 29ए में प्रयुक्त 'न्यायालय' शब्द 1996 के अधिनियम की धारा 11 में निर्दिष्ट नियुक्ति प्राधिकारी के चरित्र को धारण करता है, क्योंकि अधिनियम 1996 की धारा 29ए के तहत अधिकारिता का प्रयोग करने वाले न्यायालय को किसी दिए गए मामले में मध्यस्थ को प्रतिस्थापित करने की आवश्यकता हो सकती है। प्रतिस्थापन के ऐसे अधिकार का प्रयोग उस न्यायालय द्वारा किया जा सकता है जिसके पास नियुक्त करने की शक्ति है। नियुक्त करने की शक्ति धारा 11 में निर्धारित की गई है। इसलिए, प्रतिस्थापन की शक्ति को धारा 11 के तहत नियुक्ति की शक्ति के संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए।"

13. दिल्ली उच्च न्यायालय के ओ.एम.पी. (विविध) (कॉम) संख्या 236/2019 (डीडीए बनाम मेसर्स तारा चंद सुमित कंस्ट्रक्शन कंपनी) में 12.5.2020 को दिए गए निर्णय का आश्रय लिया गया है। निर्णय के प्रासंगिक परिच्छेद 28, 29 और 30 को यहां निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:

"28. धारा 29ए(4) के तहत मध्यस्थ के अधिदेश को 12 महीने की अवधि से आगे बढ़ाने और छह महीने की अतिरिक्त विस्तारित अवधि तक बढ़ाने की शक्ति केवल न्यायालय के पास है। इस शक्ति का प्रयोग अवधि समाप्त होने से पहले या अवधि समाप्त होने के बाद भी किया जा सकता है। न तो मध्यस्थ यह विस्तार दे सकता है और न ही पक्षकार अपनी आपसी सहमति से अवधि को 18 महीने से आगे बढ़ा सकते हैं। इस बिंदु तक, धारा 2(1)(ई) में परिभाषित प्रधान सिविल न्यायालय के अर्थ में 'न्यायालय' शब्द की व्याख्या करना, मेरे विचार से, कोई कठिनाई उत्पन्न नहीं करेगा। हालांकि, जटिलता अधिदेश का विस्तार करते समय मध्यस्थ को प्रतिस्थापित करने के लिए न्यायालय की शक्ति के कारण उत्पन्न होती है और यह जटिलता तब और अधिक बढ़

अनुवादित

जाती है, यदि पूर्व मे मध्यस्थ उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय द्वारा नियुक्त किया गया हो। इसके साथ ही, इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है कि विधायिका ने अपने विवेक से मध्यस्थ की नियुक्ति की शक्ति केवल उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय को दी है, जो माध्यस्थम् की प्रकृति और जब भी दोनों पक्षों में से किसी एक द्वारा शक्ति का प्रयोग किया जाता है, पर निर्भर करता है। ऐसे कई मामले हो सकते हैं जिनमें मध्यस्थों के अधिदेश का विस्तार करते समय न्यायालय का यह विचार हो सकता है कि कुछ वैध कारणों से मध्यस्थों को प्रतिस्थापित किया जाना आवश्यक है, ऐसी स्थिति में न्यायालय अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकता है और प्रतिस्थापित मध्यस्थ की नियुक्ति कर सकता है तथा अधिदेश का विस्तार कर सकता है।

29. यदि अधिनियम की धारा 29ए के तहत अधिदेश के विस्तार के लिए प्रधान सिविल न्यायालय के समक्ष याचिका दायर की जाती है और प्रतिस्थापन की आवश्यकता होती है, तो प्रधान सिविल न्यायालय को मध्यस्थ को प्रतिस्थापित करने की शक्ति का प्रयोग करना होगा। एक विशेष मामले में, प्रतिस्थापित किया जा रहा मध्यस्थ ऐसा मध्यस्थ हो सकता है जिसे सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय द्वारा नियुक्त किया गया हो। इससे ऐसी स्थिति उत्पन्न होगी जहां अधिनियम की धारा 11 के तहत मध्यस्थों को नियुक्त करने की उच्च न्यायालयों की शक्ति और अधिनियम की धारा 29ए के तहत उन मध्यस्थों को प्रतिस्थापित करने की सिविल न्यायालय की शक्ति के बीच संघर्ष उत्पन्न होगा। यह स्पष्ट रूप से अधिनियम की धारा 11 के प्रावधानों के विरुद्ध होगा, जो मध्यस्थों की नियुक्ति की शक्ति यथास्थिति, केवल उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय को प्रदान करता है। इसलिए, मेरी राय में, इस विवाद को सुलझाने या समाधान का एकमात्र तरीका अधिनियम की धारा 29ए के संदर्भ में 'न्यायालय' शब्द की व्याख्या करना होगा, जो एक ऐसा न्यायालय है जिसके पास अधिनियम की धारा 11 के तहत मध्यस्थ नियुक्त करने का अधिकार है। प्रतिवादी के तर्क को स्वीकार करने से एक अकल्पनीय और अस्वीकार्य स्थिति पैदा हो जाएगी, खासकर न्यायालय द्वारा नियुक्त मध्यस्थों के मामले में, जहां अधिनियम की धारा 29ए के तहत सिविल न्यायालय अधिदेश का विस्तार करते हुए मध्यस्थों को प्रतिस्थापित और नियुक्त करेंगे।

30. इसी तरह, अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् के मामले में, यदि कोई धारा 2(1)(ई) के तहत न्यायालय शब्द की परिभाषा का पालन करता है और इसे सख्त अर्थ में लागू करता है, तो यह आरंभिक या अपीलीय अधिकारिता का प्रयोग करने वाला उच्च न्यायालय होगा, जिसके पास अधिदेश का विस्तार करने और मध्यस्थ को प्रतिस्थापित करने की शक्ति होगी। ऐसी स्थिति में, उच्च न्यायालय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा नियुक्त मध्यस्थ को प्रतिस्थापित करेगा, जिससे संभवतः उच्च न्यायालय अपनी अधिकारिता का अतिक्रमण करेगा, क्योंकि मध्यस्थ को नियुक्त करने की शक्ति विशेष रूप से सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में है। इस प्रकार, इस न्यायालय की राय में, मध्यस्थ के

अप्रमाणित

अधिदेश के विस्तार की मांग करने वाला अधिनियम की धारा 29ए के तहत एक आवेदन केवल उस न्यायालय के समक्ष ही किया जा सकता है, जिसके पास अधिनियम की धारा 11 के तहत मध्यस्थ को नियुक्त करने की शक्ति है, न कि सिविल न्यायालयों के पास। प्रतिवादी के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई व्याख्या कि धारा 29ए के प्रयोजनों के लिए, न्यायालय का अर्थ घरेलू माध्यस्थम् के मामले में प्रधान सिविल न्यायालय होगा, अधिनियम की धारा 11 के तहत श्रेष्ठ न्यायालयों की शक्तियों को निरस्त कर देगा।:"

14. इसके बाद उन्होंने न्यायालय के समक्ष नीलेश रमनभाई पटेल बनाम भानुभाई रमनभाई पटेल 2019 (2) जीएलआर 1537 के मामले में गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय को रखा, जिसमें न्यायालय ने समान दृष्टिकोण अपनाया था। निर्णय के प्रासंगिक परिच्छेद 14, 15 और 16 नीचे उद्धृत किए गए हैं:

"14. जैसा कि सर्वविदित है, मध्यस्थ की नियुक्ति द्वारा माध्यस्थम् कार्यवाही कई तरीकों से शुरू की जा सकती है। यह न्यायालय के बाहर पक्षों द्वारा नियुक्त एक सहमत मध्यस्थ हो सकता है, यह पक्षों के बीच समझौते के अनुसार सिविल न्यायालय द्वारा माध्यस्थम् के लिए संदर्भ का मामला हो सकता है, यह अधिनियम की धारा 11 की उप-धारा (4), (5) और (6) के अनुसार उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मध्यस्थ की नियुक्ति का मामला भी हो सकता है। धारा 29ए और विशेष रूप से उसकी उपधारा (1) के प्रावधान बिना किसी भेदभाव के सभी प्रकार की माध्यस्थम् कार्यवाहियों पर लागू होंगे। इस प्रकार, किसी मध्यस्थ का अधिदेश, उसकी नियुक्ति की प्रकृति और मध्यस्थ न्यायाधिकरण के गठन के तरीके पर ध्यान दिए बिना, न्यायाधिकरण के संदर्भ में प्रवेश करने की तिथि से बारह महीनों के भीतर समाप्त हो जाएगा, जब तक कि ऐसी अवधि धारा 29ए की उपधारा (3) के अनुसार पक्षों की सहमति से बढ़ाई न जाए, जो कि छह महीने से अनधिक हो सकती है। जैसा कि उल्लेख किया गया है, धारा 29ए की उपधारा (4) में विशेष रूप से प्रावधान है कि यदि उपधारा (1) में उल्लिखित अवधि के भीतर या उपधारा (3) के तहत विस्तारित अवधि के भीतर पंचाट नहीं दिया जाता है, तो मध्यस्थ का अधिदेश समाप्त हो जाएगा।यह हालांकि इस शर्त के साथ है कि यह अवधि या तो पहले या बाद में न्यायालय द्वारा बढ़ाई न गई हो। उपधारा (6) के अनुसार ऐसा करते समय न्यायालय के लिए एक या सभी मध्यस्थों को प्रतिस्थापित करने का विकल्प होगा जो कार्यवाही को उसी चरण से आगे बढ़ाएंगे जिस पर वे पहले पहुँचे थे।

15. इस प्रकार यह प्रावधान कुछ बातें स्पष्ट करता है। सबसे पहले, धारा 29ए की उपधारा (4) के तहत मध्यस्थ के अधिदेश को बारह महीने की अवधि या धारा 29ए की उपधारा (3) के अनुसार बढ़ाई गई अवधि से आगे बढ़ाने की शक्ति न्यायालय के पास है। न तो मध्यस्थ और न ही पक्षकार संयुक्त सहमति से भी ऐसी अवधि बढ़ा सकते हैं। दूसरी ओर न्यायालय के पास ऐसी अवधि समाप्त होने के बाद भी अवधि बढ़ाने की व्यापक शक्तियाँ हैं। ऐसा करते समय, न्यायालय मध्यस्थों में से एक या सभी को प्रतिस्थापित करने का विकल्प

अनुवादित

भी चुन सकता है और यहीं पर धारा 2(1)(ई) में निहित 'न्यायालय' शब्द की परिभाषा समायोजित नहीं होती। यह अकल्पनीय है कि विधायिका प्रधान सिविल न्यायाधीश को एक ऐसे मध्यस्थ को प्रतिस्थापित करने की शक्ति प्रदान करेगा, जिसे उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय द्वारा नियुक्त किया गया हो। अन्यथा भी, यह पूरी तरह से अस्वीकार्य होगा क्योंकि ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर मध्यस्थ की नियुक्ति की शक्तियां अधिनियम की धारा 11 की उप-धारा (4), (5) और (6) के अनुसार यथास्थिति, उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय में निहित हैं। इसलिए, यदि उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय द्वारा नियुक्त मध्यस्थ के कार्यकाल के विस्तार का मामला हो और यदि श्री मेहता का यह तर्क सही साबित होता है कि ऐसा आवेदन केवल प्रधान सिविल न्यायालय के समक्ष ही होगा, तो धारा 29ए की उपधारा (6) के तहत शक्तियां गैर-संचालनीय होंगी। ऐसी स्थिति में, धारा 29ए की उपधारा (6) निरर्थक हो जाएगी। धारा 29ए की उपधारा (6) के तहत शक्तियां काफी महत्वपूर्ण हैं। मध्यस्थ के अधिदेश को बढ़ाने की शक्तियों को मध्यस्थ को प्रतिस्थापित करने की शक्ति के साथ जोड़ा जाता है। इस प्रकार मध्यस्थ के प्रतिस्थापन की ये शक्तियां विस्तार देने की प्रमुख शक्तियों के साथ-साथ हैं। यदि वैध कारणों से न्यायालय पाता है कि यह मध्यस्थ के अधिदेश को बढ़ाने के लिए एक उपयुक्त मामला है, लेकिन यह अपने आप में माध्यस्थम् कार्यवाही को जल्दी समाप्त करने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता है, तो न्यायालय मौजूदा मध्यस्थ को प्रतिस्थापित करने पर भी विचार कर सकता है। यह मानना पूरी तरह से उचित होगा कि धारा 29ए की उपधारा (6) के तहत विधायिका ने सिविल न्यायालय को अधिनियम की धारा 11 के तहत उच्च न्यायालय द्वारा नियुक्त मध्यस्थ या मध्यस्थों के पूरे पैनल को प्रतिस्थापित करके मध्यस्थों की नियुक्ति करने की शक्ति दी है। इसलिए, अगर हम श्री मेहता के इस तर्क को स्वीकार करते हैं, तो इससे अधिनियम की धारा 11 के तहत मध्यस्थों की नियुक्ति करने की उच्च न्यायालयों की शक्ति और धारा 29ए(6) के तहत ऐसे मध्यस्थों को प्रतिस्थापित करने की सिविल न्यायालय की शक्ति के बीच असंगत संघर्ष पैदा हो जाएगा। इस विवाद को केवल धारा 29ए के प्रयोजन के लिए "न्यायालय" शब्द को उस न्यायालय के रूप में समझने से ही टाला जा सकता है जिसने न्यायालय गठित मध्यस्थ न्यायाधिकरण के मामले में मध्यस्थ को नियुक्त किया था।

16. अंतरराष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम के मामले में भी ऐसी ही स्थिति उत्पन्न होगी, जहां धारा 11 के अनुसार मध्यस्थ की नियुक्ति करने की शक्ति विशेष रूप से सर्वोच्च न्यायालय के पास है। धारा 2(1)(ई) के अनुसार, ऐसे मामले में न्यायालय उच्च न्यायालय होगा जो या तो आरंभिक अधिकारिता या अपीलीय अधिकारिता का प्रयोग करेगा। ऐसे मामले में भी, यदि उच्च न्यायालय मध्यस्थ के प्रतिस्थापन की शक्ति का प्रयोग करता है, तो यह उसकी अधिकारिता का उल्लंघन होगा क्योंकि अंतरराष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् में मध्यस्थ नियुक्त करने की शक्ति विशेष रूप से सर्वोच्च न्यायालय के पास है।"

अनुवादित

15. श्री गोयल के अनुसार, यह प्रश्न कि क्या धारा 29ए के तहत शक्तियों का प्रयोग करते समय 'न्यायालय' शब्द का अर्थ उच्च न्यायालय होगा, इस पर बॉम्बे उच्च न्यायालय ने भी कैबरा इंस्टालेसिओनेस वाई. सर्विसियोस एस.ए. बनाम महाराष्ट्र राज्य विद्युत वितरण कंपनी लिमिटेड 2019 एससीसी ऑनलाइन बॉम 1437 के मामले में विचार किया था। निर्णय के प्रासंगिक परिच्छेद 7 और 8 को नीचे उद्धृत किया गया है: -

"7. धारा 29ए और इसकी उप-धाराओं के सरल वाचन पर, यह देखा जा सकता है कि एक मध्यस्थ न्यायाधिकरण के अधिदेश के विस्तार की मांग करने के लिए, ये मूल शक्तियां हैं जो न्यायालय को प्रदान की जाती हैं विशेष रूप से उप-धारा (6) के स्पष्ट प्रावधानों के मद्देनजर जो यह प्रावधान करता है कि उप-धारा (4) में उल्लिखित अवधि का विस्तार करते समय, यह न्यायालय के लिए विकल्प होगा कि वह एक या सभी मध्यस्थों को प्रतिस्थापित कर दे, जो वास्तव में एक नए/प्रतिस्थानी मध्यस्थ या मध्यस्थ न्यायाधिकरण के किसी सदस्य को नियुक्त करने की शक्ति है। इस प्रकार निश्चित रूप से जब विचाराधीन माध्यस्थम्, अधिनियम की धारा 2(1)(f) के तहत परिभाषित एक अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् है, तो धारा 29ए के तहत शक्ति का प्रयोग करने वाला उच्च न्यायालय, एक प्रतिस्थानी मध्यस्थ न्यायाधिकरण या मध्यस्थ न्यायाधिकरण के किसी सदस्य की नियुक्ति नहीं कर सकता है, जैसा कि धारा 29-ए की उप-धारा (6) के तहत निर्धारित है, क्योंकि यह धारा 11(5) सपठित धारा 11(9) के साथ-साथ अधिनियम की धारा 14 और 15 के तहत सर्वोच्च न्यायालय की विशिष्ट शक्ति और अधिकारित होगी। यह भी अनदेखा नहीं किया जा सकता है कि किसी मामले में विस्तार आवेदन के विरोध की संभावना है और विरोधी पक्ष एक प्रतिस्थानी मध्यस्थ न्यायाधिकरण की नियुक्ति के लिए प्रार्थना कर सकता है, जिसके लिए न्यायालय को धारा 29-ए की उप-धारा (6) के तहत शक्तियों का प्रयोग करने की आवश्यकता होती है। ऐसी स्थिति में, प्रतिस्थानी मध्यस्थ न्यायाधिकरण की नियुक्ति करते समय, जब माध्यस्थम् एक अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् होती है, तो धारा 11(9) निश्चित रूप से लागू होगी, जो मध्यस्थ न्यायाधिकरण नियुक्त करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय को विशेष अधिकारिता प्रदान करती है।

8. इस प्रकार, जैसा कि वर्तमान मामले में एक बार मध्यस्थ न्यायाधिकरण को अधिनियम की धारा 11(5) सपठित धारा 11(9) के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए सर्वोच्च न्यायालय द्वारा नियुक्त किया गया था, मेरी राय में, इस न्यायालय को धारा 29-ए की वैधानिक योजना पर विचार करते हुए अधिनियम की धारा 29-ए के तहत कोई भी आदेश पारित करने की अधिकारिता नहीं है। अधिनियम की धारा 29-ए के तहत सर्वोच्च न्यायालय को ऐसे आवेदन पर आदेश पारित करने अधिकारिता केवल तभी होगी जब माध्यस्थम् एक अंतरराष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् हो। याचिकाकर्ता की ओर से यह आग्रह कि उप-धारा (4) के प्रावधानों पर विचार करते हुए, उच्च न्यायालय धारा 29-ए के तहत मध्यस्थ न्यायाधिकरण के अधिदेश का विस्तार

अप्रमाणित

करने के लिए उपयुक्त न्यायालय होगा, धारा 29ए की सही व्याख्या नहीं होगी क्योंकि प्रावधान को इसकी संपूर्णता में और अधिनियम की धारा 11(9) के साथ संयोजन में पढ़ा जाना आवश्यक है।"

16. उन्होंने केरल उच्च न्यायालय के खंडपीठ द्वारा दिए गए मेसर्स लॉट्स शिपिंग कंपनी लिमिटेड बनाम कोचीन पोर्ट ट्रस्ट बोर्ड ऑफ ट्रस्टीज 2020 एआईआर (केरल) 169 के निर्णय को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया। निर्णय के प्रासंगिक परिच्छेद 9 और 11 यहां निम्नानुसार उद्धृत किए गए हैं:

"9. निर्णय लेने का प्रश्न यह है कि क्या धारा 29A(4) में निहित "न्यायालय" शब्द के अर्थ को धारा 2(1)(e)(i) के अर्थ से अलग एक संदर्भित व्याख्या की आवश्यकता है। संदर्भित व्याख्या स्पष्ट रूप से स्वीकार्य है, जैसा कि धारा (2) के उपखंड (1) में निहित उपरिका 'जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो' में कहा गया है। जैसा कि उभयपक्षों के अधिवक्तागण ने तर्क दिया और जैसा कि विद्वान न्यायमित्र ने प्रस्तुत किया, एक प्रासंगिक व्याख्या की आवश्यकता है क्योंकि धारा 29ए, विशेष रूप से उप-धारा (4) और (5) के तहत न्यायालय को दी गई शक्तियाँ, नियुक्ति, कार्यकाल की समाप्ति और मध्यस्थ के प्रतिस्थापन के लिए धारा 11(6), 14 और 15 के तहत, यथास्थिति, उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय को प्रदत्त शक्तियों के समान हैं। यह बताया गया है कि, वर्ष 2015 में पेश किए गए संशोधनों ने, 23.10.2015 से प्रभावी, एसबीपी एंड कंपनी बनाम पटेल इंजीनियरिंग कंपनी लिमिटेड (2005) 8 एससीसी 618 में सर्वोच्च न्यायालय की संवैधानिक पीठ के फैसले को मान्यता दी है और सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय को नियुक्ति की शक्ति प्रदान की है। यह बताया गया है कि वर्ष 2015 में किए गए संशोधनों, जो 23.10.2015 से प्रभावी हुए, ने सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ के एसबीपी एंड कंपनी बनाम पटेल इंजीनियरिंग कंपनी लिमिटेड (2005) 8 एससीसी 618 में दिए गए फैसले को मान्यता दी है और सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय को नियुक्ति की शक्ति प्रदान की है। संशोधन ने किसी भी तरह से प्रधान सिविल न्यायालय की शक्ति को नहीं बढ़ाया है, जो अधिनियम की धारा 9 और 34 के तहत दिए गए मामलों के संबंध में ही जारी है। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि धारा 9 और 34 के तहत आरंभिक अधिकारिता के प्रधान सिविल न्यायालय द्वारा पारित आदेश अधिनियम की धारा 37 के तहत अपील योग्य बनाए जाते हैं। इसी तरह, यदि अधिनियम की धारा 8 के तहत पक्षों को माध्यस्थम् के लिए संदर्भित करने से इनकार करने वाला कोई आदेश भी अधिनियम की धारा 37 (1) (ए) के तहत अपील योग्य बनाया गया था। धारा 29 ए को यह स्पष्ट करने के लिए पेश किया गया था कि, यदि माध्यस्थम् की कार्यवाही 18 महीने के भीतर समाप्त नहीं होती है, भले ही पक्षों ने विस्तार के लिए सहमति दी हो, इसे तब तक जारी नहीं रखा जा सकता जब तक कि न्यायिक मंजूरी प्राप्त न हो जाए। न्यायालय द्वारा विस्तार देने की शक्ति एक एकीकृत योजना के तहत शुरू की गई है जो न्यायालय को मध्यस्थ के शुल्क को कम करने या पक्षों पर लागत लगाने और/या

अनुवादित

मध्यस्थ(मध्यस्थों) को प्रतिस्थापित करने की भी अनुमति देती है। विस्तार की शक्ति का प्रयोग "पर्याप्त कारण" को संतुष्ट करने पर किया जाना है। सभी मामलों में, माध्यस्थम् की कार्यवाही के संबंध में विस्तार की अनुमति देने के लिए धारा 29ए के तहत प्रदत्त ऐसी शक्ति, स्पष्ट रूप से अधिनियम की धारा 14 और 15 के तहत प्रदत्त शक्तियों के समान है। धारा 29A के तहत ऐसी शक्ति के प्रयोग के संबंध में अपील के किसी भी प्रावधान की अनुपस्थिति, जैसा कि ऊपर उल्लेखित है, यह संकेत देती है कि धारा 29A के तहत शक्ति का प्रयोग आरंभिक अधिकारिता वाली प्रधान सिविल न्यायालय द्वारा नहीं किया जाना चाहिए। अन्यथा, यह समान शक्तियों का विपरीत तरीके से प्रयोग करने की एक विसंगत स्थिति पैदा करेगा, जो न्यायालयों के पदानुक्रम के लिए हानिकारक होगा। ऐसे मामले में जहां अधिनियम की धारा 11(6) के तहत मध्यस्थ की नियुक्ति, यथास्थिति, उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की जाती है, आरंभिक अधिकारिता के प्रधान सिविल न्यायालय के लिए ऐसे मध्यस्थ को प्रतिस्थापित करना या धारा 29ए के तहत प्रदान की गई समय सीमा को बढ़ाने से इनकार करना या मध्यस्थ की फीस में कमी करना असंगत होगा। इसलिए एक उद्देश्यपूर्ण व्याख्या और भी अपरिहार्य हो जाती है।

11. उपरोक्त सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए और विस्तृत विश्लेषण के आधार पर, हम यह मानने के लिए इच्छुक हैं कि धारा 29(4) में प्रयुक्त "न्यायालय" शब्द को प्रासंगिक और उद्देश्यपूर्ण व्याख्या दी जानी चाहिए, जो कि अधिनियम की उप-धारा 2(1)(ई)(i) के तहत दिए गए अर्थ से भिन्न होनी चाहिए। धारा 29(4) में निहित "न्यायालय" शब्द की व्याख्या अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् के मामले में "उच्चतम न्यायालय" के रूप में और घरेलू माध्यस्थम् के मामले में "उच्च न्यायालय" के रूप में की जानी चाहिए। इसलिए यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि किसी भी घरेलू माध्यस्थम् के मामले में अधिनियम की धारा 29A(5) के तहत किसी भी पक्ष को अधिनियम की धारा 29A(4) के तहत प्रदत्त शक्ति के प्रयोग में माध्यस्थम् कार्यवाही को जारी रखने के लिए समय विस्तार की मांग करते हुए उच्च न्यायालय के समक्ष माध्यस्थम् याचिका दायर करने की स्वतंत्रता होगी। तदनुसार निर्देश का उत्तर दिया जाता है।"

उपरोक्त निर्णयों के अवलोकन से पता चलता है कि उन्हें इस आधार पर दिया गया है कि प्रतिस्थापन का अधिकार केवल उसी न्यायालय द्वारा प्रयोग किया जा सकता है जिसे नियुक्त करने का अधिकार है और अधिनियम की धारा 11(6) के तहत नियुक्त मध्यस्थों के प्रतिस्थापन से असंगत स्थिति पैदा होगी। मामले के उक्त पहलू पर ऊपर पहले ही चर्चा की जा चुकी है और इसलिए माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों के आलोक में, उक्त निर्णयों में किए गए अनुसार प्रावधानों की व्याख्या करने से वास्तव में असंगत स्थिति पैदा होगी, अतः इस पर कोई और व्याख्या की आवश्यकता नहीं है।

जयंत वर्मा (उपरोक्त) के मामले में अनवधानता के कारण दिए गए निर्णय की अवधारणा पर निम्नलिखित शब्दों में विचार किया गया है: -

अधिवक्ता

58. इसके अलावा, मध्य प्रदेश राज्य बनाम नर्मदा बचाओ आंदोलन [मध्य प्रदेश राज्य बनाम नर्मदा बचाओ आंदोलन, (2011) 7 एससीसी 639: (2011) 3 एससीसी (सिविल) 875] में, यह कहा गया था: (एससीसी पृष्ठ 679 और 680, पैरा 65 और 67)

"65. "इनक्यूरिया" का शाब्दिक अर्थ है "लापरवाही"। व्यवहार में "अनवधानता के कारण" का अर्थ प्रति अज्ञानता माना जाता है। न्यायालयों ने निर्णीतानुसरण के नियम में ढील देते हुए इस सिद्धांत को विकसित किया है। इस प्रकार, "कानून में उद्धृत करने योग्य" को टाला जाता है और उसे अनदेखा किया जाता है यदि इसे किसी क़ानून या अन्य बाध्यकारी प्राधिकरण की अज्ञानता में प्रस्तुत किया जाता है।*******

67. इस प्रकार, "पर इनकुरियम" वे निर्णय होते हैं जो किसी कानूनी प्रावधान या उस न्यायालय पर बाध्यकारी प्राधिकरण की अज्ञानता या विस्मृति में दिए जाते हैं, या एक कानूनी कथन जो अनजाने में या बिना विवेक का प्रयोग किए निकाले गए निष्कर्ष से या बिना किसी कारण के आगे बढ़ने से उत्पन्न होते हैं, जिसके कारण ऐसे मामले में निर्णय का कोई भाग या उस तर्क का कोई चरण पर जिस पर वह आधारित है, प्रदर्शनात्मक रूप से गलत पाया जाता है।"

59. इसलिए, यह स्पष्ट है कि जहां प्रतिवादी द्वारा किसी मामले में बिल्कुल बहस नहीं की जाती है, और निर्णय उत्क्रमण का होता है, तो यह कथन करना खतरनाक होगा कि केवल अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा न्यायालय के समक्ष प्रदर्शित तथ्यों और कानून के आधार पर एकपक्षीय मूल्यांकन के माध्यम से कानून घोषित किया जा सकता है। इसके अलावा, जहाँ उच्च न्यायालय का एक विस्तृत निर्णय है जो कई प्राधिकरणों से संबंधित है, और इसे उनमें से किसी का भी उल्लेख किए बिना एक रहस्यमय तरीके से उलट दिया जाता है, वहाँ अनवधानता के कारण" का सिद्धांत लागू होता है, और प्रश्नगत कानून की प्रतिज्ञप्ति से निपटने के तरीके के कारण निर्णय बाध्यकारी शक्ति खो देता है। इसके अलावा, किसी निर्णय का 'विनिश्चय-आधार' न्यायाधीश के तर्क के तरीके को ध्यान में रखते हुए अपनाया गया कानून का सिद्धांत है जो भविष्य के मामलों में अकेले बाध्यकारी होता है। इस तरह के सिद्धांत को केवल प्रासंगिक प्रावधानों और विषय पर केस लॉ की चर्चा के बाद ही निर्धारित किया जा सकता है। ऐसे सिद्धांत को केवल प्रासंगिक प्रावधानों और उस विषय पर निर्णयजनित विधिओं की चर्चा के बाद ही निर्धारित किया जा सकता है। यदि केवल एक पक्ष को सुना जाता है और बिना किसी तर्क के निर्णय पलट दिया जाता है, और बिना किसी भी निर्णयजनित विधि के संदर्भ के अकेले कुछ निष्कर्षों पर पहुँच जाया जाता है, तो यह कहना मुश्किल होगा कि ऐसा निर्णय हमारे लिए बाध्यकारी होगा और हमें इसका पालन करना होगा। इन परिस्थितियों में, हमारा मानना है कि यासंगी वेंकटेश्वर राव [एसबीआई बनाम यासंगी वेंकटेश्वर राव, (1999) 2 एससीसी 375] में दिया गया निर्णय हमें इस विषय पर कानून बनाने के हमारे कार्य में बाधा नहीं डाल सकता।

उपर्युक्त निर्णय की प्रयोज्यता पर, स्पष्ट रूप से न केवल इस न्यायालय की विगत समन्वय

अवैधानिक

पीठों द्वारा बल्कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भी, जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है, तथा साथ ही विधि के विशिष्ट प्रावधानों द्वारा उद्धृत विनिश्चय-आधार पर, इस न्यायालय की सुविचारित राय में तथा पूर्ण सम्मान सहित, इंडियन फर्टिलाइज़र्स (उपरोक्त) के मामले में विचार नहीं किया जा सकता है, जिसके कारण इसे आबद्धकारी पूर्वनिर्णय की प्रास्थिति को प्राप्त नहीं कहा जा सकता है।

उपरोक्त पक्षों के आलोक में, जैसा कि ऊपर बताया गया है, प्रश्न का उत्तर निम्नानुसार दिया जाता है:-

'1996 के अधिनियम की धारा 29ए सहपठित धारा 2(1)(ई) के अंतर्गत संकल्पित 'न्यायालय' की अवधारणा में आरंभिक सिविल अधिकारिता न रखने वाला उच्च न्यायालय शामिल नहीं है, जैसा कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय के मामले में,और अधिनियम 1996 की धारा 29ए के अंतर्गत ऐसा आवेदन केवल जिले में आरंभिक अधिकारिता वाले प्रधान सिविल न्यायालय में ही पोषणीय होगा।'

उपर्युक्त के आलोक में, इस न्यायालय के समक्ष आवेदन अपोषणीय होने के कारण खारिज किया जाता है। पक्षकार अपना वादव्यय स्वयं वहन करेंगे।

(2023) 6 ILRA 34

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.04.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनोज कुमार गुप्ता

माननीय न्यायमूर्ति प्रशांत कुमार

मध्यस्थता और सुलह अधिनियम 1996 की धारा 37 के तहत अपील संख्या 224/2023

श्री देवीराम सिंघल और अन्य . ...अपीलकर्ता

बनाम

श्री मंजीत सिंह और अन्य. ...प्रतिवादी

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता: श्री रवि यादव, श्री उत्कर्ष श्रीवास्तव, श्री नवीन सिन्हा (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: श्री जटा शंकर पांडे, श्री सैयद सफदर अली काजमी

ए. सिविल कानून - मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996-धारा 2(ई)(1), 9, 20, 34 और 37-मध्यस्थ निर्णय-क्षेत्राधिकार-मध्यस्थता खंड में मध्यस्थता का स्थान उल्लेखित नहीं है-वर्तमान मामले में, धारा 9 के तहत आवेदन जयपुर में मध्यस्थ न्यायाधिकरण द्वारा सीट निर्धारित किए जाने से पहले जिला न्यायाधीश, आगरा के समक्ष दायर किया गया था-हालांकि मध्यस्थता की सीट जयपुर में थी, लेकिन वाणिज्यिक न्यायालय आगरा में दायर धारा 34 के तहत आवेदन वैध है क्योंकि आगरा में न्यायालय के पास मध्यस्थता पर पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार होगा। (पैरा 20 से 26)

बी. मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996-धारा 34 और 37-निर्णय को रद्द करना-दावेदार द्वारा किए गए दावे पर कभी विवाद नहीं किया गया और साक्ष्य द्वारा भी इसका समर्थन किया गया-निर्णय पारित करने से पहले मध्यस्थ ने रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य का

अनुवादित

विस्तार से विश्लेषण किया और धारा 25 (बी) के प्रावधानों को भी ध्यान में रखा-निर्णय तर्कपूर्ण और अच्छी तरह से विश्लेषित था-अपीलकर्ता की दलील कि बिना किसी तर्क के निर्णय पारित किया गया था, कायम नहीं रह सकती। (पैरा 28 और 29)

अपील खारिज की जाती है। (ई-6)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. भारत एल्युमीनियम कंपनी बनाम कैसर एल्युमीनियम टेक्निकल सर्विसेज इंक. (2012) 9 एससीसी 552

2. बीजीएस एसजीएस सोमा जेवी बनाम एनएचपीसी लिमिटेड (2020) 4 एससीसी 234

3. इंडस मोबाइल डिस्ट्रीब्यूशन (पी) लिमिटेड बनाम डाटाविंड इनोवेशन (पी) लिमिटेड (2017) 7 एससीसी 678

4. बीबीआर (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड बनाम एस.पी. सिंगला कंसल्टेंसी प्राइवेट लिमिटेड (2023) 1 एससीसी 693

5. रेनूसागर पावर कंपनी लिमिटेड बनाम जनरल इलेक्ट्रिक कंपनी (1994) एआईआर 860

6. सेंट ऑफ हर. बनाम एस.एल. अरोड़ा एंड कंपनी (2010) 3 एससीसी 690

7. मेसर्स हैदर कंसल्टिंग (यूके) लिमिटेड बनाम ओरी के गवर्नर सेंट. चीफ इंजीनियर के माध्यम से (2015) 2 एससीसी 189

8. ओएनजीसी लिमिटेड बनाम सॉ पाइप्स लिमिटेड (मनु/एससी /0314/2003: (2003) 5 एससीसी 750)

(माननीय न्यायमूर्ति प्रशांत कुमार द्वारा दिया गया)

1. अपीलार्थीगण के अधिवक्ता श्री उत्कर्ष श्रीवास्तव द्वारा सहायता प्राप्त विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री नवीन सिन्हा तथा प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री सैयद सफदर अली काजमी को सुना।

2. मामले का संक्षिप्त तथ्य यह है कि इसमे पक्षकारो ने होटल का निर्माण करने तथा इसे भागीदारी में चलाने के आशय से 01.04.1997 को भागीदारी करार किया था। यह तय किया गया था कि व्यापार भागीदारी में निष्पादित किया जायेगा जो आगरा मे होटल, बार तथा रेस्टोरेन्ट चलायेगा तथा इस व्यापार का मुख्यालय ई-14, कैलाश कालोनी, नई दिल्ली होगा। यह इंतजाम इस प्रकार था जहां दावेदार (इसमे प्रत्यर्थी) पूँजी का निवेश करेगा तथा अपीलार्थीगण (इसमे) श्रमजीवी भागीदार होगे तथा व्यापार चलाने, लेखा रखने एवं उस स्थिति को संभालने के लिए उत्तरदायी होगे जो व्यापार के सामान्य अनुक्रम में पैदा होता है। होटल के विनिर्माण के दौरान दावेदार ने न केवल होटल के विनिर्माण तथा चलाये जाने हेतु पर्याप्त धन उपलब्ध कराया था, बल्कि अपीलार्थीगण को रू0 20 लाख का व्यक्तिगत ऋण भी दिया था। निर्माण दिसम्बर 1999 में पूरा किया था। आरम्भ होने के बाद तथा जुलाई 2002 तक होटल ठीक चला था तथा लाभ बनाया था। जुलाई 2002 के बाद, अपीलार्थी (इसमे) बेईमान हो गये थे तथा इस बहाने प्रत्यर्थीगण को लाभ देना बंद कर दिया था कि व्यापार घाटे मे चल रहा है। इसमे प्रत्यर्थीगण को लेखा की जाँच करने की अनुमति नही दिया था। चूँकि होटल प्रमुख स्थान पर स्थित था, अतः अधिभोग काफी अधिक था। फरवरी 2003 के बाद, अपीलार्थीगण ने प्रत्यर्थीगण को सम्पत्ति होटल मे प्रवेश करने से रोक दिया था।

अनुवादित

3. करार में, मध्यस्धता खण्ड था जो पक्षकारों के बीच विवाद की दशा में मध्यस्धता का उपबंध करता था जिसे एतस्मिन् नीचे दोहराया जाता है:-

"9 इसके अन्तर्गत जारी भागीदारी या व्यापार से संबंधित विवाद के मामले मे, मध्यस्थ को निर्दिष्ट किया जायेगा तथा इसका निर्णय दोनो पक्षकारों पर बाध्यकारी होगा।"

यह उल्लेखनीय है कि मध्यस्धता के स्थान पर मध्यस्धता खण्ड मूक था।

4. चूंकि प्रत्यर्थीगण को उचित लाभांश नही दिया गया था न तो इन्हे सम्पत्ति में प्रवेश करने की अनुमति दी गयी थी न ही लेखा तक पहुँच थी, इसलिए प्रत्यर्थीगण के पास मध्यस्धता खण्ड का अवलंब लेने तथा पक्षकारों के बीच पैदा हुए मतभेदों का न्याय निर्णयन करने के लिए मध्यस्थ की नियुक्ति हेतु न्यायालय आने के सिवाय कोई अन्य विकल्प नहीं था।

5. प्रत्यर्थीगण (इसमे) ने 9.11.2006 को मध्यस्धता एवं सुलह अधिनियम 1996 (एतस्मिन् पश्चात संक्षेप में मध्यस्धता खण्ड के रूप में निर्दिष्ट किया गया है) जिसे मध्यस्धता मामला सं0 533 वर्ष 2006 के रूप में संख्याकित किया गया था।

6. इस धारा 9 आवेदन पर, न्यायालय ने निदेश दिया था कि आवेदक (इसमे प्रत्यर्थी) को परिसर में प्रवेश करने का व्यापार से संबंधित अभिलेख का निरीक्षण करने एवं व्यापार के प्रबंधन में भाग लेने की अनुमति दी जायेगी"

7. 02.01.2008 को पक्षकारों के संयुक्त अनुरोध पर जयपुर के निवासी श्री राकेश कौशल को दोनो पक्षकारो द्वारा मामले में एक मात्र मध्यस्थ के रूप में नामनिर्दिष्ट किया गया था। तद्नुसार न्यायालय ने श्री राकेश कौशल को एक मात्र मध्यस्थ नियुक्त किया था। न्यायालय ने निदेश दिया था कि मध्यस्थ मध्यस्धता अधिनियम की धारा 17 के अधीन आदेशों को पारित करने के लिए स्वतंत्र होगा। न्यायालय ने आगे निर्देश दिया था कि दावेदारों को अपीलार्थीगण द्वारा व्यापार परिसर मे प्रवेश करने से तथा व्यापार के प्रबंधन मे भाग लेने से रोका नहीं जायेगा।

8. मध्यस्थ ने 12.07.2008 को मध्यस्धता संदर्भ को आगे बढ़ाया था तथा दोनो पक्षकारों को सुनने के बाद, अधिकरण ने तय किया था कि मध्यस्धता अधिकरण का स्थान 43, बर्मीज कालोनी, जयपुर होगा।

9. 17.08.2008 को दावेदार/प्रत्यर्थीगण ने अपना दावा दाखिल किया था। प्रतिरक्षा कथन/लिखित कथन दाखिल करने के लिए अपीलार्थीगण को कई अवसर दिया गया था। स्वयँ को ज्ञात पूर्वोक्त कारणो पर इन लोगो ने इसे दाखिल नही किया था। इन लोगो ने पर्याप्त अवसरो को प्राप्त करने के बावजूद कोई प्रतिदावा दाखिल नही किया था। यह स्पष्ट है कि अपीलार्थीगण मध्यस्धता कार्यवाहियों से बच रहे थे तथा विलम्बकारी चाल अपना रहे थे।

10. मध्यस्धता कार्यवाहियो के आरंम्भ से, अपीलार्थीगण का प्रयास सुनवाई को बाधित करना या मध्यस्धता कार्यवाहियो को लटकाने का था। ये लोग मध्यस्थ को कार्यवाहियों से पीछे आने के लिए धमकी देने की हद तक गये थे।

11. मध्यस्धता अधिकरण दावेदार के कथन तथा लिखित तर्क का परिशीलन करने के बाद

अनुवादित

तथा अभिलेख पर तथ्यों एवं साक्ष्य पर विचार करने के बाद इस निष्कर्ष पर आया था कि होटल व्यापार जो भागीदारी में चल रहा था लाभ कमाया था तथा प्रत्यर्थीगण के पक्ष में विभिन्न विषयो के अन्तर्गत पंचाट दिया था। आगे अधिकरण ने अभिनिर्धारित किया है पंचाट में पंचाट की तिथि से इसके प्राप्ति तक 15% प्रतिवर्ष का ब्याज शामिल होगा।

12. पंचाट से व्यथित अपीलार्थीगण ने अन्य बातो के साथ मध्यस्थ के स्वतंत्रता, मध्यस्धता के स्थान, सुनवाई का अवसर न देने के आधार पर वाणिज्यिक न्यायालय आगरा के समक्ष मध्यस्धता पंचाट अपास्त करने के लिए मध्यस्धता अधिनियम की धारा 34 के अधीन आवेदन दाखिल किया था। इस आवेदन को वाणिज्यिक न्यायालय, आगरा के मध्यस्धता मामला सं0 73 वर्ष 2010 के रूप में संख्याकित किया गया था। वाणिज्यिक न्यायालय आगरा ने दोनो पक्षकारों को सुनने के बाद इस आधार पर आदेश दिनांक 23.01.2023 द्वारा अपीलार्थीगण द्वारा मध्यस्धता अधिनियम की धारा 34 के अधीन दाखिल आवेदन को नामंजूर किया था कि मध्यस्थ द्वारा पारित पंचाट लोक नीति के विरुद्ध नही था तथा भारत के लोकनीति के विरुद्ध नही था।

13. वाणिज्यिक न्यायालय, आगरा द्वारा पारित आदेश से व्यथित अपीलार्थीगण (इसमे) ने धारा 13 (1ए) के अधीन वर्तमान अपील अधिमानित किया था जो विशेष रूप से मध्यस्धता अधिनियम की धारा 37 के अधीन परिगणित है।

14. पक्षकारों के अधिवक्तागण को सुना तथा अभिलेख का परिशीलन किया।

15. इस अपील में, दो विवाद्यको को उठाया गया था, पहला, मध्यस्धता के स्थान के बारे में तथा न्यायालय जिसके पास पर्यवेक्षण अधिकारिता होगा। दूसरा इन तथ्यो पर कि पंचाट किसी साक्ष्य के बिना पारित कियो गया था तथा सकारण पंचाट नही था; परिसीमा का विवाद्यक था तथा पंचाटपूर्व अवधि पर चक्रवृद्धि ब्याज का पंचाट नही दिया जा सकता था।

16. पहले विवाद्यक पर, अपीलार्थीगण के अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि आगरा तथा जयपुर दोनो न्यायालयों के पास मध्यस्धता अधिनियम की धारा 34 के अधीन आवेदन पर विचार करने की अधिकारिता होगी क्योकि वाद हेतु दोनो स्थानों मे उद्भूत होता है।

17. प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि चूकि करार में मध्यस्धता के स्थान का उल्लेख नही था, अतः मध्यस्थ मध्यस्थता का स्थान चुनने के लिए स्वतंत्र था। एक बार मध्यस्धता का स्थान चुन लिया गया है, इसके बाद किसी आवेदन/ अपील को केवल उस न्यायालय में दाखिल या विचार किया किया जा सकता है जिसके पास उस स्थान पर पर्यवेक्षण अधिकारिता है जहाँ मध्यस्धता निष्पादित किया जाता है। अतः आगरा मे मध्यस्धता अधिनियम की धारा 34 के अधीन दाखिल अपील को भी दाखिल नहीं किया जा सकता था।

18. प्रत्यर्थीगण ने आग्रह किया है कि मध्यस्धता अधिनियम की धारा 34 काफी सीमित है तथा मा0 उच्चतम न्यायालय के विभिन्न निर्णय के अनुसार यह स्पष्ट है कि न्यायालय तब तक हस्तक्षेप नही कर सकता है जब तक यह मध्यस्धता अधिनियम की धारा

अनुवादित

34 के अधीन प्रावधानों के जकड़ जामा मे नही आता है। प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया है कि मा0 उच्चतम न्यायालय के विभिन्न निर्णयों में, यह स्पष्ट रूप से अधिकथित किया गया है कि मध्यस्थता अधिनियम की धारा 37 पर न्यायालयो द्वारा विचार नही किा जा सकता है क्योकि अपील न्यायालय जो अपीलीय पक्ष पर पंचाट की जाँच करेगा तथा जब तक यह प्रदर्शित तथा साबित नही किया जाता है कि पंचाट भारत के लोक नीति के विरुद्ध है या भारतीय विधि के मूलभूत नीतियो के प्रतिकूल है या नैतिकता अथवा न्याय के रूप से अधिक मूलभूत विचार के विरुद्ध है या पंचाट, पंचाट को देखते ही स्पष्ट अवैधता द्वारा संदूषित है, आवेदन या अपील पर विचार नही किया जा सकता है।

19. हम सर्वप्रथम पर्यवेक्षण न्यायालय के अधिकारिता के पहले विवादयक पर विचार करना उपयुक्त समझते है।

20. विवाद में जाने के पहले, मध्यस्थता अधिनियम 1996 के सुसंगत प्रावधान जो न्याय निर्णयन हेतु महत्वपूर्ण है, को एवस्मिन् नीचे दोहराया जा रहा है:-

धारा 2 (1) (ई) ''न्यायालय से जिला में आरम्भिक अधिकारिता का प्रधान सिविल न्यायालय अभिप्रेत है तथा अपने सामान्य आरंम्भिक सिविल अधिकारिता के प्रयोग मेे उच्च न्यायालय शामिल है, जिसके पास मध्यस्थता की विषयवस्तु बनने वाले प्रश्नो का विनिश्चय करने की अधिकारिता है यदि यह वाद की विषय वस्तु थी, लेकिन इसमे इस प्रकार के प्रधान सिविल न्यायालय के अधीनस्थ ग्रेड का कोई सिविल न्यायालय या लघु वाद का कोई न्यायालय शामिल नही है।''

"धारा-20, मध्यस्थता का स्थान - (1) पक्षकारगण मध्यस्थता के स्थान पर सहमत होने के लिए स्वतंत्र है।

(2) उप धारा (1) में निर्दिष्ट किसी सहमति के विफल होेने पर पक्षकारों के सुविधा के साथ मामले के परिस्थितियों को ध्यान मे रखते हुए मध्यस्थता अधिकरण द्वारा निर्धारित किया जायेगा।

(3) उप धारा (1) या उप धारा (2) के होते हुए भी, मध्यस्थता अधिकरण, जब तक पक्षकारों द्वारा अन्यथा सहमति नही होती है साक्षीगण, विशेषज्ञो या पक्षकारो के सुनवाई हेतु या दस्तावेजो, सामान या अन्य सम्पत्ति के निरीक्षण हेतु किसी स्थान पर बैठक कर सकती है जिसे यह अपने सदस्यों के परामर्श पर समुचित समझता है।

20क. धारा 20 को स्पष्ट रूप से पढ़ने से संदेह के लिए कोई गुंजाइश नही है कि पक्षकारगण मध्यस्थता के किसी स्थान या सीट पर सहमत होने के लिए स्वतंत्र है। इस संबंध में पक्षकारों के सहमति के अभाव के मध्यस्थता अधिनियम की धारा 20(2) अधिकरण को इस प्रकार के मध्यस्थता के स्थान/सीट का निर्धारण करने के लिए अधिकृत करता है।

21. **भारत अल्युमिनियम कंपनी बनाम कैसर अल्युमिनियम टेक्नीकल सर्विसेज इण्डस्ट्रीज** के मामले में मा0 उच्चतम न्यायालय के पाँच

अनुवादित

न्यायमूर्ति की पीठ ने पैरा सं0 96 मे अभिनिर्धारित किया कि:-

" ,,,,,,,,,,,,,,,"शब्द " मध्यस्धता की विषयवस्तु" को "वाद के विषय वस्तु" समझा नही जा सकता है। धारा 2 (1) (ई) के शब्द विषय वस्तु भाग-1 तक सीमित है। इसका विवाद समाधान की प्रक्रिया के संवंध तथा संदर्भ है। इसका उद्देश्य उन न्यायालयों की पहचान करना है जिनके पास मध्यस्धता कार्यवाहियो पर पर्यवेक्षणीय नियत्रण है। इसलिए, यह उस न्यायालय को निर्दिष्ट करता है जो मूलतः मध्यस्धता प्रक्रिया के सीट का न्यायालय होगा।

धारा- 20 जो पक्षकार के स्वायत्तता को मान्यता देता है मे प्रावधानों को दृष्टिगत रखते हुए धारा 2 (1) (ई) मे प्रावधान का अर्थ लगाया जाना चाहिए।

विधान मण्डल जानबूझकर दो न्यायालयो को अधिकारिता दिया है अर्थात् न्यायालय जिसमें अधिकारिता होगी जहाँ वाद हेतु स्थित है तथा न्यायालय जहाँ मध्यस्धता होता है। यह आवश्यक है क्योंकि कई अवसरो पर समझौता के उस स्थान पर मध्यस्धता के सीट का उपबंध कर सकता है जो दोनो पक्षकारों के लिए व्यर्थ होगा।

दोनो न्यायालयों के पास अधिकारिता होगी अर्थात् न्यायालय जिसके अधिकारिता में वाद की विषयवस्तु स्थित है तथा न्यायालय जिसमे अधिकारिता में विवाद समाधान अर्थात् मध्यस्धता स्थित है।

22. **भारत अल्युमिनियम कंपनी** के निर्णय का अनुसरण मा0 उच्चतम न्यायालय द्वारा **बीजीएस एसजीएस सोमा जीवी बनाम एनएचपीसी लिमिटेड** में किया गया था जिसमें विवाद्यक था कि इस न्यायालय के पास उस स्थान के विरुद्ध मध्यस्धता पर अनन्य अधिकारिता होगी जहाँ सम्पूर्ण या आंशिक वाद हेतु उद्भूत होता है। मा0 उच्चतम न्यायालय ने पैरा 38 में अभिनिर्धारित किया है कि:-

''38,..... बालको बनाम कैसर अल्युमिनियम टेक्नीकल सर्विसेज इण्टस्ट्रीज निर्णय, जब पूर्णतया पढ़ा जाता है, "सीट" के अवधसारणा पर लागू होता है जैसा धारा 2 (1) (ई) के साथ धारा 20 का समन्वय पूर्ण अर्थान्वयन करते हुए अंग्रेजी निर्णयों (तथा जो मध्यस्धता अधिनियम 1996 के धारा 20 मे है) द्वारा अधिकथित हैं जिससे "न्यायालय" की परिभाषा को विस्तृत किया जा सके तथा मध्यस्धता के सीट के इसके पहुँच न्यायालयो में लाया जा सके।

इस मामले मे यह अभिनिर्धारित किया गया कि अधिकारिता दो न्यायालयो को दी जायेगी अर्थात्, ऐसे न्यायालय जिनके पास अधिकरिता होगी जहाँ वाद हेतु स्थित है तथा ऐसे न्यायालय जहां मध्यस्धता होता है।

23. तत्पश्चात् **इण्डस मोबाइल डिस्ट्रीव्यूशन (प्रा0) लि0 बनाम डाटा विन्ड इनोवेशन (प्रा0) लि0** (2017) 7 एससीसी 678 के मामले मे, मा0 उच्चतम न्यायालय ने समुचित तरीके से मध्यस्धता अधिनियम की धारा 20 के

अनुवादित

प्रावधानों का विश्लेषण किया था तथा इस निष्कर्ष पर आया था कि जब समझौते मे मध्यस्धता के किसी स्थान का उल्लेख नही किया जाता है तथा जहाँ मध्यस्धता अधिकरण स्थान विशेष को मध्यस्धता अधिनियम की धारा 31 (4) के अधीन मध्यस्धता के सीट के रूप मे निर्धारित करता है, यह स्पष्ट होता है कि पक्षकारगण जिसने सीट चुन लिया है (या मध्यस्धता अधिकरण ने सीट का निर्धारण कर लिया है) अंतरिम आदेशों के प्रयोजन हेतु सीट पर न्यायालयों को भी चुन लिया है तथा पंचाट को चुनौती देता है।

3. बालको बनाम कैसर अल्युमिनियम टेक्नीकल सर्विसेज इण्टस्ट्रीज (2012) 9 एससीसी 552; (2012) 4 एससीसी (सिविल) 810 निर्णय, जब पूर्णतया पढ़ा जाता है 'स्थान' के अवधारणा पर लागू होता है जैसा धारा 20 के साथ धारा 2 (1) (ई) का सामजस्यपूर्ण अर्थान्वयन करते हुए अंग्रेजी निर्णयों द्वारा अधिकथित है (तथा जो मध्यस्धता अधिनियम 1996 धारा 20 में है), जिसमे 'न्यायालय' के परिभाषा को विस्तृत किया जा सके तथा मध्यस्धता के 'स्थान' के इसके पहुँच न्यायालयों में लाया जा सके (अंग्रेजी मध्यस्धता अधिनियम 1996 की धारा 3 'स्थान' को निम्नवत् परिभाषित करता है 3 मध्यस्धता का स्थान -इस भाग मध्यस्धता के स्थान से नामनिर्दिष्ट मध्यस्धता का विधिक स्थान अभिप्रेत है - (क) मध्यस्धता समझौते के पक्षकारेां द्वारा या (ख) किसी मध्यस्धता या अन्य संस्था या इस संबंध में शक्ति वाले पक्षकारों द्वारा निहित व्यक्ति द्वारा या (ग) मध्यस्धता अधिकरण द्वारा यदि इस प्रकार पक्षकारों द्वारा प्राधिकृत किया जाता है या इस प्रकार के किसी नाम निर्देशन के अभाव में, पक्षकारो के समझौता तथा सभी सुसंगत परिस्थितियों में ध्यान मे रखते हुए यह अवेक्षित किया जायेगा कि यह धारा भारतीय मध्यस्धता अधिनियम 1996 की धारा 20 के निकट से सदृश है। "न्यायालय" का अर्थ अंग्रेजी मध्यस्धता अधिनियम 1996 की धारा 105 में अधिकथित है जिसके द्वारा लार्ड चांसलर आदेश द्वारा अधिनियम के अन्तर्गत कार्यवाहियो का अलग-अलग उल्लेख करते हुए तथा आवंटित करते हुए प्रावधान बना सकता है जो उच्च न्यायालय या काउन्टी न्यायालय में जा सकता है।

24. मा0 उच्चतम न्यायालय ने **बीबीआर (इण्डिया) प्राइवेट लिमिटेड बनाम एस0 पी0 सिंगला कन्सट्रक्शन प्राइवेट लिमिटेड (2023)** 1 एससीसी 693 के मामले मे पुनः पर्यवेक्षण न्यायालय के अधिकारिता के विवाद्यक पर विचार किया था जहाँ मध्यस्थ द्वारा मध्यस्धता अधिनियम की धारा 20 (2) के अधीन मध्यस्धता का स्थान निर्धारित किया गया था। मा0 उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया था कि भाग प् के अधीन सभी आवेदनो को उस न्यायालय में अधिमानित किया जायेगा जहाँ "स्थान" स्थित है क्योकि इस न्यायालय के पास एक मात्र मध्यस्धता कार्यवाहियो तथा मध्यस्धता कार्यवाहियो से उद्भूत सभी पश्चातवर्ती कार्यवाहियों पर अधिकारिता होगी। उद्धरण यह भी स्पष्ट करता है कि जब समझौते द्वारा "स्थान" को नामनिर्दिष्ट नही किया जाता है या तथाकथित 'स्थान' केवल सुविधा जनक स्थान होता है तब कई न्यायालय हो सकते है जहाँ वाद हेतु का एक हिस्सा उद्भूत होता है

अनुवादित

जिसमे अधिकारिता हो सकती है। मध्यस्धता अधिनियम की धारा 9 के अधीन आवेदन उस न्यायालय के समक्ष अधिमानित किया जा सकता है जिसमें ऐसे मामले मे वाद हेतु का एक हिस्सा उद्भूत होता हैे जहाँ पक्षकारगण ''मध्यस्धता के स्थान'' पर सहमत नही थे। यह ''स्थान'' के निर्धारित करने के सहमति के अभाव में संभव है क्योकि धारा 9 के अधीन आवेदन मध्यस्धता अधिनियम की धारा 20 (2) के अधीन मध्यस्धता अधिकरण द्वारा ''स्थान'' का निर्धारण करने के पहले दाखिल किया जा सकता है। परिणामस्वरूप, इस प्रकार की स्थितियों में, न्यायालय जहाँ पूर्ववर्ती आवेदन किया गया हैं, न्यायालय होने के नाते जिसमे आंशिक या सम्पूर्ण वाद हेतु उद्भूत होता है, तत्पश्चात मध्यस्धता अधिनियम की धारा 42 के अधीन अनन्य न्यायालय होगा। तद्नुसार इस प्रकार के न्यायालय का मध्यस्धता कार्यवाहियों पर नियंत्रण होगा।

25. मा0 उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित विनिश्चयाधार के दृष्टिगत, यह स्पष्ट है कि इस मामले मे यद्यपि मध्यस्धता का स्थान जयपुर था लेकिन आगरा मे न्यायालय के पास पर्यवेक्षण अधिकारिता होगा क्योकि धारा 9 आवेदन मध्यस्धता अधिकरण द्वारा स्थान निर्धारित किये जाने के पहले जिला जज, आगरा के समक्ष दाखिल किया गया था।

26. तद्नुसार हम प्रत्यर्थी के तर्को में कोई गुणावगुण नही पाते है तथा धारित करते है कि मध्यस्धता अधिनियम की धारा 34 के अधीन आवेदन ठीक ही वाणिज्यिक न्यायालय, आगरा में दाखिल किया गया हैं तथा आगरा मे न्यायालय के पास मध्यस्धता पर पर्यवेक्षण अधिकारिता होगा।

27. दूसरा, अपीलार्थीगण ने गुणावगुण पर पंचाट का चुनौती दिया है। अपीलार्थीगण के अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि यह ऐसा मामला है जिसमे साक्ष्य नही है क्योकि पंचाट अभिलेख पर किसी साक्ष्य के बिना पारित किया गया है, पंचाट सकारण पंचाट नही था, भावी आय को अनुध्यात नही किया जा सकता था, लाभ के हिस्सा हेतु दावा मध्यस्धता योग्य नही था, पंचाट अकारण है तथा यह कि दावा का हिस्सा परिसीमा द्वारा वर्जित था।

28. अपीलार्थी ने तर्क दिया है कि, पंचाट मे समुचित तर्क का अभाव है। यद्यपि यह आगे तर्क दिया गया हे कि मध्यस्धता अधिनियम की धारा 25 (ख) के अधीन मध्यस्थ का कर्तव्य यह माने बिना अग्रसर होना है कि अभिकथन का खण्डन करने की प्रत्यर्थी की विफलता स्वीकृति के रूप में है। पंचाट मे जो भी हो दावेदार को दिये गये अनुतोष के समर्थन में किसी कारण या विश्लेषण की आवश्यकता नही है।

अपीलार्थीगण के अधिवक्ता द्वारा उठाया गया यह तर्क कि आक्षेपित पंचाट किसी कारण के बिना है, इस तथ्य के कारण कोई आधार नही होगा कि दावेदार ने दावा का विवरण दाखिल किया है तथा अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य केे साथ अपने दावा का समर्थन किया था। दावेदार द्वारा किये गये दावा का खण्डन कभी भी प्रत्यर्थीगण द्वारा नही किया गया है। पंचाट भली भाँति सकारण तथा भली भाँति विश्लेषित है।

अनुवादित

29. अपीलार्थीगण के अधिवक्ता ने **एसोसियेट विल्डर्स बनाम दिल्ली विकास प्राधिकरण** के मामले में मा0 उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित निर्णय पर भरोसा किया है तथा तर्क दिया है कि यदि मध्यस्थ पंचाट हेतु कोई कारण नही देता है, तब यह मध्यस्धता अधिनियम की धारा 31 (3) के उल्लंघन में होगा, इस प्रकार का पंचाट अपास्त किये जाने योग्य होगा''

यह तर्क भी अपीलार्थी के लिए सहायक नही है, क्योकि यह ऐसा मामला नही है जहाँ पंचाट को किस साक्ष्य या दस्तावेजो तथा अभिलेख पर सामग्री के बिना पारित किया गया था। यह नही कहा जा सकता है कि मध्यस्थ ने पंचाट पारित करते समय कोई तर्क नही दिया है। दावा का विनिश्चय करते समय मध्यस्थ मात्र दावेदार के कहने पर पंचाट पारित न करने के लिए पर्याप्त सावधान था लेकिन पंचाट पारित करने के पहले विवरणों मे गहराई से गया था, इसने पंचाट पारित करने के पहले मध्यस्धता अधिनियम की धारा 25 (ख) के प्रावधान को भी ध्यान में रखा था। अब यह नही कहा जा सकता है कि आपेक्षित आदेश अकारण है।

30. अपीलार्थी के अधिवक्ता द्वारा किये गये प्रकथनो के जवाब में प्रत्यर्थीगण ने निवेदन किया है कि, दावेदार के पास उपलब्ध सभी साक्ष्यो तथा दस्तावेजो को मध्यस्थ के समक्ष पेश किया गया था तथा इसका खण्डन या आक्षेप कभी भी अपीलीर्थीगण द्वारा नही किया गया था। यहाँ तक कि प्रबंधक का शपथ पत्र मध्यस्थ के समक्ष दाखिल किया गया था जो स्पष्ट रूप से कमरो की संख्या, प्रभारित धनराशि, होटल के अधिभोग, खर्चो, होटल के आय तथा लाभों का उल्लेख करता है। अब इसका खण्डन अपीलार्थीगण द्वारा किया गया है। इसके अलावा, प्रत्यर्थीगण का अधिवक्ता हमे अभिलेख की ओर ले गया जिससे प्रदर्शित होता है कि पर्याप्त साक्ष्य था जिसके आधार पर मध्यस्थ ने सकारण पंचाट पारित किया था।

31. प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि आय, खर्चा, लाभ के आधार पर मध्यस्थ ने भावी आय का मूल्यांकन किया है। अपीलार्थीगण (इसमे) जिसने अपने बकाया हिस्सा को न देते हुए तथा सम्पत्ति एवं सम्पत्ति से आने वाले आय का उपभोग करते हुए दावेदार के साथ छल किया था। वह लेखा नही दे रहा था तथा असली लेखा नही दे रहा था इसलिए मध्यस्थ के पास लाभ की गणना करने के सिवा कोई रास्ता नही था तथा इसलिए प्रस्तावित आय के आधार पर विनिश्चय करने के लिए अग्रसर हुआ था। अब पंचाट पारित करने में मध्यस्थ द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया पूर्णतया न्याय संगत प्रतीत होती है।

32. अपीलार्थीगण के अधिवक्ता द्वारा उठाया गया तर्क कि पंचाट को किसी साक्ष्य के बिना पारित किया गया है, भी युक्तियुक्त नही है। कमरे के किराया, आवासीय सुविधा तथा अन्य क्रियाकलापो से उद्भूत भागीदारी फर्म के लाभ का हिस्सा मध्यस्थ के समक्ष साक्ष्य को साबित करने के लिए प्राप्त था। अपीलार्थीगण ने मध्यस्थ के समक्ष साक्ष्य का खण्डन करने के लिए कोई प्रयास नही किया था। वस्तुतः मध्यस्थ ने उचित पंचाट नही किया था, जिसा दावा दावेदार द्वारा किया गया था, लेकिन

अनुवादित

केवल वही पंचाट किया था, जिसे अभिलेख पर साक्ष्य द्वारा साबित किया गया था।

33. अपीलार्थीगण के अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया है कि आंशिक दावा (2000 से सितम्बर 2003 तक लाभ के संबंध में) परिसीमा द्वारा वर्जित था, इन्होने निवेदन किया है कि वर्तमान मामले मे धारा 21 के अधीन मध्यस्धता कार्यवाहियों के आरम्भ हेतु आवश्यक मध्यस्धता का अवलंब लेते हुए नोटिस को 11 अक्टूबर 2006 को जारी किया गया था। मध्यस्धता अधिनियम की धारा 53 निम्नवत उपवंध करता है:-

धारा 43, परिसीमा - (1) परिसीमा अधिनियम 1963 (1963 का 36) मध्यस्धता के संबंध में लागू होगा जैसा वह न्यायालय में कार्यवाहियों के संबंध में लागू होता है।

(2) इस धारा तथा परिसीमा अधिनियम 1963 (1963 का 36) के प्रयोजन हेतु मध्यस्धता को धारा 21 में निर्दिष्ट तिथि को आरम्भ हुआ माना जायेगा .....

अतः विद्वान मध्यस्थ द्वारा अवधि जनवरी 2000 से सितम्बर 2003 के लिए अनुदत्त तथा ईप्सित दावा परिसीमा अधिनियम 1963 के अनुसूची के अनुच्च्छेद 137 के अधीन परिसीमा द्वारा वर्जित हैं।

34. इसके जवाब मे, प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि दावा परिसीमा द्वारा वर्जित नही है।

35. अनुसूची का अनुच्छेद '5' अनुच्छेद 113 तथा अनुच्छेद 137 जिसका विवाद्यक से संबंध है, निम्नवत् है:-

	वाद का विवरण	परिसीमा की अवधि	समय जिस अवधि से चलना आरम्भ होता है
'5'	लेखा तथा विघटित भागीदारी के लाभ के अंश हेतु	तीन वर्ष	विघटन की तिथि
113.	कोई वाद जिसके लिए इस अनुसूची में कही भी परिसीमा की अवधि का उपबंध नही है।	तीन वर्ष	जब वाद लाने का अधिकार प्रोद्भूत होता है
137.	कोई अन्य आवेदन जिसके लिए परिसीमा की अवधि का उपबंध इस भाग	तीन वर्ष	जब आवेदन का अधिकार प्रोद्भूत होता है।

अनुवादित

	में कही भी नही है।		

36. विघटित भागीदारी फर्म के लाभ के अंश के लेखा हेतु कार्यवाही में, समय भागीदारी के विघटन की तिथि से परिसीमा की गणना करने के प्रयोजन हेतु चलना आरम्भ होता है। अनुच्छेद 113 तथा अनुच्छेद 137 के अन्तर्गत, समय तब चलना आरम्भ होता है जब वाद लाने/आवेदन करने का अधिकार प्रोद्रभूत होता है।

37. लिण्डले ने भागीदारी विधि, पन्द्रहवाँ संस्करण पर अपने निबंध में इस बात पर विचार करते हुए कि वह कौन सी अवधि होगी जिसके लिए लेखा को वापस लिया जा सकता हैं कहता है कि "समय जिससे लेखा आरम्भ होता है भागीदारी संबंध तथा संव्यवहार के सामान्य लेखा में भागीदारी का आरम्भ तब तक नही होगा जब तक उस समय से कुछ लेखा को भागीदारो द्वारा बेवाक नही किया गया है जिस मामले में अंतिम वेवाक लेखा विचलन का प्रश्न होगा।" लेखा हेतु अनुयोग लाने के लिए विहित परिसीमा एक ही नही है जैसे अवधि जिसके लिए लेखा को माँगा जा सकता है। अनुच्छेद-5 के अधीन समय भागीदारी फर्म के विघटन की तिथि से चलना आरम्भ होता है। अनुच्छेद 113/137 के अधीन समय उस तिथि से चलना आरम्भ होता है जब वाद लाने/आवेदन करने का अधिकार प्रोद्रभूत होता है। अनुच्छेद 113/137 के अधीन वाद लाने/आवेदन करने का अधिकार तब प्रोद्रभूत होगा जब लेखा की माँग की जाती है लेकिन खण्डन किया जाता है जब लेखा को समझौता में इस निमित्त विर्निदिष्ट प्रतिबंध शर्त के निवंधन के अनुसार समय-समय पर पेश किया जाता है तथा इसका पालन नही किया जाता है। वर्तमान मामले में परवर्ती लागू नही होता है तथा इसलिए, वाद लाने/आवेदन करने का अधिकार तब प्रोद्रभूत हुआ था जब लेखा की मांगे की गयी थी लेकिन इंकार किया गया था। अपीलार्थी का मामला यह नही है कि दावा पूर्णतया परिसीमा द्वारा वर्जित है। अभिकथित यह है कि अवधि जनवरी 2000 सितम्बर 2003 के संबंध मे लेखा हेतु दावा परिसीमा द्वारा वर्जित था। यह इस आधार पर आधारित है कि लाभ एवं हानि का लेखा जोखा प्रत्येक वर्ष लगाया जाना चाहिए। इसलिए समय प्रत्येक वर्ष के अंत में चलना आरम्भ होता है तथा तीन वर्ष के बाद उस विशेष कार्य हेतु लेखा मे किये दावा परिसीमा के परे होगा। फिर भी, जैसा ऊपर उल्लिखित है, प्रत्येक वर्ष के अंत में या किसी विर्निदिष्ट तिथि पर लाभ/हानि के हिस्सा हेतु किसी अनुबंध के अभाव में हम तर्क को स्वीकार करने में असमर्थ है। वास्तव में इस निमित्त किया गया अभिवाक प्रतीयमानतः विरोधाभाषी है। अपीलार्थी ने यह तर्क देते हुए लेखा से संबंधित अनुतोष का विरोध किया था, जैसा निर्णय के पूर्ववर्ती भाग में उल्लिखित है, कि लेखा हेतु समझौते में दावा किसी विर्निदिष्ट तिथि के अभाव मे समय पूर्व था।

38. जबकि स्थिरीकृत लेखा को पुनः चालू करना अननुज्ञेय है, उस सम्पूर्ण अवधि के लिए लेखा के लाभ/हानि का दावा करने में कोई विधिक बाधा नही है जिसके लिए लेखा को पेश नही किया गया था, जब तक इस प्रकार के किसी वर्जन का निष्कर्ष भागीदारी समझौता के निवंधनों से नही निकाला जा सकता है। इस

अनुवादित

प्रकार हम इस तर्क में कोई गुणावगुण नही पाते है कि 2000 से सितम्बर 2003 से लाभ के संबंध में दावा परिसीमा द्वारा वर्जित था।

39. अपीलार्थीगण के अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि मध्यस्थ के पास समेकित 15: प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज देने की शक्ति नही थी। इस तर्क का विरोध प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता द्वारा किया गया है।

40. मा0 उच्चतम न्यायालय ने **रेनू सागर पावर कं0 लि0 बनाम जनरल इलेक्ट्रिक कं0 1994 एआईआर 860** के मामले मे अभिनिर्धारित किया है कि मध्यस्धता अधिकरण द्वारा चक्रवृद्धि ब्याज का पंचाट भारत के लोक नीति के विरुद्ध नही है। यह भाग जैसा अधिकथित है को मध्यस्धता अधिनियम 1996 मे संहिताबद्ध किया गया था।

41. पहले **हरियाणा राज्य बनाम एस0 एस0 अरोड़ा एण्ड कंपनी (2010) 3 एससीसी 690** मे मा0 उच्चतम न्यायालय की खण्डपीठ ने अभिनिर्धारित किया है कि मध्यस्धता अधिकरण के पास चक्रवृद्धि ब्याज देने की शक्ति नहीं होती है जब तक विशेष रूप से संविदा में या कानून में उपबंधित न हो।

42. तत्पश्चात, भारत के विधि आयोग ने अपने 246 वे रिपोर्ट मे स्पष्ट किया था कि मध्यस्धता अधिनियम की धारा 31 (7) का निबन्धन आवश्यक प्रभाव के बारे में है। रिपोर्ट के अनुसार, मध्यस्धता अधिनियम के सुसंगत प्रावधानों के स्कीम से संकेत मिलता है कि ब्याज का पंचाट न केवल अनुमत होता है बल्कि सन्नियम भी है। आयोग का विचार था कि एसएस अरोड़ा के निर्णय पर पुर्नविचार किये जाने की आवश्यकता है।

43. तत्पश्चात् एस0 एस0 अरोड़ा (ऊपर) मे मा0 उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित विनिश्याधार को **मेसर्स हाइडर कंसल्टिंग (यूके) लि0 बनाम राज्यपाल, उड़ीसा राज्य द्वारा मुख्य अभियन्ता (2015) 2 एससीसी 189** में मा0 उच्चतम न्यायालय के पूर्ण पीठ द्वारा उलटा गया था, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया कि मध्यस्धता अधिनियम की धारा 31 (7) 'धनराशि' का प्रयोग करता है। यह मूलधन तथा ब्याज दोनों के लिए आवश्यक होगा। एक बार ब्याज को धनराशि में शामिल कर दिया जाता है, जिसके लिए पंचाट किया गया है, मूल धनराशि तथा आशय को एक दूसरे से स्वतंत्र के रूप मे अलग या देखा नही जा सकता है।

44. माननीय उच्चतम न्यायालय ने पुनः **यूएचएल पावर कंपनी लिमिटेड बनाम हिमांचल प्रदेश राज्य** के मामले में हाइडर कंसल्टिंग मे अधिकथित विनिश्चयाधार को दुहराया है तथा पंचाट में व्याज वाले पंचाट को अनुज्ञात किया है।

45. मा0 उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित उपरोक्त विनिश्चयाधार के दृष्टिगत, यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि मध्यस्थ के पास पंचाट पूर्व अवधि में प्रति वर्ष समायोजित किये जाने वाले ब्याज को देने की शक्ति हैं, अतः हम पंचाट पूर्व अवधि हेतु प्रति वर्ष समायोजित किये जाने वाले ब्याज के देने के विवाद्यक पर अपीलार्थीगण के तर्क में कोई बल नही पावे है।

46. हम मध्यस्धता एवं सुलह अधिनियम 1996 की धारा 37 के अधीन अपील मे हस्तक्षेप के गुंजाइश से भली भाँति अवगत है, जो मध्यस्धता अधिनियम में धारा 34

अनुवादित

कार्यवाहियों से उद्भूत होता है। यद्यपि, मा0 उच्चतम् न्यायालय ने **जे.जी. इंजीनियर्स प्रा0लि0 बनाम भारत संघ, एसोसिएट बिल्डर्स बनाम दिल्ली विकास प्राधिकरण, संगयोंग इंजीनियरिंग एण्ड कन्स्ट्रक्शन कम्पनी प्रा0लि0 बनाम एनएचएआई** में अभिनिर्धारित किया है कि मध्यस्थता अधिनियम की धारा 34 तथा 37 के अधीन हस्तक्षेप की गुजांइश काफी संकीर्ण है। इस विचार को ध्यान में रखते हुए हम अपील में बैठना तथा दस्तावेजों की जांच करना एवं साक्ष्य का पुर्न-मूल्यांकन करना नहीं चाहते हैं।

47. प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने **ओएनजीसी लि0 बनाम सा पाइप्स लि0** (मनू/एससी/ 0314/ 2003:(2003) 5एससीसी 750) के मामले में मा0 उच्चतम् न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि न्यायालय मध्यस्थता अधिनियम की धारा 34(2) (ख) (पप) के अधीन पंचाट को अपास्त कर सकता है, यदि यह भारत के लोकनीति के विरूद्ध होता है या यह भारतीय विधि के मौलिक नियम के प्रतिकूल होता है या भारत के हित के विरूद्ध होता है या न्याय अथवा नैतिकता के विरूद्ध होता है या स्पष्ट रूप से अवैध होता है। न्यायालय ने आगे स्पष्ट किया कि पंचाट को लोकनीति के विरूद्ध धारित करने के लिए, स्पष्ट अवैधता मामले के असली जड़ तक जाना चाहिए न कि तुच्छ अवैधता। यह भी संप्रेक्षित किया गया है कि पंचाट को अपास्त किया जा सकता है यदि यह अनुचित तथा अयुक्तियुक्त है तथा यह न्यायालय के अन्तःकरण पर प्रघात करता है, क्योंकि तभी यह लोकनीति के विरूद्ध होगा।

48. **जे.जी. इंजीनियर्स (प्रा0) लि0 बनाम भारत संघ** के मामले में मा0 उच्चतम न्यायालय ने मध्यस्थता अधिनियम की धारा 34(2) के कार्यक्षेत्र को स्पष्ट करते हुए सीमा का सीमांकन किया है, इस प्रकार सीमांकन किये गये सीमा का कड़ाई से पालन किया जाना चाहिए।

49. मा0 उच्चतम् न्यायालय ने **एसोसियेट बिल्डर्स बनाम दिल्ली विकास प्राधिकरण** के मामले में निम्नवत् अभिनिर्धारित मध्यस्थता अधिनियम में अपील के अधीन न्यायिक हस्तक्षेप के गुंजाइश को आगे स्पष्ट किया हैः-

> ''यह स्पष्ट रूप से समझा जाना चाहिए कि जब न्यायालय मध्यस्थता पंचाट के संबंध में ''लोकनीति'' कसौटी को लागू कर रहा हो, यह अपील न्यायालय के रूप में कार्य नहीं करता है तथा परिणामस्वरूप तथ्य के त्रुटियों को ठीक नहीं किया जा सकता है। तथ्यों पर मध्यस्थ द्वारा संभव विचार में आवश्यक रूप से वानगी पारित करना होता है क्योंकि मध्यस्थ भरोसा किये जाने वाले साक्ष्य के परिणाम तथा गुणवत्ता का अंतिम मास्टर है जब वह अपना मध्यस्थता पंचाट देता है। इस प्रकार, चाहे साक्ष्य पर आधारित पंचाट या ऐसे साक्ष्य पर आधारित पंचाट जिसे प्रशिक्षित विधिक मस्तिष्क के लिए गुणवत्ता के अनुरूप नही होता है को इस विषय पर अवैध नहीं ठहराया जायेगा (1) एक बार यह पाया जाता है कि मध्यस्थो का दृष्टिकोण मनमाना या

अनुवादित

मनमौजी नहीं है, तब यह तथ्यों पर अंतिम आदेश होता है।

50. विधि सुस्थापित है कि, जहां मध्यस्थ ने स्वयं के समक्ष प्रस्तुत सामग्री तथा साक्ष्य का सविस्तार मूल्यांकन किया है, न्यायालय उक्त मध्यस्धता अधिनियम की धारा 34 के अधीन आक्षेपों पर विचार करते समय अपील न्यायालय के रूप में नही बैठता है तथा पक्षकारों के मामले का पुर्नमूल्यांकन करने तथा सम्पूर्ण साक्ष्य का पुर्नमूल्यांकन करने की अपेक्षा नहीं की जाती है। धारा 34 के अधीन अधिकारिता प्रकृति में अपीलीय नही होता है तथा मध्यस्थ द्वारा पारित पंचाट को इस आधार पर अपास्त नहीं किया जा सकता है कि यह त्रुटिपूर्ण है। न्यायालय पंचाट में हस्तक्षेप करने के लिए स्वतंत्र मात्र इसलिए नहीं होता है क्योंकि न्यायालय के राय में, एक दूसरा विचार संभव है। इन परिस्थितियों में न्यायालय का कर्तव्य है कि वह देखे कि क्या मध्यस्थ द्वारा ग्रहीत विचार मध्यस्थ के समक्ष तथ्य, अभिवचनों तथा साक्ष्य पर युक्तियुक्त विचार है।

51. मध्यस्धता अधिनियम की धारा 34 के अधीन न्यायिक छानबीन का विस्तार सीमित है तथा हस्तक्षेप की गुंजाइश संकीर्ण है। धारा 37 के अधीन न्यायिक छानबीन का विस्तार तथा हस्तक्षेप की गुजांइश आगे और संकीर्ण है। धारा 37 के अधीन अपील द्वितीय अपील के भांति है, प्रथम अपील धारा 34 के अधीन आक्षेपों द्वारा न्यायालय में की जाती है। जहाँ सर्वप्रथम मध्यस्धता अधिकरण द्वारा तथ्यों एवं विधि का एक ही निष्कर्ष होता है जिसे तत्पश्चात् धारा 37 के अधीन अपील में धारा 34 के अधीन आक्षेपों पर विचार करते हुए न्यायालय द्वारा अभिपुष्ट किया जाता है, अपीलीय न्यायालय धारा 34 के अधीन न्यायालय द्वारा अभिपुष्ट तथा मध्यस्थ अधिकरण द्वारा पंचाट में निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने में अत्यधिक सतर्क तथा अनिच्छुक होगा।

52. वस्तुतः मध्यस्थ ने अपने पंचाट में पूर्णतया स्पष्ट रूप से कहा था कि अपीलार्थीगण का प्रयास सुनवाई को अटकाने का था। इन लोगों ने सहयोग नहीं किया था तथा केवल बार-बार मध्यस्धता कार्यवाहियों में बाधा पैदा किया था। माध्यस्थ ने दस्तावेजों तथा अभिलेख पर अन्य साक्ष्य के आधार पर भलीभांति सकारण पंचाट पारित किया है।

53. पूर्वोक्त तथ्यों के दृष्टिगत, हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि वाणिज्यिक न्यायालय, आगरा के पास पंचाट को चुनौती देते हुए मध्यस्धता अधिनियम की धारा 34 के अधीन दाखिल आवेदन पर विचार करने की अधिकारिता थी। तथापि, हम मामले में हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं पाते हैं। वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 13(1-क) के अधीन दाखिल वर्तमान अपील जो वास्तव में मध्यस्धता अधिनियम की धारा 37 के अधीन परिगणित अपील है। तद्नुसार, मध्यस्धता अधिनियम की धारा 34 के अधीन वाणिज्यिक न्यायालय द्वारा पारित आदेश को अभिपुष्ट किया जाता है।

54. तद्नुसार अपील को **खारिज** किया जाता है।

अनुवादित

(2023) 6 ILRA 44

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 31.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति कृष्ण पहल

आपराधिक विविध जमानत निरस्तीकरण आवेदन संख्या 172 वर्ष 2022

श्रीमती शांति रानी अग्रवाल ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपरीत पक्ष

आवेदक के अधिवक्ता: श्री आशीष कुमार सिंह, श्री इमरान उल्लाह

विपरीत पक्ष के अधिवक्ता: जी.ए., श्री नंद लाल पांडे, श्री सुयश पांडे

दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 173(2) और 482 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 147, 387, 420, 467, 468, 471, 447, 504 और 506 - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 21 - जमानत रद्द करने के लिए आवेदन - एफआईआर - आरोप पत्र - संज्ञान लिया गया - आरोप पत्र दाखिल होने तक न्यायालय द्वारा अग्रिम जमानत दी गई - न्यायालय ने पाया कि, दोनों पक्षों ने स्वीकार किया है कि जमानत के आदेश से पहले ही आरोप पत्र दाखिल किया जा चुका था - स्वच्छ हाथ का सिद्धांत - माना जाता है कि तथ्यों को छिपाकर लिया गया कोई भी आदेश गलत है और इसे आधार के रूप में कायम नहीं रखा जा सकता है। कमजोर है, इस पर आधारित किसी भी बाद के आदेश को भी कोई पवित्रता नहीं दी जा सकती है और यह अस्थिर भी है - इस प्रकार, अग्रिम जमानत आदेश को अलग रखा जाता है - तदनुसार, तत्काल जमानत रद्द करने का आवेदन स्वीकार किया जाता है। (पैरा - 29, 31, 32)

जमानत मंजूर। (ई-11)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. शिवम बनाम स्टेट ऑफ यू.पी. और अन्य, एआईआर ऑनलाइन 2021 ऑल। 484,
2. एस.पी. चैंगलवरया नायडू बनाम जगन्नाथ, 1994 एआईआर 853 एससी,
3. ए.वी. पपय्या शास्त्री और अन्य बनाम ए.पी. सरकार एवं अन्य, अपील (सिविल) संख्या 5097/2004
4. पूरन बनाम रामबिलास एवं अन्य, 2001 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 1124,
5. सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो एवं अन्य, 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 825,
6. गुरचरण सिंह बनाम एस.टी. (दिल्ली प्रशासन) ए.आई.आर. 1978 एस.सी. 179 में रिपोर्ट,
7. नित्यानंद राय बनाम एस.टी. ऑफ बिहार एवं अन्य, (2005) 4 एस.सी.सी. 178,
8. मनोज कुमार खोखर बनाम एस.टी. ऑफ राज., (2022) 3 एस.सी.सी. 501,
9. जगजीत सिंह बनाम आशीष मिश्रा @ मोनू, ए.आई.आर. 2022 एस.सी. 1918,
10. दीपक यादव बनाम एस.टी. ऑफ यू.पी., एआईआर 2022 एससी 2514,
11. डोलत राम व अन्य बनाम स्टेट ऑफ हर., (1995) 1 एससीसी 349,
12. नीरू यादव बनाम स्टेट ऑफ यू.पी. व अन्य, (2016) 15 एससीसी 422,

अनुवादित

13. महिपाल बनाम राजेश कुमार अलियास पोलिया व अन्य, एआईआर 2020 एससी 670,
14. कोल्बी फर्नीचर कंपनी, इंक. बनाम बेलिंडा जे. ओवरटन, 299 सो.3डी 259,
15. होली फैमिली कैथोलिक स्कूल बनाम बोले 847 सो.2डी 371 (2002)।

(माननीय न्यायमूर्ति कृष्ण पहल द्वारा दिया गया)

1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री इमरान उल्लाह, विरोधी पक्ष संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री नंद लाल पांडेय और राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता श्री वीकेएस परमार को सुना।

2. आवेदक (शिकायतकर्ता) की ओर से तत्काल जमानत रद्द करने के लिए आवेदन दायर किया गया है, जिसमें थाना जॉर्ज टाउन, जिला प्रयागराज में आईपीसी की धारा 147, 420, 467, 468, 471, 387, 447, 504, 506 के तहत मामला अपराध संख्या 520/2020 में संबंधित न्यायालय द्वारा विरोधी पक्ष संख्या 2 को दी गई जमानत को रद्द करने की प्रार्थना की गई है।

अभियोजन पक्ष की कहानी:

3. सूचनाकर्ता श्रीमती शांति रानी अग्रवाल ने 30.9.2020 को थाना जॉर्ज टाउन में प्राथमिकी दर्ज कराई कि उन्होंने भूखंड संख्या 8/49, सी.वाई. चिंतामणि रोड, जॉर्ज टाउन, प्रयागराज, इसके मूल मालिक डॉ. पंत से खरीदा था। इसके बगल में अनिल द्विवेदी उर्फ गुलाब द्विवेदी ने पुनर्विक्रय में एक भूखंड खरीदा था, जिसकी लंबाई और चौड़ाई 30 x 72 फीट थी। इसके बाद विरोधी पक्ष संख्या 2 अनिल द्विवेदी ने सूचनाकर्ता की जमीन के कुछ हिस्से पर अवैध कब्जा कर लिया था और अवैध निर्माण भी कर लिया था। ऐसा कहा जाता है कि सूचनाकर्ता द्वारा आपत्ति किये जाने पर विरोधी पक्ष संख्या 2 ने अपने सहयोगियों के साथ आवेदक/सूचनाकर्ता को धमकी दी थी और 15 लाख रुपये की फिरौती भी मांगी थी। उक्त अवैध निर्माण को प्रयागराज विकास प्राधिकरण द्वारा ध्वस्त करने का आदेश दिया गया था। कहा गया है कि विरोधी पक्ष संख्या 2 ने जाली दस्तावेज तैयार किए हैं और कहा गया है कि उसने फिर से उससे फिरौती की मांग की है।

विरोधी तर्कः

आवेदक के बारे में जानकारी:

4. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि प्राथमिकी दर्ज करने के बाद, जांच एजेंसी द्वारा 25.1.2021 को अंतिम रिपोर्ट (आरोप पत्र) प्रस्तुत की गई थी और 2.2.2021 को संज्ञान लिया गया था। आवेदक ने इस न्यायालय के समक्ष आवेदन संख्या 10351/2021 के रूप में सीआरपीसी की धारा 482 के तहत एक याचिका दायर करके उक्त आरोप पत्र और संज्ञान के आदेश को चुनौती दी और इसे दिनांक 6.10.2021 के आदेश के तहत गुण-दोष के आधार पर खारिज कर दिया गया।

5. विरोधी पक्ष संख्या 2 ने सत्र न्यायाधीश, इलाहाबाद के समक्ष अग्रिम जमानत याचिका दायर की, जिसे दबाया नहीं गया और उसे वैसे ही खारिज कर दिया गया।

अनुवादित

6. इसके बाद, आवेदक ने सत्र न्यायाधीश, इलाहाबाद के समक्ष दूसरी अग्रिम जमानत अर्जी दायर की, जिसे अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 1, इलाहाबाद ने दिनांक 23.12.2021 के आदेश के तहत अंतिम रिपोर्ट (आरोप पत्र दाखिल होने तक अनुमति दे दी थी। आवेदक द्वारा उक्त आदेश इस तथ्य को छिपाकर लिया गया था कि पहले ही 25.1.2021 को आरोप पत्र दायर किया गया था और न्यायालय द्वारा 2.2.2021 को संज्ञान लिया गया था और यहां तक कि सीआरपीसी की धारा 482 के तहत याचिका 6.10.2021 को खारिज कर दी गई थी ।

7. विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि इसके बाद विरोधी पक्ष सं. 2 ने सीआरपीसी की धारा 482 के तहत दायर याचिका में पारित इस न्यायालय के दिनांक 6.10.2021 के उक्त आदेश को विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) संख्या 9987/2021 दायर करके चुनौती दी, जिसे 5.1.2022 को सर्वोच्च न्यायालय ने खारिज कर दिया।

8. आवेदक ने सत्र न्यायाधीश, इलाहाबाद के समक्ष तीसरी अग्रिम जमानत अर्जी दायर की, जिसे अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 1, इलाहाबाद ने दिनांक 25.2.2022 के आदेश के तहत इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए अनुमति दे दी कि आवेदक को पहले से अंतिम रिपोर्ट (आरोप पत्र) प्रस्तुत करने तक जमानत दी गई थी, इस प्रकार, वह मुकदमे के समापन तक अग्रिम जमानत का भी हकदार था।

9. विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि उक्त आदेश इसलिए दिया गया है क्योंकि विरोधी पक्ष संख्या 2 ने अदालत के साथ धोखाधड़ी की है, जो कि अमान्य है। उक्त आदेश को कोई महत्व नहीं दिया जा सकता क्योंकि आवेदक के दूसरे अग्रिम जमानत आवेदन दिनांक 1.11.2021 पर इस न्यायालय द्वारा गुण-दोष के आधार पर पारित पहला आदेश अदालत को इस तथ्य के बारे में अंधेरे में रखकर लिया गया था कि अंतिम रिपोर्ट (आरोप पत्र)) पहले ही दायर किया जा चुका था।

10. विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि शिवम बनाम यूपी राज्य और अन्य में पारित इस न्यायालय के फैसले के आलोक में, आवेदक जमानत का हकदार नहीं था, इसलिए उसने उस आदेश को प्राप्त करने के लिए तथ्य को छुपाया है। उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ 43 (6) और (8) में कहा गया है कि आरोप पत्र प्रस्तुत करने के बाद किसी आरोपी को अग्रिम जमानत नहीं दी जा सकती है:-

"(6) जहां एक सिविल उपचार मौजूद है, लेकिन आरोपों के एक ही समूह पर, सिविल दोष और आपराधिक दोष दोनों बनाए गए हैं और आरोप पत्र केवल आपराधिक दोष के संबंध में प्रस्तुत किया गया है,

(8) जहां अभियुक्त ने इस न्यायालय के समक्ष आरोप पत्र को असफल रूप से चुनौती दी है या प्रस्तुत आरोप पत्र के संबंध में इस न्यायालय के समक्ष आरोपी के खिलाफ कोई कार्यवाही लंबित है।"

11. विद्वान अधिवक्ता ने शिवम बनाम यूपी राज्य और अन्य (उपरोक्त) के पैराग्राफ 45 (vi) पर भी भरोसा किया है, जिसमें यह राय दी गई है कि अग्रिम जमानत आवेदन में

अनुवादित

स्पष्ट दलील दी जानी चाहिए कि आरोप पत्र प्रस्तुत करने के बाद, आवेदक ने किसी अदालत से संपर्क नहीं किया है और ऐसी कोई कार्यवाही लंबित नहीं है।

12. विद्वान अधिवक्ता ने एसपी चेंगलवराय नायडू बनाम जगन्नाथ में पारित सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा जताया है, जिसमें इसे निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया है:-

"मुकदमे की अंतिमता" के सिद्धांत को इतनी बेतुकी हद तक नहीं दबाया जा सकता कि यह बेईमान मुवक्किलों के हाथों में धोखाधड़ी का इंजन बन जाए। कानून की अदालतें पक्षकारों के बीच न्याय प्रदान करने के लिए हैं। जो भी व्यक्ति न्यायालय में आता है, उसे साफ हाथों से आना चाहिए। हम अधिक से अधिक यह कहने के लिए बाध्य हैं कि अधिकांशतः न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग किया जा रहा है। संपत्ति-हथियाने वाले, कर चोरी करने वाले, बैंक ऋण धोखा देने वाले और जीवन के सभी क्षेत्रों के अन्य बेईमान व्यक्ति अदालत - प्रक्रिया को अनिश्चित काल तक अवैध लाभ पाने के लिए एक सुविधाजनक साधन पाते हैं। हमें यह कहने में कोई झिझक नहीं है कि जिस व्यक्ति का मामला झूठ पर आधारित हो, उसे अदालत में जाने का कोई अधिकार नहीं है। मुकदमे के किसी भी चरण में उसे सरसरी तौर पर बाहर किया जा सकता है।"

13. विद्वान अधिवक्ता ने एवी पपय्या शास्त्री और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य सरकार और अन्य में पारित सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा जताया है, जिसमें यह निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया है:-

"इस प्रकार यह कानून का सुस्थापित प्रस्ताव है कि न्यायाधिकरण, न्यायालय या प्राधिकारी के साथ धोखाधड़ी करके प्राप्त कोई निर्णय, डिक्री या आदेश अमान्य है और कानून की नजर में गैर-कानूनी है। यहां तक कि मुख्य न्यायाधीश एडवर्ड कोक ने भी घोषणा की कि "धोखाधड़ी सभी न्यायिक कृत्यों, चर्च संबंधी या लौकिक, से बचती है।"

14. उक्त निर्णय में यह भी राय दी गई थी कि प्रथम न्यायालय या अंतिम न्यायालय द्वारा धोखाधड़ी से प्राप्त निर्णय, डिक्री या आदेश को प्रत्येक न्यायालय, उच्चतर या निम्न, द्वारा अमान्य माना जाना चाहिए। इसे किसी भी समय किसी भी न्यायालय में अपील, पुनरीक्षण, रिट या यहां तक कि संपार्श्विक कार्यवाही में भी चुनौती दी जा सकती है। लॉर्ड डेनिंग ने कहा था कि लाजरस एस्टेट्स लिमिटेड बनाम ब्यासले, (1956) 1 ऑल ई. आर. 341: (1956) 1 क्यू. बी. 702 : (1956) 2 डब्लू. एल. आर. 502 के प्रमुख मामले में कहा गया था कि "न्यायालय के किसी भी निर्णय, किसी मंत्री के किसी भी आदेश को, अगर धोखाधड़ी से प्राप्त किया गया है, तो सही मानने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।"

15. विद्वान अधिवक्ता ने पूरन बनाम रामबिलास और अन्य में पारित सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है, जिसमें इसे निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया था:-

अभिवादित

"11. इसके अलावा, यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि अनुचित अवैध या विकृत आदेश को अपास्त करने की अवधारणा इस आधार पर जमानत रद्द करने की अवधारणा से पूरी तरह से अलग है कि आरोपी ने खुद को गलत तरीके से प्रस्तुत किया है या कुछ नए तथ्यों के कारण इस तरह रद्द करने की आवश्यकता है। यह स्थिति इस न्यायालय द्वारा ए.आई. आर 1978 एस.सी 179 में रिपोर्ट किये गए गुरचरण सिंह बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन) में स्पष्ट की गई है। उस मामले में न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की है: - "हालाँकि, यदि सत्र न्यायालय ने किसी अभियुक्त व्यक्ति को जमानत के लिए स्वीकार किया था, तो राज्य के पास दो विकल्प हैं। यह सत्र न्यायाधीश को स्थानांतरित कर सकता है यदि कुछ नई परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई हैं जिनके बारे में राज्य को पहले से जानकारी नहीं थी और इसलिए, आवश्यक रूप से, उस न्यायालय के पास भेजा जा सकता है। राज्य अभियुक्त को अभिरक्षा में देने के लिए धारा 439 (2) के तहत उच्चतर न्यायालय होने के नाते उच्च न्यायालय से भी संपर्क कर सकता है। हालांकि, जब राज्य सत्र न्यायाधीश द्वारा जमानत देने के आदेश से व्यथित है और पहले से मौजूद परिस्थितियों को छोड़कर कोई नई परिस्थितियाँ सामने नहीं आई हैं, तो राज्य के लिए सत्र न्यायाधीश को फिर से स्थानांतरित करना व्यर्थ है और वह विधि के अनुसार उच्च न्यायालय में जमानत रद्द करने के लिए आवेदन प्रस्तुत करने में सक्षम है। यह स्थिति सत्र न्यायालय के साथ-साथ उच्च न्यायालय के अधीनस्थ पद का अनुसरण करती है।"

16. इस निर्णय में यह निर्धारित किया गया था कि शिकायतकर्ता एक पीड़ित व्यक्ति होने के नाते भी जमानत रद्द करने का आवेदन दायर कर सकता है। विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि न्यायालय से राहत मांगने वाले किसी भी पक्ष को साफ-सुथरे हाथों से आना पड़ता है और इस तरह, उपरोक्त निर्णयों के आलोक में, इसके साथ धोखाधड़ी करके प्राप्त किसी भी आदेश की कानून में कोई पवित्रता नहीं है और इस प्रकार, इसे दरकिनार किया जा सकता है।

17. विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि जैसा कि दूसरा जमानत आवेदन धोखाधड़ी करके लिया गया था, तीसरा अग्रिम जमानत आवेदन दूसरी अग्रिम जमानत पर आधारित थी, इस प्रकार, दिनांक 25.2.2022 का आदेश अमान्य है और इसे अपास्त किया जा सकता है।

विरोधी पक्ष संख्या 2: के तर्क :-

18. विरोधी पक्ष संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार तर्क दिया है कि सूचनाकर्ता (यहां पर आवेदक) को धोखाधड़ी के उक्त तथ्य, यदि कोई हो, को संबंधित न्यायालय के ध्यान में लाना चाहिए था और उसने इस न्यायालय के समक्ष उक्त आदेश को गलत ठहराया है।

19. विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि अभियोजन को पर्याप्त समय दिया गया था और आक्षेपित आदेश विस्तृत आदेश हैं, और इस प्रकार अंतिम रूप प्राप्त कर चुके हैं। आवेदक ने उसे दिये गये उक्त आदेशों का दुरुपयोग नहीं किया है। आवेदक का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है और दिनांक

अप्रमाणित

1.11.2021 और 25.2.2022 के उक्त आदेशों के बाद उसके खिलाफ कोई प्राथमिकी या एनसीआर भी दर्ज नहीं की गई है।

20. विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि सभी भौतिक तथ्यों को न्यायालय के समक्ष लाना अभियोजन पक्ष का कर्तव्य था। अभियोजन पक्ष स्वयं अदालत के संज्ञान में विरोधी पक्ष संख्या 2 द्वारा सीआरपीसी की धारा 482 के तहत दायर याचिका के तथ्य को लाने में विफल रहा है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि जमानत रद्द करने का आवेदन राज्य द्वारा दायर किया जाना चाहिए था और शिकायतकर्ता को जमानत रद्द करने की कार्यवाही शुरू करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

21. विद्वान अधिवक्ता ने सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो और अन्य में पारित शीर्ष न्यायालय के फैसले पर भी भरोसा जताया है, जिसमें यह राय दी गई है कि न्यायालय के पास अपने आदेशों को वापस लेने की पर्याप्त शक्तियां हैं, इसलिए आवेदन सत्र न्यायाधीश, इलाहाबाद के समक्ष ही प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

22. विद्वान अधिवक्ता ने गुरचरण सिंह और अन्य बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन) में पारित शीर्ष न्यायालय के निर्णय पर बहुत भरोसा किया है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि आमतौर पर, उच्च न्यायालय किसी एक अभियुक्त के पक्ष में सत्र न्यायाधीश द्वारा दी गई जमानत आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए अपने विवेक का उपयोग नहीं करेगा। इसे इस प्रकार अभिनिर्धारित किया गया है:-

"25. नई संहिता की धारा 439 (2), सीआरपीसी के तहत जमानत रद्द करने का प्रश्न निश्चित रूप से धारा 439 (1), सीआरपीसी के तहत जमानत को स्वीकार करने से अलग है। हमारे सामने उद्धृत विभिन्न उच्च न्यायालयों के निर्णय मुख्य रूप से धारा 498, सीआरपीसी (पुरानी) के तहत उच्च न्यायालय द्वारा जमानत स्वीकार करने के संबंध में हैं। धारा 498, सीआरपीसी (पुरानी) के तहत व्यक्तियों को जमानत देने की उच्च न्यायालय या सत्र न्यायाधीश की शक्ति को हमेशा कानून द्वारा बिना किसी स्पष्ट सीमा के व्यापक अभिनिर्धारित किया गया है। जमानत के प्रश्न पर विचार करते समय दोनों पक्षों को न्याय अदालत के न्यायिक विवेक के विवेकपूर्ण अभ्यास को नियंत्रित करता है। हमारे सामने उद्धृत राज्य बनाम कैप्टन जगजीत सिंह का एकमात्र वह मामला है, जहां इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय द्वारा दी गई जमानत को रद्द कर दिया था। कैप्टन पर अन्य लोगों के साथ साजिश के लिए और एक विदेशी एजेंसी को शासकीय रहस्य सौंपने के लिए शासकीय गुप्त बात अधिनियम, 1923 की धारा 3 और 5 के तहत मुकदमा चलाया गया था। इस अदालत ने मामले को शासकीय गुप्त बात अधिनियम की धारा 5 के तहत एक जमानती अपराध मानने में उच्च न्यायालय के आदेश में एक बुनियादी त्रुटि पाई, जबकि उच्च न्यायालय को इस धारणा पर आगे बढ़ना चाहिए था कि उक्त अधिनियम की धारा 3 के तहत उस कृत्य को गैर जमानती अपराध मनाना चाहिए। इस बुनियादी त्रुटि के कारण, जिसमें उच्च न्यायालय फंस गया था, इस

अधिवक्ता

अदालत ने उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए जमानत के आदेश में हस्तक्षेप किया।

26. वर्तमान मामले में सत्र न्यायाधीश ने अपने कारणों को दर्ज करके अपीलकर्ताओं को जमानत दे दी है, हमें यह देखना होगा कि क्या वह आदेश किसी गंभीर दोष के कारण दूषित हुआ था, जिसके लिए न्याय के हित में उच्च न्यायालय के लिए यह सही और उचित था कि जमानत देने में उसके विवेक में हस्तक्षेप करें।

27. आमतौर पर उच्च न्यायालय सत्र न्यायाधीश द्वारा एक आरोपी के पक्ष में दिए गए जमानत के आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए अपने विवेक का प्रयोग नहीं करेगा।"

23. विद्वान अधिवक्ता ने नित्यानंद राय बनाम बिहार राज्य और अन्य के मामले में शीर्ष न्यायालय के फैसले पर भी भरोसा जताया है, जिसमें उच्च न्यायालय द्वारा पारित जमानत रद्द करने के आदेश को शीर्ष न्यायालय ने अपास्त कर दिया था।

24. विद्वान अधिवक्ता ने भारत संघ बनाम के. ए. नजीब के मामले में शीर्ष न्यायालय के फैसले पर भरोसा जताया है, जिसमें यह राय दी गई कि भारत के संविधान के भाग III के साथ पठित अनुच्छेद 21 द्वारा दी गई स्वतंत्रता की गारंटी इसके सुरक्षात्मक दायरे में न केवल उचित प्रक्रिया और निष्पक्षता, बल्कि न्याय तक पहुंच और त्वरित सुनवाई को भी शामिल करती है। इसमें जमानत देने और रद्द करने के मापदंडों को अलग किया गया था, जिसके तहत यह कहा गया था कि विचारण न्यायालय द्वारा एक बार दी गई जमानत को उसी न्यायालय द्वारा केवल नई परिस्थितियों / साक्ष्य के मामले में रद्द किया जा सकता है, ऐसा न करने पर, यह आवश्यक होगा कि अपीलीय क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाले उच्चतर न्यायालय से संपर्क करें।

25. मनोज कुमार खोखर बनाम राजस्थान राज्य के मामले में, शीर्ष न्यायालय द्वारा यह राय दी गई थी कि सूचनाकर्ता/पीड़ित के अधिकार एक सीमित सीमा तक हैं और उन्हें जमानत आदेश को चुनौती देने के लिए राज्य से आगे नहीं बढ़ाया जा सकता है।

निष्कर्ष:

26. जगजीत सिंह बनाम आशीष मिश्रा उर्फ मोनू मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने पीड़ित के अधिकार' के प्रश्न पर सुनवाई करते हुए स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है कि "पीड़ितों से निश्चित रूप से बाड़ पर बैठकर दूर से कार्यवाही देखने की उम्मीद नहीं की जा सकती है, विशेषकर जब उनके पास वैध शिकायतें हों। अन्याय की स्मृति धूमिल होने से पहले न्याय देना न्यायालय का परम कर्तव्य है।"

27. दीपक यादव बनाम यूपी राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने इस मुद्दे को इस प्रकार निपटाया

"30. इस न्यायालय ने कई मामलों में दोहराया है कि एक बार जमानत दे दी गई है, तो उसे इस पर विचार किए बिना यांत्रिकतापूर्वक रद्द नहीं किया जाना चाहिए। किसी भी पर्यवेक्षणीय परिस्थितियों ने आरोपी को मुकदमे के दौरान जमानत की राहत का आनंद लेते हुए अपनी स्वतंत्रता बनाए रखने के साथ निष्पक्ष सुनवाई के लिए अनुकूल नहीं बनाया। यह कहते हुए कि, जमानत रद्द करने के मामले में, जमानत रद्द करने का निर्देश देने वाले आदेश के लिए

अनुवादित

बहुत ही तर्कपूर्ण और सशक्त परिस्थितियाँ आवश्यक हैं (जो पहले ही दी गई थी) । दौलत राम और अन्य बनाम हरियाणा राज्य में इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ ने जमानत रद्द करने के लिए आधार निर्धारित किए जो हैं :-

(i) न्याय प्रशासन की उचित प्रक्रिया में हस्तक्षेप या हस्तक्षेप करने का प्रयास | (ii) चोरी या उचित न्याय प्रक्रिया से बचने का प्रयास

(iii) किसी भी तरीके से अभियुक्त को दी गई रियायत का दुरुपयोग

(iv) अभियुक्त के फरार होने की संभावना

(v) जमानत के वास्तविक दुरुपयोग की संभावना

(vi) अभियुक्त द्वारा साक्ष्यों के साथ छेड़छाड़ करने या गवाहों को धमकाने की संभावना |

31. इसमें कोई संदेह नहीं है कि जमानत रद्द करना पर्यवेक्षण परिस्थितियों की घटना तक सीमित नहीं किया जा सकता है। इस न्यायालय के पास निश्चित रूप से पर्यवेक्षण परिस्थितियों के अभाव में भी किसी आरोपी की जमानत रद्द करने की अंतर्निहित शक्तियाँ और विवेक है। निम्नलिखित उदाहरणात्मक परिस्थितियां हैं जहां जमानत रद्द की जा सकती है: -

क) जहां जमानत देने वाली अदालत अभिलेख पर प्रासंगिक सामग्री को नजरअंदाज करते हुए तुच्छ प्रकृति की नहीं बल्कि सारगर्भित प्रकृति की अप्रासंगिक सामग्री को ध्यान में रखती है।

ख) जहां जमानत देने वाली अदालत दुर्व्यवहार के शिकार या गवाहों की तुलना में आरोपी की प्रभावशाली स्थिति को नजरअंदाज करती है, विशेषकर जब पीड़ित पर पद और शक्ति का प्रथम दृष्टया दुरुपयोग होता है।

ग) जहां जमानत देते समय आरोपी के पिछले आपराधिक अभिलेख और आचरण को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया जाता है।

घ) जहां जमानत असमर्थनीय आधार पर दी गई है।

ङ) जहां जमानत देने के आदेश में गंभीर विसंगतियां पाई जाती हैं, जिससे न्याय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

च) जहां आरोपी के खिलाफ आरोपों की बहुत गंभीर प्रकृति को देखते हुए पहली बार में जमानत देने के लिए योग्य नहीं माना जा सकता है और इस प्रकार इसे न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता है।

छ) जब जमानत देने का आदेश स्पष्ट रूप से असामान्य, अनुचित और दिए गए मामले के तथ्यों में विकृत हो ।

32. नीरू यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य में आरोपी को उच्च न्यायालय द्वारा जमानत दे दी गई थी। उच्च न्यायालय के आदेश के खिलाफ एक अपील में, इस न्यायालय की दो- न्यायाधीशों की पीठ ने उन सिद्धांतों पर पूर्व निर्णयों की जांच की जो जमानत देने का मार्गदर्शन करते हैं और निम्नानुसार कहा गया है: -

"12... यह कानून में सुस्थापित है कि जमानत दिए जाने के बाद उसे रद्द करना क्योंकि आरोपी ने स्वयं कदाचार किया था या कुछ पर्यवेक्षणीय परिस्थितियों के कारण जमानत रद्द की गई थी, जमानत देने के आदेश की

अनुवादित

तुलना में पूरी तरह से एक अलग खंड में है जो कि अनुचित, अवैध और विकृत है। यदि किसी मामले में, जमानत के लिए आवेदन पर विचार करते समय, जो प्रासंगिक कारक होने चाहिए, उसे पर जमानत देते समय ध्यान नहीं दिया जाता है या यह अप्रासंगिक विचारों पर आधारित है, तो निर्विवाद रूप से उच्चतर न्यायालय ऐसे जमानत आदेश को अपास्त कर सकता है। ऐसा मामला एक अलग श्रेणी से संबंधित है और एक अलग दायरे में है। दूसरी प्रकृति के मामले से निपटते समय, न्यायालय अभियुक्त द्वारा शर्तों के उल्लंघन या उसके बाद घटित पर्यवेक्षणीय परिस्थितियों पर ध्यान नहीं देता है। इसके विपरीत, यह न्यायालय द्वारा पारित आदेश के औचित्य और सुदृढ़ता पर प्रकाश डालता है।"

13. यदि हम स्वतंत्रता की अवधारणा और कानून द्वारा इसकी कटौती पर ध्यान नहीं देते हैं तो हम अपने कर्तव्य में असफल होंगे। यह एक स्थापित तथ्य है कि कोई भी अपराध भले ही किसी व्यक्ति के विरुद्ध किया गया हो, सभी मामलों में उसका व्यक्तिगत चरित्र बरकरार नहीं रहता । यह अवसरों पर और कुछ अपराधों में, समाज को नुकसान पहुंचाता है और नुकसान पहुंचाने वालों को बढ़ावा देता है। पीड़ित एक व्यक्ति हो सकता है, लेकिन अंततः समाज ही पीड़ित होता है। जैसा कि समझा जाता है, एक अपराध कानून और व्यवस्था की स्थिति में सेंध लगाता है। सभ्य समाज में एक अपराध सुव्यवस्था को भंग कर देता है। यह समाज के शांतिपूर्ण जीवन को प्रभावित करता है। एक व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता का आनंद ले सकता है जो निश्चित रूप से सर्वोपरि है लेकिन वह स्वयं कानून नहीं बन सकता। वह दूसरों को हानि नहीं पहुँचा सकता। वह समूह के लिए उपद्रवी नहीं हो सकता । वह समाज के लिए आतंक नहीं हो सकता; और यही कारण है कि महान अंग्रेजी विचारक एडमंड बर्क ने लगभग दो शताब्दी और एक दशक पहले वाक्पटुता से इस प्रकार कहा था:

"मनुष्य नागरिक स्वतंत्रता के लिए योग्य हैं, अपने स्वयं की भूख पर नैतिक परिवर्तन डालने के अपने स्वभाव के सटीक अनुपात में; जिस अनुपात में न्याय के प्रति उनका प्रेम उनकी लोलुपता से ऊपर है; जिस अनुपात में उनकी सुदृढ़ता और समझ की संयमता उनके घमंड और अनुमान से ऊपर है; उसी अनुपात में, क्योंकि वे चतुर लोगों की चापलूसी के बजाय बुद्धिमानों और अच्छे लोगों की सलाह सुनने के लिए अधिक इच्छुक होते हैं। समाज तब तक अस्तित्व में नहीं रह सकता जब तक इच्छा और भूख पर नियंत्रण करने वाली शक्ति कहीं स्थापित न की जाए; और जितना कम यह भीतर होगा, उससे अधिक यह बाहर होगा। यह चीजों के शाश्वत संविधान में निर्धारित है, कि असंयमी दिमाग वाले लोग स्वतंत्र नहीं हो सकते। उनके जुनून उनकी बेड़ियाँ बनाते हैं।" [अल्फ्रेड हॉवर्ड, द ब्यूटीज़ ऑफ़ बर्क (टी. डेविसन, लंदन) 109.]

.....

17. इसके अलावा, यह ज्ञातव्य है कि न्याय अपनी वैचारिक घटना और सांकेतिक विस्तार में सूर्य की उदारता, पहाड़ की कठोरता, सृजन की जटिलता, एक संत की सादगी और विनम्रता और एक संयमी की तपस्या को समाहित करता है, लेकिन यह हमेशा कानून के

अनुवादित

शासन के प्रति पूरी तरह से अडिग, निडर, अविचल और वफादार रहता है।

37. निश्चित रूप से जमानत देने या अस्वीकार करने की दृष्टि से किसी आवेदन का आकलन करने के लिए अदालतों के पास कोई सीधा-सीधा फॉर्मूला मौजूद नहीं है, लेकिन यह निर्धारित करने के लिए कि कोई मामला जमानत देने के लिए उपयुक्त है, इसमें कई कारकों का संतुलन शामिल है, जिनमें अपराध की प्रकृति भी शामिल है। सज़ा की कठोरता और प्रथम दृष्टया अभियुक्त की संलिप्तता का विचार करमहत्वपूर्ण है। यह न्यायालय आम तौर पर उच्च न्यायालय द्वारा आरोपी को जमानत देने या खारिज करने के आदेश में हस्तक्षेप नहीं करता है। हालाँकि, यह उच्च न्यायालय पर भी समान रूप से लागू होता है कि वह इस न्यायालय द्वारा निर्णयों की श्रृंखला में निर्धारित बुनियादी सिद्धांतों के अनुपालन में अपने विवेक का विवेकपूर्ण, सावधानीपूर्वक और सख्ती से उपयोग करे।

28. महिपाल बनाम राजेश कुमार उर्फ पोलिया और अन्य में शीर्ष न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि

"17. जहां जमानत के लिए आवेदन पर विचार करने वाली अदालत प्रासंगिक कारकों पर विचार करने में विफल रहती है, एक अपीलीय न्यायालय उचित रूप से जमानत देने के आदेश को अपास्त कर सकती है। इस प्रकार अपीलीय न्यायालय को इस पर विचार करना आवश्यक है कि क्या जमानत देने का आदेश बिना सोचे-समझे लिया गया है या अभिलेख पर मौजूद साक्ष्यों के प्रथम दृष्टया दृष्टिकोण से सामने नहीं आया है। इस प्रकार इस न्यायालय के लिए यह आकलन करना आवश्यक है कि साक्ष्य अभिलेख के आधार पर, यह मानने के लिए प्रथम दृष्टया या उचित आधार मौजूद था कि अभियुक्त ने अपराध किया था, अपराध की गंभीरता और सज़ा की कठोरता को भी ध्यान में रखा जाता है ।"

29. स्वच्छ हाथों के सिद्धांत में कहा गया है कि "जो समानता में आता है उसे साफ-सुथरे हाथों के साथ आना चाहिए।" इस सिद्धांत के अनुसार न्यायालय को दावे के विषय के संबंध में सद्भावना का उल्लंघन करने वाले पक्ष को न्यायसंगत राहत देने से इनकार करना होगा । सिद्धांत का उद्देश्य, जैसा कि कोल्बी फ़र्निचर कंपनी, आईएनसी. बनाम बेलिंडा जे. ओवरटन मामले में स्पष्ट किया गया है, किसी पक्ष को राहत प्राप्त करने से रोकना है जब उस पक्ष के स्वयं के गलत आचरण ने उसे ऐसा बना दिया हो कि राहत देना समानता और शुद्ध अंतःकरण के विरुद्ध हो जाए।

30. स्वच्छ हाथ सिद्धांत एक सकारात्मक बचाव है जिसे प्रतिवादी दावा कर सकता है जैसा कि होली फैमिली कैथोलिक स्कूल बनाम बोले में अभिनिर्धारित किया गया है कि वादी द्वारा खाते के दुरुपयोग के कारण यह निष्कर्ष निकालना आवश्यक हो गया कि वादी के पास "अस्वच्छ हाथ" थे और प्रतिवादी को राहत देना जारी रखना शुद्ध अंतःकरण के विरुद्ध होगा।

31. दोनों पक्षों ने स्वीकार किया कि मामले में 25.1.2021 को आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था और बाद में, 2.2.2021 को विचारण न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया गया था। उक्त

अनुवादित

अंतिम रिपोर्ट (आरोप पत्र) और समन आदेश को विरोधी पक्ष संख्या 2 द्वारा सीआरपीसी की धारा 482 के तहत याचिका दायर करके चुनौती दी गई थी, जिसे इस न्यायालय ने 6.10.2021 को खारिज कर दिया था। न्यायालय द्वारा 1.11.2021 को सीआरपीसी की धारा 482 के तहत याचिका खारिज होने के बाद विरोधी पक्ष संख्या 2 की अग्रिम जमानत अर्जी को स्वीकार कर लिया गया था। उक्त आदेश संबंधित न्यायालय द्वारा अंतिम रिपोर्ट (आरोप पत्र) दायर किए जाने और विरोधी पक्ष संख्या 2 (उसमें आवेदक) द्वारा सीआरपीसी की धारा 482 के तहत याचिका खारिज होने के तथ्य से अवगत हुए बिना पारित किया गया था। इस प्रकार, उक्त आदेश से यह निष्कर्ष निकलता है कि उक्त आदेश शिवम बनाम यूपी राज्य और अन्य (उपरोक्त) में पारित इस न्यायालय के फैसले के आलोक में उचित नहीं था, जैसा कि संबंधित न्यायालय को उपरोक्त उल्लिखित तथ्यों के बारे में अंधेरे में रखा गया था जैसा कि इसमें उल्लेख किया गया था कि सीआरपीसी की धारा 173 (2) के तहत रिपोर्ट प्रस्तुत करने तक अग्रिम जमानत आवेदन को अनुमति दी जा रही है।

32. तीसरे अग्रिम जमानत आवेदन को संबंधित न्यायालय द्वारा 25.2.2022 को इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए स्वीकार किया गया था कि आवेदक अंतिम रिपोर्ट (आरोप पत्र) प्रस्तुत करने तक अग्रिम जमानत पर था और उसने इसका दुरुपयोग नहीं किया है। तीसरी अग्रिम जमानत स्वयं दूसरे अग्रिम जमानत आदेश दिनांक 1.11.2021 पर आधारित होने के कारण कानून की दृष्टि में गलत है, ऐसे में इसे बरकरार नहीं रखा जा सकता है। दिनांक 1.11.2021 और 25.2.2022 को पारित उक्त आदेश मनमाना एवं विकृत हैं। तथ्यों को छिपाकर लिया गया कोई भी आदेश गलत होता है और उसे बरकरार नहीं रखा जा सकता है। चूंकि बुनियाद ही कमजोर है, इसलिए इस पर आधारित किसी भी आगामी आदेश को कोई पवित्रता नहीं दी जा सकती है और वह टिकाऊ भी नहीं है। विरोधी पक्ष संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा संदर्भित निर्णय वर्तमान मामले पर लागू नहीं होते हैं क्योंकि वह साफ-सुथरे हाथों से न्यायालय में नहीं आये हैं और तथ्यों को छिपाकर आदेशों को प्राप्त किया गया है, इस प्रकार आदेश दिनांक 25.2.2022 को अपास्त और अभिखंडित किया जाता है।

33. तदनुसार, वर्तमान जमानत रद्द करने के आवेदन को अनुमति है।

34. हालाँकि, इस निर्णय की घोषणा की तारीख से दो सप्ताह का समय संबंधित विचारण न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण करने के लिए विरोधी पक्ष संख्या 2 को दिया जाता है और उसके बाद यह नियमित जमानत के लिए प्रार्थना करने के लिए विरोधी पक्ष संख्या 2 के लिए खुला होगा, जो हो सकता है सतेंद्र कुमार अंतिल (उपरोक्त) के मामले में शीर्ष न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के अनुसार विचार किया गया।

अप्रमाणित

(2023) 6 ILRA 53

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 23.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा

आपराधिक विविध जमानत निरस्तीकरण आवेदन संख्या 646 वर्ष 2022

ज़ेबा परवीन ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...विपरीत पक्ष

आवेदक के लिए वकील: श्रीमती ज़ेबा परवीन (व्यक्तिगत रूप से)

विपरीत पक्षों के लिए वकील: जी.ए., श्री राजर्षि गुप्ता, श्री रायज़वान अहमद

ए. आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 -धारा 439(2) - जमानत निरस्त करने की शक्ति - आपराधिक विविध जमानत निरस्तीकरण आवेदन। निर्णय: एक बार जमानत दिए जाने के बाद उसे केवल तभी रद्द किया जा सकता है, जब जमानत दिए जाने के बाद अभियुक्त ने कदाचार किया हो, अपने पास उपलब्ध स्वतंत्रता या संरक्षण का दुरुपयोग किया हो या ऐसे नए तथ्य सामने आए हों, जिनका मामले पर महत्वपूर्ण असर हो। इसे तब भी रद्द किया जा सकता है, जब आदेश मनमाना, विकृत, अधिकार क्षेत्र के बाहर हो या इसी तरह की किसी अन्य वजह से कानून की दृष्टि से गलत हो। हालांकि स्वतंत्रता का दुरुपयोग जमानत रद्द करने के आधारों में से एक है, लेकिन राज्य या जमानत मांगने वाले पक्ष पर यह साबित करने का दायित्व है कि वह अदालत के समक्ष पर्याप्त सामग्री लाकर या कम से कम यह दिखाए कि दुरुपयोग या कदाचार के आरोपों में कुछ सार है। (पैरा 12)

बी. इस मामले में आरोप था कि विरोधी पक्ष संख्या 2 ने अंतरिम जमानत/अंतरिम संरक्षण के दौरान पीड़िता को धमकाया और उसने दो मौकों पर शिकायत दर्ज कराई- यानी पुलिस आयुक्त, कानपुर नगर 2 ने वास्तव में पीड़ित को धमकाया या स्वयं दुर्व्यवहार किया। जमानत द्वारा दी गई स्वतंत्रता को अपर्याप्त आधार या महज दावे या आरोपों के आधार पर नहीं छीना जा सकता, जिनकी सत्यता का परीक्षण किया जाना बाकी है। जमानत पर होने पर भी स्वतंत्रता एक महत्वपूर्ण मौलिक अधिकार है, जिसे कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अलावा नहीं छीना जा सकता। इसके अलावा, ये तथ्य अग्रिम जमानत दिए जाने से पहले हुए थे, और उन तथ्यों को सत्र न्यायाधीश के ज्ञान में पहले ही लाया जा चुका था, इससे पहले कि वह अंततः आवेदन को अनुमति देते। आवेदक इन आरोपों को प्रमाणित नहीं कर सका कि विपरीत पक्ष संख्या 2 ने स्वतंत्रता का दुरुपयोग किया या स्वयं दुर्व्यवहार किया। (पैरा 12)

खारिज। (ई-5)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. अब्दुल बासित @ राजू एवं अन्य बनाम मोहम्मद अब्दुल कादिर चौधरी एवं अन्य, (2014) 10 एससीसी 754
2. गुरुचरण सिंह बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन), (1978) 1 एससीसी 118

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा द्वारा दिया गया)

अनुवादित

1. व्यक्तिगत रूप से उपस्थित आवेदक,श्रीमती ज़ेबा परवीन, प्रथम मुखबिर की ओर से विद्वान अधिवक्ता, श्री राजर्षि गुप्ता और श्री रिज़वान अहमद, और राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए.,श्री ओ.पी.मिश्रा को सुना।

2. यह जमानत रद्द करने का आवेदन आवेदक/प्रथम मुखबिर- ज़ेबा परवीन द्वारा दायर किया गया है, जिसमें भा०द०सं० की धारा- 328, 376, 506 के तहत 2022 के मुकदमा अपराध संख्या 0082 से उत्पन्न आदेश दिनांक 21.11.2022 द्वारा विपक्षी संख्या 2 को दी गई अग्रिम जमानत को रद्द करने की प्रार्थना की गई है।

3. इस जमानत रद्द आवेदन के निस्तारण हेतु प्रासंगिक तथ्य इस प्रकार हैं:-

पहले मुखबिर ने विपरीत पक्ष नंबर 2 को नामित करते हुए एक प्राथमिकी दर्ज करायी, जिसमें आरोप लगाया गया कि उसने 27.04.1985 को एक सिविल इंजीनियर से शादी की: उसका पति 2014 से 2017 तक अपनी नौकरी के सिलसिले में सऊदी अरब में रह रहा है, 2015 में उसके पड़ोसी ने उसे आरोपी से मिलवाया और वे एक-दूसरे से मिलना-जुलना शुरु कर दिया उसका पति वापस आ गया और मुम्बई में रहने लगा, वह कानपुर में रह रही थी। प्राथमिकी में यह भी आरोप लगाया गया है कि 12.02.2018 को आरोपी उसके घर आया और उसे नशीला पदार्थ मिलाकर पेय पदार्थ पिलाया; वह अर्धचेतन हो गयी; स्थिति का फायदा उठाकर उसने उसके साथ बलात्कार किया; उसने इस कृत्य का एक वीडियो भी तैयार किया और उसे आश्वासन दिया कि वह उससे शादी करेगा और वह किसी और को कुछ भी न बताए। प्राथमिकी में आरोप लगाया गया है कि इसके बाद उसने वीडियो वायरल करने की धमकी देकर कई बार उसके साथ दुष्कर्म किया; उसने उसे "तलाक" की खुला विधि द्वारा अपने पति से तलाक लेने के लिए मजबूर किया: उसने 21.09.2021 को तलाक ले लिया: वह उसे वहां शादी करने के झूठे आश्वासन पर जर्मनी ले गया। बाद में, वह पीछे हट गया और उसे औपचारिक विवाह समारोह के बिना अपने साथ रहने के लिए कहा; शादी का झूठा आश्वासन देकर उसका यौन शोषण किया गया है, इसलिए प्राथमिकी दर्ज की गयी थी।

इसी के आधार पर प्राथमिकी (मामला अपराध संख्या 0082/2022), जांच शुरू; विपक्षी नंबर 2 ने विद्वान सत्र न्यायाधीश, कानपुर नगर के समक्ष अग्रिम जमानत देने के लिए एक आवेदन दायर किया और उसे 21.11.2022 को जमानत दे दी गई; अब आवेदक/प्रथम सूचनाकर्ता अदालत के समक्ष विपक्षी संख्या की अग्रिम जमानत को रद्द करने की प्रार्थना कर रहा है।

4. आवेदक के तर्क संक्षेप में इस प्रकार हैं:-

(1) अग्रिम जमानत आवेदन लंबित रहने के दौरान विपक्षी संख्या 2 को अंतरिम जमानत/अंतरिम सुरक्षा प्रदान की गई थी और उस अवधि के दौरान, 09.11.2022 को चार व्यक्तियों ने उसका पीछा किया था, जिन्होंने उसे अवर न्यायालय में जाने से रोकने की धमकी दी थी; उसने उस घटना की शिकायत पुलिस आयुक्त, कानपुर नगर से की। विपक्षी नंबर 2 उसे उसकी जमानत का विरोध करने

अनुवादित

से हतोत्साहित करने के लिए विभिन्न माध्यमों से धमकियां दे रहा है। इसलिए, उसने 14.11.2022 को पुलिस में एक और शिकायत दर्ज की और भा०द०सं० की धारा-341, 504, 506 के तहत मुकदमा अपराध संख्या 136/2022, दर्ज कर लिया गया है।

(II) विपक्षी नंबर 2 ने उससे शादी का झूठा वादा किया, वह पूरे समय उसे अपने दोस्तों और रिश्तेदारों के सामने अपनी मंगेतर और अपनी भावी पत्नी के रूप में पेश करता रहा; इसके बाद वह अचानक इस तरह के संरेखण से हट गया और काजी और गवाहों के सामने "निकाहनामे" पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया। जब भी वह शादी की बात उठाती, वह उसे धमकाना शुरू कर देता; अपने साथ हुए धोखे के कारण उसने अपने बच्चों के साथ-साथ अपने पूर्व पति को भी खो दिया।

5. विपक्षी पक्ष संख्या 2 की ओर से दायर जवाबी हलफनामे में संक्षेप में यह बताया गया है कि प्राथमिकी में लगाये गये सभी आरोप बिल्कुल झूठ हैं; विपक्षी पक्ष संख्या 2 की पत्नी ने प्रथम मुखबिर के खिलाफ उसके द्वारा की गई भारी मांग से जान को खतरा होने की शिकायत दर्ज कराई; विपक्षी पक्ष संख्या 2 की पत्नी ने अपनी शिकायत में उल्लेख किया है कि ज़ेबा परवीन ने उसके पति को शारीरिक संबंध बनाने का लालच दिया था और उसका एक वीडियो तैयार करवाया; वह अपनी गैरकानूनी मांग को पूरा करने के लिए विपक्षी पक्ष संख्या 2 को ब्लैकमेल करने के लिए इस घटना का इस्तेमाल कर रही है, विपक्षी पक्ष संख्या 2 पूरी तरह से निर्दोष है; वास्तविकता यह है कि, दोनों के बीच संबंध सहमति से बने थे और विपक्षी पक्ष संख्या 2 ने कुछ समय बाद इस रिश्ते से हटने का फैसला किया; इसलिए, पहले मुखबिर ने यह झूठी और दुर्भावनापूर्ण प्राथमिकी दर्ज कराई; जवाबी हलफनामे में कहा गया है कि इस तरह के रिश्ते में शामिल होने से पहले, उनके बीच यह तय हुआ था कि वे अपने संबंधों को सार्वजनिक मंच पर नहीं लाएंगे और उनके संबंधों से संबंधित परिवारों को परेशानी नहीं होनी चाहिए; प्रथम मुखबिर अपने विवाह से खुश नहीं थी इसलिए उसने उससे तलाक ले लिया और विपक्षी पक्ष संख्या 2 का इस तलाक से कोई लेना-देना नहीं है; प्रथम मुखबिर को विपक्षी पक्ष संख्या 2 की वैवाहिक स्थिति का अच्छी तरह से पता था और इस प्राथमिकी को किसी परोक्ष हेतुक से दायर की गयी है; जहां तक अग्रिम जमानत आवेदन के लंबित रहने के दौरान प्रथम मुखबिर द्वारा या विपक्षी पक्ष संख्या 2 के खिलाफ दायर की गई शिकायतों का सवाल है, तथ्य अग्रिम जमानत पर पारित किए गए अंतिम आदेश से पहले विद्वान सत्र न्यायाधीश के समक्ष रखे गए थे।

6. इस जमानत रद्दीकरण आवेदन पर निर्णय लेने के लिए आगे बढ़ने से पहले, न्यायालय की शक्तिओं के बीच खींची गई सीमांकन रेखा को उजागर करना आवश्यक है, जहां न्यायालय की शक्तिओं से जमानत रद्द करने के लिए इसका उपयोग किया जा सकता है, जहां न्यायालय जमानत का आदेश देने वाले आक्षेपित आदेश की समीक्षा और ऐसी शक्तियों के प्रयोग पर लगाई गई सीमाएं अध्यारोपित कर सकती है।

7. अब्दुल बासित @ राजू और अन्य बनाम मोहम्मद अब्दुल कादिर चौधरी और अन्य,

अप्रमाणित

(2014) 10 एससीसी 754, सर्वोच्च न्यायालय ने कानून की स्थिति को स्पष्ट करने के उद्देश्य से गुरुचरण सिंह बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन), (1978) 8 में अपने स्वयं के मामलों अर्थात् न्यायालय द्वारा जमानत देना और रद्द करना का हवाला दिया। न्यायालय ने पैरा-16 में निम्नानुसार टिप्पणी की:-

16. नई संहिता की धारा 439 उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय को जमानत के संबंध में विशेष शक्तियां प्रदान करती है। पुरानी संहिता की द०प्र०सं० की धारा 498 के तहत भी यही स्थिति थी। कहने का तात्पर्य यह है कि भले ही कोई मजिस्ट्रेट किसी आरोपी व्यक्ति को जमानत देने से इनकार कर दे, उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय उचित मामलों में जमानत देने का आदेश दे सकता है। इसी प्रकार, नई संहिता की धारा 439(2) के तहत, उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय किसी भी व्यक्ति को जो जमानत पर रिहा किया गया है गिरफ्तार करने और हिरासत में भेजने का निर्देश दे सकता है। पुराने कोड में, धारा 498(2) को कुछ अलग भाषा में लिखा गया था, जब इसमें कहा गया था कि उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय किसी भी व्यक्ति जिसे जमानत दी गई है,उपधारा (1) के तहत उसे गिरफ्तार कर सकता है और हिरासत में भेजा जा सकता है। दूसरे शब्दों में, पुराने संहिता की धारा 498(2) के तहत, एक व्यक्ति जिसे उच्च न्यायालय द्वारा जमानत के लिए स्वीकार किया गया था, उसे केवल उच्च न्यायालय द्वारा ही हिरासत में भेजा जा सकता है। इसी प्रकार, यदि किसी व्यक्ति को सत्र न्यायालय द्वारा जमानत दी गई थी, तो केवल सत्र न्यायालय ही उसे हिरासत में दे सकता था। धारा 439(2) के तहत पहले से ही जमानत के लिए स्वीकार किए गए व्यक्ति को हिरासत में भेजने के लिए आवेदन पर विचार करने की शक्ति पर यह प्रतिबंध नई संहिता में हटा दिया गया है। संहिता की धारा 439(2) के तहत एक उच्च न्यायालय सत्र न्यायालय सहित किसी भी न्यायालय द्वारा अध्याय XXXIII के तहत जमानत पर रिहा किए गए व्यक्ति को हिरासत में दे सकता है, यदि उसे लगता है कि ऐसा करना उचित है। हालाँकि, यह स्पष्ट किया जाना चाहिए कि सत्र न्यायालय उच्च न्यायालय द्वारा पहले ही दिए गए किसी आदेश को तब तक रद्द नहीं कर सकता जब तक कि किसी आरोपी व्यक्ति को उच्च न्यायालय द्वारा स्वीकार किए जाने के बाद वाद की प्रगति के दौरान नई परिस्थितियाँ न आएँ। हालाँकि, यदि सत्र न्यायालय ने किसी आरोपी को जमानत दे दी है, तो राज्य के पास दो विकल्प हैं। यदि कुछ ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गई हैं जिनके बारे में राज्य को पहले जानकारी नहीं थी,इसलिए,यह सत्र न्यायाधीश के पास जा सकता है, उस न्यायालय में जाएँ। राज्य आरोपी को हिरासत में लेने के लिए 439(2) के तहत उच्च न्यायालय के पास भी जा सकता है। हालाँकि, जब राज्य सत्र न्यायाधीश द्वारा जमानत देने के आदेश से व्यथित है और पहले से मौजूद परिस्थितियों के अलावा कोई नई परिस्थितियाँ सामने नहीं आई हैं, तो राज्य के लिए सत्र न्यायाधीश फिर से जाना व्यर्थ है और जमानत रद्द करने के लिए उच्च न्यायालय का रुख करने के लिए विधि सक्षम है। यह स्थिति सत्र न्यायालय की तुलना में उच्च न्यायालय की अधीनस्थ स्थिति से आती है।"

अनावरित

8. उसी निर्णय में, सर्वोच्च न्यायालय ने एक अन्य निर्णय पूरन बनाम रामबिलास, 2001 6 एससीसी 338 को पैरा-17 में निम्नानुसार संदर्भित किया: -

"17. इस संदर्भ में, पूरन बनाम रामबिलास [(2001) 6 एससीसी 338: 2001 एससीसी (सीआरआई) 1124] में इस न्यायालय के निर्णय पर अवलम्ब लेना लाभदायक है, उक्त मामले में, इस न्यायालय ने अभिनिर्णय किया (एससीसी पृष्ठ 345, पैरा 11) कि किसी अनुचित, अवैध या विकृत आदेश को रद्द करने की अवधारणा इस आधार पर जमानत के आदेश को रद्द करने से बिल्कुल अलग है कि आरोपी ने स्वयं दुर्व्यवहार किया है या कुछ पर्यवेक्षणीय परिस्थितियों के कारण ऐसे रद्दीकरण की आवश्यकता है। नरेंद्र के. अमीन बनाम गुजरात राज्य [(2008) 13 एससीसी 584: (2009) 3 एससीसी (सीआरआई) 813] में, इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने उपरोक्त सिद्धांत को दोहराया है और समीक्षा या अपील में उपलब्ध राहत के संबंध में दोनों के बीच अंतर को आगे बढ़ाया है। । इस मामले में, उच्च न्यायालय ने संहिता की धारा 439(2) के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए अपीलार्थी को दी गई जमानत रद्द कर दी थी। अपील में, इस न्यायालय के समक्ष यह तर्क दिया गया था कि उच्च न्यायालय ने जमानत देने और जमानत रद्द करने के मापदंडों के बीच अंतर को न समझकर गलती की है। बेंच ने पूरन मामले [(2001) 6 एससीसी 338 2001 एससीसी (सीआरआई) 1124] में निर्धारित सिद्धांत की पुष्टि करते हुए कहा है कि जब न्यायालय ने जमानत का आदेश देते हुए अप्रासंगिक सामग्रियों पर विचार किया है, तो वही उक्त आदेश को असुरक्षित बनाता है और अपीलीय न्यायालय द्वारा जांच के अधीन है और संहिता की धारा 362 के तहत कोई समीक्षा नहीं होगी। संक्षेप में, इस न्यायालय ने राय दी है कि यदि जमानत देने का आदेश विकृत है, तो उसे केवल वरिष्ठ न्यायालय द्वारा ही रद्द किया जा सकता है और उसी अदालत द्वारा समीक्षा के लिए कोई जगह नहीं छोड़ी गई है।"

9. सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि किसी अनुचित, अवैध या विकृत आदेश को अपास्त करने और इस आधार पर जमानत के आदेश को रद्द करने की अवधारणा , कि आरोपी ने स्वयं गलत आचरण किया है या जमानत मिलने के बाद नए प्रतिकूल तथ्य उभर के सामने आये, के बीच स्पष्ट अंतर है। सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा कि जहां जमानत देने को,तथ्यों की बिल्कुल गलतबयानी, न्यायालय को गुमराह करने और दूसरे शब्दों में धोखाधड़ी करने के आधार पर चुनौती दी जा रही है, वहां जमानत देने की वैधता को चुनौती दी जा रही है, हालांकि, ऐसा निर्धारण, जमानत को रद्द कर देगा,लेकिन इस तरह जमानत की रद्द करना उस स्थिति से पूरी तरह से अलग है जहां जमानत को उसके दुरुपयोग के आधार पर रद्द करने की मांग की जाती है।

10. सर्वोच्च न्यायालय ने उसी निर्णय के पैरा-14 में जमानत रद्द करने के आधारों को गिनाया जो इस प्रकार है:-

"14. अध्याय XXXIII के तहत, धारा 439(1) उच्च न्यायालय के साथ-साथ सत्र न्यायालय को किसी भी आरोपी व्यक्ति को जमानत पर

अनुवादित

रिहा करने का निर्देश देने का अधिकार देती है। धारा 439(2),उच्च न्यायालय , संहिता के अध्याय XXXIII के तहत जमानत पर रिहा किये गए किसी भी व्यक्ति को गिरफ्तार करने और हिरासत में लेने का निर्देश देने का अधिकार देती है यानी किसी आरोपी को दी गई जमानत को रद्द करने की शक्ति। आम तौर पर जमानत को रद्द करने के आधार, मोटे तौर पर, हैं, (i)समान आपराधिक गतिविधि में शामिल होकर आरोपी अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग करना, (ii) जांच के दौरान हस्तक्षेप करना, (iii) सबूतों या गवाहों के साथ छेड़छाड़ करने का प्रयास करना, (iv) गवाहों को धमकाना या इसी तरह की गतिविधियों में शामिल होना जो सुचारू जांच में बाधा उत्पन्न करेगा, (v) उसके दूसरे देश में भाग जाने की संभावना, (vi) भूमिगत होकर या जांच एजेंसी के लिए अनुपलब्ध होकर खुद को दुर्लभ बनाने का प्रयास करना, (vii) खुद को अपने जमानतदार की पहुंच से परे रखने का प्रयास करना आदि। ये आधार उदाहरणात्मक हैं और संपूर्ण नहीं हैं। जहां आरोप-पत्र दाखिल करने के बाद साठ दिनों में जांच पूरी न करने में अभियोजन पक्ष की चूक के लिए धारा 167(2) के परंतुक के तहत जमानत दी गई है, अभियोजन पक्ष इस आधार पर कि यह विश्वास करने के लिए उचित आधार हैं कि आरोपी ने एक गैर-जमानती अपराध किया है और उसे गिरफ्तार करना और हिरासत में भेजना आवश्यक है ,जमानत को रद्द करने की मांग कर सकता है। हालाँकि, अंतिम उल्लिखित मामले में, वास्तव में बहुत मजबूत आधार की उम्मीद की जा सकती है। (रघुबीर सिंह बनाम बिहार राज्य [(1986) 4 एससीसी 481: 1986 एससीसी (सीआरआई) 511: 1987 सीआरआई एलजे 157].)"

11. याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए तर्कों के अवलोकन से, यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि रद्दीकरण की मांग दो आधारों पर की गई है। सबसे पहले, मामले के तथ्य और गुण ऐसे थे कि जमानत देना बिल्कुल भी उचित नहीं था। दूसरे, इस आधार पर कि अग्रिम जमानत आवेदन के लंबित रहने के दौरान संबंधित न्यायालय द्वारा दी गई अंतरिम सुरक्षा के दौरान विपक्षी नंबर 2 ने उसे दी गई स्वतंत्रता का दुरुपयोग किया।

12. कानूनी तौर पर, न्यायालय अग्रिम जमानत के आदेश की समीक्षा करने के लिए अपीलीय/पुनरीक्षण न्यायालय की तरह नहीं बैठ सकता। इस मामले में जमानत रद्द करने के लिए प्रथम सूचना प्रयोग की गयी। जैसा कि इस बिंदु पर कानून से बिल्कुल स्पष्ट है कि एक बार दी गई जमानत केवल तभी रद्द की जा सकती है, जब जमानत मिलने के बाद आरोपी ने स्वयं दुर्व्यवहार किया हो या उसे उपलब्ध स्वतंत्रता या संरक्षण का दुरुपयोग किया हो या इस आधार पर कि कोई नया तथ्य सामने आया हो, जिसका वाद पर महत्वपूर्ण प्रभाव हो या जहां आदेश मनमाना है या विकृत है या क्षेत्राधिकार के बिना है या समान प्रकृति के किसी कारण से कानून में खराब है। इस मामले में, स्वतंत्रता का दुरुपयोग जमानत रद्द करने के आधारों में से एक है, लेकिन साथ ही, इसका भार राज्य या उस पक्ष पर पड़ता है जो न्यायालय के समक्ष पर्याप्त सामग्री लाकर इसे साबित करना चाहता

अप्रमाणित

है या कम से कम यह दर्शित करना चाहता है कि दुरुपयोग/कदाचार के आरोप में कुछ बल है। जहां तक वर्तमान मामले का प्रश्न है, आरोप है कि विपक्षी पक्ष संख्या 2 ने ,जिस अवधि के दौरान अंतरिम जमानत/अंतरिम संरक्षण पर था, पीड़िता को धमकी दी और उसने दो बार, कानपुर नगर आयुक्त और संबंधित सत्र न्यायाधीश के समक्ष शिकायत दर्ज कराई। मेरी राय में, आवेदनों को दाखिल कराना या यहां तक कि प्राथमिकी दर्ज करना यह निष्कर्ष निकालने के लिए पर्याप्त नहीं है कि वास्तव में उसने पीड़ित को धमकाया और उसने स्वयं दुर्व्यवहार किया। जमानत देकर उपलब्ध करायी गयी स्वतंत्रता को अपर्याप्त आधार या महज दावा या आरोप से जिसकी सत्यता का प्रमाणित होना बाकी है,नहीं छीनी जा सकती। स्वतंत्रता, भले ही जमानत पर हो, एक महत्वपूर्ण मौलिक अधिकार है, जिसे विधि द्वारा स्थापित प्रक्रियाओं के अलावा छीना नहीं जा सकता है। इसके अलावा, ये तथ्य अग्रिम जमानत दिए जाने से पहले घटित हुए थे और इन तथ्यों को सत्र न्यायाधीश के संज्ञान में पहले ही लाया जा चुका था, इससे पहले कि वह अंततः आवेदन की अनुमति देते। मेरे विचार में, आवेदक उन आरोपों को पुष्टि करने में सक्षम नहीं है कि वास्तव में विपक्षी पक्ष संख्या 2 ने स्वतंत्रता का दुरुपयोग किया या खुद के साथ दुर्व्यवहार किया।

13. मुझे विरोधी पक्ष संख्या 2 को अग्रिम जमानत देने के आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं मिला और इसलिए इस जमानत रद्दीकरण आवेदन को एतद्द्वारा खारिज किया जाता है।

(2023) 6 ILRA 58

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 09.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव

आपराधिक विविध अग्रिम जमानत आवेदन

धारा 438 सीआरपीसी संख्या 3107/2023

डॉ. कार्तिकेय शर्मा एवं अन्य...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपरीत पक्ष

आवेदकों के अधिवक्ता: श्री सूर्यभान सिंह

विपरीत पक्ष के अधिवक्ता: जी.ए., श्री अजय कुमार शुक्ला

ए. आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 438 - भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 498-ए, 323, 354, 504 और 506 - ¾ डी.पी. अधिनियम-वैवाहिक विवाद-वर्तमान मामले में चूंकि आरोपी आवेदकों के खिलाफ लगाए गए अपराध अधिकतम सात साल की अवधि के कारावास से दंडनीय थे, इसलिए धारा 41-ए सीआरपीसी के तहत नोटिस जारी किया गया। जांच अधिकारी द्वारा उन्हें हिरासत में पूछताछ करने की आवश्यकता नहीं समझी गई, जिसका अर्थ है कि मामले के जांच अधिकारी द्वारा उनकी हिरासत में पूछताछ आवश्यक नहीं समझी गई तथा धारा 173(2) सीआरपीसी के तहत पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत किए जाने तक उनकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता सुरक्षित रखी गई। - भले ही आरोप

अनुवादित

पत्र दाखिल कर दिया गया हो तथा आरोपी के खिलाफ न्यायालय द्वारा संज्ञान ले लिया गया हो, जिसे जांच के दौरान गिरफ्तार किए जाने से छूट प्राप्त है, या तो सक्षम न्यायालय के आदेश के माध्यम से अग्रिम जमानत प्रदान करके या जांच अधिकारी द्वारा धारा 41-ए सीआरपीसी के तहत नोटिस की तामील द्वारा उसे संरक्षण प्रदान किया गया हो, उसके द्वारा प्रस्तुत अग्रिम जमानत आवेदन कानूनी रूप से अनुरक्षणीय है तथा इसे इस आधार पर कभी भी खारिज नहीं किया जा सकता कि अब आरोप पत्र दाखिल कर दिया गया है तथा संबंधित न्यायालय द्वारा संज्ञान ले लिया गया है। - इसलिए, आवेदकों की अग्रिम जमानत आवेदन को खारिज करते समय विद्वान सत्र न्यायालय द्वारा दी गई टिप्पणी एक मिथ्या नाम है तथा स्थापित कानूनी स्थिति को किसी भी तरह से विकृत करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। (पैरा 1 से 25)

जमानत आवेदन को स्वीकार किया जाता है। (ई-6)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. प्रेम शंकर प्रसाद बनाम बिहार राज्य और अन्य (2021) एससीसी ऑनलाइन एससी 955
2. मनीष यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2022) 0 सुप्रीम (सभी) 629
3. सुशीला अग्रवाल और अन्य बनाम दिल्ली राज्य (एनसीटी) और अन्य (2020) 5 एससीसी 1
4. गुरबख्श सिंह सिब्बिया बनाम पंजाब राज्य (1980) 2 एससीसी 565
5. रवींद्र सक्सेना बनाम राजस्थान राज्य (2010) 1 एससीसी 684
6. भारत चौधरी बनाम बिहार राज्य (2003) 8 एससीसी 77

(माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव द्वारा दिया गया)

1. आज दाखिल प्रत्युत्तर शपथ पत्र अभिलेख पर लिया गया।

2. मुकदमा अपराध सं0 29542/2022 में उनकी गिरफ्तारी की आशंका है। आवेदक **डॉ0 कार्तिकेय शर्मा, अजय कुमार शर्मा** और **श्रीमती संगीता शर्मा** ने इस न्यायालय के समक्ष ***अग्रिम जमानत याचिका 1306/2021*** दायर की है जिसके अन्तर्गत न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत आरोप पत्र में ***भा0द0सं0 की धारा 498(ए), 323, 354, 504, 506 तथा दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 अन्तर्गत*** थाना क्वारसी जिला अलीगढ़ के अन्तर्गत आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया।

3. आवेदकों द्वारा दायर की गई 2 अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र को सत्र न्यायालय अलीगढ़ द्वारा दिनांक 28.02.2023 को खारिज कर दिया गया है।

4. आवेदकों की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री सूर्यभान सिंह एवं शिकायतकर्ता/विपक्षी पक्षकार सं0 2 के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री अजय कुमार शुक्ला एवं श्री देवेश कुमार सिंह (ए0जी0ए0) को सुना गया।

5. इस मामले में दर्ज प्रथम सूचना रिपोर्ट में यह आरोप लगाया गया है कि सूचनाकर्ता डा0 पल्लवी शर्मा का विवाह डा0 कार्तिकेय शर्मा (आवेदक सं0 1) से 27.11.2015 को सम्पन्न हुआ तथा विवाहोपरान्त सूचनाकर्ता को अतिरिक्त दहेज के रूप में दो करोड़ रूपये के

अनुवादित

मांग के लिए क्रूरता एवं उत्पीड़न का शिकार होना पड़ रहा था, इसके साथ-साथ ससुराल वालों द्वारा उसके साथ शारीरिक एवं मानसिक शोषण किया जा रहा था। इस मामले में सूचनाकर्ता के ससुर पर यह आरोप लगाया गया था कि उसने सूचनाकर्ता की लल्जा भंग करने के आशय से उस पर आपराधिक बल प्रयोग किया था। आरोपी आवेदक क्रमांक 1 सूचक/विपरीत पक्ष क्रमांक 2 का पति, आवेदक क्रमांक 2 ससुर एवं आवेदक क्रमांक 3 सास है। इस मामले में एफ0आई0आर0 दिनांक 28.12.2021 को दर्ज करके अन्वेषण शुरू किया गया था।

6. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि आवेदक निर्दोष है और उन्हें वक्त मामले में अपनी गिरफ्तारी की आशंका है उनके ऊपर लगाये गये आरोप गलत है, जबकि उनके खिलाफ कोई विश्वसनीय सबूत नहीं है। इस मामले में आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक सं0-1 और विपक्षी सं0-2 दोनों पेशें से डॉक्टर हैं, आवेदकों द्वारा कभी भी कोई मांग दहेज के संदर्भ में नहीं की गई और न ही कभी सूचनाकर्ता/विपक्षी सं0-2 को क्रूरता एवं उत्पीड़न का शिकार बनाया गया। चूंकि विपक्षी सं0-2 द्वारा आवेदक सं0-1 पर लगातार यह दबाव बनाया जा रहा था कि वह अपने माता-पिता को छोड़ दे, वह आवेदक नंबर 1 और उसके बेटे के साथ अलग रहने लगी। दोनों पति-पत्नी चिकित्सक के पद पर कार्यरत थे तथा उनकी वित्तीय आय बहुत अच्छी थी विपक्षी पक्षकार सं0-2 द्वारा आवेदक क्रमांक-1 पर लगातार यह दबाव बनाया जा रहा था कि वह अलीगढ़ में रूककर विपक्षी सं0-2 के पिता के नर्सिंग होम का प्रबन्धन करें तथा अपने वृद्ध माता-पिता को गजियाबाद में छोड़ दें। लेकिन जब आवेदक सं0-1 विपक्षी सं0-2 की मांग को पूरी करने से इंकार कर दिया तो इसके परिणामस्वरूप मौजूदा एफ0आई0आर0 गलत तथ्यों के साथ दर्ज कराई गई होगी। आवेदक सं0-2 व 3 वरिष्ठ नागरिक है तथा बुढ़ापे की बीमारियों से ग्रस्त है इसके साथ-2 किसी सहारे के बिना ठीक से चलने में असमर्थ हैं। आवेदकों द्वारा विविध रिट याचिका सं0 1529/2022 को माननीय न्यायालय के समक्ष आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 41 तथा 41(क) के दायरे को ध्यान में रखते हुए की गई है। इस मामले में आगे यह प्रस्तुत किया गया कि आवेदकों ने आपराधिक विधि के अन्तर्गत आवेदन माननीय न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करते हुए अरनेश कुमार बनाम बिहार राज्य एवं अन्य (2014) 8ए.सी.सी.273) में दिये गये निर्णय के आलोक में आवेदन प्रस्तुत किया है। इस मामले में यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि आरोप पत्र ***अन्तर्गत धारा 498(ए), 323, 354, 504, 504 भा0द0सं0 और 319 दहेज प्रतिषेध अधिनियम*** के अन्तर्गत दायर किया गया है, जिसमें कारावास की अधिकतम अवधि 7 वर्ष तक निर्धारित है इन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए आवेदक मुकदमें में अंत तक जमानत पाने के हकदार हैं।

7. विपक्षी पक्षकार के विद्वान अधिवक्ता द्वारा अग्रिम जमानत आवेदन का पुरजोर विरोध किया गया तथा यह स्पष्ट किया गया कि आवेदकों के विरूद्ध पर्याप्त सबूत एकत्र किये गये है। इसके आगे यह प्रस्तुत किया

अनुवादित

गया कि आवेदकों द्वारा दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 में अन्तर्गत के तहत आवेदन संख्या- 35236/2022 पेश किया गया जिसे दिनांक 08.12.2022 के आदेश के अन्तर्गत वापस ले किया गया था उन्हें सम्बन्धित न्यायालय के समक्ष हाजिर होने एवं उचित आवेदन दायर करने की स्वतंत्रता की गई थी। हालांकि ***जमानत याचिका (42201/2022)*** दायर करने के बजाय दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अन्तर्गत ही किये गये आवेदन को 28.01.2023 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। आगे यह स्पष्ट किया गया कि आरोपी आवेदकों के विरूद्ध अन्य प्रक्रियायें जारी थी, जिसे जानबूझकर मजिस्ट्रेट न्यायालय अलीगढ़ द्वारा 18.04.2022 अन्तर्गत धारा 82 के अन्तर्गत कार्यवाही जारी करने का आदेश पारित किया गया, न्यायालय मे आरोप पत्र दाखिल करने के बजाय उन्हें तलब करने की प्रक्रिया जारी रखी गई। आरोपी न्यायालय के समक्ष पेश वही हुए इस कारण उनके विरूद्ध गैर जमानती वारंट जारी करते हुए कार्याही सम्पादित की गई तथा इसके बाद हाजिर न होने पर बाद में दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 82 के अन्तर्गत न्यायालय द्वारा भगोड़ा घोषित करके कार्यवाही संपादित की गई। इस मामले में आगे यह कहा गया कि चूंकि आवेदक न्यायालय द्वारा पारित आदेशों का पालन नहीं कर रहे हैं अतः वे घोषित अपराधियों की श्रेणी में आते हैं तथा अग्रिम जमानत के रूप में किसी भी राहत के हकदार नहीं हैं।

8. उक्त मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णीत वाद ***प्रेम शंकर प्रसाद बनाम बिहार राज्य व अन्य (2021 ए0सी0सी0 ऑनलाइन एस0एल0 955*** में दिये निर्णय पर भरोसा किया गया, उपरोक्त मामले के तथ्यों में ***भा0द0सं0 की धारा 420, 406*** के अन्तर्गत आरोप पत्र दायर किया गया था आरोपी के विरूद्ध प्रथम दृष्टया यह मामला स्थापित पाया गया तथा अभिलेखों से पता चला कि उनके विरूद्ध गिरफ्तारी वारंट जारी किया गया था। इसके उपरांत उसके विरूद्ध मजिस्ट्रेट न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अनुसार उसके विरूद्ध ***दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 82, 83*** के अन्तर्गत कार्यवाही की गई एवं आरोपी बनाया गया। इसके उपरांत आरोपी द्वारा परीक्षण न्यायालय में अग्रिम जमानत के लिए याचिका दायर की गई जिसे सत्र न्यायालय ने खारिज कर दिया। हालांकि उच्च न्यायालय द्वारा इस मामले में अभियुक्त को अग्रिम जमानत दे दी गई थी। जब यह मामला माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष आया तब माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि-

(19) "योग्यता के आधार पर उपरोक्त टिप्पणियों एवं इस तथ्य के बावजूद की प्रतिवादी नं0 2 फरार है तथा उसके विरूद्ध दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 82, 83 के अन्तर्गत कार्यवाही शुरू कर दी गई, दिनांक 10.01.2019 को उपरोक्त पहलुओं को नजर अदांज करते हुए प्रतिवादी सं0 2 आरोपी को अग्रिम जमानत दे दी गई, जबकि उसके ऊपर व्यापारिक लेन-देन से सम्बन्धित धोखाधड़ी का आरोप के विशिष्ट आरोप लगाये गये थे जिस पर विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा तो विचार किया गया परन्तु उस पर उच्च न्यायालय द्वारा बिल्कुल भी विचार नहीं किया

अनुवादित

गया था। यहां तक कि उच्च न्यायालय ने भी दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 82, 83 के अन्तर्गत कार्यवाही प्रारम्भ करने के तथ्य को केवल यह कहकर नजरअंदाज कर दिया कि "ऐसा भी हो"। उच्च न्यायालय द्वारा अग्रिम जमानत देने पर उपरोक्त प्रासंगिक पहलुओं को नजरअंदाज नही किया जाना चाहिए था तथा इसे लापरवाही से न लेते हुए गंभीरता से विचार किया जाना चाहिए था।"

20) "मध्य प्रदेश राज्य बनाम प्रदीप शर्मा (सुप्रा)" ने मामले में इस न्यायालय द्वारा यह देखा गया और माना गया कि यदि किसी व्यक्ति को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 82 के अन्तर्गत भगोड़ा उद्घोषित किया जाता है तो वह अग्रिम जमानत की राहत का हकदार नहीं है।"

9. प्रत्युत्तर में आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने यह कहा कि आवेदकों की ओर से वर्तमान अग्रिम जमानत आवेदन दिनांक 18.04.2022 अन्तर्गत **धारा 82 दण्ड प्रक्रिया संहिता** उद्घोषणा जारी करने के पहले, माननीय न्यायालय के समक्ष दायर किया गया है। जिसका अर्थ है कि जब वर्तमान आवेदकों ने दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अन्तर्गत आवेदन दायर किया था तब 18.03.2023 तक उन्हें उद्घोषित अपराधी नहीं किया गया था इसलिए माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित अपराधी की अग्रिम जमानत पर लगायी गयी रोक वर्तमान मामले में लागू नहीं होगी। अपने इस तथ्य के समर्थन में आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने ***मनीष यादव बनाम उ0प्र0 राज्य, 2022 0 एस0सी0 (ए०एल०एल०) 629*** मामले में दिये गये निर्णय पर भरोसा किया इस मामले में अग्रिम जमानत आवेदन सत्र न्यायालय के समक्ष अप्रैल 2022 माह में दर्ज किया गया था तथा 30.04.2022 को खारिज कर दिया था, इसके साथ-साथ दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 82 के अन्तर्गत उद्घोषणा सम्बन्धित न्यायालय द्वारा दिनांक 09.05.2022 को जारी की गयी थी, वर्तमान आवेदकों ने दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अन्तर्गत अग्रिम जमानत के लिए आवेदन दायर किया था उस समय उन्हें उद्घोषित अपराधी घोषित नहीं किया गया था, अतः माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उद्घोषित अपराधी की अग्रिम जमानत पर लगाई गई रोक वर्तमान मामले में लागू नहीं होगी। अपने तर्क के समर्थन में आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा माननीय सर्वोच्च न्यायालय के बाद मनीष यादव बनाम उ0प्र0 राज्य 2022 (एस0सी0 629) में दिये गये निर्णय पर भरोसा किया इस मामले में अग्रिम जमानत आवेदन सत्र न्यायालय के समक्ष अप्रैल 2022 माह में दायर किया गया था तथा 30.04.2022 को उसी न्यायालय द्वारा खारिज भी कर दिया गया तथा दिनांक 09.05.2022 को सम्बन्धित न्यायालय द्वारा दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 82 के अन्तर्गत उद्घोषणा जारी की गयी थी, उस मामले में माना गया कि अग्रिम जमानत की अस्वीकृति के बाद पीड़ित व्यक्ति को ऐसी अग्रिम जमानत के लिए उच्च न्यायालय में जाने का अधिकार मिल गया है और ऐसी अन्तराल अवधि में यदि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 82 या 83 के अन्तर्गत उद्घोषणा जारी की जाती है तो इसे अन्वेषण अधिकारी द्वारा की जा रही एक निवारक कार्यवाही के रूप में माना जा सकता है। इस न्यायालय की

अनुवादित

खण्डपीठ द्वारा आगे यह स्पष्ट किया गया कि जब सत्र न्यायालय के समक्ष दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अन्तर्गत अग्रिम जमानत के लिए आवेदन दायर किया गया था तब दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 82 के अर्न्गत कोई उद्घोषणा नहीं थी। ऐसी उद्घोषणा अग्रिम जमानत आवेदन खारिज हो जाने के बाद जारी की गयी थी। इसलिए यह माना गया कि धारा 82 के अन्तर्गत उद्घोषणा जारी हो जाने के बाद अग्रिम जमानत आवेदन पर विचार करना दण्ड प्रक्रिया संहिता के दायरे में वर्जित नहीं है।

10. वर्तमान मामले में अग्रिम जमानत आवेदन सत्र न्यायालय द्वारा 28.02.2023 को खारिज कर दिया गया था और अस्वीकृति आदेश के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि उस समय दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 82 या 83 की कोई कार्यवाही नहीं हुई थी, सत्र न्यायालय से अग्रिम जमानत आवेदन खारिज हो जाने के बाद आवेदकों के विरूद्ध कार्यवाही प्रारमभ कर दी गयी थी। दिनांक 18.03.2023 को इस न्यायालय के समक्ष वर्तमान अग्रिम जमानत आवेदन प्रस्तुत किया गया है, अभिलेखों के अवलोकन से यह पता चलता है कि धारा 82 की कार्यवाही दिनांक 18.04.2022 को जारी की गयी थी जिसका अर्थ है कि अग्रिम जमानत आवेदन इस न्यायालय के समक्ष लम्बित है उक्त उद्घोषणा सम्बन्धित न्यायालय द्वारा की गयी थी। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वर्तमान आवेदकों की उद्घोषणा अग्रिम जमानत के लिए आवेदन करते समय अस्तित्व में थी इसलिए एक उद्घोषित अपराधी की अग्रिम जमानत आवेदन पर विचार न करने के लिए माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अपने निर्णय प्रेम शंकर प्रसाद (सुप्रा) वर्तमान मामले में लागू नहीं होती है।

11. कथित अपराध अधिकतम 7 साल के कारावास से दण्डनीय है, दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 82 के अन्तर्गत उद्घोषणा स्वीकृत है जो धारा 438 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत वर्तमान अग्रिम जमानत आवेदन दाखिल करने के बाद जारी किया गया। इस मामले में आरोप पत्र प्रेषित किया जा चुका है, आवेदकों ने जाँच के दौरान सहयोग किया है तथा अभिलेख पर कुछ भी प्राप्त नहीं है अन्वेषण अधिकारी को अन्वेषण के दौरान आरोपी को गिरफ्तार करने का कोई आधार नहीं मिला तथा उन्होंने दी गयी आजादी का दुरूपयोग नहीं किया, अन्वेषण अधिकारी द्वारा हिरासत में की गयी पूछताछ को भी आवश्यक नहीं माना।

12. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***सुशील अग्रवाल और अन्य बनाम राज्य (एन0सी0टी0 दिल्ली) और अन्य, (2020) 5 एस0सी0सी0 1,*** मामले में अग्रिम जमानत को सीमित अवधि की आवश्यकता नही मानते हुए विवाद का निपटारा कर दिया एवं यह कहा कि यह मुकदमें के समापन तक जारी रह सकता है।

इस मामले में यह कहा कि आरोपी के आचरण व व्यवहार पर दी गयी अग्रिम जमानत आरोप पत्र दाखिल होने के बाद मुकदमें के अन्त तक जारी रह सकती है।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी कहा कि अग्रिम जमानत देने के लिए आवेदन पर विचार करते समय न्यायालय को अपराध की

अधिवक्ता

प्रकृति, व्यक्ति की भूमिका, जाँच के दौरान उसके प्रभावित होने की सम्भावना या गवाहों को डराना, न्याय से भागने की सम्भावना जैसे कि आदि सहित सबूतों से छेड़छाड़ करने पर विचार होगा। आगे यह माना कि न्यायालय को आमतौर पर अपराधों की प्रकृति और गम्भीरता, जिम्मेदार भूमिका जैसे-विचारो द्वारा निर्देशित किया जाना चाहिए। आवेदक ओर मामले के तथ्यों पर विचार करते समय अग्रिम जमानत दी जाय या अस्वीकार कर दी जाय। अनुदान देना या न देना विवेक का विषय है।

13. इसलिए अग्रिम जमानत के संदर्भ में विधि के स्थापित सिद्धान्तों, पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं की दलीलें, आरोप की प्रकृति, आवेदकों की भूमिका और मामले के सभी उपस्थित तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए मामले की परिस्थितियों पर विचार करते हुए मामले की योग्यता पर विचार करते हुए बिना कोई राय व्यक्त किये हुए इस मामले में मुकदमें की समाप्ति तक आवेदकों का अग्रिम जमानत देने का उपयुक्त मामला है।

14. अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र स्वीकार किया जाता है।

15. उपरोक्त मामले में आवेदकों की गिरफ्तारी की स्थिति में, उन्हें अदालत की संतुष्टि के अनुसार 50,000/- रुपये के निजी बांड और इतनी ही राशि के दो जमानतदार प्रस्तुत करने पर मुकदमे के अंत तक अग्रिम जमानत पर रिहा किया जाएगा। निम्नलिखित स्थितियों से:-

(i) आवेदक मामले को निर्धारित तिथि पर सम्बन्धित न्यायालय के समक्ष स्वयं को उपलब्ध करायेगें।

(ii) आवेदक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मामले के तथ्यों से परिचित है किसी भी व्यक्ति को कोई प्रलोभन, धमकी या करार नहीं करेगें जिससे की उसे न्यायालय या पुलिस अधिकारी के सामने ऐसे तथ्यों का खुलासा करने से रोका जा सके।

(iii) आवेदक न्यायालय की पूर्ण अनुमति के बिना भारत नहीं छोड़ेगे और यदि उनके पास पासपोर्ट है तो उसे सम्बन्धित एस0एस0पी0/एस0पी0 के पास जमा करना होगा।

16. किसी भी शर्त में चूक होने की स्थिति में, आवेदकों को दी गई सुरक्षा रद्द करने का यही आधार हो सकता है।

17. इससे आगे न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह सत्र न्यायालयों को यह याद दिलाये की दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 का वास्तविक दायरा कम है तथा इसके अधीन सत्र न्यायालय की शक्तियां माना है। जैसा कि विद्वान अधिवक्ता (ए0जी0ए0) ने न्यायालय का ध्यान सत्र न्यायालय अलीगढ़ द्वारा पारित अग्रिम जमानत अस्वीकृत आदेश दिनांक 28.02.2023 की ओर आकर्षित किया है। उक्त अस्वीकृत आदेश के पृष्ठ संख्या 3 ऊपर इसका उल्लेख किया गया है।

"अभियोजन पक्ष की ओर से अवगत कराया गया कि इस प्रकरण में आवेदकण के विरूद्ध सक्षम न्यायालय में आरोप पत्र दाखिल किया जा चुका है। आवेदकगण प्राथमिकी में नामजद है तथा मुख्य अभियुक्त है आवेदकगण के विरूद्ध आरोप पत्र प्रेषित किया जा चुका है तथा न्यायालय ने इसका संज्ञान भी लिया है ।

अनुवादित

अतः आरोप पत्र प्रेषित किये जाने व आरोप पत्र पर न्यायालय द्वारा प्रसंज्ञान लिये जाने के उपरान्त अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र पोषणीय न होने के कारण निरस्त किये जाने योग्य है। तदनुसार अभियुक्त/आवेदकगण डा0 कार्तिकेय शर्मा, अक्षय शर्मा व संगीता शर्मा के अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र निरस्त किये जाते हैं।"

18. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जारी किये गये निर्देशों के बावजूद भी ऐसा प्रतीत होता है कि सत्र न्यायालयों के बीच अभी भी भ्रम की स्थित बनी हुई है। जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपने वाद ***गुरू बक्श सिंह सिब्बीया बनाम पंजाब राज्य (1980) 2 एस0सी0सी0 565, सुशील अग्रवाल व अन्य बनाम राज्य, एन0सी0टी0 दिल्ली एवं अन्य, (2020) एस0एस0सी0सी0 1*** बार-बार यह दोहराया गया कि किसी आपराधिक मामले में आरोप पत्र प्रेषित होने का अर्थ यह नहीं है कि अग्रिम जमानत की गुंजाइश समाप्त हो जाती है।

19. ***सुशीला अग्रवाल (सुप्रा) एवं गुरू बक्श सिंह सिस्पीया (सुप्रा)*** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संवैधानिक पीठ के द्वारा की गई टिप्पणियों पर विचार करते हुए इसे निम्नवत रखा गया है-

"हमारा विचार है कि गिरफ्तारी पूर्व जमानत का आदेश देते समय सम्बन्धित न्यायालयों द्वारा शर्ते लगाई जा सकती है जिसमें परिस्थितियों के अनुसार समयावधि के संदर्भ में आदेश के संचालन को सीमित करना शामिल है, विशेष रूप से यह चरण जिस पर अग्रिम जमानत आवेदन दायर किया जाता है क्या वह एफ0आई0आर0 दर्ज होने के पहले चरण में या एफ0आई0आर0 दर्ज होकर अन्वेषण भी चल रही है या उस चरण में जहां अन्वेषण पूरा होकर आरोप पत्र प्रेषित कर दिया गया है। हालांकि सामान्य नियम है कि समय अवधि के संदर्भ में आदेश को सीमित नहीं किया जाना चाहिए।"

उपरोक्त मामले में यह भी माना गया कि इस तरह की विवेक का प्रयोग के लिए सख्त, अनम्य और कठोर नियम बनाये जाए धारा 438 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अर्न्तगत यदि अवधि को सीमित करके आदेश दिया जाता है तो यह अनुचित होगा, न्यायालय के दायरे तथा दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के दायरे को प्रतिबन्धित नहीं किया जाना चाहिए, जिसकी परिकल्पना विधायिका द्वारा नहीं की गयी है। न्यायालय विधि की व्याख्या की आड़ में विधि के प्रावधानों को दोबारा नहीं लिख सकता है।"

20. यह ध्यान रखना चाहिए कि सुशील अग्रवाल (सुप्रा) के मामले में जांच न्यायाधीशों की संवैधानिक पीठ को निम्न प्रश्न भेजे गये थे-

1. क्या धारा 438 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत व्यक्ति को सुरक्षा प्रदान की गयी है, दण्ड प्रक्रिया संहिता को एक निश्चित अवधि तक सीमित किया जाना चाहिए ताकि विचारण के समक्ष आत्मसर्मपण कर सके तथा नियमित जमानत हो सके।

2. क्या अग्रिम जमानत की अवधि उस समय और चरण में समाप्त होनी चाहिए जब आरोपी को न्यायालय द्वारा बुलाया जाय।

अनुवादित

पहले प्रश्न के संदर्भ में यह निष्कर्ष निकाला गया कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अन्तर्गत सुरक्षा प्रदान की गयी है, हमेशा या सामान्यतः एक निश्चित अवधि तक सीमित नहीं होना चाहिए, इसे समय की किसी भी सीमा के बिना अभियुक्त के पक्ष में सुनिश्चित करना चाहिए। हालांकि धारा 438(2) के साथ पठित धारा 437(3) के अन्तर्गत सामान्य या मानक शर्ते किसी भी विशिष्ट विशेषताओं को ध्यान में रखते हुये विशेष मामलों में लगाई जा सकती है।

दूसरा प्रश्न जो इस मामले के लिये प्रासंगिक है, का उत्तर यह देकर दिया गया कि अग्रिम जमानत की अवधि आमतौर पर उस समय और चरण में समाप्त नहीं होती है जब अभियुक्त को न्यायालय द्वारा बुलाया जाता है, या आरोप तय होने के बाद भी समाप्त हो सकता है। परीक्षण के अन्त तक जारी रखे। हालांकि, यदि ऐसी कोई विशेष या अनोखी विशेषता है जिसके कारण न्यायालय को अग्रिम जमानत की अवधि सीमित करने की आवश्यकता होती है, तो वह ऐसा करने के लिए खुला है।

आगे यह स्पष्ट रूप से माना गया है कि "आरोपी के आचरण और व्यवहार के आधार पर दी गयी अग्रिम जमानत, आरोप पत्र प्रेषित होने के बाद मुकदमें के अन्त तक जारी रह सकती है। साथ ही अग्रिम जमानत के आदेश आरोपी को आगे अपराध करने और राहत का दावा करने में सक्षम नहीं बनाना चाहिए। इसे इस अपराध या घटना तक ही सीमित रखा जाना चाहिए, जिसके लिए किसी विशिष्ट के सम्बन्ध में गिरफ्तारी की आशंका मांगी गयी है। यह किसी भविष्य की घटना के सम्बन्ध में काम नहीं कर सकता है जिसमें अपराध शामिल है।"

21. यही सिद्धांत ***रवीन्द्र सक्सेना बनाम राजस्थान राज्य, 2010 (1) एससीसी 684*** में भी प्रतिध्वनित होता है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **गुरबख्श सिंह सिब्बिया (सुप्रा)** मामले में संवैधानिक पीठ के फैसले को दोहराते हुए कहा कि "अग्रिम जमानत किसी भी समय दी जा सकती है जब तक आवेदक के पास है गिरफ्तार नहीं किया गया है। जब उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय में आवेदन किया जाता है, तो उसे प्रश्न पर अपना दिमाग लगाना चाहिए और निर्णय लेना चाहिए कि ऐसी राहत देने के लिए मामला कब बनता है। उच्च न्यायालय को मामले को मजिस्ट्रेट पर नहीं छोड़ना चाहिए था केवल इस आधार पर कि चालान अब प्रस्तुत किया जा चुका है..... धारा 438 में निहित लाभकारी प्रावधान पेश किया गया था अदालत को व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित होने से रोकने में सक्षम बनाएं। चालान पेश होने जैसी तकनीकी बातों पर इसे टालने की अनुमति नहीं दी जा सकती, अग्रिम जमानत नहीं दी जा सकती।"

22. इससे पहले ***"भारत चौधरी बनाम बिहार राज्य (2003) 8 एस0सी0सी0 77*** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विशेष रूप से माना गया था कि धारा 438 का उद्देश्य परीक्षण पूर्व गिरफ्तारी और हिरासत द्वारा आरोपी व्यक्तियों के अनुसूचित उत्पीड़न को रोकना है ऐसी अग्रिम जमानत देते समय अपराध एक महत्वपूर्ण कारक हैं, इसलिए हिरासत में पूछताछ की आवश्यकता भी है, लेकिन ये

अनुवादित

केवल ऐसे कारक हैं जिन्हें अग्रिम जमानत और तथ्य की याचिका पर विचार करते समय सम्बन्धित न्यायालयों द्वारा ध्यान में रखा जाना चाहिए। संज्ञान लेने या आरोप पत्र दाखिल करने को अग्रिम जमानत देने के विरुद्ध निरोध के रूप में नहीं माना जा सकता है। न्यायालयों यानी कि जब न्यायालय, उच्च न्यायालय या माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पास अग्रिम जमानत देने के लिए आवश्यक शक्ति निहित है, धारा 438, सी0आर0पीसी0 के अन्तर्गत भले ही अपराध गौर जमानती अपराध हो या आरोप पत्र दायर किया गया हो, बशर्ते मामले के तथ्यों के लिए न्यायालय को ऐसा करना की आवश्यकता हो।''

23. जहां तक वर्तमान मामले का सवाल है, चूंकि आरोपी आवेदकों के विरूद्ध लगाये गये अपराधों में अधिकतम सात वर्ष की कारावास की सजा थी, धारा 41ए दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत जांच अधिकारी द्वारा उन्हें नोटिस दी गयी थी जिसका अर्थ है कि मामले में जांच अधिकारी द्वारा हिरासत में उनकी पूछताछ को आवश्यक नहीं माना गया था तथा दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 (2) के अन्तर्गत पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत करने तक उनकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा की गयी थी।

24. ***धारा 173(2) दण्ड प्रक्रिया संहिता*** के अन्तर्गत पुलिस रिपोर्ट दर्ज होने तक किसी आरोपी को अग्रिम जमानत दी जाती है या नहीं, इसके विधिक परिणाम हो सकते हैं। न्यायालय द्वारा या जांच अधिकारी द्वारा दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 41ए के अन्तर्गत आरोपी को एक नोटिस दी गयी है जिसमें इस बात का उल्लेख रहता है कि नोटिस में सन्निहित शर्तों के अधीन जांच के दौरान उसे गिरफ्तार नहीं किया जायेगा।

25. उपरोक्त से, स्पष्ट है कि भले ही आरोप पत्र प्रेषित किया गया हो तथा न्यायालय द्वारा आरोपी के विरूद्ध संज्ञान लिया गया हो। सक्षम न्यायालय अग्रिम जमानत देकर या दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 41ए के तहत नोटिस देकर उसकी रक्षा कर सकता है। उसके द्वारा दायर की गयी अग्रिम जमानत आवेदन विधिक रूप से कायम रखने के योग्य है इसे इस आधार खारिज नहीं किया जा सकता है कि आरोप पत्र प्रेषित किया जा चुका है तथा सम्बन्धित न्यायालय द्वारा इसका संज्ञान ले लिया गया है इसलिए विद्वान न्यायाधीश, सत्र न्यायालय द्वारा दिये गये आदेश दिनांक 28.02.2023 के अन्तर्गत अग्रिम जमानत याचिका को खारिज करते समय दी गयी टिप्पणी एक गलत नाम है तथा स्थापित विधिक स्थिति को किसी भी तरह से विकृत करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

26. इस आदेश की एक प्रति रजिस्ट्री से सम्बन्धित न्यायालय भेजने का निर्देश दिया जाता है।

(2023) 6 ILRA 66

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 30.05.2023

के समक्ष

अनुवादित

माननीय न्यायमूर्ति मयंक कुमार जैन

आपराधिक विविध प्रथम जमानत आवेदन

संख्या 30712 वर्ष 2021

जय कांत बाजपेयी @ जय ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...विपरीत पक्ष

आवेदक के अधिवक्ता: श्री दीपक सिंह, श्री नज़रुल इस्लाम जाफ़री (वरिष्ठ अधिवक्ता), श्री शिवा कांत दीक्षित

विपरीत पक्षों के अधिवक्ता: जी.ए.

ए. आपराधिक कानून - जमानत - आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम - धारा 7 - विस्फोटक पदार्थ अधिनियम, 1908 - धारा 3 - साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 32(3) - जांच एजेंसी द्वारा एकत्रित की गई सामग्री की समग्रता और रिपोर्ट के साथ प्रस्तुत की गई सामग्री और केस डायरी सहित, को ध्यान में रखा जाना चाहिए, न कि साक्ष्य या परिस्थिति के अलग-अलग टुकड़ों का विश्लेषण करके। किसी भी मामले में, इस स्तर पर दस्तावेज़ को सबूत में अस्वीकार्य होने के आधार पर खारिज करने का सवाल स्वीकार्य नहीं है। क्योंकि, दस्तावेज़/साक्ष्य की स्वीकार्यता का मुद्दा परीक्षण का विषय होगा। न्यायालय को दस्तावेज़ की सामग्री को देखना चाहिए और ऐसे दस्तावेज़ को ध्यान में रखना चाहिए। (पैरा 18)

सीआरपीसी की धारा 161 के तहत कथन साक्ष्य में स्वीकार्य नहीं हो सकते हैं, लेकिन गंभीर अपराध के मामले में जमानत देने के लिए आवेदन में आरोपी के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामले पर विचार करने में प्रासंगिक हैं। (पैरा 20)

बी. साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 यह स्पष्ट करती है कि मृत व्यक्ति द्वारा किया गया बयान कानूनी रूप से मान्य है और इसका उपयोग साक्ष्य के रूप में किया जा सकता है, भले ही यह उसकी मृत्यु के कारण से संबंधित न हो। यह ध्यान में रखना चाहिए कि इस स्तर पर अंतिम निर्णय नहीं लिया जा सकता है, क्योंकि रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्यों की सराहना करते समय ट्रायल कोर्ट द्वारा इस पर विचार किया जाएगा। (पैरा 25)

इसलिए, मुख्य आरोपी विकास दुबे द्वारा किया गया बयान विकरू हत्याकांड में वर्तमान आवेदक की संलिप्तता को इंगित करने के लिए प्रथम दृष्टया माना जाएगा। (पैरा 26)

सी. जमानत देते समय समानता के पहलू को तय करने में अभियुक्त की भूमिका पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। समानता जमानत आवेदन पर निर्णय लेने का एकमात्र आधार नहीं हो सकती है और प्रत्येक अभियुक्त के मामले की जांच मामले की तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार की जानी चाहिए। केवल यह देखना कि जमानत दिए गए दूसरे अभियुक्त के पास भी ऐसा ही हथियार था, यह निर्धारित करने के लिए पर्याप्त नहीं है कि समानता के आधार पर जमानत दिए जाने का मामला स्थापित हुआ है या नहीं। समानता के पहलू पर निर्णय लेने में, अभियुक्तों से जुड़ी भूमिका, घटना के संबंध में उनकी स्थिति और पीड़ितों के प्रति उनकी स्थिति अत्यंत महत्वपूर्ण है। (पैरा 16, 34)

वर्तमान मामले में और अपराध में अभियुक्त की संलिप्तता के बारे में, वर्तमान आवेदक समानता के आधार पर उसे जमानत पर रिहा करने का हकदार नहीं है। (पैरा 35)

अशासकीय

डी. जमानत आवेदन पर निर्णय लेते समय अभियुक्त के आपराधिक इतिहास को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है, आदतन अपराधी के मामले में जमानत देने के लिए न्यायालयों की विवेकाधीन शक्तियों का प्रयोग विवेकपूर्ण तरीके से किया जाना चाहिए। (पैरा 39, 40)

आवेदक के पास वर्ष 2010 से अब तक 14 मामलों का आपराधिक इतिहास है, जिसमें धारा 395, 302, 307 आईपीसी, गैंगस्टर एक्ट, विस्फोटक अधिनियम सहित जघन्य अपराधों की प्रकृति के मामले शामिल हैं और आवेदक के खिलाफ एनएसए भी लगाया गया है। इससे पता चलता है कि आवेदक कुछ जघन्य अपराधों में शामिल रहा है और वह एक दुर्दांत अपराधी है। अगर उसे जमानत पर रिहा किया जाता है तो उसे गवाहों को प्रभावित करने का मौका मिलेगा। आवेदक को जमानत पर रिहा करते समय उसके आपराधिक इतिहास को ध्यान में रखा जाना चाहिए। (पैरा 37, 42)

सह-अभियुक्त सुशील कुमार तिवारी, जिसके विरुद्ध वर्तमान आवेदक समानता का दावा कर रहा है, का चार मामलों का आपराधिक इतिहास है, जबकि आवेदक के विरुद्ध 14 मामलों का आपराधिक इतिहास है। इसलिए आवेदक इस आधार पर भी समानता का दावा नहीं कर सकता। (पैरा 41)

ई. यू.पी. डकैती प्रभावित क्षेत्र अधिनियम, 1983: धारा 10 - अनुसूचित अपराध का आरोपी या दोषी ठहराया गया कोई भी व्यक्ति, यदि हिरासत में है, तो उसे जमानत या अपने स्वयं के बांड पर रिहा नहीं किया जाएगा, जब तक कि (ए) अभियोजन पक्ष को जमानत के लिए आवेदन का विरोध करने का अवसर न दिया गया हो, और (बी) जहां अभियोजन पक्ष जमानत के लिए आवेदन का विरोध करता है, अदालत को विश्वास हो जाता है कि यह मानने के लिए उचित आधार हैं कि वह ऐसे अपराध का दोषी नहीं है....."

यह स्पष्ट है कि अपराध की प्रकृति और दोष की मात्रा गंभीर और जघन्य है। आवेदक के पास जघन्य प्रकृति के मामलों का आपराधिक इतिहास है। आवेदक उस घटना में सक्रिय रूप से शामिल है जिसमें सर्किल ऑफिसर, बिल्हौर सहित आठ पुलिस कर्मियों को बेरहमी से मार दिया गया था और सात अन्य पुलिस कर्मियों को गंभीर चोटें आईं थीं। आवेदक ने वास्तव में मुख्य आरोपी विकास दुबे को घटना में इस्तेमाल करने के लिए 2 लाख रुपये और 25 कारतूस प्रदान करके सहायता की थी। इसके अलावा, आवेदक ने सबसे बड़ी घटनाओं में से एक को अंजाम देने के बाद मारे गए आरोपी विकास दुबे को उसके अगले गंतव्य तक सुरक्षित यात्रा के लिए वाहन भी उपलब्ध कराए। जघन्य अपराध। इसलिए, वर्तमान आवेदक की जमानत अर्जी को स्वीकार करने के लिए कोई पर्याप्त कारण नहीं पाया गया है। (पैरा 45)

जमानत अर्जी खारिज। (ई-4)

<u>अनुसरण किया गया उदाहरण:</u>

1. मनीष बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन सभी 429 (पैरा 16)
2. कृपा शंकर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2017 एससीसी ऑनलाइन सभी 852 (पैरा 16)
3. राष्ट्रीय जांच एजेंसी बनाम जहूर अहमद शाह वटाली, (2019) 5 एससीसी पेज 1 (पैरा 18)

अधिवक्ता

4. इंद्रेश कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य। (पैरा 20)

5. कल्याण चंद्र सरकार बनाम राजेश रंजन उर्फ पप्पू यादव एवं अन्य, (2004) 7 एससीसी 528 (पैरा 22)

6. रमेश भवन राठौड़ बनाम विशनभाई हीराभाई मकवाना, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 353 (पैरा 34)

7. नीरू यादव बनाम स्टेट ऑफ यू.पी. एवं अन्य, (2015) 3 एससीसी 527 (पैरा 39)

8. नीरज यादव बनाम स्टेट ऑफ यूपी, (2016) 15 एससीसी 422 (पैरा 40)

(माननीय न्यायमूर्ति मयंक कुमार जैन द्वारा दिया गया)

1. आवेदक श्री नजरुल इस्लाम जाफरी (वरिष्ठ अधिवक्ता) के अधिवक्ता, जिन्हें श्री दीपक सिंह और श्री शिवाकांत दीक्षित द्वारा सहायता प्रदान की गई थी, राज्य के लिए अतिरिक्त महाधिवक्ता श्री मनीष गोयल जिन्हें श्री अभिजीत मुखर्जी द्वारा सहायता प्रदान की गई थी, को सुना।

2. रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

3. आवेदक जय कांत बाजपेयी @ जय की ओर से मुकदमा अपराध संख्या 192 वर्ष 2020 में भ०द०वि० की धारा 147, 148, 149, 332, 353, 333, 307, 302, 396, 412, 120-बी, 34, 504, 506 आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम की धारा 7 और विस्फोटक पदार्थ अधिनियम की धारा 3/4, थाना-चौबेपुर, जिला: कानपुर नगर, के तहत वर्तमान जमानत आवेदन दायर किया गया है; और आवेदक को मुकदमे के दौरान जमानत पर रिहा करने की प्रार्थना की गयी है।

4. अभियोजन पक्ष के संस्करण के अनुसार, राहुल तिवारी द्वारा दर्ज प्रथम सूचना रिपोर्ट के आधार पर विकास दुबे और 4 अन्य नामजद आरोपियों के खिलाफ 02.07.2020 को 23:52 बजे थाना-चौबेपुर, जिला: कानपुर आउटर में मामला अपराध संख्या 191/2020 के तहत 147, 148, 504, 323, 364, 342, 307 भ०द०वि० और धारा 7 आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम के तहत दर्ज किया गया था। उसने आरोप लगाया कि 01.07.2020 को दोपहर 12:30 बजे आरोपियों ने उसके साथ मारपीट की। आरोपियों ने उसका अपहरण कर लिया और उसे एक कमरे में बंद कर दिया। वह किसी तरह वहां से भाग निकला। जब वह बेला रोड के विकरू मोड़ पर पहुंचा तो विकास दुबे ने उस पर अंधाधुंध फायरिंग कर दी; हालांकि उन्हें कोई चोट नहीं आई।

5. उक्त प्राथमिकी में नामजद आरोपियों की गिरफ्तारी के लिए चौबेपुर थानाध्यक्ष विनय कुमार तिवारी के नेतृत्व में पुलिस पार्टी विक्रू पहुंची। जब वे आरोपी विकास दुबे के घर के गेट पर पहुंचे तो वर्तमान प्राथमिकी में नामजद और अनाम आरोपियों ने पुलिस अधिकारियों पर बंदूक से अंधाधुंध फायरिंग कर दी। इस हृदय विदारक घटना में सर्किल ऑफिसर सहित 8 पुलिसकर्मियों की बेरहमी से हत्या कर दी गई और 7 पुलिसकर्मियों को गंभीर चोटें आईं। आरोपी व्यक्तियों ने पुलिसकर्मियों से हथियार लूट लिए। घटना की पहली सूचना रिपोर्ट उप-निरीक्षक विनय कुमार तिवारी, तत्कालीन थानाध्यक्ष, थाना-चौबेपुर, जिला: कानपुर आउटर द्वारा 03.07.2020 को सुबह 5:30 बजे 21 नामजद और 60-70 अज्ञात आरोपियों के खिलाफ दर्ज कराई गई थी।

अनुवादित

6. जांच के दौरान, मुख्य आरोपी विकास दुबे के बयान के आधार पर, यह पता चला कि आवेदक 02.07.2020 की शाम को विकास दुबे और अन्य आरोपी व्यक्तियों के साथ एक बैठक में मौजूद था, ताकि पुलिसकर्मियों की हत्या करने की योजना बनाई जा सके, जो उनके मारे गए नेता विकास दुबे से उसे गिरफ्तार करने के लिए संपर्क करने वाले थे। आवेदक ने मुख्य आरोपी विकास दुबे को पैसा और गोला-बारूद मुहैया कराया था। मारे गए आरोपी विकास दुबे को यात्रा करने के लिए सुरक्षित रास्ता उपलब्ध कराने के लिए आवेदक ने पुलिस पार्टी की हत्या कर वाहन उपलब्ध कराने का वादा किया था।

7. इन तथ्यों को विकरू हत्याकांड के मुख्य आरोपी विकास दुबे ने सुनाया, जब उसे उज्जैन से कानपुर नगर लाया जा रहा था, जहां उसे मध्य प्रदेश पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया था। उज्जैन से कानपुर नगर तक की यात्रा के दौरान विवेचनाधिकारी ने उससे पूछताछ की। विवेचनाधिकारी ने केस डायरी में विकास दुबे के बयान को नोट किया था। इसके अलावा सह-आरोपी प्रशांत कुमार शुक्ला व विपुल दुबे ने भी विकरू हत्याकांड में वर्तमान आवेदक की सक्रिय संलिप्तता की बात कही है। आवेदक का बयान भी विवेचनाधिकारी ने दर्ज किया था जिसमें उसने स्वीकार किया था कि उसने विकास दुबे को धन और गोला-बारूद मुहैया कराया था। घटना के बाद सुरक्षित यात्रा के लिए उसे वाहन भी उपलब्ध कराया था।

8. आवेदक के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि वह निर्दोष है और उसे वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है। आवेदक का नाम प्रथम सूचना रिपोर्ट में नहीं है। किसी भी गवाह ने 02.07.2020 को विकरू में हुई घटना में आवेदक की संलिप्तता का उल्लेख नहीं किया। आवेदक को वर्तमान मामले में केवल उसके इकबालिया बयान और सह-आरोपी प्रशांत शुक्ला के बयान के आधार पर आरोपी बनाया गया है जो पुलिस हिरासत में दर्ज किए गए थे। आवेदक और सह-आरोपी प्रशांत शुक्ला के बयान साक्ष्य में स्वीकार्य नहीं हैं और उनका इस्तेमाल आवेदक के खिलाफ नहीं किया जा सकता है।

9. आगे यह तर्क दिया गया है कि आवेदक उस स्थान पर शारीरिक रूप से मौजूद नहीं था जहां घटना हुई थी। इसके बजाय वह कानपुर के एक होटल में सगाई पार्टी में था। जब उन्हें टीवी और अन्य स्रोतों के माध्यम से घटना के बारे में पता चला तो उन्होंने खुद पुलिस को फोन किया। आवेदक ने पुलिस को पार्टी का वीडियो फुटेज भी उपलब्ध कराया। आवेदक विकास दुबे से पार्टियों में एक या दो बार ही मिला था। इसके अलावा उनका उनसे कोई संबंध नहीं था। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक एक राजनीतिक और सामाजिक कार्यकर्ता है और उसने COVID-19 प्रेरित लॉकडाउन के दौरान जबरदस्त काम किया है। स्थानीय प्रतिद्वंद्विता के कारण, आवेदक के दुश्मनों ने पुलिस को आवेदक का नाम पेश किया था और आवेदक को वर्तमान मामले में बलि का बकरा बनाया गया है।

10. आगे यह आग्रह किया जाता है कि रिकॉर्ड पर कोई सबूत उपलब्ध नहीं है कि आवेदक ने साजिश रची या मुख्य आरोपी विकास दुबे को कोई सहायता प्रदान की। आवेदक ने विकरू घटना के लिए कभी भी पैसा और गोला-बारूद प्रदान नहीं किया। इस तथ्य को साबित करने

अनुवादित

के लिए कोई चश्मदीद गवाह नहीं है कि आवेदक सह-आरोपी विकास दुबे के घर गया था या 02.07.2020 की कथित घटना से पहले किसी बैठक में भाग लिया था। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि उपरोक्त घटना से संबंधित आवेदक के कब्जे से या इंगित करने से कुछ भी बरामद नहीं किया गया है।

11. यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक के खिलाफ आरोप पत्र 01.10.2020 को प्रस्तुत किया गया है। आवेदक के पास 11 मामलों का आपराधिक इतिहास है, जिनका वर्णन किया गया है और जमानत आवेदन के समर्थन में दायर हलफनामे के पैरा-32 में ठीक से समझाया गया है। कथित घटना के बाद, आवेदक के खिलाफ पुलिस द्वारा पांच मामले दर्ज किए गए थे। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि समान रूप से रखे गए सह-आरोपी सुशील कुमार तिवारी, जिनका नाम भी प्रथम सूचना रिपोर्ट में नहीं था, को पहले ही इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-4093 वर्ष 2021 में पारित आदेश दिनांक 01.11.2022 के तहत जमानत दे दी गई है। रिकॉर्ड पर आवेदक के खिलाफ कोई ठोस सबूत उपलब्ध नहीं है, इसलिए, वह समानता के आधार पर जमानत पर रिहा होने का भी हकदार है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक 20.07.2020 से जेल में बंद है और यदि उसे जमानत पर रिहा किया जाता है, तो वह जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं करेगा और मुकदमे में सहयोग करेगा।

12. इसके विपरीत, राज्य के लिए श्री मनीष गोयल, अतिरिक्त महाधिवक्ता, जिन्हें श्री अभिजीत मुखर्जी द्वारा सहायता प्रदान की गई थी, ने वर्तमान अभियुक्त/आवेदक को जमानत देने की प्रार्थना का विरोध किया है और तर्क दिया है कि ऐतिहासिक घटना को "विकरू घटना" के रूप में जाना जाता है जिसमें आठ पुलिसकर्मियों की गोली मारकर हत्या कर दी गई और सात को गंभीर चोटें आईं। इस घटना में सरकारी हथियार भी लूट लिए गए थे। इस आवेदक का नाम प्रश्नगत मामले में अभियुक्तों में से एक होने के नाते, प्रशांत कुमार शुक्ला के बयान में सामने आया, जिन्होंने सूचित किया कि आवेदक के मुख्य आरोपी विकास दुबे के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध थे। उसके आदेश पर आरोपी/आवेदक 02.07.2020 की शाम को आरोपी विकास दुबे के घर गया, जहां आरोपी-आवेदक ने 2 लाख रुपये की वित्तीय सहायता प्रदान की और सह-आरोपी प्रशांत कुमार शुक्ला के सामने आग्नेयास्त्रों के 25 कारतूस दिए। आवेदक ने विकास दुबे को घटना के बाद उसकी सुरक्षित यात्रा के लिए वाहन उपलब्ध कराने का भी आश्वासन दिया। आरोपी-आवेदक ने शिवली के पास अपना वाहन खड़ा किया था, जिसे पुलिस ने रोक लिया और उस पर चिपकाए गए विधानसभा के फर्जी पास के साथ एक कार बरामद की गई। आरोपी आवेदक को गांव विकरू में 2/3.07.2020 की मध्यरात्रि में पुलिस पार्टी पर हमला करने के लिए जघन्य अपराध करने के लिए मुख्य आरोपी की योजना के बारे में पूरी जानकारी थी, जिसमें सर्किल ऑफिसर, बिल्हौर सहित 8 पुलिसकर्मियों को बेरहमी से गोली मार दी गई थी और 7 पुलिसकर्मियों को गंभीर चोटें आई थीं।

13. आगे यह तर्क दिया गया है कि आरोपी-आवेदक की गिरफ्तारी के बाद, उसने अपना अपराध कबूल किया कि उसके मुख्य आरोपी

अप्रमाणित

विकास दुबे के साथ संबंध थे और घटना से एक दिन पहले यानी 01.07.2020 को उसने उसे 2 लाख रुपये दिए। उन्होंने अपने गंतव्य तक सुरक्षित यात्रा के लिए हथियार और गोला-बारूद और वाहन भी प्रदान किए। इस तथ्य की पुष्टि सह-आरोपी प्रशांत कुमार शुक्ला के इकबालिया बयान से भी होती है। आगे यह तर्क दिया गया है कि आवेदक एक आदतन अपराधी है। जांच के बाद उनके खिलाफ चार्जशीट दाखिल की गई।

14. यह भी तर्क दिया गया है कि अन्य सह-आरोपियों रेखा अग्निहोत्री और खुशी दुबे की जमानत याचिकाओं को इस न्यायालय द्वारा पहले ही आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-113 वर्ष 2021 में पारित दिनांक 16.07.2021 के आदेशों और आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-14950 वर्ष 2021 में पारित आदेश दिनांक 04.10.2021 द्वारा खारिज कर दिया गया है। यह भी तर्क दिया गया है कि उज्जैन से कानपुर नगर की यात्रा के दौरान दर्ज किए गए विकास दुबे के बयान पर भी उपरोक्त जमानत आदेशों में विचार किया गया है। आगे यह तर्क दिया गया है कि आवेदक का इतिहास स्वयं दर्शाता है कि वह लगातार जघन्य अपराध कर रहा है, इसलिए वह इस न्यायालय से किसी भी सहानुभूति का हकदार नहीं है। अभियुक्त-आवेदक एक दुर्दांत अपराधी है और इस बात की पूरी संभावना है कि यदि आवेदक को जमानत पर रिहा कर दिया जाता है, तो वह अपराध कर सकता है और गवाहों पर अपने पक्ष में गवाही देने के लिए दबाव डालने का पूरा प्रयास करेगा।

15. आगे यह तर्क दिया गया है कि जहां तक सह-आरोपी सुशील कुमार तिवारी की जमानत का सवाल है, उसके पास चार मामलों का आपराधिक इतिहास है और उसका कोई पिछला आपराधिक इतिहास नहीं है, जबकि वर्तमान आरोपी-आवेदक का 2010 से आपराधिक इतिहास है और इसलिए, वह सह-आरोपी सुशील कुमार तिवारी के पक्ष में पारित जमानत आदेश के साथ समानता के आधार पर किसी भी जमानत का हकदार नहीं है। यह ध्यान रखना प्रासंगिक है कि अकेले समानता किसी भी आरोपी के लिए आधार नहीं होगी। आरोपी-आवेदक ने सह-आरोपी सुशील कुमार तिवारी की तुलना में अपराध करने में अलग भूमिका निभाई है। यह भी तर्क दिया गया है कि सह-आरोपी विनय कुमार तिवारी, के. के शर्मा और उमा शंकर यादव @ टैंके की जमानत याचिकाओं को इस न्यायालय द्वारा आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-48444 वर्ष 2020 और आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-49354 वर्ष 2020 में पारित आदेश दिनांक 21.09.2021 और आपराधिक प्रकीर्ण जमानत संख्या-44196 वर्ष 2022 में पारित आदेश दिनांक 30.09.2022 द्वारा क्रमशः खारिज कर दिया गया है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि इस न्यायालय ने आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-48444 वर्ष 2020 से निपटने के दौरान कहा कि मुख्य आरोपी विकास दुबे का बयान भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 32(2) के तहत एक स्वीकार्य साक्ष्य है जिसमें वह उपरोक्त अपराध के कमीशन में वर्तमान आरोपी आवेदक के नाम और सक्रिय भूमिका का खुलासा करता है।

16. अतिरिक्त महाधिवक्ता द्वारा यह भी तर्क दिया गया है कि जमानत आवेदन पर फैसला करने के लिए समानता एकमात्र आधार नहीं हो

अवधारित

सकती है और प्रत्येक अभियुक्त के मामले की जांच मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार की जानी है। उन्होंने मनीष बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन सभी 429 और कृपा शंकर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2017 एस.सी.सी. सभी 852 पर भरोसा किया।

17. आवेदक के अधिवक्ता ने उपरोक्त तर्कों का खंडन करते हुए कहा कि विवेचनाधिकारी ने आवेदक की लोकेशन नहीं मालूम किया जो इस तथ्य को साबित कर सकता है कि 02.07.2020 की शाम को, आवेदक ने सह-आरोपी विकास दुबे को 2 लाख रुपये और 25 कारतूस आग्नेयास्त्र दिए थे। यह आरोप लगाना पूरी तरह से गलत है कि आवेदक को 02.07.2020 की घटना की योजना बनाने का कोई पूर्व ज्ञान था। जहां तक वाहन पर चिपकाए गए फर्जी असेंबली पास का सवाल है, यह पास घटना के बाद पुलिस द्वारा वाहन पर चिपका दिया गया था। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि समान भूमिका वाले सह-आरोपी विष्णु कश्यप को इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-45567 वर्ष 2021 में पारित आदेश दिनांक 06.05.2022 द्वारा पहले ही जमानत दे दी गई है। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक की आपराधिक पृष्ठभूमि को दो भागों में विभाजित किया गया था: उसके खिलाफ 02.07.2020 के बाद दर्ज आठ मामले, और अन्य मामले 02.07.2020 की घटना से पहले। एन.एस.ए समिति के समक्ष भौतिक साक्ष्य द्वारा प्रमाणित उचित आपत्ति दर्ज करके आवेदक द्वारा एन.एस.ए कार्यवाही को बहुत अच्छी तरह से चुनौती दी गई थी। तथापि, समय बीत जाने के कारण राज्य के विद्वेषपूर्ण कार्य को निष्प्रभावी कर दिया गया है।

18. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने राष्ट्रीय जांच एजेंसी बनाम जहूर अहमद शाह वटाली (2019) 5 एस.सी.सी. पृष्ठ 1 में जमानत के लिए आवेदन पर निर्णय लेने के लिए विचार किए जाने वाले मामलों को निम्नानुसार निर्धारित किया है: -

"(i) क्या यह मानने के लिए कोई प्रथम दृष्टया या उचित आधार है कि अभियुक्त ने अपराध किया था;

(ii) आरोप की प्रकृति और गंभीरता;

(iii) दोषसिद्धि की स्थिति में दंड की गंभीरता;

(iv) जमानत पर रिहा किए जाने पर अभियुक्त के फरार होने या भाग जाने का खतरा;

(v) अभियुक्त का चरित्र, व्यवहार, साधन, और स्थिति;

(vi) अपराध की पुनरावृत्ति की संभावना;

(vii) गवाहों के साथ छेड़छाड़ किए जाने की युक्तियुक्त आशंका; और

(viii) निस्संदेह, जमानत प्रदान करके न्याय को विफल किए जाने का खतरा।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा कि:-

"23. उप-धारा (5) के परंतुक के आधार पर, यह न्यायालय का कर्तव्य है कि वह संतुष्ट हो कि यह विश्वास करने के लिए उचित आधार हैं कि अभियुक्त के खिलाफ आरोप प्रथम दृष्टया सत्य है या अन्यथा। हमारा ध्यान इस न्यायालय के फैसलों की ओर आकर्षित किया गया, जिसे टाडा और मकोका में इसी तरह के विशेष प्रावधानों से निपटने का अवसर मिला है। 1967 के अधिनियम के तहत अपराधों के संबंध में जमानत के लिए प्रार्थना पर विचार करते समय उन निर्णयों में अंतर्निहित सिद्धांत

अनुवादित

का कुछ असर हो सकता है। विशेष रूप से, टाडा, मकोका और नारकोटिक ड्रग्स एंड साइकोट्रोपिक सब्सटेंस एक्ट, 1985 जैसे विशेष अधिनियमों के तहत न्यायालय को अपनी राय दर्ज करने की आवश्यकता होती है कि यह मानने के लिए उचित आधार हैं कि अभियुक्त कथित अपराध का "दोषी नहीं" है। न्यायालय द्वारा दर्ज की जाने वाली संतुष्टि के बीच अंतर है कि यह मानने के लिए उचित आधार हैं कि अभियुक्त इस तरह के अपराध का "दोषी नहीं" है और 1967 के अधिनियम के प्रयोजनों के लिए दर्ज की जाने वाली संतुष्टि है कि यह मानने के लिए उचित आधार हैं कि ऐसे व्यक्ति के खिलाफ आरोप "प्रथम दृष्टया" सच है। इसकी प्रकृति से, अभिव्यक्ति "प्रथम दृष्टया सत्य" का अर्थ यह होगा कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में संबंधित अभियुक्त के खिलाफ आरोप के संदर्भ में जांच एजेंसी द्वारा एकत्रित सामग्री/साक्ष्य, तब तक प्रबल होना चाहिए जब तक कि अन्य सबूतों द्वारा खंडन, दूर या अस्वीकृत न हो जाए, और, कथित अपराध के कमीशन में ऐसे अभियुक्त की संलिप्तता को दर्शाता हो। किसी दिए गए तथ्य या कथित अपराध का गठन करने वाले तथ्यों की श्रृंखला को स्थापित करने के लिए यह पर्याप्त होना चाहिए, जब तक कि खंडन न किया जाए। एक अर्थ में, जब न्यायालय को यह मानना पड़ता है कि आरोप "प्रथम दृष्टया सही" है, संतुष्टि की डिग्री हल्की होती है; अभियुक्त की राय की तुलना में इस तरह के अपराध के लिए "दोषी नहीं" जैसा कि अन्य विशेष अधिनियमों के तहत आवश्यक है, होना चाहिए। किसी भी मामले में, अदालत द्वारा यह मानने के लिए दर्ज की जाने वाली संतुष्टि की डिग्री कि यह मानने के लिए उचित आधार हैं कि अभियुक्त के खिलाफ आरोप प्रथम दृष्टया सही है, यू.ए.पी.ए. के तहत अपराधों के संबंध में डिस्चार्ज आवेदन या आरोप तय करने पर विचार करने के लिए दर्ज की जाने वाली संतुष्टि की डिग्री से हल्का है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा कि:-

"27. इसके लिए, जांच एजेंसी द्वारा एकत्र की गई सामग्री की समग्रता और रिपोर्ट के साथ प्रस्तुत की गई और केस डायरी की गणना की जानी चाहिए, न कि साक्ष्य या परिस्थिति के अलग-अलग टुकड़ों का विश्लेषण करके। किसी भी मामले में, साक्ष्य में अग्राह्य होने के आधार पर इस स्तर पर दस्तावेज़ को त्यागने का प्रश्न अनुमेय नहीं है। क्योंकि, दस्तावेज/साक्ष्य की स्वीकार्यता का मुद्दा विचारण का मामला होगा। न्यायालय को दस्तावेज़ की सामग्री को देखना चाहिए और इस तरह के दस्तावेज़ को ध्यान में रखना चाहिए।

19. आवेदक के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि वर्तमान आवेदक और अन्य सह-अभियुक्तों अर्थात् मुख्य आरोपी विकास दुबे, प्रशांत शुक्ला और विपुल दुबे के बयान पुलिस के समक्ष दिए गए थे, इसलिए, वे स्वीकार्य सबूत नहीं हैं।

20. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इंद्रेश कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य में उच्च न्यायालय द्वारा पारित जमानत आदेश को रद्द करते हुए कहा है कि: -

"उच्च न्यायालय ने धारा 164/161 द०प्र०स० के तहत गवाहों के आपत्तिजनक बयानों सहित रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री को नजरअंदाज कर दिया है, धारा 161द०प्र०स० के तहत बयान साक्ष्य में स्वीकार्य नहीं हो सकते हैं, लेकिन

अतिरिक्त

गंभीर अपराध के मामले में जमानत देने के लिए आवेदन में आरोपी के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामले पर विचार करने में प्रासंगिक हैं।

21. अतिरिक्त महाधिवक्ता श्री मनीष गोयल ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई उपरोक्त टिप्पणी का उल्लेख करते हुए प्रस्तुत किया कि धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज बयान प्रथम दृष्टया विकरू नरसंहार में वर्तमान आवेदक की सक्रिय भूमिका का खुलासा करता है।

22. जहां तक आवेदक के अधिवक्ता के तर्क का संबंध है कि विकास दुबे के बयान को आवेदक के खिलाफ नहीं पढ़ा जा सकता है, क्योंकि सबसे पहले यह एक पुलिस अधिकारी के समक्ष किया जाता है और दूसरा जिस व्यक्ति ने ऐसा बयान दिया है, उसे अदालत में पेश नहीं किया जा सकता है क्योंकि वह मर चुका है, अतिरिक्त महाधिवक्ता ने कल्याण चंद्र सरकार बनाम राजेश रंजन @ पप्पू यादव में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणी पर भरोसा किया और एक और (2004) 7 एस.सी.सी. 528। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि:-

"प्रतिवादी के अधिवक्ता का अगला तर्क यह है कि प्रथम दृष्टया अभियोजन पक्ष साजिश के अपराध में प्रतिवादी को फंसाने के लिए कोई सामग्री पेश करने में विफल रहा है। इस संबंध में उन्होंने कहा कि अधिकांश गवाह पहले ही मुकर चुके हैं। प्रतिवादी को अपराध से जोड़ने के लिए अभियोजन पक्ष के पास उपलब्ध एकमात्र अन्य सबूत सह-अभियुक्त का कथित कबूलनामा है, जो अधिवक्ता के अनुसार साक्ष्य में अस्वीकार्य था। इसलिए, उन्होंने तर्क दिया कि उच्च न्यायालय जमानत देने में उचित था क्योंकि अभियोजन पक्ष प्रतिवादी के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला भी स्थापित करने में विफल रहा है। उच्च न्यायालय के आदेश से हम इसे जमानत देने के लिए एक अच्छे आधार के रूप में नहीं पाते हैं। जैसा कि यह हो सकता है, हमें लगता है कि यह तर्क हमारे लिए स्वीकार करने के लिए 'समय से बहुत पहले' है। इकबालिया बयान की स्वीकार्यता या अन्यथा और अभियोजन पक्ष द्वारा पहले से पेश किए गए साक्ष्य का प्रभाव और इसके बाद पेश किए जा सकने वाले साक्ष्य की योग्यता जिसमें वापस बुलाए जाने वाले गवाहों के साक्ष्य भी शामिल हैं, सभी मामलों पर विचारण के चरण में विचार किया जाना है।

23. इसके अलावा, शासकीय अधिवक्ता ने तर्क दिया कि मुख्य आरोपी विकास दुबे का बयान एक मृत व्यक्ति का बयान है जिसे गवाही देने के लिए नहीं बुलाया जा सकता है। इसलिए, साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 32 (3) के तहत वर्तमान आवेदक के खिलाफ उनके बयान पर विचार किया जाना है।

24. साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 32 नीचे उद्धृत की गई है:-

"32- ऐसे मामले जिनमें उस व्यक्ति द्वारा प्रासंगिक तथ्य का बयान जो मृत है या नहीं पाया जा सकता है, आदि प्रासंगिक है। - किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा किए गए प्रासंगिक तथ्यों के लिखित या मौखिक, जो मृत हो चुके हैं, या जो साक्ष्य देने में असमर्थ हो गए हैं, या जिनकी उपस्थिति देरी या व्यय की राशि के बिना प्राप्त नहीं की जा सकती है, जो मामले की परिस्थितियों में, न्यायालय को अनुचित प्रतीत होती है, स्वयं निम्नलिखित मामलों में प्रासंगिक तथ्य हैं: -

अनुवादित

जब यह मृत्यु के कारण से संबंधित हो - जब किसी व्यक्ति द्वारा उसकी मृत्यु के कारण के रूप में बयान दिया जाता है, या किसी भी परिस्थिति के रूप में, जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हुई, उन मामलों में जिसमें उस व्यक्ति की मृत्यु का कारण प्रश्न में आता है। इस तरह के बयान प्रासंगिक हैं कि व्यक्ति ने ऐसा बयान दिया था कि नहीं, और वो उस समय, मौत के अंदेशे के तहत जीवित था कि नहीं जिस समय बयान दिया गया था। और कार्यवाही की प्रकृति जो भी हो सकती है जिसमें उसकी मृत्यु का कारण भी प्रश्न में आता है।

एक. या ये कार्रवाई के दौरान बनाया गया है। - जब बयान ऐसे व्यक्ति द्वारा कार्रवाई के दौरान बनाया में किया गया था, और विशेष रूप से जब इसमें कार्रवाई के दौरान में रखी गई पुस्तकों में या पेशेवर कर्तव्य के निर्वहन में उसके द्वारा की गई कोई प्रविष्टि या ज्ञापन शामिल है; या धन, माल, प्रतिभूतियों या किसी भी प्रकार की संपत्ति की प्राप्ति के लिए उसके द्वारा लिखित या हस्ताक्षरित पावती का; या उसके द्वारा लिखित या हस्ताक्षरित वाणिज्य में उपयोग किए जाने वाले दस्तावेज का; या किसी पत्र या अन्य दस्तावेज की तारीख जो आमतौर पर उसके द्वारा दिनांकित, लिखित या हस्ताक्षरित होती है।

3 या निर्माता के हित के खिलाफ। - जब बयान इसे बनाने वाले व्यक्ति के आर्थिक या मालिकाना हित के खिलाफ होता है, या जब, यदि सच है, तो यह उसे उजागर करेगा या उसे आपराधिक अभियोजन या नुकसान के लिए एक मुकदमे के लिए उजागर करेगा।

4. या सार्वजनिक अधिकार या रिवाज, या सामान्य हित के मामलों के बारे में राय देता है। जब कथन किसी ऐसे व्यक्ति की राय देता है, किसी सार्वजनिक अधिकार या प्रथा या सार्वजनिक या सामान्य हित के मामले के अस्तित्व के बारे में, जिसके अस्तित्व के बारे में, यदि वह अस्तित्व में था, तो उसे पता होने की संभावना होगी, और जब ऐसा बयान, इस तरह के अधिकार के रूप में, किसी भी विवाद से पहले था रिवाज या मामला पैदा हो गया था।

5. या रिश्ते के अस्तित्व से संबंधित है। - जब बयान उन व्यक्तियों के बीच किसी भी संबंध के अस्तित्व से संबंधित है जिनके संबंध 25 [रक्त, विवाह या गोद लेने से] बयान देने वाले व्यक्ति के पास ज्ञान का विशेष साधन था, और जब विवाद में प्रश्न उठाए जाने से पहले बयान दिया गया था।

6. या पारिवारिक मामलों से संबंधित वसीयत या विलेख में किया गया है। - जब बयान मृतक व्यक्तियों के बीच किसी भी संबंध के अस्तित्व से संबंधित है 25 [रक्त, विवाह या गोद लेने] से, और किसी भी वसीयत या विलेख में किया जाता है जो उस परिवार के मामलों से संबंधित है, जिसमें ऐसा कोई मृत व्यक्ति था, या किसी भी परिवार की वंशावली में, या किसी समाधि के पत्थर, परिवार के चित्र,

अप्रमाणित

या अन्य चीज पर जिस पर इस तरह के बयान आमतौर पर किए जाते हैं, और जब विवाद में सवाल उठाए जाने से पहले ऐसा बयान दिया गया था।

7. या धारा 13, खंड (क) में उल्लिखित लेनदेन से संबंधित दस्तावेज में। - जब बयान किसी भी विलेख, वसीयत या अन्य दस्तावेज में निहित होता है जो किसी भी ऐसे लेनदेन से संबंधित है जैसा कि धारा 13, खंड (ए) में उल्लिखित है।

8. या कई व्यक्तियों द्वारा बनाया गया है, और प्रश्नगत मामले के लिए प्रासंगिक भावनाओं को व्यक्त करता है। -जब बयान कई व्यक्तियों द्वारा दिया गया था, और प्रश्नगत मामले के लिए प्रासंगिक उनकी ओर से भावनाओं या छापों को व्यक्त किया गया था।

25. इसलिए, साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 को पढ़ने पर, यह स्पष्ट है कि मृत व्यक्ति द्वारा दिए गए बयान को कानूनी रूप से मान्यता दी गई है और साक्ष्य में इस्तेमाल किया जा सकता है, भले ही यह उसकी मृत्यु के कारण से संबंधित न हो। यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि इस स्तर पर अंतिम निर्णय नहीं लिया जा सकता है क्योंकि रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्य की सराहना करते समय विचारण न्यायालय द्वारा इस पर विचार किया जाएगा।

26. उपरोक्त टिप्पणियों और कानूनी प्रस्तावों के मद्देनजर, मुख्य अभियुक्त विकास दुबे द्वारा दिए गए बयान पर प्रथम दृष्टया विकरू हत्याकांड में वर्तमान आवेदक की भागीदारी का संकेत देने पर विचार किया जाएगा।

27. मुख्य अभियुक्त विकास दुबे का बयान, जैसा कि विवेचनाधिकारी द्वारा पारगमन के दौरान दर्ज किया गया था जब विकास दुबे को उज्जैन में गिरफ्तार किया गया था और उसे कानपुर नगर लाया जा रहा था, केस डायरी में उपलब्ध है जिसे नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

"मैंने अपने नजदीकी घर की औरतों रेखा अग्निहोत्री, क्षमा पत्नी संजय उर्फ़ संजू, ख़ुशी पत्नी अमर दुबे शांति देवी रमेश को पुलिस को चोर डकैती कहकर चिल्लाने गांव वालों को इकठ्ठा करने के लिए लगा रखा था। मेरे मामा की बहू मनु पाण्डेय पत्नी सोनू पाण्डेय को भी प्लानिंग की पूरी जानकारी थी तथा फोन सबको सजग कराने व सूचना देने के लिये मैंने बना रखा था। इसके बाद मैं भागकर चला गया था इस दौरान मेरे अति नजदीकी जयकान्त उर्फ़ जय बाजपेई पुतर लक्ष्मीकान्त बाजपेई नि० बरहमानगर और प्रशान्त शुक्ला उर्फ़ डब्लू नि० आर्य नगर कोहना ने गाडी व पैसा देकर मदद की उन्हें भी मेरी प्लानिंग की कुछ कुछ जानकारी थी। जय बाजपेई से मैंने कारतूस भी लिया था। वहां से फिर बचते बचाते उज्जैन महाकाल मन्दिर आ गया था। सड़क पर जे०सी०बी० जो मेरे यहाँ करीब डेढ़ माह से काम कर रही थी को रात में करीब १२ बजे अपने मामा राजाराम उर्फ़ रामकुमार पाण्डेय को भेजकर ड्राइवर राहुल पाल से मंगवाया था और सड़क पर खड़ी करके सड़क अवरुद्ध करा दिया था ताकि पुलिस एकाएक हमारे घर तक ना आ सके।"

28. सह-अभियुक्त प्रशांत शुक्ला का बयान, जिसने विशेष रूप से विवेचनाधिकारी द्वारा दर्ज की गई दिनांक 02.07.2020 की घटना में

अनुवादित

वर्तमान आवेदक की भागीदारी के बारे में कहा था, नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

"बयान अभियुक्त प्रशान्त शुक्ला उर्फ़ डब्बू पुत्र श्रीकृष्ण कान्त शुक्ला निवासी ८/११९ आर्य नगर थाना कोहना कानपुर नगर उम्र ४७ वर्ष ने पूंछने पर बताया कि साहब वर्ष २००५ में मेरी शादी ग्राम विकरू में ओम प्रकाश दुबे की पुत्री रंजना दुबे से हुई तभी से मेरी जान पहचान विकास दुबे से हो गई थी क्योंकि विकास दुबे मेरी पत्नी के परिवार का ही है विकास दुबे कई बार जेल गया तो मैंने इसकी मदद की दिनांक 02.07.2020 को व्हाट्स अप काल द्वारा विकास दुबे ने मुझे बताया कि मुझे पुलिस वालों को ठिकाने लगाना है तुम मेरी मदद करो तथा जयकान्त वाजपेई को अपने साथ लेकर मेरे गांव आ जाओ तो मैं जयकान्त बाजपेयी को लेकर दिनांक 02.07.2020 को शाम को समय ग्राम विकरू गया था वहां पर जयकान्त बाजपेयी ने विकास दुबे को 2 लाख रुपये व 25 कारतूस दिये थे मैंने भी अपने पास से 50 हजार रुपये विकास दुबे को दिए थे ताकि जरुरत पड़ने पर मुकदमा आदि में वकील आदि को देने में काम आ सके, विकास दुबे ने हमें बताया था कि पुलिस वालों ने मुझे पकड़ने का प्लान बनाया है परन्तु जैसे ही पुलिस वाले मेरे मेरे घर पर आयेंगे मैं उनको मौत की नींद सुला दूंगा एक को भी जिंदा नहीं नहीं जाने दूंगा तब मैंने कहा था कि ठीक रहेगा हमसे जो मदद होगी हम करेंगे तो विकास दुबे ने कहा कि जब मैं खबर भेजूंगा तो जयकान्त बाजपेयी की तीनों गाड़ियां लेकर जहाँ मैं बताऊंगा वहां आ जाना हमने कहा कि ठीक है हम आ जायेंगे। इसके बाद हम लोग वहां से चले आये थे। अगले दिन सुबह खबर मिली थी कि विकास दुबे ने ८ पुलिस वालों को मौत के घाट उतार दिया है उसके बाद दिनांक ०४.०७.२०२० को मुझे सूचना मिली थी विकास दुबे ने जयकान्त बाजयेयी को पूरी बात बताई जयकान्त बाजपेयी गाड़ियां लेकर विकास दुबे व उसके गैंग को लेने जा रहा था कि पुलिस की सक्रियता के चलते वह गाड़ी कानपुर नगर से बाहर बाहर नहीं ले जा पाया तथा गाड़ियों को दर के मारे काकादेव क्षेत्र में छोड़कर चला आया था साहब गलती हो गयी जो मैंने विकास दुबे का षड़यंत्र में साथ दिया।"

29. इसके अलावा सह-अभियुक्त विपुल दुबे के बयान को भी विवेचनाधिकारी द्वारा उपरोक्त घटना में वर्तमान आवेदक की सक्रिय भागीदारी के बारे में नोट किया गया था। सह-अभियुक्त विपुल दुबे का बयान नीचे दिया जा रहा है: -

"विकास दुबे हमारे खानदान के थे, मीटिंग में तय योजना के अनुसार विकास दुबे ने असलाह कारतूसों व बमों की व्यवस्था की व हम सभी लोगों को असलाह कारतूस उपलब्ध कराये गये मैंने विकास दुबे से मिलते हुये व कारतूस असलाह व पैसे देते हुये विकास पण्डित जी के परिचित जयकान्त बाजपेयी, प्रशान्त शुक्ला, अरविन्द त्रिवेदी उर्फ़ गुड्डन व सुशील तिवारी योजना में शामिल रहे। असलाह व पैसे व कारतूस उपलब्ध कराये तथा भविष्य में भी पूरी सहायता करने का वचन दिया था। अक्सर जयकान्त बाजपेयी, प्रशान्त शुक्ला, अरविन्द त्रिवेदी उर्फ़ गुड्डन व सुशील तिवारी विकास दुबे के पास आया करते थे। इन चारों लोगों की विकास दूबे से बहुत अधिक घनिष्ठता थी। यह चारों लोगों उस समय

अनुवादित

मौजूद नहीं थे जब हम लोगों द्वारा पुलिस पर फायरिंग की जा रही थी।"

30. आवेदक का इकबालिया बयान यहां निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

"बयान अभियुक्त जयकान्त बाजपेयी पुत्र स्व० लक्ष्मीकान्त बाजपेयी निवासी १११/४७८ ब्रह्मा नगर थाना नजीराबाद जनपद कानपुर नगर उम्र करीब ३७ वर्ष ने पूंछने पर बताया कि हम ०५ भाई हैं मेरे माता पिता का स्वर्गवास हो गया है मेरा मो० नं० ९३३६२४९७९३ है मेरे पिता जी के हिस्से में ०६ बीघा जमीन आती है। पहले मैं टायर पंचर की दुकान करता था वर्ष २०१३ में मेरी मुलाकात प्रशान्त शुक्ल उर्फ़ दब्बू के माध्यम से विकास दुबे से हो गई थी, विकास दुबे ने मुझे कुछ पैसा देकर ब्याज पर पैसे देने का काम शुरू करा दिया था, विकास दुबे को मैंने ३ प्रतिशत पर ब्याज देता था तथा लोगों से १० प्रतिशत का ब्याज लेता था इसके बाद मैंने कमेटी डालनी शुरू कर दी थी जिसमें मेरा काम ठीक ठाक चल निकला जिससे मैंने ०४ मकान नगर में खरीदे तथा जिसके अलावा मेरे करीब ५६ प्लाट हैं जो करीब डेढ करोड की कीमत से ज्यादा के हैं, उसके बाद मेरा विकास दुबे से लगातार मिलना जुलना रहा हम लोग फ़ोन से भी आपस में बात करते थे परन्तु व्हाट्सप्प या चैट से ज्यादा बातें करते थे दिनांक ०१.०७.२०२० को विकास दुबे का मेरे फ़ोन आया कि कुछ पैसे व कारतूस लेकर मेरे पास आ जाओ मैं दिनांक ०२.०७.२०२० को प्रशान्त शुक्ल उर्फ़ डब्लू के साथ ग्राम विकरू गया था जहां पर विकास दुबे हमें मिला; विकास दुबे ने हमें बताया कि पुलिस मुझे बहुत परेशान कर रही है, मुझे पुलिस का काम तमाम करना है तो हमने कहा कि ठीक रहेगा। एक बार पुलिस से भीड गए तो फिर हमारी दबंगई पुरे जिले में चलेगी। तो विकास दुबे को ०२ लाख रुपये नगद व २५ कारतूस रिवॉल्वर के दिये थे उसी दौरान विकास दुबे ने मुझे व दब्बू को बताया था कि आप दोनों घटना के बाद जब भी मैं सूचना भेजूंगा अपनी गाडी भेजनी होगी ताकि हम सुरक्षित निकल सके मेरे पास एक गाडी ऑडी जिसका नम्बर यू०पी० ७८ वाई०एफ० ९५५५ जो मैंने प्रमोद कुमार पुत्र कन्हैया लाल विश्वकर्मा निवासी १६/१८ न्यू ईदगाह कॉलोनी थाना नवाबगंज के नाम से निकाली थी तथा दूसरी गाडी फॉर्चूनर नं० यू०पी० ७८ ई०डब्लू० ७०७० है जो मैंने राहुल पुत्र इन्दरपाल नि० १९३/२४३ सकरपुर चक (किसान नगर) थाना सचण्डी कानपूर नगर के नाम से निकाली थी तथा तीसरी गाडी 'वरना' जिसका नम्बर यू०पी० ७८ एफ० सी० ७०७० है जो मैंने कपिल सिंह चौहान पुत्र चन्द्रभान सिंह नि० १११ए/२४ अशोक नगर थाना नजीराबाद के नाम से निकाली थी तीनों गाडियों की किश्त मैं स्वयं भरता हूँ तथा तीनों मेरे पास ही रहती हैं; इन गाडिओं से विकास दुबे अक्सर घटना में जाया करता था घटना के बाद दिनांक ०४.०७.२०२० को डब्बू के माध्यम से मेरे पास सूचना आई थी कि विकास दुबे व उसके साथियों को शिवली से दिल्ली तक छोडना है जिसका कारण मैं इन गाडियों को अपने ड्राइवर से चलवाकर विकास दुबे के पास ले जा रहा था कि पुलिस की सक्रियता देखकर मैं घबरा गया तथा जल्दबाजी में मैंने तीनों गाडियों काकादेव क्षेत्र में विजय नगर चौराहा के पास नम्बर प्लेट पलट करके लगा दी थी ताकि कोई गाडियों को पहचान न पाये साहब मुझे इस घटना की पूरी जानकारी थी मैंने इस कार्य में

अनुवादित

विकास दुबे की मदद की है मुझसे गलती हो गयी है।"

31. उज्जैन से कानपुर नगर की यात्रा के दौरान मुख्य आरोपी विकास दुबे द्वारा विवेचनाधिकारी को दिए गए बयान के अवलोकन से पता चलता है कि विकास दुबे ने वर्तमान आवेदक को अपना करीबी सहयोगी बताया, जिसने दिनांक 02.07.2020 की घटना को करने में उसकी सहायता करने के लिए धन और वाहन प्रदान किए। इसी तरह, सह-आरोपी प्रशांत शुक्ला के बयान से यह भी पता चलता है कि विकास दुबे ने उसकी सहायता मांगी और उसे वर्तमान आवेदक जय कांत वाजपेयी के साथ अपने गांव आने के लिए कहा। वह 02.07.2020 की शाम को वर्तमान आवेदक के साथ गांव विकरू पहुंचा, जहां वर्तमान आवेदक ने विकास दुबे को 2 लाख रुपये और 25 कारतूस दिए। विकास दुबे ने निर्देश दिए कि घटना के बाद वर्तमान आवेदक के वाहन उपलब्ध कराए जाएं। सह-आरोपी विपुल दुबे ने विवेचनाधिकारी के समक्ष यह भी कहा कि प्रशांत शुक्ला, अरविंद त्रिवेदी @ गुड्डन और सुशील तिवारी के साथ वर्तमान आवेदक घटना की योजना बनाने में शामिल थे। उनके द्वारा धन और गोला-बारूद प्रदान किया गया था। वर्तमान आवेदक साहूकारी के कारोबार के संबंध में विकास दुबे का लगातार आना-जाना था। ये चारों आरोपी आरोपी विकास दुबे के काफी करीबी थे।

32. उपरोक्त बयानों के आधार पर, प्रथम दृष्टया यह पता चलता है कि वर्तमान आवेदक अच्छी तरह से जाना जाता था और विकास दुबे का एक विश्वसनीय व्यक्ति था। मुख्य आरोपी विकास दुबे ने उसे अन्य आरोपियों के साथ साजिश रचने और विकरू हत्याकांड के रूप में जानी जाने वाली घटना को अंजाम देने के लिए 02.07.2020 की शाम को एक बैठक में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया। इस मुलाकात के दौरान वर्तमान आवेदक ने मुख्य आरोपी विकास दुबे को अपराध में इस्तेमाल करने के लिए 2 लाख रुपये की राशि और 25 कारतूस प्रदान किए। इसके अलावा, वर्तमान आवेदक ने विकास दुबे से वादा किया कि वह घटना के बाद अपने अगले गंतव्य के लिए सुरक्षित मार्ग के लिए वाहन उपलब्ध कराने के लिए अपने घर के बाहर उपलब्ध होगा।

33. आवेदक के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि चूंकि आवेदक की भूमिका सह-आरोपी सुशील कुमार तिवारी के समान है, जिसे आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-4903 वर्ष 2021 में पारित इस न्यायालय द्वारा दिनांक 01.11.2022 के आदेश द्वारा जमानत दी गई है, इसलिए आवेदक भी समानता के आधार पर जमानत पर रिहा होने का हकदार है। यह प्रस्तुत किया गया है कि सह-अभियुक्त सुशील कुमार तिवारी का भी प्राथमिकी में नाम नहीं था और वह घटना के समय घटनास्थल पर शारीरिक रूप से मौजूद भी नहीं था।

34. रमेश भवन राठौड़ बनाम विशनभाई हीराभाई मकवाना, 2021 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 353 में, सुप्रीम कोर्ट की दो न्यायाधीशों की पीठ ने माना है कि जमानत देते समय उच्च न्यायालय को समानता के पहलू को तय करने में अभियुक्त की भूमिका पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। इस न्यायालय ने कहा:

"26.... उच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से समानता के अर्थ के केंद्रीय पहलू को गलत

अनुवादित

समझा है। जमानत देते समय समानता अभियुक्त की भूमिका पर ध्यान केंद्रित करनी चाहिए। केवल यह देखना कि एक अन्य अभियुक्त, जिसे जमानत दी गई थी, एक समान हथियार से लैस था, यह निर्धारित करने के लिए पर्याप्त नहीं है कि क्या समानता के आधार पर जमानत देने का मामला स्थापित किया गया है। समता के पहलू को तय करने में, अभियुक्तों से जुड़ी भूमिका, घटना के संबंध में उनकी स्थिति अत्यंत महत्वपूर्ण है। उच्च न्यायालय ने ऊपर उल्लिखित एक सरलीकृत मूल्यांकन पर समानता के आधार पर कार्यवाही की है, जो फिर से कानून के तहत पारित नहीं हो सकता है।

35. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई उपरोक्त टिप्पणियों के मद्देनजर और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों और अपराध में उसकी भागीदारी के बारे में अभियुक्त की जटिलता को ध्यान में रखते हुए, वर्तमान आवेदक उसे समानता के आधार पर जमानत पर रिहा करने का हकदार नहीं है।

36. आवेदक के अधिवक्ता ने जोरदार तर्क दिया कि जहां तक वर्तमान आवेदक के आपराधिक इतिहास का संबंध है, यह प्रत्युत्तर हलफनामे के माध्यम से समझाया गया है कि कुछ मामलों में आवेदक को जमानत दी गई है, एक मामले में अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई है और कुछ मामले अभी भी संबंधित अदालत के समक्ष विचार लंबित हैं।

37. अतिरिक्त महाधिवक्ता श्री मनीष गोयल ने प्रस्तुत किया है कि आवेदक के पास वर्ष 2010 से 14 मामलों का आपराधिक इतिहास है, जिसमें धारा 395, 302, 307 भ०द०वि०, गैंगस्टर एक्ट, विस्फोटक अधिनियम और एन.एस.ए सहित जघन्य अपराधों की प्रकृति के मामले भी शामिल हैं। यह दर्शाता है कि आवेदक कुछ जघन्य अपराधों में शामिल रहा है और वह एक खूंखार अपराधी है। यदि उसे जमानत पर रिहा किया जाता है तो इससे उसे गवाहों को डराने धमकाने का मौका मिल जाएगा। आवेदक को जमानत पर रिहा करते समय उसके आपराधिक इतिहास को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

38. वर्तमान आवेदक का आपराधिक इतिहास राज्य द्वारा एक पूरक जवाबी हलफनामे के माध्यम से रिकॉर्ड पर लाया गया है, जिसे पुलिस निरीक्षक, थाना-चौबेपुर आयुक्तालय, जिला: कानपुर नगर द्वारा रिपोर्ट किया गया है।

39. नीरू यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (2015) 3 एस.सी.सी. 527 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के मद्देनजर, जमानत आवेदन का फैसला करते समय अभियुक्त के आपराधिक पूर्ववृत्त को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है, जमानत देने के लिए अदालतों की विवेकाधीन शक्तियों का प्रयोग आदतन अपराधी के मामले में विवेकपूर्ण तरीके से किया जाना चाहिए।

40. नीरज यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2016) 15 एस.सी.सी. 422 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार आयोजित किया है: -

"15. कानून की यह स्थिति होने के नाते, यह बादल रहित आकाश की तरह स्पष्ट है कि उच्च न्यायालय ने अभियुक्तों के आपराधिक पूर्ववृत्त को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया है। उच्च न्यायालय में जो तौला गया है वह समानता का सिद्धांत है। अपराध की प्रकृति में

अप्रमाणित

शामिल एक हिस्ट्रीशीटर, जिसे हमने यहां ऊपर पुन: प्रस्तुत किया है, मामूली अपराध नहीं हैं, कि उसे हिरासत में न रखा जाए; लेकिन अपराध जघन्य प्रकृति के हैं और ऐसे अपराध, कल्पना के किसी भी खिंचाव से, सतही तौर पर नहीं देखे जा सकते हैं। इस तरह के मामले एक विश्लेषणात्मक दिमाग में मूसलाधार बारिश की प्रभाव क्षमता वाले गड़गड़ाहट और बिजली पैदा करते हैं। कानून उम्मीद करता है कि न्यायपालिका इस तरह के आरोपियों के आवेदन को को स्वीकार करते समय सतर्क रहेगी और इसलिए विवेकपूर्ण तरीके से विवेक के प्रयोग पर जोर दिया जाता है, न कि मनमाने तरीके से।

41. राज्य की ओर से यह तर्क दिया जाता है कि सह-अभियुक्त सुशील कुमार तिवारी, जिसके खिलाफ वर्तमान आवेदक समानता का दावा कर रहा है, का चार मामलों का आपराधिक इतिहास था, जबकि आवेदक का 14 मामलों का आपराधिक इतिहास है। इसलिए, आवेदक इस मामले पर भी समानता का दावा नहीं कर सकता है।

42. उपरोक्त के मद्देनजर, आवेदक का आपराधिक इतिहास, जिसमें जघन्य प्रकृति के अपराध शामिल हैं, को भी ध्यान में रखा जाता है।

43. अतिरिक्त महाधिवक्ता श्री मनीष गोयल ने प्रस्तुत किया कि विकरू नरसंहार उत्तर प्रदेश डकैती प्रभावित क्षेत्र अधिनियम के तहत अधिसूचित क्षेत्र की सीमा के भीतर हुआ था और अधिनियम की धारा 10 के तहत प्रावधान को भी ध्यान में रखा जाए।

44. अधिनियम का प्रासंगिक हिस्सा नीचे उद्धृत किया गया है: -

"10. जमानत के संबंध में विशेष उपबंध- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में किसी बात के होते हुए भी, अनुसूचित अपराध का अभियुक्त या दोषसिद्ध कोई व्यक्ति, यदि हिरासत में है, जमानत पर या अपने स्वयं के बांड पर रिहा नहीं किया जाएगा जब तक कि:

(क) अभियोजन पक्ष ने जमानत के लिए आवेदन का विरोध करने का अवसर ना दिया जाए और

(ख) जहां अभियोजन जमानत के लिए आवेदन का विरोध करता है, वहां न्यायालय का समाधान ना हो जाये कि यह विश्वास करने के लिए युक्तियुक्त आधार हैं कि वह ऐसे अपराध का दोषी नहीं है.....

45. इसलिए, यह निष्कर्ष निकाला गया है कि उपरोक्त चर्चा के आधार पर, यह स्पष्ट है कि अपराध की प्रकृति और दोषपूर्णता की मात्रा गंभीर और जघन्य है। आवेदक के पास जघन्य प्रकृति के मामलों का आपराधिक इतिहास है। आवेदक उस घटना में सक्रिय रूप से शामिल है जिसमें सर्किल अधिकारी, बिल्हार सहित आठ पुलिसकर्मियों को बेरहमी से मौत के घाट उतार दिया गया था और सात अन्य पुलिसकर्मियों को गंभीर चोटें आई थीं। आवेदक ने वास्तव में मुख्य आरोपी विकास दुबे को घटना में इस्तेमाल करने के लिए 2 लाख रुपये और 25 कारतूस प्रदान करके सहायता की। इसके अलावा, आवेदक ने मारे गए आरोपी विकास दुबे को सबसे जघन्य अपराधों में से एक को अंजाम देने के बाद अपने अगले गंतव्य तक सुरक्षित यात्रा के लिए वाहन प्रदान करने का भी वादा किया। इसलिए, मुझे वर्तमान आवेदक की जमानत याचिका की अनुमति देने का कोई पर्याप्त कारण नहीं मिलता है। वर्तमान आवेदक

अनुवादित

जय कांत बाजपेयी @ जय की जमानत याचिका खारिज की जाती है।

46. ऊपर किए गए किसी भी अवलोकन को योग्यता पर किसी भी निष्कर्ष के रूप में नहीं माना जाएगा और परीक्षण पूर्वाग्रह नहीं होगा।

(2023) 6 ILRA 78

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 01.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय कुमार श्रीवास्तव-I

आपराधिक अपील संख्या 1513 वर्ष 2021

अभिषेक सिंह एवं अन्य. . .अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य . ..प्रतिवादी

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता: राहुल श्रीवास्तव, अमित कुमार अवस्थी, इप्शा मिश्रा, सुशील कुमार सिंह, विवेक तिवारी

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: जी.ए., दिलीप कुमार यादव, सुरेश कुमार यादव

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 304, 326, 323 और 506 - अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 - धारा 3(2)(V) - अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) नियम, 1995 - नियम 7(2) - डिफ़ॉल्ट जमानत की अस्वीकृति के खिलाफ अपील - अपीलकर्ताओं सहित चार आरोपियों के खिलाफ एफआईआर दर्ज की गई - अपीलकर्ताओं को 26.06.2021 को गिरफ्तार किया गया, उसी दिन अदालत में पेश किया गया, न्यायिक हिरासत में भेज दिया गया, जेल भेज दिया गया - अपीलकर्ताओं के अनुसार, अवधि नियम 7(2) के अनुसार नियम 1995 में दिए गए 60 दिन 25.08.2021 को पूरे हो गए और उस तारीख तक कोई पुलिस रिपोर्ट पेश नहीं की गई - इसलिए, 26.08.2021 को अपीलकर्ताओं ने आवेदन दायर कर इस आधार पर डिफॉल्ट जमानत मांगी कि उक्त अवधि के भीतर जांच पूरी नहीं हुई - खारिज - आदेश पर सवाल - माना गया कि नियम 7(2) में निहित प्रावधान, जिसके तहत जांच अधिकारी से अपराध और सजा की प्रकृति पर ध्यान दिए बिना 60 दिनों के भीतर जांच पूरी करने की उम्मीद की जाती है, धारा 167(2) में निहित प्रावधान पर अधिभावी प्रभाव डालता है और अधिनियम, 1989 या नियम, 1995 में निहित किसी भी प्रावधान की अनुपस्थिति में, जो धारा 167, विशेष रूप से धारा 167(2) में निहित प्रावधान के आवेदन को बाहर करता है, नहीं निकाला जा सकता क्योंकि ऐसा अनुमान अधिनियम, 1989 और नियम, 1995 के खिलाफ होगा - इसलिए, धारा 167(2) के अनुसार जांच समाप्त करने की अवधि 90 दिन होगी। 167(2) - अपील में कोई दम नहीं है, खारिज की जाती है। (पैरा 4, 18, 20)

आपराधिक अपील खारिज की जाती है। (ई-13)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. एम. रविन्द्रन बनाम खुफिया अधिकारी, राजस्व खुफिया निदेशालय, एआईआर 2020 एससी 5245

अनुवादित

2. ज्ञानेंद्र मौर्य बनाम यू.ओ.आई. और अन्य, 2023 एससीसी ऑनलाइन सभी 46, (पैरा 22 से 27)

3. भावनगर विश्वविद्यालय बनाम पालीताना शुगर मिल प्राइवेट लिमिटेड और अन्य, एआईआर 2003 एससी 511

(माननीय न्यायमूर्ति अजय कुमार श्रीवास्तव-I द्वारा दिया गया)

1. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री अमित कुमार अवस्थी, विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री दिलीप कुमार यादव, राज्य की ओर से श्री आलोक सरन, विद्वान ए.जी.ए. को सुना गया तथा अधिवक्तागण श्री एस.एस. राजावत और श्री सक्षम अग्रवाल, जिन्होंने भी इस मामले में शामिल कानून के प्रश्न पर इस न्यायालय को भी संबोधित किया है।

2. वर्तमान आपराधिक अपील, अनुसूचित जाति और अनुसूचित और जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 (इसके बाद 'अधिनियम, 1989' के रूप में संदर्भित) की धारा 14 ए(2) के तहत दायर की गई है, जिसमें विद्वान विशेष/ए.डी.जे., एस.सी./एस.टी. अधिनियम, लखीमपुर खीरी द्वारा व्यतिक्रम जमानत अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) नियम, 1995 (इसके बाद 'नियम, 1995' के रूप में संदर्भित) के सपठित नियम 7(2) के लिए अपराध संख्या 566/2021, अन्तर्गत धारा 304, 326, 323, 506 आई.पी.सी. एवं अधिनियम, 1989 की धारा 3(2)(वी), थाना कोतवाली सदर, जिला लखीमपुर खीरी में जमानत प्रार्थना-पत्र अन्तर्गत संहिता की धारा 167 दिनांकित 26.08.2021 में पारित आदेश दिनांक 10.09.2021 को चुनौती दी गई है।

3. एकमात्र संक्षिप्त प्रश्न, जो विचारणीय था, वह यह है कि क्या अधिनियम, 1989 के तहत अपराध(ओं) से संबंधित अन्वेषण पूरी करने के लिए प्रदान की गई अवधि नियमावली, 1995 के नियम 7(2) द्वारा शासित होगी और नियमावली, 1995 के नियम 7(2) के अनुसार 60 दिनों के भीतर संहिता की धारा 173(2) के तहत पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं करने की स्थिति में, अपराध(ओं) की प्रकृति और उसके लिए प्रदान की गई सजा पर ध्यान दिए बिना, एक आरोपी/अपीलकर्ता दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) (इसके बाद 'संहिता' के रूप में संदर्भित) के अनुसार व्यतिक्रम जमानत पर रिहा होने का हकदार होगा?

4. इस आपराधिक अपील के अग्रणी संक्षिप्त तथ्य यह है कि वर्तमान अपीलकर्ताओं सहित चार आरोपियों के खिलाफ मामला अपराध संख्या 0566/2021 वाली पहली सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी। अपीलकर्ताओं को 26.06.2021 को गिरफ्तार किया गया था और उसी दिन संबंधित विद्वान न्यायालय के समक्ष पेश किया गया था। इसके बाद, उन्हें न्यायिक हिरासत में लेकर और जेल भेज दिया गया। वर्तमान अपीलकर्ताओं के अनुसार, 60 दिनों की अवधि जो नियमावली 1995 के नियम 7(2) में प्रदान की गई 25.08.2021 को पूरी हो गई और उस तिथि तक, संबंधित विद्वान विशेष न्यायालय के समक्ष संहिता की धारा 173(2) के तहत कोई पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की गई। इसलिए, 26.08.2021 को, वर्तमान अपीलकर्ताओं ने संबंधित विद्वान विशेष न्यायालय के समक्ष संहिता की धारा 167(2)

अनुवादित

में प्रदान की गई व्यतिक्रम जमानत की मांग करते हुए, एक आवेदन इस आधार पर प्रस्तुत किया कि नियम 7(2) नियमावली, 1995 में प्रदान की गई 60 दिनों की अवधि के भीतर अन्वेषण समाप्त नहीं हुआ था और 60 दिनों की अवधि के भीतर कोई आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया था, इसलिए, अपीलकर्ता संहिता की धारा 167(2) में प्रदान की गई व्यतिक्रम जमानत के हकदार थे। वर्तमान अपील के प्रारूप के अवलोकन से यह भी प्रतीत होता है कि वर्तमान अपीलकर्ताओं के अनुसार, वर्तमान अपीलकर्ताओं के खिलाफ 26.08.2021 को आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था। हालांकि, अंततः संहिता की धारा 167(2) के तहत व्यतिक्रम जमानत की मांग करने वाले आवेदन को आक्षेपित आदेश दिनांक 10.09.2021 के माध्यम से खारिज कर दिया गया।

5. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि विवादित आदेश स्पष्ट रूप से अवैध है, क्योंकि इसे न्यायिक विवेक के बिना पारित किया गया है और नियमावली 1995 के नियम 7(2) में निहित प्रावधान का घोर उल्लंघन है।

6. उनका आगे कहना है कि आक्षेपित आदेश दिनांक 10.09.2021 से ही यह तथ्य सामने आता है कि इस मामले में विद्वान विचारण न्यायालय में 61वें दिन आरोप पत्र दाखिल की गई। विद्वान विचारण न्यायालय ने मामले का संज्ञान लिया और तदनुसार कार्यवाही की, हालांकि, आक्षेपित आदेश दिनांक 10.09.2021 के माध्यम से, विद्वान विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ताओं द्वारा व्यतिक्रम जमानत की मांग करते हुए दायर आवेदन को खारिज कर दिया, जो कि अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, नियमावली 1995 के नियम 7(2) में निहित प्रावधान के मद्देनजर अपीलकर्ता हकदार थे। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया है कि विद्वान विचारण न्यायालय यह मानने में त्रुटि कर गया कि चूंकि यह व्यतिक्रम जमानत का मामला है, इसलिए यह आवश्यक रूप से संहिता की धारा 167(2) में निहित प्रावधान द्वारा शासित होगा और अन्वेषण को समाप्त करने के लिए निर्धारित अवधि आईपीसी की धारा 304 और 326 के तहत अपराध के लिए प्रदान की गई सजा को ध्यान में रखते हुए 90 दिन होगी।

7. उन्होंने आगे कहा कि इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि इस मामले में अन्वेषण अधिनियम, 1989 के तहत अपराधों से भी संबंधित है और यह विशेष अधिनियम है, नियमावली 1995 के नियम 7(2) के रूप में इसमें निहित प्रावधानों का संहिता की धारा 167(2) में निहित प्रावधानों पर अधिभावी प्रभाव होगा, इसलिए व्यतिक्रम जमानत की उनकी मांग के आवेदन को विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा अनुमति दी जानी चाहिए थी।

8. उपरोक्त दलीलों को प्रमाणित करने के लिए, एम. रविंद्रन बनाम खुफिया अधिकारी, राजस्व खुफिया निदेशालय के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर भरोसा किया गया है, जिसमें यह माना गया है कि, एक आरोपी ने पहले ही व्यतिक्रम जमानत के लिए आवेदन किया है, तो अभियोजन पक्ष बाद में अंतिम रिपोर्ट/अतिरिक्त शिकायत या समय विस्तार की मांग करने वाली रिपोर्ट दाखिल करके अपने अपरिहार्य अधिकार के प्रवर्तन को विफल नहीं कर सकता है।

अप्रमाणित

9. इसके विपरीत श्री दिलीप कुमार यादव प्रतिपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता और श्री आलोक सरन राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए. ने यह प्रस्तुत करते हुए प्रार्थना का पुरजोर विरोध किया है कि नियमावली. 1995 के नियम 7(2) को शामिल करने के पीछे उद्देश्य अधिनियम, 1989 से संबंधित अपराध(धों) की अन्वेषण का शीघ्र और समयबद्ध निष्कर्ष सुनिश्चित करना है। उनका कहना है कि अधिनियम, 1989 या नियमावली, 1995 में व्यतिक्रम जमानत के लिए कोई विशिष्ट प्रावधान नहीं है। इसलिए, चूंकि 167(2) के तहत व्यतिक्रम जमानत मांगी जा रही थी, इसे अनिवार्य रूप से धारा 167(2) में निहित प्रावधानों के अनुसार निपटाया जाना था और धारा 167(2) में विभिन्न अपराध(धों) के संबंध में अन्वेषण के समापन के लिए निर्धारित अवधि अनिवार्य रूप से इस मामले में भी लागू होगी। इसलिए, वे प्रस्तुत करते हैं कि मामले के इस दृष्टिकोण में, आक्षेपित आदेश एक तर्कपूर्ण और अच्छी तरह से चर्चा किया गया आदेश है जिसमें इस न्यायालय द्वारा किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

10. श्री एस.एस. राजावत और श्री सक्षम अग्रवाल, अधिवक्ताओं ने यह भी प्रस्तुत किया है कि अधिनियम, 1989 या नियमावली, 1995 में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो संहिता की धारा 167 में निहित प्रावधान को स्पष्ट रूप से बाहर करता हो। उनका आगे प्रस्तुतीकरण यह है कि ज्ञानेन्द्र मौर्या बनाम भारत संघ और अन्य2 के मामले में इस न्यायालय की डिवीजन बेंच ने माना है कि जब तक स्पष्ट रूप से वर्जित नहीं किया जाता है, अधिनियम, 1989 के तहत मामलों की सुनवाई करते समय संहिता के प्रावधान लागू होंगे। इसलिए, उनका कहना है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने संहिता की धारा 167 की प्रयोज्यता के आधार पर व्यतिक्रम जमानत की मांग करने वाले आवेदन को सही ढंग से खारिज कर दिया है।

11. उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया है कि स्वापक औषधि और मनः प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 (इसके बाद 'एन.डी.पी.एस. अधिनियम' के रूप में संदर्भित) की धारा 36-ए (4) जैसे किसी भी स्पष्ट प्रावधान के अभाव में एन.डी.पी.एस. अधिनियम के तहत कुछ मामले में अन्वेषण के समापन के लिए विस्तारित अवधि का प्रावधान किया गया है, संहिता की धारा 167 में निहित प्रावधान अधिनियम, 1989 के तहत अपराध(धों) से संबंधित अन्वेषण के संबंध में लागू होंगे।

12. जहां तक अधिनियम, 1989 के तहत बनाए गए अनन्य/विशेष न्यायालय के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता की प्रयोज्यता के मुद्दे का संबंध है, इस न्यायालय की एक डिवीजन बेंच ने ज्ञानेंद्र मौर्य (उपरोक्त) के मामले में पैराग्राफ संख्या 22 से 27 में निम्नानुसार माना है:-

"22. अधिनियम 1989 या नियमावली, 1995 में, अधिनियम 1989 के तहत इन न्यायालयों द्वारा पालन किये जाने वाली प्रक्रिया निर्धारित नहीं की गई है। ऐसी प्रक्रिया, संहित 1973 में निर्धारित की गई है जिसमें दण्ड प्रक्रिया से संबंधित सामान्य कानून शामिल है।

23. इस संदर्भ में, संहिता 1973 की धारा 4 का उल्लेख करना प्रासंगिक है, जो इस प्रकार है:

अप्रमाणित

"4. भारतीय दण्ड संहिता, 1860 और अन्य विधियों के अधीन अपराधों का विचारण- (1) भारतीय दण्ड संहिता, 1860 (1860 का 45) के अधीन सब अपराधों का अन्वेषण, जांच, विचारण और उनके सम्बन्ध में अन्य कार्यवाही इसमें इसके पश्चात् अन्तर्विष्ट उपबन्धों के अनुसार की जाएंगी।

(2) किसी अन्य विधि के अधीन सब अपराधों का अन्वेषण, जांच, विचारण और उनके सम्बन्ध में अन्य कार्यवाही इन्हीं उपबन्धों के अनुसार किन्तु ऐसे अपराधों के अन्वेषण, जांच, विचारण या अन्य कार्यवाही की रीति या स्थान का विनियमन करने वाली तत्समय प्रवृत्त किसी अधिनियमिति के अधीन रहते हुए, की जाएगी।"

24. संहिता 1973 की धारा 5 इस प्रकार हैः

"5. व्यावृत्ति-इससे प्रतिकूल किसी विनिर्दिष्ट उपबन्ध के अभाव में इस संहिता की कोई बात तत्समय प्रवृत्त किसी विशेष या स्थानीय विधि पर, या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा प्रदत्त किसी विशेष अधिकारिता या शक्ति या उस विधि द्वारा विहित किसी विशेष प्रक्रिया पर प्रभाव नहीं डालेगी।"

25. संहिता 1973 की धारा 4 और 5 के अनुसार किसी भी अन्य कानून (जिसमें अधिनियम, 1989 शामिल होगा) के तहत सभी अपराधों की अन्वेषण, पूछताछ, विचारण और अन्यथा दण्ड प्रक्रिया संहिता के अनुसार निस्तारित किया जाएगा, बशर्ते कि किसी अधिनियम में, जिसमें इसके विपरीत विषयक, एक विशिष्ट प्रावधान हो। हमने पाया कि संहिता 1973 के कुछ प्रावधानों को विशेष रूप से, अधिनियम 1989 के अन्तर्गत कार्यवाही में, लागू करने से पृथक रखा गया है। अधिनियम 1989 की धारा 18, अग्रिम जमानत के संबंध में संहिता 1973 की धारा 438 के अमल को बाहर करती है। अधिनियम 1989 की धारा 18 और 18ए, संहिता 1973 की धारा 154 और 156 में निहित प्रावधानों के विपरीत प्रथम सूचना रिपोर्ट के पंजीकरण से पहले कोई प्रारंभिक अन्वेषण, वर्जित करती है धारा 19, संहिता 1973 की धारा 360 की प्रयोज्यता को वर्जित करती है। संहिता 1973 के अन्य प्रावधानों की प्रयोज्यता को विशेष रूप से या आम तौर पर वर्जित नहीं किया गया है, इसलिए, यह हमें उचित रूप से निष्कर्ष निकालने के लिए प्रेरित करता है कि संहिता 1973 के अन्य प्रावधान अधिनियम 1989 के तहत स्थापित और निर्दिष्ट न्यायालयों पर, इसकी धारा 20 के अधीन, लागू होंगे।

26. अधिनियम 1989 की धारा 20 निम्नानुसार प्रावधानित करती हैः

"20. अधिनियम का अन्य विधियों पर अध्यारोही होना-इस अधिनियम में जैसा अन्यथा उपबंधित है उसके सिवाय, इस अधिनियम के उपबंध, तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि या किसी रूढ़ि या प्रथा या किसी अन्य विधि के आधार पर प्रभाव रखने वाले किसी लिखत में उससे असंगत किसी बात के होते हुए भी, प्रभावी होंगे।"

27. अधिनियम 1989 की धारा 20 के अनुसार, इस अधिनियम 1989 में जैसा अन्यथा उपबंधित है उसके सिवाय, इस अधिनियम के उपबंध, तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि या किसी रूढ़ि या प्रथा या किसी अन्य विधि के आधार पर प्रभाव रखने वाले किसी लिखत में उससे असंगत किसी बात के

अनुवादित

हाते हुए भी, प्रभावी होंगे। इस प्रकार, अधिनियम 1989 और संहिता 1973 के बीच किसी भी असंगतता के अधीन, उक्त संहिता 1973 लागू होगी जब तक कि इसे अधिनियम 1989 में ही अन्यथा प्रावधानित नहीं किया गया हो। यह स्पष्ट रूप से अधिनियम, 1989 की धारा 18, 18ए और 19 में संदर्भित संहिता, 1973 की धारा 438, आदि की प्रयोज्यता से बहिष्कार को संदर्भित करेगा। इन तीन प्रावधानों के अलावा, अधिनियम 1989 के तहत कार्यवाही के लिए संहिता 1973 की प्रयोज्यता को छोड़कर, अधिनियम 1989 में कोई अन्य प्रावधान नहीं है, जो संहिता 1973 की धारा 156(3) सहित संहिता 1973 के अन्य प्रावधानों की प्रयोज्यता का भी संकेत है। संहिता 1973 की धारा 4(2) और 5 इस तर्क का समर्थन करते हैं।

(जोर दिया गया)

13. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भावनगर विश्वविद्यालय बनाम पालिताना शुगर मिल प्राइवेट लिमिटेड और अन्य3 के मामले में माना है कि यह क़ानून के निर्माण का मूल सिद्धांत है कि इसे समग्र रूप से पढ़ा जाना चाहिए, फिर अध्याय दर अध्याय, धारा दर धारा और शब्द दर शब्द, विधि के निर्वचन का आश्रय तभी अनिवार्य है जब उसमें संदिग्धता, अस्पष्टता या अननुरूपता हो, अन्यथा नहीं। क़ानून के सभी भागों को प्रभावी बनाने का प्रयास किया जाना चाहिए और जब तक बिल्कुल आवश्यक न हो, उसके किसी भी भाग को अधिशेष या निरर्थक नहीं बनाया जाएगा। कानून के किसी प्रावधान का सही अर्थ, कानून की योजना को ध्यान में रखते हुए, उसकी स्पष्ट भाषा में जो प्रदान किया गया है, उसके आधार पर निर्धारित किया जाना चाहिए। विधायिका की मंशा पर कानून का दायरा तब नहीं बढ़ाया जा सकता जब प्रावधान की भाषा सादा और स्पष्ट हो। दूसरे शब्दों में, वैधानिक अधिनियमों को आम तौर पर उसके स्पष्ट अर्थ के अनुसार समझा जाना चाहिए और किसी भी शब्द को जोड़ा, बदला या संशोधित नहीं किया जाएगा जब तक कि किसी प्रावधान को बाकी क़ानून के साथ अबोधगम्य, विसंगति, अकारण, अव्यवहारिक या पूरी तरह असंगत होने से रोकने के लिए ऐसा करना स्पष्ट रूप से आवश्यक न हो।

14. नियमावली 1995 के नियम 7(2) में निहित प्रावधान की सीमा के मूल्यांकन लिए नियम 7(2) एवं 7(2ए) का संदर्भ लेना उपयोगी होगा, जिन्हें यहां नीचे उद्धृत किया गया है:-

"(2) उप-नियम (1) के अधीन इस प्रकार नियुक्त अन्वेषण अधिकारी तीस दिन के भीतर उच्च प्राथमिकता पर अन्वेषण पूरा करेगा, पुलिस अधीक्षक को रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा, जो बाद में रिपोर्ट को तुरन्त राज्य सरकार को पुलिस महानिदेशक या पुलिस आयुक्त को भेजेगा और सम्बद्ध पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी साठ दिन की अवधि (इस अवधि में अन्वेषण और आरोप-पत्र फाइल किया जाना भी सम्मिलित है) के भीतर विशेष न्यायालय के अनन्य विशेष न्यायालय में आरोप-पत्र दाखिल करेगा।

(2-ए) उप-नियम (2) के अनुसार अन्वेषण में या आरोप-पत्र दाखिल करने में विलम्ब यदि कोई हो, अन्वेषणकारी अधिकारी द्वारा लिखित में स्पष्ट किया जायेगा।"

(जोर दिया गया)

अधिवक्ता

15. यदि संयुक्त रूप से पढ़ा जाए, तो उपरोक्त प्रावधान यह इंगित करेंगे कि उन्हें अधिनियम, 1989 से संबंधित मामले की त्वरित और कुशल अन्वेषण की सुविधा के लिए नियमावली, 1995 में शामिल किया गया था। किसी भी देरी की स्थिति में, संहिता की धारा 167(2) के समान प्रावधान होने के बजाय, नियमावली 1995 में नियम 7 (2ए) के रूप में एक प्रावधान है, जिसमें अन्वेषण अधिकारी को लिखित रूप में ऐसी देरी का कारण बताने की आवश्यकता होती है।

16. संहिता की धारा 167 (2) निम्नानुसार प्रावधान करती है:-

"(2) वह मजिस्ट्रेट, जिसके पास अभियुक्त व्यक्ति इस धारा के अधीन भेजा जाता है, चाहे उस मामले के विचारण की उसे अधिकारिता हो या न हो, अभियुक्त का ऐसी अभिरक्षा में, जैसी वह मजिस्ट्रेट ठीक समझे इतनी अवधि के लिए, जो कुल मिलाकर पन्द्रह दिन से अधिक न होगी, निरूद्ध किया जाना समय-समय पर प्राधिकृत कर सकता है तथा यदि उसे मामले के विचारण की या विचारण के लिए सुपुर्द करने की अधिकारिता नहीं है और अधिक निरूद्ध रखना उसके विचार में अनावश्यक है तो वह अभियुक्त को ऐसे मजिस्ट्रेट के पास, जिसे ऐसी अधिकारिता है, भिजवाने के लिए आदेश दे सकता हैः परन्तु-

(ए) मजिस्ट्रेट पंद्रह दिनों की अवधि से परे, पुलिस की हिरासत के अलावा, आरोपी व्यक्ति की हिरासत को अधिकृत कर सकता है; यदि वह संतुष्ट है कि ऐसा करने के लिए पर्याप्त आधार मौजूद हैं, लेकिन कोई भी मजिस्ट्रेट इस पैराग्राफ के तहत आरोपी व्यक्ति को कुल अवधि से अधिक के लिए हिरासत में रखने के लिए अधिकृत नहीं करेगा, -

(i) नब्बे दिन, जहां अन्वेषण मौत, आजीवन कारावास या कम से कम दस साल की अवधि के कारावास से दंडनीय अपराध से संबंधित है;

(ii) साठ दिन, जहां अन्वेषण किसी अन्य अपराध से संबंधित है, और, जैसा भी मामला हो, नब्बे दिन या साठ दिन की उक्त अवधि की समाप्ति पर, यदि आरोपी व्यक्ति तैयार है और जमानत देता है, तो उसे रिहा कर दिया जाएगा और इस उप-धारा के तहत जमानत पर रिहा किए गए प्रत्येक व्यक्ति को उस अध्याय के प्रयोजनों के लिए अध्याय XXXIII के प्रावधानों के तहत रिहा किया गया माना जाएगा;"

(जोर दिया गया)

17. अधिनियम, 1989 और नियमावली, 1995 की संपूर्ण योजना के सर्वेक्षण से पता चलता है कि एनडीपीएस अधिनियम की धारा 36-ए (4) में निहित प्रावधान के समान कोई प्रावधान नहीं है, जो प्रावधान करता है कि धारा 19 या धारा 24 या धारा 27-ए के तहत दंडनीय अपराध के आरोपी व्यक्तियों के संबंध में या वाणिज्यिक मात्रा से जुड़े अपराध के लिए संहिता की धारा 167 की उप-धारा (2) में संदर्भ "नब्बे दिन", जहां वे घटित होते हैं, "एक सौ अस्सी दिन" के संदर्भ में समझे जाएंगे। इसमें यह भी प्रावधान है कि यदि एक सौ अस्सी दिनों की उक्त अवधि के भीतर अन्वेषण पूरी करना संभव नहीं है, तो विशेष अदालत अन्वेषण की प्रगति का संकेत देने वाले लोक अभियोजक की रिपोर्ट और एक सौ अस्सी दिनों की उक्त अवधि से अधिक अभियुक्तों को हिरासत में रखने के विशिष्ट

अनुवादित

कारण पर उक्त अवधि को एक वर्ष तक बढ़ा सकती है।

18. इस प्रकार, एक निष्कर्ष यह है कि नियमावली 1995 के नियम 7(2) में निहित प्रावधान, जिसके तहत अन्वेषण अधिकारी से अपराध की प्रकृति और निर्धारित सजा के बावजूद 60 दिनों के भीतर अन्वेषण समाप्त करने की उम्मीद की जाती है, संहिता की धारा 167(2) में निहित प्रावधान पर एक अधिभावी प्रभाव पड़ता है, और वह भी अधिनियम, 1989 या नियम, 1995 में निहित किसी भी प्रावधान के अभाव में, जो संहिता की धारा 167 में निहित प्रावधान के आवेदन को बाहर करता है, विशेष रूप से संहिता की धारा 167(2) नहीं निकाली जा सकती क्योंकि ऐसा निष्कर्ष अधिनियम, 1989 और नियम, 1995 की योजना के विरुद्ध होगा।

19. यदि विधायी मंशा होती, तो विधायिका को अधिनियम, 1989 या नियम, 1995 में व्यतिक्रम जमानत के लिए स्पष्ट रूप से प्रावधान करना चाहिए था या वैकल्पिक रूप से अधिनियम, 1989 या नियम, 1995 में कुछ प्रावधान होना चाहिए था जो संहिता की धारा 167(2) में निहित प्रावधान को बाहर करता है। एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 36-ए(4) में निहित प्रावधान के समान किसी प्रावधान के अभाव में, इस न्यायालय की सुविचारित राय में, संहिता की धारा 167 में निहित प्रावधान अधिनियम, 1989 के तहत अपराध(ओं) की अन्वेषण पर भी लागू होंगे।

20. मौजूदा मामले को ध्यान में रखते हुए, माना जाता है कि अपीलकर्ताओं को 26.06.2021 को गिरफ्तार किया गया था और वर्तमान अपीलकर्ताओं के खिलाफ 26.08.2021 को आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था, जो कि मौजूदा आपराधिक अपील से अनुलग्नक संख्या 15 के रूप में संलग्न है, अंतर्गत धारा 326, 304, 323, 506 आई.पी.सी. और 3(2)5 एससी/एसटी अधिनियम। आईपीसी की धारा 304 और 326 के तहत अपराध आजीवन कारावास या 10 वर्ष के कारावास से दंडनीय है, इसलिए, इस मामले में अन्वेषण समाप्त करने की अवधि संहिता की धारा 167(2) के अनुसार 90 दिन होगी। इसलिए, ज्ञानेंद्र मौर्य (उपरोक्त) में इस न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा निर्धारित कानून को ध्यान में रखते हुए, संहिता की धारा 167 की प्रयोज्यता को अधिनियम, 1989 या नियमावली, 1995, में निहित किसी भी प्रावधान द्वारा विशेष रूप से बाहर नहीं किया गया है या प्रतिबंधित नहीं किया गया है, तदनुसार गणना की गई,, संहिता की धारा 167 इस मामले में लागू होगी। तदनुसार, आरोप पत्र 61वें दिन प्रस्तुत किया गया, 90 दिनों की निर्धारित अवधि के भीतर, जैसा कि ऊपर बताया गया है।

21. उपरोक्त के मद्देनजर, वर्तमान अपीलकर्ताओं के पक्ष में व्यतिक्रम जमानत मांगने का कोई अपरिहार्य अधिकार नहीं है। इसलिए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा एम. रविंद्रन (उपरोक्त) में निर्धारित कानून, इस न्यायालय की विनम्र राय में, मामले के मौजूदा तथ्यों पर लागू नहीं होता।

22. उपरोक्त समग्र चर्चा का निष्कर्ष यह है कि विद्वान ट्रायल कोर्ट ने वर्तमान अपीलकर्ताओं द्वारा संहिता की धारा 167(2) के तहत व्यतिक्रम जमानत की मांग करने वाले आवेदन को सही ढंग से खारिज कर दिया है, जोकि इस आधार पर दायर किया गया था

अनुवादित

कि नियम 1995 के नियम 7(2) के तहत निर्धारित 60 दिन आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया था, और वर्तमान अपीलकर्ताओं के पक्ष में कोई अपरिहार्य अधिकार अर्जित नहीं हुआ है, इसलिए, विद्वान विशेष न्यायालय द्वारा धारा 167(2) संहिता के तहत व्यतिक्रम जमानत की मांग करने वाले वर्तमान अपीलकर्ताओं द्वारा दायर आवेदन की अस्वीकृति को गलत नहीं ठहराया जा सकता।

23. विदाई से पहले, यह न्यायालय श्री एस.एस. राजावत और श्री सक्षम अग्रवाल, अधिवक्ता द्वारा प्रदान की गई मूल्यवान और ज्ञानपूर्ण सहायता के लिए अपनी सराहना दर्ज करता है।

24. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर और पूर्वोक्त कारणों से, इस न्यायालय को दिनांक 10.09.2021 के आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता या अनियमितता नहीं मिलती है, जिसमें इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की आवश्यकता हो सकती है। इसलिए, वर्तमान आपराधिक अपील गुणविहीन होने के कारण खारिज किए जाने योग्य है और तदनुसार इसे **खारिज** किया जाता है।

(2023) 6 ILRA 85

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 29.05.2022

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर

माननीय न्यायमूर्ति शिव शंकर प्रसाद

आपराधिक अपील संख्या 2207 वर्ष 2016

गुड्डू वर्मा ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता: श्री रमेश चंद्र मिश्रा, श्री दिनेश कुमार पांडे, श्री मनु शर्मा, श्री प्रेम सागर गुप्ता

प्रतिवादी के अधिवक्ता: जी.ए.

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302/34 और 201 - हत्या के लिए सजा - दोषसिद्धि के खिलाफ अपील - कठोर आजीवन कारावास - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161, 313 - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 106 - परिस्थितिजन्य साक्ष्य - पी.डब्लू. 1 ने लिखित रिपोर्ट दर्ज की कि उसकी बेटी ने फांसी लगाकर आत्महत्या कर ली और उसके ससुराल वालों की कोई गलती नहीं थी, अंतिम संस्कार के लिए उसे शव देने का अनुरोध किया - जांच के बाद आरोप पत्र पेश किया गया - आरोप तय किए गए - परीक्षण के दौरान सह-अभियुक्त की मृत्यु हो गई - पी.डब्लू.-1, पी.डब्लू.-6 और पी.डब्लू.-8 (दूसरे गांव के निवासी) की गवाही से यह स्पष्ट हुआ कि पी.डब्लू.-6 और पी.डब्लू.-8 को मृतक ने सूचित किया था उसके ससुर के साथ अवैध संबंध होने के कारण, उन्होंने उसे प्रताड़ित किया, अंततः उसकी हत्या कर दी और उक्त हत्या को छिपाने के लिए, उन्होंने उसके गले में रस्सी बांधकर उसे बांस की छड़ी पर लटका दिया, लेकिन यह पी.डब्लू.2, पी.डब्लू.-3 और पी.डब्लू.4 द्वारा साबित नहीं किया गया है, जो पी.डब्लू.-1 के रिश्तेदार हैं और उसी गांव के निवासी हैं, जहां उसकी बेटी के ससुराल वाले अपीलकर्ता के साथ रहते हैं - उक्त गांव के अन्य गवाहों द्वारा साबित नहीं किया गया

अग्रवाल

मृतक की मृत्यु हत्या थी, इच्छुक गवाहों की गवाही के आधार पर अपीलकर्ता को दोषी नहीं ठहराया जा सकता, किसी ने भी अपराध नहीं देखा है - पी.डब्लू.-1 से पी.डब्लू.-6 और पी.डब्लू.-8 के बयानों का उचित रूप से विश्लेषण नहीं किया गया है - आरोपित आदेश को रद्द किया जाता है। (पैरा 2, 3, 45, 52)

जेल अपील मंजूर। (ई-13)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. शरद बिरधीचंद सारडा बनाम स्टेट ऑफ महाराष्ट्र। (1984) 4 एससीसी 116, (पैरा 152 से 154) में रिपोर्ट किया गया
2. राम निवास बनाम हरियाणा का स्टेट. 2022 एससीसी ऑन लाइन एससी 1007 में रिपोर्ट किया गया
3. नागेंद्र साह बनाम बिहार का स्टेट. (2021) 10 एससीसी 725 में रिपोर्ट किया गया
4. साबित्री सामंतराय बनाम ओडिशा का स्टेट. एआईआर 2022 एससी 2591, (पैरा 18 और 19) में रिपोर्ट किया गया

(माननीय न्यायमूर्ति शिव शंकर प्रसाद द्वारा दिया गया)

1. यह आपराधिक अपील अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-1, महाराजगंज द्वारा सत्र विचारण संख्या 26 वर्ष 1998 (राज्य बनाम गुड्डू वर्मा), जो मुकदमा अपराध संख्या 112 वर्ष 1998, अन्तर्गत धारा 302/34, 201 भा०द०वि०, थाना-पनियारा, जिला महाराजगंज से उत्पन्न है, में पारित आक्षेपित निर्णय दिनांक 14.04.2016 के विरुद्ध निर्देशित है, जिसके तहत आरोपी गुड्डू वर्मा को भा०द०वि० की धारा 302/34 के तहत अपराध का दोषी ठहराया गया है और भा०द०वि० की धारा 302/34 के तहत अपराध कारित करने के लिए 20,000/- रुपये के जुर्माने के साथ कठोर आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई है, और जुर्माने का भुगतान न करने पर एक वर्ष का अतिरिक्त कारावास भुगतना होगा, और भा०द०वि० की धारा 201 के तहत 3000/- रुपये के जुर्माने के साथ तीन वर्ष का सश्रम कारावास की सजा सुनाई गई है, और जुर्माने का भुगतान न करने पर आगे तीन माह का अतिरिक्त कारावास भुगतना होगा।

2. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि दिनांक 13.04.1998 को शिकायतकर्ता/अ०सा०-1 अर्थात् जनार्दन पुत्र अधारे, निवासी ग्राम बरवाफहीम, थाना-कोतवाली, जिला महराजगंज ने लिखित रिपोर्ट दर्ज कराई थी जिसमें आरोप लगाया था कि उसने लगभग सात वर्ष पूर्व अपनी पुत्री संगीता की शादी अभियुक्त-अपीलार्थी गुड्डू पुत्र केदार के साथ की थी, उसकी पुत्री ने आज रात फांसी लगाकर आत्महत्या कर ली। आगे आरोप है कि उनकी बेटी की आत्महत्या में उसके ससुराल वालों की कोई गलती नहीं थी। वह आवश्यक कार्रवाई करने की सूचना दे रहे थे। उन्होंने अपनी बेटी का शव अंतिम संस्कार के लिए देने का भी अनुरोध किया। शिकायतकर्ता की उपरोक्त लिखित शिकायत पर मुकदमा अपराध क्रमांक 112 वर्ष 1998, अन्तर्गत धारा 302, 201 भा०द०वि०, थाना-पनियारा, जिला महराजगंज में दर्ज किया गया।

3. विवेचनाधिकारी ने जांच के दौरान साक्ष्य जुटाए तो प्रत्यक्षदर्शियों की साक्ष्यों से यह बात सामने आई कि आरोपी श्रीमती प्रतापी और गुड्डू वर्मा ने संगीता के चरित्र का झूठा आरोप

अनुवादित

लगाते हुए उसका चेहरा पकड़ लिया और उसके सिर के पिछले हिस्से को जबरदस्ती दीवार से टकरा दिया, जिससे वह घायल हो गई और मौके पर ही उसकी मौत हो गई। अपराध छिपाने के लिए दोनों आरोपियों ने उसके गले को रस्सी से बांध दिया और छत के पास बांस के डंडे पर शव को लटका दिया ताकि देखने वालों को हत्या का उक्त अपराध आत्महत्या लग सके।

4. सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 की लिखित रिपोर्ट पर प्राथमिकी दर्ज करने के बाद, उप-निरीक्षक बृज मोहन सिंह (अ०सा०-10) घटना स्थल पर पहुंचे और मृतका का पंचनामा (प्रदर्श-का/3) उसके द्वारा नियुक्त पंचान गवाहों की उपस्थिति में तैयार किया। शव को सील करवाने और सभी आवश्यक औपचारिकताएं पूरी करने के बाद अ०सा०-10 ने शव को मोर्चरी भिजवा दिया। पंचायतनामा के गवाहों द्वारा कोई निश्चित राय नहीं दी गई है। पंचायतनामा के प्रत्येक गवाह ने मृतका की मृत्यु के बारे में अलग-अलग राय दी है।

5. मृतका संगीता के शव का शव परीक्षण दिनांक 14.4.1998 को सायं 5:00 बजे डॉ. नूर अहमद (अ०सा०-7) द्वारा किया गया था तथा शव परिक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श क-1) में अ०सा०-7 ने कहा है कि मृतका की मृत्यु का कारण मृत्यु पूर्व चोटों के परिणामस्वरूप हुआ कोमा है:

"1. बाईं ओर गर्दन पर मौजूद लिगेचर का निशान - यह हत्या के बाद का है।

2. नीलगू निशान, दाईं ओर के चेहरे पर 6 सेमी x 4 सेमी।

3. सिर के पिछले हिस्से पर 6 सेमी x 4 सेमी नीलगू निशान के साथ सूजन, खोलने पर ओक्सीपीटल हड्डी हेमेटोमा टूटी हुई - हीमाटोमा उपस्थित।

6. विवेचना इंस्पेक्टर अरुण कुमार सिंह (अ०सा०-11) ने की। उन्होंने गवाहों के बयान दर्ज किए हैं और नक़्शा नज़री तैयार किया है। उन्होंने रस्सी भी इकट्ठी कर फर्द बरामदगी तैयार कर लिया है। उन्होंने आरोपी प्रतापी और गुड्डू को भी गिरफ्तार कर केस डायरी में उनके बयान दर्ज कराए हैं। द०प्र०स० के अध्याय XII के तहत वैधानिक जांच के निष्कर्ष के बाद अ०सा०-11 ने अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के खिलाफ धारा 302/34 और 201 भा०द०वि० के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया है।

7. आरोप पत्र प्रस्तुत करने पर, संबंधित मजिस्ट्रेट ने मामले में संज्ञान लिया और मामले को सत्र न्यायालय के पास भेज दिया, जिसके द्वारा 10 जून, 1998 को मामले की सुनवाई की जानी थी। 24 सितंबर, 1998 को, संबंधित न्यायालय ने आरोपी प्रतापी और गुड्डू के खिलाफ धारा 302/34 और 201 भा०द०वि० के तहत आरोप तय किए। आरोपी-अपीलकर्ता को आरोप पढ़कर सुनाया गया, जिससे उन्होंने इन्कार किया और विचारण की मांग की।

8. विचारण के दौरान सह-अभियुक्त श्रीमती प्रतापी की मृत्यु हो गई थी और सह-अभियुक्त श्रीमती प्रतापी के मामले को सत्र न्यायालय के दिनांक 12.03.2003 के आदेश द्वारा समाप्त कर दिया गया था। इस प्रकार इस मामले में केवल आरोपी-अपीलकर्ता गुड्डू वर्मा का विचारण पूरा हुआ।

अनुवादित

9. विचारण शुरू हुआ और अभियोजन पक्ष ने सात गवाहों की जांच की, जो इस प्रकार हैं:

1	शिकायतकर्ता जनार्दन	अ०सा०-1
2	चौथी	अ०सा०-2
3	श्रीमती बच्ची	अ०सा०-3
4	राम मिलन	अ०सा०-4
5	संत राज	अ०सा०-5
6	सुभावती	अ०सा०-6
7	डॉक्टर नूर अहमद	अ०सा०-7
8	शंभू शरण वर्मा	अ०सा०-8
9	राम धवन	अ०सा०-9
10	एस आई बृजमोहन सिंह	अ०सा०-10
11	इंस्पेक्टर अरुण कुमार	अ०सा०-11

10. अभियुक्त-अपीलकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोपों को स्थापित करने के लिए अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित दस्तावेजी साक्ष्य पर भरोसा किया है, जो विधिवत साबित हुए और परिणामस्वरूप प्रदर्श के रूप में चिह्नित किए गए:

1	तहरीरी रिपोर्ट दिनांक 13.4.1998	प्रदर्श क-2
2	रस्सी की फर्द बरामदगी दिनांक 13.4.1998	प्रदर्श क-8
3	पंचायत नाम दिनांक 13.4.1998	प्रदर्श क-3
4	शव परीक्षण रिपोर्ट दिनांक 14.4.1998	प्रदर्श क-1
5	सारणी के साथ नक्शा नज़री दिनांक 17.4.1998	प्रदर्श क-9
6	मूल आरोप पत्र दिनांक 4.5.1998	प्रदर्श क-10

11. अभियोजन साक्ष्य पूरा होने के बाद, अभियुक्त का बयान धारा 313 द०प्र०स० के तहत दर्ज किया गया था। आरोपी अपीलकर्ता ने अभियोजन पक्ष के संस्करण से इनकार किया और कहा कि गवाहों ने कुछ लोगों के प्रभाव में झूठे सबूत दिए। आरोपी ने अपने बचाव में दो गवाहों, योगेंद्र कुमार, ब०सा०-1 और रमाकांत, ब०सा०-2 से पूछताछ की।

12. विचारण के दौरान प्रस्तुत किए गए उपरोक्त साक्ष्य के आधार पर, विभिन्न निर्णय विधियों पर भरोसा करने के बाद निचली अदालत ने निष्कर्ष दर्ज किए हैं कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह विचार व्यक्त किया है कि कानून अभियोजन पक्ष पर वह साक्ष्य पेश करने का दायित्व नहीं डालता है जो अभियोजन पक्ष के लिए असंभव है। अभियोजन पक्ष का यह कर्तव्य है कि वह ऐसे मामलों में उन तथ्यों और परिस्थितियों के संबंध में साक्ष्य प्रस्तुत करे जिनके संबंध में वह साक्ष्य एकत्र कर सकता है। इस मामले में मृतका संगीता की आरोपी गुड्डू के घर में मौत हो गई और आरोपी-अपीलकर्ता सहित आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ मृतका की हत्या करने का आरोप लगाया गया है, इसलिए मृतका की मौत का कारण साबित करने के लिए सबूत का प्रारंभिक भार अभियुक्त पर है कि उन्होंने मृतका की हत्या नहीं की है, और यदि तथ्य का खुलासा किया जाता है अभियुक्त कि मृतका ने आत्महत्या कर ली है, तो आत्महत्या करने का उद्देश्य और उन गंभीर परिस्थितियों को

अनुवादित

जिसमें मृतका को आत्महत्या करने के लिए मजबूर किया गया था, को अभियुक्त द्वारा स्वाभाविक और संतोषजनक रूप से समझाया जाना चाहिए। इस मामले में, मृतका की हत्या आरोपी के घर में हुई है, और आरोपी सही कारण और तरीके के बारे में खुलासा करने में असमर्थ थे जिसमें मृतका आत्महत्या कर सकती थी और उसी के बारे में कुछ भी नहीं कहना इंगित करता है कि मृतका को केवल उनके द्वारा मारा गया था। विचारण न्यायालय ने पाया है कि उसके फैसले में उद्धृत निर्णय विधियां लागू होती हैं और राय दी है कि साक्ष्य के भार का उचित निर्वहन आरोपियों पर स्थानांतरित कर दिया गया है, जिसे वे साबित करने में विफल रहे हैं।

13. विचारण न्यायालय ने आगे दर्ज किया है कि हालांकि मामले में जांच में कोई विशिष्ट त्रुटि नहीं बताई जा सकती है और अभियोजन पक्ष के बयानों पर संदेह नहीं किया जा सकता है क्योंकि उसमें कुछ मामूली त्रुटि ही हुई है। बचाव पक्ष द्वारा दिए गए तर्कों में भी कोई सार नहीं है।

14. सबूतों के उपरोक्त संपूर्ण विश्लेषण के आधार पर, विचारण न्यायालय निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचा है कि बचाव पक्ष द्वारा दिए गए सभी तर्कों में कोई बल नहीं है। उपरोक्त साक्ष्यों के आधार पर, यह उचित संदेह से परे साबित हो गया है कि 12/13.04.1998 की रात को किसी अज्ञात समय में, आरोपी श्रीमती प्रतापी देवी (जो मुकदमे के दौरान मर गई) और गुड्डू वर्मा ने अपने सामान्य आशय के अग्रसारण में, अपने घर में चोट पहुंचाकर संगीता, जो आरोपी-अपीलकर्ता की पत्नी थी, की हत्या कर दी, और हत्या के अपराध से बचने के लिए उन्होंने उसके गले में रस्सी बांधकर उसे आत्महत्या की शक्ल देने की कोशिश की, जिसे अभियोजन पक्ष ने अपने प्रासंगिक ठोस साक्ष्य द्वारा उचित संदेह से परे साबित कर दिया है, इसलिए आरोपी गुड्डू वर्मा के खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 34 और धारा 201 सपठित धारा 302 के तहत अपराध उचित संदेह से परे साबित होता है। तदनुसार, उपरोक्त धाराओं के तहत अपराध के लिए उसे दोषी ठहराना पूरी तरह से उचित लगता है। विचारण न्यायालय ने तदनुसार अभियुक्त-अपीलकर्ता को भारतीय दंड संहिता की धारा धारा 302 सपठित धारा 34 और धारा 201 के तहत दोषी ठहराया है और उसे भा०द०वि० की धारा 302/34 के तहत अपराध के लिए 20,000 रुपये के जुर्माने के साथ आजीवन कारावास और भा०द०वि० की धारा 201 के तहत अपराध के लिए 3,000 रुपये के जुर्माने के साथ तीन साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई है।

15. विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और दोषसिद्धि के आदेश से व्यथित होने के कारण, अभियुक्त-अपीलकर्ता ने वर्तमान जेल अपील दायर की है।

16. अभियुक्त-अपीलकर्ता के अधिवक्ता की दलील यह है कि अपराध के कारित होने के साथ अभियुक्त को जोड़ने का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है; मकसद बिल्कुल कमजोर है जैसा कि अभियुक्त-अपीलकर्ता द्वारा स्वीकार किया गया है (?); अभियोजन का मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर टिका हुआ है जिसमें आरोपी-अपीलकर्ता को केवल संदेह के आधार पर फंसाया गया है और आरोपी अपीलकर्ता को दोषी ठहराने के लिए कोई सबूत मौजूद नहीं है।

अनुवादक

17. आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता या सह-आरोपी प्रतापी (अब मृतका) सहित परिवार के किसी अन्य सदस्य के खिलाफ क्रूरता के बारे में कोई शिकायत नहीं है, जो मृतका द्वारा घटना से पहले और घटना के बाद की गई थी। प्रथम सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 ने वर्तमान मामले में आरोपी-अपीलकर्ता और उसकी मां (सह-आरोपी) को केवल परेशान करने और प्रताड़ित करने के लिए फंसाया है। आरोपी अपीलकर्ता ने शादी के बाद अपने जीवन के दौरान मृतका के साथ पति के रूप में अपने कर्तव्यों का संतोषजनक ढंग से पालन किया था। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि 12 अप्रैल, 1998 की रात जल्द क्रोधित होने वाली महिला होने के कारण, अभियुक्त-अपीलकर्ता की पत्नी यानी मृतका ने पति और पत्नी के बीच मामूली विवाद के कारण फांसी लगाकर आत्महत्या कर ली और उक्त तथ्य अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयानों से स्थापित किया गया है। यह भी कहा गया है कि अभियोजन पक्ष के कई गवाहों को मुकदमे के दौरान मुकर जाने की घोषणा की गई, लेकिन विचारण न्यायालय ने केवल हितबद्ध गवाहों की गवाही के आधार पर, आरोपी-अपीलकर्ता को दोषी ठहराया। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि रिकॉर्ड पर उपलब्ध सबूतों पर विचार किए बिना अभियुक्त-अपीलकर्ता के खिलाफ विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि और सजा बहुत गंभीर है। इसके बाद यह प्रस्तुत किया गया है कि आरोपी-अपीलकर्ता के पास वर्तमान मामले को छोड़कर, उसका कोई आपराधिक इतिहास नहीं है और वह मुकदमे के दौरान जमानत पर था।

18. पूर्वोक्त की संचयी शक्ति पर, अपीलकर्ताओं के लिए उपस्थित अधिवक्ता अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयानों में असंगति को देखते हुए प्रस्तुत करता है; अभियोजन पक्ष परिस्थितिजन्य सबूतों के आधार पर उचित संदेह से परे आरोपी-अपीलकर्ता के अपराध को स्थापित करने में विफल रहा है। इस प्रकार सजा अत्यधिक है और इसे बनाए नहीं रखा जाना चाहिए और सजा के क्रम को मामले में उदार दृष्टिकोण लेते हुए संशोधित किया जाना चाहिए।

19. इसके विपरीत, श्री एनके शर्मा, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता, निर्णय और दोषसिद्धि के आदेश का समर्थन करते हुए, प्रस्तुत करते हैं कि प्रथम सूचना रिपोर्ट तुरंत दर्ज की गई है जिसमें आरोपी व्यक्तियों का नाम लिया गया है; अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करने के लिए ठोस सबूत हैं; वह घटना जिसमें मृतका, जो अभियुक्त-अपीलकर्ता की पत्नी थी, पर अपीलकर्ता सहित आरोपी व्यक्तियों द्वारा हत्या किए जाने का आरोप लगाया गया है, आरोपी व्यक्तियों के घर में हुई और साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के तहत यह आरोप हटाने का भार कि किन परिस्थितियों में और मृतका की मृत्यु कैसे हुई, यह अभियुक्त अपीलकर्ता पर है जिसे वह अपनी ओर से निर्वहन करने में विफल रहा है। आरोपी-व्यक्तियों के लिए हत्या करने का प्रबल आशय है, क्योंकि मृतका का अपने ससुर यानी आरोपी-अपीलकर्ता के पिता के साथ अवैध संबंध था। इसमें कोई संदेह नहीं है कि वर्तमान मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है जिसमें अभियोजन पक्ष द्वारा घटनाओं की श्रृंखला पूरी की गई है। अभियोजन पक्ष के

अनुवादित

मामले को चिकित्सा साक्ष्य द्वारा भी समर्थित किया गया है। घटना की जगह बचाव पक्ष द्वारा विवादित नहीं रही है; और आरोपी-अपीलकर्ताओं का प्रबल आशय या इरादा है और अभियोजन पक्ष के साक्ष्य द्वारा भी इसे समझाया गया है। इसलिए, अभियोजन पक्ष ने आरोपी-अपीलकर्ताओं के खिलाफ लगाए गए आरोप को उचित संदेह से परे साबित कर दिया है।

उपरोक्त की संचयी ताकत पर, अपर शासकीय अधिवक्ता आग्रह करता है कि इन परिस्थितियों में अभियुक्त-अपीलकर्ता को निचली अदालत द्वारा दी गई दोषसिद्धि और सजा, किसी हस्तक्षेप के योग्य नहीं है।

20. हमने पक्षों के अधिवक्ताओं द्वारा आग्रह की गई संबंधित दलीलों की जांच की है और निचली अदालत के रिकॉर्ड सहित वर्तमान अपील के रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

21. इस अपील में एकमात्र प्रश्न को संबोधित करने और निर्धारित करने की आवश्यकता है कि क्या विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा अपराध का निकाला गया निष्कर्ष और दी गई सजा क़ानूनी दृष्टिकोण से वैद्य और पोषणीय है और इसमें कोई दुर्बलता और विकृति नहीं है।

22. अभियुक्त-अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा स्थापित मामले के गुण-दोष, और अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा ख़ारिज किये गए विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और दोषसिद्धि के आदेश में प्रवेश करने से पहले, हमारे लिए अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयानों का संक्षेप में उल्लेख करना वांछनीय है।

23. अ०सा०-1/सूचनाकर्ता, जनार्दन जो मृतका संगीता के पिता हैं, ने अपनी जिरह में कहा है कि उनकी बेटी की सास और पति, क्रमशः प्रतापी और गुड्डी उनकी बेटी के साथ झगड़ा करते थे और उस झगड़े की सूचना उसके द्वारा उसकी मां को दी जा रही थी। मृतका और उसके ससुर के बीच अवैध संबंध होने के कारण उसकी सास प्रतापी उसका झगड़ा करती थी और उसकी मां की मिलीभगत से उसका पति भी उससे झगड़ा करता था। उन्होंने आगे कहा है कि मृतका की मौत की सूचना उन्हें सोमवार को तब मिली जब वह अपने खेत में गेहूं की फसल काट रहे थे और उक्त जानकारी उन्हें कामता के राम मिलन निवासी किसी व्यक्ति ने अपने खेत पर नहीं बल्कि रास्ते में दी थी कि उनकी बेटी संगीता की मृत्यु हो गई थी। उसके बाद वे भाई शंभू और राम मिलन के साथ कामता स्थित अपनी बेटी के ससुराल गए, जहां उन्होंने मृतका के शव को देखा, जिसे उत्तर-दक्षिण दिशा में रखा गया था और दाह संस्कार की तैयारी चल रही थी। शव घर के बाहर पड़ा था और उसने मृतका का चेहरा देखा तो उसने उसके गले पर निशान भी देखे।

24. इस गवाह ने आगे कहा है कि वह लिखित रिपोर्ट देने के लिए थाना नहीं गया था। उसका भाई प्रधान के यहां गया, जहां पता चला कि उसकी बेटी ने आत्महत्या कर ली है, इसलिए वह लिखित रिपोर्ट देने के लिए थाना नहीं गया। जिरह में इस गवाह ने आगे कहा है कि शादी के बाद जब मृतका पहली बार अपने मायके आई तो उसने अपनी मां को अपने और अपने पति और सास के बीच हुए झगड़े के बारे में बताया, और उसने उसे बताया नहीं। उसकी पत्नी सुभावती (अ०सा०-6) ने सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 को सूचना दी कि मृतका के ससुराल वाले उसे प्रताड़ित करते थे। इस

अप्रमाणित

गवाह ने आगे कहा है कि उसकी पत्नी यानी अ०सा०-6 ने उसे यह भी बताया है कि मृतका के ससुराल वाले उसे छोड़ने की धमकी देते थे और उसी मामले पर, उसने उसे समझाने के बाद, भेज दिया और उक्त मामले के बारे में कोई पंचायत नहीं हुई। मृतका जब दूसरी बार अपने मायके वापस आई तो उसने अपने ससुराल वालों की शिकायत नहीं की। इस गवाह ने आगे कहा है कि उसकी बेटी (मृतका) ने उसे अपने और अपने ससुर के बीच अवैध संबंधों के बारे में बताया था। इस गवाह ने आगे कहा है कि मौके पर पहुंचने के बाद कामता यानी उनकी बेटी (मृतका) के ससुराल वालों में से किसी ने भी उन्हें यह नहीं बताया कि संगीता के ससुर और खुद के बीच अवैध संबंधों के कारण उनकी बेटी की हत्या की गई है और यह तथ्य भी उन्होंने इंस्पेक्टर को नहीं बताया है। इस गवाह ने यह भी कहा है कि राम मिलन (अ०सा०-4) ने उसे हत्या के बारे में बताया था। चौथी (अ०सा०-2) ने राम मिलन को इस गवाह के यहां जाकर बुलाने के लिए भेजा था ताकि ये लोग शव को जला न सकें। इस गवाह की बहन, बच्ची (अ०सा०-3) की शादी चौथी (अ०सा०-2) से हुई है और राम मिलन चौथी का भाई है। राम मिलन ने उसे यह नहीं बताया कि गुड्डू आरोपी अपीलकर्ता और प्रतापी (अब मृत) 14.4.98 को उसके घर आए थे और कहा था कि उन्होंने संगीता की हत्या कर दी है।

सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 की गवाही के अवलोकन से पता चलेगा कि वह घटना का एक सुनी-सुनाई और हितबद्ध गवाह है। इस गवाह की गवाही विरोधाभासी है। उसने स्वीकार किया है कि संबंधित गांव के प्रधान द्वारा दी गई सूचना के अनुसार उसकी बेटी ने आत्महत्या की है, इसलिए वह लिखित रिपोर्ट देने के लिए थाना नहीं गया। उसके द्वारा संबंधित थाना को दी गई रिपोर्ट के अनुसार, उसकी बेटी संगीता ने आत्महत्या कर ली और आरोप लगाया है कि उसकी बेटी की आत्महत्या में उसके ससुराल वालों की कोई गलती नहीं थी। उनकी बेटी संगीता और उसके ससुर केदार वर्मा के बीच अवैध संबंध भी इस गवाह की गवाही से साबित नहीं हो पाए हैं।

25. अ०सा०-2 चौथी, जो मृतका के फुफा, माता-पिता और अ०सा०-1 की बहन के पति हैं, ने मुख्य परीक्षण में कहा है कि आरोपी-अपीलकर्ता गुड्डू की शादी संगीता यानी सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 की बेटी से हुई थी, और उनकी शादी घटना की तारीख से दस साल पहले हुई थी। संगीता की मौत उनके ससुराल यानी गांव कामता में हुई। वह नहीं जान सका कि संगीता की मौत कैसे हुई। जब उन्हें पता चला कि संगीता की मौत हो गई है तो उन्होंने जाकर देखा कि दरवाजे पर लाश पड़ी है। इस गवाह ने आगे कहा है कि सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 उसका बहनोई है और उसकी पत्नी बची (अ०सा०-3) है, जो सूचनाकर्ता की बहन है। केदार वर्मा आरोपी-अपीलकर्ता के पिता और मृतका के ससुर हैं, जो उनके गांव और उसी बिरादरी के हैं। संगीता की मौत के बाद केदार वर्मा के साथ उनके संबंध खराब हो गए हैं।

26. इस गवाह ने आगे कहा है कि संगीता अपनी मृत्यु के समय लगभग 20 वर्ष की थी। केदार वर्मा नहर और गली के किनारे दुकान चलाते थे और वहीं सोते भी थे। आरोपी गुड्डू और प्रतापी घर पर ही रहते थे। उन्हें नहीं पता था कि आरोपी-अपीलकर्ता गुड्डू और प्रतापी संगीता के चरित्र पर आरोप लगाते थे। उसे यह

अनुवादित

भी नहीं पता था कि उसके ससुर केदार वर्मा के संगीता के साथ अवैध संबंध थे या नहीं। संगीता की मौत किसी बीमारी से नहीं हुई थी।

27. इस गवाह ने इस बात से इनकार किया है कि वह अवैध संबंधों के कारण मृतका संगीता के शव को देखने नहीं गया था। वह यह भी नहीं बता सके कि संगीता की मौत फांसी लगाने से हुई है या नहीं। आरोपी-अपीलकर्ता गुड्डू और प्रतापी घटना के दिन उसके घर नहीं गए और न ही उसके सामने अपनी गलती के लिए माफी मांगी। अ०सा०-2 की उपरोक्त गवाही के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि न तो उसने अपनी आंखों से घटना देखी और न ही उसे संगीता और उसके ससुर केदार के बीच कथित अवैध संबंधों के बारे में पता चला, जबकि वास्तव में, वह भी उसी गांव में रह रहा है और मृतका का फूफा है। वह एक सुनी-सुनाई बात करने वाला और हितबद्ध गवाह है।

28. अ०सा०-3, अ०सा०-2 की पत्नी बच्ची, जो मृतका की बुआ, और मृतका के माता-पिता और सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 की बहन है, ने अपनी मुख्य परीक्षण में कहा है कि आरोपी-अपीलकर्ता गुड्डू और संगीता की शादी दस साल पहले उसके गांव में हुई थी। उसे नहीं पता था कि उसकी भतीजी संगीता की मौत कैसे हुई। संगीता की मौत के बारे में पता चलने के बाद, वह उसके शव को देखने गई। चूंकि यह साक्षी गर्भवती थी इसलिए संगीता के घर पहुंचने से पहले ही वह बेहोश हो गई। संगीता के ससुर केदार वर्मा उनके पट्टीदारी से नहीं बल्कि उसी बिरादरी के हैं। संगीता के निधन के बाद केदार वर्मा के साथ उनके संबंध अच्छे नहीं रहे। संगीता की मौत के बाद उनके पति ने अपने भाई राम मिलन को संगीता के पिता जनार्दन वर्मा को बुलाने भेजा। इस गवाह को घटना के बाद भी नहीं पता था कि संगीता की मौत कैसे हुई। आरोपी गुड्डू और प्रतापी ने उसे संगीता की मौत के बारे में नहीं बताया।

29. जिरह में, इस गवाह ने कहा है कि उसे नहीं पता था कि आरोपी-अपीलकर्ता गुड्डू और प्रतापी संगीता के चरित्र के बारे में आरोप लगाते थे या नहीं और संगीता के अपने ससुर केदार वर्मा के साथ अवैध संबंध थे या नहीं। उसे यह भी नहीं पता था कि संगीता की मौत बीमारी से हुई है या किसी ने उसकी हत्या कर दी है। इस गवाह ने स्पष्ट रूप से इनकार किया है कि आरोपी-अपीलकर्ता गुड्डू और प्रतापी ने अपनी भतीजी का चेहरा पकड़ने के बाद, दीवार पर उसका सिर धक्का दे दिया, जिसके कारण उसे चोट लगी और उसकी मृत्यु हो गई। उसने इस बात से भी इनकार किया है कि घटना के बाद आरोपी-अपीलकर्ता गुड्डू और प्रतापी उसके घर आए और बताया कि उन्होंने संगीता की हत्या कर दी है। उसने यह भी कहा है कि उसने इंस्पेक्टर को कोई बयान नहीं दिया। इस गवाह की गवाही से यह भी पता चलता है कि उसने घटना को अपनी आंखों से नहीं देखा था और न ही उसे संगीता और उसके ससुर केदार के बीच कथित अवैध संबंधों के बारे में पता चला था, जबकि वह भी अपने पति यानी मृतका की फुफा के साथ उसी गांव में रह रही है। वह एक सुनी-सुनाई और एक हितबद्ध गवाह है।

30. अ०सा०-4 राम मिलन, जो अ०सा०-2 के भाई और अ०सा०-3 के बहनोई हैं, ने अपने मुख्य परीक्षण में कहा है कि ग्रामीणों ने उन्हें सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 जनार्दन के स्थान पर

अनुवादित

जाकर संगीता की मृत्यु के बारे में सूचित करने के लिए कहा था, जिस पर वह साइकिल से जनार्दन के घर गए और उसे अपनी बेटी को देखने के लिए कहा क्योंकि वह मर गई थी। उन्होंने आगे कहा है कि गांव में हंगामा हुआ कि उसे मार दिया गया था। उसने यह भी कहा है कि अ०सा०-2 चौथी उसका भाई है और उसके भाई ने उसे संगीता की मौत के बारे में सूचित करने के लिए सूचनाकर्ता के यहां जाने के लिए नहीं कहा, जबकि ग्रामीणों ने उसे जाने के लिए कहा। उन्होंने यह भी कहा है कि उन्होंने घटना से पहले या घटना के बाद मृतका के शव को नहीं देखा था। इस गवाह ने आगे कहा है कि हालांकि ग्रामीणों ने उसे अपनी बेटी की मृत्यु की सूचना देने के लिए सूचनाकर्ता के घर जाने के लिए कहा था, लेकिन उसने सूचनाकर्ता को यह नहीं बताया बल्कि उसने बताया कि उसकी बेटी की तबीयत ठीक नहीं है। इस गवाह ने यह भी कहा है कि उसने इंस्पेक्टर को कोई बयान नहीं दिया। अपनी पूरी गवाही में इस गवाह ने मृतका और उसके ससुर केदार वर्मा के कथित अवैध संबंधों के बारे में एक शब्द भी नहीं कहा है।

इस गवाह की गवाही से, यह स्पष्ट है कि इस गवाह ने घटना को अपनी आंखों से नहीं देखा है। ये उसके द्वारा केवल एक सुनी-सुनाई बात है और एक हितबद्ध गवाह है।

31. अभियुक्त-अपीलार्थी अर्थात कामता बुजुर्ग के गांव निवासी संतराज अ०सा०-5 ने अपनी परीक्षा में कहा है कि सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 ग्राम बरवा फहीम का निवासी है और उसकी शादी ग्राम बरवा फहीम के सगे चाचा की बेटी के साथ हुई थी। चूंकि उसके ससुर का अपनी पत्नी के अलावा कोई बेटा नहीं था, इसलिए उसके ससुर की पूरी संपत्ति उसकी पत्नी के नाम पर थी, इसलिए वह अपने ससुराल में रहता था। वह कभी-कभी ग्राम कामता जाता था।

32. इस गवाह ने आगे कहा है कि जब संगीता की मृत्यु ग्राम कामता में उसके ससुराल में हुई थी, तब वह ग्राम बरवा फहीम में थी। संगीता की मौत के बारे में पता चलने पर वह उसे देखने गांव कामता बुजुर्ग गया, जहां उसे पता चला कि उसने फांसी लगाकर आत्महत्या कर ली है। इस गवाह ने आगे कहा है कि उसने बाद में भी घटना के बारे में किसी से बात नहीं की है। उन्होंने यह जानने की कोशिश नहीं की कि संगीता की मौत कैसे और किस तरीके से हुई।

33. इस गवाह ने अपनी जिरह में कहा है कि सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 के पिता और उसके ससुर सगे भाई हैं। उसने यह भी कहा है कि उसने यह नहीं देखा है कि आरोपी-अपीलकर्ता गुड्डू और प्रतापी ने संगीता की हत्या की। उसने सुना कि उन्होंने उसे पीटा है। कई मौकों पर उनके बीच झगड़ा हुआ। उन्होंने झगड़े की उक्त घटना का पहली बार विचारण न्यायालय के समक्ष खुलासा किया है। उसने इसकी जानकारी सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 को नहीं दी। सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 उसका बहनोई है।

34. प्रतिपरीक्षण में, इस गवाह ने कहा है कि इंस्पेक्टर के कहने पर वह घटना के 4 से 5 दिनों के बाद थाना गया था, जहां उसने यह नहीं बताया है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता गुड्डू यानी मृतका और प्रतापी के पति ने संगीता की हत्या की या नहीं। उन्होंने यह भी कहा है कि संगीता का किरदार अच्छा था और उनका चरित्र बुरा नहीं था।

अनुवादित

35. सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 की पत्नी सुभावती, जो मृतका संगीता की माता है, को अ०सा०-6 के रूप में पेश किया गया है, जिसने अपनी परीक्षा में कहा है कि उसकी पुत्री संगीता की शादी आरोपी अपीलकर्ता गुड्डू पुत्र केदार निवासी ग्राम कामता बुजुर्ग से हुई थी। उसने आगे कहा है कि उसकी शादी के पांच साल बाद जब उसकी बेटी संगीता अपने माता-पिता का घर छोड़ने के बाद अपने ससुराल गई थी, तो आरोपी प्रतापी और आरोपी-अपीलकर्ता गुड्डू उसकी बेटी पर आरोप लगाते थे कि उसके ससुर केदार के साथ अवैध संबंध हैं। जब उसकी बेटी संगीता अपने माता-पिता के घर आई तो उसने अपनी मां यानी अ०सा०-6 को भी यही बताया कि उसके अपने ससुर के साथ अवैध संबंध थे और उक्त तथ्य के कारण उसकी सास और पति उसे यातना देते थे और जान से मारने की धमकी देते थे।

36. इस गवाह ने आगे बताया है कि करीब 8 से 9 साल पहले उसके पति गुड्डू और सास प्रतापी ने मिलकर उसकी लड़की की हत्या कर दी थी और अपना जुर्म छिपाने के लिए आरोपी प्रतापी और गुड्डू ने उसके गले में रस्सी बांधकर फांसी लगा दी थी। उसने आगे कहा है कि उसकी बेटी की हत्या करने के बाद, आरोपी प्रतापी और गुड्डू उसकी बहन और बहनोई, अर्थात् बच्ची और चौथी के घर गए, जहां उन्होंने अपने अपराध के लिए माफी मांगी और उन्हें बचाने के लिए प्रार्थना की और फिर वहां से भाग गए, जबकि अ०सा०-2 चौथी के साथ-साथ अ०सा०-3 बच्ची ने अपनी गवाही में कहा है कि उन्हें नहीं पता था कि उसके ससुर केदार वर्मा के मृतका संगीता के साथ अवैध संबंध थे या नहीं। उन्होंने यह भी कहा है कि आरोपी-अपीलकर्ता गुड्डू और आरोपी प्रतापी घटना की तारीख पर उनके घर नहीं गए थे और न ही उन्होंने उनके सामने अपनी गलती के लिए माफी मांगी थी।

37. मृतका का शव परीक्षण करने वाले डॉ. नूर अहमद को अ०सा०-7 बताया गया है। उन्होंने अपने मुख्य परीक्षण में कहा है कि परीक्षा के दौरान उन्हें मृतका संगीता के मृत शरीर के विश्लेषण पर निम्नलिखित तथ्य मिले:

"1. मृतका की उम्र लगभग 18 वर्ष थी। शरीर मुड़ा था, आंखें खुले और मुंह बंद थे। जीभ थोड़ी बाहर निकली हुई थी। रिगोर मोर्टिस का चरण बीत चुका था। उसके गले में बाईं ओर लटकने का निशान था।

2. चेहरे के दाईं ओर 6 सेमी x 4 सेमी सूजन मौजूद थी।

3. मृतका के सिर के पिछले हिस्से पर 6 x 4 सेमी सूजन मौजूद थी। जब सिर खोला गया तो ओक्सीपीटल हड्डी टूटी हुई पाई गई और रक्त का थक्का मौजूद था।

सिर - रक्त का थक्का सूजी हुई झिल्ली

छाती - फेफड़े सूज गए थे

हृदय कक्ष भरा हुआ था।

पेट- छोटी आंत में गैस थी और बड़ी आंत भरी हुई थी।

जिगर- लीवर दो पौंड भरा हुआ था।

प्रसव- पूर्ण अवस्था का एक मृत बच्चा था। मौत करीब एक दिन पुरानी थी। मौत मृत्यु-पूर्व चोटों के कारण हुई थी।

38. जिरह में, इस गवाह ने निम्नानुसार कहा है:

मृतका की गर्दन पर चोट नंबर-1 है।

चोट नंबर-2 चेहरे पर है।

अनुवादित

चोट नंबर-3 सिर के पीछे है। चोट नंबर-2 संलयन चिह्न था,

जबकि चोट नंबर-3 सूजन के साथ संलयन थी।

चोट संख्या 1 और 2 प्रकृति में सरल हैं।"

39. इस गवाह ने कहा है कि अगर कोई व्यक्ति किसी कठोर वस्तु पर सिर के पीछे गिरता है, चोट नंबर-3 आ सकती है। मृतका की मौत कोमा में आने के बाद ही हुई। उन्होंने आगे कहा है कि अगर चोट नंबर-3 का ठीक से इलाज किया गया होता, तो उसकी मौत नहीं होती। मृत्यु की अवधि में दो से चार घंटे का अंतर संभव है।

40. शंभू शरण वर्मा, जो सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 का भाई और मृतका का चाचा है, को अ०सा०-8 के रूप में पेश किया गया है। उन्होंने अपने मुख्य परीक्षण में बताया है कि संगीता ने उन्हें बताया कि उसका पति और सास ट्रांजिस्टर की मांग करते थे और उक्त डिमांड पूरी न करने के लिए वे उसे प्रताड़ित करते थे जिस पर उन्होंने इस गवाह सहित संगीता को ट्रांजिस्टर (रेडियो) के साथ ससुराल भेज दिया। दो-चार दिन बाद संगीता के बुलाने पर यह साक्षी अपने ससुराल गई जहां उसने बताया कि उसका पति और सास उसे अलग-अलग तरह से परेशान कर रहे हैं। संगीता ने उसे बताया कि संगीता के पति ने उस पर अपने पिता के साथ अवैध संबंध होने का झूठा आरोप लगाया। उसने बताया कि उसकी सास ने भी उस पर इस तरह के झूठे आरोप लगाए। उस समय संगीता प्रेग्नेंट थीं। संगीता ने यह भी बताया कि उसका पति और सास उसे जान से मारने की धमकी दे रहे थे। यह गवाह उसके घर आया और अपने बड़े भाई यानी सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 को पूरी बात बताई। अगले दिन उसकी बहन के देवर राममिलन ने उसे अपने घर पर बताया कि संगीता मर चुकी है। सूचना मिलने के बाद उसका बड़ा भाई यानी सूचनाकर्ता/अ०सा०-1, उसकी पत्नी और गांव के दो-चार लोग संगीता के ससुराल गए। जैसे ही वह पनियारा थाना जाने के लिए बाहर निकला, आरोपी अपीलकर्ता गुड्डू और उसकी मां ने उसका पैर पकड़ लिया और यह कहते हुए रोने लगे कि उसने अपने लड़कपन में गलती से अपराध किया था। उन्होंने उक्त अपराध के लिए उनके खिलाफ प्राथमिकी दर्ज नहीं करने की भी प्रार्थना की। उन्होंने आगे कहा है कि जब वे संगीता के ससुराल पहुंचे, तो आरोपी-अपीलकर्ता गुड्डू और उसके परिवार के सदस्य मौजूद थे और उन्होंने बताया कि संगीता फांसी लगाकर मर गई है।

41. जिरह में इस गवाह ने कहा है कि जब उसने संगीता की मौत के बारे में ग्रामीणों से पूछा तो उसे पता चला कि आरोपी अपीलकर्ता और उसकी मां ने संगीता की हत्या कर दी और अपराध छिपाने के लिए उन्होंने उक्त हत्या को आत्महत्या का रंग दिया। उन्होंने आगे कहा है कि जब आरोपियों को लगा कि शव परिक्षण से संगीता की मौत का सही कारण पता चलेगा, तो वे उसकी बहन (अ०सा०-8) और बहनोई (बहनोई) के घर गए और कहा कि यह घटना सच थी और अपना अपराध स्वीकार कर लिया।

42. प्रतिपरीक्षण में इस गवाह ने स्वीकार किया है कि सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 द्वारा पुलिस को दी गई रिपोर्ट में उसने कहा है कि मृतका ने फांसी लगाकर आत्महत्या की थी और उसकी बेटी के ससुराल वाले इसके लिए जिम्मेदार नहीं थे।

अनुवादित

हालांकि इस गवाह ने यह भी दावा किया है कि उसे मृतका द्वारा सूचित किया गया था कि आरोपी-अपीलकर्ता गुड्डू और उसकी मां उसके ससुर के साथ अवैध संबंध होने का आरोप लगाते हुए उसे प्रताड़ित करते थे और उसी के कारण उन्होंने उसकी हत्या कर दी, लेकिन उसने इस घटना को अपनी आंखों से नहीं देखा है। ये उसके द्वारा एक सुनी-सुनाई बात है और एक वह हितबद्ध गवाह भी है।

43. रामदावन को अ०सा०-9 के रूप में पेश किया गया है और वह पंचनामा का गवाह है और उसने अदालत में भी इसे साबित किया है। उप निरीक्षक बृजमोहन सिंह को अ०सा०-10 के रूप में पेश किया गया है, जिन्होंने मृतका की पूछताछ तैयार की और आवश्यक औपचारिकताओं के बाद मृतका के शव को मोर्चरी भेज दिया। इस गवाह ने स्पष्ट रूप से कहा है कि न तो पुलिस को दी गई रिपोर्ट में और न ही पूछताछ की तैयारी के समय, सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 ने खुलासा किया है कि आरोपी अपीलकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों ने मृतका की हत्या की थी। श्री अरुण कुमार सिंह इंस्पेक्टर को अ०सा०-11 के रूप में नियुक्त किया गया है। इस गवाह ने मामले की जांच की है और नक़्शा नज़री तैयार करने, गवाहों के बयान दर्ज करने और आवश्यक औपचारिकताएं पूरी करने के बाद, उसने आरोपी के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया है।

44. मृतका संगीता के ससुर केदार वर्मा, जिस पर मृतका के साथ अवैध संबंध के आरोप आरोपी-अपीलकर्ता गुड्डू और उसकी मां प्रतापी द्वारा लगाए गए थे, अभियोजन पक्ष के गवाहों के संस्करण यानी अ०सा०-1, अ०सा०-6 और अ०सा०-8 के अनुसार, न तो अभियोजन पक्ष द्वारा और न ही बचाव पक्ष द्वारा पेश किया गया है।

45. अभियोजन पक्ष के गवाहों विशेष रूप से अ०सा०-1, अ०सा०-6 और अ०सा०-8 की गवाही की गहन जांच करने पर, यह न्यायालय पाता है कि अ०सा०-6 और अ०सा०-8 को मृतका द्वारा सूचित किया गया था और अ०सा०-1 को उसकी पत्नी अ०सा०-6 द्वारा सूचित किया गया था कि अभियुक्त-अपीलकर्ता गुड्डू और उसकी मां प्रतापी मृतका के खिलाफ उसके ससुर के साथ अवैध संबंध रखने का आरोप लगाते थे और उक्त आरोप के कारण, वे उसे यातना देते थे और अंततः उसे मार डाला और उक्त हत्या को छिपाने के लिए, उन्होंने उसे उसके गले में एक रोपल बांधकर बांस की छड़ी पर लटका दिया, लेकिन उक्त तथ्य अन्य गवाहों यानी अ०सा०-2, अ०सा०-3 और अ०सा०-4 द्वारा साबित नहीं किया गया है, जो कोई और नहीं बल्कि सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 के क्रमशः बहनोई, बहन और बहन के बहनोई/देवर? हैं और उसी गाँव के निवासी भी हैं, जहां आरोपी-अपीलकर्ता सहित उसकी बेटी के ससुराल वाले रहते हैं। अ०सा०-2, अ०सा०-3 और अ०सा०-4 ने मृतका के ससुर के साथ अवैध संबंध के उक्त तथ्य को पूरी तरह से नकार दिया है। यह विश्वास करना असंभव है कि व्यक्ति, जो एक ही स्थान पर रह रहे हैं और रिश्तेदार भी हैं, मृतका के अपने ससुर के साथ अवैध संबंध के बारे में नहीं जानते हैं, जबकि जो व्यक्ति दूसरे गांव में रहते हैं यानी अ०सा०-1, अ०सा०-6 और अ०सा०-8 को इसके बारे में जानकारी थी, लेकिन उन्होंने कभी भी पुलिस या पंचायत और उनके रिश्तेदारों सहित

अनुवादित

किसी अन्य प्राधिकरण के समक्ष कोई शिकायत नहीं की, जो एक ही गांव के रहने वाले हैं। उक्त तथ्य को उक्त गांव के एक अन्य गवाह ने भी साबित नहीं किया है।

46. इसलिए, हमारा विचार है कि यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य का मामला है और प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है क्योंकि अभियोजन पक्ष के सभी गवाह केवल जन श्रुति गवाह हैं; किसी ने भी इस घटना को अपनी आंखों से नहीं देखा है। परिस्थितिजन्य साक्ष्य की श्रृंखला में, आशय, जो इस मामले में अभियोजन पक्ष के साक्ष्य की सबसे मजबूत कड़ी है, कमजोर और अविश्वसनीय है। अभियोजन पक्ष द्वारा कथित आशय पर मुकदमे के दौरान अभियोजन पक्ष के नेतृत्व में साक्ष्य के आधार पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। कथित आशय के अलावा, अपीलकर्ता सहित आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ कोई अन्य परिस्थिति साबित नहीं हुई है। अन्यथा हम पाते हैं कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में घटनाओं की श्रृंखला, जिसे अभियोजन पक्ष द्वारा पूरा किया जाना आवश्यक है, अधूरी रह गई है।

47. चूंकि यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य का मामला है और इस बिंदु पर कानून अच्छी तरह से तय है कि अभियोजन पक्ष को घटनाओं की पूरी श्रृंखला साबित करनी होगी जो विशेष रूप से आरोपी अपीलकर्ता को जिम्मेदार ठहराए गए अपराध की परिकल्पना को इंगित करती है। यह कानून की भी आवश्यकता है कि अभियोजन पक्ष को यह दिखाना चाहिए कि तथ्यों पर वैकल्पिक परिकल्पना मौजूद नहीं है।

48. **शरद बिरधीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य (1984) 4 एस.सी.सी 116** में, सर्वोच्च न्यायालय ने परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर अभियुक्त के अपराध को साबित करने के लिए अभियोजन पक्ष द्वारा स्थापित किए जाने वाले पांच परीक्षण विकसित किए। पैराग्राफ संख्या 152 से 154 में पांच स्वर्ण सिद्धांतों की गणना की गई है, जिन्हें इसके बाद पुन: प्रस्तुत किया गया है:

> *"152. उच्च न्यायालय द्वारा जिन मामलों पर भरोसा किया गया है, उन पर चर्चा करने से पहले हम एक आपराधिक मामले में आवश्यक प्रकृति, चरित्र और आवश्यक प्रमाण पर कुछ निर्णयों का हवाला देना चाहेंगे जो केवल परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर टिकी हुई हैं। इस न्यायालय का सबसे मौलिक और बुनियादी निर्णय हनुमंत बनाम मध्य प्रदेश राज्य है। इस मामले का समान रूप से पालन किया गया है और इस न्यायालय द्वारा बाद के निर्णयों की एक बड़ी संख्या में लागू किया गया है, उदाहरण के लिए, तुफैल (उपनाम) बनाम सिम्मी के मामले। उत्तर प्रदेश राज्य और रामगोपाल बनाम महाराष्ट्र का राज्य। हनुमंत के मामले (उपरोक्त) में जस्टिस महाजन ने जो निर्धारित किया है, उसे देखना उपयोगी हो सकता है:*
>
> *"यह याद रखना अच्छा है कि ऐसे मामलों में जहां सबूत एक परिस्थितिजन्य प्रकृति के हैं, जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, उन्हें पहली बार में पूरी तरह से स्थापित किया जाना चाहिए और इस तरह स्थापित सभी तथ्य केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप होने चाहिए। फिर, परिस्थितियां एक निर्णायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिए और वे ऐसी होनी चाहिए कि हर*

अनुवादित

परिकल्पना को बाहर रखा जाए, बस एक को छोड़कर जिसको साबित करने का प्रस्ताव है। दूसरे शब्दों में, सबूतों की एक श्रृंखला होनी चाहिए जो अब तक पूरी हो जानी चाहिए ताकि अभियुक्त की बेगुनाही के अनुरूप कोई उचित निष्कर्ष न निकले और यह ऐसा होना चाहिए जिससे यह पता चले कि सभी मानवीय संभावना के भीतर कार्य अभियुक्त द्वारा किया गया होगा।

153. इस निर्णय का एक करीबी विश्लेषण निम्नलिखित शर्तों को पूरा किया जाना चाहिए इससे पहले कि एक अभियुक्त के खिलाफ एक मामले को पूरी तरह से स्थापित किया जा सकता है पता चलता है:

(1) जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, उन्हें पूरी तरह से स्थापित किया जाना चाहिए। यहां यह ध्यान दिया जा सकता है कि इस न्यायालय ने संकेत दिया कि संबंधित परिस्थितियों को 'स्थापित किया जाना चाहिए' और केवल होना 'नहीं' चाहिए। न केवल व्याकरणिक बल्कि 'साबित किया जा सकता है' और 'होना चाहिए या साबित किया जाना चाहिए' के बीच एक कानूनी अंतर है जैसा कि शिवाजी साहबराव बोबडे और अन्य के मामले में इस न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया था। (v) महाराष्ट्र राज्य, जहां निम्नलिखित टिप्पणियां की गई थीं निश्चित रूप से, यह एक प्राथमिक सिद्धांत है कि अभियुक्त को दोषी ठहराया जाना चाहिए और न केवल दोषी होना चाहिए और न केवल दोषी ठहराया जा सकता है बल्कि यह कि 'हो सकता है' और 'होना चाहिए' के बीच मानसिक दूरी लंबी है और यह दूरी निश्चित निष्कर्षों से अस्पष्ट अनुमानों को विभाजित करती है।

(2) इस प्रकार स्थापित तथ्य केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप होने चाहिए, अर्थात् उन्हें किसी अन्य परिकल्पना पर व्याख्या नहीं की जानी चाहिए सिवाय इसके कि अभियुक्त दोषी है;

(3) परिस्थितियाँ निर्णायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिए।

(4) उन्हें साबित होने वाली परिकल्पना को छोड़कर हर संभव परिकल्पना को बाहर करना चाहिए, और

(5) साक्ष्य की श्रृंखला इतनी पूर्ण होनी चाहिए कि अभियुक्त की निर्दोषता के अनुरूप निष्कर्ष के लिए कोई उचित आधार न छोड़ा जाए और यह दिखाना चाहिए कि सभी मानवीय संभावना में कार्य अभियुक्त द्वारा किया गया होगा।

154. ये पांच स्वर्णिम सिद्धांत, अगर हम ऐसा कह सकें, परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर किसी मामले के प्रमाण का पंचशील बनाते हैं।

49. **शरद बिरधीचंद सारदा (उपरोक्त)** के मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले का लगातार पालन किया गया है और हाल ही में **राम निवास बनाम हरियाणा राज्य** 2022 एस.सी.सी ऑन लाइन एस.सी 1007 के मामले में अदालत द्वारा दोहराया गया है।

50. जब हम उपरोक्त कसौटी पर रिकॉर्ड पर साक्ष्य का विश्लेषण करते हैं, तो हमें इस निष्कर्ष पर पहुंचने में कोई संकोच नहीं है कि

अनुवादित

अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे आरोपी अपीलकर्ता के अपराध को साबित करने में विफल रहा है। अभियोजन पक्ष द्वारा यह साबित नहीं किया गया है कि वर्तमान मामले में घटनाओं की श्रृंखला केवल आरोपी अपीलकर्ता की ओर से अपराध की परिकल्पना की ओर ले जाती है और एक वैकल्पिक परिकल्पना से इनकार नहीं किया जा सकता है।

51. उस समय के बीच भी काफी देरी हुई है जब सूचनाकर्ता ने पुलिस को एक रिपोर्ट दी थी जिसमें कहा गया था कि उसकी बेटी ने खुद को फांसी लगाकर आत्महत्या कर ली है और उसके ससुराल वालों के परिवार के सदस्य उक्त मौत के घटित होने में शामिल या जिम्मेदार नहीं थे और उस समय जब पुलिस ने जांच के दौरान धारा 161 द०प्र०स० के तहत अपने बयान दर्ज किए हैं, जिसमें कहा गया है कि आरोपी-अपीलकर्ता गुड्डू और उसकी मां प्रतापी ने मृतका की हत्या कर दी थी और अपराध छिपाने के लिए, उन्होंने उसके गले में रस्सी बांधकर उसे फांसी लगा दी क्योंकि उन्हें संदेह था कि उसके अपने ससुर के साथ अवैध संबंध थे। इसलिए, आरोपी-अपीलकर्ता की बेगुनाही का समर्थन करने वाली एक वैकल्पिक परिकल्पना से इनकार नहीं किया जा सकता है।

52. इस तथ्य को भी हम नजरअंदाज नहीं कर सकते हैं कि शव परीक्षण सर्जन डॉ. नूर अहमद (अ०सा०-7) के बयान और शव परीक्षण रिपोर्ट के अनुसार, यह स्पष्ट है कि मृतका की मौत हत्या है, क्योंकि उसके सिर और चेहरे पर चोटें आई थीं और उसके सिर पर लगी चोटों के कारण, उसकी मृत्यु हुई है। हालांकि, मृतका की उक्त हत्या की मौत में, अभियुक्त-अपीलकर्ता को केवल हितबद्ध और सुनी-सुनाई गवाहों की गवाही के आधार पर और परिस्थितिजन्य साक्ष्य की श्रृंखला के आधार पर भी दोषी नहीं ठहराया जा सकता है, जो उपरोक्त के हिसाब से पूरा नहीं हुआ है। अन्यथा भी, किसी ने यह नहीं देखा है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता और उसकी मां (मृत) ने मृतका को मार डाला था और अपराध को छिपाने के लिए, उन्होंने उसके गले में रस्सी बांधकर बांस की छड़ी पर लटका दिया। जांच एजेंसी का यह कर्तव्य था कि वह उस अपराधी का पता लगाए जिसने मृतका की हत्या का अपराध किया है।

53. उपरोक्त विचार-विमर्श और चर्चाओं के संदर्भ में अभियोजन पक्ष के नेतृत्व में साक्ष्य का विश्लेषण करने पर, हम पाते हैं कि निचली अदालत ने सही परिप्रेक्ष्य में अभियोजन पक्ष के साक्ष्य की जांच नहीं की है और इसके द्वारा दिए गए निष्कर्ष कि अभियोजन पक्ष अपने मामले को उचित संदेह से परे साबित करने में सफल रहा है, उचित नहीं है। अ०सा०-1, अ०सा०-2, अ०सा०-3, अ०सा०-4, अ०सा०-5, अ०सा०-6 और अ०सा०-8 के बयानों का ठीक से विश्लेषण नहीं किया गया है। अ०सा०-1, अ०सा०-6 और अ०सा०-8 के बयानों का अ०सा०-2, अ०सा०-3 और अ०सा०-4 द्वारा समर्थन नहीं किया गया है, जो उनके रिश्तेदारों के अलावा और कोई नहीं हैं और उसी गांव में रहते हैं जहां मृतका के ससुराल वाले रहते हैं। अन्यथा भी, अ०सा०-1, अ०सा०-6 और अ०सा०-8 की गवाही में, अहम भिन्नताएं और विरोधाभास हैं, जिन पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। इसलिए अभियोजन पक्ष मुकदमे के चरण में सबूतों के आधार पर आरोपी-अपीलकर्ता के अपराध को स्थापित करने में

अनुवादित

विफल रहा है। आरोपी-अपीलकर्ता की दोषसिद्धि और सजा को परिणामस्वरूप उसे संदेह का लाभ देते हुए उलट दिया जाता है। हमें यह भी बताया गया है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता मुकदमे के दौरान जमानत पर था और वर्तमान को छोड़कर उसकी कोई आपराधिक पृष्ठभूमि नहीं है।

54. जहां तक विचारण न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि के आक्षेपित निर्णय को पारित करते समय निकाला गया निष्कर्ष है कि चूंकि मृतका की मृत्यु अभियुक्त-अपीलकर्ता के घर में हुई है, जो कि हत्या है, भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के तहत सबूत का बोझ उस पर है और उसे अपने बोझ का निर्वहन करना था कि मृतका ने किन परिस्थितियों में और किस तरीके से मृत्यु धारण की है। जहां तक यह स्थापित कानून है कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 को तब तक लागू नहीं किया जा सकता जब तक कि अभियुक्त के अपराध को स्थापित करने का प्रारंभिक भार अभियोजन पक्ष द्वारा प्रथम दृष्टया निर्वहन नहीं किया जाता है। इसलिए, हम मानते हैं कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के प्रावधान तत्काल मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होते हैं क्योंकि अभियोजन पक्ष द्वारा इस तथ्य को साबित करने का प्रारंभिक बोझ नहीं है कि आरोपी अपीलकर्ता ने अपनी पत्नी की हत्या की थी। अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे आरोपी-अपीलकर्ता के अपराध को साबित करने में अपने प्रारंभिक बोझ का निर्वहन करने में पूरी तरह से विफल रहा है।

55. सर्वोच्च न्यायालय में (2021) 10 एस.सी.सी 725 में रिपोर्ट किए गए **नागेंद्र साह बनाम बिहार राज्य** के मामले में माना गया है कि जब कोई मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर टिका हुआ है, यदि अभियुक्त साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के आधार पर उस पर रखे गए बोझ के निर्वहन में उचित स्पष्टीकरण देने में विफल रहता है, इस तरह की विफलता परिस्थितियों की श्रृंखला के लिए एक अतिरिक्त लिंक प्रदान कर सकती है। परिस्थितिजन्य साक्ष्य द्वारा शासित मामले में, यदि अभियोजन पक्ष द्वारा स्थापित की जाने वाली परिस्थितियों की श्रृंखला स्थापित नहीं की जाती है, तो साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के तहत बोझ का निर्वहन करने में अभियुक्त की विफलता बिल्कुल भी प्रासंगिक नहीं है। न्यायमूर्ति **अजय रस्तोगी** और न्यायमूर्ति **अभय एस ओका** की खंडपीठ ने कहा कि जब श्रृंखला पूरी नहीं होती है, तो बचाव पक्ष की मिथ्यता आरोपी को दोषी ठहराने का कोई आधार नहीं है। प्रासंगिक भाग जिसका विषय इस प्रकार है:

> *"..... साक्ष्य अधिनियम की धारा 101 के तहत, जो कोई भी यह चाहता है कि कोई भी न्यायालय तथ्यों के अस्तित्व पर निर्भर दायित्व के रूप में निर्णय दे, उसे यह साबित करना होगा कि वे तथ्य मौजूद हैं। इसलिए, अभियोजन पक्ष पर हमेशा अभियुक्त के अपराध को उचित संदेह से परे लाने का भार होता है। इस प्रकार, धारा 106 धारा 101 का अपवाद है। .....*
>
> *हम मानते हैं कि एक दृष्टांत उस खंड की पूरी सामग्री को समाप्त नहीं करता है जिसे वह दिखाता है, लेकिन समान रूप से यह न तो अपने दायरे को कम कर सकता है और न ही इसका विस्तार कर सकता है; और यदि कुछ तथ्यों का ज्ञान अभियोजन पक्ष के लिए उतना ही उपलब्ध है, तो क्या*

अनुवादित

*उसे अभियुक्त के लिए साबित करने के लिए उचित परिश्रम नहीं करना चाहिए, तथ्यों को अभियुक्त के ज्ञान के भीतर "विशेष रूप से" नहीं कहा जा सकता है। यह एक ऐसा खंड है जिस पर सामान्य तरीके से विचार किया जाना चाहिए; और सुविधा का संतुलन और श्रम का अनुपात जो कुछ तथ्यों का पता लगाने और साबित करने में शामिल होगा, दांव पर मुद्दे की तुच्छता के खिलाफ संतुलित होगा और जिस आसानी से आरोपी उन्हें साबित कर सकता है, वे सभी मामले हैं जिन्हें ध्यान में रखा जाना चाहिए। इस धारा का उपयोग कानून के अच्छी तरह से स्थापित शासन को कमजोर करने के लिए नहीं किया जा सकता है, जो मामले के एक बहुत ही असाधारण वर्ग को छोड़कर, **भार अभियोजन पक्ष पर है और कभी नहीं बदलता है**। (महत्व दिया)"*

56. ए.आई.आर 2022 एस.सी 2591 में रिपोर्ट किए गए **साबित्री सामंतराय बनाम ओडिशा राज्य** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के हालिया फैसले में, यह निम्नानुसार देखा गया है:

"18. साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 यह मानती है कि उन चीजों को साबित करने का बोझ जो किसी व्यक्ति के विशेष ज्ञान के भीतर हैं, उस व्यक्ति पर है। यद्यपि यह धारा किसी भी तरह से अभियोजन पक्ष को उचित संदेह से परे सबूत के अपने बोझ का निर्वहन करने से नहीं रोकती है, लेकिन यह केवल यह निर्धारित करती है कि जब किसी व्यक्ति ने परिस्थितियों से संकेत देने वाले इरादे के अलावा किसी अन्य आशय से कोई कार्य किया है, तो यह साबित करने का दायित्व व्यक्ति पर पड़ता है न कि अभियोजन पक्ष पर। यदि अभियुक्त का आशय अलग था, तो तथ्य विशेष रूप से उसके ज्ञान में हैं, जिसे उसे साबित करना होगा।

19. इस प्रकार, हालांकि धारा 106 किसी भी तरह से अभियोजन पक्ष को किसी अभियुक्त के अपराध को स्थापित करने के बोझ से मुक्त करने के उद्देश्य से नहीं है, यह उन मामलों पर लागू होता है जहां अभियोजन पक्ष द्वारा घटनाओं की श्रृंखला सफलतापूर्वक स्थापित की गई है, जिससे अभियुक्त के खिलाफ एक उचित निष्कर्ष निकाला जाता है। इसके अलावा, परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित मामले में, जब भी अभियुक्त से कोई आपत्तिजनक सवाल पूछा जाता है और वह या तो प्रतिक्रिया से बचता है, या ऐसी प्रतिक्रिया देता है जो सच नहीं है, तो ऐसी प्रतिक्रिया अपने आप में घटनाओं की श्रृंखला में एक अतिरिक्त कड़ी बन जाती है। [देखें त्रिमुख मारोती किरकान बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2006) 10 एस.सी.सी 681]"

57. ऊपर की गई चर्चाओं और विचार-विमर्श के मद्देनजर, वर्तमान जेल अपील सफल होती है और अनुमति दी जाती है। आरोपी अपीलार्थी के विरुद्ध मुकदमा अपराध संख्या 112 वर्ष 1998 अन्तर्गत धारा 302/34, 201 भा०द०वि०, थाना-पनियारा, जिला महाराजगंज, से उत्पन्न सत्र विचारण संख्या 26 वर्ष 1998 (राज्य बनाम गुड्डू वर्मा) में अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-1, महाराजगंज,

अनुवादित

द्वारा पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 14.04.2016 को अपास्त किया जाता है।

58. अभियुक्त अपीलकर्ता-गुड्डू वर्मा, जो 13 अप्रैल, 2016 से जेल में है, को तुरंत रिहा कर दिया जाए, जब तक कि वह धारा 437-ए द०प्र०स० के अनुपालन पर किसी अन्य मामले में वांछित न हो।

59. इस निर्णय की एक प्रति मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, महाराजगंज को आवश्यक अनुपालन के लिए भेजी जाए।

(2023) 6 ILRA 101

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 23.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा

आपराधिक अपील संख्या 2989 वर्ष 2010

गजेंद्र सिंह ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता: श्री पी.के. सिंह, श्री अनुपम लालोरिया

प्रतिवादी के अधिवक्ता: शसकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302 और 506 - हत्या के लिए सजा - दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील - आजीवन कारावास - अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 - धारा 3(2) (v) - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 174, 313 - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 106 - प्रत्यक्ष साक्ष्य - मृतक की बेटी ने लिखित शिकायत दर्ज कराई कि उसके पिता की अनुपस्थिति में आरोपी अक्सर उसके घर आता था - उसके पिता द्वारा मना किए जाने के बावजूद उसकी मां उससे मिलने जाती थी - 07.01.2006 को उसके पिता ने खाना खाया और बेहोश हो गए - इसके बाद आरोपी और उसकी मां ने उस कमरे में कोई ज्वलनशील पदार्थ डाल दिया जहां उसके पिता सो रहे थे और उनकी मौत हो गई - आरोप-पत्र दाखिल - आरोप तय - एस.टी. ने तर्क दिया कि पी.डब्लू.-3 सह-आरोपी का सगा भाई है और वह अपनी बहन को झूठा फंसा नहीं सकता - बताया गया कि कैसे और किन परिस्थितियों में उसके बहनोई की हत्या उसकी सगी बहन ने अपीलकर्ता के साथ मिलकर की - माना गया कि एफआईआर दर्ज करने में देरी के बारे में संतोषजनक ढंग से बताया गया, आरोपियों ने उन्हें भी मारने की धमकी दी थी क्योंकि उनके पिता की हत्या की गई थी - अग्निशमन अधिकारी और पीएम डॉक्टर के साक्ष्य और पीडब्लू-1 और पीडब्लू-2 के मौखिक साक्ष्य से यह स्थापित हुआ कि न तो मृतक ने आत्महत्या की और न ही शॉर्ट सर्किट के कारण बिजली के झटके से उसकी मृत्यु हुई, बल्कि उसके शरीर पर ज्वलनशील पदार्थ डालकर आग लगाई गई - पीडब्लू-1 का यह साक्ष्य कि मृतक की मृत्यु के बाद सह-आरोपी ने अपीलकर्ता के साथ विवाह कर लिया, भी उसके खिलाफ जाता है - अपील में कोई दम नहीं है, खारिज की जाती है। (पैरा 5, 22, 36, 51, 52, 59, 61, 62, 66, 70)

आपराधिक अपील खारिज की जाती है। (ई-13)

अनुवादित

उद्धृत मामलों की सूची:

1. तारा सिंह और अन्य बनाम स्टेट ऑफ पु., 1991 एससीसी (सीआरएल) 710
2. रविंदर कुमार और अन्य बनाम स्टेट ऑफ पु., (2001) 7 एससीसी 690
3. अमर सिंह बनाम बलविंदर सिंह और अन्य, (2003) 2 एससीसी 518
4. साहेबराव और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2006) 9 एससीसी 794
5. भूकन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2020) 110 एसीसी 729
6. मुकेश बनाम दिल्ली के लिए स्टेट, एआईआर 2017 एससी 2161
7. पोद्दा नारायण बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (1975) 4 एससीसी 153
8. जॉर्ज बनाम केरल राज्य, एआईआर 1998 एससी 1376
9. ब्रह्म स्वरूप बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 2011 एससी 280
10. राधा मोहन सिंह @ लाल साहब बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2006 (54) एसीसी 862 (एससी)
11. चिमनभाई उकाभाई बनाम गुजरात राज्य, एआईआर 1983 एससी 484
12. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मोहम्मद इकराम, (2011) 3 एससीसी (सीआरआई) 354
13. रमाकांत राय बनाम मदन रा, 2005 एससीसीआरआर 1126 (एससी)
14. विजय पाल बनाम स्टेट (दिल्ली एनसीटी सरकार), (2015) 4 एससीसी 749
15. मल्लेला श्यामसुंदर बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (2015) 2 एससीसी 115
16. सद्दीक @ गुलाम हुसैन शेख और अन्य बनाम गुजरात राज्य, (2016) 10 एससीसी 663
17. भीम सिंह और अन्य बनाम उत्तराखंड राज्य, (2015) 4 एससीसी 281
18. दासिन बाई @ शांति बाई बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, 2015 (89) एसीसी 337 (एससी)
19. संजीव बनाम. हरियाणा राज्य, (2015) 4 एससीसी 387, (पैरा 16)
20. भगवान जगन्नाथ मरकड बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2016) 10 एससीसी 537
21. छोटानी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 2009 एससी 2013
22. गंगाधर बेहरा बनाम उड़ीसा राज्य, (2002) 8 एससीसी 381
23. विजयी सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1990) 3 एससीसी 190
24. रमेश हरिजन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2012) 5 एससीसी 777
25. सच सिंह बनाम पुंज राज्य, (2003) 7 एससीसी 643
26. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम अशोक कुमार श्रीवास्तव, एआईआर 1992 एससी 840
27. इंदर सिंह बनाम दिल्ली प्रशासन राज्य, एआईआर 1978 एससी 1091
28. जोस @ पप्पाचन बनाम पुलिस उपनिरीक्षक, कोयिलैंडी और अन्य, (2016) 10 एससीसी 519
29. गुरबचन सिंह बनाम सतपाल सिंह, एआईआर 1990 एससी 209

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा द्वारा दिया गया)

अनुवादित

1. अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री पी.के सिंह, राज्य के लिए अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता श्री विकास गोस्वामी को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

2. यह अपील विशेष न्यायाधीश (एस.सी/एस.टी एक्ट), कानपुर नगर द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 302, 506 तथा अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 (संक्षेप में 'एस.सी/एसटी एक्ट') की धारा 3(2)(v) के तहत मामला अपराध संख्या 226 वर्ष 2006, थाना-बर्रा, जिला कानपुर नगर से उत्पन्न सत्र विचारण संख्या 1210 वर्ष 2006 (राज्य बनाम माया वर्मा और अन्य) में पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांक 11.03.2010 के खिलाफ अपील की गई है, जो कि धारा 302, 506 भ०द०वि० और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3 (2) (v), (संक्षिप्त 'एस.सी/एस.टी एक्ट'), थाना-बर्रा, जिला कानपुर नगर के तहत है, जिसके द्वारा अपीलकर्ता को दोषी ठहराया गया है और भ०द०वि० की धारा 302 के तहत 1,00,000/- रुपये के जुर्माने के साथ आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई है और जुर्माना अदा न करने पर एक वर्ष के कठोर कारावास की सजा भुगतनी होगी और भ०द०वि० की धारा 506 के तहत एक वर्ष के कठोर कारावास की सजा भी सुनाई गयी है।

3. इसी फैसले से सह-अभियुक्त माया वर्मा को भी दोषी ठहराया गया था और इसी तरह की सजा सुनाई गई थी, लेकिन उसकी कैद के दौरान, उसे राज्य सरकार द्वारा छूट दी गई और उसे मुक्त कर दिया गया। उसके कारण, डिवीजन बेंच ने 23.03.2023 को उसकी अपील यानी आपराधिक अपील संख्या 2318 वर्ष 2010 (श्रीमती माया वर्मा बनाम यूपी राज्य) का निपटारा किया।

4. अपीलकर्ता-गजेंद्र सिंह ने आधार लिया है कि दोषसिद्धि रिकॉर्ड पर साक्ष्य के वजन के खिलाफ है; घटना दुर्घटनावश हुई; अधिकारियों को उचित जानकारी दी गई; फायर ब्रिगेड को 07/08-01-2006 की मध्यरात्रि को 01.15 बजे सूचित किया गया था और गवाह ने यह भी कहा है कि रात में वह शोर-शराबा सुनकर मौके पर गया और आग बुझा दी; बेटे, बेटियों और गृहस्थी को घर और घटनास्थल से बाहर ले जाया गया था, इसलिए, अपील की अनुमति दी जाए और आक्षेपित निर्णय को रद्द कर दिया जाए।

5. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि सूचनाकर्ता, मृतक रवींद्र कुमार वर्मा की बेटी कुमारी रामा वर्मा ने एक लिखित शिकायत दी जिसमें कहा गया कि उसके पिता जो बैंक ऑफ बड़ौदा, चौरे बाजार, जिला फैजाबाद में बैंक प्रबंधक के रूप में तैनात थे, आमतौर पर शनिवार शाम को घर आते थे और उनकी अनुपस्थिति में पड़ोसी गजेंद्र सिंह चौहान अक्सर उसके घर आते थे। पिता द्वारा मना किए जाने के बावजूद उनकी मां गजेंद्र सिंह से मिलती रहती थीं। 07.01.2006 को उसके पिता घर आए, उसकी माँ ने रात का खाना खुद ही परोसा। जैसे ही उसके पिता ने खाना खाया, वह बेहोश हो गया। बचा हुआ खाना उसके छोटे भाई ने खा लिया और उसके बाद वह भी बेहोश हो गया। उसी रात करीब 12:00 बजे किसी ने दरवाजा खटखटाया, उसकी मां ने दरवाजा खोला और गजेंद्र सिंह घर में घुस

अवधवाल

गया। दोनों ने बातचीत के बाद और अपने रास्ते में आने वाली बाधा को दूर करने के लिए एक साजिश रचते हुए, उस कमरे में कुछ ज्वलनशील पदार्थ डाल दिया जहां उसके पिता सो रहे थे। घर में सब कुछ जलने लगा। गजेंद्र सिंह चौहान और उसकी मां ने उसे धमकी दी कि अगर उसने इस घटना के बारे में किसी को बताया तो उन्हें भी इसका अंजाम भुगतना पड़ेगा। उसके पिता की मौके पर ही मौत हो गई और गजेंद्र सिंह फरार हो गया।

6. सूचनाकर्ता ने आगे कहा कि वह अपने छोटे भाई और बहन की जान बचाने के बाद नीचे आई थी। ऐसे में वह लोगों को सच्चाई नहीं बता पाई। सुबह उसके पिता के शव का शव परीक्षण कराया गया। वे तीन भाई-बहन हैं। वह बड़ी बहन है। उनके छोटे भाई प्रशांत वर्मा की उम्र लगभग 16 साल और छोटी बहन हर्षिता वर्मा की उम्र लगभग 14 साल थी। इसके परिणामस्वरूप उनकी माँ ने गजेंद्र सिंह चौहान से शादी की और वे एक साथ रहते थे। वे करीब पांच महीने से असहाय हैं और वे अक्सर इधर-उधर भटकते रहते हैं। अब उसकी मां का इरादा उसके पिता के पैसे और घर हड़पने का था और उन्हें भी जान से मारने की कोशिश की जा रही थी। गजेंद्र सिंह चौहान और उसकी मां ने साजिश रची थी और उसके पिता की हत्या कर दी थी।

7. 24.07.2006 को, प्राथमिकी किसी तरह अपराध संख्या 226 वर्ष 2006 में धारा 302/506 भ०द०वि० के तहत दर्ज की गई थी। विवेचनाधिकारी ने जांच शुरू की। पंचनामा और शव परीक्षण रिपोर्ट पहले ही तैयार की जा चुकी थी। सूचनाकर्ता की ओर इशारा करते हुए जांच के दौरान बाद में नक्शा नज़री प्रदर्श क-9 तैयार किया गया था। फायर ब्रिगेड विभाग की रिपोर्ट जैसे कुछ दस्तावेज भी एकत्र किए गए थे। विवेचनाधिकारी द्वारा तथ्य और औपचारिक गवाहों के बयान दर्ज किए गए। अभियुक्त व्यक्तियों के बयान भी दर्ज किए गए थे और यह पता लगाने के बाद कि अपीलकर्ता द्वारा धारा 302/506 भ०द०वि० के तहत एक मामला दर्ज किया गया है, अपीलकर्ता के खिलाफ 29.09.2006 को आरोप पत्र प्रदर्श क-10 प्रस्तुत किया गया था, जिस पर 12.10.2006 को संज्ञान लिया गया था। अभियुक्तों को समन किया गया और आरोप तय करने के बाद मुकदमा शुरू हुआ।

8. दिनांक 06.02.2007 को विचारण न्यायाधीश द्वारा अभियुक्त-अपीलकर्ता के खिलाफ धारा 302, 506 भ०द०वि० और धारा 3(2)(v) एस.सी/एस.टी एक्ट के तहत आरोप तय किए गए थे; आरोपियों/अभियुक्तों को आरोप पढ़कर सुनाया गया, जिससे उन्होंने इन्कार किया और विचारण चाहा!

अ०सा०-1	कुमारी रमा वर्मा, सूचनाकर्ता और तथ्य की गवाह, मृतक और आरोपी माया की बड़ी बेटी वर्मा, जिन्होंने लिखित शिकायत प्रदर्श क-1 साबित की है।
अ०सा०-2	कुमारी हर्षिता @ हंसा वर्मा, तथ्य की गवाह, मृतक और आरोपी माया की छोटी बेटी वर्मा और मुखबिर की छोटी बहन।
अ०सा०-3	राजेंद्र कुमार - आरोपी माया का सगा भाई वर्मा.
अ०सा०-4	आरोपी माया वर्मा का चचेरा भाई सुधीर (तथ्य का गवाह)।
अ०सा०-5	शिवदास प्रसाद, अग्निशमन

अनुवादित

	अधिकारी, मरियमपुर, कानपुर नगर जिन्होंने प्रदर्श क-2 साबित किया है।
अ०सा०-6	एचसी 118, राधेश्याम पांडे, पुलिस स्टेशन नौबस्ता, कानपुर नगर जिन्होंने चिक एफआईआर प्रदर्श क-3 और कार्बन कॉपी जी.डी प्रदर्श क-4 साबित की है।
अ०सा०-7	डॉ संतोष नारायण शुक्ला जिन्होंने शव परीक्षण रिपोर्ट प्रदर्श क-5 को साबित किया
अ०सा०-8	सब इंस्पेक्टर रामशरण वर्मा जिन्होंने पंचनामा रिपोर्ट प्रदर्श क-6 और सामग्री प्रदर्श-7 से 12 को साबित किया
अ०सा०-9	सब इंस्पेक्टर वीरेंद्र सिंह तत्कालीन कांस्टेबल क्लर्क थाना बर्रा जिन्होंने अभियोक्त्रि माया वर्मा द्वारा मृतक की करंट द्वारा मृत्यु के संबंध में दी गई सूचना को साबित किया और जिसको उन्होंने जी.डी रिपोर्ट नंबर 4 में 08.01.2006 को 2:20 A.M प्रदर्श क-7 और उसकी कार्बन कॉपी जी.डी प्रदर्श क-8 के तौर पर दर्ज किया
अ०सा०-10	सब इंस्पेक्टर बांके बिहारी थाना अध्यक्ष/विवेचना अधिकारी जिन्होंने नक्शा नज़री प्रदर्श क-9 को साबित किया
अ०सा०-11	ओम प्रकाश सिंह डी.एस.पी शहर फिरोजाबाद, इस केस के विवेचना अधिकारी जिन्होंने आरोप पत्र प्रदर्श क-10 को साबित किया और घटनास्थल की फोटोग्राफ सामग्री प्रदर्श-1 से 6 को साबित किया।

9. अभियोजन पक्ष द्वारा निम्नलिखित दस्तावेजी साक्ष्यों पर भरोसा किया गया था: -

तहरीरी रिपोर्ट	प्रदर्श क-1
फायर फाइटिंग ऑफिसर की रिपोर्ट	प्रदर्श क-2
चिक प्राथमिक	प्रदर्श क-3
जी.डी की कार्बन कॉपी	प्रदर्श क-4
शव परीक्षण रिपोर्ट	प्रदर्श क-5
पंचायत नामा	प्रदर्श क-6
जी.डी रिपोर्ट नंबर 4	प्रदर्श क-7
जी.डी की कार्बन कॉपी	प्रदर्श क-8
नक्शा नज़री	प्रदर्श क-9
आरोप पत्र	प्रदर्श क-10
घटनास्थल का फोटो	सामग्री प्रदर्श क-1-6
मृतक की घड़ियां और कपड़े	सामग्री प्रदर्श क-7-12

10. अभियुक्तों के बयान 16.09.2008 को धारा 313 द०प्र०स० के तहत दर्ज किए गए जिसमें माया वर्मा ने अभियोजन पक्ष की ओर से पेश किए गए आरोपों और सबूतों से इनकार किया और कहा है कि थाना को सूचना दी गई थी कि शॉर्ट सर्किट के कारण उनके पति की मृत्यु हो गई थी। फायर ब्रिगेड ने आग पर काबू पा लिया। उनकी बेटी और भाई को बरामद करने के बाद झूठे बयान दर्ज किए गए हैं। आरोपी गजेंद्र सिंह चौहान ने भी आरोपों, सबूतों से इनकार किया है और कहा है कि

अनुवादित

उसने माया देवी को कार चलाना सीखने में मदद की थी, इसलिए उसे भी झूठा फंसाया गया है।

11. तर्क सुनने के बाद, विचारण न्यायालय ने पाया कि धारा 302, 506 भ०द०वि० के तहत आरोप उचित संदेह से परे साबित हुए हैं, इसलिए अभियुक्त-अपीलकर्ता को दोषी ठहराया गया और ऊपर बताए गए अनुसार सजा सुनाई गई और धारा 3 (2) (v) एस.सी/एस.टी अधिनियम के आरोप के तहत बरी कर दिया गया।

12. संक्षेप में, गवाहों के बयान इसके बाद पुन: प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

13. अ०सा०-1, मृतक और आरोपी माया वर्मा की बेटी कुमारी रामा वर्मा ने अभियोजन पक्ष के पक्ष में गवाही दी है कि कार चलाना सीखने के दौरान उसकी मां और गजेंद्र सिंह काफी करीब आ गए और अंतरंग हो गए। पिता की गैर-मौजूदगी में गजेंद्र सिंह उसके घर आने लगा और दोनों के बीच अवैध संबंध बन गए। उसने खुद इसे 1-2 बार देखा था और अपने पिता को सूचित किया था, जिस पर उसके पिता ने उसकी मां को गजेंद्र सिंह से न मिलने का निर्देश दिया और घर में गजेंद्र सिंह के प्रवेश को भी प्रतिबंधित कर दिया, लेकिन गजेंद्र सिंह ने इसका पालन नहीं किया और अपने पिता की अनुपस्थिति में किसी भी समय, चाहे वह दिन हो या रात, उसके घर आता जाता रहा। जब वह स्कूल से घर आती थी तो वह घर के अंदर ही मिल जाता था। जब उसके छोटे भाई और बहन आपत्ति जताते थे तो उनकी मां उन्हें डांटती थी और अवैध संबंध बरकरार रहता था। उसकी मां उससे कार में मिलती थी।

14. मुख्य घटना के बारे में अ०सा०-1 ने गवाही दी है कि अंत में 07.01.2006 (शनिवार) को लगभग 10:30 बजे उसके पिता घर आए थे। उन्होंने अपनी पैंट उतार दी क्योंकि उनका पेट खराब हो गया था, वह चप्पल ढूंढता रहा और जब उन्हें चप्पल नहीं मिली, तो वह जूते लेकर (बाथरूम में) चला गया और फ्रेश होने के बाद उसके पिता खाने की मेज पर रात के खाने के लिए बैठ गए। उसकी मां ने पिता को खाना परोसा था। वह खाना बनाती थी लेकिन उस दिन खाना उसकी मां ने बनाया था। रात के खाने के बाद उसके पिता बेहोश हो गए, वह फर्श पर बैठ गए। थोड़ी देर तक मम्मी पापा उसके साथ बैठे रहे और उसके बाद वह दूसरे कमरे में पढ़ने चली गई। पढ़ने के बाद जैसे ही वह सोने जा रही थी दरवाजा खटखटाने की आवाज आई, उसने देखा कि गजेंद्र सिंह आया हुआ है। उसके हाथ में सफेद रंग का प्लास्टिक बैग था जिसमें कोई ज्वलनशील पदार्थ था और गजेंद्र सिंह के आने के बाद उसकी मां ने भी उससे थोड़ी देर बात की। उसके बाद गजेंद्र सिंह ने बक्से में लाए ज्वलनशील पदार्थ को उसके पिता की ओर फेंककर दरवाजे से उनके (बच्चों के) कमरे की तरफ फेंक दिया और उसकी मां ने माचिस से आग जलाई। आग उसके पिता के कमरे और उनके कमरे में भी बुरी तरह फैल गई। इस आग से उसके पिता की मौके पर ही मौत हो गई। जब उसके कमरे में आग फैली तो उसने अपने छोटे भाई और बहन को जोर से चिल्लाते हुए जगाया, तब उसकी मां और गजेंद्र सिंह चौहान ने उन्हें देखा था कि उन्होंने उन्हें आग लगाते हुए देखा था। उसकी मां और गजेंद्र सिंह ने उन्हें धमकी दी कि अगर उन्होंने किसी को

अनुवादित

यह बात बताई तो वे तीनों उसी हालत में होंगे जिस हालत में उनके पिता हैं। उन्होंने उन्हें कमरे में बंद कर दिया और उन्हें जलाने के इरादे से उनके कमरे में ज्वलनशील पदार्थ फेंक दिया। पिता की मौत के बाद मां माया वर्मा और गजेंद्र सिंह ने शव को एक साथ घसीटकर टीवी स्विच बोर्ड के पास रख दिया, मां ने शव से जूते उतारकर फेंक दिए। जब उसकी मौत हो गई तो आरोपी गजेंद्र सिंह कुछ देर मां के साथ रहा और फिर चला गया। स्थानीय लोगों की सूचना पर फायर ब्रिगेड ने आकर आग बुझाई।

15. उसकी मां और गेजेंद्र सिंह के अवैध संबंध थे और वह गजेंद्र सिंह से प्यार करती थी। पिता उनके रास्ते में बाधा थे इसलिए आरोपी व्यक्तियों ने उनके पिता की हत्या कर दी और उन्हें भी मारने की कोशिश की।

16. फरवरी, 2006 के अंत में रात 11:30 बजे उसे गजेन्द्र सिंह चौहान का फोन आया कि उसकी मां का गुजैनी पुल के पास एक्सीडेंट हो गया है, तुम तीनों वहां चले जाओ, घर पर वे अकेले थे और उन्हें शक हुआ कि उन्हें जान से मारने की कोशिश की जा सकती है इसी वजह से वे वहां नहीं गए लेकिन फोन करके उनके मामा सुधीर से उस के बारे में कहा, जो गुजैनी पुल पर गए और पाया कि कोई दुर्घटना नहीं हुई थी और तदनुसार उन्हें सूचित किया। उसके पिता की पहले ही मृत्यु हो चुकी थी, उसके बाल और उसकी बहन के बाल झुलस गए थे और उसके पैर और कपड़े जल गए थे। गवाह ने लिखित शिकायत प्रदर्श क-1 पर उसके हस्ताक्षर को पहचान लिया और इसे साबित कर दिया।

17. प्राथमिकी दर्ज करने में देरी के संबंध में इस गवाह ने गवाही दी थी कि वे युवा थे, उसके पिता की हत्या कर दी गई थी, केवल मां उनका सहारा थी, अगर मां को जेल होती तो वे असहाय हो जाते लेकिन उसकी अंतरात्मा ने उसे मजबूर किया कि हत्यारों को दंडित किया जाना चाहिए। एक अन्य घटना के बारे में इस गवाह ने बयान दिया है कि अपने पिता की हत्या करने से पहले उसकी मां ने घर में आने वाले ट्यूटर सर्वेश दीक्षित को बंद कर दिया था और गुंडों द्वारा उसकी पिटाई करवा दी थी; यह देखकर वे मां से बहुत डर गए थे। यह भी डर था कि कहीं उनकी मां उन्हें किसी और जगह मार न दे। जब उन्हें पता चला कि उनकी मां को सर्वेश दीक्षित के मामले में जेल भेज दिया गया है तो उन्होंने अपने डर पर थोड़ा काबू पाया और उन्होंने एस.एस.पी को एक पत्र दिया। गवाह ने यह भी बयान दिया है कि उसका बयान विवेचनाधिकारी और सी.ओ पुलिस ने दर्ज किया था। उसने घटना से संबंधित फोटो को भी पहचान लिया।

18. जिरह में गवाह बरकरार रही है और उसने यह भी गवाही दी है कि कभी-कभी उसके माता-पिता के बीच इस बिंदु पर लड़ाई होती थी। उसके पिता तनाव में रहते थे। उनकी मां कांग्रेस पार्टी की एक सक्रिय राजनीतिज्ञ थीं। मारुति कार को दिसंबर 2002 में खरीदा गया था। उसने इस मामले की जानकारी अपने मामा और मौसी को दी थी। उसने गवाही दी कि जहां भी ज्वलनशील पदार्थ फेंका गया था, उसे जला दिया गया था। कुर्सी, मेज जला दी गई। पिता के कमरे में कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था। उनके कमरे में पूरी तरह से आगजनी हो गई और दरवाजा धीरे-धीरे जलने लगा। उसके बिस्तर का कुछ हिस्सा भी जल गया था। जब आग लगी तो सबसे पहले उसके छोटे

अनुवादित

भाई और बहन को उठाया गया। कमरा इतना नहीं जल रहा था। आरोपी गजेंद्र सिंह और माया वर्मा ने धमकी दी थी कि जो उनके पिता के साथ हुआ वह इंस्पेक्टर को बताया गया तो उनके साथ भी होगा। वे रोए या चिल्लाए नहीं क्योंकि वे डर गए थे। उसके पिता के पूरे शरीर में आग लगी हुई थी। उसके पैर में हल्की आग लगी थी। पूरा शरीर जला नहीं था। शरीर झुलस गया था और काला पड़ गया था। पायजामा नीचे जला हुआ था। पड़ोसियों ने आग बुझाई। उसने अपनी मां और गजेंद्र सिंह को घर में आग लगाते देखा था। जब आग जलाई गई थी या मिट्टी का तेल फेंका गया था, वह शोर नहीं कर सकती थी क्योंकि यह सब अचानक हुआ था। वे (बच्चे) आग लगने के 5-7 मिनट बाद बाहर आए थे, पिता की चीखें और चिल्लाने की आवाज नहीं सुनी गई। वह उनके सामने मर गया। वह 2-3 मिनट तक जिंदा रहा। जब वह वापस घर आई तो उसके पिता का शव रखा हुआ था और पुलिसकर्मी वहां मौजूद थे। (घटना के बाद, सूचनाकर्ता और बाकी दो बच्चों को पड़ोसी के घर में स्थानांतरित कर दिया गया)।

19. इस गवाह ने जिरह में आगे गवाही दी है कि जला हुआ बिस्तर सी.ओ को दिखाया गया था लेकिन उसने इसे अपने कब्जे में नहीं लिया। उन्होंने खुद कमरों का निरीक्षण किया था। वह अपने पिता को बचाने उनके कमरे में नहीं जा सकी क्योंकि उनके कमरे में भी आग लग गई थी। उसके पिता चिल्ला नहीं सकते थे, भले ही उनके शरीर में आग लगी हुई थी। गजेंद्र और माया वर्मा अपने पिता से 3-4 कदम की दूरी पर एक ही कमरे में थोड़ी दूरी पर खड़े थे। गजेंद्र सिंह और उसकी मां ने उसे खींचकर स्विच बोर्ड के पास रख दिया। इस गवाह के अनुसार, उसके पिता की मृत्यु के 3-4 महीने बाद, उसकी माँ ने अपने फंड से लगभग डेढ़ लाख रुपये (1,50,000/-) निकाल लिए थे; वह अपने पिता के पैसे हड़पना चाहती थी। उसने इस बात से इनकार किया कि उसके पिता के फंड के पैसे और उसकी मां और उसके मामा के बीच घर के बारे में कोई दुश्मनी थी। गवाह ने आगे कहा कि जब वह घर में आई तो वहां कुछ भी नहीं था, घर का सारा सामान बर्बाद हो गया था।

20. अ०सा०-2, कुमारी हर्षिता @ हंसा वर्मा ने अ०सा०-1 के समान बयान दिया है। इस गवाह ने यह भी बयान दिया है कि उसकी मां और आरोपी गजेंद्र सिंह के बीच अवैध संबंध थे, जिसकी सूचना उसके पिता को दी गई थी। इस गवाह और अ०सा०-1 के साक्ष्य के बीच कोई असमानता, विरोधाभास और भिन्नता नहीं है। इस गवाह ने यह भी बयान दिया है कि घटनास्थल पर उसकी मां और गजेंद्र सिंह मौजूद थे। गजेंद्र के हाथों में एक सफेद प्लास्टिक की थैली थी जिसमें ज्वलनशील पदार्थ था। चूंकि उन्होंने घटना देखी थी, इसलिए आरोपियों ने उन्हें धमकी दी थी कि अगर उन्होंने घटना के बारे में किसी को बताया तो उनके पिता के साथ जो हुआ, वह उनके साथ होगा। धमकियों के कारण वे बहुत डरे हुए थे। वह स्वीकार करती है कि उसके बाल और स्कर्ट जला दिए गए थे और उसकी बहन का कुर्ता भी जला दिया गया था। धमकी देने के बाद आरोपियों ने उसके पिता का हाथ पकड़कर स्विच बोर्ड के पास रख दिया। उसके पिता की मौके पर ही मौत हो गई थी। घटना के बाद उसकी मां ने उन्हें पड़ोसी के घर भेज

अनुवादित

दिया था। गजेंद्र सिंह के साथ अवैध संबंध रखने के कारण मां ने उसके पिता की हत्या कर दी थी, जिसमें उसके पिता बाधा थे। इस गवाह ने भी इसी प्रकार का बयान अभियुक्त गजेन्द्र सिंह द्वारा फरवरी, 2006 के अंत में रात्रि लगभग 11.30 बजे अपनी मां की एक नकली दुर्घटना के संबंध में कॉल करने के संबंध में दिया है। उन्होंने ट्यूटर सर्वेश दीक्षित के साथ दुर्व्यवहार के बारे में भी ऐसा ही बयान दिया है।

21. अ०सा०-3, राजेंद्र कुमार मामा, अभियुक्त माया वर्मा के सगे भाई ने अभियोजन पक्ष के समर्थन में गवाही दी है। उन्होंने बयान दिया है कि घटना से लगभग 3-4 महीने पहले, उनके बहनोई, रवींद्र कुमार वर्मा ने उन्हें फोन किया था, वह अपनी बड़ी बहन विमला के साथ कानपुर पहुंचे थे। उसके बहनोई ने उसे बताया कि वह बहुत परेशान था। बहुत गंभीर समस्या है क्योंकि माया वर्मा ने सभी गहने चुरा लिए थे और सभी पैसे एक गजेंद्र सिंह को दे दिए थे जो समय-समय पर अपने घर आते रहते थे। माया से उसका अवैध सम्बन्ध है। जीजाजी ने उसे समझाने की कोशिश की तो माया समझने को तैयार नहीं हुई और वह लड़ने पर आमादा हो गई। उसने और विमला ने उसे समझाने की कोशिश भी की। उन्हें पता चल गया था कि दोनों के बीच काफी अंतरंग संबंध है और वह कुछ भी कर सकती है। इसके बाद उसने अपने बहनोई की मौत के बारे में सुना। उस समय उनके भतीजे और भतीजियों ने कुछ नहीं बताया क्योंकि वे बहुत डरे हुए थे और वह उन्हें भरतपुर ले आए और कुछ दिनों के बाद उन्हें वापस कानपुर छोड़ दिया। डेढ़ महीने बाद रामा वर्मा ने उन्हें फोन किया, वह कानपुर पहुंचे। बच्चे बहुत डरे हुए थे। पुलिस ने उसकी बहन माया वर्मा को गिरफ्तार कर लिया। उसके भतीजे और भतीजी ने बताया कि उनकी मां और गजेंद्र सिंह ने उनके पिता को आग लगाकर मार डाला है। उन्हें भी गजेंद्र सिंह ने उनकी मां के एक्सीडेंट के बहाने रात में गुजैनी पुल पर बुलाया लेकिन रामा वर्मा की सूझबूझ से वे बच गए वरना तीनों बच्चे मारे जाते। उसने गवाही दी कि उसे विश्वास था कि उसके बहनोई को गजेंद्र और माया वर्मा ने मिलकर मार डाला क्योंकि उनके अवैध संबंधों में बाधा थी। चूंकि भतीजे और भतीजियों ने घटना को देख लिया था, इसलिए उन्हें भी जान से मारने की योजना थी। गजेंद्र और माया ने अपने बहनोई के घर से सारा सामान और पैसे छीन लिए। इस गवाह ने जिरह में भी और अभियोजन पक्ष के पक्ष में इसी तरह का बयान दिया है।

22. अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने तर्क दिया कि यह गवाह आरोपी माया वर्मा का असली भाई है और उसकी बहन को झूठा फंसाने का कोई कारण नहीं था, यही कारण है कि उसका साक्ष्य बड़ी महत्वपूर्ण सामग्री है जो बताता है कि कैसे और किन परिस्थितियों में उसके बहनोई को उसकी सगी बहन ने उसके प्रेमी गजेंद्र सिंह के साथ मिलकर मार डाला।

23. अ०सा०-4, सुधीर आरोपी माया वर्मा का चचेरा भाई है। उनके अनुसार, उनके बच्चे उन्हें मामा कहते थे। रवींद्र वर्मा की मौत के बाद वह बच्चों की देखभाल के लिए उनके घर आते थे। जब वह उनके घर जाता था, तो माया वर्मा के बच्चों ने उसे और उनके असली मामा को बताया था कि उनके पिता को उसकी माँ और गजेंद्र चौहान ने जला दिया था और उन्होंने

अनुवादित

उन्हें जान से मारने की धमकी भी दी थी। फरवरी, 2006 को लगभग 11:30 बजे माया वर्मा की बेटी रमा वर्मा ने फोन किया और उन्हें बताया कि गजेंद्र ने फोन किया है कि उसकी मां गुजैनी के पास एक दुर्घटना का शिकार हो गई है और उन तीनों को वहां बुलाया गया है। वे वहां जाने से डरते थे। फिर वह अपने घर गया, बच्चों ने उसे बात बताई और सुनने के बाद वह गुजैनी ब्रिज गया जहां उसे पता चला कि वहां ऐसा कोई हादसा नहीं हुआ है। उसने माया वर्मा को फोन किया तो उसने बताया कि वह प्रिया नर्सिंग होम में है, जब वह पहुंचा तो माया वर्मा और गजेंद्र सिंह और 2-3 अन्य व्यक्ति वहां थे, दुकानें बंद थीं। उसे देखकर गजेंद्र और अन्य लोग वहां से चले गए और वह माया को लेकर घर में आ गया जिससे यह स्पष्ट हो गया कि माया वर्मा और गजेंद्र सिंह चौहान बच्चों को मारने की योजना बना रहे थे। इसके बाद बच्चों ने भरतपुर से अपने सगे मामा को बुलाया था और उनके आने पर वे उनके साथ भरतपुर चले गए। इस गवाह ने जिरह में भी ऐसा ही बयान दिया है।

24. अ०सा०-5, शिवदास प्रसाद, अग्निशमन अधिकारी ने गवाही दी है कि 07/08.01.2006 को 01:15 बजे वायरलेस सेट से सूचना मिली कि मकान नंबर एच-1-103, विश्वकर्मा बैंक, बर्रा में आग लगा दी गई है। इसकी सूचना पर वह अपने साथियों के साथ वहां पहुंचे तो पाया कि उक्त बिल्डिंग की पहली मंजिल पर आग जल रही थी और स्थानीय लोग आग बुझाने की कोशिश कर रहे थे। उन्होंने आग बुझाई और घर के अंदर गए और पाया कि किचन सुरक्षित है और बाथरूम में तीन पालतू कुत्ते छिपे हुए थे, उन्हें बाहर निकाला गया, दूसरे कमरे में एक व्यक्ति टीवी के पास पालथी मारकर बैठा था और टेलीफोन का तार उसके ऊपर गिर गया था। खिड़की खुली थी। एक व्यक्ति बैठा था और उसके शरीर का एक हिस्सा आग से झुलस गया था। वह व्यक्ति लगभग 42 वर्ष का श्री रवींद्र कुमार था जिसे पुलिस ने मृत घोषित कर दिया। पुलिस ने घटना की जांच शुरू कर दी और मकान मालकिन से पूछताछ की। आग लगने के कारणों के बारे में पूछताछ करने पर मकान मालकिन आग लगने के कारणों के बारे में स्पष्ट और संतोषजनक जवाब नहीं दे पाई। पहले ही आग बुझा चुके सोनू दीक्षित और बी.के तिवारी ने बताया कि तीनों बच्चों को भागने के रास्ते आग से भगाया गया। पूछने पर उन्होंने बताया कि आग कुछ ही समय में दोनों कमरों में फैल गई। कमरे में रखा सामान सुरक्षित था, सिर्फ दरवाजा और पलंग जला हुआ था। इस गवाह का विचार था कि आग शॉर्ट सर्किट के कारण शुरू नहीं हुई थी, बल्कि इसे ज्वलनशील पदार्थ डालकर लगाया गया था, इसीलिए उसने अपनी रिपोर्ट में आग के स्रोत के रूप में अन्य कारण लिखे थे, इसीलिए उसने आग के कारण को संदिग्ध के रूप में चिह्नित किया था। जब वह माया वर्मा से आग के बारे में बात कर रहे थे, तो उनकी बेटी ने रोते हुए कहा कि "मम्मी आपने हमारे पिता को मार दिया है"। तब माया वर्मा ने अपना मुंह बंद कर लिया। उनकी रिपोर्ट को सी.एफ.ओ द्वारा प्रतिहस्ताक्षरित भी किया गया था और इसे मूल रूप में पुलिस उप महानिरीक्षक, अग्निशमन सेवा, यूपी, लखनऊ को प्रस्तुत किया गया था और इसकी प्रतियां अन्य अधिकारियों को भी भेजी गई थीं। गवाह ने

अनुवादित

अपनी रिपोर्ट प्रदर्श क-2 को साबित कर दिया है।

25. जिरह में भी इस गवाह ने अविच्छिन्न सबूत दिए हैं और गवाही दी है कि कमरे में जलने की गंध थी, उसे यह संदिग्ध लगा क्योंकि रसोई और सिलेंडर सुरक्षित थे। रवींद्र वर्मा पर एक तार गिर गया था और इसका किसी भी चीज (सर्किट) से कोई संबंध नहीं था। टीवी स्क्रीन पर कोई धमाका नहीं हुआ लेकिन यह अखंडित था। कमरे के अंदर तार बरकरार नहीं था क्योंकि आग लगने से यह कुछ हद तक खराब हो गया था।

26. अ०सा०-6, एचसी 118, राधेश्याम पांडे ने चिक प्राथमिकी प्रदर्श क-1 और कार्बन कॉपी जी.डी प्रदर्श क-4 साबित की है।

27. अ०सा०-7, डॉ. संतोष नारायण शुक्ला, जिन्होंने मृतक का शव परीक्षण किया था, ने गवाही दी है कि मृतक लगभग 65% जल गया था। सिर के बाल झुलस गए थे। शव के जले हुए हिस्सों में लालिमा की रेखा थी। मस्तिष्क और झिल्लियों में संकुचन थी। मृतक की मौत मृत्यु पूर्व से जलने के कारण सदमे और रक्तस्राव के कारण हुई थी। इस गवाह के अनुसार मृत्यु 07/08.01.2006 की रात लगभग 12:00 बजे आग लगने के कारण संभव है और मृत्यु बिजली का करंट लगने के कारण नहीं हुई है। यह संभव नहीं है कि मृतक में बिजली के शॉर्ट सर्किट की वजह से आग भी लग गई हो। धमाके से भी आग लगाना संभव नहीं है। यह आत्मघाती मौत नहीं थी। गवाह ने इस बात से इनकार किया कि मृतक का जलना शॉर्ट सर्किट से संभव था।

28. अ०सा०-8, एस.आई रामशरण वर्मा ने जांच को साबित किया है। इस गवाह ने सामग्री प्रदर्श -7-12 को भी साबित किया है जो मृतक के कपड़े और घड़ी थे। इस गवाह ने इस बात से इनकार किया कि मृतक की मौत शॉर्ट सर्किट के कारण हुई थी।

29. अ०सा०-9, एस.आई वीरेंद्र सिंह, तत्कालीन कांस्टेबल क्लर्क ने आरोपी माया वर्मा द्वारा दायर आवेदन प्रदर्श क-7 और कार्बन कॉपी जी.डी प्रदर्श क-8 को साबित किया है।

30. अ०सा०-10, एस.एस.आई बांके बिहारी, विवेचनाधिकारी ने गवाही दी है कि प्राथमिकी दर्ज करने के बाद, उन्होंने जांच शुरू की। माया वर्मा ने बताया था कि बिजली की चिंगारी से उनके पति की मौत हो गई थी। उसने आरोपी माया वर्मा को गिरफ्तार कर उससे पूछताछ की जिसमें उसने सह-आरोपी गजेंद्र सिंह चौहान के साथ अवैध संबंध स्वीकार किया और यह भी स्वीकार किया कि चूंकि उसका पति उनके रिश्ते में बाधा था, इसलिए उन्होंने उसकी हत्या कर दी। गवाह ने मृतक के पुत्र प्रशांत वर्मा व पुत्री कुमारी हर्षिता वर्मा का बयान दर्ज कर कुमारी रामा वर्मा की निशाने पर नक्शा नज़री तैयार कर जितेन्द्र व प्रेम सिंह का बयान दर्ज कराकर पंचायत नामा व शव परीक्षण रिपोर्ट एकत्रित कर फायर फाइटिंग ऑफिसर की रिपोर्ट पर गजेन्द्र सिंह चौहान को गिरफ्तार कर जिला जेल में अपना बयान दर्ज कराया। कानपुर नगर जिसमें उसने आरोपी माया वर्मा के साथ अपने अवैध संबंधों को स्वीकार किया और यह भी स्वीकार किया कि उसने मृतक रवींद्र कुमार वर्मा से अपनी पत्नी के इलाज के लिए 35,000 रुपये उधार लिए थे। उसने यह भी कबूल किया कि साजिश रचकर उन्होंने सुनियोजित तरीके से मृतक की हत्या की। चूंकि मृतक अनुसूचित जाति का था, इसलिए

अप्रमाणित

एस.सी/एस.टी एक्ट की धारा 3 (2) (वी) को जोड़ते हुए, जांच सी.ओ पुलिस को स्थानांतरित कर दी गई थी। उन्होंने स्वीकार किया कि उन्होंने पड़ोसी जगदीश नारायण, चंद्रा और वीरेंद्र तिवारी का बयान दर्ज नहीं किया था।

31. अ०सा०-11, डी.एस.पी ओम प्रकाश सिंह, तत्कालीन सी.ओ सिटी, गोविंद नगर ने गवाही दी है कि जब वह घटनास्थल पर गए थे, तो बच्चे भरतपुर में अपने मामा के साथ थे। माया वर्मा जेल में थीं। उन्होंने श्रीमती गुड्डी का बयान दर्ज किया और अन्य व्यक्तियों के बयान दर्ज करने की कोशिश की लेकिन वे आगे नहीं आए। जब रमा वर्मा अन्य व्यक्तियों के साथ उनके सामने उपस्थित हुए तो उन्होंने राम वर्मा, राजेंद्र कुमार, विमला देवी और प्रशांत वर्मा के बयान दर्ज किए। स्केच और किसी अन्य नक्शा नज़री की कोई आवश्यकता नहीं थी। घटनास्थल का निरीक्षण करने के बाद, सूचनाकर्ता के बयान और सी.डी के साथ संलग्न फोटोग्राफ से घटना की पुष्टि की गई थी और यह भी पुष्टि की गई थी कि मृतक पर ज्वलनशील पदार्थ डालने के बाद उसे आग लगा दी गई थी। शॉर्ट सर्किट के कारण आग लगने के कोई संकेत नहीं मिले। उन्होंने कुमारी हर्षिता वर्मा और सुधीर कुमार, सुरेश चंद्र, श्याम चंद्रा, पप्पू, सतीश और रघुवीर सिंह, अग्निशमन अधिकारी-शिवदास प्रसाद और शव परीक्षण करने वाले डॉक्टर का बयान दर्ज किया। साक्ष्य के आधार पर माया वर्मा और गजेंद्र सिंह चौहान के खिलाफ धारा 302, 506 भ०द०वि० और धारा 3 (2) (v) एस.सी/एस.टी एक्ट के तहत अपराध का आरोप साबित हुआ, इसलिए, तदनुसार चार्जशीट प्रदर्श क-10 प्रस्तुत की गई। इस गवाह ने 1 से 6 तक की तस्वीरें भी साबित की हैं।

32. ब०सा०-1 शिवरतन पड़ोसी की रक्षा में जांच की गई है। उन्होंने गवाही दी है कि 07.06.2006 की रात लगभग 11-12 बजे जब वह अपने घर पहुंच रहे थे, तो उन्होंने एक शोर सुना, जब वह मृतक के घर पहुंचे तो कई लोग इकट्ठा हो गए थे। हर कोई आग बुझा रहा था। उन्होंने घर के अंदर जाकर बच्चों को बाहर निकाला। जब वह मौके पर पहुंचे तो गजेंद्र सिंह वहां मौजूद नहीं थे। गजेंद्र सिंह ने बच्चों को धमकी नहीं दी थी। इस गवाह ने गजेंद्र सिंह और माया वर्मा के बीच अवैध संबंध से इनकार किया था और स्वीकार किया कि गजेंद्र सिंह का घर माया वर्मा के घर से 300 गज की दूरी पर होगा। आग बिजली के शॉर्ट सर्किट से लगी। उसने आग नहीं देखी। जो पहले पहुंचे थे, वे बता रहे थे। गवाह ने इस बात से इनकार किया कि गजेंद्र सिंह और माया वर्मा ने ज्वलनशील पदार्थ लगाकर घर में आग लगाई थी।

33. अभियोजन पक्ष की ओर से पेश किए गए मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के अवलोकन के बाद और दलीलें सुनने के बाद अभियुक्त-अपीलकर्ता को दोषी ठहराया गया और सजा सुनाई गई, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है।

34. अपील का निर्णय निम्नानुसार किया जाता है:

(I) **<u>प्राथमिकी</u>:**

अनुवादित

35. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि प्राथमिकी दर्ज करने में अनुचित देरी हुई है। यह घटना 07.01.2006 की रात को हुई थी और 24-7-2006 को प्राथमिकी दर्ज की गई थी जिसके लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है।

36. इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, यह नहीं कहा जा सकता है कि प्राथमिकी दर्ज करने में अनुचित और अस्पष्ट देरी हुई है। इस मामले में सूचना देने वाली कम उम्र की लड़की थी, बाकी दो बच्चे यानी बेटा प्रशांत और बेटी हर्षिता नाबालिग थे। आरोपियों ने उन्हें भी जान से मारने की धमकी दी थी क्योंकि उनके पिता की हत्या कर दी गई थी। डर के कारण वे प्राथमिकी दर्ज कराने की स्थिति में नहीं थे। उन्हें भरतपुर ले जाया गया। बच्चों को अपने पिता की हत्या के बारे में पता था, लेकिन वे पुलिस से संपर्क करने की स्थिति में नहीं थे। बाद में किसी भी तरह से सूचनादाता ने 29.06.2006 को एक आवेदन दायर किया लेकिन प्राथमिकी केवल 24.07.2006 को दर्ज की जा सकी।

37. उन्होंने आगे तर्क दिया कि जब बिजली के शॉर्ट सर्किट के कारण आग लगने का कोई संकेत नहीं था और इस संबंध में अग्निशमन अधिकारी की कोई सकारात्मक रिपोर्ट नहीं थी और पूरी घटना संदिग्ध थी, तब भी संबंधित थाना का कर्तव्य था कि वह प्राथमिकी दर्ज करे और मामले की जांच के लिए आगे बढ़े।

38. हालांकि घटना के बाद जल्द से जल्द प्राथमिकी दर्ज की जानी चाहिए, लेकिन उपरोक्त आधार पर इस मामले में सूचना देने वाली के लिए घटना के तुरंत बाद प्राथमिकी दर्ज करना संभव नहीं था क्योंकि वे अपनी मां पर निर्भर थे।

39. द०प्र०स० के अध्याय XXXVI में अपराधों का संज्ञान लेने की सीमा का उल्लेख किया गया है। भ०द०वि० की धारा 302 और 506 के मामलों में, संज्ञान लेने के संबंध में कोई सीमा नहीं है। इसलिए, यदि कार्यवाही छह महीने के अंतराल के बाद शुरू की जाती है, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि वर्तमान कार्यवाही सीमा द्वारा वर्जित है. जहां तक प्राथमिकी दर्ज करने में देरी का संबंध है, सुप्रीम कोर्ट द्वारा यह माना गया है कि यदि कोई विवरण गढ़ने के किसी भी प्रयास के कारण मौजूद नहीं हैं और अभियोजन पक्ष द्वारा संतोषजनक रूप से देरी की व्याख्या की जाती है, तो प्राथमिकी दर्ज करने में केवल देरी के लिए कोई परिणाम नहीं निकला जाएगा और देरी अभियोजन पक्ष के मामले पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालेगी। प्राथमिकी की प्रति मजिस्ट्रेट को भेजने में होने वाली देरी भी महत्वहीन होगी यदि अभियोजन पक्ष अपने विश्वसनीय साक्ष्य द्वारा अपने मामले को साबित करने में सक्षम रहा है।

40. तारा सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य, 1991 एस.सी.सी (सी.आर.एल) 710 में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि प्राथमिकी देने में देरी अभियोजन पक्ष के मामले पर संदेह करने का आधार नहीं हो सकती है। भारतीय परिस्थितियों को जानते हुए, हम इन ग्रामीणों से घटना के तुरंत बाद थाना पहुंचने की उम्मीद नहीं कर सकते। मानव स्वभाव के रूप में, जिन परिजनों ने इस घटना को देखा है, उनसे पुलिस को रिपोर्ट देने में पूरी तत्परता के साथ यांत्रिक रूप से कार्य करने की उम्मीद नहीं की जा सकती है। कभी-कभी आपदा के कारण

अनुवादित

दुःखी होने के कारण उन्हें तुरंत यह नहीं लगता कि वे एक रिपोर्ट दें। आखिरकार, इन परिस्थितियों में उनके लिए रिपोर्ट देने के लिए थाना जाने में कुछ समय लगना स्वाभाविक है। बेशक, सुप्रीम कोर्ट के साथ-साथ उच्च न्यायालयों ने भी बताया है कि तीव्र गुटों से उत्पन्न मामलों में विपरीत गुट से संबंधित व्यक्तियों को झूठा फंसाने की प्रवृत्ति होती है। ऐसे निर्दोष व्यक्तियों को दोषी ठहराने के खतरे को टालने के लिए, अदालतों को सावधान किया जाता है कि वे ऐसे हितबद्ध गवाहों के साक्ष्य की अधिक सावधानी और सतर्कता से जांच करें और सबूतों की बारीकी से जांच करने के बाद भूसी से अनाज अलग करें और ऐसा करने में, प्राथमिकी की सामग्री की भी सावधानीपूर्वक जांच करनी होगी। हालांकि, जब तक कि मनगढ़ंत संकेत न हों, अदालत अभियोजन पक्ष के संस्करण को जैसा कि प्राथमिकी में दिया गया है और सबूतों द्वारा पुष्टि की गई है, बाद में केवल देरी के आधार पर खारिज नहीं कर सकती है ।

41. रविंदर कुमार और अन्य बनाम पंजाब राज्य, (2001) 7 एस.सी.सी 690 में यह माना गया था कि प्राथमिकी दर्ज करने में देरी के आधार पर अभियोजन मामलों पर हमला आपराधिक मामलों में एक रूढ़िबद्ध अतिरेक के रूप में लगभग फंस गया है। अधिकांश आपराधिक मामलों में यह बार-बार होने वाली बात है कि पुलिस को पहली सूचना देने में कुछ विलंब हो जाता है। यह याद रखना होगा कि कानून ने प्राथमिकी दर्ज करने के लिए कोई समय तय नहीं किया है। इसलिए, देरी से दर्ज की गई प्राथमिकी अवैध नहीं है। बेशक, प्राथमिकी को त्वरित और तत्काल दर्ज करना आदर्श है क्योंकि इससे अभियोजन पक्ष को दोहरा लाभ मिलेगा। पहला यह है कि यह बिना किसी समय चूक के जांच शुरू करने की अनुमति देता है। दूसरा यह है कि यह झूठे संस्करण के किसी भी संभावित मिश्रण के अवसर को निष्कासित करता है। तुरंत दर्ज की गई प्राथमिकी के लिए इन दो प्लस पॉइंट्स को छोड़कर, विलंबित प्राथमिकी के अवगुण किसी भी अभियोजन मामले के लिए घातक नहीं हो सकते हैं। इस बात की अनदेखी नहीं की जा सकती है कि तुरंत दर्ज की गई प्राथमिकी भी उसमें शामिल संस्करण की वास्तविकता के लिए एक अनारक्षित गारंटी नहीं है।

42. अमर सिंह बनाम बलविंदर सिंह और अन्य, (2003) 2 एस.सी.सी 518 में सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि कोई कठोर नियम नहीं है कि प्राथमिकी दर्ज करने में कोई भी देरी स्वचालित रूप से अभियोजन पक्ष के मामले को संदिग्ध बना देगी। यह आवश्यक रूप से प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है कि क्या प्राथमिकी दर्ज करने में ऐसी कोई देरी हुई है जो अभियोजन मामले की सत्यता के बारे में संदेह पैदा कर सकती है और इसके लिए कई परिस्थितियां जैसे पहले सूचनाकर्ता की स्थिति, चोटों की प्रकृति, पीड़ितों की संख्या, उन्हें चिकित्सा सहायता प्रदान करने के लिए किए गए प्रयास, अस्पताल और थाना आदि की दूरी को ध्यान में रखना होगा। ऐसा कोई गणितीय फार्मूला नहीं है जिसके द्वारा केवल प्राथमिकी दर्ज करने में देरी के आधार पर किसी भी तरह से निष्कर्ष निकाला जा सके।

43. साहेबराव और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2006) 9 एस.सी.सी 794 में यह माना

अनुवादित

गया था कि प्राथमिकी दर्ज करने में देरी अभियोजन पक्ष के मामले पर संदेह करने और इसे खारिज करने का आधार नहीं हो सकती है। प्राथमिकी दर्ज करने में देरी अदालत को यह पता लगाने के लिए चौकस कर देगी कि क्या कोई बोधगम्य स्पष्टीकरण दिया गया है और यह कि क्या यह संतोषजनक है।

44. भूकन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2020) 110 ए.सी.सी 729 में यह माना गया था कि जहां तक प्राथमिकी दर्ज करने में देरी का सवाल है, यह अच्छी तरह से तय है, अगर प्राथमिकी दर्ज करने में देरी को रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों से समझाया गया है, तो अभियोजन पक्ष के खिलाफ केवल इस आधार पर कोई प्रतिकूल निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि प्राथमिकी देरी से दर्ज की गई थी। कोई कठोर नियम नहीं है कि प्राथमिकी दर्ज करने में किसी भी तरह की देरी से अभियोजन पक्ष का मामला स्वतः ही संदिग्ध हो जाएगा।

45. मुकेश बनाम राज्य एनसीटी दिल्ली और अन्य, ए.आई.आर 2017 एस.सी 2161 (तीन-न्यायाधीश पीठ) में यह माना गया था कि यदि एक संस्करण गढ़ने के किसी भी प्रयास के कारण नहीं हैं और देरी को अभियोजन पक्ष द्वारा संतोषजनक ढंग से समझाया गया है, तो कोई भी प्राथमिकी दर्ज करने में देरी से जुड़ा कोई परिणाम नहीं निकला जायेगा और देरी अभियोजन पक्ष के मामले पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालेगी। यदि अभियोजन पक्ष अपने विश्वसनीय साक्ष्य द्वारा अपने मामले को साबित करने में सक्षम रहा है, प्राथमिकी की प्रति मजिस्ट्रेट को भेजने में होने वाली देरी भी महत्वहीन होगी।

46. उपरोक्त चर्चा के आधार पर और बयान और आसपास की परिस्थितियों को देखते हुए, जिसमें सूचनाकर्ता किसी भी तरह प्राथमिकी दर्ज कर सकता है, इस न्यायालय का विचार है कि हालांकि प्राथमिकी दर्ज करने में देरी हुई है, लेकिन देरी को संतोषजनक ढंग से समझाया गया है, इसलिए, बचाव पक्ष की ओर से प्राथमिकी दर्ज करने में देरी के बारे में तर्क मान्य नहीं है, इसलिए खारिज कर दिया।

(II) <u>पंचनामा/विवेचना</u>:

47. चूंकि यह लगभग 42 वर्ष की आयु के एक युवक की अप्राकृतिक मृत्यु थी, इसलिए घटना के बाद, संबंधित थाना द्वारा जांच की कार्यवाही की गई जिसे अ०सा०-8, राम चरण वर्मा द्वारा साबित किया गया है। इस गवाह ने इस बात से इनकार किया है कि जांच गलत तरीके से भरी गई है और यह समय से पहले थी। इस गवाह ने गवाही दी कि रात के समय पूछताछ करने के लिए जिला मजिस्ट्रेट की पूर्व अनुमति आवश्यक थी, इसलिए इसे रात में आयोजित नहीं किया जा सका। पोड्डा नारायण बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (1975) 4 एस.सी.सी 153 में द०प्र०स० की धारा 174 (1) के तहत जांच रिपोर्ट के उद्देश्य पर चर्चा की गई है। उक्त मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि द०प्र०स० की धारा 174 (1) के तहत एक जांच रिपोर्ट तैयार करने का पूरा उद्देश्य मौत के स्पष्ट कारण की जांच करना और एक रिपोर्ट तैयार करना है, जिसमें मृतक के शरीर पर पाए जाने वाले घावों का वर्णन किया जा सकता है और यह बताया जा सकता है कि किस तरीके से, या किस हथियार या उपकरण से, यदि कोई हो, तो ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसा किया गया है। दूसरे शब्दों में, पंचनामा करने के उद्देश्य

अनुवादित

से जांच करना या यह पता लगाना कि मौत के लिए जिम्मेदार व्यक्ति कौन थे, यह जांच करना या पता लगाना विवेचनाधिकारी की ओर से न तो आवश्यक है और न ही अनिवार्य है।

48. जॉर्ज बनाम केरल राज्य, ए.आई.आर 1998 एस.सी 1376 में यह माना गया है कि इसके तहत जांच की कार्यवाही का उद्देश्य केवल यह पता लगाना है कि क्या किसी व्यक्ति की संदिग्ध कारण से मृत्यु हो गई है। सुप्रीम कोर्ट के अनुसार, मृतक पर हमला कैसे किया गया या किसने उस पर हमला किया या किन परिस्थितियों में उस पर हमला किया गया, इस तरह की कार्यवाही के दायरे के के बाहर के सवाल हैं। उपरोक्त अवलोकन के साथ, सुप्रीम कोर्ट ने माना कि (उस मामले में) उच्च न्यायालय सही था कि जांच रिपोर्ट में चूक अभियोजन पक्ष को अदालत से बाहर करने के लिए पर्याप्त नहीं थी।

49. ब्रह्म स्वरूप बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, ए.आई.आर 2011 एस.सी 280 में यह माना गया था कि पंचान रिपोर्ट ठोस साक्ष्य नहीं है। लेकिन इसका उपयोग पंचान के विरोधाभासी गवाहों के लिए किया जा सकता है। अपराध संख्या का उल्लेख करने में कोई चूक, अभियुक्तों के नाम दंड प्रावधान जिनके तहत अपराध किए गए हैं, अभियोजन पक्ष के मामले के लिए घातक नहीं हैं। इस तरह की चूक से यह निष्कर्ष नहीं निकलता है कि प्राथमिकी पूर्व-समयबद्ध है और चश्मदीद गवाहों के साक्ष्य को, यदि उनके नाम पंचान रिपोर्ट में नहीं आते हैं, खारिज नहीं किया जा सकता है। द०प्र०स० की धारा 174 के तहत एक पंचान रिपोर्ट तैयार करने का पूरा उद्देश्य मौत के स्पष्ट कारण की जांच करना और एक रिपोर्ट तैयार करना है, जिसमें मृतक के शरीर पर पाए जाने वाले घावों का वर्णन किया जा सकता है और यह बताना है कि इस तरह के घाव किस तरीके से और किस हथियार या साधन से किए गए प्रतीत होते हैं। जांच करने के उद्देश्य से पंचान करना या यह पता लगाना विवेचनाधिकारी की ओर से न तो आवश्यक है और न ही अनिवार्य है कि मौत के लिए जिम्मेदार व्यक्ति कौन थे। द०प्र०स० की धारा 174 के तहत कार्यवाही का उद्देश्य केवल यह पता लगाना है कि क्या किसी व्यक्ति की संदिग्ध परिस्थितियों में मृत्यु हुई या अप्राकृतिक मौत हुई और यदि ऐसा है तो इसका स्पष्ट कारण क्या था। मृतक पर हमला कैसे किया गया या उस पर किसने हमला किया या किन परिस्थितियों में उस पर हमला किया गया, इस तरह की कार्यवाही के दायरे के बाहर के सवाल हैं यानी पंचान रिपोर्ट किसी भी व्यक्ति का बयान नहीं है जिसमें आरोपी व्यक्तियों के सभी नामों का उल्लेख किया जाना चाहिए। पंचान रिपोर्ट में चूक अभियोजन पक्ष को अदालत से बाहर करने के लिए पर्याप्त नहीं है। पंचनामा करने का मूल उद्देश्य मृत्यु के स्पष्ट कारण के बारे में रिपोर्ट करना है अर्थात् क्या यह आत्मघाती, हत्या, आकस्मिक या कुछ मशीनरी द्वारा है। इसलिए जांच रिपोर्ट में प्रकट कृत्यों के सभी विवरण दर्ज करना आवश्यक नहीं है। चश्मदीद गवाहों के साक्ष्य को यदि उनके नाम जल्द से जल्द तैयार की गई पंचनामा रिपोर्ट में शामिल नहीं हैं, खारिज नहीं किया जा सकता है।

50. राधा मोहन सिंह @ लाल साहेब बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2006 (54) ए.सी.सी 862 (एस.सी) (तीन न्यायाधीशों की पीठ) में यह

अप्रमाणित

माना गया था कि पंचान रिपोर्ट में चूक, विसंगतियों, ओवरराइटिंग, विरोधाभास के बारे में दिए गए तर्कों पर तब तक विचार नहीं किया जाना चाहिए जब तक कि लेखक का ध्यान उक्त तथ्य की ओर आकर्षित न हो और जब उसे गवाह के रूप में जांच की जाए तो उसे स्पष्टीकरण देने का अवसर न दिया जाए। द०प्र०स० की धारा 174 के तहत तैयार की गई एक पंचान रिपोर्ट की आवश्यक सामग्री और उस उद्देश्य के लिए जांच दायरे में सीमित है और मौत के स्पष्ट कारण का पता लगाने तक ही सीमित है। यह पता लगाने से संबंधित है कि क्या किसी दिए गए मामले में मौत आकस्मिक, आत्मघाती या हत्या या जानवर के कारण हुई थी, और किस तरीके से या किस हथियार या उपकरण से शरीर पर चोटें लगी थीं। प्रत्यक्ष कृत्यों का विवरण पंचान रिपोर्ट में दर्ज करने की आवश्यकता नहीं है। मृतक पर हमला कैसे किया गया था किसने उस पर हमला किया या किन परिस्थितियों में उस पर हमला किया गया था हमले के गवाह कौन थे, इस बारे में प्रश्न द०प्र०स० की धारा 174 के तहत कार्यवाही के दायरे के बाहर के सवाल हैं। कानून में प्राथमिकी के विवरण, अभियुक्तों के नाम या चश्मदीद गवाहों के नाम या पंचान रिपोर्ट में उनके बयानों के सार का उल्लेख करने की कोई आवश्यकता नहीं है, न ही उक्त रिपोर्ट को किसी चश्मदीद गवाह द्वारा हस्ताक्षरित करने की आवश्यकता है।

51. उपरोक्त के आधार पर, इस न्यायालय का विचार है कि पंचान रिपोर्ट तैयार करने में कोई विसंगति या पूर्व-समय नहीं है। यह भी उल्लेखनीय है कि पंचनामा से पहले एक जानकारी को छोड़कर अपीलकर्ता के खिलाफ कोई प्राथमिकी दर्ज नहीं की गई थी और अगर माया वर्मा या अन्य अपीलकर्ता को पूछताछ के संबंध में कोई आपत्ति थी, तो इसे पहले उठाया जाना चाहिए था।

(III) <u>शव परीक्षण</u>:

52. चूंकि आरोपी माया वर्मा द्वारा शॉर्ट सर्किट के कारण दुर्घटना और आग के बारे में एक रिपोर्ट दी गई थी, इसलिए मृतक के शव की जांच और शव परीक्षण नियत समय पर किया गया था। शव परीक्षण के बाद अ०सा०-7 डॉ. संतोष नारायण शुक्ला द्वारा रिपोर्ट प्रदर्श क-5 तैयार की गई थी, जिसमें उन्होंने स्पष्ट रूप से निष्कर्ष निकाला है कि मृतक की मौत कथित तारीख और समय पर आग से होने की संभावना थी, न कि बिजली के शॉर्ट सर्किट से। इस गवाह ने स्पष्ट रूप से गवाही दी है कि आग का ऐसा पैटर्न केवल मिट्टी के तेल या किसी अन्य ज्वलनशील पदार्थ के कारण हो सकता है। यह न तो आत्मघाती जलने से संभव है और न ही बिजली के शॉर्ट सर्किट के कारण। इस प्रकार शव परीक्षण रिपोर्ट और इस गवाह के साक्ष्य से यह किसी भी संदेह से परे स्थापित किया गया है कि मृतक को किसी अन्य व्यक्ति द्वारा जलाया गया था, न कि स्वयं या बिजली के शॉर्ट सर्किट के कारण।

53. चिकित्सा विशेषज्ञ के सबूत केवल एक राय हैं जो प्रत्यक्ष सबूत के लिए पुष्टिकरण देता है। चिमनभाई उकाभाई बनाम गुजरात राज्य, ए.आई.आर 1983 एस.सी. 484 में यह माना गया था कि आमतौर पर चिकित्सा साक्ष्य का मूल्य केवल पुष्टिकारक है। यह साबित करता है कि चोटें कथित तरीके से हो सकती हैं और इससे ज्यादा कुछ नहीं। बचाव पक्ष चिकित्सा साक्ष्य का जो उपयोग करता है,

अप्रमाणित

वह यह साबित करने के लिए है कि चोटें संभवतः कथित तरीके से नहीं हो सकती हैं और इस तरह चश्मदीद गवाहों को बदनाम करती हैं।

54. निम्नलिखित लक्षणों के साथ जलने में एंटीमॉर्टम चोटें सामान्य रूप से पाई जाती हैं: -

(I) घायल हिस्से के चारों ओर पूरी त्वचा को शामिल करने वाली लालिमा की एक रेखा बनती है।

(II) वेसिकेशन होता है जिसमें एक सीरस द्रव होता है और इसमें लाल सूजन वाला आधार होता है।

(III) पुटिका क्षेत्र के आसपास की त्वचा तांबे के रंग की चमकीले लाल रंग की होती है।

(IV) रिपेरेटिव प्रक्रिया, जैसे कि दानेदार ऊतक के सूजन गठन का संकेत, जलने की चोट में मवाद दिखाई दे सकता है।

(V) कार्बन कण श्वसन वाहिका में पाए जाते हैं।

(IV) <u>शव परीक्षण रिपोर्ट और इसका साक्ष्य मूल्य</u>:

55. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मो. इकरम, (2011) 3 एस.सी.सी (सी.आर.आई) 354 यह माना गया था कि शव परीक्षण रिपोर्ट ठोस सबूत नहीं है। ठोस साक्ष्य वह बयान है जो अदालत में गवाह द्वारा दिया जाता है। यदि शव परीक्षण रिपोर्ट साबित हो जाता है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि इसकी प्रत्येक सामग्री भी साबित हुई है या स्वीकार्य रखी जा सकती है।

(v) <u>चश्मदीद गवाही बनाम चिकित्सा साक्ष्य</u>:

56. रमाकांत राय बनाम मदन रा, 2005 एस.सी.सी.आर.आर 1126 (एस.सी) में सुप्रीम कोर्ट ने चश्मदीद गवाही के साक्ष्य मूल्य की व्याख्या करते हुए कहा कि यह स्थापित है कि जहां प्रत्यक्षदर्शी का खाता विश्वसनीय और भरोसेमंद पाया जाता है, वैकल्पिक संभावनाओं की ओर इशारा करते हुए चिकित्सा राय को निर्णायक के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता है। गवाह, जैसा कि बैंथम ने कहा, न्याय की आंख और कान हैं। इसलिए परीक्षण प्रक्रिया की गुणवत्ता का महत्व और प्रधानता, चश्मदीद गवाहों के खाते को उनकी विश्वसनीयता के लिए सावधानीपूर्वक स्वतंत्र मूल्यांकन और मूल्यांकन की आवश्यकता होगी, जिसे इस तरह की विश्वसनीयता के परीक्षण के लिए एकमात्र कसौटी के रूप में चिकित्सा साक्ष्य सहित किसी भी अन्य साक्ष्य को बनाने के लिए प्रतिकूल नहीं माना जाना चाहिए। साक्ष्य को इसकी अंतर्निहित स्थिरता और कहानी की अंतर्निहित संभावना के लिए परीक्षण किया जाना चाहिए; अन्य गवाहों के खाते के साथ निरंतरता को श्रेय देने योग्य माना जाता है; निर्विवाद तथ्यों के साथ संगति, गवाहों का 'क्रेडिट'; गवाह बॉक्स में उनका प्रदर्शन; उनकी अवलोकन शक्ति आदि तब ऐसे साक्ष्य का संभावित मूल्य संचयी मूल्यांकन के लिए तौलने के योग्य हो जाता है।

(VI) <u>जलने से मृत्यु - मानव वध या आकस्मिक या आत्मघाती</u>:

57. विजय पाल बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार), (2015)4 एस.सी.सी 749 में मृतक का शव परीक्षण करने वाले डॉक्टर द्वारा खोपड़ी सहित शरीर की सतह के सभी क्षेत्र में सतही से गहरे जलने की चोट पाई गई थी। उसकी दस साल की बेटी ने कहा कि जब उसकी मां स्टोव जलाने की

अनुवादित

कोशिश कर रही थी, तो उसमें आग लग गई। मृतक के सिर के बालों में मिट्टी के तेल के अवशेषों की उपस्थिति से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि मृत्यु एक आकस्मिक मौत नहीं थी, लेकिन परिस्थितियों से पता चलता है कि मृतक की खोपड़ी पर मिट्टी का तेल डाला गया था।

58. मल्लेला श्यामसुंदर बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (2015)2 एस.सी.सी 115 में आरोपी पर अपनी पत्नी की मिट्टी का तेल डालकर उसकी हत्या करने और फिर उसे जलाने का आरोप लगाया गया था। मृतक का इलाज करने वाले डॉक्टर ने कहा कि चोटें खुद से आई हैं। पति ने मृतका द्वारा आत्महत्या की दलील ली, लेकिन उस याचिका को निम्नलिखित आधारों पर खारिज कर दिया गया: -

(क) अभियुक्त और उसकी पत्नी एक छोटे किराए के मकान में रह रहे थे, वहां एक एलपीजी कनेक्शन था, इसलिए बचाव पक्ष द्वारा बचाई गई मात्रा में मिट्टी का तेल रखने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

(ख) एंटीमॉर्टम डर्मो एपिडर्मल जलन चेहरे, गर्दन के निचले आधे हिस्से पर और फिर शरीर के नीचे पीड़ित के पैरों तक थी। यदि किसी को अपने ऊपर मिट्टी का तेल डालना है, तो यह सामान्य मानव आचरण है कि वह इसे सिर के ऊपर रखे और किसी भी स्थिति में इसे सिर को छोड़कर चेहरे पर न डालें।

(ग) अपीलकर्ता ने मृतक को अस्पताल ले जाने के लिए त्वरित कार्रवाई नहीं की।

59. इस मामले में चक्षुक साक्ष्य और चिकित्सा साक्ष्य, अग्निशमन अधिकारी और पीएम डॉक्टर के साक्ष्य और अ०सा०-1 और 2 के मौखिक साक्ष्य के बीच कोई भिन्नता और असमानता नहीं है और यह स्पष्ट रूप से स्थापित किया गया है कि न तो मृतक ने आत्महत्या की और न ही शॉर्ट सर्किट के कारण करंट लगने से उसकी मृत्यु हुई, लेकिन उसके शरीर पर ज्वलनशील पदार्थ डालकर आग लगा दी गई। इसलिए, शव परिक्षण की रिपोर्ट मौखिक साक्ष्य और अभियोजन पक्ष के मामले के अनुरूप है।

(vii) <u>धारा 157 द०प्र०स० का अनुपालन</u>:

60. इस मामले में धारा 157 द०प्र०स० का पालन न करने के संबंध में कोई तर्क नहीं दिया गया है।

(VIII) <u>आशय</u>:

61. सूचनाकर्ता अ०सा०-1 और तथ्य अ०सा०-2, 3 और 4 के गवाहों के साक्ष्य से यह उचित संदेह से परे स्थापित किया गया है कि आरोपी माया वर्मा के सह-अभियुक्त गजेंद्र सिंह चौहान के साथ अवैध संबंध थे, माया वर्मा को उसके मृत पति ने गजेंद्र सिंह चौहान से मिलने और संबंध बनाने से मना किया था। इसलिए, उसका अस्तित्व दोनों आरोपियों के लिए महत्वपूर्ण था, इसलिए, उन दोनों द्वारा एक आशय बनाया गया था, उनके दिमाग में एक मामला पैदा हुआ, दोनों ने साजिश रची और मृतक की हत्या की योजना बनाई और उसे ऊपर बताए अनुसार मार डाला। चूंकि यह प्रत्यक्ष साक्ष्य का मामला है, इसलिए, अपराध के पीछे के आशय को साबित करने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन न केवल आरोपी माया वर्मा की बेटियों बल्कि उसके असली भाई अ०सा०-3 राजेंद्र कुमार और चचेरे भाई अ०सा०-4 सुधीर ने भी उसके खिलाफ और अपीलकर्ता के खिलाफ गवाही दी है। उन दोनों ने अपीलकर्ता और माया वर्मा के बीच अवैध संबंध के बारे में

अनुवादित

गवाही दी है, और अ०सा०-3 ने यह भी गवाही दी है कि माया वर्मा सह-आरोपी गजेंद्र सिंह के साथ संबंध तोड़ने के लिए तैयार नहीं थी। यदि घटना झूठी होती, तो एक सगा भाई अपनी सगी बहन के खिलाफ गवाही नहीं देता। इस मामले में मौखिक, दस्तावेजी और चिकित्सा साक्ष्य से यह उचित संदेह से परे साबित हो गया है कि अपीलकर्ता ने माया वर्मा के साथ मिलकर अपने अवैध संबंध को जारी रखने के लिए मृतक की हत्या कर दी और जब मामला उचित संदेह से परे साबित हो जाता है, विशेष रूप से मौखिक साक्ष्य के आधार पर एक मामला, अभियोजन पक्ष आशय साबित करने के लिए बाध्य / बाध्य नहीं है। यहां तक कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित मामलों में भी यदि परिस्थितियों की श्रृंखला नहीं तोड़ी जाती है, तो आशय का प्रमाण सारहीन है जैसा कि सद्दीक @ गुलाम हुसैन शेख और अन्य बनाम गुजरात राज्य, (2016) 10 एस.सी.सी 663, भीम सिंह और अन्य बनाम उत्तराखंड राज्य, (2015) 4 एस.सी.सी 281 (पैराग्राफ 21), दासिन बाई @ शांति बाई बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, 2015 (89) ए.सी.सी 337 (एस.सी) इसी तरह के सिद्धांत संजीव बनाम हरियाणा राज्य, (2015) 4 एस.सी.सी 387 (पैराग्राफ 16) में निर्धारित किए गए हैं।

(IX) **<u>अभियुक्त व्यक्तियों का बाद का आचरण</u>**:

62. इस मामले में अपीलकर्ता का आचरण भी महत्वपूर्ण है। मौखिक साक्ष्य द्वारा यह स्थापित किया गया है कि मृतक की मृत्यु के बाद जब सूचनाकर्ता और बच्चे शोर गुल करना और आपत्ति उठाना चाहते थे, तो उन्हें उसी तरह से मारने की धमकी दी गई थी जैसे उनके पिता को आरोपी अपीलकर्ता द्वारा मार दिया गया था। इसलिए, उन्होंने प्राथमिकी दर्ज करने से परहेज किया और उन्हें उनके मामा भरतपुर ले गए। यह तथ्य अ०सा०-1, 2 और 4 (सुधीर) के साक्ष्य से भी सिद्ध हुआ है कि फरवरी, 2006 के अंत में बच्चों को उनकी मां की दुर्घटना के बहाने घुजैनी पुल पर पहुंचने के लिए बुलाया गया था, जहां वे नहीं गए लेकिन जब अ०सा०-4 वहां पहुंचा, तो किसी भी व्यक्ति के साथ और विशेष रूप से माया देवी के साथ ऐसी कोई दुर्घटना नहीं हुई थी और जब उसे सूचित किया गया कि वह प्रिया नर्सिंग होम में है, माया देवी वहां सह-आरोपी गजेंद्र सिंह चौहान और कुछ अन्य अज्ञात व्यक्तियों के साथ मिली। अग्निशमन अधिकारी शिवदास प्रसाद और अ०सा०-7 डॉक्टर की शव परिक्षण रिपोर्ट और साक्ष्य से यह साबित होता है कि यह करंट लगने का मामला नहीं था, तब भी माया वर्मा ने संबंधित थाने में झूठी सूचना प्रस्तुत की जो मौखिक, तकनीकी और चिकित्सकीय साक्ष्य को देखते हुए झूठी साबित हुई है। अ०सा०-1 का साक्ष्य कि मृतक की मृत्यु के बाद, माया वर्मा ने सह-आरोपी गजेंद्र सिंह चौहान के साथ विवाह भी उसके खिलाफ जाता है। उसने घर के सभी सामानों को हटा दिया और कथित घटना से संबंधित सबूतों को छिपाने के लिए घर को पेंट किया। उपरोक्त के आधार पर, इस न्यायालय का विचार है कि आरोपी अपीलकर्ता के आचरण के बाद से यह स्थापित होता है कि मृतक उनके जीवन में एक बाधा था, इसलिए, उन्होंने कथित अपराध करके इसे हटा दिया।

(X) <u>सबूत और उचित संदेह का बोझ</u>:

63. निश्चित रूप से सबूत का बोझ अभियोजन पक्ष के कंधे पर निहित है। आरोपी अपीलकर्ता

अनुवादित

के खिलाफ मौखिक, दस्तावेजी और चिकित्सा साक्ष्य पेश करके बोझ का निर्वहन करना अभियोजन पक्ष पर है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कई मामलों में उचित संदेह के लाभ पर चर्चा की गई है। भगवान जगन्नाथ मारकड बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2016) 10 एस.सी.सी 537; छोटा ने बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, ए.आई.आर 2009 एस.सी 2013; (ग) माननीय उच्चतम न्यायालय ने माननीय उच्चतम न्यायालय के आदेश में माननीय उच्चतम न्यायालय के आदेश में दिनांक 10-10-2008 के अपने निर्णय में दिनांक 10-10-2008 के अपने निर्णय में यह निर्णय दिया था कि यदि संदेह अमूर्त अटकलों के उत्साह से मुक्त हैं तो उन्हें युक्तिसंगत कहा जाएगा। कानून सत्य के अलावा किसी अन्य को पसंद नहीं कर सकता। उचित संदेह का गठन करने के लिए, यह एक अति-भावनात्मक प्रतिक्रिया से मुक्त होना चाहिए। संदेह वास्तविक और पर्याप्त संदेह होना चाहिए क्योंकि आरोपी व्यक्तियों के अपराध साक्ष्य से या इसकी कमी से, केवल अस्पष्ट आशंकाओं के विपरीत उत्पन्न होते हैं। एक उचित संदेह एक काल्पनिक, तुच्छ या केवल संभव संदेह नहीं है; लेकिन कारण और सामान्य ज्ञान के आधार पर एक उचित संदेह है। यह मामले में सबूतों से की हद से बाहर निकलना चाहिए। संभाव्यता की अवधारणा, और इसकी डिग्री, स्पष्ट रूप से गणितीय रूप से गणना की जाने वाली इकाइयों के संदर्भ में व्यक्त नहीं की जा सकती है कि ऐसी कितनी इकाइयाँ उचित संदेह से परे प्रमाण की लागत हैं। संभाव्यता की डिग्री और सबूत की मात्रा के मूल्यांकन में एक अचूक व्यक्तिपरक तत्व है। फोरेंसिक संभावना, अंतिम विश्लेषण में, एक मजबूत सामान्य ज्ञान पर और अंततः, न्यायाधीश के प्रशिक्षित अंतर्ज्ञान पर होनी चाहिए। जबकि आपराधिक प्रक्रिया द्वारा आरोपी व्यक्तियों को दी गई सुरक्षा को नष्ट नहीं किया जाना है, साथ ही, तुच्छताओं की बेख़बर वैधता आपराधिक न्याय के प्रशासन का मजाक उड़ाएगी। संदेह के लाभ के नियम की अतिशयोक्ति के परिणामस्वरूप न्याय की हत्या हो सकती है। दोषियों को बच निकलने देना न्याय नहीं है। एक न्यायाधीश मुकदमे की अध्यक्षता न केवल यह सुनिश्चित करने के लिए करता है कि किसी निर्दोष को दंडित न किया जाए, बल्कि यह भी देखने के लिए कि दोषी बच न जाए।

64. रमेश हरिजन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2012) 5 एस.सी.सी 777; सच्चा सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2003) 7 एस.सी.सी 643; (ग) माननीय उच्चतम न्यायालय ने उत्तर प्रदेश राज्य बनाम अशोक कुमार श्रीवास्तव, ए.आई.आर 1992 एस.सी 840 और इंदर सिंह बनाम दिल्ली राज्य प्रशासन, ए.आई.आर 1978 एस.सी 1091 के मामले में यह निर्णय दिया था कि युक्तियुक्त संदेह काल्पनिक, तुच्छ या मात्र संभव संदेह नहीं है, बल्कि तर्क और सामान्य ज्ञान पर आधारित एक उचित संदेह है। यह मामले में सबूतों की हद से बाहर निकलना चाहिए। यदि कोई मामला पूरी तरह से साबित हो जाता है, तो यह तर्क दिया जाता है कि यह कृत्रिम है, अगर किसी मामले में कुछ अपरिहार्य खामियां हैं क्योंकि मनुष्य गलती करने के लिए प्रवण हैं; यह तर्क दिया जाता है कि यह बहुत अपूर्ण है। अस्पष्ट अनुमान न्यायिक मूल्यांकन की जगह नहीं ले सकते।

अवधारित

65. भगवान जगन्नाथ मारकड (सुप्रा) में; जोस @ पप्पाचन बनाम पुलिस उप-निरीक्षक, कोइलांडी और अन्य, (2016) 10 एस.सी.सी 519 और गुरबचन सिंह बनाम सतपाल सिंह, ए.आई.आर 1990 एस.सी 209 यह माना गया था कि संदेह के लाभ के नियम के प्रति अतिरंजित भक्ति को काल्पनिक संदेह या संदिग्ध को पोषित नहीं करना चाहिए और इस तरह सामाजिक रक्षा को नष्ट नहीं करना चाहिए। न्याय को इस दलील पर बाँझ नहीं बनाया जा सकता कि किसी निर्दोष को सजा देने से बेहतर है कि सौ गुनहगारों को बच निकलने दिया जाए। दोषियों को बच निकलने देना कानून के अनुसार न्याय नहीं है।

66. इसलिए, इस न्यायालय का विचार है कि अभियोजन पक्ष ने सफलतापूर्वक बोझ का निर्वहन किया है और बचाव पक्ष न्यायालय के न्यायिक दिमाग में अभियुक्त की निर्दोषता के बारे में उचित संदेह पैदा करने में विफल रहा है। उपरोक्त विवेचन से यह बात सिद्ध हो गई है कि यह घर के अंदर आरोपी पत्नी और उसके प्रेमी की मौजूदगी में पति की हत्या का मामला है। इसलिए, अधिनियम, 1872 की धारा 106 भूमिका निभाएगी जो सामान्य अनुप्रयोग की है जो निम्नानुसार पढ़ी जाती है:-

106. तथ्य को सिद्ध करने का भार विशेषतः ज्ञान के भीतर होना- जब कोई तथ्य विशेषतः किसी व्यक्ति के ज्ञान में होता है तो उस तथ्य को सिद्ध करने का भार उस पर होता है |

<u>व्याख्या</u>

(ए) जब कोई व्यक्ति उस कार्य के चरित्र और परिस्थितियों के अलावा किसी अन्य इरादे से कार्य करता है, जो अधिनियम के चरित्र और परिस्थितियों का सुझाव देता है, तो उस इरादे को साबित करने का बोझ उस पर होता है।

(b) A को बिना टिकट रेलवे पर यात्रा करने का प्रभार दिया जाता है। यह साबित करने का बोझ कि उनके पास टिकट था, उन पर है।

67. अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने तर्क दिया कि अधिनियम, 1872 की धारा 106 न केवल दहेज मृत्यु के मामले में लागू होती है, बल्कि यह धारा 302 भ०द०वि० के मामले में भी लागू होती है और यह लिंग पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना भी लागू होगी यदि पत्नी अपने पति की हिरासत और नियंत्रण में घर के अंदर रहस्यमय परिस्थितियों में मर जाती है, धारा 106 लागू होगी। इसी प्रकार, यदि किसी पति की घर के भीतर रहस्यमयी परिस्थितियों में मृत्यु हो जाती है और उसकी पत्नी पर उसके पति की हत्या का आरोप लगाया जाता है, तो यह देखा जाना चाहिए कि क्या ऐसी पत्नी पर यह बताने के लिए कोई बोझ डाला जा सकता है कि उसके पति की मृत्यु कैसे हुई।

68. इस मामले में हालांकि अभियुक्त-अपीलकर्ता ने बचाव किया है कि मृतक की मौत बिजली के करंट लगने से हुई थी, लेकिन अग्निशमन अधिकारी और डॉक्टर की शव परिक्षण रिपोर्ट और सबूतों से और चक्षुक साक्ष्य से भी यह साबित हो गया है कि यह बिजली का करंट लगने की घटना नहीं थी। इसलिए, यह निष्कर्ष निकाला गया है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता अधिनियम, 1872 की धारा 106 के तहत बोझ का निर्वहन करने में विफल रहे हैं। चूंकि साक्ष्यों से यह स्थापित हो गया है कि घटना के समय आरोपी गजेंद्र सिंह चौहान भी घर के अंदर मौजूद था, इसलिए

अनुवादित

धारा 106 का बोझ भी उसके कंधे पर होगा। वह यह नहीं बता सका कि घटना की कथित तारीख और समय पर वह मृतक के घर में कैसे और क्यों था और यह भी महत्वपूर्ण है कि उसने बहाना नहीं बनाया है।

69. जहां तक ब०सा०- -1 के साक्ष्य का संबंध है, यह विश्वसनीय नहीं है क्योंकि वह देर से पहुंचा। उन्होंने बताया कि जब वह मौके पर पहुंचे तो वहां पहले से ही कई लोग जमा थे और आग बुझाने की कोशिश कर रहे थे और वह अन्य लोगों के साथ मिलकर बच्चों को घर से बाहर ले गए। उनके मुताबिक उस वक्त गजेंद्र सिंह नहीं थे। इस मौके पर अ०सा०-1 और 2 के साक्ष्य ऐसे हैं जिन्होंने गवाही दी कि घटना के ठीक बाद गजेंद्र सिंह उनके घर से चले गए थे। इसलिए इस गवाह के पास गजेंद्र सिंह को देखने का कोई मौका नहीं था। यह भी एक भौतिक तथ्य है कि अगर सभी पड़ोसी वहां इकट्ठा हो गए और आग बुझाने की कोशिश कर रहे थे, तो गजेंद्र सिंह जिसका घर घर से केवल तीन घर की दूरी पर स्थित है और जो माया देवी को कार चलाना सिखा रहा था, मौके पर क्यों नहीं पहुंचा। मतलब उसकी भूमिका पूरी हो चुकी थी और वह मौके पर मौजूद लोगों के सामने अपनी उपस्थिति छिपा रहा था। ऐसा भी नहीं है कि जब गजेंद्र सिंह ने मृतक के बच्चों को धमकाया था तो गवाह ब०सा०-1, शिवरतन थे। आम तौर पर कोई भी किसी गवाह के सामने धमकी नहीं देता था, इसलिए इस गवाह का सबूत कि गजेंद्र सिंह द्वारा मृतक के बच्चों को कोई धमकी नहीं दी गई थी, विश्वसनीय नहीं है। यह भी महत्वपूर्ण है कि माया वर्मा और गजेंद्र सिंह को कोई चोट नहीं आई। आम तौर पर, यदि कोई पति एक सप्ताह के बाद आता है और पत्नी बच्चों के साथ नहीं सो रही है, तो आम तौर पर अपने पति के साथ एक ही बिस्तर पर सोती है। इस मामले में साक्ष्यों से यह साबित हो गया है कि बच्चे अलग-अलग कमरे में रहते और सोते थे और पत्नी और पति का अलग लिविंग रूम था, ऐसे में माया देवी के शरीर पर भी कोई जलने का जख्म क्यों नहीं पाया गया, और उस पर कोई चोट नहीं लगने से इस सच्चाई का खुलासा होता है कि मृतक की हत्या अलगाव में की गई थी। जांच में भी विवेचनाधिकारी द्वारा लिखा गया है कि पंचों के अनुसार मृतक को जलाकर मार डाला गया था।

70. उपरोक्त चर्चा के आधार पर, इस न्यायालय का विचार है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता द्वारा ज्वलनशील सामग्री डालकर मृतक को आग लगा दी गई थी। यह करंट लगने या शॉर्ट सर्किट आग लगने से घायल होने का मामला नहीं था। इसलिए, विचारण न्यायालय ने आरोपी-अपीलकर्ता को भ०द०वि० की धारा 302 के तहत दोषी ठहराया है।

71. अ०सा०-1 और 2 के साक्ष्य से यह साबित हो गया है कि दोनों अभियुक्त-अपीलकर्ता ने सूचनाकर्ता और अन्य बच्चों को उसी तरह से मारने की धमकी दी थी जैसे उनके पिता को मार दिया गया था। इसलिए, धारा 506 भ०द०वि० के तहत आरोप आरोपी-अपीलकर्ता के खिलाफ उचित संदेह से परे साबित होता है।

72. उपरोक्त चर्चा के आधार पर, इस न्यायालय का विचार है कि विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और दोषसिद्धि और सजा का आदेश हस्तक्षेप करने योग्य नहीं

अनुवादित

है। अपील में दम नहीं है और इसे तदनुसार, खारिज किया जा सकता है।

आदेश

73. तदनुसार, यह अपील खारिज की जाती है।

74. अभियुक्त-अपीलार्थी गजेन्द्र सिंह के जेल में होने की सूचना है।

75. मूल अभिलेखों और इस निर्णय की एक प्रति के साथ आवश्यक अनुपालन के लिए विचारण न्यायालय को वापस भेजा जाए।

अतिरिक्त आदेश

76. अभियुक्त-अपीलकर्ता सरकार की नीति के अनुसार 14 साल की कैद के बाद छूट का हकदार होगा क्योंकि मौत को इतना भीषण नहीं कहा जा सकता है कि उसे जेल में जीवन बिताना होगा।

(2023) 6 ILRA 122

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 29.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर

माननीय न्यायमूर्ति शिव शंकर प्रसाद, जे.

आपराधिक अपील संख्या 3963 वर्ष 2013

आपराधिक अपील संख्या 4249 वर्ष 2013

जय किशन @ बबलू ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य . ..प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता: श्री डी.एस. पांडे, श्री गजेंद्र कुमार गौतम, श्री के.के. श्रीवास्तव, श्री मोहम्मद अरशद खान, श्री सौरभ गौर, श्री आर.वी. पांडे, श्री संजय कुमार यादव, श्री विकाश चंद्र तिवारी

प्रतिवादी के लिए अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता, श्री सुनील कुमार दुबे

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302/120बी - हत्या के लिए सजा - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161 और 313 - दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील - आजीवन कारावास - एफआईआर के अनुसार, आरोपी का सह-आरोपी के साथ अवैध संबंध था - आरोपी के भाई ने उसे इस तरह के संबंध के लिए प्रोत्साहित किया और उसने सह-आरोपी के साथ मिलकर मृतका पर मिट्टी का तेल डाला और उसे आग लगा दी - आरोप-पत्र प्रस्तुत - आरोप तय - अपीलकर्ता संख्या 1 ने कहा कि घटना की तारीख पर वह घर पर नहीं था और जब वह अगले दिन लौटा, तो उसने पाया कि वह जल गई है और उसके परिवार के सदस्य उसे अस्पताल ले गए हैं - अपीलकर्ताओं को अपराध करने से जोड़ने वाला कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है, क्योंकि स्टार स्वतंत्र गवाह पी.डब्लू.-3 की गवाही विश्वसनीय नहीं हो सकती क्योंकि उसकी आयु लगभग 5 वर्ष थी - माना गया कि ट्रायल कोर्ट ने सही ढंग से दर्ज किया कि मृतका 70% तक जल गई थी और ऐसा मिट्टी का तेल डाले जाने के कारण हुआ था - आरोपी भाई को संदेह का लाभ मिला - पुलिस ने घटनास्थल से मिट्टी के तेल का कनस्तर, माचिस, अधजले कपड़े बरामद किए हैं - मृतका द्वारा खुद आत्महत्या करने का कोई सबूत नहीं मिला - पी.डब्लू.-1 और पी.डब्लू.-2 को रिश्ते के बारे में पता था, और उन्होंने एफआईआर में बताए गए बयान की ही पुष्टि की - पी.डब्लू.-3 ने अपनी गवाही में अपने पिता को विशेष रूप से दोषी ठहराया है और पी.डब्लू.-1 और पी.डब्लू.-2 ने भी उसका

अनुवादित

समर्थन किया है - घटना के बाद पी.डब्लू.-3 अपनी नानी के पास गया - मृतका की हत्या करने का मजबूत मकसद। (पैरा 1, 4, 8, 11, 14, 17, 47, 49, 50, 52, 53, 62)

आपराधिक अपील खारिज। (ई-13)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. मेकला सिवैया बनाम आंध्र प्रदेश राज्य 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 88 में रिपोर्ट किया गया, (पैरा 25 और 26)

2. राम कुमार मधुसूदन पाठक बनाम गुजरात राज्य 1998 में रिपोर्ट किया गया 0 सुप्रीम (एससी) 836

3. अरुलवेलु और अन्य बनाम राज्य लोक अभियोजक और अन्य द्वारा प्रतिनिधित्व किया गया 2009 में रिपोर्ट किया गया 0 सुप्रीम (एससी) 1628

4. राम नाथ नोनिया बनाम बिहार राज्य 1999 में रिपोर्ट किया गया 0 सुप्रीम (पैट) 778

5. पी. रमेश बनाम राज्य पुलिस निरीक्षक द्वारा प्रतिनिधित्व किया गया (2019) 20 एससीसी 593 में रिपोर्ट किया गया, (पैरा 14 से 16)

(माननीय न्यायमूर्ति शिव शंकर प्रसाद द्वारा दिया गया)

1. दोनों आपराधिक अपीलें सत्र विचारण संख्या-1476 वर्ष 2011 (राज्य बनाम जयकिशन @ बबलू और 2 अन्य) में अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-2, गाजियाबाद द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय दिनांक 20 अगस्त, 2013 के विरुद्ध निर्देशित हैं, जो धारा 302/120 बी भ०द०वि०, थाना-बहादुरगढ़, जिला-गाजियाबाद के तहत केस अपराध संख्या-112 वर्ष 2011 से उद्भूत हुआ है, जिसके तहत आरोपी-अपीलकर्ता जयकिशन @ बबलू और श्रीमती अनीता को धारा 302 भ०द०वि० के अपराध के लिए दोषी ठहराया गया है और किया गया है धारा 302 के तहत अपराध करने के लिए आजीवन कारावास की सजा के साथ 10,000 रुपये का जुर्माना; और जुर्माना अदा न करने की स्थिति में उन्हें एक वर्ष का अतिरिक्त कारावास भुगतना होगा, जबकि अन्य सह-अभियुक्त कुबेरदत्त को धारा 302/120 बी भ०द०वि० के तहत अपराध के लिए बरी कर दिया गया है।

2. चूंकि विचारण न्यायालय के बुनियादी तथ्य, मुद्दे और फैसले समान और सामान्य हैं, इसलिए दोनों आपराधिक अपीलों को एक साथ मिला दिया गया है और एक साथ सुना जा रहा है और इस संयुक्त फैसले द्वारा इसका निर्णय दिया जा रहा है।

3. अभियुक्तों-अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री मोहम्मद अरशद और राज्य के अधिवक्ता को सुना। सूचनाकर्ता के अधिवक्ता श्री सुनील कुमार दुबे दोनों अपीलों की सुनवाई के समय उपस्थित नहीं थे।

4. प्रस्तुत मामला सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 निरंजन शर्मा (प्रदर्श-क-1) की एक लिखित रिपोर्ट पर आगे बढ़ता है, जिसे तरुण शर्मा (अ०सा०-2) द्वारा दिनांक 20 जुलाई, 2011 को लिखा गया है, जिसमें यह कहा गया है कि उसने अपनी बेटी रेखा का विवाह लगभग 14 साल पहले राधे शुक्ला, गांव भडस्याना के जय किशन उर्फ बबलू पुत्र के साथ किया था। कुछ समय पहले आरोपी-अपीलकर्ता जय किशन उर्फ बबलू ने आरोपी-अपीलकर्ता अनीता पत्नी हरिप्रकाश शर्मा गांव भडस्याना थाना-बहादुरगढ़ के साथ अवैध संबंध स्थापित करना शुरू किया, जो सर्वतैशी इंटर कॉलेज भडस्याणा में चपरासी

अनुवादित

है। सूचनाकर्ता रेखा की बेटी अपने पति (आरोपी-अपीलकर्ता जयकिशन) पर आरोपी-अपीलकर्ता अनीता के साथ अवैध संबंध होने का बार-बार विरोध करती थी। उस आपत्ति पर उसका पति उसे बार-बार पीटता था। आगे कहा गया है कि आरोपी कुबेर दत्त, रेखा का बहनोई यानी जेठ अपने भाई यानी जयकिशन को इस तरह के अवैध संबंध के लिए प्रोत्साहित करता था। 19 जुलाई, 2011 को रात 11:00 बजे आरोपी कुबेर दत्त द्वारा रची गई साजिश के अनुसार, आरोपी-अपीलकर्ता जयकिशन और अनीता ने रेखा पर मिट्टी का तेल डाला और उसे आग लगा दी, जिसके कारण रेखा की मृत्यु हो गई। मृतका रेखा की मौत की सूचना ग्राम प्रधान श्री सतीश फौजी ने टेलीफोन पर सूचना देने वाले को दी और उन्होंने सूचित किया है कि मृतका रेखा के ससुराल वाले उसे जली हुई हालत में मेरठ के अस्पताल ले गए। उक्त सूचना प्राप्त होने पर, सूचनाकर्ता मेरठ मेडिकल कॉलेज/अस्पताल पहुंचा जहां उसे सूचित किया गया कि मृतका को दिल्ली के अस्पताल में रेफर कर दिया गया है। जब वे मृतका रेखा के साथ एम्बुलेंस से दिल्ली जा रहे थे, तब उसने दम तोड़ दिया। सूचनाकर्ता एम्बुलेंस के साथ, जिसमें मृतका का शव रखा गया था, प्राथमिकी दर्ज करने के लिए थाना पहुंचा।

5. दिनांक 20 जुलाई, 2011 की उपरोक्त लिखित रिपोर्ट के अनुसरण में थाना-बहादुरगढ़, जिला मेरठ में धारा 302, 120-बी भ०द०वि० के तहत केस अपराध संख्या-112 वर्ष 2011 के रूप में एक प्राथमिकी (प्रदर्श-क/10) दर्ज की गई। प्राथमिकी दर्ज होने के बाद प्रथम विवेचनाधिकारी सब इंस्पेक्टर राम प्रसाद शर्मा (अ०सा०-4) आगे बढ़े और लिखित रिपोर्ट और चिक प्राथमिकी के बारे में केस डायरी में प्रविष्टि करने के बाद वह उस स्थान पर पहुंचे जहां एम्बुलेंस खड़ी थी। उन्होंने मृतका के शरीर की पंचान गवाहों की उपस्थिति में, पंचनामा रिपोर्ट तैयार की (प्रदर्श-क/2) जिन्हें उनके द्वारा नियुक्त किया गया था। अ०सा०-4 ने शव को सील करवाकर दस्तावेज तैयार करने, सील का ड्राफ्ट, फोटो लाश, पुलिस फॉर्म-13, मुख्य चिकित्साधिकारी को लिखे पत्र और आरआई को पत्र को पत्र लिखकर शव को मोर्चरी भिजवाने के लिए कहा। उसके बाद अ०सा०-4 ने अ०सा०-1 और अ०सा०-2 के बयान दर्ज किए और अ०सा०-1 के साथ घटनास्थल पर गए। अ०सा०-4 ने नक़्शा नज़री (प्रदर्श-क/9) तैयार किया है, जिसके बाद उसने मिट्टी के तेल से भरा प्लास्टिक जार (जर्किन), एक माचिस की डिब्बी, कुछ माचिस की तीलियाँ, मृतका रेखा के कपड़े के कुछ टुकड़े एकत्र किए हैं, जिन्हें उसने घटना के समय पहना था और गवाहों सुशील कुमार, दिनेश कुमार की उपस्थिति में फ़र्द बरामदगी (प्रदर्श-क/10) तैयार किया। उन्होंने उनके बयान भी दर्ज कराए हैं। अ०सा०-4 ने आरोपी-अपीलकर्ता जयकिशन और अनीता को भी गिरफ्तार कर उनके बयान भी दर्ज किए हैं।

6. मृतका रेखा के शव का शव परीक्षण 20 जुलाई, 2011 को शाम 05:00 बजे ऑटोप्सी सर्जन डॉ. जितेंद्र कुमार त्यागी (अ०सा०-6) द्वारा किया गया था और शव परीक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श क-ए-7), अ०सा०-6 में मृतका के शरीर पर लगभग 70% गहरे जलने के घाव पाए गए हैं। उन्होंने यह मत व्यक्त किया है कि मृतका

अनुवादित

की मृत्यु का कारण निम्नलिखित मृत्यु पूर्व जलने की चोटों के कारण है

1- बालों का झुलसना।

2. लालिमा की रेखा मौजूद है।

३. सतही से लेकर गहरे जलने तक के छाले।

4. पीठ के निचले हिस्से, दोनों पैर, निचले छोरों का आधा, बच गया।

5. लगभग 70% जला क्षेत्र मौजूद है।

6 फोली का कैथेटर जगह में मौजूद है।

7. 11 अगस्त, 2011 को उप-निरीक्षक संजीव कुमार (अ०सा०-7) ने अ०सा०-4 के बाद आगे की जांच का जिम्मा संभाला और एच.सी.पी. नेत्रपाल सिंह का बयान दर्ज किया। अध्याय XII द०प्र०स० के तहत वैधानिक जांच के निष्कर्ष के बाद अ०सा०-7 ने आरोपी-अपीलकर्ताओं के खिलाफ आरोप पत्र (प्रदर्शिका/14) प्रस्तुत किया।

8. आरोप पत्र प्रस्तुत करने पर, संबंधित मजिस्ट्रेट ने मामले में संज्ञान लिया और मामले को सत्र न्यायालय को सौंप दिया, जिसके द्वारा मामले की सुनवाई की जानी थी। 16 मार्च, 2012 को, संबंधित न्यायालय ने आरोपी-अपीलकर्ता जयकिशन और अनीता और सह-आरोपी कुबेरदत्त के खिलाफ धारा 302/34 और 120-बी भ०द०वि० के तहत आरोप तय किए। आरोपों को पढ़ा गया और आरोपी-अपीलकर्ता को समझाया गया, जिन्होंने आरोप से इनकार किया और विचारण चाहा।

9. मुकदमा शुरू हुआ और अभियोजन पक्ष ने सात गवाहों की जांच की, जो इस प्रकार हैं:

1	निरंजन शर्मा (सूचनकर्ता/शिकायतकर्ता)	अ०सा०-1
2	तरुण शर्मा (तहरीर का लेखक)	अ०सा०- 2
3	तनु	अ०सा०-3
4	दारोग़ा राम प्रसाद शर्मा (पहला विवेचनाधिकारी)	अ०सा०-4
5	हेड कांस्टेबल -06 राम चरण सिंह	अ०सा०-5
6	डॉ जितेंद्र कुमार त्यागी ऑटाप्सी सर्जन	अ०सा०-6
7	सब इन्स्पेक्टर संजीव कुमार, विवेचनाधिकारी जिसने आरोप पत्र दाखिल किया	अ०सा०-7

10. अभियुक्त-अपीलकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोपों को स्थापित करने के लिए अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित दस्तावेजी साक्ष्य पर भरोसा किया है, जो विधिवत साबित हुए और परिणामस्वरूप प्रदर्श के रूप में चिह्नित किए गए:

1	तहरीरी रिपोर्ट 20 जुलाई 2011	प्रदर्श क-1
2	पंचनामा 20 जुलाई 2011	प्रदर्श क-2
3	प्राथमिकी 20 जुलाई 2011	प्रदर्श क-10
4	प्लास्टिक जार मिट्टी के तेल, माचिस, माचिस की डिब्बी, कपड़े के टुकड़ों का फ़र्द बरामदगी	प्रदर्श क-10A
5	शव परीक्षण रिपोर्ट	प्रदर्श क-13

अप्रमाणित

	20 जुलाई 2011	
6	पेपर न-33 से संबंधित काग़ज़ात, सील का नमूना, फोटो लाश पुलिस फोरम न-33, सी.एम.ओ और आर.आई को पत्र	प्रदर्श क-3
7	आरोप पत्र	प्रदर्श क-14
8	नक़्शा नज़री, इंडेक्स के साथ	प्रदर्श क-9

11. अभियोजन पक्ष के साक्ष्य दर्ज करने के बाद, अभियुक्त को धारा 313 द०प्र०स० के तहत अपना बयान दर्ज करने के लिए दोषी ठहराने वाले साक्ष्य रखे गए। धारा 313 द०प्र०स० के तहत दर्ज अपने बयानों में, सह-अभियुक्त कुबेर दत्त सहित आरोपी-अपीलकर्ताओं ने अपराध में अपनी भागीदारी से इनकार किया। आरोपी अपीलकर्ताओं ने विशेष रूप से विचारण न्यायालय के समक्ष कहा कि उन्हें इस मामले में झूठा फंसाया गया है। आरोपी अपीलकर्ता जयकिशन @ बबलू ने कहा है कि घटना की तारीख पर, वह घर पर नहीं था और जब वह घटना के अगले दिन लौटा, तो उसे पता चला कि उसकी पत्नी जल गई है और उसके परिवार के सदस्य उसे अस्पताल ले गए हैं। बचाव पक्ष द्वारा दो गवाहों जीतपाल ब०सा०-1 और वीरेश कुमार ब०सा०-2 से पूछताछ की गई।

12. विचारण के दौरान प्रस्तुत किए गए उपरोक्त साक्ष्यों के आधार पर, अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य पर भरोसा करने के बाद और तथ्यों के स्पष्ट निष्कर्षों को दर्ज करने के बाद निचली अदालत दोषसिद्धि के आक्षेपित निर्णय को पारित करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुंची है कि अभियोजन पक्ष पूरी तरह से साबित करने में सक्षम रहा है कि अभियुक्त-अपीलकर्ताओं ने मृतका रेखा की हत्या का अपराध किया है। इस प्रकार, विचारण न्यायालय ने धारा 302 भ०द०वि० के तहत अपराध को दोनों आरोपियों द्वारा किया गया पाया है और विचारण न्यायालय ने सह-आरोपी कुबेर दत्त के खिलाफ धारा 302/120-बी भ०द०वि० के तहत अपराध नहीं पाया। विचारण न्यायालय ने तदनुसार भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत अभियुक्त-अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया है और उसे धारा 302 भ०द०वि० के तहत अपराध के लिए 10,000 रुपये के जुर्माने के साथ आजीवन कारावास की सजा सुनाई है।

13. विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और दोषसिद्धि के आदेश से व्यथित होकर, अभियुक्त-अपीलकर्ता ने वर्तमान जेल अपील को प्राथमिकता दी है।

14. अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता का निवेदन यह है कि अभियुक्त-अपीलकर्ताओं को अपराध के कमीशन से जोड़ने का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है क्योंकि स्टार स्वतंत्र गवाह तनु (अ०सा०-3) की गवाही को विश्वसनीय नहीं कहा जा सकता है क्योंकि घटना के समय वह लगभग 5 वर्ष का था और अपने नाना की तहवील में था। मकसद बिल्कुल कमजोर है। अभियोजन का मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर टिका हुआ है जिसमें आरोपी-अपीलकर्ताओं को केवल इस संदेह के आधार पर फंसाया गया है कि आरोपी-अपीलकर्ताओं दोनों के बीच अवैध

अनुवादित

संबंध थे और आरोपी-अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराने के लिए कोई सबूत मौजूद नहीं है।

15. यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि विचारण न्यायालय ने तनु के बयान पर भरोसा किया है जो घटना के चार दिनों के बाद विवेचनाधिकारी द्वारा दर्ज किया गया था जिसमें प्राथमिकी में सामने आए संस्करण का कोई अंश नहीं है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि आरोपी-अपीलकर्ताओं ने कथित अपराध नहीं किया है, जबकि मृतका ने खुद पर मिट्टी का तेल डालकर आत्महत्या कर ली है और उसे आग लगा दी है, क्योंकि एक ढीली स्वभाव की महिला होने के नाते, वह आरोपी-अपीलकर्ता अनीता के साथ अवैध संबंध होने के संदेह के कारण आरोपी अपीलकर्ता जयकिशन के साथ झगड़ा करती थी। आरोपी अपीलकर्ता अनीता के साथ अवैध संबंध होने के संदेह के कारण मृतका के आक्रामक आचरण के कारण, उसने संबंधित थाना के समक्ष एक आवेदन दिया था। इसके बाद यह प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि आरोपी जयकिशन की शादी 14 साल पहले मृतका के साथ हुई थी, इसलिए अभियुक्त-अपीलकर्ता के लिए मृतका की हत्या करने का कोई अवसर नहीं था। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि आरोपी-अपीलकर्ता के खिलाफ विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि और सजा बहुत गंभीर है और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सबूतों पर विचार किए बिना है। इसके बाद यह प्रस्तुत किया गया है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता का वर्तमान को छोड़कर कोई आपराधिक पृष्ठभूमि नहीं है और वह मुकदमे के दौरान जमानत पर था।

16. पूर्वोक्त की संचयी ताकत पर, अपीलकर्ताओं के लिए उपस्थित अधिवक्ता प्रस्तुत करता है कि अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयानों में असंगति को देखते हुए, अभियोजन पक्ष परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर उचित संदेह से परे आरोपी-अपीलकर्ता के अपराध को स्थापित करने में विफल रहा है। इस प्रकार सजा अत्यधिक है और इसे बरकरार नहीं रखा जाना चाहिए और मामले में उदार दृष्टिकोण रखते हुए सजा के आदेश को संशोधित किया जाना चाहिए।

17. इसके विपरीत, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता, श्री एन. के शर्मा ने निर्णय और दोषसिद्धि के आदेश का समर्थन करते हुए, प्रस्तुत किया है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट तुरंत दर्ज की गई है जिसमें आरोपी व्यक्ति का नाम है। अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करने के लिए ठोस सबूत हैं। वह घटना जिसमें आरोपी अपीलकर्ता जयकिशन @ बबलू और अनीता द्वारा रात लगभग 11:00 बजे मृतका की हत्या करने का आरोप है, जिसे कथित तौर पर अभियुक्त-अपीलकर्ता जयकिशन और मृतका रेखा (अ०सा०-3) के बेटे ने देखा था; अ०सा०-3 कथित घटना का स्टार चश्मदीद गवाह है। घटना का स्थान बचाव पक्ष द्वारा आक्षेपित नहीं किया गया है; और अभियुक्त-अपीलकर्ताओं का मजबूत मकसद या इरादा है और अभियोजन पक्ष के साक्ष्य द्वारा भी इसे समझाया गया है। इसलिए, अभियोजन पक्ष ने आरोपी अपीलकर्ताओं के खिलाफ लगाए गए आरोपों को उचित संदेह से परे साबित कर दिया है।

18. पूर्वोक्त प्रस्तुतियों को मजबूत करने के लिए, अपर शासकीय अधिवक्ता ने 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 887 में रिपोर्ट किए गए मेकाला सिवैया बनाम आंध्र प्रदेश

अनावरित

राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के नवीनतम निर्णय की ओर न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है, जिसके तहत पैराग्राफ संख्या-25 और 26 में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया है:

"25. प्रस्तुत मामले में तथ्यों और सबूतों का विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों द्वारा पूरी तरह से विश्लेषण किया गया है और इसे निम्नानुसार संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है:

i. अभियोजन पक्ष ने उचित संदेह से परे धारा 302 भ.द.वि. के तहत अपराध के लिए अपीलकर्ता के अपराध को साबित करने में अपने कर्तव्यों का निर्वहन किया है।

ii. जब चिकित्सा साक्ष्य द्वारा पर्याप्त चक्षुक संबंधी साक्ष्य की पुष्टि की जाती है, तो अपीलकर्ता से हथियार की गैर-बरामदगी अभियोजन पक्ष के मामले को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित नहीं करेगी।

iii. यदि किसी चश्मदीद गवाह की गवाही अन्यथा भरोसेमंद और विश्वसनीय पाई जाती है, तो उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता है और केवल इसलिए खारिज नहीं किया जा सकता है क्योंकि उसकी गवाही में कुछ महत्वहीन, सामान्य या प्राकृतिक विरोधाभास सामने आए हैं।

v. मृतका पर अपीलकर्ता द्वारा दिन के उजाले में हमला किया गया है और इसे साबित करने के लिए प्रत्यक्ष सबूत उपलब्ध हैं और अपीलकर्ता और अ०सा०-1 के बीच पिछली दुश्मनी को देखते हुए हमले के पीछे का मकसद भी स्पष्ट है।

26. प्रस्तुत मामले के उपरोक्त तथ्यों को ऊपर संदर्भित निर्णयों के साथ जोड़कर और चश्मदीद गवाहों के साक्ष्य और अभियोजन पक्ष द्वारा पेश की गई अन्य सामग्री की मूल्यांकन करने पर, विचारण न्यायालय के साथ-साथ उच्च न्यायालय भी धारा 302 भ०द०वि० के तहत अपराध के लिए अपीलकर्ता को दोषी ठहराने में सही थे। इसलिए, हमें विचारण न्यायालय और हाईन्यायालय के निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं मिलता है। (महत्व दिया गया)

19. राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता श्री एन. के. शर्मा ने सर्वोच्च न्यायालय और पटना उच्च न्यायालय के निम्नलिखित निर्णयों पर भी भरोसा किया है:

(क) 1998 में रिपोर्ट किए गए राम कुमार मधुसूदन पाठक बनाम गुजरात राज्य, उच्चतम न्यायालय (एस.सी.) 836;

(बी) अरुलवेलु और एक अन्य बनाम राज्य प्रतिनिधि लोक अभियोजक द्वारा और दूसरा 2009 में रिपोर्ट किया गया, उच्चतम न्यायालय (एस.सी.) 1628; और

(ग) राम नाथ नोनिया बनाम बिहार राज्य 1999 में रिपोर्ट किया गया।

उपरोक्त सबमिशन की संचयी ताकत पर, अपर शासकीय अधिवक्ता प्रस्तुत करता है कि चूंकि यह प्रत्यक्ष साक्ष्य का मामला है, इसलिए आक्षेपित निर्णय और दोषसिद्धि का आदेश किसी भी अवैधता और दुर्बलता से ग्रस्त नहीं है ताकि इस न्यायालय द्वारा किसी भी हस्तक्षेप को वारंट किया जा सके। इस प्रकार, मृतका की हत्या करके जघन्य अपराध करने वाले आरोपी अपीलकर्ताओं द्वारा दायर वर्तमान जेल अपील खारिज की जा सकती है।

20. हमने पक्षकारों के अधिवक्ताओं द्वारा आग्रह किए गए संबंधित तर्कों की जांच की है

अनुवादित

और निचली अदालत के रिकॉर्ड के साथ-साथ दोषसिद्धि के आक्षेपित निर्णय सहित प्रस्तुत अपील के रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

21. इस अपील में एकमात्र प्रश्न को संबोधित करने और निर्धारित करने की आवश्यकता है कि क्या विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा अपराध का निष्कर्ष निकाला गया है और दी गई सजा कानून में वैध और टिकाऊ/पुख्ता है और किसी भी दुर्बलता और विकृति से ग्रस्त है।

22. अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा स्थापित मामले के गुण-दोष और विचारण न्यायालय द्वारा पारित अपर शासकीय अधिवक्ता के आक्षेपित निर्णय और दोषसिद्धि के आदेश में प्रवेश करने से पहले, हमारे लिए अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयानों का संक्षेप में उल्लेख करना वांछनीय है।

23. अ०सा०-1/सूचनाकर्ता/शिकायतकर्ता, जो मृतका रेखा के पिता हैं, ने अपनी मुख्य परीक्षण में कहा है कि मृतका रेखा उनकी बेटी थी। उसकी शादी घटना के 14 साल पहले आरोपी जयकिशन @ बबलू के साथ हुई थी। आरोपी-अपीलकर्ता जयकिशन @ बबलू का चरित्र बहुत खराब था। उसके आरोपी-अपीलकर्ता अनीता के साथ अवैध संबंध थे। वह हरि प्रकाश की पत्नी हैं, जो भडस्याना के सर्व हितैशी इंटर कॉलेज में चपरासी के रूप में कार्यरत हैं। रेखा और जयकिशन के बीच पहले भी संबंध थे। बाद में जब जयकिशन के अनीता के साथ अवैध संबंध थे तो जयकिशन शराब पीकर रेखा को पीटता था। रेखा ने जयकिशन को अनीता के पास न जाने के लिए कहा और इस गवाह ने जयकिशन को उक्त मामले के बारे में भी बताया, जिस पर उसने रेखा को उसके सामने पीटा था। आरोपी कुबेर दत्त ने इस तरह के अवैध संबंध को जारी रखने में जयकिशन का समर्थन किया। कुबेर दत्त ने ही रेखा की मिलीभगत से हत्या करवाई थी। आरोपी कुबेरदत्त जेठ (मृतका का बहनोई) था, जो जयकिशन को प्रोत्साहित करता था। वह उसकी बेटी रेखा को प्रताड़ित करता था।

24. न्यायालय में इस गवाह ने आरोपी व्यक्तियों अर्थात् अनीता, जयकिशन उर्फ बबलू की पहचान की है, जिन्होंने कुबेर दत्त के साथ साजिश रची और 19-7-11 को रात लगभग 11.00 बजे मिट्टी का तेल डालकर रेखा को आग लगा दी। रेखा को रस्सी से बांधकर आग लगा दी गई। ग्राम प्रधान सतीश फौजी ने सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 को रेखा के जलने की सूचना टेलीफोन के माध्यम से दी। सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 ने सतीश प्रधान को बताया कि रेखा कितनी जली है जिस पर सतीश प्रधान ने रेखा से फोन पर बात कराई और जवाब में रेखा ने कहा कि वह पूरी तरह जल चुकी है।

25. इस गवाह ने आगे कहा है कि रेखा पर घटना से पहले 22-5-11 को आरोपी व्यक्तियों द्वारा हमला किया गया था, जिसके कारण वह उसके पास आई थी, फिर वह 23 मई, 2011 को बहादुरगढ़ थाना गई और आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ यातना देने और हमला करने के लिए प्राथमिकी दर्ज करने के लिए एक लिखित रिपोर्ट दी, जिस पर प्राथमिकी दर्ज की गई थी, उस पर संलग्न हस्ताक्षर विचारण न्यायालय के समक्ष सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 द्वारा सिद्ध कर दिए गए हैं। दिनांक 24-5-2011 को सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 ने गढ़ अस्पताल में रेखा की मेडिकल जांच करवाई, चिकित्सा जांच की

अनुवादित

फोटो कॉपी रिकॉर्ड में है। फिर मृतका सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 के घर गया और उसके बाद दोनों परिवार के सदस्यों और पुलिस के बीच एक बैठक हुई जिसमें आरोपी कुबेर दत्त ने जिम्मेदारी ली कि आरोपी जयकिशन उर्फ बबलू आरोपी अनीता के पास कभी नहीं जाएगा, परिणामस्वरूप फैसलानामा एन.सी.आर. संख्या-41 वर्ष 2011 के साथ समझौता हो गया है, इसकी एक फोटो कॉपी पेपर संख्या-11 ए के रूप में रिकॉर्ड पर है। जब इसे गवाह को पढ़ा गया, तो गवाह ने कहा कि यह वही था।

26. जिरह में इस गवाह ने बताया है कि मेरठ मेडिकल अस्पताल में उसकी मुलाकात आरोपी कुबेरदत्त से नहीं हुई और गांव के लोग उसे देखकर भाग गए। सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 अपनी बेटी रेखा से मिला, जहां उसने बताया कि आरोपी जयकिशन, अनीता और कुबेर ने उसे आग लगा दी। रेखा ने यह भी बताया कि पहले उसे चारपाई पर बांधा गया, फिर आरोपी अनीता ने उस पर मिट्टी का तेल डाला और आरोपी जय किशन ने आग लगा दी। यह बात उन्हें 20-7-11 को सुबह 7.30 बजे मेडिकल अस्पताल में बताई गई, जहां रेखा भर्ती थीं। प्रतिपरीक्षा में इस गवाह ने यह भी कहा है कि निरीक्षक द्वारा उसका बयान 20 जुलाई, 2011 को मध्याह्न 12.00 बजे दर्ज किया गया था।

27. अ०सा०-2 तरुण, जो मृतका का सगा भाई और सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 का पुत्र है, ने अपनी जांच में कहा है कि रेखा (मृतका) की शादी उसकी हत्या से 14 साल पहले हुई थी। उनकी बहन रेखा को शादी के बाद एक-दो साल तक अच्छे से रखा गया था, उसके बाद गांव में अनीता नाम की एक महिला आई, जिसके पति का नाम हरि प्रकाश है, जो सर्व-हितैशी इंटर कॉलेज में चपरासी है। रेखा के पति जय किशन उर्फ बबलू के आरोपी अनीता के साथ अवैध संबंध थे। उसकी बहन रेखा ने जयकिशन को बार-बार अनीता से न मिलने के लिए कहा, जिस पर उसका पति जयकिशन उर्फ बबलू और बहनोई कुबेरदत्त उसकी बहन के साथ मारपीट करते थे। उसका देवर कुबेर भी उसे बुरी तरह गालियां देता था और कहता था कि रेखा को मार देना चाहिए और अनीता को उसकी जगह घर में ही रख देगा। अनीता के साथ जय किशन के अवैध संबंध को सुनकर, इस गवाह ने (सूचनाकर्ता/अ०सा०-1) सहित परिवार के अन्य सदस्यों के साथ जय किशन को अनीता से न मिलने के लिए मनाने की कोशिश की और उन्होंने कुबेर दत्त से भी इसकी शिकायत की।

28. इस गवाह ने आगे कहा है कि इस घटना से पहले, आरोपी व्यक्तियों जयकिशन, कुबेरदत्त और अनीता ने अपनी बहन रेखा को बुरी तरह पीटा था और उसे अपने घर से बाहर निकाल दिया था, जिसके संबंध में रेखा ने पुलिस को सूचित किया था और रेखा का मेडिकल भी किया गया था। रेखा ने 23-5-11 को लिखित सूचना दी थी। इस गवाह ने एन.सी.आर. पर संलग्न रेखा के हस्ताक्षरों को भी सत्यापित किया है।

29. इस गवाह ने आगे कहा है कि कुछ दिनों के बाद, कुछ सम्मानित व्यक्ति और रिश्तेदारों की सलाह पर, इस गवाह का पक्ष और आरोपी व्यक्ति एक समझौते पर पहुंचे, जिसमें आरोपी कुबेरदत्त ने आश्वासन दिया कि भविष्य में ऐसा नहीं होगा और यह उसकी जिम्मेदारी थी। इस गवाह ने मृतका रेखा द्वारा दर्ज कराई गई एन.सी.आर. से उत्पन्न पक्षों के बीच हुए

अनुवादित

समझौते की फोटोकॉपी को भी सत्यापित किया है जो रिकॉर्ड में भी है।

30. इस गवाह ने आगे कहा है कि वे अपने घर से मेरठ मेडिकल कॉलेज गए थे। उसकी बहन रेखा गंभीर जली हुई हालत में अस्पताल में मिली थी। उसने बताया कि उसके पति जयकिशन उर्फ बबलू और देवर कुबेर दत्त और अनीता को आग लगा दी गई? इस गवाह ने अदालत में आरोपी व्यक्तियों की पहचान की है और कहा है कि उन्होंने उसकी बहन रेखा को आग लगाने के बाद उसकी हत्या कर दी। इस गवाह ने आगे कहा है कि डॉक्टर ने उन्हें बताया कि रेखा गंभीर रूप से जल गई है जिसके कारण उन्होंने उसे भर्ती करने से इनकार कर दिया और उसे दिल्ली ले जाने की सलाह दी। लेकिन अस्पताल में जय किशन और कुबेर दत्त के सभ्य दृष्टिकोण के कारण मृतका को भर्ती कराया गया था, उसके बाद डॉक्टर ने बताया कि मृतका को दिल्ली रेफर कर दिया गया है। दिल्ली का जिक्र करने के बाद वे रेखा को लेकर दिल्ली चले गए लेकिन रास्ते में ही रेखा ने दम तोड़ दिया। उसने अपने पिता निरंजन शर्मा (सूचनाकर्ता/अ०सा०-1) के कहने पर घटना की रिपोर्ट लिखी थी।

31. इस गवाह ने आगे कहा है कि तीनों आरोपियों ने उसकी बहन रेखा की हत्या कर दी थी क्योंकि जयकिशन उर्फ बबलू के अनीता के साथ अवैध संबंध थे और रेखा ने अनीता को अपने घर में रखने से इनकार कर दिया था, जिसके परिणामस्वरूप उसकी हत्या कर दी गई थी।

32. अ०सा०-3 तनु, जो मृतका रेखा का पुत्र है और आरोपी जयकिशन @ बबलू ने अपनी परीक्षा में कहा है कि वह नंगला करण में अपने नाना के साथ रह रहा था। वह अपनी मां की मृत्यु के बाद से नाना-नानी और मामा के यहां रह रहा था। उनकी माता का नाम रेखा था। उसकी मां की कई दिन पहले मौत हो गई थी। आग में उसकी मां की मौत हो गई। उसके पिता, उसके चाचा और अनीता आंटी ने उसकी मां को आग लगा दी थी। इस गवाह ने अदालत में आरोपी व्यक्तियों जयकिशन उर्फ बबलू, ताऊ कुबेर और अनीता की पहचान की है।

33. इस गवाह ने बताया है कि उसके पिता ने घर में कूदकर कुंडी खोली, तभी अनीता आंटी और ताऊ कुबेर ने प्रवेश किया, उसकी मां को बांह में इंजेक्शन लगाया और फिर तीनों ने मिलकर उसे बांधकर उस पर मिट्टी का तेल डाल दिया, फिर उसके पिता ने अपनी जेब से माचिस निकालकर आग लगा दी। उस समय वह वहां था; उसने उनसे पूछा कि वे उसकी मां को क्यों जला रहे हैं, फिर उसके पिता ने उसे घर में मारा, जिसके कारण उसके सिर पर चोट लगी, इसी कारण वह रोया और चिल्लाया। फिर पड़ोस के लोग आए। फिर उसके पिता उसे अपनी गोद में ले कर एक ठाकुर के घर ले गए। वह उस ठाकुर का नाम नहीं जानता था। उसे उसी ठाकुर के घर में बंद करके रखा। दूसरे दिन शाम को उसके मामा और पड़ोसी के बेटे आए, वे उसे उस घर से बाहर ले आए और रास्ते में उसके मामा उसे देहरा कुटी में मिले और वहां से वह उसके साथ मामा के घर चला गया। तब से वह मामा और नाना के साथ रह रहा है।

34. इस गवाह ने आगे कहा है कि उसके पिता (आरोपी रामकिशन @ बबलू) उसकी मां (मृतका रेखा) को पीटते थे। उसकी मां उसके

अप्रमाणित

पिता को कहती थी कि वह अनीता आंटी के घर मत जाओ, इस पर उसके पिता उसकी मां को पीटते थे। उनके पिता अनीता चाची के घर जाते थे और वहीं रहते थे और उनके पिता अपनी मां के साथ नहीं रहते थे। पिता नशे की हालत में उनके घर आते थे और उसकी मां को पीटते थे। उसके नाना और चाचा उसके पिता और आरोपी कुबेरदत्त को समझाते थे, लेकिन पिता की इस हरकत पर वह रुका नहीं। उसने अपने पिता को अनीता के साथ हापुड़ में रहने और अपनी माँ को छोड़ने के लिए भी कहा। इस गवाह ने यह भी कहा है कि उसने इंस्पेक्टर को सभी तथ्यों का खुलासा किया है, जो उसने अपनी गवाही में बताया है।

35. इस गवाह ने यह भी कहा है कि उसके पिता बस और ट्रक के ड्राइवर के रूप में काम करते थे। वह, उसकी मां और उसकी बहन घर पर रहते थे। उसके पिता एक दिन काम के लिए बाहर जाते थे और अगले दिन घर आते थे। जब आरोपियों ने उसकी मां को जला दिया तो उस समय उसकी मां और वह घर में थे। उसकी माँ ने उस दिन खाना बनाया, उसने उसे खाया लेकिन उसकी माँ (मृतका) ने नहीं खाया। उसके पिता ने शाम को उसकी मां की हत्या कर दी थी। 9 बजे उसकी मां ने खाना बनाया उसके बाद उसके पिता आए। इस साक्षी ने खाना खत्म किया ही था कि उसके पिता आ गए। वह नहीं बता सका कि उसके पिता कब आए। उन्होंने आगे कहा है कि घर का दरवाजा कुंडी से बंद था। उनके पिता (आरोपी-अपीलकर्ता जयकिशन @ बबलू) दीवार पर कूदकर घर में घुस गए, जिसकी कोई आवाज नहीं निकली। वह उस दीवार की ऊंचाई नहीं बता सका जिससे उसके पिता ने छलांग लगाई थी। उस समय वह अपनी मां के साथ चारपाई पर लेटा हुआ था लेकिन उसे नींद नहीं आ रही थी।

36. इस गवाह ने आगे कहा है कि घटना की तारीख पर, उसके पिता आरोपी अनीता के घर पर थे, इसलिए उन्होंने उस दिन उसे कोई फोन नहीं किया। सह-आरोपी अनीता और कुबेर दत्त दरवाजे से अंदर आए जब उनके पिता (आरोपी-अपीलकर्ता) जयकिशन ने दरवाजा खोला। घटना के दिन मृतका यानी उसकी मां प्रधान के यहां गई थी, तभी उसके पिता ने उसकी पिटाई कर दी थी। जब उसकी मां जल रही थी तब वह घर में था। उस समय उनकी मां ने सलवार सूट पहना हुआ था। उसे अपनी मां के सलवार सूट का रंग नहीं पता था। उस स्थान के बीच एक दीवार है जहां भोजन पकाया गया था और जहां उन्होंने रखा था। जब उनकी मां खाना बना रही थीं, उस समय वह अपनी मां के साथ वहां थे।

37. जिरह में, इस गवाह ने कहा है कि इससे पहले उसने अपनी मां को जलाने के 4 से 5 दिन बाद देहरादून में पुलिस को अपना बयान दिया था। थाना देहरादून में ही है। उसके मामा सतीश उसे बयान देने के लिए लाए थे। उसने पुलिस को बताया है कि उसके पिता कूदकर घर में घुसे थे। उसने पुलिस को यह भी बताया है कि उसके चाचा यानी आरोपी कुबेर वहां मौजूद थे। उसने आगे कहा है कि उसके पिता ने घटना के दिन शाम को उसकी मां के साथ मारपीट की थी। इससे पहले भी वे उसे पीटते थे। जलने के एक-दो घंटे बाद मृतका को पीटा भी गया। पीठ पर ईंट मारी गई। उसने इंस्पेक्टर को शाम को हुई पिटाई के बारे में बताया है। उसकी मां ने भी पिटाई के बाद

अनुवादित

उसके नाना-नानी को बताया था। जब उसके पिता उसकी मां को पीट रहे थे तो मोहल्ले के लोग वहां जमा हो गए थे।

38. इस गवाह ने आगे कहा है कि जलाने की घटना से पहले उसके पिता दो-तीन महीने तक उसके घर नहीं आए थे। दो-तीन दिन पहले उसके पिता ने उसकी मां के साथ मारपीट की थी और उसके बाद घटना के दिन शाम को मारपीट की। उसे नहीं पता था कि इन 2-3 दिनों में उसकी मां और उसके पिता की कोई मुलाकात थी या नहीं। जिस तारीख को उसकी मां को जलाया गया था, उस तारीख से 2 से 3 दिन पहले उसके पिता उसके घर नहीं आए थे। उनके पिता चाचा यानी आरोपी कुबेरदत्त के घर आए थे। दो-तीन दिन पहले जब उसके पिता उसके चाचा के घर आए थे तो उसने मां को पीटा था और इस बात का खुलासा उसने इंस्पेक्टर को किया है। इस गवाह ने इस बात से इनकार किया है कि वह घटना के बाद कई दिनों तक अपनी चाची उषा के साथ रहा। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया है कि घटना के बाद पुलिस ने उनसे उनकी चाची उषा के यहां मुलाकात की थी। वह पुलिस के साथ वहाँ नहीं गया जहां उसकी मां को जला दिया गया था।

39. इस गवाह ने यह भी बताया है कि उसकी मां तब बेहोश हो गई थी जब उसके चाचा (ताऊ यानी आरोपी कुबेर दत्त) ने उसे इंजेक्शन दिया था। उसके सामने इंजेक्शन दिया गया। जिस शीशी से इंजेक्शन भरा गया था उसे उसके चाचा कुबेरदत्त ने अपनी जेब में रख लिया था। इंजेक्शन लगवाने के बाद उसकी मां कुछ नहीं बोली, इन लोगों ने चारपाई पर फैले कपड़े उतार दिए थे जिससे मां बंधी हुई थी।

40. इस गवाह ने इस बात से इनकार किया है कि उसने उस घटना को नहीं देखा जिसके बारे में उसने बयान दिया है। उसने इस बात से भी इनकार किया है कि उस समय उसकी मां घर पर अकेली थी और खाना बनाते समय खुद को जला लिया। इस गवाह ने इस बात से भी इनकार किया है कि उसके नाना ने दस लाख रुपये की मांग की थी और मना करने पर उसने झूठा फंसाया है। उसने इस बात से भी इनकार किया है कि अपने मामा के साथ रहने के कारण वह उनके दबाव में झूठी गवाही दे रहा था।

41. अभियोजन पक्ष की ओर से पेश किए गए अ०सा०-4 उपनिरीक्षक रामप्रसाद शर्मा ने मामले की जांच की है। इस गवाह ने अपनी जिरह में बताया है कि मृतका अपने परिवार के साथ रहती थी। आरोपी कुबेर दत्त का घर अलग था। गवाह तनु ने उसे नहीं बताया कि उसके पिता ने घर में कूदकर कुंडी खोली, फिर आरोपी अनीता और उसके चाचा कुबेर ने प्रवेश किया, उसके चाचा कुबेर ने उसकी मां को इंजेक्शन लगाया, फिर तीनों ने मिलकर उसकी मां को बांध दिया और उस पर मिट्टी का तेल छिड़क दिया, फिर पिता ने माचिस की तीली निकाली और माचिस की डिब्बी पर वार किया, आग लगा दी। अ०सा०-3 तनु ने यह खुलासा नहीं किया कि आग लगाने के समय उसके पिता ने उसे जमीन पर मारा था और उसने यह नहीं बताया कि उसके सिर में कोई चोट लगी है या उसके सिर पर कोई गांठ निकली है। इस गवाह ने यह भी खुलासा नहीं किया है कि जब वह रोया और चिल्लाया तो पड़ोस के लोग आ गए और उसके पिता उसे उठाकर ठाकुर के घर ले गए। अ०सा०-3 ने यह भी

अनुवादित

खुलासा नहीं किया है कि वह एक ठाकुर के घर में बंद था। अ०सा०-4 ने इस बात से इनकार किया है कि उसके मामा उसे बयान देने के लिए लाए थे। इस गवाह ने कहा है कि अ०सा०-3 ने घटना के समय आरोपी कुबेरदत्त की मौजूदगी के बारे में खुलासा नहीं किया है। अ०सा०-3 ने घटना से कुछ घंटे पहले आरोपी कुबेर द्वारा मृतका को आग लगाने और उसके पिता द्वारा मृतका को ईंटों से पीटने के बारे में खुलासा नहीं किया है। हेड कांस्टेबल -06 राम चरण सिंह को अ०सा०-5 के रूप में नियुक्त किया गया है। इस गवाह ने प्राथमिकी तैयार की है और न्यायालय में इसे साबित किया है।

42. मृतका रेखा का शव परीक्षण करने वाले सर्जन डॉ. जितेंद्र कुमार त्यागी को अ०सा०-6 माना गया है। उन्होंने अपनी परीक्षा में बताया है कि मृतका की उम्र करीब 35 साल थी। मृतका रेखा के शरीर की बाह्य जांच के दौरान अ०सा०-6 में पाया गया है कि मृतका सामान्य संरचना की थी और मृत्यु के बाद पूरे शरीर में अकड़न मौजूद थी। उसकी आँखें घनी थीं, मृतका की नाक, कान और मुंह की खाल जल गई थी; जला सतही से गहरे तक मौजूद था; कोई फ्रैक्चर नहीं था; मृतका के सिर के बाल व्यथित थे; लालिमा की रेखा मौजूद थी; कुछ हिस्सा सतही जला हुआ था और कुछ गहरा जला हुआ था; कुल मिलाकर शरीर का लगभग 70 प्रतिशत हिस्सा जल गया था; जो हिस्से नहीं जले थे वे कमर और गुदा के निचले हिस्से, दोनों पैरों के निचले आधे हिस्से थे। शव में पेशाब की नली मौजूद थी।

43. मृतका के शरीर की आंतरिक जांच पर अ०सा०-6 ने पाया है कि खोपड़ी और झिल्ली सिकुड़े वाले थे; मस्तिष्क और उसकी झिल्लियाँ भी संकुचित वाली थीं; दीवारें संकुचित वाली थीं; दोनों फेफड़े और उनके फुफ्फुस का आवरण संकुचित वाला था; स्वरयंत्र और श्वासनली भी संकुचित वाले थे और इसमें शूट कण मौजूद थे; हड्डी की नाल संकुचित; हृदय की झिल्ली संकुचित वाली थी और हृदय रक्त से भरा था। उपरोक्त जांच के आधार पर, अ०सा०-6 ने राय दी है कि मृतका की मृत्यु का कारण मृत्यु पूर्व जलने की चोटों के कारण सदमा था। जिरह में इस गवाह ने कहा है कि मृतका के शरीर पर रस्सी बांधने का कोई निशान नहीं था और उसके शरीर पर किसी तरह के हमले का कोई निशान नहीं था।

44. सब इंस्पेक्टर संजीव कुमार को अ०सा०-7 के रूप में नियुक्त किया गया है, जिन्होंने अ०सा०-5 के बाद मामले की जांच भी की है। अपनी जिरह में इस गवाह ने कहा है कि 12 अगस्त, 2011 को उसकी मृत्यु से पहले, मृतका ने धारा 323, 504 और 506 भ०द०वि० के तहत एन.सी.आर. संख्या-41 वर्ष 2011 दर्ज किया और उस पर एन.सी.आर. समझौता (फैसलानामा) प्रस्तुत किया गया था। जिरह में इस गवाह ने कहा है कि मृतका द्वारा दर्ज कराई गई एन.सी.आर. में जांच पहले के पदाधिकारी द्वारा की गई थी। उन्होंने कहा है कि यह सच है कि 22 मई, 2011 को एन.सी.आर. में उल्लिखित उपरोक्त घटना के बारे में मृतका द्वारा एक आवेदन दिया गया था, जिसमें उसने दावा किया था कि गांव के सम्मानित व्यक्तियों की उपस्थिति में, मृतका और उसके पति के बीच जो भी मतभेद और संदेह हो सकता है, वह समाप्त हो गया और इसलिए, वह अपने पति के खिलाफ कोई

अशोधित

कार्रवाई नहीं चाहती थी। इस गवाह ने आरोप पत्र प्रस्तुत किया है।

45. बचाव पक्ष की ओर से वीरेश कुमार को ब०सा०-1 के रूप में नियुक्त किया गया है। इस गवाह ने अपनी जिरह में कहा है कि आरोपी जयकिशन और कुबेरदत्त उसके पड़ोसी थे। जब मृतका की मौत हुई तब वह अपनी छत पर सो रहा था। शोर सुनकर वह मौके पर आया था। रात करीब 11 बजकर 11.30 मिनट का समय था, उन्होंने देखा कि मृतका जली हुई पड़ी थी। उसने नहीं देखा कि वह कब जल रही थी। अ०सा०-3 तनु पुत्र आरोपी जयकिशन व मृतका ने खुलासा किया कि उसकी मां मिट्टी का तेल डालने से जल गई थी और उस समय उसके पिता घर पर नहीं थे, क्योंकि वह ड्यूटी पर था। वह एक निजी बस चालक था। उसने देखा कि वह सुबह बस चलाने जाता है और रात रुकने के बाद अगले दिन सुबह आता है। आरोपी कुबेर दत्त और उसकी पत्नी मृतका को मेरठ के मेडिकल कॉलेज में भर्ती कराने गए थे। अगले दिन एक पंचायत हुई जिसमें मृतका के परिजनों ने पैसे की मांग की।

46. जीत पाल सिंह को ब०सा०-2 के रूप में नियुक्त किया गया है। इस गवाह ने अपनी जांच में कहा है कि घटना के समय वह शोर सुनकर मौके पर पहुंचा था। उसने सुना कि मृतका ने खुद को आग लगा ली है। आरोपी कुबेर दत्त और उसकी पत्नी ने मृतका को अस्पताल पहुंचाया। प्रतिपरीक्षा में इस गवाह ने कहा है कि उसने अ०सा०-3 से पूछा कि उसकी मां को कैसे जलाया गया, जवाब में उसने खुलासा किया कि उसकी मां खुद पर मिट्टी का तेल डालने से जल गई थी।

47. अभियोजन की कहानी के अनुसार रात्रि 19 जुलाई, 2011 को ग्राम भडस्याना के प्रधान सतीश फौजी द्वारा सूचना देने वाले अ०सा०-1 को फोन पर सूचना दी गई कि उनकी पुत्री श्रीमती रेखा को रात्रि 11:00 बजे ससुराल वालों ने जला दिया है और उसे जली हुई हालत में मेरठ मेडिकल अस्पताल ले जाया गया है। इस सूचना पर सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 अपनी बेटी को देखने अस्पताल गया जहां उसने अपनी बेटी को जली हुई हालत में देखा और उसकी बेटी 70% तक जल चुकी थी। गंभीर हालत को देखते हुए सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 की बेटी को मेरठ अस्पताल से दिल्ली के सफदरजंग अस्पताल रेफर किया गया, लेकिन रास्ते में ही उसकी मौत हो गई। दिनांक 20 जुलाई, 2011 को प्रात 11.00 बजे थाना में मृतका के पति जयकिशन @ बबलू, उसके पति के प्रेमी नामत अनीता और उसके देवर कुबेर दत्त के विरुद्ध एक लिखित रिपोर्ट दर्ज कराई गई थी। जांच के बाद पुलिस ने आरोप पत्र दाखिल कर दी है।

48. मुकदमे के दौरान मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के साथ-साथ विचारण न्यायालय के फैसले की गहन जांच पर, हम विचारण न्यायालय द्वारा आक्षेपित निर्णय पारित करते समय दर्ज किए गए निष्कर्षों से पूरी तरह सहमत हैं। विचारण न्यायालय ने सही दर्ज किया है कि अ०सा०-6 डॉ जितेंद्र कुमार ऑटोप्सी सर्जन के अनुसार, मृतका 70% तक जल गई थी। मृतका पर मिट्टी का तेल डालकर आग लगाने के कारण वह झुलस गई थी। पुलिस ने मौके से मिट्टी का तेल कनस्तर, माचिस, कुछ माचिस और कुछ अधजले कपड़े बरामद किए हैं। उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर विचारण

अजयकुमार

न्यायालय ने कहा है कि मृतका रेखा की असामयिक मृत्यु उसके ससुराल में मिट्टी का तेल डालकर आग लगाने के कारण हुई थी। इस प्रकार, बचाव पक्ष का यह तर्क कि मृतका ने उस पर मिट्टी का तेल डालकर और घटना की रात उसे आग लगाकर आत्महत्या कर ली है, में कोई दम नहीं है। रिकार्ड पर ऐसा कोई विश्वसनीय साक्ष्य या गवाह उपलब्ध नहीं है जिससे यह पता चले कि मृतका ने अपने पर मिट्टी का तेल डालकर और खुद को आग लगाकर आत्महत्या की थी। आरोपी जयकिशन यानी मृतका का पति उसी गांव निवासी हरि प्रकाश की पत्नी आरोपी अपीलार्थी अनीता से अवैध संबंध रखता था और उस अवैध संबंध की जानकारी मृतका रेखा और उसके पति जयकिशन @ बबलू के बीच हुई थी। मृतका रेखा आरोपी अनीता के साथ अपने पति के अवैध संबंधों पर आपत्ति जताती थी, जिसके चलते वह उसे मारता था और प्रताड़ित करता था। घटना की रात उक्त अवैध संबंध होने के कारण घटना की रात मृतका श्रीमती रेखा को मिट्टी का तेल डालकर जला दिया गया। उस समय मृतका का पुत्र अ०सा०-3 तनु जिसकी उम्र 5-6 वर्ष थी, घर के अंदर था। तनु की बड़ी बहन घटना से 15 से 20 दिन पहले अपने मायके गई थी क्योंकि घर में लड़ाई-झगड़े और मनमुटाव का माहौल बनने की घटना हुई थी, जिसके पीछे मुख्य कारण आरोपी जयकिशन और आरोपी अनीता के बीच अवैध शारीरिक संबंध थे। घटना के समय सूचनाकर्ता/अ०सा०-1, निरंजन शर्मा व अ०सा०-2 तरुण शर्मा अपने घर पर थे, जिसका अर्थ है कि ये दोनों अभियोजन पक्ष के गवाह घटनास्थल पर मौजूद नहीं थे, लेकिन घटना के बाद जब उन्हें ग्राम प्रधान सतीश फौजी ने फोन के माध्यम से सूचना दी तो वे मृतका रेखा को देखने अस्पताल आए। मृतका रेखा शर्मा की शादी 14 साल पहले आरोपी जयकिशन से हुई थी। तभी से आरोपी जयकिशन के अनीता से अवैध संबंध नहीं थे और परिवार का माहौल ठीक था लेकिन अनीता से अवैध संबंध होने के बाद आरोपी जयकिशन और उसकी पत्नी रेखा के बीच मनमुटाव और कलह होने लगी। अ०सा०-1 और अ०सा०-2 को आरोपी जयकिशन उर्फ बबलू और अनीता के अवैध शारीरिक संबंधों की भी जानकारी थी। घटना से दो माह पहले भी मृतका रेखा को आरोपी जयकिशन ने पीटा था, जिसकी शिकायत मृतका रेखा ने अपने माता-पिता से की थी, जिसके चलते वह अपने मायके चली गई थी। उसने आरोपी जयकिशन और अनीता के खिलाफ संबंधित थाने में लिखित रिपोर्ट भी दी थी। उसने अपनी मेडिकल जांच भी करवाई थी, बाद में पंचायत के बाद मृतका ने अपने ससुराल वापस आकर अपने पति जयकिशन उर्फ बबलू को इस आश्वासन पर माफ कर दिया कि उस तारीख से उसका अनीता के साथ कोई अवैध संबंध नहीं होगा और वह अपने आचरण में सुधार करेगा लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ जिसके कारण रेखा और आरोपी जयकिशन के बीच आरोपी अनीता के साथ उसके अवैध संबंधों को लेकर फिर से मनमुटाव शुरू हो गया। सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 निरंजन शर्मा ने अपने पुत्र अ०सा०-2 तरुण की रिपोर्ट लिखी थी, जिसमें मृतका पर मिट्टी का तेल डालकर और आग लगाने का आरोप आरोपी

अनुवादित

जयकिशन व आरोपी अनीता पर लगाया गया है, जबकि ऐसा अपराध करने के षड्यंत्रकारी का आरोप आरोपी कुबेरदत्त पर लगाया गया है।

49. विचारण न्यायालय ने यह भी सही दर्ज किया है कि अभियोजन पक्ष के दोनों गवाह यानी अ०सा०-1 और अ०सा०-2, जो गवाह हैं, ने प्राथमिकी में सामने आए समान कथन की पुष्टि की है। विचारण न्यायालय ने यह भी दर्ज किया है कि अभियोजन पक्ष के दोनों गवाहों अ०सा०-1 और अ०सा०-2 ने अपनी गवाही में यह स्पष्ट नहीं किया है कि आरोपी कुबेर दत्त ने मृतका रेखा को जलाने की साजिश क्यों रची। आरोपी कुबेर दत्त मृतका रेखा और आरोपी जयकिशन से अलग रहता है। आरोपी कुबेर दत्त आरोपी जयकिशन का बड़ा भाई है, जो कुल पांच भाई हैं और वे सभी अपने अलग-अलग घरों में अलग-अलग रह रहे हैं। आरोपी कुबेरदत्त का घर भी आरोपी जयकिशन के घर से अलग है। आरोपी कुबेर दत्त का अपना परिवार भी है। आरोपी जयकिशन का आरोपी अनीता के साथ अवैध शारीरिक संबंध था, लेकिन अभियोजन पक्ष दोनों के बीच इस तरह के अवैध संबंध में आरोपी कुबेर दत्त के निहित स्वार्थ की व्याख्या करने में विफल रहा है, जिसका अर्थ है कि इस अपराध में आरोपी कुबेर दत्त की भागीदारी के पीछे का हित स्पष्ट नहीं है। किसी भी अपराध के पीछे अपराधी की दुर्भावना छिपी होती है। अपराध और अपराधी के बीच हमेशा कुछ संबंध या कारण होता है। प्रस्तुत मामले में, आरोपी कुबेर का आरोपी अनीता के साथ कोई अवैध संबंध नहीं था। यदि आरोपी अनीता के आरोपी कुबेर के साथ अवैध संबंध थे तो कहा जा सकता है कि आरोपी अनीता की वजह से उसने रेखा की हत्या कराने में आरोपी जयकिशन का साथ दिया लेकिन सिर्फ इस आधार पर कि आरोपी जयकिशन आरोपी कुबेर दत्त का सगा भाई है, उसने इस घटना में साजिशकर्ता की भूमिका निभाई है, विश्वसनीय सबूत नहीं होने के कारण यह समीचीन नहीं लगता।

50. अ०सा०-3 तनु पुत्र मृतका रेखा एवं अभियुक्त जयकिशन ने अपनी गवाही में विशेष रूप से अपने पिता अर्थात जयकिशन एवं अनीता पर अपनी माता पर मिट्टी का तेल डालकर आग लगाने का आरोप लगाया है। घटना के चार दिन बाद यानी 24 जुलाई, 2023 को इस गवाह का बयान अ०सा०-4 द्वारा धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज किया गया जिसमें उसने अपने पिता जयकिशन @ बबलू और उसकी प्रेमिका यानी आरोपी अनीता का नाम अपनी मां को आग लगाकर उसकी हत्या करने का नाम दिया है। अ०सा०-3 तनु के अनुसार घटना की रात 11:00 बजे उसके पिता जयकिशन और अनीता ने उसकी मां रेखा शर्मा को रस्सी से बांध दिया और फिर उस पर मिट्टी का तेल डालकर आग लगा दी।

51. अ०सा०-3, जो अभियोजन पक्ष के स्टार गवाह और चश्मदीद गवाह हैं, की गवाही की शुद्धता या अन्य वार की जांच करने के लिए, धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज किए गए उनके बयान को यहां उद्धृत किया गया है:

"मुकदमा उपरोक्त में विवेचना की कार्यवाही का परचा III दि० २२/७/११ को किता कर वास्ते अवलोकन सादर सेवा में प्रेषित किया जा चुका है।आज मैं एसओ थाना हाजा से रवाना होकर विवेचना में मामूर होकर ग्राम भदस्याना में मृतका के मकान पर आया तो देखा कि घर के मेन दरवाजे पर कुण्डी लगी। जानकारी करने

अनुवादित

पर पता चला कि मृतका का बीटा तनू अपने ताऊ राजेश्वर दत्त के पास रह रहा है अतः चलकर श्री राजेश्वर दत्त के घर पर आया। घर पार मृतका का बेटा तनू मौजूद मिला तथा ताऊ राजेश्वर व ताई श्रीमती उषा मौजूद मिले। अतः बच्चे को प्यार से बिना किसी पूंछतांछ कर कथन अंकित किये जाते हैं।

बयान गवाह -- बदरियाफ़्त मिस्टर तनू पुत्र जयकिशन @ बल्लू निवासी भदस्याना थाना बहादुरगढ़ उम्र करीब ५-६ वर्ष ने पूंछने पर रोते हुए बताया कि मेरी मम्मी बहुत अच्छी थी। मेरे पापा गन्दे हैं। पापा अनीता आंटी के पास जाते। मम्मी मना करती थी। तब पापा मम्मी को पीटते थे। ताऊजी कुबेर मम्मी को ही डाँटते थे। पापा को कुछ नहीं कहते थे। तीन दिन पहले शाम को पापा ने मम्मी की पिटाई की थी। फिर पापा को कई लोगों ने डाटा था। रात में मम्मी रो रही थी। मम्मी जल रही थी। मैंने देखा मेरी मम्मी को पापा व अनीता आंटी ने तेल डालकर आग लगाई। फिर पापा मुझे बाहर छोड़कर अनिता आंटी के साथ चले गए। फिर मम्मी को डॉक्टर के यहाँ ले गये।"

52. अ०सा०-3 के उक्त कथन को अ०सा०-1 और अ०सा०-2 ने भी समर्थन दिया है। घटना के बाद ही अ०सा०-3 तनु अपनी नानी के पास गया। घटना के समय अ०सा०-3 तनु की उम्र 5 से 6 साल थी और बच्चा पहली कक्षा में पढ़ता था। घटना के दो साल बाद वह अ०सा०-3 के रूप में अपना बयान देने के लिए न्यायालय आए हैं। ऐसे में 5 से 6 साल के बच्चे को दो साल पहले हुई घटना के बारे में कितना याद रहता है, यह अपने आप में संदिग्ध है।

53. इस तरह के निष्कर्षों के आधार पर विचारण न्यायालय ने कहा है कि बच्चा अविकसित है, शायद इसीलिए वह अदालत में आया है और उसने घटना के चार दिनों के तुरंत बाद धारा 161 द०प्र०स० के तहत पुलिस को जो बयान दिया था, उससे बहुत अलग बयान दिया है। अ०सा०-3 तनु के अनुसार आरोपी कुबेरदत्त ने इंजेक्शन देकर उसकी मां को बेहोश कर दिया। उसके पिता जयकिशन दीवार फांदकर घर में घुसे और मुख्य दरवाजा खोला। कुंडी खोली गई जिसके बाद आरोपी अनीता और आरोपी कुबेर घर के अंदर आए; आरोपी अनीता और आरोपी जयकिशन ने उसकी मां को चारपाई से रस्सियों से बांध दिया, फिर उसके पिता जयकिशन ने उसकी मां पर मिट्टी का तेल डालकर आग से जला दिया। यदि घटना इस प्रकार से घटित हुई होती, जैसा कि अ०सा०-3 तनु ने विचारण न्यायालय में दिया है तो वह ये बातें तब कह सकता था जब अ०सा०-4 ने घटना के 4 दिन बाद धारा 161 द०प्र०स० के तहत अपना बयान दर्ज करते हुए उससे पूछताछ की तो उसने उपरोक्त तथ्यों का खुलासा क्यों नहीं किया, अभियोजन की ओर से कोई संतोषजनक उत्तर नहीं दिया गया है। घटना के तुरंत बाद अ०सा०-3 तनु अपने नाना-नानी और मामा के यहां गया था। अगर घटना उसी तरह से हुई होगी जैसा कि उसने विचारण न्यायालय में अपने बयान में दिया है, तो ऐसी स्थिति में उसने अपने नाना-नानी को भी इस बात का खुलासा किया होगा कि घटना कैसे हुई। सूचनाकर्ता/अ०सा०-1 और अ०सा०-2 को भी उसी तरह से बयान देना चाहिए था जैसा कि अ०सा०-3 तनु ने दिया था। घटना के बाद

अनुवादित

अ०सा०-1 निरंजन शर्मा ने थाने में रिपोर्ट दर्ज कराई थी। प्राथमिकी में वही बयान लिखा जाना चाहिए था जो अ०सा०-3 तनु ने अपने बयान में दिया है। अ०सा०-3 तनु का बयान रिकॉर्ड पर उपलब्ध किसी अन्य साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं है।

54. विचारण न्यायालय ने आगे अभिलिखित किया है कि अभियुक्त जयकिशन उर्फ बबलू का भाई होने के कारण अभियुक्त कुबेरदत्त को अभियुक्त जयकिशन के साथ कुछ सहानुभूति थी, लेकिन इसी सहानुभूति के कारण अभियुक्त कुबेरदत्त ने मृतका रेखा की हत्या करवाने की साजिश रची, यह उचित प्रतीत नहीं होता। मृतका रेखा की हत्या करवाने के पीछे आरोपी कुबेर की मंशा क्या थी और उसके फायदे के लिए क्या किया जा रहा था, उसे साबित करने में अभियोजन पक्ष सफल नहीं हो पाया है। प्राथमिकी में और अ०सा०-1 और अ०सा०-2 के बयानों में आरोपी कुबेरदत्त को साजिशकर्ता बताया गया है, लेकिन कथित अपराध में उनकी भागीदारी के बारे में कोई स्पष्ट सबूत नहीं दिया गया है। अ०सा०-3 तनु ने आरोपी कुबेरदत्त के शामिल होने के संबंध में अपना बयान स्पष्ट रूप से दिया है लेकिन अ०सा०-3 तनु के बयान को ज्यादा महत्व नहीं दिया जा सकता क्योंकि अ०सा०-3 तनु घटना के समय 5 से 6 साल की बच्ची थी और विचारण न्यायालय के समक्ष अपना बयान देने के समय वह 8 से 9 साल का था। धारा 161 द०प्र०स० के तहत अ०सा०-3 तनु के बयान और विचारण न्यायालय में दिए गए बयान को एक काल्पनिक कहानी के साथ पेश किया गया है। ऐसे में स्वाभाविक सवाल उठता है कि अ०सा०-3 तनु ने ऐसे तथ्यों का खुलासा क्यों नहीं किया जबकि उसका बयान अ०सा०-4 द्वारा धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज किया गया है, जिसका खुलासा उसने विचारण न्यायालय में किया है। अ०सा०-3 तनु ने अपनी गवाही में बताया है कि घटना के बाद उसके पिता जयकिशन उर्फ बबलू ने उसकी पिटाई की थी और उसे दूसरे घर में ले जाकर वहां ताला लगा दिया था। एक दिन बंद रहने के बाद कुबेर दत्त के बेटे ने उन्हें बाहर निकाला। ये सभी बातें रिकार्ड में उपलब्ध किसी अन्य साक्ष्य से मेल नहीं खाती हैं। ऐसी स्थिति में विचारण न्यायालय की राय में अ०सा०-3 तनु का बयान कम प्रासंगिक है क्योंकि उसे एक सच्चे व्यक्ति ने सिखाया था? और अपनी मर्जी से कहानी गढ़ी। हालांकि, विचारण न्यायालय ने कहा है कि अगर अ०सा०-3 तनु का विचारण न्यायालय में और साथ ही अ०सा०-4 के समक्ष धारा 161 द०प्र०स० के तहत दिए गए पूरे बयान को एक साथ देखा जाए, तो यह निश्चित रूप से स्थापित करता है कि घटना की रात में उसकी मां पर मिट्टी का तेल डालकर जला दिया गया था जिसके पीछे उसके पिता जयकिशन @ बबलू और आरोपी अनीता शामिल थे। चूंकि उनके अवैध संबंध थे और दोनों ने मृतका रेखा पर मिट्टी का तेल डालकर आग लगा दी थी।

55. विचारण न्यायालय ने आगे दर्ज किया है कि आरोपी कुबेर दत्त के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि अ०सा०-1 के अनुसार, जब प्रधान सतीश फौजी द्वारा उन्हें घटना की जानकारी दी गई थी, तो उन्होंने अपनी बेटी रेखा से भी बात की थी और घटना के बारे में पूछा था, जिसके आधार पर, और साथ ही ग्रामीणों द्वारा दी गई जानकारी के आधार पर, उसने थाने में रिपोर्ट लिखी थी। आरोपी कुबेर के

अनुवादित

अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि आरोपी अनीता और आरोपी जयकिशन के बीच संबंधों को लेकर गांव में विभिन्न चर्चाएं हुईं, जिससे आरोपी जयकिशन और मृतका रेखा का पारिवारिक माहौल में कलह हो गया। उनके बीच झगड़े होते रहते थे। मृतका के माता-पिता ने दो बार पंचायत की थी। घटना से पहले भी आरोपी जयकिशन ने पिटाई के बाद रेखा को घर से निकाल दिया था और उसी समय आरोपी कुबेर दत्त ने बड़ा भाई होने के नाते आरोपी जयकिशन और मृतका रेखा के माता-पिता को समझाया। आरोपी कुबेर दत्त के प्रयासों के चलते मृतका रेखा के माता-पिता उसे आरोपी जयकिशन के साथ दोबारा भेजने के लिए तैयार हो गए। विचारण न्यायालय ने इस तरह के तर्क के आधार पर एक राय बनाई है कि घटना से दो महीने पहले हुई लड़ाई की घटना के बाद, आरोपी कुबेर की पत्नि और पत्नी के बीच समझौता कराने में बड़ी भागीदारी थी। कुबेरदत्त के आश्वासन पर मृतका रेखा अपने ससुराल वालों के साथ रहने आ गई थी तभी आरोपी जयकिशन की आदतों में सुधार नहीं हुआ और उसने फिर से आरोपी अनीता के साथ अवैध संबंध बनाए रखे, जिसका परिणाम अंततः मृतका रेखा की हत्या के रूप में सामने आया, इसीलिए रेखा के माता-पिता सहित उसके पिता और भाई यानी अ०सा०-1 और अ०सा०-2 आरोपी जयकिशन से नाराज हो गए। अनीता और कुबेर दत्त को भी अगर आरोपी कुबेरदत्त के आश्वासन पर विश्वास न होता और रेखा को आरोपी जयकिशन के साथ नहीं भेजता, तो उसकी बेटी रेखा आज जिंदा होती। न तो रेखा अपने ससुराल वालों के साथ रहने जाती और न ही जयकिशन ने अपनी प्रेमिका अनीता के साथ उसे जलाकर मार डाला होता। अ०सा०-7 भी एक विवेचनाधिकारी है जिसने पुलिस के कागजात साबित किए हैं। अ०सा०-5 एक पुलिसकर्मी है जिसने चिक प्राथमिकी को साबित किया।

56. विचारण न्यायालय ने आगे दर्ज किया है कि बचाव पक्ष के गवाहों यानी ब०सा०-1 जीतपाल सिंह और ब०सा०-2 वीरेश के बयान भी आरोपी-अपीलकर्ताओं की मदद नहीं करते हैं क्योंकि यह घटना रात 11.00 बजे हुई थी। ब०सा०-1 और ब०सा०-2 को इसकी जानकारी दी गई। आरोपी जयकिशन कब नौकरी पर जाता है और कब आता है, पता नहीं चल पाता था। यदि उक्त बचाव पक्ष के गवाहों को पता होता कि मृतका रेखा की हत्या की गई है और आरोपी जयकिशन व अनीता ने उसे नहीं जलाया है तो ऐसी स्थिति में उन्हें विवेचना के दौरान पुलिस व प्रशासनिक अधिकारियों को अनुरोध पत्र लिखना चाहिए था। ये ऐसे होना चाहिए था कि मिसेज रेखा जली नहीं थी बल्कि उन्होंने खुद आत्महत्या कर ली थी। इस संबंध में उन्हें मजिस्ट्रेट के सामने अदालत में हलफनामा भी देना चाहिए था जिससे स्पष्ट होता कि घटना के पीछे की सच्चाई क्या है। घटना के दो साल बाद अब अचानक न्यायालय में आकर बिना किसी आधार के उक्त बचाव पक्ष के गवाहों द्वारा दिए गए बयान निश्चित रूप से आरोपी को बचाने के इरादे से सच्चाई से दूर दिया गया बयान है।

57. विचारण न्यायालय ने आगे दर्ज किया है कि जहां तक घटना में आरोपी जयकिशन उर्फ बबलू और आरोपी अनीता की संलिप्तता का सवाल है, उपरोक्त विश्लेषण के आलोक में, दो

अप्रमाणित

आरोपियों की भागीदारी पूरी तरह से साबित होती है। यह घटना आरोपी जयकिशन और आरोपी अनीता के बीच अवैध संबंधों के कारण ही हुई है, जिसके चलते उन्होंने घटना की रात मृतका पर मिट्टी का तेल डालकर और आग लगाकर उसकी हत्या कर दी। जहां तक आरोपी कुबेर दत्त के सवाल का सवाल है, विचारण न्यायालय ने कहा है कि रिकॉर्ड पर उपलब्ध सबूतों के आलोक में आरोपी कुबेर दत्त की उपस्थिति संदिग्ध है। घटना में आरोपी कुबेर दत्त की भागीदारी के बारे में कोई सबूत उपलब्ध नहीं है। यदि तथ्यात्मक गवाहों के पूरे बयान अर्थात अ०सा०-1, अ०सा०-2 और अ०सा०-3 को प्राथमिकी में सामने आए संस्करण के आलोक में एक साथ देखा जाता है, तो ऐसी स्थिति में, आरोपी कुबेर के खिलाफ अभियोजन की कहानी को उचित संदेह से परे साबित नहीं किया जा सकता है, क्योंकि आरोपी कुबेर दत्त को संदेह का लाभ मिलता।

58. मुकदमे के दौरान सबूतों की गहन जांच और मूल्यांकन पर, हम आरोपी अपीलकर्ताओं जयकिशन @ बबलू और अनीता को धारा 302 भ०द०वि० के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराने में विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज निष्कर्षों के साथ पूर्ण सहमति में हैं। हम विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों से भी सहमत हैं कि चूंकि अभियोजन पक्ष आरोपी कुबेर दत्त को उचित संदेह से परे धारा 120-बी भ०द०वि० के तहत दोषी साबित करने में विफल रहा है, इसलिए उसे संदेह का लाभ दिया जाना चाहिए।

59. उपरोक्त के अलावा, जहां तक धारा 302 भ०द०वि० के तहत अभियुक्त अपीलकर्ताओं की सजा का संबंध है, यह ध्यान देने योग्य है कि इसमें कोई संदेह नहीं है कि स्टार अभियोजन गवाह/घटना के एकमात्र चश्मदीद गवाह यानी अ०सा०-3 के बयानों में कुछ सुधार हुआ है, लेकिन जब दोनों बयानों को एक साथ ध्यान से पढ़ा जाता है। यह निश्चित रूप से पता चलेगा कि आरोपी-अपीलकर्ता, अर्थात् जयकिशन @ बबलू और अनीता के अवैध संबंध थे, जिस पर मृतका आपत्ति करती थी और जिसके कारण अभियुक्त-अपीलकर्ता जयकिशन उसे पीटता था और प्रताड़ित करता था और अंततः घटना की रात में, दोनों आरोपी-अपीलकर्ताओं ने उस पर मिट्टी का तेल डालकर और आग लगाकर उसकी हत्या कर दी।

60. अ०सा०-3 की गवाही में कुछ सुधार के आधार पर, इस गवाह के पूरे साक्ष्य से इनकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि वह धारा 161 द०प्र०स० के तहत अपना बयान दर्ज करने के समय वह 5 से 6 साल का था और विचारण न्यायालय के समक्ष अपना बयान दर्ज करते समय वह 8 से 9 साल का था और वह अपने नाना-नानी और मामा के दबाव में था। इस बिंदु पर, हम आरोपी-अपीलकर्ताओं, अर्थात् रामकिशन @ बबलू और अनीता के संबंध में अ०सा०-3 के मौखिक साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों से सहमत नहीं हैं। इस देश में कोई भी बच्चा, जो अपने माता-पिता से सबसे ज्यादा प्यार करता है, अपने नाना या मामा के इशारे पर अपनी मां या पिता के खिलाफ आरोप लगाने के लिए तैयार नहीं होगा, जब तक कि उसे यह महसूस न हो कि उसके पिता ने उसकी मां के साथ या उसकी मां ने उसके पिता के साथ गलत किया है।

अनुवादित

61. (2019) 20 एस.सी.सी. 593 में रिपोर्ट किए गए पी रमेश बनाम राज्य पुलिस निरीक्षक द्वारा राज्य प्रतिनिधित्व के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ 14 से 16 में निम्नानुसार देखा है:

"14. एक बच्चे को पहले एक सक्षम गवाह होना चाहिए, उसके बाद ही उसका बयान स्वीकार्य है। नियम व्हीलर बनाम संयुक्त राज्य अमेरिका में अमेरिकी सुप्रीम न्यायालय के एक फैसले में निर्धारित किया गया था, जिसमें यह इस प्रकार अवधारित किया गया था:

"5.... जबकि कोई भी केवल दो या तीन साल के शिशु को गवाह के रूप में बुलाने के बारे में नहीं सोचेगा, कोई सटीक उम्र नहीं है जो योग्यता के सवाल को निर्धारित करती है। यह बच्चे की क्षमता और बुद्धिमत्ता, सत्य और असत्य के बीच के अंतर की उसकी मूल्यांकन, साथ ही साथ पूर्व को बताने के उसके कर्तव्य पर निर्भर करता है। इस प्रश्न का निर्णय मुख्य रूप से विचारण न्यायधीश के पास रहता है, जो प्रस्तावित गवाह को देखता है, उसके तरीके, उसके स्पष्ट कब्जे या बुद्धि की कमी को नोटिस करता है, और किसी भी परीक्षा का सहारा ले सकता है, जो उसकी क्षमता और बुद्धिमत्ता के साथ-साथ शपथ के दायित्वों की उसकी समझ का खुलासा करेगा। चूंकि इनमें से कई मामलों की तस्वीर रिकॉर्ड में नहीं खींची जा सकती है, इसलिए विचारण न्यायधीश के फैसले को समीक्षा पर परेशान नहीं किया जाएगा, जब तक कि जो संरक्षित है, उससे यह स्पष्ट न हो कि यह गलत था। (महत्त्व सन्निविष्ट)

15. रतनसिंह दलसुखभाई नायक बनाम गुजरात राज्य में, इस न्यायालय ने इस प्रकार कहा:

"7. ... इस प्रश्न पर निर्णय कि क्या बाल गवाह के पास पर्याप्त बुद्धि है, मुख्य रूप से विचारण न्यायाधीश पर निर्भर करता है जो उसके शिष्टाचार, उसके स्पष्ट कब्जे या बुद्धि की कमी को नोटिस करता है, और उक्त न्यायाधीश किसी भी परीक्षा का सहारा ले सकता है जो उसकी क्षमता और बुद्धिमत्ता के साथ-साथ शपथ के दायित्व की उसकी समझ को प्रकट करेगा। हालाँकि, विचारण न्यायालय के फैसले को उच्च न्यायालय द्वारा परेशान किया जा सकता है यदि रिकॉर्ड में जो संरक्षित है, उससे यह स्पष्ट है कि उसका निष्कर्ष गलत था। यह सावधानी इसलिए ज़रूरी है क्योंकि बच्चे के गवाह सिखाने पढ़ाने के लिए उत्तरदायी होते हैं और अक्सर बने हुए विश्वास की दुनिया में रहते हैं। हालांकि यह एक स्थापित सिद्धांत है कि बाल गवाह खतरनाक गवाह होते हैं क्योंकि वे लचीले होते हैं और आसानी से प्रभावित होने के लिए संभावित होते हैं, लेकिन यह भी एक स्वीकृत मानदंड है कि यदि उनके सबूतों की सावधानीपूर्वक जांच के बाद अदालत इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि इसमें सच्चाई की छाप है, तो बाल गवाह के साक्ष्य को स्वीकार करने के रास्ते में कोई बाधा नहीं है। (महत्त्व सन्निविष्ट)

16. एक बच्चे के गवाह की योग्यता निर्धारित करने के लिए, न्यायाधीश को उसकी राय बनानी होगी। न्यायाधीश को बाल गवाह की क्षमता का परीक्षण करने की स्वतंत्रता है और बुद्धि और ज्ञान की डिग्री के बारे में कोई सटीक नियम नहीं रखा जा सकता है जो बच्चे

अनुवादित

को एक सक्षम गवाह बताएगा। बाल गवाह की योग्यता का पता उससे पूछताछ करके लगाया जा सकता है ताकि वह गवाह की घटना को समझने और अदालत के समक्ष सच बोलने की क्षमता का पता लगा सके। आपराधिक कार्यवाही में, किसी भी उम्र का व्यक्ति साक्ष्य देने के लिए सक्षम है यदि वह (i) गवाह के रूप में पूछे गए प्रश्नों को समझने में सक्षम है; और (ii) ऐसे प्रश्नों के उत्तर दीजिए जिन्हें समझा जा सके। कम उम्र के बच्चे को, यदि उसके पास प्रश्नों को समझने और तर्कसंगत उत्तर देने की बौद्धिक क्षमता है, गवाही देने की अनुमति दी जा सकती है। एक बच्चा केवल तभी अक्षम हो जाता है जब अदालत यह मानती है कि बच्चा सवालों को समझने और सुसंगत और समझने योग्य तरीके से उनका जवाब देने में असमर्थ था। यदि बच्चा उससे पूछे गए प्रश्नों को समझता है और उन सवालों के तर्कसंगत उत्तर देता है, तो यह माना जा सकता है कि वह एक सक्षम गवाह है जिसकी जांच की जा सकती है।

62. अ०सा०-3 का यह संस्करण कि अभियुक्त-अपीलकर्ता, अर्थात् जयकिशन @ बबलू और अनीता के अवैध संबंध थे, जिस पर मृतका आपत्ति करता था और जिसके कारण अभियुक्त-अपीलकर्ता जयकिशन मृतका को पीटता था और प्रताड़ित करता था और अंततः घटना की रात में, दोनों अभियुक्त-अपीलकर्ताओं ने उस पर मिट्टी का तेल डालकर और उसे आग लगाकर मार डाला, अ०सा०-1 और अ०सा०-2 की गवाही और प्राथमिकी में सामने आए संस्करण द्वारा पूरी तरह से समर्थन किया गया है, भले ही अ०सा०-1 और अ०सा०-2 गवाह हैं, लेकिन वे शुरू से ही और विचारण न्यायालय के समक्ष अपने बयान दर्ज किए जाने तक सुसंगत हैं। अभियोजन पक्ष का संस्करण है कि आरोपी-अपीलकर्ता अनीता के साथ आरोपी जयकिशन @ बबलू के अवैध संबंधों के कारण, वह मृतका को मारता था और प्रताड़ित करता था और घटना के दो महीने पहले, आरोपी अपीलकर्ता ने मृतका की पिटाई की थी क्योंकि उसने आरोपी अनीता के साथ उसके अवैध संबंधों का विरोध किया था और मृतका को उसके घर से बाहर निकाल दिया था जिसके बाद वह अपने माता-पिता के घर गई और अपने माता-पिता को इसका खुलासा किया और उसके बाद उसने एन.सी.आर. दर्ज कराया एन.सी.आर. संख्या-41 वर्ष 2011 धारा 323, 504, 506 भ०द०वि० के तहत आरोपी-अपीलकर्ताओं के खिलाफ और उसने खुद की मेडिकल जांच भी करवाई और समझौता (फैसलानामा) के बाद, वह अपने ससुराल गई, यह भी अ०सा०-7 (द्वितीय विवेचनाधिकारी) द्वारा साबित किया गया है। ऐसे तथ्यों से यह भी स्पष्ट है कि आरोपी-अपीलकर्ताओं का मृतका की हत्या करने का मजबूत मकसद था। मृतका के शव की शव परीक्षण रिपोर्ट के साथ-साथ ऑटोप्सी सर्जन अ०सा०-6 डॉ. जितेंद्र कुमार त्यागी के बयान अभियोजन पक्ष के बयान का समर्थन करते हैं।

63. उपरोक्त चर्चाओं और विचार-विमर्श के मद्देनजर, हम पाते हैं कि अभियुक्त-अपीलकर्ता जयकिशन @ बबलू और अनीता के संबंध में निचली अदालत का निष्कर्ष सही है और दोनों अभियुक्त-अपीलकर्ताओं का अपराध अभियोजन पक्ष द्वारा उचित संदेह से परे साबित हुआ है, जो कानून की नजर में टिकाऊ/पुख्ता है। ऐसे आरोपी-अपीलकर्ता,

अनुवादित

जिन्होंने मृतका रेखा पर मिट्टी का तेल डालकर और उसे आग लगाकर हत्या करके जघन्य अपराध किया है, क्योंकि वह उनके अवैध संबंधों की प्रबल विरोधी थी, हमारी ओर से किसी भी उदारता के हकदार नहीं हैं। ऐसे व्यक्तियों, जो समाज में काले धब्बे हैं, को स्वतंत्रता नहीं दी जा सकती है।

64. नतीजतन, अभियुक्त-अपीलकर्ताओं द्वारा दायर दोनों अपीलें योग्यता से रहित हैं और तदनुसार खारिज कर दी जाती हैं। .

65. इस निर्णय की एक प्रति अब से संबंधित मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को भेजी जाए, जो इस निर्णय के संदर्भ में संबंधित जेल अधीक्षक को प्रेषित करेगा।

(2023) 6 ILRA 140

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 23.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा

आपराधिक अपील संख्या 5502 वर्ष 2017

रामचंद्र कुशवाह ... अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता: श्री सुरेश चंद्र कुशवाह, श्री रमेश कुमार सिंह, श्री सुरेंद्र मोहन मिश्रा

प्रतिवादी के अधिवक्ता: जी.ए.

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302 - हत्या के लिए सजा - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161 और 313 - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 106 - सजा के खिलाफ अपील - आजीवन कारावास - प्रत्यक्ष साक्ष्य - अभियोजन पक्ष के अनुसार आरोपी और मृतक के बीच विवाद हुआ और जब आरोपी ने मृतक को पीटना शुरू किया, तो उनकी बेटी ने हस्तक्षेप किया, आरोपी ने अपनी बेटी के साथ भी मारपीट की, इलाज के दौरान उसकी मृत्यु हो गई - माना, मकसद की पुष्टि नहीं की गई है और सूचनाकर्ता या अन्य गवाहों द्वारा साबित नहीं किया गया है - दुर्भाग्यपूर्ण दिन, सभी गवाहों ने गवाही दी कि मृतक अपनी बेटी के साथ घर में अकेली थी - आरोपी सामान खरीदने गया था - वापस लौटने पर, उसने पाया कि उसकी पत्नी की हत्या कर दी गई है और उसकी बेटी बदमाशों द्वारा बुरी तरह घायल हो गई है - पुलिस स्टेशन पहुंचा, हिरासत में लिया मृतक - सभी गवाह घर से बाहर थे और अपने काम में व्यस्त थे - आरोपित आदेश को रद्द किया जाता है। (पैरा 15, 16, 19, 21, 22)

आपराधिक अपील स्वीकार की गई। (ई-13)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. जयम्मा एवं अन्य: लछमा पुत्र चंद्यानायका एवं अन्य बनाम कर्ण का न्यायालय, 2021 मुकदमा (एससी) 312
2. महावीर सिंह बनाम एमपी का न्यायालय, 2016 मुकदमा (एससी) 1071
3. मछिन्द्र बनाम सज्जन गपला रंखम्ब एवं अन्य, 2017 मुकदमा (एससी) 422
4. हरपाल सिंह बनाम भागीरथ, 1999 मुकदमा (एससी) 617

अनुवादित

5. रमेश भाई एवं अन्य बनाम राजस्थान का न्यायालय। 2009 (अनुपूरक) एसीसी 860 (एससी)

6. शिवाजी चिंताप्पा पाटिल बनाम स्टेट ऑफ महाराष्ट्र, 2021 0 सुप्रीम (एससी) 121

7. भास्कर राव एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2018) 6 एससीसी 591

8. उजागर सिंह बनाम पुण राज्य, (2007) 13 एससीसी 90

9. नागराज बनाम पुण, (2015) 4 एससीसी 739

10. वक्कर बनाम उ.प्र. राज्य, 2011 (2) एएलजे 452 एससी

11. नथुनी यादव बनाम बिहार राज्य, (1998) 9 एससीसी 238

12. कुलविंदर सिंह बनाम पुण राज्य, एआईआर 2007 एससी 2868

13. गणपत सिंह बनाम म.प्र. राज्य, (2018) 2 एससीसी (क्रि) 159

14. कर्ण राज्य बनाम एम.वी. महेश, (2003) 3 एससीसी 353

15. जी.एल.मंगराजू @ रमेश बनाम स्टेट ऑफ ए.पी., एआईआर 2001 एससी 2677

16. राजू बनाम स्टेट, एआईआर 2009 एससी 2171

17. विट्ठल ई. एडलिंगे बनाम स्टेट ऑफ महाराष्ट्र, एआईआर 2009 एससी 2067

18. कृष्णा घोष बनाम स्टेट ऑफ डब्ल्यू.बी., एआईआर 2009 एससी 2279

19. देव कन्या तिवारी बनाम स्टेट ऑफ यू.पी., (2018) 5 एससीसी 734

20. राजेश प्रकाश भटनागर बनाम स्टेट (दिल्ली) (1985) 28 डेल एलटी 357

21. प्रभाकर बनाम स्टेट ऑफ महाराष्ट्र। एआईआर 1982 एससी 1217

22. जम्मू-कश्मीर बनाम विजय कुमार एवं अन्य, एआईआर 2017 सुप्रीम कोर्ट 1507

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर & माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा द्वारा दिया गया)

1. अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री रमेश कुमार सिंह, राज्य के लिए श्री एन.के. श्रीवास्तव, अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया।

2. अपीलकर्ता द्वारा दिनांक 07.09.2017 के निर्णय और आदेश के खिलाफ प्रस्तुत अपील की गई है, जिसके द्वारा अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, कुशीनगर ने आरोपी-अपीलकर्ता को धारा 302 भ०द०वि० के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराया है और आजीवन कारावास की सजा सुनाई है और 20,000 रुपये का जुर्माना लगाया है और दो साल के साधारण कारावास की सजा सुनाई है।

सूचना मिलने के बाद विवेचना प्रारम्भ हुई और थाना अहिरौली बाजार, जिला: कुशीनगर में प्रकरण संख्या-689 वर्ष 2014 में प्राथमिकी दर्ज होने के बाद पुलिस अधिकारी ने जांच शुरू की और गवाहों के बयान दर्ज करने के बाद आरोप पत्र दायर किया।

4. मामला सत्र न्यायालय के लिए प्रतिबद्ध था और आरोपी को आरोप पढ़ कर सुनाया गया तो ऊसने आरोपों से इनकार किया, दोषी नहीं होने का अनुरोध किया और विचारण चाहा।

अनुवादित

5. आरोप को क़ानून के दायरे में लाने के लिए, अभियोजन पक्ष ने 15 गवाहों की जांच की है जो निम्नानुसार हैं:

1	कमलेश, सूचनाकर्ता और अभियुक्त का पुत्र और मृतक (?)	अ०सा०-1
2	राजेश कुशवाहा, अभियुक्त और मृतक का पुत्र (?)	अ०सा०-2
3	बसंत @ चिरकुट, अभियुक्त का पिता	अ०सा०-3
4	प्रमोद कुशवाहा, गाँव निवासी	अ०सा०-4
5	संतोष मौर्य, मृतक आशा का भाई	अ०सा०-5
6	रजवती, मृतक की सास	अ०सा०-6
7	मिकलेश कुशवाहा, अभियुक्त और मृतक का पुत्र (?)	अ०सा०-7
8	रमानंद, मृतक पूजा के शव का पंचान का गवाह	अ०सा०-8
9	उमेश, मृतक पूजा के शव का पंचान का गवाह	अ०सा०-9
10	प्रमोद कुमार राय, एस आई, विवेचनाधिकारी	अ०सा०-10
11	राम गोपाल यादव, कांस्टेबल मोहर्रिर	अ०सा०-11
12	डॉ विजेंदर कुमार, जिन्होंने आशा देवी का शव परीक्षण किया	अ०सा०-12
13	विनय कुमार पाठक, थानाध्यक्ष, उत्तरवर्ती विवेचनाधिकारी	अ०सा०-13
14	डॉ एस एन तिवारी, जिन्होंने पूजा का शव परीक्षण किया	अ०सा०-14
15	कांस्टेबल राम टहल जिसने दारोग़ा राम बरीक्षा राम के लिए अगली गवाही दी जिसने कु. पूजा का पंचनामा भरा	अ०सा०-15

6. इन मौखिक गवाहियों को विश्वसनीयता देने के लिए अभियोजन पक्ष द्वारा निम्नलिखित दस्तावेज भी दायर किए गए थे:

1	तहरीर रिपोर्ट	प्रदर्श क-1
2	नक़्शा नज़री	प्रदर्श क-2
3	फावड़ा का फ़र्द बरामदगी	प्रदर्श क-3
4	मृतक आशा देवी का पंचनामा	प्रदर्श क-4
5	पुलिस फॉर्म न-13	प्रदर्श क-5
6	फ़ोटो लाश, मृतक आशा देवी	प्रदर्श क-6
7	जी डी के एक प्रति	प्रदर्श क-7
8	चिक प्राथमिकी	प्रदर्श क-8
9	जी डी के एक प्रति	प्रदर्श क-9
10	आशा देवी की शव परीक्षण रिपोर्ट	प्रदर्श क-10
11	आरोप पत्र	प्रदर्श क-11
12	पूजा की शव परीक्षण रिपोर्ट	प्रदर्श क-12
13	पूजा का पंचनामा	प्रदर्श क-13
14	पुलिस फॉर्म न-33	प्रदर्श क-14
15	पुलिस पेपर	प्रदर्श क-15

अनुवादित

16	पूजा की फोटो लाश	प्रदर्श क-16

विधि विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट पेपर संख्या-45/केए-1 को विचारण न्यायालय द्वारा धारा 293 द०प्र०स० के तहत प्रदर्शित नहीं किया गया है।

7. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने सर्वोच्च न्यायालय के निम्नलिखित निर्णयों पर बहुत अधिक भरोसा किया है:

(a) जयम्मा और अन्य : लछमा पुत्र चंद्य नायका और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य, 2021 लॉ सूट (एस.सी.) 312

(ख) महावीर सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2016 विधि वाद (एस.सी.) 1071

(c) मछिन्द्रा बनाम सज्जन गपला रंखंब और अन्य, 2017 लॉसूट (एस.सी.) 422

(घ) हरियाणा राज्य बनाम भागीरथ, 1999 विधि वाद (एस.सी.) 617

8. ताकि यह तर्क दिया जा सके कि अभियुक्त को गलत तरीके से दोषी ठहराया गया है, तथ्य के सभी गवाहों ने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया है। सुरेश के साक्ष्य भी दर्ज नहीं किए गए हैं। केवल डॉक्टर के साक्ष्य के आधार पर, जिसकी पुष्टि भी नहीं की गई है, अभियुक्त को साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 का उपयोग करते हुए दंडित किया गया है।

9. आगे यह तर्क दिया गया है कि घर पर हमला करने वाले बदमाश थे और धारा 313 द०प्र०स० के तहत अभियुक्त के बचाव पर विचार नहीं किया गया है।

10. अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि कथित घटना 25.4.2014 को हुई थी, जहां आरोपी-अपीलकर्ता ने अपनी पत्नी और बेटी को फावड़ा से मार डाला था, हालांकि, अभियुक्त का चालान 26.4.2014 को किया गया था और चालान किए जाने से पहले उसकी चिकित्सकीय जांच की गई थी जिसमें पांच चोटें पाई गई थीं जो अभियोजन पक्ष की कहानी को संदिग्ध बनाती हैं।

11. यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि अभियोजन पक्ष की कहानी रिकॉर्ड पर साक्ष्य का समर्थन नहीं करती है क्योंकि औपचारिक गवाहों को छोड़कर सभी गवाह पक्षद्रोही गए हैं। प्रस्तुत मामले में 9 सरकारी गवाह थे और उन सभी ने अभियोजन पक्ष की कहानी को गलत ठहराया है, लेकिन धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज बयानों पर भरोसा करते हुए, आरोपी-अपीलकर्ता को गलत तरीके से दोषी ठहराया गया है।

12. यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि चोटें बरामद हथियार से मेल नहीं खाती हैं। पुलिस द्वारा सूचनाकर्ता के हस्ताक्षर प्राप्त किए गए थे, अभियोजन पक्ष द्वारा भी साबित नहीं किया गया है। यह प्रस्तुत किया गया है कि आरोपी को विद्वान न्यायाधीश द्वारा गलत तरीके से दोषी ठहराया गया है और आरोपी-अपीलकर्ता बरी होने का हकदार है।

13. सबूतों से निपटने से पहले, आइए हम अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयान पर विचार करें:

(क) अ०सा०-1, अभियुक्त और मृतक के पुत्र कमलेश ने गवाही दी है कि कथित घटना के समय, वह दवाइयां और खाद खरीदने के लिए सुकरौली बाजार गया था। उसके पिता (आरोपी) अहिरौली बाजार में साइकिल की मरम्मत करते हैं। उन्होंने एस.आई. द्वारा कहे जाने पर प्रदर्श क-1 और कई अन्य सादे कागजात पर

अनुवादित

हस्ताक्षर किए थे और इंस्पेक्टर ने उन्हें उसी पर हस्ताक्षर करने के लिए डराया था। उसने धमकी भी दी कि अगर उसने हस्ताक्षर नहीं किए तो वह उसके पिता को सालों के लिए जेल में डाल देगा। हस्ताक्षर मिलने के बाद इंस्पेक्टर ने उसे घर भेज दिया और कहा कि उसके पिता बाद में घर जाएंगे। अगले दिन उन्हें पता चला कि मेडिकल कॉलेज गोरखपुर में उनकी बहन पूजा की मौत हो गई है। इस गवाह ने फावड़ा के फ़र्द बरामदगी पर हस्ताक्षर को भी मान्यता दी। उसने आगे कहा कि जब वे घर पर मौजूद नहीं थे, तो कुछ बदमाशों ने उसकी मां और बहन को पीटा और मार डाला था, लेकिन पुलिस द्वारा उसका बयान दर्ज नहीं किया गया था जब वह अगले दिन थाना गया था, उससे घटनास्थल के बारे में पूछताछ नहीं की गई थी।

इस गवाह को पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया। अभियोजन पक्ष द्वारा प्रतिपरीक्षा में, इस गवाह ने 25.4.2014 को उसके समक्ष खून से सने फावड़ा की बरामदगी से इनकार किया और उसके फ़र्द बरामदगी को तैयार करने से भी इनकार किया और गवाही दी कि जब उसने हस्ताक्षर किए थे, तो यह एक कोरा कागज था। सरकारी मदद के बहाने उनके हस्ताक्षर लिए गए थे। उन्होंने आवेदन को एस.पी. को देने से इनकार किया। उन्होंने आगे कहा कि उन्होंने ग्रामीणों के अनुरोध पर इस कागज पर हस्ताक्षर किए थे। इस गवाह ने विवेचनाधिकारी द्वारा दर्ज किए गए बयान से भी इंकार किया। उन्होंने घटनास्थल और समय पर अपनी उपस्थिति से इनकार किया।

बचाव पक्ष द्वारा जिरह में, इस गवाह ने अभियोजन पक्ष की कहानी से इनकार किया और बयान दिया कि ग्रामीणों से उसे पता चला कि तीन बदमाश उसके घर आए, उसकी बहन के साथ छेड़छाड़ की और उसकी मां की हत्या कर दी। मां-बहन की चीख-पुकार पर जब ग्रामीण पहुंचे तो बदमाश भाग चुके थे। अहरौली में बस से उतरने के बाद जब उसके पिता शाम करीब 4:30 बजे अहरौली बाजार से घर आ रहे थे तो पुलिस उन्हें साथ लेकर थाने पहुंची। पुलिस के फरमान के अनुसार उसने तहरीर लिखी, मना करने पर उसे हत्या के मामले में फंसाने की धमकी दी। उनके पिता को न तो घर से गिरफ्तार किया गया और न ही उनके सामने कोई हत्या हुई। इस गवाह ने अपने पिता, मां और बहन के बीच किसी भी लड़ाई से इनकार किया। इस गवाह ने अभियोजन पक्ष की कहानी का समर्थन नहीं किया है।

(ख) अ०सा०-2, राजेश कुशवाहा, अ०सा०-1 के भाई और अभियुक्त और मृतक के पुत्र ने गवाही दी है कि कथित घटना के समय वह अपने दादा और भाई मिथिलेश के साथ खेतों में था। उसके पिता अपनी दुकान का सामान खरीदने पिपराइच गए हुए थे। भाई कमलेश सुकरौली गए थे। उसकी मां और बहन घर पर अकेली थीं। बदमाशों द्वारा अपनी मां और बहन की हत्या की सूचना पर वे घर की ओर गए जहां उन्हें मां आशा देवी खून से लथपथ मिलीं और बहन पूजा को ग्रामीणों ने इलाज के लिए ले लिया। कुछ समय बाद उनके पिता रामचंद्र पिपराइच से लौटे। इंस्पेक्टर के साथ पुलिस के जवान घर आए। कानूनी कार्रवाई शुरू करने के लिए पुलिस ने कुछ सादे कागजों पर उसके भाई और पिता के हस्ताक्षर लिए। शाम को उन्हें पता चला कि मेडिकल कॉलेज में

अनुवादित

इलाज के दौरान उनकी बहन की भी मौत हो गई है। पुलिस उसके बड़े भाई और पिता को थाने ले गई लेकिन केवल उसका भाई लौटा, उसके पिता को वहीं रोक दिया गया, उसे सुबह आने की उम्मीद थी। इस गवाह ने अपने सामने फावड़ा की बरामदगी से इनकार किया और गवाही दी कि जब उसने फ़र्द बरामदगी पर हस्ताक्षर किए थे, तो यह एक सादा कागज था।

इस गवाह को भी पक्षद्रोही घोषित किया गया था और अभियोजन पक्ष द्वारा जिरह की गई थी, जिसमें उसने अभियोजन पक्ष के संस्करण का समर्थन नहीं किया था। बचाव पक्ष द्वारा जिरह में, गवाह ने अ०सा०-1 के समान कहानी को प्रस्तुत किया।

(ग) अ०सा०-3, बसंत @ चिरकुट, अभियुक्त-अपीलकर्ता के पिता ने गवाही दी है कि जब मृतक आशा देवी और पूजा को छोड़कर सभी व्यक्ति घर से बाहर थे, तो कुछ बदमाशों ने घर में प्रवेश किया, आशा देवी की हत्या कर दी और पूजा को भी घायल कर दिया, जिसकी शरारती तत्वों द्वारा की गई चोटों के कारण मेडिकल कॉलेज में मृत्यु हो गई। वह खेत से घर पहुंचा तो कई लोगों और पुलिसकर्मियों को मौके पर पाया। कुछ सादे कागजों पर पुलिसकर्मियों ने उसके हस्ताक्षर करवा लिए। इस गवाह ने धारा 161 भ०द०वि० के तहत विवेचनाधिकारी द्वारा दर्ज बयान से इनकार किया।

इस गवाह को पक्षद्रोही घोषित किया गया था और अभियोजन पक्ष द्वारा जिरह की गई थी जिसमें उसने अभियोजन पक्ष के संस्करण का भी समर्थन नहीं किया था। बचाव पक्ष द्वारा जिरह में, गवाह ने अ०सा०-1 & 2 के समान बयान दिया है।

(घ) अ०सा०-4 के श्री प्रमोद कुशवाहा ने गवाही दी है कि घटना के दिन वह लुधियाना से घर आ रहे थे, स्कूल के पास भीड़ थी। उसे पता चला कि कुछ बदमाशों ने आशा देवी की हत्या कर दी है और उसकी बेटी पूजा को घायल कर दिया है। इंस्पेक्टर ने उसे बुलाया और सादे कागजों पर उसके और अन्य व्यक्तियों के हस्ताक्षर लिए। इस गवाह ने जांच पर अपने हस्ताक्षर साबित किए हैं लेकिन इस बात से इनकार किया है कि उससे विवेचनाधिकारी द्वारा पूछताछ की गई थी। इस गवाह को भी पक्षद्रोही की घोषणा की गई थी और अभियोजन पक्ष द्वारा जिरह की गई थी लेकिन उसने अभियोजन पक्ष का समर्थन नहीं किया। बचाव पक्ष द्वारा जिरह में, गवाह ने मुख्य परीक्षण के बयान को दोहराया है।

(ङ) अ०सा०-5, संतोष मौर्य, मृतका आशा देवी के भाई और पूजा के मामा ने गवाही दी है कि कुछ बदमाशों ने घर में घुसकर उसकी बहन की हत्या कर दी और उसकी भतीजी को बुरी तरह पीटा जिसके कारण इलाज के दौरान उसकी मृत्यु हो गई। पुलिस ने असली बदमाशों को गिरफ्तार करने के बजाय उसके बहनोई रामचंद्र (आरोपी अपीलकर्ता) को गिरफ्तार कर लिया था। पुलिस ने न तो पूछताछ की और न ही उसका बयान दर्ज किया। गवाह ने शपथ पत्र पर अपने हस्ताक्षर को पहचान लिया। इस गवाह को भी पक्षद्रोही घोषित किया गया और अभियोजन पक्ष द्वारा जिरह की गई लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। बचाव पक्ष द्वारा जिरह में, गवाह ने मुख्य परीक्षण के बयान को दोहराया है।

अप्रमाणित

(च) बसंतलाल की पत्नी अ०सा०-6, राजवती ने गवाही दी है कि कथित घटना की तारीख को कुछ बदमाश उसके पड़ोसी रामचंद्र के घर में घुस गए और उसकी पत्नी की हत्या कर दी और उसकी बेटी पूजा को घायल कर दिया, जिसकी मेडिकल कॉलेज में मृत्यु हो गई। जब वह गांव आई तो उसे बताया गया कि घटना के समय रामचंद्र अपनी दुकान पर था और बेटे भी घर पर मौजूद नहीं थे, इसी बीच बदमाशों ने घुसकर आशा देवी की हत्या कर दी और पूजा की पिटाई कर दी। गवाह ने इस बात से इंकार कर दिया कि विवेचनाधिकारी द्वारा कोई बयान दर्ज किया गया था। इस गवाह को भी पक्षद्रोही घोषित किया गया था और अभियोजन पक्ष द्वारा जिरह की गई थी लेकिन उसने अभियोजन पक्ष का समर्थन नहीं किया। बचाव पक्ष द्वारा जिरह में, गवाह ने मुख्य परीक्षण के बयान को दोहराया है।

(छ) अ०सा०-7, मिकलेश कुशवाहा, एक नाबालिग गवाह को पहले सक्षम गवाह घोषित किया गया था और उसके बाद उसकी जांच की गई थी। इस गवाह ने भी इसी तरह गवाही दी कि शाम करीब 4:00 बजे उसे घटना के बारे में तब पता चला जब वह अपने भाइयों राजेश, कमलेश और दादा बसंत @ चिरकुट के साथ मैदान में था। जब वह घर पहुंचा तो उसे पता चला कि बहन को इलाज के लिए गोरखपुर ले जाया गया है और शव को थाने ले जाया गया है। इंस्पेक्टर ने अपने भाई कमलेश को थाने में बैठाया और पिता को लॉकअप में बंद कर दिया। वे बहुत रोए लेकिन पुलिस ने उनके पिता को नहीं छोड़ा। जब वे घर आए तो उन्हें पता चला कि दुष्कर्मियों द्वारा पहुंचाई गई चोटों के कारण पूजा की इलाज के दौरान मौत हो गई थी। गवाह ने इस बात से इनकार किया कि पुलिस/इंस्पेक्टर ने उससे पूछताछ की थी। इस गवाह को भी पक्षद्रोही जाने की घोषणा की गई थी और अभियोजन पक्ष द्वारा जिरह की गई थी लेकिन उसने अभियोजन पक्ष का समर्थन नहीं किया। बचाव पक्ष द्वारा जिरह में, गवाह ने मुख्य परीक्षण के बयान को दोहराया है।

(ज) अ०सा०-8, रामानंद ने गवाही दी है कि उसके समक्ष शव का कोई पंचायतनामा नहीं किया गया था। इस गवाह को भी पक्षद्रोही जाने वाला घोषित किया गया था और अभियोजन पक्ष द्वारा जिरह की गई थी लेकिन उसने अभियोजन पक्ष का समर्थन नहीं किया।

(i) अ०सा०-9, मृतक पूजा की जांच के गवाह उमेश ने पूछताछ पर उसके हस्ताक्षर को मान्यता दी है, लेकिन गवाही दी है कि उसके सामने ऐसा कोई पंचायतनामा नहीं किया गया था और विवेचनाधिकारी ने उसका बयान दर्ज नहीं किया था। इस गवाह को भी पक्षद्रोही की घोषणा की गई थी और अभियोजन पक्ष द्वारा जिरह की गई थी लेकिन उसने अभियोजन पक्ष का समर्थन नहीं किया।

(ञ) अ०सा०-10, एस.आई. प्रमोद कुमार, मामले के विवेचनाधिकारी ने गवाही दी है कि विवेचना उन्हें सौंपी गई थी। प्राथमिकी दर्ज कराने के बाद उन्होंने लिखित शिकायत की नकल करते हुए सूचना देने वाले कमलेश कुशवाह का बयान दर्ज कर उसके कहने पर नक़्शा नज़री तैयार किया, चश्मदीद राजेश कुशवाह और आरोपी रामचंदर के बयान दर्ज किए। इस गवाह ने मृतक आशा देवी की जांच (प्रदर्श क-4) के साथ संलग्न अन्य कागजात

अनुवादित

(प्रदर्श क-5 से प्रदर्श क-7) के साथ नक़्शा नज़री (प्रदर्श क-2) और फ़र्द बरामदगी (प्रदर्श क-3) को साबित किया है। इस साक्षी ने भी फावड़ा को एम. प्रदर्श.-1, मृतका आशा देवी के वस्त्रों को एम. प्रदर्श. 2 से 4 और रक्त से सना और साधारण मिट्टी को एम. प्रदर्श.-5 से 6 के रूप में भी साबित किया है। इस गवाह ने गवाही दी है कि आरोपी को पूछताछ के बाद गिरफ्तार किया गया था। बाद में उसने बयान दिया कि परिवार के सदस्यों और पड़ोसियों ने मृतक को उस समय पकड़ा जब वह छत से कूदकर भागने की कोशिश कर रहा था।

इस गवाह ने आगे गवाही दी है कि अपराध करने में इस्तेमाल किया गया फावड़ा आरोपी की निशानदेही पर बरामद किया गया था, लेकिन केस-डायरी में बरामदगी का कोई गवाह नहीं मिला है। इस पर आरोपी के हस्ताक्षर नहीं हैं। इस पर केवल गवाह और उसके द्वारा हस्ताक्षर किए जाते हैं। आरोपियों के फावड़े से कोई फिंगर प्रिंट नहीं लिया गया। इस गवाह ने इस बात का ध्यान नहीं दिया कि आरोपी के पहने हुए कपड़ों पर खून के धब्बे थे या नहीं। वह यह नहीं बता सका कि किस मामले पर आरोपी, उसकी पत्नी और उनकी बेटी के बीच विवाद हुआ। आरोपी ने यह नहीं बताया था कि उसने मृतक को बरामद फावड़ा से मारा था, लेकिन कहा था कि उसने मृतक को फावड़ा से मारा था। इस गवाह ने इस बात से इनकार किया कि जब आरोपी अपनी पत्नी और बेटी की हत्या के बारे में सूचना देने के लिए थाना गया था, तो उसे पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया था। उन्होंने आगे इस बात से इनकार किया है कि जांच के समय और जब शव को शव परीक्षण के लिए भेजा गया था, तो प्राथमिकी दर्ज नहीं की गई थी। इस गवाह ने स्वीकार किया कि उसने मृतक का फावड़ा और कपड़े आदि विधि विज्ञान प्रयोगशाला को नहीं भेजे थे, बल्कि इसे एच.सी श्यामा यादव ने भेजा था। उन्होंने स्वीकार किया कि पंचायतनामा में मृतक के कपड़ों पर खून का कोई जिक्र नहीं था।

(k) अ०सा०-11, राम गोपाल यादव, थाना-अहिरौली में कांस्टेबल मुहर्रिर, ने चिक प्राथमिकी (प्रदर्श क-8) की तैयारी और सिद्ध कार्बन कॉपी जीडी. (प्रदर्श क-9) साबित कर दी है।

(1) अ०सा०-12 डॉ. विजेन्द्र प्रसाद ने दिनांक 26042014 को अपराह्न 2.45 बजे मृतक आशा देवी के शव का शव परीक्षण किया था। यह गवाह मृतका आशा देवी के शव पर चोट के निशान के रूप में पाया गया:

i. दाहिनी कक्षा सहित दाहिनी ओर के मुख पर 10.00 x 8.00 सेमी सूजन के साथ संलयन।

ii. दाहिनी भौं के ठीक ऊपर दाईं ओर के माथे पर 6.00 x 5.00 सेमी सूजन के साथ संलयन।

iii. गर्दन के पीछे दाईं ओर 6.00x1.5.00 सेमी x हड्डी गहरा घाव।

iv. बाएं इन्फ्रा क्लैविकुलर क्षेत्र पर 3.00 x 1.00 सेमी x हड्डी गहरा घाव हुआ।

v. खून रिसता घाव 5.00 x 1.00 सेमी x हाइडोइड हड्डी के स्तर पर गर्दन के बाईं ओर गहरा गुहा।

vi. बाईं ओर की गर्दन पर 7.00 x 6.00 सेमी सूजन के साथ संलयन के साथ घर्षण।

vii. दाहिने अग्रभाग के पोस्ट पहलू पर सूजन 5.00 x 4.00 सेमी के साथ संलयन निचले

अनुवादित

सिरे पर दाएं रेडियो उल्ना के फ्रैक्चर को रेखांकित करता है।

आंतरिक जांच में इस गवाह ने दाहिनी ओर ललाट की हड्डी में फ्रैक्चर, कटी हुई रक्त वाहिकाओं और हाइडोइड हड्डी का पता लगाया। इस गवाह की राय में, मृत्यु का कारण रक्तस्राव और मृत्यु पूर्व चोट के परिणामस्वरूप झटका था। गवाह ने कहा कि चोट किसी ठोस वस्तु और धारदार हथियार से लगी होगी। चोटें तेज धार वाले फावड़ा और कुंद वस्तु से हुई थीं।

(एम) अ०सा०-13, विनय कुमार पाठक, थाना प्रभारी, मामले के बाद के विवेचनाधिकारी थे, उन्होंने गवाह चिरकुट, राजवती का बयान भी दर्ज किया है। उन्होंने मृतक पूजा की पंचनामा रिपोर्ट और शव परीक्षण रिपोर्ट की भी नकल की थी। उन्होंने चंद्रभान यादव, राम नारायण सिंह, अनिल शर्मा, अवधेश यादव और मनोज गुप्ता के बयान दर्ज किए। इस गवाह ने आरोप पत्र प्रदर्श क-11 प्रस्तुत किया है।

(ढ) अ०सा०-14, डा एस.एन तिवारी, जिला: अस्पताल, गोरखपुर, जिन्होंने दिनांक 26.04.2014 को सायं 4.10 बजे अभियुक्त की पुत्री कुमारी पूजा का शव परीक्षण किया था और निम्नलिखित चोटें पाई थीं;

(i) एक क्षेत्र वर्ष 14.00 x 4.00 सेमी में एकाधिक क्षैतिज रैखिक घर्षण छाती के पिछले हिस्से पर सूजन का सामना करना पड़ता है।

(ii) वक्ष गुहा में मौजूद एक लीटर रक्त के अलावा रक्तगुहा के नीचे पसलियों के टूटने और फेफड़े के स्वेच्छा के अलावा रक्ताल्प के नीचे त्वचा काटने पर छाती पर उपस्थित संलयन, सूजन।

(iii) 700 x 100 सेमी आकार में मौजूद रक्ताल्मटोमा पर ठोड़ी के ऊपर सिला हुआ घाव

इस गवाह की राय में मृतक की मौत सदमे के कारण और मृत्यु पूर्व चोट के परिणामस्वरूप हुई थी।

(ओ) अ०सा०-15, कांस्टेबल रामटहल ने गवाही दी है कि उनकी उपस्थिति में, तत्कालीन एस.आई. रामवृक्ष राज ने मृतक पूजा के शव का पंचायतनामा (प्रदर्श क-13) किया था। शव को सीलबंद कर होमगार्ड राम प्रताप के साथ उसकी कस्टडी में दे दिया गया। इस गवाह ने पेपर संख्या-13 का और पेपर संख्या-33, फ़ोटो लाश और चालान लाश के बारे में माध्यमिक साक्ष्य पेश किए हैं। पंचनामा रिपोर्ट के साथ संलग्न कागजात इस गवाह द्वारा प्रदर्श क-13 से क-16 के रूप में साबित हुए हैं।

14. अभियोजन साक्ष्य के बंद होने के बाद, अभियुक्त का बयान धारा 313 द०प्र०स० के तहत दर्ज किया गया था जिसमें उसने अभियोजन पक्ष के आरोपों से इनकार किया था और कहा था कि औपचारिक गवाहों ने गलत बयान दिए हैं। इसके अलावा उन्होंने कहा है कि घटना के समय वह घर पर नहीं थे, वह सुबह 8:00 बजे अपनी दुकान पर गए थे, जहां से वह सामान खरीदने के लिए पिपराइच गए थे। जब वह अहिरौली लौटा, तो उसे अवैध रूप से गिरफ्तार कर लिया गया और पुलिस ने पीटा।

15. उपरोक्त साक्ष्य से यह बहुत स्पष्ट है कि तथ्य के सभी गवाह पक्षद्रोही गए हैं और अभियोजन पक्ष के संस्करण का समर्थन नहीं किया है। अभियोजन पक्ष के अनुसार आरोपी और मृतका आशा देवी के बीच कुछ विवाद

अनुवादित

हुआ और जब आरोपियों ने आशा देवी को पीटना शुरू कर दिया, तो उनकी बेटी पूजा ने हस्तक्षेप किया और अपनी मां को बचाने की कोशिश की, आरोपी ने गुस्से में पूजा के साथ भी मारपीट की, जिससे मेडिकल कॉलेज, गोरखपुर में इलाज के दौरान उसकी मौत हो गई।

16. आक्षेपित निर्णय के अवलोकन से आगे, यह प्रतीत होता है कि सत्र न्यायाधीश ने भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 पर दोषसिद्धि और सजा के अपने फैसले को आधार बनाया है। रमेश भाई और अन्य बनाम राजस्थान राज्य 2009 (पूरक) ए.सी.सी. 860 (एस.सी.) के फैसले पर भरोसा करते हुए, विचारण न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला है कि यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य (किसी भी बरकरार प्रत्यक्ष साक्ष्य के अभाव में) का मामला है। विचारण न्यायालय ने सबसे पहले मकसद से निपटा है। प्राथमिकी में कथित मकसद की पुष्टि नहीं की गई है और सूचनाकर्ता या अन्य गवाहों द्वारा साबित नहीं किया गया है। यह कहीं भी स्थापित नहीं हुआ है कि घटना के समय आरोपी घर पर था। अभियुक्तों के साथ सभी गवाहों ने गवाही दी है और कहा है कि आरोपी की अहिरौली बाजार में एक साइकिल की दुकान थी और दुर्भाग्यपूर्ण दिन वह सुबह 8:00 बजे घर से निकला और पिपराइच बाजार में अच्छा खरीदने गया, जहां से जब वह लगभग 4:30 बजे अहिरौली बाजार लौटा, तो उसे पता चला कि उसकी पत्नी की हत्या कर दी गई है और उसकी बेटी को कुछ बदमाशों ने बुरी तरह घायल कर दिया है और जब वह पहुंचा तो उसे पता चला कि उसकी पत्नी की हत्या कर दी गई है और उसकी बेटी को कुछ बदमाशों ने बुरी तरह घायल कर दिया है और जब वह वहां पहुंचा तो थाना में उसे हिरासत में लिया गया और अगले दिन उसे गिरफ्तार कर लिया गया और अपराध के कमीशन में इस्तेमाल किए गए हथियार के रूप में एक फावड़ा लगाया गया और एक जाली बरामदगी दिखाई गई। इस बात का कोई सबूत नहीं है कि आरोपी और मृतक के बीच कोई हाथापाई हुई थी या नहीं। अभियोजन पक्ष के बयान के अनुसार मृतक आशा देवी और पूजा के अलावा घर पर और कोई मौजूद नहीं था। परिवार के बाकी सदस्य कहीं और थे। जहां तक प्राथमिकी और फ़र्द बरामदगी लिखने का सवाल है, अभियोजन पक्ष के गवाहों ने गवाही दी है कि कई सादे कागजों पर पुलिस द्वारा उनके हस्ताक्षर प्राप्त किए गए थे और पुलिस मामले को खोलने और समाप्त करने की जल्दबाजी में थी, इसलिए उन्होंने असली बदमाशों को खोजने और जानने की कोशिश नहीं की।

17. चूंकि गवाह पक्षद्रोही हो गए हैं और अभियोजन पक्ष के संस्करण के समर्थन में लेने के लिए कोई सबूत नहीं है, इसलिए, यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित मामला बना हुआ है, जिसके लिए आम तौर पर मकसद, अंतिम बार देखा गया, अतिरिक्त-न्यायिक स्वीकारोक्ति और बरामदगी पर विचार किया जाता है और यदि घटना घर के अंदर हुई थी, तो उपयुक्त मामलों में साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 को लागू किया जा सकता है।

शिवाजी चिंताप्पा पाटिल बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2021 सुप्रीम (एस.सी.) 121 के पैरा 11 में, परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर मामलों के संबंध में सिद्धांत निर्धारित किए गए हैं;

अनुवादित

"11. परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि के संबंध में कानून को शरद बिरधीचंद सारदा बनाम शरद बिरधीचंद सारदा के मामले में इस न्यायालय के 5 (2010) 9 एस.सी.सी. 189 6 (2019) 19 एस.सी.सी. 447 7 (2006) 12 एस.सी.सी. 254 के फैसले में बहुत अच्छी तरह से स्पष्ट विश्लेषण किया गया है। महाराष्ट्र राज्य :-

"153. इस निर्णय के एक करीबी विश्लेषण से पता चलता है कि एक अभियुक्त के खिलाफ एक मामले को पूरी तरह से स्थापित होने से पहले निम्नलिखित शर्तों को पूरा किया जाना चाहिए:

(1) जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, उन्हें पूरी तरह से स्थापित किया जाना चाहिए।

यहां यह ध्यान दिया जा सकता है कि इस न्यायालय ने संकेत दिया कि संबंधित परिस्थितियों को "स्थापित किया जाना चाहिए या होना चाहिए" और "स्थापित नहीं किया जा सकता है"। न केवल व्याकरणिक बल्कि "साबित किया जा सकता है" और "साबित किया जाना चाहिए या साबित किया जाना चाहिए" के बीच एक कानूनी अंतर है, जैसा कि शिवाजी सहबराव बोबड़े बनाम भारत संघ मामले में इस न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया था। महाराष्ट्र राज्य (1973) 2 एस.सी.सी. 793 जहां टिप्पणियां की गई थीं: [एस.सी.सी. पैरा 19, पृष्ठ 807: एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) पृष्ठ 1047] "19. ..... निश्चित रूप से, यह एक प्राथमिक सिद्धांत है कि अभियुक्त को अदालत द्वारा दोषी ठहराए जाने से पहले दोषी होना चाहिए और न केवल दोषी हो सकता है और 'हो सकता है' और 'होना चाहिए' के बीच की मानसिक दूरी लंबी है और निश्चित निष्कर्षों से अस्पष्ट अनुमानों को विभाजित करती है। (2) इस प्रकार स्थापित तथ्य केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप होने चाहिए, अर्थात्, उन्हें किसी अन्य परिकल्पना पर व्याख्या नहीं की जानी चाहिए, सिवाय इसके कि अभियुक्त दोषी है, (3) परिस्थितियां एक निर्णायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिए, (4) उन्हें साबित होने वाली परिकल्पना को छोड़कर हर संभव परिकल्पना को बाहर करना चाहिए, और (5) सबूत की एक श्रृंखला इतनी पूर्ण होनी चाहिए कि अभियुक्त की बेगुनाही के अनुरूप निष्कर्ष के लिए कोई उचित आधार न छोड़े और यह दिखाना चाहिए कि सभी मानवीय संभाव्यता में कार्य अभियुक्त द्वारा किया गया होगा।"

18. मकसद: इस मामले में जहां तक मकसद का सवाल है, यह स्थापित नहीं किया गया है कि आरोपी का मृतक की मौत और उसकी बेटी को घायल करने का कोई मकसद था। यह पता नहीं चल सका कि कोई मकसद था। पत्नी और पति शांति से अपना वैवाहिक जीवन व्यतीत कर रहे थे और उनके विवाह से तीन भाई-बहन पैदा हुए थे और सभी संयुक्त परिवार में खुशी से रह रहे थे। इस बात का कोई सबूत नहीं है कि पति और पत्नी के बीच इस घटना से पहले कोई विवाद हुआ था।

भास्कर राव और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2018) 6 एस.सी.सी. 591, उज्ज्वल सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2007) 13 एस.सी.सी. 90 में, यह माना गया है कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर मामलों में मकसद का महत्व है।

अधिवक्ता

शिवाजी चिंताप्पा पाटिल बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2021 सुप्रीम (एस.सी.) 121 में, यह माना गया है कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में, मकसद परिस्थितियों की श्रृंखला को पूरा करने के लिए एक महत्वपूर्ण कड़ी निभाता है। यदि मकसद साबित नहीं किया जा सका, तो परिस्थितियों की श्रृंखला को पूरा नहीं कहा जाएगा।

प्रत्यक्ष साक्ष्य पर आधारित मामलों में मकसद का ज्यादा महत्व नहीं होता है, लेकिन परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर मामलों में मकसद महत्वपूर्ण और बहुत अधिक परिणाम वाला हो जाता है। कानूनी प्रस्ताव नागराज बनाम राज्य, (2015) 4 एस.सी.सी. 739, वाक्कर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2011 (2) एएलजे 452 एस.सी. और नथुनी यादव बनाम बिहार राज्य, (1998) 9 एस.सी.सी. 238 में बताए गए थे।

इस प्रकार, उपरोक्त चर्चा के आधार पर इस न्यायालय का विचार है कि अभियोजन पक्ष अपीलकर्ता के खिलाफ मकसद स्थापित करने और साबित करने में विफल रहा है।

19. अंतिम बार देखा गया: जहां तक अंतिम बार देखे जाने का संबंध है, किसी भी गवाह ने यह नहीं कहा है कि घटना के समय, मृतक आरोपी के साथ था। निश्चित रूप से प्राथमिकी में, यह कहा गया है कि मृतका के साथ गरमागरम बहस के दौरान, आरोपी ने फावड़ा द्वारा उसके साथ मारपीट शुरू कर दी और जब बेटी कुमारी पूजा ने अपनी मां की जान बचाने की कोशिश की, तो उसके साथ भी मारपीट की गई लेकिन यह तथ्य किसी भी गवाह द्वारा साबित नहीं किया गया है। कमलेश, सूचनाकर्ता, अ०सा०-1, ने गवाही दी है कि उसने एस.आई. द्वारा दबाव डाले जाने पर प्रदर्श क-1 और कई अन्य कागजात पर हस्ताक्षर किए थे और इंस्पेक्टर ने उसे उसी पर हस्ताक्षर करने के लिए डराया था।

कुमारी पूजा के मरने का बयान दर्ज नहीं किया जा सका और गोरखपुर के मेडिकल कॉलेज में इलाज के दौरान उसकी मौत हो गई। तथ्य के सभी गवाहों ने गवाही दी है कि दुर्भाग्यपूर्ण दिन सुबह लगभग 8:00 बजे, आरोपी घर से निकल गया था और अहिरौली में अपनी दुकान के लिए सामान खरीदने के लिए पिपराइच गया था और जब वह लगभग 4:00 बजे वहां लौटा, तो उसे अपने घर पर हुई घटना के बारे में, जब उसने पुलिस से संपर्क किया, तो पता चला। उसे हिरासत में ले लिया गया और अगले दिन उसके खिलाफ आरोपी के तौर पर मामला दर्ज किया गया। किसी भी विश्वसनीय और ठोस सबूत के अभाव में कि अपराध के समय आरोपी अपने घर पर था और घर पर रहने के दौरान, मृतक आशा देवी की हत्या कर दी गई थी और पूजा बुरी तरह से घायल हो गई थी, यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि आरोपी-अपीलकर्ता के खिलाफ कोई अंतिम साक्ष्य है। उल्लेखनीय है कि मृतक आशा देवी के भाई अ०सा०-5 संतोष मौर्य ने भी अभियोजन पक्ष के बयान का समर्थन नहीं किया है और बयान दिया है कि कुछ बदमाशों ने घर में घुसकर उसकी बहन की हत्या कर दी और उसकी भतीजी को बुरी तरह घायल कर दिया। पुलिस ने असली बदमाशों को गिरफ्तार करने के बजाय उसके बहनोई को गिरफ्तार कर लिया।

कुलविंदर सिंह बनाम पंजाब राज्य, ए.आई.आर. 2007 एस.सी. 2868 में, यह माना गया है कि

अधिवक्ता

समय और स्थान की निकटता होनी चाहिए। इस मामले में इसकी कमी है।

गणपत सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2018) 2 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 159 में, यह देखा गया है, कुछ मामलों में सकारात्मक रूप से यह स्थापित करना मुश्किल होगा कि मृतक को अंतिम बार आरोपी के साथ देखा गया था जब एक लंबा अंतराल होता है और बीच में अन्य व्यक्तियों के आने की संभावना मौजूद होती है। यह निष्कर्ष निकालने के लिए किसी अन्य सकारात्मक सबूत के अभाव में कि आरोपी और मृतक को आखिरी बार एक साथ देखा गया था, ऐसे मामलों में अपराध के निष्कर्ष पर आना खतरनाक होगा।

कर्नाटक राज्य बनाम एम.वी महेश, (2003) 3 एस.सी.सी. 353 में, यह माना गया है कि केवल आखिरी बार एक साथ देखा जाना यह स्थापित करने और इंगित करने के लिए पर्याप्त नहीं है कि मृतक को मौत के घाट उतार दिया गया था।

20. न्यायेतर स्वीकारोक्ति इस मामले में पुलिस के समक्ष साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 के तहत ऐसी कोई असाधारण स्वीकारोक्ति नहीं है।

21. बरामदगी: अभियोजन पक्ष के अनुसार आरोपी के इशारे पर फावड़ा बरामद किया गया था जिसका इस्तेमाल आरोपी ने कथित अपराध को अंजाम देने में किया था। यह उल्लेखनीय है कि चोट संख्या-4 को छोड़कर बाकी चोटें कुंद वस्तु के कारण हुई थीं और फावड़ा से नहीं हुई थीं, अगर इसका उपयोग इसके सामान्य क्रम में किया जाता है। निश्चित रूप से यदि फावड़ा के पिछले हिस्से का उपयोग किया जाता है, तो उपरोक्त चोट हो सकती है जो अभियोजन पक्ष का मामला नहीं है कि फावड़ा को पीछे की ओर से कुंद वस्तु के रूप में इस्तेमाल किया गया था। विधि विज्ञान प्रयोगशाला की रिपोर्ट के अनुसार साड़ी और फावड़ा पर इंसानी खून था लेकिन ब्लड ग्रुप स्थापित नहीं हो सका। प्रदर्श क-3 के अनुसार, छत पर बने कमरे से सादा फावड़ा बरामद किया गया था, लेकिन आरोपी के इशारे पर इसे बरामद नहीं किया गया था। गवाह विनोद कुमार और कमलेश ने इस बात से इनकार किया है कि उनके सामने ऐसा फावड़ा बरामद किया गया था। उन्होंने गवाही दी है कि उनके हस्ताक्षर सादे कागज पर प्राप्त किए गए थे जो बाद में अभियोजन पक्ष के पक्ष में फावड़ा के फ़र्द बरामदगी के रूप में इस्तेमाल किए गए होंगे।

जी.एल. मंगराजू @ रमेश बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, ए.आई.आर. 2001 एस.सी. 2677 में, यह माना गया है कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर एक मामले में एक परिस्थिति अपने आप में अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा नहीं कर सकती है। यह सभी परिस्थितियों का संचयी परिणाम है, जो मायने रख सकता है। इसलिए, न्यायालय के लिए यह उचित नहीं है कि वह एक परिस्थिति को दूसरी परिस्थिति से अलग अर्थ देने के उद्देश्य से अलग करे।

जब आरोपी की निशानदेही पर कथित फावड़ा बरामद नहीं किया गया और जब ब्लड ग्रुप स्थापित नहीं किया जा सका कि हथियार के तेज धार वाले हिस्से में मृतक का ब्लड ग्रुप था, तो यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि आरोपी-अपीलकर्ता द्वारा अपराध करने में कथित फावड़ा का इस्तेमाल किया गया था।

22. साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के बारे में;

अनुवादित

विद्वान विचारण न्यायालय ने पूरी तरह से साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 पर अपना निर्णय आधारित किया है, इसलिए, इसे उद्धृत करना उचित होगा जो निम्नानुसार है;

"106. विशेष रूप से ज्ञान के भीतर तथ्य साबित करने का बोझ - जब कोई तथ्य विशेष रूप से किसी व्यक्ति के ज्ञान में होता है, तो उस तथ्य को साबित करने का भार उस पर होता है।

<u>व्याख्या:</u>

(ए) जब कोई व्यक्ति उस इरादे के अलावा कुछ अन्य इरादे से काम करता है जो अधिनियम के चरित्र और परिस्थितियों से पता चलता है, तो उस इरादे को साबित करने का बोझ उस पर है।

(b) A पर बिना टिकट के रेलवे में यात्रा करने का आरोप लगाया जाता है। यह साबित करने का बोझ कि उनके पास टिकट था, उन पर है।

गवाहों के साक्ष्य पर चर्चा की गई है। सभी गवाहों ने गवाही दी है कि कथित घटना के समय, आरोपी अपीलकर्ता सामान खरीदने के लिए पिपराइच बाजार गया था, मृतका अपनी बेटी कुमारी पूजा के साथ घर में अकेली थी। आरोपियों और मृतकों का अलग-अलग घर था। सभी गवाह घर से बाहर थे और अपने काम में व्यस्त थे। यहां तक कि अ०सा०-5 संतोष मौर्य, मृतका आशा देवी के भाई जो कुमारी पूजा के मामा भी थे, ने भी यही कहानी स्वीकार की है कि कुछ बदमाश घर में घुसे, उनकी बहन की हत्या कर दी और उनकी भतीजी को बुरी तरह घायल कर दिया, जिसके कारण इलाज के दौरान उसकी भी मौत हो गई। उनका यह भी दृढ़ विचार है कि उनके बहनोई आरोपी-अपीलकर्ता रामचंद्र ने कथित अपराध नहीं किया था। अभियोजन पक्ष के किसी भी गवाह ने अभियोजन पक्ष की कहानी का समर्थन नहीं किया है। इस प्रकार यह साबित होता है कि विचारण न्यायाधीश ने गलत निष्कर्ष निकाला है कि घटना के समय मृतक घर पर आरोपी के साथ था और आरोपी की उपस्थिति में मृतक की हत्या कर दी गई थी। इस अदालत के अनुसार ऐसा कोई सबूत नहीं है कि आरोपी की अहिरौली बाजार में साइकिल की दुकान नहीं थी और दिन के समय वह अपनी दुकान छोड़कर घर में रहता था और हत्या से ठीक पहले या घटना के बाद आरोपी वहां था।

राजू बनाम राज्य, ए.आई.आर. 2009 एस.सी. 2171 में, यह माना गया है कि जहां कोई मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर पूरी तरह से टिका हुआ है, अपराध के निष्कर्ष को केवल तभी उचित ठहराया जा सकता है जब सभी आपत्तिजनक तथ्यों और परिस्थितियों को अभियुक्त की निर्दोषता या किसी अन्य व्यक्ति के अपराध के साथ असंगत पाया जाता है।

विट्ठल ई एडलिंगे बनाम महाराष्ट्र राज्य, ए.आई.आर. 2009 एस.सी. 2067 में, यह माना गया है कि यह साबित करने की जिम्मेदारी अभियोजन पक्ष पर है कि श्रृंखला पूर्ण है और झूठा बचाव या दलील अभियोजन मामले में दुर्बलता या कमी को ठीक नहीं कर सकती है। यदि भरोसा किया गया सबूत दो निष्कर्षों के लिए यथोचित रूप से सक्षम है, तो अभियुक्त के पक्ष में एक को स्वीकार किया जाना चाहिए।

कृष्णा घोष बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, ए.आई.आर. 2009 एस.सी. 2279 में, यह माना गया है कि जिन परिस्थितियों से अभियुक्त के अपराध के बारे में निष्कर्ष

अनुवादित

निकाला गया है, उन्हें उचित संदेह से परे साबित किया जाना चाहिए और उन परिस्थितियों से अनुमानित किए जाने वाले प्रमुख तथ्य के साथ निकटता से जुड़ा होना चाहिए।

देव कन्या तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2018) 5 एस.सी.सी. 734 में, यह माना गया है कि जब घटना का कोई चश्मदीद गवाह नहीं है और मामला पूरी तरह से परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है, तो अदालत से सबूतों का विश्लेषण करते समय और आरोपी को दोषी ठहराते समय अधिक सावधानी बरतने की उम्मीद की जाती है। दूसरे शब्दों में, परिस्थितियों की सभी संभावनाओं में श्रृंखला को अप्रतिरोध्य निष्कर्ष निकालना चाहिए कि अभियुक्त ने अपराध करने में भाग लिया और अपराध किया।

विद्वान विचारण न्यायाधीश ने निम्नलिखित उद्धरणों पर भरोसा किया है:

(क) राजेश प्रकाश भटनागर बनाम राज्य (दिल्ली)(1985) 28 दिल्ली लेफ्टिनेंट 357; इस मामले में घटना रात में हुई थी जब मृतक पत्नी, पति और दो छोटे बच्चे कमरे के अंदर थे और तीसरे पक्ष द्वारा हस्तक्षेप का कोई मौका नहीं था। पति-पत्नी को आखिरी बार एक साथ देखा गया था; सुबह सड़क पर शव मिलने पर माना गया कि आरोपी का अपराध माना गया।

इस मामले में घटना दिन के उजाले में हुई और किसी भी गवाह ने यह बयान नहीं दिया कि कथित घटना के समय, आरोपी घर पर था। सभी गवाहों ने गवाही दी है कि आरोपी अहिरौली बाजार में अपनी साइकिल की दुकान के लिए सामान खरीदने के लिए पिपराइच बाजार गया था। इसलिए, दोनों मामलों के तथ्यों में अंतर होने के कारण, उद्धृत मामले को इस मामले में लागू नहीं किया जा सकता है।

(ख) प्रभाकर बनाम महाराष्ट्र राज्य ए.आई.आर. 1982 एस.सी. 1217; इसमें मौत के समय पीड़ित की दम घुटने से मौत हो गई थी, केवल आरोपी पीड़िता के साथ मौजूद था। पीड़िता ने जहर देकर आत्महत्या करने की कोशिश की और यह माना गया कि परिस्थितिजन्य सबूत सजा को बनाए रखने के लिए पर्याप्त थे।

इस मामले में यह स्थापित नहीं किया गया है कि अपराध के समय, अभियुक्त मृतक की कंपनी में था, इसलिए, उद्धृत मामले में निर्धारित सिद्धांतों को प्रस्तुत मामले में लागू नहीं किया जा सकता है।

(ग) जम्मू और कश्मीर राज्य बनाम विजय कुमार और अन्य, आकाशवाणी, 2017, उच्चतम न्यायालय 1507; इस मामले में आरोप था कि आरोपी पति ने अपनी पत्नी की हत्या की थी। आरोपी के घर के पास नाले से शव बरामद किया गया। शव पर जलने के निशान सहित प्रताड़ना के निशान मिले हैं। चिकित्सा साक्ष्य ने हत्या की मौत की पुष्टि की। साक्ष्यों से यह भी स्थापित किया गया कि मृत्यु से ठीक पहले, मृतका पति के साथ रह रही थी, इसलिए, सर्वोच्च न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि ऐसी परिस्थितियों में साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के तहत पति पर यह बताने का भार है कि मृतका की मृत्यु किन परिस्थितियों में हुई थी और उसका शव नाले के पास पाया गया था। चूंकि अपराध करने में आरोपी पति की संलिप्तता साबित हो चुकी थी, इसलिए आरोपी को धारा 302

अनुवादित

भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराया गया और आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई।

प्रस्तुत मामले में यह स्थापित नहीं किया गया है कि पीड़िता और बेटी की मौत से कुछ समय पहले आरोपी घर में मौजूद था। सभी गवाहों ने गवाही दी है कि आरोपी सुबह 8:00 बजे अपने घर से निकला था क्योंकि वह सामान खरीदने के लिए अहिरौली बाजार और पिपराइच में अपनी दुकान पर गया था। विश्वसनीय और ठोस सबूत के अभाव में कि घटना के समय, आरोपी मृतक और पूजा के साथ अपने घर पर था, साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के तहत कोई बोझ आरोपी-अपीलकर्ता पर नहीं होगा।

23. विचारण न्यायाधीश, श्री विनय कुमार (वर्तमान में जिला एवं सत्र न्यायाधीश, इटावा के रूप में तैनात) की गलती।

निर्णय के पैरा 21 से यह बहुत स्पष्ट है कि विचारण न्यायाधीश ने विनिर्णयों के शीर्ष टिप्पणों का केवल लिप्यंतरण किया है, इसे पढ़े बिना, उन्होंने केवल विनिर्णयों के मुख्य टिप्पण की नकल की है। इस तरह से निर्णयों का हवाला देना विचारण न्यायाधीश के आकस्मिक दृष्टिकोण को दर्शाता है। यहां तक कि उन्होंने वर्तनी को सही करने की भी परवाह नहीं की क्योंकि burden' के स्थान पर burder और on के स्थान पर onh ट्रांसक्रिप्ट किया गया है। फैसले के पैरा 22 में 'पोस्टमॉरटम' को 'पोस्माटम' लिखा गया है। चोटों के बारे में जस्ट को रस्ट, bone deep को bonedip, back को beack के रूप में, 'इन्फ्रा क्लैविकुलर' को 'इंट्रा क्ला', region को rigion के रूप में, lacerated को lacrated के रूप में, level को loved के रूप में, hyoid को hiyod के रूप में, abrasion' को 'abrrassion के रूप में, swelling' को 'swiling के रूप में, neck' को 'neack के रूप में, aspect' को 'aspeed के रूप में, forearm' को 'fore srm' के रूप में, underline' को 'induring के रूप में, 'ulna' को 'albon' के रूप में और end' नहीं लिखा गया है, 'fracture' को 'facture' के रूप में, frontal bone' को 'frontbone के रूप में lungs' को 'lunges के रूप में congested' को 'congusted के रूप मे, faecal matters' को 'fecal mater के रूप में, gases' को 'gase' के रूप में, haemorrhage' को 'hamingri' के रूप में, antimortem injury' को 'antimortam injuri' के रूप में, में लिखा गया है। निर्णय के पृष्ठ 4 पर उसने दरख्वास्त लिखा को दरख्वास्त लिखा है उसे दरख्वास्त लिखा लिख के रूप में लिखा गया है. फैसले के पैरा 24 और 25 में लेखन में कई गलतियां की गई हैं जैसे 'वक्ष गुहा' को 'कोरेसिल कैबिटी' लिखा गया है, तीन अन्य स्थानों पर पोस्टमॉरटेम' को 'पोस्टामटम' लिखा गया है, 'उपनिरीक्षक' को 'उपनिरीखक', 'पंचायत लिखानामा को 'पंचायत लिखामा नकी, दो स्थानों पर 'हस्त लिखे दरख्वास्त लिखाख' लिखा गया है' को 'हस्तलेख लिखा' के रूप में लिखा गया है। पैरा 28 में 'दरख्वास्त लिखा' को 'दरखास्त लिखा दरख्वास्त लिखा' के रूप में लिखा गया है। इसी तरह की लेखन गलतियाँ फैसले के पैरा 33 और 34 में की गई हैं। विचारण न्यायाधीश द्वारा लिपिकीय संबंधी कई अन्य गलतियां की गई हैं जो यह दर्शाती हैं कि या तो वह मूल हिन्दी, अंग्रेजी और न्यायिक पूर्वोदाहरण लिखना नहीं जानते हैं या न्यायिक कार्य के संबंध में उनका रवैया बहुत ही लापरवाह है।

अप्रमाणित

इसलिए विचारण न्यायाधीशों को एक निर्देश भेजा जाना चाहिए कि वे भविष्य में निर्णय लिखते समय और उद्धरणों का उल्लेख करते समय सतर्क रहें।

24. विचारण न्यायालय ने ऐलिबी की दलील पर भी चर्चा की है कि केवल ऐलिबी की दलील का दावा करने से इसे साबित नहीं कहा जा सकता है। हालांकि, इस न्यायालय के अनुसार, जब रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों से यह उचित संदेह से परे स्थापित हो जाएगा कि आरोपी ने अपराध किया है और वह अपराध के कथित समय मौके पर मौजूद था, तभी अभियुक्त-अपीलकर्ता से उसकी देयता के बारे में स्पष्टीकरण मांगा जा सकता है। जब किसी भी गवाह ने यह नहीं कहा कि अभियुक्त-अपीलकर्ता घटनास्थल पर मौजूद था, जैसा कि अभियोजन पक्ष ने आरोप लगाया है, तो बहाना साबित करने का बोझ आरोपी पर क्यों होगा। जब तथ्य के सभी चश्मदीद गवाहों के साक्ष्य से, यह स्थापित किया गया है कि अपीलकर्ता हमेशा की तरह सुबह 8:00 बजे अपना घर छोड़ दिया था, तो प्राथमिकी में केवल अप्रमाणित दावा यह निष्कर्ष निकालने के लिए पर्याप्त नहीं है कि अभियोजन पक्ष का संस्करण सत्य, सही और अंतिम है। प्राथमिकी केवल पुलिस मशीनरी को तेज करने का एक साधन है, यह ठोस सबूत नहीं है जिसका उपयोग केवल भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 के तहत लेखक का खंडन करने के लिए किया जा सकता है। सूचनाकर्ता और अन्य गवाहों द्वारा यह भी आरोप लगाया गया है कि उनके हस्ताक्षर सादे कागजात पर प्राप्त किए गए थे, जिन्हें बाद में विवेचनाधिकारी द्वारा सुविधा के अनुसार उपयोग किया गया था।

25. उपरोक्त चर्चा के आधार पर, इस न्यायालय का विचार है कि यदि यह स्वीकार किया जाता है तो यह प्रत्यक्ष साक्ष्य का मामला है, क्योंकि गवाहों ने अभियोजन पक्ष के संस्करण का समर्थन नहीं किया है और अभियुक्त-अपीलकर्ता की ओर से क्रॉस-वर्जन है कि कुछ बदमाशों ने परिवार के सदस्यों की अनुपस्थिति में अपराध किया था। यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे मामले को साबित करने में सफल रहा है। मौखिक गवाहियों को बाहर करने के बाद, जो अभियोजन पक्ष के समर्थन में नहीं हैं, यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य का मामला था, उस मामले में अनिवार्य तत्व जैसे कि मकसद, अंतिम दृश्य, अतिरिक्त-न्यायिक स्वीकारोक्ति और बरामदगी अभियुक्त-अपीलकर्ता के खिलाफ उचित संदेह से परे साबित नहीं हुई है। चूंकि इस बात का कोई सबूत नहीं है कि कथित घटना के समय आरोपी घर पर था इसलिए, साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के तहत कोई बोझ आरोपी-अपीलकर्ता पर नहीं होगा।

26. इस प्रकार, हर तरह से, इस न्यायालय का विचार है कि अभियोजन अभियुक्त-अपीलकर्ता के खिलाफ उचित संदेह से परे अपराध साबित करने में बुरी तरह विफल रहा है। विचारण न्यायालय भी सबूतों और कानून की मूल्यांकन करने में विफल रहा है और कानून को गलत तरीके से लागू किया है और गलत निष्कर्ष पर आया है और बिना किसी आधार के आरोपी-अपीलकर्ता को दोषी ठहराया है और सजा सुनाई है।

अनुवादित

27. तदनुसार, यह अपील सफल होती है और दिनांक 7.9.2017 के दोषसिद्धि और सजा के आक्षेपित निर्णय और आदेश को अपास्त किया जाता है।

आदेश

28. अपील की अनुमति दी जाती है और दोषसिद्धि और सजा के दिनांक 7.9.2017 के आदेश और निर्णय को रद्द किया जाता है। आरोपी अपीलकर्ता, रामचंद्र को उसके खिलाफ लगाए गए धारा 302 भ०द०वि० के आरोप से बरी किया जाता है। अपीलकर्ता को, यदि किसी अन्य अपराध में वांछित नहीं है, तो तत्काल रिहा कर दिया जाए।

29. हम इस न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल से अनुरोध करते हैं कि वे इस निर्णय को माननीय मुख्य न्यायाधीश के समक्ष रखें कि वे पैरा 23 में हमारी चिंता संबंधित न्यायाधीश को प्रसारित करें ताकि विचारण न्यायाधीशों को मेडिकल रिपोर्ट और आधिकारिक घोषणाओं का हवाला देते समय वे भविष्य में अधिक सावधान रहें।

30. इस फैसले की प्रति के साथ मामले के रिकॉर्ड को प्रेषण के लिए तुरंत विचारण न्यायालय को वापस भेजा जाए।

(2023) 6 ILRA 155

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 01.03.2023 और 01.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर

आदेश संख्या से प्रथम अपील 279/1996

राधेश्याम गुप्ता एवं अन्य.. .अपीलकर्ता

बनाम

कमर उद्दीन एवं अन्य ...प्रतिवादी

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता: श्री माधव जैन

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

ए. सिविल कानून - मोटर वाहन अधिनियम, 1988-धारा 173-मुआवजे की मात्रा-मृतक स्वरोजगार की श्रेणी में आता है और दुर्घटना के समय उसकी आयु 21-25 वर्ष के बीच है-मृतक की आय 1000/- रुपये मानी जाती है, जिसमें भविष्य में होने वाली आय की हानि के लिए आय का 40% जोड़ा जाता है-इसलिए, कुल मुआवजा 66000/- रुपये से 6% की दर से 2,56,800/- रुपये दिया जाता है (पैरा 1 से 16)

बी. हंसागुड़ी लधानी मामले में निर्धारित अनुपात के अनुसार, मुआवजे की मूल राशि पर अर्जित ब्याज की कुल राशि को वित्तीय वर्ष दर वित्तीय वर्ष के आधार पर विभाजित किया जाना है और यदि किसी वित्तीय वर्ष के लिए दावेदार को देय ब्याज 25000/- रुपये से अधिक है, तो कुल मुआवजा 2,56,800/- रुपये होगा। 50,000/- से अधिक की राशि पर, बीमा कंपनी/स्वामी आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 194ए (3)(ix) के तहत प्रावधानित 'स्रोत पर कर कटौती' के शीर्षक के अंतर्गत उचित राशि काटने के हकदार हैं और यदि किसी वित्तीय वर्ष में ब्याज की राशि 50,000/- रुपये से अधिक नहीं है, तो इस न्यायाधिकरण की रजिस्ट्री को संबंधित आयकर प्राधिकरण से प्रमाण पत्र प्रस्तुत किए बिना दावेदार को राशि वापस लेने की अनुमति देने का निर्देश दिया जाता है। (पैरा 14)

अनुवादित

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. एनआईसीएल बनाम प्रणय सेठी (2014) 4 टीएसी 637 एससी
2. सरला वर्मा एवं अन्य बनाम डीटीसी (2009) 2 टीएसी 667(एससी)]
3. कुर्वन अंसारी @ कुर्वन अली एवं अन्य बनाम श्याम किशोर मुर्मू एवं अन्य (2021) 4 टीएसी एससी
4. ए.वी. पद्मा बनाम वेणुगोपाल (2012) 1 जीएलएच एससी 442
5. श्रीमती हंसागुड़ी पी. लधानी बनाम द ओरिएंटल इं.स. कंपनी लिमिटेड 2007(2) जीएलएच 291
6. बजाज आलियांज जनरल इं. कंपनी प्रा. लिमिटेड बनाम यू.ओ.आई. और अन्य.

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर द्वारा दिया गया)

1. इस अपील के माध्यम से अपीलकर्ता ने 1992 के एम. ए. सी.पी संख्या 38 (राधे श्याम और अन्य बनाम कमर उद्दीन और अन्य) में मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण/प्रथम अपर जिला न्यायाधीश, फिरोजाबाद (इसके बाद 'न्यायाधिकरण' के रूप में संदर्भित) द्वारा दिनांक 30.11.1995 को पारित फैसले और आदेश को चुनौती दी है, जिसमें दावेदारों / अपीलकर्ताओं को दावा याचिका भरने की तारीख से 12% प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ मुआवजे के रूप में 4,34,000 रुपये अधिनिर्णीत किए गए।

2. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री माधव जैन को सुना। यह अपील वर्ष 1994 की है, नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड/प्रत्यर्थी ने इस मामले में उपस्थित न होने का विकल्प चुना है। इस न्यायालय के पास मामले की एक पक्षीय सुनवाई के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं है।

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि दावेदार - अपीलकर्ताओं ने 13.9.1991 को सड़क दुर्घटना में राकेश गुप्ता की मौत के लिए मोटर वाहन अधिनियम, 1988 के तहत मुआवजे का दावा करने के लिए न्यायाधिकरण के समक्ष इस कथन के साथ मोटर दुर्घटना दावा याचिका दायर की कि मृतक राकेश गुप्ता अपने स्कूटर से रेलवे स्टेशन की ओर जा रहा था, तभी बस क्रमांक नं. 81/1027 विपरीत दिशा से आ रही थी, जिसे उसके चालक द्वारा बहुत तेजी एवं लापरवाही से चलाया जा रहा था। इस प्रकार चलायी जा रही उक्त बस ने मृतक के स्कूटर को टक्कर मार दी। इस दुर्घटना में मृतक को काफी गंभीर चोटें आईं और फिरोजाबाद के एस.एन. हॉस्पिटल में इलाज के दौरान उसकी मौत हो गई।

4. मुख्य रूप से अधिनिर्णीत मुआवज़े से व्यथित होकर अपीलकर्ताओं ने यह अपील दायर की है।

5. दुर्घटना पर विवाद नहीं है। लापरवाही का मुद्दा अंतिम रूप ले चुका है क्योंकि न तो बीमा कंपनी और न ही वाहन के मालिक ने मौखिक रूप से भी इस पर विवाद किया है। यह भी एक निश्चित तथ्य है कि उक्त वाहन के चालक के पास दुर्घटना वाले दिन वैध एवं प्रभावी ड्राइविंग लाइसेंस था। वाहन का बीमा

अनुवादित

होना और पॉलिसी शर्तों का उल्लंघन न होना एक निष्कर्ष है, जो अंतिम रूप ले चुका है। निर्णय लिये जाने वाला एकमात्र मुद्दा न्यायाधिकरण द्वारा अधिनिर्णीत मुआवजे की मात्रा है।

6. अपीलकर्ताओं-दावेदारों के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि विद्वान न्यायाधिकरण ने भविष्य में होने वाली आय की हानि के लिए कोई राशि नहीं जोड़ी है, जो तथ्यों के अनुसार गलत है और गैर-आर्थिक क्षति के मद में कोई राशि नहीं दी है।

7. विद्वान न्यायाधिकरण के अनुसार मृतक की आय 1,000/- रूपये प्रति माह मानी गई है। एक ऐसे व्यक्ति की, जो कुंवारा था और एक छोटे से गाँव में व्यवसाय कर रहा था, दुर्घटना के वर्ष अर्थात 1991 में 1,000/- रुपये की आय गलत नहीं मानी जा सकती है, इसलिए, यह दलील कि आय 4,000/- रुपये मानी जानी चाहिए, स्वीकार नहीं की जा सकती है। मृतक स्व- रोजगार की श्रेणी में आएगा और दुर्घटना के समय उसकी उम्र 21-25 वर्ष के बीच थी, इसलिए, आय का 40% भविष्य में होने वाली आय की हानि के लिए जोड़ा जाएगा और 1/2 व्यक्तिगत खर्चों के लिए काट लिया जाएगा जैसा कि नेशनल इंश्योरेंस कंपनी बनाम प्रणय सेठी [2014 (4) टीएसी 637 (एससी)] में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया था। मृतक की आयु को ध्यान में रखते हुए, श्रीमती सरला वर्मा बनाम दिल्ली परिवहन निगम [2009 (2) टीएसी 677 (एससी)] के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के आलोक में 18 का गुणक स्वीकार्य होगा ।]

8. जहां तक गैर-आर्थिक क्षति का सवाल है, न्यायाधिकरण ने गैर-आर्थिक क्षति के लिए कोई राशि अधिनिर्णीत नहीं की है। प्रणय सेठी (ऊपर) मामले के निर्णय के आलोक में, माता-पिता / दावेदार कुर्वन अंसारी उर्फ कुर्वन अली और अन्य बनाम श्याम किशोर मुर्मू और अन्य [2021 (4) टीएसी (एससी)] के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के आलोक में संघ के नुकसान के लिए 30,000/- रुपये पाने के हकदार होंगे।

9. इसलिए, उपरोक्त चर्चाओं के मद्देनजर अपीलकर्ताओं-दावेदारों को देय मुआवजे की कुल राशि की गणना यहां नीचे की जा रही है:

(i) वार्षिक आय: रु. 12,000/- प्रति वर्ष (रु. 1,000 X 12)

(ii) भविष्य की संभावनाओं के लिए प्रतिशत 40% रु. 4,800/-

(iii) कुल आय : रु. 12,000/- + रु.4,800/- = रु. 16,800/-

(iv) कटौती के बाद आय 1/2 : रु. 16,800/- - रु.8,400/- = रु.8,400/-

(v) गुणक लागू: 18

(vi) निर्भरता का नुकसान: रु. 8,400 /- X 18 = रु. 1,51,200/-

(vii) गैर आर्थिक मद के अंतर्गत राशि: रु.30,000/-

(viii) कुल मुआवजा: रु. 1,51,200/- + रु.30,000/- = रु. 1,81,200/-

10. जहां तक ब्याज दर का सवाल है, 12% का ब्याज बरकरार रखा गया है। हालाँकि, बढ़ी हुई राशि पर दावा याचिका दायर करने की तारीख से लेकर अधिनिर्णय तक 9% और

अधिवक्ता

उसके बाद राशि जमा होने तक 6% ब्याज होगा।

11. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। न्यायाधिकरण द्वारा पारित निर्णय और डिक्री उपरोक्त सीमा तक संशोधित माने जाएंगे। प्रत्यर्थी-बीमा कंपनी उपरोक्त निर्देशानुसार आज से 12 सप्ताह की अवधि के ब्याज सहित राशि जमा करेगी। पहले से जमा की गई राशि की कटौती जमा की जाने वाली राशि से की जाएगी।

12. न्यायाधिकरण को अभिलेख और कार्यवाही तुरंत वापस भेजी जाए। दावेदारों को राशि का भुगतान किया जाएगा और कोई भी राशि सावधि जमा में नहीं रखी जाएगी।

13. न्यायाधिकरण की रजिस्ट्री में राशि जमा करने पर, रजिस्ट्री को पहले अदालती फीस की राशि की कमी को, यदि कोई हो, में कटौती करने का निर्देश दिया जाता है। 2012 (1) जीएलएच (एससी), 442, में प्रकाशित किए गए एवी पद्मा बनाम वेणुगोपाल, मामले में माननीय शीर्ष न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपात पर विचार करते हुए, निवेश का आदेश पारित नहीं किया गया है क्योंकि, आवेदक / दावेदार न तो अशिक्षित हैं और न ही देहाती ग्रामीण हैं।

14. 2007 (2) जीएलएच 291 में प्रकाशित किए गए श्रीमती हंसागुड़ी पी. लधानी बनाम द ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, के मामले में माननीय गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपात को ध्यान में रखते हुए मुआवजे की मूल राशि पर अर्जित ब्याज की कुल राशि को वित्तीय वर्ष से वित्तीय वर्ष के आधार पर विभाजित किया जाना है और ब्याज किसी भी वित्तीय वर्ष के लिए दावेदार को देय रु.50,000/- से अधिक होने पर, बीमा कंपनी / मालिक आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 194ए (3) (ix) के तहत 'स्रोत पर कर कटौती' के अनुसार उचित राशि काटने का हकदार है / हैं। और यदि किसी वित्तीय वर्ष में ब्याज की राशि 50,000/- रुपये से अधिक नहीं है, तो इस न्यायाधिकरण की रजिस्ट्री को निर्देश दिया जाता है कि वह दावेदार को संबंधित आयकर प्राधिकरण से निर्गत प्रमाण पत्र प्रस्तुत किए बिना राशि निकालने की अनुमति दे। इस उच्च न्यायालय द्वारा आदेश संख्या 23 सन् 2001 (श्रीमती सुदेस्ना और अन्य बनाम हरि सिंह और अन्य) से उत्पन्न प्रथम अपील में पुनर्विलोकन आवेदन संख्या एक सन् 2020 में राशि संवितरण करते समय उपरोक्त दृष्टिकोण को दोहराया गया है। उक्त निर्णय को आर / विशेष सिविल आवेदन संख्या 4800 सन् 2021 में गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा (ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम मुख्य आयकर आयुक्त (टीडीएस) मामले में 5.4.2022 को लिए गए निर्णय में भी दोहराया गया

15. यहां किए गए संशोधन के अनुसार न्यायाधिकरण द्वारा उपरोक्त याचिका के अनुसार नया पुरस्कार दिया जाए। राज्य में न्यायाधिकरण इस अदालत के निर्देशों का पालन करेंगे, जैसा कि ऊपर बताया गया है, जहां तक संवितरण का सवाल है, इस पर वादी की स्थिति और मामले के लंबन और ए. वी.

अनुवादित

पद्मा (ऊपर) के फैसले के अनुसार गौर करना चाहिए। इसे प्रत्येक मामले के तथ्यों को देखते हुए लागू किया जाना चाहिए।

16. न्यायाधिकरण बजाज आलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ और अन्य मामले में शीर्ष अदालत द्वारा दिनांक 27.1.2022 के आदेश के तहत जारी मार्गदर्शक सिद्धांतों का पालन करेगा, जिसमें मुआवजा रखने का उद्देश्य दावेदारों के हितों की रक्षा करना है। लंबी अवधि बीत जाने के कारण राशि बिना एफ. डी. आर. के राष्ट्रीयकृत बैंक में दावेदारों के बचत खाते में जमा की जाएगी।

आदेश दिनांक :- 01.3.2023

(न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,)

अतिरिक्त आदेश:-

बीमा कंपनी के अधिकारी अन्य मामलों में सुलह के लिए मौजूद हैं। निर्णय की घोषणा के बाद, राशि स्वीकार कर ली गई है लेकिन ब्याज की दर प्रति वर्ष 6% होगी, जिस पर दोनों पक्ष सहमत है।

1. अपीलकर्ताओं के लिए विद्वान वकील को सुना।

2. प्रार्थना के अनुसार राहत दी जाती है क्योंकि पक्षकारों ने एकपक्षीय निर्णय पारित किए जाने के बाद अपने विवाद को खत्म का फैसला कर लिया है।

3. अपीलकर्ताओं-आवेदकों के वकील द्वारा प्रस्तुत दलीलों के आलोक में, दिनांक 1.3.2023 के आदेश में निम्नलिखित सुधार किया जा रहा है:-

4. "आदेश के पहले पैराग्राफ की छठी पंक्ति में, 4,34,000/- रुपये के स्थान पर इसे 66,000/- रुपये के रूप में पढ़ा जाएगा।

5. मृतक की आय 1500/- रुपये प्रति माह अर्थात 18,000/- रुपये प्रति वर्ष, 40% को भविष्य में आय के नुकसान के लिए जोड़ना होगा, मृतक के व्यक्तिगत खर्चों के लिए 1/2 की कटौती करनी होगी, 18 का गुणक दिया जाएगा और गैर-आर्थिक क्षति के लिए 30,000/- रुपये दिए जाएंगे। इसलिए उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर मुआवजे की कुल राशि की पुनर्गणना नीचे की जा रही है:-

(i) वार्षिक आय: 18,000/- रुपये प्रति वर्ष (1,500 x 12 रुपये)

(ii) भविष्य की संभावनाओं के लिए प्रतिशत 40% : 7,200 रुपये / -

(iii) कुल आय : 18,000 रुपये + 7,200 रुपये = 25,200 रुपये /-

(iv) ½ कटौती के बाद आय = 25,200 रुपये /- ? रु. 12,600/- = रु. 12,600/-

(v) प्रयोज्य गुणक: 18

(vi) निर्भरता की हानि : रु. 12,600/- x 18 = रु. 2,26,800/-

(vii) गैर-आर्थिक मद के तहत राशि: रु. 30,000/-

(viii) कुल मुआवजा: रु. 2,26,800/- + रु. 30,000/- = रु. 2,56,800/-

6. उपर्युक्त के मद्देनजर, सुधार आवेदन की अनुमति है।

अनुवादित

(2023) 6 ILRA 159

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 09.06.2023

माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद

बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका संख्या 67/2023

मीरा पांडे ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य. ..प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: मनुश्रेष्ठ मिश्रा, सुशील कुमार सिंह

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: जी.ए., मनोज कुमार मिश्रा

भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद-226-बंदी प्रत्यक्षीकरण- बच्चों की हिरासत के मामले पर निर्णय लेते समय, प्राथमिक और सर्वोपरि विचार बच्चों का कल्याण है, इसलिए मांगें और तकनीकी आपत्तियाँ आड़े नहीं आ सकतीं। हालांकि, बच्चों के कल्याण का फैसला करते समय केवल एक पति या पत्नी के दृष्टिकोण को ध्यान में नहीं रखा जाना चाहिए। न्यायालयों को बच्चों के सर्वोत्तम हित के आधार पर ही हिरासत के मुद्दे पर फैसला करना चाहिए। एक बच्चे, विशेष रूप से एक छोटे बच्चे को माता-पिता दोनों के प्यार, स्नेह, साथ और सुरक्षा की आवश्यकता होती है। यह न केवल बच्चे की आवश्यकता है बल्कि उसका बुनियादी मानवाधिकार भी है। सिर्फ इसलिए कि माता-पिता एक-दूसरे से दूर हैं, इसका मतलब यह नहीं है कि बच्चे को दो माता-पिता में से किसी एक की देखभाल, स्नेह, प्यार या सुरक्षा से वंचित किया जाना चाहिए- न्याय के हित में, क्योंकि कल्याण प्रेम स्नेह कंपनी की सुरक्षा पिता की हिरासत में है- माता को मिलने-जुलने का अधिकार दिया गया है- याचिकाकर्ता हिंदू अल्पसंख्यक और रक्षक अधिनियम 1956 या संरक्षक और वार्ड अधिनियम, 1890 के तहत बच्चों की हिरासत का दावा करने के लिए उचित मंच से संपर्क करने के लिए स्वतंत्र है। (पैरा 19, 27 और 28) (ई-15)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. नित्या आनंद राघवन बनाम स्टेट (एनसीटी ऑफ दिल्ली) और अन्य 2017 8 एससीसी 454
2. धनवंती जोशी बनाम माधव उनदे (1998) 1 एससीसी 112
3. श्रद्धा कन्नौजिया (नाबालिग) और अन्य, बनाम स्टेट ऑफ यूपी और अन्य बंदी प्रत्यक्षीकरण संख्या 716/2020
4. तेजस्विनी गौड़ एवं अन्य बनाम शेखर जगदीश प्रसाद तिवारी एवं अन्य आपराधिक अपील संख्या 838/2019 आदेश दिनांक 06.05.2019
5. मास्टर मनन @ आरुष बनाम स्टेट ऑफ यू.पी. एवं अन्य, 18.02.2021 को निर्णय लिया गया
6. वाहिन सक्सेना (माइनर कॉर्पस) एवं अन्य बनाम स्टेट ऑफ यू.पी. एवं अन्य, 27-08-2021 को निर्णय लिया गया

(माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद द्वारा दिया गया)

वादः- बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका संख्या - 67 वर्ष 2023

याचीः- मिराह पांडेय द्वारा माता इरा शर्मा एवं एक अन्य

अप्रमाणित

प्रत्युत्तरदाताः- उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा प्रमुख सचिव, गृह एवं 3 अन्य

याची के अधिवक्ताः- मनुश्रेष्ठ मिश्रा, सुशील कुमार सिंह

प्रत्युत्तरदाता के अधिवक्ताः- शासकीय अधिवक्ता मनोज कुमार मिश्रा

<u>माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद</u>

1. याची-श्रीमती इरा शर्मा के विद्वान् अधिवक्ता सुश्री सक्षम अग्रवाल एवं सुशील कुमार सिंह के साथ श्री शुभम अग्रवाल और राज्य-प्रत्युत्तरदाता संख्या 1 से 3 के विद्वान् अपर शासकीय अधिवक्ता-I श्रीमती किरन सिंह एवं प्रेम प्रकाश और प्रत्युत्तरदाता संख्या 4 के विद्वान् अधिवक्ता श्री मनोज कुमार मिश्रा को सुना और पक्षकारों के बीच अभिवचनों का आदान-प्रदान पूर्व में ही हो गया है।

2. याची- इरा शर्मा ने निम्नलिखित अनुतोषों के साथ बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका दाखिल की हैः

> *i) बंदियों को व्यक्तिगत रूप से शीघ्रतम माननीय न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने और उक्त अप्राप्तवय शिशुओं, नामतः रेयान पांडेय और मिराह पांडेय को उनकी माता-याची की अभिरक्षा में सुपुर्द करने हेतु प्रत्युत्तरदातागण को आदेश देते हुए बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति रिट, आदेश या निदेश जारी करने हेतु।*
>
> *ii) याची/माता और अप्राप्तवय शिशुओं के बीच, प्रत्युत्तरदाता संख्या 1 एवं 2 के माध्यम से तत्काल और वर्तमान रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान वार्ता और वीडियो कॉल के माध्यम से बातचीत और वार्ता हेतु आवश्यक उपबंध करने हेतु प्रत्युत्तरदाता संख्या 4 हेतु निदेश जारी करने हेतु।*
>
> *iii) कोई अन्य आदेश या निदेश जारी करने हेतु जो इस माननीय न्यायालय को याची के पक्ष में वाद के तथ्यों और परिस्थितियों और न्यायहित में उचित प्रतीत हो।*
>
> *iv) रिट याचिका सव्यय अनुज्ञात की जाए।"*

3. इस न्यायालय ने *20.04.2023* को निम्नलिखित आदेश पारित किया थाः

> *"अधिवक्ता श्री मनोज कुमार मिश्रा ने विरोधी पक्षकार संख्या 4 की ओर से न्यायालय में आज अपना वकालतनामा दाखिल किया है। वह अभिलेख पर लिया जाता है।*
>
> *आदेश दिनांक 02.03.2023 के अनुपालन में विरोधी पक्षकार संख्या 4- धीरेंद्र पांडेय उर्फ धीरेंद्र विक्रम पांडेय बंदियों, नामतः, मिराह पांडेय- पुत्री और रेयान पांडेय- पुत्र के साथ इस न्यायालय*

अनुवादित

में उपनिरीक्षक श्री रजनीश व्दिवेदी और महिला कांस्टेबल सुश्री अर्चना यादव, पुलिस थाना कोतवाली नगर, जिला गोंडा के साथ व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुआ है।

श्रीमती इरा शर्मा, याची भी इस न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित है। उसके अधिवक्ता श्री शुभम अग्रवाल द्वारा उसकी पहचान की गई है।

याची- श्रीमती इरा शर्मा के विद्वान् अधिवक्ता सुश्री सक्षम अग्रवाल के साथ श्री शुभम अग्रवाल और राज्य की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री मनोज सिंह और प्रेम प्रकाश और विरोधी पक्षकार संख्या 4 की ओर से विद्वान् अधिवक्ता श्री मनोज कुमार मिश्रा को सुना।

विरोधी पक्षकार संख्या 4 की ओर से विद्वान् अधिवक्ता ने प्रतिशपथपत्र, उसकी एक प्रति याची के विद्वान् अधिवक्ता को तामील करने के पश्चात्, आज इस न्यायालय में दाखिल किया है। उसे अभिलेख पर लिया जाता है।

याची के विद्वान् अधिवक्ता प्रार्थना करते हैं और प्रत्युत्तर शपथपत्र दाखिल करने हेतु चार दिन का समय अनुज्ञात किया जाता है

याची, श्रीमती इरा शर्मा निवेदन करती है कि वह भारत में 2 मई, 2023 तक ठहरी है। वह अग्रेतर प्रार्थना करती है कि उसे भारत में प्रवास के दौरान अपने बच्चों से मिलने हेतु शाम 6.00 बजे से 7.00 बजे के बीच कम से कम एक घंटा दिया जाए और वह अपने बच्चों से मोबाइल और वीडियो कॉल पर बात करना चाहती है।

श्री धीरेंद्र पांडेय उर्फ धीरेंद्र विक्रम पांडेय-विरोधी पक्षकार संख्या 4 को याची-श्रीमती इरा शर्मा द्वारा की गई प्रार्थना पर कोई आपत्ति नहीं है।

जैसी प्रार्थना की गई थी, श्रीमती इरा शर्मा, याची को 2.5.2023 तक भारत में उसके प्रवास के दौरान विरोधी पक्षकार संख्या 4 के वर्तमान निवास, अर्थात् ओमेक्स आर-2, बिल्डिंग 15, फ्लैट 1104, लखनऊ पर शाम 6.00 बजे से 7.00 बजे के बीच अपने बच्चों से मिलने हेतु अनुमत किया जाता है और उसे शाम को दस मिनट तक, किन्तु रात 9.00 बजे के बाद नहीं,

अनुवादित

मोबाइल और वीडियो कॉल पर अपने बच्चों से बात करने हेतु भी अनुमत किया जाता है।

यह स्पष्ट किया जाता है कि विरोधी पक्षकार संख्या 4 के निवास पर श्रीमती इरा शर्मा के मिलने और मोबाइल कॉल के दौरान श्री धीरेंद्र पांडेय उर्फ धीरेंद्र विक्रम पांडेय- विरोधी पक्षकार संख्या 4 कोई अड़चन पैदा नहीं करेगा।

यह वाद अग्रेतर सुनवाई हेतु इस न्यायालय के समक्ष 27.4.2023 को प्रस्तुत किया जाए।

अगली नियत तारीख पर, श्री धीरेंद्र पांडेय उर्फ धीरेंद्र विक्रम पांडेय- विरोधी पक्षकार संख्या 4 और श्रीमती इरा शर्मा, याची पुनः व्यक्तिगत रूप से इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित होंगे किन्तु बंदियों, नामतः, मिराह पांडेय- पुत्री और रेयान पांडेय- पुत्र को इस न्यायालय में उपस्थित होने की आवश्यकता नहीं है जब तक बुलाया नहीं जाता है और उस अवधि के दौरान उनकी अभिरक्षा उनके पिता श्री धीरेंद्र पांडेय उर्फ धीरेंद्र विक्रम पांडेय- विरोधी पक्षकार संख्या 4 के पास रहेगी।"

4. *27.4.2023* को इस न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश पारित किया थाः

"आदेश दिनांक 20.4.2023 के अनुपालन में विरोधी पक्षकार संख्या 4-श्री धीरेंद्र पांडेय उर्फ धीरेंद्र विक्रम पांडेय और याची श्रीमती इरा शर्मा इस न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हैं और उनके संबंधित अधिवक्ताओं द्वारा उनकी पहचान की गई है।

पक्षकारों के बीच अभिवचनों का आदान-प्रदान किया गया है। वाद आज अंतिम रूप से सुना जा रहा है।

याची-श्रीमती इरा शर्मा की ओर से विद्वान् अधिवक्ता सुश्री सक्षम अग्रवाल और सुशील कुमार सिंह के साथ श्री शुभम अग्रवाल और विरोधी पक्षकार संख्या 1 से 3 की विद्वान् अपर सरकारी अधिवक्ता-I श्रीमती किरन सिंह और विरोधी पक्षकार संख्या 4-श्री धीरेंद्र पांडेय उर्फ धीरेंद्र विक्रम पांडेय के विद्वान् अधिवक्ता श्री मनोज कुमार मिश्रा को सुना।

निर्णय आरक्षित।

निर्णय की घोषणा होने तक, इस न्यायालय द्वारा की गई अंतरिम व्यवस्था, देखिए आदेश दिनांक 20.4.2023, जारी रहेगी। अग्रेतर उपबंध किया जाता है कि याची-इरा शर्मा, यदि वह विदेश में है, उसे अपने बच्चों मिराह पांडेय-पुत्री और रेयान पांडेय- पुत्र के साथ मोबाइल फोन, व्हाट्स एप कॉल या वीडियो कॉल पर भारतीय मानक समय के अनुसार रात 8.00 बजे से 8.30 बजे के दौरान बातचीत करने हेतु अनुज्ञात किया जाता है।"

अनुवादित

5. याची के विद्वान् अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि याची- इरा शर्मा का प्रत्युत्तरदाता संख्या *4*-श्री धीरेंद्र पांडेय उर्फ धीरेंद्र विक्रम पांडेय के साथ धर्मशाला, हिमांचल प्रदेश में *15.02.2008* को हिंदू रीति-रिवाज और समारोहों के अनुसार विवाह हुआ था। तत्पश्चात्, दंपत्ति अपने अच्छे भविष्य हेतु संयुक्त राज्य अमेरिका में बस गए थे। संयुक्त राज्य अमेरिका में बसने के पश्चात्, उनके विवाह-बंधन के परिणामस्वरूप दो संतानें, एक बालक शिशु नामतः मास्टर रेयान पांडेय *02.10.2013* को पैदा हुआ था और एक बालिका शिशु नामतः मिराह पांडेय *03.04.2018* को पैदा हुई थी और उनके पास अमेरिका का पासपोर्ट था और अग्रेतर निवेदित किया गया था कि द्वितीय शिशु पैदा होने के पश्चात् पति और पत्नी के बीच संबंध अधिक खराब हो गए थे और प्रतिदिन झगड़ा होने लगा था।

तत्पश्चात्, याची और प्रत्युत्तरदाता संख्या *4* ने "वैवाहिक समझौता अनुबंध" के शीर्षक वाले दस्तावेज (एतद्पश्चात् "वै. स. अ." के रूप में निर्दिष्ट) के माध्यम से *2.6.2022* को एक सौहार्दपूर्ण समझौता किया था। समझौता करने के पश्चात्, याची और प्रत्युत्तरदाता संख्या *4* कुटुंब न्यायालय उपागत हुए थे और संयुक्त राज्य अमेरिका में सक्षम क्षेत्राधिकार के न्यायालय द्वारा, अर्थात् सुपीरियर कोर्ट ऑफ न्यू जर्सी चांसरी डिवीजनः फैमिली पार्ट सोमरसेट कंट्री, पारस्परिक सम्मति द्वारा विवाह-विच्छेद करवा लिया था, देखिए डॉकेट संख्या एफ एम-*18-267-22*। वैवाहिक समझौता अनुबंध और विवाह-विच्छेद की डिक्री की, जैसी संयुक्त राज्य अमेरिका के न्यायालयों द्वारा प्रदत्त की गई थी, प्रतियाँ इस बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका के संलग्नक संख्या *3* एवं *4* के रूप में दाखिल की गई हैं।

6. याची के विद्वान् अधिवक्ता ने अग्रेतर निवेदित किया है कि प्रत्युत्तरदाता संख्या *4* अपने भाई के साथ, संयुक्त राज्य अमेरिका में आई टी कंपनी चला रहा है और प्रतिवर्ष लाखों यू. एस. डॉलर्स कमा रहा है किन्तु याची ने विवाह-विच्छेद के समय निर्वाह व्यय या भरण-पोषण के रूप में प्रत्युत्तरदाता संख्या *4* से एक पैसा भी नहीं लिया था।

7. याची के विद्वान् अधिवक्ता ने इस न्यायालय का ध्यान वै. स. अ. के अनुच्छेद III की ओर आकृष्ट किया है और निवेदन करता है कि शिशुओं की शारीरिक अभिरक्षा हेतु दिन नियत थे किन्तु प्रत्युत्तरदाता संख्या *4* ने याची को अंधेरे में रखा था और किसी बहाने से बच्चों को संयुक्त राज्य अमेरिका से भारत में अपने पैतृक स्थान पर याची की सम्मति प्राप्त किए बिना बच्चों को स्थायी रूप से बसाने हेतु ले आया था जबकि बच्चे संयुक्त राज्य अमेरिका में पैदा हुए थे और बसे हुए थे और अपनी माता से जुड़े होने के कारण वे कभी प्रत्युत्तरदाता संख्या *4* के साथ भारत नहीं आना चाहते थे। वह अग्रेतर निवेदन करता है कि आरंभिक रूप से, प्रत्युत्तरदाता संख्या *4* बच्चों को याची से बात करने देता था और याची को बच्चों से वार्ता करने हेतु अनुज्ञात किया था, किन्तु बाद में कई सप्ताहों तक याची को वीडियो कॉल या फोन कॉल पर भी बात करने की अनुमति नहीं देता था।

8. याची के विद्वान् अधिवक्ता अग्रेतर निवेदन करते हैं कि कुछ समय के पश्चात् प्रत्युत्तरदाता संख्या *4* का व्यवहार बहुत असामान्य हो गया था और याची को संदेह होने लगा था और

अनुवादित

बच्चों के संबंध में बहुत असुरक्षा महसूस करने लगी थी।

9. याची के विद्वान् अधिवक्ता अग्रेतर निवेदन करते हैं कि याची के पुत्र और पुत्री, नामतः, रेयान पांडेय और मिराह पांडेय, जिनकी आयु वर्तमान में क्रमशः लगभग *9* वर्ष और *4* वर्ष है, संयुक्त राज्य अमेरिका के न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध प्रत्युत्तरदाता संख्या *4*-पिता के अवैध निरोध में हैं, जिसके लिए वह विधितः अधिकृत नहीं है क्योंकि वह संयुक्त राज्य अमेरिका के माननीय न्यायालय के आदेशों का उल्लंघन कर रहा है।

10. याची के विद्वान् अधिवक्ता अग्रेतर निवेदन करते हैं कि याची पुलिस थाना, सिविल लाइंस, गोंडा और पुलिस अधीक्षक, गोंडा, उत्तर प्रदेश गई थी और संपूर्ण घटना की उन्हें जानकारी दी थी, किन्तु उन्होंने याची के बच्चों का पता-ठिकाना जानने हेतु कोई अन्वेषण नहीं किया था। याची के विद्वान् अधिवक्ता अग्रेतर निवेदन करते हैं कि प्रत्युत्तरदाता संख्या *4* को अपने बच्चों से प्यार और स्नेह नहीं है और याची माता, नैसर्गिक संरक्षिका होने के कारण अपने बच्चों की अभिरक्षा पाने हेतु विधितः अधिकृत है और वह अच्छा धन कमा रही है और देखभाल कर सकती है।

11. याची के विद्वान् अधिवक्ता अग्रेतर, उक्त अप्राप्तवय शिशुओं की अभिरक्षा याची को देने की प्रार्थना करते हैं जो अप्राप्तवय शिशुओं की जैविक माता है, इसलिए, शिशु संयुक्त राज्य अमेरिका ले जाए जा सकते हैं जहाँ वे पैदा हुए थे और वर्तमान बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका इस माननीय न्यायालय द्वारा अनुज्ञात की जाए।

12. इसके विपरीत, प्रत्युत्तरदाता संख्या *4* के विद्वान् अधिवक्ता श्री मनोज कुमार मिश्रा ने प्रतिशपथपत्र दाखिल किया था, जो अभिलेख पर है और निवेदन करते हैं याची-श्रीमती इरा शर्मा एक बहुत गैर जिम्मेदार महिला है जिसमें किसी संबंध हेतु, न अपने पति और न अपने अप्राप्तवय शिशुओं हेतु कोई सम्मान या प्यार और चिंता है। उसे प्रत्युत्तरदाता संख्या *4* और अप्राप्तवय शिशुओं के साथ क्रूरता कारित करने हेतु जेल भेजा गया है। वह बहुत चिड़चिड़े स्वभाव वाली एक शराबी महिला है। वह शिशुओं को पीटा भी करती है। वह इतनी आत्मकेंद्रित भी है कि उसने अपने पुत्र को, जब वह मात्र पाँच वर्ष आयु का शिशु था अमेरिका में अकेले छोड़ दिया था और मात्र अपनी आजीविका हेतु भारत आ गई थी। उसने सबसे छोटी पुत्री को उसकी नानी के साथ रहने हेतु धर्मशाला, हिमांचल प्रदेश में छोड़ दिया था और वह स्वयं काम के बहाने बंगलौर चली गई थी। तथापि, मई, *2020* से जुलाई, *2020* तक इरा शर्मा-याची राष्ट्रव्यापी बंदी के दौरान धर्मशाला में ठहरी थी और एकबार फिर, अगस्त, *2020* में अपनी दो वर्ष आयु की पुत्री को धर्मशाला में छोड़कर, बंगलौर चली गई थी। वह अग्रेतर निवेदन करता है कि जब शिशु कोविड से संक्रमित हुए थे, उसका ध्यान शिशुओं की देखभाल के स्थान पर नई नौकरी खोजने पर लगा था। सर्वाधिक यह है कि, वह उस समय काम नहीं कर रही थी, अपितु उसने रेयान पांडेय-पुत्र को पूरे दिन हेतु शिशु-गृह (क्रेश) में रखना आरंभ कर दिया था, जबकि संख्या रा. में घोर कोविड चरम पर था, परिणामतः, रेयान पांडेय-पुत्र कई बार बीमार पड़ा था और एक बार चिकित्सालय में भर्ती भी करवाना पड़ा था। उसने शिशुओं के प्रति कोई प्यार और लगाव दर्शित नहीं किया था। वह अग्रेतर निवेदन

अनुवादित

करता है कि वै. स. अ. हस्ताक्षरित करते समय, याची- इरा शर्मा ने जानबूझकर, स्वेच्छा से और जानते हुए, एक शर्त जोड़ने पर बल दिया था जो उसे प्रत्युत्तरदाता संख्या *4* की अभिरक्षा में उसके शिशुओं को छोड़ने हेतु अनुज्ञात करती है, जिससे कि उसे अपने व्यवसाय के नाम पर किसी देश में जाने की स्वतंत्रता होगी। यह तथ्य, स्वतः दर्शित करता है कि याची- इरा शर्मा को उसके शिशुओं से कोई प्यार और लगाव नहीं है।

13. प्रत्युत्तरदाता संख्या *4* के विद्वान् अधिवक्ता श्री मनोज कुमार मिश्रा ने पत्नी का आचरण और विवाह-विच्छेद हेतु कारण और पति के प्रति कारित क्रूरता दर्शित करने हेतु वै. स. अ. के अनुच्छेद X के खंड *10.1* पर विश्वास व्यक्त किया है, जो एतद्निम्न दर्शित किया जा रहा हैः

"10. पति ने अत्यधिक क्रूरता, जारता, और समझौते के अयोग्य मतभेद के वाद हेतुकों के अधीन विवाह-विच्छेद हेतु अपना परिवाद दाखिल किया था। अंतिम विघटन पर, पति अत्यधिक क्रूरता का अपना आधार प्रत्याहृत करने हेतु सहमत होता है और मात्र जारता और समझौते के अयोग्य मतभेद के आधारों पर कार्यवाही करता है। पत्नी ने समझौते के अयोग्य मतभेद और अत्यधिक क्रूरता के वादहेतुकों के अधीन अपना प्रतिदावा दाखिल किया था। अंतिम विघटन पर, पत्नी अत्यधिक क्रूरता का अपना आधार प्रत्याहृत करने हेतु सहमत होती है और समझौते के अयोग्य मतभेद के आधारों पर कार्यवाही करती है।"

14. प्रत्युत्तरदाता संख्या *4* के विद्वान् अधिवक्ता ने विवाह-विच्छेद की डिक्री पर भी विश्ववास व्यक्त किया है और निवेदित किया है कि विवाह-विच्छेद की डिक्री में निष्कर्ष अभिलिखित किया गया है कि प्रत्युत्तरदाता संख्या *4*, याची- इरा शर्मा के विरुद्ध जारता के आरोप साबित करने में सफल रहा है। विवाह-विच्छेद की डिक्री एतद्निम्न उद्धृत की जा रही हैः

"यह मामला न्यायालय के समक्ष एक निर्विरोध सुनवाई हेतु आया है और वादी, धीरेंद्र पांडेय का, इहम एस. प्रतिदिन, इस्क, ऑफ ऑफिट कुर्मन, पी. ए. द्वारा और प्रतिवादी का, इरा शर्मा, का टारिन आर. जिम्मेरमन, इस्क. ऑफ द डि टोमासो लॉ ग्रुप, एल एल सी द्वारा प्रतिनिधित्व किया गया है, और पक्षकारों ने एक वैवाहिक समझौता अनुबंध दिनांक 2 जून, 2022 किया है, और प्रतीत होता है वादी और प्रतिवादी 15 फरवरी, 2008 को विवाह के बंधन में बंध गए थे और प्रत्येक ने समझौते के अयोग्य मतभेद का वादहेतुक साबित किया है, और उनके बीच सुलह की कोई युक्तियुक्त संभावना विद्यमान नहीं है ; इसके साथ वादी ने जारता का वादहेतुक साबित किया है और सफलतापूर्वक सह-प्रत्युत्तरदाता पर तामील की है ; और

अग्रेतर यह प्रतीत होता है कि उस समय जब वादहेतुक उत्पन्न हुआ था, वादी इस राज्य का वास्तविक नागरिक था और तभी से और इस वाद की अगली कार्यवाही आरंभ होने के एक वर्ष से अधिक समय से, निरंतर ऐसा वास्तविक नागरिक रहा है, और

अग्रेतर यह प्रतीत होता है कि क्षेत्राधिकार यहां रूल्स ऑफ कोर्ट के अनुसरण में अर्जित किया गया है ; और

अधिवक्ता

अग्रेतर यह प्रतीत होता है कि वादी और प्रतिवादी के बीच किया गया एक निश्चित वैवाहिक समझौता अनुबंध दिनांक 2 जून, 2022, पक्षकारों के अधिवक्ता द्वारा इस न्यायालय में प्रस्तुत किया गया था और यहां संलग्न है, उक्त अनुबंध के निबंधनों के संबंध में इस न्यायालय द्वारा कोई साक्ष्य नहीं लिया गया है ;

तदुपरांत, इस 7 जून, 2022 को सुपीरियर कोर्ट, चांसरी डिवीजन, ऑफ द स्टेट ऑफ न्यू जर्सी द्वारा ;

इस न्यायालय की और ऐसे मामलों में विधानमंडल द्वारा बनाए गए और उपबंधित अधिनियमों की शक्ति और प्राधिकार द्वारा आदेशित और न्यायनिर्णीत किया जाता है, कि वादी, धीरेंद्र पांडेय, और प्रतिवादी, इरा शर्मा, का एतद्वारा उपर्युक्त कारणों से एकदूसरे का विवाह-बंधन से विवाह-विच्छेद किया जाता है, और उक्त पक्षकार और उनमें से प्रत्येक को एतद्वारा उसके दायित्व से स्वतंत्र और उन्मुक्त किया जाता है और पक्षकारों के बीच विवाह समाप्त होता है और वह एतद्वारा विघटित होता है ; और

अग्रेतर यह आदेशित और न्यायनिर्णीत किया जाता है कि यहां पक्षकारों के बीच वैवाहिक समझौता अनुबंध, जिसकी एक प्रति इसके साथ संलग्न है किन्तु इसके साथ सम्मिलित नहीं है और इस विचार के साथ, इस निर्णय का भाग बनाए जाने और सम्मिलित की जाने हेतु एतद्वारा इस न्यायालय द्वारा अनुमत की जाती है, कि न्यायालय ने उस पर कोई साक्ष्य नहीं लिया था और उक्त अनुबंध के गुणावगुण पर पारित नहीं किया है सिवाय इसके कि न्यायालय ने अवधारित किया है कि दोनों पक्षकारों ने स्वैच्छिक रूप से अनुबंध निष्पादित किया है और कि प्रत्येक ने उसके निबंधन उचित और साम्यापूर्ण के रूप में स्वीकार किए हैं ; और

अग्रेतर यह आदेशित और न्यायनिर्णीत किया जाता है कि पक्षकारों ने जीवन स्तर और एक युक्तियुक्त तुलनात्मक जीवन-स्तर को बनाए रखने की संभावना के विवाद्यक पर पर्याप्त रूप से कथन किया है जैसा क्यूज बनाम क्यूज, 164 एन. जे. 11 (2000) द्वारा अपेक्षित है ; और

अग्रेतर यह आदेशित और न्यायनिर्णीत किया जाता है कि पक्षकारों को प्रत्येक और हर दायित्व का पालन करने हेतु निदेशित किया जाता है जिसके लिए उन्होंने उपरोल्लिखित लिखित वैवाहिक समझौता अनुबंध की सहमति दी है ; और

अग्रेतर यह आदेशित और न्यायनिर्णीत किया जाता है कि वादी के अधिवक्ता और प्रतिवादी के अधिवक्ता, उन्मुक्त होते हैं और उन्हें इस निर्णय की तारीख से 45 दिन के पश्चात् अभिलेख के अधिवक्ता के रूप में एतद्वारा उन्मुक्त किया जाता है ; और

अग्रेतर यह आदेशित और न्यायनिर्णीत किया जाता है कि अभिवचन किए गए और निर्णय में समाधान नहीं किए गए सभी विवाद्यक परित्यक्त माने जाते हैं।''

15. प्रत्युत्तरदाता संख्या *4* के विद्वान् अधिवक्ता श्री मनोज कुमार मिश्रा निवेदन करते हैं कि याची- इरा शर्मा ने स्वतः ई-मेल द्वारा दोनों बच्चों को भारत में किसी प्रतिष्ठित विद्यालय में भर्ती करवाने और स्वयं की मुलाकात हेतु भारत आते रहने की और जब कभी वह भारत आती है वह बच्चों से

अवलोकित

लखनऊ, प्रत्युत्तरदाता संख्या *4* के निवास स्थान पर मिलने हेतु सहमति दी है और इन परिस्थितियों में यह है कि प्रत्युत्तरदाता संख्या *4* ने दोनों बच्चों को सी०बी०एस०ई० बोर्ड, नई दिल्ली से संबद्ध जी. डी. गोइनका पब्लिक स्कूल, सेक्टर बी, सुशांत गोल्फ सिटी, शहीद पथ, लखनऊ में भर्ती करवा दिया था, जहाँ वे कक्षा IV और I में पढ़ रहे हैं। याची- इरा शर्मा द्वारा प्रत्युत्तरदाता संख्या *4*- धीरेंद्र पांडेय को भेजा गया ई-मेल एतद्निम्न उद्धृत हैः

"मैं उनसे फिर बात करूंगी। उन्होंने मुझसे कल सुबह फोन करने हेतु कहा है।

मेरे पासपोर्ट और आधार की संलग्न प्रति भी प्राप्त करो। मैं मात्र बच्चों के विद्यालय में भर्ती के उपयोग हेतु यह तुम्हें भेज रही हूं। आभार सहित,

इरा शर्मा

मो- 201-560-7693"

ई-मेल की प्रति जिसमें याची-इरा शर्मा ने स्वयं भारत में बच्चों की भर्ती हेतु सहमति दी है और बच्चों के भर्ती अभिलेख और ई-मेल, प्रतिशपथपत्र के संलग्नक संख्या सी ए-*2* के रूप में संलग्न हैं।

16. प्रत्युत्तरदाता संख्या *4* के विद्वान् अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि प्रत्युत्तरदाता संख्या *4* को कोई आपत्ति नहीं है यदि, याची- इरा शर्मा, भारत में अपने प्रवास के दौरान लखनऊ में बच्चों से मिलना चाहती है, बशर्ते उससे उनके अध्ययन में बाधा न पड़े। वह अग्रेतर निवेदन करता है कि दोनों बच्चों का प्रवेश, माता- इरा शर्मा की सहमति से उपर्युक्त विद्यालय में कराया गया था। उसने *22.8.2022* को ई-मेल द्वारा अपने आधार कार्ड और पासपोर्ट की प्रति दी है। अतः, यह किसी अवैध निरोध का मामला नहीं है किन्तु बच्चे अपनी माता की सम्मति से रह रहे हैं और अध्ययन कर रहे हैं।

17. प्रत्युत्तरदाता संख्या *4* के विद्वान् अधिवक्ता अग्रेतर निवेदन करते हैं कि विवाह समझौता अनुबंध के अनुसार किसी विवाद की स्थिति में, मध्यस्थता को वापसी हेतु अनुबंध के खंड *3.11* में एक उपबंध है, जो एतद्निम्न उद्धृत किया जा रहा है, इसलिए यह बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका पोषणीय नहीं है।

"3.11. मध्यस्थता की वापसीः पक्षकार सहमत हैं कि यदि इस अनुबंध से कोई मतभेद उत्पन्न होता है, वे प्रथमतः उनके बीच इन मामलों को सौहार्दपूर्ण रूप से समाधान करने का प्रयास करेंगे। यदि पक्षकारों में कोई विरोध होता है, वे सहमत हैं कि वे मध्यस्थता के माध्यम से इन विवाद्यकों का समाधान करने का प्रयास करेंगे और समझते हैं कि वे न्यायालय के हस्तक्षेप हेतु प्रस्ताव दाखिल करने के पूर्व सोमरसेट कंट्री फैमिली मीडिएशन प्रोग्राम से संपर्क कर सकते हैं। पक्षकार सहमत हैं कि उनमें से कोई मध्यस्थ से संपर्क करके और सत्र अनुसूचित करके इस प्रक्रिया का आरंभ कर सकता है। दोनों पक्षकार भावी मध्यस्थता सत्रों में, सद्भाव से समाधान का प्रयास करने हेतु भाग लेने को सहमत हैं।"

18. विद्वान् अपर शासकीय अधिवक्ता-I श्रीमती किरन सिंह ने भी प्रत्युत्तरदाता संख्या *4* के विद्वान् अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्क का समर्थन किया है।

19. पक्षकारों के विद्वान् अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार करने के पश्चात्, इस न्यायालय ने पाया है कि अप्राप्तवय शिशु को माता-पिता दोनों के प्यार और स्नेह से वंचित

अप्रमाणित

नहीं रखा जाना चाहिए क्योंकि अपवंचन का बच्चे के प्रारंभिक वर्षों में उसके संवेदनशील और मासूम स्वभाव पर गंभीर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है और इस वाद में अप्राप्तवय शिशुओं को उनके माता-पिता के प्यार और स्नेह से वंचित किया जा रहा है और माता-पिता अपने बच्चों से सार्थक रूप से बातचीत करने में सफल नहीं हैं। जब कभी अप्राप्तवय शिशु की अभिरक्षा के संबंध में किसी न्यायालय के समक्ष कोई प्रश्न उठता है, मामला मात्र पक्षकारों के विधिक अधिकारों पर विचार करके नहीं, अपितु एकमात्र और सर्वोपरि आधार पर विनिश्चित करना चाहिए कि शिशु के हित और कल्याण में सर्वोत्तम क्या होगा। बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका का प्रारंभिक उद्देश्य, जैसा अप्राप्तवय शिशु को लागू होता है, यह अवधारित करना है कि किसकी अभिरक्षा में शिशु का सर्वोत्तम हित संभवतः उन्नत होगा। अग्रेतर अभिरक्षा के प्रश्न का अवधारण प्रतिवाद करने वाले पक्षकारों की आर्थिक परिस्थितियों को महत्व देकर नहीं किया जा सकता है। मामला एकमात्र शारीरिक आराम और भौतिक लाभ के आधार पर अवधारित नहीं किया जाएगा जो प्रतिवादकर्ता या दूसरे के घर पर उपलब्ध हो सकता है। अग्रेतर निर्णीत किया गया है कि शिशु के कल्याण का विनिश्चय शिशु के सामान्य मनोवैज्ञानिक, आध्यात्मिक और भावनात्मक कल्याण को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। एक शिशु की अभिरक्षा हेतु विरोधी दावेदारों के बीच विवादों का समाधान करते समय, न्यायालय का उद्देश्य ऐसा अनुक्रम चुनने का होना चाहिए जो एक शिशु के स्वस्थ वृद्धि, विकास और शिक्षा हेतु सर्वोत्तम व्यवस्था करेगा जिससे कि वह परिपक्व वयस्क के रूप में जीवन की समस्याओं का सामना करने हेतु तैयार हो सके।

20. वर्तमान वाद में यह विवादित नहीं है कि याची- इरा शर्मा का विवाह प्रत्युत्तरदाता संख्या *4*-श्री धीरेंद्र पांडेय उर्फ धीरेंद्र विक्रम पांडेय के साथ धर्मशाला, हिमांचल प्रदेश में हुआ था। तत्पश्चात्, दंपत्ति अपने अच्छे भविष्य हेतु संयुक्त राज्य अमेरिका में बस गए थे। संयुक्त राज्य अमेरिका में बस जाने के पश्चात्, उनके विवाह-बंधन से दो शिशु पैदा हुए थे, एक बालक शिशु, नामतः, मास्टर रेयान पांडेय *2.4.2013* को पैदा हुआ था और एक बालिका शिशु, नामतः, मिराह पांडेय *2.10.2018* को पैदा हुई थी और उनके पास अमेरिकी पासपोर्ट था। कुछ समय पश्चात् पति और पत्नी के बीच संबंध खराब हो गए थे और प्रतिदिन विवाद होने लगा था। तत्पश्चात्, याची और प्रत्युत्तरदाता संख्या *4* ने वैवाहिक समझौता अनुबंध के नाम से दस्तावेज के माध्यम से *2.6.2022* को एक सौहार्दपूर्ण समझौता किया था, समझौता करने के पश्चात्, याची और प्रत्युत्तरदाता संख्या *4* कुटुंब न्यायालय उपागत हुए और संयुक्त राज्य अमेरिका में सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय, अर्थात् सुपीरियर कोर्ट ऑफ न्यू जर्सी डिवीजनः फैमिली पार्ट सोमरसेट कंट्री, देखिए डॉकेट नं. एफ एम-*18-267-22,* द्वारा पारस्परिक सम्मति द्वारा विवाह-विच्छेद प्राप्त किया था और विवाह-विच्छेद की डिक्री के परिशीलन से, निष्कर्ष अभिलिखित किया गया है कि प्रत्युत्तरदाता संख्या *4,* पत्नी इरा शर्मा के विरुद्ध जारता और समझौते के अयोग्य मतभेदों को साबित करने में सफल रहा था, अतः इस प्रकार की

अप्रमाणित

परिस्थिति अप्राप्तवय शिशु के मनोवैज्ञानिक व्यवहार पर नकारात्मक प्रभाव डालती है और शिशु के कल्याण में भी नहीं है।

21. **नित्य आनंद राघवन बनाम राज्य (एन सी टी ऑफ दिल्ली) एवं एक अन्य (***2017) 8* **एस सी सी** *454* के वाद में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह निर्णीत किया गया था कि न्यायालय का ऐसे मामलों में मुख्य कर्तव्य यह सुनिश्चय करना है कि क्या शिशु की अभिरक्षा अविधिपूर्ण और अवैध है और क्या शिशु का कल्याण अपेक्षा करता है कि उसकी वर्तमान अभिरक्षा परिवर्तित करनी चाहिए और शिशु को किसी अन्य व्यक्ति की देखरेख और अभिरक्षा में देना चाहिए। निर्णय में प्रस्तर *44* से *47* में किए गए सुसंगत संप्रेक्षण एतद्निम्न उद्धृत किए जा रहे हैः

"44. वर्तमान अपील, अप्राप्तवय शिशु को प्रस्तुत करने और अभिरक्षा हेतु बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका से उत्पन्न होती है। इस न्यायालय ने, **कानू सन्याल बनाम जिला मजिस्ट्रेट**, **दार्जिलिंग**, *(1973) 2* **एस सी सी** *674* में निर्णीत किया है कि बंदी प्रत्यक्षीकरण आवश्यक रूप से न्याय के तंत्र पर विचार करने वाली एक प्रक्रियात्मक रिट है। रिट का अंतर्निहित उद्येश्य ऐसे व्यक्ति की निर्मुक्ति सुरक्षित करना था जो अपनी स्वतंत्रता से अवैध रूप से वंचित किए गए थे। बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट उस व्यक्ति को, जो किसी अन्य को अभिकथित रूप से अविधिपूर्ण अभिरक्षा में रखे है, ऐसे व्यक्ति को न्यायालय में प्रस्तुत करने की अपेक्षा करते हुए, संबोधित आदेश है। न्यायालय के समक्ष व्यक्ति को प्रस्तुत करने पर, परिस्थितियों की, जिसमें संबंधित की अभिरक्षा निरुद्ध की गई है, न्यायालय द्वारा जाँच की जा सकती है और अभिकथित अविधिपूर्ण प्रतिरोध की सम्यक् जाँच करने के पश्चात् उपयुक्त निदेश पारित कर सकता है, जो उचित और उपयुक्त समझे। उच्च न्यायालय ऐसी कार्यवाहियों में, व्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार के तत्काल अवधारण और उसकी निर्मुक्ति हेतु एक जाँच संचालित करता है जब निरोध अविधिपूर्ण पाया जाता है।

45. अप्राप्तवय शिशु की अभिरक्षा के संबंध में किसी याचिका में, बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट जारी करने हेतु इस न्यायालय ने **सैयद सलीमुद्दीन बनाम रुखसाना**, *(2001) 5* **एस सी सी** *247* में निर्णीत किया है कि न्यायालय का ऐसे मामलों में मुख्य कर्तव्य यह सुनिश्चय करना है कि क्या शिशु की अभिरक्षा अविधिपूर्ण और अवैध है और क्या शिशु का कल्याण अपेक्षा करता है कि उसकी वर्तमान अभिरक्षा परिवर्तित करनी चाहिए और शिशु को किसी अन्य व्यक्ति की देखरेख और अभिरक्षा में देना चाहिए। ऐसा करते समय, सर्वोपरि विचार शिशु के कल्याण के बारे में होना चाहिए। **एलिजाबेथ दिनशॉ बनाम अरवंद एम. दिनशॉ**, *(1987) 1* **एस सी सी** *42* में यह निर्णीत किया गया है कि ऐसे वादों में मामला मात्र पक्षकारों के विधिक अधिकारों के संदर्भ में नहीं, अपितु एकमात्र और सर्वोपरि आधार पर विनिश्चित किया जाना है कि शिशु के हित और कल्याण में सर्वोत्तम क्या होगा। अपर्याप्तवय की सुरक्षा के मामलों में परीक्षा करने में उच्च न्यायालय की भूमिका सर्वोपरि जनक क्षेत्राधिकार के सिद्धांत की कसौटी पर है, क्योंकि अप्राप्तवय, अपीलार्थी द्वारा विश्वास किए गए न्यायालय के क्षेत्राधिकार के भीतर है।

अनुवादित

इस प्रतिपादना पर निर्णयों की संख्या बढ़ाने की आवश्यकता नहीं है।

46. उच्च न्यायालय, अप्राप्तवय के संबंध में बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट जारी करने हेतु याचिका पर विचार करते समय, दिए गए मामले में, उपर्युक्त निर्दिष्ट प्रतिष्ठित विधिक स्थिति सहित, विद्यमान सभी तथ्यों और परिस्थितियों को मस्तिष्क में रखते हुए शिशु को लौटाने का निदेश दे सकता है या शिशु की अभिरक्षा परिवर्तित करने से इंकार कर सकता है। एक बार पुनः, हम यह कहने की शीघ्रता कर सकते हैं कि प्रत्येक वाद में न्यायालय का विनिश्चय, शिशु के कल्याण पर, जो सर्वोपरि विचार है, विचार करते समय इसके समक्ष लाए गए वाद के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्रता पर निर्भर होना चाहिए। विदेशी न्यायालय का आदेश शिशु के कल्याण को ध्यान में रखते हुए होना चाहिए। अग्रेतर, बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट का उपचार मात्र विदेशी न्यायालय द्वारा इसके क्षेत्राधिकार के भीतर एक व्यक्ति के विरुद्ध दिए गए निदेशों के प्रवर्तन मात्र हेतु प्रयुक्त नहीं किया जा सकता है और उस क्षेत्राधिकार को निष्पादन न्यायालय के क्षेत्राधिकार में परिवर्तित नहीं किया जा सकता है। निस्संदेह रूप से, रिट याची, शिशु की अभिरक्षा हेतु, ऐसे अन्य उपचार का आश्रय ले सकता है जो विदेशी न्यायालय द्वारा पारित आदेश के प्रवर्तन हेतु विधि में अनुमत हो या किसी अन्य कार्यवाही का आश्रय ले सकता है जो भारतीय न्यायालय के समक्ष अनुमत हो सकती है, यदि ऐसा सुझाव दिया जाता है।

47. बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका, यथोक्त में, उच्च न्यायालय को आरंभ में परीक्षा करनी चाहिए, क्या अप्राप्तवय किसी अन्य व्यक्ति (रिट याचिका में नामित प्राइवेट प्रत्युत्तरदाता) की अवैध या अविधिपूर्ण अभिरक्षा में है। वर्तमान जैसे वाद में, उस विवाद्यक पर विचार करने हेतु, यह ध्यान देना पर्याप्त है कि प्राइवेट प्रत्युत्तरदाता कोई अन्य नहीं अपितु उनकी जैविक माता होने के कारण अप्राप्तवय की नैसर्गिक संरक्षिका है। जब वह तथ्य सुनिश्चित हो जाता है, यह उपधारित किया जा सकता है कि अपनी माता के पास अप्राप्तवय की अभिरक्षा विधिपूर्ण है। ऐसे मामले में, मात्र आपवादिक स्थिति में, अप्राप्तवय (बालिका शिशु) की अभिरक्षा, रिट क्षेत्राधिकार के प्रयोग में, उसकी माता से लेकर, पति (शिशु के पिता) सहित किसी अन्य व्यक्ति को दिए जाने हेतु आदेशित किया जा सकता है। अपितु, दूसरे माता या पिता से शिशु की अभिरक्षा प्राप्त करने हेतु विहित किए गए मूल उपचार का आश्रय लेने हेतु कहा जा सकता है।

इसी प्रकार से, **धनवंती जोशी बनाम महादेव उंडे (*1998*) *1* एस सी सी *112,*** के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय के प्रस्तर *27, 29, 30* में निम्नवत् संप्रेक्षित करने की कृपा की हैः

"27. ..... तथापि, इस तथ्य की दृष्टि से कि शिशु भारत में अपनी माता के साथ लगभग बारह वर्ष तक रहा था, इस न्यायालय ने निर्णीत किया था कि यह संयुक्त राज्य अमेरिका को शिशु को लौटाने हेतु संक्षिप्त क्षेत्राधिकार का प्रयोग इस आधार पर नहीं करेगा कि *1984* में इसे संयुक्त राज्य अमेरिका से हटाना संयुक्त राज्य न्यायालयों के आदेशों के प्रतिकूल था। यह भी निर्णीत किया गया था कि जब कभी किसी अप्राप्तवय शिशु की अभिरक्षा के संबंध में किसी न्यायालय के

अप्रमाणित

समक्ष प्रश्न उत्पन्न होता है, मामला, मात्र पक्षकारों के विधिक अधिकारों के विचार पर नहीं, अपितु एकमात्र और सर्वोपरि आधार पर विनिश्चित किया जाना है कि शिशु के हित और कल्याण में सर्वोत्तम क्या होगा।" (बल प्रदान किया गया) पुनः प्रस्तर *29* एवं *30* में, तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने इस प्रकार संप्रेक्षित किया थाः-

"29. न्यायालय के, जहाँ पक्षकारों ने अपना वैवाहिक घर बनाया है, आदेशों के उल्लंघन में एक देश से दूसरे देश एक माता/पिता द्वारा शिशु की अभिरक्षा हटाने के मामले पर विचार करते समय, उस देश के न्यायालय को, जिसमें शिशु ले जाया गया है, प्रथमतः इस प्रश्न पर विचार करना चाहिए कि क्या न्यायालय अभिरक्षा के प्रश्न पर विस्तृत जाँच कर सकता था या संक्षिप्त रूप से मामले पर विचार करते हुए एक माता/पिता को शिशु की अभिरक्षा उस देश को लौटाने हेतु आदेश कर सकता है, जहाँ से शिशु को हटाया गया था और शिशु के कल्याण से संबंधित सभी पहलुओं पर उसके अपने देश में विचार किया जाएगा। क्या न्यायालय को दृष्टिकोण अपनाना चाहिए कि एक विस्तृत जाँच आवश्यक है, प्रत्यक्ष रूप से न्यायालय सर्वोपरि विचार के रूप में, शिशु के कल्याण और सुख और स्थिरता और सुरक्षा, प्यार और समझ के साथ देखरेख और *3* जुलाई, *2017* को नित्य आनंद राघवन बनाम एन सी टी ऑफ दिल्ली राज्य के दिशानिर्देश और शिशु के चरित्र, व्यक्तित्व और प्रतिभा के पूर्ण विकास सहित सभी सुसंगत पहलुओं पर विचार करने हेतु बाध्य है। ऐसा करते समय, उसकी अभिरक्षा के संबंध में विदेशी न्यायालय के निर्णय को सम्यक् महत्व दिया जा सकता है; विदेशी निर्णय का महत्व और प्रेरक प्रभाव प्रत्येक वाद की परिस्थितियों पर निर्भर करेगा।

30. तथापि, ऐसे वाद में जहाँ न्यायालय, जन्मभूमि देश के, जिसका वाद में उत्पन्न विवाद्यकों के साथ घनिष्ठ संबंध और सर्वाधिक अंतरंग संपर्क है, न्यायालय के क्षेत्राधिकार को ध्यान में रखते हुए शिशु की अभिरक्षा उसके अपने देश को वापस करने हेतु इसके क्षेत्राधिकार का संक्षिप्त रूप से प्रयोग करने का विनिश्चय करता है, न्यायालय शिशु के कल्याण के संबंध में पहलुओं को उसके अपने जन्मभूमि देश के न्यायालय द्वारा अन्वेषण किए जाने हेतु छोड़ सकता है क्योंकि वह शिशु के सर्वोत्तम हित में होगा। **मेकी बनाम मेकी** में दिया गया संकेत कि ऐसे मामले हो सकते हैं जिनमें एक क्षेत्राधिकार में न्यायालय हेतु यह निदेश करते हुए एक आदेश करना इस आधार पर उपयुक्त हो सकता है कि शिशु को, शिशु की देखरेख के संबंध में विवाद के गुणावगुण का अन्वेषण किए बिना विदेशी क्षेत्राधिकार को लौटाया जाए कि ऐसा आदेश शिशु के सर्वोत्तम हित में है, जो एल (माइनर्स) में स्पष्ट किया गया है, समीक्षा और उस दृष्टिकोण को धनवंती जोशी में इस न्यायालय द्वारा अनुमोदित किया गया है। समान दृष्टिकोण एच. (इंफैंट्स) में कोर्ट ऑफ अपील द्वारा अपनाया गया है, समीक्षा इस न्यायालय द्वारा एलिजाबेथ दिनशॉ में अनुमोदित की गई है।"

इसी प्रकार से, श्रद्धा कनौजिया (अप्राप्तवय), एवं एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं *5* अन्य, बंदी प्रत्यक्षीकरण संख्या *716* वर्ष *2020*

अनुवादित

के वाद में, इस माननीय न्यायालय की एक खंडपीठ ने निम्नवत् संप्रेक्षित करने की कृपा की थीः

"यह सुस्थापित है कि बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट एक विशेषाधिकार रिट है और एक असाधारण उपचार है। अप्राप्तवय की अभिरक्षा के संबंध एक दावे के संदर्भ में बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट का उद्येश्य और व्याप्ति विचारण हेतु है और यह निर्णीत किया गया था कि शिशु की माता/ पिता से दूसरे को अंतरण ईप्सित करते हुए बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका में न्यायालय हेतु प्रमुख विचार यह सुनिश्चित करना होगा कि क्या शिशु की अभिरक्षा अविधिपूर्ण या अवैध कही जा सकती है और क्या शिशु का कल्याण अपेक्षा करता है कि वर्तमान अभिरक्षा परिवर्तित की जानी चाहिए।"

22. वर्तमान वाद में याची-इरा शर्मा ने स्वयं दोनों बच्चों को भारत में किसी प्रतिष्ठित विद्यालय में भर्ती करवाने हेतु और भारत में लखनऊ में, प्रत्युत्तरदाता संख्या *4* के निवास पर बच्चों से मुलाकात करने की ई-मेल द्वारा सम्मति दी थी और इन परिस्थितियों में था कि प्रत्युत्तरदाता संख्या *4* ने बच्चों को, सी बी एस ई बोर्ड, नई दिल्ली जी. डी. गोइनका पब्लिक स्कूल, सेक्टर बी सुशांत गोल्फ सिटी, शहीद पथ, लखनऊ में भर्ती करवा दिया था, जहाँ वे कक्षा VI और I में पढ़ रहे हैं। यह विवादित नहीं है कि दोनों बच्चों को माता इरा शर्मा की सम्मति से उपर्युक्त विद्यालय में करवाया गया था, इस निमित्त उसने स्वयं अपना आधार कार्ड और पासपोर्ट की प्रति ई-मेल दिनांक *22.8.2022* को उपलब्ध की थी, अतः याची-इरा शर्मा द्वारा स्थापित वाद, कि अप्राप्तवय शिशु प्रत्युत्तरदाता संख्या *4* के अवैध निरोध में हैं, कोई बल नहीं है और प्रत्युत्तरदाता संख्या *4* के विद्वान् अधिवक्ता के तर्क में बल है कि वर्तमान बंदी प्रत्यक्षीकरण पोषणीय नहीं है क्योंकि शिशु अपने पिता की अवैध अभिरक्षा में नहीं हैं और भारत में माता इरा शर्मा की सम्मति से पढ़ रहे हैं और अभिरक्षा हेतु वह विधि के अनुसरण में उचित फोरम में उपागत हो सकती है।

23. अप्राप्तवय की अभिरक्षा हेतु भारत के संविधान के अनुच्छेद *226* के अधीन बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका की पोषणीयता का प्रश्न, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **तेजस्विनी गौड़ एवं अन्य बनाम शेखर जगदीश प्रसाद तिवारी एवं अन्य दांडिक अपील संख्या** *838* **वर्ष** *2019* **आदेश दिनांक** *6.5.2019* के वाद में परीक्षित किया गया था और यह निर्णीत किया गया था कि याचिका पोषणीय होगी जहाँ माता/पिता द्वारा निरोध अवैध और किसी विधिक प्राधिकार के बिना पाया जाता है, बंदी प्रत्यक्षीकरण की विशेषाधिकार रिट का असाधारण उपचार आपवादिक मामलों में प्राप्त किया जा सकता है जहाँ विधि द्वारा उपबंधित साधारण उपचार या तो अनुपलब्ध है या अप्रभावी है।

इस संबंध में निर्णय में किए गए संप्रेक्षण निम्नलिखित हैः-

"14. बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट किसी व्यक्ति को अवैध या अनुचित निरोध से तत्काल निर्मुक्ति के प्रभावी साधन उपलब्ध करके स्वतंत्रता सुरक्षित करने हेतु एक विशेषाधिकार प्रक्रिया है। रिट एक अप्राप्तवय की अभिरक्षा उसके संरक्षक को पुनर्स्थापित करने के प्रभाव तक विस्तृत है जब इससे सदोषपूर्ण रूप से वंचित किया गया है। एक अप्राप्तवय का एक

अनुवादित

ऐसे व्यक्ति द्वारा निरोध, जो उसकी विधिक अभिरक्षा हेतु अधिकृत नहीं है, रिट प्रदान करने के प्रयोजन हेतु, अप्राप्तवय शिशु की अभिरक्षा निदेशित करने में अवैध निरोध के बराबर माना जाता है। ऐसे व्यक्ति से अप्राप्तवय की अभिरक्षा के पुनर्स्थापन हेतु जो वैयक्तिक विधि के अनुसार, उसका विधिक या नैसर्गिक संरक्षक नहीं है, रिट न्यायालय को उपयुक्त वाद में क्षेत्राधिकार है।

x x x

19. बंदी प्रत्यक्षीकरण कार्यवाहियां अभिरक्षा की वैधता को न्यायोचित करने या परीक्षा करने हेतु नहीं है। बंदी प्रत्यक्षीकरण कार्यवाहियां एक माध्यम हैं जिसके माध्यम से शिशु की अभिरक्षा न्यायालय के विवेकाधिकार को संबोधित है। बंदी प्रत्यक्षीकरण एक विशेषाधिकार रिट है जो एक असाधारण उपचार है और रिट जारी की जाती है जहाँ विशिष्ट वाद की परिस्थितियों में, विधि द्वारा उपबंधित साधारण उपचार या तो उपलब्ध नहीं है या अप्रभावी है ; अन्यथा रिट जारी नहीं की जाएगी। शिशु अभिरक्षा मामलों में, रिट प्रदान करने में उच्च न्यायालय की शक्ति मात्र ऐसे मामलों में सफल है जहाँ एक व्यक्ति द्वारा एक अप्राप्तवय का निरोध है, जो उसकी विधिक अभिरक्षा हेतु अधिकृत नहीं है। हमारी राय में, विवादित प्रश्न पर उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों द्वारा घोषणा की दृष्टि से, शिशु अभिरक्षा मामलों में, बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट पोषणीय है, जहाँ यह साबित किया जाता है कि किसी माता/पिता या अन्य द्वारा अप्राप्तवय का निरोध अवैध या विधि के किसी प्राधिकार के बिना था।

20. शिशु अभिरक्षा मामलों में, साधारण उपचार मात्र हिंदू अप्राप्तवयता तथा संरक्षकता अधिनियम या संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, यथास्थिति के अधीन होता है। संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम के अधीन कार्यवाहियों से उत्पन्न मामलों में, न्यायालय का क्षेत्राधिकार इस बात से अवधारित किया जाता है क्या अप्राप्तवय साधारणतः उस क्षेत्र के भीतर रहता है जिस पर न्यायालय ऐसे क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है। संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम के अधीन जाँच और रिट न्यायालय द्वारा शक्तियों के, जो संक्षिप्त प्रकृति की हैं, प्रयोग के बीच महत्वपूर्ण अंतर है। जो महत्वपूर्ण है, वह है शिशु का कल्याण। रिट न्यायालय में, अधिकार मात्र शपथपत्रों के आधार पर अवधारित किए जाते हैं। जहाँ न्यायालय की राय है कि एक विस्तृत जाँच अपेक्षित है, न्यायालय असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से इंकार कर सकता है, और पक्षकारों को सिविल न्यायालय उपागत होने का निदेश दे सकता है। यह मात्र आपवादिक मामलों में है, अप्राप्तवय की अभिरक्षा हेतु पक्षकारों के अधिकार बंदी प्रत्यक्षीकरण हेतु एक याचिका पर असाधारण क्षेत्राधिकार के प्रयोग में अवधारित किया जाएगा।''

24. इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने **मास्टर मनन उर्फ अरुष बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं** 8 **अन्य**, 18.2.2021 **को विनिश्चित** में, प्रस्तर 16 एवं 17 में निम्नवत् संप्रेक्षित किया हैः

''16. वर्तमान वाद में, यह अविवादित है कि शिशु 22.8.2019 *से अपने पिता के साथ उसकी देखरेख और अभिरक्षा में है। किसी पक्षकार का यह कहना नहीं है कि शिशु को*

अनुवादित

पिता द्वारा माता की अभिरक्षा से बलपूर्वक ले जाया गया था। अभिलेख पर अभिवचन और सामग्री इंगित करते हैं कि विवाद का अस्तित्व पक्षकारों के बीच कुछ अनुबंध के अनुसरण में माता को शिशु की आभिरक्षा सौंपने के संबंध में है, जिसके निबंधन अब विवादित किए जा रहे हैं।

17. *यह इंगित किया गया है कि शिशु की जन्म तिथि* 9.8.2013 *है, और तद्नुसार, शिशु* 5 *वर्ष से अधिक आयु का है, हिंदू अप्राप्तवयता तथा संरक्षकता अधिनियम,* 1956 *की धारा* 6*(क) के अधीन उपबंधों की दृष्टि से पिता के साथ शिशु की अभिरक्षा प्रथम दृष्ट्या अवैध नहीं कही जा सकती है।"*

25. बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट संख्या 467 वर्ष 2021, ***वाहिन सक्सेना (अप्राप्तवय शिशु) एवं एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं तीन अन्य***, 27.8.2021 को विनिश्चित में इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने प्रस्तर 22 में निम्नवत् संप्रेक्षित करने की कृपा की हैः

"22. शिशु अभिरक्षा मामले में, बंदी प्रत्यक्षीकरण की एक रिट विचारणीय होगी जहाँ यह स्थापित किया जाता है कि माता-पिता या अन्य द्वारा अप्राप्तवय शिशु का निरोध अवैध है और विधि के प्राधिकार के बिना है। एक रिट न्यायालय में, जहाँ शपथपत्र के आधार पर अधिकार अवधारित किए जाते है, एक वाद में जहाँ न्यायालय का दृष्टिकोण है कि विस्तृत जाँच अपेक्षित होगी, यह असाधारण क्षेत्राधिकार के प्रयोग से इंकार कर सकता है और पक्षकारों को उपयुक्त फोरम में उपागत होने हेतु निदेश दे सकता है। ऐसे मामलों में साधारणतः उपचार हिंदू अप्राप्तवयता तथा संरक्षकता अधिनियम, 1956 *या संरक्षकता और प्रतिपाल्य अधिनियम,* 1890, *यथास्थिति, के अधीन होगा।"*

26. इसलिए, अप्राप्तवय शिशु की अभिरक्षा हेतु बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट ईप्सित करने वाले एक आवेदन में, जैसा वाद यहाँ है, यह देखा जाता है, न्यायालय हेतु प्रमुख विचार यह सुनिश्चित करना होगा, क्या शिशु की अभिरक्षा अविधिपूर्ण और अवैध कही जा सकती है और क्या शिशु का कल्याण अपेक्षा करता है कि वर्तमान अभिरक्षा परिवर्तित की जानी चाहिए और शिशु को उससे भिन्न, किसी अन्य की देखरेख और अभिरक्षा में देना चाहिए जिसकी अभिरक्षा में शिशु वर्तमान में है।

27. निर्णयों की श्रृंखला द्वारा यह सुप्रतिष्ठित है कि शिशु की अभिरक्षा के मामले पर विनिश्चय करते समय, प्रारंभिक और सर्वोपरि विचार शिशु का कल्याण है, जो इतना आवश्यक है कि तकनीकी आपत्तियाँ रास्ते में नहीं आ सकती हैं। तथापि, शिशु के कल्याण का विनिश्चय करते समय मात्र दंपत्ति का दृष्टिकोण नहीं है, जिस पर विचार किया जाना है। न्यायालयों को अभिरक्षा के विवाद्यक को मात्र ऐसे आधार पर विनिश्चित करना चाहिए जो शिशु के सर्वोत्तम हित में है। एक शिशु, विशेषकर कोमल वर्ष का शिशु माता-पिता दोनों के प्यार, लगाव, साथ, सुरक्षा की अपेक्षा करता है। यह मात्र शिशु की अपेक्षा नहीं है अपितु उसका मूल मानवाधिकार है। मात्र इस कारण कि माता-पिता का रास्ता एकदूसरे से अलग है, यह अभिप्रेत नहीं है कि शिशु को माता-पिता दोनों में से किसी एक की देखरेख, लगाव, प्यार या सुरक्षा से इंकार करना चाहिए।

बंदी प्रत्यक्षीकरण कार्यवाहियां अभिरक्षा की वैधता को न्यायोचित करने या परीक्षा करने

अप्रमाणित

हेतु नहीं है। बंदी प्रत्यक्षीकरण कार्यवाहियां एक माध्यम हैं जिसके माध्यम से शिशु की अभिरक्षा न्यायालय के विवेकाधिकार को संबोधित है। बंदी प्रत्यक्षीकरण एक विशेषाधिकार रिट है जो एक असाधारण उपचार है और रिट जारी की जाती है जहाँ विशिष्ट वाद की परिस्थितियों में, विधि द्वारा उपबंधित साधारण उपचार या तो उपलब्ध नहीं है या अप्रभावी है ; अन्यथा रिट जारी नहीं की जाएगी। शिशु अभिरक्षा मामलों में, रिट प्रदान करने में उच्च न्यायालय की शक्ति मात्र ऐसे मामलों में सफल है जहाँ एक व्यक्ति द्वारा एक अप्राप्तवय का निरोध है, जो उसकी विधिक अभिरक्षा हेतु अधिकृत नहीं है।

28. यह न्यायालय दोनों दंपत्तियों द्वारा किए गए विभिन्न अभिकथनों और प्रति-अभिकथनों पर विचार करने नहीं जा रहा है। मेरा स्पष्ट रूप से दृष्टिकोण है कि माता-पिता दोनों की, यदि एकसाथ नहीं तो कम से कम पृथक् रूप से, माता-पिता की देखरेख शिशु के सर्वोत्तम हित में है। मुझे कोई संदेह नहीं है कि शिशु को माता-पिता दोनों की आवश्यकता है और शिशु यदि अधिक प्रसन्न नहीं, माता के साथ समान रूप से प्रसन्न होगा, शिशु शायद अधिक प्रसन्न होंगे यदि वे अपने माता-पिता दोनों को पा सके। दुर्भाग्यवश, माता-पिता अपने मतभेदों का समाधान करने और एकसाथ रहने में असफल रहे हैं। जो भी हो, शिशु का माता-पिता दोनों के पास पहुँच और माता-पिता दोनों का प्यार और लगाव पाने का अधिकार है। दंपत्ति के बीच जो भी मतभेद उत्पन्न हुए थे, शिशु को दोनों के साथ से इंकार नहीं किया जा सकता है।

ई-मेल दिनांक *22.8.2022* के परिशीलन से, जिसमें याची-इरा शर्मा ने स्वयं भारत में शिशुओं के प्रवेश कराने हेतु सम्मति दी थी, यह स्पष्ट है कि माता बंदी/शिशुओं की अभिरक्षा से पूर्ण अवगत थी, जो भारत में अपने पिता के साथ हैं, इस प्रकार यह नहीं कहा जा सकता है कि यह अवैध अभिरक्षा/निरोध था।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि *20.4.2023* को तर्क की पूर्ववर्ती तारीख को, जब न्यायालय ने निरुद्ध- मास्टर रेयान पांडेय (पुत्र) से खुले न्यायालय में पूछा था, क्या वह अपनी माता के साथ जाना चाहता है, उसने अपनी माता के साथ जाने से इंकार किया था और निवेदन किया था कि वह अपने पिता के साथ रहना चाहता है और निवेदन करता है कि वह जी. डी. गोइनका पब्लिक स्कूल, लखनऊ में कक्षा IV में पढ़ रहा है, दूसरा निरुद्ध- मिराह पांडेय एक अप्राप्तवय बालिका है और उसकी आयु साढ़े चार वर्ष है और वह भी जी. डी. गोइनका पब्लिक स्कूल, लखनऊ में कक्षा I में पढ़ रही है, और क्योंकि माता इरा शर्मा के विरुद्ध जारता कारित करने का एक अभिकथन था और कि वह, इरा शर्मा और धीरेंद्र पांडेय उर्फ धीरेंद्र विक्रम पांडेय के बीच विवाह-विच्छेद का एक आधार था, अतः इस न्यायालय का दृष्टिकोण है कि बालिका शिशु मिराह पांडेय न्यायहित में अपने पिता के साथ रहेगी क्योंकि कल्याण, प्यार, लगाव, साथ, सुरक्षा, पिता/ प्रत्युत्तरदाता संख्या *4* की अभिरक्षा में है।

मास्टर रेयान पांडेय और मिराह पांडेय जी. डी. गोइनका पब्लिक स्कूल, सेक्टर-बी, सुशांत गोल्फ सिटी, शहीद पथ, लखनऊ में पढ़ रहे हैं और वर्तमान शैक्षणिक सत्र हेतु उनकी पढ़ाई

अनुवादित

बाधित नहीं की जा सकती है, इसलिए, उपर्युक्त की गई चर्चा और संप्रेक्षण की दृष्टि से, यह न्यायालय निम्नलिखित निदेश जारी करता हैः

(i) दोनों शिशुओं मास्टर रेयान पांडेय (पुत्र) और मिराह पांडेय (पुत्री) की अभिरक्षा प्रत्युत्तरदाता संख्या *4*-श्री धीरेंद्र पांडेय उर्फ धीरेंद्र विक्रम पांडेय के पास रहेगी।

(ii) क्योंकि माता-इरा शर्मा संयुक्त राज्य अमेरिका में रहती है, उसे भारत में उसके निवास के दौरान, प्रत्युत्तरदाता संख्या *4* के वर्तमान निवास अर्थात् ओमेक्स आर-*2* बिल्डिंग *15*, फ्लैट *1104*, लखनऊ में शाम *6:00* से शाम *8:00* के बीच, प्रत्युत्तरदाता संख्या *4*-श्री धीरेंद्र पांडेय उर्फ धीरेंद्र विक्रम पांडेय (पिता) को उसके लखनऊ आने की एक सप्ताह पूर्व सूचना देने की शर्त के साथ, मिलने की अनुमति है। अग्रेतर उपबंधित किया जाता है कि यदि वह विदेश में है, उसे मिराह पांडेय-पुत्री और मास्टर रेयान पांडेय-पुत्र से, भारतीय मानक समय रात *8.00* से रात *8.30* बजे के दौरान मोबाइल फोन, व्हाट्स एप वार्ता या वीडियो कॉल करने हेतु अनुज्ञात किया जाता है।

(iii) यदि शिशु की माता, प्यार और लगाव के कारण शिशुओं के कल्याण हेतु कोई उपहार या कोई वस्तु देना चाहती है, तब पिता/ प्रत्युत्तरदाता संख्या *4* या उसके परिवार का कोई सदस्य कोई आपत्ति नहीं करेगा। तथापि, माता को यह ध्यान रखना होगा कि ऐसी वस्तु दी जाए, जो बच्चों के स्वास्थ्य हेतु उपयोगी और सुरक्षित हो।

(iv) याची- इरा शर्मा को, हिंदू अप्राप्तवय तथा संरक्षकता अधिनियम, *1956* के अधीन या संरक्षकता और प्रतिपाल्य अधिनियम, *1890* के अधीन, यथास्थिति, विधि के अनुसरण में शिशुओं की अभिरक्षा का दावा करने हेतु उपयुक्त फोरम में उपागत होने की स्वतंत्रता है।

29. उपर्युक्त संप्रेक्षणों/ निदेशों के साथ, यह बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका अंतिम रूप से निस्तारित की जाती है।

(2023) 6 ILRA 172

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 16.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद

बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका संख्या 148 वर्ष 2023

आरफा बानो . ..याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य.. .प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: सिकंदर जुल्करनैन खान

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: जी.ए.

सिविल कानून - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट - विवाहित पुत्री अपने माता-पिता के साथ रह रही है - ससुर ने बंदी की अभिरक्षा के लिए प्रार्थना की - बंदी याचिकाकर्ता की पुत्रवधू है जो अपने माता-पिता के साथ रह रही है - स्थिरता - ससुर का अधिकार - न्यायालय ने पाया कि, मुस्लिम कानून के अनुसार विवाह एक अनुबंध है तथा पति अपनी पत्नी को

अनुवादित

संरक्षण, आश्रय देने तथा उसकी सभी इच्छाओं और दैनिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बाध्य है - विवाह के पश्चात बंदी का पति कुवैत में रह रहा है तथा कमा रहा है तथा बंदी अपने माता-पिता के साथ रह रही है - इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि वह अवैध हिरासत में है - पति के पास उचित फोरम में जाने का उपाय है, लेकिन ससुर के पास नहीं, क्योंकि उसका कोई अधिकार नहीं है - तदनुसार, वर्तमान बंदी प्रत्यक्षीकरण का निपटारा किया जाता है। (पैरा - 5)

रिट याचिका का निपटारा किया गया। (ई-11)

(माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद द्वारा दिया गया)

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सिकंदर जुल्करनैन खान, राज्य-प्रत्युत्तरदाता सं0 1 व 2 के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता-I श्री सुशील कुमार मिश्रा को सुना और अभिलेख का अवलोकन किया ।

वर्तमान बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका निम्नलिखित प्रार्थना के साथ दायर की गई हैः

"(i) इस माननीय न्यायालय के समक्ष उस बंदी को पेश करने हेतु विपक्षीगण को निर्देश देते हुए बंदी प्रत्यक्षीकरण प्रकृति का एक रिट, आदेश या निर्देश जारी किया जाए जिसे 2021 से बिना किसी कारण के विपक्षी सं0 3 और 4 द्वारा अवैध रूप से निरूद्ध किया गया है और उसे अवैध अभिरक्षा से मुक्त किया जाए।

(ii) कोई अन्य रिट, आदेश या निर्देश जारी किया जाए, जिसे यह माननीय न्यायालय न्यायसंगत एवं उचित समझे और बंदी के पक्ष में पारित किया जाए।

(iii) रिट याचिका को व्यय के साथ बंदी के पक्ष में अनुज्ञात किया जाए।

यह याचिका बंदी के ससुर द्वारा इस प्रार्थना के साथ दायर की गई है कि उसकी पुत्रवधू, जो याचिकाकर्ता के पुत्र के साथ विवाहित है, अपने माता-पिता की अवैध अभिरक्षा में है, इसलिए बंदी की अभिरक्षा उसके ससुर को दी जाए क्योंकि उसके माता-पिता उसे उसके ससुराल जाने की अनुमति नहीं दे रहे है। याचिका में आगे यह कहा गया है कि बंदी का पति, जो याचिकाकर्ता का पुत्र है, अपनी आजीविका कमाने हेतु कुवैत में रह रहा है।

विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता-I, श्री सुशील कुमार मिश्रा ने प्रारंभिक आपत्ति यह प्रस्तुत करते हुए उठाई है कि वर्तमान याचिका बंदी के पति द्वारा दायर नहीं की गई है और यह बंदी के ससुर द्वारा दायर की गई है, इस प्रकार, यह पोषणीय नहीं है।

मुस्लिम विधि के अनुसार विवाह एक अनुबंध है और पति अपनी पत्नी को सुरक्षा देने, आश्रय देने और उसकी समस्त इच्छाओं और दिन-प्रतिदिन की आवश्यकताओं को पूर्ण करने हेतु बाध्य है। विवाह के पश्चात बंदी का पति कुवैत में रह रहा है और उपार्जन कर रहा है और बंदी अपने माता-पिता के साथ रह रही है, इस प्रकार, यह नहीं कहा जा सकता कि वह अवैध अभिरक्षा में है। यह संभव हो सकता है कि जब उसका पति वहाँ नहीं रह रहा हो तो बंदी स्वयं अपने ससुराल नहीं जाना चाहती हो। यदि कोई शिकायत है भी तो पति के पास उपयुक्त अधिकरण के समक्ष पहुँचने का उपचार है, परंतु ससुर के पास नहीं क्योंकि यह उसका अधिकार क्षेत्र बिल्कुल नहीं है।

अनुवादित

उपर्युक्त टिप्पणियों के साथ, वर्तमान बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका अंततः **निस्तारित** की जाती है।

(2023) 6 ILRA 174

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 31.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति देवेन्द्र कुमार उपाध्याय

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

सिविल विविध समीक्षा आवेदन संख्या 121 वर्ष 2022

साथ में

सिविल विविध समीक्षा आवेदन संख्या 307 वर्ष 2022

सिविल विविध समीक्षा आवेदन संख्या 117 वर्ष 2022

सिविल विविध समीक्षा आवेदन संख्या 84 वर्ष 2023

राजस्व बोर्ड एवं अन्य... आवेदक

बनाम

राम जी शुक्ला.. .विपरीत पक्ष

आवेदकों के अधिवक्ता: सी.एस.सी.

विपक्षी पक्ष के अधिवक्ता: देवी प्रसाद मौर्य

ए. सिविल लॉ - यू.पी. पेंशन एवं वैधीकरण अधिनियम, 2021 के लिए अर्हकारी सेवा-धारा 2 एवं 3-सेवानिवृत्ति लाभ-पिछली सेवा की गणना-नियम 1974 में संग्रह अमीन के पद पर मौसमी आधार पर नियुक्ति करने का कोई प्रावधान नहीं है, इसलिए नियम 1974 के तहत नियुक्ति से पहले किसी कर्मचारी द्वारा की गई कोई भी सेवा सेवा नियमों के अनुसार की गई नियुक्ति के अनुरूप नहीं होगी और इसे अधिनियम 1, 2021 की धारा 2 के तहत अर्हकारी सेवा नहीं माना जाएगा। (पैरा 31 से 53)

पुनरीक्षण याचिका स्वीकार की जाती है। (ई-6)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. घनश्याम मिश्रा बनाम यू.पी. एवं अन्य (2013) एस.सी.सी. ऑनलाइन सभी 3809
2. एस.के. नौशाद रहमान बनाम यू.ओ.आई. एवं अन्य (2022) एआईआर एससी 1494
3. जी.जे. फर्नांडिस बनाम स्टेट ऑफ मैसूर (1967) एआईआर एससी 1753
4. विजय नारायण थट्टे बनाम स्टेट ऑफ मह. (2009) 9 एससीसी 92
5. प्रेम सिंह बनाम स्टेट ऑफ यू.पी. (2019) 10 एससीसी 516
6. स्टेट ऑफ यू.पी. एवं अन्य बनाम महेंद्र सिंह, एसपीएलडी नंबर 1003 ऑफ 2020
7. भावनगर यूनिवर्सिटी बनाम पालीताना शुगर मिल (पी) लिमिटेड (2003) 2 एससीसी 111
8. बीएसएनएल बनाम मिश्री लाल (2011) 14 एससीसी 739
9. चंद्र सिंह बनाम स्टेट ऑफ यू.पी. एवं अन्य (2022) 3 एएलजे 781
10. राजस्व मंडल बनाम प्रसीद नारायण उपाध्याय (2006) 2 सभी एलजे 66

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी द्वारा दिया गया)

1 डॉ एल.पी.मिश्रा, न्यायमूर्ति श्री एस.एस.राजावत, श्री योगेन्द्र कुमार मिश्रा, श्री दिलीप गौतम, श्री देवी प्रसाद मौर्य, श्री

अनुवादित

कुलदीपपति त्रिपाठी, विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता एवं उनके सहायक श्री रोहित नंदन शुक्ला, विद्वान स्थायी अधिवक्ता, श्री शैलेन्द्र कुमार सिंह, मुख्य स्थायी विद्वान् अधिवक्ता एवं उनके सहायक श्री विवेक शुक्ला, विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता तथा श्री अमिताभ राय, संबंधित पक्षों के विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता को सुना।

2. समीक्षा आवेदन संख्या- 121/2022 को इस न्यायालय के समन्वय पीठ द्वारा पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 21.06.2021 की समीक्षा हेतु दायर किया गया है, जिसके द्वारा विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या- 259/2020, जो कि याचिकाकर्ता द्वारा निर्णय और आदेश दिनांक 26.02.2019 के विरुद्ध दायर की गई थी, को रद्द कर दिया गया। उक्त निर्णय में माननीय एकल न्यायमूर्ति ने विरोधी पक्षकार-याचिकाकर्ता द्वारा दायर रिट याचिका संख्या 8737 (एस/एस) / 2011 को करते हुए यह घोषित किया था कि विरोधी पक्षकार-याचिकाकर्ता सेवानिवृत्ति लाभ, जिसमें पेंशन भी शामिल है, प्राप्त करने का हकदार है, जिसमें उसकी अस्थायी रूप से सामयिक संग्रह अमीन के रूप में दी गई सेवाओं को शामिल किया जाए।

3. रिट याचिका संख्या 8737 (एस/एस)/2011 में विरोधी पक्षकार-याचिकाकर्ता को प्रारंभिक रूप से दिनांक 01.08.1979 को सामयिक संग्रह अनुसेवक के रूप में नियुक्त किया गया था और इसके बाद उसे संबंधित सेवा नियमों के तहत सामयिक संग्रह अनुसेवक में से प्रत्यक्ष भर्ती के लिए निर्धारित कोटे के अंतर्गत नियमित संग्रह अनुसेवक के रूप में नियुक्त किया गया। विरोधी पक्षकार-याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत मामला यह है कि उसकी नियुक्ति एक अस्थायी नियुक्ति थी और इस प्रकार, उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 1961 में निहित प्रावधानों के अनुसार, सामयिक संग्रह अनुसेवक के रूप में दी गई उसकी सेवाओं को पेंशन के भुगतान के लिए "अर्हकारी सेवा"के रूप में गिना जाना चाहिए।

4. समीक्षा आवेदन संख्या 117/2022 को इस पीठ द्वारा दिनांक 22.04.2022 को पारित निर्णय और आदेश की समीक्षा हेतु दायर किया गया है, प्रार्थी द्वारा निर्णय और आदेश दिनांक 17.09.2021 के विरुद्ध दाखिल विशेष अपील, जिसमें रिट याचिका संख्या- 20874 (एस/एस)/2021 को खारिज कर दिया गया था, को खारिज कर दिया गया और माननीय एकल न्यायमूर्ति द्वारा पारित आदेश, जिसमें यह घोषित किया गया कि याचिकाकर्ता द्वारा सामयिक संग्रह अमीन के रूप में दी गई सेवाओं को पेंशन के भुगतान के लिए "अर्हकारी सेवा"के रूप में नहीं गिना जा सकता, को बरकरार रखा गया।

5. विरोधी पक्षकार-याचिकाकर्ता द्वारा रिट याचिका संख्या- 20874 (एस/एस)/2021 में प्रस्तुत मामला यह था कि उसकी नियुक्ति सामयिक संग्रह अनुसेवक के रूप में एक अस्थायी नियुक्ति थी और, इस प्रकार, उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 1961 के अंतर्गत निहित प्रावधानों के अनुसार, सामयिक संग्रह अनुसेवक के रूप में दी गई सेवाओं को "अर्हकारी सेवा" की गणना के लिए गिना जाना चाहिए।

6. विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 84/2023 को राज्य द्वारा माननीय एकल न्यायमूर्ति द्वारा दिनांक 13.09.2022 को पारित निर्णय और

अधिवक्ता

आदेश के विरुद्ध दायर किया गया है, जिसमें रिट ए संख्या- 4305/2021 को स्वीकार किया गया था और प्रतिवादियों को याचिकाकर्ता को सामयिक संग्रह अमीन के रूप में दी गई सेवाओं को ध्यान में रखते हुए पेंशन संबंधी लाभों की गणना करने का निर्देश दिया गया था।

7. विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या- 307/2022 को राज्य द्वारा माननीय एकल न्यायमूर्ति द्वारा दिनांक- 23.09.2022 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध दायर किया गया है, जिसमें रिट ए संख्या- 4305/2021 में दिनांक 13.09.2022 को पारित आदेश के अनुसार याचिका को स्वीकार किया गया था।

8. यह प्रश्न कि सामयिक संग्रह अनुसेवक के रूप में दी गई सेवाओं को पेंशन के लिए "अर्हकारी सेवा" की गणना के लिए गिना जाना चाहिए या नहीं, इन सभी जुड़े मामलों में विचाराधीन है।

9. वर्तमान में, संग्रह अमीनों की सेवा शर्तें उत्तर प्रदेश संग्रह अमीन नियमावली, 1974 द्वारा नियंत्रित हैं (जिसे यहाँ इसके बाद '1974 के नियम' के रूप में संदर्भित किया जाएगा), जो 24.08.1974 से लागू हुई।

10. दिनांक- 24.05.2022 को, इस न्यायालय ने राज्य को निम्नलिखित बिंदुओं पर जानकारी प्रस्तुत करने का निर्देश दिया था: -

> *(i) क्या सामयिक कर्मचारियों जैसे कि सामयिक संग्रह अमीन और सामयिक संग्रह अनुसेवक की नियुक्ति के लिए कोई सेवा नियम/कार्यकारी निर्देश/सरकारी आदेश मौजूद हैं।*
>
> *(ii) क्या सामयिक कर्मचारियों के पद जैसे कि सामयिक संग्रह अनुसेवक और सामयिक संग्रह अमीन कभी सृजित किए गए थे या वे बिना किसी स्थाई पद के उपलब्धता के बिना ही काम पर लगाया गया था।*
>
> *(iii) जब राजस्व अधिकारियों द्वारा तहसीलों/उप मंडलों में सामयिक कर्मचारियों को नियुक्त किया गया था, तो उन्हें उनकी वेतन/भत्ते कहां से दिए गए थे। राज्य के अधिवक्ता को सभी प्रासंगिक दस्तावेज प्रस्तुत करने होंगे जो सामयिक कर्मचारियों की नियुक्ति के प्रकृति पर कुछ प्रकाश डाल सकते हैं, जैसे कि सामयिक संग्रह अमीन और सामयिक संग्रह अनुसेवक ।*

11. पहले प्रश्न के उत्तर में, राज्य के अधिवक्ता ने कहा है कि सामयिक संग्रह अमीनों की नियुक्ति उत्तर प्रदेश संग्रह मैनुअल के प्रस्तर 19 के तहत की जाती है।

12. उत्तर प्रदेश संग्रह मैनुअल का प्रस्तर-19 यह प्रावधान करता है कि उपजिलाधिकारी नियुक्त किए गए अमीनों की सहायता के लिए सामयिक अमीनों की नियुक्ति की आवश्यकता पर वार्षिक आधार पर कड़ी निगरानी रखेंगे। यह आगे प्रावधान करता है कि उपजिलाधिकारी कलेक्टर को अतिरिक्त सामयिक कर्मचारियों की स्वीकृति के लिए कारण दर्शाते हुए और विभिन्न श्रेणियों के तहत वसूली के लिए मांगे गए आंकड़ों को प्रस्तुत करते हुए, मंडलायुक्त से अनुरोध करने के लिए रिपोर्ट सौंपेंगे।

अनुवादित

13. दूसरे प्रश्न के उत्तर में, राज्य ने सूचित किया कि विभिन्न सरकारी आदेश और राजस्व परिषद् द्वारा पारित आदेश सामयिक संग्रह अमीन/अनुसेवक की नियुक्ति से संबंधित हैं, लेकिन इस संबंध में कोई वैधानिक सेवा नियम तैयार नहीं किया गया है। एक सरकारी आदेश दिनांक 13.09.1999 विशेष रूप से यह घोषणा करता है कि समेकित संग्रह योजना के तहत काम करने वाले सामयिक कर्मचारी पूर्णकालिक सरकारी कर्मचारी नहीं हैं और दिनांक 15.07.2000 को, राजस्व परिषद् ने राज्य के सभी कलेक्टरों को एक परिपत्र जारी किया, जिसमें उपरोक्त सरकारी आदेश दिनांक 13.09.1999 में किए गए वक्तव्यों को दोहराया गया।

14. तीसरे प्रश्न के उत्तर में, राज्य ने सूचित किया कि सामयिक संग्रह अमीन/अनुसेवक का वेतन उसी मद से भुगतान किया जाता है, जिससे नियमित संग्रह अमीन/नियमित अनुसेवक का वेतन भुगतान किया जाता है।

15. राज्य की ओर से यह तर्क दिया गया है कि सामयिक कर्मचारियों की नियुक्ति सरकार द्वारा बनाए गए किसी वैधानिक सेवा नियमों के अनुसार नहीं की जाती है और उनकी सेवा शर्तें किसी भी ऐसे नियमों द्वारा नियंत्रित नहीं होती हैं।

16. **घनश्याम मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2013 एससीसी ऑनलाईन ऑल 3809** के मामले में, इस प्रश्न पर विचार किया गया था कि क्या याचिकाकर्ता द्वारा सामयिक संग्रह अमीन के रूप में अस्थायी आधार पर दी गई सेवाओं को "अर्हकारी सेवा" की गणना के लिए लिया जा सकता है या नहीं। एकल न्यायमूर्ति पीठ का निर्णय:-

"सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशानुसार, तदर्थ सेवा को नियमित सेवा के समकक्ष नहीं माना जा सकता है और इसका लाभ दस वर्षों की नियमित सेवा की गणना के लिए नहीं दिया जा सकता। इसी प्रकार, ***जब 'अस्थायी कर्मचारी'की श्रेणी में सामयिक , आकस्मिक, दैनिक वेतनभोगी, तदर्थ सेवाएं शामिल हैं, तो इन्हें नियमित सेवा के समकक्ष नहीं माना जा सकता।*** *याचिकाकर्ता की सेवाओं को कभी नियमित नहीं किया गया, और इस पृष्ठभूमि में, याचिकाकर्ता सामयिक अस्थायी कर्मचारी के रूप में जारी रहा और अंतरिम आदेश के तहत बना रहा। इसलिए, उसे कोई राहत नहीं दी जा सकती क्योंकि उसके पास '10 वर्षों की नियमित सेवा' नहीं है, जो कि एक अस्थायी कर्मचारी को पेंशन प्रदान करने की आवश्यक शर्त है।"*

17. परिणामस्वरूप, दिनांक- 21.10.2020 को, उत्तर प्रदेश राज्य विधानमंडल ने "उत्तर प्रदेश पेंशन के लिए अर्हक सेवा और वैधता अध्यादेश, 2020" (उत्तर प्रदेश अध्यादेश संख्या 19/2020) जारी किया, जिसे दिनांक 04.03.2021 को "उत्तर प्रदेश पेंशन के लिए अर्हक सेवा और वैधता अधिनियम, 2021" (उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 1/2021) के द्वारा प्रतिस्थापित किया गया। *इसे पेंशन के लिए अर्हकारी सेवा प्रदान करने तथा इस संबंध में की गई कुछ कार्यवाइयों को वैध बनाने तथा उससे संबंधित या उसके आनुषंगिक विषयों के लिए अधिनियमित किया गया था।*

अनुवादित

18. इस अधिनियम के उद्देश्य और कारण में यह कहा गया है कि *"सेवानिवृत्त सरकारी सेवक को देय पेंशन और ग्रेच्युटी का निर्धारण सरकारी सेवक की अर्हक सेवा के काल के आधार पर होता है। हालाँकि, "अर्हक सेवा"की परिभाषा उत्तर प्रदेश सिविल सेवा विनियम और उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 1961 में दी गई है, लेकिन इस परिभाषा की विवेचना करने में विभिन्न दृष्टिकोणों के कारण प्रशासनिक कठिनाइयाँ होती हैं। इसलिए, एक ऐसा कानून बनाने का निर्णय लिया गया है जो "अर्हक सेवा"शब्द को परिभाषित करेगा और 1 अप्रैल, 1961 से प्रभावी होगा, जो उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 1961 के प्रारंभ होने की तिथि है।"*

19. उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 1/2021 की धारा 2 और 3 को यहाँ नीचे उद्धृत किया जा रहा है:-

> "2. किसी भी नियम, विनियमन या सरकारी आदेश में निहित किसी भी प्रावधान के होने के बावजूद, किसी अधिकारी को पेंशन के अधिकार के लिए, "अर्हक सेवा"का अर्थ है वह सेवा जो किसी अधिकारी द्वारा अस्थायी या स्थायी पद पर सरकार द्वारा निर्धारित सेवा नियमों के अनुसार नियुक्त किए जाने पर प्रदान की जाती है।"
>
> "3. किसी भी न्यायालय के निर्णय, डिक्री या आदेश के बावजूद, किसी भी कार्य को या किसी भी कार्यवाही को उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 1961 के नियम 3 की उपधारा (8) के संबंध में इस अधिनियम के आरंभ से पहले किया गया या किया गया माना जाएगा और इसे इस अधिनियम के प्रावधानों के तहत किया गया और हमेशा से वैध माना जाएगा, जैसे कि यह अधिनियम 1 अप्रैल, 1961 से प्रभावी था।"

20. श्री कुलदीप पति त्रिपाठी, अपर महाधिवक्ता, श्री अमिताभ राय अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता और श्री रोहित नंदन शुक्ला स्थायी अधिवक्ता ने तर्क दिया कि 1974 के नियमों में सामयिक आधार पर संग्रह अमीन के पद पर नियुक्ति के लिए कोई प्रावधान नहीं है। इसलिए, 1974 के नियमों के तहत अधिनियम 1/2021 की धार-2 के तहत नियुक्ति से पहले की कोई भी सेवा 'अर्हक सेवा' के रूप में नहीं मानी जाएगी।

21. राज्य की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने यह भी कहा कि किसी अधिनियम, नियमों और कार्यकारी निर्देशों के बीच संघर्ष की स्थिति में, अधिनियम का प्रावधान प्रभावी होगा।** इसके समर्थन में, सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय **(एस. के. नौसाद रहमान बनाम भारत संघ और अन्य, एआईआर 2022 एससी 1494)** पर भरोसा किया गया, जिसमें कहा गया कि उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या- 1/2021 किसी भी असंगति की स्थिति में प्रभावी रहेगा।

22. इसके अतिरिक्त, सर्वोच्च न्यायालय के एक अन्य निर्णय **(जी. जे. फरनांडेज बनाम मैसूर राज्य, एआईआर 1967 एससी 1753)**** पर भरोसा करते हुए, सरकारी अधिवक्ताओं ने तर्क दिया कि कार्यकारी निर्देशों का कोई

अनुवादित

कानूनी बल नहीं होता और किसी भी अधिकार के प्रवर्तन के लिए कार्यकारी निर्देशों पर आधारित कोई भी रिट याचिका नहीं लाई जा सकती।

विरोधी पक्षकार के तर्क:

23. इसके विपरीत, समीक्षा याचिका संख्या 121/2022 डॉ0 ललता प्रसाद मिश्रा (याचिकाकर्ता-विरोधी पक्षकार के अधिवक्ता) ने तर्क दिया कि 1974 के नियमावली के नियम 3 (i) में 'सामयिक अमीन' की परिभाषा दी गई है और इसलिए, यह पद 1974 के नियमों में परिकल्पित है।

24. उत्तर प्रदेश संग्रह अमीनों की सेवा नियमावली 1974 (जिसे आगे नियमावली, 1974 कहा जाएगा) के नियमों के नियम 3 के खंड (h), (i) और (j) 'सेवा सदस्य', 'सामयिक अमीनों' तथा 'सेवा' शब्दों को निम्नानुसार परिभाषित किया गया है:-

(h) "सेवा के सदस्य" का अर्थ है वह व्यक्ति जिसे इन नियमों या इन नियमों के प्रारंभ से पहले किसी नियम या आदेश के तहत सेवा के पद पर नियुक्त किया गया है।"

(i) "सामयिक अमीन" का अर्थ है रबी या खरीफ या दोनों के लिए नियुक्त अमीन।"

(j) "सेवा" का अर्थ है उत्तर प्रदेश संग्रह अमीन सेवा।"

25. नियम 4 के तहत, सेवा के पदो को परिभाषित किया गया है:

"4. सेवा में पदों कि संख्या -

(1) सेवा में पदों की संख्या उतनी होगी जितनी राज्यपाल द्वारा समय-समय पर अवधारित की जाये।

(2) सेवा में पदों की स्थायी संख्या जब तक कि उपनियम (1)के अधीन उन में परिवर्तन करने के आदेश न दे दिए जाएँ, उतनी होगी जितनी नीचे दी गयी है -

अ. कलेक्शन अमीन (सामान्य श्रेणी) 5,341

ब. कलेक्शन अमीन (चयन श्रेणी) 593

(क) कलेक्टर किसी भी रक्त पद को बिना भरे हुए छोड़ सकता है या राज्यपाल उसे अस्थगित रख सकते हैं और ऐसा किये जाने पर कोई व्यक्ति प्रतिकर का हकदार न होगा तथा

(ख) राज्यपाल ऐसे अतिरिक्त स्थायी या अस्थायी पद सृजित कर सकते हैं, जो आवश्यक हों।

26. उपर्युक्त नियम के नियम 5 में भर्ती के स्रोत के लिए निम्नलिखित प्रावधान है।

"5. भर्ती-

(I) सेवा की सामान्य श्रेणी के पदों पर भर्ती इस नियमावली के भाग 5 में व्यवस्थित रीति से प्रतियोगी परीक्षा के परिणाम पर की जाएगी।

प्रतिबन्ध यह है कि उपयुक्त अभ्यर्थियों की उपलब्धता के अधीन रहते हुये 15 प्रतिशत रिक्तियां ऐसे स्थायी कलेक्शन में से पदोन्नति करके भरी जायेंगी।

जिन्होंने निम्नलिखित शर्तें पूरी की हैं:-

(a) जो माध्यमिक शिक्षा परिषद्, उत्तर प्रदेश की कम से कम इंटरमीडिएट परीक्षा या सरकार द्वारा उसके समकक्ष मान्यता प्राप्त किसी परीक्षा में उत्तीर्ण हो। और

अवधवादिता

(b) जिसने राजस्व विभाग के कलेक्शन संगठन में कम से कम 6 फसल तक कार्य किया हो,

27. यह ध्यान देने योग्य है कि 1974 के नियमावली में सामयिक आधार पर नियुक्ति का कोई प्रावधान नहीं है। हालाँकि, सेवा के सामान्य ग्रेड के कुछ प्रतिशत पद सामयिक संग्रह अमीनों द्वारा भरे जाने के लिए आरक्षित हैं, लेकिन सामयिक संग्रह अमीनों को सेवा के पदों में शामिल नहीं किया गया है जैसा कि नियम 4 में परिभाषित किया गया है। इसलिए, 1974 के नियमावली के तहत सामयिक संग्रह अमीनों की नियुक्ति का प्रावधान न होने पर, मात्र सामयिक अमीनों का नियमावली में उल्लेख उनकी नियुक्ति को नियमों के तहत वैध नहीं बनाता।

28. सामयिक संग्रह अमीनों की नियुक्ति के संदर्भ में दो महत्वपूर्ण बातें नोट की जानी चाहिए:- पहला यह कि उनकी नियुक्ति का प्रावधान 'उत्तर प्रदेश संग्रह मैनुअल' में है, जो कि केवल कार्यकारी निर्देशों का एक संग्रह है, जो न तो कोई विधि है और न ही किसी विधि के तहत बनाए गए नियम। दूसरा, सामयिक पदों को 'डिविजनल कमिश्नर' द्वारा 'कलेक्टर'की मांग पर स्वीकृत किया जाता है, जबकि 'राज्यपाल 'द्वारा 'संग्रह अमीन सेवा'के लिए सेवा के पद निर्धारित किये जाते है जैसा कि नियम 4 में उल्लेखित है।

29. डॉ. मिश्रा ने आगे तर्क दिया कि 22.02.1991 को जारी 'राजस्व परिषद् 'का परिपत्र यह प्रावधान करता है कि सामयिक संग्रह अमीन और सामयिक संग्रह अनुसेवक की नियुक्ति स्वीकृत वेतनमानों पर की जाएगी, जो यह इंगित करता है कि पद स्वीकृत था। हालांकि, यह तर्क स्वीकार्य नहीं है क्योंकि 1974 के नियमावली के नियम 4 (1) में यह स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि सेवा के पद समय-समय पर राज्यपाल द्वारा निर्धारित किये जायेंगे, जो यह इंगित करता है कि 1974 के नियमावली के तहत अमीनों के पदों की स्वीकृति करने का अधिकार केवल राज्यपाल को है। जबकि 'उत्तर प्रदेश संग्रह मैनुअल' के प्रस्तर 19 के अनुसार, सामयिक संग्रह अमीनों के पद पुनरीक्षण आयुक्त' द्वारा स्वीकृत किए जाते हैं। इसलिए, सामयिक संग्रह अमीनों के वेतनमान की स्वीकृति का निर्देश मात्र, उनके पदों को 1974 के नियमों के तहत स्वीकृत नहीं करता।

30. डॉ0 मिश्रा ने यह भी तर्क दिया कि पेंशन कोई दान नहीं है, यह एक सहायता है और यह संपत्ति है जिसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 300-ए के तहत संरक्षित किया गया है और इसे केवल कानून के अनुसार ही लिया जा सकता है और 'कानून में सरकारी आदेश शामिल नहीं होता'। उन्होंने यह तर्क भी दिया कि कर्मचारियों को पेंशन देने से संबंधित कानूनों की व्याख्या उदारतापूर्वक की जानी चाहिए।

31. इस संबंध में हम यह उल्लेख कर सकते हैं कि इस प्रस्ताव के विरुद्ध कोई विवाद नहीं हो सकता कि पेंशन केवल कानून के अनुसार ही पेंशन ली जा सकती है, लेकिन साथ ही, कानून के अनुसार ही पेंशन का भुगतान करने का आदेश दिया जा सकता है और किसी भी स्थिति में इसे कानून के विशिष्ट प्रावधानों का उल्लंघन करके नहीं दी जा सकती, जो कि

अनुवादित

<u>वर्तमान मामले में उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 1, 2021 है।</u>

(न्यायालय द्वारा प्रभाव वर्धित किया गया)

32. यह सत्य है कि सेवानिवृत्त कर्मचारियों को पेंशन के भुगतान से संबंधित कानून के प्रावधानों की उदारता से व्याख्या की जानी चाहिए, लेकिन उदार व्याख्या का प्रश्न तभी उठेगा जब पेंशन देने के संबंध में किसी प्रावधान में कोई अस्पष्टता हो, जिस स्थिति में प्रावधान की उदारता से व्याख्या की जाएगी। हालांकि, यहां उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या-1, 2021 की धारा 2 में वर्णित प्रावधान अस्पष्ट नहीं हैं और इसलिए, इसके प्रावधानों की उदार व्याख्या का प्रश्न इस मामले में बिल्कुल भी नहीं उठता है। **विजय नारायण थते बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2009) 9 एससीसी 92** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने विधि के सुस्थापित सिद्धांतों की व्याख्या को दोहराते हुए निम्नलिखित शब्दों में कहा: -

"22. हमारे विचार में, जब विधि की भाषा स्पष्ट और सरल होती है, तब व्याख्या के सामान्य नियम का पालन किया जाना चाहिए और साधारणतः समता, सार्वजनिक हित या विधायिका के इरादे को देखने का कोई अवसर नहीं होता। केवल तब जब विधि की भाषा स्पष्ट या अस्पष्ट नहीं होती या कोई संघर्ष, आदि होता है या स्पष्ट भाषा कुछ बेतुकेपन की ओर ले जाए, तभी सामान्य व्याख्या के नियम से हट सकते हैं। धारा 6 के उपबंध का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट होता है कि उपबंध की भाषा स्पष्ट है। इसलिए सामान्य व्याख्या का नियम इस पर लागू होना चाहिए। ***जब विधि और समता में संघर्ष होता है, तो विधि ही प्रबल होती है।*** *जैसा कि लैटिन कहावत ड्यूरा लेक्स सेड लेक्स में कहा गया है जिसका अर्थ है* ***"कानून कठोर है लेकिन यह कानून है"।***

(प्रभाव वर्धित किया गया)

33. डॉ. मिश्रा ने आगे दलील दी कि सामयिक संग्रह अमीनों की नियुक्ति अस्थायी या स्थायी पदों के विरुद्ध की जाती है और जब कोई नियम नियुक्तियों को शासित नहीं करते हैं, तब नियुक्तियों को सरकारी आदेशों के अनुसार किया जाना चाहिए। हम इस दलील को भी स्वीकार करने में असमर्थ हैं क्योंकि सामयिक संग्रह अमीनों को काम की आवश्यकताओं के अनुसार सामयिक आधार पर लगाया जाता है, जो जिला मजिस्ट्रेट की रिपोर्ट के बाद आयुक्त द्वारा स्वीकृत की जाती है और इन्हें किसी भी अस्थायी या स्थायी पदों के विरुद्ध नियुक्त नहीं किया जाता है, जो सरकार द्वारा बनाए गए हैं। ऐसा नहीं है कि संग्रह अमीनों की नियुक्तियों को शासित करने वाले कोई नियम नहीं हैं, बल्कि उन नियमों में यह प्रावधान है कि संग्रह अमीनों के पदों को राज्यपाल द्वारा स्वीकृत किया जाएगा और उन नियमों में सामयिक संग्रह अमीनों की नियुक्ति का कोई प्रावधान नहीं है और इसलिए, सामयिक संग्रह अमीनों की नियुक्ति जो विशेष मौसम के लिए आयुक्त द्वारा स्वीकृत पदों पर कार्यकारी निर्देशों के तहत की जाती है, उसे नियमों के अनुसार की गई नियुक्ति नहीं माना जा सकता।

34. विपक्षी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि नियुक्ति के तथ्य मात्र से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि नियुक्ति स्वीकृत पद के विरुद्ध की गई थी, अन्यथा

अशोधित

भुगतान को समेकित निधि से नहीं लिया जा सकता। इस संबंध में हमारा यह सुविचारित मत है कि जब राज्यपाल को संग्रह अमीनों के पदों को स्वीकृत करने का स्पष्ट प्रावधान है, तो राज्यपाल द्वारा स्वीकृत पदों पर की गई किसी भी नियुक्ति को किसी भी दृष्टिकोण से स्वीकृत पद पर की गई नियुक्ति माना नहीं जा सकता और इसलिए, हम इस प्रस्तुति को भी स्वीकार करने में असमर्थ हैं।

35. **डॉ0 मिश्रा ने प्रेम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2019) 10 एससीसी 516** के मामलों में निर्णयों पर भरोसा किया, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 1961 के नियम 3 (8) को पढ़ा और निर्णय दिया कि कार्यभारित प्रतिष्ठान में में दी गई सेवाओं को पेंशन देने के लिए अर्हकारी सेवा माना जाएगा।

36. **प्रेम सिंह (सुप्रा)** में संबंधित कर्मचारी को कार्यभारित स्थापना में एक वेल्डर के रूप में 1965 में नियुक्त किया गया था। उसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित किया गया और अंततः चयन समिति ने उसकी सेवाओं को नियमित करने की संस्तुति की। उसकी सेवाओं को 13-03-2002 को नियमित किया गया और उसे नियमित स्थापना में एक पंप ऑपरेटर के रूप में नियुक्त किया गया। वह 31-01-2007 को सेवानिवृत्त हो गया। फिर उसने 31-07-2008 को उच्च न्यायालय में एक रिट याचिका दायर की, जिसमें उसने 1965 के नियमों के तहत कार्यभारित स्थापना में बिताए गए समय को अर्हकारी सेवा के रूप में गिनने की प्रार्थना की। वर्तमान मामले में, अपीलकर्ता को सामयिक संग्रह अमीन के रूप में सामयिक आधार पर नियुक्त किया जा रहा था और न कि नियमित आधार पर। उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 1, 2021 प्रेम सिंह के मामले के निर्णय तक अधिनियमित नहीं किया गया था और इसलिए, **प्रेम सिंह उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 1, 2021** के प्रावधानों की व्याख्या करने के लिए एक प्राधिकरण नहीं है। इसलिए, प्रेम सिंह में निर्धारित कानून इस मामले में लागू नहीं होता है।

37. श्री. वाई. के. मिश्रा, जो समीक्षा याचिका संख्या- 117/2022 में याचिकाकर्ता-उत्तरदाता के पक्ष में उपस्थित हैं, ने प्रस्तुत किया कि **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम महेंद्र सिंह, विशेष अपील (दोषपूर्ण) संख्या 1003 के 2020 का निर्णय 04.02.2021** को किया गया था, अधिनियम 19/2020 के प्रख्यापन के बाद और उस मामले में, इस न्यायालय की एक समन्वय बेंच ने निम्नलिखित निर्णय लिया था कि : -

" अध्यादेश की धारा 2 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि यह उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 1961 या सिविल सेवा विनियम 361 और 370 में निहित किसी भी बात के बावजूद प्रभावी होगा। हालांकि बार में यह बताया गया है कि कुछ रिट याचिकाओं में, उपर्युक्त उत्तर प्रदेश अधिनियम की वैधता को चुनौती दी गई है, हालांकि, वर्तमान अपील का न्यायनिर्णयित करते समय यदि अधिनियम को यथावत स्वीकार किया जाता है, तो इसकी धारा 2 इसके विपरीत विपक्षी-याचिकाकर्ता के लाभ में और अपीलकर्ताओं के लाभ में नहीं होगी। "अर्हकारी सेवा" शब्द को उक्त उत्तर प्रदेश की धारा 2 में "अर्हकारी सेवा" शब्द को सरकार द्वारा पद के लिए निर्धारित सेवा नियमों के प्रावधानों के अनुसार अस्थायी या स्थायी पद

अनुवादित

पर नियुक्त अधिकारी द्वारा प्रदान की गई सेवाओं के रूप में परिभाषित किया गया है।

जैसा कि ऊपर चर्चा की गई, अपीलकर्ताओं ने 04.09.1981 से लेकर 1997 में नियमित पद पर नियुक्ति की तिथि तक गोदाम चौकीदार के अस्थायी पद पर विपरीत पार्टी-याचिकाकर्ता की नियुक्ति को स्वीकार किया है। इसलिए, इस उत्तर प्रदेश अधिनियम के तहत, याचिकाकर्ता 04.09.1981 को अस्थायी पद पर अपनी नियुक्ति की तिथि से 1997 में नियमित पद पर नियुक्ति की तिथि तक की अपनी सेवा की अवधि की गणना के लिए अपने दावे के हकदार हैं।"

38. **महेंद्र सिंह (सुप्रा)** के निर्णय को लेते समय, विभाजन पीठ ने अधिनियम की धारा 2 का अवलोकन किया, जो कि उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 1, 2021 की धारा 2 के समान है, हालांकि, कोई चर्चा, उल्लेख या निष्कर्ष नहीं है कि कर्मचारी की नियुक्ति "सेवा नियमों के प्रावधानों के अनुसार" की गई थी या नहीं। उक्त दृष्टिकोण से, महेंद्र सिंह (सुप्रा) का निर्णय उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 1, 2021 के प्रभाव के बारे में कोई बाध्यकारी पूर्व निर्णय नहीं है (उससे पहले, अधिनियम) मामलों में जहां कर्मचारी की प्रारंभिक नियुक्ति तदर्थ आधार पर / दैनिक वेतनभोगी / कार्यभार कर्मचारी / सामयिक कर्मचारी या किसी अन्य गैर-नियमित श्रेणी के रोजगार के रूप में की गई थी। हमारे दृष्टिकोण का समर्थन सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय **भावनगर विश्वविद्यालय बनाम पलिताना शुगर मिल (पी) लिमिटेड, (2003) 2 एससीसी 111** में मिलता है, जिसमें यह पुनः कहा गया कि "एक निर्णय, जैसा कि सर्वविदित है, एक प्राधिकरण है जो इसे निर्धारित करता है और न कि इसके आधार पर क्या तार्किक रूप से निकाला जा सकता है।"

39. श्री. वाई. के. मिश्रा ने आगे दलील दी कि सामयिक संग्रह अमीन के रूप में कर्मचारी द्वारा दी गई सेवा की गणना करते हुए पेंशन के भुगतान के लिए अर्हकारी सेवा की गणना करते हुए कई रिट याचिकाएं स्वीकार की गई हैं और इसलिए, इस अदालत को समान दृष्टिकोण अपनाना चाहिए ताकि समता (इक्विटी) बनाए रखी जा सके और संतुलन स्थापित किया जा सके।

40. श्री. वाई. के. मिश्रा का उपरोक्त प्रस्तुतिकरण हमें कई कारणों से आकर्षित नहीं करता। प्रथम, प्रस्तुतिकरण अस्पष्ट है, क्योंकि उन्होंने इस अदालत के समक्ष कोई भी तथाकथित अनेक निर्णयों में से कोई भी नहीं रखा है। दूसरा, अनेक रिट याचिकाओं को स्वीकार किए जाने मात्र से कानून के प्रावधानों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, जब तक कि कानून की व्याख्या और निर्धारण किसी ऐसे निर्णय द्वारा नहीं किया गया हो जिसका बाध्यकारी पूर्व निर्णयात्मक मूल्य हो। तीसरा, समता (इक्विटी) केवल कानून का पूरक हो सकती है और यह कानून को प्रतिस्थापित नहीं कर सकती। किसी भी मामले में, इक्विटी कानून के स्पष्ट प्रावधानों को ओवरराइड नहीं कर सकती।

41. **बीएसएनएल बनाम मिश्री लाल, (2011) 14 एससीसी 739** में, रिट याचिका दायर की गई थी जिसमें भर्ती नियमावली, 2005 और उन पत्रों को रद्द करने की प्रार्थना की गई थी जिनमें रिट याचिकाकर्ताओं को पदोन्नति के लिए सीमित आंतरिक प्रतिस्पर्धात्मक परीक्षा में उपस्थित होने के लिए कहा गया था। रिट

अनुवादित

याचिका को अनुमति दी गई और आदेश को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी गई। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपील को अनुमति दी और यह माना कि संबंधित पदों को सीमित आंतरिक प्रतिस्पर्धात्मक परीक्षा द्वारा भरने का निर्णय एक नीतिगत निर्णय था और उच्च न्यायालय को इसमें दोष नहीं मिल सकता था। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि अदालतें सामान्यतः नीतिगत निर्णयों में हस्तक्षेप नहीं कर सकती हैं। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा कि "इस मामले में समता का कोई प्रश्न नहीं है क्योंकि यह अच्छी तरह से स्थापित है कि यदि कोई संघर्ष होता है तो कानून समता पर प्रबल होता है। समता केवल कानून का पूरक हो सकती है, इसे प्रतिस्थापित नहीं कर सकती। जैसा कि लैटिन कहावत है "ड्यूरा लेक्स सेड लेक्स" जिसका अर्थ है "कानून कठोर है, लेकिन यह कानून है।

42. इस मामले में उपस्थित अन्य विद्वान अधिवक्ताओं ने भी अपने तर्क प्रस्तुत किए हैं, लेकिन वे पहले भाग में दर्ज और निपटाए गए तर्क से मेल खाते हैं और इसलिए, उन्हें दोहराया नहीं जा रहा है।

43. उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या- 1, 2021 की धारा 2 में निहित प्रावधानों के अनुसार, अर्हकारी सेवा के लिए अपेक्षित है - (i) किसी अधिकारी को पेंशन के प्रयोजनार्थ किसी नियम या विनियम या शासनादेश में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी "अर्हकारी सेवा' का तात्पर्य सरकार द्वारा विहित सेवा नियमावली के उपबंधों के अनुसार किसी स्थायी या अस्थायी पद पर नियुक्त किसी अधिकारी द्वारा उक्त पद के लिए की गयी सेवाओ से है।

(ii) उसकी नियुक्ति सेवा नियमों में वर्णित प्रावधानों के अनुसार की गई हो।

44. सामयिक संग्रह अमीनों को कार्य की अनिवार्यता के अनुसार नियुक्त किया जाता है तथा उन्हें किसी अस्थायी या स्थायी पद के सापेक्ष नियुक्त नहीं किया जाता है। साथ ही, उन्हें किन्हीं सेवा नियमों में निहित प्रावधानों के अनुसार नियुक्त नहीं किया जाता है। पुनः स्पष्ट करें तो यह देखा जा सकता है कि उ. प्र. संग्रह नियमावली के प्रस्तर 19 में उपबंध है कि अमीनों की सहायता हेतु वार्षिक आधार पर सामयिक संग्रह अमीनों की नियुक्तियों की आवश्यकताओं की उपजिलाधिकारी सूक्ष्मता से पर्यवेक्षण करेंगे तथा कलेक्टर को एक रिपोर्ट प्रस्तुत करेंगे, जो अतिरिक्त सामयिक कर्मचारियों की नियुक्ति को मंजूरी देने के लिए मंडलायुक्त से अनुरोध करेंगे। तथापि, उ.. प्र. संग्रह नियमावली केवल प्रशासनिक निर्देशों का संग्रह है तथा यह कोई क़ानून या वैधानिक नियम नहीं है।

45. **चन्द्रा सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2022 (3) ALJ 781** के मामले में, इस न्यायालय ने कहा:

"13. सामयिक संग्रह अमीन को केवल एक निर्दिष्ट कार्य के लिए सीमित समय के लिए नियुक्त किया जाता है, जिसके पूरा होने के बाद उसे सेवामुक्त कर दिया दिया जाता है। सामयिक संग्रह अमीन के रूप में अनियमित रूप से किया गया कार्य 'उत्तर प्रदेश सरकार के तहत निरंतर अस्थायी या आधिकारिक सेवा'की श्रेणी में नहीं आता जैसा कि सिविल सेवा विनियम के नियम 352 (a) में वर्णित है। यह उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 1, 2021 *की*

अनुवादित

धारा 2 में आने वाले "अस्थायी या स्थायी पद पर नियुक्त अधिकारी द्वारा प्रदान की गई सेवाओं" के दायरे में भी नहीं आएगा। इसलिए, याचिकाकर्ता द्वारा सामयिक संग्रह अमीन के रूप में की गई सेवा को सिविल सेवा विनियमन के अनुच्छेद 361 या उत्तर प्रदेश पेंशन एवं विधिमान्यकरण सेवा अधिनियम, 2021 की धारा 2 के तहत परिभाषित अर्हक सेवा की गणना करते समय नहीं जोड़ा जा सकता है।"

46. माननीय एकल न्यायमूर्ति ने रिट याचिका को खारिज कर दिया, यह मानते हुए कि संग्रह अमीन का पद सामयिक है और यह नियमित पद नहीं है, इसलिए सक्षम प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता द्वारा की गई सेवाओं को उसकी नियमित सेवा के रूप में सही तरीके से नहीं गिना। माननीय एकल न्यायमूर्ति द्वारा पारित उक्त आदेश के विरुद्ध दायर विशेष अपील को खारिज करते हुए, खंडपीठ ने उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 1, 2021 के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए यह माना कि सामयिक आधार पर संग्रह अमीन के रूप में की गई सेवाएं 'सेवा जो एक अस्थायी या स्थायी पद पर नियुक्त अधिकारी द्वारा की जाती है' की परिभाषा में नहीं आतीं और जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, ऐसी नियुक्ति किसी सेवा नियमों के अनुसार नहीं है।

47. समीक्षा याचिका संख्या- 117/2022 को उपरोक्त निर्णय की समीक्षा के लिए दायर किया गया है और उपरोक्त चर्चा के दृष्टिकोण से, हमें उपरोक्त निर्णय में कोई त्रुटि नहीं मिलती, न ही कोई ऐसी त्रुटि जो रिकॉर्ड के स्पष्ट होने पर दिखाई दे, जो उपरोक्त निर्णय की समीक्षा को उचित ठहराए। इसलिए, हम इस विचार में हैं कि विशेष अपील संख्या- 398/2021 में पारित निर्णय दिनांक- 22.04.2022 में कोई त्रुटि नहीं है, न ही कोई ऐसी त्रुटि है जो रिकॉर्ड के स्पष्ट होने पर दिखाई दे। समीक्षा याचिका संख्या 117/2022 में कोई योग्यता नहीं है और इसे खारिज किया जाना चाहिए।

48. अब हम समीक्षा याचिका संख्या- 121/2022 में आते हैं, जो विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या- 259/2020 में पारित निर्णय दिनांक- 21.06.2021 की समीक्षा करने की मांग करती है। उक्त विशेष अपील को इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि: -

"1.7.1989 की सरकारी आदेश यह प्रावधान करता है कि अस्थायी सरकारी कर्मचारी जिन्होंने न्यूनतम 10 वर्षों की सेवा पूरी कर ली है, उन्हें स्थायी कर्मचारी के समान दर पर पेंशन, ग्रेच्युटी और पारिवारिक पेंशन का हकदार होगा, जो संबंधित नियमों के तहत देय होती हैं। हालांकि, उत्तरदाता-याचिकाकर्ता के प्रतिनिधित्व को खारिज करते समय, सक्षम प्राधिकारी ने केवल उस अवधि की सेवा को माना है जो उत्तरदाता-याचिकाकर्ता ने स्थायी बनने के बाद प्रदान की थी, अर्थात 7 वर्ष 6 महीने 2 दिन और चूंकि उसने स्थायी बनने के बाद 10 वर्ष की सेवा पूरी नहीं की थी, इसलिए पेंशन को अस्वीकार कर दिया गया है।

यह विवाद नहीं है कि 1.7.1989 की सरकारी आदेश लागू है।"

49. डिवीजन बेंच ने **राजस्व परिषद् बनाम प्रसिद्ध नारायण उपाध्याय**, **(2006) 2 ऑल एलजे 66** के मामले में फैसले के बाद विशेष अपील का फैसला किया, जो कि उत्तर प्रदेश

अनुवादित

अधिनियम संख्या 1/2021 के अधिनियमित होने से पहले का मामला भी था, जिसमें समान प्रावधानों वाले अध्यादेश का पालन किया गया था। उस मामले में, विरोधी पक्षकार ने 10.02.1962 से संग्रह अनुसेवक के रूप में काम किया था, जब तक कि वह 37 वर्षों से अधिक समय तक काम करने के बाद 31.07.1999 को सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने पर सेवानिवृत्त नहीं हो गया। माननीय एकल न्यायमूर्ति ने पाया कि सेवा पुस्तिका में उनके रोजगार का उल्लेख संग्रह अनुसेवक (अस्थायी) के रूप में किया गया था, लेकिन बाद में सेवा पुस्तिका में उल्लेख किया गया कि वह सामयिक संग्रह अनुसेवक के रूप में काम कर रहे थे। वर्ष 1996 में अपीलकर्ताओं ने याचिकाकर्ता की सेवा को नियमित करने के लिए राजस्व बोर्ड को सिफारिश की थी, लेकिन कोई आदेश जारी नहीं किया जा सका और इस बीच वह 31.07.1999 को सेवानिवृत्त हो गए। डिवीजन बेंच ने इस तथ्य पर ध्यान देने के बाद अपील का फैसला किया कि पेंशन लाभ केवल इस कारण से अस्वीकार कर दिया गया था कि अपीलकर्ताओं द्वारा पुष्टि या नियमितीकरण *का औपचारिक आदेश जारी नहीं किया गया था। इस पृष्ठभूमि में, डिवीजन बेंच ने माना कि: -*

"12. *''अर्हकारी सेवा" शब्द को सिविल सेवा विनियमन के अनुच्छेद* 361 *के अध्याय* 16 *की धारा* 1 *में परिभाषित किया गया है, जिसमें प्रावधान है कि किसी अधिकारी की सेवा तब तक पेंशन के लिए अर्ह नहीं होगी जब तक कि वह निम्नलिखित तीन शर्तों के अनुरूप न हो:-*

(A) सेवा सरकार के अधीन होनी चाहिए।

(B) रोजगार मौलिक और स्थायी होना चाहिए।

(C) सेवा का भुगतान सरकार द्वारा किया जाना चाहिए।

13. वर्तमान मामले में, शर्त संख्या A और C संतुष्ट हैं और विवाद केवल शर्त संख्या B के संबंध में है, अर्थात सेवा की स्थायी प्रकृति की कमी। हालांकि, हमारी राय में, ये प्रावधान उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 24 के 1975 द्वारा मौलिक नियम 56 में संशोधन के बाद उपरोक्त प्रावधान समाप्त हो गए हैं, जो अस्थायी कर्मचारियों की सेवानिवृत्ति की अनुमति देता है और धारा (e) में यह प्रावधान करता है कि एक सेवानिवृत्त पेंशन देय है और अन्य सेवानिवृत्त लाभ, यदि कोई हों, प्रत्येक सरकारी सेवक को उपलब्ध होंगे जो इस नियम के तहत सेवानिवृत्त होता है या जिसे सेवानिवृत्त होने की अनुमति दी जाती है। चूंकि उपरोक्त संशोधित नियम 56 विधायिका द्वारा एक अधिनियम के माध्यम से किया गया था, इसलिए सिविल सेवा नियमावली के तहत अन्यथा प्रावधान जो पूर्व-संवैधानिक हैं, उन्हें मौलिक नियम 56 के प्रावधानों को रास्ता देना होगा। अनुच्छेद 361 के शर्तें (उपर्युक्त) स्पष्ट रूप से मौलिक नियम 56 के साथ असंगत हैं और इस प्रकार अप्रभावी हैं।"

14. एक समान विवाद पहले इस न्यायालय के समक्ष ***डॉ0 हरी शंकर अशोपा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य*** *के मामले में विचारार्थ आया था। 1989 (59) एफएलआर 110। मौलिक नियम 56 और सिविल सेवा नियमावली में निहित*

अप्रमाणित

विभिन्न प्रावधानों का उल्लेख करने के बाद, इस न्यायालय ने इस प्रकार टिप्पणी किया: -

"नियम 56 की धारा (e) स्पष्ट रूप से हर सरकारी सेवक को जो अधिवार्षिकी प्राप्ति की उम्र को प्राप्त करने पर सेवानिवृत्त होता है, या जिसे समय से पहले सेवानिवृत्त किया जाता है या जो स्वेच्छा से सेवानिवृत्त होता है, को सेवानिवृत्ति पेंशन को पहचानता है, घोषित करता है और गारंटी देता है। विशेष रूप से, प्रत्येक सरकारी सेवक (चाहे स्थायी हो या अस्थायी) जो नियम 56 की धारा (a) या धारा (b) के तहत सेवानिवृत्त होता है, या जिसे धारा (c) के तहत सेवानिवृत्त होने की अनुमति दी जाती है, सेवानिवृत्ति पेंशन का हकदार बनता है, बेशक, अनुच्छेद 361 के पहले और तीसरे शर्तों को पूरा किया गया है।"

15. इस मामले के इस दृष्टिकोण में, अपीलकर्ताओं का यह तर्क कि चूंकि याचिकाकर्ता-उत्तरदाता स्थायी कर्मचारी नहीं था और इसलिए पेंशन के पात्र नहीं था, स्पष्ट रूप से भ्रांतिपूर्ण है और इसे खारिज किया जाता है।"

50. यद्यपि उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या-1/2021 04.03.2021 से प्रभावी हो गया था, लेकिन 21.06.2021 को विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 259/2020 पर निर्णय लेते समय डिवीजन बेंच के ध्यान में यह नहीं आया। इसलिए, हमारा विचार है कि उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या-1/2021 के प्रावधान पर विचार किए बिना विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या- 259/2020 को खारिज करने वाले डिवीजन बेंच द्वारा दिनांक 21.06.2021 को पारित निर्णय में स्पष्ट त्रुटि है। तदनुसार समीक्षा याचिका संख्या- 121/2022 को अनुमति दी जानी चाहिए।

51. माननीय एकल न्यायमूर्ति द्वारा रिट ए संख्या- 4305/2021 को स्वीकार करते हुए दिनांक 13.09.2022 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध राज्य द्वारा विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या- 84/2023 दायर की गई है और प्रतिवादियों को याचिकाकर्ता द्वारा सामयिक संग्रह अमीन के रूप में प्रदान की गई सेवा को ध्यान में रखते हुए याचिकाकर्ता को देय पेंशन लाभ की गणना करने का निर्देश दिया गया है। पूर्वगामी चर्चा के मद्देनजर, यह विशेष अपील अनुमति दिए जाने योग्य है और माननीय एकल न्यायमूर्ति द्वारा पारित आदेश को रद्द किया जाना चाहिए।

52. विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या- 307/2022 को राज्य द्वारा, माननीय एकल न्यायमूर्ति द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 23.09.2022 को खारिज करने के लिए दायर किया गया है, जिसमें याचिका को रिट ए संख्या- 4305/2021 के आदेश दिनांक-13.09.2022 के अनुसार स्वीकार किया गया था, और इसलिए यह विशेष अपील भी स्वीकार की जाती है और माननीय एकल न्यायमूर्ति द्वारा पारित आदेश को रद्द कर दिया जाता है।

<u>आदेश</u>

53. **समीक्षा याचिका संख्या- 121/2022 को स्वीकार किया जाता है।** विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या- 259/2020 को खारिज करते हुए दिनांक- 21.06.2021 को पारित निर्णय और आदेश को रद्द किया जाता है। परिणामस्वरूप, विशेष अपील स्वीकार की जाती है और रिट याचिका संख्या- 8737 (एस/एस)/2011 में

अनुवादित

दिनांक- 26.02.2019 को पारित निर्णय और आदेश को भी रद्द किया जाता है और उपरोक्त रिट याचिका खारिज की जाती है क्योंकि याचिकाकर्ता द्वारा सामयिक संग्रहण के रूप में दी गई सेवा किसी भी अस्थायी या स्थायी पद पर नहीं थी, और यह सरकार द्वारा बनायी गई किसी भी नियमावली के अनुसार नियुक्ति के अनुसार नहीं थी।

54. **विशेष अपील (दोषपूर्ण) संख्या (D) - 307/2022 को स्वीकार किया जाता है** और रिट ए संख्या- 6005/2022 में दिनांक- 23.09.2022 को पारित निर्णय और आदेश को भी रद्द किया जाता है और उपरोक्त रिट याचिका खारिज की जाती है।

55. समीक्षा याचिका संख्या- 117/2022 को खारिज किया जाता है।

56. **विशेष अपील (दोषपूर्ण) संख्या- 84/2023 को स्वीकार किया जाता है** और रिट ए संख्या- 4305/2021 में दिनांक- 13.09.2022 को पारित निर्णय और आदेश को भी रद्द किया जाता है और उपरोक्त रिट याचिका खारिज की जाती है।

57. लागतों के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

(2023) 6 ILRA 186

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 07.06.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

अनुच्छेद 227 के अंतर्गत वाद संख्या 3243 वर्ष 2023

नगर निगम मुरादाबाद ...याचिकाकर्ता

बनाम

एम/एस ए 2 जेड वेस्ट मैनेजमेंट (मुरादाबाद) लिमिटेड एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: संतोष श्रीवास्तव

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सुयश गुप्ता, इंदु प्रकाश सिंह

(ए) भारत का संविधान - अनुच्छेद 227 - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश XLI का नियम 27 - अपीलीय न्यायालय में अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करना, मध्यस्थता और सुलह अधिनियम 1996 - धारा 16 - वाणिज्यिक विवादों में इसके अनुप्रयोग में सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 में संशोधन, धारा 19 - प्रक्रिया के नियमों का निर्धारण, धारा 34 - मध्यस्थ पुरस्कारों को रद्द करने के लिए आवेदन, धारा 37 - अपील योग्य आदेश, धारा 45 - मध्यस्थता के लिए पक्षों को संदर्भित करने की न्यायिक प्राधिकरण की शक्ति - मध्यस्थता समझौते में निहित शर्तें उस व्यक्ति पर बाध्यकारी नहीं हैं जो समझौते का पक्षकार नहीं है। (पैरा -17)

याचिकाकर्ता-आवेदक द्वारा वाणिज्यिक न्यायालय के समक्ष आवेदन - हाइड्रोएयर प्राइवेट लिमिटेड को पक्षकार बनाने के लिए। लिमिटेड को प्रतिवादी के रूप में - मध्यस्थता मामला - मध्यस्थता समझौते का पक्षकार नहीं - वाणिज्यिक न्यायालय द्वारा अस्वीकृत - चुनौती के अधीन आदेश की वैधता - वाणिज्यिक न्यायालय ने अतिरिक्त साक्ष्य के लिए आवेदन को अस्वीकृत किया - मध्यस्थता और सुलह अधिनियम की धारा 34 का हवाला देते हुए - मध्यस्थता पुरस्कार को केवल तभी

अनुवादित

रद्द किया जा सकता है जब आवेदक मध्यस्थ न्यायाधिकरण के रिकॉर्ड को साबित कर दे - कि पुरस्कार को रद्द किया जा सकता है - धारा 34 में उल्लिखित आधार पर। **(पैरा - 2,11)**

निर्णय:-वाणिज्यिक न्यायालय द्वारा पक्षकार के लिए आवेदन को सही तरीके से खारिज कर दिया गया, एकॉर्ड हाइड्रोएयर प्राइवेट लिमिटेड, मध्यस्थता समझौते का पक्षकार नहीं है, जो किसी भी अवैधता का संकेत नहीं देता है। मध्यस्थता मामले में वाणिज्यिक न्यायालय द्वारा पारित आदेश जहां तक कि इसने याचिकाकर्ता द्वारा मध्यस्थता पुरस्कारों की प्रतियों के रूप में अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए की गई प्रार्थना को खारिज कर दिया, रद्द कर दिया गया। पांच मध्यस्थता पुरस्कारों के रूप में अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए आवेदन, जो याचिकाकर्ता द्वारा पहले ही दायर किए जा चुके हैं, को स्वीकार किया गया। वाणिज्यिक न्यायालय धारा 34 के तहत मध्यस्थता आवेदन पर शीघ्र निर्णय करेगा, अतिरिक्त साक्ष्यों पर विचार करेगा तथा प्रतिवादियों को इसका खंडन करने की अनुमति देगा। **(पैरा-18,28)**

याचिका आंशिक रूप से स्वीकृत। (ई-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. क्लोरो कंट्रोल्स (आई) पी. लिमिटेड बनाम सेवर्न ट्रेंट वाटर प्यूरिफिकेशन इंक. एवं अन्य, एआईआर 2012 एससी (सप.) 1017
2. पानीपत-जालंधर एनएच-1 टोलवे प्राइवेट लिमिटेड बनाम एनएचएआई, मध्यस्थता याचिका संख्या 820/2021
3. ए.पी. ट्रांसको बनाम साई रिन्यूएबल पावर प्राइवेट लिमिटेड, (2011) 11 एससीसी 34

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी द्वारा दिया गया)

1. याचिकाकर्ता ने एक पूरक शपथपत्र प्रस्तुत किया है, जिसे अभिलेख पर लिया गया है।

2. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री पंकज श्रीवास्तव एवं श्री संतोष श्रीवास्तव, प्रतिवादी संख्या 1 के अधिवक्ता श्री सुयश गुप्ता एवं श्री अरुण गौड़ तथा प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री इंदु प्रकाश सिंह को सुना गया तथा अभिलेखों का अवलोकन किया गया।

3. भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत प्रस्तुत इस तत्काल याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता ने वाणिज्यिक न्यायालय संख्या 2, लखनऊ द्वारा मध्यस्थता मामला संख्या 923/2019 में पारित दिनांक 23.05.2023 के आदेश की वैधता को चुनौती दी है, जिसके अंतर्गत वाणिज्यिक न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता-आवेदक द्वारा प्रस्तुत मामले में प्रतिवादी के रूप में मेसर्स एकॉर्ड हाइड्रोएयर प्राइवेट लिमिटेड को सम्मिलित करने के आवेदन को अस्वीकार कर दिया गया है।

4. संक्षेप में वर्णित तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी संख्या 1 और प्रतिवादी संख्या 2 के साथ 30 वर्ष की अवधि के लिए ठोस अपशिष्ट का वैज्ञानिक निपटान

अनुवादित

सुनिश्चित करने के लिए दिनांक 28.04.2010 को त्रिपक्षीय समझौता किया था। समझौते में यह विशिष्ट शर्त थी कि रियायतग्राही, यू.एल.बी. (शहरी स्थानीय निकाय) अर्थात नगर निगम, मुरादाबाद की पूर्व सहमति के बिना समझौते या उसके अंतर्गत अधिकारों, लाभों और दायित्वों के निर्वहन को, किसी व्यक्ति के पक्ष में नहीं सौंपेगा। यधपि, रियायतग्राही ने मेसर्स एकॉर्ड हाइड्रोएयर प्राइवेट लिमिटेड के साथ दिनांक 02.07.2013 को एक सहमति पत्र पर हस्ताक्षर किए और दिनांक 28.04.2010 के त्रिपक्षीय समझौते की शर्तों का उल्लंघन करते हुए, दिनांक 28.04.2010 के समझौते के अंतर्गत अपने दायित्वों को मेसर्स एकॉर्ड हाइड्रोएयर प्राइवेट लिमिटेड को सौंप दिया। प्रतिवादी संख्या 1 और मेसर्स एकॉर्ड हाइड्रोएयर प्राइवेट लिमिटेड के बीच दिनांक 02.07.2013 को हस्ताक्षरित सहमति पत्र में वर्तमान मामले के पक्षों के मध्य दिनांक 28.04.2010 को निष्पादित त्रिपक्षीय समझौते का संदर्भ दिया गया है तथा कार्य का क्षेत्र संबंधित रियायत समझौते का संदर्भ देता है।

5. ऐसा प्रतीत होता है कि दिनांक 02.07.2013 का सहमति पत्र उन कार्यों के निष्पादन में जारी किया गया है, जो दिनांक 28.04.2010 के त्रिपक्षीय समझौते के अंतर्गत किए जाने थे। दिनांक 02.07.2013 के समझौते की शर्तों में से एक यह है कि मेसर्स एकॉर्ड हाइड्रोएयर प्राइवेट लिमिटेड, दिनांक 28.04.2010 के त्रिपक्षीय समझौते के अंतर्गत प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा निष्पादित कार्यों के बदले प्रतिवादी संख्या 2 से भुगतान प्राप्त करने का अधिकारी होगा।

6. मेसर्स एकॉर्ड हाइड्रोएयर प्राइवेट लिमिटेड और प्रतिवादी संख्या 1 के बीच कुछ विवाद हुए, जिसके संबंध में मध्यस्थता कार्यवाही शुरू की गई। प्रतिवादी संख्या 2 को भी मध्यस्थता कार्यवाही में एक पक्ष बनाया गया। प्रतिवादी संख्या 2 ने धारा 37 के अंतर्गत एक आवेदन प्रस्तुत करके अपने पक्षकारीकरण को चुनौती दी, जिसे मध्यस्थ न्यायाधिकरण ने अस्वीकार कर दिया। प्रतिवादी संख्या 2 ने लखनऊ में वाणिज्यिक न्यायालय के समक्ष मध्यस्थता अधिनियम की धारा 37 के अंतर्गत अपील संख्या 674/2014 प्रस्तुत करके अस्वीकृति के आदेश को चुनौती दी।

7. दिनांक 28.04.2010 के समझौते के निष्पादन में भी पक्षों के बीच कुछ विवाद उत्पन्न हुए, जिसके संबंध में प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा अलग से मध्यस्थता कार्यवाही शुरू की गई, जिसका समापन मध्यस्थ द्वारा दिनांक 03.09.2019 को दिए गए पंचाट के साथ हुआ। याचिकाकर्ता ने माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 के अंतर्गत एक आवेदन प्रस्तुत करके दिनांक 03.09.2019 के पंचाट को चुनौती दी है, जिसे मध्यस्थता वाद संख्या 923/2019 के रूप में पंजीकृत किया गया है और वाणिज्यिक न्यायालय संख्या 2, लखनऊ के समक्ष लंबित है।

8. याचिकाकर्ता ने धारा 34 के अंतर्गत प्रस्तुत आवेदन की कार्यवाही को धारा 37 के अंतर्गत अपील के साथ एकीकृत करने के लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया, जो प्रतिवादी संख्या 1 और मेसर्स एकॉर्ड हाइड्रोएयर प्राइवेट लिमिटेड

अनुवादित

के बीच मध्यस्थता कार्यवाही में प्रतिवादी संख्या 2 को पक्षकारों की सूची से हटाये जाने के उसके आवेदन को अस्वीकार करने के आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत किया गया था। आवेदन को दिनांक 20.03.2023 के आदेश के माध्यम से अस्वीकार कर दिया गया। याचिकाकर्ता ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत याचिका संख्या 1551/2023 प्रस्तुत करके इस न्यायालय के समक्ष आदेश को चुनौती दी थी, जिसे दिनांक 29.03.2023 के आदेश के माध्यम से निरस्त कर दिया गया था ।

9. इस न्यायालय द्वारा दिनांक 29.03.2023 के आदेश के माध्यम से भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत प्रस्तुत की गई पिछली याचिका को निरस्त करने के बाद, याचिकाकर्ता ने वाणिज्यिक न्यायालय के समक्ष मेसर्स एकॉर्ड हाइड्रोएयर प्राइवेट लिमिटेड को पक्षकार बनाने के लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया। आवेदन के लंबित रहने की अवधि में, याचिकाकर्ता ने सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष एस.एल.पी. (सिविल) संख्या 7327/2023 प्रस्तुत करके दिनांक 29.03.2023 के आदेश को चुनौती दी। याचिकाकर्ता ने एस.एल.पी. में भी मेसर्स एकॉर्ड हाइड्रोएयर प्राइवेट लिमिटेड को पक्षकार बनाने के लिए एक आवेदन अर्थात आई.ए. संख्या 72892/2023, प्रस्तुत किया। उपरोक्त आवेदन में याचिकाकर्ता ने मेसर्स एकॉर्ड हाइड्रोएयर प्राइवेट लिमिटेड को प्रतिवादी के रूप में सम्मिलित करने के लिए आवेदन प्रस्तुत किया। आवेदन को दिनांक 23.05.2023 के आदेश के माध्यम से अस्वीकार कर दिया गया है जिसमें कहा गया है कि "दिनांक 28.04.2010 के समझौते से यह स्पष्ट है कि यह मुरादाबाद नगर निगम (याचिकाकर्ता), कंस्ट्रक्शन एंड डिजाइन सर्विसेज (प्रतिवादी संख्या 2) और मेसर्स ए 2 जेड वेस्ट मैनेजमेंट मुरादाबाद प्राइवेट लिमिटेड (प्रतिवादी संख्या 1) के मध्य निष्पादित किया गया था। मेसर्स एकॉर्ड हाइड्रोएयर प्राइवेट लिमिटेड इस समझौते का पक्षकार नहीं है, इसलिए मेसर्स एकॉर्ड हाइड्रोएयर प्राइवेट लिमिटेड को विद्वान मध्यस्थ द्वारा पारित दिनांक 03.09.2019 के पंचाट को अपास्त करने के लिए मध्यस्थता और सुलह अधिनियम 1996 की धारा 34 के अंतर्गत वर्तमान याचिका में पक्षकार नहीं बनाया जा सकता है ।"

10. उपरोक्त एस.एल.पी., माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 25.04.2023 के आदेश के माध्यम से निरस्त कर दी गई तथा एस.एल.पी. को निरस्त करते हुए लंबित आवेदनों को भी निस्तारित कर दिया गया। इस प्रकार, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा एस.एल.पी. में मेसर्स एकॉर्ड हाइड्रोएयर प्राइवेट लिमिटेड के पक्षकार बनने के आवेदन को स्वीकार नहीं किया गया।

11. वाणिज्यिक न्यायालय ने अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने के आवेदन को केवल इस कारण से अस्वीकार कर दिया है कि माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 में यह प्रावधान है कि मध्यस्थता पंचाट को न्यायालय द्वारा तभी अपास्त किया जा सकता है जब आवेदन करने वाला पक्ष मध्यस्थ न्यायाधिकरण के अभिलेख के आधार पर यह

अनुवादित

स्थापित करता है कि पंचाट धारा 34 में उल्लिखित आधार पर निरस्त किए जाने योग्य है।

12. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री पंकज श्रीवास्तव ने क्लोरो कंट्रोल्स (आई) प्रा. लिमिटेड बनाम सेवर्न ट्रेंट वाटर प्यूरिफिकेशन इन्स. और अन्य, एआईआर 2012 एससी (एसयूपीपी.) 1017 के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया है। यह विषय अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक मध्यस्थता से उत्पन्न हुआ था, जिसके लिए वैधानिक प्रावधान माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 के भाग-2 में निहित हैं, जबकि प्रश्नगत मध्यस्थता, माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 के भाग-1 के परिधि में आती है, जिसमें अधिनियम के भाग-2 में निहित प्रावधानों के अतिरिक्त मध्यस्थता के लिए प्रावधान निहित हैं। क्लोरो कंट्रोल (उपरोक्त) में, अधिनियम के भाग-2 के अंतर्गत आने वाली धारा 45 में निहित प्रावधानों से सरोकार के समय, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित प्रश्नों पर विचार किया:

1.1 माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (संक्षेप में "1996 अधिनियम") की धारा 45 की परिधि और विस्तार क्या है?

1.2 क्या सुकन्या होल्डिंग्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम जयेश एच. पंड्या [(2003) 5 एससीसी 531 : (एआईआर 2003 एससी 2252 : 2003 एआईआर एससीडब्लू 2209)] के वाद में प्रतिपादित सिद्धांत विधि का सही प्रतिपादन है?

1.3 क्या ऐसे मामले में जहां विभिन्न पक्षों के बीच कई समझौतों पर हस्ताक्षर किए गए हैं और क्या कुछ में मध्यस्थता खंड सम्मिलित है और अन्य में नहीं और आगे न्यायालय के समक्ष कार्यवाही में (किसी वाद में) और मध्यस्थता समझौते में पक्ष अभिन्न रूप से समान नहीं हैं, क्या विवादों को सम्पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से मध्यस्थ न्यायाधिकरण के समक्ष भेजा जा सकता है, विशेष रूप से, जहाँ किसी मामले के पक्षकार मध्यस्थता समझौते के किसी पक्षकार के माध्यम से या उसके अधीन दावा कर रहे हों ?

1.4 क्या 1996 के अधिनियम में किसी विशिष्ट प्रावधान के अभाव में कार्रवाई के कारणों के पक्षकारो का द्विभाजन या विखंडन स्वीकार्य होगा ?

13. उपर्युक्त प्रश्नों का उत्तर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निम्नलिखित प्रकार से दिया गया:

"167. धारा 45, 1996 के अधिनियम के भाग II के अध्याय I के अंतर्गत आने वाला एक प्रावधान है, जो एक स्व-निहित संहिता है। 'दावा करने वाले व्यक्ति या जिसके अधीन दावा किया गया' इस अभिव्यक्ति का तात्पर्य अनेक और बहुपक्षीय समझौते से, अपने परिधि में होगा, यद्यपि अपवादस्वरूप ही। यहां तक कि कुछ अनुबंधो पर हस्ताक्षर न करने वाले पक्ष भी प्रार्थना कर सकते हैं और उन्हें मध्यस्थता के लिए भेजा जा सकता है, इस शर्त के अधीन कि वे अनुसूची I सहपठित धारा 44 और 45 के अंतर्गत पूर्व-आवश्यकताओं को पूरा करते हों। गैर-हस्ताक्षरकर्ता पक्षों का संदर्भ मध्यस्थता न्यायशास्त्र के लिए न तो अज्ञात है और न ही यह अस्वीकार्य है।

अनुवादित

168. किसी मामले के तथ्यों के आधार पर न्यायालय को सदैव उन पक्षकारों के नाम हटाने की शक्ति प्राप्त है जो न्यायालय के समक्ष कार्यवाही के लिए न तो आवश्यक हैं और न ही उचित हैं। समूह कंपनियों के मामलों में या जहां विभिन्न समझौते मिलकर एक समग्र लेनदेन का गठन करते हैं, जैसे मूल समझौता और अन्य सभी समझौते, मूल समझौते के सहायक होते हैं तथा मूल समझौते के प्रभावी और पूर्ण कार्यान्वयन के लिए, न्यायालय को हस्ताक्षरकर्ता या यहां तक कि गैर-हस्ताक्षरकर्ता पक्षों के बीच विद्यमान विवादों के लिए भी मध्यस्थता का संदर्भ लेना पड़ सकता है। हालाँकि, न्यायालय को अपने विवेक का प्रयोग असाधारण, सीमित, उचित और आवश्यक मामलों में ही तथा बहुत सावधानी से करना होगा।"

14. यह पक्षकारों का मामला नहीं है कि मेसर्स ए 2 जेड वेस्ट मैनेजमेंट मुरादाबाद और मेसर्स एकॉर्ड हाइड्रोएयर प्राइवेट लिमिटेड कम्पनियों का एक समूह है और ऐसा नहीं है कि दिनांक 26.04.2010 का समझौता, मूल समझौते के रूप में निष्पादित किया गया था।

15. मध्यस्थता अधिनियम की धारा 45 द्वारा शासित विषयो में भी माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उन पक्षों को पक्षकार बनाने के लिए कोई सिद्धांत निर्धारित नहीं किया, जो मध्यस्थता समझौते के पक्षकार नहीं हैं। इसलिए, मेरा विचारित दृष्टिकोण है कि क्लोरो कंट्रोल्स (आई) प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त) के वाद में निर्णय, किसी भी प्रकार से याचिकाकर्ता की सहायता नहीं करता है।

16. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा रखा गया अगला निर्णय दिल्ली न्यायालय द्वारा पानीपत-जालंधर एनएच-1 टोलवे प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण, मध्यस्थता याचिका संख्या 820/2021, के वाद में दिनांक 17.01.2022 को पारित निर्णय है। यह माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 11(6) के अंतर्गत एक याचिका थी और एक ऐसे पक्ष को अभियोजित करने का मुद्दा, जो मध्यस्थता समझौते का पक्षकार नहीं है, न तो उपरोक्त विषय सम्मिलित था और न ही इस पर निर्णय लिया गया था और इसलिए, यह निर्णय भी याचिकाकर्ता की सहायता नहीं करता है।

17. ए.पी. ट्रांस्को बनाम साई रिन्यूएबल पावर प्राइवेट लिमिटेड, (2011) 11 एससीसी 34 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि मध्यस्थता समझौते में निहित शर्तें उस व्यक्ति पर बाध्यकारी नहीं हैं जो समझौते का पक्षकार नहीं है ।

18. जैसा कि मेसर्स एकॉर्ड हाइड्रोएयर प्राइवेट लिमिटेड मध्यस्थता समझौते का पक्षकार नहीं है, इसलिए वाणिज्यिक न्यायालय ने मेसर्स एकॉर्ड हाइड्रोएयर प्राइवेट लिमिटेड को पक्षकार बनाने के आवेदन को न्यायानुसार अस्वीकार कर दिया है और मुझे दिनांक 23.05.2023 के आदेश में कोई अवैधता नहीं मिली है, जो इस न्यायालय के हस्तक्षेप का आधार बन सके।

अनुवादित

19. उसी आवेदन में याचिकाकर्ता द्वारा की गई एक और प्रार्थना में कुछ दस्तावेजों को अतिरिक्त साक्ष्य के रूप में अभिलेख में लेने की मांग की गई थी। अतिरिक्त साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किए जाने वाले दस्तावेज प्रतिवादी संख्या 1 और प्रतिवादी संख्या 2, जो दोनों पहले से ही कार्यवाही में पक्षकार हैं, के बीच पांच मध्यस्थता मामलों में मध्यस्थता पंचाट की प्रतियां हैं, क्योकि याचिकाकर्ता उन मध्यस्थता कार्यवाहियों में पक्षकार नहीं था, इसलिए उसका दावा है कि ये पंचाट उसकी जानकारी में नहीं थे।

20. सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XLI का नियम 27, जैसा कि यह उत्तर प्रदेश राज्य पर लागू होता है, निम्नानुसार प्रावधान करता है:

"27. अपील न्यायालय में अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करना । –(1)

अपील के पक्षकार अपील न्यायालय में अतिरिक्त साक्ष्य, चाहे मौखिक हो या दस्तावेजी, प्रस्तुत करने के हकदार नहीं होंगे। लेकिन यदि–

(क) जिस न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील की गई है, उसने ऐसे साक्ष्य को स्वीकार करने से मना कर दिया है जिसे स्वीकार किया जाना चाहिए था, या

(कक) अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने की मांग करने वाला पक्षकार यह सिद्ध कर देता है कि सम्यक् तत्परता के उपरांत, ऐसा साक्ष्य उसके ज्ञान में नहीं था या सम्यक् तत्परता के उपरांत, उस समय उसके द्वारा प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था, जब वह डिक्री, जिसके विरुद्ध अपील की गई थी, पारित की गई थी, या]

(ख) अपील में किसी पक्षकार द्वारा प्रस्तुत किया जाने वाला साक्ष्य ऐसा साक्ष्य है, जो सम्यक् तत्परता के उपरांत भी, अपील के अधीन डिक्री पारित किए जाने या बनाए जाने के समय उसके ज्ञान में नहीं था या उसके द्वारा प्रस्तुत नहीं किया जा सका था, या; और

(ग) अपील न्यायालय को निर्णय सुनाने के लिए किसी दस्तावेज को प्रस्तुत करने या किसी साक्षी का परीक्षण करने की आवश्यकता हो, या किसी अन्य सारवान कारण से, तो अपील न्यायालय ऐसे साक्ष्य या दस्तावेज को प्रस्तुत करने या साक्षी का परीक्षण करने की अनुमति दे सकता है।

(2) जब कभी किसी अपीलीय न्यायालय द्वारा अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति दी जाती है, तो न्यायालय उसके स्वीकार किए जाने का कारण अभिलिखित करेगा।"

21. यद्यपि माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 के अंतर्गत आवेदन शब्द के विशुद्ध अर्थ में "अपील" नहीं है, वास्तव में उपरोक्त प्रावधान के अंतर्गत कार्यवाही प्रकृति में अपील के समान है।

22. सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधान वाणिज्यिक न्यायालयों के समक्ष कार्यवाहियों पर लागू होते हैं और वाणिज्यिक न्यायालयों पर लागू संहिता के कुछ प्रावधानों को केवल वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम पर लागू करने के लिए संशोधित किया गया है। इस

अनुवादित

संबंध में प्रासंगिक प्रावधान वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 की धारा 16 में निहित है, जो यह प्रावधान करता है कि : -

"16. वाणिज्यिक विवादों के अनुप्रयोग में सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 में संशोधन।–

(1) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 / 5) के उपबंध, किसी विनिर्दिष्ट मूल्य के वाणिज्यिक विवाद के संबंध में किसी वाद पर लागू होने में, इस प्रकार संसोधित रहेंगे जैसा सूचि में विनिर्दिष्ट है ।

(2) वाणिज्यिक प्रभाग और वाणिज्यिक न्यायालय, किसी विनिर्दिष्ट मूल्य के वाणिज्यिक विवाद से सम्बंधित वाद के विचारण में, इस अधिनियम द्वारा यथा संशोधित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के उपबंधों का पालन करेंगे।

(3) जहां अधिकारिता रखने वाले उच्च न्यायालय के किसी नियम का कोई उपबंध या राज्य सरकार द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 / 5) में कोई संशोधन, इस अधिनियम द्वारा संशोधित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 / 5) के उपबंधों के विरोध में है, वहां इस अधिनियम द्वारा संशोधित सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंध अभिभावी होंगे।

23. वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम में संलग्न परिशिष्ट में सिविल प्रक्रिया संहिता के संशोधित प्रावधान सम्मिलित हैं जो वाणिज्यिक न्यायालयों पर लागू होंगे, लेकिन इसमें सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश XLI नियम 27 में किए गए कोई संशोधन सम्मिलित नहीं हैं । इसलिए, संहिता का आदेश XLI नियम 27 बिना किसी प्रतिबंध के वाणिज्यिक न्यायालयों के समक्ष कार्यवाही पर लागू होता है।

24. यद्यपि मध्यस्थता और सुलह अधिनियम की धारा 19 में यह प्रावधान है कि मध्यस्थ न्यायाधिकरण सिविल प्रक्रिया संहिता से आबद्ध नहीं होगा, लेकिन यह वाणिज्यिक न्यायालयों पर सिविल प्रक्रिया के सिद्धांतों की प्रयोज्यता को प्रतिबंधित नहीं करता है ।

25. याचिकाकर्ता प्रतिवादी संख्या 1 और प्रतिवादी संख्या 2 के बीच मध्यस्थता कार्यवाही में पारित मध्यस्थता पंचाटो की प्रतियां प्रस्तुत करने की मांग कर रहा है। याचिकाकर्ता मध्यस्थता कार्यवाही या उसमें पारित उपरोक्त पंचाटो का पक्षकार नहीं था और याचिकाकर्ता का दावा है कि पंचाट उसके संज्ञान में नहीं थे और, इसलिए, उसे मध्यस्थ के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया जा सका।

26. वर्तमान विषय के विशिष्ट तथ्य सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XLI के नियम 1 के उप-नियम (एए) में निहित प्रावधान द्वारा आच्छादित किए गए प्रतीत होते हैं, जिसमें याचिकाकर्ता को अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति दी जानी चाहिए।

27. उपर्युक्त प्रस्तुतिकरण के दृष्टिगत , मेरा विचार है कि वाणिज्यिक न्यायालय संख्या 2 द्वारा पारित दिनांक 23.05.2023 का आदेश, जहां तक यह मध्यस्थता पंचाट की प्रतियों के रूप में अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए याचिकाकर्ता द्वारा की गई प्रार्थना को निरस्त करता है, विधि में धारणीय नहीं है और यह निरस्त किये जाने योग्य है ।

अनुवादित

28. उपर्युक्त विचार-विमर्श के दृष्टिगत, याचिका को आंशिक रूप से स्वीकृति प्रदान की जाती है । वाणिज्यिक न्यायालय संख्या 2, लखनऊ द्वारा मध्यस्थता प्रकरण संख्या 923/2019 में पारित दिनांक 23.05.2023 का आदेश, जिसमें याचिकाकर्ता द्वारा मध्यस्थता पंचाटो की प्रतियों के रूप में अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया गया था, निरस्त किया जाता है और याचिकाकर्ता द्वारा पहले ही प्रस्तुत किए जा चुके पांच मध्यस्थता पंचाटो के रूप में अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने के आवेदन को स्वीकार किया जाता है। वाणिज्यिक न्यायालय, उपरोक्त अतिरिक्त साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् तथा प्रतिवादियों को अतिरिक्त साक्ष्य के खंडन में साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर देने के पश्चात्, विधि के अनुसार, माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 के अंतर्गत आवेदन पर शीघ्रता से निर्णय करेगा।

(2023) 6 ILRA 192

मूल अधिकार क्षेत्र

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 03.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद

आवेदन धारा 482 संख्या 4403 वर्ष 2023

सिद्धार्थ वर्धन ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपरीत पक्ष

आवेदक के अधिवक्ता: आशीष कुमार सिंह, अनुज पांडे

विपरीत पक्षों के अधिवक्ता: जी.ए.

आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा - 125 और 482 - घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005 - धारा - 12: - धारा 482 के तहत आवेदन - पारिवारिक न्यायालय के आदेश को चुनौती देते हुए, सीआरपीसी की धारा 125 के तहत अपनी पत्नी के आवेदन को अनुमति देते हुए 18,000/- रुपये प्रति माह रखरखाव के रूप में भुगतान करने की अनुमति दी - इस आधार पर कि इतनी अधिक राशि तय करने से आवेदक-पति को बहुत कठिनाई हो रही है - रखरखाव की मात्रा - अदालत को पता चलता है कि, आवेदक और उसकी पत्नी के संबंध अजीब हो गए थे और वह अपनी पत्नी को रखने में दिलचस्पी नहीं रखता था और वह दूसरी महिला से विवाह करना चाहता था - इसके अलावा, पत्नी ने घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 12 के तहत एक मामला दर्ज किया, जिसमें ट्रायल कोर्ट ने 42,000/- रुपये प्रति माह रखरखाव देने का आदेश पारित किया, ये लाभकारी प्रावधान हैं जो निराश्रित पत्नी की आवारागर्दी को रोकने तथा उन्हें कुछ सहायता प्रदान करने के लिए बनाए गए हैं, जो भरण-पोषण पाने के हकदार हैं, जिसे गलत तरीके से अस्वीकार किया गया है - आवेदक एक बहुराष्ट्रीय कंपनी में कार्यरत है तथा प्रति वर्ष 88 लाख रुपये वेतन कमाता है, इसलिए, भरण-पोषण के रूप में ट्रायल कोर्ट द्वारा निर्धारित राशि अत्यधिक या अनुपातहीन नहीं कही जा सकती - इसलिए, आरोपित आदेश में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है - आवेदन खारिज किए जाने योग्य है। (पैरा - 6, 7)

अनुवादित

धारा 482 के तहत आवेदन खारिज। (ई-11)

(माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद द्वारा दिया गया)

(II) आवेदक के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता, श्री दिवाकर सिंह को सुना।

वर्तमान प्रार्थना-पत्र अन्तर्गत धारा 482 दं०प्र०सं० आवेदक द्वारा आपराधिक वाद सं० 1961/2022, श्रीमती शालिनी सिंह बनाम सिद्धार्थ वर्धन में विद्वान अतिरिक्त प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय सं० 1, लखनऊ के न्यायालय द्वारा धारा 125 दं०प्र०सं० के अन्तर्गत पारित आदेश दिनांकित 12.04.2023 को रद्द करने हेतु दायर किया गया है, जिसके माध्यम से विद्वान न्यायालय ने धारा 125 दं०प्र०सं० के अन्तर्गत उक्त प्रार्थना-पत्र को आंशिक रूप से स्वीकार करते हुए आवेदक को निर्देश दिया है कि वह अपनी पत्नी-विपक्षी सं०- 2 को धारा 125 दं०प्र०सं० के अन्तर्गत प्रार्थना-पत्र दायर करने की तिथि से रु 18000/- प्रतिमाह भरण-पोषण के रूप में भुगतान करे।

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता की तर्क यह है कि आवेदन की तिथि से पत्नी को रु 18000/- प्रतिमाह भरण-पोषण के रूप में निर्धारित किया गया है। इसके अतिरिक्त तर्क यह भी है कि भरण-पोषण की इतनी अधिक राशि को मामले के गुण-दोषों को देखने के बाद ही उचित ठहराया जा सकता है। भरण-पोषण के प्रावधानों का मूल उद्देश्य उपेक्षित पत्नी या बच्चों को निराश्रयता और भटकाव की संभावना से बचाना है। आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने आवेदक की आर्थिक परिस्थितियों और उसके अन्य दायित्वों एवं देयताओं को विस्तार से बताने की कोशिश की है और यह दर्शाने की कोशिश की है इतनी अधिक राशि का निर्धारण आवेदक को बहुत कठिनाई पैदा कर रहा है। अधिवक्ता ने मामले के तथ्यात्मक और विधिक पहलुओं को स्पर्श करते हुए अन्य दूसरे आधारों पर भी विवादित आदेश के विरूद्ध अपनी आलोचना प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।

इसके विपरीत विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता कहते हैं कि अधीनस्थ न्यायालय ने मामले के तथ्यो एवं परिस्थितियों और विपक्षी सं०-2 के कथनों पर विचार करने के बाद ही आक्षेपित आदेश पारित किया, इन परिस्थितियों में न्याय के उद्देश्यो को पूरा करने हेतु, आक्षेपित आदेश में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। विचारण न्यायालय ने आदेश दिनांकित 12.04.2023, आवेदक द्वारा विपक्षी सं० 2 को भुगतान किए जाने वाले भरण-पोषण के रूप में पारित किया है। आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता, अनौचित्य और अशुद्धता नहीं है और साथ ही न्यायालय की कार्यवाही का कोई दुरूपयोग प्रतीत नहीं होता है।

मैने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना और अभिलेख का अवलोकन किया।

आक्षेपित आदेश दिनांकित 12.04.2023 के अवलोकन से यह प्रकट होता है कि विचारण न्यायालय ने इस तथ्य को स्पष्ट रूप से कहा है कि धारा 125 दं०प्र०सं० के अन्तर्गत आवेदन में लगाए गए आरोपों के अनुसार आवदेक और विपक्षी सं० 2 का विवाह 05.04.2015 को हुआ था और तब से उसे क्रूरता और यातना दी गई है क्योकि उसका ससुराल पक्ष विवाह के समय दिए गए दहेज से

अनुवादित

संतुष्ट नहीं था और वे फ्लैट खरीदने हेतु धन की मांग किया करते थे, जिसके कारण वह अवसाद में चली गई और उसके विवाह के केवल 15 दिनों के बाद उसे ब्रेन हेमरेज हो गया, जिसके कारण वह आंशिक रूप से लकवाग्रस्त हो गई, परंतु आवेदक ने उसका मेडिकल इलाज नहीं कराया और उसे अस्पताल में छोड़कर अपनी नौकरी पर चला गया, विपक्षी सं० 2 के पास अपने माता-पिता के साथ रहने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं था। परन्तु आवेदक ने उसके इलाज और भरण-पोषण हेतु कोई धन नहीं दिया। उसके बाद, आवेदक और विपक्षी सं. 2 के संबंध असामान्य हो गये और वह अपनी पत्नी को रखने में उत्सुक नहीं था और वह किसी दूसरी स्त्री से विवाह करना चाहता है। इसके अतिरिक्त विपक्षी सं० 2 ने घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 12 के अन्तर्गत एक वाद, विविध वाद सं० 4288/2021 दायर किया जिसमें संबंधित न्यायालय ने विपक्षी सं० 2 को रु0 42,000/ प्रतिमाह भरण-पोषण प्रदान करने का आदेश पारित किया परंतु उक्त राशि का भुगतान आवेदक द्वारा अपनी पत्नी को नहीं किया जा रहा है जो दुर्भावनापूर्ण आशय को दर्शाता है। उसके बाद, विद्वान अतिरिक्त प्रधान न्यायाधीश ने विपक्षी सं० 2 द्वारा अंतरिम भरण-पोषण हेतु प्रस्तुत प्रार्थना-पत्र सं० ग-4 को आंशिक रूप से स्वीकार करते हुए आक्षेपित आदेश दिनांकित 12.04.2023 को पारित किया जिसमें आवेदक को प्रत्येक माह के दसवे दिवस को अगले आदेश तक रु0 18000/- प्रतिमाह का भुगतान करने का निर्देश किया गया। आक्षेपित आदेश में, विद्वान अतिरिक्त प्रधान न्यायाधीश ने यह समवर्ती निष्कर्ष दिया है कि विपक्षी सं० 2 के कथन और उपलब्ध कराए गए साक्ष्य अनुसार आवेदक बंगलुरू में बहुराष्ट्रीय कंपनी में सेवा दे रहा है और अपने वेतन के रूप में अट्ठासी लाख रुपये प्रति वर्ष उपार्जन कर रहा है, इसलिए, विद्वान प्रधान न्यायाधीश द्वारा निर्धारित की गयी अंतरिम भरण-पोषण राशि अत्यधिक या असंगत नहीं कही जा सकती और आवेदक के भारी वेतन के दृष्टिगत इसे छोटी राशि कहा जा सकता है। दं०प्र०सं० की धारा 125 के प्रावधान लाभकारी प्रावधान है जो कि निराश्रित पत्नी के भटकाव को रोकने हेतु और उसे परेशानी में कुछ सहायता प्रदान करने हेतु अधिनियमित किया गया है, जो कि भरण-पोषण प्राप्त करने की हकदार है, जिसे गलत तरीके से अस्वीकार किया गया है। यह तथ्य की आवेदक विपक्षी सं० 2 का पति है, अस्वीकार नहीं किया गया है।

उपर्युक्त के दृष्टिगत, इस न्यायालय द्वारा आक्षेपित आदेश में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। द०प्रं०सं० की धारा 482 के अन्तर्गत वर्तमान प्रार्थना पत्र में गुणों का अभाव है और खारिज किए जाने योग्य है।

तदनुसार **खारिज** किया जाता है। यद्यपि, अधीनस्थ न्यायालय विधि के अनुसरण में देय संपूर्ण राशि की वसूली के संबंध में कार्यवाही करने हेतु स्वतंत्र है।

(2023) 6 ILRA 194

मूल अधिकार क्षेत्र

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 18.05.2023

अवधारित

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद

आवेदन धारा 482 संख्या 4919 वर्ष 2023

राम सरोज **आवेदक**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **विपरीत पक्ष**

आवेदक के अधिवक्ता: राजेश कुमार सिंह, विजयेंद्र प्रकाश त्रिपाठी

विपरीत पक्ष के अधिवक्ता: जी.ए.

आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 125, 128 एवं 482: - धारा 482 के तहत आवेदन - सीआरपीसी की धारा 128 के तहत पारित ट्रायल कोर्ट के आदेश को चुनौती देना। - भरण-पोषण की पूरी राशि की वसूली के लिए जिसे निचली अदालत ने सीआरपीसी की धारा 125 के तहत 1200 रुपये प्रति माह तय किया था। - जिसके खिलाफ आवेदक-पति ने एक आपराधिक पुनरीक्षण दायर किया जिसे अनुमति दी गई और मामले को सीआरपीसी की 125 के आवेदन पर नए सिरे से फैसला करने के लिए वापस भेज दिया गया। - जिसके खिलाफ पत्नी ने इस अदालत के समक्ष आपराधिक पुनरीक्षण दायर किया, जिसमें इस अदालत की समन्वय पीठ ने पुनरीक्षण अदालत के आदेश को अलग रखा और सीआरपीसी की धारा 125 के तहत पारित निचली अदालत के आदेश की पुष्टि की, एक बार में संपूर्ण बकाया का भुगतान न करने की छूट देते हुए, रुपये का भुगतान करने का निर्देश दिया। 10,000/- प्रति माह - वसूली - इक्विटी का प्रश्न - न्यायालय ने पाया कि, आवेदक निचली अदालत या इस अदालत द्वारा निर्देशित भरण-पोषण की राशि का भुगतान करने का इरादा नहीं रखता है - माना कि, यह कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग है और वह अपनी पत्नी को भरण-पोषण का भुगतान करने से बचने के लिए वर्तमान याचिका दायर करके समय व्यतीत कर रहा है - इसलिए, इस न्यायालय को इक्विटी के प्रश्न को देखना होगा और इक्विटी पत्नी के पक्ष में जाती है - परिणामस्वरूप, आवेदक के विरुद्ध बकाया राशि की पूरी राशि दो महीने के भीतर वसूलने का निर्देश जारी किया गया - तदनुसार याचिका खारिज की जाती है। (पैरा - 6, 8, 9, 10)

धारा 482 के तहत आवेदन खारिज। (ई-11)

(माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद द्वारा दिया गया)

1 आवेदक की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री विजयेन्द्र प्रकाश त्रिपाठी और राज्य की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री तिलक राज सिंह को सुना गया।

2. यह आवेदन धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत, अपर प्रधान न्यायाधीश, कोर्ट नंबर 1, बहराइच द्वारा वाद संख्या 128/11/19 में धारा 128 के अंतर्गत, पारित दिनांक 20.12.2022 के आदेश को निरस्त करने के लिए प्रस्तुत किया गया है।

3. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि विपक्षी पक्षकार संख्या 2- श्रीमती विमला देवी ने धारा 125 सीआरपीसी के अन्तर्गत भरण-पोषण हेतु आवेदन प्रस्तुत किया था, जिसे आदेश दिनांक 31.08.2006 द्वारा स्वीकार कर लिया गया, जिसके द्वारा सुनवाई की तिथि से भरण-पोषण हेतु रू0 1200/- निर्धारित किया गया।

अवधारित

4. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता आगे प्रस्तुत करते है कि दिनांक 31.08.2006 के आदेश के विरुद्ध आवेदक के पति ने विद्वान द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश, बहराइच के समक्ष पुनरीक्षण वाद संख्या 769/2006: राम सरोज बनाम श्रीमती विमला देवी, प्रस्तुत किया, जिसे दिनांक 02.11.2007 के आदेश द्वारा स्वीकार कर लिया गया और दिनांक 31.08.2006 के आदेश को अपास्त कर दिया गया तथा धारा 125 सीआरपीसी के अंतर्गत प्रस्तुत आवेदन पर नए सिरे से निर्णित करने के लिए विषय को अधीनस्थ न्यायालय को वापस भेज दिया गया।

5. द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश, बहराइच द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 769/2006 में पारित दिनांक 02.11.2007 के आदेश से असंतुष्ट होकर विपक्षी संख्या 2 ने इस न्यायालय के समक्ष आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 119/2010: विमला देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, को प्रस्तुत किया और इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने दिनांक 13.12.2018 के विस्तृत निर्णय द्वारा, आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 769/2006 में पारित निर्णय को अपास्त करके तथा विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा आपराधिक वाद संख्या 252/2006 में दिनांक 31.08.2006को पारित निर्णय की पुष्टि करके, पुनरीक्षण का निस्तारण कर दिया। आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 769/2006 में पारित निर्णय का प्रभावी भाग नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"सभी परिस्थितियों में, विद्वान द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश के पास, विद्वान मजिस्ट्रेट के आक्षेपित निर्णय में हस्तक्षेप करने का कोई पर्याप्त कारण नहीं था, जिसमें उन्होंने 1200 रुपये प्रति माह की दर से पत्नी को भरण-पोषण देने का आदेश दिया। तदनुसार, आक्षेपित निर्णय को अस्तित्व में नहीं रखा जा सकता है और इसलिए, आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 769/2006 में 02.11.2007 को पारित निर्णय को अपास्त किया जाता है।

विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा आपराधिक वाद संख्या 252/2006 में दिनांक 31.8.2006 को पारित निर्णय की पुष्टि की जाती है।

इस अवलोकनों के साथ इस आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 119/2010 को निस्तारित किया जाता है।"

6. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि इस प्रकार आपराधिक वाद संख्या 252/2006 में पारित दिनांक 31.08.2006 के आदेश की पुष्टि की गई, तत्पश्चात विपक्षी संख्या 2-की पत्नी ने दिनांक 31.08.2006 से संपूर्ण बकाया राशि की वसूली के लिए आवेदन प्रस्तुत किया, तत्पश्चात अधीनस्थ न्यायालय ने दिनांक 20.12.2022 के आदेश द्वारा संपूर्ण बकाया राशि का एकमुश्त भुगतान न करने की छूट देते हुए 10,000/- रुपये प्रतिमाह भुगतान करने का निर्देश दिया। उक्त आदेश से असंतुष्ट होकर धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत वर्तमान आवेदन प्रस्तुत किया गया है।

7. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्क का विरोध किया और प्रस्तुत किया कि

अनुवादित

आवेदक द्वारा प्रस्तुत वर्तमान वाद विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग करने के अलावा और कुछ नहीं है और उसका मंतव्य बहुत स्पष्ट है कि वह अपनी पत्नी को एक भी पैसा देने का विचार नहीं रखता है। बिना किसी आदेश के केवल 1500/-, 2500/- रुपये की मामूली राशि का भुगतान किया गया है, इसलिए आवेदन निरस्त किए जाने योग्य है और अधीनस्थ न्यायालय को दो महीने के भीतर पूरी राशि वसूलने के लिए निर्देशित किया जा सकता है।

8. पक्षकारो के विद्वान अधिवक्ताओं के तर्क सुनने तथा अभिलेख के अवलोकन के पश्चात, न्यायालय का विचार है कि विपक्षी पक्ष संख्या 2 श्रीमती विमला देवी को 1200 रूपये प्रतिमाह भरण-पोषण देने का दिनांक 31.08.2006 का आदेश, जिसे पुनरीक्षण प्रस्तुत करके आक्षेपित किया गया था और उक्त पुनरीक्षण को दिनांक 02.11.2007 के आदेश द्वारा अनुमति प्रदान की गई थी तथा दिनांक 31.08.2006 के आदेश को अपास्त कर दिया गया था और विषय को अधीनस्थ न्यायालय के पास, सीआरपीसी की धारा 125 के अंतर्गत प्रस्तुत आवेदन पर नए सिरे से निर्णय करने के लिए वापस भेज दिया गया था। इसके बाद, विपक्षी पक्ष संख्या 2 ने इस न्यायालय के समक्ष आपराधिक पुनरीक्षण प्रस्तुत किया और इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने दिनांक 13.12.2018 के विस्तृत निर्णय और आदेश द्वारा पुनरीक्षण को अनुमति दे दी और आपराधिक वाद संख्या 252/2006 में विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा दिनांक 31.08.2006 को आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 769/2006 में पारित निर्णय की पुष्टि की। इस प्रकार, भरण-पोषण दिनांक 31.08.2006 के आदेश की तिथि से देय है और आवेदक बकाया राशि का भुगतान नहीं कर रहा था, इस तथ्य के बावजूद कि विद्वान मजिस्ट्रेट ने दिनांक 20.12.2022 के आदेश के अधीन आवेदक को एक स्टॉक में भुगतान करने में छूट देकर, प्रति माह 10,000/- रुपये का भुगतान करने का निर्देश दिया था, वह भी आवेदक द्वारा विपक्षी संख्या 2 को भुगतान नहीं किया गया और वर्तमान आवेदन प्रस्तुत किया गया है। इसलिए, न्यायालय के दृष्टिकोण से यह विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग के अलावा और कुछ नहीं है और आवेदक वर्तमान याचिका प्रस्तुत करके समय बर्बाद कर रहा है और वह अधीनस्थ न्यायालय या इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 13.12.2018 के आदेश के अनुसार निर्देशित, राशि का भुगतान करने का विचार नहीं रखता है, इस प्रकार आवेदक का मंतव्य बहुत स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह अपनी पत्नी को भरण-पोषण देने से बच रहा है।

9. इस न्यायालय को न्यायसम्यता के प्रश्न पर विचार करना है और न्यायसम्यता विपरीत पक्षकार संख्या 2-पत्नी के पक्ष में जाती है, जो 2006 से भुगतान से वंचित है, जब धारा 125 सीआरपीसी के अधीन प्रस्तुत आवेदन पर आदेश पारित किया गया था।

10. न्याय के हित में, संबंधित न्यायालय को निर्देशित किया जाता है कि वह आवेदक पर बकाया सम्पूर्ण राशि, आज से दो माह के भीतर वसूल करे तथा विधि अनुसार कार्यवाही करे।

11. उपर्युक्त अवलोकनो/निर्देशों के साथ, यह याचिका निरस्त की जाती है।

अप्रमाणित

12. इस आदेश की प्रति अधीनस्थ न्यायालय को आवश्यक अनुपालन हेतु भेजी जाए।

(2023) 6 ILRA 196

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 31.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला

रिट ए. संख्या 1511/2010

संबंधित

रिट ए. संख्या 6943/2007

और अन्य संबंधित मामले

प्रबोध कुमार पाठक. ..याचिकाकर्ता

बनाम

यू.पी. राज्य.. ..प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: समीर कालिया, आकाश दीप दुबे, अनुज सिंह, आशीष वर्मा, दीपक श्रीवास्तव, दीपांशु दास, गरिमा चौहान, लालता प्रसाद मिश्रा, नील कमल मिश्रा, सर्वेश कुमार दुबे, सिद्धार्थ नंदन, उपेंद्र नाथ मिश्रा

प्रतिवादी के अधिवक्ता: सी.एस.सी., पी.के. श्रीवास्तव, उत्सव मिश्रा

ए. सेवा कानून - संयुक्त प्रांत इंजीनियर्स सेवा (भवन एवं सड़क शाखा) क्लास-II नियम, 1936 - नियम 6 एवं 9 - लोक निर्माण विभाग - सहायक इंजीनियर के पद पर पदोन्नति - डिप्लोमाधारी जूनियर इंजीनियर का दावा बनाम डिग्रीधारी जूनियर इंजीनियर का दावा - प्रत्यक्ष एवं पदोन्नति कोटे में उत्पन्न रिक्तियों का निर्धारण - माना गया कि 1997-1998 से 2003-2004 की अवधि के लिए पदोन्नति कोटे के तहत रिक्तियों की संख्या 1936 के सेवा नियमों के अनुसार निर्धारित की जानी चाहिए, जिसमें नियम 6(ए) जूनियर इंजीनियर्स को सहायक इंजीनियर के पद पर पदोन्नति के लिए 25% पदोन्नति कोटा प्रदान करता है - हालांकि, रिक्तियां ...97-1998 से 2003-2004 की अवधि के लिए पदोन्नति कोटे के तहत रिक्तियों की संख्या 1997-1998 से 2003-2004 की अवधि के लिए पदोन्नति कोटे के तहत रिक्तियों की संख्या 1997-199 3.1.2004 से 30.6.2004 तक, 50% सीधी भर्ती के कोटे में और 50% पदोन्नति के कोटे में आवंटित किए जाते हैं - उच्च न्यायालय ने उच्च स्तरीय समिति का गठन करके रिक्तियों की संख्या को पुनः निर्धारित करने के लिए स्टेट अथॉरिटी को निर्देश दिया। [पैरा 141, 144 और 191 (ए)]

बी. सेवा कानून - संयुक्त प्रांत इंजीनियर्स सेवा (भवन और सड़क शाखा) वर्ग-II नियम, 1936 - नियम 3(बी), 4(आई), 5, 69, 17 और 19 - लोक निर्माण विभाग - सहायक के पद पर पदोन्नति। इंजीनियर्स - डिप्लोमा धारक जेई का दावा बनाम डिग्री धारक जेई का दावा - दिनांक 11.01.1993 का संशोधन - नियम 12 में उल्लिखित पदोन्नति के मानदंड को 'योग्यता' से बदलकर 'अनुपयुक्त की अस्वीकृति के अधीन वरिष्ठता' कर दिया गया - योग्यता परीक्षा - डिप्लोमा धारक जेई को परीक्षा में बैठने का अवसर नहीं देना - प्रभाव - माना गया, योग्यता परीक्षा डिप्लोमा धारक जेई के लिए पदोन्नति का प्रवेश द्वार थी क्योंकि ऐसी योग्यता परीक्षा उत्तीर्ण करने से, ये डिप्लोमा धारक जेई सहायक के पद पर पदोन्नति के लिए विचार क्षेत्र में आ जाएंगे। इंजीनियर्स -

अनुवादित

आगे माना गया कि अगस्त 2007 में आयोजित एक एकल योग्यता परीक्षा के आधार पर 2008, 2009 और 2010 में तीन पदोन्नति आदेश जारी करना, जो स्पष्ट रूप से डिप्लोमा धारक जेई की पात्रता निर्धारित करने के लिए निर्धारित प्रक्रिया का उल्लंघन है, कानून के अनुसार नहीं प्रतीत होता है - डिप्लोमा धारक जेई को पदोन्नति के विचार क्षेत्र से गलत तरीके से बाहर कर दिया गया था - उच्च न्यायालय ने स्टेट प्राधिकारियों को पुराने नियम, 1936 के नियम 9(ii) और अन्य सहायक नियमों के तहत प्रदान की गई योग्यता परीक्षा आयोजित करने और डिप्लोमा धारक जूनियर इंजीनियरों को समान अवसर प्रदान करने का निर्देश दिया, ताकि वे सहायक इंजीनियरों के लिए पदोन्नति के लिए विचार क्षेत्र में आ सकें। - उच्च न्यायालय ने डिग्री धारक जेई के पक्ष में दिनांक 02.08.2008, 03.07.2009 और 05.02.2010 के सभी तीन आपत्तिजनक पदोन्नति आदेशों को रद्द कर दिया [पैरा 27, 156, 161, 168, 191 (बी) और 191 (सी)]

सी. सेवा न्यायशास्त्र - पदोन्नति का अधिकार - मौलिक अधिकार के रूप में दावा - अनुमेयता - माना गया, पदोन्नति का अधिकार मौलिक अधिकार नहीं माना जाता है, लेकिन पदोन्नति के लिए विचार अब मौलिक अधिकार के रूप में विकसित किया गया है - अजय कुमार शुक्ला के मामले पर भरोसा किया गया। (पैरा 112)

रिट याचिकाओं का निपटारा किया गया। (ई-1)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. अनुपाल सिंह एवं अन्य बनाम स्टेट ऑफ यू.पी. एवं अन्य, (2020) 2 एससीसी 1
2. पेपर प्रोडक्ट्स लिमिटेड बनाम सीआईटी मुंबई, (2007) 7 एससीसी 352
3. सुरेन्द्र कौल बनाम ज्योति रंजन, (2001) एससीसी ऑनलाइन कैल. 237
4. पी.डी. अग्रवाल एवं अन्य बनाम स्टेट ऑफ यू.पी. और अन्य, (1987) 3 एस.सी.सी. 622
5. अरुवेंद्र कुमार गर्ग बनाम स्टेट ऑफ यू.पी. और अन्य; 2002 (2) ई.एस.सी. 148
6. सी.एम.डब्लू.पी. संख्या 9127/2003; विजय कुमार और अन्य बनाम स्टेट ऑफ यू.पी. 16.07.2004 को निर्णय हुआ
7. अंजनी कुमार मिश्रा और अन्य बनाम स्टेट ऑफ यू.पी. और अन्य; 2007(1) यू.पी.एल.बी.ई.सी. 260
8. डिप्लोमा इंजीनियर्स संघ बनाम स्टेट ऑफ यू.पी.; 2007(13) एससीसी 300
9. त्रिपुरा राज्य बनाम निखिल रंजन चक्रवर्ती, (2017) 3 एससीसी 646
10. भारत संघ बनाम कृष्ण कुमार, (2019) 4 एससीसी 319
11. उड़ीसा राज्य बनाम धीरेंद्र सुंदर दास; (2019) 6 एससीसी 270
12. बालेश्वर दास बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; (1980) 4 एससीसी 226
13. विशेष अपील संख्या 917/2006; बद्री प्रसाद और 31 अन्य बनाम सत्य देव शर्मा 22.05.2015 को निर्णयित
14. डब्ल्यू.पी. संख्या 6530(एस/एस) 2004; शिव कुमार सिंह बनाम सत्य देव शर्मा 01.11.2006 को निर्णयित
15. मदन लाल बनाम पुणग राज्य बनाम 10. & अन्य [एआईआर 1994 एससी 647 पैरा-6]
16. के.के. खोसला एवं अन्य बनाम स्टेट ऑफ हरियाणा & अन्य; (1990) 2 एससीसी 199

अनुवादित

17. ए.एन. सहगल एवं अन्य बनाम राजे राम श्योराण & अन्य; 1992 सप (1) एससीसी 304

18. अजय कुमार शुक्ला बनाम अरविंद राय; 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 1195

19. यूनियन ऑफ इंडिया एवं अन्य बनाम कृष्ण कुमार अन्य (2019) 4 एससीसी 319

20. दीपक अग्रवाल बनाम स्टेट ऑफ यूपी; 2011 (6) एससीसी 725

21. बालेश्वर दास एवं अन्य बनाम स्टेट ऑफ यूपी और अन्य, एआईआर 1981 एससी 41

(माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश द्वारा दिया गया शुक्ला)

क. परिचय

(1) वर्तमान प्रकरण, जो इस न्यायालय के ध्यानाकर्षण हेतु लाया गया है, मुकदमेबाजी के समस्याग्रस्त अतीत का इतिहास है। मूलतः, यह उत्तर प्रदेश लोक निर्माण विभाग में सहायक अभियंताओं के पद पर डिप्लोमा धारक अवर अभियंता और उपाधि धारक अवर अभियंता की पदोन्नति से संबंधित संघर्ष के इर्द-गिर्द घूमता है, जिसमें सीधी भर्ती वाले सहायक अभियंताओं सहित कई अन्य हितधारक भी शामिल हैं, जो पूरे प्रकरण को और अधिक उलझाते हुए सम्मिलित हुए हैं। जाहिर तौर पर, प्राथमिक मुद्दा 1997-98 से 2003-04 की अवधि के लिए प्रत्यक्ष चयन और प्रोन्नति कोटा में उत्पन्न होने वाली रिक्तियों के निर्धारण से संबंधित है और एक द्वितीयक मुद्दा, प्रचलित संयुक्त प्रांत अभियांत्रिकी सेवा (भवन और सड़क शाखा) वर्ग-II नियमावली, 1936, के मद्देनजर इस प्रोन्नति कोटा को भरने के तरीके, इसके आवधिक संशोधन, शासनादेश और सर्वाधिक महत्वपूर्ण इस संदर्भ में इस न्यायालय और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय से संबंधित है।

(2) हालाँकि, इस न्यायालय के साथ-साथ माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कई निर्णय और आदेश पारित किए गए हैं, जो 1997-98 से 2003-04 के उक्त मुकदमेबाजी के दौर में इन अवर अभियंताओं की पदोन्नति को प्रभावित करते हैं। हालाँकि *सिविल अपील संख्या 3695/2007 "ऐतबल सिंह बनाम प्रमोद शंकर उपाध्याय एवं अन्य"* में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित प्रतिप्रेषण आदेश दिनांक 21.08.2019, जिसके आधार पर इन रिट याचिकाओं को इस न्यायालय के समक्ष पुनः सुनवाई हेतु भेज दिया गया है एवं कोटा सहित पदोन्नति से संबंधित सभी मुद्दे पुनर्जीवित हो गए हैं। माननीय सर्वोच्च न्यायालय के प्रतिप्रेषण आदेश से संबंधित उद्धरण को नीचे उद्धृत किया गया है :-

".....इस मामले में एक विशिष्ट स्थिति उत्पन्न हुई कि जिस निर्णय को उच्च न्यायालय ने प्रत्यादिष्ट कर दिया था, उसे डिप्लोमा अभियंता संघ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2007) 13 एससीसी 300] में इस न्यायालय द्वारा प्रतिज्ञात कर दिया गया। उच्च न्यायालय के संज्ञान में यह तथ्य लाया गया कि इस न्यायालय के समक्ष एक विशेष अनुमति याचिका विचाराधीन थी और निर्णय सुरक्षित रखा गया था। उक्त तथ्य के बावजूद, उच्च न्यायालय ने उस निर्णय को खारिज कर दिया, जिसकी बाद में इस उच्च न्यायालय ने पुष्टि की थी। न्याय की माँग थी कि इस

अवधारित

न्यायालय द्वारा मामले की सुनवाई व आरक्षित किये जाने के दौरान उच्च न्यायालय को अपने हाथ रोक लेना चाहिए था और उच्च न्यायालय को मामले की सुनवाई नहीं करनी चहिये थी।

इसके अलावा, हमने पाया है कि उच्च न्यायालय द्वारा कुछ अनुतोष प्रदान किया गया है जिनकी रिट याचिका में भी प्रार्थना नहीं की गई थी। उच्च न्यायालय को रिट याचिका में मांगे गए अनुतोष और उसके समक्ष विषय वस्तु और पक्षकारों पर विचार करने तक ही सीमित रहना चाहिए था।

इसलिए, हम आक्षेपित निर्णय और आदेश को अपास्त करते हैं और मामले को उच्च न्यायालय में प्रेषित करते हैं। हम उच्च न्यायालय से अनुरोध करते हैं कि पक्षकारों को नए सिरे से सुनने के बाद छह माह के भीतर मामले पर नए सिरे से निर्णय लिया जाए।"

(3) इस प्रकार, सिविल अपील संख्या 6569 / 2019, 6570 / 2019, 6571-6572 / 2019, 6573 / 2019, 6574 / 2019 *(इस न्यायालय की खण्ड पीठ द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 08.09.2011 के सन्दर्भ में विशेष अनुमति याचिका (सी) संख्या 28395 / 2012, 28917 / 2012, 28535 / 2012 से उत्पन्न)* में पारित उपरोक्त आदेश दिनांक 21.08.2019 के तहत निम्नलिखित रिट याचिकाएं पुनः सुनवाई हेतु प्रतिप्रेषित की जा रही हैं:

क्र० सं०	रिट याचिका सं०	हेतुक शीर्षक
1.	1511(एस/एस) वर्ष 2010	प्रबोध कुमार पाठक एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य।
2.	6943(एस/एस) वर्ष 2007	डिप्लोमा अभियंता संघ पीडब्लूडी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य।
3.	7232(एस/एस) वर्ष 2007	अरविंद कुमार पांडे व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य।
4.	7649(एस/एस) वर्ष 2007	ब्रजेश चंद्र मिश्र व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य
5.	3173(एस/एस) वर्ष 2008	डिप्लोमा अभियंता संघ पी०डब्लू०डी० एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य।
6.	3422(एस/एस) वर्ष 2008	यतेंद्र बाबू एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य।
7.	3448(एस/एस) वर्ष 2008	नूरुल हुदा एवं अन्य बनाम राज्य उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य।
8.	3506(एस/एस)	मदन मोहन

अनुवादित

	वर्ष 2008	मिश्र एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य।
9.	3578(एस/एस) वर्ष 2008	राम वीर सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य।
10.	3594(एस/एस) वर्ष 2008	मदन कुमार एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य।
11.	3660(एस/एस) वर्ष 2008	भव्य निधि बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य।
12.	3666(एस/एस) वर्ष 2008	अनिल किशोर पांडे एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य।
13.	4151(एस/एस) वर्ष 2008	राम शरण महतो एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य।
14.	4536(एस/एस) वर्ष 2008	राजेंद्र कुमार मिश्र बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य।
15.	5276(एस/एस) वर्ष 2008	सत्यवान सिंह सुमन व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य।
16.	5880(एस/एस) वर्ष 2008	सर्वेश कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य।
17.	6017(एस/एस) वर्ष 2008	पुरूषोत्तम दुबे एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य।
18.	7361(एस/एस) वर्ष 2008	नूरुल हुदा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य।
19.	1698(एस/एस) वर्ष 2008	अनूप कुमार द्विवेदी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य।
20.	2366(एस/एस) वर्ष 2009	अरुण गुप्ता एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य।
21.	3314(एस/एस) वर्ष 2009	डिप्लोमा अभियंता संघ पीडब्लूडी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य।
22.	4459(एस/एस) वर्ष 2009	उमेश प्रकाश श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य

अनुवादित

		व अन्य।
23.	7702(एस/एस) वर्ष 2009	अरविन्द कुमार पांडे एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य।
24.	रिट-ए सं० 2000252 वर्ष 2009	अरविन्द कुमार पांडे एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य।
25.	रिट-ए सं० 2000447 वर्ष 2009	अशोक कुमार राम जगत एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य।
26.	रिट-ए सं० 2000622 वर्ष 2009	स्वामी नाथ पुरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य।
27.	रिट-ए सं० 2000654 वर्ष 2009	अशोक सक्सैना बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य।
28.	रिट-ए सं० 2000679 वर्ष 2009	अशोक सक्सैना बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य।
29.	रिट-ए सं० 2000918 वर्ष 2009	ओम प्रकाश एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य।
30.	रिट-ए सं० 1212(एस/बी) वर्ष 2009 आदेश दिनांक 28.02.2023 द्वारा प्रत्याहृत कर लिया गया।	सुरेंद्र कुमार श्रीवास्तव एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य।
31.	रिट-ए सं० 2002018 वर्ष 2009	रवीन्द्र सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य।
32.	रिट-ए सं० 2000342 वर्ष 2010	जंग बहादुर सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य।
33.	रिट-ए सं० 2000670 वर्ष 2010	जंग बहादुर सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य।
34	रिट-ए सं० 2000676 वर्ष 2010	जंग बहादुर सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य।

(4) उपरोक्त रिट याचिकाओं की सुनवाई निम्नलिखित सम्बद्ध रिट याचिकाओं के साथ की जा रही है, जो सिविल अपील संख्या 6576 / 2019 (इस न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा पारित आदेश दिनांक 05.01.2016 को चुनौती देने वाले विशेष अनुमति याचिका [एसएलपी] (सी) संख्या 479 / 2016 से उत्पन्न), में पूर्वोक्त पारित प्रतिप्रेषित आदेश का हिस्सा है-

क्र० सं०	रिट याचिका सं०	हेतुक शीर्षक

अनुवादित

35.	रिट-ए सं० 2001618 वर्ष 2015	अरुण कुमार मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य।

एवं

निम्नलिखित सम्बद्ध रिट याचिका, जो सिविल अपील संख्या 6577 / 2019 (इस न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा पारित आदेश दिनांक 01.04.2016 को चुनौती देने वाले विशेष अनुमति याचिका [एसएलपी] (सी) संख्या 13962 / 2016 से उत्पन्न), में पूर्वोक्त पारित प्रतिप्रेषित आदेश का हिस्सा है :-

क्र० सं०	रिट याचिका सं०	हेतुक शीर्षक
36.	रिट-ए सं० 2000967 वर्ष 2015	शम्सुद्दीन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य।

एवं

निम्नलिखित सम्बद्ध रिट याचिका, जो सिविल अपील संख्या 6575 / 2019, 6580 / 2019, 6581 / 2019, 6582 / 2019, 6583 / 2019, 6584 / 2019, 6585 / 2019 (इस न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा पारित आदेश दिनांक 17.07.2018 को चुनौती देने वाले विशेष अनुमति याचिका (सी) संख्या 23856 / 2018, 24083 / 2018, 20256 / 2018, 21666 / 2018, 24071 / 2018 एवं 4574 / 2019, 6577 / 2019 से उत्पन्न), में पूर्वोक्त पारित प्रतिप्रेषित आदेश का हिस्सा है :-

क्र० सं०	रिट याचिका सं०	हेतुक शीर्षक
37.	रिट-ए सं० 24634(एस/एस) वर्ष 2016 आदेश दिनांक 04.02.2021 द्वारा प्रत्याहृत कर लिया गया।	मनोज कुमार व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य।

एवं

निम्नलिखित सम्बद्ध रिट याचिका, जो सिविल अपील संख्या 6578-79 / 2019 (इस न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा पारित आदेश दिनांक 04.07.2017 को चुनौती देने वाले विशेष अनुमति याचिका (सी) संख्या 20618-20619 / 2017 व 12631 / 2018 से उत्पन्न), में पूर्वोक्त पारित प्रतिप्रेषित आदेश का हिस्सा है :-

क्र० सं०	रिट याचिका सं०	हेतुक शीर्षक
38.	रिट-ए सं० 9064 वर्ष 2017	विमल कुमार मिश्रा व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य।

इसके अलावा, निम्नलिखित रिट याचिका को भी उपरोक्त मामलों के साथ चिह्नित किया गया है, जो इस न्यायालय द्वारा निर्धारित किए जाने वाले मुख्य मुद्दे के परिणामी प्रभाव को चुनौती देते हुए दायर की गई है। यह रिट याचिकाएं इस प्रकार हैं :-

क्र० सं०	रिट याचिका सं०	हेतुक शीर्षक
39.	रिट-ए सं०	विजय बहादुर यादव

अनुवादित

	29014 (एस/बी) वर्ष 2017 आदेश दिनांक 29.04.2022 द्वारा प्रत्याहृत कर लिया गया।	एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य।
40.	रिट-ए सं०12155 वर्ष 2018	गुलबीर सिंह एवं 2 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य।
41.	रिट-ए सं० 26443 वर्ष 2019 आदेश दिनांक 26.04.2022 द्वारा प्रत्याहृत कर लिया गया।	कौशल कुमार झा व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य।
42.	रिट-ए सं० 21573 वर्ष 2021 आदेश दिनांक 01.03.2023 द्वारा प्रत्याहृत कर लिया गया।	पतंजलि श्रीवास्तव व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य
43.	रिट-ए सं० 3808 वर्ष 2022	सुनील कुमार सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य।
44.	रिट-ए सं० 4141 वर्ष 2022	विपिन कुमार एवं 13 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य।
45.	रिट-ए सं० 5811 वर्ष 2022	नागेंद्र नाथ यादव एवं 3 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य।

अनुवादित

ख. विवाद की उत्पत्ति

(5) इन अवर अभियंताओं की नियुक्ति, पदोन्नति और सेवा की अन्य शर्तों को विनियमित करने वाले नियमों पर ध्यान देने से पूर्व, यह उल्लेख करना उचित होगा कि उत्तर प्रदेश लोक निर्माण विभाग में अवर अभियंताओं (सिविल) से सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर पदोन्नति के संबंध में मुख्य रूप से तीन आदेश हैं जिन्हें रिट याचिकाओं की इस वर्तमान श्रृंखला में चुनौती दी जा रही है। ये तीन आदेश निम्नानुसार उल्लेखित हैं:

"(i) 96 पदोन्नतियों से संबंधित आदेश दिनांक 02.08.2008;

(ii) 27 पदोन्नतियों के संबंध में आदेश दिनांक 03.07.2009;

(iii) 2003-2004 के लिए पदोन्नति कोटा में भूतलक्षी रूप से "संवर्ग सिद्धांत" लागू करके 97 और रिक्तियां बनाने से संबंधित आदेश दिनांक 05.02.2010, जिसके विरुद्ध मई, 2010 में यूपीपीएससी से पदोन्नति के लिए 78 सिफारिशें प्राप्त हुईं, हालांकि इस न्यायालय के आदेशों के कारण, इसे लागू नहीं किया जा सका।"

(6) प्रत्यक्ष स्पष्ट रूप से, ये सभी पदोन्नति आदेश उपाधि धारक अवर अभियंताओं के पक्ष में रहे हैं, जिसके द्वारा दिनांक 02.08.2008 के आदेश से पदोन्नत हुए 96 लोगों ने वर्ष 2008 से सहायक अभियंता के पद पर पदभार ग्रहण किया और कार्यरत हैं, जबकि दिनांक 03.07.2009 के आदेश से पदोन्नत 27 व्यक्तियों एवं दिनांक 05.02.2010 के आदेश

से अनुशंसित हुए 78 व्यक्तियों ने पदोन्नत पद पर कार्य नहीं किया, लेकिन उनकी सीटों को "संरक्षित रिक्तियों" के रूप में रोक कर रखा गया है।

(7) इस प्रकार, दोनों मुद्दे यथा - (i) पदोन्नति कोटा के तहत सहायक अभियंता के लिए उपलब्ध पदों की संख्या, और (ii) उक्त पद के लिए उपाधि धारक अवर अभियंता और डिप्लोमा धारक अवर अभियंता के दावे, से सम्बंधित है। इस पर न्यायालय द्वारा न्यायनिर्णयन किया जाना है।

(8) इस मामले से जुड़ी अन्य रिट याचिकाएं या तो उपरोक्त पदोन्नति आदेशों के परिणामस्वरूप परिणामी अनुतोष के लिए या इन तीन पदोन्नति आदेशों से उत्पन्न होने वाली अन्य सेवा शर्तों के सम्बन्ध में दायर की गई हैं।

(9) शुरुआत में ही, प्रतिस्पर्धी निजी प्रतिवादियों के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने जोरदार तर्क प्रस्तुत किया कि 96 पदोन्नत व्यक्तियों के पदोन्नति आदेश दिनांक 02.08.2008 को आदेश दिनांक 08.09.2011 के निर्णय द्वारा रद्द नहीं किया गया था और इसलिए माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आदेश दिनांक 08.09.2011 को अपास्त करने वाले अपने प्रतिप्रेषण आदेश दिनांक 21.08.2019 के तहत मुद्दे के नए सिरे से सुनवाई हेतु पदोन्नति आदेश दिनांक 02.08.2008 को प्रतिप्रेषित नहीं किया। इसके खण्डन में याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने 08.09.2011 को तय की गई रिट याचिकाओं के पूरे समूह को अन्य मामलों के साथ पुनः सुनवाई हेतु प्रतिप्रेषित कर दिया था, जिसमें आदेश दिनांक 21.08.2019 द्वारा दो रिट याचिकाएं, 6943 / 2007 एवं 3173 / 2008, सम्मिलित थीं। उनके अनुसार, सभी तीन पदोन्नति आदेश दिनांक 02.08.2008 (96 पदोन्नति के संबंध में), 03.07.2009 (27 पदोन्नति के संबंध में) और 05.02.2010 (78 अनुशंसाओं के संबंध में) को लगभग 40 रिट याचिकाओं में चुनौती दी गई थी, जिनका निर्णय एक आम सहमति से आदेश दिनांक 08.09.2011 द्वारा किया गया था और यद्यपि इस न्यायालय ने आदेश दिनांक 08.09.2011 के निर्णय के माध्यम से, केवल आक्षेपित आदेशों दिनांक 03.07.2009 और 05.02.2010 (त्रुटिवश आदेश दिनांक 02.08.2008 को छोड़ते हुए) को निरस्त कर दिया था लेकिन इसने अंततः सभी लंबित रिट याचिकाओं का निस्तारण भी, आदेश दिनांक 08.09.2011 के निर्णय में की गई टिप्पणियों के संदर्भ में, कर दिया था। इसमें उपरोक्त दो रिट याचिकाएं - संख्या 6943 / 2007 और 3173 / 2008 भी सम्मिलित हैं।

(10) याचिकाकर्ताओं का तर्क है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 21.08.2019 के माध्यम से अंजनि कुमार के मामले में पारित आदेश दिनांक 03.11.2006 और डिप्लोमा अभियंता संघ के मामले में पारित आदेश दिनांक 08.09.2011 को निरस्त करते हुए सभी मामलों को नए सिरे से सुनवाई के लिए प्रतिप्रेषित कर दिया, और चूंकि उपरोक्त दो याचिका संख्या 6943 /

अनुवादित

2007 और 3173 / 2008 को भी अंतिम रूप से आदेश दिनांक 08.09.2011 के द्वारा निर्णीत कर दिया गया था, इसलिए, वे पूरी तरह से प्रतिप्रेषण आदेश दिनांक 21.08.2019 द्वारा आच्छादित किए गए हैं और उनकी इस समूह के साथ नए सिरे से सुनवाई करनी होगी।

(11) प्रतिद्वंद्वी तर्क पर विचार करने के उपरांत, इस न्यायालय का विचार है कि इसमें कोई संदेह नहीं है कि दिनांक 02.08.2008 के पदोन्नति आदेश का पूर्व आदेश दिनांक 08.09.2011 के निश्चायक प्रस्तर में विशेष रूप से उल्लेख नहीं किया गया था, हालांकि, उपरोक्त आदेश में आया अवलोकन और निष्कर्ष, तीनों आक्षेपित पदोन्नति आदेशों का समग्र मूल्यांकन करता हुआ प्रतीत होता है। इस न्यायालय ने उपरोक्त आदेश दिनांक 08.09.2011 में विशेष रूप से निम्नानुसार अभिलेखित किया है:-

"वर्तमान मामले में, दिनांक 9.4.2008 की पात्रता सूची के अवलोकन से पता चलता है कि कुछ ऐसे व्यक्तियों के नाम शामिल किए गए थे, जो निस्संदेह, प्रासंगिक समय पर परिवीक्षा पर काम कर रहे थे और सेवा के सदस्य नहीं बने हैं। हम निजी प्रतिवादियों के इस दावे को स्वीकार करने में असमर्थ हैं कि वे सभी व्यक्ति जिन्हें मूल रिक्ति के प्रति नियुक्त किया गया है, पद पर पुष्ट हुए बिना भी पदोन्नति के लिए पूर्णतः पात्र थे।"

(12) प्रत्यक्षतः, उक्त पात्रता सूची दिनांक 09.04.2008 (उपरोक्त) के साथ ही पात्रता सूची दिनांक 25.04.2008, पदोन्नति आदेश दिनांक 02.08.2008 का आधार बनाती है, जिसे इस न्यायालय ने अस्वीकार्य बताया।

(13) इसके अलावा, इस न्यायालय द्वारा अपने आदेश दिनांक 08.09.2011 के तहत सभी मामलों के अंतिम निस्तारण के बाद, उपरोक्त दो रिट याचिकाओं को बिना किसी अन्य आदेश के छोड़ दिया जाना या निराधार तय किया जाना नहीं उपधारित किया जा सकता है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अनुपाल सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (2020) 2 एससीसी 1, के प्रकरण में पारित हालिया निर्णय दिनांक 30.09.2019 में अभिनिर्धारित किया कि "जहां एक सामान्य निर्णय दिया गया है जिसमें समेकित आदेश विशेष रूप से पारित किए गए हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि यह अप्रतिरोध्य है कि एक ही अपील दायर करने से पूरा विवाद एक बार फिर से विचाराधीन हो जाता है ।"

(14) इस प्रकार, जब माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मामलों को नए सिरे से सुनवाई के निर्देश के साथ इस न्यायालय को प्रतिप्रेषित किया जाता है, तो नए सिरे से ऐसे सुनवाई करनी होगी, जैसे कि मूल सुनवाई हुई ही नहीं थी और ऐसी परिस्थितियों में, ऐसा प्रतिप्रेषण पूर्ण प्रतिप्रेषण होगा और इसे सीमित/प्रतिबंधित प्रतिप्रेषण नहीं कहा जा सकता है। इस मुद्दे को पेपर प्रोडक्ट्स लिमिटेड बनाम सीआईटी मुंबई, (2007) 7 एससीसी 352 तथा सुरेंद्र कौल बनाम ज्योति रंजन (2001) एससीसी ऑनलाइन कैल 237, के मामलों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्पष्ट किया गया है।

अनुवादित

(15) इसके अलावा, निर्णय और आदेश दिनांक 08.09.2011 के विरुद्ध दायर विशेष अनुमति याचिका की प्रार्थनाओं के परिशीलन से, यह स्पष्ट है कि रिट याचिका संख्या 6943/2007 और 3173/2008 सहित सभी याचिकाओं पर पारित आदेश दिनांक 08.09.2011 के पूर्ण निर्णय को चुनौती दी गई थी, जिसमें 96 रिक्तियों पर पदोन्नति की प्रक्रिया आक्षेपित पदोन्नति आदेश दिनांक 02.08.2008 को जारी करने के रूप में परिणत हुई, को चुनौती दी गई थी। इस प्रकार जब आदेश दिनांक 03.11.2006 और 08.09.2011 के निर्णय सहित उसके बाद के सभी निर्णयों को अपास्त कर दिया गया, मामलों की नए सिरे से सुनवाई करने के निर्देश के साथ, श्री दीक्षित के तर्क और अनुरोध को स्वीकार नहीं किया जा सकता है, क्योंकि आदेश दिनांक 08.09.2011 द्वारा निर्णीत की गई सभी रिट याचिकाएँ, जिनमें रिट संख्या 6943 / 2007 और 3173 / 2008 भी शामिल हैं, उनकी दलीलों के साथ पुनर्जीवित की जाएंगी, और नए सिरे से सुनवाई की जाएगी।

(16) इसलिए, निजी प्रतिवादियों का यह तर्क कि उनके पदोन्नति आदेश दिनांक 02.08.2008 और पदोन्नति की पूरी प्रक्रिया को चुनौती देने वाली दो रिट याचिकाएं शीर्ष न्यायालय के प्रतिप्रेषण आदेश दिनांक 21.08.2019 में शामिल नहीं हैं और इसलिए इन दो रिट याचिकाओं की पुनः सुनवाई की आवश्यकता नहीं है, अस्वीकार कर दिया जाना चाहिए। इस प्रकार, यह न्यायालय तीनों आक्षेपित पदोन्नति आदेशों पर निर्णय लेने के लिए अग्रसर है।

ग. वर्ष 1936 की पुरानी सेवा नियमावली

(17) उत्तर प्रदेश राज्य में अवर अभियन्ता के पद से सहायक अभियन्ता के पद पर पदोन्नति की प्रक्रिया को विनियमित करने वाले नियम संयुक्त प्रांत अभियांत्रिकी सेवा (भवन और सड़क शाखा) (वर्ग II) नियमावली, 1936 के अनुसार हैं, जिसे समय-समय पर संशोधन किया गया (इसके बाद इसे पुरानी सेवा नियमावली 1936 के रूप में संदर्भित किया जाएगा)। जाहिर तौर पर, भारत के संविधान के प्रारंभ होने के बाद, संयुक्त प्रांत अभियांत्रिकी सेवा (भवन और सड़क शाखा) वर्ग- II नियमावली 1936 (संक्षिप्तता के लिए पुरानी सेवा नियमावली 1936) भारत के संविधान के अनुच्छेद 313 के आधार पर लागू रही।

(18) नियमावली 1936, की मुख्य विशेषता, जो मूल रूप से अस्तित्व में थी और इन मामलों के संदर्भ में प्रासंगिक है, अन्य बातों के साथ-साथ निम्नानुसार उपबंध करती है:

(क) नियम 3(ख) इस बात से संबंधित है कि सेवा का सदस्य कौन हो सकता है और इसमें अनिवार्य रूप से कहा गया है; "जिन्हें इन नियमों के प्रावधानों के तहत संवर्ग में किसी पद पर अधिष्ठायी क्षमता के साथ नियुक्त किया गया है"।

(ख) नियम 4(i) में प्रस्तुत है कि राज्य सरकार के लिए हर वर्ष सभी रिक्तियों को भरने की कोई बाध्यता नहीं है, इसलिए हर वर्ष पदोन्नति का कोई अधिकार नहीं है।

(ग) नियम 5 भर्ती के स्रोत से संबंधित है; जो अन्य बातों के साथ-साथ यह प्रस्तुत करता है कि :

(i) उन अभियांत्रिकी छात्रों में से सीधी भर्ती द्वारा, जो थॉमसन सिविल इंजीनियरिंग

अनुवादित

कॉलेज, रूड़की से उत्तीर्ण हुए हैं, और जिन्होंने स्थायी चयन बोर्ड से परामर्श के बाद अभियांत्रिकी छात्रों के रूप में भवन और सड़क शाखा में प्रशिक्षण का एक पाठ्यक्रम पूर्ण कर लिया है।

(ii) विज्ञापन के बाद सीधी भर्ती द्वारा और स्थायी चयन बोर्ड से परामर्श के बाद ।

(iii) स्थायी चयन बोर्ड से परामर्श के बाद, संयुक्त प्रांत लोक निर्माण विभाग, भवन और सड़क शाखा की अस्थायी सेवा में अधिकारियों की नियुक्ति द्वारा।

(iv) संयुक्त प्रांत अधीनस्थ अभियांत्रिकी सेवा या लोक निर्माण विभाग, भवन और सड़क शाखाओं में प्रवर अधीनस्थों के सदस्यगण, जो असाधारण योग्यता धारित करते हैं, की पदोन्नति द्वारा।

(घ) प्रत्येक स्रोत से भर्ती की जाने वाली संख्या से संबंधित नियम-6 में कहा गया है कि सरकार प्रत्येक मामले में यह तय करेगी कि कोई रिक्ति किस स्रोत से भरी जाएगी:

बशर्ते कि:-

(क) संयुक्त प्रांत अधीनस्थ अभियांत्रिकी सेवा या प्रवर अधीनस्थों के सदस्य जो नियम 5 के खंड (iv) के तहत पदोन्नति के लिए पात्र हैं, उन्हें नियमावली की खण्ड (ii) के तहत सीधी भर्ती के लिए आवेदन करने से वर्जित कर दिया गया है।

(ख) सेवा में नियुक्तियाँ करते समय, विभिन्न समुदायों के उचित प्रतिनिधित्व को सुरक्षित करने और समुदाय के किसी एक वर्ग की प्रधानता को रोकने का ध्यान रखा जाएगा।

(ग) सीधी भर्ती के मामले में, अन्य बातें समान रहते हुए, उम्मीदवार की पारिवारिक स्थिति को प्राथमिकता दी जाएगा।

(ड.) नियम-9 योग्यताओं से संबंधित है जिसके नियम 9(i) में कहा गया है कि किसी भी व्यक्ति को नियम 5(i), 5(ii), या 5(iii) के प्रावधानों के तहत सेवा में तब तक भर्ती नहीं किया जाएगा जब तक-

(क) उसके पास थॉमसन कॉलेज का अभियांत्रिकी प्रमाणपत्र है, या

(ख) वह इंस्टीट्यूशन ऑफ इंजीनियर्स (इंडिया) का पूर्णतः योग्य सह सदस्य है, या

(ग) उसने निर्धारित शर्तों के तहत परिशिष्ट में उल्लिखित विश्वविद्यालयों में से एक से अभियांत्रिकी की उपाधि प्राप्त की है, या

(घ) उसने इंस्टीट्यूशन ऑफ सिविल इंजीनियर्स की सह सदस्यता परीक्षा की धारा क और ख उत्तीर्ण की है, या

(ड.) उन्होंने सिविल इंजीनियरिंग में सिटी एंड गिल्ड्स इंस्टीट्यूट (इंपीरियल कॉलेज ऑफ साइंस एंड टेक्नोलॉजी, साउथ केंसिंग्टन) की एसोसिएटशिप परीक्षा उत्तीर्ण की है; और

(च) यदि उसे नियम 5(ii) के प्रावधानों के तहत भर्ती किया जाता है, तो उसके पास सड़कों और इमारतों से जुड़े महत्वपूर्ण कार्यों पर कम से कम दो वर्ष का व्यावहारिक अनुभव है।

अनुवादित

इसके अलावा, नियम 9(ii) कहता है कि किसी भी अधिकारी को नियम 5(iv) के तहत सेवा में तब तक पदोन्नत नहीं किया जाएगा जब तक कि उसने सरकार द्वारा निर्धारित योग्यता परीक्षा उत्तीर्ण नहीं कर ली हो।

(च) नियम 17 में कहा गया है कि परिवीक्षा चार वर्ष की संतोषजनक सेवा की अवधि के लिए होगी और नियम 18 कहता है कि पुष्टि हेतु विभागीय परीक्षा आवश्यक थी।

(छ) आगे नियम 19 में कहा गया है कि स्थायीकरण परिवीक्षा अवधि पूर्ण होने और सभी परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने और संतोषजनक सेवा के बाद होगा। नियम 20 और 21 परिवीक्षा अवधि के विस्तार और सेवा समाप्ति से संबंधित है। नियम 23 कहता है कि वरिष्ठता उनके वेतन की प्रारंभिक दरों से निर्धारित की जाएगी और पुष्टिकरण नियम 22 के अधीन होगा यानी जहां आवश्यक हो वहां विभागीय परीक्षा उत्तीर्ण करना।

(19) उपरोक्त नियमावली 1936 में सबसे पहला संशोधन 28.10.1936 को ही हुआ था, जिसमें नियम 6 (क) को इस अर्थ में जोड़ा गया था कि "अधीनस्थ अभियांत्रिकी सेवा और प्रवर अधीनस्थ अभियांत्रिकी सेवा में पदोन्नति, के चयनित योग्य सदस्यों के लिए 20 प्रतिशत से कम रिक्तियां आरक्षित नहीं की जाएंगी।"

(20) इसके अलावा, नियम 23 को भी 18.06.1941 के एक संशोधन द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था, जिसका अर्थ था कि वरिष्ठता नियुक्ति के आदेश की तारीख से दी जाएगी और नियम 9(ii) को 19.04.1943 को प्रतिस्थापन द्वारा इस अर्थ में संशोधित किया गया था कि "किसी भी अधिकारी को नियम 5(iv) के तहत सेवा में तब तक पदोन्नत नहीं किया जाएगा जब तक कि उसने राज्यपाल द्वारा निर्धारित योग्यता परीक्षा उत्तीर्ण नहीं कर ली हो, या उसके पास इस नियम के खंड (i) में निर्धारित प्राविधिक योग्यता न हो।"

(21) जाहिरा तौर पर, पुरानी नियमावली 1936 के नियम 9 में सहायक अभियंता के पद के लिए आवश्यक प्राविधिक योग्यताएं प्रदान की गई थीं। उप-खंड (ii) में प्रावधान है कि किसी भी अधिकारी को नियम 5(iv) के तहत तब तक पदोन्नत नहीं किया जाएगा जब तक कि उसने सरकार द्वारा निर्धारित कोई भी योग्यता परीक्षा उत्तीर्ण न कर ली हो। हालाँकि, उपरोक्त संशोधन दिनांक 19.04.1943 के माध्यम से, एक प्रावधान किया गया था कि एक अधिकारी को राज्य सरकार द्वारा निर्धारित योग्यता परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद या नियमावली 1936 के 9(i) में निर्धारित प्राविधिक योग्यता होने के उपरांत ही सहायक अभियंता के पद पर पदोन्नत किया जा सकता है। उक्त संशोधन का प्रभाव यह हुआ कि नियम 9(i) के तहत निर्धारित किसी भी योग्यता रखने वाले अवर अभियंता को अब पदोन्नति के लिए योग्यता परीक्षा उत्तीर्ण करने की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि उनके पास नियमावली में उल्लिखित योग्यता प्राप्त करके पदोन्नत होने का एक वैकल्पिक मार्ग भी था। इस प्रकार, केवल ऐसे अवर अभियंताओं के लिए अर्हता परीक्षा उत्तीर्ण करना आवश्यक था जिनके पास नियम 9(i) के तहत निर्दिष्ट प्राविधिक योग्यता नहीं थी।

अनुवादित

(22) इस न्यायालय ने अवधारित किया कि सहायक अभियंता के पद पर पदोन्नति कोटा में विचार किये जाने के लिए पदोन्नति कोटा के तहत एक अवर अभियंता को या तो योग्यता परीक्षा उत्तीर्ण करने या प्राविधिक योग्यता धारित करने के लिए उपरोक्त विकल्प ही होता है जो डिप्लोमा धारक अवर अभियंता और उपाधि धारक अवर अभियंता के बीच विवाद का कारण बना हुआ है, जिसके कारण इन दोनों समूहों के बीच कई दौर की मुकदमेबाजी हुई है। मुक़दमेबाजी का वर्तमान प्रकरण मुख्यतः इन्हीं दो प्रतिस्पर्धी समूहों के बीच प्रतीत होता है।

(23) यह न्यायालय अन्य संशोधनों के विस्तृत विवरण में नहीं जाएगी, हालाँकि यह कहना पर्याप्त होगा कि 21.07.1959 को फिर से राज्य सरकार द्वारा पुरानी सेवा नियमावली 1936 में संशोधन करते हुए एक अधिसूचना जारी की गई थी जिसके तहत नियम-5 के खंड (iv) में 'अपर अधीनस्थ' शब्द हटा दिए गए थे और नियम-6 के मौजूदा खंड (क) को नए प्रावधानों द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था, जिसमें सेवा में 25% रिक्तियों को अपर अधीनस्थ अभियांत्रिकी सेवा और कंप्यूटर के चयनित योग्य सदस्यों के लिए आरक्षित या निर्धारित किया गया था। उक्त संशोधन के अनुसार, इस प्रकार आरक्षित रिक्तियों को चयन के समय अधीनस्थ अभियांत्रिकी सेवा और कंप्यूटर के सदस्यों द्वारा उनके सापेक्ष कैडर की ताकत के अनुमानित अनुपात में साझा किया जाना था।

(24) 28.07.1969 को पुरानी सेवा नियमावली 1936 के नियम 3(सी), 5 और 6 में भी कुछ संशोधन किए गए और 1971 में एक अन्य अधिसूचना के माध्यम से पुरानी सेवा नियमावली 1936 के नियम 23 में संशोधन किया गया। 1969 की अधिसूचना द्वारा नियम 3(ग), 5 और 6 में किए गए संशोधनों की वैधता और 1971 की अधिसूचना द्वारा नियम 23 में किए गए संशोधन, पी.डी. अग्रवाल एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (1987) 3 एससीसी 622, के प्रकरण में चुनौती का विषय थे, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय और आदेश दिनांक 8.6.1987 के माध्यम से नियम 3(ग), 5, 6 और 23 को निरस्त करते हुए पुरानी सेवा नियमावली को मनमाना बताते हुए, संबंधित अधिकारियों को पीडब्ल्यूडी विभाग में सहायक अभियंता के कैडर में सेवा के सभी सदस्यों की सेवा की अवधि के आधार पर उनके सेवा नियमावली में निर्धारित सभी आवश्यकताओं को पूरा करते हुए सदस्य बनने की तारीख से एक नई वरिष्ठता सूची तैयार करने का निर्देश दिया। माननीय न्यायालय ने न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के संबंध में नियमों द्वारा पैदा की जा रही भ्रम की स्थिति को देखते हुए, निम्नवत उद्धृत किया था:

".....हम अन्य कुछ नहीं मात्र यही टिप्पणी कर सकते हैं कि कि यद्यपि अस्थायी सहायक अभियंताओं को अस्थायी सहायक अभियंता के रूप में नियुक्त करने के बाद लोक सेवा आयोग द्वारा विधिवत चयन किया गया है, फिर भी इस न्यायालय द्वारा दिए गए कई निर्देशों के बावजूद, संबंधित अधिकारियों ने इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देशों के अनुसार वरिष्ठता सूची तैयार करना उचित नहीं समझा, और इसके परिणामस्वरूप इस न्यायालय द्वारा

अनुवादित

दिए गए निर्देशों के बाद भी सहायक अभियंता के कैडर में कोई वरिष्ठता सूची तैयार नहीं की गई है, जैसा कि बालेश्वर दास और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, एआईआर 1981 एससी 41 के निर्णय में सन्निहित है। दूसरी ओर, मौजूदा सेवा नियमावली 1936 में किया गया संशोधन मनमाना प्रतीत होता हैं और इससे मुकदमों की बाढ़ आ गई है। हम आशा करते हैं और उम्मीद है कि इन सब पर विचार करते हुए, सरकार सेवा हित में भविष्य में पदोन्नति की संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए सेवा के सदस्यों को प्रोत्साहित करने के लिए यथाशीघ्र वरिष्ठता सूची तैयार करने के लिए प्रभावी कदम उठाएगी।"

(25) यहां यह उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पुरानी नियमावली के नियम 3 (ग), 5, 6 और 23 को निरस्त करते हुए अधिकारियों को केवल पुरानी सेवा नियमावली के अनुसार सेवा के सभी सदस्यों की एक नई वरिष्ठता सूची तैयार करने का निर्देश दिया था, एवं पुरानी सेवा नियमावली 1936 के नियमों के अस्तित्व को मान्यता और स्वीकृति प्रदान की।

(26) राज्य सरकार ने तत्कालीन नियमावली 1936 के नियमों में आगे और संशोधन किया, जिसमें दिनांक 04.08.1987 के एक संशोधन के माध्यम से विभिन्न स्रोतों के लिए कोटा प्रदान करने के लिए नियम 5(i) से 5(iii) शामिल किए गए। उक्त संशोधन के अनुसार, नियम 5(i) में प्रावधान है कि सहायक अभियंताओं में 66.67% पद रिक्तियां सीधी भर्ती द्वारा भरी जानी थीं, नियम 5(ii) में 25% पद डिप्लोमा धारक अवर अभियंता की पदोन्नति द्वारा और नियम 5(iii) में 8.33% पद उपाधि धारक अवर अभियंता की पदोन्नति द्वारा, करने का प्रावधान किया गया था। पदोन्नति के लिए अर्हता परीक्षा से संबंधित नियम 9(ii) को हटा दिया गया और नए प्रतिस्थापित नियम 12 में प्रावधान किया गया कि पदोन्नति, चयन (प्रक्रिया) नियमावली 1970 द्वारा "योग्यता" के आधार पर द्वारा की जानी थी।

(27) इसके बाद, दिनांक 11.01.1993 के एक संशोधन द्वारा, नियम 12 में उल्लिखित पदोन्नति के मानदंड को "योग्यता" से "अनुपयुक्त की अस्वीकृति के अधीन वरिष्ठता" में बदल दिया गया था। बाद में, नियम 5 के संदर्भ में 1987 के संशोधन द्वारा तैयार किए गए अलग पदोन्नति कोटा को 25.09.1997 के एक अन्य संशोधन द्वारा बदल दिया गया था, जिसका अभिप्राय था कि 58.34% पद सीधी भर्ती से, 33.33% पद डिप्लोमा धारक अवर अभियंता की पदोन्नति से और 8.33% पद डिप्लोमा धारक अवर अभियंता की पदोन्नति से भरे जाने थे।

(28) दिनांक 4.8.1987 और 25.9.1997 की दोनों अधिसूचनाओं की वैधता इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका संख्या 42762 / 2000, अरुवेंद्र कुमार गर्ग बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य सहित चार रिट याचिकाओं के माध्यम से मामले को चुनौती दी गयी। इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने 2002(2) ई.एस.सी.148 में अभिलेखित निर्णय और आदेश दिनांक 22.3.2002 के तहत अरुवेंद्र कुमार गर्ग के

अनुवादित

मामले में संयुक्त रूप से उपरोक्त सभी रिट याचिकाओं पर निर्णय लेते हुए आक्षेपित अधिसूचना दिनांक 4.8.1987 और 25.9.1997 को संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के दायरे से बाहर बताते हुए निरस्त कर दिया है क्योंकि उपाधि धारक अवर अभियंता और डिप्लोमा धारक अवर अभियंता के लिए पदोन्नति के अलग-अलग कोटा के निर्माण को भेदभावपूर्ण और अवैध माना गया। उपरोक्त निर्णय के विरुद्ध अरुवेंद्र कुमार गर्ग और अन्य द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष एक विशेष अनुमति याचिका दायर की गई थी, लेकिन 1 अगस्त 2006 के आदेश के तहत माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त मामले के अपीलकर्ता को सिविल अपील संख्या 40195 / 2002 सहित सिविल अपील संख्या 4194/2002 को वापस लेने की अनुमति दी, और इस तरह इस न्यायालय की खण्डपीठ द्वारा पारित आदेश को अंतिम रूप प्रदान किया गया।

(29) जाहिर है, पुरानी नियमावली 1936 के अनुसार, अरुवेंद्र कुमार गर्ग के मामले के पारित होने के बाद, संशोधन 1943 के तहत नियम 9 द्वारा निर्दिष्ट पात्रता आवश्यकता को पूरा करने वाले अवर अभियंताओं/कंप्यूटरों से भरा जाने वाला पदोन्नति कोटा का 25% बना रहा। इसके परिणामस्वरूप, लोक निर्माण विभाग के अवर अभियंता/कंप्यूटर जिन्होंने या तो नियम 9(ii) के तहत परिकल्पित योग्यता परीक्षा उत्तीर्ण की थी या इंस्टीट्यूट ऑफ इंजीनियर्स (भारत) की सह सदस्यता परीक्षा उत्तीर्ण की थी या इंजीनियरिंग में स्नातक की उपाधि हासिल की थी, वे सहायक अभियंता के पद पर प्रोन्नति के लिए विचार किये जाने के लिए पात्र थे।

(30) नियम 9(ii) द्वारा संकल्पित अर्हता परीक्षा राज्य सरकार द्वारा निर्धारित अर्हता परीक्षा थी। चूंकि नियम 9(ii) के तहत परिकल्पित अर्हक परीक्षा पूर्वोक्त योग्यता के बराबर बैचलर ऑफ इंजीनियरिंग डिग्री/इंस्टीट्यूट ऑफ इंजीनियर्स की सह सदस्यता नहीं रखने वाले उम्मीदवारों के लिए अर्हक परीक्षा थी और अर्हक परीक्षा को नियंत्रित करने वाले नियम यह प्रदर्शित करते हैं कि अर्हता परीक्षा की संकल्पना अभियांत्रिकी में उम्मीदवारों के प्राविधिक ज्ञान के परीक्षण के लिए एक निर्दिष्ट पाठ्यक्रम के आधार पर एक लिखित परीक्षा के रूप में की गई थी, हालांकि 11.2.2003 को राज्य सरकार ने एक कार्यालय आदेश जारी किया जिसमें प्रावधान किया गया कि योग्यता परीक्षा नियम 9 (ii), जिसमे नियमों में केवल तीन सदस्यीय समिति द्वारा आयोजित किया जाने वाला मौखिक साक्षात्कार शामिल होगा, के तहत आयोजित होगी।

घ. विवाद की प्रस्तावना

(31) स्पष्टतः, कार्यालय आदेश दिनांक 11.2.2003 को नियमावली 1936 की योजना के विपरीत और कुछ हद तक डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं के लाभ और पक्ष के लिए जारी किया गया प्रतीत होता है और इस तरह यह उपाधि धारक अवर अभियंताओं द्वारा विजय कुमार और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (सीएमडब्ल्यूपी संख्या 9127/2003) और अन्य संबंधित मामलों में चुनौती का विषय था।

अनुवादित

इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने आदेश दिनांक 16 जुलाई, 2004 द्वारा शासनादेश दिनांक 11.02.2003 को निरस्त कर दिया और राज्य सरकार को नियमों के अनुसार जल्द से जल्द पदोन्नति करने का निर्देश जारी किया गया, जिसका अर्थ है लिखित परीक्षा की अवधारणा को पुनर्जीवित किया गया।

(32) पूर्वोक्त आदेश दिनांक 16.07.2004 को इस न्यायालय की विद्वान खंड-न्यायपीठ द्वारा पारित किया गया था जिसमें दो ध्यान देने योग्य बातें सामने आईं। प्रथम, न केवल राज्य सरकार ने अपने कार्यालय आदेश दिनांक 11.02.2003 के अनुसार डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं के साक्षात्कार की प्रक्रिया को आगे बढ़ाया, बल्कि आदेश दिनांक 16.07.2004 के तहत विजय कुमार प्रकरण (उपरोक्त) में, इसे निरस्त कर दिया गया। लेकिन राज्य सरकार ने संभवतः यह सोचकर कि अरुवेंद्र कुमार गर्ग के मामले में आदेश पारित होने के साथ संपूर्ण पदोन्नति कोटा समाप्त हो गया तथा शासनादेश दिनांक 20.02.2003 जारी कर, जिसमें 41.66% पद पदोन्नति संवर्ग के लिए निर्धारित किया गया और जाहिर तौर पर पुरानी सेवा नियमावली 1936 के तहत मौजूदा बैकलॉग रिक्तियों को भरने के लिए पदोन्नति की प्रक्रिया निर्धारित की गई। मामले को और अधिक जटिल बनाने के लिए, राज्य सरकार ने दिनांक 21.02.2003 को एक अन्य पत्र के माध्यम से, उत्तर प्रदेश पी.एस.सी. को मौजूदा बैकलॉग रिक्तियों के विरुद्ध सहायक अभियंता के अनुमानित 219 पदों पर पदोन्नति के उद्देश्य से डी.पी.सी आहूत करने की तारीख तय करने के लिए कहा। यह शासनादेश दिनांक 20.02.2003 है, जिसमें राज्य सरकार के 41.66% पद पदोन्नति कोटा द्वारा निर्धारित किया गया है, जिसने बहुत भ्रामक स्थिति पैदा की है और यह रिट याचिकाओं के समूह में सबसे विवादास्पद मुद्दों में से एक है।

(33) दूसरे, अधिसूचना दिनांक 3.1.2004 के माध्यम से, राज्य सरकार ने उत्तर प्रदेश लोक निर्माण विभाग समूह-बी सिविल इंजीनियरिंग सेवा नियमावली, 2004 (संक्षेप में नियमावली2004) को तैयार और अधिसूचित किया। अधिसूचना इस संबंध में मौजूदा नियमों और आदेशों को अधिक्रान्त करते हुए जारी की गई थी और अधिसूचना का उद्देश्य 1936 के नियमों को अधिक्रान्त करना था जो 1936 से आज तक सहायक अभियंताओं के पद पर भर्ती को लगातार नियंत्रित करते थे। दिलचस्प बात यह है कि नियमावली 2004 के तहत, नियम 5, भर्ती के स्रोत को वर्णित करता है जिसमें 50% आयोग के माध्यम से सीधी भर्ती द्वारा और 50% मौलिक रूप से नियुक्त ऐसे अवर अभियंताओं (सिविल) और अवर अभियंताओं (प्राविधिक) में से जिन्होंने भर्ती के वर्ष के प्रथम दिवस को इस रूप में सात वर्ष की सेवा पूरी कर ली हो, आयोग के माध्यम पदोन्नति द्वारा भरा जाएगा। परन्तु पदोन्नति ऐसी रीति से की जाएगी कि 90% पद अवर अभियंताओं (सिविल) से और 10% पद अवर अभियंताओं (प्राविधिक) से भरे जायेंगे।

(34) इसके अलावा, नए नियम 8 के अनुसार, यह निर्धारित किया गया है कि सीधी भर्ती के लिए शैक्षणिक योग्यता सिविल इंजीनियरिंग में स्नातक की उपाधि या समकक्ष योग्यता होगी।

अनुवादित

नियम 8 की भाषा में कहा गया है कि इसमें दी गई शैक्षणिक योग्यता पदोन्नति के मामलों पर लागू नहीं होती है। उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, विभाग में एक अवर अभियंता अब पदोन्नति के लिए विचार किए जाने का हकदार है, यदि उसे मौलिक रूप से नियुक्त किया गया है और उसने पुरानी सेवा नियमावली 1936 के तहत निर्धारित कोई भी प्राविधिक योग्यता या कोई परीक्षा उत्तीर्ण करने जैसे किसी और प्रतिबंध के बिना ही भर्ती के वर्ष के प्रथम दिवस को सात वर्ष पूर्ण कर लिए हैं। इस प्रकार, अधिसूचना ने सहायक अभियंता के पद पर पदोन्नति के लिए प्राविधिक योग्यता रखने या योग्यता परीक्षा उत्तीर्ण करने की पूर्ववर्ती आवश्यकता को समाप्त कर दिया है।

(35) नई सेवा नियमावली ने प्राविधिक ज्ञान के परीक्षण के लिए तकनीकी योग्यता रखने या परीक्षा उत्तीर्ण करने की आवश्यकता को पूर्णतः समाप्त कर दिया है। इस प्रकार, नई सेवा नियमावली ने एक तरह से उस अंतर को समाप्त कर दिया है, जो विभाग में ऐसे अवर अभियंताओं, जिनके पास अभियांत्रिकी की स्नातक उपाधि या इंस्टीट्यूट ऑफ इंजीनियर्स की सह सदस्यता है, और ऐसे अवर अभियंताओं, जिनके पास उक्त योग्यता नहीं है, के बीच हमेशा से मौजूद था। हालाँकि, अधिसूचना में केवल भावी कार्रवाई होगी और इसका भूतलक्षी प्रवर्तन नहीं होगा। अधिसूचना दिनांक 3.1.2004 के बाद उत्पन्न होने वाली सहायक अभियंता की रिक्तियों को भरने के लिए लागू होगी और पदोन्नति के लिए ऐसी रिक्तियों के संबंध में इसकी कोई प्रयोज्यता नहीं है जो 3.1.2004 से पहले ही विभाग में अस्तित्व में आ चुकी है। केवल यह तथ्य कि इस न्यायालय के समक्ष लंबित मुकदमे के कारण या अन्यथा पदोन्नति को अंतिम रूप देने में देरी हुई है, पूरी तरह से अप्रासंगिक है और 3.1.2004 से पहले उत्पन्न हुई रिक्तियों के विरुद्ध पदोन्नति को इसके अनुसार भरना आवश्यक है। नियमावली 1936 और अधिसूचना दिनांक 3.1.2004 के तहत यह पदोन्नति का विषय नहीं हो सकता। यदि अधिसूचना को पहले की रिक्तियों पर लागू किया जाता है तो यह अधिसूचना को भूतलक्षी प्रवर्तन की अनुमति देने के समान होगा, जो विधि का कार्यक्षेत्र नहीं हो सकता है और न ही नवीन नियमावली की रचना हेतु विधायिका की मंशा हो सकती है।

((36) विजय कुमार और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (सीएमडब्ल्यूपी नंबर 9127/2003) और अन्य संबंधित मामलों में इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 16.07.2004 के तथ्य पर वापस आते हैं, जिसमें शासनादेश दिनांक 11.02.2003 को निरस्त कर दिया गया था अभिलेख के अनुसार यह तथ्य स्पष्ट है कि डिप्लोमा अभियांत्रिकी संघ ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष एक विशेष अनुमति याचिका दायर की थी, जिसमें एसएलपी (सिविल) सीसी नंबर 8440/2004 में पारित एक आदेश दिनांक 27.09.2004 के तहत माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने रोक लगा दी थी। इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 16.07.2004 का कार्यान्वयन और बाद की सभी पदोन्नतियों को एसएलपी के अंतिम परिणाम के अधीन बना दिया गया।

(37) अंतर्काल में, विभिन्न रिट याचिकाएं दायर की गईं, जिनमें विभिन्न मुद्दे सहित पुरानी

अनुवादित

सेवा नियमावली 1936 और नई सेवा नियमावली 2004 के बीच अंतर-संबंध, शासनादेश दिनांक 20.02.2003 की वैधता और पदोन्नति कोटा के निर्धारण आदि के मुद्दे भी उठाए गए। इस न्यायालय ने इन मामलों की विस्तार से सुनवाई की, जिसमें अंजनी कुमार मिश्रा को अग्रनिर्णय माना गया। हालांकि "डिप्लोमा अभियांत्रिकी संघ" द्वारा विजय कुमार प्रकरण की निर्णय के विरुद्ध दायर विशेष अनुमति याचिका में बहस पूरी हो गई थी और शीर्ष न्यायालय ने निर्णय सुरक्षित रख लिया था, लेकिन अंतिम निर्णय की प्रतीक्षा करने और सुनवाई को टालने के बजाय, इस न्यायालय ने अंजनी कुमार मिश्रा सहित सभी सम्बद्ध रिट याचिकाओं को आदेश दिनांक 03.11.2006 के द्वार निर्णीत करने हेतु अग्रसर हुआ, जो 2007(1) यूपीएलबीईसी 260 के रूप में अभिलेखित किया गया। जिसमें इस न्यायालय ने निम्नानुसार निर्देश दिए: -

(i) नई सेवा नियमावली 2004 की वैधता को बरकरार रखा गया।

(ii) किसी भी वरिष्ठ डिप्लोमा धारक अवर अभियंता पर विचार किये बिना, 1998-2002 के बीच जारी किए गए 04 पदोन्नति आदेशों द्वारा केवल डिग्री धारक अवर अभियंता से की गई सभी 73 पदोन्नति (30.06.1998, 02.05.2002, 06.12.2004 और 25.05.2005) को विधिनुसार अमान्य घोषित कर दिया गया और निरस्त कर दिया गया।

(iii) यह माना गया कि 1987 और 1997 के संशोधनों को अपास्त करने के बाद पुरानी सेवा नियमावली 1936 से नियम 12 यानी वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति के अतिरिक्त नियम 5, 6, 9 सहित कुछ भी नहीं बचेगा, और इसलिए अंतर्काल की अवधि के लिए समग्र पदोन्नति कोटा का 41.66%, शासनादेश दिनांक 20.02.2003 के अनुसार लागू होगा।

(iv) इस न्यायालय ने पुरानी अवधि की कुल 446 रिक्तियों पर शासनादेश दिनांक 20.02.2003 को लागू करते हुए, 1997-1998 से 2003-2004 की अवधि के दौरान सहायक अभियंता की कुल रिक्तियों को भी निर्धारित करने के लिए भी कार्यवाही की जिसमे पदोन्नति कोटा के लिए 186 पद और सिद्धांत 41.66 लागु करते हुए प्रत्यक्ष कोटा हेतु 260 पद शामिल किये गए।

(v) राज्य सरकार को निर्देश दिया गया कि वह पदोन्नति के लिए सीधे कोटे की रिक्तियां न दें और उपरोक्त रिक्तियों को, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा कानून के अनुसार निर्धारण किया गया है, तदनुसार वर्ष-वार रिक्तियों का निर्धारण करने के बाद भरें।"(38) अंजनी कुमार के प्रकरण में निर्णय, जिसमें 73 पदोन्नतियों को अपास्त कर दिया गया था, को अतिबल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य शीर्षक से एक अलग विशेष अनुमति याचिका में चुनौती दी गई थी, जिसे प्रतिवर्तित डिग्री धारक अवर अभियंता (अतिबल समूह) ने दायर किया था, जिसमें शीर्ष न्यायालय ने उन्हें प्रतिवर्तित न करने के लिए एक अंतरिम आदेश दिनांक 27.11.2006 को पारित किया था। इसके अलावा, जहां तक नई सेवा नियमावली, 2004 की वैधता का प्रश्न है, दिलीप कुमार गर्ग बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के प्रकरण में अंजनी कुमार मिश्रा और अन्य, मामले के विरुद्ध एक और विशेष अनुमति याचिका दायर की गई। जिसमें प्रारंभ में यथापूर्व स्थिति का आदेश दिनांक 04.01.2007 को पारित किया

अनुवादित

गया। हालाँकि, जब राज्य ने यथापूर्व स्थिति आदेश को हटाने और पुरानी रिक्तियों को पुरानी सेवा नियमावली, 1936 के अनुसार भरने की अनुमति देने के लिए एक अंतरिम आवेदन दायर किया, तो यथास्थिति आदेश निष्प्रभावी कर दिया गया, लेकिन, बाद में आदेश दिनांक 01.04.2008 के तहत, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त विशेष अनुमति याचिका को ही निरस्त कर दिया और जहां तक नई सेवा नियमावली, 2004 की शक्तिमत्ता का प्रश्न है, इस न्यायालय के निर्णय को कायम रखा।

(39) अंतर्काल में, विजय कुमार और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 16.07.2004 के विरुद्ध डिप्लोमा धारक अभियंता संघ द्वारा दायर विशेष अनुमति याचिका को सिविल अपील संख्या 3228 / 2005 में परिवर्तित कर दिया गया था, और यद्यपि प्रारंभ में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा एक अंतरिम आदेश दिया गया, जिसमें प्रावधान किया गया था कि की गई कोई भी पदोन्नति विशेष अनुमति याचिका के परिणाम के अधीन होगी, तथापि, अंततः उक्त विशेष अनुमति याचिका /सिविल अपील को "डिप्लोमा इंजिनियर्स संघ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2007(13) एससीसी 300" के रूप में अभिलेखित निर्णय और आदेश दिनांक 20/3/2007 द्वारा निरस्त करते हुए इस न्यायालय की खण्ड पीठ के निर्णय को बरकरार रखते हुए राज्य सरकार को चार महीने की अवधि के भीतर डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं के लिए योग्यता परीक्षा आयोजित करने का निर्देश दिया गया, जो स्पष्ट रूप से 1969 संशोधन के पूर्व पुरानी सेवा नियमावली 1936 के अस्तित्व का संकेत देता है। आगे यह प्रावधान किया गया था कि कोई भी अवर अभियंता जिसे ऊपर संदर्भित माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए अंतरिम आदेश के अनुसरण में पदोन्नत किया गया है, वह तदर्थ आधार पर पदोन्नत पद पर केवल इस शर्त पर बना रहेगा कि उसे नियमावली, 1936 के अनुसार नियमित रूप से पदोन्नत किया जाएगा, और यदि वे योग्यता परीक्षा उत्तीर्ण करने में विफल रहते हैं तो ऐसे व्यक्तियों को अवर अभियंता के मूल पद पर वापस भेज दिया जाएगा।

(ड.) विवाद

(40) डिप्लोमा इंजिनियर्स संघ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2007(13) एससीसी 300 वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश के अनुसार दिनांक 15.5.2007 को इंजीनियर-इन-चीफ ने एक पत्र जारी कर सूचित किया कि योग्यता परीक्षा होगी जिसे उ.प्र. तकनीकी शिक्षा बोर्ड द्वारा संचालित किया जायेगा। इसके बाद, परीक्षाएं 18.07.2007 और 19.7.2007 को यू.पी.एस.सी. केन्द्र, लखनऊ में आयोजित की गईं। बाद में, कुछ विसंगतियों के कारण, 18.07.2007 और 19.7.2007 को आयोजित परीक्षा को राज्य सरकार ने आदेश दिनांक 30.7.2007 द्वारा निरस्त कर दिया था, जिसमें अनुमान लगाया गया था कि लगभग 711 डिप्लोमा अवर अभियंता उपस्थित हुए थे। परिणामस्वरूप, दिनांक 3.8.2007 को एक नोटिस प्रकाशित किया गया कि परीक्षा अब 12, 14 और 16 अगस्त, 2007 को

अनुवादित

आयोजित की जाएगी। नोटिस में, यह भी प्रस्तुत किया गया था कि उत्तर प्रदेश प्राविधिक बोर्ड द्वारा जो प्रवेश पत्र योग्यता परीक्षा के समय जारी किया गया था, वह वैध माना जाएगा और अलग से प्रवेश पत्र की आवश्यकता नहीं होगी।

(41) हालाँकि, जो उम्मीदवार उत्तर प्रदेश राज्य के दूरदराज के इलाकों में तैनात थे, उन्हें परीक्षा की तारीख से अवगत नहीं कराया जा सका क्योंकि विभाग के संबंधित अधिकारियों द्वारा कोई उचित संचार तंत्र स्थापित नहीं किया जा सका और इतनी बड़ी संख्या में अभ्यर्थी भाग नहीं ले सके। जाहिर तौर पर, केवल एक उम्मीदवार पूर्वाह्न में प्रथम प्रश्नपत्र में उपस्थित हो सका और दो अन्य अर्हता परीक्षा के लिए दोपहर में द्वितीय प्रश्नपत्र में सम्मिलित हुए। इसी प्रकार अगले दिन प्रथम सत्र में 9 और द्वितीय सत्र में 11 अभ्यर्थी ही सम्मिलित हुए। यह दावा किया गया है कि, हालांकि, राज्य ने प्रावधान किया था कि पहले जारी किए गए प्रवेश पत्र को वैध माना जाएगा जिसमें परीक्षा केंद्र का उल्लेख यू.पी.एस.सी. लखनऊ के रूप में किया गया था। लेकिन परीक्षा वास्तव में बदलकर इलाहाबाद में आयोजित की गई। इस प्रकार ये सभी वास्तविक एवं पात्र अभ्यर्थी परीक्षा में भाग लेने से रोके गए। इस न्यायालय का मानना है कि वर्तमान मामलों में इस योग्यता परीक्षा का आयोजन भी एक मुद्दा है, जिस पर तदनुसार इस निर्णय के अगले भाग में विचार किया जाएगा।

(42) जाहिर है, इस बीच, विभाग ने आगामी योग्यता परीक्षा के परिणाम की प्रतीक्षा किए बिना, केवल डिग्री धारक अवर अभियंताओं को सम्मिलित करके, 1997-98 से 2003-2004 की अवधि से संबंधित 84 (186-73-29) पदोन्नति कोटा रिक्तियों के प्रति दिनांक 24.09.2007 को अधियाचन प्रेषित किया। हालांकि विडंबना यह है कि योग्यता परीक्षा के परिणाम भी 24.10.2007 को ही घोषित किए गए। यह स्पष्ट किया जा सकता है कि विभाग द्वारा उपरोक्त 84 अधियाचन संभवतः अंजनी कुमार मिश्रा के मामले में निरस्त की गई 73 पदोन्नति को घटाकर किया गया था, लेकिन बाद में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए यथास्थिति आदेश के संदर्भ में इस पर रोक लगा दी गई और अंजनी कुमार मिश्रा के प्रकरण में निर्धारित कुल 186 पदोन्नति पदों में से डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं को पदोनत्ति आदेश दिनांक 30.06.1998 द्वारा 29 पदोन्नति पद प्रदान किये गए। इस प्रकार, रिट याचिका संख्या 6943 (एस/एस) / 2007 के समान प्रथम प्रकार की रिट याचिका डिप्लोमा संघ द्वारा दायर की गई जिसमें (i) 84 पदोन्नति कोटा से संबंधित शासनादेश 24.09.2007 को रद्द करने और (ii) नए सिरे से अर्हता परीक्षा आयोजित करने, की माँग की गयी।

(43) पूरे पदोन्नति प्रकरण में उथल-पुथल मची हुई थी, अचानक विभाग ने 30.06.1998 को किए गए 29 डिप्लोमा धारक अवर अभियंता की पदोन्नति को अमान्य घोषित कर दिया, जिसे बाद में 25.04.2008 को राज्य सरकार द्वारा फिर से मंजूरी दे दी गई। जिसके बाद उन्होंने अधियाचित मांग में 29 और रिक्तियां जोड़ीं, जिससे दिनांक 09.04.2008 की पात्रता

अप्रमाणित

सूची के अनुसार 113 रिक्तियां यानी (84 + 29) हो गईं। दोनों आदेश दिनांक 25.04.2008 तथा सूची दिनांक 09.04.2008 को डिप्लोमा संघ द्वारा रिट याचिका संख्या 3173(एस/एस) / 2008 के माध्यम से चुनौती दी गई थी।

(44) ऐसा प्रतीत होता है कि, अंजनी कुमार के मामले में पदोन्नति की अवधि यानी 1997-98 से 2003-04 के लिए निर्धारित 186 रिक्तियों में शामिल उपरोक्त 113 रिक्तियों के विरुद्ध, 02.08.2008 और 03.02.2009 को 96 (95 +1) पदोन्नतियाँ की गईं। लेकिन सभी पदोन्नतियाँ केवल डिग्री धारक अवर अभियंताओं को दी गईं, जिन पर आरोप लगाया गया है कि वे परिवीक्षाधीन होने के कारण सेवा के सदस्य भी नहीं थे। जाहिर है, चूंकि सूची डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं की पात्रता पर विचार किए बिना तैयार की गई थी, क्योंकि कथित तौर पर डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं की पात्रता सुनिश्चित करने के लिए नियम 9(2) के तहत कोई योग्यता परीक्षा वैधानिक रूप से आयोजित नहीं की गई थी, इसलिए इन 96 पदोन्नतियों को रिट याचिका के दूसरे प्रकार (ऊपर उल्लिखित) में संशोधन द्वारा डिग्री धारक अवर अभियंताओं की अपात्रता और डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं पर विचार न करने के आधार पर चुनौती दी गई थी। प्रासंगिक रूप से, आदेश दिनांक 02.08.2008 को कई अन्य याचिकाओं जैसे संख्या 4459 (एस/एस) / 2009 एवं अन्य में भी चुनौती दी गई थी, जो रिट याचिकाओं के तत्काल समूह का भाग हैं।

(45) इंजीनियर-इन-चीफ के पत्र दिनांक 06.02.2003 में उल्लिखित पुराने नियमों के तहत 219 रिक्तियों के अस्तित्व के बारे में दो डिग्री धारक अवर अभियंता अर्थात् विमल कुमार मिश्रा और ईश्वर पाल सिंह द्वारा प्रस्तुत प्रत्यावेदन दिनांक 27.11.2008 पर कार्यवाही करते हुए, विभाग ने दिनांक 27.02.2009 के एक आदेश/सूची के माध्यम से 33 (219-186) रिक्तियों के लिए एक नई मांग भेजी, जबकि इस तथ्य को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया कि 186 रिक्तियां अंजनी कुमार मिश्रा के निर्णय में पदोन्नति सीटों की संख्या का अंतिम निर्धारण था, और वह भी भर चुके थे। राज्य ने पत्र दिनांक 06.02.2003/20.02.2003 को गलत मानते हुए इस आधार पर अतिरिक्त पदोन्नति की कार्यवाही की कि अंजनी कुमार मिश्रा के मामले ने उन्हें पदोन्नति कोटा में पदों की वास्तविक संख्या निर्धारित करने की स्वतंत्रता दी थी। किसी भी मामले में, अधियाचन आदेश दिनांक 27.02.2009 को डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं द्वारा तृतीय प्रकार की याचिका, जैसे रिट याचिका संख्या 3314 / 2009 यानी डिप्लोमा इंजीनियर्स सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, को चुनौती दी गई थी। जो रिट याचिकाओं के वर्तमान समूह के साथ इस माननीय न्यायालय के समक्ष लंबित हैं।

(46) इसके अतिरिक्त, अंजनी कुमार मिश्रा के मामले में, हालांकि इस न्यायालय ने 186 रिक्तियां तय की थीं, तथापि इसने राज्य सरकार के लिए रिक्तियों को फिर से निर्धारित करने का रास्ता खोल दिया था। राज्य सरकार ने लोक निर्माण विभाग को दिनांक 20.02.2003 को संबोधित पत्र पर विश्वास जताते हुए 219 रिक्तियों का सुझाव हुए शेष

अनुवादित

219-186=33 रिक्तियों पर पदोन्नति करने के लिए अग्रिम कार्यवाही की। अभिलेख के अनुसार, पदोन्नति आदेश दिनांक 03.07.2009 के तहत किसी भी डिप्लोमा धारक अवर अभियंता पर विचार किए बिना, उपरोक्त 33 रिक्तियों के मुकाबले केवल डिग्री धारक अवर अभियंताओं में से कुल 27 पदोन्नतियां की गईं। इस प्रकार, इन पदोन्नतियों को डिप्लोमा धारक अवर अभियंता द्वारा उपरोक्त तृतीय प्रकार की याचिकाओं, जैसे कि रिट याचिका संख्या 3314 / 2009 की यानी डिप्लोमा इंजीनियर्स संघ बनाम उत्तर प्रदेश और अन्य, में एक संशोधन प्रार्थनापत्र प्रस्तुत कर चुनौती दी गई थ। इस पदोन्नति आदेश दिनांक 03.07.2009 को रिट याचिका संख्या 4459(एस/एस)/2009 जैसी कई अन्य याचिकाओं में भी चुनौती दी गई थी, जो रिट याचिकाओं के वर्तमान समूह का भाग हैं।

(47) यद्यपि अंजनी मिश्रा के मामले में इस न्यायालय ने पदोन्नति कोटा सीटों की संख्या 186 निर्धारित की थी और जिसके विरुद्ध 10 सीटें खाली होने का अनुमान लगाया गया था, तथापि, राज्य सरकार ने उक्त विनिश्चयन से विचलित होते हुए, आदेश दिनांक 02.08.2008 के अंतर्गत 96 पदोन्नति तथा आदेश दिनांक 03.07.2009 के अंतर्गत 27 पदोन्नतियाँ करने के लिये कार्यवाही की, और मानो इतना ही पर्याप्त नहीं था, तो राज्य सरकार ने अत्यधिक गुप्त रूप से, अब "संवर्ग संख्या सिद्धांत" के आधार पर "प्रोन्नति कोटा" पदों की गणना करने की कार्यवाही की, जो स्पष्ट रूप से पुरानी नियमावली 1936 के विरुद्ध थी। राज्य सरकार ने उक्त संवर्ग संख्या सिद्धांत को लागू कर अधियाचन आदेश दिनांक 05.02.2010 के माध्यम से पदोन्नति कोटा के लिए उपलब्ध लगभग 97 सीटें निर्धारित कीं। इस प्रकार उपरोक्त अधियाचन आदेश दिनांक 05.02.2010 को डिप्लोमा धारक अवर अभियंता द्वारा चतुर्थ प्रकार की याचिकाओं, जैसे कि रिट याचिका संख्या 1511 / 2010 यानी प्रबोध कुमार पाठक बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, में चुनौती दी गई क्योंकि पुरानी नियमावली, संवर्ग संख्या सिद्धांत का उपबंध नहीं करती थी। यह तर्क दिया गया कि "संवर्ग संख्या" का सिद्धांत पहली बार नई सेवा नियमावली, 2004 में प्रस्तुत किया गया था, इसलिए इसे वर्ष 1936 की पुरानी सेवा नियमावली के अंतर्गत रिक्ति निर्धारण के लिए लागू नहीं किया जा सकता है।

(48) इस न्यायालय ने, एक संबद्ध रिट याचिका संख्या 2018 / 2009 में रवींद्र सिंह बनाम राज्य , अंतरिम आदेश दिनांक 28.04.2010 के माध्यम से, प्रतिवादी अधिकारियों को डीपीसी पर कार्यवाही करने की अनुमति दी, लेकिन उन्हें पदोन्नति आदेश जारी करने से रोक दिया गया और परिणामस्वरूप उपरोक्त 97 रिक्तियों के प्रति पदोन्नति हेतु 78 अन्य डिग्री धारक अवर अभियंताओं पर विचार किया गया और पदोन्नति के लिए अनुशंसा की गई, लेकिन उनके पदोन्नति आदेश कभी जारी नहीं किए गए।

(49) इसके बाद, पक्षों को विस्तार से सुनने के बाद, सभी संबंधित 36 रिट याचिकाओं (अग्रणी

अनुवादित

रिट डिप्लोमा इंजीनियर्स संघ के मामले के साथ), जो मुख्य रूप से डिग्री धारक अवर अभियंताओं की उपरोक्त पदोन्नति के विरुद्ध पीड़ित डिप्लोमा धारक अवर अभियंता द्वारा दायर की गई थीं, को इस न्यायालय के आदेश दिनांक 08.09.2011 द्वारा निर्णीत किया गया। इस न्यायालय की खंडपीठ ने पदोन्नति आदेश दिनांक 03.07.2009 और अधियाचन आदेश दिनांक 05.02.2010 को निरस्त कर दिया। डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं के सभी 3 तर्क स्वीकार कर लिए गए अर्थात (क) 105 पदोन्नति (27+78) को अतिरिक्त पदोन्नति (यानी 186 से अधिक) के रूप में घोषित किया गया, (ख) पदोन्नत 105 डिग्री धारक अवर अभियंताओं (27+78) को सेवा का सदस्य न होना घोषित किया गया और इसलिए उन्हें पदोन्नति के लिए अयोग्य पाया गया; और (ग) 2007 की अर्हता परीक्षा विधि के अनुरूप आयोजित नहीं की गई थी।

(50) माननीय शीर्ष न्यायालय के समक्ष उपरोक्त निर्णय और आदेश दिनांक 08.09.2011 को चुनौती देते हुए विभिन्न विशेष अनुमति याचिकाएं दायर की गईं। हालाँकि, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कोई भी अंतरिम आदेश पारित करने से इनकार कर दिया और निर्देश दिया कि कोई भी पदोन्नति या प्रत्यावर्तन लंबित कार्यवाही के परिणाम के अधीन होगा। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उक्त इनकार के बाद राज्य सरकार ने आदेश दिनांक 02.01.2012 के माध्यम से प्रत्यावर्तन आदेश पारित किया, जिसके तहत आदेश दिनांक 03.07.2009 के माध्यम से 27 डिग्री धारक अवर अभियंताओं को सहायक अभियंता के पद पर पदोन्नति दी गई, उन्हें अवर अभियंता के पद पर प्रतिवर्तित किया गया। इसके साथ ही 97 रिक्तियों के सृजन से सम्बंधित आदेश दिनांक 05.02.2010, जिसके प्रति डिग्री धारक अवर अभियंताओं की 78 अनुशंसाएं डी पी सी से प्राप्त हुई थीं, को भी निरस्त कर दिया गया तथा इन 78 अवर अभियंताओं की कोई पदोन्नति भी नहीं की गई, इस प्रकार डिग्री धारक अवर अभियन्तों के सभी 105 पदोन्नति (27+78) को अपास्त कर दिया गया और उन्हें प्रतिवर्तित कर दिया गया क्योंकि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उन्हें कोई सुरक्षा नहीं दी गई थी।

(51) राज्य सरकार ने भी दिनांक 04.01.2012 के एक शपथपत्र के माध्यम से स्वीकार किया कि मुकदमेबाजी के दौरान यानी 1997-98 से 2003-04 तक उत्पन्न होने वाली सभी 186 रिक्तियां पहले ही भरी जा चुकी थीं और 1.7.2004 से पहले किसी भी पुरानी रिक्ति के अभाव में, पुरानी सेवा नियमावली 1936 के आधार पर कोई आगे पदोन्नति नहीं की जाएगी, हालांकि बाद में 10.08.2018 के एक शपथ पत्र के माध्यम से, राज्य ने यह स्वीकार करने के बावजूद कि 186 रिक्तियां भरी हुई थीं, एक विरोधाभासी रुख अपनाने की कोशिश की और 105 रिक्तियों को संवर्ग सिद्धांत के आधार पर पुरानी रिक्तियों के रूप में उचित ठहराया।

(52) फिर भी, भर्ती वर्ष 2013-14 के लिए, यद्यपि सहायक अभियंता (सिविल) की कुल 235 रिक्तियां थीं, तथापि , राज्य सरकार ने पदोन्नति द्वारा केवल 130 रिक्तियों को भरने

अनुवादित

के लिए दिनांक 25.10.2013 को एक अधियाचन भेजा और सहायक अभियंताओं की 105 रिक्तियों (27+78) को आरक्षित रखा गया और बिना कोई कारण बताए भर्ती वर्ष में पात्र डिप्लोमा धारक अवर अभियंता को पदोन्नति के दायरे से बाहर रखा गया। इन 105 रिक्तियों (27+78) को डिग्री धारकों (27+78) की 105 अतिरिक्त पदोन्नति की सुरक्षा के लिए राज्य द्वारा "संरक्षित रिक्तियों" के रूप में संदर्भित किया गया था, हालांकि दिनांक 08.09.2011 के निर्णय पर कोई रोक नहीं थी, क्योंकि उपरोक्तनुसार माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इन 105 डिग्री धारक अवर अभियंता को कोई संरक्षण नहीं दिया गया।

(53) चूंकि कुछ पात्र और वरिष्ठ डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं पर उपरोक्त 105 रिक्तियों के रोके जाने के कारण पदोन्नति के लिए विचार नहीं किया जा रहा था, रिट याचिका संख्या 967 (एस/बी) / 2015 ,मसुद्दीन और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, को रोकी गई 105 रिक्तियों के विरुद्ध पदोन्नति का दावा करने तथा नयी सेवा नियमावली 2004 के तहत भरी जाने वाली इन 105 रोकी गई रिक्तियों को जारी करने की प्रार्थना के साथ दायर किया गया। इस न्यायालय ने आदेश दिनांक 01.04.2016 के माध्यम से राज्य को विधि अनुसार पात्रता सूची दिनांक 25.01.2016 के आधार पर मौजूदा रिक्तियों को शीघ्रता से भरने का निर्देश दिया। हालाँकि, डिग्री धारक अवर अभियंताओं ने उक्त आदेश को विशेष अनुमति याचिका (स्वामी नाथ पुरी बनाम शम्सुद्दीन) में चुनौती दी, जिसमें डिग्री धारक अवर अभियंताओं ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय में इस बात पर बल दिया कि मानों उन्हीं 105 रिक्तियों पर पदोन्नति होने वाली थी जो राज्य द्वारा उनके लिये आरक्षित रखी गयी थीं। यद्यपि, प्रारंभ में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 02.05.2016 के माध्यम से इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 01.04.2016 के उक्त आदेश पर रोक लगा दी थी, तथापि बाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आदेश दिनांक 3.10.2017 के माध्यम से, 105 रोकी हुई रिक्तियों को स्पर्श किये बिना, उस स्तर पर राज्य सरकार को नयी सेवा नियमावली, 2004 के अनुसार शेष रिक्तियों को भरने की अनुमति दी।

(54) इसके बाद, लंबित एसएलपी संख्या 28395/2011 (ओम प्रकाश सिंह बनाम राज्य) में डिग्री धारक अवर अभियंताओं द्वारा दायर एक स्पष्टीकरण प्रार्थनापत्, जिसके द्वारा उपरोक्त अंतरिम आदेश दिनांक 03.10.2017 को निरस्त करने की मांग की गई थी, पर सुनवाई करते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने, आदेश दिनांक 09.02.2018 के माध्यम से निर्देश दिया कि चूंकि आक्षेपित निर्णय (अर्थात आदेश दिनांक 08.09.2011) पर उसके द्वारा रोक नहीं लगाई गई थी, न्यायालय ने राज्य सरकार को आक्षेपित निर्णय (अर्थात निर्णय दिनांक 08.09.2011) के अनुसार पदोन्नति द्वारा सीटें भरने की अनुमति दी। हालाँकि, राज्य सरकार ने 105 रिक्तियों को भर्ती वर्ष 2003- 04 की पुरानी रिक्तियाँ मानकर दिनांक 19.07.2018 को फिर से एक पात्रता सूची तैयार की और आदेश दिनांक 03.07.2009 के

अनुवादित

पुराने 27 डिग्री धारक अवर अभियंताओं और आदेश दिनांक 05.02.2010 के 78 डिग्री धारक अवर अभियंताओं को उक्त सूची में इस तथ्य के बावजूद सम्मिलित कर दिया कि उन्हें पहले ही 2003-04 की उक्त रिक्तियों के विरुद्ध पदोन्नति के लिए अयोग्य घोषित कर दिया गया था, और डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं के लिए कोई योग्यता परीक्षा आयोजित किए बिना सम्मिलित किया गया था। इसके अतिरिक्त दिनांक 19.07.2018 की उक्त पात्रता सूची के आधार पर पदोन्नति की कार्यवाही के लिए दिनांक 02.08.2018 को यूपीपीएससी द्वारा एक डीपीसी भी आहूत की गई थी।

(55) उक्त पात्रता सूची दिनांक 19.07.2018 के साथ-साथ डीपीसी इस न्यायालय के समक्ष चुनौती का विषय थी, यद्यपि जिसमें आदेश दिनांक 02.08.2018 के तहत इस न्यायालय ने उपरोक्त डीपीसी पर रोक लगाने से इनकार कर दिया, तथापि परिणाम की घोषणा पर रोक लगा दी। इसके अलावा, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष उक्त अंतरिम आदेश के विरुद्ध दायर विशेष अनुमति याचिकाको कोई सफलता नहीं मिली और इस न्यायालय को मात्रा उक्त लंबित रिट याचिका को गुण-दोष के आधार पर शीघ्र तय करने का निर्देश दिया गया।

(56) इस बीच, शीर्ष न्यायालय के समक्ष लंबित सभी सिविल अपीलों को आदेश दिनांक 21.08.2019 के तहत अनुमति दी गई और शीर्ष न्यायालय द्वारा आदेश दिनांक 03.11.2006 और आदेश दिनांक 08.09.2011 सहित अन्य परिणामी आदेशों को निरस्त करते हुए, सभी मामलों को इस न्यायालय को छह माह की अवधि के भीतर सभी मामलों पर नए सिरे से निर्णय लेने के निर्देश के साथ प्रेषित किया गया। डिप्लोमा इंजीनियर्स संघ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2007) 13 एससीसी 300 की वैधता की भी उक्त निर्णय में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पुनः पुष्टि की गई थी।

(57) उपरोक्त पृष्ठभूमि में, रिट याचिकाओं के वर्तमान समूह की कई अवसरों पर सुनवाई की गई और पक्षकारों को अपनी संबंधित लिखित तर्क दाखिल करने की अनुमति दी गई, जो अभिलेख पर हैं। इस न्यायलय ने किसी विशेष मामले के तथ्य प्रस्तुत नहीं किये हैं क्योंकि पक्षकारों ने इन याचिकाओं में उठाए गए सामान्य बिंदु पर बहस करने का विकल्प चुना है। हालाँकि, घटनाओं की श्रृंखला को पूरा करने के लिए, यहां यह उल्लेख करना उचित होगा कि वरिष्ठता सूची के आधार पर जिन डिग्री धारक अवर अभियंताओं को पहले 27 पदोन्नति सीटों से संबंधित आदेश दिनांक 03.07.2009 द्वारा पदोन्नत किया गया था, लेकिन बाद में आदेश दिनांक 08.09.2011 के कारण निरस्त कर दिया गया और इन पदोन्नतियों को वास्तव में 01.01.0212 को प्रतिवर्तित कर दिया गया, अब उन्हें अवर अभियंता (सिविल) के पद से सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर आदेश दिनांक 31.12.2021 एवं 31.05.2022 के माध्यम से पदोन्नत किया गया। उनकी पदोन्नतियां इस अर्थ में अंतिम हो गई कि इसका कोई विरोध नहीं हुआ।

च. पक्षकारों के तर्क

अनुवादित

(58) विद्वान वरिष्ठ अधिवक्तागण श्री उपेन्द्र नाथ मिश्र, श्री संदीप दीक्षित, श्री असित चतुर्वेदी, श्री एच.जी.एस. परिहार, पक्षकारों के विद्वान अधिवक्तागण श्री अनुज कुदेसिया, श्री नील कमल मिश्र, श्री दीपांशु दास, श्री सी.बी. पाण्डे, तथा राज्य के विद्वान अधिवक्ता श्री रवि सिंह सिसौदिया को सुना गया।

(59) श्री नील कमल मिश्रा के साथ विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री उपेन्द्र नाथ मिश्र उपस्थित हुए और अपनी स्वाभाविक ज्ञानपूर्ण शैली में क्रमबद्ध रूप से अपने तर्क प्रस्तुत किये। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार इस न्यायालय द्वारा मूलतः पाँच बिंदुओं को संबोधित करने की आवश्यकता है। (i) पुरानी सेवा नियमावली 1936 के अंतर्गत पदोन्नति कोटे की रिक्ति क्या है तथा शासनादेश दिनांक 20.02.2003 के आलोक में इसका प्रभाव क्या है। (ii) पदोन्नति कोटा के लिए "पुरानी सेवा नियमावली 1936 के तहत आयोजित" योग्यता परीक्षा की निष्पक्षता से संबंधित बिंदु (iii) रिक्ति निर्धारण के लिए "संवर्ग सिद्धांत" की अवधारणा को लाने के लिए एक शासनादेश द्वारा पहले से ही निलंबित पुरानी नियमावली के भाग में संशोधन से संबंधित बिंदु (iv) परिवीक्षाधीनों की पदोन्नति से संबंधित बिंदु,और (v) अनुतोषों के निर्धारण से संबंधित बिंदु ।

(60) जहां तक श्री मिश्रा द्वारा उठाए गए प्रथम अनुक्रमिक बिंदु का सवाल है, इस पर विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया गया है कि माननीय न्यायालय द्वारा 1969, 1971, 1987 और 1997 के संशोधनों को अपास्त करने के बाद, पुरानी सेवा नियमावली 1936 की 1969 से पहले की नियम स्थिति, 1959 के पुराने नियम 5(iv) और 6(i) के साथ पुनर्जीवित हो जाएगी। इसलिए शासनादेश दिनांक 20.02.2003 में वर्णित 41.66% पदोन्नति कोटा को लागू करने के बजाय, पुरानी सेवा नियमावली 1936 में 1959 के संशोधन के अनुसार केवल 25% पदोन्नति कोटा रिक्तियों को भरा जा सकता है।

(61) विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार, राज्य के शपथपत्र दिनांक 25.07.2006 तथा साथ ही रिट याचिका संख्या 4141 / 2022 (विपिन कुमार बनाम राज्य), के वर्तमान प्रतिशपथपत्र दिनांक 12.12.2022 के अवलोकन से पूर्णतः स्पष्ट है कि राज्य के कथनानुसार, वर्ष 1997-1998 से वर्ष 2003-2004 की अवधि से संबंधित कुल 446 रिक्तियों में से केवल 112 रिक्तियां (गलत तरीके से 128 रिक्तियों के रूप में दिखाई गई हैं), पुरानी सेवा नियमावली 1936 के नियम 6(1) के तहत निर्धारित 25% कोटा के अनुसार पदोन्नति कोटा से संबंधित थे। उनके अनुसार, कुल 112 रिक्तियों में से 102 पद पहले ही भरे जा चुके थे और इसलिए वास्तव में केवल 10 रिक्तियां ही अस्तित्व में थीं। इस प्रकार, पदोन्नति कोटे के तहत केवल 10 सीटें भरी जानी थीं, हालांकि राज्य द्वारा इन 10 रिक्तियों के प्रति तथा अंजनी कुमार के प्रकरण के आदेश के दृष्टिगत , शुरुआत में 02.08.2008 को डिग्री धारक अवर अभियंताओं की 96 पदोन्नतियां की गई। इस प्रकार अंजनी कुमार के मामले में निर्धारित 186 पदोन्नति कोटा रिक्तियां भरी गईं। इसके बाद प्रतिवादी

अनुवादित

अधिकारियों द्वारा भूलवश पत्र दिनांक 6.02.2003 पर विश्वास करते हुए संकेत दिया गया कि पदोन्नति कोटा में घोषित कुल 219 रिक्तियों में से 33 और रिक्तियां (219-186) घोषित की गईं, जिन पर 3.07.2009 को 27 पदोन्नतियां की गईं। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार डिग्री धारकों की यह सभी पदोन्नतियां वर्ष 2008 या 2009 में नियम 9(2) के तहत कोई योग्यता परीक्षा आयोजित किए बिना की गई थी। इसके अतिरिक्त विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार पहले ही निरसित कर दी गई वर्ष 1936 की पुरानी नियमावली में रिक्ति निर्धारण के संवर्ग सिद्धांत को पूर्वव्यापी रूप से लागू कर, दिनांक 05.02.2010 के अधियाचन आदेश के तहत, 2004 से पूर्व की अवधि के लिए 97 और रिक्तियां सृजित की गई थीं, जिसके विरुद्ध पदोन्नति के लिए 78 अनुशंसाएं यूपीपीएससी से प्राप्त हुई थीं, लेकिन शुक्र है कि इस न्यायालय के आदेश के कारण इसे कभी लागू नहीं किया गया। इस प्रकार, उनका मानना है कि ये सभी 191 पदोन्नतियाँ (86+27+78) पुरानी नियमावली के तहत की जाने वाली अतिरिक्त पदोन्नतियां थीं, जिन्हें अंजनी कुमार के आदेश को अपास्त करने के बाद, विधि की दृष्टि में संधार्य नहीं रखा जा सकता है।

(62) विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया है कि राज्य सरकार सहित निजी प्रतिवादी, अपने पहले के रुख से 'आमूल परिवर्तन' करते हुए, अब, मामलों के तत्काल समूह में, एटीबी मेहताब माजिद आदि में संविधान पीठ के निर्णय पर विश्वास जताया हैं, ताकि यह तर्क दिया जा सके कि 1969 और 1971 के प्रतिस्थापन द्वारा संशोधन को निरस्त करने के बाद, 1969 से पहले की नियम स्थिति पुनर्जीवित नहीं होगी, और इस तरह वर्ष 1997-98 से वर्ष 2003-2004 तक पूर्व अवधि से संबंधित रिक्तियों पर 25% पदोन्नति कोटा लागू करने से बचने की कोशिश की जा रही है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार, उक्त प्रस्तुतिकरण केवल सुविधा का तर्क है क्योंकि डिप्लोमा इंजीनियर्स संघ के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पहले ही उपरोक्त संविधान पीठ के निर्णय को इस आधार पर लागू करने से इनकार कर दिया था कि पी.डी. अग्रवाल के मामले में, 1969 से पहले की नियम स्थिति को पहले ही पुनर्जीवित, बहाल और पक्षकारों के मध्य लागू किया गया था। इसलिए, उनके अनुसार, 1969 से पहले की संशोधन स्थिति को पुनर्जीवित न करने के संबंध में प्रतिवादियों द्वारा विश्वास की गई सामान्य निर्णयजन्य विधि, इस मामले में लागू नहीं होती है क्योंकि 'पूर्वनिर्णय का सिद्धांत' प्रदान करता है कि पक्षकारों के मध्य विनिश्चित हो चुके बिंदु को पुनः सुने जाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। पक्षकारों को एक ही तरह के मुकदमे से दो बार परेशान नहीं किया जाना चाहिए।

(63) आगे यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि दिनांक 02.08.2008, 03.07.2009 और 05.02.2010 के सभी 03 पदोन्नति आदेशों में पुरानी सेवा नियमावली 1936 के तहत 10 रिक्तियों के प्रति 201 पदोन्नतियां (अर्थात 191 अतिरिक्त पदोन्नति) की गई, वह भी वैध योग्यता परीक्षा आयोजित किए बिना, और

अप्रमाणित

अवैध रूप से सभी डिप्लोमा धारक अवर अभियंता को अयोग्य मान कर; जो कि विधिमान्य नहीं है। इसलिए, अतिरिक्त 191 पदोन्नतियों (86+27+78) से संबंधित इन अवैध आदेशों को निरस्त किया जाना चाहिए और इन 191 नई रिक्तियों को नई सेवा नियमावली 2004 के प्रावधानों के तहत पदोन्नति द्वारा भरने का निर्देश दिया जाना चाहिए क्योंकि वे पुरानी सेवा नियमावली 1936 के अंतर्गत आच्छादित नहीं थें।

(64) इसके अतिरिक्त, जहां तक "पुरानी सेवा नियमावली 1936 के तहत आयोजित" योग्यता परीक्षा की निष्पक्षता से संबंधित दूसरे अनुक्रमिक बिंदु का संबंध है, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता नेअभिकथन प्रस्तुत किया कि पुरानी सेवा नियमावली 1936 के नियम 9 (ii) के अनुसरण में, सांविधिक शासनादेश दिनांक 26.10.1969 जारी किया गया था, जिसमें उत्तर प्रदेश प्राविधिक बोर्ड द्वारा 03 या अधिक केन्द्रों पर आयोजित की जाने वाली 'वार्षिक योग्यता परीक्षा' का प्रावधान किया गया था। खंड-IV में स्पष्ट रूप से अभ्यर्थियों को एक वर्ष में प्रश्नपत्र के एक समूह या 03 समूह के प्रश्नपत्रों में उपस्थित होने और एक वर्ष में प्रश्नपत्रों के एक या अधिक समूह को उत्तीर्ण करने का विकल्प प्रदान किया गया है।

(65) उनके अनुसार, उपरोक्त सांविधिक शासनादेश दिनांक 25.11.1969 की निरंतरता में, एक और शासनादेश दिनांक 01.02.1972 जारी किया गया था, जिसने आगे स्पष्ट किया कि एक या अधिक समूह के प्रश्नपत्रों को एक ही प्रयास में पास करने का विकल्प पूर्व की भाँति ही उपलब्ध होगा, और दूसरे शब्दों में किसी अभ्यर्थी के लिए एक ही प्रयास में सभी 03 समूहों के प्रश्नपत्रों को उत्तीर्ण करना आवश्यक नहीं था। इसका तात्पर्य यह है कि उपरोक्त सांविधिक प्रावधान के तहत जब तक राज्य द्वारा 3 प्रयास प्रदान नहीं किए जाते हैं, तब तक किसी उम्मीदवार को योग्यता परीक्षा में असफल नहीं माना जा सकता है। इस प्रकार प्रत्येक प्रतिभागी (डिप्लोमा धारक जेई) को सभी 03 समूह के प्रश्नपत्रों को उत्तीर्ण करने के लिए न्यूनतम 03 प्रयास अनिवार्य रूप से दिए जाने थे और एक उम्मीदवार को पदोन्नति के लिए अयोग्य नहीं माना जा सकता, यदि वह सभी 03 समूह के प्रश्नपत्रों को एक साथ उत्तीर्ण करने में विफल रहता है।

(66) विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने अपने तर्क में यह भी कहा कि नियम 9(ii) के तहत अंतिम योग्यता परीक्षा 1970 में आयोजित की गई थी और 1971 से 2007 तक कोई योग्यता परीक्षा आयोजित नहीं की गई थी। यहां तक कि डिप्लोमा संघ के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के आदेश दिनांक 20.03.2007 के अनुपालन में वर्ष 2007 में पहली बार योग्यता परीक्षा आयोजित की गई थी। और उसके बाद राज्य प्रतिवादियों द्वारा कोई दूसरी या तीसरी या उस मामले के लिए कोई योग्यता परीक्षा आयोजित नहीं की गई थी। इसलिए, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया कि सभी डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं के लिए, यह उनके करियर में आयोजित प्रथम और एकमात्र योग्यता परीक्षा थी।

(67) यह मानते हुए भी कि वर्ष 2007 की योग्यता परीक्षा वैधानिक रूप से आयोजित नहीं

अनुवादित

की गई थी, हालांकि डिप्लोमा धारक अवर अभियंता के लिए अन्य 2 प्रयासों के प्रस्ताव के अभाव में, किसी भी उम्मीदवार को योग्यता परीक्षा में असफल नहीं माना जा सकता था और इसलिए डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं को मनमाने ढंग से पदोन्नति के लिए अयोग्य मान लिया गया। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह कहते हुए अपने तर्क का समर्थन किया कि लगातार 03 योग्यता परीक्षा आयोजित किए बिना, कार्यालय ज्ञापन दिनांक 15.04.2007 ने मनमाने ढंग से बल दिया कि डिप्लोमा धारक अवर अभियंता, जो या तो 03 अलग-अलग वर्षों की परीक्षा में उपस्थित हुए हैं या एक वर्ष में सभी 03 समूहों को उत्तीर्ण कर चुके हैं, वर्ष 2007 तक प्रश्नपत्रों के सभी 03 समूहों को सफलतापूर्वक उत्तीर्ण करने के पश्चात ही पात्र माने जाएंगे, ताकि वर्ष 2007-2008 में प्रस्तावित पदोन्नति में पात्र माना जा सके, जो इस तथ्य पर विचार किए बिना किया गया था कि वर्ष 2007 की परीक्षा 35 वर्षों (1972-2007) में प्रतिवादियों द्वारा आयोजित एकमात्र परीक्षा थी।

(68) विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार, सभी डिप्लोमा धारक अवर अभियंता को अवैध रूप से सभी 03 समूह के प्रश्नपत्रों को एक प्रयास/एक वर्ष में उत्तीर्ण करने के लिए बाध्य किया गया था जो कि उपरोक्त 02 सांविधिक शासनादेशों दिनांक 26.10.1969 और 01.01.1972, का स्पष्ट उल्लंघन था, जिसका अर्थ था कि उपरोक्त सांविधिक उपाय के तहत 03 प्रयासों में 03 समूह के प्रश्नपत्रों को उत्तीर्ण करने के लिए डिप्लोमा अवर अभियंताओं को प्रदत्त निहित अधिकार को प्रतिवादी अधिकारियों द्वारा मनमाने ढंग से छीन लिया गया था, जहाँ मनमाने ढंग से सभी वरिष्ठतम डिप्लोमा धारक अवर अभियंता को वर्ष 1972 से 2007 के बीच 35 वर्षों में केवल एक परीक्षा आयोजित करके अयोग्य घोषित कर दिया गया, और वर्ष 2008, 2009 और 2010 में बार-बार की गई पदोन्नतियों में उनकी अभ्यर्थिता पर विचार करने से इनकार कर दिया गया, जो अवैध रूप से डिप्लोमा धारक अवर अभियंता को सहायक अभियंता के पद पर पदोन्नति हेतु अयोग्य मान कर गलत तरीके से योग्यता परीक्षा आयोजित करने के समान है। इस प्रकार, पदोन्नति के मामले में याचिकाकर्ताओं पर निष्पक्ष विचार किये जाने के मौलिक अधिकारों से पूर्णतः इनकार कर दिया गया।

(69) प्रबलतापूर्वक यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि लखनऊ में परीक्षा केंद्र के बारे में अधिकारियों द्वारा भ्रम उत्पन्न किया गया था। उन्होंने आगे कहा कि डिप्लोमा संघ के मामले (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के आदेश दिनांक 20.03.2007 के अनुपालन में, राज्य सरकार ने योग्यता परीक्षा आयोजित करने हेतु उत्तर प्रदेश प्राविधिक बोर्ड (यूपीटीबी) को अधिकृत किया, जिसने जून, 2007 में प्रथम दिशानिर्देश जारी किया, जिसमें "वस्तुनिष्ठ प्रकार के प्रश्न पत्र" निर्धारित किए गए और "03 परीक्षा केंद्र" प्रदान किए गए, लेकिन सभी 711 प्रतिभागियों को यूपीपीएससी केंद्र लखनऊ आवंटित किया गया, जो 18 और 19.07.2007 को लखनऊ में आयोजित योग्यता परीक्षा में उपस्थित हुए थे। हालाँकि, राज्य द्वारा एक प्रार्थनापत्र पर, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने राज्य को अगले एक माह

अनुवादित

में यूपीपीएससी के माध्यम से योग्यता परीक्षा आयोजित करने की अनुमति दी, इसलिए, राज्य द्वारा जुलाई, 2007 में आयोजित विगत परीक्षा को निरस्त कर दिया गया।

(70) इसके बाद, यूपीपीएससी ने इलाहाबाद में यूपीपीएससी केंद्र में आयोजित होने वाली परीक्षा के लिए विज्ञापन जारी किया। हालाँकि, शीर्ष न्यायालय के समक्ष डिप्लोमा इंजीनियर्स संघ ने दिनांक 08.08.2007 को इस बीच आई.ए.संख्या 8 और 9 दाखिल कर दिया और अपने आदेश दिनांक 19.07.2007 में संशोधन की मांग करने और यूपीटीयू द्वारा आयोजित पिछली परीक्षा के प्रत्यावर्तन के लिए प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया, किन्तु उक्त आवेदन को आदेश दिनांक 10.08.2007 द्वारा खारिज कर दिया गया था। इस प्रकार, इस बीच, राज्य सरकार ने 12 से 16.08.2007 तक निर्धारित अर्हता परीक्षा के आयोजन हेतु दिनांक 8.08.2007 को यूपीपीएससी के नए दिशानिर्देश प्रसारित किए, जिसके खंड I और III में उम्मीदवारों को अपने आवंटित यूपीपीएससी के केंद्रों, जिसमें उत्तर प्रदेश राज्य में दो केंद्र क्रमशः लखनऊ और इलाहाबाद केंद्र सम्मिलित थें, पर परीक्षा देने की आवश्यकता थी। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार चूंकि जून, 2007 में आयोजित परीक्षा में सभी 711 उम्मीदवारों को केवल यूपीपीएससी केंद्र "लखनऊ" आवंटित किया गया था और प्राधिकरण द्वारा कभी भी किसी अन्य परीक्षा केंद्र का आवंटन नहीं किया गया था, इसलिए, अभ्यर्थियों को लखनऊ केंद्र पर उपस्थित होना ही एकमात्र विकल्प उपलब्ध था और इस प्रकार जब डिप्लोमा धारक अवर अभियंता दिनांक 12.08.2007 की सुबह लखनऊ केंद्र पर उपस्थित हुए, तो उन्हें सूचित किया गया कि एकमात्र परीक्षा केंद्र इलाहाबाद है। इस प्रकार प्रथम सत्र में एक को छोड़कर कोई भी अभ्यर्थी इलाहाबाद में उपस्थित नहीं हो सका। पहले सत्र के प्रश्नपत्र की पुन: परीक्षा के आश्वासन के लिए बार-बार अनुरोध करने के बावजूद, अधिकारियों ने इससे इनकार कर दिया, और अधिकारियों ने यह सुनिश्चित किया कि कोई भी डिप्लोमा धारक अवर अभियंता एक वर्ष में सभी 03 समूह के प्रश्नपत्रों में उत्तीर्ण न हो सके, अर्थात अगस्त, 2007 में आयोजित योग्यता परीक्षा में, जो उन्हें 35 वर्षों में दी गई योग्यता परीक्षा को पास करने का सांविधिक अवसर था। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार यह पुरानी सेवा नियमावली के नियम 5(iv) सहपठित नियम 9(ii) के तहत, पिछले 50 वर्षों में प्रतिवादियों द्वारा आज तक आयोजित एकमात्र योग्यता परीक्षा में डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं की भागीदारी के निष्पक्ष और उचित अवसर से पूरी तरह से इनकार करने के समान है।

(71) इसके अतिरिक्त , यद्यपि विगत 50 वर्षों (वर्ष 1972 से 2022) में, आज तक केवल एक योग्यता परीक्षा वर्ष 2007 में आयोजित की गई थी और उसके बाद 2008, 2009 और 2010 में कोई परीक्षा आयोजित नहीं हुई थी और यद्यपि अधिकारियों के लिए प्रत्येक वर्ष वार्षिक योग्यता परीक्षा आयोजित करना सांविधिक रूप से अनिवार्य था, तथापि राज्य प्राधिकारियों ने 2008, 2009 और 2010 में वार्षिक योग्यता परीक्षा आयोजित किए बिना ही, अनन्य रूप से डिग्री धारक अवर अभियंता

अनावरित

से 03 पदोन्नति आदेश दिनांक 02.08.2008 (96 पदोन्नति), 03.07.2009 (27 पदोन्नति), और 05.02.2010 (78 अनुशंसाएं) जारी किए। जबकि डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं को भागीदारी के अधिकार से पूर्णतः वंचित कर दिया गया है। इसलिए, सभी 03 पदोन्नति आदेश, जो हालांकि पुराने सेवा नियमावली 1936 के तहत पदोन्नति के लिए निर्धारित प्रक्रिया का भी पालन नहीं किया गया था। इस प्रकार, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्क में यह कहा गया कि किसी भी वैध योग्यता परीक्षा के अभाव में, राज्य अधिकारियों ने मनमाने ढंग से सभी डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं को पदोन्नति के लिए अयोग्य मान लिया, और वास्तव में वर्ष 2008, 2009 में कोई योग्यता परीक्षा आयोजित किये बिना ही दावा किया गया कि सभी डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं द्वारा योग्यता परीक्षा को सफलतापूर्वक उत्तीर्ण नहीं किया गया है, जो पूर्णतः अवैध एवं अनुचित था।

(72) विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री मिश्रा ने आगे कहा कि हालांकि पुरानी सेवा नियमावली के नियम 12 के तहत पदोन्नति के लिए मानदंड "अनुपयुक्त की अस्वीकृति के अधीन वरिष्ठता" था और हालांकि संघ/डिप्लोमा धारक अवर अभियंता के सभी सदस्यों को वरिष्ठता सूची में 1500 से 2000 पदानुक्रम के बीच रखा गया था, जबकि चयनित डिग्री धारक अवर अभियंता को 4500 से 6000 के बीच रखा गया था अर्थात वरिष्ठता सूची में डिप्लोमा धारक अवर अभियंता से लगभग 4000 स्थान नीचे और उनमें से लगभग सभी पात्रता की कट-ऑफ तिथि अर्थात 01.07.2003 को परिवीक्षा पर कार्य कर रहे थे। लेकिन तब भी सर्वाधिक वरिष्ठ डिप्लोमाधारक अवर अभियंता, जिनके पास लगभग 25 वर्षों से अधिक का सेवा अनुभव था, को योग्यता परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए उनकी अयोग्यता के आधार पर मनमाने ढंग से पदोन्नति के लिए विचार करने से इनकार कर दिया गया था, जो वर्ष 2008, 2009 और 2010 में कभी आयोजित नहीं की गई, और जो 35 वर्षों में केवल एक बार आयोजित की गई थी। इस प्रकार, यह तर्क दिया गया है कि वर्ष 2007 में आयोजित योग्यता परीक्षा न केवल एक दिखावा थी, बल्कि प्रतिवादियों द्वारा आक्षेपित आदेश दिनांक 02.08.2008, 03.07.2009 और 05.02.2010 को जारी करने में पदोन्नति हेतु अपनाई जाने वाली सम्पूर्ण प्रक्रिया पूर्णतः मनमानी थी और यहां तक कि पुरानी सेवा नियमावली 1936 का पालन नहीं करती थी। हालांकि पहले तो उक्त नियमावली वर्ष 2004 के बाद सृजित इन नई रिक्तियों पर लागू नहीं होने चाहिए थे तथा इन्हे नई सेवा नियमावली 2004 के तहत भरा जाना चाहिए था।

(73) विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने दीपक अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2011 (6) एससीसी 725, के प्रकरण में अभिलेखित किए गए शीर्ष न्यायालय के निर्णय पर विश्वास व्यक्त करते हुए अभिकथन प्रस्तुत किया कि पदोन्नति की तिथि पर "प्रवृत्त नियम" लागू होने चाहिए। उनके अनुसार, वर्ष 2004 से पहले पुरानी नियमावली के तहत पदोन्नति कोटे में केवल 10 रिक्तियां थीं, हालांकि राज्य द्वारा 02.08.2008 को सृजित सहायक

अनुवादित

अभियंता के 96 पदों पर, 03.07.2009 को सृजित सहायक अभियंता के 27 पदों पर और 05.02.2010 को सृजित 97 और रिक्तियों पर राज्य द्वारा पदोन्नति अपेक्षित थी जिस निमित्त पुरानी सेवा नियमावली 1936 के प्रावधान के तहत पदोन्नति के लिए 78 अनुशंसाएं की गईं, जो वर्ष 2004 के बाद प्रयोज्य नहीं थीं। इसलिए, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का कहना है कि ये सभी पदोन्नतियां वर्ष 2004 के बाद सृजित नई रिक्तियों के विरुद्ध अवैध रूप से की गई थीं और इन्हें नई सेवा नियमावली 2004 के प्रावधानों के अनुसार भरा जाना चाहिए था, अर्थात कठोरता से वरिष्ठता-सह-उपयुक्तता के सिद्धांत के अनुसार और डिग्रीधारी अवर अभियंताओं का अलग पदोन्नति कोटा निर्धारित किए बिना भरा जाना चाहिए था। त्रिपुरा राज्य बनाम निखिल रंजन चक्रवर्ती, (2017) 3 एससीसी 646, भारत संघ बनाम कृष्ण कुमार, (2019) 4 एससीसी 319 और उड़ीसा राज्य बनाम धीरेंद्र सुंदर दास, (2019) 6 एससीसी 270 में पारित आदेशों पर भी विधि की उक्त प्रस्थापना हेतु विश्वास व्यक्त किया गया था।

(74) जहां तक इस सम्बन्ध में विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा उठाए गए मुद्दे का प्रश्न है कि "रिक्ति सिद्धांत" प्रदान करने वाली पुरानी सेवा नियमावली 1936 के नियम 6(i) के सांविधिक प्रावधानों द्वारा पहले से ही प्रतिस्थापित नियमों में "संवर्ग सिद्धांत" प्रारंभ करने के लिए शासनादेश दिनांक 05.02.2010 जारी करके प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता, उनका मानना है कि यह राज्य द्वारा शक्ति का एक मनमाना प्रयोग है और निर्वचन के मूल नियम के भी विरुद्ध है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे कहा कि यह विधि की सुस्थापित स्थिति है कि जहां सांविधिक नियम स्पष्ट हैं, वहां न्यायालयों द्वारा नियमों की व्याख्या के माध्यम से कुछ भी जोड़ा या डाला नहीं जाना चाहिए। इसके अलावा, यह विधि की सुस्थापित स्थिति है कि जब कोई चीज विधि अनुसार एक विशेष तरीके से करने के लिए निर्धारित की जाती है, तो उसे अ उसी तरीके से किया जाना चाहिए, अन्यथा नहीं। इस मामले में, जब पुरानी नियमावली 1936 का नियम 6(i) स्पष्ट रूप से पदोन्नति कोटा के रूप में 25% "रिक्तियां" प्रदान करता है, तो अनावश्यक रूप से गलत व्याख्या करके इसे 25% "संवर्ग पदों" के रूप में व्याख्यायित नहीं किया जा सकता है। भारत संघ बनाम चरणजीत एस. गिल, (2000) 5 एससीसी 742 और पीएससी, उत्तरांचल बनाम जेसीएस बोरा, (2014) 8 एससीसी 644 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय में इस प्रस्थापना हेतु विश्वास व्यक्त किया गया है कि एक शासकीय आदेश किसी अधिनियम या वैधानिक नियमों के प्रावधानों को समाप्त नहीं कर सकता है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने चंद्र किशोर झा बनाम महावीर प्रसाद, (1999) 8 एससीसी 266, डिप्लोमा इंजीनियर्स संघ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (2007) 13 एससीसी 300 और केसरी देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2005 (3) ईएससी 2209 (एएलएल) में पारित निर्णयों द्वारा भी इस प्रस्थापना हेतु विश्वास व्यक्त किया गया कि जब किसी चीज को विधि के तहत किसी विशेष रीति से करने के लिए निर्धारित किया

अनुवादित

गया है, तो उसे उसी रीति से किया जाना चाहिए, अन्यथा नहीं।

(75) याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा प्रयोज्य सेवा नियमावली के अनुसार सेवा में "परिवीक्षाधीन" को विधिनुसार पदोन्नति हेतु विचार नहीं किये जा सकने के चौथे मुद्दे के बारे में उनका कहना है कि पदोन्नति से पहले धारणाधिकार की अवधारणा की भी पुष्टि की आवश्यकता होती है। उनके अनुसार, यदि अगले उच्च पद पर पदोन्नति के लिए विचार की तिथि पर पदधारी को उसके प्रदाय संवर्ग पदों पर स्थायी नहीं किया जाता है, तो उसके पास मूल पद यानी प्रदाय संवर्ग पदों पर या पदोन्नत पद पर परिवीक्षा अवधि पूर्ण करने में विफलता के मामले में कोई धारणाधिकार नहीं होगा। इसलिए सेवा न्यायशास्त्र में, अगले उच्च पद पर उसकी पदोन्नति से पहले परिवीक्षाधीन की पुष्टि के लिए बल दिया जाता है।

(76) इसके अतिरिक्त, उनका कहना है कि पुरानी सेवा नियमावली 1936 में पदोन्नति से पहले पुष्टिकरण का प्रावधान था। इस प्रकार, उनका कहना है कि याचिकाकर्ताओं/डिप्लोमा अभियांत्रिकी संघ ने सहायक अभियंता के रूप में पदोन्नति के संबंध में दिनांक 02.08.2008, 03.07.2009 और 05.02.2010 के सभी तीन आदेशों को इस आधार पर चुनौती दी है कि सेवा नियमों के तहत, सेवा में "परिवीक्षाधीन" अवर अभियंता(सिविल) को सहायक अभियंता(सिविल) के पद पर पदोन्नति के लिए विचार नहीं किया जा सकता, इसलिए 2003-04 की कथित पदोन्नति कोटा रिक्तियों के लिए ऐसे परिवीक्षाधीनों को शामिल कर लेने मात्र से, जिनकी कट-ऑफ तिथि अर्थात 01.07.2003 पर अवर अभियंता (सिविल) के उनके प्रदाय संवर्ग पद पर भी पुष्टि नहीं की गई थी, उन पर सहायक अभियंता (सिविल) के अगले उच्च पद पर पदोन्नति के लिए वैधानिक रूप से विचार नहीं किया जा सकता था क्योंकि वे अयोग्य थे। बालेश्वर दास बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (1980) 4 एससीसी, बद्री प्रसाद व 31 अन्य बनाम सत्य देव शर्मा (विशेष अपील संख्या 917/2006 के मामले में इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 22.05.2015) और शिव कुमार सिंह बनाम सत्य देव शर्मा (रिट याचिका संख्या 6530 (एस/एस) / 2004 में इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 1.11.2006) के प्रस्ताव के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा विश्वास किया गया है कि जब तक कोई पदधारी नियमों के तहत सफलतापूर्वक आवश्यक परिवीक्षा अवधि पूरी नहीं करता है, तब तक सेवा नियमों के विशिष्ट प्रावधानों का उल्लंघन करते हुए किसी परिवीक्षाधीन व्यक्ति को उच्च पद पर पदोन्नत करना राज्य के लिए गैरवैधानिक होगा।

(77) पक्षों के बीच पूर्ण न्याय करने हेतु संरचित अनुतोष के लिए शासनादेश दिनांक 20.02.2003 के सीमित निर्वचन से संबंधित तर्क के अंतिम अंग के रूप में, यह प्रस्तुत किया गया था कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पी.डी. अग्रवाल, अरुवेंद्र कुमार गर्ग और डिप्लोमा इंजीनियर्स संघ के प्रकरण में पारित सुसंगत निर्णयों, जब 1969 से पहले की नियम स्थिति पुनर्जीवित हुई, जिसमें नियम 5(iv) (अवर अभियंता को पदोन्नति प्रदान करना)

अनुवादित

और नियम 6(i) (25% पदोन्नति प्रदान करना) शामिल थे और यही बात 1997-98 से 2003-2004 की अवधि की पदोन्नति कोटा रिक्तियों के लिए सभी पक्षों पर पूरी तरह से लागू थी और जब राज्य सरकार ने स्वयं अतिबल सिंह समूह के पदोन्नति आदेश दिनांक 02.05.2002 को जारी करते हुए 25% पदोन्नति कोटा लागू किया था और शासनदेश दिनांक 11.02.2003 निर्गत करते समय नियम 5(iv) के प्रावधानों को लागू किया, तो राज्य सरकार के लिए शासनादेश दिनांक 20.02.2003 में प्रदान किए गए 41.66% का समग्र पदोन्नति संवर्ग पर दावा करने का मार्ग खुला नहीं है।

(78) यह प्रबलता पूर्वक प्रस्तुत किया गया था कि यह विधि की सुस्थापित स्थिति है कि सांविधिक नियमों के प्रावधानों को केवल शासनादेश जारी करके संशोधित नहीं किया जा सकता है। चूंकि माननीय सर्वोच्च न्यायालय के 1969 से पहले के आदेशों के तहत नियम की स्थिति को पुनर्जीवित किया गया था, जिसमें 1959 के संशोधन के नियम 6(i) के तहत प्रदान किया गया 25% पदोन्नति कोटा शामिल था, जिसे 02.05.2002 को पदोन्नति करते समय राज्य सरकार द्वारा भी लागू किया गया था। उन्होंने स्पष्ट किया है कि चूंकि राज्य द्वारा शपथ पत्र दिनांक 15.07.2006 के पैरा 20 में लिखित रूप में यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया था कि दिनांक 22.03.2002 को अरुवेंद्र कुमार गर्ग के मामले में संशोधनों को निरस्त करने के बाद, "भर्ती का पिछला कोटा यानी 75% सीधी भर्ती और पदोन्नति के माध्यम से 25% को पुनर्जीवित किया गया", इसलिए, प्रतिवादी के लिए शासनादेश दिनांक 20.02.2003 के कार्यान्वयन और पुरानी सेवा नियमावली 1936 के तहत पदोन्नति के लिए 41.66% के समग्र पदोन्नति कोटा के लिए बल देने का रास्ता खुला नहीं था।

(79) इस प्रकार, एक मुद्दा यह बनाने की कोशिश की गई है कि एक शासनादेश, जिसे भले ही चुनौती न दी गई हो, अगर वैधानिक नियमों और विनियमों के विपरीत पाया जाता है, तो अनुतोष को ढालने की अपनी शक्ति के तहत न्यायालय द्वारा निरस्त कर दिया जाना चाहिए और इसमें उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण से कोई अपवाद नहीं निकाला जा सकता है। इसलिए शासनादेश दिनांक 20.02.2003 जो कि पुरानी सेवा नियमावली 1936 के 1959 के संशोधन के नियम 6(i) के विपरीत है, समझने योग्य है और इसे वर्तमान प्रकरण में लागू नहीं किया जा सकता है।

(80) जहां तक तर्क के दूसरे पक्ष का प्रश्न है, इसका नेतृत्व विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री संदीप दीक्षित ने किया, जिन्होंने अत्यंत ही प्रबल और सशक्त तरीके से इस न्यायालय का ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित किया कि दायर की गई सभी रिट याचिकाएं एवं जो प्रतिप्रेषण के माध्यम से उच्च न्यायालय के समक्ष विचाराधीन हैं, कथित तौर पर योग्यता परीक्षा आयोजित करने और पदोन्नति की प्रक्रिया को चुनौती देने और नए सिरे से योग्यता परीक्षा आयोजित करने के निर्देश के साथ और ऐसे समय तक सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर कोई पदोन्नति नहीं होने की मांग करते हुए दायर की गई थीं। उनके

अप्रमाणित

अनुसार, डिप्लोमा अभियांत्रिकी संघ के पास कोई अन्य अनुतोष या प्रार्थना करने या इस तथ्य के आधार पर कोई अवसर नहीं था कि राज्य सरकार द्वारा संपूर्ण प्रक्रिया, इस न्यायालय द्वारा अरुवेंद्र कुमार गर्ग के मामले में निर्णय तथा आदेश दिनांक 22-03-2002 और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा डिप्लोमा अभियांत्रिकी संघ के मामले में पारित दिनांक 20-03-2007 के निर्णय और आदेश और साथ ही अंजनी कुमार मिश्रा के मामले में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 03-11-2006 का पारित कियाके अनुरूप थी। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का कहना है कि राज्य की पूरी कवायद पुरानी सेवा नियमावली 1936 के नियम 5 और 9 और अजनी कुमार मिश्रा के मामले में निर्धारित की गई रिक्तियों की संख्या, जो 186 थी, पर विचार करते हुए निर्णयों पर आधारित थी। उनका यह भी कथन है कि 186 का आंकड़ा, 186 पदों पर अर्हक परीक्षा आयोजित करने हेतु सचिव, लोक निर्माण विभाग की अध्यक्षता में बैठक दिनांक 03-05-2007 के कार्यवृत में उल्लेखित किया गया है।

(81) विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने मामले पर एक विस्तृत विहंगम दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए कहा कि 2007-09 की सभी रिट याचिकाएँ जो इस न्यायालय के समक्ष विषय वस्तु हैं, निर्णय और आदेश दिनांक 08-09-2011 द्वारा निर्णीत की गईं। चूंकि, पदोन्नति आदेश दिनांक 02.08.2008 को डिप्लोमा अभियांत्रिकी संघ के मामले में निर्धारित नियमों के अनुसार कठोरतापूर्वक जारी किया गया था और अंजनी कुमार मिश्रा के मामले में रिक्ति 186 निर्धारित की गई थी, खण्ड न्यायपीठ ने दिनांक 08-09-2011 को उत्तर देने वाले प्रतिवादियों की पदोन्नति में दिनांक 02-8-2008 को हस्तक्षेप नहीं किया। श्री दीक्षित के अनुसार, आदेश दिनांक 08-09-2011 के आधार पर 03-07-2009 को 27 डिग्री धारक अवर अभियंताओं की पदोन्नति और 05-02-2010 को 78 डिग्री धारक अवर अभियंताओं का चयन निरस्त कर दिया गया था और ऐसे में विभिन्न विशेष अनुमति याचिकाएं मात्र इन दो आदेशों के विरुद्ध दायर की गईं। उनका कहना है कि राज्य ने भी मात्र उक्त दो पदोन्नति आदेशों से संबंधित विशेष अनुमति याचिका दायर की थी और विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष राज्य द्वारा दायर विशेष अनुमति याचिका की सामग्री पर विश्वास करने की कोशिश की है।

(82) विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार पदोन्नति आदेश दिनांक 02-08-2008, जिसके माध्यम से डिग्री धारक अवर अभियंताओं को पदोन्नत किया गया था, में खण्ड न्यायपीठ ने अपने आदेश दिनांक 08-09-2011 के माध्यम से हस्तक्षेप नहीं किया था और इस प्रकार इसे माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष डिप्लोमा धारक अवर अभियंता संघ सहित किसी के द्वारा भी चुनौती नहीं दी गई थी। इस प्रकार, उनके अनुसार माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित प्रतिप्रेषण आदेश दिनांक 21-08-02019, उन पक्षों के संबंध में एक प्रतिप्रेषण है जो विशेष अनुमति याचिका दायर कर माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष गए थे और उन व्यक्तियों से संबंधित थे जिनकी पदोन्नति और

अनुवादित

चयन को खंड पीठ द्वारा निरस्त कर दिया गया था। इस प्रकार, यह प्रस्तुत किया गया है कि आदेश दिनांक 02.08.2008 के तहत डिग्री धारक अवर अभियंतागण की पदोन्नति के मामले पर पहले ही निर्णय सुनाया जा चुका है और उसे प्रतिप्रेषित नहीं किया गया है क्योंकि किसी ने भी माननीय सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती नहीं दी थी, अतः यह निर्णय और आदेश दिनांक 21-08-2019 के दृष्टिगत नए सिरे से न्यायनिर्णयन हेतु विषय नहीं हो सकता। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार उच्च न्यायालय द्वारा निर्णय और आदेश दिनांक 08-09-2011 अंतिम है, एवं सीमित प्रतिप्रेषण, जो रिट याचिकाओं में तय होने वाली विषय वस्तु हो सकती है, केवल पदोन्नति आदेश दिनांक 03-07-2009 और चयन दिनांक 05-02-2010 के संबंध में होगा, और अनुपाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2020) 2 एससीसी 173] में दूसरे पक्ष ने जिस निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया, वह तथ्यों के आधार पर स्पष्ट रूप से भिन्न था।

(83) विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह तर्क देना जारी रखा कि 711 डिप्लोमा धारक अवर अभियंता जिन्होंने 2007 में आयोजित योग्यता परीक्षा में उपस्थित होने के लिए खुद को पंजीकृत किया था, वे स्पष्ट रूप से उनके लिए एक नई योग्यता परीक्षा आयोजित करने की प्रार्थना कर रहे हैं, ताकि वे पुरानी नियमावली के अंतर्गत सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर पदोन्नति के लिए पात्रता की परिधि में सम्मिलित हो सकें। उनके अनुसार, इन 711 डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं में से सभी को सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर पदोन्नत किया गया था, जब भी वे नियमावली 2004 के तहत 'अयोग्य की अस्वीकृति' के अधीन वरिष्ठता के मानदंड पर पात्र हो गए थे। और उनमें से 627 शांतिपूर्वक सेवानिवृत्त हो गए हैं, 84 वर्तमान में कार्यरत हैं, उनमें से 55 लोग वर्ष 2023 में सेवानिवृत्त होने वाले हैं और शेष 19 अगले वर्ष सेवानिवृत्त होंगे। इस प्रकार, आज तक इन 711 में से कोई भी डिप्लोमा धारक अवर अभियंता, सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर पदोन्नति के लिए अर्हता परीक्षा में शामिल होने का इच्छुक नहीं है, जबकि उन्हें पहले ही क्रमानुसार सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर पदोन्नत किये जा चुके है। इस प्रकार, उनके अनुसार, इस न्यायालय द्वारा की गई पूरी कवायद निरर्थक होगी क्योंकि बदली हुई परिस्थितियों के बाद कोई रिट जारी करने की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने आगे कहा कि जहां तक 96 डिग्री धारक अवर अभियंताओं की बात है, जिन्हें आक्षेपित आदेश दिनांक 02-08-2008 के तहत पदोन्नत किया गया है, उनमें से 48 पहले ही या तो बिना पदोन्नति के सेवानिवृत्त हो चुके हैं या वर्ष 2022 में अधिशासी अभियंता (सिविल) के पद पर पदोन्नत होने के बाद सेवानिवृत्त हो चुके हैं। शेष 42 अधिशासी अभियंता (सिविल) के पद पर कार्यरत हैं, जिन्हें वर्ष 2022 में पदोन्नत किया गया है और लगभग 12 लोग वर्ष 2024 के अंत तक सेवानिवृत्त हो जाएंगे।

(84) श्री दीक्षित ने यह तर्क देने के लिए मदन लाल बनाम पंजाब राज्य और अन्य के निर्णय [एआईआर 1994 एससी 647 पैरा -6] पर भी विश्वास व्यक्त किया कि निर्णय और आदेश दिनांक 20-03-2007, पक्षकारों के मध्य

अनुवादित

बाध्यकारी है एवं डिप्लोमा धारक अवर अभियन्ताओं को परीक्षा उत्तीर्ण करनी होगी ताकि वे सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर पदोन्नति के लिए विचार किए जाने के लिए पात्र हो सके। उनके अनुसार, भले ही पहले के परमादेश को सही ढंग से तय नहीं किया गया माना जाए, इसे पक्षों के मध्य अंतिम और बाध्यकारी माना जाना चाहिए, और जब तक आदेश प्रभावी हैं, तब तक उन्हें वाद के लिए विधि के रूप में माना जाएगा और उनका पालन किया जाएगा। उनका यह भी कहना है कि जहां तक विजय कुमार के मामले और डिप्लोमा इंजीनियर्स संघ के मामले में जारी किए गए परमादेश का संबंध है, यह निर्णय पूरी शक्ति से लागू होता है, जो दर्शाता है कि जहां तक डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं का प्रश्न है, मौजूदा रिक्ति के संबंध में वर्ष 2004 से पूर्व, वे पात्रता की परिधि में तब तक नहीं आ सकते जब तक कि वे इस न्यायालय और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्देशित अर्हता परीक्षा उत्तीर्ण नहीं कर लेते।

(85) इसके अतिरिक्त, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार, पुरानी नियमावली 1936 के नियम-5 और नियम-9 के तहत, सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर पदोन्नति के लिए विचार किए जाने के लिए परिवीक्षा अवधि की पुष्टि और उसे पूरा करने की कोई आवश्यकता नहीं है। श्री दीक्षित द्वारा डिप्लोमा अभियांत्रिकी संघ द्वारा यूपीपीएससी को दिए गए अभ्यावेदन पर सरकार द्वारा 17-07-2008 को जारी एक स्पष्टीकरण आदेश पर भी विश्वास किया गया, जिसमें स्पष्ट किया गया था कि भर्ती वर्ष 2003-04 की रिक्तियों के प्रति पुरानी नियमावली 1936 के तहत सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर 01 जुलाई 2003 को या उससे पहले परिवीक्षा अवधि पूरी करने की आवश्यकता पदोन्नति के उद्देश्य के लिए पूर्व शर्त नहीं थी। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा के.के. खोसला और अन्य बनाम हरियाणा राज्य और अन्य [(1990) 2 एससीसी 199, के मामले में पारित आदेश के प्रस्तर 7 पर भी इस प्रस्थापना हेतु विश्वास व्यक्त किया कि यदि सेवा में पदोन्नति के प्रयोजनों के लिए यदि नियमावली में परिवीक्षा अवधि को पूर्ण करने की आवश्यकता वाला कोई विशिष्ट प्रावधान नहीं है, तो इसे पूरा न करना नियमों के तहत सहायक कार्यपालक अभियंता के पद पर दो वर्ष की परिवीक्षा अवधि से कार्यपालक अभियंता के पद पर पदोन्नति की वैधता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उन्होंने ए.एन. सहगल और अन्य बनाम राजे राम श्योराण और अन्य [1992 Supp (1) एससीसी 304] के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय में पारित आदेश के प्रस्तर 8 पर भी, यह तर्क देने के लिए विश्वास व्यक्त किया। कि किसी वास्तविक रिक्ति की पुष्टि और नियुक्ति हमेशा एक अनिश्चितता होती है और इसमें अनावश्यक रूप से लंबा समय लगता है। इसलिए, वरिष्ठता के प्रयोजन के लिए निरंतर सेवाकाल की गणना करने के लिए किसी मूल पद पर पुष्टि या नियुक्ति सामान्यतः एक पूर्व शर्त नहीं होगी। इस प्रकार, उनके अनुसार इस विषय में नियमों, तथ्यों और विधि को ध्यान में रखते हुए, जहां तक पदोन्नति आदेश दिनांक 02-08-2008 का संबंध है, कोई भी रिट याचिका जीवंत नहीं है और निरस्त करने योग्य है।

अनुवादित

(86) श्री अनुज कुदेसिया निजी प्रतिवादियों में से एक के लिए उपस्थित हुए और उन्होंने दृढ़तापूर्वक तर्क दिया कि डिप्लोमा अभियंता संघ के पास 3-7-2009 के पदोन्नति आदेश को चुनौती देने का कोई अधिकार नहीं है क्योंकि उन्होंने 12 से 18 अगस्त 2007 को आयोजित योग्यता परीक्षा उत्तीर्ण नहीं की है, जैसा कि 2007 (13) एससीसी 300 में अभिलेखित सिविल अपील संख्या 3228/2005 (डिप्लोमा इंजीनियर्स संघ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 20-3-2007 में वर्णित है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अर्हता परीक्षा पास करने के लिए एक बार मौका दिया है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने अपनी तर्क प्रस्तुत करते हुए यह सुझाव देना चाहा कि चूंकि किसी भी डिप्लोमा धारक अवर अभियंता ने योग्यता परीक्षा उत्तीर्ण नहीं की, इसलिए वे डिग्री धारक अवर अभियंताओं के साथ सहायक अभियंता के पद पर पदोन्नति के लिए विचार क्षेत्र में प्रवेश के लिए पात्र नहीं थे, इसलिए पदोन्नति आदेशों को चुनौती देने वाली उनकी रिट याचिकाएँ पोषणीय नहीं थीं। उनके अनुसार, योग्यता परीक्षा में भाग लेने वाले सभी 711 डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं में से अधिकांश सेवानिवृत्त हो चुके हैं और उनमें से कुछ को पहले ही सहायक अभियंता के पद पर पदोन्नत किया जा चुका है और वे सेवानिवृत्त होने वाले हैं, इसलिए,रिट याचिका की पोषणीयता के लिए कोई कारण शेष नहीं बचता है। उन्होंने यह भी कहा कि संघ ने कहीं भी संघ के सदस्यों की सूची का प्रकटीकरण नहीं किया है और ऐसे में अनुतोष के लिए इस माननीय न्यायालय से संपर्क करने का कोई अधिकार नहीं है और वास्तव में उनके लिए कार्रवाई का कोई कारण नहीं बनता है।

(87) इसके अतिरिक्त, उनके अनुसार, 27 डिग्री धारक अवर अभियंता, जिन्हें शासनादेश दिनांक 3.7.2009 द्वारा पदोन्नत किया गया था, अगस्त 2001 में यूपीपीएससी, इलाहाबाद द्वारा नियमित चयन द्वारा मूल रिक्तियों के प्रति नियुक्त किए गए थे और उन्हें पुष्टिकरण आदेश दिनांक 26.2.2008 एवं दि. 22.1.2009 द्वारा सेवा में पुष्टि की गई थी एवं अवर अभियंता के पद से सहायक अभियंता के पद पर पदोन्नति हेतु डी० पी० सी० का आयोजन दिनांक 4.5.2009 को यू.पी.पी.एस.सी., इलाहाबाद द्वारा किया गया था। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के मतानुसार चूंकि वे नियमावली 1951 के नियम 3 (जी), 16, 17, 24 और 25 के तहत मूल रिक्तियों के प्रति अपनी नियुक्ति के प्रथम दिवस से ही सेवा के सदस्य बन गए, इसलिए इन लोगों को समय-समय पर संशोधित पुरानी सेवा नियमावली 1936 के 5(iv), 9(i) के तहत सहायक अभियंता के पद पर पदोन्नत किया गया। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का कहना है कि चूंकि पुरानी सेवा नियमावली 1936 में पदोन्नति की पात्रता के लिए परिवीक्षा अवधि पूर्ण करने और पुष्टि करने की कोई शर्त नहीं है, अतः भर्ती वर्ष 2003-04 के लिए स्नातक अवर अभियंता, कट-ऑफ तिथि यानी 1 जुलाई 2003 को पदोन्नति के लिए पूरी तरह से पात्र थे और जैसा कि उन्हें शासनादेश दिनांक 3.7.2009 द्वारा उचित रूप से पदोन्नत किया गया था।

अनुवादित

(88) विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि 33 रिक्तियों में से 27 स्नातक अवर अभियंता की पात्रता और पदोन्नति के संबंध में प्राप्त शिकायतों के मद्देनजर, पात्रता और रिक्तियों के निर्धारण के लिए राज्य के मुख्य सचिव के निर्देश पर लोक निर्माण विभाग के प्रमुख सचिव द्वारा तीन सदस्यीय विशेषज्ञ उच्च शक्ति समिति का गठन किया गया था। उक्त समिति ने पाया कि 1-7-1997 से 30-6-2004 के दौरान संवर्ग संख्या के आधार पर 219 रिक्तियां पदोन्नति द्वारा भरी जानी थीं और इसके अलावा 27 स्नातक अवर अभियंताओं को पुरानी नियमावली 1936 एवं प्रासंगिक अधिसूचनाओं के अनुसार सहायक अभियंता के रूप में पदोन्नत किया गया है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार, यूपीपीएससी द्वारा अनुशंसित लोगों को स्थायी पदों पर स्थायी रूप से नियुक्त किया जाता है जो स्थायी रूप से रिक्त होते हैं और उनके अनुसार, केवल उन लोगों को परिवीक्षा में रखा जाता है जिन्हें स्थायी रूप से नियुक्त किया जाता है जबकि अन्य को नहीं। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने अपनी अपने इस बिंदु को पुष्ट करने के लिए इस न्यायालय के समक्ष विभिन्न नियमों को प्रस्तुत किया है कि एक परिवीक्षाधीन व्यक्ति को सेवा के संवर्ग में एक पद पर एक वास्तविक रिक्ति के प्रति नियुक्त किया जाता है और वह प्रारम्भ से ही सेवा का सदस्य होता है, और इस तरह से उसके लिए उचित रूप से पदोन्नति हेतु विचार किया गया है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने के.के. खोसला बनाम हरियाणा राज्य, (1990) 2 सेकंड 199 और ए.एन. सहगल और अन्य बनाम राजे राम श्योरम और अन्य, (1992) 1 एससीसी 304 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय पर भी विश्वास व्यक्त किया।

(89) विद्वान अधिवक्ता ने रिक्तियों की संख्या के संबंध में अपने बिंदु को स्पष्ट करने के लिए अभिकथन प्रस्तुत किया है कि शासनादेश दिनांक 20.02.2003 के तहत, 1997-98 से 2003-04 की अवधि के लिए कुल 219 पदों की रिक्ति की सूचना दी गई है, जिसके विरुद्ध केवल 186 पद भरे गये। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, इस न्यायालय की माननीय खंडपीठ द्वारा दिनांक 8-9-2011 के आदेश के तहत स्वीकार की गई रिट याचिकाओं के समूह द्वारा मात्र पदोन्नति आदेश दिनांक 03-07-2009 और 05-02-2010 की डीपीसी और परिणामी आदेश, एवं निजी प्रतिवादियों की पदोन्नति और नियुक्ति को निरस्त कर दिया, और राज्य सरकार को भर्ती वर्ष 2003-2004 तक पदोन्नति के लिए नए सिरे से प्रक्रिया को त्वरित रूप से संपन्न करने का निर्देश दिया। उनके अनुसार, यद्यपि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय और आदेश दिनांक 21-8-2019 के माध्यम से अंजनी कुमार मिश्रा के मामले में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 3-11-2006 को निरस्त कर दिया है, तथापि यहां प्रतिवादियों को अंजनी कुमार मिश्रा के मामले में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 3-11-2006 के अनुसरण में पदोन्नत नहीं किया गया था अपितु शासनादेश दिनांक 20-2-2003 द्वारा निर्धारित 219 रिक्तियों के प्रति पदोन्नत किया गया, और आज तक किसी ने भी शासनादेश दिनांक 20-2-2003 को चुनौती नहीं दी है। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, माननीय सर्वोच्च

अनुवादित

न्यायालय द्वारा इस न्यायालय के आदेश दिनांक 8-9-2011 को अपास्त करने के बाद भी याचिकाकर्ताओं को आज पदोन्नत पद नहीं रखा गया है, यद्यपि इनके तक भी पदोन्नति आदेश दिनांक 03-07-2009 को पुनः प्रवर्तित किया जाना है, लेकिन डिप्लोमा अभियांत्रिकी संघ के कहने पर, आज तक प्रतिवादियों के पदोन्नति आदेश को पुनः प्रवर्तित नहीं किया गया है।

(90) विद्वान अधिवक्ता श्री दीपांशु दास ने रिट संख्या 3314/2009, 1511/2010, 3808/2022, 4141/2022 और 5811/2022 में उपस्थित होकर अभिकथन प्रस्तुत किया है कि 1969, 1971, 1987 और 1997 के संशोधनों को निरस्त करने के बाद पुरानी सेवा नियमावली 1936, 1969 के संशोधन से पहले की नियम स्थिति, डिप्लोमा अभियांत्रिकी संघ बनाम राज्य (2007) 13 एससीसी 300 के मामले में माननीय शीर्ष न्यायालय द्वारा प्रतिप्रेषित निष्कर्षों के अनुसार पुनः प्रवर्तित हो गई और इसलिए पदोन्नति कोटा पुरानी सेवा नियमावली 1936 के तहत मात्र 25% होगा न कि 41.66% जैसा कि पहले विश्वास व्यक्त किया गया था। उन्होंने आगे कहा कि पुरानी सेवा नियमावली 1936 के नियम 6(1) के तहत रिक्ति निर्धारण सिद्धांत "उत्पन्न रिक्ति" का है और इसलिए रिक्ति के निर्धारण के लिए मात्र शासनादेश दिनांक 05.02.2010 के आधार पर, "संवर्ग सिद्धांत" को पूर्व से ही अतिष्ठित नियमों में शामिल नहीं किया जा सकता है, क्योंकि यह एक शासनादेश के माध्यम से नियम को अतिष्ठित करने जैसा होगा और वह भी भूतलक्षी प्रभाव से।

(91) कुछ निजी प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एच.जी.एस परिहार, ने संक्षेप में अभिकथन प्रस्तुत किया है कि डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं को आक्षेपित पदोन्नति आदेशों को चुनौती देने का कोई अधिकार नहीं है क्योंकि उनमें से कोई भी नियम 9(2) आर सहपठित पुरानी सेवा नियमावली 1936 के नियम 5(4) के अनुसार उल्लिखित योग्यता परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हो सका है। डिप्लोमा धारक अवर अभियंता पदोन्नति के लिए अयोग्य थे, जबकि डिग्री धारक अवर अभियंता की पात्रता में कोई कमी नहीं थी क्योंकि उन्हें 10.08.2001 को अवर अभियंता के रूप में नियुक्त किया गया था, दिनांक 26.02.2008 को उनकी पुष्टि की गई, लेकिन 14.05.2003 से प्रभावी हुई। इस प्रकार, उनका कहना है कि उनके आक्षेपित पदोन्नति आदेश में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

(92) राज्य की ओर से प्रस्तुत विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री रवि सिंह सिसौदिया द्वारा प्रस्तुत तर्क इस तथ्य पर आधारित है कि अरुणेंद्र कुमार गर्ग मामले (उपरोक्त) में दिनांक 22.03.2002 को पारित निर्णय और आदेश के बाद, राज्य सरकार ने एक कार्यालय आदेश दिनांक 11.02.2003 जारी किया जिसमें प्रावधान किया गया है कि चूंकि पुरानी सेवा नियमावली 1936 में वर्ष 1987 और 1997 में हुए संशोधनों को इस न्यायालय द्वारा अपास्त कर दिया गया था, इसलिए शेष नियमों के अनुसार पदोन्नति करना स्पष्ट था और तदनुसार राज्य ने इस उद्देश्य के लिए प्रावधान किया था कि सहायक अभियंता

अप्रमाणित

(सिविल) के पद पर पदोन्नति करने के लिए, योग्यता परीक्षा के लिए डिप्लोमा धारकों का साक्षात्कार आयोजित किया जाएगा, जिसे हालांकि विजय कुमार के प्रकरण में इस न्यायालय की एक खंड न्यायपीठ ने निरस्त कर दिया था और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा डिप्लोमा अभियांत्रिकी संघ एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य के मामले में पारित आदेश दिनांक 20.03.2007 के तहत बरकरार रखा गया।

(93) विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि इस बीच, कार्यालय आदेश दिनांक 11.02.2003 (जिसे बाद में 16.07.2004 को इस न्यायालय द्वारा निरस्त कर दिया गया था) के अनुक्रम में राज्य सरकार ने अवर अभियंता (सिविल) से सहायक अभियंता (सिविल) के पद तक पदोन्नति के संबंध में दिनांक 20.02.2003 को एक पत्र जारी किया था। दिनांक 20.02.2003 के पत्र में मात्र यह कहा गया था कि राज्य सरकार को विधिक सलाह मिली थी कि पदोन्नति पी.डी.अग्रवाल मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा और अरुणेंद्र कुमार गर्ग मामले में इस न्यायालय दिए गए निर्णय के बाद बने नियमों के आधार पर की जानी चाहिए। पत्र में अपेक्षा की गई थी कि 41.66% कोटा लागू किया जाए और तदनुसार 219 रिक्त पदों को पदोन्नति से भरा जाए। यह कहा गया था कि यह राज्य सरकार द्वारा लोक निर्माण विभाग को नियमावली 1936 की व्याख्या करने के लिए संबोधित एक संसूचक पत्र मात्र था, क्योंकि वर्ष 1969, 1971, 1987 और 1997 में बाद के संशोधनों को अपास्त कर दिया गया था। पत्र दिनांक 20.02.2003 जारी करते समय नियमावली, 1936 में किये गये संशोधनों को निरस्त करते हुए वर्तमान स्थिति पर विचार किया गया तथा तदनुसार पदोन्नति कोटा की व्याख्या एवं निर्धारण किया गया। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार इस न्यायालय ने माना कि 20.02.2003 का पत्र मान्य होगा और तदनुसार निष्कर्ष निकाला कि अंजनी कुमार मिश्रा के मामले में 41.66% कोटा लागू करके पदोन्नति द्वारा 186 पद भरे जाने थे, जिसमें न्यायालय ने राज्य अधिकारियों को फिर से शासनादेश (जैसा कि इस न्यायालय ने कहा था लेकिन वास्तव में यह पीडब्ल्यूडी विभाग को संबोधित एक कार्यालय पत्राचार पत्र था) के अनुसार वर्ष 1997-1998 से 2003-2004 के लिए रिक्तियों को निर्धारित करने और तदनुसार आगे कार्रवाई करने का भी निर्देश दिया था।

(94) विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि रिट याचिकाओं के समूह की सुनवाई के दौरान, जिसमें अंजनी कुमार मिश्रा (उपरोक्त) अग्रणी रिट याचिका थी, राज्य सरकार द्वारा दिनांक 25.07.2006 को श्री त्रिभुवन राम, विभागाध्यक्ष, इंजीनियर-इन-चीफ द्वारा रिट याचिका संख्या 5313 / 2004 एवं प्रबोध शंकर उपाध्याय एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य में अनुपूरक प्रतिशपथ पत्र दाखिल किया गया। उक्त अनुपूरक प्रतिशपथ पत्र दिनांक 25.07.2006 में राज्य ने 25% कोटा को ध्यान में रखते हुए पदोन्नति के लिए रिक्तियों का निर्धारण करने का रुख अपनाया था क्योंकि यह माना गया था कि 1969, 1971 और 1987 और 1997 में शामिल संशोधनों को अपास्त करने के बाद, नियमावली

अनुवादित

1936 को वर्ष 1959 में पुनर्जीवित किया गया और रिक्तियों के निर्धारण के लिए उसी पर विचार किया जाना चाहिए। इस अनुपूरक प्रतिशपथ पत्र में राज्य की ओर से यह रुख अपनाया गया कि वास्तव में वर्ष 1997- 1998 से 2003-2004 तक कुल 130 रिक्तियां थीं।

(95) इस प्रकार, राज्य के ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह अभिकथन प्रस्तुत किया गया है कि अंजनी कुमार मिश्रा प्रकरण में, राज्य सरकार ने नियमावली, 1936 में वर्ष 1959 के संशोधनों को पुनः प्रवर्तित करने का रुख अपनाया था, लेकिन यह न्यायालय, 03.11.2006 को राज्य सरकार के इस रुख से सहमत नहीं थी और उसने राज्य सरकार द्वारा लोक निर्माण विभाग को लिखे गए पत्र दिनांक 20.02.2003 पर विचार किया, जिसमें रिक्तियों को 219 मानते हुए 41.66% कोटा लागू करते हुए रिक्तियों का निर्धारण किया गया और कोटा मात्र 186 निर्धारित किया गया। अब 21.08.2019 को माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अंजनी कुमार मिश्रा मामले में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 03.11.2006 को निरस्त कर दिया है और ऐसी एक विशिष्ट स्थिति उत्पन्न हो गई है।

(96) इस प्रकार, विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि यह स्पष्ट था कि विभाग ने अंजनी कुमार मिश्रा प्रकरण के निर्णय से पहले 73 पदोन्नतियां की थीं और निर्णय के बाद 02.08.2008 तक सभी 186 पदोन्नतियां कर दी गईं, जहाँ तक कि अंजनी कुमार मिश्रा प्रकरण में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 03.11.2006 में लागू किया गया था क्योंकि निर्णय और आदेश दिनांक 03.11.2006 को माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष शीर्ष याचिका 3695 / 2007 सहित याचिकाओं के समूह अतिबल सिंह एवं अन्य बनाम प्रबोध शंकर उपाध्याय एवं अन्य, में चुनौती दी गई थी जिसके परिणामस्वरूप, 186 पदों को भरने के संबंध में कोई अवरोधक आदेश पारित नहीं किया गया।

(97) आगे यह तर्क दिया गया कि अंजनी कुमार मिश्रा प्रकरण में, हालांकि इस न्यायालय ने 186 रिक्तियां तय की थीं, किन्तु इसने राज्य सरकार द्वारा 219 रिक्तियों का सुझाव देने वाले लोक निर्माण विभाग को संबोधित पत्र दिनांक 20.02.2003 पर विश्वास व्यक्त करते हुए राज्य सरकार को रिक्तियों को पुनः निर्धारित करने के लिए स्वतंत्र रखा। इसलिए राज्य सरकार ने शेष अर्थात 219-186 = 33 रिक्तियों पर पदोन्नति करने के लिए आगे कार्यवाही की और दिनांक 03.07.2009 को 27 पदों पर पदोन्नति की।

(98) इसके अलावा, अंजनी कुमार मिश्रा प्रकरण में निर्णय और आदेश दिनांक 03.11.2006 का निर्वचन करते हुए, राज्य सरकार ने एक बार पुनः रिक्तियों का निर्धारण किया और निर्णय लिया कि वर्ष 1997-98 से 2003-2004 तक संबंधित रिक्तियों के मुकाबले 78 और पदोन्नतियां करना अपेक्षित है। इस निर्धारण के अनुसरण में, दिनांक 05.02.2010 को डीपीसी आहूत करने की प्रक्रिया प्रारम्भ की गई थी, किन्तु अंतिम परिणाम घोषित नहीं किया गया था क्योंकि दिनांक 05.02.2010 को आयोजित उक्त डीपीसी को इस न्यायालय के

अनुवादित

समक्ष चुनौती दी गई थी, और इस न्यायालय ने अंतिम परिणाम की घोषणा पर रोक लगाते हुए एक अंतरिम आदेश पारित किया था। इस न्यायालय ने अंततः दिनांक 08.9.2011 को उक्त मामले के साथ-साथ संबंधित मुद्दे पर दायर 33 रिट याचिकाओं को निर्णीत किया और आक्षेपित आदेश दिनांक 3.7.2009 और 5.2.2010 को अपास्त कर दिया, तथा सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर पदोन्नति एवं नियुक्ति हेतु कुछ टिप्पणी की , जिसे माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी।

(99) हालाँकि, इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 08.09.2011 के विरुद्ध माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष याचिकाओं के लंबित रहने के दौरान, 27 सहायक अभियंताओं (सिविल), जिन्हें दिनांक 03.07.2009 को पदोन्नत किया गया था, को दिनांक 02.01.2012 को अवर अभियंता (सिविल) के पद पर प्रतिवर्तित कर दिया गया था, क्योंकि इस न्यायालय ने पदोन्नति आदेश दिनांक 03.07.2009 को अपास्त कर दिया था। चूँकि 27 पदोन्नतियों के संबंध में पदोन्नति आदेश दिनांक 03.07.2009 और 78 अवर अभियंताओं (सिविल) की डीपीसी के संबंध में आदेश दिनांक 05.02.2010 को अपास्त कर दिया गया था, अतः राज्य सरकार ने 27 पदोन्नतियों को प्रतिवर्तित कर दिया था, और अब निर्णय और आदेश दिनांक 21.08.2019 के बाद माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अंजनी कुमार मिश्रा प्रकरण में पारित आदेश दिनांक 03.11.2006 और डिप्लोमा इंजीनियर संघ प्रकरण में पारित आदेश दिनांक 08.09.2011 को निरस्त करते हुए यह स्थिति उभर कर सामने आती है कि अंजनी कुमार मिश्रा प्रकरण में पारित आदेश दिनांक 3.11.2006 के आलोक में डिप्लोमा अभियांत्रिकी संघ प्रकरण का निर्णय दिनांक 8.9.2011 को हुआ था, तथा अंजनी कुमार मिश्रा प्रकरण के आलोक में 27 रिक्तियों पर प्रोन्नति की गयी, और अंजनी कुमार मिश्रा मामले के आलोक में प्रोन्नति हेतु पदों का पुनः निर्धारण किया गया, वो भी निरस्त कर दिया गया है, और इस प्रकार दिनांक 03.07.2009 को 27 पदों पर हुई पदोन्नति भी निरस्त कर दी गयी तथा इस प्रकार राज्य सरकार ने पहले ही पारित आदेश दिनांक 02.01.2012 के द्वारा आदेश दिनांक 03.07.2009 और 05.02.2010 को निरस्त कर दिया जिसके तहत दिनांक 30.07.2009 के पदोन्नत लोगों को प्रतिवर्तित किया गया।

(100) विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता द्वारा आगे यह तर्क दिया गया है कि विभाग द्वारा अवर अभियंताओं (सिविल) की एक पदोन्नति सूची तैयार की गई थी और उक्त वरिष्ठता सूची के आधार पर, याचिकाकर्ता जो आदेश दिनांक 03.07.2009 के तहत पदोन्नत 27 प्रोन्नत व्यक्ति में से हैं, जिसे बाद में निरस्त कर दिया गया और पदोन्नत व्यक्तियों को आदेश दिनांक 02.01.2012 द्वारा प्रतिवर्तित कर दी गई, को आदेश दिनांक 31.12.2021 एवं 31.05.2022 के माध्यम से अवर अभियंता (सिविल) के पद से सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर पदोन्नत किया गया, जिसमें सभी पदोन्नत लोगों ने उपरोक्त आदेशों के दृष्टिगत की गई पदोन्नति को बिना

अप्रमाणित

किसी विरोध के स्वीकार कर लिया और विद्वान अधिवक्ता द्वारा इसका अनुरोध किया गया कि चूंकि उक्त पदोन्नति अंतिम हो गई है, इसलिए इस स्तर पर इसमें व्यवधान उपस्थित नहीं किया जाना चाहिए। इसके अलावा, उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया है कि सहायक अभियंता (सिविल) की एक वरिष्ठता सूची 09.09.2016 को तैयार की गई थी जिसमें याचिकाकर्ताओं के नाम का उल्लेख नहीं था। दिनांक 09.09.2016 की उक्त वरिष्ठता सूची के आधार पर आदेश दिनांक 30.06.2022 के माध्यम से सहायक अभियंता (सिविल) के पद से कार्यकारी अभियंता (सिविल) के पद पर 170 पदोन्नति की गई हैं। वर्तमान याचिकाकर्ताओं ने बिना किसी विधिक आधार के पदोन्नति आदेश दिनांक 30.06.2022 पर भी आपत्ति जताई है और इसलिए इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

(101) अगले विद्वत्तापूर्ण तर्क को विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री असित कुमार चतुर्वेदी ने संबोधित किया। वरिष्ठ अधिवक्ता, जिन्होंने अपने सामान्य त्रुटिहीन तरीके से वर्ष 2007 में आयोजित "योग्यता परीक्षा" की वैधता के प्रश्न पर प्रहार किया, जो 24.10.2007 को संपन्न हुई, यानी वह दिनांक जब "योग्यता परीक्षा" का परिणाम घोषित किया गया था और अन्य सहायक मुद्दे (i) इलाहाबाद में परीक्षा केंद्र से संबंधित, (ii) अर्हता परीक्षा आयोजित करने वाली संस्था, (iii) बिना किसी निर्धारित नियम/पाठ्यक्रम के परीक्षा आयोजित की जा रही है, (iv) कठिनाई, आदि जो सभी 29.09.2007 अर्थात आई.ए.संख्या 10 के दिनांक तक मौजूद थीं। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार उपरोक्त सभी मुद्दे डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं, जो डिप्लोमा अभियांत्रिकी संघ के सदस्य हैं, द्वारा माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष दायर उक्त आई०ए० में उठाए गए थे और चूंकि उक्त आई०ए० को माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आदेश दिनांक 03.12.2007 के माध्यम से निरस्त कर दिया था, अब यह न्यायालय उक्त मुद्दे पर फिर से निर्णय लेने हेतु स्वतंत्र नहीं था, विशेषकर जब दिनांक 3.12.2007 के आदेश में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कोई स्वतंत्रता नहीं दी गई थी।

(102) पुनः विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री चतुर्वेदी द्वारा प्रस्तुत किया गया कि डिप्लोमा इंजीनियर संघ और उसके सदस्यों यानी अवर अभियंता डिप्लोमा धारकों के पास किसी भी आधार पर पदोन्नति आदेशों के साथ-साथ दिनांक 01-07-1997 से 30-06-2004 के बीच की रिक्तियों यानी 255 रिक्तियों के लिए पदोन्नति प्रक्रिया को चुनौती देने का कोई अधिकार नहीं है क्योंकि अवर अभियांत्रिकी डिप्लोमा धारकों ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश दिनांक 20-03-2007 के अनुपालन में वर्ष 2007 में आयोजित 'अर्हता परीक्षा' उत्तीर्ण नहीं की है। उनके अनुसार, डिप्लोमा अभियांत्रिकी संघ और उसके सदस्यों द्वारा दायर चार रिट याचिकाएं जनहित याचिका नहीं हैं और सेवा मामलों में जनहित याचिका पोषणीय नहीं है। उन्होंने आगे कहा कि जिन अवर अभियंताओं को 01-07-2003 यानी रिक्ति अवधि 01-07-2003 से 30-06-2004 के लिए पात्रता की कट-ऑफ तारीख के

अप्रमाणित

बाद अभियांत्रिकी में डिग्री प्रदान की गई है, उन्हें भी कोई अधिकार नहीं होगा कि रिक्ति अवधि 01-07-2003 से 30-06-2004 के लिए या पूर्व अवधि 01-07-1997 से 30-06-2003 के लिए अवर अभियंताओं से सहायक अभियंता सिविल के पदों पर पदोन्नति के लिए विचार किये जाने के अधिकार का दावा करें। यहां तक कि वर्ष 2009 में नियुक्त सीधी भर्ती के सहायक अभियंता सिविल को भी 01-07-1997 से 30-06-2004 की अवधि की रिक्ति के लिए पदोन्नति आदेशों के साथ-साथ अवर अभियंता से सहायक अभियंता के पद पर पदोन्नति प्रक्रिया को चुनौती देने का कोई अधिकार नहीं होगा। इसके अलावा, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश II नियम 2, धारा 11 के प्रावधानों को यह तर्क देने के लिए क्रियान्वित किया गया है कि पूर्वन्याय का सिद्धांत लागू होगा।

(103) विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार, शासनादेश/पत्र दिनांक 20-02-2003 को डिप्लोमा इंजीनियर्स संघ या उसके सदस्यों अर्थात डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं द्वारा आज तक चुनौती नहीं दी गई है, लेकिन इसके विपरीत वे राज्य सरकार, इस माननीय न्यायालय और माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष उपरोक्त लाभ का दावा कर रहे थे, जब तक कि उन्हें दिनांक 24-10-2007 के परिणाम के माध्यम से वर्ष 2007 में आयोजित योग्यता परीक्षा में असफल घोषित नहीं कर दिया गया। यह तर्क दिया गया है कि डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं का रुख, उनके अपने रुख के विरोधाभासी था, और विद्वान अधिवक्ता के अनुसार इन डिप्लोमा धारकों ने वर्ष 2007 में योग्यता परीक्षा में असफल घोषित होने के बाद ही अपना रुख बदल दिया, जिसके कारण उनके द्वारा दायर रिट याचिकाओं की एक श्रृंखला शुरू हो गई।इस प्रकार, डिप्लोमा इंजीनियर संघ और उसके सदस्यों ने दिनांक 26-10-2007 को पहली रिट याचिका संख्या 6943 (एस/एस) / 2007 (डिप्लोमा इंजीनियर संघ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) , दिनांक 26-06-2008 को दूसरी रिट याचिका संख्या 3173 (एस) /एस) 2007 (डिप्लोमा इंजीनियर संघ बनाम उत्तरप्रदेश राज्य और अन्य) , दिनांक 27- 05-2009 को तीसरी रिट याचिका संख्या 3314 (एस/एस) 2009 (डिप्लोमा इंजीनियर संघ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) एवं दिनांक 16-03-2010 को चौथी रिट याचिका संख्या 1511 (एस/एस) 2010 (डिप्लोमा इंजीनियर संघ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य) दायर की, जो कि अपना रुख बदलते हुए एवं अंजनी कुमार मिश्रा प्रकरण में निर्णय एवं आदेश दिनांक 03-11-2006 को ध्यान में रखते हुए पैरवी की गयी, हालांकि माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश दिनांक 21-08-2019 के बाद, यह अर्थहीन हो गया।

(104) विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री चतुर्वेदी ने 'उत्तर प्रदेश अभियांत्रिकी सेवा (भवन एवं सड़क शाखा) वर्ग II नियमावली 1936 ' के प्रावधानों पर बल दिया, और अपने पक्ष को स्पष्ट किया और तर्क दिया कि उत्तरवर्ती संशोधनों सहित उक्त नियम सहपठित शासनादेश दिनांक 20-02-2003 को ध्यान में रखते हुए सिवाय पी.डी. अग्रवाल प्रकरण और अरुवेंद्र कुमार गर्ग प्रकरण के दृष्टिगत, वाद अव्यवधानित रहा अभिखंडन के, पी.डी. अग्रवाल प्रकरण और अरुवेंद्र कुमार गर्ग प्रकरण

अधिवक्ता

अविवादित एवं प्रयोज्य रहा और विद्वान अधिवक्ता के अनुसार इसका अनुपालन करना होगा, तथा इसके विपरीत डिप्लोमा इंजीनियर्स संघ और उसके सदस्यों की ओर से उठाए गए प्रश्न संधारी नहीं हैं। माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष, सिविल अपील संख्या 3228 / 2005 (डिप्लोमा इंजीनियर्स संघ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में प्रस्तुत अतिरिक्त आधार निर्णय और आदेश दिनांक 20-03-2007 के माध्यम से निरस्त कर दिए गए है और इन पर पुनः कार्यवाही नहीं की जा सकती। सिविल अपील संख्या 3695 / 2007 (अतिबल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आदेश दिनांक 24-10-2013 के माध्यम से उठाए गए प्रश्नों को अंततः निर्णय और आदेश दिनांक 21-08 -2019 के माध्यम से विश्रांति प्रदान कर दी गई है।

(105) विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार 41.66% पदोन्नति कोटा के संबंध में राज्य सरकार का रुख (i) तत्कालीन प्रमुख सचिव, कार्य, लोक निर्माण विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ के शपथ पत्र दिनांक 13-10-2009 (ii) श्री त्रिभुवन राम तत्कालीन इंजीनियर-इन-चीफ, लोक निर्माण विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ का संक्षिप्त प्रतिशपथ पत्र दिनांक 13-10-2009, जो श्री कपिल देव के प्रतिशपथ पत्र दिनांक 13-10-2009 की पुष्टि करता है, (iii) श्री इष्ट देव प्रसाद राय, तत्कालीन विशेष सचिव, लोक निर्माण विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ का अनुपूरक प्रतिशपथ पत्र दिनांक 06-01-2011, के अनुसार सही है क्योंकि इसका पक्ष मात्र शासनादेश/पत्र दिनांक 20-02-2003 से ही स्पष्ट होगा, अन्य किसी से नहीं, जबकि श्री त्रिभुवन राम, तत्कालीन प्रमुख अभियंता, लोक निर्माण विभाग, उत्तर प्रदेश का शपथ पत्र दिनांक 25-07-2006, शासनादेश/पत्र दिनांक 20-02-2003 को पूर्णतः नजरअंदाज करता है, और यह मात्र इलाहाबाद में लंबित सिविल विविध रिट याचिका संख्या 53133/2004 (प्रमोद शंकर उपाध्याय और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में न्यायालय का अंतरिम आदेश दिनांक 20-07-2006 के अनुपालन हेतु था। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार रिट याचिका संख्या 4141/2022 में दायर कामता प्रसाद सिंह, विशेष सचिव, लोक निर्माण विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ के प्रतिशपथ पत्र दिनांक 01-02-2023 पर विश्वास व्यक्त नहीं किया जा सकता है क्यूंकि शासनादेश/पत्र दिनांक 20-02-2003 में राज्य सरकार द्वारा आज तक कभी भी उसे प्रतिवर्तित करने के लिए कोई निर्णय नहीं लिया गया है, और यदि कोई निर्णय लिया गया है तो उसे इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया है। उन्होंने एम.आई.बिल्डर्स प्रा. लिमिटेड बनाम राधे श्याम साहू और अन्य (1999) 6 एससी 464 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भी विश्वास किया है, जिसमें यह माना गया था कि सरकार को अपना रुख बदलने से विबन्धित किया जाएगा, सिवाय इसके कि जब सरकार को बाद में पता चले कि सरकार का रुख विधि के प्रावधान के विपरीत है, क्योंकि विधि के विरुद्ध कोई विबंध नहीं है।

(106) इसके अलावा, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने 21-04-2010 की एक समिति के

अनुवादित

प्रतिवेदन का हवाला दिया है, जिसे राज्य सरकार ने 41.66% पदोन्नति कोटा के संबंध में और पदोन्नति कोटा में रिक्तियों की संख्या 219 होने के संबंध में स्वीकार किया था। उन्होंने इस तर्क पर बल देने के लिए प्रतिवेदन पर विश्वास व्यक्त किया कि अवर अभियंता से सहायक अभियंता के पद पर पदोन्नत होने के लिए डिग्री धारक अवर अभियंताओं के लिए पुष्टि की कोई आवश्यकता नहीं थी। इस प्रकार, उनका कहना है कि इसके विपरीत राज्य का कोई भी रुख रिट याचिका संख्या 4141 / 2022 में दायर कामता प्रसाद सिंह, विशेष सचिव, लोक निर्माण विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ के प्रतिशत पत्र दिनांक 01-02-2023 में भी नहीं लिया जा सकता है, जो किसी भी मामले में उक्त पहलू पर मौन है। उनका कहना है कि चूंकि पदोन्नति सहायक अभियंता के पद पर होनी है, इसलिए उसी संवर्ग से संबंधित सेवा नियम यानी "संयुक्त प्रांत अभियांत्रिकी सेवा (भवन एवं सड़क) शाखा वर्ग- II नियमावली 1936 के नियम, उसी के लिए मान्य होंगे।" जैसा कि उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग (प्रक्रिया) नियम-1970 के परामर्श से चयन द्वारा पदोन्नति से स्पष्ट है (इन नियमों का राज्य के सभी सेवा नियमों पर व्यापक प्रभाव पड़ता है)। इस प्रकार, उनके अनुसार, नियमों से यह स्पष्ट था कि वरिष्ठता पूरी तरह से मूल नियुक्ति के दिनांक पर निर्भर करती है और किसी भी तरह से परिवीक्षा और पुष्टिकरण से जुड़ी नहीं है। लेकिन पदोन्नति हमेशा वरिष्ठता सूची पर निर्भर करती है, जिसमें पी.एस.सी. चयन सूची में उन व्यक्तियों के नाम के अनुसार नियुक्ति के क्रम में व्यक्तियों के नाम होते हैं, जो परिवीक्षा पर हैं।

(107) श्री चतुर्वेदी ने इस तथ्य पर अत्यधिक बल दिया कि वर्ष 1987 तक पात्रता की शर्त नियम 9(ii) के तहत तकनीकी योग्यता होना थी तथा नियमों में पुष्टिकरण की कोई शर्त नहीं थी। हालाँकि, शासनादेश दिनांक 7 जनवरी 1980 के अनुसरण में पहली बार, नियम 9(ii) के तहत तकनीकी योग्यता रखने की आवश्यक पात्रता शर्त को 1987 के संशोधन द्वारा समाप्त कर दिया गया था, और पात्रता खंड को डिप्लोमा धारकों और डिग्री धारकों, जिन्हे पद पर पुष्टि की आवश्यकता है, के बीच एक निश्चित कोटा में बदल दिया गया था। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार भले ही प्रासंगिक नियमों के तहत पुष्टिकरण एक आवश्यक शर्त नहीं थी, लेकिन, पदोन्नत या पदोन्नति की प्रतीक्षा कर रहे सभी व्यक्तियों ने वर्ष 2004 तक पहले ही व्यावसायिक परीक्षा उत्तीर्ण कर ली थी और भूतलक्षीरूप से पद पर उनकी पुष्टि कर दी गई थी। इसलिए एक व्यक्ति जिसे भूतलक्षीरूप से योग्य घोषित किया गया है, वह भी 2008 में पदोन्नति आदेश जारी होने के दिनांक से पहले और उसके बाद परिवीक्षा अवधि के दौरान अयोग्य नहीं माना जा सकता है। परिवीक्षा पर रहने वाले व्यक्ति के लिए, जो अन्यथा नियमानुसार पात्र है, यदि पदोन्नत किया जाता है और बाद में अयोग्य पाया जाता है, तो उसे पद से हटाकर गलती को सुधारा जा सकता है।

अनुवादित

लेकिन उसी परिवीक्षाधीन व्यक्ति को यदि पदोन्नति के समय नजरअंदाज कर दिया जाता है और बाद में पुष्टिकरण के माध्यम से योग्य घोषित कर दिया जाता है, तो गलती को पूर्ववत नहीं किया जा सकता है क्योंकि वह नियमों के अनुसार पात्र होते हुए भी उस समय तक वरिष्ठता और पदोन्नति हेतु विचार किये जाने का मूल्यवान अधिकार खतरे में आ चुका होता है। उन्होंने इस मुद्दे पर आगे कहा कि परिवीक्षा अवधि के सफलतापूर्वक पूरा होने पर पुष्टि, न तो नई नियुक्ति है और न ही नियुक्ति की समाप्ति है, और यही कारण है कि यह आवश्यक तकनीकी योग्यता थी जिसे अनिवार्य बनाया गया था, न कि पात्रता मानदंड रखने वाले को पद पर पुष्टि किया जाना। इस प्रकार, उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि नियमावली, 1936 के अनुसार पदोन्नति के लिए पूर्वापेक्षा के रूप में पुष्टि का कोई खंड नहीं था और इसे पहली बार 1987 के संशोधन द्वारा प्रस्तुत किया गया था जिसे बाद में अरुवेंद्र कुमार और अतिबल सिंह के मामले में निरस्त कर दिया गया था।

(108) इसके अलावा, उन्होंने तर्क दिया कि परिशिष्ट 25, जिसने किसी भी पदोन्नति से पहले तीन वर्ष में तीन बार योग्यता परीक्षा आयोजित करना विहित किया, योग्यता परीक्षा आयोजित करने के लिए निर्धारित नियमों का एक निर्देश मात्र है और सांविधिक नियमों का सा महत्व नहीं रखता है। साथ ही यह ऐसे डिप्लोमा धारकों/डिग्री धारकों के लिए लागू नहीं है जो मान्यता प्राप्त संस्थानों से सिविल इंजीनियरिंग में डिग्री प्राप्त करते हैं। उनका यह भी कहना है कि परिशिष्ट 25 के अनुसार, योग्यता परीक्षा संभवतः हर वर्ष आयोजित की जानी चाहिए, हालांकि वर्तमान मामले में यह वर्ष 1971 तक जारी रही, जिसके बाद शुरू में डिप्लोमा धारकों के बहिष्कार के कारण और बाद में डिप्लोमा धारकों के अनुरूप इसकी आवश्यकता को समाप्त करने वाले नियम में संशोधन के कारण यह बंद हो गई।

(109) विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार योग्यता परीक्षा का रिक्तियों की संख्या से कोई लेना-देना नहीं है क्योंकि यह हर वर्ष आयोजित की जाती थी, भले ही रिक्तियां उपलब्ध हों या नहीं। अर्हक परीक्षा का उद्देश्य इसमें उत्तीर्ण होने वाले उम्मीदवार को पात्रता प्रदान करना था ताकि रिक्ति आने पर उस पर विचार किया जा सके और प्रचार-प्रसार किया जा सके। इसके अलावा, "पात्रता" अनुभाग के तहत उप नियम 4 स्पष्ट रूप से उम्मीदवार को एक प्रयास में एक या अधिक अनुभाग चुनने की अनुमति देता है, लेकिन यह स्पष्ट कर दिया गया है कि वह सभी तीन श्रेणियों को उत्तीर्ण करने के बाद ही योग्य होगा।

(110) इस प्रकार, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया था कि पत्र/आदेश दिनांक 05-02-2010 को बरकरार रखा जाना चाहिए, जिसके परिणामस्वरूप रिट-ए संख्या 918 \ 2009 (ओम प्रकाश और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) को अनुमति दी जानी चाहिए। भर्ती वर्ष 2003-2004 के लिए पहली बार चयन किया गया था और तदनुसार पदोन्नति आदेश दिनांक 02-08-2008 को 95 डिग्री धारक अवर अभियंताओं को पदोन्नत करते हुए जारी किया गया था और उसी समीक्षा के संबंध में विभागीय पदोन्नति

अनुवादित

समिति आयोजित की गई थी और तदनुसार 27 डिग्री धारक अवर अभियंताओं को पदोन्नत करने का आदेश जारी करने वाले पदोन्नति आदेश दिनांक 03-07-2009 को जारी किया गया था, और इस प्रकार उपरोक्त रिट याचिका के याचिकाकर्ता अन्य लोगों के साथ यानी कुल 78 को नए उत्तर प्रदेश लोक निर्माण विभाग समूह 'बी' सिविल अभियांत्रिकी सेवा नियम, 2004 के तहत पदोन्नत या सीधे नियुक्त किए गए व्यक्तियों से पहले की तारीख से परिणामी लाभ के साथ पदोन्नत किया जाना चाहिए, और तदनुसार वे भर्ती वर्ष 1997-1998 से 2003- 2004. तक पदोन्नत किए गए व्यक्तियों के बीच सहायक अभियंता (सिविल) की वरिष्ठता सूची में रखे जाने के योग्य हैं।

(छ) परिचर्चा एवं निष्कर्ष

(111) स्वीकृत रूप से इन सभी रिट याचिकाओं में विवाद वर्ष 1997-98 से लेकर चयन वर्ष 2003-04 तक की रिक्तियों पर पदोन्नति को लेकर डिग्री धारक अवर अभियंताओं के साथ डिप्लोमा धारकों के बीच घूमता है। उक्त विवाद के कई पक्ष हैं, जिन पर इस निर्णय के उत्तरवर्ती भाग में पुनर्जीवित होने पर विचार किया जाएगा।

(112) हाल ही में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अजय कुमार शुक्ला बनाम अरविंद राय, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 1195 के मामले में, लघु सिंचाई विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा तैयार की गई वरिष्ठता सूची को सांविधिक अधिदेश के उल्लंघन में पाए जाने पर अपास्त कर दिया है। पीठ ने कहा कि हालांकि पदोन्नति के अधिकार को मौलिक अधिकार नहीं माना जाता है, लेकिन पदोन्नति पर विचार करना अब मौलिक अधिकार के रूप में विकसित हो गया है। सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त निष्कर्ष पर पहुंचकर यह निर्णय लिया है; जो निम्नवत उद्धरित है :-

"37. इस न्यायालय ने, बार-बार, पदोन्नति के अधिकार को मौलिक अधिकार मानने पर बल दिया है, जैसा कि प्रतिवेदन के प्रस्तर 4 में के. रामास्वामी, जे. ने निदेशक, लिफ्ट सिंचाई निगम लिमिटेड बनाम प्रवत किरण मोहंती [(1991) 2 एससीसी 295] के मामले में माना था, जिसे अधोलिखित रूप में पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"4... पदोन्नति कोई मौलिक अधिकार नहीं है, लेकिन एक कर्मचारी का केवल प्रासंगिक नियमों के अनुसार पदोन्नति के लिए विचार किए जाने का अधिकार है, जब यह उत्पन्न होता है। इस दृष्टिकोण से हमारे विचार में उच्च न्यायालय का निष्कर्ष है कि निगम द्वारा तैयार की गई पदक्रम सूची, संविधान के अनुच्छेद 16 सहपठित अनुच्छेद 14 के तहत प्रदत्त प्रतिवादी/रिट याचिकाकर्ता को समानता के अधिकार का उल्लंघन है, और प्रतिवादी/रिट याचिकाकर्ता को अन्यायपूर्ण ढंग से इससे वंचित किया जाना स्पष्ट रूप से अनुचित है।"

38. अजीत सिंह बनाम पंजाब राज्य [(1999) 7 एससीसी 209] के मामले में संविधान पीठ ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 16(1) पर बल देते हुए कहा कि यदि पदोन्नति के लिए कोई व्यक्ति पात्रता और मानदंडों को पूरा करता है, लेकिन फिर भी

अनुवादित

पदोन्नति के लिए विचार नहीं किया गया तो यह उसके मौलिक अधिकार का स्पष्ट उल्लंघन होगा। न्यायमूर्ति जगन्नाधा राव ने आनंद, सीजेआई, वेंकटस्वामी, पट्टनायक, कुर्दुकर, जे.जे. हेतु टिप्पणी करते हुए प्रस्तर 21 और 22 और 27 में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :

"21. अनुच्छेद 14 और 16(1) : पदोन्नति के अधिकार को मौलिक अधिकार माना जायेगा।

22. अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 16(1) आपस में घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं। वे व्यक्ति के व्यक्तिगत अधिकारों से संबंधित हैं। अनुच्छेद 14 की मांग है कि "राज्य किसी भी व्यक्ति को विधि के समक्ष समानता या विधि के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा"। अनुच्छेद 16(1) एक सकारात्मक आदेश जारी करता है कि "राज्य के तहत किसी भी कार्यालय में रोजगार या नियुक्ति से संबंधित मामलों में सभी नागरिकों के लिए अवसर की समानता होगी।"

इस न्यायालय द्वारा बार-बार यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अनुच्छेद 16 का खंड (1), अनुच्छेद 14 का एक पहलू है और यह अनुच्छेद 14 से अपनी शक्ति प्राप्त करता है। उक्त खंड अनुच्छेद 14 में व्यापकता को विशिष्ट करता है और संवैधानिक अर्थ में "समानता" की पहचान करता है। राज्य के अधीन किसी भी कार्यालय में रोजगार और नियुक्ति के मामलों में अवसर प्रदान करता है। "रोज़गार" शब्द व्यापक होने के कारण, इसमें कोई विवाद नहीं है कि यह भर्ती के प्रारंभिक स्तर के पायदान से ऊपर के पदों पर पदोन्नति के पहलू को अपने दायरे में लेता है। अनुच्छेद 16(1) प्रत्येक कर्मचारी को, जो अन्यथा पदोन्नति के लिए पात्र है या जो विचार के क्षेत्र में आता है, पदोन्नति के लिए "विचार किए जाने" का मौलिक अधिकार प्रदान करता है। यहां समान अवसर का मतलब पदोन्नति के लिए "विचार किए जाने" का अधिकार है। यदि कोई व्यक्ति पात्रता और क्षेत्र मानदंडों को पूरा करता है, लेकिन पदोन्नति के लिए विचार नहीं किया जाता है, तो पदोन्नति के लिए "विचार किए जाने" के उसके मौलिक अधिकार का स्पष्ट उल्लंघन होगा, जो उसका व्यक्तिगत अधिकार है।

"समान अवसर और ऐसी पदोन्नति से जुड़ी वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति अनुच्छेद 16(1) के तहत मौलिक अधिकार के पहलू हैं।"

xxx xxx xxx xxx

27. हमारी राय में, उपरोक्त विचार अशोक कुमार गुप्ता में व्यक्त किया गया और जगदीश लाल एवं अन्य मामलों में इसका पालन किया गया, यदि इसका उद्देश्य यह प्रतिपादित करना है कि पदोन्नति द्वारा भर्ती के प्रासंगिक नियमों के अनुसार कर्मचारियों को पदोन्नति के लिए "विचार" किये जाने की उचित गारंटी (अर्थात चाहे वरिष्ठता या योग्यता के आधार पर) केवल सांविधिक अधिकार है और मौलिक अधिकार नहीं है, तब हम इस प्रस्थापना को स्वीकार नहीं कर सकते। हम पहले ही कह चुके हैं कि पदोन्नति के मामले में समान अवसर का अधिकार, पदोन्नति के लिए "विचार किए जाने" के अधिकार के अर्थ में वास्तव में अनुच्छेद 16(1) के तहत गारंटीकृत एक मौलिक अधिकार है और इस पर 1950 से पूर्व अशोक कुमार गुप्ता प्रकरण से पहले किसी अन्य मामले में कभी संदेह नहीं किया गया है।"

अनुवादित

(113) भारत संघ एवं अन्य बनाम कृष्ण कुमार अन्य (2019) 4 एससीसी 319 प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि पदोन्नति कोई निहित अधिकार नहीं है, बल्कि केवल विधि के अनुसार पदोन्नति के लिए विचार किए जाने का अधिकार है। पहले के निर्णयों पर विश्वास करते हुए यह माना गया है कि पदोन्नति के लिए विचार किए जाने का अधिकार विधि के अनुसार है जो विचार किये जाने की तारीख से लागू होता है। दूसरे शब्दों में, विधि इस प्रकार स्पष्ट है कि किसी उम्मीदवार का मौजूदा नियमों के आलोक में, अर्थात्, विचार की तिथि पर लागू नियम के अंतर्गत, विचार किये जाने का अधिकार है।

(114) इस विषय पर तथ्यों और विधि को स्पष्ट करने के बाद, इस न्यायालय ने सभी प्रतिस्पर्धी पक्षों को बहुत धैर्यपूर्वक और विचारपूर्वक सुना। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता और साथ ही प्रतिस्पर्धी पक्षकारों की ओर से प्रस्तुत होने वाले विद्वान अधिवक्तागण ने इस न्यायालय को अत्यधिक सहायता प्रदान की। पक्षकारों को सुनने के बाद, इस न्यायालय का विचार है कि इस न्यायालय द्वारा तय किए जाने वाले मुद्दे को निम्नानुसार निश्चित किया जा सकता है:

क. क्या वर्ष 1997-1998 से 2003-2004 की अवधि के लिए पदोन्नति कोटा के तहत रिक्तियों की संख्या पुरानी सेवा नियमावली 1936 के अनुसार निर्धारित की जानी चाहिए या शासनादेश दिनांक 20.02.2003 के अनुसार;

ख. क्या रिक्ति निर्धारण का "कैडर सिद्धांत" वर्ष 1997-98 से 2003-2004 की अवधि के लिए लागू किया जा सकता है;

ग. क्या सेवा नियमावली के नियम 9(ii) के संदर्भ में "अर्हता परीक्षा" का वर्ष 1997-98 से 2003-2004 की अवधि के दौरान पदोन्नति पर असर पड़ता है और क्या यह डिप्लोमा धारक अवर अभियंता के लिए पदोन्नति की सुविधा के लिए निष्पक्ष रूप से आयोजित की गई है;

घ. क्या सेवा नियमावली के नियम 21 के संदर्भ में "सेवा में परिवीक्षाधीन" पर विचार वर्ष 1997-98 से 2003-2004 की अवधि के दौरान पदोन्नति पर असर डालता है;

(115) इस न्यायालय ने अंजनी कुमार मिश्रा और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (2007) 1 यूपीएलबीईसी 260 के मुख्य मामले के माध्यम से कई मामलों के समूह का निर्णय किया, जिसके अंतर्गत, मौजूदा पुरानी सेवा नियमावली 1936 के आधार पर भर्ती वर्ष 1997-98 से 2003-04 के लिए पदोन्नति के कोटे में रिक्तियों के आवंटन को अस्वीकार कर दिया और शासनादेश दिनांक 20.2.2003 के प्रावधानित कोटा के अनुसार रिक्तियों के आवंटन के लिए निर्देशित किया, जिसने पदोन्नति के लिए 41.66% कोटा और सीधी भर्ती के लिए 58.34% कोटा निर्धारित किया और अंततः पदोन्नति के कोटा में रिक्तियों की संख्या 186 आगणित की। प्रस्तर संख्या 117 से 120, जो वर्तमान संदर्भ के लिए प्रासंगिक हैं, यहाँ प्रमुख रूप से उद्धृत किये गए हैं :-

"117. उपरोक्त स्थापित वैधानिक स्थिति के दृष्टिगत हम आगे धारित करते हैं कि सीधी भर्ती और पदोन्नति के कोटा के आवंटन के संबंध में पुरानी नियमावली 1936 में कोई

अनुवादित

संविधिक नियम 5 और 6 मौजूद नहीं है और हमारी सुविचारित राय में यह क्षेत्र इस संबंध में सरकार द्वारा कार्यकारी आदेश दिनांक 20.2.2003 को जारी कर आच्छादित एवं प्रतिपूरित किया गया, जैसा कि रिट याचिका संख्या 53133 / 2004 प्रमोद शंकर, के अनुलग्नक 7 में निहित है, जो सीधी भर्ती के लिए 58.34% कोटा और पदोन्नति के लिए 41.66% कोटा बिना पदोन्नति के कोटे के भीतर पोषक प्रवर्ग के स्नातक और गैर-स्नातक पदधारियों के लिए कोटा किसी अलग सीमा के प्रदान करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि उपरोक्त शासनादेश अरुवेंद्र कुमार गर्ग के मामले के निर्णय में निहित इस न्यायालय के निर्देश के अनुपालन में जारी किया गया है, इस प्रकार पदोन्नति के कोटे में आने वाली रिक्तियों को बिना किसी आवंटन के पोषण प्रवर्ग के पदधारियों द्वारा भरने का इरादा था। स्नातक और गैर-स्नातक पदधारियों के लिए पदोन्नति के लिए अलग-अलग कोटा उपरोक्त शासनादेश दिनांक 20.2.2003, नई नियमावली 2004 के प्रारंभ होने से पहले भी लागू था क्योंकि यह दिखाने के लिए अभिलेख पर कोई सामग्री नहीं है कि उक्त शासनादेश को 3.1.2004 तक सरकार द्वारा कभी भी संशोधित या प्रतिस्थापित किया गया हो। इसलिए इस क्षेत्र में व्याप्त पुरानी मौजूदा विधि के तहत पदोन्नति के कोटे में रिक्तियों के निर्धारण की जांच करना आवश्यक है।

118. राज्य प्रतिवादियों द्वारा रिट याचिका संख्या 53133 / 2004, प्रमोद शंकर उपाध्याय एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, श्री त्रिभुवन राम, इंजीनियर-इन-चीफ, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा दिनांक 25.7.2006 को दाखिल अनुपूरक प्रतिशपथ पत्र के अवलोकन से यह संकेत मिलता है कि सहायक अभियंता केप्रश्नगत पद पर वर्ष-वार रिक्तियों का विवरण अनुलग्नक S.C.A-I और S.C.A.II के रूप में संलग्न चार्ट में दिया गया है जो दर्शाता है कि प्रभावी ढंग से 1.7.1997 से 30.6.2004 तक, प्रश्नगत पद पर कुल 446 रिक्तियाँ हुई हैं। जिसमें से सीधी भर्ती के कोटे में कुल 316 रिक्तियां आवंटित की गई हैं और पोषण प्रवर्ग के लिए पदोन्नति के कोटे में केवल 130 रिक्तियां आवंटित की गई हैं। सीधी भर्ती के कोटे में आने वाली 316 रिक्तियों के विरुद्ध 62 रिक्तियाँ नियमितीकरण द्वारा भरी जा चुकी हैं और शेष 254 रिक्तियाँ आयोग के माध्यम से चयन के लिए छोड़ी गई हैं, जबकि पदोन्नति के कोटे में आने वाली कुल 130 रिक्तियों के विरुद्ध केवल 102 रिक्तियाँ भरी हुई दिखाई गई हैं जबकि 28 रिक्तियां अभी भी भरी जानी बाकी हैं। उपरोक्त अनुपूरक प्रतिशपथ पत्र के साथ संलग्न अनुबंध S.C.A.III के अवलोकन से, यह पता चलता है कि वर्ष 1997-98 के लिए हुई कुल रिक्तियों के संबंध में, सीधी भर्ती के कोटे में 66.67% रिक्तियाँ, पदोन्नति के लिए कोटा में 33.33% रिक्तियाँ आवंटित की गईं, जबकि वर्ष 1998-2003 के दौरान हुई रिक्तियों के संबंध में, 75% रिक्तियां सीधी भर्ती के कोटे में आवंटित की गईं और शेष 25% रिक्तियां पदोन्नति के कोटे में आवंटित की गईं। इसके बाद वर्ष 2003-2004 के लिए, कुल रिक्तियों को दो भागों में विभाजित किया गया है, पहला भाग 1.7.2003 से 2.1.2004 की अवधि के लिए और इस अवधि के दौरान हुई कुल रिक्तियों में

अनुवादित

से 75% रिक्तियां प्रत्यक्ष भर्ती कोटे में आवंटित की गई हैं। जबकि 25% रिक्तियां पदोन्नति के कोटे में आवंटित की जाती हैं। हालाँकि वर्ष 3.1.2004 से 30.6.2004 तक रिक्तियाँ, सीधी भर्ती के कोटे में 50% तथा पदोन्नति के कोटे में 50% रिक्तियाँ आवंटित की जाती हैं।

119.इस प्रकार रिक्तियों के ऐसे निर्धारण और गणना के लिए कोई विधिक आधार नहीं दिखता है। हम पहले ही धारित कर चुके हैं कि पुरानी नियमावली 1936 के नियम 5 और 6, जो कि 1969 के संशोधन नियमों द्वारा प्रविष्ट किये गए थें, को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पी.डी.अग्रवाल प्रकरण में, में भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के अधिकारातीत घोषित करने के पश्चात, भर्ती के विभिन्न स्रोतों के लिए अलग-अलग कोटा के आवंटन के लिए उपरोक्त पुरानी नियमावली 1936 के तहत कोई वैधानिक नियम मौजूद नहीं हैं। पुरानी नियमावली 1936 के नियम 5 और 6, जो 1969 के संशोधन नियमों के लागू होने के समय मौजूद थे, अधिकारों और दायित्वों के निर्धारण के उद्देश्य से उनके नए अधिनियमन के बिना स्वतः पुनर्जीवित नहीं किए जा सकते थे, क्योंकि उपरोक्त नियमों के लिए प्रतिस्थापित नियमों को उनके प्रतिस्थापन के बाद अधिकारातीत घोषित कर दिया गया था, इसलिए, पूर्वोक्त पहले के नियमों को नए अधिनियमन के बिना उनके प्रतिस्थापन से पहले विद्यमान अवस्था में पुनर्जीवित नहीं माना जा सकता है। इसी प्रकार, 1987 और 1997 द्वारा लाए गए नियम 5 (iii) को भी अरुवेंद्र कुमार गर्ग के मामले में संविधान के भाग III के अधिकारातीत घोषित किया गया था, इस प्रकार इससे कोई अधिकार और दायित्व उत्पन्न नहीं होते हैं। इसलिए, उक्त नियमों को प्रतिस्थापित करने के लिए उपरोक्त संशोधनों से पुरानी सेवा नियमावली 1936 के नियम 5 और 6 में मौजूद सीधी भर्ती और पदोन्नति के लिए कोटा के निर्धारण को उन्हीं कारणों से पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार, प्रश्नगत रिक्तियों की गणना और निर्धारण करते समय और ऐसा करने में पुरानी सेवा नियमावली 1936 के नियम 5 और 6 से सहायता लेते समय सरकार का दृष्टिकोण, जैसा कि नियम 1969 में संशोधन करके नियमों में संशोधन के समय था, स्पष्ट रूप से त्रुटिपूर्ण और दोषपूर्ण है, इसलिए, संधार्य नहीं रखा जा सकता। इस प्रकार, उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, हमारी सुविचारित राय है कि शासनादेश दिनांक 20.2.2003 को छोड़कर पदोन्नति और सीधी भर्ती के कोटे में उपरोक्त रिक्तियों के निर्धारण और आवंटन के लिए 1997 से 2004 के दौरान कोई सांविधिक नियम या शासनादेश मौजूद नहीं था। उपरोक्त सरकारी आदेश के द्वारा, सरकार का इरादा मौजूदा वैधानिक नियमों और उक्त कोटे में मौजूदा रिक्तियों को भरने का है, अग्रेतर हमारी राय है कि वर्ष 1997 से 30.6.2004 तक पदोन्नति के लिए कोटा में सभी रिक्तियों को शासनादेश दिनांक 20.2.2003 के तहत निर्धारित कोटा के अनुसार भरा जाना होगा हैं। जैसा कि हम पहले ही मान चुके हैं कि पदोन्नति के कोटे में आने वाली रिक्तियां पहले भी दिनांक 3.1.2004 से 30.6.2004 के मध्य पुरानी नियमावली तथा शासनदेश दिनांक 20.2.2003 के अनुसार भरा जाने योग्य है।

अप्रमाणित

(120) उपरोक्त अवधि के दौरान सहायक अभियंताओं की कुल 446 रिक्तियों में से सीधी भर्ती और पदोन्नति के लिए अलग-अलग कोटा निर्धारित करने के संबंध में उपरोक्त शासनादेश को लागू करते हुए, सीधी भर्ती के लिए 58.34% कोटा और पदोन्नति के लिए 41.66% कोटा के अनुसार रिक्तियों की कुल संख्या सीधी भर्ती के कोटा में 260 और प्रमोशन के कोटा में 186 होगी। चूंकि सीधी भर्ती के कोटे में 62 रिक्तियां पहले ही नियमितीकरण द्वारा भरी जा चुकी हैं जैसा कि अनुपूरक प्रतिशपथ पत्र के एस.सी.ए. में दिए गए चार्ट में दिखाया गया है। इस प्रकार सीधी भर्ती के कोटे में केवल (260-62) = 198 रिक्तियां अभी भी भरी जानी शेष हैं और पदोन्नति के कोटे में कुल 186 रिक्तियां शासनादेश दिनांक 20.2.2003 और नियमावली 1936 के नियम 12 के अनुसार भरी जानी हैं जो उत्तर प्रदेश अभियंताओं की सेवा (बी. एवं आर.बी.) वर्ग II (संशोधन नियम) 1992 द्वारा संशोधित अनुपयुक्त की अस्वीकृति के अधीन मानदंड वरिष्ठता विहित करती हैं । अत: सीधी भर्ती एवं पदोन्नति के कोटे में रिक्तियों का निर्धारण पूर्णतया त्रुटिपूर्ण एवं अवैध है, अत: संधार्य नहीं है, फलस्वरूप सरकार द्वारा आयोग को द्वारा सीधी भर्ती के माध्यम से सहायक अभियंताओं के पदों पर चयन करने हेतु भजा गया अधियाचन दिनांक 2.2.2006 और इसके अनुक्रम में दैनिक समाचार पत्र अमर उजाला दिनांक 5.9.2006 में प्रकाशित विज्ञापन, जहां तक यह उपरोक्त पदों से संबंधित है, को रद्द कर दिया गया है। राज्य सरकार को निर्देश दिया जाता है कि वह पहले की गई टिप्पणियों के अनुसार सीधी भर्ती और पदोन्नति दोनों के कोटे के तहत रिक्तियों के निर्धारण हेतु फिर से कार्यवाह करे और सीधी भर्ती और पदोन्नति के लिए चयन करने के लिए आगे कदम उठाए जैसा कि यहां पहले बताया गया है।"

(116) इस प्रकार, अंजनी कुमार मिश्रा प्रकरण [उपरोक्त] में दिए गए आदेश के प्रस्तर 171 के तहत इसका निष्कर्ष निकाला गया जो अधोलिखित है:

"171. "171. पूर्वगामी चर्चाओं और टिप्पणियों के दृष्टिगत हमारे निष्कर्ष निम्नानुसार संक्षेपित हैं:

(1) नई नियमावली 2004 के नियम 5(ii) और नियम 16 के प्रावधानों को वैध धारित किया जाता है।

(2) हालाँकि, नई नियमावली 2004 के प्रावधान भविष्यलक्षी रूप से प्रवर्तित होंगे और 3.1.2004 से प्रयोज्य होंगे, लेकिन 1.7.2004 को या उसके बाद हुई रिक्तियाँ केवल नई नियमावली, 2004 के तहत भरी जाएंगी और पदोन्नति कोटा में 30.6.2004 से पहले उत्पन्न हुई रिक्तियाँ पुरानी नियमावली 1936 के अंतर्गत भरी जाएगी। हालाँकि, सीधी भर्ती के कोटे में 30.6.2004 से पहले की मौजूदा रिक्तियों को नई नियमावली 2004 के तहत बैकलॉग रिक्तियों के रूप में भरा जाएगा क्योंकि सीधी भर्ती के लिए चयन की प्रक्रिया नई नियमावली 2004 के प्रवर्तित होने से पहले प्रारंभ नहीं की गई थी, लेकिन प्रश्नाधीन अवधि के लिए पदोन्नति हेतु कोटे में रिक्तियों के किसी अगले आवंटन बिना की गयी।

(3) पी.डी. अग्रवाल प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय और अरुवेंद्र कुमार गर्ग

अनुवादित

प्रकरण में इस न्यायालय के आदेश के बाद पुरानी नियमावली 1936 के तहत सीधी भर्ती और पदोन्नति के लिए कोटा निर्धारित करने के लिए कोई सांविधिक नियम मौजूद नहीं है। हालाँकि, निर्वात को भरने और पुरानी नियमावली 1936 के शेष मौजूदा प्रावधानों को पूरक करने के लिए, पदोन्नति के लिए 41.66% कोटा निर्धारित करके प्रासंगिक समय पर उपलब्ध शेष मौजूदा रिक्तियों को भरने के लिए शासनादेश दिनांक 20.2.2003 जारी किया गया है जो लागू होगा। जैसा कि आदेश में दर्शाया गया है, केवल मौजूदा रिक्तियों को भरने के लिए जो नए नियमावली 2004 में शामिल नहीं हैं।

(4) प्रतिवादी-राज्य अधिकारियों को निर्देश दिया जाता है कि वे वर्ष 1997-1998 से 2003-2004 तक की रिक्तियों को शासनादेश दिनांक 20.2.2003 के अनुसार फिर से निर्धारित करें और इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश की प्रमाणित प्रति, सचिव, लोक निर्माण विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार के समक्ष प्रस्तुत करने के दिनांक से एक महीने की अवधि में आगे कदम उठाएं।

(5) वर्ष 1997-98 की शेष रिक्तियों के निर्धारण हेतु शासनादेश संख्या 4023/23-4-98 एन.जी./97 टी.सी. लखनऊ दिनांक 30 जून 1998 द्वारा पुन: कार्यवाही करते हुए क्रमांक संख्या 32 से 40 पर की गई पदोन्नति को नजरअंदाज किया जाएगा। इसी प्रकार वर्ष 1998-99 से 2000-2001 तक की रिक्तियों के संबंध में शासनादेश संख्या 2220/23-4-2002-24 एन.जी./2002 लखनऊ दिनांक 2.5.2002 के माध्यम से की गई 53 पदोन्नतियों, वर्ष 1998-99 और 1999-2000 की रिक्तियों से संबंधित शासनादेश संख्या 8651/23-4-2002-24 एन.जी./02 दिनांक 6.12.2004 के माध्यम से की गईं 10 पदोन्नतियों, और शासनादेश संख्या 8021/23-4-05-24 एन.जी./02 दिनांक 25.5.2005 द्वारा की गई एक पदोन्नति को भी नजरअंदाज किया जाएगा।

(6) शासनादेश दिनांक 30.6.1998, शासनादेश दिनांक 2.5.2005, शासनादेश दिनांक 6.12.2004 एवं शासनादेश दिनांक 25.5.2005 में निहित क्रम संख्या 32-40 से प्रश्नगत पद पर की गई पदोन्नति को निरस्त करने के परिणामस्वरूप डिग्री धारक अवर अभियंताओं को, जिन्हें उपरोक्त सरकारी आदेशों द्वारा पदोन्नत किया गया था, तुरंत उनके मूल पदों पर प्रतिवर्तित नहीं किया जाएगा, जब तक कि जिन रिक्तियों के विरुद्ध उन्हें पदोन्नत किया गया था, उन्हें पुरानी नियमावली 1936 के नियम-12 के अनुसार फीडर पदों के पदधारियों द्वारा भरा जाएगा, भले ही उनके पास अभियांत्रिकी में डिप्लोमा या डिग्री हो।

(7) जैसा कि ऊपर बताया गया है, वर्ष 1997 और वर्ष 1998-2004 के लिए पदोन्नति के कोटे में आने वाली कुल शेष रिक्तियों के प्रति, प्रत्येक भर्ती वर्ष की रिक्तियों के संबंध में अलग-अलग वर्षवार पात्रता और चयन सूची तैयार की जाएगी।

(8) वर्षवार पात्रता सूची तैयार करते समय, जिन व्यक्तियों की पदोन्नति निरस्त कर दी गई है, उन पर भी विचार किया जाएगा और उन्हें पात्रता सूची में रखा जाएगा, यदि वे अभियांत्रिकी में डिग्री या समकक्ष योग्यता के बावजूद वरिष्ठता सूची में उनकी वरिष्ठता स्थिति के अनुसार विचार के क्षेत्र में आते हैं, और उनके मामले पर विचार करते समय,

अनुवादित

स्त्रोत संवर्ग में उनकी वरिष्ठता की गणना करते समय उनके द्वारा उच्च पद पर प्रदान की गई सेवाओं की अवधि को ध्यान में रखा जाएगा और उनकी वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट और अन्य सेवा रिकॉर्ड को भी स्त्रोत संवर्ग पर कल्पित आधार पर ध्यान में रखा जाएगा।

(9) हालाँकि यह और स्पष्ट कर दिया गया है कि भेदभाव के कथित आधार पर डिग्री धारकों के लिए पदोन्नति के लिए अलग कोटा में याचिकाकर्ताओं को राहत की अस्वीकृति उन्हें पदोन्नति के लिए विचार किये जाने से वंचित नहीं करेगी, बशर्ते कि वे अन्यथा अपनी वरिष्ठता स्थिति के अनुसार पदोन्नति के लिए विचार के लिए पात्र पाए जाएं। पुरानी सेवा नियमावली, 1936 के नियम 12 के तहत, इस मामले की स्थिति में अभियांत्रिकी में उनकी डिग्री या समकक्ष योग्यता के बावजूद अन्य पात्र उम्मीदवारों के साथ उन पर भी विचार किया जाएगा।

(10) प्रतिवादियों-राज्य प्राधिकारियों को निर्देश दिया जाता है कि वे उपरोक्त प्रक्रिया अपनाएं और सरकार के सम्बंधित विभाग के सचिव के समक्ष इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से तीन महीने की अवधि के भीतर इसे पूरा करें।

(11) उपरोक्त प्रक्रिया समाप्त होने के बाद, यदि डिग्री धारक अवर अभियंताओं की पदोन्नति का दावा, जिनकी पदोन्नति निरस्त कर दी गई है, या तो उनकी कम वरिष्ठता स्थिति के कारण स्वीकार्य नहीं पाया जाता है या अन्यथा पदोन्नति के नियमों के अनुसार उपयुक्त नहीं पाया जाता हैं, तो उपरोक्त प्रक्रिया के पूर्ण होने पर उन्हें उनके मूल पद पर अविलंब प्रतिवर्तित कर दिया जाएगा।"

(117) इस न्यायालय ने मामलों के इस समूह में मुकदमेबाजी के पहले दौर में, दिनांक 08.09.2011 के आदेश के तहत इसे निम्नानुसार दर्ज किया है:

"रिक्तियों के संबंध में, जैसा कि पत्र दिनांक 22.4.2009 सहित विभिन्न शपथपत्रों और पत्रों से पता चलता है, राज्य सरकार का निरंतर रुख यह रहा है कि 1997-98 से 2003-04 की अवधि के लिए पदोन्नति के कोटे में केवल 186 रिक्तियां थीं। अंजनी कुमार मिश्रा प्रकरण में न्यायालय ने कुल रिक्तियां 186 निर्धारित की हैं। यह स्वीकृत तथ्य है कि राज्य शासनादेश दिनांक 30.6.1998 द्वारा 29 व्यक्तियों, शासनादेश दिनांक 20.8.2007 द्वारा 1 व्यक्ति , शासनादेश दिनांक 2.8.2008 द्वारा 95 व्यक्तियों, शासनादेश दिनांक 3.2.2009 द्वारा 1 व्यक्ति तथा अंतिम शासनादेश दिनांक 30.7.2009 द्वारा 27 व्यक्तियों को पदोन्नत किया गया है। यह भी निर्विवाद है कि 73 लोग न्यायालय के आदेश के तहत काम कर रहे हैं। यह भी इंगित किया जा सकता है कि प्राधिकारियों द्वारा 21 रिक्तियों को आगे बढ़ाया गया था। इस प्रकार कुल मिलाकर 249 पदोन्नतियां हो चुकी हैं। इसलिए, जब अंजनी कुमार प्रकरण में न्यायालय ने पहले ही रिक्तियों का निर्णय कर दिया था, तब प्राधिकारियों के पास कार्रवाई करने का कोई उचित और वैध कारण नहीं था।

हमारी सुविचारित राय है कि 30.6.2004 को पदोन्नति कोटा में मौजूद रिक्तियों को इस न्यायालय द्वारा अंजनी कुमार मिश्रा प्रकरण में पारित निर्णय एवं आदेश के मद्देनजर संयुक्त प्रांत अभियांत्रिकी सेवा (भवन और सड़क

अनुवादित

शाखा) वर्ग- II नियम, 1936 में निहित प्रावधानों के अनुसार भरा जाना चाहिए, जिसे शीर्ष न्यायालय मंजूरी दे चुका है।

यहाँ हम यह दोहराना चाहते हैं कि एक बार रिक्तियों का निर्धारण, अर्थात अंजनी कुमार मिश्रा प्रकरण में निर्णय के बाद 186 रिक्तियों को अंतिम रूप दिया गया था, जो कि अवधि के दौरान हुई रिक्तियों पर 41.66% का कोटा लागू करते हुए निर्धारित किया गया था। सरकार के पास निर्धारण से अधिक चयन करने का कोई अवसर या सांविधिक कारण नहीं था। इसके अलावा, हम रिक्तियों को पुनः निर्धारित करने के लिये स्वतंत्र नहीं है क्योंकि यह उपरोक्त अंतिम निर्णय का पुनर्विलोकन करने के समान होगा।

(118) जाहिर है, अंजनी कुमार मिश्रा प्रकरण के साथ-साथ आदेश दिनांक 08.09.2011 (उपरोक्त वर्णित) दोनों में ही, इस न्यायालय ने कथित तौर पर संसूचना/ शासनादेश दिनांक 20.02.2003 के अनुसार पदोन्नति कोटा के आधार पर भरी जाने वाली रिक्तियों को 41.66% निर्धारित किया है। उक्त संसूचना/शासनादेश को इस धारणा के तहत पदोन्नति कोटा निर्धारित करने के लिए आधार माना गया था कि पी.डी.अग्रवाल प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय और इस न्यायालय ने पुरानी सेवा नियमावली 1936 के तहत अरुवेंद्र कुमार गर्ग प्रकरण में निर्णय के बाद सीधी भर्ती और पदोन्नति के लिए कोटा निर्धारित करने के लिए कोई सांविधिक नियम मौजूद नहीं था। इसलिए अंजनी कुमार मिश्रा प्रकरण में यह न्यायालय इस निर्णय पर पहुंची कि निर्वात को भरने और पुरानी सेवा नियमावली 1936 के शेष मौजूदा प्रावधानों की अनुपूर्ति करने के लिए, प्रासंगिक समय पर पदोन्नति के लिए 41.66% कोटा विहित कर, उपलब्ध शेष मौजूदा रिक्तियों, जो नई सेवा नियमावली 2004 द्वारा आच्छादित नहीं हैं जैसा कि उक्त निर्णय में दर्शाया गया है, को भरने के लिए शासनादेश दिनांक 20.2.2003 जारी किया गया था।के जो कि मौजूदा रिक्तियों को भरने के लिए लागू होगा

(119) विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री संदीप दीक्षित, ने भी इसी तर्ज पर अपने मामले पर बहस की है। उनके अनुसार प्रतिस्थापन द्वारा लाए गए 1969, 1971, 1987 और 1997 के संशोधनों के बाद पुराने नियमों से कुछ भी नहीं बचता है, क्योंकि इन्हें पीडी अग्रवाल प्रकरण और अरुवेद्र कुमार गर्ग प्रकरण में निरस्त कर दिया गया था। उनके अनुसार चूंकि पदोन्नति कोटा से संबंधित पुराने नियमों में कुछ भी नहीं बचा था, इसलिए राज्य ने अंतर को भरने के लिए शासनादेश दिनांक 20.03.2003 जारी किया और किसी भी मामले में, उक्त शासनादेश को किसी भी प्रतिस्पर्धी पक्ष द्वारा कभी चुनौती नहीं दी गई। इस प्रकार, उनके अनुसार शासनादेश दिनांक 20.2.2003, आज भी लागू है।

(120) हालाँकि, यह न्यायालय विभिन्न कारणों से श्री संदीप दीक्षित के उपरोक्त तर्क को मानने से कतराती है। प्रथमतः अभिलेखों से ऐसा प्रतीत होता है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पी.डी. अग्रवाल वाद में न केवल प्रतिस्थापन द्वारा लाए गए 1969 और 1971

अनुवादित

के संशोधनों को निरस्त कर दिया है, बल्कि 1969 से पहले की नियम स्थिति यानी 1959 के संशोधन के अनुसार वरिष्ठता सूची तैयार करने का भी निर्देश दिया है। चूँकि सहायक अभियंताओं (सिविल) की नई वरिष्ठता सूची दिनांक 17.07.1995, जो वास्तव में राज्य सरकार द्वारा तैयार की गई, इसलिए 1959 तक संशोधित पुराने नियम शीर्ष न्यायालय के निर्णय के अनुसार सदैव नियम पुस्तिका में मौजूद थे। दूसरे, इस न्यायालय ने, अरुवेंद्र कुमार गर्ग प्रकरण में पारित अपने निर्णय दिनांक 22.03.2002 के तहत, डिग्री धारक अवर अभियंताओं के इस तर्क पर ध्यान दिया कि प्रतिस्थापन द्वारा लाया गया संशोधन, यदि अनुच्छेद 13(2) का उल्लंघन है, तो मूल रूप से शून्य है और माना जाता है कि यह 'मृतजात विधि है, अर्थात एक अमान्य प्रतिस्थापन है, इसलिए पूर्व-संशोधन नियम की स्थिति पुनः जीवित हो जाएगी। इसके विपरीत, उस समय डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं का तर्क यह था कि 1969 से पहले की नियम स्थिति, जो नियम 9(2) के तहत योग्यता परीक्षा प्रदान करती थी (और जिसे 1987 के संशोधन में हटा दिया गया था), 1969 से 1997 के संशोधन को निरस्त करने के बाद पुनः जीवित नहीं होगी। इस न्यायालय ने अरुवेंद्र गर्ग प्रकरण के आदेश दिनांक 22.03.2002 द्वारा, हालांकि अरुवेंद्र कुमार गर्ग के निर्णय के प्रस्तर 18 और 19 में एटीबी मेहताब माजिद के निर्णय, भगत राम शर्मा के निर्णय और कई अन्य निर्णयों का उल्लेख किया, लेकिन इसने प्रस्तर 20 में धारित किया कि इसके समक्ष मुद्दा 1959 के संशोधन के पुनः प्रवर्तन के संबंध में नहीं था क्योंकि 1969 के संशोधन (और 1959 के संशोधन नहीं) को प्रतिस्थापित करके 1987 और 1997 के संशोधन लाए गए थे, जिन्हें पहले ही पी.डी. अग्रवाल प्रकरण में निरस्त कर दिया गया था। इसलिए, 1969 से पहले की नियम स्थिति के पुनः प्रवर्तन के बारे में कोई निष्कर्ष नहीं दिया गया था। बल्कि यह कहना गलत होगा कि इस न्यायालय ने अरुवेंद्र कुमार गर्ग प्रकरण में पुरानी सेवा नियमावली 1936 के सभी प्रावधानों को निरस्त कर दिया था, बल्कि इस न्यायालय ने वर्ष 1987 और 1997 के संशोधनों के संबंध में दो अधिसूचनाओं को निरस्त मात्र किया था क्योंकि सम्पूर्ण पुरानी सेवा नियमावली 1936, चुनौती अधीन नहीं थी।

(121) इसके अलावा, 1959 के संशोधन तक पुराने नियमों के पुनः प्रवर्तन के संबंध में प्रश्न का उत्तर वास्तव में माननीय शीर्ष न्यायालय द्वारा डिप्लोमा अभियांत्रिकी संघ के मामले में पारित निर्णय दिनांक 20.03.2007 के माध्यम से दिया गया था। उस मामले में डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं ने एटीबी मेहताब माजिद प्रकरण पर विश्वास करते हुए तर्क दिया कि चार संशोधनों को अपास्त करने के बाद 1969 से पहले की नियम स्थिति पुनरुज्जीवित नहीं होगी। डिग्री धारक अवर अभियंताओं ने इसके विपरीत तर्क दिया। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त फैसले के प्रस्तर 5 और 7 में कहा कि 1969 से 1997 तक के चार संशोधनों को अपास्त करने के बाद, जो प्रारंभ से ही शून्य थें, नियमावली 1936 (नियम 5(4) और 9(2) सहित) को पुनर्जीवित किया गया था और

अनुवादित

इसलिए पुरानी नियमावली के नियम 5(4) और 9(2) के अनुसार लिखित योग्यता परीक्षा आयोजित करने का निर्देश दिया गया था।

(122) जाहिर है, 1959 के संशोधन तक मौजूद पुराने नियमों के पुनरुद्धार के बाद, नियम 6(1)(ए) के अनुसार 25% पदोन्नति कोटा पुनर्जीवित हो गया था या यूं कहें कि हमेशा अस्तित्व में था और इसलिए पदोन्नति कोटा रिक्तियों को शासनादेश दिनांक 20.02.2003 के अनुसार निर्धारित नहीं किया जा सका था। क्योंकि शासनादेश दिनांक 20.02.2003 इस धारणा के तहत एक स्टॉप-गैप व्यवस्था के रूप में इस कारण अस्तित्व में आया कि पदोन्नति कोटा निर्धारित करने के लिए कोई नियम मौजूद नहीं थे। हालाँकि, अब सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पी.डी. अग्रवाल के, डिप्लोमा इंजीनियर संघ के साथ-साथ अरुवेंद्र गर्ग के मामलों में पारित निर्णयों की श्रृंखला के दृष्टिगत, पदोन्नति कोटा के लिए रिक्त सीटों की संख्या निर्धारित करने की तिथि पर पदोन्नति कोटा से संबंधित नियमों के अस्तित्व के बारे में कोई संदेह नहीं है। किसी भी मामले में, यह न्यायालय इस निर्णय पर उन पूर्वनिर्णयों का बोझ नहीं डालना चाहती, जिनमें हमेशा यह माना गया है कि शासनादेश सांविधिक नियमों का स्थान नहीं ले सकते, यह कहना पर्याप्त है कि हाल ही में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के एचएमजे संजय किशन कौल ने "अशोक राम परहाद बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 265" दिनांक 15.03.2023 को एक निर्णय दिया था और यह अभिनिर्धारित किया कि शासनादेश, सांविधिक नियमों को अतिच्छादित नहीं कर सकते हैं। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने बॉम्बे उच्च न्यायालय के एक निर्णय से उत्पन्न अपील को निरस्त करते हुए टिप्पणी की कि सेवा नियमावली अभिभावी होती हैं, और शासकीय प्रस्ताव उन नियमों के अनुरूप हो सकते हैं, न कि उन नियमों के विरोध में।(123) शासनादेश दिनांक 20.03.2003 को चुनौती न देने संबंधी श्री दीक्षित के तर्क के संबंध में, हमें पहले यह समझना होगा कि शासनादेश क्या है। जैसा कि विद्वान अधिवक्ता श्री नील कमल मिश्रा द्वारा सहाय्यित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री उपेन्द्र नाथ मिश्र द्वारा तर्क प्रस्तुत किया गया कि एक शासनादेश को अनुच्छेद 162 के अनुरूप होने के साथ-साथ संविधान के अनुच्छेद 166(3) के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए राज्य सरकार द्वारा जारी कार्य नियमावली के अनुरूप होने के दोहरे परीक्षण से गुजरना पड़ता है। जाहिर है, राज्य सरकार ने अनुच्छेद 166(2) और 166(3) के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए कार्य नियमावली, 1975 जारी किए। कार्य नियमावली का खंड- 4(2)(जीए), जिसमें स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि बहुविभागीय परामर्श (विशेषकर वित्त विभाग की मंजूरी) के बिना वहां कोई शासनादेश जारी नहीं किया जा सकता हैं जहाँ संवर्ग सदस्य की संख्या ज्यादा हो और किसी भी संवर्ग की सेवा शर्तों में परिवर्तन हुआ हो। जैसा कि पंचम चंद बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य, 2008(7) एससीसी 117 प्रकरण में अभिनिर्धारित किया गया था कि राज्य द्वारा शासनादेश जारी करने के मामले में व्यवसाय के नियम अलंघनीय हैं। चूंकि, दिनांक 20.02.2003 का पत्र न तो महामहिम राज्यपाल के नाम पर जारी किया

अनुवादित

गया था और न ही इसे बहुविभागीय, विशेष रूप से वित्त विभाग, के परामर्श के बाद जारी किया गया, जैसा कि उस पत्र में किसी अन्य विभाग को कोई पृष्ठांकन नहीं दिया गया था, उसे शासनदेश के रूप में नहीं माना जा सकता है।

(124) इसके अलावा, पत्र दिनांक 20.02.2003 को पहले के पत्र दिनांक 06.02.2003 का संदर्भ देते हुए जारी किया गया था, जिसमें खंड -1 में उल्लेख किया गया था कि विभाग में सहायक अभियंता (सिविल) की कुल स्वीकृत संवर्ग संख्या 1225 पद है। फिर उक्त पत्र के खंड 2 (बीए) में कहा गया है कि यदि 1997 के संशोधन के अनुसार 41.66% का पदोन्नति कोटा लागू किया जाता है, तो हालांकि पदोन्नति कोटा में 219 रिक्तियों की कमी होगी, लेकिन यदि इन 219 रिक्तियों को पदोन्नति द्वारा भरा जाता है, तो कुल संवर्ग संख्या 1225 से बढ़कर 1250 हो जाएगी। इस प्रकार, उपरोक्त पत्र दिनांक 06.02.2003 और उसमें उल्लिखित 219 पदोन्नति कोटा रिक्तियों का उल्लेख करते हुए, विभाग के सचिव द्वारा पत्र दिनांक 20.02.2003, ई-इन-सी को भेजा गया था। जिसके तहत कार्यालय आदेश दिनांक 11.02.2003 द्वारा उपबंधित साक्षात्कार की प्रक्रिया निर्धारित की गई थी। इसलिए यदि इन 219 रिक्तियों को सहायक अभियंता (सिविल) की कुल स्वीकृत संवर्ग संख्या 1225 से 1250 से अधिक करते हुए भरा जा रहा था, तो सचिव पीडब्ल्यूडी को कार्य नियमावली, 1975 के खण्ड 4(2)(जीए) के अनुसार बहु-विभागीय परामर्श लेना चाहिए था (विशेष रूप से विधि विभाग और वित्त विभाग की मंजूरी)। ऐसी प्रक्रिया का पालन न करने पर, सचिव, लोक निर्माण विभाग द्वारा बिना किसी अन्य विभाग को पृष्ठांकित किए ई-इन-सी को पत्र दिनांक 20.02.2003 जारी करना, इस पत्र को अनुच्छेद 162 और 166(3) के अनुसार "शासनादेश" नहीं बनाता है क्योंकि यह कार्यनियमावली के अनुरूप नहीं है और इसलिए यह केवल एक पत्र ही बना हुआ है।

(125) मामले का दूसरा पहलू यह है कि पत्र दिनांक 20.02.2003, कार्यालय आदेश दिनांक 11.02.2003 पर आधारित था, जिसके तहत योग्यता परीक्षा का तरीका लिखित परीक्षा से बदलकर साक्षात्कार कर दिया गया था। इस कारण, पत्र दिनांक 20.02.2003 के प्रस्तर 5 में नियम 9(2) के तहत पात्रता निर्धारित करने के लिए साक्षात्कार कैसे आयोजित किए जाने हैं, इसकी समय-सीमा प्रदान की गई है। चूंकि कार्यालय आदेश दिनांक 11.02.2003 को इस न्यायालय द्वारा 16.07.2004 को विजय कुमार के मामले में और 20.03.2007 को डिप्लोमा अभियांत्रिकी संघ के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अपास्त कर दिया गया था और पूर्व को बरकरार रखते हुए साक्षात्कार की प्रक्रिया को अस्वीकार कर दिया गया था। लिखित परीक्षा की प्रक्रिया पुरानी नियमावली के नियम 9(2) के अनुसार है, इसलिए, उक्त साक्षात्कार की प्रक्रिया और समय-सीमा आदि प्रदान करने वाला पत्र दिनांक 20.02.2003 भी अस्तित्वहीन और अनावश्यक हो जाएगा। इसलिए ऐसे पत्र को न्यायालय में चुनौती देने की कोई आवश्यकता नहीं थी क्योंकि पत्रों/आंतरिक संचार के माध्यम

अनुवादित

से कोई अधिकार प्रदान नहीं किया जा सकता है।

(126) इसके अलावा, जब इस न्यायालय ने आदेश दिनांक 17.07.2006 के द्वारा प्रधान सचिव और ई-इन-सी को वर्ष 1997-1998 से 30.06.2004 तक शुरू होने वाली पदोन्नति के लिए वर्ष-वार उपलब्ध रिक्तियों की कुल संख्या के बारे में स्पष्ट तस्वीर देने के लिए अपने शपथपत्र दाखिल करने का निर्देश दिया। डिग्री धारक अवर अभियंताओं और डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं द्वारा दी गई पदोन्नति कोटा रिक्तियों के अस्तित्व के संबंध में विरोधाभासी दावों के बारे में भ्रम से बचने के लिए, राज्य सरकार ने एक विस्तृत शपथपत्र दिनांक 25.07.2006 दायर किया, और उसके प्रस्तर 20 में स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया गया कि 1959 तक मौजूद पुराने नियम, जो 25% पदोन्नति कोटा प्रदान करते थे, पुनः प्रभावी हो गए हैं। इस प्रकार जब राज्य सरकार स्वयं पुरानी नियमावली के नियम 6(1) को 1959 में मौजूद नियम के रूप में पालन कर रही थी, यहां तक कि 2006 में दिनांक 25.07.2003 को शपथ पत्र दाखिल करते समय, किसी को भी इस न्यायालय के समक्ष पत्र दिनांक 20.02.2003 को चुनौती देने की कोई आवश्यकता, अवसर और औचित्य नहीं था। यहां तक कि पत्र दिनांक 20.02.2003 में न केवल कार्यालय आदेश दिनांक 11.02.2003 और पत्र दिनांक 06.02.2003 का उल्लेख है, जो '1959 तक के असंशोधित पुराने नियमों को अस्तित्व में' मानते हुए जारी किया गए था, बल्कि पत्र दिनांक 20.02.2003 स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित करता है कि पदोन्नति 'पुराने नियमों के असंशोधित प्रावधानों' के अनुसार की जाएगी, जो कि 1969 से 1997 के संशोधनों, यानी 1959 तक के संशोधनों को अलग करने के बाद छोड़ दिए गए थे। इसलिए, 41.66% पदोन्नति कोटा और परिणामी 219 रिक्तियों के आवेदन का प्रस्तावित दावा केवल कुछ भ्रम और आत्म-विरोधाभास के कारण था, इसलिए पत्र दिनांक 20.02.2003 को चुनौती देने की कोई आवश्यकता नहीं थी। अंत में, भले ही तर्कों के लिए, उक्त पत्र दिनांक 20.02.2003 को एक शासनादेश माना जाता है, फिर भी उक्त शासनादेश सांविधिक नियमों के प्रावधानों का अधिक्रमण नहीं कर सकता है। (कृपया यूनियन ऑफ इंडिया बनाम चरणजीत एस. गिल (2000) 5 एससीसी 742 (पैराग्राफ 25) और पीएससी, उत्तरांचल बनाम जेसीएस बोरा, (2014) 8 एससीसी 644 (पेज 28) देखें।

(127) अंतिम लेकिन महत्वपूर्ण बात यह है कि राज्य का रुख, जो उक्त पत्र दिनांक 20.02.2003 का रचयिता था, भी उल्लेखनीय है और इसे विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता के प्रस्तुतीकरण में पाया जा सकता है, जिसमें श्री रवि सिंह सिसौदिया ने स्पष्ट शब्दों में सरकार के पत्र दिनांक 20.02.2003 को मात्र पत्र दिनांक 20.02.2003 के रूप में संबोधित किया है। राज्य के अनुसार अवर अभियंता (सिविल) को सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर प्रोन्नति के संबंध में पत्र दिनांक 20.02.2003 जारी किया गया था, और उक्त पत्र में केवल यह कहा गया था कि राज्य सरकार को विधिक सलाह मिली थी कि पदोन्नति माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पी.डी. अग्रवाल मामले में और अरुणेंद्र कुमार

अनुवादित

गर्ग मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के बाद बने नियमों के आधार पर की जानी चाहिए। राज्य के अनुसार, पत्र में केवल यह कहा गया था कि राज्य को उम्मीद है कि 41.66% कोटा लागू किया जाना चाहिए और तदनुसार 219 रिक्तियां पदोन्नति द्वारा भरी जानी चाहिए और यह राज्य सरकार द्वारा लोक निर्माण विभाग को संबोधित एक संचार पत्र मात्र था। वर्ष 1969, 1971, 1987 और 1997 में बाद के संशोधनों के रूप में नियमावली, 1936 का निर्वचन करते हुए निरस्त कर दिया गया। इस प्रकार, यह स्पष्ट रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि राज्य की समझ के अनुसार, उक्त शासनादेश या पत्र या संचार दिनांक 20.02.2003 राज्य और पीडब्ल्यूडी के बीच केवल एक संचार था और इससे अधिक कुछ नहीं। उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, दिनांक 20.02.2003 के पत्र/संचार ने एक शासनादेश की चमक खो दी है और इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि इसे किसी भी प्रतिस्पर्धी पक्ष द्वारा चुनौती दी गई थी या नहीं क्योंकि यह केवल एक सिफारिश थी, जिसपर प्राप्तकर्ता पर कार्यवाही हो भी सकती है और नहीं भी।

(128) इस प्रकार, विशेष तथ्यों में, जब माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आदेश दिनांक 20.03.2007 के माध्यम से, पहले 1959 तक मौजूद पुराने नियमों को पुनर्जीवित करने का आदेश दिया था, जिसे उसके नवीनतम निर्णय दिनांक 21.08.2019 के माध्यम से दोहराया गया था, इसलिए, केवल 1959 संशोधन तक पुरानी नियमावली का नियम 6(1), जो 25% पदोन्नति कोटा प्रदान करता है, भर्ती वर्ष 2003-2004 तक पदोन्नति कोटा रिक्तियों के निर्धारण के लिए लागू होगा, इसलिए दिनांक 20.02.2003 के उक्त पत्र की कोई प्रासंगिकता नहीं है। नवीनतम घटनाक्रम ऊपर बताए गए हैं और इसलिए जो भी हो इसका कोई अनुप्रयोग नहीं है।

(129) इसके अलावा, जैसा कि पहले ही ऊपर कहा जा चुका है, वर्ष 2004 से 2007 की अवधि के दौरान, प्रतिस्पर्धी पक्ष पदोन्नति कोटा में कथित रूप से मौजूद विभिन्न रिक्तियों का दावा कर रहे थे, इसलिए, इस न्यायालय ने अंजनी कुमार के मामले की सुनवाई करते हुए आदेश दिनांक 17.07.2006 और 20.07.2007 पारित किया। विभाग के प्रमुख सचिव और प्रभारी अभियंता, पीडब्ल्यूडी को वर्ष 1997-1998 से 30.06.2004 तक वर्षवार पदोन्नति कोटा में उपलब्ध रिक्तियों की कुल संख्या बताते हुए शपथपत्र दायर करने का निर्देश दिया गया।

(130) राज्य सरकार ने उक्त निर्देश के अनुपालन में, दिनांक 25.07.2006 को एक विस्तृत अनुपूरक प्रतिशपथ पत्र दायर किया गया, जिसमें स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया कि 1969 से 1997 के आक्षेपित संशोधनों को अपास्त करने के बाद, 25% पदोन्नति कोटा (जैसा कि नियम 6(1) के तहत 1959 के संशोधन में प्रदान किया गया है) पुनरुज्जीवित हो गया। चूंकि राज्य की समझ स्पष्ट थी कि पदोन्नति के लिए 25% कोटा प्रदान करने वाले पुराने नियमावली के नियम 6(1) को पुनरुज्जीवित किया गया था, इसलिए दिनांक 20.02.2003 के पत्र पर राज्य द्वारा

अनुवादित

जानबूझकर उक्त शपथपत्र में उल्लेख नहीं किया गया था। इसके अलावा, 1997-1998 से 2003-2004 तक वर्ष-वार रिक्तियों को समझाने के लिए उक्त शपथ पत्र के साथ एक चार्ट संलग्न किया गया था। उक्त चार्ट में, राज्य सरकार ने स्पष्ट रूप से उल्लेख किया था कि इन वर्षों में 25% पदोन्नति कोटा लागू करके, कुल 130 रिक्तियों में से 102 रिक्तियां भरी गईं और केवल 28 रिक्तियां अस्तित्व में थीं जिन्हें पुरानी सेवा नियमावली 1936 के तहत भरा जा सकता था, हालांकि वास्तव में वर्ष 2003-04 तक पदोन्नति कोटा में केवल 10 रिक्तियां थीं जैसा कि अंजनी कुमार मिश्रा प्रकरण में अभिनिर्धारित किया गया।

(131) इस प्रकार, राज्य ने हमेशा पुरानी सेवा नियमावली, 1936 के अनुसार 25% पदोन्नति कोटा के अस्तित्व पर विश्वास जताया और कभी संदेह नहीं किया गया, हालांकि, इस न्यायालय ने अंजनी कुमार के मामले में पारित आदेश दिनांक 03.11.2006 के प्रस्तर 118 से 120 में इसे स्वीकार करने से इनकार कर दिया। राज्य का पूर्वोक्त रुख था कि 1969 से पहले मौजूद नियम बाद के सभी संशोधनों को अपास्त करने के बाद पुनः प्रवर्तित हो जाएंगे और इसलिए यह माना गया कि 1969 से 1997 के संशोधन को निरस्त करने के बाद, पुरानी नियमावली से कुछ भी पुनः प्रवर्तित नहीं होगा और केवल पत्र दिनांक 20.02.2003 में 41.66% पदोन्नति कोटा 2003-2004 तक की जाने वाली पदोन्नति के लिए लागू करने का प्रावधान किया गया है।

(132) जैसा कि राज्य के विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता द्वारा सही प्रस्तुत किया गया है कि राज्य सरकार ने केवल अंजनी प्रकरण के आदेश दिनांक 03.11.2006 और डिप्लोमा संघ के आदेश दिनांक 20.03.2007 के अनुपालन में वर्ष 2008, 2009 और 2010 में आक्षेपित पदोन्नति की थी। हालांकि, जब पदोन्नति आदेश दिनांक 03.07.2009 और 05.02.2010 को इस न्यायालय द्वारा दिनांक 08.09.2011 को निरस्त कर दिया गया था, जो अंजनी कुमार के निर्णय के पूर्वनिर्णय मूल्य पर आधारित था और जो उस समय प्रचलन में था, राज्य सरकार ने, जाहिर तौर पर अपने कार्यों का बचाव करने के लिए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष एक विशेष अनुमति याचिका, आदेश दिनांक 08.09.2011 के विरुद्ध दायर की। इस विशेष अनुमति याचिका में, राज्य द्वारा स्पष्ट रूप से अंजनी कुमार के निर्णय और शासनदेश दिनांक 20.02.2003 की प्रयोज्यता और 41.66% के समग्र पदोन्नति कोटा के कार्यान्वयन के बारे में उसके निर्देश पर विश्वास करते हुए भी दावा किया गया था, जिसे गलत नहीं ठहराया जा सकता है।

(133) हालाँकि, इस न्यायालय का मानना है कि उपरोक्त प्रक्रिया में राज्य का रुख अनिश्चित धरातल पर टिका हुआ है क्योंकि उसे एक विरोधात्मक मुवक्किल नहीं होना चाहिए था और इसके बजाय उसे एक ऐसा रुख अपनाना चाहिए था जो प्रचलित विधि के अनुसार हो न कि एक प्रतिस्पर्धी पक्ष के रूप में, हालांकि, उसी समय, राज्य बिना किसी आपत्ति के इस न्यायालय के आदेश का अनुपालन करने के लिए बाध्य था।

(134) दुर्भाग्य से, राज्य, उपरोक्त दो प्रतिद्वंद्वी स्थितियों को संतुलित करने में

अनुवादित

सक्षम नहीं था क्योंकि अंजनी कुमार के निर्णय पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा रोक नहीं लगाई गई थी और यह माननीय सर्वोच्च न्यायालय के आदेश दिनांक 21.08.2019 द्वारा अपास्त किए जाने तक जारी रहा। और इस प्रकार सभी अंजनी मिश्रा के निर्णय के बाद, वर्ष 2007 से 2019 तक दायर, राज्य के सभी शपथपत्रों ने अतिरिक्त पदोन्नति को उचित ठहराने के लिए अंजनी कुमार के आदेश दिनांक 03.11.2006, यानी पत्र दिनांक 20.02.2003 और डिग्री धारक अवर अभियंताओं के वर्ष 2008 से 2010 तक 41.66% के पदोन्नति कोटा पर विश्वास व्यक्त किया। दिनांक 10.08.2019 को दायर तत्कालीन प्रमुख सचिव श्री नितिन रमेश गोकरण के शपथपत्रों सहित राज्य के ये सभी शपथपत्र, निजी प्रतिवादियों द्वारा संदर्भित "राज्य के अंजनी वाद पश्चात शपथपत्र" के अलावा और कुछ नहीं थे। चूंकि अंजनी कुमार का निर्णय उस वक्त अस्तित्व में था, इसलिए उस वक्त इसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता था।

(135) हालाँकि, अब जब माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपने प्रतिप्रेषण आदेश दिनांक 21.08.2019 में न केवल अंजनी कुमार के निर्णय दिनांक 03.11.2006 और डिप्लोमा आदेश दिनांक 08.09.2011 आदि को अपास्त कर दिया है, बल्कि दो न्यायाधीशों द्वारा डिप्लोमा धारक अवर अभियंता प्रकरण में पारित आदेश दिनांक 20.03.2007 में निर्णय की सत्यता के बारे में भी दोहराया है, अतः निर्णय लेने के लिए कुछ भी नहीं बचा है और तदनुसार 1969 से 1997 के संशोधन को छोड़कर पुरानी नियमावली, 1936 पुनः प्रभावी हो गई।

(136) इस प्रकार, उपरोक्त घटनाक्रम के परिणामस्वरूप, अंजनी कुमार के निर्णय को दोबारा सुनवाई के निर्देश के साथ अपास्त कर दिए जाने के बाद, राज्य के शपथपत्र दिनांक 25.07.2006 सहित लंबित रिट याचिकाओं में पक्षों की सभी दलीलें पुनरुज्जीवित हो गईं। इसलिए, राज्य के सभी "अंजनी वाद पश्चात शपथ पत्र" अनावश्यक और निरर्थक हो गए और राज्य का एकमात्र शपथ पत्र जिस पर अब विश्वास किया जा सकता है, वह राज्य का दिनांक 25.07.2006 का शपथ पत्र है जो एकमात्र "पूर्व-अंजनी शपथ पत्र" है जिसमें "राज्य का अंजनी-पूर्व रुख" वर्णित है, इसलिए जब प्रतिप्रेषण आदेश दिनांक 21.08.2019 के परिणामस्वरूप पुनः सुनवाई शुरू हुई, तो राज्य सरकार ने अपने पूर्व-अंजनी शपथ पत्र दिनांक 25.07.2006 पर विश्वास व्यक्त किया।

(137) इस न्यायालय ने पाया कि वर्तमान मामलों की सुनवाई के दौरान, वर्ष 2022 में, रिट याचिका संख्या 3314 / 2009 के 27 निजी प्रतिवादियों ने रिट याचिका संख्या 4141 / 2022 दायर की, जिसमें प्रतिवादियों को यह निर्देश देने की मांग की गई कि उन्हें दिनांक 03.07.2009 से सहायक अभियंता (सिविल) के रूप में पदोन्नत माना जाये। इस न्यायालय ने आदेश दिनांक 22.08.2022 के माध्यम से राज्य सरकार को एक शपथपत्र दायर करने का निर्देश दिया कि उनका पदोन्नति आदेश प्रत्यावर्तित क्यों नहीं किया जाएगा, जिसमें राज्य सरकार ने रिट याचिका संख्या 4141 /

अनुवादित

2022 में दिनांक 09.12.2022 को एक शपथपत्र दायर किया, और प्रस्तर-6, 13 और 23 में, यह स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया गया कि, अंजनी कुमार के निर्णय को अपास्त करने के बाद, 03.11.2006 से पहले की स्थिति पुनः प्रभावी हो गई थी और इसलिए दिनांक 20.02.2003 के पत्र में 41.66% कोटा को अब अधिक समय तक शामिल नहीं किया जा सकता है। राज्य द्वारा दायर सभी पश्च अंजनी शपथ पत्र भी निरर्थक हो गए हैं और पूर्व-अंजनी शपथ पत्र दिनांक 25.07.2006, राज्य का एकमात्र प्रासंगिक रुख है जो केवल 25% पदोन्नति कोटा के आवेदन की बात करता है। राज्य ने यह भी रुख अपनाया कि, चूंकि मामले को फिर से सुनवाई के लिए भेज दिया गया है और निजी प्रतिवादी के पदोन्नति आदेशों की वैधता अभी भी चुनौती अधीन है, इसलिए, अंजनी के आदेश की अनुपस्थिति में, पदोन्नति कोटा रिक्तियों पर नए सिरे से निर्णय लेना होगा, और तब तक निजी प्रतिवादियों के पदोन्नति आदेशों को सीधे पुनरुज्जीवित नहीं किया जा सकता है।

(138) इसके अलावा, राज्य सरकार ने सचिव/विशेष सचिव के माध्यम से दिनांक 01.02.2023 को लंबित याचिकाओं यानी 3314 / 2009 और 1511 / 2010 और नई रिट याचिका 4141 / 2022 में भी एक समग्र शपथपत्र के रूप में दायर किया गया, जिसमें पहले का रुख दोहराया गया और राज्य के पूर्व-अंजनी शपथपत्र दिनांक 25.07.2006 पर फिर से विश्वास किया गया जिसमें केवल 25% पदोन्नति कोटा लागू होने के बात कही गयी है।

(139) उपरोक्त से, यह स्पष्ट रूप से स्थापित है कि राज्य के रुख में कोई बदलाव नहीं हुआ है जैसा कि विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री दीक्षित, ने तर्क दिया है। दरअसल, पी.डी.अग्रवाल प्रकरण में 1969 और 1971 के संशोधन और अरुवेंद्र कुमार गर्ग के मामले में 1987 और 1997 के संशोधन को अपास्त करने के बाद के बाद, राज्य सरकार ने लगातार 1959 में मौजूद पुरानी नियमावली के पुनः प्रभावी होने पर विश्वास किया। परिणामतः, कार्यालय आदेश दिनांक 11.02.2003 और पत्र दिनांक 20.02.2003 जारी करते हुए, पूर्व 1969 नियमावली में राज्य द्वारा नियमों की स्थिति पर विश्वास किया गया था। इसी प्रकार, अरुवेंद्र कुमार के निर्णय के बाद 02.05.2002 को पदोन्नति करते समय, केवल 25% पदोन्नति कोटा लागू किया गया था। यह रुख दिनांक 25.07.2006 के शपथपत्र (पूर्व अंजनी शपथ पत्र) में भी लिया गया था, जिस पर अंजनी मिश्रा के निर्णय को अपास्त किए जाने के बाद राज्य द्वारा फिर से विश्वास किया गया था और इसलिए अंजनी पश्चात सभी शपथ पत्रों को निरस्त करते हुए, वही वर्ष 2006 का पूर्ववर्ती रुख दोहराया गया।

(140) इस प्रकार, इस न्यायालय का मानना है कि पुरानी नियमावली, 1936 के पुनः प्रभावी होने के विषय पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय के तीन निर्णयों (अर्थात डिप्लोमा संघ का मामला, अरुवेंद्र गर्ग का मामला और पी.डी. अग्रवाल का मामला) से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि यदि नियम 5(i) से

अप्रमाणित

5(iv), जो केवल 1969 से पहले अस्तित्व में था (और जो निरसन के कारण, 1969 से 2004 तक विधि की किताबों में कभी अस्तित्व में नहीं था), माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पूर्वोक्त निर्णयों के तहत पुनर्जीवित और स्पष्ट किया, इसलिए जब पुरानी सेवा नियमावली के नियम 5(iv) के साथ पढ़े गए नियम 9(ii) को उपरोक्त निर्णयों के तहत पुनर्जीवित किया गया, तो 1959 के संशोधन के अनुसार 25% पदोन्नति कोटा प्रदान करने वाला नियम 6(i) भी पुनर्जीवित और पक्षों पर लागू किया जाएगा। ऐसा इसलिए है क्योंकि पुरानी नियमावली 1959 के नियम 6(i) के तहत प्रदान किए गए 25% पदोन्नति कोटा को पुनर्जीवित किए बिना 5(iv) के तहत प्रदान की गई भर्ती के तरीके के रूप में पदोन्नति अर्थहीन है। इसके अलावा, पुरानी नियमावली का नियम 9(ii) योग्यता परीक्षा प्रदान करता है, जो 1987 के संशोधन के माध्यम से प्रतिस्थापन द्वारा माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के तहत पुनर्जीवित हो गई। यदि 1959 संशोधन तक संशोधित पुराने नियमों के नियम 5(iv) के तहत पदोन्नति करने के लिए नियम 9(ii) के तहत प्रदान की गई अर्हता परीक्षा पुनर्जीवित होगी, तो 1959 संशोधन का 25% कोटा प्रदान करने वाला नियम 6(1) भी, माननीय न्यायालयों द्वारा प्रतिस्थापन द्वारा लाए गए 1969, 1971, 1987 और 1997 के संशोधनों को अपास्त करने के बाद पुनर्जीवित होगा। इसलिए, पुरानी नियमावली 1936 के पुराने नियमों में से नियम 6(1) के साथ नियम 9(2) और 5(4) का पुनः प्रवर्तन, जैसा कि 1959 तक के संशोधन, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पहले ही संशोधित किया जा चुका है, पक्षकारों के बीच एक बाध्यकारी पूर्णनिर्णय है।

(141) इस प्रकार, सुरक्षित रूप से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वर्ष 1997-1998 से वर्ष 2003-2004 की अवधि के लिए पदोन्नति कोटा के तहत रिक्तियों की संख्या सेवा नियमावली 1936 के अनुसार निर्धारित की जानी चाहिए, जिसमें नियम 6(क) पदोन्नति कोटा प्रदान करता है। सहायक अभियंता के पद पर अवर अभियंताओं की पदोन्नति के लिए 25% कोटा निर्धारित किया गया है।

(142) उपरोक्त मुद्दे से संबंधित अगला आनुषंगिक प्रश्न, वर्ष 1997-98 से वर्ष 2003-2004 की अवधि के लिए उपलब्ध प्रोन्नति कोटा के सीटों की संख्या के निर्धारण से सम्बंधित है।

(143) प्रभारी अभियंता ने राज्य को दिनांक 06.02.2003 को लिखे अपने पत्र में, संवर्ग संख्या के आधार पर पदोन्नति कोटा में 219 रिक्तियां निर्धारित कीं, लेकिन उन्होंने राज्य सरकार को आगाह किया कि ऐसा करने से, इस तरह के निर्धारण पर कुल स्वीकृत संख्या बढ़कर 1225 से 1250 हो जाएगी और इसलिए उक्त सिद्धांत लागू नहीं है।

(144) अंजनी कुमार मिश्रा के मामले में प्रस्तर 118 में विशेष रूप से अभिलेखित किया गया है कि राज्य द्वारा दायर शपथपत्र के अनुसार वर्ष 1997-98 से वर्ष 2003-04 की अवधि के दौरान सहायक अभियंता के पद पर पदोन्नति के लिए 446 रिक्तियां थीं। हालाँकि,

अनुवादित

न्यायालय ने शासनादेश दिनांक 20.02.2003 को लागू करके और पुराने सेवा नियमावली, 1936 के अस्तित्व पर संदेह करते हुए सीधी भर्ती के साथ-साथ पदोन्नति पद के लिए उपलब्ध पदों की संख्या से संबंधित पूरी गणित को एक अलग दिशा दी। मामले का तथ्य यह है कि राज्य ने शपथपत्र दिनांक 25.07.2006 के साथ एक चार्ट भी प्रस्तुत किया था जैसा कि उक्त निर्णय के प्रस्तर 118 में अभिलेखित किया गया था, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ बताया गया था कि 446 रिक्तियां मौजूद थीं, जिनमें से कुल 316 रिक्तियां सीधी भर्ती और 130 रिक्तियां स्त्रोत संवर्ग की पदोन्नति हेतु कोटा में आवंटित की गईं। सीधी भर्ती के कोटे में आने वाली 316 रिक्तियों के प्रति 62 रिक्तियाँ नियमितीकरण द्वारा भरी जा चुकी हैं और शेष 254 रिक्तियाँ आयोग के माध्यम से चयन के लिए छोड़ी गई हैं, जबकि पदोन्नति के कोटे में आने वाली कुल 130 रिक्तियों के प्रति केवल 102 रिक्तियाँ भरी हुई दिखाई गई हैं जबकि 28 रिक्तियां अभी भी भरी जानी बाकी हैं। रिक्तियों की उक्त संख्या राज्य द्वारा मौजूदा पुरानी सेवा नियमावली 1936 के आधार पर निकाली गई थी, जबकि वर्ष 1997-98 के लिए, राज्य ने सीधी भर्ती के कोटे में 66.67% एवं 33.33% रिक्तियां पदोन्नति कोटा के लिये आवंटित की थीं। जबकि वर्ष 1998-2003 के दौरान हुई रिक्तियों के संबंध में, 75% रिक्तियाँ सीधी भर्ती के कोटे में आवंटित की गईं और शेष 25% रिक्तियाँ पदोन्नति के कोटे में आवंटित की गईं। इसके बाद वर्ष 2003-2004 के लिए, कुल रिक्तियों को दो भागों में विभाजित किया गया, पहला भाग 1.7.2003 से 2.1.2004 की अवधि के लिए और इस अवधि के दौरान हुई कुल रिक्तियों में से 75% रिक्तियां सीधी भर्ती के कोटे में आवंटित की गईं। जबकि पदोन्नति के कोटे में 25% रिक्तियां आवंटित की गईं। हालाँकि रिक्तियाँ दिनांक 3.1.2004 से 30.6.2004 तक उत्पन्न हुईं जिसमे सीधी भर्ती के कोटे में 50% तथा पदोन्नति के कोटे में 50% रिक्तियाँ आवंटित की गईं हैं।

(145) जहां तक अंजनी कुमार मिश्रा प्रकरण में इस न्यायालय के निर्णय का प्रश्न है, यह अभिनिर्धारित किया गया कि शासनादेश दिनांक 20.02.2003 को लागू करने पर प्रोन्नति कोटा के तहत 41.66% सीटें उपलब्ध थीं और इस तरह पदोन्नति कोटा के अंतर्गत 186 सीटों का आंकड़ा सामने आया और पदोन्नति कोटा के तहत उपलब्ध सीटों की संख्या को फिर से निर्धारित करने के लिए राज्य सरकार को स्वतंत्र रखा गया। इसके अलावा, किसी भी वरिष्ठ डिप्लोमाधारी अवर अभियंता पर विचार किये बिना, सभी 73 पदोन्नतियां, जो वर्ष 1998-2002 के बीच जारी किए गए 04 पदोन्नति आदेशों दिनांक (30.06.1998, 02.05.2002, 06.12.2004 और 25.05.2005) द्वारा केवल डिग्री धारक अवर अभियंताओं में से की गई, विधि की दृष्टि से दोषपूर्ण घोषित की गईं और इन्हें निरस्त कर दिया गया।

(146) हालाँकि, जैसा कि यहाँ पहले से ही यहाँ अभिलेखित किया गया है, 73 पदोन्नतियाँ जिन्हें विधिनुसार दोषपूर्ण घोषित किया गया था और निरस्त कर दिया गया था, माननीय सर्वोच्च न्यायालय से यथास्थिति आदेश प्राप्त

अधिवक्ता

करने में सक्षम थे और इस प्रकार इंजीनियर-इन-चीफ ने शेष 113 रिक्तियों को भरने के लिए अधियाचन दिनांक 03.06.2008 को जारी किया। उक्त 113 रिक्तियों के विरुद्ध, जो अंजनी कुमार के मामले में 1997-98 से 2003-04 की अवधि के लिए निर्धारित 186 रिक्तियों में शामिल थीं, दिनांक 02.08.2008 और 03.02.2009 को 96 (95+1) पदोन्नति की गईं लेकिन सभी पदोन्नति केवल डिग्री धारक अवर अभियंताओं को ही दी गई और शेष 17 रिक्तियों को आरक्षित श्रेणी के उम्मीदवारों की अनुपलब्धता के कारण आगे बढ़ा दिया गया, जिन्हें बाद के भर्ती वर्षों में भरा गया।

(147) इस प्रकार अंतराल अवधि अर्थात वर्ष 1997-1998 से वर्ष 2003-2004 के लिए सभी 186 रिक्तियां पुरानी सेवा नियमावली 1936 के तहत पहले ही भर दी गई थीं,अतः पुरानी सेवा नियमावली के अनुसार आगे भरने के लिए कोई रिक्ति नहीं बची थी। हालाँकि, प्रभारी अभियंता द्वारा जारी पत्र दिनांक 06.02.2003 से संकेत लेते हुए, विभाग ने फिर से 33 (219-186) रिक्तियों के लिए दिनांक 27.02.2009 को एक नया अधियाचन भेजा, जबकि इस तथ्य की पूरी तरह से अनदेखी की गई कि 186 रिक्तियों की गणना अंजनी कुमार मिश्रा प्रकरण में विनिश्चित की गयी थी। वस्तुतः इन 33 रिक्तियों के प्रति आक्षेपित आदेश दिनांक 03.07.2009 द्वारा 27 पदोन्नतियाँ की गईं।

(148) यदि यह पर्याप्त नहीं था, तो राज्य सरकार ने, "संवर्ग संख्या सिद्धांत" के आधार पर इसकी गणना करते हुए, सहायक अभियंता की 97 और रिक्तियों (पहले से ही की गई 186+27 पदोन्नति से अधिक) को भरने के लिए एक नया अधियाचन भेजा, जो कि पुरानी नियमावली 1936 के विरुद्ध था, जिसमें आक्षेपित अधियाचन दिनांक 28.04.2010 के माध्यम से 78 और डिग्री धारक अवर अभियंताओं पर पदोन्नति के लिए विचार किया गया था।

(149) इस प्रकार, पदोन्नति कोटा में रिक्तियों की संख्या से संबंधित एक अंकगणितीय मुद्दा प्रतीत होता है। यहां तक कि 24.04.2010 की जांच समिति की रिपोर्ट भी वर्ष 1997-98 सेवर्ष 2003-04 की अवधि के लिए पदोन्नति कोटा में उपलब्ध रिक्तियों की संख्या के संबंध में कोई सहायता नहीं करती है। यद्यपि श्री चतुर्वेदी, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने शासनादेश दिनांक 20.02.2003 से संकेत लेते हुए यह समझाने और उचित ठहराने का प्रयास किया कि पुरानी नियमावली, 1936 के तहत 97 रिक्तियां बची हुई हैं, हालांकि यह सत्यापन योग्य नहीं था, खासकर जब एक साधारण गणना से पता चलता है कि मामले में सहायक अभियंता के लिए 446 रिक्तियां हैं, जिसमे मौजूदा पुरानी नियामवली को लागू करते हुए, 75% पर सीधी भर्ती होगी, जो 334 पदों में बदल जाएगी, और शेष 25% पदोन्नति कोटा हेतु होंगे, जो 112 पदों में तब्दील हो जाएगी। जाहिर तौर पर इस 112 पदों के प्रति, 102 सीटें निर्विवाद रूप से भरी हुई हैं - 30.06.1998 को डिप्लोमा अवर अभियंताओं की 29 पदोन्नति, और 30.06.1998 (9 पदोन्नति), 02.05.2002 (53

अनुवादित

पदोन्नति), 06.12.2004, और 25.05.2005 (01 पदोन्नति) के चार पदोन्नति आदेशों के माध्यम से डिग्री अवर अभियंताओं की 73 पदोन्नति (10 पदोन्नति)। इसलिए, पदोन्नति कोटा के लिए केवल 10 रिक्तियां उपलब्ध होंगी, क्योंकि तीन आक्षेपित पदोन्नति आदेश यथा दिनांक 02.08.2008 (86 अतिरिक्त सीटें), 03.07.2009 (27 अतिरिक्त सीटें) और 05.02.2010 (78 अतिरिक्त सीटें), के माध्यम से राज्य द्वारा लगभग 191 अतिरिक्त पदोन्नति की गई हैं। इस अतिरिक्त सीटों के वास्तविक निर्धारण और औचित्य का प्रश्न राज्य सरकार को देना है, जो सामने नहीं आ रहा है। इसके अलावा, हालांकि, जैसा कि ऊपर बताया गया है, अतिरिक्त पदोन्नति सीटों के लिए कोई औचित्य नहीं है, हालांकि राज्य द्वारा एक कमजोर आधार लिया गया है कि आक्षेपित आदेश दिनांक 05.02.2010 के तहत 97 पदोन्नति का धियाचं किया गया है, जिसे संवर्ग सिद्धांत के आधार पर उचित ठहराया जा रहा है, जिसे शासनादेश दिनांक 05.02.2010 द्वारा पूर्वव्यापी रूप से पुरानी सेवा नियमावली, 1936 पर लागू करने की मांग की गई है।

(150) विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री मिश्रा ने विधि की प्रस्थापना को प्रचारित करने के लिए दीपक अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2011 (6) एससीसी 725 और अन्य वाद के संबंधित आदेश पर विश्वास किया है कि पदोन्नति की तारीख पर "प्रवृत नियम" लागू होंगे। श्री मिश्रा द्वारा संदर्भित विधि की उक्त प्रस्थापना पर कोई संदेह नहीं है, हालांकि ऐसा लगता है कि उन्होंने केवल यह मानकर उक्त निर्णय पर विश्वास किया है कि वर्ष 1997-98 से 2003-04 के लिए पदोन्नति कोटा में मात्र 10 रिक्तियां थीं और आक्षेपित आदेश दिनांक 02.08.2008, 03.07.2009 और 05.02.2010 द्वारा की गई अन्य पदोन्नतियाँ उन रिक्तियों के लिए थीं जो नई सेवा नियमावली, 2004 के लागू होने के बाद उत्पन्न हुई थीं। हालाँकि, प्रथम दृष्टया श्री मिश्रा का तर्क आकर्षक लगता है, लेकिन बारीकी से देखने पर ऐसा लगता है कि पूरा सिद्धांत इस गलत धारणा पर आधारित है कि वर्ष 1997-98 से वर्ष 2003-04 तक पदोन्नति कोटे में मात्र 10 रिक्तियाँ निकली हैं चूंकि, वर्ष 1997-98 से वर्ष 2003-04 के लिए पदोन्नति कोटे के लिए होने वाली रिक्तियों की संख्या स्वयं विवादास्पद है और एक ऐसा कार्य है जो अभी भी अधूरा है, अतः यह न्यायालय विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत प्रस्थापना से सहमत होने में असमर्थ है।

(151) उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, यह विवाद बना हुआ है कि पुरानी सेवा नियमावली 1936 में पाए जाने वाले 25% के नियम को लागू करके पदोन्नति कोटा में मौजूद रिक्तियों की वास्तविक संख्या क्या है। इस प्रकार, यह जरूरी है कि राज्य राज्य के मुख्य सचिव की अध्यक्षता में एक उच्च स्तरीय समिति गठित करे जिसमें अधिमानतः सक्षम विभाग के प्रमुख सचिव और ऐसे अन्य सदस्य हों, जो मुख्य सचिव के अनुसार वर्ष 1997-98 से वर्ष 2003-04, की अवधि के लिए उपलब्ध पदोन्नति सीटों की वास्तविक संख्या निर्धारित करने में सक्रिय सहायता प्रदान कर सकें, ताकि यह ध्यान में रखते हुए कि चूंकि यह मुद्दा दो

अमान्यवाद

दशकों से अधिक समय से लंबित है, इसे अंतिम रूप से निर्णीत किया जाए ।

ज. क्या रिक्ति निर्धारण का "संवर्ग सिद्धांत" वर्ष 1997-98 से वर्ष 2003-2004 की अवधि के लिए लागू किया जा सकता है;

(152) इसलिए, इस न्यायालय द्वारा निर्णीत किया जाने वाला अगला प्रश्न यह है कि क्या "रिक्ति निर्धारण का संवर्ग सिद्धांत", पहले से ही अधिक्रमित पुरानी सेवा नियमावली 1936 के नियमों पर वर्ष 1997-1998 से वर्ष 2003-04 की अवधि के लिए पूर्वव्यापी रूप से केवल एक शासनादेश दिनांक 05.02.2010 जारी करके लागू किया जा सकता है। भले ही पुरानी सेवा नियमावली 1936 के स्थान पर नियम 6(i) में इसका प्रावधान नहीं था और यह केवल नई सेवा नियमावली 2004 के तहत प्रदान किया गया था, जिसे केवल दिनांक 3.1.2004 से लागू किया गया था।

(153) विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री मिश्रा द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है और यह सही भी है कि पुरानी सेवा नियमावली 1936 के नियम 6(1) में पदोन्नति कोटा के रूप में "25°% रिक्तियों" का प्रावधान है। राज्य ने 1997 के संशोधन द्वारा 'रिक्तियों' शब्द को 'पदों' शब्द से संशोधित करने का प्रयास किया लेकिन अरुवेंद्र गर्ग के मामले में इसे निरस्त कर दिया गया। अंततः पुरानी सेवा नियमावली को वर्ष 2004 में अतिष्ठित कर दिया गया, जब नई नियमावली अस्तित्व में आई और तब से पुरानी सेवा नियमावली 1936 अस्तित्व में नहीं रही। इसके बावजूद, राज्य सरकार ने, मात्र दिनांक 05.02.2010 को एक शासनादेश जारी करके, नियम 6 (i) में संशोधन करने का प्रयास किया और 1936 के पहले से ही अधिष्ठित किए गए नियमावली के नियम 6 (i) में 'संवर्ग पद' शब्द को पूर्वव्यापी रूप से शामिल कर दिया। शासनादेश के माध्यम से उक्त नियम में संशोधन, जो विधि में अस्वीकार्य है क्योंकि यह विधि की स्थापित स्थिति है कि शासनादेश, सांविधिक नियमों का स्थान नहीं ले सकता। इसके अलावा, यह न्यायालय इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं हो सकती कि यह भी विधि की एक स्थापित स्थिति है कि जहां सांविधिक नियम स्पष्ट और शुद्ध हैं, वहां न्यायालय द्वारा नियमों की व्याख्या के माध्यम से कोई भी अभिवृद्धि अथवा प्रविष्टि नहीं की जानी चाहिए। इसके अलावा, विधि की यह स्थापित स्थिति है कि जहां किसी प्राधिकारी को एक निश्चित कार्य को एक निश्चित रीति से करने की शक्ति दी जाती है, तो उस कार्य को उसी रीति से किया जाना चाहिए या बिल्कुल नहीं किया जाना चाहिए। निर्वहन की अन्य रीतियां अनिवार्यतः निषिद्ध हैं(नज़ीर अहमद बनाम राजा सम्राट (1936 एससीसी ऑनलाइन पीसी 41) । उक्त सिद्धांत का अनुसरण सर्वोच्च न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने चंद्र किशोर झा बनाम महावीर प्रसाद और अन्य। [(1999) 8 एससीसी 266] तथा चेरुकुरी मणि बनाम मुख्य सचिव, आंध्र प्रदेश सरकार और अन्य [(2015) 13 एससीसी 722] में भी किया है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार धारित किया:-

“14. जहां नियम किसी कार्य को किसी विशेष प्रक्रिया का पालन करते हुए एक विशेष रीति

अनुवादित

से करने का निर्देश देता है, वहां निर्धारित प्रक्रिया से विचलित हुए बिना विधि के प्रावधानों का पालन करते हुए इसे उसी रीति से किया जाएगा.....

(154) इस मामले में, जब पुरानी नियमावली का नियम 6(i) स्पष्ट रूप से पदोन्नति कोटा के रूप में 25% "रिक्तियां" प्रदान करता है, तो इसे पुरानी सेवा नियमावली 1936 की गलत व्याख्या करके 25% "संवर्ग पदों" के रूप में निर्वचित नहीं किया जा सकता है। इस न्यायालय में, रिक्ति निर्धारण का "संवर्ग सिद्धांत" वर्ष 1997-98 से वर्ष 2003-2004 की अवधि के लिए पूर्वव्यापी रूप से लागू नहीं किया जा सकता है, खासकर जब इस मामले के अभिलेख में इसके विपरीत कुछ भी नहीं पाया जा सकता है।

"क्या सेवा नियमावली के नियम 9(ii) के संदर्भ में "अर्हता परीक्षा" का वर्ष 1997-98 से वर्ष 2003-2004 की अवधि के दौरान पदोन्नति पर प्रभाव पड़ता है और क्या यह पदोन्नति के लिए विचार क्षेत्र में सम्मिलित डिप्लोमा धारक अवर अभियंता को सक्षम करने के लिए निष्पक्ष रूप से आयोजित की गई है;"

(155) जैसा कि अभिलेख से उपलब्ध है, पुरानी सेवा नियमावली 1936 के नियम 9 में सहायक अभियंता के पद के लिए आवश्यक तकनीकी योग्यताएं उपबंधित की गई थीं। उप-खंड (ii) में प्रावधान है कि किसी भी अधिकारी को नियम 5(iv) के तहत तब तक पदोन्नत नहीं किया जाएगा जब तक कि उसने सरकार द्वारा निर्धारित कोई भी योग्यता परीक्षा उत्तीर्ण न कर ली हो। हालाँकि, दिनांक 19.04.1943 के संशोधन के माध्यम से, एक और प्रावधान किया गया था कि एक अधिकारी को राज्य सरकार द्वारा निर्धारित योग्यता परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद या पुरानी सेवा नियमावली, 1936 के नियम 9(i) में निर्धारित तकनीकी योग्यता रखने के बाद सहायक अभियंता के पद पर पदोन्नत किया जा सकता है। उक्त संशोधन का प्रभाव यह हुआ कि नियम 9(i) के तहत निर्धारित किसी भी योग्यता रखने वाले अवर अभियंता को अब पदोन्नति के लिए योग्यता परीक्षा उत्तीर्ण करने की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि उनके पास उल्लिखित योग्यता प्राप्त करके पदोन्नत होने का एक वैकल्पिक मार्ग भी था।

(156) हालाँकि, नियमावली के अनुसार, ऐसे सभी अवर अभियंता जिनके पास नियम 9(i) के तहत निर्दिष्ट प्राविधिक योग्यता नहीं थी, उन्हें सहायक अभियंता के पद पर पदोन्नति के लिए योग्यता परीक्षा में उपस्थित होना और अर्हता प्राप्त करना अनिवार्य था। वास्तव में यह योग्यता परीक्षा इस डिप्लोमा धारक अवर अभियंता के लिए पदोन्नति का प्रवेश द्वार थी क्योंकि ऐसी योग्यता परीक्षा उत्तीर्ण करने से, ये डिप्लोमा धारक अवर अभियंतागण, सहायक अभियंता के पद पर पदोन्नति के लिए विचार क्षेत्र में आ जाते थे। यह कहना एक बात है कि डिप्लोमा धारक अवर अभियंता योग्यता परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हो सके और यह दूसरी बात है कि यह योग्यता परीक्षा किसी भी कारण से राज्य द्वारा आयोजित नहीं की जा सकी, क्योंकि डिप्लोमा धारक अवर अभियंता ही इसमें शामिल हो सकते हैं, और फिर अर्हता परीक्षा में

अप्रमाणित

केवल और केवल तभी अर्हता प्राप्त/उत्तीर्ण करें जब यह नियमों के अनुसार आयोजित की गई हो। हालाँकि, मौजूदा मामला कुछ और है। अजीब बात है, हालांकि राज्य ने उपरोक्त योग्यता परीक्षा आयोजित नहीं की है, लेकिन फिर भी यह गलती से यह मानकर पदोन्नति आदेश जारी कर दिया गया कि विधि के अनुसार. सभी डिप्लोमा धारक अवर अभियंता उक्त पदोन्नति के लिए अयोग्य हैं, जिसकी अनुमति नहीं दी जा सकती है।

(157) जाहिर है, यह अभिलेख पर उपलब्ध है कि वर्ष 1972 से वर्ष 2006 के बीच राज्य द्वारा योग्यता परीक्षा आयोजित नहीं की गई थी और केवल वर्ष 2007 में यह योग्यता परीक्षा डिप्लोमा अभियांत्रिकी संघ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2007) 13 एससीसी 300, मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश के तहत आयोजित की गई थी। उक्त योग्यता परीक्षा विवादों से घिरी हुई थी, जिसका निर्णय के उत्तरवर्ती भाग में निस्तारण किया जाएगा। हालांकि, दिलचस्प बात यह है कि वर्ष 2007 की उक्त विवादास्पद योग्यता परीक्षा के बाद, वर्ष 2008 या 2009 या 2010 या किसी अन्य लगातार वर्ष के लिए कोई और योग्यता परीक्षा आयोजित करने के लिए, राज्य द्वारा कोई कदम नहीं उठाया गया था, हालांकि योग्य डिप्लोमा धारक अवर अभियंता की अनुपलब्धता के आधार पर डिग्री धारक अवर अभियंताओं के पदोन्नति को बढ़ावा देने के लिए वर्ष 2008, 2009 और 2010 के लिए पदोन्नति हेतु आक्षेपित पदोन्नति आदेश एवं अधियाचन जारी किया गया था।

(158) यह तर्क दिया गया है कि योग्यता परीक्षा निष्पक्ष रूप से एक बार आयोजित की गई थी और योग्यता परीक्षा वर्ष 2007 में केवल एक बार आयोजित की गई थी क्योंकि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आदेश दिनांक 20.03.2007 के तहत परीक्षा को "केवल एक बार " के रूप में आयोजित करने का निर्देश दिया था, और डिग्री धारक अवर अभियंता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार, जिस तरीके से उक्त योग्यता परीक्षा आयोजित की गई थी, उससे संबंधित सभी मुद्दे डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं द्वारा 29.09.2007 को डिप्लोमा संघ प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष आईए संख्या 10 के तहत उठाए गए थे। और चूंकि इन डिप्लोमा धारक अवर अभियंता को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कोई छूट नहीं दी गई थी और न ही इस न्यायालय के समक्ष उक्त मुद्दे को फिर से उठाने के लिए उनके द्वारा कोई स्वतंत्रता मांगी गई थी, इसलिए यह रास्ता खुला नहीं था। इस न्यायालय को उसी मुद्दे पर फिर से निर्णय करना है, जो उनके अनुसार सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पहले ही तय किया जा चुका है। उनके अनुसार, यदि योग्यता परीक्षा के संचालन से संबंधित कोई मुद्दा उक्त अंतरिम प्रार्थनापत्र में उठाया गया था, तो उसे इस न्यायालय के समक्ष तब तक नहीं उठाया जा सकता जब तक कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आदेश दिनांक 3.12.2007 द्वारा स्वतंत्रता प्रदान नहीं की जाती।

(159) इस न्यायालय ने पाया कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने डिप्लोमा अभियांत्रिकी संघ के मामले में अपने आदेश दिनांक 20.03.2007 के तहत, प्रतिवादी अधिकारियों

अनुवादित

को सेवा नियमों और संबंधित शासनादेश के प्रावधानों के अनुसार योग्यता परीक्षा आयोजित करने का निर्देश दिया था। इस प्रकार, "मौजूदा पुरानी नियमावली के अनुसार" परीक्षा आयोजित करना राज्य के अधिकारियों पर निर्भर था, जो कि पुरानी सेवा नियमावली 1936 के नियम 9(2) में शामिल थे। चूंकि, नियम 9(2) में एक योग्यता परीक्षा "जिसे सरकार विहित कर सकती है", उपबंधित की गई थी। यह अभिलेख पर उपलब्ध है कि उक्त शासकीय उपचार, सिंचाई निर्देशिका 1936 के परिशिष्ट-IV में पाया जा सकता है, जो अनिवार्य रूप से "प्रत्येक वर्ष" अक्टूबर में योग्यता परीक्षा आयोजित करने का प्रावधान करता है। योग्यता परीक्षा के नियमों को निर्धारित करने के लिए राज्य द्वारा शासनादेश दिनांक 25.10.1969 द्वारा इसे और स्पष्ट किया गया था। उक्त शासनादेश के खंड- I से IV के अनुसार प्रत्येक वर्ष अक्टूबर-नवंबर में उत्तर प्रदेश प्राविधिक बोर्ड के माध्यम से अपने तीन या अधिक केंद्रों पर वार्षिक अर्हता परीक्षा आयोजित करना अपेक्षित है। अभ्यर्थियों को एक प्रयास में परीक्षा के तीन समूहों में से एक को उत्तीर्ण करने की स्वतंत्रता दी गई थी, जिसका अर्थ है कि परीक्षा के तीन समूहों के लिए तीन प्रयास। इसका मतलब है कि उम्मीदवारों को प्रश्नपत्रों के तीन समूहों में से प्रत्येक को एक प्रयास में पास करने की स्वतंत्रता दी गई थी (जिसका अर्थ है कि प्रश्नपत्रों के तीन समूहों को पास करने के लिए तीन प्रयास करने होंगे)। इसी प्रकार, कार्यालय आदेश दिनांक 01.01.1972 ने पिछले शासनदेश दिनांक 25.10.1969 को स्पष्ट किया और विशेष रूप से प्रावधान किया कि एक प्रयास में प्रश्नपत्रों के एक समूह को उत्तीर्ण करने का मतलब यह होगा कि उम्मीदवारों को केवल एक ही प्रयास में प्रश्नपत्रों के सभी तीन समूह को उत्तीर्ण करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है। इस न्यायालय ने पाया कि डिप्लोमा संघ मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष प्रश्न इस मुद्दे से संबंधित था कि क्या पुरानी सेवा नियमावली 1936 के नियम 9 (ii) के तहत निर्धारित "अर्हता परीक्षा" प्रारूप में हो सकती है या एक साक्षात्कार या लिखित परीक्षा के रूप में जैसा कि नियमावली के तहत और उक्त मौजूदा नियमावली पर शासनादेश दिनांक 11.02.2003 के प्रभाव द्वारा संकल्पित है है। माननीय शीर्ष न्यायालय ने इस न्यायालय के निर्णय को बरकरार रखते हुए, जिसमें शासनादेश दिनांक 11.02.2003 को निरस्त कर दिया था, राज्य-प्रतिवादी को आदेश की तारीख से चार माह के भीतर योग्यता परीक्षा आयोजित करने मात्र का निर्देश दिया। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने न तो यह टिप्पणी की और न ही यह धारित किया कि उक्त योग्यता परीक्षा एक बार ही होनी थी, जैसा कि विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया है।

(160) इसके अलावा, विभाग ने वर्ष 1970 के बाद योग्यता परीक्षा आयोजित नहीं की और हालांकि प्रारंभ में पदोन्नति के माध्यम से सहायक अभियंता के पद पर भर्ती के लिए कोई कोटा तय नहीं किया गया था, लेकिन पदोन्नति के माध्यम से सहायक अभियंता के पद पर भर्ती के लिए बाद में कोटा तय किया गया था और इसलिए पदोन्नति कोटे के अंतर्गत आने वाली रिक्तियों को केवल

अनुवादित

पदोन्नति के माध्यम से भरा जाना था, लेकिन उन्हें भरा नहीं जा सका क्योंकि विभाग ने वर्ष 1970 के बाद योग्यता परीक्षा आयोजित नहीं की थी। ऊपर उल्लिखित नियम, विभिन्न संशोधन के अधीन थे, जिसके कारण कई दौर की मुकदमेबाजी हुई और अंततः 3.11.2006 को अंजनी कुमार मिश्रा के प्रकरण (2007)1 यूपीएलबीईसी 260 में विवाद शांत हो गया, जिसमें इस न्यायालय द्वारा वर्ष 1997-98 से चयन वर्ष 2003-04 तक पदोन्नति कोटा की रिक्तियों का निर्धारण किया गया।

(161) पक्षों के मध्य यह एक स्वीकृत तथ्य है कि लिखित परीक्षा वर्ष 2007 में केवल एक बार आयोजित की गई थी और राज्य ने बिना किसी अन्य योग्यता परीक्षा आयोजित किए अपने कार्यालय आदेश दिनांक 15.05.2007 में टिप्पणी की कि जिन अभ्यर्थियों ने प्रश्नपत्रों के सभी तीन समूहों को उत्तीर्ण किया है, चाहे एक वर्ष में या अलग-अलग वर्षों में अलग-अलग समूहों में, वे ही पदोन्नति के पात्र माने जाएंगे। उक्त शर्तें स्पष्ट रूप से असंगत प्रतीत होती हैं क्योंकि यह असंभवता की शर्त लगाने के समान है क्योंकि जब तक 2007, 2008 और 2009 में डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं को प्रश्नपत्रों के तीन समूहों को पास करने के लिए नियमों में उपबंधित तीन प्रयासों की पेशकश नहीं की जाती, तब तक ऐसा नहीं किया गया था, तब तक प्रतिवादी प्राधिकारी सभी डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं को पुरानी सेवा नियमावली, 1936 के तहत पदोन्नति कोटा रिक्तियों के विरुद्ध सीधे पदोन्नति के लिए अयोग्य मानने के लिये स्वतंत्र नहीं थें। इस प्रकार, अगस्त, 2007 में आयोजित एक एकल योग्यता परीक्षा के आधार पर वर्ष 2008, 2009 और 2010 में तीन पदोन्नति आदेश जारी करना, जो स्पष्ट रूप से डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं की पात्रता निर्धारित करने के लिए निर्धारित प्रक्रिया का उल्लंघन प्रतीत होता है, विधि के अनुसार उचित नहीं प्रतीत होता है। इसलिए यह निजी प्रतिवादियों का एक आत्मघाती तर्क है कि योग्यता परीक्षा में सफल नहीं होने पर, डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं के पास 3 अवैध पदोन्नति आदेशों को चुनौती देने का कोई अधिकार नहीं है, खासकर जब डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं को पुरानी सेवा नियमावली, 1936 के तहत परीक्षा उत्तीर्ण करने हेतु 3 प्रयासों का पर्याप्त अवसर नहीं दिया गया था। डिप्लोमा संघ मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित स्पष्ट निर्णय का किसी भी प्रकार निर्वचन करना गलत और अतिशयोक्तिपूर्ण होगा, जिसमें इसे विशेष रूप से निर्देशित किया गया कि 'नियमों के अनुसार चार महीने के भीतर अर्हता परीक्षा आयोजित करें' और इसने केवल परीक्षा आयोजित करने वाली एजेंसी यथा उत्तर प्रदेश प्राविधिक बोर्ड से यू.पी.पी.एस.सी. में परिवर्तन कर दिया। इस प्रकार, इस न्यायालय का विचार है कि चार माह के भीतर अर्हता परीक्षा आयोजित करने के अलावा परीक्षा एजेंसी में बदलाव के बाद, अर्हता परीक्षा की सभी शेष प्रक्रियाओं का पालन "कठोरतापूर्वक नियमानुसार" किया जाना था। शीर्ष न्यायलय ने केवल पहली परीक्षा आयोजित करने के लिए चार माह का समय दिया था, लेकिन इसे 3 प्रयासों में उत्तीर्ण करना एक वैधानिक आवश्यकता थी और यहां यह उल्लेखनीय है कि समय सीमा को

अप्रमाणित

निर्धारित करके, योग्यता परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए तीन प्रयास देने की वैधानिक आवश्यकता को माननीय सर्वोच्च न्यायालय के आदेश द्वारा कभी भी समाप्त नहीं किया गया, विशेषकर जब आदेश में विशेष रूप से नियमों का पालन करने पर बल दिया गया हो।

(162) इसके अलावा, यह न्यायालय डिप्लोमा अभियंता संघ के सदस्यों द्वारा अगस्त, 2007 में योग्यता परीक्षा के किसी भी बहिष्कार के संबंध में या इस तथ्य पर आरोप लगाने के क्षेत्र में प्रवेश नहीं करना चाहती है कि क्या 711 डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं ने 17 से 19.07.2007 तक आयोजित योग्यता परीक्षा में भाग लिया था या नहीं। हालाँकि, अगस्त, 2007 में आयोजित अर्हता परीक्षा में डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं के परीक्षा केंद्र में कथित परिवर्तन के कारण राज्य द्वारा अचानक परीक्षा केंद्र को लखनऊ से बदलकर इलाहाबाद कर दिए जाने के कारण डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं के भाग न लेने के संबंध में आरोप-प्रत्यारोप चल रहे हैं, जिसमें पूर्वाह्न सत्र में केवल एक और दोपहर के सत्र में सात अभ्यर्थी ही शामिल हो सके। यह परीक्षा जिस प्रकार और जिस रीति से आयोजित की गई वह विवादित है और तथ्य स्पष्ट रूप से खुद ही इसकी कहानी कहते हैं।

(163) इसमें कोई संदेह नहीं, वर्ष 2007 की योग्यता परीक्षा हालांकि विवादों से घिरी रही, फिर भी यह एक योग्यता परीक्षा थी। हालाँकि, उसके बाद राज्य-अधिकारियों द्वारा किसी भी क्रमिक परीक्षा का आयोजन न किया जाना बिल्कुल भी क्षमा योग्य नहीं लगता है। इस बात का कोई स्पष्टीकरण नहीं है कि 02.08.2008 को केवल डिग्री धारक अवर अभियंताओं में से 96 पदोन्नतियाँ कैसे और किस प्रकार की जा सकीं, और सभी डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं को उस वर्ष कोई भी योग्यता परीक्षा आयोजित न करने या इस आधार पर अयोग्य माना जा सकता है कि वर्ष 2007 में एक योग्यता परीक्षा आयोजित की गई थी और सभी डिप्लोमा धारक अवर अभियंता उस योग्यता परीक्षा में असफल रहे, उन नियमों की बात तो दूर, जिनमें उन्हें परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए तीन प्रयास देने का प्रावधान था, विशेष रूप से जब शीर्ष न्यायालय ने डिप्लोमा अभियांत्रिकी संघ मामले में माना है कि पदोन्नति के संदर्भ में "योग्यता परीक्षा' एक ऐसी परीक्षा को संदर्भित करती है जो उत्तीर्ण होने पर, उम्मीदवार को पदोन्नति के लिए योग्य बनाती है और योग्यता परीक्षा का उद्देश्य, अभ्यर्थियों की तुलनात्मक पारस्परिक योग्यता निर्धारित करना नहीं है। इस प्रकार, इस न्यायालय के अनुसार, योग्यता परीक्षा पदोन्नति के लिए योग्यता तय करने के लिए नहीं थी, बल्कि यह डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं के लिए पदोन्नति के लिए विचार क्षेत्र में आने का प्रवेश द्वार था, जैसा कि शीर्ष न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि यह एक कर्मचारी का मौलिक अधिकार है। किसी भी मामले में, राज्य-प्रतिवादी ने उक्त योग्यता परीक्षा आयोजित न करके इन डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं के लिए उनके पदोन्नति सूची में विचारित किये जाने के सारे दरवाजे बंद कर दिए हैं, जो विधि के अनुसार स्वीकार्य नहीं हो सकता है और भेदभावपूर्ण प्रतीत होता है।

अनुवादित

(164) इसके अलावा, केवल डिग्री धारक अवर अभियंताओं के पक्ष में जारी किया गया पदोन्नति आदेश और डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं के लिए समान अवसर प्रदान नहीं करना, ताकि उन्हें पदोन्नति के विचारण क्षेत्र में आने हेतु सक्षम बनाया जा सके, विधि के अनुसार उचित नहीं ठहराया जा सकता है और पदोन्नति कोटा में डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं के विचारण क्षेत्र में सम्मिलित होने के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन है। इसके अलावा, राज्य ने 2008 और 2009 में कोई योग्यता परीक्षा आयोजित किए बिना दिनांक 03.07.2009 और 05.02.2010 को दो और पदोन्नति आदेश जारी करने में उक्त अवैधता जारी रखी, जो स्पष्ट रूप से पुरानी सेवा नियमावली 1936 के तहत निर्धारित प्रक्रिया का उल्लंघन था।

(165) इसलिए, यह मुद्दा मात्र यह निर्धारित करने के मुद्दे तक सीमित नहीं है कि क्या अगस्त, 2007 की "अर्हता परीक्षा" ने डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं को भागीदारी का उचित और निष्पक्ष अवसर प्रदान किया था या नहीं, अपितु उक्त मुद्दे के कई प्रभाव हैं इसमें यह भी शामिल है कि क्या विवादित पदोन्नति आदेश जारी करने में सरकार की कार्रवाई को पहले तो 35 वर्षों यानी (वर्ष 1972-2007) में कोई योग्यता परीक्षा आयोजित नहीं करने के मद्देनजर उचित ठहराया जा सकता है, दूसरे सभी डिप्लोमा अवर अभियंताओं के लिए सभी 3 प्रश्नपत्रों के समूह को एक ही प्रयास में उत्तीर्ण करने के लिए भ्रम उत्पन्न करना और तीसरा, सांविधिक उपचार का उल्लंघन करते हुए लखनऊ या इलाहाबाद में परीक्षा केंद्र के बारे में स्पष्ट भ्रम उत्पन्न करना सम्मिलित है। इसके अलावा, यह न्यायालय, इस तथ्य से अनजान नहीं हो सकती है कि राज्य सरकार ने वर्ष 2008, 2009 और 2010 में "वार्षिक अर्हता परीक्षा" आयोजित किए बिना, इन डिप्लोमा धारक अभियंताओं को 'पदोन्नति के लिए अयोग्य' मान लिया है और इस प्रकार आक्षेपित पदोन्नति आदेश दिनांक 02.08.2008, 03.07.2009 और 05.02.2010 को जारी करते हुए, पदोन्नति के लिए विचारण क्षेत्र में आने की उनकी संभावना को सीमित कर दिया।

(166) इसके अलावा, इस न्यायालय ने पाया कि यद्यपि पदोन्नति का मानदंड नियम 12 के तहत 'वरिष्ठता, अयोग्य की अस्वीकृति के अधीन विषय' था, फिर भी, डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं को योग्यता परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए 3 प्रयासों की पेशकश नहीं की गई और केवल एक परीक्षा के बाद उन्हें अयोग्य मान लिया गया। इन वरिष्ठ डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं को उपरोक्त पदोन्नति में अवैध रूप से हटा दिया गया था, जिन्हें वरिष्ठता सूची में डिग्री धारक अवर अभियंताओं/निजी प्रतिवादियों से ऊपर रखा गया था।

(167) इस न्यायालय ने पाया कि डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं द्वारा विशिष्ट प्रार्थना की गई है कि उनके साथ उचित व्यवहार नहीं किया गया है और योग्यता परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए उन्हें समान अवसर नहीं दिया गया है, ताकि सहायक अभियंता के पद पर पदोन्नति के लिए विचारण क्षेत्र में आ सकें।

अनुवादित

याचिकाकर्ताओं ने राज्य सरकार द्वारा पारित सभी तीन न्यायविरुद्ध पदोन्नति आदेशों यथा 02.08.2008, 03.07.2009 और 05.02.2010 को चुनौती देते हुए पुरानी सेवा नियमावली,1936 के तहत पदोन्नति द्वारा भरी जाने वाली रिक्तियों के सही निर्धारण करने और अनुचित योग्यता परीक्षा को निरस्त करने की प्रार्थना की है।

(168) इस प्रकार, अपरिहार्य परिस्थितियों को देखते हुए इस न्यायालय का मानना है कि इन सभी में केवल डिग्री धारक अवर अभियंताओं के बीच से 191 पदोन्नति करने से पहले 2008, 2009 और 2010 में लगातार 03 योग्यता परीक्षा आयोजित नहीं करने का राज्य के लिए कोई औचित्य नहीं था। इन उक्त सभी वर्षो में योग्यता परीक्षाओं के केवल एक असफल और अनुचित प्रयास के आधार पर मनमाने ढंग से सभी वरिष्ठ डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं को अयोग्य मान लिया गया। डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं को गलत तरीके से पदोन्नति के विचारण क्षेत्र से बाहर कर दिया गया। प्रतिवादी राज्य का यह अवैध और मनमाना आचरण, सभी 3 आक्षेपित पदोन्नति आदेशों दिनांक 02.08.2008, 03.07.2009 और 05.02.2010 को निष्प्रभावी कर देता है।

झ. क्या सेवा नियमावली के नियम 21 के संदर्भ में "सेवा में परिवीक्षाधीन" पर विचारण वर्ष 1997-98 से 2003-2004 की अवधि के दौरान पदोन्नति पर प्रभाव डालता है:

(169) इसके अलावा, यह अभिलेख पर उपलब्ध है कि पदोन्नति के लिए आक्षेपित आदेश और अधियाचन, विभिन्न डिग्री धारक अवर अभियंताओं के लिए भी भेजा गया था, जिन्हें उक्त सेवा में परिवीक्षाधीन के रूप में नियुक्त किया गया था। डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं द्वारा उठाया गया एक तर्क यह है कि इन परिवीक्षाधीनों को सहायक अभियंताओं के पद पर पदोन्नति के लिए स्त्रोत पद पर नहीं रखा जा सकता है, जब तक कि उनकी सेवा की पुष्टि नहीं हो जाती, जबकि दूसरी ओर डिग्रीधारी अवर अभियंताओं के ओर से यह तर्क दिया गया है कि उक्त पद पर पुष्टि की कोई अवधारणा नहीं है, क्योंकि उनकी नियुक्ति हमेशा मूल पद पर हुई है और आगे भी भूतलक्षी रूप से पुष्टिकरण हो सकता है।

(170) इस न्यायालय ने पाया कि अवर अभियंता के पद के लिए पात्रता उत्तर प्रदेश लोक निर्माण विभाग अधीनस्थ अभियांत्रिकी सेवा, 1951 (संक्षेप में इसे 'नियमावली 1951' के रूप में संदर्भित किया जाएगा) द्वारा शासित होती है। इसके अलावा, नियम 3(छ) 'सेवा के सदस्य' को परिभाषित करता है और इसका तात्पर्य इन नियमों के प्रावधानों के तहत वास्तविक क्षमता में नियुक्त व्यक्ति है। नियम 19, दो वर्ष की परिवीक्षा अवधि की बात करता है। नियम 22 में विभागीय परीक्षा के बारे में प्रावधान है जिसे निर्धारित अवधि के भीतर उत्तीर्ण करना आवश्यक है, इस शर्त के साथ कि यदि कोई अभ्यर्थी उक्त अवधि के भीतर विभागीय परीक्षा उत्तीर्ण नहीं करता है तो उसकी वेतन वृद्धि रोक दी जाएगी। नियम 23 पुष्टिकरण से संबंधित है और प्रावधान करता है कि परिवीक्षा अवधि पूरी करने के बाद पुष्टिकरण विभागीय परीक्षा उत्तीर्ण करने के अधीन होगा। प्रासंगिक नियम इस प्रकार हैं:-

अधिवक्ता

"19. परिवीक्षा:- किसी मूल रिक्ति में या उसके विरुद्ध नियुक्ति पर किसी व्यक्ति को दो वर्ष की अवधि के लिए परिवीक्षा पर रखा जाएगा। बशर्ते कि स्थानापन्न और अस्थायी सेवा, चाहे वह निरंतर हो, परिवीक्षा अवधि में अधिकतम एक वर्ष तक गिनी जाएगी।

22. विभागीय परीक्षा- (1) सभी अस्थायी और स्थानापन्न पर्यवेक्षकों को अपनी नियुक्ति के तीन वर्ष के भीतर आदेश निर्देशिका, लोक निर्माण विभाग, खंड I में निर्धारित विभाग परीक्षा उत्तीर्ण करनी होगी। यदि वे निर्धारित अवधि के भीतर उपरोक्त परीक्षा उत्तीर्ण करने में विफल रहते हैं तो उनकी वेतन वृद्धि रोक दी जाएगी। मुख्य अभियंता के आदेशों के अधीन, जब ओवरसियर ने परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है, तो रोकी गई वेतन वृद्धि को उस माह के प्रथम दिवस से प्रभावी ढंग से निकालने की अनुमति दी जा सकती है, जिसमें परीक्षा हुई थी, और जिस अवधि के दौरान वेतन वृद्धि रोकी गई थी, उसे भी समय-मान में आगे की वृद्धि के प्रयोजनों के लिए गणना करने की अनुमति दी जा सकती है। विशेष मामलों में वेतन वृद्धि की बकाया राशि भी दी जा सकती है, जहां पर्यवेक्षक के नियंत्रण से परे परिस्थितियों के कारण परीक्षा उत्तीर्ण करने में विफलता हुई हो।

(2) किसी मूल रिक्ति पर नियुक्त उम्मीदवार को परिवीक्षा अवधि के दौरान परीक्षा उत्तीर्ण करने की आवश्यकता होगी, यदि उन्होंने पहले से ऐसा नहीं किया है।

23. पुष्टिकरण - नियम 22 के प्रावधानों के अधीन, एक परिवीक्षाधीन व्यक्ति को उसकी परिवीक्षा अवधि, या परिवीक्षा की विस्तारित अवधि के अंत में उसकी नियुक्ति में पुष्टि की जाएगी, यदि मुख्य अभियंता उसे पुष्टिकरण के लिए उपयुक्त मानता है और उसकी सत्यनिष्ठा प्रमाणित है।"

(171) जाहिर तौर पर, कोई व्यक्ति सेवा का सदस्य तब बनता है जब उसे मूल पद पर नियुक्त किया जाता है। मौलिक रूप से नियुक्त होने के लिए, एक पदधारी को कम से कम परिवीक्षा की अवधि पूरी करनी होती है और जो व्यक्ति मौलिक रूप से नियुक्त नहीं किया गया है उसे सेवा का सदस्य नहीं माना जा सकता है। मामले के इस पहलू पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बालेश्वर दास एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, एआईआर 1981 एससी 41, आदि के मामले में विचार किया गया है। जिसमें उक्त निर्णय के प्रस्तर 33 में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया: -

"33.एक बार जब हम उपरोक्त अर्थ में 'मौलिक क्षमता' को समझ लेते हैं तो हम स्थिति को तर्कसंगत बनाने में सक्षम हो सकते हैं, यदि नियुक्ति किसी पद पर है और जिस क्षमता में नियुक्ति की गई है वह अनिश्चितकालीन परिवीक्षा की है, यदि लोक सेवा आयोग से परामर्श लिया गया और अनुमोदित कर दिया गया है, यदि निर्धारित परीक्षण कर लिए गए हैं और उत्तीर्ण कर लिए गए हैं, यदि परिवीक्षा निर्धारित की गई है और अनुमोदित कर दी गई है, तब कोई यह स्पष्टता के साथ कह सकता है कि पद, पदधारी द्वारा मौलिक क्षमता में धारण किया गया था।"

अवलोकित

(172) मौजूदा मामले में, पात्रता सूची के अवलोकन से पता चलता है कि कुछ ऐसे व्यक्तियों के नाम शामिल किए गए थे, जो निस्संदेह प्रासंगिक समय पर परिवीक्षा पर काम कर रहे थे और सेवा के सदस्य नहीं बने थे। इस प्रकार, यह न्यायालय विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता की दलील को स्वीकार करने में असमर्थ है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने कहा कि वे सभी व्यक्ति जिन्हें मौलिक रिक्ति के विरुद्ध नियुक्त किया गया है, वे अपनी लंबी सेवा अवधि के कारण या पुष्टिकरण के बाद के प्रभाव के कारण पद पर पुष्टि किए बिना भी पदोन्नति के लिए पूरी तरह से पात्र थे।

(173) विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का यह तर्क कि 'पदोन्नति से पहले पुष्टि की आवश्यकता नहीं है', सही नहीं है। (1990) 2 एससीसी 304 में अभिलेखित के.के. खोसला बनाम हरियाणा राज्य प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के प्रस्तर -7 पर निर्भरता, भी संदर्भ रहित है क्योंकि यह वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय का उक्त निर्णय हरियाणा सर्विस ऑफ इंजीनियर्स क्लास- I पी०डब्लू०डी (सार्वजनिक स्वास्थ्य शाखा) नियमावली, 1961, के नियम -11 के निर्वचन पर आधारित था, जिसमें उक्त निर्णय के प्रस्तर -7 में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया था कि "सेवा के भीतर पदोन्नति के प्रयोजनों के लिए परिवीक्षा अवधि को पूरा करने की आवश्यकता के लिए "नियमों में कोई विशिष्ट प्रावधान नहीं है"। वास्तव में, पुष्टिकरण की आवश्यकता हमेशा "नियम विशिष्ट" होती है। अतः उपरोक्त आदेश इस मामले में लागू नहीं होता है। उपरोक्त आदेश के विपरीत, पक्षों पर लागू पुरानी नियमावली 1936 में स्पष्ट रूप से पदोन्नति से पहले परिवीक्षा पूर्ण करने की आवश्यकता थी। सहायक अभियंता (सिविल) की पदोन्नति को विनियमित करने वाले पुरानी नियमावली 1936 के नियम 5(iv) में विशेष रूप से प्रावधान है कि पदोन्नति द्वारा भर्ती "संयुक्त प्रांत अधीनस्थ अभियांत्रिकी सेवाओं के सदस्यों, जिन्होंने असाधारण योग्यता दिखाई है" से की जाएगी। "अधीनस्थ अभियांत्रिकी सेवाओं के सदस्यों" को उत्तर प्रदेश लोक निर्माण विभाग अधीनस्थ इंजीनियरिंग सेवा नियमावली, 1951के नियम 3 (छ) में परिभाषित किया गया है जो उपबंधित करता है कि "सेवा के सदस्य का अर्थ इन नियमों के प्रावधानों के अंतर्गत मौलिक क्षमता में नियुक्त व्यक्ति है"। इसके अलावा, अधीनस्थ अभियांत्रिकी सेवाओं अर्थात अवर अभियंता, सेवा नियमावली,1951 के नियम 3 (छ) में उल्लिखित "सेवा के सदस्य" की परिभाषा वास्तव में संयुक्त प्रान्त अभियांत्रिकी सेवा (भवन एवं सड़क शाखा) वर्ग- II 1936 अर्थात सहायक अभियंता सेवा नियमावली, 1936 के नियम 3(ख) में उल्लिखित "सेवा के सदस्य" की परिभाषा के समान है, जो सेवा के सदस्य की समान परिभाषा प्रदान करता है अर्थात "सेवा के सदस्य" का अर्थ है इन नियमों के प्रावधानों के तहत वास्तविक क्षमता में नियुक्त सरकारी सेवक।"

(174) चूंकि वाक्यांश "मौलिक क्षमता" का उपयोग अवर अभियांत्रिकी सेवा नियमावली, 1951 के नियम 3 (छ) के परिभाषा खंड में किया गया है, जो "संयुक्त प्रांत अधीनस्थ

अनुवादित

अभियांत्रिकी सेवाओं के सदस्यों" को परिभाषित करता है, अतः यह स्पष्ट है कि एक व्यक्ति इसका सदस्य तब बनेगा जब उक्त नियमों के तहत "मौलिक क्षमता" में नियुक्त हो, जिसका अर्थ यह है कि वह परिवीक्षा की अवधि को सफलतापूर्वक पूर्ण करने और उसके लिए निर्धारित विभागीय परीक्षाओं को उत्तीर्ण करने के बाद ही अधीनस्थ सेवाओं का सदस्य बन पाता है।

(175) उपरोक्त तथ्यों के दृष्टिगत यह स्पष्ट है कि केवल वे व्यक्ति, जिन्होंने अपेक्षित औपचारिकताओं/परीक्षा आदि को पूरा करने के बाद परिवीक्षा की अवधि सफलतापूर्वक पूर्ण कर ली है, अवर अभियांत्रिकी सेवा नियमावली 1951 के तहत अधीनस्थ इंजीनियरिंग सेवा के सदस्य बन सकते हैं और यह केवल ऐसे अवर अभियंता हैं, जिन्हें सहायक अभियंता सेवा नियमावली के नियम 5(4) अर्थात पुरानी सेवा नियमावली, 1936 के तहत सहायक अभियंता (सिविल) के अगले उच्च पद पर पदोन्नत करने हेतु पात्र माना जा सकता है।

(176) इस बात पर और अधिक बल देने के लिए कि सहायक अभियंता (सिविल) के रूप में पदोन्नति के लिए पात्र होने के लिए अभ्यर्थी हेतु पुष्टीकरण आवश्यक है, राज्य सरकार ने 1969 के शासनादेश संख्या 680/ईएपी/27ईए/69, खंड -2 में निहित एक नीतिगत निर्णय लिया। उक्त शासनादेश ने स्पष्ट रूप से प्रावधान किया गया है कि योग्यता परीक्षा उत्तीर्ण करना, सेवा में पुष्टि और 07 वर्ष का न्यूनतम सेवा अनुभव अवर अभियंता (सिविल) से सहायक अभियंता (सिविल) में पदोन्नति के लिए न्यूनतम पात्रता अपेक्षा है। यद्यपि उक्त शासनादेश के खंड-8 ने डिग्री धारक अवर अभियंता को न्यूनतम 07 वर्ष के सेवा अनुभव की आवश्यकता से छूट दी है, और यद्यपि पुरानी नियमावली 1936 में 1943 के संशोधन ने पहले ही डिग्री धारक अवर अभियंताओं को योग्यता परीक्षा में उपस्थित होने से छूट दे दी है, लेकिन विधि का कोई प्रावधान कभी नहीं रहा है, जो डिग्री धारक अवर अभियंताओं को स्त्रोत पद पर रखे जाने या सहायक अभियंता (सिविल) के रूप में पदोन्नति के लिए पात्र होने से पहले 'अवर अभियंता (सिविल) की सेवा में पुष्टि' होने से स्वतः छूट देता हो। यहां तक कि पुनर्निर्धारित परीक्षा के दिनांक 08.08.2007 के नए दिशानिर्देशों में स्पष्ट रूप से पात्रता के रूप में सेवा में पुष्टि की आवश्यकता है। इसलिए पदोन्नति से पहले स्थायीकरण की आवश्यकता न होने संबंधी विवाद पूरी तरह से निराधार है।

(177) इसके अलावा, इस न्यायालय ने पाया और जैसा कि अभिलेख पर भी उपलब्ध है कि राज्य द्वारा दिनांक 03.07.2009 को 27 पदोन्नतियां करने के बाद आदेश दिनांक 05.02.2010,जिसके खंड 1 से 4 में प्रावधान था कि इस बीच नियुक्त किए गए सीधी भर्तियों के रंगरूटों को भविष्य की रिक्तियों के विरुद्ध समायोजित किया जाएगा, के जरिए पदोन्नति के लिए 97 और रिक्तियों की घोषणा करने से सीधी भर्ती वाले लोगों पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। चूंकि पुरानी सेवा नियमावली, 1936 के नियम 6(1) के 25% पदोन्नति कोटे के तहत पदोन्नति के लिए केवल 10 रिक्तियां थीं, जिसके प्रति

अनुवादित

प्रतिवादियों ने वर्ष 2008 से 2010 के दौरान 191 अतिरिक्त पदोन्नति को/प्रस्तावित किया था, और चूंकि सीधी भर्ती वाले लोग नहीं चाहते हैं इन 191 अतिरिक्त पदोन्नतों को, यूपीपीएससी के माध्यम से 2007 बैच को उनके ऊपर लाया जाये, इसलिए उन्होंने मामलों के वर्तमान समूह में पक्षकार/हस्तक्षेप की मांग की थी और साथ ही निजी प्रतिवादियों के विरुद्ध अलग रिट याचिका भी दायर की थी, क्योंकि उनके पास कार्रवाई का एक वैध कारण भी है। जाहिर है, 2009 बैच के सीधी भर्ती वाले वास्तव में उपरोक्त 03 नियुक्ति आदेशों दिनांक 02.08.2008, 03.07.2009 और 05.02.2010 को अपास्त करने के अनुरोध में एक और आधार जोड़कर डिप्लोमा अभियांत्रिकी संघ के उद्देश्य का समर्थन कर रहे हैं कि रिक्तियां जो उपरोक्त पदोन्नति आदेशों का समर्थन करने के लिए आवश्यक हैं, वे वास्तव में 2009 बैच के सीधी भर्ती वालों द्वारा पहले से ही आच्छादित हैं।

(178) विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री दीक्षित द्वारा यह तर्क दिया गया है कि इस न्यायालय द्वारा इन मामलों पर निर्णय लेने के लिए की जा रही कवायद निरर्थक है क्योंकि स्पष्ट रूप से योग्यता परीक्षा में भाग लेने वाले 711 उम्मीदवारों में से केवल 84 ही वर्तमान में काम कर रहे हैं और बाकी सेवानिवृत्त हो चुके हैं और यहां तक कि 84 डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं को भी सहायक अभियंता के रूप में पदोन्नत किया गया है और इस प्रकार इन याचिकाओं में कुछ भी नहीं बचा है। हालाँकि, जैसा कि विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री मिश्रा, द्वारा भी सही तर्क दिया गया है कि ये सभी 84 कार्यरत डिप्लोमा धारक अवर अभियंता, जिन्हें अपने से कनिष्ठ डिग्रीधारी अभियंताओं की अवैध पदोन्नति के कारण पदोन्नति के लाभ से वंचित कर दिया गया था, उनके पास अभी भी उस तारीख से सहायक अभियंता के रूप में पदोन्नति पाने का अधिकार है, जिस दिन उनके कनिष्ठ अभियंताओं/ निजी प्रतिवादियों को पदोन्नत किया गया था, और इसलिए मामलों का वर्तमान समूह और वर्तमान वाद का कारण सभी याचिकाकर्ताओं के लिए जीवित है। दूसरे, भले ही सभी 711 डिप्लोमा धारक अवर अभियंता सेवानिवृत्त हो गए हों, लेकिन यह नहीं माना जा सकता है कि वादहेतुक शेष नहीं बचा है क्योंकि संघ के सभी वरिष्ठ डिप्लोमा धारक अवर अभियंता/सदस्यों को अभियंता(सिविल) के रूप में पदोन्नति से अवैध रूप से इनकार करते हुए सेवानिवृत्त कर दिया गया है, एवं उन्हें सहायक अभियंता(सिविल) के रूप में पदोन्नति के मामले में, उनके अवर अभियंताओं को सहायक अभियंता के रूप में पदोन्नत किए जाने की तिथि से काल्पनिक पदोन्नति का सांविधिक अधिकार है, और इसलिए वर्तमान मुकदमा संधार्य है। तीसरा, प्रतिवादियों ने स्वयं स्वीकार किया है कि एक दिशा जो संभवतः दी जा सकती है, वह प्रतिवादियों के लिए नए सिरे से अर्हता परीक्षा आयोजित करना है। यदि माननीय न्यायालय द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है, तो यह स्वयं सिद्ध हो जाएगा कि दिनांक 02.08.2008, 03.07.2009 और 05.02.2010 के आक्षेपित पदोन्नति आदेश पुरानी नियमावली के नियम 9(2) के तहत पहले से वैध योग्यता परीक्षा आयोजित किए बिना

अनुवादित

आयोजित किए गए थे और यह 03 आक्षेपित पदोन्नति आदेशों को निरस्त करने के लिए पर्याप्त होगा। इसलिए वर्तमान वाद याचिकाकर्ताओं के लिए जीवित बना हुआ है। अंततः वर्ष 2004 से पहले मौजूद मात्र 10 पदोन्नति कोटा रिक्तियों, जो पुरानी सेवा नियमावली 1936 के तहत आच्छादित थीं, के प्रति प्रतिवादी अधिकारियों द्वारा अवर अभियंता से सहायक अभियंता (सिविल) तक, 181 अतिरिक्त पदोन्नति (191-10) की गईं, लेकिन सभी वरिष्ठ डिप्लोमा धारक अवर अभियंता / संघ के सदस्यों को पदोन्नति के लिए अयोग्य मानते हुए, पदोन्नति मात्र डिग्री धारक अवर अभियंताओं में से ही की गयी। इस प्रकार डिग्री धारक अवर अभियंताओं को मनमाने ढंग से चुना गया और पदोन्नत किया गया, जबकि सभी वरिष्ठ डिप्लोमा धारक अभियंताओं के संबंध में धारणा निर्मित कर ली गई, जिसके लिए इस माननीय न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप आवश्यक है।

(179) जहाँ तक पूर्वन्याय के सिद्धांतों की प्रयोज्यता से संबंधित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री असित चतुर्वेदी, के तर्क की बात है, जिसके लिए आवश्यक है कि पी.डी. अग्रवाल का मामला, अरुवेंद्र कुमार गर्ग का मामला, विजय कुमार का मामला, डिप्लोमा इंजीनियर संघ का मामला और नवीनतम निर्णय दिनांक 21.08.2019 के निर्णयों के माध्यम से मुकदमे के पूर्ववर्ती दौर में पार्टियों के बीच जो कुछ भी विनिश्चित किया गया है, उसे दोबारा नहीं खोला जा सकता है। इस न्यायालय ने पाया कि पुरानी सेवा नियमावली के संबंध में इस न्यायालय और माननीय शीर्ष न्यायालय द्वारा पहले तय किए गए 5 निर्णयों की 'इतरोक्तियों' पर अत्यधिक बल दिया गया है, हालांकि विधि के अनुसार, यह निर्णयाधार है जो पक्षकारों पर बाध्यकारी है। इतरोक्ति और निर्णयाधार के बीच अंतर के संबंध में, हाल ही में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की माननीय न्यायमूर्ति संजीव खन्ना और माननीय न्यायमूर्ति एम.एम सुंदरेश की पीठ ने विशेष अनुमति याचिका (सिविल) संख्या 7455-74562023 में पारित आदेश दिनांक 24.04.2023 द्वारा निम्नवत धारित किया है : -

".....एक निर्णय में इतरोक्ति और निर्णयाधार के बीच अंतर का, विधि की प्रस्थापना के रूप में, इस न्यायालय के कई निर्णयों द्वारा परिक्षण किया गया है, लेकिन हम दो का उल्लेख करना चाहेंगे, अर्थात्, गुजरात राज्य और अन्य बनाम यूटिलिटी यूजर्स' वेलफेयर एसोसिएशन और अन्य (2018 6 एससीसी 21 और जयंत वर्मा और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य (2018) 4 एससीसी 743। प्रथम निर्णय अर्थात गुजरात राज्य (उपरोक्त) में प्रथम सिद्धांत अर्थात "व्युत्क्रम परिक्षण" लागू होता है, जिसे यह पहचानने के लिए प्रयोग किया जाता है कि किसी निर्णय में निर्णयाधार क्या है। यह जांचने के लिए कि क्या विधि की किसी विशेष प्रस्थापना को मामले के निर्णयाधार के रूप में माना जाना है, प्रस्थापना को उलट देना है, अर्थात निर्णय के पाठ से हटा देना है जैसे कि इसका अस्तित्व ही नहीं है। यदि प्रस्थापना का परीक्षण किये बिना भी मामले का निष्कर्ष वही होता, तो इसे मामले का अनुपातिक निर्णय नहीं माना जा सकता।

जयंत वर्मा (उपरोक्त) प्रकरण में, इस न्यायालय ने दलबीर सिंह और अन्य बनाम

अनुवादित

पंजाब राज्य, (1979) 3 एससीसी 745 में इस न्यायालय के पहले के निर्णय का हवाला देते हुए कहा है कि यह प्रत्यक्ष और अनुमानित महत्वपूर्ण तथ्यों का निष्कर्ष नहीं है, अपितु विधिक समस्याओं पर लागू होने वाले विधि के सिद्धांतों के तथ्यों द्वारा प्रकट कथन होते हैं, जो निर्णय में महत्वपूर्ण तत्व हैं और एक पूर्वनिर्णय के रूप में कार्य करते हैं। यहां तक कि निष्कर्ष भी एक पूर्वनिर्णय के रूप में काम नहीं करता है, यद्यपि पूर्वन्याय के रूप में काम करता है। इस प्रकार, निर्णय देते समय न्यायाधीश द्वारा कही गई हर बात एक पूर्वनिर्णय का निर्माण नहीं करती। किसी न्यायाधीश के निर्णय में विधिक पूर्वनिर्णय के रूप में बाध्यकारी एकमात्र चीज वह सिद्धांत है जिस पर मामले का निर्णय किया जाता है और, इस कारण से, किसी निर्णय का विश्लेषण करना और इससे इतरोक्ति (एक आकस्मिक और संपार्श्विक राय जो न्यायाधीश द्वारा दी जाती है लेकिन बाध्यकारी नहीं होती है) को अलग करना महत्वपूर्ण है..."

(180) उपरोक्त "व्युत्क्रम परीक्षण" का प्रयोग करने से, यह स्पष्ट है कि पी.डी. अग्रवाल प्रकरण में, शीर्ष न्यायालय ने 1969 और 1971 के संशोधनों (दोनों प्रतिस्थापन द्वारा लाए गए) को निरस्त करते हुए, साथ ही पुरानी नियमावली 1936 के असंशोधित प्रावधानों के अनुसार, नई वरिष्ठता सूची तैयार करने का निर्देश दिया था। इस प्रकार 1969 से पहले की नियम स्थिति (अर्थात 1959 तक के संशोधन नियम) को उन्हीं नियमों का निर्वचन करते समय यथावत रखा गया। इसके अलावा, अरुवेंद्र कुमार गर्ग प्रकरण में, इस न्यायालय ने स्पष्ट रूप से 1969 और 1971 के संशोधनों को "मृतजात विधि" घोषित किया और जो संविधान के अनुच्छेद 13 (2) के तहत निषेधात्मक विधि के अंतर्गत है। चूँकि 1969, 1971, 1987 और 1997 के सभी चार संशोधन अनुच्छेद 14 और 16 का उल्लंघन करते थे और इसलिए अनुच्छेद 13(2) का उल्लंघन करते थे, इसलिए उन्हें भी शुरू से ही अमान्य घोषित कर दिया गया था। इस प्रकार, अरुवेंद्र गर्ग प्रकरण में पारित उपरोक्त अनुपात निर्णय ही बाध्यकारी पूर्वनिर्णय था और इसके अलावा कुछ भी नहीं था।

(181) इसी प्रकार, दिनांक 16.07.2004 के विजय कुमार प्रकरण में, राज्य सरकार ने पुरानी सेवा नियमावली 1936 के नियम 9(2) और 5(4) के प्रावधानों को शिथिल करते हुए, जैसा कि वे 1969 से पहले थे, कार्यालय आदेश दिनांक 11.02.2003 के तहत, अर्हक परीक्षा के रूप में 'लिखित परीक्षा' के स्थान पर 'साक्षात्कार' की शुरुआत की थी। इस न्यायालय ने कार्यालय आदेश दिनांक 11.02.2003 की वैधता पर विचार करने के बाद आदेश दिनांक 16.07.2007 को निर्णय पारित किया, जिसमें प्रावधानों को पुनः प्रवर्तित करते हुए इस तथ्य को स्पष्ट रूप से नोट किया गया कि राज्य सरकार ने नियम 5(4) को पुनः प्रवर्तित करते हुए और पुरानी सेवा नियमावली के नियम 9(2) के प्रावधानों को शिथिल करते हुए कार्यालय आदेश दिनांक 11.02.2003 जारी किया था, जैसा कि वे वर्ष 1969 से पहले थे। इस न्यायालय ने कार्यालय आदेश दिनांक 11.02.2003 को इस आधार पर अपास्त कर दिया था कि कोई शासनदेश, सांविधिक नियमों के प्रावधानों को अधिक्रान्त नहीं कर सकता है।

अनुवादित

(182) विजय कुमार प्रकरण के बाद, डिप्लोमा इंजीनियर संघ के मामले में, विजय कुमार प्रकरण में पारित निर्णय दिनांक 16.07.2004 की वैधता पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विचार किया गया था। उस मामले में, डिप्लोमा धारक अवर अभियन्ताओं ने एटीबी मेहताब माजिद प्रकरण पर भरोसा करते हुए तर्क दिया कि चार संशोधनों को अपास्त करने के बाद 1969 से पहले की विधिक स्थिति पुनः प्रवर्तित नहीं होगी। डिग्री धारक अवर अभियंताओं ने इसके विपरीत तर्क दिया। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त निर्णय के प्रस्तर 5 और 7 में एक स्पष्ट निष्कर्ष दिया कि वर्ष 1969 से 1997 तक के चार संशोधनों को अपास्त करने के बाद, जो प्रारम्भ से ही शून्य थे, नियमावली, 1936 के नियम, क्योंकि वे ऐसे संशोधनों (नियम 5(4) और 9(2) सहित) से पहले मौजूद थे को पुनः प्रवर्तित किया गया था और इसलिए पुरानी नियमावली के नियम 5(4) और 9(2) के अनुसार लिखित योग्यता परीक्षा आयोजित करने का निर्देश दिया गया था।

(183) श्री अतिबल सिंह प्रकरण में, जब डिप्लोमा इंजीनियर्स संघ के मामले में पारित खण्ड पीठ के आदेश दिनांक 20.03.2007 की सत्यता को 24.10.2013 के आदेश के माध्यम से वृहद/तीन न्यायाधीशों की पीठ को भेजा गया था, तो वृहद पीठ ने इसे बरकरार रखा था। प्रतिप्रेषण आदेश दिनांक 21.08.2019, जिसने अंजनी कुमार के दिनांक 03.11.2006 के निर्णय को अपास्त कर दिया था, में कहा गया था कि चार संशोधनों को अलग करने के बाद वर्ष 1969 से पहले की नियम स्थिति में कुछ भी पुनः प्रवर्तित नहीं होगा और इसलिए मात्र शासनादेश दिनांक 20.02.2003,जो 41.66% प्रमोशन कोटा प्रदान करता है, लागू होगा। इसके साथ ही इसने डिप्लोमा इंजीनियर संघ के मामले में न्याय खण्डपीठ के दिनांक 20.03.2007 के निर्णय को दोहराया और बरकरार रखा, जिसमें चार संशोधनों को अपास्त करने के बाद 1वर्ष 959 के संशोधन तक पुरानी सेवा नियमावली 1936 को पुनः प्रवर्तित करने का प्रावधान किया गया था।

(184) माननीय खण्ड पीठ के आदेश दिनांक 20.03.2007 और वृहद पीठ के आदेश दिनांक 21.08.2019 के उपरोक्त दो निर्णय वास्तव में पक्षों के मध्य पारित किए गए थे और इसलिए इसका निर्णयाधार वास्तव में सही अर्थों में पूर्वन्याय का गठन करता है। इसलिए, पूर्व न्याय के सिद्धांत को लागू करने से, उक्त वाद के सभी पक्षकार माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उसी नियमावली का निर्वचन करते हुए विनिश्चित की गई इस विधि द्वारा बंधित हैं कि वर्ष 1969, 1971, 1987 और 1997 के चार संशोधनों को निरस्त / अपास्त करने के बाद, सेवा नियमावली, 1936 की वर्ष 1969 के पूर्व की नियम स्थिति अर्थात पुरानी नियमावली के वर्ष 1959 के संशोधन तक की स्थिति को पुनः प्रवर्तित किया जाएगा।

(185) चूंकि पुरानी सेवा नियमावली, 1936 को टुकड़ों में पुनः प्रवर्तित नहीं किया जा सकता है, अपितु संपूर्ण नियमावली पुनः जीवित की जायेगी, क्योंकि यह 1959 के संशोधन तक अस्तित्व में थी, इसलिए, नियम 5(4) और 9(2) के साथ, नियम 6(ए) द्वारा

अप्रमाणित

25% पदोन्नति कोटा भी पुनः प्रवर्तित हो जाएगा, जिसे वर्ष 2003-2004 तक किसी भी रिक्ति के लिए सहायक अभियंता (सिविल) के पद पर पदोन्नति करते समय विधिक रूप से लागू किया जाएगा, अर्थात जो नयी सेवा नियमावली 2004 के नए सेवा नियमों की घोषणा से पहले मौजूद थी। उपरोक्त मुद्दों के अलावा, जो इस माननीय न्यायालय द्वारा विनिश्चित किए गए हैं और जिनकी माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई है, पूर्व न्याय के सिद्धांत के अंतर्गत उपरोक्त निर्णयों का गलत निर्वचन करते हुए, इन्हें लागू करने की आड़ में, इन सुलझाए गए मुद्दों में किसी और चीज को शामिल करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

(186) इसके अतिरिक्त, अंजनी कुमार प्रकरण के आदेश दिनांक 03.11.2006 को निरस्त करने के बाद (नई नियमावली 2004 की वैधता को बरकरार रखने वाले निर्णय के हिस्से को छोड़कर, जो दिलीप कुमार गर्ग प्रकरण में अनुमोदित है), माननीय सर्वोच्च न्यायालय के प्रतिप्रेषण आदेश दिनांक 21.08.2019 द्वारा, दिनांक 20.02.2003 के पत्र के आवेदन के संबंध में अंजनी कुमार के निर्णय का निर्देश अब लागू नहीं है। इसलिए,उक्त पत्र दिनांक 20.02.2003 के 41.66% पदोन्नति कोटा का आवेदन, जो पुरानी नियमावली 1936 के नियम 6(1) में विहित 25% पदोन्नति कोटा से अधिक है, एवं जो मात्र सचिव और ई-इन-सी के बीच एक संचार है, प्रयोज्य एवं प्रवर्तनीय नहीं है, जो अब अवर अभियंताओं को सहायक अभियंताओं के पद पर पदोन्नति के मामले में लागू होता है।

(187) जैसा कि पहले बताया गया है, पुरानी सेवा नियमावली 1936 के नियम 6(1)(ए) के तहत 25% पदोन्नति कोटा लागू करने से, केवल 10 पदोन्नति कोटा रिक्तियाँ थीं जिन्हें पुरानी सेवा नियमावली, 1936 के अनुसार भरा जा सकता था, लेकिन इन 10 रिक्तियों के प्रति , दिनांक 20.02.2003 के पत्र के अनुसार 41.66% पदोन्नति कोटा लागू करके 191 पदोन्नतियाँ (181 अतिरिक्त पदोन्नति) की गई हैं। चूंकि केवल अंजनी प्रकरण के आदेश में पत्र दिनांक 20.02.2003 और 41.66% के कोटा को लागू करने का निर्देश दिया गया था, और डिप्लोमा अभियांत्रिकी संघ के आदेश दिनांक 20.03.2007 के निर्णयाधार को दोहराते हुए इसे पहले ही माननीय शीर्ष न्यायालय के आदेश दिनांक 25.08.2019 द्वारा अपास्त कर दिया गया है, तब दिनांक 20.03.2003 के पत्र (अर्थात अंजनी के बाद की स्थिति) में निर्धारित 41.66% पदोन्नति कोटा के आवेदन के संबंध में निजी प्रतिवादियों का अनुरोध अब स्वीकार नहीं किया जा सकता है, अन्यथा यह अंजनी कुमार के आदेश के दृष्टिकोण को बरकरार रखने के समान होगा, जो कायम है माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अपास्त कर दिया गया है और इसलिए यह विधिनुसार अस्वीकार्य है।

(188) इस प्रकार माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 21.08.2019 को अंजनी कुमार के आदेश दिनांक 03.11.2006 को अपास्त करने का प्रभाव, उक्त आदेश में निहित निर्देशों के अंतर्गत इस माननीय न्यायालय द्वारा की जा रही सुनवाई पर यह है

अनुवादित

कि याचिकाकर्ता की प्रार्थना के संबंध में पुरानी सेवा नियमावली , 1936 के अंतर्गत पदोन्नति कोटा रिक्तियों के सही निर्धारण और नई नियमावली, 2004 के अंतर्गत भरी जाने वाली अतिरिक्त रिक्तियों की घोषणा पर नए सिरे से विचार करना होगा। इसके बाद, यदि यह पाया जाता है कि भर्ती वर्ष 2003-2004 तक पदोन्नति कोटा में केवल 10 रिक्तियां मौजूद थीं, तो इसे पदोन्नत किए गए 96 निजी प्रतिवादियों में से समायोजित किया जा सकता है और शेष के संबंध में आक्षेपित प्रोन्नति आदेश दिनांक 02.08.2008 के अंतर्गत शेष 86 प्रदोन्नत निरस्त किए जाने का योग्य है।

(189) इसके बाद, गलत तरीके से लागू पत्र दिनांक 20.02.2003 द्वारा निर्मित शेष सभी अतिरिक्त 105 रिक्तियों को अवैध विधि द्वारा लागू करने वाले दो आक्षेपित पदोन्नति आदेश (27+78) दिनांक 03.07.2009 और 05.02.2010, एवं तथा 41.66% का अशुद्ध पदोन्नति कोटा निरस्त किये जाने योग्य है। अतः नई सेवा नियमावली 2004 के अंतर्गत सभी अतिरिक्त 181 भर्तियां, नई पदोन्नति कोटा रिक्तियों के रूप में घोषित किये जाने योग्य हैं।

(190) निष्कर्ष से पूर्व, इस न्यायालय ने पाया कि "समय रहते संभलने से बड़ी आफत टलती है", हालांकि यह कोई वैधानिक कहावत नहीं है बल्कि एक पुरानी कहावत है, जो वर्तमान मामलों में इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित करने वाले विवाद के सभी पक्षों पर यथार्थ सिद्ध होती है। जाहिर तौर पर, उत्तर प्रदेश लोक निर्माण विभाग में सहायक अभियंता (एई) के पद पर वर्ष 1998-1999 से वर्ष 2002-2003 तक की पदोन्नति, इन याचिकाओं में अपकेंद्रीय मुद्दा है, जिसे दिनांक 20.02.2003 के पत्र द्वारा उलझाकर रख दिया गया। उक्त पत्र और अन्य संज्ञेय पत्रों/शासनादेशों के जारी होने का व्यापक प्रभाव पड़ा, जिसके परिणामस्वरूप उसी मुद्दे पर याचिकाएं दायर की गईं, जो इस मामले में विचाराधीन है। इस न्यायालय का मानना है कि राज्य द्वारा थोड़ी सी सावधानी और सतर्कता बरतकर इस स्थिति से बचा जा सकता था और संयुक्त प्रांत अभियंता सेवा (भवन एवं सड़क शाखा) वर्ग-II नियमावली, 1936 के प्रावधान के अंतर्गत इन अवर अभियंताओं को, चाहे डिप्लोमा धारक हों या डिग्री धारक, संकल्पित पदोन्नति के उचित, सही और समान अवसर दिए गए होते।

ञ. निष्कर्ष

(191) उपरोक्त विवेचना और वैधानिक स्थिति के अनुक्रम में, यह न्यायालय निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुंचता है:

(क) राज्य प्राधिकारियों को सहायक अभियंता के पद के लिए अर्जित रिक्तियों की संख्या को फिर से निर्धारित/पुनः गणना करने का निर्देश दिया जाता है, जिसे उक्त निर्णय में उल्लेखित एक उच्च स्तरीय समिति का गठन कर वर्ष 1997-1998 से वर्ष 2003-2004 की अवधि के लिए, इस न्यायालय के टिप्पणियों के आलोक में पुरानी सेवा नियमावली 1936 में पाए जाने वाले 25% पदोन्नति कोटा को लागू करते हुए किया जायेगा।

अनुवादित

(ख) उक्त निर्धारण के बाद, राज्य प्राधिकारियों को निर्देश दिया जाता है कि वे पुरानी नियमावली, 1936 के नियम 9(ii) और अन्य सहायक नियमों के अंतर्गत अर्हक परीक्षा आयोजित करें और डिप्लोमा धारक अवर अभियंताओं को तुरंत समान अवसर प्रदान करें, ताकि उन्हें सहायक अभियंता के पद पर विचारणा क्षेत्र में सम्मिलित किये जाने हेतु सक्षम बनाया जा सके।

(ग) आक्षेपित पदोन्नति आदेश दिनांक 02.08.2008, 3.7.2009 और 5.2.2010 और सहायक अभियंता के रूप में पदोन्नति और नियुक्ति के परिणामी आदेश, पोषणीय नहीं हैं, जिन्हें एतद्द्वारा निरस्त किया जाता है।

(घ) उपरोक्त पदोन्नति आदेश 02.08.2008, 3.7.2009 और 5.2.2010 के अलावा अवर अभियंता के पद पर की गई कोई भी पदोन्नति अबाधित रहेगी, क्योंकि यह न्यायालय केवल इन आक्षेपित आदेशों की वैधता की जांच कर रही थी।

(ड.) आक्षेपित आदेश दिनांक 03.07.2009 और 05.02.2010 के समर्थन में भर्ती वर्ष 2013-14 के लिए यूपीपीएससी को भेजी गई पदोन्नति के अधियाचन में राज्य सरकार द्वारा रोकी गई 105 नई रिक्तियों (27+78) को जारी किया जाए, जो उच्च स्तरीय समिति द्वारा पदोन्नति कोटा सीटों की पुनर्गणना/पुनर्विनिश्चयन के अधीन होंगी।

(च) वर्ष 1997-98 से 2003-04 की अवधि के दौरान उत्पन्न होने वाली रिक्तियों के लिए सहायक अभियंता की पदोन्नति के लिए उच्च स्तरीय समिति द्वारा पुनः निर्धारित/पुनः गणना की गई रिक्त सीटों को छोड़कर, सभी रोकी गई सीटें नई सेवा नियमावली, 2004 के प्रावधानों के अनुसार भरी जा सकती है।

(छ) चूंकि, पदोन्नति आदेश दिनांक 02.08.2008 के अनुसार पहले ही पदोन्नति की जा चुकी है, इसलिए यह निर्देशित किया जाता है कि जब तक पदोन्नति कोटा की संख्या के पुन: निर्धारण और/या पुनर्गणना की उपरोक्त प्रक्रिया, राज्य सरकार द्वारा निर्धारित नहीं की जाती है और पदोन्नति की सूची कठोरतापूर्वक पुरानी सेवा नियमावली 1936 के अनुसार तैयार नहीं की जाती है, तब तक ये पदोन्नत किये गए व्यक्ति काम करना प्रारंभ रखेंगे और अपने संबंधित पद पर तैनात रहेंगे।

(ज) राज्य प्राधिकारियों को निदेशित किया जाता है कि वे उपरोक्त कार्य को करें और इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने के दिनांक से दो माह की अवधि में इसे पूर्ण करें।

(192) उपरोक्त टिप्पणियों और निर्देशों के साथ, सभी रिट याचिकाओं को अंततः निस्तारित किया जाता है।

(193) वादव्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

अनुवादित

(2023) 6 ILRA 265

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 31.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार

रिट ए. संख्या 4029/2011

कमलेश कुमार ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: एस.सी. यादव, जी.एम. कामिल, सुरेश चंद्र यादव

प्रतिवादी के अधिवक्ता: सी.एस.सी.

ए. सेवा कानून - नियुक्ति - नियुक्ति प्राप्त करने में जाली दस्तावेज का उपयोग किया गया - सेवा से वंचित करना - प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन - प्रासंगिकता - माना गया कि किसी पद पर गलत तरीके से नियुक्त व्यक्ति को गलत नियुक्ति का लाभ नहीं मिलना चाहिए, जिससे योग्य और योग्य उम्मीदवारों के हितों को खतरा हो - यदि प्रारंभिक कार्रवाई कानून के अनुरूप नहीं है, तो किसी पक्ष का बाद का आचरण उसे पवित्र नहीं कर सकता - उच्च न्यायालय ने याचिकाकर्ता की सेवाओं से वंचित करने वाले प्रतिवादियों की विवादित कार्रवाई में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया। (पैरा 12, 13, 14 और 18)

***बी. मैक्सिम - सुबिया फंडामेंटो कोफिट ऑपस* - अर्थ - नींव को हटाने पर अधिरचना गिर जाती है। (पैरा 13)**

***सी. मैक्सिम - फ्रॉस एट जूस ननक्वाम कोहैबिटेंट* - अर्थ - धोखाधड़ी और न्याय कभी एक साथ नहीं रहते। (पैरा 16)**

रिट याचिका खारिज। (ई-1)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. विनोदन टी. बनाम कालीकट विश्वविद्यालय; (2002) 4 एससीसी 726: एआईआर 2002 एससी 1885: 2002 एआईआर एससीडब्लू 2025
2. स्टेट ऑफ यू.पी. बनाम नीरज अवस्थी; (2006) 1 एससीसी667: 2006 एआईआर एससीडब्लू 875: (2005) 10 स्केल 286
3. यू.ओ.आई. बनाम मेजर जनरल मदन लाल यादव (सेवानिवृत्त); एआईआर 1996 एससी 1340: 1996 एआईआर एससीडब्लू 1500: (1996) 3 एससीआर 785
4. लिली थॉमस बनाम यू.ओ.आई.; एआईआर 2000 एससी 1650: 2000 सीआर एलजे 2433; (2000) 6 एससीसी 224
5. एस.पी. चेंगलवरया नायडू बनाम जगन्नाथ; (1994) 1 एससीसी 1: एआईआर 1994 एससी 853
6. यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम राजेंद्र सिंह; (2000) 3 एससीसी 581: एआईआर 2000 एससी 1165
7. मोहम्मद इब्राहिम बनाम स्टेट ऑफ बिहार; (2009) 8 एससीसी 751
8. विमला दिल्ली प्रशासन; एआईआर 1963एससी 1572: 1963 (2) एससी) 559 (1963) 2 सीआर एलजे 44
9. इंडियन बैंक बनाम सत्यम फाइबर्स (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड; (1996) 5 एससीसी 550; एआईआर एससीडब्लू3228: एआईआर 1996 एससी 2592
10. आंध्र प्रदेश के स्टेट बनाम टी. सूर्यचंद्र रान; एआईआर 2005 एससी 3110: 2005

अप्रमाणित

एआईआर एससीडब्लू 3603: (2005)6 एससीसी 149

11. के.डी. शर्मा बनाम स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड; (2008) 12 एससीसी 481: एआईआर 2009 एससी (सप) 1309: 2008 एआईआर एससीडब्लू 6654

12. क्षेत्रीय प्रबंधक, सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया बनाम मधालिका गोर प्रसाद दाहिर; (2008) 13 एससीसी 170: एआईआर 2008 एससी 3266: 2008 एआईआर एससीडब्लू 5525

(माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार द्वारा दिया गया)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री जी.एम. कामिल को सुना।

2. इस याचिका के द्वारा याचिकाकर्ता ने विपक्षी संख्या 5 द्वारा पारित याचिकाकर्ता की सेवाएं प्रदान करने के मौखिक आदेश दिनांक 16.12.2010 को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण प्रकृति की एक रिट याचिका जारी करने की प्रार्थना की है और विपक्षीगण को यह आदेश देते हुए कि वे याची को उसके पद पर कार्य करने की अनुमति दें तथा उसे नियमित रूप से प्रत्येक माह वेतन का भुगतान करें, परमादेश की प्रकृति की एक याचिका भी जारी करने की प्रार्थना की है।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता कार्यालय ज्ञापन 369/डब्ल्यू-1/सिंन.खा.ता. दिनांक 12.03.2003 द्वारा दैनिक वेतन भोगी के रूप में मस्टर रोल पर कार्यप्रभार अधिष्ठान में कार्य पर्यवेक्षक के रूप में, अधिशाषी अभियंता, सिंचाई खण्ड, टांडा-अम्बेडकर नगर के आदेश द्वारा नियोजित किया गया, तथा प्रमुख अभियंता (कार्य प्रभार अधिष्ठान प्रकोष्ठ), सिंचाई विभाग, उ.प्र., लखनऊ द्वारा पारित कार्यालय ज्ञापन दिनांक 20.2.2003 के अनुपालन में उसे द्वितीय उप-खण्ड, बसखारी में तैनात किया गया था। दिनांक 20.02.2003 के पत्र के अनुपालन में याचिकाकर्ता ने दिनांक 05.07.2003 को कार्यभार ग्रहण किया।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि याचिकाकर्ता की सेवा पुस्तिका भी दिनांक 05.07.2003 को तैयार की गई थी। उसके बाद आदेश दिनांक 07.07.2003 द्वारा अधीक्षण अभियंता, 12वें वृत्त, सिंचाई कार्य, गंगा सिंचाई भवन, तेलीबाग, लखनऊ ने याचिकाकर्ता को नियमित स्थापना में 3050-4590 रुपये के वेतनमान में , कार्य प्रभार अधिष्ठान से अनुसूचित जाति के बैकलॉग कोटा में समूह "ग" में, कनिष्ठ लिपिक के पद पर नियुक्त किया, एवं मुख्य अभियंता (शारदा सहायक), सिंचाई विभाग, उ.प्र., लखनऊ के अर्द्धशासकीय पत्र दिनांक 13.06.2003. के अनुपालन में सिंचाई विभाग, शारदा नगर, लखीमपुर खीरी में तैनात किया।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि अधिशाषी अभियंता, सिंचाई खंड, अंबेडकर नगर ने याचिकाकर्ता को कार्यमुक्त कर दिया और उसके बाद, याचिकाकर्ता ने दिनांक 27.07.2003 को अधिशाषी अभियंता, सिंचाई खंड, शारदा नगर, लखीमपुर खीरी के

अधिवक्ता

समक्ष अपने पद ग्रहण के लिये निवेदन किया। कार्यालय ज्ञापन दिनांक 10.09.2007 के द्वारा याचिकाकर्ता को वरिष्ठ लिपिक (वेतनमान 4000-6000 रुपये) के पद पर पदोन्नत करने के लिए आदेश जारी होने की तिथि से कनिष्ठ लिपिक के पद पर याचिकाकर्ता की सेवाओं की पुष्टि की गई। तत्पश्चात, याचिकाकर्ता के मूल दस्तावेजों की जांच के लिए अधिशाषी अभियंता, सिंचाई खंड, शारदा नगर, लखीमपुर खीरी द्वारा एक समिति का गठन किया गया था। यद्यपि, वरिष्ठ लिपिक के पद पर पदोन्नति के लिए याचिकाकर्ता का नाम जारी नहीं किया गया था, तथापि मूल दस्तावेजों की जांच की गई थी और कोई संदेह नही पाया गया। उसके बाद कार्यालय ज्ञापन दिनांक 04.12.2010 के अन्तर्गत विपक्षी संख्या- 05 द्वारा याचिकाकर्ता का प्रभार नईम अहमद, वरिष्ठ लिपिक को दे दिया गया। इसके अनुसरण में, याचिकाकर्ता ने 16.12.2010 को अपना पूरा प्रभार नईम अहमद को सौंप दिया। याचिकाकर्ता आकस्मिक अवकाश पर चला गया। दिसंबर, 2010 के बाद के वेतन का भुगतान करने के अनुरोध के साथ 20.02.2011 को वापस आ गया।

6. यह प्रस्तुत किया गया है कि 16.12.2010 से याचिकाकर्ता को काम करने के लिए अधिकृत नहीं किया गया है और न ही उसे वेतन दिया गया है और न ही याचिकाकर्ता के विरूद्ध उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील), नियमावली 1999 के अन्तर्गत किसी जांच पर विचार किया गया है, और न ही याचिकाकर्ता को पुनः कार्यभार ग्रहण करने की अनुमति दी गई।

7. इसके विपरीत, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता ने प्रमुख अभियंता (कार्य प्रभार अधिष्ठान) सिंचाई विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ द्वारा कथित रूप से पारित आदेश दिनांक 20.02.2003 के अनुक्रम में कार्य प्रभार अधिष्ठान, सिंचाई खण्ड, टांडा, आंबेडकर नगर, में कार्य करना प्रारम्भ कर दिया है। अधिशाषी अभियन्ता, सिंचाई खण्ड, टाण्डा, अम्बेडकर नगर ने पत्र दिनांक 24.03.2003 द्वारा पद ग्रहण के सम्बन्ध में सूचना हेतु निवेदन किया था, जिस पर अधिशाषी अभियन्ता कार्यालय, प्रमुख अभियन्ता (कार्य प्रभार अधिष्ठान), सिंचाई विभाग लखनऊ द्वारा पत्र दिनांक 24.04.2010 द्वारा सूचित किया गया कि सिंचाई विभाग, उ.प्र. की उनके कार्यालय से न तो दिनांक 20.02.2023 का कोई पत्र जारी किया गया और न ही अधिशाषी अभियन्ता, सिंचाई खण्ड टाण्डा, अम्बेडकर नगर द्वारा लिखित 24.03.2003 उनके कार्यालय में प्राप्त हुआ है। दिनांक 24.04.2003 के पत्र की प्रति, प्रतिशपथ पत्र के अनुसंलग्नक सीए-3 के रूप में संलग्न की गई है। अतः मुख्य अभियन्ता (शारदा सहायक) द्वारा जांच के आदेश दिये गये तथा अधीक्षण अभियन्ता, 14वें खण्ड, सिंचाई कार्य, आज़मगढ़ को जांच अधिकारी नियुक्त किया गया। जांच अधिकारी ने दिनांक 16.09.2010 के आदेश के अन्तर्गत अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की है, जिसकी एक प्रति प्रतिशपथपत्र के साथ संलग्नक सीए-5 के रूप में संलग्न की गई है, जिसमें यह पाया गया कि याचिकाकर्ता ने जाली दस्तावेजों के आधार पर नियुक्ति प्राप्त की है और तदनुसार अधीक्षण अभियंता, 12वीं खण्ड सिंचाई

अधिवक्ता

कार्यालय लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 07.12.2010 द्वारा निर्देशित किया गया कि याची का प्रभार किसी अन्य अधिकारी को सौंप दिया जाये तथा उसका वेतन रोक दिया जाये। दिनांक 17.01.2011 को पुलिस अधीक्षक, लखीमपुर खीरी को संबोधित पत्र के माध्यम से याचिकाकर्ता के विरूद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने का अनुरोध करते हुए एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने का भी निर्देश दिया गया था।

8. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि पत्र दिनांक 24.03.2003 भेजा गया था और याचिकाकर्ता को सभी जानकारी एवं लाभ दिये गये थे इसलिए क्योंकि इस बात की कोई जानकारी नहीं थी कि पत्र दिनांक 20.02.2003 एक जाली अभिलेख है और याचिकाकर्ता की नियुक्ति अवैध है और धोखाधड़ी करके प्राप्त की गई है।

9. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने विभाग से दिनांक 27.03.2023 को प्राप्त लिखित निर्देश भी प्रस्तुत किया है, उसे रिकॉर्ड पर लिया गया है।

10. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने आगे कहा कि चूंकि याचिकाकर्ता की कार्य प्रभार कर्मचारी के रूप में प्रारंभिक नियुक्ति फर्जी और जाली अभिलेखों के आधार पर हुई थी, इसलिए याचिकाकर्ता को दिए गए परिणामी लाभ कोई अधिकार प्रदान नहीं करेंगे क्योंकि धोखाधड़ी से सब कुछ निष्क्रिय हो जाता है।

11 . मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों के साथ-साथ विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों (प्रथम सूचना रिपोर्ट की प्रति, पत्र की प्रति जिसके द्वारा जांच अधिकारी नियुक्त किया गया था और जांच रिपोर्ट) का अवलोकन किया। ।

12 . यह स्थापित विधि है कि किसी पद पर अवैध तरीके से नियुक्त व्यक्ति को मेधावी और योग्य अभ्यर्थियों के हितों को खतरे में डालते हुए अवैध नियुक्ति का लाभ नहीं मिलना चाहिए है। हालांकि, ऐसे मामलों में जहां नियुक्त व्यक्ति की ओर से बिना किसी गलती के अवैध या अनियमित नियुक्ति की जाती है और ऐसी त्रुटि या अनियमितता का पता चलने पर नियुक्ति को समाप्त कर दिया जाता है, उच्चतम न्यायालय ने इस प्रकार नियुक्त हुए अभ्यर्थियों की, ऐसी नियुक्ति के पश्चात ईमानदारी और सेवा अवधि सहित विभिन्न कारकों के प्रकाश में सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया है। (देखें: विनोदन टी. बनाम कालीकट विश्वविद्यालय, (2002) 4 एससीसी 726: एआईआर 2002 एससी 1885: 2002 एआईआर एससीडब्ल्यू 2025; उत्तर प्रदेश राज्य बनाम नीरज अवस्थी, (2006) 1 एससीसी 667: 2006 एआईआर एससीडब्ल्यू 875: (2005) 10 SCALE 286)

13. यह भी स्थापित विधि है कि यदि प्रारंभिक कार्रवाई विधि के अनुरूप नहीं है, तो किसी पक्ष का बाद का आचरण उसे शुचिता नहीं प्रदान कर सकता है, यदि नींव हटा दी जाए तो भवन ढह जाता है। चतुराई करने वाला व्यक्ति स्वे किये गए गलत कार्य का लाभ नहीं ले सकता,

अनुवादित

और किसी सक्षम न्यायालय द्वारा वैध विचारण को विफल करने के लिए किसी विधि का आश्रय नहीं ले सकता है। विधि किसी व्यक्ति को उसकी स्वयं की गलती का लाभ देने की अनुमति नहीं देती। (देखें-भारत संघ बनाम मेजर जनरल मदन लाल यादव (सेवानिवृत्त), एआईआर 1996 एससी 1340: 1996 एआईआर एससीडब्ल्यू 1500 (1996) 3 एससीआर 785) . विधि के अल्लंघनकर्ताओं को यह आग्रह करने की अनुमति नहीं दी जा सकती कि उनका अपराध जांच, विचारण अथवा अन्वेषण का विषय नहीं हो सकता। (देखे: लिली थॉमस बनाम भारत संघ, एआईआर 2000 एससी 1650: 2000 सीआरएलजे 2433; (2000) 6 एससीसी 224)।

14. जहां तक याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की दलील है कि उनसे कार्यभार ग्रहण करने से पहले विभाग द्वारा कोई अवसर प्रदान नहीं किया गया है और विभाग की कार्रवाई प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत की अनुपालनहीनता से ग्रस्त है, इस संबंध में विधि स्थापित है।

15. एस.पी. चेंगलवराय नायडू बनाम जगन्नाथ, (1994) 1 एससीसी 1: एआईआर 1994, एससीसी 853,वाद में शीर्ष अदालत ने माना कि यह कानून का स्थापित प्रस्ताव है कि जहां एक आवेदक दुर्व्यपदेशन करके या सक्षम प्राधिकारी के साथ धोखाधड़ी करके कोई आदेश/कार्यालय प्राप्त करता है, तो ऐसा आदेश विधि की दृष्टि में कायम नहीं रह सकता है। धोखाधड़ी, लौकिक अथवा अलौकिक सभी न्यायिक कृत्यों को टालती है।

16 . यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम राजेंद्र सिंह, (2000) 3 एससीसी 581 एआईआर 2000 एससी 1165 में, सर्वोच्च न्यायालय ने यह टिप्पणी की कि "धोखाधड़ी और न्याय कभी एक साथ नहीं रहते" (फ्रास एट जूस नुनक्वाम कोहैबिटेंट) और यह एक प्राचीन कहावत है जिसने इन सभी शताब्दियों में कभी भी अपना महत्त्व नहीं खोया है।

17. मोहम्मद इब्राहिम बनाम बिहार राज्य, (2009) 8 एससीसी 751, वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने धारित किया कि विभिन्न मामलों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित निर्णयाधार यह है कि बेईमानी का फल और लाभ, उन व्यक्तियों को प्राप्त होने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए जिन्होंने धोखाधड़ी अथवा दुर्व्यपदेशन किया है, और ऐसी परिस्थितियों में न्यायालय को धोखाधड़ी को जारी नहीं रखना चाहिए। धोखाधड़ी एक आंतरिक, संपार्श्विक कार्य है, और गंभीर प्रकृति की धोखाधड़ी न्यायालयों की पवित्रतम कार्यवाहियों को दूषित कर देगी। कुछ प्राप्त करने की मंशा से जानबूझ कर किया गया छल धोखाधड़ी है, जो अन्यथा देय नहीं है। अभिव्यक्ति "धोखाधड़ी" में दो तत्व सम्मिलित हैं- छल और छले गए व्यक्ति को क्षति। यह एक धोखा है जिसका उद्देश्य लाभ प्राप्त करना है (देखे- विमला दिल्ली प्रशासन, एआईआर 1963 एससी 1572 देखें: 1963 (2) एससी) 559 (1963) 2 सीआरएलजे 44 इंडियन बैंक बनाम सत्यम फाइबर्स (इंडिया) प्रा. लिमिटेड, (1996) 5 एससीसी 550; एआईआर एससीडब्ल्यू 3228: एआईआर 1996 एससी 2592; आंध्र प्रदेश राज्य बनाम टी. सूर्यचंद्र रण एआईआर 2005 एससी 3110: 2005 एआईआर एससीडब्ल्यू 3603: (2005) 6

अनुवादित

एससीसी 149; के.डी. शर्मा बनाम स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड, (2008) 12 एससीसी 481: एआईआर 2009 एससी (सप्लीमेंट) 1309, 2008 एआईआर एससीडब्ल्यू 6654; और क्षेत्रीय प्रबंधक, सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया वी. मधालिका गोर प्रसाद दाहिर, (2008) 13 एससीसी 170: एआईआर 2008 एससी 3266: 2008 एआईआर एससीडब्ल्यू 5525 ।

18. विधि की उपरोक्त विधिक प्रस्थापना और इस तथ्य के दृष्टिगत कि याचिकाकर्ता को जाली और सारहीन अभिलेखों के आधार पर प्रश्नगत पद पर नियुक्ति मिली है, इस न्यायालय का विचार है कि प्रतिवादीगण की याचिकाकर्ता को दिनांक 16.12.2010 से प्रभावी सेवान्मुक्ति की विवादित कार्रवाई में भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

19. तदनुसार, रिट याचिका खारिज की जाती है।

(2023) 6 ILRA 269

वाद: - रिट - ए संख्या- 9491/2011

याचिकाकर्ता: - राम गोपाल **मूल अधिकार क्षेत्र**

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 31.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार

रिट ए. संख्या 9491/2011

राम गोपाल लोधी ...याचिकाकर्ता

बनाम

यू.पी. राज्य और अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: दीपक श्रीवास्तव, आकाश धर दुबे, के.के. सिंह, निर्मल सिंह यादव, शिव प्रवेश धर दुबे

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी.

सेवा कानून - उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक आचरण नियमावली, 1956 - विभागीय जांच - दण्ड - कर्तव्य से अनाधिकृत रूप से अनुपस्थित रहना - सिविल कारागार में निरूद्धि से सम्बन्धित तथ्यों को छिपाना - जांच अधिकारी द्वारा कोई मौखिक जांच नहीं की गई है तथा मौखिक जांच के लिए कोई तिथि, समय व स्थान नहीं बताया गया है, जांच अधिकारी पर आधारित आरोप व दस्तावेज गवाहों की जांच या जिरह करके सिद्ध नहीं किए गए हैं - प्रभाव - यह माना गया कि मौखिक जांच के लिए तिथि, समय व स्थान निर्धारित किए बिना तथा आरोपों के समर्थन में गवाहों की जांच किए बिना कर्मचारी द्वारा प्रस्तुत आरोप पत्र व उत्तर के आधार पर सम्पूर्ण जांच कार्यवाही करना स्थापित कानून के अनुरूप नहीं है - अब्दुल सलाम के मामले पर भरोसा किया गया - उच्च न्यायालय ने विवादित आदेश को निरस्त कर दिया। (पैरा 17 व 23)

रिट याचिका का निस्तारण किया गया। (ई-1)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. मोती राम बनाम राज्य; 2013 एलसीडी 1319
2. विनोद कुमार बनाम बैंक ऑफ बड़ौदा; 2013 (31) एलसीडी 2116
3. राजेंद्र प्रसाद श्रीवास्तव बनाम राज्य; 2011 (29) एलसीडी 2417
4. डॉ. आभा गुप्ता बनाम राज्य; 2013 (31) एलसीडी 2568

अनुवादित

5. अरुण कुमार पांडे बनाम यू.पी. विकास आयुक्त; 2004 (22) एलसीडी 964

6. अब्दुल सलाम बनाम यू.पी. और अन्य; 2011 (29) एलसीडी 832

7. यू.पी. और अन्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा; (2010) 2 एससीसी 772

8. विजय एस. सथाये बनाम इंडियन एयरलाइंस और अन्य; 2013 (31) एलसीडी 1938

9. उत्तर पूर्वी कर्नाटक आर.टी. निगम बनाम आशाप्पा; मनु/एससी/8174/2006

10. हरियाणा वित्तीय निगम एवं अन्य बनाम कैलाश चंद्र आहूजा; मनु/एससी/7804/2008

(माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार द्वारा दिया गया)

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री शिव प्रवेश धर दुबे और राज्य के विद्वान सीएससी संजीव सिंह को सुना।

इस याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता ने निम्नलिखित राहत हेतु प्रार्थना की है:

(i) इस रिट याचिका के साथ अनुलग्नक संख्या 1 में निहित दिनांक 25.11.2011 के विवदित आदेश को रद्द करने हेतु उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।

(ii) प्रतिवादियों को याचिकाकर्ता की नियुक्ति स्वीकार करने और उसके सभी परिणामी लाभों का शीघ्र भुगतान करने का आदेश देने हेतु परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।

(iii) इस प्रकृति में कोई अन्य रिट, आदेश या निर्देश जारी करें जिसे यह माननीय न्यायालय मामले की परिस्थितियों में ठीक और उचित समझे।

मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता को वर्ष 1987 में विपरीत पक्ष संख्या 2 के तहत नियुक्त किया गया था। दिनांक 16.03.1988 को, याचिकाकर्ता रुरामल्लू में ट्रैक्टर चालक के रूप मे तैनात था। याचिकाकर्ता, प्राधिकारियों से बिना किसी सूचना के नवंबर 1991 से अनुपस्थित है, अत: उससे स्पष्टीकरण माँगा गया क्योंकि याचिकाकर्ता न तो ड्यूटी पर आया और न ही उसके द्वारा पंजीकृत पत्र दिनांक 31.08.1992 के संबंध में कोई स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया गया जिसके द्वारा याचिकाकर्ता को सूचित किया गया था कि यदि वह एक सप्ताह के भीतर अपनी ड्यूटी पर नहीं आता है तो उसके विरुद्ध उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक आचरण नियमावली, 1956 के प्रावधानों के अंतर्गत कार्रवाई की जाएगी। उस पत्र के बावजूद वह ड्यूटी पर नहीं आया। अंततः याचिकाकर्ता को यह पत्र 01.07.1993 को दिया गया, जिसके उत्तर में याचिकाकर्ता ने कहा कि वह नवंबर 1991 से बीमार है और अभी तक ठीक नहीं हुआ है। उसने अपनी ज्वाइनिंग रिपोर्ट 15.03.1996 को प्रस्तुत की। याचिकाकर्ता का मामला आगे की कार्रवाई हेतु विरोधी पक्ष संख्या 2 को भेजा गया, जिसने अपर कृषि निदेशक (प्रशासन) उत्तर प्रदेश लखनऊ से निर्देश माँगा इस बीच, याचिकाकर्ता ने अपनी ज्वाइनिंग की स्वीकृति हेतु रिट याचिका संख्या 4154 (एस/एस) 1988 दायर की। रिट याचिका का निपटारा 23.07.2008 के निर्णय और आदेश द्वारा किया गया, जिसमें विरोधी पक्ष संख्या 3 को मामले में निर्णय लेने का निर्देश

अनुवादित

दिया गया। इस न्यायालय द्वारा पारित 23.07.2008 के आदेश के अनुपालन में, याचिकाकर्ता के मामले पर अपर निदेशक कृषि (प्रशासन) उत्तर प्रदेश लखनऊ द्वारा विचार किया गया, जिन्होंने 21.01.2009 के आदेश द्वारा संयुक्त निदेशक कृषि झांसी मंडल झांसी (नियुक्ति प्राधिकारी) को जाँच करने और सुनवाई का अवसर प्रदान करने के बाद याचिकाकर्ता के मामले को गुण-दोष के आधार पर तय करने का निर्देश दिया। अपर निदेशक कृषि द्वारा पारित आदेश दिनांक 21.01.2009 के अनुसरण में जाँच अधिकारी नियुक्त किया गया, दिनांक 17.02.2009 को आरोप पत्र जारी किया गया, जिसमें आरोप था कि वह नवम्बर 1991 से 14.03.1996 तक ड्यूटी से अनुपस्थित था तथा मुकदमा अपराध संख्या 130ए/91 अन्तर्गत धारा 147, 148, 149, 307 एवं 504 भा०द०वि० में जेल में था। आरोप पत्र का जवाब याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया तथा जाँच अधिकारी द्वारा जाँच करने के पश्चात अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करने के पश्चात दण्ड की संस्तुति की गई तथा अनुशासनिक प्राधिकारी ने अन्ततः दण्ड का आदेश पारित किया।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि आरोप पत्र की प्रति उपलब्ध कराये जाने के उपरान्त याचिकाकर्ता ने उत्तर प्रस्तुत कर दिया है, किन्तु सम्पूर्ण जाँच के दौरान कोई मौखिक सुनवाई नहीं की गई। कोई भी दस्तावेज, जिस पर आरोप चिपकाये गये हों, याचिकाकर्ता को उपलब्ध नहीं कराये गये। जाँच अधिकारी द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों को गवाहों द्वारा सिद्ध नहीं किया गया है। याचिकाकर्ता की उपस्थिति में कोई साक्ष्य दर्ज नहीं किया गया है, न ही याचिकाकर्ता को जिरह करने का कोई अवसर दिया गया। जाँच की कोई तिथि, समय और स्थान तय नहीं किया गया, जाँच रिपोर्ट मात्र आरोप पत्र के जवाब के आधार पर प्रस्तुत की गई।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अपने तर्क के समर्थन में निम्नलिखित निर्णयों पर विश्वास व्यक्त किया है:

(i) मोती राम बनाम राज्य {2013) एल.सी.डी. पृष्ठ 1319}
(ii) विनोद कुमार बनाम बैंक ऑफ बड़ौदा {2013(31) एल.सी.डी. पृष्ठ 2116}
(iii) राजेंद्र प्रसाद श्रीवास्तव बनाम राज्य {2011(29) एल.सी.डी. पृष्ठ 2417}
(iv) डॉ. आभा गुप्ता बनाम राज्य {2013(31) एल.सी.डी. पृष्ठ 2568}
(v) अरुण कुमार पांडे बनाम यू.पी. विकास आयुक्त {2004(22) एल.सी.डी.पृष्ठ 964}
(vi) अब्दुल सलाम बनाम यू.पी. व अन्य {2011(29) एल.सी.डी. पृष्ठ 832}

इसके विपरीत, श्री संजीव सिंह, विद्वान अतिरिक्त सीएससी ने इस तर्क का विरोध करते हुए कहा कि याचिकाकर्ता 01.11.1991 से 14.03.1996 तक बिना सूचना के अनधिकृत रूप से अनुपस्थित था। उन्होंने यह भी कहा कि याचिकाकर्ता 17 दिनों तक यानि 25.01.1991 से 09.12.1991 तक जेल में रहा। याचिकाकर्ता ने यह तथ्य विभाग से छुपाया। दिनांक 10.12.1991, 29.02.1992 और 29.02.1992 के पत्र देखें। दिनांक 12.08.1992 को उसे कारण बताओ नोटिस

अनुवादित

जारी कर ड्यूटी पर उपस्थित होने का निर्देश दिया गया, परन्तु याचिकाकर्ता ने इस पत्र की अनदेखी की और ड्यूटी पर रिपोर्ट नहीं किया। अपर कृषि निदेशक ने आदेश दिनांक 01.07.1993 के तहत याचिकाकर्ता को ड्यूटी पर शामिल होने का निर्देश दिया, जिस पर याचिकाकर्ता ने जवाब दिया कि वह स्वस्थ नहीं है और जैसे ही उसे फिट घोषित किया जाएगा, वह चिकित्सा प्रमाण-पत्र के साथ ड्यूटी पर रिपोर्ट करेगा।

रिट याचिका संख्या 4254/एसएस/1998 में पारित आदेश दिनांक 23.07.2008 के अनुपालन में अपर निदेशक (कृषि) ने नियुक्ति प्राधिकारी को याचिकाकर्ता के अनधिकृत रूप से अनुपस्थित रहने और सिविल कारागार में निरूद्ध होने के तथ्य को छिपाने के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही शुरू करने का निर्देश दिया। उप निदेशक, जालौन को पत्र दिनांक 24.01.2009 के तहत जाँच अधिकारी नियुक्त किया गया। दिनांक 17.02.2009 को आरोप पत्र जारी किया गया तथा प्रथम आरोप नवम्बर, 1991 से 14.03.1996 तक आवेदक की अनुपस्थिति हेतु निर्धारित किये गये। दूसरा आरोप मुकदमा अपराध संख्या 130एम/1991 में धारा 147, 148, 149, 307 व 504 भा०द०वि० के अन्तर्गत सिविल कारागार में निरूद्ध रहने के सम्बन्ध में तथ्य विभाग से छुपाने के सम्बन्ध में था, जो कि उ.प्र. सरकारी सेवक आचरण नियमावली, 1956 के विरूद्ध है।

आवेदक ने आरोप पत्र के उत्तर में दिनांक 25.11.1991 से 09.12.1991 तक निरूद्ध रहने का उल्लेख करते हुए कहा है कि इसके बाद वह बीमार हो गया तथा इसके बाद उसने दिनांक 15.03.1996 को चिकित्सा प्रमाण-पत्र के साथ कार्यभार ग्रहण किया। दिनांक 04.06.2011 को उप निदेशक, जालौन द्वारा जाँच रिपोर्ट प्रस्तुत की गई, जिसमें याचिकाकर्ता को नवम्बर, 1991 से 14.03.1996 तक अनाधिकृत रूप से अनुपस्थित रहने तथा जेल में निरूद्ध किये जाने के सम्बन्ध में विभाग से तथ्य छिपाने का दोषी पाया गया। दिनांक 24.11.2011 को संयुक्त निदेशक, झांसी मण्डल द्वारा जाँच रिपोर्ट के साथ यह निष्कर्ष निकालते हुए दण्ड आदेश पारित किया गया कि याचिकाकर्ता ने विभाग से अपने निरूद्ध किये जाने के सम्बन्ध में तथ्य छिपाये हैं, अतः रिपोर्ट स्वीकार करना राज्य के हित में नहीं है, फलस्वरूप याचिकाकर्ता की चार वर्ष चार माह तेरह दिन पश्चात् प्रस्तुत की गई ज्वाइनिंग रिपोर्ट को अस्वीकार कर दिया गया।

याचिकाकर्ता ने दावा याचिका संख्या 721/2005 "राम गोपाल लोधी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य" सेवा अधिकरण, उत्तर प्रदेश लखनऊ के समक्ष प्रस्तुत की, जिसे खारिज कर दिया गया तथा विपक्षीगण को तीन माह की अवधि में जाँच पूर्ण कर परिणामी आदेश पारित करने का निर्देश दिया गया।

पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना गया।

इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि जाँच के दौरान याचिकाकर्ता को सुनवाई का कोई अवसर

अनुवादित

प्रदान नहीं किया गया। जाँच अधिकारी ने कोई मौखिक सुनवाई नहीं की। जाँच अधिकारी द्वारा जिन दस्तावेजों पर विश्वास व्यक्त किया गया, वे किसी भी गवाह की जाँच करके साबित नहीं किए गए और याचिकाकर्ता को जाँच के गवाहों की जाँच या जिरह करने का कोई अवसर नहीं दिया गया। जाँच रिपोर्ट प्रस्तुत करने के बाद भी याचिकाकर्ता को रिपोर्ट की प्रति नहीं दी गई। इस न्यायालय की खंडपीठ ने मोती राम (उपरिवर्णित) के मामले में माना है कि सरकारी कर्मचारी को आरोप पत्र दिए जाने के बाद जाँच के चरण में और साथ ही उस चरण में जब उसे सजा दी जाने वाली हो, उचित अवसर दिया जाना चाहिए। यह भी माना गया है कि मौखिक पूछताछ आवश्यक है चाहे कर्मचारी इसकी माँग करे या नहीं। प्रासंगिक प्रस्तर 8,9 और 17 अधोउद्धृत हैं: -

"मध्य प्रदेश राज्य बनाम चिंतामन सदाशिव वैशम्पायन; एआईआर 1961 एससी 1623; उत्तर प्रदेश राज्य बनाम शत्रुघ्न लाल एवं अन्य; (1998) 6 एससीसी 651 और उत्तरांचल राज्य एवं अन्य बनाम खड़क सिंह (2008) 8 एससीसी 236 में सर्वोच्च न्यायालय ने इस बात पर जोर दिया है कि सरकारी कर्मचारी को जाँच के चरण में, आरोप पत्र दिए जाने के बाद और दूसरे चरण में जब उसे सजा दी जाने वाली हो, उचित अवसर दिया जाना चाहिए। उत्तरांचल राज्य एवं अन्य बनाम खड़क सिंह (उपरिवर्णित) में सर्वोच्च न्यायालय ने विभागीय जाँच करने के संबंध में कुछ बुनियादी सिद्धांतों और इस घटना में परिणामों को गिनाया है, यदि इन बुनियादी सिद्धांतों का पालन नहीं किया जाता है, तो आदेश को रद्द कर दिया जाना चाहिए। बताए गए सिद्धांत यहाँ पुन: प्रस्तुत हैं: -

(क) जाँच सद्भावनापूर्वक की जानी चाहिए और यह देखने हेतु ध्यान रखा जाना चाहिए कि जाँच कोरी औपचारिकता न बन जाए।

(ख) यदि कोई अधिकारी किसी घटना का गवाह है जो जाँच का विषय है या यदि जाँच किसी अधिकारी की रिपोर्ट पर शुरू की गई है, तो पूरी निष्पक्षता से उसे जाँच अधिकारी नहीं होना चाहिए। यदि जाँच अधिकारी की नियुक्ति के बाद उक्त स्थिति ज्ञात होती है, तो जाँच के दौरान यह सुनिश्चित करने हेतु कदम उठाए जाने चाहिए कि जाँच का कार्य किसी अन्य अधिकारी को सौंपा जाए।

(ग) जाँच में, नियोक्ता/विभाग को आरोपित कर्मचारी/अपराधी के विरुद्ध सबूत पेश करने हेतु पहले कदम उठाने चाहिए, उसे नियोक्ता के गवाहों से जिरह करने का अवसर देना चाहिए। उसके बाद ही कर्मचारी/अपराधी से पूछा जाना चाहिए कि क्या वह कोई सबूत पेश करना चाहता है और उसके विरुद्ध पेश किए गए सबूतों के बारे में कोई स्पष्टीकरण देने हेतु कहा जाना चाहिए।

राधे कांत खैरे बनाम यू.पी. कोऑपरेटिव शुगर फैक्ट्रीज फेडरेशन लिमिटेड [2003](21) एलसीडी 610] मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ ने माना कि कर्मचारी को आरोप-पत्र दिए जाने के बाद मौखिक पूछताछ अनिवार्य है, चाहे कर्मचारी इसके लिए अनुरोध करे या नहीं। इसलिए उसे पूछताछ की तारीख, समय और स्थान बताते हुए नोटिस जारी किया जाना

अनुवादित

चाहिए। उस निर्धारित तिथि पर कर्मचारी के विरुद्ध मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य सबसे पहले उसकी मौजूदगी में पेश किए जाने चाहिए। इसके बाद, नियोक्ता को पहले अपना साक्ष्य पेश करना चाहिए। इस सिद्धांत का कारण यह है कि आरोप-पत्रित कर्मचारी को न मात्र अपने विरुद्ध आरोपों के बारे में पता होना चाहिए, अपितु उसके विरुद्ध सबूतों के बारे में भी पता होना चाहिए ताकि वह उनका उचित तरीके से जवाब दे सके। जिस व्यक्ति से आरोप का जवाब देने की अपेक्षा की जाती है, उसे आरोप के समर्थन में सबूत सुनने और जिरह के माध्यम से ऐसे प्रासंगिक प्रश्न पूछने का उचित मौका दिया जाना चाहिए, जैसा वह चाहता है। फिर उसे उसके विरुद्ध पेश किए गए सबूतों का खंडन करने का मौका दिया जाना चाहिए।

Xxxxx

यद्यपि हम यह मान भी लें कि याचिकाकर्ता ने अपने उत्तर में अधिकांश आरोपों को स्वीकार कर लिया है, फिर भी उसके विरुद्ध कुछ आरोप सिद्ध किए जाने हैं। इस उद्देश्य हेतु भी, याचिकाकर्ता को जाँच रिपोर्ट प्रस्तुत करने से पहले सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए। जाँच में, नियोक्ता/विभाग को आरोपित कर्मचारी/अपराधी के विरुद्ध साक्ष्य प्रस्तुत करने हेतु सबसे पहले कदम उठाना चाहिए, तथा नियोक्ता के गवाहों से जिरह करने का अवसर दिया जाना चाहिए। उसके पश्चात ही, कर्मचारी/अपराधी से पूछा जाना चाहिए कि क्या वह कोई साक्ष्य प्रस्तुत करना चाहता है तथा उसके विरुद्ध प्रस्तुत साक्ष्य के बारे में कोई स्पष्टीकरण देने हेतु कहा जाना चाहिए, जैसा कि उत्तरांचल राज्य एवं अन्य बनाम खड़क सिंह (उपरिवर्णित) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा देखा गया है। इसके अतिरिक्त, जिस व्यक्ति से आरोप का उत्तर देने की अपेक्षा की जाती है, उसे आरोप के समर्थन में साक्ष्य सुनने तथा जिरह के माध्यम से ऐसे प्रासंगिक प्रश्न पूछने का उचित अवसर दिया जाना चाहिए, जैसा कि वह चाहता है। फिर उसे अपने विरुद्ध पेश किए गए सबूतों का खंडन करने का मौका दिया जाना चाहिए, जैसा कि इस न्यायालय ने राधेकांत खरे (उपरिवर्णित) के मामले में माना है। रिट याचिका पर विचार करते हुए, इस न्यायालय ने 29.10.1999 के आदेश के माध्यम से आपत्तिजनक आदेश पर रोक लगा दी।

विनोद कुमार (उपरिवर्णित) के मामले में, इस न्यायालय की खंडपीठ ने विभागीय जाँच करने के बुनियादी सिद्धांत को गिनाया है। प्रासंगिक प्रस्तर संख्या 19 अधोउद्धृत है: -

"मध्य प्रदेश राज्य बनाम चिंतामन सदाशिव वैशम्पायन; एआईआर 1961 एससी 1623; यूपी राज्य बनाम शत्रुघ्न लाल और अन्य; (1998) 6 एससीसी 651 और उत्तरांचल राज्य और अन्य बनाम। खड़क सिंह (2008) 8 एससीसी 236 में सर्वोच्च न्यायालय ने इस बात पर जोर दिया है कि सरकारी कर्मचारी को जाँच के चरण में, आरोप पत्र दिए जाने के बाद और दूसरे चरण में जब उसे सजा दी जाने वाली हो, उचित अवसर दिया जाना चाहिए। उत्तरांचल राज्य और अन्य बनाम खड़क सिंह (उपरिवर्णित) में सर्वोच्च न्यायालय ने विभागीय जाँच करने और घटना के परिणामों के संबंध में कुछ बुनियादी सिद्धांतों को गिनाया है, यदि

अनुवादित

इन बुनियादी सिद्धांतों का पालन नहीं किया जाता है, तो आदेश को रद्द कर दिया जाना चाहिए। बताए गए सिद्धांत यहाँ पुन: प्रस्तुत हैं: -

(क) जाँच सद्भावनापूर्वक की जानी चाहिए और यह देखने हेतु सावधानी बरतनी चाहिए कि जाँच कोरी औपचारिकता न बन जाए।

(ख) यदि कोई अधिकारी किसी घटना का गवाह है जो जाँच का विषय है या यदि जाँच किसी अधिकारी की रिपोर्ट पर शुरू की गई थी, तो पूरी निष्पक्षता में उसे जाँच अधिकारी नहीं होना चाहिए। यदि जाँच अधिकारी की नियुक्ति के बाद उक्त स्थिति ज्ञात होती है, तो जाँच के दौरान यह सुनिश्चित करने हेतु कदम उठाए जाने चाहिए कि जाँच का कार्य किसी अन्य अधिकारी को सौंपा जाए।

(ग) जाँच में, नियोक्ता/विभाग को आरोपित कर्मचारी/अपराधी के विरुद्ध सबूत पेश करने हेतु पहले कदम उठाने चाहिए, उसे नियोक्ता के गवाहों से जिरह करने का अवसर देना चाहिए। उसके बाद ही कर्मचारी/अपराधी से पूछा जाना चाहिए कि क्या वह कोई सबूत पेश करना चाहता है और उसके विरुद्ध पेश किए गए सबूतों के बारे में कोई स्पष्टीकरण देने हेतु कहा जाना चाहिए।

विनोद कुमार के उपरोक्त फैसले में यह भी माना गया है कि कर्मचारी को आरोप पत्र दिए जाने के बाद मौखिक पूछताछ अनिवार्य है। प्रासंगिक प्रस्तर 24 अधोउद्धृत है:-

राधे कांत खरे बनाम यू.पी. सहकारी चीनी कारखाना संघ लि. [2003](21) एलसीडी 610] ने माना कि कर्मचारी को आरोप-पत्र दिए जाने के बाद मौखिक पूछताछ आवश्यक है, चाहे कर्मचारी इसके लिए अनुरोध करे या नहीं। इसलिए उसे पूछताछ की तारीख, समय और स्थान बताते हुए एक नोटिस जारी किया जाना चाहिए। उस निर्धारित तिथि पर कर्मचारी के विरुद्ध मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य सबसे पहले उसकी उपस्थिति में पेश किए जाने चाहिए। उसके बाद, नियोक्ता को पहले अपना साक्ष्य प्रस्तुत करना चाहिए। इस सिद्धांत का कारण यह है कि आरोप-पत्रित कर्मचारी को न मात्र उसके विरुद्ध आरोपों के बारे में पता होना चाहिए, अपितु उसके विरुद्ध सबूतों के बारे में भी पता होना चाहिए ताकि वह उनका उचित तरीके से जवाब दे सके। जिस व्यक्ति को आरोप का जवाब देने की आवश्यकता है, वह योग्य होना चाहिए।आरोप के समर्थन में साक्ष्य सुनने और जिरह के जरिए ऐसे प्रासंगिक प्रश्न पूछने का उचित अवसर नहीं दिया जाना चाहिए, जैसा वह चाहे। फिर उसे अपने विरुद्ध पेश किए गए साक्ष्य का खंडन करने का मौका दिया जाना चाहिए।

राजेंद्र प्रसाद श्रीवास्तव (उपरिवर्णित) के मामले में यह माना गया कि किसी भी बड़ी सजा दिए जाने से पहले आरोपों को साबित किया जाना चाहिए। प्रासंगिक प्रस्तर संख्या 14 अधोउद्धृत है: -

हम इस तथ्य का भी संज्ञान लेते हैं कि 01.09.2001 के पहले के बर्खास्तगी आदेश को इस न्यायालय ने पहले की रिट याचिका में प्रतिवादी को अपीलकर्ता को पर्याप्त अवसर देने के बाद नया आदेश पारित करने के विशिष्ट निर्देश के साथ रद्द कर दिया था, परन्तु विभाग हालांकि सचेत था, कि संविधान के अनुच्छेद 311(2) के तहत आवश्यक अवसर

अनुवादित

प्रदान किए जाने की आवश्यकता है, वास्तव में उक्त अवसर प्रदान नहीं किया गया। जहाँ विधि के अनुसार किसी बड़ी सजा से पहले आरोप सिद्ध होना आवश्यक है, वहाँ दोष की धारणा नहीं हो सकती, जब तक कि अपराधी द्वारा उसके विरुद्ध लगाए गए आरोप को बिना किसी शर्त के स्वीकार न कर लिया गया हो।

डॉ. श्रीमती आभा गुप्ता (उपरिवर्णित) के मामले में पुनः यह माना गया कि मौखिक जाँच न करना एक गंभीर त्रुटि है, जो अनुशासनात्मक प्राधिकारी के आदेश को अमान्य कर सकती है। प्रासंगिक प्रस्तर 32 और 35 अधोउद्धृत हैं:-

इस न्यायालय की खंडपीठ ने सलाहुद्दीन अंसारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य के मामले में, जो 2008 (3) ईएससी 1776 में रिपोर्ट किया गया था, माना है कि मौखिक जाँच न करना एक गंभीर त्रुटि है, जो दंड के आदेश सहित अनुशासनात्मक प्राधिकारी के आदेश को अमान्य कर सकती है। इसने कहा है कि "ऐसे मामले में मौखिक जाँच न करना एक गंभीर मामला है, जो मामले की जड़ तक जाता है।"

35. इस न्यायालय की खंडपीठ ने विजय कुमार सिन्हा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2011 (4) ईएससी 2949 में दर्ज मामले में माना है कि ऐसे मामलों में "जहाँ आरोपित सरकारी कर्मचारी की उपस्थिति में कोई मौखिक साक्ष्य दर्ज नहीं किया गया है, वहाँ बर्खास्तगी जैसी बड़ी सजा देने हेतु उसे जिरह करने का अवसर देने का सवाल ही नहीं उठता, पूर्ण जाँच होनी चाहिए।"

उक्त मामले में खंडपीठ ने निम्नांकित टिप्पणी की:-

16. अरुण कुमार पांडे (उपरिवर्णित) के मामले में यह माना गया कि याचिकाकर्ता को मौखिक पूछताछ की तारीख और समय के बारे में सूचित नहीं करना और याचिकाकर्ता की उपस्थिति में कोई सबूत दर्ज नहीं करना और याचिकाकर्ता को जिरह का कोई अवसर नहीं देना जाँच को निष्प्रभावी बनाता है। संबंधित प्रस्तर 7 अधोउद्धृत किया गया है: -

"आरोपों से इनकार किया गया था। आरोप की मौखिक जाँच आवश्यक थी। रिट याचिका के संबंधित प्रस्तर में यह दावा किया गया है कि याचिकाकर्ता को ऐसी मौखिक पूछताछ की तारीख और समय के बारे में कभी सूचित नहीं किया गया और उसकी उपस्थिति में कोई सबूत दर्ज नहीं किया गया या जिरह का कोई अवसर नहीं दिया गया। यह भी कहा गया है कि उसे बचाव में सबूत पेश करने हेतु कभी नहीं कहा गया (रिट याचिका के प्रस्तर 19, 19-8, 19-डी, 19-ई, 20, 21 देखें)। प्रतिशपथ पत्र के अवलोकन से पता चलता है कि हालांकि इस आशय के कथन हैं कि याचिकाकर्ता को मामले में अपनी बात कहने का भरपूर अवसर दिया गया था, परन्तु यह निर्दिष्ट नहीं किया गया था कि क्या उसे मौखिक जाँच की तारीख या तारीखों के बारे में सूचित किया गया था, यदि हाँ तो किस तरीके से। सामान्य इनकार ही पर्याप्त था। विभाग को यह बताना चाहिए था कि मौखिक जाँच हेतु ऐसी तारीखें तय की गई थीं, और याचिकाकर्ता को ऐसी तारीखों के बारे में ऐसे-ऐसे तरीके से सूचित किया गया था, आदि। भले ही याचिकाकर्ता प्रतिशपथ पत्र के प्रस्तर (छह) में आरोपित किए गए अनुसार

अवलोकन

सहयोग नहीं कर रहा था, परन्तु तारीख या तारीखों की सूचना के बाद मौखिक जाँच कानूनी आवश्यकता थी। न्यायालय का मानना है कि उक्त कारणों से और सुनवाई का उचित अवसर न दिए जाने के कारण सजा का आदेश दोषपूर्ण है।

17. अब्दुल सलाम (उपरिवर्णित) के मामले में, यह माना गया कि संपूर्ण जाँच कार्यवाही आरोप पत्र के आधार पर की गई, जिसमें कर्मचारी द्वारा मौखिक जाँच की तारीख, समय और स्थान तय किए बिना और उसके आरोपों के समर्थन में गवाहों की जाँच किए बिना जवाब प्रस्तुत किया गया, यह माना गया कि विभागीय जाँच स्थापित विधि के अनुसार नहीं थी और आदेश रद्द कर दिए गए। प्रासंगिक प्रस्तर संख्या 16, 17, 24, 25, 26, 27 और 29 अधोउद्धृत हैं।

16. *किसी भी निष्कर्ष पर पहुँचने से पहले, विभागीय जाँच और एक दोषी कर्मचारी की सजा के संबंध में कानूनी स्थिति का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा। बार-बार, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय ने भी फैसला सुनाया है कि बड़ी सजा देने हेतु जाँच के मामले में कोई शॉर्ट-कट स्वीकार्य नहीं है। आरोप से अवगत कराने हेतु आरोप-पत्र अपराधी को प्रस्तुत किया जाना चाहिए, जो विशिष्ट होना चाहिए, साथ ही मौखिक और दस्तावेजी दोनों साक्ष्य होने चाहिए, जिन पर विभाग आरोप को कायम रखने हेतु भरोसा करना चाहता है। यदि आरोप-पत्र की तामील के बाद अपराधी को किसी दस्तावेज या उसकी प्रतिलिपि की आवश्यकता होती है, तो जाँच अधिकारी को उन दस्तावेजों में ऐसी उपस्थिति पर विचार करना होगा जो जाँच हेतु प्रासंगिक पाए जाते हैं या अपराधी को दिए जाने हैं। यदि किसी ऐसे दस्तावेज की प्रतियां किसी वैध कारण से प्रदान नहीं की जा सकती हैं, तो अपराधी को ऐसे अभिलेखों का निरीक्षण करने हेतु स्वतंत्र पहुंच प्रदान की जानी चाहिए। इस चरण के बाद, अपराधी को दिए गए समय-सारिणी के भीतर उत्तर प्रस्तुत करना होगा और अपराधी को बुलाने की तिथि, समय और स्थान तय करते हुए जाँच प्रक्रिया शुरू करनी होगी।*

17. आमतौर पर, आरोपों को साबित करने हेतु विभाग द्वारा सबूत पहले पेश किए जाने की आवश्यकता होती है, जिसमें अपराधी को भी भाग लेने की अनुमति दी जाती है, जो गवाहों से जिरह कर सकता है, या तो खंडन में या आरोपों को खारिज करने हेतु साक्ष्य जोड़ने का अवसर दे सकता है। इसके बाद जाँच अधिकारी को यह कहते हुए अपनी रिपोर्ट देनी होती है कि कोई भी आरोप साबित हुआ है या नहीं। आरोप को साबित करने हेतु पुष्टि करने वाले सबूत होने चाहिए और विभाग द्वारा दस्तावेजी सबूत हेतु कोई सामग्री पेश किए बिना आरोप साबित नहीं हो सकता। अभिलेख पर मौजूद दस्तावेजों से तथ्यों की पुष्टि होनी चाहिए और यदि किसी रिपोर्ट पर भी विश्वास व्यक्त किया जा रहा है, तो उक्त रिपोर्ट को उस व्यक्ति द्वारा प्रमाणित किया जाना भी आवश्यक है जिसने रिपोर्ट प्रस्तुत की है, इसलिए, इस उद्देश्य हेतु मौखिक जाँच की जाती है। आरोपों को साबित करने हेतु आयोजित किया जाना आवश्यक है।

24. वर्तमान मामले में अभिलेखों से यह स्पष्ट है कि पूछताछ अधिकारी को जाँच के दौरान आदेश दिनांक 03.07.2002 आया था इस निष्कर्ष पर कि सुनवाई का अवसर प्रदान

अनुवादित

करना आवश्यक है दोषी कर्मचारी और उस उद्देश्य हेतु 15.07.2002 की तारीख तय की थी। यद्यपि, 15.07.2002 को पूछताछ नहीं हो सकी, इसलिए दूसरी तारीख दी गई तय। इसके बाद जाँच अधिकारी द्वारा कुछ तारीखें तय की गईं और ऐसा हुआ दिनांक 29.8.2002 के एक आदेश द्वारा, जाँच अधिकारी ने पाया था कि नहीं दोषी कर्मचारी को अन्य दस्तावेज़ देना आवश्यक है, इसलिए, अपराधी द्वारा उत्तर प्रस्तुत करने हेतु 07.09.2002 निर्धारित की गई थी। यह है दिनांक 17.10.2002 की जाँच रिपोर्ट से सामने आए तथ्य को स्वीकार किया। दोषी कर्मचारी ने अपना लिखित उत्तर 05.10.2002 को प्रस्तुत किया था। तथापि, अभिलेख के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि दोषी कर्मचारी द्वारा आरोप-पत्र का उत्तर प्रस्तुत करने के पश्चात मौखिक जाँच करने हेतु जाँच अधिकारी द्वारा कोई तिथि, समय और स्थान निर्धारित नहीं किया गया था तथा सम्पूर्ण जाँच कार्यवाही, कथित आरोप के समर्थन में प्रस्तुत दस्तावेजी साक्ष्य पर निर्भर करते हुए, दोषी कर्मचारी द्वारा प्रस्तुत आरोप-पत्र तथा उत्तर के आधार पर पूरी की गई थी।

25. विद्वान एकल न्यायाधीश ने आक्षेपित निर्णय में यह निष्कर्ष निकाला है कि जाँच अधिकारी ने किसी गवाह से पूछताछ नहीं की, क्योंकि किसी गवाह को बुलाने की कोई आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि आरोप के समर्थन में मात्र दस्तावेजों पर ही विश्वास व्यक्त किया गया था तथा दस्तावेज इतने स्पष्ट थे कि उन्हें किसी गवाह द्वारा सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं थी। विद्वान एकल न्यायाधीश ने आगे यह भी कहा है कि यदि हम जाँच अधिकारी की रिपोर्ट की जाँच करें, तो वास्तव में दस्तावेजी साक्ष्य इतने भारी प्रतीत होते हैं कि जाँच अधिकारी हेतु आरोप के समर्थन में किसी गवाह को बुलाना अनिवार्य नहीं था।

26. विद्वान एकल न्यायाधीश ने, तथापि, इस बात पर विचार नहीं किया कि यदि आरोपों के समर्थन में गवाहों की जाँच करना आवश्यक नहीं था, तब भी जाँच अधिकारी का यह दायित्व था कि वह आरोप-पत्र पर उत्तर प्रस्तुत करने के पश्चात मौखिक जाँच करने हेतु तारीख, समय और स्थान निर्धारित करता, ताकि आरोपों के समर्थन में दाखिल साक्ष्यों का मूल्यांकन दोषी कर्मचारी की उपस्थिति में किया जा सके और विभाग को कथित आरोपों को साबित करने हेतु कहा जा सके। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि वर्तमान मामले में जाँच अधिकारी द्वारा ऐसा अभ्यास नहीं किया गया था।

27. मामले के मद्देनजर, हमारा यह सुविचारित राय है कि अपीलार्थी-याचिकाकर्ता के विरुद्ध की गई विभागीय जाँच, जिसके आधार पर सेवा से बर्खास्तगी की सजा दी गई थी, सर्वोच्च न्यायालय और इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि के अनुसार नहीं की गई थी, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है।

Xxxxx

29. उपरोक्त के मद्देनजर, रिट याचिका संख्या 151 (एसएस) 2003 में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 31.01.2007 का विवादित निर्णय और आदेश संधारणीय नहीं है और इसे अपास्त किया जाता है। विरोधी पक्ष संख्या 3 द्वारा पारित दिनांक 27.12.2002 का दण्ड आदेश भी निरस्त किये जाने योग्य है, जिसे निरस्त किया जाता है।

अप्रमाणित

18. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा (2010) 2 एससीसी 772 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि कर्मचारी के साथ किसी भी कार्यवाही में निष्पक्ष व्यवहार किया जाना चाहिए, जिसके परिणामस्वरूप उसे सजा दी जा सकती है।

19. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने तर्क के समर्थन में निम्नलिखित निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया है

(i) विजय एस सत्या बनाम इंडियन एयरलाइंस एवं अन्य (2013(31) एलसीडी 1938)
(ii) उत्तर पूर्वी कर्नाटक आर.टी. कॉरपोरेशन बनाम आशप्पा(एमएएनयू/एससीसी/8174/2006)
(iii) हरियाणा वित्तीय निगम एवं अन्य बनाम कैलाश चंद्र आहूजा (एमएएनयू /एससीसी/7804/2008)

20. जहाँ तक विजय एस. सत्या (उपरिवर्णित) के मामले में विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए निर्णयों का संबंध है, उस मामले में याचिकाकर्ता ने स्वेच्छा से प्रतिवादी की सेवा छोड़ दी है। यहाँ ऐसा कोई मामला नहीं है। यहाँ याचिकाकर्ता ने वर्ष 1996 में शामिल होने का अनुरोध किया है, इसलिए तथ्यों के आधार पर निर्णय को अलग रखा गया है।

21. जहाँ तक उत्तर पूर्वी कर्नाटक आर.टी. कॉरपोरेशन (उपरिवर्णित) के निर्णय का संबंध है, सर्वोच्च न्यायालय इस बात से निपट रहा है कि सेवा से बर्खास्तगी की सजा असंगत है या नहीं। यहाँ ऐसा कोई मामला नहीं है।

22. जहाँ तक हरियाणा वित्त निगम (उपरिवर्णित) के मामले में निर्णय का संबंध है, जाँच के दौरान मौखिक जाँच सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष प्रश्नगत नहीं थी, मात्र जाँच अधिकारी द्वारा दोषी कर्मचारी को रिपोर्ट की गई जाँच उपलब्ध न करवाने का मामला विचाराधीन था, जहाँ कर्मचारी को पक्षपातपूर्ण रवैया अपनाना था। यहाँ ऐसा कोई मामला नहीं है। यहाँ ऐसा मामला है जहाँ जाँच अधिकारी द्वारा कोई मौखिक जाँच नहीं की गई थी, इसलिए यह निर्णय भी अलग है।

23. विधि की स्थापित प्रक्रिया और इस बात पर विवाद न होने के मद्देनजर कि जाँच अधिकारी द्वारा कोई मौखिक जाँच नहीं की गई है और जाँच हेतु कोई समय, तारीख और स्थान प्रदान नहीं किया गया है, जाँच अधिकारी द्वारा लगाए गए आरोप और जिस दस्तावेज पर विश्वास व्यक्त किया गया है, वह गवाहों की जाँच या जिरह करके प्रदान नहीं किए गए हैं, इसलिए विधि की स्थापित प्रक्रिया के मद्देनजर अनुलग्नक संख्या 1 में निहित विवादित आदेश को रद्द किया जाता है।

24. मामला अनुशासनिक प्राधिकारी को प्रतिप्रेषित किया जाता है तथा उन्हें निर्देश दिया जाता है कि वे इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तिथि से 3 महीने की अवधि के भीतर आरोप-पत्र प्रस्तुत करने के चरण से लेकर आगे की जाँच करें। लागत के बारे में कोई आदेश नहीं होगा।

अनुवादित

(2023) 6 ILRA 278

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 31.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान

रिट बी संख्या 388 वर्ष 2023

और

रिट बी संख्या 419 वर्ष 2023

दया शंकर एवं अन्य. ..याचिकाकर्ता

बनाम

उप संचालक चकबंदी, खीरी, जिला खीरी एवं अन्य. ..प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के वकील: प्रदीप कुमार तिवारी, परमात्मा प्रसाद सिंह

प्रतिवादियों के वकील: सी.एस.सी., दिलीप कुमार पाण्डेय

ए. सिविल लॉ - यू.पी. भूमि जोत अधिनियम, 1961 की धारा 27(3) पर अधिकतम सीमा निर्धारण - वन अधिनियम, 1927 की धारा 4 एवं 20 - उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम, 1954 की धारा 9-ए(2)-पट्टा- अधिनियम, 1960 के अंतर्गत अधिप्लस घोषित भूमि का आवंटन एसडीओ द्वारा पट्टा विलेख के निष्पादन द्वारा किया गया था- अधिनियम, 1927 की धारा 4 के अंतर्गत अधिसूचना जारी होने के पश्चात विचाराधीन भूमि वन विभाग में निहित हो जाती है तथा कोई भी व्यक्ति किसी भी पश्चातवर्ती पट्टे के आधार पर किसी भी प्रकार का अधिकार या स्वामित्व का दावा नहीं कर सकता है- इसके अतिरिक्त अधिनियम, 1960 की धारा 27(3) के अनुसार पट्टा केवल कलेक्टर द्वारा प्रदान किया जा सकता है, तथा एसडीओ द्वारा पट्टा प्रदान किया जा सकता है। पट्टा देने के लिए सक्षम प्राधिकारी नहीं था-पट्टे के आधार पर भूमि पर याचिकाकर्ताओं का दावा, टिकाऊ नहीं-कानून इस बिंदु पर तय है कि यदि कोई आदेश अक्षम प्राधिकारी द्वारा पारित किया जाता है, तो वैधानिक नुस्खों के बावजूद, वह आदेश कानून की दृष्टि में अमान्य होगा और शुरू से ही शून्य होगा- इसलिए, अवैध और शून्य आदेश के आधार पर संबंधित भूमि के संबंध में याचिकाकर्ताओं के किसी भी दावे पर विचार नहीं किया जा सकता है। (पैरा 2 से 40)

रिट याचिकाएं खारिज की जाती हैं। (ई-6)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम डीडीसी और अन्य (1996) 5 एससीसी 194
2. प्रभज्ञ वन अधिकारी अवध वन प्रभाग बनाम अरुण कुमार भारद्वाज (मृत) एलआरएस और अन्य के माध्यम से। (2021) एआईआर एससी 4739
3. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम कमल जीत सिंह (2017) 9 एडीजे 768
4. उत्तर प्रदेश बनाम डीडीसी एवं अन्य (1996) 5 एसएससी 194

(माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान द्वारा दिया गया)

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री पी.के. तिवारी, श्री शैलेन्द्र कुमार सिंह, विद्वान मुख्य स्थाई अधिवक्ता-II और श्री उपेन्द्र सिंह,विद्वान स्थायी अधिवक्ता राज्य प्रतिवादियों के तथा श्री दिलीप कुमार पाण्डेय, विद्वान अधिवक्ता विपक्षी संख्या 6/गांव सभा को सुना गया।

2. चूंकि दोनों रिट याचिकाओं में विवाद एक जैसा है, इसलिए, पक्षकारों की सहमति से दोनों

अनुवादित

रिट याचिकायें एक ही निर्णय द्वारा निर्णीत की जा रही है।

3. राज्य सरकार के विद्वान अधिवक्ता ने विस्तृत अनुदेश उपलब्ध कराए हैं, जिनके साथ प्रश्नगत विवाद में इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश तथा उप-विभागीय अधिकारी, निघासन के दिनांक 2.7.1980 के अनुमोदन की प्रतिलिपि, जिसके तहत 58 व्यक्तियों के पक्ष में पट्टा प्रदान किया गया है, तथा अन्य सुसंगत पत्राचार/आदेश संलग्न हैं, जिन्हें अभिलेख पर लिया गया ।

4. विद्वान राज्य अधिवक्ता ने यह दर्शाने के लिए मूल अभिलेख भी प्रस्तुत किए हैं कि न्यायालय को दिए गए अनुदेश उन मूल अभिलेखों से लिए गए हैं।

5. पहली रिट याचिका में याचिकाकर्ताओं ने निम्नलिखित अनुतोष की प्रार्थना की है:

"(i) रिट, आदेश या निर्देश उत्प्रेषण की प्रकृति में रद्द करने प्रश्नगत आदेशों दिनांक 14.02.2023, 27.09.2017, 16.07.2016 संशोधित आदेश 21.07.2016 और 31.12.1985 को इस रिट याचिका के साथ अनुलग्नक संख्या 01, 02, 03 और 04 में संलग्न किया जा रहा है।

"(ii) रिट, आदेश या निर्देश परमादेश की प्रकृति में जिसके द्वारा विपक्षी संख्या 04 और 05 को आदेश/निर्देश दिया जाय कि वे प्रश्नगत भूमि पर याचिकाकर्ता के शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप न करें।"

6. दूसरी रिट याचिका में याचिकाकर्ताओं ने निम्नलिखित अनुतोष की प्रार्थना की है:

"(i) रिट, आदेश या निर्देश उत्प्रेषण की प्रकृति में रद्द करने प्रश्नगत आदेशों दिनांक 14.02.2023, 27.09.2017, 16.07.2016 संशोधित आदेश 21.07.2016 और 31.12.1985 को इस रिट याचिका के साथ अनुलग्नक संख्या 01, 02, 03 और 04 में संलग्न किया जा रहा है।

"(ii) रिट, आदेश या निर्देश परमादेश की प्रकृति में जिसके द्वारा विपक्षी संख्या 04 और 05 को आदेश/निर्देश दिया जाय कि वे प्रश्नगत भूमि पर याचिकाकर्ता के शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप न करें।"

7. यह कथन किया गया है कि विवादित गाटा उत्तर प्रदेश के जमींदारी उन्मूलन अधिनियम के तहत जमींदारी उन्मूलन से पहले रानी भुवन कुमारी पत्नी राजा प्रताप विक्रम शाह, निवासी सिंघई के नाम पर दर्ज किए गए थे, जो ग्राम खैरटिया, परगना- खैरीगढ़, तहसील- निघासन, जिला खीरी में स्थित भूखंड संख्या 1 स और 23 स के साथ-साथ कई अन्य भूखंडों के जमींदार थे। जमींदारी उन्मूलन के बाद उक्त भूखंड रानी भुवन कुमारी की जोत बन गए और वे ऊपर उल्लिखित भूखंडों की भूमिधर बन गईं।

8. उत्तर प्रदेश अधिकतम जोत सीमा आरोपण अधिनियम, 1960 के लागू होने पर रानी भुवन कुमारी के विरुद्ध कार्यवाही शुरू की गई। उत्तर प्रदेश अधिकतम जोत सीमा आरोपण अधिनियम, 1960 के अंतर्गत विहित प्राधिकारी ने 05.12.1968 को 423.39 एकड़ भूमि को अधिशेष घोषित किया, जिसमें भूखंड संख्या 1-स और 23 स की 379.10 एकड़ भूमि तथा अन्य गाटा शामिल थे।

9. भूमि को अधिशेष घोषित किए जाने के बाद वर्ष 1376-एफ से 1378-एफ तक की खतौनी में इस प्रभाव का पृष्ठांकन किया

अनुवादित

गया,इसके बाद भूखंडों को उत्तर प्रदेश राज्य ने अपने कब्जे में ले लिया।

10. भारतीय वन अधिनियम की धारा 4 के अन्तर्गत प्रस्तावित अधिसूचना संख्या 1734/14-43-54 कुल क्षेत्रफल 2555 एकड़ 29.03.1954 को विवादित गाटा सहित प्रकाशित की गयी।

11. तत्पश्चात लखीमपुर के जिला प्राधिकारी ने दिनांक 2.07.1980 को सरकारी अनुदान अधिनियम के तहत उपरोक्त प्रत्येक याचिकाकर्ताओं के पक्ष में भूखंड संख्या 1- स और 23 स के साथ-साथ 3 एकड़ क्षेत्रफल वाले अन्य भूखंडों का पट्टा निष्पादित किया।

12. संबंधित भूखंडों का पट्टा विलेख निष्पादित होने के बाद याचिकाकर्ताओं को कब्जा दे दिया गया। पट्टे 2 जुलाई, 1980 को निष्पादित किए गए, याचिकाकर्ताओं और अन्य को उत्तर प्रदेश अधिकतम जोत सीमा आरोपण अधिनियम, 1960 की धारा 27(3) के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए संबंधित प्राधिकारी द्वारा स्थायी पट्टे दिए गए। और पट्टे के आधार पर याचिकाकर्ताओं का नाम खैरटिया गांव की संबंधित खतौनी में दर्ज किया गया।

13. वन अधिकारियों/प्रतिवादियों का कथन है कि वन अधिनियम की धारा 20 अधिसूचना संख्या 1737/14-बी-53-54 दिनांक 29.03.1954 के अनुसरण में दिनांक 11.04.1984 को संख्या 1655/14-2-20(39)-81 द्वारा प्रकाशित की गई थी, माननीय राज्यपाल के अनुमोदन से दिनांक 15.06.1984 से प्रश्नगत भूमि को अन्य भूमि के साथ वन आरक्षित भूमि घोषित किया गया है।

14. वन अधिकारियों ने चकबंदी अधिकारी लखीमपुर खीरी के समक्ष दिनांक 02.12.1985 को आपत्ति दायर की जिसमें दावा किया गया कि भूखंड संख्या 1- स क्षेत्रफल 3 एकड़ और 23 स जो याचिकाकर्ताओं के कब्जे में है, को वन घोषित करने का प्रस्ताव है और उपरोक्त भूमि के संबंध में एक अधिसूचना राजपत्र में प्रकाशन के लिए भेजी गई है। यह आपत्ति चकबंदी अधिनियम की धारा 9-क (2) के अंतर्गत वाद संख्या 184 से 276 के रूप में पंजीकृत की गई थी।

15. चकबंदी अधिकारी ने कथित तौर से पट्टाधारकों का नाम अवैध रूप से काट दिया और उनके कब्जे को उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 9 क (2) के अंतर्गत वाद संख्या 184 से 276 में दिनांक 31.12.1985 के आदेश द्वारा अवैध घोषित कर दिया गया। उपरोक्त मामले में यह तथ्य स्वीकार किया गया है कि पट्टाधारक का कब्जा है तथा उनके नाम असंक्रमणीय अधिकरों वाले भूमिधर के रूप में दर्ज है।

16. वन अधिनियम 1927 की धारा 20 के अन्तर्गत जारी अधिसूचना दिनांक 11.04.1984 को उत्तर प्रदेश राज्य के बाबू लाल एवं 51 अन्य पट्टाधारकों द्वारा चुनौती दी गयी थी, रिट याचिका संख्या 1771/1987 बाबू लाल व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, शीर्षक रिट याचिका संख्या 1771/1987 बाबू लाल व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य के तौर पर, उक्त रिट याचिका को इस माननीय न्यायालय द्वारा दिनांक 17.05.2005 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था, दयाशंकर और 9 अन्य द्वारा रिट याचिका संख्या 5690/2000 दायर की जिसके द्वारा

अनुवादित

उन्होंने वन अधिनियम की धारा 20 के तहत दिनांक 11.04.1984 की अधिसूचना को चुनौती इसको रद्द के लिए दी थी इसे इस माननीय न्यायालय द्वारा दिनांक 21.11.2000 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था, रिट याचिका संख्या 63/2001 एम/बी रामनगीना और 9 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, जिसके द्वारा उन्होंने वन अधिनियम की धारा 20 के तहत 11.04.1984 की अधिसूचना को चुनौती इसको रद्द के लिए दी थी इसे इस माननीय न्यायालय द्वारा दिनांक 19.09.2007 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था ।

17. पट्टाधारकों द्वारा आदेश दिनांक 31.12.1985 के विरूद्ध उ०प्र० भूमि जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 11 (1) के अन्तर्गत अपील संख्या 1576 से 1581/1992-1993 दाखिल की गयी, गाटा संख्या 23 को छोड़कर सभी अपीलें स्वीकार कर ली गईं और मामला एस.ओ.सी. खीरी के आदेश दिनांक 24.06.1993 द्वारा विचारण न्यायालय को वापस कर दिया गया।

18. वापसी आदेश के अनुपालन में मामले की सुनवाई चकबंदी अधिकारी द्वारा पुनः की गई, याचिकाकर्ताओं द्वारा मामले में विचारण न्यायालय के समक्ष लिखित बहस दाखिल की गईं, चकबंदी अधिकारी ने पुनः एकपक्षीय आदेश दिनांक 31.12.1985 की पुष्टि की जिसे अपील में पहले ही निरस्त कर दिया गया था, तथा याचिकाकर्ताओं के मामले पर विचार किए बिना ही निर्देश दिया कि संबंधित भूमि को वन भूमि के रूप में दर्ज किया जाएगा। इसके अलावा, दिनांक 16.07.2016 के आदेश को दिनांक 21.7.2016 के आदेश द्वारा संशोधित किया गया।

19. विपक्षी संख्या 3 द्वारा पारित आदेश दिनांक 16.07.2016 के विरूद्ध कुल 71 अपीलें प्रस्तुत की गयीं, सभी अपीलें यकजाई कर दी गयीं, अपील संख्या 558/2016 को प्रमुख किया गया, सभी अपीलों को याचिकाकर्ताओं के मामले तथा याचिकाकर्ताओं द्वारा दाखिल अभिलेखों पर उपलब्ध साक्ष्यों पर विचार किये बिना मनमाने तरीके से दिनांक 27.09.2017 के अवैध आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया।

20. दिनांक 27.09.2017 एवं 16.07.2016 के आदेशों से व्यथित होकर याचिकाकर्ताओं द्वारा विपक्षी संख्या 1 के समक्ष विभिन्न तिथियों पर पुनरीक्षण प्रस्तुत किया गया।

21. उपरोक्त सभी पुनरीक्षणों को विपक्षी संख्या 1 द्वारा याचिकाकर्ताओं के मामले और याचिकाकर्ताओं द्वारा दाखिल अभिलेखों पर उपलब्ध साक्ष्यों पर विचार किए बिना मनमाने तरीके से अवैध रूप से दिनांक 14.02.2023 के अवैध आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया।

22. इसके विपरीत, प्रारम्भ में ही राज्य सरकार के विद्वान अधिवक्ता ने यह कहा है कि प्रश्नगत विवाद में चकबंदी अधिकारी, बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी तथा उप संचालक, चकबंदी, लखीमपुर खीरी का विषय-वस्तु पर तथ्यों का समवर्ती निष्कर्ष है, इसलिए विभिन्न मामलों में सर्वोच्च न्यायालय के स्थापित विधिक सिद्धांतो को देखते हुए, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उपर्युक्त समवर्ती निष्कर्षों में हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं हो सकती है।

अनुवादित

23. वर्तमान मामले में भारतीय वन अधिनियम, 1927 की धारा 4 के तहत अधिसूचना (जिसे आगे 'अधिनियम, 1927' के रूप में संदर्भित किया जाएगा) गजट अधिसूचना सं. 1737/14 दिनांक 29.3.1954 प्रस्तावित 2555 एकड़ भूमि को वन क्षेत्र के लिए आरक्षित करने की है। अधिनियम, 1927 की धारा 4 नीचे पुन: उद्धृत की जा रही है:

4. [राज्य सरकार] द्वारा अधिसूचना। (1) जब कभी किसी भूमि को आरक्षित वन बनाने का निर्णय लिया गया है, तो [राज्य सरकार] [आधिकारिक राजपत्र] में अधिसूचना जारी करेगी (क) यह घोषित करना कि ऐसी भूमि को आरक्षित वन बनाने का निर्णय लिया गया है; (ख) ऐसी भूमि की स्थिति और सीमाओं को यथासंभव निर्दिष्ट करना; तथा

(ग) किसी व्यक्ति के पक्ष में ऐसी सीमाओं के भीतर समाविष्ट किसी भूमि में या उसके ऊपर अथवा किसी वन-उपज में या उसके ऊपर कथित रूप से विद्यमान किसी अधिकार के अस्तित्व, प्रकृति और विस्तार की जांच करने और उसका अवधारण करने तथा इस अध्याय में उपबंधित रूप में उससे निपटने के लिए एक अधिकारी (जिसे इसमें इसके पश्चात् "वन बंदोबस्त - अधिकारी" कहा जाएगा) की नियुक्ति करना।

स्पष्टीकरण. खंड (ख) के प्रयोजन के लिए, सड़कों, नदियों, पर्वतमालाओं या अन्य सुविदित या आसानी से समझ में आने वाली सीमाओं द्वारा वन की सीमाओं का वर्णन करना पर्याप्त होगा।

(2) उपधारा (1) के खंड (ग) के अधीन नियुक्त अधिकारी सामान्यतया ऐसा व्यक्ति होगा जो वन बंदोबस्त- अधिकारी के पद के अलावा कोई वन-पद धारण नहीं करता है।

(3) इस धारा की कोई बात [राज्य सरकार] को इस अधिनियम के अधीन वन बंदोबस्त अधिकारी के कर्तव्यों का पालन करने के लिए तीन से अनधिक अधिकारियों को, जिनमें से एक पूर्वोक्त के सिवाय कोई वन-पद धारण करने वाला व्यक्ति होगा, नियुक्त करने से नहीं रोकेगी।

24. वर्तमान विवाद के निपटारे के लिए वन अधिनियम, 1927 की धारा 5, 20 और 23 को पुनः उद्धृत करना आवश्यक होगा:

5. वन अधिकारों के उपार्जन पर रोक। धारा 4 के अंतर्गत अधिसूचना जारी होने के पश्चात् ऐसी अधिसूचना में समाविष्ट भूमि में या उसके ऊपर कोई अधिकार उत्तराधिकार द्वारा या सरकार या किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा या उसकी ओर से किए गए या किए गए लिखित अनुदान या अनुबंध के अधीन ही अर्जित किया जाएगा, जिसमें अधिसूचना जारी किए जाने के समय ऐसा अधिकार निहित था; और ऐसी भूमि पर खेती या किसी अन्य प्रयोजन के लिए कोई नई कटाई सफाई ऐसे नियमों के अनुसार ही की जाएगी, जो 2[राज्य सरकार] इस निमित्त बनाए जाएं।

20.20. वन को आरक्षित घोषित करने संबंधी अधिसूचना। (1) जब निम्नलिखित घटनाएँ घटित हुई हों, अर्थात्:

(क) दावे प्रस्तुत करने के लिए धारा 6 के अधीन नियत अवधि बीत गई है और उस धारा या धारा 9 के अधीन किए गए सभी दावों का (यदि कोई हो) वन बंदोबस्त-अधिकारी द्वारा निपटारा कर दिया गया है;(ख) यदि ऐसे कोई दावे किए गए हैं, तो ऐसे दावों पर पारित

अनुवादित

आदेशों के विरुद्ध अपील करने के लिए धारा 17 द्वारा सीमित अवधि बीत गई है, और ऐसी अवधि के भीतर प्रस्तुत सभी अपीलों (यदि कोई हो) का निपटारा अपील अधिकारी या न्यायालय द्वारा कर दिया गया है; और

(ग) प्रस्तावित वन में सम्मिलित की जाने वाली समस्त भूमि (यदि कोई हो), जिसे वन बंदोबस्त अधिकारी ने धारा 11 के अधीन भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 (1894 / 1) के अधीन अर्जित करने का चुनाव किया है, उस अधिनियम की धारा 16 के अधीन सरकार में निहित हो गई है, वहां [राज्य सरकार] [आधिकारिक राजपत्र] में एक अधिसूचना प्रकाशित करेगी,बनाए गए सीमा- चिह्नों के अनुसार या अन्यथा, आरक्षित किए जाने वाले वन की सीमाओं को स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट करना तथा अधिसूचना द्वारा निर्धारित तिथि से उसे आरक्षित घोषित करना।

(2) इस प्रकार निर्धारित तिथि से ऐसा वन आरक्षित वन माना जाएगा।

23. आरक्षित वन पर कोई अधिकार अर्जित नहीं किया जाएगा, सिवाय इसके कि यहां प्रावधान किया गया हो.- किसी भी प्रकार का कोई अधिकार किसी आरक्षित वन में या उसके ऊपर उत्तराधिकार के अलावा या [सरकार[द्वारा या उसकी ओर से लिखित अनुदान या अनुबंध के तहत अर्जित नहीं किया जाएगा, या कोई व्यक्ति जिसके पास ऐसा अधिकार था धारा 20 के अंतर्गत अधिसूचना जारी होने पर निहित हो गई."

25. राज्य प्रतिवादियों द्वारा दिए गए अनुदेशों के अनुसार यह स्पष्ट है कि समान एवं समरूप पक्षों के संबंध में दावे को वन बंदोबस्त अधिकारी, निघासन द्वारा खारिज कर दिया गया है और उन आदेशों को अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष चुनौती दी गई थी और उन अपीलों को अपीलीय प्राधिकारी द्वारा खारिज कर दिया गया था। न केवल उपरोक्त, बल्कि कुछ समान और समान स्थिति वाले व्यक्तियों ने भी इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका दायर की है, जिसे खारिज कर दिया गया है। इसके बाद विशेष अपील दायर की गई जिसे भी खारिज कर दिया गया। रिट याचिका संख्या 192/1959 नामक एक रिट याचिका डॉ. गुरदीप सिंह एवं अन्य बनाम प्रभागीय वनाधिकारी, उत्तर खीरी प्रभाग, खीरी एवं अन्य शीर्षक से दायर की गई थी, जिसे दिनांक 18.5.1964 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया। दिनांक 18.5.1964 के आदेश के विरुद्ध विशेष अपील संख्या 118/1964: डॉ. गुरदीप सिंह बनाम प्रभागीय वनाधिकारी, उत्तर खीरी प्रभाग, खीरी एवं अन्य दायर की गई तथा दिनांक 19.10.1966 के आदेश द्वारा इस न्यायालय द्वारा खारिज कर दी गई। इतना ही नही डॉ. गुरदीप सिंह और उनकी पत्नी द्वारा यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 229 बी के तहत घोषणात्मक वाद दायर किया गया था जिसका अंतिम निर्णय 30.11.1966 को हुआ था जिसके तहत उक्त मुकदमे को खर्चे के साथ खारिज कर दिया गया था। उपरोक्त गुरदीप सिंह ने पुनः रिट याचिका संख्या 931/1975 दायर की जिसे इस न्यायालय ने दिनांक 8.3.1979 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया। एक अन्य व्यक्ति ने रिट याचिका संख्या 2380/1998 (एम/बी) (सुरजीत सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य) दायर की है जिसे भी दिनांक

अनुवादित

6.8.1998 के निर्णय एवं आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया है।

26. प्रश्नगत भूमि से संबंधित विवाद के लिए बाबूलाल एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य शीर्षक से एक रिट याचिका संख्या 1771/1987 दायर की गई थी जिसे इस न्यायालय द्वारा दिनांक 17.5.2005 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। सुविधा के लिए दिनांक 17.5.2005 का आदेश नीचे पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:

"इस याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता भारतीय वन अधिनियम की धारा 20 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए जारी की गई 11 अप्रैल, 1984 की अधिसूचना को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण-लेख की प्रकृति में निर्देश चाहते हैं और प्रतिवादियों को याचिका के अनुलग्नक 2 में दिखाए गए खैरटिया गांव के भूखंड संख्या 1-स और 23-स के संबंध में याचिकाकर्ताओं के भूमि और उन्हें आवंटित क्षेत्र पर कब्जे में हस्तक्षेप न करने का निर्देश देने के लिए परमादेश की प्रकृति में आगे निर्देश चाहते हैं।

याचिकाकर्ताओं का मामला यह है कि विचाराधीन भूमि रानी भुवन कुमारी पत्नी राजा प्रताप विक्रम शाह की थी और उसे उत्तर प्रदेश भूमि जोत अधिरोपण अधिनियम, 1960 की धारा 27 () के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए कलेक्टर द्वारा अधिशेष घोषित किया गया था। इसके बाद विवादित भूमि याचिकाकर्ताओं को आवंटित कर दी गई और तब से वे विवादित भूमि पर काबिज हैं। याचिका में आगे कहा गया है कि उक्त भूमि राजस्व अभिलेखों में याचिकाकर्ताओं के नाम पर दर्ज है और इस प्रकार उक्त भूमि वन विभाग की नहीं है। इसलिए, यह प्रार्थना की जाती है कि याचिकाकर्ताओं के कब्जे को विवादित भूमि में बाधित न किया जाए।

याचिका में अन्य बातों के अलावा इस आधार पर विरोध किया गया है कि रानी भुवन कुमारी पत्नी राजा प्रताप विक्रम शाह का विवादित भूखंडों पर कोई अधिकार नहीं है क्योंकि 29.3.1954 को भारतीय वन अधिनियम की धारा 4 के तहत अधिसूचना जारी करने के बाद, उन्होंने वन बंदोबस्त अधिकारी, निघासन खीरी के समक्ष भारतीय वन अधिनियम की धारा 6/9 के तहत आपत्ति दायर की, जिसे 30.9.1958 को खारिज कर दिया गया, जिसकी एक प्रति प्रति शपथ पत्र के साथ अनुलग्नक सीए-1 में संलग्न है। उस आदेश के विरुद्ध रानी भुवन कुमारी ने उप आयुक्त , खीरी के समक्ष अपील दायर की, जिसे भी 30.4.1959 को खारिज कर दिया गया, आदेश की प्रमाणित प्रति प्रति शपथ पत्र के साथ अनुलग्नक सीए-2में संलग्न है। इस प्रकार रानी भुवन कुमारी के सभी अधिकार समाप्त हो गए और वन बंदोबस्त अधिकारी का निर्णय अंतिम हो गया। आगे दलील दी गई है कि कोई अधिशेष भूमि घोषित नहीं की गई थी और विहित प्राधिकारी, निघासन ने सीएच अधिनियम की धारा 14 (3) के तहत मामला संख्या 243 में 30.5.1964 को आदेश पारित किया था। विवादित भूखंड रानी भुवन कुमारी देवी के पास नहीं है, इसलिए उन भूखंडों को अधिशेष क्षेत्र से बाहर रखा गया है। उक्त आदेश की प्रमाणित प्रति प्रति शपथ-पत्र के साथ अनुलग्नक संख्या सी.ए.-3 के रूप में संलग्न की जा रही है। आगे यह दलील दी गई है कि विवादित भूखंडों को अधिशेष क्षेत्र से बाहर रखा गया है और श्रीमती राजरानी के

अप्रमाणित

अधिशेष के रूप में अधिक भूखंडों को घोषित करने का कोई सवाल ही नहीं है और विवादित भूमि आरक्षित वन की है और विवादित भूखंडों को सीलिंग कार्यवाही से बाहर रखा गया है और चकबंदी न्यायालयों ने भी याचिकाकर्ताओं के खिलाफ चकबंदी अधिकारी, निघासन द्वारा पारित दिनांक 26.3.1984 और 17.1.1985 के आदेशों द्वारा मामले का फैसला किया है और बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी द्वारा पारित दिनांक 18.7.1986 के आदेश की प्रमाणित प्रति अनुलग्नक सीए-एस और सीए-6 के रूप में प्रति शपथ-पत्र के साथ संलग्न की जा रही है। आगे दलील दी गई है कि याचिकाकर्ताओं ने आपत्तियां दर्ज की हैं और चकबंदी न्यायालयों के समक्ष मामले का विरोध किया है। दलील दी गई है कि डॉ. गुरदीप सिंह ने उ० प्र० अधिकतम जोत सीमा आरोपण अधिनियम की धारा 14(3) के तहत आपत्ति दर्ज की और गुरदीप सिंह ने 1976 की संख्या 931 के तहत एक रिट याचिका भी दायर की, जिसे इस न्यायालय ने 8.3.1979 के आदेश के तहत खारिज कर दिया, जिसकी एक प्रति प्रति शपथ-पत्र के साथ अनुलग्नक संख्या सीए-7 में संलग्न की गई है।

हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को विस्तार से सुना है तथा अभिलेखों का अध्ययन किया है तथा पाया है कि विवादित भूमि को भारतीय वन अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत दिनांक 29.3.1954 को अधिसूचना जारी करने के पश्चात पहले ही वन भूमि घोषित किया जा चुका है। वर्ष 1954 में उक्त अधिसूचना जारी होने के बाद याचिकाकर्ताओं और अन्य व्यक्तियों ने वन बंदोबस्त अधिकारी के समक्ष मामला उठाया और याचिकाकर्ताओं और अन्य व्यक्तियों की सभी आपत्तियों को खारिज कर दिया गया और संबंधित भूमि को आरक्षित वन घोषित कर दिया गया। इसलिए, उत्तर प्रदेश भूमि जोत पर सीलिंग लगाने और अन्य कार्यवाही के तहत की गई कार्यवाही का कोई मतलब नहीं है और ऐसी कार्यवाही बाध्यकारी नहीं है और इसका कोई कानूनी प्रभाव नहीं है। -

याचिका में कोई बल नहीं है और इसे खारिज किया जाता है।''

27. उपरोक्त निर्णय में इस न्यायालय की खंडपीठ ने न केवल सक्षम चकबंदी प्राधिकारियों द्वारा पारित आदेशों को बरकरार रखा है, बल्कि अधिनियम, 1960 के तहत प्रभाव को भी स्पष्ट किया है। खंडपीठ ने स्पष्ट रूप से टिप्पणी की है कि उ० प्र० अधिकतम जोत सीमा आरोपण अधिनियम 1960. (जिसे आगे अधिनियम, 1960 कहा जाएगा) तथा अन्य कार्यवाहियों के अंतर्गत की गई कार्यवाही का कोई अर्थ नहीं है तथा ऐसी कार्यवाहियां बाध्यकारी नहीं हैं तथा उनका कोई कानूनी प्रभाव नहीं है। राज्य के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार उपरोक्त आदेश को चुनौती नहीं दी गई है तथा वह आदेश अंतिम हो चुका है इसलिए जहां तक याचिकाकर्ताओं का दावा है कि वे राज्य सरकार के पट्टेदार हैं तथा अधिनियम, 1960 के तहत अधिशेष भूमि के पट्टाधारक होने के कारण वे ऐसी भूमि पर कब्जा पाने के हकदार नहीं हैं।

28. राज्य सरकार के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि प्रश्नगत पट्टा उप-जिलाधिकारी, निघासन द्वारा दिनांक 2.7.1980 को स्वीकृत किया गया था 58 पट्टा धारकों की सूची संलग्नक के साथ

अनुवादित

संलग्न की गई है जिससे स्पष्ट रूप से पता चलता है कि अनुमोदन संबंधित एस.डी.ओ. द्वारा 2.7.1980 को प्रदान किया गया था। विद्वान राज्य अधिवक्ता ने अधिनियम, 1960 की धारा 27 का हवाला दिया है, जो इस प्रकार है:

"27. अधिशेष भूमि का बन्दोबस्त.-(1) राज्य सरकार किसी गांव में, जिसमें सामुदायिक प्रयोजनों के लिए कोई भूमि उपलब्ध नहीं है या जिसमें उपलब्ध भूमि 15 एकड़ से कम है, अधिशेष भूमि में से उस गांव की [गांव सभा] के साथ बन्दोबस्त करेगी तथापि ऐसे बन्दोबस्त के पश्चात् सामुदायिक प्रयोजनों के लिए गांव में उपलब्ध कुल भूमि 15 एकड़ से अधिक नहीं होगी। [गांव सभा] के साथ इस प्रकार बन्दोबस्त की गई भूमि का उपयोग पेड़ लगाने, चारा उगाने या ऐसे अन्य सामुदायिक उद्देश्यों के लिए किया जाएगा, जैसा कि निर्धारित किया जा सकता है।

[(2) राज्य सरकार उपधारा (1) उपधारा (3) के अनुसार किसी अधिशेष भूमि को या तो बंदोबस्त कर सकेगी या धारा 25 के अनुसार उसका उपयोग कर सकेगी या उसके उपयोग की अनुमति दे सकेगी या उसका प्रबंधन कर सकेगी या अन्यथा ऐसी रीति से उससे निपट सकेगी जैसा वह ठीक समझे।]

[(3) किसी भी शेष अधिशेष भूमि को कलेक्टर द्वारा वरीयता क्रम के अनुसार तथा उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 198 की उपधारा (1) और (3) में क्रमशः विनिर्दिष्ट सीमाओं के अधीन रहते हुए बन्दोबस्त किया जाएगा।

[(4) आयुक्त स्वप्रेरणा से तथा किसी व्यथित व्यक्ति के आवेदन पर ऐसे बन्दोबस्त की जांच कर सकेगा और यदि उसका समाधान हो जाता है कि बन्दोबस्त अनियमित है तो वह उस व्यक्ति को, जिसके पक्ष में ऐसा बन्दोबस्त किया गया है कारण बताने के लिए नोटिस देने के पश्चात्- ऐसे निहितीकरण के संबंध में प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 यथावश्यक परिवर्तनों सहित लागू होगा।

(i) बंदोबस्त और पट्टे को, यदि कोई हो, रद्द कर देगा और उसके बाद, किसी अन्य कानून या किसी दस्तावेज में निहित किसी भी बात के बावजूद, उस व्यक्ति के अधिकार, स्वामित्व और हित जिसके पक्ष में ऐसा बंदोबस्त किया गया था या पट्टा निष्पादित किया गया था या ऐसी भूमि पर उसके माध्यम से दावा करने वाले किसी भी व्यक्ति का अधिकार, स्वामित्व और हित समाप्त हो जाएगा, और ऐसी भूमि राज्य सरकार को वापस कर दी जाएगी; और

(ii) निर्देश दे सकेगा कि उस पर कब्जा रखने वाले या उसे बनाए रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति को बेदखल किया जाय और उस प्रयोजन के लिए वह ऐसा बल प्रयोग कर सकेगा या करवा सकेगा जो आवश्यक हो।]

(5) उपधारा (4) के अधीन आयुक्त द्वारा पारित प्रत्येक आदेश अंतिम होगा।

(6) आयुक्त, उपधारा (4) के अधीन स्वप्रेरणा से कार्य करते हुए, सूचना जारी कर सकेगा और उस उपधारा के अधीन आवेदन किया जा सकेगा, -

[(क) 10 नवम्बर, 1980 से पूर्व किए गए किसी बंदोबस्त या दिए गए पट्टे की दशा में, [सात वर्ष] की अवधि की समाप्ति से पूर्व

[(ख) उक्त तारीख से, और या उक्त तारीख के पश्चात किए गए किसी बंदोबस्त या दिए गए

अनुवादित

पट्टे की दशा में, ऐसे बंदोबस्त या पट्टे की तारीख से पांच वर्ष की अवधि की समाप्ति के पूर्व] या 10 नवंबर, 1987 तक, जो भी बाद में हो।]

[(6क) जहां उपधारा (3) के अधीन कलेक्टर द्वारा कोई अधिशेष भूमि बंदोबस्त कर दी गई है और जिस व्यक्ति के पक्ष में ऐसा बंदोबस्त किया गया था, उससे भिन्न कोई व्यक्ति इस अधिनियम के उपबंधों के उल्लंघन में ऐसी भूमि पर अधिभोग में है, वहां कलेक्टर स्वप्रेरणा से और उस व्यक्ति के आवेदन पर जिसके पक्ष में ऐसा बंदोबस्त किया गया था, उसे ऐसी भूमि पर कब्जा दे सकेगा और उस प्रयोजन के लिए ऐसा बल प्रयोग कर सकेगा या करवा सकेगा जैसा वह आवश्यक समझे।

(6ख) जहां कोई व्यक्ति इस धारा के अधीन बेदखल किए जाने के पश्चात् विधिपूर्ण प्राधिकार के बिना भूमि या उसके किसी भाग पर पुनः कब्जा करता है, तो वह कारावास से, दण्डनीय होगा जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी किन्तु जो तीन मास से कम नहीं होगी, और जुर्माने से भी, दण्डनीय होगा, जो तीन हजार रुपए तक का हो सकेगा :

परन्तु अभियुक्त को दोषी ठहराने वाला न्यायालय, दण्डादेश देते समय यह निर्देश दे सकेगा कि जुर्माने की पूरी राशि या उसका ऐसा भाग, जिसे न्यायालय उचित समझे, उस व्यक्ति को, जिसके पक्ष में ऐसा बंदोबस्त किया गया था, उपयोग और अधिभोग के लिए नुकसानी के रूप में दिया जाए।

(6ग) जहां उपधारा (6-बी) के तहत किसी कार्यवाही में, मामले का संज्ञान लिए जाने के बाद किसी भी स्तर पर न्यायालय का शपथपत्र द्वारा या अन्यथा समाधान हो जाता है कि -

(क) अभियुक्त ने अधिनियम के उपबंधों का उल्लंघन करते हुए उस भूमि पर कब्जा कर रखा है जिससे ऐसी कार्यवाही संबंधित है; तथा

(ख) वह व्यक्ति जिसके पक्ष में ऐसा बंदोबस्त किया गया था, ऐसी भूमि पर कब्जे का हकदार है;

न्यायालय मामले का अंतिम निर्धारण होने तक अभियुक्त को ऐसी भूमि से सरसरी तौर पर बेदखल कर सकता है तथा उस व्यक्ति को, जिसके पक्ष में ऐसा बंदोबस्त किया गया था, ऐसी भूमि पर कब्जा दे सकता है।

(6घ) जहां किसी ऐसी कार्यवाही में अभियुक्त को दोषसिद्ध किया जाता है, वहां उपधारा (6-सी) के अंतर्गत पारित अंतरिम आदेश की न्यायालय द्वारा पुष्टि की जाएगी।

(6ङ) जहां किसी ऐसी कार्यवाही में अभियुक्त को दोषमुक्त या उन्मोचित कर दिया जाता है और न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि इस प्रकार दोषमुक्त या उन्मोचित किया गया व्यक्ति ऐसी भूमि पर पुनः कब्जा पाने का हकदार है, वहां न्यायालय ऐसे व्यक्ति के आवेदन पर निर्देश देगा कि कब्जा उसे दे दिया जाए।

(6च) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में किसी बात के होते हुए भी, उपधारा (6-ख) के अधीन दंडनीय प्रत्येक अपराध संज्ञेय और अजमानतीय होगा तथा उस पर संक्षिप्त सुनवाई की जा सकेगी।

6छ) इस धारा के अधीन अपराधों के शीघ्र विचारण के प्रयोजन के लिए, राज्य सरकार, उच्च न्यायालय के परामर्श से, अधिसूचना द्वारा, सब-डिविजनल मजिस्ट्रेट की पंक्ति से अन्यून रैंक के अधिकारी से मिलकर विशेष न्यायालयों का गठन कर सकेगी, जो दंड

अनुवादित

प्रक्रिया संहिता, 1973 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, ऐसे अपराधों के संबंध में प्रथम श्रेणी न्यायिक मजिस्ट्रेट की शक्तियों का प्रयोग करेंगे।]

(7) राज्य सरकार, [निर्धारित तरीके से प्रकाशित किए जाने वाले एक सामान्य या विशेष आदेश द्वारा] घोषित कर सकती है कि इस संबंध में निर्दिष्ट की जाने वाली तारीख से, किसी सर्किल में स्थित सभी अधिशेष भूमि, जो इस अधिनियम के प्रावधानों के तहत बंदोबस्त नहीं की जा सकती थी, संबंधित गाँव सभा में निहित हो जाएगी, और उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 117 के प्रावधान ऐसे निहित होने के संबंध में आवश्यक परिवर्तनों सहित लागू होंगे।

29. कानून के उपरोक्त प्रावधान के आलोक में, विशेष रूप से अधिनियम, 1960 की धारा 27 (3) के अंतर्गत पट्टे की स्वीकृति केवल कलेक्टर द्वारा दी जा सकती है, इसलिए, एस.डी.ओ., निघासन पट्टा स्वीकृति देने के लिए सक्षम प्राधिकारी नहीं थे। अतः याचिकाकर्ता को पट्टा स्वीकृत करने वाला दिनांक 2.7.1980 का आदेश क्षेत्राधिकार से बाहर है, इसलिए विधि की दृष्टि में अनुचित है।

30. विद्वान राज्य अधिवक्ता ने सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का संदर्भ दिया है: (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम उप निदेशक चकबंदी एवं अन्य) (1996) 5 सर्वोच्च न्यायालय के मामले 194, जिसमें प्रस्तर 9 और 10 का संदर्भ दिया गया है, जो इस प्रकार है:

"9. तथापि, विचारणीय महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या चकबंदी प्राधिकारियों को अधिनियम की धारा 20 के तहत अधिसूचना के पीछे जाकर उस भूमि का अधिकार-क्षेत्र है जिसे अधिनियम के तहत आरक्षित वन के रूप में घोषित और अधिसूचित किया गया है। इसलिए, अधिनियम के अध्याय की योजना की जांच करना आवश्यक है। धारा 3 में प्रावधान है कि राज्य सरकार किसी भी वन भूमि या बंजर भूमि को, जो सरकार की संपत्ति है या जिस पर सरकार का मालिकाना हक है, या पूरे वन उत्पाद या उसके किसी भाग को, जिस पर सरकार का हक है, आरक्षित वन घोषित कर सकती है। धारा 4 में सरकार द्वारा आरक्षित वन घोषित करने के इरादे की घोषणा करते हुए अधिसूचना जारी करने का प्रावधान है। धारा 4 में आरक्षित वन गठित करने के सरकार के आशय की घोषणा करने वाली अधिसूचना जारी करने का प्रावधान है। धारा 5, अधिसूचना जारी होने के बाद धारा 4 के अंतर्गत अधिसूचना द्वारा कवर किए गए क्षेत्र में वन अधिकारों के अर्जन पर रोक लगाती है। धारा 6, अन्य बातों के साथ-साथ, वन बंदोबस्त अधिकारी को एक उद्घोषणा जारी करने की शक्ति प्रदान करती है, जिसके लिए ऐसी उद्घोषणा की तारीख से तीन महीने से अन्यून की अवधि निर्धारित की जाती है, तथा धारा 4 या धारा 5 में उल्लिखित किसी अधिकार का दावा करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को ऐसी अवधि के भीतर वन बंदोबस्त अधिकारी को एक लिखित नोटिस प्रस्तुत करने या उसके समक्ष उपस्थित होने तथा ऐसे अधिकार की प्रकृति तथा उसके संबंध में दावा किए गए मुआवजे (यदि कोई हो) की राशि और विवरण बताने की आवश्यकता होती है। धारा 7 वन बंदोबस्त अधिकारी को आपत्तियों की जांच करने की शक्ति देती है। धारा 8 में कहा गया है कि वन बंदोबस्त

अप्रमाणित

अधिकारी के पास वही शक्तियां होंगी जो किसी वाद की सुनवाई में दीवानी न्यायालय के पास होती हैं। धारा 9, अन्य बातों के साथ-साथ, उन अधिकारों की समाप्ति का प्रावधान करती है, जहां धारा 6 के तहत कोई दावा नहीं किया जाता है। धारा 11(1) ख में प्रावधान है कि किसी भूमि पर या उस पर मार्ग के अधिकार या चरागाह के अधिकार या वन उपज या जलमार्ग के अधिकार के अलावा किसी अन्य अधिकार के दावे के मामले में वन बंदोबस्त अधिकारी उसे पूर्णतः या आंशिक रूप से स्वीकार या अस्वीकार करने का आदेश पारित करेगा। भूमि पर किसी व्यक्ति के अधिकार को स्वीकार करने की स्थिति में, वन बंदोबस्त अधिकारी, धारा 11(2) के तहत, या तो ऐसी भूमि को प्रस्तावित वन की सीमा से बाहर कर सकता है या उसके मालिक के साथ उसके अधिकारों के समर्पण के लिए समझौता कर सकता है या भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 द्वारा प्रदान की गई विधि से ऐसी भूमि का अधिग्रहण करने की कार्यवाही कर सकता है, धारा 17 अधिनियम के तहत विभिन्न आदेशों के विरुद्ध अपील करने तथा धारा 18(4) में राज्य सरकार के समक्ष पुनरीक्षण के लिए प्रावधान है। जब धारा 3 से 19 के अंतर्गत सभी कार्यवाही पूरी हो जाती है तो राज्य सरकार को धारा 30 के अंतर्गत अधिसूचना प्रकाशित करनी होती है, जिसमें आरक्षित किए जाने वाले वन की सीमा को स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट किया जाता है तथा अधिसूचना द्वारा निर्धारित तिथि से उसे आरक्षित घोषित किया जाता है।

10. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वन बंदोबस्त अधिकारी को दीवानी न्यायालय की शक्तियां प्राप्त हैं तथा उसका आदेश राज्य सरकार के समक्ष अपील तथा अन्ततः पुनरीक्षण के अधीन है। यह अधिनियम अपने आप में एक पूर्ण संहिता है और इसमें आरक्षित वन घोषित करने और अधिसूचित करने की विस्तृत प्रक्रिया शामिल है। जब अधिनियम की धारा 20 के तहत किसी भूमि को आरक्षित वन घोषित करने संबंधी अधिसूचना प्रकाशित हो जाती है, तो उक्त भूमि पर किसी भी व्यक्ति द्वारा दावा किए गए सभी अधिकार समाप्त हो जाएंगे और वे अब उपलब्ध नहीं रहेंगे। यह अधिसूचना चकबंदी प्राधिकारियों पर उसी प्रकार बाध्यकारी है जिस प्रकार दीवानी न्यायालय का आदेश बाध्यकारी होता है। प्रतिवादीगण वन बंदोबस्त अधिकारी के समक्ष भूमि की प्रकृति के संबंध में आपत्ति सहित अन्य आपत्तियां और दावे दर्ज करा सकते हैं। उन्होंने अधिनियम के तहत कार्यवाही में अधिकारियों के समक्ष कोई आपत्ति या दावा दायर नहीं किया। अधिनियम की धारा 20 के अन्तर्गत अधिसूचना के पश्चात प्रतिवादीगण चकबंदी प्राधिकारियों के समक्ष उक्त अधिसूचना पर कोई आपत्ति नहीं उठा सकते थे। चकबंदी प्राधिकारी वर्ग उस अधिसूचना से बंधे थे जो अंतिम रूप ले चुकी थी।"

31. सर्वोच्च न्यायालय के निम्नलिखित निर्णय की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है: प्रभागीय वन अधिकारी अवध वन प्रभाग बनाम अरुण कुमार भारद्वाज (मृत) द्वारा विधिक प्रतिनिधि एवं अन्य एआईआर 2021 सर्वोच्च न्यायालय 4739 जिसमें प्रस्तर 22 और 24 का उल्लेख है, जो इस प्रकार है:

"22. हमने श्री खान और श्री हुड्डा द्वारा उठाए गए तर्क में कोई गुण नहीं पाया। दिनांक

अनुवादित

23.11.1955 को प्रकाशित अधिसूचना में घोषणा की गई थी कि 162 एकड़ भूमि वन भूमि मानी जाएगी। वन अधिनियम की धारा 4 का स्पष्टीकरण (1) स्पष्ट करता है कि वन की सीमाओं को सड़कों, नदियों, पर्वतमालाओं या अन्य सुविदित या आसानी से समझ में आने वाली सीमाओं के रूप में वर्णित करना पर्याप्त होगा। दिनांक 23.11.1995 की अधिसूचना में चारों ओर की सीमाओं का उल्लेख किया गया है। वन अधिनियम की धारा 4 के तहत कोई अन्य आवश्यकता नहीं है। केवल वन अधिनियम की धारा 6 में प्रस्तावित वन की स्थिति और सीमाओं को निर्दिष्ट करने की आवश्यकता है। वन अधिनियम की धारा 6 के खंड (क) के अनुसार, खसरा संख्या का विवरण, जो 162 एकड़ का हिस्सा था, प्रकाशित उद्घोषणा में उल्लिखित है। इसलिए, वैधानिक प्रक्रियात्मक आवश्यकताएं पूरी हो गई हैं।

24. श्री खान ने आगे तर्क दिया कि वन अधिनियम की धारा 20 के अंतर्गत अंतिम अधिसूचना प्रकाशित नहीं की गई है। वन अधिनियम की धारा 20 को पढ़ने से यह पता नहीं चलता कि आरक्षित वन के लिए अधिसूचना प्रकाशित करने की आवश्यकता है, लेकिन धारा 20 के तहत ऐसी अधिसूचना के प्रकाशन के लिए कोई समय सीमा निर्धारित नहीं की गई है। इसलिए, भले ही वन अधिनियम की धारा 20 के तहत अधिसूचना जारी नहीं की गई हो, वन अधिनियम की धारा 5 के आधार पर, सरकार द्वारा या उसकी ओर से लिखित रूप में निष्पादित अनुबंध के माध्यम को छोड़कर, ऐसी अधिसूचना में शामिल भूमि पर किसी भी अधिकार के अधिग्रहण पर प्रतिबंध है। चूंकि राज्य या उस व्यक्ति की ओर से जिसके पास ऐसा अधिकार निहित था, ऐसा कोई लिखित अनुबंध निष्पादित नहीं किया गया था, इसलिए गांव सभा अपीलकर्ता के पक्ष में पट्टा देने के लिए सक्षम नहीं थी।"

32. विद्वान राज्य अधिवक्ता ने इस न्यायालय का ध्यान इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा उत्तर प्रदेश राज्य बनाम कमल जीत सिंह, 2017 (9) एडीजे 768 के संबंध में दिए गए निर्णय की ओर भी आकर्षित किया है, जो इसी मामले में पारित किया गया है प्रस्तर 2 और 45 का संदर्भ लें, जो इस प्रकार है:

"[2] वर्तमान रिट याचिका में मुख्य विवाद प्लॉट संख्या 15 और 21 के स्वामित्व से संबंधित है, जिस पर उत्तर प्रदेश राज्य का वन विभाग इस आधार पर मामला उठा रहा है कि जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम के बाद विचाराधीन प्लॉट बघौवा गांव परगना पलिया, तहसील निघासन, जिला लखीमपुर खीरी, में स्थित हैं, जो पहले निहित होने की तिथि पर जंगल और झाड़ी के रूप में दर्ज थे, राज्य में निहित कर दिए गए और उसके बाद फिर से वन भूमि घोषित कर दिए गए, जबकि विपक्षीगण इस आधार पर भूखंडों पर अधिकार का दावा करते हैं कि सीररदारी का अधिकार जगत राम पुत्र चौधरी ईश्वर दास (जाट) निवासी नेरा, डाकघर और जिला होशियारपुर (पूर्वी पंजाब) के पक्ष में है और बाद में उन्होंने भूमि को प्रतिवादियों के पक्ष में सभी स्वामित्व और हित के साथ स्थानांतरित कर दिया जो उनके पास निहित थे।

अनुवादित

45) उपरोक्त विधि की प्रतिपादनाओ के आधार पर, हम वर्तमान याचिका को इस प्रकार समाप्त करते हैं:

I. उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत अधिसूचना की तिथि से उत्तर प्रदेश में स्थित समस्त सम्पत्तियां राज्य में निहित हो जाएंगी तथा सभी भारग्रस्तताओं से मुक्त होकर राज्य में स्थानांतरित एवं निहित हो जाएंगी।

II. विचाराधीन भूमि पहले 1356 एफ में या उससे पहले जंगलात/घास/बंजर भूमि के रूप में दर्ज थी

III. वन अधिनियम की धारा 3 के प्रावधानों के अंतर्गत राज्य किसी भी वन भूमि या बंजर भूमि को, जो सरकार की संपत्ति है या जिस पर सरकार का मालिकाना अधिकार है, आरक्षित वन घोषित कर सकता है। विचाराधीन भूमि राज्य के मालिकाना अधिकार के तहत जंगलात के रूप में दर्ज की गई थी और राज्य को भूमि को वन भूमि घोषित करने का पूरा अधिकार है।

IV. वन अधिनियम की धारा 4 की अधिसूचना के पश्चात ऐसी अधिसूचना में शामिल भूमि पर उत्तराधिकार या सरकार द्वारा या उसकी ओर से लिखित रूप में दिए गए अनुदान या अनुबंध के अलावा कोई अधिकार अर्जित नहीं किया जाएगा। यह ऐसा मामला नहीं है जहां सरकार द्वारा अनुदान दिया गया हो।

V. राज्य सरकार की मंजूरी के बिना किसी भी अधिकार को अनुदान, बिक्री या अन्यथा द्वारा हस्तांतरित नहीं किया जाएगा। जगत राम के पास ज़मीन हस्तांतरित करने का कोई अधिकार नहीं था। इसलिए प्रतिवादियों के पास जगत राम से बेहतर कोई अधिकार नहीं है।

VI. जैसा कि राजस्व अधिकारियों ने बताया है कि भूमि झाड़ियों या काष्ठीय वनस्पति के रूप में दर्ज है और इसे उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या XXIII, 1965 की धारा 38(क) और (ख) के तहत वन में शामिल किया गया है।

VII. वन अधिनियम की धारा 4 के तहत अधिसूचना जारी होने के बाद स्वर्गीय जगत राम, जिनके माध्यम से प्रतिवादी हस्तांतरण विलेख के आधार पर अपने अधिकार का दावा करते हैं, ने वन अधिनियम की धारा 6 के तहत आपत्ति दर्ज की थी और वर्ष 1958 में इसका निर्णय हुआ और भूमि को वन भूमि घोषित कर दिया गया। इस प्रकार विवाद अपने अंतिम निष्कर्ष पर पहुंच गया, जैसा कि ऊपर बताया गया है, और राज्य के समक्ष पुनरीक्षण को छोड़कर किसी भी प्राधिकारी को वन अधिनियम की धारा 27-ए में निहित अधिकारों को निर्धारित करने का अधिकार नहीं है।

VIII. माप और अधिसूचना के माध्यम से याचिकाकर्ताओं ने यह साबित कर दिया है कि विचाराधीन भूमि वन अधिनियम की धारा 4 के तहत अधिसूचना में शामिल है।"

33. अतः विद्वान राज्य अधिवक्ता ने कहा है कि दोनों रिट याचिकाएं खारिज की जाएं।

34. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री तथा अनुदेश पत्र के माध्यम से प्रस्तुत प्रासंगिक दस्तावेजों का अवलोकन करने के पश्चात, मेरा यह मानना है कि चकबंदी अधिकारी, बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी और उप संचालक चकबंदी, लखीमपुर खीरी द्वारा पारित आदेश वैध और न्यायोचित हैं तथा कानून के अनुसार पारित किए गए हैं। उपरोक्त सभी आदेशों में अधिनियम, 1927 के प्रासंगिक प्रावधानों,

अनुवादित

विशेषकर धारा 4,5,20 और 23 पर विचार किया गया है।

35. चूंकि चकबंदी प्राधिकारियों के निष्कर्ष न्यायोचित हैं और वे निष्कर्ष किसी भी प्रकार से अनुचित नहीं हैं, इसलिए उन निष्कर्षों में भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता। इसके अलावा, विचाराधीन विवाद अब अछूता मामला नहीं रह गया है क्योंकि सर्वोच्च न्यायालय ने: उत्तर प्रदेश राज्य बनाम उप निदेशक चकबंदी और अन्य (1996) 5 सुप्रीम कोर्ट केस 194 और प्रभागीय वन अधिकारी अवध वन प्रभाग बनाम अरुण कुमार भारद्वाज (मृत) द्वारा विधिक प्रतिनिधि एवं अन्य एआईआर 2021 सुप्रीम कोर्ट 4739 में पहले ही माना है कि अधिनियम, 1927 की धारा 4 के तहत अधिसूचना जारी होने के बाद विचाराधीन भूमि वन विभाग में निहित होगी और कोई भी बाद के किसी भी पट्टे के आधार पर किसी भी अधिकार या स्वामित्व का दावा नहीं कर सकता है। इसके अलावा, इस न्यायालय ने बाबूलाल (उपरोक्त) के संबंध में दिनांक 17.5.2005 के निर्णय और आदेश द्वारा विवाद का निपटारा कर दिया है और उस आदेश पर आज तक कोई आपत्ति नहीं की गई है। इसके अलावा, इसी तरह के विवाद पर इस न्यायालय द्वारा दिनांक 4.8.2017 को कमल जीत सिंह (उपरोक्त) के संबंध में निर्णय दिया गया है और उस आदेश पर भी आज तक आपत्ति नहीं की गई है। जहां तक अधिनियम, 1960 के आलोक में याचिकाकर्ताओं के दावे का संबंध है, यह भी तय हो चुका है कि वर्ष 1954 में अधिनियम, 1927 की धारा 4 के तहत अधिसूचना जारी होने के बाद, यदि अधिनियम, 1960 के प्रावधानों के तहत कोई भी पट्टा दिया जाता है तो उसका कोई अर्थ नहीं होगा और ऐसे प्रावधान बाध्यकारी नहीं होंगे और उनका कोई कानूनी प्रभाव नहीं होगा।

36. प्रस्तुत प्रकरण में एक और प्रासंगिक पहलू यह है कि दिनांक 2.7.1980 को प्रदान किया गया पट्टा अनुमोदन सक्षम प्राधिकारी द्वारा प्रदान नहीं किया गया था, क्योंकि अधिनियम, 1960 की धारा 27(3) के अंतर्गत सक्षम प्राधिकारी कलेक्टर है, जबकि प्रश्नगत पट्टा अनुमोदन तहसील के उप खंड अधिकारी द्वारा प्रदान किया गया है, इसलिए, याचिकाकर्ता की प्रार्थना को स्वीकार न करने का यह अधिक कारण है क्योंकि संबंधित एस.डी.ओ. द्वारा पट्टा की स्वीकृति प्रदान करने वाला दिनांक 2.7.1980 का आदेश क्षेत्राधिकार से बाहर है। अतः पट्टा के आधार पर याचिकाकर्ता के दावे का आधार ही समाप्त हो गया है, इसलिए, इस तथ्य के आधार पर कि याचिकाकर्ताओं का उस पट्टे के आधार पर प्रश्नगत भूमि पर कब्जा था, इमारत खड़ी नहीं की जा सकेगी, बल्कि यह बात 'सुब्लाटो फंडामेंटो कैडिट ओपस' कहावत के आधार पर लागू होगी, जिसका अर्थ है कि नींव के हट जाने पर इमारत गिर जाती है।

37. इस बात पर स्थापित विधि है कि यदि कोई आदेश वैधानिक निर्देशों के विरुद्ध अक्षम प्राधिकारी द्वारा पारित किया जाता है, तो वह आदेश कानून की दृष्टि में अमान्य होगा तथा प्रारम्भ से ही शून्य होगा। इसलिए, अवैध और शून्य आदेश के आधार पर, संबंधित भूमि के संबंध में याचिकाकर्ताओं के किसी भी दावे पर विचार नहीं किया जा सकता है।

अनुवादित

38. अंत में, यह उल्लेख करना उचित होगा कि समान व्यक्तियों ने समान राहत प्राप्त करने के लिए बार-बार इस न्यायालय से संपर्क किया है और उनकी रिट याचिकाओं को इस न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया है और उन आदेशों को सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती नहीं दी गई है, अतः वे आदेश अंतिम हो गए हैं।

39. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं की दलीलों पर विचार करने और उत्तर प्रदेश राज्य बनाम उप संचालक चकबंदी एवं अन्य (1996) 5 सुप्रीम कोर्ट केस 194 और प्रभागीय वन अधिकारी अवध वन प्रभाग बनाम अरुण कुमार भारद्वाज (मृत) द्वारा विधिक प्रतिनिधि एवं अन्य एआईआर 2021 सुप्रीम कोर्ट 4739 के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय के आदेशों को ध्यान में रखते हुए साथ ही इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा बाबूलाल (उपरोक्त) और कमलजीत सिंह (उपरोक्त) के संबंध में दिए गए निर्णय को ध्यान में रखते हुए, मेरा यह सुविचारित मत है कि सक्षम चकबंदी प्राधिकारियों द्वारा पारित किए जा रहे विवादित आदेश किसी भी प्रकार से अवैधानिक या विकृत नहीं हैं, अतः उन आदेशों में किसी प्रकार के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

40. उपरोक्तानुसार, रिट याचिकाएं बलहीन के कारण खारिज की जाती हैं।

41. वादव्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2023) 6 ILRA 905

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 31.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति देवेंद्र कुमार उपाध्याय

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला

रिट सी संख्या 4368 वर्ष 2022

मेसर्स अल हक फूड प्राइवेट लिमिटेड

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: सलिल कुमार श्रीवास्तव, अभिनव सिंह, लालता प्रसाद मिश्रा, राहुल कपूर, राहुल श्रीवास्तव, शोभित मोहन शुक्ला, विनोद कुमार

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी., ए.एस.जी.आई., अशोक कुमार वर्मा

ए. सिविल कानून - जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1974 - धारा 25/26 - वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1981 - धारा 21/22 - विवादित आदेश-यूपीपीसीबी द्वारा बूचड़खाना चलाने की सहमति से इनकार- -जिला मजिस्ट्रेट द्वारा याचिकाकर्ता को एनओसी दी गई-बूचड़खाना चालू नहीं-इस बीच 07.07.2017 का जीओ प्रचलन में आया जिसमें 24 बिंदुओं का सार-संग्रह था-सुप्रीम कोर्ट द्वारा दिए गए निर्देशों के आलोक में अनुपालन अनिवार्य है।

बी. प्रारंभिक आपत्ति-रिट याचिका की स्वीकार्यता-वैकल्पिक उपाय उपलब्ध-जल अधिनियम की धारा 28-वायु अधिनियम की धारा 31-आपत्ति अस्वीकृत-वैकल्पिक उपाय का अस्तित्व पूर्णतः प्रतिबंध नहीं है-रिट याचिका स्वीकार्य मानी गई। (पैरा 15, 16 और 17)

निर्णय: प्रारंभिक सुनवाई के मुद्दे पर विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के बाद, यह न्यायालय

अनुवादित

इस विचार पर है कि वैकल्पिक उपाय का अस्तित्व पूर्ण प्रतिबंध नहीं है, यह एक कानूनी प्रस्ताव है, जिस पर किसी विस्तृत चर्चा की आवश्यकता नहीं है। यह स्थापित कानून है कि जबकि उच्च न्यायालय सामान्य रूप से भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने रिट क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं करेगा, यदि कोई प्रभावी और प्रभावकारी वैकल्पिक उपाय उपलब्ध है और वैकल्पिक उपाय का अस्तित्व अपने आप में उच्च न्यायालय को कुछ आकस्मिकताओं में अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से नहीं रोकता है। इस सिद्धांत को माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने व्हर्लपूल कॉर्पोरेशन बनाम रजिस्ट्रार ऑफ ट्रेडमार्क्स, मुंबई: (1998) 8 एससीसी 1 और हरबंसलाल साहनी बनाम इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड: (2003) 2 एससीसी 107 में स्पष्ट किया है। राधा कृष्ण इंडस्ट्रीज बनाम स्टेट ऑफ हिमाचल प्रदेश और अन्य (सुप्रा) में, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने वैकल्पिक उपाय की उपस्थिति में उच्च न्यायालय द्वारा रिट क्षेत्राधिकार के प्रयोग को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों को संक्षेप में प्रस्तुत किया है। (पैरा 15)

इसलिए, कानून के किसी प्रश्न के निर्धारण के लिए लागू किया जाने वाला परीक्षण यह है कि क्या न्यायालय के समक्ष पक्षों के अधिकारों को तथ्यात्मक परिदृश्य के संदर्भ के बिना निर्धारित किया जा सकता है। इस मामले में, जैसा कि तर्क दिया गया है, 11.07.2020 के आरोपित आदेशों के माध्यम से 'संचालन के लिए सहमति' देने से इनकार करना भारत के संविधान के अनुच्छेद 19 (जी) के तहत गारंटीकृत व्यवसाय, व्यापार और व्यवसाय के अधिकार का उल्लंघन है, विशेष रूप से इस तथ्य की पृष्ठभूमि में कि याचिकाकर्ता को व्यवसाय चलाने का अधिकार है जिसके संबंध में इकाई स्थापित करने की अनुमति यू.पी. प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा दिनांक 04.01.2017 के पत्र के माध्यम से दी गई थी। स्पष्ट रूप से याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए मुद्दे कानून के प्रश्न हैं, जिन्हें जल अधिनियम, 1974, वायु अधिनियम, 1981 के विभिन्न प्रावधानों और अधिनियम के अन्य प्रावधानों के साथ-साथ आधुनिक बूचड़खाने को 'संचालित करने की सहमति' देने के मुद्दे पर विभिन्न सरकारी आदेशों और कानूनी प्रस्तावों के व्यापक अध्ययन के बाद तय किया जा सकता है। इस प्रकार, हम इस याचिका को भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत स्वीकार्य मानते हैं। (पैरा 17)

C. आरोपित आदेश का विश्लेषण-बोर्ड को तीन अलग-अलग शक्तियां प्रदान की गई हैं- 'संचालन के लिए सहमति' देने की शक्ति, उक्त सहमति को नवीनीकृत करने की शक्ति, सहमति दिए जाने की अवधि से पहले उक्त सहमति को रद्द करने की शक्ति- याचिकाकर्ता ने बूचड़खाना स्थापित किया था, लेकिन यह चालू नहीं था- 07.07.2017 के जीओ के नियमों और शर्तों का अनुपालन अनिवार्य है- याचिकाकर्ता द्वारा ऐसा कोई एनओसी या पहले के एनओसी का पुनर्वैधीकरण नहीं मांगा गया है- आरोपित आदेश में कोई त्रुटि नहीं है- रिट याचिका खारिज। (पैरा 29, 30, 31, 32, 34, 36, 37, 38, 39, 40 और 41)

निर्णय: उपरोक्त प्रावधानों के अवलोकन से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि बोर्ड को तीन

अनुवादित

अलग-अलग शक्तियां प्रदान की गई हैं, अर्थात्, 'संचालन के लिए सहमति' प्रदान करने की शक्ति, उक्त सहमति को नवीनीकृत करने की शक्ति और सहमति आदेश दिए जाने की अवधि के अंत से पहले उक्त सहमति को रद्द करने की शक्ति। धारा 21 का उपखंड (3) एक कानूनी कर्तव्य लगाता है कि यदि उप-धारा (1) के तहत सहमति के लिए आवेदन दायर किया जाता है, तो बोर्ड जांच करेगा और ऐसी प्रक्रिया का पालन करेगा जो निर्धारित की जा सकती है। (पैरा 32)

यह वास्तव में कानून का एक स्थापित सिद्धांत है कि यदि किसी क़ानून के तहत कोई प्रक्रिया निर्धारित की गई है, तो उपयुक्त प्राधिकारी उक्त प्रक्रिया का पालन करने के लिए कानूनी रूप से बाध्य है। (पैरा 34)

यह न्यायालय पाता है कि यद्यपि यह यू.पी. का मामला नहीं है। प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ने आरोप लगाया है कि उसने पशु वध या पशु आहार की बिक्री पर रोक लगाने का कोई प्रयास किया है, हालांकि उन्होंने लगातार यह रुख अपनाया है कि वे दोनों अधिनियमों यानी जल अधिनियम और वायु अधिनियम के तहत इस व्यवसाय और विक्रय को विनियमित करने के लिए सशक्त हैं ताकि वैध तरीके अपनाए जाएं और पर्यावरण की रक्षा के लिए इस तरह के व्यापार और कारोबार के लिए गैरकानूनी तरीकों को रोका जा सके। यह निर्णय कॉमन कॉज बनाम यूओआई (सुप्रा), लक्ष्मी नारायण मोदी बनाम यूओआई (सुप्रा) में सर्वोच्च न्यायालय के दिनांक 17.02.2017 के निर्णय के साथ-साथ सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णयों के अनुपालन में जारी किए गए दिनांक 07.07.2017 के सरकारी आदेश और मूल आवेदन संख्या 879/2022 में राष्ट्रीय हरित अधिकरण द्वारा पारित दिनांक 03.05.2023 के आदेश के आलोक में दिया गया है: गौरी मौलेखी बनाम यूओआई और अन्य। इस बात पर भी कोई विवाद नहीं है कि इस तरह के व्यापार और कारोबार को लाइसेंसिंग प्रावधानों सहित विनियमित किया जा सकता है। इस बात पर भी कोई विवाद नहीं है कि इस तरह के व्यापार और व्यवसाय को प्रासंगिक कानूनों और नियमों और विनियमों के तहत उचित विनियमनों द्वारा अनुमति दी गई है। इस प्रकार यू.पी. प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की ओर से ऐसे व्यापार और व्यवसाय पर प्रतिबंध लगाने के लिए ऐसी किसी दलील के अभाव में, जो सीधे तौर पर 07.07.2017 के सरकारी आदेश में भी परिलक्षित नहीं होती है, ऐसे प्रतिबंध की कोई धारणा या उपधारणा नहीं की जा सकती है अन्यथा इससे संवैधानिक अधिकारों और भारत के संविधान के तहत गारंटीकृत मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होगा। (पैरा 36) स्पष्ट रूप से, जिला मजिस्ट्रेट, उन्नाव द्वारा आधुनिकीकृत बूचड़खाना संयंत्र की स्थापना के लिए याचिकाकर्ता को एनओसी प्रदान करते समय जारी किए गए आदेश दिनांक 21.05.2015 में शर्त संख्या 68 में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि याचिकाकर्ता के लिए भविष्य में जारी किए गए निर्देशों का पालन करना अनिवार्य होगा और शर्त संख्या 69 में किसी भी अनियमितता या किसी भी शर्त के उल्लंघन के मामले में उक्त एनओसी के रद्द किए जाने के परिणामी प्रभाव के बारे में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है। उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा जारी आदेश दिनांक 04.01.2017 में स्पष्ट रूप से उल्लेख

अनुवादित

किया गया है कि जिला मजिस्ट्रेट, उन्नाव द्वारा दिनांक 21.05.2015 के उपरोक्त आदेश द्वारा दी गई एनओसी में उल्लिखित शर्तों का अक्षरशः अनुपालन किया जाएगा। इसका अर्थ यह है कि याचिकाकर्ता भविष्य में जिला मजिस्ट्रेट, उन्नाव द्वारा दी गई एनओसी को जारी रखने के लिए सभी निर्देशों का पालन करने के लिए बाध्य है। हालाँकि, यह मुद्दा यहाँ समाप्त नहीं होता है क्योंकि शासनादेश दिनांक 07.07.2017 में स्पष्ट रूप से शासनादेश दिनांक 26.11.2014 के अधिक्रमण के बारे में उल्लेख किया गया है और तदनुसार सभी बूचड़खाना इकाइयों को बूचड़खाने के संचालन/स्थापना की सहमति के लिए उपरोक्त शासनादेश दिनांक 07.07.2017 के पैरा-3 में उल्लिखित 24 सूत्रीय संग्रह का अनुपालन करने का निर्देश दिया गया है। इस प्रकार, चूंकि पूर्ववर्ती एनओसी दिनांक 21.05.2015 को मौजूदा शासनादेश दिनांक 26.11.2014 के मद्देनजर जारी की गई थी, जो कि शासनादेश दिनांक 07.07.2017 के अनुसार निरस्त हो गई है, इसलिए सभी बूचड़खाना इकाइयों के लिए यह अनिवार्य था कि 'संचालन की सहमति' प्राप्त करने के लिए, उक्त शासनादेश दिनांक 07.07.2017 के पैरा-3 में उल्लिखित 24 सूत्रीय सार-संग्रह का पालन किया जाए। इस प्रकार, स्पष्ट रूप से, मामले के दो पहलू हैं; पहला यह कि इकाई स्थापित करने के लिए शासनादेश दिनांक 07.07.2017 के अनुसार एनओसी ली जानी चाहिए थी; और दूसरा यह कि इकाई की स्थापना के समय, इकाई को शासनादेश दिनांक 07.07.2017 के अनुसार 'संचालन की सहमति' के लिए आवेदन करना चाहिए था। (पैरा 39)

वर्तमान मामले में, शासनादेश दिनांक 07.07.2017 जारी होने से पहले जिला मजिस्ट्रेट, उन्नाव की एनओसी प्रदान की गई थी। यद्यपि याचिकाकर्ता आधुनिक बूचड़खाना इकाई स्थापित करने के लिए आया था, तथापि, यह चालू नहीं था और इस प्रकार याचिकाकर्ता के लिए शासनादेश दिनांक 07.07.2017 की सभी शर्तों का पालन करना अनिवार्य था, जिसमें जिला मजिस्ट्रेट, उन्नाव, स्टेट लेवल कमेटी और यू.पी. प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड से 'संचालन की सहमति' के लिए एनओसी भी शामिल थी। (पैरा 40)

यह एक स्वीकृत तथ्य है कि याचिकाकर्ता ने शासनादेश दिनांक 07.07.2017 के प्रावधानों का पालन करने के लिए जिला मजिस्ट्रेट, उन्नाव से एनओसी नहीं ली है और न ही उक्त एनओसी का पुनर्वैधीकरण प्राप्त किया है, जो कि अनिवार्य प्रकृति के हैं और कॉमन कॉज बनाम यूओआई और अन्य में सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के अनुसरण में जारी किए गए हैं। (सुप्रा) और लक्ष्मी नारायण मोदी बनाम यू.ओ.आई. (सुप्रा) में आधुनिक बूचड़खाने चलाने के लिए कहा गया है। इसलिए, यू.पी. प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ने विवादित आदेशों के माध्यम से 'संचालन की सहमति' देने से सही इनकार कर दिया है। (पैरा 41)

याचिका खारिज। (ई-14)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने रिट याचिका (सी) संख्या 330/2001 (कॉमन कॉज बनाम यूओआई व अन्य), रिट याचिका संख्या 44/2004, अवमानना याचिका संख्या 124/2015 और संबंधित रिट याचिका (सी) संख्या 309/2003 (लक्ष्मी नारायण मोदी बनाम

अनुवादित

यूओआई व अन्य) पर 17.02.2017 को निर्णय दिया।

2. राधा कृष्ण इंडस्ट्रीज बनाम हिमाचल प्रदेश एवं अन्य, (2021) 6 एससीसी 771

3. राजेंद्र प्रसाद उपाध्याय बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य। (विशेष अपील संख्या 73/2012, 19.03.2012 को निर्णय लिया गया)

4. मेसर्स मगध शुगर एंड एनर्जी लिमिटेड बनाम स्टेट ऑफ बिहार एवं अन्य। (सिविल अपील संख्या 5728/2021, 24.09.2021 को निर्णय लिया गया)

5. पिसिया सर्वोनिक जेवी एलएलपी नामित भागीदार डीएलएफ कॉरपोरेट पार्क हरियाणा बनाम स्टेट ऑफ यूपी एवं अन्य। (आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 1008 वर्ष 2003, 15.02.2023 को निर्णीत)

6. व्हर्लपूल कॉर्पोरेशन बनाम रजिस्ट्रार ऑफ ट्रेडमार्क्स, मुंबई : (1998) 8 एससीसी 1

7. हरबंसलाल साहनी बनाम इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड : (2003) 2 एससीसी 107

8. मीनाक्षी मिल्स लिमिटेड बनाम आयकर आयुक्त : एआईआर 1957 एससी 49

9. मध्य प्रदेश राज्य बनाम टीकमदास : (1975) 2 एससीसी 100

10. रेलवे बोर्ड के अध्यक्ष एवं अन्य बनाम सी.आर. रंगधामैया एवं अन्य : (1976) 6 एससीसी 623

11. जे.एस. यादव बनाम स्टेट ऑफ यू.पी. : (2011) 6 एससीसी 570

12. केनरा बैंक और अन्य बनाम एम. महेश कुमार : (2015) 7 एससीसी 412

13. भारत संचार निगम लिमिटेड बनाम टाटा कम्युनिकेशन लिमिटेड : (2022) एससीसी ऑन-लाइन एससी 1280

14. एन डीएसआर स्टील (प्राइवेट) लिमिटेड बनाम स्टेट ऑफ राज. और अन्य : (2012) 6 एससीसी 782 और बुसा ओवरसीज

15. प्रॉपर्टीज प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम यू.ओ.आई. : (2016) 4 एससीसी 696

(माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला द्वारा दिया गया)

(1) याचिकाकर्ताओं का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्तागण डॉ. एल. पी. मिश्रा व श्री अभिनव सिंह, उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एस. सी. मिश्रा एवं उनके सहायक श्री अशोक कुमार वर्मा तथा राज्य-प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित विद्वान राज्य अधिवक्ता के तर्कों को सुना।

(2) याचिकाकर्ता मेसर्स अल-हक फूड्स प्राइवेट लिमिटेड, जो कि कंपनी अधिनियम के प्रावधान के अंतर्गत पंजीकृत एक प्राइवेट लिमिटेड कंपनी है, ने मुख्य पर्यावरण अधिकारी, परिक्षेत्र-5, उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, लखनऊ द्वारा एक ही दिन पारित दिनांक 11.07.2020 के दो आदेशों को चुनौती देते हुए के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत इस न्यायालय के असाधारण रिट क्षेत्राधिकार को लागू करने की मांग की है, जिनके द्वारा (i) जल (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1974 (जिसे आगे **"जल अधिनियम, 1974"** कहा जाएगा) की धारा 25/26 के अंतर्गत; तथा (ii) वायु (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1981

अनुवादित

(जिसे आगे **"वायु अधिनियम, 1981"** कहा जाएगा) की धारा 21/22 के अंतर्गत, जैसा कि संशोधित किया गया है, याचिकाकर्ता को पशुवधशाला (एकीकृत मांस की दुकान) को 'चलाने हेतु सहमति' देने से इनकार कर दिया गया तथा दोनों ही आदेशों के अंतर्गत याचिकाकर्ता को जल अधिनियम, 1974 एवं वायु अधिनियम, 1981 के अनिवार्य प्रावधानों का पालन करने का भी निदेश दिया गया है।

यद्यपि याचिकाकर्ता ने जल अधिनियम, 1974 की धारा 11-ए के प्रावधानों के साथ-साथ जल अधिनियम, 1974 के प्रावधानों को संविधान विरुद्ध घोषित करने के लिए भी निदेश की मांग की थी, हालांकि, बहस के दौरान याचिकाकर्ता का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता ने उक्त चुनौती को त्याग दिया।

<u>तथ्यात्मक सारणी</u>

(3) अनावश्यक विवरणों को हटा दें, तो अभिलेख पर उपलब्ध दलीलों में यथा वर्णित तथा संबंधित पक्षों की दलीलों के अनुसार याचिकाकर्ता का मामला यह है कि वर्ष 2014 में किसी समय याचिकाकर्ता मेसर्स अल हक फूड्स प्राइवेट लिमिटेड ने यू.पी.एस.आई.डी.सी.(उत्तर प्रदेश राज्य औद्योगिक विकास निगम) औद्योगिक क्षेत्र, उन्नाव में आधुनिक एकीकृत बूचड़खाना की स्थापना के लिए 'अनापत्ति प्रमाण पत्र' (जिसे आगे 'एनओसी' कहा जाएगा) के लिए आवेदन किया था। जिला मजिस्ट्रेट, उन्नाव ने सभी जिला हितधारक विभागों के परामर्श से दिनांक 21.05.2015 के आदेश द्वारा आधुनिक एकीकृत पशुवधशाला की स्थापना के लिए याचिकाकर्ता की इकाई को 69 शर्तों, जो उक्त आदेश दिनांक 21.05.2015 में ही उल्लिखित थीं, के साथ अनापत्ति प्रमाण पत्र प्रदान किया, परंतु, उक्त आदेश दिनांक 21.05.2015 में समाप्ति की अवधि विहित नहीं की गई है। इसके अतिरिक्त, दिनांक 21.05.2015 के उक्त आदेश की शर्त संख्या 68 में प्रावधान है कि भविष्य में भी दिये गये निर्देशों का पालन करना अनिवार्य/आज्ञापक होगा, जबकि शर्त संख्या 69 में प्रावधान है कि किसी भी प्रकार की अनियमितता अथवा किसी भी शर्त का उल्लंघन होने पर अनापत्ति प्रमाण पत्र स्वतः निरस्त समझा जायेगा।

(4) तत्पश्चात, दिनांक 21.10.2016 के कार्यालय ज्ञापन द्वारा आधुनिक एकीकृत वधशाला के संचालन से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं के क्रियान्वयन हेतु राज्य सरकार द्वारा गठित राज्य स्तरीय समिति ने 12 शर्तों के साथ याचिककर्ता की इकाई को अनापत्ति प्रमाण पत्र जारी किया। इसकी शर्त संख्या 11 में प्रावधान है कि परियोजना का संचालन प्रारम्भ करने से पूर्व उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड से तीन माह के अन्दर अनापत्ति प्राप्त करना होगा। दिनांक 21.10.2016 के उक्त कार्यालय ज्ञापन में यह भी कहा गया था कि राज्य स्तरीय समिति द्वारा अनापत्ति प्रमाण पत्र दिये जाने के उपरान्त सम्बन्धित फर्म द्वारा सदस्य सचिव, उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, लखनऊ को नियमानुसार आवेदन पत्र प्रस्तुत किया जायेगा, जो संबंधित फर्म को उक्त योजना के संचालन हेतु

अवैधानिक

तीन माह के भीतर अनापत्ति प्रमाण पत्र जारी करने के पश्चात राज्य स्तरीय समिति को अनुपालन आख्या(रिपोर्ट) उपलब्ध कराएगा।

(5) दिनांक 21.10.2016 के उक्त कार्यालय ज्ञापन के अनुसरण में, याचिकाकर्ता की इकाई ने सदस्य सचिव, उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, लखनऊ को अनापत्ति प्रमाण पत्र प्रदान करने के लिए आवेदन किया था, जो दिनांक 21.11.2016 को उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के कार्यालय में प्राप्त हुआ। तत्पश्चात, सदस्य सचिव, उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, लखनऊ ने दिनांक 04.01.2017 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता को कुछ शर्तों के साथ पशुवधशाला स्थापित करने के लिए अनापत्ति प्रमाण पत्र प्रदान किया। दिनांक 04.01.2017 के आदेश का प्रासंगिक अंश नीचे उद्धृत है:-

"महोदय,

कृपया उपरोक्त विषयक अपने अनापत्ति प्रमाण हेतु आवेदन पत्र दिनांक 21.11.16 (प्राप्त) का संदर्भ लें। उद्योग को पर्यावरणीय प्रदूषण के दृष्टिकोण से निम्नलिखित विशिष्ट शर्तों एवं सामान्य शर्तों (संलग्नकं) के समुचित अनुपालन के साथ सशर्त अनापत्ति प्रमाण पत्र स्वीकृत किया जाता है।

अनापत्ति प्रमाण पत्र निम्नलिखित विशिष्ट विवरणों के लिए ही निर्गत किया जा रहा है।

(क) स्थलः	प्लाट नं०-एफ- 13, 14, 29, 30, 44, 45, 46 एवम् एच- 72, 73 औ० क्षेत्र, साईट- 2, उन्नाव।
(ख) उत्पादनः (ग) सहं उत्पाद	फोजेन मीट- 50 टन/दिन, एम०बी०एम०- 20 टन/दिन, टैलो- 10 टन/दिन
(घ) मुख्य कच्चे मालः	300 नग भैंस व भैसा प्रतिदिन
(ड़) औद्योगिक उत्प्रवाह की मात्राः	385 किलो लीटर प्रतिदिन
(च) प्रयुक्त ईंधनः	डीजल डी०जी० सेट हेतु लकड़ी- 2 टन/दिन राइस हस्क- 2 टन/दिन

उपर्युक्त विषय वस्तु में से किसी भी प्रकार से परिवर्तन करने पर पुनः अनापत्ति प्रमाण-पत्र प्राप्त करना आवश्यक होगा

अनुवादित

1. इकाई का संचालन तब तक प्रारम्भ नहीं किया जाये जब तक कि वह राज्य बोर्ड से जल एवं वायु अधिनियमों के अन्तर्गत सहमति प्राप्त न कर ले। जल एवं वायु सहमति प्राप्त करने हेतु इकाई में संचालन प्रारम्भ करने की तिथि से कम से कम 02 माह पहले निर्धारित सहमति आवेदन पत्रों को संचालन पूर्व प्रथम आवेदन का उल्लेख करते हुये इस कार्यालय में अवश्य जमा कर दिया जाये।

2. उद्योग को राज्य स्तरीय समिति द्वारा निर्गत अनापत्ति प्रमाण पत्र की शर्तों का पूर्णतया अनुपालन किया जाये।

3. उद्योग में उत्प्रवाह शुद्धिकरण संयंत्र हेतु दिये गये प्रस्ताव के अनुसार ई०टी०पी० की स्थापना कर शून्य उत्प्रवाह व्यवस्था मेन्टेन रखी जाये।

उद्योग में दिये गये प्रस्ताव के अनुसार उचित क्षमता का रेण्डरिंग प्लांट स्थापित किया जाये।

5. उद्योग में दुर्गन्ध के नियंत्रण हेतु उचित क्षमता के बायो फिल्टर की स्थापना की जाये।

6. उद्योग में दिये गये प्रस्ताव के अनुसार गोबर गैस प्लांट की स्थापना की जाये।

7. उद्योग में दिये गये प्रस्ताव के अनुसार वायु प्रदूषण नियंत्रण की व्यवस्था की जाये।

8. उद्योग द्वारा 6 टी०पी०एच० क्षमता के ब्वायलर पर वायु प्रदूषण नियंत्रण व्यवस्था दिये गये प्रस्ताव के अनुरूप स्थापित किया जाय तथा प्रस्तावित डी.जी सेटों पर ध्वनि/वायु प्रदूषण नियंत्रण व्यवस्था मानकों के अनुरूप स्थापित किया जाये।

9. ठोस अपशिष्ट (हैजार्डस वेस्ट) का निस्तारण टी०एस०डी०एफ० में किया जाये।

10. उद्योग परिसर में सघन वृक्षों का रोपण किया जाये।

11. पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 के प्राविधानों का अनुपालन किया जाये।

12. प्रक्रिया से जनित वेस्ट का समुचित निस्तारण किया जाये एवं इससे सम्बन्धित रिकार्ड भी रखा जाये।

13. उद्योग परिसर में वर्षा जल संचयन हेतु रूफ टाप रेन वाटर हार्वेस्टिंग व्यवस्था स्थापित की जाये।

14. भू गर्भ जल दोहन हेतु सम्बन्धित विभाग से अनापत्ति प्रमाण पत्र प्राप्त करना अनिवार्य होगा।

15. उद्योग से जनित घरेलू उत्प्रवाह

अनुवादित

का शुद्धिकरण उचित क्षमता के सेप्टिक टैंक/सोक पिट के माध्यम से किया जाये।

16. जिलाधिकारी उन्नाव द्वारा दिनांक- 21.5.15 को निर्गत अनापत्ति प्रमाण पत्र की शर्तों का पूर्णतया अनुपालन किया जाये।

17. उद्योग से किसी भी प्रकार का उत्प्रवाह परिसर से बाहर निस्तारित न किया जाये।

उपरोक्त शर्तों का अनुपालन न किये जाने की दशा में उद्योग द्वारा प्रेषित बैंक गारन्टी संख्या 36791LG000117, RS. 10,00,000/- बोर्ड के पक्ष में जब्त की जा सकती है।

कृपया ध्यान दें कि उपर्युक्त लिखित विशिष्ट शर्तों एवं सामान्य शर्तों का प्रभावी एवं संतोषजनक अनुपालन न करने पर बोर्ड द्वारा निर्गत अनापत्ति प्रमाण पत्र निरस्त कर दिया जाएगा। बोर्ड का अधिकार सुरक्षित है कि अनापत्ति की शर्तों में संशोधन किया जाय अथवा निरस्त कर दिया जाय। उपर्युक्त विशिष्ट एवं सामान्य शर्तों के सम्बन्ध में उद्योग द्वारा इस कार्यालय में दिनांक 31.02.2017 तक प्रथम अनुपालन आख्या अवश्य प्रेषित की जाए। अनुपालन आख्या नियमित प्रेषित की जाए अन्यथा अनापत्ति प्रमाण पत्र निरस्त भी किया जा सकता है।

भवदीय

सदस्य सचिव"

(6) दिनांक 04.01.2017 के उक्त आदेश के अवलोकन से पता चलता है कि जिला मजिस्ट्रेट, उन्नाव द्वारा दिनांक 21.05.2015 के आदेश द्वारा दी गई एनओसी में उल्लिखित शर्तों का अक्षरशः अनुपालन करना अनिवार्य था; पशुवधशाला स्थापित करने हेतु उक्त सहमति/एनओसी की अवधि दो माह की थी; याचिकाकर्ता को दिनांक 31.02.2017 तक प्रथम अनुपालन संबंधी प्रपत्र आदि प्रस्तुत करना चाहिए था; तथा आगे की प्रगति रिपोर्ट समय-समय पर प्रस्तुत की जानी थी।

(7) यह उल्लेख करना समीचीन होगा कि इस अन्तराल में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा रिट याचिका (सी) संख्या 330/2001 ***(कॉमन कॉज बनाम भारत संघ आदि)***, रिट याचिका संख्या 44/2004, अवमानना याचिका संख्या 124/2015 तथा सम्बन्धित रिट याचिका (सी) संख्या 309/2003 ***(लक्ष्मी नारायण मोदी बनाम भारत संघ आदि)*** में दिनांक 17.02.2017 को जारी निर्देशों के अनुपालन में राज्य सरकार ने दिनांक 07.07.2017 को शासनादेश जारी किया था, जिसमें विभिन्न अनुपालनों के सम्बन्ध में 24 बिन्दुओं का संकलन सम्मिलित था।

अभिवादित

(8) स्पष्टतः, दो वर्ष से अधिक समय बीत जाने के पश्चात अर्थात् 12.06.2019 को याचिकाकर्ता ने सभी अपेक्षित साजो-सामान जुटाने तथा उद्योग स्थापित करने के पश्चात जल अधिनियम, 1974 की धारा 25(1)(बी) एवं धारा 26 तथा वायु अधिनियम, 1981 की धारा 21 सपठित धारा 22 के अंतर्गत 'संचालन हेतु सहमति' (सीटीओ) प्रदान करने के लिए आवेदन किया, जिसे दिनांक 06.11.2019 के आदेश द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि याचिकाकर्ता ने दिनांक 07.07.2017 के शासनादेश के अनुसार 24 बिन्दुओं के संकलन के अनुपालन के संबंध में अपेक्षित स्पष्टीकरण/सूचना अभी तक प्रस्तुत नहीं की है। दिनांक 06.11.2019 का यह आदेश अंतिम आदेश का रूप ले चुका था, क्योंकि याचिकाकर्ता ने इस आदेश के विरुद्ध कभी आपत्ति प्रस्तुत नहीं की। हालाँकि, दिनांक 06.06.2020 को याचिकाकर्ता ने जल अधिनियम, 1974 की धारा 25 (1) (बी) और धारा 26 तथा वायु अधिनियम, 1981 की धारा 21 सपठित धारा 22 के अंतर्गत 'संचालन हेतु सहमति' के लिए उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड में पुनः आवेदन किया, जिसे दिनांक 11.07.2020 के आक्षेपित आदेशों द्वारा यह कहते हुए पुनः निरस्त कर दिया गया कि परियोजना प्रस्तावक को दिनांक 07.07.2017 के शासनादेश के अनुसार विभिन्न विभागों के साथ-साथ राज्य स्तरीय समिति से पुनः सत्यापित अनापत्ति प्रमाणपत्र प्रस्तुत करना आवश्यक है।

(9) आक्षेपित आदेशों में उल्लेख है कि याचिकाकर्ता ने पिछले संचालन हेतु सहमति के अस्वीकृति पत्र दिनांक 06.11.2019 में उठाए गए विभिन्न बिंदुओं के अनुपालन के संबंध में कोई सूचना प्रस्तुत नहीं की थी। यद्यपि 24 बिंदुओं के संकलन के अनुपालन के संबंध में आक्षेपित आदेशों में यह उल्लेख है कि याचिकाकर्ता ने दिनांक 06.5.2020 को मुख्य सतर्कता अधिकारी के अनापत्ति प्रमाणपत्र, दिनांक 14.05.2020 को सहायक संभागीय परिवहन अधिकारी के अनापत्ति प्रमाणपत्र तथा दिनांक 19.05.2020 को खाद्य सुरक्षा एवं मानक प्राधिकरण के अनापत्ति प्रमाणपत्र के लिए आवेदन प्रस्तुत किया था, तथापि इसमें यह भी उल्लेख है कि याचिकाकर्ता ने जिलाधिकारी, उन्नाव द्वारा तथा पशुवधशाला इकाइयों की स्थापना हेतु अनापत्ति प्रमाणपत्र प्रदान करने पर विचार करने के लिए गठित राज्य स्तरीय समिति द्वारा पुनः सत्यापित अनापत्ति प्रमाणपत्र प्रस्तुत नहीं किया था।

(10) दिनांक 11.07.2020 के इन्हीं आदेशों को वर्तमान रिट याचिका में चुनौती दी गई है।

अनुवादित

रिट याचिका की पोषणीयता

(11) उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने रिट याचिका की पोषणीयता के संबंध में प्रारंभिक आपत्ति उठाई है तथा तर्क दिया है कि जल अधिनियम, 1974 की धारा 28 तथा वायु अधिनियम की धारा 31 के अंतर्गत राष्ट्रीय हरित अधिकरण के समक्ष सहमति से इनकार करने के आदेश के विरुद्ध अपील के वैकल्पिक वैधानिक उपाय की उपलब्धता के दृष्टिगत वर्तमान याचिका भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत विचारणीय नहीं है।

(12) दूसरी ओर, याचिकाकर्ता का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता ने उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के उपरोक्त कथन पर आपत्ति की है तथा प्रबल तर्क दिया है कि वर्तमान रिट याचिका विचारणीय है। उनका तर्क है कि वैकल्पिक उपचार आत्यन्तिक प्रतिबंध नहीं है, बल्कि यह स्वयं पर लगाया गया प्रतिबंध है, जिसका प्रयोग इस सुस्थापित सिद्धांत पर किया जाना चाहिए कि ऐसी कोई भी प्रक्रिया जो अपने अधिकार क्षेत्र के परे जाकर की गई हो, जिसमें प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत के उल्लंघन हुआ हो अथवा जिसमें मौलिक अधिकार या वैधानिक अधिकार के उल्लंघन हुआ हो, वह भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट याचिका में चुनौती का विषय हो सकता है। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, वर्तमान मामले में किसी भी प्रकार के निरीक्षण आदि की कार्रवाई किए बिना ही आक्षेपित आदेश पारित कर दिए गए हैं, जैसा कि जल अधिनियम, 1974 की धारा 25 (3), सपठित नियम 5, उत्तर प्रदेश जल (वाहित मल एवं व्यापारिक अपशिष्ट के निर्गमन हेतु सहमति) नियमावली, 1981 तथा वायु अधिनियम, 1981 की धारा 21 (3), सपठित नियम 28, उत्तर प्रदेश वायु (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) नियमावली, 1983 में विनिर्दिष्ट है। अतः, विद्वान अधिवक्ता का यह कथन है कि आक्षेपित आदेशों को जल अधिनियम, 1974 की धारा 25 (2) (बी) एवं वायु अधिनियम, 1981 की धारा 21 (4) के अंतर्गत पारित नहीं माना जा सकता है, जिनकी आड़ लेकर आक्षेपित आदेशों को पारित किया गया है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि विवादित आदेश पारित करने से पूर्व वैधानिक प्राधिकरणों द्वारा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का पालन नहीं किया गया तथा इस प्रकार यह भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (सी) एवं अनुच्छेद 14 के अंतर्गत याचिकाकर्ता को प्रदत्त मौलिक अधिकारों का उल्लंघन है क्योंकि आक्षेपित आदेश पारित करने से पहले याचिकाकर्ता को सुनवाई का कोई

अनुवादित

अवसर नहीं दिया गया था। अतएव वर्तमान रिट याचिका इस न्यायालय के समक्ष विचारणीय है।

(13) अपने तर्क की पुष्टि में, उन्होंने **राधा कृष्ण इंडस्ट्रीज बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य आदि: (2021) 6 एससीसी 771, मेसर्स मगध शुगर एंड एनर्जी लिमिटेड बनाम बिहार राज्य आदि** (सिविल अपील संख्या 5728 2021, दिनांक 24.09.2021 को निर्णीत) के वाद में पारित सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों तथा **राजेंद्र प्रसाद उपाध्याय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य आदि** (विशेष अपील संख्या 73/2012, दिनांक 19.03.2012 को निर्णीत) एवं **पिसिया सर्वोनिक जेवी एलएलपी, द्वारा नामित भागीदार डीएलएफ कॉरपोरेट पार्क हरियाणा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य आदि** (आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 1008/2003, दिनांक 15.02.2023 को निर्णीत) के वाद में पारित इस न्यायालय के निर्णय का अवलंब लिया है।

(14) दोनों पक्षों को इस प्रारंभिक बिन्दु पर काफी विस्तार से सुना गया है कि याचिकाकर्ता को जल अधिनियम की धारा 28 और वायु अधिनियम की धारा 31 के अंतर्गत राष्ट्रीय हरित अधिकरण के समक्ष अपील दायर करने के उपाय का लाभ लेने के लिए अधिकरण के समक्ष भेजा जाए अथवा ऐसे उपाय की उपस्थिति में वर्तमान रिट याचिका विचारणीय है या नहीं।

(15) प्रारंभिक सुनवाई के मुद्दे पर विद्वान अधिवक्ताओं के तर्कों को सुनने के पश्चात इस न्यायालय का विचार है कि वैकल्पिक उपचार एक आत्यंतिक प्रतिबंध नहीं है, अपितु यह एक विधिक प्रस्ताव है, जिसके लिए किसी विस्तृत चर्चा की आवश्यकता नहीं है। यह स्थापित विधि है कि यदि एक प्रभावी एवं प्रभावकारी वैकल्पिक उपचार उपलब्ध है तो उच्च न्यायालय सामान्यतः भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत अपने रिट क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं करेगा, साथ ही वैकल्पिक उपचार की उपस्थिति अपने आप में उच्च न्यायालय को कुछ आकस्मिक परिस्थितियों में अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से नहीं रोकती है। इस सिद्धांत को माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **व्हर्लपूल कॉर्पोरेशन बनाम रजिस्ट्रार ऑफ ट्रेडमार्क्स, मुंबई: (1998) 8 एससीसी 1** एवं **हरबंसलाल साहनी बनाम इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड: (2003) 2 एससीसी 107** में स्पष्ट किया है। **राधा कृष्ण इंडस्ट्रीज बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य (पूर्वोक्त)** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने वैकल्पिक उपचार की उपस्थिति में उच्च न्यायालय द्वारा रिट क्षेत्राधिकार के प्रयोग को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों का सारांश दिया है। सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अनुशीलन किया:-

अनुवादित

"28. विधि के निम्नलिखित सिद्धांत सामने आते हैं:

(i) संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट जारी करने की शक्ति का प्रयोग केवल मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन के लिए ही नहीं अपितु किसी अन्य उद्देश्य के लिए भी किया जा सकता है;

(ii) उच्च न्यायालय के पास रिट याचिका पर विचार न करने का विवेकाधिकार है। उच्च न्यायालय की शक्ति पर लगाए गए प्रतिबंधों में से एक यह भी है जहां पीड़ित व्यक्ति के लिए कोई प्रभावी वैकल्पिक उपचार उपलब्ध है वहां उच्च न्यायालय अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं करेगा।

(iii) वैकल्पिक उपचार के नियम के अपवाद तब उत्पन्न होते हैं जब;

(क) संविधान के भाग iii द्वारा संरक्षित मौलिक अधिकार के प्रवर्तन के लिए रिट याचिका दायर की गई हो; (ख) प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन हुआ हो;

(ग) आदेश या कार्यवाही पूरी तरह से अधिकार क्षेत्र से बाहर हो; या (घ) किसी विधि व्यवस्था की शक्तियों को चुनौती दी गई हो;

(iv) वैकल्पिक उपचार अपने आप में उच्च न्यायालय को संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत किसी उचित मामले में शक्तियों से वंचित नहीं करता है, हालांकि सामान्यतः यदि विधि द्वारा प्रभावी वैकल्पिक उपचार प्रदान किया जा सकता है तो रिट याचिका पर विचार नहीं किया जाना चाहिए;

(v) जब कोई अधिकार किसी विधि व्यवस्था द्वारा बनाया जाता है, जो स्वयं अधिकार या दायित्व को लागू करने के लिए उपाय या प्रक्रिया निर्धारित करता है, तो संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत विवेकाधीन उपाय को लागू करने से पहले उस विशेष वैधानिक उपाय का सहारा लिया जाना चाहिए। वैधानिक उपायों की समाप्ति का यह

अनुवादित

नियम नीति, सुविधा और विवेक का नियम है; तथा

(vi) ऐसे मामलों में जहां तथ्य संबंधी विवादित प्रश्न हैं, उच्च न्यायालय रिट याचिका में अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने से इनकार करने का निर्णय ले सकता है। हालांकि, यदि उच्च न्यायालय का यह सुविचारित दृष्टिकोण है कि विवाद की प्रकृति के लिए न्यायालय के रिट अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करना आवश्यक है, तो ऐसे दृष्टिकोण में सामान्यतः हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा।

(महत्वपूर्ण बिंदुओं को रेखांकित किया गया है)

(16) इसमें कोई संदेह नहीं है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन के मामले में रिट याचिका पर विचार करने के लिए उच्च न्यायालय की अवशिष्ट शक्ति को सुरक्षित रखा है, हालांकि, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी माना है कि ऐसे मामले में जिनमें तथ्य से जुड़े विवादित प्रश्न हैं उन मामलों में उच्च न्यायालय सामान्यतः पर अपने रिट अधिकार क्षेत्र का प्रयोग नहीं करेगा। इस स्थिति में, यह उल्लेख करना उचित होगा कि **श्री मीनाक्षी मिल्स लिमिटेड बनाम आयकर आयुक्त:** एआईआर 1957 एससी 49 में सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने तथ्य के प्रश्नों, विधि के प्रश्नों एवं विधि तथा तथ्यों के मिश्रित प्रश्नों की पहचान के लिए परीक्षणों को संक्षेप में समझाया। सर्वोच्च न्यायालय ने अनुशीलन किया कि:-

"9. ....एक उदाहरण लेते हैं, मान लीजिए कि वचन पत्र पर मुकदमे में बचाव पक्ष द्वारा निष्पादन से इनकार करने का तर्क दिया गया है। न्यायालय पाता है कि विवादित हस्ताक्षर प्रतिवादी के स्वीकृत हस्ताक्षरों से भिन्न है। न्यायालय यह भी पाता है कि निष्पादन के विषय में साक्ष्य प्रस्तुत करने वाले सत्यापनकर्ता साक्षी वास्तव में कथित निष्पादन के समय मौजूद नहीं थे। इन तथ्यों पर विचार करने पर, न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि वचन पत्र वास्तविक नहीं है। यहाँ, कुछ तथ्य हैं जो सुनिश्चित किए गए हैं, और इन तथ्यों पर, एक निश्चित निष्कर्ष निकलता है जो तथ्य पर आधारित है।

10. क्रमशः तथ्य के प्रश्नों तथा विधि के प्रश्नों द्वारा आवरित क्षेत्र के बीच एक बड़ा क्षेत्र है ऐसा है जिसमें ये दोनों प्रश्न एक दूसरे में मिलते हैं, या यूं कहें एक दूसरे के भीतर परिक्षेत्र का निर्माण करते हैं। उस क्षेत्र में निर्धारण के लिए उठने वाले प्रश्नों को विधि एवं तथ्य

अनुवादित

के मिश्रित प्रश्न के रूप में जाना जाता है। इन प्रश्नों में पहले प्रस्तुत किए गए साक्ष्यों के आधार पर तथ्यों का पता लगाना और फिर पता लगाए गए तथ्यों पर विधि के उपयुक्त सिद्धांतों के अनुप्रयोग से पक्षों के अधिकारों का निर्धारण सम्मिलित है। उदाहरण के लिए, प्रश्न यह है कि क्या प्रतिवादी ने प्रतिकूल कब्जे द्वारा वाद की संपत्ति का स्वामित्व अर्जित किया है। तथ्यों के आधार पर यह पाया जाता है कि विवादित भूमि एक खाली जगह है, प्रतिवादी बगल के आवासीय घर का मालिक है तथा वह उक्त भूखंड पर अनाज, कपड़ा आदि सुखाता रहा है और कूड़ा-कचरा फेंकता रहा है। आगे जो प्रश्न निर्धारित किया जाना है वह यह है कि क्या उपरोक्त तथ्य विधि में प्रतिकूल कब्जे को स्थापित करने के लिए पर्याप्त हैं। क्या उपयोगकर्ता निरंतर उस संपत्ति का उपयोग करता रहा है या बस कभी-कभार? क्या यह अधिकार का मामला है अथवा अनुमति का? इस प्रकार, यह तय करने के लिए कि क्या प्रतिवादी ने प्रतिकूल कब्जे द्वारा स्वामित्व अर्जित किया है, न्यायालय को सबसे पहले साक्ष्य के आधार पर यह पता लगाना होगा कि तथ्य (वास्तविकता) क्या हैं। यहाँ तक, यह तथ्य का प्रश्न है। फिर उसे प्रतिकूल कब्जे द्वारा स्वामित्व के अधिग्रहण के संबंध में विधि के सिद्धांतों को लागू करना होगा, तथा यह तय करना होगा कि क्या साक्ष्य द्वारा स्थापित तथ्यों पर विधि की आवश्यकताएं संतुष्ट होती हैं। यह विधि का प्रश्न है।

(17) अतः, विधि के प्रश्न के निर्धारण के लिए देखना यह है कि क्या न्यायालय के समक्ष पक्षकारों के अधिकारों को तथ्यात्मक परिदृश्य के संदर्भ के बिना निर्धारित किया जा सकता है। इस मामले में तर्क दिया गया है कि 11.07.2020 के आक्षेपित आदेशों के माध्यम से 'संचालन हेतु सहमति' देने से इनकार करना भारत के संविधान के अनुच्छेद 19 (जी) के अंतर्गत गारंटीकृत व्यवसाय, व्यापार और व्यवसाय के अधिकार का उल्लंघन है, विशेष रूप से इस तथ्य के परिप्रेक्ष्य में कि याचिकाकर्ता को व्यवसाय चलाने का अधिकार है तथा उस व्यवसाय के संबंध में इकाई स्थापित करने की अनुमति उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा दिनांक 04.01.2017 के पत्र के माध्यम से दे दी गई थी। स्पष्ट रूप से याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए विवाद्यक (मुद्दे) विधि के प्रश्न हैं, जिनको जल अधिनियम, 1974, वायु अधिनियम, 1981 के विभिन्न प्रावधानों और अधिनियम के अन्य प्रावधानों के साथ-साथ आधुनिक पशुवधशाला के 'संचालन हेतु सहमति' देने के विषय पर विभिन्न शासकीय आदेशों तथा विधिक प्रतिपादनाओं के व्यापक अध्ययन के बाद ही निर्णीत किया जा

अवधारित

सकता है। इस प्रकार, हम इस याचिका को भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत विचारणीय/सुनवाई योग्य मानते हैं।

(18) उपर्युक्त कारणों से, हम इस याचिका पर सुनवाई करने के लिए सहमत हैं तथा उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता तथा राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता द्वारा रिट याचिका की विचारणीयता के संबंध में उठाई गई आपत्ति को अस्वीकार करते हैं।

<u>वाद की योग्यता पर पक्षों के तर्क</u>

(19) जल अधिनियम, 1974 की धारा 25/26 और वायु अधिनियम, 1981 की धारा 21/22 के अंतर्गत 'संचालन हेतु सहमति' देने से इनकार करने वाले विवादित आदेशों को चुनौती देते हुए याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि 07.07.2017 का शासनादेश सर्वोच्च न्यायालय द्वारा रिट याचिका (सी) संख्या 330/2021 (*कॉमन कॉज ए रजिस्टर्ड सोसाइटी बनाम भारत संघ आदि*) में पारित दिनांक 17.02.2017 के उस निर्णय एवं आदेश के अनुपालन में जारी किया गया था, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय द्वारा नियुक्त समिति द्वारा की गई संस्तुति के अनुपालन में केंद्र सरकार को निर्देश जारी करने के लिए कहा गया था। दिनांक 07.07.2017 का उक्त शासनादेश दिनांक 26.11.2014 के शासनादेश के कुछ प्रावधानों को अतिसरित कर दिया है, जो 24 बिंदुओं के संकलन के दृष्टिगत अप्रासंगिक थे।

(20) याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया है कि दिनांक 07.07.2017 के शासनादेश में उल्लिखित 24 बिंदुओं के संकलन की प्रयोज्यता को मुख्य रूप से तीन शीर्षकों के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाना है अर्थात (i) वध से पूर्व; (ii) वध के दौरान; तथा (iii) वध के पश्चात। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, (i) वध से पूर्व के संबंध में संकलन में निर्धारित सभी शर्तें याचिकाकर्ता द्वारा पहले ही पूरी की जा चुकी हैं, परंतु, पूर्वोक्त (ii) वध के दौरान तथा (iii) वध के पश्चात की शर्तों का अनुपालन तभी किया जाएगा जब याचिकाकर्ता की इकाई को राज्य प्रदूषण बोर्ड द्वारा 'संचालन हेतु सहमति' प्रदान करके प्रचालन एवं संचालन की अनुमति दी जाए। उन्होंने तर्क दिया कि दिनांक 07.07.2017 के शासनादेश में 26.11.2014 के शासनादेश के प्रभावी रहते स्थापना से पूर्व की सहमति अथवा संचालन से पूर्व अथवा स्थापना के पश्चात की सहमति के लिए उठाए जाने वाले कदमों का प्रावधान नहीं है। उन्होंने कहा कि याचिकाकर्ता की इकाई 2017 से पूर्व ही स्थापित हो चुकी है तथा कुछ अनुमति इकाई के संचालन के

अनुवादित

दौरान ही प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकार, दिनांक 07.07.2017 का शासनादेश पूर्ववर्ती तिथि से लागू नहीं होता, विशेषतः इस कारण से कि इसमें पहले से संचालित उद्योगों के आधुनिकीकरण तथा नवीनतम पशुधन गणना के आधार पर नए उद्योगों की स्थापना के लिए प्रावधान किया गया है।

(21) याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि दिनांक 07.07.2017 के शासनादेश में उल्लिखित 24 बिंदुओं का संकलन विभिन्न वैधानिक परामर्शों से संबंधित है, जिनमें से अधिकांश मांस उद्योग के संचालन चरण से संबंधित हैं। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, कुछ विधि व्यवस्थाओं में निहित कुछ वैधानिक परामर्श, स्थापना चरण से भी संबंधित हैं जो कि उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा याचिकाकर्ता को दिनांक 04.01.2017 को स्थापना के लिए दी गई सहमति की शर्तों के समान हैं। इस प्रकार, दिनांक 07.07.2017 के शासनादेश के अनुसार यह आवश्यक नहीं है कि जिलाधिकारी, उन्नाव अथवा राज्य स्तरीय समिति द्वारा पूर्व में जारी किए गए अनापत्ति प्रमाण पत्र को किसी पुनर्सत्यापन की आवश्यकता होगी। विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि किसी भी दशा में, जिलाधिकारी अथवा राज्य स्तरीय समिति द्वारा प्रदत्त अनापत्ति प्रमाण पत्र के होते हुए, जिसमें किसी समाप्ति अवधि का उल्लेख नहीं है, आक्षेपित आदेशों को जारी करना पूरी तरह से मनमाना व अवैध है।

(22) **मध्य प्रदेश राज्य आदि बनाम टीकमदास:** (1975) 2 एससीसी 100, **रेलवे बोर्ड अध्यक्ष आदि बनाम सीआर रंगधामैया व अन्य:** (1976) 6 एससीसी 623, **जे.एस. यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य:** (2011) 6 एससीसी 570, **केनरा बैंक व अन्य बनाम एम. महेश कुमार :** (2015) 7 एससीसी 412, **भारत संचार निगम लिमिटेड बनाम टाटा कम्युनिकेशन लिमिटेड :** (2022) एससीसी ऑन-लाइन एससी 1280 का अवलंबन लेते हुए याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया है कि कोई शासनादेश पूर्व तिथि से प्रभावी नहीं हो सकता है तथा न ही यह किसी वैधानिक परामर्श को रद्द कर सकता है। यह किसी व्यक्ति को पहले से निहित अथवा अर्जित किसी भी अधिकार से वंचित नहीं कर सकता है, विशेष रूप से इस मामले में, जिसमें राज्य के पदाधिकारियों द्वारा स्थापना के लिए एनओसी/ सहमति दिए जाने के पश्चात याचिकाकर्ता द्वारा मांस उद्योग की स्थापना में 200 करोड़ रुपये से अधिक का निवेश किया जा चुका है।

(23) इस प्रकार, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि प्रत्यर्थियों का मामला यह नहीं है कि

अनुवादित

याचिकाकर्ता के उद्योग में दिनांक 04.01.2017 को स्थापना हेतु सहमति के अंतर्गत लगाई गई शर्तों के अनुसार मांस उद्योग की स्थापना के लिए किसी आवश्यक वस्तु की कमी है। उन्होंने तर्क दिया कि 24 बिंदुओं वाले संकलन में उल्लिखित अन्य सभी वैधानिक शर्तों के पालन की जांच एवं सत्यापन उद्योग के संचालन में आने के बाद ही किया जा सकता है। इस परिप्रेक्ष्य में उनका कहना है कि आक्षेपित आदेश पूरी तरह से मनमाने, अवैध तथा असंवैधानिक हैं।

(24) प्रत्यर्थियों की इस दलील के उत्तर में कि याचिकाकर्ता ने 30.07.2020 के उस आदेश को चुनौती नहीं दी है जिसमें 11.07.2020 के आक्षेपित आदेश की समीक्षा के अनुरोध को अस्वीकार कर दिया गया था, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **डीएसआर स्टील (प्राइवेट) लिमिटेड बनाम राजस्थान राज्य आदि** : (2012) 6 एससीसी 782 एवं **बुसा ओवरसीज एंड प्रॉपर्टीज प्राइवेट लिमिटेड व अन्य बनाम भारत संघ** : (2016) 4 एससीसी 696 में पारित सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का अवलंब लेते हुए तर्क दिया है कि 30.07.2020 के आदेश को चुनौती देने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि विलय का सिद्धांत ऐसी स्थिति में लागू नहीं होता है जहां समीक्षा के लिए प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया गया है।

(25) जहां तक उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की ओर से राष्ट्रीय हरित अधिकरण द्वारा ओ.ए. संख्या 879/2012 (आईए संख्या 38/2022) में पारित दिनांक 03.05.2023 के आदेश के दृष्टिगत रिट याचिका की सुनवाई स्थगित करने के लिए की जा रही प्रार्थना का संबंध है, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि राष्ट्रीय हरित अधिकरण, प्रधान पीठ, नई दिल्ली द्वारा ओ.ए. संख्या 879/2022 (*गौरी मौलेखी बनाम भारत संघ आदि*) में पारित दिनांक 03.05.2023 के आदेश में यह प्रावधान नहीं है कि पहले से स्थापित मांस उद्योग को संचालित करने की अनुमति नहीं दी जाएगी। उनका कहना है कि मांस उद्योग से जुड़ी पर्यावरण संबंधी समस्याएं जल अधिनियम, 1974 तथा वायु अधिनियम, 1981 के अंतर्गत विनियमित हैं, तथा जब भी पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986 के अंतर्गत निर्मित पर्यावरण संरक्षण अधिसूचना 2006 में मांस उद्योग को सम्मिलित करने की कार्रवाई होगी, तो सभी उद्योगों तथा याचिकाकर्ता को संबंधित मानदंडों का पालन करना ही होगा। अतः, सुनवाई को स्थगित करने का आवेदन गलत है।

अनुवादित

(26) उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत उपरोक्त तर्कों का पुरजोर विरोध करते हुए तर्क दिया कि दिनांक 07.07.2017 के शासनादेश में ही यह उल्लेख किया गया है कि दिनांक 26.11.2014 का शासनादेश अतिसरित हो गया है, अतएव दिनांक 26.11.2014 के शासनादेश के अनुसरण में प्रदान की गए सभी अनापत्ति प्रमाण पत्र अतिसरित हो गए हैं। उन्होंने तर्क दिया कि शासनादेश दिनांक 07.07.2017 के प्रस्तर-3 में बिन्दु संख्या 1 से 24 तक विभिन्न संविधियों का संदर्भ दिया गया है। बिन्दु संख्या 13 से 20 एवं 24, जो कि उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड से सम्बन्धित है, के सम्बन्ध में याचिकाकर्ता के 'संचालन हेतु सहमति' के आवेदन का निस्तारण करते समय यह उल्लेख किया गया है कि इन बिन्दुओं के अनुपालन का सत्यापन उद्योग के संचालन के दौरान ही सम्भव हो पाएगा। याचिकाकर्ता ने 24 बिन्दुओं के संकलन के अनुपालन में कोई स्पष्टीकरण/सूचना प्रस्तुत नहीं की है।

(27) विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने दिनांक 07.07.2017 के शासनादेश के प्रस्तर-3 की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हुए तर्क दिया कि जहां तक पूर्व शासनादेश दिनांक 26.11.2014 का सम्बन्ध है, वह अप्रासंगिक हो गया है, क्योंकि शासनादेश दिनांक 07.07.2017 के दृष्टिगत कई प्रावधान अप्रासंगिक/अनावश्यक हो गए हैं। उन्होंने तर्क दिया कि शासनादेश दिनांक 07.07.2017 के बिन्दु संख्या 1 से 12 के अवलोकन मात्र से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि 24 बिंदुओं के संकलन में संदर्भित विभिन्न अधिनियमों में संशोधन किया गया है तथा इसके अनुपालन हेतु कुछ महत्वपूर्ण प्रावधान सम्मिलित किए गए हैं। इसके अतिरिक्त, शासनादेश दिनांक 07.07.2017 के प्रस्तर-4 के उप-प्रस्तर (4) में यह उल्लेख किया गया है कि पशुवधशाला की स्थापना के लिए पशुधन से संबंधित उक्त प्रस्तर के अंतर्गत गठित समिति द्वारा एकत्रित आंकड़े प्रासंगिक होंगे तथा यदि जिला स्तरीय समिति को पशुवधशाला की स्थापना का औचित्य प्रतीत होता है तो उसे जिला स्तरीय समिति के समक्ष रखा जाएगा, जिसकी संस्तुतियां राज्य स्तरीय समिति के समक्ष रखी जाएंगी जो पशुवधशाला की स्थापना के संबंध में निर्णय लेगी।

<u>विश्लेषण</u>

(28) पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के पश्चात तथा उपरोक्त तथ्यों एवं हमारे समक्ष प्रस्तुत प्रावधानों तथा

अनुवादित

सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों और निर्देशों का अध्ययन करने के पश्चात स्पष्ट है कि इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं है कि जिलाधिकारी द्वारा दिनांक 21.05.2015 के आदेश तथा उसके पश्चात राज्य स्तरीय समिति द्वारा दिनांक 21.10.2016 के आदेश तथा उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा दिनांक 04.01.2017 के आदेश के अनुसार अनापत्ति प्रमाण पत्र प्रदान किए जाने के पश्चात याचिकाकर्ता ने आधुनिक पशुवधशाला संयंत्र स्थापित किया तथा संयंत्र के 'संचालन हेतु सहमति' के लिए आवेदन किया, जिसे दिनांक 11.07.2020 के आक्षेपित आदेशों द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर अस्वीकार कर दिया गया कि याचिकाकर्ता ने जिलाधिकारी, उन्नाव, तथा पशुवधशाला इकाई से संबंधित राज्य स्तरीय समिति से पुनः सत्यापित अनापत्ति प्रमाण पत्र प्रस्तुत नहीं किया है।

(29) जल अधिनियम, 1974 एक विस्तृत विधान है जो केंद्र एवं राज्य दोनों स्तरों पर जल प्रदूषण की जाँच के लिए उत्तरदायी एजेंसियों एवं प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों के क्षेत्र को विनियमित करता है। जल अधिनियम, 1974 को भारत में जल प्रदूषण की रोकथाम एवं नियंत्रण के उद्देश्य से भारतीय संसद द्वारा अपनाया गया था। अधिनियम, 1974 की धारा 25 में कहा गया है कि अधिनियम, 1974 की धारा 25 के अंतर्गत राज्य बोर्ड की पूर्व सहमति किसी भी उद्योग, संयंत्र या प्रक्रिया को स्थापित करने के लिए आवश्यक है, जिसमें किसी धारा या कुएँ या सीवर या भूमि पर वाहित मल अथवा व्यापारिक बहिःस्राव को छोड़ने या वाहित मल के स्राव के लिए किसी नए अथवा परिवर्तित निकास का उपयोग करने या वाहित मल का कोई नया स्राव प्रारंभ किए जाने का अंदेशा हो। जल अधिनियम, 1974 की धारा 25 में आगे कहा गया है कि प्रत्येक राज्य बोर्ड को एक रजिस्टर रखना होगा जिसमें इस धारा के अधीन अधिरोपित शर्तों की विशिष्टियां अंतर्विष्ट होंगी जिसका समय समय पर राज्य बोर्ड द्वारा निरीक्षण किया जाएगा। जल अधिनियम, 1974 की धारा 25 का उद्धरण नीचे दिया गया है:-

25. नए निकासों और नए निस्सरणों पर निर्बन्धन - [(1) इस धारा के उपबंधों के अधीन रहते हुए, राज्य बोर्ड की पूर्व सहमति के बिना कोई भी व्यक्ति, -

(क) कोई ऐसा उद्योग, संक्रिया या प्रक्रिया, या कोई ऐसी अभिक्रिया और व्ययन प्रणाली या उसमें विस्तार या परिवर्तन न तो स्थापित करेगा और न स्थापित करने की कोई कार्यवाही करेगा जिससे मल या व्यावसायिक बहिःस्राव किसी सरिता या कुएं या मलनाली में या भूमि पर निस्सारित

अनुवादित

होने की संभावना है (ऐसा निस्सारण जिसे इसके पश्चात इस धारा में मल का निस्सारण कहा गया है); या

(ख) मल के निस्सारण के लिए कोई नया या परिवर्तित निकास उपयोग में नहीं लाएगा; या

(ग) मल का कोई नया निस्सारण आरंभ नहीं करेगा:

परन्तु जल (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) संशोधन अधिनियम, 1988 के प्रारंभ के ठीक पूर्व कोई उद्योग, संक्रिया या प्रक्रिया स्थापित करने की कार्यवाही की ऐसी प्रक्रिया में जिसके लिए ऐसे प्रारंभ के पूर्व सहमति आवश्यक नहीं थी, कोई व्यक्ति, ऐसे प्रारंभ से तीन मास की अवधि के लिए या, यदि उसने तीन मास की उक्त अवधि के भीतर ऐसी सहमति के लिए आवेदन किया है, तो, ऐसे आवेदन का निपटारा होने तक ऐसा करना जारी रख सकेगा।

(2) उपधारा (1) के अधीन राज्य बोर्ड की सहमति के लिए ऐसे प्रारूप में आवेदन किया जाएगा, उसमें ऐसी विशिष्टियां होंगी और उसके साथ ऐसी फीस होगी जो विहित की जाए।]

(3) राज्य बोर्ड, उपधारा (1) में निर्दिष्ट सहमति के लिए आवेदन के सम्बन्ध में ऐसी जांच करेगा, जो वह ठीक समझे, और ऐसी कोई जांच करते समय ऐसी प्रक्रिया का अनुसरण करेगा जो विहित की जाए। 2[(4) राज्य बोर्ड-

(क) उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट अपनी सहमति ऐसी शर्तों के अधीन रहते हुए दे सकेगा जो वह अधिरोपित करे, जो

(i) धारा 25 की उपधारा (1) के खंड (क) और खंड (ख) में निर्दिष्ट दशाओं में, मल के निस्सारण के बिन्दु के बारे में या मल के निस्सारण के लिए उस निकास या किसी अन्य निकास के उपयोग के बारे में शर्तें हो सकेंगी ;

(ii) नए निस्सारण की दशा में, उस भूमि या परिसर से जहां से निस्सारण या नया निस्सारण किया जाना है, बहिःस्राव की प्रकृति और संरचना, तापमान, आयतन या निस्सारण की दर के बारे में शर्तें हो सकेंगी और

(iii) वह सहमति केवल ऐसी अवधि के लिए विधिमान्य होगी जो आदेश में विनिर्दिष्ट की जाएं,

और अधिरोपित ऐसी कोई शर्तें किसी ऐसे व्यक्ति पर आबद्धकर होंगी जो कोई उद्योग, संक्रिया या प्रक्रिया, या अभिक्रिया और व्ययन प्रणाली या उसमें विस्तार या परिवर्धन स्थापित कर रहा है या स्थापित करने के लिए कोई कदम उठा रहा है या नए या परिवर्तित निकास का उपयोग कर रहा है या भूमि या पूर्वोक्त परिसर से बहिःस्राव निस्सारित कर रहा है; या

अधिवक्ता

(ख) लेखबद्ध किए जाने वाले कारणों से, ऐसी सहमति से इंकार कर सकेगा।

(5) जहां, राज्य बोर्ड की सहमति के बिना कोई उद्योग, संक्रिया या प्रक्रिया, या कोई अभिक्रिया और व्ययन प्रणाली या उसमें कोई विस्तार या परिवर्धन स्थापित किया जाता है या ऐसे स्थापन के लिए कोई कदम उठाएं गए हैं या कोई नया या परिवर्तित निकास मल के निस्सारण के लिए उपयोग में लाया जाता है या मल का नया निस्सारण किया जाता है, वहां राज्य बोर्ड उस व्यक्ति पर, जिसने, यथास्थिति, कोई उद्योग, संक्रिया या प्रक्रिया, या अभिक्रिया और व्ययन प्रणाली या उसमें कोई विस्तार या परिवर्धन स्थापित किया है या स्थापित करने के लिए कदम उठाए हैं या जो निकास का उपयोग कर रहा है या निस्सारण कर रहा है, ऐसी शर्तें अधिरोपित करने वाली सूचना की तामील कर सकेगा जो वह ऐसे स्थापन, ऐसे निकास या निस्सारण की बाबत अपनी सहमति के लिए किसी आवेदन पर अधिरोपित कर सकता है।

(6) हर राज्य बोर्ड एक रजिस्टर रखेगा जिसमें इस धारा के अधीन अधिरोपित शर्तों की विशिष्टियां अंतर्विष्ट होंगी और रजिस्टर का उतना भाग जिसका संबंध किसी भूमि या परिसर से किसी निकास से, या किसी बहिःस्राव से हो, यथास्थिति, उस निकास, भूमि या परिसर में हितबद्ध या उससे प्रभावित किसी व्यक्ति या उसके द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किसी व्यक्ति द्वारा निरीक्षण के लिए सभी उचित समयों पर खुला रहेगा और ऐसे रजिस्टर में इस प्रकार अंतर्विष्ट शर्तें इस बात का निश्चायक सबूत होंगी कि सहमति ऐसी शर्तों के अधीन दी गई थी।]

(7) उपधारा (1) में निर्दिष्ट सहमति के बारे में, जब तक कि वह पहले से दी या नामंजूर न कर दी जाए, यह समझा जाएगा कि वह राज्य बोर्ड को इस निमित्त किए सभी प्रकार से पूर्ण आवेदन किए जाने से चार मास की कालावधि के अवसान पर बिना शर्त दे दी गई है।

(8) इस धारा और धाराएं 27 तथा 30 के प्रयोजनों के लिए-

(क) "नए या परिवर्तित निकास" पद से ऐसा कोई निकास अभिप्रेत है जो इस अधिनियम के प्रारम्भ पर या उसके पश्चात् पूर्णतः या अंशतः सन्निर्मित किया जाए या जो (चाहे इस प्रकार सन्निर्मित हो या न हो) ऐसे प्रारम्भ के पश्चात् सारतः परिवर्तित किया जाए:

(ख) "नए निस्सरण" पद से ऐसा निस्सरण अभिप्रेत है जो बहिःस्राव की प्रकृति और संरचना, तापमान, आयतन और निस्सरण की दर के बारे में, पूर्ववर्ती बारह मास के भीतर (चाहे उसी या किसी विभिन्न निकास द्वारा)

अनुवादित

किए गए निस्सरण का सारतः चालू रहना नहीं है, किन्तु यह इस प्रकार कि किसी ऐसे निस्सरण के बारे में, जो अन्य बातों में इस प्रकार यथापूर्वोक्त किए गए पूर्व निस्सरण का चालू रहना है यह नहीं समझा जाएगा कि वह, पूर्व निस्सरण की तुलना में उस वहिःस्राव के तापमान या आयतन या निस्सरण की रफ्तार में कोई कमी के कारण नया निस्सरण है।"

(30) जल अधिनियम की धारा 26 में मल या व्यावसायिक बहि:स्राव के विद्यमान निस्सरण के संबंध में उपबंध है जिसे नीचे उद्धृत किया गया है: -

"जहां इस अधिनियम के प्रारम्भ होने के ठीक पहले कोई व्यक्ति किसी सरिता या कुएं या मलनल में या भूमि पर कोई मल या व्यावसायिक बहिःस्राव का निस्सरण कर रहा था, वहां धारा 25 के उपबन्ध, जहां तक हो सके ऐसे व्यक्ति के सम्बन्ध में उसी प्रकार लागू होंगे जैसे कि वे उस धारा में निर्दिष्ट व्यक्ति के सम्बन्ध में लागू होते हैं, किन्तु इस उपान्तरण के अधीन रहते हुए कि उस धारा की उपधारा (2) के अधीन दी जाने वाली सहमति के लिए आवेदन ऐसी तारीख को या उसके पूर्व किया जाएगा, जो राज्य सरकार इस निमित्त, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, विनिर्दिष्ट करे।"

(31) वायु अधिनियम, 1974 की धारा 21 किसी व्यक्ति को बोर्ड की पूर्व सहमति के बिना वायु प्रदूषण नियंत्रण क्षेत्र में कोई औद्योगिक संयंत्र स्थापित करने या संचालित करने से रोकती है। वायु अधिनियम, 1974 की धारा 21 का उप-खंड (4) बोर्ड को उचित आदेश पारित करके सहमति देने या देने से इनकार करने का अधिकार देता है। वायु अधिनियम, 1974 की धारा 21 के उप-खण्ड (4) का प्रावधान बोर्ड को यह भी अधिकार देता है कि वह सहमति प्रदान करने की शर्तों के पूरा न होने की स्थिति में सहमति प्रदान करने की अवधि समाप्त होने से पहले सहमति रद्द कर सकता है। वायु अधिनियम, 1974 की धारा 21 को यहां उद्धृत किया गया है:-

"21. कुछ औद्योगिक संयंत्रों के प्रयोग पर निर्बन्धन

(1) इस धारा के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, कोई व्यक्ति राज्य बोर्ड की पूर्व सम्मति के बिना, किसी वायु प्रदूषण नियंत्रण क्षेत्र में कोई औद्योगिक संयंत्र स्थापित या प्रचालित नहीं करेगा:

परन्तु वायु (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) संशोधन अधिनियम, 1987 की धारा 9 के प्रारम्भ के ठीक पूर्व किसी वायु प्रदूषण नियंत्रण क्षेत्र में किसी औद्योगिक संयंत्र को प्रचालित करने वाला व्यक्ति, जिसके लिये ऐसे प्रारम्भ के पूर्व कोई सम्मति आवश्यक नहीं थी, ऐसे प्रारम्भ से तीन मास की अवधि तक या यदि उसने उक्त तीन मास की अवधि के भीतर ऐसी सम्मति के लिये कोई आवेदन किया है, तो ऐसे आवेदन का निपटारा किये जाने तक ऐसा करता रहेगा।

(2) उपधारा (1) के अधीन राज्य बोर्ड की सम्मति के लिये, आवेदन के साथ ऐसी फीस

अनुवादित

होगी, जो विहित की जाये और वह विहित प्रारूप में दिया जाएगा और उसमें औद्योगिक संयंत्र की विशिष्टियाँ और ऐसी अन्य विशिष्टयाँ भी होंगी, जो विहित की जाएं:

परन्तु जहां कोई व्यक्ति, वायु प्रदूषण नियंत्रण क्षेत्र के रूप में किसी क्षेत्र के घोषित किये जाने से ठीक पूर्व, ऐसे क्षेत्र में कोई औद्योगिक संयंत्र प्रचालित करता है, वहां ऐसा व्यक्ति इस उपधारा के अधीन आवेदन ऐसी अवधि के अन्दर (जो ऐसी घोषणा की तारीख से कम-से-कम तीन मास की होगी), जो विहित की जाये, करेगा और जहां ऐसा व्यक्ति ऐसा आवेदन करता है वहां उसके बारे में यह समझा जाएगा कि वह उस समय तक, ऐसा औद्योगिक संयंत्र राज्य बोर्ड की सम्मति से प्रचालित कर रहा है जब तक कि सम्मति के लिये राज्य बोर्ड को किया गया आवेदन अस्वीकृत नहीं हो जाता।

(3) राज्य बोर्ड, उपधारा (1) में निर्दिष्ट सम्मति के लिये आवेदन के सम्बन्ध में ऐसी जाँच कर सकेगा जो वह ठीक समझे और ऐसी कोई जाँच करते समय ऐसी प्रक्रिया का अनुसरण करेगा जो विहित की जाये।

(4) राज्य बोर्ड, उपधारा (1) में निर्दिष्ट सम्मति के लिये आवेदन की प्राप्ति के पश्चात चार मास की अवधि के भीतर लिखित आदेश द्वारा, और उसके लिये जो कारण हैं उन्हें आदेश में लेखबद्ध करके ऐसी सम्मति जिसके लिये आवेदन किया गया है, ऐसी शर्तों के अधीन रहते हुए और ऐसी अवधि के लिये जो आदेश में विनिर्दिष्ट की जाये, प्रदान कर सकेगा या ऐसी सम्मति से इनकार कर सकेगा।

परन्तु उस अवधि की समाप्ति के पूर्व जिसके लिये वह प्रदान की गई है, ऐसी सम्मति को रद्द करने की या ऐसी समाप्ति के पश्चात आगे सम्मति देने से इनकार करने की राज्य बोर्ड को छूट होगी यदि वे शर्तें, जिनके अधीन ऐसी सम्मति दी गई है, पूरी नहीं की जाती हैं:

परन्तु यह और कि पहले परन्तुक के अधीन किसी सम्मति को रद्द करने या आगे सम्मति देने से इनकार करने से पूर्व सम्बन्धित व्यक्ति को सुने जाने का उचित अवसर दिया जाएगा।

(5) ऐसा प्रत्येक व्यक्ति जिसे राज्य बोर्ड द्वारा सम्मति उपधारा (4) के अधीन दी गई है, निम्नलिखित शर्तों का अनुपालन करेगा, अर्थात –

(i) ऐसे विनिर्देशों वाला नियंत्रण उपस्कर, जो राज्य बोर्ड द्वारा इस निमित्त अनुमोदित किया जाये ऐसे परिसर में संस्थापित और प्रचालित किया जाएगा जहां उद्योग चलाया जाता है या चलाए जाने की प्रस्तावना है;

(ii) विद्यमान नियंत्रण उपस्कर में, यदि कोई है, परिवर्तन या उसके स्थान पर दूसरे उपस्कर का प्रतिस्थापन, राज्य बोर्ड के निर्देशों के अनुसार किया जाएगा;

(iii) खण्ड (i) या (ii) में निर्दिष्ट नियंत्रण उपस्कर सभी समयों पर अच्छी चालू हालत में रखा जाएगा;

(iv) ऐसे परिसरों में ऐसे विनिर्देशनों की चिमनी, जहां कहीं आवश्यक है, जो बोर्ड इस निमित्त अनुमोदित करे, लगाई जाएगी या पुनः लगाई जाएगी;

(v) ऐसी अन्य शर्तें, जो राज्य बोर्ड इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे; और

अनुवादित

(vi) खण्ड (i), खण्ड (ii) और खण्ड (iv) में विनिर्दिष्ट शर्तों का अनुपालन ऐसी अवधि के भीतर किया जाएगा जैसी राज्य बोर्ड इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे:

परन्तु ऐसे किसी व्यक्ति के मामले में, जो वायु प्रदूषण नियंत्रण क्षेत्र के रूप में किसी क्षेत्र के घोषित किये जाने से ठीक पूर्व, ऐसे क्षेत्र में कोई औद्योगिक संयंत्र प्रचालित कर रहा है, इस प्रकार विनिर्दिष्ट की जाने वाली अवधि छह मास से कम की नहीं होगी:

परन्तु यह और कि -

(क) खण्ड (i) के अधीन विनिर्देशों के अनुसार किसी नियंत्रण उपस्कर के संस्थापन के पश्चात, या

(ख) खण्ड (ii) के अधीन राज्य बोर्ड के निर्देशों के अनुसार किसी नियंत्रण उपस्कर में परिवर्तन या उसके स्थान पर दूसरे उपस्कर के प्रतिस्थापन के पश्चात या

(ग) खण्ड (iv) के अधीन किसी चिमनी के लगाए जाने या पुनः लगाए जाने के पश्चात, कोई भी नियंत्रण उपस्कर या चिमनी राज्य बोर्ड के पूर्व अनुमोदन के सिवाय, न तो परिवर्तित की जाएगी और न उसके स्थान पर दूसरी प्रतिस्थापित की जाएगी और, यथास्थिति, न तो लगाई जाएगी और न पुनः लगाई जाएगी।

(6) यदि किसी तकनीकी सुधार के कारण या अन्यथा राज्य बोर्ड की राय है कि उपधारा (5) में निर्दिष्ट सभी शर्तों में या किसी शर्त में परिवर्तन अपेक्षित है (इसमें किसी नियंत्रण उपस्कर का, भागतः या पूर्णतः परिवर्तन भी सम्मिलित है) तो राज्य बोर्ड उस व्यक्ति को जिसे सम्मति प्रदान की गई है, सुनवाई का अवसर देने के पश्चात ऐसी सभी या किन्हीं शर्तों में परिवर्तन कर सकेगा और तब ऐसा व्यक्ति उस प्रकार परिवर्तित शर्तों का अनुपालन करने के लिये आबद्ध होगा।

(7) यदि कोई व्यक्ति, जिसे उपधारा (4) के अधीन राज्य बोर्ड द्वारा सम्मति प्रदान की गई है, किसी अन्य व्यक्ति को उद्योग में अपना हित अन्तरित करता है तो ऐसे सम्मति ऐसे अन्य व्यक्ति को प्रदान की गई समझी जाएगी और वह उन सभी शर्तों के, जिनके अधीन ऐसी सम्मति प्रदान की गई थी, अनुपालन के लिये उसी प्रकार आबद्ध होगा मानों ऐसी सम्मति मूलतः उसे ही प्रदान की गई हो।"

(32) उपर्युक्त प्रावधानों के अवलोकन मात्र से स्पष्ट है कि बोर्ड को तीन विभिन्न शक्तियां प्रदान की गई हैं, अर्थात् 'संचालन हेतु सहमति' प्रदान करने की शक्ति, उक्त सहमति को नवीनीकृत करने की शक्ति और सहमति आदेश में दी गई अवधि की समाप्ति के पूर्व उक्त सहमति को रद्द करने की शक्ति। धारा 21 का उपखंड (3) एक वैधानिक कर्तव्य आरोपित करता है कि यदि सहमति के लिए आवेदन उपधारा (1) के अंतर्गत प्रस्तुत किया जाता है, तो बोर्ड जांच करेगा और ऐसी प्रक्रिया का अनुसरण करेगा जो कि विहित की जाए ।

(33) अधिनियम की धारा 21 (4) बोर्ड को संचालन हेतु सहमति देने अथवा ऐसी सहमति को अस्वीकार करने का अधिकार प्रदान करती है। यद्यपि दोनों में से किसी भी शक्ति का प्रयोग करते समय, बोर्ड को सहमति देने, शर्तें लगाने या सहमति अस्वीकार करने के कारणों को लेखबद्ध (रिकॉर्ड) करना आवश्यक है। धारा 21 (4) का प्रथम परन्तुक बोर्ड को प्रचालन के लिए सहमति को रद्द करने का अधिकार देता है, यदि वे शर्तें, जिनके अधीन ऐसी सहमति दी

अनुवादित

गई है, पूरी नहीं की जाती हैं। उक्त धारा के द्वितीय परन्तुक के अनुसार, सहमति को रद्द करने या आगे सहमति (सहमति का नवीनीकरण) को अस्वीकार करने से पूर्व संबंधित व्यक्ति को सुने जाने का उचित अवसर दिया जायेगा। अधिनियम की धारा 21 (5) में उन शर्तों को निर्धारित किया गया है जिनका संचालन इकाई द्वारा अनुपालन करना आवश्यक है।

(34) वास्तव में, यह विधि का एक स्थापित सिद्धांत है कि यदि किसी विधान के अंतर्गत कोई प्रक्रिया निर्धारित की गई है, तो उपयुक्त प्राधिकारी उक्त प्रक्रिया का पालन करने के लिए वैधानिक रूप से बाध्य है।

(35) याचिकाकर्ता का कथन है कि चूंकि याचिकाकर्ता को आधुनिक पशुवधशाला स्थापित करने के लिए अनापत्ति प्रमाणपत्र दिया जा चुका है तथा उसके अनुसरण में याचिकाकर्ता ने आधुनिक पशुवधशाला स्थापित भी कर लिया है, अतः उक्त इकाई की स्थापना के बाद, दिनांक 07.07.2017 के शासनादेश की आड़ में आक्षेपित आदेशों के माध्यम से याचिकाकर्ता को जिलाधिकारी और पशुवधशाला इकाइयों से संबंधित राज्य स्तरीय समिति से अनापत्ति प्रमाणपत्र का पुन: सत्यापन करवाने हेतु 'संचालन हेतु सहमति' देने से इनकार करना मनमाना एवं अवैध है।

(36) यह न्यायालय के सम्मुख है कि यद्यपि उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड का वाद यह नहीं है कि उसने पशु वध या पशु आहार के विक्रय पर रोक लगाने का कोई प्रयास किया है, तथापि उन्होंने निरंतर यह रुख अपनाया है कि वे दोनों अधिनियमों अर्थात जल अधिनियम तथा वायु अधिनियम के अंतर्गत इस व्यवसाय और विक्रय को विनियमित करने के लिए सशक्त हैं ताकि वैध तरीके अपनाए जाएं एवं पर्यावरण की सुरक्षा के लिए ऐसे व्यापार तथा व्यवसाय के लिए अवैधानिक तरीकों को सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय दिनांक 17.02.2017 कॉमन कॉज बनाम भारत संघ (पूर्वोक्त), लक्ष्मी नारायण मोदी बनाम भारत संघ (पूर्वोक्त) के साथ-साथ सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णयों के अनुपालन में निर्गत शासनादेश दिनांक 07.07.2017 और मूल आवेदन संख्या 879 वर्ष 2022: गौरी मौलेखी बनाम भारत संघ आदि में राष्ट्रीय हरित अधिकरण द्वारा पारित दिनांक 03.05.2023 के आदेश के आलोक में रोका जा सके। इस बात पर भी कोई विवाद नहीं है कि इस तरह के व्यापार और व्यवसाय को लाइसेंसिंग प्रावधानों के द्वारा विनियमित किया जा सकता है। इस बात पर भी कोई विवाद नहीं है कि इस तरह के व्यापार और व्यवसाय को संबंधित विधियों और नियमों व विनियमों के अंतर्गत उचित विनियमों द्वारा अनुमति दी गई है। इस प्रकार उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की ओर से ऐसे व्यापार और व्यवसाय पर प्रतिबंध लगाने के लिए ऐसी किसी तर्क के अभाव में, जो प्रत्यक्ष रूप से 07.07.2017 के शासनादेश में भी परिलक्षित नहीं होती है, ऐसे प्रतिबंध की कोई धारणा या अनुमान नहीं लगाया जा सकता है अन्यथा यह भारत के संविधान के अंतर्गत गारंटीकृत संवैधानिक अधिकारों और मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होगा।

(37) इस परिस्थिति में, यह उल्लेख करना उपयुक्त होगा कि शासनादेश दिनांक 07.07.2017 आधुनिक पशुवधशाला को

अनुवादित

संचालित करने की सहमति से संबंधित है। शासनादेश दिनांक 07.07.2017 को नीचे उद्धृत किया गया है: -

"संख्या-3710/नौ-8-2017-2सी.एस/12टी.सी.

प्रेषक,

कुमार कमलेश,
प्रमुख सचिव,
उत्तर प्रदेश।

सेवा में,

1. समस्त मण्डलायुक्त, उत्तर प्रदेश।
2. निदेशक, नगरीय निकाय, उत्तर प्रदेश, लखनऊ।
3. समस्त जिलाधिकारी, उत्तर प्रदेश।
4. समस्त नगर आयुक्त, नगर निगम, उत्तर प्रदेश।
5. समस्त अधिशासी अधिकारी, नगरपालिका परिषद/ नगर पंचायत, उत्तर प्रदेश।

नगर विकास अनुभाग-8
लखनऊः दिनांक 07 जुलाई, 2017

विषयः मा० सर्वोच्च न्यायालय द्वारा रिट याचिका (सिविल) संख्या-330/2001काम काज बनाम भारत संघ, रिट याचिका संख्या- 44/2004, अवमानना याचिका संख्या-124/2015 के साथ संलग्न रिट याचिका संख्या-309/2003 लक्ष्मी नारायण मोदी बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया व अन्य में पारित आदेश दिनांक 17.02.2017 के अनुपालन में पशुवधशालाओं के संचालन के सम्बन्ध में अद्यतन दिशा-निर्देश।

महोदय,

मा० सर्वोच्च न्यायालय में पशुवधशालाओं से सम्बन्धित विभिन्न बिन्दुओं के सम्बन्ध में दायर रिट याचिक - (सिविल) 309/2003, लक्ष्मीनारायण मोदी बनाम यूनियन आफ इण्डिया के सम्बन्ध में मा० सर्वोच्च न्यायालय द्वारा समय-समय पर पारित किये गये आदेशों के अनुपालन में सचिव, भारत सरकार, पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के अर्द्ध शा० पत्र संख्या- 7/4/2011- ए. डब्लू. डी. दिनांक 02.07.2012 में दिये गये दिशा-निर्देशों के अनुक्रम में उत्तर प्रदेश के अन्तर्गत राज्य सरकार द्वारा पशुवधशालाओं के संचालन से सम्बन्धित विषयों के क्रियान्वयन हेतु शासन के कार्यालय ज्ञाप संख्या-1838/नौ- 8-2012-2सी.एस./2012 दिनांक 11 सितंबर, 2012 द्वारा "राज्य स्तरीय समिति" का गठन किया गया है, जिसमें प्रमुख सचिव/सचिव, पशुधन, गृह, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य, पर्यावरण, पंचायतीराज, श्रम विभाग तथा पुलिस महानिदेशक, उत्तर प्रदेश आदि को समिति में सदस्य के रूप में नामित किया गया है। पशुवधशालाओं के संचालन हेतु

अनुवादित

गठित "राज्य स्तरीय समिति" को सौपे गये दायित्वों के अंतर्गत प्रदेश में स्थित पुरानी पशुवधशालाओं का आधुनिकीकरण तथा आधुनिक पशुवधशालाओं की स्थापना किये जाने की योजना शासनादेश संख्या-2394/नौ-8-2014-03पी(बजट)/2014 दिनांक 26.11.2014लागू की गयी थी।

2. मा० सर्वोच्च न्यायालय द्वारा रिट याचिका (सिविल) संख्या-330/2001 कामन काज बनाम भारत संघ, रिट याचिका संख्या- 44/2004, अवमानना याचिका 124/2015 के साथ संलग्न रिट याचिका संख्या-सिविल 309/2003, लक्ष्मीनारायण मोदी बनाम यूनियन आफ इण्डिया एवं अन्य में पशुवधाशालाओं से सम्बन्धित रिट याचिकाओं पर सुनवाई करते हुए दिनांक 17.02.2017 को पारित निर्णय (Judgement) के सुसंगत अंश निम्नवत हैः-

"हमारे आदेश दिनांक 26.09.2016 और 28.10.201 के अनुसरण में, सभी हितधारकों के परामर्श से सभी प्रासंगिक सामग्री के साथ भारतीय मानकों का एक संग्रह तैयार किया गया है। भारत संघ को निर्देश दिया जाता है कि वह इस संग्रह को पर्याप्त संख्या में मुद्रित करे तथा अनुपालन के लिए सभी राज्य सरकारों और केंद्र शासित प्रदेशों में इसे प्रसारित करे। भारत संघ आज से छह सप्ताह के भीतर हमारे आदेशों का अनुपालन करेगा। यदि भारतीय मानकों, अन्य नियमों और विनियमों का अनुपालन नहीं होता है, तो याचिकाकर्ता संबंधित जिला समाहर्ता या न्यायिक अधिकारियों के समक्ष प्रस्तुत होने के अधिकारी हैं, जैसा कि किसी विशिष्ट मामले में हो सकता है।

3. मा० उच्चतम न्यायालय द्वारा केन्द्र सरकार/ राज्य सरकार के विभिन्न विभागों द्वारा compendium में विभिन्न अधिनियमों, नियमों, दिशा-निर्देशों के अनुसार पशुवधशालाओं की स्थापना/ मीटशॉप का संचालन किये जाने हेतु निम्न प्राविधान प्रसारित किये गये हैंः-

क्र. सं.	स्थिति/मानक/दिशानिर्देश
1.	पशु क्रूरता निवारण अधिनियम, 1960 (संबंधित धाराएं: 3(पृष्ठ 3), 9(बी) (पृष्ठ 6), धारा 9 (ई) (पृष्ठ 6), 11 (पृष्ठ 7,8) और 38 (पृष्ठ 15,16)
2.	पशु परिवहन नियमावली, 1978 (2001 और 2009 में यथा संशोधित)
3.	पशुओं के प्रति क्रूरता का

अनुवादित

	निवारण (पशुओं का पैदल परिवहन) नियमावली, 2000
4.	पशु क्रूरता निवारण (पशुवधशाला) नियमावली, 2001
5.	पशु क्रूरता निवारण (पशुवधशाला) नियमावली, 2001 के नियम 4(3) के अनुसार पशुओं के वध से पहले और बाद में पशुओं की जांच करने के बाद पशु चिकित्सक द्वारा निर्गत किए जाने वाले पूर्व और उत्तर स्वास्थ्य प्रमाण पत्र के लिए प्रारूप [प्रासंगिक दस्तावेज: एडब्ल्यूबीआई का सभी राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों के नगरपालिका प्रशासन के निदेशक/आयुक्त को पत्र, दिनांक 17.10.2016 (पृष्ठ 49); एडब्ल्यूबीआई का सीईओ खाद्य सुरक्षा एवं मानक प्राधिकारी को पत्र, दिनांक 17.10.2016 (पृष्ठ 50); एफएसएसएआई का सभी केंद्रीय लाइसेंसिंग प्राधिकारियों और सभी राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों के खाद्य सुरक्षा आयुक्तों को पत्र (पृष्ठ 51)
6.	पशुओं के प्रति क्रूरता निवारण (पशुधन बाजार का विनियमन) नियमावली, 2016 का मसौदा
7.	केंद्रीय मोटर वाहन (ग्यारहवां संशोधन) नियमावली, 2015 [प्रासंगिक नियम: नियम 125 E (पृष्ठ 62)
8.	केंद्रीय मोटर वाहन (13वां संशोधन) नियमावली, 2016 [प्रासंगिक नियम: नियम 125 E (पृष्ठ 71)
9.	खाद्य सुरक्षा और मानक अधिनियम 2006 [प्रासंगिक धाराएं-धारा 92 (पृष्ठ 118,119)]
10.	खाद्य सुरक्षा और मानक (खाद्य योजकों का अनुज्ञा और पंजीकरण) विनियमावली, 2011 [प्रासंगिक विनियम-विनियम 161-178)]
11.	खाद्य सुरक्षा एवं मानक (खाद्य उत्पाद मानक एवं खाद्य योजक) विनियमावली, 2011 [प्रासंगिक विनियम-विनियम 2.5 (पृष्ठ 265)]
12.	कृषि एवं प्रसंस्कृत खाद्य उत्पाद निर्यात विकास प्राधिकरण (संशोधन) अधिनियम, 2009 [प्रासंगिक धाराएं- धारा 4 (पृष्ठ 344)

अनुवादित

	एवं धारा 12 (पृष्ठ 349)]
13.	पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986 [प्रासंगिक धाराएं-6 एवं 25 (पृष्ठ 356)
14.	पर्यावरण (संरक्षण) नियमावली, 1986 [प्रासंगिक नियम- बहि:स्राव उत्सर्जन मानक। क्र. सं. 509 (पृष्ठ 357)
15.	(संशोधित प्रारूप) पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा अधिसूचित किए जाने वाले पशुवधशाला के लिए बहि:स्राव उत्सर्जन मानक [प्रासंगिक नियम- बहि:स्राव उत्सर्जन मानक। क्र. सं. 50 (पृष्ठ 360)
16.	जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1974 [प्रासंगिक धाराएं 24(पृष्ठ 373, 374), 25 (पृष्ठ 374), 26 (पृष्ठ 375), 27 (पृष्ठ 375,376), 28 (पृष्ठ 376) एवं 33 बी (पृष्ठ 378)]
17.	जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1974 [प्रासंगिक नियम: फॉर्म XIII (पृष्ठ 410)]
18.	वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम 1981, [प्रासंगिक धाराएं- 21 (पृष्ठ 441), 21ए (पृष्ठ 443),23 (पृष्ठ 443), 24 (पृष्ठ 443,444), 31ए (पृष्ठ 446),31बी (पृष्ठ 446), 37 (पृष्ठ 448), 40 (पृष्ठ 448,449), और 41(पृष्ठ 449)]
19.	नगरपालिका ठोस अपशिष्ट (प्रबंधन एवं हैंडलिंग) नियमावली, 2000 [प्रासंगिक नियम-7 (पृष्ठ 456), अनुसूची II- क्र.सं.1 (iii)(पृष्ठ 458), 4(पृष्ठ 459), 5.(पृष्ठ 459,460),6(पृष्ठ 460), फॉर्म II खंड 6 (ii) (पृष्ठ 472)]
20.	राष्ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम, 2010 [प्रासंगिक धाराएं 14(पृष्ठ 482),16(पृष्ठ 483)]
21.	आईएस 8895:2015 पशुवधशाला के उप-उत्पादों के हैंडलिंग, भंडारण एवं परिवहन संबंधी दिशानिर्देश (प्रथम संशोधन)
22.	आईएस 1982:2015 मांस वाले पशुओं का मृत्युपूर्व एवं मृत्युपरांत निरीक्षण- व्यवहार संहिता (द्वितीय संशोधन)

अनुवादित

23.	आईएस 4393:2016 पशुवधशाला की मूलभूत आवश्यकता (द्वितीय संशोधन)
24.	[संशोधित] पशुवधशालाओं, मांस प्रसंस्करण इकाइयों और समुद्री खाद्य उद्योग से निकलने वाले बहि:स्रावों के उत्सर्जन के लिए मानक।

मा० सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उपर्युक्त मामले में पारित अन्तिम निर्णय दिनांक 17.02.2017 का परिशीलन किये जाने पर यह पाया गया कि प्रदेश में पुरानी पशुवधशालाओं का आधुनिकीकरण तथा आधुनिक पशुवधशालाओं की स्थापना किये जाने से सम्बन्धित शासनादेश संख्या-2394/नौ-8-2014-03पी(बजट)/2014 दिनांक 26.1.2014 में उल्लिखित कई प्राविधान वर्तमान आदेश के परिप्रेक्ष्य में अप्रांसगिक हो गये है, जिसके दृष्टिगत पशुवधशालाओं की स्थापना/संचालन किये जाने हेतु संशोधित दिशा निर्देश जारी किये जाने की आवश्यकता है।

4. मा० सर्वोच्च न्यायालय द्वारा रिट याचिका (सिविल) संख्या- 330/2001 कामन काज बनाम भारत संघ, रिट याचिका संख्या-44/2004, अवमानना याचिका संख्या-124/2015 के साथ संलग्न रिट याचिका संख्या- 309/2003 लक्ष्मी नारायण मोदी बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया व अन्य में पारित आदेश दिनांक17.02.2017 के अनुपालन में पशुवधाशालाओं के संचालन के सम्बन्ध में श्री राज्यपाल शासनादेश संख्या-2394/नौ-8-2014-03पी(बजट)/2014 दिनांक 26.11.2014 को अवकमित करते हुए निम्नवत अद्यतन दिशा-निर्देश निर्गत करते हैः-

(1) खाद्य सुरक्षा और मानक अधिनियम, 2006 की धारा-89 में दी गयी व्यवस्था- इस अधिनियम के उपबंध, तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में या इस अधिनियम से भिन्न किसी अन्य विधि के फलस्वरूप प्रभावी किसी अन्य लिखत में इसके असंगत किसी बात के होते हुए भी प्रभावी होंगे। समस्त प्रचलित अधिनियमों पर ओवरराइडिंग इफेक्ट रखती है। ऐसी स्थिति में किसी भी कारोबारी को लाइसेन्स निर्गत करने का दायित्व खाद्य सुरक्षा और मानक अधिनियम, 2006 की धारा-89 के अन्तर्गत खाद्य सुरक्षा एवं औषधि प्रशासन विभाग का है, जो खाद्य सुरक्षा और मानक (खाद्य कारोबार का अनुज्ञापन और रजिस्ट्रीकरण) विनियमन, 2011 के 2.1.2 (1)(5) के 2.1.2 (1)(5) के शेड्यूल-IV के अन्तर्गत हाइजीन एवं सैनेटरी आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखते हुए लोकल अथारिटी से अनापत्ति प्रमाण पत्र प्राप्त करते हुए लाइसेन्स/पंजीकरण निर्गत किये जाने की व्यवस्था है।

(2) खाद्य सुरक्षा और मानक अधिनियम, 2006 एवं खाद्य सुरक्षा और मानक अधिनियम, 2006 एवं खाद्य सुरक्षा और मानक (खाद्य कारोबार का अनुज्ञापन और रजिस्ट्रीकरण) विनियमन, 2011 के 2.1.2 (1)(5) के शेड्यूल-IV के अन्तर्गत हाइजीन एवं सैनेटरी आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखते हुए लोकल अथारिटी से अनापत्ति प्रमाण पत्र प्राप्त

अनुवादित

कर खाद्य सुरक्षा एवं औषधि प्रशासन विभाग के संबंधित अधिकारी द्वारा लाइसेन्स/पंजीकरण निर्गत किये जाने की कार्यवाही की जायेगी।

(3) खाद्य सुरक्षा और मानक अधिनियम, 2006 के दिनांक 05.08.2011 से प्रभावी हो जाने के फलस्वरूप उ०प्र० नगर निगम अधिनियम, 1959 एवं नगर पालिका अधिनियम, 1916 में खाद्य लाइसेन्स दिये जाने सम्बन्धी प्राविधान निष्प्रभावी हो गये हैं।

(4) अद्यतन पशुधन गणना को आधार में लेते हुए सम्बन्धित लोकल एथारिटी यदि पशुवधशाला की स्थापना का औचित्य पाती है, तो डी०पी०आर मा० उच्चतम न्यायालय के निर्देशों व सुसंगत अधिनियमों/नियमों/आदेशों के अधीन तैयार करायेगी। सम्बन्धित लोकल एथारिटी जनपद के जिलाधिकारी के समक्ष डी०पी०आर० सहित आवेदन-पत्र प्रस्तुत करेगी, जिसे जिलाधिकारी की अध्यक्षता में गठित समिति, जिसमें सदस्य के रूप में सम्बन्धित जनपद के वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक/ पुलिस अधीक्षक, मुख्य पशु चिकित्साधिकारी, सम्बन्धित स्थानीय निकाय के नगर आयुक्त/अधिशाषी अधिकारी /अपर मुख्य अधिकारी एवं उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के क्षेत्रीय अधिकारी होंगे, मा० सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय में उल्लिखित अधिनियमों/नियमों को दृष्टिगत रखते हुए परीक्षण करेगी यदि सम्बन्धित लोकल एथारिटी द्वारा मा० सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय में वर्णित दिशा-निर्देशों के अनुसार डी०पी०आर० तैयार की गयी हो, और अद्यतन पशुधन गणना के अनुसार वहाँ पर पशुवधशाला की स्थापना का औचित्य पाया जाता है, तो जिला स्तरीय समिति द्वारा अपनी स्पष्ट संस्तुति सहित प्रस्ताव प्रमुख सचिव, नगर विकास विभाग की अध्यक्षता में गठित राज्य स्तरीय समिति के विचारार्थ प्रस्तुत किया जाय। राज्य स्तरीय समिति द्वारा प्रस्ताव प्राप्त होने पर 03माह के अन्दर परियोजना की स्वीकृति दिये जाने पर विचार कर यथोचित निर्णय लेगी।

(5) अतः इस सम्बन्ध में मुझे यह कहने का निर्देश हुआ कि उपर्युक्त संशोधित दिशा निर्देशों के अनुसार अग्रिम कार्यवाही करने का कष्ट करें।

भवदीय
(कुमार कमलेश)
प्रमुख सचिव

संख्या 3710(1)/नौ-8-17, तद् दिनांक

प्रतिलिपि निम्नलिखित की सूचनार्थ एवं आवश्यक कार्यवाही हेतु प्रेषित।

1- अपर मुख्य सचिव/ प्रमुख सचिव/ सचिव, पंचायतीराज/ गृह/पर्यावरण/पशुधन/चिकित्सा एवं स्वास्थ्य विभाग/ खाद्य सुरक्षा एवं औषधि/ प्रशासन विभाग/श्रम/ परिवहन, उत्तर प्रदेश शासन, लखनऊ।

2- पुलिस महानिदेशक, उत्तर प्रदेश।

3- समस्त वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक/पुलिस अधीक्षक, उत्तर प्रदेश।

अनुवादित

4- सदस्य सचिव, उत्तर प्रदेश, प्रदूषण एवं नियंत्रण बोर्ड, लखनऊ।
5- समस्त अनुभाग, नगर विकास विभाग।
6- कम्प्यूटर सेल, नगर विकास विभाग।
7- गार्ड फाइल।

आज्ञा से
(शैलेन्द्र कुमार सिंह)

विशेष सचिव।"

(38) उपरोक्त शासनादेश दिनांक 07.07.2017 के अवलोकन मात्र से स्पष्ट है कि सभी पशुवधशाला इकाइयों के लिए आधुनिक पशुवधशाला के संचालन/स्थापना हेतु सहमति के लिए उक्त शासनादेश दिनांक 07.07.2017 के प्रस्तर-3 में उल्लिखित 24 बिंदुओं के संकलन का अनुपालन करना अनिवार्य है। हमने यह भी देखा है कि उक्त शासनादेश दिनांक 07.07.2017 के खण्ड 4(3) में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि खाद्य सुरक्षा एवं मानक अधिनियम, 2006 के दिनांक 05.08.2011 से लागू होने के पश्चात उत्तर प्रदेश नगरपालिका अधिनियम, 1916 तथा उत्तर प्रदेश नगर निगम अधिनियम, 1959 के अन्तर्गत उपलब्ध अनुज्ञा प्रदान करने से सम्बन्धित प्रावधान निरर्थक हो गये हैं।

(39) स्पष्टतः, आधुनिकीकृत पशुवधशाला संयंत्र की स्थापना हेतु याचिकाकर्ता को अनापत्ति प्रमाण पत्र प्रदान करते समय जिलाधिकारी, उन्नाव द्वारा निर्गत आदेश दिनांक 21.05.2015 में शर्त संख्या 68 में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि याचिकाकर्ता को भविष्य में निर्गत होने वाले निर्देश का पालन करना अनिवार्य होगा तथा शर्त संख्या 69 में किसी भी अनियमितता या किसी भी शर्त के उल्लंघन की स्थिति में उक्त अनापत्ति प्रमाण पत्र को निरस्त समझे जाने के परिणाम के प्रभाव के बारे में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है। उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा जारी आदेश दिनांक 04.01.2017 में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि उक्त आदेश दिनांक 21.05.2015 के माध्यम से जिलाधिकारी, उन्नाव द्वारा दी गई एनओसी में उल्लिखित शर्तों का अक्षरशः अनुपालन किया जाएगा। इसका अर्थ यह है कि याचिकाकर्ता भविष्य में जिलाधिकारी, उन्नाव द्वारा दी गई अनापत्ति प्रमाण पत्र को जारी रखने के लिए सभी निर्देशों का पालन करने के लिए बाध्य है। हालांकि, यह विषय यहीं समाप्त नहीं होता है क्योंकि उपरोक्त शासनादेश दिनांक 07.07.2017 में शासनादेश दिनांक 26.11.2014 के अतिसरित होने का स्पष्ट रूप से उल्लेख है एवं तदनुसार, सभी पशुवधशाला इकाइयों को पशुवधशाला के संचालन/स्थापना की सहमति के लिए उक्त शासनादेश दिनांक 07.07.2017 के प्रस्तर-3 में उल्लिखित 24 बिंदुओं के संकलन का अनुपालन करने का निर्देश दिया गया है। इस प्रकार, चूंकि पूर्ववर्ती अनापत्ति प्रमाण पत्र दिनांक 21.05.2015 को निवर्तमान शासनादेश दिनांक 26.11.2014 को ध्यान में रखते हुए निर्गत किया गया था, जो कि शासनादेश दिनांक 07.07.2017 के अनुसार अतिसरित हो गया है, अतएव सभी पशुवधशाला इकाइयों के लिए यह अनिवार्य था कि 'संचालन हेतु सहमति' प्राप्त करने के लिए उक्त शासनादेश दिनांक 07.07.2017 के

अनुवादित

प्रस्तर-3 में उल्लिखित 24 बिंदुओं के संकलन का अनुपालन किया जाए। इस प्रकार, स्पष्ट रूप से, इस वाद के दो पहलू हैं; प्रथम इकाई स्थापित करने के लिए शासनादेश दिनांक 07.07.2017 के अनुसार अनापत्ति प्रमाण पत्र लिया जाना चाहिये था; तथा द्वितीय इकाई स्थापित होने पर, इकाई को शासनादेश दिनांक 07.07.2017 के अनुसार 'संचालन हेतु सहमति' के लिए आवेदन करना चाहिए था।

(40) वर्तमान वाद में, जिलाधिकारी, उन्नाव द्वारा अनापत्ति प्रमाण पत्र शासनादेश दिनांक 07.07.2017 के निर्गत होने से पूर्व प्रदान किया गया था। यद्यपि याचिकाकर्ता आधुनिकीकृत पशुवधशाला इकाई की स्थापना के लिए आया था, परंतु वह चालित नहीं थी एवं इस प्रकार याचिकाकर्ता के लिए शासनादेश दिनांक 07.07.2017 की सभी शर्तों का अनुपालन करना अनिवार्य था, जिसमें जिलाधिकारी, उन्नाव, राज्य स्तरीय समिति तथा उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा संचालन हेतु सहमति' के लिए अनापत्ति प्रमाण पत्र भी सम्मिलित था।

(41) यह एक स्वीकृत तथ्य है कि याचिकाकर्ता ने जिलाधिकारी, उन्नाव से न तो अनापत्ति प्रमाण पत्र प्राप्त किया है, न ही शासनादेश दिनांक 07.07.2017 के प्रावधानों के पालन हेतु उक्त अनापत्ति प्रमाण पत्र का पुनर्सत्यापन प्राप्त किया था, जिसे कि आधुनिकीकृत पशुवधशाला के संचालन हेतु सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कॉमन कॉज बनाम भारत संघ आदि (पूर्वोक्त) एवं लक्ष्मी नारायण मोदी बनाम भारत संघ (पूर्वोक्त) में पारित आदेश के अनुसरण में निर्गत किया जाना अनिवार्य था। अतः, उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड का आक्षेपित आदेशों के माध्यम से 'संचालन हेतु सहमति' देने से इनकार करना उचित है।

<u>निष्कर्ष</u>

(42) उपरोक्त कारणों से, हमारा दृष्टिकोण है कि आक्षेपित आदेशों में ऐसी कोई त्रुटि नहीं है, जिसमें इस न्यायालय द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता हो।

(43) रिट याचिका, तदनुसार, अस्वीकार की जाती है।

(44) यहां यह उल्लेख करना अनपेक्षित होगा कि आक्षेपित आदेशों के माध्यम से 'संचालन हेतु सहमति' देने से इनकार करते समय, मुख्य पर्यावरण अधिकारी द्वारा याचिकाकर्ता को विधि के अनिवार्य प्रावधानों का पालन करने की पूर्ण स्वतंत्रता दी गई थी। ऐसी स्थिति में, हम आशा एवं विश्वास करते हैं कि यदि याचिकाकर्ता विधि के अनिवार्य प्रावधानों तथा दिनांक 07.07.2017 के शासनादेश के प्रावधानों का अनुपालन करते हुए 'संचालन हेतु सहमति' के लिए नए सिरे से आवेदन करता है, तो संबंधित प्राधिकारी याचिकाकर्ता के दावे पर विधिनुसार शीघ्रतापूर्वक विचार करेंगे।

(2023) 6 ILRA 926

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 07.06.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

रिट सी संख्या 4913/2023

संदीप एवं अन्य. ..याचिकाकर्ता

बनाम

अनुवादित

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य... प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता: विपिन कुमार मिश्रा

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी.

सिविल कानून - भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 - धारा 210/211 -आलोचना आदेश - अपील में पारित आदेश - भूमि राजस्व अधिनियम की धारा 34 के तहत पारित आदेश के खिलाफ अपील दायर की गई - नामांतरण कार्यवाही प्रकृति में सारांश है - शीर्षक का प्रश्न तय नहीं किया गया -आलोचना आदेश रिट क्षेत्राधिकार के अधीन नहीं - अपवाद परिस्थितियाँ जिसमें रिट कोर्ट नामांतरण कार्यवाही से उत्पन्न रिट याचिका पर विचार कर सकता है - हदीसुल निशा ने दोहराया - आलोचना आदेश प्रकृति में एकपक्षीय नहीं है - इसलिए भूमि राजस्व अधिनियम की धारा 201 के तहत अपील वर्जित नहीं है -आलोचना आदेश न तो पक्षों के शीर्षक पर निर्णय लेते हैं - न ही वे क्षेत्राधिकार से बाहर हैं - रिमांड आदेश के खिलाफ रिट याचिका पर सामान्य रूप से विचार नहीं किया जाना चाहिए - याचिका खारिज। (पैरा 11, 14, 15, 17, 18 और 19)

निर्णय:

दिनांक 12.07.2001 के नामांतरण आदेश के अवलोकन से पता चलता है कि यह हरि श्याम और विपक्षी संख्या के बीच समझौते के आधार पर तय किया गया था। 5, जब आवेदन डिफॉल्ट में खारिज किया जा रहा था। यह केवल यह दर्ज करता है कि रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर, प्रश्नगत संपत्ति के संबंध में वादी का नाम दर्ज करना उचित होगा। पक्षों के शीर्षक के संबंध में आदेश में कुछ भी निर्धारित नहीं किया गया है। उपरोक्त आदेश को अलग करते हुए, अपीलकर्ता प्राधिकारी ने केवल विपरीत पक्ष संख्या 5 को सुनवाई का अवसर देने के बाद मामले को उसके गुण-दोष के आधार पर नए सिरे से तय करने के लिए वापस भेज दिया है और अपीलीय प्राधिकारी ने पक्षों के शीर्षक के बारे में कोई निष्कर्ष या संतुष्टि भी दर्ज नहीं की है। पुनरीक्षण प्राधिकारी ने अपीलीय आदेश के खिलाफ हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया है और कहा है कि यह केवल रिमांड का आदेश था और पक्षों को अपना मामला पेश करने का अवसर मिलेगा। पुनरीक्षण प्राधिकारी ने भी ऐसा कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया है जो पक्षों के शीर्षक को प्रभावित कर सकता हो। इसलिए, मैं पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई दलीलों को स्वीकार करने में असमर्थ हूं कि म्यूटेशन आवेदन पर फैसला करते समय वर्तमान मामले में शीर्षक तय किया गया है। (पैरा 11)

याचिकाकर्ता का यह मामला नहीं है कि म्यूटेशन आवेदन, अपील और पुनरीक्षण पर निर्णय लेने वाले अधिकारियों के पास ऐसा करने का अधिकार नहीं था या वर्तमान मामले में कोई अन्य असाधारण परिस्थिति मौजूद है जो इस न्यायालय द्वारा अपने असाधारण रिट अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में हस्तक्षेप करने का औचित्य साबित कर सकती है। (पैरा 15)

उपर्युक्त चर्चा के मद्देनजर, मेरा मानना है कि चुनौती के तहत आदेश पक्षों के स्वामित्व का निर्णय नहीं करते हैं और आदेश अधिकार क्षेत्र से बाहर नहीं हैं। (पैरा 18)

अनुवादित

रिट याचिका पर विचार करने से इनकार करने का एक और कारण यह है कि चुनौती के तहत आदेश के माध्यम से, अपीलीय प्राधिकारी ने केवल विपक्षी पक्ष संख्या 5 को सुनवाई का अवसर देने के बाद मामले को नए सिरे से तय करने के लिए वापस भेज दिया है। यह स्थापित कानून है कि रिमांड आदेश के खिलाफ रिट याचिका पर तब तक विचार नहीं किया जाना चाहिए जब तक कि इस न्यायालय के असाधारण रिट अधिकार क्षेत्र के प्रयोग को उचित ठहराने वाले बाध्यकारी कारण न हों। वर्तमान मामले में कोई बाध्यकारी कारण नहीं दिखाया गया है कि विपक्षी पक्ष संख्या द्वारा पारित रिमांड आदेश को क्यों उचित ठहराया गया। 3 और प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पुष्टि की गई कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप किया जाना चाहिए। (पैरा 19)

याचिका खारिज। (ई-14)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. लाल बचन बनाम राजस्व बोर्ड, यूपी, 2002 (93) आरडी 6
2. हदीसुल निशा बनाम अतिरिक्त आयुक्त (न्यायिक) फैजाबाद और अन्य। 2021 (6) एडीजे 176

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी द्वारा दिया गया)

श्री विपिन कुमार मिश्रा, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता और श्री उत्तम कुमार श्रीवास्तव, विद्वान स्थायी अधिवक्ता।

1. तत्काल रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने भू-राजस्व अधिनियम की धारा 34 के तहत वाद संख्या 724 में नायब तहसीलदार, दोस्तपुर, सुल्तानपुर द्वारा पारित दिनांक 12.07.2001 के आदेश के विरुद्ध भूमि राजस्व अधिनियम की धारा 210/211 के तहत दायर अपील में परगना अधिकारी, कादीपुर द्वारा पारित दिनांक 03.10.2006 के आदेशों की वैधता को चुनौती दी है।

2. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि दर्ज खातेदार कमल नयन ने विपक्षी संख्या 5 के पक्ष में एक इच्छापत्र निष्पादित किया था और उसके बाद विपक्षी संख्या 5 ने याचिकाकर्ताओं के पूर्ववर्ती हितधारक छोटे लाल के पक्ष में एक बिक्री विलेख निष्पादित किया था। छोटे लाल और विपक्षी पक्ष संख्या 5 दोनों ने नामान्तरण के लिए अलग-अलग आवेदन दायर किए, जिन्हें एक साथ मिला दिया गया। विपक्षी पक्ष संख्या 5 के भाई हरि श्याम ने आवेदन के विरुद्ध आपत्ति दर्ज की थी और उत्तराधिकार के आधार पर आधे हिस्से के संबंध में स्वामित्व का दावा किया था।

3. छोटे लाल द्वारा दायर आवेदन को 18.06.2001 को व्यतिक्रम में निरस्त कर दिया गया था। उन्होंने उसी तारीख को पुनर्स्थापना के लिए आवेदन दायर किया, लेकिन 09.07.2001 को इसको स्वीकार किया गया था। यद्यपि आवेदन 18.06.2001 और 09.07.2001 के बीच व्यतिक्रम में निरस्त कर दिया गया था, कथित तौर पर हरि श्याम और छोटे लाल द्वारा हस्ताक्षरित एक समझौता 27.06.2001 को दायर किया गया था, छोटे

अनुवादित

लाल और इच्छापत्र के एक प्रमाणित गवाह के बयान को उसी दिन दर्ज किया गया था।

4. दिनांक 18.06.2001 के आदेश को 09.07.2001 को वापस ले लिया गया था और 12.07.2001 को नायब तहसीलदार ने हरि श्याम और छोटे लाल के बीच समझौते के संदर्भ में नामांतरण की अनुमति देने वाला आदेश पारित किया था। समझौता पत्र दाखिल किया गया तथा बयान दर्ज किए गए, जबकि आवेदन व्यतिक्रम में निरस्त कर दिया गया था।

5. विपक्षी पक्ष संख्या 5 राम श्याम ने दिनांक 12.07.2001 के आदेश के विरुद्ध अपील दायर की, जिसमें कहा गया कि उन्हें पुनर्स्थापना के लिए आवेदन की कोई सूचना नहीं मिली और गवाहों के बीच एक साजिश को आगे बढ़ाने के लिए आदेश प्राप्त किया गया है।

6. परगना अधिकारी ने दिनांक 03.10.2006 के आदेश के माध्यम से अपील की अनुमति दी, जिसके तहत उन्होंने दिनांक 12.07.2001 के आदेश को रद्द कर दिया और विपक्षी पक्ष संख्या 5 को सुनवाई का अवसर देने के बाद मामले को नए सिरे से निर्णय के लिए प्रतिप्रेषित कर दिया।

7. छोटे लाल ने अतिरिक्त आयुक्त (न्यायिक) के समक्ष पुनरीक्षण दायर करके अपीलीय आदेश को चुनौती दी, जिसे दिनांक 18.05.2023 के आदेश के माध्यम से इस आधार पर निरस्त कर दिया गया है कि अपील की अनुमति देते हुए, मामले के गुण-दोष के आधार पर एक नया आदेश पारित करने के लिए नायब तहसीलदार को प्रतिप्रेषित कर दिया गया है। चूंकि पक्षकारों को अपना पक्ष रखने का अवसर मिलेगा, इसलिए प्रतिप्रेषण आदेश में हस्तक्षेप की कोई आवश्यकता नहीं है।

8. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने इस आधार पर रिट याचिका की विचारणीयता के विरुद्ध प्रारंभिक आपत्ति उठाई है कि नामांतरण कार्यवाहियां सारांश प्रकृति की होती है और नामांतरण कार्यवाहियों में शीर्षक के प्रश्न का निर्णय नहीं किया जाता है। अतः उपरोक्त आदेश इस न्यायालय के रिट क्षेत्राधिकार के अंतर्गत नहीं आता।

9. उपरोक्त प्रस्तुति का जवाब देते हुए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि वर्तमान मामले में नामांतरण के नाम पर शीर्षक तय किया गया है।

10. दिनांक 12.07.2001 के नामांतरण आदेश के अवलोकन से संकेत मिलता है कि यह हरिश्याम और विरोधी पक्ष संख्या 5 के बीच एक समझौते के आधार पर तय किया गया था, जब आवेदन व्यतिक्रम में निरस्त कर दिया गया था। इसमें केवल यह दर्ज किया गया है कि अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर, संबंधित संपत्ति के संबंध में वादी का नाम दर्ज करना उचित होगा। पक्षकारों के शीर्षक के संबंध में आदेश में कुछ नहीं कहा गया है। पूर्वोक्त आदेश को रद्द करते हुए, अपीलकर्ता प्राधिकारी ने केवल विपक्षी पक्ष संख्या 5 को सुनवाई का अवसर देने के बाद मामले को अपनी योग्यता के आधार पर नए सिरे से निर्णय लेने के लिए प्रतिप्रेषित कर दिया है और अपीलीय प्राधिकारी ने भी

अनुवादित

पक्षकारों के शीर्षक के बारे में कोई निष्कर्ष या संतुष्टि दर्ज नहीं की है। पुनरीक्षण प्राधिकरण ने अपीलीय आदेश के विरुद्ध हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया है और कहा है कि यह केवल प्रतिप्रेषण का आदेश है और पक्षों के पास अपना पक्ष पेश करने का अवसर होगा। पुनरीक्षण प्राधिकरण ने भी ऐसा कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया है जो पक्षकारों के शीर्षक को प्रभावित कर सके। इसलिए, मैं पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई प्रस्तुतियों को स्वीकार करने में असमर्थ हूं कि नामांतरण आवेदन पर निर्णय लेते समय वर्तमान मामले में शीर्षक तय किया गया है।

11. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **लाल बचन बनाम राजस्व मंडल, उ.प्र., 2002 (93) आरडी 6** के मामले में इस न्यायालय के एक निर्णय पर निर्भरता रखी है, जिसमें इस माननीय न्यायालय ने निम्नानुसार माना है:

जिन मामलों में नामांतरण कार्यवाही से उत्पन्न रिट याचिका पर भी विचार किया जा सकता है, वे ऐसे मामले हो सकते हैं जिनमें अधिकार क्षेत्र नहीं रखने वाले प्राधिकरण ने आदेश पारित किया है या कार्यवाही में पारित आदेश में हस्तक्षेप किया है। क्षेत्राधिकार के बिना पारित आदेश को चुनौती देने वाली रिट याचिका पर वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता के बावजूद न्यायालय द्वारा विचार किया जा सकता है। हालांकि, उस मामले में भी, न्यायालय केवल तभी हस्तक्षेप करेगी जब यह प्रतीत होता है कि किसी पक्ष द्वारा पर्याप्त अन्याय सहन किया गया है। *उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, यह माना जाता है कि धारा 34 यूपी भू-राजस्व अधिनियम के तहत उत्परिवर्तन कार्यवाही से उत्पन्न रिट याचिका को इस न्यायालय द्वारा केवल अपवाद के अधीन स्वीकार नहीं किया जा सकता है, जैसा कि जयपाल (उपरोक्त) के मामले में खण्ड पीठ ने निर्धारित किया है। रिट याचिका पर तब भी विचार किया जा सकता है, जब आदेश पारित करने वाले प्राधिकारी का कोई क्षेत्राधिकार न हो।*

तीसरा प्रश्न जो रिट याचिका में उठता है, वह यह है कि क्या वर्तमान मामले के तथ्यों को देखते हुए, वर्तमान रिट याचिका पर विचार किया जा सकता है। रिट याचिका में बताए गए मामले के तथ्यों से, यह स्पष्ट है कि रिट याचिकाकर्ता श्रीमती चंद्र देई की मृत्यु पर उत्तराधिकार के आधार पर अपने अधिकार का दावा कर रहा है। प्रतिवादी संख्या 6 उक्त श्रीमती चंद्र देई से बिक्री-विलेख के आधार पर दावा कर रहा है। विवाद अधिनियम की धारा 34 द्वारा पूरी तरह से अन्तर्निहित था और अधिनियम की धारा 34 में विचार के अनुसार उत्परिवर्तन का सरल कारण था। नामांतरण कार्यवाही में पारित आदेश केवल प्रकृति में सारांश हैं जो याचिकाकर्ता को संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत इस न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को लागू करने का अधिकार नहीं देता है। ऊपर जो कहा गया है, उसके मद्देनजर, वर्तमान रिट याचिका पर विचार नहीं किया जा सकता है। हालांकि, यह देखा गया है कि ***नामांतरण कार्यवाही में पारित आक्षेपित आदेश, सक्षम न्यायालय के समक्ष अपने शीर्षक के अधिनिर्णय की मांग करने में याचिकाकर्ता के रास्ते में नहीं आएगा। नामांतरण कार्यवाही में पारित आदेश हमेशा शीर्षक को स्थगित करने के हकदार सक्षम न्यायालय द्वारा निर्णय के अधीन होते हैं "***

अप्रमाणित

(महत्त्व सन्निविष्ट).

याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय के समक्ष 2019 की रिट याचिका संख्या 32853 (M/S) में इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा दिए गए दिनांक 29.11.2019 के एक अन्य निर्णय को रखा है, जिसमें ***लाल बच्चन बनाम राजस्व परिषद*** के पहले के निर्णय का पालन किया गया है और यह माना गया है कि *'नामांतरण कार्यवाहियों में पारित आदेशों को चुनौती देने वाली रिट याचिका पर आमतौर पर विचार नहीं किया जाता है क्योंकि नियमित वाद में शीर्षक का निर्णय लेने का उपाय पक्षकारों के पास उपलब्ध है।*

असाधारण परिस्थितियाँ, जिनमें यह न्यायालय नामांतरण कार्यवाही से उत्पन्न रिट याचिका पर विचार कर सकता है, **हदीमुल निशा बनाम अतिरिक्त आयुक्त (न्यायिक) फैजाबाद और अन्य** 2021 (6) एडीजे 176 में इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा संक्षेप में निम्नानुसार बताई गई हैं: -

"19. ... अपवाद जो बहुत कम हैं, उदाहरण के लिए:

यदि आदेश अधिकार क्षेत्र के बिना है;

यदि पक्षों के अधिकार और शीर्षक पहले से ही सक्षम न्यायालय द्वारा तय किए गए हैं, और यह उत्परिवर्तन न्यायालयों द्वारा भिन्न किया गया है;

यदि नामांतरण कब्जे के आधार पर या केवल किसी शीर्षक विलेख के आधार पर नहीं किया गया है, बल्कि संपत्ति के उत्तराधिकार के लिए पात्रता की बहस में प्रवेश करने के बाद, प्रतिद्वंद्वी दावों के गुण-दोष को छूते हुए किया गया है;;

यदि ऐसे अधिकार सृजित किए गए हैं जो किसी क़ानून के वैधानिक प्रावधानों के विरुद्ध हैं और प्रविष्टि स्वयं उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम के प्रावधानों के आधार पर याचिकाकर्ता को एक शीर्षक प्रदान करती है;

जहां रिट याचिका में आरोपित आदेश धोखाधड़ी या तथ्यों के गलत प्रस्तुतीकरण के आधार पर या वादियों में से किसी एक द्वारा दस्तावेजों में जालसाजी करके पारित किए गए हों।

जहां न्यायालयों ने गुण-दोष के आधार पर मामले पर विचार नहीं किया है, उदाहरण के लिए, न्यायालयों ने बहाली आवेदनों आदि पर आदेश पारित किए हैं।

यह याचिकाकर्ता का मामला नहीं है कि नामांतरण आवेदन, अपील और पुनरीक्षण का फैसला करने वाले अधिकारियों के पास ऐसा करने का अधिकार क्षेत्र नहीं था या वर्तमान मामले में कोई अन्य असाधारण परिस्थिति मौजूद है जो इस न्यायालय द्वारा अपने असाधारण रिट अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में हस्तक्षेप का औचित्य सिद्ध कर सकता है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम की धारा 201 में प्रावधान है कि धारा 200 के अंतर्गत पारित किसी भी आदेश के विरुद्ध एकपक्षीय या व्यतिक्रम में निरस्त पर कोई अपील नहीं की जा सकेगी। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि अपील पर निर्णय लेते समय, विद्वान अतिरिक्त आयुक्त ने दर्ज किया है कि नामांतरण आवेदन 18.06.2001

अनुवादित

को व्यतिक्रम में निरस्त कर दिया गया था। छोटे लाल ने पुनर्स्थापना के लिए आवेदन किया था जिसे 09-07-2001 को स्वीकार किया गया था । इच्छापत्र के गवाह को सत्यापित करने के बयान व्यतिक्रम में आवेदन निरस्त करने के बाद और इसे बहाल करने से पहले दर्ज किए गए थे। मामले की पुनर्स्थापना के बाद, विपक्षी पक्ष संख्या 5 को पुनर्स्थापना की कोई सूचना नहीं दी गयी थी। विपक्षी पक्ष संख्या 5 द्वारा दायर दावे की स्वीकारोक्ति संदिग्ध प्रतीत होती है और विपक्षी पक्ष संख्या 5 ने आदेश पत्रक पर अपने हस्ताक्षर नहीं किए हैं। उपरोक्त कारणों से, अपीलीय प्राधिकारी ने पाया कि नायब तहसीलदार द्वारा पारित आदेश विधि के अनुसार नहीं था।

दिनांक 12.07.2021 के आदेश में यह नहीं कहा गया है कि यह एक एकतरफा आदेश था और इसलिए, पूर्वोक्त आदेश के खिलाफ अपील भूमि राजस्व अधिनियम की धारा 201 के प्रावधानों द्वारा वर्जित नहीं है। यह स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि परगना अधिकारी के पास एक समझौते के आधार पर पारित आदेश के खिलाफ अपील पर विचार करने और फैसला करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था, जिस पर सभी पक्षों द्वारा हस्ताक्षर नहीं किए गए थे और जो तब दायर किया गया था जब मुकदमा व्यतिक्रम में निरस्त कर दिया गया था। नायब तहसीलदार द्वारा पारित दिनांक 12.07.2021 के आदेश के संबंध में अपील में अपीलीय प्राधिकारी द्वारा किया गया उपरोक्त कथन आदेश को एकपक्षीय नहीं बनाएगा ताकि भू-राजस्व अधिनियम की धारा 201 के तहत पूर्वोक्त आदेश के विरुद्ध अपील दायर करने पर रोक लगाई जा सके।

उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, मेरा विचार है कि चुनौती के तहत आदेश पक्षकारों के शीर्षक का फैसला नहीं करते हैं और आदेश अधिकार क्षेत्र के बिना नहीं हैं।

रिट याचिका पर विचार करने से इनकार करने का एक और कारण है और यह है कि चुनौती के तहत आदेश के माध्यम से, अपीलीय प्राधिकारी ने केवल विपक्षी पक्ष संख्या 5 को सुनवाई का अवसर देने के बाद मामले को नए सिरे से तय करने के लिए प्रतिप्रेषित कर दिया है। यह स्थापित विधि है कि प्रतिप्रेषण आदेश के खिलाफ एक रिट याचिका पर तब तक विचार नहीं किया जाना चाहिए जब तक कि इस न्यायालय के असाधारण रिट क्षेत्राधिकार के प्रयोग के लिए बाध्यकारी कारण न हों। वर्तमान मामले में कोई बाध्यकारी कारण नहीं दिखाया गया है कि क्यों विपक्षी संख्या 3 द्वारा पारित प्रतिप्रेषण आदेश और प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पुष्टि किए गए आदेश में भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण क्षेत्राधिकार में हस्तक्षेप किया जाना चाहिए।

इसलिए, नामांतरण कार्यवाही में पारित आदेशों के खिलाफ याचिकाकर्ता द्वारा दायर रिट याचिका को, प्रवेश स्तर पर बिना कोई टिप्पणी किए जिससे मामले के गुण-दोष पर प्रभाव पड़ सकता हो, ***निरस्त*** किया जाता है।

रिट याचिका की निरस्तता से विधि के अनुसार अपनी शिकायत का निवारण करने के याचिकाकर्ताओं के अधिकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

अनुवादित

(2023) 6 ILRA 291

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति प्रकाश पाडिया

अनुच्छेद 227 संख्या 4800 वर्ष 2023 के अंतर्गत मामले

संजय कुमार गर्ग एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

अखिलेश प्रताप सिंह एवं अन्य. ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता: श्री तंजील अहमद, श्री राकेश कुमार (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: श्री देवेन्द्र कुमार यादव, श्री आशीष मिश्रा, श्री ए.के. गौर (वरिष्ठ अधिवक्ता)

(ए) भारत का संविधान - अनुच्छेद 227 - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश 22 नियम 10 आर.डब्ल्यू. 151 और 153, धारा 24 - स्थानांतरण और वापसी की सामान्य शक्ति - स्थानांतरण के आदेश में न्यायालय द्वारा विवेक का प्रयोग तथा कार्यवाही करने में जिन परिस्थितियों को ध्यान में रखा गया है, उन्हें प्रतिबिंबित करना चाहिए - यदि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 24 के अंतर्गत स्थानांतरण आवेदन पीठासीन अधिकारी के पक्षपात के आरोपों पर प्रस्तुत किया गया है, तो न्यायालय को यह विश्वास होना चाहिए कि पक्षपात या पूर्वाग्रह की आशंका वास्तविक और उचित है - आशंका की अभिव्यक्ति परिस्थितियों और न्यायालय के समक्ष आवेदक द्वारा प्रस्तुत सामग्री द्वारा सिद्ध/पुष्ट होनी चाहिए - न्याय प्रदान करने की प्रणाली में जाति, धर्म, पंथ, रंग आदि का कोई भेद नहीं होता - यह काले और सफेद, अर्थात सत्य और असत्य के सिद्धांत पर चलने वाली प्रणाली है - जो भी अनुचित है, उसकी पहचान की जाती है और उसके साथ उचित व्यवहार किया जाता है तथा जो भी अच्छा है, उसे बरकरार रखा जाता है। (पैरा-20,21)

प्रतिवादी संख्या 2 और 3 द्वारा दायर स्थानांतरण आवेदन - अस्वीकृत - अपीलकर्ता के पीठासीन अधिकारी रिश्तेदार - दोनों एक ही जाति के हैं - न्यायालय में कोई आस्था नहीं - आवेदक सिविल अपील में पक्षकार नहीं है - प्रतिवादी संख्या 2 और 3 द्वारा दायर स्थानांतरण आवेदन - अस्वीकृत - अपीलकर्ता के रिश्तेदार पीठासीन अधिकारी ... 1 अभियोग के लिए - अस्वीकृत - अभिलेख पर लाए गए पहले स्थानांतरण आवेदन को अस्वीकृत किया गया - स्थानांतरण आवेदन में अपीलकर्ता द्वारा आपत्ति दर्ज की गई - स्थानांतरण आवेदन अनुरक्षणीय नहीं - कार्यवाही में पक्षकार न होने वाले व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत किया गया - आदेश में याचिकाकर्ताओं की आपत्तियों पर विचार नहीं किया गया - याचिकाकर्ता की आपत्ति पर कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया गया - तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर आवेदन स्वीकार किया गया - यह दर्शाता है कि आवेदन स्वीकार किए जाने योग्य है - कोई विवेक का प्रयोग नहीं किया गया - यंत्रवत् आदेश पारित किया गया। **(पैरा - 6,15,16, 18,23)**

निर्णय:- न्यायालय को जिला न्यायाधीश द्वारा दिनांक 28.3.2023 के अपने पहले के आदेश

अनुवादित

से असहमत होने का कोई कारण नहीं मिला, क्योंकि कोई नई सामग्री अभिलेख पर नहीं लाई गई, जो दिनांक 11.4.2023 के आदेश को पारित करने को उचित ठहरा सके। जिला न्यायाधीश द्वारा कानून के विपरीत स्थानांतरण आवेदन में दिनांक 11.4.2023 को पारित आदेश को अपास्त किया गया। प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा दायर स्थानांतरण आवेदन को अस्वीकृत किया गया। **(पैरा -23)**

याचिका स्वीकार की गई। (ई-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. कुलविंदर कौर बनाम कंडी फ्रेंड्स एजुकेशन ट्रस्ट एवं अन्य, 2008(1) एडब्ल्यूसी 523 :: (2008) 3 एससीसी 659

2. अमित अग्रवाल बनाम अतुल गुप्ता, 2015(2) एडब्ल्यूसी 1145

(माननीय न्यायमूर्ति प्रकाश पाडिया द्वारा दिया गया)

1. वादी-याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता श्री तंजील अहमद की सहायता से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री राकेश कुमार, प्रतिवादी-प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री देवेन्द्र कुमार यादव की सहायता से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री ए.के. गौर को तथा विद्वान अधिवक्ता श्री आशीष मिश्रा को सुना गया, जिन्हें जनपद न्यायाधीश, अलीगढ़ की ओर से उपस्थित होने का अनुरोध किया गया था।

2. अनुच्छेद 227 के तहत वर्तमान याचिका याचिकाकर्तागण द्वारा दायर की गई है, जिसमें स्थानांतरण प्रार्थना पत्र संख्या 116/2023 (अखिलेश प्रताप सिंह बनाम संजय कुमार गर्ग और अन्य) में जनपद न्यायाधीश, अलीगढ़ द्वारा पारित दिनांक 11.4.2023 के आदेश को चुनौती दी गई है।

3. याचिका में कहा गया है कि याचिकाकर्तागण ने अनुबंध के विशिष्ट निष्पादन के लिए सिविल मुकदमा संख्या 50/1998 की स्थापना की है। उक्त मुकदमे को अतिरिक्त सिविल जज (वरिष्ठ प्रभाग), न्यायालय संख्या 1, अलीगढ़ द्वारा दिनांक 23.9.2022 के निर्णय और डिक्री द्वारा खारिज कर दिया गया था।

4. याचिकाकर्तागण ने उपरोक्त निर्णय और दिनांक 23.9.2022 के आदेश से व्यथित होकर जनपद न्यायाधीश, अलीगढ़ की अदालत में सिविल अपील संख्या 63/2022 दायर की है। अपील स्वीकार करने के बाद, इसे अतिरिक्त जनपद न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 1, अलीगढ़ की अदालत में स्थानांतरित कर दिया गया।

5. याचिकाकर्तागण ने अनुच्छेद 227 संख्या 2161/2023 (संजय कुमार गर्ग एवं अन्य बनाम अतर सिंह एवं अन्य) के तहत एक याचिका दायर करके इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया, ताकि न्यायालय को सिविल अपील के शीघ्र निस्तारण के लिए निर्देश दिया जा सके। उक्त याचिका पर अंततः 14.3.2023 के आदेश द्वारा निर्णय लिया गया, जिसमें न्यायालय को बिना किसी अनावश्यक स्थगन के, कानून के अनुसार अपील पर निर्णय लेने का निर्देश दिया गया।

6. जब अपील अंतिम बहस के चरण में थी, तब देवेन्द्र पाल सिंह और सूरज पाल सिंह जो अपील में प्रत्यर्थी-प्रत्यर्थी हैं, ने जनपद न्यायाधीश, अलीगढ़ के समक्ष स्थानांतरण प्रार्थना पत्र संख्या 83/2023 प्रस्तुत किया,

अनुवादित

जिसमें कहा गया कि 2.3.2023 को अपीलकर्ता के पैरोकार ने प्रत्यर्थी को सूचित किया कि अवर न्यायालय में मुकदमा खारिज हो गया था, लेकिन अपील में प्रत्यर्थी सफल नहीं हो सकता, क्योंकि पीठासीन अधिकारी अपीलकर्ता का रिश्तेदार है और दोनों एक ही जाति के हैं। उक्त कथन के साथ, स्थानांतरण प्रार्थना पत्र में कहा गया कि प्रत्यर्थीगण/प्रत्यर्थीगण को संबंधित न्यायालय पर कोई भरोसा नहीं है, इसलिए मामले को किसी अन्य न्यायालय में स्थानांतरित किया जाए।

7. वादी/याचिकाकर्तागण ने उक्त स्थानांतरण प्रार्थना पत्र पर अपना जवाब दाखिल किया है, जिसमें कहा गया है कि उक्त अपील में बहस 23.2.2023 को समाप्त हो गई थी। स्थानांतरण प्रार्थना पत्र कार्यवाही में देरी करने के इरादे से दायर किया गया है और स्थानांतरण प्रार्थना पत्र में झूठे आरोप लगाए गए हैं। जनपद न्यायाधीश, अलीगढ़ ने पीठासीन अधिकारी, यानी अतिरिक्त जनपद न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 1, अलीगढ़ द्वारा प्रस्तुत टिप्पणियों पर विचार करने के बाद, दिनांक 28.3.2023 के आदेश द्वारा स्थानांतरण प्रार्थना पत्र को इस निष्कर्ष के साथ खारिज कर दिया कि स्थानांतरण प्रार्थना पत्र केवल अपील के निस्तारण में देरी करने के लिए ही पेश किया गया है।

8. याचिका में आगे कहा गया है कि इसके बाद अपील के स्थगन के लिए प्रार्थना पत्र संख्या 15ग और 17ग इस आधार पर दायर किए गए कि एक नया अधिवक्ता नियुक्त किया गया है, लेकिन उक्त स्थगन प्रार्थना पत्र को अतिरिक्त जनपद न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 1, अलीगढ़ द्वारा एक विस्तृत आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था, जिसमें उल्लेख किया गया था कि अपील की सुनवाई समाप्त हो गई है और केस-लॉ दाखिल करने की तारीख तय की गई है। अवर न्यायालय ने उक्त प्रार्थना पत्र को खारिज करने के बाद फैसला सुनाने के लिए 11.4.2023 की तारीख तय की।

9. इसके बाद जब मामले पर फैसला सुनाने की तारीख तय हुई, तो अखिलेश प्रताप सिंह नामक व्यक्ति ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22 नियम 10 के साथ धारा 151 और 153 के तहत अपील में प्रत्यर्थी के रूप में पक्षकार बनने के लिए प्रार्थना पत्र किया , इस आधार पर कि उसने उक्त संपत्ति पंजीकृत बिक्री विलेख द्वारा दिनांक 27.9.2022 को खरीदी है। उक्त प्रार्थना पत्र को अपर जनपद न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 1, अलीगढ़ द्वारा दिनांक 6.4.2023 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया।

10. तत्पश्चात अखिलेश प्रताप सिंह द्वारा धारा 24 सिविल प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया गया। उक्त प्रार्थना पत्र के पैरा 3 में उल्लेख किया गया कि अखिलेश प्रताप सिंह ने आदेश 22 नियम 10 सीपीसी के अन्तर्गत उपरोक्त प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया है, जिसे पीठासीन अधिकारी द्वारा स्वीकार नहीं किया गया, तथा इस प्रकार इसे कम्प्यूटर अनुभाग में प्रस्तुत किया गया, जिस पर 3.00 बजे सुनवाई होनी थी, परन्तु पीठासीन अधिकारी न्यायालय में उपस्थित नहीं थे, तथा यह सूचित किया गया कि प्रार्थना पत्र पर अगले दिन सुनवाई होगी। प्रार्थना पत्र के पैरा 4 में उल्लेख किया गया कि दिनांक 7.4.2023 को आवेदक तथा उसके अधिवक्ता

अनुवादित

ने अपीलकर्ता संख्या 1 को पीठासीन अधिकारी के कक्ष से बाहर आते हुए देखा तथा सूचित किया कि उसका प्रार्थना पत्र बिना सुने अस्वीकार कर दिया जाएगा तथा मामला अपीलकर्ता के पक्ष में निर्णय होगा, क्योंकि पीठासीन अधिकारी अपीलकर्ता की जाति का है तथा वह अपीलकर्ता का रिश्तेदार है।

11. उक्त प्रार्थना पत्र में जनपद न्यायाधीश अलीगढ़ द्वारा टिप्पणियां मांगी गई थीं। पीठासीन अधिकारी ने 10.04.2023 को अपनी टिप्पणियां प्रस्तुत कीं, जिसमें प्रार्थना पत्र के आरोपों का खंडन किया गया और विशेष रूप से उल्लेख किया गया कि 6.4.2023 को दायर प्रार्थना पत्र को पहले ही 6.4.2023 को खारिज कर दिया गया था। टिप्पणियों में आगे कहा गया कि स्थानांतरण प्रार्थना पत्र के पैराग्राफ संख्या 4 और 5 में लगाए गए आरोप झूठे हैं। पीठासीन अधिकारी ने आगे उल्लेख किया है कि यदि उनकी अपील किसी अन्य न्यायालय में स्थानांतरित की जाती है, तो उन्हें इस पर कोई आपत्ति नहीं है।

12. अपीलार्थी याचिकाकर्ता ने अपनी आपत्ति दर्ज कराते हुए कहा है कि:

(i) अखिलेश प्रताप सिंह अपील में पक्षकार नहीं हैं;

(ii) पक्षकार बनाये जाने के लिए दायर प्रार्थना पत्र पहले ही खारिज कर दिया गया है;

(iii) अखिलेश प्रताप सिंह द्वारा अपने अभियोग के लिए दायर प्रार्थना पत्र को पहले ही अस्वीकृत कर दिया गया है;

(iv) इस न्यायालय के आदेश से अपील में तेजी लाई गई है;

(v) इसी आधार पर दायर पूर्व स्थानांतरण प्रार्थना पत्र संख्या 83/2023 को जनपद न्यायाधीश, अलीगढ़ ने दिनांक 28.3.2023 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया है।

(vi) अपील में अंतिम बहस पूरी हो चुकी है और निर्णय सुनाने के लिए 11.4.2023 की तारीख तय की गई है;

13. जनपद न्यायाधीश, अलीगढ़ ने 11.4.2023 के आदेश द्वारा याचिकाकर्तागण द्वारा अपनी आपत्ति में उल्लिखित किसी भी आधार पर विचार किए बिना, स्थानांतरण प्रार्थना पत्र को केवल यह कहते हुए अनुमति दी कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, स्थानांतरण प्रार्थना पत्र स्वीकार किए जाने योग्य है। इस निष्कर्ष के साथ, अपील को अतिरिक्त जनपद न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 1, अलीगढ़ के न्यायालय से अतिरिक्त जनपद न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 9, अलीगढ़ के न्यायालय में स्थानांतरित कर दिया गया है। वर्तमान याचिका में उक्त आदेश दिनांक 11.4.2023 को चुनौती दी गई है।

14. प्रत्यर्थी संख्या 1/अखिलेश प्रताप सिंह की ओर से योगेंद्र पाल द्वारा एक जवाबी हलफनामा दाखिल किया गया है, जिसमें उन्होंने स्वयं को प्रत्यर्थी संख्या 1 का पैरोकार बताया है। जवाबी हलफनामे में कहा गया है कि स्थानांतरण प्रार्थना पत्र संख्या 83/2023 में जिला जज अलीगढ़ द्वारा पारित आदेश को देवेंद्र पाल सिंह ने स्थानांतरण प्रार्थना पत्र दाखिल कर चुनौती दी है। आगे कहा गया है कि उक्त स्थानांतरण प्रार्थना पत्र को निष्फल मानते हुए खारिज कर दिया गया, क्योंकि मामला पहले ही अतिरिक्त जिला जज, न्यायालय संख्या 1, अलीगढ़ की अदालत से अतिरिक्त जिला जज, न्यायालय संख्या 9, अलीगढ़ की अदालत में स्थानांतरित हो चुका

अनुवादित

है। उक्त आदेश 1.5.2023 को पारित किया गया है। जवाबी हलफनामे में आगे कहा गया है कि दिनांक 6.4.2023 का आदेश प्रत्यर्थी को तभी पता चला जब उसे वर्तमान याचिका की प्रति प्राप्त हुई। जवाबी हलफनामे के पैरा 16 में स्थानांतरण प्रार्थना पत्र के पैरा 4 में उल्लिखित आधार को पुन: प्रस्तुत किया गया है।

15. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना गया। यह विवादित नहीं है कि देवेन्द्र पाल सिंह और सूरज पाल सिंह द्वारा दायर स्थानांतरण प्रार्थना पत्र संख्या 83/2023 को जनपद न्यायाधीश, अलीगढ़ ने दिनांक 28.3.2023 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया था। यह भी विवादित नहीं है कि स्थानांतरण प्रार्थना पत्र संख्या 116/2023 के आवेदक, अर्थात् अखिलेश प्रताप सिंह सिविल अपील संख्या 63/2022 में पक्षकार नहीं हैं। अखिलेश प्रताप सिंह द्वारा उनके पक्षकार बनने के लिए दायर प्रार्थना पत्र को संबंधित न्यायालय ने खारिज कर दिया था।

16. प्रथम स्थानांतरण प्रार्थना पत्र की अस्वीकृति का तथ्य अपीलकर्ता द्वारा स्थानांतरण प्रार्थना पत्र संख्या 116/2023 में दायर आपत्ति द्वारा स्पष्ट रूप से रिकॉर्ड पर लाया गया था। उक्त आपत्ति को पेपर संख्या 10ग के रूप में क्रमांकित किया गया था और इसे आरोपित आदेश में भी संदर्भित किया गया है। यह भी विवादित नहीं है कि आपत्ति में, यानी पेपर संख्या 10ग में, अपीलकर्ता ने स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि अखिलेश प्रताप सिंह अवर न्यायालय के समक्ष कार्यवाही में पक्षकार नहीं हैं और उनके पक्षकार बनने के प्रार्थना पत्र को पहले ही खारिज कर दिया गया है। इन कथनों के साथ यह विशेष रूप से उल्लेख किया गया था कि स्थानांतरण प्रार्थना पत्र अनुरक्षणीय नहीं है, क्योंकि यह एक ऐसे व्यक्ति द्वारा स्थानांतरित किया गया है, जो एक अदालत से दूसरी अदालत में स्थानांतरित किए जाने की कार्यवाही में पक्षकार नहीं है। पहले के स्थानांतरण प्रार्थना पत्र संख्या 83/2023 में उल्लिखित स्थानांतरण का आधार 28.3.2023 के आदेश में भी उल्लेख किया गया था। उक्त आदेश अभिलेख का हिस्सा था।

17. पीठासीन अधिकारी ने भी अपनी टिप्पणियों में स्पष्ट रूप से कहा है कि अपील की सुनवाई समाप्त हो गई थी और निर्णय देने के लिए तारीख 11.4.2023 तय की गई है। पीठासीन अधिकारी की टिप्पणियों में अभियोग के लिए प्रार्थना पत्र खारिज करने के तथ्य का भी उल्लेख किया गया था।

18. दिनांक 11.4.2023 के विवादित आदेश के अवलोकन से यह भी स्पष्ट होता है कि याचिकाकर्तागण द्वारा उठाई गई किसी भी आपत्ति पर जनपद न्यायाधीश, अलीगढ़ द्वारा विचार नहीं किया गया है। स्थानांतरण प्रार्थना पत्र को स्वीकार करते समय जनपद न्यायाधीश, अलीगढ़ द्वारा याचिकाकर्ता की आपत्ति पर कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया गया है और केवल इतना ही कहा गया है कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, स्थानांतरण प्रार्थना पत्र स्वीकार किए जाने योग्य है।

19. श्री आशीष मिश्रा, उच्च न्यायालय के विद्वान अधिवक्ता ने जनपद न्यायाधीश, अलीगढ़ द्वारा दिए गए निर्देश को भी प्रस्तुत किया है। जनपद न्यायाधीश, अलीगढ़ द्वारा प्रस्तुत निर्देश में कहा गया है कि आवेदक द्वारा अधिकारी के विरुद्ध लगाए गए आरोपों

अनुवादित

को ध्यान में रखते हुए पारदर्शिता बनाए रखने तथा न्याय के हित में मामले को स्थानांतरित किया गया है, ताकि किसी भी पक्ष के हितों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव या गंभीर क्षति की संभावना न रहे।

20. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **2008(1) AWC 523 :: (2008) 3 सुप्रीम कोर्ट केस 659** में प्रतिवेदित एक निर्णय **कुलविंदर कौर बनाम कंडी फ्रेंड्स एजुकेशन ट्रस्ट और अन्य** पर भरोसा किया है, विशेष रूप से पैराग्राफ 26 इस प्रस्ताव के लिए कि स्थानांतरण के आदेश में न्यायालय द्वारा विवेक का प्रयोग और कार्रवाई करने में जिन परिस्थितियों को ध्यान में रखा गया है, उन्हें प्रतिबिंबित करना चाहिए। (2008) 3 SCC 659 में उद्धृत उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ 26 में निम्नलिखित लिखा है :-

> "26. इस मामले में, उच्च न्यायालय ने आरोपों और प्रति-आरोपों के बारे में कुछ भी बताए बिना, अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर पर विचार किए बिना और कोई कारण/आधार दर्ज किए बिना मामले को स्थानांतरित करने का विवादित आदेश पारित कर दिया। प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निस्संदेह प्रस्तुत किया कि न्यायालय ने कुछ भी नहीं देखा है क्योंकि उच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों से किसी न किसी तरह से मुकदमे के किसी एक पक्ष को नुकसान हो सकता है। यह सच है कि आम तौर पर स्थानांतरण का आदेश देते समय न्यायालय मामले के गुण-दोष पर विचार नहीं कर सकता क्योंकि इससे कार्यवाही का अंतिम परिणाम प्रभावित हो सकता है या एक या दूसरे पक्ष को नुकसान हो सकता है। हालांकि, उसी समय, स्थानांतरण के आदेश में न्यायालय द्वारा विवेक का प्रयोग और कार्रवाई करने में जिन परिस्थितियों को ध्यान में रखा गया, उन्हें प्रतिबिंबित करना चाहिए।"

21. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **2015(2) AWC 1145 अमित अग्रवाल बनाम अतुल गुप्ता** में प्रतिवेदित एक निर्णय पर भी भरोसा किया है, जिसमें कहा गया है कि यदि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 24 के तहत स्थानांतरण प्रार्थना पत्र पीठासीन अधिकारी के पक्षपात के आरोपों पर पेश किया गया है, तो न्यायालय को यह संतुष्ट होना चाहिए कि पक्षपात या पूर्वाग्रह की आशंका वास्तविक और उचित है। आशंका की अभिव्यक्ति परिस्थितियों और ऐसे आवेदक द्वारा न्यायालय के समक्ष रखी गई सामग्री द्वारा सिद्ध/पुष्ट होनी चाहिए। उपरोक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ 23 से 27 नीचे पुन: प्रस्तुत किए गए हैं :-

> "23. यदि पीठासीन अधिकारी के पक्षपात के आरोपों को मामले के स्थानांतरण का आधार बनाया जाता है, तो धारा 24 सीपीसी के तहत शक्ति का प्रयोग करने से पहले, न्यायालय को यह संतुष्ट होना चाहिए कि पक्षपात या पूर्वाग्रह की आशंका वास्तविक और उचित है। आशंका की अभिव्यक्ति, परिस्थितियों और ऐसे आवेदक द्वारा न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत सामग्री द्वारा सिद्ध/पुष्ट होनी चाहिए। यह नहीं माना जा सकता कि

अनुवादित

केवल आरोप स्थानांतरण को उचित ठहराने के लिए पर्याप्त होंगे। श्रीमती सुधा शर्मा (पूर्वोक्त) में न्यायालय ने कहा कि प्रार्थना पत्र का मसौदा तैयार करना और अत्यंत सावधानी और सतर्कता के साथ आरोप लगाना विद्वान अधिवक्ता का कर्तव्य है। माननीय बीएम लाल, जे. (जैसा कि उस समय उनके आधिपत्य थे) ने कहा:

"9. .....संबंधित अधिवक्ता का यह प्रथम कर्तव्य है कि वह संबंधित न्यायाधीश के विरुद्ध स्थानांतरण याचिका का मसौदा तैयार करते समय तथा उसमें आरोप लगाते समय अत्यंत सावधानी बरते, विशेष रूप से पीठासीन न्यायाधीश के विरुद्ध निराधार आरोप लगाते समय। लेकिन, ऐसा प्रतीत होता है कि आजकल न्यायालय के पीठासीन न्यायाधीश के विरुद्ध आरोप लगाना सामान्य बात हो गई है। अधिवक्ता को यह समझना चाहिए कि वे भी न्यायालय के अधिकारी हैं। स्थानांतरण के लिए आधार के रूप में काल्पनिक तथा कल्पित आरोप लगाना तथा ऐसी आशंकाएं रखना कि निष्पक्ष तथा निष्पक्ष न्याय नहीं हो पाएगा, हमेशा निंदनीय होना चाहिए।

10. फिर भी, न्याय प्रशासन के कार्य में लगे सभी लोगों के लिए यह याद रखना भी महत्वपूर्ण है कि यह उनका दायित्व है कि वे अपने न्यायिक आचरण से प्रत्येक वादी को यह आश्वासन देकर ऐसा विश्वास और माहौल बनाएं और बनाए रखें कि निष्पक्ष और निष्पक्ष न्याय दिया जाएगा। वादियों के मन में ऐसा विश्वास पैदा करना आवश्यक है ताकि उनका विश्वास न्यायालयों में डगमगा न जाए।"

24. पक्षकार द्वारा मात्र यह संदेह कि उसे न्याय नहीं मिलेगा, स्थानांतरण को उचित नहीं ठहराएगा। इस आशय की उचित आशंका होनी चाहिए। न्यायाधीश द्वारा वैध रूप से दिया गया न्यायिक आदेश मामले के स्थानांतरण का आधार नहीं बन सकता। संभावित आशंका का मात्र अनुमान किसी भी मामले को एक मामले से दूसरे मामले में स्थानांतरित करने का आधार नहीं होना चाहिए। केवल बहुत ही विशेष परिस्थितियों में, जब ऐसे आधार लिए जाते हैं, न्यायालय को मामले को स्थानांतरित करने के लिए कारण खोजने चाहिए, अन्यथा नहीं। (राजकोट कैंसर सोसायटी बनाम नगर निगम, राजकोट, एआईआर 1988 गुजरात 63; पशुपाल फकरुद्दीन और अन्य बनाम जामिया मस्जिद और अन्य , एआईआर 2003 एपी 448; और, नंदिनी चटर्जी बनाम अरूप हरि चटर्जी, एआईआर 2001 कलकत्ता 26)

25. जहां न्यायालय के पीठासीन अधिकारी के संबंध में सत्यनिष्ठा या प्रभाव आदि के संबंध में आरोप लगाते हुए स्थानांतरण की मांग की जाती है,

अनुवादित

वहां इस न्यायालय को स्थानांतरण का कोई भी आदेश पारित करने से पहले बहुत सावधानी बरतनी होगी ।

26. ऐसे मामलों में जहां स्थानांतरण प्रार्थना पत्र में या अन्यथा किसी अनुकूल आदेश की मांग करने के लिए लापरवाही से झूठे आरोप लगाने का प्रयास किया जाता है, न्यायालय का दृष्टिकोण सख्त और सतर्क होना चाहिए ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या आरोप सद्भावनापूर्ण हैं, और यदि वे सभी परिस्थितियों में सत्य हैं, तो उन परिस्थितियों में सामान्य विवेक वाले किसी भी व्यक्ति द्वारा सही माना जा सकता है। यदि आरोप स्पष्ट रूप से झूठे हैं, तो सख्त दृष्टिकोण दिन की मांग है ताकि न केवल कानून की अदालतों में अनुशासन बनाए रखा जा सके बल्कि न्यायिक अधिकारियों की रक्षा की जा सके और उनके आत्मसम्मान , आत्मविश्वास और न्याय संस्था की गरिमा को भी बनाए रखा जा सके ।

27. न्याय प्रदान करने की प्रणाली में जाति, धर्म, पंथ, रंग आदि का कोई महत्व नहीं होता। यह काले और सफेद, यानी सत्य और असत्य के सिद्धांत पर चलने वाली प्रणाली है। जो अनुचित है, उसकी पहचान की जाती है और उसके साथ उचित व्यवहार किया जाता है और जो अच्छा है, उसे बरकरार रखा जाता है। जो अन्याय सहता है, उसे न्याय दिलाने का प्रयास किया जाता है और इसे न्याय प्रदान करना कहते हैं। वर्तमान में देश में न्याय प्रदान करने की प्रचलित प्रणाली में विभिन्न स्तर हैं। जमीनी स्तर पर न्यायालयों को आमतौर पर "अधीनस्थ न्यायपालिका" के रूप में जाना जाता है और वे न्याय प्रशासन का आधार बनते हैं। कभी-कभी यह कहा जाता है कि अधीनस्थ न्यायपालिका न्याय प्रशासन की रीढ़ होती है। यद्यपि न्याय पंचायत, ग्राम न्यायालय और फिर विभिन्न प्रकार के न्यायाधिकरण आदि जैसे कई अन्य प्रकार के न्याय मंच हैं, लेकिन सबसे पहले उन्हें विवादों के निपटारे के लिए नियमित न्यायालय नहीं माना जाता है, और, दूसरी बात यह है कि लोगों का विश्वास, नियमित स्थापित न्यायालयों में, अन्य मंचों में अभी भी विकसित होना बाकी है। सामान्य बोलचाल में, विवादों के उचित निर्णय के लिए जाने जाने वाले नियमित न्यायालय मूलतः अधीनस्थ न्यायपालिका का गठन करते हैं, अर्थात् जिला न्यायालय; उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय।"

22. सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 24 इस प्रकार है:-

"धारा 24. स्थानांतरण और वापसी की सामान्य शक्ति।

(1) किसी भी पक्षकार के प्रार्थना पत्र पर और पक्षकारों को नोटिस देने के पश्चात् तथा उनमें से ऐसे पक्षकारों को सुनने के पश्चात्, जो सुनवाई की इच्छा रखते हों, या ऐसी सूचना दिए

अनुवादित

बिना स्वप्रेरणा से, उच्च न्यायालय या जिला न्यायालय किसी भी प्रक्रम पर,

(क) अपने समक्ष लंबित किसी वाद, अपील या अन्य कार्यवाही को अपने अधीनस्थ किसी ऐसे न्यायालय को, जो उसका विचारण या निस्तारण करने में सक्षम हो, विचारण या निपटारे के लिए स्थानांतरित कर सकेगा, अथवा

(ख) अपने अधीनस्थ किसी न्यायालय में लंबित किसी वाद, अपील या अन्य कार्यवाही को वापस ले सकेगा, तथा

(i) उसका परीक्षण करना या उसका निस्तारण करना; या

(ii) उसे अपने अधीनस्थ किसी ऐसे न्यायालय को, जो उस पर विचार करने या उसका निस्तारण करने में सक्षम हो, विचारण या निस्तारण के लिए स्थानांतरित कर सकेगा; या

(iii) उसे परीक्षण या निस्तारण के लिए उस न्यायालय में पुनः स्थानांतरित करना जहां से उसे वापस लिया गया था।

(2) जहां कोई वाद या कार्यवाही उपधारा (1) के अधीन अन्तरित या वापस ले ली गई है, वहां वह न्यायालय जिसे तत्पश्चात् ऐसे वाद या कार्यवाही का विचारण या निस्तारण करना है, अन्तरण आदेश की दशा में किन्हीं विशेष निदेशों के अधीन रहते हुए, या तो उसका पुनः विचारण कर सकेगा या उस बिन्दु से आगे बढ़ सकेगा जहां से उसे अन्तरित या वापस लिया गया था।

(3) इस धारा के प्रयोजनों के लिए,

(ए) न्यायालय के अधीनस्थ माने जाएंगे ;

(बी) "कार्यवाही" में किसी डिक्री या आदेश के निष्पादन के लिए कार्यवाही सम्मिलित है।

(4) लघुवाद न्यायालय से इस धारा के अधीन अन्तरित या वापस लिए गए किसी वाद का विचारण करने वाला न्यायालय, ऐसे वाद के प्रयोजनों के लिए लघुवाद न्यायालय समझा जाएगा।

(5) इस धारा के अधीन कोई वाद या कार्यवाही ऐसे न्यायालय से स्थानांतरित की जा सकेगी जिसे उसका विचारण करने का अधिकार नहीं है।"

23. अभिलेखों का अवलोकन करने से यह स्पष्ट है कि जनपद न्यायाधीश, अलीगढ़ ने दिनांक 11.4.2023 को आदेश पारित करते समय बिल्कुल भी अपने दिमाग का उपयोग नहीं किया है और नागरिक प्रक्रिया संहिता की धारा 24 के तहत प्रार्थना पत्र की स्थिरता के संबंध में याचिकाकर्तागण द्वारा की गई आपत्ति पर कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया है। सीपीसी की धारा 24 में प्रावधान है कि स्थानांतरण के लिए प्रार्थना पत्र कार्यवाही में किसी पक्ष द्वारा दायर किया जा सकता है। स्थानांतरण प्रार्थना पत्र संख्या 116/2023 का आवेदक कार्यवाही में पक्ष नहीं था, अर्थात सिविल अपील संख्या 63/2022, ऐसे में उसका प्रार्थना पत्र पोषणीय

अनुवादित

नहीं था। जनपद न्यायाधीश, अलीगढ़ ने केवल यह निष्कर्ष दर्ज किया है कि तथ्यों और परिस्थितियों में प्रार्थना पत्र स्वीकार किए जाने योग्य है। इससे स्पष्ट रूप से पता चलता है कि दिनांक 11.4.2023 को आदेश पारित करते समय जनपद न्यायाधीश ने बिल्कुल भी अपने दिमाग का उपयोग नहीं किया है, और एक यांत्रिक तरीके से आदेश दिनांकित 11.04.2023 पारित कर दिया। जब उसी आरोप पर उसी जनपद न्यायाधीश ने पूर्व में स्थानांतरण प्रार्थना पत्र संख्या 83/2023 को खारिज कर दिया है, तो इस न्यायालय ने पाया कि जनपद न्यायाधीश के पास 28.3.2023 के अपने पहले के आदेश से असहमत होने का कोई कारण नहीं था, खासकर जब जनपद न्यायाधीश, अलीगढ़ के समक्ष अभिलेख पर कोई नई सामग्री नहीं लाई गई थी जो दिनांक 11.4.2023 के आदेश को पारित करने को सही ठहरा सकती है। इस प्रकार, जनपद न्यायाधीश, अलीगढ़ द्वारा स्थानांतरण प्रार्थना पत्र में पारित आदेश दिनांक 11.4.2023 को कानून के विपरीत होने के कारण रद्द किया जाता है। प्रत्यर्थी संख्या 1 अखिलेश प्रताप सिंह द्वारा दायर स्थानांतरण प्रार्थना पत्र संख्या 116/2023 खारिज किया जाता है। वर्तमान याचिका **स्वीकृत** किया है।

24. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2023) 6 ILRA 298

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 10.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी

अनुच्छेद 227 संख्या 4925 वर्ष 2023 के अंतर्गत मामले

हीरा लाल छाबड़ा ...याचिकाकर्ता

बनाम

नवल किशोर अग्रवाल .. .प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री आशीष अग्रवाल

प्रतिवादी के अधिवक्ता: श्री शिखर त्रिपाठी, श्री श्रेय शर्मा

(ए) भारत का संविधान - अनुच्छेद 227 - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश XVII नियम 1 - न्यायालय समय दे सकता है और सुनवाई स्थगित कर सकता है, आदेश XVII नियम 2 - पक्षकार के अधिवक्ता को किसी अन्य न्यायालय में नियुक्त करना स्थगन का आधार नहीं होगा - किसी भी वादी को अधिकार नहीं है सी.पी.सी. में दी गई प्रक्रिया का दुरुपयोग करना। (पैरा - 6,7,12)

(बी) शब्द और वाक्यांश - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश XVII नियम 1 सी.पी.सी. का प्रावधान - 'न्यायोचित कारण' - ऐसा कारण जो न केवल आदेश XVII सी.पी.सी. के उप-नियम (1) में वर्णित 'पर्याप्त कारण' है - बल्कि ऐसा कारण जो मुकदमे की सुनवाई के दौरान किसी पक्ष द्वारा स्थगन का अनुरोध करता है - तीन स्थगनों से परे अपरिहार्य और एक तरह की अनिवार्य आवश्यकता - जैसे वादी या गवाह या अधिवक्ता की अचानक बीमारी - उनमें से किसी एक के परिवार में मृत्यु - बाढ़, भूकंप आदि जैसी प्राकृतिक आपदा, जिस क्षेत्र में इनमें से कोई भी व्यक्ति रहता है - अदालत जाते समय वादी या गवाह या अधिवक्ता से

अनुवादित

जुड़ी दुर्घटना और ऐसे ही अन्य कारण। (पैरा-12) वादी-प्रतिवादी ने एस.सी.सी. मुकदमा दायर किया - तिथि निर्धारित - प्रतिवादी के अधिवक्ता किसी अन्य न्यायालय में व्यस्त थे, उपस्थित नहीं हो सके - न्यायालय ने एकपक्षीय आदेश पारित किया - रिकॉल आवेदन दायर किया - खारिज - याचिकाकर्ता-प्रतिवादी ने एस.सी.सी. संशोधन को प्राथमिकता दी - खारिज - प्रतिवादी-याचिकाकर्ता द्वारा लगभग 22 स्थगन मांगे गए। **(पैरा-1,9,11)**

निर्णय:-स्थगन सीमित अवसरों के लिए सद्भावनापूर्ण कारणों और अपरिहार्य परिस्थितियों पर दिया जाना चाहिए, न कि कई अवसरों के लिए। अधिवक्ता की अनुपस्थिति या अन्य न्यायालय में उनकी व्यस्तता स्थगन का आधार नहीं हो सकती, साथ ही इस तथ्य के साथ कि पहले कई स्थगन मांगे गए थे। आरोपित आदेशों में कोई हस्तक्षेप नहीं। **(पैरा-15,16)**

याचिका खारिज। (ई-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. सचिव, बागवानी विभाग, चंडीगढ़ और अन्य बनाम रघु राज, जे.टी. 2008 (11) एस.सी. 397
2. गायत्री बनाम एम. गिरीश, 2016 0 एस.सी. 587
3. शिव कोटेक्स बनाम तिरगुम ऑटोप्लास्ट लिमिटेड, 2011 (9) एस.सी.सी. 678

(माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी द्वारा दिया गया)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री आशीष अग्रवाल और प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री श्रेय शर्मा को सुना गया।

2. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि पहले वादी - प्रत्यर्थी ने एससीसी वाद संख्या 48/2014 दायर किया था जिसमें 5.3.2022 की तारीख तय की गई थी, लेकिन प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता किसी अन्य न्यायालय में व्यस्त थे, इसलिए, वह न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं हो सके थे। उसी दिन न्यायालय ने एकपक्षीय कार्यवाही का आदेश पारित कर दिया। इसके विरुद्ध उन्होंने 22.3.2022 को रिकॉल आवेदन दायर किया था, जिसे दिनांक 28.7.2022 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। उक्त आदेश के खिलाफ याचिकाकर्ता-प्रत्यर्थी ने एससीसी पुनरीक्षण संख्या 101/2022 प्रस्तुत किया, जिसे भी आदेश दिनांक 12.4.2022 द्वारा खारिज कर दिया गया था।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि प्रत्यर्थी के अधिवक्ता के उपस्थित न होने का कारण अकृतिम है क्योंकि वह दूसरे न्यायालय के समक्ष वाद कर रहे हैं। इसके अलावा, याचिका के पैराग्राफ 39 में, वह कहते हैं कि वह बिना स्थगन के प्रत्येक तारीख को संबंधित न्यायालय के समक्ष उपस्थित होंगे, इसलिए, आदेश को रद्द किया जा सकता है और बचाव पक्ष के साक्ष्य को स्वीकार करने का अवसर भी दिया जा सकता है। उन्होंने अंत में कहा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **जेटी 2008 (11) एससी 397 में रिपोर्ट किए गए सचिव, बागवानी विभाग, चंडीगढ़ और अन्य बनाम रघु राज** के मामले में इस पहलू पर चर्चा की है और कहा कि भले ही सुनवाई के समय उपस्थित न होने में अधिवक्ता की ओर

अनुवादित

से चूक हुई हो, किंतु प्रत्यर्थी - याचिकाकर्ता को अन्याय नहीं सहना पड़ेगा।

4. वादी प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री श्रेय शर्मा ने इस दलील का पुरजोर विरोध किया और कहा कि अब सुनवाई समाप्त हो गई है और फैसला सुनाने के लिए कल की तारीख तय की गई है। उन्होंने आगे कहा कि प्रत्यर्थी - याचिकाकर्ता को मामले की सुनवाई से दूर रहने की आदत है। पहली बार न्यायालय ने दिनांक 28.4.2015 के आदेश के तहत प्रत्यर्थी के खिलाफ एकपक्षीय निर्णय लेने की कार्यवाही की है। उक्त आदेश दिनांक 19.5.2015 के आदेश द्वारा वापस ले लिया गया। उन्होंने आगे कहा कि मामला फिर से 8.1.2018 को सूचीबद्ध किया गया था, लेकिन प्रत्यर्थी ने स्थगन आवेदन दायर किया था, जिसे विचारण न्यायालय ने 250/- रुपये की लागत के साथ स्वीकार कर लिया था। इसके बाद, मामला 18.1.2018 को सूचीबद्ध किया गया था और दोनों पक्षों के साक्षी उपस्थित थे, लेकिन प्रतिवादी के अधिवक्ता प्रति पृच्छा के लिए उपस्थित नहीं थे और तदनुसार, पी0डब्लू0-1 की प्रति-पृच्छा का अवसर समाप्त कर दिया गया था। उक्त आदेश दिनांक 21.2.2019 के आदेश द्वारा वापस ले लिया गया था। 16.9.2019 को मामला फिर से सूचीबद्ध किया गया, न्यायालय ने पी0डब्लू0-1 की प्रति - पृच्छा के लिए 1.10.2019 की तारीख तय की है। अगली तारीख यानी 19.10.2019 को पी0डब्लू0 - 1 वादी के अधिवक्ता के साथ उपस्थित था, लेकिन प्रतिवादी की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ और फिर से पी0डब्लू0 -1 की प्रति-पृच्छा समाप्त कर दी गई । इसके अलावा, 14.11.2019, 10.1.2022 और 5.3.2022 को, प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता उपस्थित नहीं थे। उन्होंने अंततः कहा कि मुकदमा वर्ष 2014 में दायर किया गया था और 2022 तक, प्रतिवादी - याचिकाकर्ता द्वारा लगभग 22 बार स्थगन की मांग की गई है। उन्होंने, अपने तर्क के समर्थन में, **2016 0 एससी 587 में रिपोर्ट किए गए गायत्री बनाम एम. गिरीश और 2011 (9) एससीसी 678 में रिपोर्ट किए गए शिव कोटेक्स बनाम तिरगम ऑटोप्लास्ट लिमिटेड** के मामलों में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर विश्वास जताया है।

5. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता के प्रतिकूल तर्क पर विचार किया है और अभिलेख, आदेश पत्र, आक्षेपित आदेश और सीपीसी के आदेश XVII नियम 1 का अवलोकन किया है। आदेश पत्र के अवलोकन से यह प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्क बिल्कुल सही हैं। निर्विवाद रूप से, प्रत्यर्थी - याचिकाकर्ता ने कई मौकों पर स्थगन के पश्चात स्थगन की मांग की है और विचारण न्यायालय ने कई अवसर दिए हैं, लेकिन इसके बाद भी प्रत्यर्थी ने स्थगन की मांग करके या मामले की सुनवाई से अनुपस्थित रहकर विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग किया है।

6. सीपीसी का आदेश XVII नियम 1 स्थगन से संबंधित है, जो यहाँ नीचे उद्धृत किया गया है:-

"न्यायालय समय प्रदान कर सकती है और सुनवाई स्थगित कर सकती है:- *(1) यदि वाद के*

किसी भी प्रक्रम में पर्याप्त हेतुक दर्शित किया जाता है तो न्यायालय ऐसे कारणों से जो

अनुवादित

लेखबद्ध किए जाएंगे पक्षकारों या उनमें से किसी को भी समय दे सकेगा और वाद की सुनवाई को समय-समय पर स्थगित कर सकेगा :

परन्तु ऐसा कोई स्थगन वाद की सुनवाई के दौरान किसी पक्षकार को तीन बार से अधिक अनुदत्त नहीं किया जाएगा ।

२) स्थगन के खर्चे- न्यायालय ऐसे हर मामले में वाद की आगे की सुनवाई के लिए दिन नियत करेगा और ऐसे स्थगन के कारण हुए खर्चों या ऐसे उच्चतर खर्चों के संबंध जिन्हें न्यायालय ठीक समझे, ऐसे आदेश करेगा :

3. बशर्ते, -

क) यदि वाद की सुनवाई प्रारम्भ हो गई है तो जब तक न्यायालय उन असाधारण कारणों से जो उसके जरा लेखबद्ध किए जाएंगे, सुनवाई का स्थगन अगले दिन से परे के लिए करना आवश्यक न समझे, वाद की सुनवाई दिन-प्रतिदिन तब तक जारी रहेगी जब तक सभी हाजिर साक्षियों की परीक्षा न कर ली जाए,

ख) किसी पक्षकार के अनुरोध पर कोई भी स्थगन ऐसी परिस्थितियों को छोड़कर जो उस पक्षकार के नियंत्रण के बाहर हो, मंजूर नहीं किया।

ग) यह तथ्य स्थगन के लिए आधार नहीं माना जाएगा कि किसी पक्षकार का प्लीडर दूसरे न्यायालय में व्यस्त है।

घ) जहां प्लीडर की रुग्णता या दूसरे न्यायालय में उसके व्यस्त होने से भिन्न कारण से, मुकदमे का संचालन करने में उसकी असमर्थता को स्थगन के लिए एक आधार के रुप में पेश किया जाता है वहां न्यायालय तब तक स्थगन मंजूर नहीं करेगा जब तक स्थगन मंजूर नहीं करेगा जब तक उसका यह समाधान नहीं हो जाता है कि ऐसे स्थगन के लिए आवेदन करने वाला पक्षकार समय पर दुसरा प्लीडर मुकर्रर नहीं कर सकता था,

(ङ) जहां कोई साक्षी न्यायालय में उपस्थित है किन्तु पक्षकार या उसका प्लीडर उपस्थित नहीं है अथवा पक्षकार या प्लीडर न्यायालय में उपस्थित होने पर भी किसी साक्षी की परीक्षा या प्रतिरक्षा करने के लिए तैयार नहीं है वहां न्यायालय, यदि वह ठीक समझे, तो, साक्षी का कथन अभिलिखित कर सकेगा और यथास्थिति, पक्षकार या उसके प्लीडर द्वारा जो उपस्थित न हो अथवा पूर्वोक्त रुप में तैयार न हो, साक्षी की मुख्य परीक्षा या प्रतिपरीक्षा करने को अभिमुक्त करते हुए ऐसे आदेश पारित कर सकेगा जो वह ठीक समझे ।

उच्च न्यायालय द्वारा संशोधन

इलाहाबाद:- निम्नलिखित अतिरिक्त परंतुक जोड़े गए :

'बशर्ते कि आगे ऐसा कोई स्थगन किसी ऐसे साक्षी को बुलाने के प्रयोजन के लिए नहीं दिया जाएगा जिसे पहले बुलाया या नामित नहीं किया गया है, न ही किसी भी पक्ष द्वारा ऐसे प्रयोजन के लिए किसी स्थगन का उपयोग किया जाएगा, जब तक कि न्यायाधीश ने प्रावधान के तहत लिखित रूप में आदेश -

अनुवादित

XVI, नियम 1 (24.7.1926) के अंतर्गत कोई आदेश न दिया हो ।"

7. इसके अवलोकन से, यह बहुत स्पष्ट है कि मुकदमे की सुनवाई के दौरान एक पक्ष को केवल तीन स्थगन दिए जाएंगे और आदेश XVII नियम 2 में आगे प्रावधान है कि किसी अन्य न्यायालय में पक्ष के अधिवक्ता की व्यस्तता स्थगन का आधार नहीं होगी और यहां मामला पूरी तरह से अलग है, यहां 22 स्थगन मांगे गए हैं और यहां तक कि वर्तमान याचिका भी इस आधार पर आदेश को रद्द करने के लिए दायर की गई है कि याचिकाकर्ता - प्रतिवादी के अधिवक्ता अन्य न्यायालय में व्यस्त थे, जिसके कारण वह उपस्थित नहीं हो सके जो सीपीसी के नियम 1 और 2 के आदेश XVII के प्रावधान के विरोध में है।

8. मैंने **सचिव, बागवानी विभाग, चंडीगढ़ (उपर्युक्त)** के फैसले का अध्ययन किया है जिस पर याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने विश्वास दिखाया था। उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे उद्धृत किया गया है: -

"34. ऊपर उल्लिखित निर्णयज विधि से, यह स्पष्ट है कि इस न्यायालय ने सुनवाई के लिए बुलाए जाने पर अधिवक्ता के उपस्थित होने और वाद के लिए तर्क करने पर सदैव बाल दिया है। ऐसा करने में विफलता मुवक्किल के लिए अनुचित होगी और न्यायालय के लिए असभ्य होगी और इसे कठोरता से अनुत्साहित किया जाना चाहिए । साथ ही, न्यायालय ने हेतुक के साथ न्याय पर बल देते हुए कहा है कि यह उचित है कि दोनों पक्ष न्यायालय के समक्ष उपस्थित हों और उनकी बात सुनी जाए। न्यायालय द्वारा यह नोट किया गया है कि एक बार कोई पक्ष किसी अधिवक्ता को नियुक्त करता है, वह समझता है कि जब मामले की सुनवाई होगी तो उसका अधिवक्ता उपस्थित होगा और न्यायालय अधिवक्ता को दलील देने के लिए बुलाता है। इन सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए न्यायालय अधिवक्ता की अनुपस्थिति में मामले की सुनवाई के लिए आगे नहीं बढ़ता है।

40. हमारी राय में, तथ्यों और परिस्थितियों की समग्रता में,, भले ही अपीलकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता उपस्थित नहीं थे, यह उचित होता, यदि उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता को मामले को स्थगित करके अपने तर्क रखने का अवसर दिया होता |"

9. उपरोक्त पैराग्राफ में वर्णित निर्णय के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि अधिवक्ता की ओर से व्यतिक्रम की स्थिति में भी, पक्षों को अवसर दिया जाना चाहिए, लेकिन यहां मामला अलग है। प्रतिवादी या उसके अधिवक्ता द्वारा केवल एक ही नहीं, बल्कि 22 स्थगन की मांग की जा चुकी थी। इसलिए, निर्णय के सार के अनुसार, यदि किसी पक्ष का अधिवक्ता किसी भी अवसर पर अनुपस्थित है और अवसर प्रदान किया जाना है, लेकिन यहां यह निर्णय याचिकाकर्ता-प्रतिवादी को अलग-अलग तिथियों पर उसकी आदतन व्यतिक्रम पर विचार करते हुए मामले को नहीं बचाएगा।

10. मैंने **गायत्री (उपर्युक्त)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का भी अध्ययन

अनुवादित

किया है, जिस पर प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा विश्वास दिखाया गया है । उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ निम्नानुसार है: -

"10. वर्तमान मामले में, जैसा कि हमने यहां पहले कहा है, मुख्य पृच्छा लंबे समय तक जारी रही और मामले को सात बार स्थगित किया गया। प्रतिवादी ने किसी न किसी ऐसे बहाने से प्रति-पृच्छा के लिए एक के बाद एक स्थगन की मांग की जो वास्तव में विधि के तहत ग्रहणीय नहीं है। लेकिन विचारण न्यायालय ने अंततः लागत के भुगतान के अध्यधीन अनुमति दे दी। बढ़ाए गए भत्ते की परवाह किए बिना, प्रतिवादी अपने तर्क पर अड़ा रहा और स्थगन के लिए प्रार्थना करता रहा जैसे कि किसी भी परिस्थिति में किसी भी आधार पर स्थगन की मांग करना उसका अधिकार था । अदालत की कार्यवाही के प्रति याचिकाकर्ता-प्रत्यर्थी की गैर - चिंता बिल्कुल स्पष्ट है। वादी की उम्र के प्रति दिखाई गई उपेक्षा दायर किए गए कई सारी अंतर्वर्ती प्रार्थना पत्रों से भी परिलक्षित होती है। एक वादी की ओर से पेश होने वाले अधिवक्ता को संस्थागत तौर पर जिम्मेदार होना चाहिए । सिविल प्रक्रिया संहिता ऐसा आदेश देती है। ऐसे आधारों पर प्रार्थना पत्र दायर नहीं किए जाने चाहिए जिनका हमने यहां ऊपर उल्लेख किया है और वह भी इतने उपेक्षित और दखलंदाजी तरीके से। यह पूरी तरह निंदनीय है और विधि इसका समर्थन नहीं करती है और, यदि हम खुद को ऐसा कहने की अनुमति देते हैं, तो पेशेवर नैतिकता ऐसी प्रथा की निंदा करती है। ऐसा इसलिए है क्योंकि इस तरह के कृत्य कानून की महिमा के खिलाफ हैं।"

11. ऊपर उल्लिखित निर्णय में, सात बार स्थगन के मामले में, न्यायालय ने अधिवक्ता के आचरण की निंदा की है और कोई राहत देने के लिए इच्छुक नहीं है। वर्तमान मामले में, प्रतिवादी-याचिकाकर्ता द्वारा लगभग 22 स्थगन की मांग की गई है, इसलिए, ऐसा कृत्य पूरी तरह से निंदनीय और कानून की महिमा के खिलाफ हैं। याचिकाकर्ता न्यायालय से किसी सहानुभूति का हकदार नहीं है।

12. **शिव कोटेक्स (उपर्युक्त)** के मामले में यह मुद्दा फिर से सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष था और स्थगन के मुद्दे पर विचार करते समय, न्यायालय ने अधिवक्ता की अनुपस्थिति पर भी विचार किया है। उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे उद्धृत किया गया है:

"यह दुखद है, लेकिन सच है कि वादकारी स्थगन चाहते हैं और न्यायालय तुरंत स्थगन प्रदान करती हैं। ऐसे मामलों में जहां न्यायाधीश थोड़ा सक्रिय होते हैं और अनावश्यक स्थगन के अनुरोधों को स्वीकार करने से इनकार करते हैं, मुकदमे को लंबा खींचने के लिए वादी सभी प्रकार के तरीकों का इस्तेमाल करते हैं। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि सिविल विवाद लगातार खिंचते रहते हैं। अपीलीय और पुनरीक्षण न्यायालयों द्वारा अनुचित सहानुभूति और अनुग्रह इसको और अधिक बढ़ावा देता है। जो मामला सामने आया है वह ऐसी ही गलत सहानुभूति का मामला है। अब समय आ गया है कि न्यायालय न्याय वितरण प्रणाली में देरी के प्रति संवेदनशील हो जाएं और महसूस करें कि स्थगन न्यायिक प्रक्रिया की प्रभावकारिता को नुकसान पहुंचाते हैं

अनुवादित

और यदि इस खतरे को पर्याप्त रूप से नियंत्रित नहीं किया गया, तो मुकदमा करने वाली जनता जल्द ही न्याय प्रणाली में विश्वास खो सकती है। न्यायलयों, विशेष रूप से विचारण न्यायलयों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि सुनवाई की हर तारीख पर मुकदमे में प्रभावी प्रगति हो।"

16. किसी भी वादकारी को सीपीसी में प्रदान की गई प्रक्रिया का दुरुपयोग करने का अधिकार नहीं है। स्थगन कैंसर की तरह बढ़ गया है और संपूर्ण न्याय वितरण प्रणाली को नुकसान पंहुचा रहा है। यह सच है कि आदेश XVII नियम 1 सीपीसी के परंतुक में दी गयी किसी मुकदमे की सुनवाई के दौरान किसी पक्ष को स्थगन की सीमा अनिवार्य नहीं है और एक उपयुक्त मामले में, उचित कारण पर, अदालत किसी पक्ष को साक्ष्य प्रस्तुत करने पर तीन बार से अधिक स्थगन दे सकती है लेकिन आमतौर पर आदेश XVII नियम 1 सीपीसी के परंतुक में प्रदान की गई सीमा को बनाए रखा जाना चाहिए। जब हम 'उचित कारण' कहते हैं तो हमारे कहने का तात्पर्य ऐसे कारण से है जो न केवल 'पर्याप्त कारण' है जैसा कि आदेश XVII सीपीसी के उपनियम (1) में बताया गया है, बल्कि एक ऐसा कारण है जो सुनवाई के दौरान किसी पक्ष द्वारा तीन स्थगनों के बाद भी अनुरोध को अपरिहार्य बनाता है और इस प्रकार की बाध्यकारी आवश्यकता से है जैसे कि वादी या साक्षी या अधिवक्ता की अचानक बीमारी जैसी अनिवार्य आवश्यकता; उनमें से किसी एक के परिवार में मृत्यु; उस क्षेत्र में प्राकृतिक आपदा जैसे बाढ़, भूकंप, आदि जहां इनमें से कोई भी व्यक्ति रहता है; अदालत जाते समय वादी या साक्षी या अधिवक्ता के साथ हुई कोई दुर्घटना और ऐसे ही अन्य कारण।

सूची केवल दृष्टान्त स्वरुप है, संपूर्ण नहीं। हालाँकि, अधिवक्ता की अनुपस्थिति या अन्य न्यायालय में या अन्यत्र पेशेवर कार्य के कारण या हड़ताल के आधार पर या अधिवक्ता के बदलने या अधिवक्ता (जिस पक्ष का वह प्रतिनिधित्व करता है उसे पहले से वैकल्पिक व्यवस्था करनी होगी) की लगातार बीमारी के कारण या इसी तरह के आधार पर उसकी अनुपलब्धता मुकदमे की सुनवाई के दौरान किसी पक्ष को तीन से अधिक स्थगन को न्यायुचित नहीं ठहरायेगी कार्यवाही के संचालन में किसी पक्ष का पिछला आचरण एक महत्वपूर्ण परिस्थिति है जिसे अदालतों को स्थगन के लिए अनुरोध करते समय ध्यान में रखना चाहिए। मुक़दमे का एक पक्ष अपनी फ़ुरसत और इच्छा से मुक़दमे को आगे बढ़ाने के लिए स्वतंत्र नहीं है और उसे यह निर्धारित करने का कोई अधिकार नहीं है कि उसके द्वारा साक्ष्य कब दिए जाएंगे या मामले की सुनवाई कब की जानी चाहिए। मुकदमे के पक्षकारों चाहे वादी हो या प्रत्यर्थी - को सुनवाई की तारीख, जिसके लिए मामला तय किया गया है, पर प्रभावी कार्य सुनिश्चित करने में न्यायालय के साथ सहयोग करना चाहिए। यदि वे ऐसा नहीं करते हैं, तो वे ऐसा अपने जोखिम पर करते हैं। जहां तक वर्तमान मामले का सवाल है, हित बड़ा होने पर वादी को वाद को अभियोजित करने में और साक्ष्य को प्रस्तुत करने में अधिक गंभीर और सतर्क रहना चाहिए था। हमारे विचार में, अगर तीन अवसरों के

अप्रमाणित

बावजूद वादी द्वारा कोई साक्ष्य नहीं दिया गया, तो वह सीपीसी की धारा 100 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए दूसरी अपील में कोई सहानुभूति का पात्र नहीं है। हमें उच्च न्यायालय द्वारा अधीनस्थ न्यायालयों के समवर्ती फैसले को बदले जाने का कोई औचित्य नहीं दिखता। उच्च न्यायालय ने वादी को साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर देकर स्पष्ट रूप से गलती की, जबकि उस ऐसा करने का कोई औचित्य मौजूद नहीं था।"

13. इस मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने स्थगन देने की प्रवृत्ति की अत्यधिक निंदा की है और यह भी दृढ़ विचार किया है कि अधिवक्ता को बदलना, अधिवक्ता की बीमारी जारी रहना या इसी तरह के आधार पर वाद की सुनवाई के दौरान किसी पक्ष को तीन से अधिक स्थगन देना उचित नहीं होगा। वर्तमान मामले में, स्थगन की संख्या 22 है, इसलिए, वर्तमान विवाद पूरी तरह से शीर्ष अदालत द्वारा निर्धारित विधि के निर्णयाधार के अंतर्गत आता है और याचिकाकर्ता किसी भी राहत का हकदार नहीं है।

14. यहां उद्धृत निर्णयों के साथ-साथ सीपीसी के आदेश XVII नियम 1 और 2 के अवलोकन से, यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट है कि कानून का इरादा मुकदमे की सुनवाई को जल्द जल्द पूरा करना है, जिसके लिए स्थगन की संख्या तीन तक सीमित कर दी गई है। स्थगन की मंजूरी के लिए केवल कई बार और अधिक कठोर शर्तें लगाई गई हैं, जो किसी अन्य न्यायालय में अधिवक्ता की व्यस्तता को भी अस्वीकार करती हैं।

15. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई व्याख्या के आलोक में, इस न्यायालय का यह भी विचार है कि स्थगन वास्तविक कारणों और अपरिहार्य परिस्थितियों के आधार पर सीमित अवसरों के लिए दिया जाना चाहिए, न कि कई अवसरों के लिए, क्योंकि मामले की सुनवाई चल रही होती है और अन्य न्यायालय में व्यस्तता के कारण अधिवक्ता की अनुपस्थिति इस तथ्य के रहते स्थगन का आधार नहीं हो सकती है कि पहले भी कई स्थगन मांगे गए थे।

16. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के साथ-साथ कानून को भी ध्यान में रखते हुए यहां
ऊपर चर्चा की गई है, आक्षेपित आदेशों में हस्तक्षेप का कोई मामला नहीं बनता है। याचिका
में गुणदोष नहीं है और इसलिए इसे **खारिज** किया जाता है। लागत का कोई आदेश नहीं ।

(2023) 6 ILRA 303

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 08.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी

अनुच्छेद 227 के अंतर्गत मामले संख्या 5213 वर्ष 2023

श्री फिरोज उद्दीन एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

श्री अनवर उद्दीन ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के वकील: श्री जटा शंकर पांडे

अनुवादित

प्रतिवादी के वकील: श्री रवि शंकर पाठक

(ए) भारत का संविधान - अनुच्छेद 227 - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश VI नियम 17 - दलीलों में संशोधन - न्यायालयों को दलीलों में संशोधन के लिए प्रार्थना को स्वीकार करने में उदारता दिखानी चाहिए, जब तक कि दूसरे पक्ष को गंभीर अन्याय या अपूरणीय क्षति न हो या इस आधार पर कि संशोधन के लिए प्रार्थना सद्भावपूर्ण नहीं थी - वकील का परिवर्तन संशोधन दायर करने का आधार नहीं हो सकता। (पैरा -12, 20)

(बी) वाक्यांशों का शब्द - "उचित परिश्रम" - किसी पक्ष के रचनात्मक ज्ञान, दावे के दायरे को निर्धारित करता है और मुकदमे के परिणाम के लिए बहुत महत्वपूर्ण है - उचित परिश्रम यह विचार है कि कुछ प्रकार की राहत का अनुरोध करने से पहले उचित जांच आवश्यक है - यह निर्धारित करने के लिए एक परीक्षण है कि स्थितियों में विवेक का प्रयोग करना है या नहीं। परीक्षण शुरू होने के बाद संशोधन का अनुरोध किया गया - चाहे वह वादपत्र में संशोधन का मामला हो या लिखित बयान में, आदेश VI नियम 17 सीपीसी में दिए गए अनुसार उचित परिश्रम की आवश्यकता को पूरा करना आवश्यक है। (पैरा - 14 से 19)

परीक्षण शुरू होने के बाद संशोधन आवेदन दायर किया गया - वादी और प्रतिवादियों के हलफनामे प्राप्त हुए - याचिकाकर्ताओं ने आदेश VI नियम 17 सीपीसी के तहत आवेदन दायर किया - नए तथ्यों को रिकॉर्ड पर लाने के लिए - वकील के परिवर्तन के कारण - अतिरिक्त तथ्य जोड़ने के लिए संशोधन आवेदन दायर किया गया - जैसा कि बाद में नियुक्त नए वकील ने बताया - रिकॉर्ड पर तथ्य लाने में किए गए उचित परिश्रम पर विवाद नहीं हुआ। **(पैरा - 11)**

निर्णय:- संशोधन आवेदन में नए वकील की नियुक्ति को छोड़कर जानकारी का अभाव है, और उचित परिश्रम की शर्तें पूरी नहीं की जा सकती हैं। ईमानदारी से प्रयासों के बावजूद, वे लिखित बयान में संशोधित किए जाने वाले तथ्य नहीं पा सके। विवादित आदेश में हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। (पैरा - 20)

याचिका खारिज। (ई-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची</u>:

1. उषा बालासाहेब स्वामी एवं अन्य बनाम किरण अप्पासो स्वामी एवं अन्य, 2007 (3) सुप्रीम (एससी) 582
2. हरि शंकर एवं अन्य बनाम भगवती प्रसाद मिश्रा, 2014 0 सुप्रीम (सभी) 3127
3. सागवा सिंह त्यागी बनाम ए.डी.जे. एवं अन्य, 2014 0 सुप्रीम (सभी) 3433
4. हरि नारायण बनाम शांति देवी, 2019 एससीसी ऑनलाइन सभी 2380
5. रमेश दुग्गल @ पप्पू बनाम पं. राम शंकर मिश्रा ट्रस्ट मुख्य कार्यालय, अनुच्छेद 227 संख्या 2658/2023

(माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी द्वारा दिया गया)

1. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता और प्रतिपक्षी के अधिवक्ता श्री रविशंकर पाठक को सुना।

2. प्रस्तुत याचिका निम्नलिखित प्रार्थना के साथ दायर की गई है;

"इसलिए, यह अत्यंत सम्मानपूर्वक प्रार्थना की जाती है कि यह माननीय न्यायमूर्ति न्यायालय पी.ए केस संख्या-42 वर्ष 2015, अनवर उद्दीन और फिरोज उद्दीन (मृतक)

अनुवादित

और अन्य में निर्धारित प्राधिकारी/जे.एस.सी.सी. आगरा द्वारा पारित दिनांक 11.04.2023 के आक्षेपित आदेश के प्रभाव और संचालन पर रोक लगाने की कृपा करे।

3. चूंकि केवल कानूनी प्रश्न शामिल है, इसलिए, पक्षों की सहमति से, शपथ पत्र आमंत्रित किए बिना, मामले को प्रवेश चरण में ही तय किया जा रहा है।

4. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि पीए केस संख्या-42 वर्ष 2015 वादी-प्रतिपक्षी द्वारा दायर किया गया था। चूंकि याचिकाकर्ता-प्रतिपक्षी उपस्थित नहीं हुए थे और विचारण न्यायालय ने दिनांक 04.01.2017 के आदेश के तहत एकपक्षीय कार्यवाही की, जिस पर एक आवेदन दायर किया गया था, जिसे दिनांक 03.07.2018 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। दोनों आदेशों को अनुच्छेद 227 संख्या-5779 वर्ष 2018 के तहत मामले दायर करके इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी, जिसे याचिकाकर्ता को 10 जनवरी, 2023 को या उससे पहले 1500/- रुपये की लागत जमा करने के निर्देश के साथ दिनांक 19.12.2022 के आदेश द्वारा निपटाया गया था और आगे कहा गया था कि उसका लिखित बयान, जो पहले से ही रिकॉर्ड में है, इस पर विचार किया जाएगा और वह 10 जनवरी, 2023 तक साक्ष्य का अपना हलफनामा भी दायर करेंगे। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि दिनांक 19.12.2022 के आदेश के अनुपालन में, याचिकाकर्ताओं ने 06.01.2023 को 1500/- रुपये जमा किए हैं और लिखित बयान भी रिकॉर्ड में लिया गया था।

5. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि आवेदक का हलफनामा प्राप्त करने के बाद, याचिकाकर्ताओं ने लिखित बयान में पुनरीक्षण के लिए आदेश VI नियम 17 सी.पी.सी. के तहत आवेदन दायर किया है, जिसे इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि उक्त पुनरीक्षण पहले से ही लिखित बयान का हिस्सा है और दूसरी बात, याचिकाकर्ताओं-प्रतिवादियों ने कोई उचित कारण नहीं दिया है कि उक्त तथ्यों को पहले दायर लिखित बयान में शामिल क्यों नहीं किया गया है। याचिकाकर्ताओं ने आदेश VI नियम 17 सी.पी.सी. के तहत अपने आवेदन में विशिष्ट आधार लिया है कि पहले लिखित बयान श्री आर.पी सिंह ढाकरे, अधिवक्ता द्वारा दायर किया गया था और नए अधिवक्ता, श्री रजत कुमार सारस्वत को नियुक्त करने के बाद, याचिकाकर्ताओं ने पेपर बुक को ठीक से पढ़ा और पुनरीक्षण के लिए सुझाव दिया है। इसलिए, मामले के ऐसे तथ्यों के तहत, पुनरीक्षण की अनुमति देने के लिए विचारण न्यायालय की ओर से आवश्यक है।

6. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि लिखित बयान में पुनरीक्षण से निपटने के दौरान, न्यायालय को अधिक उदार होना चाहिए था। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने उषा बालासाहेब स्वामी और अन्य बनाम किरण अप्पासो स्वामी और अन्य 2007 (3) सर्वोच्च (एस.सी.) 582 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है।

7. प्रतिपक्षी के अधिवक्ता श्री रवि शंकर पाठक ने याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा उठाए गए सबमिशन का जोरदार विरोध किया है और प्रस्तुत किया है कि इस बिंदु पर कोई विवाद नहीं है कि लिखित बयान में पुनरीक्षण आवेदन से निपटने के दौरान, अदालत को अधिक उदार होना चाहिए था, लेकिन उन्होंने दृढ़ता से

अनावरित

प्रस्तुत किया कि परीक्षण शुरू होने के बाद आवेदन दाखिल करते समय, याचिकाकर्ताओं-प्रतिवादियों द्वारा किए गए प्रयासों को दिखाना और यह साबित करना अनिवार्य है कि उचित परिश्रम के बाद भी, उन्हें उन तथ्यों का ज्ञान नहीं था। केवल अधिवक्ता का परिवर्तन पुनरीक्षण आवेदन को बहुत देर से अनुमति देने का आधार नहीं हो सकता है और प्रस्तुत मामले में, पुनरीक्षण आवेदन दाखिल करने वाले प्रतिपक्षी द्वारा गवाह का हलफनामा प्रस्तुत करने के बाद भी याचिकाकर्ताओं-प्रतिवादियों द्वारा अपनाई गई टालमटोल की रणनीति के अलावा और कुछ नहीं है। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने हरिशंकर और 5 अन्य बनाम भगवती प्रसाद मिश्रा में इस न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया है; 2014 0 सुप्रीम (इला) 3127, 31.10.2014 को फैसला सुनाया गया, सागवा सिंह त्यागी बनाम अतिरिक्त जिला न्यायाधीश और 6 अन्य; 2014 इला. 3433, 11.11.2014 को निर्णीत, हरि नारायण बनाम शांति देवी; 2019 एस.सी.सी. इला. 2380, 28.05.2019 को तय किया गया, और अनुच्छेद 227 संख्या-2658 वर्ष 2023 (रमेश दुग्गल उर्फ पप्पू बनाम पंडित राम शंकर मिश्रा ट्रस्ट मुख्य कार्यालय) के तहत मामला 05.05.2023 को तय किया गया।

8. मैंने पक्षों के अधिवक्ता द्वारा उठाए गए प्रतिद्वंद्वी सबमिशन पर विचार किया है और रिकॉर्ड, आदेश VI नियम 17 सी.पी.सी. के प्रावधान के साथ-साथ निर्णयों पर भरोसा किया है।

9. इस न्यायालय के समक्ष मुद्दा यह है कि क्या लिखित बयान के लिए पुनरीक्षण आवेदन पर निर्णय लेते समय, उचित परिश्रम के मुद्दे पर ध्यान दिया जाना चाहिए या नहीं?

10. वर्तमान मुद्दा सी.पी.सी. के आदेश VI नियम 17 से उद्भूत हो रहा है, इसलिए, इसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है;

"17. अभिवचनों का पुनरीक्षण- न्यायालय कार्यवाही के किसी भी चरण में किसी भी पक्ष को अपनी दलील को इस तरह से और ऐसे शब्दों पर बदलने या संशोधित करने की अनुमति दे सकता है जो उचित हो सकती हैं, और ऐसे सभी पुनरीक्षण किए जाएंगे जो पक्षों के बीच विवाद में वास्तविक प्रश्नों को निर्धारित करने के उद्देश्य से आवश्यक हो सकते हैं। बशर्ते कि परीक्षण शुरू होने के बाद पुनरीक्षण के लिए किसी भी आवेदन की अनुमति नहीं दी जाएगी, जब तक कि न्यायालय इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचता है कि उचित परिश्रम के बावजूद, पक्ष मुकदमे के शुरू होने से पहले मामले को नहीं उठा सकता था।

11. मामले के तथ्य विवादित नहीं हैं कि पुनरीक्षण आवेदन परीक्षण शुरू होने, वादी के शपथ पत्र प्राप्त करने और प्रतिवादियों के शपथ पत्र प्रस्तुत करने के बाद भी दायर किया गया था। पुनरीक्षण आवेदन में, एकमात्र आधार यह लिया गया है कि अधिवक्ता के परिवर्तन के कारण, याचिकाकर्ता रिकॉर्ड पर नए तथ्यों को लाना चाहते हैं और इस कारण से, उन्होंने पुनरीक्षण के लिए आदेश VI नियम 17 सी.पी.सी. के तहत आवेदन दायर किया है। इसके अलावा, तथ्यों को अभिलिखित करने के लिए उनके द्वारा की गई उचित तत्परता का कोई कारण नहीं है। पुनरीक्षण आवेदन अतिरिक्त तथ्यों को जोड़ने के लिए दायर

अप्रमाणित

किया गया था, जैसा कि बाद में नए अधिवक्ता द्वारा इंगित किया गया था।

12. मैंने उषा बालासाहेब स्वामी (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का अवलोकन किया है। उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किए गए हैं;

"19. अब इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों के साथ-साथ उच्च न्यायालयों द्वारा यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि न्यायालयों को अभिवादों के पुनरीक्षण के लिए प्रार्थना को स्वीकार करने में उदार होना चाहिए जब तक कि दूसरे पक्ष को गंभीर अन्याय या अपूरणीय क्षति न हो या इस आधार पर कि पुनरीक्षण के लिए प्रार्थना एक वास्तविक नहीं थी। इस संबंध में, माश्वे म्या बनाम मौंग मो हनाग [ए.आई.आर. 1922 पीसी 249] के मामले में प्रिवी काउंसिल के अवलोकन पर ध्यान दिया जा सकता है। प्रिवी काउंसिल ने देखा:

"अदालतों के सभी नियम न्याय के उचित प्रशासन को सुरक्षित करने के इरादे से प्रावधानों के अलावा कुछ भी नहीं हैं और इसलिए, यह आवश्यक है कि उन्हें उस उद्देश्य की सेवा करने और अधीनस्थ होने के लिए बनाया जाना चाहिए, ताकि पुनरीक्षण की पूर्ण शक्तियों का आनंद लिया जाना चाहिए और हमेशा उदारतापूर्वक प्रयोग किया जाना चाहिए, लेकिन फिर भी कार्रवाई के एक अलग कारण को दूसरे के लिए प्रतिस्थापित करने में सक्षम बनाने के लिए अभी तक कोई शक्ति नहीं दी गई है, न ही पुनरीक्षण के माध्यम से, वाद की विषय-वस्तु को बदलने के लिए। (रेखांकित)

20. यह समान रूप से अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांत है कि वाद के पुनरीक्षण के लिए प्रार्थना और लिखित बयान के पुनरीक्षण के लिए प्रार्थना अलग-अलग पायदान पर खड़ी होती है। सामान्य सिद्धांत कि अभिवचनों के पुनरीक्षण की अनुमति नहीं दी जा सकती है ताकि कार्रवाई के कारण या दावे की प्रकृति को भौतिक रूप से बदल दिया जा सके या प्रतिस्थापित किया जा सके, वाद में पुनरीक्षण पर लागू होता है। लिखित वक्तव्य के पुनरीक्षण से संबंधित सिद्धांतों में इसका कोई समकक्ष नहीं है। इसलिए, बचाव के एक नए आधार को जोड़ना या बचाव को प्रतिस्थापित करना या बदलना या लिखित बयान में असंगत दलीलें लेना आपत्तिजनक नहीं होगा, जबकि वाद में कार्रवाई के एक नए कारण को जोड़ना, बदलना या प्रतिस्थापित करना आपत्तिजनक हो सकता है।

21. इस तरह के स्थापित कानून होने के नाते, हमें यह मानना चाहिए कि एक लिखित बयान के पुनरीक्षण के मामले में, अदालतें एक वाद की तुलना में पुनरीक्षण की अनुमति देने में अधिक उदार हैं क्योंकि पूर्वाग्रह का प्रश्न बाद के मामले की तुलना में पूर्व में बहुत कम होगा [देखें बी.के नारायण पिल्लई बनाम परमेश्वरन पिल्लई (2000 (1) एस.सी.सी. 712) और बलदेव सिंह और अन्य बनाम मनोहर सिंह (2006 (6) एस.सी.सी. 498)]। यहां तक कि मोदी स्पिनिंग (उपरोक्त) में वादी द्वारा भरोसा किया गया निर्णय स्पष्ट रूप से मानता है कि दलीलों में असंगत दलीलें ली जा सकती हैं। इस संदर्भ में, हम बसवन जग्गू धोबी बनाम सुखनंदन रामदास चौधरी (मृत) [1995 सप्प (3) एस.सी.सी. 179] में इस न्यायालय के निर्णय का भी उल्लेख कर सकते हैं। उस मामले में, प्रतिपक्षी ने शुरू में यह रुख अपनाया था कि वह दूसरों के साथ एक संयुक्त

अनुवादित

किरायेदार था। इसके बाद, उन्होंने प्रस्तुत किया कि वह मौद्रिक विचार के लिए लाइसेंसधारी थे, जिन्हें बॉम्बे रेंट, होटल और लॉजिंग हाउस रेट कंट्रोल एक्ट, 1947 की धारा 15 ए के प्रावधानों के अनुसार किरायेदार माना गया था। इस न्यायालय ने माना कि प्रतिपक्षी वैध रूप से इस तरह के असंगत बचाव को ले सकता था। लिखित बयान में पुनरीक्षण की अनुमति देते हुए, इस न्यायालय ने बसवन जग्गू धोबी के मामले (उपरोक्त) में निम्नानुसार देखा:-

"जहां तक पहले विवाद का संबंध है, हमें डर है कि निचली अदालतें यह मानने में गलत हो गई हैं कि प्रतिपक्षी के लिए आदेश 6 नियम 17 सी.पी.सी. के तहत अपने बयान में पुनरीक्षण करने के लिए खुला नहीं है, जो मूल रूप से लिखित बयान में कहा गया था। यह एक प्रतिपक्षी के लिए खुले कानून के विपरीत स्टैंड या विरोधाभासी स्टैंड लेने के लिए विकल्प खुला है, कार्रवाई का कारण किसी भी तरह से प्रभावित नहीं होता है। यह केवल वाद में पुनरीक्षण के मामले पर लागू होगा ताकि कार्रवाई का एक नया कारण पेश किया जा सके।

22. जैसा कि हमने पहले ही उल्लेख किया है कि लिखित बयान के पुनरीक्षण की अनुमति देने में एक उदार दृष्टिकोण एक सामान्य दृष्टिकोण है जब पुनरीक्षण की अनुमति देने की स्थिति में दूसरे पक्ष को पैसे में मुआवजा दिया जा सकता है। कानून की तकनीकी को पक्षों के बीच न्याय के प्रशासन में न्यायालयों को बाधित करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। एल.जे लीच एंड कंपनी लिमिटेड बनाम जार्डिन स्किनर एंड कंपनी [ए.आई.आर. 1957 एस.सी. 357] के मामले में, इस न्यायालय ने कहा कि "न्यायालय लिखित बयान में पुनरीक्षण की अनुमति देने में अधिक उदार हैं क्योंकि पूर्वाग्रह का सवाल उस घटना में संचालित होने की संभावना कम है"। उस मामले में इस न्यायालय ने यह भी कहा कि "प्रतिपक्षी को बचाव में वैकल्पिक याचिका लेने का अधिकार है, जो हालांकि, एक अपवाद के अधीन है कि प्रस्तावित पुनरीक्षण द्वारा दूसरे पक्ष को गंभीर अन्याय के अधीन नहीं किया जाना चाहिए।

23. इन सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, अर्थात्, कि एक लिखित बयान के पुनरीक्षण के मामले में न्यायालय एक वाद की तुलना में अनुमति देने में अधिक उदार होंगे क्योंकि पूर्वाग्रह का प्रश्न बाद की तुलना में पूर्व में बहुत कम होगा और बचाव के एक नए आधार को जोड़ने या बचाव को बदलने या बदलने या लिखित बयान में असंगत दलीलें लेने की भी अनुमति दी जा सकती है, अब हम इस बात पर विचार करने के लिए आगे बढ़ सकते हैं कि क्या उच्च न्यायालय द्वारा लिखित बयान में पुनरीक्षण के लिए आवेदन को खारिज करना उचित था। .....

32. पूर्वोक्त कारणों के लिए, अपील की अनुमति दी जाती है और लिखित बयान के पुनरीक्षण के लिए प्रार्थना को खारिज करने वाले उच्च न्यायालय के आदेश को रद्द किया जाता है। इस प्रकार लिखित बयान में पुनरीक्षण के लिए आवेदन की अनुमति दी जाती है। विचारण न्यायालय को अब निर्देश दिया जाता है कि वह जल्द से जल्द मुकदमे का निपटारा करे, अधिमानतः इस आदेश के संचार की तारीख से छह महीने के भीतर,

अनुवादित

किसी भी पक्ष को कोई अनावश्यक स्थगन दिए बिना।

13. पूर्वोक्त निर्णय के अवलोकन से, इसमें कोई संदेह नहीं है कि न्यायालय का दृढ़ मत है कि लिखित बयान में पुनरीक्षण के लिए पुनरीक्षण आवेदन पर निर्णय करते समय, न्यायालय को कुछ उदार दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। यहां तक कि असंगत दृष्टिकोण या वैकल्पिक याचिका के मामले में, इसकी अनुमति दी जानी चाहिए थी, लेकिन उक्त निर्णय में, किसी भी समय, न्यायालय की कोई राय नहीं है कि लिखित बयान में पुनरीक्षण के लिए आदेश VI नियम 17 सी.पी.सी. के तहत आवेदन पर निर्णय लेते समय उचित परिश्रम के प्रावधान पर विचार नहीं किया जाएगा। प्रस्तुत मामले में, अधिवक्ता के परिवर्तन को छोड़कर उचित परिश्रम के बारे में कोई स्पष्टीकरण नहीं है।

14. मैंने हरिशंकर (उपरोक्त) में पारित निर्णय का भी अवलोकन किया है, जिसमें न्यायालय ने 'उचित परिश्रम' की अवधारणा के बारे में विचार किया है। उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किए गए हैं:-

"9. मोदी स्पिनिंग एंड वीविंग मिल्स कंपनी लिमिटेड बनाम लधा राम, ए.आई.आर. 1977 एस.सी. 680 में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि प्रतिवादियों को लिखित बयान के पैरा-25 और 26 में किए गए मामले को पूरी तरह से बदलने और पूरी तरह से अलग और नए मामले को प्रतिस्थापित करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। यह सच है कि दलीलों में असंगत दलीलें दी जा सकती हैं, लेकिन पैरा-25 और 26 के प्रतिस्थापन का प्रभाव असंगत और वैकल्पिक दलीलें नहीं बनाता है, लेकिन यह लिखित बयान में प्रतिवादियों द्वारा किए गए प्रवेश से वादी को पूरी तरह से विस्थापित करने की मांग कर रहा है। यदि इस तरह के पुनिरक्षणों की अनुमति दी जाती है, तो वादी प्रतिवादियों से प्रवेश निकालने के अवसर से वंचित होने से अपरिवर्तनीय रूप से पूर्वाग्रहित हो जाएगा। हीरा लाल बनाम कल्याण मल, (1998)1 एस.सी.सी. 278, गौतम स्वरूप बनाम लीला जेटली, (2008)7 एस.सी.सी. 85, सुमेश सिंह बनाम फूलन देवी, (2009)12 एस.सी.सी. 689 और विश्वनाथ अग्रवाल बनाम सावित्री बेरा, (2009) 15 एस.सी.सी. 693 में भी यही दृष्टिकोण अपनाया गया है।

बी.के नारायण पिल्लई बनाम परमेश्वरन पिल्लई, (2000)1 एस.सी.सी. 712 में, उच्चतम न्यायालय ने माना कि वाद के पुनिरक्षणों पर लागू सिद्धांत लिखित बयानों के पुनिरक्षणों पर समान रूप से लागू होते हैं। लिखित बयान के पुनरीक्षण की अनुमति देने में अदालतें अधिक उदार हैं क्योंकि उस घटना में पूर्वाग्रह का सवाल कम होने की संभावना है। प्रतिपक्षी को बचाव में वैकल्पिक दलील लेने का अधिकार है, हालांकि, एक अपवाद के अधीन है कि प्रस्तावित पुनरीक्षण द्वारा दूसरे पक्ष को अन्याय के अधीन नहीं किया जाना चाहिए और वादी के पक्ष में किया गया कोई भी प्रवेश वापस नहीं लिया जाता है। अभिवचनों के सभी पुनिरक्षणों की अनुमति दी जानी चाहिए जो वाद में वास्तविक विवादों के निर्धारण के लिए आवश्यक हैं, बशर्ते कि प्रस्तावित पुनरीक्षण कार्रवाई के एक नए कारण को बदला या प्रतिस्थापित नहीं करता है जिसके आधार पर मूल विवाद उठाया गया था या बचाव लिया गया था। तथ्यों की स्वीकृत स्थिति के प्रति

अनुवादित

असंगत और विरोधाभासी आरोपों या तथ्यों के पारस्परिक रूप से विनाशकारी आरोपों को दलीलों में पुनरीक्षण के माध्यम से शामिल करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। प्रस्तावित पुनरीक्षण से दूसरे पक्ष को ऐसा पूर्वाग्रह नहीं होना चाहिए जिसकी क्षतिपूर्ति लागत से नहीं की जा सकती। किसी भी पुनरीक्षण की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए जो समय की कमी के कारण प्रतिपक्षी को प्राप्त होने वाले कानूनी अधिकार को पराजित करने में (इस प्रकार के परिणाम) के बराबर या संबंधित हो। दलीलों में पुनरीक्षण के लिए याचिका दायर करने में देरी की उचित रूप से लागत और त्रुटि या गलती से मुआवजा दिया जाना चाहिए, जो यदि धोखाधड़ी नहीं है, तो वाद या लिखित बयान के पुनरीक्षण के लिए आवेदन को अस्वीकार करने का आधार नहीं बनाया जाना चाहिए।

इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय की आधिकारिक घोषणाओं के मद्देनजर, याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए विधि निर्णय का पालन नहीं किया जा सकता है।

11. अब अगला प्रश्न यह उठता है कि क्या प्रस्तावित पुनरीक्षण को आदेश VI नियम 17 सी.पी.सी. प्रतिपक्षी ने आरोप लगाया कि प्रस्तावित पुनरीक्षण से संबंधित तथ्य 03.08.2014 को अंतिम बहस के लिए अपील की तैयारी के समय देखा गया था।

12. सलेम एडवोकेट बार एसोसिएशन में उच्चतम न्यायालय (II) बनाम भारत संघ, (2005)6 एस.सी.सी. 344 ने माना कि संहिता का आदेश VI नियम 17 अभिवचनों के पुनरीक्षण से संबंधित है। पुनरीक्षण अधिनियम 46 वर्ष 1999 द्वारा इस प्रावधान को हटा दिया गया था। इसे पुनरीक्षण अधिनियम 22 वर्ष 2002 द्वारा फिर से बहाल किया गया है, लेकिन परीक्षण शुरू होने के बाद पुनरीक्षण के लिए आवेदन की अनुमति देने से रोकने के लिए एक अतिरिक्त परंतुक के साथ, जब तक कि अदालत इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचती है कि उचित परिश्रम के बावजूद, पक्ष मुकदमे के शुरू होने से पहले मामले को नहीं उठा सकता था। यह परंतुक कुछ हद तक किसी भी स्तर पर पुनरीक्षण की अनुमति देने के पूर्ण विवेकाधिकार को कम करता है। अब, यदि मुकदमा शुरू होने के बाद आवेदन दायर किया जाता है, तो यह दिखाना होगा कि उचित परिश्रम के बावजूद, इस तरह के पुनरीक्षण की मांग पहले नहीं की जा सकती थी। इसका उद्देश्य मुकदमे में देरी के लिए दायर किए गए तुच्छ आवेदनों को रोकना है। इस उपबंध में कोई अवैधता नहीं है।

13. वाक्यांश "उचित परिश्रम" चंदर कांत बंसल बनाम राजिंदर सिंह आनंद, ए.आई.आर. 2008 एस.सी. 2234 में उच्चतम न्यायालय के समक्ष विचार के लिए आया था, जिसमें यह माना गया है कि "उचित परिश्रम" शब्द संहिता में परिभाषित नहीं किए गए हैं। ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी (एड. 2006) के अनुसार, "परिश्रम" शब्द का अर्थ है सावधानीपूर्वक और लगातार आवेदन या प्रयास। "मेहनती" का अर्थ है अपने काम और कर्तव्यों के लिए आवेदन में सावधान और स्थिर, देखभाल और प्रयास दिखाना। ब्लैक लॉ डिक्शनरी (18 वें संस्करण) के अनुसार, "परिश्रम" का अर्थ है कुछ पूरा करने के लिए निरंतर प्रयास, देखभाल; सावधानी; किसी दी गई स्थिति में किसी व्यक्ति से आवश्यक ध्यान और देखभाल। "उचित परिश्रम" का अर्थ

अनुवादित

है परिश्रम यथोचित रूप से अपेक्षित है, और आमतौर पर एक ऐसे व्यक्ति द्वारा प्रयोग किया जाता है जो कानूनी आवश्यकता को पूरा करना चाहता है या किसी दायित्व का निर्वहन करना चाहता है। ड्रेन-डिस्पेनिया (स्थायी एड. 13-ए) द्वारा शब्दों और वाक्यांशों के अनुसार "उचित परिश्रम", कानून में, सब कुछ उचित करने का मतलब है, सब कुछ संभव नहीं है। "उचित परिश्रम" का अर्थ है उचित परिश्रम; इसका अर्थ है कि एक विवेकपूर्ण व्यक्ति अपने स्वयं के मामलों के संचालन में इस तरह के परिश्रम का प्रयोग करेगा।

14. उच्चतम न्यायालय ने फिर से जे. सैमुअल बनाम गट्टू महेश, (2012)2 एस.सी.सी.300 में कहा कि उचित परिश्रम यह विचार है कि कुछ प्रकार की राहत का अनुरोध करने से पहले उचित जांच आवश्यक है। प्रत्याशित राहत प्राप्त करने के लिए न्यायिक तंत्र का उपयोग करने की मांग करने वाली पार्टी के लिए विधिवत मेहनती प्रयास एक आवश्यकता है। किसी का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता को यह निर्धारित करने के लिए उचित परिश्रम में संलग्न होना चाहिए कि किए गए अभ्यावेदन तथ्यात्मक रूप से सटीक और पर्याप्त हैं। शब्द "उचित परिश्रम" का उपयोग विशेष रूप से संहिता में किया जाता है ताकि यह निर्धारित करने के लिए एक परीक्षण प्रदान किया जा सके कि परीक्षण शुरू होने के बाद अनुरोधित पुनरीक्षण की स्थितियों में विवेक का प्रयोग करना है या नहीं। एक दावे से उपजी राहत का अनुरोध करने वाली पार्टी को उचित परिश्रम करने की आवश्यकता होती है और यह एक आवश्यकता है जिसे दूर नहीं किया जा सकता है। शब्द "उचित परिश्रम" एक पार्टी के रचनात्मक ज्ञान के दायरे को निर्धारित करता है, दावा और वाद के परिणाम के लिए बहुत महत्वपूर्ण है. दिए गए तथ्यों में, "उचित परिश्रम" की स्पष्ट कमी है और की गई गलती निश्चित रूप से टंकण त्रुटि के पूर्वावलोकन में नहीं आती है। इसी तरह का दृष्टिकोण विद्याबाई बनाम पद्मा लता, (2009) 2 एस.सी.सी. 409, सुशील कुमार जैन बनाम मनोज कुमार, (2009) 14 एस.सी.सी. 38 और अब्दुल रहमान बनाम मोहम्मद अली खान रुल्दू, (2012) 11 एस.सी.सी. 341 में व्यक्त किया गया है।

15. लिखित बयान का मसौदा एक अधिवक्ता ने वाद पढ़ने के बाद तैयार किया था। कानूनी सलाह के बाद, यह नहीं कहा जा सकता है कि "उचित परिश्रम" के प्रयोग में पुनरीक्षण के माध्यम से दलील में लाया जाने वाला तथ्य प्रतिपक्षी के ज्ञान में नहीं था। उचित परिश्रम और लापरवाही के बीच अंतर करना होगा। प्रतिवादियों का मामला 'लापरवाही' की श्रेणी में आता है न कि 'उचित परिश्रम' की। विचारण न्यायालय ने पुनरीक्षण आवेदन को सही तरीके से खारिज कर दिया, क्योंकि आदेश VI नियम 17 सी.पी.सी. के परंतुक के रूप में, अब पुनरीक्षण आवेदन की अनुमति देने में न्यायालय की शक्ति पर एक राइडर है। ”

15. इस मुद्दे पर इस न्यायालय द्वारा सागवा सिंह त्यागी (उपरोक्त) में फिर से विचार किया गया था। उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किए गए हैं: -

"13. जे. सैमुअल और अन्य बनाम गट्टू महेश और अन्य: (2012)2 एस.सी.सी.300 में, न्यायालय ने कहा कि, नियम 17, आदेश 6 सी.पी.सी. के प्रावधान की उचित व्याख्या पर,

अनुवादित

पार्टी को न्यायालय को संतुष्ट करना होगा कि वह उस आधार की खोज नहीं कर सका जो उचित परिश्रम के बावजूद वाद के प्रस्तावित पुनरीक्षण द्वारा दलील दी गई थी। इसमें कोई संदेह नहीं है, नियम 17 न्यायालय को कार्यवाही के किसी भी चरण में दलील में पुनरीक्षण करने की शक्ति प्रदान करता है। हालांकि, परंतुक उस शक्ति को प्रतिबंधित करता है, एक बार परीक्षण शुरू हो जाने के बाद। जब तक न्यायालय संतुष्ट नहीं होता है कि पुनरीक्षण की अनुमति देने के लिए एक उचित कारण है, आम तौर पर न्यायालय को ऐसे अनुरोधों को अस्वीकार करना पड़ता है। इस तरह के प्रतिबंध के पीछे उचित परिश्रम का विचार है, अर्थात, कुछ प्रकार की राहत का अनुरोध करने से पहले एक उचित जांच आवश्यक है। निस्संदेह, निर्विवाद राहत प्राप्त करने के लिए न्यायिक तंत्र का उपयोग करने की मांग करने वाले पक्ष के लिए मेहनती प्रयास एक आवश्यकता है। किसी का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता को यह निर्धारित करने के लिए उचित परिश्रम में खुद को संलग्न करना होगा कि उसके द्वारा किए गए अभ्यावेदन तथ्यात्मक रूप से सही और पर्याप्त हैं। उचित परिश्रम शब्द का उपयोग विशेष रूप से न्यायालय में किया जाता है ताकि यह निर्धारित करने के लिए एक परीक्षण प्रदान किया जा सके कि परीक्षण शुरू होने के बाद अनुरोधित पुनरीक्षण की स्थिति में भेद करना है या नहीं। एक दावे से उपजी राहत का अनुरोध करने वाली पार्टी को उचित परिश्रम करने की आवश्यकता होती है। यह एक ऐसी आवश्यकता है जिसे छोड़ा नहीं जा सकता। शब्द 'उचित परिश्रम' पक्षों के रचनात्मक ज्ञान के दायरे को निर्धारित करता है, और वाद के परिणाम के लिए महत्वपूर्ण है. न्यायालय ने यह भी कहा कि सी.पी.सी. के नियम 17 के आदेश 6 के परंतुक को शामिल करने से पहले दिए गए निर्णय सी.पी.सी. में इस तरह के पुनरीक्षण को शामिल करने के बाद पक्षकारों को मामलों का फैसला करने में मदद नहीं कर सकते हैं। आदेश 6, नियम 17 में पुनरीक्षण का पूरा उद्देश्य, जैसा कि वर्ष 2002 में पेश किया गया था, विचारण न्यायालय के शुरू होने के बाद, एक दलील के पुनरीक्षण के लिए आवेदन दाखिल करने से रोकना है, ताकि आश्चर्य से बचा जा सके और पक्षों को दूसरे के मामले का पर्याप्त ज्ञान था। यह आवेदन दाखिल करने में देरी की जांच करने में भी मदद करता है। पूर्वोक्त अवलोकन करने में न्यायालय ने अपने पहले के फैसलों पर भरोसा किया Aniglase Yohannan बनाम रामलता और अन्य: (2005)7 एस.सी.सी. 534; चंदर कांत बंसल बनाम राजिंदर सिंह आनंद: (2008)5 एस.सी.सी. 117; राजकुमार गुरवारा (मृत) एल.आर बनाम एस.के सरवागी एंड कंपनी प्राइवेट लिमिटेड और अन्य: (2008) 14 एस.सी.सी. 364; विद्याबाई और अन्य बनाम पद्मलता और अन्य: (2009) 2 एस.सी.सी. 409; और मान कौर (मृत) एल.आर बनाम हरतार सिंह संघ, (2010) 10 एस.सी.सी. 512 द्वारा निर्धारित।

14. मैंने ऊपर जो दृष्टिकोण लिया है, उसे इस न्यायालय द्वारा सूरज प्रकाश बनाम वक्फ खुदाबंद ताला मौसमा, 2012 (11) एडीजे 524 और सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या-61790 वर्ष 2012 (शांति स्वरूप बनाम श्रीमती रमा

अनुवादित

शर्मा) में भी दोहराया गया है, जिसका फैसला 29.11.2012 को हुआ था।

15. प्रस्तुत मामले में, विचारण शुरू होने के बाद पुनरीक्षण की मांग की गई है, अदालत को संतुष्ट किए बिना कि विचारण शुरू होने से पहले इस तरह के तथ्यों का दावा क्यों नहीं किया जा सकता है जब विचारण न्यायालय के समक्ष प्रारंभिक दलील दायर की गई थी। वस्तुतः इस पहलू पर कोई कथन नहीं है। यह नहीं कहा जा सकता है कि आदेश-6, नियम-17 सी.पी.सी. के परंतुक द्वारा लगाए गए राइडर को हटाने के लिए एक उचित औचित्य बताया गया है। इसलिए, मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि निचली अदालतों ने याचिकाकर्ता द्वारा मांगे गए पुनरीक्षण को सही तरीके से खारिज कर दिया है। संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप को उचित ठहराने के लिए निचली अदालत द्वारा कोई कानूनी या अन्यथा त्रुटि नहीं कही जा सकती है।

16. यह मुद्दा हरि नारायण (उपरोक्त) में भी इस न्यायालय का विषय था। प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किए गए हैं: -

"3. पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता का तर्क यह है कि आदेश VI नियम 17 के तहत अदालत कार्यवाही के किसी भी चरण में दलीलों के पुनरीक्षण की अनुमति दे सकती है ताकि पक्षों के बीच विवाद में वास्तविक प्रश्न का निर्धारण किया जा सके, और विचारण न्यायालय ने इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए किसी भी निष्कर्ष को रिकॉर्ड किए बिना पुनरीक्षण आवेदन को खारिज कर दिया है कि उचित परिश्रम के बावजूद प्रतिपक्षी प्रारंभ होने से पहले पुनरीक्षण की मांग नहीं कर सकता था परीक्षण का।

7. आदेश VI के तहत नियम 17 का परंतुक, जैसा कि सिविल प्रक्रिया संहिता (पुनरीक्षण) अधिनियम, 2002 द्वारा डाला गया है, हालांकि, अदालत की शक्ति को प्रतिबंधित और कम करता है कि यह अधिनियमित करके दलीलों में पुनरीक्षण की अनुमति दी जाए कि पुनरीक्षण के लिए कोई आवेदन परीक्षण शुरू होने के बाद अनुमति नहीं दी जाएगी जब तक कि अदालत इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचती है कि उचित परिश्रम के बावजूद, पक्ष सुनवाई शुरू होने से पहले इस मामले को नहीं उठा सकता था।

8. पुनरीक्षण अधिनियम, 2002 के अनुसार, नियम 17 के प्रावधान ने "उचित परिश्रम" परीक्षण पेश किया है, जिसके लिए आवश्यक है कि अदालत को संतुष्ट होना चाहिए कि "उचित परिश्रम" के बावजूद पार्टी पुनरीक्षण में दलील दी गई जमीन की खोज नहीं कर सकी। शब्द "उचित परिश्रम" का उपयोग विशेष रूप से किया गया है ताकि यह निर्धारित करने के लिए एक परीक्षण प्रदान किया जा सके कि क्या उन स्थितियों में विवेक का प्रयोग करना है जहां परीक्षण शुरू होने के बाद पुनरीक्षण की मांग की जा रही है।

9. वर्ष 2002 में पेश किए गए आदेश VI नियम 17 परंतुक के तहत निहित प्रावधान जे सैमुअल बनाम गट्टू महेश और अन्य 2 के मामले में विचार के लिए आए, जिसमें आदेश VI नियम 17 के तहत पुनरीक्षण की अनुमति देने से संबंधित सिद्धांतों को दोहराया गया था और प्रावधान का उद्देश्य और पुनरीक्षण की मांग करने वाले पक्षों के "उचित परिश्रम" का अर्थ और महत्व भी बताया गया है। इस संबंध में निर्णय में की गई टिप्पणियां इस प्रकार हैं:-

अनुवादित

"18. अदालत का प्राथमिक उद्देश्य मामले को उसके गुणों के आधार पर आज़माना है और यह सुनिश्चित करना है कि न्याय का शासन प्रबल हो। इसके लिए आवश्यकता इस बात की है कि मामले के सही तथ्यों को अदालत के समक्ष रखा जाए ताकि अदालत के पास अपने फैसले पर आने वाली सभी प्रासंगिक सूचनाओं तक पहुंच हो। इसलिए, कई बार पक्षों को अपने वादों में पुनरीक्षण करने की अनुमति देना आवश्यक होता है। किसी पक्ष को अपनी दलील में पुनरीक्षण करने की अनुमति देने के लिए अदालत का विवेकाधिकार दो शर्तों पर निहित है, पहला, दूसरे पक्ष के साथ कोई अन्याय नहीं किया जाना चाहिए और दूसरा, पक्षों के बीच विवाद में वास्तविक प्रश्न का निर्धारण करने के उद्देश्य से पुनरीक्षण आवश्यक होना चाहिए। हालांकि, न्याय करने की खोज में पक्षों के हितों को संतुलित करने के लिए, प्रावधान जोड़ा गया है जो स्पष्ट रूप से बताता है कि:

"... परीक्षण शुरू होने के बाद पुनरीक्षण के लिए किसी भी आवेदन की अनुमति नहीं दी जाएगी, जब तक कि अदालत इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचती है कि उचित परिश्रम के बावजूद, पक्ष परीक्षण शुरू होने से पहले मामला नहीं उठा सकता था।

19. उचित परिश्रम विचार है कि उचित जांच, राहत के कुछ प्रकार का अनुरोध कर रहे हैं, से पहले आवश्यक है। प्रत्याशित राहत प्राप्त करने के लिए न्यायिक तंत्र का उपयोग करने की मांग करने वाली पार्टी के लिए विधिवत मेहनती प्रयास एक आवश्यकता है। किसी का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता को यह निर्धारित करने के लिए उचित परिश्रम में संलग्न होना चाहिए कि किए गए अभ्यावेदन तथ्यात्मक रूप से सटीक और पर्याप्त हैं। शब्द "उचित परिश्रम" का उपयोग विशेष रूप से संहिता में किया जाता है ताकि यह निर्धारित करने के लिए एक परीक्षण प्रदान किया जा सके कि परीक्षण शुरू होने के बाद अनुरोधित पुनरीक्षण की स्थितियों में विवेक का प्रयोग करना है या नहीं।

20. एक पार्टी एक दावे से बाहर उपजी राहत का अनुरोध उचित परिश्रम व्यायाम करने के लिए आवश्यक है और यह एक आवश्यकता है जो के साथ तिरस्कृत नहीं किया जा सकता है. शब्द "उचित परिश्रम" एक पार्टी के रचनात्मक ज्ञान के दायरे को निर्धारित करता है, दावा और वाद के परिणाम के लिए बहुत महत्वपूर्ण है.

---

23. ... आदेश VI नियम में पुनरीक्षण का पूरा उद्देश्य 17 में पेश किया गया 2002 परीक्षण के शुरू होने के बाद एक दलील में पुनरीक्षण के लिए आवेदन दाखिल करने से रोकना है, आश्चर्य से बचने के लिए और पक्षों को दूसरे के मामले का पर्याप्त ज्ञान था. यह आवेदन दाखिल करने में देरी की जांच करने में भी मदद करता है। [Aniglase Yohannan बनाम राम लता [(2005)7 एस.सी.सी. 534], राजेन्द्र प्रसाद जी एन पांडे बनाम सामी केशव प्रसाद जी [(2006) 12 एस.सी.सी.], चंदर कांता बंसल बनाम राजिंदर सिंह आनंद [(2008)5 एस.सी.सी.117], राजकुमार गुरवारा स्ववगी एंड कंपनी (P) लि [(2008)14 एस.सी.सी. 364], विद्या बी बनाम पदमलता [(2009)2 एस.सी.सी. 409: (2009)1 एस.सी.सी. (Civ) 563] और मान कौर बनाम हरतार सिंह संघा

अनुवादित

[(2010) 10 एस.सी.सी. 512: (2010)4 एस.सी.सी. (सीआईवी) 239]

10. रेवाजीतू बिल्डर्स एंड डेवलपर्स बनाम नारायणस्वामी एंड संस और अन्य के मामले में निर्णय का भी संदर्भ लिया जा सकता है, जिसमें आदेश VI नियम 17 के तहत दायर आवेदन से निपटने के दौरान कुछ महत्वपूर्ण कारकों को ध्यान में रखा जा सकता है, जिन्हें निम्नलिखित शब्दों में गिनाया गया है: -

"63. अंग्रेजी और भारतीय दोनों मामलों का गंभीर विश्लेषण करने पर, कुछ बुनियादी सिद्धांत सामने आते हैं जिन्हें पुनरीक्षण के लिए आवेदन को अनुमति देने या अस्वीकार करते समय ध्यान में रखा जाना चाहिए:

(1) क्या मामले के समुचित और प्रभावी न्यायनिर्णयन के लिए मांगा गया पुनरीक्षण अनिवार्य है;

(2) क्या पुनरीक्षण के लिए आवेदन सदाशयी है या दुर्भावनापूर्ण;

(3) पुनरीक्षण से दूसरे पक्ष को ऐसा पूर्वाग्रह नहीं होना चाहिए जिसकी भरपाई धन के रूप में पर्याप्त रूप से नहीं की जा सकती है;

(4) पुनरीक्षण से इनकार करने से वास्तव में अन्याय होगा या कई मुकदमेबाजी होगी;

(5) क्या प्रस्तावित पुनरीक्षण संवैधानिक या मौलिक रूप से मामले की प्रकृति और चरित्र को बदल देता है; और

(6) एक सामान्य नियम के रूप में, न्यायालय को पुनिरक्षणों को अस्वीकार कर देना चाहिए यदि संशोधित दावों पर एक नया मुकदमा आवेदन की तारीख पर सीमा द्वारा वर्जित होगा।

ये कुछ महत्वपूर्ण कारक हैं जिन्हें आदेश 6 नियम 17 के तहत दायर आवेदन से निपटने के दौरान ध्यान में रखा जा सकता है। ये केवल दृष्टांत हैं और संपूर्ण नहीं हैं।

64. आदेश 6 नियम 17 के तहत किए गए आवेदन पर निर्णय एक बहुत ही गंभीर न्यायिक प्रक्रिया है और उक्त प्रक्रिया को कभी भी आकस्मिक तरीके से नहीं किया जाना चाहिए। हम यह देखते हुए अपनी चर्चा समाप्त कर सकते हैं कि पुनिरक्षणों के लिए आवेदनों पर निर्णय लेते समय अदालतों को वास्तविक, वैध, ईमानदार और आवश्यक पुनिरक्षणों से इनकार नहीं करना चाहिए और कभी भी दुर्भावनापूर्ण, बेकार और/या बेईमान पुनिरक्षणों की अनुमति नहीं देनी चाहिए।

11. एम. रावन्ना बनाम अंजनाम्मा के मामले में हाल के एक फैसले में, यह माना गया है कि परीक्षण शुरू होने के बाद परंतुक में बताई गई शर्तों को छोड़कर दलीलों में पुनरीक्षण की अनुमति नहीं है और बोझ परीक्षण शुरू होने के बाद पुनरीक्षण की मांग करने वाले व्यक्ति पर है कि वह अपनी ओर से "उचित परिश्रम" दिखाए, जैसा कि परंतुक के तहत विचार किया गया है। निर्णय में प्रासंगिक टिप्पणियां इस प्रकार हैं: -

"7. पुनरीक्षण की अनुमति से इनकार किया जा सकता है यदि यह पूरी तरह से अलग, नया और असंगत मामला पेश करता है, या वाद के मौलिक चरित्र को चुनौती देता है। सी.पी.सी. के आदेश 6 नियम 17 का प्रावधान वस्तुतः मुकदमे के शुरू होने के बाद दलीलों में पुनरीक्षण के लिए एक आवेदन को अनुमति देने से रोकता है, जब तक कि अदालत इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचती है कि उचित परिश्रम के बावजूद, पक्ष मुकदमे के शुरू होने से पहले मामला नहीं उठा सकता था। परंतुक किसी भी

अनुवादित

स्तर पर पुनरीक्षण की अनुमति देने के लिए एक सीमा तक पूर्ण विवेकाधिकार को कम करता है। इसलिए, भार उस व्यक्ति पर है जो विचारण शुरू होने के बाद यह दर्शाने के लिए पुनरीक्षण चाहता है कि सम्यक तत्परता के बावजूद ऐसा पुनरीक्षण पहले नहीं किया जा सकता था। इस बात पर कोई विवाद नहीं हो सकता है कि पुनरीक्षण को अधिकार के रूप में और सभी परिस्थितियों में दावा नहीं किया जा सकता है। हालांकि आम तौर पर मुकदमेबाजी की बहुलता से बचने के लिए दलीलों में पुनरीक्षण की अनुमति दी जाती है, अदालत को यह ध्यान में रखने की आवश्यकता है कि क्या पुनरीक्षण के लिए आवेदन प्रामाणिक या दुर्भावनापूर्ण है और क्या पुनरीक्षण दूसरे पक्ष के लिए इस तरह के पूर्वाग्रह का कारण बनता है जिसे धन के संदर्भ में पर्याप्त रूप से मुआवजा नहीं दिया जा सकता है।

12. इस मामले में, मामले के तथ्यों पर उचित विचार करने के बाद निचली अदालत इस निष्कर्ष पर पहुंची है कि जिस पुनरीक्षण की मांग की जा रही थी, वह पक्षों के बीच विवाद में वास्तविक प्रश्न का निर्धारण करने के लिए अनिवार्य नहीं था, और यह भी कि इसे आदेश VI नियम 17 सी.पी.सी. के प्रावधान द्वारा रोक दिया गया था जो परीक्षण शुरू होने के बाद अभिवचनों में पुनरीक्षण की अनुमति देने के विवेक को कम करता है, और "उचित परिश्रम" परीक्षण को इस संदर्भ में पेश करता है कि विचारण शुरू होने के बाद पुनरीक्षण की मांग करने वाले व्यक्ति पर बोझ यह दिखाने के लिए है कि "उचित परिश्रम" के बावजूद इस तरह के पुनरीक्षण को पहले नहीं मांगा जा सकता था, और इस तरह विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश को गलत नहीं ठहराया जा सकता है।"

17. रमेश दुग्गल उर्फ पप्पू (उपरोक्त) के मामले में इस मामले पर इस न्यायालय द्वारा फिर से विचार किया गया था। प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किया गया है;

"16. सी.पी.सी. के आदेश VI नियम 17 के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि पुनरीक्षण आवेदन को परीक्षण शुरू करने से पहले अनुमति दी जा सकती है, लेकिन मामले में, न्यायालय का विचार है कि उचित परिश्रम के बावजूद, पक्ष परीक्षण शुरू होने से पहले मामले को नहीं उठा सकता था, आवेदन की अनुमति दी जा सकती है। प्रस्तुत मामले में, न्यायालय की ओर से यह आवश्यक है कि वह याचिकाकर्ता-प्रतिपक्षी द्वारा ट्रस्ट विलेख के ज्ञान की तारीख के आधार पर पुनरीक्षण आवेदन दायर करने के लिए किए गए उचित परिश्रम के बारे में देखे और यदि अनुमति दी जाए तो मुकदमे के निर्णय और डिक्री पर पुनरीक्षण का प्रभाव भी दे।

.....

.....

20. यह मामला देरी का मामला नहीं है क्योंकि लिखित बयान दाखिल करने की तारीख से ट्रस्ट विलेख अच्छी तरह से अस्तित्व में था और याचिकाकर्ता-प्रतिपक्षी के प्रवेश के अनुसार भी, यह 07.12.2017 से उसकी जानकारी में है, लेकिन पुनरीक्षण आवेदन दायर नहीं किया गया। वास्तव में, यह एक ऐसा मामला है जहां सी.पी.सी. के आदेश VI नियम 17 के तहत प्रदान की गई उचित परिश्रम की शर्तों को पूरा नहीं किया गया है और बिना किसी औचित्य के, अंतिम निर्णय और आदेश दिनांक

अनुवादित

08.07.2022 के बाद पुनरीक्षण चरण में पुनरीक्षण आवेदन दायर किया गया है। इसलिए, याचिकाकर्ता-प्रतिपक्षी के अधिवक्ता द्वारा इस तरह से भरोसा किए गए निर्णय याचिकाकर्ता-प्रतिपक्षी के बचाव में नहीं आएंगे क्योंकि यह लापरवाही का मामला है न कि वास्तविक देरी का।

.....

.....

"23. प्रस्तुत मामले में शामिल विवाद हरिशंकर (उपरोक्त) और हरि नारायण (उपरोक्त) के निर्णयों से पूरी तरह से ढका हुआ है। इसलिए, मामले के सभी तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, इस न्यायालय का विचार है कि सी.पी.सी. के आदेश VI नियम 17 के तहत पुनरीक्षण आवेदन की अनुमति देते समय उचित परिश्रम एक बहुत ही महत्वपूर्ण कारक है और आवेदक को यह साबित करना होगा कि उसने सभी संभव प्रयास किए हैं, लेकिन उसके बाद भी, वह उन दस्तावेजों या तथ्यों के बारे में नहीं जान सका जो विवाद को तय करने के लिए सबसे अधिक प्रासंगिक हैं। यदि दस्तावेज या तथ्य उपलब्ध हैं या याचिकाकर्ता के ज्ञान में हैं, तो किसी भी स्तर पर, यदि कोई आवेदन दायर किया जाता है, तो उसे अनुमति नहीं दी जा सकती क्योंकि यह सी.पी.सी. के आदेश VI नियम 17 में प्रदान किए गए उचित परिश्रम के पैरामीटर को पूरा नहीं करेगा।

18. आदेश VI नियम 17 सी.पी.सी. के अवलोकन से, यह प्रकट रूप से स्पष्ट है कि वाद या लिखित बयान के लिए पुनरीक्षण आवेदन दाखिल करने के लिए कोई भेदभाव नहीं है और दोनों मामलों में उचित परिश्रम का प्रावधान बहुत लागू होता है पुनरीक्षण परीक्षण शुरू होने के बाद दायर किया जाता है। वास्तव में, यह लाभकारी कानून है जो पक्षकारों को कुछ प्रासंगिक तथ्यों को रिकॉर्ड पर लाने में सक्षम बनाता है, यदि यह मुकदमा शुरू होने के बाद भी वाद या लिखित बयान दायर करने के समय उपलब्ध नहीं था। इसलिए, उचित परिश्रम की एक शर्त भी बनाई गई है, जिसका अनुपालन करना होगा, अन्यथा कार्यवाही में देरी करने के लिए इस प्रावधान का दुरुपयोग किया जा सकता है। इसलिए, यह वाद और लिखित बयान के लिए समान रूप से लागू होगा।

19. जहां तक ऊपर उल्लिखित निर्णयों का संबंध है, वे भी समान विचार के हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि पुनरीक्षण आवेदन में उल्लिखित तथ्यों के बारे में, न्यायालय को लिखित बयान में पुनरीक्षण आवेदन पर विचार करते समय अधिक उदार होना चाहिए था, लेकिन साथ ही न्यायालय उचित परिश्रम के प्रावधान की अनदेखी नहीं कर सकता अन्यथा प्रावधान का दुरुपयोग होता। इसलिए, न्यायालय आदेश VI नियम 17 सी.पी.सी. के प्रावधान की व्याख्या करते समय सचेत थे और किसी भी पक्ष को उचित परिश्रम की शर्त से दूर जाने की स्वतंत्रता नहीं दी गई है। न्यायालयों ने स्पष्ट दृष्टिकोण अपनाया है कि या तो यह वाद या लिखित बयान में पुनरीक्षण का मामला है, आदेश VI नियम 17 सी.पी.सी. में प्रदान किए गए अनुसार उचित परिश्रम की आवश्यकता को पूरा करना आवश्यक है।

20. जहां तक प्रस्तुत मामले का संबंध है, इस बिंदु पर कोई विवाद नहीं है कि नए अधिवक्ता की नियुक्ति के अलावा, पुनरीक्षण आवेदन में कुछ भी नहीं कहा गया है, यहां तक कि

अवलोकित

ईमानदार प्रयासों के बाद भी, वे इस तथ्य की खोज नहीं कर सके, जिसे लिखित बयान में संशोधित किया जाना है। इसलिए, उचित परिश्रम की शर्त को संतुष्ट नहीं किया जा सका। कानून तय है कि अधिवक्ता का परिवर्तन पुनरीक्षण दाखिल करने का आधार नहीं हो सकता है। इसलिए, दिनांक 11.04.2023 के आक्षेपित आदेश में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

21. तदनुसार, याचिका में योग्यता का अभाव है और इसे खारिज किया जाता है। लागत के रूप में कोई आदेश नहीं।

(2023) 6 ILRA 315

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.09.2022

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

सिविल विविध रिकॉल आवेदन संख्या 2 / 2022 के

संबंध में

अनुच्छेद 227 संख्या 7723 / 2021 के अंतर्गत मामले

श्रीमती उर्मिला देवी वार्ष्णेय ...याचिकाकर्ता

बनाम

गरिमा वार्ष्णेय एवं अन्य ... प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री राकेश कुमार सिंह, श्री कृष्णजी खरे

प्रतिवादी के अधिवक्ता: श्री उत्कर्ष बिरला

(ए) भारत का संविधान - अनुच्छेद 227 - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश VII नियम II (बी) और (सी), न्यायालय शुल्क अधिनियम, 1870 - अनुसूची II की धारा 6ए (2), 7(iv-ए), 17(iii), धारा 6ए(1) - न्यायालय शुल्क का भुगतान करने के आदेश के विरुद्ध अपील - न्यायालय शुल्क में कमी को पूरा करने के लिए कहा गया कोई भी व्यक्ति ऐसे आदेश के विरुद्ध अपील कर सकता है जैसे कि वह सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 104 के अंतर्गत अपील योग्य आदेश हो। (पैरा -10)

अंतिम आदेश को वापस लेना - कम मूल्यांकन और देय उचित न्यायालय शुल्क के मुद्दे - अस्थायी निषेधाज्ञा मामले की सुनवाई में तेजी लाने की मांग करने वाली याचिका - अस्थायी निषेधाज्ञा आवेदन के निर्धारण को स्थगित करने की दलील - जारी होने तक अवमूल्यन और देय उचित न्यायालय शुल्क के मुद्दों पर निर्णय लिया गया है। (पैरा-11, 13)

निर्णय:- 1870 के अधिनियम की धारा 6ए के तहत देय उचित न्यायालय शुल्क के मुद्दों पर निर्णयों के खिलाफ अपील का उपाय उपलब्ध है। (पैरा-13)

वापस लेने का आवेदन खारिज कर दिया गया। (ई-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. अरुण कुमार तिवारी बनाम श्रीमती दीपा शर्मा एवं अन्य, 2006 एससीसी ऑनलाइन सभी 1979
2. अजय तिवारी बनाम हृदय राम तिवारी एवं अन्य, 2006 एससीसी ऑनलाइन सभी 701
3. प्रताप नारायण एवं अन्य बनाम सुधीर कुमार सिन्हा एवं अन्य, 2017 एससीसी ऑनलाइन सभी 3212

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा दिया गया)

अनुवादित

यह वापसी आवेदन श्रीमती गरिमा वार्ष्णेय, प्रतिवादी सं 1 की ओर से मामला अन्तर्गत अनुच्छेद 227 सं. 7723 वर्ष 2021 में मेरे अंतिम आदेश दिनांक 21.01.2022 को वापस लेने की मांग करते हुए किया गया है। उक्त आदेश द्वारा, मैंने सिविल जज (जूनियर डिवीजन), कासगंज को मूल वाद संख्या 92 वर्ष 2021, उर्मिला देवी वार्ष्णेय बनाम गरिमा वार्ष्णेय और अन्य, में लंबित अस्थायी निषेधाज्ञा आवेदन को, मुकदमे के सभी पक्षों को सुनने के बाद, निश्चित रूप से अगली तय की गई तारीख पर निर्णित करने का निर्देश दिया था। आगे यह आदेश दिया गया कि यदि किसी कारणवश अस्थायी निषेधाज्ञा आवेदन पर अगली तिथि पर निर्णय नहीं लिया जा सकता है, तो इसे अगले पंद्रह दिनों के भीतर निपटाया जाएगा।

2. चूंकि उक्त आदेश निजी प्रतिवादियों को नोटिस जारी किए बिना पारित किया गया था, जो कि इस न्यायालय द्वारा अंतर-पक्षीय रूप से कोई अधिकार तय नहीं किए जाने के कारण अपनाई गई कार्रवाई का एक तरीका था, इसलिए निजी प्रतिवादियों के लिए, जो उक्त आदेश से व्यथित महसूस कर सकते थे, निर्णित याचिका में आवेदन करने का विकल्प खुला छोड़ने को उचित समझा गया।

3. अब, दिए गए अवसर का लाभ उठाते हुए, संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत याचिका के प्रतिवादी सं 1 ने आदेश दिनांक 21.01.2022 को वापस लेने के लिए यह आवेदन किया है। आवेदक मुख्य रूप से इस आधार पर आदेश को वापस लेने की मांग करता है कि याचिकाकर्ता, जो मुकदमे का प्रतिवादी है, ने अन्य दलीलों के अलावा, मुकदमे के अत्यंत कम मूल्यांकित होने और न्यायालय शुल्क का अपर्याप्त भुगतान होने के बारे में आपत्ति जताई है। हालांकि, विचारण न्यायालय प्रारंभिक स्तर पर उक्त दलील पर ध्यान दिए बिना, वाद के साथ आगे बढ़ गया और उसने अभी तक कम मूल्यांकन या कम न्यायालय शुल्क के संबंध में कोई मुद्दा नहीं बनाया है। आवेदक की ओर से मुकदमे में दायर लिखित बयान की एक प्रति को वापसी आवेदन के संलग्नक सं 3 के रूप में संलग्न किया गया है।

4. यह आवेदक का मामला है कि उसने पेपर सं. 60 सी 2, दिनांक 23.02.2022 के रूप में इस प्रार्थना के साथ एक आवेदन पत्र प्रस्तुत किया था कि अस्थायी निषेधाज्ञा आवेदन पर सुनवाई और आदेशों से पहले, न्यायालय को आवेदक को वाद के अवमूल्यन और न्यायालय शुल्क की कमी के मुद्दों को संबोधित करने का अवसर प्रदान करना चाहिए। यह इंगित किया गया है कि अस्थायी निषेधाज्ञा मामले की सुनवाई में तेजी लाने हेतु 21.01.2022 को न्यायालय द्वारा पारित आदेश के कारण, आवेदक द्वारा किया गया यह आवेदन विद्वान सिविल जज (सीनियर डिविजन) कासगंज द्वारा दिनांक 11.03.2022 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया है।

5. इस आवेदन के समर्थन में विद्वान अधिवक्ता श्री उत्कर्ष बिड़ला द्वारा यह तर्क दिया गया है कि मूल्यांकन और न्यायालय शुल्क की पर्याप्तता के मुद्दे विचारण

अवधवादित

न्यायालय के अधिकार क्षेत्र और वाद की पोषणीयता को प्रभावित करते हैं। कार्रवाई का उचित तरीका पहले इन मुद्दों पर निर्णय लेना और फिर अंतरिम निषेधाज्ञा आवेदन और अन्य मामलों की सुनवाई करना है। अपने निवेदन के समर्थन में श्री बिड़ला ने **अरुण कुमार तिवारी बनाम श्रीमती दीपा शर्मा और अन्य** के मामले में इस न्यायालय की खंड पीठ के निर्णय का आश्रय लिया है। जिसका अनुसरण इस न्यायालय की एक अन्य खंडपीठ द्वारा **अजय तिवारी बनाम हृदय राम तिवारी और अन्य** के मामले में किया गया है।

6. **अरुण कुमार तिवारी** (उपरोक्त) में डिवीजन बेंच द्वारा यह निर्णय लिया गया था:-

11. इन बिंदुओं पर कोई अंतिम राय व्यक्त किए बिना, हमारा विचार है कि जब भी न्यायालय के क्षेत्राधिकार के साथ-साथ वाद के मूल्यांकन और न्यायालय शुल्क की पर्याप्तता या वाद की पोषणीयता को कोई गंभीर चुनौती दी जाती है, तो यदि उन दलीलों में प्रथम दृष्टया कुछ सार दिखाई देता है, तो न्यायालय के लिए उचित प्रक्रिया पहले इन मुद्दों पर निर्णय लेना और फिर निषेधाज्ञा आवेदन और अन्य मामलों पर निर्णय लेना है। यह न्यायालय फीस अधिनियम की धारा 6-क (2) के प्रावधानों की भावना को ध्यान में रखते हुए भी आवश्यक है जिसमें यह उपबंध किया गया है कि जहां यह पाया जाता है कि दिया गया न्यायालय शुल्क अपर्याप्त है, वहां यदि कमी को न्यायालय के आदेश के अनुसार पूरा नहीं किया जाता है, तो निषेधाज्ञा आदेश को समाप्त कर दिया जाएगा, भले ही उस आदेश के विरुद्ध अपील दायर की गई हो। विद्वान अपर सिविल जज ने आक्षेपित आदेश में कहा है कि निषेधाज्ञा की सुनवाई से पहले प्रारंभिक मुद्दों पर निर्णय नहीं लिया जा सकता क्योंकि अन्य प्रतिवादी अभी तक उपस्थित नहीं हुए थे। उनका उपरोक्त दृष्टिकोण उचित नहीं है। प्रत्येक प्रतिवादी को अन्य प्रतिवादियों के आने की प्रतीक्षा किए बिना प्रारंभिक चरण में प्रारंभिक बिंदुओं पर मुकदमे का निर्णय किये जाने का अधिकार है। वर्तमान वाद में केवल प्रतिवादी सं. 5 के विरुद्ध निषेधाज्ञा की मांग की गई थी और अन्य प्रतिवादियों के खिलाफ नहीं और इसलिए प्रतिवादी सं 5 को उपरोक्त प्रारंभिक बिंदुओं को उठाने और वाद में आगे बढ़ने से पहले उन बिंदुओं पर निष्कर्ष दर्ज करने के लिए न्यायालय से प्रार्थना करने का अधिकार था। विद्वान अपर सिविल जज (सीनियर डिवीजन) द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण इस संबंध में पूरी तरह से गलत था। उनके लिए उचित मार्ग पहले प्रारंभिक मुद्दों को निर्णित करना और फिर निषेधाज्ञा आवेदन पर निर्णय लेना था। .....

7. अजय तिवारी (उपर्युक्त) में इस न्यायालय की एक अन्य खंड पीठ ने, एक वाद के संदर्भ में जिसमें समान मुद्दे शामिल थे, अभिनिर्धारित किया :-

12. वादी/अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने अस्पष्ट रूप से तर्क दिया कि प्रतिवादियों/प्रत्यर्थियों के लिए न्यायालय फीस के भुगतान में अपर्याप्तता या कमी के संबंध में कोई आपत्ति करने का रास्ता खुला नहीं है। उपरोक्त दलील में कोई दम नहीं है क्योंकि न्यायालय फीस की उचित राशि के भुगतान या

अनुवादित

कमी का प्रश्न राज्य या राजस्व के अधिकारियों के अलावा किसी अन्य तरीके से भी उठाया जा सकता है। अधिनियम की धारा 6 (4) कहती है कि जब भी देय न्यायालय शुल्क की उचित राशि का प्रश्न धारा 6 की उप-धारा (3) के तहत न उठा कर अन्यथा उठाया जाता है, अर्थात अधिनियम की धारा 24-क में उल्लिखित अधिकारियों के अलावा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा, तब न्यायालय किसी अन्य मुद्दे पर कार्यवाही से पहले ऐसे प्रश्न का निर्णय करेगा। इस प्रकार न्यायालय को न्यायालय शुल्क की उचित राशि के भुगतान के प्रश्न पर निर्णय लेने का अधिकार है, भले ही यह राज्य या राजस्व के अधिकारियों द्वारा नहीं उठाया गया हो। इसलिए, इस दलील में कोई बल नहीं है और यह स्वीकार्य नहीं है विशेषकर तब जब इसे निचले न्यायालय में उठाया भी नहीं गया था।

8. श्री बिड़ला द्वारा आगे यह तर्क दिया गया है कि यहां वाद एक विक्रय विलेख को शून्य घोषित करने की मांग करने वाला है, जहां न्यायालय शुल्क अधिनियम, 1870 की धारा 7 (iv-A) लागू होती है, जिसके आधार पर, यथामूल्य न्यायालय शुल्क देय होगा। यह ऐसा मामला नहीं है जिस पर 1870 के अधिनियम की अनुसूची II का अनुच्छेद 17 (iii) लागू होगा। इस प्रकार, ₹700/- का एक निश्चित न्यायालय शुल्क भुगतान नहीं किया जा सका। यह उनका निवेदन है कि भुगतान किया गया न्यायालय शुल्क प्रत्यक्ष रूप से अपर्याप्त है और इसलिए, अस्थायी निषेधाज्ञा आवेदन पर सुनवाई करने के लिए आगे बढ़ने से पहले, मूल्यांकन और न्यायालय शुल्क की पर्याप्तता के मुद्दे पर निर्णय लिया जाना चाहिए।

9. इस कानूनी स्थिति के लिए कि यह एक ऐसा वाद है जहां यथामूल्य न्यायालय शुल्क 1870 के अधिनियम की अनुसूची II की धारा 7 (iv-A) के तहत देय होगा न कि उस अधिनियम की दूसरी अनुसूची की धारा 17 (iii) के तहत, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने **अजय तिवारी** में खंड पीठ के निर्णय में समझाए गए सिद्धांतों की सहायता ली है।

10. दूसरी ओर, विद्वान अधिवक्ता श्री राकेश कुमार सिंह यह कहने को प्रयासरत हैं कि अस्थायी निषेधाज्ञा मामले का विचारण इस स्तर पर नहीं है जिस पर न्यायालय को वाद के मूल्यांकन या न्यायालय शुल्क की पर्याप्तता के मुद्दे पर विचार करना चाहिए। यदि ऐसा होना था, तो प्रतिवादी वाद के कम मूल्यांकन किए जाने और न्यायालय शुल्क के अपर्याप्त भुगतान के बारे में आपत्ति उठा सकता है और वादी पर प्रतिकूल प्रभाव के साथ अस्थायी निषेधाज्ञा आवेदन की सुनवाई को रोक सकता है। इस निवेदन के समर्थन में, श्री सिंह ने **प्रताप नारायण और अन्य बनाम सुधीर कुमार सिन्हा और अन्य** के मामले में इस न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश के बाद के निर्णय का आश्रय लिया है। **प्रताप नारायण** (उपर्युक्त) में विद्वान न्यायाधीश द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया हैः

6. इस न्यायालय का विचार है कि वाद में किसी मुद्दे पर निर्णय लेना अंतरिम निषेधाज्ञा जैसे अस्थायी राहत की मांग करने वाले आवेदन पर निर्णय लेने से अलग है। न्यायालय शुल्क अधिनियम की धारा 6-क की उपधारा (2), जैसा कि उत्तर प्रदेश राज्य में लागू है, इंगित करती है कि विधायिका ने न्यायालय

अशोधित

फीस की पर्याप्तता के मुद्दे पर निर्णय लेने से पहले ही अंतरिम आदेश देने पर विचार किया था, क्योंकि न्यायालय शुल्क अधिनियम, 1870 की धारा 6-क की उपधारा (2) में यह उपबंध है कि यदि कोई अपील धारा 6-क की उपधारा (1) के अन्तर्गत दायर की जाती है और वादी इस कमी को पूरा नहीं करता है तो वाद की सभी कार्यवाहियों पर रोक लगा दी जाएगी और निषेधाज्ञा देने या प्राप्तकर्ता को नियुक्त करने के आदेश सहित किए गए सभी अंतरिम आदेशों को समाप्त कर दिया जाएगा। धारा 6-क की उपधारा (1) में यह उपबंध है कि न्यायालय फीस में कमी को दूर करने के लिए आहूत कोई भी व्यक्ति ऐसे आदेश के विरुद्ध इस प्रकार अपील कर सकता है मानो वह सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 104 के तहत अपील योग्य आदेश हो। उपर्युक्त उपबंधों का निरीक्षण यह दर्शाएगा कि जहां वादी को न्यायालय फीस में कमी को पूरा करने का निर्देश दिया जाता है, तो वह उक्त आदेश के विरुद्ध अपील कर सकता है और यदि वह अपील के तहत आदेश द्वारा जमा किए जाने के लिए निर्देशित न्यायालय शुल्क को जमा किए बिना उक्त आदेश के विरुद्ध अपील दायर करता है, तो वाद की सभी कार्यवाहियों पर रोक लग जाएगी और निषेधाज्ञा देने या प्राप्तकर्ता नियुक्त करने के आदेश सहित किए गए सभी अंतरिम आदेश खारिज हो जाएंगे। इसलिए विधायिका ने ऐसी स्थिति की परिकल्पना की जहां न्यायालय ने मूल्यांकन और न्यायालय शुल्क की पर्याप्तता से संबंधित मुद्दे पर निर्णय लेने से पहले अंतरिम राहत प्रदान की। इस तरह का दृष्टिकोण न्याय के हित के लिए भी सहायक है क्योंकि अन्यथा प्रतिवादी के लिए, अपर्याप्त मूल्यांकन के साथ-साथ भुगतान किए गए न्यायालय शुल्क के फर्जी दावे को स्थापित करके अनुदान या तत्काल अंतरिम राहत को विफल करने का रास्ता खुला होगा। उपरोक्त दृष्टिकोण राजस्व के हित को नुकसान नहीं पहुँचाएगा क्योंकि यदि न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि वाद का मूल्य कम आंका गया है या भुगतान किया गया न्यायालय शुल्क अपर्याप्त है, तो वह वादी को ऐसी न्यायालय फीस जमा करने का निर्देश दे सकता है और न्यायालय द्वारा निर्देशित न्यायालय शुल्क जमा नहीं होने की स्थिति में, संहिता के आदेश VII, नियम 11 (बी) (सी) के तहत वाद को खारिज किया जा सकता है। यदि वादी, कम न्यायालय शुल्क को जमा किए बिना, आदेश को चुनौती देता है, तो अंतरिम निषेधाज्ञा निरस्त हो जायेगी। इस प्रकार, अंतरिम निषेधाज्ञा प्रार्थना पर विचार करना बंद न करके भी राजस्व के हितों की रक्षा के लिए पर्याप्त सुरक्षा है। अतः इस न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि मूल्यांकन और न्यायालय फीस की पर्याप्तता से संबंधित मुद्दे पर पहले निर्णय लिए बिना अंतरिम अनुरोध पर विचार करने की निचले न्यायालय की शक्ति पर कोई प्रतिबंध नहीं है। यद्यपि न्यायालय के लिए ये उचित है कि वह अपने विवेक का प्रयोग करे और यह सुनिश्चित करे कि वाद के मूल्यांकन के संबंध में या न्यायालय फीस के भुगतान के संबंध में उठाई गई आपत्ति प्रथम दृष्टया सारवान है या नहीं और यदि उसे लगता है कि आपत्ति में सार है, तो **अरुण कुमार तिवारी वाद (उपर्युक्त)** में इस न्यायालय की खंड पीठ द्वारा निर्धारित कानून को ध्यान में रखते हुए, वह मूल्यांकन और

अधिवक्ता

न्यायालय फीस के भुगतान से संबंधित मुद्दों पर न्यायनिर्णयन तक अंतरिम निषेधाज्ञा आवेदन पर विचार स्थगित कर सकता है, विशेष रूप से ऐसे मामले में जहां, यदि वाद का उचित रूप से मूल्यांकन किया जाता है, तो यह उस न्यायालय के आर्थिक क्षेत्राधिकार से परे जाएगा जहां इसे दायर किया गया है। लेकिन यहाँ ऐसा मामला नहीं है क्योंकि सिविल जज (सीनियर डिवीजन) का न्यायालय असीमित आर्थिक क्षेत्राधिकार वाला न्यायालय है। ऊपर लिया गया दृष्टिकोण **उमेश चंद्र और अन्य बनाम कृष्ण मुरारी लाल, ए. आई. आर. 1980 इलाहाबाद 29**, में दिए गए इस न्यायालय के निर्णय द्वारा समर्थित है जो **अरुण कुमार तिवारी (उपरोक्त)** में इस न्यायालय की खंडपीठ के फैसले के खिलाफ नहीं है ।

11. इस न्यायालय की राय में, **प्रताप नारायण** में मेरे सम्मानित भाई मनोज मिश्रा की टिप्पणी उस बिंदु का पूर्ण उत्तर है जो श्री बिड़ला द्वारा उनकी इस दलील के समर्थन में निवेदित की गई थी कि अस्थायी निषेधाज्ञा आवेदन के निर्धारण को तब तक स्थगित किया जाए जब तक कि अवमूल्यन और देय उचित न्यायालय शुल्क का मुद्दा तय नहीं हो जाता। 1870 के अधिनियम की धारा 6क की उपधारा (2) का उपबंध, जैसा कि उत्तर प्रदेश राज्य में लागू है सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश VII नियम II (ख) और (ग) राजस्व के हितों का पर्याप्त ध्यान रखता है, यदि वादी अवमूल्यन या देय उचित न्यायालय शुल्क से बचने का प्रयास करता है। 1870 के अधिनियम की विधायी योजना जैसा कि उत्तर प्रदेश राज्य में लागू है और संहिता को, एक ओर महत्वपूर्ण न्याय के उद्देश्य को आगे बढ़ाने और दूसरी ओर राजस्व के हित के संरक्षण के लिए, बनाया गया है। यह वास्तव में गंभीर अन्याय का कारण बनेगा यदि प्रतिवादी को अवमूल्यन या अपर्याप्त न्यायालय शुल्क के बारे में आपत्तियां उठाने की अनुमति दी जाती है और अस्थायी निषेधाज्ञा आवेदन पर विचार तब तक रोक दिया जाता है जब तक कि अपरिवर्तनीय हानि न हो जाये। **प्रताप नारायण** में इस न्यायालय की टिप्पणियों को दोहराने की आवश्यकता नहीं है, जो इस न्यायालय की राय में, अस्थायी निषेधाज्ञा मामले पर तत्काल विचार करने की आवश्यकताओं के साथ **अरुण कुमार तिवारी** के सिद्धांत का मिलान करता है, विशेष रूप से जब विचारण न्यायालय असीमित आर्थिक क्षेत्राधिकार का न्यायालय है।

12. वर्तमान मामले में भी, विचारण न्यायालय जिले का सिविल जज(सीनियर डिविजन) है और इसलिए, असीमित आर्थिक अधिकार क्षेत्र का न्यायालय है। यह एक ऐसा मामला है जहां इस संबंध में अधिकार प्राप्त अधिकारियों द्वारा किसी भी आपत्ति के बिना न्यायालय शुल्क के भुगतान पर शिकायत दर्ज की गई है। यह सच है कि भले ही देय न्यायालय शुल्क के बारे में कोई आपत्ति, धारा 6 की उप-धारा (3) के अलावा, अर्थात्, 1870 के अधिनियम की धारा 24क के तहत परिकल्पित अधिकारी द्वारा उठाई जाती है, न्यायालय किसी अन्य मुद्दे पर निर्णय लेने से पहले ऐसे प्रश्न पर निर्णय लेने के लिए बाध्य है। **अजय तिवारी** के मामले में खंड पीठ ने यह राय स्पष्ट रूप से व्यक्त

अनुवादित

की है। लेकिन, **अजय तिवारी** में यह निर्धारित नहीं है कि प्रतिवादी की आपत्ति पर, देय उचित न्यायालय शुल्क के बारे में निर्णय लंबित रहने के दौरान अस्थायी निषेधाज्ञा मामले पर विचारण स्थगित किया जाना चाहिए। **अजय तिवारी** में यह सिद्धांत नहीं है, जैसा कि आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने सुझाव दिया है।

13. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के इस निवेदन पर कि यहां मुकदमा वह है जहां भुगतान की गई न्यायालय की फीस स्पष्ट रूप से अपर्याप्त है, **अजय तिवारी** में खंडपीठ के निर्णय को देखते हुए, एक बार जब दावा की गई राहतों पर विचार कर लिया जाता है, यह कहा जाना चाहिए कि यह न्यायालय उस प्रलोभन के आगे झुकने के लिए तैयार नहीं है, जिसे आवेदक के विद्वान अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं। इस कारण से कि अवमूल्यन और देय उचित न्यायालय शुल्क के मुद्दे विचारण न्यायालय का ध्यान आकर्षित कर रहे हैं और देय उचित न्यायालय शुल्क के मुद्दों पर विचारण न्यायालय के निर्णय से, 1870 के अधिनियम की धारा 6क के तहत एक अपील की परिकल्पना की गई है, जैसा कि उत्तर प्रदेश राज्य को दिये गए इसके आवेदन में संशोधित किया गया है। संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत वर्तमान याचिका में किया गया कोई भी निर्धारण, जो अस्थायी निषेधाज्ञा मामले की सुनवाई में तेजी लाने की मांग करने वाली याचिका से अधिक कुछ भी नहीं है, क्षेत्राधिकार का सबसे विसंगत अभ्यास होगा; जो इस न्यायालय के समक्ष याचिका के दायरे और कार्यालय से पूरी तरह से परे है।

14. इस न्यायालय को, पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता श्री उत्कर्ष बिड़ला और श्री राकेश कुमार सिंह द्वारा कानून के सूक्ष्म बिंदु पर बहुत सक्षम सहायता के लिए, हमारी सराहना रिकॉर्ड पर रखनी चाहिए।

15. इन परिस्थितियों में, यह न्यायालय इस आवेदन में कोई योग्यता नहीं पाती है। तदनुसार, इसे **अस्वीकार किया जाता है**।

(2023) 6 ILRA 320

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 25.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति संजय कुमार सिंह

आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 52553/2022

जयवीर .. .आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य. ..विपरीत पक्ष

आवेदक के अधिवक्ता: श्री यशपाल यादव, श्री लालजी यादव, श्री मनीष तिवारी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

विपरीत पक्षों के अधिवक्ता: जी.ए.

(ए) आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161,164 और 439 - जमानत - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 376 - बलात्कार, लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 - धारा 2(1)डी, 3/4 और 29 - प्रत्येक व्यक्ति का अपनी स्थानीय भाषा में अपने शब्दों और भावनाओं को व्यक्त

अनुवादित

करने का एक अलग तरीका होता है - धारा 164 सीआरपीसी के तहत पीड़िता का बयान निश्चित रूप से धारा 161 सीआरपीसी के तहत डॉक्टर या पुलिस अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए उसके बयान पर प्रबल होगा। - बलात्कार का अपराध गठित करने के लिए, यह आवश्यक नहीं है कि योनि या मुंह में लिंग का पूर्ण प्रवेश हो और वीर्य का उत्सर्जन हो। (पैरा - 6)

पीड़िता नाबालिग लड़की है - आवेदक की आयु लगभग 24 वर्ष है - पीड़िता के मुंह में लिंग द्वारा प्रवेश का मामला - धारा 161 सीआरपीसी के तहत पीड़िता का बयान। - ऑडियो और वीडियो माध्यमों से रिकॉर्ड किया गया - मुंह से या मुंह में गलत काम किया गया - पीड़िता ने जो कहा वह तीनों बयानों में एक जैसा है - धारा 164 सीआरपीसी के तहत पीड़िता का बयान - आवेदक ने अपना लिंग उसके मुंह में डाला - इसे भौतिक सुधार नहीं कहा जा सकता - बल्कि यह उसके प्रारंभिक संस्करण को पुष्ट करता है - पीड़िता द्वारा प्रयुक्त शब्द "गलत काम किया" आम बोलचाल में यौन क्रिया को दर्शाता है। **(पैरा - 5, 6)**

निर्णय:- बलात्कार का अपराध बनता है। आरोपी-आवेदक का कृत्य आईपीसी की धारा 375 (ए) के दायरे में आता है। आवेदक के झूठे आरोप लगाने और नाबालिग पीड़िता के बयान पर अविश्वास करने के लिए रिकॉर्ड पर कोई सामग्री नहीं है, जो बलात्कार के मामलों में आरोपी की जमानत याचिका पर विचार करने के लिए प्राथमिक है। **(पैरा - 6)**

जमानत याचिका खारिज। (ई-7)

(माननीय न्यायमूर्ति संजय कुमार सिंह द्वारा दिया गया)

1- दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439 के अन्तर्गत इस आवेदन के माध्यम से, आवेदक, जो कि मुकदमा अपराध संख्या 587 वर्ष 2022, अन्तर्गत धारा 376, भारतीय दंड संहिता और धारा 3/4, यौन अपराधों से बच्चों का संरक्षण अधिनियम, 2012, थाना- तिलहर जिला- शाहजहांपुर में शामिल है, मुकदमा लंबित रहने के दौरान जमानत पर रिहाई चाहता है।

2- आवेदक के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री मनीष तिवारी और राज्य का प्रतिनिधित्व कर रहे विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री रवीन्द्र कुमार सिंह को सुना।

3- संक्षेप में अभियोजन पक्ष के अनुसार, शिकायतकर्ता जो कि पीड़िता का पिता है, ने आवेदक-जयवीर के विरुद्ध दिनांक 07.8.2022 को प्राथमिकी दर्ज कराई, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह आरोप लगाया गया कि दिनांक 07.08.2022 को लगभग 1:00 बजे अपराह्न उसकी पुत्री उम्र लगभग 14-15 वर्ष, राजेश के गन्ने के खेत में शौच के लिए गई थी, जहां आरोपी-आवेदक ने बलात्कार करने की नीयत से उसे जबरन गन्ने के खेत में खींच लिया और उसके साथ बलात्कार किया। उसकी पुत्री रोती हुई घर आई और पूरी घटना अपनी मां को बताई।

3.1- पीड़िता की दिनांक 07.08.2022 को रात्रि लगभग 09:48 बजे चिकित्सकीय जांच की गई और उस समय उसने डॉक्टर को बताया कि जब मैं खेत में शौच के लिए गई थी, तो अभियुक्त ने मुझे पकड़ लिया और मुंह द्वारा

अनुवादित

जबरदस्ती गलत काम किया। हिंदी में पीड़िता का बयान नीचे दिया गया है:-

पीड़िता के अनुसार वह शौच के लिए खेत में गयी थी तभी आरोपी वहाँ पर पकड़ लिया और जबरदस्ती मुंह के द्वारा गलत काम किया।

3.2 - पीड़िता ने दिनांक 07.08.2022 को धारा 161 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत अपने बयान में अन्य बातों के साथ-साथ कहा है कि आवेदक ने मुझे पकड़ लिया और बुरी नीयत से खेत में ले गया। जब मैं चिल्लाई तो उसने मेरा मुंह बंद कर दिया और मेरा कपड़ा (सलवार) फाड़ दी। उसने मेरे साथ गलत काम करने की कोशिश की और उसने मेरे मुंह में गलत काम किया। पीड़िता का बयान हिंदी में निम्नलिखित है:-

"मेरा नाम "X" D/o "Y" R/o..... की रहने वाली हूं मैं कक्षा 8 तक गांव के ही प्राइमरी स्कूल में पढ़ी हूं। मेरी उम्र लगभग 14 वर्ष है आज दिनांक 07.08.22 को दोपहर 1.00 बजे मैं खेत पर शौच के लिए गयी थी। जब मै धान के खेत में लेट्रिन कर रही थी तभी मेरे गांव के जयवीर S/० शेरबहादुर आ गया। जिसे देखकर में खड़ी हो गयी और धानो के खेत से बाहर निकल आयी। जयवीर अपने धानो मे स्प्रे करने आया था। जब मैं धानो के खेत से निकल आयी तभी जयवीर मुझे पकड़ लिया और बुरी नियत से गन्ने के खेत में ले गया। मैं चिल्लाई तो मेरा मुह बन्द कर लिया। इसके बाद उसने मेरे कपड़े (सलवार) फाड़ दिये। मेरे साथ गलत काम करने की कोशिश की तथा उसने मेरे मुंह मे गलत काम किया। इसके बाद मैं किसी तरह छूटकर भागती हुयी अपने घर आयी और अपनी मां को पूरी घटना बतायी।" दिनांक 7.8.22।

3.3 धारा 164 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत पीड़िता ने अपने बयान में, अन्य बातों के साथ साथ, कहा है कि आवेदक ने मुझे पीछे से पकड़ लिया और मेरी सलवार उतार दी। जब मैं चिल्लाई तो उसने अपने हाथ से मेरा मुंह बंद कर दिया और उसने मेरे मुंह में गलत काम किया। उसने अपना लिंग मेरे मुंह में डाला। बड़ी मुश्किल से मैं खुद को छुड़ा पाई। पीड़िता का बयान हिंदी में इस प्रकार है:-

"मेरा नाम "x" उम्र 15 वर्ष पिता का नाम "Y" निवासी..... जनपद शाहजहांपुर मैं खेतो में लेट्रिन के लिये गयी थी तभी पीछे से जयवीर ने मुझे दबोच लिया और मेरी सलवार निकाल दी फिर मैं तेजी से चिल्लायी तब उसने मेरा मुंह हाथ से दबा लिया। मेरे मुंह में उसने गलत काम किया अपना लिंग मेरे मुंह में डाल दिया फिर बड़ी मुश्किल से मैं अपने को छुड़ा पायी इसके अतिरिक्त मुझे कुछ नहीं कहना।

4- आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि पीड़िता की मेडिकल जांच रिपोर्ट के अनुसार बल प्रयोग का कोई संकेत नहीं है। पीड़िता की पूरक रिपोर्ट दिनांक 08.08.2022 के अनुसार उसकी आयु लगभग 17 वर्ष है और मौखिक गुहा में प्रवेश के कोई संकेत नहीं हैं। प्राथमिकी में दिए गए संस्करण और डॉक्टर के सामने पीड़िता के बयान के साथ-साथ धारा 161 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत बयान में असंगति है। आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया है कि पीड़िता के धारा

अनुवादित

161 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत बयान पर विचार करने पर बलात्कार का कोई अपराध नहीं बनता है, क्योंकि कई यौन क्रियाएं, जो मुंह से की जाती हैं, बलात्कार की परिभाषा में नहीं आती हैं, लेकिन धारा 164 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत उसके बयान पर विचार करने पर बलात्कार का अपराध बनता है। इस संबंध में, यह भी प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक के खिलाफ पीड़िता के प्रारंभिक आरोप को पीड़िता ने धारा 164 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत अपने बयान में धीरे-धीरे सुधारा था, जो घटना के दस दिनों के बाद दर्ज किया गया था और इसलिए, उसे बहकाए जाने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है। अंत में, यह प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक के न्यायिक प्रक्रिया से भागने या अभियोजन साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ करने की कोई संभावना नहीं है। आवेदक का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है और वह 08.8.2022 से जेल में बंद है।

5- दूसरी ओर, राज्य की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने आवेदक की जमानत प्रार्थना का विरोध करते हुए तर्क दिया कि पीड़िता के मेडिकल परीक्षण के समय, चिकित्सक ने भी मेडिकल परीक्षण रिपोर्ट के कॉलम संख्या 15एफ में यह अंकित किया है कि यह पीड़िता के मुंह में लिंग प्रवेश का मामला है। पीड़िता का बयान अन्तर्गत धारा 161 दंड प्रक्रिया संहिता, महिला कांस्टेबल द्वारा ऑडियो और वीडियो माध्यम से रिकॉर्ड किया गया है, जिसे केस डायरी का हिस्सा बनाया गया है। पीड़िता के निर्देश पर जांच अधिकारी द्वारा साइट प्लान तैयार किया गया था। पिता और माता ने भी अभियोजन मामले का समर्थन किया है। उच्च प्राथमिक विद्यालय तालवीपुर, जिला शाहजहांपुर के छात्र रजिस्टर और प्रधानाध्यापक के बयान के अनुसार, पीड़िता की जन्म तिथि 01.01.2008 है, जिसके अनुसार घटना के दिन पीड़िता की उम्र लगभग 14 वर्ष 7 माह 8 दिन थी। आवेदक के खिलाफ आरोप पत्र दिनांक 30.08.2022 प्रस्तुत किया गया है। पोक्सो अधिनियम की धारा 29 के दृष्टिगत, जब तक कि आरोपी द्वारा इसके विपरीत साबित नहीं किया जाता है, तब तक उसके खिलाफ अनुमान भी लगाया जाएगा। आवेदक के खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 375 (ए) के तहत अपराध स्पष्ट रूप से बनता है। अंत में यह प्रस्तुत किया गया है कि अपराध जघन्य प्रकृति का है। अपराध की गंभीरता को देखते हुए, जमानत आवेदन खारिज किए जाने योग्य है।

6- पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने तथा पत्रावली का सम्पूर्ण अवलोकन करने के पश्चात, मैं पाता हूँ कि पोक्सो अधिनियम की धारा 2(1)(घ) के दृष्टिगत, पीड़िता एक नाबालिग लड़की है। आवेदक की आयु लगभग 24 वर्ष है। जहां तक आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा पीड़िता के बयानों में विसंगतियों तथा सुधार के संबंध में प्रस्तुत किए गए तर्कों का प्रश्न है, इस न्यायालय का मत है कि इसे महत्वपूर्ण विरोधाभास नहीं कहा जा सकता है तथा यह मामले की जड़ में जाकर अभियोजन पक्ष के सम्पूर्ण मामले को ध्वस्त नहीं करता है, क्योंकि पीड़िता का यह आरोप कि आवेदक ने मुंह से अथवा मुंह में गलत कार्य किया है, उसके सभी बयानों में मौजूद है। पीड़िता द्वारा कही गई बातों का

अनुवादित

अर्थ तीनों बयानों में एक ही है। यह सर्वविदित है कि प्रत्येक व्यक्ति का अपनी स्थानीय भाषा में अपने शब्दों तथा भावनाओं को व्यक्त करने का एक अलग तरीका होता है। पीड़िता ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के तहत अपने बयान में अन्य बातों के साथ-साथ यह कहा है कि आवेदक ने अपना लिंग उसके मुंह में डाला था, जिसे मामले के तथ्यों के अन्तर्गत महत्वपूर्ण सुधार नहीं कहा जा सकता है, बल्कि यह उसके प्रारंभिक कथन को पुष्ट करता है। पीड़िता द्वारा प्रयुक्त शब्द "गलत काम किया" सामान्य बोलचाल में यौन कृत्य को दर्शाता है। धारा 164 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत पीड़िता का बयान निश्चित रूप से धारा 161 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत डॉक्टर या पुलिस अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए उसके बयान से अधिक प्रभावी होगा। बलात्कार का अपराध गठित करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वीर्य निकलने के साथ योनि या मुंह में लिंग का पूर्ण प्रवेश हो। तदनुसार, पीड़िता के सभी बयानों के संचयी प्रभाव पर विचार करते हुए, मैं आवेदक के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता की इस दलील में बल नहीं पाता हूँ कि बलात्कार का कोई अपराध नहीं बनता है। मामले के तथ्यों पर विचार करते हुए, इस न्यायालय की यह राय है कि आरोपी-आवेदक का कृत्य भारतीय दंड संहिता की धारा 375 (ए) के दायरे में आता है। आज की तारीख तक, मुझे आवेदक को झूठा फँसाये जाने की धारणा बनाने और नाबालिग पीड़िता के बयान, जो बलात्कार के मामलों में आरोपी के जमानत आवेदन पर विचार करने के लिए मुख्य है, पर अविश्वास करने के लिए रिकॉर्ड पर कोई सामग्री नहीं मिली।

7- उपरोक्त चर्चा के आलोक में और इस तथ्य पर विचार करने के बाद कि बलात्कार समाज में सबसे अधिक घृणित, नैतिक और शारीरिक रूप से निंदनीय अपराध है, क्योंकि यह नाबालिग पीड़िता के शरीर, दिमाग और निजता पर हमला है। इसने उसके जीवन के प्राण और मर्म को झकझोर कर रख दिया। बलात्कार पीड़िता के जीवन पर एक स्थायी घाव छोड़ जाता है और पोक्सो अधिनियम की धारा 29 के प्रावधानों पर विचार करने के साथ-साथ, पक्षकारों की ओर से प्रस्तुत की गयी दलीलों, जैसा कि ऊपर उल्लिखित है, अपराध की गंभीरता, आवेदक की भूमिका और सजा की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए, मुझे आवेदक को जमानत पर रिहा करने का कोई अच्छा आधार नहीं मिलता है।

8- तदनुसार, जमानत आवेदन **खारिज किया जाता है**।

9- यह स्पष्ट किया जाता है कि वर्तमान आदेश में निहित टिप्पणी जमानत के मुद्दे तक ही सीमित है और यह मुकदमे की योग्यता प्रभावित नहीं करेगी।

10- इस आदेश की प्रति बाल कल्याण समिति शाहजहाँपुर के माध्यम से सूचक/शिकायतकर्ता एवं ट्रायल कोर्ट को सूचनार्थ भेजी जाए।

अनुवादित

(2023) 6 ILRA 323

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 30.05.2023

इससे पहले

माननीय संजय कुमार सिंह, जे.

आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 57301/2022

आशाराम.. आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य विपरीत पक्ष

आवेदक के अधिवक्ता: श्री श्याम लाल, अभिलाषा सिंह, श्री आशुतोष यादव

विपरीत पक्ष के अधिवक्ता: जी.ए., श्री कनक कुमार त्रिपाठी

(ए) आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161, 164, 439 - जमानत, धारा 53ए - बलात्कार के आरोपी व्यक्ति की चिकित्सा व्यवसायी द्वारा जांच, भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 363, 366, 376, 506, लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 - धारा 3/4 - धारा 376 आईपीसी के तहत मामले में, यदि देरी को ठीक से समझाया जाए, तो अभियोजन पक्ष के मामले के लिए घातक नहीं है - अभियोक्ता का साक्ष्य घायल गवाह की तुलना में अधिक विश्वसनीय है - अभियोक्ता के बयान में मामूली विरोधाभास या महत्वहीन विसंगतियां भी अन्यथा विश्वसनीय अभियोजन पक्ष के मामले को खारिज करने का आधार नहीं होनी चाहिए। (पैरा - 11,36)

(बी) आपराधिक कानून - बलात्कार करने के लिए 'तैयारी' और 'प्रयास' के बीच अंतर - अपराध करने के चरण - पहला, मेन्स रीआ (करने का इरादा), दूसरा, अपराध करने की तैयारी, और तीसरा, अपराध करने का प्रयास - प्रयास दंडनीय हैं क्योंकि वे मेन्स रीआ, नैतिक अपराध से पहले होते हैं, और सामाजिक मूल्यों पर उनका प्रभाव वास्तविक अपराध से अधिक होता है। (पैरा - 26)

(सी) आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 376/511- पुरुष अंग का महिला अंगों में थोड़ा सा भी प्रवेश बलात्कार के बराबर है। (पैरा-29)

अनुवादित

अपहरण, दुष्कर्म और पीड़िता की जान को खतरा - पीड़िता (नाबालिग) उम्र करीब 17 साल - आवेदक के कब्जे में - करीब डेढ़ दिन तक - खास आरोप - उसके साथ दुष्कर्म किया - आवेदक ने पहले उसकी पायजामी उतारी - उसके बाद खुद को निर्वस्त्र किया और उसके ऊपर लेट गया - योनि में पुरुष अंग का प्रवेश नहीं हुआ - अगले दिन रात में पीड़िता को गांव के बाहर छोड़ दिया - एफआईआर अत्यधिक देरी से दर्ज की गई। **(पैरा-15,17,25)**

निर्णय:- अभियोजन पक्ष द्वारा उचित रूप से समझाए गए एफआईआर दर्ज करने में देरी। आवेदक की हरकतें प्रयास से परे की अवस्था से परे हैं, जो आईपीसी की धारा 376 के तहत दंडनीय है। आवेदक को जमानत पर रिहा करने का कोई अच्छा आधार नहीं है। **(पैरा-11,27,41)**

जमानत आवेदन खारिज। (ई-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. दिगंबर हरिनखेड़े और अन्य। बनाम स्टेट ऑफ एम.पी., क्रिमिनल रिवीजन नंबर 1687 ऑफ 2013

2. संतोष बनाम स्टेट ऑफ केरल, 2021 (3) केएलजे 927 (केरल हाई कोर्ट)

3. छेफुलसन स्नैतांग बनाम स्टेट ऑफ मेघालय, क्रिमिनल अपील नंबर 5 ऑफ 2020

4. राम नरेश व अन्य बनाम स्टेट ऑफ छत्तीसगढ़, एआईआर 2012, एससी 1357

5. तारा सिंह व अन्य बनाम स्टेट ऑफ पुंज, एआईआर 1991 एससी 63

6. स्टेट ऑफ पुंज बनाम गुरमीत सिंह व अन्य, 1996 एससीसी (2) 384

7. स्टेट ऑफ एम.पी. बनाम महेंद्र @ गोलू, (2022)12 एससीसी 442

8. केरल का स्टेट बनाम कुंदुमकारा गोविंदन, 1969 सीआर.एल.जे

9. रंजीत हजारिका बनाम स्टेट ऑफ असम, (1988)8 एससीसी 635

10. मदन गोपाल कक्कड़ बनाम नवल दुबे, (1992) 3 एससीसी 204

11. राधा कृष्ण नागेश बनाम स्टेट ऑफ ए.पी., (2013) 11 एससीसी 688

12. स्टेट ऑफ एच.पी. बनाम आशा राम, 2006 क्रि.एल.जे. 139

13. भरवाड़ा भोगिनभाई हिरजीभाई बनाम स्टेट ऑफ गुजरात, एआईआर 1983 एससी 753

14. स्टेट ऑफ ए.पी. बनाम बोडेम सुंदर राव, 1995 (6) एससीसी 230

(माननीय न्यायमूर्ति संजय कुमार सिंह द्वारा दिया गया)

1. आवेदक की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री आशुतोष यादव, और राज्य की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री रवीन्द्र कुमार सिंह को सुना।

2. दं0प्र0सं0 की धारा 439 के तहत इस प्रार्थना पत्र के माध्यम से, आवेदक आशाराम, जो 2022 के वाद अपराध संख्या 303 में धारा 363, 366, 376, 506 भा0दं0सं0 और पॉक्सो अधिनियम के 3/4, पुलिस स्टेशन राजपुरा, जिला संभल के तहत शामिल है, मुकदमे के लंबित रहने के दौरान जमानत पर विस्तार की मांग करता है।

3. संक्षेप में मामले के तथ्य यह हैं कि 29.8.2022 को, पीड़िता की मां ने पुलिस अधीक्षक, (लोक शिकायत प्रकोष्ठ), संभल को इस आशय का एक प्रार्थना पत्र दिया है कि अपहरण, दुष्कर्म और अपनी बेटी के जीवन को खतरे के संबंध में, उसने पुलिस स्टेशन राजपुरा में एक प्रार्थना पत्र दिया है, लेकिन न तो पुलिस ने उसकी रिपोर्ट दर्ज कराई है और न ही पीड़िता को मेडिकल जांच के लिए भेजा गया है। रिपोर्ट में आगे आरोप लगाया गया है कि 24.8.2022 को, लगभग 17 वर्ष की मुखबिर की नाबालिग बेटी को आवेदक द्वारा बहकाया गया था, जिसके संबंध में उसने पुलिस स्टेशन में एक प्रार्थना पत्र किया था। इसके बाद आवेदक ने अपनी बेटी को गांव के बाहर छोड़ दिया। उसकी बेटी ने उसे बताया कि आवेदक ने उसके साथ जबरन शारीरिक संबंध बनाए और पुलिस को मामले की रिपोर्ट करने पर उसे गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी भी दी।

4. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि दिनांक 24.8.2022 की घटना के संबंध में, प्रथम सूचना रिपोर्ट 31.8.2022 को दर्ज की गई है और पीड़िता की 31.8.2022 को चिकित्सकीय जांच की गई थी, जिसके लिए अभियोजन पक्ष द्वारा कोई प्रशंसनीय स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है।

5. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि सूचनाकर्ता ने दं0प्र0सं0 की

अनुवादित

धारा 161 के तहत अपने बयान में अन्य बातों के साथ कहा है कि 24.8.2022 को जब उसकी नाबालिग बेटी खेत में गई थी, तो उसे आवेदक द्वारा बहला-फुसलाकर ले जाया गया और अगले दिन यानी 25.08.2022 को उसने अपनी बेटी को गांव के बाहर छोड़ दिया। उसकी बेटी ने उसे बताया कि आवेदक ने उसके साथ जबरन शारीरिक संबंध बनाए। जब सूचनाकर्ता का दूसरा बयान दर्ज किया गया, तो उसने अपने पहले के बयान को दोहराया और यह भी कहा कि उसकी बेटी ने उसे बताया कि आवेदक ने उसे निर्वस्त्र कर दिया और उसके साथ दुराचार/बलात्कार किया। पूछताछ करने पर उसने बताया कि उसकी बेटी नहाकर कपड़े धोती है। पूर्वोक्त कथन के आधार पर, यह तर्क दिया गया है कि चूंकि पीड़िता ने स्नान किया और अपने कपड़े धोए, इसलिए, यह पता नहीं लगाया जा सका कि कोई संभोग किया गया था या नहीं।

6. पीड़िता की धारा 164 दं0प्र0सं0 के तहत बयान का उल्लेख करते हुए, यह तर्क देकर बहुत जोर दिया गया है कि पीड़िता ने कहा है कि आवेदक ने उसके साथ दुष्कर्म किया है। दुष्कर्म के बारे में पूछने पर उसने बताया कि आवेदक ने उसकी पैजामी के साथ-साथ अपनी पैंट भी उतार दी और उस पर लेट गया। यह तर्क देकर बहुत जोर दिया गया है कि पीड़िता द्वारा दं0प्र0सं0 की धारा 164 के तहत अपने बयान में किया गया खुलासा धारा 375 (सी) भा0दं0सं0 के दायरे में नहीं आता है क्योंकि उक्त प्रावधान आकर्षित करेगा यदि उक्त हेरफेर पैठ का कारण बनता है जबकि वर्तमान मामले में पीड़िता की धारा 164 दं0प्र0सं0 के तहत बयान के अनुसार, कोई प्रवेश नहीं किया गया था, इसलिए, उक्त प्रावधान लागू नहीं होता है।

7. पीड़िता की मेडिकल जांच रिपोर्ट का हवाला देते हुए तर्क दिया गया है कि पीड़िता के निजी अंग पर कोई चोट नहीं थी और सप्लीमेंट्री रिपोर्ट में कोई स्पर्मेटोजोआ नहीं मिला और डॉक्टर की राय थी कि यौन शोषण के बारे में कोई सकारात्मक राय नहीं दी जा सकती। अपने सबमिशन के समर्थन में, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया है:

1. **आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1687/2013, (दिगंबर हरिनखेडे और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य),** 16.12.2018 को निर्णीत (म.प्र. उच्च न्यायालय)।

2. **संतोष बनाम केरल राज्य,** 2021 (3) केएलजे 927 (केरल उच्च न्यायालय)

3. **आपराधिक अपील संख्या 5/2020 (छेफुलसन स्नैटांग बनाम मेघालय राज्य),** 14.3.2022 को निर्णीत)

8. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि आवेदक की चिकित्सा परीक्षा भी आयोजित नहीं की गई थी ताकि यह पता लगाया जा सके कि यौन अपराध किया गया था या नहीं, जो धारा 53 ए दं0प्र0सं0 के अनुसार अनिवार्य हैं। सात दिन बाद 31.08.2022 को पीड़िता का मेडिकल परीक्षण भी किया गया। चूंकि पीड़िता एक अनपढ़ लड़की है, इसलिए उसका अस्थिभंग परीक्षण कराया गया था, जिसके अनुसार उसकी आयु लगभग 17 वर्ष है, इसलिए दोनों तरफ से दो वर्ष की मामूली त्रुटि हो सकती है।

अनुवादित

9. अंत में, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया जाता है कि आवेदक के न्यायिक प्रक्रिया से भागने या अभियोजन साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ करने का कोई मौका नहीं है। आवेदक 08.9.2022 से जेल में बंद है।

10. आवेदक श्री रवीन्द्र कुमार सिंह की जमानत के लिए प्रार्थना का विरोध करते हुए, विद्वान अतिरिक्त सरकारी अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि धारा 164 दं0प्र0सं0 के तहत पीड़िता द्वारा अपने बयान में लगाए गए आरोपों को देखते हुए, धारा 376 के तहत अपराध आवेदक के खिलाफ बनाया जाता है और अपराध की गंभीरता को देखते हुए, आवेदक की जमानत याचिका खारिज कर दी जाती है।

11. जहां तक आवेदक के विद्वान अधिवक्ता के पहले तर्क का संबंध है कि एफआईआर अत्यधिक देरी के साथ दर्ज की गई है, जिसके लिए कोई प्रशंसनीय स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है, मुझे लगता है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट स्वयं बोलती है कि इसे पुलिस अधीक्षक को किए गए प्रार्थना पत्र के आधार पर दर्ज किया गया है, लोक शिकायत प्रकोष्ठ ने 29.8.2022 को यह बताया है कि अपनी नाबालिग बेटी को फुसलाने के संबंध में उसने थाना राजपुरा में प्रार्थना पत्र दिया है, लेकिन उसकी प्राथमिकी दर्ज नहीं की गई है। एफआईआर के अवलोकन से ही यह स्पष्ट है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट पुलिस अधीक्षक के हस्तक्षेप के बाद दर्ज की गई है। इसलिए, मेरी राय है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में देरी को अभियोजन पक्ष द्वारा उचित रूप से समझाया गया है। इसके अलावा धारा 376 भा0दं0सं0 के तहत एक मामले में, देरी, अगर ठीक से समझाया जाए, तो अभियोजन पक्ष के मामले के लिए घातक नहीं है।

12. **राम नरेश और अन्य बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, एआईआर 201`2, एससी 1357** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि एफआईआर दर्ज करने में देरी, यदि कोई हो, अगर ठीक से समझाया गया है, तो अभियोजन पक्ष के मामले के लिए किसी भी तरह से घातक नहीं है।

13. **तारा सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 1991 एससी 63** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि केवल एफआईआर दर्ज करने में देरी से प्रतिकूल निष्कर्ष की गुंजाइश नहीं मिल सकती है जिससे अभियोजन पक्ष के मामले को पूरी तरह से खारिज कर दिया जा सकता है।

14. **पंजाब राज्य बनाम गुरमीत सिंह और अन्य, 1996 एससीसी (2) 384** माननीय सर्वोच्च न्यायालय में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार आयोजित किया:

> *हमारी राय में, एफआईआर दर्ज करने में कोई देरी नहीं हुई थी और अगर कुछ देरी हुई थी, तो न केवल अभियोजन पक्ष द्वारा इसे ठीक से समझाया गया है, बल्कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में भी स्वाभाविक था। न्यायालय इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं कर सकती हैं कि यौन अपराधों में एफआईआर दर्ज करने में देरी कई कारणों से हो सकती है, विशेष रूप से अभियोक्ता या उसके परिवार के सदस्यों की पुलिस के पास*

अवैधानिक

जाने और घटना के बारे में शिकायत करने की अनिच्छा जो शिकायतकर्ता की प्रतिष्ठा और उसके परिवार के सम्मान से संबंधित है। इसे शांत विचार देने के बाद ही आमतौर पर यौन अपराध की शिकायत दर्ज की जाती है।

15. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का दूसरा तर्क यह है कि चूंकि योनि में पुरुष अंग का प्रवेश नहीं था, इसलिए आवेदक के खिलाफ धारा 376 भा0दं0सं0 के तहत कोई अपराध नहीं बनता है। आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क पूरी तरह से गलत है क्योंकि पीड़िता ने दं0प्र0सं0 की धारा 161 के तहत अपने बयान में कहा है कि जब वह घास लाने के लिए जंगल गई थी, तो आरोपी-आवेदक उसे जबरन ले गया और उसके साथ दुष्कर्म किया और उसे गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी भी दी। आगे दं0प्र0सं0 की धारा 164 के तहत अपने बयान में पीड़िता ने कहा है कि 24.8.2022 को दोपहर करीब 3.00 बजे जब वह घास काटने गई थी, आरोपी वहां आया और उसे जबरन कच्चा रोड से होते हुए एक कमरे में सुनसान जगह पर ले गया जहां उसने उसके साथ दुष्कर्म किया। दुष्कर्म के बारे में न्यायालय द्वारा एक विशिष्ट प्रश्न पर, पीड़िता ने कहा है कि आरोपी ने उसकी पैजामी उतार दी और उसके बाद उसने अपनी पैंट भी उतार दी और उसके ऊपर लेट गया। अगले दिन यानी 25.8.2022 को रात करीब 12.00 बजे वह उसे गांव के बाहर छोड़कर चला गया।

16. बेहतर मूल्यांकन के लिए, दं0प्र0सं0 की धारा 161 और 164 के तहत पीड़िता के बयान नीचे दिए गए हैं:

"बयान किया कि मेरा नाम "X" पुत्री "Y" ..... जनपद सम्भल की रहने वाली हूं। मेरी उम्र लगभग 17 वर्ष है। मै पढ़ी लिखी नही हूं। दिनांक 24.08.2022 को लगभग समय 3 बजे के करीब मै जंगल में अकेली घास लेने के लिये गयी थी तभा अचानक पीछे से मेरे ही गांव का रहने वाला आशाराम s/o महेन्द्र ने मेरी पीछे से कौलिया भर ली और मुझे डराकर अपने साथ मेरी बिना मर्जी के जबरदस्ती मुझे अपने साथ ले गया। जहा पर उसने मेरे साथ गलत काम मेरी बेइज्जती भी की और मुझसे कहा कि अगर तूने किसी को इस बात के बारे में बताया तो तुझे और तेरे घरवालो को जान से मार दूंगा। दिनांक 25.08.2022 को वह मुझे गांव के बाहर छोडकर भाग गया। फिर जैसेतैसे मैने अपने घर आकर यह सारी बात अपनी मां से बतायी। यही मेरा बयान है।

बयान पीडिता "X" अन्तर्गत धारा 164 दं0प्र0सं0..... पीडिता "X" उम्र लगभग 17 वर्ष पुत्री "Y" निवासी ..... जिला सम्भल ने सशपथ बयान किया कि दिनांक 24.08.2022 को दिन 03 बजे मै घास काटने गयी थी आशाराम वहां आ गया वह मेरे गावं का ही है मै बचपन से उसे जानती हूँ उस वक्त घटना के दौरान वहां और कोई नही था आशाराम ने मुझे पीछे से पकड़ लिया और बाईक पर बैठा लिया और कच्चे रास्ते बहुत

अशोधित

दूर ले गया था हमे पहुचते हुये वहाँ अन्धेरा हो गया था मैं अपनी मर्जी से नही गयी थी वहां एक कमरे मे आशाराम लेकर गया था कमरे में कोई और नहीं था वहां आशाराम ने मेरे साथ गन्दा काम किया गन्दा काम के मतलब पूछने पर पीडिता ने बताया कि मेरी पजामी उतारी और उसने अपनी पेन्ट उतारी और मेरे ऊपर लेट गया था इसके आगे क्या किया मुझे नही पता फिरदिनांक 25.08.2022 की शाम को लगभग 12 बजे मुझे गांव के बाहर छोड गया था पुलिस ने बयान लिया था मेडिकल भी हुआ है मुझे और कुछ नही कहना है"

17. दं0प्र0सं0 की धारा 164 के तहत पीड़िता के बयान के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि आवेदक उसे जबरन एक सुनसान जगह पर ले गया, रात भर उसे एक कमरे में रखा और उसके साथ बलात्कार किया और उसके बाद अगले दिन, रात में उसने पीड़िता को गांव के बाहर छोड़ दिया।

18. मेडिकल बोर्ड की रिपोर्ट के अनुसार मुख्य चिकित्सा अधिकारी, आर्थोपेडिक सर्जन और रेडियोलॉजिस्ट, संभल शामिल हैं, पीड़िता की उम्र 17 वर्ष है। हालांकि, पीड़िता की मेडिकल रिपोर्ट के अनुसार, पीड़िता के शरीर या निजी हिस्से पर कोई चोट नहीं पाई गई थी, लेकिन पीड़िता का हाइमन फटा हुआ और ठीक पाया गया था।

19. **आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1687/2013, (दिगंबर हरिनखेडे और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य), संतोष बनाम केरल राज्य, और (चेफुलसन स्नैटांग बनाम मेघालय राज्य) (पूर्वोक्त)** जिस पर आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने भरोसा किया है, वर्तमान मामले के तथ्यों पर बिल्कुल भी लागू नहीं होते हैं और इसलिए, आवेदक के लिए कोई मदद नहीं करते हैं।

20. **दिगंबर हरिनखेडे और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य) (पूर्वोक्त)** एक ऐसा मामला था जिसमें अभियोजन पक्ष के स्वीकृत मामले के अनुसार, अभियुक्त ने अभियोक्ता के स्तन को दबाया, लेकिन विद्वान विचारण न्यायालय ने धारा 376 (1) भा0दं0सं0 के तहत आरोप तय किया, जिसे मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने रद्द कर दिया था।

21. **संतोष बनाम केरल राज्य, (पूर्वोक्त)** में केरल उच्च न्यायालय ने यौन अपराधों से बच्चों के संरक्षण अधिनियम, 2012 की धारा 5 (एम) और 6 के साथ पठित धारा 12, 9 (आई) (एम) के साथ पठित धारा 12, 9 (आई) (एम) के साथ पठित धारा 11 (i) के तहत अपीलकर्ता की सजा को रद्द करते हुए; उन्हें धारा 376 (2) (i) और धारा 377 भा0दं0सं0 के तहत सजा सुनाई गई थी, उन्हें धारा 375 (c), 354 और 354A (1) (i) भा0दं0सं0 के साथ पठित धारा 376 (1) के तहत सजा सुनाई गई थी।

22. **छेफुलसन स्नैटांग बनाम मेघालय राज्य (पूर्वोक्त**) में, पीड़िता ने अपनी जिरह में कहा कि "यह एक तथ्य है कि आरोपी व्यक्ति ने मेरी योनि के अंदर अपने पुरुष अंग में प्रवेश नहीं किया, लेकिन उसने मेरे अंडरवियर के ऊपर से रगड़ दिया"। शिलांग में मेघालय उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच ने अपीलकर्ता की सजा को बरकरार रखते हुए निम्नानुसार आयोजित किया:

अनुवादित

यहां तक कि अगर पीड़िता की जिरह में उसके साक्ष्य को अंकित मूल्य पर लिया जाता है, तो इसका मतलब यह नहीं होगा कि कोई भेदक सेक्स नहीं था। यदि यह स्वीकार किया जाए कि प्रासंगिक समय पर पीड़िता ने अपने जांघिया पहने हुए थे और अपीलकर्ता ने अपने जांघिया के ऊपर से अपना अंग रगड़ दिया था, तो प्रवेश में कोई कठिनाई नहीं थी। दंड संहिता की धारा 375 के प्रयोजन के लिए प्रवेश पूरा होना जरूरी नहीं है। पैठ का कोई भी तत्व प्रासंगिक प्रावधान के उद्देश्य के लिए पर्याप्त होगा। इसके अलावा, दंड संहिता की धारा 375 (बी) यह मानती है कि योनि या मूत्रमार्ग में किसी भी वस्तु का किसी भी हद तक सम्मिलन बलात्कार के समान होगा। यहां तक कि अगर यह स्वीकार किया जाता है कि अपीलकर्ता ने पीड़िता के जांघिया पहनने के बावजूद पीड़िता की योनि या मूत्रमार्ग में अपने अंग को मजबूर किया, तब भी यह दंड संहिता की धारा 375 (बी) के उद्देश्य के लिए प्रवेश के बराबर होगा।

किसी भी घटना में, दंड संहिता की धारा 375 (सी) के आधार पर, जब कोई व्यक्ति किसी महिला के शरीर के किसी भी हिस्से में हेरफेर करता है ताकि योनि या मूत्रमार्ग में प्रवेश किया जा सके, तो यह कृत्य बलात्कार की श्रेणी में आएगा। वर्तमान मामले में इस तरह की पैठ के पर्याप्त सबूत हैं।

23. **छेफुलसन स्नैटांग बनाम मेघालय राज्य** में उपरोक्त निर्णय आवेदक के लिए कोई मदद नहीं करता है बल्कि यह अभियोजन पक्ष के पक्ष में है।

24. एफआईआर संस्करण के अनुसार, विचाराधीन घटना 24.8.2022 को हुई थी और पीड़िता की चिकित्सा जांच 31.8.2022 को की गई थी, यानी घटना के एक सप्ताह बाद। मेडिकल रिपोर्ट में, पीड़िता का हाइमन फटा हुआ और ठीक पाया गया था, जिससे पता चलता है कि पीड़िता के साथ बलात्कार किया गया था।

25. स्वीकार किया कि हाथ में मामले में पीड़िता नाबालिग है जिसकी उम्र लगभग 17 वर्ष है। भा0दं0सं0 की धारा 375 के तहत बलात्कार के अपराध को पढ़ने से पता चलता है कि अठारह साल से कम उम्र की महिला के साथ उसकी सहमति के साथ या उसके बिना, संभोग बलात्कार के बराबर है और इस तरह के अपराध को साबित करने के लिए केवल प्रवेश पर्याप्त है। अभिव्यक्ति 'प्रवेश' महिला भागों में पुरुष अंग के प्रवेश को दर्शाता है, हालांकि, यह मामूली हो सकता है। चूंकि, पीड़िता लगभग डेढ़ दिन तक आवेदक की कैद में रही और उसके साथ दुष्कर्म करने का विशिष्ट आरोप था और जांच अधिकारी द्वारा पूछे जाने पर, उसने समझाया है कि आवेदक ने पहले अपनी पैजामी उतारी और उसके बाद खुद को निर्वस्त्र कर दिया और उसके ऊपर लेट गई। आवेदक-अभियुक्त का यह मामला नहीं है कि बलात्कार करने की कोशिश करने के बाद पीड़िता को बचाने के लिए किसी ने हस्तक्षेप किया या जगह पर आया जिसके परिणामस्वरूप वह कार्य पूरा नहीं कर सका।

अनुवादित

26. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **मध्य प्रदेश राज्य बनाम महेंद्र उर्फ गोलू, (2022)12 एससीसी 442** के मामले में बलात्कार करने की 'तैयारी' और 'प्रयास' के बीच अंतर निर्धारित किया और अपराध करने के तीन चरणों की व्याख्या की, जो इस प्रकार हैं:

> *"यह आपराधिक न्यायशास्त्र की तय पूर्वधारणा है कि हर क्रिम में, पहला, मेन्स री (प्रतिबद्ध करने का इरादा), दूसरा, इसे करने की तैयारी, और तीसरा, प्रतिबद्ध करने का प्रयास है। यदि तीसरा चरण, यानी 'प्रयास' सफल है, तो अपराध पूरा हो गया है। यदि प्रयास विफल हो जाता है, तो अपराध पूरा नहीं होता है, लेकिन कानून अभी भी उक्त कार्य का प्रयास करने के लिए व्यक्ति को दंडित करता है। 'प्रयास' दंडनीय है क्योंकि अपराध का एक असफल स्वीकृति भी मासिक धर्म, नैतिक अपराध से पहले होता है, और सामाजिक मूल्यों पर इसका अपमानजनक प्रभाव वास्तविक स्वीकृति से कम नहीं है।*

27. वर्तमान मामले में चूंकि आवेदक के कृत्य इसे करने के प्रयास से परे चरण से अधिक हैं, इसलिए वह धारा 376 भा0दं0सं0 के तहत दंडनीय अपराध का दोषी है।

28. भले ही, तर्क के लिए, यह माना जाता है कि कोई प्रवेश नहीं था, तब भी आवेदक धारा 376/511 भा0दं0सं0 के तहत दंडित होने के लिए उत्तरदायी है।

29. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कई निर्णयों में कहा कि महिला अंगों में पुरुष अंग का थोड़ा सा भी प्रवेश बलात्कार के बराबर है।

30. केरल उच्च न्यायालय ने **केरल राज्य बनाम कुंडुमकारा गोविंदन,** 1969 सीआरएलजे में बलात्कार के अपराध की सामग्री की जांच करते हुए निम्नानुसार आयोजित किया:

> *31. "भा0दं0सं0 की धारा 376 के तहत अपराध की जड़ बलात्कार है और यह संभोग को दर्शाता है। "संभोग" शब्द का अर्थ है यौन संबंध। इसे स्वतंत्र संगठन के सदस्यों द्वारा पारस्परिक लगातार कार्रवाई के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। एक रूपक द्वारा "संभोग" शब्द, "वाणिज्य" शब्द की तरह लिंगों के संबंध पर लागू होता है। संभोग में कुछ स्पष्ट रूप से परिभाषित और सीमित वस्तुओं के लिए दूसरे संगठन के सदस्य द्वारा एक संगठन का अस्थायी दौरा होता है। आने वाले संगठन का प्राथमिक उद्देश्य यौन संकट के परिणामस्वरूप नसों के एक डिटेंट के माध्यम से उत्साह प्राप्त करना है। कोई संभोग नहीं है जब तक कि आने वाले सदस्य को कम से कम आंशिक रूप से दौरा किए गए संगठन द्वारा कवर नहीं किया जाता है, क्योंकि संभोग पारस्परिकता को दर्शाता है। जांघों के बीच संभोग में आने वाले पुरुष अंग को कम से कम आंशिक रूप से जीव द्वारा कवर किया जाता है, जांघ; जांघों को एक साथ और तंग रखा जाता है।*

31. **रंजीत हजारिका बनाम असम राज्य** (1988) 8 एससीसी 635 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह माना गया है कि पीड़िता

अनुवादित

के निजी अंगों पर हाइमन का टूटना या चोट की अनुपस्थिति अभियोक्ता की गवाही को झुठलाती नहीं है। यौन उत्पीड़न के शिकार व्यक्ति के साक्ष्य घायल गवाह के साक्ष्य के बराबर हैं। जिस तरह एक गवाह जिसने चोट को बरकरार रखा है, वह इस अर्थ में सबसे अच्छा गवाह है कि वह वास्तविक अपराधी को निष्कासित करने की कम से कम संभावना रखता है, यौन अपराधी के शिकार का सबूत महान वजन का हकदार है, इसके बावजूद पुष्टि की अनुपस्थिति है।

32. **मदन गोपाल कक्कड़ बनाम नवल दुबे** (1992) 3 एससीसी 204 में, यह निम्नानुसार आयोजित किया गया है:

> *"इस प्रकार बलात्कार के अपराध का गठन करने के लिए, यह आवश्यक नहीं है कि वीर्य के उत्सर्जन और हाइमन के टूटने के साथ लिंग का पूर्ण प्रवेश होना चाहिए। लेबिया मेजा या योनी या पेडेंडा के भीतर लिंग का आंशिक प्रवेश वीर्य के उत्सर्जन के साथ या बिना या यहां तक कि प्रवेश का प्रयास भी कानून के उद्देश्य के लिए काफी पर्याप्त है। इसलिए, जननांगों को कोई चोट पहुंचाए बिना या कोई मौलिक दाग छोड़े बिना कानूनी रूप से बलात्कार का अपराध करना काफी संभव है।*

33. **राधा कृष्ण नागेश बनाम आंध्र प्रदेश राज्य** (2013) 11 एससीसी 688 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार आयोजित किया:

> *"केवल तथ्य यह है कि हाइमन बरकरार था और उसके निजी अंगों का कोई वास्तविक घाव नहीं था, इस तथ्य का निर्णायक नहीं है कि उसके साथ बलात्कार नहीं किया गया था। पीडब्लू -9 के अनुसार, लड़की के साथ बलात्कार के प्रयास का एक निश्चित संकेत था। इसके अलावा, बाद में लड़की के निजी अंगों में मानव मूल का वीर्य पाया गया, जैसा कि एफएसएल रिपोर्ट से संकेत मिलता है। यह पर्याप्त रूप से इंगित करेगा कि उसके साथ बलात्कार किया गया था। प्रवेश ही बलात्कार के अपराध को साबित करता है, लेकिन इसके विपरीत सच नहीं है, यानी अगर पैंठ नहीं है, तो भी इसका मतलब यह नहीं है कि बलात्कार नहीं है।*

34. मोदी ने अपनी पुस्तक मोदी टेक्स्टबुक ऑफ मेडिकल ज्यूरिसप्रूडेंस एंड टॉक्सिकोलॉजी, 23वें संस्करण में पृष्ठ 897 पर इस प्रकार कहा:

> *"बलात्कार के अपराध का गठन करने के लिए, यह आवश्यक नहीं है कि वीर्य के उत्सर्जन और हाइमन के टूटने के साथ लिंग का पूर्ण प्रवेश होना चाहिए। वीर्य के उत्सर्जन के साथ या बिना लेबिया मेजा या योनी या पुडेंडा के भीतर लिंग का आंशिक प्रवेश, या यहां तक कि प्रवेश का प्रयास भी कानून के उद्देश्य के लिए काफी पर्याप्त है। इसलिए, जननांगों को कोई चोट पहुंचाए बिना या कोई मौलिक दाग छोड़े बिना कानूनी रूप से बलात्कार का अपराध करना काफी संभव है। ऐसे मामले में चिकित्सा*

अनुवादित

अधिकारी को अपनी रिपोर्ट में नकारात्मक तथ्यों का उल्लेख करना चाहिए, लेकिन अपनी राय नहीं देनी चाहिए कि कोई बलात्कार नहीं किया गया था।"

पृष्ठ 928 पर: *छोटे बच्चों में, हाइमन आमतौर पर फट नहीं जाता है, लेकिन लेबिया की सूजन और चोट के साथ लाल और भीड़भाड़ हो सकता है। यदि काफी हिंसा का उपयोग किया जाता है, तो अक्सर फोरचेट और पेरिनेम का क्षरण होता है।*

35. पारिख की चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान की पाठ्यपुस्तक में, निम्नलिखित मार्ग मिलता है:

"संभोग: कानून में, इस शब्द का अर्थ वीर्य के उत्सर्जन के साथ या उसके बिना लिंग द्वारा योनी के प्रवेश की थोड़ी सी भी डिग्री के लिए आयोजित किया जाता है। इसलिए, जननांगों को कोई चोट पहुंचाए बिना या कोई मौलिक दाग छोड़े बिना कानूनी रूप से बलात्कार का अपराध करना काफी संभव है।

36. **हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम आशा राम, 2006 क्रि.एल.जे. धारा 139** एक ऐसा मामला था जिसमें हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय ने अभियुक्त आशा राम को इस आधार पर बरी कर दिया था कि पीड़िता के सलवार और अंडरवियर पर कोई शुक्राणुजोज़ा नहीं पाया गया था, हालांकि अभियोजन पक्ष के अनुसार, संभोग का पूरा कार्य किया गया था। इसके अलावा, यह दिखाने के लिए कोई सबूत रिकॉर्ड पर नहीं आया है कि हाइमन फट गया था। रिकॉर्ड पर आने वाले चिकित्सा साक्ष्य, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, अत्यधिक अविश्वसनीय है और यहां तक कि अन्यथा यह स्थापित नहीं करता है कि पीड़िता को संभोग के अधीन किया गया था। माननीय उच्चतम न्यायालय ने उच्च न्यायालय के निर्णय को रद्द करते हुए निम्नानुसार निर्णय दिया है -

"हम अपनी नाराजगी और निराशा दर्ज करते हैं, जिस तरह से उच्च न्यायालय ने अपराध के साथ लापरवाही से निपटा, जैसा कि इस मामले में हुआ है, नाबालिग लड़कियों पर यौन हमले की खतरनाक और चौंकाने वाली वृद्धि को नजरअंदाज कर दिया। उच्च न्यायालय सरासर असंवेदनशीलता से प्रभावित था, नाबालिगों के खिलाफ यौन हिंसा के बढ़ते खतरे से पूरी तरह से बेखबर, पिता द्वारा बहुत कम। उच्च न्यायालय ने अभियोजन पक्ष के सबूतों की भी पूरी तरह से अनदेखी की, जिसने विश्वास को प्रेरित किया और स्वीकृति योग्य थी। अब यह कानून का अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांत है कि दोषसिद्धि केवल अभियोक्ता की गवाही पर स्थापित की जा सकती है जब तक कि पुष्टि की मांग करने के लिए बाध्यकारी कारण न हों। एक अभियोक्ता का सबूत एक घायल गवाह की तुलना में अधिक विश्वसनीय है। यौन उत्पीड़न की पीड़िता की गवाही तब तक महत्वपूर्ण

अनुवादित

है जब तक कि उसके बयान की पुष्टि करने के लिए बाध्यकारी कारण न हों, अदालतों को एक आरोपी को दोषी ठहराने के लिए अकेले यौन उत्पीड़न के पीड़िता की गवाही पर कार्रवाई करने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए जहां उसकी गवाही आत्मविश्वास को प्रेरित करती है और विश्वसनीय पाई जाती है। यह कानून का एक सुस्थापित सिद्धांत भी है कि अभियोक्ता की गवाही पर न्यायिक निर्भरता के लिए एक शर्त के रूप में पुष्टि करना कानून की आवश्यकता नहीं है, बल्कि दी गई परिस्थितियों में विवेक का मार्गदर्शन है। ***अभियोक्ता का साक्ष्य घायल गवाह की तुलना में अधिक विश्वसनीय है। यहां तक कि अभियोक्ता के बयान में मामूली विरोधाभास या महत्वहीन विसंगतियां भी अन्यथा विश्वसनीय अभियोजन मामले को खारिज करने का आधार नहीं होनी चाहिए।***

37. **भरवाड़ा भोगिनभाई हिरजीभाई बनाम गुजरात राज्य, एआईआर 1983 एससी 753** के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार आयोजित किया:

भारतीय सेटिंग में, एक नियम के रूप में पुष्टि के अभाव में यौन उत्पीड़न के शिकार व्यक्ति की गवाही पर कार्रवाई करने से इनकार करना, चोट के अपमान को जोड़ रहा है। बलात्कार या यौन उत्पीड़न की शिकायत करने वाली लड़की या महिला के साक्ष्य को संदेह, अविश्वास या संदेह से रंगे लेंस वाले चश्मे की सहायता से क्यों देखा जाना चाहिए? ऐसा करना पुरुष प्रधान समाज में पुरुष वर्चस्व के आरोप को सही ठहराना है। हमें पुष्टि की आवश्यकता के समर्थन में तर्क का विश्लेषण करना चाहिए और इसे अथक और पश्चाताप रहित जिरह के अधीन करना चाहिए। और हमें संभावनाओं के प्रकाश में तार्किक, न कि राय के साथ ऐसा करना चाहिए, अपने पैरों को मजबूती से भारत की धरती पर स्थापित करके और अपनी आंखों को भारतीय क्षितिज पर केंद्रित रखते हुए। हमें पश्चिमी दुनिया में किए गए दृष्टिकोण से पैरों से नहीं बहना चाहिए, जिसका अपना सामाजिक परिवेश, अपने स्वयं के सामाजिक रीति-रिवाज, अपने स्वयं के अनुमेय मूल्य और जीवन का अपना कोड है। पश्चिमी दुनिया की सामाजिक पारिस्थितिकी की पृष्ठभूमि में यौन अपराध स्थापित करने के लिए पुष्टि को आवश्यक माना जा सकता है। टर्न-की आधार पर उक्त अवधारणा को आयात करना और भारतीय समाज और उसके प्रोफाइल की पूरी तरह से अलग वातावरण, दृष्टिकोण, रीति-रिवाजों, प्रतिक्रियाओं की परवाह किए बिना भारतीय धरती पर इसे ट्रांसप्लेट करना पूरी तरह से अनावश्यक है।

38. **आंध्र प्रदेश राज्य बनाम बोडेम सुंदर राव, 1995 (6) एससीसी 230** में माननीय सर्वोच्च

अनुवादित

न्यायालय ने महिलाओं के खिलाफ यौन अपराध के मामलों से निपटने के दौरान न्यायालयों को निम्नलिखित शब्दों में चेतावनी दी है:

> *"यौन हिंसा एक अमानवीय कृत्य होने के अलावा एक महिला की गोपनीयता और पवित्रता के अधिकार का एक गैरकानूनी घुसपैठ है। यह उसके सर्वोच्च सम्मान के लिए एक गंभीर झटका है और उसके आत्मसम्मान और गरिमा को ठेस पहुंचाता है। यह पीड़िता को नीचा दिखाता है और अपमानित करता है और जहां पीड़िता एक असहाय निर्दोष बच्चा है, यह एक दर्दनाक अनुभव को पीछे छोड़ देता है। अत न्यायालयों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे महिलाओं के विरुद्ध यौन अपराध के मामलों को अत्यंत संवेदनशीलता के साथ निपटाएं। ऐसे मामलों से सख्ती से निपटने की जरूरत है।*

39. जहां तक आवेदक के विद्वान अधिवक्ता के अंतिम तर्क का संबंध है कि आवेदक की चिकित्सा परीक्षा दं0प्र0सं0 की धारा 53 ए के अनुसार अभिनिर्धारित नहीं की गई थी, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि चूंकि आरोपी को 08.9.2022 को गिरफ्तार किया गया था, यानी घटना के पंद्रह दिनों के बाद, इसलिए, जांच अधिकारी ने धारा 53 ए दं0प्र0सं0 के तहत उसकी जांच करना आवश्यक नहीं समझा।

40. न्यायालय को अभियोक्ता के साक्ष्य की सराहना करते समय देश में प्रचलित मूल्यों को ध्यान में रखना चाहिए, विशेष रूप से ग्रामीण भारत में। एक महिला के लिए यौन उत्पीड़न का शिकार होने की झूठी कहानी के साथ आना असामान्य होगा ताकि एक निर्दोष व्यक्ति को फंसाया जा सके। हमारे देश में, यौन आक्रामकता की शिकार एक महिला, किसी को झूठा फंसाने के बजाय चुपचाप पीड़िता होगी। बलात्कार पीड़िता का कोई भी बयान एक महिला के लिए बेहद अपमानजनक अनुभव होता है और जब तक वह यौन अपराध का शिकार नहीं होती है, तब तक वह असली अपराधी के अलावा किसी और को दोषी नहीं ठहराएगी।

41. मामले के समग्र तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और साथ ही पक्षकारों की ओर से प्रस्तुत प्रस्तुतियों, अपराध की गंभीरता, आवेदक को सौंपी गई भूमिका और सजा की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए, मुझे आवेदक को जमानत पर रिहा करने का कोई अच्छा आधार नहीं मिलता है।

42. तदनुसार, इस स्तर पर जमानत प्रार्थना पत्र खारिज किया जाता है।

43. यह स्पष्ट किया जाता है कि ऊपर की गई टिप्पणियां इस जमानत प्रार्थना पत्र के निर्धारण की सीमा तक सीमित हैं और किसी भी तरह से मामले के गुण-दोष पर अभिव्यक्ति के रूप में नहीं मानी जाएंगी। विचारण न्यायालय पक्षकारों द्वारा पेश किए जाने वाले साक्ष्य के आधार पर अपने स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए पूर्णतः स्वतंत्र होगा।

अनुवादित

(2023) 6 ILRA 332

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 31.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा

माननीय न्यायमूर्ति विनोद दिवाकर

आपराधिक अपील संख्या 2097 वर्ष 2019

और

आपराधिक अपील संख्या 1794 वर्ष 2019

चिंटू @ कुलदीप ...अपीलकर्ता

बनाम

यू.पी. राज्य ...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता: श्री सूर्य प्रताप सिंह परमार, श्री अजय कुमार पांडे, श्री शेषाद्री त्रिवेदी, श्री श्याम बिहारी त्रिपाठी, श्री सुरेश चंद्र यादव, श्री विपिन कुमार, श्री सतीश त्रिवेदी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादी के अधिवक्ता: जी.ए.

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 452, 376, 386, 506 और 302 - हत्या के लिए सजा - दोषसिद्धि के खिलाफ अपील - आजीवन कारावास - मृत्यु पूर्व बयान की प्रासंगिकता - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161, 207 और 313 - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 32 - अपीलकर्ताओं को बलात्कार, बलात्कार का प्रयास, हत्या और पीड़िता को आग लगाने के अपराध का दोषी ठहराया गया - उपचार के दौरान उसकी मृत्यु हो गई - अपीलकर्ताओं द्वारा तर्क, एफआईआर दर्ज करने में 48 घंटे की देरी, अभियोजन पक्ष द्वारा स्पष्ट नहीं - कोई प्रत्यक्षदर्शी नहीं - न तो यह अभियोजन पक्ष का मामला था और न ही बचाव पक्ष का कि पीड़िता को दुर्घटनावश आग लगी - दो मृत्यु पूर्व बयान दर्ज किए गए - उसने अपने पति, पीडब्लू-1 और एस.आई., पीडब्लू-3 को घटना और अपराध करने के बारे में बताया, जिन्होंने अस्पताल में उसका बयान दर्ज किया - पीडब्लू-1 और डीडब्लू-1 की गवाही से पता चला कि पीडब्लू-1 अविश्वसनीय गवाह था - पीडब्लू-1 ने कहा कि वह पीड़िता को अस्पताल लेकर आया था, जबकि एमएलसी इसके विपरीत दर्शाती है - पीडब्लू-1 को पीडब्लू-3 द्वारा अस्पताल में दर्ज बयान का गवाह नहीं बनाया गया - पीडब्लू-1 और पीडब्लू-3 की अस्पताल में उपस्थिति संदिग्ध थी - पीडब्लू-3 के बयान की कोई प्रासंगिकता नहीं है, अभियोजन पक्ष द्वारा यह साबित नहीं किया गया कि उसे वरिष्ठ अधिकारी द्वारा अस्पताल में पीड़िता का बयान दर्ज करने के लिए कहा गया था - शिकायतकर्ता की एकमात्र गवाही को छोड़कर अपीलकर्ताओं और पीड़िता के बीच कोई दुश्मनी नहीं थी - डॉक्टर के अनुसार, मृतका को 83% तक जलने की चोटें आईं, इसलिए वह बयान देने की स्थिति में नहीं थी - मृत्युपूर्व बयान दर्ज करते समय अपनाई गई प्रक्रिया में कई खामियां थीं। (पैरा 4, 31, 34 से 71)

आपराधिक अपीलें स्वीकार की गईं। (ई-13)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. दलीप सिंह और अन्य बनाम स्टेट ऑफ पुणे, एआईआर (1979) एससी 1173
2. नल्लपति सिवैया बनाम उपविभागीय अधिकारी, गुंटूर, (2007) 15 एससीसी 465
3. अरविंद सिंह बनाम स्टेट ऑफ बिहार, (2001) 6 एससीसी 407

अनुवादित

4. अरुण भानुदास पवार बनाम स्टेट ऑफ महाराष्ट्र, (2008) 11 एससीसी 232

5. पूनम बाई बनाम स्टेट ऑफ छत्तीसगढ़, (2019) 6 एससीसी 145

6. कुंदुला बाला सुब्रह्मण्यम और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (1993) 2 एससीसी 684

7. सुधाकर बनाम एम.पी. राज्य, (2012) 7 एससीसी 569

8. पानीबेन (श्रीमती) बनाम गुजरात राज्य, (1992) 2 एससीसी 474

9. लखन बनाम एम.पी. राज्य, (2010) 8 एससीसी 514

10. अमोल सिंह बनाम एम.पी. राज्य, (2008) 5 एससीसी 468

11. शेर सिंह और अन्य बनाम पुणग राज्य, (2008) 4 एससीसी 265

12. महेंद्र सिंह और अन्य बनाम एम.पी. राज्य, (2022) 7 एससीसी 157

(माननीय न्यायमूर्ति विनोद दिवाकर द्वारा दिया गया)

1. हमने अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता, श्री सतीश त्रिवेदी, वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री अजय कुमार पांडे, और राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

2. ये अपीलें विद्वान अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश/फास्ट ट्रैक कोर्ट नंबर 2, हापुड़ द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 313 (राज्य बनाम चिंटू @ कुलदीप) वर्ष 2016 सत्र परीक्षण संख्या 314 वर्ष 2016 (राज्य बनाम मोंटी @ रवींद्र) में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 21.01.2019 के खिलाफ दायर की गई हैं जो केस अपराध संख्या-566 वर्ष 2015 से उद्भूत हैं, जो धारा 452, 376, 386, 506, 302 भ०द०वि० के तहत, थाना-पिलखुआ, जिला हापुड़ में दर्ज की गई हैं, और जिसमें विचारण न्यायालय ने अभियुक्त-अपीलकर्ता चिंटू @ कुलदीप को धारा 452, 376, 386, 506 और 302 भ०द०वि० के तहत और अभियुक्त-अपीलकर्ता मोंटी @ रवींद्र धारा 452, 386, 506, 302, 376/511 भ०द०वि०के तहत दोषी ठहराया है। अपीलकर्ताओं को जुर्माने के अलावा संबंधित अपराधों में अन्य सजाओं के अलावा आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई है।

3. अभियोजन मामला, संक्षेप में, निम्नानुसार है:

4. शिकायतकर्ता अपने गांव में एक किराने की दुकान का मालिक है और किराने का सामान खरीदने के लिए पिलखुआ गया था। दिनांक 8.10.2015 को जब शिकायतकर्ता शाम करीब 07:15 बजे उत्तर प्रदेश के जिला हापुड़ के पिलाखुआ से लौटा तो शिकायतकर्ता ने अपनी पत्नी को जलते हुए देखा। वह उसके सामने गिर गई। शिकायतकर्ता ने आग बुझाने की कोशिश की तो उसके पैर और हाथ झुलस गए। बचाओ बचाओ की आवाज़ सुनने के बाद, शिकायतकर्ता का चचेरा भाई पिंकू घटनास्थल पर पहुंचा और शिकायतकर्ता की पत्नी को कंबल से ढक दिया और आग बुझा दी। शिकायतकर्ता की पत्नी ने शिकायतकर्ता को बताया कि उसकी अनुपस्थिति में, चिंटू और मोंटी, जो उनके बगल में रहते थे, उसके घर आए और उसकी जान को खतरा बताकर पैसे मांगे। चिंटू ने उसके साथ जबरन बलात्कार किया और मोंटी ने बलात्कार करने का प्रयास किया। इसके बाद उन्होंने उस पर मिट्टी का तेल डालकर आग लगा दी और फरार हो गए।

अनुवादित

शिकायतकर्ता ने आगे खुलासा किया कि चिंटू और मोंटी उसके परिवार से ईर्ष्या करते थे, और जब वह किराने के सामान के भुगतान के लिए कहती थी तो वे उसके साथ झगड़ा करते थे; चिंटू और उसके भाई प्रवीण ने घटना से कुछ दिन पहले उसके साथ मारपीट की थी।

5. शिकायतकर्ता तुरंत अपनी पत्नी को इलाज के लिए दिल्ली के जीटीबी अस्पताल ले गया; पत्नी ने चोटों के कारण दम तोड़ दिया और 15.10.2015 को उसकी मृत्यु हो गई।

6. पीड़िता को उसके पति ने दिनांक 08.10.2015 को रात्रि 09:25 बजे जीटीबी अस्पताल, दिल्ली में भर्ती कराया और उसके बाद डॉ. सुशील ने पीड़िता की एम.एल.सी. तैयार कर पीड़िता को बयान के लिए फिट घोषित किया। इस दौरान मौखिक निर्देश प्राप्त करने के बाद थाना-जीटीबी एन्क्लेव, दिल्ली में तैनात सब इन्स्पेक्टर मनीष भाटी अस्पताल पहुंचे और पीड़िता का बयान दर्ज किया, जिसमें उसने बताया कि उसका पति अपने घर पर किराना दुकान चलाता है। लगभग एक महीने पहले, चिंटू के परिवार ने अपनी दुकान से किराने का सामान उधार लिया था। भुगतान मांगने पर चिंटू, मोंटी और चिंटू के भाई प्रवीण ने उसके पति की पिटाई कर दी। मोंटी चिंटू का दोस्त/रिश्तेदार है और उसके घर पर रहता है। 8.10.2015 को उसका ससुर घर से बाहर गया हुआ था और उसका पति दुकान के लिए सामान खरीदने गया था। शाम करीब 7:00 बजे चिंटू और मोंटी उसके घर में घुस गए और उससे पैसे मांगने लगे और उसके पति को जान से मारने की धमकी देने लगे। जब उसने पैसे देने से इनकार कर दिया तो उन्होंने उसे पकड़ लिया और धक्का देकर नीचे गिरा दिया। चिंटू ने उसके साथ बलात्कार किया और मोंटी ने बलात्कार करने का प्रयास किया लेकिन सफल नहीं हो सका। उन्होंने फिर से उससे पैसे मांगे, और जब उसने इनकार कर दिया, तो उन्होंने उस पर मिट्टी का तेल डाला, अलमारी में रखा और उसे आग लगा दी। चिंटू ने उस पर तेल डाला और मोंटी ने माचिस की तीली से आग जलाई। उसका पति उसे दिल्ली के जीटीबी अस्पताल ले गया और डॉक्टर की मौजूदगी में उसका बयान दर्ज किया गया।

7. दिनांक 10.10.2015 को सायं 05:15 बजे पीड़िता के पति राकेश ने थाना-पिलखुआ, जनपद हापुड़ में लिखित शिकायत प्रस्तुत की। लिखित रिपोर्ट के आधार पर, घटना के लगभग दो दिन बाद आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ धारा 452, 376, 307, 386 और 506 भ०द०वि० के तहत शाम 07:15 बजे प्राथमिकी दर्ज की गई थी। चूंकि प्राथमिकी में यौन शोषण का आरोप था, इसलिए यौन शोषण के लिए एक मेडिकल जांच रिपोर्ट 11.10.2015 को दोपहर 03:00 बजे करवाया गया था। रिपोर्ट में यह उल्लेख किया गया है कि पीड़िता को 8.10.2015 को घर पर घातक आग की लौ से जलने का सामना करना पड़ा। रोगी को इंटुबैट (बेहोश करके खाने की नली डालना) किया गया था, जिसका अर्थ है कि वह एक जीवन रक्षक चिकित्सा प्रक्रिया पर थी, पूरी तरह से ड्रेसिंग के साथ कवर किया गया था, 85-90% टीबीएसए, लौ जलती है जिसमें दो डिग्री शामिल हैं, और पैरों को छोड़कर पूरे शरीर पर सतही से गहरी जलन पाई गई थी। बाहरी और आंतरिक परीक्षण करने के बाद, डॉ शालिनी राजदान ने कहा कि "सर्वाइवर के बेहोश होने

अनुवादित

के कारण यौन हिंसा से इनकार नहीं किया जा सकता है"।

8. 15.10.2015 को, पीड़िता ने अपनी चोटों के कारण दम तोड़ दिया और उसे मृत घोषित कर दिया गया। शव परीक्षण 15.10.2015 को दोपहर 01:00 बजे किया गया। शव परीक्षण रिपोर्ट में उल्लेख किया गया है; 8.10.2015 को जलने का कथित इतिहास, जिसके बाद रोगी की मृत्यु 15.10.2015 को सुबह 07:54 बजे हो गई। सामने के निचले हिस्से, नितंबों और पैरों के तलवे के पीछे की त्वचा के एक पैच को छोड़कर पूरे शरीर में एंटी-मॉर्टम फ्लेम बर्न पाए गए। डॉक्टर ने जननांग पर कोई चोट नहीं देखी। शव परीक्षण सर्जन ने मृत्यु का कारण 'संक्रमित एंटी-मॉर्टम लौ जलने के कारण सेप्टिसीमिया शॉक के रूप में निर्धारित किया, जिसमें कुल सतह क्षेत्र का लगभग अस्सी-तीन प्रतिशत शामिल था।

9. पुलिस ने विवेचना की और राकेश, पिंटू, टीटू, संजीव, डॉ. शालिनी राजदान, सब इन्स्पेक्टर सतपाल सिंह, सब इन्स्पेक्टर मनीष भाटी, कांस्टेबल संजय कुमार, कांस्टेबल संतोष, इंस्पेक्टर अवनीश कुमार और इंस्पेक्टर दीपक त्यागी की धारा 161 द०प्र०स० के तहत बयान दर्ज किए और पीड़िता के नक़्शा नज़री, स्पॉट निरीक्षण रिपोर्ट और मेडिकल कागजात सहित सभी सामग्री एकत्र करने के बाद 15.12.2015 को आरोपी-अपीलकर्ताओं के खिलाफ धारा 376, 452, 386, 506 और 302 भ०द०वि० के तहत आरोप पत्र दायर किया। मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने आरोपी-अपीलकर्ताओं के खिलाफ आरोप-पत्र का संज्ञान लिया, धारा 207 द०प्र०स० की आवश्यकताओं का अनुपालन किया, और मामले को सुनवाई के लिए सत्र न्यायालय में भेज दिया।

10. विचारण न्यायालय ने आरोपी-अपीलकर्ताओं के खिलाफ धारा 452, 376, 386, 506 और 302 भ०द०वि० के तहत अलग-अलग आरोप तय किए। आरोपी व्यक्तियों को दिनांक 5.11.2015 के आरोप के आदेश पढ़े गए, और आरोपी अपीलकर्ताओं ने आरोपों से इनकार किया और विचारण चाहा।

11. अपने मामले को साबित करने के लिए, अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित सबूत पेश किए हैं:

i. प्राथमिकी दिनांक 10.10.2015, क-8 के रूप में प्रदर्शित

ii. लिखित रिपोर्ट दिनांक 10.10.2015, क-1 के रूप में प्रदर्शित

iii. पीड़िता का बयान दिनांक 8.10.2015, क-6 के रूप में प्रदर्शित

iv. चिकित्सा परीक्षण रिपोर्ट दिनांक 11.10.2015

v. पंचनामा रिपोर्ट दिनांक 8.10.2015

vi. शव परीक्षण रिपोर्ट दिनांक 15.10.2015, क-12 के रूप में प्रदर्शित

vii. मृत्यु रिपोर्ट दिनांक 15.10.2015, क-4 के रूप में प्रदर्शित

viii. विधि विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट दिनांक 4.2.2017

ix. आरोप पत्र दिनांक 15.12.2015, क-11 के रूप में प्रदर्शित

12. उपरोक्त दस्तावेजी साक्ष्य के अलावा, अभियोजन पक्ष ने राकेश (अ०सा०-1; संजीव कुमार (अ०सा०-2); एस.आई. मनीष भाटी (अ०सा०-3); ए.एस.आई. सतपाल सिंह (अ०सा०-4); कांस्टेबल संजय कुमार (अ०सा०-

अनुवादित

5); इंस्पेक्टर अवनीश कुमार (अ०सा०-6); परीक्षण के दौरान निरीक्षक दीपक त्यागी (अ०सा०-7), और डॉ. शालिनी राजदान (अ०सा०-8) को पेश किया।

13. भले ही आरोप पत्र में अभियोजन पक्ष के ग्यारह गवाहों को शामिल किया गया था, लेकिन अभियोजन पक्ष द्वारा निचली अदालत के समक्ष केवल आठ गवाहों को पेश किया गया था। यह स्पष्ट है कि अभियोजन पक्ष ने विचारण न्यायालय के समक्ष विमुक्ति आवेदन दायर करके प्राथमिकी के एक चश्मदीद गवाह पिंकू को छोड़ दिया, और बाद में उसे अन्य बचाव गवाहों के अलावा बचाव पक्ष/अभियुक्त-अपीलकर्ताओं द्वारा ब०सा०-1 के रूप में पेश किया गया। यह ध्यान रखना प्रासंगिक है कि पिंकू इस तथ्य का गवाह है, जिसने मृतका पर कंबल डालकर आग बुझाई थी और मृतका के पति शिकायतकर्ता (अ०सा०-1) का चचेरा भाई भी है।

14. मुख्य परीक्षा में, अ०सा०-1 ने प्राथमिकी में बताए गए तथ्यों को दोहराया और कहा कि वह अपने गांव में एक किराने की दुकान चलाता है और किराने का सामान खरीदने के लिए पिलखुआ गया था। 8.10.2015 को, शिकायतकर्ता के शाम लगभग 07:15 बजे पिलखुआ से लौटने के बाद, शिकायतकर्ता ने अपनी पत्नी को आग पर देखा, और वह उसके सामने गिर गई। शिकायतकर्ता ने आग बुझाने की कोशिश की तो उसके पैर और हाथ झुलस गए। रेस्क्यू कॉल सुनने के बाद, शिकायतकर्ता का चचेरा भाई पिंकू घटनास्थल पर पहुंचा और पीड़िता को कंबल से ढक दिया। शिकायतकर्ता अपनी पत्नी को इलाज के लिए दिल्ली ले जा रहा था। उसने खुलासा किया कि उसकी अनुपस्थिति में, चिंटू और मोंटी, जो उनके बगल में रहते थे, उनके घर में घुस गए और अपनी जान को खतरा देकर पैसे की मांग की। चिंटू ने उसके साथ जबरन बलात्कार किया और मोंटी ने बलात्कार करने का प्रयास किया। इसके बाद उन्होंने उस पर मिट्टी का तेल डालकर आग लगा दी और फरार हो गए। शिकायतकर्ता ने आगे खुलासा किया कि चिंटू और मोंटी उसके परिवार से ईर्ष्या करते थे, और जब उसने किराने के सामान के लिए भुगतान मांगा तो उन्होंने उसकी पिटाई की। घटना से कुछ दिन पहले चिंटू और उसके भाई प्रवीण ने उसके साथ मारपीट की थी।

15. अ०सा०-1 ने आगे कहा कि उसने अपनी पत्नी को जीटीबी अस्पताल में भर्ती कराया और थाना-पिलखुआ, जिला हापुड़, यूपी में पुलिस को एक लिखित रिपोर्ट दी। थाना के बाहर एक व्यक्ति ने उनके निर्देश पर रिपोर्ट लिखी, और उन्होंने रिपोर्ट की सामग्री को उन्हें पढ़कर सुनाया, और उन्होंने थाना के बाहर लिखित रिपोर्ट पर हस्ताक्षर किए थे। इसके बाद आरोपी-अपीलकर्ता के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज की गई।

16. जिरह में अ०सा०-1 ने बताया कि जब वह पिलखुआ बाजार से घर लौटा तो उसकी पत्नी के अलावा उसके घर पर कोई नहीं था। जब वह घर में घुसा तो उसकी पत्नी उसके सामने गिर गई। उसकी पत्नी के पैरों को छोड़कर पूरे शरीर में आग लगी हुई थी। पत्नी के शव से ऊंची-ऊंची लपटें निकल रही थीं। उस समय उसकी पत्नी की आवाज निकल रही थी, फिर कहा कि जब वह घर पहुंचा तो उसकी पत्नी रो नहीं रही थी। उसके चिल्लाने पर उसका चचेरा भाई पिंकू आ गया। टीटू नहीं आया। नरेंद्र भी

अनुवादित

नहीं आया। पीड़िता के ऊपर फेंका गया कंबल थोड़ा छोड़ दिया गया था। उसने पीड़िता के पास मिट्टी के तेल का कंटेनर पड़ा नहीं देखा या अलमारी में रखा नहीं देखा। उसने जला हुआ कंबल इंस्पेक्टर को नहीं दिया। कुछ धोती को जलने से बचाया गया, जो पीड़िता द्वारा पहना गया था, और उसने धोती को विवेचनाधिकारी को नहीं दिया। उसने जो सामान खरीदा था वह दरवाजे पर गिर गया था। उसने पिंकू को वहीं छोड़ दिया। उसे नहीं पता कि पिंकू कहां गया। वह पीड़िता को राकेश की कार में बिठाकर अस्पताल ले गया। उसे नहीं पता कि अस्पताल पहुंचने में कितना समय लगा। जब वह अस्पताल पहुंचा, तो उसने कुछ कागजात पर हस्ताक्षर किए। उसके साथ एक नर्स थी, और उसने हस्ताक्षर नहीं किए थे। उसके हाथ-पैर भी जल गए थे, लेकिन जीटीबी अस्पताल में मेडिकल नहीं कराया गया। 9.10.2015 को पीड़िता के साथ उसका झगड़ा हुआ था; उसके बाद उसने कुछ नहीं बोली, इशारों से बात की और मरते दम तक नहीं बोली। उसके अलावा नर्स और ड्राइवर अस्पताल में थे। जब वह बाजार गया तो उसके बच्चे अपनी नानी के घर पर थे। काफी मशक्कत के बाद उसके माता-पिता घर आए थे। वाहन मालिक राकेश उसके साथ नहीं था; उनके भाई का ड्राइवर उनके साथ था। वह उसका नाम नहीं जानता। पिंकू का घर उसके घर के बाईं ओर था। निरीक्षक 9.10.2015 को जीटीबी अस्पताल गए। जब इंस्पेक्टर अस्पताल पहुंचे, तो उनकी पत्नी की आंखें खुली थीं और वह देख सकती थी। उन्होंने अपने हाथ-पैरों का चिकित्सकीय इलाज नहीं कराया और उन्होंने गांव के डॉक्टरों से दवा ले रखी थी। शिकायतकर्ता के बुलावे पर चाचा का बेटा पिंकू बचाव में आया और उसने अपनी पत्नी को कंबल पहना दिया। उसने मिट्टी का तेल नहीं देखा और पुलिस को कंबल नहीं सौंपा। न तो वह ऐसा कोई दस्तावेज पेश कर सकता है जो यह साबित करता हो कि चिंटू पर उसका पैसा बकाया था, न ही वह इस आशय का कोई गवाह पेश कर सकता है। शिकायतकर्ता के भाई उससे अलग रहते हैं। घटना के समय उसके भाई ड्यूटी पर थे। पिंकू उसके असली चाचा का बेटा है, जो ड्राइवर है और घटना के दिन कार चलाने के लिए बाहर नहीं गया था और घर पर ही था। वह आगे कहते हैं कि पिंकू को छोड़कर किसी ने भी आग बुझाने में सहयोग नहीं किया है। अ०सा०-1 की गवाही का प्रासंगिक भाग यहां नीचे दिया गया है:

" जब मैं पिलखुआ बाजार से घर लौटकर अपने घर पहुंचा तो मेरी पत्नी के अलावा घर में कोई भी मौजूद नहीं था। जब मैं अपने घर के अंदर गया तो मेरी पत्नी गिरी पड़ी थी।

जब मैं घर के अंदर पहुंचा तो मेरी पत्नी चिल्ला नहीं रही थी। मेरे चिल्लाने पर मेरे चाचा का लड़का पिंकू आया था।

राकेश पुत्र उम्मेद की गाड़ी में डालकर मैं नेहा को ले गया था। उसकी मारुती वैन है। कितने बजे मैं जीटीबी पहुंचा मुझे टाइम का अंदाजा नहीं।

जब मैं अस्पताल पहुंचा था मेरे कुछ कागज़ों पर हस्ताक्षर हुए थे। मेरे साथ में एक नर्स थी। उसके अस्पताल में दस्तखत नहीं हुए थे। मेरा मेडिकल जीटीबी अस्पताल में नहीं हुआ था जिससे मेरे हाथ पांव भी जले थे।

दिनांक ०८-१०-१५ को अगले दिन ०९-१०-१५ को उसका (नेहा) का बीच बचाव हुआ था। उसके

अनुवादित

बाद नेहा नहीं बोली। इशारे में बात कर रही थी। मृत्यु तक नहीं बोली।

मैं थाने में दस तारीख को आया था। शाम को चार पांच बजे आया था। मैंने आदमी से रिपोर्ट लिखाई थी मैं उसका नाम नहीं बता सकता।

मेरे दो भाई मुझसे अलग रहते हैं। घटना के समय मेरे भाई ड्यूटी पर थे। पिंकू मेरे सागा चाचा का बेटा है। पिंकू गाड़ी चलता है। कार भी चलाता है। घटना के दिन पिंकू कार चलने नहीं गया था घर पर ही था।"

17. अभियोजन पक्ष ने तब अ०सा०-2, संजीव कुमार को पेश किया, जो मृतका के शव परीक्षण के गवाह थे। उसकी मौजूदगी में शव की शिनाख्त कर उसे सील कर दिया गया। जिरह में, इस गवाह ने कहा कि मृतका के पति का फोन आने पर, वह अपनी मोटरसाइकिल पर अस्पताल पहुंचा। उन्होंने कहा कि शिकायतकर्ता उनका भतीजा है, और उन्होंने पुलिस की उपस्थिति में शव की पहचान की।

18. अ०सा०-3 सब इन्स्पेक्टर मनीष भाटी, जो दिल्ली पुलिस में कार्यरत हैं, ने मुख्य परिक्षण बताया कि 08.10.2015 को वह आपातकालीन ड्यूटी पर थे और जीटीबी एन्क्लेव थाना में तैनात थे। ड्यूटी अधिकारी से लगभग 09:00 बजे एक कॉल प्राप्त करने पर, वह आपातकालीन वार्ड में गए और पाया कि एक महिला जली हुई हालत में भर्ती थी और उसका इलाज चल रहा था। उसने अपना बयान दर्ज कराया जिसमें उसने कहा कि चिंटू और मोंटी, आरोपी-अपीलकर्ता, उसके पति के साथ दुश्मनी रखते हैं। जब उसका पति बाजार गया, तो आरोपी-अपीलकर्ता उसके घर में घुस गए, पैसे की मांग की और उसके पति को जान से मारने की धमकी दी। पैसे देने से इनकार करने पर चिंटू ने बलात्कार किया और मोंटी ने बलात्कार करने का प्रयास किया। इसके बाद उन्होंने उस पर मिट्टी का तेल डालकर आग लगा दी। थोड़ी देर बाद, उसका पति उसे दिल्ली के जीटीबी अस्पताल ले गया। डा सुशील की उपस्थिति में बयान दर्ज किया गया और गवाह के बयान पर पैर के अंगूठे का निशान लिया गया।

19. अपनी जिरह में, गवाह ने कहा कि उसे थाना से कोई लिखित निर्देश नहीं मिला और मौखिक रूप से बयान दर्ज करने के लिए कहा गया। इस बयान पर कोई समर्थन नहीं है कि पीड़िता अपना बयान दर्ज कराने के लिए फिट थी। गवाह ने आगे कहा कि पीड़िता का बयान लेने से पहले, उसने पुष्टि की थी कि पीड़िता बयान देने के लिए फिट थी।

20. अ०सा०-4 सब इन्स्पेक्टर सतपाल सिंह ने अ०सा०-1 राकेश की लिखित रिपोर्ट पर आरोपी चिंटू और मोंटी के खिलाफ धारा 452, 376, 307, 386 और 506 भ०द०वि० के तहत अ०सा०-1 राकेश की उपस्थिति में शव परीक्षण से संबंधित दस्तावेज तैयार किए थे।

21. अवनीश कुमार (अ०सा०-6) ने गवाही दी कि प्राथमिकी दर्ज होने के बाद जांच का जिम्मा उन्हें सौंपा गया और उन्होंने घटनास्थल का निरीक्षण कर नक़्शा नज़री तैयार किया। अपनी जिरह में, गवाह का कहना है कि उसने शिकायतकर्ता का बयान 10.10.2015 को लगभग 07:30 बजे दर्ज किया और 17.10.2015 को गवाह पिंकू, पुत्र विजेंद्र तोमर और टीटू पुत्र भगतू कश्यप का बयान दर्ज किया। दिनांक 18.10.2015 को आरोपी-अपीलकर्ताओं को गिरफ्तार कर जेल भेज

अनुवादित

दिया। गवाह ने आगे कहा कि उसने 10.10.2015 को रात 08:10 बजे नक़्शा नज़री तैयार किया। उन्होंने उस जगह का निरीक्षण किया जहां मृतका जला हुआ पाया गया था, उन्हें मिट्टी के तेल की बोतल नहीं मिली, और पीड़िता के कपड़े उन्हें नहीं सौंपे गए। गवाह ने आगे कहा कि 10.10.2015 को रात में लगभग 10:30 बजे, वह मृतका का बयान दर्ज करने के लिए अस्पताल गया, जहां अस्पताल के कर्मचारियों से पूछताछ करने पर यह पता चला कि पीड़िता 90% जल गई थी और अपना बयान देने की स्थिति में नहीं है। उन्होंने यह भी पाया कि मृतका बयान देने में सक्षम नहीं था। उसने डॉ. सुशील से मिलने की कोशिश की, जिनकी देखरेख में पीड़िता का इलाज चला, लेकिन वह उससे मिल नहीं पाया। दिनांक 18.10.2015 को विवेचना के दौरान गवाह ने बताया कि मृतका की मौत हो चुकी है।

22. प्रकरण के द्वितीय विवेचनाधिकारी निरीक्षक दीपक त्यागी (अ०सा०-7) ने दिनांक 30.11.2015 को एस0आई0 सतपाल सिंह, एस0आई0 मनीष भाटी एवं डॉ00 शालिनी राजदान के बयान दर्ज किए। उसके बाद, उन्होंने आरोपी-अपीलकर्ताओं के खिलाफ 15.12.2015 को आरोप पत्र प्रस्तुत किया।

23. डॉ. शालिनी राजदान (अ०सा०-8) ने गवाही दी कि उन्होंने मृतका का शव परीक्षण किया था। आंतरिक जांच में शव परीक्षण करने वाले डॉक्टर ने पाया कि मृतका के कूल्हे के ऊपर से लेकर ऊपर तक गहरे जले हुए थे। मृतका 83 फीसदी झुलस गयी थी। सिर और गर्दन सामान्य पाए गए और सिर के बाल अर्धजले हुए अवस्था में थे। मृतका के शरीर के निचले हिस्से पर कोई अंदरूनी चोट नहीं थी। जिरह में गवाह ने कहा कि मृतका के साथ बलात्कार होने की कोई संभावना नहीं है। गर्दन के साथ-साथ शव का पूरा चेहरा जला हुआ मिला।

24. मुकदमे के दौरान अभियोजन पक्ष द्वारा पेश की गई दोषकारी सामग्री का सामना तब आरोपियों को धारा 313 द०प्र०स० के तहत उनके बयान दर्ज करने के लिए किया गया था। आरोपियों ने बताया कि पुलिस ने मृतका के पति के इशारे पर उन्हें झूठा फंसाया है। शिकायतकर्ता राकेश ने अपनी पत्नी की हत्या कर दी और खुद को बचाने के लिए आरोपियों को झूठा फंसाया।

25. बचाव पक्ष ने विजेंद्र सिंह के पुत्र पिंकू (34 वर्ष) को ब०सा०-1 के रूप में पेश किया, जिसने बताया कि 8.10.2015 को शाम लगभग 06:00 बजे वह टीटू और राकेश के साथ मंगतू की छत पर बैठा था। घटना से एक घंटे पहले मृतका और राकेश के बीच लड़ाई हुई थी। उसने पीड़िता की बचाव की आवाज सुनी। मदद की पुकार सुनकर वह राकेश के घर गया और पीड़िता को आग की लपटों में जलते देखा। केवल राकेश और पीड़िता वहां थे। जब उसने राकेश से पीड़िता की आग बुझाने के लिए कहा तो राकेश ने कहा, 'पीड़िता को जलने दो'। पीड़िता ने कुछ नहीं बताया। वह बेहोश हो गई थी। जब राकेश ने पीड़िता को नहीं बचाया तो उसने पीड़िता को कंबल से ढककर उसकी जान बचाई। पीड़िता कह रही थी, राकेश मुझे मार रहा है; मुझे बचाओ। गांव के अन्य लोग भी दरवाजे के बाहर जमा हो गए। वह नहीं जानता कि राकेश अपनी पत्नी को क्यों पीटता था। घटना से कुछ देर पहले पीड़िता ने राकेश से कहा कि वह उसे मार डाले, तो राकेश ने कहा कि वह उसे खत्म कर देगा। घटना के

अवलोकित

समय पीड़िता ने गवाह के सामने मोंटी और चिंटू का नाम नहीं लिया था।

26. अपनी जिरह में, उसने कहा कि पुलिस ने उससे पूछताछ नहीं की और राकेश उसका चचेरा भाई (पिता के छोटे भाई का बेटा) है। उन्हें वास्तव में अदालत से समन मिला था, लेकिन शिकायतकर्ता ने उन्हें अदालत में गवाही देने की अनुमति नहीं दी।

27. सुरेश सिंह निवासी ग्राम शिखड़िया, थाना-पिलखुआ, जिला हापुड़ की जांच ब०सा०-2 के रूप में की गई। इस गवाह ने गवाही दी है कि मृतका का पति गांव में किराने की दुकान चलाता है। वह सामान खरीदने के लिए किराने की दुकान पर गया था। उसने देखा कि राकेश और उसकी पत्नी आपस में लड़ रहे थे और गाली-गलौज कर रहे थे। राकेश ने अपनी पत्नी को कमरे के अंदर खींच लिया और बाहरी गेट के अंदर से कमरा बंद कर दिया। पीड़िता और राकेश के अलावा घर में कोई नहीं था। पिंटू ने अंदर से दरवाजा खोला। राकेश को अपनी पत्नी के पास खड़ा देखा गया, जब वह आग लगा रही थी। राकेश ने अपनी पत्नी को बचाने की कोई कोशिश नहीं की। इस गवाह ने अभियोजन पक्ष के इस सुझाव से इनकार किया कि वह आरोपी व्यक्तियों को बचाने के लिए झूठी गवाही दे रहा था।

28. संजीव कुमार, जिनकी जांच ब०सा०-3 के रूप में की गई थी, ने गवाही दी कि जब पुलिस उनके गांव पहुंची, तो उन्हें पता चला कि मोंटी को 8.10.2015 को लगभग 07:00 बजे हुई एक घटना में झूठा फंसाया गया था। घटना से एक दिन पहले यानी 7.10.2015 को वह मोंटी के साथ क्रशर खरीदने अमरोहा गया था। वह और मोंटी तीन दिन अमरोहा में रहे और 9.10.2015 को लौट आए। मोंटी तीन दिनों से अमरोहा में गवाह के साथ है। मोंटी के चाचा कोल्हू चलाते हैं, इसलिए मैं उन्हें जानता हूं। अपनी जिरह में, गवाह ने इस बात से इनकार किया है कि वह आरोपी व्यक्तियों को बचाने के लिए झूठी गवाही दे रहा है।

29. निचली अदालत ने रिकॉर्ड पर लाए गए सबूतों के मूल्यांकन के बाद निष्कर्ष निकाला है कि अभियोजन पक्ष एक उचित संदेह से परे अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के अपराध को साबित करने में सफल रहा है।

30. इस तरह के निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए, विचारण न्यायालय ने निम्नलिखित सबूतों पर भरोसा किया है:

30.1 कि मृतका ने अपने पति को बताया कि कैसे आरोपी व्यक्तियों द्वारा उसके साथ बलात्कार किए जाने के बाद उसे आग लगा दी गई थी।

30.2 अ०सा०-3 सब इन्स्पेक्टर मनीष भाटी द्वारा दर्ज किया मृत्यु-पूर्व बयान सुसंगत है और अ०सा०-3 के इशारे पर आरोपी व्यक्तियों को झूठा फंसाने का कोई कारण नहीं है।

30.3 एक निश्चित मकसद जैसा कि अभियोजन पक्ष द्वारा साबित किया गया था, आरोपी के लिए स्थान, समय और तारीख पर अपराध करने के लिए, था।

30.4 अ०सा०-1 और अ०सा०-3 की गवाही विश्वसनीय है, और उनकी चक्षुक संबंधी गवाही शव परीक्षण रिपोर्ट से मेल खाती है।

30.5 अभियोजन पक्ष इस प्रकार एक उचित संदेह से परे आरोपी व्यक्तियों के अपराध साबित करने के रूप में अभियोजन पक्ष गवाह द्वारा बताए गए तरीके से हुई घटना को साबित कर दिया।

अनुवादित

30.6 अभियोजन पक्ष ने एक उचित संदेह से परे साक्ष्य प्रस्तुत करके अभियुक्त चिंटू @ कुलदीप और मोंटी @ रवींद्र के अपराध को सफलतापूर्वक साबित किया है।

31. बचाव पक्ष की दलीलें, जैसा कि इस न्यायालय के समक्ष निर्धारित की गई हैं, निम्नानुसार हैं:

31.1 प्राथमिकी के पंजीकरण में लगभग 48 घंटे की देरी है, जिसे अभियोजन पक्ष द्वारा स्पष्ट नहीं किया गया है।

31.2 घटना का कोई चश्मदीद गवाह नहीं है।

31.3 अ०सा०-3 के बयान में प्रमुख विरोधाभास और सुधार हैं, जिन्होंने कथित तौर पर मृत्यु-पूर्व बयान दर्ज किया था, और अस्पताल में उनकी उपस्थिति संदिग्ध है। अ०सा०-3 के बयान में काफी अलंकरण हैं।

31.4 अ०सा०-3 सब इन्स्पेक्टर मनीष भाटी ने वरिष्ठ अधिकारियों के अधिकार और जानकारी के बिना पीड़िता का बयान दर्ज किया है। बयान का कोई गवाह नहीं है, और इसे किसी भी स्वतंत्र गवाह की उपस्थिति में दर्ज नहीं किया गया है, भले ही डॉ सुशील, ड्राइवर सुरेंद्र और नर्स कथित तौर पर अस्पताल में मौजूद थे।

31.5 सब इन्स्पेक्टर मनीष भाटी द्वारा दर्ज बयान को छोड़कर, अभियोजन पक्ष के मामले की पुष्टि करने के लिए कोई स्वतंत्र सबूत नहीं है।

31.6 अस्पताल की शव परीक्षण रिपोर्ट और भर्ती पर्ची अभियोजन पक्ष की कहानी को पूरी तरह से झुठलाती है।

31.7 विचारण न्यायालय ने गलती से बचाव पक्ष के गवाहों की गवाही को खारिज कर दिया, भले ही ब०सा०-1 का नाम प्राथमिकी में परिलक्षित होता है, और वह वह है, जिसने मृतका पर कंबल रखकर उसकी आग बुझाई थी, और वह शिकायतकर्ता का चचेरा भाई भी है।

31.8 मुकदमे के दौरान सामने आए पूरे सबूतों को देखते हुए, अ०सा०-1, जो मृतका का पति है, का आचरण अप्राकृतिक और संदिग्ध रहा है। डॉ. सुशील द्वारा तैयार एम.एल.सी. में शिकायतकर्ता का नाम नहीं आया।

32. दी गई पृष्ठभूमि में, अभियोजन साक्ष्य निम्नलिखित प्रमुखों में मूल्यांकन की जा सकती है:

(i) घटना का अभियोजन संस्करण;
(ii) मकसद;
(iii) मृत्यु-पूर्व घोषणाएं;
(iv) चिकित्सीय साक्ष्य;
(v) अ०सा०-I शिकायतकर्ता का आचरण;
(vi) अन्वेषण;
(vii) निष्कर्ष।

33. यह एक स्वीकृत मामला है कि पीड़िता की मृत्यु दिल्ली के जीटीबी अस्पताल में जलने की चोटों के कारण हुई है। इसलिए, उसे जलाए जाने के तीन विकल्प हो सकते हैं- (i) आत्महत्या; (ii) आकस्मिक आग; और (iii) आग द्वारा जलाया जाना।

34. धारा 313 द०प्र०स० के तहत दर्ज बयान के अवलोकन पर, यह पता चलता है कि आरोपी शिकायतकर्ता के अनुसार उसने पत्नी को आग लगा दी और आरोपी-अपीलकर्ताओं को झूठा फंसाया। न तो यह अभियोजन का मामला है और न ही बचाव का है कि पीड़िता को आकस्मिक आग लगी। इसलिए, ऐसा कोई मामला नहीं बनता है जिससे पता चले कि दुर्घटनावश आग लगने के कारण पीड़िता झुलस गयी थी। ज्यादा से ज्यादा यह आत्महत्या का

अनुवादित

मामला हो सकता है या तो आरोपी या शिकायतकर्ता द्वारा आग लगा दी गई। आग लगाकर आत्महत्या को किसी भी पक्ष द्वारा बल नहीं दिया गया है। हमारे विचार से पीड़िता को आग लगाने और जानबूझकर जलाकर उसे मारने का केवल एक विकल्प छोड़ दिया गया है।

35. मामले के गुण-दोष के मूल्यांकन के लिए, नीचे दिए गए तथ्य सामने आते हैं:

35.1 अभियोजन पक्ष के अनुसार, पीड़िता ने अपने पति को घटना के तरीके का खुलासा किया और फिर, उसी दिन, सब इन्स्पेक्टर मनीष भाटी को, जिसे अ०सा०-3 के रूप में जांच की गई।

35.2 यह घटना 8.10.2015 को शाम लगभग 07:15 बजे शिकायतकर्ता-पति के घर में हुई, जिसकी जांच अ०सा०-1 के रूप में की गई थी।

353 पीड़िता को उपचार के लिए दिल्ली ले जाया गया और उसी दिन रात्रि 09.25 बजे जीटीबी अस्पताल, दिल्ली में भर्ती कराया गया।

35.4 एम.एल.सी. डॉ सुशील द्वारा तैयार किया गया था, जिन्होंने पहली बार 09:15 बजे पीड़िता को देखा और कथित तौर पर एम.एल.सी. पर एक निष्कर्ष का समर्थन किया कि पीड़िता बयान के लिए फिट है।

35.5 सब इन्स्पेक्टर मनीष भाटी, ड्यूटी ऑफिसर थाना-जीटीबी एन्क्लेव, दिल्ली से टेलीफोन कॉल प्राप्त करने के बाद, शाम को अस्पताल पहुंचे और पीड़िता का बयान दर्ज किया और वरिष्ठ अधिकारियों को सूचित किए बिना बयान पर उसके पैर की अंगुली की छाप प्राप्त की।

35.6 शिकायतकर्ता, एक सुरेंद्र कुमार और एक नर्स, जो पीड़िता के प्रवेश के समय अस्पताल में मौजूद थे, सब इन्स्पेक्टर मनीष भाटी द्वारा दर्ज बयान में गवाह नहीं हैं।

35.7 ड्यूटी पर तैनात डॉ. सुशील को भी सब इन्स्पेक्टर मनीष भाटी ने गवाही दर्ज नहीं की।

35.8 शिकायतकर्ता के चचेरे भाई पिंकू से अभियोजन पक्ष के गवाह के रूप में पूछताछ नहीं की गई, भले ही वह आरोप पत्र में पुलिस गवाह था।

35.9 पीड़िता की दो मृत्यु घोषणाएं दर्ज की गईं; पीड़िता ने घटना और अपराध को अंजाम देने के बारे में दो अलग-अलग व्यक्तियों को बताया; i) अपने पति को, जिसे अ०सा०-1 के रूप में जांचा गया था; और ii) सब इन्स्पेक्टर मनीष भाटी को, जिन्होंने अस्पताल में अपना बयान दर्ज किया और अ०सा०-3 के रूप में जांच की।

35.10 प्रा थमिकी 48 घंटे की देरी के बाद 10.10.2015 को 19:15 बजे थाना-पिलखुआ, जिला हापुड़ में दर्ज की गई थी, भले ही थाना घटनास्थल से 5 किमी दूर था।

36. प्रथम सूचना रिपोर्ट के अवलोकन पर, यह पता चला है कि ब०सा०-1 पिंकू ने आग बुझाने के लिए पीड़िता पर कंबल रखा था। पुलिस ने धारा 161 द०प्र०स० के तहत उसका बयान दर्ज किया और वह आरोप पत्र का गवाह भी था, लेकिन अभियोजन पक्ष ने इस गवाह को हटा दिया जिसका कारण उन्हें ही बेहतर पता होगा। डॉ. सुशील द्वारा तैयार की गई अस्पताल की भर्ती पर्ची के अवलोकन से पता चला कि पीड़िता को रात 09:25 बजे अस्पताल में भर्ती कराया गया था, लेकिन प्रवेश पर्ची पर तारीख का उल्लेख नहीं है। आगे यह उल्लेख किया गया है कि पीड़िता को संजीव कुमार नामक व्यक्ति द्वारा अस्पताल लाया गया था,

अनुवादित

जिसका मोबाईल नंबर 7830630993 था। आगे यह उल्लेख किया गया है कि रोगी सचेत थी और मौखिक आदेशों का पालन कर रहा थी और बयान के लिए उपयुक्त पाया गया, जबकि, अ०सा०-1 की गवाही के अवलोकन पर, चिकित्सा साक्ष्य के विपरीत यह पता चलता है कि उसने पीड़िता को अस्पताल में भर्ती कराया।

37. अ०सा०-3 सब इन्स्पेक्टर मनीष भाटी की गवाही के अनुसार, पीड़िता को पीड़िता के पति अ०सा०-1 राकेश द्वारा लाया गया था और अपनी जिरह में, उसने कहा कि वह वरिष्ठ अधिकारी के मौखिक निर्देशों पर लगभग 09:15 बजे पीड़िता का बयान दर्ज करने के लिए अस्पताल गया था। उन्होंने आगे कहा कि डॉ. सुशील कुमार ने मरीज की पहचान की, लेकिन उन्हें याद नहीं था कि वह डॉ. सुशील से मिले थे या नहीं। उन्होंने आगे स्वीकार किया है कि प्रदर्श-ए 12/6(अ०सा०-3 द्वारा दर्ज किए गए पीड़िता के बयान) को डॉ सुशील द्वारा कोई समर्थन नहीं मिला। उन्होंने एम.एल.सी. के अवलोकन के बाद बयान दर्ज किया जिसमें यह पुष्टि की गई थी कि रोगी इसे रिकॉर्ड करने के लिए फिट था। उन्होंने आगे कहा है कि उन्होंने प्रदर्श-ए 12/6 पर डा सुशील का पृष्ठांकन नहीं लिया है। डॉ. सुशील द्वारा तैयार किए गए अ०सा०-3 सब इन्स्पेक्टर मनीष भाटी, एम.एल.सी. के बयान की जांच करने और प्राथमिकी के अवलोकन पर, यह सुरक्षित रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कई विचार-विमर्श के बाद प्राथमिकी दर्ज की गई है, और इसलिए प्राथमिकी के पंजीकरण में 48 घंटे की देरी हुई है; जिसे अभियोजन पक्ष द्वारा संतोषजनक ढंग से स्पष्ट नहीं किया गया है। थाना घटनास्थल से केवल 5 किमी दूर है, और अभियोजन पक्ष की ओर से कोई संतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं आया है कि प्राथमिकी के पंजीकरण में देरी क्यों हो रही है। इसके अलावा, एम.एल.सी. तैयार करने वाले डॉ सुशील को अभियोजन पक्ष के गवाह के रूप में पेश नहीं किया गया है, इस तथ्य के बावजूद कि वह आरोप-पत्र में पुलिस गवाह हैं। डॉ. सुशील अभियोजन पक्ष के संभावित गवाह हो सकते थे कि एम.एल.सी. फॉर्म में एक निर्दिष्ट कॉलम के बावजूद एम.एल.सी. पर तारीख का उल्लेख क्यों नहीं किया गया है कि क्या अ०सा०-3 ने 8.10.2015 को घायल का बयान लिया है।

38. अ०सा०-1 और अ०सा०-2 के बयान के प्रकाश में, यह मृत्य-पूर्व घोषणा पर कानून का बचाव करने के लिए मामले की फिटनेस में होगा क्योंकि बचाव पक्ष के अधिवक्ता ने 8.10.2015 पीड़िता के प्रवेश की तारीख को नई दिल्ली में जीटीबी अस्पताल, अस्पताल में शिकायतकर्ता और सब इन्स्पेक्टर मनीष भाटी की उपस्थिति पर विवाद किया है। और अन्य अलंकरण भी देखे जाते हैं, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है। मृत्यु-पूर्व घोषणा के संबंध में कानून संक्षेप में नीचे दिए गए हैं:

39. दलीप सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य में, सुप्रीम कोर्ट ने कहा है:

"हम यह भी जोड़ सकते हैं कि हालांकि जांच के दौरान एक पुलिस अधिकारी द्वारा दर्ज किया गया मृत्यु-पूर्व बयान भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 के तहत दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 162 की उप-धारा (2) में प्रदान किए गए अपवाद के मद्देनजर स्वीकार्य है, इस तरह के मृत्यु-पूर्व बयानों को

अनुवादित

तब तक विचार से बाहर रखना बेहतर है जब तक कि अभियोजन पक्ष अदालत को संतुष्ट न करे कि इसे मजिस्ट्रेट द्वारा या डॉक्टर द्वारा क्यों नहीं रिकॉर्ड किया गया था जैसा कि इस न्यायालय द्वारा मुन्नू राजा बनाम मध्य प्रदेश राज्य, [1976] 2 एस.सी.आर 764; (ख) यदि हां, तो तत्संबंधी ब्यौरा क्या है; और इसके अनुसार, जांच के दौरान मृत्यु-पूर्व घोषणा दर्ज करने की विवेचनाधिकारी की प्रथा को प्रोत्साहित नहीं किया जाना चाहिए...."

40. भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने नल्लापति सिवैया बनाम उपखंड अधिकारी, गुंटूर में कहा है कि मृत्यु-पूर्व घोषणा को विश्वास को प्रेरित करना चाहिए ताकि इस पर कार्रवाई करना सुरक्षित हो सके। मृत्यु-पूर्व घोषणा पर कार्रवाई करना सुरक्षित है या नहीं, यह न केवल मृत्यु-पूर्व घोषणा को रिकॉर्ड करने वाले व्यक्ति की गवाही पर निर्भर करता है, चाहे वह मजिस्ट्रेट भी हो, बल्कि रिकॉर्ड पर उपलब्ध सभी सामग्री और चिकित्सा साक्ष्य सहित परिस्थितियों पर भी निर्भर करता है। उचित निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए प्रत्येक मामले में रिकॉर्ड पर साक्ष्य और सामग्री साक्ष्य को ठीक से तौला जाना चाहिए। अदालत को खुद को संतुष्ट करना चाहिए कि मृत्यु-पूर्व घोषणा करने वाला व्यक्ति सचेत था और बयान देने के लिए फिट था, जिसके लिए न केवल मृत्यु-पूर्व घोषणा दर्ज करने वाले व्यक्तियों के साक्ष्य बल्कि चिकित्सा साक्ष्य और परिस्थितियों सहित अन्य सबूतों के संचयी प्रभाव को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए।

41. यह ऐसे मामलों में अकेले एक मरने की घोषणा के आधार पर एक सजा रिकॉर्ड करने के लिए असुरक्षित है जहां संदेह 'मृत्यु-पूर्व घोषणा' की शुद्धता के संबंध में उठाया जाता है। ऐसे मामलों में, अदालत को मृत्यु-पूर्व बयान को केवल सबूत के एक टुकड़े के रूप में मानकर पुष्टिकारक साक्ष्य की तलाश करनी पड़ सकती है।

42. मृत्यु-पूर्व बयानों के आधार पर दोषसिद्धि को विराम देना प्रस्तुत मामले में असुरक्षित होगा।

43. अधिवक्ता ने नल्लापति सिवैया बनाम उप-विभागीय अधिकारी, गुंटूर, आंध्र प्रदेश (उपरोक्त) का हवाला दिया है। डॉक्टर की अनुपस्थिति में परिवार के किसी सदस्य को दिए गए मौखिक मृत्यु के बयान की अविश्वसनीयता पर अरविंद सिंह बनाम बिहार राज्य, अरुण भानुदास पवार बनाम महाराष्ट्र राज्य और पूनम बाई बनाम छत्तीसगढ़ राज्य का हवाला देकर सवाल उठाया गया था।

44. हमने पक्षों के अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों पर सोच-समझकर विचार किया है और रिकॉर्ड का सावधानीपूर्वक अवलोकन किया है।

45. मृत्यु-पूर्व घोषणा अंतिम बयान है कि एक व्यक्ति अपनी आसन्न मृत्यु के कारण या परिस्थितियों के रूप में बनाता है जो उस स्थिति में उत्पन्न हुआ था, एक स्तर पर जब घोषणाकर्ता सचेत है कि उसके अस्तित्व की लगभग शून्य संभावनाएं हैं। इस धारणा पर कि इस तरह के एक महत्वपूर्ण चरण में, एक व्यक्ति से सच बोलने की उम्मीद की जाएगी, अदालतों ने इस तरह के बयान की सत्यता को बहुत महत्व दिया है। भारतीय साक्ष्य अधिनियम वर्ष 1872 की धारा 32 में कहा गया है कि जब कोई व्यक्ति मृत्यु के कारण के रूप में या किसी भी परिस्थिति के रूप में बयान देता है, जिसके परिणामस्वरूप उसकी

अनुवादित

मृत्यु हुई, ऐसे मामलों में जिनमें उस व्यक्ति की मृत्यु का कारण प्रश्न में आता है, तो इस तरह के बयान, मौखिक या लिखित रूप में मृतका पीड़िता द्वारा गवाह को दिया गया, एक प्रासंगिक तथ्य है और साक्ष्य में स्वीकार्य है। यह उल्लेखनीय है कि उक्त प्रावधान साक्ष्य अधिनियम की धारा 60 में निहित सामान्य नियम का अपवाद है कि 'समई साक्ष्य अस्वीकार्य है' और केवल जब इस तरह के साक्ष्य प्रत्यक्ष होते हैं और जिरह के माध्यम से मान्य होते हैं, तो इसे भरोसेमंद माना जाता है।

46. कुंदुला बाला सुब्रह्मण्यम और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य में, सुप्रीम कोर्ट ने निम्नलिखित शब्दों में मृत्यु-पूर्व घोषणा के महत्व पर प्रकाश डाला:

"18. साक्ष्य अधिनियम की धारा 32(1) सामान्य नियम का अपवाद है कि समई साक्ष्य स्वीकार्य साक्ष्य नहीं है, और जब तक कि प्रतिपरीक्षा द्वारा साक्ष्य का परीक्षण नहीं किया जाता है, यह विश्वसनीय नहीं है। धारा 32 के तहत, जब किसी व्यक्ति द्वारा मृत्यु के कारण के बारे में या किसी भी परिस्थिति के बारे में एक बयान दिया जाता है जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु होती है, ऐसे मामलों में जिसमें उस व्यक्ति की मृत्यु का कारण प्रश्न में आता है, तो मृतक द्वारा गवाह को दिया गया ऐसा मौखिक या लिखित बयान एक प्रासंगिक तथ्य है और साक्ष्य में स्वीकार्य है। अपनी मृत्यु के कगार पर किसी व्यक्ति द्वारा की गई मृत्यु की घोषणा की एक विशेष पवित्रता है, क्योंकि उस गंभीर क्षण में, एक व्यक्ति के किसी भी असत्य बयान देने की संभावना नहीं है। आसन्न मृत्यु की छाया अपने आप में मृतक द्वारा उसकी मृत्यु के कारणों या परिस्थितियों के बारे में दिए गए बयान की सच्चाई की गारंटी है। इसलिए, एक मृत्यु-पूर्व घोषणा को साक्ष्य के एक टुकड़े के रूप में लगभग एक पवित्र स्थिति प्राप्त होती है, जैसा कि मृतक पीड़िता के मुंह से आता है। एक बार जब मरने वाले व्यक्ति का बयान और उसी की गवाही देने वाले गवाहों का साक्ष्य अदालतों द्वारा सावधानीपूर्वक जांच की कसौटी पर खरा उतर जाता है, तो यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण और विश्वसनीय सबूत बन जाता है, और यदि अदालत संतुष्ट है कि मृत्यु-पूर्व घोषणा सत्य है और किसी भी अलंकरण से मुक्त है जैसे कि मृत्यु से पहले की घोषणा, अपने आप में, किसी भी पुष्टि की तलाश किए बिना भी दोषसिद्धि दर्ज करने के लिए पर्याप्त हो सकता है...

47. सुधाकर बनाम मध्य प्रदेश राज्य में, सुप्रीम कोर्ट ने कहा है कि एक बार मृत्यु-पूर्व घोषणा विश्वसनीय पाई जाती है, तो यह दोषसिद्धि का आधार बन सकती है और निम्नलिखित टिप्पणियां की हैं:

"14 (1993) 2 एस.सी.सी. 684 15 (2012) 7 एस.सी.सी. 569 आपराधिक अपील संख्या-485 वर्ष 2012 "20. "मृत्यु से पहले बयान" किसी व्यक्ति द्वारा उस स्तर पर दिया गया अंतिम बयान है जब वह अपनी मृत्यु की गंभीर आशंका में होता है और अपने बचने की कोई संभावना नहीं रखता है। ऐसे समय में, यह उम्मीद की जाती है कि एक व्यक्ति सच और केवल सच बोलेगा। आम तौर पर ऐसी स्थितियों में, अदालतें इस तरह के बयान में सच्चाई का आंतरिक मूल्य संलग्न करती हैं। एक बार इस तरह का बयान स्वेच्छा से दिया गया है, यह विश्वसनीय है और मृतक द्वारा

अवलोकित

सच्चाई को कवर करने या किसी व्यक्ति को झूठा फंसाने का प्रयास नहीं है; फिर, अदालतें सुरक्षित रूप से इस तरह की मृत्यु की घोषणा पर भरोसा कर सकती हैं, और यह दोषसिद्धि का आधार बन सकती है। इसके अलावा, जहां मृतक द्वारा मृत्यु-पूर्व बयान के रूप में दिए गए बयान का समर्थन और पुष्टि अभियोजन पक्ष के अन्य सबूतों द्वारा की जाती है, अदालतों के लिए इस तरह के मृत्यु-पूर्व बयान की सत्यता पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है।

48. पानीबेन (श्रीमती) बनाम गुजरात राज्य में, मृत्यु-पूर्व घोषणा को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों पर कानून के पूरे परिदृश्य की जांच करने पर, सुप्रीम कोर्ट ने इस प्रकार निष्कर्ष निकाला है:

"18. ... (i) न तो कानून का नियम है और न ही विवेक का है कि मृत्यु-पूर्व घोषणा पर पुष्टि के बिना कार्रवाई नहीं की जा सकती है। (मुन्नू राजा बनाम म.प्र. राज्य)

(ii) यदि न्यायालय संतुष्ट है कि मृत्यु-पूर्व कथन सत्य और स्वैच्छिक है, तो वह बिना पुष्टि के उस पर अपनी दोषसिद्धि का आधार बना सकता है। (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राम सागर यादव; रामावती देवी बनाम बिहार राज्य)

(iii) इस न्यायालय को मृत्यु-पूर्व घोषणा की सावधानीपूर्वक जांच करनी होगी और यह सुनिश्चित करना होगा कि घोषणा शिक्षण, संकेत या कल्पना का परिणाम नहीं है। मृतक को हमलावरों को देखने और पहचानने का अवसर मिला और वह घोषणा करने के लिए फिट स्थिति में था। (के. रामचंद्र रेड्डी बनाम लोक अभियोजक)

(iv) जहां मृत्यु-पूर्व बयान संदेहास्पद है वहां पुष्टिकारक साक्ष्य के बिना उस पर कार्रवाई नहीं की जानी चाहिए। (रशीद बेग बनाम म.प्र. राज्य)

(v) जहां मृतक बेहोश था और कभी भी मृत्यु-पूर्व घोषणा नहीं कर सका, वहां इसके संबंध में साक्ष्य को अस्वीकार किया जाए। (काके सिंह बनाम म.प्र. राज्य)

(vi) मृत्यु-पूर्व घोषणा जो दुर्बलता से ग्रस्त है, दोषसिद्धि का आधार नहीं बन सकती। (राम मनोरथ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य)

(vii) केवल इसलिए कि मृत्यु-पूर्व घोषणा में घटना के ब्यौरे नहीं हैं, इसे अस्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। (महाराष्ट्र राज्य बनाम कृष्णमूर्ति लक्ष्मीपति नायडू)

(viii) समान रूप से, केवल इसलिए कि यह एक संक्षिप्त विवरण है, इसे छोड़ा नहीं जाता है। इसके विपरीत, कथन की लघुता ही सत्य की गारंटी देती है। (सूरजदेव ओझा बनाम बिहार राज्य)।

(ix) जहां अभियोजन पक्ष का कथन मृत्यु-पूर्व बयान में दिए गए कथन से भिन्न है, वहां उक्त घोषणा पर कार्रवाई नहीं की जा सकती है। (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मदन मोहन)

49. लखन बनाम मध्य प्रदेश राज्य में, जहां मृतका को मिट्टी का तेल डालकर जला दिया गया था और आरोपी और उसके परिवार के सदस्यों द्वारा अस्पताल लाया गया था। सुप्रीम कोर्ट ने देखा कि उसने दो अलग-अलग मरने की घोषणाएं की थीं और इस प्रकार अवधारित किया था:

"9. मरने की घोषणा का सिद्धांत कानूनी कहावत निमो मोरिटुरस प्रेसुमितुर मेंटायर में निहित है, जिसका अर्थ है "एक आदमी अपने

अनुवादित

निर्माता से अपने मुंह में झूठ के साथ (मरते समय झूठ नहीं बोलेगा) नहीं मिलेगा"। मृत्यु-पूर्व घोषणा का सिद्धांत साक्ष्य अधिनियम, 1872 (इसके बाद "साक्ष्य अधिनियम" के रूप में कहा जाता है) की धारा 32 में साक्ष्य अधिनियम की धारा 60 में निहित सामान्य नियम के अपवाद के रूप में निहित है, जो प्रदान करता है कि सभी मामलों में मौखिक साक्ष्य प्रत्यक्ष होना चाहिए, अर्थात यह एक गवाह का साक्ष्य होना चाहिए, कौन कहता है कि उसने इसे देखा। मृत्यु-पूर्व घोषणा वास्तव में एक ऐसे व्यक्ति का बयान है जिसे गवाह नहीं कहा जा सकता है और इसलिए उसकी प्रतिपरीक्षा नहीं की जा सकती। इस तरह के बयान स्वयं कुछ उदाहरणों में प्रासंगिक तथ्य हैं।

10. न्यायालय ने विभिन्न स्थितियों के तहत दर्ज की गई मृत्यु-पूर्व घोषणाओं की प्रासंगिकता/संभावित मूल्य पर बार-बार विचार किया है और ऐसे मामलों में जहां एक से अधिक मृत्यु-पूर्व बयान दर्ज किए गए हैं। यदि न्यायालय संतुष्ट है कि मृत्यु-पूर्व बयान सत्य है और मृतक द्वारा स्वेच्छा से दिया गया है, तो दोषसिद्धि बिना किसी पुष्टि के पूरी तरह से उस पर आधारित हो सकती है। यह न तो कानून का शासन है और न ही विवेक का है कि मृत्यु-पूर्व घोषणा पर बिना पुष्टि के भरोसा नहीं किया जा सकता है। जब मृत्यु-पूर्व घोषणा संदिग्ध हो, तो बिना पुष्टिकारक साक्ष्य के उस पर भरोसा नहीं किया जाना चाहिए। अदालत को मृत्यु-पूर्व घोषणा की सावधानीपूर्वक जांच करनी होगी और यह सुनिश्चित करना होगा कि घोषणा शिक्षण, संकेत या कल्पना का परिणाम नहीं है। मृतक को घोषणा करने के लिए मन की फिट स्थिति में होना चाहिए और हमलावरों की पहचान करनी चाहिए। केवल इसलिए कि मृत्यु-पूर्व घोषणा में घटना का विवरण नहीं है, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। यदि केवल एक संक्षिप्त कथन है, तो यह अधिक विश्वसनीय है क्योंकि कथन की लघुता इसकी सत्यता की गारंटी देती है। यदि मृत्यु-पूर्व घोषणा में कुछ दुर्बलता है, तो यह अकेले दोषसिद्धि का आधार नहीं बन सकता। यहां अभियोजन पक्ष का संस्करण मृत्यु-पूर्व बयान में दिए गए संस्करण से भिन्न है, और उक्त घोषणा पर कार्रवाई नहीं की जा सकती है। (वीडियो: खुशाल राव बनाम बॉम्बे राज्य, रशीद बेग बनाम एमपी राज्य, के रामचंद्र रेड्डी बनाम लोक अभियोजक, महाराष्ट्र राज्य बनाम कृष्णमूर्ति लक्ष्मीपति नायडू, उका राम बनाम राजस्थान राज्य, बाबूलाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य, मुथु कुट्टी बनाम राज्य, राजस्थान राज्य बनाम वकटेंग और शारदा बनाम राजस्थान राज्य)

50. अमोल सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य में, जब विसंगतियों वाले दो मृत्यु-पूर्व घोषणाओं का सामना करना पड़ा, तो सुप्रीम कोर्ट द्वारा अपनाए जाने वाले दृष्टिकोण को संक्षेप में निम्नानुसार किया गया था:

"13. एक से अधिक मृत्यु-पूर्व कथनों के रूप में साक्ष्य के मूल्यांकन से संबंधित कानून अच्छी तरह से तय है। तदनुसार, यह मरने वाले बयानों की बहुलता नहीं है, बल्कि उसकी विश्वसनीयता है जो अभियोजन पक्ष के मामले में वजन जोड़ती है। यदि मृत्यु-पूर्व घोषणा स्वैच्छिक, विश्वसनीय और फिट मानसिक स्थिति में पाई जाती है, तो बिना किसी पुष्टि के उस पर भरोसा किया जा सकता है। बयान

अनुवादित

पूरे समय सुसंगत होना चाहिए। यदि मृतक के पास ऐसी मृत्यु-पूर्व घोषणाएं करने के कई अवसर थे, तो यह कहना है कि यदि एक से अधिक मृत्यु-पूर्व घोषणा हैं, तो उन्हें सुसंगत होना चाहिए। (देखें: कुंदुला बाला सुब्रह्मण्यम बनाम आंध्र प्रदेश राज्य) हालांकि, अगर एक मृत्यु-पूर्व बयान और दूसरे के बीच कुछ विसंगतियां देखी जाती हैं, तो अदालत को विसंगतियों की प्रकृति की जांच करनी होगी, अर्थात्, क्या वे महत्वपूर्ण एवं सुसंगत हैं या नहीं। ऐसी स्थिति में विभिन्न मृत्यु-पूर्व घोषणाओं की सामग्री की जांच करते समय, अदालत को आसपास के विभिन्न तथ्यों और परिस्थितियों के प्रकाश में इसकी जांच करनी होगी।

51. शेर सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य में, सुप्रीम कोर्ट ने इस प्रकार अवधारित किया है:

"16. मरने की घोषणा की स्वीकार्यता अधिक है क्योंकि घोषणा चरम सीमा में की जाती है। जब पक्ष मृत्यु के कगार पर होती है, तो शायद ही कभी झूठ बोलने का कोई मकसद मिलता है, और यही कारण है कि मृत्यु-पूर्व बयान के मामले में शपथ और जिरह की आवश्यकताओं को समाप्त कर दिया जाता है। चूंकि अभियुक्त के पास जिरह की कोई शक्ति नहीं है, इसलिए अदालत इस बात पर जोर देगी कि मृत्यु-पूर्व बयान ऐसी प्रकृति का होना चाहिए जिससे अदालत के पूर्ण विश्वास को उसकी सत्यता और शुद्धता में प्रेरित किया जा सके। अदालत को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि बयान बहकावे, संकेत या कल्पना का उत्पाद नहीं था। अदालत को सबूतों से यह पता लगाना चाहिए कि मृतक मानसिक स्थिति में था और उसके पास अपराधी को देखने और पहचानने का पर्याप्त अवसर था।

आमतौर पर, अदालत यह निष्कर्ष निकालने के लिए चिकित्सा साक्ष्य पर भरोसा करती है कि क्या मृत्यु-पूर्व घोषणा करने वाला व्यक्ति मन की फिट स्थिति में था, लेकिन जहां बयान दर्ज करने वाला व्यक्ति कहता है कि मृतक फिट और सचेत अवस्था में था, चिकित्सा राय प्रबल नहीं होगी, और न ही यह कहा जा सकता है कि चूंकि घोषणाकर्ता के दिमाग की फिटनेस के रूप में डॉक्टर का कोई प्रमाणन नहीं है, मृत्यु-पूर्व घोषणा स्वीकार्य नहीं है। यह आवश्यक है कि मृत्यु-पूर्व घोषणा दर्ज करने वाले व्यक्ति को संतुष्ट होना चाहिए कि मृतक मन की फिट स्थिति में था। जहां मजिस्ट्रेट की गवाही से यह साबित हो जाता है कि घोषणाकर्ता उस प्रभाव के लिए डॉक्टर की राय के बिना बयान देने के लिए फिट था, इस पर कार्रवाई की जा सकती है बशर्ते कि अदालत अंततः (2008) 5 एस.सी.सी. 468 (1993) 2 एस.सी.सी. 684 4(2008) एस.सी.सी. 265 आपराधिक अपील संख्या-485 वर्ष 2012 स्वैच्छिक और सत्य हो। डॉक्टर द्वारा प्रमाण पत्र अनिवार्य रूप से सावधानी का एक नियम है और इसलिए, एक बयान की स्वैच्छिक और सच्ची प्रकृति अन्यथा स्थापित की जा सकती है।

52. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ऐसे मामलों में जहां अदालत को पता चलता है कि एक से अधिक मृत्यु-पूर्व घोषणा मौजूद हैं, उनमें से प्रत्येक की देखभाल और सावधानी के साथ जांच की जानी चाहिए और केवल संतुष्ट होने के बाद ही कि मरने की कौन सी घोषणा संदिग्ध परिस्थितियों से मुक्त प्रतीत होती है

अनुवादित

और स्वेच्छा से की गई है, इसे स्वीकार किया जाना चाहिए। जैसा कि ऊपर उद्धृत निर्णयों में देखा गया है, और यह आवश्यक नहीं है कि हर मामले में, मृत्यु-पूर्व घोषणा को महत्वपूर्ण एवं सुसंगत साक्ष्य, चक्षुक या अन्यथा के साथ पुष्टि की जानी चाहिए। यह विवेक का एक नियम है कि अदालतें तथ्यों और परिस्थितियों और रिकॉर्ड पर लाए गए अन्य सबूतों पर गौर करने से मृत्यु-पूर्व बयान की वैधता चाहती हैं। इसी कारण से, डॉक्टर द्वारा एक प्रमाण पत्र कि घोषणाकर्ता बयान देने के लिए फिट था, मृतक द्वारा दिए गए बयान की सत्यता को स्थापित करने के लिए सावधानी के नियम के रूप में माना जाता है।

53. कुंडुला बाला सुब्रह्मण्यम (उपरोक्त) में, सुप्रीम कोर्ट ने देखा है कि यदि एक से अधिक मृत्यु-पूर्व बयान हैं, तो अदालत को उनमें से प्रत्येक की जांच करनी चाहिए ताकि यह पता लगाया जा सके कि अलग-अलग मृत्यु-पूर्व घोषणाएं स्वीकार करने और उस पर भरोसा करने से पहले महत्वपूर्ण एवं सुसंगत विवरणों में एक-दूसरे के अनुरूप हैं या नहीं। इस तरह के मामले को अपने अजीबोगरीब तथ्यों पर तय किया जाना चाहिए। अदालत के सामने लाए गए सबूतों का मूल्यांकन करने के लिए कोई ठोस नियम नहीं हो सकता है, जिसमें आसपास की परिस्थितियां भी शामिल हैं जब मृतक ने मृत्यु-पूर्व घोषणा की थी। अदालत का ध्यान प्रक्रिया की स्वैच्छिकता सुनिश्चित करने, इस बात से संतुष्ट होने पर है कि कोई बहकावा या संकेत नहीं दिया गया था, मृत्यु-पूर्व घोषणा करने से पहले यह आश्वस्त किया जा रहा है कि मृतक मानसिक स्थिति में था या यह पता लगाने के लिए कि आरोपी की पहचान करने के लिए घोषणाकर्ता के पास पर्याप्त अवसर उपलब्ध था।

54. यहां तक कि एक मृत्यु-पूर्व बयान के एकमात्र आधार पर, अभियुक्त को दोषी ठहराया जा सकता है। तथापि, यदि मृत्यु-पूर्व बयान में कुछ दुर्बलता है तो यह अभियुक्त को दोषी ठहराने का एकमात्र आधार नहीं हो सकता। उन परिस्थितियों में, अदालत को पीछे हटना चाहिए और विचार करना चाहिए कि क्या किसी मामले में संचयी कारक उक्त मृत्यु घोषणा पर भरोसा करना मुश्किल बनाते हैं। इस संदर्भ में, नल्लापति सिवैया (उपरोक्त) का उल्लेख करना लाभदायक होगा, जिसमें सुप्रीम कोर्ट ने निम्नानुसार व्यवस्था दी है:

"46. यह अभियोजन पक्ष का कर्तव्य है कि वह उचित संदेह से परे अभियुक्त के खिलाफ आरोप स्थापित करे। संदेह का लाभ हमेशा अभियुक्त के पक्ष में जाना चाहिए। यह सच है कि मृत्यु-पूर्व बयान एक ठोस सबूत है जिस पर भरोसा किया जा सकता है, बशर्ते यह साबित हो जाए कि यह स्वैच्छिक और सच्चा था और पीड़ित मन की फिट स्थिति में था। फोरेंसिक मेडिसिन के प्रोफेसर के साक्ष्य मृतका की स्थिति के संबंध में काफी संदेह पैदा करते हैं, 41 (1976) 3 एस.सी.सी. 104 42 (1992) 2 एस.सी.सी. 474 43 (1985) 1 एस.सी.सी. 552 44 (1983) 1 एस.सी.सी. 211 आपराधिक अपील संख्या-485 वर्ष 2012 एक स्वैच्छिक और सच्चा बयान देते हैं। यही कारण है कि दुर्घटना चिकित्सा अधिकारी डा टी नरसिम्हाराव से पूछताछ न किए जाने का महत्व बढ़ जाता है, जिनके बारे में कहा जाता है कि वे मृत्यु-पूर्व दोनों घोषणाओं की रिकार्डिंग के समय उपस्थित थे। ऐसा इसलिए नहीं है

अनुवादित

क्योंकि कानून में यह अपेक्षित है कि मृत्यु-पूर्व घोषणा करने के लिए पीड़िता की स्थिति को प्रमाणित करने वाले डॉक्टर की प्रत्येक मामले में जांच किए जाने की आवश्यकता है। लेकिन यह अभियोजन पक्ष का दायित्व था कि वह मामले की अजीबोगरीब परिस्थितियों में उपलब्ध पुष्टिकारक साक्ष्य का नेतृत्व करे।

xxxx xxxx

52. मरने की घोषणा को विश्वास को प्रेरित करना चाहिए ताकि इसे कार्य करने के लिए सुरक्षित बनाया जा सके। मृत्यु-पूर्व बयान पर कार्रवाई करना सुरक्षित है या नहीं, यह न केवल मृत्यु-पूर्व बयान दर्ज करने वाले व्यक्ति की गवाही पर निर्भर करता है - चाहे वह मजिस्ट्रेट भी हो, बल्कि रिकॉर्ड पर उपलब्ध सभी सामग्री और चिकित्सा साक्ष्य सहित परिस्थितियों पर भी निर्भर करता है। उचित निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए प्रत्येक मामले में साक्ष्य और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री को ठीक से तौला जाना चाहिए। अदालत को खुद को संतुष्ट करना चाहिए कि मृत्यु-पूर्व घोषणा करने वाला व्यक्ति सचेत था और बयान देने के लिए फिट था, जिसके उद्देश्यों के लिए न केवल मृत्यु-पूर्व बयान दर्ज करने वाले व्यक्तियों के साक्ष्य बल्कि चिकित्सा साक्ष्य और परिस्थितियों सहित अन्य सबूतों के संचयी प्रभाव को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए।

55. अरविंद सिंह (उपरोक्त) में, सुप्रीम कोर्ट ने माना है कि मृत्यु-पूर्व घोषणा को सावधानी और सतर्कता के साथ निपटाया जाना चाहिए, और पुष्टि हालांकि आवश्यक नहीं है, लेकिन घोषणा के साक्ष्य मूल्य को मजबूत करने के लिए समीचीन है। जहां स्वतंत्र गवाह उपलब्ध नहीं हो सकते हैं, इस तरह के बयान को भरोसेमंद सबूत के रूप में स्वीकार करते समय सभी सावधानी बरती जानी चाहिए। दूसरे शब्दों में, भले ही प्रत्यक्ष साक्ष्य उपलब्ध न हों, परिस्थितिजन्य साक्ष्य, घटनाओं की श्रृंखला में विराम के बिना, मृत्यु-पूर्व घोषणा के साक्ष्य मूल्य में वजन जोड़ देंगे।

56. उपर्युक्त उद्देश्य के प्रकाश में, हम इस पैराग्राफ में विश्लेषण के सारांश को समाप्त करते हैं।

57. अभियोजन पक्ष के अनुसार, जब पीड़िता आग की चपेट में थी तब दो व्यक्ति मौजूद थे; अ०सा०-1 राकेश, शिकायतकर्ता और ब०सा०-1 पिंकू, जो अ०सा०-1 का चचेरा भाई है। ब०सा०-1 पिंकू पहला व्यक्ति था जो मृतका की बचाव की पुकार सुनकर घटनास्थल पर पहुंचा और आग बुझाने के लिए पीड़िता पर कंबल रख दिया। विवेचनाधिकारी ने उसका बयान दर्ज किया और उसे आरोप पत्र में पुलिस गवाह भी बनाया गया, लेकिन अभियोजन पक्ष ने इस गवाह को किस कारण से हटा दिया ये उन्हें ही बेहतर पता था, और उसके बाद उसे अभियुक्त-अपीलकर्ताओं द्वारा बचाव पक्ष के गवाह के रूप में लाया गया। अ०सा०-1 और ब०सा०-1 की गवाही की गहन जांच पर, यह निष्कर्ष सुरक्षित रूप से निकाला जा सकता है कि अ०सा०-1 एक अविश्वसनीय गवाह है, और अ०सा०-1 की गवाही को पूरी तरह से स्वीकार करना सुरक्षित नहीं है; इसकी पुष्टि की जरूरत है। अ०सा०-1 ने कहा कि वह पीड़िता को अस्पताल लाया था, जबकि एम.एल.सी. दर्शाता है कि सुरेंद्र कुमार पीड़िता को अस्पताल लाए थे। अ०सा०-1 को घटना की तारीख को लगभग 09:15 बजे अस्पताल में अ०सा०-3 द्वारा दर्ज किए गए बयान का गवाह नहीं बनाया गया

अनुवादित

था, और अ०सा०-3 द्वारा कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया था कि उसने पीड़िता के बयान के लिए कोई स्वतंत्र गवाह क्यों नहीं बनाया, भले ही अ०सा०-1 में कहा गया है कि वह पीड़िता के साथ अस्पताल में था। अगर अ०सा०-1 सभी संभावनाओं में अस्पताल में होता, तो उसे अ०सा०-3 द्वारा दर्ज कथित मृत्यु-पूर्व घोषणा का गवाह बनाया जाना चाहिए था, और उसका नाम एम.एल.सी. में आना चाहिए था। इस दौरान उसने आरोपियों के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज नहीं की है। शुरुआती 48 घंटों के लिए शिकायतकर्ता की अनुपलब्धता के बारे में अभियोजन पक्ष द्वारा कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। इसलिए, अ०सा०-1 की गवाही पर भरोसा नहीं किया जा सकता क्योंकि इससे उसके बयान में असत्य की बू आती है। अस्पताल में अ०सा०-1 की मौजूदगी भी संदिग्ध है।

58. तर्क को बल देने के लिए, अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अ०सा०-1 और अ०सा०-3 की गवाही असंगत है। नियम कहता है कि यदि मृत्यु-पूर्व बयान अदालत के विश्वास को प्रेरित नहीं करता है, तो पुष्ट साक्ष्य के बिना इस पर कार्रवाई नहीं की जानी चाहिए। प्रस्तुत मामले में, अस्पताल में अभियोजन पक्ष द्वारा अ०सा०-3 की उपस्थिति स्वतंत्र रूप से साबित नहीं हुई है; न तो थाना-जीटीबी नगर, नई दिल्ली में रखी गई जनरल डायरी की विवेचनाधिकारी द्वारा जांच की गई है और न ही अ०सा०-3 द्वारा साबित किया गया है, जो घटना के समय थाना-जीटीबी नगर, नई दिल्ली में तैनात था और कथित मृत्यु-पूर्व बयान दर्ज किया गया था। अ०सा०-3 की गवाही का संगत भाग यहां दिया जाता है: *"यह कथन सत्य है कि जब मैं बयान लेने नेहा का हॉस्पिटल गया था उस समय मुझे किसी उच्च अधिकारी का आदेश नहीं था।",* अ०सा०-3 की सीडीआर भी अस्पताल में अपनी उपस्थिति दिखाने के लिए न्यायालय के समक्ष नहीं लाई गई और न ही संबंधित कार्यकारी मजिस्ट्रेट को अ०सा०-3 द्वारा सूचना प्राप्त होने के तुरंत बाद पीड़िता का बयान दर्ज करने के लिए सूचित किया गया। यह पुलिस अधिकारी के अप्राकृतिक आचरण को दर्शाता है जो ऐसे मामलों में कानूनी प्रक्रिया से अच्छी तरह वाकिफ है।

59. अ०सा०-3 की गवाही के प्रासंगिक हिस्से को सुविधा के लिए, उचित और सही निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए, यह साबित करने के लिए कि इस गवाह की उपस्थिति अस्पताल में संदिग्ध है और कुछ उल्टे मकसद को प्रस्तुत करती है, पुन: प्रस्तुत किया जाता है। गवाह ने कहा कि: *"मैंने बयान किया उस समय डॉक्टर सुशील एमएलसी बनाने वाले वहाँ मौजूद थे।",* और उसने आगे ये भी कहा कि *"यह कथन सत्य है कि मैंने कागज संख्या A12/6 पर वहाँ मौजूद व्यक्ति का बयान लेने के बाद हस्ताक्षर नहीं कराये"। .....* (काग़ज़ न-ए12/6 अ.सा.-3 द्वारा अभिलिखित मृत्यु पूर्व बयान है।)

60. बचाव पक्ष के अधिवक्ता के तर्क में एक भावना है कि अस्पताल में अ०सा०-3 की उपस्थिति संदिग्ध है। अ०सा०-3 के बयान की कोई प्रासंगिकता नहीं है क्योंकि अभियोजन पक्ष द्वारा यह साबित नहीं किया गया है कि उसे एक वरिष्ठ अधिकारी द्वारा दिए गए समय और तारीख पर अस्पताल में पीड़िता का बयान दर्ज करने के लिए कहा गया था। इसलिए, डा सुशील, जिन्होंने अस्पताल में

अनुवादित

पहली बार पीड़िता का उपचार किया था, एकमात्र व्यक्ति हैं जो यह प्रमाणित कर सकते थे कि पीड़िता बयान देने के लिए मानसिक स्थिति में थी, लेकिन अभियोजन पक्ष द्वारा उसकी जांच नहीं की गई, न ही उसे अ०सा०-3 द्वारा दर्ज किए गए मृत्यु-पूर्व बयान में गवाह बनाया गया। यह भी साबित नहीं हुआ है कि पीड़िता बयान देने के लिए फिट स्थिति में थी। ब०सा०-1 ने अपनी गवाही में कहा है कि पीड़िता घटनास्थल पर ही बेहोश हो गई थी, जिसे अ०सा०-1 ने अपनी गवाही में स्वीकार किया है; संबंधित भाग इसके बाद निकाला गया है: *"जब मैं घर के अंदर पहुँचा मेरी पत्नी चिल्ला नहीं रही थी। मेरे चिल्लाने पे मेरे चाचा का लड़का पिन्कू आया था"।* बचाव पक्ष के अधिवक्ता ने आगे आग्रह किया कि मुकदमे के दौरान डॉ. सुशील से पूछताछ नहीं की गई, जिनकी देखरेख में मृतका का इलाज हो रहा था, और जिन्होंने कथित तौर पर एम.एल.सी. को समर्थन दिया था कि पीड़िता बयान देने के लिए फिट थी। अ०सा०-3 ने भी डॉ. सुशील को पीड़िता के बयान पर गवाह नहीं बनाया है, जबकि वह अस्पताल में मौजूद थे। इसलिए, एक निश्चित समय और तारीख पर अ०सा०-3 की उपस्थिति संदिग्ध है। यदि हम अ०सा०-3 के कथन को देखें, तो उसके पास दो विकल्प थे; या तो उसे तुरंत थाना-पिलखुआ में प्राथमिकी दर्ज करने के लिए उत्तर प्रदेश पुलिस को सूचित करना चाहिए था या उसके तुरंत बाद, जहां वह तैनात था, थाना-जीटीबी नगर, नई दिल्ली में प्राथमिकी दर्ज करने के लिए आगे बढ़ना चाहिए था, और संबंधित कार्यकारी मजिस्ट्रेट को अस्पताल में पीड़िता का बयान दर्ज करने के लिए सूचित करना चाहिए था। उसने कुछ नहीं किया। इसलिए अ०सा०-3 की गवाही से भी संदेह की बू आती है।

61. बचाव पक्ष के अधिवक्ता का तर्क है कि मकसद धूमिल है और अभियोजन पक्ष बलात्कार या हत्या के आरोपों से आरोपी अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराने के लिए एक मजबूत मकसद स्थापित करने में विफल रहा है। इस तथ्य से समर्थन मिलता है कि पति का आचरण, दो दिनों के लिए अप्राकृतिक रहा है। अ०सा०-1 की गवाही को चिकित्सा साक्ष्य से पुष्टि नहीं मिलती है, और उसकी गवाही में पर्याप्त सुधार और विरोधाभास हैं, जो अभियोजन पक्ष की कहानी को बदनाम करने के लिए पर्याप्त हैं। अ०सा०-1 दो दिनों के लिए घटनास्थल से बाहर था, और 48 घंटों के दौरान तैयार किए गए किसी भी दस्तावेज़ में उसकी उपस्थिति दर्ज नहीं की गई थी।

62. ब०सा०-1 शिकायतकर्ता का चचेरा भाई है, उसकी गवाही का प्रासंगिक हिस्सा यहां नीचे दिया गया है:

"घटना के पूर्व राकेश व नेहा की आपस में लड़ाई हुई थी। घटना के एक घंटा पूर्व लड़ाई हुई थी। मुझे नेहा की बचाओ बचाओ की आवाज सुनाई दी। बचाओ बचाओ की आवाज सुनकर के राकेश के जीने से राकेश के घर में गया। नेहा उस समय आग के लपेट में जल रही थी। जिस समय नेहा आग की लपेट में जल रही थी उस समय केवल राकेश व नेहा मौजूद थे। मैंने राकेश से नेहा की आग बुझाने के लिए कहा था जिस पर राकेश ने कहा था कि "नेहा को जलने दो"। नेहा ने मुझे कुछ नहीं बताया वह बेहोश हो गई थी। जब राकेश ने नेहा को नहीं बचाया तो मैंने नेहा को कम्बल डालकर बचाया था।"

अनुवादित

63. इस स्तर पर, हम महेंद्र सिंह और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य में सुप्रीम कोर्ट की दो-न्यायाधीशों की पीठ के फैसले का उल्लेख करेंगे, अदालत ने निम्नानुसार देखा है:

"20. एक स्थापित कानून है कि बचाव पक्ष के गवाह(ओं) को वही व्यवहार दिया जाना आवश्यक है जो अभियोजन पक्ष के गवाह (ओं) को दिया जाना है।

64. अ०सा०-1 और अ०सा०-3 के साथ ब०सा०-1 की गवाही का संयुक्त मूल्यांकन दिए गए तथ्यों-परिस्थितियों में आवश्यक हो जाएगा जब अ०सा०-1 और अ०सा०-3 के साक्ष्य संदेह के गंभीर क्षेत्र में हैं और अभियोजन की कहानी में संदेह पैदा करते हैं, अ०सा०-1 और अ०सा०-3 की विश्वसनीयता को ब०सा०-1 के संयुक्त पढ़ने के साथ-साथ परीक्षण करने की आवश्यकता है।

65. अ०सा०-1 और ब०सा०-1 की गवाही की जांच करने पर, यह सुरक्षित रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पीड़िता मदद के लिए रोयी थी। यदि उसके और उसके पति के बीच संबंध सहज थे, तो उसे आग बुझाने और पीड़िता को बचाने के लिए अपने सर्वोत्तम प्रयासों से प्रयास करना चाहिए था, लेकिन उसने ऐसा नहीं किया। ब०सा०-1 का कहना है कि अ०सा०-1 ने उससे कहा, पीड़िता को मरने दो। इससे पता चलता है कि उनके बीच तनावपूर्ण संबंध थे। 8.10.2015 को एम.एल.सी. तैयार करने पर, यह पता चलता है कि रोगी को अ०सा०-1 द्वारा नहीं, बल्कि सुरेंद्र कुमार द्वारा भर्ती किया गया था, जो पीड़िता को अस्पताल ले जाने का दावा करता है। इसके अलावा, आरोपी-अपीलकर्ताओं और पीड़िता के बीच रिकॉर्ड पर कोई दुश्मनी नहीं है, सिवाय शिकायतकर्ता की एकमात्र गवाही के, जो पीड़िता का पति है और जिसकी गवाही संदेह के गंभीर घेरे में है। बचाव-बचाव की चीख सुनकर ब०सा०-1 न केवल मौके पर पहुंचा, बल्कि पीड़िता पर कंबल भी डाला; इसलिए, उनकी गवाही ने अदालत का विश्वास प्राप्त किया और इस प्रकार ये ऊपर चर्चा किए गए तथ्यों के प्रकाश में, सत्य और विश्वसनीय के रूप में स्वीकार किए जाने योग्य है।

66. प्रस्तुत मामले में, इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि मृतका को उसके घर पर 8.10.2015 को गंभीर रूप से जलने की चोटें आईं। शव परीक्षण करने वाली डॉ. शालिनी राजदान (अ०सा०-8) ने कहा कि उसके सीने, पेट, पीठ, सिर, गर्दन और चेहरे पर 83% तक जलने की चोटें आई थीं। उसने यह भी गवाही दी है कि मौत का कारण जलने की चोटें थीं। यदि ब०सा०-1 के बयान के मद्देनजर जलने की चोटों की गंभीरता का मूल्यांकन किया जाए, जो कहता है कि वह घटनास्थल पर बेहोश हो गई थी, तो यह सुरक्षित रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पीड़िता बयान देने की स्थिति में नहीं थी।

67. अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराने के लिए, विचारण न्यायालय ने मुख्य रूप से मृतका की दो मृत्यु संबंधी घोषणाओं पर भरोसा किया है, एक सब इन्स्पेक्टर मनीष भाटी (अ०सा०-3) द्वारा दर्ज किया गया है और दूसरा मौखिक मृत्यु-पूर्व घोषणा मृतका द्वारा अपने पति अ०सा०-1 को दी गई बताई गई है। हालांकि, अ०सा०-3 द्वारा मृत्यु-पूर्व घोषणा को रिकॉर्ड करते समय अपनाई गई प्रक्रिया में कई खामियां थीं। फिर भी, विचारण न्यायालय ने गलती से इस पर भरोसा करना सुरक्षित पाया।

अनुवादित

68. उपरोक्त दुर्बलताएं अ०सा०-3 द्वारा दर्ज लिखित मृत्यु-पूर्व घोषणा को पूरी तरह से त्यागने के लिए पर्याप्त से अधिक हैं।

69. चूंकि विचारण न्यायालय द्वारा प्रतिबिंबित गए निष्कर्ष कमियों से भरे हुए हैं, इस प्रकार उन्हें अविश्वसनीय बनाते हैं; इसलिए हम उनकी साख पर ध्यान देने का प्रस्ताव नहीं करते हैं। यह कहने के लिए पर्याप्त है कि हमारे पास उन्हें अविश्वसनीय लगने का हर कारण है। अ०सा०-3 की लिखित मृत्यु-पूर्व घोषणा को खारिज करते हुए, हम यह बताना चाहेंगे कि हम अ०सा०-1 को की गई मौखिक मृत्यु-पूर्व घोषणा को पूर्ण विश्वास देने के लिए भी तैयार नहीं हैं। ऐसे उदाहरण हैं जहां दोषसिद्धि पूरी तरह से मृत्यु-पूर्व बयान पर आधारित है जब इसे पूरी तरह से स्वीकार्य पाया गया है। इस मामले में, हम मौखिक मृत्यु-पूर्व घोषणाओं को उस प्रकार का महत्व देने के लिए तैयार नहीं हैं।

70. ऊपर चर्चा किए गए सबूतों के प्रकाश में और मरने की घोषणाओं से संबंधित सबूतों के मूल्यांकन को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों के प्रति सचेत होने के कारण, हमें विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष का समर्थन करना मुश्किल लगता है। अ०सा०-1 और अ०सा०-3 के सबूतों को इतना तारकीय नहीं माना जा सकता है कि अपीलकर्ताओं को बलात्कार, बलात्कार के प्रयास और पीड़िता को आग लगाने के अपराध का दोषी ठहराया जा सके।

71. इसलिए, अभियुक्त-अपीलकर्ता चिंटू @ कुलदीप और मोंटी @ रवींद्र संदेह के लाभ के हकदार हैं।

72. उपरोक्त चर्चा के परिणामस्वरूप आक्षेपित निर्णय को रद्द और अपास्त किया जाता है। तदनुसार, अपीलों की अनुमति दी जाती है। नतीजतन, आरोपी-अपीलकर्ता चिंटू @ कुलदीप और मोंटी @ रवींद्र को उनके खिलाफ लगाए गए आरोपों से बरी किया जाता है। अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के संबंध में ये निर्देशित किया जाता है कि यदि द०प्र०स० की धारा 437-ए के अनुपालन के अधीन किसी अन्य मामले के संबंध में आवश्यक नहीं है, तो उन्हें तुरंत रिहा किया जाए।

(2023) 6 ILRA 351

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 30.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा

माननीय न्यायमूर्ति विनोद दिवाकर

आपराधिक अपील संख्या 2818 वर्ष 2019

राहुल ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता: श्री सुनील कुमार, श्री अखिलेश सिंह, श्री ब्रजेश कुमार, श्री शिवम यादव, श्री अजय यादव

प्रतिवादी के अधिवक्ता: जी.ए.

(ए) आपराधिक कानून - दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 376(2)(i) और 323 - बलात्कार, लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 - धारा 5(एम)/6, 42, आपराधिक कानून

अनुवादित

(संशोधन) अधिनियम, 2018, सामान्य खंड अधिनियम, 1897 - धारा 6 - निरसन का प्रभाव - प्रतिकूल गवाह के साक्ष्य को समग्र रूप से खारिज नहीं किया जा सकता है, तथा उसके प्रासंगिक भाग, जो कानून में स्वीकार्य हैं, अभियोजन पक्ष या बचाव पक्ष द्वारा उपयोग किए जा सकते हैं - एक व्यक्ति झूठ बोल सकता है, लेकिन परिस्थितियाँ झूठ नहीं बोलतीं। (पैरा -57, 60,)

(बी) भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 20(1) - पूर्वव्यापी - किसी भी ऐसे कार्य पर पूर्वव्यापी परिणाम, जो कानून द्वारा निषिद्ध नहीं है, किसी पूर्ववर्ती कानून के अधिनियमन से पहले - प्रावधानों की सख्ती से व्याख्या की जानी चाहिए और उन्हें बदला नहीं जा सकता पूर्वव्यापी प्रभाव तब तक दिया जाता है जब तक विधायी आशय और अभिव्यक्ति अस्पष्टता से परे स्पष्ट न हो - एक क़ानून जो मूलभूत अधिकारों को प्रभावित करता है, उसे तब तक संचालन में भावी माना जाता है जब तक कि उसे स्पष्ट रूप से या आवश्यक इरादे से पूर्वव्यापी नहीं बनाया जाता है। (पैरा - 36, 43)

(सी) आपराधिक कानून - उचित सजा का प्रावधान - सभी सजाएं किए गए अपराध के सीधे आनुपातिक होनी चाहिए - गंभीर यौन उत्पीड़न के मामले में सामान्य सजा 10 साल है, और अपवादस्वरूप मामलों में आजीवन कारावास हो सकता है - सजा देने के लिए न्यायालय की विवेकाधीन शक्ति का नियमित, आकस्मिक और लापरवाही से अंधाधुंध इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए - आजीवन कारावास देने के लिए विशेष और पर्याप्त कारण दर्ज किए जाने चाहिए। (पैरा - 78, 79, 82)

12 वर्ष से कम उम्र के बच्चे पर गंभीर यौन उत्पीड़न - आरोपी को आईपीसी की धारा 376(2)(i) के तहत सजा सुनाई गई - घटना की तारीख को यह दंड संहिता का हिस्सा नहीं रहा - ट्रायल कोर्ट को नए कानून के तहत आईपीसी की धारा 376(2) के तहत मुकदमा चलाना चाहिए और सजा सुनानी चाहिए - जो घटना की तारीख को अस्तित्व में आया - सोलह वर्ष से कम उम्र की महिला के साथ बलात्कार के लिए न्यूनतम सजा - नए कानून में बढ़ाकर 20 वर्ष कर दी गई - ट्रायल कोर्ट ने आरोपी-अपीलकर्ता को आजीवन कारावास की सजा सुनाई - कोई पूर्वाग्रह नहीं कारण - आजीवन कारावास की सजा पहले से ही आपराधिक कानून अध्यादेश, 2018 के पूर्व और पश्चात में अस्तित्व में थी। **(पैरा - 47, 54, 55)**

निर्णय:- ट्रायल कोर्ट के निष्कर्षों ने आईपीसी के तहत बलात्कार के तत्वों की पुष्टि की। आरोपी-अपीलकर्ता के लिए POCSO अधिनियम, 2012 के तहत पेनेट्रेटिव एग्रेसिविंग यौन हमला स्थापित किया गया। ट्रायल कोर्ट आजीवन कारावास की सजा देने का कारण दर्ज करने में विफल रहा। अपीलकर्ता के सुधार और पुनर्वास की संभावना को खारिज करने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है। स्वच्छ पृष्ठभूमि वाला व्यक्ति। सजा को 20 साल के कारावास में संशोधित किया गया। धारा 42 के आदेश के कारण POCSO अधिनियम 2012 की धारा 5 (एम) / 6 के तहत सजा नहीं दी गई। (पैरा - 77, 83, 84)

अनुवादित

आपराधिक अपील आंशिक रूप से स्वीकार की गई। (ई-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. एल.आर. ब्रदर्स इंडो फ्लोरा लिमिटेड बनाम सी.सी.ई. , (2020) एससीसी ऑनलाइन एससी 705
2. हितेंद्र विष्णु ठाकुर बनाम स्टेट ऑफ महाराष्ट्र, (1994) 4 एससीसी 602
3. यूओआई बनाम ज़ोरा सिंह, (1992) 1 एससीसी 673
4. सोनी देवराजभाई बाबूभाई बनाम स्टेट ऑफ गुजरात और अन्य, (1991) 4 एससीसी 298
5. कल्पनाथ राय बनाम स्टेट (सीबीआई के माध्यम से), (1997) 8 एससीसी 732
6. रि: बारटेरो, (1994) 1 ऑल ईआर 447 (सीए)
7. स्टेट ऑफ यूपी बनाम शुभाष @ पप्पू, (2022) 6 एससीसी 508
8. फेनुल खान, (2019) 9 एससीसी 549
9. राजेश यादव एवं अन्य। बनाम यूपी का स्टेट. , (2022) 12 एससीसी 200
10. विनोद कुमार बनाम स्टेट ऑफ पुंज, (2015) 3 एससीसी 220
11. महेंद्र सिंह एवं अन्य। बनाम स्टेट ऑफ एम.पी., (2022) 7 एससीसी 157
12. गुलाम सरबर बनाम स्टेट ऑफ बिहार, (2014) 3 एससीसी 401
13. वडिवेलु थेवर बनाम स्टेट ऑफ मद्रास, एआईआर 1957 एससी 614
14. कुंजू बनाम स्टेट ऑफ टी.एन., (2008) 2 एससीसी 151
15. बिपिन कुमार मंडल बनाम स्टेट ऑफ डब्ल्यू.बी., (2010) 12 एससीसी 91
16. महेश बनाम स्टेट ऑफ एम.पी., (2011) 9 एससीसी 626
17. पृथिपाल सिंह बनाम स्टेट ऑफ पुंज. (2012) 1 एससीसी 10
18. किशन चंद बनाम स्टेट ऑफ हरियाणा (2013) 2 एससीसी 502
19. शिंभू और अन्य। बनाम हर. राज्य, (2014) 13 एससीसी 318

(माननीय न्यायमूर्ति विनोद दिवाकर द्वारा दिया गया)

1. हमने अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री सुनील कुमार और राज्य के अपर शासकीय अधिवक्ता श्री अरुणेंद्र कुमार सिंह को सुना है।

2. यह अपील प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, उरई, जिला: जालौन द्वारा सत्र परीक्षण संख्या-56 वर्ष 2018 (राज्य बनाम राहुल) में पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांक 18.12.2018, जो यौन अपराधों से बच्चों के संरक्षण अधिनियम, 2012 की धारा 5(एम)/6 सपठित धारा 376 (2)(i), 323 भ०द०वि० जो केस अपराध संख्या-20 वर्ष 2018, से उद्भूत है, के खिलाफ दायर की गई है, जिसके द्वारा विचारण न्यायालय ने आरोपी-अपीलकर्ता राहुल को धारा 376 (2)(i) भ०द०वि० के तहत आजीवन कारावास और 50,000 रुपये का जुर्माना देने और जुर्माना न भरने पर दो साल के अतिरिक्त कारावास की सजा सुनाई है।

3. संक्षेप में, अभियोजन पक्ष का मामला यह है कि 21.04.2018 को लगभग 07:46 बजे, शिकायतकर्ता राघवेंद्र सिंह ने थाना-कोटरा, जिला: जालौन में एक लिखित शिकायत दर्ज की, जिसमें कहा गया कि उनका बेटा सुबह

अनुवादित

7:00 बजे स्कूल गया था, उसके बाद रामफल सिंह का बेटा राहुल घटना की तारीख पर अपने घर आया था और अपनी पत्नी से कहा था कि वह उसकी दो साल की बेटी (इसके बाद पीड़िता "एक्स" के रूप में संदर्भित) को मंदिर ले जा रहा है। आरोपी-अपीलकर्ता राहुल अपनी बेटी को बालों में कंघी करने और फ्रॉक पहनाने के बाद मंदिर ले गया। जब राहुल बच्ची को लेकर सुबह 9:00 बजे तक नहीं लौटा, तो शिकायतकर्ता की पत्नी ने उदयपाल सिंह से पूछा कि क्या उसने राहुल को मंदिर में देखा है। उदयपाल सिंह ने कहा कि वह मंदिर से आ रहा था, लेकिन वे नहीं मिले। उसके बाद शिकायतकर्ता की पत्नी और उसके पिता पीड़िता 'एक्स' की तलाश में राहुल के घर पहुंचे। आरोपी राहुल शिकायतकर्ता का चचेरा भाई है। शिकायतकर्ता की पत्नी राहुल और उसके पिता के घर पहुंचने पर देखा कि राहुल उसकी बेटी के ऊपर था, और उसकी बेटी, पीड़िता 'एक्स', रो रही थी। शिकायतकर्ता की पत्नी और उसके पिता को देखकर, राहुल पीड़िता 'एक्स' को छोड़कर भाग गया। शिकायतकर्ता की पत्नी और शिकायतकर्ता के पिता ने पीड़िता 'एक्स' को उठाया और देखा कि 'एक्स' का जननांग सूजा हुआ था और उसके निजी अंगों से खून निकल रहा था। राहुल ने शिकायतकर्ता की बेटी के साथ दुष्कर्म किया था। शिकायतकर्ता की पत्नी और उसके पिता ने शिकायतकर्ता को टेलीफोन पर पूरी घटना बताई, और उसके बाद, शिकायतकर्ता घर पहुंची और अपनी बेटी 'एक्स' को रोते हुए देखा। वह डर गई थी, और उसका चेहरा भी सूजा हुआ था।

4. लिखित रिपोर्ट के आधार पर दिनांक 21.04.2018 को 19:46 बजे थाना-कोटरा, जिला: जालौन, उत्तर प्रदेश में थाना-कोटरा, जिला: जालौन, उत्तर प्रदेश में धारा 376 (2)(i), 323 भ०द०वि० सपठित धारा 5(एम)/6, पाकसो अधिनियम 2012 के तहत प्राथमिकी दर्ज की गई। चूंकि प्राथमिकी में यौन शोषण का आरोप था, इसलिए जिला महिला अस्पताल, जालौन में तैनात वरिष्ठ चिकित्सा अधिकारी द्वारा 21.04.2018 को रात 10.45 बजे यौन हिंसा की मेडिको-लीगल परीक्षा आयोजित की गई।

5. प्राथमिकी दर्ज करने के बाद, पुलिस ने जांच की और (i) राघवेंद्र सिंह, (ii) उदयपाल सिंह; (iii) वीरेन्द्र सिंह; (iv) श्रीमती दीपा; (v) हैड कांस्टेबल चन्द्र कुमारी; (vi) डा सुनीता बनोझा; सी.एम.ओ. जालौन; और (vii) कांस्टेबल राम बिहारी पांडे, और (viii) इंस्पेक्टर अशोक कुमार पांडे का धारा 161 द०प्र०स० के तहत बयान दर्ज किया।

6. आरोपी राहुल के खिलाफ सभी सामग्री एकत्र करने और विवेचना की समाप्ति पर, पुलिस ने आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ धारा 376 (2)(i) पॉक्सो अधिनियम, 2012 और धारा 323 भ०द०वि० के साथ धारा 5(एम)/6 पॉक्सो अधिनियम, 2012 के तहत 25.05.2018 को आरोप पत्र दायर किया। सीजेएम ने संज्ञान लिया और धारा 207 द०प्र०स० की आवश्यकताओं का पालन करने के बाद, मामले को विचारण के लिए सत्र न्यायालय को सौंप दिया।

अनुवादित

7. विचारण न्यायालय ने धारा 323 भ०द०वि० सपठित धारा 376 (2)(आई) और पॉक्सो अधिनियम, 2012 की धारा 5(एम)/6 के तहत आरोप तय किए। आरोप पत्र दिनांक 11.07.2018 को अभियुक्त को पढ़कर सुनाया गया और आरोपी-अपीलकर्ता ने आरोपों से इनकार किया और विचारण चाहा।

8. अपने मामले को साबित करने के लिए, अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित दस्तावेजी साक्ष्य पेश किए हैं।

(i) लिखित प्रतिवेदन दिनांक 21.04.2018, जिसे प्रदर्श क-1

(ii) दिनांक 21.04.2018 की प्राथमिकी प्रदर्श क-4

(iii) मेडिको-लीगल एग्जामिनेशन रिपोर्ट दिनांक 21.04.2018, प्रदर्श क?

(iv) दिनांक 25.04.2018 का आरोप पत्र, प्रदर्श क-6

9. उपरोक्त दस्तावेजी साक्ष्य के अलावा, अभियोजन ने शिकायतकर्ता राघवेंद्र सिंह (अ०सा०-1) की जांच की है; अ०सा०-2 पीड़िता की मां श्रीमती दीपा; डॉ. सुनीता बनोझा (अ०सा०-3); कांस्टेबल राम बिहारी पांडे अ०सा०-4 के रूप में; इंस्पेक्टर अशोक कुमार (अ०सा०-5) के रूप में जांच की गई है।

10. शिकायतकर्ता राघवेंद्र सिंह की पीड़िता के पिता की जांच अ०सा०-1 के रूप में की गई; उन्होंने कहा कि 21.04.2018 को लगभग 7.00 बजे वह ग्राम हेमतपुर, जिला: परिषद बारियर में थे, जब उनकी पत्नी दीपा ने टेलीफोन करके सूचित किया कि राहुल उनके घर आया था और उसे बताया कि वह पीड़िता 'एक्स' को अक्षरा देवी मंदिर ले जा रहा है। चूंकि राहुल शिकायतकर्ता का चचेरा भाई है, इसलिए उसकी पत्नी ने बच्चे को राहुल के साथ जाने की अनुमति दी। जब राहुल बच्ची को लेकर सुबह 9.00 बजे तक नहीं लौटा, तो उसकी पत्नी ने शिकायतकर्ता के भतीजे उदयपाल सिंह से पूछा कि क्या उसने राहुल और पीड़िता 'एक्स' को मंदिर में देखा है। उदयपाल ने कहा कि वह मंदिर से आ रहा था, लेकिन वे नहीं मिले। तभी उसकी पत्नी और पिता वीरेंद्र सिंह राहुल के घर पहुंचे तो देखा कि राहुल नंगा है और उनकी बेटी के ऊपर लेटा हुआ है, जो रो रही थी। पत्नी के चिल्लाने पर राहुल बेटी को रोता हुआ छोड़कर भाग गया। उसकी पत्नी ने देखा कि बेटी के प्राइवेट पार्ट से खून निकल रहा था, और जननांगों पर सूजन आ गई थी। राहुल ने उसकी बेटी 'एक्स' के साथ बलात्कार किया था। उसकी पत्नी ने अपने पिता के फोन से शिकायतकर्ता को घटना की जानकारी दी। घर आने के बाद शिकायतकर्ता अपनी पत्नी और पिता के साथ थाने गया और राहुल के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज कराई।

11. अपनी जिरह में, अ०सा०-1 ने कहा कि वह 12 वीं पास है और कहतमपुर गांव, उसके काम की जगह, उसके गांव से लगभग 90 किमी दूर है। उनकी पत्नी ने उन्हें टेलीफोन पर सुबह 10 बजे घटना की जानकारी दी। पत्नी ने पांचवीं कक्षा तक पढ़ाई की है और उसकी पत्नी के पास मोबाइल है। घटना की जानकारी उसके चाचा के बेटे उदयपाल ने फोन पर दी थी। जब वह घर पहुंचा तो उसे लड़की घर पर मिली। लड़की दो साल की होने के कारण बोल नहीं पा रही थी। घटना के समय राहुल घर पर अकेला था। लड़की ने फ्रॉक पहना था। फ्रॉक पर खून लगा था। उन्होंने आगे कहा कि खून उसके पैरों

अनुवादित

तक नहीं पहुंचा था, और उसकी मां ने बयान दिया क्योंकि लड़की बोल नहीं सकती थी। शिकायतकर्ता घर पर नहीं था, और उसकी पत्नी उसके घर पहुंचने का इंतजार कर रही थी ताकि प्राथमिकी दर्ज की जा सके।

12. पीड़िता 'एक्स' की मां की जांच अ०सा०-2 के रूप में की गई थी; उसने अभियोजन पक्ष के मामले का मुख्य परीक्षा में समर्थन किया है, जो 31.08.2018 को दर्ज किया गया था, लेकिन जिरह के दौरान उसके बयान से मुकर गई, जो 07.09.2018 को दर्ज किया गया था, उसके नौ दिन बाद। इस गवाह ने कहा कि उसने देखा कि आरोपी-अपीलकर्ता राहुल उसकी बेटी पर नग्न पड़ा था और उसकी चुनौती पर, आरोपी राहुल भाग गया।

13. जिरह में, अ०सा०-2 ने कहा कि 31.08.2018 को दर्ज किया गया उसका पहले का बयान पुलिस और अधिवक्ता ने उसे जो बताया था, उसके आधार पर था। पुलिस ने गवाह को बताया कि अगर उसने उनके सुझाव के अनुसार नहीं बताया, तो उसका पति जेल जाएगा, इसलिए डर से, उसने मुख्य परीक्षण में अभियोजन पक्ष की लाइन पर पुलिस और अधिवक्ता द्वारा दिए गए सुझाव के आधार पर तथ्यों को बताया।

14. गवाह ने आगे कहा कि घटना की तारीख पर, लगभग 6:00-7:00 बजे, जब पीड़िता जाग गई, तो उसे पेशाब करने के लिए मजबूर किया गया, लेकिन पीड़िता 'एक्स' को पेशाब करने में कठिनाई का सामना करना पड़ा और वह रोने लगी। उसने देखा कि उसके जननांगों पर लालिमा थी। इस पर उसने पीड़िता को 'एक्स' उसके ससुर को दे दिया, जो घर के बाहर काम कर रहा था और काम में व्यस्त हो गई। जब वह बाहर आई, तो वह पीड़िता 'एक्स' को नहीं देख सकी, और पीड़िता के बारे में पूछने पर, उसने कहा कि वह कहीं खेल रही होगी, और उसके बाद, उसके ससुर उसे खोजने गए। 10-15 मिनट के बाद, वह उसे घर ले आया और कहा कि वह रास्ते में खेल रही थी - उनके घर से कुछ दूरी पर - और पीड़िता को पेशाब करने में कुछ कठिनाई हुई और उसके निजी अंगों पर लालिमा विकसित हुई। इसी बीच किसी ने पुलिस को फोन कर दिया और ग्रामीण की शिकायत पर पुलिस राहुल को अपने साथ ले गई। पीड़िता को पहले भी योनि में संक्रमण हुआ था, और स्थानीय उपचार के बाद, उसे ठीक कर दिया गया था।

15. यौन हिंसा पर मेडिको-लीगल परीक्षण रिपोर्ट तैयार करने वाली डॉ. सुनीता बनोझा की जांच अ०सा०-3 के रूप में की गई। उसने गवाही दी कि पीड़िता 'एक्स' की मां और पिता, जिनकी उम्र लगभग दो साल थी, उसे आंतरिक और बाहरी जांच के लिए अस्पताल लाए थे। बाहरी जांच में, यह पाया गया कि योनि के शुरुआती हिस्से पर कोई तरल पदार्थ का निर्वहन या सूजन नहीं थी, लेकिन उसके निजी अंगों पर 01 इंच की चोट और लालिमा थी, और सुझाव पर, उसने कहा कि लालिमा रगड़ या कठोर वस्तुओं के बलपूर्वक प्रवेश से आ सकती है।

16. कांस्टेबल राम बिहारी पांडे से अ०सा०-4 के रूप में पूछताछ की गई, जिसने कांस्टेबल मोहर्रिर को आरोपी अपीलकर्ता राहुल के खिलाफ धारा 376 (2)(i), 323 भ०द०वि० के साथ धारा 5(एम)/6 पॉक्सो अधिनियम, 2012 के तहत केस अपराध संख्या-20 वर्ष 2018 के

अनुवादित

रूप में प्राथमिकी दर्ज करने का काम सौंपा और चिक प्राथमिकी साबित की।

17. इंस्पेक्टर अशोक कुमार की जांच अ०सा०-5 के रूप में की गई, जिन्होंने प्राथमिकी दर्ज करने के बाद विवेचना की और मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य एकत्र किए, और उसके बाद, धारा 376 (2)(i), 323 भ०द०वि० के साथ धारा 5(एम)/6 पॉक्सो अधिनियम, 2012 के तहत आरोपी-अपीलकर्ता के खिलाफ आरोप पत्र दायर किया और आरोप पत्र की सामग्री को साबित किया।

18. वीरेंद्र सिंह की ब०सा०-1 के रूप में जांच की गई, जिसने कहा है कि पीड़िता उसकी पोती है, और अभियोजन पक्ष ने एक विजय गुप्ता के इशारे पर राहुल को फंसाने के लिए एक मनगढ़ंत कहानी विकसित की है, जिसकी आरोपी के साथ दुश्मनी थी। आरोपी-अपीलकर्ता, राहुल ने ग्राम चुनाव में विजय गुप्ता का समर्थन नहीं किया, और इसलिए, उसने आरोपी-अपीलकर्ता, राहुल के खिलाफ दुर्भावना रखना शुरू कर दिया और उसे पुलिस और ग्रामीणों के साथ मिलकर झूठे मामले में फंसाया।

19. मुकदमे के दौरान अभियोजन पक्ष द्वारा पेश की गई सामग्री के आधार पर, अभियुक्त को धारा 313 द०प्र०स० के तहत अपना बयान दर्ज करने के लिए सामना किया गया था। आरोपी ने कहा है कि उसे विजय गुप्ता के एक व्यक्ति के इशारे पर झूठा फंसाया गया है, जिसके साथ शिकायतकर्ता के पिता काम करते हैं। उन्होंने प्रधान चुनाव में अपनी उम्मीदवारी का विरोध किया था।

20. पेश किए गए सबूतों के आधार पर, विचारण न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता का अपराध उचित संदेह से परे साबित हो गया है और तदनुसार, आरोपी अपीलकर्ता को धारा 5(एम)/6 पॉक्सो अधिनियम सपठित धारा 376 (2)(i), 323 भ०द०वि० के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराया गया है और कम सजाओं के साथ आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई है।

21. विचारण न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला है कि अ०सा०-3 की गवाही सुसंगत है, और डॉक्टर के पास आरोपी-अपीलकर्ता को झूठा फंसाने का कोई कारण नहीं है। डॉक्टर की राय के अनुसार, पीड़िता बच्चे 'एक्स' पर हमलावर द्वारा यौन उत्पीड़न किया गया था, और विचारण न्यायालय ने अ०सा०-1 की गवाही और अ०सा०-2 की मुख्य परीक्षा को विश्वसनीय और भरोसेमंद पाया।

22. आरोपी-अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री सुनील कुमार ने तर्क दिया है कि सबूत इतने कम थे कि आरोपी-अपीलकर्ता द्वारा नाबालिग बच्चे को यौन उत्पीड़न के लिए रखे जाने का कोई सबूत नहीं था। दोषसिद्धि अल्प साक्ष्यों पर आधारित नहीं हो सकती है, और यह कि विचारण न्यायालय ने सबूतों की मूल्यांकन करने में प्रत्यक्ष अवैधता की थी।

23. इस विषय पर अ०सा०-1, अ०सा०-2 और अ०सा०-3 की गवाही के कुछ हिस्सों का उल्लेख करते हुए, अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि विचारण न्यायालय गलती से निम्नलिखित तर्कों का मूल्यांकन करने में विफल रहा।

23.1 अ०सा०-1- पहला सूचनाकर्ता- घटना का चश्मदीद गवाह नहीं है; अ०सा०-1 से जो पूरा

अनुवादित

सबूत सामने आता है, वह सुनी-सुनाई गवाही है। यह कानून के तहत स्वीकार्य नहीं है।

23.2 अ०सा०-2, पीड़िता की मां, जो इस तथ्य की गवाह है, जिरह में मुकर गई है; इसलिए, मुख्य परीक्षण के तहत दर्ज उसकी गवाही को सटीकता के साथ चिकित्सा साक्ष्य के साथ पुष्टि की आवश्यकता है।

23.3 अभियोजन पक्ष श्री उदयपाल सिंह-शिकायतकर्ता के भतीजे को पेश करने में विफल रहा है, भले ही वह आरोप पत्र में एक पुलिस गवाह था, जिसका नाम प्राथमिकी में भी सामने आया था। वह अभियोजन पक्ष का एक संभावित गवाह हो सकता है, जो अभियोजन पक्ष के मामले पर प्रकाश डाल सकता है कि अपराध कैसे किया गया था।

23.4 अ०सा०-3 के बयान में कहा गया है कि योनि से कोई रक्तस्राव, चीरा, सूजन या अन्य स्राव का पता नहीं चला था।

23.5 यौन हमला एक स्वतंत्र अपराध है अर्थात एक गंभीर यौन हमला।

23.6 न्यायालय ने ब०सा०-1 की गवाही को खारिज करने में भी गलती की है, जो तथ्य का गवाह था और अ०सा०-1 के साथ अभियुक्त-अपीलकर्ता के घर गया था और कथित तौर पर घटना को देखा था।

23.7 अभियोजन पक्ष के गवाह के बयान में विसंगतियां और सुधार हैं। गवाह की चाक्षुक संबंधी गवाही मेडिकल रिपोर्ट की पुष्टि नहीं करती है, और मेडिकल रिपोर्ट पॉक्सो अधिनियम, 2012 की धारा 5(एम)/6 और 375 भ०द०वि० के अवयवों की पुष्टि नहीं करती है।

23.8 विचारण न्यायालय धारा 313 द०प्र०स० के तहत दर्ज अभियुक्त के बयान की मूल्यांकन करने में विफल रहा है जिसमें उसने कहा है कि उसे दुश्मनी के कारण झूठा फंसाया गया है।

23.9 धारा 376 (2)(i), धारा 5(एम)/6 पॉक्सो अधिनियम सपठित 323 भ०द०वि० के तहत अपराध की सामग्री मामले के तथ्यों में नहीं बनाई गई है क्योंकि मुकदमे के दौरान अभियुक्त-अपीलकर्ता के खिलाफ भेदन यौन हमले और बलात्कार का कोई सबूत साबित नहीं हुआ है।

23.10 चूंकि आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 2018 के माध्यम से दंड संहिता से धारा 376(2)(i) को 21.04.2021 से हटा दिया गया था, इसलिए, अभियुक्त-अपीलकर्ता को दी गई सजा भारत के संविधान के अनुच्छेद 20 (1) द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों से प्रभावित होती है।

24. अभियुक्त-अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने चार बिंदुओं पर न्यायालय का ध्यान संक्षेप में आकर्षित किया है;

(i) अभियुक्त-अपीलकर्ता के खिलाफ कोई मामला नहीं बनता है, क्योंकि अ०सा०-1 और अ०सा०-3 की गवाही अत्यधिक अविश्वसनीय है, और अ०सा०-2, और ब०सा०-1 का संचयी प्रभाव चिकित्सा साक्ष्य को अविश्वसनीय बनाता है, और इसलिए, अ०सा०-3 की गवाही को खारिज कर दिया जाए। विचारण न्यायालय ने ब०सा०-1 की गवाही को खारिज करने में स्पष्ट रूप से अवैधता की है, जो घटना का चश्मदीद गवाह है और अभियोजन पक्ष द्वारा उसे छोड़ दिया गया है क्योंकि उसे ही सबसे अच्छी तरह से पता है।

अनुवादित

(ii) पॉक्सो अधिनियम की धारा 5(एम)/6 के तहत अपराध की सामग्री मामले के तथ्यों में साबित नहीं हुई है।

(iii) अभियुक्त-अपीलकर्ता को दी गई सजा भारत के संविधान के अनुच्छेद 20(1) से प्रभावित है क्योंकि घटना की तारीख को धारा 376 (2)(i) अस्तित्व में नहीं थी।

(iv) सजा कथित अपराध से अधिक है और सजा देने की नीति का अक्षरश: पालन नहीं किया गया है।

25. प्रति प्रतिरोध, अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि रिकॉर्ड पर साक्ष्य पोक्सो अधिनियम, 2012 की धारा 5(एम)/6 सपठित धारा 376 (2)(i) के तहत दंडनीय बलात्कार के गठन को साबित करता है। शिकायतकर्ता का बयान, जिसे अ०सा०-1 के रूप में जांचा गया था, अपराध के कारित होने के संबंध में निश्चित है। अ०सा०-2, पीड़िता की मां और मामले की चश्मदीद गवाह, अभियोजन पक्ष की स्टर्लिंग गवाह है; इस गवाह ने मुख्य परीक्षा में अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है, भले ही वह अपनी जिरह में पीछे हट गई हो। अ०सा०-2 का मुख्य परीक्षण आरोपी-अपीलकर्ता के खिलाफ रेप का आरोप साबित करता है। डॉ. सुनीता बनोझा, जिन्होंने पीड़िता की चिकित्सकीय जांच की, ने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया और कहा कि पीड़िता के निजी अंगों पर लालिमा का पैच था और अ०सा०-3 द्वारा तैयार यौन हिंसा की मेडिको-लीगल परीक्षा रिपोर्ट का उल्लेख किया, जिसने बलात्कार के अपराध को साबित किया। अपर शासकीय अधिवक्ता आग्रह करते हैं कि अ०सा०-1, अ०सा०-2 और अ०सा०-3 की गवाही का संचयी प्रभाव उचित संदेह से परे अभियुक्त-अपीलकर्ता के अपराध को साबित करता है।

26. उन्होंने आग्रह किया है कि अ०सा०-3 के लिए आरोपी-अपीलकर्ता को झूठा फंसाने का कोई कारण नहीं है, और डॉक्टर की राय से, यह सुरक्षित रूप से पता लगाया जा सकता है कि पीड़िता बच्चे पर हमलावर द्वारा एक तीव्र यौन हमला किया गया था।

27. मामले में आने से पहले, निर्भया मामले के बाद आपराधिक कानून में संशोधनों के संक्षिप्त इतिहास में जाना मामले की उपयुक्तता में होगा।

28. 16 दिसंबर 2012 को दिल्ली में एक बस में 23 वर्षीय फिजियोथेरेपिस्ट के क्रूर सामूहिक बलात्कार ने पूरे देश को झकझोर दिया और व्यापक आक्रोश और विरोध प्रदर्शन किया। दंड विधि (संशोधन) अधिनियम, 2013 को संसद में पुरस्थापित किया गया था जिसने भारतीय दंड संहिता 1860, भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1860, दंड प्रक्रिया संहिता 1973 और यौन अपराध से बच्चों का संरक्षण अधिनियम 2012 में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए और दिनांक 02042013 को राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त की और दिनांक 03022013 से आपराधिक विधि (संशोधन) अध्यादेश, 2013 प्रभावी हुआ। प्रारंभ में यह भारत के राष्ट्रपति द्वारा 03.02.2013 को प्रख्यापित अध्यादेश था और 03.02.2013 से एक अधिनियम बन गया।

29. निर्भया मामले के बाद, कठुआ मामले के मद्देनजर-सार्वजनिक हंगामे के परिणामस्वरूप, कैबिनेट ने आपराधिक कानून (संशोधन) अध्यादेश 2018 को मंजूरी दे दी, और भारत के राष्ट्रपति ने 21 अप्रैल, 2018 को अध्यादेश पर हस्ताक्षर किए। इसके बाद, संवैधानिक

अनुवादित

दायित्व को पूरा करने के लिए, अध्यादेश संसद के अधिनियम द्वारा अधिनियम बन गया, जिसे 11 अगस्त, 2018 को राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त हुई और यह पूर्वव्यापी प्रभाव के साथ आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 2018 के रूप में अस्तित्व में आया।

30. आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम 2018 की मुख्य विशेषताओं में से एक यह है कि यदि कोई व्यक्ति सोलह वर्ष से कम उम्र की महिला के साथ बलात्कार करता है, तो उसे कम से कम 20 साल की सजा दी जा सकती है, जो आजीवन कारावास तक बढ़ सकती है, आजीवन कारावास का अर्थ है व्यक्तियों के शेष प्राकृतिक जीवन के लिए।

31. अब इस न्यायालय के समक्ष यह प्रश्न उठता है कि क्या विचारण न्यायालय ने भ०द०वि० की धारा 376 (2)(i) के तहत दंडनीय अपराध करने के लिए अभियुक्त-अपीलकर्ता को दोषी ठहराने में न्यायसंगत था, इसके बावजूद कि अपराध की घटना/कमीशन की तारीख को आपराधिक कानून (संशोधन) अध्यादेश, 2018 के प्रख्यापन द्वारा इसे छोड़ दिया गया था।

32. इस कानूनी मुद्दे को टालने के लिए, हम आपराधिक कानून अध्यादेश, 2018 के प्रासंगिक हिस्से को निकालना चाहते हैं, जिसे 21.04.2018 को राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त हुई:

"आपराधिक कानून (संशोधन) अध्यादेश, 2018 संख्या-2 वर्ष 2018

भारत गणराज्य के उनहत्तर वर्ष में राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यापित:

एक अध्यादेश ने भारतीय दंड संहिता, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, वर्ष 1872, आपराधिक प्रक्रिया संहिता 1973 और यौन अपराधों से बच्चों के संरक्षण अधिनियम 2012 में और संशोधन किया।

जबकि संसद का सत्र नहीं चल रहा है और राष्ट्रपति संतुष्ट हैं कि ऐसी परिस्थितियाँ मौजूद हैं जिनके कारण उनके लिए तत्काल कार्रवाई करना आवश्यक हो जाता है;

इसलिए, संविधान के अनुच्छेद 123 के खंड (1) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए राष्ट्रपति निम्नलिखित अध्यादेश प्रख्यापित करते हैं - 4 अध्यादेश जारी किया जाता है।

दंड संहिता की धारा 376 में, -

(क) उपधारा (1) में, शब्दों के स्थान पर "सात वर्ष से कम नहीं होगा, किंतु जो आजीवन कारावास तक बढ़ाया जा सकेगा, और जुर्माने के लिए भी दायी होगा", शब्द "दस वर्ष से कम नहीं होंगे, लेकिन जो आजीवन कारावास तक विस्तारित हो सकते हैं, और जुर्माने के लिए भी उत्तरदायी होंगे" प्रतिस्थापित किए जाएंगे;

(ख) उप-धारा (2) में, खंड (i) का लोप किया जाएगा;

(ग) उप-धारा (2) के बाद, निम्नलिखित उप-धारा डाली जाएगी, अर्थात्: -

"(3) जो कोई सोलह वर्ष से कम आयु की किसी महिला का बलात्कार करेगा, वह ऐसी अवधि के लिए कठोर कारावास से, जो बीस वर्ष से कम नहीं होगी, किन्तु जो आजीवन कारावास तक बढ़ाई जा सकेगी, दण्डित किया जाएगा, जिसका अर्थ होगा उस व्यक्ति की शेष स्वाभाविक आयु के लिए कारावास, और जुर्माने से भी दण्डित किया जाएगा:

बशर्ते कि इस तरह का जुर्माना पीड़िता के चिकित्सा खर्चों और पुनर्वास को पूरा करने के लिए उचित और उपयुक्त होगा:

अप्रमाणित

बशर्ते कि इस उपधारा के तहत लगाए गए किसी भी जुर्माने का भुगतान पीड़िता को किया जाएगा।

33. इस संबंध में, आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 2018 के प्रासंगिक हिस्से को निकालना भी आवश्यक है, जिसे 21.04.2018 को आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचित किया गया था:

"आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 2018 संख्या-22 वर्ष 2018 [11 अगस्त, 2018।

इसके अतिरिक्त भारतीय दंड संहिता, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 और यौन अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 में संशोधन करने के लिए एक अधिनियम बनाया गया है।

इसे भारत गणराज्य के उनहत्तरवें वर्ष में संसद द्वारा निम्नानुसार अधिनियमित किया जाए: -

अध्याय ।

प्रस्तावना

1. (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम दंड विधि (संशोधन) अधिनियम, 2018 है।

(2) यह 21 अप्रैल, 2018 को प्रवृत्त हुआ माना जाएगा। ---------- ---------- ----------

4. दंड संहिता की धारा 376 में- ---------- ---------- --- ----------

(ख) उप-धारा (2) में, खंड (i) का लोप किया जाएगा;

(ग) उप-धारा (2) के बाद, निम्नलिखित उप-धारा डाली जाएगी, अर्थात्: -

"(3) जो कोई सोलह वर्ष से कम आयु की किसी महिला का बलात्कार करेगा, वह ऐसी अवधि के लिए कठोर कारावास से, जो बीस वर्ष से कम नहीं होगी, किन्तु जो आजीवन कारावास तक बढ़ाई जा सकेगी, दण्डित किया जाएगा, जिसका अर्थ होगा उस व्यक्ति की शेष स्वाभाविक आयु के लिए कारावास, और जुर्माने से भी दण्डित किया जाएगा:

बशर्ते कि इस तरह का जुर्माना पीड़िता के चिकित्सा खर्चों और पुनर्वास को पूरा करने के लिए उचित और उपयुक्त होगा:

बशर्ते कि इस उप-धारा के तहत लगाए गए किसी भी जुर्माने का भुगतान पीड़िता को किया जाएगा।

34. राज्य के अधिवक्ता श्री अरुणेंद्र कुमार सिंह का तर्क यह है कि इस संशोधन के लागू होने की तारीख को जांच/विचारण के लिए लंबित सभी मामलों को इस संशोधन द्वारा आच्छादित किया गया माना गया था और उनके तर्क को साबित करने के लिए सामान्य खंड अधिनियम, 1897 की धारा 6 पर भरोसा किया गया था। सामान्य खंड अधिनियम, 1897 की धारा 6 को सुलभ संदर्भ के लिए नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"6. निरसन का प्रभाव: जहां यह अधिनियम, या कोई [केंद्रीय अधिनियम] या इस अधिनियम के प्रारंभ के बाद बनाए गए विनियम, अब तक किए गए या इसके बाद किए जाने वाले किसी भी अधिनियमन को निरस्त करता है, तब, जब तक कि एक अलग इरादा प्रकट नहीं होता है, निरसन नहीं होगा -

(ए) किसी भी चीज को पुनर्जीवित करना जो उस समय बल में या मौजूदा नहीं है जिस पर निरसन प्रभावी होता है; नहीं तो

(ख) इस प्रकार निरसित किए गए किसी अधिनियमन के पूर्व प्रवर्तन को प्रभावित नहीं

अनुवादित

कर सकेगा या उसके अधीन सम्यक् रूप से किया गया या भुगता जा सकेगा; नहीं तो

(ग) इस प्रकार निरसित किसी अधिनियमन के अधीन अर्जित, उपार्जित या उपगत किसी अधिकार, विशेषाधिकार, बाध्यता या दायित्व को प्रभावित नहीं करेगा; नहीं तो

(घ) इस प्रकार निरसित किसी अधिनियमन के विरुद्ध किए गए किसी अपराध के संबंध में उपगत किसी शास्ति, समपहरण या दंड को प्रभावित नहीं कर सकेगा; नहीं तो

(ङ) पूर्वोक्त के रूप में किसी ऐसे अधिकार, विशेषाधिकार, दायित्व, जिम्मेदारी, शास्ति, जब्ती या दंड के संबंध में किसी अन्वेषण, विधिक कार्यवाही या उपाय को प्रभावित नहीं करेगा;

और ऐसी कोई भी जांच, कानूनी कार्यवाही या उपाय संस्थापित, जारी या लागू किया जा सकता है, और इस तरह का कोई भी जुर्माना, जब्ती या सजा लगाई जा सकती है जैसे कि निरसन अधिनियम या विनियमन पारित नहीं किया गया था।

35. आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 2018 के आलोक में, जैसा कि ऊपर उद्धृत किया गया है, हम श्री सुनील कुमार के कानूनी तर्कों का निपटारा करने के लिए आगे बढ़ते हैं।

36. यह आपराधिक कानून की व्याख्या का एक स्थापित सिद्धांत है कि प्रावधानों को सख्ती से समझा जाना चाहिए और उन्हें पूर्वव्यापी प्रभाव नहीं दिया जा सकता है जब तक कि विधायी इरादा और अभिव्यक्ति अस्पष्टता से परे स्पष्ट न हो। कार्योत्तर कानून पर विचार करने पर न्यायिक निर्णयों की अधिकता है, जिनमें से कुछ को इस स्तर पर ध्यान देने की आवश्यकता है। एल.आर. ब्रदर्स इंडो फ्लोरा लिमिटेड वी. केंद्रीय उत्पाद शुल्क आयुक्त; हितेंद्र विष्णु ठाकुर वि. महाराष्ट्र राज्य; भारत संघ बनाम ज़ोरा सिंह

37. हितेन्द्र विष्णु ठाकुर बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने संशोधन अधिनियम के दायरे और सीमा और अधिनियम/क़ानून के पूर्वव्यापी प्रभाव पर ध्यान दिया और अंततः इस प्रकार फैसला सुनाया:

(i) कोई संविधि जो मूल अधिकारों को प्रभावित करती है, को तब तक प्रचालन में भावी माना जाता है जब तक कि उसे या तो स्पष्ट रूप से या आवश्यक आशय से पूर्वव्यापी न बनाया जाए, जबकि कोई संविधि जो केवल प्रक्रिया को प्रभावित करती है, जब तक कि ऐसा निर्माण पाठ्य रूप से असंभव न हो, को इसके अनुप्रयोग में भूतलक्षी प्रभाव से माना जाता है, उसे विस्तारित अर्थ नहीं दिया जाना चाहिए और इसे इसकी स्पष्ट रूप से परिभाषित सीमाओं तक ही सीमित होना चाहिए।

(ii) मंच और परिसीमा से संबंधित कानून प्रक्रियात्मक प्रकृति का है, जबकि कार्रवाई के अधिकार और अपील के अधिकार से संबंधित कानून, भले ही उपचारात्मक हो, प्रकृति में वास्तविक है।

(iii) प्रत्येक वादी को मूल कानून में निहित अधिकार है, लेकिन प्रक्रियात्मक कानून में ऐसा कोई अधिकार मौजूद नहीं है।

(iv) एक प्रक्रियात्मक क़ानून, आम तौर पर बोलना, पूर्वव्यापी रूप से लागू नहीं किया जाना चाहिए जहां परिणाम नई विकलांगता या दायित्वों को बनाने या पहले से ही पूरा किए गए लेनदेन के संबंध में नए कर्तव्यों को लागू करने के लिए होगा।

अनुवादित

(v) एक क़ानून जो प्रक्रिया को बदलता है और नए अधिकारों और देनदारियों का निर्माण करता है, को संचालन में भावी के रूप में माना जाएगा जब तक कि या तो स्पष्ट रूप से या आवश्यक निहितार्थ द्वारा अन्यथा प्रदान नहीं किया जाता है।

कानून के पूर्वोक्त विश्लेषण से, यह विशद रूप से स्पष्ट है कि एक क़ानून के पूर्वव्यापी संचालन के खिलाफ एक अनुमान है, और आगे, भाषा की तुलना में एक क़ानून पर अधिक पूर्वव्यापी प्रदान नहीं किया जा सकता है.....

38. सोनी देवराजभाई बाबूभाई बनाम गुजरात राज्य और अन्य के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 304-बी भ०द०वि० की प्रयोज्यता की जांच करने का अवसर दिया है, जहां दहेज मृत्यु धारा 304-बी भ०द०वि० के समावेशन से पहले हुई थी और उस दंड क़ानून को माना है, जो अपराध बनाता है या जिसका प्रभाव मौजूदा अपराधों के लिए दंड बढ़ाने का प्रभाव है। यह केवल संविधान के अनुच्छेद 20 द्वारा लगाए गए संवैधानिक प्रतिबंध के कारण भावी होगा, क्योंकि यह स्पष्ट रूप से किसी की न्याय की भावना को झकझोर देता है कि एक कार्य, जो इसे करने के समय कानूनी था, को कुछ नए अधिनियमों द्वारा गैरकानूनी बनाया जाना चाहिए।

39. जैसा कि कल्पनाथ राय बनाम राज्य (सीबीआई के माध्यम से) में कहा गया है, अपराध के सभी कानूनी तत्व नए अपराध के अस्तित्व में आने से पहले होने चाहिए।

40. बचाव पक्ष के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि धारा 376(2)(आई) भ०द०वि० के तहत दी गई सजा भारत के संविधान के अनुच्छेद 20(1) के तहत लगाए गए प्रतिबंधों से प्रभावित है क्योंकि इस मामले के तथ्यों-परिस्थितियों में दंड प्रावधान लागू नहीं है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 20(1) का प्रासंगिक भाग नीचे दिया गया है:

"20. अपराधों के लिए दोषसिद्धि के संबंध में संरक्षण- (1) किसी भी व्यक्ति को किसी अपराध के लिए दोषी नहीं ठहराया जाएगा, सिवाय अपराध के रूप में आरोपित अधिनियम के समय प्रवृत्त कानून के उल्लंघन में, और न ही उससे अधिक दंड के अधीन किया जाएगा जो अपराध किए जाने के समय प्रवृत्त कानून के तहत लगाया जा सकता था।

41. आपराधिक कानून (संशोधन) अध्यादेश, 2018, 21.04.2018 को अस्तित्व में आया, अर्थात, घटना की दुर्भाग्यपूर्ण तारीख को और बाद में, अध्यादेश को संसद की मंजूरी मिल गई और पूर्वव्यापी रूप से आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 2018 बन गया। इसलिए, घटना की तारीख को, राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त होने के बाद अध्यादेश को पहले ही अधिसूचित कर दिया गया था। परिणामस्वरूप धारा 376(2)(आई) भ०द०वि० को दंड संहिता से हटा दिया गया था। आपराधिक कानून (संशोधन) अध्यादेश, 2018 लाने का उद्देश्य महिलाओं और बच्चों के खिलाफ अपराधों की सजा संरचना को तर्कसंगत बनाना था, जिसमें पीड़िता की उम्र और अपराध की प्रकृति से जुड़े वर्गीकृत वाक्य प्रदान किए गए थे। इसने भ०द०वि० के तहत बलात्कार के अपराध और पॉक्सो अधिनियम, 2012 में बढ़े हुए प्रवेशन यौन हमले के अवयवों में कोई बदलाव नहीं लाया है।

अनुवादित

42. कोई भी प्रावधान जो दंड को बढ़ाता है, विशेष रूप से यदि कारावास के लिए अतिरिक्त दायित्व के साथ युग्मित है, तो अपराध के सभी अवयवों को पूर्वव्यापी के रूप में नहीं माना जा सकता है, जैसा कि री-बारेटो में अवधारित किया गया है। कहने की जरूरत नहीं है, आपराधिक कानून अध्यादेश 2018 लाकर, सोलह वर्ष से कम उम्र की लड़की के साथ बलात्कार के अपराध के कमीशन के लिए न्यूनतम सजा दस से बीस साल तक बढ़ा दी गई है, जबकि अधिकतम सजा अपरिवर्तित है। अपीलकर्ता की सजा पुरानी सजा प्रणाली के तहत अवधारित की गई थी; इसलिए, आरोपी-अपीलकर्ता के खिलाफ आपराधिक कानून अध्यादेश 2018 के प्रावधानों को लागू नहीं किया गया है। आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 2018 के बाद और बाद में अधिकतम सजा समान है; बलात्कार के लिए इसकी एकमात्र न्यूनतम सजा जिसे बढ़ाकर बीस साल कर दिया गया है। इसलिए, प्रस्तुत मामले में, क्या अभियुक्त-अपीलकर्ता को धारा 376(2)(आई) भ०द०वि० या धारा 376(2) भ०द०वि० के तहत सजा दी जाती है, उसकी सजा पर कोई असर नहीं पड़ता है क्योंकि उसे आजीवन कारावास की अधिकतम सजा दी गई है।

43. इस प्रकार, कानूनी स्थिति यह है कि एक क़ानून जो मूल अधिकारों को प्रभावित करता है, संचालन में भावी माना जाता है जब तक कि पूर्वव्यापी या तो स्पष्ट रूप से या आवश्यक इरादे से नहीं किया जाता है। भारतीय दंड संहिता एक मूल कानून है जिसका पूर्वव्यापी प्रभाव तब तक लागू नहीं हो सकता जब तक कि या तो स्पष्ट रूप से या आवश्यक निहितार्थ द्वारा अन्यथा प्रदान न किया जाए। यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 20(1) द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों के अधीन वैध है।

44. अफसोस की बात है कि विचारण न्यायालय इस मामले की तथ्यात्मक परिस्थितियों में आपराधिक कानून (संशोधन) अध्यादेश, 2018 के प्रभाव को नोटिस करने में विफल रहा है।

45. हम सीधे तौर पर देख सकते हैं कि हम बचाव पक्ष के अधिवक्ता के इस तर्क से प्रभावित नहीं हैं कि आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 2018 के माध्यम से धारा 376 2)(i) भ०द०वि० को छोड़ने से, बलात्कार के अपराध के अवयवों को स्वतः ही छोड़ दिया जाएगा। यह स्पष्ट है कि, भारतीय दंड संहिता के तहत बलात्कार की परिभाषा में कोई बदलाव नहीं हुआ और पॉक्सो अधिनियम 2012 के तहत संशोधन अधिनियम वर्ष 2018 द्वारा आक्रामक यौन हमले में वृद्धि हुई। नाबालिग के साथ बलात्कार के तहत आरोपी-अपीलकर्ता को दोषी ठहराने के लिए आवश्यक सामग्री आपराधिक कानून में संशोधन 2018 से पहले और बाद में बरकरार हैं। भ०द०वि० में धारा 376 (3) जोड़कर केवल सजा को बढ़ाया गया है, जिसके परिणामस्वरूप न्यूनतम सजा को बढ़ाकर बीस साल कर दिया गया है।

46. आपराधिक कानून (संशोधन), 2018 के अनुसार, शब्द "एक अवधि के लिए कठोर कारावास के साथ दंडित किया जाएगा जो दस साल से कम नहीं होगा, लेकिन जो आजीवन कारावास तक बढ़ सकता है, जिसका अर्थ होगा उस व्यक्ति के शेष प्राकृतिक जीवन के लिए कारावास, और जुर्माना के लिए भी उत्तरदायी होगा" को "जो कोई भी सोलह वर्ष से कम आयु

अप्रमाणित

की किसी महिला के साथ बलात्कार करने पर कठोर कारावास से, जिसकी अवधि बीस वर्ष से कम नहीं होगी, किन्तु जो आजीवन कारावास तक बढ़ाई जा सकेगी, जिसका अर्थ होगा उस व्यक्ति के शेष प्राकृतिक जीवन के लिए कारावास, और जुर्माने से भी दंडित किया जाएगा।

47. यौन अपराध से बच्चों के संरक्षण अधिनियम, 2012 की धारा 5(एम)/6 के तहत अभियुक्त-अपीलकर्ता की दोषसिद्धि। पॉक्सो अधिनियम, 2012 की धारा 5(एम) 12 साल से कम उम्र के बच्चे पर गंभीर प्रवेशन हमले से संबंधित है, और धारा 6 में गंभीर प्रवेशन यौन हमले के लिए सजा निर्धारित की गई है, जिसमें कम से कम दस साल का कठोर कारावास है, जिसे आजीवन कारावास और जुर्माना तक बढ़ाया जा सकता है।

48. अब, हम धारा 376(2)(i) भ०द०वि० के तहत सजा देने में निहितार्थ की वैधता का परीक्षण करेंगे अभियुक्त-अपीलकर्ता ऊपर पैरा में चर्चा किए गए कानून के मद्देनजर।

49. विचारण न्यायालय ने पॉक्सो अधिनियम, 2012 की धारा 42 के प्रावधान के कारण आरोपी-अपीलकर्ता को धारा 376(2)(i) भ०द०वि० के तहत सजा सुनाई है। पॉक्सो अधिनियम की धारा 42 में यह प्रावधान है कि जहां निर्दिष्ट अपराध भ०द०वि० और पॉक्सो दोनों के तहत दंडनीय है, वहां अभियुक्त को दंडित किया जाएगा जहां यह डिग्री में अधिक है।

50. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सुभाष @ पप्पू पर भरोसा किया गया है, जहां सर्वोच्च न्यायालय ने फ्रेम करने के लिए चूक, या आरोप की अनुपस्थिति या त्रुटि से निपटने के दौरान दोहराया है कि अभियुक्त को न्याय की विफलता/पूर्वाग्रह दिखाना होगा। यदि संबंधित धारा/धाराओं के तत्व स्पष्ट या निहित हैं तो केवल आरोप विरचित होने से दोषसिद्धि असंवहनीय नहीं हो जाएगी।

51. विचारण न्यायालय ने धारा 376(2)(i) के तहत आरोप तय किया है और उक्त आरोप के अभियुक्त-अपीलकर्ता को पढ़ा और समझाया है। तैयार किए गए उपरोक्त आरोप से यह सुरक्षित रूप से कहा जा सकता है कि बलात्कार के अपराध के लिए सामग्री विशेष रूप से अभियुक्त के ध्यान में लाई गई थी। इसलिए, अधिक से अधिक, इसे भ०द०वि० की धारा 376(3) के तहत अभियुक्त को विशेष रूप से आरोपित न करके आरोप का दोषपूर्ण निर्धारण कहा जा सकता है।

52. धारा 464 द०प्र०स० की व्याख्या करते हुए, फैनुल खान मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने देखा और माना है कि आरोप तय करने में चूक या त्रुटि के मामले में, अभियुक्त को न्याय की विफलता/पूर्वाग्रह दिखाना होगा।

53. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बताए गए कानून के उपरोक्त सिद्धांत के आलोक में, जो अब काफी हद तक तय हो गया है, हमें इस मामले के साक्ष्य की जांच करनी होगी ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या विचारण न्यायालय धारा 376(2)(आई) भ०द०वि० के तहत अभियुक्त को दोषी ठहराने में न्यायसंगत था, जो उस तारीख को अस्तित्व में नहीं था जब आपराधिक कानून (संशोधन) अध्यादेश 2018 लागू हुआ।

54. पूरे साक्ष्य और कानूनी स्थिति और मामले में उत्पन्न होने वाले मुद्दे का अवलोकन करने के बाद, हमने एक राय बनाई है कि अभियुक्त

अनुवादित

को धारा 376(2)(आई) भ०द०वि० के तहत सजा नहीं दी जा सकती क्योंकि यह धारा अब दंड संहिता का हिस्सा नहीं थी। घटना की तारीख और धारा 376(2) भ०द०वि० के तहत मुकदमा चलाया जाना चाहिए था और नए कानून के तहत सजा सुनाई जानी चाहिए थी। लेकिन दुर्भाग्य से विचारण न्यायालय द्वारा ऐसा नहीं किया गया है, भले ही आरोपी-अपीलकर्ता का कृत्य आपराधिक कानून (संशोधन) अध्यादेश, 2018 की घोषणा की तारीख को बलात्कार के अपराध के सभी अवयवों को पूरा कर रहा था। अभियुक्त-अपीलकर्ता को नए कानून के तहत सजा दी जानी चाहिए थी जो घटना की तारीख को अस्तित्व में आया था और क्या कानून ऐसी तारीख पर लागू होता था। नए कानून में सोलह वर्ष से कम आयु की महिला के साथ बलात्कार के अपराध के लिए न्यूनतम सजा को बढ़ाकर बीस वर्ष कर दिया गया है।'

55. जैसा कि यह हो सकता है, जहां तक अभियुक्त-अपीलकर्ता के मामले का संबंध है, विचारण न्यायालय ने अभियुक्त-अपीलकर्ता को आजीवन कारावास की अधिकतम सजा के लिए दोषी ठहराया है - जो दोनों परिदृश्यों में समान है - यह केवल न्यूनतम सजा है जिसे नए कानून में बीस साल तक बढ़ाया गया है। इसलिए, आरोपी-अपीलकर्ता के प्रति कोई पूर्वाग्रह नहीं है। आरोपी अपीलकर्ताओं द्वारा किए गए अपराध के अवयवों के खिलाफ आपराधिक कानून (संशोधन) अध्यादेश, 2018 में आजीवन कारावास की सजा पहले से ही मौजूद थी, इसलिए अनुच्छेद 20 (1) द्वारा लगाया गया प्रतिबंध आरोपी-अपीलकर्ता को आजीवन कारावास या कम सजा देने के लिए विचारण न्यायालय के रास्ते में नहीं आएगा।

<u>साक्ष्य का विश्लेषण</u>

56. बचाव पक्ष के अधिवक्ता ने आग्रह किया है कि अ०सा०-1 और अ०सा०-2 की गवाही में महत्वपूर्ण विरोधाभास और अलंकरण हैं। गवाह अ०सा०-1 ने अपनी मुख्य परीक्षण में कहा कि उसे अपनी पत्नी से अपने पिता के फोन के माध्यम से सूचना मिली थी, और उसकी पत्नी ने उसे बताया कि उसकी बेटी के निजी अंगों से खून बह रहा था और सूजन थी, जबकि मुख्य परीक्षण में, गवाह कहता है कि उसे शिकायतकर्ता के भतीजे उदयलाल सिंह द्वारा सूचित किया गया था, और आगे कहा कि फ्रॉक में खून था और उसके पैरों तक खून नहीं पहुंचा था। डॉ. सुनीत भानोझा, जिनकी जांच अ०सा०-3 के रूप में की गई थी, द्वारा तैयार की गई यौन हिंसा की मेडिको-लीगल परीक्षा रिपोर्ट के अवलोकन से पता चलता है कि योनि पर लालिमा थी और योनि से कोई रक्तस्राव, आंसू, सूजन और निर्वहन नहीं पाया गया है।

57. आपराधिक न्यायशास्त्र में यह एक अच्छी तरह से स्वीकृत वाक्यांश है कि एक आदमी झूठ बोल सकता है, लेकिन परिस्थितियां नहीं - माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने राजेश यादव और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए फैसले से उत्पन्न आपराधिक अपील में निपटने का अवसर दिया है, जिसमें अभियुक्तों को आजीवन कारावास की सजा दी गई है, जबकि उन सभी को धारा 307 भ०द०वि० के तहत तय किए गए आरोपों से बरी कर दिया गया है। उच्च न्यायालय द्वारा दोषी ठहराए जाने से व्यथित अभियुक्त ने उच्चतम न्यायालय में आपराधिक अपील

अनुवादित

दायर की। साक्ष्य के मूल्यांकन से निपटते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने साक्ष्य को मोटे तौर पर तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया है, अर्थात्;

(i) पूरी तरह से विश्वसनीय;

(ii) पूरी तरह से अविश्वसनीय और;

(iii) न तो पूरी तरह से विश्वसनीय और न ही पूरी तरह से अविश्वसनीय;

58. अपराध, यदि इसके आसपास के साक्ष्य और परिस्थितियां न्यायालय को विश्वास दिलाती हैं कि यह एक मुद्दे के लिए पूरी तरह से विश्वसनीय है, तो यह संभावना की डिग्री पर अपने अस्तित्व का फैसला कर सकता है। ऐसा ही मामला है जहां सबूत विश्वसनीय नहीं हैं। जब पेश किए गए साक्ष्य न तो पूरी तरह से विश्वसनीय होते हैं और न ही पूरी तरह से अविश्वसनीय होते हैं, तो उन्हें पुष्टि की आवश्यकता हो सकती है, और ऐसे मामले में, न्यायालय साक्ष्य में उपलब्ध विरोधाभासों को भी नोट कर सकता है।

59. राजेश यादव के मामले का प्रासंगिक हिस्सा यहां नीचे दिया गया है:

"22. अभिव्यक्ति "पक्षद्रोही गवाह" को साक्ष्य अधिनियम में कोई स्थान नहीं मिलता है। इसका अर्थ प्रतिपक्षी के पक्ष में गवाही देने के लिए एक गवाह की गवाही के रूप में गढ़ा गया है। हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि एक गवाह उस पार्टी के पक्ष में गवाही दे सकता है जिसके पक्ष में उसे मुख्य परीक्षा के माध्यम से दिया जाना है, जबकि प्रतिपक्षी के पक्ष में अपना दृष्टिकोण बदल सकता है। इसी तरह, ऐसे मामले भी होंगे जहां एक गवाह मुख्य परीक्षा से शुरू होने वाले पक्ष के मामले का समर्थन नहीं करता है। इस वर्गीकरण को न्यायालय द्वारा ध्यान में रखा जाना चाहिए। पहली श्रेणी के संबंध में, न्यायालय को इस तरह के गवाह द्वारा दिए गए साक्ष्य का उचित मूल्यांकन करने की अपनी शक्ति से वंचित नहीं किया जाता है। यहां तक कि एक मुख्य परीक्षा को भी सबूत कहा जा सकता है। इस तरह के साक्ष्य जिरह के बाद पूरे हो जाएंगे। एक बार साक्ष्य पूरा हो जाने के बाद, उक्त गवाही समग्र रूप से न्यायालय के लिए एक तथ्य का आकलन और मूल्यांकन करने के लिए होती है। इसलिए, न केवल विशिष्ट भाग जिसमें एक गवाह मुकर गया है, बल्कि जिन परिस्थितियों में यह हुआ, उन पर भी विचार किया जा सकता है, विशेष रूप से ऐसी स्थिति में जहां मुख्य-परीक्षण पूरा हो गया था और बाद के बयान के पीछे के कारणों को इंगित करने वाली परिस्थितियां हैं, जिन्हें न्यायालय समझ सकता है। यह अदालत की शक्तियों के भीतर अच्छी तरह से एक आकलन करने के लिए और सही निष्कर्ष पर आने के लिए, इसके समक्ष एक मामला है।

60. इस प्रकार, कानून एक पक्षद्रोही गवाह के सबूत को एक संपूर्णता में खारिज नहीं किया जा सकता है कि प्रभाव के लिए संक्षेप किया जा सकता है, और उसके प्रासंगिक भागों, जो कानून में स्वीकार्य हैं, अभियोजन पक्ष या बचाव पक्ष द्वारा इस्तेमाल किया जा सकता है।

61. विनोद कुमार बनाम पंजाब राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय, ने पहले ही एक ऐसी स्थिति से निपटा था जहां एक गवाह ने अभियोजन पक्ष के संस्करण के अनुरूप गवाही देने के बाद, पैंतरेबाज़ी के कार्य की अनुमति देने वाले लंबे स्थगन को देखते हुए इसे पूरी तरह से छोड़ दिया था। नियमितता के साथ

अनुवादित

होने वाली ऐसी स्थितियों पर ध्यान देते हुए, इसने अपनी पीड़ा व्यक्त की और कहा कि: (एस.सी.सी. पीपी 244-46, पैरा 51-53 और 57)

"51. हालांकि ये दर्दनाक है, यह ध्यान रखना आवश्यक है कि अ०सा०-7 की 30-09-1999 को मुख्य जांच की गई थी और लगभग 1 साल और 8 महीने के बाद 25-05-2001 को जिरह की गई थी। उक्त जिरह में देरी, जैसा कि हमने पहले कहा है, ने कई कारणों से टालमटोल के लिए पर्याप्त समय दिया था। एक निष्पक्ष सुनवाई बचाव पक्ष और अभियोजन पक्ष दोनों के साथ-साथ पीड़ित के लिए भी निष्पक्ष होनी चाहिए। भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अंतर्गत दर्ज अपराध पर पूरी गंभीरता से विचारण किया जाना चाहिए। हम इस बात की मूल्यांकन करने में विफल हैं कि विद्वान विचारण न्यायाधीश इस प्रकार के मामले में प्रतिपरीक्षा के लिए इतना समय देने में इतनी शिथिलता कैसे प्रदर्शित कर सकता है। विद्वान विचारण न्यायाधीश की ओर से यह नितांत उचित होता कि वह उक्त गवाह की परीक्षा के दिन प्रतिपरीक्षा समाप्त कर दे। जैसा कि साक्ष्य है, बिना किसी कारण के, इसे स्थगित कर दिया गया और 20 महीने बाद प्रतिपरीक्षा हुई। साक्षी के पास दुनिया में हासिल करने के लिए हर समय था। हम पहले ही कह चुके हैं कि उन्हें मुकर जाने वाला घोषित किया गया और फिर से जांच की गई।

52. यह एक पक्षद्रोही गवाह की गवाही अभियोजन पक्ष के साथ ही बचाव पक्ष द्वारा पर भरोसा किया जा सकता है कि कानून में तय है। लोक अभियोजक द्वारा पुन: परीक्षा में, अ०सा०-7 ने 13-09-1999 को अदालत में अपने बयान की शुद्धता के बारे में स्वीकार किया है। उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि उन्होंने न्यायालय के पीठासीन कार्यालय को लिखित या मौखिक रूप से कोई शिकायत नहीं की थी कि निरीक्षक उन्हें अदालत में गलत बयान देने के लिए धमका रहा था। उनके द्वारा यह भी स्वीकार किया गया है कि उन्होंने निरीक्षक द्वारा झूठे फंसाए जाने के डर से अदालत में बयान दिया था। वह अपने दिनांक 13-9-1999 के वक्तव्य को पढ़ने और इसे सही मानने के बाद हस्ताक्षर करने के लिए सहमत हो गए हैं। पुनः परीक्षा में यह आया है कि अ०सा०-7 ने न्यायालय में दिनांक 13-09-1999 के अपने बयान में यह नहीं कहा था कि आरोपी से उसकी उपस्थिति में दागी धन की वसूली नहीं हुई थी या उसे निरीक्षक द्वारा बताया गया था कि अभियुक्त से राशि वसूल की गई है। उन्होंने अपने उक्त बयान में यह भी नहीं कहा था कि आरोपियों और गवाहों को तहसील ले जाया गया था और यह वहां था कि उन्होंने सभी मेमो पर हस्ताक्षर किए थे।

62. जैसा कि पहले देखा गया है, प्रस्तुत मामले में, अ०सा०-2 की मुख्य परीक्षण 31.08.2018 को दर्ज की गई थी, जिसमें गवाहों ने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया था, और जिरह 07.09.2018 को आयोजित की गई थी - सात दिनों के अंतराल के बाद- गवाह मुख्य परीक्षण से मुकर गया और बालिकाओं के निजी हिस्से पर चोट के बारे में और मुख्य परीक्षण के तरीके के बारे में पूरी तरह से नए स्पष्टीकरण के साथ आया रिकॉर्ड किया गया। गवाह पर दबाव डालने और सभी प्रकार की रणनीति अपनाकर उस पर कब्जा करने के लिए पर्याप्त समय की अनुमति

अनुवादित

दी गई। वास्तव में, एक सप्ताह के बाद गवाह को जिरह के लिए बुलाना बिल्कुल भी सराहनीय नहीं है। ऐसी परिस्थितियों में, यदि मुख्य- परीक्षा समाप्त हो गई है, तो यह अनिवार्य है कि जिरह उसी दिन पूरी की जानी चाहिए। यदि परीक्षा देर तक जारी रहती है, तो परीक्षण को जिरह के लिए अगले दिन के लिए स्थगित किया जा सकता है। कानून में यह समझ से बाहर है कि पीड़िता की मां के लिए जिरह को एक सप्ताह के लिए टाल दिया गया है, जिसकी पितृसत्तात्मक समाज में इस तरह के अपराधों में सीमित अधिकार है और आरोपी अपने पति का चचेरा भाई है।

63. अ०सा०-2 - पीड़िता की मां - ने अपने बयान में दो महत्वपूर्ण तथ्यों को बताया;
(i) उसने और वीरेंद्र सिंह- उसके ससुर, जिनसे ब०सा०-1 के रूप में पूछताछ की गई है, ने आरोपी-अपीलकर्ता को पीड़िता के साथ बलात्कार करते देखा था।
(ii) पीड़िता के निजी अंगों से खून बह रहा था; लेकिन जिरह में मुकर गया, जो एक सप्ताह से अधिक समय बाद आयोजित किया गया था, आरोपी के पक्ष में सुधार और अलंकरण के लिए जगह छोड़ रहा था।

64. यह देखना न्यायालय का कर्तव्य है कि न केवल अभियुक्त के हितों की रक्षा की जाती है, बल्कि सामाजिक और सामूहिक हित की भी रक्षा की जाती है।

65. बाल बलात्कार एक जघन्य अपराध है जो हमारे समाज में होता है और अक्सर करीबी रिश्तेदारों द्वारा कायम रखा जाता है। यह एक बच्चे के संरक्षण के अधिकार का उल्लंघन करता है और विश्वास का एक गंभीर उल्लंघन है; गरीबी, निरक्षरता और सामाजिक कलंक जो उन परिवारों में प्रचलित हैं जो उन्हें मामले की रिपोर्ट करने से रोकते हैं। बाल बलात्कार के परिणाम विनाशकारी और लंबे समय तक चलने वाले होते हैं। बच्चे द्वारा सामना किए जाने वाले शारीरिक और भावनात्मक आघात के अलावा, उन्हें समाज के कलंक और भेदभाव से भी निपटना पड़ता है। अपराध उनके मानसिक स्वास्थ्य, शैक्षिक और कैरियर की संभावनाओं और यहां तक कि भविष्य में स्वस्थ संबंध बनाने की उनकी क्षमता को प्रभावित करता है।

66. यौन शोषण पर चर्चा करने या रिपोर्ट करने के आसपास एक सामाजिक कलंक है, खासकर जब इसमें करीबी रिश्तेदार शामिल हों। यह गोपनीयता और चुप्पी की संस्कृति को कायम रखता है, जिससे दुरुपयोग जारी रहता है। गरीब परिवारों के बच्चे दुर्व्यवहार के प्रति अधिक संवेदनशील हो सकते हैं, क्योंकि उनके माता-पिता को मदद और समर्थन के लिए विस्तारित परिवार के सदस्यों पर भरोसा करने की आवश्यकता हो सकती है, और बच्चों को अन्य घरों में खेलने, काम करने या अध्ययन करने के लिए भेजा जा सकता है।

67. हाथ में सबूत की मूल्यांकन करने के लिए वापस आ रहा है, शुरुआत में, हमारा ध्यान 'तथ्य यह है कि गवाह, पीड़िता और आरोपी नज़दीकी आरोही हैं' की तरफ करने के लिए आकर्षित किया जाता है. पीड़िता रिश्ते की पहली डिग्री से संबंधित आरोपी का एक वंशज लग्न है। पीड़िता की मां ने अपने मुख्य परीक्षण में कहा है कि "राहुल मेरे चचेरे देवर हैं" ऐसी परिस्थितियों में, इस बात की पूरी संभावना है कि निकटतम रिश्तेदारों ने गवाह पर 31.08.2018 को दर्ज किए गए अपने

अनुवादक

पिछले बयान से मुकरने के लिए दबाव डाला होगा।

68. विचारण न्यायालय ने डॉ. सुनीता भानोझा की गवाही पर बहुत भरोसा किया है, जिनकी जांच अ०सा०-3 के रूप में की गई थी। वह अभियोजन पक्ष की स्टर्लिंग गवाह है। डॉ. सुनीता भानोझा ने यौन अपराध की मेडिको-लीगल रिपोर्ट तैयार की, जो प्रदर्श क-2 है। यौन अपराध रिपोर्ट की मेडिको-लीगल रिपोर्ट का संगत भाग इसके बाद लिया गया है।

"15- यौन हिंसा का इतिहास: पीड़ित का पारिवारिक चाचा जो पीड़ित के तीन चार घर छोड़ कर राहत हैं, आज सुबह सात बजे पीड़ित की माँ से पूछकर पीड़िता को ले गया और करीब 10.00 बजे पीड़ित के साथ राहुल नाम का लड़का उम्र करीब 22 साल मिला।"

17. शरीर पर चोटों की जांच, यदि कोई हो - योनी जननांगों के आसपास लगभग 1 इंच मामूली लाल रंग की चोट।

23. अनंतिम/प्राथमिक राय आंतरिक योनी के आसपास हाल ही में जबरदस्ती चोट का विचारोत्तेजक उपयोग है।

69. अ०सा०-3 की गवाही का प्रासंगिक हिस्सा यहां नीचे उद्धृत किया गया है: "

"मेरी राय में पीड़िता की वैजाईना के मुंह पर ऐसा निशान है जिसमें ताज़ा बलपूर्वक चोट पहुचाई हो, ये चोट लिंग के रगड़ने व पर्वेशन से भी आ सकती है। मेरे पूछने पर उसकी माँ ने मुझे ये नहीं बताया कि उसकी वाइजैना में खुजली या इन्फेक्शन हैं। साक्षी ने पत्रवाली में कागज सं-10 क/1 लगायत 10 क/5 देख कर कहा कि यही मेडिकल रिपोर्ट मेरे हस्तलेख व हस्ताक्षर में है जिसकी मैं पुष्टि करती हूँ। इस पर प्रदर्श क-2 डाला गया है।"

70. अ०सा०-2 के बयान के आलोक में डॉक्टर सुनीता भानोझा के बयान की मूल्यांकन करने पर, हम पाते हैं कि चिकित्सा साक्ष्य अ०सा०-2 की मौखिक गवाही को पूरी तरह से अलग कर देते हैं, और चिकित्सा साक्ष्य चाक्षुक संबंधी गवाही को असंभव बनाते हैं और चिकित्सा साक्ष्य के असत्य होने की संभावना को खारिज करते हैं। 21.04.2018 की यौन हिंसा की मेडिको-लीगल परीक्षा रिपोर्ट के अनुरूप डॉक्टर सुनीत भानोझा के बयान के अवलोकन पर, यह दर्शाता है कि पीड़िता के जननांगों के आसपास लगभग 01 इंच की हल्की लाल रंग की चोट थी और इसलिए, उत्तेजित भेदन यौन संबंध का कार्य पीड़िता पर शांत होने की संभावना है।

71. विद्वान बचाव पक्ष के अधिवक्ता ने महेंद्र सिंह और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य पर भरोसा किया है, जिसमें यह माना गया था कि यह स्थापित कानून है कि बचाव पक्ष के गवाह को वही व्यवहार दिया जाना आवश्यक है जो अभियोजन पक्ष के गवाह को दिया जाना है। प्रासंगिक भाग यहां नीचे निकाला गया है:

"20. यह एक स्थापित कानून है कि बचाव पक्ष के गवाह (गवाहों) के साथ वही व्यवहार किया जाना आवश्यक है जो अभियोजन पक्ष के गवाह (गवाहों) को दिया जाना है।

72. महेंद्र सिंह और अन्य मामले (उपरोक्त) के आलोक में गवाही ब०सा०-1 को खारिज नहीं किया जा सका। उन्होंने आगे आग्रह किया कि पुलिस ने वीरेंद्र सिंह को पुलिस गवाह के रूप में पेश किया था। अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार, वीरेंद्र सिंह मामले का चश्मदीद गवाह है और उसने आरोपी-अपीलकर्ता को पीड़िता के साथ बलात्कार करते देखा था। अ०सा०-1 और अ०सा०-2 ने यह भी कहा है कि वीरेंद्र सिंह

अनुवादित

अपराध के स्थान पर मौजूद था, लेकिन अभियोजन पक्ष ने इस गवाह को हटा दिया था क्योंकि इसका कारण उन्हें ही बेहतर पता था। वीरेंद्र सिंह से बचाव पक्ष के गवाह के रूप में पूछताछ की गई और अ०सा०-2 की जिरह में आने वाली सामग्री की तर्ज पर स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया गया। कहने की जरूरत नहीं है कि वीरेंद्र सिंह पीड़िता के दादा हैं, और अ०सा०-2 पीड़िता की मां है; आगे कहा गया है कि अभियोजन पक्ष ने यह नहीं बताया है कि अ०सा०-2 जिरह में मुकर क्यों गया था, और वीरेंद्र सिंह को बचाव पक्ष के गवाह के रूप में गवाह के कठघरे में क्यों आना पड़ा; यह अभियोजन पक्ष की कहानी पर गंभीर संदेह पैदा करता है।

73. अ०सा०-2 और ब०सा०-1 बालिका पीड़िता 'एक्स' की माँ और दादा हैं। चिकित्सा साक्ष्य को मामले के तथ्यों में उनकी गवाही के महत्वपूर्ण विश्लेषण के लिए सटीकता के साथ खोज करने की आवश्यकता होती है। पुलिस के गवाहों उदय पाल सिंह और वीरेंद्र सिंह, जिनके नाम प्राथमिकी में हैं, से पूछताछ न होने से राजेश यादव के मामले (उपरोक्त) में निर्धारित कानून के आलोक में अभियोजन पक्ष के मामले पर कोई असर नहीं पड़ेगा. केवल गवाह से पूछताछ न करने से अभियोजन पक्ष का मामला समाप्त नहीं होगा। यह गुणवत्ता पर निर्भर करता है, गवाहों की संख्या और इसके महत्व पर नहीं। यदि न्यायालय अभियोजन पक्ष द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण के साथ-साथ सामग्री की पर्याप्तता से संतुष्ट है, जो मुकदमे को आगे बढ़ाने और अभियुक्त को दोषी ठहराने के लिए पर्याप्त है, तो कोई पूर्वाग्रह नहीं हो सकता है। इसी तरह, यदि न्यायालय का विचार है कि साक्ष्य की जांच नहीं की गई है और दूसरे पक्ष द्वारा अपने मामले के समर्थन में अच्छी तरह से पेश किया जा सकता है, तो कोई प्रतिकूल निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है। यह जिम्मेदारी पक्ष की ओर से है जो आरोप लगा रही है कि इसे साबित करने के लिए जानबूझकर गवाह पेश नहीं किया गया है।

74. भले ही वीरेंद्र सिंह को ब०सा०-1 के रूप में जांच की गई हो, लेकिन उनकी गवाही से अभियुक्त को मदद नहीं मिलेगी; अगर हम ब०सा०-1 की गवाही पर विश्वास करते हैं, तो यह 31.08.2018 को दर्ज अ०सा०-2 की मुख्य-परीक्षा अ०सा०-1 की गवाही और डॉ सुनीता भानोझा की गवाही को प्रस्तुत करेगा, जिन्होंने पीड़िता की जांच की थी और 21.04.2018 को मेडिको-लीगल यौन परीक्षा रिपोर्ट तैयार की थी, और यह अत्यधिक अवास्तविक और असंगत दृष्टिकोण होगा, और एक पक्षद्रोही गवाह से निपटने के लिए साक्ष्य के स्थापित कानून के अनुरूप नहीं होगा।

75. सर्वोच्च न्यायालय ने गुलाम सरबार बनाम भारत संघ मामले में पूर्वोक्त सिद्धांत को दोहराया है। बिहार राज्य प्रासंगिक भाग यहां नीचे दिया गया है:

"गवाहों के साक्ष्य की मूल्यांकन के मामले में, यह गवाहों की संख्या नहीं है, बल्कि उनके साक्ष्य की गुणवत्ता है जो महत्वपूर्ण है, क्योंकि साक्ष्य के कानून के तहत कोई आवश्यकता नहीं है कि प्रभाव साबित करने या अस्वीकृत करने के लिए किसी विशेष संख्या में गवाहों की जांच की जानी है। यह एक समय-सम्मानित सिद्धांत है कि सबूतों को तौला जाना चाहिए, गिना नहीं जाना चाहिए। परीक्षण यह है कि क्या सबूत में सच्चाई की रमक है,

अनुवादित

ठोस, विश्वसनीय और भरोसेमंद है या अन्यथा। कानूनी प्रणाली ने गवाहों की बहुलता के बजाय प्रत्येक गवाह को प्रदान किए गए मूल्य पर जोर दिया है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 134 द्वारा दिए गए अनुसार साक्ष्य की पर्याप्तता का निर्धारण मात्रा नहीं बल्कि गुणवत्ता की है। यहां तक कि प्रोबेट मामलों में, जहां कानून को कम से कम एक गवाह की परीक्षा की आवश्यकता होती है, यह माना गया है कि अधिक गवाहों के उत्पादन में कोई वजन नहीं होता है। इस प्रकार, दोषसिद्धि कभी भी एकमात्र चश्मदीद गवाह की गवाही पर आधारित हो सकती है यदि वही आत्मविश्वास को प्रेरित करती है। (वादिवेलुए थेवर बनाम मद्रास राज्य, कुंजू बनाम टीएन राज्य, बिपिन कुमार मंडल बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, महेश बनाम एमपी राज्य, पृथीपाल सिंह बनाम पंजाब राज्य और किशन चंद बनाम हरियाणा राज्य)

76. पुलिस ने चार संबंधित गवाहों के बयान दर्ज किए, अर्थात्, (i) राघवेंद्र सिंह-पीड़िता के पिता; (ii) उदय पाल सिंह - शिकायतकर्ता का भतीजा; (iii) वीरेन्द्र सिंह - पीड़िता का दादा; (iv) श्रीमती दीपा - पीड़िता की मां। चार में से दो राघवेंद्र सिंह और श्रीमती दीपा से अभियोजन पक्ष के गवाह के रूप में पूछताछ की गई है, जबकि वीरेंद्र सिंह से ब०सा०-1 के रूप में पूछताछ की गई है, और अभियोजन पक्ष ने उदय पाल सिंह को हटा दिया है। सभी गवाह संबंधित गवाह हैं। अ०सा०-1, अ०सा०-2 और ब०सा०-3 संबंधित गवाह हैं, वे प्रस्तुत मामले में हितबद्ध गवाह हो सकते हैं क्योंकि पीड़िता रिश्ते की पहली डिग्री से संबंधित अभियुक्त का वंशज है, लेकिन अ०सा०-3, जिसने पीड़िता की बाहरी और आंतरिक चिकित्सा जांच की है, एक स्वतंत्र गवाह है, और उसके पास अपराध के कमीशन में आरोपी को फंसाने का कोई कारण नहीं है। प्राथमिकी दर्ज करने में कोई देरी नहीं हुई है। अ०सा०-2 हालांकि खारिज कर दिया, लेकिन मुख्य परीक्षा में अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया। अजीब तरह से, जिरह में वह पीछे हट गई। हम अ०सा०-2 और ब०सा०-1 की संबंधित और हितबद्ध गवाह होने की विश्वसनीयता के बारे में कुछ नहीं कहना चाहते हैं, और अ०सा०-1 और अ०सा०-3 के साक्ष्य पुष्टिकृत, ठोस और विश्वसनीय पाए जाते हैं। अ०सा०-1 और अ०सा०-3 की गवाही और अ०सा०-2 की मुख्य परीक्षा विश्वसनीय और भरोसेमंद हैं और इसलिए स्वीकार किए जाने योग्य हैं। केवल इसलिए कि अभियोजन पक्ष ने ब०सा०-1 और पुलिस गवाह उदय पाल सिंह को पेश नहीं किया, अभियोजन का पूरा मामला झूठा नहीं होगा।

77. इस प्रकार, पूर्वोक्त निष्कर्ष पर, हम विचारण न्यायालय के निष्कर्षों के अनुरूप हैं और सुरक्षित रूप से निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि भ०द०वि० के तहत बलात्कार की सामग्री और पॉक्सो अधिनियम, 2012 के तहत यौन हमले को बढ़ाने वाले प्रवेशन की सामग्री आरोपी-अपीलकर्ता के रूप में स्थापित की गई है।

78. प्रत्येक आपराधिक कार्यवाही में महत्वपूर्ण चरण सजा का चरण है। यह न्यायिक प्रक्रिया का सबसे जटिल और कठिन चरण है। भारतीय कानूनी प्रणाली न्यायाधीशों को उचित सजा देने के लिए पर्याप्त विवेक प्रदान करती है। हालाँकि, यह विवेक प्रकृति में निरंकुश नहीं है; बल्कि, अपराध करने की प्रकृति, गंभीरता,

अनुवादित

तरीके और परिस्थितियां, अभियुक्त का व्यक्तित्व, चरित्र, गंभीर होने के साथ-साथ कम करने वाली परिस्थितियों, पूर्ववृत्त आदि जैसे विभिन्न कारक न्यायाधीशों के लिए सजा पर निर्णय लेने के लिए मापदंड के रूप में संचयी रूप से बनते हैं। निर्विवाद रूप से, सजा देने वाले न्यायालय सजा के सवाल पर असर डालने वाले सभी प्रासंगिक तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करेंगे और शिंभू और अन्य बनाम हरियाणा राज्य में किए गए अपराध के अनुरूप सजा देंगे।

79. इससे पहले कि हम उपरोक्त सिद्धांत के प्रकाश में मामले का मूल्यांकन करें कि सभी दंड सीधे किए गए अपराध के अनुपात में होने चाहिए, धारा 3 (एम)/6 पॉक्सो अधिनियम, 2012 के पीछे विधायी मंशा को समझना अनिवार्य है, जो निम्नानुसार है:

"6. जो कोई भी गंभीर प्रवेशन यौन हमला करता है, वह एक अवधि के लिए कठोर कारावास से दंडित किया जाएगा जो दस वर्ष से कम नहीं होगा, लेकिन जो आजीवन कारावास तक बढ़ाया जा सकता है और जुर्माना भी लगाया जा सकता है।

80. उपरोक्त प्रावधान के अवलोकन से पता चलता है कि विधायी जनादेश एक अवधि के लिए, गंभीर प्रवेशन यौन हमले के अपराध के लिए, एक अवधि के लिए सजा देना है, जो 10 साल से कम नहीं होगा, लेकिन यह जीवन तक बढ़ सकता है और जुर्माना भी लगाया जा सकता है। न्यायालय किसी भी प्रकार की ऐसी अवधि का दण्ड अधिरोपित कर सकेगा जो 10 वर्ष से अन्यून किंतु जो आजीवन कारावास तक बढ़ाई जा सकती है। इस प्रकार, बढ़े हुए प्रवेशक यौन हमले के मामले में सामान्य सजा 10 साल है, और असाधारण मामलों में आजीवन कारावास हो सकता है।

81. बचाव पक्ष के अधिवक्ता ने आग्रह किया है कि सजा हमेशा अपराध की गंभीरता के अनुपात में होनी चाहिए। प्रस्तुत मामले में, यह अपराध की गंभीरता के अनुपात से अधिक है। इसलिए वह आजीवन कारावास से कम अवधि के कारावास की सजा को कम करने के लिए प्रार्थना करता है (वादिवेलु थेवर बनाम मद्रास राज्य, कुंजू बनाम तमिलनाडु राज्य, बिपिन कुमार मंडल बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, महेश बनाम मध्य प्रदेश राज्य, पृथीपाल सिंह बनाम पंजाब राज्य और किशन चंद बनाम हरियाणा राज्य"।

82. सजा देने के लिए न्यायालय की विवेकाधीन शक्ति का उपयोग नियमित, आकस्मिक और लापरवाह तरीके से अंधाधुंध रूप से नहीं किया जाना चाहिए। आजीवन कारावास देने के लिए विशेष और पर्याप्त कारणों को दर्ज किया जाना चाहिए। अफसोस की बात है कि हमने देखा कि विचारण न्यायालय मामले की परिस्थितियों में उम्रकैद देने का कारण दर्ज करने में विफल रहा है।

83. अभियुक्त ने पीड़िता को कोई शारीरिक चोट नहीं पहुंचाई है, अभियुक्त-अपीलकर्ता एक गरीब सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि से आते हैं, एक परिवार है जिसमें एक वृद्ध पिता शामिल है, और बेदाग जेल आचरण है। जब इन सभी कारकों को एक साथ जोड़ा जाता है, तो यह भी कल्पना की जाती है कि अपीलकर्ता के सुधार और पुनर्वास की संभावना को खारिज करने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है। वह स्वच्छ पूर्ववृत्त का व्यक्ति है; अन्यथा, इसके विपरीत

अग्रिम

साबित करने के लिए कुछ भी रिकॉर्ड पर नहीं लाया जाता है।

84. ऊपर बताए गए कारणों के लिए, हम अपील को आंशिक रूप से अनुमति देना और सजा को संशोधित करना उचित समझते हैं,

ऊपर बताए गए कारणों के लिए, हम अपील को आंशिक रूप से अनुमति देना और सजा को संशोधित करना उचित समझते हैं, और 50,000/- रुपये के जुर्माने के साथ बीस साल की अवधि के लिए कठोर कारावास, और जुर्माना अदा न करने पर दो वर्ष का अतिरिक्त कारावास, का प्रावधान करते हैं और बलात्कार के अपराध के लिए कठोर कारावास के साथ, और धारा 323 भ०द०वि० के तहत एक साल की सजा देते हैं। हम पॉक्सो अधिनियम, 2012 की धारा 42 के जनादेश के कारण पॉक्सो अधिनियम 2012 की धारा 5 (एम)/6 के तहत सजा देने से बचते हैं।

85. पूर्वोक्त मामले के अपराध में अभियुक्त-अपीलकर्ता की कैद की अवधि को कानून के अनुसार समायोजित किया जाएगा। अभियुक्त पर लगाया गया जुर्माना मुआवजे के रूप में पीड़िता 'एक्स' को दिया जाएगा।

(2023) 6 ILRA 370

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 31.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा

माननीय न्यायमूर्ति मनीष कुमार निगम

आपराधिक अपील संख्या 6920 वर्ष 2017

रामेश्वर लाल चौहान ....अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता: श्री राजीव कुमार सिंह, श्री दिव्यांशु नंदन त्रिपाठी, श्री पी.के. सिंह

प्रतिवादी के अधिवक्ता: जी.ए.

(ए) आपराधिक कानून - दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 32(1) - मृत्युपूर्व कथन प्रासंगिक साक्ष्य का एक महत्वपूर्ण भाग है - दोषसिद्धि का आदेश मृत्युपूर्व कथन के आधार पर सुरक्षित रूप से दर्ज किया जा सकता है - लेकिन इसे साक्ष्य के एक अन्य भाग के रूप में माना जाना चाहिए - आस-पास की परिस्थितियों के प्रकाश में - वजनी साक्ष्य को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों के संदर्भ में - यदि यह पूरी तरह से विश्वसनीय या सत्य नहीं पाया जाता है, तो इसे पुष्टि के बिना दोषसिद्धि का एकमात्र आधार नहीं बनाना चाहिए। (पैरा -21, 25, 54)

(बी) शब्द और वाक्यांश - "नेमो मोरीटुरस प्रेसुमितुर मेंटायर" - कोई व्यक्ति अपने मुंह में झूठ लेकर अपने निर्माता से नहीं मिलेगा। (पैरा -24)

(सी) आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 313 - धारा 313 के तहत कथन का महत्व सीआरपीसी, उप-खण्ड (5) - अभियुक्त से पूछे जाने वाले सुसंगत प्रश्नों को तैयार करने में न्यायालय अभियोजन पक्ष और बचाव पक्ष की सहायता लेगा - न्यायालय को अभियुक्त का बयान दर्ज करते समय अभियुक्त के समक्ष कोई भी आपत्तिजनक परिस्थिति प्रस्तुत करने से नहीं चूकना चाहिए। (पैरा-75)

अनुवादित

मृतका का अपने बयान में कथन (मृत्यु पूर्व कथन) - अभियुक्त ने उस पर केरोसिन डाला और उसे आग लगा दी - विचारण न्यायालय ने अभियुक्त-अपीलकर्ता को केवल मृत्यु पूर्व कथन के आधार पर दोषी ठहराया - अन्य तथ्य गवाहों ने अभियोजन पक्ष के कथन का समर्थन नहीं किया - मुकर गया - मृत्यु पूर्व कथन के संबंध में कोई प्रश्न नहीं - सीआरपीसी की धारा 313 के तहत बयान दर्ज करते समय अपीलकर्ता से कोई प्रश्न नहीं पूछा गया - अभियुक्त के प्रति पूर्वाग्रह उत्पन्न हुआ। **(पैरा-26, 64, 74)**

निर्णय:-मृत्यु पूर्व कथन पर साक्ष्य संदिग्ध है और न्यायिक मस्तिष्क द्वारा उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता। अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे आरोपों को प्रमाणित करने में विफल रहा। यदि मृत्यु पूर्व कथन को छोड़ दिया जाता है, तो अभियोजन पक्ष के मामले में कुछ भी नहीं बचता। अपीलकर्ता-अभियुक्त संदेह का लाभ उठाने का हकदार है। विवादित निर्णय और दोषसिद्धि का आदेश रद्द किया गया। **(पैरा-77)**

आपराधिक अपील स्वीकार की गई। (ई-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. खुशाल राव बनाम सेंट ऑफ बॉम्बे, एआईआर 1958 एससी 22
2. पानीबेन बनाम सेंट ऑफ गुजरात (1992) 2 एससीसी 747
3. नल्लपति सिवैया बनाम एस.डी.ओ., गुंटूर, ए.पी., (2007) 15 एससीसी 465
4. जगबीर सिंह बनाम स्टेट (एनसीटी ऑफ दिल्ली), (2019) 8 एससीसी 779
5. कांची कोमुरम्मा बनाम स्टेट ऑफ ए.पी., 1996 एससीसी (सीआरआई) 31
6. पूरन चंद बनाम स्टेट ऑफ हर (2010) 6 एससीसी 566
7. रमेश हरिजन बनाम स्टेट ऑफ यू.पी., (2012) 5 एससीसी 777
8. रीना हजारिका बनाम स्टेट ऑफ असम, एआईआर 2018 एससी 5361
9. शरद बिरधीचंद सारदा बनाम स्टेट ऑफ महाराष्ट्र। , एआईआर 1984 एससी 1622
10. सुजीत बिस्वास बनाम असम राज्य, (2013) 12 एससीसी 406
11. असरफ अली बनाम असम राज्य, (2008) 16 एससीसी 328
12. अंदुगुला शंकरैया बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, 2012 सीआरआई.एल.जे.189
13. नर सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (2015) 1 एससीसी 496
14. शिवाजी साहबराव बोबड़े बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1973) 2 एससीसी 793

(माननीय न्यायमूर्ति मनीष कुमार निगम द्वारा दिया गया)

1. यह आपराधिक अपील सत्र परीक्षण संख्या 153 वर्ष 2015 में अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, कोर्ट नंबर 7, गोरखपुर द्वारा पारित दिनांक 30.11.2016 के निर्णय और दोषसिद्धि के आदेश के खिलाफ दायर की गई है, जिसमें अतिरिक्त जिला और सत्र न्यायाधीश, कोर्ट नंबर 7, गोरखपुर (इसके बाद 'विचारण न्यायालय' के रूप में संदर्भित) ने रामेश्वर लाल चौहान (अपीलकर्ता-अभियुक्त) पुत्र स्वर्गीय मिश्री लाल चौहान को भ० द०वि० की धारा 302 के तहत दंडनीय अपराध के लिए दोषी ठहराया है और आजीवन कारावास की

अनुवादित

सजा सुनाई है। कारावास और 25,000 रुपये का जुर्माना देने का आदेश दिया है। जुर्माना अदा न करने पर उन्हें एक वर्ष के सश्रम कारावास की सजा भुगतनी पड़ी। इसी फैसले में निचली अदालत ने अन्य सह आरोपियों स्वर्गीय मिश्री लाल चौहान की पत्नी श्रीमती बेला देवी, भुवनेश्वर लाल चौहान और स्वर्गीय मिश्री लाल चौहान, परमेश्वर लाल चौहान, स्वर्गीय मिश्री लाल चौहान को धारा 498 ए, 304 बी, 323, 302 भ० द०वि० और 3/4 दहेज निषेध अधिनियम के तहत बरी कर दिया।

2. मामले का तथ्यात्मक मैट्रिक्स यह है कि सूचनाकर्ता सरजू चौहान पुत्र स्वर्गीय प्यारे लाल चौहान ने श्रीमती बेला देवी, स्वर्गीय मिश्री लाल चौहान (सास), भुवनेश्वर लाल चौहान, कमलेश्वर लाल चौहान, परमेश्वर लाल चौहान, स्वर्गीय मिश्री लाल चौहान (बहनोई) के सभी पुत्र, रामेश्वर लाल चौहान पुत्र स्वर्गीय मिश्री लाल चौहान (पति) और अनुराधा पुत्र स्वर्गीय मिश्री लाल चौहान (ननद) के पुत्र, के खिलाफ केस अपराध संख्या 487 वर्ष 2014 में धारा 498 ए, 304 बी, 323 भ॰द०वि० और धारा 3/4 दहेज निषेध अधिनियम के तहत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की थी ।

3. प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसार, सूचनाकर्ता ने कहा कि उसकी बेटी पूजा (मृतका) की शादी 26.6.2012 को रामेश्वर लाल चौहान (अपीलकर्ता-अभियुक्त) के साथ हुई थी। आगे कहा गया कि शादी में सूचनाकर्ता ने 1,00,000 रुपये नकद, टीवी, फ्रिज, वॉशिंग मशीन, अलमारी, बिस्तर और अन्य घरेलू सामान दिए थे, लेकिन शादी के तुरंत बाद, उसकी बेटी - पूजा को उसकी सास, बेला देवी, पति, रामेश्वर लाल चौहान, देवर (देवर), भुवनेश्वर लाल चौहान, परमेश्वर लाल चौहान और ननद, अनुराधा द्वारा दहेज के लिए परेशान किया गया था। आगे कहा गया कि सभी व्यक्ति उसकी बेटी को पीटते थे और जब भी सूचनाकर्ता बेटी के घर जाता था, तो वह अपनी बेटी को सांत्वना देता था कि समय बीतने के साथ, सब कुछ ठीक हो जाएगा लेकिन सास, देवर, ननद और मृतका पूजा के पति के व्यवहार में कोई सुधार नहीं हुआ। दिनांक 31.05.2014 को उक्त व्यक्तियों ने उनकी पुत्री को 50,000/- रुपये और अंगूठी के लिए पीटा था। सूचना मिलने पर सूचनाकर्ता ने अपनी बेटी के घर का दौरा किया और उसे अपने घर वापस ले आया। 2.6.2014 को जब सूचनाकर्ता अपनी बेटी के साथ बी.ए तृतीय वर्ष की के बाद वापस आया, तो उसका दामाद रामेश्वर लाल चौहान बेटी को अपने घर वापस ले गया। दिनांक 11.6.2014 को मृतका पूजा ने भाभी अनुराधा के विवाह की व्यवस्था करने के लिए कड़ी मेहनत की और 12.6.2014 की सुबह लगभग 6-6:30 बजे पूजा उस स्थान से आई जहाँ किसी काम के सिलसिले में विवाह संपन्न हो रहा था। उसके देवर भुवनेश्वर लाल चौहान और कमलेश्वर लाल चौहान भी घर पर आए और उसकी बेटी को एक कमरे में बंद कर दिया और मिट्टी का तेल डालकर उसे आग लगा दी। इलाके के लोगों द्वारा सूचना दिए जाने पर सूचनाकर्ता उनकी बेटी के घर आया और देखा कि उसकी बेटी जली हुई है। अन्य लोगों की मदद से सूचनाकर्ता ने अपनी बेटी को जिला अस्पताल में भर्ती कराया, जहां से उसे मेडिकल कॉलेज रेफर कर दिया गया, जहां

अनुवादित

इलाज के दौरान 12.6.2014 को रात लगभग 8-8:30 बजे उसकी मौत हो गई।

4. मृतका श्रीमती पूजा का मृत्यु पूर्व बयान गोरखपुर तहसील सदर में तैनात नायब तहसीलदार द्वारा 12.6.2014 को सुबह लगभग 10:20 बजे बी. आर. डी मेडिकल कॉलेज, गोरखपुर में दर्ज किया गया था। प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज होने के बाद, पुलिस ने अपराध की जांच की और सबूत एकत्र करने के बाद, श्रीमती बेला देवी, भुवनेश्वर लाल चौहान, परमेश्वर लाल चौहान और रामेश्वर लाल चौहान के खिलाफ धारा 498 ए, 304 बी, 323 भन्द०वि० और धारा 3/4 दहेज निषेध अधिनियम के तहत 5.8.2014 को धारा 173 (2) द०प्र०स० के तहत चार्जशीट प्रस्तुत की गई। विवेचनाधिकारी ने पाया कि कमलेश्वर लाल चौहान (देवर) और अनुराधा (ननद) अपराध में शामिल नहीं थे। धारा 207 द०प्र०स० के प्रावधानों का पालन करने और संज्ञान लेने के बाद मजिस्ट्रेट ने 16.4.2015 को मामले को सत्र न्यायालय में परीक्षण के लिए सौंप दिया। दिनांक 2.7.2015 को सत्र न्यायाधीश, गोरखपुर द्वारा बेला देवी, भुवनेश्वर लाल चौहान, परमेश्वर लाल चौहान और रामेश्वर लाल चौहान (अपीलकर्ता - अभियुक्त) पर धारा 498 ए, 304 बी और वैकल्पिक रूप से धारा 302/34 भन्द०वि० के तहत आरोप लगाए गए मुकदमे के दौरान अभियोजन पक्ष द्वारा 17 व्यक्तियों के बयान दर्ज किए गए, जिनमें सरजू चौहान (मृतका के पिता) अ०सा०- 1, सुधीर चौहान (मृतका के भाई) अ०सा० -2, पुष्पा देवी (मृतका की मां) अ०सा०-3, राजन मिश्रा (स्वतंत्र गवाह) अ०सा०-4, गुड्डू चौहान (स्वतंत्र गवाह) अ०सा०-5, रामरती देवी (स्वतंत्र गवाह) अ०सा०- 6, अशोक कुमार चौहान (स्वतंत्र गवाह) अ०सा०- 7 शामिल हैं। राम आशीष (स्वतंत्र गवाह) अ०सा०-8, मो. जीशान (स्वतंत्र गवाह) अ०सा०-9, नौशाद (स्वतंत्र गवाह) अ०सा०- 10, राधेश्याम गुप्ता (स्वतंत्र गवाह) अ०सा०-11, सुभाष चंद्र चौहान (आरोपी पति के रिश्तेदार) अ०सा०-12, नीतीश कुमार चौहान (मृतका के नंद के पति) अ०सा०-13, पंचायतनामा करने वाले दयाराम (तहसीलदार), अ०सा०-14, डॉ. चंद्रदेव (फिटनेस प्रमाण पत्र देने वाले डॉक्टर) अ०सा०-17. सभी आरोपियों श्रीमती बेला देवी, भुवनेश्वर लाल चौहान, परमेश्वर लाल चौहान और रामेश्वर लाल चौहान के बयान धारा 313 द०प्र०स० के तहत दर्ज किए गए।

6. अभियोजन पक्ष ने लिखित शिकायत प्रदर्श क-1, चिक प्राथमिकी प्रदर्श क-11, पुलिस रिपोर्ट प्रदर्श क-2, पुलिस प्रदर्श क-3 द्वारा जली हुई साड़ी और अन्य सामान रखने का ज्ञापन, शव के साथ भेजा गया पत्र प्रदर्श क-4, चौकी प्रभारी मेडिकल कॉलेज गुलरिहा प्रदर्श क-5 को पत्र, फोटॉनाश प्रदर्श क-6, मुख्य चिकित्सा अधिकारी प्रदर्श क-7 को पत्र, मृतका पूजा प्रदर्श क-8 का मृत्यु पूर्व बयान पेश किया। मुकदमे के दौरान दस्तावेजी साक्ष्य के रूप में शव परिक्षण रिपोर्ट प्रदर्श क-.ए-9, चार्ज शीट प्रदर्श क- ए- 10, जनरल डायरी प्रदर्श क- ए-12, स्पॉट इंस्पेक्शन रिपोर्ट प्रदर्श क-13, पुलिस कंट्रोल प्रदर्श क - 14 को पत्र, थाना प्रभारी पीएस गुलरिहा को पत्र, प्रदर्श क- 15, नकल रिपोर्ट प्रदर्श क - 16, मेडिकल कॉलेज

अवधारित

प्रदर्श क- 17 की रिपोर्ट, नकल रिपोर्ट प्रदर्श क- 18 को दस्तावेजी साक्ष्य के रूप में न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया।

7. संपूर्ण साक्ष्यों पर विचार करने के बाद विद्वान सत्र न्यायाधीश ने श्रीमती बेला देवी, भुवनेश्वर लाल चौहान, परमेश्वर लाल चौहान को धारा 498 ए, 304 बी, 323, 302 और 3/4 दहेज निषेध अधिनियम के तहत बरी कर दिया और रामेश्वर लाल चौहान (अपीलकर्ता आरोपी) को धारा 302 भ० द०वि० के तहत दोषी ठहराया और अपीलकर्ता को आजीवन कारावास और 25,000 रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई और जुर्माने की चूक की स्थिति में उसे एक वर्ष और का सश्रम कारावास भुगतना पड़ेगा।

8. आरोपी-अपीलकर्ता के अधिवक्ता, राज्य के लिए अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता को सुना और रिकॉर्ड पर सामग्री का अवलोकन किया।

9. अभियुक्त-अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दोषसिद्धि के आदेश की जोरदार आलोचना की और निम्नलिखित प्रस्तुतियां दीं कि :-

(i) अभियुक्त- अपीलकर्ता निर्दोष है और उसने कथित अपराध नहीं किया है।

(ii) दोषसिद्धि का क्रम अनुमानों और कयासों पर आधारित है।

(iii) अभियोजन पक्ष के सभी गवाह अपने बयान से मुकर गए हैं और उन्होंने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया है।

(iv) विचारण न्यायालय ने माना है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता केवल मृत्यु पूर्व बयान प्रदर्श क- 8 के आधार पर दोषी था।

(v) विचारण न्यायालय ने मृत्यु पूर्व बयान प्रदर्श क-8 पर भरोसा करने में पूरी तरह से संकोच किया, जो बिल्कुल भी विश्वास पैदा नहीं करता है।

(vi) डॉ. चन्द्र देव, आपातकालीन चिकित्सा अधिकारी, अ०सा०-17 द्वारा मृत्यु पूर्व बयान देने के लिए मृतका के स्वस्थता प्रमाण-पत्र उचित प्रारूप में नहीं था और इसे उस पृष्ठ के बाईं ओर लिखा गया था जिस पर मृत्यु पूर्व बयान दर्ज किया गया था। अ०सा०-17 डॉ. चन्द्रदेव साक्ष्य से यह नहीं कहा जा सकता कि मृतका मृत्यु पूर्व बयान देने के लिए स्थिति में था। उपयुक्त मानसिक

(vii) पोस्टमार्टम रिपोर्ट प्रदर्श क-9 के अनुसार, मृतका पूजा 100% जल गई थी और दोनों तलवे (जोड़ी का तलवा) और बाल (सिर) को छोड़कर शरीर का हर हिस्सा जल गया था और मृतका-पूजा मृत्यु पूर्व बयान देने के लिए फिट स्थिति में नहीं थी।

(viii) मृत्यु पूर्व बयान दर्ज करने वाले नायब तहसीलदार अ०सा०-15 और फिटनेस प्रमाण पत्र देने वाले अ०सा०-17, आपातकालीन चिकित्सा अधिकारी डॉ. चंद्रदेव के साक्ष्य विश्वास पैदा नहीं करते हैं। अ०सा०-15 और अ०सा०-17 के साक्ष्य मृतका की चेतना और मानसिक फिटनेस के बारे में, जबकि बयान दर्ज किया जा रहा था, एक प्रबल शंका पैदा करते हैं, ।

अनुवादित

(ix) मृतका की मृत्यु दुर्घटना के कारण हुई थी और यह हत्या नहीं थी।

(x) और अंत में, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया था कि अपीलकर्ता को धारा 313 द०प्र०स० के तहत अपना बयान दर्ज करते समय मृत्यु पूर्व बयान के साथ तुलनात्मक आमना सामना नहीं किया गया था और इसलिए, उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता है और इसे सबूत से बाहर रखा जाना चाहिए।

10. इसके विपरीत, राज्य के विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई प्रस्तुतियों का खंडन किया और निम्नलिखित प्रस्तुतियां कीं कि: -

(i) विचारण न्यायालय ने आरोपी को दोषी ठहराने के लिए मृतका के मृत्यु पूर्व बयान पर सही भरोसा किया क्योंकि तथ्य के गवाहों को बचाव पक्ष द्वारा जीत लिया गया था।

(ii) किसी अन्य पुष्ट साक्ष्य के बिना केवल मृत्यु पूर्व बयान के आधार पर अभियुक्त को दोषी ठहराने में कोई बाधा नहीं है।

(iii) मृत्यु पूर्व बयान दर्ज करने के लिए कोई प्रारूप निर्धारित नहीं किया गया है।

(iv) अ०सा०-15 और अ०सा०-17 के साक्ष्यों से यह स्थापित होता है कि अ०सा०- 15 द्वारा मृत्यु पूर्व बयान दर्ज करते समय मृतका शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ थी ।

(v) अ०सा०- 15 और अ०सा० - 17 स्वतंत्र गवाह हैं और बचाव पक्ष द्वारा इस बारे में कोई सुझाव नहीं दिया गया है कि अ०सा०- 15 और अ० सा० - 17 आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ झूठे साक्ष्य क्यों देंगे।

(vi) धारा 313 द०प्र०स० के तहत आरोपी से पूछताछ के दौरान प्रदर्श क- 8 यानी मृत्यु पूर्व बयान के संबंध में आरोपी से सवाल नहीं पूछने से मुकदमे में गड़बड़ी नहीं होगी और आरोपी को अपने प्रति पूर्वाग्रह को स्थापित करना होगा।

(vii) और अंत में यह प्रस्तुत किया गया कि विचारण न्यायालय ने पूरे सबूतों पर विचार करने के बाद आरोपी-अपीलकर्ता को दोषी ठहराते हुए सही फैसला पारित किया और अपील में कोई दम नहीं था और इसे खारिज कर दिया जाना चाहिए।

11. अपीलकर्ता के अधिवक्ता, विद्वान अधिवक्ता और राज्य के लिए विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता दोनों की मदद से, हमने मामले के रिकॉर्ड का अवलोकन किया है, जिससे यह स्पष्ट है कि अ०सा० - 1 सरजू चौहान जो मृतका - पूजा चौहान के पिता थे और उन्होंने अभियोजन पक्ष के बयान का समर्थन नहीं किया था और अभियोजन पक्ष द्वारा उन्हें मुकर जाने की घोषणा की गई थी। अ०सा०-1 सरजू चौहान ने अपने मुख्य परीक्षण में कहा था कि उनकी बेटी पूजा अपनी बेटी के लिए दूध गर्म करते समय एक दुर्घटना का शिकार हो गई, जिसमें वह 12.6.2014 को लगभग 6:30-7:00 बजे बुरी तरह से जल गई थी। घटना के समय रामेश्वर लाल चौहान, आरोपी अपीलकर्ता (मृतका का पति), बेला देवी

अनुवादित

(सास), भुवनेश्वर लाल चौहान, कमलेश्वर लाल चौहान (देवर), अनुराधा (ननद) सभी कमला मैरिज हाउस में थे। अ०सा०-1 द्वारा आगे कहा गया था कि किसी ने उन्हें कमला मैरिज हाउस में सूचित किया कि उनकी बेटी को लगभग 6:30 -7:00 बजे जला दिया गया था और उपरोक्त जानकारी प्राप्त करने पर वे सभी घर पहुंचे और पाया कि पूजा बुरी तरह से जल गई थी । अ०सा०-1 ने मृतका के पति (अपीलकर्ता) और अन्य रिश्तेदारों के साथ पूजा को सदर अस्पताल, गोरखपुर पहुंचाया, जहां से उसे मेडिकल कॉलेज रेफर कर दिया गया और उसी दिन लगभग 8:00-9:00 बजे, गोरखपुर के मेडिकल कॉलेज में पूजा ने दम तोड़ दिया। अपनी जिरह में, अ०सा०-1 ने अभियोजन की कहानी से इनकार किया और कहा कि उनकी बेटी की मृत्यु एक दुर्घटना के कारण हुई थी। अ०सा०- 1 द्वारा कहा गया कि मेडिकल कॉलेज में न तो डॉक्टर और न ही मजिस्ट्रेट ने उनकी बेटी का बयान लिया था, प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए दहेज के आरोप को भी अ०सा०-1 ने खारिज कर दिया था।

12. अ०सा०-2 अर्थात् सुधीर चौहान, जो मृतका - पूजा का भाई था, ने भी अभियोजन पक्ष के बयान का समर्थन नहीं किया और अपनी जिरह में कहा कि पूजा की मृत्यु जलने के कारण हुई थी, जो 12.6.2014 को सुबह लगभग 6:30-7:00 बजे अपनी बेटी के लिए दूध गर्म करते समय दुर्घटनावश जली थी। उन्होंने कहा कि मेडिकल कॉलेज में उसी दिन लगभग 8:00-9:00 बजे उसकी मृत्यु हो गई। अभियोजन पक्ष द्वारा अ०सा०-2 को भी अपने बयान से मुकरने की घोषणा की गई थी और अतिरिक्त सरकारी अधिवक्ता द्वारा जिरह में अ०सा०-2 ने इस सुझाव से इनकार कर दिया कि आरोपी के साथ अदालत के बाहर समझौता हुआ था और इसलिए, अ० सा० - 2 सही बयान नहीं दे रहा था।

13. अ०सा० - 3, पुष्पा देवी, जो मृतका - पूजा की मां थीं, ने भी अभियोजन पक्ष के बयान का समर्थन नहीं किया और अपनी मुख्य परीक्षण में कहा कि पूजा की मृत्यु उनकी बेटी के लिए दूध गर्म करते समय दुर्घटनावश आग लगने से हुई। अभियोजन पक्ष ने अ०सा०-3 को भी अपने बयान से मुकरने वाला घोषित कर दिया और जिरह में अ०सा० - 3 ने कहा कि सूचना मिलने के बाद वह मेडिकल कॉलेज, गोरखपुर गई जहां उसकी बेटी बेहोश थी और वह अपनी बेहोश बेटी के साथ तब तक रही जब तक वह जीवित थी।

14. अ०सा०-4, राजन मिश्रा, अ०सा०-5, गुड्डू चौहान, अ०सा० - 6 रामरती देवी, अ०सा०-12, सुभाष चंद्र चौहान, अ०सा०- 13, नीतीश कुमार चौहान जो स्वतंत्र गवाह थे, वे भी अपने बयान से पलट गए और अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया। पंचायतनामा के गवाह रहे अ०सा०-7, अशोक कुमार चौहान, अ०सा०-8 राम आशीष, अ०सा० - 11 राधेश्याम गुप्ता भी अभियोजन पक्ष द्वारा अपने बयान से मुकर गए। अ०सा०- 9, मो. जीशान, अ०सा०-10, नौशाद जो बरामदगी के गवाह थे, उन्हें भी अभियोजन पक्ष द्वारा मुकर जाने की घोषणा की गई थी।

15. अ०सा०-14, दयाराम सेवानिवृत्त नायब तहसीलदार जो पंचायतनामा के गवाह थे, ने

अप्रमाणित

पंचायतनामा साबित किया और कहा कि 13.6.2014 को उनके निर्देशों के तहत पंचायतनामा मुरतब किया गया था।

16. राकेश राम, जो घटना के समय नायब तहसीलदार थे और 12.6.2014 को मृतका पूजा का मृत्यु पूर्व बयान दर्ज किया था, ने मृत्यु पूर्व बयान को साबित कर दिया ।

17. अ०सा०-16 डॉ. संत लाल कनौजिया जिन्होंने 13.6.2014 को मृतका पूजा का पोस्टमार्टम किया था, ने पोस्टमार्टम को साबित कर दिया।

18. डॉ. चंद्र देव, आपातकालीन चिकित्सा अधिकारी नेहरू अस्पताल बी. आर. डी मेडिकल कॉलेज, गोरखपुर ने कहा कि उन्होंने उस समय फिटनेस का प्रमाण पत्र दिया था जब मजिस्ट्रेट द्वारा मृत्यु पूर्व बयान दर्ज किया जा रहा था और इसे साबित किया।

19. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, मौखिक साक्ष्य से हम पाते हैं कि तथ्य के सभी गवाहों ने अभियोजन पक्ष के संस्करण का समर्थन नहीं किया था और अभियोजन पक्ष द्वारा उन्हें मुकर जाने वाला घोषित किया गया था। निचली अदालत ने मृतका-पूजा के मृत्यु पूर्व बयान पर भरोसा करते हुए आरोपी अपीलकर्ता को भन्द०वि० की धारा 302 के तहत दोषी ठहराया, लेकिन जब सभी गवाहों को मुकर जाने की घोषणा की गई, तो अन्य आरोपियों को धारा 304 बी, 498 ए भ० द०वि० और धारा 3/4 दहेज निषेध अधिनियम के तहत आरोपों से बरी कर दिया गया।

20. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि तथ्य के सभी गवाहों ने अभियोजन पक्ष के बयान का समर्थन नहीं किया था, इसलिए विचारण न्यायालय को किसी अन्य पुष्टि करने वाले सबूत के बिना मृतका के मृत्यु पूर्व बयान के आधार पर आरोपी अपीलकर्ता को दोषी नहीं ठहराना चाहिए था। इस संबंध में, राज्य की ओर से विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता का निवेदन यह है कि किसी भी पुष्ट साक्ष्य के बिना मृतका के मृत्यु पूर्व बयान पर भरोसा करने में कोई बाधा नहीं है।

21. यह प्रश्न कि क्या किसी पुष्ट साक्ष्य के बिना केवल मृत्यु पूर्व बयान के आधार पर दोषसिद्धि दर्ज की जा सकती है, अब असंगत नहीं है क्योंकि मृत्यु पूर्व बयान साक्ष्य अधिनियम की धारा 32(1) के मद्देनजर प्रासंगिक साक्ष्य का एक महत्वपूर्ण टुकड़ा है। धारा 32 के तहत, जब किसी व्यक्ति द्वारा मृत्यु के कारण के बारे में या किसी भी परिस्थिति के बारे में बयान दिया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु होती है, ऐसे मामलों में जिनमें व्यक्ति की मृत्यु का कारण सवालों के घेरे में आता है, मृतका द्वारा गवाह को दिया गया मौखिक या लिखित रूप में दिया गया ऐसा बयान एक प्रासंगिक तथ्य है और साक्ष्य में स्वीकार्य है। मृत्यु से पहले मृतका द्वारा दिए गए बयान को मृत्यु पूर्व बयान कहा जाता है।

22. मृत्यु पूर्व घोषणा को सुनी-सुनाई बात के अपवाद के रूप में मान्यता देने का एक ऐतिहासिक और साहित्यिक आधार है। कुछ

अनुवादित

अधिकारियों का सुझाव है कि नियम शेक्सपियरियन मूल का है। "द लाइफ एंड डेथ ऑफ किंग जॉन" में, शेक्सपियर ने लॉर्ड मेलुन को यह कहते हुए लिखा है कि "मेरे विचार में यह एक भयानक मौत है, जो जीवन की एक मात्रा को बरकरार रखती है, जो खून बहाती है,.. "सभी छल का उपयोग खो दिया" और पूछा, "तो मुझे झूठा क्यों होना चाहिए, क्योंकि यह सच है कि मुझे यहां मरना चाहिए और सत्य को जीना चाहिए? विलियम शेक्सपियर, द लाइफ एंड डेथ ऑफ किंग जॉन एक्ट 5, एस. सी 2, लाइन 22-291

23. यह समझना मुश्किल नहीं है कि हत्या के मुकदमे में मृत्यु पूर्व बयान को साक्ष्य के रूप में क्यों स्वीकार किया जाता है, जो सुनी-सुनाई बातों के खिलाफ सामान्य नियम के एक अपवाद के रूप में है। उदाहरण के लिए, एक जीवित गवाह के मामले में शपथ की कोई भी स्वीकृति कम से कम मरने वाले व्यक्ति के अंतिम विवेक द्वारा संतुलित होने के लिए एक विचार है। ऐसा कहा जाता है कि कोई भी अपने होंठों पर झूठ के साथ मरना नहीं चाहेगा। मृत्यु पूर्व बयान में पवित्रता होती है और मृत्यु पूर्व बयान देने वाला व्यक्ति असत्य कहने वाला अंतिम व्यक्ति होगा क्योंकि वह अपने निर्माता/भगवान् के सामने खड़ा है।

24. एक कानूनी कहावत है "नेमो मोरिटुरस प्रेसुमितुर मेंटीर" जिसका अर्थ है, कि एक आदमी अपने मुंह में झूठ के साथ अपने निर्माता/भगवान् से नहीं मिलेगा । वुडरोफ और अमीर अली ने साक्ष्य अधिनियम पर अपने ग्रंथ में कहा है: "जब कोई व्यक्ति मर रहा होता है, तो जिस गंभीर स्थिति में वो होता है, उसे कानून द्वारा उसकी सत्यता के लिए पर्याप्त आधार माना जाता है और इसलिए शपथ और प्रति परीक्षण की परीक्षा को छोड़ दिया जाता है।

25. यह भी कानून का एक स्थापित सिद्धांत है कि मृत्यु पूर्व बयान एक ठोस सबूत है और मृत्यु पूर्व बयान के आधार पर दोषसिद्धि के आदेश को सुरक्षित रूप से दर्ज किया जा सकता है।

26. निर्विवाद रूप से, विचारण न्यायालय ने आरोपी अपीलकर्ता को केवल मृत्यु पूर्व बयान के आधार पर दोषी ठहराया है क्योंकि तथ्य के अन्य गवाहों ने अभियोजन पक्ष के बयान का समर्थन नहीं किया था और मुकर गए थे। इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह स्थापित कानून है कि यदि मृत्यु पूर्व बयान पूर्ण विश्वास को प्रेरित करता है तो यह दोषसिद्धि का आधार बन सकता है। न तो कानून का शासन है और न ही विवेक का कि मृत्यु पूर्व बयान की पुष्टि किए बिना उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। कहने का मतलब है कि अगर अदालत इस बात से संतुष्ट है कि मृत्यु पूर्व दिया गया बयान सही और स्वैच्छिक है, तो वह बिना पुष्टि किए उस पर दोषसिद्धि का आधार बना सकता है। अभियुक्तों के खिलाफ दोषसिद्धि देने से पहले, विचारण न्यायालय को इस तथ्य को ध्यान में रखना चाहिए कि अभियोजन पक्ष के नेतृत्व में सबूतों पर संदेह करने के लिए कोई जगह नहीं होनी चाहिए, जिस पर दोषसिद्धि दी जा रही है। एक सामान्य नियम के रूप में, एक आपराधिक

अनुवादित

मामले में साक्ष्य की सराहना करते समय, न्यायालय को यह ध्यान रखना चाहिए कि यह मात्रा नहीं बल्कि साक्ष्य की गुणवत्ता जो सामग्री है। यह न्यायालय का कर्तव्य है कि वह मृत्यु पूर्व बयान की विश्वसनीयता पर विचार करे, और क्या यह पूर्ण विश्वास को प्रेरित करता है ताकि दोषसिद्धि दर्ज करने से पहले भरोसा किया जा सके।

27. खुशाल राव बनाम बॉम्बे राज्य के मामले में ए.आई. आर 1958 एस. सी 22 में सुप्रीम कोर्ट की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने कानून पर विस्तार से चर्चा करने के बाद निम्नानुसार टिप्पणी की: -

"(16) साक्ष्य अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों और भारत के विभिन्न उच्च न्यायालयों और इस न्यायालय में तय किए गए मामलों की समीक्षा पर, हम मद्रास उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ की राय से सहमत होकर इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं,

(1) कि इसे कानून के पूर्ण नियम के रूप में निर्धारित नहीं किया जा सकता है कि मृत्यु पूर्व बयान दोषसिद्धि का एकमात्र आधार नहीं बन सकता है जब तक कि यह पुष्टि की जाती है;

(2) कि प्रत्येक मामले को उन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अपने स्वयं के तथ्यों पर निर्धारित किया जाना चाहिए जिनमें मृत्यु पूर्व बयान दिया गया था;

(3) यह एक सामान्य प्रस्ताव के रूप में निर्धारित नहीं किया जा सकता है कि मृत्यु पूर्व बयान साक्ष्य के अन्य टुकड़ों की तुलना में एक कमजोर प्रकार का सबूत है,

(4) मृत्यु पूर्व दिया गया बयान साक्ष्य के दूसरे टुकड़े के समान ही है और इसे आसपास की परिस्थितियों के प्रकाश में और साक्ष्य के वजन को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों के संदर्भ में आंका जाना चाहिए;

(5) मृत्यु पूर्व दिया गया बयान, जिसे सक्षम मजिस्ट्रेट द्वारा उचित रीति से, अर्थात् प्रश्नों और उत्तरों के रूप में अभिलिखित किया गया है, और, जहाँ तक व्यावहारिक हो, घोषणा करने वाले के शब्दों में, मृत्यु पूर्व दिए गए बयान की तुलना में बहुत ऊँचे स्तर पर खड़ा है, जो मौखिक गवाही पर निर्भर करता है जो मानव की सभी दुर्बलताओं से ग्रस्त हो सकता है, स्मृति और मानव चरित्र, और

(6) कि मृत्यु पूर्व बयान की विश्वसनीयता का परीक्षण करने के लिए, न्यायालय को निम्नलिखित को ध्यान में रखना होगा। उदाहरण के लिए, मरने वाले व्यक्ति के अवलोकन के अवसर जैसी परिस्थितियां, उदाहरण के लिए, यदि अपराध रात में किया गया था तो क्या पर्याप्त प्रकाश था; क्या बताए गए तथ्यों को याद रखने की व्यक्ति की क्षमता, उसके नियंत्रण से परे परिस्थितियों से, उस समय खराब नहीं हुई थी जब वह बयान दे रहा था,; यह बयान पूरे समय सुसंगत रहा है यदि उनके पास आधिकारिक रिकॉर्ड के अलावा मृत्यु पूर्व बयान देने के कई अवसर थे; और यह कि बयान जल्द से जल्द अवसर पर दिया

अनुवादित

गया था और इच्छुक पार्टियों द्वारा 'सिखाये गए ' का परिणाम नहीं था।

(17) इसलिए, विश्वसनीयता की परीक्षा को पास करने के लिए, मृत्यु पूर्व बयान को इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए बहुत बारीकी से जांच के अधीन किया जाना चाहिए कि बयान अभियुक्त की अनुपस्थिति में दिया गया है, जिसके पास प्रति परीक्षण द्वारा बयान की सत्यता का परीक्षण करने का कोई अवसर नहीं था। लेकिन एक बार जब अदालत इस निष्कर्ष पर पहुंच गई है कि मृत्यु पूर्व बयान मौत की परिस्थितियों और पीड़ित के हमलावरों के बारे में सच्चा बयान था, तो आगे पुष्टि का कोई सवाल ही नहीं है। दूसरी ओर, यदि न्यायालय निर्णय में मृत्यु पूर्व दिए गए बयान की उसके सभी पहलुओं में जांच करने और उसकी सत्यता का परीक्षण करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि वह अपने आप में विश्वसनीय नहीं है, और यह कि वह एक दुर्बलता से ग्रस्त है, तो, पुष्टि के बिना वह दोषसिद्धि का आधार नहीं बन सकता है। इस प्रकार, पुष्टि की आवश्यकता साक्ष्य के एक टुकड़े के रूप में मृत्यु पूर्व बयान की किसी अंतर्निहित कमजोरी से उत्पन्न नहीं होती है, जैसा कि कुछ रिपोर्ट किए गए मामलों में माना गया है, बल्कि इस तथ्य से उत्पन्न होती है कि अदालत, किसी दिए गए मामले में, इस निष्कर्ष पर पहुंची है कि वह विशेष मृत्यु पूर्व बयान उन दुर्बलताओं से मुक्त नहीं था, जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है या ऐसी अन्य दुर्बलताओं से नहीं था जैसा कि उस मामले में साक्ष्य में खुलासा किया जा सकता है।

28. इसी तर्ज पर हमें पाणीबेन बनाम गुजरात राज्य के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय की टिप्पणियों (1992) 2 एस. सी. सी 747 (पृष्ठ 480 और 481 पर पैरा 18) में दी गई टिप्पणियों पर ध्यान देना प्रासंगिक लगता है।

हालांकि मृत्यु पूर्व बयान को बहुत महत्व दिया जाता है, लेकिन यह ध्यान देने योग्य है कि आरोपी के पास जिरह करने की कोई शक्ति नहीं है। सत्य को प्राप्त करने के लिए ऐसी शक्ति आवश्यक है जैसा कि शपथ का दायित्व हो सकता है। यही कारण है कि न्यायालय इस बात पर भी जोर देता है कि मृत्यु पूर्व बयान ऐसी प्रकृति का होना चाहिए जिससे इसकी शुद्धता में न्यायालय का पूर्ण विश्वास पैदा हो। अदालत को यह ध्यान में रखना होगा कि मृतका का बयान या तो ट्यूशन (सिखाये गए), संकेत या कल्पना का परिणाम नहीं था । अदालत को इस बात से और संतुष्ट होना चाहिए कि हमलावरों को देखने और पहचानने के स्पष्ट अवसर के बाद मृतक मानसिक रूप से स्वस्थ था। एक बार जब न्यायालय संतुष्ट हो जाता है कि घोषणा सही और स्वैच्छिक थी, तो निस्संदेह, यह बिना किसी और पुष्टि के अपनी दोषसिद्धि को आधार बना सकता है। इसे कानून के एक पूर्ण नियम के रूप में निर्धारित नहीं किया जा सकता है कि मृत्यु पूर्व बयान दोषसिद्धि का एकमात्र आधार नहीं बन सकता है जब तक कि इसकी पुष्टि न हो। पुष्टि की आवश्यकता वाला नियम केवल विवेक का एक नियम है। इस न्यायालय ने कई निर्णयों में मृत्यु पूर्व बयान को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों को निर्धारित किया है, जिन्हें निम्नानुसार अभिव्यक्त किया जा सकता है:

अनुवादित

(i) न तो कानून का कहना है और न ही विवेक है कि मृत्यु पूर्व दिए गए बयान की पुष्टि किए बिना उस पर कार्रवाई नहीं की जा सकती है। (मन्नू राजा बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (1976) 2 एस. सी. आर 764) ।

(ii) यदि न्यायालय इस बात से संतुष्ट है कि मृत्यु पूर्व दिया गया बयान सत्य और स्वैच्छिक है तो वह पुष्टि किए बिना दोषसिद्धि को आधार बन सकता है। (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राम सागर यादव, ए.आई. आर 1985 एस. सी 416; रमावती देवी बनाम बिहार राज्य, ए.आई. आर 1983 एस. सी 164)।

(iii) इस न्यायालय को मृत्यु पूर्व दिए गए बयान की सावधानीपूर्वक जांच करनी होगी और यह सुनिश्चित करना होगा कि घोषणा ट्यूशन (लिखाये पढ़ाएं), संकेत या कल्पना का परिणाम नहीं है। मृतका के पास हमलावरों को देखने और पहचानने का अवसर था और वह घोषणा करने के लिए फिट स्थिति में था। (के. रामचंद्र रेड्डी बनाम लोक अभियोजक, ए.आई. आर 1976 एस.सी 1994)

(iv) जहां मृत्यु पूर्व बयान संदेहास्पद है, उस पर बिना प्रमाणित साक्ष्य के कार्रवाई नहीं की जानी चाहिए। (रशीद बेग बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (1974) 4 एस. सी. सी 264)।

(v) जहां मृतक बेहोश था और कभी भी मृत्यु पूर्व बयान नहीं दे सका, उसके संबंध में साक्ष्य को अस्वीकार कर दिया जाना चाहिए। (काके सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, ए.आई. आर 1982 एस.सी 1021)

(vi) मृत्यु पूर्व दिया गया बयान जो दुर्बलता से ग्रस्त है, दोषसिद्धि का आधार नहीं बन सकता है। (राम मनोरथ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1981 एस. सी. सी (सीआरएल) 581)।

(vii) केवल इसलिए कि मृत्यु पूर्व बयान में घटना के बारे में विवरण नहीं है, इसे अस्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। (महाराष्ट्र राज्य बनाम कृष्णमूर्ति लक्ष्मीपति नायडू, ए.आई. आर 1981 एस.सी 617)।

(viii) समान रूप से, केवल इसलिए कि यह एक संक्षिप्त वक्तव्य है, इसे छोड़ा नहीं जा सकता है। इसके विपरीत, कथन की संक्षिप्तता स्वयं सत्य की गारंटी देती है। (सूरजदेव ओझा बनाम बिहार राज्य, ए.आई. आर 1979 एस.सी 1505)

(ix) आम तौर पर न्यायालय इस बात को संतुष्ट करने के लिए कि क्या मृतक ठीक मानसिक स्थिति में था, मृत्यु पूर्व बयान को चिकित्सा राय के अनुसार देखने के लिए है। लेकिन जहां प्रत्यक्षदर्शी ने कहा है कि मृतका यह मृत्युपूर्व बयान देने के लिए फिट और सचेत अवस्था में था, वहां चिकित्सा राय प्रबल नहीं हो सकती है। (नानाहौ राम और एक अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य, ए.आई. आर 1988 एस. सी 912)

(x) जहां अभियोजन पक्ष का संस्करण मृत्यु पूर्व बयान में दिए गए संस्करण से भिन्न है, वहां उक्त घोषणा पर कार्रवाई नहीं की जा सकती है। (राज्य उ. प्र.वी. मदन मोहन, ए.आई.आर 1989 एस.सी 1519)

29. यहां खुद को याद दिलाना उचित होगा कि आम तौर पर, मृत्यु पूर्व बयान के संबंध में दो

अनुवादित

मुद्दे हैं। पहला यह होगा कि क्या घोषणा वास्तव में की गई थी। स्वाभाविक रूप से, इसका मूल्यांकन गवाहों के साक्ष्य के आधार पर किया जाएगा, जो दावा करते हैं कि इस तरह की घोषणा उनके द्वारा की गई थी और देखी गई थी। यदि घोषणा ऐसे गवाहों द्वारा की जाती है या रखी जाती है, तो ऐसी घोषणा के रिकॉर्ड की सटीकता का सवाल होगा । यदि उस संबंध में साक्ष्य संतोषजनक है, तो न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचेगा कि एक विशेष बयान वास्तव में मृतका द्वारा दिया गया था। यह मामले का अंत नहीं है, इसके बाद अदालत को यह तय करने की आवश्यकता होगी कि मृतका द्वारा दिया गया ऐसा बयान सच था या नहीं। दूसरे शब्दों में, बयान देने के तथ्य और उक्त कथन की सत्यता दोनों को किसी घोषणा को विश्वसनीय करार देने से पहले स्थापित किया जाना आवश्यक है।

30. मरने वाले व्यक्ति के बयान की सत्यता का पता लगाने के लिए, उनके साक्ष्य की विश्वसनीयता का न्याय करते समय गवाहों पर लागू होने वाले मापदंडों को लागू किया जाना चाहिए। एक गवाह के संस्करण की विश्वसनीयता कई कारकों पर निर्भर करेगी, जिसमें गवाह को जानने के लिए उपलब्ध अवसर, रोगी की शारीरिक और मानसिक क्षमता, रोगी के उपचार का प्रकार, ट्यूशन (लिखाये पढ़ाए जाने) की संभावना, रोगी के साथ गवाह का संबंध आदि शामिल हैं। कानून केवल इसलिए बयान पर आंख मूंदकर भरोसा करने का जोखिम नहीं उठाता क्योंकि यह कार्यकारी मजिस्ट्रेट द्वारा दर्ज किया गया है। सामान्य जांच हर संभव कोण से आवश्यक है और कार्यकारी मजिस्ट्रेट के साक्ष्य को विश्वसनीयता की परीक्षा का सामना करना चाहिए।

31. नल्लापति सिवैया बनाम उप-विभागीय अधिकारी, गुंटूर, आंध्र प्रदेश के मामले में (2007) 15 उच्चतम न्यायालय के मामले 465 (पृष्ठ 475 एस. सी. सी पर निर्णय के पैराग्राफ संख्या 26 में) उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की -

"यह भी कानून का एक स्थापित सिद्धांत है कि मृत्यु पूर्व बयान एक ठोस सबूत है और मृत्यु पूर्व बयान के आधार पर दोषसिद्धि के आदेश को सुरक्षित रूप से दर्ज किया जा सकता है, बशर्ते अदालत पूरी तरह से संतुष्ट हो कि मृतका द्वारा दिया गया मृत्यु पूर्व बयान स्वैच्छिक और विश्वसनीय था और लेखक ने मृतका द्वारा बताए गए मृत्यु पूर्व बयान को दर्ज किया था। इस अदालत ने सिद्धांत निर्धारित किया कि मृत्यु पूर्व बयान पर भरोसा करने के लिए अदालत को सचेत होना चाहिए कि मृत्यु पूर्व बयान स्वैच्छिक था और आगे इसे सही ढंग से दर्ज किया गया था और सबसे ऊपर निर्माता इस तरह के बयान देने के लिए मानसिक और शारीरिक रूप से फिट स्थिति में था।"

32. उपरोक्त सिद्धांतों को हाल ही में सुप्रीम कोर्ट द्वारा जगबीर सिंह बनाम राज्य (एन. सी. टी दिल्ली) के मामले में दोहराया गया है, जिसकी रिपोर्ट (2019) 8 एस. सी. सी 779 में दी गई है।

33. इस तरह की स्थापित कानूनी स्थिति के प्रकाश में, मामले के तथ्यों का आकलन किया

अनुवादित

जाना है। तथ्यात्मक पहलुओं के आधार पर स्वतंत्र रूप से यह तय करना होगा कि मृत्यु पूर्व बयान के साक्ष्य विश्वास को प्रेरित करते हैं या नहीं। सिद्धांत एक मार्गदर्शन प्रदान करेंगे, लेकिन किसी को केवल तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर मृत्यु पूर्व बयान के मूल्य का फैसला करना होगा। कानून अच्छी तरह से तय है कि मृत्यु पूर्व बयान लिखने के लिए कोई विशिष्ट प्रारूप नहीं है, जिसका अर्थ है कि लिखित मृत्यु पूर्व बयान किसी भी रूप में हो सकता है, लेकिन सार यह है कि इसे इसकी शुद्धता के बारे में अदालत के पूर्ण विश्वास को प्रेरित करना चाहिए और मृतका का बयान ट्यूशन (लिखाये पढ़ाए जाने) या कल्पना के उत्पाद का परिणाम नहीं था। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि इस बात के सबूत होने चाहिए कि पीड़ित अच्छी तरह से उन्मुख था और बयान देने के लिए मनः स्थिति में था। रिकॉर्डर का यह कर्तव्य है कि वह खुद को संतुष्ट करे कि मृतक बयान देने के लिए फिट मानसिक स्थिति में था और बाद में अदालत को यह भी संतुष्ट करना चाहिए कि बयान देते समय मृतक मन की फिट स्थिति में था।

34. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने मृत्यु पूर्व बयान प्रदर्श क-8 की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया और कहा कि मृत्यु पूर्व बयान प्रदर्श क-8 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि मृत्यु पूर्व बयान 12.6.2014 को सुबह लगभग 10:20 बजे दर्ज किया गया था। अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि डॉ. चंद्र देव, आपातकालीन चिकित्सा अधिकारी, नेहरू अस्पताल बी.आर.डी मेडिकल कॉलेज, गोरखपुर, अ०सा० - 17 ने उस पृष्ठ के बाएं मार्जिन पर लिखा है जिस पर मृत्यु पूर्व बयान दर्ज किया गया था कि रोगी 12.6.2014 को सुबह 10:15 बजे से 10:30 बजे के दौरान और बाद में मृत्यु पूर्व बयान देने के लिए मानसिक रूप से फिट था। अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि पेन के एक झटके से डॉक्टर ने फिटनेस का प्रमाण पत्र दिया है और वह भी पृष्ठ के बाएं मार्जिन पर जिस पर मृत्यु पूर्व बयान दर्ज किया गया था।

35. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी तर्क दिया गया था कि अपने बयान में डॉ. चंद्र देव, अ०सा०- 17 ने कहा कि पेपर नंबर 39 - क, मेमो दिनांक 12.6.2014 फार्मासिस्टों द्वारा तैयार किया गया था और तैयार होने के बाद, अ०सा० - 17 ने उस पर हस्ताक्षर किए और उपरोक्त ज्ञापन मजिस्ट्रेट को भेजा गया था, जिस पर मजिस्ट्रेट ने मृत्यु पूर्व बयान दर्ज किया था। अ०सा० - 17 ने पेपर नं 39 - क को देखने के बाद कहा कि मेमो पर यह लिखा गया है कि एक महिला जो गंभीर रूप से जल गई थी, उसे 12.6.2014 को सुबह लगभग 10:15 बजे लाया गया था और उसका मृत्यु पूर्व बयान दर्ज किया जाना आवश्यक था। अ०सा०-17 द्वारा यह भी कहा गया था कि ज्ञापन में उल्लिखित 10:15 बजे के समय को बेडहेड टिकट के आधार पर स्थानांतरित किया गया था।

36. अ०सा०-17 के बयान को खारिज करते हुए अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने दलील दी कि अ०सा०-17 के साक्ष्य के अनुसार मृतका को 12.6.2014 को सुबह लगभग 10.15 बजे

अद्यावधिक

मेडिकल कॉलेज में भर्ती कराया गया था, जबकि मृत्यु पूर्व बयान 12.6.2014 को सुबह 10.20 बजे दर्ज किया गया था, यानी अस्पताल में मृतका के भर्ती होने के पांच मिनट के भीतर। अ०सा०- 17, डॉ. चंद्र देव और अ०सा०- 15, राकेश राम सब-रजिस्ट्रार, जिन्होंने मृत्यु पूर्व बयान दर्ज किया था, के साक्ष्य से, यह स्पष्ट है कि अनुरोध पत्र संख्या 39 का का ज्ञापन डॉक्टर द्वारा मृतका को अस्पताल में भर्ती करने के बाद सुबह 10:15 बजे तैयार किया गया था और उपरोक्त ज्ञापन मजिस्ट्रेट को उनके निवास पर पुलिस द्वारा दिया गया था और मेमो पेपर नंबर - 13ए की रिसीविंग के बाद ही अ०सा०- 15 आया था, अस्पताल में जाकर मृत्यु पूर्व बयान दर्ज किया। अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा आगे यह तर्क दिया गया है कि अ०सा०-17 के बयान में यह आया है कि उसे इस तथ्य की कोई जानकारी नहीं थी कि किस डॉक्टर ने मृतका को अस्पताल में भर्ती कराया और अ०सा०-17 के बयान से आगे यह भी स्पष्ट है कि अ०सा०-17 ने कभी भी मृतका का इलाज नहीं किया, बल्कि इस आशय का फिटनेस प्रमाण पत्र दिया था कि मृतका मानसिक रूप से फिट थी। मृत्यु पूर्व बयान दिनांक 12.6.2014 को पूर्वाहन 10:15 बजे से पूर्व, पूर्वाह्न 10:30 बजे तक दिया गया था। यह भी तर्क दिया गया है कि मृत्यु पूर्व बयान को रिकॉर्ड करने की पूरी कवायद 15 मिनट की छोटी अवधि के भीतर यानी सुबह 10:15 बजे से 10:30 बजे तक पूरी की गई थी।

37. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे यह तर्क दिया गया कि अ०सा०-17 ने अपनी जिरह में कहा कि उन्होंने मजिस्ट्रेट द्वारा तैयार किए जाने के बाद प्रदर्श क-8 के बाएं बस एक औपचारिकता के रूप में मार्जिन पर लिखा था कि रोगी 12.6.2014 को सुबह 10:15 बजे से 10:30 बजे के दौरान और बाद में मृत्यु पूर्व बयान देने के लिए मानसिक रूप से फिट है। अपने साक्ष्य में वह इस निष्कर्ष पर कैसे पहुंचे कि मृतका मृत्यु पूर्व बयान दर्ज करने के लिए उपयुक्त स्थिति में थी। अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने अ०सा०- 15 राकेश राम, सब-रजिस्ट्रार, जिन्होंने मृत्यु पूर्व बयान दर्ज किया, के बयान का हवाला देते हुए तर्क दिया कि अ०सा०-15 ने अपने बयान में कहा है कि 12.6.2014 को उन्हें मृत्यु पूर्व बयान दर्ज करने के लिए कोई लिखित सूचना नहीं मिली थी और उन्हें टेलीफोन के माध्यम से पुलिस नियंत्रण कक्ष द्वारा सूचित किया गया था और उसके बाद पुलिस नियंत्रण कक्ष द्वारा एक ज्ञापन भी भेजा गया था कि एक महिला बी. आर. डी मेडिकल कॉलेज में भर्ती है और उसके मृत्यु पूर्व बयान को रिकॉर्ड किया जाना था। अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा आगे तर्क दिया गया कि अपने बयान में अ०सा०-15 ने स्वीकार किया कि यह जानकारी 12.6.2014 को सुबह लगभग 8:00 बजे अ०सा०-15 को आई थी, जबकि वास्तव में मृतका को लगभग 10:15 बजे मेडिकल कॉलेज में भर्ती कराया गया था, अ०सा०-17 के बयान के अनुसार, पेपर नंबर 39 - का को देखने के बाद अपने बयान में कहा गया है कि यह मेमो पेपर नंबर 39 का को देखने के बाद है। पुलिस ने उन्हें सुबह करीब 8:30 बजे से 9:00 बजे तक उनके आवास पर अ०सा०-15 को दिखाया। अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा आगे बताया गया कि

अनुवादित

अपने बयान में, अ० सा०- 15 ने कहा कि अ०सा०-15 अपने घर से लगभग 9:00 बजे मेडिकल कॉलेज के लिए शुरू हुआ और लगभग 9:20 बजे 15-20 मिनट के भीतर मेडिकल कॉलेज पहुंच गया। अस्पताल पहुंचने के बाद अ०सा०-15 को पता चला कि मृतका - पूजा सर्जरी ओपीडी - सी / बेड में भर्ती है और उसी के आधार ने आगे कहा कि उन्हें याद नहीं है कि द्वारा आगे कहा गया था कि बयान दर्ज पर अ०सा०-15 मृतका के पास पहुंचा। अ०सा० 15 मृतका जली हुई अवस्था में था या नहीं। अ०सा० - 15 करने से पहले, उन्होंने डॉक्टर से एक प्रमाण पत्र लिया था कि क्या मृतका अपना बयान देने की स्थिति में थी या नहीं। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि मृत्यु पूर्व बयान सुबह 10:20 बजे से 10:30 बजे के बीच दर्ज किया गया था। अ०सा० - 15 और अ०सा०- 17 के साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि मृतका को लगभग 10:15 बजे मेडिकल कॉलेज में भर्ती कराया गया था और अ०सा० - 15 सुबह लगभग 9:20 बजे मेडिकल कॉलेज में भर्ती होने से पहले ही अस्पताल पहुंच गया था। अपीलकर्ता को उसके निवास पर सुबह लगभग 8:30 बजे - 9:00 बजे सेवा दी गई थी। अ०सा० - 17 के बयान से, यह स्पष्ट है कि उपरोक्त मेमो पेपर नंबर-39क को मृतका को सुबह लगभग 10:15 बजे मेडिकल कॉलेज में भर्ती कराने के बाद ट्रांसक्रिप्ट किया गया था और उसके बाद इसे मृत्यु पूर्व बयान दर्ज करने के लिए अ०सा०-15 को भेजा गया था, लेकिन प्रदर्श क-8 के अनुसार मृत्यु पूर्व बयान सुबह 10:20 बजे दर्ज किया गया था।

38. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित किया कि अ०सा०- 16, डॉ संत लाल कनौजिया, जिन्होंने मृतका का पोस्टमॉर्टम किया था, ने कहा कि मृतका 100% जली हुई अवस्था में था। उसके बाल और तलवा को छोड़कर मृतका का पूरा शरीर जल चुका था। पोस्टमार्टम रिपोर्ट प्रदर्श क-9 का हवाला देते हुए, अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह बताया गया है कि मृतका तलवे और बाल दोनों को छोड़कर पूरे शरीर में सतही से गहरी जलन थी।

39. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि अ०सा०- 15, अ०सा० - 16 और अ०सा०-17 के साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि मृतका घटना में 100% तक गंभीर रूप से जल गया था। उसके तलवे और बालों को छोड़कर, पूरा शरीर जल गया था। वह मृत्यु पूर्व बयान देने की स्थिति में नहीं थी। इसके अलावा, मृत्यु पूर्व बयान दर्ज करने का समय भी संदेहास्पद है क्योंकि मृत्यु पूर्व बयान प्रदर्श क-8 से यह स्पष्ट है कि इसे 12.6.2014 को सुबह 10:20 बजे से 10:30 बजे के बीच दर्ज किया गया था, जबकि मृतका को लगभग 10:15 बजे मेडिकल कॉलेज में भर्ती कराया गया था। आगे यह तर्क दिया गया कि यद्यपि मृतका को 12.6.2014 को सुबह 10:15 बजे भर्ती कराया गया था, अ०सा०-15 के साक्ष्य से यह पता चला है कि अ०सा०-15 को मृतका को मेडिकल कॉलेज में भर्ती होने से बहुत पहले मृत्यु पूर्व बयान दर्ज करने के लिए मेमो पेपर नंबर-39क दिया गया था। उपरोक्त ज्ञापन, पेपर नंबर 39क सुबह लगभग 10:15 बजे

अनुवादित

मेडिकल कॉलेज में मृतका के प्रवेश के बाद तैयार किया गया था। इसके बाद, इसे मजिस्ट्रेट को भेजने के लिए भेजा गया था और इसलिए अ०सा०- 15 के लिए यह संभव नहीं था कि वह 12.6.2014 को सुबह 10:20 बजे प्रदर्श क-8 में दर्ज बयान दर्ज करे और इस तरह मृत्यु पूर्व बयान विश्वास को प्रेरित नहीं करता है और इस पर भरोसा नहीं किया जा सकता है।

40. खंडन में, विद्वान शासकीय अधिवक्ता ने तर्क दिया कि चूंकि मृत्यु पूर्व बयान दर्ज करने के लिए कोई प्रारूप निर्धारित नहीं है, इसलिए तथ्य यह है कि डॉक्टर द्वारा फिटनेस के प्रमाण पत्र को उस पृष्ठ के बाएं मार्जिन पर स्थानांतरित किया गया था, जिस पर मृत्यु पूर्व बयान दर्ज किया गया था, और इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। विद्वान शासकीय अधिवक्ता द्वारा आगे यह तर्क दिया गया है कि यद्यपि अ०सा० - 15 और अ०सा०-17 के मेमो पेपर संख्या 39 केए की सेवा के बारे में दिए गए बयान में मामूली विसंगतियां थीं, लेकिन इससे उनकी गवाही अविश्वसनीय नहीं होगी। शासकीय अधिवक्ता ने इस तथ्य पर जोर दिया कि अ०सा०- 15, नायब तहसीलदार और अव्सा० - 17, डॉक्टर जिम्मेदार सरकारी अधिकारी थे और उनके लिए झूठे सबूत देने का कोई कारण नहीं था।

41. हमने पक्षकारों की प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार किया है और अ०सा०- 15 और अ०सा०- 17 के कथनों का अवलोकन किया है। हमारे विचार में मृत्यु पूर्व घोषणा प्रदर्श क-8 एक से अधिक कारणों से विश्वास को प्रेरित नहीं करती है।

42. मेमो पेपर नंबर 39क के अनुसार, मृतका को 12.6.2014 को सुबह लगभग 10:15 बजे मेडिकल कॉलेज में भर्ती कराया गया था। डॉ. चंद्र देव ने अपने बयान में कहा था कि मृतका को मेडिकल कॉलेज में भर्ती कराने के बाद, फार्मासिस्ट द्वारा उपरोक्त मेमो पेपर नंबर 39ज तैयार किया गया था, और उसके बाद अ०सा०-17 द्वारा उस पर हस्ताक्षर किए गए थे। इसके बाद पेपर नंबर 39 का को मृत्युपूर्व बयान दर्ज करने के लिए अ०सा० -15 को भेजा गया। राकेश राम, नायब तहसीलदार ने शुरू में अपने बयान में इस बात से इनकार किया कि उन्हें कोई लिखित सूचना मिली थी और कहा कि पुलिस ने अ०सा० - 15 को मोबाइल फोन (नंबर 9454416245) पर सुबह लगभग 8:00 बजे मृत्यु पूर्व बयान दर्ज करने के लिए सूचित किया था। अपने बयान के बाद के हिस्से में अ०सा० - 15 ने कहा कि पुलिस कांस्टेबल मृत्यु पूर्व बयान दर्ज करने के लिए एक ज्ञापन लाया था। आगे यह कहा गया कि अ०सा० -15 को लगभग 8:30-9:00 बजे मेमो दिखाया गया था, अ०सा० - 15 ने आगे कहा कि उन्होंने मेमो देखा था और वही पेपर नंबर 39क था । अ०सा० - 15 द्वारा आगे कहा गया था कि वह लगभग 9:00 बजे मेडिकल कॉलेज के लिए रवाना हुए थे और लगभग 9:20 बजे मेडिकल कॉलेज पहुंचे।

43. अ०सा०-17, डॉ. चन्द्र देव, जिन्होंने मेमो 39क पर हस्ताक्षर किए थे, के बयानों से यह स्पष्ट है कि मेमो पेपर नंबर 39क मेडिकल कॉलेज में भर्ती होने के बाद ही तैयार किया गया था यानी सुबह 10:15 बजे के बाद। दूसरी ओर, अ०सा०-15, राकेश राम के साक्ष्य से, यह

अधिवक्ता

सूचना अ०सा०-15 को उनके मोबाइल फोन पर प्राप्त हुई थी और पुलिस द्वारा लगभग 8:00 बजे दी गई थी और मेमो पेपर नंबर - 39क पुलिस कांस्टेबल द्वारा अ०सा०-15 को लगभग 8:30-9:00 बजे दिया गया था। दोनों गवाहों अर्थात अ०सा०- 17 और अ०सा० - 15 के बयान असंगत हैं क्योंकि मृत्यु पूर्व बयान दर्ज करने के लिए अ०सा०-15 को भेजे गए ज्ञापन हैं।

44. अ०सा०-15 राकेश राम, जिन्होंने मृत्यु पूर्व बयान दर्ज किया था, ने कहा था कि पुलिस द्वारा सूचित किए जाने पर (मौखिक रूप से और साथ ही मेमो पेपर नंबर 39क लिखने में), अ०सा०-15 मृत्यु पूर्व बयान दर्ज करने के लिए 12.6.2014 को सुबह लगभग 9:20 बजे मेडिकल कॉलेज पहुंचा। पेपर नंबर 39क से यह स्पष्ट है कि मृतका को लगभग 10:15 बजे मेडिकल कॉलेज में भर्ती कराया गया था; विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने तर्क दिया कि यह संभव है कि मृतका को पेपर नंबर 39क में उल्लिखित समय से पहले भर्ती कराया गया हो। अभियोजन पक्ष ने सबूत के तौर पर सिर्फ पेपर नंबर 39क पेश किया था। मृतका का बेड हेड टिकट जो मेडिकल में मृतका के प्रवेश के समय को प्रदर्शित करने के लिए सबसे अच्छा सबूत होगा, अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत नहीं किया गया था।

45. अभियोजन पक्ष की कहानी के अनुसार, यह घटना 12.6.2014 को सुबह लगभग 6:00 बजे से 6:30 बजे हुई, इसके बाद सूचनाकर्ता द्वारा सूचना प्राप्त की गई जो कमला मैरिज हॉल में था और जानकारी प्राप्त करने के बाद उस घर में पहुंचा जहां मृतका को सूचनाकर्ता और परिवार के अन्य सदस्यों द्वारा जली हुई अवस्था में पाया गया था। इसके बाद उसे गोरखपुर के जिला अस्पताल ले जाया गया, जहां से उसे मेडिकल कॉलेज रेफर कर दिया गया। अभियोजन जिला अस्पताल, गोरखपुर से कोई सबूत पेश करके यह साबित करने में विफल रहा कि मृतका को किस समय जिला अस्पताल, गोरखपुर लाया गया था और मेडिकल कॉलेज में रेफर किया गया था।

46. इस प्रकार अ०सा०-17, अ०सा०-15 और पेपर नं. 39क के साक्ष्य से, मृत्यु पूर्व बयान दर्ज करने का समय संदिग्ध हो जाता है। अ०सा० - 17 और पेपर नं. 39क के साक्ष्य के अनुसार, मृत्यु पूर्व बयान दर्ज करने के लिए अ०सा०-15 को भेजा गया अधियाचन सुबह 10:15 बजे के बाद भेजा गया था, यानी मेडिकल कॉलेज में मृतका के प्रवेश के बाद। जबकि अ०सा०-15 के साक्ष्य से, उन्हें सुबह लगभग 8:30 -9:00 बजे सूचित किया गया था (मौखिक रूप से और साथ ही मेमो पेपर नंबर - 39क द्वारा लिखित रूप में) यानी मृतका को मेडिकल कॉलेज में भर्ती होने से बहुत पहले। मृत्यु पूर्व बयान प्रदर्श क- 8 से ऐसा प्रतीत होता है कि मृत्यु पूर्व बयान 12.6.2014 को सुबह 10:20-10:30 बजे के बीच अ०सा०- 15 द्वारा दर्ज किया गया था। सुबह 10:20 बजे मृत्यु पूर्व बयान दर्ज करना ही इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए संदेह पैदा करता है कि अ०सा०-15 को मेडिकल कॉलेज में मृतका के प्रवेश से बहुत पहले एक मेमो पेपर नंबर 39क के माध्यम से सूचित किया गया था, जिसे बाद में मृतका के प्रवेश के बाद

अनुवादित

तैयार किया गया था यानी अ०सा०-17 के साक्ष्य के अनुसार 12.6.2014 को सुबह 10:15 बजे के बाद।

47. अ०सा०-15, राकेश राम, नायब तहसीलदार, जिन्होंने मृत्यु पूर्व बयान दर्ज किया था, ने कहा है कि मृत्यु पूर्व बयान दर्ज करने से पहले, अ०सा०- 15 ने डॉक्टर से एक प्रमाण पत्र लिया था कि रोगी बयान देने में सक्षम है या नहीं। मैंने अपना बयान देने के लिए मृतका की स्थिति के बारे में अपनी राय दर्ज की। प्रदर्श क-8 के बाएं मार्जिन पर मैंने दर्ज किया कि "रोगी 12.6.2014 को सुबह 10:15 बजे से 10:30 बजे के बीच मृत्यु पूर्व बयान दर्ज करने से पहले, उसके दौरान और बाद में मृत्यु पूर्व बयान के लिए मानसिक रूप से फिट है। अपनी जिरह में अ०सा०-17 ने कहा कि मजिस्ट्रेट द्वारा प्रदर्श क-8 तैयार किए जाने के बाद मैंने प्रदर्श क- 8 के बाईं ओर लिखा था कि "रोगी 12.6.2014 को सुबह 10:30 बजे से पहले और बाद में मृत्यु पूर्व बयान देने के लिए मानसिक रूप से फिट है।

48. इस प्रकार अ०सा० - 15 और अ०सा० - 17 के बयानों के बीच अ०सा०- 17 द्वारा दिए गए प्रमाण पत्र के समय के बारे में स्पष्ट विसंगतियां हैं। अ०सा० - 17 द्वारा दिए गए प्रमाण पत्र को पढ़ने से, जो कि प्रदर्श क-8 के बाएं मार्जिन पर है, यह स्पष्ट है कि यह अ० सा०- 15 द्वारा मृत्यु पूर्व बयान दर्ज किए जाने के बाद दिया गया था (?)।

49. अ०सा०-17 के साक्ष्य से ऐसा कुछ भी नहीं आया है कि डॉक्टर इस निष्कर्ष पर कैसे पहुंचे कि मृतका मृत्यु पूर्व बयान देने के लिए फिट मानसिक स्थिति में थी। डॉ. चंद्र देव ने यह नहीं बताया था कि उन्होंने मरीज की जांच कैसे की थी। न ही उन्होंने कहा कि उन्होंने उसकी मानसिक फिटनेस का पता लगाने के लिए उसके रक्तचाप, पल्स रेट या किसी अन्य पैरामीटर की जांच की थी। अ०सा०- 17, डॉ. चन्द्रदेव के साक्ष्य में यह भी नहीं आया है कि उन्हें इस बात की जानकारी थी कि जिस समय मृतका को मेडिकल कॉलेज में भर्ती कराया गया था, उसे उपस्थित चिकित्सक द्वारा क्या उपचार / दवा दी गई थी। मामले के अजीबोगरीब तथ्यों में, केवल एक सर्वव्यापी बयान कि उन्होंने फिटनेस का प्रमाण पत्र दिया था, पर्याप्त नहीं होगा।

50. यहां तक कि मृत्यु पूर्व बयान दर्ज करने वाले अ०सा० - 15 ने कहा कि उन्हें डॉक्टर से फिटनेस का प्रमाण पत्र मिला है, लेकिन यह नहीं कहा है कि वह अपना बयान दर्ज करने के लिए मृतका की फिटनेस के संबंध में संतुष्ट थे। उन्होंने यह भी नहीं बताया कि क्या उन्होंने मृतका से कोई प्रारंभिक सवाल पूछा था या किसी अन्य तरीके से वह खुद मानसिक फिटनेस के बारे में संतुष्ट थे। इस तरह के सबूत पूरी तरह से अनुपस्थित हैं।

51. मृत्यु पूर्व बयान को स्थापित करने के लिए अभियोजन पक्ष द्वारा अ०सा०- 17, डॉ चंद्र देव के साक्ष्य और अ०सा०- 15, राकेश राम सब-रजिस्ट्रार के साक्ष्य पर विचार किया गया था। न तो चिकित्सा अधिकारी, अ०सा०- 17 और न ही मजिस्ट्रेट अ०सा०- 15 ने विस्तार से बताया है कि वे रोगी की मानसिक

अनुवादित

फिटनेस के बारे में कैसे संतुष्ट हुए, इसलिए इस प्रकार के साक्ष्य के साथ-साथ यह तथ्य कि अभियोजन पक्ष के अन्य सभी गवाह अपने बयान से मुकर गए थे और अभियोजन पक्ष के बयान का समर्थन नहीं किया था, पूरा मामला संदिग्ध हो जाता है। मृत्यु पूर्व बयान दर्ज करने का समय अर्थात 12.06.2014 को सुबह 10:20 बजे से 10:30 बजे तक बिल्कुल संदिग्ध हो जाता है। अभियोजन पक्ष यह स्थापित करने में विफल रहा है कि मृत्यु पूर्व बयान उस समय दर्ज किया गया था जब इसे प्रदर्श क-8 के अनुसार दर्ज किया गया था, विशेष रूप से साक्ष्य अ० सा० - 15 और अ०सा०-17 के मद्देनजर, जो साक्ष्य दर्ज करने के समय के विपरीत है। सबूत तब और भी संदिग्ध हो जाते हैं जब डॉक्टर ने अपने बयान में स्वीकार किया था कि उन्होंने प्रमाण पत्र सिर्फ औपचारिकता के रूप में दिया था।

52. 1996 में रिपोर्ट किए गए कांची कोमुरम्मा बनाम आंध्र प्रदेश राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि मृत्यु पूर्व बयान एक न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा दर्ज किया गया है, अपने आप में मृत्यु पूर्व बयान की सत्यता का प्रमाण नहीं है, जिसे स्वीकार्यता अर्जित करने के लिए अभी भी अदालत की जांच की परीक्षा से गुजरना है। मृत्यु पूर्व बयान दर्ज करने का अनुरोध किए जाने पर मजिस्ट्रेट द्वारा कुछ सुरक्षा उपायों का पालन किया जाना चाहिए। मरने से पहले बयान दर्ज करने से पहले मजिस्ट्रेट को खुद को संतुष्ट करना चाहिए कि मृतका बयान देने के लिए उचित मानसिक स्थिति में है। मृत्यु पूर्व बयान दर्ज करने से पहले उसे उस संतुष्टि को रिकॉर्ड करना होगा। उसे बयान देने के लिए रोगी की फिटनेस के बारे में डॉक्टर की राय भी प्राप्त करनी चाहिए, यदि कोई उपलब्ध है, और अभियोजन पक्ष को यह साबित करना होगा कि मुकदमे में राय कानून के अनुसार है । (पैरा 11)

53. पूरन चंद बनाम हरियाणा राज्य (2010) 6 एस. सी. सी 566 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अदालतों को सलाह दी कि वे मृत्यु पूर्व बयान के अस्तित्व में आने पर सभी उपस्थित परिस्थितियों के लिए जीवित रहें और इसे दोषसिद्धि का आधार बनाएं। संबंधित टिप्पणियां नीचे दिए गए निर्णय के पैराग्राफ 15 में निहित हैं: -

"15. निचली अदालत को मृत्यु पूर्व बयान से निपटते समय बेहद सावधान रहना होगा क्योंकि इसका निर्माता जिरह के लिए उपलब्ध नहीं हैं जो आरोपी व्यक्ति के लिए एक बड़ी कठिनाई पैदा करता है। मृत्यु पूर्व बयान पर भरोसा करने का एक यांत्रिक दृष्टिकोण सिर्फ इसलिए कि यह वहां है, बेहद खतरनाक है। अदालत को मृत्यु पूर्व बयान की बारीकी से जांच करनी होगी ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या मृत्यु पूर्व दिया गया बयान स्वैच्छिक, सच्चा है, सचेत अवस्था में किया गया है और मौजूद रिश्तेदारों या जांच एजेंसी से प्रभावित बिना है, जो जांच की सफलता में रुचि रखते हैं या जो मृत्यु पूर्व बयान दर्ज करते समय लापरवाही बरत सकते हैं। हुए

54. निस्संदेह, मृत्यु पूर्व दिया गया बयान साक्ष्य का एक मूल्यवान टुकड़ा होता है, लेकिन इसे साक्ष्य का एक और टुकड़ा माना जाना

अनुवादित

चाहिए और इसे आस-पास की परिस्थितियों के आलोक में और तौलने वाले साक्ष्य को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों के संदर्भ में आंका जाना चाहिए और यदि यह पूरी तरह से भरोसेमंद या सच्चा नहीं पाया जाता है, तो इसे पुष्टि के बिना दोषसिद्धि का एकमात्र आधार नहीं बनाया जाना चाहिए।

55. यद्यपि, अ०सा०- 1 सूचनादाता / मृतका के पिता, अ०सा०-2, मृतका के भाई और अ०सा०- 3, मृतका की मां को शत्रुतापूर्ण घोषित कर दिया गया। मरने से पहले दिए गए बयान की सत्यता का परीक्षण करने के लिए मृतका की मां अ०सा०-3 की गवाही पर विचार किया जा सकता था। अ०सा०-3 ने अपने बयान में कहा था कि जब अ०सा०-3 मेडिकल कॉलेज पहुंचा, तो उसकी बेटी (मृतका) बेहोश थी और अ०सा० - 3 उसकी बेटी के साथ रहा, उस अवधि के दौरान मृतका बेहोश थी और जीवित रही । मृतका की मां अ०सा० - 3 और पोस्टमार्टम करने वाले डॉ. संत लाल कनौजिया के अ०सा०-16 के साक्ष्य पर विचार करते हुए, जिन्होंने पोस्टमार्टम किया था और कहा था कि मृतका 100% जल गया था, इस तथ्य पर संदेह पैदा करता है कि क्या मृतका मृत्यु पूर्व बयान दर्ज करने के लिए शारीरिक और मानसिक स्थिति में था, जैसा कि अभियोजन पक्ष ने आरोप लगाया है।

56. यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि शत्रुतापूर्ण गवाहों की गवाही के मूल्य के संबंध में कानून सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों की एक श्रेणी द्वारा तय किया गया है। उनकी गवाही का उपयोग अभियोजन पक्ष या बचाव पक्ष द्वारा किया जा सकता है और अदालत उनकी गवाही को स्वीकार कर सकती है यदि वह इसे सच मानती है।

57. रमेश हरिजन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2012) 5 एस. सी. सी 777 के मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने कहा: -

24. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम रमेश प्रसाद मिश्रा और अन्य (1996) 10 एस. सी. सी 360 मामले में, इस न्यायालय ने कहा कि अभियोजन पक्ष या अभियुक्त के पक्ष में बोले जाने पर एक शत्रुतापूर्ण गवाह के साक्ष्य को पूरी तरह से खारिज नहीं किया जाएगा, लेकिन उसे बारीकी से जांच के अधीन करने की आवश्यकता है और साक्ष्य के उस हिस्से पर भरोसा किया जा सकता है जो अभियोजन या बचाव पक्ष के मामले के अनुरूप है। बालू सोनबा शिंदे बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2002) 7 एस. सी. सी 543, राधा मोहन सिंह @ लाल साहेब और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, ए.आई.आर 2006 एस.सी 951; सर्वेश नारायण शुक्ला बनाम दरोगा सिंह और अन्य, ए.आई.आर 2008 एस.सी 320; और सुब्बू सिंह बनाम राज्य (2009) 6 एस. सी. सी 462 में इस न्यायालय द्वारा इसी तरह के दृष्टिकोण को दोहराया गया है,

इस प्रकार, कानून को इस आशय से संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है कि एक शत्रुतापूर्ण गवाह के साक्ष्य को पूरी तरह से खारिज नहीं किया जा सकता है, और इसके प्रासंगिक भाग जो कानून में स्वीकार्य हैं, अभियोजन पक्ष या बचाव पक्ष द्वारा उपयोग किए जा सकते हैं।

(सी. मुनियप्पन बनाम राज्य सरकार (2010) 9 एस. सी. सी 567 (एस.सी.सी पी.

अनुवादित

596, पैरा 83) और हिमांश बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) 2011 (2) एस.सी.सी 36 का मामला भी देखें)

58. यह भी उल्लेखनीय है कि अ०सा०- 15 और अ०सा०-17 के साक्ष्य के अनुसार, मृत्यु पूर्व बयान 12.6.2014 को सुबह लगभग 10:20 बजे दर्ज किया गया था। इस बात का कोई सबूत नहीं है कि इसे विवेचनाधिकारी को कब सौंपा गया था। यह घटना कथित रूप से दिनांक 12.06.2014 को सुबह लगभग 6:00-6:30 बजे हुई थी। मृत्यु पूर्व बयान लगभग 10:20 बजे दर्ज किया गया था और मृतका को 12.6.2014 को लगभग 8:00 बजे - 8:30 बजे चोटें आईं। प्रथम सूचना रिपोर्ट, जो मृतका अ०सा०-1 के पिता द्वारा 14.6.2014 को दोपहर लगभग 1:30 बजे की गई लिखित शिकायत पर दर्ज की गई थी। प्रथम सूचना रिपोर्ट में, मृतका के मृत्यु पूर्व बयान का कोई उल्लेख नहीं था, हालांकि इसे प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने से दो दिन पहले दर्ज किया गया था। अभियोजन पक्ष द्वारा विवेचनाधिकारी से पूछताछ नहीं की गई थी, जो इस तथ्य को प्रस्तुत कर सकता था कि कथित मृत्यु पूर्व बयान पुलिस को कब डॉक्टर द्वारा या मृत्यु पूर्व बयान दर्ज करने वाले व्यक्ति द्वारा सौंपा गया था। यहां तक कि चार्जशीट में भी अ०सा०-17 को अभियोजन पक्ष द्वारा गवाह के रूप में नामित नहीं किया गया था। उपरोक्त तथ्य इस बात पर संदेह पैदा करते हैं कि क्या मृत्यु पूर्व बयान को उस समय दर्ज किया गया था जैसा कि अभियोजन पक्ष द्वारा आरोप लगाया गया था, जब इसे दर्ज किया गया था।

59. इसके अलावा, रोगी की स्वाभाविक प्रवृत्ति तुरंत अपने निकटतम उपलब्ध संबंध को बताने के लिए होगी, और उसकी अपनी मां की तुलना में उसके करीब कोई नहीं हो सकता है, कि उसे जलने की चोटें कैसे मिलीं और इसके लिए कौन जिम्मेदार था। अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार, मृत्यु पूर्व बयान 12.6.2014 को सुबह 10:20 बजे दर्ज किया गया था और मृतका रात 8-8:30 बजे तक जीवित रही, लेकिन इस बात का कोई सबूत नहीं है कि इस अवधि के दौरान, मृतका ने घटना के बारे में अपने निकट संबंधियों को सूचित किया जो मेडिकल कॉलेज में मृतका के साथ मौजूद थे। प्राथमिकी में मृत्यु पूर्व बयान का उल्लेख न होना ही मृत्यु पूर्व बयान की रिकॉर्डिंग के बारे में संदेह पैदा करता है, खासकर जब मृतका ने किसी अन्य निकट संबंधी को सूचित नहीं किया था कि उसे जलने की चोटें कैसे आईं।

60. अपीलकर्ता ने धारा 313 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में एस नंबर-7 के अपने जवाब में कहा है कि मृतका बच्चे के लिए दूध गर्म कर रही थी और गलती से उसके कपड़ों में आग लग गई और वह जल गई। इलाज के दौरान उसकी मौत हो गई। घटना के समय मैं कमला मैरिज हॉल में था और मैं निर्दोष हूं। प्रश्न संख्या - 7 का उत्तर निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:-

प्रश्न संख्या-7: क्या आपको और कुछ कहना है?

उत्तर: मृतका पूजा अपनी बच्ची के लिए दूध गर्म कर रही थी ! दुर्घटनावश उसके कपड़ों में आग लग गई जिससे वह जल गई और दौरान

अनुवादित

इलाज उसकी मृत्यु हो गई! घटना के समय मैं कमला मैरिज हाउस में था! मैं निर्दोष हूं।

61. प्रश्न संख्या 7 का उत्तर स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि अपीलकर्ता अपनी बेगुनाही का एक स्पष्ट और प्रशंसनीय स्पष्टीकरण के साथ आया है। अपीलकर्ता द्वारा दिए गए इस विशिष्ट स्पष्टीकरण को तथ्य के सभी गवाहों के बयान से समर्थन मिलता है। अपीलकर्ता को दोषी ठहराते हुए विचारण न्यायालय धारा 313 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में अपीलकर्ता द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण पर ध्यान देने में पूरी तरह से विफल रहा, जो वर्तमान मामले के तथ्यों में संभावित था।

62. रीना हजारिका बनाम असम राज्य के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने ए.आई.आर 2018 एस. सी 5361 में रिपोर्ट किए गए फैसले के पैरा-16 में निम्नानुसार टिप्पणी की:

16. धारा 313 द०प्र०स० को केवल ऑडी अल्टरनेटम पार्टम के एक हिस्से के रूप में नहीं देखा जा सकता है। यह एक अभियुक्त को अपनी बेगुनाही साबित करने का एक मूल्यवान अधिकार प्रदान करता है और इसे संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत निष्पक्ष सुनवाई के संवैधानिक अधिकार के रूप में एक वैधानिक अधिकार से परे माना जा सकता है, भले ही इसे धारा 313 (2) के तहत शपथ पर न होने के कारण ठोस सबूत का एक टुकड़ा न माना जाए। द०प्र०स० इस अधिकार के महत्व पर इस न्यायालय द्वारा बार-बार विचार किया गया है, लेकिन इसे अभी तक व्यवहार में लागू किया जाना बाकी है जैसा कि हम वर्तमान में चर्चा में देखेंगे। यदि अभियोजन पक्ष के साक्ष्य बंद होने के बाद अभियुक्त बचाव करता है, तो धारा 313 द०प्र०स० (1) (बी) के तहत अदालत धारा 313 द०प्र०स० (4) के तहत उस पर विचार करने के लिए बाध्य है। 'हो सकता है' शब्द के उपयोग से अदालत को इस तरह के बचाव पर विचार करने या न करने की विवेकाधीन शक्ति प्रदान करने के लिए नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि यह न्याय तक पहुंच के लिए अभियुक्त का एक मूल्यवान अधिकार है, और इससे होने वाले पूर्वाग्रह की संभावना है। बचाव स्वीकार्य है या नहीं और यह उपलब्ध सबूतों के साथ संगत है या असंगत है, यह पूरी तरह से अलग मामला है। यदि किसी मामले के दिए गए तथ्यों में धारा 313 द०प्र०स० के तहत किए गए बचाव पर कोई विचार नहीं किया गया है, तो दोषसिद्धि अच्छी तरह से दूषित हो सकती है। हमारे विचार से, न्याय प्रदान करने में अदालत का एक गंभीर कर्तव्य है कि वह धारा 313 द०प्र०स० के तहत आरोपी के बचाव पर पर्याप्त रूप से विचार करे और लिखित में निर्दिष्ट कारणों के लिए इसे स्वीकार या अस्वीकार करे।

63. वर्तमान मामले में, जैसा कि अपीलकर्ता एक विशिष्ट और प्रशंसनीय बचाव के साथ आया है, लेकिन विचारण न्यायालय ने इस पर विचार नहीं किया और विचार किए बिना अपीलकर्ता को दोषी ठहराया। हमारी राय में, इसलिए, इस दृष्टिकोण से भी अपीलकर्ता की दोषसिद्धि अस्थिर है।

64. अंत में, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया था कि धारा 313 द०प्र०स० के तहत अपना बयान दर्ज करते

अनुवादित

समय अपीलकर्ता से मृत्यु पूर्व बयान के संबंध में कोई सवाल नहीं किया गया था, और इसलिए, उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता है और इसे सबूत से बाहर रखा जाना चाहिए।

65. अपनी दलील के समर्थन में, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने शरद बिरधीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का हवाला दिया, जिसकी रिपोर्ट ए.आई.आर 1984 एस. सी 1622 में की गई थी और तर्क दिया गया था कि यदि द०प्र०स०, 1973 की धारा 313 के तहत आरोपी के बयान को परिस्थितियों में नहीं रखा जाता है, तो उन्हें पूरी तरह से विचार से बाहर रखा जाना चाहिए क्योंकि आरोपी के पास उन्हें समझाने का कोई मौका नहीं था। शरद बिरधीचंद सारदा (सुप्रा) मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने निर्णय के पैरा संख्या 142 और 144 में निम्नानुसार व्यवस्था दी है:-

"उपरोक्त टिप्पणियों के अलावा, ऊपर उल्लिखित कुछ परिस्थितियों में एक महत्वपूर्ण दोष है, जिन पर उच्च न्यायालय द्वारा भरोसा किया गया है, अर्थात्, परिस्थितियां संख्या 4,5,6,8,9,11,12,13, 16, और 171 चूंकि इन परिस्थितियों को आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के तहत अपीलकर्ता के बयान में नहीं रखा गया था, इसलिए उन्हें पूरी तरह से विचार से बाहर रखा जाना चाहिए क्योंकि अपीलकर्ता के पास उन्हें समझाने का कोई मौका नहीं था। यह बात इस न्यायालय द्वारा 1953 से लगातार कही जा रही है, जहां फतेह सिंह भगत सिंह बनाम भगत सिंह के मामले में यह मामला था। मध्य प्रदेश राज्य (1) इस न्यायालय ने माना कि किसी भी परिस्थिति जिसके संबंध में किसी अभियुक्त से आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 342 के तहत पूछताछ नहीं की गई थी, इस फैसले के बाद से उसके खिलाफ इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है। इस न्यायालय के प्राधिकारियों का एक वर्ग समान रूप से यह मानता है कि जब तक किसी अभियुक्त के विरुद्ध उपस्थित होने वाली परिस्थिति को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 342 या धारा 313 के अंतर्गत उसके समक्ष प्रस्तुत नहीं किया जाता है, तब तक उसके विरुद्ध उसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। शामू बालू चौगुले बनाम महाराष्ट्र राज्य (2) इस न्यायालय ने इस प्रकार कहा:

"तथ्य यह है कि अपीलकर्ता को आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 342 के तहत पेश नहीं किया गया था, उसके खिलाफ इस्तेमाल नहीं किया जा सकता था।

144. हमारे लिए इस मुद्दे पर प्राधिकारियों की संख्या बढ़ाना आवश्यक नहीं है क्योंकि यह प्रश्न अब इस न्यायालय के कई निर्णयों से समाप्त हो गया है। मामले के इस दृष्टिकोण में, आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के तहत अपीलकर्ता को अपनी परीक्षा में जिन परिस्थितियों को नहीं रखा गया था, उन्हें पूरी तरह से विचार से बाहर रखा जाना चाहिए।

66. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने सुजीत बिस्वास बनाम असम राज्य के फैसले का भी उल्लेख किया, जिसे (2013) 12 एस. सी. सी 406 में इस प्रस्ताव के लिए रिपोर्ट

अनुवादित

किया गया था कि धारा 313 द०प्र०स०, 1973 के तहत आरोपी व्यक्तियों की जांच करने का मुख्य उद्देश्य प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की आवश्यकता को पूरा करना है। इस प्रकार, अभियुक्त को उसके खिलाफ सामने आई आपत्तिजनक सामग्री को समझाने का अवसर दिया जाना चाहिए और जिन परिस्थितियों में धारा 313 द०प्र०स०, 1973 के तहत आरोपी को उसकी परीक्षा में नहीं रखा गया है, उसका उपयोग उसके खिलाफ नहीं किया जा सकता है और उसे विचार से बाहर रखा जाना चाहिए।

67. धारा 313 द०प्र०स०, 1973 को 2009 के अधिनियम संख्या 5 द्वारा संशोधित किया गया है, धारा 22 (31.12.2009 से) निम्नानुसार उद्धृत की गई है: -

313. अभियुक्त से पूछताछ करने की शक्ति- (1) प्रत्येक जांच या विचारण में, अभियुक्त को उसके विरुद्ध साक्ष्य में दिखाई देने वाली किसी भी परिस्थिति को स्पष्ट करने में व्यक्तिगत रूप से सक्षम बनाने के उद्देश्य से, न्यायालय-

(ए) किसी भी स्तर पर, अभियुक्त को पूर्व चेतावनी दिए बिना, उससे ऐसे प्रश्न पूछ सकता है जो न्यायालय आवश्यक समझता है;

(ख) अभियोजन पक्ष के गवाहों से पूछताछ किए जाने के बाद और उसके बचाव के लिए बुलाए जाने से पहले, उससे सामान्यतः उस मामले पर प्रश्न करेगा: बशर्ते कि सम्मन-मामले में, जहां न्यायालय ने अभियुक्त की व्यक्तिगत उपस्थिति को समाप्त कर दिया है, वह खंड के तहत उसकी जांच को भी समाप्त कर सकता है।

(ख) (2) उपधारा (1) के अधीन अभियुक्त की जांच करते समय उसे कोई शपथ नहीं दिलाई जाएगी।

(3) अभियुक्त ऐसे प्रश्नों का उत्तर देने से इनकार करके, या उन्हें झूठे उत्तर देकर स्वयं को दण्ड के लिए उत्तरदायी नहीं बनाएगा।

(4) अभियुक्त द्वारा दिए गए उत्तरों को ऐसी पूछताछ या परीक्षण में ध्यान में रखा जा सकता है, और किसी अन्य अपराध की किसी अन्य जांच या परीक्षण में उसके पक्ष या विपक्ष में साक्ष्य के रूप में रखा जा सकता है, जो ऐसे उत्तरों से पता चलता है कि उसने किया है।

(5) न्यायालय संबंधित प्रश्नों को तैयार करने में अभियोजक और बचाव पक्ष के अधिवक्ता की मदद ले सकता है जो अभियुक्त से पूछे जाने हैं और न्यायालय इस धारा के पर्याप्त अनुपालन के रूप में अभियुक्त द्वारा लिखित बयान दाखिल करने की अनुमति दे सकता है।

68. पुरानी संहिता में उक्त प्रावधान का अग्रदूत उसमें धारा 342 थी। यह इस प्रकार कहा गया था:

342. (1) अभियुक्त को उसके विरुद्ध साक्ष्य में प्रकट होने वाली किसी भी परिस्थिति को स्पष्ट करने में सक्षम बनाने के उद्देश्य से, न्यायालय किसी भी जांच या विचारण के किसी भी चरण में, अभियुक्त को पूर्व चेतावनी दिए बिना, उससे ऐसे प्रश्न पूछ सकता है जो न्यायालय आवश्यक समझता है, और पूर्वोक्त उद्देश्य के लिए, अभियोजन पक्ष के गवाहों से

अनुवादित

पूछताछ किए जाने के बाद और उसके बचाव के लिए बुलाए जाने से पहले उससे आम तौर पर मामले पर पूछताछ करेगा।

(2) अभियुक्त ऐसे प्रश्नों का उत्तर देने से इनकार करके, या उन्हें झूठे उत्तर देकर स्वयं को दण्ड के लिए उत्तरदायी नहीं बनाएगा; लेकिन अदालत और जूरी (यदि कोई हो) इस तरह के इनकार या जवाब से ऐसा निष्कर्ष निकाल सकते हैं जैसा कि वह उचित सोचता है।

(3) अभियुक्त द्वारा दिए गए उत्तरों को ऐसी पूछताछ या परीक्षण में ध्यान में रखा जा सकता है, और किसी अन्य अपराध की किसी अन्य जांच या परीक्षण में उसके पक्ष या विपक्ष में साक्ष्य के रूप में रखा जा सकता है, जो ऐसे उत्तरों से पता चलता है कि उसने किया है।

(4) उपधारा (1) के तहत जांच किए जाने पर अभियुक्त को कोई शपथ नहीं दिलाई जाएगी।

69. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उल्लिखित निर्णयों के मद्देनजर, उपरोक्त में, अभियुक्त सामग्री अभियुक्त को दी जानी है ताकि अभियुक्त को अपना बचाव करने का उचित मौका मिल सके। यह ऑडी अल्टरनेटम पार्टम के सिद्धांतों की मान्यता में है। माननीय उच्चतम न्यायालय ने असरफ अली बनाम असम राज्य मामले (2008) 16 एस. सी. सी 328 में सूचित निर्णय के पैराग्राफ 21 और 22 में निम्नलिखित टिप्पणियां की हैं जिन्हें निम्नानुसार उद्धृत किया गया है -

"21. संहिता की धारा 313 अदालत पर एक कर्तव्य डालती है कि वह अभियुक्त से पूछताछ या परीक्षण के प्रश्न पूछे ताकि वह अपने खिलाफ साक्ष्य में दिखाई देने वाली किसी भी परिस्थिति को स्पष्ट करने में सक्षम हो सके। यदि यह दिखाया जाता है कि आरोपी पूर्वाग्रह से ग्रस्त था, यह आवश्यक है कि अभियुक्त के खिलाफ साक्ष्य में दिखाई देने वाली प्रत्येक भौतिक परिस्थिति को, विशेष रूप से स्पष्ट रूप से और अलग-अलग उसके सामने रखा जाना आवश्यक है और ऐसा करने में विफलता एक गंभीर अनियमितता के समान है।

22. संहिता की धारा 313 का उद्देश्य न्यायालय और अभियुक्त के बीच सीधा संवाद स्थापित करना है। यदि साक्ष्य में एक बिंदु अभियुक्त के खिलाफ महत्वपूर्ण है, और दोषसिद्धि उस पर आधारित होने का इरादा है, तो यह सही और उचित है कि आरोपी से मामले के बारे में पूछताछ की जानी चाहिए और इसे समझाने का अवसर दिया जाना चाहिए। जहां विचारण न्यायालय द्वारा अभियोजन पक्ष के साक्ष्य में एक अभियोग सामग्री पर कोई विशिष्ट प्रश्न नहीं रखा गया है, यह मुकदमे को खराब करेगा। बेशक, ये सभी राइडर के अधीन हैं कि क्या उन्होंने न्याय की हानि की है। इस न्यायालय ने एस हरनाम सिंह बनाम राज्य (ए.आई. आर 1976 सुप्रीम कोर्ट 2140), आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 342 (संहिता की धारा 313 के अनुरूप) मामले से निपटते हुए भी इसी तरह का विचार व्यक्त किया था। विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त को इसके संबंधित पहलुओं में दोषी सामग्री का संकेत न देने से अभियोजन पक्ष के मामले की भेद्यता बढ़ जाती है। धारा 313 के तहत आरोपी का बयान दर्ज करना उद्देश्यहीन कवायद नहीं है।

अनुवादित

70. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने 2012 सी.आर.आई में रिपोर्ट किए गए अंडुगुला शंकरैया बनाम आंध्र प्रदेश राज्य के मामले में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित एक फैसले का भी उल्लेख किया। एल. जे 189 जिसमें उपर्युक्त निर्णय के पैरा 25 में, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने निम्नानुसार माना है: -

"25. यहां यह उल्लेख करना उचित है कि मृत्यु पूर्व बयान के मामले में, घोषणा करने वाले से जिरह का अवसर अभियुक्त को उपलब्ध नहीं होगा। इसलिए, विचारण न्यायाधीश के लिए यह आवश्यक है कि वह अभियुक्त को सही तरीके से चुनौती वाली सामग्री दे ताकि उसे अपने मामले को समझने का अवसर मिल सके। यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि धारा 313 द०प्र०स० के तहत प्रावधान के महत्व को ध्यान में रखते हुए विधायिका ने एक नया प्रावधान शामिल करके इसमें संशोधन किया, जो निम्नानुसार है:

"313(5) अदालत संबंधित प्रश्नों को तैयार करने में अभियोजक और बचाव पक्ष के अधिवक्ता की मदद ले सकती है जो आरोपी से पूछे जाने हैं और अदालत इस धारा के पर्याप्त अनुपालन के रूप में आरोपी द्वारा लिखित बयान की अनुमति दे सकती है। उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, हमारा विचार है कि केवल मृत्यु पूर्व बयान के आधार पर अभियुक्त को दोषी ठहराना असुरक्षित है। इसलिए इसे रद्द किया जाना चाहिए ।

71. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने धारा 313 द०प्र०स०, 1973 के तहत अपीलकर्ता के बयान का भी उल्लेख किया। अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय क्रमांक- 7, गोरखपुर ने अभियोजन पक्ष के साक्ष्यों के आधार पर धारा 313 द०प्र०स० के तहत अभियुक्तों से पूछताछ के दौरान निम्नलिखित प्रश्न पूछे: -

प्रश्न संख्या 1- अभियोजन साक्ष्य में आया है कि वादी मुकदमा सरजू चौहान की पुत्री पूजा की शादी दिनांक 26.60.2012 को रामेश्वर लाल चौहान से हिंदू रीति रिवाज के साथ हुई थी! कुछ दिन बाद से ही 50000/- नगद एवं सोने की अंगूठी की मांग करते हुए उसे प्रताड़ित करने लगे और दिनांक 12.06.14 को समय करीब 6.00 से 6.30 बजे के मध्य पूजा के ऊपर मिट्टी का तेल छिड़क कर जला दिए जिससे उसकी मृत्यु दवा इलाज के दौरान इस दिन हो गई इस संबंध में आपको क्या कहना है?

उत्तर: गलत है।

प्रश्न संख्या 2- अभियोजन साक्ष्य में आया है कि उक्त घटना के संबंध में प्रथम सूचना रिपोर्ट पंजीकृत किया गया जिसके आधार पर चिक प्राथमिकी की तैयार किया गया जिसका इंद्राज जीडी में किया गया! विवेचना विवेचन को सौंप गई जिनके द्वारा घटनास्थल का निरीक्षण किया गया। नक्शा नजरी बनाया गया; गवाहन के बयान लिए गए; विवेचना पूर्ण होने पर आरोप पत्र न्यायालय में प्रेषित किया गया इस संबंध में आपको क्या कहना है

उत्तर: झूठी रिपोर्ट लिखी गई, गलत आरोप पत्र प्रेषित किया गया!

अनुवादित

प्रश्न संख्या 3 - अभियोजन की तरफ से आप को साबित करने के लिए अभियोजन साक्षी संख्या - 1 सरजू चौहान अ०सा०-2 सुधीर चौहान अन्सा० - 3 पुष्पा देवी अ०सा०-4 राजन मिश्रा अ० सा० - 5 गुड्डू चौहान अ०सा०-6 रामरती देवी अ०सा०-7 अशोक कुमार चौहान आ अ०सा०- 8 राम आशीष अ०सा०- 9 जीशान अ०सा०- 10 नौशाद अ०सा० - 11 राधे श्याम गुप्ता अ०सा०- 12 सुभाष चंद्र कसौधन अ० सा०-13 नीतीश कुमार चौहान को परीक्षित किया गया इस संबंध में आपको क्या कहना है?

उत्तर कुछ नहीं।

प्रश्न संख्या 4 - अभियोजन पक्ष की ओर से अ० सा० - 14 दयाराम सेवानिवृत्ति तहसीलदार अ०सा० - 15 राकेश राम सब रजिस्टार अ०सा०- 16 संतलाल अ०सा० - 17 डॉक्टर चंद्र देव को परीक्षित किया गया है जो आपके विरुद्ध गवाही दे रहे हैं इस संबंध में आपको क्या कहना है?

उत्तर; गलत बयान दिया है!

प्रश्न -5 आपके विरुद्ध मुकदमा क्यों चला?

उत्तर: संदेहवश

प्रश्न 6- क्या आप सफाई में साक्ष्य देना चाहेंगे?
उत्तर: जी नहीं

प्रश्न संख्या 7 - क्या आपको कुछ और कहना है ?

उत्तर - मृतिका पूजा अपनी बच्ची के लिए दूध गर्म कर रही थी दुर्घटना वश उसके कपड़ों में आग लग गई जिससे वह जल गई और दौरान इलाज उसकी मृत्यु हो गई घटना के समय में कमल मैरिज हाउस में था! मैं निर्दोष हूं!

72. इसके विपरीत, विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने नर सिंह बनाम हरियाणा राज्य के मामले में (2015) 1 एस. सी. सी 496 में रिपोर्ट किए गए सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है, जिसमें उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ 30 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार कहा है: -

"30. जब भी अपीलीय अदालत में महत्वपूर्ण साक्ष्य पर आरोपी से सवाल पूछने में चूक की दलील दी जाती है, तो अपीलीय अदालत के लिए उपलब्ध पाठ्यक्रमों को संक्षेप में निम्नानुसार प्रस्तुत किया जा सकता है: -

(i) जब भी दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 का अनुपालन न करने की याचिका उठाई जाती है, तो अभियुक्त की ओर से उपस्थित दोषी या अधिवक्ता की जांच करना और आगे की जांच करना अपीलीय न्यायालय की शक्तियों के भीतर है और मामले पर निर्णय लेने के लिए उक्त उत्तरों को ध्यान में रखा जाएगा। यदि अभियुक्त अपीलीय अदालत को ऐसी परिस्थिति का कोई उचित स्पष्टीकरण देने में असमर्थ है, तो अदालत यह मान सकती है कि अभियुक्त के पास देने के लिए कोई स्वीकार्य स्पष्टीकरण नहीं है,

(ii) मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, यदि अपीलीय न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है

अनुवादित

कि कोई पूर्वाग्रह नहीं हुआ था या न्याय की कोई हानि नहीं हुई थी, तो अपीलीय न्यायालय गुण-दोष के आधार पर मामले की सुनवाई और निर्णय करेगा।

(iii) यदि अपीलीय न्यायालय की यह राय है कि धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के उपबंधों का अनुपालन न करने से अभियुक्त के प्रति पूर्वाग्रह उत्पन्न हुआ है या होने की संभावना है, तो अपीलीय न्यायालय अभियुक्त के बयान दर्ज करने के चरण से उस बिंदु से पुन: विचारण का निर्देश दे सकता है जहां अनियमितता हुई थी, अर्थात् धारा 313 द०प्र०स० के तहत अभियुक्त से पूछताछ के चरण से और विचारण न्यायाधीश को जांच करने का निर्देश दिया जा सकता है। आरोपी नए सिरे से गवाह बनें और मामले का नए सिरे से निपटारा करें।

(iv) अपीलीय न्यायालय मामले के विचारण में पहले ही बिताए गए लंबे समय और दोषी द्वारा पहले ही बिताई गई सजा की अवधि और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के कारण मामले को पुन: विचारण के लिए विचारण के लिए विचारण न्यायालय में भेजने से मना कर सकता है, अपील पर अपने गुण-दोष के आधार पर निर्णय ले सकता है, आरोपी के प्रति पूर्वाग्रह को ध्यान में रखते हुए। "

73. विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने (1973)2 एस. सी. सी 793 में रिपोर्ट किए गए शिवाजी सहबराव बोबड़े बनाम महाराष्ट्र राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का भी उल्लेख किया, जिसमें अभियुक्त को शामिल करने में चूक पर विचार किया गया था, अभियोजन पक्ष के साक्ष्य में उसके खिलाफ दिखाई देने वाली एक महत्वपूर्ण परिस्थिति पर एक सवाल था, और यह आवश्यकता थी कि आरोपी का ध्यान हर चुनौती वाली सामग्री पर आकर्षित किया जाना चाहिए ताकि वह इसे स्पष्ट करने में सक्षम हो सके। आम तौर पर, ऐसी स्थिति में, ऐसी सामग्री जो आरोपी को नहीं दी जाती है, उससे बचना चाहिए । निस्संदेह, यह माना जाता है कि जहां दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के तहत लापरवाही बरती जाती है, वहां मामले को विचारण न्यायालय को भेजा जा सकता है, जिसमें उस चरण से पुन: प्रयास करने का निर्देश दिया जाता है, जिस पर अभियोजन बंद कर दिया गया था।"

74. विचारण न्यायालय ने हालांकि धारा 313 द०प्र०स० के तहत बयान दर्ज किया, आरोपी को उसके बयान के दौरान एक महत्वपूर्ण परिस्थिति के बारे में सवाल पूछने से रोक दिया। विचारण न्यायालय ने आरोपी को दोषी ठहराते समय मुख्य रूप से मृत्यु पूर्व लिखित बयान पर भरोसा किया। हालांकि, मृत्यु पूर्व लिखित बयान की सामग्री को आरोपी के बयान के दौरान उसके सामने नहीं रखा गया था। यह वास्तव में चिंता का विषय है कि विचारण न्यायालय ने अपने बयान में मृतका द्वारा बताई गई आपत्तिजनक सामग्री को विशेष रूप से रखते हुए सवाल तैयार नहीं किया। इस प्रकार, एक बहुत ही महत्वपूर्ण परिस्थिति खो गई थी। मृतका ने अपने बयान (मृत्यु पूर्व बयान) में कहा कि आरोपी ने उस पर मिट्टी का तेल डाला और उसे आग लगा दी। विशेष

अनुवादित

रूप से, मृत्यु पूर्व बयान के इस आपत्तिजनक हिस्से को आरोपी को उसका स्पष्टीकरण प्राप्त करने के लिए नहीं रखा गया है। हालांकि, मृत्यु पूर्व बयान प्रदर्श क- 8 को आरोपी को दोषी ठहराने के आधार के रूप में माना गया था, लेकिन धारा 313 द०प्र०स० के तहत दर्ज किए गए उसके बयान में आरोपी को यह नहीं बताया गया था। धारा 313 द०प्र०स० के तहत बयान दर्ज करना मुकदमे के दौरान एक खाली औपचारिकता नहीं है। धारा 313 द०प्र०स० आरोपी के हितों की रक्षा के लिए प्रक्रिया निर्धारित करती है। जाहिर है, इस महत्वपूर्ण बिंदु पर स्पष्टीकरण मांगने के अभाव में, आरोपी के प्रति पूर्वाग्रह पैदा होता है।

75. हम ध्यान दें कि धारा 313 द०प्र०स० के तहत बयान के महत्व को ध्यान में रखते हुए, धारा 313 में संशोधन द्वारा उप-खंड (5) जोड़ा गया है जो अदालत को आरोपी से पूछे गए प्रासंगिक प्रश्नों को तैयार करने में अभियोजन और बचाव पक्ष की मदद लेने की अनुमति देता है। इस तरह के संशोधन के कारणों में से एक यह देखना था कि अदालत को आरोपी को अपना बयान दर्ज करते समय किसी भी आपत्तिजनक परिस्थिति को रखने से नहीं चूकना चाहिए।

76. परिणाम में, केवल इस कारण से मृत्यु पूर्व लिखित बयान के आधार पर अपराध का पता लगाना अन्य कारणों के अलावा नहीं होगा जो हमने ऊपर दर्ज किए हैं। नतीजतन, हम मानते हैं कि मृत्यु पूर्व बयान भरोसेमंद और विश्वसनीय नहीं था ।

77. संक्षेप में हम मानते हैं कि, मृत्यु पूर्व बयान के बिंदु पर साक्ष्य विश्वास को प्रेरित नहीं करता है और इस पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। न्यायिक दिमाग को संतुष्ट करने के लिए कोई विश्वसनीय सबूत नहीं है कि बयान देने के समय आरोपी सचेत और मानसिक रूप से फिट था। बल्कि, मामले की उत्पत्ति यानी मृतका का बयान दर्ज करना ही संदिग्ध हो जाता है। रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री से, हम मृत्यु पूर्व बयान की स्वैच्छिक प्रकृति और मृतका के मन की फिटनेस की सत्यता के बारे में बिल्कुल संतुष्ट नहीं हैं। उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों में, हम पाते हैं और मानते हैं कि अभियोजन पक्ष लगातार, ठोस और विश्वसनीय साक्ष्य जोड़कर सभी उचित संदेह से परे अपीलकर्ता-अभियुक्त के खिलाफ लगाए गए आरोपों को साबित करने में विफल रहा। यदि मृत्यु पूर्व बयान को छोड़ दिया जाता है, तो अभियोजन पक्ष के मामले में कुछ भी नहीं बचता है, इसलिए अपीलकर्ता - अभियुक्त वैध रूप से संदेह का लाभ उठाने का हकदार है। इसलिए, अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या - 7, गोरखपुर द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और दोषसिद्धि का आदेश कानूनी स्थिति का सामना नहीं कर सका और अभियुक्त को उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों से बरी करके इसे उलटने की आवश्यकता है। नतीजतन, लगाए गए फैसले और दोषसिद्धि के आदेश को दरकिनार करके अपील की अनुमति दी जानी चाहिए। उस आदेश को ध्यान में रखते हुए :-

(i) अपील स्वीकार की जाती है।

(II) अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-7, गोरखपुर द्वारा दिनांक 30.11.2016 को

अनुवादित

पारित निर्णय और दोषसिद्धि का आदेश निरस्त और अपास्त किया जाता है।

(III) अभियुक्त-अपीलकर्ता, रामेश्वर लाल चौहान को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत दंडनीय अपराध से बरी किया जाता है।

(iv) यदि किसी अन्य अपराध में आवश्यकता न हो तो अभियुक्त को तत्काल जेल से रिहा किया जाए।

(v) जुर्माने की राशि, यदि जमा की गयी है, तो अभियुक्त को वापस कर दी जाए।

(2023) 6 ILRA 394

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 19.04.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिड़ला

माननीय न्यायमूर्ति सुरेंद्र सिंह-I

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 4675/2023

अब्दुल हई और अन्य .याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य.. .प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता: श्री मुशीर खान

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: जी.ए.

आपराधिक कानून - शस्त्र अधिनियम, 1959- धारा 37- पुलिस ने वांछित अपराधी के बारे में सूचना मिलने पर कार्यवाही की है -जहां विशेष अधिनियम के तहत किए गए किसी भी अपराध के लिए शिकायत दर्ज करने का प्रावधान है- और आईपीसी के तहत कोई भी अपराध किया गया है-पुलिस मामला दर्ज कर सकती है-जांच कर सकती है और रिपोर्ट प्रस्तुत कर सकती है-एफआईआर स्पष्ट रूप से बनाए रखने योग्य थी और इसलिए, सीआरपीसी के अनुसार पुलिस द्वारा गिरफ्तारी, तलाशी और जब्ती पर कोई रोक नहीं है-क्योंकि इसके प्रावधान शस्त्र अधिनियम के प्रावधानों के विपरीत नहीं हैं और शस्त्र अधिनियम की धारा 37 के तहत शस्त्र अधिनियम के तहत की गई गिरफ्तारी और जब्ती पर लागू किए गए हैं।

डब्ल्यू.पी. खारिज। (ई-9)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. यू.ओ.आई. बनाम अशोक कुमार शर्मा एवं अन्य, (2021) 12 एससीसी 674
2. जयंत एवं अन्य बनाम एम.पी. (2021) 2 एससीसी 670
3. सेंट (एनसीटी ऑफ दिल्ली) बनाम संजय (2014) 9 एससीसी 772
4. हरियाणा एवं अन्य बनाम भजन लाल एवं अन्य, 1992 सप. (1) एससीसी 335
5. मेसर्स नीहारिका इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य, एआईआर 2021 एससी 1918
6. अपील के लिए विशेष अनुमति (सीआरएल) संख्या 3262/2021 (लीलावती देवी @ लीलावती और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) 07.10.2021 को तय

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिड़ला और माननीय न्यायमूर्ति सुरेंद्र सिंह-I, द्वारा दिया गया)

अनुवादित

1. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता श्री मुशीर खान और राज्य की ओर से अतिरिक्त महाधिवक्ता श्री मनीष गोयल और श्री ए.के सैंड, अपर शासकीय अधिवक्ता-I को सुना।

2. बहस के दौरान अपर शासकीय अधिवक्ता-I श्री ए.के. सैंड प्रस्तुत करते हैं कि विवेचना के दौरान धारा 216 भ०द०वि० को जोड़ा गया है।

3. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि उन्हें प्रार्थना खंड में संशोधन करने की अनुमति दी जा सकती है। वह दिन के दौरान ऐसा कर सकता है।

4. यह रिट याचिका अपराध संख्या 42 वर्ष 2023 में धारा 3/4/25 शस्त्र अधिनियम, धारा 4/5 विस्फोटक पदार्थ अधिनियम 1908 और धारा 216 भ०द०वि०, थाना-सराय आकिल, जिला कौशांबी के तहत आक्षेपित प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 04.03.2023 को रद्द करने के लिए, और प्रतिवादी अधिकारियों को आक्षेपित प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसरण में याचिकाकर्ताओं को गिरफ्तार नहीं करने का निर्देश देने के लिए दायर की गई है।

5. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ताओं के खिलाफ कोई अपराध नहीं किया गया है। यहां कोई भी याचिकाकर्ता मौके पर नहीं मिला और न ही गिरफ्तार किया गया और अब्दुल कवी पहले ही सीबीआई कोर्ट के सामने आत्मसमर्पण कर चुका है। यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसार परिसर में कुछ हथियार और गोला-बारूद पाए गए थे, जिन्हें पुलिस द्वारा जब्त कर लिया गया था और प्रथम सूचना रिपोर्ट शस्त्र अधिनियम की धारा 3/4/25 और विस्फोटक पदार्थ अधिनियम 1908 की धारा 4/5 के प्रावधानों के तहत दर्ज की गई थी। यह प्रस्तुत किया गया है कि शस्त्र अधिनियम की धारा 22 के प्रावधानों का तलाशी और जब्ती के समय अनुपालन नहीं किया गया है और इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि याचिकाकर्ताओं के खिलाफ कोई अपराध बनाया गया है। तथ्यों के आधार पर यह प्रस्तुत किया गया है कि सह-अभियुक्तों में से एक 05.10.2020 की वसीयत के संबंध में मामले की योग्यता पर उनकी सेवा और अन्य तर्कों में भाग ले रहा था, जिसके द्वारा अब्दुल कवी को उसके पिता ने सभी संबंधों को तोड़ने के साथ अस्वीकार कर दिया था और वह अलग रह रहा था। बचाव में अन्य तथ्यात्मक तर्क भी दिए गए हैं। यह प्रस्तुत किया गया है कि जब्ती की प्रक्रिया को अपनाया नहीं गया है और परिसर की दीवारों को जेसीबी द्वारा क्षतिग्रस्त कर दिया गया है।

6. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि चूंकि धारा 25 शस्त्र अधिनियम के तहत प्रस्तुत मामले में अपराध दो साल के कारावास के साथ दंडनीय है, इसलिए दंड प्रक्रिया संहिता की पहली अनुसूची के भाग II के अनुसार, यह एक गैर-संज्ञेय अपराध है और इसमें केवल शिकायत दर्ज की जा सकती है और प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करना बनाए रखने योग्य नहीं है। यह भी प्रस्तुत किया गया था कि शस्त्र अधिनियम के तहत अपराधों के संबंध में केवल एक शिकायत दर्ज की जा सकती थी और इसलिए, प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज नहीं की जा सकती थी और यह बनाए रखने योग्य नहीं है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता भगोड़े नहीं हैं। वे किसी भी अपराधी को शरण नहीं दे रहे थे, इसलिए, धारा 216 भ०द०वि० के तहत अपराध

अनुवादित

नहीं बनता है। इसलिए, सबमिशन यह है कि आक्षेपित प्राथमिकी को रद्द किया जा सकता है।

7. इसके विपरीत, श्री मनीष गोयल, अतिरिक्त महाधिवक्ता श्री ए.के सैंड, अपर शासकीय अधिवक्ता-I द्वारा सहायता प्राप्त करते हुए, प्रस्तुत करते हैं कि गश्त करते समय यह सूचना पर है कि एक वांछित अपराधी अब्दुल कवि, जिसका इनाम एक लाख रुपये है, अपने गांव में छिपा हुआ है, पुलिस उसकी तलाश में उसके गांव गई थी, लेकिन चूंकि उसका घर गांव के अंदर था, अभियुक्त केस अपराध संख्या-34 वर्ष 2005 में धारा 147, 148, 149, 307, 302, 120-बी, 506 भ०द०वि० और धारा 7 क्रिमिनल लॉ अमेंडमेंट एक्ट, थाना-धूमनगंज, जिला प्रयागराज और सीबीआई आर.सी संख्या-02/एस/2016 केस संख्या-20432 वर्ष 2022 के तहत धारा 147, 148, 149, 307, 302, 120-बी भ०द०वि० और धारा 27 आर्म्स एक्ट के तहत वांछित आरोपी फरार हैं और साथ ही प्रस्तुत आरोपी फरार हैं और परिसर से अवैध हथियार और गोला-बारूद बरामद किए गए हैं। इसलिए, निवेदन यह है कि इस तलाशी और जब्ती में पुलिस अधिकारियों द्वारा उचित प्रक्रिया अपनाई गई थी और तलाशी और जब्ती में कोई अवैधता नहीं थी जो कि द०प्र०स० के प्रावधानों सपठित शस्त्र अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार की गई थी। यह आगे प्रस्तुत किया गया था कि वर्तमान प्राथमिकी शस्त्र अधिनियम की धारा 25 के तहत दंडनीय धारा 3/4 के तहत अपराधों के संबंध में है, जिसमें विस्फोटक पदार्थ अधिनियम 1908 की धारा 4/5 और धारा 216 भ०द०वि० के तहत अपराध शामिल हैं। श्री मनीष गोयल, अतिरिक्त महाधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि एक बार कुछ अपराधों के संबंध में पहली सूचना रिपोर्ट दर्ज की जा सकती है। ऐसे अन्य अपराध, जिनके संबंध में सामान्यत शिकायत विचारणीय है, को भी ऐसी प्रथम सूचना रिपोर्ट में शामिल किया जा सकता है। इसलिए, वह प्रस्तुत करता है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट को पढ़ने से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि एक संज्ञेय अपराध किया गया है और कोई हस्तक्षेप वांछित नहीं है।

8. हमने प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार किया है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

9. यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 व्यापक रूप से गिरफ्तारी, तलाशी और जब्ती के लिए शक्ति प्रदान करती है जिसमें सभी परिस्थितियों को शामिल किया जा सकता है जैसा कि कल्पना की जा सकती है, जिसमें वारंट के बिना भी ऐसा करने की शक्तियां शामिल हैं। इस संबंध में अध्याय V, VI, VII और XII मोटे तौर पर प्रासंगिक हैं। आगे बढ़ने से पहले, प्रस्तुत मामले में प्रासंगिक शस्त्र अधिनियम और द०प्र०स० के प्रावधानों पर ध्यान देना प्रासंगिक होगा।

10. शस्त्र अधिनियम की धारा 20, 22, 37 और 38 को निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:

"20. संदिग्ध परिस्थितियों में हथियार आदि ले जाने वाले व्यक्तियों की गिरफ्तारी--जहां कोई व्यक्ति किसी हथियार या गोलाबारूद को ले जाते या ले जाते हुए पाया जाता है, चाहे वह लाइसेंस द्वारा कवर किया गया हो या नहीं, ऐसी रीति से या ऐसी परिस्थितियों में जो संदेह का उचित आधार वहन करता है कि वही उसके द्वारा उनका उपयोग करने के इरादे से ले

अनुवादित

जाया जा रहा है या किया जा रहा है, या कि उसका उपयोग किसी विधिविरुद्ध प्रयोजन के लिए किया जा सकेगा, कोई मजिस्ट्रेट, कोई पुलिस अधिकारी या कोई अन्य लोक सेवक या रेलवे, वायुयान, जलयान, यान या वाहन के किसी अन्य साधन पर नियोजित या कार्यरत कोई व्यक्ति, उसे बिना वारंट के गिरफ्तार कर सकेगा और उससे ऐसे हथियार या गोलाबारूद जब्त कर सकेगा।

22. मजिस्ट्रेट द्वारा तलाशी और अभिग्रहण- (1) जब कभी किसी मजिस्ट्रेट के पास विश्वास करने का कारण हो- (क) कि अपनी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर रहने वाले किसी व्यक्ति के पास किसी विधिविरुद्ध प्रयोजन के लिए कोई शस्त्र या गोलाबारूद है, या

(ख) ऐसे व्यक्ति को लोक शांति या सुरक्षा को खतरे में डाले बिना किसी हथियार या गोलाबारूद के कब्जे में नहीं छोड़ा जा सकता है,

मजिस्ट्रेट, अपने विश्वास के कारणों को दर्ज करने के बाद, ऐसे व्यक्ति द्वारा कब्जा किए गए घर या परिसर की तलाशी ले सकता है या जिसमें मजिस्ट्रेट के पास यह विश्वास करने का कारण है कि ऐसे हथियार या गोलाबारूद हैं या पाए जाने वाले हैं और ऐसे हथियार या गोलाबारूद, यदि कोई हों, जब्त कर सकते हैं और उसे ऐसी अवधि के लिए सुरक्षित हिरासत में रख सकते हैं जो वह आवश्यक समझता है, यद्यपि वह व्यक्ति इस अधिनियम या किसी अन्य कानून के आधार पर उस समय के लिए हकदार हो सकता है जो उसके कब्जे में हो।

(2) इस धारा के अधीन प्रत्येक तलाशी केन्द्रीय सरकार द्वारा इस निमित्त विशेष रूप से सशक्त किए गए किसी अधिकारी द्वारा या उसकी उपस्थिति में या मजिस्ट्रेट की उपस्थिति में की जाएगी।

37. गिरफ्तारी और तलाशी- इस अधिनियम में अन्यथा उपबंधित के सिवाय,-

(क) इस अधिनियम के अधीन या उसके अधीन बनाए गए किन्हीं नियमों के अधीन की गई सभी गिरफ्तारियां और तलाशी, उस संहिता के अधीन की गई गिरफ्तारियों और तलाशियों से संबंधित क्रमश [दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974)] के उपबंधों के अनुसार की जाएंगी;

(ख) इस अधिनियम के अधीन गिरफ्तार किए गए किसी व्यक्ति और जब्त किए गए किसी शस्त्र या गोलाबारूद, जो मजिस्ट्रेट या पुलिस अधिकारी नहीं हैं, को निकटवर्ती थाना के भारसाधक अधिकारी को अविलम्ब सुपुर्द किया जाएगा और वह अधिकारी-

(i) या तो उस व्यक्ति को मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित होने के लिए जमानतदारों के साथ या उसके बिना बांड निष्पादित करने पर रिहा कर देगा और जब्त की गई चीजों को मजिस्ट्रेट के समक्ष उस व्यक्ति के उपस्थित होने तक उसकी अभिरक्षा में रखेगा, या

(ii) यदि वह व्यक्ति बांड निष्पादित करने में विफल रहता है और यदि आवश्यक हो, तो पर्याप्त ज़मानत प्रस्तुत करने के लिए, उस व्यक्ति और उन चीजों को मजिस्ट्रेट के समक्ष देरी के बिना पेश करता है।

38. अपराधों का संज्ञेय होना--इस अधिनियम के अधीन प्रत्येक अपराध [दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974)] के अर्थान्तर्गत संज्ञेय होगा।

11. धारा 4, 5, 41, 47, 48, 94, 97, 100, 102 और 165 द०प्र०स० नीचे उद्धृत किए गए

अनुवादित

हैं। इन प्रावधानों में वे प्रावधान भी शामिल हैं जिन पर याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने भरोसा किया है।

"4. भारतीय दंड संहिता और अन्य विधियों के अधीन अपराधों का विचारण

(1) भारतीय दंड संहिता (45 वर्ष 1860) के अधीन सभी अपराधों का अन्वेषण, विवेचना, विचारण और अन्यथा इसके पश्चात् अन्तर्विष्ट उपबंधों के अनुसार किया जाएगा।

(2) किसी अन्य विधि के अधीन सभी अपराधों का अन्वेषण, विवेचना, विचारण और अन्यथा, किन्तु ऐसे अपराधों के अन्वेषण करने, पूछताछ करने, विचारण करने या अन्यथा व्यवहार करने की रीति या स्थान को विनियमित करने वाले, तत्समय प्रवृत्त किसी अधिनियमन के अधीन रहते हुए उन्हीं उपबंधों के अनुसार किया जाएगा।

5. बचत- इस संहिता की कोई बात, इसके विपरीत किसी विशिष्ट उपबंध के अभाव में, तत्समय प्रवृत्त किसी विशेष या स्थानीय विधि को, या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा प्रदत्त किसी विशेष अधिकारिता या शक्ति को, या विहित किसी विशेष प्रविधि को, किसी विशेष रीति को प्रभावित नहीं करेगी।

41. जब पुलिस वारंट के बिना गिरफ्तार कर सकती है:

(1) कोई पुलिस अधिकारी मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना और वारंट के बिना किसी व्यक्ति को गिरफ्तार कर सकेगा-

(क) जो किसी पुलिस अधिकारी की उपस्थिति में संज्ञेय अपराध करता है;

(ख) जिसके विरुद्ध युक्तियुक्त परिवाद किया गया है या विश्वसनीय सूचना प्राप्त हुई है या युक्तियुक्त संदेह विद्यमान है कि उसने कोई संज्ञेय अपराध किया है जो कारावास से दंडनीय है जिसकी अवधि सात वर्ष से कम हो सकती है या जो जुर्माने से या उसके बिना सात वर्ष तक की हो सकती है, यदि निम्नलिखित शर्तें पूरी हो जाती हैं, अर्थात्:-

(i) पुलिस अधिकारी के पास ऐसी शिकायत, सूचना या संदेह के आधार पर विश्वास करने का कारण है कि ऐसे व्यक्ति ने उक्त अपराध किया है;

(ii) पुलिस अधिकारी का समाधान हो कि ऐसी गिरफ्तारी आवश्यक है-

(क) ऐसे व्यक्ति को और कोई अपराध करने से रोकना; नहीं तो

(ख) अपराध की समुचित विवेचना के लिए; नहीं तो

(ग) ऐसे व्यक्ति को अपराध के साक्ष्य को गायब करने या किसी भी तरीके से ऐसे साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ करने से रोकने के लिए; नहीं तो

(घ) ऐसे व्यक्ति को मामले के तथ्यों से परिचित किसी व्यक्ति को कोई प्रलोभन, धमकी या वचन देने से रोकना, जिससे वह न्यायालय या पुलिस अधिकारी को ऐसे तथ्यों को प्रकट करने से हतोत्साहित करे; नहीं तो

(ङ) जब तक ऐसे व्यक्ति को गिरफ्तार नहीं किया जाता है, न्यायालय में उसकी उपस्थिति, जब कभी अपेक्षित हो, सुनिश्चित नहीं की जा सकती,

और पुलिस अधिकारी ऐसी गिरफ्तारी करते समय, लिखित रूप में अपने कारणों को दर्ज करेगा:

[बशर्ते कि एक पुलिस अधिकारी, उन सभी मामलों में जहां इस उप-धारा के प्रावधानों के तहत किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी की

अनुवादित

आवश्यकता नहीं है, गिरफ्तारी न करने के कारणों को लिखित रूप में दर्ज करेगा।

(ख) जिसके विरुद्ध विश्वसनीय सूचना प्राप्त हुई है कि उसने कारावास से दंडनीय संज्ञेय अपराध किया है, जिसकी अवधि जुर्माने से या बिना जुर्माने के या मृत्युदंड से सात वर्ष से अधिक तक की हो सकेगी और पुलिस अधिकारी के पास उस सूचना के आधार पर यह विश्वास करने का कारण है कि ऐसे व्यक्ति ने उक्त अपराध किया है;

(ग) जिसे इस संहिता के अधीन या राज्य सरकार के आदेश से अपराधी घोषित किया गया है; नहीं तो

(घ) जिसके कब्जे में कोई ऐसी चीज पाई जाती है जिस पर चोरी की संपत्ति होने का युक्तियुक्त संदेह हो सकता है और जिस पर ऐसी चीज के संदर्भ में अपराध करने का युक्तियुक्त संदेह किया जा सकता है; नहीं तो

(ङ) जो किसी पुलिस अधिकारी को उसके कर्तव्य के निष्पादन में बाधा डालता है, या जो विधिपूर्ण अभिरक्षा से भाग गया है, या भागने का प्रयास करता है; नहीं तो

(च) जिस पर संघ के किसी सशस्त्र बल से भगोड़ा होने का युक्तियुक्त संदेह है; नहीं तो

(छ) जिसका संबंध उस व्यक्ति से है या जिसके विरुद्ध युक्तियुक्त शिकायत की गई है, या विश्वसनीय सूचना प्राप्त हुई है, या उसका भारत से बाहर किसी स्थान पर किए गए किसी कार्य में संलिप्त होने का युक्तियुक्त संदेह है, जो यदि भारत में किया जाता तो अपराध के रूप में दण्डनीय होता, और जिसके लिए वह प्रत्यर्पण से संबंधित किसी भी कानून के तहत, या अन्यथा, भारत में हिरासत में पकड़े जाने या हिरासत में रखे जाने के लिए ज़रूरी है; नहीं तो

(ज) जो, रिहा किया गया दोषसिद्ध होते हुए, धारा 356 की उपधारा (5) के अधीन बनाए गए किसी नियम का उल्लंघन करता है; नहीं तो

(i) जिसकी गिरफ्तारी के लिए किसी अन्य पुलिस अधिकारी से कोई मांग, चाहे लिखित या मौखिक, प्राप्त हुई है, परंतु मांग में गिरफ्तार किए जाने वाले व्यक्ति और वह अपराध या अन्य कारण विनिदष्ट किया गया है जिसके लिए गिरफ्तारी की जानी है और उससे ऐसा प्रतीत होता है कि उस व्यक्ति को उस अधिकारी द्वारा वारंट के बिना विधिपूर्वक गिरफ्तार किया जा सकता है जिसने मांग जारी की थी।

(2) धारा 42 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, किसी असंज्ञेय अपराध में संबंधित व्यक्ति या जिसके विरुद्ध कोई शिकायत की गई है या विश्वसनीय सूचना प्राप्त हुई है या उसके इस प्रकार संबंधित होने का युक्तियुक्त संदेह विद्यमान है, मजिस्ट्रेट के वारंट या आदेश के अधीन ही गिरफ्तार नहीं किया जाएगा।

47. गिरफ्तार किए जाने वाले व्यक्ति द्वारा दर्ज किए गए स्थान की तलाशी

(1) यदि गिरफ्तारी वारंट के अधीन कार्य करने वाला कोई व्यक्ति, या गिरफ्तार करने का प्राधिकार रखने वाले किसी पुलिस अधिकारी के पास यह विश्वास करने का कारण है कि गिरफ्तार किया जाने वाला व्यक्ति किसी स्थान में प्रवेश कर चुका है, या भीतर है, तो कोई व्यक्ति ऐसे स्थान में रह रहा है या उसका भारसाधक है, पूर्वोक्त या ऐसे पुलिस अधिकारी के रूप में कार्य करने वाले ऐसे

अनुवादित

व्यक्ति की मांग पर उसे उसमें मुक्त प्रवेश की अनुमति दें, और उसमें तलाशी के लिए सभी उचित सुविधाएं प्रदान करें।

(2) यदि उपधारा (1) के अधीन ऐसे स्थान में प्रवेश अभिप्राप्त नहीं किया जा सकता है, तो किसी भी दशा में किसी वारंट के अधीन कार्य करने वाले व्यक्ति के लिए और किसी ऐसे मामले में, जिसमें कोई वारंट जारी हो सकता है, किन्तु गिरफ्तार किए जाने वाले व्यक्ति को समर्थ किए बिना अभिप्राप्त नहीं किया जा सकेगा, किसी पुलिस अधिकारी के लिए ऐसे स्थान में प्रवेश करने और उसकी तलाशी लेने के लिए, विधिपूर्ण होगा और ऐसे स्थान में प्रवेश करने के लिए, किसी भी घर या स्थान के किसी बाहरी या आंतरिक दरवाजे या खिड़की को तोड़ने के लिए, चाहे वह गिरफ्तार किए जाने वाले व्यक्ति का हो या किसी अन्य व्यक्ति का, यदि उसके अधिकार और उद्देश्य की अधिसूचना के बाद, और विधिवत प्रवेश की मांग के बाद, वह अन्यथा प्रवेश प्राप्त नहीं कर सकता है:

बशर्ते कि, यदि ऐसा कोई स्थान एक महिला के वास्तविक अधिभोग में एक अपार्टमेंट है (गिरफ्तार किया जाने वाला व्यक्ति नहीं है), जो प्रथा के अनुसार, सार्वजनिक रूप से प्रकट नहीं होता है, तो ऐसा व्यक्ति या पुलिस अधिकारी, ऐसे अपार्टमेंट में प्रवेश करने से पहले, ऐसी महिला को नोटिस देगा कि वह निकलने के लिए स्वतंत्र है और उसे निकलने के लिए हर उचित सुविधा प्रदान करेगा और फिर अपार्टमेंट को तोड़ सकता है और उसमें प्रवेश कर सकता है।

(3) कोई पुलिस अधिकारी या गिरफ्तारी करने के लिए प्राधिकृत अन्य व्यक्ति स्वयं को या किसी अन्य व्यक्ति को, जो गिरफ्तारी करने के प्रयोजन से विधिपूर्वक प्रवेश कर रहा है, मुक्त कराने के लिए किसी घर या स्थान के किसी बाहरी या भीतरी दरवाजे या खिड़की को तोड़ सकेगा।

48. अपराधियों का अन्य क्षेत्राधिकारों में पीछा करना- कोई पुलिस अधिकारी, बिना वारंट के किसी ऐसे व्यक्ति को, जिसे गिरफ्तार करने के लिए वह प्राधिकृत है, गिरफ्तार करने के प्रयोजन के लिए, ऐसे व्यक्ति का भारत में किसी स्थान पर पीछा कर सकेगा।

94. - चोरी की संपत्ति, जाली दस्तावेज आदि रखने के लिए संदिग्ध स्थान की तलाशी - (1) यदि कोई जिलाधिकारी, उप-विभागीय मजिस्ट्रेट या प्रथम श्रेणी का मजिस्ट्रेट, सूचना पर और ऐसी जांच के पश्चात्, जो वह आवश्यक समझे, यह विश्वास करने का कारण है कि किसी स्थान का उपयोग चोरी की संपत्ति के जमा या बिक्री के लिए, या जमा के लिए किया जाता है, किसी आपत्तिजनक वस्तु का, जिस पर यह धारा लागू होती है, या ऐसी कोई आपत्तिजनक वस्तु किसी स्थान पर निक्षेपित की जाती है, वह वारंट द्वारा कांस्टेबल के पद से ऊपर के किसी पुलिस अधिकारी को प्राधिकृत कर सकेगा-

(ए) ऐसी सहायता के साथ, जो अपेक्षित हो, ऐसे स्थान में प्रवेश करने के लिए,

(ख) वारंट में विनिदष्ट रीति से उसकी तलाशी लेना,

(ग) किसी ऐसी संपत्ति या वस्तु पर कब्जा करना, जिस पर उसे चोरी की संपत्ति या

अनुवादित

आपत्तिजनक सामग्री होने का युक्तियुक्त संदेह है, जिस पर यह धारा लागू होती है,

(घ) ऐसी संपत्ति या वस्तु को मजिस्ट्रेट के समक्ष संप्रेषित करना या अपराधी को मजिस्ट्रेट के समक्ष ले जाए जाने तक मौके पर उसकी रक्षा करना या अन्यथा उसे किसी स्थान पर सुरक्षित रूप से व्ययन करना,

(ङ) ऐसे स्थान पर पाए गए प्रत्येक व्यक्ति को, जो ऐसी किसी संपत्ति या वस्तु के निक्षेप, विक्रय या उत्पादन में गुप्त प्रतीत होता है, अभिरक्षा में ले जाना और उसके समक्ष यह संदेह करने का युक्तियुक्त कारण होना प्रतीत होता है कि वह चुराई हुई संपत्ति है या, यथास्थिति, आपत्तिजनक लेख जिस पर यह धारा लागू होती है।

(2) आपत्तिजनक लेख जिन पर यह धारा लागू होती है, वे हैं-

(क) नकली सिक्का;

(बी) धातु टोकन अधिनियम, 1889 (1 वर्ष 1889) के उल्लंघन में किए गए, या सीमा शुल्क अधिनियम, 1962 (52 वर्ष 1962) की धारा 11 के तहत लागू किसी भी अधिसूचना के उल्लंघन में भारत में लाए गए धातु के टुकड़े;

(ग) जाली करेंसी नोट; नकली टिकट;

(घ) जाली दस्तावेज; .

(ई) झूठी मुहरें;

(च) भारतीय दंड संहिता (45 वर्ष 1860) की धारा 292 में निर्दिष्ट अश्लील वस्तुएं;

(छ) खंड (क) से (च) में उल्लिखित किसी भी वस्तु के उत्पादन के लिए उपयोग किए जाने वाले उपकरण या सामग्री।

97. गलत तरीके से कैद किए गए व्यक्तियों की खोज- यदि किसी जिला मजिस्ट्रेट, उप-विभागीय मजिस्ट्रेट या प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट के पास यह विश्वास करने का कारण है कि कोई व्यक्ति ऐसी परिस्थितियों में कैद है कि कारावास अपराध के बराबर है, तो वह एक तलाशी वारंट जारी कर सकता है, और वह व्यक्ति जिसे ऐसा वारंट निर्देशित किया जाता है, इस प्रकार सीमित व्यक्ति की खोज कर सकता है; और इस तरह की खोज उसके अनुसार की जाएगी, और व्यक्ति, यदि पाया जाता है, तो तुरंत एक मजिस्ट्रेट के समक्ष ले जाया जाएगा, जो ऐसा आदेश देगा जैसा कि मामले की परिस्थितियों में उचित लगता है।

100. तलाशी की अनुमति देने के लिए बंद जगह के प्रभारी व्यक्ति--(1) जब कभी इस अध्याय के तहत खोज या निरीक्षण के लिए उत्तरदायी कोई स्थान बंद कर दिया जाता है, तो ऐसे स्थान में रहने वाला या प्रभारी होने वाला कोई भी व्यक्ति, वारंट निष्पादित करने वाले अधिकारी या अन्य व्यक्ति की मांग पर, और वारंट के उत्पादन पर, उसे मुक्त प्रवेश की अनुमति देगा और उसमें तलाशने के लिए सभी उचित सुविधाएं प्रदान करेंगे।

(2) यदि ऐसे स्थान में प्रवेश इस प्रकार प्राप्त नहीं किया जा सकता है, तो वारंट निष्पादित करने वाला अधिकारी या अन्य व्यक्ति धारा 47 की उपधारा (2) द्वारा प्रदान की गई रीति से कार्यवाही कर सकेगा।

(3) जहाँ ऐसे स्थान में या उसके आस-पास के किसी व्यक्ति पर अपने व्यक्ति के बारे में ऐसी कोई वस्तु छुपाने का युक्तियुक्त संदेह है जिसके लिए तलाशी ली जानी चाहिए, वहाँ ऐसे व्यक्ति की तलाशी ली जा सकेगी और यदि

अनुवादित

वह व्यक्ति स्त्री है तो वह तलाशी किसी अन्य स्त्री द्वारा शालीनता का कड़ाई से ध्यान रखते हुए की जाएगी।

(4) इस अध्याय के अधीन खोज करने से पहले, अधिकारी या अन्य व्यक्ति जो खोज करने वाला स्थान स्थित है या किसी अन्य स्थान के दो या अधिक स्वतंत्र और सम्मानित निवासियों को बुलाएगा, यदि उक्त इलाके का ऐसा कोई निवासी उपलब्ध नहीं है या खोज का गवाह बनने का इच्छुक नहीं है, खोज में भाग लेने और गवाह करने के लिए और उन्हें या उनमें से किसी को ऐसा करने के लिए लिखित रूप में आदेश जारी कर सकते हैं।

(5) तलाशी उनकी उपस्थिति में की जाएगी, और ऐसी तलाशी के दौरान जब्त की गई सभी चीजों की एक सूची और उन स्थानों की जहां वे क्रमशः पाए जाते हैं, ऐसे अधिकारी या अन्य व्यक्ति द्वारा तैयार की जाएगी और ऐसे गवाहों द्वारा हस्ताक्षरित की जाएगी; लेकिन इस धारा के तहत तलाशी के गवाह बनने वाले किसी भी व्यक्ति को तलाशी के गवाह के रूप में अदालत में उपस्थित होने की आवश्यकता नहीं होगी, जब तक कि विशेष रूप से इसके द्वारा नहीं बुलाया जाता है।

(6) खोजे गए स्थान के अधिभोगी, या उसकी ओर से किसी व्यक्ति को, हर मामले में, तलाशी के दौरान उपस्थित होने की अनुमति दी जाएगी। और उक्त गवाहों द्वारा हस्ताक्षरित इस धारा के तहत तैयार की गई सूची की एक प्रति, ऐसे रहने वाले या व्यक्ति को वितरित की जाएगी।

(7) जब उपधारा (3) के अधीन किसी व्यक्ति की तलाशी ली जाती है तब अभिगृहीत की गई सभी वस्तुओं की एक सूची तैयार की जाएगी और उसकी एक प्रति ऐसे व्यक्ति को सुपुर्द की जाएगी।

(8) कोई भी व्यक्ति, जो युक्तियुक्त कारण के बिना, इस धारा के अधीन तलाशी में उपस्थित होने और साक्षी बनने से इंकार करता है या उपेक्षा करता है, जब उसे लिखित रूप में सुपुर्द या निविदा में आदेश द्वारा ऐसा करने के लिए कहा जाता है, तो यह समझा जाएगा कि उसने भारतीय दंड संहिता (45 वर्ष 1860) की धारा 187 के अधीन अपराध किया है।

102. कुछ संपत्ति को जब्त करने की पुलिस अधिकारी की शक्ति- (1) कोई पुलिस अधिकारी, किसी ऐसी संपत्ति को जब्त कर सकता है जो चोरी होने का आरोप लगाया जा सकता है या संदेह किया जा सकता है, या जो उन परिस्थितियों में पाया जा सकता है जो किसी अपराध के किए जाने का संदेह पैदा करते हैं।

(2) ऐसा पुलिस अधिकारी, यदि किसी थाना-के भारसाधक अधिकारी के अधीनस्थ है, तो जब्ती की सूचना उस अधिकारी को तुरंत देगा।

(3) उपधारा (1) के अधीन कार्य करने वाला प्रत्येक पुलिस अधिकारी अधिकारिता वाले मजिस्ट्रेट को अभिग्रहण की रिपोर्ट तुरंत करेगा और जहां जब्त की गई संपत्ति ऐसी है कि उसे आसानी से न्यायालय में नहीं ले जाया जा सकता है, वहां वह किसी व्यक्ति को बंधपत्र निष्पादित करने पर उसकी अभिरक्षा दे सकेगा और जब आवश्यक हो न्यायालय के समक्ष संपत्ति को प्रस्तुत करेगा और निपटान के बारे में न्यायालय के अगले आदेशों को प्रभावी करेगा उसी का।

165. पुलिस अधिकारी द्वारा खोज- (1) जब कभी किसी थाना के भारसाधक अधिकारी या

अनुवादित

अन्वेषण करने वाले पुलिस अधिकारी के पास यह विश्वास करने के लिए युक्तियुक्त आधार हो कि किसी ऐसे अपराध के अन्वेषण के प्रयोजनों के लिए आवश्यक कोई बात जिसकी वह जांच करने के लिए प्राधिकृत है, उस थाना की सीमाओं के साथ किसी स्थान पर पाई जा सकेगी, जिसका वह भारसाधक है, या जिससे वह जुड़ा हुआ है, और यह कि ऐसी चीज उसकी राय में अन्यथा अनुचित देरी के बिना प्राप्त नहीं की जा सकती है, ऐसा अधिकारी, अपने विश्वास के आधार को लिखित रूप में दर्ज करने और इस तरह के लेखन में निर्दिष्ट करने के बाद, जहां तक संभव हो, ऐसे स्टेशन की सीमा के भीतर किसी भी स्थान पर ऐसी चीज के लिए, जिस चीज के लिए खोज की जानी है, खोज कर सकता है, या खोज करवा सकता है।

(2) उपधारा (1) के अधीन कार्यवाही करने वाला पुलिस अधिकारी, यदि साध्य हो, व्यक्तिगत रूप से तलाशी लेगा।

(3) यदि वह व्यक्तिगत रूप से तलाशी करने में असमर्थ है, और उस समय खोज को उपस्थित करने के लिए कोई अन्य सक्षम व्यक्ति नहीं है, तो वह, ऐसा करने के लिए अपने कारणों को लिखित रूप में दर्ज करने के बाद, खोज करने के लिए उसके अधीनस्थ किसी अधिकारी की अपेक्षा कर सकता है, और वह ऐसे अधीनस्थ अधिकारी को लिखित में एक आदेश देगा, खोजे जाने वाले स्थान को निर्दिष्ट करना, और जहां तक संभव हो, वह चीज जिसके लिए खोज की जानी है; और ऐसा अधीनस्थ अधिकारी उसके बाद ऐसी जगह पर ऐसी चीज की खोज कर सकता है।

(4) तलाशी वारंट के बारे में इस संहिता के उपबंध और धारा 100 में अन्तर्विष्ट खोजों के बारे में साधारण उपबंध, जहाँ तक सम्भव हो, इस धारा के अधीन की गई तलाशी पर लागू होंगे।

(5) उपधारा (1) या उपधारा (3) के अधीन बनाए गए किसी अभिलेख की प्रतियाँ अपराध का संज्ञान लेने के लिए सशक्त निकटतम मजिस्ट्रेट को तुरंत भेजी जाएँगी और तलाशी लिए गए स्थान के स्वामी या अधिभोगी, आवेदन किए जाने पर, मजिस्ट्रेट द्वारा उसकी एक प्रति के साथ निःशुल्क प्रस्तुत की जाएँगी।

12. इससे पहले कि हम आगे बढ़ें, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के कुछ निर्णयों पर ध्यान देना उचित होगा।

13. भारत संघ बनाम अशोक कुमार शर्मा और अन्य, (2021) 12 एस.सी.सी. 674 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार माना है:

"70. राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) बनाम संजय [राज्य (दिल्ली के एनसीटी) बनाम संजय, (2014) 9 एस.सी.सी. 772: (2014) 5 एस.सी.सी. (सीआरआई) 437] में, मामला खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1957 ("एम.एम.डी.आर. अधिनियम") के तहत और धारा 378 और 379 भ०द०वि० के तहत भी उठा था और निर्णय के लिए जो प्रश्न उठा था वह यह था कि क्या धारा 21 और 22 के प्रावधान, एम.एम.डी.आर. अधिनियम के अन्य प्रावधानों के अलावा, धारा 379/114 और भ०द०वि० के अन्य प्रावधानों के तहत अपराधों के लिए अभियोजन के लिए एक बार के रूप में संचालित किया गया था। उक्त अधिनियम की धारा 21 में विभिन्न शास्तियां निर्धारित की

अनुवादित

गई हैं। धारा 22 अपराधों के संज्ञान से संबंधित है और यह इस प्रकार है:

"22. अपराधों का संज्ञान--कोई न्यायालय इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए नियमों के अधीन दंडनीय किसी अपराध का संज्ञान केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत व्यक्ति द्वारा लिखित शिकायत किए जाने पर ही लेगा, और अन्यथा नहीं।

71. न्यायालय दिल्ली और गुजरात के उच्च न्यायालयों के निर्णयों [संजय बनाम राज्य, 2009 एस.सी.सी. ऑनलाइन डेल 525: (2009) 109 डीआरजे 594], [विशालभाई रमेशभाई खुराना बनाम गुजरात राज्य, 2010 एस.सी.सी. ऑनलाइन गुजरात 13915: (2010) 3 जीसीडी 2160] से अपील से निपट रहा था। मामलों के पंजीकरण को एम.एम.डी.आर. अधिनियम की धारा 22 के आधार पर चुनौती दी गई थी। पैरा 8, 9, 10 और 11 उन प्रश्नों को प्रकट करते हैं जो उठाए गए और उच्च न्यायालय द्वारा उनसे कैसे निपटा गया: (संजय मामला [राज्य (दिल्ली का एनसीटी) बनाम संजय, (2014) 9 एस.सी.सी. 772: (2014) 5 एस.सी.सी. (सीआरआई) 437], एस.सी.सी. पीपी 781-82)

"8. आपराधिक अपील संख्या-499 वर्ष 2011, जैसा कि ऊपर कहा गया है, आदेश से उत्पन्न हुआ [संजय बनाम राज्य [संजयव। (2009) 109 डीआरजे 594] दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा पारित 2009 एस.सी.सी. ऑनलाइन डेल 525 (2009) 109 डीआरजे 594] । दिल्ली उच्च न्यायालय ने विचार के लिए तीन मुद्दे तैयार किए:

(1) क्या पुलिस इस मामले में प्राथमिकी दर्ज कर सकती थी;

(2) क्या पुलिस रिपोर्ट के आधार पर संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान लिया जा सकता है; और

(3) क्या दंड संहिता की धारा 379/411 के तहत प्राथमिकी दर्ज करने की अनुमति देने के लिए चोरी का मामला बनाया गया था।

9. दिल्ली उच्च न्यायालय [संजय बनाम राज्य, 2009 एस.सी.सी. ऑनलाइन डेल 525: (2009) 109 डीआरजे 594] ने एम.एम.डी.आर. अधिनियम पर विभिन्न प्रावधानों के साथ-साथ दंड प्रक्रिया संहिता का उल्लेख करने के बाद प्रतिवादी को प्राथमिकी में संशोधन करने का निर्देश देने वाले आवेदन का निपटारा किया, जो धारा 379/411/120-बी/34भ०द०वि० के तहत एम.एम.डी.आर. अधिनियम की धारा 21 में उल्लिखित अपराध को परिवर्तित करके दर्ज किया गया था। आक्षेपित आदेश के पैरा 18 में उच्च न्यायालय [संजय बनाम राज्य, 2009 एस.सी.सी. ऑनलाइन डेल 525: (2009) 109 डीआरजे 594] निम्नानुसार अवधारित किया गया: (संजय मामला [संजय बनाम राज्य, 2009 एस.सी.सी. ऑनलाइन डेल 525: (2009) 109 डीआरजे 594], एस.सी.सी. ऑनलाइन डेल)

'18. पूर्वोक्त को ध्यान में रखते हुए और उक्त अधिनियम की धारा 21(6) के तहत निहित प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, मैं मानता हूं कि:

(i) उक्त अधिनियम के तहत अपराध संज्ञेय अपराध होने के कारण, पुलिस इस मामले में प्राथमिकी दर्ज कर सकती थी;

अप्रमाणित

(ii) तथापि, जहां तक उक्त अधिनियम के अधीन अपराध के संज्ञान लेने का संबंध है, मजिस्ट्रेट द्वारा इसे केवल प्राधिकृत अधिकारी द्वारा दायर की गई शिकायत के आधार पर ही लिया जा सकता है, जिसे पुलिस रिपोर्ट के साथ दायर किया जा सकता है;

(iii) चूंकि बिना अनुमति के बालू खनन का अपराध उक्त अधिनियम की धारा 21 के अंतर्गत दंडनीय है, इसलिए उक्त अपराध के भारतीय दंड संहिता की धारा 379 के अंतर्गत अपराध होने का प्रश्न नहीं उठता क्योंकि उक्त अधिनियम अवैध खनन को तभी अपराध बनाता है जब ऐसे निष्कर्षण के लिए कोई परमिट/लाइसेंस न हो और इस संबंध में शिकायत प्राधिकृत अधिकारी द्वारा दायर की गई हो।

10. दूसरी ओर गुजरात उच्च न्यायालय [विशालभाई रमेशभाई खुराना बनाम गुजरात राज्य, 2010 एस.सी.सी. ऑनलाइन गुजरात 13915: (2010) 3 जीसीडी 2160] ने विचार के लिए निम्नलिखित प्रश्न तैयार किए: (विशालभाई रमेशभाई खुराना मामला [विशालभाई रमेशभाई खुराना बनाम गुजरात राज्य, 2010 एस.सी.सी. ऑनलाइन गुजरात 13915: (2010) 3 जीसीडी 2160], एस.सी.सी. ऑनलाइन गुजरात पैरा 5)

'5. ... (1) क्या अधिनियम की धारा 22 उक्त अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों के अधीन दंडनीय अपराधों के संबंध में पुलिस के समक्ष प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने पर भी रोक लगाएगी?

(2) यदि ऐसी प्राथमिकी पर रोक नहीं लगाई जाती है और पुलिस को जांच करने की अनुमति दी जाती है, तो क्या संबंधित मजिस्ट्रेट पुलिस रिपोर्ट पर अपराधों का संज्ञान ले सकता है?

(3) इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट उपबन्धों को ध्यान में रखते हुए दण्ड संहिता, 1860 के अधीन दंडनीय अपराधों पर क्या प्रभाव पड़ेगा?

11. गुजरात उच्च न्यायालय [विशालभाई रमेशभाई खुराना बनाम गुजरात राज्य, 2010 एस.सी.सी. ऑनलाइन गुजरात 13915: (2010) 3 जीसीडी 2160] निम्नलिखित निष्कर्ष पर आया: (विशालभाई रमेशभाई खुराना मामला [विशालभाई रमेशभाई खुराना बनाम गुजरात राज्य, 2010 एस.सी.सी. ऑनलाइन गुजरात 13915: (2010) 3 जीसीडी 2160], एस.सी.सी. ऑनलाइन गुजरात पैरा 28.5)

'28.5 ... "18. ... (i) उक्त अधिनियम के तहत अपराध संज्ञेय अपराध होने के कारण, पुलिस इस मामले में प्राथमिकी दर्ज कर सकती थी;

(ii) तथापि, जहां तक उक्त अधिनियम के तहत अपराध का संज्ञान लेने का संबंध है, मजिस्ट्रेट द्वारा इसे केवल प्राधिकृत अधिकारी द्वारा दायर की गई शिकायत के आधार पर ही लिया जा सकता है, जिसे पुलिस रिपोर्ट के साथ दायर किया जा सकता है;

(iii) चूंकि बिना अनुमति के बालू खनन का अपराध उक्त अधिनियम की धारा 21 के अंतर्गत दंडनीय है, उक्त अपराध के भारतीय दंड संहिता की धारा 379 के अंतर्गत अपराध होने का प्रश्न नहीं उठता क्योंकि उक्त अधिनियम अवैध खनन को तभी अपराध बनाता है जब ऐसे निष्कर्षण के लिए कोई परमिट/लाइसेंस नहीं होता है और इस संबंध में शिकायत किसी प्राधिकृत अधिकारी द्वारा दायर की जाती है।

अनुवादित

72. गुजरात उच्च न्यायालय ने यह भी माना कि धारा 22 एम.एम.डी.आर. अधिनियम और उसके तहत नियमों के तहत अपराध के संबंध में पुलिस द्वारा प्राथमिकी दर्ज करने पर रोक नहीं लगाती है। हालांकि, मजिस्ट्रेट संज्ञान लेने के लिए खुला नहीं था। इस न्यायालय ने, संजय [संजय बनाम राज्य, 2009 SCC ऑनलाइन डेल 525: (2009) 109 DRJ 594] के निर्णयों का उल्लेख करने के बाद, निम्नानुसार अवधारित किया: (संजय केस [राज्य (दिल्ली के एनसीटी) बनाम संजय, (2014) 9 एस.सी.सी. 772: (2014) 5 एस.सी.सी. (सीआरआई) 437], एस.सी.सी. पीपी 811-12, पैरा 69-73)

"69. व्याख्या के सिद्धांतों और धारा 22 में प्रयुक्त शब्दों को ध्यान में रखते हुए, हमारी सुविचारित राय में, यह प्रावधान नदी के तल से रेत सहित खनिजों की अवैध और बेईमानी से चोरी करने के लिए पुलिस द्वारा कार्रवाई करने के लिए एक पूर्ण और पूर्ण प्रतिबंध नहीं है। न्यायालय इस तथ्य का न्यायिक नोटिस लेगा कि पिछले कुछ वर्षों में भारत में नदियाँ अप्रतिबंधित रेत खनन की खतरनाक दर से प्रभावित हुई हैं जो नदियों के पारिस्थितिकी तंत्र और पुलों की सुरक्षा को नुकसान पहुँचा रही हैं। यह नदी के तटों, मछलियों के प्रजनन को भी कमजोर करता है और कई जीवों के प्राकृतिक आवास को नष्ट कर देता है। यदि इन अवैध गतिविधियों को राज्य और राज्य के पुलिस अधिकारियों द्वारा नहीं रोका जाता है, तो इसके गंभीर परिणाम होंगे, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है। यह न केवल नदी जल विज्ञान को बदलेगा बल्कि भूजल स्तर को भी कम करेगा।

70. एम.एम.डी.आर. अधिनियम के तहत लगाए गए प्रतिबंधों और उसमें प्रदान किए गए उपाय के संबंध में कोई विवाद नहीं हो सकता है। किसी भी मामले में, जहां किसी व्यक्ति द्वारा अधिनियम की धारा 4 और अन्य धाराओं के प्रावधानों के उल्लंघन में खनन गतिविधि होती है, वहां अधिनियम के तहत सशक्त और अधिकृत अधिकारी क्षेत्राधिकार मजिस्ट्रेट के समक्ष शिकायत करने सहित सभी शक्तियों का प्रयोग करेगा। इस बात पर भी कोई विवाद नहीं है कि मजिस्ट्रेट ऐसे मामलों में विधिवत प्राधिकृत अधिकारी द्वारा उसके समक्ष दायर शिकायत के आधार पर संज्ञान लेगा। अधिनियम की धारा 4 और अन्य प्रावधानों के उल्लंघन और अतिक्रमण के मामले में, पुलिस अधिकारी मजिस्ट्रेट पर उक्त अधिनियम के उल्लंघन का आरोप लगाते हुए पुलिस द्वारा प्रस्तुत रिकॉर्ड के आधार पर अधिनियम के तहत संज्ञान लेने के लिए जोर नहीं दे सकता है। दूसरे शब्दों में, अधिकारी द्वारा की गई शिकायत को छोड़कर किसी व्यक्ति के अभियोजन के खिलाफ अधिनियम की धारा 22 में निहित निषेध केवल तभी लागू होता है जब ऐसे व्यक्ति पर अधिनियम की धारा 4 के उल्लंघन के लिए मुकदमा चलाया जाता है न कि किसी ऐसे कार्य या चूक के लिए जो दंड संहिता के तहत अपराध का गठन करता है।

71. हालांकि, ऐसी स्थिति हो सकती है जहां कोई व्यक्ति बिना किसी पट्टे या लाइसेंस या किसी प्राधिकरण के नदी में प्रवेश करता है और रेत, बजरी और अन्य खनिजों को निकालता है और उन खनिजों को राज्य के कब्जे से बेईमानी से हटाने के इरादे से उन

अनुवादित

खनिजों को हटाता है या स्थानांतरित करता है, दंड संहिता की धारा 378 और 379 के तहत इस तरह के अपराध करने के लिए दंडित होने के लिए उत्तरदायी है।

72. एम.एम.डी.आर. अधिनियम के प्रावधानों और धारा 378 भ०द०वि० के तहत परिभाषित अपराध के करीब से पढ़ने से, यह स्पष्ट है कि अपराध का गठन करने वाले तत्व अलग-अलग हैं। अधिनियम की धारा 4 का उल्लंघन करते हुए खनन पट्टे के निबंधन और शर्तों का उल्लंघन करना अथवा खनन कार्यकलाप करना एम.एम.डी.आर. अधिनियम की धारा 21 के अंतर्गत दंडनीय अपराध है, जबकि सहमति के बिना राज्य के कब्जे से नदी से रेत, बजरी और अन्य खनिजों को बेईमानी से हटाना, जो राज्य की संपत्ति है, चोरी के अपराध का गठन करते हैं। इसलिए, केवल इसलिए कि शिकायत के आधार पर एम.एम.डी.आर. अधिनियम के तहत अपराध करने के लिए कार्यवाही शुरू करना पुलिस को दंड प्रक्रिया संहिता के तहत शक्ति का प्रयोग करके ऊपर उल्लिखित तरीके से रेत और खनिजों की चोरी करने वाले व्यक्तियों के खिलाफ कार्रवाई करने से नहीं रोक सकता है और न ही करेगा और ऐसे व्यक्तियों के खिलाफ संज्ञान लेने के लिए मजिस्ट्रेट के समक्ष रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा। दूसरे शब्दों में, ऐसे मामले में जहां सरकारी भूमि से रेत और बजरी की चोरी होती है, पुलिस मामला दर्ज कर सकती है, उसकी जांच कर सकती है और धारा 173 द०प्र०स० द०प्र०स० के तहत अंतिम रिपोर्ट मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत कर सकती है, जिसका अधिकार क्षेत्र है।

73. इस मामले में हमारे विचारशील विचार देने के बाद, दंड प्रक्रिया संहिता और दंड संहिता की तुलना में अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों के आलोक में, हम निश्चित राय के हैं कि एम.एम.डी.आर. अधिनियम के तहत अपराध का गठन करने वाली सामग्री और सहमति के बिना नदी के किनारों से रेत और बजरी को बेईमानी से हटाने की सामग्री, जो राज्य की संपत्ति है, भ०द०वि० के तहत एक स्पष्ट अपराध है। इसलिए, धारा 378 भ०द०वि० के तहत अपराध करने के लिए, पुलिस रिपोर्ट प्राप्त होने पर, अधिकार क्षेत्र रखने वाला मजिस्ट्रेट शिकायत की प्राप्ति की प्रतीक्षा किए बिना उक्त अपराध का संज्ञान ले सकता है जो एम.एम.डी.आर. अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों के उल्लंघन के संबंध में संज्ञान लेने के लिए अधिकृत अधिकारी द्वारा दायर किया जा सकता है। नतीजतन, विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा अपनाए गए विपरीत दृष्टिकोण को कानून में बरकरार नहीं रखा जा सकता है और इसलिए, इसे खारिज कर दिया गया है। नतीजतन, इन आपराधिक अपीलों का निपटारा संबंधित मजिस्ट्रेटों को तदनुसार आगे बढ़ने के निर्देश के साथ किया जाता है।

73. अध्याय XII द०प्र०स० में "पुलिस को सूचना और जांच करने की उनकी शक्तियां" शीर्षक वाला अध्याय है:

74. यह "जांच के लिए प्रक्रिया" शीर्षक अनुभाग के अंतर्गत आता है। अनुभाग के मुख्य भाग को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है:

74.1. एक थाना के प्रभारी अधिकारी को प्राप्त जानकारी से अपराध के कमीशन पर संदेह करने का कारण हो सकता है। उसके पास किसी भी जानकारी के आधार पर नहीं बल्कि

अनुवादित

अन्यथा संज्ञेय अपराध के कमीशन पर संदेह करने का कारण भी हो सकता है।

74.2. जहां तक जानकारी का संबंध है, यह स्पष्ट रूप से उस जानकारी से संबंधित है जो धारा 154 के अर्थ के भीतर उसे प्रदान की गई है। ऐसे मामले जहां वह अपने ज्ञान पर कार्य करता है, अन्यथा अभिव्यक्ति द्वारा कवर किया जाएगा।

74.3. अपराध एक ऐसा अपराध होना चाहिए जिसे वह धारा 156 के तहत जांच करने का अधिकार देता है। हमने देखा है कि एक पुलिस अधिकारी को मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना संज्ञेय अपराध की जांच करने का अधिकार है। जहां तक गैर-संज्ञेय अपराध का संबंध है, वह मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना ऐसे अपराध की जांच नहीं कर सकता है जिसके पास मुकदमे के लिए मामले की कोशिश करने या प्रतिबद्ध करने की शक्ति है।

170.2. हालांकि, पुलिस अधिकारी को उस व्यक्ति की जांच करने और मुकदमा चलाने के लिए कोई रोक नहीं है, जहां उसने अपराध किया है, जैसा कि अधिनियम की धारा 32 (3) के तहत कहा गया है यानी अगर उसने किसी अन्य कानून के तहत कोई संज्ञेय अपराध किया है।

14. जयंत और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2021) 2 एस.सी.सी. 670 में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निर्धारित किया है:

"8.3. इसके बाद, एम.एम.डी.आर. अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों पर विचार करने के बाद, इस न्यायालय ने कहा कि दंड संहिता के तहत व्यक्तियों पर मुकदमा चलाने में कोई समग्र और पूर्ण प्रतिबंध नहीं है, जहां व्यक्तियों द्वारा किए गए अपराध दंडात्मक और संज्ञेय अपराध हैं। अंततः, इस न्यायालय ने पैरा 72 और 73 में निम्नानुसार निष्कर्ष निकाला: (एस.सी.सी. पृष्ठ 812)

"72. एम.एम.डी.आर. अधिनियम के प्रावधानों और धारा 378 भ०द०वि० के तहत परिभाषित अपराध को करीब से पढ़ने से, यह स्पष्ट है कि अपराध का गठन करने वाले तत्व अलग-अलग हैं। अधिनियम की धारा 4 का उल्लंघन करते हुए खनन पट्टे के निबंधन और शर्तों का उल्लंघन करना अथवा खनन कार्यकलाप करना एम.एम.डी.आर. अधिनियम की धारा 21 के अंतर्गत दंडनीय अपराध है, जबकि सहमति के बिना राज्य के कब्जे से नदी से रेत, बजरी और अन्य खनिजों को बेईमानी से हटाना, जो राज्य की संपत्ति है, चोरी के अपराध का गठन करते हैं। इसलिए, केवल इसलिए कि शिकायत के आधार पर एम.एम.डी.आर. अधिनियम के तहत अपराध करने के लिए कार्यवाही शुरू करना पुलिस को दंड प्रक्रिया संहिता के तहत शक्ति का प्रयोग करके ऊपर उल्लिखित तरीके से रेत और खनिजों की चोरी करने वाले व्यक्तियों के खिलाफ कार्रवाई करने से नहीं रोक सकता है और न ही करेगा और ऐसे व्यक्तियों के खिलाफ संज्ञान लेने के लिए मजिस्ट्रेट के समक्ष रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा। दूसरे शब्दों में, ऐसे मामले में जहां सरकारी भूमि से रेत और बजरी की चोरी होती है, पुलिस मामला दर्ज कर सकती है, उसकी जांच कर सकती है और धारा 173 द०प्र०स० के तहत अंतिम रिपोर्ट मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत कर सकती है, जिसका अधिकार क्षेत्र संज्ञान लेने के उद्देश्य से है, जैसा कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 190 (1) (डी) में प्रदान किया गया है।

अनुवादित

73. इस मामले में हमारे विचारशील विचार देने के बाद, दंड प्रक्रिया संहिता और दंड संहिता की तुलना में अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों के आलोक में, हम सुनिश्चित राय के हैं कि एम.एम.डी.आर. अधिनियम के तहत अपराध का गठन करने वाली सामग्री और सहमति के बिना नदी के किनारों से रेत और बजरी, जो राज्य की संपत्ति है, को बेईमानी से हटाने की सामग्री भ०द०वि० के तहत एक स्पष्ट अपराध है। इसलिए, धारा 378 भ०द०वि० के तहत अपराध करने के लिए, पुलिस रिपोर्ट प्राप्त होने पर, क्षेत्राधिकार रखने वाला मजिस्ट्रेट एम.एम.डी.आर. अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों के उल्लंघन के संबंध में संज्ञान लेने के लिए अधिकृत अधिकारी द्वारा दायर की जा सकने वाली शिकायत की प्राप्ति की प्रतीक्षा किए बिना उक्त अपराध का संज्ञान ले सकता है। नतीजतन, विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा अपनाए गए विपरीत दृष्टिकोण को कानून में बरकरार नहीं रखा जा सकता है और इसलिए, इसे खारिज कर दिया गया है। नतीजतन, इन आपराधिक अपीलों का निपटारा संबंधित मजिस्ट्रेटों को तदनुसार आगे बढ़ने के निर्देश के साथ किया जाता है।

8.4. इस प्रकार, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा माना गया है, इस संबंध में अधिकृत अधिकारी द्वारा की गई लिखित शिकायत को छोड़कर किसी व्यक्ति के अभियोजन के खिलाफ एम.एम.डी.आर. अधिनियम की धारा 22 में निहित निषेध केवल तभी आकर्षित होगा जब ऐसे व्यक्ति पर एम.एम.डी.आर. अधिनियम की धारा 4 के उल्लंघन के लिए मुकदमा चलाया जाए, न कि किसी ऐसे कार्य या चूक के लिए जो दंड संहिता के तहत अपराध का गठन करता है।

15. राज्य (एनसीटी दिल्ली) बनाम संजय (2014) 9 एस.सी.सी. 772 में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया है:

"72. एम.एम.डी.आर. अधिनियम के प्रावधानों और धारा 378 भ०द०वि० के तहत परिभाषित अपराध को करीब से पढ़ने से, यह स्पष्ट है कि अपराध का गठन करने वाले तत्व अलग-अलग हैं। अधिनियम की धारा 4 का उल्लंघन करते हुए खनन पट्टे के निबंधन और शर्तों का उल्लंघन करना अथवा खनन कार्यकलाप करना एम.एम.डी.आर. अधिनियम की धारा 21 के अंतर्गत दंडनीय अपराध है, जबकि सहमति के बिना राज्य के कब्जे से नदी से रेत, बजरी और अन्य खनिजों जो राज्य की संपत्ति है, को बेईमानी से हटाना चोरी के अपराध का गठन करते हैं। इसलिए, केवल इसलिए कि शिकायत के आधार पर एम.एम.डी.आर. अधिनियम के तहत अपराध करने के लिए कार्यवाही शुरू करना पुलिस को दंड प्रक्रिया संहिता के तहत शक्ति का प्रयोग करके ऊपर उल्लिखित तरीके से रेत और खनिजों की चोरी करने वाले व्यक्तियों के खिलाफ कार्रवाई करने से नहीं रोक सकता है और न ही करेगा और ऐसे व्यक्तियों के खिलाफ संज्ञान लेने के लिए मजिस्ट्रेट के समक्ष रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा। दूसरे शब्दों में, ऐसे मामले में जहां सरकारी भूमि से रेत और बजरी की चोरी होती है, पुलिस मामला दर्ज कर सकती है, उसकी जांच कर सकती है और धारा 173 द०प्र०स० के तहत अंतिम रिपोर्ट मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत कर सकती है, जिसका अधिकार क्षेत्र संज्ञान लेने के

अनुवादित

उद्देश्य से है, जैसा कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 190(1)(डी) में प्रदान किया गया है।

73. इस मामले में हमारे विचारशील विचार देने के बाद, दंड प्रक्रिया संहिता और दंड संहिता की तुलना में अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों के आलोक में, हम निश्चित राय के हैं कि एम.एम.डी.आर. अधिनियम के तहत अपराध का गठन करने वाली सामग्री और सहमति के बिना नदी के किनारों से रेत और बजरी को बेईमानी से हटाने की सामग्री, जो राज्य की संपत्ति है, भ०द०वि० के तहत एक स्पष्ट अपराध है। इसलिए, धारा 378 भ०द०वि० के तहत अपराध करने के लिए, पुलिस रिपोर्ट प्राप्त होने पर, क्षेत्राधिकार रखने वाला मजिस्ट्रेट एम.एम.डी.आर. अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों के उल्लंघन के संबंध में संज्ञान लेने के लिए अधिकृत अधिकारी द्वारा दायर की जा सकने वाली शिकायत की प्राप्ति की प्रतीक्षा किए बिना उक्त अपराध का संज्ञान ले सकता है। नतीजतन, विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा अपनाए गए विपरीत दृष्टिकोण को कानून में बरकरार नहीं रखा जा सकता है और इसलिए, इसे खारिज कर दिया गया है। नतीजतन, इन आपराधिक अपीलों का निपटारा संबंधित मजिस्ट्रेटों को तदनुसार आगे बढ़ने के निर्देश के साथ किया जाता है।

16. संजय (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय इस बात पर विचार कर रहा था कि क्या खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम 1957 के प्रावधान और उसके तहत बनाए गए नियम (एम.एम.डी.आर. अधिनियम/नियम) एक ऐसे व्यक्ति के खिलाफ अभियोजन के खिलाफ रोक के रूप में काम करते हैं, जिस पर भ०द०वि० के तहत अपराध का गठन करने वाले आरोप का आरोप लगाया गया है। सवाल यह था कि जब किसी अभियुक्त का कृत्य भ०द०वि० और एम.एम.डी.आर. अधिनियम के प्रावधानों के तहत अपराध है, तो क्या एम.एम.डी.आर. अधिनियम के प्रावधान स्पष्ट रूप से या अप्रत्यक्ष रूप से भ०द०वि० के प्रावधानों को बाहर रखते हैं। संजय (उपरोक्त) के पैरा 72 और 73 पर ध्यान देना प्रासंगिक होगा।

17. जयंत (उपरोक्त) में संजय (उपरोक्त) में निर्णय को 8.1 से आगे मूल्यांकन के साथ माना गया था और पैरा 8.4 में इसे निम्नानुसार अवधारित किया गया था:

"8.4. इस प्रकार, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा माना गया है, इस संबंध में अधिकृत अधिकारी द्वारा की गई लिखित शिकायत को छोड़कर किसी व्यक्ति के अभियोजन के खिलाफ एम.एम.डी.आर. अधिनियम की धारा 22 में निहित निषेध केवल तभी आकर्षित होगा जब ऐसे व्यक्ति पर एम.एम.डी.आर. अधिनियम की धारा 4 के उल्लंघन के लिए मुकदमा चलाया जाए, न कि किसी भी कार्य या चूक के लिए जो दंड संहिता के तहत अपराध का गठन करता है।

18. उपर्युक्त दो निर्णयों को पढ़ने से जो बिन्दु/बात सुरक्षित रूप से प्राप्त की जा सकती है वह यह है कि जहां एक विशेष अधिनियम उसके तहत किए गए किसी अपराध के लिए शिकायत दर्ज करने का प्रावधान करता है, यदि भ०द०वि० के तहत कोई अपराध भी किया जाता है, तो पुलिस मामला दर्ज कर सकती है, जांच कर सकती है और रिपोर्ट प्रस्तुत कर सकती है। इस प्रकार, प्रस्तुत मामले में प्राथमिकी स्पष्ट रूप से बनाए रखने योग्य थी

अनुवादित

और इसलिए, द०प्र०स० के अनुसार पुलिस द्वारा गिरफ्तारी, तलाशी और जब्ती पर कोई रोक नहीं है क्योंकि इसके प्रावधान शस्त्र अधिनियम के प्रावधानों के विरोधाभासी नहीं हैं और शस्त्र अधिनियम की धारा 37 के तहत शस्त्र अधिनियम के तहत गिरफ्तारी और जब्ती के लिए लागू किए गए हैं। वास्तव में, यह मामला और भी बेहतर स्तर पर है क्योंकि पुलिस विभाग भ०द०वि० के तहत किए गए अपराधों के लिए पहले से ही लंबित मामले में एक वांछित अपराधी, अब्दुल कवी और उसके सहयोगियों के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए आगे बढ़ा है।

19. अशोक कुमार शर्मा (उपरोक्त) के पैरा 120.2 पर ध्यान देना भी प्रासंगिक होगा, जिसमें निष्कर्ष निकालते हुए और निर्देश जारी करते हुए यह माना गया था कि पुलिस अधिकारियों को किसी अन्य कानून के तहत कोई संज्ञेय अपराध करने पर व्यक्ति की जांच करने और मुकदमा चलाने पर कोई रोक नहीं है। इस मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय औषध और प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 के उपबंधों पर विचार कर रहा था, जिसमें गिरफ्तारी, तलाशी और जब्ती तथा अधिकारी के प्राधिकार के लिए बिल्कुल विशिष्ट उपबंध दिए गए हैं। प्रासंगिक पैरा 170.2 निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:

170.2. हालांकि, पुलिस अधिकारी को उस व्यक्ति की जांच करने और मुकदमा चलाने के लिए कोई रोक नहीं है, जहां उसने अपराध किया है, जैसा कि अधिनियम की धारा 32 (3) के तहत कहा गया है यानी अगर उसने किसी अन्य कानून के तहत कोई संज्ञेय अपराध किया है।

20. प्राथमिकी के अवलोकन से, हम पाते हैं कि सह-आरोपी अब्दुल कवी के घर से आग्नेयास्त्र, कारतूस और बम सहित गोला-बारूद बरामद किए गए थे, जहां याचिकाकर्ता अब्दुल कवी के परिवार के सदस्य हैं और पुलिस पक्ष के आने की बात सुनकर वे वहां से फरार हो गए और पुलिस पक्ष द्वारा उनके घर से बड़ी मात्रा में आग्नेयास्त्र, कारतूस और गोला-बारूद बरामद किए गए। इस तरह के आग्नेयास्त्रों और गोला-बारूद के कब्जे से संबंधित कथित अपराध शस्त्र अधिनियम की धारा 25 (1) (1-बी) के तहत दंडनीय धारा 3 और 4 का उल्लंघन है। प्राथमिकी में धारा 216 भ०द०वि० के तहत अपराध भी शामिल है, जो एक संज्ञेय अपराध भी है। इसके अतिरिक्त, शस्त्र अधिनियम की धारा 38 के अनुसार इस अधिनियम (शस्त्र अधिनियम) के अंतर्गत प्रत्येक अपराध संज्ञेय अपराध है, अत प्रथम सूचना रिपोर्ट स्पष्ट रूप से अनुरक्षणीय है। इस प्रकार, याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता का तर्क कि प्राथमिकी बनाए रखने योग्य नहीं है, गलत है और इसलिए, खारिज कर दिया जाता है।

21. प्राथमिकी के अवलोकन से यह पता चलता है कि घटना की कथित तारीख पर, आगामी होली और शब-ए-बारात त्योहारों के मद्देनजर, पुलिस पक्ष अपने क्षेत्र में गश्त कर रही थी। अचानक उन्हें सूचना मिली कि सह-आरोपी अब्दुल कवि, जो उपरोक्त मामले में वांछित था, अपने पैतृक घर में अवैध हथियारों और गोला-बारूद के साथ अपने घर में छिपा हुआ है। उस सूचना पर कार्रवाई करते हुए पुलिस पक्ष ने तुरंत उसके घर पर छापा मारा और उसके घर की दीवारों में छिपाकर रखे गए भारी मात्रा में हथियार और गोला-बारूद बरामद किया

अनुवादित

गया। निर्विवाद रूप से, पुलिस ने भ०द०वि० और अन्य अपराधों के प्रावधानों के तहत दर्ज लंबित मामलों (जैसा कि प्राथमिकी में उल्लेख किया गया है) में फरार होने की जानकारी पर कार्रवाई की है, द०प्र०स० के तहत प्रदान की गई गिरफ्तारी, तलाशी और जब्ती की शक्ति पुलिस अधिकारी को स्पष्ट रूप से उपलब्ध थी। कहने की जरूरत नहीं है कि इस तरह की आगे की विवेचना पर यदि बरामदगी की जाती है या कोई अन्य अपराध भी पाया जाता है, तो धाराएं जोड़ी जाती हैं।

22. तथ्यों और परिस्थितियों में, जब गश्त करते समय पुलिस पक्ष को सूचना मिली थी, तो वांछित आरोपी फरार और उसके सहयोगियों को पकड़ने के लिए छापेमारी करने और अवैध हथियार और गोला-बारूद बरामद करने के लिए पुलिस द्वारा शस्त्र अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए तलाशी और जब्ती की गई थी, द०प्र०स० के अन्य प्रावधानों सपठित द०प्र०स० 1959, जैसा कि धारा 37 द०प्र०स० स्पष्ट रूप से प्रदान करता है कि अधिनियम में अन्यथा प्रदान किए गए को छोड़कर द०प्र०स० के प्रावधान लागू होंगे। मामले के इन तथ्यों और परिस्थितियों में शस्त्र अधिनियम की धारा 22 का कोई प्रावधान लागू नहीं होता है। इसलिए, याचिकाकर्ताओं की ओर से दिया गया तर्क, कि तलाशी और जब्ती मजिस्ट्रेट की उपस्थिति में नहीं की गई थी या पुलिस ने तलाशी और जब्ती करने से पहले मजिस्ट्रेट से संपर्क नहीं किया था, में कोई बल नहीं है।

23. हम राज्य के अधिवक्ता के तर्क में सार पाते हैं कि एक विस्तृत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई है, जिसमें हर मिनट का विवरण दिया गया है, वही स्पष्ट रूप से संज्ञेय अपराध का खुलासा करता है। प्रथम सूचना रिपोर्ट के अवलोकन से हम पाते हैं कि वहां यह उल्लेख किया गया है कि आरोपी अब्दुल कवी उपरोक्त मामले के अपराध में एक वांछित आरोपी है जो अपने सभी सहयोगियों और परिवार के सदस्यों के साथ मौके से भाग गया। हम पाते हैं कि शस्त्र अधिनियम के प्रावधानों सपठित द०प्र०स० में प्रदान की गई प्रक्रिया का पूरी तरह से पालन किया गया है और इस तरह शस्त्र अधिनियम की धारा 22 और धारा 94 द०प्र०स० के प्रावधान पर पूरी तरह से भरोसा करने वाला तर्क गलत है।

24. शस्त्र अधिनियम, द०प्र०स० के प्रावधान और ऊपर उद्धृत निर्णय स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि प्रस्तुत मामले में पुलिस की ओर से शक्तियों की कोई कमी नहीं थी। गश्त के दौरान सूचना के आधार पर पुलिस ने जिस तरह से कार्रवाई की वह उनके अधिकार क्षेत्र के भीतर था।

25. हरियाणा राज्य और अन्य बनाम भजन लाल और अन्य, 1992 सप्प (1) एस.सी.सी. 335 और मैसर्स निहारिका इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य, ए.आई.आर. 2021 एस.सी. 1918 और अपील की विशेष अनुमति (सीआरएल) संख्या-3262/2021(लीलावती देवी @ लीलावती और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में 07.10.2021 को तय किए गए कानून के मद्देनजर, आक्षेपित प्रथम सूचना रिपोर्ट में हस्तक्षेप का कोई मामला नहीं बनता है।

26. ऊपर की गई चर्चा के मद्देनज़र, रिट याचिका को खारिज किया जाता है, जिससे याचिकाकर्ताओं के लिए कानून के तहत और

अनुवादित

कानून के अनुसार अग्रिम जमानत/जमानत के लिए सक्षम अदालत के समक्ष आवेदन करने का विकल्प खुला है।

(2023) 6 ILRA 409

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 26.06.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अताउ रहमान मसूदी

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती सरोज यादव

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 5682 वर्ष 2021

प्रो. आशीष वाखलू याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: डॉ. वी.के. सिंह, प्रांजल कृष्ण

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: जी.ए., अरुण सिंह, शुभम तिवारी, शुभम त्रिपाठी, सिद्धार्थ सिन्हा

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 409 - लैपटॉप की खरीद की प्रक्रिया में याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई वित्तीय लाभ होने का कोई आरोप नहीं है और न ही गबन या विश्वासघात का कोई मामला है - धारा 409 आईपीसी के तहत आरोप लगाने का कोई अवसर या सामग्री नहीं - ऑनलाइन परीक्षा आयोजित करने का नीतिगत निर्णय - बाद के प्रशासन द्वारा उलट दिया गया - ऐसे उपकरणों को अप्रयुक्त होने से बचाने के लिए कार्यालयों को लैपटॉप वितरित करना - किसी भी तरह से यह धारा 409 आईपीसी के तहत अपराध को आकर्षित नहीं करेगा - ऑनलाइन परीक्षा प्रक्रिया को पूरा करने में संयुक्त रूप से या अलग-अलग कर्तव्य निभाने वाले किसी भी व्यक्ति के खिलाफ - एफआईआर के साथ-साथ कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग और शक्ति के दुर्भावनापूर्ण प्रयोग पर आधारित जांच - एफआईआर रद्द।

डब्ल्यू.पी. को अनुमति दी गई। (ई-9)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. स्टेट ऑफ हर. एंड अन्य बनाम भजन लाल एंड अन्य (1992) सप (1) एससीसी 335 में रिपोर्ट किया गया
2. कपिल अग्रवाल एंड अन्य बनाम संजय शर्मा एंड अन्य, (2021) 5 एससीसी 524 में रिपोर्ट किया गया
3. एन. राघवेंद्र बनाम स्टेट ऑफ आंध्र प्रदेश, सीबीआई ने 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 1232 में रिपोर्ट किया
4. मेसर्स पेप्सी फूड्स लिमिटेड एंड अन्य बनाम एस.जे.एम. और अन्य, एआईआर 1998 एससी 128 में रिपोर्ट किया गया
5. विनय त्यागी बनाम इरशाद अली (2013) 5 एससीसी 762 में रिपोर्ट किया गया
6. आनंद कुमार मोहत्ता और अन्य बनाम स्टेट (दिल्ली एनसीटी सरकार), गृह विभाग और अन्य, एआईआर 2019 एससी 210 में रिपोर्ट किया गया
7. मेसर्स वीएसएस फार्मा लखनऊ और अन्य बनाम स्टेट ऑफ यू.पी. और अन्य- आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 17812/2015
8. अशोक कुमार दीक्षित बनाम स्टेट ऑफ यू.पी. और अन्य एआईआर 1987 ऑल 235 में रिपोर्ट किया गया

अनुवादित

(माननीय न्यायमूर्ति अताउ रहमान मसूदी द्वारा दिया गया)

1. किसी अपराध की जांच, न्याय के आपराधिक प्रशासन की आधारशिला है। इसी कारण से, निष्पक्ष जांच और निष्पक्ष विचारण भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 का अभिन्न अंग है।

2. सामान्यतः यह न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपनी असाधारण शक्तियों का प्रयोग करते हुए, किसी प्रथम सूचना रिपोर्ट या जांच की वैधता में हस्तक्षेप नहीं करेगा और न ही उसकी गहराई में जाएगा, लेकिन उन अपवादों को छोड़कर, जिनमे सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अनेक निर्णयों की श्रृंखला में सुस्थापित सिद्धांतों को रेखांकित किया गया है तथा हमारे उद्देश्य के लिए **(1992) एसयूपीपी (1) एससीसी 335**, में रिपोर्ट किया गया, **हरियाणा राज्य और अन्य बनाम भजन लाल और अन्य**, के वाद में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित व्यापक सिद्धांत, जैसा कि प्रस्तर 102 में निर्धारित किया गया है, नीचे उद्धृत किए गए हैं:

> "102. अध्याय XIV के अंतर्गत संहिता के विभिन्न प्रासंगिक प्रावधानों के निर्वचन के प्रष्ठभूमि में तथा अनुच्छेद 226 के अंतर्गत असाधारण शक्ति के प्रयोग से संबंधित निर्णयों की एक श्रृंखला में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि के सिद्धांतों का या संहिता की धारा 482 के अंतर्गत निहित शक्तियां जिन्हें हमने ऊपर उद्धृत और पुन: प्रस्तुत किया है, हम उदाहरण 2, के माध्यम से विषयो को निम्नलिखित श्रेणियां देते हैं जिनमें ऐसी शक्ति का प्रयोग किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए किया जा सकता है यद्यपि किसी भी सटीक, स्पष्ट रूप से परिभाषित और पर्याप्त रूप से प्रणाली-युक्त तथा अनम्य दिशानिर्देश या कठोर सूत्र तथा असंख्य प्रकार के विषयो की विस्तृत सूची देना संभव नहीं है जिनमें ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए।
>
> (1) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या परिवाद में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें उनके प्रत्यक्ष मूल्य पर लिया जाए और उनको संपूर्णता में स्वीकार किया जाए, (2) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोप और उसके साथ अन्य सामग्री यदि कोई हो, किसी संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करती है संहिता की धारा 155(2) के परिधि में मजिस्ट्रेट के आदेश को छोड़कर, संहिता की धारा 156(1) के अंतर्गत पुलिस अधिकारियों द्वारा जांच न्यायोचित है ।
>
> (3) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या परिवाद में लगाए

अनुवादित

गए निर्विवाद आरोप और उनके समर्थन में एकत्र किए गए साक्ष्य किसी अपराध के होने का खुलासा नहीं करते हैं और आरोपी के विरूद्ध अभियोग बनाते हैं।

(4) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोप संज्ञेय अपराध को संस्थापित नहीं करते है, बल्कि केवल असंज्ञेय अपराध को संस्थापित करते हैं, वहां मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना, पुलिस अधिकारी द्वारा जांच की अनुमति के नहीं दी जाएगी, जैसा कि संहिता की धारा 155(2) के अंतर्गत परिकल्पित है।

(5) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या परिवाद में लगाए गए आरोप इतने बेतुके और स्वाभाविक रूप से असंभव हैं, जिनके आधार पर कोई भी विवेकशील व्यक्ति कभी भी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है कि अभियुक्त के विरूद्ध कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार है।

(6) जहां संहिता या संबंधित अधिनियम (जिसके तहत आपराधिक कार्यवाही शुरू की जाती है) के किसी भी प्रावधान में कार्यवाही शुरू करने और जारी रखने पर स्पष्ट वैधानिक रोक लगाई गई है और/या जहां संहिता या संबंधित अधिनियम में पीड़ित पक्ष के परिवाद के लिए प्रभावकारी निवारण प्रदान करने वाला कोई विशिष्ट प्रावधान है।

(7) जहां आपराधिक कार्यवाही में स्पष्ट रूप से दुर्भावना हो और/या जहां कार्यवाही दुर्भावनापूर्वक, अभियुक्त पर प्रतिशोध लेने के गुप्त उद्देश्य से और निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण, उसे परेशान करने के उद्देश्य से स्थापित की गई हो।

3. इसी प्रकार से **(2021) 5 एससीसी 524** में रिपोर्ट किया गया **कपिल अग्रवाल एवं अन्य बनाम संजय शर्मा एवं अन्य** के वाद में, सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 226 या *दं.प्र.सं.* की धारा 482 के अंतर्गत इस न्यायालय की शक्तियों पर जोर देते हुए, यदि प्रथम सूचना रिपोर्ट से विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग प्रतीत होता है और उसे केवल आरोपी का उत्पीड़न करने के लिए दर्ज किया गया है, तो उसे निरस्त करने की निम्नलिखित टिप्पणी की है:

> *"18. हालांकि, साथ ही, अगर यह पाया जाता है कि अनुवर्ती प्रथम*

सूचना रिपोर्ट विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग है और/या इसे केवल आरोपी का उत्पीड़न करने के लिए दर्ज किया गया है, तो इसे संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्तियों के प्रयोग या दं.प्र.सं. की धारा 482 के तहत शक्तियों के प्रयोग में निरस्त किया जा सकता है। उस स्थिति में, परिवादी वाद दं.प्र.सं. के प्रावधानों के अनुसार आगे बढ़ेगा।

18.1 जैसा कि इस न्यायालय ने अपने निर्णयों में माना है, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 और/या संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत निहित अधिकारिता इस हितकारी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए बनाई गई है कि आपराधिक कार्यवाही को उत्पीड़न के साधन में अपकृष्ट करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। जब न्यायालय इस बात से संतुष्ट हो जाता है कि आपराधिक कार्यवाही विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग है या यह अभियुक्त पर दबाव डालने के समान है तो, अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए ऐसी कार्यवाही को निरस्त किया जा सकता है।

18.2 जैसा कि इस न्यायालय ने परबतभाई अहीर बनाम गुजरात राज्य (2017) 9 एससीसी 641 के वाद में माना है, दं.प्र.सं. की धारा 482 एक अधिभावी प्रावधान से पूर्व निर्धारित है। यह संविधि उच्च न्यायालय को एक वरिष्ट न्यायालय के रूप में ऐसे आदेश देने की जो आवश्यक है की, अंतर्निहित शक्ति को सुरक्षित रखता है, (i) किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए, या (ii) अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए आवश्यक हों। उच्च न्यायालय को भी संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते समय यही शक्तियां प्राप्त होती हैं।

4. वर्तमान रिट याचिका में अपरिहार्य रूप से प्रथम सूचना रिपोर्ट की वैधता पर प्रश्न उठाया गया है, जो कि थाना चौक, जिला लखनऊ में भ.दं.सं. की धारा 409, 420 के अंतर्गत पंजीकृत केस क्राइम नंबर 56/2021 को जन्म देती है। सूचनाकर्ता जो कि केजीएमयू, लखनऊ के मुख्य प्रॉक्टर प्रोफेसर आरएएस कुशवाहा हैं और प्रथम सूचना रिपोर्ट में नामित आरोपी डॉ. आशीष वाखलू हैं, याचिकाकर्ता जो कि बाल चिकित्सा विभाग में सर्जन थे, वर्तमान विषय में असंबंधित कार्यवाही के आधार पर सेवा से बर्खास्त कर दिए गए है।

5. याचिकाकर्ता ने वाद की परिस्थितियों के अंतर्गत प्रथम सूचना रिपोर्ट को निरस्त करने की प्रार्थना करते हुए, अन्य बातों के साथ-साथ किसी अन्य याचिका, आदेश या निर्देश के लिए भी प्रार्थना की है जिसे न्यायालय उपयुक्त और उचित समझे।

6. इस न्यायालय ने वर्तमान कार्यवाही के प्रारंभ से ही आरोपों को गंभीरता से लिया है

और दिनांक 15.3.2021 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता की गिरफ्तारी पर रोक लगाते हुए पारित आदेश में इस आशय की कई मताभिव्यक्ति व्यक्त की गईं कि छात्रों की ऑनलाइन परीक्षाएं आयोजित करने के लिए 300 लैपटॉप की खरीद, एक नीतिगत विषय था और उपयुक्त स्तर पर विधिवत अनुमोदित किया गया था, इसलिए, उस औचित्य को स्पष्ट करने के लिए जिसके अंतर्गत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी, प्रति शपथपत्र की मांग की गयी थी। इस न्यायालय द्वारा पारित विस्तृत आदेश में प्रतिवादियों से यह स्पष्ट करने को कहा गया है कि भ.दं.सं. की धारा 409, 420 के अंतर्गत अपराध कैसे कहा जा सकता है, जब लैपटॉप की खरीद पारदर्शी तरीके से सरकारी निकाय से की गई थी और भुगतान के चालान के अनुसार विश्वविद्यालय द्वारा सामान प्राप्त किया गया था। तथापि, विचाराधीन माल का कभी भी याचिकाकर्ता द्वारा किसी व्यक्तिगत लाभ के लिए प्रयोग नहीं किया गया या उसे सौंपे जाने के बाद उसका दुरुपयोग नहीं किया गया, इसलिए, अपराध के जिस मूल तत्व के अंतर्गत प्राथमिकी दर्ज की गई थी, वही प्रश्न योग्य हो गई ।

7. इस रिट याचिका के लंबित रहने की अवधि में, इस न्यायालय ने दिनांक **15.11.2022** को निम्नलिखित आदेश पारित किया:

> *".....याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने प्रबलता से प्रस्तुत किया है कि जांच अधिकारी द्वारा वर्तमान रिट याचिका में दो बार अंतिम रिपोर्ट तैयार की गई है, अर्थात क्रमशः 19.09.2021 और 14.10.2022 को।*
>
> *अभिलेख से यह पता चलता है कि जब 18.10.2022 को वाद की सुनवाई हुई थी, तब विद्वान शासकीय अधिवक्ता ने इस न्यायालय को सूचित किया था कि 14.10.2022 की अंतिम रिपोर्ट शीघ्र ही संबंधित न्यायालय में प्रस्तुत की जाएगी।*
>
> *आज जब वाद सूचीबद्ध हुआ तो इस न्यायालय ने प्रश्न किया कि क्या दिनांक 14.10.2022 की अंतिम रिपोर्ट, संबंधित न्यायालय में प्रस्तुत की गई है या नहीं, जिस पर विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि पुलिस उपायुक्त, लखनऊ पश्चिम कमिश्नरेट, लखनऊ ने 04.11.2022 को विषय में आगे की जांच के आदेश दिए हैं।*
>
> *उपरोक्त के दृष्टिगत, हम निम्नलिखित आदेश पारित करते हैं:-*
>
> *(i) पुलिस उपायुक्त, लखनऊ पश्चिम कमिश्नरेट, लखनऊ को यह सुनिश्चित करने का निर्देश दिया जाता है कि आगे की जांच, जिसका आदेश उनके द्वारा दिया गया है, आज से तीन सप्ताह की अवधि के भीतर पूरी हो जाए और पुलिस विधि के अनुसार संबंधित न्यायालय में रिपोर्ट प्रस्तुत करें।*
>
> *(ii) पुलिस आयुक्त, लखनऊ पश्चिम कमिश्नरेट, लखनऊ (प्रतिवादी संख्या 2) विषय की जांच को अनुश्रवण करेंगे।*

(iii) प्रतिवादी संख्या 4, विश्वविद्यालय (के.जी.एम.यू. लखनऊ, चौक, लखनऊ) के विद्वान अधिवक्ता, श्री सिद्धार्थ सिन्हा यह सुनिश्चित करेंगे कि संबंधित जांच अधिकारी को सभी आवश्यक दस्तावेज उपलब्ध करा दिए जाये, ताकि विषय की जांच उपरोक्त आदेशानुसार पूरी हो सके।

विषय को तीन सप्ताह के बाद सूचीबद्ध करें, जिस तारीख तक विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता जांच की स्थिति के बारे में सूचित करेंगे।"

8. जांच अधिकारी, श्री प्रशांत कुमार मिश्रा ने उपरोक्त आदेश पारित होने के बाद, दिनांक 20/21.2.2023 को एक लघु प्रति-शपथपत्र प्रस्तुत किया है, जिसमें यह कहा गया है कि विषय में अंतिम रिपोर्ट एक से अधिक बार तैयार की गई थी, लेकिन पर्यवेक्षी अधिकारी / क्षेत्राधिकारी द्वारा जांच के संबंध में कुछ आपत्तियां उठाकर इसे अनुमोदित नहीं किया गया था और विषय में आगे की जांच के लिए निर्देशित किया गया था। वर्तमान विषय में कई जांच अधिकारी बदले गए हैं। जांच के कालानुक्रमिक दृश्य के लिए, प्रासंगिक लघु प्रति-शपथपत्र के प्रस्तर 5 से 12 नीचे, उद्धृत किए गए हैं:

"5. यह सम्मानपूर्वक प्रस्तुत किया जाता है कि उपरोक्त एफ.आई.आर. के पंजीकरण के पश्चात विषय की जांच श्री अमरनाथ विश्वकर्मा, अतिरिक्त निरीक्षक, जो उस समय पी.एस. चौक लखनऊ में तैनात थे, द्वारा प्रारंभ की गई थी और उनके स्थानांतरण के पश्चात विषय की जांच एस.आई. श्री रमापति सिंह को सौंपी गई थी, जिन्होंने जांच के पश्चात पर्यवेक्षी प्राधिकारी/क्षेत्राधिकारी, चौक, लखनऊ को दिनांक 19.09.2021 को अंतिम रिपोर्ट अग्रेषित की है।

6. यह कि पर्यवेक्षी प्राधिकारी/क्षेत्राधिकारी, चौक, लखनऊ ने कुछ आपत्तियां उठाई हैं तथा विषय में आगे की जांच के निर्देश दिए हैं।

7. तत्पश्चात विषय की जांच एस.एस.आई. चन्द्र शेखर सिंह, जो उस समय थाना चौक, जिला लखनऊ में तैनात थे, को सौंपी गई, जिन्होंने अपनी रिपोर्ट दिनांक 14.10.2022 के माध्यम से पूर्व की अंतिम रिपोर्ट दिनांक 19.09.2021 का समर्थन किया तथा पर्यवेक्षी प्राधिकारी/क्षेत्राधिकारी, चौक, लखनऊ को अग्रेषित किया।

8. यह कि पर्यवेक्षी प्राधिकारी/क्षेत्राधिकारी, चौक, लखनऊ ने जांच के संबंध में पुनः कुछ आपत्तियां उठाईं तथा विषय में आगे की जांच के निर्देश दिए।

9. तत्पश्चात दिनांक 04.11.2022 को पुलिस उपायुक्त, पश्चिमी, लखनऊ के आदेश द्वारा विषय की जांच अभिसाक्षी को आवंटित की गई।

अनुवादित

10. यह कि अभिसाक्षी ने जांच का कार्यभार संभालने के पश्चात केस डायरी के पिछले पर्चों का अवलोकन किया है तथा उपरोक्त एफ.आई.आर. की स्पष्ट एवं निष्पक्ष रीति से जांच की है।

11. जांच के दौरान भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के अंतर्गत अपराध के संबंध में कोई विश्वसनीय साक्ष्य नहीं मिला है, इसलिए अभिसाक्षी ने अपराध की श्रृंखला से भारतीय दंड संहिता की धारा 420 को हटा दिया है। तथापि, साक्ष्यों के आधार पर भ.दं.सं. की धारा 120बी/201 को अपराध की श्रेणी में जोड़ा गया और डॉ. रविकांत (पूर्व कुलपति, केजीएमयू) और डॉ. अरुण कुमार सिंह (पूर्व परीक्षा नियंत्रक, केजीएमयू) के नाम आरोपियों की सूची में जोड़े गए हैं।

12. यह सम्मानपूर्वक प्रस्तुत किया जाता है कि जांच से, नामित आरोपी / याचिकाकर्ता - प्रो. आशीष वाखलू के विरूद्ध पर्याप्त विश्वसनीय साक्ष्य मिले हैं और उन आरोपियों के विरूद्ध भी, जिनके नाम भ.दं.सं. की धारा 409, 120 बी, 201 के अंतर्गत अपराध के लिए जांच के दौरान प्रकाश में आए है अर्थात् 1- अरुण कुमार सिंह और 2- रविकांत इसलिए, दिनांक 19.09.2021 की पूर्व की अंतिम रिपोर्ट को निरस्त करने के लिए पुलिस उपायुक्त, पश्चिम, जिला लखनऊ को एक रिपोर्ट भेजी गई थी।"

9. श्री प्रशांत कुमार मिश्रा अंतिम चरण में जांच अधिकारी थे, जब उपरोक्त प्रति-शपथपत्र इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया था। हमारे उद्देश्य के लिए दिनांक **20/21.2.2023** को प्रस्तुत किया गए प्रति-शपथपत्र के प्रस्तर **13** से **16** भी प्रासंगिक है और वो यहाँ नीचे उद्धृत किये गए है:"

13. यह कि पुलिस उपायुक्त, पश्चिमी, जनपद लखनऊ द्वारा दिनांक 19.09.2021 की पूर्व की अंतिम रिपोर्ट को दिनांक 18.02.2023 को निरस्त कर दिया गया है।

14. इसके बाद, अभिसाक्षी ने दिनांक 19.02.2023 को नामित अभियुक्त/याचिकाकर्ता-प्रो. आशीष वाखलू के विरुद्ध भ.दं.सं. की धारा 409, 120-बी के अंतर्गत अपराध के लिए आरोप-पत्र तैयार किया है तथा पर्यवेक्षी प्राधिकारी/सहायक पुलिस आयुक्त, चौक, जिला लखनऊ को अग्रेषित किया है तथा शीघ्रातिशीघ्र इसे संबंधित न्यायालय में प्रस्तुत किया जाएगा। दिनांक 19.02.2023 के आरोप-पत्र की फोटोकॉपी अनुलग्नक संख्या एससीए-1 के रूप में संलग्न की जा रही है।

15. यह कि विषय की जांच नामित आरोपी - याचिकाकर्ता प्रोफेसर आशीष वाखलू - के विरूद्ध पूर्ण हो गई है।

16. यह कि वर्तमान में जिन अभियुक्तों के नाम जांच के दौरान प्रकाश में आए हैं अर्थात् डॉ. रविकांत

(पूर्व कुलपति, केजीएमयू) और डॉ. अरुण कुमार सिंह (पूर्व परीक्षा नियंत्रक, केजीएमयू) के विरुद्ध जांच लंबित है और केवल उनकी गिरफ्तारी शेष है। जैसे ही वे गिरफ्तार होंगे, उनके विरूद्ध पूरक आरोपपत्र प्रस्तुत किया जाएगा और विषय की जांच पूरी कर ली जाएगी।

10. उसी जांच अधिकारी द्वारा दिनांक **25.2.2023** को शपथपूर्वक लिए गए तथा दिनांक **2.3.2023** को प्रस्तुत किए गए अनुपूरक प्रति-शपथपत्र के प्रस्तर-3 में निम्नलिखित कथन दिया गया:

> 3. यह सम्मानपूर्वक प्रस्तुत किया जाता है कि डॉ. रविकांत (पूर्व कुलपति, केजीएमयू) और डॉ. अरुण कुमार सिंह (पूर्व परीक्षा नियंत्रक, केजीएमयू) के विरूद्ध विषय की जांच लंबित है। अभिसाक्षी अपने पहले के दिनांक 20.02.2023 के संक्षिप्त प्रति-शपथपत्र के प्रस्तर संख्या 16 को प्रस्तुत नहीं कर रहा है।"

11. जांच के संबंध में घटनाओं के कालानुक्रमिक क्रम से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि श्री रमापति सिंह ने जांच पूरी होने पर **19.9.2021** को पर्यवेक्षण प्राधिकारी/क्षेत्राधिकारी, चौक लखनऊ को अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिस पर उन्होंने आपत्ति की और आगे की जांच के निर्देश दिए। इसके बाद एसआई श्री चंद्रशेखर सिंह ने जांच का कार्यभार संभाला और अपने पूर्ववर्ती द्वारा **19.9.2021** को प्रस्तुत की गई अंतिम रिपोर्ट का समर्थन करते हुए **14.10.2022** को पर्यवेक्षी प्राधिकारी को अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की। ऐसा प्रतीत होता है कि पर्यवेक्षी प्राधिकारी ने फिर से कुछ आपत्तियां उठाई और आगे की जांच के निर्देश दिए । वांछित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए, दिनांक **04.11.2022** के आदेश के अंतर्गत जांच श्री प्रशांत कुमार मिश्रा को सौंपी गई, जिन्होंने जांच पूरी होने पर **19.9.2021** को प्रस्तुत की गई पिछली रिपोर्ट को निरस्त करने के लिए पर्यवेक्षी प्राधिकारी को रिपोर्ट किया । दिनांक **18.2.2023** को पहले की अंतिम रिपोर्ट को निरस्त करने के बाद ही श्री प्रशांत मिश्रा द्वारा तैयार की गई पुलिस रिपोर्ट दिनांक **19.2.2023** को प्रस्तुत की गई। इसलिए **19.9.2021** और **14.10.2022** को तैयार की गई दो अंतिम रिपोर्ट, **14.10.2022** को प्रस्तुत की गई अंतिम रिपोर्ट का कोई उल्लेख किए बिना, **19.2.2023** को प्रस्तुत पुलिस रिपोर्ट द्वारा प्रतिस्थापित कर दी गईं।

12. यह न्यायालय ध्यान दे सकता है कि संज्ञेय अपराध की जांच, जांच अधिकारी के विशेष अधिकार क्षेत्र में आती है और दंड प्रक्रिया संहिता पहले जांच अधिकारी द्वारा एकत्र की गई किसी भी सामग्री को अभिशून्य करने की प्रक्रिया में प्रवेश करके नई जांच की प्रक्रिया की कल्पना नहीं करती है। आगे की जांच या उस आशय के आदेश का अर्थ यह नहीं है कि पर्यवेक्षी प्राधिकारी पहले की जांच को पूरी तरह से निरस्त कर सकता है, वह भी आगे की जांच करने के लिए अधिकृत नए जांच अधिकारी की अनुशंसा पर।

13. लघु प्रति-शपथपत्र में जांच अधिकारी ने कहा है कि अब अन्य आरोपियों की गिरफ्तारी

को छोड़कर, जांच पूरी हो चुकी है और यही कारण है कि याचिकाकर्ता के विरूद्ध आरोप पत्र पर्यवेक्षण प्राधिकारी को भेज दिया गया है जिसे सक्षम न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा। जांच अधिकारी ने अपराध में कथित रूप से सम्मिलित अन्य आरोपियों को गिरफ्तार करने से पहले एक बार फिर केवल वर्तमान याचिकाकर्ता के विरूद्ध ही आरोप पत्र प्रस्तुत करने का विकल्प चुना। इसके बाद एक पूरक शपथपत्र इस प्रभाव् से प्रस्तुत किया गया जिसमें कहा गया कि लघु प्रति-शपथपत्र के प्रस्तर 16 को प्रस्तुत नहीं किया जा रहा है । यह इस तरह से है कि जांच अधिकारी द्वारा प्रक्षेपित की गई जांच की पूर्णता का स्पष्ट चित्रण, दिनांक **15.11.2022** को पारित न्यायालय के आदेश को फिर से विफल करने का अभिचालन है ।

14. अनुपूरक शपथपत्र का प्रस्तर-3 तब परिवर्तित हो जाता है जब जांच अधिकारी ने लघु प्रति-शपथपत्र के प्रस्तर-**16** में दिए गए कथन को वापस ले लिया। दोनों शपथपत्रो में दिए गए तर्कों से दुर्भावना स्पष्ट है। यह भी स्पष्ट है कि इस तथ्य का कोई उल्लेख नहीं है कि जांच अधिकारी द्वारा भ.दं.सं. की धारा 409 के साथ भ.दं.सं. की धारा 120-बी और 201 के अंतर्गत पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत करने पर पर्यवेक्षी अधिकारी ने कभी आगे की जांच के लिए निर्देश दिया था। इसलिए, पूरक शपथपत्र में यह दर्शाया गया है कि आगे की जांच लंबित है, जिसका स्पष्ट उद्देश्य जांच को अनिश्चित काल तक खींचना है, ताकि विधि के विरुद्ध युक्ति से याचिकाकर्ता की छवि और वृत्ति को नुकसान पहुंचाया जा सके।

15. अकेले याचिकाकर्ता के विरूद्ध भ.दं.सं. की धारा **120-बी** के अंतर्गत प्रस्तुत आरोप पत्र स्पष्ट रूप से विधिक दुर्भावना का संकेत देता है, एक बार पूरक शपथपत्र प्रस्तुत करके पूर्व में ली गई शपथ में, प्रस्तर-16 की विषयवस्तु को जांच अधिकारी ने पर्यवेक्षी प्राधिकरण की मधुर इच्छा से अस्वीकार कर दिया था। जिससे यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि जांच अधिकारी और पर्यवेक्षण प्राधिकारी एक-दूसरे के साथ मिलकर याचिकाकर्ता को परेशान करने और उसकी छवि धूमिल करने में लगे हुए थे, अन्यथा अपराध की स्थिति में सभी तीन आरोपी व्यक्तियों के विरूद्ध भी इसी प्रकार की विधिक प्रक्रिया अपनाई जाती। याचिकाकर्ता के विरुद्ध अन्तरस्थ हेतु से जांच के सुस्थापित सिद्धांतों का पालन न करना स्पष्ट रूप से विधिक प्रक्रिया के दुरुपयोग की गंध देता है और यह बात अभिलेख में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

16. इसी प्रकार चूंकि लैपटॉप की खरीद की प्रक्रिया में याचिकाकर्ता के विरूद्ध कोई वित्तीय लाभ होने का कोई आरोप नहीं है, न ही गबन या न्यासभंग का कोई आरोप है, इसलिए, याचिकाकर्ता के विरूद्ध भ.दं.सं. की धारा 409 के अंतर्गत आरोप लगाने के लिए जांच अधिकारी के समक्ष कोई अवसर या सामग्री नहीं थी। **एन. राघवेंद्र बनाम आंध्र प्रदेश राज्य** के वाद में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का संदर्भ दिया जा सकता है, **सीबीआई ने 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 1232** में रिपोर्ट की, जिसमें न्यायालय द्वारा प्रस्तर 41 से 45 में निम्नलिखित टिप्पणियां की गई हैं:

> 41. भ.दं.सं. की धारा 409 का सम्बन्ध किसी लोक सेवक या बैंकर

द्वारा उसे सौंपी गई संपत्ति के आपराधिक न्यासभंग से है। अभियोजन पक्ष पर यह सिद्ध करने का दायित्व है कि अभियुक्त, लोक सेवक या बैंकर को वह संपत्ति सौंपी गई थी जिसका हिसाब देने के लिए वह विधिवत बाध्य है और उसने आपराधिक न्यासभंग किया है। (देखें: सदुपति नागेश्वर राव बनाम आंध्र प्रदेश राज्य9)।

42. सार्वजनिक संपत्ति को सौंपना और उसका बेईमानी से दुरुपयोग या धारा 405 के अंतर्गत वर्णित युक्ती से उपयोग करना भारतीय दंड संहिता की धारा 409 के अंतर्गत दंडनीय अपराध बनाने के लिए अनिवार्य आधार है। आपराधिक न्यासभंग ' की परिभाषा भ.दं.सं. की धारा 405 के तहत दी गई है, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह प्रावधान है, जो कोई, किसी भी तरह से संपत्ति, या संपत्ति पर किसी भी प्रभुत्व के साथ स्थापित किया गया है, उस संपत्ति का बेईमानी से दुरुपयोग करता है या उसे अपने उपयोग में लाता है, या बेईमानी से उस संपत्ति का उपयोग करता है या उसका निपटान करता है, कानून के किसी भी निर्देश का उल्लंघन करते हुए जिसमें उस तरह के विश्वास को पूर्ण करने की युक्ति को निर्धारित किया गया है, या कोई भी कानूनी अनुबंध, व्यक्ति या निहित है इत्यादि 9 (2012) 8 एससीसी 547 को आपराधिक न्यासभंग का दोषी माना जाएगा। इसलिए, भ.दं.सं. की धारा 405 को आकर्षित करने के लिए, निम्नलिखित तत्वों को पूरा किया जाना चाहिए:

(i) किसी व्यक्ति को संपत्ति या संपत्ति पर कोई प्रभुत्व सौंपना;

ii) उस व्यक्ति ने बेईमानी से उस संपत्ति का दुरुपयोग किया है या उसे अपने उपयोग में परिवर्तित कर लिया है;

(iii) या वह व्यक्ति किसी कानून या कानूनी अनुबंध के निर्देश का उल्लंघन करते हुए उस संपत्ति का बेईमानी से उपयोग या निपटान कर रहा है या जानबूझकर किसी अन्य व्यक्ति को ऐसा करने दे रहा है।

43. यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि भ.दं.सं. की धारा 405 में प्रयुक्त महत्वपूर्ण शब्द 'बेईमानी से' है और इसलिए, यह आपराधिक मन:स्तिथि के अस्तित्व को पहले से ही मानता है। दूसरे शब्दों में, किसी व्यक्ति को सौंपी गई संपत्ति को बिना किसी दुरुपयोग के अपने पास रखना आपराधिक न्यासभंग के दायरे में नहीं

आ सकता। जब तक कि अभियुक्त द्वारा विधि या अनुबंध का उल्लंघन करते हुए कुछ वास्तविक उपयोग न किया गया हो, बेईमान के आशय के साथ, तब तक कोई आपराधिक न्यासभंगनहीं होता है। दूसरी महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति 'गलत तरीके से विनियोजन ' है जिसका अर्थ है अनुचित युक्ति से किसी के उपयोग के लिए प्रथक रखना और स्वामी को इससे वंचित करना।

44. जैसे ही भ.दं.सं. की धारा 405 के अर्थ में 'आपराधिक न्यासभंग ' के दो मूलभूत तत्व सिद्ध हो जाते हैं, और यदि ऐसा आपराधिक न्यासभंग किसी लोक सेवक या बैंकर, व्यापारी या एजेंट द्वारा किया जाता है, तो आपराधिक न्यासभंग का उक्त अपराध, भ.दं.सं. की धारा 409 के अंतर्गत दंडनीय है, जिसके लिए यह सिद्ध करना आवश्यक है कि:

(i) अभियुक्त लोक सेवक या बैंकर, व्यापारी या एजेंट होना चाहिए;

(ii) उसे ऐसी क्षमता में संपत्ति सौंपी गई होगी; और

(iii) उसने ऐसी संपत्ति के संबंध में न्यासभंग किया होगा।

45. तदनुसार, जब तक यह सिद्ध नहीं हो जाता कि अभियुक्त, लोक सेवक या बैंकर आदि को वह संपत्ति सौंपी गई थी जिसका हिसाब देने के लिए वह कर्तव्यबद्ध है और ऐसे व्यक्ति ने आपराधिक न्यासभंग किया है, तब तक भ.दं.सं. की धारा 409 लागू नहीं होगी। 'संपत्ति का सौंपना' एक व्यापक एवं सामान्य अभिव्यक्ति है।जबकि यह दर्शाने का प्रारंभिक दायित्व अभियोजन पक्ष पर है कि संबंधित संपत्ति अभियुक्त को 'सौंपी' गई थी, तथापि यह साबित करना आवश्यक नहीं है कि संपत्ति सौंपने या उसके दुरुपयोग की वास्तविक प्रणाली क्या था। जहां 'सौंपना' अभियुक्त द्वारा स्वीकार किया जाता है या अभियोजन पक्ष द्वारा स्थापित किया जाता है, तब यह सिद्ध करने का भार अभियुक्त पर आ जाता है कि सौंपी गई संपत्ति के संबंध में दायित्व विधिक और संविदात्मक रूप से स्वीकार्य तरीके से पूरा किया गया था।

17. यह न्यायालय सामान्य परिस्थितियों में प्रथम सूचना रिपोर्ट के गुण-दोष पर विचार नहीं करता है, क्योंकि इसमें लगाए गए आरोप *प्रथम दृष्टया* संज्ञेय अपराध प्रतीत होते हैं, तथापि, असाधारण परिस्थितियों में न्यायालय का यह दायित्व है कि वह इस पर से पर्दा हटाए, ताकि किसी अभियुक्त के विरुद्ध आपराधिक अभियोजन द्वेषपूर्ण और असद्भाव पूर्वक न चलाया जाए।

18. अभिलेखों के अवलोकन से यह पता चलता है कि यद्यपि 8.6.2020 को आयोजित

कार्यकारी परिषद की बैठक में अपनाए गए प्रस्ताव को कुलपति द्वारा दी गई स्वीकृति के अनुसरण में 18.2.2021 को प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी, जैसा कि रजिस्ट्रार द्वारा केजीएमयू के प्रॉक्टर को लिखे गए **12.6.2020** के पत्र से स्पष्ट है। जिसमें यह उल्लेख किया गया है कि, प्रथम परिनियम, 2011 के खंड 2.09 (13) के प्रावधानों के आलोक में विश्वविद्यालय की ओर से एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के लिए कुलपति की स्वीकृति प्रदान की गई है, लेकिन न तो दिनांक **8.6.2020** की बैठक में अपनाए गए प्रस्ताव में और न ही रजिस्ट्रार द्वारा **12.6.2020** को प्रॉक्टर को लिखे गए पत्र में किसी भी संदिग्ध के नाम का उल्लेख किया गया है जो अपराध की जांच के लिए प्रथम दृष्टया दोषी हो सकता है। प्रस्ताव में केवल इतना वर्णित किया गया है कि कार्यकारी परिषद द्वारा यह संकल्प लिया गया है कि 300 लैपटॉप की खरीद के विषय में **आईटी सेल** द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया में हुई प्रशासनिक/वित्तीय अनियमितताओं के लिए प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की जाए तथा पुलिस प्रशासन को सभी आवश्यक सहायता प्रदान की जाए। केजीएमयू के प्रॉक्टर को संबोधित दिनांक **12.6.2020** का रजिस्ट्रार का पत्र इस प्रकार है:

पत्र सं0-3086/जी0ए0 एवं सम्पत्ति/2020

दिनांक 12.06.2020

सेवा में,

कुलानुशासक,

किंग जार्ज चिकित्सा विश्वविद्यालय उ0 प्र0,

लखनऊ।

महोदय,

कृपया मा0 कार्यपरिषद की बैठक दिनांक 08.06.202 के **Any Other Agenda (15) - Item No - 01** पर किये गए विनिश्चय का सन्दर्भ ग्रहण करने की कृपा करे जिसकी छायाप्रति संलग्न है।

कृपया उक्त के सन्दर्भ में मा0 कुलपति जी के अनुमोदनोपरान्त किंग जार्ज चिकित्सा विश्वविद्यालय उ0प्र0, लखनऊ की प्रथम परिनियमावली 2011 के परिनियम 2.09(13) तीन में निहित प्राविधान के अंतर्गत विश्वविद्यालय की ओर से प्राथमिकी दर्ज कराने की कृपा करें।

संलग्नक-यथोपरि।

भवदीय

ह0 अपठनीय

12.6.2020

(आशुतोष कुमार द्विवेदी)

कुलसचिव

19. हालांकि, चीफ प्रॉक्टर प्रो0 आर0ए0एस0 कुशवाहा द्वारा उसी दिन अर्थात् **12.6.2020** को प्रभारी निरीक्षक, कोतवाली चौक, लखनऊ को लिखे पत्र में उल्लेख किया गया है कि दिनांक 8.6.2000 को आयोजित बैठक के एजेंडे में आये प्रस्ताव को कुलपति द्वारा अनुमोदित किये जाने के पश्चात विश्वविद्यालय की ओर बिना किसी का और का नाम लिये, श्री आशीष वाखलू के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करायी जाये, जबकि प्रस्ताव में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि 300 लैपटॉप की खरीद में **आईटी सेल** द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया में प्रशासनिक/वित्तीय अनियमितताएं हैं, अतः प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करायी जाये। यद्यपि याचिकाकर्ता आईटी

अनुवादित

सेल का सदस्य सचिव था, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकरण में आईटी सेल में कार्यरत अन्य कर्मियों को सम्मिलित करते हुए, कोई प्रारंभिक जांच कराए बिना ही, उनकी स्थिति और बेदाग पिछली सेवाओं को अनदेखा करते हुए उन्हें ही मुख्य दोषी बता दिया गया है।

20. ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकरण में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने का निर्णय जल्दबाजी में लिया गया, जिसमें केवल एक याचिकाकर्ता का नाम था, जिससे विश्वविद्यालय अधिकारियों की अन्तश्चेतना को ठेस पहुंची और 27.6.2020 को कार्यकारी परिषद की एक और बैठक आयोजित की गई। जिसमें एक और प्रस्ताव पारित किया गया कि इस प्रकरण की जांच के लिए फोरेंसिक (हस्तलेखन विशेषज्ञ), आईटी/साइबर विशेषज्ञ, सेवानिवृत्त पुलिस अधिकारी, सेवानिवृत्त न्यायाधीश, वित्त/लेखा परीक्षा क्षेत्र के प्रशासनिक अधिकारियों जैसे बाहरी विशेषज्ञों की एक जांच समिति गठित की जाए, जिससे आवश्यक कार्रवाई के लिए विस्तृत रिपोर्ट तैयार की जा सके। समिति को अपनी रिपोर्ट यथाशीघ्र, अधिमानतः तीन महीने के भीतर प्रस्तुत करनी थी।

21. तदनुसार, संबंधित पुलिस स्टेशन के प्रभारी निरीक्षक (प्रभारी निरीक्षक) को सूचित किया गया कि 27.6.2020 को कार्यकारी परिषद की उत्तरवर्ती बैठक में विषय पर **पुनर्विचार** किया गया था और एक नया प्रस्ताव अपनाया गया था और यह कि समिति की अनुशंसा प्राप्त होने और कार्यकारी परिषद द्वारा निर्णय लिए जाने के बाद ही हस्ताक्षरकर्ता (प्रो. आर.ए.एस. कुशवाहा, मुख्य प्रॉक्टर) के कार्यालय द्वारा आगे की कोई कार्रवाई सुनिश्चित करना संभव होगा।

22. उपरोक्त दिग्दर्शन में, यह स्पष्ट है कि मामले में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करते समय, विश्वविद्यालय ने याचिकाकर्ता को संदिग्ध के रूप में फंसाने से पहले विशेषज्ञों का परामर्श और ऐसे विषयो से जुड़े अधिकारियों की राय लेना उचित नहीं समझा तथा बिना तैयारी के और अनमनेपन से याचिकाकर्ता को फंसाना सुविधाजनक समझा और जब उन्हें आवश्यकता महसूस हुई एवं दिनांक**27.6.2020** को कार्यकारी परिषद की बैठक बुलाई गई तब तक याचिकाकर्ता को, संपूर्ण अनियमितता, यदि कोई हो, को मुख्य आरोपी के रूप में प्रचारित किया जा चुका था यद्यपि, अभिलेख से यह स्पष्ट है कि अपने कर्तव्य की परिधि में उन्होंने लैपटॉप की खरीद में भाग लिया था तथा प्रासंगिक दिशा-निर्देशों और प्रचलित पद्धति के अनुरूप लेन-देन में पूर्ण पारदर्शिता बनाए रखने का प्रयास किया था।

23. हम इस तथ्य पर भी ध्यान दे सकते हैं कि किसी भी प्रशासनिक या वित्तीय अनियमितता के लिए, विश्वविद्यालय को अनुशासनात्मक कार्यवाही प्रारंभ करने की अनुमति है, जिसे सामान्यतः आपराधिक कार्यवाही द्वारा प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता है, लेकिन तत्काल विषय में, मुख्य प्रॉक्टर की ओर से 12.6.2020 को लिखे पत्र में याचिकाकर्ता को नामित करने में की गई शीघ्रता स्पष्ट रूप से किसी परोक्ष अभिप्राय से प्रेरित थी, जो विधि की प्रक्रिया के दुरुपयोग के अतिरिक्त कुछ नहीं दर्शाती है।

24. प्रश्नगत प्रथम सूचना रिपोर्ट को समझने के लिए कुछ तथ्यों को इंगित करना आवश्यक है, जैसे कि सरकार की डिजिटलीकरण नीति के

अनुवादित

अंतर्गत वर्ष **2010** से ऑनलाइन परीक्षा आयोजित करने की प्रक्रिया जारी थी, जिसे लंबी मैनुअल प्रक्रिया को कम करने और साथ ही इस प्रक्रिया में होने वाले व्यय को कम करने के लिए आवश्यक माना गया था। परीक्षाओं के संचालन में सटीकता और पारदर्शिता बनाए रखने में भी ऑनलाइन परीक्षा की प्रक्रिया लाभदायक रही। उपरोक्त पृष्ठभूमि में विश्वविद्यालय की सूचना प्रौद्योगिकी की एक बैठक दिनांक **13.8.2014** को आयोजित की गई थी, जिसमें कुलपति ने कहा था कि विश्वविद्यालय की सूचना प्रौद्योगिकी समिति को भी पूर्णतः कंप्यूटर आधारित परीक्षा प्रणाली की दिशा में काम करने की आवश्यकता है, जहां छात्र कंप्यूटर स्क्रीन पर प्रश्नों के उत्तर देंगे और उनकी परीक्षा के अंत में परिणाम घोषित किया जाएगा, जिसमें एक बैठक में 300 छात्रों की उपस्थिति की व्यवस्था होगी। बैठक के विवरण को वार्षिक रिपोर्ट का अंश बनाया गया, जिस पर विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद द्वारा विधिवत विचार किया गया तथा उसका समाधान किया गया।

25. दिनांक 21.8.2015 को सहायक लेखाकार ने संबंधित पत्रावली पर अंकित किया कि चिकित्सा शिक्षा विभाग ने दिनांक 15.7.2015 के अपने पत्र द्वारा निर्देश दिया था कि कम्प्यूटर विश्वविद्यालय के आंतरिक कोष से क्रय किये जा सकते हैं तथा कुलपति द्वारा परीक्षा कोष से क्रय का अनुमोदन किया जा सकता है। **21.8.2015** को ही विश्वविद्यालय के वित्त अधिकारी ने परीक्षा कोष से कम्प्यूटर क्रय करने के लिए अपनी सहमति इस शर्त के साथ दे दी, कि खरीद न्यूनतम उद्धृत मूल्य पर की जाए। उक्त प्रस्ताव को कुलपति ने **28.8.2015** को विधिवत अनुमोदित कर दिया था।

26. कुलपति के अनुमोदन के अनुसरण में, आईटी सेल के सदस्य सचिव होने के नाते याचिकाकर्ता ने 11.9.2015 को मेसर्स अपट्रॉन पावरट्रॉनिक्स, जो एक अधिकृत सरकारी नोडल एजेंसी है, को 300 लैपटॉप खरीदने के लिए आपूर्ति आदेश जारी किया, क्योंकि उसने सबसे कम कीमत उद्धृत की थी। 18.1.2016 को मेसर्स अपट्रॉन ने रजिस्ट्रार को संबोधित बिक्री चालान के विरुद्ध विश्वविद्यालय को लैपटॉप वितरित किए, जो प्राप्तकर्ता भी थे और विश्वविद्यालय की ओर से क्रय करने और खेप प्राप्त करने और उसे संबंधित विभागों को अग्रेषित करने के लिए भी सक्षम थे। रजिस्ट्रार ने खेप को आईटी सेल को भेज दिया जिसे याचिकाकर्ता ने सदस्य सचिव होने के नाते विधिवत प्राप्त किया।

27. याचिकाकर्ता ने 11.2.2016 के पत्र के माध्यम से कुलपति को ऑनलाइन परीक्षाओं के लिए 300 लैपटॉप खरीदने की जानकारी दी, जो परीक्षा समिति की सिफारिशों और निर्देशों के अनुसार था। इसके बाद परीक्षा नियंत्रक प्रो. ए.के. सिंह और अतिरिक्त परीक्षा नियंत्रक डॉ. गिरीश चंद्रा ने लैपटॉप की आपूर्ति के लिए **31.3.2016** को चेक के माध्यम से **1,60,34,100/-** रुपये का भुगतान किया।

28. यह प्रस्तुत किया गया है कि दिनांक **13.4.2016** को विश्वविद्यालय के ऑनलाइन परीक्षा सॉफ्टवेयर का परीक्षण पांच वरिष्ठ

प्रोफेसरों द्वारा किया गया था तथा परीक्षण सफल होने पर तदनुसार विश्वविद्यालय प्राधिकारियों को इसकी सूचना दी गई थी। इसके बाद याचिकाकर्ता ने 21.1.2017 को कुलपति और परीक्षा नियंत्रक के साथ-साथ मेडिसिन संकाय के डीन को ईमेल के माध्यम से सूचित किया कि नेत्र विज्ञान में पेपरलेस परीक्षा 25.1.2017 के लिए निर्धारित की गई थी। इसके बाद कुलपति के अनुमोदन के बाद परीक्षा नियंत्रक द्वारा ही परीक्षाएं आयोजित की गईं।

29. इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि उपरोक्त सम्पूर्ण अवधि के दौरान अर्थात् आपूर्ति के आदेश की तिथि से लेकर जांच के आयोजन तक कोई प्रश्न नहीं उठाया गया तथा सभी औपचारिकताएं सक्षम प्राधिकारियों के अनुमोदन से पूरी की गईं। हालांकि, **29.5.2017** को आयोजित एक बैठक में कार्यकारी परिषद द्वारा एक एजेंडा पर विचार किया गया था कि आधारिक संरचना की कमी और एमसीआई/डीसी मानदंडों के अनुसार **केजीएमयू में ऑनलाइन परीक्षा आयोजित करना संभव नहीं था, इसलिए, यह निर्णय लिया जा सकता है कि क्या उक्त लैपटॉप विश्वविद्यालय/आईटी सेल के विभिन्न प्रशासनिक कार्यालयों और विभागों को वितरित किए जा सकते हैं जहां भी उनकी आवश्यकता है अन्यथा वे अप्रचलित और अनुपयोगी हो सकते हैं।** उल्लेखनीय है कि एजेंडा की शुरुआत इस पंक्ति से होती है कि *'केजीएमयू के तत्कालीन माननीय कुलपति के अनुमोदन से आईटी सेल ने 300 लैपटॉप खरीदे'*। समिति ने विभिन्न प्रशासनिक कार्यालयों को लैपटॉप वितरित करने का संकल्प लिया और साथ ही इन लैपटॉपों की आवश्यकता, खरीद तथा ऑनलाइन परीक्षाओं के संचालन के लिए केसीआई/डीसीआई मानदंडों के मामले पर विचार करने के लिए तीन सदस्यीय समयबद्ध जांच समिति का गठन किया। **नीतिगत निर्णय में यह परिवर्तन लैपटॉप की खरीद के संबंध में किसी भी शिकायत के बिना लिया गया था और एजेंडे में ही यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया था कि लैपटॉप तत्कालीन माननीय कुलपति के अनुमोदन से खरीदे गए थे।** समिति ने 6.6.2020 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें कहा गया कि जांच समिति को उपलब्ध कराए गए अभिलेख में न्यायोचित प्रस्ताव, विस्तृत परियोजना रिपोर्ट, कार्यकारी परिषद और परीक्षा समिति का अनुमोदन नहीं पाया गया। समिति ने यह भी पाया कि केजीएमयू अधिनियम/संविधि के साथ-साथ एमसीआई द्वारा स्नातक और स्नातकोत्तर छात्रों के लिए जारी किए गए स्नातक चिकित्सा शिक्षा विनियमावली, 1997 और स्नात्कोत्तर चिकित्सा शिक्षा विनियमावली, 2000 में, ऑनलाइन परीक्षा आयोजित करने के लिए दिशानिर्देशों का कोई उल्लेख नहीं है।

30. तत्पश्चात, मुख्य प्रॉक्टर, प्रो0 आर0ए0एस0 कुशवाहा द्वारा दिनांक 12.6.2020 को प्रभारी निरीक्षक, कोतवाली चौक, लखनऊ को लिखे गए पत्र के अनुसरण में, याचिकाकर्ता के विरुद्ध आई.पी.सी. की धारा 409, 420 के अंतर्गत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई।

31. इस स्तर पर प्रथम संविधि, 2011 के कुछ प्रासंगिक प्रावधानों अर्थात खंड 2.03(18) और

अनुवादित

खंड 2.05(12) एवं 2.05(20) पर ध्यान देना लाभदायक होगा, जिन्हें नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"वित्त अधिकारी

2.03 (18) वित्त अधिकारी विश्वविद्यालय के खातों की सतत आंतरिक लेखापरीक्षा के संचालन की व्यवस्था करेगा, तथा ऐसे बिलों की पूर्व-लेखापरीक्षा करेगा, जो उस संबंध में किसी स्थायी आदेश के अनुसार अपेक्षित हो। तथापि, नियंत्रक परीक्षा अनुभाग के गोपनीय अनुभाग के खातों की लेखापरीक्षा नहीं की जाएगी।

परीक्षा नियंत्रक

2.05 (12) परीक्षा नियंत्रक विश्वविद्यालय परीक्षाओं के संचालन के लिए कार्यप्रणाली, नवाचार और प्रक्रियाओं को अपनाएगा, जिन्हें परीक्षा समिति के परामर्श के बाद कुलपति के अनुमोदन के तहत समय-समय पर शुरू और कार्यान्वित किया जाना आवश्यक हो सकता है।

(20) परीक्षा नियंत्रक, परीक्षाओं से संबंधित अपने द्वारा की गई सभी कार्रवाइयों के लिए सीधे कुलपति के प्रति उत्तरदायी होगा।

32. हमें यह देखकर निश्चित रूप से निराशा हुई है कि प्रशासन ने ऑनलाइन परीक्षा की उन्नत तकनीक को सुव्यवस्थित करने के बजाय अपनी जानकारी में सही या गलत के आधार पर नीतिगत निर्णय को उलट दिया है। इसके बाद से प्रशासन परीक्षा आयोजित करने के पुराने तरीके का बचाव करने के लिए लगातार आगे आया है, जो उन्नत प्रौद्योगिकी और डिजिटलीकरण के दृष्टिगत, निश्चित रूप से पर्यावरण के लिए अनुकूल नहीं है। **नीतिगत निर्णय, अर्थात् कागजी कार्रवाई को समाप्त करने तथा परीक्षा को कागज रहित बनाने के मामले में मतभेद ने विवाद को प्रतिशोध की पराकाष्ठा पर पहुंचा दिया है। जिससे नए प्रशासन द्वारा पूर्व नीतिगत निर्णय को पलटने को उचित ठहराया जा सके।** इसमें आंतरिक हितों के टकराव के पर्याप्त संकेत हैं और शैक्षणिक संस्थान को इस कारण से अविचारपूर्वक विधिक खर्च का नुकसान नहीं उठाना चाहिए। हम इस तथ्य से निश्चित रूप से अनभिज्ञ नहीं हैं कि ऑनलाइन परीक्षा प्रक्रिया से चिकित्सा शिक्षा के मानकों में सकारात्मक बदलाव आया होगा और ऑनलाइन परीक्षा नीति में कुछ भी गलत नहीं था।

33. हमारे सामने यह प्रश्न उठता है कि क्या एक प्रशासन के नीतिगत निर्णय में बदलाव और उत्तरवर्ती प्रशासन द्वारा उसे उलटना, आपराधिक अभियोजन का विषय हो सकता है और जब कार्यकारी परिषद ने 27.6.2020 को अपने निर्णय में मामले को एक अलग कोण से देखने का संकल्प लिया था, तो आगे की जांच कैसे हो सकती है। जांच, जिसे अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत करके एक से अधिक बार समाप्त करने का प्रयास किया गया था, उसमें पर्यवेक्षण प्राधिकारी द्वारा हस्तक्षेप किया गया प्रतीत होता है, जिसके लिए कोई भी कारण हमारे संज्ञान में नहीं लाया गया है और इसके विपरीत, रातों-रात अंतिम रूप दी गई एक पुलिस रिपोर्ट संबंधित न्यायालय के समक्ष

आधे-अधूरे मन से प्रस्तुत की गई है, जैसा कि जांच अधिकारी द्वारा अपनाए गए रुख से स्पष्ट है, जिसने पर्यवेक्षण अधिकारी को किसी भी तरह से आश्चर्यचकित नहीं किया है।

34. हमारी सुविचारित राय में, इस पूरी प्रक्रिया में कानून की पवित्रता का अभाव है। शीघ्रता में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करना और 27.6.2020 को पारित कार्यकारी परिषद के प्रस्ताव को किसी भी आपराधिक आशय का पता लगाने की अनुमति दिए बिना, जांच एजेंसी निष्पक्ष रूप से काम करने में विफल रही, जिससे हमें इस बात में कोई संदेह नहीं रह जाता कि पूरी कार्रवाई विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग करने के अलावा और कुछ नहीं है।

35. ऑनलाइन परीक्षा आयोजित करने का नीतिगत निर्णय स्पष्ट रूप से एक सामूहिक निर्णय था और इसमें किसी भी प्रकार की बेईमानी या आपराधिक मंशा नहीं दिखती है, जिसे किसी एक व्यक्ति के विरुद्ध आरोपित किया जा सकता है। उत्तरवर्ती प्रशासन द्वारा ऐसे नीतिगत निर्णय को पलटने पर, जिसके परिणामस्वरूप ऐसे उपकरणों को अनुपयोगी होने से बचाने के लिए कार्यालयों में लैपटॉप वितरित किए गए, किसी भी तरह से यह भारतीय दंड संहिता की धारा 409 के अंतर्गत अपराध नहीं होगा, जो ऑनलाइन परीक्षा प्रक्रिया को सम्पन्न कराने में संयुक्त रूप से या अलग-अलग रूप से कर्तव्य निभाने वाले किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध लगाया जा सकता है। जांच अधिकारी और पर्यवेक्षण अधिकारी ने स्पष्ट रूप से कार्यवाही को अनुचित रीति से याचिकाकर्ता के विरूद्ध अत्यधिक उत्पीड़न के दृष्टिकोण से संचालित किया है और यह स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि यह उस उद्देश्य की पूर्ति नहीं करता है जिसके लिए आपराधिक विधि के अंतर्गत आपराधिक विषय दर्ज करने की गुंजाइश है। ईमानदारी की कमी को व्यक्तिगत प्रतिशोध का हिसाब चुकता करने के लिए आधारहीन रीति से खींचा गया है।

36. इस स्तर पर राज्य और परिवादकर्ता (विश्वविद्यालय) ने तर्क दिया है कि याचिकाकर्ता के विरूद्ध पुलिस रिपोर्ट दर्ज की गई है और उसके बाद सक्षम न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया गया है, इसलिए इस न्यायालय के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत अधिकारिता का प्रयोग करने की कोई गुंजाइश नहीं है।

37. राज्य के विद्वान अधिवक्ता और परिवादकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों को जब सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ***मेसर्स पेप्सी फूड्स लिमिटेड और अन्य बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट और अन्य*** के वाद में दिए गए निर्णय के आलोक में परखा जाता है, जिसे ***एआईआर 1998 एससी 128*** में रिपोर्ट किया गया था, तो यह तर्क निरस्त हो जाता है जब हम न्यायालय की निम्नलिखित टिप्पणी पर विचार करते हैं:

> "जिस नामावली के अंतर्गत याचिका प्रस्तुत की गई है, वह पूरी तरह प्रासंगिक नहीं है और यह न्यायालय को उसके अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने से नहीं रोकता है, अन्यथा जो उसके पास है, जब तक कि कोई विशेष प्रक्रिया निर्धारित न हो, जो प्रक्रिया अनिवार्य है। यदि वर्तमान जैसे

अनुवादित

किसी विषय में न्यायालय पाता है कि अपीलकर्ता अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उसके अधिकार क्षेत्र का उपयोग नहीं कर सकते, तो न्यायालय निश्चित रूप से याचिका को संहिता के अनुच्छेद 227 या धारा 482 के अंतर्गत मान सकता है।

हालांकि, यह नहीं भूलना चाहिए कि संहिता में पुनरीक्षण और अपील के प्रावधान उपस्थित हैं, लेकिन कभी-कभी तत्काल राहत के लिए संहिता की धारा 482 या अनुच्छेद 227 का सहारा लेना पड़ सकता है, जिससे अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा की गई कुछ गंभीर त्रुटियों को ठीक किया जा सके। यद्यपि वर्तमान याचिका उच्च न्यायालय में अनुच्छेद 226 और 227 के तहत दायर की गई है, फिर भी इसे संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत ही माना जा सकता है"।

38. **(2013) 5 एससीसी 762** में रिपोर्ट किया गया **विनय त्यागी बनाम इरशाद अली** के वाद में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का संदर्भ लेना भी लाभदायक हो सकता है, जिसमें निम्नलिखित प्रस्तर जो 'आगे की जांच' से संबंधित हैं, प्रासंगिक हैं और उन्हें नीचे उद्धृत किया गया है:

22. 'आगे की जांच' वह है जहां जांच अधिकारी धारा 173(8) के अनुसार न्यायालय के समक्ष अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत करने के बाद आगे मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य प्राप्त करता है। यह शक्ति कार्यपालिका के पास निहित है। यह पिछली जांच की निरंतरता है और इसलिए इसे 'आगे की जांच' के रूप में समझा और वर्णित किया जाता है। ऐसी जांच का दायरा मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य की खोज तक ही सीमित है। इसका उद्देश्य न्यायालय के समक्ष सही तथ्य लाना है, भले ही वे प्राथमिक जांच के बाद के चरण में खोजे गए हों। इसे सामान्यतः 'पूरक रिपोर्ट' के रूप में वर्णित किया जाता है।

'पूरक रिपोर्ट' सही अभिव्यक्ति होगी, क्योंकि अनुवर्ती जांच का उद्देश्य और आशय सशक्त पुलिस अधिकारी द्वारा की गई प्राथमिक जांच को पूरक बनाना है। आगे की जांच की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इससे जांच एजेंसी द्वारा की गई प्रारंभिक जांच को प्रत्यक्ष या निहित रूप से समाप्त करने का प्रभाव नहीं पड़ता है। यह एक तरह से पिछली जांच की ही निरंतरता है। इसका आधार नए साक्ष्यों की खोज और उसी अपराध तथा उससे संबंधित घटनाओं की श्रृंखला की निरंतरता है। दूसरे शब्दों में, इसे 'पुनः जांच', 'नवीनता पूर्वक' या 'नए सिरे से' जांच के बिल्कुल विपरीत समझा जाना चाहिए।

23. हालांकि, 'नई जांच', 'पुनः जांच' या 'नए सिरे से जांच' के विषय में न्यायालय का एक निश्चित आदेश होना चाहिए। न्यायालय के आदेश में

अनुवादित

स्पष्ट रूप से यह बताया जाना चाहिए कि क्या पिछली जांच, अभिलिखित किए जाने वाले कारणों से, कार्रवाई करने में असमर्थ है। न तो जांच एजेंसी और न ही मजिस्ट्रेट के पास 'नई जांच' का आदेश देने या कराने का कोई अधिकार है। ऐसा मुख्य रूप से इसलिए है क्योंकि यह संहिता की योजना के विरुद्ध होगा। यह आवश्यक है कि उच्चतर न्यायपालिका द्वारा पारित 'नयी'/'नए सिरे से' जांच के आदेश के साथ हमेशा पहले से की गई जांच की नियति के बारे में भी विशिष्ट निर्देश दिया जाना चाहिए। ऐसे कुछ ही गिने चुने विषय हैं, जिनमें इस तरह के निर्देश जारी किए जा सकते हैं। यह हमारे आपराधिक न्यायशास्त्र के एक मौलिक सिद्धांत पर आधारित है, किसी संदिग्ध या अभियुक्त का यह अधिकार है कि उसके विरूद्ध न्यायपूर्ण एवं निष्पक्ष जांच तथा सुनवाई हो। यह सिद्धांत भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 और 22 में निहित संवैधानिक जनादेश से निकलता है। जहां जांच प्रथम दृष्टया अनुचित, दूषित, दुर्भावनापूर्ण और बेईमानी से की गई हो, वहां न्यायालय ऐसी जांच को अपास्त कर देगी और नवीनता पूर्वक या नए सिरे से जांच का निर्देश दिया जाएगा और यदि आवश्यक हो तो किसी अन्य स्वतंत्र जांच एजेंसी से भी जांच कराई जाएगी। जैसा कि पहले ही विचार किया जा चुका है, यह एक व्यापक शक्ति है, इसलिए इसका प्रयोग संयम से किया जाना चाहिए। ऐसे विषयो में दुर्लभतम मामलों का सिद्धांत पूरी तरह लागू होगा। जब तक जांच की अनुचितता ऐसी न हो कि वह न्यायालय की न्यायिक अंतरात्मा को झकझोर दे, न्यायालय को ऐसे मामलों में हस्तक्षेप करने से बचना चाहिए, चाहे वह जांच को निरस्त करने की सीमा तक हो या फिर 'नई जांच' का निर्देश देने की सीमा तक।

24. सिद्धार्थ वशिष्ठ बनाम राज्य (दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र) [(2010) 6 एससीसी 1] के वाद में न्यायालय ने कहा कि यह न केवल जांच एजेंसी का उत्तरदायित्व है, बल्कि न्यायलयों का भी उत्तरदायित्व है कि वे सुनिश्चित करें कि जांच निष्पक्ष हो और विधि के अनुसार होने के अतिरिक्त, किसी भी प्रकार से किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता में बाधक न हो। आपराधिक विधि का एक समान रूप से लागू करने योग्य सिद्धांत, यह है कि जांच एजेंसी पर यह बड़ा उत्तरदायित्व है कि वह दूषित या अनुचित तरीके से जांच न करे। जांच से प्रथम दृष्टया पक्षपातपूर्ण मानसिकता का पता नहीं चलना चाहिए तथा दोषियों को विधि के परिधि में लाने के लिए हर संभव प्रयास किया जाना चाहिए, क्योंकि कोई भी व्यक्ति विधि से ऊपर नहीं है, चाहे उसका समाज में कितना भी पद या प्रभाव क्यों न हो।

अनुवादित

25. गुडालुरे एम.जे. चेरियन एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य [(1992) 1 एससीसी 397] में, इस न्यायालय ने यह सिद्धांत वर्णित किया कि ऐसे विषयों में जहां जांच पूरी होने के बाद आरोप पत्र प्रस्तुत कर दिए गए हैं और जांच को पुनः शुरू करने के लिए विलंभ से अनुरोध किया गया है, ऐसी जांच को किसी विशेष एजेंसी को सौंपे जाने पर सक्षम न्यायालय द्वारा सामान्यतः उसे अस्वीकार कर दिया जाता है, लेकिन फिर भी किसी विशेष स्थिति में पक्षों के बीच न्याय करने और जनता के मन में विश्वास पैदा करने के लिए ऐसे आदेश पारित करना आवश्यक हो सकता है।

26. इसके अलावा, आर.एस. सोढ़ी, एडवोकेट बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [1994 एससीसी सप. (1) 142] में, जहां एक पुलिस अधिकारी के विरूद्ध आरोप लगाए गए थे, न्यायालय ने जांच की विश्वसनीयता, जनता का विश्वास और न्याय के हित में जांच को सीबीआई को स्थानांतरित करने का आदेश दिया था। सामान्यतः, न्यायालय ऐसे अधिकार क्षेत्र का प्रयोग नहीं करेंगे, लेकिन 'सामान्यतः' शब्द का अर्थ सामान्य रूप से है और इसका प्रयोग वहाँ किया जाता है जहाँ अपवाद हो सकता है। इसका अर्थ है अधिकांश विषयो में, लेकिन हमेशा नहीं। 'सामान्यतः' में असाधारण या विशेष परिस्थितियाँ सम्मिलित नहीं हैं। दूसरे शब्दों में, यदि विशेष परिस्थितियां विद्यमान हों, तो न्यायालय अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए 'नए सिरे से जांच' का निर्देश दे सकता है, तथा यहां तक कि विषयों को उच्च अधिकार क्षेत्र वाले न्यायालयों को भी स्थानांतरित कर सकता है, जो ऐसे निर्देश पारित कर सकते हैं।

40. संहिता के प्रावधानों और पूर्वोक्त विभिन्न निर्णयों का विश्लेषण करने के बाद, हम संहिता की धारा 173(2) को धारा 173(8) और धारा 156(3) के साथ पढ़ने पर मजिस्ट्रेट की शक्तियों के संबंध में निम्नलिखित निष्कर्ष निकालेंगे:

40.1. मजिस्ट्रेट को पुलिस रिपोर्ट के आधार पर शुरू किए गए विषयों में 'पुनः जांच' या 'नए सिरे से जांच' (डी-नोवो) का निर्देश देने का कोई अधिकार नहीं है।

40.2. संहिता की धारा 173(6) के अधीन पुलिस रिपोर्ट दर्ज करने के बाद मजिस्ट्रेट को 'आगे की जांच' का निर्देश देने का अधिकार है।

40.3. उपरोक्त (2) में व्यक्त किया गया दृष्टिकोण भगवंत सिंह केस (उपरोक्त) में तीन

अनुवादित

न्यायाधीशों की पीठ द्वारा वर्णित किये गए विधि के सिद्धांत के अनुरूप है और इस प्रकार पूर्वता के सिद्धांत के अनुरूप है।

40.4. न तो संहिता की योजना और न ही इसमें कोई विशिष्ट प्रावधान मजिस्ट्रेट द्वारा ऐसे अधिकार क्षेत्र के प्रयोग पर रोक लगाता है। धारा 173(2) की भाषा को इतने प्रतिबंधात्मक रूप से नहीं समझा जा सकता कि मजिस्ट्रेट को ऐसी शक्तियों से वंचित किया जा सके, विशेष रूप से धारा 156(3) के प्रावधानों और धारा 173(8) की भाषा के संदर्भ में। वास्तव में, ऐसी शक्ति को धारा 173(8) की भाषा में ही पढ़ना होगा।

40.5. संहिता एक प्रक्रियात्मक दस्तावेज है, इसलिए इसे एक ऐसी रचना प्राप्त होनी चाहिए जो न्याय के विषय और विधायी उद्देश्य की प्राप्ति को आगे बढ़ाये। यह तर्क उचित नहीं है कि विधायिका ने रिपोर्ट दर्ज करने के बाद भी पुलिस को आगे की जांच करने की शक्ति प्रदान की, बल्कि इसका उद्देश्य न्यायालय की शक्ति को इस सीमा तक सीमित करना था कि जहां विषय के तथ्य और न्याय की मांग हो, वहां भी न्यायालय जांच एजेंसी को आगे की जांच करने का निर्देश नहीं दे सकता, जो वह स्वयं कर सकती है।

40.6. यह एक स्वामित्व प्रक्रिया रही है कि पुलिस को 'आगे की जांच' जारी रखने और पूरक आरोपपत्र दाखिल करने के लिए न्यायालय की अनुमति लेनी पड़ती है। इस दृष्टिकोण को इस न्यायालय ने कई निर्णयों में स्वीकारोक्ति दी है। यह इस तरह से उस दृष्टिकोण का समर्थन करता है जिसे हम वर्तमान विषय में अपना रहे हैं।"

39. न्यायालय का विचार **एआईआर 2019 एससी 210** में रिपोर्ट किया गया, **आनंद कुमार मोहत्ता एवं अन्य बनाम राज्य (दिल्ली सरकार), गृह विभाग एवं अन्य**, के वाद में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से समान रूप से समर्थित है और नीचे उद्धृत पैराग्राफ 27 से 30 का संदर्भ लिया जा सकता है:

> "27. हमारा मानना है कि वर्तमान विषय भजन लाल (उपरोक्त) के वाद में निर्णय के प्रस्तर 102 में निर्धारित

अनुवादित

1, 3 और 5वीं श्रेणी के अंतर्गत आता है। ऐसी स्थिति में, उच्च न्यायालय ने दं.प्र.सं. की धारा 482 के अंतर्गत प्रस्तुत अपीलकर्ताओं की याचिका को निरस्त करके गलती की। यह उच्च न्यायालय के लिए दं.प्र.सं. की धारा 482 के अंतर्गत अपनी अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करके प्रथम सूचना रिपोर्ट को निरस्त करने के लिए एक उपयुक्त विषय था।

28. यहां कर्नाटक राज्य बनाम एल. मुनीस्वामी एवं अन्य 1977 (2) एससीसी 699 में इस न्यायालय के वाक्यांश को याद रखना आवश्यक है, जो इस प्रकार हैं:

> "7. .....इस पूर्ण शक्ति के प्रयोग में, उच्च न्यायालय किसी कार्यवाही को निरस्त करने का अधिकार है यदि वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि कार्यवाही को जारी रखने की अनुमति देना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा या न्याय के उद्देश्यों के लिए यह आवश्यक है कि कार्यवाही को निरस्त कर दिया जाना चाहिए। सिविल और आपराधिक दोनों विषयों में उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को बचाने का उद्देश्य एक हितकारी सार्वजनिक उद्देश्य को प्राप्त करना है, जो यह है कि न्यायालय की कार्यवाही को उत्पीड़न या उत्पीड़न के शस्त्र के रूप में परिवर्तित करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। एक आपराधिक विषय में, एक कमजोर अभियोजन के पीछे छिपा हुआ प्रयोजन, उस सामग्री की प्रकृति जिस पर अभियोजन का आधार टिका हुआ है और इसी प्रकार की अन्य बातें उच्च न्यायालय द्वारा न्याय के हित में कार्यवाही के निरस्तीकरण को न्यायोचित करेंगी..... "

29. हम पाते हैं कि अभियोजन पक्ष दुर्भावनापूर्ण, असमर्थनीय और केवल अपीलकर्ताओं को परेशान करने का आशय रखता है। हम स्तब्ध हैं कि प्रतिवादी द्वारा सिविल कार्रवाई के माध्यम से एक करोड़ रुपये की जमा राशि को वापस पाने का कोई प्रयास नहीं किया गया ।

30. इसलिए, हमें अपीलकर्ताओं के विरूद्ध दर्ज प्रथम सूचना रिपोर्ट और चार्जशीट को निरस्त करने में कोई संकोच नहीं है। इसलिए, प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 0139/2014 दिनांक 20.08.2014 और चार्जशीट दिनांक 03.08.2018 को निरस्त किया जाता है।

अनुवादित

40. वर्तमान विषय के आवेदन में, हम अभिलेख से यह पाते हैं कि कार्यकारी परिषद ने **27.6.2020** को लिए अपने संकल्प में प्रथम सूचना रिपोर्ट के साथ आगे बढ़ने का आशय नहीं किया है, और विषय को विशेषज्ञों की राय के लिए भेजा गया है, जो अभी आनी शेष है। हम यह भी नोट कर सकते हैं कि निर्णय के पहले भाग में पुन: उद्धृत खंड 2.03(18) और 2.05(12) के आधार पर परीक्षा नियंत्रक द्वारा उचित अनुमोदन के साथ खर्च की गई गैर-लेखापरीक्षा योग्य निधि कथित रूप से एक वित्तीय चूक भी नहीं हो सकती है। हमारे सामने यह ऐसा कोई विषय नहीं है कि नीतिगत निर्णय में कोई गलती थी या विधि की किसी भी व्याख्या के अनुसार, **भ.दं.सं. की धारा 409** के तत्व, कुलपति द्वारा अनुमोदन के उपरांत भी गलत सिद्ध हुए हैं, और यह कि नीतिगत निर्णय को पलटने के परिणामस्वरूप आपराधिक अभियोजन अपरिहार्य हो गया है और विधि के अंतर्गत यही एकमात्र रास्ता है।

41. परिवादकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा **मेसर्स वी.एस. फार्मा लखनऊ एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य** में इस न्यायालय द्वारा आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या **17812/2015** में दिए गए खंडपीठ के निर्णय का उद्धरण दिया गया है, साथ **एआईआर 1987 ऑल 235** में रिपोर्ट किया गया, **अशोक कुमार दीक्षित बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य** के वाद में पूर्ण पीठ के निर्णय, जो है, पूरी तरह से अलग तथ्यों एवं परिस्थितियों पर आधारित हैं तथा इनका वर्तमान विषय से कोई संबंध नहीं है।

42. इस प्रकार यह आपत्ति कि विषय को **दं.प्र.सं. की धारा 482** के अंतर्गत याचिका में उठाया जाना चाहिए था, अपील के लिए मान्य नहीं है और विफल हो जाती है। एक बार जब याचिकाकर्ता संविधान के **अनुच्छेद 226** के अंतर्गत तत्परता के साथ इस न्यायालय की शरण में आया है, तो याचिकाकर्ता द्वारा की गई प्रार्थना को **अनुच्छेद 227** या **दं.प्र.सं. की धारा 482** का आधार लेकर ढाला और उस पर विचार किया जा सकता है, क्योंकि ये उच्च न्यायालय की स्वयं में सहवर्ती शक्तियां हैं। समुचित मामलों में पूर्ण न्याय प्रदान करने के लिए **अनुच्छेद 226, अनुच्छेद 227** या **दं.प्र.सं. की धारा 482** के अंतर्गत प्रदत्त शक्तिया, इस न्यायालय के पर्यवेक्षी या अंतर्निहित अधिकारिता द्वारा सुदृढ़ हो जाती है, जिसका संयम से प्रयोग किया जाना चाहिए।

43. जैसा कि ऊपर अभिलिखित किया गया है, प्रथम सूचना रिपोर्ट और जांच की विषय-वस्तु पर विचार करने के बाद, प्रश्नगत प्रथम सूचना रिपोर्ट और उसके अनुसरण में की गई जांच, विधि की प्रक्रिया के दुरुपयोग और सत्ता के दुर्भावनापूर्ण प्रयोग द्वारा निर्देशित है, जो विधि की दृष्टि में टिक नहीं पाती है और इसे निरस्त किया जाना चाहिए।

44. तदनुसार, याचिकाकर्ता के विरुद्ध थाना चौक, जिला लखनऊ में भ.दं.सं. की धारा 409, 420 के अंतर्गत केस क्राइम नंबर 56/2021 के रूप में पंजीकृत दिनांक 18.2.2021 की प्रथम सूचना रिपोर्ट और साथ ही भ.दं.सं. की धारा 409 सहपठित धारा 120-बी और 201 के अंतर्गत उसके अनुसरण में प्रस्तुत पुलिस रिपोर्ट, जिसमें उस पर आधारित सक्षम न्यायालय द्वारा जारी किया समन, यदि कोई

अप्रमाणित

हो, को निरस्त किया जाता है। कार्यकारी परिषद द्वारा 27.6.2020 के अनुवर्ती संकल्प के अनुसार नए सिरे से विचार करने के बाद, यदि ऐसा चुना जाता है, तो उपर्युक्त टिप्पणियों के आलोक में सम्पूर्ण विषय पर विचार किया जा सकता है और तदनुसार विधि के अनुसार विषय में आगे बढ़ा जायेगा ।

45. विदा लेने से पूर्व हम आशा करते हैं कि विश्वविद्यालय के अधिकारी शैक्षिक मानकों के उन्नयन के लिए प्रतिबद्ध रहेंगे तथा संस्थान के कल्याण हेतु लिए गए नीतिगत निर्णयों का सम्मान करते हुए शैक्षिक मूल्यों को बढ़ावा देने के लिए सामूहिक रूप से कार्य करेंगे। अनुचित संघर्षों से बचने के लिए शिक्षा और प्रशासन दोनों में अनुशासन प्राप्त किया जाना चाहिए।

46. परिणामस्वरूप, रिट याचिका को स्वीकारोक्ति दी जाती है। वाद व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2023) 6 ILRA 425

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 28.04.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अरविंद कुमार मिश्रा-I

आदेश से प्रथम अपील संख्या 2300/2011

महेंद्र कुमार एवं अन्य. अपीलकर्ता

बनाम

छवाली देवी एवं अन्य. प्रतिवादी

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता: श्री नितिन कुमार अग्रवाल, श्री हरिओम यादव

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: श्री उमा नाथ पांडे, श्री अशोक गुप्ता, श्री कुलदीप कुमार

ए. सिविल कानून - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908-आदेश 41 नियम 21-वर्तमान मामले में, अपील प्रतिवादियों द्वारा न्यायालय में उपस्थित होने से पहले ही स्थानांतरित कर दी गई थी और मूल न्यायालय द्वारा नोटिस पहले ही जारी किया जा चुका था और इसे अंतिम सुनवाई के लिए पर्याप्त रूप से तामील किया गया था-मामला तय तिथि पर स्थानांतरित न्यायालय में लिया गया था, लेकिन कोई भी उपस्थित नहीं हुआ-अपीलकर्ता को अपील के स्थानांतरण से पहले तय की गई अगली तिथि की सूचना थी-स्थानांतरित न्यायालय के समक्ष यह जांच करने का कोई अवसर नहीं था कि प्रतिवादियों को मामले के स्थानांतरण के बारे में जानकारी है या नहीं-इसलिए, सामान्य नियम सिविल के नियम 89 ए के तहत परिकल्पित पहली स्थिति वर्तमान मामले में उत्पन्न नहीं होती है-दूसरी स्थिति, पक्षकार का प्रतिनिधित्व न होने के कारण संतुष्ट हो गया था क्योंकि नोटिस अपीलकर्ताओं को विधिवत तामील किया गया था और अपीलकर्ता द्वारा दिया गया यह बहाना कि वह मूल मुकदमे में लिखित बयान दाखिल करने के बाद 13-14 वर्षों तक लगातार गाजियाबाद में रहने लगा था, झूठा साबित हुआ है-इसलिए, यह नहीं कह जा सकता कि अपीलकर्ता को लंबित अपील के बारे में कोई जानकारी नहीं थी-ऐसा प्रतीत होता है कि वह साफ हाथ लेकर नहीं आया है। (पैरा 1 से 33)

अपील खारिज की जाती है। (ई-6)

उद्धृत मामलों की सूची:

अनुवादित

1. राम पदारथ एवं अन्य बनाम श्रीमती चिरौंजी देवी (2015) 2 एडीजे 619
2. हरियाणा सूरज माल्टिंग लिमिटेड बनाम फूल चंद (2018) 16 एससीसी 567 श्रीमती पूनम गुप्ता एवं अन्य बनाम अनिल अग्रवाल (2019) 2 एडीजे 768
3. सिकंदर बनाम अखलाक (2008) 2 एआरसी 231
4. आशुतोष श्रोत्रिय बनाम रईस उद्दीन (1994) 24 एएलआर 28
5. चन्द्रभान श्रीवास्तव बनाम श्रीमती। प्रेमा श्रीवास्तव (1996) 27 एएलआर 175
6. अक्तारयार खान बनाम अज़हर यार खान (1994) सभी एलजे 690

(माननीय न्यायमूर्ति अरविन्द कुमार मिश्र-प्रथम द्वारा दिया गया)

1. श्री नितिन कुमार अग्रवाल, अभियुक्त-अपीलकर्ता के लिए विद्वान वकील, श्री उमा नाथ पांडेय, वादी-प्रतिवादी के लिए विद्वान वकील को सुना गया और रिकॉर्ड पर लायी गई सामग्री का अवलोकन किया गया।

2. अपीलकर्ता द्वारा प्रथम अपील आदेश अदालत में दायर की गई, जो कि अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, कोर्ट नंबर 8, बुलंदशहर, द्वारा दिनांक 05.04.2011 को पारित निर्णय और आदेश के खिलाफ है, विविध. केस नं. 7/2008 जो कि दीवानी प्रक्रिया संहिता 1908 के आदेश 41 नियम 21 के तहत दायर किया गया, दीवानी अपील सं. 204/2002 में, श्रीमती चवाली देवी एवं अन्य बनाम महेंद्र एवं अन्य में, जहां उक्त दीवानी अपील सं. 204/2002 में एक पक्षीय डिक्री के खिलाफ दायर आवेदन को खारिज कर दिया गया है।

3. संक्षेप में, तर्क यह दिया गया है कि इस मामले में, ऐसा हुआ कि प्रारंभिक चरण में, एक घोषणात्मक मूल वाद संख्या 97/1983 श्रीमती चवाली देवी, स्वर्गीय मक्खन लाल की पत्नी और चार अन्य (महेश कुमार, कमल कुमार, राकेश कुमार और योगेश कुमार) द्वारा अपीलकर्ता महेंद्र कुमार और पांच अन्य के खिलाफ दायर किया गया था। वाद में, प्रतिवादियों को सूचना जारी की गई थी जो उन्हें विधिवत प्राप्त हुई थी। हालांकि, प्रतिवादियों द्वारा, विशेषकर वर्तमान अपीलकर्ता महेंद्र कुमार (स्वर्गीय) द्वारा लिखित जवाब दायर किया गया था, और यह आग्रह किया गया और दावा किया गया कि वादी-प्रतिवादियों द्वारा कुछ मौखिक आश्वासन दिया गया था कि पारिवारिक सदस्यों के बीच विवाद होने के कारण, वाद वापस ले लिया जाएगा। इसके बाद, अभियुक्त-अपीलकर्ता गाजियाबाद गया और वहां 13-14 साल तक रहा। गाजियाबाद में, अपीलकर्ता कई बीमारियों / रोगों से ग्रस्त था। वह 13.02.2008 को बुलंदशहर वापस आया जब सुभाष और राकेश ने उसे बताया कि सिनेमा हॉल को वादी - महेश कुमार, कमल कुमार, राकेश कुमार और योगेश कुमार द्वारा बेचा जा रहा है क्योंकि उन्होंने मुकदमा जीत लिया है। तदनुसार, अपीलकर्ता ने चिंतित होकर बुलंदशहर में अपने वकील से संपर्क किया और मूल वाद संख्या 97/1983 के बारे में पूछताछ की जिसपर पता चला कि मूल वाद 18.09.2002 को खारिज कर दिया गया था जिसके खिलाफ उक्त वादी-

अनुवादित

प्रतिवादियों ने अपील दायर की थी जिसका नंबर 204/2002 था।

4. विद्वान वकील ने आगे बढ़ते हुए कहा कि रिकॉर्ड की जांच करने पर, अपीलकर्ता को उसके उपर फर्जी सेवा के बारे में पता चला जब अपीलकर्ता महेंद्र कुमार के नोटिस पर फर्जी हस्ताक्षर प्राप्त करके नोटिस पर उसे आगे बढ़ाया गया, अपील अपीलकर्ता के खिलाफ एक पक्षीय रूप में आगे बढ़ी। नोटिस की सेवा से इनकार किया जाता है क्योंकि अपीलकर्ता द्वारा कभी नोटिस प्राप्त नहीं किया गया था। अन्य प्रतिवादियों को भेजे गए नोटिस पर बहुत संदेह है और उन पर सेवा संदिग्ध है। यह निचली अपीलीय अदालत के लिए अनिवार्य था कि वह अपीलकर्ता द्वारा रिकॉर्ड पर लाए गए कई दस्तावेज़ों के रूप में आयकर रिटर्न की प्रतियों पर अपीलकर्ता द्वारा किए गए हस्ताक्षर और नोटिस पर अपीलकर्ता द्वारा किए गए हस्ताक्षरों का मिलान करे।

5. पुनरुत्तर शपथ पत्र दाखिल करना अनिवार्य नहीं है बल्कि विवेकाधीन है और इससे अपीलकर्ता के मामले पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा, और निचली अपीलीय अदालत ने गलत तरीके से यह माना कि वादी-प्रतिवादियों द्वारा दायर आपत्ति / प्रतिकार शपथ पत्र का पुनरुत्तर शपथ पत्र दाखिल करके खंडन नहीं किया गया है।

6. अपीलकर्ताओं के लिए विद्वान वकील ने जोड़ा कि जहाँ तक निचली अपीलीय अदालत द्वारा पारित निर्णय, आदेश और डिक्री दिनांक 05.04.2011 का संबंध है, अपील को जिला न्यायाधीश, बुलंदशहर द्वारा अतिरिक्त जिला न्यायाधीशों की अन्य अदालतों में स्थानांतरित किया गया था जहाँ यह बिना जनरल नियमों (सिविल) 1957 के नियम 89ए का अनुपालन सुनिश्चित किए एक पक्षीय रूप में आगे बढ़ा जिसमें प्रावधान है कि यदि किसी मामले की कार्यवाही को अन्य अदालत में स्थानांतरित किया जाता है, तो पक्षों के प्रतिनिधित्व किए जाने की स्थिति में, पक्षों में से किसी एक या उसके वकील को स्थानांतरण के बारे में सूचित किया जाएगा उसके बाद मामले की कार्यवाही शुरू की जाएगी और यदि कोई पक्ष प्रतिनिधित्व नहीं करता है तो उसे कार्यवाही आगे बढ़ाने से पहले सूचित किया जाएगा। इस मामले में, स्थानांतरित अदालत ने उपरोक्त प्रक्रिया को अनदेखा किया और जनरल नियमों (सिविल) 1957 के नियम 89ए का अनुपालन सुनिश्चित नहीं किया गया और अपीलकर्ता को स्थानांतरित अदालत द्वारा सूचना नहीं भेजी गई, यह एक पक्षीय रूप में आगे बढ़ा और दीवानी अपील सं. 204 का 2002 को 23.01.2008 को निर्णय दिया जिससे मूल वाद को अनुमति दी गई और वादी-प्रतिवादियों को संपत्ति का मालिक घोषित किया गया।

7. अपने तर्क के समर्थन में, अपीलकर्ताओं के लिए विद्वान वकील ने हरियाणा सुरज माल्टिंग लिमिटेड बनाम फूल चंद, 2018 (16) एससीसी 567 के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर निर्भरता व्यक्त की। उन्होंने इस न्यायालय के मामले में श्रीमती पूनम गुप्ता एवं अन्य बनाम अनिल अग्रवाल 2019 2 एडीजे 768, सिकंदर बनाम अखलाक 2008 (2) एआरसी 231, आशुतोष श्रोत्रिय बनाम रईस उद्दीन 1994 (24) एएलआर 238, चंद्र भान श्रीवास्तव बनाम श्रीमती प्रेमा श्रीवास्तव 1996 (27) एएलआर 175,

अप्रमाणित

अक्तरियार खान बनाम अजहर यार खान 1994 आल.एलजे 690 पर भरोसा किया।

8. प्रतिवादियों के लिए विद्वान वकील ने जवाब में प्रस्तुत किया कि इस मामले में, चवाली देवी और वर्तमान उत्तरदाता प्रतिवादियों द्वारा संपत्ति के मालिक के रूप में उनके अधिकार की घोषणा के लिए वाद दायर किया गया था जो संपत्ति मक्खन लाल की अलग संपत्ति थी, जिन्होंने इसे न्यायालय नीलामी में खरीदा था इस प्रकार संपत्ति के मालिक बन गए थे। उनकी मृत्यु पर, संपत्ति उनकी पत्नी चवाली देवी के अधिकार में आ गई जिन्होंने वसीयतनामा द्वारा संपत्ति को वादियों के पक्ष में कर दिया। वादियों द्वारा यह दावा किया गया कि वाद वापस लेने के लिए कोई मौखिक आश्वासन दिया गया था, ऐसा कुछ भी नहीं है। यह अपीलकर्ता का बाद में सोचा गया विचार है कि वाद वापस लेने के लिए कुछ मौखिक आश्वासन दिया गया था। पूरा परिवार जिसमें वादी और अपीलकर्ता शामिल हैं, बुलंदशहर के काला आम में रहते हैं और पूरा परिवार संपन्न है। यह दावा करना कि अपीलकर्ता गाजियाबाद में रहने लगा था और वाद और संबंधित अपील के विकास से अनजान था, भ्रामक है।

9. इसके अतिरिक्त प्रस्तुत किया गया है कि अपीलकर्ता महेंद्र कुमार को नोटिस दिया गया था। यह तर्क देना कि नोटिस पर हस्ताक्षर फर्जी थे, मामले की परिस्थितियों के अंतर्गत पूरी तरह से अस्वीकार्य है और यह दावा करना कि नोटिस पर किए गए हस्ताक्षर आयकर रिटर्न पर अंकित विभिन्न हस्ताक्षरों के साथ मेल नहीं खाते हैं, क्योंकि आयकर रिटर्न पर विभिन्न हस्ताक्षर, स्पष्ट रूप से, एक दूसरे से भिन्न हैं और वे आपस में मेल नहीं खाते हैं। यह कैसे स्वीकार किया जा सकता है कि एक व्यक्ति, जिसने अपने मूल स्थान को छोड़ दिया जहाँ पूरा परिवार रहता है और गाजियाबाद चला गया, वहाँ रहा और बुलंदशहर वापस नहीं आया अपने असली रिश्तेदारों से मिलने के लिए।

10. जहां तक वादी-प्रतिवादियों द्वारा दायर प्रतिकार शपथ पत्र में की गई घोषणाओं का संबंध है, जो अपीलकर्ता द्वारा उनके आवेदन के तहत उठाई गई दावे के खंडन में की गई हैं, सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 के आदेश 41 नियम 21 के तहत, वही विशेष रूप से नकारा / खंडन नहीं किया गया है और कोई पुनरुत्तर शपथ पत्र (अपीलकर्ता द्वारा) दाखिल नहीं किया गया।

11. प्रतिवादियों के लिए विद्वान वकील ने आगे दावा किया है कि आदेश 41 नियम 21 सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत उक्त आवेदन को अलग शपथ पत्र का समर्थन नहीं था जैसा कि आवश्यक था लेकिन अंतरिम आवेदन के समर्थन में दायर शपथ पत्र ही था। जहाँ तक जनरल नियमों (सिविल) 1957 के नियम 89ए के आवेदन का संबंध है, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के अधीन यह लागू नहीं है, क्योंकि जिला न्यायाधीश, बुलंदशहर के समक्ष दायर अपील विभिन्न आदेश-पत्रों और इसके परिणामों को प्रतिबिंबित करती है कि सभी प्रतिवादियों को नोटिस की सेवा की गई थी तभी कार्यवाही शुरू हुई। जिला न्यायाधीश, बुलंदशहर द्वारा अपील में जारी नोटिस के अनुसार, जिला न्यायाधीश, बुलंदशहर के समक्ष अपीलकर्ता (वर्तमान अपीलकर्ता) की ओर से

अप्रमाणित

कोई नहीं आया। चूंकि नोटिस की सेवा मामले के स्थानांतरण से पहले की गई थी और जिला न्यायाधीश, बुलंदशहर के समक्ष कोई उपस्थित नहीं हुआ, मामला तब स्थानांतरित किया गया और उन परिस्थितियों में स्थानांतरित अदालत द्वारा ताजा नोटिस जारी करने की आवश्यकता नहीं थी। अगर अपीलकर्ता ने जिला न्यायाधीश, बुलंदशहर के समक्ष व्यक्तिगत रूप से या वकील के माध्यम से उपस्थिति दर्ज कराई होती तो ही अपीलकर्ता को सूचित करने की कार्रवाई होती लेकिन अपीलकर्ता तय तिथि को जिला न्यायाधीश, बुलंदशहर के समक्ष उपस्थित नहीं हुआ।

12. विद्वान वकील कहते हैं कि इस मामले में, तथ्य अलग हैं जिन्हें जनरल नियमों (सिविल) 1957 के नियम 89ए के अनिवार्य अनुपालन की आवश्यकता नहीं है और संपूर्ण कार्यवाही इस तथ्य का संकेत और सुझाव देती है कि मुकदमे में लिखित जवाब दाखिल करने के बाद, अपीलकर्ता महेंद्र कुमार ने उसे जाने के कारणों से मुकदमे की कार्यवाही में अपनी भागीदारी स्वयं ही वापस ले ली और "मौखिक आश्वासन" की थ्योरी को चतुराई से स्थापित किया गया जिसका समर्थन किसी भी साक्ष्य द्वारा नहीं किया गया है और न ही परिस्थितियों द्वारा इसका निष्कर्ष निकाला गया है।

13. निचली अपीलीय अदालत के समक्ष अपील दर्ज करने पर, अपीलकर्ता को नोटिस भेजा गया जो उसे विधिवत प्राप्त हुआ, इसमें उसके हस्ताक्षर हैं। निचली अपीलीय अदालत की आदेश पत्रक उस तथ्य को प्रतिबिंबित करता है। दो अवसरों पर, यहाँ तक कि कुछ वकीलों ने भी अपील की कार्यवाही में भाग लिया जैसा कि निचली अपीलीय अदालत की आदेश पत्रक दिनांक 06.12.2005, 15.12.2005 और 06.10.2006 साबित करती है। बहुत चतुराई से, वकालतनामा कोई भी वकील (वर्तमान अपीलकर्ता के लिए उपस्थित) द्वारा अपील की कार्यवाही में दाखिल नहीं किया गया था और यह सब न्यायालय के बाहर से कार्यवाही देखने के लिए किया गया था। इस प्रकार, मामले की परिस्थितियाँ अपील की कार्यवाही में अपीलकर्ता द्वारा जानबूझकर भागीदारी से बचने का संकेत देती हैं। ऐसी परिस्थितियों में, निचली अपीलीय अदालत ने दिनांक 05.04.2011 को चुनौतीग्रस्त निर्णय, आदेश और डिक्री पारित की जो उचित और उचित है और इस न्यायालय द्वारा किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

14. अपने दावे के समर्थन में, प्रतिवादियों के लिए विद्वान वकील ने इस न्यायालय के मामले में राम पदारथ और अन्य बनाम श्रीमती चिरौंजी देवी 2015 (2) एडीजे 619 के निर्णय पर निर्भरता व्यक्त की, जनरल नियमों (सिविल) 1957 के नियम 89ए के अनिवार्य अनुपालन के बिंदु पर लेकिन यह अलग आधार पर है और इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर लागू नहीं है।

15. जमा किए गए विचारों पर विचार किया गया।

16. अपीलकर्ता निचली अपीलीय अदालत द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 05.04.2011 से व्यथित है - अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, कोर्ट नंबर.8, बुलंदशहर, विविध. केस नं.7/2008 अपीलकर्ता द्वारा आदेश के पुनर्स्मरण के लिए आवेदन पर, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41 नियम 21 के

अनुवादित

तहत, दीवानी अपील सं.204/2002, चवाली देवी और अन्य बनाम महेंद्र और अन्य।

17. इस मामले का कालानुक्रमिक पृष्ठभूमि जैसा कि रिकॉर्ड से प्रतिबिंबित होता है, यह है कि घोषणात्मक मूल वाद संख्या 97/1983 चवाली देवी और चार अन्य द्वारा वर्तमान अपीलकर्ता और अन्य के खिलाफ बुलंदशहर में स्थित संपत्ति के संबंध में दायर किया गया था, जहां एक सिनेमा हॉल निर्मित किया गया था। अपीलकर्ता ने लिखित जवाब दाखिल करके वाद का विरोध किया। हालांकि, वह बाद में कार्यवाही से अनुपस्थित रहा, इसलिए वाद अपीलकर्ता के खिलाफ एक पक्षीय रूप में आगे बढ़ा। मेरिट को ध्यान में रखते हुए, वाद को परीक्षण न्यायालय द्वारा लागत के साथ खारिज कर दिया गया विधि और आदेश दिनांक 18.09.2002 के तहत, जिसके खिलाफ वादी-प्रतिवादियों ने जिला न्यायाधीश, बुलंदशहर के समक्ष अपील दायर की, जिस पर दीवानी अपील सं.204/2002 चवाली देवी - मक्खन लाल की पत्नी और चार अन्य बनाम महेंद्र कुमार और अन्य के रूप में नंबरित किया गया।

18. निचली अपीलीय अदालत की आदेश पत्रक प्रतिवादियों पर नोटिस पर्याप्त रूप से सेवित किए जाने की तथ्य को प्रतिबिंबित करती है। हालांकि, निचली अपीलीय अदालत के समक्ष प्रतिवादियों की ओर से कोई नहीं आया। इसके बाद, अपील को अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, बुलंदशहर की अदालत में स्थानांतरित कर दिया गया। स्थानांतरित अदालत ने पाया कि प्रतिवादियों पर नोटिस सेवित किया गया था और उनकी ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ, इसलिए, कार्यवाही को अपीलकर्ता-प्रतिवादियों के खिलाफ एक पक्षीय रूप में चलाने का निर्देश दिया गया। अंततः, निचली अपीलीय अदालत ने अपने निर्णय और आदेश दिनांक 23.01.2008 को अपील को एक पक्षीय रूप में अनुमति दी और परीक्षण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय, आदेश और डिक्री दिनांक 18.09.2002 को निरस्त कर दिया, वादियों के वाद को अनुमति दी गई और वादियों को संपत्ति के मालिक के रूप में घोषित किया गया।

19. अपीलकर्ता ने दावा किया है कि उसे इस विकास के बारे में 13.02.2008 को बुलंदशहर वापस आने पर पता चला, फिर उसे सुभाष और राकेश ने निर्णय सुनाए जाने के बारे में सूचित किया। उचित पूछताछ के बाद, अपीलकर्ता को निचली अपीलीय अदालत द्वारा पारित उक्त निर्णय और आदेश दिनांक 23.01.2008 के बारे में पता चला। नतीजतन, उसने उक्त आदेश दिनांक 23.01.2008 को वापस लेने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41 नियम 21 के तहत एक आवेदन दायर किया, जो आवेदन विविध. केस नं.7/2008 के रूप में पंजीकृत किया गया जो दीवानी अपील सं.204/2002 से उत्पन्न हुआ, जैसा कि उल्लिखित है। यह मामला पार्टियों के बीच विवादित था। वादी-प्रतिवादियों ने अपनी आपत्तियां / प्रतिकार शपथ पत्र दायर किया। निचली अपीलीय अदालत ने मामले को मेरिट पर विचार करते हुए विधि और आदेश दिनांक 05.04.2011 को उक्त विविध. केस को खारिज कर दिया। इसलिए यह अपील।

अनुवादित

20. अब इस न्यायालय के समक्ष निर्णय के लिए प्रमुख मुद्दा यह है कि क्या अपील (204/2002) का नोटिस अपीलकर्ता, विशेषकर महेंद्र कुमार को पर्याप्त रूप से सेवित किया गया था और क्या स्थानांतरित अदालत ने जनरल नियम सिविल के नियम 89ए का अनुपालन करने के लिए बाध्य थी या मामला अलग था?

21. जहाँ तक अपीलकर्ता पर नोटिस की सेवा का संबंध है और अपीलकर्ता द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण कि नोटिस पर अपीलकर्ता के हस्ताक्षर फर्जी और नकली थे, किसी भी प्रमाणिक साक्ष्य या परिस्थितियों द्वारा समर्थित नहीं है जिससे यह माना जा सके कि अपीलकर्ता के नोटिस पर हस्ताक्षर नकली हैं। प्रक्रिया सर्वर ने नोटिस पर ही एक अंतिम नोट बनाया है कि नोटिस व्यक्तिगत रूप से अपीलकर्ता को सेवित किया गया था और इसमें अपीलकर्ता महेंद्र कुमार का हस्ताक्षर था।

22. जहां तक अपीलकर्ता द्वारा किए गए नोटिस के हस्ताक्षर की आयकर रिटर्न के हस्ताक्षर से तुलना के दावे का संबंध है, प्रतिवादियों द्वारा पूरी तरह से विरोध किया गया है कि विभिन्न आयकर रिटर्न / पत्रों पर विभिन्न हस्ताक्षर स्पष्ट रूप से भिन्न तरीके से किए गए हैं और समान नहीं हैं। यह मामला होने के नाते, दो हस्ताक्षरों के बीच योग्य तुलना कैसे की जा सकती है। इस मुद्दे पर इस न्यायालय के सामने अपीलकर्ता के लिए विद्वान वकील द्वारा पुनरुत्तर में कुछ भी नहीं जोड़ा गया है। इसलिए, हस्ताक्षरों के बिंदु पर प्रतिवादियों द्वारा उठाई गई दलील कि अपीलकर्ता द्वारा दायर किए गए आयकर रिटर्न पर हस्ताक्षर भिन्न तरीके से किए गए हैं, सही पाई गई है और वही (आयकर रिटर्न पर हस्ताक्षर) समान नहीं हैं। इसके अलावा, यह एक व्यक्ति की बुद्धिमत्ता है कि वह किसी भी नोटिस पर न्यायालय या किसी भी प्राधिकरण द्वारा भेजे गए उस पर जैसे चाहे हस्ताक्षर करे और वह इसे भिन्न तरीके से बना सकता है। यह सरलता से देखा जा सकता है कि हर मामले में व्यक्ति द्वारा नोटिस पर किया गया हस्ताक्षर उसके आधिकारिक हस्ताक्षर के साथ अनिवार्य रूप से मेल नहीं खाता है। वह इसे भिन्न रूप में कर सकता है। यह अंग्रेजी भाषा में, हिंदी भाषा में या किसी अन्य भाषा में हो सकता है।

23. अपीलकर्ता पर नोटिस की सेवा के बिंदु पर, ऐसा प्रतीत होता है कि अन्य पारिवारिक सदस्यों का कहना है - कुसुम लता - प्रतिवादी-उत्तरदाता संख्या 9 जो भी काला आम बुलंदशहर में रहती है, उसे नोटिस के साथ पर्याप्त रूप से सेवित पाया गया। इसी प्रकार, अपीलकर्ताओं के अन्य पारिवारिक सदस्यों को भी सेवा दी गई। अगर पूरे परिवार की संबंधित संपत्ति पर साझा रुचि थी और संयुक्त परिवार के किसी सदस्य ने नोटिस पर फर्जी हस्ताक्षर करके कोई धोखाधड़ी की थी, तो उस घटना में परिवार के अन्य सदस्य निचली अपीलीय अदालत में पहुंच गए होते और अपनी शिकायत को हवा देते और अपीलकर्ता के अनुसार दावा करते कि धोखाधड़ी हुई थी और उन्हें अपील का नोटिस कभी प्राप्त नहीं हुआ। लेकिन अपीलकर्ता के अलावा कोई भी निचली अपीलीय अदालत के सामने आदेश 41 नियम

अनुवादित

21 सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत आवेदन दायर करके नहीं आया।

24. प्रारंभ में, पांच प्रतिवादियों के खिलाफ वाद दायर किया गया था, वर्तमान अपीलकर्ता उनमें से एक था। हालांकि, आदेश 41 नियम 21 सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत 'केवल' अपीलकर्ता द्वारा एक आवेदन दायर किया गया था और अन्य प्रतिवादियों ने निचली अपीलीय अदालत द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 23.01.2008 को कभी चुनौती नहीं दी थी यद्यपि यह दावा किया गया था कि संपत्ति में सभी पारिवारिक सदस्यों की रुचि साझा थी।

25. दीवानी अपील सं.204/2002 की आदेश पत्रक का साधारण परीक्षण स्पष्ट करता है कि नोटिस वर्तमान अपीलकर्ता सहित प्रतिवादियों को भेजे गए थे और यह पाया गया कि उन्हें जिला न्यायाधीश, बुलंदशहर की अदालत द्वारा पर्याप्त रूप से सेवित किया गया था और तारीख 23.09.2003 को अपील की अंतिम सुनवाई के लिए निर्धारित की गई थी, उसके बाद मामला स्थानांतरित किया गया। इसलिए, यह कहा नहीं जा सकता कि अपीलकर्ता को निर्धारित तारीख - 23.09.2003 का नोटिस नहीं था जिसे जिला न्यायाधीश, बुलंदशहर ने विविध. मामले की कार्यवाही को दूसरी अदालत में स्थानांतरित करने से पहले अंतिम सुनवाई के लिए तय किया था। इस मामले में, जिला न्यायाधीश, बुलंदशहर द्वारा अगली तारीख 23.09.2003 को निर्धारित की गई थी। इसलिए, यह अपीलकर्ता के लिए अनिवार्य था कि वह 23.09.2003 को उपस्थित होता और स्थिति का मूल्यांकन करता, लेकिन वह निचली अपीलीय अदालत के समक्ष उपस्थित नहीं हुआ। इसके बाद, स्थानांतरित अदालत ने मामले के उपरोक्त पहलू पर विचार करने के बाद 11.11.2003 को आदेश में सही रूप से अवलोकन किया कि पहले से सेवित नोटिस और मामले के अंतिम सुनवाई के लिए पहले से निर्धारित, प्रतिवादियों पर नोटिस पूर्ववर्ती के आदेश द्वारा पर्याप्त रूप से सेवित किया गया था। हालांकि, निचली अपीलीय अदालत के समक्ष प्रतिवादियों की ओर से कोई नहीं आया, इसलिए, कार्यवाही को प्रतिवादियों के खिलाफ एक पक्षीय रूप में चलाने का निर्देश दिया गया जिसमें वर्तमान अपीलकर्ता भी शामिल है।

26. अब जहां तक तथ्यात्मक मुद्दे का संबंध है कि वादियों द्वारा अपीलकर्ता को आश्वासन दिया गया था कि वाद उनके द्वारा वापस लिया जाएगा, यह केवल एक मौखिक दावा है जो विभिन्न विश्वसनीय कारणों से समर्थित नहीं है; किसी भी परिस्थिति और साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं है।

26 (i) वाद 1983 में दायर किया गया था जिसमें अपीलकर्ता द्वारा लिखित जवाब दाखिल किया गया था। इसके बाद उसने लिखित जवाब दायर करने के बाद वाद की कार्यवाही से स्वयं को अनुपस्थित कर लिया। मान लिया जाए कि अगर वादियों द्वारा वाद को वापस लेने के लिए कोई मौखिक आश्वासन अपीलकर्ता को दिया गया था तो एक साधारण विवेकशील व्यक्ति, परिस्थितियों के तहत, वाद के परिणाम के बारे में जानने के लिए अत्यधिक चिंतित होगा - चाहे वाद वापस लिया गया था या नहीं!

अनुवादित

26 (ii) हालाँकि, रिकॉर्ड की समीक्षा से पता चलता है कि वाद का निर्णय 18.09.2002 को किया गया था। वाद के निर्णय में लगभग दो दशक लग गए, एक साधारण व्यक्ति जिससे पहले वादियों-प्रतिवादियों द्वारा वाद को वापस लेने का वादा किया गया था, वाद के परिणाम के बारे में जानने की कोशिश करेगा, लेकिन अपीलकर्ता ने इस पहलू पर विस्तार से नहीं बताया, यह अस्पष्टीकरण, स्पष्ट रूप से, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के अंतर्गत अजीब और अस्वीकार्य है। वर्तमान अपीलकर्ता द्वारा दिखाई गई आचरण साधारण विवेकशील व्यक्ति के लिए अनुचित होगा।

26 (iii) किसी भी व्यक्ति द्वारा दिया गया मौखिक आश्वासन, यदि उस व्यक्ति द्वारा इनकार कर दिया गया है, तो इसे संभावना के प्रबलता या साक्ष्य द्वारा स्थापित किया जाना चाहिए लेकिन इस मामले में हाथ में संभावना के प्रबलता अपीलकर्ता के खिलाफ काम करती है और प्रतिवादियों के पक्ष में है और वादियों-प्रतिवादियों द्वारा वाद को वापस लेने के लिए मौखिक आश्वासन दिए जाने के दावे के संबंध में कोई साक्ष्य नहीं है, केवल मौखिक दावे के अलावा और यह पर्याप्त नहीं है।

27. इसलिए, दोनों गणनाओं पर, वादियों द्वारा वाद को वापस लेने के लिए मौखिक आश्वासन दिए जाने का सिद्धांत, स्पष्ट रूप से, एक झूठा दावा प्रतीत होता है। इसी तरह, अपीलकर्ता द्वारा आदेश 41 नियम 21 सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत उसके आवेदन में उठाई गई याचिका कि उसने लिखित जवाब दाखिल करने के बाद 13-14 साल के लिए लगातार गाज़ियाबाद में निवास किया है, टिकाऊ नहीं है क्योंकि अन्य पारिवारिक सदस्य काला आम बुलंदशहर में रह रहे थे। ये सभी पहलू और परिस्थितियाँ सामूहिक रूप से स्थापित करती हैं कि अपीलकर्ता बहुत चतुर है और साफ-सुथरे हाथों से नहीं आया है लेकिन वह वाद के लंबित अपील (204/2002) के तथ्य के बारे में घुमावदार तरीके से सफलतापूर्वक समझाने की कोशिश कर रहा है। यह सब तथ्य को दर्शाता है कि अपीलकर्ता बाहर से वाद और अपील की कार्यवाही को देख रहा प्रतीत होता है। बाद में, उसने निचली अपीलीय अदालत द्वारा 23.01.2008 को वादियों-प्रतिवादियों के पक्ष में निर्णय सुनाने के बाद समय पर आदेश 41 नियम 21 सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत आवेदन दायर किया।

28. जहां तक अपीलकर्ता के अनिवार्य नियम 89ए के सामान्य नियम सिविल का अनुपालन न करने के दावे का संबंध है, इसका आयात यह है कि मामले को जिला न्यायाधीश, बुलंदशहर की मूल अदालत से अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, बुलंदशहर की अदालत में स्थानांतरित करने के बाद, उचित नोटिस दिया जाना आवश्यक था और नोटिस की सेवा के बाद, स्थानांतरित अदालत आगे बढ़ी होती लेकिन इसके बजाय, स्थानांतरित अदालत ने एक पक्षीय आगे बढ़ी और दीवानी अपील सं.204/2002 के निर्णय और आदेश दिनांक 23.01.2008 में निर्णय सुनाया।

29. इस संबंध में, जिला न्यायाधीश, बुलंदशहर की अदालत की अपील की आदेश पत्रक का साधारण परीक्षण मुख्यतः - आदेश पत्रक दिनांक 25.08.2003 और पिछली आदेश पत्रक

अनुवादित

सामूहिक रूप से प्रतिवादियों पर नोटिस पर्याप्त रूप से सेवित किए जाने के बिंदु पर प्रतिबिंबित करती है और तारीख 23.09.2003 को अपील की अंतिम सुनवाई के लिए जिला न्यायाधीश, बुलंदशहर द्वारा निर्धारित की गई थी। इसके बाद, मामले को जिला न्यायाधीश द्वारा अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, बुलंदशहर की अदालत में स्थानांतरित कर दिया गया।

30. यह ध्यान देने योग्य है कि प्रतिवादियों पर नोटिस की सेवा के बावजूद, 25.08.2003 को प्रतिवादियों की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ। हालाँकि, आगे की तारीख 23.09.2003 निर्धारित की गई थी और इस बीच मामला स्थानांतरित कर दिया गया। स्थानांतरित अदालत के पीठासीन अधिकारी छुट्टी पर थे, हालांकि, 23.09.2003 को भी किसी भी पक्ष की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ और अगली तारीख 11.11.2003 को, स्थानांतरित अदालत ने प्रतिवादियों की ओर से किसी के भी उपस्थित न होने का संज्ञान लिया, हालांकि नोटिस पर प्रतिवादियों को पूर्ववर्ती द्वारा पर्याप्त रूप से सेवित पाया गया और उन्होंने प्रतिवादियों के खिलाफ अपील सुनने की प्रक्रिया को एक पक्षीय रूप में आगे बढ़ाया। इस चरण पर, जनरल रूल सिविल 1957 में गिनाए गए नियम 89ए का ध्यान रखना प्रासंगिक होगा, जिसे नीचे निकाला गया है:

"89-ए. मामलों के स्थानांतरण या वापसी पर अनुसरण करने की प्रक्रिया।

"(1) जब एक मामला, अर्थात्, एक वाद, अपील या अन्य कार्यवाही जिसमें एक विशेष अदालत में पक्ष या पक्षों की उपस्थिति के लिए एक तारीख निर्धारित की गई है, को उस अदालत से दूसरे में स्थानांतरित किया जाता है, तो पूर्ववर्ती अदालत आदेश पत्रक में स्थानांतरण का आदेश दर्ज करेगी और इसे पक्ष या पक्षों के वकील द्वारा हस्ताक्षरित करवाएगी, यदि कोई पक्ष अप्रतिनिधित है तो उसके पंजीकृत पते पर सूचना भेजी जाएगी। दूसरी अदालत द्वारा स्थानांतरण करने वाली अदालत द्वारा पहले से निर्धारित तारीख को मामले को पुकारा जाएगा और पक्षों की उपस्थिति को नोट किया जाएगा।

(2) उप-नियम (1) के अनुसार पक्ष या पक्षों को सूचित किया गया है, इसका उल्लेख रिकॉर्ड पर स्थानांतरण करने वाली अदालत द्वारा किया जाएगा।

(3) जहां मामलों का बड़ी संख्या में स्थानांतरण किया जाता है वहां से जिन्हें स्थानांतरित किया जाता है उस अदालत द्वारा, उप-नियम (1) में निर्धारित प्रक्रिया का पालन करने के अलावा, एक सूची तैयार की जाएगी जिसमें मामलों के नंबर और वर्ष और पक्षों और उनके वकीलों के नाम उल्लिखित होंगे, और इसकी एक प्रति को स्थानीय बार एसोसिएशन के नोटिस बोर्ड पर सूचना के लिए पोस्ट किया जाएगा और एक अन्य प्रति को अदालत के नोटिस बोर्ड पर सामान्य जनता की सूचना के लिए पोस्ट किया जाएगा। इसके साथ ही स्थानांतरित मामलों के रिकॉर्ड के साथ अन्य अदालत को एक सूची की प्रति (या उसके प्रासंगिक अंश) भेजी जाएगी; अन्य अदालत इसे अपने नोटिस बोर्ड पर पोस्ट करेगी। यदि अन्य अदालत एक अलग स्थान पर स्थित है जिसमें एक और बार एसोसिएशन है, तो बार

अनुवादित

एसोसिएशन के नोटिस बोर्ड पर पोस्ट करने के लिए एक अतिरिक्त प्रति उसे भेजी जाएगी।

(4) जिस अदालत को मामले स्थानांतरित किए जाते हैं उसे बिना संतोषजनक रूप से सुनिश्चित किए कि पक्ष या उनके वकीलों को, जैसा कि मामला हो, स्थानांतरण के बारे में सूचित किया गया है, आगे नहीं बढ़ना चाहिए।

(5) उप-नियम (1) से (4) में "स्थानांतरण' में मामले की वापसी शामिल है।"

31. उपर्युक्त नियम द्वारा प्रतिबिंबित आदेश दो स्थितियों में कार्यान्वित होता है; पहली स्थिति है कि क्या पार्टी या पार्टियां पहले से न्यायालय में प्रतिनिधित हैं; दूसरी स्थिति है कि क्या पार्टी अप्रतिनिधित है, इसलिए जब एक पार्टी किसी न्यायालय में प्रतिनिधित है और मामला उस न्यायालय से दूसरे न्यायालय में स्थानांतरित किया जाता है, पूर्व न्यायालय आदेश पत्र में स्थानांतरण का आदेश दर्ज करेगा और पार्टी या पार्टियों के वकील द्वारा अनुमोदन प्राप्त करेगा। यदि कोई पार्टी अप्रतिनिधित है और उसे नोटिस से सेवा नहीं दी गई है तो उसे सूचना दी जाएगी। जो स्थानांतरित न्यायालय को सुनिश्चित करना है वह यह है कि क्या पार्टी या पार्टियां स्थानांतरित मामले में गुणों पर आगे बढ़ने से पहले निर्धारित तारीख के बारे में जानते हैं या नहीं।

32. वर्तमान मामले में, अपील से पहले प्रतिवादियों ने अपनी उपस्थिति न्यायालय में दर्ज नहीं की थी और नोटिस पहले ही मूल न्यायालय द्वारा जारी किया गया था और इसे पर्याप्त रूप से सेवित पाया गया था इसलिए 23.09.2003 को अंतिम सुनवाई के लिए निर्धारित किया गया। स्थानांतरित न्यायालय ने निर्धारित तारीख 23.09.2003 को मामले को उठाया लेकिन कोई भी उपस्थित नहीं हुआ हालांकि प्रेसिडिंग अधिकारी छुट्टी पर थे। यह स्वयं संकेत देता है कि अपीलकर्ता को अगली निर्धारित तारीख यानी 23.09.2003 का नोटिस पहले से था अपील के स्थानांतरण से पहले। ऐसी स्थिति में, स्थानांतरित न्यायालय के सामने यह जांचने का कोई अवसर नहीं था कि क्या प्रतिवादियों को मामले के स्थानांतरण की जानकारी है या नहीं। इसलिए, वर्तमान मामले में जनरल नियम सिविल के नियम 89 ए के तहत पहली स्थिति नहीं उत्पन्न होती है। दूसरी स्थिति, पार्टी अप्रतिनिधित होने की संतुष्टि हुई क्योंकि नोटिस अपीलकर्ताओं पर विधिवत सेवित पाया गया और अपीलकर्ता द्वारा लिया गया बहाना कि उसने मूल वाद संख्या 97/1983 में लिखित जवाब दाखिल करने के बाद लगातार 13-14 साल तक गाज़ियाबाद में निवास किया था, ऊपर चर्चा के अनुसार झूठ के रूप में उजागर हुआ है। ऐसी परिस्थितियों में, यह कहा नहीं जा सकता कि अपीलकर्ता को लंबित अपील के बारे में कोई जानकारी नहीं थी।

33. वर्तमान अपीलकर्ताओं के अन्य पारिवारिक सदस्य जो काला आम, बुलंदशहर में रह रहे थे, उन्हें पर्याप्त रूप से सेवा दी गई और यह अपीलकर्ता का मामला नहीं है कि उसका काला आम, बुलंदशहर में रह रहे अन्य पारिवारिक सदस्यों के साथ कोई संचार नहीं था। यह कैसे माना जा सकता है कि अपीलकर्ता को अपील के लंबित होने का कोई ज्ञान नहीं था जब नोटिस उसे निचली अपीलीय अदालत द्वारा

अवधवाद

विधिवत सेवित पाया गया था। परिस्थितियों में, यह सुविधाजनक रूप से देखा जा सकता है कि प्रतिवादी-अपीलकर्ता ने यह साबित करने में विफल रहा कि उसे अपील की कार्यवाही की कोई जानकारी नहीं थी और वह अपील के न्यायालय से स्थानांतरण के कारण न्यायालय में उपस्थित होने से रोका गया था जब अपील सुनवाई के लिए पुकारी गई थी। इस मामले में, वादी-प्रतिवादियों द्वारा उल्लिखित राम पदारथ और अन्य बनाम श्रीमती चिरौंजी देवी 2015 (2) एडीजे 619 के सिद्धांत का वर्तमान मामले में बहुत अधिक आकर्षण और लागू होता है, जबकि, उपरोक्त चर्चा के आधार पर, यह स्पष्ट है कि अपीलकर्ता के वकील द्वारा उल्लिखित निम्नलिखित मामले; हरियाणा सुरज माल्टिंग लिमिटेड बनाम फूल चंद, 2018 (16) एससीसी 567। उन्होंने इस न्यायालय के मामले में श्रीमती पूनम गुप्ता और अन्य बनाम अनिल अग्रवाल 2019 2 एडीजे 768, सिकंदर बनाम अखलाक 2008 (2) एआरसी 231, आशुतोष श्रोत्रिय बनाम रईस उद्दीन 1994 (24) एएलआर 238, चंद्र भान श्रीवास्तव बनाम श्रीमती प्रेमा श्रीवास्तव 1996 (27) एएलआर 175, अक्तरियार खान बनाम अजहर यार खान 1994 आल.एलजे 690, वर्तमान मामले के दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों के लिए लागू नहीं हैं। इसलिए, वे अपीलकर्ता के लिए सहायक नहीं हैं।

34. निर्णय के साथ विदा लेते समय, यह देखा जा सकता है कि रिकॉर्ड का साधारण परीक्षण यह दिखाता है कि दोनों पक्षों के पूर्वज एक ही परिवार से थे और उनके बीच और उनके बीच कई मुकदमेबाजी थी। एक ऐसी मुकदमेबाजी को मूल वाद संख्या 165 का 1942 भगवती कुंवर बनाम मक्खन लाल के रूप में संदर्भित किया जा सकता है जिसे परीक्षण न्यायालय के रिकॉर्ड पर पेपर नंबर 147-सी के रूप में रखा गया है, उक्त वाद में 15.02.1943 को लिखित जवाब दाखिल किया गया था। सिविल अपील सं.86 का 1943 मक्खन लाल बनाम भगवती कुंवर, पेपर नंबर 151-सी के माध्यम से, वाद में परिणाम के खिलाफ भी पसंद किया गया था जिसमें निर्णय 08.11.1943 को सुनाया गया था। इसके अलावा, कई कागजात रिकॉर्ड पर लाए गए हैं जिससे अपीलकर्ता और प्रतिवादियों के पारिवारिक सदस्यों के बीच लंबे समय से चली आ रही मुकदमेबाजी बहुत प्रतिबिंबित होती है। इसलिए, वर्तमान मामले में हाथ में यह स्पष्ट है कि वाद दायर किया गया था, अपीलकर्ता स्वयं वाद के परिणाम के बारे में जानने की परवाह नहीं की और वादियों-प्रतिवादियों द्वारा अपील दायर किए जाने पर, उसे निचली अपीलीय अदालत द्वारा नोटिस भेजा गया जो नोटिस उसे पर्याप्त रूप से सेवित पाया गया था। परिस्थितियों ने इंगित किया कि अपीलकर्ता ने समय पर आदेश 41 नियम 21 सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत आवेदन दायर किया था, यह तथ्य और संभावना को बल देता है कि अपीलकर्ता न्यायालय के बाहर से कार्यवाही को देख रहा था और वह निचली अपीलीय अदालत के निर्णय के वितरण के बाद निचली अपीलीय अदालत के निर्णय की पुनरावृत्ति की मांग करने के लिए विवश था। उसके पास साफ हाथों से नहीं आने का लगता है।

35. ऊपर की गई चर्चा के मद्देनजर, यह स्पष्ट है कि अपील में गुण नहीं हैं और यह

अनुवादित

खारिज की जाती है। बदले में, निचली अपीलीय अदालत द्वारा पारित निर्णय, आदेश और डिक्री दिनांक 05.04.2011 को यहाँ प्रतिधारित किया गया है।

36. यह देखा गया है कि इस न्यायालय ने निचली अपीलीय अदालत द्वारा पारित निर्णय और आदेश (दिनांक 23.01.2008) के गुणों पर कुछ भी प्रतिबिंबित नहीं किया है और यह आदेश, आदेश 41 नियम 21 सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत आवेदन और इस अपील के विचार को सीमित करता है।

37. दोनों पक्षों को अपने-अपने खर्चे वहन करने होंगे।

(2023) 6 ILRA 435

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 27.02.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्रा

बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका संख्या 20/2023

सरिता वर्मा एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता: श्री शरद चंद राय

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: जी.ए., श्री संजय सिंह

सिविल कानून - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226, - हिंदू अल्पसंख्यक और संरक्षकता अधिनियम, 1956 - धारा 6 और 6-ए, : - बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट - मां ने अपने पिता से दो नाबालिग बच्चों की हिरासत का सवाल उठाया - न्यायालय द्वारा जारी नियम के अनुसार, दोनों नाबालिगों को न्यायालय में पेश किया गया - बच्चों ने खुद अपनी मां के साथ जाने और रहने में अनिच्छा व्यक्त की - स्थिरता - बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट एक विशेषाधिकार रिट और एक असाधारण उपाय है, यह अधिकार की रिट है और निश्चित रूप से रिट नहीं है और इसे केवल उचित आधार या संभावित कारण दिखाए जाने पर ही दिया जा सकता है - नाबालिग की हिरासत में, बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट तब स्थिरता योग्य होगी जब यह स्थापित हो कि माता-पिता या अन्य द्वारा नाबालिग बच्चे को हिरासत में रखा गया है - वर्तमान मामले में, न तो पिता या दादा-दादी के पास नाबालिग की हिरासत तथ्य और मामले की परिस्थितियों के साथ-साथ संरक्षकता अधिनियम के प्रावधानों के तहत गैरकानूनी प्रतीत होती है, - इसलिए, याचिका में की गई प्रार्थना को खारिज कर दिया गया है - हालांकि, याचिकाकर्ता परिवार न्यायालय में बच्चों की हिरासत के लिए अपना दावा उठाने के लिए स्वतंत्र है और सभी आवश्यक दावे उक्त फोरम के समक्ष उठाए जाने के लिए खुले हैं - मां को अपने बच्चों से मिलने का अधिकार है - निर्देश जारी किए गए, याचिका का निपटारा किया गया। (पैरा - 14, 15, 17)

रिट याचिका का निपटारा किया गया। (ई-11)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. सैयद सलीमुद्दीन बनाम डॉ. रुकसाना एवं अन्य (2001 खंड 5 एससीसी 247),

अनुवादित

2. नित्या आनंद राघवन बनाम राज्य (एनसीटी ऑफ दिल्ली) (2017 वॉल्यूम 8 एससीसी 454),

3. कानू सान्याल बनाम जिला मजिस्ट्रेट, दार्जिलिंग (1973 खंड 2 एससीसी 674),

4. तेजस्विनी गौड़ एवं अन्य बनाम शेखरे जगदीश प्रसाद तिवारी एवं अन्य (2019 खंड 7 एससीसी 42)।

(माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्र द्वारा दिया गया)

प्रतिवादी संख्या 4 से 7 के विद्वान अधिवक्ता श्री संजय सिंह द्वारा दायर जवाबी हलफनामा और वकालतनामा को रिकॉर्ड पर लिया गया है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, श्री शरद चंद राय, निजी प्रतिवादी के लिए विद्वान अधिवक्ता, श्री संजय सिंह और राज्य के लिए विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता उपस्थित हैं।

बंदी वैष्णवी और राम सोनी को सब इंस्पेक्टर मृदुल मयंक पांडे, थाना-कोतवाली नगर, जिला सुल्तानपुर और प्रतिवादी संख्या 4 श्री राकेश सोनी द्वारा न्यायालय के समक्ष पेश किया गया। बंदी वैष्णवी और राम सोनी का बयान कोर्ट के समक्ष दर्ज किया गया है। कॉर्पस वैष्णवी ने कहा कि उसकी उम्र लगभग 13 वर्ष है और उसकी जन्मतिथि 16.01.2010 है, उसने बताया कि वह अपने पिता की देखरेख में स्टेला मैरिस कॉन्वेंट स्कूल, सुल्तानपुर में शिक्षा प्राप्त कर रही है, उसका छोटा भाई राम सोनी भी उसी स्कूल में शिक्षा प्राप्त कर रहा है। उसने कहा कि वह खुशी-खुशी अपने पिता के साथ रह रही है और वह अपनी मां के साथ जाने को तैयार नहीं है, बल्कि, उसकी मां कभी भी उससे मिलने के लिए उसके पिता के घर नहीं आई। उसने अपनी माँ के साथ जाकर रहने की अनिच्छा व्यक्त की। इसी प्रकार बालक राम सोनी ने अपनी उम्र लगभग 10 वर्ष बताई तथा उसकी उम्र को लेकर कोई विवाद नहीं है। उसने आगे कहा कि वह उसी स्कूल में कक्षा तीन में पढ़ रहा है, जहां उसकी बहन पढ़ रही है। उसने यह भी कहा कि वह खुशी-खुशी अपने पिता के साथ रह रहा है और अपनी मां के साथ जाकर रहने को तैयार नहीं है।

पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं के साथ-साथ राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता की दलीलें सुनीं।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने 07.04.2022 को निर्णित बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका संख्या 165 वर्ष 2022 कुमारी सनाया शर्मा (नाबालिग) और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 4 अन्य में इस न्यायालय की टिप्पणियों का आश्रय लिया है जिसमें बच्चों, कुमारी सनाया शर्मा उम्र 5 वर्ष और मास्टर तनिष्क शर्मा उम्र लगभग ढाई वर्ष, जो अपने पिता, जिन्होंने 16.11.2020 को आत्महत्या कर ली थी, की मृत्यु के कारण अपनी दादी के साथ रह रहे थे, की मां द्वारा अभिरक्षा के लिए दावा किया गया था। बच्चों के पिता की आत्महत्या के कारण, आकाश शर्मा नामक व्यक्ति ने उनकी मां सीमा शर्मा, याचिकाकर्ता और 5 अन्य के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज कराई थी, जिसमें जांच चल रही थी। आकाश शर्मा के दुखद और दुर्भाग्यपूर्ण निधन के बाद, उनकी पत्नी सीमा शर्मा,याचिकाकर्ता, स्वतंत्र रूप से अपनी बहन के साथ मुरादाबाद में रहने लगीं, जबकि उनके छोटे बच्चे, सनाया और तनिष्क

अप्रमाणित

अपनी दादी के पास रहे। इस न्यायालय ने *हिंदू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 की धारा 6 के प्रावधानों पर विचार किया, जिसमें यह प्रावधान है कि किसी लड़के या अविवाहित लड़की की दशा में पिता और उसके बाद माता: परंतु जिस नाबालिग ने पाँच वर्ष की आयु पूरी न कर ली हो उसकी अभिरक्षा सामान्यतः माता के हाथ में होगी;*

इस न्यायालय के अनुसार, उक्त अधिनियम की धारा 6ए, *जब बच्चा पांच वर्ष से कम आयु का हो तो पिता का नाबालिग बच्चे की संपत्ति का संरक्षक होने का अधिकार सुरक्षित रखती है, किंतु उसके व्यक्ति का संरक्षक होने का नहीं। यह संरक्षकता के भेद में, अंतरिम अभिरक्षा के अपवाद को उजागर करता है, और फिर निर्दिष्ट करता है कि जिस नाबालिग ने पाँच वर्ष की आयु पूरी न कर ली हो उसकी अभिरक्षा सामान्यतः माता के हाथ में होगी।*

उपरोक्त मामले में, इस तथ्य पर विचार करने के बाद कि दो में से एक बच्चा बमुश्किल 5 वर्ष का था, जबकि छोटा लगभग ढाई साल का था, दोनों नाबालिग थे और प्रभाव्य आयु के नहीं थे, जो अपनी माता, जो उनकी प्राकृतिक अभिभावक है, के बिना शर्त प्रेम, स्नेह और सुरक्षा के पात्र थे और इसलिए, दोनों बच्चों की अभिरक्षा इस न्यायालय के आदेश से उनकी माता को सौंप दी गई और उनकी दादी को सप्ताह में एक बार और हर शनिवार को दोपहर 12.00 बजे से शाम 05.00 बजे के बीच मिलने का अधिकार दिया गया।

तथापि, वर्तमान मामले के तथ्य अलग हैं क्योंकि जिन दो बच्चों की अभिरक्षा का प्रश्न इस न्यायालय के समक्ष विचाराधीन है, उनमें से एक नाबालिग लड़की है, जिसका नाम वैष्णवी है, जिसकी आयु लगभग 13 वर्ष है और दूसरा लड़का है, जिसका नाम राम सोनी है, जिसकी आयु लगभग 10 वर्ष है और उन दोनों को उनके पिता द्वारा इस न्यायालय द्वारा जारी नियम निसी पर इस न्यायालय के समक्ष पेश किया गया था। उन्हें उनके पिता द्वारा उचित शिक्षा दी जा रही है और स्कूल में उनकी पाठ्येतर गतिविधियों के साथ-साथ जन्मदिन समारोह की कई तस्वीरें प्रतिवादी संख्या 4 से 7 के जवाबी हलफनामे के साथ दायर की गई हैं। बच्चों ने स्वयं अपनी माँ के साथ जाकर रहने के लिए अपनी अनिच्छा व्यक्त की है। यद्यपि, यह दुर्भाग्यपूर्ण है, फिर भी यह परिस्थिति है जो न्यायालय के समक्ष उनके बयान से झलकती है। दोनों पक्षों ने अपनी-अपनी दलीलों में दूसरे पक्ष के आचरण और व्यवहार के संबंध में एक-दूसरे के विरुद्ध आरोप लगाए हैं, हालांकि, वर्तमान बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका पर फैसला करते समय उन तथ्यों पर ध्यान नहीं दिया जाना चाहिए।

बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट याचिका एक विशेषाधिकार रिट और एक असाधारण उपाय है, यह अधिकार की रिट है और कार्यवाई की रिट नहीं है और केवल उचित आधार या संभावित कारण दिखाए जाने पर ही प्रदान की जा सकती है।

सैयद सलीमुद्दीन बनाम डॉ. रुकसाना और अन्य 2001 (5 एससीसी 247) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने नाबालिग बच्चे की अभिरक्षा से संबंधित दावे के संदर्भ में बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट के उद्देश्य और दायरे पर विचार किया और माना कि बच्चे की अभिरक्षा एक अभिभावक से दूसरे अभिभावक को हस्तांतरित करने की मांग वाली बंदी

अनुवादित

प्रत्यक्षीकरण याचिका में, न्यायालय के लिए मुख्य चिंता यह सुनिश्चित करना है कि क्या बच्चों की अभिरक्षा को गैरकानूनी या अवैध कहा जा सकता है और क्या बच्चों के कल्याण के लिए आवश्यक है कि वर्तमान अभिरक्षा को बदला जाए। यह सुस्थापित सिद्धांत है कि किसी बच्चे की अभिरक्षा के मामले में, बच्चे का कल्याण न्यायालय के लिए सर्वोपरि है।

नित्या आनंद राघवन बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) 2017 8 एससीसी 454 के मामले में भी इसी तरह का दृष्टिकोण अपनाते हुए शीर्ष न्यायालय द्वारा यह माना गया कि न्यायालय का मुख्य कर्तव्य यह सुनिश्चित करना है कि क्या बच्चों की अभिरक्षा को गैरकानूनी या अवैध कहा जा सकता है और क्या बच्चों के कल्याण के लिए आवश्यक है कि वर्तमान अभिरक्षा को बदला जाए और बच्चे को किसी अन्य व्यक्ति की देखभाल और अभिरक्षा में सौंप दिया जाए।

इस मामले में, शीर्ष अदालत ने **कानू सान्याल बनाम जिला मजिस्ट्रेट, दार्जिलिंग (1973) 2 एससीसी 674**, में अपनी टिप्पणी को सहमति के साथ उद्धृत किया जिसमें यह माना गया था कि बंदी प्रत्यक्षीकरण अनिवार्य रूप से न्याय की मशीनरी से संबंधित एक प्रक्रियात्मक रिट है। रिट का अंतर्निहित उद्देश्य उस व्यक्ति की रिहाई सुनिश्चित करना था जो अवैध रूप से अपनी स्वतंत्रता से वंचित है। बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट उस व्यक्ति को संबोधित एक आदेश है जिस पर किसी अन्य को गैरकानूनी अभिरक्षा में रखने का आरोप है, जिसमें उसे ऐसे व्यक्ति को सशरीर न्यायालय के समक्ष पेश करने की आवश्यकता होती है। न्यायालय के समक्ष व्यक्ति को पेश करने पर, न्यायालय द्वारा उन परिस्थितियों की जांच की जा सकती है जिनमें संबंधित व्यक्ति को अभिरक्षा में रखा गया है और कथित गैरकानूनी रोक की उचित जांच के बाद, उचित निर्देश, जो न्यायोचित और ठीक समझे जाएं, दिए जा सकते हैं। ऐसी कार्यवाही में उच्च न्यायालय व्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार के तत्काल निर्धारण और हिरासत के गैरकानूनी पाए जाने पर उसकी रिहाई के लिए जांच करता है।

नाबालिग की अभिरक्षा के लिए संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका की पोषणीयता के प्रश्न की जांच **तेजस्विनी गौड़ और अन्य बनाम शेखरे जगदीश प्रसाद तिवारी और अन्य (2019) 7एससीसी 42** में की गई थी, जिसमें उच्चतम न्यायालय ने पैरा 20 और 26 में निम्नानुसार व्यवस्था दी है: -

"20. बच्चों की अभिरक्षा के मामलों में, सामान्य उपाय मात्र, यथाप्रकरण, हिंदू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम अथवा संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम के अंतर्गत निहित है। संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम के तहत कार्यवाही से उत्पन्न होने वाले मामलों में, न्यायालय का क्षेत्राधिकार इस बात से निर्धारित होता है कि क्या नाबालिग सामान्यतः उस क्षेत्र में रहता है जिस पर न्यायालय ऐसे क्षेत्राधिकार का प्रयोग करती है। संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम के तहत जांच और रिट न्यायालय द्वारा शक्तियों के प्रयोग जो सारांश प्रकृति का है, के बीच महत्वपूर्ण अंतर हैं। जो महत्वपूर्ण है वह है बच्चे का कल्याण। रिट न्यायालय में, अधिकार केवल शपथपत्रों के आधार पर निर्धारित किए जाते हैं। जहां न्यायालय का विचार है कि विस्तृत जांच की

अधिवक्ता

आवश्यकता है, न्यायालय असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से इनकार कर सकती है और पक्षकारों को सिविल न्यायालय से संपर्क करने का निर्देश दे सकती है। यह केवल अपवाद मामलों में है कि पक्षकारों का नाबालिग की अभिरक्षा का अधिकार, बंदी प्रत्यक्षीकरण की याचिका पर असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए निर्धारित किया जाएगा।

26. बच्चे की अभिरक्षा के मामलों पर निर्णय लेते समय न्यायालय केवल माता-पिता या अभिभावक के कानूनी अधिकार से बंधी नहीं है। यद्यपि विशेष क़ानून के प्रावधान माता-पिता या अभिभावकों के अधिकारों को नियंत्रित करते हैं, किंतु नाबालिग बच्चे की अभिरक्षा से संबंधित मामलों में नाबालिग का कल्याण सर्वोपरि विचार है। अदालत के लिए सर्वोपरि विचार बाल हित और बच्चे का कल्याण होना चाहिए।"

नाबालिग की अभिरक्षा में, बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट वहां विचार करने योग्य होगी जहां यह स्थापित हो कि माता-पिता या अन्य लोगों द्वारा नाबालिग बच्चे की अभिरक्षा अवैध है और उनके पास कानून का कोई अधिकार नहीं है। रिट न्यायालय में, अधिकारों का निर्धारण हलफनामों के आधार पर किया जाता है, ऐसे मामले में जहां न्यायालय का मानना है कि विस्तृत जांच की आवश्यकता होगी, वह असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से इनकार कर सकता है और पक्षकारों को उचित मंच से संपर्क करने का निर्देश दे सकता है। ऐसे मामलों में सामान्य उपाय हिंदू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम के अंतर्गत होगा। वर्तमान मामले में, भले ही मामले के तथ्यों की जांच हिंदू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम की धारा 6 के प्रावधानों के आधार पर की जाए, बच्चों वैष्णवी और राम सोनी की उनके पिता और दादा-दादी के साथ अभिरक्षा को गैरकानूनी या अवैध नहीं माना जा सकता है, क्योंकि बच्चे 5 वर्ष की आयु सीमा पार कर चुके हैं, जो यह प्रावधान करता है कि नाबालिग लड़के या अविवाहित लड़की जिसने 5 वर्ष की आयु पूरी नहीं की है, की अभिरक्षा सामान्यतः मां के पास रहेगी और उसके बाद, एक हिंदू नाबालिग लड़के या अविवाहित लड़की का प्राकृतिक अभिभावक पिता होगा। अतः, न तो मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में नाबालिगों की उनके पिता या दादा-दादी के साथ अभिरक्षा गैरकानूनी प्रतीत होती है और न ही हिंदू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 की धारा 6 के प्रावधानों के अंतर्गत, नाबालिग बच्चों का पिता और दादा-दादी के साथ रहना उनके कल्याण या हित के विरुद्ध है। वे उचित तरीके से शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं और उन्होंने अपने माता-पिता के घर पर अपने पिता और दादा-दादी के साथ रहने की इच्छा व्यक्त की है, दुर्भाग्य से, उनके माता-पिता के बीच संबंध खराब हो गए हैं और वे एक साथ रहने और बच्चों को अपना प्यार और स्नेह देने के बजाय, वे अपने अपने कारणों और तर्कों के लिए अलग रह रहे हैं। इस प्रकार के मामलों में सर्वोपरि विचार बच्चों का कल्याण है और वर्तमान मामले के तथ्यों में, यह नाबालिग बच्चों की अभिरक्षा को उनके पिता से माता को स्थानांतरित करने की अनुमति नहीं देता है। इसलिए याचिका में की गई प्रार्थना खारिज की जाती है।

अनुवादित

यद्यपि, याचिकाकर्ता परिवार न्यायालय में बच्चों की अभिरक्षा हेतु अपना दावा उठाने के लिए स्वतंत्र है और सभी आवश्यक दावे उक्त फोरम के समक्ष या अन्य उचित कार्यवाही में उठाए जाने के लिए विकल्प खुले हैं।

उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, पूर्व में जारी *रुल निसी* को अंतिम बनाने की आवश्यकता नहीं है, इसे मुक्त किया जाता है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि दोनों पक्षों ने एक-दूसरे के पक्ष में अभिरक्षा के प्रतिधारण या हस्तांतरण होने की स्थिति में, बच्चों से मिलने का अधिकार दूसरे पक्ष को देने की पेशकश की है और बच्चों के कल्याण के लिए भी यह आवश्यक है कि उन्हें माता-पिता दोनों ही का प्यार और स्नेह मिले, जो उचित तरीके से उनके भावनात्मक, मानसिक और मनोवैज्ञानिक विकास में मदद करेंगे।

इसलिए, यह निर्देशित किया जाता है कि बच्चों की मां याचिकाकर्ता सरिता वर्मा को अपने बच्चों से सप्ताह में एक बार और प्रत्येक रविवार को सामान्यतः दोपहर 12 बजे से शाम 05:00 बजे के बीच अपने पति के घर पर मिलने का अधिकार है, बशर्ते कि पति/पत्नी के बीच उचित व्यवस्था की गई हो और बच्चों के पिता राकेश सोनी सौहार्दपूर्ण माहौल प्रदान करने और माता और उसके दोनो बच्चों के प्रस्तावित मिलन को सुविधाजनक बनाने के लिए बाध्य है और इसमें कोई बाधा या रुकावट पैदा नहीं करेंगे और उसके असहयोग की स्थिति में, याचिकाकर्ता संबंधित थाना इंचार्ज से संपर्क करने के लिए स्वतंत्र होगी, जो आवश्यक व्यवस्था प्रदान करेगा,जो याचिकाकर्ता के बच्चों से मिलने के अधिकार के संबंध में इस न्यायालय के निर्देशों का अनुपालन सुनिश्चित करेगा। प्रतिवादी नंबर 4, बच्चों के पिता राकेश सोनी भी सप्ताह में कम से कम दो बार मां और बच्चों के बीच व्हाट्सएप और वीडियो कॉल की सुविधा, यदि वह चाहती है, प्रदान करेंगे।

बंदी- वैष्णवी और राम सोनी को उस स्थान पर वापस जाने की अनुमति दी जाती है जहां से उन्हें आज प्रतिवादी नंबर 4-राकेश सोनी द्वारा लाया गया है।

उपरोक्त टिप्पणियों के साथ बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका का **निस्तारण** किया जाता है।

(2023) 6 ILRA 439

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 01.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्रीवास्तव

रिट-ए संख्या 7531/2023

रितु तोमर **याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **...प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री सुनील कुमार यादव, श्री यशपाल यादव

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी., श्री अमित शुक्ला

ए. सेवा कानून - स्थानांतरण - कर्मचारी को किसी विशेष स्थान पर स्थानांतरित करने और/या स्थानांतरित न करने पर जोर देने का अधिकार नहीं है। आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए कर्मचारी को स्थानांतरित करना नियोक्ता का काम है। (पैरा 6)

स्थानांतरण और पोस्टिंग संबंधित प्राधिकरण के अधिकार क्षेत्र में आते हैं और यह प्राधिकरण

अवधवादित

पर निर्भर करता है कि वह तय करे कि किसी पदधारी को कहां पोस्ट किया जाए और उसकी सेवाओं का सबसे अच्छा उपयोग कहां किया जाए। सुविधा और असुविधा के मुद्दे की भी संबंधित प्राधिकरण द्वारा जांच की जानी चाहिए, न कि इस न्यायालय द्वारा। (पैरा 5)

रिट याचिका खारिज। (ई-4)

<u>अनुसरण की मिसाल:</u>

नम्रता वर्मा बनाम स्टेट ऑफ यू.पी. और अन्य, विशेष अपील की अनुमति (सी) संख्या 36717/2017, 06.09.2021 को तय (पैरा 6)

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्रीवास्तव द्वारा दिया गया)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, प्रतिवादी संख्या 2 और 3 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री अमित शुक्ला और प्रतिवादी संख्या 1 के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

2. वर्तमान याचिका प्रतिवादियों के पक्ष में जारी किए जाने वाले परमादेश की प्रकृति के निर्देश की मांग करते हुए दायर की गई है ताकि याचिकाकर्ता की उसके गृह जिले यानी शामली के किसी भी प्राथमिक विद्यालय में नियुक्ति पर सहानुभूतिपूर्वक विचार किया जा सके।

3. याचिकाकर्ता का मामला यह है कि उसे 30.11.2015 के नियुक्ति पत्र द्वारा प्राथमिक विद्यालय पचपेरा, ब्लॉक पूरनपुर, जिला पीलीभीत में सहायक अध्यापिका के रूप में नियुक्त किया गया था। वह ग्रामीण क्षेत्र में 7 वर्षों से अधिक समय से सेवा कर रही है और सरकारी आदेश में सहायक अध्यापक के अंतर-जिला स्थानांतरण के लिए तीन साल की सेवा की शर्त निर्धारित की गई है और इस प्रकार, उसने वर्ष 2017-18 में अपना स्थानांतरण आवेदन प्रस्तुत किया था। याचिकाकर्ता ने पीलीभीत से शामली स्थानांतरण के लिए कई अभ्यावेदन भी दिए हैं, जिन पर अभी निर्णय होना बाकी है।

4. प्रतिवादी संख्या 2 और 3 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने याचिका में की गई प्रार्थना का पुरजोर विरोध किया और तर्क दिया कि स्थानांतरण याचिकाकर्ता का अधिकार नहीं है।

5. स्थानांतरण और नियुक्ति संबंधित प्राधिकारी के अधिकार क्षेत्र में है और यह निर्णय लेना और निर्धारित करना प्राधिकारी का काम है कि किसी पदधारी को कहां तैनात किया जाना है और उसकी सेवाओं का सर्वोत्तम उपयोग कहां किया जाना है। सुविधा और असुविधा के मुद्दे की भी संबंधित प्राधिकारी द्वारा जांच की जानी है, न कि इस न्यायालय द्वारा।

6. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **नम्रता वर्मा बनाम राज्य उत्तर प्रदेश और अन्य** [विशेष अपील की अनुमति (सी) संख्या 36717/2017, 06.09.2021 को निर्णीत] में यह माना कि कर्मचारी को उसे स्थानांतरित करने और/या किसी विशेष स्थान पर स्थानांतरित न करने पर जोर देना उचित नहीं है। आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए कर्मचारी को स्थानांतरित करना नियोक्ता का काम है।

7. इसके मद्देनजर, वर्तमान याचिका सुनवाई योग्य नहीं है और इसे **खारिज किया जाता है**।

अनुवादित

(2023) 6 ILRA 441

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 19.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी

रिट-ए संख्या 8227/2023

श्रीमती विष्णु कुमारी याचिकाकर्ता

बनाम

संदीप कुमार एवं अन्य. . ..प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री प्रवीण कुमार, श्री ओंकार नाथ विश्वकर्मा, श्री प्रदीप कुमार (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: श्री पुनीत भटुरिया

ए. संपत्ति कानून - बकाया वसूलने का अधिकार - अभियोग - संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 - धारा 109 - 1882 के अधिनियम की धारा 109 के प्रावधान के तहत - हस्तांतरिती संपत्ति के हस्तांतरण पर बकाया किराया वसूलने का हकदार है, यदि किराया वसूली का अधिकार भी हस्तांतरित किया जाता है और इसके अलावा, वह पहले से लंबित बकाया के आधार पर बेदखली का मुकदमा भी चला सकता है। (पैरा 13)

29.07.1989 के बिक्री विलेख के अनुसार, इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि किराए की वसूली और बेदखली के लिए एससीसी कोर्ट, इटावा के समक्ष लंबित एससीसी मुकदमा संख्या 64/1975 का विशिष्ट उल्लेख है। एक बार जब यह दावा किया जाता है कि किराया वसूली और बेदखली के लिए वाद दायर किया गया है, और इसके अलावा, बाद के खरीदार को मामला लड़ने का अधिकार दिया गया है, तो इसमें कोई विवाद नहीं है कि इसमें किराया वसूलने का अधिकार भी शामिल है। (पैरा 15)

बी. अभियोग - आदेश XXII नियम 10, सीपीसी में प्रावधान है कि न्यायालय की अनुमति से किसी वाद के लंबित रहने के दौरान किसी हित के असाइनमेंट, सृजन या हस्तांतरण के मामले में, उस व्यक्ति द्वारा वाद जारी रखा जा सकता है जिस पर ऐसा हित हस्तांतरित किया गया है। (पैरा 22, 23)

आदेश XXII नियम 10, सीपीसी के तहत आवेदन पर विचार करते समय, न्यायालय को केवल वाद को जारी रखने के लिए अनुमति देने में अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने के लिए प्रथम दृष्टया संतुष्ट होना है और असाइनमेंट या हस्तांतरण के अस्तित्व और वैधता के बारे में शेष प्रश्नों पर कार्यवाही की अंतिम सुनवाई में विचार किया जा सकता है। (पैरा 20, 21)

वर्तमान मामले में, इसमें कोई संदेह नहीं है कि दिनांक 29.07.1989 को बिक्री विलेख के निष्पादन के बाद श्री गोविंद सरन दीक्षित (अब मृतक) के पक्ष में ब्याज हस्तांतरित किया गया है। इसके अलावा, बिक्री विलेख में किराए और बेदखली के बकाया के लिए एससीसी सूट संख्या 64/1975 के लंबित होने के बारे में विशिष्ट कथन है, इसलिए, दिनांक 13.03.2023 के ट्रायल कोर्ट के आदेश में कोई अवैधता नहीं है, जिसे दिनांक 26.04.2023 के विवादित पुनरीक्षण आदेश द्वारा पुष्टि की गई है। (पैरा 19, 24)

जहां तक 26.04.2023 के दूसरे विवादित आदेश का सवाल है, तथ्य यह है कि मुकदमे की कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान श्री गोविंद सरन दीक्षित-वादी की 21.02.2018 को

अनुवादित

मृत्यु हो गई और इस न्यायालय ने सीपीसी के आदेश I नियम 10 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए श्री गोविंद सरन दीक्षित के कानूनी उत्तराधिकारियों को आदेश I नियम 10, सीपीसी और आदेश VI नियम 17, सीपीसी के तहत धारा 151 सीपीसी के तहत पक्षकार बनने के लिए आवेदन दायर करने का निर्देश दिया है। चूंकि श्री गोविंद सरन दीक्षित (अब मृत) का पक्षकार बनना कानून में वैध है, इसलिए उनके कानूनी उत्तराधिकारियों को भी मुकदमा लड़ने के लिए पक्षकार बनने का अधिकार है। (पैरा 25, 26)

रिट याचिका खारिज की जाती है। (ई-4)

<u>अनुसरण किए गए उदाहरण:</u>

1. अमित कुमार शॉ बनाम फरीदा खातून, 2005 एआईआर (एससी) 2209 (पैरा 8)

2. भीम सेन वाधवा बनाम श्री ओम प्रकाश बत्रा एवं अन्य, 2010 (2) एआरसी 360 (पैरा 8)

प्रचलित उदाहरण:

शेख नूर बनाम शेख जी.एस. इब्राहिम (मृत) एलआरएस द्वारा, 2003 0 सुप्रीम (एससी) 712 (पैरा 6)

वर्तमान अपील में अपर जिला न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 8, इटावा द्वारा पारित दिनांक 13.03.2023 और 26.04.2023 के आदेशों को चुनौती दी गई है।

(माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी द्वारा दिया गया)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रवीण कुमार और प्रतिवादी क्रमांक 5 के विद्वान अधिवक्ता श्री पुनीत भदौरिया को सुना गया।

2. वर्तमान याचिका निम् राहत की मांग करते हुए दायर की गई है:

"i) एससीसी रिविजन संख्या 11 / 2004, मुरारी लाल श्रीवास्तव बनाम संदीप कुमार एवं अन्य में अपर जिला न्यायाधीश, कोर्ट संख्या 8, इटावा द्वारा पारित दिनांक 13.03.2023 के आरोपित आदेश को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।

ii) विष्णु कुमारी बनाम संदीप कुमार एवं अन्य के किराया संशोधन संख्या 19 / 2023 में अपर जिला न्यायाधीश न्यायालय संख्या 8, इटावा द्वारा पारित दिनांक 26.04.2023 के विवादित आदेश को निरस्त करने के लिए प्रमाण पत्र की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश जारी करें। "

3. चूंकि इसमें केवल कानूनी प्रश्न शामिल है, इसलिए शपथ पत्र आमंत्रित किए बिना पक्षों की सहमति से मामले का निर्णय प्रवेश स्तर पर ही किया जा रहा है।

4. मामले के निर्विवाद तथ्य यह हैं कि श्रीमती रामदेवी और श्रीमती सरल कुमारी ने बेदखली और बकाया किराए और हर्जाने की वसूली के लिए एससीसी कोर्ट के समक्ष एसएससी मुकदमा संख्या 64/1975 दायर किया था, जिस पर प्रतिवादी श्री मुरारी लाल श्रीवास्तव ने लिखित बयान दायर किया था। मुकदमे की कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान, श्रीमती । सरल कुमारी ने दिनांक 29.07.1989 को श्री गोविंद सरन दीक्षित (मृतक) के पक्ष में एक विक्रय विलेख निष्पादित किया। इसके बाद, श्री

अनुवादित

गोविंद सरन दीक्षित (मृत्यु के बाद से) ने आदेश XXII नियम 10, सिविल प्रक्रिया संहिता (इसके बाद, 'सीपीसी' के रूप में संदर्भित) के तहत पक्षकार बनाने के लिए दिनांक 06.01.1990 को एक आवेदन दिया। वादी. कहा गया कि पक्षकार आवेदन को दिनांक 22.04.2004 के आदेश द्वारा अनुमति दी गई थी। उक्त आदेश के खिलाफ, प्रतिवादी ने 2004 का एससीसी संशोधन संख्या 11 दायर किया। उक्त संशोधन को पहले आक्षेपित आदेश दिनांक 13.03.2023 द्वारा खारिज कर दिया गया था। कानूनी के दौरान, 21.02.2018 को श्री गोविंद शरण दीक्षित की मृत्यु हो गई। एससीसी कोर्ट ने दिनांक 01.04.2023 के आदेश के तहत श्री गोविंद सरन दीक्षित (मृतक के बाद से) के कानूनी उत्तराधिकारियों को आदेश । नियम 10, सीपीसी के साथ-साथ आदेश VI नियम 17, सीपीसी और धारा 151 सीपीसी के तहत पक्षकार बनाने के लिए आवेदन दायर करने का निर्देश दिया। दिनांक 01.04.2023 के आदेश के विरूद्ध पुनरीक्षण क्रमांक 19/2023 दाखिल किया गया था, जिसे भी द्वितीय आक्षेपित आदेश दिनांक 26.04.2023 द्वारा खारिज कर दिया गया। इसलिए उक्त याचिका प्रस्तुत की गयी है।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि आदेश XXII नियम 10, सीपीसी के तहत संदर्भित पत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 (इसके बाद '1882 का अधिनियम' के रूप में की धारा 109 के प्रावधान द्वारा वर्जित किया गया है क्योंकि इसमें कोई असाइनमेंट नहीं है। विक्रय विलेख दिनांक 29.07.1989 की सामग्री में, इसलिए, पक्षकार का आवेदन बनाए रखने योग्य नहीं है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि 1882 के अधिनियम की धारा 109 में प्रावधान है कि यदि किराया मामला लंबित है तो बाद के खरीदार द्वारा किराए का कोई बकाया वसूल नहीं किया जा सकता है जब तक कि बिक्री विलेख में किराए की वसूली के लिए विशिष्ट प्रावधान न हो। वर्तमान मामले में, केवल 1975 के एससीसी सूट नंबर 64 की पेंडेंसी का उल्लेख है, लेकिन श्री गोविंद सरन दीक्षित (मृतक के बाद से) जिनके पक्ष में बिक्री विलेख निष्पादित किया गया था, के लिए किराए की वसूली के प्राधिकरण के बारे में कोई विशेष कथन नहीं है। इसलिए, दिनांक 13.03.2023 और 26.04.2023 के आदेश खराब हैं और रद्द किए जाने योग्य हैं।

6. अपने तर्क के समर्थन में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा जताया है। शेख नूर बनाम शेख जी. एस. इब्राहिम (मृत) अपने विधिक प्रतिनधि द्वारा: 20030 सुप्रीम (एससी) 712. उन्होंने अंततः प्रस्तुत किया कि चूँकि कोई असाइनमेंट नहीं है और इसके अलावा 29.07.1989 के विक्रय विलेख में किराए की के बारे में कोई उल्लेख नहीं है, इसलिए, बेदखली के लिए एससीसी सूट नंबर 64/1975 श्री के गोविंद शरण दीक्षित (मृतक के बाद से) के कानूनी उत्तराधिकारियों की ओर से बनाए रखने योग्य नहीं है।

7. इसके विपरीत, प्रतिवादी-वादी नंबर 5 के विद्वान अधिवक्ता श्री पुनीत भदौरिया ने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई दलील का पुरजोर विरोध किया और कहा कि बिक्री विलेख दिनांक 29.07.1989 में एससीसी सूट नंबर की पेंडेंसी के बारे में विशिष्ट कथन है। न्यायाधीश, लघु वाद

अधिवक्ता

न्यायालय के समक्ष 1975 का 64 और यह असाइनमेंट भी है कि यह क्रेता पर है कि वह उक्त मामले में पक्षकार बनने के लिए आवेदन दायर करे और अपने खर्च पर मामले को लड़े। दिनांक 29.07.1989 के विक्रय विलेख में संदर्भित एससीसी सूट बेदखली और बकाया किराए और क्षति की वसूली के लिए है, जिसमें किराए की वसूली का अधिकार भी शामिल है, वास्तव में यह विक्रय विलेख में एक स्पष्ट असाइनमेंट है, इसलिए, आक्षेपित आदेशों में कोई अवैधता नहीं है और याचिका खारिज किये जाने योग्य हैं।

8. अपने तर्क के समर्थन में, प्रतिवादी - वादी संख्या 5 के विद्वान अधिवक्ता श्री पुनीत भदौरिया ने अमित कुमार शॉ बनाम. फरीदा खातून: 2005 एआईआर (एससी) 2209 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा जताया है। उन्होंने भीम सेन वाधवा बनाम श्री आ ेम प्रकाश बत्रा एवं अन्य 2010 (2) ARC 360 के मामले में इस न्यायालय के फैसले पर भी भरोसा जताया।

9. मैं पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओ द्वारा की गई प्रतिद्वंद्वी दलीलों पर विचार किया है और रिकॉर्ड के साथ-साथ जिन निर्णयों पर भरोसा किया है, उनका अध्ययन किया है।

10. न्यायालय के समक्ष निर्णय लेने का मुद्दा यह है कि क्या 1882 के अधिनियम की धारा 109 के आलोक में, श्री गोविंद शरण दीक्षित (मृतक के बाद से) किराया प्राप्त करने के हकदार थे या नहीं और इसके अलावा, आदेश के तहत दायर पक्षकार के लिए आवेदन XXII नियम 10, सीपीसी कायम रखने योग्य है या नहीं |

11. विवाद का निर्णय करने के लिए 1882 के अधिनियम की धारा 109 का प्रावधान प्रासंगिक है, इसलिए उसे यहां नीचे उद्धृत किया जा रहा है।

संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 की धारा 109 "

109. पट्टादाता के अंतरिती के अधिकार- यदि पट्टादाता हस्तांतरित करता है तो पट्टे पर दी गई संपत्ति, या उसका कोई हिस्सा, या उसमें उसके हित का कोई हिस्सा, इसके विपरीत अनुबंध की अनुपस्थिति में, हस्तांतरिती के पास सभी अधिकार होंगे और, यदि पट्टेदार ऐसा चुनाव करता है, तो वह सभी देनदारियों के अधीन होगा। हस्तांतरित संपत्ति या हिस्से के बारे में पट्टादाता, जब तक वह इसका मालिक है; लेकिन पट्टादाता, केवल ऐसे हस्तांतरण के कारण, पट्टे द्वारा उस पर लगाए गए किसी भी दायित्व के अधीन नहीं रहेगा, जब तक कि पट्टेदार अंतरिती को उसके प्रति उत्तरदायी व्यक्ति के रूप में मानने का चुनाव नहीं करत बशर्ते कि हस्तांतरिती हस्तांतर से पहले देय किराए के बकाया का हकदार नहीं है, और यदि पट्टेदार, यह मानने का कारण न रखते हुए कि ऐसा हस्तांतरण किया गया है, पट्टाकर्ता को किराया देता है, तो पट्टेदार हस्तांतरिती को ऐसा किराया दोबारा देने के लिए नहीं होगा। हस्तांतरितकर्ता और पट्टाधारक यह निर्धारित कर सकते हैं कि पट्टे द्वारा आरक्षित प्रीमियम या किराए का कितना अनुपात हस्तांतरित हिस्से के संबंध में

अनुवादित

देय है, और यदि वे असहमत हैं, तो ऐसा निर्धारण किसी भी न्यायालय द्वारा किया जा सकता है, जिसके पास पट्टे पर दी गई संपत्ति के कब्जे के लिए मुकदमा चलाने का अधिकार है।

12. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने शेख नूर (उपरोक्त) के मामले में शीर्ष अदालत के फैसले पर भरोसा जताया है, जिसके प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे उद्धृत किए गए हैं:

"(15). गिरधारीलाल (मृत) अपने विधिक प्रतिनिधि के द्वारा बनाम हुकम सिंह और अन्य, एआईआर (1977) एससी 129, इस बिंदु पर विचार किया गया कि क्या हस्तांतरण उसके पक्ष में संपत्ति के हस्तांतरण से पहले देय किराए का हकदार है। राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 109 के प्रावधानों की व्याख्या इस आशय से की गई है कि आम तौर पर अंतरिती बकाया का हकदार नहीं है जब तक कि इसके विपरीत कोई अनुबंध स्वीकृत न हो। यदि बकाया का समनुदेशन था तो निश्चित रूप से स्थानांतरित मकान मालिक पक्ष में स्थानांतरण से पहले बकाया किराए सहित बकाया किराए के आधार पर बेदखली के लिए याचिका दायर कर सकता था। यह माना गया था: "संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 109 के प्रावधान के आधार पर एक आपत्ति, हमें लगता है कि सही है, उच्च न्यायालय द्वारा निम्नानुसार निपटारा किया गया था;" अगली आपत्ति यह है कि स्थानांतरण की धारा 109 के प्रावधान के तहत संपत्ति अधिनियम के अनुसार अंतरिती स्थानांतरण से पहले देय किराए के बकाया का हकदार नहीं है। हमारी राय में वह आम तौर पर तब तक इसका हकदार नहीं है जब तक कि इसके विपरीत कोई अनुबंध न हो। समझौता याचिका में इसके विपरीत एक स्पष्ट अनुबंध शामिल था जिसे न्यायालय द्वारा पारित समझौता डिक्री में शामिल किया गया था।"

(18) ऊपर उल्लिखित मामलों को ध्यान में रखते हुए, हमारी राय में, कानून की सही स्थिति यह है कि एक हस्तांतरणकर्ता स्थानांतरण पर संपत्ति के किराए के रूप में बकाया वसूलने का हकदार नहीं है, जब तक कि बकाया वसूलने का अधिकार भी स्थानांतरित नहीं किया जाता है। . यदि बकाया वसूलने का अधिकार सौंपा गया है, तो अंतरिती / मकान मालिक उन बकाया राशि को किराए के रूप में वसूल कर सकता है और यदि भुगतान नहीं किया गया है तो उन बकाया राशि के लिए किराया कानूनों के तहत बेदखली के लिए याचिका भी दायर कर सकता है। चूंकि इस मामले में हमने पाया है कि बकाया वसूलने का अधिकार किसके पक्ष में सौंपा गया था प्रतिवादी अंतरिती वह किराए की बकाया राशि के समान वसूल करने का हकदार था। यदि उस अवधि को ध्यान में रखा जाए तो किरायेदार / अपीलकर्ता निश्चित रूप से छह महीने से अधिक समय से किराए के बकाया में थे और उन्हें बेदखल किया जा सकता था। मुकदमा दायर करने की तारीख पर छह महीने से अधिक का किराया के भुगतान में उनकी ओर से चूक के आधार पर परिसर विवाद में है।

अनुवादित

13. उक्त निर्णय के अवलोकन से, यह बहुत अच्छी तरह से तय हो गया है कि 1882 के अधिनियम की धारा 109 के प्रावधान के तहत, किराए की वसूली के अधिकार के मामले में, हस्तांतरिती संपत्ति के हस्तांतरण पर बकाया किराए की वसूली का हकदार है। स्थानांतरित भी कर दिया जाता है और आगे, वह पहले से लंबित बकाया के आधार पर बेदखली का मुकदमा भी कायम रख सकता है।

14. मैंने दिनांक 29.07.1989 के विक्रय विलेख का अवलोकन किया है, जिसका प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"वाजै हो कि जो किरायेदारान मकान मुवैया में आवाद है उनकी किरायेदारी रखना अथवा उनको दखल करीना खरीदार की मर्जी पर है हम मुकिरान की कोई उपया खर्ल जिम्मेदारी वावत मकान कराने की न होगी। किराये पर बाबू मुरारी लाल श्रीवास्तव व हम मुकिरान के दरमियान एक वाद वाक्त किराया वसूली व वदखली किराये दार मकान मुवैया से सम्बन्धित न्यायालय खफीफा मुंसफी इटावा को है जिसका मुकदमा नम्बर 64/75 है। इस मुकदमें में हस्व मंशा अपनी पैरवी करे हम मुकिरान को उक्त मुकदमें की पैरवी से कोई वासता व सरोकार न होगा "

15. विक्रय विलेख दिनांक 29.07.1989 में किए गए कथन के अवलोकन से, इस बिंदु पर कोई विवाद नहीं है कि किराए की वसूली के लिए एससीसी न्यायालय, इटावा के समक्ष लंबित एससीसी सूट नंबर 64 / 1975 का विशेष उल्लेख है। बेदखली. एक बार जब यह कहा जाता है कि किराया वसूलने और बेदखली के लिए मुकदमा दायर किया गया है, और इसके अलावा, बाद के खरीदार को मामला लड़ने का अधिकार दिया गया है, तो इसमें कोई विवाद नहीं है कि इसमें किराया वसूलने का अधिकार भी शामिल है। इसलिए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की यह दलील कि वादी - श्री गोविंद सरन दीक्षित (मृतक के बाद से) को दिनांक 29.07.1989 के बिक्री विलेख में कोई अधिकार नहीं दिया गया है, गलत है।

16. इसलिए, इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय शेख़ नूर (उपरोक्त) याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा इस पर भरोसा करना याचिकाकर्ता के बचाव में नहीं आ रहा है, बल्कि इससे वादी -प्रत्यर्थी को मदद मिल रही है। वादी प्रत्यर्थी को पूर्व में लंबित बेदखली के मामले को लड़ने का पूर्ण अधिकार है।

17. अब, दूसरे मुद्दे पर आते हैं, जो आदेश XXII नियम 10, सीपीसी के तहत के असाइनमेंट, आवेदन दाखिल करने के बारे में है। आदेश XXII नियम 10, सीपीसी में प्रावधान है कि न्यायालय की अनुमति से किसी मुकदमे के लंबित रहने के दौरान किसी निर्माण या हस्तांतरण के मामले में, उस व्यक्ति द्वारा मुकदमा जारी रखा जा सकता है जिस पर ऐसा हित हस्तांतरित किया गया है।

18. आदेश XXII नियम 10, सीपीसी से निपटने के लिए, इसे यहां नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

आदेश XXII नियम 10, सीपीसी

अनुवादित

मुकदमे में अंतिम आदेश से पहले समनुदेशन के मामले में प्रक्रिया - (1) किसी समनुदेशन के अन्य मामलों में, किसी मुकदमे के लंबित रहने के दौरान किसी हित का सृजन या हस्तांतरण, न्यायालय की अनुमति से, उस व्यक्ति द्वारा या उसके विरुद्ध रखा जा सकता है, जिस पर या जिस पर ऐसा हित आया है या हस्तांतरित किया गया है।

(2) किसी अपील के लंबित रहने तक डिक्री की कुर्की उस व्यक्ति को उप-नियम (1) के लाभ का हकदार बनाने वाला हित माना जाएगा जिसने ऐसी कुर्की प्राप्त की है।

19. वर्तमान मामले में, इस बिंदु पर कोई विवाद नहीं है कि श्री गोविंद सरन दीक्षित (मृत्यु के बाद से) का हित उनके पक्ष में दिनांक 29.07.1989 को बिक्री विलेख के निष्पादन के बाद हस्तांतरित किया गया है।

20. इस मुद्दे पर शीर्ष अदालत ने विचार किया है अमित कुमार शॉ (उपरोक्त) में उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे उद्धृत किया गया है:

“12. आदेश XXII, नियम 10 के तहत, छुट्टी देने के चरण में कोई विस्तृत पूछताछ पर विचार नहीं किया गया है। न्यायालय को केवल उस व्यक्ति द्वारा या उसके खिलाफ मुकदमा जारी रखने की अनुमति देने में अपने विवेक का प्रयोग करने के लिए प्रथम दृष्टया संतुष्ट होना होगा जिस पर असाइनमेंट या हस्तांतरण द्वारा हित हस्तांतरित किया गया है। कार्यवाहियों की अंतिम सुनवाई असाइनमेंट या हस्तांतरण के अस्तित्व और वैधता के बारे में प्रश्न पर विचार किया जा सकता है। मुकदमे को जारी रखने की अनुमति देने में विवेक का प्रयोग करने के लिए न्यायालय को केवल प्रथम दृष्टया संतुष्ट होना होगा।"

21. उक्त निर्णय के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि आदेश XXII नियम 10, सीपीसी के तहत आवेदन पर विचार करते समय, न्यायालय को मुकदमे को जारी रखने के लिए अनुमति देने में अपने अधिकार क्षेत्र का उपयोग करने के लिए केवल प्रथम दृष्टया संतुष्ट होना होगा और कार्यवाही की अंतिम सुनवाई, असाइनमेंट या हस्तांतरण के अस्तित्व और वैधता के बारे में शेष प्रश्नों पर विचार किया जा सकता है।

22. इसी मुद्दे पर भीम सेन वाधवा (उपरोक्त) न्यायालय द्वारा विचार किया गया था उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे उद्धृत किया गया है:

"6. विक्रय- बकाया गया की एक प्रति रिकॉर्ड में है और इसमें दर्ज है कि किराए के अधिकार के साथ-साथ मुकदमा करने का अधिकार भी क्रेता को सौंपा है। निचली अदालत ने आदेश XXII नियम 10 सीपीसी के प्रावधान के प्रभाव पर विचार किया है। इसने धुरंधर प्रसाद सिंह बनाम जय प्रकाश विश्वविद्यालय [एआईआर 2001 एससी 2552] के मामले में दिए गए शीर्ष न्यायालय के फैसले पर भी भरोसा किया है। उपरोक्त मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि किसी मुकदमे के लंबित रहने के दौरान ब्याज के हस्तांतरण के मामले में, इसे उन व्यक्तियों द्वारा या उनके खिलाफ जारी रखा जा सकता है जिन पर ऐसा हित

अनुवादित

हस्तांतरित हुआ है और यह उस व्यक्ति को अधिकार देता है जिसने विषय वस्तु में रुचि अर्जित की है। किसी समनुदेशन या सृजन या हित के हस्तांतरण द्वारा मुकदमेबाजी के पेंडेंटलाइट या सूटर या मुकदमे को जारी रखने की अनुमति के लिए न्यायालय में आवेदन करने में रुचि रखने वाले किसी अन्य व्यक्ति द्वारा न्यायालय की राय में, दोनों अदालतों द्वारा दोनों आवेदनों को अनुमति देना पूरी तरह से उचित था और याचिकाकर्ता के तर्क को कायम नहीं रखा जा सकता।"

23. उक्त निर्णय के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि किसी मुकदमे के लंबित रहने के दौरान ब्याज के हस्तांतरण के मामले में, इसे उस व्यक्ति द्वारा जारी रखा जा सकता है जिस पर ऐसा हित हस्तांतरित किया गया है।

24. जहां तक वर्तमान मामले का सवाल है, इस तथ्य के बारे में कोई संदेह नहीं है कि दिनांक 29.07.1989 को बिक्री विलेख के निष्पादन के बाद ब्याज श्री गोविंद सरन दीक्षित (मृत्यु के बाद से) के पक्ष में स्थानांतरित कर दिया गया है। इसके अलावा, बिक्री विलेख में किराए और बेदखली के बकाया के लिए 1975 के एससीसी सूट नंबर 64 की लंबितता के बारे में विशिष्ट कथन है, इसलिए, ट्रायल कोर्ट के दिनांक 13.03.2023 के आदेश में कोई अवैधता नहीं है, जिसकी पुष्टि 26.04.2023 दिनांकित 25. जहां तक दूसरे आक्षेपित पुनरीक्षण आदेश द्वारा की गई है। दिनांक 26.04.2023 का संबंध है, तथ्य यह है कि, मुकदमे की कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान, श्री गोविंद शरण दीक्षित - वादी की 21.02.2018 को मृत्यु हो गई और यह न्यायालय आदेश । नियम 10 के तहत शक्ति का प्रयोग कर रहा है। सीपीसी ने श्री कानूनी उत्तराधिकारियों को निर्देशित किया है गोविंद सरन दीक्षित को आदेश । नियम 10, सीपीसी और आदेश VI नियम 17, सीपीसी के साथ पठित धारा 151 सीपीसी के तहत पक्षकार बनाने के लिए आवेदन दायर करना होगा ।

26. आदेश | नियम 10 (2) के अवलोकन से, यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट है कि न्यायालय को किसी भी स्तर पर पार्टियों को हटाने या जोड़ने का अधिकार है और वर्तमान मामले में, एससीसी मुकदमा 1975 से लंबित था, इसलिए, न्यायालय ने श्री गोविंद शरण दीक्षित की मृत्यु के बाद उनके कानूनी उत्तराधिकारियों को पक्षकार बनाने के लिए दिनांक 01.04.2023 को आदेश पारित करने के लिए उचित रूप से आगे बढ़े। उक्त आदेश के खिलाफ, याचिकाकर्ता प्रत्यर्थी द्वारा का पुनरीक्षण संख्या 11 / 2004 दायर किया गया था, जिसे 13.03.2023 के आक्षेपित आदेश द्वारा विशेष रूप से इस तथ्य के प्रकाश में खारिज कर दिया गया था कि एक बार श्री गोविंद शरण दीक्षित (मृतक के बाद से) का पक्षकार वैध है कानून में, इसलिए, उसके कानूनी उत्तराधिकारियों को भी मामला लड़ने के लिए पक्षकार बनाए जाने का अधिकार है।

27. मामले के ऐसे तथ्यों और परिस्थितियों के तहत, मुझे दिनांक 3.03.2023 और 26.04.2023 के आक्षेपित आदेशों में कोई अवैधता नहीं मिली।

28. याचिका में मेरिट का अभाव है और यह तदनुसार खारिज की जाती है

29. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं ।

अनुवादित

(2023) 6 ILRA 447

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 10.04.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार

रिट-ए संख्या 44517/2016

जाधव सिद्धोधन अंकुश याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ और अन्य प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री गुलाब चंद्र

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: ए.एस.जी.आई., श्री नंद लाल. यू.ओ.आई.

सेवा कानून - सेवा समाप्ति - मिथ्या प्रस्तुति - केन्द्रीय सिविल सेवा (अस्थायी सेवा) नियम, 1965 - कर्मचारी से सीधे 'ज्ञान' की सच्चाई जानने के लिए, उसे अवसर दिया जाए तो वह अपने आचरण की व्याख्या करेगा और इससे आवश्यक कार्रवाई हो जाएगी। (पैरा 14)

यद्यपि गलत सूचना देने के आरोप में कर्मचारी की सेवा समाप्त करने का अधिकार है और इसलिए नियुक्ति प्राधिकारी के लिए ऐसे कर्मचारी को सेवा में बनाए रखने के लिए कोई बाध्यता नहीं हो सकती है, लेकिन "मैकार्थीवाद" संवैधानिक लक्ष्य के विपरीत है जो निश्चित रूप से उपयुक्त मामलों में युवा अपराधियों के संबंध में सुधारात्मक सिद्धांत की आधारशिला है। (पैरा 13)

जब भी इस तथ्य की जांच की जानी है कि क्या किसी उम्मीदवार को विज्ञापित पद पर चयन और नियुक्ति के लिए आवेदन पत्र भरते समय उसके खिलाफ दर्ज/संस्थित किसी आपराधिक मामले/कार्यवाही का ज्ञान था, तो ज्ञान कारक महत्वपूर्ण हो जाता है। आपराधिक मामले के ज्ञान के इस तथ्य को उजागर करने के लिए, कर्मचारी के परिवीक्षा पर रहने के दौरान भी कम से कम एक प्रारंभिक तथ्य खोज जांच करना अनिवार्य हो जाता है, और इसलिए, ऐसे कर्मचारी को मामले में अपने आचरण को स्पष्ट करने के लिए नोटिस दिया जाना चाहिए। (पैरा 15)

इस प्रकार, यदि आपराधिक मामले में किसी उम्मीदवार की जानकारी के अभाव में जानकारी छिपाना या कथित रूप से जानकारी छिपाना, उसकी उम्मीदवारी को खारिज करने और परिणामस्वरूप उसे सेवा से समाप्त करने का एक प्रमुख कारक बन जाता है, तो सेवा समाप्ति का आदेश एक सरल आदेश हो सकता है, **लेकिन विभाग/नियोक्ता को अपनी कार्रवाई में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप होना चाहिए। यह माना जाता है कि किसी कर्मचारी को सेवा में बनाए रखना, जहां उसे फॉर्म भरने या सत्यापन फॉर्म पर हस्ताक्षर करने के समय जानकारी थी या नहीं, नियोक्ता के विवेक के भीतर होगा।** (पैरा 16)

अधिकारी के लिए याचिकाकर्ता को उसके आचरण को स्पष्ट करने के लिए एक अवसर देना और फिर कानून के अनुसार कार्रवाई करना उचित माना जाता है। (पैरा 17)

रिट याचिका को अनुमति दी गई। (ई-4)

<u>अनुसरण किया गया उदाहरण:</u>

अवतार सिंह बनाम यू.ओ.आई. एवं अन्य (2016) 8 एससीसी 471 (पैरा 4)

अनुवादित

(माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार द्वारा दिया गया)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री गुलाब चंद्र और प्रतिवादी संख्या 1 से 4 के विद्वान अधिवक्ता श्री नंद लाल को सुना।

2. इस न्यायालय के समक्ष के याचिकाकर्ता को केंद्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल के साथ कांस्टेबल के रूप में वैध रूप से चयनित और नियुक्त किया गया था और इसकी यूनिट एनसीएल इंदौली (एम.पी.) में पोस्टिंग दी गई थी। हालांकि, जब वह परिवीक्षा पर काम कर रहा था, तो सीआईएसएफ के वरिष्ठ कमांडेंट, शक्ति नगर, जिला सोनभद्र ने केंद्रीय सिविल सेवा (अस्थायी सेवा) नियम, 1965 के तहत एक आदेश पारित किया, जिसके द्वारा उसकी सेवाओं को उनके द्वारा दायर सत्यापन फॉर्म के खंड 3 के अनुसार समाप्त कर दिया गया।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि सत्यापन फॉर्म, जिसे प्रतिवादी के साथ उसकी नियुक्ति के समय जमा करना था, में कॉलम संख्या 12 (बी) में एक खंड था जिसमें लिखा था "*यदि आप पर कभी मुकदमा चलाया गया है*", और इसका उत्तर सकारात्मक या नकारात्मक में दिया जाना था। हालांकि, अनजाने में हुई गलती के कारण याचिकाकर्ता ने 'हां' शब्द की जगह 'नहीं' शब्द लिख दिया था। उन्होंने आगे कहा कि चूंकि याचिकाकर्ता को धारा 294, 352,506,509, 34 *भा.दं.सं.* के तहत उनके विरूद्ध लगाए गए आपराधिक मामले में बरी कर दिया गया था, इसलिए उसने सोचा कि अभियोजन पक्ष के मामले का संदर्भ देना जरूरी नहीं है, जिसमें उसे वर्ष 2010 में बरी कर दिया गया था। उक्त मामले में उन्होंने दावा किया कि याचिकाकर्ता को संबंधित रिक्ति के विरूद्ध उनके आवेदन से बहुत पहले बरी कर दिया गया था। उन्होंने आगे कहा कि यद्यपि विचाराधीन आदेश केन्द्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल नियम, 2001 के नियम 36 के उपनियम 4 और केन्द्रीय सिविल सेवा (अस्थायी सेवा) नियम, 1965 के नियम 5 के प्रावधानों का सहारा लेते हुए सरल प्रकृति का सेवा समाप्ति आदेश है, किन्तु इस आदेश को पारित करने का आधार आपराधिक मामले का खुलासा न करना है, जिसमें याचिकाकर्ता पर कुछ समय पहले मुकदमा चलाया गया था, हालांकि वर्ष 2010 में उसे बरी कर दिया गया था।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **अवतार सिंह बनाम भारत संघ एवं अन्य (2016) 8 एससीसी 471** के मामले में दिए गए निर्णय पर भरोसा किया है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय उस मामले पर विचार कर रहा था, जिसमें ऐसा खुलासा न करने वाले एक कर्मचारी को भी बरी कर दिया गया था।

5. इसके विपरीत, प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि जिस आपराधिक मामले में याचिकाकर्ता पर मुकदमा चलाया गया था, उसका खुलासा न करना उनके जानकारी में था और इसका खुलासा न करने का अर्थ यह लिया जाएगा कि उसने गलत बयानी के द्वारा नियुक्ति प्राप्त की है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि यह एक नियुक्ति को छीनने और अन्य योग्य उम्मीदवार को बेदखल करने जैसा है, जो उस पर कभी किसी आपराधिक मामले में मुकदमा नहीं चलने के कारण अच्छे और साफ चरित्र का हो सकता था।

6. यह भी तर्क दिया गया कि यदि उम्मीदवार

अनुवादित

ने इस उद्देश्य के लिए बने कॉलम में आपराधिक पृष्ठभूमि का खुलासा नहीं किया है और बाद में पाया जाता है कि उसका आपराधिक पृष्ठभूमि है तो उम्मीदवार को बनाए रखना या न रखना नियोक्ता का विवेक है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि अवतार सिंह मामले (*उपरोक्त*) में भी नियोक्ता के इस विवेक को बरकरार रखा गया है और उम्मीदवार भले ही आपराधिक मामले में बरी हो गया हो, नियुक्ति का वैध दावा नहीं कर सकता।

7. प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि याचिकाकर्ता अभी भी परिवीक्षा पर था, और इसलिए, उसकी सेवा बिना कोई कारण बताए समाप्त की जा सकती थी।

8. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता और अवरोध में उठाए गए उनके तर्कों को सुनने के बाद, दलीलों से जो तथ्य उभर कर मैं सामने पाता हूं वह यह है कि सत्यापन फॉर्म के खंड 3 के मद्देनजर याचिकाकर्ता की सेवाओं को समाप्त कर दिया गया था। सत्यापन फॉर्म का खंड 3 घोषित करता है कि यदि दी गई कोई जानकारी झूठी या छिपी हुई पाई जाती है तो सेवाएं समाप्त की जा सकती हैं। समाप्ति का आदेश विभाग को किसी विशेष तथ्य का खुलासा न करने के संबंध में बिल्कुल मौन है। यदि आदेश सत्यापन फॉर्म के पैराग्राफ 3 पर आधारित था, तो इसमें ऐसी कार्रवाई करने का विस्तृत कारण बताया जाना चाहिए था। कोई कारण बताए बिना, केवल खंड 3 पर निर्भर रहने से आवश्यक कार्य नहीं होगा। जवाबी हलफनामे में उठाई गई दलीलों के माध्यम से सेवा समाप्ति के आदेश का बचाव करने का प्रयास किया गया है कि आपराधिक मामले से संबंधित तथ्य जानबूझकर प्रकट नहीं किए गए थे, और इसलिए कार्रवाई की गई थी।

9. यह अच्छी तरह से स्थापित कानून है कि जवाबी हलफनामे में दी गई दलीलों की कोई भी मात्रा याचिका में दिए गए आक्षेपित आदेश को बेहतर नहीं बना सकती।

10. मेरे विचार से, प्राधिकारी को एक नोटिस जारी करना चाहिए था जिसमें याचिकाकर्ता को यह बताने के लिए कहा जाता कि सत्यापन फॉर्म में किसी विशेष आपराधिक मामले का खुलासा न करने के लिए उसकी सेवाओं को क्यों न समाप्त किया जाए। ऐसा नहीं किए जाने के कारण, विचाराधीन आदेश कानून में कायम नहीं रह सकता है।

11. यह एक ऐसा मामला है जहां याचिकाकर्ता को पहले ही एक आपराधिक मामले में बरी किया जा चुका है। मैं यह भी पाता हूं कि अपीलीय प्राधिकारी के आदेश में आपराधिक मामले का उल्लेख किया गया है जो याचिकाकर्ता और परिवार के अन्य सदस्यों के विरूद्ध एक मौसी द्वारा दर्ज कराया गया था। इस प्रकार यह स्पष्ट था कि यह एक आंतरिक पारिवारिक विवाद के संबंध में था कि कुछ आपराधिक मामला शुरू हुआ और फिर महत्वपूर्ण गवाह मुकर गया जबकि अन्य अभियोजन पक्ष के गवाह गवाही देने के लिए उपस्थित नहीं हुए। अधिकारियों ने इस आधार पर आदेश को उचित ठहराने का प्रयास किया है कि तथ्यों को जानबूझकर छिपाया गया था और चूंकि सत्यापन फॉर्म में चेतावनी दी गई थी कि उसे सही जानकारी देने की आवश्यकता है और यदि गलत जानकारी दी गई है, तो यह उम्मीदवार के लिए अयोग्यता होगी और इसलिए याचिकाकर्ता की सेवाएं समाप्त होने

अग्रवाल

योग्य हैं, और इस प्रकार, सक्षम प्राधिकारी ने सही ढंग से आदेश पारित किया है।

12. अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित पूरे आदेश को पढ़ने पर, मैं पाता हूं कि यह प्रश्न कि क्या याचिकाकर्ता को कभी कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था, अनुत्तरित रह गया है।

13. अवतार सिंह बनाम भारत संघ (*उपरोक्त*) मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने टिप्पणी की है कि भले ही गलत सूचना देने के आरोप में किसी कर्मचारी की सेवा समाप्त करने का अधिकार है और इसलिए नियुक्ति प्राधिकारी के लिए ऐसे कर्मचारी को सेवा में बनाए रखने के लिए कोई बाध्यता नहीं हो सकती है, लेकिन यह देखा गया कि "मैकार्थीवाद" संवैधानिक लक्ष्य के विपरीत है जो निश्चित रूप से उपयुक्त मामलों में युवा अपराधियों के संबंध में सुधारात्मक सिद्धांत की आधारशिला है। अनुच्छेद 38.4 से 38.11 के माध्यम से न्यायालय के कई पिछले प्राधिकारियों की सराहना करने के बाद, सर्वोच्च न्यायालय ने कुछ दिशा-निर्देश इस प्रकार निर्धारित किए:

> *38.4. यदि किसी आपराधिक मामले में संलिप्तता की सूचना को छिपाया गया हो या गलत सूचना दी गई हो, जिसमें आवेदन/सत्यापन फॉर्म भरने से पहले ही दोषसिद्धि या दोषमुक्ति दर्ज की जा चुकी हो और ऐसा तथ्य बाद में नियोक्ता के जानकारी में आता है, तो* ***मामले के लिए उपयुक्त निम्नलिखित में से कोई भी उपाय अपनाया जा सकता है:-***
>
> *38.4.1. किसी ऐसे मामले में जो प्रकृति में मामूली हो, जिसमें दोषसिद्धि दर्ज की गई हो, जैसे कि कम उम्र में नारे लगाना या कोई छोटा-मोटा अपराध, जिसके प्रकट होने पर कोई पदधारी संबंधित पद के लिए अयोग्य नहीं होता, नियोक्ता अपने विवेकानुसार, चूक को अनदेखा करके तथ्य को छिपाने या गलत सूचना देने की ऐसी घटना को अनदेखा कर सकता है।*
>
> *38.4.2. जहां दोषसिद्धि ऐसे मामले में दर्ज की गई हो, जो प्रकृति में मामूली नहीं है, नियोक्ता उम्मीदवारी रद्द कर सकता है या कर्मचारी की सेवाएं समाप्त कर सकता है।*
>
> ***38.4.3. यदि नैतिक अधमता या जघन्य/गम्भीर प्रकृति के अपराध से सम्बन्धित किसी मामले में तकनीकी आधार पर दोषमुक्ति पहले ही दर्ज हो चुकी है और यह स्पष्ट दोषमुक्ति का मामला नहीं है या उचित संदेह का लाभ दिया गया है, तो नियोक्ता पूर्ववृत्त के सम्बन्ध में उपलब्ध सभी सुसंगत तथ्यों पर विचार कर सकता है,*** *तथा कर्मचारी को सेवा में बनाये रखने के सम्बन्ध में उचित निर्णय ले सकता है।*
>
> *38.5. ऐसे मामले में, जहां कर्मचारी ने समाप्त हो चुके आपराधिक मामले की सत्यतापूर्वक घोषणा की है, नियोक्ता को अभी भी पूर्ववृत्त पर विचार करने का अधिकार है, तथा उसे उम्मीदवार को नियुक्त करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है।*
>
> *38.6. ऐसे मामले में, जब तुच्छ*

अनुवादित

प्रकृति के आपराधिक मामले के लम्बित रहने के सम्बन्ध में चरित्र सत्यापन फॉर्म में सत्यतापूर्वक तथ्य घोषित किया गया है, तो नियोक्ता, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, अपने विवेकानुसार, ऐसे मामले के निर्णय के अधीन उम्मीदवार को नियुक्त कर सकता है।

38.7. ***कई लंबित मामलों के संबंध में जानबूझकर तथ्य छिपाने के मामले में ऐसी झूठी सूचना अपने आप में महत्वपूर्ण हो जाएगी और नियोक्ता उम्मीदवारी रद्द करने या सेवाएं समाप्त करने का उचित आदेश पारित कर सकता है क्योंकि ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति उचित नहीं हो सकती जिसके विरूद्ध कई आपराधिक मामले लंबित हों।***

38.8. ***यदि आपराधिक मामला लंबित था लेकिन फॉर्म भरने के समय उम्मीदवार को इसकी जानकारी नहीं थी, तब भी इसका प्रतिकूल प्रभाव हो सकता है और नियुक्ति प्राधिकारी अपराध की गंभीरता पर विचार करने के बाद निर्णय लेगा।***

38.9. यदि कर्मचारी की सेवा में पुष्टि हो जाती है, तो सत्यापन फॉर्म में गलत जानकारी छिपाने या प्रस्तुत करने के आधार पर समाप्ति/निष्कासन या बर्खास्तगी का आदेश पारित करने से पहले विभागीय जांच करना आवश्यक होगा।

38.10. ***छिपाई गई या झूठी जानकारी का निर्धारण करने के लिए सत्यापन/प्रमाणन फॉर्म स्पष्ट होना चाहिए, अस्पष्ट नहीं। केवल ऐसी जानकारी का खुलासा किया जाना चाहिए जिसका विशेष रूप से उल्लेख किया जाना आवश्यक था।*** *यदि नियोक्ता को ऐसी जानकारी प्राप्त हो जाती है जो मांगी नहीं गई है, लेकिन प्रासंगिक है, तो उपयुक्तता के प्रश्न पर विचार करते समय उस पर वस्तुनिष्ठ तरीके से विचार किया जा सकता है।* ***हालांकि, ऐसे मामलों में तथ्य के बारे में गलत जानकारी देने या उसे छिपाने के आधार पर कार्रवाई नहीं की जा सकती, जिसके बारे में पूछा ही नहीं गया था।***

38.11. किसी व्यक्ति को गलत तथ्य छिपाने या गलत तथ्य बताने का दोषी ठहराए जाने से पहले, उसे उस तथ्य की जानकारी होनी चाहिए।

(जोर दिया गया)

14. खंड 38.4.2, 38.4.3, 38.7, 38.8 और 38.11 में दिए गए उपरोक्त दिशा-निर्देशों को यदि एक साथ पढ़ा जाए, तो ऐसे विवेक का प्रयोग प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप किया जाना चाहिए। कर्मचारी से सीधे तौर 'जानकारी' की सच्चाई जानने के लिए, उसे अवसर दिया जाए जाएगा, और वह अपने आचरण के बारे में व्याख्या करेगा और इससे आवश्यक कार्रवाई हो जाएगी।

15. जब भी इस तथ्य की जांच की जानी हो कि क्या किसी उम्मीदवार को विज्ञापित पद पर चयन और नियुक्ति के लिए आवेदन फॉर्म भरते समय उसके विरूद्ध दर्ज/संस्थित किसी आपराधिक मामले/कार्यवाही के बारे में

अनुवादित

जानकारी थी, तो जानकारी का कारक महत्वपूर्ण हो जाता है। आपराधिक मामले के जानकारी के इस तथ्य को उजागर करने के लिए, कर्मचारी के परिवीक्षा पर रहने के दौरान भी कम से कम एक प्रारंभिक तथ्य खोज जांच करना अनिवार्य हो जाता है, और इसलिए, ऐसे कर्मचारी को मामले में अपने आचरण के बारे में स्पष्टीकरण देने के लिए नोटिस दिया जाना चाहिए। यह इस साधारण कारण से आवश्यक है कि आपराधिक मामले की स्थिति प्रकृति में भिन्न होती है, उदाहरण के लिए ऐसा कोई शिकायत मामला हो सकता है जिसमें ऐसे कथित अभियुक्त को कभी समन नहीं दिया गया और उसे ऐसी लंबित कार्यवाही के बारे में पता नहीं हो सकता है या ऐसा कोई मामला हो सकता है जिसमें प्रथम सूचना रिपोर्ट भी दर्ज की गई हो लेकिन नामित अभियुक्त को कभी गिरफ्तार नहीं किया गया या उससे पूछताछ नहीं की गई और पुलिस ने अंतिम समापन रिपोर्ट प्रस्तुत की हो, या ऐसा कोई आपराधिक मामला हो सकता है जिसमें नामित व्यक्ति मुख्य अभियुक्त नहीं था और पुलिस ने उसे गिरफ्तार नहीं किया होगा ताकि उसे जमानत के लिए आवेदन करने के लिए मजबूर किया जा सके और जांच अभी भी जारी हो सकती है इत्यादि। इसलिए, यदि किसी कर्मचारी को नोटिस दिया जाता है, तो वह जानकारी के बारे में अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने में सक्षम होगा। ऐसे मामले में जहां उम्मीदवार जानकारी के मामले में निर्दोष पाया गया हो, नियोक्ता के विवेक पर उसे सेवा में बने रहने की छूट दी जा सकती है। मामला ऐसा भी हो सकता है जहां किसी उम्मीदवार का नाम पहली बार में केवल एक बार के लिए अर्थात पहले कभी नहीं, न ही बाद में लिया गया हो और इसलिए, नियोक्ता ऐसे उम्मीदवार को सेवा में बनाए रखने के लिए विवेक का प्रयोग कर सकता है।

16. इस प्रकार, मेरे विचार से यदि किसी आपराधिक मामले में किसी उम्मीदवार की जानकारी के अभाव में जानकारी को छिपाना या कथित रूप से छिपाना उसकी उम्मीदवारी को खारिज करने और परिणामस्वरूप उसे सेवा से समाप्त करने का प्रमुख कारक बन जाता है, तो शायद सेवा समाप्ति का आदेश एक सरल शब्दों में सेवा समाप्ति का आदेश है, विभाग/नियोक्ता को अपनी कार्रवाई में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप होना चाहिए। मैं अभी भी यह मानता हूं कि किसी कर्मचारी को सेवा में बनाए रखना, जहां उसे फॉर्म भरने या सत्यापन फॉर्म पर हस्ताक्षर करने के समय जानकारी थी या नहीं, ऐसे कर्मचारी को सेवा में बनाए रखना या न रखना नियोक्ता के विवेक के भीतर होगा।

17. इसलिए, उपरोक्त के मद्देनजर, मैं यह उचित समझता हूं कि प्राधिकरण याचिकाकर्ता को अपना आचरण स्पष्ट करने का एक अवसर दे और फिर कानून के अनुसार कार्रवाई करे।

18. कमांडेंट द्वारा पारित दिनांक 08.04.2015 के आदेश तथा महानिरीक्षक द्वारा पारित दिनांक 3.12.2015 के आदेश तदनुसार निरस्त किये जाते हैं। प्रतिवादीगण आज से एक महीने के भीतर याचिकाकर्ता को कारण बताओ नोटिस जारी करने के लिए स्वतंत्र हैं तथा यदि याचिकाकर्ता को ऐसा कोई कारण बताओ नोटिस जारी किया जाता है, तो याचिकाकर्ता को नोटिस प्राप्त होने के दो सप्ताह के भीतर अपना उत्तर प्रस्तुत करना होगा तथा उसके पश्चात प्राधिकरण उपरोक्त टिप्पणियों तथा

अवैधानिक

अवतार सिंह (*उपरोक्त*) के मामले के आलोक में विधि के अनुसार अंतिम आदेश पारित करने के लिए आगे बढ़ेगा।

(2023) 6 ILRA 452

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 18.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर

रिट-सी संख्या 13514 वर्ष 2022

मेसर्स मॉडर्न सर्विस स्टेशन याचिकाकर्ता

बनाम

आई.ओ.सी.एल. एवं अन्य प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री आशीष कुमार सिंह, श्री रवि आनंद अग्रवाल, सुश्री श्रेया गुप्ता

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: श्री राकेश कुमार

सिविल कानून-भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद 14 और 226-प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को महज औपचारिकता के रूप में नहीं दर्शाया जाना चाहिए, बल्कि दोषी के खिलाफ कोई कार्रवाई करने से पहले उसे सुनवाई का उचित अवसर दिया जाना चाहिए-याचिकाकर्ता ने विशेष रूप से अपना बचाव किया है कि 16.9.2020 को ओईएम के अधिकृत सर्विस इंजीनियर द्वारा मशीनों को खोला गया था और वह उक्त मशीनों के साथ छेड़छाड़ के लिए जिम्मेदार हो सकता है। प्रतिवादियों पर यह दायित्व था कि वे उक्त मुद्दे पर उचित रूप से विचार करते और इस संबंध में निष्कर्ष दर्ज करते। याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए बचाव पर ध्यान न देते हुए, निर्धारित प्राधिकारी के साथ-साथ अपीलीय प्राधिकारी ने अपने अधिकार क्षेत्र का परित्याग कर दिया है और बिना सोचे-समझे विवादित आदेश पारित कर दिए हैं। याचिकाकर्ता द्वारा बचाव के रूप में उठाए गए मुद्दों पर विचार न करना भी प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है। जांच कार्यवाही के दौरान "निष्पक्ष सुनवाई" और "सुनवाई का अवसर" का कोई मतलब नहीं होगा यदि जांच अधिकारी उस व्यक्ति द्वारा बचाव में उठाए गए प्रस्तुतियों पर विचार नहीं करता है जिसके खिलाफ कार्यवाही की जा रही है। (पैरा 28 और 35)

याचिका स्वीकार की गई। (ई-15)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. मेसर्स चौधरी फाइलिंग प्वाइंट, काजीपुर बनाम सेंट ऑफ यू.पी. और अन्य। एम.बी. रिट संख्या 27043/2018 में पारित
2. (मेसर्स कमला कांत ऑटोमोबाइल्स एवं अन्य बनाम सेंट. ऑफ यू.पी. एवं अन्य) रिट सी संख्या 25127/2018

(माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर द्वारा दिया गया)

1. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता सुश्री श्रेया गुप्ता के साथ-साथ उत्तरदाताओं के लिए श्री राकेश कुमार को सुना।

2. याचिकाकर्ता ने एरिया मैनेजर रिटेल सेल्स, मथुरा - I, इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड द्वारा पारित दिनांक 21.9.2020 के आदेश से व्यथित होकर इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है, जिससे अगले आदेश तक उनकी वितरण इकाइयों से बिक्री पर रोक लग गई है। याचिकाकर्ता ने डिवीजनल रिटेल सेल्स हेड, आगरा डिवीजन ऑफिस, मार्केटिंग डिवीजन, इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड (मार्केटिंग

अनुवादित

डिवीजन), आगरा द्वारा पारित दिनांक 5.10.2021 के आदेश को भी चुनौती दी है, जिससे याचिकाकर्ता की रिटेल आउटलेट डीलरशिप समाप्त हो गई है।

3. याचिकाकर्ता ने अपने रिटेल आउटलेट डीलरशिप को रद्द करने के आदेश से व्यथित होकर एक अपील की थी, जिसे कार्यकारी निदेशक (खुदरा बिक्री-एन एंड ई)/अपीलीय प्राधिकरण, इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड, प्रधान कार्यालय, मुंबई द्वारा पारित दिनांक 7.4.2022 के आक्षेपित आदेश के माध्यम से भी खारिज कर दिया गया।

4. यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता को याचिकाकर्ता और इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन के बीच निष्पादित पेट्रोल/एचएसडी पंप डीलर समझौते दिनांक 11.4.2021 के अनुसार एक डीलर के रूप में नियुक्त किया गया था। उन्हें यमुनापार, लक्ष्मी नगर, मथुरा में स्थित मैसर्स मॉडर्न सवस स्टेशन के नाम और शैली में व्यवसाय करने के लिए लाइसेंस प्रदान किया गया। यह कहा गया है कि 11.4.2021 से याचिकाकर्ता समझौते के नियमों और शर्तों के साथ-साथ विपणन अनुशासन दिशानिर्देशों के अनुसार आउटलेट से बिक्री कर रहा है और याचिकाकर्ता के खिलाफ उनकी खुदरा डीलरशिप के संबंध में किसी भी कोने से शिकायत या कोई आरोप नहीं रहा है।

5. आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता के रिटेल आउटलेट में मैसर्स गिलबार्को वीडर रूट (इसके बाद मैसर्स जीवीआर के रूप में संदर्भित) द्वारा निर्मित दो वितरण इकाइयां हैं। इन दो वितरण इकाइयों में से एक पुरानी है और हाई स्पीड डीजल (एचएसडी) की दूसरी इकाई प्रतिवादी द्वारा किसी अन्य खुदरा आउटलेट से खरीदी गई थी और 2019 में याचिकाकर्ता के खुदरा आउटलेट पर स्थापित की गई थी। दोनों इकाइयों का रखरखाव/निरीक्षण मैसर्स जीवीआर के इंजीनियरों और संबंधित सरकारी प्राधिकरणों और प्रतिवादी निगम के अधिकारियों द्वारा किया जा रहा है।

6. आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि वितरण इकाइयों को वजन और माप विभाग द्वारा नियमित आवधिक मुद्रांकन की आवश्यकता होती है जो नियमित रूप से किया जाता था और इकाई की अंतिम मुद्रांकन 23.3.2019 को वजन और माप विभाग और मैसर्स गिलबार्को वीडर रूट द्वारा की गई थी। जब भी दो वितरण इकाइयों को चलाने में कोई समस्या हुई, याचिकाकर्ता द्वारा शिकायतें दर्ज की गईं, जिन्हें मैसर्स जीवीआर द्वारा शीघ्रता से देखा गया और उक्त इकाइयों का अंतिम निरीक्षण 14.1.2020 को प्रतिवादी-निगम के अधिकारियों द्वारा किया गया और यह बताया गया कि सभी सील बरकरार हैं और स्टॉक में कोई भिन्नता नहीं पाई गई थी।

7. यह कहा गया है कि वितरण इकाई की मुद्रांकन को रद्द करने से पहले, याचिकाकर्ता द्वारा कुछ राशि जमा की जानी चाहिए और तदनुसार उक्त राशि याचिकाकर्ता द्वारा 13.3.2020 को जमा की गई थी और पुन: मुद्रांकन देय था, लेकिन कोविड-19 की स्थितियों और लॉक-डाउन के कारण उक्त मुद्रांकन को 30.9.2020 तक बढ़ा दिया गया था।

8. यह कहा गया है कि चूंकि वितरण इकाइयों पर उनकी मुहर लगी थी और एरिया मैनेजर, रिटेल सेल्स, मथुरा-I ने याचिकाकर्ता के पंप का

अनुवादित

दौरा किया और मौखिक रूप से उनसे तेल नहीं निकालने के लिए कहा क्योंकि उनका पुन मुद्रांकन लंबित था और तदनुसार मौखिक आदेशों के आधार पर, उन्होंने 15.9.2020 से बिक्री बंद कर दी। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि 16.9.2020 को श्री गिरेंद्र के नाम से मैसर्स गिलबार्को वीडर रूट के अधिकृत सेवा अभियंता, जो प्रतिवादी निगम के अधिकृत प्रतिनिधि थे, ने रिटेल आउटलेट का दौरा किया और सॉफ्टवेयर के उन्नयन के उद्देश्य से दोनों वितरण इकाइयों की चाबियां सौंप दी गईं, लेकिन उन्होंने मदर बोर्ड में कुछ खामियां देखीं और रिपोर्ट सौंप दी जिसे रिट याचिका के साथ संलग्न किया गया है। उक्त रिपोर्ट के अनुसार मशीनों की जांच और कुछ मरम्मत कार्यों के उद्देश्य से सील तोड़ी गई थी, लेकिन उसके द्वारा स्टैंपिंग नहीं की जा सकी। उन्होंने आगे कहा कि सीपीयू कार्ड को बदलने की आवश्यकता है।

9. यह प्रस्तुत किया गया है कि अधिकृत एजेंट ने मशीनों को उन्हीं परिस्थितियों में बिना मरम्मत या मुहर लगाए और वितरण इकाइयों को बंद किए बिना भी छोड़ दिया, और याचिकाकर्ता को विश्वास था कि वह अगले दिन यानी 17.9.2020 को उक्त मशीनों की मरम्मत के लिए उनसे मिलने जाएगा। उन्होंने बताया था कि दोनों मशीनें खराब थीं और मदरबोर्ड को बदलने की आवश्यकता थी और इसलिए स्टैंपिंग नहीं की जा सकी।

10. अगली तारीख यानी 17.9.2020 को याचिकाकर्ता के रिटेल आउटलेट का संयुक्त रूप से एम.एस (रिटेल सेल्स) मथुरा II, आरएसए- श्री प्रदीप कुमार, गिलबार्को वीडर रूट के सर्विस इंजीनियर और श्री गोपाल सिंह, एल.एम.ओ मथुरा और श्री ए.एस कुशवाहा (प्रतिवादी नंबर 4) की टीम द्वारा निरीक्षण किया गया था। उक्त निरीक्षण के दौरान यह पाया गया कि दोनों वितरण इकाइयों की सील तोड़ी गई थी और दोनों मदरबोर्डों पर छोटे तार के साथ अतिरिक्त सोल्डरिंग पाई गई थी जिन्हें वितरण इकाइयों से हटा दिया गया था, सील कर दिया गया था और क्षेत्र प्रबंधक (खुदरा बिक्री) को सौंप दिया गया था। 17.9.2020 की निरीक्षण रिपोर्ट तैयार की गई थी और जो याचिकाकर्ता के अधिकृत खुदरा विक्रेता द्वारा प्रतिहस्ताक्षरित भी थी। उक्त कार्डों को बाद में मैसर्स जीवीआर को उक्त कार्ड पर उनकी रिपोर्ट के लिए भेजा गया था। उक्त रिपोर्ट के अनुसार मदर बोर्ड में सोल्डरिंग का अतिरिक्त कार्य देखा गया था और कनेक्टर और मदर बोर्ड के बीच अतिरिक्त वायर सीलिंग भी पाई गई थी। यह पाया गया कि अतिरिक्त टांका लगाने का कार्य किया गया था और उक्त तार का सीलिंग कनेक्टर फटा हुआ पाया गया था और वितरण इकाई में हेरफेर करने और वितरण इकाइयों से ईंधन देने के इरादे से तार टूटे हुए थे। इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन की लंबित रिपोर्ट के अनुसार, याचिकाकर्ता की बिक्री को दिनांक 21.9.2020 के पत्र के माध्यम से इस आधार पर रोक दिया गया था कि 17.9.2020 को संयुक्त निरीक्षण के समय याचिकाकर्ता के रिटेल आउटलेट में कुछ अनियमितताएं देखी गई हैं। याचिकाकर्ता को 8.10.2020 को कारण बताओ नोटिस भी जारी किया गया था, जिसमें उनसे यह बताने के लिए कहा गया था कि विपणन अनुशासन दिशानिर्देश-2012/डीलरशिप समझौते के खंड

अनुवादित

5.1.4 के संदर्भ में कार्रवाई क्यों नहीं शुरू की जाए।

11. याचिकाकर्ता ने 12.10.2020 को जवाब प्रस्तुत करके अपने खिलाफ लगाए गए आरोपों का खंडन किया और उत्तरदाताओं को ओईएम के अधिकृत इंजीनियर यानी श्री गिरेंद्र के नाम से मैसर्स जीवीआर के दौरे के बारे में भी सूचित किया। याचिकाकर्ता के रिटेल आउटलेट की बिक्री जांच लंबित रहने तक रोक दी गई थी।

12. याचिकाकर्ता ने रिट याचिका संख्या 23158 वर्ष 2020 दायर करके इस न्यायालय से संपर्क किया, जिसे इस न्यायालय ने दिनांक 18.12.2020 के आदेश के माध्यम से निपटाया, जिसमें उत्तरदाताओं को याचिकाकर्ता के खिलाफ शुरू की गई लंबित जांच को शीघ्रता से, अधिमानतः चार सप्ताह की अवधि के भीतर समाप्त करने का निर्देश दिया गया था। यह इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अनुसरण में है कि रिटेल आउटलेट का संयुक्त निरीक्षण उसी टीम द्वारा किया गया था जिसने पहले 17.9.2020 को निरीक्षण किया था। 5.3.2021 को उक्त रिपोर्ट प्राप्त होने के बाद, याचिकाकर्ता को 21.3.2021 को मेसर्स जीवीआर द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट का हवाला देते हुए कारण बताओ नोटिस दिया गया था। याचिकाकर्ता ने 31.6.2021 को कारण बताओ नोटिस का जवाब दिया और दिनांक 5.10.2021 के आदेश के माध्यम से याचिकाकर्ता के जवाब पर विचार करने के बाद विपणन और अनुशासन दिशानिर्देशों के खंड 5.1.4 के संदर्भ में दिनांक 11.4.2011 के डीलर समझौते को रद्द कर दिया गया।

13. याचिकाकर्ता ने उक्त आदेश से व्यथित होकर एक अपील दायर की थी जिसे दिनांक 7.4.2022 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया है। उपरोक्त दोनों आदेशों को वर्तमान रिट याचिका में इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई है।

14. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने समाप्ति के आदेश के साथ-साथ अपीलीय प्राधिकारी का विरोध करते हुए प्रस्तुत किया है कि दोनों आदेश अवैध और मनमाने हैं और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन में पारित किए गए हैं। यह कहा गया है कि कारण बताओ नोटिस के जवाब में याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए आधारों में से एक 16.9.2020 को मैसर्स जीवीआर के अधिकृत एजेंट की यात्रा के संबंध में था। यह कहा गया था कि प्राधिकृत प्रतिनिधि ने सॉफ्टवेयर को अपग्रेड करने के लिए रिटेल आउटलेट का दौरा किया था और वितरण इकाइयों की मुद्रांकन करने के लिए मदरबोर्ड तक पहुंचने के लिए सील तोड़ दी थी। यह प्रस्तुत किया गया था कि निरीक्षण के समय मशीन उसी स्थिति में पड़ी थी जैसी मेसर्स जीवीआर के अधिकृत एजेंट ने वितरण इकाइयों की मरम्मत करने का प्रयास करने के बाद छोड़ी गई थी, और परिणामस्वरूप यह नहीं कहा जा सकता है कि यह याचिकाकर्ता है जिसे मदरबोर्ड में हेरफेर करने के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है।

15. यह भी कहा गया है कि उनकी रिपोर्ट से यह स्पष्ट है कि अधिकृत एजेंट ने सीपीयू सील की जांच की थी और उन्हें दोषपूर्ण पाया था और उक्त कार्डों को बदलने की सलाह दी थी। यह कहा गया था कि यदि कोई छेड़छाड़ की गई है तो अधिकृत प्रतिनिधि द्वारा किया

अनुवादित

गया है। उक्त मुद्दे पर निर्णय लेने के लिए 17.9.2020 तक एक संयुक्त निरीक्षण किया गया था, और उक्त तिथि को तैयार निरीक्षण रिपोर्ट के अनुसार यह देखा गया है कि सील तोड़ दी गई हैं। याचिकाकर्ता ने अपने जवाब में कहा था कि वे पिछले नौ साल से वितरण इकाई चला रहे हैं और उक्त आउटलेट के संचालन के संबंध में कभी कोई शिकायत नहीं हुई है।

16. यह भी देखा गया है कि प्रतिक्रिया के पैराग्राफ 8 में उन्होंने स्पष्ट रूप से मेसर्स जीवीआर के अधिकृत सेवा अभियंता श्री गिरेंद्र की यात्रा के बारे में तथ्य के बारे में उल्लेख किया है और यह भी तथ्य है कि उन्होंने याचिकाकर्ता को सूचित किया था कि उन्होंने दोनों वितरण इकाइयों में सॉफ्टवेयर को अपग्रेड किया था और यह भी कि दोनों वितरण इकाइयों के सीपीयू कार्ड में कुछ समस्याएं/दोष हुआ था, और इस तरह वह अपना काम पूरा करने में असमर्थ था और सलाह दी कि सीपीयू कार्ड को बदलने की जरूरत है और लंबित पूर्वोक्त काम करने वाली मशीनों को खुला छोड़ दिया गया था। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि यह उत्तरदाताओं का नियमित अभ्यास था कि यदि मदर बोर्ड में कोई समस्या है तो उन्हें तुरंत परीक्षण के लिए ओईएम को भेजा जाता है, लेकिन प्रस्तुत मामले में ओईएम कार्ड को परीक्षण के लिए भेजे जाने से पहले 2 महीने से अधिक समय तक उत्तरदाताओं के कब्जे में रखा गया था अत उक्त तिथि तक उक्त मदरबोर्डों के साथ छेड़छाड़ करने के लिए पर्याप्त समय था। उत्तरदाताओं की ओर से कोई स्पष्टीकरण नहीं आया है कि मदर बोर्ड को परीक्षण के लिए भेजने और ओईएम से रिपोर्ट प्राप्त करने से पहले दो महीने से अधिक समय तक उनके पास क्यों रखा गया था, इस तथ्य के बारे में कि क्या कोई छेड़छाड़ या टांका लगाया गया था।

17. उन्होंने आगे कहा था कि 17/09/2020 को तैयार की गई निरीक्षण रिपोर्ट में छेड़छाड़ या सोल्डरिंग का कोई उल्लेख नहीं था, लेकिन ओईएम द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट में इसका उल्लेख किया गया था। याचिकाकर्ताओं ने उक्त छेड़छाड़ में अपनी संलिप्तता से इनकार किया है। उन्होंने आगे कहा है कि रिपोर्ट मेसर्स जीवीआर के अधिकृत सेवा अभियंता से प्राप्त की जानी चाहिए थी, जिन्होंने याचिकाकर्ता के खिलाफ कार्यवाही करने से पहले 16.9.2020 को वितरण इकाई खोली थी।

18. याचिकाकर्ता की प्रतिक्रिया पर कार्यकारी निदेशक (उत्तर प्रदेश राज्य) द्वारा विचार किया गया था। प्रभागीय खुदरा बिक्री शीर्ष, आगरा मंडल, आगरा द्वारा करार को समाप्त करने का आदेश पारित किया गया था। समाप्ति के उक्त आदेश में, उन्होंने ओईएम मैसर्स जीवीआर द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट पर विचार किया है जहां यह स्पष्ट रूप से पाया गया था कि मदरबोर्ड के साथ छेड़छाड़ की गई है और कुछ अतिरिक्त टांका लगाने का काम किया गया था जिससे तदनुसार इन दो वितरण इकाइयों में हेराफेरी हो सकती है। आगे यह भी कहा गया है कि केवल इसलिए कि वितरण इकाइयां याचिकाकर्ता की अभिरक्षा में थीं, उन्हें उक्त वितरण इकाइयों के साथ छेड़छाड़ का दोषी पाया गया है और खुदरा बिक्री केन्द्र डीलरशिप रद्द कर दी गई है।

19. आक्षेपित आदेशों का विरोध करने वाले याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि

अनुवादित

खुदरा आउटलेट को समाप्त करने के आक्षेपित आदेश को पारित करते समय उनके द्वारा प्रस्तुत उत्तर पर भी विचार नहीं किया गया है। यह प्रस्तुत किया गया है कि 16/09/2020 को ओईएम मेसर्स जीवीआर के अधिकृत सेवा अभियंता द्वारा सील तोड़ने के संबंध में उत्तर में विस्तृत तथ्य बताए गए हैं और यह भी तथ्य है कि उन्होंने मदरबोर्ड का निरीक्षण किया था और इस संबंध में अपनी रिपोर्ट भी प्रस्तुत की थी।

20. यह कहा गया है कि छेड़छाड़, यदि कोई हो, अधिकृत एजेंट द्वारा की जा सकती थी क्योंकि उसने स्वीकार किया था कि उसने उक्त मशीन को खोला था। सक्षम प्राधिकारी ने रिटेल आउटलेट डीलरशिप को समाप्त करते समय मामले के इस पहलू पर विचार भी नहीं किया है या याचिकाकर्ता द्वारा किए गए बचाव के संबंध में एक निष्कर्ष दर्ज नहीं किया है और इसलिए, इस संबंध में यह कहा गया है कि आक्षेपित आदेश दिमाग के अनुप्रयोग के आधार पर दूषित है। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि मामले के इस पहलू को विशेष रूप से याचिकाकर्ता द्वारा दायर की गई अपील में लिया गया था, लेकिन फिर भी अपीलीय प्राधिकरण ने याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए बचाव को नजरअंदाज करना चुना और अपील को खारिज कर दिया।

21. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता द्वारा अपने बचाव में उठाए गए आवश्यक तथ्यों को उत्तरदाताओं द्वारा अवैध रूप से और मनमाने ढंग से अनदेखा किया गया है, जिससे न्याय की हत्या हो गई है और तदनुसार दोनों आदेश अवैध और मनमाने हैं और अपास्त किए जाने योग्य हैं।

22. प्रतिवादी के अधिवक्ता ने इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन की कार्रवाई का बचाव किया है। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि वितरण इकाइयों के साथ छेड़छाड़ एक गंभीर अपराध है और इसके लिए प्रावधान विपणन और अनुशासन दिशानिर्देशों में स्पष्ट रूप से निर्धारित किए गए हैं। मदरबोर्ड के दिनांक 17.9.2020 के निरीक्षण पर यह पाया गया कि उक्त मदरबोर्ड से अतिरिक्त सोल्डरिंग और तार जुड़े हुए थे, जिससे अकाट्य सबूत मिले कि उक्त इकाइयों के साथ छेड़छाड़ की गई है और उक्त स्थिति में जहां वितरण इकाइयां याचिकाकर्ता के अनन्य कब्ज़े में हैं, यह याचिकाकर्ता है जो जिम्मेदार है, और खुदरा बिक्री केन्द्र डीलरशिप को समाप्त करने के प्रतिवादियों के निर्णय में कोई कमी नहीं है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता को उचित अवसर दिया गया था जहां उसे कारण बताओ नोटिस दिया गया था, और याचिकाकर्ता के खिलाफ कार्रवाई शुरू करने से पहले प्रारंभिक जांच की गई थी। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि संपूर्ण कार्रवाई एम.एस (खुदरा बिक्री), मथुरा-II के नेतृत्व वाले निरीक्षण दल द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट पर आधारित थी जिसने स्थल का निरीक्षण किया था और रिपोर्ट प्रस्तुत की थी कि मदरबोर्डों के साथ छेड़छाड़ की गई है और मदरबोर्ड से अतिरिक्त सोल्डरिंग और तार जोड़े गए हैं जो स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि तेल की सुपुर्दगी में हेर-फेर करने के लिए मदरबोर्डों के साथ छेड़छाड़ की गई है और इसलिए, प्रस्तुत करता है कि आक्षेपित आदेश कानूनी और सही हैं।

अप्रमाणित

23. मैंने पक्षकारों की सलाह सुनी है और अभिलेखों का अवलोकन किया है।

24. यह देखा गया है कि याचिकाकर्ता और उत्तरदाताओं के बीच 11.4.2011 को एक समझौता किया गया था, जहां याचिकाकर्ता को यमुनापार, लक्ष्मी नगर, मथुरा में स्थित रिटेल आउटलेट डीलरशिप दी गई थी और उन्होंने पिछले लगभग नौ वर्षों से उत्तरदाताओं के लिए एक डीलर के रूप में काम किया है और 17.9.2020 को निरीक्षण किए जाने तक कोई शिकायत नहीं हुई है। उक्त निरीक्षण में मदर बोर्ड में कुछ छेड़छाड़ पाई गई है। निरीक्षण के दौरान मदरबोर्ड को बाहर निकाला गया और निरीक्षण के लिए ओईएम को भेजा गया, जिसमें सूचित किया गया कि मदरबोर्ड में अतिरिक्त सोल्डरिंग और वायर अटैचमेंट था और ऐसा प्रतीत होता है कि उनके साथ छेड़छाड़ की गई है जिससे वितरण इकाइयों के प्रचालन में हेरफेर हुआ है। चूंकि एक वितरण इकाई डीलर का एक विशेष नियंत्रण है, इसलिए एक अनुमान है जो उक्त जोड़तोड़ के लिए जिम्मेदार है।

25. याचिकाकर्ता को कारण बताओ नोटिस दिया गया। याचिकाकर्ता ने उक्त नोटिस का उत्तर देते हुए कहा कि कुछ परीक्षण 16.5.2010 को किए गए थे, जो संयुक्त निरीक्षण से एक दिन पहले है जहां मैसर्स जीवीआर के सेवा अभियंता ने खुदरा बिक्री केंद्र का दौरा किया था। मरम्मत शुरू करने से पहले उन्होंने याचिकाकर्ता को सूचित किया है कि उन्होंने कार्डों की मुहर लगाने के उद्देश्य से उक्त मशीनों का निरीक्षण करने के लिए ओईएम के साथ-साथ बाट और माप विभाग के अधिकारियों से मौखिक अनुमति प्राप्त की है। उन्होंने उक्त मशीन पर लगभग दो घंटे तक काम किया था और उक्त तिथि पर काम पूरा नहीं कर सके थे और मदरबोर्ड को बदलने के बाद काम जारी रखा जाना था। उन्होंने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जो रिट याचिका के साथ संलग्न है। उक्त रिपोर्ट से यह स्पष्ट है कि उन्होंने पाया है कि मदर बोर्ड में कुछ खामियां हैं और उनकी राय थी कि उन्हें बदलने की आवश्यकता है और जिसके कारण सॉफ्टवेयर अपग्रेडेशन का कार्य उसी दिन नहीं किया जा सका। आगे यह भी कहा गया है कि मशीनों को उसी स्थिति में रखा गया था जहां उन्हें उपर्युक्त उद्देश्यों के लिए अधिकृत एजेंट द्वारा छोड़ा गया था। रिटेल आउटलेट का अगली ही तारीख यानी 17.9.2020 को निरीक्षण किया गया। निरीक्षण दल ने याचिकाकर्ता के खुदरा आउटलेट का दौरा किया और मदरबोर्ड में छेड़छाड़ पाई जहां अतिरिक्त सोल्डरिंग और तार पाए गए। एक कारण बताओ नोटिस दिया गया था, जिसके लिए याचिकाकर्ता ने विस्तृत जवाब प्रस्तुत किया, जिसका समापन समाप्ति के आक्षेपित आदेश में हुआ।

26. याचिकाकर्ता की अपील में भी यह सवाल उठाया गया था कि क्या याचिकाकर्ता को मामले के अजीबोगरीब तथ्यों और परिस्थितियों में मदर बोर्ड के साथ छेड़छाड़ के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है, जहां मशीन को निरीक्षण से एक दिन पहले मैसर्स जीवीआर के अधिकृत एजेंट द्वारा खोला गया था।

27. यह देखा गया है कि सबसे पहले मामले के इस पहलू को याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए कारण बताओ नोटिस के जवाब में सक्षम प्राधिकारी के ध्यान में लाया गया था, लेकिन

अनुवादित

उत्तरदाताओं ने उक्त मुद्दे को संबोधित नहीं करने का विकल्प चुना और उत्तर में किए गए प्रस्तुतियों का विज्ञापन किए बिना याचिकाकर्ता के रिटेल आउटलेट डीलरशिप समझौते को समाप्त करने के लिए आगे बढ़े। याचिकाकर्ता द्वारा दायर की गई अपील में इस विशिष्ट पहलू को भी उठाया गया था, लेकिन अपीलीय प्राधिकरण ने याचिकाकर्ता द्वारा दायर की गई अपील को खारिज करते हुए मामले के उक्त महत्वपूर्ण पहलू को नजरअंदाज करने का विकल्प चुना। कहने की जरूरत नहीं है कि दोनों अधिकारियों ने सबसे अवैध और मनमाने तरीके से काम किया है, जहां उन्होंने याचिकाकर्ता द्वारा अपने जवाब में उठाए गए आधारों की अनदेखी करने का विकल्प चुना है।

28. याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई कार्रवाई करने से पहले उसे सुनवाई का उचित अवसर प्रदान किया जाना आवश्यक था। उच्चतम न्यायालय द्वारा अपने निर्णयों में निरूपित विधि का यह स्थापित प्रस्ताव है कि नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों को केवल खोखली औपचारिकता के रूप में प्रतिबिम्बित नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि अपराधी के विरुद्ध कोई कार्रवाई करने से पहले उसे सुनवाई का उचित अवसर दिया जाना चाहिए। प्रस्तुत मामले में याचिकाकर्ता ने विशेष रूप से अपना बचाव किया है कि 16.9.2020 को मशीनों को ओईएम के अधिकृत सेवा अभियंता द्वारा खोला गया है और वह उक्त मशीनों के साथ छेड़छाड़ के लिए जिम्मेदार हो सकता है। यह उत्तरदाताओं पर निर्भर था कि वे उक्त मुद्दे को संबोधित करते, विधिवत विचार करते और इस संबंध में एक निष्कर्ष दर्ज करते। याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए बचाव का विज्ञापन न करते हुए, निर्धारित प्राधिकारी के साथ-साथ अपीलीय प्राधिकारी ने उनमें निहित अधिकार क्षेत्र का त्याग कर दिया है और बिना दिमाग के प्रयोग लागू किए आक्षेपित आदेश पारित किए हैं। उत्तरदाताओं के लिए यह आवश्यक था कि वे याचिकाकर्ता के खिलाफ कार्यवाही से पहले ओईएम के साथ-साथ सेवा अभियंता की प्रतिक्रिया प्राप्त करें, जिन्होंने 16.9.2020 को खुदरा आउटलेट का दौरा किया था। सबूत का यह महत्वपूर्ण टुकड़ा खो गया था जब प्रतिवादी अधिकारियों ने याचिकाकर्ता की डीलरशिप की समाप्ति से संबंधित मुद्दे से निपटने के दौरान मामले के इस पहलू को नजरअंदाज करना चुना।

याचिकाकर्ता द्वारा बचाव के रूप में उठाए गए मुद्दों से निपटना भी प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है। जांच कार्यवाही के दौरान "निष्पक्ष सुनवाई" और "सुनवाई का अवसर" का कोई मतलब नहीं होगा यदि जांच अधिकारी उस व्यक्ति द्वारा बचाव में उठाए गए सबमिशन पर विचार नहीं करता है जिसके खिलाफ कार्यवाही की जाती है। सुनवाई के अवसर में उस व्यक्ति द्वारा उठाए गए सभी बचावों पर उचित विचार शामिल होना चाहिए, जिसके खिलाफ कार्यवाही की जाती है, और उत्तर पर विचार करने में विफल रहना प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का स्पष्ट उल्लंघन होगा, और इस तरह का आदेश मनमाना और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होगा।

29. याचिकाकर्ता के रिटेल आउटलेट डीलरशिप को केवल अनुमान के आधार पर समाप्त कर दिया गया है; केवल ओईएम की रिपोर्ट पर विचार करते हुए जो केवल यह इंगित करता है

अनुवादित

कि मदर बोर्ड के साथ छेड़छाड़ की गई है, लेकिन फिर भी उत्तरदाताओं के लिए यह निष्कर्ष प्रतिबिंबित करना आवश्यक था कि यह याचिकाकर्ता था, जो मदर बोर्ड के साथ छेड़छाड़ के लिए जिम्मेदार था। इस तरह के छेड़छाड़ और हेरफेर में याचिकाकर्ता की भागीदारी की ओर इशारा करने वाले ठोस सबूतों के अभाव में, केवल आरोपों के आधार पर समझौते को रद्द नहीं किया जा सकता था। इस तरह की कार्रवाई केवल अनुमान के आधार पर नहीं की जानी चाहिए थी, बल्कि याचिकाकर्ता द्वारा मदरबोर्ड से छेड़छाड़ करने के संबंध में कुछ ठोस और विश्वसनीय सबूत होने चाहिए ताकि उत्तरदाताओं के खिलाफ कार्रवाई की जा सके। यह सबूत उपलब्ध कराया जा सकता था, अगर जांच के दौरान प्रतिवादी संगठन ने मेसर्स जीवीआर के अधिकृत सेवा अभियंता के बयान की जांच या रिकॉर्ड किया होता, जिन्होंने 16.9.2020 को रिटेल आउटलेट का दौरा किया था और सील तोड़ने के बाद वितरण इकाई खोली थी। महत्वपूर्ण सबूत के अभाव में ऐसी कोई अन्य सामग्री नहीं है जो याचिकाकर्ता के साथ मदर बोर्ड की छेड़छाड़ को जोड़ सके।

30. जांच अधिकारी के साथ-साथ अपीलीय प्राधिकारी इस संबंध में याचिकाकर्ता के जवाब पर विचार करने में विफल रहे, जिससे यह अप्रतिरोध्य निष्कर्ष निकलता है कि आक्षेपित आदेश बिना दिमाग के पारित किया गया है। अन्यथा भी, रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री की जांच करने के बाद इस न्यायालय का विचार है कि ऐसा कोई सबूत नहीं है जो याचिकाकर्ता के साथ मदर बोर्ड की छेड़छाड़ को जोड़ सके, सिवाय इस तथ्य के कि मशीनें याचिकाकर्ता के विशेष कब्ज़े में थीं। हमने यह भी विचार किया कि निरीक्षण से पहले वितरण इकाइयां मैसर्स जी.वी.के. के अधिकृत सेवा अभियंता द्वारा खोली गई थीं। सर्विस इंजीनियर के साक्ष्य को रिकॉर्ड करने का कोई प्रयास नहीं किया गया था जो यह प्रदर्शित कर सकता था कि उसने मदरबोर्ड को देखा था या नहीं। उपरोक्त के प्रकाश में, इस अदालत का विचार है कि याचिकाकर्ता को मदरबोर्ड के हेरफेर को जोड़ने वाले निर्धारित प्राधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष रिकॉर्ड से बाहर नहीं हैं और इसलिए आक्षेपित आदेश अवैध और मनमाने हैं, तदनुसार अपास्त किए जाते हैं।

31. अगला प्रश्न यह उठता है कि क्या आक्षेपित आदेशों को रद्द करने के बाद क्या मामले को पुनर्विचार करने के लिए उत्तरदाताओं को वापस भेज दिया जाना चाहिए, और इस न्यायालय द्वारा बताई गई दुर्बलता को दूर करने के बाद आगे बढ़ना चाहिए और समाप्ति या प्राकृतिक परिणाम के आदेश अर्थात आउटलेट चलाने के लिए लाइसेंस की बहाली पर फिर से विचार करने की अनुमति दी जा सकती है?

32. इस संबंध में याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि इसी तरह की परिस्थितियों में मेसर्स चौधरी फाइलिंग प्वाइंट, काजीपुर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में एमबी रिट संख्या 27043 वर्ष 2018 में पारित किया गया था, जहां मदर बोर्ड से छेड़छाड़ से संबंधित मामला भी इस न्यायालय के समक्ष आया था और इस न्यायालय की राय थी कि कोई कार्रवाई योग्य सबूत नहीं था जो छेड़छाड़ से संबंधित हो सकता है। याचिकाकर्ता और उसके अनुसार याचिकाकर्ता के रिटेल

अनुवादित

आउटलेट डीलरशिप को बहाल कर दिया। निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ को निम्नानुसार उद्धृत किया गया है: -

"जैसा कि आक्षेपित आदेश के पढ़ने से देखा गया है, याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण से संतुष्ट नहीं होने का एकमात्र कारण यह था कि डीयू में छेड़छाड़ की गई थी और पल्सर कार्ड में कुछ टांका लगाने के निशान होते हैं। तथापि, सक्षम प्राधिकारी द्वारा इस बात पर विचार नहीं किया गया कि वितरण इकाई में किस समय यह अनधिकृत छेड़छाड़/टांका लगाया गया था और डीलर किस प्रकार ईंधन के वितरण में हेर-फेर कर रहा है। याचिकाकर्ता द्वारा उपकरण तक अनधिकृत पहुंच का खुलासा करने के लिए उत्तरदाताओं द्वारा रिकॉर्ड पर कोई सामग्री, बहुत कम विश्वसनीय नहीं लाई गई है। याचिकाकर्ता का यह विशिष्ट रुख था कि समय-समय पर तौल और माप विभाग के अधिकारियों ने मुहरों का निरीक्षण किया और उन्हें बरकरार पाया गया। इसके अलावा, वितरण इकाई में छेड़छाड़/टांका लगाने पर क्या प्रभाव पड़ा है, इसका खुलासा नहीं किया गया है। डीलर ऐसी इकाई डालकर ईंधन की डिलीवरी में कैसे हेरफेर कर सकता है, यह स्पष्ट नहीं किया गया है। वितरण इकाई के साथ छेड़छाड़ करने का एकमात्र उद्देश्य ईंधन की सुपुर्दगी में हेर-फेर करना होता है। इस मामले में, यूनिट की जांच से पहले और जांच के बाद ईंधन की डिलीवरी सही पाई गई। इसके अलावा, याचिकाकर्ता का बचाव कि यह संभव है कि आपूर्तिकर्ता ने स्वयं आपूर्तिकर्ता द्वारा इकाई के समुचित कामकाज के लिए मरम्मत करते समय टांका लगाया हो, को दरकिनार नहीं किया जा सकता है।

33. इसी तरह, रिट सी संख्या 25127 वर्ष 2018 (मेसर्स कमला कांत ऑटोमोबाइल्स और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में पारित इस न्यायालय के एक अन्य निर्णय पर भी भरोसा किया गया है, जो निम्नानुसार है: -

"यह मानने के बाद कि 24.7.2017 का आदेश कानून में खराब है और रद्द करने योग्य है, सवाल उठता है कि क्या याचिकाकर्ता डीलरशिप की बहाली का हकदार है। समझौते के किसी भी खंड का कोई उल्लंघन नहीं होने के कारण, कोई भी कार्यवाही कानून के अनुसार समाप्त नहीं हुई है और याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए सभी आरोपों से मुक्त होने के बाद केवल प्राकृतिक परिणाम उन सभी लाभों की बहाली है जिनसे याचिकाकर्ता अनधिकृत रूप से वंचित था।

34. प्रतिवादी-तेल निगम की ओर से उपस्थित श्री राकेश कुमार ने प्रस्तुत किया है कि एक बार जब यह देखा जाता है कि कार्यवाही में दोष/दुर्बलता है तो मामले के उस पहलू पर विचार करने के लिए मामले को सक्षम प्राधिकारी को वापस भेजना उचित होगा जिस पर उनके द्वारा विचार नहीं किया गया है और समाप्ति के नए आदेश पारित किए गए हैं। इस संबंध में यह देखा गया है कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत एक अपराधी के बचाव में आते हैं जिसके खिलाफ कार्रवाई प्रस्तावित है। नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का आशय यह है कि जिस व्यक्ति के विरुद्ध कार्रवाई की जाती है, उसे सुनवाई का पर्याप्त अवसर दिया जाना चाहिए ताकि वह पर्याप्त रूप से अपना बचाव कर

अनुवादित

सके। प्रस्तुत मामले में, यह देखा गया है कि इस तथ्य के अलावा कि याचिकाकर्ता ने एक विस्तृत उत्तर प्रस्तुत किया था, लेकिन फिर भी प्रतिवादी रिटेल आउटलेट डीलरशिप समझौते को समाप्त करने से पहले मामले के सभी पहलुओं पर विचार करने में विफल रहे।

35. आगे यह देखा गया है कि याचिकाकर्ता द्वारा कार्यवाही में दोष को इंगित करते समय जो साक्ष्य उपलब्ध था, वह इतने लंबे समय के बाद उपलब्ध नहीं होगा, हालांकि यह प्रतिवादी - संगठन पर निर्भर था कि उसने जांच के दौरान ओईएम के अधिकृत सेवा अभियंता का बयान दर्ज किया हो। यह सूचित किया गया है कि उक्त अधिकृत सेवा इंजीनियर प्रतिवादियों के अनुसार अब रोजगार में नहीं है। प्रस्तुत मामले के विशिष्ट तथ्यों में, इस न्यायालय का विचार है कि न्यायालय के विवेक पर किसी मामले को नए सिरे से विचार के लिए तभी भेजा जा सकता है जब प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन न किया गया हो, और न्यायालय द्वारा इंगित की गई दुर्बलताएं ऐसी प्रकृति की हों जिन्हें मामले को निर्धारित प्राधिकारी के समक्ष भेजकर ठीक किया जा सकता है। महत्वपूर्ण साक्ष्य को दर्ज न करना प्रक्रिया का हिस्सा नहीं है, बल्कि मामले के गुण-दोष से संबंधित है और एक बार जांच पूरी हो जाने के बाद और यह पाया जाता है कि आरोप साबित नहीं हुए हैं, तो अपराधी के लिए यह उचित नहीं होगा कि वह मामले को और साक्ष्य दर्ज करने के लिए रिमांड पर ले जो उपलब्ध हो सकता है लेकिन दर्ज नहीं किया गया हो। जहां कहीं नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन होता है, वहां अपराधी के स्वयं का बचाव करने के अधिकारों का उल्लंघन किया जाता है और अपराधी को पूर्ण अवसर प्रदान करने के लिए मामला जांच अधिकारी को भेज दिया जाता है। अभियोजन पक्ष को मान्यता नहीं दी गई है या अभियोजन में निहित नहीं किया गया है कि नए सिरे से आगे बढ़ने का एक और मौका दिया जाए और आगे के साक्ष्य को रिकॉर्ड करने की अनुमति दी जाए जो पहले दर्ज नहीं किया गया था और फिर उस व्यक्ति के खिलाफ दंड का एक नया आदेश पारित करने के लिए जिसके खिलाफ कार्यवाही की गई थी। एक बार अपराधी के खिलाफ कार्यवाही पूरी हो जाने के बाद, दोहरे खतरे का प्रिंसिपल अभियोजन पक्ष के इशारे पर मामले को भेजने के खिलाफ काम करेगा और इसलिए नए साक्ष्य लेने के लिए मामले को भेजना उचित नहीं होगा।

36. उपरोक्त चर्चा के आलोक में डीलरशिप की समाप्ति के आदेश के साथ-साथ अपीलीय आदेश अवैध और मनमाना है और इस तरह, दिनांक 21.9.2020, 5.10.2021 और 7.4.2022 के आदेशों को रद्द किया जाता है।

37. उत्तरदाताओं को याचिकाकर्ता के रिटेल आउटलेट डीलरशिप को तुरंत बहाल करने का निर्देश दिया जाता है।

38. रिट याचिका की अनुमति दी जाती है।

(2023) 6 ILRA 461

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 20.04.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सलिल कुमार राय

अनुवादित

माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल

रिट-सी संख्या 23238 वर्ष 2011

श्रीमती सुधा देवी याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ और अन्य प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री अरविंद श्रीवास्तव, श्री अभय राज यादव

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: ए.एस.जी.आई., श्री देवी शंकर शुक्ला, एस.सी., श्री तरुण वर्मा, श्री योगेंद्र कुमार यादव

सिविल कानून - किसान सेवा केंद्र डीलर (खुदरा आउटलेट) का चयन - खुदरा दुकानों के आवंटन के संबंध में इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड के दिशानिर्देश - याचिकाकर्ता ने आवेदन पत्र जमा करने के बाद प्लॉट संख्या 370/1 में सह-हिस्सेदारों के सहमति हलफनामे दाखिल किए। इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन ने भूमि की क्षमता के लिए याचिकाकर्ता को शून्य अंक दिए। निर्णय: खुदरा दुकानों के आवंटन के संबंध में इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन के दिशानिर्देशों के अनुसार, यदि भूमि याचिकाकर्ता के साथ-साथ अन्य व्यक्तियों के स्वामित्व में है और याचिकाकर्ता का हिस्सा इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन द्वारा निर्धारित आवश्यकता से अधिक है, तो याचिकाकर्ता को अन्य सह-हिस्सेदारों के साथ एक पंजीकृत समझौता प्रस्तुत करना आवश्यक था, जिसमें उनके हिस्से के सीमांकित हिस्से के साथ उनकी सहमति दिखाई गई हो। इस मामले में, याचिकाकर्ता ने आवेदन पत्र जमा करते समय या 12.11.2010 को आयोजित साक्षात्कार के समय पंजीकृत समझौते के माध्यम से अन्य सह-हिस्सेदारों की सहमति दाखिल करने में विफल होकर उपरोक्त आवश्यकताओं का पालन नहीं किया। आवश्यक दस्तावेज आवेदन पत्र जमा करने की अंतिम तिथि तक दाखिल किए जाने चाहिए थे। बाद में दाखिल किए गए किसी भी दस्तावेज पर विचार नहीं किया जा सकता है। इसलिए, आवेदन जमा करने के बाद दायर सहमति के संबंध में सह-मालिकों के हलफनामे पर विचार नहीं किया जा सकता है। याचिकाकर्ता को भूमि की क्षमता (बुनियादी ढांचे और सुविधाएं प्रदान करने की क्षमता) के लिए अंक प्रदान करने में विफलता को गलत नहीं माना जा सकता है। (पैरा 14, 16)

खारिज। (ई-5)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. सौरव मित्तल बनाम इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड और अन्य - रिट सी संख्या 54357/2013
2. श्रीमती संगीता गुप्ता बनाम यू.ओ.आई. और अन्य - 2009 (7) एडीजे 534 (डीबी)
3. मधु सिंह बनाम यूओआई एवं अन्य - 2013 एडीजे ऑनलाइन 0398

(माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल द्वारा दिया गया)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री अरविंद श्रीवास्तव, प्रतिवादी संख्या 1 - यूनियन ऑफ इंडिया के विद्वान वकील श्री अनंत कुमार तिवारी और प्रतिवादी संख्या 2, 3 और 4 के विद्वान वकील श्री देवी शंकर शुक्ला को सुना।

2. वर्तमान याचिका याचिकाकर्ता द्वारा जिला - चित्रकूट के रामपुरिया अव्वल में किसान सेवा केंद्र डीलर (रिटेल आउटलेट) के चयन के संबंध

अनुवादित

में दिनांक 12.11.2010 के परिणाम को चुनौती देते हुए दायर की गई है। इसके बाद, याचिका में संशोधन किया गया और महाप्रबंधक, इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड, लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 11.04.2011 को भी चुनौती दी गई, जिसके द्वारा, बुनियादी ढांचा (भूमि) प्रदान करने की क्षमता के लिए कोई अंक न देने के साथ-साथ प्रतिवादी संख्या 5 को निवासी प्रमाण पत्र जारी करने के संबंध में याचिकाकर्ता के प्रतिनिधित्व को खारिज कर दिया गया था।

3. वर्तमान मामले का तथ्यात्मक आव्यूह यह है कि इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड (प्रतिवादी संख्या 2) ने दिनांक 18.08.2010 को विज्ञापन जारी किया था, जिसमें जिला-चित्रकूट के रामपुरिया अव्वल में किसान सेवा केंद्र डीलर के चयन के लिए आवेदन पत्र आमंत्रित किया गया था। उपरोक्त विज्ञापन के अनुसरण में याचिकाकर्ता ने अन्य दस्तावेजों के साथ आवेदन पत्र भी जमा कर दिया है। याचिकाकर्ता ने प्लॉट नंबर 370/1 एम में प्रस्तावित स्थल के लिए जमीन की भी पेशकश की है। जमीन की उपलब्धता के प्रमाण के समर्थन में, याचिकाकर्ता ने प्लॉट नंबर 370/1 की खतौनी के साथ-साथ विक्रय पत्र दिनांक 26.12.2007 की प्रति भी प्रस्तुत की है जिसमें प्लॉट नंबर 370/1 में 1/3 शेयर की खरीद दिखाई गई। याचिकाकर्ता ने अपने पति की सहमति भी प्रस्तुत की, जो प्लॉट नंबर 370/1 में सह-हिस्सेदार भी था। याची द्वारा प्रस्तुत खतौनी से पता चलता है कि प्लॉट संख्या 370/1 पर याची के पति समेत अन्य लोग भी सह खातेदार हैं।

4. इसके बाद याचिकाकर्ता के खिलाफ उसकी जमीन की क्षमता के संबंध में शिकायत प्राप्त हुई। इसके बाद याचिकाकर्ता की जमीन की संभावना के संबंध में जांच की गई। जांच रिपोर्ट में यह पाया गया कि याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत भूखंड पर याचिकाकर्ता के पति सहित कई व्यक्तियों का स्वामित्व था और अन्य सह- हिस्सेदार की सहमति आवेदन पत्र के साथ प्रस्तुत नहीं की गई थी, बल्कि साक्षात्कार पूरा होने के बाद ही प्रस्तुत की गई थी।

5. उपरोक्त चयन के लिए साक्षात्कार 12.11.2010 को आयोजित किया गया था और परिणाम 12.11.2010 को घोषित किया गया था जिसमें निम्नलिखित उम्मीदवारों को योग्य घोषित किया गया था:

(i) श्रीमती किरण त्रिपाठी (प्रतिवादी संख्या 5);

(ii) दीपशिखा मिश्रा और;

(iii) सुधा देवी (याचिकाकर्ता)।

6. दिनांक 12.11.2010 के परिणाम से पता चलता है कि याचिकाकर्ता को शून्य अंक दिया गया था। इसलिए, उस परिणाम दिनांक 12.11.2010 को याचिकाकर्ता द्वारा चुनौती दी गई थी। उस परिणाम के विरुद्ध याचिकाकर्ता ने दिनांक 22.11.2010 को एक अभ्यावेदन प्रस्तुत किया । उस अभ्यावेदन में याचिकाकर्ता ने न केवल दिनांक 12.11.2010 के परिणाम को चुनौती दी, बल्कि प्रतिवादी क्रमांक 5 को जारी किए गए निवासी प्रमाण पत्र को भी इस आधार पर चुनौती दी कि प्रतिवादी क्रमांक 5 जिला - चित्रकूट का निवासी नहीं है। उपरोक्त अभ्यावेदन को वर्तमान याचिका के लंबित रहने

अनुवादित

के दौरान दिनांक 11.04.2011 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था।

7. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील का कहना है कि प्लॉट नंबर 370/1 का स्वामित्व शुरू में तीन सह- हिस्सेदारों, सिद्ध गोपाल, श्री जागेश्वर प्रसाद और श्री केसन प्रसाद के पास था। याचिकाकर्ता ने सिद्ध गोपाल का 1/3 हिस्सा खरीदा है और उस पर एक सीमा का निर्माण किया है और याचिकाकर्ता के पति अशोक कुमार ने श्री जागेश्वर प्रसाद के हिस्से में से 9.5 बिस्वा क्षेत्र खरीदा है और शेष 6 बिस्वा श्री भूपेन्द्र ने खरीदा है और केसन प्रसाद का हिस्सा माया देवी, राज श्री और मीना ने खरीदा था। चूँकि याचिकाकर्ता ने सिद्ध पाल का पूरा हिस्सा खरीदा था जिसका स्पष्ट रूप से सीमांकन किया गया था, इसलिए, अन्य सह- हिस्सेदारों की सहमति दाखिल करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। याचिकाकर्ता के वकील ने आगे कहा कि दिनांक 11.04.2011 का आक्षेपित आदेश गलत और मनमाना है क्योंकि अन्यथा भी उसने अपने पति की सहमति दाखिल की थी जो प्लॉट नंबर 370/1 में सह - हिस्सेदार है और उसके बाद, अन्य सह-हिस्सेदार की सहमति दाखिल की थी। साक्षात्कार के समापन के तुरंत बाद हिस्सेदारों को दाखिल किया गया। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन के प्रासंगिक दिशानिर्देशों के अनुसार, जहां याचिकाकर्ता का हिस्सा आवश्यकता से अधिक है, तो अन्य सह-हिस्सेदार की सहमति प्रस्तुत करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

8. अपने तर्क के समर्थन में, याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने रिट सी संख्या 54357/2013 (सौरव मित्तल बनाम इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड और 2 अन्य) में पारित निर्णय पर भरोसा किया है। याचिकाकर्ता के वकील ने यह भी कहा कि एडीएम मऊ का आदेश दिनांक 04.02.2011 जिसने प्रतिवादी संख्या 5 का निवासी प्रमाण पत्र बहाल किया था, जिसे पहले आदेश दिनांक 15.12.2010 द्वारा रद्द कर दिया गया था, वह भी गलत है क्योंकि प्रतिवादी संख्या 5 जिला-चित्रकूट का निवासी नहीं है क्योंकि शादी के बाद वह अपने पति के साथ लखनऊ चली गईं।

9. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने अंततः कहा कि इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन ने याचिकाकर्ता को भूमि की क्षमता के लिए शून्य अंक दिए हैं, हालांकि उन्होंने भूमि का विशिष्ट हिस्सा पेश किया था जो आवश्यकता से अधिक था और हल्का लेखपाल ने भी अपनी रिपोर्ट में कहा था कि याचिकाकर्ता की जमीन चारदीवारी से घिरी हुई थी।

10. दूसरी ओर, प्रतिवादियों के विद्वान वकील का कहना है कि आक्षेपित आदेश बिल्कुल सही हैं और याचिकाकर्ता ने अन्य सह- हिस्सेदारों की सहमति प्रस्तुत नहीं किया है, इसलिए, वह भूमि की क्षमता के लिए कोई अंक देने की हकदार नहीं है और एसडीएम द्वारा जारी अधिवास प्रमाण पत्र भी वैध है क्योंकि यह उचित जांच रिपोर्ट के आधार पर जारी किया गया था।

अप्रमाणित

11. याचिकाकर्ता के प्रत्युत्तर हलफनामे के पृष्ठ संख्या 11 पर संलग्न इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड के दिशानिर्देश निर्धारित करते हैं कि यदि याचिकाकर्ता अन्य व्यक्तियों के साथ किसी भूमि का संयुक्त मालिक है तो याचिकाकर्ता को अन्य सह- हिस्सेदार का पंजीकृत समझौता प्रस्तुत करना होगा। उसकी भूमि का सीमांकन इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन के दिशानिर्देशों का प्रासंगिक उद्धरण नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

(ख) भूमि का पक्का प्रस्ताव :

यदि आवेदक के पास स्व-स्वामित्व अथवा 'पारिवारिक" सदस्यों के सह स्वामित्व वाली भूमि उपलब्ध न हो, तो उसके पास अन्य व्यक्तियों के स्वामित्व वाली भूमि प्रस्तावित करने का विकल्प भी है। ऐसी परिस्थिति में आवेदक को भू- स्वामी स्वामियों का पंजीकृत अनुबन्ध प्रस्तुत करना होगा ।

नोटः- यदि उपरोक्त आधार पर आवेदक का चयन कर लिया जाता है तथा वह आवेदन में उल्लिखित भूमि लेटर ऑफ इन्टेन्ट की तिथि से दो माह के अन्दर उपलब्ध नहीं करा पाता है तो आईओसी के पास आवेदक को प्रदान किये गये डीलरशिप का आवंटन निरस्त करने का अधिकार होगा। भूमि की उपयुक्तता का निर्णय आईओसी द्वारा लिया जायेगा । ऐसी स्थिति में आवेदक से क्रय की गई / लम्बी लीज पर अर्जित भूमि हेतु ढाँचागत सुविधायें आईओसी द्वारा अपने व्यय पर उपलब्ध कराई जायेंगी । तथापि आवेदक द्वारा प्रस्तावित भूमि को स्वीकार करने को आईओसी किसी प्रकार प्रतिबद्ध नहीं होगा ।

प्रस्तावित भूमि हेतु अभिलेखः

(ग) आवेदक को (भू-स्वामित्व सम्बन्धी) निम्न में से कोई एक अभिलेख जो विज्ञापन की तिथि के पश्चात निर्गत/नवीनीकृत किया गया हो,

प्रस्तुत करना अनिवार्य है: (i) खसरा खतौनी अथवा कोई अन्य समकक्ष राजस्व अभिलेख अथवा भूमि का स्वामित्व प्रमाणित करने हेतु राजस्व अधिकारी द्वारा निर्गत प्रमाण-पत्र । (ii) आवेदक के पक्ष में पंजीकृत सेल डीड / पंजीकृत लीज डीड (आवेदन की तिथि पर न्यूनतम अवधि 19 वर्ष 11 माह अथवा स्वामित्य हस्तान्तरित करने हेतु कोई अन्य स्थानान्तरण डीड / अभिलेख ।

(घ) प्रस्तावित भूमि के स्वामित्व हेतु सरकारी / अर्ध-सरकारी, स्वायत्त संस्थायें जैसे: LDA, KDA, DDA, आदि द्वारा निर्गत लीज एग्रीमेन्ट आवंटन पत्र स्वीकार्य होगें।

(ङ) उपरोक्त बिन्दु (ग) से (ङ) में उल्लिखित अभिलेखों के अतिरिक्त, निम्न अभिलेख, जो लागू होते हों, संलग्न करें:

क्रम सं	स्वामित्व की स्थिति	भूमि में आवेदक का अंश	वांछित आवश्यक अभिलेख (भूमि स्वामित्व अभिलेखों के अंश अलावा) राजस्व	आंकलन स्तर

अनुवादित

1.	स्वयं	सम्पूर्ण	कोई नहीं	स्वामित्व की भूमि
2.	केवल "पारिवारिक" सदस्यों द्वारा	कुछ नहीं	आवेदक के पक्ष में समस्त स्वामियों का नोटरीकृत शपथ - पत्र	स्वामित्व की भूमि
3.	स्वयं एवं केवल "पारिवारिक" सदस्यों के साथ संयुक्त	आंशिक	आवेदक के पक्ष में समस्त सह-स्वामियों का नोटरीकृत शपथ - पत्र	स्वामित्व की भूमि
4.	स्वयं एवं अन्य के साथ संयुक्त	आवेदक का अंश आई ओ सी द्वारा वांछित अंश से अधिक	भूमि का भाग (demarcation) दर्शाते हुए पंजीकृत अनुबन्ध (भूमि का वह भाग जो आवेदक द्वारा डीलरशिप हेतु प्रस्तावित है।	स्वामित्व की भूमि
5.	स्वयं एवं अन्य के साथ संयुक्त	आवेदक का अंश आई ओ सी द्वारा वांछित अंश से अधिक	भूमि का भाग दर्शाये बिना पंजीकृत अनुबन्ध (भूमि का वह भाग जो आवेदक द्वारा डीलरशिप हेतु प्रस्तावित है।	पक्का प्रस्ताव

12. दूसरा, निवासी प्रमाण पत्र प्राप्त करने के लिए याचिकाकर्ता को स्थायी निवासी या सामान्य निवासी होना चाहिए, इसका उल्लेख दिशानिर्देशों या विज्ञापन में नहीं किया गया है।

13. रिकार्ड के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि प्लाट नं. 370/1 में तीन सह हिस्सेदार थे, नामतः सिद्ध गोपाल, श्री जागेश्वर प्रसाद और श्री केसन प्रसाद और प्रत्येक का 1/3 हिस्सा था और प्लॉट क्रमांक 370/1 में कोई बंटवारा नहीं था एवं तीनों व्यक्ति उक्त भूमि के संयुक्त स्वामी थे। याचिकाकर्ता ने सिद्ध गोपाल का 1/3 हिस्सा खरीदा और उसके पति ने भी एक अन्य सह-हिस्सेदार श्री जागेश्वर

अनुवादित

प्रसाद के शेयर का कुछ हिस्सा खरीदा, इसलिए, याचिकाकर्ता अन्य सह-हिस्सेदार के साथ प्लॉट नंबर 370/1 में सह - हिस्सेदार बन गया है, जिसमें उसका पति भी शामिल है। लेकिन रिटेल आउटलेट के लिए आवेदन जमा करते सम, याचिकाकर्ता ने अपने पति की सहमति प्रस्तुत की है और इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन के दिशानिर्देशों के अनुसार आवेदन प्रपत्र प्रस्तुत करते समय अन्य सह हिस्सेदार की सहमति प्रस्तुत नहीं की गई थी। रिटेल आउटलेट के आवंटन के संबंध में जिसे याचिकाकर्ता द्वारा स्वयं अपने प्रत्युत्तर हलफनामे के पृष्ठ 11 पर विशेष रूप से संलग्न किया गया था, यह दर्शाता है कि यदि कोई भूमि अन्य व्यक्तियों के साथ याचिकाकर्ता के स्वामित्व में है और याचिकाकर्ता का हिस्सा इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन द्वारा आवश्यक निर्देश से अधिक था, तो याचिकाकर्ता को अपने हिस्से के सीमांकित हिस्से के साथ अपनी सहमति दिखाते हुए अन्य सह- हिस्सेदार के साथ पंजीकृत समझौता प्रस्तुत करना आवश्यक था, लेकिन वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता ने आवेदन पत्र के साथ पंजीकृत समझौते के माध्यम से अन्य सह - हिस्सेदारों की सहमति दाखिल नहीं करके और यहां तक कि 12.11.2010 को आयोजित साक्षात्कार के समय भी उपरोक्त निर्देश का अनुपालन नहीं किया है। श्रीमती संगीता गुप्ता बनाम भारत संघ और अन्य 2009 (7) एडीजे 534 (डीबी) के मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ ने पाया कि आवश्यक दस्तावेज आवेदन पत्र जमा करने की अंतिम तिथि पर दाखिल किया जाना चाहिए। बाद में दाखिल किए गए किसी भी दस्तावेज़ पर विचार नहीं किया जा सकता । उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ संख्या 21 को नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"21. ऊपर वर्णित तथ्यों के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि दिनांक 11.10.2014 के विज्ञापन के अनुसार, याचिकाकर्ता द्वारा रिटेल आउटलेट डीलरशिप प्रदान करने के लिए एक आवेदन पत्र प्रस्तुत किया गया था। चूंकि आवेदन पत्र में कुछ विसंगतियां पाई गईं थीं याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 26.5.2016 को एक पत्र प्रस्तुत किया गया था, जो प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा याचिकाकर्ता को लिखा गया था। याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 4.6.2016 को एक उत्तर प्रस्तुत किया गया था जिसमें कहा गया था कि विसंगतियों को विधिवत दूर कर दिया गया था। उपरोक्त पत्र प्राप्त होने के बाद प्रतिवादी निगम के कार्यालय में, निगम ने अपने आदेश दिनांक 9.7.2016 द्वारा इसे इस आधार पर खारिज कर दिया कि दिशानिर्देशों के खंड 4 (Vi) (खा) को याचिकाकर्ता द्वारा पूरा नहीं किया गया था। अभिलेखों के अवलोकन से पता चलता है कि प्रस्तुत करते समय याचिकाकर्ता ने आवेदन पत्र में कुछ कागजात और दस्तावेज जमा किए हैं। याचिकाकर्ता के आवेदन पत्र में दो कमियां बताई गईं, अर्थात् लीज डीड में खसरा/खतौनी नंबर का उल्लेख नहीं है और लीज समझौते में कोई उप-पट्टा खंड शामिल नहीं है। याचिकाकर्ता को उक्त पत्र प्राप्त होने के बाद उसने अभ्यावेदन प्रस्तुत किया। अभ्यावेदन के साथ याचिकाकर्ता ने लीज डीड दिनांक 31.10.2014 में सुधार करते हुए दिनांक 4.6.2016 का संशोधन संलग्न किया। उपरोक्त सुधारों के द्वारा याचिकाकर्ता ने लीज

अनुवादित

डीड दिनांक 31.10.2014 में इस आशय के सुधार की मांग की थी कि प्लॉट नंबर 202 का उल्लेख किया जाना था और पहली बार प्रतिवादी निगम के पक्ष में उप पट्टे के प्रावधान का भी उल्लेख किया गया था। याचिकाकर्ता ने निगम द्वारा दिनांक 26.5.2016 के पत्र के माध्यम से बताई गई विसंगतियों को दूर करने का प्रयास किया। के अलावा

भूमि के मूल पट्टेदार दो अन्य व्यक्ति अर्थात् जयवीर और

हवलदार भी जमीन में हिस्सेदार थे. उपरोक्त तथ्य नहीं था याचिकाकर्ता या श्रीमती द्वारा किसी भी समय खुलासा किया गया। मुन्नी देवी प्रतिवादी निगम के समक्ष. उपरोक्त सह का कोई सहमति पत्र नहीं- याचिकाकर्ता द्वारा अपने आवेदन के साथ हिस्सेदारों को प्रस्तुत किया गया था रूप। उन्हीं सुधारों के अलावा, जो द्वारा किए गए सुधार विलेख में याचिकाकर्ता भी शामिल होने के लिए उत्तरदायी नहीं थे इस तथ्य के थे कारण प्रतिवादी निगम द्वारा विचार किया गया कि ये आवेदन जमा करने के बाद सुधार की अनुमति नहीं है।"

14. इसी प्रकार, मधु सिंह बनाम भारत संघ और अन्य 2013 एडीजे ऑनलाइन 0398 के मामले में इस न्यायालय की डिवीजन बेंच ने स्पष्ट रूप से देखा कि आवेदन जमा करने के बाद दायर सहमति के संबंध में सह मालिकों के हलफनामे पर विचार नहीं किया जा सकता है। इसलिए, बुनियादी ढांचा और सुविधा प्रदान करने की क्षमता की श्रेणी के तहत शून्य अंक देना सही है। उक्त निर्णय का प्रासंगिक भाग नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"चूंकि याचिकाकर्ता के आवेदन में उल्लिखित भूमि याचिकाकर्ता के पिता के साथ कुछ अन्य तीसरे व्यक्तियों की है और याचिकाकर्ता का उक्त भूमि में कोई हिस्सा नहीं है, याचिकाकर्ता का मामला ब्रोशर के खंड 14 के उप-खंड (ई) के नीचे तालिका में किसी भी मद संख्या 1 से 6 के अंतर्गत नहीं आएगा जिसका उल्लेख किया गया है। नतीजतन, याचिकाकर्ता का मामला उक्त तालिका के आइटम नंबर 7 के अंतर्गत आएगा। इसलिए, याचिकाकर्ता को अपने आवेदन में उल्लिखित उक्त भूमि के सह-मालिकों के साथ पंजीकृत समझौता प्रस्तुत करना आवश्यक था । याचिकाकर्ता द्वारा अपने आवेदन के साथ ऐसा कोई पंजीकृत समझौता दायर नहीं किया गया था। इसलिए, याचिकाकर्ता को "बुनियादी ढांचे और सुविधा प्रदान करने की क्षमता" श्रेणी में "शून्य" अंक दिए जाते हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि वह किसी अवैधता या दुर्बलता से ग्रस्त है।

मामले का एक पहलू और भी है। जैसा कि उपरोक्त तथ्यों के वर्णन से स्पष्ट है, याचिकाकर्ता ने अपने आवेदन के साथ अपने आवेदन में उल्लिखित भूमि के सह- मालिकों का कोई शपथ पत्र दाखिल नहीं किया। 18 अप्रैल, 2012 को चयन का परिणाम घोषित होने के बाद ही याचिकाकर्ता ने अपने अभ्यावेदन के साथ कुछ शपथ पत्र दाखिल किये। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, ब्रोशर के क्लॉज 10 के उप-क्लॉज (ई) के लिए आवश्यक है कि आवेदन के साथ शपथ पत्र की मूल प्रति जमा की जानी चाहिए। खंड 10 का उप-खंड (एच) आवेदन की अंतिम तिथि के बाद किसी भी अतिरिक्त दस्तावेज को स्वीकार

अनुवादित

करने या उस पर विचार करने पर स्पष्ट प्रतिबंध लगाता है।"

15. याचिकाकर्ता द्वारा भरोसा किया गया सौरव मित्तल बनाम इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड (उपरोक्त) का फैसला वर्तमान मामले में लागू नहीं है क्योंकि भरोसेमंद फैसले के तथ्य से, यह स्पष्ट है कि भूमि उसके विशेष मालिक से खरीदी गई थी, जिसका उन्होंने स्वयं सीमांकन किया और संबंधित व्यक्ति को बेचे गए हिस्से को निर्दिष्ट किया, लेकिन वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता ने सिद्ध गोपाल का 1/3 हिस्सा खरीदा था, जो प्लॉट नंबर 370/1 में विशेष हिस्से का मालिक नहीं था, लेकिन वह अन्य दो व्यक्ति, नामतः श्री जागेश्वर प्रसाद और श्री केसन प्रसाद के साथ सह हिस्सेदार था।

16. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता ने आवेदन पत्र जमा करने के बाद प्लॉट संख्या 370/1 में सह - हिस्सेदारों की सहमति शपथ पत्र दाखिल किया। इसलिए, उस पर उचित रूप से विचार नहीं किया गया। इसलिए, याचिकाकर्ता को भूमि की क्षमता (बुनियादी ढांचा और सुविधा प्रदान करने की क्षमता) के लिए अंक नहीं देना गलत नहीं कहा जा सकता है।

17. जहां तक प्रतिवादी संख्या 5 के अधिवास प्रमाण पत्र के संबंध में मुद्दा है, दिनांक 04.02.2011 के आदेश के अनुसार, इसे भी गलत नहीं ठहराया जा सकता क्योंकि यह प्रतिवादी क्रमांक 5 के अपने पैतृक घर जिला चित्रकूट में सामान्य निवास के संबंध में उनके समक्ष उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर पारित किया गया था।

18. उपरोक्त तथ्यों के दृष्टिगत आक्षेपित आदेश दिनांक 12.11.2010, 11.04.2011 एवं 04.02.2011 में कोई अवैधता नहीं है, अत: याचिका खारिज की जाती है।

19. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2023) 6 ILRA 466

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 31.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सलिल कुमार राय

माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल

रिट-सी संख्या 32728 वर्ष 2000

श्रीमती राम प्यारी देवी एवं अन्य याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के वकील: श्री एच.एन. सिंह, श्री बी.एन. सिंह, श्री श्यामल नारायण

प्रतिवादियों के वकील: सी.एस.सी., श्री ए.के. सिंह, श्री जी.के. सिंह, हर्षिता रघुवंशी, श्री आर.एन. सिंह, श्री श्री नाथ द्विवेदी, श्री रवि कांत (वरिष्ठ अधिवक्ता), श्री गजेन्द्र प्रताप (वरिष्ठ अधिवक्ता)

ए. सिविल कानून - नजूल भूमि - फ्रीहोल्ड अधिकार। सेंट सरकार ने दिनांक 1.12.1998 को सरकारी आदेश जारी किया। दिनांक 1.12.1998 के सरकारी आदेश के पैरा 10 के अनुसार, पूर्व पट्टाधारकों (पूर्व पट्टाधारकों) को नोटिस प्राप्त करने की तिथि से तीन महीने के भीतर फ्रीहोल्ड के लिए आवेदन करने का

अनुवादित

अधिकार दिया गया था। यदि वे नजूल भूखंड को फ्रीहोल्ड करने में विफल रहते हैं, तो नजूल भूमि पर भवनों में रहने वाले किराया नियंत्रण किरायेदारों को फ्रीहोल्ड के लिए आवेदन करने का अधिकार मिलेगा। मुद्दा: क्या याचिकाकर्ता दिनांक 1.12.1998 के सरकारी आदेश के पैरा 10 में उल्लिखित पूर्व पट्टाधारकों की परिभाषा के अंतर्गत आते हैं, इस तथ्य के बावजूद कि याचिकाकर्ताओं के साथ-साथ उनके पूर्वज का नवीनीकरण आवेदन अस्वीकार कर दिया गया था। निर्णय: दिनांक 1.12.1998 के सरकारी आदेश में पूर्व पट्टाधारकों, जिनका नवीनीकरण आवेदन अस्वीकृत कर दिया गया था और जिनके नवीनीकरण आवेदन लंबित हैं, के बीच कोई अंतर नहीं है। यदि पूर्व पट्टाधारकों को केवल उन लोगों के रूप में पढ़ा जाता है, जिनका नवीनीकरण आवेदन अभी भी लंबित है और अस्वीकृत नहीं किया गया है, तो यह अधिनियम में शब्दों को पढ़ने के बराबर होगा।

बी. सिविल कानून - फ्रीहोल्ड अधिकार - सरकार की नीति के तहत फ्रीहोल्ड अधिकार केवल उन भूखंडों के लिए दिए जाते हैं जो पट्टे पर हैं और सरकार में निहित नहीं हैं। सरकार द्वारा किसी ऐसे भूखंड के लिए कोई फ्रीहोल्ड अधिकार नहीं दिया जा सकता है जो पूरी तरह से उसमें निहित है, सभी बाधाओं से मुक्त है। (पैरा 14)

सी. संवैधानिक कानून - अनुच्छेद 226 - स्थिरता - सेंट अधिकारियों द्वारा निष्पादित बिक्री विलेख - निर्णय: एक निजी प्रतिवादी के पक्ष में सेंट अधिकारियों द्वारा निष्पादित एक बिक्री विलेख सेंट अधिकारियों के किसी भी अन्य कार्य के समान ही जांच के अधीन है। सेंट कार्रवाई की न्यायिक समीक्षा संविदात्मक मामलों में भी अनुमेय है। उक्त बिक्री विलेख को निष्पादित करने में उच्च न्यायालय की कार्रवाई का न्यायाधिकार, मनमानी न करने और भेदभाव न करने के आधार पर मूल्यांकन किया जाना चाहिए। यह स्थापित कानून है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय की शक्ति पूर्ण है और कानूनी बाधाओं से बंधी नहीं है। अनुच्छेद 226 के तहत शक्ति यह सुनिश्चित करती है कि देश के कानून का स्पष्ट रूप से पालन किया जाए और विभिन्न सार्वजनिक प्राधिकरण और न्यायाधिकरण अपने-अपने अधिकार क्षेत्र की सीमाओं के भीतर कार्य करें। अनुच्छेद 226 के तहत प्रदान किया गया उपाय राज्य या वैधानिक प्राधिकरण द्वारा नागरिकों के अधिकारों के उल्लंघन को संबोधित करता है और सार्वजनिक कानून में एक उपाय है। (पैरा

डी. व्याख्या - न्यायालय अधिनियम/विधान में कोई शब्द नहीं जोड़ सकते, प्रतिस्थापित नहीं कर सकते, या अस्वीकार नहीं कर सकते। अधिनियम की ऐसी व्याख्या जिससे शब्दों को जोड़ने या प्रतिस्थापित करने की आवश्यकता हो, या जिसके परिणामस्वरूप शब्दों को अर्थहीन मानकर अस्वीकार कर दिया जाए, से बचना होगा। जब तक बिल्कुल आवश्यक न हो, किसी अधिनियम में शब्दों को शामिल करना व्याख्या के सभी नियमों के विपरीत है। कानून में यह एक सुस्थापित सिद्धांत है कि न्यायालय किसी ऐसे वैधानिक प्रावधान में कुछ भी नहीं पढ़ सकते जो स्पष्ट और अस्पष्ट हो। (पैरा 12)

ई. वर्तमान मामले में याचिकाकर्ताओं ने नजूल भूमि को फ्रीहोल्ड करने के लिए आवेदन प्रस्तुत किया। इसके बावजूद, प्लॉट नंबर 103 के

अनुवादित

आवासीय भाग के लिए फ्रीहोल्ड डीड निष्पादित करने के लिए उन्हें कोई डिमांड नोटिस जारी नहीं किया गया। इसके बजाय, प्रतिवादी नंबर 4, किराया नियंत्रण किरायेदार को विवादित प्लॉट के लिए फ्रीहोल्ड डीड निष्पादित करने का पहला अधिकार एक विवादित डिमांड नोटिस जारी करने के माध्यम से दिया 4 जिला मजिस्ट्रेट, गोरखपुर द्वारा। प्रतिवादी संख्या 4 याचिकाकर्ताओं का किरायेदार था। इसलिए, प्रतिवादी संख्या 4 का कब्जा याचिकाकर्ताओं का रचनात्मक कब्जा या याचिकाकर्ताओं की ओर से कब्जा माना जाएगा। प्रतिवादी संख्या 4 नजूल भूखंड के फ्रीहोल्ड के संबंध में याचिकाकर्ताओं से बेहतर अधिकारों का दावा नहीं कर सकता है। प्रतिवादी संख्या 4 के पक्ष में जिला मजिस्ट्रेट, गोरखपुर द्वारा निष्पादित डिमांड नोटिस दिनांक 24.7.2000 और बिक्री विलेख दिनांक 26.7.2000 को रद्द कर दिया गया। प्रतिवादी संख्या 2 को भूखंड संख्या 103, बंगला संख्या 07, गोरखपुर के आवासीय भाग, जिसका क्षेत्रफल 50,995 वर्ग फीट है, के लिए याचिकाकर्ताओं के आवेदन पर विचार करने और याचिकाकर्ताओं को उक्त नजूल भूखंड के लिए बिक्री विलेख निष्पादित करने की औपचारिकताओं को पूरा करने के लिए डिमांड नोटिस जारी करने का निर्देश दिया गया। अनुमत। (ई-5)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. मौलवी हुसैन हाजी अब्राहम उमरजी बनाम सेंट ऑफ गुजरात एवं अन्य, 2004 (6) एससीसी 672

2. यूनियन ऑफ इंडिया एवं अन्य बनाम देवकी नंदन अग्रवाल, 1992 सप (1) एससीसी 32

3. कॉमन कॉज, एक रजिस्टर्ड सोसायटी बनाम यूओआई एवं अन्य, 1999 (6) एससीसी 667

4. मोहम्मद हनीफ बनाम सेंट ऑफ असम, 1969 (2) एससीसी 782

(माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल द्वारा दिया गया)

याचिकाकर्तागण की ओर से अधिवक्ता श्री श्यामल नारायण, प्रत्यर्थी संख्या 4 की ओर से श्री श्री नाथ द्विवेदी सहायक की सहायता से वरिष्ठ अधिवक्ता श्री रवि कांत के साथ वरिष्ठ अधिवक्ता श्री गजेंद्र प्रताप तथा राज्य-प्रत्यर्थी की ओर से अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री सुधांशु श्रीवास्तव को सुना।

वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से, रिट याचिकाकर्तागण ने जिला मजिस्ट्रेट, गोरखपुर द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 4 को जारी मांग नोटिस दिनांक 24.7.2000 को चुनौती दी है, जिसमें नजूल भूखण्ड संख्या 103, मोहल्ला अराजी छावनी सिटी गोरखपुर में 43,000 वर्ग फुट क्षेत्र की फ्रीहोल्ड भूमि की कार्यवाही शुरू करने के लिए कहा गया है। इसके बाद, वर्तमान रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान, जिला मजिस्ट्रेट, गोरखपुर द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 4 के पक्ष में निष्पादित बिक्री विलेख/फ्रीहोल्ड डीड दिनांक 26.7.2000 को रद्द करने के लिए प्रार्थना संख्या 1 ए भी जोड़ा गया था।

वर्तमान मामले का तथ्यात्मक मैट्रिक्स इस प्रकार है: -

याचिकाकर्तागण के पूर्वज - स्वर्गीय मदन लाल टेकरीवाल को बंगला संख्या 07, गोरखपुर (बाद में जिसे भूखण्ड संख्या 103 के रूप में फिर से क्रमांकित किया गया था) का पट्टा दिया गया था, जिसका कुल क्षेत्रफल

अप्रमाणित

66,795 वर्ग फुट था। उपरोक्त पट्टा विलेखों के नियमों और शर्तों के अनुसार, पट्टेदार श्री मदन लाल टेकरीवाल को सरकारी अधिकारियों को इसे किराए पर देने के लिए आवासीय भवन का निर्माण करना था। उपरोक्त पट्टा विलेख 30 वर्ष की अवधि के लिए था जिसे अधिकतम 90 दिनों की अवधि तक नवीनीकृत किया जा सकता था। पट्टे के नियमों और शर्तों में आगे यह उल्लेख किया गया था कि पट्टेदार भवन को विशेष रूप से राजपत्रित अधिकारी के निवास के लिए किराए पर देगा और उस पर उसका कब्जा नहीं होगा। 30.4.1975 को अवधि समाप्त होने के बाद, पट्टेदार - मदन लाल टेकरीवाल ने भी अपने पट्टे के नवीकरण के लिए जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष दिनांक 8.7.1975 को एक प्रार्थना पत्र दायर किया जो उनकी मृत्यु तक लंबित रहा। पट्टेदार मदन लाल टेकरीवाल की मृत्यु के बाद, याचिकाकर्तागण ने उनके उत्तराधिकारी होने के नाते स्वर्गीय मदन लाल टेकरीवाल के उत्तराधिकारी के रूप में अपना नाम बदलने के लिए 9.8.1977 को एक प्रार्थना पत्र दायर किया और यह भी प्रार्थना की कि पट्टे का नवीनीकरण उनके पक्ष में किया जाए। याचिकाकर्तागण के उपरोक्त प्रार्थना पत्र को जिला मजिस्ट्रेट द्वारा प्रभारी, नजूल नगर पालिका, गोरखपुर को आगे की कार्रवाई के लिए अग्रेषित किया गया था। प्रभारी, नजूल नगर पालिका, गोरखपुर ने दिनांक 25.10.1977 के पत्र द्वारा जिला मजिस्ट्रेट को सूचित किया कि विचाराधीन भूमि को फिर से सौंपने की कार्यवाही पट्टेदार मदन लाल टेकरीवाल के खिलाफ लंबित है, इसलिए, याचिकाकर्तागण के नामों को मदन लाल टेकरीवाल के वारिस के रूप में परिवर्तित नहीं किया जा सकता है और इसके लिए याचिकाकर्तागण को नोटिस जारी किया गया है। अत नवीकरण का प्रश्न नहीं उठता। लेकिन बाद में, रिकॉर्ड पर कोई आदेश नहीं है कि जिला मजिस्ट्रेट द्वारा याचिकाकर्तागण के दिनांक 7.10.1977 के प्रार्थना पत्र पर कोई आदेश पारित किया गया था। जिला मजिस्ट्रेट ने विवादित भूमि के एक हिस्से पर निर्मित भवन को 27.7.1982 को 1972 के अधिनियम संख्या 13 के तहत प्रत्यर्थी संख्या 4 को इस शर्त के साथ आवंटित किया कि प्रत्यर्थी संख्या 4 पट्टेदार - बनवारी लाल (याचिकाकर्ता संख्या 2) को किराए का भुगतान करेगा। यहां यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि पूर्वोक्त आवंटन के समय, प्रत्यर्थी संख्या 4 एम.एल.ए. इसके बाद, याचिकाकर्तागण द्वारा प्रस्तुत दो नवीकरण आवेदनों को दिनांक 9.6.1985 और 7.7.1985 के आदेशों द्वारा इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि याचिकाकर्तागण ने बिना अनुमति के निर्माण करके पट्टे के नियमों और शर्तों का उल्लंघन किया था और इन दो आदेशों द्वारा यह भी निर्देश दिया गया था कि याचिकाकर्तागण को 30 दिनों की अवधि के भीतर अवैध निर्माणों को हटा देना चाहिए। यदि वे निर्माण को हटाने में विफल रहे, तो उन्हें विवादित भूमि से बेदखल कर दिया जाएगा, जिसमें इसके ऊपर स्थित भवन भी शामिल है। इसके बाद, वर्ष 1989 में, याचिकाकर्तागण के खिलाफ सार्वजनिक परिसर अधिनियम के तहत कार्यवाही भी शुरू की गई थी, जो विवादित भूमि से बेदखल करने के लिए लंबित थी। तत्पश्चात्, राज्य सरकार ने दिनांक 1-12-1998 को शासनादेश जारी किया।

अनुवादित

दिनांक 1-12-1998 के सरकारी आदेश के पैरा 10 के अनुसार, पूर्व पट्टाधारकों (पूर्व पट्टा धारक) को भी नोटिस प्राप्त होने की तारीख से तीन माह के भीतर फ्रीहोल्ड के लिए प्रार्थना पत्र करने का अधिकार दिया गया था और यदि वे नजूल भूखंड को फ्रीहोल्ड करने में विफल रहते हैं, तो नजूल भूमि पर भवन में रहने वाले किराया नियंत्रण किरायेदारों को फ्रीहोल्ड के लिए प्रार्थना पत्र करने का अधिकार मिलेगा। उपरोक्त सरकारी आदेश के अनुसरण में, याचिकाकर्तागण ने दो प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किए थे, एक 15,800 वर्ग फुट क्षेत्र वाली भूमि के वाणिज्यिक हिस्से के लिए और दूसरा 50,995 वर्ग फुट क्षेत्र वाली भूमि के आवासीय हिस्से के लिए आवश्यक जमा के ट्रेजरी चालान के साथ। राज्य ने 15,800 वर्ग फुट क्षेत्रफल वाले भूखण्ड संख्या 103 के वाणिज्यिक हिस्से के संबंध में याचिकाकर्तागण के पक्ष में दिनांक 20.3.1999 को फ्रीहोल्ड सेल डीड निष्पादित की है, लेकिन नजूल भूखण्ड संख्या 103 के आवासीय हिस्से को फ्रीहोल्ड करने के लिए याचिकाकर्तागण के दिनांक 27.1.1999 के प्रार्थना पत्र पर कोई कार्रवाई नहीं की गई। लेकिन जिला मजिस्ट्रेट, गोरखपुर ने प्रत्यर्थी संख्या 4 को 24.7.2000 को आक्षेपित नोटिस/पत्र जारी किया था, जिसमें भूखण्ड संख्या 103 में 43,000 वर्ग फुट के क्षेत्र के संबंध में उसके पक्ष में फ्रीहोल्ड डीड के निष्पादन के लिए आवश्यक राशि जमा करने के लिए कहा गया था, जो उपरोक्त भूमि में आवासीय हिस्सा था। वर्तमान रिट याचिका में इस मांग नोटिस को चुनौती दी गई थी, लेकिन वर्तमान रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान, प्रत्यर्थी संख्या 4 से आवश्यक जमा लेने के बाद दिनांक 26.7.2000 को विक्रय विलेख/फ्रीहोल्ड डीड भी निष्पादित किया गया था। इसलिए, याचिकाकर्तागण ने संशोधन के माध्यम से, भूखण्ड संख्या 103 में 43,000 वर्ग फुट की भूमि के संबंध में दिनांक 26.7.2000 के बिक्री विलेख/फ्रीहोल्ड डीड को रद्द करने की भी प्रार्थना की है।

याचिकाकर्तागण ने तर्क दिया है कि 1.12.1998 के सरकारी आदेश ने स्पष्ट रूप से पट्टाधारक को अधिकार प्रदान किया है, जिसका पट्टा मांग नोटिस प्राप्त करने की तारीख से तीन महीने के भीतर प्रार्थना पत्र करने और उनके पक्ष में फ्रीहोल्ड डीड निष्पादित करने का अधिकार प्रदान करता है और उसके किरायेदार (प्रत्यर्थी संख्या 4) को तभी अधिकार मिलेगा जब याचिकाकर्ता अपने पक्ष में फ्रीहोल्ड डीड निष्पादित करने में विफल रहे, लेकिन प्रत्यर्थी को अवैध रूप से जारी किया गया मांग नोटिस संख्या 4 जो याचिकाकर्तागण का किरायेदार था और उसके बाद आक्षेपित बिक्री विलेख भी उसके पक्ष में निष्पादित किया गया था। याचिकाकर्तागण द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया है कि प्रत्यर्थी संख्या 4 का अधिकार याचिकाकर्तागण के बाद आता है, न कि याचिकाकर्तागण की वरीयता में। चूंकि प्रत्यर्थी संख्या 4 याचिकाकर्तागण के पूर्वज द्वारा निर्मित भवन में किरायेदार है और वह उन्हें किराए का भुगतान कर रहा था, इसलिए, प्रत्यर्थी संख्या 4 के पक्ष में निष्पादित आक्षेपित मांग नोटिस के साथ-साथ आक्षेपित बिक्री विलेख/फ्रीहोल्ड डीड बिल्कुल अवैध हैं। याचिकाकर्तागण के अधिवक्ता ने आगे प्रश्न संख्या 11 और 1.12.1998 के सरकारी आदेश के जवाब पर भरोसा किया, जिसमें विशेष रूप

अनुवादित

से प्रावधान है कि यदि नजूल भूमि पर इमारत में किराया नियंत्रण किरायेदार है तो पूर्व पट्टा धारक 90 दिनों के भीतर अपने पक्ष में फ्रीहोल्ड डीड निष्पादित करने का हकदार है और मामले में, वह विफल रहता है तभी किरायेदार को अपने पक्ष में फ्रीहोल्ड डीड निष्पादित करने का अधिकार मिलेगा। याचिकाकर्तागण के अधिवक्ता द्वारा आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि आक्षेपित डिमांड नोटिस के साथ-साथ आक्षेपित बिक्री विलेख/फ्रीहोल्ड डीड को प्रत्यर्थी संख्या 4 के पक्ष में बाहरी प्रतिफल के लिए निष्पादित किया गया था क्योंकि प्रत्यर्थी संख्या 4 उस समय कैबिनेट मंत्री थे और खुद नजूल समिति का हिस्सा थे जिसने वर्ष 1998 में नजूल नीति तैयार की थी। अपने तर्क के समर्थन में, याचिकाकर्तागण के अधिवक्ता ने न्यायालय के समक्ष मंत्रिपरिषद की उप-समिति के दिनांक 16.10.1998 के प्रस्ताव की एक प्रति भी रखी, जिसने नजूल नीति तैयार की जिसमें प्रत्यर्थी संख्या 4 को कैबिनेट मंत्री होने के नाते भी एक सदस्य के रूप में दिखाया गया था। याचिकाकर्तागण के अधिवक्ता ने प्रत्यर्थी संख्या 4 के दिनांक 30.1.1999 के फ्रीहोल्ड प्रार्थना पत्र की प्रति भी न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की। यह प्रार्थना पत्र प्रत्यर्थी संख्या 4 द्वारा किराया नियंत्रण किरायेदार की क्षमता में प्रस्तुत किया गया था और किसी स्वतंत्र क्षमता में नहीं।

प्रत्यर्थी संख्या 4 के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता का पट्टा 30.4.1975 को समाप्त हो गया था और उनके नवीकरण प्रार्थना पत्र को भी वर्ष 1985 में खारिज कर दिया गया था और इस अस्वीकृति आदेश को याचिकाकर्तागण द्वारा चुनौती नहीं दी गई थी, इसलिए, अंतिम हो गया और भूमि पूरी तरह से राज्य में निहित हो गई। इसलिए, याचिकाकर्तागण को विवादित भूमि के बिक्री विलेख/फ्रीहोल्ड डीड को अपने पक्ष में निष्पादित करने का कोई अधिकार नहीं है क्योंकि उसे दिनांक 1.12.1998 के सरकारी आदेश के अनुसार पूर्व पट्टा धारका नहीं माना जा सकता है। प्रत्यर्थी संख्या 4 के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता उत्तर प्रदेश सार्वजनिक परिसर अधिनियम की धारा 2 (जी) के अनुसार अनधिकृत कब्जेदार हैं क्योंकि उनका नवीकरण प्रार्थना पत्र पहले ही खारिज कर दिया गया था, इसलिए, अनधिकृत कब्जेदार होने के कारण, उन्हें विवादित नजूल भूमि के संबंध में उनके पक्ष में फ्रीहोल्ड डीड निष्पादित करने का कोई अधिकार नहीं दिया जा सकता है। प्रत्यर्थी संख्या 4 के अधिवक्ता द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया था कि याचिकाकर्तागण के साथ-साथ उनके पूर्वजों को विवादित भूमि में अवैध निर्माण करने के लिए नोटिस जारी किया गया था, इसलिए, पट्टे के नियमों और शर्तों का उल्लंघन करने के नाते, इक्विटी उनके पक्ष में नहीं है। पट्टे की अवधि समाप्त होने के बाद, राज्य ने याचिकाकर्तागण के नवीकरण प्रार्थना पत्र को खारिज कर दिया है, इसलिए, पूरे अधिकार राज्य को वापस भेज दिए गए हैं और नजूल भूमि के मालिक होने के नाते, राज्य सरकार ने प्रत्यर्थी संख्या 4 के पक्ष में फ्रीहोल्ड डीड निष्पादित किया है।

विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने तर्क दिया कि याचिकाकर्तागण ने वर्तमान याचिका दायर करते समय, उन्होंने विवादित भूमि के लिए

अनुवादित

अपने नवीकरण प्रार्थना पत्र की अस्वीकृति के बारे में भौतिक तथ्य को छिपाया था। यह भी प्रस्तुत किया गया था कि 1.12.1998 के सरकारी आदेश के प्रश्न संख्या 11 में याचिकाकर्तागण को 1976 में पट्टे के नियमों और शर्तों का उल्लंघन करते हुए निर्माण करने के लिए नजूल भूखंड से बेदखली के लिए नोटिस देकर अवसर दिया गया था। अत दिनांक 1-12-1998 के सरकारी आदेश के अनुसार नए नोटिस की आवश्यकता नहीं है। स्थायी अधिवक्ता द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया था कि दिनांक 9.6.1985 और 7.7.1985 के नोटिस भी याचिकाकर्तागण को नजूल भूमि के पट्टे के लिए उनके नवीकरण प्रार्थना पत्र को खारिज करने और उनकी बेदखली के लिए दिए गए थे, लेकिन याचिकाकर्ता इसका पालन करने में विफल रहे थे, इसलिए, याचिकाकर्ता अनधिकृत कब्जेदार हैं। स्थायी अधिवक्ता द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया है कि रिट क्षेत्राधिकार में बिक्री विलेख को रद्द नहीं किया जा सकता है और उपाय सिविल न्यायालय के समक्ष है, इसलिए, इस आधार पर ही, रिट याचिका खारिज करने योग्य है। स्थायी अधिवक्ता द्वारा आगे यह प्रस्तुत किया गया था कि याचिकाकर्ता विवादित भूमि पर न तो कानूनी रूप से और न ही वास्तविक कब्जे में हैं और नवीकरण प्रार्थना पत्र की अस्वीकृति के बाद, भूमि पूरी तरह से राज्य में निहित है और उसी का नोटिस राज्य द्वारा याचिकाकर्तागण को वर्ष 1985 में दिया गया था और दिनांक 19.6.1985 के नोटिस के बाद, राज्य द्वारा कानूनी रूप से कब्जा कर लिया गया था, इसलिए, याचिकाकर्तागण को कब्जे में नहीं माना जा सकता है। इसलिए, सरकारी आदेश दिनांक 1.12.1998 के प्रश्न संख्या 11 के मद्देनजर, याचिकाकर्ता फ्रीहोल्ड डीड को निष्पादित करने के हकदार नहीं हैं क्योंकि वे कब्जे में नहीं थे और प्रत्यर्थी संख्या 4, वैधानिक किरायेदार होने के नाते, अपने पक्ष में फ्रीहोल्ड डीड निष्पादित करने का अधिकार है। इसलिए, प्रत्यर्थी संख्या 4 के पक्ष में आक्षेपित डिमांड नोटिस के साथ-साथ बिक्री विलेख बिल्कुल सही और उचित हैं।

प्रत्यर्थी संख्या 4 के तर्क के जवाब में, याचिकाकर्तागण के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि प्रत्यर्थी संख्या 4 स्वयं किरायेदार या अनधिकृत रहने वालों के अधिकार सहित नीति के सह-लेखक थे, इसलिए, आक्षेपित आदेश और कुछ नहीं बल्कि 1.12.1998 के सरकारी आदेश की आड़ में प्रत्यर्थी संख्या 4 को अनुचित लाभ देने के लिए रंगीन अभ्यास हैं। यह भी प्रस्तुत किया गया था कि प्रत्यर्थी संख्या 4, जिसे याचिकाकर्तागण से किरायेदार के रूप में अधिकार मिला है, को याचिकाकर्तागण को वंचित करते हुए बिक्री विलेख निष्पादित करने का अधिकार नहीं दिया जा सकता है, जो कि उसके मकान मालिक हैं। इस तथ्य पर विवाद नहीं किया जा सकता है कि भूखण्ड संख्या 103 की पूरी जमीन के लिए पूरा पट्टा किराया याचिकाकर्तागण द्वारा 1.12.1998 के सरकारी आदेश के अनुसार फ्रीहोल्ड के लिए प्रार्थना पत्र दाखिल करने की तारीख तक जमा किया गया था। लेकिन राज्य सरकार ने केवल भूखण्ड संख्या 103 के वाणिज्यिक हिस्से के लिए याचिकाकर्तागण के पक्ष में फ्रीहोल्ड डीड निष्पादित की और भूखण्ड संख्या 103 के शेष आवासीय हिस्से का फ्रीहोल्ड डीड मनमाना था और प्रत्यर्थी संख्या

अनुवादित

4 के पक्ष में अवैध रूप से निष्पादित किया गया था और यह देखते हुए कि प्रत्यर्थी संख्या 4 के पक्ष में आक्षेपित डिमांड नोटिस जारी करने का आधार क्या था, यह दर्शाता है कि भूखण्ड संख्या 103 के आवासीय हिस्से के बारे में फ्रीहोल्ड डीड को 103 में निष्पादित किया गया था। प्रत्यर्थी संख्या 4 का पक्ष केवल इस आधार पर कि याचिकाकर्तागण के किरायेदार, यानी प्रत्यर्थी संख्या 4 को बेदखल नहीं किया जा सकता क्योंकि किराया नियंत्रण कार्यवाही में उसके पक्ष में स्थगन आदेश है। याचिकाकर्तागण के अधिवक्ता द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया था कि वर्ष 1985 में याचिकाकर्तागण को दिया गया नोटिस सरकारी आदेश दिनांक 1.12.1998 के पैरा 10 के संदर्भ में संदर्भित नहीं किया जा सकता है। अन्यथा भी, उपरोक्त नोटिस के बावजूद, भूखण्ड संख्या 103 की भूमि का वाणिज्यिक हिस्सा पहले से ही याचिकाकर्तागण के पक्ष में फ्रीहोल्ड था। याचिकाकर्तागण के अधिवक्ता द्वारा अपने जवाब में अंतिम रूप से यह प्रस्तुत किया गया था कि दिनांक 1.12.1998 के सरकारी आदेश में पूर्व पट्टाधारक (पूर्व पट्टा धारक) के बीच कोई अंतर नहीं किया गया है, जिसका नवीकरण प्रार्थना पत्र लंबित है और जिसका नवीकरण प्रार्थना पत्र खारिज कर दिया गया है।

पक्षों के वकीलों की प्रस्तुतियों के साथ-साथ अभिलेखों के अवलोकन पर विचार करने के बाद, निर्धारण के लिए एकमात्र प्रश्न उठता है कि क्या याचिकाकर्ता पूर्व पट्टा धारक की परिभाषा के भीतर आते हैं, जैसा कि सरकारी आदेश दिनांक 1.12.1998 के पैराग्राफ 10 में उल्लिखित है, इस तथ्य के बावजूद कि याचिकाकर्तागण के साथ-साथ उनके पूर्वज मदन लाल टेकरीवाल के नवीकरण प्रार्थना पत्र को खारिज कर दिया गया था। इस प्रश्न के निर्धारण के लिए, सरकारी आदेश दिनांक 1.12.1998 के पैराग्राफ 10 को नीचे उद्धृत किया जा रहा है: -

> **"10.** पट्टागत नजूल भूमि पर स्थित भवन के रेन्ट कन्ट्रोल के किराएदारों के पक्ष में नजूल भूमि फ्री होल्ड किए जाने हेतु निम्नानुसार व्यवस्था की गई हैः-
>
> यदि पट्टे की अवधि समाप्त हो गई हो अथवा किसी उल्लघंन के कारण राज्य सरकार को उक्त भूमि पर पुनः प्रवेश का अधिकार प्राप्त हो गया है तो फ्री होल्ड के लिए पूर्व पट्टाधारकों को अनिवार्य रूप से फ्री होल्ड कराने हेतु 3 माह की समय सीमा निर्धारित करते हुए समयबद्ध नोटिस दिया जाएगा (उसके द्वारा प्रार्थना पत्र किए जाने के समय जो भी सर्किल रेट लागू होगा, उसी के आधार पर फ्री होल्ड मूल्य आंकलित होगा। उदाहरणार्थ यदि इस शासनादेश से 2 माह के भीतर प्रार्थना पत्र करता है तो 30.11.91 के सर्किल रेट लागू होगें)। यदि वह उक्त निर्धारित अवधि में फ्री होल्ड नहीं कराता है तो पट्टा विखंडित करने की कार्यवाही नियमानुसार पूर्ण कर रेन्ट कन्ट्रोल के किरायेदार के पक्ष में फ्री होल्ड की कार्यवाही की जायेगी और वह किरायेदार सम्बन्धित भवन का डिप्रीसिएटेड मूल्य भूस्वामी/पट्टेदार को

अनुवादित

उपलब्ध करायेगा। किरायेदार के पक्ष में अद्यतन सर्किल रेट पर फ्री होल्ड की कार्यवाही की जायेगी जहाँ एक ही पट्टागत भूखण्ड पर एक से अधिक रेण्ट कन्ट्रोल एक्ट के अन्तर्गत आवंटी अध्यासित है वहाँ उन सभी आवंटियों के द्वारा दिये जा रहे किराये के अनुपात में उन सभी की परस्पर सहमति से सम्बन्धित भूखण्ड के उनके बीच विभाजन सम्बन्धी शपथ पत्र प्राप्त कर ही फ्री होल्ड की कार्यवाही की जायेगी।

इस सम्बन्ध में मुझे यह भी कहने का निर्देश हुआ है कि उपरोक्त संशोधन एवं परिवर्धन को तात्कालिक प्रभाव से लागू करते हुए कार्यवाही की जाय तथा नीति का विस्तृत प्रचार एवं प्रसार किया जाये जिससे इसमें निहित प्राविधान सम्बन्धित पक्ष भली-भांति समझकर इसका लाभ उठा सकें।

फ्री होल्ड की समस्त कार्यवाही मा० उच्च न्यायालय में दायर रिट याचिका संख्याः32605/91 सत्य नारायण कपूर बनाम राज्य सरकार आदि में पारित निर्णय दिनांक 15.10.97 के विरूद्ध उ०प्र० सरकार द्वारा मा० उच्चतम न्यायालय में दायर विशेष अनुज्ञा याचिका संख्याः1557-59/98 में पारित होने वाले अन्तिम निर्णय के अधीन होगी।

ये आदेश वित्त विभाग के अशासकीय संख्याः ई-6-2286/दस-98 दिनांक 28.11.98 में प्राप्त उनकी सहमति से जारी किये जा रहे है।

भवदीय,

अतुल कुमार गुप्ता
सचिव"

उपर्युक्त प्रश्न के निर्धारण के लिए, प्रश्न संख्या 11 और सरकारी आदेश दिनांक 1.12.1998 में उसके उत्तर पर भी विचार किया जाना आवश्यक है और इसे नीचे उद्धृत किया गया है: -

"11. जिज्ञासाः मेरे पास पट्टा था परन्तु पट्टावधि समाप्त होने के बाद अब मेरा कब्जा नहीं रहा, किसी अन्य का कब्जा है। क्या मै फ्रीहोल्ड करा सकता हूँ?

समाधानः जी नहीं। पट्टावधि समाप्त होने पर फ्रीहोल्ड की सुविधा तभी प्राप्त होगी जब आपका कब्जा भी हो। परन्तु यदि भूमि पर बने भवन में रेण्ट कण्ट्रोल का किरायेदार है तो आप 90 दिन में फ्रीहोल्ड करा लें अन्यथा यह अवसर किरायेदार को मिल जायेगा। "

सरकारी आदेश दिनांक 1.12.1998 के प्रासंगिक भाग के अवलोकन से, जिसे ऊपर उद्धृत किया गया है, यह स्पष्ट है कि पूर्व पट्टा धारक के बीच दिनांक 1.12.1998 के सरकारी आदेश में कोई अंतर नहीं है, जिसका नवीकरण प्रार्थना पत्र अस्वीकार कर दिया गया था और जिसका नवीकरण प्रार्थना पत्र लंबित है। विभिन्न निर्णयों में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने टिप्पणी की है कि न्यायालय अधिनियमन/विधान में कोई शब्द जोड़ या प्रतिस्थापित या अस्वीकार नहीं कर सकते हैं। **मौलवी हुसैन हाजी अब्राहम उमरजी बनाम गुजरात राज्य और अन्य बनाम गुजरात राज्य में। 2004 (6) एससीसी 672** में उच्चतम न्यायालय ने टिप्पणी की कि ऐसे अधिनियमन के निर्माण से बचना होगा जिसके लिए इसके समर्थन, शब्दों को जोड़ने या प्रतिस्थापित करने

अनुवादित

की आवश्यकता होती है या जिसके परिणामस्वरूप शब्दों को अर्थहीन के रूप में अस्वीकार कर दिया जाता है। यह देखा गया कि कानून में यह अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांत था कि न्यायालय वैधानिक प्रावधान में कुछ भी नहीं पढ़ सकती है जो सादा और असंदिग्ध है। पूर्वोक्त निर्णय के पैराग्राफ 16 और 17 में सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियों को नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

> **"16. कानून में यह अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांत है कि न्यायालय एक वैधानिक प्रावधान में कुछ भी नहीं पढ़ सकता है जो सादा और असंदिग्ध है।** एक क़ानून विधायिका का एक आदेश है। एक क़ानून में नियोजित भाषा विधायी इरादे का निर्धारक कारक है।
>
> **17.** शब्द और वाक्यांश प्रतीक हैं जो संदर्भों के मानसिक संदर्भों को उत्तेजित करते हैं। किसी संविधि की व्याख्या करने का उद्देश्य इसे अधिनियमित करने वाले विधानमंडल के इरादे का पता लगाना है। (देखें इंस्टीट्यूट ऑफ चार्टर्ड अकाउंटेंट्स ऑफ इंडिया बनाम प्राइस वाटरहाउस)। विधायिका का इरादा मुख्य रूप से इस्तेमाल की जाने वाली भाषा से इकट्ठा किया जाना है, जिसका अर्थ है कि जो कहा गया है और जो नहीं कहा गया है उस पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। परिणामस्वरूप, एक निर्माण जिसके लिए शब्दों के समर्थन, जोड़ या प्रतिस्थापन की आवश्यकता होती है या जिसके परिणामस्वरूप शब्दों को अर्थहीन के रूप में अस्वीकार कर दिया जाता है, से बचा जाना चाहिए। जैसा कि क्रॉफर्ड वी। स्पूनर, अदालतें विधायिका के किसी अधिनियम के दोषपूर्ण वाक्यांशों की सहायता नहीं कर सकती हैं, हम जोड़ या सुधार नहीं कर सकते हैं, और निर्माण द्वारा उन कमियों को पूरा नहीं कर सकते हैं जो वहां बची हैं। (देखें गुजरात राज्य बनाम दिलीपभाई, नाथजीभाई पटेल)। किसी अधिनियम में शब्दों को पढ़ना निर्माण के सभी नियमों के विपरीत है जब तक कि ऐसा करना बिल्कुल आवश्यक न हो। व्याख्या के नियम अदालतों को ऐसा करने की अनुमति नहीं देते हैं, जब तक कि प्रावधान जैसा कि यह खड़ा है वह अर्थहीन या संदिग्ध अर्थ का न हो। न्यायालयों को संसद के अधिनियम में शब्दों

अनुवादित

को पढ़ने का अधिकार नहीं है जब तक कि इसके लिए स्पष्ट कारण अधिनियम के चार कोनों के भीतर ही नहीं पाया जाना है। (प्रति लॉर्ड लोरबर्न एलसी इन विकर्स संस एंड मैक्सिम लिमिटेड बनाम इवांस जुम्मा मस्जिद बनाम कोडिमनिंद्र देविया में उद्धृत)।

(प्रभाव वर्द्धित)

इससे पहले भी, **भारत संघ और अन्य बनाम देवकी नंदन अग्रवाल 1992 पूरक (1) 323** में सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार अवलोकन किया है: -

"14. हम 1 नवंबर, 1986 से पहले लागू पैराग्राफ 2 में प्रावधानों को 1 नवंबर, 1986 के बाद की अवधि के लिए उसी पैराग्राफ में "पांच साल से अधिक" और "चार साल से अधिक" के रूप में पढ़ने में विद्वान न्यायाधीशों के तर्क को समझने के लिए नुकसान में हैं। **यह न्यायालय का कर्तव्य नहीं है कि वह कानून के दायरे को बढ़ाए या विधायिका के इरादे को बढ़ाए जब प्रावधान की भाषा स्पष्ट और स्पष्ट हो।** न्यायालय कानून को फिर से लिखना, पुनर्निर्मित या फिर से तैयार नहीं कर सकती है क्योंकि बहुत अच्छे कारण के लिए उसके पास कानून बनाने की कोई शक्ति नहीं है। कानून बनाने की शक्ति न्यायालयों को प्रदान नहीं की गई है। न्यायालय किसी कानून में ऐसे शब्द नहीं जोड़ सकती या उसमें ऐसे शब्द नहीं पढ़ सकती जो उसमें नहीं हैं। यह मानते हुए कि विधायिका द्वारा इस्तेमाल किए गए शब्दों में कोई दोष या चूक है, न्यायालय कमी को ठीक करने या पूरा करने के लिए अपनी सहायता के लिए नहीं जा सकती है। अदालतें तय करेंगी कि कानून क्या है और क्या नहीं होना चाहिए। न्यायालय निश्चित रूप से एक निर्माण को अपनाती है जो विधायिका के स्पष्ट इरादे को पूरा करेगी लेकिन खुद को कानून नहीं बना सकती है। लेकिन न्यायिक सक्रियता को शून्य विधायी निर्णय पर स्थापित करने के लिए लागू करना संवैधानिक सद्भाव और साधनों की सौहार्द के विध्वंसक है। पी.के. उन्नी बनाम निर्मला इंडस्ट्रीज, मांगीलाल बनाम सुगनचंद राठी, श्री राम राम नारायण मेधी बनाम बॉम्बे राज्य, हीरा देवी (श्रीमती) बनाम जिला बोर्ड, शाहजहांपुर, नलिंक्या बायसैक बनाम श्याम सुंदर हलदर, गुजरात स्टील ट्यूब्स लिमिटेड बनाम गुजरात स्टील ट्यूब्स मजदूर सभा, जी. नारायणस्वामी बनाम जी पनीरसेल्वम, एनएस वरदाचारी बनाम जी वसंत पाई, यूनियन ऑफ इंडिया बनाम संकल्प चंद हिमतलाल सेठ और सीएसटी बनाम औरैया चैंबर ऑफ कॉमर्स, इलाहाबाद। योजना को संशोधित करना और उसमें परिवर्तन करना और इसे अन्य लोगों पर लागू करना जो अन्यथा योजना के तहत

अनुवादित

हकदार नहीं हैं, भेदभाव से बचने के लिए अदालतों द्वारा कुछ बार अपनाई गई सकारात्मक कार्रवाई के सिद्धांत के तहत भी नहीं आएगा। अगर हम ऐसा कह सकते हैं, तो उच्च न्यायालय ने इस मामले में जो किया है वह विधायी शक्ति का स्पष्ट और नग्न हड़पना है।

(प्रभाव वर्द्धित)

प्रत्यर्थीगण द्वारा दिए गए सरकारी आदेश दिनांक 1.12.1998 के खंड 10 की व्याख्या को स्वीकार करना अधिनियमन में शब्दों को पढ़ने के समान होगा, अर्थात, पूर्व पट्टाधारकों को पूर्व पट्टाधारकों के रूप में पढ़ा जाएगा जिनका नवीकरण प्रार्थना पत्र अभी भी लंबित है और अस्वीकार नहीं किया गया है। हमें दिनांक 1-12-1998 के सरकारी आदेश में ऐसा कुछ नहीं मिला जो हमें अधिनियमन में ऐसे शब्दों को जोड़ने के लिए राजी कर सके। दिनांक 1.12.1998 के सरकारी आदेश के खंड 10 में कोई अस्पष्टता या अस्पष्टता नहीं है। इसलिए, दिनांक 1.12.1998 के सरकारी आदेश की व्याख्या करते समय, इस न्यायालय द्वारा पूर्व पट्टा धारक के बीच अंतर नहीं किया जा सकता है, जिसका नवीकरण प्रार्थना पत्र अस्वीकार कर दिया गया है और जिसका नवीकरण के लिए प्रार्थना पत्र सरकारी आदेश दिनांक 1.12.1998 में इस तरह के किसी भी अंतर के अभाव में लंबित है। यह सरकारी आदेश दिनांक 1.12.1998 के उपरोक्त उद्धृत प्रावधान से भी स्पष्ट है कि पूर्व पट्टा धारक (पूर्व पट्टा धारक) को फ्रीहोल्ड करने का पहला अधिकार होगा, इसलिए, वह जिला मजिस्ट्रेट से तीन महीने का नोटिस प्राप्त करने का हकदार है और यदि वह फ्रीहोल्ड की औपचारिकता पूरी करने में विफल रहता है, तो उसका किराया नियंत्रण किरायेदार अपने पक्ष में फ्रीहोल्ड डीड निष्पादित करने का हकदार होगा। वर्तमान मामले में, विवादित नजूल भूमि के फ्रीहोल्ड के लिए याचिकाकर्तागण के प्रार्थना पत्र के बावजूद, भूखण्ड संख्या 103 के आवासीय हिस्से के लिए डिमांड नोटिस उन्हें फ्रीहोल्ड डीड निष्पादित करने के लिए जारी नहीं किया गया था। दूसरी ओर, प्रत्यर्थी संख्या 4 जो किराया नियंत्रण किरायेदार था, उसे विवादित डिमांड नोटिस जारी करके विवाद में भूखंड के संबंध में फ्रीहोल्ड डीड निष्पादित करने का पहला अधिकार दिया गया था और उसके बाद वर्तमान याचिका के लंबित रहने के दौरान, जिला मजिस्ट्रेट, गोरखपुर द्वारा उसके पक्ष में आक्षेपित बिक्री विलेख निष्पादित किया गया था।

प्रत्यर्थी संख्या 4 के अधिवक्ता का तर्क यह है कि विवादित भूखंड के पट्टे की समाप्ति पर, यह पूरी तरह से राज्य में निहित है। इसलिए, राज्य सरकार 1.12.1998 के सरकारी आदेश की अनदेखी करते हुए प्रत्यर्थी संख्या 4 के पक्ष में फ्रीहोल्ड डीड निष्पादित करने के लिए अपनी शक्ति के भीतर अच्छी तरह से थी, इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि राज्य सरकार की कार्रवाई नजूल भूखण्ड के संबंध में सरकारी नीति के अनुसार होनी चाहिए, अर्थात, सरकारी आदेश दिनांक 1.12.1998। यह तथ्य निर्विवाद है कि प्रत्यर्थी संख्या 4 याचिकाकर्तागण का किरायेदार था, इसलिए, प्रत्यर्थी संख्या 4 के कब्जे को याचिकाकर्तागण का रचनात्मक कब्जा या याचिकाकर्तागण की ओर से कब्जा माना

अनुवादित

जाएगा। प्रत्यर्थी संख्या 4 को नजूल भूखण्ड के फ्रीहोल्ड के संबंध में याचिकाकर्तागण से बेहतर अधिकार नहीं मिल सकता है। एक ओर राज्य सरकार ने स्वयं भूखण्ड संख्या 103 में भूमि के हिस्से का फ्रीहोल्ड डीड/सेल डीड निष्पादित किया और अन्य हिस्से के संबंध में सरकारी आदेश दिनांक 1.12.1998 के विपरीत किराया नियंत्रण किरायेदार को डिमांड नोटिस जारी करके और उसके बाद भूखण्ड संख्या 103 के शेष भाग के लिए दिनांक 26.7.2000 को बिक्री विलेख निष्पादित किया जो विवादित है। यह तथ्य राज्य सरकार की मनमानी को भी दर्शाता है।

प्रत्यर्थी संख्या 4 के अधिवक्ता का तर्क भी एक भ्रम से ग्रस्त है और आत्म-पराजय है। सरकार की नीति के अंतर्गत फ्रीहोल्ड अधिकार केवल उन्हीं भूखंडों पर प्रदान किए जाते हैं जो पट्टे पर हैं और जो सरकार में निहित नहीं हैं। सरकार द्वारा ऐसे भूखंड में कोई फ्रीहोल्ड अधिकार प्रदान नहीं किया जा सकता है जो सभी ऋणभारों से मुक्त हो। इस प्रकार, भले ही प्रत्यर्थी संख्या 4 के तर्क को स्वीकार कर लिया जाए, उसके पक्ष में निष्पादित फ्रीहोल्ड डीड अवैध और कानून के विपरीत है।

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता का तर्क कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत याचिका सुनवाई योग्य नहीं है क्योंकि इसमें 26.7.2000 के बिक्री विलेख की वैधता का अधिनिर्णय शामिल है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत यह न्यायालय बिक्री विलेख को रद्द नहीं कर सकता है, यह भी स्वीकार्य नहीं है। बिक्री विलेख राज्य के अधिकारियों द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 4 के पक्ष में निष्पादित किया गया है और यह उसी जांच के अधीन है जैसा कि राज्य अधिकारियों का कोई अन्य कार्य होगा। राज्य की कार्रवाई की न्यायिक समीक्षा संविदात्मक मामलों में भी स्वीकार्य है। आम तौर पर, एक रिट न्यायालय अनुच्छेद 226 के तहत अपने विशेषाधिकार क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं करती है, ऐसे मामलों में, जहां निजी पार्टियों द्वारा निष्पादित बिक्री विलेखों की वैधता का संबंध है, उक्त बिक्री विलेख की वैधता को स्थगित करने के लिए मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य और साक्ष्य के मूल्यांकन की आवश्यकता होगी जिसके लिए रिट कार्यवाही उचित उपाय नहीं हो सकती है। लेकिन वर्तमान मामले में, बिक्री विलेख, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, राज्य द्वारा निष्पादित किया गया है और उक्त बिक्री विलेख को निष्पादित करने में राज्य की कार्रवाई को अधिकार क्षेत्र के आधार पर और गैर-मनमानेपन और गैर-भेदभाव के सिद्धांत के आधार पर आंका जाना है। वर्तमान मामले में बिक्री विलेख की वैधता के बारे में मुद्दा, निजी कानून का कोई सवाल नहीं उठाता है, लेकिन सार्वजनिक कानून के सवाल उठाता है। तथ्य के कोई विवादित प्रश्न शामिल नहीं हैं और उक्त बिक्री विलेख की वैधता पर निर्णय लेने के लिए मामले में बिक्री विलेख के निष्पादन के संबंध में किसी साक्ष्य की आवश्यकता नहीं है। बिक्री विलेख की वैधता प्रत्यर्थी संख्या 4 के पक्ष में जारी डिमांड नोटिस की वैधता और इस न्यायालय के निर्णय पर निर्भर करती है जो उस भूमि में याचिकाकर्तागण के फ्रीहोल्ड अधिकारों के बारे में है जो राज्य के खिलाफ दावा किया जाता है। यह स्थापित कानून है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत

अनुवादित

उच्च न्यायालय की शक्ति पूर्ण शक्तियां हैं और किसी भी कानूनी बाधाओं से घातक नहीं हैं। **(कॉमन कॉज, ए रजिस्टर्ड सोसाइटी बनाम यूनियन ऑफ इंडिया एंड अन्य 1999 (6) एससीसी 667** का संदर्भ दिया जा सकता है। अनुच्छेद 226 के तहत शक्ति यह सुनिश्चित करने के लिए है कि देश के कानून का पालन किया जाता है और विभिन्न सार्वजनिक प्राधिकरणों और न्यायाधिकरणों को उनके संबंधित अधिकार क्षेत्र की सीमाओं के भीतर रखा जाता है। अनुच्छेद 226 के तहत प्रदान किया गया उपाय राज्य या वैधानिक प्राधिकरण द्वारा नागरिक के अधिकारों के उल्लंघन के खिलाफ एक उपाय है और यह सार्वजनिक कानून में एक उपाय है। **(मोहम्मद हनीफ बनाम असम राज्य 1969 (2) एससीसी 782** का संदर्भ दिया जा सकता है। वर्तमान मामले में, याचिकाकर्तागण ने राज्य के खिलाफ अपने अधिकारों को लागू करने और राज्य के अधिकारियों की शक्तियों और अधिकार क्षेत्र से संबंधित मुद्दों को उठाने के लिए न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है। उपरोक्त के मद्देनजर, याचिका सुनवाई योग्य है और उस आधार पर याचिकाकर्तागण के अधिवक्ता के तर्क को भी खारिज कर दिया गया है। उपरोक्त के मद्देनजर, जिला मजिस्ट्रेट, गोरखपुर द्वारा निष्पादित मांग नोटिस दिनांक 24.7.2000 के साथ-साथ जिला मजिस्ट्रेट, गोरखपुर द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 4 के पक्ष में निष्पादित बिक्री विलेख दिनांक 26.7.2000 को रद्द कर दिया जाता है और प्रत्यर्थी संख्या 2 को भूखण्ड संख्या 103 बंगला संख्या 07 के आवासीय हिस्से के लिए याचिकाकर्तागण के प्रार्थना पत्र पर विचार करने का निर्देश दिया जाता है। गोरखपुर का क्षेत्रफल 50,995 वर्ग फुट है और याचिकाकर्तागण को उपरोक्त नजूल भूखंड के लिए बिक्री विलेख निष्पादित करने के लिए औपचारिकताओं को पूरा करने के लिए डिमांड नोटिस जारी करना और उसके बाद उपरोक्त डिमांड नोटिस की औपचारिकताओं को पूरा करने के बाद, उपरोक्त नजूल भूखण्ड की बिक्री विलेख याचिकाकर्तागण के पक्ष में निष्पादित किया जाना चाहिए।

उपरोक्त निर्देशों के साथ, रिट याचिका को **निस्तारित** किया जाता है।

(2023) 6 ILRA 476

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 09.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी

माननीय न्यायमूर्ति अनीश कुमार गुप्ता

रिट-सी संख्या 36038 वर्ष 2022

राजेंद्र बिहारी लाल .याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ और अन्य प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री अनुज श्रीवास्तव, श्री अमित नेगी, श्री गोपाल स्वरूप चतुर्वेदी (वरिष्ठ अधिवक्ता) **प्रतिवादियों के अधिवक्ता:** ए.एस.जी.आई., श्री गोपाल वर्मा

सिविल कानून - पासपोर्ट अधिनियम, 1967 - धारा 6 - पासपोर्ट देने से मना करना - आपराधिक मामला लंबित पासपोर्ट अधिनियम, 1967 की धारा 6 की उपधारा (2) के खंड (ई), (एफ), और (जी) के विधायी अधिदेश के अनुसार, पासपोर्ट प्राधिकरण खंड (ए) से (आई)

अप्रमाणित

में उल्लिखित आधार पर किसी विदेशी देश की यात्रा के लिए पासपोर्ट या यात्रा दस्तावेज जारी करने से मना कर देगा। धारा 6 की उपधारा (2) के आरंभिक शब्द हैं कि "इस अधिनियम के अन्य प्रावधानों के अधीन।" इसलिए, यदि आवेदक संबंधित न्यायालय से अनुमति प्राप्त करता है, जहां आपराधिक मामला लंबित है, तो पासपोर्ट प्राधिकरण द्वारा पासपोर्ट या यात्रा दस्तावेज जारी किया जा सकता है, सरकार द्वारा जारी अधिसूचना संख्या जीएसआर 570 (ई) - I, दिनांक 25.08.1993 के अनुसार। आवेदक के लिए उस न्यायालय से अनुमति प्राप्त करना अनिवार्य है, जहां आवेदक मुकदमे का सामना कर रहा है। (पैरा 11)

खारिज। (ई-5)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. वंगाला कस्तूरी रंगाचार्युलु बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो, आपराधिक अपील संख्या 1342/2017, दिनांक 27.09.2021

2. अब्बास हातिमभाई कागलवाला बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य, रिट याचिका संख्या 384/2019, दिनांक 23.08.2022

(माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी और माननीय न्यायमूर्ति अनीश कुमार गुप्ता द्वारा वितरित)

1. याचिकाकर्ता के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री गोपाल स्वरूप चतुर्वेदी को विद्वान अधिवक्ता श्री अमित नेगी की सहायता से, और प्रत्यर्थी के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री एस. पी. सिंह, अपर महा सॉलिसिटर को विद्वान अधिवक्ता श्री गोपाल वर्मा की सहायता से सुना।

2. वर्तमान मामले के संक्षेप में बताए गए तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता ने अपने पासपोर्ट के नवीनीकरण के लिए एक प्रार्थना पत्र दायर किया है। चूंकि उनके नवीनीकरण प्रार्थना पत्र पर कोई आदेश पारित नहीं किया गया था, इसलिए, याचिकाकर्ता ने रिट - सी नंबर - 22637/2020 (राजेंद्र बिहारी लाल बनाम भारत संघ और अन्य) दायर की, जिसे संबंधित पासपोर्ट प्राधिकारी को आदेश पारित करने या यदि आदेश पहले ही पारित किया जा चुका है तो उसे सूचित करने के लिए निर्देशित करते हुए दिनांक 16.12.2020 के आदेश द्वारा निपटाया गया । इसके बाद, प्रत्यर्थी संख्या 2 ने दिनांक 06.06.2022 और 29.06.2022 को आक्षेपित आदेश पारित किया। दिनांक 29.06.2022 के आक्षेपित आदेश द्वारा, प्रत्यर्थी संख्या 2 ने याचिकाकर्ता के खिलाफ दर्ज कई आपराधिक मामलों के कारण प्रतिकूल पुलिस रिपोर्ट के आधार पर याचिकाकर्ता को पासपोर्ट जारी करने से इनकार कर दिया है, लेकिन संबंधित न्यायालय को पासपोर्ट जारी करने के लिए संबंधित न्यायालय की "अनापत्ति" प्रदान दाखिल की स्वतंत्रता दी है।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा हमारे समक्ष यह भी स्वीकार किया गया है कि वर्तमान रिट याचिका दायर करने के बाद याचिकाकर्ता के खिलाफ सात और आपराधिक मामले दर्ज किए गए हैं।

4. निर्देश पर विद्वान अपर महा सॉलिसिटर ने कहा कि वर्तमान में याचिकाकर्ता के खिलाफ 18 आपराधिक मामले दर्ज हैं।

अनुवादित

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने 27.09.2021 को विनिश्चित आपराधिक अपील संख्या 1342/2017 (वंगला कस्तूरी रंगाचार्युलु बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर और 23.08.2022 को विनिश्चित रिट याचिका संख्या 384/2019 (अब्बास हातिमभाई कागलवाला बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य) में बॉम्बे हाई कोर्ट के फैसले पर काफी विश्वास जताया है।

6. हमने 27.09.2021 को विनिश्चित आपराधिक अपील संख्या 1342/2017 (वंगला कस्तूरी रंगाचार्युलु बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का ध्यानपूर्वक अवलोकन किया है और हम पाते हैं कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता को एक आपराधिक मामले में दोषसिद्ध किया था और माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष उसकी अपील लंबित थी जिसमें पासपोर्ट जारी करने के लिए अनुमति/दिशा-निर्देश मांगने के लिए एक अंतर्वर्ती प्रार्थना पत्र संख्या 52346/2021 दाखिल किया गया था।

7. वंगाला कस्तूरी रंगाचार्युलु (उपर्युक्त) में एक अंतर्वर्ती प्रार्थना पत्र संख्या 52346 / 2021 पर पारित माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है: "

आपराधिक अपील संख्या 1343/2017 के अंतर्गत अंतर्वर्ती आदेश संख्या 52346/2021 में अधिवक्ता को सुनने के बाद न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश दिया

आवेदक को भारतीय दंड संहिता की धारा 120 बी, 420, 468, 471, 477 ए के साथ पठित भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13 (2) सहपठित धारा 13 (1) के तहत दंडनीय अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया गया था। उसके द्वारा दायर अपील को उच्च न्यायालय ने खारिज कर दिया था। हालाँकि, दंड की अवधि घटाकर एक वर्ष कर दी गई है।

आवेदक द्वारा प्रस्तुत आत्मसमर्पण से छूट हेतु प्रार्थना पत्र स्वीकार कर लिया गया। दिनांक 12.07.2017 को आवेदक द्वारा दायर आपराधिक अपील में अनुमति प्रदान कर दी गई थी। अपील विचाराधीन है।

इस बीच, आवेदक ने 12.11.2017 को पासपोर्ट की अवधि समाप्त होने की वजह से अपने पासपोर्ट के नवीनीकरण के लिए प्रत्यर्थी को अनापत्ति प्रदान करने का निर्देश देने के लिए यह प्रार्थना पत्र दायर किया है। आवेदक ने तर्क दिया है कि पासपोर्ट के नवीनीकरण के लिए उसके द्वारा दायर प्रार्थना पत्र पर विचार नहीं किया गया। सूचना का अधिकार अधिनियम के तहत प्रार्थना पत्र दाखिल करने सहित उसके निरंतर प्रयासों के बावजूद, उसे उसके पासपोर्ट का नवीनीकरण न होने का कारण नहीं बताया गया। निर्देश के लिए दायर प्रार्थना पत्र में कहा गया है कि प्रार्थना पत्र में मौखिक रूप से सूचित किया गया था कि इस न्यायालय में आपराधिक अपील लंबित होने के कारण पासपोर्ट का नवीनीकरण नहीं किया जा रहा है। प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल श्री जे. के. सूद ने प्रार्थना पत्र का विरोध किया और कहा कि पासपोर्ट का नवीनीकरण केवल तभी हो सकता है जब प्रार्थना पत्र को संबंधित विचारण न्यायालय से

अवधारित

अनुमति प्राप्त हो जाए। उन्होंने पासपोर्ट अधिनियम, 1967 की धारा 6.2 का हवाला दिया और तर्क दिया कि पासपोर्ट प्राधिकरण के पास उसके द्वारा दायर आपराधिक अपील के लंबित होने के मद्देनजर पासपोर्ट जारी करने से इनकार करने की शक्ति है। उन्होंने कहा कि पासपोर्ट अधिनियम, 1967 की उप-धारा 6.2 (ई) और (एफ) इस मामले पर लागू होगी और आवेदक विचारण न्यायालय से अनुमति प्राप्त किए बिना नवीनीकृत पासपोर्ट प्राप्त करने का हकदार नहीं है।

पासपोर्ट अधिनियम, 1967 की धारा 6.2 इस प्रकार है:

X X X X X X X X X

(2) इस अधिनियम के अन्य उपबन्धों के अध्यधीन रहते हुए यह है कि पासपोर्ट प्राधिकारी किसी विदेश के परिदर्शन के लिए पासपोर्ट या यात्रा दस्तावेज जारी करने से धारा 5 की उपधारा (2) के खण्ड (ग) के अधीन निम्नलिखित एक या अधिक आधारों पर ही इन्कार करेगा. न कि अन्य किसी आधार पर अर्थात्-

(क) आवेदक भारत का नागरिक नहीं है।

(ख) आवेदक भारत से बाहर ऐसे क्रियाकलाप में लग सकता है या उनमें उसका लगना सम्भाव्य हे जो भारत की प्रभुता और अखण्डता पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले हॉ

(ग) आवेदक का भारत से प्रस्थान भारत की सुरक्षा के लिए अहितकर हो सकता है या होना सम्भाव्य है,

(घ) आवेदक की भारत से बाहर उपस्थिति से किसी विदेश के साथ भारत के मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है या पड़ना सम्भाव्य है।

(ङ) आवेदक अपने आवेदन की तारीख से ठीक पहले की पाच वर्ष की कालावधि के दौरान किसी भी समय भारत में के किसी न्यायालय द्वारा नातक अधमता अंतर्वलित करने वाले किसी अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराया गया है और उसकी बाबत दो वर्ष से अन्यून के कारावास से दण्डादिष्ट किया गया है:

(च) किसी ऐसे अपराध की बाबत, जिसका आवेदक द्वारा किया जाना अभिकथित है, कार्यवाहियां भारत में किसी दण्ड न्यायालय के समक्ष लम्बित हैं.

(छ) आवेदक की हाजिरी के लिए कोई वारण्ट या समन, या उसकी गिरफ्तारी के लिए कोई वारण्ट, किसी तत्समय प्रवृत्त विधि के अधीन किसी न्यायालय द्वारा जारी किया गया है या आवेदक का भारत से प्रस्थान प्रतिषिद्ध करने का कोई आदेश ऐसे किसी न्यायालय द्वारा किया गया है:

(ज) आवेदक संप्रत्यावर्तित किया जा चुका है और उसने उस व्यय की प्रतिपूर्ति नहीं की है जो ऐसे संप्रत्यावर्तन के सम्बन्ध में उपगत हुआ:

(झ) आवेदक को पासपोर्ट या यात्रा दस्तावेज जारी करना केन्द्रीय सरकार की राय में लोकहित में न होगा ।

पासपोर्ट से इनकार केवल उस स्थिति में हो सकता है, जहां किसी आवेदक को नैतिक

अनुवादित

अधमता से जुड़े अपराध के लिए प्रार्थना पत्र की तारीख से 5 साल की अवधि के दौरान दोषी ठहराया जाता है और कम से कम दो साल के कारावास की सजा दी जाती है।

धारा 6.2 (एफ) उस स्थिति से संबंधित है जहां आवेदक के विरुद्ध एक आपराधिक न्यायालय में मुकदमा चल रहा हो।

माना जाता है कि वर्तमान में अपीलकर्ता की दोषसिद्धि के बाद भी आपराधिक अपील का निपटारा किया जा सकता है। उसे जो सजा भुगतनी होगी वह एक वर्ष की अवधि के लिए है।

पासपोर्ट प्राधिकारी आपराधिक अपील लंबित होने के आधार पर पासपोर्ट के नवीनीकरण से इनकार नहीं कर सकता। पासपोर्ट प्राधिकारी को इस न्यायालय में आपराधिक अपील के लंबित होने से संबंधित आपत्ति उठाए बिना आवेदक के पासपोर्ट को नवीनीकृत करने का निर्देश दिया जाता है। अन्य शर्तों के पूरा होने के अध्यधीन अंतर्वर्ती प्रार्थना पत्र का निपटारा किया जाता है। (हमारे द्वारा बल दिया गया)

8. अब्बास हातिमभाई कागलवाला (उपरोक्त) में बॉम्बे हाई कोर्ट के फैसले पर याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने काफी विश्वास जताया है, जिसे नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

1. याचिकाकर्ता ने पासपोर्ट के नवीनीकरण के लिए प्रार्थना पत्र किया था। उक्त प्रार्थना पत्र पर इस कारण विचार नहीं किया जा रहा है कि याचिकाकर्ता को उस न्यायालय से अनुमति लेनी चाहिए जहां याचिकाकर्ता के खिलाफ एक आपराधिक मामला लंबित है।

2. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि पासपोर्ट के नवीनीकरण के लिए, उस न्यायालय से अनुमति आवश्यक नहीं है जहां याचिकाकर्ता के खिलाफ आपराधिक मामला लंबित है। यदि कोई आपराधिक मामला लंबित है, तो एकमात्र सीमा यह होगी कि याचिकाकर्ता उस न्यायालय की अनुमति के बिना विदेश यात्रा नहीं कर सकता, जहां याचिकाकर्ता के खिलाफ आपराधिक मामला लंबित है। वह आपराधिक अपील संख्या 1342/2017 दिनांक 27.9.2021 में शीर्ष न्यायालय द्वारा पारित आदेश पर निर्भरता दिखाते हैं।

3. संघ के विद्वान अधिवक्ता यह निष्कर्ष निकालने के लिए दिनांक 25.8.1993 की अधिसूचना और पासपोर्ट अधिनियम, 1967 की धारा 6.2 (एफ) पर विश्वास जताते हैं कि याचिकाकर्ता को पासपोर्ट जारी करने के लिए उस न्यायालय की अनुमति प्राप्त करनी होगी जहां याचिकाकर्ता के खिलाफ आपराधिक मामला लंबित है। यह पासपोर्ट जारी करने का मामला होगा न कि पासपोर्ट के नवीनीकरण का।

4. याचिकाकर्ता का तर्क है कि पासपोर्ट की वैधता वर्ष 2017 में समाप्त हो गई। याचिकाकर्ता ने नवीनीकरण के लिए प्रार्थना पत्र दिया और कहा कि प्रार्थना पत्र 4 साल से अधिक समय से लंबित है। यह भी एक तथ्य

अनुवादित

है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 420, 465, 467 सपठित धारा 120-बी के तहत एक आपराधिक मामला लंबित है।

5. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि याचिकाकर्ता को पहले ही पासपोर्ट जारी किया जा चुका है और याचिकाकर्ता पासपोर्ट के नवीनीकरण की मांग करेगा और उक्त प्रार्थना पत्र प्रत्यर्थी के पास लंबित है, इसलिए, आपराधिक अपील संख्या 1342/2017 (उपर्युक्त) में उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित आदेश पर भी विचार करते हुए हम निम्नलिखित आदेश पारित करते हैं।

आदेश

i) ऐसे मामले में जहां याचिकाकर्ता के खिलाफ एक आपराधिक मामला लंबित है, प्रत्यर्थी न्यायालय की अनुमति पर बल दिए बिना पासपोर्ट के नवीनीकरण के लिए याचिकाकर्ता के प्रार्थना पत्र पर कार्यवाही करेगा। यदि याचिकाकर्ता विदेश यात्रा कर रहा है, तो याचिकाकर्ता को उस न्यायालय से अनुमति लेनी होगी जहां आपराधिक मामला लंबित है।

ii) उपरुक्त अवलोकन के अनुसार 2 महीने के भीतर निर्णय लिया जाएगा।

iii) आक्षेपित संप्रेषण को रद्द किया जाता है और अपास्त किया जाता है।

iv) यदि प्रक्रिया के अनुसार ऑनलाइन प्रार्थना पत्र करना आवश्यक है, तो वह याचिकाकर्ता द्वारा किया जाएगा।

6. याचिका का निस्तारण किया जाता है।

7. कोई लागत नहीं।

(हमारे द्वारा बल दिया गया)

9. वंगाला कस्तूरी रंगाचार्युलु (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से वर्तमान मामले के तथ्यों पर याचिकाकर्ता को कोई सहायता नहीं मिली है क्योंकि याचिकाकर्ता के खिलाफ कुछ आपराधिक मामले विचारण न्यायालय के समक्ष लंबित हैं जबकि कुछ आपराधिक मामलों की जांच प्रगति में है। उपरोक्त निर्णय में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि पासपोर्ट अधिनियम, 1967 की धारा 6(2)(एफ) ऐसी स्थिति से संबंधित है जहां आवेदक के विरुद्ध आपराधिक न्यायालय में मुक़दमा चल रहा है। वर्तमान स्थिति में याचिकाकर्ता एक आपराधिक न्यायालय में मुकदमे का सामना कर रहा है। इस प्रकार वंगाला कस्तूरी रंगाचार्युलु (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले से याचिकाकर्ता को कोई लाभ नहीं मिला।

10. जहाँ तक अब्बास हातिमभाई कागलवाला (उपरोक्त) में बॉम्बे हाई कोर्ट के में अवलोकन का सवाल है, जिसमें न्यायालय, जहां एक आपराधिक मामला लंबित है, की अनुमति के बिना पासपोर्ट नवीनीकरण प्रार्थना पत्र पर कार्रवाई करने का निर्देश दिया गया है, हम उससे सहमति नहीं रखते क्योंकि पासपोर्ट अधिनियम, 1967 की धारा 6 (2) (ई)/(एफ) / (जी) और धारा 22 और दिनांक 25.08.1993

अनुवादित

की अधिसूचना संख्या जीएसआर 570(ई).-1, के साथ विरोध में है। उपरोक्त मामले में बॉम्बे हाई कोर्ट ने वांगला कस्तूरी रंगाचार्युलु (उपरोक्त) में शीर्ष न्यायालय के निर्णय पर निर्भरता दिखाई है, जिसे शीर्ष न्यायालय ने उसके समक्ष लंबित आपराधिक अपील में दायर अंतर्वर्ती प्रार्थना पत्र संख्या 52346/2021 पर पारित किया था, जिसमे पासपोर्ट जारी करने की अनुमति / निर्देश की मांग की गई थी। शीघ्र संदर्भ के लिए पासपोर्ट अधिनियम, 1967 की धारा 6 की उपधारा (2) के खंड (ई), (एफ) और (जी) को नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

(2) इस अधिनियम के अन्य उपबन्धों के अध्यधीन रहते हुए यह है कि पासपोर्ट प्राधिकारी किसी विदेश के परिदर्शन के लिए पासपोर्ट या यात्रा- दस्तावेज जारी करने से धारा 5 की उपधारा (2) के खण्ड (ग) के अधीन निम्नलिखित एक या अधिक आधारों पर ही इन्कार करेगा. न कि अन्य किसी आधार पर अर्थात्-

(क)....

(ख)....

(ग).....

(घ)....

(ङ) आवेदक अपने आवेदन की तारीख से ठीक पहले की पाच वर्ष की कालावधि के दौरान किसी भी समय भारत में के किसी न्यायालय द्वारा नातक अधमता अंतर्वलित करने वाले किसी अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराया गया है और उसकी बाबत दो वर्ष से अन्यून के कारावास से दण्डादिष्ट किया गया है:

(च) किसी ऐसे अपराध की बाबत, जिसका आवेदक द्वारा किया जाना अभिकथित है, कार्यवाहियां भारत में किसी दण्ड न्यायालय के समक्ष लम्बित हैं.

(छ) आवेदक की हाजिरी के लिए कोई वारण्ट या समन, या उसकी गिरफ्तारी के लिए कोई वारण्ट, किसी तत्समय प्रवृत्त विधि के अधीन किसी न्यायालय द्वारा जारी किया गया है या आवेदक का भारत से प्रस्थान प्रतिषिद्ध करने का कोई आदेश ऐसे किसी न्यायालय द्वारा किया गया है:

11. इस प्रकार, पासपोर्ट अधिनियम, 1967 की धारा 6 की उपधारा (2) के खंड (ई), (एफ) और (जी) के विधायिक आदेश के अनुसार, पासपोर्ट प्राधिकरण खंड (ए) से (आई) में उल्लिखित आधार पर किसी भी विदेशी देश की यात्रा करने के लिए पासपोर्ट या यात्रा दस्तावेज जारी करने से इनकार कर देगा । धारा 6 की उपधारा (2) के आरंभिक शब्द हैं कि "इस अधिनियम के अन्य उपबंधों के अध्यधीन" । अतः यदि आवेदक धारा 22 के साथ पठित पासपोर्ट अधिनियम, 1967 की धारा 22 के खंड (ए) के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए सरकार द्वारा दिनांक 25.08.1993

अनुवादित

को जारी की गई अधिसूचना संख्या जीएसआर 570 (ई) - 1, के संदर्भ में उस संबंधित न्यायालय से अनुमति प्राप्त करता है जहां आपराधिक मामला लंबित है तो पासपोर्ट या यात्रा दस्तावेज पासपोर्ट प्राधिकारी द्वारा जारी किया जा सकता है। यह स्थापित विधि है कि वैधानिक प्रावधानों के विरोध में परमादेश रिट जारी नहीं किया जा सकता है। नतीजतन, पासपोर्ट अधिनियम 1967 की धारा 6 की उपधारा (2) के उपरोक्त खंड (ई), (एफ) और (जी) के विरोध में, याचिकाकर्ता के पक्ष में और पासपोर्ट प्राधिकरण के खिलाफ परमादेश जारी नहीं किया जा सकता है। यदि पासपोर्ट अधिनियम, 1967 की धारा 6 की उपधारा (2) के खंड (ई), (एफ) और (जी) की अलग-अलग व्याख्या की जाती है तो यह एक तरफ उक्त प्रावधानों को निरर्थक बना सकता है और दूसरी तरफ यह किसी आपराधिक मामले में जांच पूरी करने और विचारण के निष्कर्ष पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है। अतः पासपोर्ट प्राधिकारी को पासपोर्ट या यात्रा दस्तावेज जारी करने से पासपोर्ट अधिनियम, 1967 की धारा 6(2) के तहत इनकार के वैधानिक अधिदेश को हटाने के लिए सक्षम बनाने हेतु, दिनांक 25.08.1993 की अधिसूचना संख्या जीएसआर 570(ई.-1) के साथ पठित धारा 22 के अनुसार आवेदक के लिए उस न्यायालय से अनुमति प्राप्त करना अनिवार्य है जहां उसका विचारण चल रहा है।

12. हमने यह भी पाया कि आक्षेपित आदेश पासपोर्ट अधिनियम, 1967 की धारा 11 के तहत अपील योग्य है, इसलिए, याचिकाकर्ता अपील के उपचार का लाभ उठा सकता है। वह पासपोर्ट अधिनियम, 1967 की धारा 22 के साथ पठित दिनांक 25.08.1993 की अधिसूचना संख्या जीएसआर 570 (ई)- आई के तहत संबंधित न्यायालय के समक्ष अनुमति के लिए आवेदन कर सकता है।

13. उपरोक्त अवलोकन के साथ, याचिकाकर्ता के लिए अपील के वैकल्पिक उपचार का लाभ उठाने का रास्ता खुला रखते हुए रिट याचिका खारिज की जाती है। यदि याचिकाकर्ता इस आदेश की प्रमाणित प्रति के साथ आज से तीन सप्ताह के भीतर पासपोर्ट अधिनियम, 1967 की धारा 11 के तहत अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष अपील दायर करता है, तो अपीलीय प्राधिकारी द्वारा याचिकाकर्ता की अपील पर उसकी सीमा के संबंध में कोई आपत्ति उठाए बिना विचार किया जाएगा।

14. यह स्पष्ट किया जाता है कि हमने याचिकाकर्ता के मामले के गुण-दोष पर कोई राय व्यक्त नहीं की है।

(2023) 6 ILRA 481

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 09.01.2020

अनुवादित

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अंजनी कुमार मिश्रा

रिट-सी संख्या 36353 वर्ष 2019

संबंधित

रिट-सी संख्या 36276 वर्ष 2019

और

रिट-सी संख्या 40800 वर्ष 2019

और

रिट-सी संख्या 36362 वर्ष 2019

श्री राजू **याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री नारायण दत्त शुक्ला, श्री रमेश चंद्र सिंह (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी., श्री तारिक मकबूल खान

ए. सिविल कानून - यू.पी. राजस्व संहिता, 2006 - धारा 67 और 67ए - यू.पी. राजस्व संहिता, 2006 की धारा 67ए में प्रावधान है कि यदि संहिता की धारा 63 में निर्दिष्ट भूमि पर कोई मकान मौजूद है, जो 29 नवंबर, 2012 से पहले बना है, तो आवास स्थल को उसके मालिक के साथ ऐसी शर्तों और नियमों के तहत तय किया जा सकता है, जैसा कि निर्दिष्ट किया जा सकता है। निर्णय - केवल इसलिए कि वरीयता क्रम में निचले स्तर के व्यक्ति ने गांव सभा की भूमि पर अतिक्रमण किया है, उसे धारा 67ए का लाभ नहीं दिया जा सकता और न ही दिया जाना चाहिए, जब तक कि वह स्पष्ट रूप से यह साबित करने की स्थिति में न हो कि वरीयता क्रम में उच्चतर स्तर का कोई व्यक्ति गांव में उपलब्ध नहीं है। वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ताओं ने धारा 67ए के तहत अपने आवेदन में कहीं भी यह नहीं कहा है कि अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति से संबंधित कोई भी कृषि मजदूर या ग्रामीण कारीगर गांव में नहीं रह रहे हैं, जबकि उन्हें यह दलील देनी थी। (पैरा 14, 15)

बी. उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006- धारा 67 और 67ए - उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 67 के तहत कार्यवाही में याचिकाकर्ताओं को बेदखल करने के लिए पारित आदेश पर सवाल उठाया गया। याचिकाकर्ताओं ने दलील दी कि वे कृषि मजदूर हैं और चूंकि वे जमीन पर काबिज हैं, इसलिए वे उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 67ए के तहत लाभ पाने के हकदार हैं। निर्णय: जिस जमीन से याचिकाकर्ताओं को बेदखल करने का आदेश दिया गया है, वह 'बंजार' के रूप में दर्ज है। इसे आबादी स्थल के रूप में चिह्नित नहीं किया गया है और इसलिए यह संहिता की धारा 63 के तहत संदर्भित भूमि नहीं है। इसलिए, याचिकाकर्ता धारा 67ए के लाभ के लिए पात्र नहीं हैं। साथ ही, कोई भी याचिकाकर्ता अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति से संबंधित नहीं है। (पैरा 11, 16)

खारिज। (ई-5)

(माननीय न्यायमूर्ति अंजनी कुमार मिश्रा द्वारा दिया गया)

इन रिट याचिकाओं में याचिकाकर्ताओं की ओर से वरिष्ठ अधिवक्ता श्री रमेश चंद्र सिंह और गांव सभा की ओर से श्री तारिक मकबूल खान को सुना।

अनुवादित

ये रिट याचिकाएं उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 67 के तहत कार्यवाही से उत्पन्न हुई हैं, जिसमें याचिकाकर्ताओं को ग्राम पचरुखिया, तहसील पडरौना, जिला कुशीनगर में स्थित भूखंड संख्या 188 के अलग-अलग क्षेत्रों से बेदखल करने का अनुरोध किया गया है, जो राजस्व अभिलेखों में 'बंजर' के रूप में दर्ज है। याचिकाकर्ताओं की बेदखली और उनकी परिणामी अपीलों को खारिज करने के लिए अलग-अलग आदेश पारित किए गए हैं। हालांकि, चूंकि प्रस्तुत किए गए निवेदन समान हैं, इसलिए याचिकाओं पर एक सामान्य आदेश द्वारा निर्णय लिया जा रहा है।

यह ध्यान रखना प्रासंगिक होगा कि याचिकाकर्ताओं की बेदखली की कार्यवाही एक जनहित याचिका में उच्च न्यायालय द्वारा जारी निर्देशों के परिणामस्वरूप शुरू की गई प्रतीत होती है।

सभी याचिकाओं में विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि याचिकाकर्ता कृषि मजदूर हैं और चूंकि वे ऐसी भूमि पर काबिज हैं जो सार्वजनिक उद्देश्य के लिए आरक्षित नहीं है और जो उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 132 या उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 77 के प्रावधानों द्वारा शासित नहीं है, वे उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 67 ए के लाभ के हकदार थे। इसलिए, उनकी बेदखली का आदेश पारित नहीं किया जाना चाहिए था क्योंकि उन्होंने इस लाभ की मांग करते हुए आवेदन दायर किए थे, जिस पर कार्यवाही अभी भी लंबित है। यह भी तर्क दिया गया है कि संपत्ति की मांग थी कि धारा 67ए के तहत कार्यवाही को समेकित किया जाना चाहिए था और संहिता की धारा 67 के तहत बेदखली की कार्यवाही के साथ एक साथ सुना जाना चाहिए था, जो नहीं किया गया। इसलिए, आक्षेपित आदेश दोषपूर्ण हैं और रद्द किए जाने योग्य हैं। जहां तक इस दलील का सवाल है कि धारा 67 के तहत बेदखली की कार्यवाही याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर धारा 67ए के तहत कार्यवाही के साथ सुनी और तय की जानी चाहिए थी, विद्वान अधिवक्ता ने न्यायालय द्वारा पूछे गए एक स्पष्ट प्रश्न पर स्वीकार किया कि उपरोक्त दोनों मामलों को एकीकृत करने के लिए किसी भी याचिकाकर्ता द्वारा कभी आवेदन नहीं किया गया था।

इन चार याचिकाओं में केवल दो याचिकाकर्ता, अर्थात् रिट याचिका संख्या 36276/2019 में श्रीमती नगीना और रिट याचिका संख्या 36362/2019 में श्रीमती सुनीता, पिछड़े वर्ग से संबंधित होने का दावा करती हैं। अन्य दो अनुसूचित जाति या पिछड़े वर्ग से संबंधित होने का दावा नहीं करते हैं।

रिट याचिका में मुद्दा यह है कि क्या याचिकाकर्ता उ.प्र. अधिनियम की धारा 67ए के लाभ के हकदार हैं जिसके अनुसार यदि संहिता की धारा 63 में निर्दिष्ट भूमि पर कोई मकान मौजूद है, जो 29 नवंबर, 2012 से पहले बना है, तो आवासीय स्थल का उसके मालिक के साथ ऐसी शर्तों और नियमों के आधार पर निपटान किया जा सकता है, जैसा कि निर्दिष्ट किया जा सकता है।

संहिता की धारा 63 में उल्लिखित भूमि के संबंध में धारा 67 का लाभ प्रदान किया जा

अनुवादित

सकता है। धारा 63 में ऐसी भूमि की बात की गई है, जिसे आबादी स्थल के लिए आवंटित किया जा सकता है और उप-मंडल अधिकारी को अपनी इच्छा से या भूमि प्रबंधन समिति के प्रस्ताव पर आबादी स्थल के लिए भूमि चिह्नित करने का अधिकार दिया गया है। धारा 67ए के लाभ के लिए किसी व्यक्ति के हकदार होने की दूसरी आवश्यकता यह है कि वह धारा 64 की उप-धारा 1 में निर्दिष्ट व्यक्ति होना चाहिए।

धारा 64 की उप-धारा 1 में धारा 63 में निर्दिष्ट भूमि, अर्थात आबादी स्थलों के लिए चिह्नित भूमि का आवंटन करते समय पालन किए जाने वाले वरीयता क्रम की बात की गई है।

संहिता की धारा 64 इस प्रकार है।

*"**64. आबादी स्थलों का आवंटन।** - (1) धारा 63 में निर्दिष्ट भूमि का आवंटन करते समय निम्नलिखित वरीयता क्रम का पालन किया जाएगा:-*

(क) [ग्राम पंचायत] में निवास करने वाला कृषि मजदूर या ग्राम कारीगर जो अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति या अन्य पिछड़ा वर्ग से संबंधित हो या राज्य सरकार द्वारा निर्धारित गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाला सामान्य श्रेणी का व्यक्ति हो।

(ख) [ग्राम पंचायत] में निवास करने वाला कोई अन्य कृषि मजदूर या ग्राम कारीगर।

(ग) [ग्राम पंचायत] में निवास करने वाला कोई अन्य व्यक्ति जो अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति या अन्य पिछड़ा वर्ग से संबंधित हो या राज्य सरकार द्वारा निर्धारित गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाला सामान्य श्रेणी का व्यक्ति हो:

बशर्ते कि उसी श्रेणी में विधवा और शारीरिक रूप से विकलांग व्यक्ति को वरीयता दी जाएगी।

स्पष्टीकरण - इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए - (1) "अन्य पिछड़ा वर्ग" का तात्पर्य उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण) अधिनियम, 1994 (उत्तर प्रदेश अधिनियम, संख्या 4/1994) की अनुसूची-1 में निर्दिष्ट पिछड़े वर्ग के नागरिकों से है;

(2) "गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले सामान्य श्रेणी के व्यक्ति" का तात्पर्य ऐसे व्यक्तियों से है जिन्हें राज्य सरकार द्वारा समय-समय पर निर्धारित किया जाए।

(2) इस धारा के तहत आवंटन करते समय, उस व्यक्ति को वरीयता दी जाएगी जिसके पास या तो कोई घर नहीं है या उसके परिवार की आवश्यकता को देखते हुए उसके पास अपर्याप्त आवास है।

(3) इस धारा के तहत आवंटित प्रत्येक भूमि आवंटी द्वारा निर्धारित शर्तों और नियमों के तहत धारण की जाएगी:

अनुवादित

[बशर्ते कि यदि आवंटी विवाहित व्यक्ति है और उसकी पत्नी जीवित है, तो वह इस प्रकार आवंटित भूमि में समान हिस्से की सह-आवंटी होगी।]"

इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि जिस भूमि से याचिकाकर्ताओं को बेदखल करने का आदेश दिया गया है, वह 'बंजर' के रूप में दर्ज है। इसे आज तक आबादी स्थल के रूप में चिन्हित नहीं किया गया है और इसलिए यह संहिता की धारा 63 के तहत संदर्भित भूमि नहीं है।

ऊपर उद्धृत धारा 64, आबादी स्थल के आवंटन के समय अपनाई जाने वाली वरीयता के क्रम को दर्शाती है। इस वरीयता क्रम में सबसे ऊपर अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति से संबंधित कृषि मजदूर या ग्रामीण कारीगर हैं, उसके बाद अन्य पिछड़ा वर्ग और उसके बाद गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले सामान्य वर्ग के व्यक्ति हैं।

याचिकाकर्ताओं में से कोई भी अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति से संबंधित नहीं है, जैसा कि पहले ही ऊपर उल्लेख किया गया है। उनमें से दो पिछड़े वर्ग से संबंधित होने का दावा करते हैं जबकि दो सामान्य वर्ग से प्रतीत होते हैं।

धारा 67ए के तहत आवेदनों के सावधानीपूर्वक अवलोकन, जो याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर किए गए बताए गए हैं, से पता चलता है कि इन आवेदनों में कहीं भी आवेदकों ने यह नहीं कहा है कि गांव पचरुखिया में अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति से संबंधित कोई भी कृषि मजदूर या ग्रामीण कारीगर नहीं रहते हैं। यह उनके द्वारा अनिवार्य रूप से दलील देने की आवश्यकता थी।

केवल इसलिए कि वरीयता क्रम में नीचे वाले व्यक्ति ने गांव सभा की भूमि पर अतिक्रमण किया है, उसे धारा 67 ए का लाभ नहीं दिया जा सकता है और न ही दिया जाना चाहिए जब तक कि वह स्पष्ट रूप से यह साबित करने की स्थिति में न हो कि गांव में वरीयता क्रम में उच्चतर कोई व्यक्ति उपलब्ध नहीं है। धारा 67 ए की किसी अन्य व्याख्या से बहुत अन्याय होगा क्योंकि अनधिकृत कब्जाधारी को इसका लाभ केवल इसलिए मिल जाएगा क्योंकि उसने गांव सभा की संपत्ति पर अवैध रूप से अतिक्रमण किया है, भले ही गांव में अन्य जरूरतमंद और उच्च वरीयता वाले व्यक्ति उपलब्ध हों।

इसलिए, तथा ऊपर दिए गए कारणों से, यह न्यायालय यह मानने के लिए बाध्य है कि न केवल इस रिट याचिका में मुद्दागत भूमि संहिता की धारा 63 के अंतर्गत शासित भूमि नहीं है, क्योंकि इसे आबादी स्थल के रूप में आवंटन के लिए आरक्षित नहीं किया गया है, बल्कि याचिकाकर्ता भी प्रथम दृष्टया धारा 67ए के लाभ के लिए पात्र नहीं हैं, क्योंकि उनके आवेदनों में आवश्यक दलीलें नहीं हैं। इसलिए दोनों ही मामलों में धारा 67ए का लाभ याचिकाकर्ताओं को नहीं दिया जा सकता।

यद्यपि रिट याचिका में तथा धारा 67ए के अंतर्गत आवेदनों में भी उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम के प्रावधानों का संदर्भ दिया गया है, परंतु मेरे

अनुवादित

विचार से ऐसा संदर्भ या भरोसा मान्य नहीं है, क्योंकि जिस तिथि को याचिकाकर्ताओं द्वारा धारा 67ए के अंतर्गत आवेदन दाखिल किए गए, उस तिथि को उक्त अधिनियम अर्थात् उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम निरस्त हो गया था।

उपर्युक्त के मद्देनजर, इन रिट याचिकाओं में बल का अभाव है और तदनुसार खारिज किया जाता है।

(2023) 6 ILRA 484

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 19.04.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनोज कुमार गुप्ता

माननीय न्यायमूर्ति प्रशांत कुमार

रिट-सी संख्या 39191 वर्ष 2022

वी-मार्ट रिटेल लिमिटेड, गुड़गांव याचिकाकर्ता

बनाम

एल.आई.सी. हाउसिंग फाइनेंस लिमिटेड, लखनऊ और अन्य प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री जितेन्द्र प्रसाद

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी., प्रांजल मेहरोत्रा

सिविल कानून - वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्निर्माण तथा प्रतिभूति हित प्रवर्तन अधिनियम, 2002 - धारा 14. मुद्दा: क्या कोई सुरक्षित ऋणदाता, अधिनियम के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए, पट्टेदार के कब्जे में सुरक्षित संपत्ति का वास्तविक भौतिक कब्ज़ा ले सकता है? निर्णय: हर्षद गोवर्धन सोंडागर में सर्वोच्च न्यायालय ने पट्टों को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया: i संपत्ति को गिरवी रखे जाने से पहले बनाया गया पट्टा: यह माना गया कि, ऐसे मामलों में, पट्टेदार को पट्टे की शर्तों के अनुसार पट्टे पर दी गई संपत्ति का आनंद लेने का अधिकार होगा, भले ही अचल संपत्ति के बाद के बंधकदार को ऐसे पट्टे के बारे में जानकारी हो या नहीं। ii बंधक विलेख के निष्पादन के बाद बनाया गया पट्टा: ऐसे मामलों में जहां बंधक विलेख बंधककर्ता को बंधक संपत्ति का पट्टा बनाने से प्रतिबंधित नहीं करता है, और जब तक पट्टा संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 65-ए की उप-धारा (2) की आवश्यकताओं को पूरा करता है, यह सुरक्षित लेनदार पर वैध और बाध्यकारी होगा। iii धारा 13(2) के तहत नोटिस की सेवा के बाद बनाया गया पट्टा: ऐसा पट्टा अधिनियम की धारा 13(13) के होगा। ऐसे मामलों में जहां सुरक्षित परिसंपत्ति वैध किरायेदार के कब्जे में है, सुरक्षित लेनदार को अधिनियम की धारा 13(2) के तहत नोटिस के साठ दिनों की समाप्ति के बाद उधारकर्ता के पट्टेदार से कोई भी देय राशि, या जो देय हो सकती है (किराए सहित) प्राप्त करने का अधिकार होगा। वैध पट्टे के तहत वैध कब्जे मद्देनजर शून्य होगा और सुरक्षित लेनदार पर बाध्यकारी नहीं होगा। सुप्रीम कोर्ट ने यह भी माना कि अधिनियम के प्रावधान श्रेणी (i) और (ii) के अंतर्गत आने वाले पट्टेदारों के अधिकारों को कम नहीं करते हैं, न ही पट्टे को समाप्त करते हैं। हालांकि, यह श्रेणी (iii) के अंतर्गत आने वाले मामलों के लिए सही नहीं

अनुवादित

में पट्टेदार से सुरक्षित परिसंपत्ति का कब्ज़ा सरफेसी अधिनियम (पैरा 9, 11) के प्रावधानों के तहत लिया जाना आवश्यक नहीं है।

अनुमति दी गई। (ई-5)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. हर्षद गोवर्धन सोंडागर बनाम इंटरनेशनल एसेट्स रिकंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड और अन्य, (2014) 6 एससीसी 1.
2. विशाल एन. कलसारिया बनाम बैंक ऑफ इंडिया और अन्य, (2016) 3 एससीसी 762.

(माननीय न्यायमूर्ति मनोज कुमार गुप्ता और माननीय न्यायमूर्ति प्रशांत कुमार द्वारा दिया गया)

1. यह याचिका, याचिकाकर्ता के प्रत्यावेदन दिनाँक 24.11.2020 पर विचार करने और याचिकाकर्ता को संपत्ति संख्या 3/67, रुई की मंडी, शाहगंज, आगरा से बेदखल न करने या याचिकाकर्ता द्वारा उक्त परिसर में व्यवसाय चलाने में हस्तक्षेप न करने के लिए प्रतिवादियों को आदेशित करने हेतु परमादेश की रिट जारी करने के लिए प्रार्थना करते हुए दायर की गई है।

2. याचिका के निस्तारण के लिए आवश्यक तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता कंपनी अधिनियम के तहत शामिल की गयी एक कंपनी है। यह अपने और प्रतिवादी सं. 4 से 8, परिसर के मालिकों (इसके बाद संक्षेप में 'पट्टादाताओं') के बीच समझौता ज्ञापन (एमओयू) दिनांक 10.5.2016 के अनुसरण में उपरोक्त परिसर से अपना खुदरा कारोबार चला रही है। एमओयू के अनुसार, याचिकाकर्ता को 11300 वर्ग फीट के भवन के भूतल और प्रथम तल को किराए पर दिया गया था। पट्टादाताओं को 25.05.2016 को या उससे पहले परिसर का कब्जा याचिकाकर्ता को सौंपना था। याचिकाकर्ता को पट्टादाताओं को तीन महीने का नोटिस देने के बाद पट्टान्तरित परिसर को खाली करने का अधिकार दिया गया था। दूसरी ओर, पट्टादाताओं को किरायेदारी को जब्त करने का अधिकार तभी दिया गया था जब किराए के भुगतान में लगातार तीन महीने या उससे अधिक की चूक हुई हो और याचिकाकर्ता मांग की नोटिस प्राप्त होने के एक महीने के भीतर इसे भुगतान करने में विफल रहा हो। तत्पश्चात, पक्षकारों के बीच पंजीकृत लीज समझौता दिनाँक 15.03.2017 भी निष्पादित किया गया था। लीज एग्रीमेंट में लीज शुरू होने की तारीख 1 जुलाई, 2016 बताई गई है। 11000 वर्ग फीट के कारपेट एरिया के लिए किराया लगभग 29 रुपये प्रति माह प्रति वर्ग फीट था, जो हर कैलेंडर माह की 10 तारीख से पहले देय था। मासिक लीज किराए में नियमित अंतराल के बाद वृद्धि की जा सकती थी। याचिकाकर्ता के अनुसार, समझौता ज्ञापन और पंजीकृत लीज विलेख के अनुसार, उसने पट्टान्तरित परिसर पर कब्जा कर लिया है और वहां से अपना खुदरा व्यापार कर रहा है।

3. 20.02.2020 को याचिकाकर्ता को दूसरे प्रतिवादी यानी एलआईसी हाउसिंग फाइनेंस लिमिटेड से एक नोटिस मिला, जिससे उसे पता चला कि पट्टेदारों द्वारा उसके पक्ष में समान रूप से पट्टान्तरित संपत्ति को रहन रखा गया

अनुवादित

था। 23.11.2020 को दूसरे प्रतिवादी ने वित्तीय परिसंपत्तियों के प्रतिभूतिकरण और पुनर्निर्माण तथा प्रतिभूति हित प्रवर्तन अधिनियम, 2002 (संक्षेप में 'अधिनियम') के तहत अपनी शक्तियों के कथित प्रयोग में पट्टान्तरित परिसर पर कब्ज़ा नोटिस चस्पा किया। याचिकाकर्ता ने 24.11.2020 को दूसरे प्रतिवादी के समक्ष, समझौता ज्ञापन दिनाँक 10.5.2016 और पंजीकृत लीज़ विलेख दिनाँक 15.6.2017 का उल्लेख करते हुए, एक विस्तृत आपत्ति दर्ज की और दूसरे प्रतिवादी से लीज़ की गई संपत्ति का वास्तविक भौतिक कब्ज़ा लेने की कार्यवाही को तुरंत रोकने का अनुरोध किया। याचिकाकर्ता ने यह भी प्रार्थना की कि यदि संपत्ति की नीलामी की जाती है, तो नीलामी क्रेता को सूचित किया जाए कि वह पट्टेदारों/उधारकर्ताओं के रूप में काम करेगा, लेकिन वास्तविक भौतिक कब्जे का हकदार नहीं होगा क्योंकि संपत्ति एक वैध किरायेदार के कब्जे में थी। हालांकि, दूसरे प्रतिवादी ने उक्त आपत्ति पर ध्यान नहीं दिया और पट्टे पर दी गई संपत्ति पर कब्जा करने की धमकी दी और परिणामस्वरूप, तत्काल याचिका।

4. दूसरे प्रतिवादी ने एक जवाबी हलफनामा दायर किया है, जिसमें यह दृष्टिकोण लिया गया है कि निजी प्रतिवादियों (पट्टेदारों) ने उससे 28.2.2017 को 2,35,00,000/- रुपये का ऋण लिया था और स्वामित्व विलेखों को जमा करके दूसरे प्रतिवादी के पक्ष में प्रश्नगत संपत्ति को समान रूप से गिरवी रखा था। जिस तारीख को कथित रूप से समान गिरवी बनाया गया था, उसका खुलासा जवाबी हलफनामे में नहीं किया गया है। अधिनियम की धारा 13(2) के अन्तर्गत नोटिस जारी करने की तारीख 5.12.2019 है। कब्जा नोटिस जारी करने की तारीख 23.11.2020 है। दूसरे प्रतिवादी ने स्वीकार किया है कि उसने उक्त संपत्ति के वास्तविक भौतिक कब्जे को प्रदान किये जाने हेतु अधिनियम की धारा 14 के तहत एक आवेदन दायर किया था और उक्त आवेदन लंबित है।

5. दूसरे प्रतिवादी द्वारा अपनाए गए रुख से यह स्पष्ट है कि वह अधिनियम के तहत अपने अधिकारों का प्रयोग करते हुए प्रश्नगत संपत्ति का वास्तविक भौतिक कब्जा लेने का प्रस्ताव करता है।

6. निजी प्रतिवादियों (पट्टेदारों/उधारकर्ताओं) को पंजीकृत डाक से नोटिस भेजे गए थे। भारतीय डाक की ट्रैक कंसाइनमेंट रिपोर्ट से यह स्पष्ट है कि उन्हें नोटिस दिए गए थे, लेकिन उनकी ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ। 13.4.2023 के आदेश द्वारा उपरोक्त प्रतिवादियों पर तामीला पर्याप्त मानी गई।

7. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी कि याचिकाकर्ता उक्त परिसर का वैध पट्टेदार होने के नाते और उसके पक्ष में पट्टा ऋण की मंजूरी और समान बंधक के निर्माण से पहले बनाए जाने के कारण, दूसरा प्रतिवादी पट्टान्तरित परिसर का वास्तविक भौतिक कब्ज़ा लेने का हकदार नहीं है। सबसे अच्छी स्थिति में, केवल प्रतीकात्मक कब्ज़ा ही लिया जा सकता है और इस स्थिति में, यह उधारकर्ताओं का स्थान लेगा और केवल याचिकाकर्ता से किराया लेने का हकदार होगा। अपने तर्क के समर्थन में, याचिकाकर्ता के

अवैधानिक

विद्वान अधिवक्ता ने **हर्षद गोवर्धन सोंडागर बनाम इंटरनेशनल एसेट्स रिकंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड और अन्य,** और **विशाल एन. कलसारिया बनाम बैंक ऑफ इंडिया और अन्य** में सुप्रीम कोर्ट के निर्णयों का आश्रय लिया है।

8. दूसरे प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री प्रांजल मेहरोत्रा ने कहा कि चूंकि पंजीकृत पट्टा विलेख 28.02.2017 को ऋण की स्वीकृति के बाद 15.03.2017 को निष्पादित किया गया था, इसलिए याचिकाकर्ता उपरोक्त निर्णयों का लाभ पाने का हकदार नहीं है। उन्होंने आगे कहा कि भले ही यह माना गया है कि याचिकाकर्ता को बेदखल नहीं किया जा सकता है, यह स्पष्ट किया जाना चाहिए कि सुरक्षित ऋणदाता (दूसरा प्रतिवादी) याचिकाकर्ता से किराया वसूलने का हकदार होगा।

9. **हर्षद गोवर्धन सोंडागर (सुप्रा)** में, सुप्रीम कोर्ट ने इस मुद्दे पर विचार किया था कि क्या अधिनियम के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए एक सुरक्षित ऋणदाता पट्टेदार के कब्जे में सुरक्षित संपत्ति का वास्तविक भौतिक कब्जा ले सकता है। सर्वोच्च न्यायालय ने, वित्तीय प्रतिसंपत्तियों के प्रतिभूतिकरण एवं पुनर्निर्माण तथा प्रतिभूति हित प्रवर्तन अधिनियम, 2002 की संपूर्ण योजना तथा संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 के उपबंधों पर विचार करने के पश्चात, पट्टों को निम्नानुसार तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया:-

> (i) संपत्ति को गिरवी रखे जाने से पूर्व बनाया गया पट्टा- यह माना गया कि ऐसे मामले में, पट्टेदार को पट्टे की शर्तों व नियमों के अनुसार पट्टे पर दी गई संपत्ति का आनंद लेने का अधिकार होगा, भले ही अचल संपत्ति के बाद के बंधकदार को ऐसे पट्टे के बारे में जानकारी हो या नहीं।
>
> (ii) बंधक विलेख के निष्पादन के बाद बनाया गया पट्टा- यदि बंधक विलेख बंधककर्ता को बंधक संपत्ति का पट्टा बनाने से प्रतिबंधित नहीं करता है और जब तक पट्टा संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 65-ए की उपधारा (2) की आवश्यकता को पूरा करता है, तो यह वैध होगा और सुरक्षित ऋणदाता के लिए बाध्यकारी होगा।
>
> (iii) धारा 13 (2) के तहत नोटिस की तामीला के बाद बनाया गया पट्टा - ऐसा पट्टा अधिनियम की धारा 13 (13) के मद्देनजर शून्य होगा और सुरक्षित ऋणदाता पर बाध्यकारी नहीं होगा।

10. सुप्रीम कोर्ट ने यह भी माना कि अधिनियम के प्रावधान श्रेणी (i) और (ii) के अंतर्गत आने वाले पट्टेदारों के अधिकारों को कम नहीं करते हैं और न ही पट्टे को समाप्त करते हैं। हालाँकि, श्रेणी (iii) के अंतर्गत आने वाले मामलों के लिए यह सही नहीं होगा। विधि रिपोर्ट का प्रासंगिक अंश नीचे उद्धृत है:-

> "सरफेसी अधिनियम की धारा 13 की उपधारा (4) के खंड (ए) में उल्लिखित उपायों में से एक उपाय पट्टे के माध्यम से हस्तांतरण के अधिकार

अनुवादित

सहित उधारकर्ता की सुरक्षित परिसंपत्तियों का कब्ज़ा लेना है। हालाँकि, जहाँ सुरक्षित परिसंपत्ति का वैध कब्ज़ा उधारकर्ता के पास नहीं है, बल्कि वैध पट्टे के तहत पट्टेदार के पास है, सुरक्षित ऋणदाता सुरक्षित परिसंपत्ति का कब्ज़ा तब तक नहीं ले सकता जब तक कि पट्टेदार का वैध कब्ज़ा निर्धारित नहीं हो जाता। हालाँकि, सरफेसी अधिनियम की धारा 13 की उपधारा (4) में ऐसा कोई उल्लेख नहीं है कि उधारकर्ता द्वारा पट्टेदार के पक्ष में किया गया पट्टा सुरक्षित ऋणदाता द्वारा उक्त अधिनियम की धारा 13 में उल्लिखित कोई भी उपाय करने का निर्णय लेने पर निर्धारित माना जाएगा। हालाँकि, सरफेसी अधिनियम की धारा 13 की उपधारा (13) में यह प्रावधान है कि सरफेसी अधिनियम की धारा 13 की उपधारा (2) में निर्दिष्ट सूचना प्राप्त होने के बाद, कोई भी उधारकर्ता, सुरक्षित ऋणदाता की पूर्व लिखित सहमति के बिना, नोटिस में उल्लिखित अपनी किसी भी सुरक्षित संपत्ति को पट्टे पर नहीं देगा। सरफेसी अधिनियम की धारा 13 की उप-धारा (13) में यह प्रावधान और संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम के प्रावधान जो उधारकर्ता या बंधककर्ता को पट्टा बनाने में सक्षम बनाते हैं, एक दूसरे के साथ असंगत हैं। इसलिए, सरफेसी अधिनियम की धारा 13 की उप-धारा (13) सरफेसी अधिनियम की धारा 35 के आधार पर संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 65 ए के प्रावधानों को रद्द कर देगी, और उधारकर्ता द्वारा सुरक्षित ऋणदाता से धारा 13 की उप-धारा (2) के तहत नोटिस प्राप्त करने के बाद, उस सुरक्षित संपत्ति को लागू करने का इरादा रखते हुए, सुरक्षित संपत्ति का पट्टा, वैध पट्टा नहीं होगा।"

11. निर्णय में विचार किया गया अगला मुद्दा यह था कि क्या मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट या जिलाधिकारी को अधिनियम की धारा 14 के तहत सुरक्षित ऋणदाता को सुरक्षित परिसंपत्ति का वास्तविक भौतिक कब्ज़ा देने का अधिकार है, भले ही सुरक्षित परिसंपत्ति वैध किरायेदार के कब्ज़े में हो। ऐसे मामलों में, यह निर्धारित किया गया है कि सुरक्षित ऋणदाता को अधिनियम की धारा 13 (2) के तहत नोटिस के साठ दिनों की समाप्ति के बाद उधारकर्ता के पट्टेदार से किराए सहित कोई भी देय या देय हो सकने वाला धन प्राप्त करने का अधिकार होगा। अपने कब्जे की रक्षा के लिए, पट्टेदार मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट या जिलाधिकारी के समक्ष सामग्री रखने और उन्हें संतुष्ट करने का हकदार होगा कि बंधक से पहले या बंधक के बाद, संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 65-ए की आवश्यकताओं के अनुसार एक वैध पट्टा बनाया गया था और संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 111 के अनुसार पट्टे का निर्धारण नहीं किया गया है और ऐसी स्थिति में, मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट या जिलाधिकारी, यथास्थिति, सुरक्षित ऋणदाता को सुरक्षित परिसंपत्ति का कब्ज़ा देने का आदेश पारित नहीं

अनुवादित

कर सकते। फैसले में प्रासंगिक टिप्पणियां इस प्रकार हैं:-

> "इसलिए, वैध पट्टे के तहत वैध कब्जे वाले पट्टेदार से सुरक्षित संपत्ति का कब्जा सरफेसी अधिनियम के प्रावधानों के तहत लेने की आवश्यकता नहीं है और इसलिए, मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट या जिलाधिकारी के पास सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के तहत ऐसे पट्टेदार से सुरक्षित संपत्ति का कब्जा लेने और उसे सुरक्षित लेनदार को सौंपने का कोई अधिकार नहीं है।"

12. **हर्षद गोवर्धन सोंडागर** में निर्धारित कानून का पालन सुप्रीम कोर्ट ने **विशाल एन. कलसारिया बनाम बैंक ऑफ इंडिया और अन्य** में किया था तथा इसे इस प्रकार और स्पष्ट किया गया है: -

> "कानून की यह स्थापित स्थिति है कि एक बार किरायेदारी सृजित हो जाने के बाद, किरायेदार को किराया नियंत्रण अधिनियम के प्रावधानों के तहत निर्धारित विधि की उचित प्रक्रिया का पालन करने के बाद ही बेदखल किया जा सकता है। सरफेसी अधिनियम के प्रावधानों का उपयोग करके किरायेदार को मनमाने ढंग से बेदखल नहीं किया जा सकता क्योंकि ऐसा करना किरायेदार को दिए गए संरक्षण के वैधानिक अधिकारों का हनन होगा। किराया नियंत्रण अधिनियम के तहत किरायेदारों को दिए गए वैधानिक अधिकारों को खत्म करने के लिए एक गैर-बाध्यकारी खंड (सरफेसी अधिनियम की धारा 35) का उपयोग नहीं किया जा सकता है। सरफेसी अधिनियम की धारा 35 में दिखाई देने वाली अभिव्यक्ति "वर्तमान में लागू कोई अन्य कानून" का अर्थ केंद्र और राज्य विधानसभाओं द्वारा बनाए गए प्रत्येक कानून पर विस्तारित नहीं हो सकता है। यह केवल उसी क्षेत्र में क्रियांवित होने वाले कानूनों पर लागू हो सकता है।"

13. वर्तमान मामले में, हालांकि यह तर्क दिया गया है कि पंजीकृत लीज विलेख ऋण की मंजूरी के बाद 15.03.2017 को निष्पादित की गई थी, लेकिन यह विवादित नहीं है कि यह एक समझौता ज्ञापन दिनाँक 10.5.2016 से पहले था जिसके तहत याचिकाकर्ता 25.5.2016 को या उससे पहले पट्टेदार के रूप में परिसर पर कब्जा करने का हकदार बन गया और पंजीकृत लीज समझौते में विशेष रूप से उल्लेख किया गया है कि किरायेदारी 1 जुलाई, 2016 से शुरू हुई थी। उपरोक्त तिथि से पट्टेदार के रूप में याचिकाकर्ता का कब्जा विवाद में नहीं है। इसलिए, हमारा मानना है कि याचिकाकर्ता का मामला श्रेणी (i) के अंतर्गत आएगा और याचिकाकर्ता के कब्जे को अधिनियम के प्रावधानों के तहत दूसरे प्रतिवादी द्वारा तब तक बाधित नहीं किया जा सकता जब तक कि पट्टे को किरायेदारी के अनुबंध या वैधानिक प्रावधानों के अनुसार वैध रूप से निर्धारित नहीं किया जाता है। साथ ही,

अनुवादित

द्वितीय प्रतिवादी ने धारा 13 (2) के तहत पहले ही नोटिस दे दिया था और तब से साठ दिन की अवधि समाप्त हो चुकी थी, वह सुरक्षित ऋणदाता के रूप में अपने अधिकारों के प्रवर्तन में याचिकाकर्ता से किराया वसूलने का हकदार हो गया था।

14. उपरोक्त तथ्यों के आधार पर, हमारा मत है कि याचिकाकर्ता को जिलाधिकारी या मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट के समक्ष अपना दावा प्रस्तुत करने के लिए वापस भेजने से कोई उद्देश्य पूरा नहीं होगा। इससे वाद में केवल विलंब होगा।

15. तदनुसार, जब तक कि पट्टे का निर्धारण कानून के अनुसार नहीं हो जाता, हम द्वितीय प्रतिवादी को याचिकाकर्ता से प्रश्नगत संपत्ति का वास्तविक भौतिक कब्जा लेने से रोकते हुए वर्तमान याचिका का निस्तारण करते हैं। हालांकि, याचिकाकर्ता अब से द्वितीय प्रतिवादी को किराया देने के लिए उत्तरदायी होगा और उक्त राशि उधारकर्ताओं द्वारा लिए गए ऋण के संबंध में उनकी बकाया देयता के समायोजन हेतु उसके द्वारा विनियोजित की जाएगी।

(2023) 6 ILRA 489

मूल अधिकार क्षेत्र

प्रयोग किसी गलती को सुधारने के लिए किया जा सकता है, लेकिन किसी दृष्टिकोण को प्रतिस्थापित करने के लिए नहीं-हालांकि समीक्षा आवेदक के वकील द्वारा यह तर्क दिया जा सकता है कि मास्टर प्लान, परियोजना की प्रकृति, अधिग्रहित भूमि के भूमि उपयोग जैसी कुछ सामग्री को मूल निर्णय (समीक्षा के तहत)

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 05.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती के समक्ष सुनीता अग्रवाल

माननीय न्यायमूर्ति विपिन चंद्र दीक्षित

रिट-सी संख्या 54341 वर्ष 2010

रिट-सी संख्या 55314 वर्ष 2011

रिट-सी संख्या 56451 वर्ष 2011

रिट-सी संख्या 7490 वर्ष 2012

रिट-सी संख्या 20719 वर्ष 20193

रिट-सी संख्या 11159 वर्ष 20193

रिट-सी संख्या 11157 वर्ष 20193

प्रबंधन समिति, डी.पी. पब्लिक स्कूल, गौतमबुद्ध नगर . याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के वकील: श्री रवि अग्रवाल, श्री पी.के. चौरसिया

प्रतिवादियों के वकील: सी.एस.सी., श्री रामेंद्र प्रताप सिंह, श्री सुरेश सिंह, श्री मनीष गोयल (वरिष्ठ अधिवक्ता)

सिविल कानून- सिविल प्रक्रिया संहिता-1908- धारा 114, आदेश 47 नियम 1- यह अच्छी तरह से स्थापित है कि अभिलेख पर स्पष्ट त्रुटि ऐसी त्रुटि नहीं होनी चाहिए जिसे खोजा और खोजा जाना चाहिए-समीक्षा की शक्ति का में न्यायालय द्वारा ध्यान में नहीं रखा गया था, हालांकि, उक्त तर्कों पर विचार करने के लिए हमें अभिलेख पर मौजूद सामग्री की सराहना करने की आवश्यकता होगी जिसे मूल आदेश में न्यायालय द्वारा कथित रूप से नजरअंदाज किया गया था और समीक्षा के दायरे में पुनर्विचार का उक्त प्रयोग अस्वीकार्य

अनुवादित

है-तत्काल मामले में समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करने का कोई अच्छा आधार नहीं है-इस न्यायालय का निर्णय और आदेश समीक्षा के तहत पक्षों के बीच अंतिम निर्णय प्राप्त होने के बाद, यदि न्यायालय द्वारा अभिलेख पर प्रस्तुत दलीलों को नजरअंदाज करने तथा अभिलेख पर प्रस्तुत अन्य सामग्री पर विचार करके किसी भिन्न निष्कर्ष पर पहुंचने में कोई गलती हुई हो, तो समीक्षा आवेदक के समक्ष एकमात्र उपाय सर्वोच्च न्यायालय में जाकर कथित गलत को समीक्षाधीन निर्णय में शामिल करना था-(पैरा 31, 32 और 39)

समीक्षा आवेदन खारिज। (ई-15)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. सहारा इंडिया कमर्शियल कॉर्पोरेशन लिमिटेड एवं अन्य बनाम स्टेट ऑफ यू.पी. एवं अन्य (2017) 11 एस.सी.सी. 339
2. कर्नल अवतार सिंह सेखों बनाम यू.ओ.आई. एवं अन्य 1980 (सप्लीमेंट) एस.सी.सी. 562
3. सो. चंद्र कांते एवं अन्य बनाम शेख हबीब (1975) 1 एससीसी 674
4. परसियन देवी बनाम सुमित्री देव (1997) 8 एससीसी 715
5. थुंगभद्रा इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम आंध्र प्रदेश सरकार एआईआर 1964 एससी 1372
6. लिली थॉमस बनाम यूओआई (2000) 6 एससीसी 224
7. हरि विष्णु कामथ बनाम अहमद इशाक एआईआर 1955 एससी 233
8. कमलेश वर्मा बनाम मायावती व अन्य (2013) 8 एससीसी 320
9. यूनियन ऑफ इंडिया बनाम संदूर मैंगनीज एंड आयरन ओर्स लिमिटेड व अन्य (2013) 8 एससीसी 337
10. शांति कंडक्टर्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम असम स्टेट इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड व अन्य (2020) 2 एससीसी 677
11. एस. मुरली सुंदरम बनाम जोतिबाई कन्नन एवं अन्य 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 185
12. पेरी कंसागरा बनाम स्मृति मदन कंसागरा (2019) 20 एससीसी 753
13. पंचम लाल पांडे बनाम नीरज कुमार मिश्रा एवं अन्य 2023 0 सुप्रीम (एससी) 123
14. भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड बनाम नेताजी क्रिकेट क्लब एवं अन्य (2005) 4 एससीसी 741
15. राजेंद्र सिंह बनाम उपराज्यपाल, अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह एवं अन्य (2005) 13 एससीसी 289
16. कृष्ण नंद शुक्ला बनाम उच्च शिक्षा निदेशक, इलाहाबाद एवं अन्य। (2019) 14 एससीसी 365
17. राधेश्याम (मृत) एलआरएस और अन्य बनाम स्टेट यूपी और अन्य 2011 (5) एससीसी 553
18. नंद किशोर गुप्ता और अन्य बनाम स्टेट यूपी और अन्य (2010) 10 एससीसी 282

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती सुनीता अग्रवाल द्वारा दिया गया)

1. प्रतिपक्षी के लिए पेश होने वाले वरिष्ठ अधिवक्ता श्री मनीष गोयल, श्री प्रवीण कुमार,

अनुवादित

श्री कमलजीत सिंह और श्री सुरेश सिंह द्वारा अधिवक्ता, श्री पी.के चौरसिया द्वारा सहायता प्राप्त और सुश्री सरिता शुक्ला को ग्राम मिर्जापुर की भूमि के अधिग्रहण से संबंधित समीक्षा आवेदनों पर प्रतिपक्षी के लिए पेश होने वाले रिट याचिकाकर्ताओं के लिए अधिवक्ता के रूप में सुना।

2. समीक्षा याचिकाओं का यह समूह भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 के तहत अधिग्रहण अधिसूचनाओं को चुनौती देने वाली सात रिट याचिकाओं की अनुमति देने में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 22.12.2016 के खिलाफ निर्देशित है, जिसमें राज्य को भूमि अधिग्रहण में उचित मुआवजे और पारदर्शिता के अधिकार के प्रावधानों के अनुसार याचिकाकर्ताओं को, पुनर्वास और पुनर्स्थापन अधिनियम, 2013 (इसके बाद "अधिनियम, 2013" के रूप में संदर्भित), अधिग्रहण अधिसूचना की तारीख, निर्णय की तारीख के समान 22.12.2016 के रूप में मानते हुए, मुआवजे का निर्धारण करने और भुगतान करने का निर्देश दिया गया है। प्रारंभिक अधिसूचना की तारीख को प्रश्नगत भूमि पर खड़े निर्माण के लिए मुआवजे के दावे की गणना करने का भी निर्देश दिया गया था।

3. उपर्युक्त निर्देश यह मानते हुए जारी किए गए थे कि भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 की धारा 4 और 6 के तहत अधिसूचनाएं खराब/त्रुटिपूर्ण थीं क्योंकि भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 की धारा 17(1) और 17(4) के तहत शक्ति का आह्वान करने के लिए राज्य सरकार का निर्णय, ऐसी शक्ति को लागू करने के लिए किसी भी सामग्री के बिना था। रिट याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ताओं के बयान पर, यह देखते हुए कि चुनौती के तहत अधिसूचनाओं के संदर्भ में विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी द्वारा कोई पंचाट नहीं दिया गया था, सहारा इंडिया कमर्शियल कॉर्पोरेशन लिमिटेड और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए [दीवानी अपील संख्या-11501 वर्ष 2011] 30.11.2016 को फैसला किया गया। यह निष्कर्ष निकाला गया कि चूंकि अधिग्रहण के लिए अधिसूचनाएं खराब थीं, इसलिए जोत धारक अधिनियम, 2013 के तहत मुआवजे के हकदार थे।

4. पुनर्विचार याचिका के गुण-दोष की जांच करने के लिए पक्षकारों के अधिवक्ताओं की प्रतिद्वंद्वी दलीलों में जाने से पहले, हम अवधारणा और समीक्षा के दायरे से संबंधित कानून पर चर्चा करना चाहेंगे ताकि यह आकलन किया जा सके कि क्या प्रस्तुत मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में समीक्षा की अनुमति है।

दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 114 न्यायालयों को समीक्षा की शक्ति प्रदान करती है; इसे निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया जा सकता है: -

"धारा 114। समीक्षा। - पूर्वोक्त के रूप में विषय में, कोई भी व्यक्ति जो खुद को व्यथित मानता है-

(ए) एक डिक्री या आदेश द्वारा, जिसमें से इस संहिता द्वारा अपील की अनुमति दी गई है, लेकिन जिसमें से कोई अपील नहीं की गई है;

(ख) किसी डिक्री या आदेश द्वारा, जिससे इस संहिता द्वारा अपील की अनुज्ञात नहीं है, या

(ग) लघु वाद न्यायालय से निर्देश पर एक निर्णय द्वारा, उस न्यायालय को निर्णय की

अनुवादित

समीक्षा के लिए आवेदन कर सकता है जिसने डिक्री पारित की है या आदेश दिया है, और न्यायालय उस पर ऐसा आदेश कर सकता है जैसा कि वह ठीक समझता है।

दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 47 नियम 1(1) निर्णय की समीक्षा के लिए आवेदन प्रदान करता है जो निम्नानुसार है: -

"आदेश XLVII नियम 1(1) फैसले की समीक्षा के लिए आवेदन:-

(1) कोई भी व्यक्ति जो स्वयं को व्यथित समझता है-

(ए) एक डिक्री या आदेश द्वारा जिसमें से एक अपील की अनुमति दी जाती है, लेकिन जिसमें से कोई अपील नहीं की गई है,

(ख) किसी डिक्री या आदेश द्वारा, जिसमें से किसी अपील की अनुमति नहीं है, या

(ग) लघु वाद न्यायालय से एक संदर्भ पर एक निर्णय द्वारा, और जो नए और महत्वपूर्ण मामले या सबूत की खोज से, जो उचित परिश्रम के प्रयोग के बाद उसके ज्ञान में नहीं था या उस समय उसके द्वारा पेश नहीं किया जा सकता था जब डिक्री पारित की गई थी या आदेश दिया गया था, या किसी अन्य रिकॉर्ड के पहली सरसरी नज़र में कुछ स्पष्ट गलती या त्रुटि के कारण पारित डिक्री या उसके खिलाफ किए गए आदेश की समीक्षा प्राप्त करने की इच्छा, उस न्यायालय को निर्णय की समीक्षा के लिए आवेदन कर सकती है जिसने डिक्री पारित की या आदेश दिया।

5. यह निर्णयों की एक श्रृंखला द्वारा तय किया जाता है कि पहले के आदेश की समीक्षा तब तक नहीं की जा सकती जब तक कि न्यायालय संतुष्ट न हो जाए कि आदेश में पहली सरसरी नज़र में प्रकट होने वाली महत्वपूर्ण/सुसंगत त्रुटि, इसके बल को कम करती है या ये न्याय की हत्या का परिणाम है। नियम के तहत अपेक्षित त्रुटि ऐसी होनी चाहिए जो रिकॉर्ड के पहली सरसरी नज़र में स्पष्ट हो और न कि एक त्रुटि जिसे बाहर निकाला जाना है और तलाशी ली जानी है। यह अनजाने की त्रुटि होनी चाहिए। समीक्षा की शक्ति का प्रयोग किसी गलती के सुधार के लिए किया जा सकता है लेकिन किसी दृष्टिकोण को प्रतिस्थापित करने के लिए नहीं। इस विषय पर दो विचारों की मात्र संभावना समीक्षा का आधार नहीं है। एक त्रुटि जो स्वयं स्पष्ट नहीं है और तर्क की प्रक्रिया द्वारा पता लगाया जाना है, उसे शायद ही रिकॉर्ड पर पहली सरसरी नज़र में स्पष्ट त्रुटि कहा जा सकता है जो न्यायालय को समीक्षा की अपनी शक्ति का प्रयोग करने के लिए उचित ठहराता है। एक समीक्षा किसी भी तरह से भेस में अपील नहीं है जिससे एक गलत निर्णय को फिर से सुना और सही किया जाता है, लेकिन केवल पेटेंट त्रुटि के लिए दाखिल किया जाता है है।

कर्नल अवतार सिंह सेखों बनाम भारत संघ और अन्य में, यह माना गया था कि समीक्षा एक नियमित प्रक्रिया नहीं है। सोवचंद्र कांटे और एक अन्य बनाम शेख हबीब में पिछले निर्णय पर भरोसा करते हुए, यह नोट किया गया था कि: -

"एक फैसले की समीक्षा एक गंभीर कदम है और इसे अनिच्छा से सहारा लेना केवल तभी उचित है जब एक स्पष्ट चूक या पेटेंट गलती या गंभीर त्रुटि जैसी गंभीर त्रुटि न्यायिक गिरावट से पहले हुई हो। ... वर्तमान चरण एक

अनुवादित

उनछुई जमीन नहीं है, बल्कि पहले के आदेश की समीक्षा है जिसमें अंतिमता की सामान्य विशेषता है।

पारशन देवी बनाम सुमित्री देवी में आदेश 47 नियम 1 सी.पी.सी. के दायरे और क्षेत्र पर विचार करते हुए, तुंगभद्रा इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम आंध्र प्रदेश सरकार में सर्वोच्च न्यायालय के पहले के फैसले का उल्लेख करते हुए, पैराग्राफ '7' से '9' में निम्नानुसार नोट किया गया था: -

"7. यह अच्छी तरह से तय है कि समीक्षा कार्यवाही को सी.पी.सी. के आदेश 47 नियम 1 के दायरे और क्षेत्र तक सख्ती से सीमित किया जाना चाहिए। तुंगभद्रा इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम आंध्र प्रदेश सरकार (1965 (5) एस.सी.आर 174 @ 186) में, इस न्यायालय ने कहा:

'11. हालांकि, हम इस बात से चिंतित नहीं हैं कि क्या सितंबर 1959 के आदेश में बयान कि मामले में कानून का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न शामिल नहीं है, "रिकॉर्ड के पहली सरसरी नज़र में स्पष्ट त्रुटि" है। तथ्य यह है कि पहले के अवसर पर कि न्यायालय ने तथ्यों की एक समान स्थिति पर अवधारित किया था कि कानून का एक महत्वपूर्ण प्रश्न उत्पन्न हुआ था, अपने आप में निर्णायक नहीं होगा, क्योंकि पहले का आदेश स्वयं गलत हो सकता है। इसी तरह, भले ही बयान गलत था, यह इस बात का पालन नहीं करेगा कि यह "रिकॉर्ड पर पहली सरसरी नज़र में स्पष्ट त्रुटि" थी, क्योंकि एक अंतर है जो वास्तविक है, हालांकि यह हमेशा केवल एक गलत निर्णय और एक फैसले के बीच प्रदर्शन करने में सक्षम नहीं हो सकता है जिसे "स्पष्ट त्रुटि" द्वारा दूषित किया जा सकता है। एक समीक्षा किसी भी तरह से भेस में अपील नहीं है जिससे एक गलत निर्णय को फिर से सुना जाता है, सही किया जाता है। लेकिन केवल पेटेंट त्रुटि के लिए दाखिल किया जाता है।

8. फिर से, श्रीमती मीरा भांजिया बनाम श्रीमती निर्मला कुमारी चौधरी (1995 (1) एस.सी.सी. 170) में, अभिराम तालेश्वर शर्मा बनाम अभिराम पिशक शर्मा और अन्य (1979 (4) एस.सी.सी. 389) के एक अंश को अनुमोदन के साथ उद्धृत करते हुए, इस न्यायालय ने एक बार फिर कहा कि समीक्षा कार्यवाही अपील के माध्यम से नहीं है और इसे सी.पी.सी. के आदेश 47 नियम 1 के दायरे और क्षेत्र तक सख्ती से सीमित रखना होगा।

9. सी.पी.सी. के आदेश 47 नियम 1 के तहत एक निर्णय अन्य बातों के साथ-साथ समीक्षा के लिए खुला हो सकता है यदि रिकॉर्ड के पहली सरसरी नज़र में कोई गलती या स्पष्ट त्रुटि है। एक त्रुटि जो स्वयं स्पष्ट नहीं है और तर्क की प्रक्रिया द्वारा पता लगाया जाना है, शायद ही रिकॉर्ड के पहली सरसरी नज़र में स्पष्ट त्रुटि कहा जा सकता है जो अदालत को आदेश 47 नियम 1 सी.पी.सी. के तहत अपनी शक्ति समीक्षा का प्रयोग करने के लिए उचित ठहराती है। सी.पी.सी. के आदेश 47 नियम 1 के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए, एक गलत निर्णय को "फिर से सुनने और सुधारने" की अनुमति नहीं है। एक समीक्षा याचिका, यह याद रखना चाहिए कि इसका सीमित उद्देश्य है और इसे "भेस में अपील" होने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

लिली थॉमस बनाम भारत संघ 6 में, पैराग्राफ '56' और '58' में यह देखा गया था कि: -

अवधारित

"56. इसलिए, यह इस प्रकार है कि समीक्षा की शक्ति का प्रयोग गलती के सुधार के लिए किया जा सकता है और किसी दृष्टिकोण को प्रतिस्थापित करने के लिए नहीं। ऐसी शक्तियों का प्रयोग शक्ति के प्रयोग से संबंधित क़ानून की सीमाओं के भीतर किया जा सकता है। समीक्षा को भेस में अपील नहीं माना जा सकता है। इस विषय पर केवल दो विचारों की संभावना समीक्षा का आधार नहीं है ..... xxxxxxxxxxxx .....

58. ..... xxxxxxxx ..... आदेश XLVII नियम 1 सि.प्र.सं. में दिखाई देने वाले किसी भी अन्य पर्याप्त कारण का अर्थ 'नियम में निर्दिष्ट लोगों के समान कम से कम आधार पर पर्याप्त कारण' होना चाहिए, जैसा कि छज्जू राम बनाम नेकी राम ए.आई.आर. 1922 पी.सी. 112 में अवधारित किया गया था और इस न्यायालय द्वारा मोरोन मार आधारहीन कैथोलिक और अन्य बनाम मोस्ट रेव मार पौलोज अथानासियस और अन्य ए.आई.आर. 1954 एस.सी. 526 में अनुमोदित किया गया था। कार्यवाही के पहली सरसरी नज़र में स्पष्ट त्रुटि एक त्रुटि है जो कानून के प्रावधानों की स्पष्ट अज्ञानता या अवहेलना पर आधारित है। टीसी बसप्पा बनाम नागप्पा और अन्य मामले में इस न्यायालय ने कहा कि इस तरह की त्रुटि एक त्रुटि है जो एक स्पष्ट त्रुटि है और केवल गलत निर्णय नहीं है।

हरि विष्णु कामथ बनाम अहमद इसहाक में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को पूर्वोक्त निर्णय [लिली थॉमस (उपरोक्त)] के पैराग्राफ '58' में नोट किया गया था कि: -

"58. .....xxxxxx.....

23. ..... यह आवश्यक है कि यह केवल एक त्रुटि से अधिक कुछ होना चाहिए; यह एक ऐसा होना चाहिए जो रिकॉर्ड के पहली सरसरी नज़र में प्रकट होना चाहिए। इस मामले के संदर्भ में वास्तविक कठिनाई, हालांकि सिद्धांत के बयान में इतनी नहीं है जितनी कि किसी विशेष मामले के तथ्यों के लिए इसके आवेदन में। कब कोई त्रुटि, मात्र त्रुटि बनकर रह जाती है और अभिलेख के पहली सरसरी नज़र में स्पष्ट रूप से कला त्रुटि बन जाती है? ..... xxxx....."

उपरोक्त सभी उल्लेखित निर्णयों को कमलेश वर्मा बनाम मायावती और अन्य में पैराग्राफ '17', '18' और '19' में निम्नानुसार रखने के लिए नोट किया गया है: -

"17. एक समीक्षा याचिका में, यह न्यायालय के लिए खुला नहीं है कि वह सबूतों का पुनर्मूल्यांकन करे और एक अलग निष्कर्ष पर पहुंचे, भले ही वह संभव हो। साक्ष्य का मूल्यांकन पर पहुंचे निष्कर्ष को समीक्षा याचिका में तब तक नहीं माना जा सकता जब तक कि यह नहीं दिखाया जाता है कि रिकॉर्ड के पहली सरसरी नज़र में या किसी कारण से कोई स्पष्ट त्रुटि है। इस न्यायालय ने केरल राज्य विद्युत बोर्ड बनाम हाईटेक इलेक्ट्रोथर्मिक्स एंड हाइड्रोपावर लिमिटेड और अन्य, (2005)6 एस.सी.सी. 651 में, निम्नानुसार अवधारित किया:

"10. ..... एक समीक्षा याचिका में यह इस न्यायालय के लिए विकल्प खुला नहीं है कि वह सबूतों का पुनर्मूल्यांकन करे और एक अलग निष्कर्ष पर पहुंचे, भले ही यह संभव हो। बोर्ड के अधिवक्ता ने हमें प्रभावित करने की

अनुवादित

कोशिश की कि पक्षों के बीच आदान-प्रदान किए गए पत्राचार ने इस न्यायालय द्वारा पहुंचे निष्कर्ष का समर्थन नहीं किया। हमें डर है कि इस तरह की दलील को समीक्षा याचिका में आगे बढ़ाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। रिकॉर्ड पर साक्ष्य का मूल्यांकन पूरी तरह से अपीलीय अदालत के अधिकार क्षेत्र में है। यदि पेश किए गए साक्ष्य का मूल्यांकन पर, अदालत तथ्य की खोज दर्ज करती है और निष्कर्ष पर पहुंचती है, तो उस निष्कर्ष को समीक्षा याचिका में तब तक चुनौती नहीं दी जा सकती जब तक कि यह नहीं दिखाया जाता है कि रिकॉर्ड के पहली सरसरी नज़र में या किसी कारण से स्पष्ट त्रुटि है। हमारे समक्ष यह तर्क नहीं दिया गया है कि अभिलेख में कोई स्पष्ट त्रुटि है। समीक्षा याचिकाकर्ता को साक्ष्य का मूल्यांकन के प्रश्न पर बहस करने की अनुमति देना एक समीक्षा याचिका को भेष में अपील में बदलने के समान होगा।

18. समीक्षा एक मूल मामले की फिर से सुनवाई नहीं है। समीक्षा की शक्ति को अपीलीय शक्ति के साथ भ्रमित नहीं किया जा सकता है जो एक अधीनस्थ न्यायालय द्वारा की गई सभी त्रुटियों को ठीक करने के लिए एक उच्चतर न्यायालय को सक्षम बनाता है। पुराने और खारिज किए गए तर्क की पुनरावृत्ति निष्कर्ष वाले निर्णयों को फिर से खोलने के लिए पर्याप्त नहीं है। जैन स्टूडियोज लिमिटेड बनाम शिन सैटेलाइट पब्लिक कंपनी लिमिटेड, (2006)5 एस.सी.सी. 501 में इस न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी:

"*11. जहां तक योग्यता के आधार पर आवेदक की शिकायत का संबंध है, प्रतिद्वंद्वी के अधिवक्ता यह प्रस्तुत करने में सही है कि वस्तुतः आवेदक उसी राहत की मांग करता है जो मुख्य मामले पर बहस के समय मांगी गई थी और अस्वीकार कर दी गई थी। एक बार इस तरह की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिए जाने के बाद, कोई समीक्षा याचिका नहीं होगी जो मूल मामले की पुनः सुनवाई को बदल दे। यह स्थापित कानून है कि समीक्षा की शक्ति को अपीलीय शक्ति के साथ भ्रमित नहीं किया जा सकता है जो एक अधीनस्थ न्यायालय द्वारा की गई सभी त्रुटियों को ठीक करने के लिए एक उच्चतर न्यायालय को सक्षम बनाता है। यह किसी मूल मामले की पुनरावृत्ति नहीं है। पुराने और खारिज किए गए तर्क की पुनरावृत्ति निष्कर्ष वाले निर्णयों को फिर से खोलने के लिए पर्याप्त नहीं है। समीक्षा की शक्ति का प्रयोग अत्यधिक सावधानी, और सतर्कता के साथ और केवल असाधारण मामलों में ही किया जा सकता है।*

12. जब आवेदक द्वारा मध्यस्थ नियुक्त करने की प्रार्थना उस समय की गई थी जब मध्यस्थता याचिका पर सुनवाई हुई थी और उसे खारिज कर दिया गया था, तो समीक्षा याचिका दायर करके अप्रत्यक्ष विधि द्वारा वही राहत नहीं मांगी जा सकती है। मेरी राय में ऐसी याचिका 'दूसरी पारी' की प्रकृति की है जिसकी अनुमति नहीं दी जा सकती और यह मंजूर नहीं की जा सकती।

19. समीक्षा कार्यवाही अपील के माध्यम से नहीं है और इसे सी.पी.सी. के आदेश XLVII नियम 1 के दायरे और क्षेत्र तक सख्ती से सीमित किया जाना चाहिए। समीक्षा क्षेत्राधिकार में, निर्णय के दृष्टिकोण से केवल असहमति उसी को लागू करने का आधार नहीं हो सकती

अप्रमाणित

है। जब तक बिंदु पहले से ही निपटा दिया जाता है और उत्तर दिया जाता है, तब तक पक्ष इस आक्षेपित निर्णय को चुनौती देने के हकदार नहीं हैं कि समीक्षा क्षेत्राधिकार के तहत एक वैकल्पिक दृष्टिकोण संभव है।

समीक्षा के सिद्धांतों को पैराग्राफ '20' में संक्षेप में निम्नानुसार किया गया है: -

"20. इस प्रकार, उपरोक्त के मद्देनजर, समीक्षा के निम्नलिखित आधार क़ानून द्वारा निर्धारित किए गए अनुसार बनाए रखने योग्य हैं:

20.1 समीक्षा कब अनुरक्षणीय होगी:-

(i) नए और महत्वपूर्ण मामले या साक्ष्य की खोज, जो उचित परिश्रम के प्रयोग के बाद, याचिकाकर्ता के ज्ञान में नहीं था या उसके द्वारा प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था;

(ii) रिकॉर्ड के पहली सरसरी नज़र में स्पष्ट गलती या त्रुटि; (iii) कोई अन्य पर्याप्त कारण। छज्जू राम बनाम नेकी, ए.आई.आर. 1922 पी.सी. 112 में "कोई अन्य पर्याप्त कारण" शब्द की व्याख्या की गई है और इस न्यायालय द्वारा मोरन मार बेसेलियोस कैथोलिकोस बनाम मोस्ट रेव मार पौलोज अथानासियस और अन्य, (1955) 1 एस.सी.आर 520 में अनुमोदित किया गया है, जिसका अर्थ है "नियम में निर्दिष्ट लोगों के अनुरूप कम से कम आधार पर पर्याप्त कारण"। इन्हीं सिद्धांतों को यूनियन ऑफ इंडिया बनाम संदूर मैंगनीज एंड आयरन ऑरेस लिमिटेड और अन्य, जेटी 2013 (8) एस.सी. 275 में दोहराया गया है।

20.2 जब समीक्षा अनुरक्षणीय नहीं होगी:-

(i) पुराने और खारिज किए गए तर्क की पुनरावृत्ति निष्कर्ष वाले अधिनिर्णयों को फिर से खोलने के लिए पर्याप्त नहीं है।

(ii) असंगत आयात की छोटी-मोटी चूकें।

(iii) पुनरीक्षण कार्यवाहियों को मामले की मूल सुनवाई के बराबर नहीं माना जा सकता।

(iv) समीक्षा तब तक अनुरक्षणीय नहीं है जब तक कि आदेश में प्रकट होने वाली वास्तविक त्रुटि इसकी ध्वनि को कम न कर दे अथवा इसके परिणामस्वरूप न्याय की हत्या न हो जाए।

(v) एक समीक्षा किसी भी तरह से भेस में अपील नहीं है जिससे एक गलत निर्णय को फिर से सुना जाता है और सही किया जाता है लेकिन केवल पेटेंट त्रुटि के लिए निहित है।

(vi) इस विषय पर केवल दो मतों की संभावना समीक्षा का आधार नहीं हो सकती।

(vii) अभिलेख में स्पष्ट त्रुटि ऐसी त्रुटि नहीं होनी चाहिए जिसे ढूंढकर खोजना पड़े।

(viii) अभिलेख में साक्ष्य का मूल्यांकन पूर्णत: अपीलीय न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में आता है, इसे पुनर्विचार याचिका में प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

(ix) समीक्षा बनाए रखने योग्य नहीं है जब मुख्य मामले पर बहस के समय मांगी गई उसी राहत को अस्वीकार कर दिया गया था।

6. इसी विचार को सर्वोच्च न्यायालय ने भारत संघ बनाम संदूर मैंगनीज और आयरन अयस्क लिमिटेड और अन्य में एक कथित निर्णय में दोहराया है और उसमें यह कहा गया था कि समीक्षाधीन निर्णय में अपेक्षित त्रुटि वह होनी चाहिए जो रिकॉर्ड के पहली सरसरी नज़र में स्पष्ट है।

अधिवक्ता

यह तय है कि समीक्षा क्षेत्राधिकार में, निर्णय के दृष्टिकोण से केवल असहमति इसे लागू करने का आधार नहीं हो सकती है। जब तक बिंदु पहले से ही निपटा दिया जाता है और उत्तर दिया जाता है, तब तक पक्ष इस आक्षेपित निर्णय को चुनौती देने के हकदार नहीं हैं कि समीक्षा क्षेत्राधिकार के तहत एक वैकल्पिक दृष्टिकोण संभव है। समीक्षा क्षेत्राधिकार में, न्यायालय केवल तभी हस्तक्षेप करेगा जब कोई स्पष्ट चूक या पेटेंट गलती हो या जब आक्षेपित निर्णय में कोई गंभीर त्रुटि हुई हो। समीक्षा आवेदक को उसी बिंदु पर फिर से बहस करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

7. शांति कंडक्टर्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम असम राज्य विद्युत बोर्ड और अन्य में, एक ही विचार दोहराया गया है।

परशन देवी (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का उल्लेख करते हुए, यह देखा गया कि समीक्षा का दायरा सीमित है और समीक्षा की आड़ में, याचिकाकर्ता को उन प्रश्नों को फिर से शुरू करने और फिर से बहस करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है, जिन्हें पहले ही संबोधित और तय किया जा चुका है।

8. एस. मुरली सुंदरम बनाम जोठीबाई कन्नन और अन्य में, सर्वोच्च न्यायालय ने शांति कंडक्टर्स प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त) और पेरी कंसागरा बनाम स्मृति मदन कंसागर में उपर्युक्त निर्णयों पर विचार करते हुए कहा है कि एक त्रुटि जिसे तर्क की प्रक्रिया द्वारा पता लगाने की आवश्यकता है, उसे शायद ही रिकॉर्ड पर त्रुटि कहा जा सकता है। पेरी कंसागरा (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणी को नोट किया गया है कि धारा 114 सी.पी.सी. सपठित आदेश 47 नियम 1 के तहत एक आवेदन में समीक्षा क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय, समीक्षा न्यायालय अपने स्वयं के आदेश पर अपील में नहीं बैठता है। कानून में मामले की फिर से सुनवाई की अनुमति नहीं है।

सी.पी.सी. के आदेश 47 नियम 1 के तहत समीक्षा क्षेत्राधिकार के प्रयोग से संबंधित समीक्षा की शक्ति और सिद्धांतों के प्रयोग पर निर्णयों की एक श्रृंखला पर विचार करने के बाद, सर्वोच्च न्यायालय ने पेरी कंसागरा (उपरोक्त) में सारांशित सिद्धांतों को निम्नानुसार नोट किया है: -

"(i) समीक्षा कार्यवाही अपील के माध्यम से नहीं होती है और इसे सी.पी.सी. के आदेश 47 नियम 1 के दायरे और क्षेत्र तक सख्ती से सीमित होना चाहिए।

(ii) समीक्षा की शक्ति का प्रयोग तब किया जा सकता है जब रिकॉर्ड के तथ्य पर कुछ गलती या स्पष्ट त्रुटि पाई जाती है। लेकिन रिकॉर्ड के पहली सरसरी नज़र में त्रुटि एक ऐसी त्रुटि होनी चाहिए जो केवल रिकॉर्ड को देखने पर किसी को स्ट्राइक करनी चाहिए और उन बिंदुओं पर तर्क की किसी लंबी प्रक्रिया की आवश्यकता नहीं होगी जहां दो राय हो सकती हैं।

(iii) समीक्षा की शक्ति का प्रयोग इस आधार पर नहीं किया जाए कि निर्णय गुणावगुण के आधार पर त्रुटिपूर्ण था।

(iv) पुनवलोकन की शक्ति का प्रयोग किसी भी पर्याप्त कारण के लिए भी किया जा सकता है जो न्यायालय या अधिवक्ता द्वारा तथ्य या कानून की गलत धारणा को शामिल करने के लिए पर्याप्त है।

(v) सिद्धांत एक्टस क्यूरी नेमिनेम ग्रेवाबिट को लागू करने के माध्यम से समीक्षा के लिए एक आवेदन की आवश्यकता हो सकती है।

अनुवादित

हम आगे उन निर्णयों पर ध्यान दे सकते हैं जो पक्षों के अधिवक्ताओं द्वारा अपने प्रतिद्वंद्वी सबमिशन का समर्थन करने के लिए भरोसा करते हैं।

9. विरोधी पक्षों/रिट याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ताओं ने पंचम लाल पांडे बनाम नीरज कुमार मिश्रा और सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है कि समीक्षा की शक्ति प्रदान किए गए निर्णयों की शुद्धता की जांच करने के लिए नहीं है, बल्कि त्रुटि, यदि कोई हो, को ठीक करने के लिए है, जो बिना यह सोचे कि क्या व्यक्त किए गए से अलग, किसी अन्य राय की संभावना है, आदेश/रिकॉर्ड के पहली सरसरी नज़र में दिखाई दे रही है।

10. समीक्षा आवेदक के लिए उपस्थित होने वाले वरिष्ठ अधिवक्ता ने अपने सबमिशन का समर्थन करने के लिए तीन निर्णयों पर भरोसा किया कि प्रस्तुत मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, समीक्षा की अनुमति है।

11. भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड बनाम नेताजी क्रिकेट क्लब और अन्य में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को हमारे समक्ष यह प्रस्तुत करने के लिए रखा गया है कि संहिता के आदेश 47 नियम 1 के तहत, समीक्षा के लिए आवेदन न केवल एक नए और महत्वपूर्ण साक्ष्य की खोज पर या जब रिकॉर्ड के पहली सरसरी नज़र में कोई त्रुटि मौजूद हो, बल्कि यह भी कि यदि वह कुछ गलती के कारण है या "किसी अन्य पर्याप्त कारण" के लिए आवश्यक है। न्यायालय की ओर से गलती से आदेश की समीक्षा की भी आवश्यकता हो सकती है। समीक्षा के लिए एक आवेदन भी बनाए रखने योग्य होगा यदि इसके लिए पर्याप्त कारण मौजूद है। पर्याप्त कारण क्या होगा, यह मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। संहिता के आदेश 47 नियम 1 में "पर्याप्त कारण" शब्द इतने व्यापक हैं कि किसी न्यायालय या यहां तक कि एक अधिवक्ता द्वारा तथ्य या कानून की गलत धारणा को शामिल किया जा सकता है। समीक्षा के लिए एक आवेदन सिद्धांत "एक्टस क्यूरी नेमिनेम ग्रेवाबिट" को लागू करने के माध्यम से आवश्यक हो सकता है।

यह तर्क दिया गया था कि समीक्षा की शक्ति पर सीमा का नियम सार्वभौमिक नहीं है। पैराग्राफ '52' में लिली थॉमस (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय की अवलोकन, जैसा कि बीसीसीआई (उपरोक्त) में पूर्वोक्त निर्णय के पैरा 92 में उल्लेख किया गया है, हमारे सामने यह दावा करने के लिए रखा गया है कि यदि न्यायालय पाता है कि समीक्षा याचिका में बताई गई त्रुटि एक गलती के तहत थी और पहले का निर्णय पारित नहीं किया गया होता, लेकिन गलत धारणा के लिए जो वास्तव में मौजूद नहीं था और इसके अपराध का परिणाम न्याय की हत्या होगी जो न्यायालय को त्रुटि को सुधारने से नहीं रोकेगी।

बीसीसीआई (उपरोक्त) में निकाले गए लिली थॉमस (उपरोक्त) में प्रासंगिक पैराग्राफ '52' यहां नोट किया गया है: -

"52. "समीक्षा" शब्द का शब्दकोश अर्थ "सुधार या सुधार की दृष्टि से फिर से कुछ पेश करने का कार्य" है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि समीक्षा एक क़ानून का निर्माण है। पटेल नरशी ठाकेर्षि बनाम प्रद्युमन

अनुवादित

सिंहजी अर्जुन सिंहजी, ए.आई.आर. 1970 एस.सी. 1273 में इस न्यायालय ने माना कि समीक्षा की शक्ति एक अंतर्निहित शक्ति नहीं है। इसे कानून द्वारा या तो विशेष रूप से या आवश्यक निहितार्थ द्वारा प्रदान किया जाना चाहिए। समीक्षा भी भेस में अपील नहीं है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि न्याय एक ऐसा गुण है जो सभी बाधाओं को पार करता है और कानून के नियम या तकनीकी प्रक्रियाएं, न्याय प्रशासन के रास्ते में नहीं आ सकते। कानून को न्याय के आगे झुकना होगा। यदि न्यायालय को पता चलता है कि समीक्षा याचिका में बताई गई त्रुटि एक गलती के तहत थी और पहले का निर्णय पारित नहीं किया गया होता, लेकिन गलत धारणा के लिए, जो वास्तव में मौजूद नहीं थी और इसके अपराध के परिणामस्वरूप न्याय की हत्या हो जाएगी, तो कोई भी अदालत को त्रुटि को सुधारने से नहीं रोकेगा।' (महत्त्व सन्निविष्ट)

12. राजेंद्र सिंह बनाम उप-राज्यपाल, अंडमान और निकोबार द्वीप समूह और अन्य में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया गया है कि यह तर्क देने के लिए कि कानून अच्छी तरह से तय है कि अपने स्वयं के आदेश की न्यायिक समीक्षा की शक्ति पूर्ण क्षेत्राधिकार के प्रत्येक न्यायालय में निहित है जो न्याय की हत्या को रोकने के लिए सभी त्रुटियों को ठीक करने के लिए फैली हुई है। न्यायालय को अपने स्वयं के पहले के आदेश की समीक्षा करने में संकोच नहीं करना चाहिए जब रिकॉर्ड के पहली सरसरी नज़र में कोई त्रुटि मौजूद हो और उचित मामलों में न्याय के हित की मांग हो। यह तर्क दिया गया था कि उक्त मामले के तथ्यों में, सर्वोच्च न्यायालय ने नोट किया था कि उच्च न्यायालय ने मूल निर्णय में पक्षों द्वारा भरोसा किए गए दस्तावेजों की अनदेखी करने में गलती की थी। इस प्रकार, समीक्षा क्षेत्राधिकार को उस मामले के तथ्यों में उपलब्ध माना गया था क्योंकि मूल निर्णय रिकॉर्ड के पहली सरसरी नज़र में स्पष्ट त्रुटि और प्रासंगिक दस्तावेजों पर विचार न करने का एक स्पष्ट मामला पाया गया था। इस प्रकार, यह जोरदार आग्रह किया गया था कि ऐसे मामले में जहां कई महत्वपूर्ण मुद्दों को उठाया गया था और दस्तावेजों को रखा गया था, उच्च न्यायालय उस पर विचार नहीं करने के मामले में त्रुटि किया था। त्रुटि को ठीक करने के लिए समीक्षा क्षेत्राधिकार को लागू करना होगा। शीर्ष न्यायालय द्वारा उसमें यह नोट किया गया था कि मूल निर्णय जो कई महत्वपूर्ण मुद्दों से निपटता और निर्णय नहीं करता था, जो उचित विचार करने पर अपीलकर्ता के दावे को सही ठहरा सकता है, न्याय की हत्या को रोकने के लिए उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति के प्रयोग में समीक्षा की जा सकती थी।

13. अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा भरोसा किया गया सर्वोच्च न्यायालय का तीसरा निर्णय कृष्ण नंद शुक्ला बनाम उच्च शिक्षा निदेशक, इलाहाबाद और अन्य है, जिसमें आग्रह किया गया है कि सर्वोच्च न्यायालय ने अन-आख्यापक वाले आदेश द्वारा समीक्षा आवेदन को खारिज करने में उच्च न्यायालय के आदेश पर आपत्ति जताई है। इस प्रकार, समीक्षा आवेदन को खारिज करने के आदेश को रद्द कर दिया गया है और रिकॉर्ड पर दलीलों

अनुवादित

के आधार पर नए सिरे से निर्णय लेने के लिए मामले को उच्च न्यायालय में भेज दिया गया था। ऐसा करते समय, सर्वोच्च न्यायालय ने इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए पक्षों के दावे के गुण-दोष पर गौर किया था कि उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता के मामले के तथ्यों और उसमें दी गई दलीलों की अनदेखी करने में गलती की है। रिट याचिका पर निर्णय लेने में उच्च न्यायालय द्वारा की गई त्रुटि को हालांकि एक विस्तृत समीक्षा आवेदन दायर करके न्यायालय के ध्यान में लाया गया था, लेकिन समीक्षा आवेदन में उठाए गए विशिष्ट आधारों का विज्ञापन किए बिना एक अन-आख्यापक आदेश द्वारा इसे खारिज कर दिया गया था। इसमें यह माना गया था कि रिट याचिका में दलीलों का हवाला दिए बिना उच्च न्यायालय के फैसले को बरकरार नहीं रखा जा सकता है, यानी जवाबी हलफनामे और प्रत्युत्तर हलफनामे में दलील को बरकरार नहीं रखा जा सकता है।

14. सी.पी.सी. के आदेश 47 नियम 1 सपठित धारा 114 के तहत समीक्षा क्षेत्राधिकार के दायरे और क्षेत्र पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानूनी सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, हम पक्षकारों के अधिवक्ताओं के तर्कों को प्रस्तुत मामले के तथ्यों में इसका विश्लेषण करने के लिए आगे बढ़ रहे हैं।

15. निर्णय की समीक्षा करते हुए, समीक्षा आवेदक के वरिष्ठ अधिवक्ता यह प्रस्तुत करेंगे कि मामले के केवल कुछ तथ्यों को नोट किया गया था और न्यायालय द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए चर्चा की गई थी कि भूमि अधिग्रहण अधिनियम 1894 की धारा 17(1) और 17(4) के तहत शक्तियों को लागू करने के लिए राज्य सरकार के समक्ष कोई तथ्य मौजूद नहीं था। तात्कालिकता प्रावधान के आह्वान को राज्य द्वारा उचित नहीं ठहराया जा सकता था और इस तरह, भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 4 और 6 के तहत अधिसूचनाओं को खराब माना गया था। पूर्वोक्त निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए न्यायालय द्वारा ध्यान में रखे गए एकमात्र कारकों को यहां नोट किया जा रहा है: -

(i) धारा 17 के अधीन सुनवाई के अवसर के वितरण और शक्तियों के प्रयोग की अपेक्षा के साथ संतुष्टि दर्ज करने वाले विकास प्राधिकरण, राज्य और जिला मजिस्ट्रेट के बीच पत्रादिश;

(ii) दिनांक 5-5-2010 का एक कार्यालय नोट जिसमें तात्कालिकता को लागू करने का औचित्य दिया गया है।

यह तर्क दिया गया था कि उपर्युक्त दस्तावेजों में तथ्यों के पाठ को न्यायालय द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए नोट किया गया था कि दिनांक 5.5.2010 के कार्यालय नोट के अनुसार किसानों को सुनवाई का अवसर देने के लिए केवल कारण दिए गए थे: - (i) कि अधिग्रहित की जाने वाली प्रस्तावित भूमि के अतिक्रमण की संभावना थी; (ii) सुनवाई के अवसर से निष्पादन में विलंब हो सकता है; (iii) कि अधिनियम की धारा 17 के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करने के लिए जिला मजिस्ट्रेट की सिफारिश की गई थी।

16. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा था कि उपर्युक्त तीन कारण तात्कालिकता को लागू करने के लिए कानूनी रूप से टिकाऊ/पुख्ता

अनुवादित

नहीं थे:- (i) भूमि याचिकाकर्ताओं के कब्जे में थी, जिसमें किसी भी अतिक्रमण/कब्जे का सवाल ही नहीं उठता था; (ii) जिला मजिस्ट्रेट/विकास प्राधिकरण द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट में ऐसे किसी तथ्य का उल्लेख नहीं किया गया है; (iii) धारा 5 के अंतर्गत यथा विचारित सुनवाई के अवसर पर आपत्ति दायर करने के मामले में 30 दिनों की अवधि का प्रावधान है। इस प्रकार दायर की गई आपत्ति का निर्णय संबंधित प्राधिकरण द्वारा उचित समय के भीतर हमेशा किया जा सकता है और यदि प्राधिकरण स्वयं आपत्ति पर निर्णय लेने में असमर्थ है, तो राज्य के लिए यह तर्क देना खुला नहीं था कि सुनवाई का ऐसा अवसर नहीं दिया जाना चाहिए क्योंकि इससे अधिग्रहण में देरी होगी।

इस न्यायालय द्वारा तैयार की गई राय यह थी कि भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 5 का उद्देश्य ही विफल हो जाएगा यदि अधिकारियों की ओर से चूक के लिए, उचित समय के भीतर आपत्ति का फैसला नहीं करने में, अधिनियम की धारा 5 के अनुपालन से बचा जा सकता है। जिला मजिस्ट्रेट ने दिनांक 5.3.2010 के अपने पत्र (निर्णय में उल्लिखित) में तात्कालिकता खंड को लागू करने के किसी भी कारण का खुलासा नहीं किया और केवल यह कहा कि वह धारा 17 के तहत शक्ति के आह्वान के प्रस्ताव से संतुष्ट थे।

17. उपरोक्त कहने के बाद, न्यायालय ने मूल निर्णय में राधेश्याम (मृत) द्वारा एलआरएस और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में पैराग्राफ '55' से '59' में सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियों को नोट करने के लिए आगे बढ़ा है ताकि अधिग्रहण अधिसूचनाओं के अंतिम निष्कर्ष पर पहुंचा जा सके क्योंकि तात्कालिकता खंड के आह्वान के लिए कोई औचित्य नहीं था।

18. मूल निर्णय में उपरोक्त कथन को रखते हुए, समीक्षा आवेदक के वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया था कि जवाबी हलफनामे के माध्यम से रिकॉर्ड पर लाए गए मामले के किसी भी तथ्यात्मक पहलू पर ध्यान नहीं दिया गया था। निर्णय ने मामले में महत्वपूर्ण और सुसंगत मुद्दों से नहीं निपटा और फैसला नहीं किया। समीक्षा आवेदक के अधिवक्ता द्वारा इंगित मूल निर्णय में गलतियाँ हैं: -

(i) परियोजना की प्रकृति, अधिग्रहण के प्रयोजन और मास्टर प्लान की पूरी तरह से अनदेखी की गई थी जबकि राधेश्याम (उपरोक्त) मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए कि वर्तमान मामले में भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 17(4) के तहत तात्कालिकता खंड का आह्वान किया गया था, जहां विकास प्राधिकरण के पक्ष में नियोजित विकास के उद्देश्य से भूमि का अधिग्रहण किया जाना प्रस्तावित था, अनुचित था।

(ii) जवाबी हलफनामे में यह उल्लेख कि औद्योगिक विकास क्षेत्र को मास्टर प्लान में निर्धारित उपयोग के लिए विभिन्न स्थलों में विभाजित किया गया था और औद्योगिक विकास क्षेत्र के भीतर भूमि उपयोग केवल औद्योगिक नहीं था बल्कि इसमें आवासीय, वाणिज्यिक, औद्योगिक, संस्थागत, ग्रीन्स, सुविधाएं और विकास योजना में उल्लिखित ऐसे अन्य उपयोग शामिल थे, को पूरी तरह नज़रअंदाज़ किया गया था।

अनुवादित

(iii) जवाबी शपथ-पत्र में यह प्रस्तुत किया गया था कि मास्टर प्लान के अनुसार मिर्जापुर गांव के क्षेत्र में योजनाबद्ध विकास के लिए प्राधिकरण द्वारा भूमि अधिग्रहण का अनुरोध किया गया था। अधिग्रहण के लिए की गई तात्कालिकता के औचित्य में, यह कहा गया था कि मिर्जापुर गांव से सटे भूमि या तो अतीत में अधिग्रहित की गई थी या आस-पास की भूमि के अधिग्रहण की कार्यवाही प्रक्रिया में थी। अवसंरचनात्मक सेवाओं की निरंतरता बनाए रखने के लिए, विचाराधीन भूखंडों का अधिग्रहण करने की तात्कालिकता थी। प्रश्नाधीन अधिसूचना के अंतर्गत जिस भूमि का अधिग्रहण प्रस्तावित किया गया था, उसका उपयोग अन्य बातों के साथ-साथ सड़क, सीवेज, विद्युतीकरण, शिक्षा, चिकित्सा सुविधाओं, व्यापार और वाणिज्य, आवास जैसी अवसंरचना के लिए किया जाएगा।

(iv) तात्कालिकता के आह्वान को न्यायोचित ठहराते हुए जवाबी शपथ-पत्र में यह कथन था कि जब भूमि के बड़े भाग का अधिग्रहण किया जा रहा था तो इसमें सामान्य प्रक्रिया (अत्यावश्यकता खंड को लागू किए बिना) से गुजरने वाले अनेक किसान शामिल होंगे और मौखिक अथवा लिखित आपत्तियों के बाद न्यायालय में मामले आमंत्रित करने, सुनने और निपटाने में वर्षों लग जाएंगे। जो बदले में बहुत समय लेने वाला होगा। विलंब के कारण भूमि अधिग्रहण का उद्देश्य ही विफल हो जाएगा। यह कहा गया था कि यदि भूमि तत्काल उपलब्ध नहीं कराई गई तो इससे राज्य का औद्योगिक/अवसंरचनात्मक विकास प्रभावित होगा। अतिक्रमण भी नियोजित विकास की अवधारणा पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है।

(v) प्रश्नगत अधिसूचनाओं के अंतर्गत विशेष रूप से भूमि के प्रस्तावित उपयोग के बारे में और विवरण यह था कि उक्त भूमि का उपयोग वर्ष 2009 (प्रथम चरण) में शुरू की गई रिहायशी प्लाटों की स्कीम के लिए किया जाएगा। योजना के प्रकाशन पर इलाके के लोगों की भारी प्रतिक्रिया हुई और इस तरह, अधिक क्षेत्र का अधिग्रहण करके भूखंडों की संख्या में वृद्धि करने का निर्णय लिया गया। यह भी बताया गया कि उक्त योजना के तहत, कुल उपलब्ध भूखंडों में से 17% भूखंड जिला गौतमबुद्ध नगर के गांवों के किसानों के लिए आरक्षित थे। यमुना एक्सप्रेस वे औद्योगिक विकास प्राधिकरण के अधिसूचित क्षेत्र के अंतर्गत आने वाली भूमि प्राधिकरण द्वारा या तो अधिग्रहित की गई थी या सीधे खरीदी गई थी। उपर्युक्त परिस्थितियों में भूमि अधिग्रहण की तत्काल आवश्यकता थी।

(vi) तात्कालिकता दर्शाने वाली उपर्युक्त सभी सामग्रियां राज्य सरकार के समक्ष प्रस्तुत की गई थीं जिस पर उसने अधिनियम, 1896 की धारा 5-क के अंतर्गत जांच को समाप्त करते हुए तात्कालिकता उपबंध को लागू करने के निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए व्यक्तिपरक संतुष्टि दर्ज की थी।

(vii) यह भी रिकॉर्ड में लाया गया था कि आक्षेपित अधिसूचनाओं के तहत, 55.2023 हेक्टेयर भूमि का अधिग्रहण किया गया था, जिसमें से 36.7810 हेक्टेयर का कब्जा लिया गया था और विभिन्न तारीखों को विकास प्राधिकरण को हस्तांतरित किया गया था।

अनुवादित

प्रश्नगत अधिसूचनाओं से 218 व्यक्ति प्रभावित हुए थे और 110 व्यक्तियों ने समझौता नियम, 1997 के तहत मुआवजा प्राप्त किया था।

(viii) विकास के दौरान प्राधिकरण द्वारा अधिग्रहित भूमि पर सड़कों, जल निकासी कार्यों, सीवरेज कार्यों, पेयजल की आपूर्ति, विद्युतीकरण, पार्कों आदि का विकास किया जाना है। गांव का विकास, सीवरेज, ड्रेनेज, सड़क, पानी की आपूर्ति, गांव का विद्युतीकरण भी किया जाएगा। 4546.53 लाख रुपये की अनुमानित लागत में से 3475.94 लाख रुपये क्षेत्र में सड़क, सीवरेज, जल निकासी, ग्राम विकास, बिजली आदि पर पहले ही खर्च किए जा चुके हैं।

(ix) विकास प्राधिकरण की स्कीम के अंतर्गत, विकसित भूखंडों का 7% गांव के मूल प्रभावित काश्तकारी धारकों को आबंटित किया जाएगा, जिसके आबंटन की प्रक्रिया चल रही थी।

(x) मिर्जापुर गांव की भूमि 18 विभिन्न अधिसूचनाओं के माध्यम से और यमुना एक्स्प्रेस वे परियोजना, मास्टर प्लान रोड के अंतर्गत क्षेत्र के लिए भूमि, मास्टर प्लान ग्रीन, आबादी और आबादी बस्ती के अंतर्गत क्षेत्र जैसे विभिन्न उपयोगों के लिए अधिगृहीत की गई थी। विचाराधीन अधिसूचना के तहत कुल अधिग्रहित क्षेत्र में से, सेक्टर 18, सेक्टर 20, सेक्टर 22 ए और सेक्टर 22 डी, सेक्टर 19 विकसित किए जा रहे हैं, जिसके लिए भूमि उपयोग आवासीय था, जिसमें ग्रीन एरिया, सेक्टर रोड और टाउनशिप प्लॉट के तहत क्षेत्र शामिल थे, जिसमें आवासीय भूखंडों के तहत क्षेत्र शामिल था।

(xi) यमुना एक्स्प्रेस वे परियोजना के लिए ग्राम मिर्जापुर की भूमि के अधिग्रहण को नंद किशोर गुप्ता और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सही ठहराया गया है, जिसमें शीर्ष न्यायालय ने कहा था कि उद्योग, आवास, मनोरंजन आदि के लिए पांच जोनों का निर्माण एक्सप्रेस वे के निर्माण का पूरक होगा। यह देखा गया कि भूमि खंड के निर्माण से राज्य के औद्योगिक विकास को गति मिलेगी। अधिक नौकरियां पैदा होंगी और अर्थव्यवस्था की मदद होगी और इस तरह आम लोगों की मदद होगी। इसमें कोई संदेह नहीं है कि परियोजना के कार्यान्वयन के परिणामस्वरूप नागरिकों के उपयोग के लिए राज्य में पांच विकसित खंड/केंद्र अस्तित्व में आएंगे, जिसके परिणामस्वरूप अन्यथा औद्योगिक रूप से पिछड़े क्षेत्र का योजनाबद्ध विकास होगा। इन खंडों के निर्माण से निश्चित रूप से एक्सप्रेस वे के अधिकतम उपयोग में मदद मिलेगी और तेजी से बढ़ते यातायात के लिए एक्सप्रेस वे के अस्तित्व से पांच खंड में बनाई गई औद्योगिक संस्कृति में मदद मिलेगी। इस प्रकार, यह माना गया था कि दोनों एक दूसरे के पूरक होंगे और उन्हें एक अभिन्न योजना के हिस्से के रूप में देखा जा सकता है। इस प्रकार, यह माना गया था कि यमुना एक्सप्रेस वे परियोजना, जिसमें यमुना एक्सप्रेस वे के साथ-साथ उद्योग, निवास, मनोरंजन आदि के लिए विकास के लिए भूमि के खंड शामिल हैं, एक्सप्रेस वे के निर्माण के लिए पूरक थे। एक्सप्रेस वे के आसपास मिश्रित उपयोग की योजना को अलग से नहीं देखा जा सकता है।

अशुद्धि

एक्सप्रेस वे के साथ क्षेत्र का विकास एक दूसरे का पूरक होगा।

(xii) मास्टर प्लान हमारे समक्ष रखते हुए यह प्रस्तुत किया गया था कि मिर्जापुर गांव में भूमि स्कीम के बीच में है और यमुना एक्स्प्रेसवे उक्त गांव से होकर गुजर रहा है।

19. ग्राम मिर्जापुर के प्रश्न में अधिग्रहण से संबंधित रिट याचिकाओं में से एक में दायर जवाबी हलफनामे से उपरोक्त बयानों को रखते हुए, अपीलकर्ता के वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया था कि उत्तरदाताओं की उपरोक्त दलीलों में से कोई भी नोट नहीं किया गया था और न ही इस न्यायालय द्वारा तात्कालिकता खंड के आह्वान के मामले में न्यायिक समीक्षा की शक्ति के प्रयोग में निपटाया गया था, जो निर्णय लेने की प्रक्रिया तक ही सीमित हो न कि निर्णय लेने तक। मूल निर्णय (समीक्षाधीन) में न्यायालय द्वारा निकाला गया निष्कर्ष कि धारा 17(1) और 17(4) के तहत शक्ति के आह्वान के लिए राज्य सरकार के समक्ष कोई तथ्य मौजूद नहीं था, रिकॉर्ड पर उपरोक्त नोट की गई सामग्री की अज्ञानता में था। यह प्रासंगिक दस्तावेजों पर विचार न करने और रिकॉर्ड पर सामग्री की अज्ञानता में दिए गए निर्णय का एक स्पष्ट मामला है, जो उचित विचार करने पर समीक्षा आवेदक के दावे को सही ठहरा सकता है। इस प्रकार, रिकॉर्ड पर पहली सरसरी नज़र में एक स्पष्ट त्रुटि है और न्याय का हित उक्त त्रुटि को ठीक करने की मांग करता है। इस निर्णय के परिणामस्वरूप समीक्षा आवेदक को अथाह नुकसान और चोट लगी है।

20. यह जोरदार आग्रह किया गया था कि संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्ति के प्रयोग में उच्च न्यायालय द्वारा दिया गया निर्णय अंतिम रूप से होता है और अधिकार के मामले के रूप में कोई अपील स्वीकार्य नहीं है। उच्चतम न्यायालय में अपील न्यायालय की अनुमति पर ही विचारणीय है। दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 114 के तहत समीक्षा का उपाय एक महत्वपूर्ण उपाय है और उच्च न्यायालय, जिसके पास पूर्ण क्षेत्राधिकार का न्यायालय होने के नाते समीक्षा की अंतर्निहित शक्ति है, इस शक्ति का प्रयोग प्रस्तुत मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में न्याय की हत्या को रोकने के लिए कर सकता है।

21. सी.पी.सी. की धारा 114 की भाषा हमारे सामने यह तर्क देने के लिए रखी गई है कि समीक्षा दोनों घटनाओं में स्वीकार्य है (i) जहां डिक्री और आदेश के खिलाफ अपील संहिता द्वारा अनुमति दी गई है लेकिन कोई अपील नहीं की गई है; और (ii) जहां संहिता द्वारा किसी अपील की अनुमति नहीं है।

यह तर्क दिया गया था कि सी.पी.सी. की धारा 114 एक अदालत को अपने स्वयं के आदेश की समीक्षा करने का अधिकार देती है यदि उसमें निर्धारित शर्तें पूरी होती हैं। कानून का मूल प्रावधान न्यायालय की शक्ति पर कोई सीमा निर्धारित नहीं करता है, सिवाय उन लोगों के जो धारा 114 में स्पष्ट रूप से प्रदान किए गए हैं, जिनके संदर्भ में ऐसा आदेश देने का अधिकार है जैसा कि वह उचित समझता है [संदर्भ बीसीसीआई (उपरोक्त) के निर्णय के लिए किया गया था]

अनुवादित

यह तर्क दिया गया था कि वर्तमान मामले में, चूंकि किसी भी अपील को अधिकार के मामले के रूप में प्राथमिकता नहीं दी जा सकती है और न ही समीक्षा आवेदक द्वारा ऐसी कोई अपील की गई है और सर्वोच्च न्यायालय में दायर की गई अपील, यदि कोई हो, केवल कानून के प्रश्न पर विचार योग्य होगी, वह भी न्यायालय की अनुमति से। इस प्रकार, सी.पी.सी. की धारा 114 के तहत समीक्षा की मूल शक्ति का प्रयोग न्याय के हित में किया जा सकता है, ताकि न्यायालय की गलती को ठीक किया जा सके जिससे समीक्षा आवेदक को अपूरणीय क्षति हुई। यह प्रस्तुत किया गया था कि यह न्याय के उद्देश्य को सुनिश्चित करने के लिए रिकॉर्ड के पहली सरसरी नज़र में स्पष्ट त्रुटि को ठीक करने के लिए वास्तविक समीक्षा का मामला है, न कि व्यक्तिपरक समीक्षा का जहां न्यायालय एक ही विषय पर एक अलग राय बना सकता है। यदि निर्णय किसी तथ्य पर चर्चा नहीं करता है या रिकॉर्ड पर सामग्री की उपेक्षा नहीं करता है, तो समीक्षा आवेदक को उपचारात्मक नहीं छोड़ा जा सकता है क्योंकि प्रस्तुत मामले में, अपील का उपाय अधिकार के मामले के रूप में उपलब्ध नहीं है।

यह तर्क दिया गया था कि मूल निर्णय में न्यायालय ने विकास प्राधिकरण और राज्य के अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों को नोट किया था कि आवासीय कॉलोनियों के निर्माण सहित नियोजित विकास के लिए विकास प्राधिकरण द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव पर राज्य द्वारा धीरे-धीरे भूमि का अधिग्रहण किया जा रहा था और रिकॉर्ड पर सामग्री से, यह नहीं कहा जा सकता है कि भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 17 के उपबंधों को लागू करने की कोई तात्कालिकता नहीं थी। यह तर्क दिया गया था और न्यायालय द्वारा यह भी नोट किया गया था कि विकास प्राधिकरण ने सैकड़ों लाख में चलने वाले क्षेत्र के विकास के लिए भारी निवेश किया था और यदि न्यायालय द्वारा अधिसूचनाओं को रद्द कर दिया गया तो जनता का पैसा बर्बाद हो जाएगा। हालांकि, उपर्युक्त तर्कों पर न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया गया था और केवल एक टिप्पणी की गई थी, जबकि उसी से निपटने के लिए यह माना गया था कि राज्य सरकार के समक्ष तात्कालिकता खंड को लागू करने के लिए कोई तथ्य मौजूद नहीं था।

22. यह प्रस्तुत किया जाता है कि कुल अधिग्रहित भूमि के एक बड़े क्षेत्र के लिए, अनुबंध नियम, 1997 के तहत सहमति से पंचाट दिया गया था और शेष के लिए, धारा 11(1) के तहत पंचाट दिया गया था। कार्यकाल धारकों ने पंचाट स्वीकार कर लिया था और निर्णय को चुनौती नहीं दी थी। अधिसूचना के अधीन भूमि के एक बडे भाग के अधिग्रहण से संबंधित मुद्दों का निपटान कर लिया गया था। विकास प्राधिकरण द्वारा क्षेत्र के विकास के लिए किए गए निवेश और जवाबी हलफनामे के रिकॉर्ड पर लाए गए विवरण को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया गया था। मिर्जापुर गांव में भूमि अधिग्रहण की कुल 4 अधिसूचनाओं में से केवल मिर्जापुर गांव में 552023 हेक्टेयर क्षेत्र के लिए धारा 4 के तहत दिनांक 13-5-2010 की अधिसूचना और धारा 6 के तहत दिनांक 28-7-2010 की घोषणा को चुनौती दी गई थी।

23. इस प्रकार, विवाद यह है कि राज्य सरकार द्वारा तात्कालिकता के आह्वान के लिए दर्ज

अप्रमाणित

की गई व्यक्तिपरक संतुष्टि के लिए न्यायालय द्वारा लिया गया अपवाद मास्टर प्लान, परियोजना की प्रकृति, अधिग्रहण के उद्देश्य, भूमि के एक बड़े हिस्से के कार्यकाल धारकों को सुनवाई का अवसर प्रदान करने में चुनौतियों और औद्योगिक क्षेत्र के चरणबद्ध विकास के लिए भूमि की तत्काल आवश्यकता जैसी प्रासंगिक सामग्री की अनदेखी का परिणाम था विकास प्राधिकरण का अधिकार क्षेत्र। राज्य सरकार द्वारा दर्ज की गई व्यक्तिपरक संतुष्टि की समीक्षा, रिकॉर्ड की गई संपूर्ण सामग्री पर विचार करने के बाद ही की जा सकती थी।

24. अंत में, यह तर्क दिया गया था कि समीक्षाधीन मूल निर्णय में दर्ज तथ्य कि चुनौती के तहत अधिसूचनाओं के संदर्भ में विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी द्वारा कोई पंचाट नहीं दिया गया था, न्यायालय को दी गई गलत जानकारी थी, जिसके परिणामस्वरूप अधिनियम 2013 के प्रावधानों के आधार पर 22 पर पुनर्निर्धारण करके कार्यकाल धारकों को मुआवजे का भुगतान करने का निर्देश जारी किया गया था।

25. यह प्रस्तुत किया गया था कि वर्तमान मामले में, प्रश्नगत अधिसूचना के तहत अधिग्रहित कुल 55.2023 हेक्टेयर भूमि में से 36.7810 हेक्टेयर का कब्जा प्राधिकरण को दिया गया था, इनमें से 186990 हेक्टेयर क्षेत्र के लिए धारा 11(2) के अंतर्गत पंचाट 13.03.2012 को दिया गया था, 3.9044 हेक्टेयर क्षेत्र के लिए 13.12.2013 को दिया गया था, 0.5250 हेक्टेयर क्षेत्र के लिए 31.12.2013 को दिया गया था, धारा 11(1) के अंतर्गत 13.6525 हेक्टेयर क्षेत्र के लिए पंचाट 31.12.2013 को दिया गया था। चूंकि केवल 36.7810 हेक्टेयर क्षेत्र का कब्जा लिया गया था और इस प्रकार अधिनियम, 1894 की धारा 11(1) और 11(2) के तहत पंचाट केवल उक्त क्षेत्र के लिए किया गया था। उक्त तथ्यों को प्राधिकरण द्वारा दायर दिनांक 15.12.2016 के पूरक जवाबी हलफनामे के माध्यम से रिकॉर्ड में लाया गया था। उसमें स्पष्ट रूप से कहा गया था कि कब्जा वर्ष 18.4213 हेक्टेयर भूमि राज्य द्वारा नहीं ली गई थी और इस तरह, विकास प्राधिकरण को नहीं सौंपी गई थी। इस प्रकार, उक्त क्षेत्र के लिए पंचाट बनाने का कोई सवाल ही नहीं था, यहां याचिकाकर्ताओं की भूमि भी उपरोक्त क्षेत्र वर्ष 18.4213 हेक्टेयर में शामिल है। इसका परिणाम यह हुआ कि अधिकांश प्रभावित पट्टेदारों को मुआवजा मिल गया था और अधिनियम, 1894 की धारा 11(1) के तहत अधिनिर्णय केवल एक छोटे से क्षेत्र के लिए दिया जाना अपेक्षित था।

इस प्रकार, यह तर्क दिया गया था कि एक बार अधिग्रहण से संबंधित मुद्दों को बड़े जनहित में सुलझा लिया गया था, इस न्यायालय द्वारा पहले से ही रिकॉर्ड पर सही और पूर्ण तथ्यों की अज्ञानता में हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप अन्यथा बसे हुए कब्जे को डिस्टर्ब किया गया था। समीक्षाधीन निर्णय के कारण क्षेत्र का विकास बुरी तरह प्रभावित हो रहा है।

26. अंत में, यह प्रस्तुत किया गया था कि राज्य सरकार द्वारा जारी किए गए सरकारी आदेशों दिनांक 29 अगस्त, 2014 और 4.11.2015 द्वारा, इक्विटी को संतुलित करने के लिए, इस न्यायालय द्वारा किए गए

अनुवादित

हस्तक्षेप के कारण प्रभावित आबंटियों के माध्यम से बल दिए गए कार्यकाल धारकों की शिकायतों पर विचार करते हुए, यह निर्णय लिया गया था कि प्रभावित जोत धारकों को अतिरिक्त मुआवजे का 64.7% "कोई मुकदमा बोनस के रूप में" भुगतान नहीं किया जाएगा। यह भी निर्णय लिया गया कि अधिग्रहण प्रस्तावों, जिनमें भूमि का उपयोग सड़क, सीवर, विद्युतीकरण, जलापूर्ति और इलेक्ट्रॉनिक विनिर्माण क्लस्टर आदि के लिए किया जाना है, से संबंधित रिट याचिकाओं के 80% को वापस लेने पर किसानों को कोई मुकदमा बोनस भी नहीं दिया जाएगा। इस प्रकार, निवेदन यह है कि प्रभावित किसानों को अतिरिक्त मुआवजा प्रदान करके राज्य सरकार द्वारा मुआवजे के निर्धारण के मामले में पट्टेदार धारकों की शिकायत, यदि कोई हो, का भी समाधान किया गया था।

27. उपरोक्त प्रस्तुतियों के साथ, समीक्षा आवेदक के लिए वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया था कि यह इस न्यायालय में निहित समीक्षा की शक्ति के आह्वान के लिए एक उपयुक्त मामला है ताकि वह अपनी गलती में सुधार कर सके। इस प्रकार, समीक्षा आवेदनों को अनुमति दी जानी चाहिए।

28. खंडन में, विरोधी पक्षों/समीक्षा आवेदकों/रिट याचिकाकर्ताओं के लिए उपस्थित अधिवक्ताओं द्वारा यह आग्रह किया गया था कि राज्य, जिसका निर्णय इस न्यायालय द्वारा तात्कालिकता खंड के आह्वान में खराब पाया गया है, ने समीक्षा दायर नहीं की है। समीक्षा आवेदन केवल विकास प्राधिकरण द्वारा दायर किया गया है। इसके अलावा, समीक्षा की आड़ में, आवेदक इस न्यायालय के निर्णय की शुद्धता को चुनौती देने की कोशिश कर रहा है। समीक्षा की शक्ति सीमित है और इसे सी.पी.सी. के आदेश 47 नियम 1 सपठित धारा 114 के ढांचे के भीतर प्रयोग किया जाना है। निर्णय की शुद्धता को नहीं देखा जा सकता है और केवल समीक्षा की शक्ति के प्रयोग में रिकॉर्ड के पहली सरसरी नज़र में स्पष्ट त्रुटि को ठीक किया जा सकता है। इस मामले के तथ्यों में, यह न्यायालय एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचा है कि राज्य सरकार के समक्ष तात्कालिकता खंड को लागू करने के लिए कोई तथ्य मौजूद नहीं था और तात्कालिकता के आह्वान को सही ठहराने वाले रिकॉर्ड पर पाए गए कारणों को कानूनी रूप से टिकाऊ/पुख्ता नहीं माना गया था। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, समीक्षा की शक्ति के प्रयोग के लिए निर्णय में गलती का पता लगाने के लिए रिकॉर्ड पर साक्ष्य का मूल्यांकन की आवश्यकता होगी जो पूरी तरह से अपीलीय अदालत के अधिकार क्षेत्र में है और समीक्षा किसी भी तरह से भेस में अपील नहीं है जिससे एक गलत निर्णय को फिर से सुना जाता है और सही किया जाता है लेकिन केवल पेटेंट त्रुटि के लिए निहित है। इस विषय पर केवल दो विचारों की संभावना समीक्षा का आधार नहीं हो सकती। समीक्षा की शक्ति का प्रयोग केवल गलती के सुधार के लिए किया जा सकता है न कि किसी दृष्टिकोण को प्रतिस्थापित करने के लिए। एक निर्णय जिसके द्वारा विवाद का फैसला किया गया है, को फिर से लिखना पूरी तरह से अनुचित है।

विश्लेषण

29. समीक्षा की शक्ति के प्रयोग से संबंधित कानूनी सिद्धांतों, प्रस्तुत मामले के तथ्यों और

अप्रमाणित

परिस्थितियों और मूल निर्णय (समीक्षाधीन) को ध्यान में रखते हुए, हम शुरुआत में रिकॉर्ड कर सकते हैं कि समीक्षा आवेदन केवल लाभार्थी अर्थात् यमुना एक्सप्रेस वे औद्योगिक विकास प्राधिकरण द्वारा दायर किया गया है। प्रश्नगत भूमि का अधिग्रहण विकास प्राधिकरण द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव पर भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 की धारा 17(1) के उपबंधों को लागू करने का निर्णय लेते हुए राज्य सरकार द्वारा किया गया था। विकास प्राधिकरण और राज्य सरकार के बीच संचार को न्यायालय द्वारा समीक्षाधीन निर्णय में नोट किया गया था ताकि राज्य सरकार द्वारा प्रस्तुत रिकॉर्ड को आगे देखा जा सके ताकि तात्कालिकता के आह्वान के लिए संतुष्टि दर्ज करके अपने निर्णय को सही ठहराया जा सके। जिला मजिस्ट्रेट की रिपोर्ट में दिए गए और राज्य सरकार के समक्ष रखे गए तर्क को संबंधित सचिवालय द्वारा तैयार किए गए नोट में निकाले गए अनुसार दर्ज किया गया था और न्यायालय द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए निपटाया गया था कि वे तात्कालिकता के प्रावधानों को लागू करने के लिए कानूनी रूप से अस्थिर थे। राधेश्याम (उपरोक्त) मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित तात्कालिकता खंड को लागू करने के औचित्य से संबंधित कानून पर विचार किया गया है और अंततः न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि भूमि अधिग्रहण अधिनियम 1894 की धारा 17(4) सपठित धारा 17(1) के तहत शक्तियों को लागू करने के लिए राज्य सरकार के समक्ष कोई तथ्य मौजूद नहीं है। परिणामस्वरूप, अधिग्रहण अधिसूचनाओं को खराब रखा गया था।

30. जब हम न्यायालय द्वारा उसके समक्ष रखी गई सामग्री का मूल्यांकन पर समीक्षा के तहत निर्णय में लिए गए दृष्टिकोण पर विचार करते हैं, तो काउंटर हलफनामे और ऊपर उल्लिखित पूरक जवाबी हलफनामे के रिकॉर्ड पर सामग्री के प्रकाश में, पहली बार में, हालांकि यह हमें लग रहा था कि रिकॉर्ड पर ऊपर रखी गई सामग्री की अज्ञानता में मूल निर्णय दिया गया है, अंतर्निहित शक्ति का आह्वान करके समीक्षा की जा सकती है लेकिन गहराई से जांच करने पर, हमारा विचार है कि इस तरह की शक्ति का प्रयोग करने से समीक्षा की सीमित शक्ति से अधिक हो जाएगा, क्योंकि समीक्षा की शक्ति के प्रयोग के लिए, हमें इस निर्णय पर पहुंचने के लिए रिकॉर्ड पर साक्ष्य की फिर से मूल्यांकन करने की आवश्यकता होगी कि क्या मूल निर्णय में न्यायालय द्वारा कोई गलती की गई है।

31. यह ऐसा मामला नहीं है जहां यह कहा जा सकता है कि समीक्षाधीन निर्णय (मूल निर्णय) में न्यायालय द्वारा विचार की गई सामग्री मामले के लिए असंगत थी या विवाद के लिए अप्रासंगिक थी। यह ऐसा मामला नहीं है जहां यह कहा जा सकता है कि सामग्री का मूल्यांकन के बाद भी, निर्णय (समीक्षाधीन) में न्यायालय द्वारा कथित रूप से नजरअंदाज कर दिया गया है, निर्णय (समीक्षाधीन) में न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण एक संभावित दृष्टिकोण नहीं है। इस विषय पर केवल एक और दृष्टिकोण की संभावना, जैसा कि अच्छी तरह से तय है, समीक्षा के लिए

अनुवादित

आधार नहीं हो सकता है। यह भली-भांति तय है कि अभिलेख में स्पष्ट त्रुटि ऐसी त्रुटि नहीं होनी चाहिए जिसे ढूंढकर खोजना पड़े। मूल निर्णय की समीक्षा करने के लिए, हमें जवाबी हलफनामे (ऊपर उल्लिखित) से हमारे सामने रखी गई पूरी सामग्री का अध्ययन करना होगा ताकि हम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकें कि क्या निर्णय में कोई त्रुटि है, इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कि तात्कालिकता खंड को लागू करने का कोई औचित्य नहीं था। इंगित की गई त्रुटि को स्पष्ट रूप से कानून के प्रावधानों की स्पष्ट अज्ञानता या अवहेलना में किए गए निर्णय में त्रुटि नहीं कहा जा सकता है। एक कथित गलत निर्णय, समीक्षा की शक्ति के प्रयोग में ठीक नहीं किया जा सकता है। समीक्षा की अनुमति केवल तभी दी जाती है जब एक दृष्टिकोण संभव हो। यदि मूल निर्णय में न्यायालय द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण रिकॉर्ड के संदर्भ में एक संभावित दृष्टिकोण है, तो रिकॉर्ड के पहली सरसरी नज़र में स्पष्ट त्रुटि के अस्तित्व को पकड़ना मुश्किल है। (संदर्भ कमलेश वर्मा (उपरोक्त)

32. यह तय किया गया है कि मामले की पुनर्सुनवाई समीक्षा के दायरे में कानून में अस्वीकार्य है। पुराने और खारिज किए गए तर्क की पुनरावृत्ति को निष्कर्ष निर्णय को फिर से खोलने के लिए नहीं माना जा सकता है। समीक्षा तब तक पोषणीय नहीं है जब बहस के समय मांगी गई उसी राहत को अस्वीकार कर दिया गया हो। पेरी कंसागरा (उपरोक्त) के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने देखा है कि सी.पी.सी. की धारा 114 सपठित आदेश 47 नियम 1 के तहत एक आवेदन में समीक्षा क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए, समीक्षा न्यायालय अपने स्वयं के आदेश पर अपील में नहीं बैठता है। समीक्षा की शक्ति का प्रयोग किसी गलती के सुधार के लिए किया जा सकता है लेकिन किसी दृष्टिकोण को प्रतिस्थापित करने के लिए नहीं। इस तरह की शक्ति का प्रयोग शक्ति के प्रयोग से संबंधित क़ानून की सीमाओं के भीतर किया जा सकता है। एक निर्णय को फिर से लिखना पूरी तरह से उचित है जिसके द्वारा विवाद को अंततः इस आधार पर तय किया गया है कि निर्णय योग्यता के आधार पर गलत था। अभिलेख में त्रुटि ऐसी त्रुटि होनी चाहिए जो केवल अभिलेख को देखने मात्र से ही उत्पन्न हो जाए और उन बिन्दुओं पर तर्क करने की किसी लंबी प्रक्रिया की आवश्यकता न हो जहां दो मत हो सकते हैं।

33. शांति कंडक्टर्स प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त) में, यह देखा गया और माना गया कि सी.पी.सी. की धारा 114 सपठित आदेश 47 नियम 1 सी.पी.सी. के तहत समीक्षा का दायरा सीमित है और समीक्षा की आड़ में, आवेदक/याचिकाकर्ता को उन सवालों को फिर से उठाने और फिर से बहस करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है जिन्हें पहले ही संबोधित और तय किया जा चुका है। यह आगे देखा गया है कि एक त्रुटि को, जो स्वयं स्पष्ट नहीं है और तर्क की प्रक्रिया द्वारा पता लगाया जाना है, शायद ही रिकॉर्ड के तथ्य पर स्पष्ट त्रुटि कहा जा सकता है। राजेंद्र कुमार और अन्य बनाम रामभाई और अन्य में, समीक्षा आवेदन की विचारणीयता से निपटते हुए, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह देखा गया था कि समीक्षा की शक्ति के प्रयोग पर सीमाएं अच्छी तरह से तय हैं। समीक्षा याचिका पर विचार

अनुवादित

करने की पहली और सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता यह है कि आदेश, जिसके समीक्षा की मांग की गई है, आदेश के पहली सरसरी नज़र में स्पष्ट रूप से किसी भी त्रुटि से ग्रस्त है और आदेश को खड़े होने की अनुमति देने से न्याय की विफलता/हानि होगी। ऐसी किसी त्रुटि के अभाव में, निर्णय/आदेश से जुड़ी अंतिमता को बाधित नहीं किया जा सकता है।

34. इस मामले का एक और पहलू है। विकास प्राधिकरण द्वारा दायर इस पुनर्विचार आवेदन पर वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा बहस की जा रही है, जिन्हें अब प्रतिवादी विकास प्राधिकरण के लिए उपस्थित होने का काम सौंपा गया है। ऐसा लगता है कि रिकॉर्ड पर दी गई दलीलों और तात्कालिकता के आह्वान के मामले में हमारे सामने लाए गए परिप्रेक्ष्य से हमारे सामने रखी गई अधिकांश सामग्री को मूल निर्णय पारित करने वाले न्यायालय के ध्यान में नहीं लाया गया था। मूल निर्णय में उल्लिखित तत्कालीन अधिवक्ता की दलीलों को हमारे सामने यह दावा करने के लिए रखा गया था कि आग्रह किए गए बिंदुओं पर विचार नहीं किया गया था, लेकिन यह नहीं पाया जा सकता है कि रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री से हमारे सामने रखे गए तर्कों को मूल निर्णय पारित करने वाले न्यायालय के समक्ष रखा गया था और उनकी अनदेखी की गई थी। स्पष्ट रूप से समीक्षा आवेदन में ऐसा कोई बयान नहीं हो सकता क्योंकि यह एक अलग अधिवक्ता के माध्यम से दायर किया गया था। इसके अलावा, विवाद को इस बिंदु पर प्रचारित दो या अधिक विचारों में से केवल एक को स्वीकार करने के लिए नहीं कहा जा सकता है।

35. समीक्षा की शक्ति पर तय कानूनी स्थिति के मद्देनजर उपरोक्त चर्चा के प्रकाश में, हमें आगे समीक्षा आवेदक के लिए वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए निर्णय के माध्यम से जाना चाहिए।

36. बीसीसीआई (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भारी निर्भरता रखी गई है, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, यह तर्क देने के लिए कि समीक्षा के लिए एक आवेदन को "एक्टस क्यूरी नेमिनेम ग्रेवाबिट" सिद्धांत को लागू करने के माध्यम से आवश्यक हो सकता है, ताकि न्यायालय की ओर से गलती को ठीक किया जा सके। सी.पी.सी. के आदेश 47 नियम 1 में "पर्याप्त कारण" शब्द न्यायालय द्वारा तथ्य या कानून की गलत धारणा को शामिल करने के लिए पर्याप्त व्यापक हैं। उक्त निर्णय का अध्ययन करने के बाद, हम पाते हैं कि उस मामले में, शीर्ष न्यायालय के समक्ष उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा समीक्षा आवेदन पर पारित अंतरिम आदेश को, यह देखते हुए कि उन्हें प्रतिवादी की ओर से दिए गए वचन पत्र द्वारा गुमराह किया गया था, चुनौती दी गई थी। डिवीजन बेंच द्वारा यह नोट किया गया था कि बोर्ड की ओर से उपस्थित अधिवक्ता द्वारा दिए गए, बार के दिए गए वचन नहीं थे? और उनको अपने अक्षरशः प्रभाव में नहीं दिया गया था।

प्रतिवादी-बोर्ड के अधिवक्ता द्वारा उसमें यह तर्क दिया गया था कि डिवीजन बेंच के समक्ष अपीलकर्ता बोर्ड के अधिवक्ता द्वारा दिया गया वचन, अपील के ज्ञापन में उठाए गए विवाद के अनुरूप था, जिसे विधिवत दर्ज किया गया था

अनुवादित

और उक्त वचन का उल्लंघन नहीं किया गया था, जिसके कारण समीक्षा के लिए ये आवेदन पोषणीय नहीं था।

उस मामले के उन तथ्यों और परिस्थितियों में, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह नोट किया गया था कि निर्विवाद रूप से बोर्ड की ओर से पेश होने वाले अधिवक्ता द्वारा एक वचन दिया गया था और समीक्षा मामले में उच्च न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेश में, जिस बेंच के समक्ष इस तरह का वचन दिया गया था, उसने एक राय व्यक्त की थी कि इसे गुमराह किया गया था। इस प्रकार, यह नोट किया गया कि सर्वोच्च न्यायालय ने उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा इस तरह के वचन की समझ को ध्यान में रखते हुए, इसके प्रभाव और उद्देश्य से निपटने का इरादा नहीं किया, क्योंकि यह राय थी कि उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच स्वयं इसके लिए सक्षम थी।

उपरोक्त तथ्यों के प्रकाश में, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह देखा गया था कि न्यायालय की ओर से एक गलती जिसमें वचन की प्रकृति में गलती शामिल होगी, आदेश की समीक्षा के लिए भी आकर्षित कर सकती है। और समीक्षा के लिए एक आवेदन भी, यदि इसके लिए पर्याप्त कारण मौजूद हैं, पोषणीय होगा। हालांकि, यह नोट किया गया था कि पर्याप्त कारण क्या होगा, यह मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा।

उपर्युक्त के आलोक में, हम पाते हैं कि बीसीसीआई (उपरोक्त) में समीक्षा की शक्ति के प्रयोग से संबंधित कानून का वर्णन पैरा संख्या-'89' और '90' में किया गया है, जिस पर समीक्षा-आवेदक के लिए वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा भारी निर्भरता रखी गई है, उक्त मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में किया गया था। इस मामले में ऐसा कोई तथ्य या परिस्थितियां नहीं पाई जा सकीं। बीसीसीआई (उपरोक्त) में दिए गए मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में व्यक्त किए गए विचार का यहां समीक्षा-आवेदक के लिए कोई लाभ नहीं है।

37. राजेंद्र सिंह (उपरोक्त) में एक और निर्णय समीक्षा-आवेदक के लिए वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए अपीलकर्ता की सेवाओं के नियमितीकरण और वरिष्ठ पैमाने और चयन ग्रेड के पंचाट से इनकार से संबंधित विवाद से संबंधित है। उच्च न्यायालय के समक्ष प्रतिवादी द्वारा दायर अपील पर, अपीलकर्ता को वरिष्ठता देने और वरिष्ठ वेतनमान के साथ-साथ अन्य सभी परिणामी सेवा लाभ प्रदान करने का निर्देश देने वाले ट्रिब्यूनल के आदेश को रद्द कर दिया गया था। अपीलकर्ता द्वारा दायर पुनर्विचार आवेदन को भी उच्च न्यायालय की एक अन्य खंडपीठ ने खारिज कर दिया था।

इन परिस्थितियों में, अपीलकर्ता ने सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था और उसमें यह नोट किया गया था कि उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता द्वारा वरिष्ठ वेतनमान और चयन ग्रेड प्रदान करने के लिए शर्तों की पूर्ति से संबंधित दस्तावेजों की अनदेखी करके कानून की त्रुटि की थी, विशेष रूप से स्क्रीनिंग कमेटी के सदस्यों की ओर से पूर्वाग्रह दिखाने वाले दस्तावेज और अपीलकर्ता के साथ भेदभाव और उत्पीड़न किया था। वरिष्ठता सहित सेवा लाभ के संबंध में पत्र, जिसके लिए व्याख्याता अपनी तदर्थ नियुक्ति की प्रारंभिक तारीख से अपनी सेवाओं के नियमितीकरण के बाद हकदार थे, की अनदेखी

अप्रमाणित

की गई थी। रिफ्रेशर कोर्स में छूट के संबंध में यूजीसी के पत्र की भी अनदेखी की गई।

उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों के प्रकाश में, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह माना गया था कि समीक्षाधीन निर्णय के सावधानीपूर्वक अवलोकन से संकेत मिलता है कि यह कई महत्वपूर्ण मुद्दों से नहीं निपटता है और निर्णय नहीं लेता है जो विशेष अनुमति याचिका/अपील के आधार के साथ-साथ समीक्षा के आधार पर भी उठाए गए थे। उच्च न्यायालय रिकॉर्ड पर सामग्री की अनदेखी करने में न्यायसंगत नहीं था, जो उचित विचार पर अपीलकर्ता के दावे को सही ठहरा सकता है। उच्च न्यायालय सही नहीं था और पक्षों द्वारा भरोसा किए गए दस्तावेजों की अनदेखी कर रहा था।

इस प्रकार, यह माना गया कि समीक्षाधीन निर्णय रिकॉर्ड के पहली सरसरी नज़र में स्पष्ट त्रुटि का एक स्पष्ट मामला था और प्रासंगिक दस्तावेजों पर विचार नहीं किया गया था और उच्च न्यायालय के पास पूर्ण क्षेत्राधिकार का न्यायालय होने के नाते अपने स्वयं के आदेश की न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करके न्याय की हत्या को रोकने की अंतर्निहित शक्ति थी। यह देखा गया कि समीक्षा शक्ति न्याय की हत्या को रोकने के लिए सभी त्रुटियों को ठीक करने के लिए फैली हुई है और न्यायालय को, जब रिकॉर्ड के पहली सरसरी नज़र में कोई त्रुटि मौजूद हो और न्याय का हित उचित मामलों में ऐसा मांग करता है, अपने स्वयं के पहले के आदेश की समीक्षा करने में संकोच नहीं करना चाहिए।

राजेंद्र सिंह (उपरोक्त) के तथ्यों को नोट करने के बाद, हम पाते हैं कि उसमें की गई टिप्पणी उक्त मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में समीक्षा के दायरे के संबंध में थी और यहाँ के तथ्यों तात्कालिक मामले में यहां समीक्षा आवेदक के लिए कोई लाभ नहीं है।

38. समीक्षा आवेदक के लिए वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा भरोसा किया गया अंतिम निर्णय कृष्ण नंद शुक्ला (उपरोक्त) है, जिसमें अपीलकर्ता का मामला उत्तरदाताओं को व्याख्याता सैन्य विज्ञान के रूप में महीने दर महीने वेतन का भुगतान करने और इस तरह के कामकाज में हस्तक्षेप नहीं करने के लिए परमादेश की रिट मांगना था। अपीलकर्ता को न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेश के तहत वेतन मिलना शुरू हो गया, प्रतिवादी द्वारा एक जवाबी हलफनामा दायर किया गया जिसमें अपीलकर्ता के दावे का खंडन किया गया था और यह उल्लेख किया गया था कि अपीलकर्ता के दावे को पहले ही रिट याचिका दायर करने के बाद पारित आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। यह दलील दी गई थी कि हालांकि अपीलकर्ता ने 2.8.1991 को सैन्य विज्ञान में तदर्थ व्याख्याता के रूप में अपनी नियुक्ति का दावा किया था, लेकिन सैन्य विज्ञान के लिए पद केवल 9.2.1996 को बनाया गया था। उत्तर प्रदेश राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 के प्रावधानों के मद्देनजर वेतन का भुगतान करने का राज्य का कोई दायित्व नहीं था। यह भी दलील दी गई कि याचिकाकर्ता को उचित प्रक्रिया का पालन करते हुए नियुक्त नहीं किया गया था। उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने

अनुवादित

जवाबी हलफनामे और प्रत्युत्तर के पैराग्राफ का हवाला देते हुए रिट याचिका को खारिज कर दिया था। एक पुनर्विचार याचिका दायर की गई थी जिसे उच्च न्यायालय ने एक अनाख्यापक आदेश से खारिज कर दिया था। शीर्ष अदालत ने एक आदेश पारित करके समीक्षा आवेदन को खारिज करने में उच्च न्यायालय के कार्य पर आपत्ति जताई थी, जो अनाख्यापक था, जिसमें समीक्षा आवेदन में लिए गए आधारों पर विचार नहीं किया गया था। शीर्ष न्यायालय द्वारा यह नोट किया गया था कि अपीलकर्ता ने एक स्पष्ट रुख अपनाया था कि जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ और रिज्वाइंडर के पैराग्राफ, जिन्हें रिट याचिका को खारिज करने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा संदर्भित और भरोसा किया गया था, अपीलकर्ता की रिट याचिका और अपीलकर्ता द्वारा दायर प्रत्युत्तर हलफनामे में मौजूद नहीं थे। जवाबी हलफनामे की प्रति विशेष अनुमति याचिका के रिकॉर्ड पर लाई गई थी और शीर्ष अदालत द्वारा यह नोट किया गया था कि ऐसा कोई पैराग्राफ नहीं था जिसे समीक्षाधीन आदेश में नोट किया गया था। प्रत्युत्तर के पैराग्राफ से बयान, जिसे उच्च न्यायालय द्वारा नोट किया गया था, अलग था।

उक्त मामले में समीक्षा आवेदन, विशेष अनुमति याचिका में शीर्ष न्यायालय द्वारा दी गई स्वतंत्रता पर उच्च न्यायालय के समक्ष दायर किया गया था। उक्त परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय द्वारा एक अनाख्यापक आदेश द्वारा समीक्षा आवेदन की अस्वीकृति को बुरा/त्रुटिपूर्ण माना गया था। उक्त निर्णय को उस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में यह देखते हुए कि समीक्षा के तहत निर्णय और आदेश रिकॉर्ड पर दलीलों की अज्ञानता में पारित किया गया था, पारित किया गया है। यहां समीक्षा आवेदक के बचाव में नहीं आ सकता है।

39. उपरोक्त चर्चा पर, हम इस सुविचारित राय के हैं कि हालांकि समीक्षा आवेदक के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया जा सकता है कि मास्टर प्लान, परियोजना की प्रकृति, अधिग्रहित भूमि के भूमि उपयोग जैसी कुछ सामग्री को मूल निर्णय (समीक्षा के तहत) में न्यायालय द्वारा ध्यान में नहीं रखा गया था, तथापि, उक्त तर्कों पर विचार करने के लिए हमें रिकॉर्ड पर सामग्री का मूल्यांकन करने की आवश्यकता होगी, जिसे मूल आदेश में न्यायालय द्वारा कथित रूप से अनदेखा किया गया था और समीक्षा के दायरे में पुन: सुनवाई की उक्त कवायद अस्वीकार्य है। प्रस्तुत मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में दी गई समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करने के लिए हमें कोई अच्छा आधार नहीं मिलता है। समीक्षाधीन इस न्यायालय के निर्णय और आदेश ने पक्षों के बीच अंतिम रूप प्राप्त कर लिया है। रिकॉर्ड पर दलीलों की अनदेखी करने और रिकॉर्ड पर अन्य सामग्री पर विचार करके एक अलग निष्कर्ष पर पहुंचने में न्यायालय की ओर से किसी भी गलती के मामले में, समीक्षा आवेदक के समक्ष एकमात्र उपाय यह था कि समीक्षाधीन निर्णय में कथित गलत को रखते हुए सर्वोच्च न्यायालय से संपर्क किया जाए।

अनुवादित

उपर्युक्त के मद्देनजर, दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 114 सपठित आदेश 47 नियम 1 के तहत समीक्षा के दायरे से बाहर होने के कारण समीक्षा आवेदनों को खारिज कर दिया जाता है।

(2023) 6 ILRA 509

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 15.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र

रिट-सी संख्या 57858/2016

बशिष्ठ मुनि मिश्रा याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ और अन्य प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री सिद्धार्थ खरे, श्री अशोक खरे (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: ए.एस.जी.आई., श्री एस.के. कक्कड़, श्री एस.के. शुक्ला, श्री सतीश चतुर्वेदी, श्री सतीश किशोर कक्कड़, श्री सुनीत कक्कड़

सेवा कानून- इस प्रस्ताव के बारे में कोई विवाद नहीं है कि अपराधी कर्मचारी के खिलाफ आपराधिक मुकदमा और विभागीय कार्यवाही एक साथ चल सकती है, हालांकि अगर आपराधिक अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने वाले न्यायालय के विचाराधीन आरोप और अपराधी कर्मचारी के खिलाफ विभागीय कार्यवाही के आरोप एक जैसे हैं, तो अपराधी कर्मचारी को सम्मानजनक तरीके से बरी किए जाने का प्रभाव एक प्रासंगिक कारक होगा और इसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है-जब सेवा नियम विशेष रूप से आपराधिक अभियोजन के संबंध में विभागीय कार्यवाही के प्रारंभ, लंबित रहने, समापन और समापन का ध्यान रखते हैं, तो सामान्य सिद्धांत कि आपराधिक मुकदमा और विभागीय कार्यवाही एक साथ चल सकती है, कम से कम याचिकाकर्ता के खिलाफ सख्ती से लागू नहीं किया जा सकता है, अन्यथा यह ऐसा मामला होगा जहां सामान्य अवधारणाएं विशिष्ट सेवा नियमों को ओवरराइड कर देंगी जो अनुमेय नहीं है-याचिकाकर्ता वेतन और परिणामी लाभों के पूरे बकाया का हकदार है। (पैरा 45, 47, 48 और 51)

आंशिक रूप से अनुमति दी गई। (ई-15)

<u>मामलों की सूची;</u>

1. एच.पी. बिजली बोर्ड बनाम महेश दहिया: 2017 (2) ईएससी 289
2. 2002 एससीसी ऑनलाइन कैल 25 (लक्ष्मण कुमार मंडल बनाम यूको बैंक और अन्य, 24.01.2002;
3. 2006 (5) एससीसी 446 (जीएम टैंक बनाम स्टेट ऑफ गुजरात और अन्य)
4. 2019 एससीसी ऑनलाइन ऑल 5794 (आनंद राम नगर बनाम बनारस स्टेट बैंक लिमिटेड और अन्य)
5. (2017) 1 एससीसी 768 (हिमाचल प्रदेश स्टेट इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड लिमिटेड बनाम महेश दहिया)
6. यूनियन ऑफ इंडिया और अन्य बनाम दलबीर सिंह: (2021) 11 एससीसी 321
7. स्टेट ऑफ कर्ण. और अन्य बनाम उमेश: (2022) 6 एससीसी 563

अनुवादित

8. स्टेट बैंक ऑफ इंडिया एवं अन्य बनाम आर.बी. शर्मा: (2004) 7 एससीसी 27

9. भारत हेवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड का प्रबंधन बनाम एम. मणि: (2018) 1 एससीसी 285

10. वेस्ट बोकारो कोलियरी (टिस्को लिमिटेड) बनाम राम प्रवेश सिंह: (2008) 3 एससीसी 729

11. उप महाप्रबंधक (अपीलीय प्राधिकरण) एवं अन्य बनाम अजय कुमार श्रीवास्तव: (2021) 2 एससीसी 612

12. गोपाल नारायण शुक्ला बनाम एजीएम एसबीआई (रिट याचिका संख्या 7737/2005) 24.02.2020 को निर्णय

13. प्रीति चौहान बनाम स्टेट ऑफ यूपी एवं अन्य: 2008 (9) एडीजे 388

14. मयंक अग्रवाल बनाम बरेली क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक एवं अन्य: 2013 (3) एडीजे 143 (डीबी)

15. ईसीआईएल बनाम बी. करुणाकर: (1993) 4 एससीसी 727

(माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र द्वारा दिया गया)

1. यह रिट याचिका बशिष्ठ मुनि मिश्रा और भारतीय स्टेट बैंक के उप महाप्रबंधक के बीच औद्योगिक विवाद संख्या 49 / 2006 में औद्योगिक न्यायाधिकरण - सह - श्रम न्यायालय, कानपुर द्वारा पारित निर्णय... 19.07.2016 को चुनौती देते हुए दायर की गई है। चुनौती के तहत आगे के आदेश क्रमशः दिनांक 26.10.2004 और 19.01.2005 को सहायक महाप्रबंधक और उप महाप्रबंधक द्वारा पारित किए गए हैं। उक्त आदेश द्वारा क्रमशः याचिकाकर्ता को सेवा से बर्खास्त कर दिया गया तथा उसकी विभागीय अपील खारिज कर दी गयी। इसके अलावा याचिकाकर्ता को निलंबन के आदेश की तारीख से बकाया वेतन सहित सभी परिणामी लाभों के साथ सेवा में बहाल करने का निर्देश जारी करने का अनुरोध किया गया है।

2. रिट याचिका से सामने आए तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता को 17.02.1979 को प्रत्यर्थी बैंक में मैसेंजर-कम- वॉटर बॉय के रूप में नियुक्त किया गया था और बाद में उसे दफ्तरी के रूप में पदोन्नत किया गया था। अंततः उनकी नियुक्ति जानसनगंज शाखा, इलाहाबाद में हुई। यह दलील दी गई है कि याचिकाकर्ता की सेवाएं दिनांक 19.10.1966 के समझौता ज्ञापन द्वारा शासित थीं जिसमें अनुशासनात्मक कार्रवाई और उसके लिए प्रक्रिया के प्रावधान शामिल थे। 12.03.1999 को, श्रीमती मैना देवी के सन्दर्भ पर श्रीमती प्रेमा देवी के नाम पर संबंधित शाखा में एक नया बचत बैंक खाता संख्या 01190022061 खोलने की अनुमति दी गई थी, बचत बैंक खाता संख्या 58901 की जमाकर्ता. आवश्यक औपचारिकताएं पूरी करने और बैंक अधिकारियों द्वारा उचित सत्यापन के बाद खाता खोला गया। 13.03.1999 को श्रीमती. नए खोले गए खाता संख्या 01190022061 की जमाकर्ता प्रेमा देवी ने अपने पक्ष में भारतीय जीवन बीमा द्वारा जारी 67,050/- रुपये का दिनांक 16.07.1999 का चेक जमा किया, जिसे बैंक द्वारा कानूनी अधिकारी के माध्यम से समाशोधन और जमा किया गया। जिस खाते से श्रीमती द्वारा 65,000/- रूपये की निकासी की गई थी । प्रेमा देवी 18.08.1999 को जिसे बैंक के संबंधित अधिकारी ने अनुमति दी थी।

अनुवादित

बाद में पता चला कि चेक किसी अन्य प्रेमा देवी और श्रीमती प्रेमा देवी का था। जिसका बचत खाता संख्या 01190022061 खोलने की अनुमति दी गई थी, वह वास्तविक महिला नहीं थी और उसका गलत विवरण दिया गया था। उक्त मामले के संबंध में, भारतीय जीवन बीमा निगम, सिटी ब्रांच, इलाहाबाद के शाखा प्रबंधक ने पुलिस स्टेशन, कोतवाली, इलाहाबाद को सूचित किया और उसके अनुसार, धारा 419 / के तहत मामला अपराध संख्या 394/1999 के रूप में पहली सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई। 420 आईपीसी जांच पूरी होने के बाद ए जांच एजेंसी द्वारा अदालत के समक्ष आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था, जिसके आधार पर, पहली सूचना दर्ज होने की तारीख से छह महीने से कम अवधि के भीतर, याचिकाकर्ता और एक राजेंद्र कुमार द्विवेदी के खिलाफ आपराधिक मामला संख्या 1744/2000 दर्ज किया गया था। आगे दलील दी गई है कि याचिकाकर्ता को पुलिस ने 15.02.2000 को गिरफ्तार किया था, लेकिन बाद में उसे जमानत मिल गई। उन्हें बैंक द्वारा निलंबित कर दिया गया और अंततः, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, इलाहाबाद द्वारा दिनांक 15.10.2009 के फैसले और आदेश के तहत बरी कर दिया गया, जो अंतिम हो गया है।

3. जहां तक विभागीय कार्यवाही का संबंध है, यह निवेदन किया गया है कि याचिकाकर्ता को विभागीय आरोप पत्र 18.02.2002 को जारी किया गया था, जांच को 26.09.2002 की जांच रिपोर्ट के संदर्भ में सरसरी तौर पर समाप्त किया गया था जिसमें आरोप संख्या 1 व 3 को प्रमाणित पाया गया तथा आरोप संख्या 2 को आंशिक रूप से प्रमाणित पाया गया। आगे यह दलील दी गई है कि जांच रिपोर्ट के आधार पर, अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने दिनांक 10.04.2002 के समझौता ज्ञापन के पैराग्राफ 6 (ए) के तहत 22.09.2004 को याचिकाकर्ता को बर्खास्त करने का एक अनंतिम निर्णय लिया और याचिकाकर्ता को कारण बताने के लिए कहा। उक्त जुर्माने के विरूद्ध आगे की दलील इस आशय की है कि दिनांक 22.09.2004 को अनंतिम आदेश जारी करने से पहले, याचिकाकर्ता को जांच रिपोर्ट की कोई प्रति नहीं दी गई थी और न ही उसे उस पर आपत्ति करने का कोई अवसर प्रदान किया गया था।

4. आगे यह दलील दी गई है कि याचिकाकर्ता को दिनांक 26.10.2004 के आक्षेपित आदेश के तहत सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था, जिसके खिलाफ उसने अपीलीय अदालत के समक्ष अपील दायर की थी, जिसे 19.01.2005 को खारिज कर दिया गया था, जिसके बाद याचिकाकर्ता ने प्रावधानों के तहत विवाद खड़ा किया था। औद्योगिक विवाद अधिनियम और अंततः, इस विवाद के निपटारे के लिए अधिनियम, 1947 की धारा 10 (2-ए) (i) (डी) के तहत मामला केंद्र सरकार, औद्योगिक न्यायाधिकरण -श्रम न्यायालय, कानपुर को भेजा गया था कि क्या याचिकाकर्ता की समाप्ति 22.09.2004 को सेवा उचित और कानून के अनुसार थी और यदि नहीं, तो याचिकाकर्ता किस राहत का हकदार था। यह दलील दी गई है कि न्यायाधिकरण के समक्ष कार्यवाही के दौरान, याचिकाकर्ता की ओर से दिनांक 25.03.2010 को लिखित दलीलें दायर

अवमानित

की गईं, जिसमें कुछ अधिकारियों के साथ-साथ आपराधिक मामले में संबंधित अदालत द्वारा पारित बरी के फैसले को भी शामिल किया गया था। आगे यह दलील दी गई है कि न्यायाधिकरण ने दिनांक 19.07.2016 के आक्षेपित फैसले में याचिकाकर्ता के खिलाफ संदर्भ का जवाब देते हुए कहा है कि वह किसी भी राहत का हकदार नहीं है।

5. इस फैसले को विभिन्न आधारों पर चुनौती दी गई है, जिसे पार्टियों के बीच आदान-प्रदान की गई दलीलों के संदर्भ के बाद प्रतिद्वंद्वी विवादों से निपटने के दौरान निस्तारित किया जाएगा।

6. प्रत्यर्थी संख्या 4 से 6 की ओर से एक जवाबी शपथपत्र दायर किया गया है जिसमें कहा गया है कि याचिकाकर्ता की सेवाएं दिनांक 26.10.2004 के परिपत्र के अनुसार समाप्त कर दी गई थीं और कोई द्विपक्षीय समझौता अनुशासनात्मक कार्रवाई के रास्ते में नहीं आएगा। आगे यह भी दलील दी गई है कि यदि आपराधिक मुकदमा शुरू होने के एक वर्ष के भीतर समाप्त नहीं होता है और किसी कर्मचारी के खिलाफ आरोप पत्र लंबित है, तो समवर्ती विभागीय जांच को पुनर्जीवित किया जा सकता है और निष्कर्ष पर लाया जा सकता है। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि जांच इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 26.11.2001 के तहत की गई थी और योग्यता के आधार पर, सजा पूरी तरह से उचित थी और इसलिए, लागू किए गए किसी भी आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए ।

7. याचिकाकर्ता ने रिट याचिका में अपनाए गए रुख को दोहराते हुए एक प्रत्युत्तर शपथपत्र दायर किया है और मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भरोसा जताया है। एच. पी. बिजली बोर्ड बनाम महेश दय्याः 2017 (2) ईएससी 289 इस तर्क के समर्थन में कि जांच रिपोर्ट प्राप्त होने के बाद, इसकी प्रति दोषी कर्मचारी को उपलब्ध कराई जानी चाहिए थी और संबंधित कर्मचारी से आपत्तियां प्राप्त होने के बाद ही अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा ध्यान दिया जा सकता था, हालांकि, वर्तमान मामले में, उक्त प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है।

8. मैंने श्री अशोक खरे, विद्वान अधिवक्ता, श्री सिद्धार्थ खरे की सहायता, याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता, श्री अरविंद कुमार गोस्वामी, प्रत्यर्थी संख्या 1, भारत संघ के लिए विद्वान अधिवक्ता, प्रत्यर्थी संख्या और 3 के लिए विद्वान स्थायी अधिवक्ता और श्री एस. के. कक्कड़, श्री सुमित कक्कड़ के साथ, प्रत्यर्थी संख्या 4 से 6 का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता को सुना है।

9. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे ने तर्क दिया है कि याचिकाकर्ता की सेवाएं द्विपक्षीय समझौते दिनांक 19.10.1966 द्वारा शासित थीं। उन्होंने उक्त समझौते के खंड 19.3 और 19.4 पर अधिक जोर देते हुए अध्याय XIX का उल्लेख किया है, जो नीचे उद्धृत किया गया है: -

"19.3 (ए) जब प्रबंधन की राय में किसी कर्मचारी ने कोई अपराध किया है, जब तक कि उस पर अन्यथा मुकदमा नहीं चलाया जाता है, बैंक उस पर मुकदमा चलाने या मुकदमा चलाने के लिए कदम उठा सकता है और ऐसे मामले में उसे निलंबित भी किया जा सकता है।

अशोक कुमार

(बी) यदि उसे दोषी ठहराया जाता है, तो उसे उसकी सजा की तारीख से बर्खास्त किया जा सकता है या नीचे खंड 19.6 में उल्लिखित किसी भी कम सजा दी जा सकती है।

(सी) यदि उसे दोषमुक्त कर दिया जाता है, तो प्रबंधन को उसके विरुद्ध बर्खास्तगी से संबंधित खंड 19.11 और 19.12 में दिए गए प्रावधानों के तहत कार्यवाही करने का अधिकार होगा। हालांकि, जांच के बाद यदि प्रबंधन उसे सेवा में जारी न रखने का निर्णय लेता है, तो उसे नोटिस के बदले में तीन महीने का वेतन और भत्ते देकर सेवा से बर्खास्त किया जा सकता है। और उसे निलंबन की अवधि के दौरान ड्यूटी पर माना जाएगा, बशर्ते कि यदि उसे संदेह का लाभ देकर दोषमुक्त कर दिया जाता है, तो उसे ऐसे वेतन और भत्ते का ऐसा हिस्सा दिया जा सकता है, जैसा प्रबंधन उचित समझे, और उसकी अनकी अवधि को ड्यूटी पर बिताई गई अवधि नहीं माना जाएगा, जब तक कि प्रबंधन ऐसा निर्देश न दे।

(डी) यदि वह अपनी सजा के खिलाफ अपील पुनरीक्षण आवेदन दायर करता है और बरी कर दिया जाता यदि उस पर पहले ही उपरोक्त कार्रवाई हो चुकी है और वह अपने मामले पर पुनर्विचार के लिए प्रबंधन के पास आवेदन करता है, तो प्रबंधन उसके मामले की समीक्षा करेगा और या तो उसे बहाल कर सकता या सेवामुक्ति से संबंधित खंड 19.11 और 19.12 में नीचे दिए गए प्रावधानों के तहत उसके खिलाफ कार्रवाई करें, और वेतन, भत्ते और निलंबन की अवधि के लिए ऊपर निर्धारित प्रावधान लागू होंगे, वह अवधि जिसके लिए पूर्ण वेतन और भत्ते को निलंबन की श्रेणी में मानते हुए आहरित नहीं किया गया है। यदि प्रबंधन जांच के बाद उसे सेवा में जारी न रखने का निर्णय लेता है, तो कर्मचारी केवल ऊपर बताए अनुसार नोटिस के बदले तीन महीने के वेतन और भत्ते के साथ बर्खास्तगी के लिए उत्तरदायी होगा।

19.4 यदि किसी अपराध के लिए किसी कर्मचारी पर मुकदमा चलाने या उस पर मुकदमा चलाने के लिए कदम उठाए जाने के बाद, अपराध करने के एक वर्ष के भीतर उस पर मुकदमा नहीं चलाया जाता है, तो प्रबंधन उसके साथ इस तरह व्यवहार कर सकता है जैसे उसने कोई अपराध किया हो जैसा कि नीचे परिभाषित किया गया है, "घोर कदाचार" या "मामूली कदाचार" का कार्य; बशर्ते कि यदि जिस प्राधिकारी को अभियोजन की कार्यवाही शुरू करनी थी, वह ऐसा करने से इनकार करता है या इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि अभियोजन के लिए कोई मामला नहीं है, तो प्रबंधन के लिए कर्मचारी के खिलाफ खंड 19.11 और 19.12 निर्धारित प्रावधानों के तहत आगे बढ़ने का अधिकार होगा। सेवामुक्ति से संबंधित इन्फ्रा, लेकिन उसे निलंबन की अवधि, यदि कोई हो, के दौरान ड्यूटी पर माना जाएगा और वह ऐसी अवधि के लिए पूर्ण वेतन और भत्ते और अन्य सभी विशेषाधिकारों का हकदार होगा।

यदि प्रबंधन जांच के बाद उसे सेवा में जारी नहीं रखने का निर्णय लेता है, तो वह केवल नोटिस के बदले तीन महीने के वेतन और भत्ते के साथ बर्खास्तगी के लिए उत्तरदायी होगा, जैसा कि अवधि के दौरान सुप्राफ के क्लॉज 19.3 में दिया गया है। इस प्रकार । इस प्रकार

अनुवादित

शुरू की गई कार्यवाही में उसे मुकदमे में डाल दिया जाता है, ऐसी कार्यवाही को परीक्षण के पूरा होने तक रोक दिया जाएगा, जिसके बाद उपरोक्त खंड 19.3 में उल्लिखित प्रावधान लागू होंगे।

10. उपरोक्त धाराओं के आधार पर, श्री खरे का तर्क यह है कि चूंकि याचिकाकर्ता के खिलाफ वर्ष 1999 में पहली सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी और जांच एजेंसी द्वारा छह महीने की अवधि के भीतर एफआईआर के अनुसार आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था। एफआईआर दर्ज होने की तिथि पर विभागीय कार्यवाही पर रोक लगाई जा सकती थी। श्री खरे का कहना है कि विभागीय आरोप पत्र 18.02.2002 को दायर किया गया था और चूंकि आपराधिक मुकदमा विभागीय कार्यवाही शुरू होने की तारीख पर लंबित था, इसलिए इसे आपराधिक क्षेत्राधिकार का उपयोग करने वाली अदालत के फैसले की प्रतीक्षा में रोक दिया जाना चाहिए था। श्री खरे ने आगे कहा कि खंड 19.3(ए) के अनुसार, जब प्रबंधन की राय में किसी कर्मचारी ने कोई अपराध किया है, जब तक कि उस पर अन्यथा मुकदमा न चलाया जाए, याचिकाकर्ता उस पर मुकदमा चलाने के लिए कदम उठा सकता है और खंड (सी) के अनुसार, यदि कर्मचारी को बरी कर दिया जाता है, प्रबंधन उसके खिलाफ धारा 19.11 और 19.12 में निर्धारित प्रावधानों के तहत आगे बढ़ने के लिए खुला होगा जो अनुशासनात्मक कार्रवाई से संबंधित है। श्री खरे ने आगे कहा कि खंड 19.4 के अनुसार, यदि किसी अपराध के लिए कर्मचारी पर मुकदमा चलाने या उस पर मुकदमा चलाने के लिए कदम उठाए जाने के बाद, अपराध करने के एक वर्ष के भीतर उस पर मुकदमा नहीं चलाया जाता है, तो प्रबंधन ऐसा कर सकता है। उसके साथ मानो उसने "घोर कदाचार" या "मामूली कदाचार" का कार्य किया हो, बशर्ते कि यदि अभियोजन की कार्यवाही शुरू करने वाला प्राधिकारी ऐसा करने से इनकार करता है या इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि अभियोजन के लिए कोई मामला नहीं है, तो उसे ऐसा करना होगा। प्रबंधन खंड 19.11 और 19.12 में निहित प्रावधानों के तहत कर्मचारी के खिलाफ कार्रवाई करने के लिए रहेगा।

11. श्री खरे ने आगे तर्क दिया है कि यदि प्रबंधन जांच के बाद कर्मचारी को सेवा में जारी नहीं रखने का निर्णय लेता है, तो वह क्लॉज 19.3 के अनुसार नोटिस के बदले तीन महीने के वेतन और भत्ते के साथ बर्खास्तगी के लिए के लंबित रहने के दौरान, उस पर होगा और यदि इस प्रकार शुरू की गई कार्यवाही चलाया जाता है, ऐसी कार्यवाही को मुकदमे के पूरा होने तक रोक दिया जाएगा जिसके बाद खंड 19.03 में उल्लिखित प्रावधान लागू होंगे।

12. श्री खरे ने भाषा में निरदार तर्क दिया है कि खंड 19.4/ खंड 4 के तहत निषेध एक नकारात्मक कि यदि किसी कर्मचारी पर मुकदमा चलाने के लिए कदम उठाए जाने के बाद, अपराध के एक वर्ष के भीतर उस पर मुकदमा नहीं चलाया जाता है, तो प्रबंधन उसके साथ ऐसा व्यवहार कर सकता है मानो उसने घोर कदाचार का कार्य किया हो। उक्त नकारात्मक निषेध का स्पष्ट आशय यह है कि यदि किसी कर्मचारी के लिए आपराधिक मुकदमा चलाने के लिए कदम उठाए गए हैं, तो प्रबंधन अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने से

अनुवादित

पहले एक वर्ष की अवधि तक इंतजार करने के लिए बाध्य है। यदि एक वर्ष की इस अवधि के भीतर मुकदमा शुरू हो जाता है, तो प्रबंधन आपराधिक मुकदमे के समापन की प्रतीक्षा करने के लिए बाध्य है। यदि अपराध घटित होने की तारीख से एक वर्ष की अवधि के भीतर आपराधिक मुकदमा शुरू न होने के कारण अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की जाती है, तब भी, यदि अनुशासनात्मक कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान आपराधिक मुकदमा उसके बाद शुरू होता है। अनुशासनात्मक कार्यवाही को आपराधिक मुकदमे के समापन तक इंतजार करना होगा।

13. श्री खरे ने आगे तर्क दिया कि विभागीय जांच में याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाया गया आरोप वही था जो एफआईआर / आपराधिक मुकदमे का विषय था। उक्त आपराधिक कार्यवाही में, याचिकाकर्ता को दिनांक 15.10.2009 के फैसले (रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 5, पृष्ठ से बरी कर दिया गया। उपरोक्त निर्णय के अवलोकन से पता चलता है कि इस तरह का बरी होना इस आधार पर एक सम्मानजनक बरी था कि याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोप के समर्थन में कोई सबूत मौजूद नहीं था। ऐसे बरी किए जाने के कारण, श्रम न्यायालय ने दिनांक 19.07.2016 को फैसला सुनाते हुए सेवा से बर्खास्तगी को बरकरार रखने में स्पष्ट रूप से गलती की।

14. समाप्ति आदेश के गुण-दोष के आधार पर, श्री खरे ने जांच रिपोर्ट के अनुसार सहायक महाप्रबंधक, यानी अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित दिनांक 22.09.2004 के आदेश का उल्लेख किया है और प्रस्तुत किया है कि अनात्मक प्राधिकारी ने पहले ही अपना मन बना लिया था। याचिकाकर्ता को कानून के अनिवार्य प्रावधानों का पालन किए बिना ही सेवा से बर्खास्त कर दिया जाए, जिसके तहत जब भी जांच अधिकारी द्वारा कोई जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की जाती है, तो सबसे विचार करना " कर्मचारी का पक्ष जानना होगा और उस पर विचार करने के बाद ही दिमाग लगाने के बाद ही अंतिम राय बनाई जा सकती है। श्री खरे ने दिमांक 22.09.2004 के आदेश के पैराग्राफ 3 का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है:-

"3. मैंने मामले के तथ्यों और परिस्थितियों का पूरी तरह से अध्ययन किया है। स्वतंत्र रूप से अपना दिमाग लगाने के बाद मेरा विचार है कि यदि श्री बशिष्ठ मुनि मिश्रा, दुफ्तारी (निलंबन के तहत) को दिनांक 10.04.2002 के समझौता ज्ञापन के पैरा 6 (ए) के संदर्भ में बिना किसी सूचना के बैंक की सेवा से बर्खास्त कर दिया जाए तो न्याय का उद्देश्य पूरा हो जाएगा। बैंक और ऑल इंडिया एसबीआई स्टाफ फेडरेशन के तहत मैं यह भी आदेश देता हूं कि श्री मिश्र द्वारा बिताई गई अवधि को निलंबित माना जाएगा और पहले से भुगतान किए गए जीवन निर्वाह भत्ते के अलावा उन्हें कोई वेतन और भत्ते देय नहीं होंगे। मैं तदनुसार आदेश करता हूं।

15. श्री खरे का कहना है कि जांच अधिकारी द्वारा प्रस्तुत जांच रिपोर्ट याचिकाकर्ता को आपत्ति दाखिल करने के लिये तत्काल उपलब्ध नहीं करायी गयी इसके बजाय, सहायक महाप्रबंधक/अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने अपराध के निष्कर्षों को दर्ज करने के लिए

अनुवादित

आगे बढ़े और याचिकाकर्ता पर लगाए जाने वाले दंड का भी निर्णय लिया। दिनांक 22.09.2004 के अनंतिम आदेश के साथ याचिकाकर्ता को जांच रिपोर्ट की एक प्रति प्रदान की गई थी। इस प्रकार अपनाई गई प्रक्रिया कानून की आवश्यकता का अनुपालन नहीं करती है। जांच रिपोर्ट में दर्शाए गए याचिकाकर्ता के अपराध को अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता को जांच रिपोर्ट की प्रति दिए बिना और उसके खिलाफ आपत्ति करने का अवसर बिना स्वीकार कर लिया।

16. अपने तर्क के समर्थन में, श्री खरे ने निम्नलिखित अधिकारियों पर भरोसा जताया है: -

(i) 2002 एससीसी ऑनलाइन केल 25 (लक्ष्मण कुमार मंडल बनाम यूको बैंक और अन्य), 24.01.2002;

(ii) 2006 (5) एससीसी 446 (जी.एम. टैंक बनाम गुजरात राज्य और अन्य);

(iii) 2019 अन्य; तथा ऑनलाइन सभी। 4460 (संजय किशोर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं

(iv) 2019 एससीसी ऑनलाइन सभी 5794 (आनंद राम नगर बनाम बनारस स्टेट बैंक लिमिटेड और अन्य); दहिया).

(v) (2017) 1 एससीसी 768 (हिमाचल प्रदेश राज्य विद्युत बोर्ड लिमिटेड बनाम महेश

17. इसके विपरीत, श्री एस. के. प्रतिवादी - बैंक के विद्वान अधिवक्ता श्री सुमित कक्कड़ के साथ कक्कड़ ने रिट याचिका का जोरदार विरोध किया है और यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता का यह तर्क कि सेवाएं समझौता ज्ञापन द्वारा शासित होती हैं दिनांक 19.10.1966 गलत है क्योंकि कार्यवाही की गई थी और याचिकाकर्ता के खिलाफ दिनांक 10.04.2002 के समझौता ज्ञापन के संदर्भ में कार्रवाई की गई थी, जिसकी एक प्रति रिट याचिका में अनुलग्नक संख्या 2 के रूप में दायर की गई है। श्री कक्कड़ ने आगे तर्क दिया कि बैंक ने आपराधिक मुकदमा नहीं चलाया, बल्कि एफआईआर भारतीय जीवन बीमा निगम के शाखा प्रबंधक द्वारा दर्ज की गई थी और इसलिए, आपराधिक मुकदमे और उसके प्रभाव के संदर्भ में दिए गए तर्क में कोई दम नहीं है। श्री कक्कड़ ने आगे तर्क दिया है कि जहां तक विभागीय कार्यवाही जारी रखने का सवाल है, इसे उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 26.11.2001 को आगे बढ़ाने में आयोजित और पूरा किया गया था और इसलिए, याचिकाकर्ता का प्रस्तुतीकरण है कि विभागीय कार्यवाही आयोजित नहीं की जा सकती थी या रोके जाने योग्य थी, यह उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के विपरीत होगा और विभाग इसकी अवमानना नहीं कर सकता था।

18. आक्षेपित समाप्ति आदेश के साथ-साथ विभागीय कार्यवाही के गुण-दोष के आधार पर, श्री कक्कड़ ने प्रस्तुत किया है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित दिनांक 22.09.2004 का आदेश केवल एक अस्थायी आदेश था जो उसी के पैराग्राफ संख्या 4 से स्पष्ट है, जो निम्नानुसार है:-

4. हालांकि, मामले में अंतिम निर्णय लेने से पहले, मैं उन्हें उपरोक्त आदेश के विरुद्ध, यदि कोई हो, इसकी प्राप्ति के 07 दिनों के भीतर प्रस्तुतियाँ देने का अवसर देता हूँ, न करने पर यह माना जाएगा कि उनके पास इस संबंध में

अनुवादित

प्रस्तुत करने के लिए कुछ नहीं है और अंतिम आदेश उनके आगे किसी संदर्भ के बिना पारित किया जाएगा।

19. इसलिए, श्री कक्कड़ का कहना है कि याचिकाकर्ता को अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा मामले में अंतिम निर्णय लेने से पहले अपना पक्ष रखने का पूरा अवसर प्रदान किया गया था। का भी उन्होंने उल्लेख किया है अंतिम आदेश दिनांक 26.10.2004 उसी के पैराग्राफ संख्या 5 के संदर्भ में जहां शब्द "इसलिए, मैं अपने दिनांक 22.09.2004 के अस्थायी आदेश की पुष्टि करता हूं" प्रयोग किया जा चुका है। उनका कहना है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोपों को तथ्यों के शुद्ध निष्कर्षों को दर्ज करके साबित किया गया था, जिसे रिट क्षेत्राधिकार में परेशान नहीं किया जा सकता है और न ही किया जाना चाहिए।

20. श्री कक्कड़ ने यह भी तर्क दिया है कि आपराधिक मुकदमे के लंबित होने के कारण, अन्यथा भी, विभागीय कार्यवाही पर रोक नहीं लगाई जा सकती है और उक्त दोनों कार्यवाही एक साथ चल सकती हैं। उन्होंने अपनी दलीलों के समर्थन में निम्नलिखित प्राधिकारियों पर भी भरोसा जताया है:-

(i) भारत संघ और अन्य बनाम दलबीर सिंह: (2021) 11 एससीसी 321;

(ii) कर्नाटक राज्य और अन्य बनाम उमेश : (2022) 6 एससीसी 563;

(iii) भारतीय स्टेट बैंक और अन्य बनाम आर. बी. शर्मा: (2004) 7 एससीसी 27;

(iv) भारत हेवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड बनाम का प्रबंधन एम. मणि: (2018) 1 एससीसी

(v) वेस्ट बोकरो कोलिरी (टिस्को लिमिटेड) बनाम राम प्रवेश सिंह: (2008) 3 SCC 729;

(vi) उप महाप्रबंधक (अपीलीय प्राधिकारी) और अन्य बनाम । अजय कुमार श्रीवास्तवः (2021) 2 एससीसी 612; (

vii) गोपाल नारायण शुक्ला बनाम एजीएम एसबीआई (रिट याचिका संख्या 7737/2005) पर 24.02.2020 को निर्णय लिया गया; (डीबी). 21.

(viii) प्रीति चौहान बनाम यूपी राज्य और अन्यः 2008 (9) एडीजे 388;

(ix) मयंक अग्रवाल बनाम बरेली क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक और अन्य: 2013 (3) एडीजे 143

21. श्री कक्कड़ ने यह भी तर्क दिया है कि न्यायाधिकरण ने आदेश के पैराग्राफ संख्या 13 में एक निष्कर्ष दर्ज किया है कि उसने 07.02.2013 को इस आशय का एक प्रारंभिक मुद्दा तैयार किया था कि क्या प्रबंधन द्वारा की गई घरेलू जांच उचित और निष्पक्ष थी। दिनांक 12.08.2015 के आदेश द्वारा, न्यायाधिकरण ने माना कि बैंक द्वारा की गई जांच उचित और उचित है और उसी दिन, कर्मचारी के लिए अधिकृत प्रतिनिधि ने एक आवेदन दायर किया जिसमें कहा गया कि उसे प्रक्रिया की सीमा तक पूछताछ के संबंध में कोई समस्या नहीं है। लेकिन जांच अधिकारी का निष्कर्ष कानून की नजर में मान्य नहीं है। इसलिए, श्री कक्कड़ ने प्रस्तुत किया है कि उपरोक्त निष्कर्ष से यह स्पष्ट है कि कार्यकर्ता ने घरेलू जांच में अपनाई गई जांच प्रक्रिया की

अनुवादित

निष्पक्षता को स्वीकार किया था और केवल जांच अधिकारी के निष्कर्षों को चुनौती दी है।

22. इस संबंध में, श्री खरे ने दिनांक 12.08.2015 के आदेश का उल्लेख किया है, जिस पर न्यायाधिकरण द्वारा लागू आदेश में विचार किया गया है और प्रस्तुत किया है कि केवल इसलिए कि अधिकृत प्रतिनिधि ने, दिनांक 12.08.2015 के एक आवेदन के माध्यम से प्रस्तुत किया है कि कर्मचारी को प्रक्रिया की सीमा तक जांच के संबंध में कोई समस्या नहीं थी, वही अधिकारियों को स्थापित प्रक्रिया के विपरीत कार्य करने के लिए बाध्य नहीं करेगा, खासकर, जब आपराधिक मुकदमा चल रहा था पूरी विभागीय कार्यवाही उन्हीं आरोपों से संबंधित थी जिन पर आपराधिक मुकदमा चल रहा था और इसलिए, अधिकृत प्रतिनिधि की ओर से दिए गए किसी भी आवेदन या बयान या तर्क को याचिकाकर्ता के मामले के लिए घातक नहीं माना जा सकता है।

23. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता सुना है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

24. इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है कि भारतीय जीवन बीमा निगम के शाखा प्रबंधक ने 10.12.1999 को पहली सूचना रिपोर्ट दर्ज की थी और याचिकाकर्ता पर आपराधिक "आईआर दर्ज नहीं की गई थी और इसलिए मामला क्लॉज 19.3 या 19.4 कार्यवाही में आरोप पत्र दायर किया गया था। श्री कक्कड़ की इस आशय की दलील कि चूंकि बैंक द्वारा के अंतर्गत नहीं आएगा, श्री खरे ने क्लॉज 19.3 (ए) में इस्तेमाल की गई भाषा का हवाला देते हुए जवाब दिया है। 1966 का समझौता ज्ञापन जिसमें "शब्दों का प्रयोग किया गया है "जब तक उस पर अन्यथा मुकदमा न चलाया जाए" और, इसलिए, श्री खरे का कहना है कि यह महत्वहीन है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट किसने दर्ज कराई थी, बल्कि महत्वपूर्ण यह है कि क्या एक दोषी कर्मचारी के खिलाफ शुरू किए गए अभियोजन का विभिन्न धाराओं के अनुसार विभागीय कार्यवाही पर कोई प्रभाव पड़ेगा या नहीं निस्तारित करने का जिसमें आपराधिक मुकदमे के लंबित रहने तक विभागीय कार्यवाही का प्रावधान है।

25. वर्तमान मामले में, मैंने पाया कि जब वर्ष 2004 में सजा आदेश पारित किया गया था, तो याचिकाकर्ता के खिलाफ आपराधिक मुकदमा लंबित था। हालाँकि, जब वर्ष 2016 में न्यायाधिकरण द्वारा लागू आदेश के तहत मामला तय किया गया था, तो याचिकाकर्ता को 15.10.2009 के फैसले के तहत पहले ही बरी कर दिया गया था। श्री खरे ने जोरदार तर्क दिया कि याचिकाकर्ता द्वारा 25.03.2010 को लिखित प्रस्तुतियाँ दायर की गईं, जिसमें उक्त दोषमुक्ति का संदर्भ था और दिनांक 15.10.2009 के फैसले की प्रति लिखित प्रस्तुतियों के साथ संलग्न की गई थी, हालाँकि न्यायाधिकरण के आदेश में कोई विचार नहीं किया गया है।

26. Us श्री कक्कड़ के इस तर्क के संबंध में कि सेवाएँ 1966 के समझौता ज्ञापन द्वारा नहीं बल्कि 10.04.2002 के बाद के समझौता ज्ञापन द्वारा शासित थीं, श्री खरे का मानना है कि खंड 19.3 और 19.4 समझौते की शर्तों के साथ समानता रखते हैं। दिनांक 10.04.2002 के आगामी ज्ञापन में निहित है। त्वरित संदर्भ

अनुवादित

के लिए, अनुशासनात्मक कार्रवाई और उसके लिए प्रक्रिया से संबंधित प्रावधान, जैसा कि दिनांक 10.04.2002 के समझौता ज्ञापन में निहित है, यहां नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है: अनुशासनात्मक कार्रवाई और उसके लिए प्रक्रिया

1. जिस व्यक्ति के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई प्रस्तावित है या किए जाने की संभावना है, उसे सबसे पहले उसके खिलाफ आरोप के विवरण के बारे में सूचित किया जाएगा और उसे ऐसे विवरण के बारे में अपना स्पष्टीकरण देने का उचित वसर मिलेगा। अंतिम आदेश सभी प्रासंगिक तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार के बाद पारित किया जाएगा। इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए, निम्नलिखित लागू होगा।

2. अभिव्यक्ति "अपराध" से तात्पर्य नैतिक अधमता से जुड़ा कोई भी अपराध होगा जिसके लिए किसी कर्मचारी को कानून के किसी भी प्रावधान के तहत दोषी ठहराया जा सकता है और सजा दी जा सकती है।

3. (ए) जब प्रबंधन की राय में किसी कर्मचारी ने कोई अपराध किया है, जब तक कि उस पर अन्यथा मुकदमा न चलाया जाए, बैंक उस पर मुकदमा चलाने या मुकदमा चलाने के लिए कदम उठा सकता है और ऐसे मामले में उसे निलंबित भी किया जा सकता है।

(बी) यदि उसे दोषी ठहराया जाता है, तो उसे सजा की तारीख से बर्खास्त किया जा सकता है। उसे नीचे खंड 6 में उल्लिखित किसी भी प्रकार की कम सजा दी जाए।

(सी) यदि उसे बरी कर दिया जाता है, तो प्रबंधन उसके खिलाफ डिस्चार्ज से संबंधित खंड 11 और 12 के प्रावधानों के तहत आगे बढ़ने के लिए में हालाँकि, यदि प्रबंधन पूछताछ के बाद उसे सेवा में जारी नहीं रखने का निर्णय लेता है, तो वह केवल नोटिस के बदले तीन महीने के वेतन और भत्ते के साथ सेवा समाप्ति के लिए उत्तरदायी होगा और निलंबन की अवधि, यदि कोई हो, के दौरान उसे ड्यूटी पर माना जाएगा और वह ऐसे निर्वाह को घटाकर पूर्ण वेतन और भत्ते का हकदार होगा। निलंबन की अवधि के लिए भत्ता और अन्य सभी विशेषाधिकार बशर्ते कि यदि उसे का लाभ देकर बरी कर दिया जाता है तो उसे ऐसे भत्ते और भत्ते का उतना हिस्सा भुगतान किया जा सकता है जितना प्रबंधन उचित समझे, वेतन और अवधि का भुगतान किया जा सकता है। जब तक प्रबंधन निर्देश न दे, उसकी अनुपस्थिति को ड्यूटी पर बिताई गई अवधि के रूप में नहीं माना जाएगा।

(डी) यदि वह अपनी सजा के खिलाफ अपील या पुनरीक्षण आवेदन दायर करता है और बरी कर दिया जाता है, यदि उस पर पहले ही उपरोक्त कार्रवाई हो चुकी है और वह अपने मामले पर पुनर्विचार के लिए प्रबंधन को आवेदन करता है। प्रबंधन उसके मामले की समीक्षा करेगा और या तो उसे बहाल कर सकता है या उसके खिलाफ धारा 11 और 12 में नीचे दिए गए प्रावधानों के तहत बर्खास्तगी से संबंधित प्रावधानों के तहत कार्रवाई कर सकता है, और वेतन, भत्ते और निलंबन की अवधि के लिए ऊपर निर्धारित प्रावधान लागू होंगे। वह अद्यतन अवधि लिए पूरा वेतन और भत्ते नहीं लिए गए हैं, उसे निलंबन में से एक माना जाएगा। यदि प्रबंधन जांच के बाद उसे सेवा में जारी न रखने का निर्णय लेता है, तो

अनुवादित

कर्मचारी केवल ऊपर बताए अनुसार नोटिस के बदले तीन महीने के वेतन और भत्ते के साथ बर्खास्तगी के लिए उत्तरदायी होगा।

4. यदि किसी अपराध के लिए किसी कर्मचारी पर मुकदमा चलाने या उस पर मुकदमा चलाने के लिए कदम उठाए जाने के बाद, अपराध करने के एक वर्ष के भीतर उस पर मुकदमा नहीं चलाया जाता है, तो प्रबंधन उसके साथ इस तरह व्यवहार कर सकता है जैसे कि उसने अपराध किया हो। "घोर कदाचार या मामूली कदाचार" का एक कार्य, जैसा कि नीचे परिभाषित किया गया है: बशर्ते कि यदि अभियोजन कार्यवाही शुरू करने वाला प्राधिकारी ऐसा करने से इनकार करता है या इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि अभियोजन के लिए कोई मामला नहीं तो यह प्रबंधन के लिए खुला होगा बर्खास्तगी से संबंधित खंड 11 और 12 के प्रावधानों के तहत कर्मचारी के खिलाफ की जाएगी, लेकिन उसे निलंबन की अवधि के दौरान ड्यूटी पर माना जाएगा, यदि कोई हो, और पूर्ण वेतन और भत्ते और ऐसी अवधि के अन्य सभी विशेषाधिकार का हकदार होगा। यदि प्रबंधन जांच के बाद उसे सेवा में जारी नहीं रखने का निर्णय लेता है, तो वह उपरोक्त खंड 3 दिए गए अनुसार नोटिस के बदले तीन महीने के वेतन और भत्ते के साथ बर्खास्तगी के लिए उत्तरदायी होगा। यदि इस प्रकार शुरू की गई कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान उस पर मुकदमा चलाया जाता है तो ऐसी कार्यवाही को मुकदमे के पूरा होने तक रोक दिया जाएगा, जिसके बाद उपरोक्त खंड 3 में उल्लिखित प्रावधान लागू होंगे।

27. मैंने न्यायाधिकरण के आदेश का अध्ययन किया है और मैंने पाया है कि इसके समापन पैराग्राफ 28, 29, 30, 31, 32, 33, 34 और 35 मामले के केवल एक पहलू पर चर्चा करते हैं जो कि समाप्ति आदेश की तारीख है। संदर्भ के क्रम में 22.09.2004 दर्शाया गया है जबकि याचिकाकर्ता को 26.10.2004 के आदेश द्वारा सेवाओं से बर्खास्त कर दिया गया था जिसे याचिकाकर्ता द्वारा चुनौती नहीं दी गई है और इसलिए, संदर्भ तथ्यात्मक स्थिति के विपरीत प्रतीत होता है। इस संबंध में, न्यायाधिकरण द्वारा यह माना गया कि याचिकाकर्ता किसी भी राहत का हकदार नहीं है।

28. यद्यपि उपरोक्त टिप्पणियाँ इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए काफी आश्चर्यजनक हैं कि समाप्ति आदेश की तारीख यानी 22.09.2004 या 26.10.2004 के संबंध में कुछ विसंगति हो सकती है, एक बार जब पूरा मामला पहले चरण से अंतिम चरण तक यात्रा कर चुका था, न्यायाधिकरण को समाप्ति आदेश की तारीख में विसंगति का पता लगाने और इसे को राहत देने से इनकार करने का आधार नहीं बनाना चाहिए था। इसलिए, याधिकरण के आदेश के पैराग्राफ 28 से 35 में की गई टिप्पणियाँ, मामले में शामिल वास्तविक विवाद के निराशाजनक रूप से विपरीत होने के कारण, स्पष्ट रूप से अस्थिर है और इसकी निंदा की जाती है।

29. जहां तक गुणावगुण का सवाल है, मुझे वा के आदेश में दिनांक 19.10.1966 Sit for के समझौता ज्ञापन के खंड 19.3 और 19.4 के प्रावधानों या यहां तक कि इसमें निहित समान शर्तों के प्रभाव के संबंध में कोई चर्चा नहीं मिली। आगामी ज्ञापन दिनांक 10.04.2002. न्यायाधिकरण ने इस बात पर भी चर्चा नहीं

अनुवादित

की है कि आपराधिक मुकदमा कब शुरू हुआ और इसका विभागीय कार्यवाही पर क्या प्रभाव पड़ेगा। जहां तक रिट याचिका संख्या 33817 सन् 2001 में Ss रत आदेश दिनांक 08.11.2001 का प्रश्न है संबंधित, यद्यपि उक्त आदेश को इस याचिका याचिका के किसी भी पक्ष द्वारा न्यायालय के अवलोकन हेतु प्रस्तुत नहीं किया गया है, मैंने पाया कि उक्त रिट याचिका वर्ष 2001 में दायर की गई थी और उसी समय इसका निपटारा कर दिया गया था और उस समय भी विभागीय कार्यवाही से संबंधित आरोप पत्र याचिकाकर्ता को नहीं दिया गया था और उक्त पृष्ठभूमि में, जांच करने के लिए एक सामान्य निर्देश जारी किया गया हो सकता है। भले ही उच्च न्यायालय ने उस चरण में जांच करने की अनुमति दी हो जब याचिकाकर्ता निलंबित था, फिर भी, न्यायालय की राय में, यह 1966 और/या 2004 के समझौता ज्ञापन की विशिष्ट शर्तों और खंडों के प्रभाव को रद्द नहीं करेगा। चूँकि जांच कार्यवाही की वैधता की जांच उक्त निपटान में निहित विशिष्ट शर्तों के आलोक में की जानी है।

30. न्यायाधिकरण ने याचिकाकर्ता को समान आपराधिक आरोपों से सम्मानजनक बरी करने के प्रभाव पर भी विचार नहीं किया है। निर्णय इस बारे में पूरी तरह से मौन है। यह न्यायाधिकरण की ओर से एक स्पष्ट विकृति है क्योंकि 25.03.2010 को लिखित प्रस्तुतियाँ दाखिल करने पर उत्तरदाताओं द्वारा जवाबी हलफनामे में कोई विवाद नहीं किया गया है और लिखित जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ संख्या 27 में केवल इतना ही कहा गया है गलत और गलत तथ्यों पर तर्क (गलत तरीके से लिखित बयान के रूप में उल्लेखित) दायर किया गया था।

31. अब याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए अधिकारियों की बात करें तो इस न्यायालय ने लक्ष्मण कुमार मंडल (उपरोक्त) में द्विपक्षीय समझौते के उपरोक्त खंड 19.4 पर विचार किया है और माना है कि इस खंड का उद्देश्य निष्पक्ष सुनवाई सुनिश्चित करना है और दोहरे जोखिम से बचाना है। वास्तव में इसका उद्देश्य हितों की रक्षा करना है अपराधी की, सिद्धांत के अनुरूप परिणति हुई कैप्टन एम. पॉल एंथोनी बनाम भारत गोल्ड माइंस लिमिटेडः AIR 1999 SC 1416. सुप्रीम कोर्ट ने जी.एम. के मामले में टैंक (उपरोक्त), पैराग्राफ संख्या में 22, 23 और 24 में निम्नानुसार आयोजित किया गया है:-

22. कैप्टन एम. पॉल एंथोनी बनाम भारत गोल्ड माइंस लिमिटेड में इस न्यायालय के समक्ष प्रश्न यह था कि क्या समान तथ्यों के आधार पर शुरू की गई विभागीय कार्यवाही और आपराधिक मामले की कार्यवाही एक साथ जारी रखी जा सकती है। पैरा 34 में, इस न्यायालय ने निम्नानुसार कहा : (एससीसी पृष्ठ 695

"34. प्रतिवादियों के पूरे मामले को खारिज करने का एक और कारण है। जैसा कि बताया गया है पहले भी आपराधिक मामला दर्ज किया जा चुका है विभागीय कार्यवाही तथ्यों के समरूपता पर आधारित थी, अर्थात्, 'अपीलकर्ता के निवास पर छापा मारा गया और वहां से आपत्तिजनक वस्तुओं की बरामदगी की गयी।

अवैधानिक

जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष, जिसकी एक प्रति हमारे सामने रखी गई है, संकेत देते हैं कि अपीलकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोपों को पुलिस अधिकारियों और पंच गवाहों द्वारा साबित करने की कोशिश की गई थी, जिन्होंने अपीलकर्ता के घर पर छापा मारा था और बरामदगी की थी। वे जांच अधिकारी द्वारा जांचे गए एकमात्र गवाह थे और जांच अधिकारी, उनके बयानों पर भरोसा करते हुए, इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि अपीलकर्ता के खिलाफ आरोप साबित हुए थे। आपराधिक मामले में उन्हीं गवाहों की जांच की गई थी, लेकिन अदालत ने पूरे सबूतों पर विचार करने के बाद निष्कर्ष निकाला कि अपीलकर्ता के निवास से न तो कोई तलाशी ली गई थी और न ही बरामदगी की गई थी। अभियोजन पक्ष का पूरा मामला खारिज कर दिया गया और अपीलकर्ता को बरी कर दिया गया। इस स्थिति में, इसलिए, जहां अपीलकर्ता को न्यायिक निर्णय द्वारा इस निष्कर्ष के साथ बरी कर दिया गया है कि अपीलकर्ता के निवास पर 'छापेमारी और बरामदगी' साबित नहीं हुई थी, एकपक्षीय विभागीय कार्यवाही में दर्ज निष्कर्षों को बरकरार रखना अन्यायपूर्ण, और दमनकारी होगा । "

23. आर.पी. कपूर बनाम भारत संघ और अन्यः एआईआर 1964 एससी 787 (वी 51 सी 101) में सुप्रीम कोर्ट की एक संविधान पीठ ने कहा:

"यदि आपराधिक आरोप की सुनवाई के परिणामस्वरूप दोषसिद्धि होती है, तो दोषी ठहराए गए लोक सेवक के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही की जाएगी। यहां तक कि बरी करने की स्थिति में भी कार्यवाही की जा सकती है, जहां बरी करना सम्मानजनक नहीं है ।"

(प्रभाव वर्धित)

24. नागपुर शहर निगम, सिविल लाइन्स, नागपुर और अन्य बनाम रामचन्द्रस और अन्य: (1981) 2 एससीसी 714 में यही प्रश्न सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष उठा और पैरा 6 में इसे इस प्रकार रखा गया:

"6. दूसरा सवाल यह है कि यदि प्रत्यर्थियों को आपराधिक मामले में बरी कर दिया जाता है तो क्या प्रत्यर्थियों के खिलाफ लंबित विभागीय जांच जारी रहनी होगी या नहीं। यह एक ऐसा मामला है जिसे विभाग द्वारा प्रकृति पर विचार करने के बाद तय किया जाना है आपराधिक अदालत द्वारा दिए गए निष्कर्ष आम तौर पर जहां आरोपी को सम्मानपूर्वक बरी कर दिया जाता है और आरोपों से पूरी तरह से मुक्त कर दिया जाता है, उसी आरोप या आधार या सबूत पर विभागीय जांच जारी रखना समीचीन नहीं होगा, लेकिन तथ्य यह है कि, केवल क्योंकि आरोपी को बरी कर दिया गया है, संबंधित प्राधिकारी की विभागीय जांच जारी रखने की शक्ति नहीं छीनी गई है और न ही उसकी दिशा [विवेकाधिकार] को किसी भी तरह से बाधित किया गया है ।

(प्रभाव वर्धित)

32. इसी दृष्टिकोण को संजय किशोर (उपरोक्त) और आनन्द राम नागर (उपरोक्त) में दोहराया गया है

33. दोषी कर्मचारी को जांच रिपोर्ट के विरूद्ध उत्तर देने का अवसर न दिये जाने के संबंध में

अनुवादित

प्रकरण में दिये गये निर्णय पर भरोसा किया गया है। हिमाचल प्रदेश राज्य विद्युत बोर्ड लिमिटेड न्यायालय ने माना कि जांच रिपोर्ट के आधार पर दोषी कर्मचारी को (उपरोक्त) जहां सर्वोच्च दंडित करने का निर्णय लेने से पहले, उसकी एक प्रति उसे दी जानी चाहिए ताकि वह सक्षम हो सके। उत्तर प्रस्तुत करें और उत्तर पर विचार करने के बाद ही सजा देने का अंतिम आदेश पारित किया जा सकता है।

34. संविधान पीठ में ईसीआईएल बनाम बी. करुणाकरः (1993) 4 एससीसी 727 अनुशासनात्मक जांच के संदर्भ में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों पर विस्तार से विचार करने के बाद, पैरा 29, 30 (iv) और (v) में निम्नलिखित निर्धारित किया गया है:

"29. इसलिए यह माना जाना चाहिए कि जब जांच अधिकारी अनुशासनात्मक प्राधिकारी नहीं है, तो दोषी कर्मचारी को अपराध या निर्दोषता के संबंध में अनुशासनात्मक प्राधिकारी के निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले जांच अधिकारी की रिपोर्ट की एक प्रति प्राप्त करने का अधिकार है कर्मचारी के खिलाफ लगाए गए आरोपों के संबंध में यह अधिकार कर्मचारी के अपने खिलाफ लगाए गए आरोपों के खिलाफ खुद का बचाव करने के अधिकार का एक हिस्सा है, अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा आरोपों पर अपना निर्णय लेने से पहले कर्मचारी को अपनी बेगुनाही साबित करने के लिए उचित अवसर से वंचित करना प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है।

30.... (iv) जिस दृष्टिकोण से हमने लिया है। जांच रिपोर्ट में दर्ज निष्कर्षों के खिलाफ अनुशासनात्मक प्राधिकारी को प्रतिनिधित्व करने का अधिकार आरोपों के खिलाफ बचाव के अवसर का एक अभिन्न अंग है और उक्त अधिकार से इनकार करना प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन यह उचित है कि मोहम्मद में निर्धारित कानून. रमज़ान के मामले सभी प्रतिष्ठानों के कर्मचारियों पर लागू होने चाहिए चाहे वे सरकारी हों या गैर-सार्वजनिक हों या निजी। यह मामला होगा चाहे अनुशासनात्मक कार्यवाही को नियंत्रित करने वाले नियम हों या नहीं और क्या वे रिपोर्ट की प्रति प्रस्तुत करने पर स्पष्ट रूप से रोक लगाते हैं या सजा की प्रकृति चाहे जो भी हो, इसके अलावा, जब भी नियमों जांच की आवश्यकता होती है, तो प्रश्न में सजा देने के लिए, दोषी विषय पर चुप हैं। के तहत को अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा लगाए गए आरोपों पर अपने निष्कर्ष दर्ज करने से पहले जांच अधिकारी की रिपोर्ट का लाभ उसके खिलाफ मिलना चाहिए। इसलिए प्रश्न (iv) का उत्तर तदनुसार दिया गया है।

(v) अगले प्रश्न का उत्तर यह है कि जब जांच अधिकारी की रिपोर्ट कर्मचारी को नहीं दी जाती है तो सजा के आदेश पर क्या प्रभाव पड़ता है और क्या राहत दी जानी चाहिए ऐसे मामलों में उसे दी गई। इस प्रश्न का उत्तर दी गई सज़ा के सापेक्ष होना चाहिए। जब कर्मचारी को बर्खास्त कर दिया जाता है या सेवा से हटा दिया जाता है और जांच रद्द कर दी जाती है क्योंकि उसे रिपोर्ट नहीं दी गई है, तो कुछ मामलों में रिपोर्ट न देने से उस पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है, जबकि अन्य मामलों में इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। उसे

अनुवादित

दी गई अंतिम सज़ा . इसलिए सभी मामलों में कर्मचारी को बकाया वेतन के साथ बहाल करने का निर्देश देना न्याय के नियमों को एक यांत्रिक अनुष्ठान में बदल देना है। उचित अवसर का सिद्धांत और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत कानून के शासन को बनाए रखने और व्यक्ति को उसके उचित अधिकारों की पुष्टि करने में सहायता करने लिए विकसित किए गए हैं। वे न तो मंत्र-मंत्र हैं और न ही सभी या विविध अवसरों पर किए जाने वाले अनुष्ठान हैं। क्या वास्तव में, कर्मचारी को रिपोर्ट देने से इनकार करने के कारण उसके प्रति पूर्वाग्रह उत्पन्न हुआ है या नहीं, प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार किया जाना चाहिए। इसलिए, जहां, रिपोर्ट प्रस्तुत करने के बाद भी, कोई अलग परिणाम नहीं हुआ होगा, नहीं हुआ होगा, कर्मचारी को ड्यूटी पर फिर से शुरू करने और सभी परिणामी लाभ प्राप्त करने की अनुमति देना न्याय का उल्लंघन होगा। यह और दोषियों को पुरस्कृत करने और इस प्रकार न्याय की अवधारणा को अतार्किक और अपमानजनक सीमाओं तक खींचने के समान है। यह "प्राकृतिक न्याय का अप्राकृतिक विस्तार" है जो अपने आप में न्याय के विपरीत है।

35. वर्तमान मामले में, मैंने पाया कि याचिकाकर्ता के खिलाफ विभागीय कार्यवाही का आध बनने वाले आरोप इस प्रकार थे: -

"1. श्री मिश्रा ने तथाकथित श्रीमती प्रेमा देवी का खाता खुलवाने में विशेष रूचि ली। उन्होंने खाताधारक श्रीमती मैना देवी, बचत खाता संख्या 5890 को यह कहकर विश्वास में लिया कि श्रीमती प्रेमा देवी उनकी रिश्तेदार हैं और उनके मना करने के बावजूद, अपने प्रभाव और श्रीमती मैना देवी की अल्पशिक्षितता का फायदा उठाकर, उन्होंने खाता खुलवाने के फार्म में परिचय के स्थान पर प्रेमा देवी के हस्ताक्षर प्राप्त कर लिए, जबकि उन्होंने कहा था कि वे तथाकथित प्रेमा देवी को नहीं जानतीं।

2. उन्होंने श्री यू. एन. कपूर, प्रबंधक (पीबी) से सिफारिश करके तथाकथित प्रेमा देवी के खाते से एक ही लेनदेन के रूप में 65000/- रुपये की राशि का भुगतान सुनिश्चित किया और तत्पश्चात श्री मिश्रा ने श्री कमल नारायण भल्ला, रिकार्ड - कीपर से संबंधित वाउचर प्राप्त करने का प्रयास किया, जिसे श्री भल्ला ने अस्वीकार कर दिया।

3. उन्होंने आरएमएस के एक अन्य कर्मचारी श्री राजेंद्र कुमार द्विवेदी के साथ मिलकर इस धोखाधड़ी को अंजाम दिया।

36. उपरोक्त तीन आरोपों में से आरोप संख्या 1 और 3 सिद्ध पाए गए तथा आरोप संख्या 2 आंशिक रूप से सिद्ध पाया गया।

37. जहां तक एफआईआर के आधार पर शुरू किए गए आपराधिक अभियोजन का सवाल है, आरोप मैना देवी / प्रेमा देवी के संबंध में उपरोक्त लेनदेन के समान और अधिक गंभीर था। इसमें कोई विवाद नहीं है कि आपराधिक क्षेत्र का प्रयोग करने वाली अदालत ने दिनांक 26.09.2010 के फैसले के तहत याचिकाकर्ता को बरी कर दिया और यह फैसला सम्मानजनक और स्पष्ट रूप से बरी करने

अनुवादित

वाला था, न कि याचिकाकर्ता को संदेह का लाभ देने के आधार पर। यहां तक कि जांच अधिकारी ने याचिकाकर्ता के खिलाफ आपराधिक मामले में आरोप पत्र दाखिल करने के साथ-साथ उसके जेल में बंद होने का भी हवाला दिया है। इसलिए, इस न्यायालय का मानना है कि विभागीय कार्यवाही और आपराधिक मुकदमा दोनों समान / समान आरोपों संबंध में चल रहे थे और इसलिए, दोषी कर्मचारी के पक्ष में विभागीय कार्यवाही पर बरी होने के प्रभाव के संबंध में यहां ऊपर उल्लिखित कानून है। याचिकाकर्ता के मामले का समर्थन करता है।

38. अब प्रतिवादी-बैंक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए कानून पर विचार करते हुए, सुप्रीम कोर्ट ने इस मामले में भारत संघ और अन्य (उपरोक्त) यह माना गया कि सेवा मामलों में अदालत द्वारा न्यायिक समीक्षा की शक्ति यह सुनिश्चित करने के लिए है कि व्यक्ति को उचित उपचार मिले, न कि यह सुनिश्चित करने के लिए कि प्राधिकारी जिस निष्कर्ष पर पहुंचता है वह अदालत की नजर में आवश्यक रूप से सही है। यह माना गया कि न्यायिक समीक्षा किसी निर्णय के खिलाफ अपील नहीं है, बल्कि निर्णय लेने के तरीके की समीक्षा है और अदालत को यह जांचना है कि क्या जांच एक सक्षम अधिकारी द्वारा की गई थी या क्या नियम प्राकृतिक न्याय का अनुपालन किया जाता है। आगे यह माना गया कि विभागीय कार्यवाही में सबूत का बोझ उचित संदेह से परे नहीं है जैसा कि आपराधिक मुकदमे में सिद्धांत है लेकिन कदाचार की संभावनाएँ हैं।

39. कर्नाटक राज्य और अन्य (उपरोक्त) के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने विभागीय कार्यवाही के बीच सह-संबंध पर विस्तार से चर्चा की और भरोसा करते हुए समान दृष्टिकोण अपनाया।

40. मुकदमे और अधिकारियों पर भारतीय स्टेट बैंक (उपरोक्त) में सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि इस बारे में कोई सीधा फॉर्मूला नहीं हो सकता कि किस मामले में विभागीय कार्यवाही पर रोक लगाई जाए और ऐसे मामले भी हो सकते हैं जहां दोषी अधिकारियों द्वारा सुनवाई लंबी हो जाती है और उसे नहीं नाई गई विलंबित पद्धति के कारण मामले की का जा सकता है। एक ओर, आपराधिक मामले को लम्बा खींचने की अनुमति दी गई और साथ ही, यह तर्क दिया गया कि आपराधिक मामला लंबित होने के आधार पर विभागीय कार्यवाही रोक दी जानी चाहिए । आगे यह माना गया कि किसी आपराधिक में विभागीय कार्यवाही और कार्यवाही एक साथ चल सकती हैं क्योंकि उनके एक साथ चलने पर हालांकि अलग-अलग चलने पर भी कोई रोक नहीं है, ।

41. भारत हेवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड का प्रबंधन (उपरोक्त) में सुप्रीम कोर्ट ने माना कि ऐसे मामले में जहां जांच आपराधिक कार्यवाही से स्वतंत्र रूप से की गई है, आपराधिक अदालत में बरी होने का कोई फायदा नहीं है और भले ही कोई व्यक्ति आपराधिक अदालत से बरी हो गया हो, फिर भी घरेलू जांच की जा सकती है।

42. वेस्ट बोकारो कोलियरी (टिस्को लिमिटेड) (उपरोक्त) में सुप्रीम कोर्ट एक ऐसे मामले की जांच कर रहा था जहां कामगार ने ए श्रम

अनुवादित

न्यायालय के समक्ष बयान दिया कि वह घरेलू जांच की वैधता, निष्पक्षता और औचित्य को चुनौती नहीं देना चाहते थे और इसी पहलू से भी निपट रहे थे कि क्या आपराधिक मुकदमा और विभागीय कार्यवाही एक साथ चलनी चाहिए और यह भी कहा कि आपराधिक मामले में बरी होना मामला अनुशासनात्मक कार्यवाही तैयार करने में बाधा के रूप में काम नहीं करेगा।

43. उप महाप्रबंधक (अपीलीय प्राधिकारी) (उपरोक्त) में सुप्रीम कोर्ट ने माना कि संवैधानिक अदालतों की न्यायिक समीक्षा की शक्ति निर्णय लेने की प्रक्रिया का मूल्यांकन है, न कि निर्णय की योग्यता और उक्त दायरे को प्राधिकरण के निर्णय की शुद्धता या तर्कसंगतता की जांच तक नहीं बढ़ाया जा सकता है। सुप्रीम कोर्ट ने यह भी माना कि एक बार जब जांच अधिक के निष्कर्षों की अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पुष्टि कर दी गई, तो वे हस्तक्षेप के लिए उत्तरदायी नहीं थे और उच्च न्यायालय ने बर्खास्तगी के आदेश में त्रुटि की थी।

44. गोपाल नारायण शुक्ला (उपरोक्त) के साथ-साथ प्रीति चौहान (उपरोक्त) और मयंक अग्रवाल (उपरोक्त) में उपरोक्त लगभग सभी प्राधिकारियों का संदर्भ दिया गया और यह माना गया कि विभागीय कार्यवाही और आपराधिक मुकदमा एक साथ चल सकता है।

45. यद्यपि इस प्रस्ताव के बारे में कोई विवाद नहीं है कि अपराधी कर्मचारी के विरुद्ध आपराधिक मुकदमा और विभागीय कार्यवाही एक साथ चल सकती है, तथापि शीर्ष न्यायालय के उपरोक्त प्राधिकारियों की सावधानीपूर्वक जांच से यह स्पष्ट हो जाएगा कि विचाराधीन मामले में आपराधिक क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाली अदालत और जिन आरोपों पर एक दोषी कर्मचारी के खिलाफ विभागीय कार्यवाही की जाती है, वे समान हैं दोषी कर्मचारी को सम्मानजनक बरी किए जाने का प्रभाव एक प्रासंगिक कारक होगा और इसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। Tranamammoha

46. मान मामले में, जैसा कि यहां ऊपर देखा गया है, दोनों कार्यवाही में आरोप समान थे और वास्तव में, आपराधिक मुकदमे में आरोप समान लेनदेन के संबंध में अधिक गंभीर और विशिष्ट थे, इसलिए, सम्मानजनक बरी कर दिया गया याचिकाकर्ता निश्चित रूप से विभागीय कार्यवाही में एक निर्णायक कारक था ।

47. वर्तमान मामले में, 1966 के द्विपक्षीय समझौते और / या 10.04.2002 के समझौता ज्ञापन के प्रभाव को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है और याचिकाकर्ता के विद्वान वकील का यह तर्क कि 1966 के समझौते के विशिष्ट खंड 19.3 और 19.4 तथा 10.04.2002 के समझौते के समान खंडों पर विचार करने के बाद, आपराधिक मामले के निर्णय की प्रतीक्षा में विभागीय कार्यवाही स्थगित की जानी चाहिए, बरी करने का आदेश निश्चित रूप से याचिकाकर्ता को दी गई सजा पर लागू होगा। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, श्रम न्यायालय ने दोषमुक्ति के फैसले और उसके प्रभाव या यहां तक कि द्विपक्षीय समझौते के उपरोक्त खंडों को भी नहीं छुआ है, हालांकि

अनुवादित

प्रथम सूचना रिपोर्ट को आक्षेपित आदेश में संदर्भित किया गया है। आक्षेपित आदेश के पैराग्राफ 24 में, श्रम न्यायालय द्वारा यह दर्ज किया गया है कि आरोप संख्या 3 पर जांच अधिकारी की रिपोर्ट पर उत्सुकता से विचार करने के बाद, न्यायाधिकरण मुख्य रूप से इन कारणों से जांच अधिकारी के निष्कर्षों से सहमत होने में असमर्थ है। जांच के दौरान पुलिस द्वारा दर्ज किए गए बयानों के आधार पर ही उक्त आरोप साबित हुआ है। आगे यह माना जाता है कि यह स्थापित कानूनी स्थिति है कि जांच के दौरान पुलिस अधिकारियों द्वारा दर्ज किए गए बयानों को घरेलू जांच में आरोप साबित करने का आधार नहीं बनाया जा सकता है। आरोप लगाया गया कर्मचारी जब तक जांच अधिकारी के समक्ष गवाहों की जांच नहीं की जाती। आदेश के पैराग्राफ 25 में, यह देखा गया कि आरोप संख्या 3 साबित नहीं हुआ है क्योंकि पुलिस अधिकारियों के समक्ष दर्ज किए गए गवाहों के बयान कार्यकर्ता के खिलाफ आरोप संख्या 3 को साबित करने में कोई मदद नहीं करते हैं।

48. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, एक बार सेवा नियम (यहां समझौता ज्ञापन) विशेष रूप से आपराधिक के साथ-साथ विभागीय कार्यवाही के प्रारंभ, लंबित, परिणति और निष्कर्ष का ध्यान रखते हैं, सामान्य सिद्धांत यह है कि आपराधिक मुकदमा और विभागीय कार्यवाही एक साथ चल सकती है, कम से कम याचिकाकर्ता के खिलाफ इसे सख्ती से लागू नहीं किया जा सकता है, अन्यथा यह एक ऐसा मामला होगा जहां सामान्य अवधारणाएं विशिष्ट सेवा नियमों पर हावी हो जाएंगी, जो कि न्यायालय की राय में स्वीकार्य नहीं है।

49. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, मुझे लगता है कि विभागीय अधिकारियों को याचिकाकर्ता के खिलाफ विभागीय कार्यवाही शुरू नहीं करनी चाहिए थी क्योंकि आपराधिक मामले में आरोप पत्र एक वर्ष की अवधि के भीतर प्रस्तुत किया गया था और भले ही, किसी भी हद तक कल्पना कीजिए, यह माना जाता है कि विभागीय कार्यवाही शुरू हो सकती है, आपराधिक मुकदमे के फैसले की प्रतीक्षा में उन्हें रोका जाना तय था। ऐसा नहीं किया गया है और दोषमुक्ति के निर्णय के प्रभाव के साथ-साथ 1966 के निपटान के खंड 19.3 और 19.4 और निपटान के समान खंडों पर कोई विचार नहीं किया गया है, आक्षेपित आदेश टिक नहीं पाता है और रद्द किया जा सकता है।

50. तदनुसार, रिट याचिका सफल होती है और है आंशिक रूप से अनुमति. औद्योगिक द्वारा दिनांक 19.07.2016 को पारित आक्षेपित निर्णय न्यायाधिकरण - सह - श्रम न्यायालय, याचिका के अनुबंध संख्या 19 में निहित है, साथ ही सहायक महाप्रबंधक और उप महाप्रबंधक द्वारा पारित आदेश क्रमशः 26.10.2004 और 19.01.2005, जैसा कि और रिट याचिका संख्या 11 को इसके द्वारा रद्द किया जाता है। 9 में निहित है।

51. चूंकि याचिकाकर्ता, याचिका दायर करने की तिथि पर भी सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त कर चुका था, सेवा में उसकी बहाली की राहत नहीं दी जा सकती। सभी कार्यवाहियों के एक साथ प्रभाव के साथ-साथ अधिनिर्णय पारित होने के समय याचिकाकर्ता की उम्र को ध्यान

अनुवादित

में रखते हुए, यह प्रावधान किया गया है कि याचिकाकर्ता अपनी सेवानिवृत्ति की तारीख तक सेवाएं लेकिन बिना किसी ब्याज के वेतन के पूरे बकाया और परिणामी लाभों का हकदार होगा।

52. याचिकाकर्ता को सेवानिवृत्ति के बाद मिलने वाले लाभों का भुगतान भी उसकी सेवानिवृत्ति की तिथि से कि इस आदेश भुगतान की तिथि तक 6% साधारण ब्याज के साथ किया जाएगा, जो प्रमाणित प्रति प्रतिवादी बैंक के समक्ष प्रस्तुत किए जाने की तिथि से तीन महीने की अवधि के भीतर तदनुसार गणना की जाएगी।

53. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं ।

(2023) 6 ILRA 524

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 05.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा

माननीय न्यायमूर्ति शिव शंकर प्रसाद

रिट-टैक्स संख्या 561 वर्ष 2023

दीपक कुमार यादव याचिकाकर्ता

बनाम

प्रधान आयकर आयुक्त, इलाहाबाद एवं अन्य प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री आशीष बंसल

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: श्री गौरव महाजन

ए. कर कानून - आयकर अधिनियम, 1961 - धारा 148, 148ए(डी) और 246-ए - वित्त अधिनियम, 2021 - धारा 148-ए(बी) के तहत कारण बताओ नोटिस - कर के पुनर्मूल्यांकन की योजना - धारा में संशोधन किया गया। 147 और 148 - अधिनियम में अब तक पुनर्मूल्यांकन कार्यवाही शुरू करने के लिए 'विश्वास करने के कारणों' की आवश्यकता को कर निर्धारण अधिकारी के पास सूचना की उपलब्धता से प्रतिस्थापित किया गया है कि करदाता की आय कर निर्धारण से बच गई है - प्रभाव - कर निर्धारण अधिकारी का अधिकार क्षेत्र - धारा 148-ए(डी) के तहत निर्णय का दायरा स्पष्ट किया गया - माना गया कि कर के लिए प्रभार्य आय कर निर्धारण से बच गई है, यह सुझाव देने वाली सूचना के अस्तित्व के संबंध में कर निर्धारण अधिकारी द्वारा अधिनियम की धारा 148ए(डी) के तहत पारित आदेश अन्यथा अधिनियम की धारा 148 के तहत पारित पुनर्मूल्यांकन आदेश के अधीन रहेगा - आय के मूल्यांकन के गुण-दोष के संबंध में धारा 148ए(डी) के तहत आदेश पारित करते समय कर निर्धारण अधिकारी की कोई भी टिप्पणी अंततः धारा 148 के तहत पुनर्मूल्यांकन कार्यवाही में पारित किए जाने वाले आदेश के अधीन रहेगी। (पैरा 8 और 24) रिट याचिका खारिज। (ई-1)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. लार्सन एंड टर्बो लिमिटेड बनाम स्टेट ऑफ झारखंड; (2017) 13 एससीसी 780. अनुच्छेद संख्या 26, 27 और 32

2. रेड चिली इंटरनेशनल सेल्स बनाम आयकर अधिकारी, [2023] 146 टैक्समैन.कॉम 224 (एससी),

3.अंशुल जैन बनाम प्र.आर. सीआईटी, [2022] 143 टैक्समैन.कॉम 37

अनुवादित

4.अंशुल जैन बनाम प्र.आर. सीआईटी, [2022] 143 टैक्समैन.कॉम 38

(माननीय न्यायमूर्ति अश्वनी कुमार मिश्रा & माननीय न्यायमूर्ति शिव शंकर प्रसाद द्वारा दिया गया)

1. याचिकाकर्ता एक व्यक्ति है जो अपनी मालिकाना कंपनी "एस. के. एल. उद्यम" के नाम पर सुपारी, कटा हुआ सुपारी और मीठा सुपारी के व्यापार में लगा हुआ है। उनका आरोप है कि उनके खाते की किताबें और अन्य अभिलेख आयकर अधिनियम, 1961 (इसके बाद '1961 के अधिनियम' के रूप में संदर्भित) की धारा 44AB के तहत ऑडिट के अधीन हैं। वह आगे दावा करता है कि वह साल-दर-साल अपना रिटर्न दाखिल कर रहा है और उसी के अनुसार कर का आकलन किया गया है। आकलन वर्ष 2019-20 के लिए, याचिकाकर्ता ने 26.08.2019 को अधिनियम की धारा 139 (1) के अन्तर्गत अपना रिटर्न दाखिल किया, जिसमें रुपये की कुल आय 6,81,630/- का खुलासा किया गया। वर्ष के दौरान उनकी मालिकाना कंपनी का टर्नओवर कुल मिलाकर रु. 5,87,26,116/- और कुल खरीद रु. 5,81,61,860/- की है। उन्होंने आगे दावा किया कि 26.08.2019 को उनके द्वारा प्रस्तुत रिटर्न के आधार पर अधिनियम की धारा 143 (1) के अन्तर्गत उनका मूल्यांकन किया गया है और अधिनियम की धारा 143 (2) के अन्तर्गत उन्हें कोई नोटिस जारी नहीं किया गया है।

2. इससे पता चलता है कि क्षेत्राधिकार प्राधिकारी यानी प्रतिवादी सं. 2 ने याचिकाकर्ता को अधिनियम, 1961 की धारा 148ए (बी) के अन्तर्गत दिनांक 16.03.2023 को एक नोटिस जारी किया, जिसमें मूल्यांकन अधिकारी के साथ जानकारी के साथ यह सुझाव दिया गया था कि कर के लिए प्रभार्य आय मूल्यांकन से बच गई है। नोटिस के साथ दी गई जानकारी का सार यहां दिया गया है:-

"1 (ए) मेसर्स कुहोजे के अचुमी के मामले में फर्जी कर चालान के आधार पर माल की रसीद के बिना, धोखाधड़ी वाले आईटीसी का लाभ उठाने और उपयोग करने के मामले में डीजीजीआई और जीएसटी अधिकारियों से डीडीआईटी (अन्वे.), यूनिट-III, नागपुर को जानकारी प्राप्त हुई थी। उक्त इकाई, व्यवसाय के घोषित प्रमुख स्थान पर मौजूद नहीं थी। उपरोक्त जानकारी के आधार पर, जांच इकाई-III, नागपुर ने जांच की और निष्कर्ष निकाला कि मेसर्स कुहोजे के. अचुमी ने माल की वास्तविक आपूर्ति के बिना नकली चालान का लाभ उठाने और बदले में माल की वास्तविक आपूर्ति के बिना दूसरों को नकली चालान जारी करने में मदद की है ये दोनो इसमें शामिल है । उपरोक्त तथ्यों से पता चलता है कि जिन पार्टियों ने मेसर्स कुहोजे के. अचुमी से खरीदारी का लाभ उठाने का दावा किया है, वे माल की वास्तविक आवाजाही के बिना केवल खरीद चालान का लाभ उठाने में शामिल हैं और ऐसा करके, उन्होंने कृत्रिम रूप से अपने खरीद खर्चों को बढ़ा दिया है और अपने कर योग्य आय को कम कर दिया है। आपको ऐसे संदिग्ध

अनुवादित

ख़रीदारों में से एक बताया गया है और आपके मामले में वित्तीय वर्ष 2018-19, ए. वाई. 2019-20 के लिए प्रासंगिक के लिए मेसर्स कुहोजे के. अचुमी से खरीद मूल्य रु. 96,43,750/-बताया गया है।

(बी) इसी तरह, मेसर्स ओम ट्रेडर्स (प्रो. जसबीर सिंह चटवाल) के मामले में फर्जी आईटीसी का लाभ उठाने के मामले में डीडीआईटी (अन्वे.), यूनिट - III, नागपुर को सीबीडीटी से जानकारी प्राप्त हुई थी। उपरोक्त जानकारी के आधार पर, जांच इकाई-III, नागपुर ने जांच शुरू की और यह पाया गया कि मेसर्स ओम ट्रेडर्स (मालिक जसबीर सिंह चटवाल) फर्जी कर चालान का लाभ उठाने में शामिल है, जिसका अर्थ है कि मैसर्स ओम ट्रेडर्स को माल की कोई वास्तविक गतिविधि नहीं हुई है। इसके अलावा, मेसर्स ओम ट्रेडर्स ने कई संस्थाओं को बिक्री की है। चूँकि मेसर्स ओम ट्रेडर्स फर्जी खरीद में लिप्त है, इसलिए बिक्री भी फर्जी है क्योंकि उसके पास अन्य संस्थाओं को बिक्री करने के लिए कोई सामान नहीं है। इसलिए, जिन संस्थाओं ने मेसर्स ओम ट्रेडर्स (प्रो. जसबीर सिंह चटवाल) से खरीदारी का लाभ उठाने का दावा किया है, उन्होंने मेसर्स ओम ट्रेडर्स (प्रो. जसबीर सिंह चटवाल) से माल की वास्तविक लेनदेन के बिना चालान प्राप्त करके केवल अपने खरीद व्यय को बढ़ाया है। आपको ऐसे संदिग्ध ख़रीदारों में से एक बताया गया है और आपके मामले में खरीद मूल्य मेसर्स ओम ट्रेडर्स (प्रो. जसबीर सिंह चटवाल) से वित्तीय वर्ष 2018-19 से ए.वाई. 2019-20 के लिए प्रासंगिक, 83,25,000/- रु. है।

(सी) इसके अलावा तीसरे पक्ष की जानकारी भी है जो इस प्रकार है:-

सूचना कोड	सूचना विवरण	स्रोत	गिनतीकरना	राशि विवरण	राशि (रु.)
एसएफटी-003 (डब्ल्यू)	चालू खाते में नकद निकासी (धारक चेक सहित)	पंजाब नेशनल बैंक	1	किसी व्यक्ति से नकद में प्राप्त कुल सकल राशि	23,85,000
टीसीएस-206 सीएल	टीसीएस का बयान-मोटर वाहन की बि	ग्रीन लैंड्स (एएम) निगम	1	लेन-देन का कुल मूल्य	16,00,000

अनुवादित

	क्रीरु 10 लाख (धारा 206सी)				
एसएफटी-003 (डी)	चालू खाते में नकद जमा (SFT-003 (D) बियरर्स क्यू सहित)।	पंजाब नेशनल बैंक	1	किसी व्यक्ति से नकद में प्राप्त कुल सकल राशि	4,70,40,000
कुल :					**5,10,25,000**

3. तदनुसार याचिकाकर्ता को अधिनियम की धारा 148ए (बी) के अन्तर्गत यह कारण बताने का अवसर दिया गया कि क्यों न उसे उस जानकारी के आधार पर अधिनियम की धारा 148 के अर्न्तगत नोटिस जारी किया जाए जो बताती है कि रु. 96,43,750/- + रु. 83,25,000/- + रु. 5,10,25,000/- कुल रुपये 6,89,93,750/- की आय जो कर के दायरे में आती है असेसमेंट ईयर 2019-20 के लिए असेसमेंट से बच गई हैं।

4. उपरोक्त नोटिस के जवाब में याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी संख्या 2 के समक्ष दिनांक 24.04.2023 को नोटिस में लगाए गए आरोपों का खंडन करते हुए एक विस्तृत आपत्ति दर्ज की है। ऐसी कार्यवाही शुरू करने के लिए विश्वसनीय जानकारी प्रदान करने के साथ-साथ उक्त आपूर्तिकर्ताओं की जिरह का अवसर प्रदान करने का भी अनुरोध किया गया है।

5. क्षेत्राधिकार प्राधिकारी ने अधिनियम की धारा 148 (डी) के तहत 29.3 2023 को

अनुवादित

एक आदेश पारित किया है, जिसमें नोटिस पर याचिकाकर्ता की आपत्ति को इस आधार पर खारिज कर दिया गया है कि सूचना में यह सुझाव देने के लिए मौजूद है कि नोटिस में संदर्भित लेनदेन काल्पनिक और बिना माल की वास्तविक आपूर्ति के हैं। परिणामतः, याचिकाकर्ता की वित्तीय वर्ष 2018-19 के लिए 1,79,68,750/- रुपये की खरीद को काल्पनिक माना जाता है। इस राशि को अधिनियम की धारा 148 के तहत कार्यवाही शुरू करने के उद्देश्य से वर्ष 2019-20 के लिए मूल्यांकन से छूटी हुई राशि माना गया है। आपूर्तिकर्ताओं से जिरह और सामग्री प्रस्तुत करने के याचिकाकर्ता के अनुरोध को मामले की समय-बाधित प्रकृति को देखते हुए अस्वीकार कर दिया गया है। याचिकाकर्ता को अधिनियम की धारा 148 के तहत 29.03.2023 को एक परिणामी नोटिस भी जारी किया गया है। अधिनियम की धारा 148ए (डी) के अन्तर्गत दिनांक 29.03.2023 के आदेश के साथ-साथ अधिनियम की धारा 148 के अन्तर्गत जारी उसी तिथि यानी 29.3.2023 के नोटिस से व्यथित होकर याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है।

6. याचिकाकर्ता के लिए श्री आशीष बंसल का कहना है कि संबंधित प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता के नोटिस के जवाब की योग्यता के आधार पर जांच नहीं की है, और लागू आदेश नियमित और यांत्रिक तरीके से पारित किया गया है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि अधिनियम की धारा 148ए के तहत नोटिस जारी करने का उद्देश्य विफल हो जाएगा, यदि प्राधिकारी खंड (बी) में संदर्भित कारण बताओ नोटिस के जवाब में निर्धारिती कोई पूछताछ के जवाब की जांच नहीं करता है और बिना जांच के आदेश पारित करता है। यह आग्रह किया गया है कि जिस तरह से आदेश पारित किया गया है वह अधिनियम की धारा 148ए के तहत नोटिस जारी करने के उद्देश्य को निरर्थक बना देता है। इस तरह के तर्क के समर्थन में, याचिकाकर्ता के वकील ने रेड चिली इंटरनेशनल सेल्स बनाम आयकर अधिकारी ने [2023] 146 टैक्समैन. कॉम 224 (एससी) में भारत के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित एक आदेश पर भरोसा जताया है। वह 2022 की रिट याचिका संख्या 2836 में बॉम्बे हाई कोर्ट द्वारा 13.03.2023 को दिए गए आदेश पर भरोसा करते हैं।

7. इसके विपरीत, राजस्व की ओर से उपस्थित श्री गौरव महाजन का कहना है कि अधिनियम की धारा 148ए के तहत नोटिस जारी करने का उद्देश्य जानकारी का पता लगाने तक सीमित है, जो बताता है कि आय मूल्यांकन से बच गई है और सामग्री की पर्याप्तता या अन्यथा जैसे मुद्दे फिर से खोलने को उचित ठहराते हैं। असाधारण रिट क्षेत्राधिकार के प्रयोग में, सूचना की सत्यता पर मूल्यांकन या निर्णय की आमतौर पर इस स्तर पर गारंटी नहीं दी जाती है। इस स्तर पर विचार की गई सीमित जांच उस जानकारी के अस्तित्व का पता लगाने के लिए है जो बताती है कि आय मूल्यांकन से

अभ्यावेदन

बच गई है। यह प्रस्तुत किया गया है कि इस मामले के तथ्यों में ऐसी जानकारी रिकॉर्ड पर मौजूद है। यह भी तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता कार्यवाही के उचित चरण में सभी तथ्यात्मक मुद्दों/आपत्तियों को उठाने के लिए स्वतंत्र होगा, और चूंकि उसके लिए अन्यथा कोई पूर्वाग्रह नहीं होगा, इसलिए इस न्यायालय के लिए अधिनियम की धारा 148ए (डी) के अन्तर्गत निर्णय लेते समय मूल्यांकन अधिकारी के पास उपलब्ध जानकारी सही या अन्यथा पर विचार करना उचित नहीं होगा।

8. 1961 के अधिनियम के तहत कर के पुनर्मूल्यांकन की योजना में वित्त अधिनियम, 2021 के माध्यम से 1 अप्रैल, 2021 से बदलाव आया है। अब तक होने वाली पुनर्मूल्यांकन कार्यवाही शुरू करने के लिए 'विश्वास करने के कारणों की आवश्यकता अधिनियम को निर्धारण अधिकारी के पास जानकारी की उपलब्धता के साथ प्रतिस्थापित किया जाता है कि निर्धारिती की आय मूल्यांकन से बच गई है। आयकर अधिनियम, 1961 की संशोधित धारा 147 और 148 के साथ- साथ वित्त अधिनियम 2021 के माध्यम से 1961 के अधिनियम में पेश की गई धारा 148 को इसके बाद पुन: प्रस्तुत किया गया है:-

*"**147. आयका मूल्यांकन से बचना।** - यदि किसी निर्धारिती के मामले में, कर के दायरे में आने वाली कोई आय, किसी भी मूल्यांकन वर्ष के लिए मूल्यांकन से बच गई है, तो मूल्यांकन अधिकारी, धारा 148 से 153 के प्रावधानों के अधीन, ऐसी आय का आकलन या पुनर्मूल्यांकन कर सकता है या हानि या मूल्यहास की पुनर्गणना कर सकता है। ऐसे मूल्यांकन वर्ष के लिए भत्ता या कोई अन्य भत्ता या कटौती (इसके बाद इस खंड में और धारा 148 से 153 में प्रासंगिक मूल्यांकन वर्ष के रूप में संदर्भित) ।*

स्पष्टीकरण - इस धारा के तहत मूल्यांकन या पुनर्मूल्यांकन या पुनर्गणना के प्रयोजनों के लिए, मूल्यांकन अधिकारी किसी भी मुद्दे के संबंध में आय का आकलन या पुनर्मूल्यांकन कर सकता है, जो मूल्यांकन से बच गया है, और ऐसा मुद्दा इसके तहत इस धारा के अन्तर्गत कार्यवाही के दौरान उसके ध्यान में आता है, इस तथ्य के बावजूद (6) कि धारा 148ए के प्रावधानों का अनुपालन नहीं किया गया है।]

***148. जहां आय मूल्यांकन से बच गई हो वहां नोटिस जारी करना।** - धारा 147 के तहत मूल्यांकन, पुनर्मूल्यांकन या पुनर्गणना करने से पहले, और धारा 148ए के प्रावधानों के अधीन, मूल्यांकन अधिकारी खंड (डी) के अन्तर्गत, यदि आवश्यक हो, तो पारित आदेश की एक प्रति के साथ निर्धारिती को एक नोटिस देगा। धारा 148ए के अन्तर्गत, उसे ऐसी अवधि के भीतर प्रस्तुत करने की आवश्यकता होती है, जैसा कि इस तरह के नोटिस में निर्दिष्ट किया जा सकता है, उसकी आय या किसी अन्य व्यक्ति की आय का रिटर्न, जिसके संबंध*

अनुवादित

में वह प्रासंगिक के अनुरूप पिछले वर्ष के दौरान इस अधिनियम के तहत मूल्यांकन योग्य है। मूल्यांकन वर्ष, निर्धारित प्रपत्र में और निर्धारित तरीके से सत्यापित और ऐसे अन्य विवरण निर्धारित करना जो निर्धारित किया जा सकता है; और इस अधिनियम के प्रावधान, जहां तक संभव हो, तदनुसार लागू होंगे जैसे कि ऐसा रिटर्न धारा 139 के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जाना आवश्यक रिटर्न था:

बशर्ते *कि इस धारा के तहत कोई भी नोटिस तब तक जारी नहीं किया जाएगा जब तक कि मूल्यांकन अधिकारी के पास ऐसी कोई जानकारी न हो जो यह बताती हो कि कर लगाने योग्य आय संबंधित मूल्यांकन वर्ष के लिए निर्धारिती के मामले में मूल्यांकन से बच गई है और मूल्यांकन अधिकारी ने ऐसा नोटिस जारी करने के लिए निर्दिष्ट प्राधिकारी से पूर्व अनुमोदन प्राप्त कर लिया है। ।*

बशर्ते *कि ऐसे किसी अनुमोदन की आवश्यकता नहीं होगी जहां निर्धारण अधिकारी ने, निर्दिष्ट प्राधिकारी की पूर्व मंजूरी के साथ, धारा 148ए के खंड (डी) के अन्तर्गत एक आदेश पारित किया है कि यह इस धारा के अन्तर्गत नोटिस जारी करने के लिए एक उपयुक्त मामला है।*

स्पष्टीकरण 1. *- इस धारा और धारा 148ए के प्रयोजनों के लिए, निर्धारण अधिकारी के पास मौजूद जानकारी जो बताती है कि कर के लिए प्रभार्य आय मूल्यांकन से बच गई है, जिसका मतलब है कि -*

(i) *बोर्ड द्वारा समय-समय पर तैयार की गई जोखिम प्रबंधन रणनीति के अनुसार प्रासंगिक मूल्यांकन वर्ष के लिए निर्धारिती के मामले में कोई भी जानकारी;*

(ii) *इस आशय की कोई ऑडिट आपत्ति कि संबंधित मूल्यांकन वर्ष के लिए निर्धारिती के मामले में मूल्यांकन इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार नहीं किया गया है; या*

(iii) *अधिनियम की धारा 90 या धारा 90 ए में निर्दिष्ट समझौते के अन्तर्गत प्राप्त कोई भी जानकारी; या*

(iv) *धारा 135ए के अन्तर्गत अधिसूचित योजना के तहत मूल्यांकन अधिकारी को उपलब्ध कराई गई कोई भी जानकारी; या*

(v) *कोई भी जानकारी जिसके लिए प्राधिकरण या न्यायालय के आदेश के परिणामस्वरूप कार्यवाही की आवश्यकता होती है।*

स्पष्टीकरण 2. - *इस धारा के प्रयोजनों के लिए, जहां,-*

(i) *निर्धारिती के मामले में धारा 132 के अन्तर्गत तलाशी शुरू की जाती है या 1 अप्रैल, 2021 को या उसके बाद धारा 132ए के*

अनुवादित

अन्तर्गत खाते की किताबें, अन्य दस्तावेज या कोई संपत्ति मांगी जाती है; या

(ii) *निर्धारिती के मामले में, उस धारा की उप-धारा (2ए) के अलावा, 1 अप्रैल, 2021 को या उसके बाद धारा 133ए के अन्तर्गत एक सर्वेक्षण आयोजित किया जाता है; या*

(iii) *निर्धारण अधिकारी प्रधान आयुक्त या आयुक्त के पूर्व अनुमोदन से संतुष्ट है कि धारा 132 के अन्तर्गत या किसी अन्य व्यक्ति के मामले में धारा 132 ए के अन्तर्गत जब्त या अपेक्षित कोई भी धन, सोना, आभूषण या अन्य मूल्यवान वस्तु या चीज 1 अप्रैल, 2021 को या उसके बाद निर्धारिती का है; या*

(iv) *निर्धारण अधिकारी प्रधान आयुक्त या आयुक्त के पूर्व अनुमोदन से संतुष्ट है कि अप्रैल के 1 दिन या उसके बाद किसी अन्य व्यक्ति के मामले में धारा 132 या धारा 132 ए के अन्तर्गत जब्त या मांगे गए किसी भी खाते की किताबें या दस्तावेज, 2021, निर्धारिती से संबंधित है या उसमें निहित किसी भी जानकारी से संबंधित है,*

यह माना जाएगा कि निर्धारण अधिकारी के पास ऐसी जानकारी है जो बताती है कि कर के दायरे में आने वाली आय कर निर्धारण से बच गई है, यदि निर्धारिती की तलाश शुरू की गई है या खाते की किताबें, अन्य दस्तावेज या किसी संपत्ति की मांग की गई है या सर्वेक्षण किया गया है। किसी अन्य व्यक्ति के मामले में निर्धारिती या धन, सर्राफा, आभूषण या अन्य मूल्यवान वस्तु या चीज या खाते की किताबें या दस्तावेज जब्त किए जाते हैं या मांगे जाते हैं। स्पष्टीकरण 3. - इस धारा के प्रयोजनों के लिए, निर्दिष्ट प्राधिकारी का अर्थ धारा 151 में निर्दिष्ट निर्दिष्ट प्राधिकारी है ।]

148 ए. जांच करना, धारा 148 के अन्तर्गत नोटिस जारी करने से पहले अवसरप्रदान करना।- मूल्यांकन अधिकारी, धारा 148 के अन्तर्गत कोई भी नोटिस जारी करने से पहले, -

(a) *यदि आवश्यक हो, तो निर्दिष्ट प्राधिकारी की पूर्व मंजूरी के साथ, <u>उस जानकारी के संबंध में कोई भी जांच करें जो सुझाव देती है कि कर के लिए प्रभार्य आय मूल्यांकन से बच गई है.</u>*

(b) *निर्धारिती को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के लिए, उस पर कारण बताने के लिए*

अनुवादित

नोटिस देकर ऐसे समय के भीतर, जो नोटिस में निर्दिष्ट किया जा सकता है, सात दिन से कम नहीं और तारीख से तीस दिन से अधिक नहीं होना चाहिए। ऐसा कौन सा नोटिस जारी किया जाता है, या ऐसा समय, जो इस संबंध में एक आवेदन के आधार पर उसके द्वारा बढ़ाया जा सकता है, धारा 148 के अन्तर्गत एक नोटिस उस जानकारी के आधार पर क्यों जारी नहीं किया जाना चाहिए जो सुझाव देती है कि आय पर कर लगाया जाना चाहिए प्रासंगिक मूल्यांकन वर्ष के लिए अपने मामले में मूल्यांकन से बच गया है और खंड (ए) के अनुसार की गई जांच के परिणाम, यदि कोई हो,

(c) *खंड (बी) में निर्दिष्ट कारण बताओ नोटिस के जवाब में निर्धारिती द्वारा दिए गए उत्तर, यदि कोई हो, पर विचार करेगा*

(d) *निर्धारिती के उत्तर सहित रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर तय करें कि एक आदेश के भीतर, निर्दिष्ट प्राधिकारी की पूर्व मंजूरी के साथ, एक आदेश पारित करके धारा 148 के तहत नोटिस जारी करना उपयुक्त मामला है या नहीं | उस महीने के अंत से एक महीने के भीतर जिसमें खंड (सी) में निर्दिष्ट उत्तर उसे प्राप्त होता है, या जहां ऐसा कोई उत्तर प्रस्तुत नहीं किया जाता है, उस महीने के अंत से एक महीने के भीतर जिसमें समय या विस्तारित समय प्रस्तुत करने की अनुमति दी जाती है खंड (बी) के अनुसार उत्तर समाप्त होता है:*

बशर्ते कि इस धारा के प्रावधान ऐसे मामले में लागू नहीं होंगे, जहां-

(a) *1 अप्रैल, 2021 को या उसके बाद निर्धारिती के मामले में धारा 132 के अन्तर्गत एक खोज शुरू की जाती है या खाते की किताबें, अन्य दस्तावेज या किसी भी संपत्ति की धारा 132 ए के अन्तर्गत मांग की जाती है; या*

(b) *निर्धारण अधिकारी प्रधान आयुक्त या आयुक्त के पूर्व अनुमोदन से संतुष्ट है कि धारा 132 के तहत तलाशी में जब्त किया गया या धारा 132 ए के अन्तर्गत मांगे गए*

अनुवादित

किसी भी धन, सर्राफा, आभूषण या अन्य मूल्यवान लेख या चीज के मामले में 1 अप्रैल, 2021 को या उसके बाद कोई अन्य व्यक्ति निर्धारिती का है; या

(c) *निर्धारण अधिकारी प्रधान आयुक्त या आयुक्त के पूर्व अनुमोदन से संतुष्ट है कि धारा 132 के अन्तर्गत तलाशी में जब्त की गई या धारा 132 ए के अन्तर्गत मांगे गए किसी भी खाते की किताबें या दस्तावेज, किसी अन्य व्यक्ति के मामले में या उसके बाद अप्रैल, 2021 का पहला दिन, संबंधित है या उसमें निहित किसी भी जानकारी से संबंधित है, [संबंधित, निर्धारिती से, या*

(d) *मूल्यांकन अधिकारी को निर्धारिती के मामले में किसी भी मूल्यांकन वर्ष के लिए कर से बचने के लिए कर योग्य आय से संबंधित धारा 135ए के अन्तर्गत अधिसूचित योजना के अन्तर्गत कोई जानकारी प्राप्त हुई है।]*

स्पष्टीकरण - इस धारा के प्रयोजन के लिए, निर्दिष्ट प्राधिकारी का अर्थ धारा 151 में निर्दिष्ट निर्दिष्ट प्राधिकारी है।"

9. धारा 148ए को पढ़ने से पता चलता है कि मूल्यांकन प्राधिकारी, धारा 148 के अन्तर्गत कोई भी नोटिस जारी करने से पहले, यदि आवश्यक हो, निर्दिष्ट प्राधिकारी की पूर्व मंजूरी के साथ, उस जानकारी के संबंध में कोई जांच करेगा जो सुझाव देती है कि कर के आकलन लिए देय आय बच गई है ऐसी जानकारी प्राप्त होने पर मूल्यांकन अधिकारी को निर्दिष्ट तरीके से निर्धारिती को सुनवाई का अवसर प्रदान करना आवश्यक है, कि अधिनियम की धारा 148 के अन्तर्गत उस जानकारी के आधार पर नोटिस क्यों जारी नहीं किया जाना चाहिए जो आय का सुझाव देती है कर के लिए प्रभार्य व्यक्ति प्रासंगिक मूल्यांकन वर्ष के लिए अपने मामले में मूल्यांकन से बच गया है और खंड (ए) के अनुसार की गई जांच के परिणाम, यदि कोई हो, से बच गया है। तब मूल्यांकन प्राधिकारी को खंड (बी) में निर्दिष्ट कारण बताओ नोटिस के जवाब में निर्धारिती के उत्तर, यदि कोई हो, पर विचार करना आवश्यक है। इसके बाद कर निर्धारण प्राधिकारी को निर्धारिती के उत्तर सहित रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर यह निर्णय लेना होता है कि निर्दिष्ट तरीके से आदेश पारित करके धारा 148 के अन्तर्गत नोटिस जारी करना उपयुक्त मामला है या नहीं । प्रावधान उन मामलों की श्रेणी को छूट देता है जो धारा 148ए के अंतर्गत नहीं आते हैं। धारा 148ए के प्रावधान की वर्तमान मामले के तथ्यों में

अनुवादित

कोई प्रयोज्यता नहीं है और इसलिए, इसकी किसी जांच की आवश्यकता नहीं है।

10. इसलिए, वैधानिक योजना स्पष्ट है कि सूचना प्राप्त होने पर मूल्यांकन प्राधिकारी जो बताता है कि कर प्रभार्य आय मूल्यांकन से बच गई है, इस मामले में कोई जांच कर सकती है, यदि आवश्यक हो, और फिर निर्धारिती को खंड (बी) के तहत नोटिस देकर उसे सुनवाई का अवसर प्रदान कर सकता है। खंड (ख) में निर्दिष्ट नोटिस के लिए निर्धारिती का उत्तर प्राप्त होने पर, निर्धारण अधिकारी, निर्धारिती के उत्तर सहित रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर, यह तय करता है कि धारा 148 के तहत नोटिस जारी करना उचित मामला है या नहीं]

11. वित्त अधिनियम, 2021 के अन्तर्गत शुरू की गई बची हुई आय के पुनर्मूल्यांकन की योजना, 1961 के अधिनियम की धारा 148 के अन्तर्गत नोटिस जारी करने से पहले निर्धारिती को एक अवसर प्रदान करती है। निर्धारिती को इस तरह के नोटिस के बाद और जवाब में निर्धारिती के उत्तर पर विचार करना नोटिस में मूल्यांकन प्राधिकारी को धारा 148ए (डी) के अन्तर्गत एक आदेश पारित करके रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर यह निर्णय लेना होगा कि धारा 148 के अन्तर्गत नोटिस मामले में जारी करने के लिए उपयुक्त है या नहीं। धारा 148 (डी) के अन्तर्गत आदेश पारित करने के चरण में विचार इस प्रकार मूल्यांकन अधिकारी के साथ जानकारी की पुष्टि तक सीमित है कि निर्धारिती की आय कर निर्धारण से बच गई है। इस प्रश्न पर अंतिम निर्धारण कि क्या निर्धारिती की आय वास्तव में मूल्यांकन से बच गई है, धारा 148 के अन्तर्गत नोटिस के बाद धारा 147 के अन्तर्गत मूल्यांकन या पुनर्मूल्यांकन का आदेश पारित करके, 1961 के अधिनियम की धारा 148 से 153 के प्रावधानों के अधीन किया जाना है।

12. 1961 का अधिनियम 1961 के अधिनियम की धारा 148 ए (डी) के तहत आदेश पारित करने के चरण में मूल्यांकन अधिकारी के पास उपलब्ध जानकारी के गुणों पर किसी भी विस्तृत निर्णय पर विचार नहीं करता है। हमारे सुविचारित विचार में इस स्तर पर सूचना की सत्यता या अन्यथा पर संविधि में कोई और जांच या अधिनिर्णय शुरू नहीं करने का एक विशिष्ट उद्देश्य है। इसका कारण स्पष्ट है। अधिनियम की योजना के तहत नोटिस जारी करने के लिए धारा 148 के तहत एक विस्तृत प्रक्रिया प्रदान की गई है, जिसके बाद निर्धारण प्राधिकारी को निर्दिष्ट तरीके से यह निर्धारित करना होगा कि क्या आय मूल्यांकन से बच गई है और निर्धारिती की रक्षा, सभी अनुमेय आधारों पर, ऐसे स्तर पर दबाए जाने के लिए खुली रहती है । पुनर्मूल्यांकन के लिए धारा 147 के तहत मूल्यांकन प्राधिकारी द्वारा किया गया अंतिम निर्धारण अन्यथा अधिनियम की धारा 246-ए के तहत अपील के अधीन है। इस प्रकार धारा 148 ए के लिए संदर्भित

अनुवादित

जानकारी की योग्यता अधिनियम की धारा 148 के तहत नोटिस के माध्यम से शुरू की गई पुनर्मूल्यांकन कार्यवाही के अधीन रहती है। यही कारण है कि जिन मुद्दों पर पुनर्निर्धारण कार्यवाहियों के चरण में निर्धारण की आवश्यकता होती है और जिनके संबंध में विभागीय उपाय अन्यथा उपलब्ध हैं, उन्हें धारा 149क (घ) के अंतर्गत निर्धारण प्राधिकारी द्वारा निर्णय के चरण में निर्धारित किए जाने की आवश्यकता नहीं है। धारा 148 ए (डी) के तहत निर्णय का दायरा ऐसी जानकारी के अस्तित्व या अन्यथा तक सीमित है जो बताती है कि कर प्रभार्य आय मूल्यांकन से बच गई है।

13. वर्तमान मामले के तथ्यों से पता चलता है कि याचिकाकर्ता ने अपने रिटर्न में मेसर्स कुहोजे के. अचुमी और मेसर्स ओम ट्रेडर्स से सुपारी की विभिन्न खरीद दिखाई है। धारा 148ए के खंड (डी) के अन्तर्गत आदेश में कहा गया है कि डीजीजीआई और जीएसटी की जांच शाखा ने आयकर अधिकारियों को सूचित किया है कि मेसर्स कुहोजे के. अचुमी और मेसर्स ओम ट्रेडर्स फर्जी कर के आधार पर फर्जी माल की प्राप्ति के बिना चालान आईटीसी का लाभ उठाते और उसका उपयोग करते पाए गए हैं। यह भी पाया गया है कि उक्त इकाई (विक्रेता) व्यवसाय के घोषित प्रमुख स्थान पर मौजूद ही नहीं है । ऐसी संदिग्ध इकाइयों से याचिकाकर्ता ने रुपये 1,79,68,750/- की खरीदारी करने का दावा किया है। हालांकि याचिकाकर्ता ने आरोप लगाया है कि उसके खाते की किताबें वास्तव में इन लेनदेन को दर्शाती हैं और सामान ई-चालान आदि के माध्यम से प्राप्त किया गया है, लेकिन सूचना के गुण-दोष के आधार पर इस तरह के बचाव को धारा 148 ए (डी) के तहत निर्णय के चरण में मूल्यांकन प्राधिकारी द्वारा आधिकारिक रूप से निर्धारित किए जाने की उम्मीद नहीं है। निर्धारिती द्वारा बचाव व्यवस्था के आधार पर जानकारी की सत्यता या अन्यथा का निर्धारण करने के लिए मंच अधिनियम की धारा 148 के अन्तर्गत मूल्यांकन कार्यवाही होगी। धारा 148ए के खंड (डी) के अन्तर्गत मूल्यांकन प्राधिकारी के आदेश में संदर्भित सामग्रियों के आधार पर, इसमें संदेह नहीं किया जा सकता है कि अधिकारियों के पास ऐसी जानकारी मौजूद थी जो सुझाव देती है कि कर के लिए प्रभार्य आय मूल्यांकन से बच गई है। इसलिए, धारा 148ए (डी) के अन्तर्गत संबंधित प्राधिकारी द्वारा राय के गठन पर सूचना के गुण-दोष के आधार पर निर्धारिती द्वारा विस्तृत बचाव व्यवस्था के आधार पर सवाल नहीं उठाया जा सकता है, जिसमें विक्रेता से जिरह करने का अवसर या ऐसी जानकारी से संबंधित दस्तावेजों की मांग भी शामिल है।

14. यह केवल उपलब्धता या अन्यथा जानकारी की सीमा तक है कि आय मूल्यांकन से बच गई है, जांच का दायरा धारा 148 ए (डी) के अन्तर्गत आता है। जानकारी की सत्यता या अन्यथाता एक ऐसा पहलू है जिस पर बाद में अधिनियम की धारा 148 के अन्तर्गत पुनर्मूल्यांकन के

अवैधानिक

लिए कार्यवाही के चरण में मूल्यांकन प्राधिकारी द्वारा विचार किया जाना चाहिए। हमारे विचार से, किसी भी अन्य व्याख्या को 1961 के अधिनियम की योजना में शामिल नहीं किया गया है।

15. निर्धारण अधिकारी के पास मौजूद जानकारी जो बताती है कि कर योग्य आय मूल्यांकन से बच गई है, उसे अधिनियम की धारा 148 के दूसरे परंतुक के स्पष्टीकरण 1 में परिभाषित किया गया है जो पहले ही ऊपर निकाला जा चुका है। अधिनियम की धारा 148 ए (बी) के अन्तर्गत नोटिस में निहित जानकारी को इस आधार पर कोई चुनौती नहीं है कि मूल्यांकन अधिकारी के पास उपलब्ध जानकारी अधिनियम की धारा 148 के दूसरे परंतुक के स्पष्टीकरण 1 के संदर्भ में नहीं है। वित्त अधिनियम, 2021 अन्यथा चुनौती के अधीन नहीं है। इसलिए, हमारी सुविचारित राय है कि कारण बताओ नोटिस के जवाब में बचाव पक्ष द्वारा निर्धारिती द्वारा दी गई जानकारी को चुनौती अधिनियम की धारा 148ए (डी) के अन्तर्गत निर्णय के चरण में आगे विचार करने योग्य नहीं है।

16. मूल्यांकन को फिर से खोलने के प्रयोजनों के लिए 'सूचना' शब्द की जांच लार्सन एंड टर्बो लिमिटेड बनाम झारखंड राज्य, (2017) 13 एससीसी 780 में की गई है। रिपोर्ट के पैराग्राफ संख्या 26, 27 और 32 उपयुक्त हैं वर्तमान उद्देश्य और इसके बाद पुन: प्रस्तुत किए गए हैं:

"26. "सूचना" शब्द का सही अर्थ समझना भी प्रासंगिक है। ऑक्सफ़ोर्ड डिक्शनरी के अनुसार, "सूचना" का अर्थ है किसी/ वस्तु के बारे में बताए, सुने या खोजे गए तथ्य | लॉ लेक्सिकन "सूचना" शब्द का वर्णन सूचना देने, संचार करने या ज्ञान प्राप्त करने की क्रिया या प्रक्रिया के रूप में करता है। अभिव्यक्ति "सूचना" का अर्थ तथ्यों या पार्टियों से संबंधित या मूल्यांकन पर असर डालने वाले और/या कानून के संबंध में किसी बाहरी स्रोत से प्राप्त निर्देश या ज्ञान है। हम इस बात से सहमत हैं कि रिकॉर्ड पर तथ्यों और सामग्रियों के एक ही सेट पर सक्षम प्राधिकारी द्वारा राय में बदलाव या उसके बारे में दोबारा विचार करना राज्य अधिनियम के प्रयोजनों के लिए "सूचना" नहीं बनता है। लेकिन उपरोक्त अनुभाग में प्रयुक्त शब्द "सूचना" व्यापक आयाम का है और इसका संकीर्ण अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए। यह न केवल विभिन्न प्रकार के कारकों को समझता है, जिसमें किसी भी प्रकार के बाहरी स्रोतों से जानकारी शामिल है, बल्कि मूल्यांकन के रिकॉर्ड में उपलब्ध नए तथ्यों या जानकारी की खोज भी शामिल है, जिन पर पहले ध्यान नहीं दिया गया या जांच नहीं की गई। मान लीजिए कि मूल्यांकन के मूल आदेश में कोई गलती मूल्यांकन अधिकारी द्वारा नहीं पाई गई है, तो आगे की जांच पर, यदि यह किसी अन्य मूल्यांकनकर्ता या यहां तक कि किसी अधीनस्थ या वरिष्ठ अधिकारी के ध्यान में आता है, तो इसे पदधारी को बताई गई जानकारी माना जाएगा। अधिकारी. यदि गलती स्वयं रिकॉर्ड के लिए अप्रासंगिक नहीं

अनुवादित

है और मुखबिर ने रिकॉर्ड से जानकारी एकत्र की है, तो ऐसी परिस्थितियों में अधिकारी को सूचना का तत्काल स्रोत एक अर्थ में रिकॉर्ड के लिए अप्रासंगिक है। यह राज्य अधिनियम की धारा 19 के अर्थ के अंतर्गत उसके पास मौजूद जानकारी होगी। मूल्यांकन के रिकॉर्ड के सामने स्पष्ट गलतियों के ऐसे मामलों में, वह रिकॉर्ड स्वयं जानकारी का एक स्रोत हो सकता है, यदि वह जानकारी किसी खोज या विश्वास की ओर ले जाती है कि मूल्यांकन से बच गया है या कम मूल्यांकन किया गया है या गलत मूल्यांकन किया गया है।

27. इस न्यायालय के कई निर्णयों में कहा गया है कि यदि ऑडिट आपत्ति रिकॉर्ड में पहले से ही उपलब्ध तथ्यात्मक जानकारी को इंगित करती है और इसे नजरअंदाज कर दिया गया है या इस पर ध्यान नहीं दिया गया है, तो मूल्यांकन कार्यवाही फिर से खोली जा सकती है। इसी तरह, यदि ऑडिट रिकॉर्ड के बाहर उपलब्ध कुछ जानकारी या तथ्यों या किसी अंकगणितीय गलती को इंगित करता है, तो मूल्यांकन फिर से खोला जा सकता है।

32. अभिव्यक्ति "सूचना" का अर्थ तथ्यों या पार्टियों के संबंध में या मूल्यांकन से संबंधित और/या उसके बाद कानून के संबंध में किसी बाहरी स्रोत से प्राप्त निर्देश या ज्ञान है। हमारा स्पष्ट मानना है कि प्राप्त जानकारी के आधार पर और यदि मूल्यांकन अधिकारी संतुष्ट है कि विश्वास करने के लिए उचित आधार मौजूद है, तो उस स्थिति में मूल्यांकन प्राधिकारी की शक्ति मूल्यांकन को फिर से खोलने तक विस्तारित होती है, यदि किसी भी कारण से, संपूर्ण या डीलर के व्यवसाय के टर्नओवर का कोई हिस्सा मूल्यांकन से बच गया है या उसका कम मूल्यांकन किया गया है और ऐसे मामले में मूल्यांकन मान्य होगा, भले ही वह सामग्री, जिसके आधार पर पहले मूल्यांकन प्राधिकारी ने आदेश पारित किया हो और उत्तराधिकारी मूल्यांकन प्राधिकारी आगे बढ़े, वही थे। सवाल अभी भी यह है कि क्या वर्तमान मामले में, मूल्यांकन प्राधिकारी संतुष्ट था या नहीं।"

17. 'वर्तमान मामले के तथ्यों में आकलन प्राधिकरण को डीडीआईटी (जांच), यूनिट III, नागपुर से डीजीजीआई और जीएसटी अधिकारियों के साथ-साथ सीबीडीटी से जानकारी मिली है कि निर्धारिती के विक्रेता संबंधित एजेंसियों द्वारा की गई जांच के आधार पर फर्जी आईटीसी का लाभ उठा रहे थे। ऐसी जानकारी अधिनियम की धारा 148 के दूसरे परंतुक के स्पष्टीकरण 1 के खंड (i) के संदर्भ में दी जाने वाली जानकारी होगी। हमने पहले ही देखा है कि निर्धारिती द्वारा नोटिस को इस आधार पर कोई चुनौती नहीं दी गई है कि धारा 148 ए (बी) के तहत नोटिस के माध्यम से प्रकट की गई जानकारी 1961 के अधिनियम की धारा 148 के दूसरे परंतुक के स्पष्टीकरण 1 में निर्दिष्ट जानकारी द्वारा कवर नहीं की गई हो ।

18. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने रेड चिली इंटरनेशनल सेल्स बनाम इनकमटैक्स

अनुवादित

ऑफिसर, [2023] 146 टैक्समैन. कॉम 224 (एससी) मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भरोसा जताया है, जिसमें कोर्ट ने निम्नानुसार कहा:

"विलंब क्षमा किया गया।
हम याचिकाकर्ता के साथ हैं कि वैकल्पिक उपाय के आधार पर रिट याचिका को खारिज करने वाला आक्षेपित निर्णय उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र पर इस न्यायालय के कई निर्णयों को ध्यान में नहीं रखता है, क्योंकि रिट याचिकाओं की जांच की गई है कि क्या आयकर अधिनियम 1961 की धारा 148 के तहत नोटिस जारी करने के लिए क्षेत्राधिकार पूर्व शर्तें, संतुष्ट है। आयकर अधिनियम, 1961 के तहत फिर से खोलने के प्रावधानों में वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा संशोधन किया गया है, और इसके परिणामस्वरूप इस मामले पर पहले के मामले कानून को ध्यान में रखते हुए गहन और गहन विचार की आवश्यकता होगी। तदनुसार, हम उच्च न्यायालय द्वारा आक्षेपित निर्णय में की गई टिप्पणियों को यह देखते अलग करते हैं कि वैकल्पिक उपाय के मद्देनजर रिट याचिका सुनवाई योग्य नहीं होगी, स्पष्ट करें कि इस मुद्दे की उच्च न्यायालय द्वारा गहराई से जांच की जाएगी यदि और जब यह विचार के लिए उठता है। हम धारा 148 ए (बी) के तहत नोटिस की जांच करने के बाद वर्तमान मामले में इस मुद्दे की जांच करने के लिए खुले हैं, जिसमें अनुलग्नक, याचिकाकर्ता द्वारा दायर जवाब और आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 148 ए (डी) के तहत आदेश शामिल हुए हैं।

उपरोक्त को दर्ज करते हुए विशेष अनुमति याचिका का निस्तारण किया जाता है। हम स्पष्ट करते हैं कि विशेष अनुमति याचिका को खारिज करने को मामले के गुण-दोष के आधार पर निष्कर्ष या टिप्पणी के रूप में नहीं माना जाएगा।"

19. विभाग की ओर से, श्री गौरव महाजन ने अंशुल जैन बनाम पीआर सीआईटी, [2022] 143 टैक्समैन, कॉम 37 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच के फैसले पर भरोसा जताया है, जिसमें न्यायालय ने पाया कि अधिनियम की धारा 148ए (डी) के अन्तर्गत पारित आदेश में रिट न्यायालय द्वारा कोई हस्तक्षेप आवश्यक नहीं था क्योंकि अधिनियम, 1961 की धारा 148 के अन्तर्गत जारी नोटिस के परिणामस्वरूप पुनर्मूल्यांकन कार्यवाही में पारित आदेश को चुनौती देते हुए एक निर्धारिती के पास ऐसे आदेश को चुनौती देने के सभी आधार उपलब्ध होंगे।

20. पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच के उपरोक्त आदेश को अंशुल जैन बनाम पीआर सीआईटी, [2022] 143 टैक्समैन. कॉम 38 मामले में भारत के सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी।, जिसमें न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है :-

अनुवादित

"उच्च न्यायालय के समक्ष जिस चीज को चुनौती दी गई है वह आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 148ए (डी) के अन्तर्गत फिर से खोलने का नोटिस था। याचिकाकर्ता द्वारा उठाई गई आपत्तियों पर विचार करने के बाद नोटिस जारी किए गए हैं। यदि इसके बाद याचिकाकर्ता को योग्यता के आधार पर कोई शिकायत है, तो उसे पुनर्मूल्यांकन कार्यवाही में मूल्यांकन अधिकारी के समक्ष शिकायत दर्ज करानी होगी ।

इन परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय ने रिट याचिका को सही ढंग से खारिज कर दिया है।

इस न्यायालय के किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

वर्तमान विशेष अनुमति याचिका खारिज की जाती है।"

21. जहां तक रेड चिली इंटरनेशनल सेल्स (उपरोक्त) में भारत के सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का सवाल है, अदालत ने उच्च न्यायालय को याचिकाकर्ता द्वारा धारा 148 ए (बी) के अन्तर्गत नोटिस के साथ-साथ दायर जवाब पर विचार करने का निर्देश दिया। 1961 के अधिनियम की धारा 148ए (डी) के अन्तर्गत आदेश पारित किया गया क्योंकि उच्च न्यायालय ने वैकल्पिक उपाय के मद्देनजर मुद्दे की जांच करने से इनकार कर दिया था। भारत के सर्वोच्च न्यायालय का यह निर्देश मामले के तथ्यों पर है क्योंकि याचिकाकर्ता द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष उठाए गए मुद्दों की जांच नहीं की गई थी। सुप्रीम कोर्ट ने इस दृष्टिकोण का समर्थन नहीं किया कि अधिनियम, 1961 की धारा 148ए (डी) के अन्तर्गत पारित आदेश के खिलाफ एक रिट याचिका स्वयं सुनवाई योग्य नहीं होगी और परिणामस्वरूप उच्च न्यायालय को आदेश की योग्यता की जांच करने का निर्देश दिया। .

22. धारा 148ए (डी) के अन्तर्गत पारित आदेश के खिलाफ रिट याचिका की रखरखाव अधिनियम की धारा 148ए (डी) के अन्तर्गत पारित आदेश के लिए उपलब्ध न्यायनिर्णयन के दायरे से अलग है। अधिनियम, 1961 की धारा 148ए (डी) के अन्तर्गत पारित आदेश पर निर्णय देने के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत उपलब्ध सीमित दायरा, 1961 के अधिनियम की योजना के मद्देनजर केवल सूचना के अस्तित्व तक ही सीमित होगा। रेड चिली इंटरनेशनल सेल्स (सुप्रा) में भारत के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से विपरीत निर्माण को खारिज नहीं किया जा सकता है।

अंशुल जैन (सुप्रा) मामले में सुप्रीम कोर्ट ने अधिनियम की धारा 148 के तहत पुनर्मूल्यांकन कार्यवाही की तुलना में धारा 148 ए के तहत कार्यवाही के दायरे की जांच की, यह देखने के लिए कि कार्यवाही की प्रकृति से परीक्षा निर्धारिती को क़ानून के तहत उपलब्ध विस्तृत उपायों के साथ पुनर्मूल्यांकन कार्यवाही के चरण में अधिक संपूर्ण रहेगी ।

23. अंशुल जैन (सुप्रा) मामले में सुप्रीम कोर्ट ने अधिनियम की धारा 148 के तहत

अनुवादित

24. पुनर्मूल्यांकन कार्यवाही की तुलना में धारा 148 ए के तहत कार्यवाही के दायरे की जांच की, यह देखने के लिए कि कार्यवाही की प्रकृति से परीक्षा निर्धारिती को क़ानून के तहत उपलब्ध विस्तृत उपायों के साथ पुनर्मूल्यांकन कार्यवाही के चरण में अधिक संपूर्ण रहेगी ।

25. अधिनियम की धारा 148 ए (डी) के तहत मूल्यांकन अधिकारी द्वारा पारित आदेश सूचना के अस्तित्व के बारे में सुझाव देता है कि कर के लिए प्रभार्य आय मूल्यांकन से बच गई है, +-]

26. '-अन्यथा अधिनियम की धारा 148 के तहत पारित पुनर्मूल्यांकन आदेश के अधीन रहेगा। इस प्रकार, आय के आकलन के गुणों के संबंध में धारा 148 ए (डी) के तहत आदेश पारित करते समय निर्धारण प्राधिकारी की कोई भी टिप्पणी धारा 148 के तहत पुनर्मूल्यांकन कार्यवाही में अंततः पारित होने वाले आदेश के अधीन रहेगी और धारा 148 के तहत निर्धारिती के अधिकारों और विवादों के पूर्वाग्रह के साथ-साथ उसके संबंध में विभागीय उपचार भी नहीं होगी

27. ऊपर किए गए हमारे विचार-विमर्श और चर्चाओं के मद्देनजर हमें अधिनियम, 1961 की धारा 148A (d), दिनांक 29.03.2023 के तहत निर्धारण प्राधिकारी के आदेश के साथ-साथ अधिनियम, 1961 की धारा 148 के तहत जारी नोटिस को चुनौती देने में कोई योग्यता नहीं मिलती है। इस निर्णय में निहित टिप्पणियों के अधीन, रिट याचिका तदनुसार विफल हो जाती है और खारिज कर दी जाती है।

(2023) 6 ILRA 931

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 25.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट

रिट-सी संख्या 3671 वर्ष 2022

के साथ

रिट-सी संख्या 14043 वर्ष 2023

एम.डी. समीर राव **याचिकाकर्ता**

बनाम

यू.पी. राज्य और अन्य **प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: व्यक्तिगत रूप से, श्री हृतुध्वज प्रताप साही

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी., श्री गौरव महाजन, श्री राजेश त्रिपाठी **ए. सिविल कानून-आक्षेपित आदेश-क्षेत्रीय सचिव, माध्यमिक शिक्षा परिषद, क्षेत्रीय कार्यालय, बरेली, यू.पी.-ने हाई स्कूल और**

इंटरमीडिएट प्रमाणपत्रों में अपना नाम बदलने के लिए याचिकाकर्ता के आवेदन को खारिज कर दिया।

बी. नाम का मौलिक अधिकार-अपनी पसंद का नाम रखने या व्यक्तिगत पसंद के अनुसार नाम बदलने का अधिकार-संविधान का अनुच्छेद 19(1)(ए)--भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत गारंटीकृत जीवन के

अनुवादित

अधिकार के दायरे में आता है-नाम के मौलिक अधिकार पर प्रतिबंध-पूर्ण अधिकार नहीं-विभिन्न उचित प्रतिबंधों के अधीन। (पैरा 23,26, 27 और 32)

मानव जीवन और व्यक्ति के नाम की अंतरंगता निर्विवाद है। अपनी पसंद का नाम रखने या व्यक्तिगत पसंद के अनुसार नाम बदलने का अधिकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत गारंटीकृत जीवन के अधिकार के अंतर्गत आता है। (पैरा 23)

भाटिया, जे. ने रश्मि श्रीवास्तव बनाम स्टेट. ऑफ यू.पी. और अन्य में भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1)(ए) के तहत गारंटीकृत मौलिक अधिकार के एक पहलू के रूप में नाम बदलने के अधिकार की पुष्टि की। (पैरा 27)

स्पष्ट रूप से नाम का महत्व एक सार्वभौमिक मानवीय मूल्य है और सभी अधिकार क्षेत्रों में एक पोषित अधिकार है। मानवीय मूल्यों की समानता और न्यायिक अधिकारियों की आम सहमति अक्सर सार्वभौमिक मानवाधिकारों का आधार बन जाती है। (पैरा 32)

सी. आरोपित आदेश-उत्तर प्रदेश इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 के अध्याय III का विनियमन 7-अभ्यर्थी के नाम या अन्य विवरण में लिपिकीय त्रुटियों का सुधार-उत्तर प्रदेश इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 के अध्याय XII का विनियमन 40-बोर्ड द्वारा जारी हाईस्कूल या इंटरमीडिएट प्रमाणपत्रों में दर्ज नाम में परिवर्तन के लिए आवेदन-7 वर्ष और 5 महीने के बाद किया गया आवेदन-विलंब और सीमा-बाधा के आधार पर याचिकाकर्ता का दावा खारिज-नाम परिवर्तन के उद्देश्य से-विभिन्न बोर्डों में उपस्थित होने वाले छात्र-एक कक्षा से मिलकर बने-विनियमन 40(ग)-अनुच्छेद 19(1)(ए) और अनुच्छेद 21 के तहत उचित प्रतिबंध के परीक्षण में विफल-'पढ़ने' का सिद्धांत लागू-। (पैरा 38, 39, 40, 43, 48, 49, 51, 52, 53, 54, 55 और 59)

निर्णय:

नाम परिवर्तन के उद्देश्य से, देश भर में विभिन्न बोर्डों में उपस्थित होने वाले छात्र एक कक्षा बनाते हैं। सीबीएसई उपनियमों में कोई प्रतिबंध नहीं है, जैसा कि ऊपर चर्चा किए गए यूपी इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 के विनियमों में लगाया गया है। यूपी बोर्ड में उपस्थित होने वाले छात्रों के साथ सम्मानजनक व्यवहार किया जाता है और नाम बदलने के उनके अधिकार के संबंध में सीबीएसई बोर्ड में उपस्थित होने वाले उम्मीदवारों के साथ भेदभाव किया जाता है। यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के तहत समानता के अधिकार का उल्लंघन है। (पैरा 52)

विनियम 40 (ग) में निहित प्रतिबंध असंगत हैं और निषेध की प्रकृति के हैं और भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1)(ए) और अनुच्छेद 21 और अनुच्छेद 14 के तहत मौलिक अधिकारों पर उचित प्रतिबंधों की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। विनियमन 40 (ग) में प्रतिबंध मनमाने हैं और भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19(1)(ए), अनुच्छेद 21 और अनुच्छेद 14 के आधार पर निहित अपना नाम चुनने और बदलने के मौलिक अधिकार का उल्लंघन करते हैं। (पैरा 53)

असंवैधानिकता की स्थिति को 'रीडिंग डाउन' के सिद्धांत को लागू करके बचाया जा सकता है। (पैरा 54)

रिट याचिका स्वीकार की गई। (ई-14)

अनुवादित

उद्धृत मामलों की सूची:

1. संपूर्णानंद बनाम स्टेट ऑफ यू.पी. एंड ऑर्स., 2018 (11) एडीजे 550
2. ओल्गा टेलिस बनाम बॉम्बे म्यूनिसिपल कॉर्पोरेशन, 1985 (3) एससीसी 545
3. मुन्न बनाम इलिनोइस; 1877 (94) यू.एस. 113
4. कशिश गुप्ता बनाम केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड एवं अन्य, 2020 एस.सी.सी. ऑनलाइन के.आर. 1590
5. रयान चावला बनाम दिल्ली विश्वविद्यालय एवं अन्य, 2020 एस.सी.सी. ऑनलाइन डी.एल. 1413
6. जिज्ञा यादव बनाम सी.बी.एस.ई., 2021 (7) एस.सी.सी. 535
7. रश्मि श्रीवास्तव बनाम यू.पी. & अन्य, 2022 (9) एडीजे 696
8. कोएरियल और ऑरिक बनाम नीदरलैंड, संचार संख्या 453/1991
9. रेहमन बनाम लातविया, संचार संख्या 1621/2007
10. स्टैंडेसमट स्टैड नीबुल, 2006 ईयूईजे सी-96/04ए
11. के.एस. पुट्टस्वामी बनाम यू.ओ.आई., 2017 (10) एससीसी 1
12. जीजा घोष बनाम यू.ओ.आई., 2016 (7) एससीसी 761
13. मध्यमम ब्रॉडकास्टिंग लिमिटेड बनाम यू.ओ.आई., सिविल अपील संख्या 8129, 8130 और 8131/2022; 05 अप्रैल, 2023 MANU/SC/0333/2023
14. सुब्रमण्यम स्वामी बनाम राजू, 2014 (8) एससीसी 390
15. डीटीसी बनाम मजदूर कांग्रेस, 1991 सप (1) एससीसी 600

(माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट द्वारा दिया गया)

1 - चर्चा को सुविधाजनक बनाने के लिए निर्णय को निम्नलिखित वैचारिक ढांचे में संरचित किया जा रहा है :-

2 - दोनों रिट याचिकाएँ एक ही मुद्दे से उत्पन्न हुई हैं और एक सामान्य निर्णय द्वारा तय की जा रही हैं।

I - प्रस्तावना:

3 - आक्षेपित आदेश दिनांक 24.12.2020 द्वारा क्षेत्रीय सचिव, माध्यमिक शिक्षा परिषद, क्षेत्रीय कार्यालय, बरेली, उ.प्र. नें याचिकाकर्ता की हाई स्कूल और इंटरमीडिएट प्रमाणपत्रों में उसका नाम बदल दिये जाने की अर्जी खारिज कर दी है।

II - तथ्यः

4 - संक्षिप्त तथ्य ये हैं। याचिकाकर्ता का नाम क्रमशः 2013 और 2015 में जारी हाई स्कूल परीक्षा प्रमाण पत्र और माध्यमिक शिक्षा परिषद द्वारा जारी इंटरमीडिएट परीक्षा प्रमाण पत्र में "शाहनवाज" के रूप में दर्ज किया गया था।

5 - याचिकाकर्ता ने निम्नलिखित अधिसूचना को भारत के राजपत्र संख्या 39 नई दिल्ली, शनिवार, 26 सितंबर, 2 अक्टूबर, 2020 (असविना 4, 1942) भाग- IV में प्रकाशित करके सार्वजनिक रूप से अपने नाम में बदलाव का खुलासा किया। पृष्ठ 1091:

"मैं अब तक शहनवाज पुत्र मौवीन हुसैन के नाम से

अनुवादित

जाना जाता था, गांव महलोली, पोट (पोस्ट) जलालपुर खस, तहसील बिलारी, जिला- मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश - 244411 में रहता हूं, मैंने अपना नाम बदल लिया है और अब से एमडी समीर राव के नाम से जाना जाऊंगा। यह प्रमाणित है कि मैंने इस संबंध में अन्य कानूनी आवश्यकताओं का अनुपालन किया है।

शाहनवाज

[हस्ताक्षर (मौजूदा पुराने नाम में)] "

6 - ऐसी ही एक अधिसूचना क्षेत्र में व्यापक प्रसार वाले स्थानीय दैनिक समाचार पत्र "हिन्दुस्तान" में भी प्रकाशित हुई थी।

7 - याचिकाकर्ता ने वर्ष 2020 में प्रतिवादी बोर्ड को अपना नाम "शाहनवाज " से "मोहम्मद समीर राव" में बदलने के लिए एक आवेदन दिया। उक्त आवेदन को आक्षेपित आदेश द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था।

III - विद्वान अधिवक्ताओं की प्रस्तुतियाँ

8 - याचिकाकर्ता अदालत में उपस्थित था और उसने धन की कमी के कारण वकील नियुक्त करने में असमर्थता व्यक्त की। न्यायालय द्वारा याचिकाकर्ता का निःस्वार्थ प्रतिनिधित्व करने के लिए समग्र रूप से बार के सदस्यों से अनुरोध किया गया । विद्वान वकील श्री हृदयध्वज प्रताप साही नें स्वेच्छा से याचिकाकर्ता का प्रतिनिधित्व किया और कानूनी पेशे की उच्च परंपराओं में न्यायालय की सहायता की। भारत संघ के विद्वान वकील श्री राजेश त्रिपाठी उपस्थित हैं।

9 - याचिकाकर्ता/ एमकस क्यूरी के विद्वान वकील श्री हृदयध्वज प्रताप साही ने निम्नानुसार प्रस्तुत किया:

अस्वीकृति मनमाना है और क्षेत्र को

(ए) प्रतिवादी प्राधिकारियों द्वारा नाम परिवर्तन आवेदन की अस्वीकृति मनमाना वैधानिक प्रावधानों के विपरीत है।

(बी)- नाम रखने का अधिकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1) (ए) और 21 के तहत गारंटीकृत नागरिक के मौलिक अधिकारों से संबंधित है।

(सी)- याचिकाकर्ता के मौलिक अधिकारों को बनाए रखने के लिए प्रासंगिक विनियमों की व्याख्या संवैधानिक अदालतों की मान्यताओं के आलोक में की जानी चाहिए। विनियम 40 (ग) के आपत्तिजनक प्रावधान रीड डाउन (एक प्रकार का कानूनी सिद्धांत) किए जाने की योग्य हैं।

(डी)- प्राधिकारी ने इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 के तहत बनाए गए विनियमन 7 को लागू करके सीमा के आधार पर आवेदन को अस्वीकार करके कानून में गलती की है, जो नाम बदलने के लिए आवेदन पर लागू नहीं होता है।

10 - (I)- अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री आई. पी. श्रीवास्तव का कहना है कि नाम बदलना पूर्ण अधिकार नहीं है और यह कानून द्वारा लगाए गए विभिन्न प्रतिबंधों के अधीन है। नाम बदलने का आवेदन उचित ही अस्वीकार कर दिया गया क्योंकि यह परिसीमा के कारण वर्जित था।

(II)- गलत प्रावधान का हवाला देने से आक्षेपित आदेश रद्द नहीं होगा क्योंकि उत्तर

अप्रमाणित

प्रदेश इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम के विनियम 40 के आधार पर शक्ति प्राधिकरण में निहित है।

(III)- नाम परिवर्तन के लिए याचिकाकर्ता का दावा उक्त प्रावधान के अनुरूप है। प्रस्तावित नाम निषिद्ध श्रेणी में आता है क्योंकि यह आवेदक के धर्म का खुलासा करता है।

(iv) - विनियम 40 (ग) रीड डाउन किए जाने के योग्य नहीं है और ये मौलिक अधिकारों पर उचित प्रतिबंध हैं।

IV - नामों की अवधारणा और संवैधानिक दृष्टिकोण:

A - नाम का मौलिक अधिकार

11 - ऋग्वेद में मानव विचार की सबसे प्राचीन हलचलों का प्रमाण मिलता है, जिसमें नाम रखने को मानव जीवन का प्राथमिक कार्य बताया गया है[1]:

> " ..... प्रारम्भिक दशा में पदार्थों के नाम रखे गए हैं। यह ज्ञान का पहला चरण है"

12- पश्चिमी विद्वानों का मानना है कि नाम का उपयोग मानव जाति के शुरुआती नमूनों में प्रचलित हुआ जो हमारे जैसे हैं। "आदिम मानव भाषण शायद नामों का एक बहुत ही कम संग्रह था, और इशारों और संकेतों के साथ व्यक्त किया गया होगा।"[2] प्राचीन मेसोपोटामिया सभ्यता के अवशेषों में खोजे गए मानव विचार और लेन-देन के पहले दर्ज साक्ष्यों में एक व्यक्ति के नाम का संदर्भ मिलता है।[3]

13 - " जो इस्राएल के पुत्र मिस्र में गए, उनके नाम ये हैं... रूबेन और शिमोन के रूप में वे [मिस्र में] उतरे और रूबेन और शिमोन के रूप में वे बाहर गए।" शीमोट 1:1 (निर्गमन)

टोरा के शीमोट का यह अंश प्राचीन यहूदी रीति-रिवाजों में नामों के महत्व को दर्शाता है।

14 "नाम क्या है....?[4] निराश जूलियट से पूछा गया। लेकिन नाम ही सब कुछ था। प्रेमियों को उनके दुखद भाग्य का सामना केवल इसलिए करना पड़ा क्योंकि रोमियो ने अपने पूर्वजों का नाम लिया था। जनरल मैकआर्थर की मां ने उन्हें आगाह किया था कि सम्मान कितना महत्वपूर्ण पहलू है नाम का और उनसे आग्रह किया कि "याद रखें कि अगर छाया या शर्म कभी भी आपके नाम को काला कर देती है तो दुनिया इसके दोष से तुरंत निपट जाएगी"। इसी प्रकार कवि मैथली शरण गुप्त ने नाम की शक्ति को एक आह्वान और कार्रवाई के लिए प्रेरित किया"... जग में रह कर कुछ नाम करो, कुछ काम करो, कुछ काम करो..."[5]

15 - नाम के गुण पद्य और गद्य में, आध्यात्मिक साहित्य और धर्मनिरपेक्ष ग्रंथों में प्रसिद्ध है। किसी व्यक्ति के नाम का महत्व सामाजिक अभिकलन और वाणिज्यिक लेनदेन सहित जीवन के सभी पहलुओं में अनुभव किया जाता है। मानव नाम की शक्ति और महिमा समय से परे है और सीमाओं से बंधी नहीं है।

16 - "नाम" के आविष्कार ने मानव समाज के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और यहां तक कि मानव विकास की दिशा भी बदल दी। सामाजिक निर्वाह के अनुरूप ढलने और एक प्रजाति के रूप में जीवित रहने और प्रगति करने के लिए मानव जाति की क्षमता को बढ़ाने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को एक नाम देने का विचार मानव कौशल में जोड़ा गया। मानव नाम किसी व्यक्ति के जीवन का एक अभिन्न

अनुवादित

अंग है, और मानव जाति के लिए सामाजिक समूहों में प्रवेश करने और एक जाति के रूप में पनपने के लिए एक अनिवार्य उपकरण है। नाम प्रत्येक मनुष्य को एक विशिष्ट पहचान प्रदान करता है। हर व्यक्ति उनके[6] नाम में जीवन की पूर्णता पाता है।

17 - मानव नामों की परंपरा और स्रोत अनेक और विविध हैं। नामकरण परंपराएँ सांस्कृतिक जमाव, ऐतिहासिक स्मृतियों, मूल्य प्रणालियों, प्रेरक व्यक्तित्वों, किसी समाज की धार्मिक मान्यताओं और खुशी लाने वाली चीजों से ली गई हैं। नए अस्तित्व में आने वाले मानव जीवन को संजोने के लिए नाम चुने जाते हैं। इसी प्रकार नाम परिवर्तन की जड़ें भी विभिन्न समाजों के प्राचीन रीति रिवाजों में निहित हैं। संन्यास आदेश और विभिन्न धार्मिक मान्यताओं में पुरोहित वर्ग साधक के लिए यह अनिवार्य कर देता है कि वह पिछले संबंधों के त्याग के प्रतीक के रूप में जन्म का नाम छोड़ दे, और एक उच्च उद्देश्य की खोज को प्रकट करने वाला एक नया नाम ले।

18 - किसी व्यक्ति के नाम और व्यक्ति के जीवन के बीच का अटूट संबंध अनिवार्य रूप से संवैधानिक विधि संवाद का विषय बन जाता है। 19 - संबंधित अधिकारियों की सहायता से चर्चा को आगे बढ़ाया जाएगा।

20 - इस न्यायालय द्वारा **संपूर्णानंद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[7] में भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के दायरे की जांच करते समय संवैधानिक कानून में विभिन्न स्थलों के प्रकाश में देखा गया:-

1. "भारतीय ज्ञान परंपरा का पुनर्जीवन" में हृदय नारायण दीक्षित द्वारा उद्धरित।
2. एच. जी. वेल्स द्वारा - A Short History of the World
3. युवल नूह हरारी द्वारा 3 Sapiens [हमारे पूर्वजों द्वारा हमारे लिए छोड़े गए सबसे शुरुआती संदेश पढ़े गए हैं, उदाहरण के लिए, "29,086 जौ माप 37 महीने का कुशीम। यदि कुशिम वास्तव में एक व्यक्ति था, तो वह इतिहास में पहला व्यक्ति हो सकता है जिसका नाम हमें ज्ञात है।]
4. रोम और जूलियट - विलियम शेक्सपियर
5. नर हो, न निराश करो मन को - मैथिलीशरण गुप्त
6. "उसका" या "उसकी " के स्थान पर लिंग समावेशी सर्वनाम के रूप में "उनका " उपयोग किया जा रहा है (टाइम पत्रिका देखें)
7. 2018 (11) एडीजे 550

"29 - भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के सरल शब्दों का भारत में संवैधानिक कानून के विकास में गहरा महत्व था।

30 - संविधान निर्माण का संकल्प भारत के लोगों की सामूहिक इच्छा थी। संविधान का वादा भारत के प्रत्येक नागरिक से है। संविधान का भाग III व्यक्ति पर आधारित है और व्यक्तिगत नागरिकों के इर्द- गिर्द घूमता है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 में सरल शब्द "जीवन" ने न्यायालयों के समक्ष एक जटिल न्यायशास्त्रीय समस्या प्रस्तुत की। सरल शब्द "जीवन" संविधान निर्माताओं के गहन निहितार्थ को लंबे समय तक छिपा नहीं सका। संविधान में प्रावधान के प्रति न्यायालयों का

अनुवादित

दृष्टिकोण अस्थायी से दूरदर्शी व्याख्या की ओर बढ़ गया, प्रावधानों की व्याख्या शाब्दिक से भविष्यसूचक की ओर उन्नत हुयी ।

31 - हमारी स्वतंत्रता के अगले दिन भारत के लोगों के लिए जीवन का अर्थ क्या था? यदि जीवन का अर्थ भौतिक अस्तित्व और मात्र जीवित रहना है, तो भारतीय लोगों ने इतिहास के उतार- चढ़ाव के बावजूद जीने के लिए उल्लेखनीय लचीलापन दिखाया है। भारत के लोग दासता में रहे हैं, अकाल से बचे रहे हैं, एक अन्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था में रहे हैं जो अक्सर पूर्वाग्रह, दरिद्रता और निरक्षरता से ग्रस्त है। अज्ञात सदियां भारत के लोगों के जीवित रहने के कीर्तिमानों से भरी पड़ी हैं। निश्चित रूप से भारत की आजादी के बाद भारतीय लोगों का जीवन पहले जैसा नहीं रह सका। निश्चित रूप से भारतीय गणतंत्र संस्थापकों में भारत आगमन के बाद भारत के लोगों के लिए जीवन के मायने बदलने पडे। लोगों के जीवन का अर्थ बदलने का सपना देखने का साहस था। भारत में न्यायालयों के पास सपनों को वास्तविकता बनाने की दृष्टि और साहस था। जीवन को उन सभी गुणों को अपनाना होगा जो जीवन को सार्थक बनाते हैं और उन सभी गतिविधियों को अपनाना होगा जो जीवन को जीने लायक बनाती हैं।

32 - जीवन के उद्देश्य की जांच पारंपरिक रूप से दार्शनिकों का क्षेत्र रहा है। संविधान निर्माताओं ने "जीवन" शब्द को संविधान के दायरे में ला दिया । संवैधानिक कानून ने जीवन के अर्थ को न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र में डाल दिया। "जीवन" न्यायालयों की बहुत चिंता का विषय है। जीवन के अर्थ की खोज न्यायालयों का कार्य है। दरअसल, जीवन के अर्थ की खोज संविधान के तहत गारंटीकृत मौलिक अधिकारों को साकार करने के लिए केंद्रीय है।

34 - भारत में न्यायालयों को शुरू से ही पता था कि जीवन के महत्व को समझना न्याय की सुरक्षा प्रदान करने की कुंजी है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 की व्याख्या करते हुए जीवन को इसकी सारी व्यापकता और गहनता से अपनाया और एक संकीर्ण व्याख्या से परहेज किया। "

21 - संवैधानिक इतिहास में एक निर्णायक क्षण तब आया जब सुप्रीम कोर्ट ने जीवन को भौतिक अस्तित्व की बेडियो से मुक्त किया और पाया कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा प्रदत्त जीवन के अधिकार का दायरा व्यापक एवं दूरगामी है। **मुन बनाम इलिनोइस**[8] में **ओल्गा टेलिस बनाम बाम्बे नगर निगम**[9] की इस धारणा का समर्थन किया गया कि जीवन "मात्र पशु अस्तित्व से कुछ अधिक है और जीवन के अभाव के खिलाफ निषेध उन सभी सीमाओं और क्षमताओं तक फैला हुआ है जिनके द्वारा जीवन का आनंद लिया जाता है"।

22- अनुच्छेद 21 निरंतर विस्तारित सीमाओं की जीवन यात्रा पर स्थापित किया गया था और जीवन का दायरा उत्तरोत्तर बढ़ाया गया था।

23- मानव जीवन और व्यक्ति के नाम की घनिष्ठता निर्विवाद है। अपनी पसंद का नाम रखने या व्यक्तिगत पसंद के अनुसार नाम बदलने का अधिकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत प्रदत्त जीवन के अधिकार के अंतर्गत आता है।

अप्रमाणित

24- **कशिश गुप्ता बनाम केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड और अन्य**[10] में केरल उच्च न्याय नें भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1) (ए) और अनुच्छेद 21 के दायरे में नाम रखने का अधिकार लाया:-

"8. नाम किसी व्यक्ति के लिए बहुत ही व्यक्तिगत चीज़ है। नाम किसी के व्यक्तित्व, उसकी पहचान और उसकी विशिष्टता की अभिव्यक्ति है। नाम वह तरीका है जिससे एक व्यक्ति खुद को दुनिया भर में व्यक्त करता है। यह वह आधार है जिस पर एक नागरिक समाज में आगे बढ़ता है। लोकतंत्र में किसी के नाम को उसकी पसंद के अनुसार व्यक्त करना व्यक्तिगत अधिकार का एक पहलू है। हमारे देश में, एक नाम रखना और उसे अपनी इच्छानुसार व्यक्त करना निश्चित रूप से अनुच्छेद 19 (1) (ए) के तहत भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार का एक हिस्सा है और साथ ही भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत स्वतंत्रता के अधिकार का एक हिस्सा है। राज्य या उसके साधन किसी भी नाम के उपयोग के रास्ते में नहीं खड़े हो सकते हैं, किसी व्यक्ति द्वारा या अपनी पसंद के अनुसार नाम में किसी भी परिवर्तन के लिए, अनुच्छेद 19 (2) के तहत निर्धारित सीमा को छोड़कर या किसी ऐसे कानून द्वारा जो उचित, निष्पक्ष और हो। धोखाधड़ी या धोखाधड़ी के नियंत्रण और विनियमन के सीमित आधार के अधीन आपराधिक गतिविधियों या अन्य वैध कारणों से, अधिकारियों द्वारा बनाए गए अभिलेख में नाम परिवर्तन के लिए एक वास्तविक दावे को बिना किसी हिचकिचाहट के अनुमति दी जानी चाहिए।"

25- इसी प्रकार उच्च न्यायालय ने **रेयान चावला बनाम दिल्ली विश्वविद्यालय और अन्य**[11] में नाम परिवर्तन के मुद्दे पर तकनीकी दृष्टिकोण अपनाते हुए कानून की व्याख्या इस प्रकार की:-

"14. इसलिए, उपरोक्त निर्णय में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि एक नाम रखना और उसे अपनी इच्छानुसार व्यक्त करना भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत स्वतंत्रता के अधिकार के समान ही अनुच्छेद 19 (1) (ए) के तहत बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार का एक हिस्सा है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि नाम बदलने का अधिकार एक संरक्षित अधिकार है और याचिकाकर्ता को आम तौर पर तकनीकी मुद्दों पर उक्त अधिकार से वंचित नहीं किया जाएगा।"

---

8. 1985 (3) एससीसी 545
9. 1877 (94) यूएस 113
10. 2020 एससीसी ऑनलाइन केरल 1590
11. 2020 एससीसी ऑनलाइन दिल्ली 1413

26 - **जिग्या यादव बनाम सीबीएसई**[12] में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि "नाम पहचान का एक आंतरिक तत्व है"। नाम और पहचान का गठजोड़, और किसी की पसंद के अनुसार अपनी पहचान व्यक्त करने की स्वतंत्रता को **जिग्या यादव (पूर्व)** में इस प्रकार समझाया गया था:-

"125 - इसलिए, पहचान किसी व्यक्ति की अर्जित विभिन्न आंतरिक और बाह्य विशेषताओं का एक मिश्रण है और नाम को पहचान के सबसे महत्वपूर्ण संकेतकों में से एक माना जा सकता है। और इसलिए, एक

अधिवक्ता

व्यक्ति को अपने नाम और कानून पर पूर्ण नियंत्रण होना चाहिए, उसे "हर समय" इस तरह के नियंत्रण को बनाए रखने के साथ-साथ स्वतंत्र रूप से प्रयोग करने में सक्षम बनाना चाहिए। इस तरह के नियंत्रण में अनिवार्य रूप से किसी व्यक्ति की उचित कारण के लिए एक अलग नाम से पहचाने जाने की आकांक्षा शामिल होगी। संविधान का अनुच्छेद 19 (1) (ए) बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का गारंटीशुदा अधिकार प्रदान करता है। नवतेज सिंह जौहर के आलोक में [नवतेज सिंह जौहर बनाम भारत संघ, (2018) 10 एससीसी 1: (2019) 1 एससीसी (आपराधिक) 1], इस स्वतंत्रता में इसमें किसी की पहचान को अपनी पसंद के अनुसार कानूनी रूप से व्यक्त करने की स्वतंत्रता शामिल होगी। दूसरे शब्दों में, पहचान की अभिव्यक्ति संविधान के तहत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का एक संरक्षित तत्व है।

126 - इस अधिकार के अस्तित्व को स्वीकार करने के बाद, आवश्यक प्रश्न नाम परिवर्तन के कारण मिलने वाले अधिकारों से संबंधित है। प्रश्न महत्वपूर्ण हो जाता क्योंकि पहचान, जैसा कि ऊपर कहा गया है, तत्वों के विविध समूह का एक संयोजन है। नवतेज सिंह जौहर में [नवतेज सिंह जौहर बनाम भारत संघ, (2018) 10 एससीसी 1: (2019) 1 एससीसी (3 (आपरोधिक) 1) "प्राकृतिक पहचान" से निपटते हैं और यहां हम नाम से निपट रहे हैं, जिसे केवल एक "अर्जित पहचान" माना जा सकता। इसलिए गहन परीक्षण के बाद निर्णय लिया गया कि अधिकार का सटीक दायरा प्रतिबंधों की सीमा तक ही हो सकता है |

127 - आरंभ करने के लिए, यह स्पष्ट करना महत्वपूर्ण है कि पहचान की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के घटक तत्व के रूप में नाम बदलने के इस अधिकार से हम क्या समझते हैं। किसी व्यक्ति की पहचान में किसी भी बदलाव को कई च रणों से गुजरना पड़ता है और उन चरणों की उचित पूर्ति के बिना इसे पूरा नहीं माना जा सकता है। कोई व्यक्ति किसी भी समय किसी भी उपाधि या विशेषण के साथ स्वयं की पहचान कर सकता है। लेकिन पहचान में बदलाव को तब तक औपचारिक या कानूनी रूप से पूरा नहीं माना जाएगा जब तक कि राज्य और उसकी एजेंसियां इसे अपने अभिलेखों में नोट नहीं कर लेतीं। आख़िरकार, सामाजिक क्षेत्र में, किसी व्यक्ति की पहचान न केवल इस बात से होती है कि वह स्वयं को कैसे पहचानता है, बल्कि इस बात से भी पहचानी जाती है कि उसका आधिकारिक अभिलेख कैसा है। क्योंकि, किसी व्यक्ति के प्रत्येक सार्वजनिक लेनदेन में, आधिकारिक अभिलेख उस व्यक्ति के नाम और अन्य प्रासंगिक विवरण से परिचय कराते हैं ।"

27 - **रश्मि श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[13] में न्यायमूर्ति भाटिया ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1) (ए) के तहत गारंटीकृत मौलिक अधिकार के एक पहलू के रूप में नाम बदलने के अधिकार की पुष्टि की।

28 - **कोएरियल और ऑरिक बनाम नीदरलैंड**[14] में संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार समिति ने स्वीकार किया कि नाम किसी व्यक्ति की पहचान का एक अनिवार्य घटक है और यह इस प्रकार मानने से गोपनीयता के अधिकार के दायरे में आता है:-

12. 2021 (7)SCC 535

अनुवादित

13. 2022 (9) एडीजे 696

14. संचार क्रमांक 453/1991

"10.2....समिति का मानना है कि किसी व्यक्ति का उपनाम उसकी पहचान का एक महत्वपूर्ण घटक है और किसी की गोपनीयता में मनमाने या गैरकानूनी हस्तक्षेप के खिलाफ सुरक्षा में किसी का अपना नाम ..... चुनने और बदलने के अधिकार में मनमाने या गैरकानूनी हस्तक्षेप के खिलाफ सुरक्षा शामिल है । सवाल उठता है कि क्या उपनाम बदलने को मान्यता देने से अधिकारियों का इनकार भी अनुच्छेद 17 के अर्थ में स्वीकार्य हस्तक्षेप की सीमा से परे है।

10.5. वर्तमान मामले में, अपने धार्मिक अध्ययन को आगे बढ़ाने के लिए अपने पहले नामों को हिंदू नामों में बदलने की मान्यता के लिए लेखकों का अनुरोध 1986 में स्वीकार कर लिया गया था। राज्य पार्टी ने अपने उपनामों को बदलने के अनुरोध को भी अस्वीकार करने का आधार इस पर आधारित किया था। आधार यह है कि लेखकों ने यह नहीं दिखाया था कि जो बदलाव मांगे गए थे वे उनके अध्ययन को आगे बढ़ाने के लिए आवश्यक थे, कि नामों में धार्मिक अर्थ थे और वे 'डच लगने वाले' नहीं थे। समिति अनुच्छेद 17 के तहत लेखकों के अधिकारों को इतना सीमित करने के आधार को उचित नहीं मानती है। इसलिए तत्काल मामले की परिस्थितियों में लेखकों के अनुरोध को अस्वीकार करना अनुबंध के अनुच्छेद 17, पैराग्राफ 1 के अर्थ में मनमाना था।"

29 - इसी तरह का दृष्टिकोण संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार समिति ने **रायहमान बनाम लातविया**[15] में और यूरोपीय समुदाय के न्यायालय ने **स्टैंडसेट स्टैड नीबुल**[16] में अपनाया था।

30 - अंतर्राष्ट्रीय न्यायशास्त्र ने "अंतर्राष्ट्रीय कानून में मानवाधिकारों के बढ़ते महत्व, व्यक्तिगत पहचान को पहचानने और उसका सम्मान करने के दायित्व के साथ- साथ कुछ मानवाधिकार मानकों की व्यापकता जैसे कि भेदभाव का निषेध, निजी जीवन का अधिकार और एक नाम का अधिकार"[17] को तेजी से पहचाना है।

31 - विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय दस्तावेज़[18] भी प्रत्येक व्यक्ति को एक नाम का अधिकार प्रदान करते हैं।

32- स्पष्ट रूप से नाम का महत्व एक सार्वभौमिक मानवीय मूल्य और अधिकार क्षेत्र में एक पोषित अधिकार है। मानवीय मूल्यों की समानता और न्यायिक अधिकारियों की सर्वसम्मति अक्सर सार्वभौमिक मानवाधिकारों का आधार बन जाती है।

IV- B- किसी नाम के मौलिक अधिकार पर प्रतिबंध

33 - नाम रखने या बदलने का मौलिक अधिकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (ए) और अनुच्छेद 21 के आधार पर प्रत्येक नागरिक में निहित है। लेकिन यह पूर्ण अधिकार नहीं है और कानून द्वारा निर्धारित विभिन्न उचित प्रतिबंधों के अधीन है।

34 - मौलिक अधिकारों पर कानून द्वारा लगाई गई सीमाएं या प्रतिबंध निष्पक्ष और उचित होने चाहिए। **के.एस. पुट्टस्वामी बनाम भारत संघ**[19] में सुप्रीम कोर्ट की निम्नलिखित व्यवस्थाओं का संदर्भ लाभकारी रूप से लिया जा सकता है।

अनुवादित

15. संचार संख्या 1621/2007;

16. 2006 ईयूईजे सी-96/04ए

17. Human Rights and a Person's Name:Legal Trends and Challenges - द्वारा फर्नांड डी वेरेन्स और एल्ज़बीटा कुज़बोरस्का

18. 16 दिसंबर 1966 को अपनाया गया नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय अनुबंध का अनुच्छेद 24(2); बाल अधिकारों पर कन्वेंशन का अनुच्छेद 8, 20 नवंबर 1989 को अपनाया गया, विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों पर कन्वेंशन का अनुच्छेद 18 (2), 13 दिसंबर 2006 को अपनाया गया; मानवाधिकार पर अमेरिकी कन्वेंशन का अनुच्छेद 18, 22 नवंबर 1969 को हस्ताक्षरित; बच्चों के अधिकारों और कल्याण पर 1999 अफ्रीकी चार्टर का अनुच्छेद 6(1) [प्रासंगिक प्रावधान परिशिष्ट 1 में पुन: प्रस्तुत]

19. 2017 (10) एससीसी 1

24...63 साल पहले एमपी शर्मा में और पचपन साल पहले खड़क सिंह में जिस न्यायशास्त्रीय आधार पर अधिकार था, उसने अब संवैधानिक कानून में एक स्थापित स्थिति बना ली है। सबसे पहले, मौलिक अधिकार स्वतंत्रता और गरिमा की बुनियादी धारणाओं से उत्पन्न होते हैं और अनुच्छेद 19 के तहत विशिष्ट रूप से संरक्षित अधिकारों के रूप में स्वतंत्रता के कुछ पहलुओं की गणना अनुच्छेद 21 को उसके व्यापक दायरे से वंचित नहीं करती है। **दूसरे, मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करने वाले कानून की वैधता का परीक्षण राज्य की कार्रवाई के उद्देश्य के संदर्भ में नहीं बल्कि स्वतंत्रता की गारंटी पर इसके प्रभाव के आधार पर किया जाना चाहिए, तीसरा, अनुच्छेद 14 की आवश्यकता है कि राज्य की कार्रवाई मनमानी नहीं होनी चाहिए और तर्कसंगतता की आवश्यकता को पूरा करना चाहिए, भाग III में संवैधानिक गारंटी को अर्थ प्रदान करता है।** (जोर दिया गया)

260. कूपर मामले में निर्णय का प्रभाव [रुस्तम कैवसजी कूपर बनाम भारत संघ, (1970) 1 एससीसी 248] संविधान के भाग III द्वारा गारंटीकृत मौलिक अधिकारों के बीच एक संबंध स्थापित करना है। निर्णय का तात्कालिक परिणाम यह है कि एक कानून जो अनुच्छेद 19 में निहित व्यक्तिगत स्वतंत्रता को प्रतिबंधित करता है, उसे मौलिक स्वतंत्रता के संबंध में खंड (2) से (6) द्वारा विचारित अनुमेय प्रतिबंधों की कसौटी पर खरा उतरना चाहिए। इसके अलावा, चूंकि मौलिक अधिकार आपस में जुड़े हुए हैं, इसलिए अनुच्छेद 21 को उन अधिकारों के अवशेष के रूप में नहीं समझा जा सकता है जिन्हें विशेष रूप से अनुच्छेद 19 में शामिल नहीं किया गया है। **अधिकारों के दोनों सेट अधिव्यापित होते हैं और इसलिए एक कानून है जो अनुच्छेद 19 के तहत व्यक्तिगत स्वतंत्रता में से एक को प्रभावित करता है। खंड (2) से (6) में विचारित अनुमेय प्रतिबंधों को पूरा करने की आवश्यकता के अलावा, अनुच्छेद 21 के तहत एक वैध "कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया" के मापदंडों को पूरा करना होगा जहां यह जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर प्रभाव डालता है। कानून का मूल्यांकन उसके उद्देश्य के संदर्भ में नहीं बल्कि मौलिक अधिकारों पर उसके प्रभाव और प्रभाव के आधार पर किया जाएगा।** इस सिद्धांत के टूटने के साथ कि मौलिक अधिकार

अनुवादित

निर्विवाद खण्ड हैं, मेनका [मेनका गांधी बनाम भारत संघ (1978) 1 एससीसी 248] के बाद न्यायशास्त्र ने यह निर्धारित करने में निष्पक्षता और तर्कसंगतता की परीक्षा को प्रभावित किया कि क्या "प्रक्रिया कानून द्वारा स्थापित की गई है" अनुच्छेद 21 के तहत पारित होता है। मूल स्तर पर, मौलिक अधिकारों पर अध्याय के प्रत्येक अनुच्छेद में अंतर्निहित संवैधानिक मूल्य दूसरों के अर्थ को चेतन करते हैं। कानून का यह विकास प्राकृतिक विकास का अनुसरण करता है। आख़िरकार इस विकास का आधार यह है कि मौलिक अधिकारों की विविध गारंटियों का हर पहलू मनुष्य से संबंधित है। प्रत्येक तत्व दूसरों के साथ मिलकर मानव व्यक्तित्व की संरचना में योगदान देता है। चीजों की प्रकृति में किसी भी तत्व को समग्र संपूर्ण से विच्छेदित तरीके से नहीं पढ़ा जा सकता है। प्रत्येक मौलिक अधिकार के बीच घनिष्ठ संबंध के कारण संवैधानिक अधिकारों और हितों को मान्यता मिली है। उनमें से कुछ एक से अधिक और कभी- कभी कई मौलिक अधिकारों का उल्लंघन कर सकते हैं। फिर भी अन्य लोग उस मूल मूल्य को प्रतिबिंबित कर सकते हैं जिस पर मौलिक अधिकार आधारित हैं।

(जोर दिया गया)

"294.....जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सुरक्षा की गारंटी के बीच अंतर - संबंध संचालित होते है, एक बहुआयामी विचार सबसे पहले, यह सुनिश्चित करता है कि इसके लिए प्रक्रिया वंचना निष्पक्ष, उचित और तर्कसंगत होनी चाहिए। दूसरा, अनुच्छेद 14 प्रक्रिया और अभिव्यक्ति "कानून" दोनों को प्रभावित करता है जिसके अंदर एक कानून अनुच्छेद 21 का अर्थ निष्पक्षता के मानदंडों के अनुरूप होना चाहिए जो अनुच्छेद 14 में उत्पन्न होता है। सिद्धांत के रूप में, एक बार अनुच्छेद 14 अनुच्छेद 21, निष्पक्षता और तर्कसंगतता के मानदंडों से जुड़ा है यह न केवल प्रक्रिया पर बल्कि कानून पर भी लागू होगा।

(जोर दिया गया)

35 - मौलिक अधिकारों पर प्रतिबंधों की तर्कसंगतता का दायरा **पुट्टास्वामी (पूर्व)** में और अधिक विस्तृत किया गया था जो इस प्रकार है :-

"310... गोपनीयता पर सभी प्रतिबंधों पर तीन आवश्यकताएं लागू होती हैं (सिर्फ सूचनात्मक गोपनीयता नही) वे प्रक्रियात्मक और सामग्री - आधारित से निकलते हैं। अनुच्छेद 21 का अधिदेश की **पहली आवश्यकता यह है कि निजता पर अतिक्रमण को उचित ठहराने के लिए अस्तित्व में एक कानून होना चाहिए,** यह अनुच्छेद 21 की एक स्पष्ट आवश्यकता है। क्योंकि, स्थापित प्रक्रिया के अनुसार किसी भी व्यक्ति को उसके जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जा सकता है। कानून का अस्तित्व एक अनिवार्य आवश्यकता है। **दूसरा, वैध राज्य उद्देश्य के संदर्भ में आवश्यकता की आवश्यकता यह सुनिश्चित करती है कि प्रतिबंध लगाने वाले कानून की प्रकृति और सामग्री अनुच्छेद 14 द्वारा अनिवार्य तर्कसंगतता के क्षेत्र में आती है, जो राज्य की मनमानी कार्रवाई के खिलाफ गारंटी है।** एक वैध राज्य लक्ष्य का अनुसरण यह सुनिश्चित करता है कि कानून स्पष्ट मनमानी से ग्रस्त न हो। एक अभिधारणा के रूप में वैधता में एक मूल्य निर्णय शामिल होता है।

अनुवादित

न्यायिक समीक्षा विधायिका के मूल्य निर्णय की पुनः सराहना या दूसरा अनुमान नहीं लगाती है, बल्कि यह तय करने के लिए है कि जिस उद्देश्य को पूरा करने की कोशिश की जा रही है वह स्पष्ट स्पष्ट मनमानी से ग्रस्त है या नहीं। **तीसरी आवश्यकता यह सुनिश्चित करती है कि विधायिका द्वारा अपनाए गए साधन कानून द्वारा पूरी की जाने वाली वस्तु और जरूरतों के लिए आनुपातिक हैं। आनुपातिकता राज्य की मनमानी कार्रवाई के खिलाफ गारंटी का एक अनिवार्य पहलू है क्योंकि यह सुनिश्चित करता है कि अधिकार पर अतिक्रमण की प्रकृति और गुणवत्ता कानून के उद्देश्य से असंगत नहीं है।** इसलिए, एक वैध कानून के लिए तीन गुना आवश्यकता एक ओर मनमानी के खिलाफ मौलिक गारंटी और दूसरी ओर जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सुरक्षा के बीच पारस्परिक निर्भरता से उत्पन्न होती है। निजता का अधिकार, जो जीवन और स्वतंत्रता के अधिकार का आंतरिक हिस्सा है, और भाग III में सन्निहित स्वतंत्रताएं उन्हीं प्रतिबंधों के अधीन हैं जो उन स्वतंत्रताओं पर लागू होती हैं।"

(जोर दिया गया)

36 - **जीजा घोष बनाम भारत संघ**[20] में बताए गए प्रतिबंधों पर तर्कसंगतता का परीक्षण इस मामले के तथ्यों पर लागू होती हैं।

"मानव गरिमा के संवैधानिक मूल्य की एक केंद्रीय मानक भूमिका होती है। संवैधानिक मूल्य के रूप में मानव गरिमा वह कारक है जो मानव अधिकारों को एकजुट करती है। यह मानव अधिकारों की मानक एकता सुनिश्चित करती है। यह मानक एकता तीन तरीकों से व्यक्त की जाती है : पहला, मानव गरिमा का मूल्य संविधान में निर्धारित संवैधानिक अधिकारों के लिए एक मानक आधार के रूप में कार्य करता है; दूसरा, यह मानव गरिमा के अधिकार सहित संवैधानिक अधिकारों के दायरे को निर्धारित करने के लिए एक व्याख्यात्मक सिद्धांत के रूप में कार्य करता है; **तीसरा, मानव का मूल्य संवैधानिक अधिकार को सीमित करने वाले कानून की आनुपातिकता निर्धारित करने में गरिमा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।"**

(जोर दिया गया)

---

20. 2016 (7) एससीसी 761- यह अंश ह्यूमन डिग्निटी से जीजा घोष (सुप्रा) में उद्धृत किया गया है- संवैधानिक मूल्य और संवैधानिक अधिकार (कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2015)

37. **मध्यमम ब्रॉडकास्टिंग लिमिटेड बनाम भारत संघ**[21] मामले में मौलिक अधिकारों की सीमा के

संबंध में कानून की स्थिति भी स्पष्ट की गई थी:

"48. संवैधानिक लोकतंत्र में अधिकार पूर्ण नहीं हैं। इस न्यायालय से जो न्यायशास्त्र निकला है वह यह है कि अधिकार सीमित हो सकते हैं लेकिन ऐसी सीमा को तर्कसंगतता के आधार पर उचित ठहराया जाना चाहिए। हालांकि, संविधान का केवल अनुच्छेद 19 स्पष्ट रूप से निर्धारित करता है कि सीमा उचित होनी चाहिए, आरसी कूपर (पूर्व) और मेनका गांधी (पूर्व) में इस न्यायालय के निर्णयों के बाद यह निर्णायक है कि तर्कसंगतता आवश्यक है। मौलिक अधिकारों पर पूरे अध्याय के माध्यम से प्रक्रियात्मक और वास्तविक

अप्रमाणित

सीमाओं के अभ्यास का मार्गदर्शन किया गया। यह हमें "सीमा की तर्कसंगतता" का आकलन करने के लिए उपयोग किए जाने वाले मानक के प्रश्न का उत्तर देने के लिए छोड़ देता है। संविधान का पाठ समीक्षा के मानक को निर्धारित नहीं करता है। तर्कसंगतता का परीक्षण करने के लिए अलग- अलग मानकों को निर्धारित करने में इस न्यायालय से बहुत स्याही बह गई है: तर्कसंगतता, अनुचितता, आनुपातिकता, और सख्त जांच,

49- तर्कसंगतता एक मानक अवधारणा है जिसे प्रासंगिक विचारों के मूल्यांकन और उनके वजन के अनुसार संतुलित करने से पहचाना जाता है। यह मूल्योन्मुख है न कि उद्देश्योन्मुख। यही कारण है कि अदालतें यह पहचानने में अधिक तत्पर रही हैं कि कार्रवाई उचित है या नहीं; इसकी पहचान करने के बजाय यह पहचानने में कि कार्रवाई अनुचित है या नहीं। यही कारण कि अदालतों ने मौलिक अधिकारों पर सीमाओं की तर्कसंगतता का आकलन करते समय आनुपातिकता के रूप में जांच के उच्च मानक को अपनाया है। तर्कसंगतता और आनुपातिकता के बीच संबंध और मौलिक अधिकारों पर सीमा का परीक्षण करने के लिए आनुपातिकता मानक का उपयोग करने की आवश्यकता को आर वी. ओक्स में कनाडाई सुप्रीम कोर्ट के फैसले के दौरान न्यायमूर्ति जैक्सन द्वारा पकड़ लिया गया है:

"यह स्थापित करने के लिए कि एक स्वतंत्र और लोकतांत्रिक समाज में एक सीमा उचित और स्पष्ट रूप से उचित है, दो केंद्रीय मानदंडो को पूरा किया जाना चाहिए। सबसे पहले, उद्देश्य, जो चार्टर अधिकार या स्वतंत्रता पर एक सीमा के लिए जिम्मेदार उपायों को पूरा करने के लिए डिज़ाइन किया गया है, संवैधानिक रूप से संरक्षित अधिकार या स्वतंत्रता को खत्म करने की गारंटी देने के लिए "पर्याप्त" महत्व का होना... दूसरा ... धारा का आह्वान करने वाली पार्टी को यह दिखाना होगा कि चुने गए साधन उचित और स्पष्ट रूप से उचित हैं। इसमें "आनुपातिकता परीक्षण का एक रूप" शामिल है। (जोर दिया गया)

50- आनुपातिकता विश्लेषण वस्तु और उपयोग किए गए साधन दोनों का आकलन करता है, जो मौलिक अधिकारों के उल्लंघन का परीक्षण करते समय प्रासंगिक आवश्यकताएं हैं। इस न्यायालय ने माना है कि मौलिक स्वतंत्रता का उल्लंघन करने वाली प्रशासनिक कार्रवाई की वैधता का आकलन करने के लिए आनुपातिकता मानक का उपयोग किया जा सकता है। हालाँकि, अदालतों ने आज तक आनुपातिकता मानक का उपयोग केवल अनुच्छेद 21 के तहत संरक्षित निजता के अधिकार और अनुच्छेद 19 के तहत संरक्षित स्वतंत्रता जैसे मूल अधिकार के उल्लंघन का परीक्षण करने के लिए किया है।

V- विवादित आदेश और वैधानिक प्रावधान: विश्लेषण

38 - आक्षेपित आदेश दिनांक 24.12.2020 उत्तर प्रदेश इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 के अध्याय III के विनियमन 7 का संदर्भ देता है, जबकि याचिकाकर्ता के दावे को देरी और सीमा की सीमा के आधार पर अमान्य करता है।

39 - उत्तर प्रदेश इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 के अध्याय III का विनियमन 7 बोर्ड द्वारा जारी हाई स्कूल या

अधिवक्ता

इंटरमीडिएट प्रमाणपत्रों में दर्ज उम्मीदवार के नाम या अन्य विवरणों में लिपिकीय त्रुटियों के सुधार से संबंधित है। उपरोक्त प्रावधान नाम परिवर्तन के मामलों में स्पष्ट रूप से लागू नहीं है। हालाँकि, यह सामान्य बात है कि यदि प्राधिकारी के पास ऐसे आदेश पारित करने की शक्तियाँ हैं तो गलत प्रावधान का हवाला देने से आदेश ख़राब नहीं होगा।

---

21. 2022 की सिविल अपील संख्या 8129, 8130 और 8131; अप्रैल 05, 2023 MANU/SC/0333/2023

40. बोर्ड द्वारा जारी हाई स्कूल या इंटरमीडिएट प्रमाणपत्रों में दर्ज नाम में परिवर्तन की मांग करने वाले आवेदन उत्तर प्रदेश इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 के अध्याय XII के विनियम 40 द्वारा विनियमित होते हैं और संदर्भ में आसानी के लिए इसके प्रासंगिक भाग यहां दिए गए हैं:

40. प्रमाण पत्र में नाम परिवर्तन परिषद् सफल उम्मीदवारों द्वारा विहित प्रक्रियानुसार आवेदन पत्र देने तथा इस अध्याय के विनियम 22 (13) में निर्धारित शुल्क देने पर प्रमाण पत्र में निम्नांकित प्रतिबन्धों के अधीन नाम परिवर्तन कर सकती

(क) आवेदन पत्र उचित सारणी द्वारा दिया जायेगा तथा जिस वर्ष में परीक्षा हुई थी. उसकी 31 मार्च से तीन वर्ष के भीतर परिषद के सचिव के कार्यालय में पहुँचजाना चाहिए। आवेदक को एक टिकट लगे हुए कागज पर शपथ-पत्र देना होगा, जो प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट अथवा नोटरी द्वारा यथाविधि प्रमाणित होना चाहिए, जिसमें नाम में परिवर्तन के वैध कारण दिये होंगे तथा जो एक राजपत्रित अधिकारी द्वारा यथा विधि प्रमाणित होगा और परीक्षार्थी जहाँ वह निवास करता वहाँ के स्थानीय दैनिक पत्र की तीन विभिन्न तिथियों के संस्करणों में अपने नाम के परिवर्तन को विज्ञापित करेगा, इससे पूर्व कि उसे परिवर्तित नाम का नया प्रमाण-पत्र प्राप्त हो । सम्बन्धित तिथियों के समाचार पत्रों की प्रतियों आवेदन पत्र के साथ संलग्न करना अनिवार्य है।

(ख) परिषद् द्वारा नाम परिवर्तन के आवेदन-पत्र निम्नलिखित को छोड़कर अन्य किन्हीं कारणों से स्वीकार नहीं किये जायेंगे।

नाम में भद्दापन हो अथवा नाम से अपशब्द की ध्वनि निकलती हो अथवा नाम असम्मान प्रतीत होता हो अथवा अन्य ऐसी स्थिति होने पर।

(ग) परीक्षार्थियों द्वारा नाम के पहले या बाद में उपनाम जोड़ने धर्म अथवा जाति सूचक शब्दों के जोडने अथवा सम्मानजनक शब्द या उपाधि जोड़ने जैसे किसी भी प्रकार के आवेदन पत्रों को स्वीकार्य नहीं किया जायेगा। इसी प्रकार धर्म अथवा जाति परिवर्तन के आधार पर अथवा विवाहित छात्र/छात्राओं के नाम में भी विवाह के फलस्वरूप नाम परिवर्तित हो जाने पर परिषद द्वारा नाम में परिवर्तन नहीं किया जायेगा।"

41 - याचिकाकर्ता के मौलिक अधिकारों का एहसास करने के लिए प्रावधानों की व्याख्या अनुमेय तरीके से की जानी चाहिए। प्रावधान के दायरे को पांडित्यपूर्ण निर्माण द्वारा सीमित नहीं किया जा सकता है जो मौलिक अधिकारों को कमजोर कर देगा।

अनुवादित

42- नियम 40 (क) इस बात पर विचार करता है कि नाम परिवर्तन के लिए आवेदन जब अभ्यर्थी परीक्षा में उपस्थित हुआ उसके 3 वर्ष के भीतर 31 मार्च के भीतर दाखिल किया जाना चाहिए। इस मामले में याचिकाकर्ता ने क्रमशः हाई स्कूल और इंटरमीडिएट परीक्षाओं में बैठने के 7 साल और 5 महीने बाद आवेदन किया था।

43- नाम परिवर्तन से संबंधित सीबीएसई उपनियमों में प्रदान की गई तीन साल की समान सीमा पर जिज्ञा यादव (पूर्व) में सवाल उठाया गया था और तर्कसंगतता में कमी पाई गई थी। विनियमन 40 (7) में सीमा अवधि का एक संकीर्ण दृष्टिकोण या कठोर निर्माण भारत के संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (ए) और अनुच्छेद 21 द्वारा निहित याचिकाकर्ता के मौलिक अधिकारों पर अतिक्रमण करेगा । विनियम 40 (7) में तीन साल की उक्त सीमा को अनिवार्य नहीं माना जा सकता है और किसी मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में इसमें छूट दी जा सकती है।

44 - इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, देरी माफ़ करने योग्य थी।

45- इस मद्देनजर, देरी के आधार पर नाम बदलने के आवेदन को अस्वीकार करना मनमाना है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1) (ए) और अनुच्छेद 21 के आधार पर निहित याचिकाकर्ता के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन है।

46 - अगला प्रश्न यह है कि क्या उत्तर प्रदेश इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 के अध्याय XII के विनियम 40 में निहित नाम परिवर्तन के संबंध में आवेदन प्रतिबंधों के दायरे में है, जैसा कि ऊपर उद्धृत किया गया है।

47 - विनियम 40 (5) और 40 (4) में क्रमशः वे कारण शामिल हैं जिनके लिए आवेदन स्वीकार किया जा सकता है, और वे कारण भी जिनके आधार पर उसे अस्वीकार किया जा सकता है।

48 - विनियम 40 (ख) के तहत, नाम परिवर्तन के लिए आवेदन केवल तभी स्वीकार किया जाएगा जब नाम गंदा हो या आपत्तिजनक लगे, या अपमानजनक प्रतीत हो और इसी तरह की स्थितियाँ हों । प्रावधान को "एजुस्डेम जेनेरिस" के निर्माण सिद्धांत पर पढ़ा जाना चाहिए। नाम परिवर्तन की जिन तीन श्रेणियों का वर्णन किया गया है, उन्हें अलग करके नहीं पढ़ा जा सकता। जब एक सामान्य वाक्यांश विशिष्ट उदाहरणों की सूची का अनुसरण करता है, तो सामान्य वाक्यांश की व्याख्या उसी वर्ग की वस्तुओं को शामिल करने या पहले से सूचीबद्ध वस्तुओं की समानता में की जाएगी।

49 - प्रावधान को पढ़ने से यह निष्कर्ष निकलता है कि जो नाम किसी व्यक्ति के आत्मसम्मान को कम करता है उसे हटाया जा सकता है। वैकल्पिक रूप से कोई भी नाम जो किसी व्यक्ति के आत्मसम्मान को बढ़ाता है उसे अपनाया जा सकता है।

50 - विनियम 40 (7) में प्रावधान है कि उपनाम, किसी व्यक्ति के धर्म या जाति का खुलासा करने वाले नाम या सम्मानजनक शब्द या उपाधि का उपयोग करने वाले आवेदन स्वीकार नहीं किए जाएंगे। इसी प्रकार धार्मिक परिवर्तन या जाति परिवर्तन या विवाह के बाद

अधिवक्ता

नाम परिवर्तन के तहत नाम परिवर्तन आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा।

51 - उल्लेखनीय है कि कानून जन्म के समय उक्त नाम देने से नहीं रोकता है। नामकरण के समय दिए गए नाम जीवन में बाद में भी लिए जा सकते हैं। यदि पूर्व को प्रतिबंधित नहीं किया गया है तो इसका कारण यह है कि बाद वाले को प्रतिबंधित नहीं किया जा सकता है। कभी- कभी जाति या धर्म परिवर्तन के अनुसार नाम बदलना उसी से पहले होने वाले अनुष्ठानों का हिस्सा होता है। इस प्रकृति का निषेध भारत के संविधान के अनुच्छेद 25 के तहत गारंटीकृत अपनी पसंद के धर्म को मानने और उसका पालन करने के मौलिक अधिकार का उल्लंघन करता है। इसी तरह शादी के बाद नाम बदलने पर रोक किसी व्यक्ति के अपनी पहचान व्यक्त करने के मौलिक अधिकार में हस्तक्षेप करेगी **[जिज्ञा यादव (पूर्व)** भी देखें]

52 - नाम परिवर्तन के उद्देश्य से, देश भर के विभिन्न बोर्डों में उपस्थित होने वाले छात्रों को एक कक्षा में शामिल किया जाता है। सीबीएसई उपनियमों में कोई प्रतिबंध नहीं है जैसा कि ऊपर बताए गए यूपी इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 के विनियमों में लगाया गया है। यूपी बोर्ड में शामिल होने वाले छात्रों के साथ सम्मानपूर्वक व्यवहार किया जाता है और नाम बदलने के उनके अधिकार के संबंध में सीबीएसई बोर्ड में शामिल होने वाले उम्मीदवारों के साथ भेदभाव किया जाता है। यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के तहत समानता के अधिकार का उल्लंघन है।

53 - विनियम 40 (ग) में निहित प्रतिबंध असंगत और निषेध की प्रकृति के हैं और भारत के संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (ए) और अनुच्छेद 21 और अनुच्छेद 14 के तहत मौलिक अधिकारों पर उचित प्रतिबंधों के परीक्षण में विफल हैं। विनियम 40 (1) में प्रतिबंध मनमाने हैं और भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1) (ए), अनुच्छेद 21 और अनुच्छेद 14 के आधार पर निहित अपना नाम चुनने और बदलने के मौलिक अधिकार का उल्लंघन करते हैं।

54 - 'रीडिंग डाउन' के सिद्धांत को लागू करके असंवैधानिकता की स्थिति से बचा जा सकता है। सुप्रीम कोर्ट द्वारा सुब्रमण्यम स्वामी बनाम राजू 22 के मामले में 'रीडिंग डाउन' की अवधारणा को दोहराया गया था:

"61. किसी क़ानून के प्रावधानों को पढ़ने का सहारा तब नहीं लिया जा सकता जब उसका अर्थ स्पष्ट और स्पष्ट न हो और न विधायी मंशा स्पष्ट हो। "रीडिंग डाउन" सिद्धांत का मूल सिद्धांत संक्षेप में इस प्रकार बताया गया है। अदालतों को पहली बार में कानून को अक्षरशः पढ़ना चाहिए। यदि इस तरह पढ़ने और समझने पर असंवैधानिकता का दोष आकर्षित होता है, तो अदालतों को यह पता लगाना चाहिए कि क्या कोई अनपेक्षित विधायी चूक हुई है। यदि इस तरह के इरादे को बिना किसी विधायी अभ्यास के उचित रूप से निहित किया जा सकता है, तो अधिनियम को असंवैधानिकता से बचाने के लिए पढ़ा जा सकता है।"

(यह भी देखें: **डीटीसी बनाम मजदूर कांग्रेस)**[23]

55 - विनियम 40 (ग) तदनुसार पढ़ा जाता है।

56 - स्पष्ट रूप से याचिकाकर्ता का नया नाम उसे आत्म- मूल्य की उच्च भावना देता है, और विनियमन 40 (ख) के दायरे में है।

अनुवादित

VI- निष्कर्ष और दिशा- निर्देश:

57 - अधिकारियों ने नाम बदलने के आवेदन को मनमाने ढंग से खारिज कर दिया और कानून में खुद को गलत दिशा में निर्देशित किया। अधिकारियों की कार्रवाई भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1) (ए), अनुच्छेद 21 और अनुच्छेद 14 के तहत प्रदत्त याचिकाकर्ता के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करती है और उत्तर प्रदेश इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 के तहत प्रासंगिक नियमों के दायरे में है।

58 - आक्षेपित आदेश दिनांक 24.12.2020 क्षेत्रीय सचिव, माध्यमिक शिक्षा परिषद, क्षेत्रीय कार्यालय, बरेली, उ.प्र. अलग रखे जाने योग्य है और अलग रखा गया है।

59 - परमादेश की प्रकृति में एक रिट जारी की जाती है जिसमें प्रतिवादियों को आदेश दिया जाता है कि वे याचिकाकर्ता के आवेदन को "शाहनवाज" से "मोहम्मद समीर राव" में बदलने की अनुमति दें और तदनुसार उक्त परिवर्तन को शामिल करते हुए नए हाई स्कूल और इंटरमीडिएट प्रमाणपत्र जारी करें।

60 - याचिकाकर्ता को आधार कार्ड, राशन कार्ड, ड्राइविंग लाइसेंस, पासपोर्ट, वोटर आई.डी. कार्ड जैसे पहचान के सभी दस्तावेज सक्षम अधिकारियों को सरेंडर करने का निर्देश दिया जाता है। अधिकारी नाम में परिवर्तन को पंजीकृत करेंगे, कानून के अनुसार पहले के पहचान दस्तावेजों का निपटान करेंगे या नष्ट कर देंगे, और कानून के अनुसार उसके बदले हुए नाम के अनुरूप नए दस्तावेज जारी करेंगे। याचिकाकर्ता ने पहले ही अपना पिछला पैन कार्ड सरेंडर कर दिया है और आईटी विभाग ने नया जारी किया है ।

61 - विदाई से पहले कुछ टिप्पणियाँ। शैक्षिक बोर्डों द्वारा जारी हाई स्कूल या इंटरमीडिएट शिक्षा प्रमाणपत्रों में किए गए नाम में बदलाव को आधार कार्ड, पैन कार्ड, राशन कार्ड, ड्राइविंग लाइसेंस, पासपोर्ट, मतदाता पहचान पत्र कार्ड जैसे विभिन्न अधिकारियों द्वारा जारी किए गए पहचान के सभी दस्तावेजों में एक साथ शामिल किया जाना चाहिए। इसके अलावा पहले के दस्तावेजों को नष्ट करने या किसी अन्य उचित निपटान के लिए अधिकारियों को सौंपना होगा ।

62 - पहचान संबंधी सभी दस्तावेजों में एकरूपता सार्वजनिक हित और राष्ट्रीय सुरक्षा की अनिवार्य आवश्यकता है। यदि किसी व्यक्ति को अलग- अलग नामों के साथ पहचान दस्तावेज ले जाने की अनुमति दी जाती है तो इससे पहचान में भ्रम पैदा होगा और शरारत की संभावना होगी। राज्य को शरारत या दुरुपयोग की ऐसी किसी भी संभावना को सक्रिय रूप से रोकना होगा।

---

22 - 2014 (8) एससीसी 390

22. 23- 1991 सुप्रीम कोर्ट (1) एससीसी 600

63 - कुछ दस्तावेज़ भारत सरकार के अधिकारियों द्वारा जारी किए जाते हैं जैसे पैन कार्ड और पासपोर्ट। इसलिए राज्य प्राधिकारियों और भारत सरकार के प्राधिकारियों के बीच पूर्ण समन्वय होना चाहिए।

64 - सचिव, गृह मंत्रालय, भारत सरकार और मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ, यह सुनिश्चित करने के लिए उचित कानूनी और प्रशासनिक ढांचा तैयार करेंगे कि दोनों सरकारें पहचान से संबंधित पहचान दस्तावेजों को सुसंगत बनाने के लक्ष्य को हासिल करने के

अनुवादित

लिए मिलकर काम करें और उसमें व्याप्त विसंगतियों को दूर करना ।

65 - रिट याचिका स्वीकृत की जाती है।

66 - इस आदेश की एक प्रति राज्य और संघ के संबंधित वकीलों द्वारा मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश

सरकार, लखनऊ और सचिव, गृह मंत्रालय, भारत सरकार के समक्ष रखी जाएगी।

ऑर्डर दिनांक: 25.05.2023

धनंजय शर्मा

परिशिष्ट

नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय अनुबंध का अनुच्छेद 24 (2) 16 दिसंबर, 1966 को अपनाया गया

2. प्रत्येक बच्चे का जन्म के तुरंत बाद पंजीकरण किया जाएगा और उसका एक नाम होगा।

बाल अधिकारों पर सम्मेलन का अनुच्छेद 8, 20 नवंबर 1989 को अपनाया गया

1. राज्य पक्ष बिना किसी गैरकानूनी हस्तक्षेप के कानून द्वारा मान्यता प्राप्त राष्ट्रीयता, नाम और पारिवारिक संबंधों सहित अपनी पहचान को संरक्षित करने के बच्चे के अधिकार का सम्मान करने का वचन देते हैं।

2. जहां किसी बच्चे को उसकी पहचान के कुछ या सभी तत्वों से अवैध रूप से वंचित किया जाता है, राज्य पक्ष उसकी पहचान को शीघ्रता से पुनः स्थापित करने की दृष्टि से उचित सहायता और सुरक्षा प्रदान करेंगे।

विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों सम्मेलन का अनुच्छेद 18 (2), 13 दिसंबर 2006 को अपनाया गया;

18(2). विकलांग बच्चों को जन्म के तुरंत बाद पंजीकृत किया जाएगा और उन्हें जन्म से ही एक नाम रखने, राष्ट्रीयता हासिल करने का अधिकार और, जहां तक संभव हो, अपने जानने और उनकी देखभाल करने का अधिकार होगा।

मानवाधिकार पर अमेरिकी सम्मेलन का अनुच्छेद 18, 22 नवंबर 1969 को हस्ताक्षरित;

अनुच्छेद 18 नाम का अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को दिए गए नाम और अपने माता- पिता या उनमें से किसी एक के उपनाम पर अधिकार है। यदि आवश्यक हो तो कल्पित नामों का उपयोग करके कानून उस तरीके को विनियमित करेगा जिसमें सभी के लिए यह अधिकार सुनिश्चित किया जाएगा।

बाल अधिकारों और कल्याण पर 1999 अफ्रीकी चार्टर का अनुच्छेद 6(1)

1. प्रत्येक बच्चे को जन्म से ही अपना नाम रखने का अधिकार होगा

(2023) 6 ILRA 535

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 19.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी

अनुच्छेद 227 के अंतर्गत वाद संख्या 4541 वर्ष 2023

जगदीश प्रसाद गुप्ता एवं अन्य याचिकाकर्ता

अनुवादित

बनाम

श्रीमती सुधा मेहरा एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता: श्री प्रखर टंडन, श्री अतुल दयाल

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: श्री आशुतोष शर्मा, श्री सुमित श्रीवास्तव

ए. सिविल कानून - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908-आदेश XV, नियम 5-आवेदन-बचाव की हड़ताल-अस्वीकृति-गलत या अवैध सलाह आदेश XV, नियम 5 सीपीसी के तहत आवेदन को खारिज करने और किराए के मासिक जमा के खिलाफ अधिनियम 1972 की धारा 30 के तहत जमा की गई राशि के समायोजन के लिए आदेश जारी करने का आधार नहीं हो सकती है-जहां तक आदेश XV, नियम 5 के पहले भाग में मुकदमे की पहली सुनवाई पर या उससे पहले किराए के बकाया को जमा करने के संबंध में, अधिनियम 1972 की धारा 30 के तहत जमा की गई राशि को समायोजित किया जा सकता है, लेकिन जहां तक आदेश XV, नियम 5 के दूसरे भाग, यानी किराए के मासिक जमा का संबंध है, अधिनियम 1972 की धारा 30 के तहत जमा की गई राशि को समायोजित नहीं किया जा सकता है और यह जहां मुकदमा लंबित है, वहां न्यायालय के समक्ष इसे जमा करना अनिवार्य है। (पैरा 1 से 49)

याचिका खारिज की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. बिमल चंद जैन बनाम गोपाल अग्रवाल (1981) 0 एसएससी 347
2. आशा रानी गुप्ता बनाम विनीत कुमार (2022) 0 एसएससी 594
3. केदार नाथ बनाम वक्फ शेख अब्दुल्ला चेरिटेबल मदुरसा और अन्य (2015) एससीसी ऑनलाइन सभी 7172
4. आत्मा राम बनाम शकुंतला रानी (2005) 7 एससीसी 211
5. हैदर अब्बास बनाम एडीजे और अन्य। (2006) 1 एडीजे 197 सभी
6. पनारू लाल बनाम गणपति झा (2015) 111 एएलआर 866 सी.एम.डब्ल्यू.पी नंबर 3358 ऑफ 2015
7. मोरे सिंह बनाम चंद्रिका प्रसाद, मुकेश वर्मा एवं अन्य बनाम हरिश्चंद्र और अन्य। (2018) 8 एडीजे 128 ओम प्रकाश गुप्ता बनाम डीजे, मैनपुरी एवं अन्य.. (2019) 3 एडब्ल्यूसी 253
9. गंगू बनाम श्रीमती अलका अरोड़ा एवं अन्य.. सी.एम.डब्ल्यू.पी. 2022 का क्रमांक 2725
10. सुनील कुमार एवं अन्य। बनाम श्री कपूर चंद्र अग्रवाल धर्मशाला ट्रस्ट (2019) 10 एडीजे 682

(माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी द्वारा दिया गया)

श्री अतुल दयाल विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता , श्री प्रखर टंडन याचिकाकर्ताओ प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा सहायता की गई, और श्री सुमित श्रीवास्तव , प्रतिवादी - वादीगण के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

वर्तमान याचिका निम्न लिखित राहत की माँग करते हुए दायर की गई है :

" i. 2007 के एस सी सी सूट नंबर 266 मे विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित

अनुवादित

दिनांक 16.08.2018 के आपेक्षिक आदेश को रद्द करें।

ii. 2018 के एससीसी संशोधन संख्या 120 मे विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 15.12.2022 को रद्द करें।"

चूँकि , इस मामले में केवल कानूनी प्रश्न शामिल है, इसलिए, बिना शपथ पत्र आमंत्रित किए पक्षों की सहमति से, मामले का निर्णय प्रवेश स्तर पर ही किया जा रहा है।

मामले के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार है:

वास्तविक मकान मालिक स्वर्गीय सुधा मेहरा ने एससीसी मुकदमा संख्या 266 सन 2007 दायर की, मूल किरायेदार स्वर्गीय मन्नू लाल के खिलाफ बेदखल करने और बकाया किराये की माँग कर रहा था, जिस पर प्रतिवादी -मूल किरायेदार ने वर्ष 2010 में लिखित बयान दायर किया था । मुकदमे की लंबी अवधि के दौरान , मूल वादी और प्रतिवादी की मृत्यु हो गई और प्रतिस्थापन आवेदन आये थे की भी अनुमति दी गई है।

वादी प्रतिवादी ने आवेदन संख्या 58 ग दिनांक 09.07.2015 , सीपीसी के आदेश 15 नियम 5 के तहत याचिका कर्ता -प्रतिवादी की बचाव को समाप्त करने के लिए दायरकिया जिस पर याचिकाकर्ता प्रतिवादी द्वारा आपत्ति पत्र संख्या 59 ग दायर किया गया गया था। आवेदन 58 -ग को पहले आक्षेपित आदेश दिनांक 16.08.2018 द्वारा अनुमति दी गई थी, जिस पर याचिका कर्ता -प्रतिवादी ने 27.09.2018 को एससीसी पुनरीक्षण संख्या 120 सन 2018 को प्राथमिकता दी थी । पुनरीक्षण लंबित रहने के दौरान याचिका कर्ता -प्रतिवादी ने भी आवेदन 24-ग दिनांक 28.09.2018 , आदेश 15 नियम 5 सीपीसी के तहत आवश्यक किराया हेतु दायर कर पुनरीक्षण न्यायालय से इस आधार पर बकाया किराए की पूरी राशि जमा करने की अनुमति माँगी है कि अधिवक्ता के गलत सलाह के कारण उसने जमा नहीं किया है। इसलिए वर्तमान याचिका को पुनरीक्षण न्यायालय ने दिनांक 15.12.2022 के निर्णय और आदेश के माध्यम से एससीसी पुनरीक्षण संख्या 120 सन 2018 को खारिज कर दिया है।

उपरोक्त तथ्य पक्षों के बीच निर्विवादित है।

याचिकाकर्ताओं - प्रतिवादियो की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि इस बिन्दु पर कोई विवाद नहीं है कि पहली सुनवाई की तारिख से लेकर आदेश दिनांक 15.12.2022 सन 1972 के अधिनियम संख्या 13 की धारा 30 के तहत पुनरीक्षण को खारिज करने तक , याचिकाकर्ता -प्रतिवादी ने अदालत के समक्ष किराया जमा कर दिया है ।(इस के बाद इसे " 1972 का अधिनियम " कहा जायेगा)।

उन्होनें आगे कहा कि यह अधिवक्ता की गलत सलाह के तहत है याचिकाकर्ता- प्रतिवादी एससीसी कोर्ट के समक्ष किराया जमा नहीं कर सका और अधिवक्ता की गलत सलाह के कारण याचिकाकर्ता -प्रतिवादी द्वारा दी गई गलती वास्तविक है । इसलिए पुनरीक्षण न्यायालय की ओर से यह आवश्यक है कि वह आवेदन 24- ग को अनुमति दे और याचिकाकर्ता -प्रतिवादी को एससीसी न्यायालय के समक्ष किराया जमा करने की अनुमति दे । उन्होन दृढता से कहा कि आदेश 15 नियम 5 सीसीसी के प्रावधान के तहत पारित कोई भी

अनुवादित

आदेश प्रकृति मे दण्डात्मक है, इसलिए ऐसे आदेश पारित करते समय , न्यायालय को वास्तविक तथ्य पर विचार करना चाहिए । वर्तमान मामले में इस बिन्दु पर कोई विवाद नहीं है कि किराया 1972 के अधिनियम की धारा 30 के तहत न्यायालय के समक्ष जमा किया गया था, इसलिए पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा आवेदन 24 -ग के साथ पुनरीक्षणो पर निर्णय लेते समय इस पर विचार किया जाना चाहिए। पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा सदभावना की अनदेखी करके पारित किया गया कोई भी आदेश बुरा है और रद्द किए जाने योग्य है।

उन्होने आगे कहा कि आदेश 15 नियम 5 सीपीसी मे "हो सकता है" शब्द का उपयोग किया गया है, जो इंगित करता है कि प्रावधान प्रकृति मे विवेकाधीन है और अनिवार्य नही है ।इसलिए, पुनरीक्षण न्यायालय की ओर से वास्तविक सहित प्रत्येक पहलू पर विचार करना आवश्यक है, यानी जानबूझकर विफलता या जानबूझकर डिफाल्ट या स्वेच्छिक प्रदर्शन के कारण किया गया डिफाल्ट 1 यदि यह वास्तिविक है तो न्यायालय की ओर से यह आवश्यक है कि बचाव को रद्द किया जाये।

अपने तर्क के समर्थन में ,विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अतुल ने **बिमल चन्द जैन बनाम गोपाल अग्रवाल :1981 0सुप्रीम(एस सी) 347, आशा रानी गुप्ता बनाम विनीत कुमार:2022 0 सुप्रीम (एस सी) 594** के मामले मे सर्वोच्च न्चायालय के फैसले पर भरोसा जताया है और **केदार नाथ बनाम बक्फ शेख अब्दुल्ला चैरिटेबल मदुरसा एवं अन्य :2015 एस सी सी आनलाइन ए एल एल 7172** के मामले में इस न्यायालय का निर्णय भी।

इसके विपरीत , प्रतिवादी -वादी के विद्वान वरिष्ट अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुतीकरण का पुरजोर विरोध किया और प्रस्तुत किया कि जैसा कि आदेश 15 नियम 5 सीपीसी के तहत प्रदान किया गया है और निर्णयो के श्रृंखलाबद्ध मे भी, यह बहुत अच्छी तरह से तय किया गया है कि 1972 की अधिनियम की धारा 30 के तहत जमा की गई थी राशि जो मुकदमे की पहली सुनवाई से पहले देय किराये की बकाया राशि के खिलाफ समायोजित किया जा सकता है , लेकिन जहाँ तक किराये की मासिक जमा राशि का सवाल है , इसे समायोजित नही किया जा सकता है ।वर्तमान मामले में यह निर्विवाद है कि लिखित बयान वर्ष 2010 में दायर किया गया था और किराये की मासिक राशि एस सीसी कोर्ट के समक्ष कभी जो जमा नही की गई थी , बल्कि इसे 1972 के अधिनियम की धारा 30 के तहत जमा किया गया था । इसलिए , इसे समायोजित नहीं किया जा सकता है और इसके तहत मामले के तथ्य के अनुसार दिनांक 16.08.2018 और 15.12.2022 के आक्षेपित आदेशों में कोई अवैधता नहीं है और याचिका खारिज किए जाने योग्य है।

अपने तर्क के समर्थन में श्री सुमित श्रीवास्तव ने **आत्मा राम बनाम शकुन्तला रानी: (2005) 7 एस सीसी 211** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा जताया है । उन्होंने **हैदर अब्बास बनाम अतिरिक्त जिला न्यायाधीश एवं अन्य : 2006(1) ए डी जे 197 (ए एल एल), पनारु लाल बनाम गणपति झा :2015(111) ए एलएल 866,**

अधिवक्ता

सी.एम.डब्ल्यू .पी संख्या 3358 सन 2015 : मोरो सिंह बनाम चन्दिका प्रसाद , मुकेश वर्मा एवं अन्य बनाम हरिशचन्द्रा एवं अन्य :2018(8) ए डी जे 128, ओम प्रकाश गुप्ता बनाम जिला न्यायाधीश , मैनपुरी एवं एक अन्य :2019(3) ए डब्ल्यू सी 253 , सी. एम. डब्ल्यू पी संख्या 2725 सन 2022 : गंगू बनाम श्रीमती अल्का अरोरा एवं एक अन्य के मामले में इस न्यायालय के निर्णयों पर निर्भरता रखा।

उन्होनें यह भी बताया कि अधिवक्ता की कोई भी गलत सलाह आदेश 15 नियम 5 सीपीसी के तहत आवेदन को अस्वीकार करने का आधार नहीं हो सकती है।

मैनें पक्षों के विद्वान अधिवक्ता की दलीलों पर विचार किया है , आदेश 15 नियम 5 का अध्ययन किया है और साथ ही पक्षों के अधिवक्ताओं द्वारा दिए गये निर्णयों पर भी विचार किया है।

न्यायालय के समक्ष मुद्दा यह तय करना है कि क्या 1972 के अधिनियम की धारा 30 के तहत जमा की गई राशि को मुकदमें की सुनवाई की पहली तारिख के बाद किराए की मासिक जमा के खिलाफ आदेश 15 नियम 5 सीसीसी के अनुपालन मे समायोजित किया जा सकता है और जमा राशि में चूक के मामले में अधिवक्ता की गलत या गलत सलाह का प्रभाव।

आदेश 15 नियम 5 सीपीसी के अवलोकन से , यह स्पष्ट रुप से स्पष्ट है कि यह किरायेदार के पक्ष में एक लाभकारी कानून है जिसमें किरायेदार द्वारा अनुपालन किए जाने वाले दो भाग शामिल है । पहला भाग स्वीकृत किराए का बकाया है, जिसमें मुकदमे की पहली सुनवाई पर या उससे पहले जमा करना होता है और दूसरा भाग किराए की मासिक राशि है . जिसे मुकदमें की निरस्तरता के दौरान उपार्जन की तिथि से एक सप्ताह के भीतर मासिक आधार पर जमा करने के लिए स्वीकार या अस्वीकार किया जाता है।

वर्तमान विवाद आदेश 15 नियम 5 सीपीसी की व्याख्या से उत्पन्न हो रहा है , इसलिए इसे यहाँ नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

" 5. स्वीकृत किराया जमा करने में विफलता के लिए बचाव पक्ष को रद्द करना । आदि ,- (1) किसी पट्टेदार द्वारा उसके पट्टे के निर्धारण के बाद उसे बेदखल करने और वसूली के लिए किसी भी मुकदमे में उपयोग और कब्जे के लिए उपयोग और कब्जे के लिए किराए या मुआवजे से, प्रतिवादी, मुकदमे की पहली सुनवाई पर या उससे पहले, उसके द्वारा देय पूरी राशि नौ प्रतिशत की दर से ब्याज के साथ जमा करेगा। प्रति वर्ष और चाहे वह कोई राशि देय मानता हो या नहीं। वह मुकदमे की निरंतरता के दौरान नियमित रूप से देय मासिक राशि को उसके जमा होने की तारीख से एक सप्ताह के भीतर जमा करेगा, और उसके द्वारा देय पूरी राशि या देय मासिक राशि को जमा करने में किसी भी चूक की स्थिति में जैसा कि पूर्वोक्त कहा गया है, न्यायालय, उप-नियम (2) के प्रावधानों के अधीन, उसके बचाव को रद्द कर सकता है।

स्पष्टीकरण 1.- अभिव्यक्ति "पहली सुनवाई" का अर्थ है सम्मन में उल्लिखित सुनवाई के लिए लिखित बयान दाखिल करने की तारीख या जहां ऐसी तारीखों में से एक से अधिक का उल्लेख किया गया है, वहां उल्लिखित तारीखों में से अंतिम तारीख है।

अनुवादित

स्पष्टीकरण 2.- अभिव्यक्ति "उसके द्वारा देय मानी गई संपूर्ण राशि" का अर्थ संपूर्ण सकल राशि है, चाहे वह किराए के रूप में हो या उपयोग और व्यवसाय के लिए मुआवजे के रूप में, किसी अन्य कटौती के बाद बकाया की स्वीकृत अवधि के लिए किराए की स्वीकृत दर पर गणना की गई हो सिवाय करों के, यदि कोई हो, भवन के संबंध में किसी स्थानीय प्राधिकारी को पट्टेदार के खाते में भुगतान किया गया हो और राशि, यदि कोई हो, पट्टेदार को भुगतान किया गया हो, पट्टेदार द्वारा उसके द्वारा हस्ताक्षरित लिखित रूप में स्वीकार किया गया हो और राशि, यदि कोई हो, किसी में जमा की गई हो न्यायालय धारा 30 के तहत उ.प्र. शहरी भवन (किराए पर देने, किराए पर देने और बेदखली का विनियमन) अधिनियम, 1972।

स्पष्टीकरण 3.- (1) अभिव्यक्ति "मासिक देय राशि" का अर्थ है हर महीने देय राशि, चाहे वह किराए के रूप में हो या किराए की स्वीकार्य दर पर उपयोग और व्यवसाय के लिए मुआवजे के रूप में, भुगतान किए गए करों के अलावा कोई अन्य कटौती नहीं करने के बाद, यदि कोई हो, पट्टादाता के खाते पर भवन के संबंध में, स्थानीय प्राधिकारी को।

(2) बचाव को रद्द करने का आदेश देने से पहले, न्यायालय प्रतिवादी द्वारा इस संबंध में किए गए किसी भी अभ्यावेदन पर विचार कर सकता है, बशर्ते ऐसा अभ्यावेदन पहली सुनवाई के 10 दिनों के भीतर या उप-में निर्दिष्ट सप्ताह की समाप्ति के भीतर किया गया हो। धारा (1), जैसा भी मामला हो।

(3) इस नियम के तहत जमा की गई राशि वादी द्वारा किसी भी समय वापस ली जा सकती है:

बशर्ते कि ऐसी निकासी से जमा की गई राशि की शुद्धता पर विवाद करने वाले वादी के किसी भी दावे पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा:

बशर्ते कि यदि जमा की गई राशि में जमाकर्ता द्वारा किसी भी खाते पर कटौती योग्य होने का दावा किया गया कोई भी राशि शामिल है, तो न्यायालय वादी को ऐसी राशि के लिए सुरक्षा प्रस्तुत करने की आवश्यकता कर सकता है, इससे पहले कि उसे वापस लेने की अनुमति दी जाए।"

वर्तमान विवाद के लिए , स्पष्टीकरण 2 और 3 प्रासंगिक है ।

स्पष्टीकरण 2 मे प्रावधान है कि 1972 के अधिनियम की धारा 30 के तहत जमा की गई किसी भी राशि को मुककदमे के पहली सुनवाई पर या उससे पहले बकाया किराया जमा करते समय समायोजित किया जायेगा । स्पष्टीकरण 3 देय किराये की मासिक राशि के संबन्ध मे है और निश्चित रुप से इसमे 1972 के अधिनियम की धारा 30 का प्रावधान शामिल नही है इसलिए विधि का इरादा बहुत स्पष्ट है कि अधिनियम 1972 की धारा 30 के तहत जमा की गई कोई भी राशि को मुकदमे की पहली सुनवाई पर या उससे पहले जमा किए जाने वाले किराए की बकाया राशि के विरुद्ध समायोजित किया जा सकता है , लेकिन इसे बकाया किराए की मासिक जमा राशि के विरुद्ध समायोजित नहीं किया जा सकता है , जिसे अदालत के समक्ष जमा किया जाना , जहाँ मुकदमा लंबित है । इसलिए आदेश 15 नियम 5

अनुवादित

सीपीसी के वैधाविक प्रावधान की भाषा मे कोई अस्पष्टतया दुर्वलता नहीं है ।यह एक लाभकारी विधायन है और इसका लाभ प्राप्त करने के लिए किरायेदार को इसका अक्षरश: अनुपालन करना आवश्यक है और इसे पंक्तियो के बीच में पढने की अनुमति नहीं दी जा सकती है । इसलिए , आदेश 15 नियम 5 सीपीसी प्रावधानो के आलोक में ,न्यायालय के समक्ष 1972 के अधिनियम की धारा 30 के तहत जमा की गई किसी भी राशि को एससीसी न्यायालय के समक्ष आवश्यक किराए की मासिक जमा राशि के विरुद्ध समायोजित नहीं किया जा सकता है।

अब मै याचिकाकर्ता -प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गये निर्णयो पर आ रहा हूँ।

विद्वान वरिष्ट अधिवक्ता द्वारा भरोसा किया गया पहला निर्णय **विमलचन्द जैन (सुप्रा) ,** मामले में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय है, जिसका सम्बन्धित पैराग्राफ यहाँ नीचे उद्धृत किया गया है:

"6. आदेश XV के नियम 5 की व्यापक समझ से हमें ऐसा लगता है कि नियम का वास्तविक निर्माण इस प्रकार होना चाहिए। उप-नियम (1) प्रतिवादी को मुकदमे की पहली सुनवाई पर या उससे पहले जमा करने के लिए बाध्य करता है। उसके द्वारा देय मानी गई संपूर्ण राशि, उस पर नौ प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से ब्याज सहित और इसके अलावा, चाहे वह देय कोई भी राशि स्वीकार करे या नहीं, मुकदमे की निरंतरता के दौरान नियमित रूप से देय मासिक राशि जमा कराएगा। इसके जमा होने की तारीख से एक सप्ताह। कोई भी जमा करने में किसी भी चूक की स्थिति में "अदालत उप-नियम (2) के प्रावधानों के अधीन उसके बचाव को रद्द कर सकती है"। अब हम इस पर आएंगे कि यह क्या है मतलब। उप-नियम (2) बचाव पक्ष को रद्द करने का आदेश देने से पहले अदालत को प्रतिवादी द्वारा उस संबंध में किए गए किसी भी अभ्यावेदन पर विचार करने के लिए बाध्य करता है। दूसरे शब्दों में, प्रतिवादी को अपने बचाव को रद्द किए जाने के खिलाफ अदालत में प्रतिनिधित्व करने का वैधानिक अधिकार दिया गया है। यदि कोई अभ्यावेदन दिया जाता है तो अदालत को उसके गुण-दोष के आधार पर उस पर विचार करना चाहिए, और फिर निर्णय लेना चाहिए कि बचाव को रद्द किया जाना चाहिए या नहीं। यह प्रतिवादी को स्पष्ट रूप से निहित अधिकार है और उसे रिकॉर्ड पर सामग्री लाकर यह दिखाने में सक्षम बनाता है कि वह कथित डिफ़ॉल्ट का दोषी नहीं है या यदि डिफ़ॉल्ट हुआ है, तो इसके लिए अच्छा कारण है। अब, यह असंभव नहीं है कि रिकॉर्ड में पहले से ही ऐसी सामग्री मौजूद हो। उस स्थिति में, क्या यह कहा जा सकता है कि उप-नियम (1) अदालत को बचाव पक्ष को रद्द करने के लिए बाध्य करता है? हमें याद रखना चाहिए कि उप-नियम (1) के तहत बचाव पक्ष को खत्म करने का आदेश दंड की प्रकृति में है। इस मामले में अदालत पर एक गंभीर जिम्मेदारी है और शक्ति का प्रयोग यांत्रिक रूप से नहीं किया जाना चाहिए। अदालत के पास विवेक का अधिकार है कि वह बचाव को रद्द न कर सके यदि रिकॉर्ड पर पहले से मौजूद तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर उसे ऐसा न करने का अच्छा कारण मिलता है। यह हमेशा न्यायालय के निर्णय का विषय होगा कि उसके समक्ष मौजूद सामग्री के

अनुवादित

आधार पर, उप-नियम (2) के तहत प्रतिनिधित्व की अनुपस्थिति के बावजूद, बचाव को खारिज कर दिया जाना चाहिए या नहीं। उप-नियम (1) में "हो सकता है" शब्द केवल अदालत को बचाव पक्ष को रद्द करने की शक्ति प्रदान करता है। यह उसे डिफ़ॉल्ट के हर मामले में ऐसा करने के लिए बाध्य नहीं करता है। उस हद तक, हम पूरन चंद (सुप्रा) में उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से सहमत होने में असमर्थ हैं। हमारी राय है कि उच्च न्यायालय ने आदेश XV के नियम 5 के खंड (1) के प्रावधानों पर अनुचित रूप से संकीर्ण निर्माण किया है।"

उक्त निर्णय में विधि का अनुपात यह है कि आदेश 15 नियम 5 सीपीसी के तहत कोई भी आदेश पारित करते समय न्यायालय की ओर से प्रतिनिधित्व पर विचार करना आवश्यक है । यदि अभ्यावेदन दाखिल नहीं किया गया है , तो भी न्यायालय को रिकार्ड पर उपलब्ध सभी प्रासंगिक तथ्यों पर विचार करना आवश्यक है । वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता - प्रतिवादी का मामला यह नहीं है कि उपलब्ध सामग्री पर विचार नहीं किया गया है , बल्कि इसके विपरीत , प्रत्येक तथ्य पर विचार करने के बाद न्यायालयों ने यह विचार किया है कि राशि के समायोजन के लिए ऐसा कोई भी आवेदन 1972 के अधिनियम की धारा 30 के तहत जमा किया गया और किराएदार को आदेश 15 नियम 5 सीपीसी की आवश्यकता को पूरा करने की अनुमति कानून के तहत स्वीकार्य नहीं है इसलिए मौजूदा विवाद में इस फैसले का कोई मतलब नहीं है।

विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने **केदार नाथ (सुप्रा)** के मामले में इस न्यायालय के एक अन्य निर्णय पर भी भरोसा किया है , जो प्रासंगिक है उक्त निर्णय के पैराग्राफ यहाँ नीचे उद्धृत किए गये हैं:

"4.परिसर क्रमांक 205/46, मिन्हाजपुर, डॉ. काटजू रोड, इलाहाबाद प्रथम प्रतिवादी का है, बेदखली, किराया बकाया और हर्जाना के लिए मुकदमा दायर किया गया था। मुकदमे के लंबित रहने के दौरान, आदेश XV नियम 5 सी.पी.सी. के तहत एक आवेदन। इस आरोप के साथ दायर किया गया था कि मुकदमा 1999 का है लेकिन सुनवाई की पहली तारीख पर कोई राशि जमा नहीं की गई और न ही उसके बाद नियमित जमा किया गया। आवेदक ने यह कहते हुए विरोध किया कि सुनवाई की पहली तारीख को पूरी राशि जमा कर दी गई थी। निचली अदालत ने आवेदन स्वीकार कर लिया और आवेदक के बचाव को खारिज कर दिया। पुनरीक्षण अदालत ने ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित आदेश की पुष्टि की।

5. आवेदक के लिए विद्वान वकील प्रस्तुत करेंगे कि नीचे की अदालतें सुनवाई की पहली तारीख को रिकॉर्ड करने में विफल रही हैं, लिखित बयान 13 अक्टूबर 2008 को दायर किया गया था और उक्त तारीख पर रुपये की राशि दर्ज की गई थी। 4000/- जमा किया गया था जिसमें जनवरी 1996 से सितंबर 2008 तक का किराया शामिल था। ब्याज और व्यय, इसके अलावा, यह आग्रह किया जा रहा है कि यह मानते हुए भी कि बाद की रकम जमा करने में कुछ देरी हुई, फिर भी आदेश XV नियम 5 के तहत आवेदन की अनुमति नहीं दी जा सकती थी, माना कि प्रतिवादी-

अनुवादित

मकान मालिक को पूरी राशि प्राप्त हुई। इसलिए, यह प्रस्तुत किया गया है कि आदेश XV नियम 5 का उद्देश्य किराए का भुगतान सुनिश्चित करना है और प्रतिवादी को दंडित करने के लिए दंडात्मक प्रावधान नहीं है।

8. बिमल चंद जैन बनाम श्री गोपाल अग्रवाल मामले में सुप्रीम कोर्ट ने यूपी पर लागू आदेश XV नियम 5 के प्रावधानों पर विचार करते हुए पाया कि उप-नियम (1) प्रतिवादी को पहली सुनवाई पर या उससे पहले जमा करने के लिए बाध्य करता है। मुकदमे में, उसके द्वारा देय मानी जाने वाली संपूर्ण राशि और उस पर नौ प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से ब्याज, भले ही वह किसी भी राशि को देय मानता हो या नहीं। उप-नियम (2) बचाव पक्ष को रद्द करने का आदेश देने से पहले अदालत को प्रतिवादी द्वारा उस संबंध में किए गए किसी भी अभ्यावेदन पर विचार करने के लिए बाध्य करता है। दूसरे शब्दों में, प्रतिवादी को अपने बचाव को रद्द किए जाने के खिलाफ अदालत में प्रतिनिधित्व करने का वैधानिक अधिकार दिया गया है।

9. उप-नियम (1) अदालत को बचाव को रद्द करने के लिए बाध्य करता है जो दंड की प्रकृति में है। इसलिए, इस मामले में एक गंभीर जिम्मेदारी अदालत पर है, शक्ति का प्रयोग यांत्रिक रूप से नहीं किया जाना चाहिए। अदालत के पास विवेक का अधिकार है कि वह बचाव को रद्द न कर सके यदि रिकॉर्ड पर पहले से मौजूद तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर उसे ऐसा न करने का अच्छा कारण मिलता है।

10. उपनियम (1) में "हो सकता है" शब्द केवल शक्ति निहित करता है अदालत ने बचाव पक्ष को रद्द कर दिया। यह उसे ऐसा करने के लिए बाध्य नहीं करता है इसलिए डिफ़ॉल्ट के हर मामले में। यदि तथ्यों एवं परिस्थितियों पर यह पहले से ही रिकॉर्ड पर मौजूद है, इसे न करने का अच्छा कारण मिल जाता हैऐसा करने पर, अदालत बचाव पक्ष को रद्द करने के लिए बाध्य नहीं है। केवल उप के तहत इस तरह के प्रतिनिधित्व के अभाव में धारा (2)।

11. शिव बालक सिंह बनाम ए.डी.जे., XI, लखनऊ2 में इस न्यायालय ने माना कि आदेश XV नियम 5 का प्रावधान विवेकाधीन है।

"7. हालांकि तकनीकी रूप से बहस के समय भी, आदेश XV, नियम 5. सी.पी.सी. की दलील उठाई जा सकती थी, हालांकि सामान्य तौर पर ऐसा आवेदन साक्ष्य शुरू होने से पहले दायर किया जाना चाहिए था (और आम तौर पर दायर किया जाता है)। "

12. प्रमोद मेहरोत्रा और अन्य बनाम राम शंकर चौरसिया और अन्य 3 में जहां राशि कुछ देरी से जमा की गई थी, इस न्यायालय ने बिमल चंद जैन (सुप्रा) पर भरोसा करते हुए कहा कि विवेक का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए ताकि बचाव को खत्म न किया जा सके जहां पूरी राशि जमा की गई हो। कुछ विलंब से भुगतान किया गया।

13. पुनः सुधीर कुमार गुप्ता बनाम डॉ. एस.के. राज और अन्य4, न्यायालय ने पाया कि प्रावधान नियम 5 आदेश XV को लागू करने का उद्देश्य मकान मालिक को मामूली चूक के लिए किरायेदार को दंडित करने का अधिकार देना नहीं था। इसका उद्देश्य केवल यह सुनिश्चित करना था कि मकान मालिक का

अनुवादित

बकाया उचित रूप से सुरक्षित हो और मुकदमेबाजी जारी रहने के बावजूद भी उसे अपना किराया नियमित रूप से मिल सके।

14. प्यारे लाल बनाम जिला न्यायाधीश, लखनऊ और अन्य5 में, जिसमें न्यायालय ने लागत लगाकर किराया जमा करने की अनुमति दी थी।

15. डॉ. राम प्रकाश मिश्रा बनाम अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, एटा और अन्य 6 में, यह देखा गया कि जमा वैध है या नहीं, यह प्रश्न यह निर्धारित करने के लिए प्रासंगिक है कि किरायेदार को डिफॉल्टर माना जा सकता है या नहीं। कानून का, लेकिन जहां तक आदेश XV, नियम 5 सी.पी.सी. जहां तक संबंध है, एकमात्र आवश्यकता यह है कि किरायेदार को मुकदमे की पहली सुनवाई पर या उससे पहले पूरी राशि जमा करनी होगी। यदि जमा, 1972 के अधिनियम 13 की धारा 30 के तहत किया गया है तो यह किरायेदार के लाभ को सुनिश्चित करेगा।

16. आदेश XV नियम 5 के प्रावधान विवेकाधीन हैं, अदालत केवल तकनीकी या वास्तविक डिफ़ॉल्ट के हर मामले में बचाव को रद्द करने के लिए बाध्य नहीं है। प्रावधान की ऐसी व्याख्या नहीं की जानी चाहिए कि किरायेदार को बेदखल करने के लिए फंसाया जाए। (संदर्भ-विनोद चंद्र कला बनाम प्रीमियर प्रिसिजन टूल्स मैन्युफैक्चरिंग (पी. लिमिटेड. 1996(1) एआरसी 62; भवानी वस्त्र भंडार बनाम श्रीमती सहोदरा देवी। 1996(2) एआरसी 406)।"

25. उपरोक्त निर्णय में, विवाद मुकदमे की सुनवाई की पहली तारीख के बारे में था और न्यायालय ने विभिन्न निर्णयों पर विचार करते हुए यह विचार किया है कि न्यायालय हर मामले में बचाव को रद्द करने के लिए बाध्य नहीं है। यह निर्णय भी याचिकाकर्ता-प्रतिवादी के बचाव में नहीं आएगा क्योंकि यह बहुत ही सरल कारण है

वर्तमान मामले में, तथ्यों पर कोई विवाद नहीं है और यह बहुत अच्छी तरह से स्वीकार किया गया है। मुद्दा यह था कि क्या 1972 के अधिनियम की धारा 30 के तहत जमा की गई किसी भी राशि को किराए की मासिक जमा के खिलाफ समायोजित किया जा सकता है या नहीं और इसके अलावा, क्या किरायेदार को आदेश XV नियम 5 सीपीसी की आवश्यकता को पूरा करने की अनुमति दी जा सकती है।

26. विद्वान वरिष्ठ वकील ने भी **आशा रानी गुप्ता (सुप्रा)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा जताया, जिसके प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे उद्धृत किए गए हैं:

"11.1 यद्यपि मिस संतोष मेहता, श्रीमती कमला देवी और माणिक लाल मजूमदार के मामलों में उपरोक्त निर्णय संबंधित क्षेत्राधिकारों पर लागू संबंधित किराया नियंत्रण कानूनों से संबंधित हैं, जो वर्तमान मामले पर सीधे लागू नहीं हो सकते हैं लेकिन फिर भी, वर्तमान उद्देश्य के लिए निकाले जाने वाले प्रासंगिक प्रस्ताव यह हैं कि किराए/बकाया की देय राशि के भुगतान में चूक के कारण किरायेदार को रक्षा से वंचित करने वाले ऐसे किसी भी प्रावधान को उदारतापूर्वक समझा गया है; और शक्ति के संबंध में अभिव्यक्ति 'हो सकता है' बचाव को समाप्त करने के लिए न्यायालय को निर्देशिका के रूप में माना गया है और अनिवार्य नहीं है। दूसरे शब्दों में, न्यायालय कठोर परिणाम के ऐसे प्रावधानों को अनिवार्य

अनुवादित

चरित्र न देने के पक्ष में झुक गए हैं और माना है कि विवेक वास्तव में संबंधित न्यायालय के पास सुरक्षित है किरायेदार को दंडित किया जाए या नहीं। हालाँकि, और इस तरह के विवेक को सुरक्षित रखते हुए भी, इस न्यायालय ने जानबूझकर विफलता या जानबूझकर डिफ़ॉल्ट या जानबूझकर गैर-प्रदर्शन के मामले में प्रतिवादी-किरायेदार के खिलाफ इस तरह के विवेक के उपयोग को मान्यता दी है। इस न्यायालय ने विभिन्न अभिव्यक्तियों में सिद्धांतों की व्याख्या करते हुए यह भी कहा है कि यदि अवज्ञा या घोर उपेक्षा का मूड देखा जाता है, तो किरायेदार बचाव में सुनवाई का अपना अधिकार खो सकता है। मामले का सार और सार यह है कि बचाव को रद्द करने की शक्ति को विवेकाधीन माना जाता है, जिसका प्रयोग सावधानी से किया जाना है, लेकिन मिस संतोष मेहता और श्रीमती के मामलों की तरह छूट एक वास्तविक किरायेदार के लिए आरक्षित है। कमला देवी (सुप्रा) और बिल्कुल नहीं। बिमल चंद जैन (सुप्रा) का मामला सीधे आदेश XV नियम 5 सीपीसी से संबंधित है, जहां किरायेदार ने देय बकाया राशि जमा कर दी थी, लेकिन, मासिक किराया नियमित रूप से जमा करने में विफल रहा और उप-नियम के संदर्भ में प्रतिनिधित्व प्रस्तुत करने में विफल रहा। 2) आदेश XV के नियम 5 का. ट्रायल कोर्ट और उच्च न्यायालय ने आदेश XV नियम 5 सीपीसी के उक्त प्रावधानों को चरित्र में अनिवार्य मानते हुए उस मामले में बचाव को रद्द कर दिया था। इस तरह के दृष्टिकोण को इस न्यायालय द्वारा अनुमोदित नहीं किया गया था, जबकि रिकॉर्ड पर मौजूद तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, ऐसा न करने का कोई अच्छा कारण होने पर, बचाव को रद्द न करने के विवेकाधिकार का संकेत दिया गया था। इस न्यायालय के उपरोक्त निर्णयों के माध्यम से चलने वाली सामान्य बात यह है कि रद्द करने की शक्ति बचाव को विवेक का मामला माना जाता है, जहां डिफ़ॉल्ट के बावजूद, किसी अच्छे और पर्याप्त कारण से बचाव को रद्द नहीं किया जा सकता है।

11.2 डिफ़ॉल्ट के बावजूद बचाव न करने के लिए अच्छे और पर्याप्त कारण का प्रश्न सीधे ऐसे तथ्यों, कारकों और परिस्थितियों से संबंधित होगा जहां किसी भी वास्तविक कारण के लिए पूर्ण और समयबद्ध अनुपालन नहीं किया गया था, जैसा कि अवज्ञा या स्वैच्छिक / वैकल्पिक गैर-निष्पादन के दृष्टिकोण से भिन्न है।

17. सम्मान के साथ, उच्च न्यायालय का उक्त निष्कर्ष किसी भी कारण से समर्थित न होने के कारण केवल अनुमानात्मक ही कहा जा सकता है। अनुच्छेद 44 में, निश्चित रूप से, उच्च न्यायालय ने इस न्यायालय के निर्णयों के संदर्भ में कहा कि विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग बहुत सावधानी से किया जाना चाहिए, लेकिन, इस न्यायालय द्वारा इस तरह की घोषणा का यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता है कि जो भी गलती और कमी हो प्रतिवादी/किरायेदार के प्रति प्रामाणिकता होने पर, उसे आसानी से बचाव न करने का तथाकथित 'भोग' दिया जाएगा। ऐसा दृष्टिकोण न तो वैधानिक प्रावधानों द्वारा और न ही संदर्भित निर्णयों द्वारा परिकल्पित है। वास्तव में, ऐसा दृष्टिकोण कानून के प्रासंगिक प्रावधानों को निरर्थक बना देगा। अपेक्षित सावधानी के लिए न्यायालय को सभी प्रासंगिक

अनुवादित

तथ्यों और रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री से सावधान रहने की आवश्यकता होगी और बचाव को नियमित मामले के रूप में समाप्त नहीं करना होगा। हालाँकि, जब वर्तमान प्रकृति का कोई मामला न्यायालय के समक्ष होता है, जिसमें जानबूझकर अवज्ञा और जानबूझकर/वैकल्पिक गैर-निष्पादन का खुलासा होता है, तो कानून का परिणाम अपरिहार्य रहता है, कि ऐसे प्रतिवादी का बचाव असफल हो जाएगा"

27. मैंने उपरोक्त निर्णय का अवलोकन कर लिया है। न्यायालय का मानना है कि डिफ़ॉल्ट के मामले में, प्रत्येक मामले के तथ्यों के आधार पर प्रतिवादी की प्रामाणिकता पर विचार किया जाना चाहिए। इस मामले में, आदेश XV नियम 5 के तहत आवेदन दाखिल करने के तथ्य पूरी तरह से अलग हैं और फैसले का पैराग्राफ 4.5 में भी यही दर्ज है।

"4.5 इसके बाद, वादी-अपीलकर्ता ने वर्तमान मामले पर लागू आदेश XV नियम 5 सीपीसी के प्रावधानों के संदर्भ में एक आवेदन दायर किया और प्रार्थना की कि प्रतिवादी-प्रतिवादी की रक्षा को इस कारण से रद्द कर दिया जाए, क्योंकि प्रतिवादी ने जमा नहीं किया था किराए के किसी भी भुगतान को स्थापित करने के लिए उसके द्वारा कोई किराया और कोई सबूत पेश नहीं किया गया था। इस आवेदन का प्रतिवादी-उत्तरदाता ने इस दलील के साथ विरोध किया था कि आदेश XV नियम 5 सीपीसी के प्रावधान केवल उस मामले पर लागू होते हैं जहां प्रतिवादी वादी को स्वीकार करेगा उनके मकान मालिक के रूप में; और वर्तमान मामले में, उन्होंने विशेष दलील दी थी कि वादी मकान मालिक या सूट की दुकान का मालिक नहीं था और स्पष्ट रूप से कहा था कि मकान मालिक और किरायेदार के बीच कोई संबंध नहीं था वादी और प्रतिवादी. प्रतिवादी-उत्तरदाता ने भी उल्लेख किया कथित तौर पर कुछ किराये की रसीदें उक्त श्रीमती सुधा शर्मा द्वारा जारी की गई थीं।

28. पैरा 4.5 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि उसमें मामले में, प्रतिवादी ने मकान मालिक-किरायेदार रिश्ते पर विवाद किया है वह किराया जमा करने के लिए जिम्मेदार नहीं था। अंततः, न्यायालय ने यह विचार किया है कि ऐसे मामलों में सद्भावना पर विचार किया जाना चाहिए और बचाव करते समय न्यायालयों को उदार दृष्टिकोण रखना चाहिए, लेकिन वर्तमान मामले में, तथ्य पूरी तरह से अलग था। मकान मालिक-किरायेदार के रिश्ते पर कोई विवाद नहीं है और अतिरिक्त मासिक किराया 1972 के अधिनियम की धारा 30 के तहत जमा किया गया है, लेकिन उस अदालत के समक्ष नहीं जहां मुकदमा लंबित है। इसलिए, न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून का अनुपात वर्तमान मामले में लागू नहीं है। यह मुद्दा **आत्मा राम (सुप्रा)** के मामले में शीर्ष अदालत के समक्ष था, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि **आशा रानी गुप्ता (सुप्रा)** के मामले में उक्त निर्णय शीर्ष अदालत के समक्ष नहीं रखा गया था।

29. अब मैं प्रतिवादी-वादी के विद्वान वकील द्वारा भरोसा किए गए निर्णयों पर आ रहा हूं।

30. प्रतिवादी-वादी के विद्वान वकील ने **आत्मा राम (सुप्रा)** के फैसले पर भरोसा जताया है। उक्त मामले में, वही मुद्दा न्यायालय के समक्ष विचारार्थ था और न्यायालय ने इस

अनुवादित

मुद्दे को फैसले के पैराग्राफ 7 में तय किया है और इसे यहां नीचे उद्धृत किया गया है:

"7. इसलिए, मुख्य प्रश्न जो विचार के लिए उठता है, वह यह है कि क्या अपीलकर्ता ने किराए के भुगतान में चूक की है, क्योंकि उसने कानून द्वारा अपेक्षित तरीके से उपरोक्त अवधि के लिए किराया का भुगतान या टेंडर या जमा नहीं किया था। सवाल यह भी उठता है कि क्या पंजाब अधिनियम के तहत किराए की जमा राशि को अधिनियम के तहत वैध जमा माना जा सकता है।"

31. उपर्युक्त पैराग्राफ में संदर्भित मुद्दे का उत्तर निर्णय के पैराग्राफ 21 में दिया गया था, जिसे यहां नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"21. अधिनियम, इसलिए, यह निर्धारित करता है कि यदि मकान मालिक निर्दिष्ट अवधि के भीतर उसके द्वारा दिए गए किराए को स्वीकार नहीं करता है, तो उसे क्या करना चाहिए। उसे आवश्यक विवरण देते हुए किराया नियंत्रक के न्यायालय में किराया जमा करना आवश्यक है। धारा 27 की उप-धारा (2) द्वारा आवश्यक है। इसलिए, एक विशिष्ट प्रावधान है जो ऐसी आकस्मिकता में पालन की जाने वाली प्रक्रिया प्रदान करता है। अधिनियम के विशिष्ट प्रावधानों के मद्देनजर यह किरायेदार के लिए खुला नहीं होगा किसी अन्य प्रक्रिया का सहारा लें। यदि किराया अधिनियम की धारा 27 के अनुसार किराया नियंत्रक के न्यायालय में जमा नहीं किया जाता है, और कहीं और जमा किया जाता है, तो इसे किराए के बकाया का वैध भुगतान/निविदा नहीं माना जाएगा। अधिनियम के अर्थ के अंतर्गत और परिणामस्वरूप किरायेदार को माना जाना चाहिए

32. इस प्रकार तैयार किए गए प्रश्न और न्यायालय द्वारा दिए गए उत्तर के अवलोकन से, यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट है कि राशि किराया नियंत्रक न्यायालय में जमा की जानी है, वर्तमान मामले में, एससीसी न्यायालय और कहीं और जमा की गई कोई भी राशि नहीं होगी। अधिनियम के अर्थ के अंतर्गत किराए के बकाया का वैध भुगतान या निविदा के रूप में माना जाएगा। यहां भी यही तथ्य है कि 1972 के अधिनियम की धारा 30 के तहत जमा की गई राशि को आदेश XV नियम 5 सीपीसी के तहत जमा नहीं माना जा सकता है।

33. ***आशा रानी गुप्ता (सुप्रा)*** के मामले में इस तथ्य की पृष्ठभूमि के साथ कि मकान मालिक-किरायेदार रिश्ते को अस्वीकार कर दिया गया है और आदेश XV नियम 5 सीपीसी के तहत आवश्यक राशि जमा नहीं की गई है, शीर्ष अदालत ने कानून का एक सामान्य सिद्धांत निर्धारित किया है कि आदेश XV नियम 5 सीपीसी के तहत दायर आवेदनों पर विचार करते समय आवेदन की प्रामाणिकता पर विचार किया जाना चाहिए, जबकि **आत्मा राम (सुप्रा)** के मामले में, मुद्दा यह था कि किसी अन्य अदालत के समक्ष अधिनियम के प्रावधान के तहत जमा किए गए धन पर विचार किया जा सकता है। समायोजित किया गया है या नहीं और न्यायालय ने राय दी है कि ऐसी राशि को समायोजित नहीं किया जा सकता है। वर्तमान मामले में, मुद्दा पूरी तरह से **आत्मा राम (सुप्रा)** के फैसले द्वारा कवर किया गया है, इसलिए, **आशा रानी गुप्ता (सुप्रा)** के मामले में शीर्ष अदालत द्वारा निर्धारित सामान्य कानून लागू नहीं होगा और यह मामला होना चाहिए

अनुवादित

आत्मा राम (सुप्रा) के मामले में शीर्ष न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून द्वारा शासित।

34. प्रतिवादी-वादी के विद्वान वकील ने **हैदर अब्बास (सुप्रा)** के मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ के फैसले पर भी भरोसा किया है, जिसमें **आत्मा राम (सुप्रा)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून का हवाला दिया गया है।) का पालन किया गया है। उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे उद्धृत किया गया है:

"21. इसलिए, यह इस प्रकार है कि जब "उसके द्वारा देय पूरी राशि" मुकदमे की पहली सुनवाई में या उससे पहले जमा की जाती है, तो धारा 30 के तहत जमा की गई राशि अधिनियम की धारा 30 के तहत जमा की गई राशि में कटौती की जा सकती है, लेकिन मुकदमे की निरंतरता के दौरान "मासिक बकाया राशि" जमा करते समय, अधिनियम की धारा 30 के तहत जमा की गई राशि में कटौती नहीं की जा सकती है। कहने की जरूरत नहीं है कि बचाव पक्ष को हटाने का आदेश देने से पहले, न्यायालय प्रतिवादी द्वारा इस संबंध में किए गए किसी भी अभ्यावेदन पर विचार कर सकता है, बशर्ते ऐसा अभ्यावेदन आदेश XV नियम 5 सीपीसी में निर्धारित अवधि के भीतर किया गया हो।

22. आत्मा राम बनाम शकुंतला रानी (2005) 7 एससीसी 211 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के पास यह जांचने का अवसर था कि क्या किरायेदार ने किराए के भुगतान में चूक की है यदि उसने कानून द्वारा आवश्यक तरीके से किराया नहीं दिया है या जमा नहीं किया है और क्या किसी अन्य अधिनियम के तहत किराया जमा किया जा सकता है। वैध जमा माना गया। किरायेदार ने किराया माफ करने के लिए मनी-ऑर्डर भेजा था लेकिन मकान मालिक ने इसे स्वीकार करने से इनकार कर दिया और इसलिए, किरायेदार ने पंजाब के प्रावधानों के तहत जनवरी, 1995 में 1 फरवरी, 1992 से 31 जनवरी, 1995 तक की अवधि के लिए किराया जमा कर दिया। राहत ऋणग्रस्तता अधिनियम. 1934 (जिसे "पंजाब अधिनियम' कहा जाता है)। हालांकि, मकान मालिक ने किराए का बकाया भुगतान करने के लिए किरायेदार को 16 मई, 1996 को एक नोटिस भेजा। किरायेदार ने 20 जुलाई, 1996 को फरवरी, 1995 से 12वीं तक की अवधि के लिए किराया जमा कर दिया। जुलाई, 1996 दिल्ली किराया नियंत्रण अधिनियम, 1961 की धारा 27 के तहत (जिसे "दिल्ली अधिनियम' कहा जाता है)। 1 फरवरी, 1992 से 31 जनवरी, 1995 तक का बकाया किराया शामिल नहीं किया गया क्योंकि किरायेदार ने इसे पंजाब अधिनियम के तहत जमा कर दिया था। दिल्ली अधिनियम की धारा 27 में प्रावधान है कि जहां मकान मालिक किरायेदार द्वारा दिए गए किसी भी किराए को स्वीकार नहीं करता है, किरायेदार उस धारा में दिए गए तरीके से किराया नियंत्रक के पास ऐसा किराया जमा कर सकता है। इसके बाद मकान मालिक ने दिल्ली अधिनियम की धारा 14 (1) (ए) के तहत किरायेदार को बेदखल करने के लिए एक आवेदन दायर किया। सुप्रीम कोर्ट ने कुलदीप सिंह बनाम गणपत लाल (1996) 1 एससीसी 243 में अपने पहले के कई फैसलों पर विचार करने के बाद, जगत प्रसाद बनाम जिला. न्यायाधीश, कानपुर 1995 सप्लिमेंट (1)

अनुवादित

एससीसी 318. एम. भास्कर बनाम जे. वेंकटरामा नायडू (1996) 6 एससीसी 228. राम बागस तापरिया बनाम राम चंद्र पाल (1989) 1 एससीसी 257, और ई. पलानीसामी बनाम पलानीसामी (2003) 1 एससीसी 123 माना:-

"इस प्रकार ऐसा प्रतीत होगा कि इस न्यायालय ने लगातार निर्णय लिया है देखें कि किराया नियंत्रण कानून में यदि किरायेदार है के लाभकारी प्रावधानों का लाभ उठाना चाहता है अधिनियम, उसे की आवश्यकताओं का सख्ती से पालन करना होगा कार्यवाही करना। यदि पूर्व में कोई पूर्व शर्त पूरी करनी हो लाभ का दावा किया जा सकता है, उसे उस स्थिति का सख्ती से पालन करना होगा । यदि वह ऐसा करने में विफल रहता है तो वह ऐसे प्रावधान द्वारा प्रदत्त लाभों का लाभ नहीं उठा सकेगा।

इसलिए, अधिनियम में यह निर्धारित किया गया है कि यदि मकान मालिक निर्दिष्ट अवधि के भीतर किरायेदार द्वारा दिए गए किराए को स्वीकार नहीं करता है तो किरायेदार को क्या करना चाहिए। उसे धारा 27 की उपधारा (2) के अनुसार आवश्यक विवरण देते हुए किराया नियंत्रक के न्यायालय में जमा करना होगा। इसलिए, एक विशिष्ट प्रावधान है जो ऐसी आकस्मिकता में पालन की जाने वाली प्रक्रिया प्रदान करता है। अधिनियम के विशिष्ट प्रावधानों के मद्देनजर किरायेदार किसी अन्य प्रक्रिया का सहारा लेने के लिए खुला नहीं होगा। यदि किराया अधिनियम की धारा 27 के अनुसार किराया नियंत्रक के न्यायालय में जमा नहीं किया जाता है, और कहीं और जमा किया जाता है, तो इसे अधिनियम के अर्थ के तहत किराए के बकाया का वैध भुगतान/निविदा नहीं माना जाएगा। और परिणामस्वरूप किरायेदार को डिफ़ॉल्टर माना जाना चाहिए।

इसलिए, हम इस बात से संतुष्ट हैं कि उच्च न्यायालय यह मानने में सही था कि अपीलकर्ता 1-2-1992 से 31-1-1995 की अवधि के लिए किराए के बकाया का भुगतान/निविदा देने में विफल रहा था। पंजाब अधिनियम के प्रावधान के तहत की गई जमा राशि अधिनियम की धारा 27 के स्पष्ट प्रावधान के मद्देनजर कोई फायदा नहीं थी।

23. आत्मा राम (सुप्रा) के मामले में सुप्रीम कोर्ट का पूर्वोक्त निर्णय इस बात पर जोर देता है कि यदि किरायेदार किराया नियंत्रण अधिनियम के लाभकारी प्रावधानों का लाभ उठाना चाहता है, तो उसे आवश्यकताओं का सख्ती से पालन करना होगा और यदि कोई शर्त पूर्ववर्ती है लाभ का दावा करने से पहले पूरा किया जाना आवश्यक है, किरायेदार को उस शर्त का सख्ती से पालन करना होगा, अन्यथा वह ऐसे प्रावधान द्वारा प्रदत्त लाभ का लाभ नहीं उठा सकता है। इस बात पर भी जोर दिया गया है कि किराया उस न्यायालय में जमा किया जाना चाहिए जहां इसे अधिनियम के तहत जमा किया जाना आवश्यक है और यदि इसे कहीं और जमा किया जाता है, तो इसे किराए का वैध भुगतान/निविदा नहीं माना जाएगा और परिणामस्वरूप किरायेदार डिफ़ॉल्ट माना जाना चाहिए।

24. आत्मा राम (सुप्रा) के उपरोक्त मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा प्रतिपादित कानून के उपरोक्त सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, यह मानना होगा कि किरायेदार को आदेश XV नियम 5 सीपीसी की आवश्यकताओं का पालन करना होगा और जमा सख्ती से करना होगा

अनुवादित

उसमें निहित प्रक्रिया के अनुसार जो जमा उपरोक्त नियम के अनुरूप नहीं किया गया है, वह किरायेदार के लाभ को सुनिश्चित नहीं कर सकता है और इसलिए, मुकदमे के लंबित रहने के दौरान किरायेदार द्वारा जमा की जाने वाली आवश्यक "मासिक राशि" से केवल उस राशि की कटौती की जा सकती है। आदेश XV सीपीसी के नियम 5(1) के स्पष्टीकरण 3 में विशेष रूप से उल्लेख किया गया है।

25. अत: इसका तात्पर्य यह है कि देय राशि जमा की जानी है मुक़दमे की निरंतरता के दौरान किरायेदार को यह करना होगा उस न्यायालय में जमा किया जाना चाहिए जहां अन्यथा मुकदमा दायर किया गया है न्यायालय किरायेदार के बचाव को रद्द कर सकता है अधिनियम की धारा 30 (1) के तहत किरायेदार द्वारा की गई जमा राशि प्रथम सुनवाई के बाद मुकदमे पर विचार सहमति से नहीं किया जा सकता।

37. इसलिए, हम नियम के प्रावधानों के विश्लेषण पर हैं आदेश XV सीपीसी के 5 (1), जमा करते समय उसे रोक कर रखें मुकदमे की पहली सुनवाई पर या उससे पहले राशि, अधिनियम की धारा 30 के तहत जमा की गई राशि में कटौती कर सकता है लेकिन उसके बाद मुकदमे की निरंतरता के दौरान मासिक राशि की जमा राशि उस न्यायालय में जमा की जानी चाहिए जहां बेदखली और किराए की वसूली या उपयोग और कब्जे के लिए मुआवजे की वसूली और राशि, यदि कोई हो, अधिनियम की धारा 30 के तहत कटौती नहीं की जा सकती जमा की जानी चाहिए।"

35. उपरोक्त निर्णय में, न्यायालय ने यह दृढ़ विचार किया है कि मुकदमे की पहली सुनवाई पर या उससे पहले राशि जमा करते समय, किरायेदार 1972 के अधिनियम की धारा 30 के तहत जमा राशि में कटौती कर सकता है, लेकिन मासिक राशि जमा करना मुकदमे की निरंतरता के दौरान किराया न्यायालय में जमा किया जाना चाहिए, जहां बेदखली के लिए मुकदमा दायर किया गया है और 1972 के अधिनियम की धारा 30 के तहत जमा की गई किसी भी राशि को समायोजित नहीं किया जा सकता है।

36. **पनारू लाल (सुप्रा)** के मामले में यह मुद्दा फिर से इस न्यायालय के समक्ष आया। उपरोक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे उद्धृत किया गया है:

"10. मामले के मौजूदा तथ्यों के अनुसार, यह निर्विवाद है कि किरायेदार उस अदालत में मासिक किराया जमा करने में विफल रहा जहां मुकदमा लंबित था। अवर अदालतों ने इस संबंध में तथ्यात्मक निष्कर्ष दर्ज किए हैं, जिसके बारे में विद्वान वकील ने कहा। याचिकाकर्ता यह प्रदर्शित करने में विफल रहा है कि वह किसी भी मामले में दोषपूर्ण है। भले ही, किराए की राशि 1972 के अधिनियम संख्या 13 की धारा 30 के तहत किरायेदार द्वारा जमा की जा रही थी। हालांकि, डिफ़ॉल्ट नहीं, फिर भी याचिकाकर्ता जमा करने के लिए बाध्य था जिस न्यायालय में मुकदमा लंबित था, उसके समक्ष देय मासिक किराया, 1972 के अधिनियम संख्या 13 की धारा 30 के तहत जमा की गई राशि उक्त जमा से कटौती के लिए उत्तरदायी नहीं थी, इस प्रकार, किरायेदार स्पष्ट रूप से डिफ़ॉल्ट में था। उचित ध्यान में रखते हुए ऊपर बताए गए तथ्यों और कानूनी प्रस्ताव के अनुसार, लगाए गए आदेशों में कोई

अनुवादित

अवैधता या दुर्बलता नहीं है जिसके लिए इस न्यायालय द्वारा किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता है।"

37. **हैदर अब्बास (सुप्रा)** में इस न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा निर्धारित कानून के अनुपात पर विचार करने के बाद न्यायालय ने यही विचार किया है कि 1972 के अधिनियम की धारा 30 के तहत जमा की गई किसी भी राशि को किराए के बकाया के खिलाफ समायोजित किया जा सकता है। मुकदमे की पहली सुनवाई से पहले, लेकिन जहां तक मासिक किराए का सवाल है, इसे समायोजित नहीं किया जा सकता है।

38. **मोरे सिंह (सुप्रा)** के मामले में यह मुद्दा फिर से इस न्यायालय के समक्ष आया, उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ हैं यहाँ नीचे उल्लेखित है:

"6. विचार के लिए एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या किरायेदार विविध मामले संख्या 27/7/08 में धारा 30 के तहत कार्यवाही में की गई जमा राशि के लाभ का हकदार है। हैदर अब्बास बनाम अपर जिला न्यायाधीश (कोर्ट संख्या 3) इलाहाबाद एवं अन्य1 मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ ने आदेश XV नियम 5 सीपीसी के प्रावधानों और आत्मा राम2 मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विचार करते हुए निम्नलिखित टिप्पणी की: -

"आत्मा राम (सुप्रा) के मामले में सुप्रीम कोर्ट का उपरोक्त निर्णय इस बात पर जोर देता है कि यदि किरायेदार किराया नियंत्रण अधिनियम के लाभकारी प्रावधानों का लाभ उठाना चाहता है, तो उसे आवश्यकताओं का सख्ती से पालन करना होगा और यदि किसी शर्त की आवश्यकता है लाभ का दावा करने से पहले पूरा करने के लिए, किरायेदार को उस शर्त का सख्ती से पालन करना होगा, अन्यथा वह इस तरह के प्रावधान द्वारा प्रदत्त लाभ का लाभ नहीं उठा सकता है। इस बात पर जोर दिया गया है कि किराया उस न्यायालय में जमा किया जाना चाहिए जहां वह है अधिनियम के तहत जमा करना आवश्यक है और यदि इसे कहीं और जमा किया जाता है, तो इसे किराए का वैध भुगतान/निविदा नहीं माना जाएगा और परिणामस्वरूप किरायेदार को डिफ़ॉल्ट में माना जाना चाहिए।

आत्मा राम (सुप्रा) के उपरोक्त मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा प्रतिपादित कानून के उपरोक्त सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, यह माना जाना चाहिए कि किरायेदार को आदेश XV नियम 5 सीपीसी की आवश्यकताओं का पालन करना चाहिए और जमा सख्ती से करना चाहिए। उसमें निहित प्रक्रिया के साथ। एक जमा जो उपरोक्त नियम के अनुरूप नहीं किया गया है वह किरायेदार के लाभ को सुनिश्चित नहीं कर सकता है। इसलिए, मुकदमे के लंबित रहने के दौरान किरायेदार द्वारा जमा की जाने वाली आवश्यक "मासिक राशि" से केवल वही राशि काटी जा सकती है, जिसका विशेष रूप से आदेश XV सीपीसी के स्पष्टीकरण 3 से नियम 5 (1) में उल्लेख किया गया है।

इसलिए, यह इस प्रकार है कि मुकदमे की निरंतरता के दौरान किरायेदार द्वारा जमा की जाने वाली राशि को उस न्यायालय में जमा करना होगा जहां मुकदमा दायर किया गया है अन्यथा न्यायालय किरायेदार द्वारा की गई जमा राशि के बाद से उसकी रक्षा को रद्द कर सकता है। मुकदमे की पहली सुनवाई के बाद

अवधवाणिज्य

अधिनियम की धारा 30 (1) के तहत किरायेदार पर विचार नहीं किया जा सकता है।" बसंत कुमार चौहान बनाम में. आदेश XV नियम 5 सीपीसी के प्रावधानों का विश्लेषण करने के बाद VIIth ए.डी.जे.3। इस न्यायालय ने कहा:-

"इसलिए, यह स्पष्ट है कि आदेश XV, नियम 5, स्पष्टीकरण II के साथ पढ़े गए प्रावधान स्पष्ट रूप से निर्धारित करते हैं कि 1972 के यूपी अधिनियम संख्या 13 की धारा 30 के तहत किसी भी न्यायालय में जमा की गई किसी भी राशि पर नोटिस लिया जा सकता है। न्यायालय जहां मुकदमा केवल वहीं तक लंबित था जहां तक मुकदमे की पहली सुनवाई के समय या उससे पहले जमा करने की आवश्यकता थी। मुकदमे की निरंतरता के दौरान की जाने वाली अन्य जमा राशि देय मासिक राशि की नियमित जमा राशि है। इसके जमा होने की तारीख से एक सप्ताह के भीतर... सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XV, नियम 5 के स्पष्टीकरण III को ध्यान में रखते हुए, यह स्पष्ट है कि "धारा 30 के तहत किसी भी न्यायालय में जमा की गई मासिक देय राशि" का पता लगाने के लिए यूपी के 1972 के अधिनियम संख्या 13 को ध्यान में नहीं रखा जाना चाहिए..... जाहिर है, इसलिए, एक बार किसी पट्टेदार द्वारा अपने पट्टे के निर्धारण के बाद उसे बेदखल करने के लिए किसी भी मुकदमे में, किरायेदार प्रतिवादी यदि उसे मुकदमे के लंबित होने का पता चल जाता है और वह उसमें उपस्थित हो जाता है, तो उस पर सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XV, नियम 5(1) के स्पष्टीकरण III के तहत परिकल्पित देय मासिक राशि को नियमित रूप से जमा करने का वैधानिक दायित्व आ जाता है। अपने बचाव को रद्द होने से बचाने के लिए इसके उपार्जन की तारीख से एक सप्ताह के भीतर इसकी निरंतरता के दौरान नियमित रूप से मुकदमा दायर करें।"

राम कुमार सिंह बनाम तृतीय अपर जिला न्यायाधीश, गाजियाबाद 4 में बसंत कुमार चौहान एवं सईद हसन जफर उर्फ शकील अहमद बनाम रुराबल हक और अन्य5, में दिए गए निर्णयों पर भरोसा करते हुए इस न्यायालय ने इस प्रकार देखा: -

"इस न्यायालय के उपरोक्त निर्णयों के मद्देनजर, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता (प्रतिवादी) द्वारा 1972 के यूपी अधिनियम संख्या XIII की धारा 30 के तहत उक्त एस.सी.सी. वाद संख्या 26 सन 1977 की निरंतरता के दौरान मासिक किराया/मुआवजा जमा किया गया था। गैरकानूनी थे, और इसे सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XV नियम 5 के प्रावधानों के अनुपालन में नहीं कहा जा सकता था। 1977 के उक्त एस.सी.सी. सूट संख्या 26 में एक बार "पहली सुनवाई" हुई आ गया, याचिकाकर्ता के लिए यूपी अधिनियम संख्या XIII 1972 की धारा 30 के तहत मुंसिफ, गाजियाबाद की अदालत में मासिक किराया/मुआवजा जमा करना जारी रखना अब खुला नहीं था। उक्त मासिक जमाराशि प्रतिवादी संख्या 2 के समक्ष उक्त एस.सी.सी. वाद संख्या 26/1977 में की जानी चाहिए थी। इस प्रकार, याचिकाकर्ता सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XV नियम 5(1) के दूसरे भाग अर्थात् शीर्ष (बी) की अपेक्षाओं का अनुपालन करने में विफल रहा।।"

अनुवादित

"7. इस प्रकार यह इस प्रकार है कि पहली सुनवाई की तारीख से पहले धारा 30 के तहत की गई जमा राशि को समायोजित किया जाना है, लेकिन धारा 30 के तहत कार्यवाही में उसके बाद जमा किया गया कोई भी किराया किरायेदार आदेश XV, नियम 5 सीपीसी, के प्रावधानों के अनुपालन के निर्णय के लिए लाभ सुनिश्चित नहीं करेगा।

8. वर्तमान मामले में, 28.3.2009 को लिखित बयान दाखिल करने के बाद, जिसे 15.3.2011 को ट्रायल कोर्ट द्वारा उसके बचाव को रद्द करने तक, मुकदमे में पहली सुनवाई की तारीख सुरक्षित रूप से मानी जा सकती है। मुक़दमे में एक भी पैसा जमा नहीं किया गया। याचिकाकर्ता ने भी उस संबंध में कोई प्रतिनिधित्व नहीं किया था। इस प्रकार, बचाव पक्ष को ख़त्म करने में ट्रायल कोर्ट की ओर से कोई त्रुटि नहीं हुई।"

39. यहां भी, न्यायालय का विचार वही था कि 1972 के अधिनियम की धारा 30 के तहत जमा की गई किसी भी राशि को आदेश XV नियम 5 सीपीसी के तहत आवश्यक किराए की मासिक जमा राशि के विरुद्ध समायोजित नहीं किया जा सकता है।

40. इस न्यायालय ने **मुकेश वर्मा (सुप्रा)** के मामले में इसी मुद्दे पर विचार किया है और आदेश XV नियम 5 सीपीसी के प्रावधानों और न्यायालयों द्वारा निर्धारित कानून पर विचार करते हुए, इस न्यायालय ने अपना निष्कर्ष दर्ज किया है। उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ उद्धृत किया गया है यहाँ नीचे:

"31. आदेश XV नियम 5 सी.पी.सी. के प्रावधान और इस न्यायालय और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उपरोक्त निर्णयों में निर्धारित कानून स्पष्ट रूप से निम्नानुसार निष्कर्ष निकालते हैं:

(ए) पट्टे के निर्धारण के बाद पट्टेदार को बेदखल करने और किराए आदि के बकाया की वसूली के लिए पट्टेदार द्वारा एक मुकदमे में, प्रतिवादी को दो प्रकार की जमा राशि जमा करने की आवश्यकता होती है। सबसे पहले, मुकदमे की पहली सुनवाई में या उससे पहले उसे अपने द्वारा स्वीकार की गई पूरी राशि उस पर 9% प्रति वर्ष की दर से ब्याज सहित जमा करनी होगी और दूसरी बात, चाहे वह किसी भी राशि का बकाया स्वीकार करे या नहीं, वह पूरा भुगतान करेगा। मुकदमे की निरंतरता नियमित रूप से इसके उपार्जन की तारीख से एक सप्ताह के भीतर देय मासिक राशि जमा करती है। उपरोक्तानुसार पहली जमा या दूसरी जमा करने में किसी भी चूक की स्थिति में, न्यायालय, उप-नियम (2) के प्रावधानों के अधीन, उसके बचाव को रद्द कर सकता है।

(बी) प्रतिवादी को उप-नियम (2) के तहत उपरोक्तानुसार पहली जमा राशि के संबंध में पहली सुनवाई के दस दिनों के भीतर प्रतिनिधित्व करने का वैधानिक अधिकार है। मासिक जमा के संबंध में उपरोक्त के अनुसार, उसे मासिक जमा राशि जमा होने की तारीख से एक सप्ताह के भीतर अभ्यावेदन देने का अधिकार है।

(सी) उपरोक्त उप-नियम (2) के तहत प्रतिवादी के प्रतिनिधित्व पर विचार करने के बाद, न्यायालय प्रतिवादी की रक्षा को रद्द कर सकता है।

(डी) इस प्रकार, उप-नियम के तहत पहली और दूसरी जमा राशि के लिए प्रावधान (1)

अनुवादित

अनिवार्य हैं लेकिन बचाव को समाप्त करना न्यायालय का विवेक है जिसका प्रयोग न्यायिक रूप से किया जाना चाहिए। दूसरी जमा राशि यानी मासिक जमा करने में देरी, यदि कोई हो, प्रतिवादी-किरायेदार के अभ्यावेदन पर माफ की जा सकती है, बशर्ते वह देरी की माफी के लिए पर्याप्त आधार बताए।

(ई) मुकदमे की पहली सुनवाई पर या उससे पहले राशि जमा करते समय, प्रतिवादी-किरायेदार यूपी अधिनियम 13, 1972 की धारा 30 के तहत जमा की गई राशि में कटौती कर सकता है, लेकिन उसके बाद मुकदमे की निरंतरता के दौरान मासिक राशि जमा कर सकता है। उस न्यायालय में किया जाना चाहिए जहां बेदखली के लिए मुकदमा दायर किया गया है।

(एफ) यदि उप-नियम (1) के तहत जमा करने में चूक की गई राशि छोटी या नगण्य है तो पट्टेदार/किरायेदार की रक्षा को खत्म करने के लिए पट्टेदार के आवेदन पर विचार करते समय न्यायालय द्वारा उदार दृष्टिकोण अपनाया जा सकता है।

(जी) यदि किरायेदार आदेश XV नियम 5 सी.पी.सी. के लाभकारी प्रावधान का लाभ लेना चाहता है। तो उसे बचाव पक्ष को ख़त्म करने के विरुद्ध लाभ/संरक्षण का दावा करने से पहले इसका सख्ती से पालन करना होगा।

(एच) उप नियम (2) के तहत प्रतिवादी को स्पष्ट रूप से निहित अधिकार उसे रिकॉर्ड पर सामग्री लाकर यह दिखाने में सक्षम बनाता है कि वह कथित डिफ़ॉल्ट का दोषी नहीं है या यदि डिफ़ॉल्ट हुआ है तो इसके लिए अच्छा कारण है। उप-नियम (2) के तहत प्रदत्त शक्ति का प्रयोग न्यायालय द्वारा यांत्रिक रूप से नहीं बल्कि न्यायिक रूप से किया जाना है। यदि रिकॉर्ड पर पहले से मौजूद तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर उसे ऐसा न करने का अच्छा कारण मिलता है तो न्यायालय अपने निहित विवेक के अनुसार बचाव को रद्द नहीं कर सकता है।

(आई) उप-नियम (2) के तहत प्रयुक्त शब्द "अभ्यावेदन" में बचाव को खत्म करने के लिए एक आवेदन के जवाब में 'प्रतिनिधित्व' या पर्याप्त आधार प्रदर्शित कर जमा करने के लिए समय के विस्तार के लिए प्रार्थना करने वाला "प्रतिनिधित्व" शामिल हो सकता है।

(जे)यदि प्रतिवादी-किरायेदार द्वारा उप-नियम (1) के तहत जमा राशि नहीं जमा की जाती है तो बचाव पक्ष को हटाने के बुरे परिणाम होंगे।

41. न्यायालय ने उपरोक्त मामले पर कड़ा रुख अपनाया है 1972 के अधिनियम की धारा 30 के तहत जमा की गई किसी भी राशि को आदेश XV नियम 5 सीपीसी के तहत आवश्यक किराए की मासिक राशि के लिए समायोजित नहीं किया जा सकता है।

42. **ओम प्रकाश गुप्ता (सुप्रा)** के मामले में इस मुद्दे पर फिर से इस न्यायालय द्वारा विचार किया गया। उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे उद्धृत किया गया है:

"13. डिवीजन बेंच ने आत्मा राम (सुप्रा) में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भरोसा करते हुए कहा कि यदि किरायेदार किराया नियंत्रण अधिनियम के तहत लाभकारी प्रावधान का लाभ लेना चाहता है, तो उसे इसकी आवश्यकताओं का सख्ती से पालन करना होगा। यदि लाभ का दावा करने से पहले किसी भी पूर्ववर्ती शर्त को पूरा करना आवश्यक है, किरायेदार को उस शर्त का सख्ती से पालन

अनुवादित

करना होगा, ऐसा न करने पर वह उक्त प्रावधान द्वारा प्रदत्त लाभ का लाभ नहीं उठा सकता है। तदनुसार, यह माना गया कि जमा नहीं किया गया वैधानिक प्रावधान के अनुरूप होने से किरायेदार को लाभ नहीं होगा। मुकदमे के लंबित रहने के दौरान किरायेदार द्वारा जमा की जाने वाली आवश्यक मासिक राशि उस अदालत में जमा की जानी चाहिए जहां मुकदमा दायर किया गया है, न कि किसी अन्य अदालत या कार्यवाही में। यह निष्कर्ष निकाला गया है कि मुकदमे के समन की प्राप्ति के बाद अधिनियम की धारा 30 के तहत मासिक किराया जमा करना आदेश 15 नियम 5 सीपीसी की आवश्यकताओं के विपरीत है और इसलिए किरायेदार के लाभ को सुनिश्चित नहीं करेगा: -

"आत्मा राम (सुप्रा) के मामले में सुप्रीम कोर्ट का उपरोक्त निर्णय इस बात पर जोर देता है कि यदि किरायेदार किराया नियंत्रण अधिनियम के लाभकारी प्रावधानों का लाभ उठाना चाहता है, तो उसे आवश्यकताओं का सख्ती से पालन करना होगा और यदि किसी शर्त की आवश्यकता है लाभ का दावा करने से पहले पूरा करने के लिए, किरायेदार को उस शर्त का सख्ती से पालन करना होगा, अन्यथा वह इस तरह के प्रावधान द्वारा प्रदत्त लाभ का लाभ नहीं उठा सकता है। इस बात पर जोर दिया गया है कि किराया उस न्यायालय में जमा किया जाना चाहिए जहां वह है अधिनियम के तहत जमा करना आवश्यक है और यदि इसे कहीं और जमा किया जाता है, तो इसे किराए का वैध भुगतान/निविदा नहीं माना जाएगा और परिणामस्वरूप किरायेदार को डिफ़ॉल्ट में माना जाना चाहिए। कानून के उपरोक्त सिद्धांतों के मद्देनजर सुप्रीम कोर्ट द्वारा आत्मा राम (सुप्रा) के उपरोक्त मामले में, यह मानना होगा कि किरायेदार को आदेश XV नियम 5 सीपीसी की आवश्यकताओं का पालन करना होगा और उसमें निहित प्रक्रिया के अनुसार सख्ती से जमा करना होगा। एक जमा जो उपरोक्त नियम के अनुरूप नहीं किया गया है, वह किरायेदार के लाभ को सुनिश्चित नहीं कर सकता है और इसलिए, केवल उस राशि को "मुकदमे के लंबित रहने के दौरान किरायेदार द्वारा जमा की जाने वाली आवश्यक मासिक राशि से काटा जा सकता है, जिसका विशेष रूप से आदेश XV सीपीसी के नियम 5 (1) के स्पष्टीकरण 3 में उल्लेख किया गया है। इसलिए, यह इस प्रकार है कि देय राशि मुकदमे की निरंतरता के दौरान किरायेदार द्वारा जमा की जाने वाली धनराशि को उस न्यायालय में जमा करना होगा जहां मुकदमा दायर किया गया है अन्यथा न्यायालय किरायेदार की धारा 30 (1) के तहत जमा की गई जमा राशि को रद्द कर सकता है। वाद की प्रथम सुनवाई के बाद अधिनियम पर विचार नहीं किया जा सकता।

इसलिए, आदेश XV सीपीसी के नियम 5 (1) के प्रावधानों के विश्लेषण पर, हम मानते हैं कि मुकदमे की पहली सुनवाई पर या उससे पहले राशि जमा करते समय, किरायेदार अधिनियम की धारा 30 के तहत जमा की गई राशि में कटौती कर सकता है। लेकिन उसके बाद मुकदमे की निरंतरता के दौरान मासिक राशि उस न्यायालय में जमा की जानी चाहिए जहां बेदखली और किराए की वसूली या उपयोग और कब्जे के लिए मुआवजे की वसूली के लिए मुकदमा दायर किया गया है और राशि, यदि

अनुवादित

कोई हो, अधिनियम की धारा 30 के तहत कटौती नहीं की जा सकती जमा की जानी चाहिए ।"

43. न्यायालय का दृष्टिकोण फिर से वही है और न्यायालयों द्वारा निर्धारित कानून का पूर्व अनुपात, कि 1972 के अधिनियम की धारा 30 के तहत जमा की गई किसी भी राशि को आदेश XV नियम 5 सीपीसी के तहत आवश्यक मासिक जमा के विरुद्ध समायोजित नहीं किया जा सकता है, पालन किया गया।

44. **गंगू (सुप्रा)** के मामले में वही मुद्दा फिर से इस न्यायालय के समक्ष आया, जिसका प्रासंगिक पैराग्राफ उद्धृत किया जा रहा है यहाँ नीचे:

"10. याचिकाकर्ता द्वारा मुकदमे में उपस्थित होने और अपना लिखित बयान दाखिल करने के बाद, अधिनियम की धारा 30 के तहत अधिकार क्षेत्र का उपयोग करने वाले न्यायालय के समक्ष कई महीनों का किराया जमा करने का कोई औचित्य नहीं है। मासिक किराया था हर महीने किराया जमा होने के एक सप्ताह के भीतर आदेश XV नियम 5 सीपीसी के प्रावधानों के अनुसार अदालत में जमा किया जाना चाहिए, जहां मुकदमा लंबित था। ऐसा नहीं किया गया है, याचिकाकर्ता की रक्षा को सही तरीके से खारिज कर दिया गया है।

45. इस फैसले में, इस न्यायालय ने **हैदर अब्बास (सुप्रा)** के मामले में फैसले पर विचार करने के बाद माना है कि 1972 के अधिनियम की धारा 30 के तहत जमा की गई किसी भी राशि को किराए की मासिक जमा के खिलाफ समायोजित नहीं किया जा सकता है जैसा कि आदेश XV नियम 5 सीपीसी के दूसरे भाग में प्रदान किया गया है ।

46. इसलिए, न्यायालयों द्वारा निर्धारित कानून के आलोक में, यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट है कि 1972 के अधिनियम की धारा 30 के तहत जमा की गई किसी भी राशि को किराए की मासिक जमा राशि के विरुद्ध समायोजित नहीं किया जा सकता है जैसा कि आदेश XV नियम 5 सीपीसी के दूसरे भाग में प्रदान किया गया है और इसे ऐसे न्यायालय में जमा करना होगा, जहां मुकदमा लंबित है।

47. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा तर्क दिया गया एक अन्य मुद्दा वकील की गलत सलाह के बारे में है, जिसके आधार पर 1972 के अधिनियम की धारा 30 के तहत जमा किया गया था। यह मुद्दा **सुनील कुमार और अन्य बनाम श्री कपूर चंद्र अग्रवाल धर्मशाला ट्रस्ट: 2019(10) एडीजे 682,** में इस न्यायालय के समक्ष विषय था। उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे उद्धृत किया गया है:

"3. उपरोक्त मुकदमों का किरायेदारों ने अपने लिखित बयान दाखिल करके विरोध किया था। यह निर्विवाद है कि सुनवाई की पहली तारीख को, नागरिक प्रक्रिया संहिता के आदेश XV नियम 5 के तहत आवश्यक राशि जमा की गई थी; हालाँकि, उसके बाद मुकदमे की कार्यवाही जारी रहने के दौरान, देय मासिक राशि जमा नहीं की गई थी, और बाद में देरी को माफ करने और किराए की बकाया राशि जमा करने के लिए आदेश XV नियम 5 सीपीसी के तहत एक आवेदन दायर किया गया था, जो कि किरायेदार-याचिकाकर्ताओं के अनुसार हो सकता था। गलत कानूनी सलाह के कारण पहले जमा

अनुवादित

नहीं किया गया था। जो आवेदन दायर किए गए थे, उन पर वादी-मकान मालिक द्वारा आपत्ति दर्ज की गई थी। उपरोक्त आवेदन जो प्रतिवादी-किरायेदार द्वारा 29.11.2005 को दायर किए गए थे, जिसमें देरी की माफी और अनुमति की मांग की गई थी बकाया किराया जमा करने के लिए 1500/- रुपये की लागत के साथ अनुमति दी गई थी। उपरोक्त आदेशों को वादी-मकान मालिक द्वारा एससीसी संशोधन दायर करके चुनौती दी गई थी, जिसे आदेश दिनांक 01.09.2006 द्वारा खारिज कर दिया गया था और उपरोक्त आदेश के खिलाफ रिट याचिकाएं दायर की गईं। रिट याचिका सं. 66771/2006, 66769/2006 एवं 66770/2006 दर्ज किये गये।

33. याचिकाकर्ताओं ने स्वीकार किया कि आदेश XV नियम 5 के तहत दूसरे भाग की शर्तों के अनुसार 40 महीने की अवधि के लिए देय मासिक राशि का भुगतान करने में चूक हुई है, और केवल बोझ को स्थानांतरित करने के लिए स्पष्टीकरण मांगा गया था। आदेश XV नियम 5 के तहत लाभकारी प्रावधानों का अनुपालन करने की अनिवार्य आवश्यकता के संबंध में तय कानूनी स्थिति को देखते हुए, उनके पहले के वकील के अनुसार, इस तथ्य को किसी भी ठोस सबूत का नेतृत्व करके भी साबित नहीं किया जा सका। निचली अदालतें किरायेदारों द्वारा माफी के लिए दिए गए अभ्यावेदन को खारिज कर देती हैं देरी और उन्हें बनाने की अनुमति देना आवश्यक जमा राशि, और मकान मालिक द्वारा अपनी रक्षा रद्द करने के लिए दायर आवेदन को अनुमति देने में गलती नहीं की जा सकती।"

48. उक्त निर्णय के अवलोकन से, इसमें कोई संदेह नहीं है कि गलत या अवैध सलाह आदेश XV नियम 5 सीपीसी के तहत आवेदन को अस्वीकार करने और आवेदन 24-जीए को स्वीकार करने और आदेश XV नियम 5 सीपीसी में प्रावधानित किराए के मासिक जमा के विरुद्ध अधिनियम 1972 की धारा 30 के तहत जमा की गई राशि के समायोजन के आदेश जारी करने का आधार नहीं हो सकती है।

49. आदेश XV नियम 5 सीपीसी के प्रावधान पर विचार करने के बाद, जैसा कि यहां ऊपर चर्चा की गई है और न्यायालयों द्वारा निर्धारित कानून है, इस न्यायालय का दृढ़ विचार है कि अब तक आदेश XV नियम 5 सीपीसी के पहले भाग के संबंध में किराया बकाया जमा करने के संबंध में है मुकदमे की पहली सुनवाई पर या उससे पहले, 1972 के अधिनियम की धारा 30 के तहत जमा की गई राशि को समायोजित किया जा सकता है, लेकिन जहां तक आदेश XV नियम 5 सीपीसी के दूसरे भाग, यानी किराए की मासिक जमा का संबंध है, के तहत जमा की गई राशि 1972 के अधिनियम की धारा 30 को समायोजित नहीं किया जा सकता है और इसे उस न्यायालय के समक्ष जमा करना अनिवार्य है जहां मुकदमा लंबित है।

50. इसलिए मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के साथ-साथ यहां ऊपर चर्चा किए गए कानून के तहत, मुझे दिनांक 16.08.2018 और 15.12.2022 के आक्षेपित आदेशों में कोई अवैधता नहीं मिली।

51. याचिका में योग्यता नहीं है और तदनुसार **खारिज** की जाती है।

अनुवादित

52. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2023) 6 ILRA 553

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 19.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्रा

अनुच्छेद 227 के अंतर्गत मामला संख्या 4772 वर्ष 2023

कलाम उद्दीन याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री एम.ए. सिद्दीकी

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: जी.ए.

क. दंड विधि - भारतीय संविधान, 1950-अनुच्छेद 227 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 73 एवं 311 - भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 147, 148, 307, 323, 341 एवं 504-विद्वान मजिस्ट्रेट ने याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत आवेदन को खारिज कर दिया-फरार आरोपी को एनबीडब्ल्यू जारी किया गया-चार महीने बीत जाने के बाद भी आरोपी को गिरफ्तार नहीं किया जा सका-विद्वान मजिस्ट्रेट बलपूर्वक आदेश जारी नहीं कर सकते, फिर भी वे जांच की निगरानी कर सकते हैं, वे निष्पक्ष जांच सुनिश्चित करने के लिए केस डायरी प्रस्तुत करने के लिए कह सकते हैं-यह स्थापित कानून है कि मजिस्ट्रेट को जांच की प्रक्रिया में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, लेकिन साथ ही सर्वोच्च न्यायालय ने सकीरी वासु मामले में चेतावनी दी कि जांच में उनका सार्थक सहयोग वांछनीय है-आक्षेपित आदेश को रद्द किया जाता है। (पैरा 1 से 19) याचिका स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. साकिरी वासु बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2008) एआईआर एससी 907
2. सीबीआई के माध्यम से राज्य बनाम दाऊद इब्राहिम कासकर और अन्य (2000) 10 एससीसी 438
3. सुनील त्यागी बनाम दिल्ली सरकार और अन्य, सीआरएल. एम.सी. संख्या 5238/2013
4. जयसुख @ जयेश मुलजीभाई रणपारिया बनाम गुजरात राज्य सीआरएलआर संख्या 535/2016

(माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्रा द्वारा दिया गया)

भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत वर्तमान रिट याचिका याचिकाकर्ता द्वारा सीजेएम, प्रयागराज द्वारा पारित आदेश दिनांक 3.3.2023 को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जिसके तहत याचिकाकर्ता द्वारा वाद संख्या 1556 वर्ष 2022 (राज्य बनाम लल्लू उर्फ अब्दुल महबूब और अन्य) अंतर्गत धारा 147, 148, 307, 323, 341, 504 भा. दं. सं., थाना मऊ आइमा, जिला प्रयागराज में दायर आवेदन को खारिज कर दिया गया है।

वर्तमान रिट याचिका के उद्देश्य के लिए मामले के प्रासंगिक संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता ने दिनांक 12.8.2022 को 13:52 बजे वसीम उर्फ गब्बर और पांच अन्य नामजद आरोपियों के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज कराई,

अनुवादित

जिसमें कहा गया कि दिनांक 12.8.2022 को, शिकायतकर्ता अपने दोस्त मुन्नन के घर फातिया में भाग लेने के बाद लगभग 10:00 बजे घर वापस आ रहा था, जब आरोपी वसीम ने साजिश के तहत कार्य करते हुए, उसे और उसके साथियों को रोक लिया, और उन्होंने उसे और उसके साथियों मोहम्मद आमिर, जाफी अरसद, मोहम्मद इजहार को गाली देना शुरू कर दिया और आरोपियों के उकसाने पर, आरोपी शादाब ने उस पर गोली चला दी, जिसमें उसके बाएं हाथ पर बन्दूक की चोट आई और आरोपियों द्वारा लाठी डंडा से पिटाई करने पर मोहम्मद आमिर, मोहम्मद इजहार और जाफी अरशद के सिर में चोट आई।

शिकायतकर्ता कलामुद्दीन की चोट रिपोर्ट में, उसके बाएं हाथ पर 1.5 X 0.3 सेमी का एक गहरा घाव मांसपेशी में पाया गया था, जिसे एक्स-रे के लिए भेजा गया था, और एक्स-रे जांच के बाद, उसे दिनांक 12.8.2022 को एसआरएन अस्पताल प्रयागराज में भर्ती कराया गया और दिनांक 18.8.2022 को छुट्टी दे दी गई। डॉक्टर ने बताया है कि मरीज को दिनांक 16.8.2022 को उसके बाएं हाथ से विदेशी वस्तु को हटाकर ऑपरेशन द्वारा ठीक किया गया। अन्य घायल व्यक्तियों, जिनको भी सिर में चोट लगी थी और उनके शरीर पर काफी चोट थी, हालांकि, उनकी खोपड़ी के एक्स-रे में कोई फ्रैक्चर नहीं पाया गया था। पुलिस ने अपराध की जांच की और उपरोक्त आरोपों में चार नामजद आरोपियों के खिलाफ आरोप पत्र दिनांक 5.11.2022 को प्रस्तुत किया। हालांकि, आरोपी वसीम उर्फ गब्बर के अभी भी फरार होने के कारण, उसके खिलाफ जांच लंबित रखी गई है।

वर्तमान याचिकाकर्ता ने लंबे समय से आरोपी वसीम को पकड़ने में पुलिस की निष्क्रियता से व्यथित होकर दिनांक 23.12.2022 को पंजीकृत डाक के माध्यम से पुलिस आयुक्त और पुलिस के अन्य उच्च अधिकारियों को शिकायत दर्ज कराई, जिसमें उन्होंने कहा कि उसके खिलाफ दिनांक 13.10.2022 को एनबीडब्ल्यू जारी किया गया था, लेकिन दो महीने की अवधि बीत जाने के बाद भी उसके खिलाफ दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 82 के तहत कोई कार्रवाई नहीं की गई है और उक्त आरोपी उन्हें और उनके परिवार के सदस्यों को उसके खिलाफ दर्ज मामला वापस लेने के लिए धमका रहा है। याचिकाकर्ता ने निचली न्यायालय के समक्ष दिनांक 3.3.2023 को एक आवेदन भी दिया, जिसमें उन्होंने कहा कि इस तथ्य के बावजूद कि न्यायालय ने दिनांक 13.10.2022 को उसके खिलाफ गिरफ्तारी वारंट जारी किया था, आरोपी वसीम को पुलिस ने अभी तक गिरफ्तार नहीं किया है, लेकिन उसके बाद चार महीने बीत जाने के बाद भी पुलिस उन्हें गिरफ्तार करने में विफल रही है, और उक्त आरोपी शिकायतकर्ता और घायल गवाहों और उनके परिवार के सदस्यों को उसके खिलाफ मामले वापस लेने के लिए धमका रहा है। उन्होंने यह भी कहा कि उसके भाई पुलिस विभाग में सेवारत हैं और इस कारण उसके और पुलिस अधिकारियों के बीच यह समझौता हुआ है कि उसे गिरफ्तार नहीं किया जाएगा और उसका नाम मामले से हटा दिया जाएगा। उन्होंने प्रासंगिक कानूनी प्रावधान का पालन करके उक्त आरोपी वसीम की गिरफ्तारी सुनिश्चित करने के लिए प्रार्थना की। निचले न्यायालय ने एक गूढ़ आदेश में उक्त आवेदन

अनुवादित

को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि चूंकि मामले में जांच की गई है, इसलिए किसी व्यक्ति को जांच के दौरान गिरफ्तार करने का निर्देश नहीं दिया जा सकता है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और राज्य-प्रतिवादी के विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता को सुना और रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री का अवलोकन किया।

विद्वान अधिवक्ता ने **साकिरी वासु बनाम यूपी राज्य, 2008 एआईआर (एससी) 907** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का आश्रय लिया है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 154, 156(3), 482 के दायरे की व्याख्या की और निम्नानुसार टिप्पणी की:

> "यदि किसी व्यक्ति को शिकायत है कि पुलिस थाना धारा 154 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत उसकी प्राथमिकी दर्ज नहीं कर रहा है, तो वह लिखित में आवेदन देकर धारा 154(3) दंड प्रक्रिया संहिता के तहत पुलिस अधीक्षक से संपर्क कर सकता है। यदि इससे भी कोई संतोषजनक परिणाम न मिले, जैसे कि न तो अभी प्राथमिकी ही दर्ज नहीं हुई है, या न ही इसे दर्ज करने के बाद भी कोई उचित जांच हुई है, तो पीड़ित व्यक्ति को संबंधित विद्वान मजिस्ट्रेट के समक्ष धारा 156 (3) दंड प्रक्रिया संहिता के तहत आवेदन दायर करने की छूट है। यदि धारा 156 (3) के तहत ऐसा आवेदन मजिस्ट्रेट के समक्ष दायर किया जाता है, तो मजिस्ट्रेट प्राथमिकी दर्ज करने का निर्देश दे सकता है और ऐसे मामले में, जहां पीड़ित व्यक्ति के अनुसार, कोई उचित जांच नहीं की गई थी, उचित जांच करने का निर्देश भी दे सकता है। उसी प्रावधान के तहत मजिस्ट्रेट उचित जांच सुनिश्चित करने के लिए जांच की निगरानी भी कर सकता है।

भले ही प्राथमिकी दर्ज हो गई हो और भले ही पुलिस ने जांच की हो, या वास्तव में जांच कर रही हो, जो पीड़ित व्यक्ति को उचित नहीं लग रही है, तो ऐसा व्यक्ति दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156 (3) के तहत मजिस्ट्रेट से संपर्क कर सकता है, और यदि मजिस्ट्रेट संतुष्ट है, तो वह एक उचित जांच का आदेश दे सकता है और अन्य उपयुक्त कदम उठा सकता है और ऐसे आदेश पारित कर सकता है, जैसा वह एक उचित जांच सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक समझता है। ये सभी शक्तियां एक मजिस्ट्रेट को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के तहत प्राप्त हैं।

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3), मजिस्ट्रेट द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय XII के अंतर्गत पुलिस द्वारा अपने कर्तव्यों के निर्वहन पर जांच का प्रावधान करती है। ऐसे मामलों में

अनुवादित

जहां मजिस्ट्रेट को पता चलता है कि पुलिस ने मामले की जांच करने का अपना कर्तव्य बिल्कुल नहीं किया है, या संतोषजनक ढंग से नहीं किया है, वह पुलिस को जांच ठीक से करने का निर्देश जारी कर सकता है, और इसकी निगरानी कर सकता है।

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) एक मजिस्ट्रेट में ऐसी सभी शक्तियों को शामिल करने के लिए पर्याप्त रूप से व्यापक है जो एक उचित जांच सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक हैं, और इसमें प्राथमिकी दर्ज करने का आदेश देने की शक्ति और यदि मजिस्ट्रेट संतुष्ट है कि उचित जांच नहीं की गई है, या पुलिस द्वारा उचित जांच नहीं की जा रही है, तो एक उचित जांच का आदेश देने की शक्ति शामिल है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3), हालांकि संक्षिप्त शब्दों में है, हमारी राय में, बहुत व्यापक है और इसमें ऐसी सभी आकस्मिक शक्तियां शामिल होंगी जो उचित जांच सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक हैं।"

माननीय सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त कथन का अध्ययन करने से पता चलता है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह सुनिश्चित करने के लिए कि जांच ठीक से की जा रही है, जांच की निगरानी करने के लिए मजिस्ट्रेट की शक्ति को मान्यता दी है (हालांकि वह स्वयं जांच नहीं कर सकता)। पुलिस द्वारा की जा रही जांच की निगरानी का दायरा क्या होगा, यह वर्तमान संदर्भ में समझ का विषय है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 73 में प्रावधान है कि मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट या प्रथम श्रेणी का मजिस्ट्रेट अपने स्थानीय क्षेत्राधिकार में किसी भी व्यक्ति को किसी भी फरार दोषी, घोषित अपराधी या किसी ऐसे व्यक्ति जिस पर गैर-जमानती अपराध का आरोप है और वह गिरफ्तारी से बच रहा है, की गिरफ्तारी के लिए वारंट जारी करने का निर्देश दे सकता है। इसलिए धारा को पढ़ने मात्र से पता चलता है कि मजिस्ट्रेट के पास गैर-जमानती वारंट (एनबीडब्ल्यू) जारी करने और जिन शर्तों के तहत वह इसे जारी कर सकता है का विवेकाधिकार है। जब भी विवेकाधिकार का प्रश्न आता है तो इसका न्यायोचित रूप से प्रयोग किया जाना चाहिए। आम तौर पर यह पाया जाता है कि पुलिस अधिकारी किसी वांछित आरोपी के खिलाफ गिरफ्तारी वारंट जारी करने के लिए पहले न्यायालय में इस आधार पर आते हैं कि वह गिरफ्तारी से बच रहा है और उसने गैर जमानती अपराध किया है क्योंकि एनबीडब्ल्यू जारी करने में किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता, जो कि किसी व्यक्ति का सर्वाधिक कीमती अधिकार है, में कटौती या वंचित करना शामिल है, इसलिए न्यायालयों को एनबीडब्ल्यू जारी करने से पहले सावधान रहना चाहिए। न्यायालय को, स्वतंत्रता, जो कि किसी व्यक्ति के लिए बहुमूल्य है, एवं लोक कल्याण, हित तथा कानून और व्यवस्था का संरक्षण, जहां एक ऐसे अभियुक्त को गिरफ्तार करने की आवश्यकता होती है जिसने कथित रूप से कोई गैर

अधिवक्ता दिव

जमानती या गंभीर अपराध किया हो, के बीच संतुलन बनाए रखना होता है।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **सीबीआई के माध्यम से राज्य बनाम दाऊद इब्राहिम कासकर और अन्य, (2000) 10 एससीसी 438** में इस मुद्दे पर विचार किया कि क्या जांच के चरण में गिरफ्तारी वारंट जारी किया जा सकता है, और अंत में इसे यह कहते हुए सुलझाया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 73 एक मजिस्ट्रेट को वारंट जारी करने की शक्ति प्रदान करती है और इसका प्रयोग वह जांच के दौरान भी कर सकता है। इस बिंदु को समझाने के लिए, न्यायालय ने संहिता की धारा 155 का उदाहरण दिया, जो यह प्रावधान करती है कि पुलिस अधिकारी मजिस्ट्रेट के आदेश से एक गैर संज्ञेय मामले की जांच कर सकता है और जांच के संबंध में उन्हीं शक्तियों का प्रयोग कर सकता है जो वह एक संज्ञेय मामले में कर सकता है, केवल वह वारंट के बिना गिरफ्तारी नहीं कर सकता है। यदि मजिस्ट्रेट के आदेश से पुलिस किसी गैर-संज्ञेय और गैर-जमानती अपराध (जैसे भा.दं.सं. की धारा 466 या 467) की जांच शुरू करती है और जांच के दौरान जांच अधिकारी उस अपराध के आरोपी व्यक्ति को गिरफ्तार करना चाहता है तो उसे मजिस्ट्रेट से गिरफ्तारी का वारंट मांगना होगा और प्राप्त करना होगा। यदि आरोपी गिरफ्तारी से बचता है तो उसकी उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए जांच अधिकारी के पास एकमात्र रास्ता मजिस्ट्रेट से धारा 73 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करने और उसके बाद उद्घोषणा और कुर्की से संबंधित शक्तियों का प्रयोग करने के लिए कहना होगा। ऐसी स्थिति में, मजिस्ट्रेट धारा 73 के तहत अपनी शक्ति का वैध रूप से प्रयोग कर सकता है क्योंकि जिस व्यक्ति को पकड़ा जाना है वह गैर-जमानती अपराध का आरोपी है और वह गिरफ्तारी से बच रहा है। यह तथ्य कि पुलिस अधिकारी दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 155 के तहत मजिस्ट्रेट के वारंट के बिना गिरफ्तार कर सकता है, का तात्पर्य यह है कि मजिस्ट्रेट दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 155 के चरण में भी वारंट जारी कर सकता है।

संहिता की धारा 73 सामान्य प्रयोग की है और जांच के दौरान न्यायालय इसके तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए, ऐसे व्यक्ति को, अन्य बातों के साथ-साथ, गिरफ्तार करने के लिए वारंट जारी कर सकता है, जो गैर-जमानती अपराध का आरोपी है और गिरफ्तारी से बच रहा है। चूंकि वारंट केवल न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने और केवल जांच में सहायता के लिए पुलिस के समक्ष आरोपी को पेश करने के लिए जारी किया जाता और जा सकता है, इसलिए पुलिस अभिरक्षा में हिरासत में रखने के लिए अधिकार न तो स्वाभाविक रूप से दिया जाना चाहिए और न ही पुलिस के कहने पर, बल्कि उनके सामने प्रस्तुत सामग्री के आधार पर न्यायिक विवेक के प्रयोग के बाद ही दिया जाना चाहिए। पुलिस, जिसे अन्यथा पुलिस अधिनियम की धारा 24 के तहत दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 41 के अंतर्गत दी गई शक्ति के आधार पर ऐसे व्यक्ति को वारंट के बिना गिरफ्तार करने का अधिकार है, के कहने पर, गैर-जमानती अपराध करने के संदेह वाले किसी आरोपी के लिए गिरफ्तारी का वारंट मांगने के पीछे का कारण, यह है कि यह संभव

अनुवादित

हो सकता है कि जांच पूरी करने के बाद भी आरोप-पत्र प्रस्तुत करने के चरण में भी पुलिस आरोपी को गिरफ्तार करने में असमर्थ हो; अभियुक्त फरार ही रहता हो तो जांच अधिकारी न्यायालय से अभियुक्त के फरार होने की स्थिति में ही इस दलील के साथ आरोप-पत्र को स्वीकार करने के लिए कह सकता है, कि अभियुक्त का पता लगाने के पर्याप्त प्रयासों के बावजूद वह उसे गिरफ्तार नहीं कर सका और वह न्यायालय से निष्पादित गिरफ्तारी को वापस लेने और अभियुक्त के खिलाफ दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 82 के तहत उद्घोषणा जारी करने के लिए कहता है; इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 82 के तहत प्रक्रिया केवल मजिस्ट्रेट द्वारा गैर जमानती वारंट जारी करने के बाद और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 82 के तहत प्रक्रिया जारी करने के एक महीने की समाप्ति के बाद जारी की जा सकती है और इसके बाद ही दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 83 के तहत प्रक्रिया जारी की जा सकती है। अभियोजन द्वारा पेश किए गए गवाहों के साक्ष्य की रिकॉर्डिंग पर न्यायालय धारा 299, दंड प्रक्रिया संहिता के तहत ऐसे अभियुक्त को फरार घोषित करने के बाद उसके खिलाफ मुकदमा चलाने पर रोक लगा सकता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 82 और 83 के तहत उद्घोषणा और कुर्की का प्रावधान गिरफ्तारी से बच रहे अभियुक्त को पेश होने के लिए मजबूर करने के लिए है; पुलिस फरार आरोपी के खिलाफ दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 82/83 के तहत कार्यवाही तब तक शुरू नहीं कर सकती है जब तक कि उससे पहले न्यायालय से गिरफ्तारी का वारंट जारी न हो जाए। नतीजतन, अगर पुलिस को ऐसे व्यक्ति को पकड़ने के लिए बलपूर्वक उपाय करना है तो उसे धारा 73 के तहत गिरफ्तारी का वारंट जारी करने के लिए न्यायालय का दरवाजा खटखटाना होगा और अगर जरूरत हो तो अध्याय VI के भाग 'सी' (धारा 83 से 86) के प्रावधानों का आह्वान करना होगा।

दिल्ली उच्च न्यायालय ने 28 जून, 2021 को निर्णित **सुनील त्यागी बनाम दिल्ली एनसीटी सरकार और अन्य** आपराधिक प्रकीर्ण वाद संख्या 5238 वर्ष 2013 में यह सुनिश्चित करने के लिए व्यापक दिशा-निर्देश निर्धारित किए हैं कि जांच के चरण के दौरान केवल सही व्यक्तियों के खिलाफ एनबीडब्ल्यू जारी किए जाएं, जो कि इस प्रकार हैं:

जहां अपराध संज्ञेय और गैर-जमानती है और प्रस्तावित वांछित गिरफ्तारी से बच रहा है, वहाँ गिरफ्तारी वारंट जारी करना।

- वारंट के लिए आवेदन करते समय, जांच अधिकारी को प्रस्तावित वांछित को गिरफ्तार करने के लिए किए गए अपने प्रयासों को मजिस्ट्रेट को दिखाना चाहिए।
- जांच अधिकारी को यह दिखाना चाहिए कि प्रस्तावित वांछित सामान्य रूप से किसी ऐसे पते पर रह रहा है या हाल ही में रह रहा था जो किसी भी तरह से जांच अधिकारी के ज्ञान में है और अब प्रस्तावित वांछित उस पते पर उपलब्ध नहीं है क्योंकि वह विचाराधीन मामले में हिरासत से

अनुवादित

बचने के लिए जानबूझकर ऐसा कर रहा है।

- किसी प्रस्तावित वांछित के खिलाफ केवल इस आधार पर कोई वारंट जारी नहीं किया जाएगा कि वह जांच अधिकारी/पुलिस अधिकारियों के लिए जांच में शामिल होने के उद्देश्य से उपलब्ध नहीं है।
- जांच अधिकारी को इस मानदंड को पूरा करना चाहिए कि उसके विश्वास में और जांच के दौरान उसके/पिछले जांच अधिकारी द्वारा एकत्र की गई सामग्री के आधार पर, उसकी यह राय है कि प्रस्तावित वांछित मामले में एक आरोपी के रूप में शामिल है।
- केवल एक मजबूत संदेह या गुप्त मुखबिर की सूचना को गिरफ्तारी का वारंट जारी करने का आधार नहीं माना जा सकता है।
- प्रस्तावित वांछित के खिलाफ तब तक कोई वारंट जारी नहीं किया जाएगा जब तक कि पुलिस अधिकारी ने लिखित में स्पष्ट रूप से नहीं कहा है कि गिरफ्तारी के आधार मौजूद हैं और ऐसे आधार न केवल कानूनी रूप से स्वीकार्य हैं बल्कि न्यायालय में उसके खिलाफ आरोप पत्र दायर करने के लिए भी पर्याप्त हैं।
- जांच अधिकारी को यह दिखाना होगा कि उनकी राय में प्रस्तावित वांछित से हिरासत में पूछताछ प्रश्नगत अपराध की न्यायोचित और निष्पक्ष जांच के लिए आवश्यक है।
- मजिस्ट्रेट को प्रस्तावित वांछित की प्रथम दृष्टया संलिप्तता, उसकी हिरासत में पूछताछ की आवश्यकता और इस बात के संबंध में अपनी संतुष्टि दर्ज करनी होगी कि वह अपनी गिरफ्तारी से बच रहा है।
- इसके बाद मजिस्ट्रेट संज्ञेय और गैर जमानती अपराधों में जांच के चरण में भी गिरफ्तारी का वारंट जारी करने के अपने अधिकारों का प्रयोग कर सकता है।
- ऐसी प्रार्थनाओं का स्टेशन हाउस ऑफिसर और न्यायालय के सहायक लोक अभियोजक/अतिरिक्त लोक अभियोजक/मुख्य लोक अभियोजक द्वारा भी इस घोषणा के साथ समर्थन किया जाएगा कि वे इस बात से संतुष्ट हैं कि यह एनबीडब्ल्यू जारी करने के लिए उपयुक्त मामला है।
- जांच अधिकारी जांच के दौरान अपने द्वारा एकत्रित सामग्री को न्यायालय के समक्ष साझा करेगा जिसके आधार पर आरोपी का अपराध से संबंध स्थापित होता है।

गुजरात उच्च न्यायालय ने भी आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 535 वर्ष 2016, **जयसुख @ जयेश मुलजीभाई रणपारिया बनाम गुजरात राज्य** में दिनांक 20.10.2016 के निर्णय में यह माना कि संहिता की धारा 73 सामान्य प्रयोग की है और जांच के दौरान न्यायालय इसके तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए, अन्य बातों के साथ-साथ, ऐसे व्यक्ति को गिरफ्तार करने के लिए वारंट जारी कर सकता है, जिस

अशोधित

पर गैर-जमानती अपराध का आरोप है और जो गिरफ्तारी से बच रहा है। यह स्थापित कानून है कि मजिस्ट्रेट या आपराधिक न्यायालयों को पुलिस द्वारा अपने वैधानिक कर्तव्य के पालन में की जाने वाली जांच की प्रक्रिया में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। हालांकि, मजिस्ट्रेट द्वारा जांच की प्रक्रिया की निगरानी कानून के तहत निषिद्ध नहीं है, बल्कि इसे सकीरी वासु (सुप्रा) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के तर्कसंगत निर्णय द्वारा मान्यता प्राप्त है, जिसमें ऐसी शक्ति दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156 (3) के साथ पढ़ी गयी है। यह जांच के दौरान मजिस्ट्रेट की भूमिका और उनके सामाजिक कार्य की मान्यता को दर्शाता है; जांच में उनकी सार्थक भागीदारी वांछनीय है। इसके साथ ही सर्वोच्च न्यायालय ने चेतावनी दी है कि मजिस्ट्रेट को स्वयं मामले की जांच नहीं करनी चाहिए। हालांकि, मजिस्ट्रेट को स्वतंत्र और निष्पक्ष सुनवाई सुनिश्चित करने के उद्देश्य से जांच की निगरानी करने का अधिकार है। **मलिमथ समिति** ने भी यह सिफारिश की है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 के तहत एक प्रावधान जोड़ा जा सकता है, जिससे मजिस्ट्रेट को आईओ को जांच के संबंध में पुलिस को निर्देश जारी करने का अधिकार मिल सके।

वर्तमान मामले में, विद्वान मजिस्ट्रेट ने बहुत ही रहस्यमय और सरसरी ढंग से कानून के स्थापित प्रस्ताव पर विचार किए बिना याचिकाकर्ता द्वारा किए गए आवेदन को खारिज कर दिया।

याचिकाकर्ता के अनुसार, फरार आरोपी वसीम उर्फ गब्बर को उसी न्यायालय ने दिनांक 13.10.2022 को एनबीडब्ल्यू जारी किया था और चार महीने बीत जाने के बाद भी आरोपी को पकड़ा नहीं जा सका। यदि विद्वान मजिस्ट्रेट या आपराधिक न्यायालयों ने आरोपी के खिलाफ गिरफ्तारी का वारंट जारी किया है तो न्यायालय का यह भी कर्तव्य है कि वह उक्त वारंट का पता लगाए कि पुलिस ने फरार आरोपी पर वारंट तामील कराने के लिए क्या कार्रवाई की है, क्या वह फरार हो गया है या गिरफ्तारी से बच रहा है, और इस स्थिति में, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 82 के तहत प्रक्रिया उसके खिलाफ वांछनीय है या नहीं। वह उस उद्देश्य के लिए आईओ को केस डायरी पेश करने का निर्देश भी दे सकता है।

यह सही है कि न्यायालय जांच के दौरान पुलिस को किसी आरोपी को गिरफ्तार करने के लिए मजबूर करने या निर्देश देने के लिए या आईओ को शामिल किए बिना और कोड के अध्याय 6-सी के तहत आवश्यक कानूनी औपचारिकताओं को पूरा किए बिना आरोपी के खिलाफ दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 82/83 के तहत प्रक्रिया जारी करने के लिए अपने आप से जबरी प्रक्रिया जारी नहीं कर सकती है, फिर भी मजिस्ट्रेट जांच की निगरानी कर सकते हैं और ऊपर बताए अनुसार पुलिस से रिपोर्ट मांग सकते हैं, अन्यथा निष्पक्ष जांच के मानदंड खतरे में पड़ जाएंगे और सह-आरोपी व्यक्तियों, जिनके खिलाफ पहले ही आरोप पत्र दायर किया जा चुका है, के मामले की सुनवाई में भी देरी होने की संभावना है। इसलिए, पूर्वगामी

अनुवादित

चर्चाओं के आलोक में, आक्षेपित आदेश संधारणीय नहीं है और रद्द किये जाने योग्य है।

वर्तमान रिट याचिका स्वीकार की जाती है। सीजेएम, प्रयागराज द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 3.3.2023 को रद्द किया जाता है।

न्यायालय को निर्देश दिया जाता है कि वह उपरोक्त टिप्पणियों के आलोक में, शिकायतकर्ता तथा अन्य हितधारकों को सुनवाई का अवसर प्रदान करते हुए, याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 3.3.2023 को प्रस्तुत आवेदन पर यथाशीघ्र नए सिरे से निर्णय ले।

(2023) 6 ILRA 559

मूल अधिकार क्षेत्र

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 31.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या 5577 वर्ष 2023

आकाश सिंह **आवेदक**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **विपक्षी पक्ष**

आवेदक के अधिवक्ता: श्री माता फेर

विपक्षी पक्ष के अधिवक्ता: जी.ए., श्री आर.एस. दुबे, सविता दुबे

दंड विधि- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 482- ऐसे मामले में अभियोजन पक्ष द्वारा भरोसा की गई सामग्री की सत्यता पर निष्कर्ष, जहां अभियोजन पक्ष द्वारा लगाए गए आरोप एक संज्ञेय अपराध का खुलासा करते हैं, धारा 482 सीआरपीसी के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते समय उच्च न्यायालय के लिए विचारणीय नहीं है- यह स्पष्ट है कि विपक्षी पक्ष संख्या 2 ने प्रतिशोध लेने और आवेदक पर पूर्व दुश्मनी के लिए दबाव डालने के लिए न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था, जिसका उल्लेख 04.04.2022 के आदेश में किया गया है और विपक्षी पक्ष के विद्वान अधिवक्ता द्वारा इसका विरोध नहीं किया जा सका। इस प्रकार, वर्तमान मामला भजन लाल में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बताए गए पैराग्राफ-108 की श्रेणी (7) के अंतर्गत आता है। (पैरा 16 और 20)

याचिका स्वीकार की गई। (ई-15)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. हरियाणा के स्टेट. और अन्य भजन लाल व अन्य एआईआर 1992 एससी 604
2. आर.पी. कपूर बनाम पंजाब राज्य एआईआर 1960 एससी 866
3. आयशर ट्रैक्टर्स लिमिटेड बनाम हरिहर सिंह (2008) 16 एससीसी 763
4. पश्चिम बंगाल राज्य बिजली बोर्ड बनाम दिलीप कुमार रे एआईआर 2007 एससी 976
5. नीहारिका इंफ्रास्ट्रक्चर (पी) लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य 2021 एससीसी ऑनलाइन 315 एआईआर 2021 एससी 5711
6. महेंद्र के.सी. बनाम कर्ण राज्य व अन्य एआईआर 2021 एससी 5711
7. शफिया खान उर्फ शकुंतला प्रजापति बनाम स्टेट ऑफ उत्तर प्रदेश एवं अन्य (2022) 4 एससीसी 549

अनुवादित

8. परबतभाई अहीर @ परबतभाई भीमसिंहभाई करमूर और अन्य बनाम गुजरात के स्टेट. एवं अन्य (2017) 9 एससीसी 641

9. रामवीर उपाध्याय एवं अन्य बनाम स्टेट ऑफ यू.पी. एवं अन्य 2022 एससीसी ऑनलाइन 484

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान द्वारा दिया गया)

1. आवेदक ने सीआरपीसी की धारा 482 के तहत यह आवेदन प्रस्तुत किया है, जिसमें सत्र वाद संख्या 538/2022 (शिकायत संख्या 50 / 2022), आईपीसी की धारा 354 और लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम,2012 की धारा 7/8 थाना तरकुलवा, जनपद देवरिया की कार्यवाही को चुनौती देने के साथ ही दिनांक 1.11.2022 को उक्त मामले में अपर सत्र न्यायाधीश / विशेष न्यायाधीश, पॉक्सो, न्यायालय संख्या 1, देवरिया द्वारा पारित समन आदेश को चुनौती दी गई है, जो विशेष न्यायाधीश के न्यायालय (पॉक्सो अधिनियम), न्यायालय संख्या 1, देवरिया की अदालत में लंबित है।

2. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि सीआरपीसी की धारा 156 (3) के तहत एक आवेदन विरोधी पक्ष संख्या 2 द्वारा दिनांक 10.02.2022 को आवेदक - आकाश सिंह पुत्र श्रीगणेश सिंह, रितेश सिंह पुत्र अरविंद सिंह, बाल्मीकि पुत्र पवहारी और आकाश के चचेरे भाई कृष्णा सिंह के विरूद्ध यह आरोप लगाते हुए दायर किया गया था कि उपरोक्त सभी व्यक्तियों ने विरोधी पक्ष संख्या 2 की 15 वर्षीय पुत्री को छेड़ा था, जो कक्षा-8 की छात्रा है, जब वह स्कूल जाती थी और स्कूल से लौटती थी। वे अभद्र टिप्पणियाँ करते थे, उसे रोकने की कोशिश करते थे और अपने मोबाइल से उसकी तस्वीरें खींचते थे। आगे यह भी आरोप लगाया गया है कि दिनांक 13.01.2022 को प्रातः लगभग 06:00 बजे जब विरोधी पक्ष संख्या 2 की पुत्री बरामदे में सो रही थी, तभी आकाश सिंह घर में घुस आया और उसके साथ आपत्तिजनक हरकतें करने लगा। उसने उसकी लज्जा भंग करने की भी कोशिश की। पीड़िता की चीख सुनकर विरोधी पक्ष संख्या 2 मोहन शर्मा अपनी पत्नी उर्मिला देवी के साथ उस ओर भागे, उन्हें पास आता देख आकाश अभद्र भाषा का प्रयोग करते हुए वहां से भाग गया। उसने पीड़िता को उसकी तस्वीरें और वीडियो वायरल करने की धमकी दी और ब्लैकमेल भी किया। यह भी आरोप लगाया गया है कि पीड़िता सदमे की स्थिति में थी । उक्त आवेदन को आदेश दिनांक 04.04.2022 द्वारा शिकायती वाद माना गया है और सीआरपीसी की धारा 200 एवं 202 के तहत बयान दर्ज कर आवेदक को तलब किया गया है।

3. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि वर्तमान मामला पक्षकारों के बीच पहले के विवाद के कारण प्रतिशोध लेने के एक गुप्त उद्देश्य से दुर्भावनापूर्ण रूप से दाखिल किया गया है। दिनांक 04.04.2022 के एक आदेश पर जोर देते हुए जिसके द्वारा सीआरपीसी की धारा 156 (3) के तहत आवेदन को शिकायती वाद माना गया है, उनका कहना है कि पुलिस स्टेशन से एक पुलिस आख्या मांगी गई थी, जिसके अनुसार विरोधी पक्ष संख्या 2 के आस-पास आवेदक का घर है। विरोधी पक्ष संख्या 2

अनुवादित

का भतीजा अर्थात्, ऋषि शर्मा ने गणेश सिंह (आवेदक की बहन) की बेटी को बहला-फुसलाकर भगा ले गया था। जब वह वापस लौटी तो 07.03.2021 को दोनों पक्षों के बीच समझौता हो गया। विरोधी पक्ष संख्या 2 भी उपरोक्त समझौते का गवाह था। दिनांक 10.06.2021 को एक घटना घटित हुई जिसमें विरोधी पक्ष संख्या 2 और आवेदक के परिवार के बीच झगड़ा हो गया। जिसके संबंध में पलकिया शर्मा (विरोधी पक्ष संख्या 2 के परिवार से संबंधित) द्वारा सूचना दी गई, जिसके संबंध में दिनांक 29.01.2022 को प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई गई, जिसे अपराधिक वाद संख्या 36/2022 के रूप में आईपीसी की धाराओं 147, 148, 323, 308, 427, 452, 504, 506 के तहत पंजीकृत किया गया। उक्त घटना के संबंध में पुलिस कर्मियों द्वारा जांच की जा रही थी। गणेश सिंह (आवेदक के पिता) ने विरोधी पक्ष संख्या 2 और चार अन्य के खिलाफ आईपीसी की धाराओं 323, 504, 506 के तहत एनसीआर संख्या 51/2021 दर्ज की थी। पुलिस आख्या में यह भी कहा गया है कि दोनों पक्षों ने घटना को बढ़ा-चढ़ाकर बताकर एक-दूसरे के खिलाफ मामला दर्ज करने के लिए आवेदन दिया है। दिनांक 31.01.2022 की घटना के संबंध में पुलिस आख्या में कहा गया है कि प्रथम दृष्टया ऐसी कोई घटना घटित नहीं हुई है तथा उक्त घटना के लिए कोई वाद भी दर्ज नहीं कराया गया है।

4. आपराधिक वाद संख्या 36/2022 के साथ-साथ एनसीआर संख्या 51 / 2021 के अभिलेख संबंधित अदालत के समक्ष थे, जिन्होंने 04.04.2022 को आदेश पारित किया था। एनसीआर की चर्चा भी उपरोक्त आदेश में है, दिनांक 21.10.2021 की घटना के संबंध में पुरानी दुश्मनी के कारण आवेदक के पिता द्वारा मोहन शर्मा एवं उसकी पत्नी के विरूद्ध एनसीआर क्रमांक 51 / 2021 दर्ज कराया गया था, जिसमें मारपीट हुई थी और अभद्र भाषा का प्रयोग किया गया और आवेदक के परिजनों व पिता के साथ मारपीट की गयी। 31.01.2022 की वर्तमान घटना के संबंध में, जो सुबह 06:00 बजे घटित हुई, जैसा कि आरोप लगाया गया है, विरोधी पक्ष संख्या 2 द्वारा सीआरपीसी की धारा 156 (3) के तहत एक आवेदन दायर किया गया है, जिसमें पहले की घटना या एक-दूसरे के खिलाफ दर्ज मामलों के बारे में कुछ भी उल्लेख नहीं किया गया है। संबंधित अदालत ने यह भी देखा है कि आवेदन विरोधी पक्ष संख्या 2 द्वारा उपरोक्त तथ्यों को छुपाकर दायर किया गया है, इस तरह संबंधित न्यायालय में साफ-सुथरे हाथों से संपर्क नहीं किया गया है।

5. विरोधी पक्ष संख्या 2 द्वारा दायर उपरोक्त आवेदन के साथ पूर्व की घटना, समझौता एवं पुलिस आख्या से संबंधित अभिलेख भी दाखिल नहीं किया गया है। दिनांक 31.01.2022 की घटना का बढ़ा- चढ़ाकर प्रस्तुतीकरण किया गया है। प्रकरण को असंज्ञेय पाते हुए आदेश दिनांक 04.04.2022 पारित किया गया। न्यायालय ने उक्त को शिकायती मामला मानते हुए दिनांक 04.04.2022 को आदेश पारित किया है।

6. दिनांक 04.04.2022 के आदेश पर जोर देते हुए, जिसके तहत सीआरपीसी की धारा 156 (3) के तहत आवेदन को शिकायती मामले के

अनुवादित

रूप में माना गया है, आवेदक के अधिवक्ता का कहना है कि सीआरपीसी की धारा 200 के तहत बयान में पहले की दुश्मनी के संबंध में भिन्नताएं हैं। विरोधी पक्ष संख्या 2 ने कहा है कि दोनों पक्षों के बीच कोई दुश्मनी नहीं है, जबकि पूर्व की घटना, उसके लिए दोनों के बीच समझौता, एनसीआर और अन्य मामलों का विवरण दिया गया है। इस प्रकार, उपरोक्त मामले से पता चलता है कि वर्तमान मामला दुर्भावनापूर्ण इरादे से दर्ज किया गया है। उन्होंने आगे कहा कि न्यायालय ने उपरोक्त आदेश पारित करते समय यह भी देखा है कि वास्तविक कहानी के बारे में तथ्यों को छुपाया गया है और विरोधी पक्ष संख्या 2 ने साफ हाथों से न्यायालय से संपर्क नहीं किया है, जिससे उपरोक्त विरोधी पक्ष संख्या 2 का आचरण प्रदर्शित होता है, जिसने उत्पीड़न के उद्देश्य से और उस घटना का प्रतिशोध लेने के लिए वर्तमान मामला दर्ज कराया है, जिसमें आवेदक की बहन को विरोधी पक्ष संख्या 2 के भतीजे ने बहला-फुसलाकर भगा ले गया था, इसलिए दबाव डालने के लिए और जवाबी कार्रवाई के रूप में, वर्तमान मामला कुछ अन्य मामलों के साथ दर्ज किया गया है जैसा कि दिनांक 04.04.2022 के आदेश में वर्णित है।

7. सीआरपीसी की धारा 202 के तहत दर्ज किए गए पीड़िता के बयानों से यह स्पष्ट है कि हालांकि वीडियो बनाने और तस्वीरें लेने का आरोप है, लेकिन उसने खुद ऐसी कोई तस्वीर और वीडियो नहीं देखी है। विरोधी पक्ष संख्या 2 ने पहले की दुश्मनी को छुपाते हुए सीआरपीसी की धारा 156(3) के तहत एक आवेदन दायर करके दुर्भावनापूर्ण कार्यवाही शुरू की है, जो उसकी मंशा के बारे में बहुत कुछ बताता है, इसलिए, ऐसा कहा जा सकता है कि विरोधी पक्ष संख्या 2 ने साफ हाथों से संबंधित अदालत से संपर्क नहीं किया है, जैसा कि दिनांक 04.04.2022 के आदेश में देखा गया है। पीड़िता ने अपने परिवार और विरोधी पक्ष संख्या 2 के परिवार के बीच किसी लड़ाई से भी इनकार किया है जो वास्तविक स्थिति से भिन्नता भी दर्शाता है।

8. आवेदक को इस तथ्य पर ध्यान देते हुए बुलाया गया है कि वर्तमान मामला झूठा और दुर्भावनापूर्ण अभियोजन का मामला है, इसलिए, सर्वोच्च न्यायालय के हरियाणा राज्य और अन्य बनाम भजन लाल और अन्य; आरपी कपूर बनाम पंजाब राज्य और ऐशर ट्रैक्टर्स लिमिटेड बनाम हरिहर सिंह के मामलों में फैसले पर भरोसा करते हुए आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि कार्यवाही अभिखंडित की जा सकती है क्योंकि यह आवेदक पर दबाव डालने और प्रतिशोध लेने के गलत इरादे से शुरू की गई है।

9. दूसरी ओर, विरोधी पक्ष संख्या 2 के लिए विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि सीआरपीसी की धारा 156 (3) के तहत दायर किए गए आवेदन के संस्करण से, जिसे एक शिकायती मामले के रूप में माना गया है, इसे सीआरपीसी की धारा 200 और 202 के तहत दर्ज दिए गए बयानों द्वारा समर्थित किया जा रहा है। प्रथम दृष्टया अपराध बनता है, इसलिए, प्रार्थना के अनुसार कोई राहत देने के लिए न्यायालय द्वारा किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

अप्रमाणित

10. मैंने आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री माता फेर तिवारी, राज्य के लिए विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री अमित सिंह चौहान और विरोधी पक्ष संख्या 2 की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री आरएस दूबे और श्रीमती सविता दूबे को सुना ।

11. मामले के गुण-दोष पर आगे बढ़ने से पहले, पश्चिम बंगाल राज्य विद्युत बोर्ड बनाम दिलीप कुमार रे के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा परिभाषित दुर्भावनापूर्ण अभियोजन के अर्थ को समझना उचित होगा। उक्त निर्णय का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:

"14.... ... ,

दुर्भावनापूर्ण । द्वेष या बुरे इरादे से किया गया; इच्छा से; द्वेष में लिप्त होना, वैमनस्यता रखना, या शत्रुता रखना, ईर्ष्यालु, हृदय में घातक; अकारण क्षति पहुंचाना, जानबूझकर या बिना कारण के किया गया, या न केवल जानबूझकर और आशय से किया गया, बल्कि क्रूरता, प्रतिशोध की शत्रुता से किया गया; किसी ज्ञात दायित्व की जानबूझकर उपेक्षा करते हुए किया गया।

"दुर्भावनापूर्ण" का अर्थ है निश्चित घृणा के साथ, या बुरे इरादे या उद्देश्य से किया गया कार्य; अचानक आवेश का परिणाम नहीं ।

*** *** ***

कानूनी प्रक्रिया का दुर्भावनापूर्ण दुरुपयोग। कानूनी प्रक्रिया का दुर्भावनापूर्ण दुरुपयोग किसी ऐसे उद्देश्य को पूरा करने के लिए प्रक्रिया का दुर्भावनापूर्ण दुरुपयोग है जो न्यायालय के आदेश द्वारा आवश्यक या आदेशित नहीं है - नियमित रूप से जारी प्रक्रिया की दुर्भावनापूर्ण विकृति, जिससे अनुचित परिणाम सुरक्षित होता है।

*** *** ***

दुर्भावनापूर्ण अभियोजन - द्वेष । द्वेष का अर्थ है सार्वजनिक न्याय या निजी अधिकार की पुष्टि करने की इच्छा के अलावा कोई अनुचित या अप्रत्यक्ष उद्देश्य। जरूरी नहीं कि इसमें शत्रुता, दुर्भावना या वैमनस्यता की भावना हो । यह संपार्श्विक लाभ प्राप्त करने की इच्छा के कारण हो सकता है। दुर्भावनापूर्ण अभियोजन के लिए कार्रवाई के मामले में ध्यान में रखे जाने वाले सिद्धांत ये हैं: द्वेष केवल जानबूझकर गलत कार्य करना नहीं है, बल्कि यह स्थापित किया जाना चाहिए कि प्रतिवादी मुख्य दुश्मनी से प्रेरित था, अर्थात, कहा जा सकता है कि दुर्भावनापूर्ण, वैमनस्यतापूर्ण या कोई अप्रत्यक्ष या अनुचित उद्देश्य। लेकिन यदि प्रतिवादी के पास आपराधिक मुकदमा शुरू करने का उचित या संभावित कारण है तो किसी भी प्रकार की दुर्भावना उसे नुकसान के लिए उत्तरदायी नहीं बनाएगी । उचित और संभावित कारण ऐसा होना चाहिए जो एक विवेकशील और उचित व्यक्ति के दिमाग पर काम करे; 'द्वेष' और 'उचित और संभावित कारण की चाहत' का संदर्भ आपराधिक कार्यवाही शुरू होने की तिथि पर प्रतिवादी के दिमाग की स्थिति से है और उन्हें साबित करने का दायित्व वादी पर है।

"दुर्भावनापूर्ण अभियोजन " की अन्य परिभाषाएँ

"एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति के विरुद्ध गलत या अनुचित उद्देश्य से और इसे बनाए

अनुवादित

रखने के संभावित कारण के बिना शुरू की गई न्यायिक कार्यवाही।"

"एक अभियोजन दुर्भावना से शुरू हुआ, बिना किसी संभावित कारण के यह विश्वास करने के लिए कि यह सफल हो सकता है और जो अंततः विफलता में समाप्त होता है ।"

"अभियोजन जानबूझकर और निश्चित प्रयोजन के साथ, अभियोजक को कुछ लाभ पहुंचाने के लिए या पूरी तरह से लापरवाही या अकारण शुरू किया गया है, अगर यह एक ही समय में नायक के ज्ञान के अनुसार गलत और गैरकानूनी है, और वह भी संभावित कारण के बिना।"

"अपराध के किसी ऐसे आरोप पर अभियोजन जो जानबूझकर, अकारण या लापरवाह है या अभियोजक के कर्तव्य और अधिकार की भावना के विरुद्ध है या जिसके बारे में वह जानता है या जानने के लिए बाध्य है, गलत है और सार्वजनिक नीति के निर्देशों के विरुद्ध है ।"

"दुर्भावनापूर्ण अभियोजन" शब्द अकारण के साथ-साथ दुर्भावनापूर्ण अभियोजन को भी दर्शाता है।

'दुर्भावनापूर्ण अभियोजन' अपराध के किसी ऐसे आरोप पर अभियोजन है जो जानबूझकर, अकारण, या लापरवाह है, या अभियोजक के कर्तव्य और अधिकार की भावना के विरुद्ध है, या उन उद्देश्यों के लिए है जिन्हें वह जानता है या जानने के लिए बाध्य है जो गलत हैं और सार्वजनिक नीति के निर्देशों के विरुद्ध हैं। दुर्भावनापूर्ण अभियोजन में दो आवश्यक तत्व होते हैं, अर्थात्, अभियोजन या शिकायत किए गए मुकदमे को शुरू करने के लिए कोई संभावित कारण मौजूद नहीं होता है, और ऐसा अभियोजन या वाद किसी तरह से प्रतिवादी के लिए अनुकूल रूप से समाप्त हो जाता है।

1. किसी अनुचित उद्देश्य के लिए और संभावित कारण के बिना किसी आपराधिक या सिविल कार्यवाही की स्थापना। 2. ऐसी कार्यवाही शुरू करने के परिणामस्वरूप होने वाली कार्रवाई का कारण। एक बार गलत अभियोजन प्रतिवादी के पक्ष में समाप्त हो जाने पर, झूठ बोलता है या वह अपकृत्य क्षति के लिए मुकदमा कर सकती है - इसे (सिविल कार्यवाही के संदर्भ में) प्रक्रिया का दुर्भावनापूर्ण उपयोग भी कहा जाता है। (ब्लैक, 7वां संस्करण, 1999)

*** | ***

12. वर्तमान मामले के तथ्यों में, जिसमें संबंधित न्यायालय द्वारा दिनांक 04.04.2022 को आदेश पारित करते हुए इस संबंध में टिप्पणी की गई है कि विरोधी पक्ष संख्या 2 ने पक्षों के बीच पहले की दुश्मनी के बारे में खुलासा नहीं किया है और इसलिए साफ हाथों से अदालत से संपर्क नहीं किया है, इससे पता चलता है कि आवेदक को परेशान करने के लिए दुर्भावनापूर्ण इरादे से कार्यवाही शुरू की गई है। पक्षों के बीच पहले की कार्यवाही और बयानों में भिन्नता की विस्तृत चर्चा सीआरपीसी की धारा 200 और 202 के तहत दर्ज की गई है, जैसा कि ऊपर उल्लिखित है, आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता की दलीलें भी यह साबित करती हैं कि पूर्व की एक घटना

अधिवक्ता

के लिए व्यक्तिगत द्वेष के कारण अभियुक्त को परेशान करने के उद्देश्य से प्रतिशोध लेने के एक गुप्त उद्देश्य से कार्यवाही की गई है, जिसमें विरोधी पक्ष संख्या 2 के भतीजे अर्थात्, ऋषि शर्मा गणेश सिंह की बेटी को बहला-फुसला ले गया था और हालांकि दोनों पक्षों ने समझौता कर लिया था, लेकिन आवेदक को परेशान करने के लिए दोनों पक्षों द्वारा एक-दूसरे के खिलाफ मामले दर्ज किए गए थे। दिनांक 04.04.2022 के आदेश में पुलिस आख्या की चर्चा में एक-दूसरे के खिलाफ आवेदन दायर करते समय घटना को बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत करने की बात भी कही गई है।

13. अब यह अनिर्णीत विषय नहीं रह गया है कि किसी आपराधिक कार्यवाही को अभिखंडित करने के लिए सीआरपीसी की धारा 482 के तहत शक्ति का प्रयोग केवल तभी किया जाता है, जब एफआईआर या आरोप पत्र में लगाए गए आरोप कथित अपराध की सामग्री का गठन करते हैं। सीआरपीसी की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किसी भी कानून या न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने या अन्यथा न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए है। यह स्थापित कानून है कि आपराधिक कार्यवाही के प्रारंभिक चरण में, बहुत असाधारण परिस्थितियों को छोड़कर, अभियुक्त द्वारा अपने बचाव में पेश किए गए साक्ष्यों पर न्यायालय द्वारा गौर नहीं किया जा सकता है। शीर्ष न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून से यह स्पष्ट है कि यदि प्रथम दृष्टया मामला अभियुक्त के खिलाफ कथित अपराध की सामग्री का खुलासा करने वाला बनता है, तो न्यायालय आपराधिक कार्यवाही को अभिखंडित नहीं कर सकता है।

14. भजन लाल (उपरोक्त) मामले में शीर्ष न्यायालय ने मामलों की सात श्रेणियां गिनाई हैं जहां इस न्यायालय द्वारा सीआरपीसी की धारा 482 के तहत शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है, जो नीचे उद्धृत हैं: -

"108. अध्याय XIV के तहत संहिता के विभिन्न प्रासंगिक प्रावधानों की व्याख्या और अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण शक्ति या अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग से संबंधित निर्णयों की एक श्रृंखला में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून के सिद्धांतों की पृष्ठभूमि में संहिता की धारा 482 के तहत जिसे हमने ऊपर उद्धृत और पुनरुत्पादित किया है, हम उदाहरण के माध्यम से मामलों की निम्नलिखित श्रेणियां देते हैं, जिनमें ऐसी शक्ति का प्रयोग किसी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के हित को सुरक्षित करने के लिए किया जा सकता है, हालाँकि इसे सटीक या स्पष्ट रूप से परिभाषित और पर्याप्त रूप से चैनलयुक्त और अनम्य दिशानिर्देश या कठोर सूत्र और असंख्य प्रकार के मामलों की एक विस्तृत सूची देना या निर्धारित करना संभव नहीं हो सकता है, जिसमें ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए।

(1) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें उनके अंकित मूल्य पर लिया जाए और उनकी संपूर्णता में स्वीकार किया जाए, प्रथम दृष्टया कोई अपराध या आरोपी के खिलाफ कोई मामला नहीं बनता है ।

(2) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट और एफआईआर के साथ संलग्न अन्य सामग्री में आरोप, यदि

अनुवादित

कोई हो, एक संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करते हैं, तो मजिस्ट्रेट के आदेश के अलावा संहिता की धारा 156 (1) के तहत पुलिस अधिकारियों द्वारा जांच को संहिता की धारा 155 (2) के दायरे में उचित ठहराया जा सकता है।

(3) जहां एफआईआर या शिकायत में लगाए गए निर्विवाद आरोप और उसके समर्थन में एकत्र किए गए साक्ष्य किसी अपराध के घटित होने का खुलासा नहीं करते हैं और आरोपी के खिलाफ मामला बनाते हैं।

(4) जहां, एफआईआर में लगाए गए आरोप संज्ञेय अपराध नहीं हैं, बल्कि केवल गैर-संज्ञेय अपराध हैं, वहां मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना पुलिस अधिकारी द्वारा किसी भी जांच की अनुमति नहीं दी जाती है, जैसा कि संहिता की धारा 155 (2) के तहत माना गया है।

(5) जहां एफआईआर या शिकायत में लगाए गए आरोप इतने बेतुके और स्वाभाविक रूप से असंभव हैं, जिनके आधार पर कोई भी विवेकशील व्यक्ति कभी भी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है कि आरोपी के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है।

(6) जहां संहिता या संबंधित अधिनियम (जिसके तहत आपराधिक कार्यवाही शुरू की जाती है) के किसी भी प्रावधान में प्रतिष्ठापन और कार्यवाही जारी रखने पर स्पष्ट कानूनी रोक है और / या जहां संबंधित संहिता या अधिनियम में कोई विशिष्ट प्रावधान है, जो पीड़ित पक्ष की शिकायत के लिए प्रभावी निवारण प्रदान करता है।

(7) जहां किसी आपराधिक कार्यवाही में स्पष्ट रूप से दुर्भावना के साथ भाग लिया जाता है और/या जहां कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण रूप से आरोपी पर प्रतिशोध लेने के लिए और निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे परेशान करने की दृष्टि से शुरू की जाती है। "

15. उपरोक्त मामले में शीर्ष न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांतों का निहारिका इंफ्रास्ट्रक्चर (पी) लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य के मामले में शीर्ष न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ के हालिया फैसले में लगातार पालन किया गया है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि सीआरपीसी की धारा 482 के तहत शक्ति बहुत व्यापक है, लेकिन जैसा कि इस न्यायालय ने निर्णयों की श्रृंखला में देखा है, व्यापक शक्ति प्रदान करने के लिए न्यायालय को अधिक सतर्क रहने की आवश्यकता होती है और यह न्यायालय पर कठिन और अधिक परिश्रमी कर्तव्य डालता है। इसलिए, असाधारण मामलों में, जब उच्च न्यायालय इसे उचित समझता है, तो वह उचित अंतरिम आदेश पारित कर सकता है, जैसा कि कानून में उपयुक्त माना जाता है, हालांकि, उच्च न्यायालय को संक्षिप्त कारण बताने होंगे जो संबंधित तथ्य के लिए न्यायालय द्वारा विवेक के प्रयोग को प्रतिबिंबित करेंगे।

16. यह घिसा-पिटा कानून है कि आपराधिक कार्यवाही को अभिखंडित करने की शक्ति का प्रयोग सावधानी से किया जाना चाहिए और वह भी दुर्लभ से दुर्लभतम मामलों में और इस

अनुवादित

अदालत के लिए आरोपों की विश्वसनीयता या वास्तविकता या अन्यथा की जांच शुरू करना उचित नहीं था, जैसा कि अंतिम रिपोर्ट या शिकायत में किया गया। ऐसे मामले में जहां अभियोजन द्वारा लगाए गए आरोप एक संज्ञेय अपराध का खुलासा करते हैं, वहां अभियोजन द्वारा भरोसा की गई सामग्री की सत्यता पर निकाले गए निष्कर्ष उच्च न्यायालय के लिए सीआरपीसी की धारा 482 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते समय विचारणीय नहीं है। महेंद्र के.सी बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य मामले में शीर्ष अदालत के फैसले से इस दृष्टिकोण को बल मिलता है।

17. हाल ही में, शफिया खान उर्फ शकुंतला प्रजापति बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में शीर्ष न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की है :-

"16. इसमें कोई संदेह नहीं है कि आपराधिक कार्यवाही को अभिखंडित करने की शक्ति का प्रयोग बहुत संयमित और सावधानी से किया जाना चाहिए और वह भी दुर्लभ से दुर्लभतम मामलों में और एफआईआर या शिकायत में लगाए गए आरोपों की विश्वसनीयता या वास्तविकता या अन्यथा की जांच शुरू करना अदालत के लिए न्यायोचित नहीं था और अंतर्निहित शक्तियां अदालत को अपनी इच्छा और कल्पनाओं के अनुसार कार्य करने के लिए कोई मनमाना क्षेत्राधिकार प्रदान नहीं करती हैं।"

18. परबतभाई अहीर उर्फ परबतभाई भीमसिंहभाई करमूर और अन्य बनाम गुजरात राज्य और अन्य के मामले में शीर्ष न्यायालय ने विभिन्न मामलों का उल्लेख करते हुए सीआरपीसी की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय की शक्तियों को नियंत्रित करने के लिए निम्नलिखित सिद्धांतों को संक्षेप में प्रस्तुत किया है:

"16. इस विषय पर उदाहरणों से उभरे व्यापक सिद्धांतों को निम्नलिखित प्रस्तावों में संक्षेपित किया जा सकता है:

16.1. धारा 482 किसी भी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने या न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को संरक्षित करती है। प्रावधान नई शक्तियां प्रदान नहीं करता है। यह केवल उन शक्तियों को मान्यता देता है और संरक्षित करता है जो उच्च न्यायालय में निहित हैं।

16.2. प्रथम सूचना रिपोर्ट या किसी आपराधिक कार्यवाही को इस आधार पर अभिखंडित करने के लिए उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार का आहवान करना कि अपराधी और पीड़ित के बीच समझौता हो गया है, किसी अपराध का शमन करने के उद्देश्य से क्षेत्राधिकार के आहवान के समान नहीं है। किसी अपराध का शमन करते समय, अदालत की शक्ति आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 320 के प्रावधानों द्वारा शासित होती है। अपराध अशमनीय होने पर भी धारा 482 के तहत अभिखंडित करने की शक्ति आकर्षित होती है।

16.3. एक राय बनाने में कि क्या धारा 482 के तहत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए

अनुवादित

एक आपराधिक कार्यवाही या शिकायत को अभिखंडित कर दिया जाना चाहिए, उच्च न्यायालय को यह मूल्यांकन करना चाहिए कि क्या न्याय का उद्देश्य अंतर्निहित शक्ति के प्रयोग को उचित ठहराएगा।

16.4. जबकि उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का दायरा व्यापक और प्रचुर है, इसका प्रयोग (i) न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए या (ii) किसी भी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए किया जाना चाहिए।

16.5. यह विनिश्चय कि किसी शिकायत या प्रथम सूचना रिपोर्ट को इस आधार पर अभिखंडित कर दिया जाना चाहिए कि अपराधी और पीड़ित ने विवाद सुलझा लिया है, इसका निर्णय अंततः प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है और सिद्धांतों का कोई विस्तृत विवरण निश्चित नहीं किया जा सकता है।

16.6. धारा 482 के तहत शक्ति का प्रयोग करते समय और इस दलील से निपटते समय कि विवाद का निपटारा हो गया है, उच्च न्यायालय को अपराध की प्रकृति और गंभीरता का उचित ध्यान रखना चाहिए। मानसिक विकृति से जुड़े जघन्य और गंभीर अपराधों या हत्या, बलात्संग और डकैती जैसे अपराधों को उचित रूप से अभिखंडित नहीं किया जा सकता है, भले ही पीड़ित या पीड़ित के परिवार ने विवाद सुलझा लिया हो । सही मायने में ऐसे अपराध निजी प्रकृति के नहीं होते बल्कि समाज पर गंभीर प्रभाव डालते हैं। ऐसे मामलों में विचारण जारी रखने का विनिश्चय गंभीर अपराधों के लिए व्यक्तियों को दंडित करने में सार्वजनिक हित के अध्यारोही तत्व पर आधारित है।

16.7. गंभीर अपराधों से अलग, ऐसे आपराधिक मामले भी हो सकते हैं जिनमें सिविल विवाद का सशक्त या प्रमुख तत्व हो । जहां तक अभिखंडित करने की अंतर्निहित शक्ति के प्रयोग का प्रश्न है, वे एक अलग आधार पर खड़े हैं;

16.8. वाणिज्यिक, वित्तीय, व्यापारिक, भागीदारी या अनिवार्य रूप से सिविल प्रभाव वाले समान लेन-देन से उत्पन्न होने वाले अपराधों से जुड़े आपराधिक मामले उचित परिस्थितियों में अभिखंडित किए जा सकते हैं, जहां पक्षकारों ने विवाद सुलझा लिया है।

16.9. ऐसे मामले में, उच्च न्यायालय आपराधिक कार्यवाही को अभिखंडित कर सकता है यदि विवादकर्ताओं के बीच समझौते के मद्देनजर दोषसिद्धि की संभावना दूरस्थ हो और आपराधिक कार्यवाही जारी रहने से अन्यायपूर्ण आचरण और प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न हो ।

16.10. सुझाव 16.8 और 16.9 में निर्धारित सिद्धांत का अभी भी एक अपवाद है। राज्य की वित्तीय और आर्थिक भलाई से जुड़े आर्थिक अपराधों के ऐसे अभिप्राय हैं जो निजी विवादों के बीच मात्र विवाद के क्षेत्र से परे हैं। जहां अपराधी किसी वित्तीय या आर्थिक धोखाधड़ी या दुराचार जैसी गतिविधि में शामिल हों, उसे

अनुवादित

अभिखंडित करने से इनकार करना उच्च न्यायालय के लिए न्यायोचित होगा। जिस कृत्य की शिकायत की गई है उसके परिणाम वित्तीय या आर्थिक व्यवस्था पर भारी पड़ेंगे।"

19. एक अन्य फैसले में, रामवीर उपाध्याय और अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य के मामले में शीर्ष न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है: -

"39. हमारी सुविचारित राय में सीआरपीसी की धारा 482 के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करके आपराधिक कार्यवाही को शुरू में ही खत्म नहीं किया जा सकता है क्योंकि शिकायत एक राजनीतिक प्रतिद्वंद्वी द्वारा दर्ज की गई है। यह संभव है कि एक राजनीतिक प्रतिद्वंद्वी के इशारे पर झूठी शिकायत दर्ज की गई हो। हालाँकि, ऐसी संभावना आपराधिक कार्यवाही को अभिखंडित करने के लिए सीआरपीसी की धारा 482 के तहत हस्तक्षेप को न्यायोचित नहीं ठहराएगी। जैसा कि ऊपर देखा गया है, पहले के आपराधिक मामले के बंद होने के बाद कथित कृत्यों द्वारा याचिकाकर्ताओं की ओर से प्रतिशोध की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता है। शिकायत में लगाए गए आरोप अत्याचार अधिनियम के तहत अपराध हैं। आरोप सही हैं या गलत, इसका फैसला विचारण में होगा। सीआरपीसी की धारा 482 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए अदालत किसी शिकायत में आरोपों की सत्यता की जांच नहीं करती है, असाधारण दुर्लभ मामलों को छोड़कर जहां यह स्पष्ट हो कि आरोप तुच्छ हैं या किसी अपराध का खुलासा नहीं करते हैं। शिकायत मामला संख्या 19 / 2018 ऐसा कोई मामला नहीं है जिसे बिना किसी विचारण के शुरू में ही अभिखंडित कर दिया जाए। उच्च न्यायालय ने सीआरपीसी की धारा 482 के तहत आवेदन को सही ढंग से अभिखंडित कर दिया था । "

20. उपरोक्त चर्चा से, यह स्पष्ट है कि विरोधी पक्ष संख्या 2 ने प्रतिशोध लेने और पूर्व शत्रुता के कारण आवेदक पर दबाव डालने के लिए अदालत से संपर्क किया था जिसका उल्लेख दिनांक 04.04.2022 के आदेश में किया गया है और इसका विरोधी पक्ष के विद्वान अधिवक्ता द्वारा विरोध नहीं किया गया था । इस प्रकार, वर्तमान मामला पैराग्राफ - 108 की श्रेणी (7) के अंतर्गत आता है जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भजन लाल (उपरोक्त) मामले में माना गया है ।

21. उपरोक्त के मद्देनजर सत्र वाद संख्या 538 / 2022 (शिकायत संख्या 50 / 2022) थाना तरकुलवा, जनपद देवरिया में आईपीसी की धारा 354 और लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 की धारा 7/8 की कार्यवाही के साथ ही अपर सत्र न्यायाधीश / विशेष न्यायाधीश, पॉक्सो, न्यायालय संख्या 1, देवरिया द्वारा उपरोक्त मामले में पारित समन आदेश दिनांक 01.11.2022 को अभिखंडित किया जाता है जो विशेष न्यायाधीश (पॉक्सो अधिनियम), न्यायालय संख्या 1, देवरिया की अदालत में लंबित है।

22. आवेदन स्वीकार किया जाता है।

(2023) 6 ILRA 567

मूल अधिकार क्षेत्र

आपराधिक पक्ष

अवधारित

दिनांक: इलाहाबाद 23.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति समित गोपाल

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या 12266 वर्ष 2023

निसार **आवेदक**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **विपक्षी पक्ष**

आवेदक के अधिवक्ता: श्री राम प्रवेश यादव, श्री शशांक कुमार

विपक्षी पक्ष के अधिवक्ता: जी.ए.

आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 34, , 120-बी, 212, 302 और 171) (ई) - यूपी गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1986 - धारा 2, 3 और 14 (1),: - धारा 482 के तहत आवेदन - कार्यवाही को चुनौती देना, साथ ही आरोप पत्र और संज्ञान आदेश - एफआईआर - गैंगस्टर अधिनियम के तहत आवेदक और 10 अन्य आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ दर्ज - आरोपी व्यक्ति विभिन्न आपराधिक गतिविधियों में शामिल हैं - गैंग चार्ट - जांच - आवेदक और 5 अन्य आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ आरोप पत्र दायर किया गया - यह तर्क दिया जाता है कि, 'मोहम्मद के एक मामले में। सह-अभियुक्त द्वारा दायर की गई 'रुखसार' में उक्त कार्यवाही, आरोप-पत्र और संज्ञान आदेश को चुनौती देते हुए, इस न्यायालय ने अंतरिम संरक्षण प्रदान किया है - इसके अलावा, इस न्यायालय की समन्वय पीठों ने उन मामलों में उक्त अभियुक्त व्यक्तियों के संबंध में कार्यवाही को रद्द कर दिया है, जिनमें वे एकान्त मामले में शामिल थे - और जो कार्यवाही एकान्त मामले के आधार पर शुरू की गई है, वह बनाए रखने योग्य नहीं है - आवेदक द्वारा उक्त आधार पर अंतरिम आदेश की प्रार्थना करने के लिए जिस मामले पर भरोसा किया गया है, उसमें समन्वय पीठ का आदेश विचार नहीं करता है - माना गया है किजिस निर्णय और आदेशों पर भरोसा किया गया है, वे एक अन्तरिम आदेश हैं, जो इस न्यायालय के लिए बाध्यकारी नहीं हैं - और एकान्त मामले के आधार पर भी अभियुक्त के विरुद्ध गैंगस्टर अधिनियम के तहत कार्यवाही की जा सकती है - तदनुसार, वर्तमान आवेदन खारिज किया जाता है।

(पैरा - 7, 10)

धारा 482 के तहत आवेदन खारिज। (ई-11)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. मोहम्मद रुकसार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य। और अन्य, धारा 482 के तहत आवेदन संख्या 43408/2022
2. निसार अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 37600/2017, आदेश दिनांक 12.10.2017
3. रितेश कुमार @ रिकी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 3938/2021, 05.08.2021 को निर्णय
4. श्रद्धा गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य: 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 514
5. सलीम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य आवेदन धारा 482 संख्या 11646/2007 में 13.08.2019 को निर्णय
6. तेज सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य & अन्य आपराधिक विविध आवेदन धारा

अवलोकित

482 संख्या 3239/2005 के अंतर्गत 24.04.2019 को निर्णय लिया गया

(माननीय न्यायमूर्ति समित गोपाल द्वारा दिया गया)

1. सूची पुनरीक्षित।

2. अपीलार्थी की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री शशांक कुमार, राज्य की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री अंकित श्रीवास्तव को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

3. यह आवेदन सीआरपीसी की धारा 482 के तहत अपीलार्थी-निसार द्वारा उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक क्रियाकलाप (रोकथाम) अधिनियम, 1986 की धारा 2/3 के तहत, पुलिस स्टेशन मऊआइमा, जिला प्रयागराज 2020 विशेष न्यायाधीश, गैंगस्टर एक्ट, इलाहाबाद की न्यायालय में एक और प्रार्थना के साथ कि वर्तमान आवेदन के लंबित रहने के दौरान अपीलार्थी के खिलाफ उपरोक्त मामले पर आवेदन की रोक लगाई जाए के मुकदमा अपराध संख्या 352 से उत्पन्न सत्र परीक्षण संख्या 52/2021 में कार्यवाही के साथ-साथ आरोप-पत्र दिनांक 07.06.2021 और संज्ञान आदेश दिनांक 03.09.2021 को रद्द करने की प्रार्थना के साथ दायर किया गया है।

4. वर्तमान मामले में तथ्य यह है कि अपीलार्थी और 10 अन्य व्यक्तियों के खिलाफ उ.प्र. गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1986 की धारा 2/3 के तहत अपराध के लिए इस आरोप के साथ कि आरोपी व्यक्तियों ने एक गिरोह बनाया है और जनता के खिलाफ विभिन्न आपराधिक गतिविधियों में शामिल हैं,प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी। । प्रायोजक अधिकारी द्वारा दिनांक 16.02.2020 को एक गैंग चार्ट तैयार किया गया जिसे अंततः 29.05.2020 को जिला मजिस्ट्रेट की मंजूरी मिल गई। अपीलार्थी का नाम उक्त गैंग चार्ट में क्रमांक 4 पर है। गैंग चार्ट के अनुसार, अपीलार्थी और अन्य आरोपियों को 2017 के मुकदमा अपराध संख्या 138 में, आईपीसी की धारा 302, 120-बी, 212, 34 और अभियुक्तगणों के विरूद्ध एक आरोप पत्र संख्या ए-70 दिनांक 21.06.2017, ए-70 (बी) दिनांक 22.03.2019 प्रस्तुत किया गया है, में शामिल होना दिखाया गया है। मामला जांच के लिए चला गया जिसके बाद अपीलार्थी और अन्य अभियुक्तों के खिलाफ कुल 05 अभियुक्तों के खिलाफ उ.प्र. गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियाँ (रोकथाम) अधिनियम की धारा 2/3 के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया । आरोप पत्र में यह उल्लेख किया गया था कि अब तक अन्य 06 अभियुक्तों की जांच लंबित है और गैंगस्टर अधिनियम की धारा 14 (1) के तहत आगे की कार्यवाही भी लंबित है। सत्र न्यायालय ने दिनांक 03.09.2021 के आदेश के तहत आरोप पत्र पर संज्ञान लिया और आरोपी व्यक्तियों को तलब किया।

5. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि अपीलार्थी को वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है। यह तर्क दिया गया कि अपीलार्थी के खिलाफ गैंगस्टर एक्ट के तहत

अनुवादित

कार्यवाही एक एकल मामले के आधार पर की गई है। यह तर्क दिया गया है कि उक्त मामले में जो अपीलार्थी के खिलाफ दिखाया गया है, अपीलार्थी को आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 37600/2017 (निसार अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 12.10.20217 द्वारा जमानत दी गई है। यह तर्क दिया गया कि अपीलार्थी के विरुद्ध जो अभिप्राय दर्शाया गया है, जिसके आधार पर वर्तमान मामले की प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करायी गयी है, वह झूठा मामला है तथा प्रथम सूचना रिपोर्ट में अपीलार्थी का नाम नहीं है, जिसके बाद उक्त मामले में पप्पू के बयान से यह बात सामने आयी है, उसका नाम दर्ज किया गया है। पप्पू फकीर एक चश्मदीद गवाह था जो मृतक का ड्राइवर था। तर्क दिया गया कि अपीलार्थी किसी गिरोह का सदस्य नहीं है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि सह-अभियुक्त मो. रुक्सार ने इस न्यायालय के समक्ष 482 के तहत, 2022 की आवेदन संख्या 43408 (मोहम्मद रुखसार बनाम उ.प्र. राज्य और अन्य), जिसमें दिनांक 23.03.2023 के आदेश के तहत उन्हें अंतरिम सुरक्षा प्रदान की गई है, कार्यवाही, आरोप पत्र और संज्ञान लेने के आदेश को चुनौती दी। तर्क दिया गया कि इस तरह अपीलार्थी भी इस मामले में सुरक्षा का हकदार है। विद्वान अधिवक्ता ने तेज सिंह और अन्य बनाम उ.प्र. राज्य के मामले और दूसरा 24.04.2019 को निर्णीत धारा 482 के तहत 2005 की आपराधिक विविध आवेदन संख्या 3239 एवं सलीम बनाम बनाम उ.प्र. राज्य के मामले में 13.08.2019 को निर्णीत धारा 482 के तहत 2007 की आवेदन संख्या 11646 में इस न्यायालय के निर्णयों पर आश्रय लिया हैऔर तर्क दिया है कि इस न्यायालय की समन्वय पीठों ने उक्त आरोपी व्यक्तियों के उन मामलों में जिनमें वे एक अकेले मामले में शामिल थे, के संबंध में कार्यवाही को रद्द कर दिया है। दलील दी गई है कि ऐसे में मौजूदा मामले की कार्यवाही भी रद्द कर दी जाए।

6. इसके विपरीत, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने रद्द करने की प्रार्थना का विरोध किया।

7. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने तथा अभिलेखों का अवलोकन करने के बाद यह स्पष्ट है कि अपीलार्थी अन्य व्यक्तियों के साथ प्रथम सूचना रिपोर्ट में तथा उसके संबंध में जांच के बाद आये आरोप पत्र में भी नामित अभियुक्त है। और कुछ अन्य आरोपी व्यक्ति जिन पर संज्ञान लिया गया है और उन्हें सत्र न्यायालय द्वारा तलब किया गया है। कुछ अन्य आरोपियों की जाँच - पड़ताल के संबंध में मामला विचाराधीन है। जहाँ तक अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता के तर्क का सवाल है कि अपीलार्थी को प्रथम सूचना रिपोर्ट और गैंग चार्ट में संदर्भित मामले में झूठा फंसाया गया

अनुवादित

है, जिसके आधार पर वर्तमान मामला दर्ज किया गया है,का सम्बंध है, इस न्यायालय द्वारा जाँच नहीं की जा सकती है। इसके अलावा इस तर्क के संबंध में कि कार्यवाही एक अकेले मामले के आधार पर शुरू की गई है और इस प्रकार पोषणीय नहीं है, यह भी उचित नहीं है। इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने **रितेश कुमार @ रिकी बनाम उ.प्र. राज्य और अन्य, 2021 की आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 3938 पर 05.08.2021 को निर्णीत** मामले में, जो कुछ अन्य याचिकाओं से जुड़ी हुई थी, जिसमें उस प्रश्न पर मामला उठाया गया था जिसे उक्त निर्णय के पैराग्राफ 4 में तैयार किया गया था, निर्णय दिया । इसे इस प्रकार पढ़ा जाता है-

"4. रिट याचिकाओं का वर्तमान समूह अन्य रिट याचिकाओं के साथ निम्नलिखित प्रश्न एक साथ जुड़ा हुआ है: "क्या उत्तर प्रदेश गैंगस्टर्स और असामाजिक तत्व गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1986 (इसके बाद इसे "गैंगस्टर एक्ट'कहा जाएगा) के प्रावधानों के तहत पहली सूचना रिपोर्टदर्ज किया जा सकता है और एकल पिछले मामले में याचिकाकर्ता/अभियुक्तों की संलिप्तता के आधार पर पोषणीय हैं या नहीं।"

8. उक्त निर्णय के पैराग्राफ 29 में इस विरचित प्रश्न का उत्तर दिया गया है कि एकल मामले के आधार पर प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करना वैध और स्वीकार्य है। यह आगे माना गया कि न्यायालय प्रथम सूचना रिपोर्ट या उन मामलों में आरोपों की सत्यता का फैसला नहीं कर सकती जिनके आधार पर प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई है। उक्त निर्णय का पैराग्राफ 29 इस प्रकार है: -

"29. पक्षों की ओर से विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने और अभिलेखों का अवलोकन करने के बाद, यह स्पष्ट है कि 2021 की आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 4149 को छोड़कर, उपरोक्त सभी रिट याचिकाओं पर सामान्य बिंदु पर बहस की गई थी जिसके लिए प्रश्न तैयार किया गया था उत्तर दिया गया है कि कानून के स्थापित सिद्धांतों के अनुसार, किसी एकल मामले के आधार पर प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करना वैध और स्वीकार्य है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक याचिका में, यह न्यायालय आक्षेपित प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोपों या उन मामलों के आधार पर जिनके आधार पर आक्षेपित प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई है, की शुद्धता पर निर्णय नहीं दे सकता है । इस प्रकार रिट याचिकाएँ खारिज की जाती हैं।"

9. शीर्ष न्यायालय ने **श्रद्धा गुप्ता बनाम उ.प्र. राज्य और अन्य: 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 514** के मामले में, जिसमें सीआरपीसी की धारा 482 के तहत एक याचिका में हस्तक्षेप से इनकार करने का आदेश दिया गया

अनुवादित

है। जिसमें गैंगस्टर अधिनियम के तहत कार्यवाही को रद्द करने के लिए विचार किया गया था और यह विचार करने के लिए रखा गया था कि क्या जिस व्यक्ति के खिलाफ एक भी प्रथम सूचना रिपोर्ट / आरोप-पत्र दायर किया गया है, उस पर गैंगस्टर अधिनियम के तहत मुकदमा चलाया जा सकता है, यह माना गया कि ऐसा अभियुक्तों पर गैंगस्टर अधिनियम, 1986 के तहत मुकदमा चलाया जा सकता है। उक्त निर्णय के पैराग्राफ 6, 7, 8, 9 और 10 इस प्रकार हैं: -

6. इस न्यायालय के विचारार्थ जो संक्षिप्त प्रश्न रखा गया है, वह यह है कि क्या कोई व्यक्ति जिसके खिलाफ गैंगस्टर अधिनियम,1986 की धारा 2(बी) में उल्लिखित किसी असामाजिक गतिविधियों के लिए एकल एफआईआर/चार्जशीट दायर की गई है,गैंगस्टर अधिनियम के तहत मुकदमा चलाया जा सकता है. दूसरे शब्दों में, क्या 'गैंगस्टर'द्वारा किया गया एक भी अपराध 'गैंग'के ऐसे सदस्यों पर गैंगस्टर अधिनियम लागू करने के लिए पर्याप्त है।

7. उपरोक्त मुद्दों/प्रश्नों पर विचार करते समय, गैंगस्टर अधिनियम, 1986 के प्रासंगिक प्रावधान संदर्भित किया जाना आवश्यक है। गैंगस्टर अधिनियम, 1986 को लागू करने का उद्देश्य और प्रायोजन गैंगस्टरों और असामाजिक गतिविधियों की रोकथाम, उनसे निपटने और उनसे जुड़े या प्रासंगिक मामलों के लिए विशेष प्रावधान करना है। धारा 2(बी) 'गिरोह'को परिभाषित करती है और धारा 2(सी) 'गैंगस्टर'को परिभाषित करती है। धारा 2(बी) और 2(सी) इस प्रकार है:

"2(बी) "गिरोह"का अर्थ व्यक्तियों का एक समूह है, जो हिंसा, या धमकी या हिंसा का प्रदर्शन, या धमकी, या जबरदस्ती या अन्यथा सार्वजनिक व्यवस्था को परेशान करने या स्वयं या किसी अन्य व्यक्ति के लिए लौकिक, आर्थिक, भौतिक या कोई अन्य अनुचित लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से अकेले या सामूहिक रूप से कार्य करता है। असामाजिक गतिविधियों में लिप्त होना (1974 का अधिनियम संख्या 2), अर्थात्-

(i) भारतीय दंड संहिता (1860 का अधिनियम संख्या 45) के अध्याय XVI, या अध्याय XVII, या अध्याय XXII के तहत दंडनीय अपराध, या

(ii) उ.प्र. उत्पाद शुल्क अधिनियम, 1910 (उ.प्र. अधिनियम संख्या 4, 1910) या नारकोटिक ड्रग्स एंड साइकोट्रोपिक सब्सटेंस एक्ट, 1985 या उस समय लागू कोई अन्य कानून के किसी भी प्रावधान के तहत

किसी भी शराब, या मादक या खतरनाक दवाओं, या अन्य नशीले पदार्थों या नशीले पदार्थों का आसवन या विनिर्माण या भंडारण या परिवहन या आयात या निर्यात या बिक्री या वितरण या किसी पौधे की खेती करना

अनुवादित

का उल्लंघन। या

(iii) अचल संपत्ति पर कब्जा करना या उस पर कब्जा करने की बात करना। कानून, या अचल संपत्ति के स्वामित्व या कब्जे के लिए झूठे दावे स्थापित करना, चाहे वह खुद का हो या किसी अन्य व्यक्ति का, या (1985 का अधिनियम संख्या 61)

(iv) किसी लोक सेवक या किसी गवाह को उसके वैधानिक कर्तव्य के निर्वहन से रोकना या रोकने का प्रयास करना, या

(v) महिलाओं और लड़कियों के अनैतिक व्यापार का दमन अधिनियम, 1956 के तहत दंडनीय अपराध, या

(vi) सार्वजनिक जुआ अधिनियम, 1867 (1956 का अधिनियम संख्या 104) की धारा 3 के तहत दंडनीय अपराध, या

(vii) किसी भी व्यक्ति को किसी पट्टे या अधिकार या माल की आपूर्ति या किए जाने वाले काम के लिए किसी सरकारी विभाग, स्थानीय निकाय या सार्वजनिक या निजी उपक्रम द्वारा या उसकी ओर से कानूनी रूप से आयोजित नीलामी में बोली लगाने, या कानूनी रूप से आमंत्रित निविदा की पेशकश करने से रोकना। , या

(viii) किसी भी व्यक्ति द्वारा उसके कानूनी व्यावसायिक पेशे, व्यापार या रोजगार या उससे जुड़ी किसी अन्य कानूनी गतिविधि को सुचारू रूप से चलाने से रोकना या परेशान करना, या

(ix) भारतीय दंड संहिता की धारा 171-ई के तहत दंडनीय अपराध, या मतदाता को उसके चुनावी अधिकारों का प्रयोग करने से शारीरिक रूप से रोककर कानूनी रूप से आयोजित होने वाले किसी भी सार्वजनिक चुनाव को रोकना या बाधित करना, या

(x) सांप्रदायिक सद्भाव बिगाड़ने के लिए दूसरों को हिंसा का सहारा लेने के लिए उकसाना, या

(xi) जनता में दहशत, अलार्म या आतंक पैदा करना, या

(xii) सार्वजनिक या निजी उपक्रमों या कारखानों के कर्मचारियों या मालिकों या कब्जाधारियों को आतंकित करना या उन पर हमला करना और उनकी संपत्तियों के संबंध में शरारत करना, या

(xiii) किसी व्यक्ति को गलत प्रतिनिधित्व पर विदेश जाने के लिए प्रेरित करना या प्रेरित करने का प्रयास करना कि उसे ऐसे विदेशी देश में कोई रोजगार, व्यापार या पेशा प्रदान किया जाएगा, या

(xiv) फिरौती वसूलने के इरादे से किसी व्यक्ति का अपहरण या अपहरण करना, या

(xv) किसी विमान या सार्वजनिक परिवहन वाहन को उसके निर्धारित मार्ग पर चलने से रोकना या अन्यथा रोकना

अनुवादित

(सी) "गैंगस्टर"का अर्थ किसी गिरोह का सदस्य या नेता या आयोजक है और इसमें कोई भी व्यक्ति शामिल है जो खंड (बी) में उल्लिखित गिरोह की गतिविधियों को बढ़ावा देता है या सहायता करता है, चाहे वह घटना के पहले या बाद में हो

ऐसी गतिविधियाँ या ऐसे किसी व्यक्ति को शरण देना जो ऐसी गतिविधियों में शामिल हो।

" 7.1 गैंगस्टर अधिनियम, 1986 की धारा 3 में सजा का प्रावधान है, जो इस प्रकार है:

"3. (1) एक गैंगस्टर को किसी भी प्रकार के कारावास से दंडित किया जाएगा जिसकी अवधि दो साल से कम नहीं होगी और जिसे दस साल तक बढ़ाया जा सकता है और जुर्माना भी लगाया जाएगा जो पांच हजार रुपये से कम नहीं होगा:

बशर्ते कि एक गैंगस्टर जो किसी लोक सेवक के परिवार के किसी सदस्य के व्यक्ति के खिलाफ अपराध करता है, उसे किसी भी अवधि के लिए कारावास की सजा दी जाएगी जो तीन साल से कम नहीं होगी और साथ ही साथ जुर्माना जो पांच हजार रुपये से कम नहीं होगा,

(2) जो कोई लोक सेवक होते हुए किसी गैंगस्टर को किसी भी तरीके से कोई अवैध सहायता या समर्थन प्रदान करता है।चाहे गैंगस्टर द्वारा किसी भी अपराध को अंजाम देने से पहले या बाद में (चाहे खुद से या दूसरों के माध्यम से) या कानूनी कदम उठाने से परहेज करता है या जानबूझकर इस संबंध में किसी भी न्यायालय या अपने वरिष्ठ अधिकारियों के निर्देशों का पालन करने से बचता है, उसे दंडित किया जाएगा। किसी एक अवधि के लिए कारावास, जिसे दस साल तक बढ़ाया जा सकता है, लेकिन तीन साल से कम नहीं होगा और जुर्माना भी लगाया जा सकता है।

" 7.2 गैंगस्टर अधिनियम की धारा 5 के तहत अपराधों की त्वरित सुनवाई के लिए विशेष अदालतों के गठन का प्रावधान है। अधिनियम। धारा 6 में प्रावधान है कि एक विशेष न्यायालय, यदि वह ऐसा करना समीचीन या वांछनीय समझता है, तो अपनी किसी भी कार्यवाही के लिए अपनी बैठक या बैठने के सामान्य स्थान के अलावा किसी भी स्थान पर अपनी बैठक आयोजित कर सकता है। अधिनियम की धारा 8 प्रावधान है कि गैंगस्टर अधिनियम के तहत दंडनीय किसी भी अपराध की कोशिश करते समय, एक विशेष न्यायालय किसी अन्य अपराध की भी सुनवाई कर सकती है, जिसके साथ आरोपी पर, उस समय लागू किसी अन्य कानून के तहत, उसी मुकदमे में आरोप लगाया जा सकता है। गैंगस्टर अधिनियम की धारा 9 के तहत, राज्य सरकार प्रत्येक विशेष न्यायालय के लिए एक व्यक्ति को लोक अभियोजक नियुक्त करेगी। धारा 10 में यह प्रावधान है कि एक विशेष न्यायालय अपने द्वारा विचारणीय किसी भी अपराध का

अनुवादित

संज्ञान ले सकता है, बिना आरोपी को मुकदमे के लिए प्रतिबद्ध किए, उन तथ्यों की शिकायत प्राप्त करने पर जो ऐसे अपराध का गठन करते हैं या ऐसे तथ्यों की पुलिस रिपोर्ट पर। धारा 12 में यह प्रावधान है कि विशेष न्यायालय द्वारा किसी भी अपराध के गैंगस्टर अधिनियम के तहत मुकदमे को किसी अन्य न्यायालय (विशेष न्यायालय नहीं) में आरोपी के खिलाफ किसी भी अन्य मामले के मुकदमे की प्राथमिकता दी जाएगी और मुकदमे की सुनवाई की प्राथमिकता में निष्कर्ष निकाला जाएगा। ऐसे अन्य मामले और तदनुसार ऐसे अन्य मामले की सुनवाई स्थगित रहेगी। गैंगस्टर अधिनियम की धारा 13 में प्रावधान है कि जहां, किसी अपराध का संज्ञान लेने के बाद, एक विशेष न्यायालय की राय है कि अपराध उसके द्वारा विचारणीय नहीं है, तो वह, इस बात के बावजूद कि उसके पास ऐसे अपराध का मुकदमा चलाने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है, मामले को स्थानांतरित कर देगा। इस तरह के अपराध की सुनवाई संहिता के तहत अधिकार क्षेत्र रखने वाले किसी अन्य न्यायालय में की जा सकती है और जिस न्यायालय में मामला स्थानांतरित किया गया है वह अपराध की सुनवाई के साथ आगे बढ़ सकता है जैसे कि उसने अपराध का संज्ञान लिया है।

8. उपरोक्त से, यह देखा जा सकता है कि सभी प्रावधान यह सुनिश्चित करने के लिए हैं कि गैंगस्टर अधिनियम के तहत अपराधों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए और गैंगस्टर अधिनियम के अधिनियमन के उद्देश्य और प्रायोजन को प्राप्त करने के लिए और वह भी विशेष न्यायालय, द्वाराउन पर शीघ्रता से मुकदमा चलाया जाना चाहिए।

9. अब जहां तक आरोपी की ओर से मुख्य दलील का सवाल है कि किसी भी असामाजिक गतिविधियों के संबंध में एकल अपराध/एफआईआर/चार्जशीट के लिए, ऐसे आरोपी पर गैंगस्टर अधिनियम, 1986 के तहत मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है। गैंगस्टर अधिनियम, 1986 के तहत 'गैंग'और 'गैंगस्टर'की परिभाषाओं को निष्पक्ष रूप से पढ़ने पर यह देखा जा सकता है कि 'गैंग'एक या एक से अधिक व्यक्तियों का समूह है जो इसके परिभाषा खंड में उल्लिखित अपराध करते हैं। अनुचित लाभ कमाने का उद्देश्य, चाहे आर्थिक, भौतिक या अन्य लाभ के लिए किसी 'गिरोह'द्वारा किया गया एक भी अपराध ऐसे 'गिरोह'के सदस्यों पर गैंगस्टर एक्ट लगाने के लिए पर्याप्त है। गैंगस्टर अधिनियम लागू होने से पहले परिभाषा खंड अपराध की बहुलता को शामिल नहीं करता है।

व्यक्तियों का एक समूह सामूहिक रूप से कार्य कर सकता है या समूह का कोई भी सदस्य गैंगस्टर अधिनियम की धारा 2 (बी) में उल्लिखित असामाजिक गतिविधियों में शामिल होकर सार्वजनिक व्यवस्था में खलल डालने के

अनुवादित

उद्देश्य से अकेले भी कार्य कर सकता है, जिसे अपराधी कहा जा सकता है। 'गैंगस्टर'. अकेले या सामूहिक रूप से काम करने वाले किसी 'गिरोह'के सदस्य को 'गिरोह'का सदस्य कहा जा सकता है और वह 'गिरोह'की परिभाषा में आता है, बशर्ते वह किसी भी असामाजिक गतिविधियों में शामिल पाया गया हो। गैंगस्टर एक्ट की धारा 2(बी) में उल्लेखित है।

10. गैंगस्टर अधिनियम की धारा 2(बी) में निहित 'गिरोह'और धारा 2(सी) में निहित 'गैंगस्टर'की परिभाषाओं को ध्यान से पढ़ने पर, 'गैंगस्टर'का अर्थ किसी गिरोह का सदस्य या नेता या आयोजक है। ऐसा कोई भी व्यक्ति शामिल है जो धारा 2 के खंड (बी) में उल्लिखित गिरोह की गतिविधियों को बढ़ावा देता है या सहायता करता है, जो या तो अकेले या सामूहिक रूप से कार्य करता है और धारा 2 (बी) में उल्लिखित किसी भी असामाजिक गतिविधियों में शामिल होता है, ऐसा कहा जा सकता है गैंगस्टर अधिनियम के तहत अपराध किया है और गैंगस्टर अधिनियम के तहत अपराध के लिए मुकदमा चलाया जा सकता है और दंडित किया जा सकता है। गैंगस्टर अधिनियम, 1986 के तहत कोई विशेष प्रावधान नहीं है, जैसा कि महाराष्ट्र संगठित अपराध नियंत्रण अधिनियम, 1999 और गुजरात आतंकवाद और संगठित अपराध नियंत्रण अधिनियम, 2015 के तहत विशिष्ट प्रावधान हैं कि गैंगस्टर अधिनियम के तहत किसी आरोपी पर मुकदमा चलाते समय, एक से अधिक अपराध या एफआईआर/चार्जशीट।गैंगस्टर अधिनियम, 1986 के तहत प्रावधानों पर विचार करते हुए, एकल अपराध/एफआईआर/चार्जशीट के मामले में भी, यदि यह पाया जाता है कि अभियुक्त एक 'गिरोह'का सदस्य है और किसी भी विरोधी कार्य में शामिल है- गैंगस्टर अधिनियम की धारा 2(बी) में उल्लिखित सामाजिक गतिविधियां, जैसे हिंसा, या धमकी या हिंसा का प्रदर्शन, या डराना, या जबरदस्ती या अन्यथा सार्वजनिक व्यवस्था को परेशान करने या किसी अनुचित अस्थायी, आर्थिक लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से, स्वयं या किसी अन्य व्यक्ति के लिए सामग्री या अन्य लाभ और उसे अधिनियम की धारा 2 (सी) की परिभाषा के भीतर 'गैंगस्टर'कहा जा सकता है, उस पर गैंगस्टर अधिनियम के तहत अपराधों के लिए मुकदमा चलाया जा सकता है। इसलिए, जहां तक गैंगस्टर अधिनियम, 1986 का संबंध है, अधिनियम की धारा 2 (बी) में उल्लिखित किसी भी असामाजिक गतिविधियों के लिए एकल अपराध/एफआईआर/चार्जशीट के मामले में भी किसी व्यक्ति के खिलाफ मुकदमा चलाया जा सकता है। बशर्ते कि ऐसी असामाजिक गतिविधि हिंसा, या धमकी या हिंसा का प्रदर्शन, या धमकी, या जबरदस्ती या अन्यथा सार्वजनिक व्यवस्था को परेशान करने

अनुवादित

या अपने या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई अनुचित अस्थायी, आर्थिक, सामग्री या अन्य लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से हो। ।

10. विषय पर कानून और मामले के तथ्यों को देखते हुए, यह स्पष्ट है कि किसी आरोपी के खिलाफ एकल मामले के आधार पर भी गैंगस्टर एक्ट के तहत कार्रवाई की जा सकती है। जिस मामले के आधार पर गैंगस्टर एक्ट के तहत मामला दर्ज किया गया है, उसके गुण-दोष को नहीं देखा जा सकता है। मोहम्मद रुखसार के मामले में समन्वय पीठ का आदेश, जिसका आश्रय अपीलार्थी की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा उक्त आधार पर अंतरिम आदेश की प्रार्थना के लिए लिया जा रहा है, जो इस न्यायालय की खण्ड पीठ द्वारा पारित निर्णयों और सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भी विचार नहीं करता है। इससे भी अधिक, यह एक अंतरिम आदेश है जो इस न्यायालय पर बाध्यकारी नहीं है।

11. वर्तमान याचिका किसी भी योग्यता से रहित है, इसलिए इसे **खारिज** किया जाता है।

12. कार्यालय को आज से तीन सप्ताह के भीतर इस आदेश की एक प्रति धारा 482 के तहत 2022 की आपराधिक प्रकीर्ण आवेदन संख्या 43408 (मोहम्मद रुखसार बनाम उ.प्र. राज्य और अन्य) में रखने का निर्देश दिया जाता है।

(2023) 6 ILRA 573

मूल अधिकार क्षेत्र

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

धारा 482 के तहत आवेदन संख्या 17220/2023

मुजीम **आवेदक**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **विपक्षी पक्ष**

आवेदकों के अधिवक्ता: श्री प्रभाकर चंदेल

विपक्षी पक्ष के अधिवक्ता: जी.ए., श्री देवेन्द्र सिंह

आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा - 307: - धारा 482 के तहत आवेदन - धारा 307 आईपीसी के तहत सत्र परीक्षण की पूरी कार्यवाही को रद्द करने के लिए - इस आधार पर कि, पक्षों ने मामले में समझौता कर लिया है और ट्रायल कोर्ट के समक्ष समझौता आवेदन भी पेश किया है - दोषसिद्धि की कोई संभावना नहीं है क्योंकि शिकायतकर्ता-विपरीत पक्ष ने समझौता कर लिया है और यदि ट्रायल होता है तो अभियोजन पक्ष के समर्थन में गवाही नहीं देगा - अदालत ने पाया कि, साक्ष्य से पता चलता है कि इस्तेमाल किया गया हथियार आग्नेयास्त्र था और इसमें कोई संदेह नहीं है कि एक व्यक्ति जो दूसरे पर गोली चलाता है, वह हत्या

अनुवादित

करने के इरादे से ऐसा करता है, - निश्चित रूप से प्रेम या मजाक करने के इरादे से ऐसा नहीं करता है - माना जाता है कि समझौता करना समाज के खिलाफ अपराधों पर मुकदमा चलाने के लिए सेंट के कार्य का परित्याग होगा, इसकी अनुमति नहीं दी जा सकती है - और 'नरिंदर सिंह' मामले में निर्धारित सिद्धांत इसे स्वीकार नहीं करता है ऐसी संरचना का - इसलिए, आवेदन खारिज किया जाता है। (पैरा - 6, 7)

धारा 482 के तहत आवेदन खारिज किया गया। (ई-11)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

नरिंदर सिंह एवं अन्य बनाम स्टेट ऑफ पंजाब एवं अन्य, (2014) 6 एससीसी 466,

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा दिया गया)

यह आवेदन अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-1, चित्रकूट के न्यायालय में लंबित धारा 307 भ०द०वि०, थाना रायपुर, जिला: चित्रकूट के अधीन सत्र विचारण संख्या-152 वर्ष 2012, राज्य बनाम मुजीम (प्रकरण अपराध संख्या-950 वर्ष 2010 से उत्पन्न) की संपूर्ण कार्यवाही निरस्त करने की मांग करते हुए दायर किया गया है।

आवेदक के अधिवक्ता का निवेदन यह है कि पक्षकारों ने मामले में समझौता किया है और 04.04.2023 को सत्र परीक्षण संख्या-152 वर्ष 2012, राज्य बनाम मुजीम में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-1, चित्रकूट के समक्ष एक समझौता आवेदन दायर किया है, जिसकी एक प्रमाणित प्रति इस आवेदन के अनुलग्नक संख्या-5 के रूप में संलग्न है। यह तर्क दिया जाता है कि दोषसिद्धि की कोई संभावना नहीं है क्योंकि शिकायतकर्ता-प्रतिपक्षीने समझौता किया है और मुकदमे की सुनवाई होने की स्थिति में अभियोजन पक्ष के समर्थन में गवाही नहीं देगा।

अभियोजन पक्ष के मामले के अवलोकन से पता चलता है कि पहले सूचनाकर्ता के अनुसार, जो यहां शिकायतकर्ता-प्रतिपक्षी संख्या-2 है, शिकायतकर्ता शाहिद अली पुत्र राजा हुसैन, ग्राम डेरा निवासी, थाना रायपुरा, जिला: चित्रकूट के मौजा बंदी अपने चाचा शमशाद के साथ 29.12.2010 को गांव बांधी से मोटरसाइकिल पर घर जा रहा था। जब दोनों कपूरी मोड़ पर पहुंचे तो आवेदक मुजीम नहर के किनारे इंतजार कर रहा था। बताया जाता है कि वह आवेदक से द्वेष रखता था। शिकायतकर्ता को देखते ही प्रार्थी ने शाम करीब साढ़े सात बजे आज्ञाकारी का पीछा किया और उसके कुछ ही देर बाद गोली चला दी। शिकायतकर्ता की गर्दन पर गोली लगी है। चोट लगने के बावजूद, शिकायतकर्ता और उसके चाचा ने आवेदक का पीछा किया, लेकिन उसने अच्छा भाग कर अपनी जान बचा लिया। चोटों को कम्बाइन्ड अस्पताल चित्रकूट में एक मेडिको-कानूनी परीक्षा के अधीन किया गया था, जहां निम्नलिखित चोट का उल्लेख किया गया था:

"1. घाव 2 सेमी x 1 सेमी गर्दन का पिछला हिस्सा इसके चारों ओर 12 सेमी x 12 सेमी काला हो जाता है। सूजन गर्दन के पार्श्व पक्ष तक गर्दन तक जाती है। गहराई का पता नहीं चल सका। निगरानी में रखा गया। ताजा रक्त मौजूद है। गर्दन के एक्स रे की सलाह दी गई।

अनुवादित

राय- उपरोक्त आग्नेयास्त्र और ताजा के कारण चोट का उल्लेख।

बाद में चोट की एक्स-रे जांच की गई और रेडियोलॉजी विभाग, एमएलएन मेडिकल कॉलेज, एसआरएन अस्पताल, इलाहाबाद ने 11.02.2011 को एक मेडिको लीगल रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें लिखा है:

1. प्रदर्श-रे ग्रीवा रीढ़

-एक्स रे चेहरा

-ग्रीवा क्षेत्र पर बोनी फ्रैक्चर का कोई सबूत नहीं देखा गया।

-टेम्पोरोमैंडिबुलर जोड़ पर देखी गई धातु घनत्व की रेडियो अपारदर्शी छाया का साक्ष्य।

2. प्रदर्श-रे छाती पीए दृश्य।

बोनी फ्रैक्चर का कोई सबूत नहीं देखा गया। (न्यायालय द्वारा बल दिया गया)

प्राथमिकी और मेडिको-लीगल रिपोर्ट को पढ़ने से संदेह की छाया नहीं बचती है कि आवेदक ने शिकायतकर्ता-प्रतिपक्षी को देशी पिस्तौल से गोली मारी और शिकायतकर्ता को उसकी गर्दन पर बंदूक की गोली का घाव मिला। यह केवल सरासर भाग्य से है कि वह घातक हमले से बच गया। आवेदक के अधिवक्ता का कहना है कि चूंकि दोषसिद्धि की कोई संभावना नहीं है और शिकायतकर्ता-प्रतिपक्षी के रुख को देखते हुए, जो समझौता करने को तैयार है, नरिंदर सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य (2014) 6 एस.सी.सी. 466 में सुप्रीम कोर्ट के फैसले के मद्देनजर मामले की कार्यवाही को रद्द कर दिया जाना चाहिए। नरिंदर सिंह (उपरोक्त) में, निम्नलिखित दिशानिर्देश निर्धारित किए गए हैं:

"29.6. धारा 307 भ०द०वि० के तहत अपराध जघन्य और गंभीर अपराधों की श्रेणी में आएंगे और इसलिए उन्हें आम तौर पर समाज के खिलाफ अपराध के रूप में माना जाना चाहिए, न कि अकेले व्यक्ति के खिलाफ। हालांकि, उच्च न्यायालय केवल इसलिए अपने फैसले से पीछे नहीं हटेगा क्योंकि प्राथमिकी में धारा 307 भ०द०वि० का उल्लेख है या इस प्रावधान के तहत आरोप तय किया गया है। यह विकल्प उच्च न्यायालय के लिए खुला होगा कि वह इस बात की जांच करे कि क्या धारा 307 भ०द०वि० को शामिल किया गया है या अभियोजन पक्ष ने पर्याप्त सबूत एकत्र किए हैं, जो अगर साबित हो जाते हैं, तो धारा 307 भ०द०वि० के तहत आरोप साबित हो जाएगा। इस प्रयोजन के लिए, उच्च न्यायालय को लगी चोट की प्रकृति, क्या ऐसी चोट शरीर के महत्वपूर्ण/नाजुक अंगों, प्रयुक्त हथियारों की प्रकृति आदि को दी गई है, को देखने का विकल्प खुला होगा। पीड़ित को लगी चोटों के संबंध में चिकित्सा रिपोर्ट सामान्यत मार्गदर्शक कारक हो सकती है। इस प्रथम दृष्टया विश्लेषण के आधार पर, उच्च न्यायालय यह जांच कर सकता है कि क्या दोषसिद्धि की प्रबल संभावना है या दोषसिद्धि की संभावना दूरस्थ और धूमिल है। पहले मामले में यह समझौते को स्वीकार करने से इनकार कर सकता है और आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर सकता है जबकि बाद के मामले में उच्च न्यायालय के लिए पक्षों के बीच पूर्ण निपटान के आधार पर अपराध को स्वीकार करने की अनुमति होगी। इस स्तर पर, न्यायालय इस तथ्य से भी प्रभावित हो सकता है कि पक्षों के बीच समझौता उनके बीच सामंजस्य बनाने जा रहा है जो उनके भविष्य के संबंधों में सुधार कर सकता है।

अनुवादित

29.7. संहिता की धारा 482 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करना है या नहीं, यह तय करते समय, निपटान का समय एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वे मामले जिनमें अपराध के कथित कमीशन के तुरंत बाद समझौता हो जाता है और मामले की अभी भी जांच चल रही है, उच्च न्यायालय आपराधिक कार्यवाही/जांच को रद्द करने के लिए समझौते को स्वीकार करने में उदार हो सकता है। यह इस कारण से है कि इस स्तर पर जांच अभी भी जारी है और यहां तक कि आरोप पत्र भी दायर नहीं किया गया है। इसी तरह, वे मामले जहां आरोप तय किया गया है, लेकिन साक्ष्य अभी शुरू नहीं हुए हैं या साक्ष्य अभी भी प्रारंभिक अवस्था में हैं, उच्च न्यायालय अपनी शक्तियों का अनुकूल रूप से प्रयोग करने में उदारता दिखा सकता है, लेकिन ऊपर उल्लिखित परिस्थितियों/सामग्री के प्रथम दृष्टया मूल्यांकन के बाद। दूसरी ओर, जहां अभियोजन साक्ष्य लगभग पूरा हो गया है या साक्ष्य के समापन के बाद मामला बहस के चरण में है, आमतौर पर उच्च न्यायालय को संहिता की धारा 482 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करने से बचना चाहिए, क्योंकि ऐसे मामलों में विचारण न्यायालय मामले को अंतिम रूप से गुण-दोष के आधार पर तय करने और इस निष्कर्ष पर पहुंचने की स्थिति में होगा कि क्या धारा 307 भ०द०वि० गठित होती है या नहीं। इसी प्रकार, उन मामलों में जहां दोषसिद्धि विचारण न्यायालय द्वारा पहले ही दर्ज की जा चुकी है और मामला उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलीय चरण में है, केवल पक्षों के बीच समझौता इसे स्वीकार करने का आधार नहीं होगा, जिसके परिणामस्वरूप अपराधी को बरी कर दिया जाएगा जिसे पहले ही विचारण न्यायालय द्वारा दोषी ठहराया जा चुका है। यहां धारा 307 भ०द०वि० के तहत आरोप साबित होता है और जघन्य अपराध के लिए दोषसिद्धि पहले से ही दर्ज की जाती है और इसलिए, इस तरह के अपराध के दोषी पाए गए दोषी को बख्शने का कोई सवाल ही नहीं है। (कोर्ट द्वारा बल दिया गया)

अब, यहां साक्ष्य से पता चलता है कि इस्तेमाल किया गया हथियार एक आग्नेयास्त्र था और इसमें कोई संदेह नहीं है कि एक व्यक्ति जो दूसरे पर गोली चलाता है, वह मारने के इरादे से ऐसा करता है। वह निश्चित रूप से प्यार करने या मजाक खेलने के इरादे से ऐसा नहीं करता है।

इस मामले में, बंदूक की गोली की चोट गर्दन पर लगी थी, जो शरीर का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। मेडिको लीगल रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से पता चलता है कि गर्दन पर चोट लगने की जगह पर क्षेत्र में 12 सेमी x 12 सेमी कालापन था, जहां बंदूक की गोली की चोट मिली थी। पूरक चिकित्सा रिपोर्ट टेम्पोरोमैंडिबुलर संयुक्त में देखी गई धातु घनत्व की रेडियो-अपारदर्शी छाया का प्रमाण दिखाती है। इससे पता चलता है कि बन्दूक से छर्रों को टेम्पोरोमैंडिबुलर जोड़ में दर्ज किया गया था। यह चोट की प्रकृति और चोट और जगह होने के नाते, इस्तेमाल किए गए हथियार के अलावा, पक्षों को समझौता करने की अनुमति देने के लिए समाज के खिलाफ अपराधों पर मुकदमा चलाने के लिए राज्य के कार्य का त्याग होगा। न्यायालय की राय में निश्चित रूप से इसकी अनुमति नहीं दी जा

अनुवादित

सकती। इस न्यायालय की समझ के अनुसार, नरिंदर सिंह मामले में निर्धारित सिद्धांत इस तरह की संरचना और इसके आधार पर रद्द करने को मंजूरी नहीं देता है।

यह आदेश किसी भी तरह से विचारण में साक्ष्य से स्वतंत्र करने में पूर्वाग्रह ``````````नहीं करेगा।

यह आवेदन अस्वीकार किया जाता है। इस आदेश को 48 घंटे के भीतर रजिस्ट्रार (अनुपालन) द्वारा विद्वान सत्र न्यायाधीश, चित्रकूट के माध्यम से अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश संख्या-1, चित्रकूट को सूचित किया जाए।

(2023) 6 ILRA 576

मूल अधिकार क्षेत्र

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 01.0.52023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शेखर कुमार यादव

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या 17732 वर्ष 2018

अनुज कुमार पांडे एवं अन्य. ..आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य. . .विपक्षी पक्ष

आवेदकों के अधिवक्ता: श्री संजय सिंह, श्री अमरेंद्र नाथ राय

विपक्षी पक्ष के अधिवक्ता: जी.ए., श्री वेद प्रकाश पांडे

दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 125, 128 और 482: - धारा 482 के तहत आवेदन - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा - 125, 128 और 482: - धारा 482 के तहत आवेदन - आवेदक ने समन आदेश और आपराधिक पुनरीक्षण में पारित आदेश के साथ-साथ आगे की कार्यवाही को चुनौती दी - सीआरपीसी की धारा 156(3) के तहत शिकायत - एफआईआर - जांच - अंतिम रिपोर्ट - विरोध याचिका - अंतिम रिपोर्ट खारिज कर दी गई - लेकिन, सीआरपीसी की धारा 200, 202 के तहत कथन दर्ज करने और संपूर्ण तथ्यों के अवलोकन के बाद निचली अदालत ने सीआरपीसी की धारा 203 के तहत शिकायत मामले को खारिज कर दिया। - जिसके विरुद्ध मुखबिर के विरुद्ध आपराधिक पुनरीक्षण प्रस्तुत किया गया था - पुनरीक्षण न्यायालय ने पुनरीक्षण को अनुमति दी तथा मामले को नए सिरे से विचार के लिए निचली अदालत में वापस भेज दिया - परिणामस्वरूप, ट्रायल कोर्ट ने सभी आरोपियों को तलब किया - आवेदक ने दलील दी कि मामले को नए सिरे से वापस भेजते समय पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष सुनवाई का उन्हें अधिकार है - न्यायालय ने पाया कि यह स्पष्ट नहीं है कि आवेदकों को सुनवाई का अवसर प्रदान किया गया था या नहीं या उन पर नोटिस की उचित तामील कभी की गई थी या नहीं, जिसका पुनरीक्षण आदेश में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया जाना चाहिए था - माना गया कि आरोपी आवेदकों के विरुद्ध प्रक्रिया जारी करने का आदेश कायम नहीं रखा जा सकता, जिससे उनके प्रति पूर्वाग्रह उत्पन्न होता है, आरोपी आवेदकों को सुने बिना पुनरीक्षण की अनुमति देने वाला विवादित आदेश कानून की दृष्टि से कमजोर है - इसलिए आवेदक को अनुमति दी जाती है - मामले को तीन महीने के भीतर आरोपी

अनुवादित

आवेदकों को सुनने के पश्चात कानून के अनुसार नया आदेश पारित करने के लिए पुनरीक्षण न्यायालय को वापस भेजा जाता है। (पैरा - 9, 10, 11)

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन स्वीकार किया गया। (ई-11)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. मनहरिभाई मुलजीभाई काकाडिया बनाम शैलेशभाई मोहनभाई पटेल (2012 खंड 10 एससीसी 517),

2. जगन्नाथ वर्मा बनाम स्टेट ऑफ यूपी एवं अन्य। (आपराधिक विविध मामला संख्या 3778/2012 दिनांक 23.09.2014 को निर्णय लिया गया।

(माननीय न्यायमूर्ति शेखर कुमार यादव द्वारा दिया गया)

आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता, राज्य के विद्वान सहायक शासकीय अधिवक्ता को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया। निजी प्रतिवादी की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं है। इस आवेदन के माध्यम से, आवेदक ने विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 5, शाहजहांपुर द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 91 वर्ष 2016 में पारित आदेश दिनांक 9.12.2016 और वाद संख्या 3659 वर्ष 2013 अन्तर्गत धारा 498-ए, 304-बी, भा.दं.सं. और धारा 4, दहेज प्रतिषेध अधिनियम में सीजेएम, शाहजहांपुर द्वारा पारित समन आदेश दिनांक 20.7.2017 और साथ ही शिकायत वाद संख्या 3659 वर्ष 2013 अन्तर्गत धारा 498-ए, 304-बी, भा.दं.सं. और धारा 4, दहेज प्रतिषेध अधिनियम, थाना सिंधौली, जिला शाहजहांपुर की आगे की सम्पूर्ण कार्यवाही को रद्द करने के लिए प्रार्थना की है।

मामले के संक्षिप्त तथ्य ये हैं कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के तहत आवेदन के आधार पर विपक्षी पक्ष संख्या 2 द्वारा दर्ज कराई गई प्राथमिकी दिनांक 19.5.2013 पर जांच की गई और जांच अधिकारी ने गवाहों और शिकायतकर्ता के साथ-साथ पीड़िता के बयान दर्ज करने के बाद दिनांक 2.6.2013 को मामले में अंतिम रिपोर्ट पेश की। इसके बाद शिकायतकर्ता द्वारा विरोध याचिका दायर की गई, जिस पर विद्वान मजिस्ट्रेट ने अंतिम रिपोर्ट को खारिज कर दिया और शिकायत दर्ज की और शिकायतकर्ता/सूचना देने वाले और उसके गवाहों के बयान, जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 200/202 के तहत दर्ज करना कहा गया है, दर्ज करने के बाद और मामले के सभी तथ्यों और परिस्थितियों के साथ-साथ आरोपों की सत्यता पर विचार करने के बाद धारा 203, दंड प्रक्रिया संहिता के तहत शिकायत को, आदेश दिनांक 6.4.2016 द्वारा, इस आधार पर खारिज कर दिया कि पीड़िता के मृत्युपूर्व बयान और संबंधित तहसीलदार, जिन्होंने उसका मृत्युपूर्व बयान दर्ज किया था, पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। उक्त आदेश से व्यथित होकर, सूचक/शिकायतकर्ता ने आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 91 वर्ष 2016 दायर किया, जिसे पुनरीक्षण न्यायालय ने आदेश दिनांक 9.12.2016 द्वारा स्वीकार कर लिया तथा समन के बिंदु पर शिकायतकर्ता/विपक्षी पक्ष की सुनवाई के पश्चात मामले को नये सिरे से विचार हेतु संबंधित मजिस्ट्रेट के पास वापस भेज दिया। तत्पश्चात, विद्वान मजिस्ट्रेट ने आदेश दिनांक 20.7.2017 द्वारा सभी आरोपी आवेदकों को भा.दं.सं. की धारा 498-ए, 304-बी के तहत

अप्रमाणित

मुकदमे का सामना करने के लिए समन भेजा। यह वह आदेश है जिसे इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई है।

आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि पुनरीक्षण न्यायालय ने विपक्षी पक्ष/आवेदकों की अनुपस्थिति में आपराधिक पुनरीक्षण का फैसला किया है और सभी आरोपी आवेदकों को कोई नोटिस और सुनवाई का अवसर दिए बिना आदेश पारित किया गया। आवेदकों द्वारा लिए गए आधार यह हैं कि यदि शिकायतकर्ता ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 203 के तहत शिकायत को खारिज करने के आदेश के खिलाफ पुनरीक्षण दायर किया है, तो आवेदकों को सुनवाई का अधिकार है और यदि उन्हें अवसर नहीं दिया गया है, तो आदेश को बरकरार नहीं रखने दिया जाएगा। अपने तर्कों के समर्थन में, उन्होंने **[(2012) 10 एससीसी 517] में प्रकाशित मनहारीभाई मुलजीभाई काकड़िया बनाम शैलेशभाई मोहनभाई पटेल** के मामले का आश्रय लिया। विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने भी आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता के उपरोक्त कानूनी तर्क का समर्थन किया।

मनहारीभाई मुलजीभाई काकड़िया (सुप्रा) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का प्रासंगिक अंश नीचे उद्धृत किया गया है:-

"46. कानूनी स्थिति उचित रूप से सुस्थापित है कि संहिता की धारा 202 के तहत कार्यवाही में अभियुक्त/संदिग्ध इस प्रश्न पर सुनवाई का हकदार नहीं है कि उसके खिलाफ प्रक्रिया जारी की जानी चाहिए या नहीं। कानून के अनुसार, प्रक्रिया जारी करने के चरण तक, अभियुक्त सुनवाई के किसी भी अधिकार का दावा नहीं कर सकता है। धारा 202 प्रक्रिया जारी करने को स्थगित करने पर विचार करती है, जहां मजिस्ट्रेट की राय है कि शिकायत में आगे की जांच या तो स्वयं द्वारा किये जाने की आवश्यकता है और वह आगे की जांच के साथ आगे बढ़ता है या पुलिस अधिकारी या ऐसे किसी अन्य व्यक्ति जिसे वह उपयुक्त समझे, द्वारा यह निर्णय करने के उद्देश्य से जांच करने का निर्देश देता है कि कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है या नहीं। <u>यदि मजिस्ट्रेट पाता है कि शिकायत के साथ आगे बढ़ने के लिए कोई पर्याप्त आधार नहीं है और संहिता की धारा 203 के तहत शिकायत को खारिज कर देता है, तो सवाल यह है कि शिकायतकर्ता द्वारा शिकायत को खारिज करने के आदेश के खिलाफ दायर पुनरीक्षण आवेदन में क्या शिकायत में अपराध का आरोपी व्यक्ति सुनवाई के अधिकार का दावा कर सकता है</u>। संसद इस कानूनी स्थिति से अवगत है कि अभियुक्त/संदिग्ध धारा 204 के तहत प्रक्रिया जारी होने तक कार्यवाही के किसी भी चरण में सुनवाई का हकदार नहीं हैं, फिर भी संहिता की धारा 401(2) में यह प्रावधान है कि सत्र न्यायाधीश या उच्च न्यायालय, यथाप्रकरण, द्वारा पुनरीक्षण की शक्ति के प्रयोग में कोई भी आदेश अभियुक्त या अन्य व्यक्ति के प्रतिकूल नहीं दिया जाएगा, जब तक कि उसे अपने बचाव में, व्यक्तिगत रूप से या अधिवक्ता द्वारा, सुनवाई का अवसर न मिल जाए।"

उपरोक्त मामले में सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ में शामिल सटीक मुद्दा यह था

अप्रमाणित

कि क्या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 203 के तहत शिकायत को खारिज करने वाले मजिस्ट्रेट के आदेश को चुनौती देते हुए शिकायतकर्ता द्वारा प्रस्तुत किए गए पुनरीक्षण में, कोई संदिग्ध, पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा सुनवाई का हकदार है। इसने माना कि एक बार जब आपराधिक शिकायत को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 203 के तहत खारिज कर दिया जाता है और शिकायतकर्ता द्वारा पुनरीक्षण दायर किया जाता है, तो ऐसे पुनरीक्षण में, संभावित आरोपी दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 की उप-धारा (2) में निहित प्रावधानों के मद्देनजर एक आवश्यक पक्षकार बन जाता है।

इस न्यायालय की पूर्ण पीठ ने **23.9.2014 को निर्णीत आपराधिक प्रकीर्ण वाद संख्या 3778 वर्ष 2012 जगन्नाथ वर्मा बनाम यूपी राज्य और अन्य** के मामले में एक प्रश्न का उत्तर देते हुए यह भी माना है कि धारा 397 के अंतर्गत पुनरीक्षण की कार्यवाही में, संभावित अभियुक्त या यथाप्रकरण, वह व्यक्ति जिस पर अपराध करने का संदेह है, आपराधिक पुनरीक्षण में निर्णय लिए जाने से पहले सुनवाई का हकदार है।

उपर्युक्त कानूनी स्थिति के मद्देनजर, यह स्पष्ट हो जाता है कि अभियुक्त आवेदकों के खिलाफ प्रक्रिया जारी करने का आदेश बरकरार नहीं रखा जा सकता है क्योंकि उक्त अभियुक्त को उसपर प्रतिकूल प्रभाव वाला आदेश पारित किए जाने से पहले सत्र न्यायालय द्वारा नहीं सुना गया था। प्रश्नगत प्रतिकूलता इस तथ्य के संबंध में है कि विद्वान मजिस्ट्रेट ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 203 के तहत शिकायत को खारिज कर दिया था और सत्र न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण में ऐसे निर्णय को पलट दिया गया था, जिससे अभियुक्त के खिलाफ शिकायत फिर से प्रारंभ हो गई, इस प्रकार सत्र न्यायालय का आदेश आवेदकों पर प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न कर रहा था, और इन परिस्थितियों में, सत्र न्यायालय द्वारा उन्हें सुना जाना आवश्यक था। इसके अलावा, आक्षेपित पुनरीक्षण आदेश को देखने पर यह स्पष्ट नहीं है कि आवेदकों/संभावित आरोपी व्यक्तियों को सुनवाई का अवसर दिया गया था या नहीं या आवेदकों/संभावित आरोपियों पर नोटिस की उचित तामीला कभी की गई थी या नहीं और उनपर उचित रूप से तामीला हुई थी, जिसका पुनरीक्षण आदेश में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया जाना चाहिए था।

इस प्रकार, यह न्यायालय इस मत का है कि दिनांक 09.12.2016 का आदेश, जिसमें आरोपी आवेदकों को सुने बिना विपक्षी पक्ष संख्या 2 के पुनरीक्षण को स्वीकार किया गया था, उपरोक्त कानूनी स्थिति के विपरीत था, जिससे आक्षेपित आदेश कानून की दृष्टि से कमजोर हो गए।

तदनुसार, आवेदन स्वीकार किया जाता है। विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 5, शाहजहांपुर द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 91 वर्ष 2016 में पारित आदेश दिनांक 9.12.2016 तथा वाद संख्या 3659 वर्ष 2013 अन्तर्गत धारा 498-ए, 304-बी, भा.दं.सं. और धारा 4, दहेज प्रतिषेध

अनुवादित

अधिनियम में सीजेएम, शाहजहांपुर द्वारा पारित समन आदेश दिनांक 20.7.2017 को एतद्द्वारा निरस्त किया जाता है। मामले को, आरोपी आवेदकों की सुनवाई के बाद, यथाशीघ्र, अधिमानतः इस आदेश की प्राप्ति की तिथि से 3 महीने के भीतर, कानून के अनुसार नया आदेश पारित करने हेतु पुनरीक्षण न्यायालय को वापस भेजा जाता है।

कार्यालय संबंधित न्यायालय को इस आदेश से तत्काल अवगत कराए।

(2023) 6 ILRA 945

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 23.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अंजनी कुमार मिश्रा

माननीय न्यायमूर्ति सुश्री नंद प्रभा शुक्ला

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या - 3831/2023

विनोद कुमार मिश्रा . याचिकाकर्ता

बनाम

यू.पी. राज्य और अन्य प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री बिपिन कुमार त्रिपाठी, श्री अनुराग पाठक, श्री हर्षित पाठक, श्री शुभम

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: जी.ए.

आपराधिक कानून -रिट याचिका- यू.पी. गैंगस्टर्स एवं असामाजिक क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1986 - उ.प्र. गैंगस्टर्स एवं असामाजिक क्रियाकलाप (निवारण) नियमावली, 2021 की धारा 16- धारा 3(i) - दर्ज एफआईआर को निरस्त करने या त्वरित अग्रेषित करने की परिकल्पना - गैंग चार्ट की संस्तुति कर अनुमोदन हेतु अग्रेषित - अनावश्यक विलम्ब न हो - यह निष्कर्ष न निकाला जा सके कि नियमों का अनुपालन नहीं किया गया है - नियमों का उद्देश्य - गैंगस्टर्स को दण्डित करना - असामाजिक क्रियाकलापों को रोकने के लिए प्रभावी तंत्र स्थापित करना - एफआईआर में आरोप संज्ञेय अपराध के किए जाने का खुलासा करते हैं - याचिका खारिज।

निर्णय:

जहां गैंग-चार्ट की संस्तुति कर अनावश्यक विलम्ब के बिना अनुमोदन हेतु अग्रेषित किया जाता है, वहां यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि उ.प्र. गैंगस्टर्स एवं असामाजिक क्रियाकलाप (निवारण) नियमावली, 2021 के उपबन्धों का अनुपालन नहीं किया गया है।

उक्त नियमावली को क्रियान्वित करने का मुख्य उद्देश्य गैंगस्टर्स को दण्डित करने के लिए पारदर्शी प्रक्रिया उपलब्ध कराना तथा असामाजिक क्रियाकलापों को रोकने के लिए कुशल तंत्र स्थापित करना है।

उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, एफआईआर में लगाए गए आरोपों से संज्ञेय अपराध का पता चलता है।

इसमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। इसलिए, रिट याचिका खारिज की जाती है।

याचिका खारिज की जाती है। (ई-14)

(माननीय न्यायमूर्ति सुश्री नंद प्रभा शुक्ला द्वारा दिया गया)

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अनुराग पाठक राज्य के विद्वान ए. जी. ए. को सुना व अभिलेख का परिशीलन किया।

अनुवादित

वर्तमान रिट याचिका में मुकदमा अपराध संख्या 94 / 2023, उत्तर प्रदेश गिरोहबन्द और समाज विरोधी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1986 की धारा 3 (i) के अंतर्गत, थाना- रामगढ़ ताल, जिला - गोरखपुर को उत्पन्न करने वाली एफआईआर दिनांकित 23.02.2023 को रद्द करने की प्रार्थना की गई है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि याचिकाकर्ता को राजनीतिक प्रभाव के कारण झूठा फंसाया गया है। आगे यह भी तर्क दिया गया है कि उत्तर प्रदेश गिरोहबन्द और समाज विरोधी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 2021 के कुछ प्रावधानों का अनुपालन नहीं किया जा रहा है। गैंग चार्ट के अनुमोदन हेतु निर्धारित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है। गैंग चार्ट की अनुशंसा और अग्रेषण से पहले कोई उचित जांच नहीं की गई है। उपरोक्त तर्क के अलावा, यह प्रस्तुत किया गया है कि संयुक्त बैठक नहीं हुई।

इसके विरूद्ध, राज्य के विद्वान ए. जी.ए. द्वारा उपरोक्त तर्क को इस आधार पर विरोध किया गया है कि याचिकाकर्ता गिरोह का एक सक्रिय सदस्य है और उसे दो मूल मामलों में तैयार आरोप पत्र के आधार पर सम्मिलित किया गया है: —

(i) आरोप पत्र दिनांकित 04.01.2023 के तहत मुकदमा अपराध संख्या 606/2022, अंतर्गत धारा 147, 323, 504, 506, 427, 455, 307 आईपीसी, थाना रामगढ़ ताल, जिला गोरखपुर ।

(ii) आरोप पत्र दिनांकित 06.01.2023 के तहत मुकदमा अपराध संख्या 621/2022, अंतर्गत धारा 193, 420, 120-बी आईपीसी, थाना रामगढ़ ताल, जिला गोरखपुर। इस पर जोर दिया गया है कि उत्तर प्रदेश गिरोहबन्द और समाज विरोधी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 2021 के नियम 16 अपने सामान्य अनुप्रयोग में गैंगचार्ट की अनुशंसा व अग्रेषण करते समय पुलिस अधिकारियों द्वारा त्वरित अग्रेषित कार्रवाई करने का प्रावधान करता है। उपरोक्त के अलावा, उपरोक्त नियमों के नियम 16(3) को उद्धृत करना प्रासंगिक है, जो इस प्रकार है:-

"नियम 16.....

(3):- पुलिस आयुक्त/जिला मजिस्ट्रेट का प्रस्ताव:- जब गैंगचार्ट सभी प्रपत्रों के साथ पुलिस आयुक्त/जिला मजिस्ट्रेट को भेजा जाएगा, तो पुलिस आयुक्त/जिला मजिस्ट्रेट द्वारा सभी तथ्यों का सम्यक अवलोकन भी किया जाएगा और जब वह संतुष्ट हो जाएगा कि मामले में कार्रवाई का आधार मौजूद है, तो वह गैंग चार्ट को मंजूरी दे देगा जिसमें कहा जाएगा: "मैंने गैंग चार्ट के साथ संलग्न साक्ष्य के आलोक में गैंग चार्ट और संलग्न प्रपत्रों का सम्यक अवलोकन किया, उत्तर प्रदेश गिरोहबन्द और समाज विरोधी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1986 के अंतर्गत कार्रवाई करने के लिए संतोषजनक आधार पर्याप्त हैं। गैंग चार्ट तदनुसार अनुमोदित किया जाता है। "

उल्लेखनीय है कि उपरोक्त लिखे गए शब्द केवल उदाहरणात्मक हैं। शब्दशः लिखने की बाध्यता नहीं है लेकिन यह जरूरी है कि अनुमोदन का अर्थ ऊपर लिखी गई अनुशंसा के समान ही होना चाहिए, और यह अंकित अनुमोदन नोट से भी स्पष्ट होना चाहिए।"

अनुवादित

इस प्रकार, दिनांक 20.02.2023 के गैंग चार्ट के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि अनुशंसा करने वाले पुलिस अधिकारी और साथ ही संबंधित जिला मजिस्ट्रेट एकमत थे। उनकी अंतर्निहित सहमति इस तथ्य से स्पष्ट है कि उन्होंने त्वरित अग्रेषण कार्रवाई के रूप में उसी तिथि को गैंग चार्ट की अनुशंसा की थी और अनुमोदन के लिए अग्रेषित किया था। इसके अलावा, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता की इस तर्क का कोई आधार नहीं है कि गैंग चार्ट को अनुमोदित किये जाते समय वास्तव में कोई संयुक्त बैठक आयोजित नहीं की गई थी। केवल इसलिए कि मंजूरी देने वाले प्राधिकारी ने बाद में गैंगचार्ट को मंजूरी दे दी है, यह नहीं माना जा सकता है कि कोई संयुक्त बैठक नहीं हुई, खासकर जब याचिका में दिए गए स्पष्ट बयान को उनके द्वारा प्राप्त निर्देशों के आधार पर विद्वान ए. जी.ए. द्वारा अस्वीकार कर दिया गया हो।

याचिकाकर्ता गिरोह का सक्रिय सदस्य होने के नाते कई असामाजिक गतिविधियों में शामिल रहा है। इस प्रकार, जैसा कि याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने तर्क दिया है, उत्तर प्रदेश गिरोहबन्द और समाज विरोधी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 2021 के प्रावधानों का अनुपालन न करने का कोई आधार नहीं है।

जहां पर गैंग-चार्ट की अनुशंसा की जाती है और अनावश्यक विलंब के बिना अनुमोदन हेतु अग्रेषित किया जाता है, वहाँ पर जाने पर यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि उत्तर प्रदेश गिरोहबन्द और समाज विरोधी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 2021 के प्रावधानों का अनुपालन नहीं किया गया है।

उक्त नियमों को लागू करने का मुख्य उद्देश्य, गैंगस्टरों को दंडित करने के लिए पारदर्शी प्रक्रिया प्रदान करना तथा असामाजिक गतिविधियों को रोकने के लिए एक सक्षम तंत्र स्थापित करना है। उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों के दृष्टिगत, एफआईआर में लगाए गए आरोप संज्ञेय अपराध के घटित होने का खुलासा करते हैं।

किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। इसलिए रिट याचिका खारिज की जाती है।

(2023) 6 ILRA 947

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 22.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अंजनी कुमार मिश्रा

माननीय न्यायमूर्ति सुश्री नंद प्रभा शुक्ला

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 18302/2022

दिलीप कुमार सिंह @ दीपू सिंह याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री अरविंद कुमार उपाध्याय

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: जी.ए., धर्मवीर सिंह

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 419, 420, 467, 468, 471 और 409 - रिट याचिका - के तहत दर्ज एफआईआर को रद्द करना - भविष्य निधि

अनुवादित

आयुक्त, वाराणसी के समक्ष पहले से ही विचाराधीन दीवानी मुकदमा - आपराधिक अभियोजन को केवल इसलिए नहीं रोका जा सकता क्योंकि दीवानी कार्यवाही भी अनुरक्षणीय है - याचिकाकर्ता के खिलाफ आपराधिक अभियोजन अभी भी आगे बढ़ सकता है - याचिका खारिज।

निर्णय:

उपर्युक्त तथ्यों पर विचार करते हुए, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि आपराधिक कार्यवाही के साथ-साथ दीवानी कार्यवाही को एक साथ जारी रखने पर कोई स्पष्ट रोक नहीं है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा (1999) 8 एससीसी 686 (ट्रिसन्स केमिकल इंडस्ट्री बनाम राजेश अग्रवाल एवं अन्य) में दिए गए निर्णय का हवाला देते हुए कहा गया है कि आपराधिक अभियोजन को केवल इसलिए नहीं रोका जा सकता क्योंकि सिविल कार्यवाही भी अनुरक्षणीय है। केवल इसलिए कि किसी कार्य का सिविल प्रोफाइल है, उसे उसके आपराधिक स्वरूप से वंचित करना पर्याप्त नहीं है। इस प्रकार, भले ही सिविल कार्यवाही भविष्य निधि आयुक्त, वाराणसी के समक्ष विचाराधीन हो, फिर भी याचिकाकर्ता के विरुद्ध आपराधिक अभियोजन आगे बढ़ सकता है।.

याचिका खारिज। (ई-14)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

ट्रिसन्स केमिकल इंडस्ट्री बनाम राजेश अग्रवाल एवं अन्य, (1999) 8 एससीसी 686 (माननीय न्यायमूर्ति सुश्री नंद प्रभा शुक्ला द्वारा दिया गया)

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, राज्य के लिए विद्वान ए. जी. ए. को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

तत्काल रिट याचिका में एफआईआर संख्या 513/2022 अंतर्गत धारा 419, 420, 467, 468, 471, 409 आईपीसी, पुलिस स्टेशन - कोतवाली मऊ, जिला-मऊ, जो एफआईआर दिनांकित 17.11.2022 से उत्पन्न है, को रद्द करने की मांग की गई है।

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का मुख्य तर्क यह है कि याचिकाकर्ता मेसर्स सिंह कंस्ट्रक्शन, निज़ामुद्दीनपुरा, मऊ का मालिक है और उसे 01.04.2017 से 31.03.2018 की अवधि तक 14 वार्डों की सफाई हेतु, जिसमें शहरी गरीब बस्तियां और स्लम क्षेत्र भी शामिल है, नगर पालिका परिषद, मऊनाथ भंजन, मऊ द्वारा ठेकेदार के रूप में कार्य आदेश दिया गया था, जिसके लिए लगभग 275 सफाई कर्मचारी नियोजित थे।

आगे यह भी तर्क दिया गया कि याचिकाकर्ता को गलत इरादे से फंसाया गया है। उपरोक्त को जोड़ते हुए, यह तर्क दिया गया है कि सिविल मुकदमा पहले से ही भविष्य निधि आयुक्त, वाराणसी के समक्ष विचाराधीन है।

इसके विपरीत, राज्य के विद्वान एजीए ने उपरोक्त तर्कों का विरोध किया है और कहा है कि याचिकाकर्ता ने सफाई कर्मचारियों की भविष्य निधि राशि जमा नहीं की है और चालान / रसीदों की नकली प्रतियां पेश की हैं, जिसके परिणामस्वरूप ईपीएफ राशि में 285 कर्मचारियों के रुपयों का गबन हुआ है।

अवलोकित

उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि आपराधिक कार्यवाही के साथ-साथ सिविल कार्यवाही को एक साथ जारी रखने पर कोई रोक नहीं है । (1999) 8 एससीसी 686 (ट्राइसन्स केमिकल इंडस्ट्री बनाम राजेश अग्रवाल और अन्य) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का हवाला देते हुए, यह माना गया है कि आपराधिक अभियोजन को केवल इसलिए विफल नहीं किया जा सकता क्योंकि नागरिक कार्यवाही भी अनुरक्षणीय है । केवल सिर्फ इसलिए कि किसी कृत्य की सिविल रूपरेखा है, उसे आपराधिक सामग्री से निरावरण करने के लिए पर्याप्त नहीं है।

इस प्रकार, भले ही सिविल कार्यवाही भविष्य निधि आयुक्त, वाराणसी के समक्ष विचाराधीन हो, फिर भी याचिकाकर्ता के खिलाफ आपराधिक मुकदमा चलाया जा सकता है।

पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिये गए तर्कों पर विचार करने और अभिलेखों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि एफआईआर में लगाए गए आरोप एक संज्ञेय अपराध के घटक हैं।

किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है.

इसलिए रिट याचिका खारिज की जाती है।

(2023) 6 ILRA 579

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 06.04.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर

आदेश से प्रथम अपील संख्या 63/1997

यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड

अपीलकर्ता

बनाम

श्रीमती उषा रानी एवं अन्य प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता: सुश्री आरुषि खरे, श्री विनय कुमार खरे (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: श्री वीरेंद्र पाल सिंह, श्री के. सिंह, श्री प्रेम बाबू वर्मा, श्री श्यामजी गौर

ए. सिविल कानून - मोटर वाहन अधिनियम, 1988-धारा 173-चुनौती-मुआवजा देने का आदेश-लापरवाही-दुर्घटना में योगदान देने वाला या उसका लेखक दुर्घटना में अपने योगदान के लिए उत्तरदायी होगा-मृतक दुर्घटना का लेखक या सह-लेखक नहीं था-यह भी साबित नहीं हुआ कि ड्राइविंग लाइसेंस फर्जी था-मृतक मोटर साइकिल पर पीछे बैठा था और दुर्घटना के लिए ट्रैक्टर चालक को पूरी तरह से लापरवाह माना गया-ब्याज दर उच्चतर होने के कारण, तदनुसार संशोधित-अपील स्वीकार की गई। (पैरा 10 से 13)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की गई। (ई-6)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. बजाज एलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती रेणु सिंह एवं अन्य.. एफएएफओ संख्या 1818/2012
2. रायलैंड्स बनाम फ्लेचर (1868) 3 एचएल (एलआर) 330
3. जैकब मैथ्यू बनाम स्टेट ऑफ पुंज. (2005) 0 एसीजे एससी 1840

अनुवादित

4. खेनेई बनाम न्यू इंडिया एसोसिएशन कंपनी लिमिटेड एवं अन्य. (2015) मुकदमा एससी 469

5. टी.ओ. एंथनी बनाम करवामन एवं अन्य. (2008) 3 एससीसी 748

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर द्वारा दिया गया)

1. यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड के विद्वान अधिवक्ता श्री आरुषि खरे को सुना, कई बार स्थगन के बावजूद, प्रत्यर्थियों की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ।

2. यह अपील, यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड की ओर से, एम.ए.सी.टी./तृतीय-अपर जिला न्यायाधीश, बदायूं (एतस्मिनपश्चात "ट्रिब्यूनल" के रूप में संदर्भित) द्वारा एम.ए.सी.पी. संख्या 55/1990 में पारित दिनांक 30.08.1996/6.9.1996 के निर्णय और अवार्ड को चुनौती देती है।

3. अभिलेखों से संक्षिप्त तथ्य यह है कि दिनांक 01.04.1990 को मृतक लालता प्रसाद अपनी मोटर साइकिल संख्या यू.पी.ओ. 9328 से पिपरिया गांव जा रहा था, जिसे पीछे दुलार सिंह चला रहा था। रात करीब 10:15 बजे जब लालता प्रसाद और दुलार सिंह ग्राम लखनपुर के पास पहुंचे तभी दातागंज की ओर जा रही ट्रैक्टर ट्रॉली संख्या यू.पी.ओ. 8144 को तेजपाल बहुत तेज व लापरवाही से चला रहा था। दुलार सिंह ने तेजपाल को हॉर्न बजाया और रास्ता चाहा लेकिन तेजपाल ने दुलार सिंह और लालता प्रसाद को रास्ता देने के बजाय बिना कोई संकेत दिए ट्रैक्टर ट्रॉली को दाहिनी ओर मोड़ दिया और मोटर साइकिल से टकरा गया और मोटर साइकिल को अपने साथ घसीटता हुआ ले गया। जिसमें से लालता प्रसाद को गंभीर चोटें आईं और दुलार सिंह को भी चोटें आईं। लालता प्रसाद को जिला अस्पताल बदायूँ ले जाया गया जहाँ लालता प्रसाद ने दम तोड़ दिया।

4. दुर्घटना के समय मृतक की उम्र 52 वर्ष थी और वह एक सरकारी कर्मचारी था जो राज्य सरकार के पशुपालन विभाग में कंपाउंडर के रूप में कार्यरत था और 1742/- रुपये प्रति माह वेतन पाता था। वह एक विवाहित व्यक्ति था, उसकी पत्नी और एक बेटा और तीन बेटियाँ थीं। ट्रिब्यूनल ने 1,33,296/- रुपये की एकमुश्त राशि मंजूर की है।

5. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रत्यर्थी संख्या 7 और 8 लापरवाही के दोषी थे। दुर्घटना के समय मोटर साइकिल चलाने के लिए वैध ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था। ट्रिब्यूनल द्वारा दी गई ब्याज दर बहुत अधिक है।

6. लापरवाही शब्द का अर्थ है दूसरों के प्रति सावधानी बरतने में विफलता, जो एक उचित और विवेकशील व्यक्ति किसी परिस्थिति में करेगा या ऐसी कार्रवाई करना जो एक उचित व्यक्ति नहीं करेगा। लापरवाही जानबूझकर या आकस्मिक दोनों हो सकती है, जो आमतौर पर आकस्मिक होती है। विशेष रूप से, इसका तात्पर्य लापरवाही से वाहन चलाने से है और घायल व्यक्ति को हमेशा यह साबित करना होगा कि दोनों में से कोई भी पक्ष लापरवाह है। यदि चोट या मृत्यु लापरवाह पक्ष के स्वामित्व या नियंत्रण वाली किसी वस्तु के कारण हुई है तो वह सीधे तौर पर उत्तरदायी है, अन्यथा "रेस

अनुवादित

इप्सा लोकिटर" का सिद्धांत लागू होगा, जिसका अर्थ है "चीजें स्वयं बोलती हैं"।

7. अंशदायी लापरवाही के सिद्धांत पर बार-बार चर्चा की गई है। वह व्यक्ति जो दुर्घटना में योगदान देता है या उसका लेखक है, दुर्घटना घटित होने में अपने योगदान के लिए उत्तरदायी होगा।

8. इस न्यायालय की खंडपीठ ने प्रथम अपील आदेश संख्या 1818/2012 (बजाज आलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती रेणु सिंह एवं अन्य) में दिनांक 19.7.2016 को निम्न प्रकार निर्णय दिया है:

> *"16. लापरवाही का अर्थ है एक विवेकपूर्ण चालक से अपेक्षित अपेक्षित देखभाल और सावधानी बरतने में विफलता। लापरवाही किसी ऐसे काम को करने में चूक है जिसे एक विवेकशील व्यक्ति, उन विचारों के आधार पर, जो सामान्यतः मानवीय मामलों के संचालन को विनियमित करते हैं, करेगा, या किसी ऐसे काम को करने में चूक है जिसे एक दूरदर्शी और विवेकशील व्यक्ति नहीं करेगा। लापरवाही हमेशा प्रत्यक्ष प्रमाण का प्रश्न नहीं होता। यह सिद्ध तथ्यों से निकाला जाने वाला निष्कर्ष है। लापरवाही कोई निरपेक्ष शब्द नहीं है, बल्कि यह एक सापेक्ष शब्द है। यह एक तुलनात्मक शब्द है। एक मामले में जो लापरवाही हो सकती है, वह दूसरे मामले में नहीं हो सकती। जहाँ सावधानी बरतने का कोई कर्तव्य नहीं है, वहाँ आम तौर पर लापरवाही का कोई कानूनी परिणाम नहीं होता। जहाँ सावधानी बरतने का कर्तव्य है, वहाँ ऐसे कार्यों या चूकों से बचने के लिए उचित सावधानी बरती जानी चाहिए, जिनसे व्यक्ति को शारीरिक चोट लगने की संभावना हो। बेशक, सावधानी की आवश्यकता प्रत्येक मामले में तथ्यों पर निर्भर करती है। इन व्यापक सिद्धांतों के आधार पर, ड्राइवरों की लापरवाही का आकलन किया जाना आवश्यक है।*
>
> *17. यह देखा जाएगा कि मृतक की ओर से सहभागी लापरवाही के लिए सबूत का भार प्रतिपक्षियों द्वारा वहन किया जाना चाहिए। दुर्घटना के बारे में स्पष्टीकरण देना अपराधी वाहन के चालक का कर्तव्य है।*
>
> *यह अच्छी तरह से स्थापित कानून है कि चौराहे पर जहां दो सड़कें एक-दूसरे को पार करती हैं, तेज गति से चलने वाले वाहन का कर्तव्य है कि वह धीमी गति से चलें और*

अनुवादित

यदि चालक ने चौराहे पर गति धीमी नहीं की, बल्कि यह ध्यान दिए बिना कि दूसरा वाहन सड़क पार कर रहा है, वह तेज गति से आगे बढ़ता रहा, तो चालक के आचरण से यह निष्कर्ष निकलता है कि वह वाहन को तेजी और लापरवाही से चला रहा था।

18. मोटर वाहन अधिनियम से जुड़ी 10वीं अनुसूची में मोटर वाहन चलाने के लिए वैधानिक नियम हैं, जो प्रत्येक ड्राइविंग लाइसेंस का भी हिस्सा हैं। ऐसे विनियमन के खंड-6 में स्पष्ट रूप से निर्देश दिया गया है कि प्रत्येक मोटर वाहन के चालक को सड़क के प्रत्येक चौराहे या जंक्शन या सड़क के मोड़ पर वाहन की गति धीमी करनी होगी। यह भी प्रावधान है कि वाहन चालक को सड़क के किसी चौराहे या जंक्शन पर तब तक प्रवेश नहीं करना चाहिए जब तक कि वह यह सुनिश्चित न कर ले कि वह किसी अन्य व्यक्ति को खतरे में नहीं डालेगा। केवल इसलिए कि ट्रक का चालक सड़क के बाईं ओर वाहन चला रहा था, वह चौराहे के पास पहुंचने पर वाहन की गति धीमी करने की अपनी जिम्मेदारी से मुक्त नहीं हो सकता, विशेषकर तब जब वह आसानी से देख सकता था कि जिस कार पर मृतक सवार था, वह चौराहे के पास आ रही थी।

*19. यातायात की तीव्र और लगातार बढ़ती मात्रा को देखते हुए, सड़कों पर चलने वाले मोटर वाहनों को कुछ हद तक **राइलैंड्स बनाम फ्लेचर, (1868) 3 एचएल (एलआर) 330** में परिभाषित दायित्व के सिद्धांत के अंतर्गत माना जा सकता है। पैदल यात्रियों के दृष्टिकोण से इस देश की सड़कें मोटर वाहनों के उपयोग के कारण अत्यधिक खतरनाक हो गई हैं। 'हिट एंड रन' मामले जहां दुर्घटना का कारण बनने वाले मोटर वाहन चालकों का पता नहीं होता। वास्तव में ऐसे मामलों की संख्या बढ़ती जा रही है। यदि कोई पैदल यात्री बिना किसी लापरवाही के किसी मोटर चालक द्वारा घायल या मारा जाता है, चाहे लापरवाही से या नहीं, तो उसे या उसके कानूनी प्रतिनिधियों को, जैसा भी मामला हो, क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का*

अनुवादित

अधिकार होना चाहिए, यदि सामाजिक न्याय के सिद्धांत का कोई अर्थ है।

20. ये प्रावधान (मोटर अधिनियम, 1988 की धारा 110क और 110ख) केवल प्रक्रियात्मक प्रावधान नहीं हैं। वे पक्षों के अधिकारों को मूल रूप से प्रभावित करते हैं। घातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 द्वारा बनाया गया कार्रवाई का अधिकार 'अपनी प्रजाति में नया था, अपनी गुणवत्ता में नया था, अपने सिद्धांतों में नया था। हर तरह से यह नया था। मोटर वाहन दुर्घटना के कारण मृत्यु के लिए मुआवजे के लिए आवेदन करने के लिए अधिनियम, 1988 के तहत कानूनी प्रतिनिधियों को दिया गया अधिकार एक विस्तृत अधिकार है। घातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 के तहत किसी कार्रवाई की सीमाओं से इस अधिकार को बाधित नहीं किया जा सकता है। नई स्थितियों और नए खतरों के लिए नई रणनीतियों और नए उपायों की आवश्यकता होती है।

21. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, हमारा विचार है कि भले ही न्यायालय व्याख्या द्वारा कानून के उन सिद्धांतों को विस्थापित न करें जिन्हें अच्छी तरह से स्थापित माना जाता है, और इसलिए, न्यायालय मोटर वाहन दुर्घटनाओं के सभी मामलों में लापरवाही के सबूत से पूरी तरह से छुटकारा नहीं पा सकता है, इसलिए कानून को निम्नलिखित आधार पर आगे विकसित करना संभव है; जब मोटर वाहन को उचित सावधानी के साथ चलाया जा रहा हो, तो सामान्यतः उसमें दुर्घटना नहीं होती, और इसलिए साक्ष्य के नियम के रूप में रेस-इप्सा लोकिटर का नियम मोटर दुर्घटना के मामलों में सामान्य सिविल मुकदमों की तुलना में अधिक बार लागू किया जा सकता है (जैकब मैथ्यू बनाम पंजाब राज्य, 2005 0 एसीजे (एससी) 1840 में तीन न्यायाधीशों की पीठ के अनुसार)।

22. उपर्युक्त प्रक्रिया के अनुसार, मोटर दुर्घटना दावा याचिका में साक्ष्य का भार सामान्यतः प्रतिवादियों पर डाला जा सकता है कि वे यह साबित करें कि मोटर वाहन को उचित सावधानी के साथ चलाया जा रहा था या दूसरे

अनुवादित

पक्ष की ओर से भी समान लापरवाही है।"

(प्रभाव वर्धित)

9. खेन्येई बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड एवं अन्य, 2015 मुकदमा (एससी) 469 में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया है:

"4. यह समग्र लापरवाही का मामला है, जिसमें संयुक्त अपकृत्यकर्ताओं के संयुक्त गलत कृत्य के कारण दावेदारों को चोटें पहुंची हैं। संयुक्त अपकृत्यकर्ताओं की लापरवाही के कारण हुई दुर्घटना के मामले में, वे सभी व्यक्ति जो किसी गलत कार्य में सहायता या सलाह देते हैं या निर्देशन करते हैं या उसमें शामिल होते हैं, उत्तरदायी हैं। ऐसे मामले में देनदारी हमेशा संयुक्त और अनेक होती है। ऐसे मामले में संयुक्त अपकृत्यकर्ता की लापरवाही की परिसीमा वादी/दावेदार के दावे की संतुष्टि के लिए महत्वहीन है और इसे अदालत द्वारा निर्धारित करने की आवश्यकता नहीं है। हालाँकि, यदि सभी संयुक्त अपकृत्यकर्ता न्यायालय के समक्ष हों, तो वह उचित स्तर पर उनके बीच पारस्परिक साम्यता को समायोजित करने के उद्देश्य से उनके दायित्व की सीमा निर्धारित कर सकता है। वादी/दावेदार के संबंध में प्रत्येक संयुक्त अपकृत्य कर्ता के दायित्व को विभाजित नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह संयुक्त और पृथक दायित्व है। समग्र उपेक्षा के मामले में, वादी को भुगतान करने के लिए क्षति-देयता करने वालों के बीच मुआवजे का विभाजन स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि वादी/दावेदार को सबसे आसान लक्ष्य/देय प्रतिवादी से पूरी राशि वसूलने का अधिकार है।

14. सहभागी और समग्र लापरवाही में अंतर है। सहभागी लापरवाही के मामले में, वह व्यक्ति जिसने स्वयं दुर्घटना में योगदान दिया है, अपनी लापरवाही की सीमा तक दुर्घटना में उसे लगी चोटों के लिए मुआवजे का दावा नहीं कर सकता है; जबकि संयुक्त लापरवाही के मामले में, वह व्यक्ति जिसने दुर्घटना में योगदान दिया है, दुर्घटना में योगदान नहीं दिया है, बल्कि यह दो या अधिक अन्य व्यक्तियों की लापरवाही के संयोजन का परिणाम है। इस न्यायालय ने टी.ओ. एंथोनी बनाम

अनुवादित

करवर्णन एवं अन्य [2008 (3) एस.सी.सी. 748] में अवधारित किया है कि सहभागी लापरवाही के मामले में, घायल को प्रत्येक गलत कर्ता की जिम्मेदारी की सीमा को अलग से स्थापित करने की आवश्यकता नहीं है, न ही अदालत के लिए प्रत्येक गलत कर्ता की देयता की सीमा को अलग से निर्धारित करना आवश्यक है।केवल सहभागी लापरवाही के मामले में ही यह माना जाता है कि घायल व्यक्ति ने स्वयं अपनी लापरवाही से दुर्घटना में योगदान दिया है। उसकी लापरवाही की सीमा का निर्धारण किया जाना आवश्यक है, क्योंकि चोटों के संबंध में उसके द्वारा वसूल की जाने वाली क्षतिपूर्ति को उसकी सहभागी लापरवाही के अनुपात में कम किया जाना है। प्रासंगिक अंश नीचे उद्धृत है:

> *"6. 'संयुक्त लापरवाही' से तात्पर्य दो या अधिक व्यक्तियों की ओर से की गई लापरवाही से है। जहां कोई व्यक्ति दो या अधिक गलत कार्य करने वालों की ओर से उपेक्षा के परिणामस्वरूप घायल हो जाता है, वहां यह कहा जाता है कि वह व्यक्ति उन गलत कार्य करने वालों की संयुक्त उपेक्षा के कारण घायल हुआ है। ऐसे मामले में, प्रत्येक गलत कार्य करने वाला, संयुक्त रूप से और पृथक रूप से, संपूर्ण क्षति के भुगतान के लिए घायल व्यक्ति के प्रति उत्तरदायी होगा तथा घायल व्यक्ति के पास उन सभी या उनमें से किसी के विरुद्ध कार्यवाही करने का विकल्प होगा। ऐसे मामले में, पीड़ित को प्रत्येक गलत कार्य करने वाले की जिम्मेदारी की सीमा को अलग से स्थापित करने की आवश्यकता नहीं है, न ही अदालत के लिए प्रत्येक गलत कार्य करने वाले के*

अनुवादित

दायित्व की सीमा को अलग से निर्धारित करना आवश्यक है। दूसरी ओर, जहां किसी व्यक्ति को चोट लगती है, आंशिक रूप से किसी अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों की ओर से लापरवाही के कारण, और आंशिक रूप से उसकी अपनी लापरवाही के परिणामस्वरूप, तो घायल व्यक्ति की ओर से की गई लापरवाही, जिसने दुर्घटना में योगदान दिया, को उसकी सहभागी लापरवाही कहा जाता है। जहां घायल व्यक्ति किसी लापरवाही का दोषी है, वहां उसकी ओर से की गई लापरवाही के कारण ही क्षतिपूर्ति के लिए उसका दावा निष्फल नहीं हो जाता, बल्कि चोटों के संबंध में उसके द्वारा वसूल की जाने वाली क्षतिपूर्ति उसकी सहभागी लापरवाही के अनुपात में कम हो जाती है।

7. इसलिए, जब दो वाहन दुर्घटना में शामिल होते हैं, और उनमें से एक चालक दूसरे चालक पर लापरवाही का आरोप लगाते हुए क्षतिपूर्ति की मांग करता है, और दूसरा चालक लापरवाही से इनकार करता है या दावा करता है कि घायल दावेदार स्वयं लापरवाह था, तब यह विचार करना आवश्यक हो जाता है कि क्या घायल दावेदार लापरवाह था और यदि ऐसा था, तो क्या वह दुर्घटना के लिए पूरी तरह या आंशिक रूप से जिम्मेदार था और उसकी जिम्मेदारी की सीमा, यानी उसकी सहभागी लापरवाही क्या है। इसलिए जहां घायल व्यक्ति स्वयं आंशिक रूप से उत्तरदायी है, वहां

अनुवादित

'समग्र लापरवाही' का सिद्धांत लागू नहीं होगा और न ही यह स्वतः अनुमान लगाया जा सकता है कि लापरवाही 50:50 थी, जैसा कि इस मामले में माना गया है। न्यायाधिकरण को अपीलकर्ता की सहभागी लापरवाही की सीमा की जांच करनी चाहिए थी और इस प्रकार समग्र लापरवाही और सहभागी लापरवाही के बीच भ्रम से बचना चाहिए था। उच्च न्यायालय उक्त त्रुटि को सुधारने में विफल रहा है।"

18. इस न्यायालय ने छल्ला भारतम्मा एवं नंजप्पन (उपरोक्त) मामले में स्वामी द्वारा पॉलिसी शर्तों के उल्लंघन के मामले पर विचार किया था, जब बीमाकर्ता को न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारित क्षतिपूर्ति का भुगतान करने के लिए कहा गया था तथा यदि बीमाकर्ता और स्वामी के बीच विवाद न्यायाधिकरण के लिए निर्धारण का विषय था तथा इस मुद्दे का निर्णय बीमाधारक के पक्ष में किया गया था, तो संबंधित निष्पादन न्यायालय में इसे वसूलने का अधिकार बीमाकर्ता को दिया गया था। यही सादृश्यता तात्कालिक मामलों पर भी लागू की जा सकती है, क्योंकि संयुक्त अपकृत्यकर्ता का दायित्व संयुक्त और पृथक् होता है। वर्तमान मामले में, संबंधित ड्राइवरों के 2/3 और 1/3 की लापरवाही की सीमा तक समग्र लापरवाही के लिए परस्पर दायित्व का निर्धारण किया गया है। इस प्रकार, वाहन - ट्रेलर-ट्रक, जिसका बीमाकर्ता के पास बीमा नहीं था, 2/3 सीमा तक लापरवाह था। दावेदार को भुगतान करने के बाद बस का बीमाकर्ता होने के नाते बीमाकर्ता के लिए निष्पादन कार्यवाही में ट्रेलर-ट्रक के मालिक से पूर्वोक्त सीमा तक राशि वसूल करना स्वतंत्र होगा। यदि साक्ष्य के अभाव में या अन्य संयुक्त अपकृत्य के लिए पारस्परिक दायित्व का निर्धारण नहीं किया गया होता और वादी को अभियुक्त

अनुवादित

नहीं बनाया गया होता, तो ऐसे विवाद का निस्तारण करना तथा निष्पादन कार्यवाही में राशि वसूल करना संभव नहीं था, बल्कि इसका उपाय यह था कि कानून के अनुसार एक अन्य वाद दायर किया जाए या उचित कार्यवाही की जाए।

उपरोक्त चर्चा से जो बात निकलकर सामने आती है वह इस प्रकार है:

(i) संयुक्त उपेक्षा के मामले में, वादी/दावेदार दोनों या उनमें से किसी एक संयुक्त अपकृत्यकर्ता पर मुकदमा चलाने तथा सम्पूर्ण क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का हकदार है, क्योंकि संयुक्त अपकृत्यकर्ता का दायित्व संयुक्त और पृथक होता है।

(ii) समग्र लापरवाही के मामले में, वादी/दावेदार की तुलना में दो अपकृत्यकर्ताओं के बीच मुआवजे का बंटवारा स्वीकार्य नहीं है। वह अपनी इच्छानुसार उनमें से किसी से भी संपूर्ण क्षति की वसूली कर सकता है।

(iii) यदि सभी संयुक्त अपकृत्यकर्ताओं को पक्षकार बना दिया गया है और साक्ष्य पर्याप्त है, तो यह अदालत/न्यायाधिकरण के लिए स्वतंत्र है कि वह ड्राइवरों की समग्र लापरवाही की सीमा निर्धारित कर सके। तथापि, संयुक्त अपकृत्यकर्ताओं के बीच लापरवाही की सीमा का निर्धारण केवल उनके पारस्परिक दायित्व के उद्देश्य से किया जाता है, ताकि वादी/दावेदार को सम्पूर्ण भुगतान करने के पश्चात् एक पक्ष दूसरे पक्ष से राशि वसूल कर सके, जहां तक कि दूसरे पक्ष के दायित्व की पूर्ति हो गई हो। यदि दोनों को अभियुक्त बनाया गया है और उनकी लापरवाही का बंटवारा/सीमा न्यायालय/ट्रिब्यूनल द्वारा निर्धारित कर दी गई है, तो मुख्य मामले में एक संयुक्त अपकृत्यकर्ता निष्पादन कार्यवाही में दूसरे से राशि वसूल कर सकता है।

(iv) अन्य संयुक्त अपकृत्यकर्ताओं को अभियोजित न किए जाने की स्थिति में न्यायालय/न्यायाधिकरण के लिए दो वाहनों के चालकों की समग्र लापरवाही की सीमा निर्धारित करना उचित नहीं होगा। ऐसे मामले में, अभियोजित संयुक्त अपकृत्य

अनुवादित

दावेदार को, यदि वह चाहे तो, डिक्री या पंचाट पारित होने के बाद स्वतंत्र कार्यवाही में अन्य संयुक्त अपकृत्य दावेदार के विरुद्ध मुकदमा चलाने के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए।"

(प्रभाव वर्धित)

10. **खेन्येई (उपरोक्त)** मामले में सर्वोच्च न्यायालय के नवीनतम निर्णय में लापरवाही पर विशेष रूप से समग्र/सहयोगी लापरवाही पर विचार करने के बारे में एक और पहलू निर्धारित किया गया है। मृतक या संबंधित व्यक्ति को दुर्घटना में योगदान देने वाला साबित किया जाना चाहिए और अगर वह सावधानी बरतता तो दुर्घटना का पीड़ित पर प्रभाव कम किया जा सकता था। इस मामले में मृतक दुर्घटना का सूत्रधार या सह-सूत्रधार नहीं था।

11. रिकार्ड का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट है कि रिकार्ड पर उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर अपीलकर्ता द्वारा ड्राइविंग लाइसेंस के फर्जी होने की बात साबित नहीं की गई। उक्त आधार असफल हो गया और चूंकि यह साबित नहीं हुआ कि ड्राइविंग लाइसेंस फर्जी था, जो तथ्यात्मक निष्कर्ष है।

12. मृतक मोटर साइकिल पर पीछे बैठा था और ट्रैक्टर चालक को पूरी तरह से लापरवाह पाया गया और इसलिए ट्रिब्यूनल द्वारा लापरवाही के सिद्धांतों पर सही ढंग से विचार किया गया है, इसलिए सहभागी/संयुक्त लापरवाही का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है, क्योंकि ट्रैक्टर चालक को पूरी तरह से लापरवाह पाया गया है। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि ट्रिब्यूनल द्वारा दी गई ब्याज दर ऊंची है, इसमें कोई संदेह नहीं है कि दुर्घटना के वर्ष में ब्याज दर 9% थी, तथापि न्यायाधिकरण के निर्णय को देखते हुए ट्रिब्यूनल ने युवा व्यक्ति को भविष्य में होने वाली आय की हानि के मद में कोई राशि नहीं दी है, इसलिए 3% की ब्याज दर जो कि ऊंची है, न्याय के लक्ष्य को पूरा करेगी।

13. अतः उक्त अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। कोई राशि वसूल नहीं की जाएगी।

14. रिकॉर्ड ट्रिब्यूनल को वापस भेजा जाए।

15. यह राशि दावेदार को वितरित की जाएगी क्योंकि इस अपील को दायर करने की तारीख से 23 वर्ष बीत चुके हैं।

16. यह न्यायालय यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड की विद्वान अधिवक्ता सुश्री आरुषि खरे को इस न्यायालय की कुशलतापूर्वक सहायता करने के लिए धन्यवाद देता है।

(2023) 6 ILRA 585

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर

आदेश से प्रथम अपील संख्या 796/1993

मेसर्स नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड ....अपीलकर्ता

बनाम

श्रीमती वसीमुन्निशा एवं अन्य...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता: श्री कुलदीप शंकर अमिस्ट

अनुवादित

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: श्री राम जी सक्सेना, श्री रघुवंश चंद्र, श्री प्रवेश कुमार

ए. सिविल कानून - मोटर वाहन अधिनियम, 1988-धारा 173-मुआवजे में वृद्धि-ट्रिब्यूनल ने रु. 2,94,400/- @ 10% प्रति वर्ष-ट्रिब्यूनल ने भविष्य की आय की हानि के मद में कोई राशि प्रदान नहीं की, यद्यपि मृतक एक वेतनभोगी व्यक्ति था-भविष्य की संभावनाओं के लिए 50% जोड़ा गया-मृतक के व्यक्तिगत व्यय के लिए 1/3 की कटौती की गई-18 का गुणक लागू किया गया-आश्रितता की कुल हानि 2,59,200/- रुपये हुई-गैर-आर्थिक मदों के अंतर्गत राशि 80,000 रुपये हुई-3,39,200/- रुपये के मुआवजे की पात्रता बनी। (पैरा 1 से 27)

अपील आंशिक रूप से स्वीकृत की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. संतलाल बनाम राजेश (2017) एससी 4054
2. एनआईसीएल बनाम जुगल किशोर (1998) एआईआर एससी 719
3. ओडिसा राज्य एवं अन्य बनाम बिजया सी. त्रिपाठी (2005) एआईआर एससी 1431 फहीम अहमद और अन्य। बनाम यूनाइटेड इंडिया इं.स. कंपनी लिमिटेड और अन्य। (2014) 2 टीएसी 383 एससी
4. यूपीएसआरटीसी रेग के माध्यम से। एमजीआर. बनाम श्रीमती सुखा देवी एवं अन्य। 2003 का एफएएफओ नंबर 1507
5. दूध नाथ चौरसिया बनाम कन्हैया लाल एवं अन्य। 2017 का एफएएफओ नंबर 381
6. मुकुंद देवांगन बनाम ओरिएंटल इं.सं. कंपनी लिमिटेड (2017) एआईआर एससी 3668
7. संत लाल बनाम राजेश एवं अन्य, आदि (2017) 3 आरसीआर (सिविल) 757
8. श्रीमती. मंजुरी बेरा बनाम ओरिएंटल इं. कंपनी लिमिटेड (2007) एआईआर एससी 1474
9. एनआईसीएल, लखनऊ बनाम लवकुश एवं अन्य एफएएफओ संख्या 199/2017
10. बजाज एलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती रेणु सिंह एवं अन्य एफएएफओ संख्या 1818/2012
11. खेन्येई बनाम न्यू इंडिया एसोसिएशन कंपनी लिमिटेड एवं अन्य (2015) मुकदमा एससी 469
12. गोबल्ड मोटाल सर्विसेज लिमिटेड एवं अन्य बनाम आर.एम.के वेलुसामी (1962) एससीआर 1 929
13. जनरल मैनेजर, केर. एसआरटीसी बनाम सुसम्मा थॉमस (1994) एससीसी 2 176
14. सरला वर्मा एवं अन्य बनाम डीटीसी एवं अन्य (2009) ACJ 1298
15. श्रीमती हंसगोरी पी. लधानी बनाम द ओरिएंटल इंस. कंपनी लिमिटेड (2007) 2 जीएलएच 291
16. श्रीमती सुदेस्ना व अन्य बनाम हरि सिंह व अन्य एफएएफओ संख्या 23/2001
17. तेज कुमारी शर्मा बनाम चोला मंडलम एम.एस. जनरल इंस. कंपनी लिमिटेड एफएएफओ संख्या 2871/2016

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर द्वारा दिया गया)

1.यह आदेश से उत्पन्न प्रथम अपील अपीलकर्ता-बीमा कंपनी द्वारा मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण/अपर जिला न्यायाधीश, बांदा (इसके बाद 'न्यायाधिकरण' के रूप में

अनुवादित

संदर्भित) द्वारा एम.ए.सी.पी. सं. 102/1989 (श्रीमती वसीमुन्निशां और अन्य बनाम बट्टू राम और अन्य) में पारित दिनांक 27.5.1993 के अधिनिर्णय जिसमे याचिका दायर करने की तारीख से 10% प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ दावेदारों को मुआवजाके रूप में कुल 2,94,400/- रुपये की राशि दिया गया था, को चुनौती देने के लिए की गई है। दावेदारों ने मुआवजा बढ़ाने के लिए प्रति आपत्ति भी दाखिल की है।

2. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि उपरोक्त दावा याचिका विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष इस प्रकथन के साथ दायर की गई थी कि 2.3.1989 को शाम लगभग 7:00 बजे मृतक मोहम्मद अनवर पंगारा से नरैनी जा रहा था। नरैनी डाक बंगले के सामने एक ट्रैक्टर संख्या यूआरई-9674 भी नरैनी की ओर जा रहा था, जिसकी ट्रॉली पर लोहे की सरिया व अन्य कृषि उपकरण रखे हुए थे और ट्रॉली के पिछले हिस्से में लोहे की सरिया बाहर की ओर निकली हुई थी। वहां चेतावनी के लिए कोई लाल झंडा या कोई अन्य कपड़ा नहीं था और न ही पीछे की तरफ कोई रोशनी थी। ट्रैक्टर चालक ने बिना कोई संकेत दिए या हॉर्न बजाए अचानक ट्रैक्टर को गलत तरीके से रोक दिया, जिसके कारण लोहे की रॉड पीछे से स्कूटर पर आ रहे मृतक को लग गई। रॉड मृतक की गर्दन में लगी और उसकी तत्काल मौत हो गई। मृतक स्कूटर पर पीछे बैठा

3. अपीलकर्ता- बीमा कंपनी के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री के. एस. एमिस्ट और प्रत्यर्थी - दावेदारों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री प्रवेश कुमार को सुना। मालिक की ओर से कोई उपस्थित नहीं है। अभिलेख का अवलोकन किया गया।

4. इस अपील के माध्यम से, अपीलकर्ता-बीमा कंपनी, जिस पर मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण द्वारा दायित्व डाला गया है, ने दिए गए मुआवजा और पाए गए तथ्य से व्यथित महसूस किया है कि मोटर-साइकिल का चालक लापरवाह नहीं था। अपीलकर्ता इस बात से व्यथित महसूस कर रहे है कि मोटर-साइकिल के मालिक और बीमा कंपनी के बीच गैर-जुड़ाव का प्रश्न इस तथ्य के बावजूद खारिज कर दिया गया है कि मृतक वाहन (मोटरसाइकिल) के चालक का भाई था।

5. अपीलकर्ता को यह भी लगा कि न्यायाधिकरण ने इस तथ्य के बावजूद मुआवजादिया कि दावेदारों ने निर्भरता साबित नहीं की, यह मानते हुए कि दावेदार कानूनी प्रतिनिधि होने के नाते मुआवज़े के हकदार थे और वे मृतक पर निर्भर थे। बीमा कंपनी को उत्तरदायी बनाया गया था, जिसके निष्कर्ष को विकृत बताया गया है।

6. बीमा कंपनी द्वारा यह भी तर्क दिया गया है कि मूल पॉलिसी मालिक द्वारा प्रस्तुत नहीं की गई थी, इसके बावजूद न्यायाधिकरण ने यह नहीं माना कि पॉलिसी की शर्तों का उल्लंघन हुआ था क्योंकि ट्रैक्टर एक ट्रॉली के साथ जुड़ा हुआ था और ट्रॉली का उसके द्वारा बीमा नहीं किया गया था।

7. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि ट्रैक्टर चलाने के लिए ड्राइविंग लाइसेंस या तो नकली था या प्रशिक्षु (लर्नर्स) लाइसेंस था, इसके बावजूद अपीलकर्ता

अनुवादित

पर दायित्व तय किया गया है। मोटर वाहन अधिनियम, 1939 के तहत बीमा कंपनी की देनदारी मामले के तथ्यों से निर्धारित की जाएगी। बचाव, जो बीमा कंपनी के लिए उपलब्ध हैं, उनके द्वारा लिया गया है कि लाइसेंस एक प्रशिक्षु (लर्नर्स) लाइसेंस था।

8. पीडब्लू1 ने कहा है कि ट्रैक्टर ट्रॉली पर एक थ्रेशर और लोहे की छड़ें लदी हुई थीं। बचाव पक्ष के साक्षी संख्या 1 राम आसरे ने कहा है कि चारा काटने हेतु कृषि प्रयोजन के लिए इस्तेमाल की जाने वाली मशीन के साथ एक थ्रेशर था, इसलिए, संतलाल बनाम राजेश एआईआर 2017 एससी 4054 के मामले में उच्चतम न्यायालय का फैसला इस न्यायालय को न्यायाधिकरण द्वारा लिए गए दृष्टिकोण कि ट्रैक्टर का उपयोग कृषि उद्देश्यों के लिए किया जा रहा था से भिन्न दृष्टिकोण की अनुमति नहीं देगा। यह इस न्यायालय को इस प्रश्न पर ले जाता है कि क्या वाहन पॉलिसी के निबंधों के विरुद्ध चलाया गया था, अर्थात इसका उपयोग गैर-कृषि उद्देश्यों के लिए किया गया था। यह तथ्य कि ट्रॉली के साथ एक थ्रेशर था, इस न्यायालय को एक अलग दृष्टिकोण अपनाने की अनुमति नहीं देगा और बीमा कंपनी अपने दायित्व से बच नहीं सकती है।

9. जहां तक ट्रैक्टर के चालक के ड्राइविंग लाइसेंस का सवाल है, तथ्य सामने आने से पता चलता है कि ट्रैक्टर के चालक का ड्राइविंग लाइसेंस न्यायाधिकरण के समक्ष प्रस्तुत किया गया था और न्यायाधिकरण ने इस पहलू पर विचार किया है और बीमा कंपनी की आपत्ति को खारिज कर दिया है। न्यायाधिकरण के निर्णय के प्रस्तर 17 में निष्कर्ष में ट्रैक्टर चालक के नकली और/या प्रशिक्षु ड्राइविंग लाइसेंस के संबंध में विवाद का कारण बताते हुए जवाब दिया गया है। मोटर वाहन विभाग, बांदा द्वारा 20.2.1989 को जारी किया गया दस्तावेज जिस पर 91-ग अंकित है, जो 20.2.1994 तक वैध था, जिसमें ड्राइवर सुखदेव की फोटो है, यदि ड्राइविंग लाइसेंस एक प्रशिक्षु लाइसेंस था, यह एक महीने से अधिक समय तक नहीं चल सकता था और इसलिए, बीमा कंपनी केवल यह तर्क देकर अपने दायित्व से बच नहीं सकती कि पॉलिसी की शर्तों का उल्लंघन हुआ है। हमारे मामले में, मोटर वाहन अधिनियम, 1939 की धारा 93 का कोई उल्लंघन नहीं है। यह अभिनिर्धारित किया गया है कि इस तथ्य को गलत तरीके से बताया गया है और जिस दस्तावेज़ पर न्यायाधिकरण ने विवाद्यक संख्या 2 पर निर्णय लेते समय विचार किया है, उसमें कोई गलती नहीं पाई जा सकती है। प्रमाणित तथ्यों के आधार पर इस निष्कर्ष की पुष्टि की जाती है कि लाइसेंस प्रशिक्षु लाइसेंस नहीं है।

10. यह तर्क कि जो पॉलिसी तैयार की गई थी, वह पॉलिसी नहीं थी, बल्कि केवल कवर नोट थी और इसलिए बीमा कंपनी को बरी कर दिया जाए, इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम जुगल किशोर, एआईआर 1988 एससी 719 के मामले में उच्चतम न्यायालय के एक अतिविख्यात निर्णय में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि पॉलिसी तैयार करना बीमा कंपनी का काम है क्योंकि उसे निष्पक्ष रूप से कार्य करना है। हमारे मामले में, मालिक के

अनुवादित

पास पॉलिसी और दस्तावेज़ प्रदर्श 91-गा के रूप में उपलब्ध हैं जो न्यायाधिकरण द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष का समर्थन करते हैं, जिसकी पुष्टि इस न्यायालय द्वारा की जाती है।

11. यह इस न्यायालय को अंतिम आधार पर ले जाता है क्योंकि ट्रॉली और ट्रॉली के साथ जुड़े ट्रैक्टर का बीमा कंपनी के साथ बीमा किया गया था और इसलिए, वे उत्तरदायी नहीं हैं। क्या ट्रॉली को ट्रैक्टर से जोड़ना और ट्रॉली का बीमा नहीं होना बीमा कंपनी को दायित्वमुक्त करने के लिए पर्याप्त होगा, इसका जवाब उच्चतम न्यायालय ने उड़ीसा राज्य और अन्य बनाम बिजया सी. त्रिपाठी एआईआर 2005 एससी 1431 में दिया है और फहीम अहमद और अन्य बनाम यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य 2014 (2) टी.ए.सी. 383 (एससी) और इस उच्च न्यायालय ने आदेश से प्रथम अपील संख्या 1507/2003 (क्षेत्रीय प्रबंधक के माध्यम से यूपीएसआरटीसी बनाम श्रीमती सुखा देवी और अन्य) के मामले में अभिनिर्धारित किया है कि यदि पॉलिसी का कोई मौलिक उल्लंघन नहीं है, तो बीमा कंपनी को दायित्वमुक्त नहीं किया जा सकता है। हमारे मामले में, ट्रैक्टर का उपयोग लोहे की छड़ों और थ्रेशर की ढुलाई के लिए किया गया था, जिसका उपयोग कृषि कार्यों के लिए किया जाता है, यह मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 147 के तहत पॉलिसी का मौलिक उल्लंघन नहीं है, जिससे बीमा कंपनी अपने दायित्व से बच सके, अधिनियम, 1939 के तहत दुर्घटनाओं में भी ये प्रावधान लागू होते हैं।

12. इस न्यायालय ने 6.12.2017 को विनिश्चित आदेश से प्रथम अपील संख्या - 381 / 2017 (दूध नाथ चौरसिया बनाम कन्हैया लाल और 3 अन्य) में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:

"7. विवाद्यक संख्या 5 पर, न्यायाधिकरण ने अपीलकर्ता के खिलाफ निर्णय सुनाया क्योंकि ट्रॉली का बीमा कंपनी के साथ बीमा नहीं किया गया था। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने फहीम अहमद और अन्य बनाम यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य, 2014 लॉसूट (एससी) 198 और नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम वी. चिन्नम्मा, 2004 लॉसूट (एससी) 905 और, इसलिए, इसे पॉलिसी शर्तों का उल्लंघन नहीं कहा जा सकता है। वाहन वास्तव में केवल कृषि उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल किया जा रहा था। सामान ढोने के लिए ट्रैक्टर का इस्तेमाल किए जाने के बारे में कोई अन्य जानकारी नहीं है।"

13. एलएमवी लाइसेंस धारक चालक का वाहन चलाने से संबंधित प्रश्न भी अब मुकुंद देवांगन बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, ए.आई. आर. 2017 (एससी) 3668 एवं संत लाल बनाम राजेश और अन्य, आदि, 2017 (3) आर. सी. आर. (सिविल) 757 के विनिर्णय से आवृत है।

14. यह तर्क दिया गया है कि दावेदार मृतक पर निर्भर नहीं थे और दावेदार मृतक के विधिक प्रतिनिधि नहीं हैं क्योंकि वे हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 के तहत द्वितीय श्रेणी के उत्तराधिकारियों में आते हैं। यह मुद्दा अब एकीकृत (रेस इंटेग्रा) नहीं है क्योंकि यह आवश्यक नहीं है कि मृतक एकमात्र कमाने वाला हो। शब्द "उत्तराधिकारी"

अनुवादित

जिसकी बार-बार व्याख्या श्रेणी I और श्रेणी II के उत्तराधिकारियों को अपने भीतर शामिल करने के लिए की गई है, को शामिल किया जाएगा। मेरे राय का समर्थन श्रीमती मंजुरी बेरा बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी, लिमिटेड, एआईआर 2007 एससी 1474 के निर्णय से भी होता है। उक्त निर्णय को इस न्यायालय द्वारा दिनांक 21.3.2017 को विनिश्चित आदेश से प्रथम अपील संख्या - 199/2017, नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, लखनऊ बनाम लवकुश एवं अन्य के निर्णय के प्रतिनिधियों के बारे में बताता है। दत्तक पुत्र और भाई को क्रमशः श्रेणी I और श्रेणी II के उत्तराधिकारियों में आने वाले प्रतिनिधि कहा जाता है और इसलिए, बीमा कंपनी का यह अनुरोध भी स्वीकार नहीं किया जा सकता है, इसलिए इसे अस्वीकार कर दिया जाता है।

15. जहां तक सवाल यह है कि दावेदार आश्रित हैं या नहीं, यह न्यायालय न्यायाधिकरण द्वारा तथ्य के निष्कर्षों से सहमत है। तथ्य यह है कि नाबालिग बहन और भाई विधिक प्रतिनिधि हैं और अधिनियम, 1939 में भी विधिक प्रतिनिधि शब्द इस्तेमाल किया गया है और ना कि आश्रित । मृतक पर मां भी आश्रित होगी।

16. यह इस न्यायालय को यह तय करने की ओर ले जाता है कि लापरवाही किसने की। आरंभ में मृतक की स्थिति को देखते हुए भी यदि दोनों ड्राइवरों को लापरवाह माना जाता है तो यह समग्र लापरवाही का मामला होगा।

17. 'लापरवाही' शब्द का अर्थ दूसरों के प्रति ध्यान देने में विफलता है जो एक तर्कसंगत और विवेकपूर्ण व्यक्ति किसी परिस्थिति में करेगा या ऐसी कार्रवाई करना जो ऐसा तर्कसंगत व्यक्ति नहीं करेगा। लापरवाही जानबूझकर या आकस्मिक दोनों हो सकती है जो सामान्यतः आकस्मिक होती है। विशेष रूप से, यह लापरवाह ड्राइविंग को दर्शाता है और घायल को हमेशा यह साबित करना होगा कि दोनों पक्ष में एक लापरवाह हैं। यदि चोट बल्कि मृत्यु लापरवाह पक्ष के स्वामित्व या नियंत्रण वाली किसी चीज के कारण हुई है तो वह सीधे तौर पर उत्तरदायी है अन्यथा "रेस इप्सा लोकिटूर" का सिद्धांत लागू होगा जिसका अर्थ है "चीजें स्वतः बोलती हैं"।

18. 19.7.2016 को विनिश्चित आदेश से प्रथम अपील 1818 / 2012 (बजाज आलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती रेनू सिंह और अन्य) में इस न्यायालय की खंडपीठ ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया:

"16. लापरवाही का अर्थ एक विवेकपूर्ण चालक से अपेक्षित आवश्यक ध्यान और सावधानी बरतने में विफलता है। लापरवाही कुछ ऐसा करने में चूक है जो एक तर्कशील व्यक्ति, विचारपूर्ण तरीके से, जिससे सामान्यतः मानव आचरण संचालित होता है, करेगा या ऐसा करेगा जो एक विवेकपूर्ण और तर्कशील व्यक्ति नहीं करेगा। लापरवाही हमेशा प्रत्यक्ष साक्ष्य का सवाल नहीं है। यह सिद्ध तथ्यों से निकाला जाने वाला एक निष्कर्ष है। लापरवाही एक आत्यंतिक शब्द नहीं है, बल्कि एक सापेक्ष शब्द है। यह बल्कि एक तुलनात्मक शब्द है। एक मामले में जो लापरवाही हो सकती है वह हो सकता है दूसरे में नहीं हो। जहां ध्यान देने

अवलोकित

का कोई कर्तव्य नहीं है, लोकप्रिय अर्थ में लापरवाही का कोई कानूनी परिणाम नहीं है। जहां ध्यान देना कर्तव्य है, वहां उचित ध्यान दिया जाना चाहिए ऐसे कार्यों या चूक से बचें जिनसे व्यक्ति को शारीरिक चोट लगने की उचित संभावना हो। जितना ध्यान दिया जाना आवश्यक है उसका परिमाण, निश्चित रूप से, प्रत्येक मामले में तथ्यों पर निर्भर करता है। इन व्यापक सिद्धांतों पर, ड्राइवरों की लापरवाही का आकलन करना आवश्यक है।

17. यह देखा जाएगा कि मृतक की ओर से हुई अंशदायी लापरवाही के लिए साक्ष्य का बोझ विरोधियों को उठाना होगा। दुर्घटना की व्याख्या करना जिस वाहन से दुर्घटना हुई उसके चालक का कर्तव्य है। यह अच्छी तरह से स्थापित कानून है कि चौराहे पर जहां दो सड़कें एक-दूसरे को पार करती हैं, तेज गति से चलने वाले वाहन का कर्तव्य है कि वह धीमी गति से चलें और यदि चालक ने चौराहे पर गति धीमी नहीं की, बल्कि इस बात की परवाह किए बिना कि कोई दूसरा वाहन पार कर रहा था, तेज गति से आगे बढ़ना जारी रखा, तो चालक के आचरण से यह निष्कर्ष निकलता है कि वह वाहन अविचारपूर्वक ढंग से और लापरवाही से चला रहा था।

18. मोटर वाहन अधिनियम में संलग्न 10वीं अनुसूची में मोटर वाहन चलाने से संबंधित वैधानिक विनियमन शामिल हैं जो प्रत्येक ड्राइविंग लाइसेंस का भी हिस्सा हैं। उस विनियमन के खंड-6 में स्पष्ट रूप से निर्देश दिया गया है कि प्रत्येक मोटर वाहन के चालक को सड़कों के प्रत्येक चौराहे या जंक्शन पर या सड़क के मोड़ पर वाहन की गति धीमी करनी होगी। यह भी प्रावधान है कि वाहन के चालक को सड़कों के चौराहे या जंक्शन में प्रवेश नहीं करना चाहिए जब तक कि वह यह सुनिश्चित न कर ले कि वह इससे किसी अन्य व्यक्ति को खतरे में नहीं डालेगा। केवल इसलिए कि ट्रक का चालक सड़क के बाईं ओर वाहन चला रहा था, वह सड़कों के चौराहे पर पहुंचने पर वाहन को धीमा करने की अपनी जिम्मेदारी से मुक्त नहीं हो जाएगा, खासकर जब वह आसानी से देख सकता था कि जिस कार पर मृतक सवार था, चौराहे के पास आ रही थी।

19. यातायात की तेज़ और लगातार बढ़ती मात्रा को देखते हुए, सड़कों पर मोटर वाहनों को कुछ हद तक रायलैंड्स बनाम फ्लेचर, (1868) 3 एचएल (एलआर) 330 में परिभाषित दायित्व के सिद्धांत के अंतर्गत आने वाला माना जा सकता है । पैदल चलने वालों की दृष्टि से, इस देश की सड़कें मोटर वाहनों के उपयोग से अत्यधिक खतरनाक हो गई हैं। 'हिट एंड के मामले जहां दुर्घटनाएं करने वाले मोटर वाहनों के ड्राइवर अज्ञात होते हैं। वास्तव में ऐसे मामलों की संख्या बढ़ती जा रही है। यदि सामाजिक न्याय के सिद्धांत का कोई अर्थ है तो जहां एक पैदल यात्री अपनी ओर से लापरवाही किए बिना किसी मोटर चालक द्वारा घायल या मारा जाता है, चाहे वह लापरवाही से हो या नहीं, तो उसे या उसके कानूनी प्रतिनिधियों को, जैसा भी मामला हो, नुकसान की वसूली का हकदार होना चाहिए।

20. ये प्रावधान (मोटर अधिनियम, 1988 की धारा 110ए और धारा 110बी) केवल प्रक्रियात्मक प्रावधान नहीं हैं। वे पक्षकारों के

अनुवादित

अधिकारों को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं। घातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 द्वारा निर्मित कार्रवाई का अधिकार 'अपनी प्रजाति में नया, अपनी गुणवत्ता में नया, अपने सिद्धांतों में नया था। हर तरह से यह नया था। मोटर वाहन दुर्घटना के कारण मृत्यु के मुआवजे के लिए आवेदन दायर करने के लिए अधिनियम, 1988 के तहत कानूनी प्रतिनिधियों को दिया गया अधिकार एक विस्तृत अधिकार है। इस अधिकार को घातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 के तहत किसी कार्रवाई की सीमाओं से रोका नहीं जा सकता। नई स्थितियों और नए खतरों के लिए नई रणनीतियों और नए उपचारों की आवश्यकता होती है।

21. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, हमारा विचार है कि भले ही न्यायालय व्याख्या द्वारा कानून के सिद्धांतों को विस्थापित न करें, जिन्हें अच्छी तरह से स्थापित माना जाता है और इसलिए, न्यायालय मोटर वाहन दुर्घटनाओं के संबंध में सभी मामलों में लापरवाही के साक्ष्य से छूट नहीं दे सकती है। विधि को निम्नलिखित आधार पर आगे विकसित करना संभव है; जब एक मोटर वाहन को उचित ध्यान देकर चलाया जा रहा है, तो यह आमतौर पर दुर्घटना का शिकार नहीं होगा और इसलिए, साक्ष्य के नियम के रूप में चीज़ें खुद ही बोलती हैं (रेस-इप्सा लोकिटर) का नियम मोटर दुर्घटना के मामलों में सामान्य सिविल मुकदमों की तुलना में अधिक आवृत्ति के साथ लागू किया जा सकता है (जैकब मैथ्यू बनाम पंजाब राज्य, 2005 0 एसीजे (एससी) 1840) में प्रति तीन-न्यायाधीशों की पीठ के अनुसार) ।

22. उपरोक्त प्रक्रिया के द्वारा, मोटर दुर्घटना दावा याचिका में यह साबित करने के लिए सबूत का बोझ आम तौर पर प्रत्यर्थी पर डाला जा सकता है कि मोटर वाहन आवश्यक ध्यान देते हुए चलाया जा रहा था या दूसरे पक्ष की ओर से भी उतनी ही लापरवाही हुई है।" (बल दिया गया)

19. खेनेई बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य, 2015 लॉ सूट (एससी) 469 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया है:

"4. यह समग्र लापरवाही का मामला है जहां संयुक्त अपकृत्यकर्ता के संयुक्त गलत कृत्य के कारण दावेदारों को चोटें आई हैं। संयुक्त अपकृत्यकर्ता की लापरवाही के कारण हुई दुर्घटना के मामले में, सभी व्यक्ति जो सहायता या परामर्श देते हैं या निर्देशन करते हैं या गलत कार्य में शामिल होने पर, उत्तरदायी होते हैं। ऐसे मामले में, दायित्व हमेशा संयुक्त और कई का होता है। ऐसे मामले में संयुक्त अपकृत्य कर्ता की लापरवाही की सीमा वादी/दावेदार के दावे की संतुष्टि के लिए सारहीन है और न्यायालय द्वारा इसके निर्धारण की आवश्यकता नहीं है। हालाँकि, यदि सभी संयुक्त अपकृत्यकर्ता न्यायालय के समक्ष हैं, तो यह उचित स्तर पर उनके बीच अंतर - हिस्सेदारी को समायोजित करने के उद्देश्य से उनके दायित्व की सीमा निर्धारित कर सकता है। प्रत्येक का दायित्व और वादी/दावेदार की तुलना में प्रत्येक संयुक्त अपकृत्य शुल्क को विभाजित नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह संयुक्त और कई का दायित्व है। समग्र लापरवाही के मामले में, वादी को भुगतान करने के लिए अपकृत्य व्यवहारकर्ताओं के बीच

अप्रमाणित

मुआवजाका बंटवारा स्वीकार्य नहीं है क्योंकि वादी/दावेदार को सबसे आसान लक्ष्य/सोधक्षा। प्रत्यर्थी से पूरी राशि वसूल करने का अधिकार है ।"

20. जहां तक मृतक का सवाल है, यह समग्र लापरवाही का मामला है। पक्षकारों के अलग-अलग कथन हैं। अगर ट्रैक्टर के ड्राइवर के कथन को स्वीकार कर लिया जाए कि ट्रैक्टर खड़ा था और बिल्कुल बायीं ओर था और वह चाय लेने गया था। यह तथ्य प्रकाश में आया कि कोई लाल बत्ती नहीं थी, कोई निशान नहीं था कि वाहन पर लोहे की छड़ें होने का कोई निशान नहीं था । दावेदारों के कथन के अनुसार ट्रैक्टर ट्रॉली चालक ने अचानक गाड़ी मोड़ दी और इसी वजह से दुर्घटना हुई। ड्राइवर के कंधे पर भी चोट लगी और रॉड मृतक की गर्दन में घुस गई, जिसकी तुरंत मौत हो गई। तथ्यों से पता चलता है कि मोटरसाइकिल का चालक, जो पिछली तरफ से आ रहा था, उसका भी एक कर्तव्य बनता है, किंतु इस भीड़भाड़ वाले क्षेत्र में, जहां आपस में दूरी बहुत कम रहती है। उसकी लापरवाही 20 फीसदी तय की जा सकती है। इस परिपेक्ष में बीमा कंपनी ने यह आधार लिया है कि है कि ड्राइवर की ओर से लापरवाही हुई है, जिसे स्वीकार किया जाए। हालाँकि, दावेदार तीसरे पक्ष हैं, खेनेई (उपर्युक्त) के निर्णय के अनुसार उनके हिस्से से कोई राशि नहीं काटी जा सकती क्योंकि यह समग्र लापरवाही का मामला था। 20% की राशि स्कूटर के मालिक और चालक से वसूली जा सकती है, जिसका नंबर अभिलेख में है और जो मृतक का बड़ा भाई था । इसलिए, इस विवाद्यक का निर्णय आंशिक रूप से बीमा कंपनी के पक्ष में दिया गया

21. यह इस न्यायालय को दिए गए मुआवजा की मात्रा के प्रश्न पर ले जाता है। मुआवजा पर दोबारा विचार करना होगा क्योंकि अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री के. एस. एमिस्ट का तर्क कि 400 महीने का गुणक अनुदत्त नही किया जा सकता था को स्वीकृत करना होगा । यह तर्क कि दावेदार मृतक के प्रतिनिधि या आश्रित नहीं थे, दावेदारों के पक्ष में निर्णय दिया गया है और इस तथ्य के साथ फिर से मूल्यांकन करना होगा कि दावेदारों ने प्रत्याक्षेप दायर की है, इसलिए, दावेदारों को अनुज्ञेय मुआवजा की राशि के विवाद्यक की पुनर्गणना करनी होगी और उक्त प्रक्रिया अपनाई जा चुकी है। तथ्यात्मक आंकड़ों से पता चलता है कि मृतक एक जूनियर शिक्षक के रूप में नियोजित था, लेकिन उसकी नियुक्ति एक स्थायी कर्मचारी के रूप में नहीं थी, बल्कि एक प्रशिक्षु के रूप में थी और इसलिए, न्यायाधिकरण द्वारा ली गई 1,000/- रुपये की आय को संशोधित करना आवश्यक है क्योंकि न्यायाधिकरण ने महंगाई भत्ते की राशि पर विचार नहीं किया है।

22. श्री अमिस्ट की यह दलील कि 400 महीने का गुणक नहीं दिया जा सकता, स्वीकार किया जाना चाहिए, लेकिन साथ ही, प्रत्यर्थी दावेदारों के विद्वान अधिवक्ता की दलील कि न्यायाधिकरण ने भविष्य के नुकसान के मद में कोई राशि नहीं दी है हालांकि मृतक एक वैतनिक व्यक्ति था। गोबाल्ड मोटर सर्विसेज लिमिटेड और अन्य बनाम आर. एम. के. वेलुसामी 1962 एससीआर (1) 929 और महाप्रबंधक, केरल एस.आर.टी.सी. बनाम सुसम्मा थॉमस, 1994 एससीसी (2) 176 के निर्णय इस न्यायालय को 50% के पर्याप्त

अनुवादित

आंकड़े पर अनुमति देगा, इसलिए, राशि 1500/- रुपये प्रति माह होगी क्योंकि मृतक कुंवारा था, लेकिन उसका छोटा भाई, छोटी बहन और माँ वहाँ थीं और यह साक्ष्य से पता चला है कि बड़े भाई ने अपनी शादी के बाद अलग रहना शुरू कर दिया था और मृतक परिवार के लिए एकमात्र कमाने वाला था, इसलिए, 1/3 की कटौती की जाएगी। आंकड़ा 1,000/- रुपये प्रति माह होगा, यानी 12,000/- रुपये प्रति वर्ष । उन दिनों प्रचलित निर्णयों और सरला वर्मा और अन्य बनाम दिल्ली परिवहन निगम और अन्य, 2009 एसीजे 1298 के निर्णय, जिसे सभी लंबित मामलों में भी पूर्वव्यापी रूप से लागू किया गया है, को ध्यान में रखते हुए 18 का गुणक देना होगा, । चूंकि यह पुराने अधिनियम के तहत मामला है, गैर-आर्थिक क्षति के लिए 50,000/- रुपये और 30,000/- रुपये (अतिरिक्त) अनुदत्त करने होंगे।

23. जहां तक ब्याज दर का सवाल है, न्यायाधिकरण द्वारा दी गई राशि के लिए दिए गए ब्याज की दर को बरकरार रखा गया है, लेकिन एकमुश्त राशि के लिए न्यायाधिकरण द्वारा दी गई कटौती को स्वीकार नहीं किया जा सकता है। कटौती 1/3 होनी चाहिए क्योंकि मृतक के कुंवारे होने के बावजूद उस पर तीन लोग आश्रित थे।

24. इसलिए, उपर्युक्त चर्चा के अनुसार अपीलकर्ताओं और मृतक की बेटियों को देय कुल मुआवजाकी गणना नीचे दी गई है:

i मासिक आय: रु. 1200/-

ii भविष्य की संभावनाओं का प्रतिशत: 50% = रु.600/-

iii. कुल आय: रु.1800/-

iv. 1/3 की कटौती के बाद आय: रु. 1800/- रु.600/- = रु. 1,200/-

V. वार्षिक आय : रु. 1,200/- x 12 = रु.14,400/-

vi. गुणक लागू : 18

vii निर्भरता का नुकसान: रु.14,400/- x 18 = रु.2,59,200/-

viii. गैर-आर्थिक मदों के अंतर्गत राशि: रु.50,000/- + रु.30,000/- = रु.80,000/-

ix कुल अनुतोष: रु. 2,59,200/- + रु.80,000/- = रु. 3,39,200/-

25. विद्वान न्यायाधिकरण ने 10% प्रति वर्ष की दर से ब्याज अधिनिर्णीत किया है। इस प्रकार मुआवजावही दिया गया है जो दिया जाना चाहिए किंतु की अवधि को देखते हुए 9% प्रति वर्ष के आधार पर पुनर्गणना की जाती है। अतिरिक्त राशि बीमा कंपनी को फिक्स डिपॉजिट से वापस की जाएगी।

26. इस न्यायालय ने रोक अनुदत्त कर दी, इसलिए, अतिरिक्त राशि 9% ब्याज दर के साथ राशि की गणना करके जमा की जानी है।

27. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। न्यायाधिकरण द्वारा पारित निर्णय और अधिनिर्णय को उपरोक्त सीमा तक संशोधित किया गया है। अपीलकर्ता- बीमा कंपनी दावा याचिका दायर करने की तारीख से राशि जमा होने तक 9 % प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ आज से 12 सप्ताह की अवधि के भीतर पूरी राशि जमा करेगी । पहले से जमा की गयी राशि को जमा की जाने वाली राशि से घटा लिया जाएगा

अनुवादित

28. श्रीमती हंसगोरी पी. लधानी बनाम द ओरिएण्टल इंस्युरेन्स कंपनी लिमिटेड, [2007 (2) जीएलएच 291] के मामले में माननीय गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित निर्णयधार को ध्यान में रखते हुए और इस उच्च न्यायालय ने मुआवज़े की मूल राशि पर अर्जित ब्याज की कुल राशि को वित्तीय वर्ष से वित्तीय वर्ष के आधार पर विभाजित किया जाना है और यदि किसी वित्तीय वर्ष के लिए दावेदार को देय ब्याज रु.50,000/- से अधिक है, तो बीमा कंपनी/मालिक बी अधिनियम, 1961 की धारा 194 (3) (ix) के तहत 'स्रोत पर कर कटौती' के मद के तहत उचित राशि काटने का हकदार है/हैं और यदि किसी वित्तीय वर्ष में बी राशि 50,000/- रुपये से अधिक नहीं है, तो इस न्यायाधिकरण की रजिस्ट्री को निर्देश दिया जाता है कि वह दावेदारों को संबंधित कर प्राधिकरण से आय का प्रमाण पत्र प्रस्तुत किए बिना राशि निकालने की अनुमति दे। उपरोक्त दृष्टिकोण को इस उच्च न्यायालय द्वारा आदेश से प्रथम अपील 23/2001 (श्रीमती सुदेना और अन्य बनाम हरि सिंह और अन्य) में समीक्षा प्रार्थना पत्र संख्या 1/2001 में और 19.3.2021 को विनिर्णित आदेश से प्रथम अपील संख्या 2871/2016 (तेज कुमारी शर्मा बनाम चोला मंडलम एम.एस. जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड) में राशि का वितरण करते हुए दोहराया गया है।

(2023) 6 ILRA 592

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 10.04.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

आदेश से प्रथम अपील संख्या 1208/1992

न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी **अपीलकर्ता**

बनाम

मुरली मनोहर सक्सेना और अन्य **प्रतिवादी**

अपीलकर्ता के अधिवक्ता: श्री राजीव चड्ढा

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: श्री एन.सी. राजवंशी, श्री मुकेश कुमार कुशवाह

ए. सिविल कानून-मोटर वाहन अधिनियम, 1988-धारा 173-मुआवजे की मात्रा-इस मामले में, बीमा पॉलिसी दोपहर 2.00 बजे ली गई थी। और दुर्घटना दिन में 10.30 बजे पहले हुई थी। इस प्रकार, सुनीता राठी और श्रीमती सोबिना लकाई में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के सिद्धांत, बीमाकर्ता के मामले पर सीधे लागू होते हैं- बीमा कवरेज दावेदार को अपीलकर्ता कंपनी से राशि की वसूली करने में सक्षम नहीं करेगा- (पैरा 1 से 23)

बी. इस मामले में, न्यायालय ने माना कि पॉलिसी में उल्लिखित किसी विशिष्ट समय की अनुपस्थिति में, सामान्य खंड अधिनियम के प्रावधानों के संचालन द्वारा अनुबंध दिन की मध्यरात्रि से संचालित होगा, लेकिन बीमा पॉलिसी में उल्लिखित विशेष अनुबंध के मद्देनजर, पॉलिसी की प्रभावशीलता पॉलिसी में इंगित समय और तारीख से शुरू होगी। (पैरा 22)

अपील को स्वीकार किया जाता है। (ई-6)

उद्धृत मामलों की सूची:

अप्रमाणित

1. न्यू इंडिया अस्सर कंपनी लिमिटेड बनाम राम दयाल और अन्य (1990) 2 एससीसी 680

2. ओरिएंटल इंस. कंपनी लिमिटेड बनाम सुनीता राठी एवं अन्य (1998) 1 एससीसी 365

3. एनआईसीएल बनाम सोबीना लकाई (श्रीमती) एवं अन्य (2007) 7 एससीसी 786

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा दिया गया)

यह अपील बीमा कंपनी द्वारा मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण / अतिरिक्त जिला न्यायाधीश- XI, आगरा द्वारा मोटर दुर्घटना दावा याचिका संख्या 64/1992 में पारित अवार्ड दिनांक 13.10.1992, जिसके द्वारा दावा को अनुमन्य किया गया, को चुनौती देने के लिए है।

दावाकर्ता-प्रतिवादी संख्या-1, मुरली मनोहर सक्सेना के अनुसार 4 सितम्बर, 1991 कोसुबह साढ़े दस बजे वह अपने छोटे भाई, भगवानजी सक्सेना द्वारा संचालित स्कूटर पर पीछे बैठकर, जिसका पंजीकरण सं०- यूटीएम-8322 था, कमला नगर से सिविल न्यायालय, आगरा जा रहे थे । स्कूटर सड़क के बायीं ओर से जा रहा था और अब्बू उल्लाह दरगाह बाईपास रोड पर पहुंचा ही था कि अचानक एक जीप, जिस पर पंजीकरण संख्या यूवीजे-6096 था, उपेक्षापूर्वक और तेज गति से संचालित दिखाई दिया । जीप के चालक ने कोई हॉर्न नहीं बजाया और स्कूटर को टक्कर मार दी, जिस पर दावाकर्ता -प्रतिवादी संख्या- 1 (संक्षेप में, 'दावाकर्ता') सवारी कर रहा था। टक्कर के कारण दावाकर्ता और उसका भाई घायल होकर गिर पड़े। वे बेहोश हो गए। स्कूटर क्षतिग्रस्त हो गया। दावाकर्ता का दाहिना निचला अंग फ्रैक्चर हो गया था, और इसके अतिरिक्त, उसके मस्तिष्क और आंखों में चोटें आईं, इसके अतिरिक्त शरीर के कई अन्य अंग भी थे। दावाकर्ता का कथन है कि उपचार के पश्चात् भी, उसका दाहिना निचला अंग सामान्य रूप से काम नहीं करता है। दावाकर्ता सुविधापूर्वक चल नहीं सकता। वह शारीरिक और मानसिक दोनों रूप से बिल्कुल विकलांग व्यक्ति में परिवर्तित हो गया है। दावा कर्ता एक भावी अधिवक्ता था, जिसका भविष्य उज्ज्वल था। तथापि, दुर्घटना में लगी चोटों के कारण उनके व्यवसाय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा । तदनुसार, दावाकर्ता ने 10 लाख रुपये की राशि में प्रतिकर की मांग की।

उत्तर प्रदेश राज्य सेतु निगम लिमिटेड दुर्घटनाग्रस्त जीप के स्वामी हैं। उन्होंने एक लिखित कथन में कहा कि दावाकर्ता राहत का हकदार नहीं है। उत्तर प्रदेश राज्य सेतु निगम, जिन्हें इस अपील के प्रतिवादी संख्या-2 के रूप में नियुक्त किया गया है, को इसके बाद 'स्वामी' कहा जाएगा। स्वामी ने अपने लिखित कथन में आगे कहा कि दावाकर्ता ने अपनी मासिक आय गलत तरीके से दिखाई है। उन्होंने स्कूटर के बीमा के विवरण का खुलासा नहीं किया है और न ही स्कूटर के बीमाकर्ताओं को दावा याचिका के पक्षकारों के रूप में सम्मिलित किया है। स्वामी के अनुसार, 04-09-1991 को पंजीकरण संख्या यू.वी.जे.-6096 को उनका चालक पृथ्वी सिंह चला रहा था, जो नेहरू नगर में स्वामी के कार्यालय से यमुना ब्रिज पर अपने कार्य स्थल की ओर जा रहा था। वह

अनुवादित

वाहन को नियंत्रित गति से चला रहा था। अब्बू उल्लाह दरगाह पर, भगवान टॉकीज की दिशा से आगे बढ़ते हुए एक स्कूटर, आरोपित जीप को ओवरटेक कर दावाकर्ता के स्कूटर से टकरा गया, जिससे वह जमीन पर गिर गया। स्कूटर सवार को कोई चोट नहीं आई और न ही स्कूटर को नुकसान पहुंचा। यद्यपि स्कूटी सवार भाग गया। अव्यवस्था में, जीप चालक, दावाकर्ता को बचाने के लिए, सड़क के किनारे एक कच्चे गड्ढे में सड़क से कूद गया और आगे बढ़ गया। अचानक, कमला नगर की दिशा से एक स्कूटर आया और स्वामी की जीप से टकरा गया। तथापि, आरोपित जीप और उस स्कूटर, जिस पर दावाकर्ता सवारी कर रहा था, के बीच कोई टक्कर नहीं हुई । दावाकर्ता ने जो भी दावा मांगा है, वह उसका अधिकारी नहीं है।

न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, जो आरोपित जीप की बीमाकर्ता हैं, को दावा याचिका के विपक्षी संख्या - 2 के रूप में नियुक्त किया गया था। उक्त बीमा कंपनी यहां अपीलकर्ता हैं । इसके बाद उन्हें 'बीमाकर्ता' कहा जाएगा। बीमाकर्ताओं की ओर से एक लिखित कथन प्रस्तुत किया गया था, जिसमें दावा याचिका के आरोपों से इनकार किया गया था। बीमाकर्ताओं का पक्ष यह है कि दुर्घटना के समय, आरोपित जीप का बीमाकर्ताओं के साथ बीमा नहीं था। दावा याचिका मोटर वाहन अधिनियम, 1988 (संक्षेप में, 'अधिनियम') की धारा 149 द्वारा वर्जित है । दिनांक 04-09-1991 को मध्याह्न पश्चात् 2.00 बजे एक वरिष्ठ अभियंता ने आरोपित जीप का बीमाकर्ताओं से बीमा करवाया । जिस समय बीमा पॉलिसी निकाली गई थी, उस समय स्वामी द्वारा इस तथ्य को दबा दिया गया था कि पहले दिन में सुबह 10:30 बजे, आरोपित जीप एक दुर्घटना में सम्मिलित थी। यह तर्क दिया जाता है कि यदि दुर्घटना का तथ्य बीमाकर्ताओं के ज्ञान में होता, तो वे कभी भी बीमा पॉलिसी जारी नहीं करते। बीमाकर्ताओं का पक्ष यह है कि स्वामी द्वारा बीमाकर्ताओं के साथ धोखाधड़ी करते हुए पॉलिसी ली गई थी। बीमाकर्ताओं के अनुसार, वे स्वामी को उनके द्वारा धारित पॉलिसी पर क्षतिपूर्ति करने के लिए बाध्य नहीं हैं।

पक्षकारों के अभिवचनों पर निम्नलिखित वाद-बिंदु उठे (हिंदी से अंग्रेजी में अनुवादित):

"1. क्या 04.09.1991 को सुबह 10:30 बजे दुर्घटना जीप, जिसका पंजीकरण संख्या यूवीजे-6096 है, के चालक की उपेक्षा और गलती के कारण हुई?

2. क्या दुर्घटना उस जीप के कारण नहीं हुई थी,जिसका पंजीकरण संख्या यूवीजे-6096 है?

3. क्या दुर्घटना के समय जीप सं० यूवीजे-6096 का बीमा विपक्षी संख्या-2, न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड के साथ था?

4. क्या दावाकर्ता कोई दावा प्राप्त करने का अधिकारी है, यदि हां, तो कितना और किससे?

दावाकर्ता की ओर से, श्री शैलेंद्र कुलश्रेष्ठ, एडवोकेट ने पीडब्ल्यू- 1 के रूप में साक्ष्य दिया, जो दुर्घटना का चक्षु-दर्शी साक्षी है।

अनुवादित

दावाकर्ता मुरली मनोहर सक्सेना ने पीडब्लू 2 के रूप में साक्ष्य दिया । बीमाकर्ताओं की ओर से, बीमा कंपनियों के विकास अधिकारी सुरेश चंद्र गोयल की डीडब्ल्यू-1 के रूप में जांच की गई और आरोपित जीप के चालक, पृथ्वी सिंह की डीडब्ल्यू-2 के रूप में परीक्षा की गई। दोनों पक्षों की ओर से अभिलेखीय साक्ष्य भी प्रस्तुत किये गये, जिनका संकेत इस निर्णय के समय किया जाएगा।

न्यायाधिकरण ने वाद-बिंदु संख्या-1 और 2 को एक साथ तय किया। और, हमारी राय में ठीक है, क्योंकि दोनों वाद-बिंदु समान हैं और कुछ अंतर के साथ निर्णय लेने के लिए एक समान विवाद सम्मिलित है। दो वाद-बिंदु का उत्तर देने में, न्यायाधिकरण ने पीडब्ल्यू -1 के साक्ष्य पर विचार किया, जिसने लगभग 15 गज की दूरी से दुर्घटना देखी थी। इस साक्षी के अनुसार, आरोपित जीप भगवान टॉकीज की ओर से तेज गति से और उपेक्षा से आगे बढ़ी। इसने दुर्भाग्ययुक्त स्कूटर को ओवरटेक करने का प्रयास किया। यह उस प्रयास में है कि आरोपित जीप ने दुर्भाग्यपूर्ण स्कूटर को टक्कर मार दी, जिससे दुर्घटना हुई। न्यायाधिकरण ने इस तथ्य पर ध्यान दिया है कि यह वह साक्षी था, जो घायलों को आपातकालीन चिकित्सा सहायता के लिए ले गया और पुलिस स्टेशन न्यू आगरा में एक रिपोर्ट अंकित कराई। न्यायाधिकरण ने इस साक्षी के साक्ष्य पर ध्यान दिया है, जहां यह कहा गया है कि उसके साथ एडवोकेट श्री नईम शेख थे, जिन्होंने घटना-स्थल पर ही आरोपित जीप के चालक को पकड़ लिया और उसे पुलिस को सौंप दिया। इसी साक्षी ने प्रकरण में एफआईआर साबित की है। न्यायाधिकरण ने ध्यान दिया है कि स्वामी की ओर से पीडब्ल्यू -1 से लंबी प्रति-परीक्षा की गई थी, लेकिन प्रति-परीक्षा दुर्घटना स्थल पर साक्षी की उपस्थिति के विषय में कोई संदेह पैदा नहीं करता है। पीडब्ल्यू- 2 ने भी अपने दावे का समर्थन किया, जिसमें दुर्घटना का प्रकरण सम्मिलित था जिसमें आरोपित जीप और दुर्घटना में लगी चोटें सम्मिलित थीं। प्रति-परीक्षा में साक्षी अधिक अविश्वसनीय प्रतीत नहीं हुआ है।

न्यायाधिकरण ने तब बीमाकर्ताओं की ओर से पेश किए गए दो साक्षियों के साक्ष्य पर ध्यान दिया है। न्यायाधिकरण द्वारा यह अंकित किया गया है कि डीडब्ल्यू -1, सुरेश चंद्र गोयल ने अपनी साक्ष्य में कहा है कि उन्होंने तीसरे पक्ष के जोखिम के विरुद्ध 04.09.1991 को आरोपित जीप का बीमा किया था। बीमा स्वामी के वरिष्ठ प्रबंधक द्वारा लिया गया था और यह वरिष्ठ अभियंता के नाम पर जारी किया गया था। स्वामी प्रतिष्ठान में कनिष्ठ अभियंता अशोक वर्मा बीमा पॉलिसी लेने आए थे। इस साक्षी ने अपनी प्रति-परीक्षा में कहा है कि दोपहर 2 बजे पॉलिसी निकाली गई थी। उन्होंने यह भी कहा है कि पॉलिसी पर देय बीमा-क़िस्त के खाते में धन जमा करने के बाद जोखिम की व्याप्ति लागू होती है। आगे यह भी कहा गया है कि यदि बीमा-क़िस्त जमा नहीं किया जाता है, तो जोखिम की व्याप्ति नहीं होती है। न्यायाधिकरण ने टिप्पणी की है कि इस साक्षी (डीडब्ल्यू -1) ने इस तथ्य का साक्ष्य दिया है

अनुवादित

कि आरोपित जीप का बीमा दोपहर 2 बजे निकाला गया था।

न्यायाधिकरण ने डीडब्ल्यू-2 पृथ्वी सिंह की साक्ष्य पर विचार किया है, जो आरोपित जीप का चालक है । इस साक्षी को यह कहते हुए देखा गया है कि 04.09.1991 को 10:00 - 10:45 के बीच, वह नेहरू नगर कार्यालय से जल कार्य कार्यालय जा रहा था। जैसे ही वह अब्बू उल्लाह चौराहा के पास पहुंचा तो तेज रफ्तार में एक स्कूटर ने उसे ओवरटेक कर लिया। उसी समय विपरीत दिशा से एक अन्य स्कूटर आया और दूसरे स्कूटर से टकरा गया। दो स्कूटरों में से एक के सवार नीचे गिर गए। साक्षी ने कहा है कि उसने अपना वाहन रोका और घायलों को अस्पताल ले जाने के लिए तिपहिया वाहन पर चढ़ने में सहायता की। साक्षी ने कहा है कि कुछ दूरी तय करने के बाद उसे 7 या 8 अधिवक्ताओं ने पकड़ लिया। साक्षी को यह कहते हुए देखा गया है कि उसने अधिवक्ताओं से अनुरोध किया कि वह दुर्घटना का कारण नहीं है, लेकिन उसे मोटरसाइकिल चलाने के लिए बाध्य किया गया और उसका वाहन खड़ा था, जहां उसे रोका गया था। साक्षी ने यह भी कहा है कि उसके साथ दुर्व्यवहार किया गया और उसे थाने में अभिरक्षा में लिया गया।

न्यायाधिकरण ने टिप्पणी की है कि दुर्घटना उस तरह से नहीं हुई जिस तरह से डीडब्ल्यू -2, पृथ्वी सिंह ने इसका वर्णन किया है। यह भी देखा गया है कि साक्षी का कथन विश्वसनीय नहीं है। न्यायाधिकरण द्वारा यह देखा गया है कि संदर्भ के तहत साक्षी ने कहा है कि दोनों स्कूटर नीचे गिर गए थे और क्षतिग्रस्त हो गए थे, लेकिन वह दूसरे स्कूटर की संख्या या उसके विवरण को नहीं देता है। न्यायाधिकरण ने इस तथ्य को भी अंकित किया है कि साक्षी ने अपनी प्रति-परीक्षा में स्वीकार किया है कि जब आरोपित जीप को पुलिस स्टेशन से छोड़ा गया था, तो उसका मडगार्ड क्षतिग्रस्त हो गया था। बोनट दबा हुआ था और कांच भी क्षतिग्रस्त हो गया था। साक्षी ने अपनी प्रति-परीक्षा में यह नहीं कहा कि उसने जीप को अन्यत्र हुए इस क्षति के संबंध में पुलिस को कोई रिपोर्ट दी थी। न्यायाधिकरण ने टिप्पणी की है कि चूंकि जीप द्वारा किए गए क्षति के विषय में कोई प्राथमिकी अंकित नहीं की गई थी, इसलिए यह स्पष्ट है कि यह वही साक्षी था, जो उपेक्षा से जीप चला रहा था, और यह आरोपित जीप है, जो दुर्घटना का कारण बना। इसलिए, वाद-बिन्दुओं का उत्तर इस तरह से दिया गया था कि दुर्घटना आरोपित जीप के चालक द्वारा तेज और उपेक्षा से गाड़ी चलाने के कारण हुई थी और आगे यह कि यह आरोपित जीप थी, जो दुर्घटना में सम्मिलित थी।

अपील के समर्थन में बीमाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री राजीव चड्ढा को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया। स्वामी की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ।

बीमाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने उपर्युक्त दो वाद-बिन्दुओं पर न्यायाधिकरण के निष्कर्षों की आलोचना करने का प्रयास किया है जिसमें कहा गया है कि आरोपित जीप दुर्घटना में सम्मिलित नहीं थी और न ही चालक असावधान था। पीडब्ल्यू -1 के साक्ष्य के माध्यम से जाने पर, जो बिल्कुल भी इच्छुक

अनुवादित

साक्षी नहीं है, आरोपित जीप की सहभागिता के साथ-साथ चालक की उपेक्षा भी स्पष्ट है।

चालक ने स्वीकार किया है कि आरोपित जीप ने अपने मडगार्ड को नुकसान पहुंचाया था, जो टूट गया था । बोनट और विंड शील्ड भी टूट गए थे। तथापि, यह कहा जाता है कि जीप की यह स्थिति उस समय थी, जब इसे पुलिस स्टेशन से अवमुक्त किया गया था, लेकिन स्वामी द्वारा की गई किसी भी कार्यवाही के अभाव में, जो खुद पुलिस की तुलना में सरकार का चेहरा नहीं हैं, दावाकर्ता के प्रकरण को विश्वसनीयता देता है कि अपमानजनक जीप दुर्घटना में सम्मिलित थी और डीडब्ल्यू -2 द्वारा उसकी साक्ष्य में उल्लिखित क्षति थी,जीप के चालक पृथ्वी सिंह का कारण उसी दुर्घटना को माना जा रहा है, जिससे दावाकर्ता को चोट लगी थी। इसके अतिरिक्त, तथ्य यह है कि जीप और चालक को मौके पर ही पकड़ लिया गया था और जीप को बाद में पुलिस स्टेशन से रिहा कर दिया गया था, जीप की सहभागिता के विषय में पर्याप्त आश्वासन है। वाद-बिंदु संख्या 1 और 2 पर न्यायाधिकरण के निष्कर्षों को गलत नहीं ठहराया जा सकता है। तदनुसार, उन निष्कर्षों को बनाए रखा जाता है।

बीमाकर्ता वाद-बिंदु संख्या 3 पर अंकित अधिकरण के निष्कर्षों की आलोचना करते हैं। बीमाकर्ताओं की ओर से यह बहुत प्रभावशाली तर्क दिया गया है कि न्यायाधिकरण ने यह मानने में गलती की है कि बीमाकर्ता उत्तरदायी हैं, क्योंकि उन्होंने बीमा पॉलिसी निरस्त नहीं करवाई, यदि उनका तर्क था कि पॉलिसी 04.09.1991 को दोपहर 2:00 बजे निकाली गई थी, तो उन्हें कार्यवाही का एक तरीका अपनाना चाहिए था कि दुर्घटना, पॉलिसी लिए जाने के पूर्व ही दिन में सुबह 10:30 बजे हो चुकी थी । बीमाकर्ताओं की ओर से यह प्रस्तुत किया गया है कि पॉलिसी, बीमाकर्ताओं के साथ धोखाधड़ी करने वाले स्वामी के द्वारा प्राप्त की गई थी और इसलिए, पॉलिसी शून्य है। बीमाकर्ताओं का कथन है कि वे पंचाट को पूर्ण करने के लिए उत्तरदायी नहीं हैं।

अभिलेख के अवलोकन पर, इस न्यायालय ने पाया कि बीमाकर्ताओं द्वारा 04.09.1991 को जारी किया गया मूल कवर नोट कागज़ संख्या 44-ग के रूप में अभिलेख पर है। इसके अतिरिक्त, कवर नोट की छाया-प्रतियां कागज़ संख्या 39-ग और 46-ग और एक अन्य छाया-प्रति, कागज़ संख्या -5 ग के रूप में अभिलेख पर भी हैं। कवर नोट, जिसे अभिलेख पर प्रस्तुत किया गया है और कागज़ संख्या 44-ग के रूप में चिह्नित किया गया है, स्पष्ट रूप से 04.09.1991 को दोपहर 2:00 बजे जारी करने के समय का उल्लेख करता है, जबकि छाया-प्रति कागज़ संख्या 46-ग में किसी भी समय का उल्लेख नहीं है। फिर से, छाया-प्रति, जिसमें कागज़ संख्या 5-ग है, जारी करने के समय का उल्लेख नहीं करता है, जबकि छाया-प्रति, जिसमें कागज़ संख्या 39-ग है, जारी करने के समय का उल्लेख दोपहर 2:00 बजे है।

दस्तावेजी साक्ष्य की ग्राह्यता के सिद्धांतों के अनुसार, केवल मूल साक्ष्य ही स्वीकार्य है और जब प्राथमिक साक्ष्य उपलब्ध है तो गौण साक्ष्य की जांच करने का कोई कारण नहीं है। छाया-प्रतियां, संख्या दो, जिनमें कवर नोट

अनुवादित

जारी करने के समय का उल्लेख नहीं है, संभवतः डीडब्ल्यू -1, सुरेश चंद्र गोयल से प्रति-परीक्षा करते समय दस्तावेज़ की वास्तविकता को अविश्वसनीय करने के लिए इस्तेमाल किया गया था, किन्तु सुरेश चंद्र गोयल अपनी प्रति-परीक्षा में इस तथ्य पर अड़े रहे कि बीमा कंपनियों की ओर से उनके द्वारा कवर नोट दि० 04.09.1991 को दोपहर 2:00 बजे जारी किया गया था। उन्होंने अपने मुख्य-परीक्षा में उक्त कथन पर स्थिर रहे, जहां उन्होंने कहा है:

"सशपथ ब्यान किया कि मैं न्यू इंडिया इंश्योरेस कंपनी ओपी संख्या- 2 में विकास अधिकारी हूँ और बीमा करता हूँ । दि०- 04-09-91 को दोपहर 2 बजे जीप नंबर यूवीजे 6096 का बीमा केवल थर्ड पार्टी रिस्क के लिए सीनियर इंजीनियर यू पी स्टेट बृज कारपोरेशन के नाम से किया था बीमा कराने जे.ई.अशोक वर्मा व एक बाबू चौहान कंपनी के ब्रांच ऑफिस महात्मा गाँधी रोड आगरा पर आये थे और उन्होंने जीप का बीमा करने को कहा था । पहले यह गाड़ी न्यू इंडिया में इन्स्योर्ड नहीं रही । 4.9.91 का बीमा था । रिनुवल नहीं था । पिछले बीमा का कोई कागज नहीं दिखाया था । यह लोग गाड़ी लेकर नहीं आये थे । इनके द्वारा यह नहीं बताया गया था 4.9.91 को सुबह 10.30 बजे इस जीप से कोई दुर्घटना हुई है।"

स्वामी की ओर से प्रति-परीक्षा करने पर यह साक्षी अपने कथन पर स्थिर रहा कि कवर नोट उसके द्वारा 04.09.1991 को दोपहर 2:00 बजे जारी किया गया था । डीडब्ल्यू-1 ने स्वामी की ओर से अपनी प्रति-परीक्षा में कहा है:

"एक समय में कवर नोट का असल सहित 4 कापी बनती है एक ओरिजिनल पार्टी के पास चली जाती है बाकी ऑफिस में रहती है । कवर नोट पर मेरे ही दस्तखत हैं किसी अन्य अधिकारी के नहीं होती । चारों कापियों पर समय एक सा है । बकाया की दो कापी ऑफिस में है जीप नंबर यूवीजे 6096 का बीमा मैंने किया था । यह मैंने 4.9.91 को दोपहर दो बजे किया था । मैंने यह नहीं कहा कि बीमा दो बजे के बाद किया था । दाखिलशुदा कवर नोट के आलावा मैं अन्य रिकार्ड इसलिए नहीं लाया कि मुझे बताया नहीं गया था । बीमा के समय जीप उपलब्ध नहीं थी व जीप नहीं देखी । थर्ड पार्टी बीमा पार्टी के विश्वास पर बिना वाहन देखे किया जाता है । असल कवर नोट व कार्बन कापी एक ही समय एक ही प्रोसेस में लिखी व दसखती है । असल व कार्बन कापी में भिन्नता नहीं है । यह कहना गलत है कि दुर्घटना के समय जीप बीमित हुई है । यह भी कहन गलत है कि दाखिलशुदा कार्बन कापी में समय बढ़ा दिया गया हो।"

इस न्यायालय ने पाया कि मूल कवर नोट, जिसमें कागज़ संख्या 44-ग है, दस्तावेजों की एक सूची के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है, जिसमें श्री रमाकांत दीक्षित, एडवोकेट, सिविल न्यायालय, आगरा द्वारा कागज़ संख्या 41-ग लिखा है। यह न्यायालय कागज़ संख्या 45-ग के अवलोकन से पाता है, जो 28.05.1992 का एक पत्र है, जो स्वामी के उप परियोजना प्रबंधक द्वारा श्री रमाकांत दीक्षित, एडवोकेट को संबोधित किया गया था कि श्री दीक्षित स्वामी के अधिवक्ता थे। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि मूल कवर नोट, जिसमें

अनुवादित

कागज़ संख्या 44-ग था, स्वामी की ओर से प्रस्तुत किया गया था, जिनकी हिरासत से इसे तार्किक रूप से आना चाहिए था। बीमा कंपनियों के विकास अधिकारी डीडब्ल्यू-1 ने पहले ही अपनी प्रति-परीक्षा में कहा है कि मूल कवर नोट स्वामी को जारी किया गया था, जो अन्यथा भी स्पष्ट है। इसलिए, स्वामी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा कवर नोट एक अभिलेख है, जिसे पक्षकार की अभिरक्षा से पेश किया गया है, जिसके पास यह होना चाहिए था। कवर नोट स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि यह 04.09.1991 को दोपहर 2:00 बजे जारी किया गया था। वहीं, बीमा कंपनियों की ओर से इसे जारी करने वाले कवर नोट के लेखक ने कहा है कि यह नवीनीकरण का प्रकरण नहीं था, जहां बीमाकर्ता अपनी मौजूदा पॉलिसी का नवीनीकरण कर रहे थे। उन्होंने वाहन की जांच किए बिना एक नया कवर नोट जारी किया था, जो इस अदालत को कहना चाहिए, उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिए था, जो कि ऑनवर्स पर भरोसा करते हुए किया जाना चाहिए था। यह टिप्पणी की जानी चाहिए कि बीमाकर्ता के अधिकारी को कभी भी एक कवर नोट जारी नहीं करना चाहिए था, जो वाहन की जांच किए बिना एक नया प्रस्ताव था, जो एक नया वाहन प्रतीत नहीं होता है। स्वामी में व्यक्त विश्वास का संदर्भ, जो भी मूल्य हो सकता है, बीमाकर्ताओं के लिए केवल इस तथ्य से बचाया जा सकता है कि स्वामी एक सरकारी निगम थे, और यह उम्मीद नहीं की गई थी कि वे धोखाधड़ी के अभ्यास में लिप्त होंगे या बीमाकर्ताओं को झूठ बताएंगे। दुर्भाग्य से, इस प्रकरण में जिस तरह से साक्ष्य निकले हैं, स्वामी के अधिकारियों, एक राज्य निगम, ने बीमाकर्ताओं पर स्पष्ट धोखाधड़ी का अभ्यास किया है, जानबूझकर इस तथ्य का खुलासा नहीं करके कि जिस वाहन का उन्होंने बीमा करने का प्रस्ताव दिया था, वह पहले दिन में एक दुर्घटना के साथ मिला था। इसलिए, यह माना जाना चाहिए कि कवर नोट, जिस पर स्वामी भरोसा करते हैं, 04.09.1991 को दोपहर 2:00 बजे जारी किया गया था। इस प्रकार, बीमाकर्ताओं के लिए 04-09-1991 को, उस दिन मध्याह्न पश्चात् 200 बजे से पहले आरोपित जीप का बीमा करने का कोई प्रस्ताव नहीं था। यह दुर्घटना 04.09.1991 को सुबह 10:30 बजे हुई। उस समय, बीमाकर्ताओं द्वारा कोई कवर नोट जारी नहीं किया गया था।

स्वामी की ओर से ऐसा कोई प्रकरण नहीं है कि जीप का बीमा किसी अन्य बीमाकर्ता द्वारा बीमा पॉलिसी के तहत किया गया था जिसकी अवधि 04-09-1991 को समाप्त हो रही थी। इस प्रकार, निष्कर्ष यह है कि जब तक बीमाकर्ताओं द्वारा 04.09.1991 को दोपहर 2:00 बजे कवर नोट जारी नहीं किया गया था, तब तक आरोपित जीप के लिए कोई बीमा कवर नहीं था।

1. एक विवाद्यक यह उठता है कि क्या किसी विशेष दिन पर जारी की गई पॉलिसी पिछली मध्यरात्रि से प्रारंभ होने वाले उस दिन के जोखिम को कवर करेगी, या वह समय क्या होगा जब किसी विशेष दिन पर खरीदा गया कवर नोट पॉलिसी के लंबित वाद के विषय में प्रभावी होगा। यह प्रश्न **न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम राम दयाल और अन्य, (1990) 2 एससीसी 680** में सर्वोच्च न्यायालय के विचार के लिए गया, जहां यह अभिनिर्धारित किया गया था:

अनुवादित

"2. बीमाकर्ता ने यह कहते हुए अपनी देयता को अस्वीकार कर दिया कि पॉलिसी दुर्घटना के बाद ली गई थी और इसलिए, स्वामी के विरुद्ध दावा के पंचाट को पूरा करने के लिए उसका कोई दायित्व नहीं था। न्यायाधिकरण ने इस तर्क को स्वीकार कर लिया और बीमाकर्ता के विरुद्ध दावे को निरस्त कर दिया। अपील में, उच्च न्यायालय ने कुछ निर्णयों पर भरोसा करते हुए यह विचार लिया कि दुर्घटना की तिथि पर प्राप्त बीमा पॉलिसी बीमा की तिथि के प्रारंभ होने से संचालित हो गई - यानी पिछली आधी रात से और चूंकि दुर्घटना पॉलिसी की तिथि को हुई थी, इसलिए बीमाकर्ता उत्तरदायी हो गया।

3. अपील के तहत निर्णय के अतिरिक्त, हम पाते हैं कि यह दृष्टिकोण मद्रास उच्च न्यायालय के दो निर्णयों और पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के पहले के निर्णय द्वारा समर्थित है। मद्रास उच्च न्यायालय की दो खण्ड न्याय-पीठों ने विधि पर विस्तार से चर्चा करने के बाद यह मत व्यक्त किया है कि दिन के किसी भी भाग में ली गई नीति उस दिन के प्रारंभ से लागू हो जाती है। इन निर्णयों के अतिरिक्त, इलाहाबाद उच्च न्यायालय की एक खंड-पीठ *जद्दू सिंह बनाम मालती देवी* [एआईआर 1983 इला० 87] के निर्णय में सिद्धांत के रूप में इस दृष्टिकोण का समर्थन करती है।

4. इस प्रकरण में साक्ष्य हैं कि वाहन का बीमा पहले 31 अगस्त, 1984 तक किया गया था और इसे नवीनीकृत करने के लिए उपलब्ध था, लेकिन नवीनीकरण प्राप्त करने के बजाय, 28 सितंबर, 1984 से एक नया बीमा लिया गया था, जो दुर्घटना की तिथि है। हम इन निर्णयों में इंगित दृष्टिकोण से सहमत हैं कि जब कोई पॉलिसी किसी विशेष तिथि पर ली जाती है, तो इसकी प्रभावशीलता तिथि के प्रारंभ होने से होती है और इसलिए, हमारी राय में, उच्च न्यायालय यह मानने में सही था कि बीमाकर्ता अधिनियम के संदर्भ में निर्णय के तहत स्वामी की देयता को पूरा करने के लिए उत्तरदायी था।

21. **राम दयाल** (सुप्रा) में निर्णय **ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम सुनीता राठी और अन्य, (1998) 1 एससीसी 365** के सिद्धांत पर प्रतिष्ठित था, जो इस तथ्य पर निर्भर था कि बीमाकर्ता की देयता की शुरुआत अलग होगी, जहां बीमा पॉलिसी या कवर नोट जारी करने की तिथि का उल्लेख किया गया था और एक कवर नोट जहां बीमा पॉलिसी जारी करने की तिथि और समय या कवर नोट का भी जिक्र किया गया। **सुनीता राठी** (*सुप्रा*) में, जो सर्वोच्च न्यायालय के उनके न्यायमूर्तिगण का तीन न्यायाधीशों की पीठ का निर्णय है, यह अभिनिर्धारित किया गया था:

"2. मोटर दुर्घटना 10-12-1991 को दोपहर 2.20 बजे हुई इसके बाद उसी दिन अपराह्न 2.55 बजे दुर्घटना में सम्मिलित मोटर वाहन के स्वामी बीमित व्यक्ति द्वारा बीमा पॉलिसी और कवर नोट प्राप्त किए गए। कवर नोट में स्पष्ट उल्लेख है कि अधिनियम के प्रयोजन के लिए बीमा प्रारंभ करने की प्रभावी तिथि और समय 10-121991 अपराह्न 2.55 बजे था। *राम दयाल प्रकरण* [(1990) 2 एससीसी 680: 1990 एससीसी (सीआरआई) 432: (1990) 2

अनुवादित

एससीआर 570] में निर्णय की प्रयोज्यता पर इन तथ्यों पर विचार किया जाना चाहिए। हमारी राय में *राम दयाल प्रकरण* [(1990) 2 एससीसी 680: 1990 एससीसी (सीआरआई) 432: (1990) 2 एससीआर 570] में निर्णय अलग-अलग है और इस प्रकरण के तथ्यों पर इसका कोई अनुप्रयोग नहीं है। उस निर्णय के तथ्यों से पता चलता है कि पॉलिसी जारी करने के समय का उसमें उल्लेख नहीं किया गया था और इसलिए, प्रश्न अनुमान का था जब केवल तिथि का उल्लेख किया गया था और उस समय का नहीं जिस पर बीमा उस तिथि को प्रभावी होना था। ऐसी स्थिति में, राम दयाल प्रकरण[(1990) 2 एससीसी 680: 1990 एससीसी (सीआरआई) 432: (1990) 2 एससीआर 570] में यह माना गया था कि किसी विशिष्ट समय का उल्लेख न होने पर, रेखांकित करने का तार्किक निष्कर्ष यह था कि बीमा पिछली आधी रात से प्रभावी हो गया था और इसलिए, पॉलिसी की तिथि को हुई दुर्घटना के लिए, बीमाकर्ता उत्तरदायी हो गया। निर्विवाद तथ्यों के आधार पर स्पष्ट निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए वर्तमान प्रकरण में ऐसी कोई कठिनाई नहीं है कि दुर्घटना मध्याह्न पश्चात् 2.20 बजे हुई थी और उसके बाद ही कवर नोट मध्याह्न पश्चात् 2.55 बजे प्राप्त किया गया था जिसमें स्पष्ट रूप से यह उल्लेख किया गया था कि अधिनियम के प्रयोजनार्थ बीमा प्रारंभ करने की प्रभावी तिथि और समय 10-12-1991 अपराह्न 2.55 बजे था। इसलिए न्यायाधिकरण और उच्च न्यायालय द्वारा *राम दयाल प्रकरण* [(1990) 2 एससीसी 680: 1990 एससीसी (सीआरआई) 432: (1990) 2 एससीआर 570] पर निर्भरता गलत थी। हम पाते हैं कि इसी तरह की स्थिति में, वही दृष्टिकोण जो हमने अपनाया है, वही दृष्टिकोण *नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड* विरुद्ध *जीकूभाई नाथूजी डाभी* [(1997) 1 एससीसी 66: (1996) 8 स्केल 695] में भी था, जिसमें *राम दयाल प्रकरण* [(1990) 2 एससीसी 680: 1990 एससीसी (सीआरआई) 432: (1990) 2 एससीआर 570] को उसी आधार पर प्रतिष्ठित किया गया था।

(**न्यायालय द्वारा जोर**)

22. यह मुद्दा फिर से **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम सोबिना इकाई (श्रीमती) और अन्य, (2007) 7 एससीसी 786** में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचार के लिए आया। श्रीमती सोबिना इकाई (*सुप्रा*) में, यह अभिनिर्धारित किया गया था:

"14. इस न्यायालय के पास *न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड विरुद्ध राम दयाल* [(1990) 2 एससीसी 680: 1990 एससीसी (सीआरआई) 432: (1990) 2 एससीआर 570] में इसी तरह के विवाद की जांच करने का अवसर था। इस प्रकरण में, इस न्यायालय ने माना कि पॉलिसी में उल्लिखित किसी भी विशिष्ट समय के अभाव में, अनुबंध सामान्य खंड अधिनियम के प्रावधानों के संचालन द्वारा दिन की आधी रात से संचालित होगा, लेकिन बीमा पॉलिसी में उल्लिखित विशेष अनुबंध को देखते हुए, पॉलिसी की प्रभावशीलता पॉलिसी में इंगित समय और तिथि से प्रारंभ होगी।

15. इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने *नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड*

अस्वीकृत

विरुद्ध जीकूभाई नाथूजी डाभी [(1997) 1 एससीसी 66] माना है कि उस संबंध में उल्लिखित किसी विशिष्ट समय के अभाव में, अनुबंध सामान्य खंड अधिनियम के प्रावधानों के संचालन द्वारा दिन की आधी रात से संचालित होगा। लेकिन बीमा पॉलिसी में उल्लिखित विशेष अनुबंध को ध्यान में रखते हुए, यह बीमा पॉलिसी लेने के समय और तिथि से संचालित होगा। उस प्रकरण में, बीमा पॉलिसी 25-10-1983 को शाम 4.00 बजे ली गई थी और दुर्घटना पहले हुई थी। इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया (एससीसी पृष्ठ 67, पैरा 3 में) कि "बीमा व्याप्ति दावाकर्ता को अपीलकर्ता कंपनी से राशि की वसूली की मांग करने में सक्षम नहीं करेगा"।

16. *ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम सुनीता राठी* [(1998) 1 एससीसी 365] प्रकरण में इस न्यायालय की एक अन्य तीन न्यायाधीशों की पीठ ने इसी तरह के तथ्यों से निपटा। इस प्रकरण में दुर्घटना दोपहर 2.20 बजे हुई और उसके बाद ही कवर नोट दोपहर 2.55 बजे प्राप्त किया गया। न्यायालय ने कहा कि नीति नीति में उल्लिखित समय और तिथि से प्रभावी होगी।

17. *न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी विरुद्ध भगवती देवी* [(1998) 6 एससीसी 534] में इस न्यायालय ने कहा कि, किसी विशिष्ट समय और तिथि के अभाव में, बीमा पॉलिसी पिछली आधी रात से संचालित हो जाती है। लेकिन जब विशिष्ट समय और तिथि का उल्लेख किया जाता है, तो बीमा पॉलिसी उस समय से प्रभावी हो जाती है। इस न्यायालय ने *न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड* विरुद्ध विरुद्ध *सीताबाई* [(1999) 7 एससीसी 575: 1999 एससीसी (सीआरआई) 1322] और *नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड* विरुद्ध *चिंटो देवी* [(2000) 7 एससीसी 50: 2000 एससीसी (सीआरआई) 1272] में भी यही विचार अपनाया है।

18. *जे. कलाइवानी* विरुद्ध *के. शिवशंकर* [(2007) 7 एससीसी 792: जेटी (2001) 10 एससी 396] में इस न्यायालय ने विधि के स्पष्ट प्रतिपादन को दोहराया है। न्यायालय ने कहा कि यह न्यायालय का दायित्व है कि वह बीमा के अनुबंध को देखे, यह पता लगाने के लिए कि पॉलिसी प्रारंभ करने या समाप्त होने के लिए कोई विशेष समय निर्दिष्ट किया गया है या नहीं। हमारे ध्यान में बड़ी संख्या में ऐसे प्रकरण आए हैं जिनमें दुर्घटनाओं के तुरंत बाद गुप्त तरीके से दावा प्राप्त करने के लिए बीमा पॉलिसियां ली जाती हैं।

19. <u>दुर्घटनाओं के बाद बीमा पॉलिसियां प्राप्त करने की इस व्यापक गड़बड़ी को रोकने के लिए, यह स्पष्ट रूप से धारण करना नितांत अनिवार्य है कि बीमा पॉलिसी की प्रभावकारिता पॉलिसी में विशिष्ट रूप से सम्मिलित किए गए समय और तिथि से प्रारंभ होगी न कि पहले के समय से।"</u>

(न्यायालय द्वारा जोर)

इस न्यायालय के निष्कर्षों के मद्देनजर कि नीति वास्तव में 04.09.1991 को दोपहर 2:00 बजे जारी की गई थी और दुर्घटना सुबह 10:30 बजे हुई थी, इससे पहले दिन में, **सुनीता राठी** और **श्रीमती सोबिना इकाई** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के सिद्धांत पूरी तरह से बीमाकर्ताओं के प्रकरण पर लागू होते हैं। इस न्यायालय की राय में,

अनुवादित

इसलिए, पुरस्कार को संतुष्ट करने का दायित्व स्वामी के पास जाएगा और बीमाकर्ताओं को मुक्ति देनी होगी।

परिणामस्वरुप यह अपील सफल है और स्वीकार की जाती है । मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा दिनांक 13.10.1992 को पारित आक्षेपित निर्णय और अधिनिर्णय को संशोधित किया गया है और यह आदेश दिया जाता है कि पंचाट स्वामी द्वारा अदा किया जाएगा न कि बीमाकर्ताओं द्वारा। बीमाकर्ता स्वामी से वसूली योग्य 10,000/- रुपये के लागत के अधिकारी होंगे।

(2023) 6 ILRA 601

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष दिनांक: इलाहाबाद 18.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्रा

बंदी प्रत्यक्षीकरण संख्या 43 वर्ष 2020

आरव शुक्ला एवं अन्य याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता: श्री उपेंद्र सिंह, श्री नितिन चोपड़ा, श्री प्रखर सरन श्रीवास्तव, श्री सुवर्णा सिंह, श्री तरुण अग्रवाल, सुश्री रोज़मेरी राजू

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: जी.ए., श्री आशीष दीप वर्मा

भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद-226- बंदी प्रत्यक्षीकरण का रिट- अंतरंग और निकटतम चिंता का सिद्धांत केवल तभी प्रेरक प्रासंगिकता रखता है जब बच्चा अपने मूल देश से उखड़ गया हो और विदेशी वातावरण, भाषा, रीति-रिवाजों और परिवेश आदि का सामना करने के लिए किसी स्थान पर जा रहा हो, जिसका उसके समग्र विकास और संवारने की प्रक्रिया पर पर्याप्त प्रभाव पड़ सकता है। चूंकि बच्चा बहुत ही कम उम्र का था, इसलिए यह नहीं माना जा सकता कि उसे अमेरिका में प्रचलित सामाजिक रीति-रिवाजों से अलग रखा गया था, जिसका वह आदी था। उसने अमेरिका में किसी भी डेकेयर संस्थान की कोई स्कूली शिक्षा, शिक्षा या देखभाल प्राप्त नहीं की। इसके विपरीत, नाबालिग बच्चा नोएडा (भारत) आने के बाद से अपनी मां और नाना-नानी और मातृ पक्ष के अन्य रिश्तेदारों की देखभाल में है। अमेरिका से बच्चे के जाने के काफी समय बाद बच्चे की हिरासत के संबंध में अमेरिकी अदालत द्वारा 24.12.2020 के कथित आदेश के बाद भी अमेरिकी अदालत या अमेरिका में किसी सक्षम प्राधिकारी द्वारा बच्चे की हिरासत के संबंध में कोई सहमति आदेश नहीं है- नाबालिग बच्चे को वापस अमेरिका भेजने का कोई बाध्यकारी कारण नहीं है, न ही ग्रेटर नोएडा में नाना-नानी के साथ उसकी मां के साथ उसका रहना किसी भी तरह से उसके हित के लिए हानिकारक है जिसके चलते उसका अमेरिका लौटना वाजिब हो-बच्चे की हिरासत का मुद्दा नाबालिग बच्चे की हिरासत का दावा करने वाले पक्षों के अधिकारों के आधार पर नहीं होना चाहिए,बल्कि इस बात पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए कि क्या नाबालिग बच्चे के सर्वोत्तम हित का तथ्य (पैरा 33 और 34) (ई-15)

अनुवादित

उद्धृत मामलों की सूची:

1. तेजस्विनी गौड़ और अन्य बनाम शेखर जगदीश प्रसाद तिवारी और अन्य, (2019) 7 एससीसी 42

2. यशिता साहू बनाम राजस्थान स्टेट और अन्य, (2020) 3 एससीसी 67

3. कनिका गोयल बनाम दिल्ली स्टेट स्टेशन हाउस ऑफिसर और अन्य के माध्यम से, (2018) एससीसी 578.

4. नित्या आनंद राघवन बनाम स्टेट (एनसीटी दिल्ली) और अन्य, (2017) 8 एससीसी 454

5. के.एस. पुट्टास्वामी बनाम यू.ओ.आई., (2017) 10 एससीसी 1.

6. प्रतीक बनाम शिल्पी, (2018) एससीसी 309

7. शिल्पा अग्रवाल बनाम अविरल मित्तल (2010) 1 एससीसी 591

8.वी. रवि चंद्रन बनाम यू.ओ.आई., (2010) 1 एससीसी 174

(माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्र द्वारा दिया गया)

1. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता सुश्री रोजमैरी राजू, निजी प्रतिपक्षी के अधिवक्ता श्री आशीष दीप वर्मा, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया।

2. भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत याचिकाकर्ता-2 अभिषेक शुक्ला द्वारा कॉर्पस आरव शुक्ला की ओर से, जो उनका नाबालिग बेटा है, राज्य प्रतिपक्षी और प्रतिपक्षी संख्या-3 (कॉर्पस की मां और याचिकाकर्ता-2 की पत्नी) के खिलाफ निम्नलिखित प्रार्थनाओं के साथ तत्काल बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका दायर की गई है: -

(i) बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति में एक रिट आदेश या निर्देश जारी करना जिसमें प्रतिपक्षी संख्या-3 को माननीय न्यायालय में याचिकाकर्ता-1 को पेश करने का आदेश दिया जाए और उसके बाद माननीय न्यायालय याचिकाकर्ता-1 की कस्टडी याचिकाकर्ता-2 को देने की कृपा कर सकता है।

(ii) परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें जिसमें उत्तरदाताओं को आदेश दिया जाए कि वे अपने बेटे से मिलने के याचिकाकर्ता-2 के अधिकार में हस्तक्षेप न करें।

(iii) एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना जिसे यह माननीय न्यायमूर्ति न्यायालय मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में उचित और उचित समझे।

(iv) रिट याचिका की अनुमति देना और याचिकाकर्ता के पक्ष में लागत प्रदान करना।

3. प्रस्तुत रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान, याचिकाकर्ता-2 द्वारा रिट याचिका के प्रार्थना खंड में क्रम संख्या-(a) में रिट याचिका में प्रार्थना को जोड़ने की प्रार्थना के साथ एक पुनरीक्षण आवेदन दायर किया गया है, यानी (a) एक उचित रिट, आदेश या निर्देश जारी करता है जिसमें अधिकारियों को नाबालिग बच्चे अर्थात् आरव शुक्ला को पेश करने का निर्देश दिया जाता है, एक अमेरिकी नागरिक और नाबालिग बच्चे के पासपोर्ट और नाबालिग बच्चे के अन्य दस्तावेजों को जमा करने का निर्देश दें, जो कि सुपीरियर कोर्ट ऑफ वाशिंगटन, किंग काउंटी, यू.एस. द्वारा केस संख्या-20-3-04720-5-एसईए द्वारा पारित दिनांक 24.12.2020 के आदेशों के अनुपालन में अमेरिका वापस भेजा जाना चाहिए, और नाबालिग बच्चे का पासपोर्ट और नाबालिग

अनुवादित

बच्चे के अन्य दस्तावेज जमा करने के लिए जो याचिकाकर्ता-2 को दिया जाना चाहिए ताकि याचिकाकर्ता-2 नाबालिग बच्चे को यू.एस. वापस ले जा सके।

4. रिट याचिका की अंतिम सुनवाई के समय, पक्षकारों के अधिवक्ता इस न्यायालय का ध्यान 21.9.2021 को दायर किए गए पुनरीक्षण आवेदन की ओर नहीं दिला सके, क्योंकि इस पुनरीक्षण आवेदन पर कोई आपत्ति दर्ज नहीं की गई है और ऐसा प्रतीत होता है कि प्रस्तावित पुनरीक्षण रिट याचिका दायर करने के बाद हुए बाद के घटनाक्रमों को देखते हुए रिट याचिका में की गई प्रार्थना को स्पष्ट करने की दृष्टि से दायर किया गया प्रतीत होता है। इसलिए, पुनरीक्षण आवेदन में मांगे गए संशोधन को रिट याचिका में शामिल माना जाएगा।

5. मामले का तथ्यात्मक मैट्रिक्स यह है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत प्रस्तुत याचिका याचिकाकर्ता-2 द्वारा इस कथन के साथ दायर की गई है कि वह जिला कानपुर नगर (यूपी) का स्थायी निवासी है और वर्तमान में यू.एस.ए में सॉफ्टवेयर इंजीनियर के रूप में काम करता है। याचिकाकर्ता-2 का विवाह प्रतिपक्षी संख्या-3 ईशा पाठक के साथ जी.बी नगर में 6.3.2011 को हिंदू रीति-रिवाजों के अनुसार हुआ था और कहा गया था कि विवाह पंजीकरण नियम, 1973 के तहत कानपुर नगर में 20.12.2013 को पंजीकृत किया गया था, रिट याचिका के साथ विवाह प्रमाण पत्र की एक प्रति दायर की गई है। याचिकाकर्ता-2 के 'पैरेंट' कानपुर नगर में रहते हैं। उनकी शैक्षणिक योग्यता B.Tech और एम.एस. है, जबकि प्रतिपक्षी संख्या-3, उनकी पत्नी, एम.बी.ए. हैं। याचिकाकर्ता-2 और प्रतिपक्षी संख्या-3 ने कई चर्चाओं के बाद अमेरिका जाने का फैसला किया। याचिकाकर्ता-2 ने प्रतिपक्षी संख्या-3 को यह भी सुझाव दिया कि अगर वह चाहे तो वह अभी के लिए भारत में रह सकती है और अपना करियर जारी रख सकती है और उसके बाद दोनों अपनी स्थिति का पुनर्मूल्यांकन कर सकते हैं और एक निर्णय ले सकते हैं जो परिवार के हित के अनुकूल हो, हालांकि, प्रतिपक्षी संख्या-3 ने प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया और याचिकाकर्ता-2 को उसे यू.एस.ए. वे 7.2.20215 को वहां पहुंचे लेकिन यू.एस.ए पहुंचने के बाद, प्रतिपक्षी संख्या-3 अमेरिका में जीवन शैली में बदलाव के कारण परेशान हो गया। उसने अपने 'पैरेंट' से दूर होने के कारण अमेरिका में भी खुद को एडजस्ट नहीं किया। बेटे का जन्म 7 दिसंबर 2017 को याचिकाकर्ता-2 और प्रतिपक्षी संख्या-3 के विवाह से किर्कलैंड, किंग कंट्री वाशिंगटन में एवरग्रीन हेल्थ मेडिकल सेंटर नामक अस्पताल में हुआ था और जन्म प्रमाण पत्र वाशिंगटन राज्य, स्वास्थ्य विभाग द्वारा जारी किया गया था, जिसमें उनके बेटे का नाम 12.12.2017 को मास्टर आरव शुक्ला के रूप में रखा गया है। याचिकाकर्ता-2 ने बच्चे के स्टेम सेल और कॉर्ड ब्लड सेल संरक्षण के लिए ताकि बच्चे को भविष्य में होने वाली स्वास्थ्य समस्याओं से निपटने के लिए, यदि कोई हो, संयुक्त राज्य अमेरिका में कॉर्ड ब्लड रजिस्ट्री के साथ पंजीकरण किया। प्रतिपक्षी संख्या-3 याचिकाकर्ता-2 के 'पैरेंट' को दोषी ठहराता था जो बच्चे के जन्म के बाद उससे मिलने आए थे। प्रतिपक्षी संख्या-3 और याचिकाकर्ता-2

अनुवादित

अपने बेटे मास्टर आरव के साथ 2 जून, 2018 को भारत में बच्चे के साथ आए थे। प्रतिपक्षी संख्या-3 याचिकाकर्ता-2 से पैसे की बहुत मांग कर रही है और इसके लिए वह उसे धमकी देती थी। याचिकाकर्ता-2 ने प्रतिपक्षी संख्या-3 को यू.एस. क्रेडिट कार्ड उपलब्ध कराया था ताकि वह अपनी शैक्षिक और अन्य जरूरतों को पूरा कर सके, लेकिन वह क्रेडिट कार्ड के माध्यम से किए गए खर्चों के बारे में कोई जानकारी देने से इनकार करती थी। प्रतिपक्षी संख्या-3 के अमेरिका आने से पहले ही, याचिकाकर्ता-2 ने माइक्रोसॉफ्ट के माध्यम से प्रतिपक्षी संख्या-3 के लिए वर्क परमिट के लिए आवेदन करने की कोशिश की, लेकिन याचिकाकर्ता-2 को सलाह दी गई कि यह केवल तभी किया जा सकता है जब वह अमेरिका में हो, लेकिन उसे काम करने में कोई दिलचस्पी नहीं थी। प्रतिपक्षी संख्या-3 ने याचिकाकर्ता-2 को बताया कि उसने अमेरिका के लिए अपने टिकट बुक किए हैं। याचिकाकर्ता ने घर को 'बेबी-प्रूफ' करना शुरू कर दिया। उन्होंने बच्चे की सुरक्षा के लिए कैमरे भी लगाए। जब वह 19 फरवरी, 2019 को अमेरिका वापस आई तो वह बहुत आक्रामक थी। वह याचिकाकर्ता-2 को दोष दे रही थी और धमकी दे रही थी कि वह सब कुछ कर ले। यहां तक कि उसकी मां भी उसे याचिकाकर्ता-2 को परेशान करने और तनाव देने के लिए उकसा रही थी। प्रतिपक्षी संख्या-3 और उसके परिवार के सदस्य आपत्ति जताते थे अगर वह अपने 'पैरेंट' के साथ बातचीत में व्यस्त था। याचिकाकर्ता-2 और प्रतिपक्षी संख्या-3 बच्चे की डे-केयर की तलाश कर रहे थे और इस बीच प्रतिपक्षी संख्या-3 ड्राइविंग सबक ले रहा था जो याचिकाकर्ता-2 के अनुरोधों के बावजूद हर रोज दोपहर में निर्धारित किया गया था कि यह शाम 5:00 बजे के बाद योजना बनाई जानी चाहिए ताकि वह अपने बेटे को देखने के लिए काम से वापस आ सके, जबकि वह ड्राइविंग सबक लेती है, लेकिन उसने उपकृत नहीं किया और उसे एक दोपहर में ड्राइविंग सबक और याचिकाकर्ता-2 को बच्चे की देखभाल के लिए दोपहर के भोजन के समय घर जाने के लिए कहा और जब उसने कहा कि यह उसके लिए संभव नहीं है, तो वह उत्तेजित हो गई और उसे धमकी देना शुरू कर दिया। याचिकाकर्ता-2 ने उस दिन काम के बाद स्नो-बोर्डिंग की योजना बनाई थी, जिस पर प्रतिपक्षी संख्या-3 बहुत नाराज हो गई और रात 10:00 बजे उसने उसे एक संदेश भेजा कि वह ठीक महसूस नहीं कर रही है और उसने तुरंत उसी स्थान से प्रतिक्रिया देना शुरू कर दिया। वह अपने घर से स्थान की दूरी के कारण रात 11:30 बजे घर पहुंच सका, हालांकि, वह उसके साथ अस्पताल नहीं गई और टैक्सी में वहां गई। याचिकाकर्ता-2 घर पर अपने बेटे की देखभाल करने के लिए पीछे छोड़ गया। प्रतिपक्षी संख्या-3 ने बच्चे के लिए एक डे-केयर को अंतिम रूप दिया जो उनके निवास स्थान से 13 किमी दूर था और यह याचिकाकर्ता-2 को स्वीकार्य नहीं था, लेकिन वह इस बात पर अड़ी थी कि उसने तुरंत चेक पर हस्ताक्षर किए ताकि पैसे डे-केयर में जमा किए जा सकें। जब वह उसके दबाव में नहीं आया, तो वह उग्र हो गई। उसने घरेलू हिंसा की शिकायत के साथ अमेरिका में पुलिस को बुलाया। अमेरिका की रेडमंड पुलिस कुछ महीनों के भीतर उनके स्थान पर आई और पूरी तरह से जांच के बाद उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि

अनुवादित

घरेलू हिंसा का कोई मामला नहीं बनता था और 15.3.2019 को अंतिम रिपोर्ट दायर की। घटनाओं के इन क्रम के बीच याचिकाकर्ता-2 प्रतिपक्षी संख्या-3 के असामान्य व्यवहार के कारण भयभीत और परेशान हो गया और उसने प्रतिपक्षी संख्या-3 द्वारा भविष्य में पैदा की गई किसी भी समस्या से बचने के लिए घर से बाहर रहना शुरू कर दिया, लेकिन उसने उसकी भलाई के लिए कोई चिंता व्यक्त नहीं की। उसने अपने ट्विटर अकाउंट के माध्यम से याचिकाकर्ता-2 के खिलाफ घरेलू हिंसा की शिकायत दर्ज की, जिसमें उसने 15 मार्च 2019 को सुबह 11:00 बजे अपने माइक्रोसॉफ्ट कार्यालय के सी.ई.ओ. श्री सत्य नडेला, श्री बिल गेट्स और भारतीय विदेश मंत्री सुषमा स्वराज और अमेरिका में भारतीय राजदूत, श्री हर्ष श्रृंगला और यहां तक कि संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति श्री डोनाल्ड ट्रम्प को भी ट्वीट किया; प्रतियां हलफनामे के अनुलग्नक के रूप में दायर की गई हैं। याचिकाकर्ता-2 ने 19.3.2019 को अपने अधिवक्ता से मुलाकात की और उससे परामर्श करने के बाद वह अपने अपार्टमेंट में गया और पाया कि उसकी पत्नी और बच्चा वहां नहीं थे। उसे पता चला कि प्रतिपक्षी संख्या-3 बेटे के साथ 17.3.2019 को भारत के लिए रवाना हुई थी और उसे पता नहीं चला कि वह देश छोड़ रही है और उसकी अनुमति और ज्ञान के बिना अवैध रूप से उसके बच्चे को ले गई थी। उन्होंने 26.3.2019 को संयुक्त राज्य अमेरिका में कानून के अधिवक्ता श्री पैट्रिक शीयर के माध्यम से प्रतिपक्षी संख्या-3 को एक नोटिस भेजा, जिसमें याचिकाकर्ता की सहमति के बिना अपने बेटे को ले जाने के संबंध में और उसकी पीठ के पीछे, उसने उसे दहेज से संबंधित कुछ आपराधिक मामलों में फंसाने की धमकी दी और झूठे आरोपों के साथ दुर्व्यवहार के आरोप के साथ याचिकाकर्ता-2 के खिलाफ राष्ट्रीय महिला आयोग को लिखित शिकायत दर्ज की।

6. प्रतिपक्षी संख्या-3 के आचरण से परेशान महसूस करते हुए, याचिकाकर्ता-2 ने प्रिंसिपल जज, फैमिली कोर्ट, जी.बी. नगर की अदालत में प्रतिपक्षी संख्या-3 के साथ अपनी शादी को भंग करने के लिए तलाक की याचिका दायर की थी, जिसे वैवाहिक याचिका संख्या-709 वर्ष 2019 (अभिषेक शुक्ला बनाम ईशा शुक्ला) के रूप में क्रम दिया गया था, जिसमें प्रतिपक्षी संख्या-3 को नोटिस जारी किया गया था।

7. याचिकाकर्ता-2 ने नियमित रूप से बिना किसी ब्रेक के प्रतिपक्षी संख्या-3 के खर्चों का भुगतान किया, यहां तक कि प्रतिपक्षी संख्या-3 के 'पैरेंट' ने उन्हें जुलाई, 2019, अगस्त 2019 और दिसंबर, 2019 में भारत में रहने के दौरान अपने बेटे से मिलने की अनुमति नहीं दी। यहां तक कि उन्होंने पुलिस अधिकारियों से भी संपर्क किया लेकिन उन्होंने सीधे मामले में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया। कॉर्पस एक नाबालिग बच्चा है जिसकी उम्र लगभग दो साल थी जब उसे प्रतिपक्षी संख्या-3 द्वारा अमेरिका से भारत में उसके पिता की सहमति और अनुमति के बिना अपहरण कर लिया गया था। याचिकाकर्ता-2, याचिकाकर्ता-1 का कानूनी अभिभावक और संरक्षक है। याचिकाकर्ता-1 की कस्टडी, जो एक अमेरिकी नागरिक है, प्रतिपक्षी संख्या-3 के हाथों में सुरक्षित नहीं है, इसलिए बच्चे की कस्टडी याचिकाकर्ता-2 को दी जाए, जो उसके पिता और प्राकृतिक अभिभावक हैं।

अनुवादित

8. इस न्यायालय द्वारा प्रतिपक्षी संख्या-3 को 17.1.2020 को कॉर्पस मास्टर आरव शुक्ला को पेश करने के लिए नियम जारी किया गया था और याचिकाकर्ता-2 ने रजिस्ट्री में बच्चे के उत्पादन के लिए शुल्क के रूप में 20,000 रुपये जमा किए जो याचिकाकर्ता-1 को देय है, अदालत के समक्ष उसकी उपस्थिति पर, हालांकि, प्रतिपक्षी संख्या-3 ने बच्चे को अदालत के समक्ष पेश नहीं किया और जारी किए गए नियम के खिलाफ माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष दिनांक 17.1.2020 के आदेश के माध्यम से एस.एल.पी. दायर की, जिसे माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 11.3.2022 के आदेश के माध्यम से इस टिप्पणी के साथ तय किया था कि "इस एस.एल.पी. में नोटिस केवल पक्षों के बीच निपटान की संभावना तलाशने के लिए जारी किया गया था। मामले को मध्यस्थता केंद्र को भेजा गया। हमें मध्यस्थता केंद्र द्वारा सूचित किया गया कि पक्ष एक समझौते पर नहीं पहुंच सके। नोटिस जारी करने वाले उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं है। तदनुसार, विशेष अनुमति याचिका का निपटान किया जाता है। लंबित आवेदन, यदि कोई हो, का निपटान किया जाए। हम स्पष्ट करते हैं कि हमने मामले की योग्यता पर कोई राय व्यक्त नहीं की है। हमें सूचित किया जाता है कि उच्च न्यायालय ने इस न्यायालय के समक्ष इस विशेष अनुमति याचिका के लंबित होने के मद्देनजर बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका पर सुनवाई नहीं की। उच्च न्यायालय से बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका का शीघ्र निपटारा करने का अनुरोध किया जाता है।

9. रिकॉर्ड के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिपक्षी संख्या-3 द्वारा दायर एस.एल.पी. के निपटान के बाद, प्रतिपक्षी संख्या-3 द्वारा इस न्यायालय के समक्ष कॉर्पस पेश नहीं किया गया था। प्रतिपक्षी संख्या-3 अधिवक्ता श्री आजाद खान के माध्यम से 22.4.2022 को प्रस्तुत याचिका में पेश हुआ और उसके द्वारा 30.5.2022 को जवाबी हलफनामा दायर किया गया। याचिकाकर्ता-2 द्वारा जवाबी हलफनामे में किए गए कथनों का विरोध करने के उद्देश्य से एक प्रत्युत्तर हलफनामा दायर किया गया था, इस प्रकार, पक्षों के बीच दलीलों का विधिवत आदान-प्रदान किया गया है।

10. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने रिट याचिका में की गई दलीलों के आधार पर अपनी प्रस्तुतियाँ दीं। उन्होंने आगे दायर प्रत्युत्तर हलफनामे में किए गए कथनों के आधार पर प्रस्तुत किया कि प्रतिपक्षी संख्या-3 का पूरा एजेंडा नाबालिग बच्चे को याचिकाकर्ता-2 से अलग करना है और उसी तरह 'पैरेंट' के अलगाव में लिप्त होना है जैसे उसने याचिकाकर्ता-1 के अंतर-महाद्वीपीय 'पैरेंट' के अपहरण में लिप्त है। प्रतिपक्षी संख्या-3 की ओर से दायर जवाबी हलफनामे में याचिकाकर्ता-2 के खिलाफ लगाए गए आरोप निंदनीय और चौंकाने वाले हैं। प्रतिपक्षी संख्या-3 ने याचिकाकर्ता-2 को कई मामलों में झूठे और मनगढ़ंत आरोपों से उलझा दिया है। याचिकाकर्ता-2 ने जी.बी नगर के फैमिली कोर्ट के प्रिंसिपल जज की अदालत में तलाक की याचिका दायर की है और बाद में अमेरिकी कोर्ट में तलाक का मुकदमा दायर किया है। भारत में विद्वान परिवार न्यायाधीश ने याचिकाकर्ता-2 को अमेरिकी अदालत में

अनुवादित

याचिकाकर्ता के मामले को आगे बढ़ाने और फैमिली कोर्ट, जी.बी. नगर में तलाक याचिका लंबित करने से रोकने के लिए पूर्व वाद निषेधाज्ञा में कोई आदेश पारित नहीं किया है। याचिकाकर्ता-2 याचिकाकर्ताओं से मिलने के लिए अमेरिका की यात्रा करने के लिए प्रतिपक्षी संख्या-3 के हवाई टिकट का भुगतान करने के लिए अपने रास्ते से बाहर चला गया और उसकी प्रति प्रत्युत्तर हलफनामे के साथ अनुलग्नक पी-3 के रूप में दायर की गई है। प्रतिपक्षी संख्या-3 द्वारा दायर जवाबी हलफनामा निराधार तथ्यों और मनगढ़ंत आरोपों पर आधारित है। सुपीरियर कोर्ट ऑफ वाशिंगटन, किंग काउंटी, यू.एस.ए द्वारा पारित दिनांक 24.12.2020 के आदेश के अनुपालन में नाबालिग बच्चे आरव शुक्ला को वापस भेजा जाना चाहिए। प्रतिपक्षी संख्या-3 ने याचिकाकर्ता-2 के खिलाफ नोएडा जिला न्यायालय, यूपी में अदालत से विभिन्न दस्तावेजों और महत्वपूर्ण तथ्यों को छिपाकर अमेरिका में दायर तलाक और कस्टडी की कार्यवाही को आगे बढ़ाने के लिए मुकदमा दायर किया था और भौतिक तथ्यों को छिपाकर दिनांक 16.4.2022 को एक आदेश पारित किया था।

11. प्रस्तुत मामले में नाबालिग बच्चे को उसके मूल देश, अमेरिका से भारत में हटा दिया गया है और इसलिए यह नाबालिग के हित और कल्याण में होगा कि वह अपने मूल देश को वापस कर दे क्योंकि बच्चे ने भारत में जड़ें विकसित नहीं की हैं और उसके लौटने पर नाबालिग बच्चे को कोई नुकसान नहीं होगा। याचिकाकर्ता-2 शुरू से ही देखभाल करने वाला रहा है और कुछ तस्वीरें दायर की गई हैं जिसमें याचिकाकर्ताओं को इस दावे को मजबूत करने के लिए एक-दूसरे के साथ दिखाया गया है।

12. प्रतिपक्षी संख्या-3 के अधिवक्ता ने प्रस्तुत बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका में की गई प्रार्थना का जोरदार विरोध किया और प्रस्तुत किया कि प्रतिपक्षी संख्या-3 घरेलू हिंसा और वैवाहिक क्रूरता का शिकार है, जिसके लिए उसे याचिकाकर्ता-2 और उसके परिवार के सदस्यों द्वारा क्रूरता के अधीन किया गया था। वह याचिकाकर्ता-2 के साथ रहने के लिए अमेरिका गई और अमेरिका में उनके लिए एक बच्चे का जन्म हुआ, हालांकि, असहयोग रवैये, उच्च मनमानी, लापरवाही और उसके साथ किए गए दुर्व्यवहार के कारण, उसे अपने नाबालिग बच्चे के साथ अमेरिका में याचिकाकर्ता-2 की जगह छोड़ने के लिए मजबूर होना पड़ा। प्रतिपक्षी संख्या-3 अपने नाबालिग बच्चे के साथ, नाबालिग बच्चे की मां और प्राकृतिक अभिभावक होने के नाते, जो लगभग दो साल का था, यू.एस.ए छोड़ दिया और वर्तमान में उसका नाबालिग बच्चा लगभग 5-6 वर्ष की आयु का है और उसे याचिकाकर्ता-2, उसके पिता की कस्टडी में नहीं दिया जा सकता है। याचिकाकर्ता-2 यह दावा नहीं कर सकता कि बच्चे का कल्याण और हित उसकी मां की कस्टडी से हटाकर उसकी कस्टडी में अधिक सुरक्षित होगा। याचिकाकर्ता-2 अपनी पत्नी के साथ-साथ अपने बेटे के संबंध में अपने दायित्वों को पूरा नहीं कर रहा है। प्रतिपक्षी संख्या-3 ने 14.4.2021 को भ०द०वि० की धारा 498-ए, 323, 506, 406, 342, 313, 351 भ०द०वि० और डी.पी. अधिनियम की धारा 3/4 के तहत याचिकाकर्ता-2 और उसके 'पैरेंट' के

अप्रमाणित

खिलाफ ग्रेटर नोएडा, जिला जी.बी. नगर में प्राथमिकी दर्ज की थी, जिसमें आवश्यक तथ्य और प्रतिपक्षी संख्या-3 के रुख का उल्लेख किया गया है। उसने याचिकाकर्ता-2 के खिलाफ हिंसा अधिनियम की धारा के तहत भी शिकायत दर्ज कराई थी। याचिकाकर्ता-2 और उनके परिवार के सदस्यों ने प्रतिपक्षी संख्या-3 द्वारा उनके खिलाफ दर्ज उक्त प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करने की प्रार्थना के साथ अलग-अलग रिट याचिकाएं दायर कीं, लेकिन इस न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा पारित आदेश दिनांक 10.6.2022 के तहत इसे खारिज कर दिया गया। प्रतिपक्षी संख्या-3, याचिकाकर्ता-2 की पूर्व सहमति के साथ अमेरिका में कॉलेज में शामिल होने का विकल्प चुनता है, जहां वे फरवरी, 2015 में आश्रित वीजा पर एक साथ चले गए। याचिकाकर्ता-2 ने उस कंपनी से इस्तीफा देने के लिए राजी किया जिसमें वह अपने कौशल और रोजगार को बढ़ाने के लिए एम.एस. डिग्री कोर्स में उच्च अध्ययन करने के उद्देश्य से यू.एस.ए जाने के लिए काम कर रही थी। उसने संयुक्त राज्य अमेरिका में 50% छात्रवृत्ति के साथ पेपरडाइन विश्वविद्यालय में प्रवेश प्राप्त किया, हालांकि, उसके आश्वासन और वचन के विपरीत याचिकाकर्ता-2 ने संयुक्त राज्य अमेरिका में अपनी उच्च शिक्षा का वित्तीय बोझ नहीं उठाया और उसे अपनी वित्तीय सहायता के लिए अपने 'पैरेंट' पर निर्भर रहना पड़ा, जिन्होंने बाद में उसकी ट्यूशन फीस के लिए 10,0000/ दिए। हालांकि, वह गर्भावस्था के कारण अपनी पढ़ाई जारी नहीं रख सकी और उसने याचिकाकर्ता-2 की सहमति से एक साल के लिए अध्ययन से ब्रेक लेने का फैसला किया और इस तरह, उसने अपनी पढ़ाई रोक दी। सितंबर, 2017 को, याचिकाकर्ता-2 माइक्रोसॉफ्ट में प्रतिपक्षी संख्या-3 की पेशकश की खबर के कारण लास एंजिल्स से सिएटल चली गई और 17.12.2017 को उसने एवरग्रीन हेल्थ मेडिकल सेंटर, किर्कलैंड, वाशिंगटन में एक पुरुष बच्चे को जन्म दिया। अमेरिका में प्रतिपक्षी संख्या-3 का प्रवास याचिकाकर्ता-2 के मनमानी और शत्रुतापूर्ण रवैये के कारण परेशान हो गया। एक समय उसके पास पैसे नहीं थे। याचिकाकर्ता-2 ने उसका क्रेडिट कार्ड ब्लॉक कर दिया था और वह उसे कोई वित्तीय सहायता नहीं दे रहा था। उन्होंने आगे कहा कि हिंदू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम की धारा 6(ए) में यह प्रावधान है कि मां पिता के बाद प्राकृतिक अभिभावक है और इसके अलावा धारा 6-ए के प्रावधान के अलावा यह प्रावधान है कि नाबालिग बच्चे की कस्टडी जो पांच साल की उम्र पूरी नहीं कर पाई है, आमतौर पर मां के पास होगी। उन्होंने अंत में निष्कर्ष निकाला कि कॉर्पस या याचिकाकर्ता-1 प्रतिपक्षी संख्या-3 के साथ निहित है जो याचिकाकर्ता-1 के लिए जैविक मां के अलावा और कोई नहीं है और उसकी मां के साथ नाबालिग की कस्टडी को अवैध नहीं माना जा सकता है। याचिकाकर्ता-2 का दावा कि

अनुवादित

याचिकाकर्ता-1 को याचिकाकर्ता-2 के साथ माना जाता है, गलत है और कानूनी रूप से मान्य नहीं है, बल्कि याचिकाकर्ता-1 के प्रति उसका बेपरवाह और गैर-जिम्मेदाराना आचरण उसकी अनुपस्थिति और उपेक्षा को प्रदर्शित करता है जो कानून के तहत मां की संरक्षकता का अवसर देगा इसलिए रिट याचिका कुल मिलाकर खारिज होने योग्य है।

13. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता-2 फोरम शॉपिंग का अभ्यास करने में लगा हुआ है जिसे माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने खारिज कर दिया है। याचिकाकर्ता-2 ने फैमिली कोर्ट, जी.बी. नगर के समक्ष तलाक के लिए याचिका दायर की है और उसके बाद अमेरिकी अदालत में भी यू.एस.ए लौटने के बाद तलाक के लिए मुकदमा दायर किया है, इस प्रकार उन्होंने एक ही विषय वस्तु पर मुकदमा चलाने के लिए दो राष्ट्रीय क्षेत्राधिकार में दो अलग-अलग अदालतों का दरवाजा खटखटाया। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भारत संघ बनाम सिप्ला लिमिटेड (2017) 5 एस.सी.सी. 262 में कहा कि अदालत को मुकदमेबाजी और वादी की तुलना में एक कार्यात्मक परीक्षण अपनाने की आवश्यकता है। यह देखा जाना चाहिए कि क्या एक न्यायालय और दूसरे न्यायालय के बीच कार्यवाहियों में कोई कार्यात्मक समानता है या क्या वादी की ओर से किसी प्रकार की छल-कपट है। यह कार्यात्मक परीक्षण है जो यह निर्धारित करेगा कि कोई वादी फोरम शॉपिंग में लिप्त है या नहीं। अमेरिका में स्विच करने से पहले, प्रतिपक्षी संख्या-3 एम.बी.ए. योग्य था और यामाहा मोटर्स के साथ सीनियर एच.आर कार्यकारी के रूप में काम कर रहा था, हालांकि, याचिकाकर्ता-2 के अनुनय पर उसने 30.1.2015 को कंपनी से इस्तीफा दे दिया और अंततः दिल्ली में अपना रोजगार छोड़ दिया और उसके बाद दोनों पति आश्रित वीजा पर 7.2.2015 को यू.एस.ए चले गए। याचिकाकर्ता-1 को परित्याग और सशक्तिकरण का सामना करना पड़ा, जिसके कारण वह विदेशी देश में अपनी जरूरतों को पूरा नहीं कर सकी और इसलिए उसके पास भारत वापस लौटने के अलावा कोई विकल्प नहीं बचा था, जहां वह अपने 'पैरेंट' के साथ रह सकती थी जो उसे और शिशु को जीवन की बुनियादी सुविधाएं प्रदान कर सकते थे और सबसे बढ़कर प्यार और संबंध जो याचिकाकर्ता-2 द्वारा उसे वंचित कर दिया गया था। याचिकाकर्ता-2 ने 14.12.2019 को फैमिली कोर्ट के आग्रह पर ग्रेटर नोएडा में प्रतिपक्षी संख्या-3 की उपस्थिति में कॉर्पस से मुलाकात की थी, लेकिन उसने प्रस्तुत बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका में जानबूझकर इस भौतिक तथ्य को छिपाया है। किसी भी तरह से याचिकाकर्ता-1 की अपनी मां के साथ कस्टडी को गैरकानूनी नहीं माना जा सकता है और इसलिए, याचिकाकर्ता-2 के पक्ष में कॉर्पस की कस्टडी को नहीं बदला जा सकता है।

14. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने तेजस्विनी गौड़ और अन्य बनाम शेखर जगदीश प्रसाद तिवारी और अन्य, (2019)7 एस.सी.सी. 42 में तीन न्यायाधीशों की पीठ के फैसले में कहा कि बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट एक अवैध या अनुचित कस्टडी से तत्काल रिहाई का एक प्रभावी साधन प्रदान करके विषय की स्वतंत्रता को सुरक्षित करने के लिए एक विशेषाधिकार प्रक्रिया है। जब किसी नाबालिग के अभिभावक

अनुवादित

को गलत तरीके से बच्चे की कस्टडी से वंचित किया जाता है, तो एक रिट जारी करने की मांग की जा सकती है। जब एक नाबालिग को किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा कस्टडी में लिया जाता है जिसके पास बच्चे की कानूनी कस्टडी नहीं है, जिसे रिट लागू करने के लिए अवैध निरोध माना जाएगा, तो ऐसी स्थिति में कस्टडी की बहाली उस व्यक्ति से की जानी है जो बच्चे का कानूनी या प्राकृतिक अभिभावक नहीं है, रिट लागू की जा सकती है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ संख्या-21, 22, 26 और 27 में निम्नानुसार टिप्पणी की: -

"21. बच्चे की कस्टडी - विदेशों से हटाकर भारत लाया गया: - कई निर्णयों में, उच्चतम न्यायालय ने उस देश में अदालत द्वारा कस्टडी के सवाल पर संक्षिप्त या विस्तृत जांच के संचालन पर विचार किया, जिसमें बच्चे को हटा दिया गया है। कई निर्णयों में, उच्चतम न्यायालय ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत दायर बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत क्षेत्राधिकार के प्रयोग में उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश की शुद्धता पर विचार किया, जिसे विदेश से निकाल दिया गया था और भारत लाया गया था और नाबालिग के प्रत्यावर्तन के सवाल पर बच्चे उस देश में जहां से उसे 'पैरेंट' या अन्य व्यक्ति द्वारा हटा दिया गया हो। कई मामलों में, सर्वोच्च न्यायालय ने यह विचार किया है कि उच्च न्यायालय निरोध की वैधता निर्धारित करने के लिए असाधारण क्षेत्राधिकार का उपयोग कर सकता है। हालांकि, न्यायालय ने यह विचार किया है कि विदेशी अदालत के आदेश को बच्चे के कल्याण के लिए देना चाहिए। रुचि माजू में विभिन्न निर्णयों का उल्लेख करने के बाद, इसे निम्नानुसार अवधारित किया गया था: -

"58. बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति में कार्यवाही प्रकृति में संक्षिप्त है, जहां कथित कस्टडी में लिए गए व्यक्ति की कस्टडी की वैधता की जांच पक्षों द्वारा रखे गए हलफनामों के आधार पर की जाती है। फिर भी, कुछ भी उच्च न्यायालय को उन मामलों में विस्तृत जांच शुरू करने से नहीं रोकता है जहां एक नाबालिग का कल्याण प्रश्न में है, जो न्यायालय के लिए अपने 'पैरेन्स पैट्रिए' क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय सर्वोपरि विचार है। इसलिए, एक उच्च न्यायालय अपने अधिकार क्षेत्र में आने वाले मामलों में निरोध की वैधता निर्धारित करने के लिए अपने असाधारण क्षेत्राधिकार का आह्वान कर सकता है और नाबालिग की कस्टडी के रूप में आदेश भी जारी कर सकता है, जो इस बात पर निर्भर करता है कि न्यायालय ऐसी कस्टडी के लिए, यदि कोई हो, प्रतिद्वंद्वी दावों को कैसे देखता है।

59. न्यायालय नाबालिग बच्चे को उस देश में प्रत्यावर्तन का भी निर्देश दे सकता है जहां से उसे 'पैरेंट' या अन्य व्यक्ति द्वारा हटा दिया गया हो; जैसा कि इस न्यायालय द्वारा रवि चंद्रन (2010) 1 एस.सी.सी. 174 और शिल्पा अग्रवाल (2010) 1 एस.सी.सी. 591

अनुवादित

मामलों में निर्देश दिया गया था या सरिता शर्मा मामले (2000)3 एस.सी.सी. 14 में स्थिति के रूप में ऐसा करने से इनकार कर दिया गया था। महत्वपूर्ण बात यह है कि जब तक कथित कस्टडी में लिया गया व्यक्ति उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में है, तब तक उचित आदेश पारित करने की उसकी क्षमता पर कोई सवाल नहीं उठता है। कस्टडी के संबंध में उचित आदेश देने के लिए रिट अदालत का अधिकार क्षेत्र जल्द ही यह नहीं पाया जाता है कि कथित कस्टडी में लिया गया व्यक्ति अपने क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र में है।

22. विदेशी न्यायालय के आदेश का उल्लंघन करते हुए भारत लाए गए नाबालिग बच्चे के संबंध में विभिन्न निर्णयों का उल्लेख करने और बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट जारी करने के सिद्धांतों पर विचार करने के बाद, नित्या आनंद में, यह निम्नानुसार अवधारित किया गया था: -

रुचि माजू बनाम संजीव माजू (2011)6 एस.सी.सी. 47 निथ्या आनंद राघवन वी. राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) (2017)8 एस.सी.सी. 454 "46. उच्च न्यायालय, किसी दिए गए मामले में, किसी नाबालिग बच्चे के संबंध में बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट जारी करने की याचिका पर विचार करते समय, बच्चे की वापसी का निर्देश दे सकता है या ऊपर उल्लिखित कानूनी स्थिति सहित सभी उपस्थित तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए बच्चे की कस्टडी को बदलने से इनकार कर सकता है। एक बार फिर, हम यह जोड़ने में जल्दबाजी कर सकते हैं कि प्रत्येक मामले में अदालत का निर्णय, बच्चे के कल्याण पर विचार करते हुए उसके सामने लाए गए मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्रता पर निर्भर होना चाहिए, जो सर्वोपरि विचार का है। विदेशी अदालत के आदेश को बच्चे के कल्याण के लिए देना चाहिए। इसके अलावा, बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट के उपाय का उपयोग केवल विदेशी अदालत द्वारा अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर किसी व्यक्ति के खिलाफ दिए गए निर्देशों को लागू करने और उस क्षेत्राधिकार को निष्पादन न्यायालय में परिवर्तित करने के लिए नहीं किया जा सकता है। निस्संदेह, रिट याचिकाकर्ता विदेशी अदालत द्वारा पारित आदेश को लागू करने के लिए कानून में अनुमेय ऐसे अन्य उपाय का सहारा ले सकता है या किसी अन्य कार्यवाही का सहारा ले सकता है जो बच्चे की कस्टडी के लिए भारतीय न्यायालय के समक्ष, यदि ऐसा सलाह दी जाती है, कानून में अनुमेय हो सकती है।

26. निर्णयों की संख्या का उल्लेख करने और यह देखने के बाद कि बाल कस्टडी के मामलों से निपटते समय, सर्वोपरि विचार बच्चे का कल्याण होना चाहिए और बच्चे के सामान्य आराम, संतोष, स्वास्थ्य को उचित वजन दिया जाना चाहिए, लहरी सखामुरी बनाम सोभन कोडाली 2019 (5) स्केल 97 शिक्षा, बौद्धिक विकास और अनुकूल परिवेश,

अनुवादित

शून्य रतन कुंडू में, यह निम्नानुसार अवधारित किया गया था: -

"49. गोवर्धन लाल बनाम गजेंद्र कुमार, ए.आई.आर. 2002 राज 148 में उच्च न्यायालय ने कहा कि यह सच है कि पिता एक नाबालिग बच्चे का प्राकृतिक अभिभावक है और इसलिए उसे अपने बेटे की कस्टडी का दावा करने का अधिमान्य अधिकार है, लेकिन नाबालिग बच्चे की कस्टडी से संबंधित मामलों में, सर्वोपरि विचार नाबालिग का कल्याण है न कि किसी विशेष पक्ष का कानूनी अधिकार। 1956 के अधिनियम की धारा 6 इस बात पर हावी नहीं हो सकती कि नाबालिग बच्चे के कल्याण के लिए क्या अनुकूल है। यह भी देखा गया कि केवल बच्चे के कल्याण को ध्यान में रखते हुए, बच्चे की इच्छाओं का पता लगाना उचित होगा कि वह किसके साथ रहना चाहता है।

50. फिर से, एम.के हरि गोविंदन बनाम ए.आर राजाराम, ए.आई.आर. 2003 एम.एडी 315 में न्यायालय ने कहा कि कस्टडी के मामलों को "मानवीय पुट/स्पर्श" के संदर्भ के बिना दस्तावेजों, मौखिक साक्ष्य या उदाहरणों पर तय नहीं किया जा सकता है। नाबालिग के कल्याण के लिए मानवीय पुट/स्पर्श प्राथमिक है क्योंकि अन्य सामग्री या तो पक्षों द्वारा स्वयं या उनकी सुविधा के अनुसार अधिवक्ता की सलाह पर बनाई जा सकती है।

51. कमला देवी बनाम स्टेट ऑफ एचपी ए.आई.आर. 1987 एचपी 34 कोर्ट ने कहा:

"13. ... न्यायालय अपने अंतर्निहित और सामान्य क्षेत्राधिकार में बाल अभिरक्षा मामलों का निर्णय करते समय 'पैरेंट' या अभिभावक के मात्र कानूनी अधिकार से बाध्य नहीं है। यद्यपि 'पैरेंट' या अभिभावकों के अधिकारों को नियंत्रित करने वाले विशेष कानूनों के प्रावधानों को ध्यान में रखा जा सकता है, लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं है जो न्यायालय के रास्ते में खड़ा हो सकता है जो ऐसे मामलों में उत्पन्न होने वाले अपने 'पैरेन्स पैट्रिए' क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है, जैसे कि बच्चे के सामान्य आराम, संतोष, बौद्धिक, नैतिक और शारीरिक विकास, उसका स्वास्थ्य, शिक्षा और सामान्य रखरखाव और अनुकूल परिवेश। इन मामलों को अंततः बच्चे के सर्वोत्तम हितों के बारे में न्यायालय के दृष्टिकोण पर तय किया जाना चाहिए, जिसके कल्याण के लिए आवश्यक है कि वह एक 'पैरेंट' या दूसरे की कस्टडी में हो। (नील रतन कुंडू बनाम अभिजीत कुंडू, (2008) 9 एस.सी.सी. 413)

52. हमारे फैसले में, एक बच्चे की कस्टडी से संबंधित कानून काफी अच्छी तरह से तय है और यह है: एक नाबालिग की कस्टडी के रूप में एक कठिन और जटिल सवाल तय करने में, कानून की अदालत को प्रासंगिक विधियों

अनुवादित

और अधिकारों को ध्यान में रखना चाहिए। लेकिन ऐसे मामलों को केवल कानूनी प्रावधानों की व्याख्या करके तय नहीं किया जा सकता है। यह एक मानवीय समस्या है और इसे मानवीय स्पर्श से हल करने की आवश्यकता है। कस्टडी के मामलों से निपटने के दौरान एक अदालत न तो कानूनों से बंधी होती है और न ही साक्ष्य या प्रक्रिया के सख्त नियमों से और न ही उदाहरणों से। नाबालिग के उचित अभिभावक का चयन करने में, सर्वोपरि विचार बच्चे के कल्याण और सुख पर होना चाहिए। एक अभिभावक का चयन करने में, अदालत 'पैरेन्स पैट्रिए' क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर रही है और उम्मीद की जाती है, न कि एक बच्चे के साधारण आराम, संतोष, स्वास्थ्य, शिक्षा, बौद्धिक विकास और अनुकूल परिवेश को उचित वजन देने के लिए बाध्य है। लेकिन भौतिक सुख-सुविधाओं से ऊपर नैतिक मूल्यों की अनदेखी नहीं की जा सकती। वे समान रूप से, या हम कह सकते हैं, और भी अधिक महत्वपूर्ण, आवश्यक और अपरिहार्य विचार हैं। यदि नाबालिग एक बुद्धिमान वरीयता या निर्णय लेने के लिए पर्याप्त वयस्क है, तो अदालत को इस तरह की वरीयता पर भी विचार करना चाहिए, हालांकि अंतिम निर्णय अदालत के साथ होना चाहिए कि नाबालिग के कल्याण के लिए क्या अनुकूल है।

27. गौरव नागपाल पर भरोसा किया गया, जहां उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया: -

"32. मैकग्राथ में, (1893) 1 सीएच 143, लिंडले, एल.जे ने देखा: (अध्याय पृष्ठ 148) अदालत के विचार के लिए प्रमुख मामला बच्चे का कल्याण है। लेकिन बच्चे के कल्याण को केवल पैसे से नहीं मापा जाना चाहिए और न ही केवल भौतिक आराम से। 'कल्याण' शब्द को इसके व्यापक अर्थ में लिया जाना चाहिए। बच्चे के नैतिक या धार्मिक कल्याण के साथ-साथ उसकी शारीरिक भलाई पर भी विचार किया जाना चाहिए। न ही स्नेह के बंधन की अवहेलना की जा सकती है। (महत्व सन्निविष्ट) .....

50. जब अदालत को 'पैरेंट' द्वारा की गई परस्पर विरोधी मांगों का सामना करना पड़ता है, तो हर बार उसे मांगों को सही ठहराना पड़ता है। अदालत को न केवल कानूनी आधार पर मुद्दे को देखना है, ऐसे मामलों में उन मुद्दों को तय करने के लिए मानवीय दृष्टिकोण प्रासंगिक हैं। अदालत तब जोर नहीं देती है। (गौरव नागपाल बनाम सुमेधा नागपाल (2009)1 एस.सी.सी.42) पक्षकार क्या कहते हैं, इसे एक अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करना होगा जिसका उद्देश्य नाबालिग का कल्याण है। जैसा कि हाल ही में मौसमी मोइत्रा गांगुली मामले (2008)7 एस.सी.सी. 673 में देखा गया है,

अनुवादित

अदालत को बच्चे के सामान्य संतोष, स्वास्थ्य, शिक्षा, बौद्धिक विकास और अनुकूल परिवेश को उचित महत्व देना पड़ता है, लेकिन भौतिक सुख-सुविधाओं से अधिक, नैतिक मूल्यों पर भी ध्यान देना होगा। वे समान हैं, यदि दूसरों की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण नहीं हैं।

51. अधिनियम की धारा 13 में प्रयुक्त शब्द "कल्याण" का शाब्दिक अर्थ लगाया जाना चाहिए और इसे इसके व्यापक अर्थों में लिया जाना चाहिए। बच्चे के नैतिक कल्याण को अदालत के साथ-साथ उसकी शारीरिक भलाई के साथ भी तौलना चाहिए। यद्यपि 'पैरेंट' या अभिभावकों के अधिकारों को नियंत्रित करने वाले विशेष क़ानूनों के प्रावधानों को ध्यान में रखा जा सकता है, लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं है जो ऐसे मामलों में उत्पन्न होने वाले अपने 'पैरेन्स पैट्रिए' क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाले न्यायालय के रास्ते में खड़ा हो सकता है।

15. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने 25.3.2021 को दायर पूरक हलफनामे की ओर इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है, जिसमें यह कहा गया है कि कॉर्पस उस देश में अपने जन्म के आधार पर और उस देश में प्रचलित कानूनों के अनुसार संयुक्त राज्य अमेरिका का नागरिक है और प्रतिपक्षी संख्या-3 ने उसे कानून के किसी प्रावधान के बिना अवैध रूप से कस्टडी में लिया है और यह उसके अधिकार को परिभाषित करता है। याचिकाकर्ता-2 ने सितंबर, 2020 के महीने में वाशिंगटन के सुपीरियर कोर्ट, काउंटी ऑफ किंग, यू.एस.ए के समक्ष अभिभावकत्व प्लान की मांग करने वाले आवेदन के साथ चाइल्ड कस्टडी क्षेत्राधिकार (UCCJEA) के बारे में एक घोषणा दायर की और चाइल्ड कस्टडी क्षेत्राधिकार के बारे में घोषणा की एक प्रति पूरक हलफनामे के अनुलग्नक SA-3 के रूप में संलग्न की गई है। वाशिंगटन के सुपीरियर कोर्ट, काउंटी ऑफ किंग, यू.एस.ए द्वारा जारी प्रतिपक्षी संख्या-3 द्वारा समन विधिवत प्राप्त किए गए थे, लेकिन उसने संबंधित अदालत के समन का भुगतान नहीं किया। संयुक्त राज्य अमेरिका में शिशु और छोटे बच्चों के लिए वेल-चाइल्ड विजिट का पालन सभी 'पैरेंट' द्वारा किया जाना है, जिसमें विफल होने पर वे बच्चे के संबंध में दंडित होने के लिए उत्तरदायी होंगे जब तक कि वह पांच वर्ष की आयु प्राप्त नहीं कर लेता।

16. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने जीवनती पांडे बनाम किशन चंद्र पांडे, 1981 (4) एस.सी.सी. 517, श्रीमती सुरिंदर कौर संधू बनाम हरबक्स सिंह संधू और अन्य, 1984 (3) एस.सी.सी. 698, श्रीमती एलिजाबेथ दिनशॉ बनाम अरवंद एम. दिनशॉ और अन्य, 1987 (1) एस.सी.सी. 42, श्री पॉल मोहिंदर गहुन बनाम श्रीमती सेलिना गहुन, 2006 (130) डीएलटी 524, अविरल मित्तल बनाम द स्टेट और अन्य, 2009 (112) डीआरजे 635, शिल्पा अग्रवाल बनाम अविरल मित्तल और अन्य, 2010 (1) एस.सी.सी. 591, डॉ वी रवि चंद्रन बनाम भारत संघ, 2010 (1) एस.सी.सी. 174, सोंदूर गोपाल बनाम सोंदूर रजनी, (2013) 7 एस.सी.सी. 426, आरती बंदी बनाम बंदी जगरक्षक राव और अन्य, (2013) 15 एस.सी.सी. 790, सूर्य वदानम बनाम तमिलनाडु राज्य और अन्य, (2015) 5

अदालत

एस.सी.सी. 450, निथ्या आनंद राघवन बनाम एनसीटी दिल्ली राज्य, (2017) 8 एस.सी.सी. 454, टिप्पा श्रीहरि बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, 2018 एस.सी.सी. ऑनलाइन हाइड 123, गणमुक्कल सिरिशा बनाम टिप्पा श्रीहरि, मनु/एस.सी.ओआर/239343/2019, लहरी सखामुरी बनाम सोभन कोडाली, (2019)7 एस.सी.सी. 311, वरुण वर्मा बनाम राजस्थान राज्य, 2019 एस.सी.सी. ऑनलाइन राज 5430, यशिता साहू बनाम राजस्थान राज्य और अन्य, (2020) 3 एस.सी.सी. 67, तेजस्विनी गौड़ बनाम शेखर जगदीश प्रसाद तिवारी, (2019) 7 एस.सी.सी. 42, नीलांजन भट्टाचार्य बनाम कर्नाटक राज्य, 2020 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 928, घड़ियाँ हर्ष वर्धन रेड्डी बनाम तेलंगाना राज्य और अन्य, मनु/TK/1033/2021, वसुधा सेठी बनाम किरण वी. भास्कर, 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 43, रोहित थम्मना गौड़ा बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य, 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 937, राजेश्वरी चंद्रशेखर गणेश बनाम तमिलनाडु राज्य, 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 885 और अभिनव ज्ञान बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य, क्री. रिट याचिका संख्या-693 वर्ष 2021, उनका मुख्य जोर यशिता साहू के मामले (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर था क्योंकि यह मामला भी संयुक्त राज्य अमेरिका में पैदा हुए नाबालिग बच्चे की कस्टडी से संबंधित था और याचिकाकर्ता की पत्नी संयुक्त राज्य अमेरिका में क्षेत्राधिकार अदालत के आदेशों का उल्लंघन करते हुए बच्चे को भारत में लाई थी। याशिता साहू (अपीलकर्ता) और वरुण वर्मा (प्रतिपक्षी) ने भारत में 30.5.2016 को शादी की। पति पहले से ही अमेरिका में काम कर रहा था। पत्नी पति के साथ 17.7.2016 को यू.एस.ए. कियारा वर्मा नाम की एक बेटी का जन्म 3.5.2017 को दंपति के लिए हुआ था। वह संयुक्त राज्य अमेरिका की नागरिक है। पति और पत्नी के बीच संबंध तनावपूर्ण हो गए और वे एक-दूसरे के खिलाफ विभिन्न आरोप लगाते हैं। पत्नी ने 25.8.2018 को नॉरफ़ॉक जुवेनाइल एंड डोमेस्टिक रिलेशंस डिस्ट्रिक्ट कोर्ट में आपातकालीन सुरक्षा आदेश के लिए आवेदन किया और पति के खिलाफ एक एकपक्षीय प्रारंभिक संरक्षण आदेश पारित किया गया। इसके बाद 29.8.2018 को, पत्नी ने उसी अदालत में नाबालिग बच्चे की एकमात्र कस्टडी की मांग करते हुए एक याचिका दायर की। उसने एक याचिका भी दायर की जिसमें प्रार्थना की गई कि पति को उसे और नाबालिग बच्चे को आर्थिक सहायता देने का निर्देश दिया जाए। दोनों पक्षों के बीच हुए समझौते के संदर्भ में अदालत द्वारा 26.9.2018 को एक आदेश पारित किया गया था। पत्नी अपने बच्चे के साथ यू.एस.ए छोड़कर दिनांक 26.09.2018 के आदेश पारित होने के कुछ दिनों के बाद 30.9.2018 को भारत आई। पति को जब पता चला कि पत्नी बच्चे के साथ अमेरिका छोड़कर भारत आ गई है, तो उसने 2.10.2019 को नॉरफ़ॉक कोर्ट के समक्ष आपातकालीन राहत के लिए एक प्रस्ताव दायर किया। एकपक्षीय आदेश पति के पक्ष में पारित किया गया था, जिसके तहत नॉरफ़ॉक कोर्ट ने पति को बच्चे की एकमात्र कानूनी और शारीरिक कस्टडी प्रदान की और पत्नी को अपने बच्चे के साथ यू.एस.ए लौटने का निर्देश दिया, लेकिन उसने

अनुवादित

नॉरफ़ॉक कोर्ट के आदेश का पालन नहीं किया और नॉरफ़ॉक कोर्ट के दिनांक 26.9.2018 के आदेश के उल्लंघन के लिए उसके खिलाफ वारंट भी जारी किया गया। पति ने नाबालिग बच्चे को उपस्थित करने के लिए राजस्थान उच्च न्यायालय के समक्ष बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट के लिए याचिका दायर की। उच्च न्यायालय ने 1.7.2019 को पत्नी को छह सप्ताह की अवधि के भीतर अपनी नाबालिग बेटी के साथ यू.एस.ए लौटने का निर्देश दिया ताकि यू.एस.ए में क्षेत्राधिकार अदालत पहले से ही लंबित कार्यवाही में इस संबंध में आगे के आदेश पारित कर सके। राजस्थान उच्च न्यायालय के आदेश से व्यथित पत्नी ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत अपील दायर की है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि हम अपीलकर्ता पत्नी के तर्क को खारिज करते हैं कि राजस्थान उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका सुनवाई योग्य नहीं थी यदि बच्चा किसी अन्य 'पैरेंट' की कस्टडी में है। इस संबंध में कानून समय के साथ बहुत विकसित हुआ है, लेकिन अब यह एक स्थापित स्थिति है कि अदालत बच्चे के सर्वोत्तम हित के लिए अपने असाधारण अधिकार क्षेत्र का उपयोग कर सकती है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने एलिजाबेथ दिनशॉ बनाम अरवंद एम. दिनशॉ और अन्य, (1987) 1 एस.सी.सी. 42, निथ्या आनंद राघवन बनाम राज्य (दिल्ली एनसीटी) और अन्य, (2017) 8 एस.सी.सी. 454 और लहरी सखामुरी बनाम सोभन कोडाली, (2019) 7 एस.सी.सी. 311 में अदालत के फैसले का हवाला दिया। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यशिता साहू (उपरोक्त) के मामले में उक्त निर्णय के पैराग्राफ संख्या-13, 16, 17, 18, 19 और 20, 21, 25, 31 और 32 में निम्नानुसार देखा: -

"*न्यायालयों की कॉमिटी तेजी से सिकुड़ती दुनिया में जहां वयस्क शादी करते हैं और एक क्षेत्राधिकार से दूसरे में स्थानांतरित होते हैं, अधिकार क्षेत्र के बढ़ते मुद्दे हैं कि किस देश की अदालतों का अधिकार क्षेत्र होगा। कई मामलों में अधिकार क्षेत्र दो देशों में निहित हो सकता है। यह मुद्दा महत्वपूर्ण है और इसे देखभाल और संवेदनशीलता से निपटने की जरूरत है। यद्यपि बच्चे का हित अत्यंत महत्वपूर्ण है और वास्तव में, सर्वोपरि महत्व का है, एक क्षेत्राधिकार की अदालतों को सक्षम क्षेत्राधिकार की अदालत के आदेशों का सम्मान करना चाहिए, भले ही वह अपने क्षेत्र से बाहर हो। जब एक बच्चे को एक 'पैरेंट' द्वारा एक देश से दूसरे देश में स्थानांतरित किया जाता है, विशेष रूप से अदालत द्वारा पारित आदेशों का उल्लंघन करते हुए, जिस देश में बच्चे को हटाया जाता है, उसे कस्टडी के सवाल पर विचार करना चाहिए और यह तय करना चाहिए कि क्या अदालत को बच्चे की कस्टडी के सवाल पर विस्तृत जांच करनी चाहिए या मामले से सरसरी तौर पर निपटना चाहिए। 'पैरेंट' को बच्चे की कस्टडी को उस अधिकार क्षेत्र में वापस करने का आदेश देना जहां से बच्चे को हटा दिया गया था, और बच्चे के कल्याण से संबंधित सभी पहलुओं की जांच उसके अपने देश की अदालत में की जाए।*

14. इस संबंध में एलिजाबेथ दिनशॉ (उपरोक्त) के फैसले का संदर्भ दिया जा सकता है जिसमें यह न्यायालय एक ऐसे मामले से निपट रहा था जहां पत्नी एक अमेरिकी नागरिक थी

अशोधित

जबकि पति भारत का नागरिक था। उन्होंने अमेरिका में शादी की और वर्ष 1978 में उनके लिए एक बच्चा पैदा हुआ। 1980 में, दंपति के बीच मतभेद पैदा हो गए और पत्नी ने तलाक के लिए याचिका दायर की। अमेरिका में क्षेत्राधिकार अदालत ने 23.04.1982 को तलाक की डिक्री द्वारा विवाह को भंग कर दिया था और उसी डिक्री द्वारा यह निर्देश दिया गया था कि पत्नी को बच्चे की देखभाल, कस्टडी और नियंत्रण तब तक प्राप्त होगा जब तक कि वह 18 वर्ष की आयु तक नहीं पहुंच जाता। पति को मुलाक़ात का अधिकार दिया गया। वीकेंड विजिटेशन राइट्स का फायदा उठाकर पति ने 11.01.1986 को बच्चे को स्कूल से उठाया और भारत ले आया। पत्नी ने इस न्यायालय के समक्ष भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत एक याचिका दायर की। न केवल याचिका पर विचार किया गया था, बल्कि इसकी अनुमति भी दी गई थी और हम पैरा-8 में इस न्यायालय की कुछ महत्वपूर्ण टिप्पणियों का उल्लेख करना चाहेंगे:

"8. जब भी किसी नाबालिग बच्चे की कस्टडी से संबंधित अदालत के समक्ष कोई प्रश्न उठता है, तो मामले का फैसला पक्षों के कानूनी अधिकारों के विचार पर नहीं बल्कि एकमात्र और प्रमुख मानदंड पर किया जाना चाहिए जो नाबालिग के हित और कल्याण के लिए सबसे अच्छा होगा। हमने अपने कक्षों में दो बार डस्टन का साक्षात्कार लिया है और उसके साथ बात की है। हमने पाया कि वह उम्र में बहुत कोमल है और पूरी तरह से अपरिपक्व है कि वह अपनी खुद की कोई स्वतंत्र राय बनाने में सक्षम हो कि उसे किस 'पैरेंट' के साथ रहना चाहिए। बच्चा अमेरिकी नागरिक है। पिता द्वारा अवैध अपहरण की प्रक्रिया द्वारा भारत लाए जाने के बाद से पिछले कुछ महीनों को छोड़कर, उन्होंने अपना शेष जीवन संयुक्त राज्य अमेरिका में बिताया है और वह वहां स्कूल में अच्छा कर रहा था।

हमारी सुविचारित राय में यह डस्टन के सर्वोत्तम हित और कल्याण में होगा कि उसे संयुक्त राज्य अमेरिका वापस जाना चाहिए और वहां अपनी शिक्षा जारी रखनी चाहिए और उस मां की कस्टडी और संरक्षकता के तहत जारी रखना चाहिए, जिसे उस देश में एक सक्षम न्यायालय द्वारा ऐसी कस्टडी और संरक्षकता सौंपी गई है। हम इस बात से भी संतुष्ट हैं कि याचिकाकर्ता जो मां है, बच्चे के लिए वास्तविक प्यार और स्नेह से भरी हुई है और उसे उसकी देखभाल करने, उसे शिक्षित करने और उसकी उचित परवरिश के लिए हर संभव तरीके से भाग लेने के लिए सुरक्षित रूप से भरोसा किया जा सकता है। बच्चे ने इस देश में जड़ नहीं ली है और वह अभी भी संयुक्त राज्य अमेरिका में अपने मूल के स्थान पर प्राप्त होने वाली स्थितियों और वातावरण के आदी और अभ्यस्त है। भारत में बच्चे की उपस्थिति अपहरण के एक अवैध कार्य का परिणाम है और पिता जो उक्त कृत्य का दोषी है, यह कहकर किसी लाभ का दावा नहीं कर सकता है कि उसने पहले ही बच्चे को पुणे के किसी स्कूल में डाल दिया है। पिता का आचरण ऐसा नहीं रहा है कि हम में विश्वास पैदा हो कि वह एक उपयुक्त और सही व्यक्ति है जिसे वर्तमान में बच्चे की कस्टडी और संरक्षकता सौंपी जाए। वी. रवि चंद्रन (डॉ.) (2) बनाम भारत संघ (यूओआई) और अन्य 5 में यह निम्नानुसार अवधारित किया गया था:

अनुवादित

"29. अदालत के आदेशों के उल्लंघन में एक 'पैरेंट' द्वारा एक देश से दूसरे देश में निकाले गए बच्चे की कस्टडी के मामले से निपटने के दौरान, जहां पक्षों ने अपना वैवाहिक घर स्थापित किया था, जिस देश में बच्चे को हटाया गया है, उस देश की अदालत को पहले इस सवाल पर विचार करना चाहिए कि क्या अदालत कस्टडी के सवाल पर विस्तृत जांच कर सकती है या मामले से निपटने के लिए सरसरी तौर पर आदेश दे सकती है 'पैरेंट' को बच्चे की कस्टडी उस देश में वापस करनी होगी जहां से बच्चे को हटाया गया था और बच्चे के कल्याण से संबंधित सभी पहलुओं की जांच अपने देश की अदालत में की जाएगी। क्या अदालत को यह विचार करना चाहिए कि एक विस्तृत जांच आवश्यक है, जाहिर है कि अदालत बच्चे के कल्याण और खुशी को सर्वोपरि विचार करने के लिए बाध्य है और स्थिरता और सुरक्षा, प्यार और समझ, देखभाल और मार्गदर्शन और बच्चे के चरित्र के पूर्ण विकास सहित व्यक्तित्व और प्रतिभा, बच्चे के कल्याण के सभी प्रासंगिक पहलुओं पर विचार करने के लिए बाध्य है। ऐसा करते समय, उसकी कस्टडी के रूप में एक विदेशी अदालत के आदेश को उचित वजन दिया जा सकता है; एक विदेशी निर्णय का वजन और प्रेरक प्रभाव प्रत्येक मामले की परिस्थितियों पर निर्भर होना चाहिए।

30. हालांकि, ऐसे मामले में जहां अदालत बच्चे को अपने देश में वापस करने के लिए अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने का फैसला करती है, मूल देश में अदालत के अधिकार क्षेत्र को ध्यान में रखते हुए, जिसमें निकटतम चिंता है और मामले में उत्पन्न होने वाले मुद्दों के साथ सबसे अंतरंग संपर्क है, अदालत बच्चे के कल्याण से संबंधित पहलुओं को अपने मूल देश में अदालत द्वारा जांच के लिए छोड़ सकती है क्योंकि यह बच्चे के सर्वोत्तम हित में हो सकता है ...। 5 (2010) 1 एस.सी.सी. 174

15. निथ्या आनंद राघवन (उपरोक्त) में, इस न्यायालय ने निम्नलिखित दृष्टिकोण लिया:

"42. इस न्यायालय का सुसंगत दृष्टिकोण यह है कि यदि बच्चे को भारत के भीतर लाया गया है, तो भारत में अदालतें निम्नलिखित कार्य कर सकती हैं: (क) संक्षिप्त जांच; या (बी) कस्टडी के सवाल पर एक विस्तृत जांच। संक्षिप्त जांच के मामले में, अदालत बच्चे को उस देश में वापस करने का आदेश देना उचित समझ सकती है जहां से उसे हटाया गया था, जब तक कि इस तरह की वापसी बच्चे के लिए हानिकारक नहीं दिखाई जाती है। दूसरे शब्दों में, यहां तक कि एक संक्षिप्त जांच के मामले में, यह अदालत के लिए खुला है कि वह उस देश में बच्चे की वापसी की राहत को अस्वीकार कर सकता है जहां से उसे विदेशी अदालत द्वारा बच्चे की वापसी के पहले से मौजूद आदेश के बावजूद उसे हटा दिया गया था। एक विस्तृत जांच में, अदालत उन गुणों की जांच करने के लिए बाध्य है जहां बच्चे के सर्वोपरि हित और कल्याण निहित हैं और बच्चे की वापसी के लिए विदेशी अदालत के पहले से मौजूद आदेश के तथ्य को केवल एक परिस्थिति के रूप में मानते हैं। किसी भी मामले में, अदालत द्वारा विचार किया जाने वाला महत्वपूर्ण प्रश्न (जिस देश में बच्चे को हटा दिया गया है) बच्चे के कल्याण के अनुसार इस मुद्दे का उत्तर देना है। यह स्वतंत्र रूप से प्रत्येक मामले के तथ्यों और

अनुवादित

परिस्थितियों की समग्रता को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए। हमारे सामने रखे गए कई निर्णयों की बारीकी से जांच करने पर भी, हमें इस संबंध में कोई विरोधाभासी दृष्टिकोण नहीं मिलता है। दूसरे शब्दों में कहें तो अभिरक्षा के मामले का निर्णय करने या बच्चे को मूल राज्य में लौटाने के लिए न्यायालयों के सौहार्द के सिद्धांत को प्रधानता या अधिक महत्व नहीं दिया जा सकता है। इसके बाद, लहरी सखामुरी (उपरोक्त) में इस न्यायालय की एक अन्य पीठ ने निथ्या आनंद राघवन (उपरोक्त) में फैसले की व्याख्या करते हुए निम्नानुसार कहा:

"41... न्यायालयों के सौहार्द, अंतरंग संयोजकता, विदेशी न्यायालयों द्वारा पारित आदेश, जिनके पास अवयस्क बच्चे की अभिरक्षा, 'पैरेंट' और बच्चे की नागरिकता आदि के संबंध में मामले में क्षेत्राधिकार है, के सिद्धांत सर्वोत्तम हित और बच्चे के कल्याण के विचार को ओवरराइड नहीं कर सकते हैं और बच्चे को विदेशी क्षेत्राधिकार में वापस करने के निर्देश का परिणाम बच्चे को कोई भौतिक मानसिक, मनोवैज्ञानिक या अन्य नुकसान नहीं होना चाहिए।

16. हमारा सुविचारित मत है कि न्यायालयों के सौहार्द का सिद्धांत एक बहुत ही स्वस्थ सिद्धांत है। यदि विभिन्न न्यायालयों में अदालतें एक-दूसरे द्वारा पारित आदेशों का सम्मान नहीं करती हैं, तो इससे विभिन्न न्यायालयों में विरोधाभासी आदेश पारित किए जाएंगे। इस संबंध में कोई ठोस दिशा-निर्देश निर्धारित नहीं किए जा सकते हैं और प्रत्येक मामले का निर्णय उसके अपने तथ्यों के आधार पर किया जाना है। तथापि, हम पुनः यह दोहरा सकते हैं कि बालक का कल्याण सदैव सर्वोपरि रहेगा। बच्चे का कल्याण - सर्वोपरि विचार है।

17. यह निर्णयों की एक श्रृंखला द्वारा अच्छी तरह से स्थापित कानून है कि एक बच्चे की कस्टडी के मामलों का फैसला करते समय, प्राथमिक और सर्वोपरि विचार बच्चे का कल्याण है। यदि बच्चे के कल्याण की आवश्यकता है तो तकनीकी आपत्तियां आड़े नहीं आ सकती हैं। तथापि, बच्चे के कल्याण का निर्णय करते समय केवल पति-पत्नी में से किसी एक का दृष्टिकोण नहीं है, जिसे ध्यान में रखा जाना चाहिए। अदालतों को केवल इस आधार पर कस्टडी का मुद्दा तय करना चाहिए कि बच्चे के सर्वोत्तम हित में क्या है।

18. बच्चा कस्टडी की लड़ाई में पीड़ित है। अहंकार की इस लड़ाई और दो पति-पत्नी के बीच बढ़ती तीखी लड़ाइयों और मुकदमों में, हमारा अनुभव बताता है कि अधिक बार नहीं, 'पैरेंट' जो अन्यथा अपने बच्चे से प्यार करते हैं, एक तस्वीर पेश करते हैं जैसे कि दूसरा पति खलनायक है और वह अकेले बच्चे की कस्टडी का हकदार है। इसलिए अदालत को प्रत्येक पति-पत्नी द्वारा कही गई बातों से बहुत भिन्न होना चाहिए।

19. एक बच्चे, विशेष रूप से निविदा वर्षों के बच्चे को 'पैरेंट' दोनों के प्यार, स्नेह, साथ, सुरक्षा की आवश्यकता होती है। यह न केवल बच्चे की आवश्यकता है, बल्कि उसका मूल मानव अधिकार है। सिर्फ इसलिए कि 'पैरेंट' एक-दूसरे के साथ युद्ध में हैं, इसका मतलब यह नहीं है कि बच्चे को दो 'पैरेंट' में से किसी एक की देखभाल, स्नेह, प्यार या सुरक्षा से वंचित किया जाना चाहिए। एक बच्चा एक निर्जीव वस्तु नहीं है जिसे एक 'पैरेंट' से दूसरे

अप्रमाणित

'पैरेंट' में उछाला जा सकता है। हर अलगाव, हर पुनर्मिलन का बच्चे पर दर्दनाक और मनो-दैहिक प्रभाव पड़ सकता है। इसलिए, यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि अदालत यह तय करने से पहले प्रत्येक परिस्थिति को बहुत सावधानी से तौले कि 'पैरेंट' दोनों के बीच बच्चे की कस्टडी कैसे और किस तरीके से साझा की जानी चाहिए। यहां तक कि अगर कस्टडी एक 'पैरेंट' को दी जाती है, तो दूसरे 'पैरेंट' के पास यह सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त मुलाक़ात अधिकार होना चाहिए कि बच्चा दूसरे 'पैरेंट' के संपर्क में रहता है और दोनों 'पैरेंट' में से किसी एक के साथ सामाजिक, शारीरिक और मनोवैज्ञानिक संपर्क नहीं खोता है। यह केवल चरम परिस्थितियों में है कि एक 'पैरेंट' को बच्चे के साथ संपर्क से वंचित किया जाना चाहिए। कारणों को निर्दिष्ट किया जाना चाहिए यदि एक 'पैरेंट' को किसी भी मुलाक़ात के अधिकार या बच्चे के साथ संपर्क से वंचित किया जाना है। कस्टडी के मामलों से निपटने वाले न्यायालयों को कस्टडी के मुद्दों पर निर्णय लेते समय मुलाक़ात अधिकारों की प्रकृति, तरीके और बारीकियों को स्पष्ट रूप से परिभाषित करना चाहिए।

20. भारत में मुलाक़ात अधिकारों की अवधारणा पूरी तरह से विकसित नहीं है। अधिकांश अदालतें, एक पति या पत्नी को कस्टडी देते समय, दूसरे पति या पत्नी को मुलाक़ात का अधिकार देने वाला कोई आदेश पारित नहीं करती हैं। जैसा कि पहले देखा गया है, एक बच्चे को 'पैरेंट' दोनों का प्यार और स्नेह प्राप्त करने का मानव अधिकार है और अदालतों को यह सुनिश्चित करने के आदेश पारित करने चाहिए कि बच्चा अपने 'पैरेंट' में से किसी एक के प्यार, स्नेह और कंपनी से पूरी तरह से वंचित न हो।

21. आम तौर पर, यदि 'पैरेंट' एक ही शहर या क्षेत्र में रह रहे हैं, तो पति या पत्नी को जिसे कस्टडी नहीं दी गई है, उसे केवल सप्ताहांत में मुलाक़ात का अधिकार दिया जाता है। यदि पति-पत्नी एक-दूसरे से दूरी पर रह रहे हैं, तो बार-बार ब्रेक द्वारा बच्चे की शिक्षा में बाधा पैदा करना संभव या बच्चे के हित में नहीं हो सकता है और ऐसे मामलों में मुलाक़ात का अधिकार लंबे सप्ताहांत, ब्रेक और छुट्टियों पर दिया जाना चाहिए। वर्तमान जैसे मामलों में जहां 'पैरेंट' दो अलग-अलग महाद्वीपों में हैं, उन 'पैरेंट' को अधिकतम मुलाक़ात अधिकार देने का प्रयास किया जाना चाहिए जिन्हें कस्टडी से वंचित किया गया है।

25. बच्चे की राष्ट्रीयता, बच्चा जन्म से यू.एस.ए का नागरिक है। उसके पिता पहले से ही संयुक्त राज्य अमेरिका में काम कर रहे थे जब उन्होंने शादी की। हमें बताया गया है कि मां शादी से पहले एक बार यू.एस.ए गई थी और जब उसकी शादी हुई तो यह इस ज्ञान के साथ किया गया था कि उसे वहां बसना पड़ सकता है। बच्चे का जन्म संयुक्त राज्य अमेरिका के एक अस्पताल में हुआ था और मां प्रसव के लिए भारत वापस नहीं आई थी, जो इंगित करता है कि उस समय 'पैरेंट' चाहते थे कि बच्चा यू.एस.ए का नागरिक हो। चूंकि बच्चा जन्म से संयुक्त राज्य अमेरिका का नागरिक है और उस देश का पासपोर्ट रखता है, अभिरक्षा के मुद्दे पर निर्णय लेते समय हमें इस कारक को ध्यान में रखना होगा।

31. बच्चे के हित में सबसे अच्छा क्या है, यह तय करते समय विभिन्न कारकों को ध्यान में

अधिवक्ता

रखा जाना चाहिए। कोई कठोर नियम निर्धारित नहीं किए जा सकते हैं और प्रत्येक मामले को अपने गुणों के आधार पर तय किया जाना है। हम इस तथ्य से भी अनजान नहीं हैं कि जब दो 'पैरेंट' एक-दूसरे के साथ युद्ध में होते हैं तो बच्चे को पूरी तरह से शांतिपूर्ण वातावरण प्रदान करना असंभव होता है। अदालत को यह तय करना होगा कि बच्चे की कस्टडी का दावा करने वाले दोनों 'पैरेंट' के सभी पेशेवरों और विपक्षों का वजन करने के बाद बच्चे के सर्वोत्तम हित में क्या है। जाहिर है, कस्टडी का ऐसा कोई भी आदेश बच्चे को एक आदर्श वातावरण नहीं दे सकता है क्योंकि वह सही वातावरण केवल तभी उपलब्ध होगा जब दोनों 'पैरेंट' बच्चे के हित को अपने मतभेदों से ऊपर रखेंगे। यहां तक कि अगर 'पैरेंट' अलग हो जाते हैं, तो वे एक ऐसी व्यवस्था तक पहुंच सकते हैं जहां बच्चा एक ऐसे वातावरण में रह सकता है जो उसके विकास के लिए उचित रूप से अनुकूल है। जहां तक प्रस्तुत मामले का संबंध है, बच्चे की उम्र के अलावा कुछ भी मां के पक्ष में नहीं है। उसने खुद नॉरफ़ॉक में क्षेत्राधिकार अदालत का दरवाजा खटखटाया। उसने एक समझौता किया जिसके आधार पर एक सहमति आदेश पारित किया गया था। उन्होंने बिना किसी दंड के उस आदेश का उल्लंघन किया है और भारत वापस आ गई हैं और यह एक ऐसा कारक है जिसे हमें उनके विरुद्ध रखना होगा।

32. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, हम स्पष्ट रूप से विचार करते हैं कि 'पैरेंट' दोनों की 'पैरेंट' की देखभाल करना बच्चे के सर्वोत्तम हित में है, यदि संयुक्त नहीं है तो कम से कम अलग हो जाएं। हमारा स्पष्ट विचार है कि यदि पत्नी संयुक्त राज्य अमेरिका वापस जाने की इच्छुक है तो कस्टडी, रखरखाव आदि के संबंध में सभी आदेशों को संयुक्त राज्य अमेरिका में क्षेत्राधिकार अदालत द्वारा देखा जाना चाहिए। भारत में कोई रिट न्यायालय इस प्रकार की कार्यवाहियों में यह निदेश नहीं दे सकता कि एक वयस्क पति या पत्नी को अमरीका चले जाना चाहिए। इसलिए, हम दो भागों में निदेश जारी कर रहे हैं। पहला भाग तब लागू होगा जब अपीलकर्ता पत्नी पति द्वारा अपने हलफनामे में दिए गए नियमों और शर्तों पर यू.एस.ए जाने की इच्छुक हो। दूसरा प्रावधान लागू होगा कि अगर वह अमेरिका नहीं जाना चाहती तो पति को बच्चे की कस्टडी कैसे मिलनी चाहिए।

17. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अंततः पति के विचार और उपक्रम को ध्यान में रखते हुए कहा कि हमें लगता है कि यह बच्चे के हित में होगा यदि मां खुद बच्चे के साथ यू.एस.ए जाए। अपीलकर्ता की पत्नी यू.एस.ए में रहना पसंद कर सकती है या नहीं, और यह अपीलकर्ता की पत्नी की व्यक्तिगत पसंद है। हालांकि, अगर वह बच्चे के साथ यू.एस.ए वापस जाती है तो उसे नॉरफ़ॉक कोर्ट के आदेशों का पालन करना होगा। जाहिर है, यदि ऐसा सलाह दी जाती है, वह आदेश के संशोधन/अवकाश के लिए आवेदन कर सकती है। यदि पत्नी वापस यू.एस.ए जाती है तो यह पति की जिम्मेदारी होगी कि वह उसकी पूरी यात्रा और ठहरने के लिए उचित खर्चों का भुगतान करे। यदि उसने बच्चे के साथ यू.एस.ए जाने की इच्छा व्यक्त की है, तो पति पत्नी और नाबालिग बच्चे की यू.एस.ए यात्रा के लिए टिकट खरीदेगा, जो यात्रा 20.2.2020

अनुवादित

को या उससे पहले की जाएगी और यह पत्नी की जिम्मेदारी है कि वह उक्त तिथि तक यू.एस.ए की यात्रा करने के लिए आवश्यक यात्रा दस्तावेज प्राप्त करे। यदि पत्नी इस आदेश से एक सप्ताह के भीतर पति के अधिवक्ता को सूचित नहीं करती है कि वह यू.एस.ए वापस जाने की इच्छुक है, तो यह माना जाएगा कि उसका बच्चे के साथ यू.एस.ए जाने का कोई इरादा नहीं है और उस स्थिति में पत्नी नाबालिग बच्चे की कस्टडी पति को सौंप देगी; यदि वह भारत की यात्रा करता है अन्यथा कस्टडी एक निश्चित तारीख पर उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल के समक्ष पति की मां को सौंपी जा सकती है। इसके बाद पति बच्चे को पति के 'पैरेंट' में से कम से कम एक के साथ यू.एस.ए ले जाने के लिए आवश्यक व्यवस्था करेगा। पति को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि बच्चा एक निश्चित समय पर हर दिन वीडियो कॉलिंग सुविधाओं जैसे व्हाट्सएप, स्काइप आदि से अपनी मां से बात करता रहे। बच्चे की मां को कुछ अन्य मुलाक़ात अधिकार भी दिए गए थे।

18. प्रतिपक्षी के अधिवक्ता ने प्रतीक गुप्ता बनाम शिल्पी गुप्ता और अन्य, (2018) 2 एस.सी.सी. 309, विवेक सिंह बनाम रोमानी सिंह, (2017) 3 एस.सी.सी. 231, रितिका शरण बनाम सुजॉय घोष, 2020 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 878, निथ्या आनंद राघवन बनाम राज्य (दिल्ली एनसीटी) और अन्य, (2017) 8 एस.सी.सी. 454, गौरव नागपाल बनाम सुमेधा नागपाल, (2009)1 एस.सी.सी. 42, स्मृति मदन कंसागरा बनाम पेरी कंसागरा, 2020 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 887 और कनिका गोयल बनाम स्टेशन हाउस ऑफिसर और अन्य, (2018) एस.सी.सी. 578 के माध्यम से दिल्ली राज्य का हवाला दिया।

19. कनिका गोयल (उपरोक्त) के मामले में पक्षों के बीच पहली शादी नई दिल्ली में सिख संस्कार यानी आनंद कारज समारोह और हिंदू वैदिक संस्कारों के अनुसार की गई थी, जबकि, औपचारिकताओं को पूरा करने के लिए कुक कंट्री, इलिनोइस, यू.एस.ए के सर्किट कोर्ट में नागरिक विवाह समारोह किया गया था। अपीलकर्ता मां ने भारत आने के बाद, हिंदी विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13(1) के तहत क्रूरता के आधार पर तलाक के लिए याचिका दायर की, साथ ही नाबालिग बच्चे को भारतीय न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र से दूर ले जाने के लिए पति/प्रतिपक्षी के खिलाफ एक प्रतिबंध आदेश की मांग की। पति (प्रतिपक्षी संख्या-2) ने सर्किट कोर्ट, इलिनोइस (यू.एस.) के समक्ष एक याचिका भी दायर की, जिसमें अदालत ने निर्देश दिया कि बच्चे को तुरंत कुक कंट्री, इलिनोइस में स्थित निवास पर वापस कर दिया जाए। चूंकि अपीलकर्ता की पत्नी ने सर्किट कोर्ट के आदेश का पालन नहीं किया, इसलिए प्रतिपक्षी पति ने उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका दायर की और एक रिट या बंदी प्रत्यक्षीकरण जारी किया और अपीलकर्ता को नाबालिग बच्चे को पेश करने और उसे अमेरिका में अदालत के अधिकार क्षेत्र में वापस लाने का निर्देश दिया। उच्च न्यायालय ने प्रतिपक्षी संख्या-2, अपीलकर्ता के पति के पक्ष में दिनांक 16.11.2017 को निर्णय और आदेश सुनाते हुए यह निष्कर्ष दर्ज करने के बाद कि नाबालिग बच्चे का सर्वोपरि हित यू.एस.ए लौटना था, ताकि वह अपने प्राकृतिक वातावरण में रह

अनुवादित

सके। पक्षकारों को कार्य व्यवस्था की सुविधा प्रदान करने और असुविधा को कम करने के लिए, उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने कुछ निर्देश जारी किए जैसे कि प्रतिपक्षी संख्या-2 (प्रस्तुत अपीलकर्ता) की नाबालिग बच्चे के साथ वापसी याचिकाकर्ता की कीमत पर होनी चाहिए; उनके प्रारंभिक चरण शिकागो, यू.एस.ए शोलुल्ड को भी पूरी तरह से वित्त पोषित किया जाएगा और याचिकाकर्ता द्वारा पक्षों के वैवाहिक घर के आसपास के क्षेत्र में उन दोनों के लिए इंटरनेट कनेक्शन आदि के साथ बुनियादी सुविधाओं से एक अलग सुसज्जित आवास प्रदान करके देखभाल की जाएगी, जिसमें वे दिसंबर, 2016 तक रहे हैं। दिनांक 16.11.2017 के निर्णय में निहित निर्देश के संदर्भ में, याचिकाकर्ता करण गोयल ने 20.11.2017 को हलफनामा दायर किया था, जिसमें उन्होंने उन पर लगाई गई सभी शर्तों का पालन करने का वचन दिया था और सहमति दी थी ताकि प्रतिपक्षी संख्या-2 नाबालिग बच्चे के साथ यू.एस.ए लौट सके। फिर से 6.12.2017 को उच्च न्यायालय द्वारा एक और आदेश पारित किया गया, जिसका अंततः कुछ निर्दिष्ट शर्तों पर निपटारा किया गया।

20. हालांकि, उच्च न्यायालय के फैसले से व्यथित होकर, अपीलकर्ता ने नाबालिग बच्चे की मां होने के नाते संविधान के अनुच्छेद 236 के तहत विशेष अनुमति के माध्यम से सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। अपीलकर्ता ने बच्चे की मां होने के नाते उच्च न्यायालय के फैसले पर हमला किया, जिसमें एक नाबालिग बच्चे के संबंध में बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट जारी करने के अधिकार क्षेत्र को लागू करने के मुद्दे को नियंत्रित करने वाले अल्पविकसित सिद्धांतों की अनदेखी की गई है, जो अपनी मां की वैध कस्टडी में थी। अपीलकर्ता के अनुसार, उच्च न्यायालय ने लगभग चार साल की नाबालिग लड़की के सर्वोपरि हित के सिद्धांतों को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया, या इसे अलग तरीके से रखा है, गलत समझा है और गलत तरीके से लागू किया है। इसी तरह उच्च न्यायालय ने केएस पुट्टास्वामी बनाम भारत संघ, (2017)10 एस.सी.सी.1 में व्याख्या को ध्यान में रखते हुए एक नाबालिग लड़की की मां की पसंद और गरिमा के सिद्धांत को कांच दिया है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश पर गहन और सावधानीपूर्वक विचार किया था, जिसमें उसमें दिए गए कारण भी शामिल थे और यह देखा था कि उच्च न्यायालय ने नित्यानंद (उपरोक्त) में नवीनतम तीन बेंच निर्णयों सहित सभी प्रासंगिक निर्णयों पर ध्यान दिया है, जिसमें विचाराधीन विषय पर पहले के निर्णय का व्यापक विश्लेषण करने का अवसर था। प्रतीक बनाम शिल्पी, (2018) एस.सी.सी. 309 में इस न्यायालय के बाद के फैसले में पहले के फैसलों में पहले के फैसलों में प्रदर्शनी को फिर से बहाल और पुष्टि की गई है। निथ्या राघवन के मामले (उपरोक्त) में इस न्यायालय ने निम्नानुसार देखा: -

"40. न्यायालय ने नोट किया है कि भारत ने अभी तक "अंतर्राष्ट्रीय बाल अपहरण के नागरिक पहलुओं" पर हेग कन्वेंशन वर्ष 1980 पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं। गैर-कन्वेंशन देशों के संबंध में, कानून यह है कि जिस देश में बच्चे को हटाया गया है, उस देश की अदालत

अनुवादित

को बच्चे के कल्याण को प्रभावित करने वाले गुणों के आधार पर प्रश्न पर विचार करना चाहिए और विदेशी अदालत के आदेश को केवल एक कारक के रूप में मानना चाहिए जिसे ध्यान में रखा जाना चाहिए, जब तक कि अदालत बच्चे के हितों में संक्षिप्त क्षेत्राधिकार का प्रयोग करना उचित नहीं समझती है और इसके कल्याण के लिए इसकी शीघ्र वापसी है। संक्षिप्त क्षेत्राधिकार के प्रयोग में, अदालत को संतुष्ट होना चाहिए और इस राय से कि इससे पहले शुरू की गई कार्यवाही निकटता में थी और बच्चे को उसके मूल राज्य से हटा दिए जाने और उसके क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र में लाने के तुरंत बाद दायर की गई थी, बच्चे ने यहां जड़ें नहीं जमाई हैं और आगे बोली जाने वाली या सामाजिक भाषा में अंतर के कारण अपने मूल राज्य में लौटने के लिए बच्चे के कल्याण में होगा रीति-रिवाज और संपर्क जिनके लिए वह आदी रहा है या ऐसे अन्य ठोस कारण। ऐसे मामले में अदालत को बच्चे के सर्वोपरि कल्याण के गुणों की विस्तृत जांच करने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि बच्चे की वापसी का निर्देश देकर उस जांच को विदेशी अदालत पर छोड़ देना चाहिए। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि असाधारण मामलों में अदालत अभी भी बच्चे को मूल राज्य में वापस करने के लिए निर्देश जारी करने से इनकार कर सकती है और विशेष रूप से उस संबंध में विदेशी अदालत के पहले से मौजूद आदेश के बावजूद, अगर यह संतुष्ट है कि बच्चे की वापसी उसे नुकसान के गंभीर जोखिम में डाल सकती है। इसका मतलब यह है कि भारत में अदालतें, जिनके अधिकार क्षेत्र में नाबालिग को लाया गया है, को "आमतौर पर" योग्यता के आधार पर प्रश्न पर विचार करना चाहिए, बच्चे के कल्याण को सर्वोपरि महत्व के रूप में ध्यान में रखते हुए, विदेशी अदालत के पहले से मौजूद आदेश, यदि कोई हो, को केवल कारकों में से एक के रूप में माना जाता है और इसके साथ तय नहीं किया जाता है। किसी भी स्थिति में - चाहे वह संक्षिप्त जांच हो या विस्तृत जांच - बच्चे का कल्याण सर्वोपरि है। इस प्रकार, इस मुद्दे की जांच करते समय भारत में अदालतें अपने अधिकार क्षेत्र में लाए गए बच्चे की वापसी की राहत को अस्वीकार करने के लिए स्वतंत्र हैं, यदि यह संतुष्ट है कि बच्चा अब अपने नए वातावरण में बस गया है या यदि यह बच्चे को शारीरिक या मनोवैज्ञानिक नुकसान के लिए उजागर करेगा या अन्यथा बच्चे को असहनीय स्थिति में डाल देगा या यदि बच्चा काफी परिपक्व है और इसकी वापसी पर आपत्ति करता है। हम उपरोक्त प्रदर्शनी के साथ सम्मानजनक समझौते में हैं।

(महत्त्व सन्निविष्ट)

फिर से पैराग्राफ 42 में, न्यायालय ने इस प्रकार देखा:

"42. इस न्यायालय का सुसंगत दृष्टिकोण यह है कि यदि बच्चे को भारत के भीतर लाया गया है, तो भारत में अदालतें निम्नलिखित कर सकती हैं: (ए) संक्षिप्त जांच; या (बी) कस्टडी के सवाल पर एक विस्तृत जांच। संक्षिप्त जांच के मामले में, अदालत बच्चे को उस देश में वापस करने का आदेश देना उचित समझ सकती है जहां से उसे हटाया गया था, जब तक कि इस तरह की वापसी बच्चे के लिए हानिकारक नहीं दिखाई जाती है। दूसरे शब्दों में, यहां तक कि एक संक्षिप्त जांच के मामले में, यह अदालत के लिए खुला है कि वह बच्चे

अनुवादित

की उस देश में वापसी की राहत को अस्वीकार कर दे, जहां से उसे विदेशी अदालत द्वारा बच्चे की वापसी के पहले से मौजूद आदेश के बावजूद उसे हटा दिया गया था। एक विस्तृत जांच में, अदालत गुणों की जांच करने के लिए बाध्य है कि बच्चे के सर्वोपरि हित और कल्याण कहां हैं और बच्चे की वापसी के लिए विदेशी अदालत के पहले से मौजूद आदेश के तथ्य को केवल एक परिस्थिति के रूप में मानते हैं। किसी भी मामले में, अदालत द्वारा विचार किया जाने वाला महत्वपूर्ण प्रश्न (जिस देश में बच्चे को हटा दिया गया है) बच्चे के कल्याण के अनुसार इस मुद्दे का उत्तर देना है। यह स्वतंत्र रूप से प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्रता को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए। हमारे सामने रखे गए कई निर्णयों की बारीकी से जांच करने पर भी, हमें इस संबंध में कोई विरोधाभासी दृष्टिकोण नहीं मिलता है। दूसरे शब्दों में कहें तो अभिरक्षा के मामले का निर्णय करने या बच्चे को मूल राज्य में लौटाने के लिए न्यायालयों के सौहार्द के सिद्धांत को प्रधानता या अधिक महत्व नहीं दिया जा सकता है।

(महत्त्व सन्निविष्ट)

"67. सभी चार मामलों में तथ्यों को मुख्य रूप से प्रतिपक्षी 2 द्वारा भरोसा किया गया था, हमारी राय में, न्यायालय को बच्चे को मूल राज्य में वापस करने के लिए निर्देश जारी करने की आवश्यकता थी। इसका मतलब यह नहीं है कि योग्य मामलों में भारत में अदालतों को सक्षम क्षेत्राधिकार के विदेशी न्यायालय के पहले से मौजूद आदेश के कारण बच्चे को मूल राज्य में वापस करने के लिए राहत देने से वंचित कर दिया जाता है। तथापि, इस पर मामला-दर-मामला आधार पर विचार किया जाना चाहिए- चाहे वह संक्षिप्त जांच हो या विस्तृत जांच। हम अन्य रिपोर्ट किए गए निर्णयों पर विस्तार नहीं करना चाहते हैं, क्योंकि इसके परिणामस्वरूप समान स्थिति की पुनरावृत्ति होगी और केवल इस निर्णय पर बोझ पड़ेगा।

xxx xxx xxx

69. ..... बच्चे को वापस करने के लिए संक्षिप्त क्षेत्राधिकार का प्रयोग उन मामलों में किया जाना चाहिए जहां बच्चे को उसकी जन्मभूमि से हटा दिया गया था और किसी अन्य देश में हटा दिया गया था, जहां, हो सकता है, उसकी मूल भाषा नहीं बोली जाती है, या बच्चा सामाजिक रीति-रिवाजों और संपर्कों से तलाक ले लेता है जिसके लिए वह आदी रहा है, या यदि उसकी जन्मभूमि में उसकी शिक्षा बाधित होती है और बच्चे को शिक्षा की एक विदेशी प्रणाली के अधीन किया जा रहा है, क्योंकि ये सभी ऐसे कार्य हैं जो बच्चे को मनोवैज्ञानिक रूप से परेशान कर सकते हैं। फिर से संक्षिप्त क्षेत्राधिकार का प्रयोग केवल तभी किया जाना चाहिए जब जिस अदालत में बच्चे को हटाया गया है, उसे तुरंत और जल्दी से स्थानांतरित कर दिया जाए। अधिभावी विचार बच्चे के हितों और कल्याण होना चाहिए।

(महत्त्व सन्निविष्ट)

20. इस स्तर पर, हम इस मामले में पारित किए जाने वाले अंतिम आदेश पर कुछ असर हो सकता है, जो रिपोर्ट किए गए निर्णय के पैराग्राफ 70 और 71 को पुन: पेश करना उचित समझते हैं। वही इस प्रकार पढ़ें:

अप्रमाणित

"70. यह देखने की जरूरत नहीं है कि नाबालिग बच्चे (नेत्रा) के वयस्क होने के बाद, वह यूके जाने और अपने पिता के साथ रहने के लिए अपनी पसंद का प्रयोग करने के लिए स्वतंत्र होगी। लेकिन जब तक वह वयस्क नहीं हो जाती, तब तक उसे अपनी मां की कस्टडी में रहना चाहिए, जब तक कि सक्षम क्षेत्राधिकार की अदालत बच्चे की कस्टडी के मुद्दे की सुनवाई नहीं कर रही है। हालांकि, पिता जब भी भारत का दौरा करते हैं, तो उन्हें मुलाक़ात का अधिकार दिया जाना चाहिए। वह अपीलकर्ता को लिखित रूप में सूचित करते हुए कम से कम दो सप्ताह पहले नोटिस देकर ऐसा कर सकता है और यदि ऐसा अनुरोध प्राप्त होता है, तो अपीलकर्ता को प्रतिपक्षी 2 श्री आनंद राघवन (पिता) को दिल्ली में उल्लिखित स्थल पर सप्ताह में दो बार प्रति दिन दो घंटे के लिए मुलाक़ात अधिकार देने के लिए लिखित रूप में सकारात्मक जवाब देना चाहिए या जैसा कि अपीलकर्ता द्वारा सहमति हो सकती है, जहां अपीलकर्ता या उसके प्रतिनिधि आवश्यक रूप से कार्यक्रम स्थल पर या उसके पास मौजूद हों। प्रतिपक्षी 2 का हकदार नहीं होगा, न ही बच्चे (नेत्रा) को उक्त स्थल से बाहर ले जाने का कोई प्रयास करेगा। अपीलकर्ता प्रतिपक्षी 2 के मुलाक़ात अधिकारों का पालन करने के लिए ऐसे सभी कदम सख्ती से उठाएगा। इसके अलावा, अपीलकर्ता प्रतिपक्षी 2 श्री आनंद राघवन को स्कूल की छुट्टियों पर शाम 5 बजे से 7.30 बजे के बीच टेलीफोन/मोबाइल या वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग पर नेत्रा के साथ बातचीत करने की अनुमति देगा।

21 प्रतीक गुप्ता बनाम शिल्पी गुप्ता (उपरोक्त) में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ संख्या-49 से 51 में निम्नानुसार टिप्पणी की है: -

"49. अपने मूल देश से हटाए गए बच्चे के प्रत्यावर्तन के मुद्दे पर न्यायिक घोषणा की गंभीरता स्पष्ट रूप से इसकी समग्र भलाई, अदालतों के सौहार्द के सिद्धांत और "अंतरंग संपर्क और निकटतम चिंता" के सिद्धांतों के बावजूद प्रमुख अनिवार्यता पर स्थापित है। यद्यपि न्यायालयों के सौहार्द का सिद्धांत और पूर्वोक्त सिद्धांत एक विदेशी अदालत के क्षेत्र से जिसमें एक बच्चे को हटा दिया जाता है, ऐसे कारक हैं जो बच्चे की कस्टडी और प्रत्यावर्तन के मुद्दे को तय करने में ध्यान देने योग्य हैं, यह अब एकीकृत नहीं है कि कभी-अधिभावी निर्धारक बच्चे का कल्याण और हित होगा। दूसरे शब्दों में, इन सिद्धांतों/सिद्धांतों के आह्वान को प्रत्येक मामले के असंख्य परिचर तथ्यों और परिस्थितियों की कसौटी पर आंका जाना चाहिए, अंतिम जीवित चिंता बच्चे का कल्याण है, अन्य कारक स्वीकार्य रूप से अधीन हैं। यद्यपि प्रत्यावर्तन के मुद्दे के अधिनिर्णय की प्रक्रिया में, एक अदालत एक संक्षिप्त जांच अपनाने का चुनाव कर सकती है और बच्चे को उसके मूल देश में तत्काल बहाल करने का आदेश दे सकती है, यदि आवेदक/'पैरेंट' अपनी पहल में शीघ्र और सतर्क हैं और मौजूदा परिस्थितियां बच्चे के कल्याण की अत्यधिक आवश्यकता में इस तरह के क्रम को फिर से उचित ठहराती हैं, इस तरह के एक क्रम को कानून में स्वीकार्य किया जा सकता है, यदि प्रासंगिक कारकों का एक सहज विवेक इसके शारीरिक, मानसिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अस्तित्व पर अपरिवर्तनीय, प्रतिकूल और प्रतिकूल प्रभाव की

अनुवादित

गवाही देता है, इस प्रकार इसे दृश्यमान, निरंतर और अपूरणीय हानिकारक और शून्यवादी क्षीणन के लिए उजागर करता है। दूसरी ओर, यदि आवेदक/'पैरेंट' सुस्त हैं और मूल देश से बच्चे को हटाने और उसके प्रत्यावर्तन के लिए उठाए गए कदमों के बीच काफी समय अंतराल है, तो अदालत बच्चे पर असर डालने वाले सभी प्रासंगिक पहलुओं की विस्तृत जांच पसंद करेगी, इस बीच समय बीतने के साथ, यह अपेक्षित रूप से देश और इसके विशिष्ट परिवेश में जड़ें जमा चुका था, इस प्रकार इसके तह में इसके संवारने की प्रक्रिया पर अपना प्रभाव डाला।

50. 'अंतरंग संपर्क' और 'निकटतम चिंता' के सिद्धांत प्रेरक प्रासंगिकता के हैं, केवल तभी जब बच्चे को अपने मूल देश से उखाड़ फेंका जाता है और विदेशी वातावरण, भाषा, रीति-रिवाज आदि का सामना करने के लिए एक जगह पर ले जाया जाता है, जो इसके समग्र विकास और संवारने की प्रक्रिया पर उत्परिवर्तन असर के अंश के साथ होता है।

51. यह लगातार अवधारित किया गया है कि वार्डशिप क्षेत्राधिकार में कोई मंच सुविधा नहीं है और स्थायी जनादेश जो न्यायिक मिशन को रेखांकित करता है, सर्वोपरि विचार के रूप में बच्चे के अनारक्षित कल्याण को सुरक्षित करने का दायित्व है।

22. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अंत में पैराग्राफ संख्या-33 और 34 में निम्नानुसार टिप्पणी की: -

"33. प्रस्तुत मामले में उच्च न्यायालय ने मुख्य रूप से अपीलकर्ता की शिकायतों पर ध्यान केंद्रित किया और उन शिकायतों को खारिज करते हुए, नाबालिग लड़की को उसके मूल देश में वापस करने का निर्देश देकर प्रतिपक्षी संख्या-2 को राहत दी। प्रस्तुत मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्रता पर, हमारी राय में, यह इंगित करने के लिए कुछ भी नहीं है कि मूल भाषा (अंग्रेजी) बोली नहीं जाती है या बच्चे को उन सामाजिक रीति-रिवाजों से तलाक दे दिया गया है जिनके लिए वह आदी रही है। इसी तरह, नाबालिग बच्ची ने अपनी मां के साथ नई दिल्ली आने से पहले संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रीस्कूल में प्रवेश किया था। इस अर्थ में, उसकी शिक्षा में कोई व्यवधान नहीं था या शिक्षा की एक विदेशी प्रणाली के अधीन होने की संभावना उसे मनोवैज्ञानिक रूप से परेशान करने की संभावना थी। दूसरी ओर, नाबालिग बच्चा एम नई दिल्ली आने के बाद से अपनी मां और नाना-नानी और अन्य रिश्तेदारों की उचित देखभाल में है। यदि वह प्रतिपक्षी संख्या-2 द्वारा दावा की गई राहत के अनुसार अमेरिका लौटती है, तो वह अनिवार्य रूप से एक नानी की देखभाल में होगी क्योंकि प्रतिपक्षी संख्या-2 काम के लिए दिन के समय बाहर होगा और परिवार का कोई भी व्यक्ति उसकी देखभाल के लिए घर पर नहीं होगा। उसे एक प्रशिक्षित नानी के तहत रखना हानिकारक नहीं हो सकता है, लेकिन यह निश्चित रूप से परिहार्य है। क्योंकि, उसकी मां, जो उसकी प्राथमिक देखभाल करने वाली है, से अलग होने के बाद नाबालिग बच्चे के मनोवैज्ञानिक रूप से परेशान होने की संभावना है। दूसरे शब्दों में, प्रतिपक्षी-2 द्वारा की गई प्रार्थना के अनुसार नाबालिग बच्चे एम की अमेरिका लौटने का कोई बाध्यकारी कारण नहीं है और न ही नई दिल्ली में नाना-नानी और विस्तारित परिवार के साथ

अप्रमाणित

उसकी मां के साथ रहना उसके लिए किसी भी तरह से पूर्वाग्रही है, जो उसकी अमेरिका वापसी की गारंटी देता है।

34. जैसा कि इस न्यायालय के हाल के फैसलों में बताया गया है, इस मुद्दे को नाबालिग बच्चे की कस्टडी का दावा करने वाले पक्षों के अधिकारों के आधार पर तय नहीं किया जाना चाहिए, लेकिन ध्यान लगातार इस बात पर रहना चाहिए कि क्या नाबालिग बच्चे के सर्वोत्तम हित का तथ्य मूल देश में लौटना है या नहीं। यह तथ्य कि नाबालिग बच्चे के अपने मूल देश लौटने पर बेहतर संभावनाएं होंगी, नाबालिग बच्चे की कस्टडी देने के लिए एक वास्तविक कार्यवाही में एक प्रासंगिक पहलू हो सकता है, लेकिन बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका में प्रारंभिक मुद्दों की जांच करने के लिए निर्णायक नहीं है। बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका के प्रयोजन के लिए, न्यायालय को नाबालिग बच्चे को मूल देश से निकाल दिए जाने और विदेशी वातावरण, भाषा, रीति-रिवाज आदि का सामना करने के लिए एक स्थान पर ले जाने की परिस्थितियों पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए, जो उसके समग्र विकास और संवारने में हस्तक्षेप करता है और क्या वहां जारी रहना हानिकारक होगा। यह इस न्यायालय का सुसंगत दृष्टिकोण रहा है जैसा कि हाल ही में निथ्या आनंद राघवन (उपरोक्त) में तीन न्यायाधीशों की पीठ के फैसले और प्रतीक गुप्ता (उपरोक्त) में दो न्यायाधीशों की पीठ के फैसले में दोहराया गया है। एक ही पहलू पर अन्य निर्णयों को गुणा करना अनावश्यक है।

23. उपरोक्त टिप्पणियों के साथ, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश को रद्द कर दिया और निर्णय में की गई टिप्पणियों के आलोक में रिट याचिका का निपटारा किया।

24. यह तीन न्यायाधीशों की बेंच का फैसला था जिसमें निथ्या आनंद राघवन (उपरोक्त), प्रतीक गुप्ता (उपरोक्त) और शिल्पा अग्रवाल बनाम अविरल मित्तल (2010) एस.सी.सी.591 और वी रवि चंद्रन बनाम भारत संघ, (2010) एस.सी.सी.74 पर भरोसा किया गया था। इस निर्णय में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा-23 में निम्नानुसार अवधारित किया: -

"23. प्रस्तुत मामले जैसे मामले में, हम संतुष्ट हैं कि नाबालिग आदित्य की संयुक्त राज्य अमेरिका में वापसी, जहां से उसे हटा दिया गया है और यहां लाया गया है, बच्चे के सर्वोत्तम हित में होगा और याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए आश्वासन के मद्देनजर भी ऐसा आदेश उचित है कि वह सभी यात्रा खर्चों को वहन करेगा और प्रतिपक्षी संख्या-6 के लिए रहने की व्यवस्था करेगा। याचिकाकर्ता 18 जून, 2007 के सहमति आदेश के अनुसार अभिरक्षा/पालन-पोषण के अधिकारों का अनुपालन तब तक करेगा जब तक कि संयुक्त राज्य अमेरिका में सक्षम न्यायालय आगे निर्णय नहीं ले लेता; याचिकाकर्ता अनुरोध करेगा कि प्रतिपक्षी संख्या-6 के खिलाफ वारंट को हटा दिया जाए; याचिकाकर्ता संयुक्त राज्य अमेरिका में सहमति आदेश के प्रतिपक्षी-6 द्वारा उल्लंघन के लिए कोई आपराधिक आरोप दायर नहीं करेगा और यदि संयुक्त राज्य अमेरिका में सक्षम अदालत में प्रतिपक्षी-6 द्वारा कोई आवेदन दायर किया जाता है, तो याचिकाकर्ता इस तरह के आवेदन की शीघ्र सुनवाई में सहयोग करेगा। याचिकाकर्ता ने यह भी कहा है कि उसने मार्था हंट एलीमेंट्री स्कूल,

अनुवादित

मर्फी, टेक्सास, 75094 से पुष्टि प्राप्त की है कि नाबालिग बेटे आदित्य को तुरंत स्कूल में भर्ती कराया जाएगा।

25. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अंततः निष्कर्ष निकाला कि नाबालिग लड़की की अमेरिका वापसी के लिए कोई बाध्यकारी कारण नहीं था, जो अपनी मां की कस्टडी में पड़ी थी और न ही उसकी मां या परिवार के अन्य सदस्यों के साथ रहना किसी भी तरह से उसकी यू.एस.ए वापसी के लिए प्रतिकूल था। जैसा कि हाल के फैसलों में बताया गया है, मामले के तथ्यों में लागू नहीं होता था। जैसा कि नित्या आनंद (उपरोक्त) में देखा गया है, अदालत को नाबालिग बच्चे के सर्वोत्तम हित को सुनिश्चित करते हुए तथ्यों और परिस्थितियों की समग्रता को ध्यान में रखना चाहिए। इसके अलावा, अंतरंग और ठोस चिंता का सिद्धांत केवल तभी प्रासंगिक होता है जब बच्चे को उसके मूल देश से उखाड़ फेंका जाता है और विदेशी वातावरण, किसी भी रिवाज आदि का मुकाबला करने के लिए ले जाया जाता है, जिसमें पारस्परिकता के अंश होते हैं। नाबालिग बच्ची ने अपनी मां के साथ नई दिल्ली आने से पहले अमेरिका में प्री-स्कूल में प्रवेश लिया था। उस समय वह तीन साल की थी। उसकी शिक्षा का कोई अनुवचन नहीं था या शिक्षा की एक विदेशी प्रणाली के अधीन होने की संभावना उसे मनोवैज्ञानिक रूप से परेशान करने की संभावना थी। दूसरी ओर, नाबालिग बच्ची अपनी मां और नाना-नानी की उचित देखभाल में है और अन्य रिश्तेदार उसे नई दिल्ली आने की मांग करते हैं। यदि वह अमेरिका लौटती है, तो प्रतिपक्षी संख्या-2 द्वारा दावा की गई राहत के अनुसार, वह अनिवार्य रूप से एक नानी की देखरेख में होगी क्योंकि प्रतिपक्षी संख्या-2 काम के लिए समय के दौरान दूर होगा और परिवार का कोई और उसकी देखभाल करने के लिए घर पर नहीं होगा। उसे एक प्रशिक्षित नानी के तहत रखना हानिकारक नहीं हो सकता है, लेकिन यह निश्चित रूप से परिहार्य है। क्योंकि, नाबालिग बच्चे को उसकी मां से अलग होने के बाद मनोवैज्ञानिक रूप से परेशान होने की संभावना है, जो उसे दी गई प्राथमिक देखभाल है।

26. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने डॉ. वी. रवि चंद्रन (उपरोक्त) में तीन न्यायाधीशों की पीठ के फैसले पर भरोसा किया, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि जिस देश में बच्चे को हटाया गया है, वहां की अदालत को पहले इस सवाल पर विचार करना चाहिए कि क्या अदालत कस्टडी के सवाल पर विस्तृत जांच कर सकती है या मामले से निपटने के द्वारा 'पैरेंट' को उस देश में बच्चे की कस्टडी वापस करने का आदेश दे सकती है जहां से बच्चे को हटा दिया गया और बाल कल्याण से संबंधित सभी पहलुओं की जांच अपने ही देश की एक अदालत में की जाए। क्या अदालत को यह विचार करना चाहिए कि एक विस्तृत जांच आवश्यक है, जाहिर है कि अदालत बच्चे के कल्याण और खुशी को सर्वोपरि विचार करने और स्थिरता और सुरक्षा, प्यार और समझ, देखभाल और मार्गदर्शन और बच्चे के चरित्र के पूर्ण विकास सहित बच्चे के कल्याण के सभी प्रासंगिक पहलुओं पर विचार करने के लिए बाध्य है, व्यक्तित्व और प्रतिभा, ऐसा करते समय विदेशी अदालत का आदेश जिसके लिए कस्टडी को उचित वजन दिया जा सकता है; विदेशी निर्णय का वजन और प्रेरक प्रभाव

अनुवादित

प्रत्येक मामले की परिस्थितियों पर निर्भर होना चाहिए, हालांकि, ऐसे मामले में जहां अदालत बच्चे को अपने देश में वापस करने के लिए अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने का निर्णय लेती है, मूल देश में अदालत के अधिकार क्षेत्र को ध्यान में रखते हुए, जिसमें निकटतम चिंता है और मामले में उत्पन्न मुद्दों के साथ अंतरंग संपर्क करना चाहिए, न्यायालय बालक के कल्याण से संबंधित पहलुओं की जांच न्यायालय द्वारा अपने मूल देश में किए जाने के लिए छोड़ सकता है क्योंकि यह बालक के सर्वोत्तम हित में हो सकता है। बच्चा एक अमेरिकी नागरिक है जो संयुक्त राज्य अमेरिका में पैदा हुआ और लाया गया, अपने प्रारंभिक वर्ष बिताए। बाल कल्याण और खुशी को ध्यान में रखते हुए और उनके सर्वोत्तम हित में, पक्षों ने अमेरिका में सक्षम क्षेत्राधिकार की अदालत से उनकी कस्टडी / नाबालिग बच्चे की कुछ समय के लिए अमेरिका वापसी, जहां से उसे निकाला गया है और भारत लाया गया है, बच्चों के सर्वोत्तम हित में होगा।

27. उपरोक्त मामले में बच्चे का जन्म 1.7.2022 को संयुक्त राज्य अमेरिका में हुआ था। बच्चे के पिता ने अपने नाबालिग बेटे आदित्य को पेश करने और उसे कस्टडी और उसका पासपोर्ट सौंपने के लिए बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका दायर की थी। दिनांक 28-08-2009 को माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने एक आदेश पारित किया जिसमें निदेशक, सीबीआई से अनुरोध किया गया था कि वह उसे न्यायालय के समक्ष पेश करें क्योंकि विभिन्न राज्यों के पुलिस अधिकारियों द्वारा भरसक प्रयास किए जाने के बावजूद बच्चे और उसकी मां का पता नहीं लगाया जा सका और दो साल से अधिक समय तक उनके ठिकाने का पता नहीं लगाया जा सका क्योंकि उच्चतम न्यायालय द्वारा नोटिस जारी किया गया था। सीबीआई ने भारत पुलिस प्रमुखों के माध्यम से अखिल भारतीय आधार पर लुक आउट नोटिस जारी किए और अंततः दिनांक 24-10-2009 को चेन्नई में बच्चे और जच्चा-बच्चा का पता लगा लिया गया और उन्हें 25-10-2009 को मामले की सुनवाई करने वाले उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायमूर्ति न्यायाधीशों में से एक के आवासीय कार्यालय में पेश किया गया। याचिकाकर्ता को एक घंटे के लिए बच्चे से मिलने की अनुमति दी गई थी। दलीलों का आदान-प्रदान किया गया। सुनवाई के दौरान यह पाया गया कि याचिकाकर्ता और प्रतिपक्षी संख्या-6 की शादी 14.12.2008 को आंध्र प्रदेश में हुई थी। 1.7.2022 को अमेरिका में एक बच्चे का जन्म हुआ। जुलाई, 2023 के महीने में, प्रतिपक्षी संख्या-6, मां ने तलाक और विवाह विच्छेद के लिए न्यूयॉर्क उच्चतम न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। माननीय न्यूयार्क उच्चतम न्यायालय द्वारा दिनांक 18.4.2005 को अवयस्क की अभिरक्षा और संरक्षकता के मुद्दों को शासित करने वाला सहमति आदेश पारित किया गया था। अदालत ने याचिकाकर्ता और प्रतिपक्षी संख्या-6 को बच्चे की संयुक्त कस्टडी दी और आदेश में यह निर्धारित किया गया कि दूसरे पक्ष को बच्चे के ठिकाने के बारे में सूचित किया जाए। 28-7-2005 को पति/पत्नी के बीच वैवाहिक संपत्ति के वितरण, पति/पत्नी के भरण-पोषण और बच्चों के समर्थन के लिए एक पृथक्करण करार किया गया था। नाबालिग बेटे की कस्टडी और पालन-पोषण के समय के संबंध में,

अनुवादित

याचिकाकर्ता और प्रतिपक्षी संख्या-6 ने दिनांक 18.4.2005 के आदेश पर सहमति व्यक्त की। 8.9.2005 को याचिकाकर्ता और प्रतिपक्षी संख्या-6 के बीच विवाह को न्यूयॉर्क उच्चतम न्यायालय द्वारा भंग कर दिया गया था और उस आदेश में 18.4.2005 को बाल कस्टडी आदेश शामिल किया गया था। फैमिली कोर्ट ऑफ स्टेट ऑफ न्यूयार्क ने 18-6-2007 को आदेश दिया कि पक्षकार अवयस्क बच्चे की संयुक्त कानूनी और शारीरिक अभिरक्षा को साझा करेंगे और बच्चा एलन, टेक्सास में रहेगा। पक्षगण वैकल्पिक रूप से साप्ताहिक आधार पर भौतिक कस्टडी साझा करेंगी, जिसमें एक्सचेंज शुक्रवार को स्कूल के दिन के अंत में होगा या उस समय जब स्कूल आमतौर पर इस घटना में बाहर निकल जाएगा कि शुक्रवार को कोई स्कूल नहीं है, इसलिए तथ्यों के अवलोकन से डॉ. वी. रवि चंद्रन का मामला (उपरोक्त) से यह स्पष्ट है कि उपस्थिति में अमेरिका में सक्षम न्यायालय द्वारा कई सहमति आदेश पारित किए गए थे 28.6.2007 से पहले पति या पत्नी की, जब प्रतिपक्षी संख्या-6 ने याचिकाकर्ता को सूचित करते हुए भारत में नाबालिग लाया कि वह चेन्नई में अपने 'पैरेंट' के साथ रहेगी, जबकि प्रस्तुत मामले में बच्चे की कस्टडी के बारे में कोई आदेश नहीं था। उसकी मां, प्रतिपक्षी संख्या-3 द्वारा बच्चे के कथित 'पैरेंट' के अपहरण से पहले संयुक्त अभिभावकत्व प्लान, इसलिए, वी रवि चंद्रन के मामले का अनुपात प्रस्तुत मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में प्रस्तुत याचिकाकर्ता को लाभ देने की संभावना नहीं है।

28. यशिता साहू (उपरोक्त) मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के तर्क के पीछे मार्गदर्शक बल यह था कि उस मामले में चूंकि पत्नी संयुक्त राज्य अमेरिका में क्षेत्राधिकार अदालत के आदेशों का उल्लंघन करते हुए नाबालिग को भारत लाई थी, इसलिए बच्चे की उसकी कस्टडी को सख्ती से कानूनी नहीं कहा जा सकता है और लड़की के बच्चे कियारा वर्मा का जन्म 3.5.2017 को अमेरिका में यशिता वर्मा और वरुण वर्मा के घर हुआ था। वह अमेरिका की नागरिक थी। पत्नी ने नॉरफ़ॉक कोर्ट के समक्ष एक याचिका दायर की थी जिसमें उसकी सुरक्षा के लिए प्रार्थना की गई थी और प्रतिवादियों के खिलाफ एक पक्षीय प्राथमिक संरक्षण आदेश पारित किया गया था, उसके बाद उसने उसी अदालत में नाबालिग बच्चे की एकमात्र कस्टडी की मांग करते हुए एक याचिका दायर की थी। पत्नी, बच्चे के साथ यू.एस.ए छोड़कर 30.9.2018 को भारत आई और इस तथ्य को जानने के बाद पति ने 2.10.2019 को नॉरफ़ॉक कोर्ट के समक्ष आपातकालीन राहत के लिए एक प्रस्ताव दायर किया और पति के पक्ष में एक एकपक्षीय आदेश पारित किया गया, जिसके तहत नॉरफ़ॉक कोर्ट ने पति को नाबालिग बच्चे की एकमात्र कानूनी और शारीरिक कस्टडी प्रदान की और पत्नी को बच्चे के साथ यू.एस.ए लौटने का निर्देश दिया। पक्षों के बीच हुए समझौते के संदर्भ में नॉरफ़ॉक कोर्ट के दिनांक 26.9.2018 के आदेश का उल्लंघन करने के लिए पत्नी के खिलाफ एक वारंट भी जारी किया गया था, जिसे आदेश का हिस्सा बनाया गया था, जिसमें यह प्रदान किया गया था कि बच्चे की संयुक्त कानूनी कस्टडी और साझा शारीरिक कस्टडी 'पैरेंट' को दी गई थी, जिसमें प्रत्येक 'पैरेंट' को व्यक्तिगत पेरेंटिंग समय

अनुवादित

दिया गया था, जबकि प्रस्तुत मामले में जब प्रतिपक्षी संख्या-3 ने बच्चे आरव शुक्ला के साथ यू.एस.ए छोड़ा, तो अमेरिकी न्यायालय का कोई बाध्यकारी आदेश अस्तित्व में नहीं था। उसके खिलाफ केवल यह आरोप है कि वह याचिकाकर्ता-2, उसके पति की सहमति या जानकारी के बिना बच्चे को अपने साथ अमेरिका से भारत ले गई थी। बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका में, संयुक्त राज्य अमेरिका में पैट्रिक एफ. शीयर, अटॉर्नी ऑफ लॉ द्वारा प्रतिपक्षी संख्या-3 दिनांक 26.3.2019 को जारी कानूनी नोटिस को छोड़कर बच्चे की कस्टडी के संबंध में किसी भी अमेरिकी न्यायालय के आदेश का कोई विवरण नहीं है, जिसमें उन्होंने प्रतिपक्षी संख्या-3 सुश्री ईशा शुक्ला को संबोधित किया है और उनसे कहा है कि वह परेशान करने वाली अपमानजनक टिप्पणियों और आरोपों के साथ श्री अभिषेक शुक्ला से संपर्क न करें। उन्होंने उसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से श्री शुक्ला के साथ किसी भी संपर्क को रोकने के लिए भी कहा है, हालांकि, रिज्वाइंडर हलफनामे में उन्होंने कहा है कि इस अदालत के समक्ष रिट याचिका दायर करने के अनुसार याचिकाकर्ता-2 ने वाशिंगटन के सुपीरियर कोर्ट, काउंटी किंग, यू.एस.ए के समक्ष एक याचिका दायर की, जिसमें नाबालिग बेटे की कस्टडी के साथ शादी को भंग करने की मांग की गई थी, जो एक अमेरिकी नागरिक है, अमेरिकी अदालत ने प्रतिपक्षी संख्या-3, याचिकाकर्ता-2 की पत्नी को समन जारी किया। 24.10.2020 को प्रतिपक्षी संख्या-3 को तलाक और कस्टडी याचिका के समन के साथ तामील किया गया था और इस संबंध में याचिकाकर्ता-2 ने भारत में प्रतिपक्षी संख्या-3 (पत्नी) पर सेवा का प्रमाण दायर किया था, हालांकि, उसके द्वारा नोटिस प्राप्त करने के बाद, उसने अपने अधिवक्ता के माध्यम से 18.11.2020 को एक नोटिस जारी किया जिसमें याचिकाकर्ता-2 पति को अमेरिकी अदालत में दायर तलाक और कस्टडी मामले को वापस लेने के लिए कहा गया और सूचित किया गया कि उसने भी नोएडा जिला न्यायालय के समक्ष एक विरोधी मुकदमा निषेधाज्ञा दायर की। चूंकि प्रतिपक्षी संख्या-3 उस पर तमीला होने के बाद उपस्थित होने में विफल रहा, इसलिए अमेरिकी न्यायालय ने दिनांक 24.12.2020 के आदेश के तहत याचिकाकर्ता-2 के पक्ष में प्रस्ताव को मंजूरी दे दी और प्रतिपक्षी संख्या-3 को नोटिस दिए बिना मामले में आगे बढ़े। अमेरिकी न्यायालय ने 24.12.2020 के एक अन्य आदेश के तहत निर्देश दिया कि प्रतिपक्षी संख्या-3 (मां) उक्त आदेश के पारित होने के 30 दिनों के भीतर बच्चे को अमेरिकी, नाबालिग बच्चे के मूल राज्य यानी वाशिंगटन राज्य को वापस कर देगी और याचिकाकर्ता-1 यानी बच्चा अपने पिता यानी याचिकाकर्ता-2 के साथ रहेगा और मां वाशिंगटन राज्य में नाबालिग बच्चे के साथ उचित मुलाक़ात अधिकारों का प्रयोग करेगी, दस दिनों तक क्योंकि वह तीन सप्ताह का नोटिस प्रदान करती है और बच्चे को वाशिंगटन राज्य से नहीं हटाती है। अमेरिकी न्यायालय ने भी 24.12.2020 को एक आदेश पारित किया जिसमें निर्देश दिया गया कि प्रतिपक्षी संख्या-3, मां, बच्चे को वाशिंगटन राज्य से नहीं हटाएगी, बल्कि गर्मियों की यात्रा के लिए या पक्षों के समझौते से निकालेगी। याचिकाकर्ता के अनुसार अमेरिकी न्यायालय

अनुवादित

सक्षम क्षेत्राधिकार का न्यायालय है और नाबालिग बच्चे की कस्टडी और कल्याण के मुद्दे निकटतम चिंता है और इसलिए, इस न्यायालय को अपने संक्षिप्त क्षेत्राधिकार का प्रयोग करना होगा और नाबालिग बच्चे को वापस अमेरिकी न्यायालय में वापस भेजना होगा जहां अमेरिकी न्यायालय अंततः यह निर्धारित करेगा कि नाबालिग बच्चे का सर्वोत्तम हित और कल्याण क्या होगा।

29. याचिकाकर्ता-2 का रुख यह है कि माना जाता है कि नाबालिग बच्चा एक अमेरिकी नागरिक है और उसे उसकी स्थिति और उपलब्ध सुविधाओं के साथ-साथ नाबालिग बच्चे को अमेरिकी नागरिक होने के नाते उपलब्ध सामाजिक सुरक्षा जैसी सुविधाओं से वंचित नहीं किया जाना चाहिए। पक्षों ने अमेरिका में नाबालिग बच्चे को जन्म देने का इरादा किया था और इसलिए यह केवल अमेरिकी न्यायालय है जिसे यह निर्धारित करना था कि नाबालिग बच्चे के सर्वोत्तम हित और कल्याण में क्या है। उन्होंने याचिकाकर्ता-2 द्वारा प्रतिपक्षी संख्या-3, दिनांक 26.2.2021 को ग्रेटर नोएडा, यूपी में अपने आवासीय पते पर दायर तलाक के नोटिस और कस्टडी याचिका की व्यक्तिगत सेवा की प्रति दायर की है। उन्होंने वाशिंगटन के सुपीरियर कोर्ट, किंग काउंटी, यू.एस.ए के समक्ष दायर अभिभावकत्व प्लान की एक प्रति भी 18.12.2020 को दायर की है, जिस पर याचिकाकर्ता-2 द्वारा एकतरफा हस्ताक्षर किए गए हैं और कहीं भी बच्चे की मां ईशा शुक्ला, प्रतिपक्षी संख्या-3 के हस्ताक्षर नहीं दिख रहे हैं। उन्होंने वाशिंगटन राज्य के सीएटेल सिटी में दिनांक 18.12.2020 को वाशिंगटन काउंटी ऑफ किंग के सुपीरियर कोर्ट के समक्ष बाल कस्टडी क्षेत्राधिकार के बारे में एक घोषणा भी दायर की है, जिस पर याचिकाकर्ता संख्या-2 द्वारा 12.7.2017 को पैदा हुए बच्चे आरव शुक्ला की कस्टडी के संबंध में भी हस्ताक्षर किए गए हैं और यह स्वीकार किया गया तथ्य है कि इससे पहले, बच्चे को उसकी मां 17.3.2019 को भारत ले गई थी और उसके बाद याचिकाकर्ता-2 ने प्रधान न्यायाधीश, कुटुम्ब न्यायालय, जी.बी. नगर के समक्ष तलाक की याचिका दायर की है। प्रतिपक्षी संख्या-3 द्वारा जवाबी हलफनामे में याचिकाकर्ता-2 के इस संस्करण का खंडन किया गया है कि प्रतिपक्षी संख्या-3 द्वारा, जो मां है, बच्चे के कथित अपहरण के बाद, याचिकाकर्ता-2 को जुलाई, अगस्त, 2019 और दिसंबर, 2019 में भारत में रहने के दौरान अपने बेटे से मिलने की अनुमति नहीं दी गई थी। जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ संख्या-12 में यह विशेष रूप से कहा गया है कि याचिकाकर्ता-2 ने प्रस्तुत बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका दायर करने से पहले प्रतिपक्षी संख्या-3 की उपस्थिति में 24.12.2019 को बहुत छोटे ग्रेटर नोएडा में याचिकाकर्ता-1 से मुलाकात की। 25.3.2021 के पूरक हलफनामे के अनुलग्नक संख्या-4 में, 18.12.2020 की अभिभावकत्व प्लान किंग काउंटी सुपीरियर कोर्ट, न्यायिक इलेक्ट्रॉनिक हस्ताक्षर पृष्ठ, केस संख्या-20-3-04720-5, केस टाइटल शुक्ला बनाम शुक्ला, दस्तावेज़ शीर्षक-अभिभावकत्व प्लान (अंतिम आदेश), लियोनिद पोनोमारचुक द्वारा हस्ताक्षरित

अवधारित

24 दिसंबर, 2020 को दायर की गई है, इसलिए, ऐसा प्रतीत होता है कि अमेरिका में संबंधित अदालत ने 24.12.2020 को बच्चे की कस्टडी के संबंध में कोई अलग आदेश पारित नहीं किया है, हालांकि, अदालत ने याचिकाकर्ता-2 द्वारा 18.12.2020 को दायर अभिभावकत्व प्लान को मंजूरी दे दी है, जिसमें अन्य बातों के साथ यह कहा गया है कि मां बच्चे को वाशिंगटन राज्य से नहीं हटाएगी, लेकिन गर्मियों की यात्रा के लिए या पक्षों के समझौते से, न तो 'पैरेंट' दूसरे को अपमानित करेंगे, न ही बच्चे के सामने किसी भी कानूनी मामलों पर चर्चा करेंगे। जिसके साथ वाशिंगटन राज्य के इस आदेश की प्रविष्टि के 30 दिनों के भीतर, मां बच्चे को अमेरिका लौटा देगी; इस न्यायालय ने दिनांक 26.7.2021 के आदेश में कहा कि "याचिकाकर्ता-2 प्रस्तुत करता है कि वाशिंगटन के सुपीरियर कोर्ट, किंग काउंटी द्वारा 24.12.2020 को पारित एक आदेश है, लेकिन इस न्यायालय के प्रश्न का उत्तर देने की स्थिति में नहीं है कि, जब यह आदेश स्वयं विवाद समाधान और नाम प्रदान करता है और मध्यस्थ या एजेंसी विवाद समाधान के लिए मध्यस्थता/समझौता करने के लिए और कार्यवाही अधिवक्ता के अनुसार होती है और कार्यवाही अधिवक्ता के अनुसार होती है याचिकाकर्ता पहले से ही संबंधित मध्यस्थ के समक्ष चल रहे हैं, हालांकि वह प्रस्तुत करता है कि प्रतिपक्षी संख्या-3 उक्त मध्यस्थ के समक्ष उपस्थित नहीं हो रहा है, यह याचिका कैसे बनाए रखने योग्य है। इस मामले को 29.7.2021 को सूचीबद्ध करें। हालांकि, इस न्यायालय द्वारा दिनांक 26.7.2021 के आदेश में किए गए प्रश्न का याचिकाकर्ता-2 द्वारा लिस्टिंग की बाद की तारीखों पर जवाब नहीं दिया गया है।

30. प्रस्तुत मामले में याचिकाकर्ता-2 द्वारा प्रतिपक्षी संख्या-3 के साथ याचिकाकर्ता-1 के संयुक्त राज्य अमेरिका से भारत जाने के बाद अमेरिकी अदालत के समक्ष हर कानूनी कार्रवाई की गई थी और वह भी प्रस्तुत बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका दायर करने के बाद और ये सभी कार्यवाही प्रतिपक्षी संख्या-3 के एक-पक्षीय हैं। उसने न तो संयुक्त अभिभावकत्व प्लान पर हस्ताक्षर किए हैं और न ही घोषणा के अनुसार, जिसे अदालत के आदेश दिनांक 24.12.2020 द्वारा अनुमोदित किया गया है।

31. कनिका गोयल के मामले (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय का आदेश, प्रस्तुत मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के अधिक निकट है क्योंकि उस मामले में भी नाबालिग बच्चा जन्म से अमेरिकी नागरिक है और अपनी जैविक मां द्वारा नई दिल्ली लाए जाने से पहले तीन साल से अधिक समय तक अपने मूल देश में बड़ा हुआ है। बच्चे के पिता और मां भारतीय मूल के हैं लेकिन पिता शादी के बाद अमेरिका में रहते हैं।

32. प्रस्तुत मामले में मां एम.एस कोर्स में अध्ययन के लिए अमेरिका गई थी और बच्चे के जन्म के बाद पति या पत्नी के बीच संबंध तनावपूर्ण होने के बाद बच्चे के साथ भारत वापस आ गई थी। चूंकि बच्चे को उसके जन्म के देश से एक और 1/3 वर्ष की निविदा आयु में वापस ले लिया गया था, प्रस्तुत मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्रता पर यह

अनुवादित

इंगित करने के लिए कुछ भी नहीं है कि बच्चे को उन सामाजिक रीति-रिवाजों से छुड़ा दिया गया है जिनके लिए वह आदी रहा है। याचिकाकर्ता में से किसी का भी कोई बयान नहीं है कि बच्चे ने अमेरिका में किसी भी प्रकार की शिक्षा प्राप्त की है। ऐसा प्रतीत होता है कि वैवाहिक कलह का तात्कालिक कारण याचिकाकर्ता-2 द्वारा बच्चे को बाल देखभाल में रखने और डे-केयर के खर्चों को पूरा करने के लिए चेक पर हस्ताक्षर न करने के मुद्दे पर था, इसलिए, अमेरिका से भारत में उसके आंदोलन? (पढ़ने) से उसकी शिक्षा में व्यवधान का कोई सवाल ही नहीं है। हालांकि, यह बात स्पष्ट है कि भारत से अमेरिका में स्थानांतरित होने और अपनी मां से पिता को स्थानांतरित करने का निर्देश दिए जाने पर, बच्चे की देखभाल या तो नैनी या डे-केयर संस्थान द्वारा की जाएगी क्योंकि रिकॉर्ड पर सामग्री के अनुसार पिता वर्तमान में वाशिंगटन, अमेरिका में अकेले रह रहे हैं जबकि प्रतिपक्षी संख्या-3 अपने 'पैरेंट' के साथ रह रहा है जहां बच्चे का पालन-पोषण मातृ 'ग्रांडपैरेंट' की देखभाल में किया जा रहा है। वर्तमान में उसकी आयु लगभग पांच वर्ष हो सकती है, इसलिए, यह देखना उचित होगा कि उनकी जड़ें अमेरिका की बजाय भारत में विकसित हुई हैं, इस तथ्य के प्रभाव पड़ सकता है। चूंकि बच्चा बहुत कम उम्र का था, इसलिए यह नहीं माना जा सकता है कि उसे संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रचलित सामाजिक रीति-रिवाजों से अलग कर दिया गया था, जिसके वह आदी रहा है। उसने अमेरिका में किसी भी डे-केयर संस्थान की कोई स्कूली शिक्षा, शिक्षा या देखभाल प्राप्त नहीं की। इसके विपरीत, नाबालिग बच्चा नोएडा बावजूद कि अमेरिका में पैदा होने के बावजूद, उन्हें अमेरिकी नागरिक के रूप में माना जाएगा।

33. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के बाध्यकारी न्यायिक विधि निर्णयों की निहाई में मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्रता को ध्यान में रखते हुए, यह तर्क देने के लिए खुला नहीं है कि अपनी जैविक मां के साथ पुरुष नाबालिग बच्चे की कस्टडी केवल इस तथ्य के कारण गैरकानूनी होगी कि मां ने पिता के अंतरंग या सहमति प्राप्त किए बिना अपने पिता के स्थान से भारत में उसके मूल स्थान तक, संयुक्त राज्य अमेरिका से बच्चा लिया था। बच्चा उस समय केवल 1 और 1/3 वर्ष की आयु का था और उसे अपनी मां की सुरक्षित कस्टडी में रहना चाहिए था और मां के साथ नाबालिग बच्चे की कस्टडी शुरू से ही जारी है। यह अदालत इस मामले में विस्तार और विस्तृत जांच करने के लिए इच्छुक नहीं है। अंतरंग और निकटतम चिंता के सिद्धांत केवल तभी प्रेरक प्रासंगिकता के होते हैं जब बच्चा अपने मूल देश से उखड़ जाता है और विदेशी वातावरण, भाषा, रीति-रिवाजों और परिवेश आदि का सामना करने के लिए एक जगह पर ले जाता है, जिसका उसके समग्र विकास और संवारने की प्रक्रिया पर पर्याप्त (भारत) में आने के बाद से अपनी मां और नाना-नानी और मायके पक्ष के अन्य रिश्तेदारों की उचित देखभाल में है। अमेरिकी अदालत या अमेरिका में किसी सक्षम प्राधिकारी द्वारा बच्चे की कस्टडी के संबंध में कोई सहमति आदेश नहीं है, यहां तक कि कथित आदेश दिनांक 24.12.2020 के बाद भी, जो अमेरिकी अदालत द्वारा अमेरिका से उसके जाने के लंबे समय

अनुवादित

बाद बच्चे की कस्टडी के संबंध में पारित किया गया था। इस तथ्यात्मक परिदृश्य में इस न्यायालय को नाबालिग बच्चे की अमेरिका वापसी का निर्देश देने के लिए कोई बाध्यकारी कारण नहीं मिलता है, जैसा कि याचिकाकर्ता-2 द्वारा प्रार्थना की गई थी और न ही ग्रेटर नोएडा में नाना-नानी के साथ उसकी मां की संगति में उसका रहना किसी भी तरह से उसके हित के लिए प्रतिकूल है। चूंकि विधिक स्थिति माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णयों के आधार पर तय की जाती है कि इस प्रकार के मामलों में बच्चे की अभिरक्षा का मुद्दा अवयस्क बच्चे की अभिरक्षा का दावा करने वाले पक्षकारों के अधिकारों के आधार पर नहीं होना चाहिए बल्कि इस बात पर ध्यान केन्द्रित किया जाना चाहिए कि क्या अवयस्क बच्चे के सर्वोत्तम हित का तथ्य अमरीका लौटना है या अन्यथा। यह नहीं कहा जा सकता है कि भारत में नाबालिग बच्चे की मां के साथ कस्टडी जारी रखना किसी भी तरह से उसके बच्चे के समग्र विकास, पालन-पोषण या संवारने के लिए हानिकारक है या दूसरे शब्दों में इस देश में उसकी मां के साथ उसकी कस्टडी जारी रखना उसके समग्र हित के लिए हानिकारक होगा। याचिकाकर्ता-2, बच्चे के पिता, ने पहले ही अमेरिकी न्यायालय के समक्ष विवाह के विघटन की याचिका दायर की है, जिसके पास उस संबंध में अधिकार क्षेत्र है।

34. जैसा कि यह हो सकता है, किसी भी तरह से प्रस्तुत मामले में अपनी मां के साथ नाबालिग बच्चे की कस्टडी को गैरकानूनी नहीं ठहराया जा सकता है। यह उचित होगा कि नाबालिग पुरुष बच्चे की अभिरक्षा उसकी मां के पास रहे, जो वर्तमान में भारत में अपने मूल स्थान पर रह रही है, जब तक कि वह वयस्कता की आयु प्राप्त नहीं कर लेता, या अमेरिका या भारत में सक्षम क्षेत्राधिकार की अदालत, जैसा भी मामला हो, नाबालिग बच्चे की कस्टडी की कोशिश कर रहा है। तथापि, पिता को मिलने का अधिकार स्वीकार्य है ताकि जब भी वह भारत आए तो अवयस्क बच्चे से मिल सके। यदि अमेरिकी अदालत बच्चे की कस्टडी के किसी भी कानूनी मुद्दे के संबंध में प्रतिपक्षी-3 को तलब करती है, तो उसे अदालत के समक्ष पेश होने की उम्मीद है क्योंकि बच्चा जन्म से अमेरिकी नागरिक है, हालांकि बच्चे के साथ प्रतिपक्षी संख्या-3 की यात्रा का खर्च और कानूनी कार्यवाही में उपस्थित होने के लिए अमेरिका में उसका प्रवास याचिकाकर्ता-2 द्वारा उसके द्वारा किए गए यात्रा व्यय के साथ वहन किया जाएगा। मुलाक़ात का अधिकार याचिकाकर्ता-2, बच्चे के पिता को निम्नानुसार दिया जा रहा है: -

(i)- जब भी याचिकाकर्ता-2, अभिषेक शुक्ला, भारत में उपलब्ध हो, तो वह ई-मेल या टेलीफोन द्वारा प्रतिपक्षी संख्या-3 को सूचित करेगा ताकि वह पिता और पुत्र के बीच मिलने के लिए पारस्परिक रूप से सहमत और आरामदायक जगह पर पिता से मिलने के लिए बच्चे को उपलब्ध करा सके, या तो ग्रेटर नोएडा में या दिल्ली में छुट्टियों के दिन सुबह 11:00 बजे से शाम 5:00 बजे के बीच जब उसका स्कूल बंद हो, या सप्ताह के दिनों में शाम 5:30 बजे से शाम 7:30 बजे के बीच।

(ii) जब पिता बच्चे से मिल रहे होंगे, तो वे बिना किसी पर्यवेक्षण के मिलेंगे। वे मिलेंगे और माता या उनके परिवार के सदस्य वहां उपस्थित हो सकते हैं, लेकिन उनसे पर्याप्त

अनुवादित

दूरी होगी ताकि वे पिता और पुत्र के बीच बातचीत को सुनने में सक्षम न हों और प्रतिपक्षी संख्या-3 या उसके परिवार के सदस्यों द्वारा कोई हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा।

(iii) जब याचिकाकर्ता-2 भारत में है, तो वह अपने नाबालिग बेटे के साथ वीडियो कॉल, स्काइप या व्हाट्सएप के माध्यम से बच्चे के साथ शाम 7:30 बजे (IST) या किसी अन्य मोड में ऑनलाइन संचार/बातचीत कर सकता है।

35. पिता यानी याचिकाकर्ता-2 को उपरोक्त मुलाक़ात का अधिकार देते समय बच्चे के सर्वोपरि हित के लिए अनुकूल है क्योंकि दोनों 'पैरेंट' द्वारा बच्चे के साथ बातचीत बच्चे के भावनात्मक और बौद्धिक विकास और संवारने के लिए आवश्यक और वांछनीय है। प्रतिपक्षी संख्या-3 याचिकाकर्ता-2 को सभी सहयोग देगा ताकि बच्चे के संबंध में उसे दिए गए मुलाक़ात अधिकार का विधिवत एहसास हो और उसका अनुपालन किया जा सके।

36. तदनुसार, प्रस्तुत बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका उपरोक्त टिप्पणियों और निर्देशों के साथ खारिज की जाती है।

(2023) 6 ILRA 628

क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 20.04.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार

माननीय न्यायमूर्ति राजेंद्र कुमार-IV

विशेष अपील संख्या 138 वर्ष 2021

सत्यपाल **अपीलकर्ता**

बनाम

यू.पी. राज्य और अन्य **प्रतिवादी**

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

सुश्री अतीप्रिया गौतम, श्री विनोद कुमार मिश्रा

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

सी.एस.सी.

सेवा कानून - नियुक्ति - महत्वपूर्ण जानकारी का दमन - ऐसे कर्मचारी की विश्वसनीयता और/या भरोसेमंदता जिसने रोजगार के प्रारंभिक चरण में, यानी किसी पद के लिए घोषणा/सत्यापन प्रस्तुत करते समय किसी आपराधिक मामले में शामिल न होने की झूठी घोषणा की हो। नियोक्ता को ऐसे उम्मीदवार को नियुक्त न करने का अधिकार होगा, इसकेअलावा, नियोक्ता को ऐसे कर्मचारी को पद पर बने रहने/नियुक्त करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है। उम्मीदवार/कर्मचारी अधिकार के रूप में नियुक्ति का दावा नहीं कर सकता है और/या पद पर बने रहने का दावा नहीं कर सकता है। (पैरा 12, 13, 14)

यह न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए, उप-निरीक्षक के पद पर उसके चरित्र और विश्वसनीयता को दर्शाने वाले महत्वपूर्ण तथ्य को दबाने के लिए याचिकाकर्ता को नियुक्ति न देने में नियोक्ता द्वारा प्रयोग किए गए विवेक पर अपील में नहीं बैठेगा। (पैरा 15)

विशेष अपील खारिज की गई। (ई-4)

<u>मिसाल का पालन किया गया:</u>

1. अवतार सिंह बनाम यू.ओ.आई. एवं अन्य, 2016 (8) एससीसी 471 (पैरा 6)

अनुवादित

2.सतीश चंद्रा बनाम यू.ओ.आई. एवं अन्य, जे.टी. 2022 (9) एससी 513 (पैरा 12)

3. पवन कुमार बनाम यू.ओ.आई., जे.टी. 2022 (5) एससी 109 (पैरा 12)

4. राजस्थान राज्य विद्युत प्रसारण निगम लिमिटेड एवं अन्य। बनाम अनिल कांवरिया, जे.टी. 2021 (9) एससी 349 (पैरा 13)

वर्तमान अपील में माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 18.02.2021 के आदेश को चुनौती दी गई है, जिसमें अपीलकर्ता की रिट याचिका को खारिज कर दिया गया था, जिसमें प्रतिवादियों को उसे प्रशिक्षण के लिए भेजने और उसके बाद संयुक्त परीक्षा 2011 के अनुसार उप-निरीक्षक के पद पर नियुक्त करने का निर्देश देने की मांग की गई थी।

(माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार द्वारा दिया गया)

1. अपीलकर्ता/याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री विनोद कुमार मिश्रा और राज्य के विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री अरिमर्दन सिंह राजपूत को सुना गया।

2. वर्तमान अंतर न्यायालय अपील विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 18 फरवरी, 2021 के आदेश के विरुद्ध है, जिसके तहत अपीलकर्ता द्वारा प्रतिवादियों को उसे प्रशिक्षण के लिए भेजने और उसके बाद संयुक्त परीक्षा 2011 के अनुसरण में उप-निरीक्षक के पद पर नियुक्त करने के निर्देश देने की मांग वाली याचिका योग्यता के आधार पर और साथ ही देरी के आधार पर खारिज कर दी गई।

3. दूसरे प्रतिवादी उत्तर प्रदेश पुलिस भर्ती एवं प्रोन्नति बोर्ड, लखनऊ (संक्षेप में 'बोर्ड') ने 2011 में सब-इंस्पेक्टर के पद के लिए आवेदन आमंत्रित करते हुए एक विज्ञापन जारी किया था। अपीलकर्ता/याचिकाकर्ता को दूसरे प्रतिवादी द्वारा अधिसूचित 20 सितंबर, 2019 की चयन सूची के अनुसार सब-इंस्पेक्टर प्लाटून कमांडर के पद के लिए चुना गया था। इसके बाद, अपीलकर्ता/याचिकाकर्ता 11 नवंबर, 2018 को मेडिकल परीक्षण के लिए उपस्थित हुआ और उसे सफल घोषित किया गया। दस्तावेज़ सत्यापन के लिए, याचिकाकर्ता ने सक्षम प्राधिकारी के समक्ष नवंबर, 2018 में एक नोटरी हलफनामा दायर किया, जिसमें याचिकाकर्ता ने अपने विरुद्ध दर्ज आपराधिक मामले का खुलासा नहीं किया तथा यह भी नहीं बताया कि याचिकाकर्ता पर आपराधिक मामला चल रहा है।

4. ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिवादियों ने याचिकाकर्ता को आपराधिक मामलों के संबंध में महत्वपूर्ण जानकारी छिपाने के लिए दोषी ठहराया, जो 2011 में याचिकाकर्ता के विरूद्ध दर्ज किए गए थे, हालांकि 2012 में याचिकाकर्ता को बरी कर दिया गया था।

ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिवादियों ने याचिकाकर्ता को 2011 में याचिकाकर्ता के विरूद्ध दर्ज आपराधिक मामलों के संबंध में महत्वपूर्ण जानकारी छिपाने के लिए दोषी ठहराया, हालांकि 2012 में याचिकाकर्ता को बरी कर दिया गया था। तदनुसार, जिला मजिस्ट्रेट ने याचिकाकर्ता के चरित्र प्रमाण पत्र का सत्यापन नहीं किया। याचिकाकर्ता पर एन.सी.आर. मुकदमा संख्या 3/2006 में धारा 323, 504 व 506 *भा.दं.सं.* के तहत मुकदमा चला। इस मामले का निपटारा न्यायिक मजिस्ट्रेट, न्यायालय संख्या 22, गोरखपुर के

अनुवादित

न्यायालय द्वारा धारा 320 भा.दं.सं. के तहत 25.05.2012 के आदेश के तहत किया गया। मुकदमा अपराध संख्या 1056/2010 में धारा 147, 323, 504, 506, 452 भा.दं.सं. के तहत याचिकाकर्ता को न्यायिक मजिस्ट्रेट, न्यायालय संख्या 22, गोरखपुर के आदेश दिनांक 03.09.2011 के आदेश के तहत बरी कर दिया गया।

5. इस न्यायालय की समन्वय पीठ के निर्देश पर विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता का अभिलेख पेश किया है और प्रस्तुत किया है कि 08 नवंबर 2019 के हलफनामे में याचिकाकर्ता ने उन आपराधिक मामलों के बारे में खुलासा नहीं किया है जो पहले उसके विरूद्ध दर्ज किए गए थे, हालांकि, विशेष रूप से पूछा गया था।

6. इस पृष्ठभूमि में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **अवतार सिंह बनाम भारत संघ और अन्य**[1] मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर भरोसा किया है। पैराग्राफ क्रमांक 38.4.1 और 38.4.2 इस प्रकार है:-

"38.4.1. किसी ऐसे मामले में जो प्रकृति में छोटा है, जिसमें दोषसिद्धि दर्ज की गई है, जैसे कि कम उम्र में नारे लगाना या कोई छोटा अपराध, जिसके प्रकट होने पर कोई पदधारी संबंधित पद के लिए अयोग्य नहीं होता, नियोक्ता अपने विवेकानुसार, चूक को माफ करके तथ्यों को छिपाने या गलत सूचना देने की अनदेखी कर सकता है।

38.4.2 जहां दोषसिद्धि ऐसे मामले में दर्ज की गई है जो प्रकृति में छोटा नहीं है, नियोक्ता उम्मीदवारी रद्द कर सकता है या कर्मचारी की सेवाएं समाप्त कर सकता है।"

7. यह प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि अपराध की प्रकृति मामूली थी और याचिकाकर्ता को बरी कर दिया गया था, इसलिए मामलों का खुलासा इस सद्भावनापूर्ण विश्वास पर नहीं किया गया था कि हलफनामे की तिथि पर याचिकाकर्ता के विरूद्ध ऐसा कोई मामला लंबित नहीं था।

8. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने न्यायालय का ध्यान **अवतार सिंह** (उपरोक्त) के पैराग्राफ 38.10 की ओर आकर्षित किया है, जिसमें यह अनिवार्य है कि सभी सूचनाएं, जो आवश्यक थीं, अनुप्रमाणन/सत्यापन फॉर्म में विशेष रूप से उल्लिखित/प्रकट की जानी थीं। ऐसे मामलों में तथ्य के रूप में झूठी जानकारी प्रस्तुत करने या छिपाने के आधार पर कार्रवाई की जा सकती है। पैराग्राफ संख्या 38.10 उद्धृत है:-

38.10. छिपाने या झूठी जानकारी का निर्धारण करने के लिए अनुप्रमाणन/सत्यापन फॉर्म विशिष्ट होना चाहिए, अस्पष्ट नहीं। केवल ऐसी जानकारी का खुलासा किया जाना है, जिसका विशेष रूप से उल्लेख किया जाना आवश्यक था। हालांकि, ऐसे मामलों में तथ्य के बारे में गलत जानकारी देने या उसे छिपाने के आधार पर कार्रवाई नहीं की जा सकती, जिसके बारे में पूछा ही नहीं गया था।"

9. सब-इंस्पेक्टर के पद के लिए उम्मीदवार की उपयुक्तता नियोक्ता द्वारा विचार की जानी चाहिए। नियोक्ता की राय में, आपराधिक मामलों को छिपाना और झूठा हलफनामा दाखिल करना याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी के

अनुवादित

प्रतिकूल माना जा सकता है।

10. गिरफ्तारी, अभियोजन, दोषसिद्धि आदि से संबंधित सत्यापन फॉर्म में महत्वपूर्ण जानकारी को छिपाना और गलत बयान देना कर्मचारी के चरित्र, आचरण और पूर्ववृत्त पर स्पष्ट प्रभाव डालता है और उसकी सेवाएं समाप्त की जा सकती हैं। यहां तक कि जहां कर्मचारी परीक्षण न्यायालय के फैसले के बारे में सच्चाई और सही ढंग से घोषणा करता है, नियोक्ता को अभी भी उसके पूर्ववृत्त पर विचार करने का अधिकार है और उसे उम्मीदवार को नियुक्त करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है।

11. आपराधिक मामले में बरी होने से पदधारी को स्वचालित रूप से नियुक्ति का अधिकार नहीं मिल जाता है और नियुक्ति के लिए उपयुक्तता और फिटनेस की जांच करना नियोक्ता के लिए खुला होगा, प्रत्येक मामले की नियोक्ता/प्राधिकारी द्वारा पूरी तरह से जांच की जानी चाहिए। पुलिस बल में भर्ती के मामले में और भी अधिक, क्योंकि जनता का विश्वास जगाने की उनकी क्षमता समाज की सेवा और जांच के लिए आवश्यक है।

12. **सतीश चंद्र यादव बनाम भारत संघ और अन्य**[2] में सर्वोच्च न्यायालय ने **अवतार सिंह** (उपरोक्त) के बाद कानून की स्थिति पर विचार किया है। न्यायालय ने कहा कि नियोक्ता का निर्णय प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों और उम्मीदवार द्वारा मांगी गई नियुक्ति की प्रकृति पर निर्भर करेगा। **पवन कुमार बनाम भारत संघ**[3] में, अपीलकर्ता ने याचिकाकर्ता द्वारा भरे गए अपने सत्यापन फॉर्म में अभियोजन का खुलासा नहीं किया था। अपीलकर्ता को बाइज्जत बरी कर दिया गया। सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार निर्णय दिया:-

> *"13. इस न्यायालय द्वारा निर्धारित व्याख्या से यह बात उभर कर आती है कि केवल तथ्यात्मक/झूठी सूचना को छिपाने से, चाहे दोषसिद्धि हो या दोषमुक्ति दर्ज हो गई हो, कर्मचारी/भर्ती को केवल कलम के एक झटके से सेवा से मुक्त/समाप्त नहीं किया जा सकता।* ***साथ ही, किसी आपराधिक मामले से संबंधित महत्वपूर्ण/झूठी सूचना को छिपाने का प्रभाव, यदि कोई हो, नियोक्ता पर छोड़ दिया जाता है कि वह सभी प्रासंगिक तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करे, जो कि पूर्ववृत्त के रूप में उपलब्ध हैं तथा वस्तुनिष्ठ मानदंडों और प्रासंगिक सेवा नियमों को ध्यान में रखते हुए, कर्मचारी की सेवा में निरंतरता/उपयुक्तता के संबंध में उचित निर्णय ले।"***

13. इसी प्रकार, **राजस्थान राज्य विद्युत प्रसारण निगम लिमिटेड एवं अन्य बनाम अनिल कंवरिया**[4] में, अपीलकर्ता को धारा 143, 341 और 323 *भा.दं.सं.* के तहत आपराधिक मामले में दोषी ठहराया गया था, फिर भी परीक्षण न्यायालय ने उसे परिवीक्षा पर रिहा करना उचित समझा। न्यायालय ने पैराग्राफ 14 में निम्नानुसार टिप्पणी की:-

> ***"14. इस मुद्दे/प्रश्न पर दूसरे दृष्टिकोण से, अर्थात् नियोक्ता के दृष्टिकोण से भी विचार किया जा सकता है। प्रश्न यह नहीं है कि क्या कोई कर्मचारी मामूली प्रकृति के विवाद में शामिल था और क्या वह बाद में***

अनुवादित

बरी हो गया है या नहीं। सवाल ऐसे कर्मचारी की विश्वसनीयता और/या भरोसेमंदी का है जिसने नौकरी के शुरुआती चरण में यानी घोषणा/सत्यापन प्रस्तुत करते समय और/या पद के लिए आवेदन करते समय गलत घोषणा की और/या आपराधिक मामले में शामिल होने के तथ्य को उजागर नहीं किया और/या छिपाया। *अगर सही तथ्य उजागर किए गए होते तो नियोक्ता उसे नियुक्त ही नहीं करता। फिर सवाल भरोसे का है। अत: ऐसी स्थिति में, जहां नियोक्ता को लगता है कि किसी कर्मचारी ने प्रारंभिक स्तर पर ही गलत बयान दिया है और/या तथ्यात्मक तथ्यों का खुलासा नहीं किया है और/या तथ्यात्मक तथ्यों को छिपाया है और इसलिए उसे सेवा में जारी नहीं रखा जा सकता है, क्योंकि ऐसे कर्मचारी पर भविष्य में भी भरोसा नहीं किया जा सकता है, नियोक्ता को ऐसे कर्मचारी को सेवा में बनाए रखने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है।* ***पुनरावृत्ति की कीमत पर, यह देखा गया है और जैसा कि निर्णय की श्रृंखला में ऊपर देखा गया है, ऐसा कर्मचारी नियुक्ति का दावा नहीं कर सकता है और / या सेवा में बने रहना अधिकार के रूप में नहीं कर सकता है।"***

14. **अवतार सिंह** (उपरोक्त) के पश्चात ऊपर उल्लिखित न्यायिक अधिकारियों के मद्देनजर। ऐसे कर्मचारी की विश्वसनीयता, और / या भरोसेमंदता जो रोजगार के प्रारंभिक चरण में, यानी, किसी पद के लिए घोषणा / सत्यापन प्रस्तुत करते समय आपराधिक मामले में शामिल नहीं होने की झूठी घोषणा करता है। नियोक्ता ऐसे उम्मीदवार को नियुक्त नहीं करने में न्यायसंगत होगा, इसके अलावा, नियोक्ता को ऐसे कर्मचारी को पद पर जारी रखने / नियुक्त करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है। उम्मीदवार / कर्मचारी नियुक्ति का दावा नहीं कर सकता और / या अधिकार के रूप में पद पर बने रहने का दावा नहीं कर सकता है।

15. यह न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने विवेकाधीन क्षेत्राधिकार के तहत, उप-निरीक्षक के पद पर उसके चरित्र और विश्वसनीयता को दर्शाने वाले भौतिक तथ्य को छिपाने के लिए याचिकाकर्ता को नियुक्ति की पेशकश नहीं करने में नियोक्ता द्वारा प्रयोग किए गए विवेक पर अपील में नहीं बैठेगा।

16. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, हम विद्वान एकल न्यायाधीश की राय से भिन्न राय लेने के लिए इच्छुक नहीं हैं।

17. अपील में कोई दम नहीं होने के कारण, तदनुसार, उसे खारिज किया जाता है।

(2023) 6 ILRA 948

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 09.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती सुनीता अग्रवाल

अनुवादित

माननीय न्यायमूर्ति विकास बुधवार

विशेष अपील संख्या 234 वर्ष 2023

विनोद कुमार एवं अन्य अपीलकर्ता

बनाम

श्री वीर बहादुर यादव एवं अन्य प्रतिवादी

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता: श्री शशि कांत

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी.

सिविल कानून - न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1926 - न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1971- धारा 12 और 19-विशेष अपील की स्थिरता-अवमानना कार्यवाही आरंभ करने से इंकार करने वाले एकल न्यायाधीश के आदेश के विरुद्ध-अवमानना कानून का ऐतिहासिक विकास- न्यायालय की अवमानना (संशोधन) अधिनियम, 1937-न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1952-सान्याल समिति ने 28.02.1963 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की-न्यायालय की अवमानना विधेयक, 1963-न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1971-धारा 12 और 19-अपील- इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम, 1952 का अध्याय VIII नियम 5- एकल न्यायाधीश के आदेश के विरुद्ध विशेष अपील- विभिन्न न्यायिक घोषणाएँ- अंतर-न्यायालय विशेष अपील-अवमानना कार्यवाही आरंभ करने से इंकार करने वाले एकल न्यायाधीश के आदेश के विरुद्ध- अनुरक्षणीय नहीं- विशेष अपील खारिज। (पैरा 12, 15, 25, 26 और 33)

निर्णय:

न्यायालय अवमानना अधिनियम, 1971 की धारा 19 के अवलोकन से पता चलता है कि 1971 अधिनियम की धारा 19 की उपधारा (1) के अंतर्गत, अवमानना के लिए दंडित करने के अपने अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में उच्च न्यायालय के किसी आदेश या निर्णय के विरुद्ध अपील, जहां आदेश या निर्णय एकल न्यायाधीश का है, न्यायालय के कम से कम दो न्यायाधीशों की पीठ के समक्ष और जहां आदेश या निर्णय पीठ का है, वहां सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अपील की जा सकेगी। (पैरा 12)

न्यायालय के नियमों के अध्याय VIII के नियम 5 में यह प्रावधान है कि न्यायालय द्वारा पारित डिक्री या आदेश के संबंध में अपीलीय अधिकारिता के प्रयोग में पारित निर्णय न होने तथा पुनरीक्षण अधिकारिता के प्रयोग में या उसके अधीक्षण की शक्ति के प्रयोग में या आपराधिक अधिकारिता के प्रयोग में या संविधान के अनुच्छेद 226 या अनुच्छेद 227 द्वारा प्रदत्त अधिकारिता के प्रयोग में पारित आदेश न होने वाले किसी न्यायाधिकरण, न्यायालय या सांविधिक मध्यस्थ के किसी निर्णय, आदेश या पंचाट के संबंध में, जो संविधान की 7वीं अनुसूची में अनुसूचित सूची या समवर्ती सूची में सूचीबद्ध किसी विषय के संबंध में किसी उत्तर प्रदेश अधिनियम या किसी केंद्रीय अधिनियम के अधीन अधिकारिता के प्रयोग या प्रकल्पित प्रयोग में पारित किया गया हो या पारित किए जाने का प्रकल्पना हो, या किसी सरकार, किसी अधिकारी या प्राधिकरण द्वारा पारित किया गया हो या पारित किए जाने का प्रकल्पना हो, जो ऐसे अधिनियम के अधीन अपीलीय या पुनरीक्षण अधिकारिता के प्रयोग या प्रकल्पित प्रयोग में पारित किया गया हो। (पैरा 15)

उपर्युक्त निर्णय में इस प्रकार निकाले गए विधि के प्रस्ताव में स्पष्ट रूप से कहा गया है

अनुवादित

कि न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1971 की धारा 19 के अंतर्गत अवमानना कार्यवाही समाप्त करने के विरुद्ध कोई अपील स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि इसका समाधान भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के अंतर्गत माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष उपलब्ध है। (पैरा 25)

जहां तक इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम के अध्याय VIII नियम 5 के अंतर्गत विशेष अपील की स्वीकार्यता के संबंध में मुद्दे का संबंध है, अपील केवल उन परिस्थितियों में स्वीकार्य है, जिनमें निर्णय या आदेश के कार्यान्वयन के प्रयोजनों के लिए पक्षों के बीच विवाद या विवाद की योग्यता को छूते हुए अवमानना क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया गया हो और इसे संविधान के अनुच्छेद 226 द्वारा प्रदत्त शक्ति के प्रयोग में जारी किया गया माना गया हो। (पैरा 26)

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय और इस न्यायालय ने लगातार माना है कि जब अवमानना कार्यवाही शुरू नहीं की जा रही है, तो आकस्मिकता में अवमानना क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाले विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश के खिलाफ अंतर-न्यायालय अपील स्वीकार्य नहीं है। दुर्गा नागपाल (सुप्रा) के मामले में निर्णय पर भरोसा करना गलत और अनुचित है क्योंकि उक्त मामले में, अपीलीय क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय माननीय न्यायाधीशों को ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ा जहां अंतिम निर्णय में संशोधन के लिए विविध आवेदन पर विचार करने के बाद अवमानना न्यायालय ने अपने ही आदेश की समीक्षा की। खंडपीठ ने कहा कि जब अभियुक्तों को बरी कर दिया जाता है और कार्यवाही बंद हो जाती है, तो संशोधन के लिए विविध आवेदन स्वीकार्य नहीं है। उक्त परिप्रेक्ष्य में, विशेष अपील स्वीकार्य मानी गई। चूंकि वर्तमान मामला अवमानना क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से इनकार करने वाले अवमानना न्यायालय के निर्णय और आदेश से उत्पन्न हुआ है, इसलिए उक्त निर्णय अपीलकर्ताओं के लिए कोई सहायता नहीं करता है। (पैरा 33)

अपील खारिज। (ई-14)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. दुर्गा नागपाल बनाम प्रबंधन समिति, पैट्रोनेज इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट स्टडीज, 2013 में रिपोर्ट किया गया (7) एडीजे 223
2. बरदकांत मिश्रा बनाम जस्टिस गतिकृष्ण मिश्रा (1975) 3 एससीसी 535
3. बॉम्बे हाईकोर्ट ने नरेंद्रभाई साराभाई हठीसिंग बनाम चिनुभाई मणिभाई सेठ आईएलआर 60 बॉम 894 में फैसला सुनाया
4. डी.एन. तनेजा बनाम भाजन लाल ने 1988 (3) एससीसी 26 में रिपोर्ट की
5. महाराष्ट्र के सेंट बनाम महबूब एस. अलीभॉय और अन्य ने (1996) 4 एससीसी 411 में रिपोर्ट की
6. सुजितेंद्र नाथ सिंह रॉय बनाम पश्चिम बंगाल के सेंट और अन्य ने (2015) 12 एससीसी 514 में रिपोर्ट की
7. ए.पी. वर्मा बनाम यू.पी. प्रयोगशाला तकनीशियन संघ और अन्य, सी.एम. अवमानना अपील संख्या 102/1997 में, मनु/यूपी/0553/1998 में रिपोर्ट की गई
8. माहेश्वरी प्रसाद मिश्रा बनाम श्रीमती अचला खन्ना ने (2006) 64 एएलआर 627 (सभी) में रिपोर्ट की

अनुवादित

9. श्रीमती मंजू श्री रॉबिन्सन बनाम श्रीमती चिरकुमारिथवा यादव एसीजे (जे.डी.) ने (2014) 86 एसीसी 181 में रिपोर्ट की

10. शिव चरण बनाम नवल एवं अन्य, 1997(3) ए.डब्ल्यू.सी. 1909

11. हेमेंद्र स्वरूप भटनागर बनाम श्री पी.एस. गोसाईं ने 2007 (1) ए.डब्ल्यू.सी. 1045 में रिपोर्ट की

12. अश्वनी कुमार बनाम महेंद्र प्रताप सिंह ने विशेष अपील संख्या 400/2021 में रिपोर्ट की

(माननीय न्यायमूर्ति विकास बुधवार द्वारा वितरित)

1. यह अंतर-न्यायालयीय अपील अवमानना आवेदन (सिविल) सं. 1894 सन् 2023 में अवमानना क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 17.03.2023 के निर्णय और आदेश के खिलाफ है, जिसके द्वारा विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह पाते हुए कि विपरीत पक्ष ने अवमानना नहीं की है, अवमानना की कार्यवाही शुरू करने से इंकार कर दिया।

2. अवमानना न्यायालय के समक्ष रिट याचिकाकर्ता का पक्ष यह था कि दिनांक 07.09.2022 को जनहित याचिका (पीआईएल) सं. 1686 सन् 2022 (विनोद कुमार गुप्ता और अन्य बनाम उ.प्र. राज्य और 3 अन्य) में, अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता को स्वतंत्रता दी गई थी कि सार्वजनिक भूमि पर अतिक्रमण हटाने के लिए उ.प्र. राजस्व संहिता, 2006, की धारा 67 के तहत उचित मंच से संपर्क करे। हालांकि, इस तथ्य के बावजूद कि अपीलकर्ता-रिट याचिकाकर्ता ने दिनांक 21.09.2022, 01.10.2022 और 15.02.2023 को सक्षम प्राधिकारी के समक्ष अपना पक्ष रखा, किन्तु प्रतिपक्षी के स्तर पर कोई कार्रवाई नहीं की गई जिस वजह से अपीलकर्ता-रिट याचिकाकर्ता ने रिट-न्यायालय के आदेशों की अवज्ञा का आरोप लगाते हुए अवमानना याचिका दायर किया है।

3. दलील दी गई है कि प्रतिपक्षी गण के खिलाफ अवमानना का स्पष्ट मामला बनता है, लेकिन विद्वान एकल न्यायाधीश ने अदालत की अवमानना अधिनियम, 1971 की धारा 12 के तहत निहित अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने से इनकार करके कानूनन त्रुटि की है।

4. अपीलकर्ता-रिट याचिकाकर्ता ने **दुर्गा नागपाल बनाम प्रबंधन समिति, पैट्रनेज इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट स्टडीज 2013 (7) एडीजे 223** के मामले में दिए गए फैसले का अवलंब लेते हुए दलील दिया है कि अवमानना कार्यवाही शुरू करने से इनकार करने वाले विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश के खिलाफ वर्तमान अंतर न्यायालयीय अपील पोषणीय है।

5. अपीलकर्ता की ओर से वर्तमान कार्यवाही की पोषणीयता से संबंधित मुद्दे पर विचार करने से पहले, यह न्यायालय अवमानना के कानून को नियंत्रित करने वाले वैधानिक अधिनियमों की एक संक्षिप्त रूपरेखा देना उचित समझता है।

6. ऐतिहासिक रूप से, स्वतंत्रता-पूर्व, **न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1926 (अधिनियम सं. XII सन् 1926),** परिषद के गवर्नर जनरल द्वारा दिनांक 8.3.1926 को अधिसूचित किया गया था। न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1926 निम्नवत उद्धृत है :

अनुवादित

"न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1926

अधिनियम सं. XII सन् 1926

[8 मार्च, 1926]

न्यायालयों की अवमाननाओं को दंडित करने की कतिपय न्यायालयों की शक्तियों को परिभाषित और सीमित करने के लिए अधिनियम।

अधीनस्थ न्यायालयों की अवमाननाओं को दंडित करने की उच्च न्यायालय की शक्तियों पर उत्पन्न संदेह और इन शंकाओं का समाधान करने और न्यायालयों की अवमाननाओं को दंडित करने में उच्च न्यायालयों और मुख्य न्यायालयों द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्तियों को परिभाषित और सीमित करने की आवश्यकता के दृष्टिगत, इसे एतद्द्वारा इसप्रकार अधिनियमित किया जाता है:

1. (1) इस अधिनियम को न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1926 कहा जाएगा।

(2) इसका विस्तार संपूर्ण ब्रिटिश भारत पर होगा।

(3) यह उस तारीख से लागू होगा जो गवर्नर जनरल इन काउंसिल भारत के राजपत्र में अधिसूचना द्वारा तय करें।

2. (1) उप-धारा (3) के प्रावधानों के अधीन, लेटर्स पेटेंट द्वारा स्थापित उच्च न्यायालयों के पास अपने अधीनस्थ न्यायालयों की अवमानना के संबंध में उस प्रक्रिया और प्रथा के अनुरूप वही क्षेत्राधिकार, शक्तियां और अधिकार होंगे और प्रयोग किए जाएंगे जो वे स्वयं की अवमानना के संबंध में प्रयोग करते हैं।

(2) उप-धारा (3) के प्रावधानों के अधीन, एक मुख्य न्यायालय के पास स्वयं की अवमानना के संबंध में उसी प्रक्रिया और प्रथा के अनुसार वैसा ही क्षेत्राधिकार, शक्तियां और प्राधिकार होगा और उसका प्रयोग किया जाएगा जैसा कि उपधारा (1) सन्दर्भित किसी उच्च न्यायालय के पास होता है।

(3) कोई भी उच्च न्यायालय अपने अधीनस्थ न्यायालय के संबंध में की गई कथित अवमानना का संज्ञान नहीं लेगा, जहां ऐसी अवमानना भारतीय दंड संहिता के तहत दंडनीय अपराध हो।

अनुवादित

3. तत्समय प्रवृत्त किसी भी कानून द्वारा अन्यथा स्पष्ट रूप से उपबंधित को छोड़कर, अदालत की अवमानना छः माह के साधारण कारावास या दो हजार रूपये का जुर्माना या दोनों से दण्डनीय होगा।

बशर्ते कि अदालत की संतुष्टि के अनुसार माफी मांगने पर आरोपी को बरी किया जा सकता है या दी गई सजा माफ की जा सकती है।"

7. इसके बाद गवर्नर जनरल ने दिनांक 10.3.1937 को अधिनियम संख्या XII सन् 1937 के द्वारा न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1926 में संशोधन किया, जिसे न्यायालय की अवमानना (संशोधन) अधिनियम, 1937 कहा गया। इस न्यायालय की सुविधा के लिए, इसे निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है :

"न्यायालय की अवमानना (संशोधन) अधिनियम, 1937*

अधिनियम सं. XII सन् 1937

कतिपय निश्चित उद्देश्य के लिए न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1926 में संशोधन करने के लिए अधिनियम। जहाँ एतश्मिनपश्चात उल्लिखित उद्देश्य के लिए न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1926 में संशोधन करना समीचीन हो; इसे एतद्द्वारा निम्नवत अधिनियमित किया जाता है :

1. संक्षिप्त शीर्षक। इस अधिनियम को न्यायालय की अवमानना संशोधन अधिनियम, 1937 कहा जाएगा।

2. अधिनियम XII सन् 1926 की प्रस्तावना में संशोधन। न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1926 (एतश्मिनपश्चात उक्त अधिनियम के रूप में संदर्भित) की प्रस्तावना में, "अधीनस्थ" शब्द निरसित कर दिया जाएगा।

3. अधिनियम XII सन् 1926 की धारा 3 का संशोधन। उक्त अधिनियम की धारा 3 में निम्नलिखित परंतुक जोड़ा जाएगा, अर्थात्:

"बशर्ते कि किसी भी कानून में कहीं और कुछ भी शामिल होने के बावजूद, कोई भी उच्च न्यायालय अपने या अपने अधीनस्थ न्यायालय के संबंध में किसी भी अवमानना के लिए इस धारा में निर्दिष्ट सजा से अधिक की सजा नहीं देगा।"

अनुवादित

8. स्वतंत्रता के बाद, न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1952 (अधिनियम संख्या XXXII), 1952 के नाम से एक और अधिनियम अधिसूचित किया गया, जिसे दिनांक 14.3.1952 को राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त हुई। वह इस प्रकार है:-

"न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1952*

अधिनियम सं. XXXII सन् 1952

न्यायालयों की अवमाननाओं को दंडित करने की कुछ न्यायालयों की शक्तियों को परिभाषित और सीमित करने के लिए अधिनियम:

1. संक्षिप्त शीर्षक और विस्तार. *(i) इस अधिनियम को न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1952 कहा जाएगा।*

(ii) इसका विस्तार जम्मू और कश्मीर राज्य को छोड़कर पूरे भारत में है।

2. परिभाषा. इस अधिनियम में, "उच्च न्यायालय" का अर्थ किसी राज्य का उच्च न्यायालय है और इसमें केंद्र शासित प्रदेश में न्यायिक आयुक्त का न्यायालय भी शामिल है।

3. अधीनस्थ न्यायालयों की अवमानना करने वालों को दंडित करने की उच्च न्यायालय की शक्ति। (i)- उप-धारा (II) के प्रावधानों के अधीन, उच्च न्यायालयों के पास अपने अधीनस्थ न्यायालयों की अवमानना के संबंध में उस प्रक्रिया और प्रथा के अनुरूप वही क्षेत्राधिकार, शक्तियां और अधिकार होंगे और प्रयोग किए जाएंगे जो वे स्वयं की अवमानना के संबंध में प्रयोग करते हैं।

(ii) कोई भी उच्च न्यायालय अपने अधीनस्थ न्यायालय के संबंध में की गई कथित अवमानना का संज्ञान नहीं लेगा, जहां ऐसी अवमानना भारतीय दंड संहिता (अधिनियम XLV सन् 1860) के तहत दंडनीय अपराध है।

4. न्यायालय की अवमानना के लिए सजा की सीमा- तत्समय लागू किसी भी कानून द्वारा अन्यथा स्पष्ट रूप उपबंधित को छोड़कर, अदालत की अवमानना के लिए छः माह की साधारण कैद या दो हजार जुर्माना या दोनों से दंडित किया जा सकता है:

बशर्ते कि अभियुक्त को न्यायालय की संतुष्टि के

अनुवादित

अनुसार माफी मांगने पर आरोपमुक्त किया जा सकता है या दी गई सजा माफ की जा सकती है:

बशर्ते कि तत्समय लागू किसी भी कानून में कहीं और कुछ भी शामिल होने के बावजूद, कोई भी उच्च न्यायालय अपने या अपने अधीनस्थ न्यायालय के संबंध में किसी भी अवमानना के लिए इस धारा में निर्दिष्ट सजा से अधिक सजा नहीं देगा।

**14 मार्च 1952 को राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त हुई।*

5. किए गए अपराधों के विचारण या क्षेत्राधिकार के बाहर के अपराधियों के संबंध में उच्च न्यायालय की शक्ति- किसी उच्च न्यायालय के पास अपनी या अपने अधीनस्थ किसी भी अदालत की अवमानना की जांच करने या मुकदमा चलाने का क्षेत्राधिकार होगा, चाहे अवमानना उसके अधिकार क्षेत्र की स्थानीय सीमा के भीतर या बाहर की गई हो और चाहे उक्त अवमानना का दोषी व्यक्ति ऐसी सीमाओं के भीतर हो या बाहर हो।

6. निरसन और व्यावृत्ति (i) न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1926 (XII सन् 1926), और अनुसूची में निर्दिष्ट अधिनियम को एतद्द्वारा निरस्त किया जाता है।

*(ii) सामान्य खंड अधिनियम, 1897 (X सन् 1897) की धारा 6, अनुसूची में निर्दिष्ट किसी भी कानून के निरसन पर लागू होगी जैसा यह न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1926 (XII सन् 1926) के निर**सन पर लागू होती है। अनुसूची [निरसित]"***

9. चूंकि कुछ ऐसे क्षेत्र थे, जो न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1952 के अंतर्गत शामिल नहीं थे, इसलिए एक सान्याल समिति का गठन किया गया, जिसने दिनांक 28.2.1963 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की और न्यायालय की अवमानना अधिनियम में कुछ संशोधन और परिवर्धन का प्रस्ताव दिया। अध्याय XI के तहत सान्याल समिति ने पहली बार "अपील के अधिकार" के प्रावधान की शुरुआत की सिफारिश की। सुविधा के लिए, अध्याय XI और XII को विस्तार से यहाँ उद्धृत किया गया है:

"अध्याय XI

अपील का अधिकार

अनुवादित

1. अवमानना के कानून की वह विशेषता जिसने काफी आलोचना को जन्म दिया है, आपराधिक अवमानना के लिए पारित सजा के संबंध में गैर-अपीलीयता से संबंधित है। यह कहा गया है कि यदि अपील का अधिकार प्रदान किया जाता है तो अवमाननाकर्ताओं को दंडित करने की अदालत की बड़ी शक्तियों के खिलाफ अधिकांश आलोचना गायब हो जाएगी। पिछले अध्याय में, हमने बताया है कि कैसे न्यायाधीश, अन्य मनुष्यों की तरह, त्रुटिरहित नहीं होते हैं और चूंकि अवमानना के लिए कारावास की किसी भी सजा में व्यक्तिगत स्वतंत्रता का मौलिक प्रश्न शामिल होता है, इसलिए यह उचित है कि इसमें अपील का प्रावधान होना चाहिए। जैसा कि शॉक्रॉस समिति ने कहा: "... किसी भी सभ्य राज्य की कानून की प्रत्येक प्रणाली में कारावास की सजा के खिलाफ अपील का अधिकार हमेशा होता है।" अवमानना की सज़ा के मामले में इस सर्वमान्य सिद्धांत में कोई अपवाद करने का कोई औचित्य नहीं है।

2.1 आपराधिक अवमानना के मामलों में अपील से संबंधित कानून की वर्तमान स्थिति नीतिगत मामले से अधिक कानूनी इतिहास की दुर्घटनाओं का परिणाम प्रतीत होती है। ऐसा इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि अवमानना के इन मामलों में जिनके लिए भारतीय दंड संहिता और दंड प्रक्रिया संहिता में विशिष्ट प्रावधान किए गए हैं, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 486 के तहत अपील का अधिकार प्रदान किया गया है। उच्च न्यायालयों की अंतर्निहित शक्तियों के दायरे में आने वाले अवमानना के मामले में उच्च न्यायालयों के लेटर्स पेटेंट में कोई विशेष प्रावधान नहीं किया गया है और इसके लिए एकमात्र स्पष्टीकरण यह प्रतीत होता है कि इंग्लैंड में अंग्रेजी उच्चतर न्यायालयों के संबंध में ऐसा कोई प्रावधान नहीं किया गया था। इसके अलावा, लेटर्स पेटेंट के प्रावधानों के तहत, जहां आपराधिक क्षेत्राधिकार के प्रयोग में अदालत का आदेश दिया जाता है, वहां कोई अपील आम तौर पर स्वीकार्य नहीं होती है। यह भी माना

अनुवादित

गया है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 411-ए अवमानना मामलों में अपील के माध्यम से कोई उपचार प्रदान नहीं करती है। 2. नतीजा यह हुआ कि संविधान लागू होने से पहले अवमानना के मामलों में उच्च न्यायालय के फैसले के खिलाफ अपील केवल विशेष मामलों में ही न्यायिक समिति में की जा सकती थी। 3. संविधान ने इस स्थिति में बहुत अधिक बदलाव नहीं किया है क्योंकि संविधान के अनुच्छेद 134 और 136 का प्रभाव केवल प्रिवी काउंसिल के स्थान पर सर्वोच्च न्यायालय को प्रतिस्थापित करना है। संक्षेप में, वर्तमान में आपराधिक अवमानना के मामलों में ही अपील का विवेकाधीन अधिकार उपलब्ध है।

2.2 जहां तक बात है अवमानना के मामलों में अपील के विवेकाधीन अधिकार ने गलत निर्णयों को रद्द करने के साथ-साथ कानून के सिद्धांतों के संबंध में कुछ हद तक एकरूपता और निश्चितता लाने की दिशा में भी बहुत उपयोगी उद्देश्य पूरा किया है। अवमानना से संबंधित. शॉक्रॉस समिति ने आठ रिपोर्ट किए गए मामलों का उल्लेख किया है जिनमें आपराधिक अवमानना के लिए दोषसिद्धि पर प्रिवी काउंसिल की न्यायिक समिति द्वारा मेरिट के आधार पर विचार किया गया था, ये उस प्रकार के एकमात्र मामले थे जिन्हें आप खोज सकते थे। उन्होंने बताया कि यह उल्लेखनीय है कि एक को छोड़कर (जिसमें जुर्माना कम किया गया था) हर मामले में अपील स्वीकार की गई और दोषसिद्धि रद्द कर दी गई। हमारे सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अपील पर आए मामलों की कहानी भी बहुत अलग नहीं है। अधिकांश मामलों में सर्वोच्च न्यायालय ने उच्च न्यायालय के निर्णय को संशोधित करना या उलटना आवश्यक पाया है। इस संबंध में निम्नलिखित का उल्लेख किया जा सकता है:

(1) ***रिज़वान-उल-हसन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1953 एससीआर 581***

(उच्च न्यायालय का फैसला अपास्त किया गया)।

अनुवादित

(2) ***ब्रह्म प्रकाश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1953 एससीआर 1169***

(उच्च न्यायालय का फैसला अपास्त किया गया) ।

(3) ***शरीफ बनाम नागपुर उच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीश, (1955) 1 एससीआर 757***

(उच्च न्यायालय को अवमाननाकर्ताओं द्वारा माफी स्वीकार करने का अवसर दिया गया और उच्च न्यायालय द्वारा असफल रहने पर, उच्च न्यायालय द्वारा पारित जुर्माने की सजा को अपास्तकर दिया गया)।

(4) ***मध्य प्रदेश राज्य बनाम रेवाशंकर, 1959 एससीआर 1367***

(न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1952 की धारा 3(2) की उच्च न्यायालय की व्याख्या को गलत ठहराया गया)।

(5) ***एस.एस. रॉय बनाम उड़ीसा राज्य, एआईआर 1960 एस.सी. 190***

(उच्च न्यायालय का फैसला अपास्त कर दिया गया)।

(6) ***बी.के. कार बनाम उड़ीसा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश और उनके साथी न्यायाधीश। ए.आई.आर. 1961 एस.सी. 1367***

(उच्च न्यायालय का फैसला अपास्त कर दिया गया)।

3.1 यह कहा जा सकता है कि अपील का विवेकाधीन अधिकार जैसा कि वर्तमान में मौजूद है, पर्याप्त है क्योंकि अधिकांश मामलों में उच्च न्यायालय स्वयं उपयुक्त मामलों में अनुच्छेद 134 के तहत उचित प्रमाण पत्र दे सकता है और जहां उच्च न्यायालय इनकार करता है, वहां सर्वोच्च न्यायालय अनुच्छेद 136 के तहत विशेष अनुमति देकर हस्तक्षेप कर सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं है, कि इस तर्क में कुछ बल है और शायद यही कारण है कि प्राप्त सुझावों में से एक या दो में हमें बताया गया है कि अधिकार के रूप में अपील के लिए प्रावधान करना आवश्यक नहीं है या कि अधिकार को अनुमति दी जा सकती है यदि सज़ा एक निश्चित सीमा से अधिक हो। लेकिन कानून की अनिश्चित

अनुवादित

स्थिति और इस तथ्य पर विचार करते हुए कि सभी आपराधिक मामलों में अपील का निश्चित रूप से उपबंध किया जाना चाहिए, हमारी राय है कि अपील का अधिकार सभी मामलों में उपलब्ध होना चाहिए और हम तदनुसार अनुशंसा करते हैं कि किसी अवमानना के लिए दंड देने वाले एकल न्यायाधीश के आदेश के खिलाफ अपील उच्च न्यायालय में न्यायाधीशों की पीठ के समक्ष होनी चाहिए और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की पीठ के समान आदेश के खिलाफ अपील उच्चतम न्यायालय में होनी चाहिए।

3.2 अवमानना मामलों में अपील को अधिकार के रूप में अनुमति देने के संबंध में हमने जो सिफारिश की है, वह हमारे कानून को हाल के वर्षों में अंग्रेजी कानून में हुए विकास के अनुरूप बनाएगी। यह सुझाव देने का हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि हमें इंग्लैण्ड में हुए प्रत्येक परिवर्तन को अपनी भूमि पर लागू करना चाहिए। लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि यदि जिस प्रणाली से हमारा कानून बना है, उसमें बदलाव आवश्यक महसूस किया गया है, तो यह हमारे कानून में स्थिति की समीक्षा करने के लिए एक मजबूत तर्क होगा, ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या समानांतर परिवर्तन आवश्यक है या नहीं। जिन कारणों से अंग्रेजी कानून में बदलाव किया गया है, उन्हें शॉक्रॉस रिपोर्ट के शब्दों में सबसे अच्छी तरह से बताया जा सकता है:

"सबसे पहले, अवमानना के कानून को परिभाषित करने में विशेष कठिनाई होती है। हमने इस रिपोर्ट में विशेष उदाहरणों के सन्दर्भ में प्रयोज्य अवमानना के कानून को परिभाषित करने की कठिनाई का संकेत दिया है। इसके अलावा, जहां परिभाषा इतनी कठिन नहीं है (जैसे कि चैंबरों में कार्यवाही की रिपोर्ट के मामले में) तथ्य यह है कि अपील का कोई अधिकार नहीं है और न्यायिक विचारों के विचलन का मतलब कभी-कभी यह होता है कि यह बिल्कुल भी विश्वास के साथ नहीं कहा

अनुवादित

जा सकता है कि किसी विशेष मामले में परिणाम किस पर निर्भर होना चाहिए; जिस विशेष न्यायालय के सामने वह आता है, यह उसके दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। इस प्रकार हम इसे एक गंभीर दोष मानते हैं लेकिन इसे अपील का अधिकार देकर ठीक किया जा सकता है। दूसरे, तथ्य का मुद्दा आमतौर पर अवमानना के मामलों में नहीं उठता है। प्रश्न यह है कि जो किया गया वह अवमानना है या नहीं। तीसरा, प्रश्नगत आचरण से न्याय प्रशासन को होने वाले खतरे को अक्सर सार्वजनिक चिंता के अन्य मामलों जैसे कि स्वतंत्र चर्चा की स्वतंत्रता के सापेक्ष देखा जाता है। इस प्रकार अवमानना का मुद्दा न केवल अपीलीय अदालत द्वारा निर्धारण के लिए विशेष रूप से उपयुक्त होता है, बल्कि यह विशेष रूप से तब होता है जब किसी न्यायाधीश के अपमान का आरोप लगाया जाता है, प्रिवी काउंसिल का अनुभव यह दर्शाता है कि अपील का अधिकार गलत को सुधारता है।"

पहले जो कहा गया है उससे यह स्पष्ट होगा कि ये कारण हमारे सिस्टम के मामले में भी समान बल से लागू होते हैं और इन्हीं कारणों से हमने यह सिफारिश की है कि अवमानना के मामले में अधिकार के रूप में अपील के लिए प्रावधान किया जाना चाहिए।

3.3 शॉक्रॉस समिति ने अपनी रिपोर्ट में, अदालत की अवमानना के मामले में अपील के बारे में एक कथित दुर्गम कठिनाई की ओर इशारा किया, अर्थात् यदि मामला विवादित था तो इसमें अपील पर गवाह के रूप में न्यायाधीश को शामिल किया जाएगा और बताया गया कि ऐसी कठिनाई उत्पन्न होती है, लेकिन शायद ही कभी और केवल एक ही मामले में, जिसमें यह उत्पन्न हुई थी, वह था - रेनी का मामला - प्रिवी काउंसिल इससे निपटने में सक्षम थी। जो भी हो, जहां तक हमारे देश का सवाल है, बी.के. कार बनाम उड़ीसा के मुख्य न्यायाधीश, एआईआर 1961 एससी 1367 के हालिया मामले में सर्वोच्च

अविवादित

न्यायालय के फैसले के बाद ऐसी स्थिति संभवतः उत्पन्न नहीं हो सकती है। इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने इस सवाल पर विचार किया कि क्या अवमानना के अपील के मामलों में मूल रूप से मामले का फैसला करने वाले उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश और न्यायाधीशों को पक्ष बनाया जाना चाहिए। न्यायमूर्ति मधोलकर ने यह कहते हुए कि उन्हें पक्षकार नहीं बनाया जाना चाहिए, निम्नवत धारित किया:

"...जहां उच्च न्यायालय के न्यायाधीश किसी व्यक्ति पर अवमानना का मुकदमा चलाते हैं और उसे दोषी ठहराते हैं, वे केवल एक मामले का फैसला कर रहे होते हैं और यह नहीं कहा जा सकता है कि किसी भी तरह से अंतिम परिणाम में उस अर्थ में हितबद्ध होते है जैसे एक वादी होती है। अवमानना मामले में दिया गया न्यायाधीशों का निर्णय उन न्यायाधीशों के किसी भी अन्य निर्णय की तरह ही होता है, यानी उन मामलों में जो उनके सामने मुकदमे, याचिका, अपील या संदर्भ के माध्यम से आते हैं।"

एक बार यह स्थिति स्थापित हो जाने के बाद, इसका मतलब यह है कि अवमानना मामलों में अपील में गवाहों के रूप में न्यायाधीशों की उपस्थिति उतनी ही अनावश्यक है जितनी उनके द्वारा निर्णीत अन्य अपीलों के मामले में होता है। हम यह भी जोड़ सकते हैं कि अवमानना मामलों में प्रक्रिया के संबंध में हमने जो सिफारिश की है, उसके मद्देनजर अपीलीय अदालत द्वारा आवश्यक सभी सामग्री लिखित रूप में उपलब्ध होगी और तब न्यायाधीशों को गवाह के रूप में पेश होने के लिए बुलाने की बहुत कम आवश्यकता होगी।

4. ***अवमानना का निवारण.*** *इस संबंध में हम न्यायालय द्वारा प्रयुक्त प्रथा /नियम का भी उल्लेख करना चाहेंगे कि अवमानना में शामिल व्यक्ति को उसकी अपील के अभियोजन में तब तक नहीं*

अनुवादित

सुना जा सकता जब तक कि वह खुद को अवमानना से मुक्त नहीं कर लेता। 13 इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह नियम ठोस कारणों पर आधारित है, लेकिन पिछली चर्चाओं के आलोक में यह कल्पना करना मुश्किल नहीं होगा कि यह कई मामलों में कठिनाई पैदा कर सकता है। हमारी राय में, कानून में ऐसी आकस्मिकता से निपटने के लिए उपयुक्त प्रावधान होने चाहिए। इस उद्देश्य के लिए, हम अनुशंसा करते हैं कि इस तथ्य के बावजूद अपीलकर्ता ने खुद को अवमानना से मुक्त नहीं किया है, अपीलीय अदालत और जिस अदालत के फैसले पर अपील की जा रही है, दोनों को सजा के निष्पादन पर रोक लगाने, कथित अवमाननाकर्ता को जमानत पर रिहा करने और अपील सुनने या इसे सुने जाने की अनुमति देने की शक्ति होनी चाहिए।

अध्याय XII निष्कर्ष

1. हमारे मुख्य निष्कर्ष और सिफ़ारिशों को इस प्रकार संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है:--

(1) हमारी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए प्रशासन या न्याय में विश्वास आवश्यक है और ऐसा कुछ भी नहीं किया जाना चाहिए जिससे वह विश्वास कमजोर हो।

(2) साथ ही, अवमानना के लिए दंडित करने का अधिकार क्षेत्र दो महत्वपूर्ण मौलिक अधिकारों, अर्थात् व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार और भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता-अधिकारों पर आघात करता है, जो किसी भी लोकतांत्रिक प्रणाली में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं, न्यायालय की अवमानना के कानून को इसकी उत्पत्ति या अन्य देशों में इसकी वर्तमान स्थिति के आधार पर देखने के बजाय मुख्य रूप से इन अधिकारों के दृष्टिकोण से देखा जाना चाहिए।

(3) न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1952, हालांकि यह केवल विषय के दायरे को छूता है। इसके मौजूदा प्रावधानों को जारी रखा जाना चाहिए, लेकिन अधिनियम के दायरे को काफी व्यापक बनाने की आवश्यकता है।

अनुवादित

(4) संविधान के तहत, संसद अदालतों की अवमानना पर कानून बनाने में सक्षम है, लेकिन निम्न सीमाओं के अन्तर्गत (i) अवमानना के लिए दंडित करने की वरिष्ठ अदालतों की शक्ति को सीमित, निरस्त या किसी अन्य प्राधिकरण को हस्तांतरित नहीं कर सकती है, (ii)) अपनी शक्ति का प्रयोग उच्च न्यायालयों की स्थिति और गरिमा को धूमिल करते हुए नहीं कर सकती, और (iii) नागरिकों के भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार पर कोई भी अनुचित प्रतिबंध नहीं लगा सकती।

(5) अवमानना को उन शीर्षों की गणना के अलावा परिभाषित नहीं किया जा सकता है जिनके तहत इसे वर्गीकृत किया जा सकता है- वे शीर्ष जो कभी भी संपूर्ण नहीं हो सकते हैं-और केवल ऐसे शीर्षों को शामिल करने वाली परिभाषा जिनके तहत आपराधिक अवमानना या यहां तक कि समग्र रूप से अवमानना को आम तौर पर वर्गीकृत किया जाता है, बेकार होगी एक परिभाषा के रूप में और पूरी तरह से अनावश्यक है।

(6) किसी विशेष शीर्ष को छोड़कर अवमानना की अवधारणा का परिसीमन संभव नहीं है क्योंकि कोई भी मान्यता प्राप्त शीर्ष अप्रचलित नहीं है। एक बार यह धारणा बन गई थी कि लांछन लगाने से अवमानना खत्म हो गई है, गलत साबित हुई है।

(7) लंबित कार्यवाही की जानकारी के अभाव में, चाहे वह दीवानी हो या आपराधिक, अवमानना के आरोपी व्यक्ति को पूर्ण बचाव प्रदान करना चाहिए।

(8) जहां तक दीवानी मामलों का सवाल है, आसन्न कार्यवाही के संबंध में अवमानना का नियम समाप्त किया जा सकता है। जहां तक आपराधिक मामलों का संबंध है, लंबित कार्यवाही के मामले में जानकारी का अभाव पूर्ण बचाव होना चाहिए। इसके अलावा, जहां किसी अपराध के संबंध में, कोई गिरफ्तारी नहीं हुई है, कथित अवमाननाकर्ता के पक्ष

अनुवादित

में एक धारणा बनाई जानी चाहिए कि कार्यवाही आसन्न नहीं है।

(9) जो मामला निष्पादन के चरण तक पहुंच गया है उसे अवमानना कानून के प्रयोजन के लिए लंबित मामला नहीं माना जाएगा।

(10) किसी समाचार पत्र या अन्य प्रकाशन का निर्दोष वितरक, यानी ऐसा व्यक्ति जिसके पास यह मानने का कोई उचित आधार नहीं है कि उसके द्वारा वितरित प्रकाशन में कोई आपत्तिजनक मामला है, अदालत की अवमानना का दोषी नहीं होगा।

(11) उपरोक्त किसी भी बचाव को स्थापित करने का भार कथित अवमाननाकर्ता पर होगा।

(12) चैंबर में या कैमरे में बैठे किसी न्यायालय द्वारा दिए गए आदेश के संपूर्ण या किसी भाग के पाठ या निष्पक्ष और सटीक सारांश के प्रकाशन के संबंध में कोई भी अवमानना कार्यवाही तब तक सक्षम नहीं होगी जब तक कि तत्समय प्रवृत्त किसी भी अधिनियम द्वारा प्रदत्त किसी भी शक्ति के प्रयोग में न्यायालय ने स्पष्ट रूप से प्रतिबंधित न कर दिया हो।

(13) गोपनीयता के उल्लंघन में अवमानना के मामलों को स्पष्ट रूप से परिभाषित सीमाओं के भीतर सीमित किया जाना चाहिए और केवल अध्याय VIII के पैराग्राफ 51 में उल्लिखित असाधारण मामलों में न्यायिक कार्यवाही के संबंध में गोपनीयता को शामिल किया जा सकता है। गोपनीयता के मामलों के संबंध में अवमानना की कार्यवाही तभी शुरू की जानी चाहिए जब कोई अन्य सजा निर्धारित न हो।

(14) कथित अवमाननाकर्ता के लिए उपलब्ध कुछ मौजूदा बचावों को स्पष्ट वैधानिक मान्यता दी जा सकती है। ये हैं:

(i) कि कोई व्यक्ति न्यायिक कार्यवाही या उसके किसी चरण की निष्पक्ष और सटीक रिपोर्ट प्रकाशित करने के लिए अवमानना का दोषी नहीं होगा;

(ii) किसी भी मामले की सुनवाई और अंतिम निर्णय

अनुवादित

के गुण-दोष पर या किसी न्यायाधीश के आचरण पर, यदि यह जनता की भलाई के लिए हो, कोई निष्पक्ष टिप्पणी प्रकाशित करने के लिए कोई व्यक्ति अवमानना का दोषी नहीं होगा। प्रत्येक मामले में जनता की भलाई का प्रश्न तथ्य का प्रश्न होना चाहिए;

(iii) कोई व्यक्ति किसी उच्च न्यायालय के अधीनस्थ किसी न्यायालय के पीठासीन अधिकारी, जैसे उस उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश, के संबंध में सद्भावना से दिए गए किसी भी बयान के संबंध में अवमानना का दोषी नहीं होगा।

(15) सावधानी के तौर पर, यह प्रावधान किया जा सकता है कि विधेयक में शामिल करने के लिए अनुशंसित प्रावधानों को किसी भी तरह से अवमानना के दायरे को बढ़ाने वाला या किसी अन्य बचाव को प्रभावित करने वाला नहीं माना जाएगा जिसका विकल्प कथित अवमाननाकर्ता के पास होगा।

(16) अवमानना मामलों में लागू प्रक्रिया का सामान्य नियम स्पष्ट रूप से तैयार किया जाना चाहिए।

(17) अदालत के सामने की गई अवमाननाओं के मामले में, अदालत की वर्तमान सारांश शक्तियों को जारी रखा जाना चाहिए और एक सरल प्रक्रिया जिसमें अवमाननाकर्ता को आरोप का मौखिक संज्ञान, उसे अपना बचाव का अवसर देना और अध्याय X के पैराग्राफ 4 में सुझाई गई पंक्तियों के अनुसार जमानत और हिरासत के प्रावधानों को अपनाया जा सकता है।

(18) अदालत के सामने की गई अवमानना के लिए कार्यवाही के स्थानांतरण के लिए आवेदन उस न्यायाधीश द्वारा स्वीकार किया जा सकता है जिसकी उपस्थिति में अवमानना की गई है और यदि उसे लगता है कि न्याय के उचित प्रशासन के हित में आवेदन की अनुमति दी जानी चाहिए, और यदि ऐसा करना व्यावहारिक है, तो उसे इस मामले को मुख्य न्यायाधीश के समक्ष उनके निर्देशों के लिए रखना चाहिए।

(19) किसी आपराधिक अवमानना (न्यायालय के

अनुवादित

सामने की गई अवमानना के अलावा) की सुनवाई कम से कम दो न्यायाधीशों की पीठ द्वारा ही की जानी चाहिए, सिवाय उन मामलों को छोड़कर जहां अदालत में एक न्यायाधीश होता है, उदाहरण के लिए, न्यायिक आयुक्त का न्यायालय। उस अवमानना का संज्ञान केवल किसी प्रस्ताव पर या किसी अन्य एजेंसी द्वारा दिए गए संदर्भ पर ही लिया जा सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि, सर्वोच्च न्यायालय के मामले में, प्रस्ताव अटॉर्नी-जनरल या उसके द्वारा अधिकृत व्यक्ति द्वारा किया जा सकता है, और उच्च न्यायालय के मामले में महाधिवक्ता या उसके द्वारा अधिकृत व्यक्ति द्वारा किया जा सकता है। ऐसा प्रस्ताव या तो अटॉर्नी-जनरल या एडवोकेट जनरल की पहल पर, जैसा भी मामला हो, या संबंधित अदालत के कहने पर हो सकता है। जहां अवमानना किसी अधीनस्थ न्यायालय की है, वहां उस न्यायालय द्वारा दिए गए संदर्भ पर कार्रवाई की जा सकती है।

(20) प्रस्ताव या संदर्भ में अवमानना का गठन करने वाले कार्य को निर्दिष्ट किया जाना चाहिए और कानून में कार्यवाही की सूचना तामील करने और अध्याय X के पैराग्राफ 6 में इंगित पंक्तियों पर आरोपित व्यक्ति की रक्षा के प्रावधान शामिल होने चाहिए।

(21) यह प्रावधान किया जा सकता है कि कोई भी अदालत किसी को अवमानना के लिए दंडित नहीं करेगी जब तक कि अवमानना ऐसी प्रकृति की न हो जो न्याय के उचित क्रम में हस्तक्षेप करती हो।

(22) सजा और माफी के संबंध में अदालत की अवमानना अधिनियम, 1952 के प्रावधानों को जारी रखा जा सकता है लेकिन यह स्पष्ट किया जा सकता है कि सिविल अवमानना के मामलों में, जहां जुर्माना पर्याप्त सजा नहीं है, दी जाने वाली साधारण कारावास की सजा निर्धारित वैधानिक अवधि से

अनुवादित

अनधिक अवधि के लिए सिविल जेल में दी जानी चाहिए।

(23) यह भी उपबंध किया जा सकता है कि ऐसे मामलों में जहां किसी निगम द्वारा दिए गए शपथपत्र के संबंध में अवमानना का दोषी पाया जाता है, अदालत की अनुमति से, निगम के निदेशकों या प्रधान अधिकारी को सिविल जेल में रखा जा सकता है।

(24) अवमानना के लिए सजा के प्रत्येक आदेश में अवमानना का तथ्य, आरोपित व्यक्ति का बचाव, लिए गए साक्ष्य का सार, यदि कोई हो, के साथ-साथ निष्कर्ष और दी गई सजा से जुड़े तथ्य बताए जाएंगे।

(25) अवमानना के लिए दंडित करने के अपने अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में उच्च न्यायालय के किसी भी आदेश या निर्णय पर अधिकार के रूप में अपील का प्रावधान किया जा सकता है। अपील उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की पीठ के समक्ष होनी चाहिए जहां आदेश या निर्णय एकल न्यायाधीश का हो। जहां आदेश या निर्णय किसी पीठ का हो तो अपील उच्चतम न्यायालय में की जानी चाहिए।

(26) अवमानना के 'शोधन' की प्रथा का नियम कई मामलों में कठिनाई पैदा कर सकता है और इसलिए, अपीलीय अदालत और वह अदालत जिसके फैसले या आदेश पर अपील की जा रही है, दोनों के पास सजा के निष्पादन पर रोक लगाने, कथित अवमाननाकर्ता को जमानत पर रिहा करने और अपील सुनने या इसे सुने जाने की अनुमति देने की शक्ति होनी चाहिए, इस तथ्य के बावजूद कि अपीलकर्ता ने खुद को अवमानना से मुक्त नहीं किया है।

(27) सर्वोच्च न्यायालय को एकरूपता के हित में, जहां आवश्यक हो, हमारे द्वारा अनुशंसित प्रक्रिया के नियमों को परिपूर्ण करने के लिए नियम बनाने की शक्ति प्रदान की जा सकती है। यह भी प्रावधान किया जा सकता है कि सर्वोच्च न्यायालय उच्च न्यायालयों से परामर्श करने के बाद ही उच्च

अनुवादित

न्यायालयों के संबंध में नियम बना सकता है।"

10. परिणामस्वरूप, न्यायालय की अवमानना विधेयक 1963 जिसमें शीर्षक था "**अदालतों की अवमानना को दंडित करने और उसके संबंध में उनकी प्रक्रिया को विनियमित करने की कुछ अदालतों की शक्तियों को परिभाषित करने और सीमित करने के लिए विधेयक"** को उपयुक्त विधानमंडल के समक्ष रखा गया था। उक्त विधेयक के पैराग्राफ 19 और 20 यहां उद्धृत किए गए हैं:

"19. अपील। (1) अवमानना के लिए दंडित करने के अपने क्षेत्राधिकार के प्रयोग में उच्च न्यायालय द्वारा पारित किसी आदेश या निर्णय पर अधिकार के रूप में अपील की जाएगी-

(क) जहां आदेश या निर्णय एकल न्यायाधीश का है, वहां न्यायालय के कम से कम दो न्यायाधीशों की पीठ को अपील की जाएगी;

(ख) जहां आदेश या निर्णय एक पीठ का है, वहाँ सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जाएगी।

(2) किसी भी अपील के लंबित रहने पर, अपीलीय न्यायालय आदेश दे सकता है कि-

(क) जिस सजा या आदेश के खिलाफ अपील की गई है उसका निष्पादन निलंबित कर दिया जाए;

(ख) यदि अपीलकर्ता कारावास में है, तो उसे जमानत पर छोड़ दिया जाए, और

(ग) अपील की सुनवाई इस बात के बावजूद की जाएगी कि अपीलकर्ता ने खुद को अवमानना से मुक्त नहीं किया है।

(3) जहां किसी आदेश से व्यथित कोई व्यक्ति, जिसके खिलाफ अपील दायर की जा सकती है, उच्च न्यायालय को संतुष्ट करता है कि वह अपील करना चाहता है, उच्च न्यायालय उपधारा (2) में प्रदत्त सभी या किसी भी शक्ति का प्रयोग कर सकता है।

(4) उपधारा (1) के तहत अपील दायर की जाएगी:

(क) उच्च न्यायालय की खंडपीठ में अपील के मामले में, बीस दिनों के भीतर; और

(ख) उच्चतम न्यायालय में अपील के मामले में, साठ दिनों की अवधि के भीतर; उस आदेश की तारीख से

अनुवादित

जिसके विरुद्ध अपील की गई है।

*20. **कतिपय मामलों में सज़ा कैसे दी जाएगी**। (1) धारा 12 में निहित किसी भी बात के बावजूद, जहां किसी व्यक्ति को सिविल अवमानना का दोषी पाया जाता है, अगर अदालत यह मानती है कि जुर्माना न्याय के उद्देश्यों को पूरा नहीं करेगा और कारावास की सजा आवश्यक है, तो साधारण कारावास के जाय उसे छह महीने से अनधिक या जैसा वह उचित समझे, के लिए सिविल जेल में रखने का निर्देश देते हुए आदेश पारित कर सकता है।*

(2) जहां किसी व्यक्ति को न्यायालय को निगम की ओर से दिए गए किसी शपथपत्र के संबंध में न्यायालय की अवमानना का दोषी पाया जाता है, वहाँ सजा का प्रवर्तन निगम के निदेशकों या प्रमुख अधिकारियों को सिविल जेल में हिरासत में रखकर किया जा सकता है।"

11. बाद में न्यायालय की अवमानना अधिनियम 1971 अर्थात अधिनियम सं. 70 सन् 1971 को दिनांक 24.12.1971 को अधिसूचित किया गया। न्यायालय की अवमानना अधिनियम 1971 के प्रासंगिक उद्धरण नीचे दिए गए हैं:

*"19. **अपील** (1) अवमानना के लिए दंडित करने के अपने क्षेत्राधिकार के प्रयोग में उच्च न्यायालय के किसी आदेश या निर्णय पर अधिकार के रूप में अपील की जाएगी*

(क) जहां आदेश या निर्णय एकल न्यायाधीश का है, वहां न्यायालय के कम से कम दो न्यायाधीशों की पीठ को;

(ख) जहां आदेश या निर्णय एक बेंच का है, (2) किसी अपील के लंबित रहने पर, अपीलीय न्यायालय यह आदेश दे सकता है-

सर्वोच्च न्यायालय : बशर्ते कि जहां आदेश या निर्णय किसी केंद्र शासित प्रदेश के न्यायिक आयुक्त के न्यायालय का हो, ऐसी अपील सर्वोच्च न्यायालय में की जाएगी।

(क) जिस सजा या आदेश के खिलाफ अपील की गई है उसका निष्पादन निलंबित कर दिया जाएगा;

(ख) यदि अपीलकर्ता कारावास में है, तो उसे जमानत पर रिहा किया जाए; और

अनुवादित

(ग) अपील की सुनवाई इस बात के बावजूद की जाएगी कि अपीलकर्ता ने अपनी अवमानना को शोधित नहीं किया है।

(3) जहां किसी ऐसे आदेश से व्यथित कोई भी व्यक्ति जिसके खिलाफ अपील दायर की जा सकती है, उच्च न्यायालय को संतुष्ट करता है कि वह अपील करना चाहता है, उच्च न्यायालय उप-धारा (2) द्वारा प्रदत्त सभी या किसी भी शक्ति का प्रयोग कर सकता है।

(4) उप-धारा (1) के तहत कोई अपील दायर की जाएगी - (क) उच्च न्यायालय की खंडपीठ में अपील के मामले में, तीस दिनों के भीतर; (ख) सर्वोच्च न्यायालय में अपील के मामले में, जिस आदेश के खिलाफ अपील की जानी है, उसके पारित होने की तारीख से साठ दिनों के भीतर।"

12. न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1971 की धारा 19 के अवलोकन से पता चलता है कि अधिनियम 1971 की धारा 19 की उप-धारा (1) के तहत, उच्च न्यायालय के किसी भी आदेश या निर्णय पर अधिकार के रूप में अपील की जा सकती है। अवमानना के लिए दंडित करने के क्षेत्राधिकार के प्रयोग में एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश के खिलाफ न्यायालय के कम से कम दो न्यायाधीशों की पीठ में अपील की जाएगी और जहाँ आदेश या निर्णय किसी पीठ द्वारा पारित किया गया है, अपील सर्वोच्च न्यायालय में की जाएगी।

13. उल्लेखनीय है कि, अपील दायर करने का प्रावधान न्यायालय की अवमानना अधिनियम 1971 में पहली बार शामिल किया गया क्योंकि इससे पहले, अपील दायर करने का कोई प्रावधान नहीं था।

14. इसके अलावा, न्यायालय के नियमों का अध्याय VIII नियम 5 विशेष अपीलों से संबंधित है और निम्नानुसार उपबंध करता है:

"5. विशेष अपील:- न्यायालय के अधीक्षण के अधीन किसी न्यायालय द्वारा पारित किसी डिक्री या आदेश के संबंध में किसी निर्णय (अपीलीय क्षेत्राधिकार के प्रयोग में पारित निर्णय नहीं) के खिलाफ अपील न्यायालय में की जाएगी, जो कि पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के प्रयोग में या अधीक्षण की अपनी शक्ति के प्रयोग में या आपराधिक क्षेत्राधिकार के प्रयोग में या किसी निर्णय, आदेश या पंचाट के संबंध में संविधान के अनुच्छेद 226 या अनुच्छेद 227 द्वारा प्रदत्त क्षेत्राधिकार के प्रयोग में पारित अग्रलिखित का निर्णय नहीं होगा। - (क) संविधान की सातवीं अनुसूची में राज्य सूची या समवर्ती सूची में शामिल मामलों के संबंध में किसी न्यायाधिकरण, न्यायालय या वैधानिक मध्यस्थ जिसे किसी उत्तर प्रदेश अधिनियम या किसी केंद्रीय अधिनियम के तहत क्षेत्राधिकार के प्रयोग में बनाया गया हो या बनाया जाना कथित है। या (ख) सरकार या

अनुवादित

किसी अधिकारी या प्राधिकरण का, जिसे इस हेतु किसी ऐसे अधिनियम के तहत अपीलीय या पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के प्रयोग या कथित प्रयोग में न्यायाधीश की भूमिका दी गई हो।"

15. न्यायालय के नियमों के अध्याय VIII नियम 5 में प्रावधान है कि किसी निर्णय पर अपील न्यायालय में की जाएगी लेकिन यह किसी डिक्री या आदेश के संबंध में अपीलीय क्षेत्राधिकार के प्रयोग में पारित किया गया या अधीक्षण की अपनी शक्ति के प्रयोग में पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के तहत या आपराधिक क्षेत्राधिकार के प्रयोग में पारित या किसी न्यायाधिकरण अदालत या वैधानिक मध्यस्थ जिसे उत्तर प्रदेश अधिनियम या किसी केंद्रीय अधिनियम के तहत क्षेत्राधिकार के प्रयोग या कथित प्रयोग में संविधान की सातवीं अनुसूची में शामिल राज्य सूची या संघ सूची के विषयों के संबंध में बनाया गया हो, द्वारा संविधान के अनुच्छेद 226 या अनुच्छेद 227 द्वारा प्रदत्त क्षेत्राधिकार के प्रयोग में पारित निर्णय या किसी सरकार, अधिकारी या प्राधिकारी जिसे अपीलीय या पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के प्रयोग या कथित प्रयोग में बनाया गया हो या बनाया जाना कथित हो, द्वारा पारित निर्णय नही होगा।

16. आगे बढ़ने से पहले, इस न्यायालय को उक्त विषय पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय और इस न्यायालय की आधिकारिक घोषणा का परीक्षण करना होगा।

17. आरंभ में, **बरदकांत मिश्रा बनाम न्यायमूर्ति गतिकृष्ण मिश्रा (1975) 3 एससीसी 535** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का उल्लेख करना उचित होगा। जिसके पैराग्राफ 5 में इसे इस प्रकार धारित किया गया है :

"5. अब, इस प्रश्न पर विचार करते समय, हमें उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग किए गए अवमानना क्षेत्राधिकार की वास्तविक प्रकृति और अपील के अधिकार के संबंध में कानून को ध्यान में रखना चाहिए, जो अदालत की अवमानना अधिनियम,1971 के अधिनियमन से तुरंत पहले प्राप्त हुआ था। यह हमेशा से एक स्थापित कानून माना गया है कि जहां तक आपराधिक अवमानना का सवाल है, यह पूरी तरह से न्यायालय और कथित अवमाननाकर्ता के बीच का मामला है, किसी को भी यह कहने का वैधानिक या सामान्य कानूनी अधिकार नहीं है कि वह इसका हकदार है क्योंकि कथित अवमाननाकर्ता अवमानना का दोषी है। वह केवल न्यायालय का रुख कर सकता है और उसका ध्यान कथित अवमानना की ओर आकर्षित कर सकता है और यह तब न्यायालय पर होगा कि वह अपने विवेकाधिकार का प्रयोग कर निर्धारित करे कि कार्यवाही करना है या नहीं। यह निर्णय लेना न्यायालय पर निर्भर करता है कि अवमानना के लिए कार्यवाही शुरू की जाए या नहीं । प्रथम दृष्टया संतुष्ट होने पर कि अवमानना की गई है, न्यायालय फिर भी इसे अनदेखा कर सकता है और कार्रवाई करने से इनकार कर सकता है। किसी को भी न्यायालय को अवमानना की कार्यवाही शुरू करने के लिए मजबूर करने का कोई अधिकार नहीं है, भले ही प्रथम दृष्टया मामला बनता प्रतीत हो। इस उद्देश्य के लिए

अनुवादित

किए गए प्रस्ताव पर न्यायालय द्वारा अवमानना की कार्यवाही शुरू किए जाने के बाद भी वही स्थिति प्राप्त होती है। न्यायालय अपने विवेक का प्रयोग करते हुए कथित अवमाननाकर्ता से बिना शर्त माफी स्वीकार कर सकता है और अवमानना की कार्यवाही बंद कर सकता है, या, कथित अवमाननाकर्ता के दोषी पाए जाने के बाद भी, अदालत परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, उसे दंडित करने से इनकार कर सकता है। जहां तक अवमानना क्षेत्राधिकार का सवाल है, एकमात्र कारक न्यायालय और कथित अवमाननाकर्ता होते हैं। कोई बाहरी पक्ष केवल न्यायालय का ध्यान उस अवमानना की ओर आकर्षित करने के लिए आता है जो कि की गई है: वह न्यायालय द्वारा शुरू की जा सकने वाली अवमानना की कार्यवाही का हिस्सा नहीं बनता है। यही कारण है कि बंबई उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने नरेंद्रभाई साराभाई हाथिसिंग बनाम चिनुभाई मणिभाई सेठ आईएलआर 60 बॉम्बे 894 में यह निर्णय दिया कि उच्च न्यायालय द्वारा न्यायालय को दिए गए वचन के उल्लंघन के लिए किसी व्यक्ति को दोषी ठहराने से इनकार करते हुए दिया गया आदेश लेटर्स पेटेंट के खंड 15 के अर्थ में कोई निर्णय नहीं है क्योंकि यह मुकदमे के पक्षों के बीच किसी भी प्रश्न के गुण-दोष को प्रभावित नहीं करता है। ब्यूमोंट, सी.जे. ने बताया: शपथपत्र न्यायालय को दिया गया है; यदि यह टूटा हुआ है, और यह तथ्य न्यायालय के संज्ञान में लाया जाता है, तो न्यायालय ऐसी कार्रवाई कर सकता है जो वह उचित समझे। यदि यह निष्कर्ष निकलता है कि आदेश को जानबूझकर तोड़ा गया है, तो संभवतः यह चूककर्ता को जेल भेज देगा, लेकिन न्यायालय ऐसा रास्ता अपनाने के लिए स्वतंत्र है जैसा वह उचित समझे।

न्यायमूर्ति रंगनेकर ने भी उसी शैली में बात की जब उन्होंने कहा:

> *"अवमानना की कार्यवाही पूरी तरह से अदालत और उस व्यक्ति के बीच का मामला है जिस पर अवमानना का दोषी होने का आरोप है। किसी भी पक्ष को यह कहने का कोई वैधानिक अधिकार नहीं है कि वह निश्चित रूप से आदेश का हकदार है क्योंकि उसका प्रतिद्वंद्वी अवमानना का दोषी है।" वह बस इतना कर सकता है कि न्यायालय में आकर शिकायत करे कि न्यायालय के प्राधिकार का उल्लंघन किया गया है, और यदि न्यायालय को लगता है कि ऐसा था, तो न्यायालय अपने विवेक से अपने प्राधिकार को सिद्ध करने के लिए कार्रवाई करता है। इसलिए, यह देखना मुश्किल है कि कैसे अवमानना के लिए एक आवेदन पक्षों के बीच कोई प्रश्न उठाता है, कि ऐसे आवेदन पर दिए गए किसी भी आदेश के बारे में, जिसके द्वारा न्यायालय अपने विवेक से गलती करने*

अप्रमाणित

वाले कथित पक्ष के खिलाफ कोई कार्रवाई करने से इनकार करता है, से पक्षों के बीच कोई उटता हो।"

इसलिए, यह स्पष्ट है कि न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1971 के लागू होने से पहले जो कानून था, उसके तहत अवमानना के लिए कार्रवाई करने के लिए किसी पक्ष द्वारा उच्च न्यायालय में जाने पर कोई अपील नहीं की जा सकती, यदि उच्च न्यायालय ऐसे पक्ष के प्रस्ताव पर अपने विवेकाधिकार से कार्यवाही से इनकार कर देता है। भले ही उच्च न्यायालय ने अवमानना के लिए कार्यवाही शुरू की हो और ऐसी कार्यवाही में, कथित अवमाननाकर्ता को दोषी पाया गया हो, और अवमानना के लिए दंडित किया गया हो, उच्च न्यायालय द्वारा अपने आपराधिक क्षेत्राधिकार के प्रयोग में दिया गया आदेश, लेटर्स पेटेंट के खंड 15 के तहत अपील योग्य नहीं होता है, और इसलिए, इसके खिलाफ एकल न्यायाधीश से लेकर डिवीजन बेंच तक कोई अपील नहीं की जा सकती है और समान रूप से, डिवीजन बेंच से इस न्यायालय में कोई अपील नहीं की जा सकती है। इसका परिणाम यह हुआ कि आपराधिक अवमानना के मामलों में, अवमानना के लिए दंडित व्यक्ति को भी अपील का कोई अधिकार नहीं था और वह अवमानना के लिए दोषी ठहराए जाने के आदेश पर तभी आपत्ति कर सकता था, जब उच्च न्यायालय ने उचित मामलों में अनुच्छेद 134 के तहत उचित प्रमाण पत्र दिया हो या उच्च न्यायालय द्वारा ऐसा करने से इनकार करने पर इस न्यायालय ने अनुच्छेद 136 के तहत विशेष अनुमति देकर हस्तक्षेप किया हो।"

18. **डी.एन. तनेजा बनाम भजन लाल 1988 (3) एससीसी 26** के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया:

"8. अपील का अधिकार केवल धारा 19 की उपधारा (1) के तहत अवमानना के लिए दंडित करने के अपने अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में पारित उच्च न्यायालय के किसी निर्णय या आदेश के खिलाफ उपलब्ध होगा। इस

अनुवादित

संबंध में, संविधान के अनुच्छेद 215 के प्रावधान का संदर्भ लेना प्रासंगिक होगा जिसमें प्रावधान है कि प्रत्येक उच्च न्यायालय अभिलेख न्यायालय होगा और उसके पास ऐसे न्यायालय की सभी शक्तियां होंगी, जिसमें स्वयं की अवमानना के लिए दंडित करने की शक्ति भी शामिल है । अनुच्छेद 215 उच्च न्यायालय को अपनी अवमानना के लिए दंडित करने की शक्ति प्रदान करता है। दूसरे शब्दों में, उच्च न्यायालय को अवमानना के लिए दंडित करने का क्षेत्राधिकार संविधान के अनुच्छेद 215 से प्राप्त होता है, जैसा कि पहले देखा गया है, अधिनियम की धारा 19(1) के तहत अपील तभी की जाएगी उच्च न्यायालय अवमानना के लिए दंडित करने के अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए कोई आदेश या निर्णय देता है। प्रतिवादी की ओर से कहा गया है, जो हमारी राय में ठीक है, कि उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 215 द्वारा प्रदत्त अपने अधिकार क्षेत्र या शक्ति का प्रयोग करता है जब अवमानना के लिए दंड देता है। जब उच्च न्यायालय कथित अवमाननाकर्ता को कोई दंड नहीं देता है, तो उच्च न्यायालय अवमानना के लिए दंडित करने के अपने अधिकार क्षेत्र या शक्ति का प्रयोग नहीं करता है। उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार दण्ड देना है। जब उच्च न्यायालय द्वारा कोई सज़ा नहीं दी जाती है, तो यह कहना मुश्किल है कि उच्च न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 215 द्वारा प्रदत्त अपने अधिकार क्षेत्र या शक्ति का प्रयोग किया है।

9...

10....

11. हालाँकि, इसका मतलब यह नहीं है कि जब उच्च न्यायालय गलती से किसी अवमाननाकर्ता को आपराधिक अवमानना के दोष से बरी कर देता है, तो याचिकाकर्ता जो अदालत की गरिमा बनाए रखने में रुचि रखता है, के पास कोई उपाय नहीं होगा। भले ही अधिनियम की धारा 19(1) के तहत कोई अपील पोषणीय न हो, ऐसे मामले में याचिकाकर्ता संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत इस

अनुवादित

न्यायालय में जा सकता है। इसलिए, अपीलकर्ता की ओर से दी गई यह दलील कि अवमानना के लिए दंडित करने के अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग न करने के उच्च न्यायालय के गलत या विकृत निर्णय के खिलाफ कोई उपाय नहीं होगा, सही नहीं है। लेकिन, ऐसे मामले में धारा 19(1) के तहत अपील का कोई अधिकार नहीं होगा, क्योंकि अवमानना के लिए दंडित करने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा कोई अधिकार क्षेत्र या शक्ति का प्रयोग नहीं किया गया है। हमारे दृष्टिकोण को परदाकांत मिश्रा बनाम न्यायमूर्ति श्री गतिकृष्ण मिश्रा, [1975] 1 एससीआर 524 में इस न्यायालय के निर्णय से समर्थन मिलता है।

12. अपील का अधिकार क़ानून की निर्मिति है और अपील का अधिकार है या नहीं, इस सवाल पर क़ानून के प्रावधान की व्याख्या के हिसाब से विचार करना होगा, न कि उपयुक्तता या किसी अन्य विचार के आधार पर। इस संबंध में, यह देखा जा सकता है कि न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1952 के तहत अपील का कोई अधिकार नहीं था। पहली बार अधिनियम की धारा 19(1) के तहत अपील का अधिकार प्रदान किया गया है। अवमानना अदालत और कथित अवमाननाकर्ता के बीच का मामला है। कोई भी व्यक्ति जो अवमानना के लिए अदालत की मशीनरी का रुख करता है, वह अदालत के ध्यान में केवल अदालत की अवमानना का गठन करने वाले कुछ तथ्य लाता है। ऐसी जानकारी प्रस्तुत करने के बाद भी वह अदालत की सहायता कर सकता है, लेकिन यह हमेशा ध्यान में रखना चाहिए कि अवमानना कार्यवाही में केवल दो पक्ष होते हैं, अर्थात् अदालत और अवमाननाकर्ता। यह उन कारणों में से एक हो सकता है जिसके चलते विधानमंडल ने अवमानना के लिए याचिकाकर्ता को अपील का कोई अधिकार नहीं दिया। धारा 19(1) के तहत पीड़ित पक्ष केवल वही अवमाननाकर्ता हो सकता है जिसे अदालत की अवमानना के लिए दंडित किया गया हो।"

अनुवादित

19. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **महाराष्ट्र राज्य बनाम महबूब एस. अलीभोय और अन्य (1996) 4 एससीसी 411** में दिए गए निर्णय के पैराग्राफ 3 में निम्नानुसार निर्णय दिया है:

> *"3. प्रारंभिक प्रश्न जिसकी जांच की जानी चाहिए कि कि क्या मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के मद्देनजर अवमानना की कार्यवाही को रद्द करने वाले आदेश के खिलाफ अपील पोषणीय है। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि अपील एक क़ानूनी निर्मिति है। जब तक एक क़ानून अपील का प्रावधान करता नहीं करता है और उस आदेश को निर्दिष्ट नहीं करता है जिसके विरुद्ध अपील दायर की जा सकती है, तब तक अधिकार के रूप में अपील दायर नहीं की जा सकती और उस पर विचार नहीं किया जा सकता।*
>
> *स्पष्ट रूप से पढ़ने पर धारा 19 में प्रावधान है कि अवमानना के लिए दंडित करने के अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए किसी भी आदेश या निर्णय के खिलाफ अपील अधिकार के रूप में की जाएगी। दूसरे शब्दों में, यदि उच्च न्यायालय अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए किसी व्यक्ति को अदालत की अवमानना के लिए दंडित करने का आदेश पारित करता है, तो केवल अधिनियम की धारा 19 की उपधारा (1) के तहत अपील पोषणीय होगी। जैसा कि धारा 19 की उपधारा (1) में प्रावधान है कि अपील किसी भी आदेश के पर अधिकार के रूप में होगी, एक धारणा बनाई जाती है कि उक्त उपधारा के तहत उच्च न्यायालय द्वारा अवमानना कार्यवाही के क्षेत्राधिकार में पारित किसी भी आदेश के खिलाफ अपील का उपबंध किया गया है। 'किसी भी आदेश' शब्द को उक्त उपधारा में प्रयुक्त शब्द'निर्णय' के साथ पढ़ा जाना चाहिए जिसे उच्च न्यायालय अवमानना के लिए दंडित करने के अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए पारित करता है। 'कोई भी आदेश' 'निर्णय' शब्द से स्वतंत्र नहीं है। इन्हें वैकल्पिक रूप में 'आदेश' या 'निर्णय' कहकर रखा गया है। किसी भी स्थित में, यह अवमानना के लिए दंड की प्रकृति का होना चाहिए। यदि 'किसी भी आदेश' शब्द को 'निर्णय' शब्द से स्वतंत्र रूप से पढ़ा जाता है, तो उच्च*

अनुवादित

न्यायालय द्वारा अवमानना की कार्यवाही में पारित किसी भी अंतरिम आदेश के खिलाफ भी धारा 19 की उप-धारा (1) के तहत अपील की जा सकती है, जिसका परिणाम हास्यास्पद होगा।

4. यह सर्वविदित है कि अवमानना की कार्यवाही दो पक्षों के बीच का विवाद नहीं है, कार्यवाही मुख्य रूप से अदालत और उस व्यक्ति के बीच होती है जिस पर अदालत की अवमानना करने का आरोप है। वह अदालत को सूचित करता है या अदालत के ध्यान में लाता है कि किसी ने ऐसी अदालत की अवमानना की है, वह अभियोजक की स्थिति में नहीं होता है, वह बस अदालत की सहायता कर रहा होता है ताकि अदालत की गरिमा और महिमा को बनाए रखा जा सके। यह निर्धारित करना अदालत पर निर्भर होता है, जो यह तय करने के लिए कार्यवाही शुरू करती है कि जिस व्यक्ति के खिलाफ ऐसी कार्यवाही शुरू की गई है, उसे विशेष मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए दंडित किया जाना चाहिए या आरोपमुक्त किया जाना चाहिए।

अवमानना के लिए कार्यवाही छोड़ने या अवमानना के लिए कार्यवाही शुरू करने से इनकार करने वाले आदेश के खिलाफ कोई अपील विचारणीय नहीं होती है, यह न केवल धारा 19 की उपधारा (1) से स्पष्ट है, बल्कि धारा 19 की उपधारा (2) से भी स्पष्ट है, जो प्रावधान करती है कि किसी अपील के लंबित रहने के दौरान अपीलीय न्यायालय ऐसा आदेश दे सकता है-

(क) सजा का निष्पादन या जिस आदेश के खिलाफ अपील की गई है उसे निलंबित कर दिया जाए;

(ख) यदि अपीलकर्ता कारावास में है, तो उसे जमानत पर रिहा किया जाए; और

(ग) अपील की सुनवाई इस बात के बावजूद की जाए कि अपीलकर्ता ने अपनी अवमानना का शोधन नहीं किया है।

धारा 19 की उपधारा (2) इंगित करती है कि खंड (क) से (ग) के तहत उपबंधित राहत का दावा उस व्यक्ति के अनुरोध पर किया जा सकता

अनुवादित

है जिसके खिलाफ अदालत की अवमानना के लिए कार्रवाई की गई है।

5. लेकिन भले ही उस व्यक्ति की ओर से कोई अपील पोषणीय न हो, जिसके कहने पर अवमानना की कार्यवाही शुरू की गई थी और बाद में हटा दी गई थी या जिसकी अवमानना कार्यवाही शुरू करने की याचिका खारिज कर दी गई थी, वह बिना किसी उपचार के नहीं है। उचित मामलों में संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत इस न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का उपयोग किया जा सकता है और यह न्यायालय संतुष्ट होने पर कि यह एक उपयुक्त मामला था जहां अवमानना के लिए कार्यवाही शुरू की जानी चाहिए थी, उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को रद्द कर सकता है। उपयुक्त मामलों में, इस न्यायालय को न्याय प्रशासन के व्यापक हित में संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करना होगा।"

20. फिर भी माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **मिदनापुर पीपुल्स कोऑपरेटिव बैंक लिमिटेड** (उपरोक्त) के फैसले में पहले के फैसलों पर ध्यान दिया था और न्यायालय की अवमानना अधिनियम की धारा 9 के तहत अपील की पोषणीयता को नियंत्रित करने वाले कानून के सिद्धांतों को निकाला। जिसका पैराग्राफ 11 यहां नीचे उद्धृत किया गया है :

""11. अवमानना कार्यवाही में दिए जाने वाले आदेशों के खिलाफ अपील के संबंध में इन निर्णयों से उभरने वाली स्थिति को इस प्रकार संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है:

I. धारा 19 के तहत अपील केवल अवमानना के लिए दंडित करने के अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए पारित उच्च न्यायालय के आदेश या निर्णय, यानी अवमानना के लिए सजा देने वाले आदेश के खिलाफ ही सुनवाई योग्य होती है।

II. न तो अवमानना के लिए कार्यवाही शुरू करने से इनकार करने वाला आदेश, न ही अवमानना के लिए कार्यवाही शुरू करने वाला आदेश, न ही अवमानना के लिए कार्यवाही को छोड़ने का आदेश और न ही अवमाननाकर्ता को बरी करने या दोषमुक्त करने वाला आदेश, *सीसी अधिनियम की धारा 19 के तहत*

अनुवादित

अपीलयोग्य होता है। विशेष परिस्थितियों में, उन्हें संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत चुनौती दी जा सकती है।

III. अवमानना की कार्यवाही में, उच्च न्यायालय यह तय कर सकता है कि क्या अदालत की कोई अवमानना की गई है, और यदि हां, तो सजा क्या होनी चाहिए और उससे जुड़े मामले क्या होंगे। ऐसी कार्यवाही में, पक्षों के बीच विवाद के गुण-दोष से संबंधित किसी भी मुद्दे पर निर्णय देना या निर्णय लेना उचित नहीं है।

IV. पक्षों के बीच विवाद के गुण-दोष के आधार पर उच्च न्यायालय द्वारा जारी कोई भी निर्देश या निर्णय, 'अवमानना के लिए दंडित करने के अधिकार क्षेत्र' के अंतर्गत नहीं आएगा और इसलिए, सीसी अधिनियम की धारा 19 के तहत अपील योग्य नहीं होगा। एकमात्र अपवाद वह है जहां ऐसा निर्देश या निर्णय अवमानना के लिए दंडित करने वाले आदेश के साथ आकस्मिक या अविभाज्य रूप से जुड़ा हुआ है, ऐसी स्थिति में अधिनियम की धारा 19 के तहत अपील, आकस्मिक या अविभाज्य रूप से जुड़े निर्देशों को भी शामिल कर सकती है।

V. यदि उच्च न्यायालय, किसी भी कारण से, किसी मुद्दे पर निर्णय लेता है या अवमानना कार्यवाही में पक्षों के बीच विवाद के गुण-दोष से संबंधित कोई निर्देश देता है, तो पीड़ित व्यक्ति उपचार रहित नहीं होता है। इस तरह के आदेश को अन्तर न्यायालयीय अपील में चुनौती दी जा सकती है (यदि आदेश विद्वान एकल न्यायाधीश का था और अन्तर न्यायालयीय अपील का प्रावधान है), या (अन्य मामलों में) भारतीय संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत अपील करने के लिए विशेष अनुमति मांगी जा सकती है।"

21. **सुजीतेंद्र नाथ सिंह रॉय बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य (2015) 12 एससीसी 514** के मामले में दिए गए फैसले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ -5 में पहले के फैसले पर विचार करते हुए निम्नानुसार धारित किया : -

"5. कानून की इस उपधारणा में कोई रोक नहीं है कि न्यायालय की अवमानना

अनुवादित

अधिनियम, 1971 की धारा 19 के तहत केवल उच्च न्यायालय के ऐसे आदेश के खिलाफ उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील की जा सकती है जो अवमानना के लिए सजा देता है और एक अंतर्वर्ती आदेश या अवमानना कार्यवाही शुरू करने से इनकार करने के आदेश के खिलाफ कोई अपील नहीं की जाएगी। यह महाराष्ट्र राज्य बनाम महबूब एस. अलीभोय (1996) 4 एससीसी के मामले में स्पष्ट रूप से निर्धारित किया गया था। मिदनापुर पीपल्स कॉप बैंक लिमिटेड बनाम चुन्नीलाल नंदा (2006) 5 एससीसी 399 के मामले सहित कई मामलों में भी इस दृष्टिकोण का पालन किया गया था।"

22. इस न्यायालय ने **ए.पी. वर्मा बनाम यू.पी. प्रयोगशाला तकनीशियन संघ और अन्य, सी.एम. अवमानना अपील संख्या 102 सन् 1997, मनु/यूपी/0553/1998** के मामले में पैराग्राफ 3 में निम्नानुसार धारित किया गया है: -

"पुरुषोत्तम दास बनाम बी.एस. ढिल्लन, एआईआर 1978 एससी 1014 में भी यही दृष्टिकोण अपनाया गया था। डी.एन. तनेजा बनाम भजन लाल, 1998 एससीसी (सीआरआई) 546 में, यह दोहराया गया था कि धारा 19 की उप-धारा (1) के तहत उपलब्ध अपील का अधिकार केवल अवमानना के लिए दंडित करने के अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय के किसी निर्णय या आदेश के खिलाफ उपलब्ध है।"

23. **माहेश्वरी प्रसाद मिश्र बनाम श्रीमती अचला खन्ना (2006) 64 एएलआर 627 (इला.)** के मामले में, पैराग्राफ 4 में, इस न्यायालय ने निम्नानुसार धारित किया :

"मामले पर विचार करने पर, हमारी दृढ़ राय है कि अदालत की अवमानना अधिनियम की धारा 19 के तहत मौजूदा अपील बिल्कुल भी पोषणीय नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय ने महाराष्ट्र राज्य बनाम महबूब एस. अलीभोय और अन्य के मामले में कहा है कि अवमानना के लिए कार्यवाही बंद करने या अवमानना के लिए कार्यवाही शुरू करने से इनकार करने वाले आदेश के खिलाफ कोई अपील पोषणीय नहीं होती है। यह भी फैसला सुनाया गया है कि भले ही उस व्यक्ति की ओर से दायर कोई अपील

अनुवादित

सुनवाई योग्य न हो, और बाद में खारिज कर दी गई हो या जिसकी अवमानना कार्यवाही शुरू करने की याचिका खारिज कर दी गई है, वह निरुपाय नहीं है, उचित मामलों में, वह संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का इस्तेमाल कर सकता है और संतुष्ट होने पर सर्वोच्च न्यायालय उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेशों को रद्द कर सकता है।"

24. उपर्युक्त निर्णयों के बाद, **श्रीमती मंजू श्री रॉबिन्सन बनाम श्रीमती चिरकुमारिथवा यादव एसीजे (जे.डी.) (2014) 86 एसीसी 181** के मामले में इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने निम्नानुसार धारित किया :

"17. अवमानना के लिए कार्यवाही बंद करने या अवमानना के लिए कार्यवाही शुरू करने से इनकार करने वाले आदेश के खिलाफ कोई अपील पोषणीय नहीं होती है, यह न केवल धारा 19 की उपधारा (1) से स्पष्ट है, बल्कि धारा 19 की उपधारा (2) से भी स्पष्ट है, जो यह प्रावधान करती है कि किसी अपील के लंबित रहते हुए, अपीलीय न्यायालय आदेश दे सकता है

(क) सजा का निष्पादन या आदेश जिसके खिलाफ अपील की गई है,निलंबित किया जाए;

(ख) यदि अपीलकर्ता कारावास में है, तो उसे जमानत पर रिहा किया जाए; और

(ग) अपील की सुनवाई इस बात के बावजूद की जाएगी कि अपीलकर्ता ने अपनी अवमानना को खारिज नहीं किया है।"

25. उपर्युक्त निर्णय में दिए गए कानून के प्रस्ताव में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि अदालत की अवमानना अधिनियम, 1971 की धारा 19 के तहत अवमाननाकर्ता के खिलाफ अवमानना की कार्यवाही को समाप्त करने के खिलाफ कोई अपील नहीं की जा सकती है, क्योंकि इसका समाधान भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष है।

26. जहां तक इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमावली के अध्याय VIII नियम 5 के तहत एक विशेष अपील की विचारणीयता के संबंध में मुद्दा है, अपील केवल उन आकस्मिकताओं पर विचारणीय होती है जिसमें अवमानना क्षेत्राधिकार का प्रयोग निर्णय या आदेश के कार्यान्वयन के प्रयोजनों के लिए पक्षों के बीच विवाद या झगड़े की मेरिट को छूते हुए किया

अनुवादित

गया है और इसे संविधान के अनुच्छेद 226 द्वारा प्रदत्त शक्ति के प्रयोग में जारी किया गया माना जाएगा।

27. **मिदनापुर पीपुल्स कोऑपरेटिव बैंक लिमिटेड** (उपरोक्त) के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ -11 (IV और V) में बिंदु 'i' का उत्तर देते हुए माना था कि उच्च न्यायालय द्वारा जारी कोई भी निर्देश या निर्णय पक्षों के बीच विवाद के गुण-दोष के आधार पर, "अवमानना के लिए दंडित करने का अधिकार क्षेत्र" नहीं होगा और इसलिए, अदालत की अवमानना अधिनियम की धारा 19 के तहत अपील नहीं की जा सकती, क्योंकि एकमात्र अपवाद वह है जहां ऐसा निर्देश या निर्णय अवमानना के लिए दंडित करने वाले आदेश के साथ आकस्मिक या अविभाज्य रूप से जुड़ा हुआ है, ऐसी स्थिति में अधिनियम की धारा 19 के तहत अपील सुनवाई योग्य होगी। आगे उपबंध किया गया था कि यदि उच्च न्यायालय, किसी भी कारण से, किसी मुद्दे पर निर्णय लेता है या अवमानना कार्यवाही में पक्षों के बीच विवाद के गुण-दोष से संबंधित कोई निर्देश देता है, तो पीड़ित व्यक्ति निरुपाय नहीं होता है, क्योंकि उसे इंट्रा-कोर्ट अपील में चुनौती दी जा सकती है।

28. **ए.पी. वर्मा** (उपरोक्त) के मामले में, इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने निम्नानुसार धारित किया है: --

> *"इस प्रकार इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि अदालत की अवमानना अधिनियम के तहत शुरू की गई किसी भी कार्यवाही में, उच्च न्यायालय या तो कथित अवमाननाकर्ता को दंडित कर सकता है या आरोपमुक्त कर सकता है और ऐसा करने पर, वह ऐसे सभी सहायक आदेश पारित कर सकता है जो ऐसी शक्ति के प्रयोग के लिए आवश्यक हैं। लेकिन यह उन पक्षों के बीच मुख्य विवाद या विवाद के संबंध में निर्देश या आदेश नहीं दे सकता है जिसके कारण किसी भी पक्ष ने रिट याचिका दायर की है, हालांकि, किसी निर्णय या आदेश के कार्यान्वयन के लिए यदि पक्षों के बीच विवाद के गुण-दोष के संबंध में न्यायालय द्वारा कोई आदेश या निर्देश दिया जाता है, तो यह न्यायालय की अवमानना अधिनियम के प्रावधान का उल्लंघन होगा और उन्हें केवल संविधान के अनुच्छेद 226 द्वारा प्रदत्त शक्ति के प्रयोग में जारी किया गया माना जा सकता है, इसलिए, वे न्यायालय नियमावली के अध्याय VIII, नियम 5 के तहत अपील के लिए उत्तरदायी होंगे क्योंकि वे अधिनियम द्वारा प्रदत्त किसी भी शक्ति के प्रयोग में जारी नहीं किए गए हैं।"*

29. **शिव चरण बनाम नवल और अन्य, 1997(3) ए.डब्ल्यू.सी. 1909**, के मामले में,

अप्रमाणित

पैराग्राफ-13 में इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने निम्नानुसार धारित किया : -

"13. हालांकि, प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि चूंकि अवमानना याचिका को खारिज करने वाले एकल न्यायाधीश के फैसले के खिलाफ अधिनियम की धारा 19 के तहत कोई अपील नहीं की जा सकती है, इसलिए आवेदक निरुपाय हो जाएगा, यदि नियम 5 अध्याय VIII के तहत उसकी अपील को पोषणीय नहीं माना जाता है। यह दलील भी मेरिट से रहित है। महाराष्ट्र राज्य बनाम महबूब एस. अलीभोय और अन्य, (1996) 4 एससीसी 411, (उपरोक्त) में, सर्वोच्च न्यायालय ने इस नियम को दोहराया है कि अवमानना कार्यवाही दो पक्षों के बीच का विवाद नहीं है। ऐसी कार्यवाही न्यायालय और उस व्यक्ति के बीच का मामला है, जिस पर अवमानना करने का आरोप है।

.....

आवेदक भी निरुपाय नहीं होता है। वह भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अवमानना याचिका को खारिज करने वाले न्यायाधीश के फैसले को चुनौती दे सकता है।"

30. इसके अलावा हेमेंद्र स्वरूप भटनागर बनाम श्री पी.एस. गोसाईं **2007 में रिपोर्ट दी (1) एडब्ल्यूसी 1045,** के मामले में, इस माननीय न्यायालय के पास 1952 की नियमावली के अध्याय VIII नियम 5 के तहत अवमानना कार्यवाही को समाप्त करने के फैसले और आदेश के खिलाफ विशेष अपील की पोषणीयता के मुद्दे पर विचार करने का अवसर था, जिसमें इस न्यायालय ने निम्नानुसार धारित किया:

"7. धारा 19 के तहत अपील तब पोषणीय होती है जब अवमानना न्यायाधीश द्वारा अवमानना के लिए दंडित करने के अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए आदेश पारित किया जाता है। वर्तमान मामले में अवमानना न्यायाधीश ने नोटिस को खारिज कर दिया है, इसलिए धारा 19 के तहत अपील दायर करने का कोई सवाल ही नहीं है। ...

8. अवमानना आवेदन को खारिज करने या अवमानना मुक्त करने के आदेश के खिलाफ विशेष अपील की पोषणीयता के संबंध में प्रश्न पहले इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए आया

अवमानित

है। इस न्यायालय की एक डिवीजन बेंच ने ***ए.पी. वर्मा, प्रमुख सचिव, चिकित्सा स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण, उ.प्र., लखनऊ एवं अन्य बनाम उ.प्र. प्रयोगशाला तकनीशियन एसोसिएशन, लखनऊ और अन्य 1998***

(3) यूपीएलबीईसी 2333 *के मामले में उक्त प्रश्न पर विचार किया था। उस खंडपीठ ने उक्त फैसले में कहा कि अवमानना कार्यवाही शुरू करने से इनकार करने वाले आदेश के खिलाफ विशेष अपील पोषणीय नहीं है।*

9. ...

10. ...

11. विद्वान अवमानना न्यायाधीश ने अवमानना नोटिस का अवमुक्त करते समय कोई निर्देश जारी नहीं किया या कोई आदेश पारित नहीं किया। अपीलकर्ता के अधिवक्ता का यह कथन कि विद्वान न्यायाधीश ने मेरिट के आधार पर एक मुद्दे का फैसला किया है, को भी स्वीकार नहीं किया जा सकता है। विद्वान अवमानना न्यायाधीश ने केवल इस न्यायालय के पहले के निर्णयों पर विचार किया है जिनकी अवमानना का आरोप लगाया गया था। विद्वान अवमानना न्यायाधीश ने सभी तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद पाया कि तथ्यों से यह प्रतीत नहीं होता है कि कलेक्टर या विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी द्वारा कोई जानबूझकर अवज्ञा की गई है। अवमानना न्यायाधीश के अवमानना नोटिस को खारिज करने के आदेश को कोई निर्देश जारी करने या किसी मुद्दे को गुण-दोष के आधार पर तय करने वाला निर्णय नहीं कहा जा सकता है। ""

31. हाल ही में, इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने **अश्वनी कुमार बनाम महेंद्र प्रताप सिंह, विशेष अपील सं. 400 सन् 2021** के मामले में, दिनांक 6.7.2022 के आदेश के तहत इस विषय पर संपूर्ण कानून पर विचार किया है और पैराग्राफ 24 में निम्नानुसार धारित किया:-

"24. इस प्रकार, इसमें कोई संदेह नहीं है कि जहां तक अवमानना न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश के संबंध में न्यायालय की नियमावली के अध्याय VIII नियम 5 के तहत इस न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा

अनुवादित

क्षेत्राधिकार के प्रयोग को नियंत्रित करने वाले कानूनी सिद्धांतों का संबंध है, मिदनापुर पीपल्स कॉप. बैंक लिमिटेड (उपरोक्त) ही प्रभावी है, जिसके अनुसार यदि विद्वान अवमानना न्यायाधीश पक्षों के बीच विवाद के गुण-दोष से संबंधित किसी मुद्दे का निर्णय करता है, तो ऐसे निर्णय को विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए दिया गया निर्णय कहा जाएगा और इसलिए ऐसी स्थिति में विशेष अपील पोषणीय होगी।"

32. वर्तमान मामले के तथ्यों में उपर्युक्त निर्णय को लागू करते समय, अब इस न्यायालय को इस बात पर गहन विचार करना होगा कि क्या प्रतिपक्षी के खिलाफ अवमानना शुरू करने से इनकार करने के विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय और आदेश के खिलाफ वर्तमान अंतर-न्यायालयीय पोषणीय है।

33. जैसा कि ऊपर देखा गया है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय और इस न्यायालय ने लगातार माना है कि किसी आकस्मिक स्थिति में अवमानना क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाले विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश के खिलाफ एक अंतर-न्यायालयीय अपील पोषणीय नहीं है, जब अवमानना कार्यवाही शुरू नहीं की जा रही हो। **दुर्गा नागपाल** (उपरोक्त) के मामले में फैसले पर भरोसा करना गलत है क्योंकि उक्त मामले में, अपीलीय क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय माननीय न्यायाधीशों को ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ा जहां अंतिम निर्णय में संशोधन के लिए आवेदन स्वीकार करते हुए अवमानना अदालत ने अपने ही आदेश की समीक्षा की। खंड पीठ ने कहा कि जब आरोपियों को बरी कर दिया जाता है और कार्यवाही बंद कर दी जाती है, तो संशोधन के लिए विविध आवेदन पोषणीय नहीं होते हैं। उक्त परिप्रेक्ष्य में, विशेष अपील को विचारणीय माना गया। चूँकि वर्तमान मामला अवमानना न्यायालय के एक ऐसे निर्णय और आदेश से उत्पन्न हुआ है, जिसमें अवमानना क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से इनकार कर दिया गया है, इसलिए, उक्त निर्णय अपीलकर्ताओं की कोई मदद नहीं करेगा।

35. तदनुसार, हमारी दृढ़ राय है कि अवमानना कार्यवाही शुरू करने से इनकार करने वाले विद्वान एकल न्यायाधीश के दिनांक 17.03.2023 के फैसले और आदेश के खिलाफ वर्तमान अंतर-न्यायालयीय अपील न्यायालय की नियमावली के अध्याय VIII नियम 5 के तहत पोषणीय नहीं है।.

36. तदनुसार, अंतर-न्यायालयीय अपील को अपोषणीय होने के कारण **खारिज** किया जाता है।

अनुवादित

(2023) 6 ILRA 632

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 02.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार

रिट-ए संख्या 494/2023

राधिका बघेल **याचिकाकर्ता**

बनाम

यू.पी. राज्य और अन्य **प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री रमेश चंद्र द्विवेदी

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

सी.एस.सी.

ए. सेवा कानून - अनुकंपा नियुक्ति - इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 - अध्याय III का विनियमन 103 - यू.पी. सरकारी सेवक (सेवानिवृत्त) नियम, 1974 - इस मामले में आवेदक/याचिकाकर्ता को अनुकंपा नियुक्ति देने से इनकार करना इस आधार पर उचित नहीं ठहराया जा सकता कि वह विवाहित पुत्री है। एक बार जब न्यायालय ने श्रीमती विमला श्रीवास्तव (इन्फ्रा) के मामले में इस न्यायालय के खंडपीठ के फैसले को स्वीकार कर लिया है, ताकि उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (सेवानिवृत्त) नियम, 1974 में संशोधन किया जा सके और बाद में माध्यमिक शिक्षा परिषद की ओर से गजट अधिसूचना के माध्यम से इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम के अध्याय III के विनियम 103 में संशोधन किया जा सके, तो यह माना जाएगा कि कानून हमेशा से था और इसलिए न्यायालय ने खंडपीठ के फैसले को देखते हुए मृतक कर्मचारी के आश्रितों के 'परिवार' शब्द के अर्थ में विवाहित पुत्री को शामिल करने का प्रावधान शामिल करके नियम/विनियम को सही करने का इरादा किया। बार में यह स्वीकार किया गया है कि श्रीमती विमला श्रीवास्तव (इन्फ्रा) का उक्त फैसला अभी भी लागू है और उसके खिलाफ विशेष अनुमति याचिका दायर की गई थी, जिसे भी खारिज कर दिया गया था। (पैरा 13, 15)

बी. याचिकाकर्ता किसी भी तरह से अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन करने में देरी के लिए जिम्मेदार नहीं है। याचिकाकर्ता वर्ष 2015 से ही इस मामले को आगे बढ़ा रही है। उसके दिवंगत पिता की मृत्यु वर्ष 2012 में हो गई थी और वह वर्ष 2014 में ही इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका दायर करने आई थी, जो रिट-ए संख्या 37939/2014 दिनांक 14.07.2014 को दायर की गई थी। डीआईएस द्वारा दिनांक 05.11.2014 को पारित आदेश में उन्होंने अनुकंपा नियुक्ति के लिए उसके दावे को खारिज करते समय वर्तमान आवेदक द्वारा किए गए विलंब, यदि कोई हो, का आधार नहीं लिया है और इसके बजाय उसका दावा केवल इस तथ्य के कारण खारिज कर दिया गया कि इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम के अध्याय III के विनियमन 103 में विवाहित बेटी को आश्रितों के 'परिवार' की परिभाषा में शामिल करने का प्रावधान नहीं है। इस न्यायालय में रिट-ए संख्या 4553/2015 की याचिका लंबित रहने के दौरान, उक्त आदेश के विरुद्ध, ***विमला श्रीवास्तव के निर्णय (इन्फ्रा)*** में हस्तक्षेप किया गया, जिसमें विवाहित पुत्री को भी शामिल करने का निर्देश दिया गया तथा मृतक के आश्रित 'परिवार' के सदस्य के रूप में विवाहित पुत्री को शामिल न करने

अद्यतनीकृत

संबंधी सुसंगत प्रावधानों को अति-विषाक्त माना गया। **उपर्युक्त निर्णय के पश्चात माध्यमिक शिक्षा परिषद ने 06.12.2022 के राजपत्र अधिसूचना के माध्यम से विनियम 103 में निहित अपने प्रावधान में संशोधन करने की जल्दबाजी की, जिसमें अब केवल 'पुत्री' शब्द का प्रयोग किया गया है, जिसमें निर्विवाद रूप से विवाहित एवं अविवाहित दोनों पुत्रियां शामिल होंगी।** (पैरा 17, 18, 19)

सी. एक सिद्धांत जिसे नियम के रूप में लिया जाना चाहिए कि एक विवाहित पुत्री, यदि वह अपने पिता या माता के सरकारी सेवा में जीवनकाल के दौरान विवाहित हुई है, तो उसे हमेशा अपने पति पर आश्रित माना जाएगा, जब तक कि यह स्थापित न हो जाए कि उसका पति भी कमाता नहीं था तथा दोनों ही मृतक की मृत्यु के समय उस पर आश्रित थे। भारतीय 'परिवार' की अवधारणा में पत्नी को अपने पति पर आश्रित माना जाता है, यदि वह स्वयं कार्यरत नहीं है। इसी प्रकार परिवार के प्रथम सदस्यों को भी आश्रित माना जाता है। इसी प्रकार विवाहित पुत्री भी यदि उसका पति कमाने वाला न हो तो आश्रित हो सकती है, तथा इस उद्देश्य के लिए विवाहित पुत्री 'परिवार' शब्द के अंतर्गत आएगी, ताकि अनुकंपा नियुक्ति के लिए उसका दावा अस्वीकार न किया जा सके। इस उद्देश्य के लिए यह जांच करना आवश्यक होगा कि क्या पति लाभकारी रूप से कार्यरत है, यदि नहीं है तो उसकी वित्तीय स्थिति और विवाहित पुत्री की वित्तीय स्थिति क्या है। (पैरा 20)

डी. यह हमेशा देखा जाना चाहिए कि क्या काफी लंबी अवधि (जैसे इस मामले में कमाने वाले सदस्य की मृत्यु के सात वर्ष) बीत जाने के बाद भी परिवार को जीवित रहने के लिए सेवा की आवश्यकता है या परिवार को किसी संकट से निपटने के लिए वित्तीय सहायता की आवश्यकता है, विशेषकर उन परिस्थितियों में जब विधवा को पेंशन मिल रही हो और याचिकाकर्ता सहित सभी पुत्रियों का विवाह कर्मचारी की मृत्यु से पहले हो चुका हो। मामले को केवल याचिकाकर्ता और उसके पति की वित्तीय स्थिति की जांच करने के सीमित उद्देश्य से डीआईएस को भेजा गया है। यदि यह पाया जाता है कि याचिकाकर्ता के पति की आर्थिक स्थिति अच्छी है, जैसे कि ज़मीन-जायदाद या अन्य कोई चीज़, जो परिवार के जीवन-यापन के लिए पर्याप्त हो, तो याचिकाकर्ता को नियमानुसार अनुकंपा नियुक्ति नहीं दी जा सकती। (पैरा 22)

उपरोक्त मापदंडों के आधार पर, यदि याचिकाकर्ता सफल होती है, तो उसे अनुकंपा नियुक्ति दी जाएगी और किसी भी तकनीकी कारण से उसे इससे वंचित नहीं किया जाएगा। याचिकाकर्ता को अपने पति की पूरी संपत्ति और अपनी स्वामित्व वाली संपत्ति का भी खुलासा करना होगा। (पैरा 23, 25)

रिट याचिका का निपटारा किया गया।(ई-4)

<u>अनुसरण किया गया उदाहरण:</u>

1. श्रीमती विमला श्रीवास्तव बनाम स्टेट ऑफ यू.पी. एवं अन्य, रिट-सी संख्या 60881/2015, दिनांक 04.12.2015 को निर्णयित (पैरा 5)
2. सीमा गुप्ता बनाम स्टेट ऑफ यू.पी. एवं अन्य, रिट-ए संख्या 9842/2022, दिनांक 13.07.2022 को निर्णयित (पैरा 5)
3. ईशा त्यागी बनाम स्टेट ऑफ यू.पी. और अन्य, रिट-सी संख्या 41279/2014, 26.08.2014 को निर्णयित (पैरा 7)

अनुवादित

4. भारत सरकार बनाम वेंकटेश, 01.03.2019 को निर्णयित, एसएलपी (सी) संख्या 5810/2017 (पैरा 12)

5. स्टेट ऑफ बंगाल बनाम देवब्रत तिवारी और अन्य, 03.03.2023 को निर्णयित, सिविल अपील संख्या 8842-8855/2022 (पैरा 12)

पूर्व उदाहरण:

स्टेट ऑफ महाराष्ट्र और अन्य बनाम माधुरी मालती विधाते, सिविल अपील संख्या 6938/2020, 30.12.2022 को निर्णयित (पैरा 11)

(माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार द्वारा दिया गया)

1. आज दाखिल किया गया प्रति शपथपत्र अभिलेखित किया गया है।

2. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री आर.सी. द्विवेदी ने दलील दी कि वह प्रत्युत्तर शपथपत्र दाखिल नहीं करना चाहते हैं।

3. संबंधित पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

4. विचारणीय कानूनी मुद्दा एक विवाहित पुत्री द्वारा इस आधार पर अनुकंपा नियुक्ति के लिए किए गए दावे से संबंधित है कि वह और उसका पति अपने मृत पिता के आश्रित थे, जिनकी मृत्यु एक मान्यता प्राप्त सहायता प्राप्त संस्थान में दफ्तरी (चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी) के रूप में कार्य करते समय हुई थी।

5. जब याचिकाकर्ता के दावे पर जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा विचार नहीं किया गया तो उसने रिट याचिका रिट-ए संख्या 37939/2014 दायर की, जिसका निस्तारण दिनांक 30.07.2014 को इस निर्देश के साथ किया गया कि जिला विद्यालय निरीक्षक को मामले में निर्णय लेने का निर्देश दिया जाए। जिला विद्यालय निरीक्षक ने 05.11.2014 को आदेश पारित कर याचिकाकर्ता के दावे को इस आधार पर खारिज कर दिया कि इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 के अध्याय III के विनियम 103 के अनुसार, विवाहित पुत्री आश्रितों के 'परिवार' की परिभाषा में नहीं आ सकती। याचिकाकर्ता पुनः रिट - ए संख्या 4553/2015 के माध्यम से इस न्यायालय में आया, जिसका निस्तारण दिनांक 13.09.2022 के निर्देश के साथ किया गया कि **श्रीमती विमला श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** (रिट - सी संख्या 60881/2015, निर्णीत दिनांक 04.12.2015) के निर्णय और समान रूप से प्रस्तुत एक निर्णय, याचिकाकर्ता सीमा गुप्ता, **रिट - ए संख्या 9842/2022, सीमा गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 3 अन्य** (निर्णीत दिनांक 13.07.2022) में पारित किया गया, याचिकाकर्ता का दावा फिर से खारिज कर दिया गया है।

6. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वकील श्री द्विवेदी द्वारा प्रस्तुत तर्क यह है कि श्रीमती विमला श्रीवास्तव (उपरोक्त) के मामले में मुख्य न्यायाधीश डॉ डी. वाई. चंद्रचूड़ (तत्कालीन माननीय न्यायाधीश) की अध्यक्षता वाली खंडपीठ के निर्णय के मद्देनजर, खंडपीठ द्वारा चर्चित कानूनी सिद्धांत के सादृश्य और विश्लेषण के आधार पर विवाहित पुत्री को 'परिवार' शब्द की परिभाषा के अंतर्गत माना गया है:

> *"विरोधी प्रस्तुतियों का मूल्यांकन करते समय, यह ध्यान रखना चाहिए कि नियम 2 (सी) में "परिवार"*

अनुवादित

की परिभाषा में मृतक सरकारी कर्मचारी के उत्तराधिकारियों की श्रेणियां शामिल हैं। इनमें पत्नी या पति, बेटे और दत्तक पुत्र, अविवाहित बेटियाँ, अविवाहित दत्तक बेटियाँ, विधवा बेटियाँ और विधवा बहुएँ शामिल हैं। नियम 2 (सी) का खंड (ii) वैवाहिक स्थिति पर ध्यान दिए बिना बेटे के साथ-साथ दत्तक पुत्र को भी "परिवार" की परिभाषा के दायरे में लाता है। नियम 2 (सी) के उद्देश्य के लिए विवाहित पुत्र "परिवार" की अभिव्यक्ति के दायरे में बना रहेगा। लेकिन विधायी परिभाषा के अनुसार, विवाहित पुत्री को मृतक सरकारी कर्मचारी के परिवार के दायरे और अधिकार क्षेत्र से बाहर रखा गया है, जब तक कि वह विधवा पुत्री की श्रेणी में न आती हो। नियम 2 (सी) में निहित घृणित भेदभाव इस तथ्य में निहित है कि विवाहित होने के कारण पुत्री को "परिवार" शब्द के दायरे से बाहर रखा जाता है। उसका बहिष्कार विवाह के कारण संचालित होता है और चाहे वह मृतक सरकारी कर्मचारी की मृत्यु के समय उस पर आश्रित थी या नहीं। विवाह किसी बेटे को "परिवार" की अभिव्यक्ति के दायरे से बाहर नहीं करता है। लेकिन विवाह में बेटी को शामिल नहीं किया जाता। यह निंदनीय है। एक विवाहित बेटी जो विवाह के बाद अलग हो गई है और मृतक पर आश्रित हो सकती है, इस भेदभाव के परिणामस्वरूप बाहर हो जाएगी। तलाकशुदा बेटी भी इसी तरह से बाहर रखी जाएगी। भले ही वह अपने पिता पर आश्रित हो, वह केवल इस तथ्य के कारण अनुकंपा नियुक्ति के लिए पात्र नहीं होगी कि वह "अविवाहित" नहीं है। बहिष्कार का एकमात्र आधार विवाह है और उसकी शादी के बिना, एक बेटी को "परिवार" की परिभाषा से बाहर नहीं रखा जाएगा।"

7. डिवीजन बेंच ने **ईशा त्यागी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 3 अन्य** के मामले में अपने पहले के निर्णय (रिट-सी संख्या 41279/2014, दिनांक 26.08.2014 को निर्णीत) पर भी अवलम्ब लिया, जिसमें स्वतंत्रता सेनानी की विवाहित बेटियों को राज्य सेवाओं में क्षैतिज आरक्षण प्रदान करते समय विचार करने का निर्देश दिया गया था और फिर न्यायालय ने इस प्रकार अवधारित किया:

"इस मामले में क्षैतिज आरक्षण का लाभ केवल बेटों

अनुवादित

(और उनके बेटों) और अविवाहित बेटियों तक ही सीमित रखकर विवाहित बेटियों के साथ भेदभाव करना कालबाह्य होगा। यदि पुत्र की वैवाहिक स्थिति से कानूनी तौर पर उसके अधिकार या वंशज के रूप में उसकी पात्रता में कोई अंतर नहीं पड़ता है, तो हमारे विचार से, संवैधानिक मूल्यों के संदर्भ में पुत्री की वैवाहिक स्थिति से भी कोई अंतर नहीं पड़ना चाहिए। यह धारणा कि विवाहित बेटी विवाह के पश्चात अपने माता-पिता के परिवार का हिस्सा नहीं रह जाती, इस पर समकालीन समय में पुनर्विचार किया जाना चाहिए। कानून यह नहीं मान सकता कि विवाहित पुत्र ही अपने माता-पिता के परिवार का सदस्य बना रहेगा और विवाहित पुत्री अपने माता-पिता के परिवार की सदस्य नहीं रह जाएगी। इस तरह की धारणा संवैधानिक रूप से अस्वीकार्य है क्योंकि यह विवाहित बेटियों और उनके बच्चों के साथ भेदभाव करने का एक घृणित आधार है। यह सामाजिक कल्याण उपाय एक स्वतंत्रता सेनानी के बेटे को वैवाहिक स्थिति के बावजूद जो लाभ देता है, उससे स्वतंत्रता सेनानी की विवाहित बेटी को वंचित नहीं किया जा सकता है।"

8. उपरोक्त के मद्देनजर, खण्ड पीठ ने मृतक आश्रित नियमावली के नियम 2(सी)3 में 'अविवाहित' शब्द को अवैध करार देते हुए उसे रद्द कर दिया। इसके बाद, राज्य सरकार ने दिनांक 12.11.2021 के संशोधन के तहत उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (सेवा में मृत्यु) नियमावली, 1974 में संशोधन किया। राज्य सरकार ने माध्यमिक शिक्षा परिषद, उत्तर प्रदेश, प्रयागराज दिनांक 06.12.2022 के माध्यम से माध्यमिक शिक्षा विभाग का एक राजपत्र अधिसूचना भी जारी किया है, जिसमें इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 के अध्याय III के विनियम 103 में संशोधन किया गया है।

9. अभी केवल 'बेटी' शब्द प्रदान किया गया है जिसमें दत्तक पुत्री भी शामिल होगी। इस प्रकार, 'बेटी' शब्द में स्वाभाविक रूप से एक विवाहित बेटी शामिल होगी।

10. यह विधि में सुस्थापित है कि एक बार जब कोई प्रावधान संवैधानिक न्यायालय के न्यायिक निर्णय के अंतर्गत आता है, तो: (क) यह माना जाएगा कि वह कभी था ही नहीं; तथा (ख) जो कुछ भी अधिकार क्षेत्र से बाहर के कारण शून्य है, वह आरंभ से ही शून्य है। तदनुसार, मैं विमला श्रीवास्तव (उपरोक्त) मामले में अपनाए गए उसी सिद्धांत के आधार पर विनियमों के अंतर्गत निहित समान प्रावधानों को अधिकारहीन मानता हूं, क्योंकि वे इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 के

अनुवादित

अध्याय III के प्रासंगिक विनियमन के अंतर्गत विद्यमान थे। मैं पाता हूं कि इन्हीं कारणों से इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 के तहत बनाए गए विनियमों में निहित अनुरूप प्रावधानों को भी राज्य सरकार द्वारा तदनुसार संशोधित किया गया है। केवल इसलिए कि ऐसी कार्रवाई के अभाव में विनियमों में संशोधन नहीं किया गया और माध्यमिक शिक्षा परिषद की ओर से कार्रवाई इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा यह निर्णय दिए जाने के बाद की गई कि विवाहित पुत्री भी 'परिवार' शब्द के अंतर्गत आश्रित परिवार की सदस्य होगी, याचिकाकर्ता के विवाहित पुत्री होने के दावे को अस्वीकार नहीं किया जाना चाहिए था।

11. विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री पाल द्वारा दो तर्क दिए गए हैं, पहला, अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन अत्यधिक समयबाधित था और दूसरा यह है कि हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय ने **महाराष्ट्र राज्य और अन्य बनाम माधुरी मालती विधाते** के मामले में सिविल अपील संख्या 6938/2020 में 30.12.2022 को फैसला सुनाया है कि अनुकंपा नियुक्ति, सेवाकाल के दौरान मृत कर्मचारी के आश्रितों के पक्ष में सार्वजनिक सेवाओं में नियुक्ति के सामान्य नियम का अपवाद है और यह विचार पूरी तरह से मानवीय प्रकृति का है, जिसका उद्देश्य उस परिवार को आजीविका का स्रोत प्रदान करना है जो अचानक वित्तीय संकट में फंस गया है। अतः यह माना गया कि इसका उद्देश्य परिवार को अचानक आने वाले संकट से निपटने में सक्षम बनाना है, इसलिए यह माना गया कि अनुकंपा नियुक्ति के प्रयोजन के लिए विवाहित पुत्री को मां पर आश्रित नहीं माना जा सकता।

12. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने **भारत सरकार बनाम पी. वेंकटेश** के मामले में दिनांक 01.03.2019 को लिए गए निर्णय पर भी अवलम्ब लिया है, जो **एसएलपी (सी) संख्या 5810/2017** है और साथ ही **बंगाल राज्य बनाम देवब्रत तिवारी और अन्य** के मामले में दिनांक 03.03.2023 को **सिविल अपील संख्या 8842-8855/2022** में लिए गए निर्णय पर भी अवलम्ब लिया है। पैराग्राफ संख्या 7.1 और 8 पर अवलम्ब लिया गया है।

13. संबंधित पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं और उनके द्वारा प्रस्तुत तर्कों को सुनने के बाद, मेरे विचार में, इस मामले में आवेदक/याचिकाकर्ता को अनुकंपा नियुक्ति से इनकार करने के प्रश्न को इस आधार पर उचित नहीं ठहराया जा सकता कि वह एक विवाहित पुत्री है। एक बार जब राज्य ने स्वयं श्रीमती विमला श्रीवास्तव (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय के खंडपीठ के निर्णय को स्वीकार कर लिया है, ताकि उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (सेवा में मृत्यु) नियमावली, 1974 को संशोधित किया जा सके और बाद में माध्यमिक शिक्षा परिषद की ओर से गजट अधिसूचना के माध्यम से इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम के अध्याय III के विनियम 103 को संशोधित किया जा सके, तो यह माना जाएगा कि कानून तो हमेशा से था और इसलिए राज्य ने खंडपीठ के निर्णय को देखते हुए मृतक कर्मचारी के आश्रितों के 'परिवार' शब्द के अर्थ में विवाहित पुत्री को शामिल करने का प्रावधान शामिल करके नियम/विनियम को सही करने का इरादा किया। न्यायालय में यह स्वीकार किया गया है कि श्रीमती विमला श्रीवास्तव (उपरोक्त) का उक्त

अनुवादित

निर्णय अभी भी मान्य है और उसके विरुद्ध विशेष अनुमति याचिका भी खारिज कर दी गई है।

14. महाराष्ट्र राज्य (उपरोक्त) के मामले में निर्णय तथ्यों के आधार पर भिन्न होने के कारण लागू नहीं होगा, क्योंकि वर्तमान मामले में अनुकंपा नियुक्ति उन नियमों द्वारा शासित होती है, जिनकी व्याख्या वर्ष 2015 में दिए गए खण्ड पीठ के निर्णय द्वारा की गई है। अब उत्तर प्रदेश राज्य में नियम यह है कि विवाहित पुत्री को अनुकंपा नियुक्ति के प्रयोजन के लिए सेवाकाल के दौरान मृत कर्मचारी के आश्रितों के 'परिवार' की परिभाषा में शामिल किया जाएगा।

15. निःसंदेह, यह तर्क दिया जाना चाहिए कि जब उत्तर प्रदेश राज्य में जिस प्रावधान के तहत विवाहित पुत्रियों को स्पष्ट रूप से बाहर रखा गया है, उसे अधिकारहीन माना गया है और ऐसे निर्णय के खिलाफ विशेष अनुमति याचिका खारिज कर दी गई है, तो इसे उत्तर प्रदेश राज्य में कानून माना जाना चाहिए और अब नियमों में भी उचित संशोधन किया गया है।

16. राज्य प्रतिवादियों की यह दलील भी मान्य नहीं होगी कि जिस समय दिवंगत कर्मचारी की मृत्यु हुई और याचिकाकर्ता ने आवेदन किया था, उस समय नियमों में संशोधन नहीं किया गया था। सरकारी सेवा में या किसी राज्य में राज्य सरकार से सहायता प्राप्त करने वाले प्रतिष्ठान में सेवा में, जहाँ तक लाभकारी विधान का संबंध है, कानून के समान सिद्धांतों द्वारा शासित किया जाएगा। समान रूप से रखे गए व्यक्तियों के साथ एक ही नियोक्ता या यहाँ तक कि राज्य के साधन द्वारा भी भेदभाव नहीं किया जा सकता है, जहाँ राज्य से सहायता प्राप्त होती है। एक बार जब खंडपीठ ने किसी प्रावधान को अधिकारहीन मान लिया तो यह उसी राज्य या उसके साधनों द्वारा बनाए गए अनुरूप प्रावधानों पर भी समान रूप से लागू होगा। इसलिए विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय अलग-अलग है और यह इस मामले पर लागू नहीं होगा।

17. वर्तमान मामले में विलंब के प्रश्न पर आते हुए, मैंने पाया कि याचिकाकर्ता वर्ष 2015 से ही इस मामले को आगे बढ़ा रहा है। उसके दिवंगत पिता की मृत्यु वर्ष 2012 में हो गई थी और वह वर्ष 2014 में ही इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका दायर करने आई थी, जो रिट-ए संख्या 37939/2014 दिनांक 14.07.2014 को दायर की गई थी। जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा दिनांक 05.11.2014 को पारित आदेश में उन्होंने वर्तमान आवेदिका द्वारा अनुकंपा नियुक्ति के लिए किए गए दावे को खारिज करते समय, यदि कोई हो, देरी का आधार नहीं लिया है, बल्कि अनुकंपा नियुक्ति के लिए उसका दावा केवल इस तथ्य के कारण खारिज कर दिया गया कि इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम के अध्याय III के विनियम 103 में विवाहित पुत्री को आश्रितों के 'परिवार' की परिभाषा में शामिल करने का प्रावधान नहीं है। जबकि उक्त आदेश के विरुद्ध रिट-ए संख्या 4553/2015 की याचिका इस न्यायालय के समक्ष लंबित थी, विमला श्रीवास्तव के निर्णय (उपरोक्त) में हस्तक्षेप किया गया, जिसमें विवाहित पुत्री को भी शामिल करने का निर्देश दिया गया तथा मृतक के आश्रित 'परिवार' के सदस्य के रूप में विवाहित पुत्री को शामिल न

अनुवादित

करने संबंधी प्रासंगिक प्रावधानों को अतिविरुद्ध माना गया।

18. एक समवर्ती न्यायालय ने विमला श्रीवास्तव के मामले (उपरोक्त) के सिद्धांत को सीमा गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 3 अन्य के मामले में रिट - ए संख्या 9842/2022 में लागू किया। 30.07.2022 को दिए गए उक्त फैसले में और उसके बाद, माध्यमिक शिक्षा परिषद ने 06.12.2022 के राजपत्र अधिसूचना के माध्यम से विनियम 103 में निहित अपने प्रावधान को संशोधित करने की जल्दबाजी की, जो अब केवल 'बेटी' शब्द का उपयोग करता है जिसमें निर्विवाद रूप से विवाहित और अविवाहित दोनों बेटियां शामिल होंगी।

19. इसलिए, मामले के इस दृष्टिकोण से, मैं इस तर्क से प्रभावित नहीं हूं कि याचिकाकर्ता अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन करने में देरी के लिए किसी भी तरह से जिम्मेदार था।

20. हालांकि, विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्क कि एक सिद्धांत को नियम के रूप में लिया जाना चाहिए कि एक विवाहित पुत्री, यदि उसकी शादी उसके पिता या माता के सरकारी सेवा में रहने के दौरान हुई है, तो उसे हमेशा अपने पति पर आश्रित माना जाएगा, जब तक कि यह स्थापित न हो जाए कि उसका पति भी कमाता नहीं था और दोनों मृतक की मृत्यु के समय उस पर आश्रित थे, यह बात सही है। 'परिवार' की भारतीय अवधारणा में पत्नी को अपने पति पर निर्भर माना जाता है, यदि वह स्वयं नौकरी नहीं करती है। इसी तरह परिवार के पहले सदस्यों को भी आश्रित माना जाता है। इसी प्रकार, यदि विवाहित पुत्री का कमाने वाला पति न हो, तो वह भी आश्रित हो सकती है, तथा इस उद्देश्य के लिए विवाहित पुत्री भी 'परिवार' शब्द के अंतर्गत आएगी, ताकि अनुकंपा नियुक्ति के लिए उसका दावा अस्वीकार न किया जा सके। इस प्रयोजन के लिए यह जांच करना आवश्यक होगा कि क्या पति लाभकारी रोजगार में लगा है, यदि नहीं तो उसकी वित्तीय स्थिति और विवाहित पुत्री की वित्तीय स्थिति क्या है।

21. इसलिए, मामले के उपरोक्त दृष्टिकोण को देखते हुए, इस याचिका में जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 30.11.2022 को एतद्द्वारा निरस्त किया जाता है।

22. यह मामला केवल याचिकाकर्ता और उसके पति की वित्तीय स्थिति की जांच करने के सीमित उद्देश्य से जिला विद्यालय निरीक्षक को भेजा जा रहा है। यदि यह पाया जाता है कि याचिकाकर्ता के पति की भूमि संपत्ति या अन्य किसी मामले में अच्छी वित्तीय स्थिति है, जिसे परिवार के जीवनयापन के लिए पर्याप्त कहा जा सकता है, तो याचिकाकर्ता को नियमानुसार अनुकंपा नियुक्ति नहीं दी जा सकती है, क्योंकि यह हमेशा देखा जाना चाहिए कि क्या कमाने वाले सदस्य की मृत्यु के सात वर्ष जैसे काफी लंबे समय बीत जाने के बाद भी, जैसा कि इस मामले में है, परिवार को जीवनयापन के लिए सेवा की आवश्यकता है या परिवार को किसी संकट से निपटने के लिए वित्तीय सहायता की आवश्यकता है, विशेषकर उन परिस्थितियों में जब विधवा को पेंशन मिल रही हो और याचिकाकर्ता सहित सभी बेटियों की शादी कर्मचारी की मृत्यु से पहले हो गई हो।

अवलोकन

23. यह स्पष्ट किया जाता है कि उपरोक्त मापदंडों पर, यदि याचिकाकर्ता सफल होती है, तो उसे अनुकंपा नियुक्ति की पेशकश की जाएगी और किसी भी तकनीकी कारण से उसे इससे वंचित नहीं किया जाएगा।

24. इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत किए जाने की तिथि से दो माह की अवधि के भीतर उपरोक्त टिप्पणियों के आलोक में उचित निर्णय लिया जाएगा।

25. इस मामले को देखते हुए, याचिकाकर्ता को अपने पति की सम्पूर्ण संपत्ति तथा अपनी स्वामित्व वाली संपत्ति का भी खुलासा करना होगा।

26. उपर्युक्त टिप्पणियों और निर्देशों के साथ, यह याचिका **निस्तारित** की जाती है।

(2023) 6 ILRA 638

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 15.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्रीवास्तव

रिट-ए संख्या 5196/2023

श्रीमती विभा पांडे **याचिकाकर्ता**

बनाम

यू.पी. राज्य और अन्य **प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री आशीष कुमार ओझा

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी.

सेवा कानून - मूल्यांकन - दंड - उत्तर प्रदेश सरकारी कर्मचारी (प्रतिकूल वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट और संबद्ध मामलों के खिलाफ अभ्यावेदन का निपटान) नियम, 1995 - उत्तर प्रदेश अधीनस्थ रैंक के पुलिस अधिकारी (दंड और अपील) नियम, 1991 - रिपोर्टिंग प्राधिकारी, समीक्षा प्राधिकारी और साथ ही स्वीकार करने वाले प्राधिकारी द्वारा किए गए मूल्यांकन को चुनौती देने के लिए याचिकाकर्ता द्वारा शायद ही कोई आधार लिया गया हो, जो 1995 के नियमों के तहत परिभाषित सक्षम प्राधिकारी है। (पैरा 9)

याचिकाकर्ता द्वारा जिन प्राधिकारियों पर भरोसा किया गया है, वे पूरी तरह से अलग-अलग आधार पर हैं और अनुशासनात्मक कार्यवाही से संबंधित हैं, जिसमें दंड दिया गया है और इसका उल्लेख 1991 के नियमों में नहीं किया गया था और इसे अवैध माना गया है। (पैरा 10)

जबकि वर्तमान मामला बिल्कुल भी डब्ल्यू.आर.टी. से संबंधित नहीं है। किसी भी सजा के लिए, यह केवल आचरण, व्यवहार और गतिविधियों का मूल्यांकन है, जैसा कि याचिकाकर्ता द्वारा उस वर्ष की चालू अवधि के दौरान किया गया था, जिसके लिए उसका मूल्यांकन किया गया था और ईमानदारी को बनाए रखने के लिए रिपोर्ट किया गया था यानी प्रकृति में खराब और इसे समय से पहले सूचित किया गया था ताकि याचिकाकर्ता 1995 के नियमों के तहत उपलब्ध अधिकारों का प्रयोग कर सके। (पैरा 8, 11)

रिट याचिका खारिज। (ई-4)

<u>मिसाल कायम की गई:</u>

1. नरेंद्र सिंह यादव बनाम स्टेट ऑफ यू.पी. और अन्य, रिट ए नंबर 25665 ऑफ 2012, 23.05.2012 को तय हुआ (पैरा 7, 11)

अनुवादित

2. सत्य देव शर्मा बनाम स्टेट ऑफ यू.पी., सेवा एकल संख्या 1315 ऑफ 2023, 02.04.2013 को तय हुआ (पैरा 7, 11)

3. विजय सिंह बनाम स्टेट ऑफ यू.पी. &अन्य, सिविल अपील संख्या 3550/2012, दिनांक 13.04.2012 को निर्णीत (पैरा 7, 11)

वर्तमान याचिका में अपर पुलिस महानिदेशक तथा पुलिस उप महानिरीक्षक, गोरखपुर रेंज, गोरखपुर, जिला गोरखपुर द्वारा पारित दिनांक 26.10.2022 तथा 24.06.2022 के आदेश का विरोध किया गया है। साथ ही, प्रतिवादी प्राधिकारियों को यह निर्देश देने का अनुरोध किया गया है कि वे याचिका के सेवा अभिलेखों में सत्यनिष्ठा को रोकने की सजा को हटा दें तथा यदि कोई पदोन्नति प्रस्तावित हो तो उस पर आगे विचार करें।

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्रीवास्तव द्वारा दिया गया)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री आशीष कुमार ओझा और विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री सत्येन्द्र कुमार त्रिपाठी को सुना गया।

2. वर्तमान याचिका निम्नलिखित राहत की मांग करते हुए दायर की गई है: -

> *"I. अतिरिक्त पुलिस महानिदेशक, गोरखपुर रेंज, गोरखपुर द्वारा क्रमशः प्रतिवादी संख्या 2 और 3 द्वारा पारित आदेश दिनांक 26.10.2022 और 24.06.2022 को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण-लेख की प्रकृति में एक रिट या निर्देश जारी करें , जिला गोरखपुर और पुलिस उप महानिरीक्षक, गोरखपुर रेंज, गोरखपुर, जिला गोरखपुर, (रिट याचिका के लिए अनुलग्नक -3 और 5)*
>
> *II. प्रतिवादी प्राधिकारियों को निर्देश देने के लिए परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें कि वे याचिकाकर्ता के सेवा अभिलेखों में निष्ठा बनाए रखने के दंड को हटा दें तथा यदि कोई पदोन्नति प्रस्तावित हो तो उस पर विचार करें।"*

3. याचिकाकर्ता का मामला यह है कि याचिकाकर्ता की वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट में रिपोर्टिंग अथॉरिटी द्वारा दिनांक 20.01.2021 के आदेश के तहत सत्यनिष्ठा को रोकने की प्रविष्टि दी गई है, जबकि याचिकाकर्ता कुशीनगर में इंस्पेक्टर की क्षमता के तहत अपनी सेवाएं प्रदान कर रही थी और **1995 नियम[1] के** तहत निर्धारित समय के भीतर अच्छी तरह से सूचित किया गया है [1].

4. दिनांक 20.01.2021 की प्रविष्टि से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने दिनांक 22.10.2021 के अभ्यावेदन के माध्यम से समीक्षा प्राधिकारी यानी प्रतिवादी संख्या 3 से

1 उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (प्रतिकूल वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट एवं संबद्ध मामलों के विरुद्ध अभ्यावेदन का निस्तारण) नियमावली, 1995

अनुवादित

संपर्क किया, जो नियमों के तहत निर्धारित 45 दिनों की सीमा से परे था, लेकिन उस पर विधिवत विचार किया गया है। याचिकाकर्ता द्वारा बताए गए आधारों की विस्तृत चर्चा के माध्यम से और दिनांक 24.06.2022 के आदेश द्वारा इसे खारिज कर दिया गया।

5. 1995 के नियमों के नियम 4 के तहत निर्धारित वैधानिक उपाय का लाभ उठाने के बाद, याचिकाकर्ता ने दिनांक 16.09.2022 को स्वीकार/सक्षम प्राधिकारी के समक्ष एक विस्तृत संशोधन को प्राथमिकता दी।

6. रिपोर्टिंग अधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 20.01.2021 के साथ-साथ समीक्षा प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 24.06.2022 को स्वीकारकर्ता/सक्षम प्राधिकारी यानी प्रतिवादी संख्या 2 ने दिनांक 26.10.2022 के आदेश के माध्यम से संपूर्ण को अस्वीकार करते हुए बरकरार रखा है। रिपोर्टिंग अथॉरिटी द्वारा किए गए मूल्यांकन पर अपनी सद्भावना दिखाने के लिए याचिकाकर्ता द्वारा दावा किया गया है।

7. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस आधार पर अपना मामला तैयार किया कि जिस सजा का उल्लेख नहीं किया गया है **1991 नियम** [2]इसे किसी भी प्राधिकारी द्वारा जो नियमों के तहत सक्षम है, किसी भी कर्मचारी के खिलाफ नहीं लगाया जा सकता है जो यूपी पुलिस विभाग में एक अधीनस्थ अधिकारी के रूप में अपनी सेवाएं प्रदान कर रहा है। अपने तर्कों को प्रमाणित करने के लिए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ द्वारा पारित निर्णय **नरेंद्र सिंह यादव बनाम यूपी राज्य और दूसरे** पर भरोसा किया, इस उच्च न्यायालय की लखनऊ खंडपीठ में एक खंडपीठ का निर्णय **सत्यदेव शर्मा बनाम यूपी राज्य**.[4] और **विजय सिंह बनाम यूपी राज्य और दूसरे**[5]. में माननीय शीर्ष न्यायालय द्वारा पारित निर्णय पर भरोसा जताया।

8. इसके विपरीत, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने याचिका में की गई प्रार्थना का इस आधार पर अपने तर्कों को विस्तृत करते हुए विरोध किया कि याचिकाकर्ता के खिलाफ रिपोर्ट की गई प्रविष्टि 1991 के नियमों के तहत उल्लिखित सजा से अलग है, जो सजा निर्धारित है। 1991 के नियमों में विशेष रूप से उल्लिखित वैधानिक प्रावधानों के तहत परिभाषित प्रक्रिया को अपनाने के बाद ही 1991 के नियमों को लागू किया जा सकता है, जो याचिकाकर्ता के मामले में लागू होता है, लेकिन तत्काल याचिका दायर करके चुनौती के तहत रखा गया मामला सज़ा का नहीं है, जबकि यह याचिकाकर्ता के एसीआर में प्रविष्टि का मामला है, जिसे रिपोर्टिंग अधिकारी ने सत्यनिष्ठा को रोकते हुए याचिकाकर्ता की गतिविधियों, आचरण और व्यवहार की जांच करने के बाद समर्थन दिया है और उस विशेष वर्ष की प्रविष्टि का आकलन किया है। इसे खराब बताया और समय रहते इसकी जानकारी दी ताकि याचिकाकर्ता 1995 के नियमों के तहत उपलब्ध अधिकारों का उपयोग कर सके।

9. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता द्वारा रिपोर्टिंग प्राधिकारी, समीक्षा प्राधिकारी और साथ ही स्वीकार करने वाले प्राधिकारी द्वारा किए गए मूल्यांकन को चुनौती देने के लिए शायद ही

अनुवादित

कोई आधार है जो 1995 के नियमों के तहत परिभाषित सक्षम प्राधिकारी है।

10. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णयों के साथ-साथ वर्तमान याचिका पर लगाए गए आदेशों को ध्यान से देखने से, यह स्पष्ट रूप से साबित होता है कि इस न्यायालय की घोषणा के साथ-साथ माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भी विद्वान पर भरोसा किया गया है। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता पूरी तरह से अलग-अलग स्तरों पर हैं, जो पूरी तरह से वह मामला है जिसे फैसले में अस्वीकार कर दिया गया है, वह अनुशासनात्मक कार्यवाही से संबंधित है जिसमें सजा दी गई है और 1991 के नियमों में इसका उल्लेख नहीं किया गया था और वही अवैध के रूप से अवधारित किया गया है।

11. जबकि मामला वर्तमान याचिका से संबंधित है, किसी भी सजा के संबंध में नहीं है, यह केवल याचिकाकर्ता द्वारा वर्ष की मुद्रा अवधि की निरंतरता के दौरान किए गए आचरण, व्यवहार और गतिविधियों का आकलन है जिसके लिए वह रही है सत्यनिष्ठा को रोकने के लिए मूल्यांकन किया गया और रिपोर्ट की गई यानी प्रकृति में खराब है, और इस तरह, याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा उल्लिखित मामलों का शायद ही कोई असर है और इसका तत्काल मामले में कोई उपयोग नहीं है।

12. विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्क सशक्त प्रतीत होते हैं, उसी के साथ सहमति रखते हुए, तत्काल याचिका इस प्रकार **खारिज** की जाती है।

13. हालाँकि, यह स्पष्ट कर दिया गया है कि यदि याचिकाकर्ता चाहे तो वह कानून के अनुसार उचित मंच पर जाने के लिए स्वतंत्र है।

(2023) 6 ILRA 641

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 11.04.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी

रिट-ए संख्या 19575/2022

चमन खान **याचिकाकर्ता**

बनाम

यू.पी. राज्य और अन्य **प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री इंदल सिंह

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी., श्री जामवंत मौर्य

ए. सेवा कानून - पेंशन - सेवानिवृत्ति लाभ - उत्तर प्रदेश नगर पंचायत गैर केंद्रीकृत सेवा सेवानिवृत्ति लाभ विनियम, 1992 - यू.पी. पेंशन के लिए अर्हक सेवा और मान्यता अधिनियम, 2021 - पेंशन प्रावधानों को सामाजिक कल्याण उपाय के रूप में उदार निर्माण दिया जाना चाहिए। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि नियमों के विपरीत कुछ दिया जा सकता है, लेकिन ऐसी पेंशन दिए जाने का मूल आधार ध्यान में रखा जाना चाहिए, अर्थात सेवानिवृत्त सरकारी कर्मचारी को उसके जीवन के अंतिम क्षणों में सम्मानपूर्वक जीवन जीने में सुविधा प्रदान करना और इस प्रकार, किसी कर्मचारी को इस तरह के लाभ से अनुचित रूप से वंचित नहीं किया जाना चाहिए, खासकर तकनीकी आधार पर। (पैरा 8) यू.पी.

अनुवादित

सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 1961 के नियम 3(8) को यह कहते हुए पढ़ा गया कि कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में की गई सेवाओं को पेंशन दिए जाने के लिए उक्त नियम के तहत अर्हकारी सेवा माना जाएगा। पेंशन का बकाया आदेश की तिथि से तीन वर्ष पूर्व तक ही सीमित रहेगा। (पैरा 5)

अधिनियम 2021 की धारा 2 में प्रयुक्त 'पद' शब्द को मनमानेपन से बचाने के लिए हल्का कर दिया गया और इसलिए, 'पद' शब्द, चाहे वह अस्थायी हो या स्थायी, को 'सरकारी कर्मचारी द्वारा की गई सेवाएं, चाहे वह अस्थायी हो या स्थायी प्रकृति की' के रूप में पढ़ा गया। (पैरा 8)

वर्तमान विनियम 1992 राज्य सरकार के नियमों के समानांतर हैं, जिन्हें सर्वोच्च न्यायालय ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन मानते हुए रद्द कर दिया है, क्योंकि वे समान स्थिति वाले कर्मचारियों का एक कृत्रिम वर्गीकरण बनाते हैं।

वर्तमान मामले में भी एक कृत्रिम वर्गीकरण बनाया गया है, जैसा कि माना जाता है, क्योंकि दैनिक वेतनभोगी कर्मचारी नियमित कर्मचारियों के समान ही कार्य करते हैं और उन्हें हमेशा नियमित कर्मचारी के रूप में माना जाता है। उन्हें उनकी दैनिक वेतनभोगी सेवाओं को जारी रखते हुए नियमित भी किया गया था। (पैरा 9)

इस प्रकार, दिनांक 28.08.2020 के आरोपित आदेश को रद्द किया जाता है और प्रतिवादियों को निर्देश दिया जाता है कि वे याचिकाकर्ता को 1992 के विनियमों के तहत पेंशन और अन्य लाभों का नियमित भुगतान सुनिश्चित करें, उनकी संपूर्ण सेवा को तीन महीने की अवधि के भीतर नगर पंचायत के नियमित कर्मचारी के रूप में माना जाए। हालांकि, पिछली पेंशन का भुगतान केवल पिछले तीन वर्षों के लिए किया जाएगा। (पैरा 10, 11)

रिट याचिका स्वीकार की गई। (ई-4)

<u>अनुसरण किए गए उदाहरण:</u>

1. प्रेम सिंह बनाम स्टेट ऑफ यू.पी. एवं अन्य, (2019) 10 एससीसी 516 (पैरा 5)
2. डॉ. श्याम कुमार बनाम स्टेट ऑफ यू.पी. एवं अन्य, दिनांक 17.02.2023 का निर्णय, रिट-ए संख्या 8968/2022 (पैरा 8)

वर्तमान याचिका दिनांक 28.08.2020 के आदेश का विरोध करती है, जिसके तहत प्रतिवादी प्राधिकारी ने उसे सेवानिवृत्ति पर पेंशन और अन्य लाभ देने से इनकार कर दिया है, जिसके वह हकदार होने का दावा करता है।

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी द्वारा दिया गया)

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, प्रतिवादी संख्या 5 के विद्वान अधिवक्ता श्री जामवंत मौर्य तथा राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना।

याचिकाकर्ता ने दिनांक 28.08.2020 के आदेश को चुनौती देते हुए इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है, जिसके तहत प्रतिवादी प्राधिकारी ने उसे सेवानिवृत्ति पर पेंशन और अन्य लाभ देने से इनकार कर दिया है, जिसका वह हकदार होने का दावा करता है।

मामले के तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता को दिनांक 07.12.1987 को पंप ऑपरेटर के रूप में चतुर्थ श्रेणी के पद पर दैनिक वेतन भोगी के रूप में नियुक्त किया गया था। उसे

अनुवादित

05.07.2011 को नियमित किया गया और वह 31.08.2019 को सेवानिवृत्त हुआ।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि वह उत्तर प्रदेश नगर पंचायत गैर-केंद्रीकृत सेवा सेवानिवृत्ति लाभ विनियम, 1992 (जिसे आगे विनियम 1992 कहा जाएगा) के अंतर्गत पेंशन के लिए हकदार है। नियम 2(डीए) का संदर्भ दिया गया है, जो इस प्रकार है:-

2(ड) "सहकारी सेवा" का तात्पर्य निम्नलिखित को छोड़ कर समय-समय पर यथा संशोधित सिविल सर्विस रेगुलेशन्स के अनुच्छेद 368, के उपबंधों के अनुसार पेंशन के लिये अर्हता प्रदान करती है:

(एक) सम्बद्ध कमेटी के अधीन पेंशन रहित अधिष्ठान में अस्थायी या स्थानापन्न सेवा की अवधि,

(दो) किसी कार्य प्रभारित अधिष्ठान में सेवा की अवधि, और

(तीन) किसी ऐसे पद पर जिसके लिए आकस्मिकता निधि से भुगतान किया जाता है, सेवा की अवधि:

परन्तु किसी कमेटी के अधीन निरंतर अस्थायी या स्थानापन्न सेवा की अवधी की गणना सहकारी सेवा के रूप में की जाएगी यदि उसी या किसी अन्य पद पर सेवा के किसी व्यवधान के बिना बाद में उसे स्थायी कर दिया जाय।

टिप्पणी -- यदि किसी पेंशन रहित अधिष्ठान, कार्य प्रभारित अधिष्ठान में या आकस्मिकता निधि से भुगतान किये जाने वाले किसी पद पर की गयी सेवा किसी पेंशन योग्य अधिष्ठान में अस्थायी सेवा की दो अवधि के बीच या किसी पेंशन योग्य अधिष्ठान में अस्थायी सेवा और स्थायी सेवा की अवधि के बीच पड़ती हो तो वह सेवा का व्यवधान नहीं होगा।

इसके अलावा दलील यह भी है कि राज्य सरकार के कर्मचारियों के संबंध में भी इसी तरह के नियम लागू हैं, जो कार्य प्रभार के आधार पर की गई सेवाओं की गणना नहीं करने का प्रावधान करते हैं। **प्रेम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (2019) 10 एससीसी 516** के मामले में उच्चतम न्यायालय की तीन जजों की पीठ ने पेंशन के लिए उनके अधिकार पर विचार किया। उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ इस प्रकार हैं:

"8. हम सर्वप्रथम उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 1961 (संक्षेप में 1961 नियमावली) में निहित प्रावधानों पर विचार करते हैं। 1961 नियमावली के नियम 3(8) में अर्हकारी सेवा के संबंध में प्रावधान हैं, जो नीचे उद्धृत है:

3. इन नियमों में, जब तक कि विषय या संदर्भ में कोई प्रतिकूल बात न हो

*(1)-(7) * * **

(8) "अर्हकारी सेवा" का अर्थ है वह सेवा जो सिविल सेवा विनियमावली के अनुच्छेद 368 के प्रावधानों के अनुसार पेंशन के लिए अर्ह हो:

बशर्ते कि उत्तर प्रदेश सरकार के अधीन निरंतर अस्थायी या स्थानापन्न सेवा, जिसके बाद बिना किसी रुकावट के उसी या किसी अन्य पद पर स्थायीकरण हो, सिवाय:

(i) किसी गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी या स्थानापन्न सेवा की अवधि;

(ii) किसी कार्यभारित प्रतिष्ठान में सेवा की अवधि; और

(iii) आकस्मिक व्यय से भुगतान किए जाने वाले पद पर सेवा की अवधि भी अर्हकारी सेवा के रूप में गिनी जाएगी।

अनुवादित

टिप्पणी: यदि किसी गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान, कार्यभारित प्रतिष्ठान या आकस्मिक व्यय से भुगतान प्राप्त पद पर की गई सेवा, पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी सेवा की दो अवधियों के बीच या पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी सेवा की अवधि और स्थायी सेवा के बीच आती है, तो यह सेवा में व्यवधान नहीं माना जाएगा।

9. उत्तर प्रदेश सिविल सेवा विनियमावली के विनियम 361, 368 और 370 भी सुसंगत हैं। उन्हें नीचे उद्धृत किया गया है:

361. किसी अधिकारी की सेवा तब तक पेंशन के लिए योग्य नहीं होगी जब तक कि वह निम्नलिखित तीन शर्तों को पूरा न करे:

पहली: सेवा सरकार के अधीन होनी चाहिए।

दूसरी: रोजगार मौलिक और स्थायी होना चाहिए।

इन शर्तों को निम्नलिखित विनियमों में पूरी तरह से स्पष्ट किया गया है।

368. सेवा तब तक योग्य नहीं होगी जब तक कि अधिकारी स्थायी प्रतिष्ठान में मौलिक पद धारण न करे।

370. उत्तर प्रदेश सरकार के अधीन निरंतर अस्थायी या स्थानापन्न सेवा, जिसके बाद उसी या किसी अन्य पद पर बिना किसी रुकावट के स्थायीकरण हो, निम्नलिखित को छोड़कर योग्य होगी:

(i) गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी या स्थानापन्न सेवा की अवधि;

(ii) कार्यभारित प्रतिष्ठान में सेवा की अवधि; और

(iii) आकस्मिक व्यय से भुगतान किए जाने वाले पद पर सेवा की अवधि।

10. अर्हक सेवा वह है जो विनियम 368 के प्रावधानों के अनुसार हो, अर्थात स्थायी प्रतिष्ठान में मौलिक पद धारण करना। नियम 3(8) का प्रावधान स्पष्ट करता है कि निरंतर, अस्थायी या स्थानापन्न सेवा, जिसके बाद उसी या किसी अन्य पद पर स्थायीकरण द्वारा बिना किसी रुकावट के की जाती है, को भी अर्हक सेवा में शामिल किया जाता है, सिवाय गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी और स्थानापन्न सेवा की अवधि के। कार्यभारित प्रतिष्ठान में की गई सेवा और आकस्मिकताओं से भुगतान किए गए पद पर की गई सेवा की अवधि को भी अर्हक सेवा के रूप में नहीं गिना जाएगा।

11. नियम 3(8) के साथ संलग्न टिप्पणी में यह प्रावधान है कि यदि सेवा गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान, कार्यभारित प्रतिष्ठान या आकस्मिकताओं से भुगतान किए गए पद पर की जाती है, पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी सेवा की दो अवधियों के बीच या पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी सेवा की अवधि और स्थायी सेवा के बीच आती है, तो यह सेवा में व्यवधान नहीं माना जाएगा। इस प्रकार, टिप्पणी में स्पष्ट प्रावधान है कि कार्यभारित, आकस्मिक भुगतान वाले और गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में की गई अर्हक सेवा को, उसमें दी गई आवश्यकताओं के अनुसार, पेंशन योग्य सेवा में गिना जाएगा।

12. सिविल सेवा विनियमन के विनियम 370 में निहित प्रावधान गैर-पेंशनभोगी प्रतिष्ठान, कार्यभारित प्रतिष्ठान और आकस्मिक भुगतान वाले पद में की गई सेवा को अर्हक सेवा के दायरे से बाहर रखते हैं। सिविल सेवा विनियमन के विनियम 361 के तहत, सेवाएं सरकार के अधीन होनी चाहिए और रोजगार

अनुवादित

मूल और स्थायी आधार पर होना चाहिए।

30. हम उपर्युक्त प्रस्तुतियों से प्रभावित नहीं हैं। विचाराधीन कार्यभारित कर्मचारी की नियुक्ति मासिक वेतन पर की गई थी और उन्हें दक्षता रोध भी पार करना आवश्यक था। उनकी सेवाएं नियमित कर्मचारियों से गुणात्मक रूप से कैसे भिन्न हैं? गुणात्मक अंतर को इंगित करने वाली कोई सामग्री नहीं बताई गई है, सिवाय एक स्पष्ट बयान देने के। नियुक्ति किसी विशेष परियोजना के लिए नहीं की गई थी जो कि कार्यभारित कर्मचारियों की मूल अवधारणा है। बल्कि, नियमित और बारहमासी प्रकृति के काम के लिए शोषणकारी शर्तों पर रोजगार की पेशकश करके कार्यभारित रोजगार की अवधारणा का दुरुपयोग किया गया है। कार्यभारित कर्मचारियों को नियमित कर्मचारियों की तरह एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित किया गया था जैसा कि अभिलेख में रखे गए दस्तावेजों से स्पष्ट है। नारायण दत्त शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [एसएलपी (सी) संख्या 5775/2018 से उत्पन्न सीए संख्या _____ 2019] में अपीलकर्ताओं को कार्यभारित सेवाओं की अवधि के दौरान भी, "8" वर्षों की निरंतर सेवा के बाद दक्षता रोध पार करने की अनुमति दी गई थी। अपीलकर्ता नारायण दत्त शर्मा को 15-9-1978 से गेज मापक के रूप में कार्यभारित कर्मचारी के रूप में नियुक्त किया गया था। भुगतान मासिक किया जाता था लेकिन नियुक्ति 200-320 रुपये के वेतनमान में की गई थी। प्रारंभ में, उन्हें वर्ष 1978 में 205 रुपये प्रति माह के निश्चित मासिक वेतन पर नियुक्त किया गया था। उन्हें दक्षता रोध पार करने की भी अनुमति दी गई थी क्योंकि उन्हें उस अवधि के दौरान वेतनमान का लाभ दिया गया था जब वे कार्यभारित कर्मचारी के रूप में सेवा करते थे, उन्होंने तीन से चार दशकों तक सेवा की और बाद में विभिन्न आदेशों द्वारा समय-समय पर सेवाओं को नियमित किया गया। हालाँकि, कुछ याचिकाओं/अपीलों में कुछ अपीलकर्ताओं की सेवाओं को नियमित नहीं किया गया है, जबकि उन्होंने कई दशकों तक सेवा की थी और अंततः सेवानिवृत्ति की आयु तक पहुँच गए थे।

31. उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों में, राज्य सरकार और उसके अधिकारियों की ओर से कर्मचारियों से कार्यभारित आधार पर काम लेना अनुचित था। उन्हें नियमित आधार पर नियुक्ति का सहारा लेना चाहिए था। लंबे समय तक कार्यभारित आधार पर काम लेना शोषणकारी तरीका अपनाने के बराबर है। हालांकि बाद में उनकी सेवाओं को नियमित कर दिया गया है। हालांकि, कार्यभारित प्रतिष्ठान में उनके द्वारा बिताई गई अवधि को अर्हक सेवा में नहीं गिना गया है। इस प्रकार, उन्हें न केवल कार्यभारित प्रतिष्ठान में कम वेतन पर सेवा की अवधि के दौरान उनके देय पारिश्रमिक से वंचित किया गया है, बल्कि पेंशन संबंधी लाभों की अवधि की गणना से भी वंचित किया गया है, जैसे कि उन्होंने कोई सेवा प्रदान ही नहीं की हो। कार्यभारित प्रतिष्ठान में कम वेतन पर अपने जीवन के सुनहरे दिनों में उनके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं से राज्य को लाभ हुआ है। 1961 के नियमों के नियम 3(8) में संलग्न टिप्पणी के मद्देनजर, कार्यभारित, आकस्मिक या गैर-पेंशन योग्य सेवा पर खर्च की गई सेवा को उस स्थिति में गणना में शामिल करने का प्रावधान है, जब किसी व्यक्ति ने पेंशन योग्य प्रतिष्ठान

अनुवादित

में दो अस्थायी नियुक्तियों के बीच की अवधि में ऐसी सेवा की हो या अस्थायी और स्थायी रोजगार की दो अवधियों के बीच ऐसी सेवा की हो। कार्यभारित सेवा को उपरोक्त आपात स्थितियों में पेंशन के लिए अर्हक सेवा के रूप में गिना जा सकता है।

33. प्रश्न यह उठता है कि क्या यह अनुवृद्धि लगाना कि ऐसी सेवा को दो अस्थायी या अस्थायी और स्थायी सेवा के दो अवधियों के बीच में गणना में लिया जाना चाहिए, कानूनी और उचित है। हम पाते हैं कि एक बार रिक्त पदों पर नियमितीकरण हो जाने के बाद, यद्यपि कर्मचारी ने उससे पहले अस्थायी आधार पर सेवा नहीं की थी, नियुक्ति की प्रकृति पर विचार करते हुए, यद्यपि यह नियमित नियुक्ति नहीं थी, इसे मासिक वेतन पर किया गया था और उसके बाद कार्यभारित प्रतिष्ठान के वेतनमान में दक्षता रोध को पार करने की अनुमति दी गई थी। 1961 के नियमों के नियम 3(8) के टिप्पणी में निहित अनुवृद्धि के कारण ऐसी सेवा को न गिनना अत्यधिक भेदभावपूर्ण और तर्कहीन होगा, खासकर तब जब इसे गिना जा सकता है, अगर ऐसी सेवा दो अस्थायी या अस्थायी और स्थायी सेवाओं के बीच में हो। नियमितीकरण से पहले की गई कार्य-प्रभारित अवधि की सेवा को न गिनने का कोई तुक या कारण नहीं है। हमारी राय में, नियम 3(8) के तहत एक अनुचित वर्गीकरण किया गया है। ऐसे कर्मचारियों को योग्यता सेवा के लाभ से वंचित करना अत्यधिक अन्यायपूर्ण, अनुचित और तर्कहीन होगा। कार्यभारित अवधि की सेवा सभी कर्मचारियों के लिए एक समान रहती है, एक बार जब इसे एक वर्ग के लिए गिना जाना है, तो भेदभाव को रोकने के लिए इसे सभी के लिए गिना जाना चाहिए। वर्गीकरण तर्कहीन आधार पर नहीं किया जा सकता है और जब प्रतिवादी स्वयं ऐसी सेवा में बिताए गए समय की गणना कर रहे हैं, तो कमजोर वर्गीकरण के आधार पर सेवा की गणना न करना अत्यधिक भेदभावपूर्ण होगा। यह शर्त कि कार्यभारित सेवा अस्थायी क्षमता से पहले होनी चाहिए, भेदभावपूर्ण और तर्कहीन है और एक अनुचित वर्गीकरण बनाता है।

34. चूंकि नियम 3(8) को वैध और गैर-भेदभावपूर्ण बनाने के लिए उपरोक्त वर्गीकरण करना अन्यायपूर्ण, अवैध और अनुचित होगा, इसलिए हमें नियम 3(8) के प्रावधानों को पढ़ना होगा और यह मानना होगा कि कार्यभारित कर्मचारियों, आकस्मिक भुगतान निधि कर्मचारियों या गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान की क्षमता में नियमितीकरण से पहले भी की गई सेवाओं को भी अर्हक सेवा में गिना जाएगा, भले ही ऐसी सेवा पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी या नियमित नियुक्ति से पहले न हुई हो।

35. नियम 3(8) में संलग्न टिप्पणी के मद्देनजर, जिसे हमने पढ़ा है, सिविल सेवा विनियमन के विनियमन 370 में निहित प्रावधान को रद्द किया जाना चाहिए, साथ ही वित्तीय पुस्तिका के पैरा 669 में निहित निर्देश भी।

36. कुछ कर्मचारी ऐसे हैं जिन्हें 30-40 या उससे अधिक वर्षों तक सेवाएं देने के बावजूद नियमित नहीं किया गया है, जबकि वे सेवानिवृत्त हो चुके हैं। चूंकि उन्होंने कार्यभारित प्रतिष्ठान में काम किया है, न कि किसी विशेष परियोजना के विरुद्ध, इसलिए उनकी सेवाओं

अनुवादित

को सरकारी निर्देशों के तहत और यहां तक कि कर्नाटक राज्य बनाम उमादेवी (3) [कर्नाटक राज्य बनाम उमादेवी (3), (2006) 4 एससीसी 1: 2006 एससीसी (एल एंड एस) 753] में इस न्यायालय के निर्णय के अनुसार नियमित किया जाना चाहिए था। इस न्यायालय ने उक्त निर्णय में यह निर्धारित किया है कि यदि न्यायालय के आदेश के बिना दस वर्ष से अधिक समय तक सेवाएं दी गई हैं, तो एकमुश्त उपाय के रूप में ऐसे कर्मचारियों की सेवाओं को नियमित किया जाना चाहिए। मामले के तथ्यों को देखते हुए, जिन कर्मचारियों ने दस वर्ष या उससे अधिक समय तक काम किया है, उन्हें नियमित किया जाना चाहिए था। नियमितीकरण पर विचार करने हेतु उन्हें विनियमित करना उचित नहीं होगा जैसा कि अन्य को नियमित किया गया है, हम निर्देश देते हैं कि उनकी सेवाओं को नियमित माना जाए। हालांकि, यह स्पष्ट किया जाता है कि यदि वे सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने से पहले नियमित रूप से सेवा में बने रहे होते तो वे वेतन में अंतर के किसी भी बकाया का दावा करने के हकदार नहीं होते। वे पेंशन प्राप्त करने के हकदार होंगे जैसे कि वे नियमित प्रतिष्ठान से सेवानिवृत्त हुए हैं और कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में प्रवेश करने के दिन से उनके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं को पेंशन के प्रयोजन के लिए अर्हक सेवा के रूप में गिना जाएगा।

37. उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 1961 के नियम 3(8) को ध्यान में रखते हुए हम मानते हैं कि कार्यभारित प्रतिष्ठान में की गई सेवाओं को पेंशन दिए जाने के लिए उक्त नियम के तहत अर्हकारी सेवा माना जाएगा। पेंशन का बकाया आदेश की तिथि से तीन वर्ष पूर्व तक ही सीमित रहेगा। तदनुसार तीन माह के भीतर अनुमन्य लाभों का भुगतान किया जाए। परिणामस्वरूप कर्मचारियों द्वारा दायर अपीलें स्वीकार की जाती हैं और राज्य द्वारा दायर अपीलें खारिज की जाती हैं।"

उन्होंने आगे कहा कि चूंकि प्रतिवादी प्राधिकरण में पेंशन लाभों के लिए समान नियम मौजूद हैं, इसलिए यह मामला पूरी तरह से उक्त निर्णय के अंतर्गत आता है और यहां याचिकाकर्ताओं को भी ***प्रेम सिंह (उपरोक्त)*** के मामले में तय कानून का लाभ दिया जाना चाहिए।

प्रतिवादी नगरपालिका के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि उ.प्र. पेंशन अर्हक सेवा और विधिमान्यकरण अधिनियम, 2021 (संक्षेप में '2021 का अधिनियम') के आलोक में प्रेम सिंह (उपरोक्त) निर्णय का प्रभाव शून्य हो गया है और इसलिए, याचिकाकर्ता प्रेम सिंह (उपरोक्त) के मामले में तय कानून के लाभों का दावा नहीं कर सकता है। जहां तक 2021 के अधिनियम का संबंध है, यह केवल राज्य सरकार के कर्मचारियों पर लागू होता है। ऐसा कोई अधिनियम नहीं है जो नगर पंचायत की गैर-केंद्रीकृत सेवाओं के कर्मचारियों के संबंध में लागू हो। अन्यथा भी 2021 का अधिनियम पहले ही इस न्यायालय द्वारा **रिट-ए संख्या 8968/2022 (*डॉ श्याम कुमार बनाम उ.प्र. राज्य और अन्य*)** में पारित निर्णय दिनांक 17.02.2023 द्वारा पढ़ा जा चुका है। उसी के प्रासंगिक पैराग्राफ इस प्रकार हैं:

"9. इसलिए, अब इस न्यायालय के समक्ष प्रश्न यह है कि क्या 2021 का अधिनियम लाकर राज्य सरकार ने प्रेम सिंह (उपरोक्त) के

अनुवादित

मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बताई गई बुराई को दूर कर दिया है। उक्त निर्णय में, सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि राज्य सरकार ने बिना किसी तर्कसंगत वर्गीकरण के दीर्घकालिक आधार पर कार्य प्रभारित कर्मचारियों से नियमित कर्मचारियों को मिलने वाले लाभों से इनकार करते हुए शोषणकारी श्रम प्रथा को अपनाया है। सर्वोच्च न्यायालय ने विशेष रूप से माना कि राज्य सरकार भ्रष्ट श्रम प्रथाओं में शामिल नहीं हो सकती है। उपरोक्त आधारों पर, सर्वोच्च न्यायालय ने 1961 के नियमों के नियम 3(8) के प्रावधानों को पढ़ा और सिविल सेवा विनियमन के विनियमन 370 और वित्तीय पुस्तिका के पैरा 669 को रद्द कर दिया।

10. राज्य का यह कर्तव्य है कि वह अपनी आवश्यकताओं के अनुसार नये अस्थायी या स्थायी पद सृजित करे और उन पर नियुक्तियां करे। कानून राज्य को दैनिक वेतन भोगी या कार्य प्रभारित कर्मचारियों को नियुक्त करने की भी अनुमति देता है, लेकिन केवल तब जब काम कम अवधि के लिए हो या निश्चित अवधि के लिए कार्यभार ग्रहण करने की स्थापना की गई हो। कानून राज्य को किसी व्यक्ति को अस्थायी या कार्य प्रभार के आधार पर लंबी अवधि के लिए, यहां तक कि उसके पूरे कार्यकाल के लिए भी, काम पर रखने की अनुमति नहीं देता है। ऐसे मामलों में, राज्य का यह कर्तव्य है कि वह नए पद सृजित करे और नियमित कर्मचारियों के सभी लाभ देते हुए नियुक्तियाँ करे। अन्यथा, राज्य शोषणकारी श्रम प्रथा को अपनाता हुआ पाया जाएगा। प्रेम सिंह मामले (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय ने इसी दोष की ओर संकेत किया है और इसे दूर करने के बजाय, राज्य ने 2021 के अधिनियम की धारा 2 द्वारा इसकी अवैधता के दायरे को बढ़ा दिया है। अधिनियम 2021 की धारा 2 के तहत, यह पेंशन लाभ के लिए ऐसी सेवा की उक्त अवधि की गणना न करके, समय पर पदों का सृजन करने और उन पर नियुक्तियां करने में अपनी विफलता का लाभ उठाना चाहता है। राज्य अभी भी यह स्पष्ट करने में विफल रहा है कि उसने किस आधार पर यह नया वर्गीकरण बनाया है और किस तरह से संशोधित प्रावधान के द्वारा उसने तर्कहीनता को दूर किया है।

यदि अधिनियम 2021 की धारा 2 को शाब्दिक अर्थ दिया जाता है तो इसका मतलब यह होगा कि किसी व्यक्ति द्वारा अस्थायी या स्थायी पद पर की गई सेवाओं को ही पेंशन के लिए गिना जा सकता है। यह फिर से एक शोषणकारी उपकरण और श्रम कदाचार होगा, क्योंकि इसके द्वारा राज्य सरकार फिर से नियमित कर्मचारियों की तरह ही उन्हें वे लाभ दिए बिना, जो उन्हें नियमित कर्मचारियों के रूप में मिलने चाहिए, लंबे समय तक अपने लिए काम करने के लिए लोगों का उपयोग करने का प्रयास कर रही है। प्रेम सिंह (उपरोक्त) के निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कार्यभार ग्रहण करने वाले कर्मचारियों के संबंध में इंगित की गई बहुत सी बुराइयां, वास्तव में, अब और भी अधिक संख्या में कर्मचारियों पर लागू की गई हैं और दैनिक वेतनभोगी तथा ऐसे अन्य व्यक्तियों पर भी लागू की गई हैं जो अस्थायी या स्थायी पद पर काम नहीं कर रहे हैं, जिनमें कार्य प्रभारित कर्मचारी भी शामिल हैं।

वी. सुकुमारन बनाम केरल राज्य (2020) 8

अप्रमाणित

एससीसी 106 के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा:

"22. हम एक बार फिर इस बात पर जोर देते हुए शुरुआत करते हैं कि पेंशन संबंधी प्रावधानों को सामाजिक कल्याण उपाय के रूप में उदार रूप दिया जाना चाहिए। इसका मतलब यह नहीं है कि नियमों के विपरीत कुछ दिया जा सकता है, लेकिन ऐसी पेंशन देने का मूल आधार ध्यान में रखा जाना चाहिए यानी सेवानिवृत्त सरकारी कर्मचारी को उसके जीवन के अंतिम क्षणों में सम्मान के साथ जीने में सुविधा प्रदान करना और इस प्रकार, किसी कर्मचारी को इस तरह के लाभ से अनुचित रूप से वंचित नहीं किया जाना चाहिए, खासकर तकनीकी आधार पर।"

इस प्रकार, अधिनियम 2021 की धारा 2 को मनमानी से बचाने के लिए, प्रेम सिंह (उपरोक्त) के निर्णय की भावना के अनुसार, 'पद' शब्द को मनमानी से बचाने के लिए हल्का किया जाना आवश्यक है और इसलिए, अधिनियम 2021 की धारा 2 में प्रयुक्त 'पद' शब्द, चाहे वह अस्थायी हो या स्थायी, को 'सरकारी कर्मचारी द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाएं, चाहे वह अस्थायी या स्थायी प्रकृति की हो' के रूप में पढ़ा जाना चाहिए।"

1992 के वर्तमान विनियम राज्य सरकार के नियमों के समानांतर हैं, जिन्हें भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने पढ़ा है, क्योंकि वे समान स्थिति वाले कर्मचारियों का एक कृत्रिम वर्गीकरण बनाते हैं।

वर्तमान मामले में भी एक कृत्रिम वर्गीकरण बनाया गया है जैसा कि स्वीकार्य है, क्योंकि दैनिक वेतनभोगी कर्मचारी नियमित कर्मचारियों के समान ही कार्य करते हैं और उन्हें नियमित कर्मचारी के रूप में ही माना जाता है। उन्हें उनकी दैनिक वेतन भोगी सेवाओं को जारी रखते हुए नियमित भी किया गया। इस प्रकार, यह मामला ***प्रेम सिंह (उपरोक्त)*** के मामले में तय कानून के अंतर्गत पूरी तरह से आता है।

इस प्रकार, रिट याचिका को **अनुमति दी** जाती है और 28.08.2020 के आक्षेपित आदेश को रद्द किया जाता है।

प्रतिवादियों को निर्देश दिया जाता है कि वे तीन महीने की अवधि के भीतर याचिकाकर्ता को 1992 के विनियमों के तहत पेंशन और अन्य लाभों का नियमित भुगतान सुनिश्चित करें, उनकी संपूर्ण सेवा को नगर पंचायत के नियमित कर्मचारी के रूप में माना जाए। हालाँकि, पिछली पेंशन का भुगतान केवल अंतिम तीन वर्षों के लिए ही किया जाएगा।

(2023) 6 ILRA 647

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 25.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी

माननीय न्यायमूर्ति अनीश कुमार गुप्ता

रिट-सी संख्या 3848 वर्ष 2023

डॉ. रक्षपाल सिंह याचिकाकर्ता

बनाम

प्रो. चंद्र शेखर एवं अन्य प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री मोहम्मद एओन, श्री मोहम्मद परवेज, श्री गोपाल कृष्ण

अनुवादित

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी., श्री रिजवान अली अख्तर, श्री शशि प्रकाश राय, श्री शिवेंदु ओझा, श्री आर.के. ओझा (वरिष्ठ अधिवक्ता), श्री ए.के. सिंह (वरिष्ठ अधिवक्ता)

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग विनियम, 2018 - उत्तर प्रदेश विश्वविद्यालय (111वां संशोधन) 2019 (यू.पी. अधिनियम संख्या 20, 2019) - प्रतिवादी संख्या 1 की अंतरिम कुलपति के रूप में नियुक्ति को शून्य घोषित करने के लिए क्वो वारंटो की रिट - शुरू से ही - क्योंकि प्रतिवादी संख्या 1 की नियुक्ति यूजीसी विनियम, 2018 के पैरा 7.3 के विपरीत है - किसी विश्वविद्यालय में प्रोफेसर के रूप में दस वर्ष से कम का अनुभव - उत्तर प्रदेश के तहत स्थापित प्रतिवादी विश्वविद्यालय। अधिनियम, 1973 को उत्तर प्रदेश विश्वविद्यालय (111वां संशोधन) 2019 (यूपी अधिनियम संख्या 20 वर्ष 2019) द्वारा संशोधित किया गया है- इसमें प्रावधान किया गया है कि जब तक प्रतिवादी विश्वविद्यालय के प्रथम परिनियम धारा 50 के अधीन नहीं बनाए जाते हैं, तब तक डॉ. भीम राव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा के परिनियम, जो उक्त विश्वविद्यालय की स्थापना से ठीक पूर्व प्रवृत्त थे, उस पर ऐसे अनुकूलनों और संशोधनों के अधीन लागू होंगे, जैसा कि राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा प्रदान कर सकती है- राज्य सरकार ने यूजीसी विनियम, 2018 को नहीं अपनाया है और इसके बजाय यह निर्णय लिया है कि राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 के प्रावधान लागू रहेंगे- इसलिए नियुक्ति को वैधानिक प्रावधानों के विपरीत नियुक्ति नहीं कहा जा सकता है।

डब्ल्यू.पी. खारिज। (ई-9)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. प्रो. नरेंद्र सिंह भंडारी बनाम रवींद्र जुगरान और अन्य, 2022 (16) स्केल 410
2. स्टेट ऑफ डब्ल्यू.बी. बनाम अनिंद्य सुंदर दास एवं अन्य, एआईआर 2022 एससी 3902
3. प्रोफेसर (डॉ.) श्रीजीत पी.एस. बनाम डॉ. राजश्री एम.एस. एवं अन्य, 2022 (15) स्केल 377
4. गंभीरदान के. गढ़वी बनाम स्टेट ऑफ गुज. एवं अन्य, (2022) 5 एससीसी 179
5. अमृत प्रसाद बनाम स्टेट ऑफ यू.पी. और अन्य, रिट-ए संख्या 62753/2015
6. जगदीश प्रसाद शर्मा और अन्य बनाम बिहार स्टेट और अन्य, (2013) 8 एससीसी 633
7. कल्याणी मथिवानन बनाम के.वी.एस. जयराज और अन्य, (2015) 6 एससीसी 363
8. हरि बंश लाल बनाम सहोदर प्रसाद महतो और अन्य, (2010) 9 एससीसी 655
9. बी. श्रीनिवास रेड्डी बनाम कर्नाटक शहरी जल आपूर्ति जल निकासी बोर्ड कर्मचारी संघ, (2006) 11 एससीसी 731 (2)
10. जगदीश प्रसाद शर्मा और अन्य बनाम बिहार स्टेट और अन्य, (2013) 8 एससीसी 633

(माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी द्वारा दिया गया)

1. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता, श्री आर.के.ओझा, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, सहायता प्राप्त श्री शिवेंदु ओझा, प्रत्यर्थी संख्या1 की ओर से विद्वान अधिवक्ता,श्री ए.के. सिंह, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता,

अनुवादित

सहायता प्राप्त श्री शशि प्रकाश राय, प्रत्यर्थी संख्या 2/ विश्वविद्यालय की ओर से विद्वान अधिवक्ता,श्री भरत प्रताप सिंह,प्रत्यर्थी संख्या 3 की ओर से विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता और श्री रिज़वान अली अख्तर, प्रत्यर्थी संख्या 4/यूजीसी की ओर से विद्वान अधिवक्ता को सुना।

तथ्य:-

2. वर्तमान मामले के संक्षेप में बताए गए तथ्य यह हैं कि प्रत्यर्थी नंबर 1 को उत्तर प्रदेश राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 (इसके बाद इसे ' उ.प्र. अधिनियम, 1973' कहा जाएगा) की धारा 4(1-बी) के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए जारी एक सरकारी आदेश संख्या 600/ सत्तर-1-2021-16(26)/2019 दिनांक 30.12.2021 द्वारा प्रत्यर्थी नंबर 2-विश्वविद्यालय (एक नया विश्वविद्यालय) यानी राजा महेंद्र प्रताप सिंह राज्य विश्वविद्यालय, अलीगढ़(संक्षेप में,"आर एम पी एस एस विश्वविद्यालय)का अंतरिम (प्रथम) कुलपति नियुक्त किया गया है। याचिकाकर्ता ने वर्तमान रिट याचिका प्रत्यर्थी नंबर 1 की नियुक्ति को आरंभिक रूप से शून्य घोषित करने के लिए अधिकार पृच्छा की रिट की प्रकृति में राहत की प्रार्थना करते हुए और परिणामस्वरूप इसे इस आधार पर रद्द और अपास्त करने के लिए दायर की है कि प्रत्यर्थी नंबर 1 की नियुक्ति विश्वविद्यालय अनुदान आयोग(विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में शिक्षकों और अन्य अकादमिक कर्मचारियों की नियुक्ति के लिए न्यूनतम योग्यता और उच्चशिक्षा में रखरखाव मानकों के लिए अन्य उपाय) विनियम, 2018 (इसके बाद यूजीसी विनियम, 2018' के रूप में संदर्भित) के पैरा 7.3 के विपरीत है।

याचिकाकर्ता की ओर से प्रस्तुतियाँ:-

3. **याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क निम्नानुसार है:**

(i) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में शिक्षकों और अन्य अकादमिक कर्मचारियों की नियुक्ति के लिए न्यूनतम योग्यता और उच्चशिक्षा में रखरखाव मानकों के लिए अन्य उपाय) विनियम, 2010 (यहां इसके बाद 'यूजीसी विनियम, 2010' के रूप में) के पैरा-7.3 के अनुसार, कुलपति बनने के लिए एक व्यक्ति के पास अन्य योग्यताओं के अलावा, विश्वविद्यालय पद्धति में न्यूनतम दस वर्षों का अनुभव या विख्यात अनुसंधान और/ या अकादमिक प्रशासनिक संस्थानों में समकक्ष पद पर दस वर्षों का अनुभव होना चाहिए। चूँकि नियुक्ति की तिथि पर, प्रत्यर्थी संख्या 1 के पास एक विश्वविद्यालय में प्रोफेसर के रूप में दस वर्ष से कम का अनुभव था, इसलिए, उसकी नियुक्ति शुरू से ही शून्य है।

(ii) यूजीसी विनियम, 2010 के पैरा 1.2 में प्रावधान है कि यह केंद्रीय अधिनियम, प्रांतीय अधिनियम या राज्य अधिनियम के तहत स्थापित या निगमित प्रत्येक विश्वविद्यालय, आयोग द्वारा मान्यता प्राप्त घटक या संबद्ध कॉलेज सहित प्रत्येक संस्थान पर, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम, 1956 की धारा 2 के खंड (एफ) के तहत

अधिवक्ता

संबंधित विश्वविद्यालय के परामर्श से,और प्रत्येक संस्थान को जो उक्त अधिनियम की धारा 3 के तहत एक विश्वविद्यालय माना जाता है, लागू होगा। । यूजीसी विनियम, 2010 के पैरा 1.3 में प्रावधान है कि विनियम तत्काल प्रभाव से लागू होंगे।

यूजीसी विनियम, 2010 के उपरोक्त दो पैरा 1.2 और 1.3 के आधार पर, यह प्रस्तुत किया गया है कि यदि कोई भी राज्य कानून कुलपति के पद के लिए विनियम, 2010 के विपरीत न्यूनतम योग्यता/अनुभव प्रदान करता है, तो भी टकराव की सीमा तक , राज्य कानून शून्य होगा और भारत के संविधान के अनुच्छेद 254 के मद्देनजर यूजीसी विनियम, 2010 का पैरा 7.3 मान्य होगा।

(iii) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में शिक्षकों और अन्य शैक्षणिक कर्मचारियों की नियुक्ति के लिए न्यूनतम योग्यता और उच्च शिक्षा में रखरखाव मानकों के लिए अन्य उपाय) विनियम, 2018 (इसके बाद इसे 'यूजीसी' के रूप में संदर्भित किया जाएगा) का पैरा 7.3(1) विनियम, 2018, यूजीसी विनियम, 2010 के पैरा 7.3 के समान है और इस प्रकार यदि विनियम, 2018 के प्रावधान लागू भी होते हैं, तब भी प्रत्यर्थी संख्या 1 की नियुक्ति शुरू से ही शून्य होगी क्योंकि उसके पास कुलपति पद के लिए न्यूनतम आवश्यक योग्यता नहीं है।

अपनी दलीलों के समर्थन में,याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निम्नलिखित निर्णयों का अवलम्ब लिया है:-

(ए) प्रो. नरेंद्र सिंह भंडारी बनाम रवींद्र जुगरान और अन्य, 2022 (16) स्केल 410 (पैरा-12 और 13)

(बी) पश्चिम बंगाल राज्य बनाम अनिंद्य सुंदर दास और अन्य, एआईआर 2022 एससी 3902 (पैरा- 52 से 56)

(सी) प्रोफेसर (डॉ.) श्रीजीत पी.एस. बनाम डॉ. राजश्री एम.एस. और अन्य,2022 (15) स्केल 377 (पैरा 8.1 से 8.5)

(डी) गंभीरदान के. गधवी बनाम गुजरात राज्य और अन्य(2022) 5 एससीसी 179 (पैरा-32, 33, 36, 48, 49, 50 और 51)

प्रतिवादियों की ओर से प्रस्तुतियाँ:-

5. **श्री आर.के. ओझा प्रत्यर्थी संख्या 1 की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने निम्नानुसार प्रस्तुत किया:**

(i) वर्तमान रिट याचिका में शामिल विवाद **2015 की रिट-ए संख्या 62753 (अमृत प्रसाद बनाम यू.एस. अन्य) में इस न्यायालय की खण्डपीठ** के दिनांक 16.11.2015 के निर्णय द्वारा पूर्ण रूप से आच्छादित है, जिसमें समान परिस्थितियों में, इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने माना है कि चूंकि विनियम, 2010 कुलपति के चयन के मामले में राज्य सरकार द्वारा नहीं अपनाया गया है, इसलिए यूजीसी विनियम, 2010 या विनियम, 2018 का पैरा 7.3 लागू नहीं होगा।

.

(ii) अमृत प्रसाद (उपरोक्त) के मामले में उपरोक्त निर्णय समान शक्ति वाली पीठ द्वारा इस न्यायालय का निर्णय है, इसलिए, यह इस

अनुवादित

पीठ पर बाध्यकारी है और यह पीठ असहमति होने पर यह मामले को बड़ी पीठ के पास भेज सकने की स्थिति को छोड़कर कोई अलग दृष्टिकोण नहीं ले सकती है। ।

(iii) यूजीसी विनियम, 2010 और यूजीसी विनियम, 2018 के प्रावधानों के बीच एक बड़ा अंतर है। जबकि यूजीसी विनियम, 2010 के पैरा 1.2 ने प्रत्येक विश्वविद्यालयों आदि के लिए विनियमों की प्रयोज्यता बनाई है, यूजीसी विनियम, 2018 के पैरा-1.2 फ् पिछले सभी विनियमों में अधिक्रमण करते हुए अलग-अलग शब्दों में लिखा गया है, जो निम्न है:

> ***"1.2 प्रत्येक विश्वविद्यालय या संस्थान जो विश्वविद्यालय सम हो, जैसा भी मामला हो, यथाशीघ्र, लेकिन इन विनियमों के लागू होने के छह महीने के भीतर, क़ानूनों, अध्यादेशों या अन्य में संशोधन के लिए प्रभावी कदम उठाएगा। इसे नियंत्रित करने वाले वैधानिक प्रावधान, ताकि इसे इन विनियमों के अनुरूप लाया जा सके"***

(iv) यूजीसी विनियम, 2018 के अनुसरण में और विशेष रूप से उसके पैरा 1.2 के संदर्भ में, राज्य सरकार ने यूजीसी विनियम, 2018 एक सीमित सीमा तक को अपनाते हुए एक **सरकारी आदेश संख्या 600/सत्तर-1-2019-16(114)/2010 दिनांक 28.06.2019** जारी किया है। ।

यह सरकारी आदेश विशेष रूप से कुलपति और प्रति- कुलपति के संबंध में निम्नानुसार व्यवस्था करता है:

"8- उत्तर प्रदेश राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम-1973 में कुलपति एवं प्रति कुलपति की नियुक्ति की प्रक्रिया का उल्लेख है, जो यथावत लागू रहेंगे।

11- 'कोड आफ प्रोफेशनल इथिक्स' सम्बन्धी विनियम विश्वविद्यालय महाविद्यालय के शिक्षक संवर्ग, पुस्तकालय संवर्ग, शारीरिक शिक्षा एवं खेल निदेशक सम्बन्ध में लागू होंगे किन्तु प्रति कुलपति एवं कुलपति के सम्बन्ध में उत्तर प्रदेश विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 के प्राविधान ही प्रभावी होंगे। अतः प्रति कुलपति और कुलपति के सम्बन्ध में 'कोड आफ प्रोफेशनल इथिक्स' सम्बन्धी विनियम को ल जाने पर अध्ययन कर निर्णय लिया जायेगा। "

(v)जगदीश प्रसाद शर्मा और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य के मामले में, (2013) 8 एससीसी 633 (पैरा-72), माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने तीन न्यायाधीशों की खण्डपीठ ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:

"72. जहाँ तक केरल और उ.प्र. राज्यों की बात है, उनकी स्वयं की समस्याएं हैं,जो स्थानीयकृत हैं और अन्य राज्यों से अलग पायदान पर खड़ी हैं, उनमें से कोई भी समान समस्या प्रतीत नहीं होती। शिक्षा अब सूची III का विषय होने के कारण है, राज्य सरकार राज्य में शिक्षा से संबंधित अपने स्वयं के कानून बनाने के लिए स्वतंत्र है और इसलिए, यूजीसी द्वारा बनाए गए विनियमों को स्वीकार

अधिवक्ता

करने या उनका पालन करने के लिए बाध्य नहीं है। यह होना स्वाभाविक है कि यदि वे यूजीसी अधिनियम, 1956 की धारा 26 के तहत बनाए गए विनियमों को अपनाना चाहते हैं, तो राज्यों को आयोग द्वारा निर्धारित शर्तों का पालन करना होगा।"

(vi) जगदीश प्रसाद शर्मा और अन्य(उपरोक्त) के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ द्वारा निर्धारित कानून के मद्देनजर

उत्तर प्रदेश राज्य राज्य में शिक्षा से संबंधित अपने स्वयं के कानून बनाने या यूजीसी अधिनियम, 1956 की धारा 26 के तहत आयोग द्वारा बनाए गए नियमों का पालन करने के लिए स्वतंत्र है और यदि उ.प्र. राज्य इसे अपनाना चाहता है तो उसे आयोग द्वारा निर्धारित शर्तों का पालन करना होगा। जहां तक कुलपति और प्रतिकुलपति की नियुक्ति का सवाल है, राज्य सरकार ने उपरोक्त सरकारी आदेश दिनांक 28.06.2019 जारी किया है, इसलिए यूजीसी विनियमन के पैरा 7.3 उक्त विनियम के पैरा 1.2 के संदर्भ में कुलपति के पद पर नियुक्ति के लिए लागू नहीं होंगे। ।

(vii) कल्याणी मथिवनन बनाम के.वी.जयराज और अन्य के मामले में,(2015) 6 एससीसी 363 (पैरा-62 और 63), माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्न अभिनिर्धारित किया:

"62. ऊपर की गई चर्चा के मद्देनजर, हम मानते हैं:

62.1. इस हद तक कि राज्य का कानून समवर्ती सूची की प्रविष्टि 25 के तहत केंद्रीय कानून के साथ टकराव में है जिसके अंतर्गत केंद्रीय विधान द्वारा बनाए गए अधीनस्थ विधान भी शामिल हैं केंद्रीय कानून के प्रतिकूल होगी और निष्क्रिय होगी।

62.2. यूजीसी विनियम संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित किए जा रहे हैं, हालांकि एक अधीनस्थ कानून का विश्वविद्यालयों पर बाध्यकारी प्रभाव है जिस पर यह लागू होता है।

62.3. यूजीसी विनियम, 2010 सभी केंद्रीय विश्वविद्यालयों और उनके अधीन कॉलेजों और विश्वविद्यालय माने जाने वाले संस्थानों में,जिनके रखरखाव पर यूजीसी व्यय करता है,शिक्षकों और अन्य अकादमिक कर्मचारियों के लिए अनिवार्य हैं।

62.4. यूजीसी विनियम, 2010 राज्य विधान के दायरे में आने वाले विश्वविद्यालयों, कॉलेजों और अन्य उच्च शिक्षण संस्थानों के लिए निर्देशिका है क्योंकि योजना को अपनाने और लागू करने के लिए मामला राज्य सरकार पर छोड़ दिया गया है। इस प्रकार, यूजीसी विनियम, 2010 आंशिक रूप से अनिवार्य है और आंशिक रूप से निर्देशिका है।

62.5. यूजीसी विनियम, 2010 को तमिलनाडु द्वारा नहीं अपनाया गया है, केंद्रीय कानून के तहत बनाए गए विधान और राज्य विधान के बीच टकराव का सवाल ही नहीं उठता है। एक बार राज्य सरकार द्वारा अपनाए जाने पर, राज्य विधान उचित रूप से संशोधित किया

अनुवादित

जाएगा। ऐसे मामले में भी राज्य विधान और केंद्रीय विधान के बीच कोई टकराव नहीं होगा।

63. ऊपर दर्ज किए गए कारणों और निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए, हम तमिलनाडु सरकार के सरकारी आदेश (1डी) संख्या 80, उच्च विभाग(एच 2) विभाग, दिनांक 9-4-2012 द्वारा मदुरै कामराज विश्वविद्यालय मे डॉ. कल्याणी मथिवनन की कुलपति के रूप में नियुक्ति बनाए रखते है और 2014 एससीसी ऑनलाइन मैड 2701, के वी जयराज बनाम विश्वविद्यालयों के कुलाधिपति मामले में मद्रास उच्च न्यायालय की खण्ड पीठ, मदुरै खण्ड पीठ द्वारा पारित आक्षेपित आम निर्णय और आदेश दिनांक 26-6-2014 को अपास्त करते हैं। अपीलों की अनुमति दी जाती है लेकिन मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार, लागत के सम्बंध में कोई आदेश नहीं होगा।"

(viii) अधिकार पृच्छा का रिट तभी लागू होता है जब नियुक्ति किसी अयोग्य व्यक्ति द्वारा की गई हो और प्रासंगिक नियमों/ विधान के विपरीत हो। चूंकि प्रत्यर्थी संख्या 1 की नियुक्ति उ.प्र.राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम,1973 के प्रावधानों के अनुरूप की गई है और चूंकि यह भी कि उ.प्र. राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 की धारा 4(1-बी) में, विश्वविद्यालय के प्रथम कुलाधिपति की नियुक्ति के लिए कोई अनुभव नहीं दिया गया है और नियुक्ति एक अंतरिम नियुक्ति है, इसलिए,अधिकार पृच्छा का रिट नहीं लगेगा क्योंकि प्रत्यर्थी संख्या 1 विश्वविद्यालय का पहला कुलपति है। हरि बंश लाल बनाम एस प्रसाद महतो और अन्य, (2010) 9 एससीसी 655 के मामले में निर्णय का अवलम्ब लिया गया।

(ix) भारत के संविधान के अनुच्छेद 254(2) के परंतुक के संदर्भ में प्रतिकूलता का प्रश्न सामने नहीं आता है यहाँ तक कि यूजीसी विनियम, 2018 ने स्वयं विनियमों को अपनाने का अधिकार राज्य को छोड़ दिया है। जगदीश प्रसाद शर्मा और अन्य (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ द्वारा भी स्थिति स्पष्ट की गई थी। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए प्रस्ताव पर निर्णय दो न्यायाधीशों की पीठ का है, जबकि जगदीश प्रसाद शर्मा और अन्य (उपरोक्त) के मामले में निर्णय माननीय सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ का है और परिणामस्वरूप, प्रतिकूलता के सीमित प्रश्न पर पर उपरोक्त दो निर्णयों पर वरीयता होगी।

(x) संपूर्ण रिट याचिका यूजीसी विनियमों,2010 पर आधारित है, जबकि यूजीसी विनियम, 2018 लागू हैं।

6. प्रत्यर्थी नंबर 4 के विद्वान अधिवक्ता श्री रिजवान अली अख्तर ने कहा कि कुलपति के पद पर नियुक्ति करते समय यूजीसी विनियम, 2018 के प्रावधानों का प्रकृति में अनिवार्य होने के कारण अनुपालन करना ही पड़ेगा।

7. श्री भरत प्रताप सिंह, प्रत्यर्थी संख्या 3 की ओर से विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता, ने श्री आर. के.ओझा, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता प्रत्यर्थी संख्या 1 की ओर से, द्वारा की गई पूर्वोक्त दलीलों को अंगीकार करता है।

अनुवादित

8. श्री ए.के. सिंह प्रत्यर्थी संख्या 2 की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने भी श्री आर. के.ओझा,प्रत्यर्थी संख्या 1 की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, द्वारा की गई पूर्वोक्त दलीलों को अंगीकार करता है।

9. पक्षों की ओर से विद्वान अधिवक्ताओं ने पूर्वोक्त दलीलों के अलावा कुछ भी प्रस्तुत नहीं किया है।

<u>चर्चा एवं निष्कर्ष:-</u>

10. प्रत्यर्थी नंबर 1 की नियुक्ति उ.प्र. अधिनियम, 1973. की धारा 4(1-बी) के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए उपरोक्त संदर्भित सरकारी आदेश दिनांक 30.12.2021 द्वारा राज्य सरकार द्वारा की गई थी। तत्पर सन्दर्भ के लिए, अंतरिम (प्रथम) कुलपति की नियुक्ति के लिए उ.प्र. राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 की धारा 4(1-बी) और सरकारी आदेश दिनांक 30.12.2021, नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"उ.प्र. राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 2013 की धारा 4(1-बी):-

4(1-बी) उपधारा (1-ए) के तहत स्थापित होने वाले विश्वविद्यालयों के संबंध में-

(ए) राज्य सरकार अंतरिम अधिकारियों की नियुक्ति करेगी(कुलाधिपति के अलावा) और ऐसे विश्वविद्यालयों के अंतरिम प्राधिकारियों का गठन उस तरीके से करेगी जैसा वह उचित समझे;

(बी) खंड (ए) के तहत नियुक्त अधिकारी और गठित प्राधिकरणों के सदस्य अधिकारियों की नियुक्ति खंड (सी) के अनुसार अधिकारियों के गठन या ऐसी अन्य पूर्व तिथि तक पद पर बने रहेंगे जो इस संबंध में राज्य सरकार द्वारा निर्दिष्ट की जा सकती है:

बशर्ते कि राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा ऐसे प्राधिकरणों के सदस्यों का कार्यकाल अधिकतम एक वर्ष अवधि से अधिक नहीं कर सकती है।

(सी) राज्य सरकार इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार अधिकारियों की नियुक्ति और ऐसे विश्वविद्यालयों के प्राधिकरणों के गठन के लिए कदम उठाएगी, ताकि खंड (बी)के अंतर्गत अंतरिम अधिकारियों और सदस्यों के संबंधित कार्यकाल की समाप्ति से पहले इसे पूरा किया जा सके।

प्रत्यर्थी की नियुक्ति के लिए सरकारी आदेश:-

उत्तर प्रदेश शासन
उत्तर प्रदेश शासन उच्च शिक्षा अनुभाग-1

संख्या 2344/सत्तर-1-2021-16(26)/2019
लखनऊ: दिनांक 30 दिसंबर 2021
आदेश

उत्तर प्रदेश राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 की धारा-4 की उप धारा (1-ख) के अन्तर्गत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुये प्रो० चन्द्रशेखर हेड एण्ड डीनफैकेल्टी आफ लॉ, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय,

अनुवादित

गोरखपुर को राजा महेन्द्र प्रताप सिंह राज्य विश्वविद्यालय. अलीगढ़ का अन्तरिम (प्रथम) कुलपति नियुक्त किये जाने की श्री राज्यपाल सहर्ष स्वीकृति प्रदान करते हैं।

मोनिका एस० गर्ग
अपर मुख्य सचिव ।

11. प्रत्यर्थी नंबर 2- उत्तर प्रदेश विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 (111 संशोधन) 2019 (उ.प्र. अधिनियम संख्या 20/2019) द्वारा उ.प्र.अधिनियम, 1973 के अंतर्गत विश्वविद्यालय की स्थापना की गई है और यह प्रावधान किया गया है कि जब तक प्रत्यर्थी संख्या 2-विश्वविद्यालय की प्रथम विधान धारा 50 के अंतर्गत नहीं बन जाते, तब तक के विधान डॉ. भीम राव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा विश्वविद्यालय, उक्त विश्वविद्यालय की स्थापना से ठीक पहले लागू होने के कारण, ऐसे अनुकूलन और संशोधनों के अधीन लागू होगा जो राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा प्रदान कर सकती है। उपरोक्त संशोधन अधिनियम द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 2 - विश्वविद्यालय के प्रथम अध्यादेश के संबंध में संशोधन द्वारा समान प्रावधान किए गए हैं।

12. इस प्रकार, यह निर्विवाद है कि उ.प्र. अधिनियम, 1973 की धारा 4(1-बी) में उपरोक्त प्रावधानों के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए राज्य सरकार द्वारा जारी दिनांक 30.12.2021 के एक सरकारी आदेश द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 1 की नियुक्ति प्रत्यर्थी संख्या 2-विश्वविद्यालय के अंतरिम (प्रथम) कुलपति के रूप में की गई है। इसलिए, नए बने विश्वविद्यालय (प्रत्यर्थी नंबर 2) के अंतरिम (प्रथम) कुलपति के रूप में प्रत्यर्थी नंबर 1 की उपरोक्त नियुक्ति को वैधानिक प्रावधानों के खिलाफ नियुक्ति नहीं कहा जा सकता है। इस प्रकार, अधिकार पृच्छा रिट जारी नहीं किया जा सकता।

13. इसके अलावा, **बी. श्रीनिवास रेड्डी बनाम कर्नाटक शहरी जल आपूर्ति ड्रेनेज बोर्ड कर्मचारी संघ, (2006) 11 एससीसी 731 (2) 97(सी)),** माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी:

"43. क्या अधिकार पृच्छा रिट किसी नियुक्ति को "अगले आदेश तक" इस आधार पर चुनौती देने के लिए है कि यह एक नियमित नियुक्ति नहीं है? क्या उच्च न्यायालय स्थापित कानून का पालन करने में विफल रहा है कि अधिकार पृच्छा रिट तब तक जारी नहीं किया जा सकता है जब तक कि कानून का स्पष्ट उल्लंघन न हो? अपीलार्थी की नियुक्ति में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि नियुक्ति अगले आदेश तक है। नियुक्ति के नियमों और शर्तों से यह स्पष्ट हो गया है कि नियुक्ति अस्थायी है और अगले आदेश तक है। ***ऐसी स्थिति में, उच्च न्यायालय, हमारे विचार में, अनुच्छेद 226 के तहत अधिकार पृच्छा रिट जारी करने में विधि में गलती की है।*** *अनुच्छेद 226 के तहत अधिकार केवल एक पीड़ित व्यक्ति द्वारा उस मामले जहां रिट ने बंदी प्रत्यक्षीकरण के लिए प्रार्थना की है के अलावा लागू किये जा सकते हैं ।*

97(सी). **यदि कथित उल्लंघन एक वैधानिक प्रावधान है तो अधिकार वारंट का रिट झूठ नहीं बोलता है।"**

अनुवादित

(बल दिया गया)

14. उपरोक्त के अलावा, **जगदीश प्रसाद शर्मा और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य के मामले में, (2013) 8 एससीसी 633 (पैरा-72)**, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उत्तर प्रदेश राज्य के संदर्भ में यूजीसी अधिनियम, 1956 की धारा 26 के तहत बनाए गए यूजीसी विनियमों के प्रावधानों पर विचार करते हुए, यह पाया कि राज्य सरकार यूजीसी द्वारा बनाए गए विनियमों को स्वीकार करने या उनका पालन करने के लिए बाध्य होगी, यदि वह यूजीसी अधिनियम, 1956 की धारा 26 के तहत आयोग द्वारा बनाए गए विनियम को अपनाना चाहती है। । **जगदीश प्रसाद शर्मा और अन्य (उपरोक्त) (एससीसी)** का पैरा-72 मामला, नीचे प्रस्तुत किया गया है:

> "59. जहां तक केरल और उ.प्र.राज्यों का सवाल है, उनकी अपनी समस्याएं हैं, जो कि स्थानीय हैं और अन्य राज्यों से अलग स्तर पर खड़ी हैं, उनमें से किसी की भी समान समस्या प्रतीत नहीं होती है, शिक्षा अब सूची III का विषय होने के कारण, राज्य सरकार राज्य में शिक्षा से संबंधित अपने स्वयं की विधि बनाने के लिए स्वतंत्र है और इसलिए, यूजीसी द्वारा बनाए गए विनियमों को स्वीकार करने या उनका पालन करने के लिए बाध्य नहीं है। यह स्वाभाविक है कि यदि वे यूजीसी अधिनियम, 1956 की धारा 26 द्वारा बनाए गए विनियमों को अपनाना चाहते हैं, तो राज्यों को आयोग द्वारा निर्धारित शर्तों का पालन करना होगा।"

15. प्रत्यर्थी संख्या 3 (उत्तर प्रदेश राज्य) की ओर से दायर के शपथ पत्र के पैराग्राफ -6, 7, 9, 10 और 11 में, यह कहा गया है:

> *"6. यह कि दिनांक 30.12.2021 के सरकारी आदेश द्वारा उ.प्र. राज्य विश्वविद्यालयअधिनियम, 1973 की धारा 4(1-बी) के तहत प्रत्यर्थी नंबर 1, राजा महेंद्र प्रताप सिंह राज्य विश्वविद्यालय, अलीगढ़ का अंतरिम (प्रथम) कुलपति नियुक्त किया गया था (इसके बाद इसे विश्वविद्यालय कहा जाएगा)। शासनादेश की एक प्रति दिनांक 30.12.2021 इसके साथ संलग्न है और इस प्रति शपथपत्र पर अनुलग्नक संख्या सीए-2 डाला गया है।*
>
> *7. यह कि उ.प्र. राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 नये विश्वविद्यालयों की स्थापना एवं विश्वविद्यालयों के नाम तथा क्षेत्रफल में परिवर्तन हेतु राज्य सरकार द्वारा अधिकारियों की अंतरिम नियुक्ति का प्रावधान करता है। उ.प्र. राज्य विश्वविद्यालयअधिनियम, 1973 की धारा 4(1-बी) की एक प्रति इसके साथ संलग्न है और इस प्रति शपथपत्र पर अनुलग्नक संख्या सीए-3 डाला गया है।*
>
> *9. यह कि विश्वविद्यालयों में कुलपति की नियुक्ति के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग विनियमन 2010 और 2018 के प्रावधानों को राज्य सरकार द्वारा नहीं अपनाया गया है, इस प्रकार,*

अनुवादित

उ.प्र. राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 द्वारा शासित राज्य विश्वविद्यालयों के कुलपतियों की अंतरिम या नियमित नियुक्ति के लिए प्रयोज्य नहीं है।

10. यह कि वह शासनादेश दिनांक 28.06.2019 जो कि यू.जी.सी.विनियम, 2018 को अपनाने से संबंधित है। पैराग्राफ संख्या 2 (8) उल्लेख करता है कि राज्य विश्वविद्यालयों के कुलपति और प्रति कुलपति की नियुक्ति के प्रावधान वही होंगे जो उ.प्र. राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 में उल्लिखित हैं। शासनादेश दिनांक 28.06.2019 की एक प्रति इसके साथ संलग्न है और इस प्रति शपथपत्र पर अनुलग्नक संख्या सीए-3 डाला गया है।

11. यह कि राज्य सरकार द्वारा कुलपति की नियुक्ति के लिए यू.जी.सी. विनियम नहीं अपनाए गए, राज्य सरकार द्वारा राजा महेंद्र प्रताप सिंह राज्य विश्वविद्यालय, अलीगढ़ में प्रत्यर्थी संख्या 1 की अंतरिम (प्रथम) नियुक्ति उ.प्र.राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 के प्रावधानों के अनुसार किया गया वैध और प्रामाणिक होने के कारण बरकरार रखा जाना चाहिए। रिट याचिका में कोई सार नहीं है और इसे खारिज करने योग्य है।"

16. उपरोक्त सरकारी आदेश दिनांक 28.06.2019 को प्रत्यर्थीगण की ओर से विद्वान अधिवक्ताओं ने अपने तर्कों में विशेष रूप से संदर्भित और विश्वसनीय माना था, लेकिन इस संबंध में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा कोई उत्तर प्रस्तुत नहीं किया गया था। इस प्रकार, जहां तक प्रत्यर्थी नंबर 1 की अंतरिम (प्रथम) कुलपति के रूप में नियुक्ति का संबंध है, राज्य सरकार ने शासनादेश संख्या 600/सत्तर-1-2019-16(114)/2010 दिनांक 28.06.2019 द्वारा उसके पैरा-8 में विशेष रूप से कुलपति एवं प्रति कुलपति की नियुक्ति की प्रक्रिया का प्रावधान किया है जैसा कि उत्तर प्रदेश राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम 1973 में दी गई है, प्रयोज्य बनी रहेगी। उपरोक्त सरकारी आदेश यूजीसी विनियम, 2018 के संदर्भ में जारी किया गया है। इस प्रकार, कुलपति और प्रति-कुलपति की नियुक्ति की प्रक्रिया के संबंध में, राज्य सरकार ने यूजीसी विनियमों को नहीं अपनाया है और इसके बजाय निर्णय लिया है कि राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 के प्रावधान लागू रहेंगे। ।विनियमन, 2010 पर विचार करते समय,इसी तरह का दृष्टिकोण रिट-सी संख्या 62753/2015 में और इस न्यायालय की समन्वय खण्डपीठ द्वारा पारित निर्णय दिनांक 16.11.2015 द्वारा में लिया गया है (अमृत प्रसाद बनाम उ.प्र. राज्य और 5 अन्य)। उपरोक्त दृष्टिकोण को **जगदीश प्रसाद शर्मा और अन्य (उपरोक्त)** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय से भी समर्थन मिलता है।

17. जहां तक याचिकाकर्ता द्वारा **गंभीरदान के. गढ़वी बनाम गुजरात राज्य और अन्य, (2022)**

अनुवादित

5 एससीसी 179 (पैरा 2.4 और पैरा-29), प्रो. नरेंद्र सिंह भंडारी बनाम रवींद्र जुगरान और अन्य, 2022 (16) स्केल 410 (पैरा-9) और **प्रोफेसर (डॉ.) श्रीजीत पी.एस. बनाम डॉ. राजश्री एम.एस. और अन्य, 2022 (15) स्केल 377 (पैरा-2.3 और 8.5)** के मामले में दिए गए निर्णयों पर लिए गए अवलम्ब का संबंध है, हम पाते हैं कि इन सभी निर्णयों में, एक महत्वपूर्ण तथ्य यह था कि संबंधित राज्य सरकार ने प्रासंगिक यूजीसी विनियमन, 2010/2018 को अपनाया है।

.18. उपरोक्त सभी कारणों से, प्रत्यर्थी संख्या 2 - विश्वविद्यालय के अंतरिम (प्रथम) कुलपति के रूप में प्रत्यर्थी की नियुक्ति उ.प्र. राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 की धारा 4(1- बी)के प्रावधानों के अनुसार है,न तो अवैध है और न ही वैधानिक प्रावधानों के विपरीत है। इसलिए, अधिकार पृच्छा की रिट जारी नहीं की जा सकती। रिट याचिका में कोई सार नहीं है ,इसलिए **खारिज की जाती है।**

(2023) 6 ILRA 655

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.04.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. योगेंद्र कुमार श्रीवास्तव

रिट-सी संख्या 3955/2022

श्री कन्हैया लाल ट्रस्ट एवं अन्य याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता: श्री गौरव सिंह, श्री कुमार श्रेष्ठ

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी., श्री कौशल किशोर मणि

सिविल कानून - उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006- याचिकाकर्ता एक पंजीकृत ट्रस्ट है-पंजीकृत बिक्री विलेख द्वारा भूमि खरीदी-नाम परिवर्तित-घोषणा प्राप्त की कि भूमि का उपयोग गैर-कृषि उद्देश्य के लिए किया जाता है-लेकिन कुछ समय बाद बाधाओं के कारण शैक्षणिक संस्थान स्थापित करने में विफल रहा-धारा 80 के तहत की गई पूर्व घोषणा को रद्द करने के लिए संहिता, 2006 की धारा 82 के तहत आवेदन प्रस्तुत किया-अस्वीकृत-धारा 80 के तहत की गई घोषणा को रद्द करने की मांग करने वाली धारा 82 के तहत संतुष्ट की जाने वाली शर्तें-धारा के तहत स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट-आदेश में किसी अन्य परिस्थिति का संदर्भ दिया गया है और उसके आधार पर याचिकाकर्ता के आवेदन को अस्वीकार करने के लिए, इसलिए प्राधिकरण को प्रदत्त विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग अल्ट्रा वायर्स और अमान्य माना जाएगा-प्रतिवादी सं। 3 को संहिता, 2006 की धारा 82 के प्रावधानों के आधार पर नया आदेश पारित करने के लिए कहा गया है। (ई-9)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. आयकर आयुक्त, पश्चिम बंगाल, कलकत्ता बनाम बिनॉय कुमार सहस रॉय, एआईआर 1957 एससी 768

2. राजा मुस्तफा अली खान, विशेष प्रबंधक के माध्यम से, कोर्ट ऑफ वार्ड्स, उतरौला, जिला गोंडा बनाम आयकर आयुक्त, संयुक्त प्रांत, अजमेर और अजमेर मेरवाड़ा, एआईआर 1949 पीसी 13

अनुवादित

3. आयकर आयुक्त पश्चिम बंगाल, कलकत्ता बनाम राजा बिनॉय कुमार सहस रॉय, एआईआर 1957 एससी 768

4. दिलवर्थ और अन्य बनाम स्टाम्प आयुक्त, (1899) एसी 99

5. रमाला सहकारी चीनी मिल्स लिमिटेड, उत्तर प्रदेश बनाम आयुक्त, केंद्रीय उत्पाद शुल्क, मेरठ I, (2010) 14 एससीसी 744

6. ओसवाल फैट्स एंड ऑयल्स लिमिटेड बनाम अतिरिक्त आयुक्त (प्रशासन), बरेली डिवीजन, बरेली और अन्य, (2010) 4 एससीसी 728

7. भारत डायग्नोस्टिक स्टेटर बनाम आयुक्त सीमा शुल्क, 2014 (307) ईएलटी 632

8. साउथ गुजरात रूफिंग टाइल्स मैन्युफैक्चरर्स एसोसिएशन और अन्य बनाम स्टेट गुजरात और अन्य (1976) 4 एससीसी 601

9. ईएसआई कॉर्पोरेशन बनाम हाई लैंड कॉफी वर्क्स, (1991) 3 एससीसी 617

10. आयकर आयुक्त, आंध्र प्रदेश बनाम ताज महल होटल, सिकंदराबाद, (1971) 3 एससीसी 550

11. स्टेट ऑफ बॉम्बे और अन्य बनाम अस्पताल मजदूर सभा और अन्य, (1960) 2 एससीआर 866

12. लॉर्ड एशर एमआर इन आर. बनाम स्टेट पैनक्रास वेस्ट्री, (1890) 24 क्यूबीडी 371

13. एसोसिएटेड प्रांतीय पिक्चर हाउस, लिमिटेड बनाम वेडनसबरी कॉर्पोरेशन, [1947] 2 सभी ईआर 680

14. पैडफील्ड और अन्य बनाम कृषि, मत्स्य पालन और खाद्य मंत्री और अन्य, [1968] 1 सभी ईआर 694

15. ब्रीन बनाम अमलामेटेड इंजीनियरिंग यूनियन और अन्य, [1971] 2 क्यूबी 175

16.सीताराम बनाम स्टेट ऑफ यू.पी. एवं अन्य, [1968] 1 सभी ईआर 694

17. ओमवती बनाम एस.टी. ऑफ यू.पी. एवं अन्य, [1971] 2 क्यूबी 175

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव द्वारा दिया गया)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री गौरव सिंह और श्री कुमार श्रेष्ठ; राज्य प्रतिवादियों की ओर से विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री अभिषेक शुक्ला और श्री अमित मनोहर के साथ उपस्थित विद्वान अपर महाधिवक्ता श्री अजीत कुमार सिंह; और श्री कौशल किशोर मणि, प्रतिवादी संख्या 4-ग्राम सभा के विद्वान अधिवक्ता; को सुना।

2. वर्तमान याचिका प्रतिवादी संख्या 2-उपजिलाधिकारी, सहारनपुर द्वारा पारित 16.12.2021 के आदेश को चुनौती देने की मांग करते हुए दायर की गई है जिसके द्वारा याचिकाकर्ताओं द्वारा, उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 80 के तहत की गई पूर्व घोषणा को रद्द करने के लिए दायर आवेदन अंतर्गत धारा 82 उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006, को खारिज कर दिया गया है।

3. रिट याचिका में दिए गए तथ्यों के अनुसार, याचिकाकर्ता ने खुद को एक पंजीकृत ट्रस्ट होने का दावा किया है जिसका लक्ष्य और उद्देश्य समाज में शैक्षिक और सामाजिक जागरूकता में सुधार करना है। याचिकाकर्ता नं. 2 का दावा है कि उन्होंने पंजीकृत विक्रय पत्र दिनांक

अनुवादित

25.04.2017 के माध्यम से अपने दर्ज खातेदारों से जमीन खरीदी और उसके बाद उसको राजस्व अभिलेख में परिवर्तित कर दिया।

4. याचिकाकर्ता ट्रस्ट ने, इसके बाद, एक शैक्षणिक संस्थान का निर्माण करने का इरादा रखते हुए, संहिता, 2006 की धारा 80 के तहत दिनांक 14.07.2017 को एक आवेदन दायर किया ताकि यह घोषणा प्राप्त की जा सके कि विचाराधीन भूमि का उपयोग गैर-कृषि उद्देश्य के लिए किया जा रहा है। प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा दिनांक 08.09.2017 के आदेश द्वारा उपरोक्त आवेदन की अनुमति दी गई थी और घोषणा की गई थी कि भूमि का उपयोग गैर-कृषि उद्देश्य के लिए किया जा रहा था।

5. कुछ समय बीत जाने के बाद, कुछ बाधाओं के कारण, याचिकाकर्ता शैक्षणिक संस्थान स्थापित करने में विफल रहे और इसलिए, पहले प्राप्त की गई घोषणा को रद्द करने की मांग करते हुए प्रतिवादी संख्या 2 के समक्ष संहिता, 2006 की धारा 82 के तहत दिनांक 24.10.2019 को एक आवेदन दायर किया। उपरोक्त आवेदन पर, प्रतिवादी क्रमांक 3-तहसीलदार, सहारनपुर से एक रिपोर्ट प्राप्त की गई जो 02.03.2020 को प्रस्तुत की गई थी। रिपोर्ट में इंगित किया गया कि लगभग 4-5 फीट ऊंची चारदीवारी के अलावा, विचाराधीन भूमि पर कोई अन्य निर्माण नहीं था और भूमि का उपयोग किसी भी व्यावसायिक उद्देश्य के लिए नहीं किया जा रहा था। बताया गया कि जमीन पर गेहूं की फसल खड़ी थी और इसका उपयोग कृषि कार्य में किया जा रहा था। कृषि प्रयोजन के लिए भूमि के उपयोग को इंगित करने वाली एक समान रिपोर्ट क्षेत्रीय लेखपाल द्वारा 14.08.2020 को प्रस्तुत की गई थी। चूंकि, अपेक्षित रिपोर्ट प्राप्त करने के बाद भी प्रतिवादी अधिकारियों द्वारा कोई आदेश पारित नहीं किया गया था, याचिकाकर्ता ने **रिट सी संख्या 10252 वर्ष 2021 (श्री कन्हैया लाल ट्रस्ट और अन्य बनाम यूपी राज्य और 3 अन्य)** दायर करके इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया, जिसका निपटारा दिनांक 19.7.2021/26.07.2021 के एक आदेश द्वारा उप जिलाधिकारी को निर्धारित समय अवधि के भीतर आवेदन पर निर्णय लेने का निर्देश देते हुए, किया गया।

6. याचिकाकर्ता ने, इस स्तर पर, दिनांक 2.8.2021 को एक नया आवेदन प्रस्तुत किया, जिस पर क्षेत्र के लेखपाल और तहसीलदार ने अपनी रिपोर्ट दिनांक 25.11.2021 को प्रस्तुत की, जिसमें यह कहा गया था कि स्थल निरीक्षण से संकेत मिलता है कि 4-5 फीट ऊंचाई की एक चारदीवारी के अलावा, विचाराधीन भूमि पर कोई अन्य निर्माण मौजूद नहीं था। इसमें कहा गया था कि जमीन पर कोई स्कूल नहीं बनाया गया है और सजावटी और लकड़ी के पौधों की नर्सरी चलाकर व्यावसायिक कार्य किया जा रहा है।

7. उपरोक्त रिपोर्ट के आधार पर, उप-जिलाधिकारी ने, संहिता, 2006 की धारा 82 के तहत घोषणा को रद्द करने की मांग करने वाले याचिकाकर्ता के आवेदन को, दिनांक 16.12.2021 के आक्षेपित आदेश द्वारा खारिज कर दिया। यह आदेश उच्च न्यायालय द्वारा

अवैधानिक

रिट सी संख्या-10252/2021 में जारी निर्देश के अनुपालन में पारित किया गया।

8. उपरोक्त आदेश को चुनौती देते हुए, याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने अपना तर्क मुख्य रूप से इस दलील पर आधारित किया है कि संहिता, 2006 की धारा 4(2) फूलों की खेती को 'कृषि' में समावेशी परिभाषित करती है और इसलिए, नर्सरी से संबंधित कोई भी गतिविधि 'कृषि' शब्द के अर्थ में शामिल है। आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 2(1ए) के तहत 'कृषि आय' की परिभाषा का भी संदर्भ दिया गया है ताकि यह प्रस्तुत किया जा सके कि कृषि संपूर्ण और एकीकृत गतिविधि को दर्शाती है जो अपना उत्पादन बढ़ाने के लिए भूमि पर की जाती है और इसमें, मानव कौशल और श्रम की आवश्यकता वाले बुनियादी और आवश्यक कार्य जैसे कि मिट्टी की जुताई,बीज बोना, रोपण और समान प्रकृति के कार्य और अन्य अनुवर्ती कार्य, शामिल हैं। इस संबंध में, **आयकर आयुक्त, पश्चिम बंगाल, कलकत्ता बनाम बिनॉय कुमार साहस रॉय** के मामले में निर्णय का आधार लिया गया है।

9. याचिकाकर्ताओं के वकील ने आगे इस बात पर ध्यान दिलाया है कि विचाराधीन भूमि का कोई व्यावसायिक उपयोग नहीं किया जा रहा है जैसा कि उस रिपोर्ट में बताया गया है जिसका आक्षेपित आदेश में आधार लिया गया है। यह दावा किया गया है कि याचिकाकर्ताओं द्वारा की जा रही गतिविधि कृषि कार्यों के दायरे में आती है और इसलिए, संहिता, 2006 की धारा 82 के तहत आवेदन को खारिज करने का आदेश अवैध रूप से बरकरार रखने योग्य नहीं है।

10. राज्य प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि संहिता, 2006 की धारा 82 के तहत घोषणा को रद्द करने की मांग उस मामले में की जा सकती है, जहां संपत्ति या उसका हिस्सा, जिसके संबंध में धारा 80 के तहत एक घोषणा प्राप्त की गई है, का उपयोग कृषि से जुड़े किसी भी उद्देश्य के लिए किया जाता है। यह बताया गया है कि वर्तमान मामले में, रिपोर्ट में कहा गया है कि प्रश्नगत भूमि का उपयोग वाणिज्यिक उद्देश्य के लिए किया जा रहा था, इसलिए धारा 82 के तहत घोषणा की मांग करने वाले आवेदन को अस्वीकार कर दिया गया है। राज्य प्रतिवादियों के अधिवक्ता ने अपनी दलील के समर्थन में **बिनॉय कुमार साहस रॉय (उपरोक्त)** के मामले में सुप्रीम कोर्ट की संविधान पीठ के फैसले का भी आधार लिया है।

11. प्रतिद्वंद्वी तर्कों की सराहना करने के लिए, प्रासंगिक वैधानिक प्रावधानों को विज्ञापित करने की आवश्यकता है और वे इस प्रकार हैं:

> "**4. परिभाषा** - इस संहिता में, -
>
> (2) 'कृषि' के अंतर्गत बागवानी, पशुपालन , मत्स्य पालन, फूलों की खेती, मधुमक्खी पालन और कुक्कुट पालन भी है;
>
> (14) "भूमि" का तात्पर्य, अध्याय सात और आठ और धारा 80, 81 और धारा 136 के सिवाय, ऐसी भूमि से है जो कृषि से जुड़े उद्देश्यों के लिए रखी गई या कब्जा की गई है;
>
> **80. औद्योगिक, वाणिज्यिक या आवासीय प्रयोजनों के लिए जोत का**

अनुवादित

उपयोग- जहां संक्रमणीय अधिकार वाला भूमिघर अपनी जोत या उसके भाग का, औद्योगिक, वाणिज्यिक या आवासीय प्रयोजन के लिए उपयोग करता है, वहां उप जिलाधिकारी स्वप्रेरणा से या ऐसे भूमिधर द्वारा आवेदन किये जाने पर, यथाविहित जांच करने के पश्चात्, या तो यह घोषणा कर सकता है कि वह भूमि कृषि से भिन्न प्रयोजन के लिए उपयोग में लाई जा रही है या प्रार्थना पत्र को नामंजूर कर सकता है। उप जिलाधिकारी आवेदन प्राप्त होने की तिथि से पैंतालीस कार्य दिवसों के अन्दर आवेदन पर निर्णय लेंगे। यदि आवेदन खारिज कर दिया जाता है, तो उप-जिलाधिकारी ऐसी अस्वीकृति के कारणों को लिखित रूप में बताएगा और आवेदक को अपने निर्णय के बारे में सूचित करेगा।

(2) जहां संक्रमणीय अधिकार वाला भूमिघर अपनी जोत या उसके भाग का, औद्योगिक, वाणिज्यिक या आवासीय प्रयोजन के लिए उपयोग करता है, वहां उप जिलाधिकारी ऐसे भूमिधर द्वारा दिए गए आवेदन पर, ऐसी जांच करने के बाद, आवेदन प्राप्त होने की तिथि से पैंतालीस कार्य दिवसों के अन्दर, या तो यह घोषणा कर सकता है कि वह भूमि कृषि से भिन्न प्रयोजन के लिए उपयोग में लाई जा सकती है या प्रार्थना पत्र को नामंजूर कर सकता है। यदि आवेदन खारिज कर दिया जाता है, तो उप-जिलाधिकारी ऐसी अस्वीकृति के कारणों को लिखित रूप में बताएगा और आवेदक को अपने निर्णय के बारे में सूचित करेगा:

बशर्ते कि इस उप-धारा के तहत घोषणा की तारीख से, यदि भूमिधर पांच साल की अवधि के भीतर प्रस्तावित गैर-कृषि गतिविधि शुरू करने में विफल रहता है , तब उप-धारा (2) के तहत होल्डिंग या उसके हिस्से के लिए घोषणा समाप्त हो जाएगी:

बशर्ते यह भी कि इस उप-धारा (2) के तहत एक घोषणा भूमि के उपयोग के परिवर्तन के बराबर नहीं होगी और भूमि को केवल कृषि भूमि के रूप में माना जाता रहेगा। हालाँकि, भूमिधर उस गतिविधि या परियोजना के लिए ऋण और अन्य आवश्यक अनुमतियाँ, मंजूरी आदि प्राप्त करने का हकदार होगा, जो होल्डिंग या उसके हिस्से पर प्रस्तावित है, जिसके लिए इस उप-धारा के तहत घोषणा प्राप्त की गई है।

(3) इस जोत या उसके हिस्से के लिए उप-धारा (2) के तहत घोषणा रखने वाला भूमिधर, उप-धारा (2) के तहत घोषणा से पांच साल की अवधि के भीतर निर्माण गतिविधि के पूरा होने या प्रस्तावित गैर-कृषि गतिविधि की शुरुआत होने के बाद उप-धारा (2) के तहत घोषणा को उप-धारा (1) के

अनुवादित

तहत घोषणा में परिवर्तित करने के लिए उप- जिलाधिकारी को आवेदन कर सकता है। ऐसा आवेदन प्राप्त होने पर, उप-जिलाधिकारी, आवश्यक जांच करने के बाद, आवेदन प्राप्त होने से 15 दिनों की अवधि के भीतर आवेदन को स्वीकृत या अस्वीकार कर देगा। अस्वीकृति के मामले में, वह ऐसी अस्वीकृति के कारणों को लिखित रूप में दर्ज करेगा:

बशर्ते कि उप-धारा (2) के तहत घोषणा को उप-धारा (1) के तहत घोषणा में बदलने के लिए, भूमिधर उप-धारा (2) के तहत घोषणा के लिए पहले से ही भुगतान की गई राशि को समायोजित करने के बाद, प्रचलित सर्कल दर पर गणना की गई देय शुल्क की शेष राशि का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी होगा।

(4) भूमिधरी भूमि में अविभाजित हित रखने वाले किसी भी सह-भूमिधर द्वारा प्रस्तुत उप-धारा (1) या (2) के तहत घोषणा के लिए कोई भी आवेदन पोषणीय नहीं होगा, जब तक कि ऐसी भूमिधरी भूमि के सभी सह-भूमिधरों द्वारा आवेदन नहीं दिया जाता है। यदि सह-भूमिधरों में से केवल एक ही संयुक्त हित के साथ भूमि में अपने हिस्से की घोषणा प्राप्त करना चाहता है, तो ऐसे आवेदन पर तभी विचार किया जाएगा जब भूमि में सह-भूमिधरों के संबंधित शेयरों को कानून के प्रावधान के अनुसार विभाजित किया गया हो।

(5) उप-धारा (1) या उप-धारा (2) के तहत घोषणा के लिए आवेदन में ऐसे विवरण शामिल होंगे और ऐसे तरीके से किया जाएगा जो निर्धारित किया गया हो।

(6) जहां उप-धारा (1) या उप-धारा (2) के तहत आवेदन जोत के एक हिस्से के संबंध में किया जाता है, उप-जिलाधिकारी, निर्धारित तरीके से, ऐसे उद्देश्यों के लिए ऐसे हिस्से का सीमांकन कर सकता है।

(7) इस धारा के तहत कोई भी घोषणा उप-जिलाधिकारी द्वारा नहीं की जाएगी, यदि वह संतुष्ट है कि भूमि या उसके हिस्से का उपयोग किसी ऐसे उद्देश्य के लिए किया जा रहा है या किया जाना प्रस्तावित है, जिससे सार्वजनिक उपद्रव होने की संभावना है या सार्वजनिक व्यवस्था, सार्वजनिक स्वास्थ्य, सुरक्षा या सुविधा पर प्रतिकूल प्रभाव हो सकता है या जो मास्टर प्लान में प्रस्तावित उपयोग के विरुद्ध है।

(8) यदि भूमि या उसका भाग जिसके लिए इस धारा के तहत घोषणा मांगी जा रही है, किसी शहरी या औद्योगिक विकास प्राधिकरण के तहत अधिसूचित क्षेत्र के भीतर आता

अनुवादित

है, तो संबंधित विकास प्राधिकरण की पूर्व अनुमति अनिवार्य होगी।

(9) राज्य सरकार इस धारा के तहत घोषणा के लिए फीस का पैमाना तय कर सकती है और अलग-अलग उद्देश्यों के लिए अलग-अलग फीस तय की जा सकती है:

बशर्ते कि यदि आवेदक अपने आवासीय उद्देश्य के लिए होल्डिंग या उसके हिस्से का उपयोग करता है, तो इस धारा के तहत घोषणा के लिए कोई शुल्क नहीं लिया जाएगा।

81. घोषणा का परिणाम - जहां धारा 80 की उपधारा 1 के अधीन कोई घोषणा की जाय, वहां ऐसे जोत या उससे सम्बन्धित भाग के सम्बन्ध में निम्नलिखित परिणाम होंगे-

(क) भूमि के अन्तरण के सम्बन्ध में इस अध्याय के द्वारा या अधीन आरोपित सभी निबन्धन संक्रमणीय अधिकारों वाले भूमिधर के लिए लागू नहीं रह जायेंगे:

(ख) अध्याय ग्यारह में किसी बात को होते हुए भी उक्त घोषणा के दिनांक के अनुगामी कृषि वर्ष के प्रारम्भ के दिनांक से, ऐसी भूमि भू-राजस्व के भुगतान से मुक्त होगी,

(ग) भूमिधर, न्यागमन के विषय में उस वैयक्तिक विधि से नियंत्रित होगा जिसके वह अधीन है।

82. घोषणा को रद्द करना.--(1) जब भी कोई होल्डिंग या उसका हिस्सा जिसके संबंध में धारा 80 के तहत घोषणा की गई है, कृषि से जुड़े किसी भी उद्देश्य के लिए उपयोग किया जाता है, तो उप-जिलाधिकारी, अपने स्वयं के प्रस्ताव पर या उस निमित्त किए गए आवेदन पर और ऐसी जांच करने के बाद, जो निर्धारित की जाए, ऐसी घोषणा को रद्द कर देगा।

(2) जहां किसी घोषणा को उप-धारा (1) के तहत रद्द कर दिया जाता है, उस होल्डिंग या भाग के संबंध में, जिससे वह संबंधित है, निम्नलिखित परिणाम सामने आएंगे, अर्थात्:

(क) होल्डिंग या हिस्सा स्थानांतरण और हस्तांतरण के मामलों में इस अध्याय के तहत या द्वारा लगाए गए सभी प्रतिबंधों के अधीन हो जाएगा। ;

(ख) उस कृषि वर्ष के प्रारंभ से, जिसमें घोषणा को रद्द करने का आदेश दिया गया है, जोत या हिस्सा भू-राजस्व के भुगतान के लिए उत्तरदायी हो जाएगा:

अनुवादित

बशर्ते कि इस संहिता के प्रावधानों के अनुसार, जब तक ऐसी जोत या हिस्से पर किसी भी भू-राजस्व का पुनर्मूल्यांकन नहीं किया जाता है, धारा 80 के तहत घोषणा देने से पहले ऐसी जोत या भाग के संबंध में देय या देय माना जाने वाला भू-राजस्व, ऐसी जोत या भाग के संबंध में देय भू-राजस्व माना जाएगा।

(ग) जहां भूमि किसी अनुबंध या पट्टे के आधार पर उसके भूमिधर के अलावा किसी अन्य व्यक्ति के कब्जे में है, और ऐसे अनुबंध या पट्टे की शर्तें इस संहिता के प्रावधानों के साथ असंगत हैं, तो ऐसा अनुबंध या पट्टा असंगतता की सीमा तक, शून्य हो जाएगा और कब्जे वाला व्यक्ति भूमिधर के मुकदमे पर बेदखल करने योग्य होगा: बशर्ते कि घोषणा को रद्द करने की तारीख पर मौजूद कब्जे के साथ रेहन, ऐसी भूमि पर देय या सुरक्षित राशि की सीमा तक , निर्धारित ब्याज दरों वाले साधारण रेहन द्वारा प्रतिस्थापित माना जाएगा।

83. घोषणा या रद्दीकरण की रिकॉर्डिंग - धारा 80 के तहत प्रत्येक घोषणा या धारा 82 के तहत प्रत्येक रद्दीकरण को निर्धारित तरीके से अधिकारों के रिकॉर्ड में दर्ज किया जाएगा और धारा 80 के तहत घोषणा के बाद भी, स्थानांतरण या उत्तराधिकार के आधार पर उत्परिवर्तन आदेश निर्धारित तरीके से पारित किया जाएगा।

12. धारा 80, जैसा कि वर्तमान में है, उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता (संशोधन) अधिनियम, 2019 [अधिनियम संख्या 7 वर्ष 2019] (10.3.2019 से प्रभावी) की धारा 8 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था। इसके प्रतिस्थापन से पहले, धारा 80 इस प्रकार थी:-

80. **औद्योगिक, वाणिज्यिक या आवासीय प्रयोजनों के लिए जोत का उपयोग** (1) जहां संक्रमणीय अधिकार वाला भूमिघर अपनी जोत या उसके भाग कर, औद्योगिक, वाणिज्यिक या आवासीय प्रयोजन के लिए उपयोग करता है, वहां उप जिलाधिकारी स्वप्रेरणा से या ऐसे भूमिधर द्वारा आवेदन किये जाने पर, यथाविहित जांच करने के पश्चात्, या तो यह घोषणा कर सकता है कि वह भूमि कृषि से भिन्न प्रयोजन के लिए उपयोग में लाई जा रही है या प्रार्थना पत्र को नामंजूर कर सकता है। उप जिलाधिकारी ऐसी घोषणा या नामंजूरी के कारणों का उल्लेख लिखित रूप में करेगा और प्रार्थना पत्र की प्राप्ति के दिनांक से पैतालीस कार्य दिवसों के

अवैधानिक

अन्दर अपने निर्णय की सूचना आवेदक को देगा:

परन्तु यह कि इस धारा के अन्तर्गत ऐसी कोई घोषणा मात्र इस आधार पर नहीं की जायेगी कि जोत या उसका माग चाहरदीवारी से घिरा है या मौके पर 'परती' है:

परन्तु यह और कि इस उपधारा के अन्तर्गत घोषणा के लिए, भूमिधरी भूमि में अविभाजित हित रखने वाले किसी सह-भूमिधर द्वारा दिया गया प्रार्थना पत्र तब तक पोषणीय नहीं होगा, जब तक कि ऐसी भूमिधरी भूमि के सभी सह-भूमिधरों द्वारा प्रार्थना पत्र नहीं दिया जाता है या उसमें उनके हितों का विभाजन विधि के उपबन्धों के अनुसार नहीं कर दिया जाता है।

(2) उपधारा (1) के अधीन घोषणा करने के आवेदन में ऐसे विवरण होंगे और उसे ऐसी रीति से दिया जायेगा जैसी विहित की जाय।

(3) जहां उपधारा (1) के अधीन आवेदन जोत के किसी भाग के संबंध में दिया जाए, वहां उप जिलाधिकारी विहित रीति से ऐसे भाग का सीमांकन ऐसी घोषणा के प्रयोजन के लिए कर सकता है।

(4) इस धारा के अधीन उप जिलाधिकारी द्वारा कोई घोषणा जारी नहीं की जायेगी यदि उसका यह समाधान हो जाय कि भूमि का उपयोग ऐसे प्रयोजन के लिये किया जाना हो जिससे सार्वजनिक बाधा होने की संभावना है या सार्वजनिक व्यवस्था, सार्वजनिक स्वास्थ्य, सुरक्षा वा सुविधा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है या महायोजना में प्रस्तावित उपयोगों के विरूद्ध हो।

(5) राज्य सरकार इस धारा के अन्तर्गत घोषणा के लिए शुल्क का मानक नियत कर सकती है और मिन्न-भिन्न प्रयोजनों के लिए मिन्न-भिन्न शुल्क नियत किया जा सकता है:

परंतु यह कि यदि आवेदक जोत या उसके किसी भाग को अपने निजी आवासीय प्रयोजन के लिए उपयोग में लाता है तो इस धारा के अन्तर्गत घोषणा के लिए कोई शुल्क अधिरोपित नहीं किया जायेगा।

13. पूर्वोक्त वैधानिक प्रावधानों से संबंधित प्रासंगिक नियम, जैसा कि उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता नियमावली, 2016 में समाविष्ट हैं, को भी संदर्भित करने की आवश्यकता है और वे इस प्रकार हैं: -

"**85. उद्घोषणा हेतु आवेदन(धारा 80)**–(1) संक्रमणीय अधिकार वाला भूमिधर जो अपने जोत या उसके किसी भाग के उपयोग कृषि से जुड़े हुये कार्यों में नहीं कर रहा है तो वह संहिता की धारा 80 (1) के अन्तर्गत आर०सी० प्रपत्र 25 में उपजिलाधिकारी को उसकी उद्घोषणा हेतु आवेदन कर सकता है।

(2) आवेदक उद्घोषणा शुल्क की आवश्यक रकम जमा करेगा जो कि

अनुवादित

सम्बन्धित जिले के कलेक्टर द्वारा कृषि प्रयोजन के लिये निर्धारित सर्किल रेट के अनुसार आगणित रकम का एक प्रतिशत अथवा समय-समय पर राज्य सरकार द्वारा नियत दर के अनुसार होगा।

(3) उपनियम (1) के अन्तर्गत यदि उपजिलाधिकारी को आवेदन प्राप्त होता है तो वह राजस्व अधिकारी जो राजस्व निरीक्षक के पद से नीचे का नहीं होगा, से अपना यह समाधान करने के लिये जांच करायेगा कि उस सम्पूर्ण जोत अथवा उसके किसी भाग पर कृषि से जुड़ा हुआ कोई कार्य नहीं हो रहा है। सम्बन्धित राजस्व अधिकारी मौका मुआईना कर यह आख्या उपजिलाधिकारी को प्रस्तुत करेगा की जोत अथवा उसका भाग वास्तव में किस प्रयोजन के लिये प्रयोग में लाया जा रहा है।

86. भूमिधर को नोटिस(धारा 80)-जब धारा 80 (1) के अन्तर्गत कार्यवाही उपजिलाधिकारी द्वारा स्वप्रेरणा से प्रारम्भ की गयी हो वहां, वह सम्बन्धित भूमिधर को नोटिस देगा और भूमिधर द्वारा उस नोटिस के जवाब, यदि कोई हो, दिये जाने के पश्चात् नियम 85 (3) के अन्तर्गत जांच कर आख्या प्रस्तुत की जायेगी।

87. **घोषणा का किया जाना (धारा 80)**-यदि राजस्व अधिकारी की आख्या की परीक्षण करने के बाद उपजिलाधिकारी का यह समाधान हो जाता है कि :

(क) सम्पूर्ण जोत पर कृषि से सम्बन्धित कार्य नहीं हो रहा है; और

(ख) धारा 80 (4) में उल्लिखित शर्तें पूरी हो रही हैं तब वह धारा 80 (1) के अन्तर्गत ऐसी जोत के सम्बन्ध में उद्घोषणा करेगा।

88. भू राजस्व का विभाजन (धारा 80)-(1) यदि संक्रमणीय अधिकार वाले भूमिधर द्वारा अपनी जोत के केवल किसी भाग का प्रयोग कृषि से भिन्न प्रयोजन के लिये किया जा रहा है और उपजिलाधिकारी का यह समाधान हो जाता है कि धारा 80 (1) के द्वितीय परन्तुक के उपबन्धों का उल्लंघन नहीं है, तो वह केवल ऐसे भाग के सम्बन्ध में उद्घोषणा कर सकेगा, बशर्ते कि नियम 22 के उपनियम (2) के अनुसार विभाजन का खर्च ऐसी घोषणा के पहले भूमिधर द्वारा जमा कर दी गयी हो।

(2) जहां उपजिलाधिकारी जोत के किसी भाग के सम्बन्ध में घोषणा के लिये स्वप्रेरणा से कार्यवाही करता है

वहां ऐसे सीमांकन का खर्च उपजिलाधिकारी द्वारा भू-राजस्व के बकाये की भांति वसूला जायेगा।

(3) उपनियम (1) अथवा उपनियम (2) के अन्तर्गत घोषणा के प्रत्येक प्रकरण में विद्यमान सर्वे मानचित्र के

अनुवादित

आधार पर सीमांकन किया जायेगा और उपजिलाधिकारी ऐसे भूमिधर द्वारा देय भू-राजस्व का विभाजन करेगा।

(4) उपजिलाधिकारी आवेदन के दर्ज किये जाने के दिनांक से पैंतालीस दिनों की अवधि के अन्दर धारा 80 की उपधारा (1) के अन्तर्गत उद्घोषणा की कार्यवाही को पूर्ण करने का प्रयास करेगा और यदि कार्यवाही ऐसी अवधि के अन्दर पूर्ण नहीं की जाती है तो उसका कारण अभिलिखित किया जायेगा।

89. उद्घोषणा का निरस्तीकरण(धारा 82)-जहां कि किसी जोत या उसके किसी भाग की उदघोषणा, धारा 80 तथा पुराने उ०प्र० जमींदारी विनाश एवं भूमि व्यवस्था अधिनियम, 1950 की धारा 143 की गई है, उस जोत अथवा उसके किसी भाग पर पुनः कृषि से सम्बन्धित कार्य शुरू कर दिया जाता है तो, धारा 82 के अन्तर्गत उद्घोषणा को रदद् किये जाने हेतु आवश्यक आवेदन आर०सी० प्रपत्र 26 में प्रस्तुत किया जा सकता है।

90. निरस्तीकरण के पूर्व जांच(धारा 82)- नियम 89 के अन्तर्गत आवेदन प्राप्त होने पर, उपजिलाधिकारी धारा 82 के अनुसार उद्घोषणा निरस्त करने के पहले जांच करेगा और नियम 85 लगायत 88 में दी गयी प्रक्रिया का पालन करेगा।

91. उद्घोषणा एवम निरस्तीकरण का ढंग(धारा 83)-(1) धारा 80 के अन्तर्गत की गयी एवं धारा 82 के अन्तर्गत रदद् की गयी प्रत्येक घोषणा उप खण्ड अधिकारी द्वारा सम्यक रूप से हस्ताक्षरित की जाएगी और उस पर उनके न्यायालय की मुहर लगी होगी तथा निम्न विशिष्टियों से युक्त होगीः

(क) धारा जिसके अन्तर्गत की गयी हो।

(ख) भूखण्ड की संख्या तथा क्षेत्रफल जिसके सम्बन्ध में किया गया हो।

(ग) प्रश्नगत भूखण्डों का भू-राजस्व, यदि कोई हो तो।

(घ) ग्राम, तहसील एवं जिले का नाम जिसमें भूखण्ड स्थित है।

(ङ) भूमिधर का नाम, पितृनाम तथा पता जिसके पक्ष में घोषणा हुई है।

(च) घोषणा का दिनांक ।

(2) रजिस्ट्रेशन एक्ट, 1908 के अन्तर्गत ऐसी घोषणा को पंजीकृत करना जरूरी नहीं होगा, परन्तु उसे अधिकार अभिलेख में अभिलिखित करना होगा।

92. ब्याज दर(धारा 82)- जब कब्जे के साथ बंधक को धारा 82 (2) के खण्ड (ग) के परन्तुक के अन्तर्गत सामान्य बंधक से प्रतिस्थापित किया

अनुवादित

जाता है तो ऐसा सामान्य बंधक चार प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से ब्याज वहन करेगा।"

14. निरस्त उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 के तहत घोषणा से संबंधित समान प्रावधानों का उल्लेख करना उचित होगा। ये इस प्रकार हैं:-

"143.खाते की भूमि का उद्योग अथवा निवास के प्रयोजनों के लिए प्रयोग-

[(1) जब कोई [संक्रमणीय अधिकार वाले भूमिधर] अपने खाते या उसके किसी भाग को कृषि, उद्यानकरण अथवा पशुपालन, जिसके अन्तर्गत मत्स्य संवर्धन तथा कुक्कुट पालन भी है, से असम्बद्ध प्रयोजन के निमित्त प्रयुक्त करता है तो परगने का इंचार्ज असिस्टेन्ट कलेक्टर स्वयमेव अथवा प्रार्थना पत्र पर और ऐसी जाँच करने के पश्चात् जो नियत की जाय उस आशय का प्रख्यापन कर सकता है।

(1-क) जब उपधारा (1) के अधीन कोई प्रख्यापन किसी खाते के भाग के सम्बन्ध में करना हो तो परगना का इंचार्ज असिस्टेंट कलेक्टर नियत रीति से ऐसे भाग को ऐसे प्रख्यापन के प्रयोजनों के निमित्त परिच्छिन्न कर सकता है।]

(2) उपधारा (1) में उल्लिखित प्रख्यापन के प्रदान पर (इस धारा से भिन्न) इस अध्याय के निदेश ऐसी भूमि के सम्बन्ध में उक्त [संक्रमणीय अधिकार वाले भूमिधर] को लागू न रह जायेंगे और तदुपरान्त वह उक्त भूमि के उत्तराधिकार के विषय में ऐसी व्यक्तिगत विधि से जिसके वह अधीन हो, शासित होगा।

[(3) जहाँ किसी संक्रमणीय अधिकार वाले भूमिधर को उत्तर प्रदेश भूमि विधि (संशोधन) अधिनियम, 1978 के प्रारम्भ के पूर्व या उसके पश्चात् उत्तर प्रदेश वित्तीय निगम या राज्य सरकार के स्वामित्व या नियंत्रण के अधीन किसी अन्य निगम द्वारा ऐसे भूमिधर द्वारा धृत किसी भूमि की प्रतिभूति पर कोई ऋण दिया गया हो, वहाँ इस अध्याय के उपबन्ध (इस धारा को छोड़कर) ऐसी भूमि के सम्बन्ध में ऐसे भूमिधर पर लागू न रह जायेंगे और तदुपरान्त वह उक्त भूमि के उत्तराधिकार के विषय में ऐसी स्वीय विधि से, जिसके वह अधीन हो, शासित होगा।]"

144. कृषि प्रयोजनों के लिए भूमि का उपयोग- (1) जब भी भूमिधर के पास कोई भूमि हो जिसका उपयोग कृषि, बागवानी या पशुपालन जिसके अन्तर्गत मत्स्य पालन तथा कुक्कुट पालन भी है, से जुड़े उद्देश्यों के लिए नहीं किया जाता है, ऐसे उद्देश्यों के लिए उपयोग की जाने वाली भूमि बन गई है, [परगने का इंचार्ज असिस्टेन्ट

अनुवादित

कलेक्टर स्वयमेव अथवा प्रार्थना पत्र पर और ऐसी जाँच करने के पश्चात् जो नियत की जाय] उस आशय का प्रख्यापन कर सकता है और उसके बाद भूमिधर, भूमि के संबंध में, इस अध्याय के प्रावधानों के अधीन होगा।

(2) किसी भी भूमि के संबंध में उप-धारा (1) के तहत घोषणा प्रदान करने पर, भूखंड के कब्जे में भूमिधर के अलावा कोई भी व्यक्ति-

(क) यदि वह इसे किसी अनुबंध या पट्टे के तहत रखता है जो इस अध्याय के किसी भी प्रावधान के साथ असंगत है, धारा 209 के तहत बेदखली के योग्य माना जाएगा; और

(ख) यदि वह इसे किसी अनुबंध या पट्टे के तहत रखता है जो इस अध्याय के किसी भी प्रावधान के साथ असंगत नहीं है, तो उसके प्रावधानों के अनुसार निर्धारित भूमि में अधिकारों का हकदार होगा।

(3) उप-धारा (2) के उप-खंड (क) में निर्दिष्ट कोई भी अनुबंध या पट्टा, जो अध्याय के प्रावधानों के साथ असंगत है, असंगतता की सीमा तक, घोषणा की तारीख से शून्य हो जाएगा। :

बशर्ते कि ऐसी किसी भी भूमि पर मौजूद कब्जे के साथ किसी भी रेहन को, ऐसी भूमि पर देय और सुरक्षित राशि की सीमा तक, निर्धारित ब्याज दर वाले साधारण रेहन द्वारा प्रतिस्थापित किया गया माना जाएगा।

145. धारा 143 और 144 के तहत दी गई घोषणा का पंजीकरण - धारा 143 और 144 के तहत की गई प्रत्येक घोषणा की एक प्रति [परगना के प्रभारी सहायक कलेक्टर] द्वारा संबंधित सब-रजिस्ट्रार को भेजी जाएगी जो भारतीय पंजीकरण अधिनियम, 1908 (यूपी अधिनियम 1908 का 16) में किसी भी बात के बावजूद, उसे निर्धारित तरीके से नि:शुल्क पंजीकृत करेगा।

15. संहिता, 2006 की धारा 82, धारा 80 के तहत की गई घोषणा को रद्द करने से संबंधित है, और उसकी शर्तों के अनुसार जब भी कोई जोत या उसका कोई हिस्सा जिसके संबंध में धारा 80 के तहत घोषणा की गई है, का उपयोग 'कृषि से संबंधित किसी भी प्रयोजन' के लिए किया जाता है, उपजिलाधिकारी, अपने स्वयं के प्रस्ताव पर या उस संबंध में किए गए आवेदन पर और ऐसी जांच करने के बाद जो निर्धारित की जा सकती है, ऐसी घोषणा को रद्द कर सकता है।

16. नियमावली, 2016 के नियम 89 के तहत निहित प्रावधान यह प्रदान करता है कि जहां कोई जोत या उसका कोई हिस्सा संहिता की धारा 80 या उत्तर प्रदेश जमींदारी विनाश और भूमि व्यवस्था अधिनियम, 1950 की धारा

अनुवादित

143 के तहत घोषणा का विषय रहा है , और ऐसी जोत या भाग का उपयोग फिर से कृषि से जुड़े उद्देश्य के लिए किया जाता है, तो धारा 82 के तहत ऐसी घोषणा को रद्द करने के लिए आवश्यक आवेदन निर्धारित प्रपत्र में उपजिलाधिकारी को प्रस्तुत किया जा सकता है, जिसके बाद उपजिलाधिकारी जांच करेगा और धारा 82 के अनुसार घोषणा को रद्द करने से पहले नियम 85 से 88 में निर्धारित प्रक्रिया का पालन करेगा।

17. मौजूदा मामले में याचिकाकर्ताओं द्वारा धारा 80 के तहत पूर्व में की गई घोषणा को रद्द करने की मांग करने वाले संहिता, 2006 की धारा 82 के तहत दायर किए गए आवेदन को यह कारण बताकर खारिज कर दिया गया था कि प्रश्नगत भूमि का उपयोग 'नर्सरी' के रूप में किया जा रहा था, जो इंगित करता है कि भूमि का उपयोग वाणिज्यिक उद्देश्य के लिए किया जा रहा है, न कि कृषि उद्देश्य के लिए। उक्त आधार पर प्रतिवादी प्राधिकारी ने यह निष्कर्ष निकाला कि भूमि का उपयोग गैर-कृषि और वाणिज्यिक था, और इसके परिणामस्वरूप, आवेदन को खारिज कर दिया।

18. 'कृषि' शब्द अपने मूल अर्थ में लैटिन एगर (क्षेत्र) और कोलो (खेती) से बना है, जो संयुक्त रूप से लैटिन एग्रीकल्चरा (क्षेत्र या भूमि जुताई) का प्रतीक है। कृषि शब्द, उन गतिविधियों के एक बहुत व्यापक विस्तार को समाहित करने लगा है जो कृषि का अभिन्न अंग हैं और उनके लिए विभिन्न वर्णनात्मक शब्द दिए गए हैं।

19. 'कृषि' शब्द के शब्दकोश अर्थ का संदर्भ देते हुए **न्यू लेक्सिकन वेबस्टर डिक्शनरी** इसका वर्णन इस प्रकार करती है:-

> "बड़े पैमाने पर मिट्टी की जुताई (सीएफ. बागवानी), खेती का विज्ञान या अभ्यास।"

20. **बाउवियर्स लॉ डिक्शनरी** में 'कृषि' को इस प्रकार परिभाषित किया गया है:-

> "खाद्य उत्पादों या खेत या बगीचे के किसी भी अन्य उपयोगी या मूल्यवान विकास के लिए मिट्टी की खेती; जुताई, पालन; इसके अलावा, खेती, जिसमें खेती के संबंध में मिट्टी की खेती करने वाले द्वारा किया जाने वाला कोई भी उद्योग शामिल है, जैसे कि पशुधन का प्रजनन और पालन, डेयरी आदि। वह विज्ञान जो मिट्टी की खेती का संसाधन करता है। यह शब्द उस क्षेत्र या खेत को संदर्भित करता है, जिसमें उसकी सभी जरूरतें, नियुक्तियां और उत्पाद शामिल हैं, जो कि बागवानी से अलग है, जो अपने कम महत्वपूर्ण हालांकि विविध उत्पादों के साथ, बगीचे को संदर्भित करता है : डिलार्ड बनाम वेब, 55 अला. 468.
>
> एक व्यक्ति वास्तव में कृषि में तब लगा होता है जब वह अपना और परिवार का भरण पोषण पूरी तरह से या आंशिक रूप से भूमि की

अनुवादित

खेती से प्राप्त करता है; यह एक बगीचे से अधिक होना चाहिए हालांकि यह एक खेत से कम हो सकता है, और इसके साथ किसी अन्य व्यवसाय को जोड़ना कृषि के काम काज के साथ असंगत नहीं है; स्प्रिंगर बनाम लेविस, 22 पृष्ठ 193, बाचेल्डर बनाम बिकफोर्ड, 62 एमई.526 देखें; सिमंस बनाम लोवेल, 7 हेइस्क.(टेन.) 515।

छूट कानून के अर्थ में, जो एक एकड़ जमीन पर खेती करता है और कसाई और दिहाड़ी मजदूर भी है, वह कृषि में संलग्न नहीं है।"

21. **कॉर्पस ज्यूरिस सेकुंडम** 'कृषि' शब्द को इस प्रकार परिभाषित करता है: -

"(1) कृषि एक विज्ञान है जो मिट्टी की खेती का संसाधन करता है।

(2) कृषि भूमि पर खेती करने की कला या विज्ञान है, विशेषकर खेतों में या बड़ी मात्रा में, जिसमें मिट्टी तैयार करना, बीज बोना, फसल उगाना और काटना, और पशुधन का पालन-पोषण, भोजन और प्रबंधन शामिल है।"

22. विभिन्न शब्दकोशों में 'कृषि' शब्द के लिए बताए गए उपरोक्त अर्थों से पता चलता है कि इस शब्द का उपयोग खेत की खेती के संकीर्ण अर्थ और बागवानी, वानिकी, पशुधन के प्रजनन और पालन, फूलों की खेती आदि सहित भूमि के संबंध में गतिविधियों को शामिल करने के व्यापक अर्थ में किया गया है।

23. यह प्रश्न कि क्या किसी विशेष मामले में 'कृषि' शब्द के अर्थ की संकीर्ण या व्यापक भावना को अपनाया जाना है, यह क़ानून में निहित प्रावधान और प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर भी निर्भर करेगा।

24. एक समय में 'कृषि' शब्द को खेत की खेती के प्राथमिक अर्थ में समझा जाता था, हालाँकि, एक और दृष्टिकोण था जिसने 'कृषि' शब्द को एक विस्तारित अर्थ दिया इसके अर्थ में न केवल भूमि की खेती से पैदा होने वाले उत्पाद बल्कि संबद्ध गतिविधियाँ भी शामिल हैं, इस प्रकार यह न केवल बुनियादी कृषि कार्यों को बल्कि भूमि के उत्पादों पर किए जाने वाले आगे के कार्यों को भी इसके दायरे में लाता है।

25. केंद्रीय विचार जो उभरता है वह यह है कि भूमि की जुताई, बीज बोना या रोपण या भूमि पर इसी तरह का कार्य होना चाहिए जो उन कार्यों में कृषि कार्यों की विशेषता का निवेश करता है और जब भी यह केंद्रीय विचार पूरा होता है तो कृषि प्रयोजन की भूमि का उपयोगकर्ता होता है। व्यापक अर्थ में, 'कृषि' शब्द की व्याख्या इस प्रकार की गई है कि इसमें भूमि से संबंधित सभी गतिविधियाँ शामिल हैं, भले ही उनमें ये बुनियादी कृषि गतिविधियाँ शामिल नहीं थीं।

अनुवादित

26. 'कृषि' और 'कृषि प्रयोजन' शब्द का अर्थ और निहितार्थ, आयकर अधिनियम, 1922 की धारा 2(1) के तहत मांगी जा रही छूट के संदर्भ में ***राजा मुस्तफा अली खान, द्वारा विशेष प्रबंधक, कोर्ट ऑफ वार्ड्स, उतरौला, जिला गोंडा बनाम आयकर आयुक्त, संयुक्त प्रान्त, अजमेर एवं अजमेर मेरवाड़ा*** के मामले में प्रिवी काउंसिल के समक्ष विचार के लिए आया और एक राय व्यक्त की गई कि जब तक भूमि पर कुछ मात्रा में खेती न हो और उस पर कौशल और श्रम के कुछ व्यय न हो, तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि भूमि का उपयोग कृषि उद्देश्यों के लिए किया गया।

27. इस प्रकार 'कृषि' शब्द का अर्थ वास्तव में भूमि पर कुछ मात्रा की खेती और उस पर कुछ कौशल और श्रम के रूप में माना जाता था और जब तक कि काम काज इस अर्थ के अनुरूप नहीं होता, उन्हें कृषि कार्यों के रूप में शैलीबद्ध नहीं किया जा सकता था ताकि निष्कर्ष निकाला जा सके कि जिस भूमि पर उस कामकाज को किया गया उसका उपयोग कृषि उद्देश्यों के लिए किया जा रहा था।

28. यह पता लगाने के लिए कि भूमि का उपयोग कब कृषि प्रयोजनों के लिए किया जाना माना जा सकता है, जो परीक्षण निर्धारित किया गया था, वह यह था कि भूमि पर कुछ मात्रा में खेती की जानी चाहिए और उस पर कौशल और श्रम का कुछ व्यय होना चाहिए।

29. आयकर अधिनियम की धारा 2(1) के तहत 'कृषि आय' शब्द की परिभाषा के संदर्भ में 'कृषि' और 'कृषि उद्देश्य' शब्द का अर्थ फिर से, आयकर आयुक्त पश्चिम बंगाल, कलकत्ता बनाम राजा बिनॉय कुमार सहस रॉय के मामले में, विचार का विषय था और इस बिंदु पर पूर्व के निर्णयों की विस्तृत चर्चा के बाद, इस प्रकार देखा गया:-

> "95. इसलिए, हमें इस पर विचार करना होगा कि यह कब कहा जा सकता है कि भूमि का उपयोग कृषि उद्देश्यों के लिए किया जाता है या इस पर कृषि कार्यों का संचालन किया जाता है। कृषि "कृषि प्रयोजनों" और "कृषि कार्यों" की अभिव्यक्ति का मूल विचार है और इसलिए यह जानना उचित है कि "कृषि" शब्द का अर्थ क्या है।
>
> जैसा कि हमने ऊपर गौर किया है, प्राथमिक अर्थ जिसमें कृषि शब्द को समझा जाता है वह है अगर - क्षेत्र और कल्ट्रा - खेती अर्थात क्षेत्र की खेती और यदि इस शब्द को केवल उसी अर्थ में समझा जाए तो शब्द के विशुद्ध अर्थ में कृषि केवल भूमि की खेती तक ही सीमित होगी अर्थात भूमि की जुताई, बीज बोना, रोपण और भूमि पर इसी तरह के कार्य। वे बुनियादी कामकाज होंगे और भूमि पर ही मानव

अनुवादित

कौशल और श्रम के व्यय की आवश्यकता होगी। हालाँकि, ऐसे अन्य कार्य भी हैं जिनका कृषकों को सहारा लेना पड़ता है और जो भूमि से उपज को प्रभावी ढंग से बढ़ाने के उद्देश्य से नितांत आवश्यक हैं।

ये भूमि से उपज उगने के बाद किए जाने वाले कार्य हैं, जैसे निराई-गुड़ाई करना, उपज के चारों ओर मिट्टी खोदना, अवांछनीय कम-वृद्धि के उत्पादों को हटाना और वे सभी कार्य जो उपज को बढ़ावा देते हैं और न केवल कीड़ों और कीटों से, बल्कि बाहरी विनाश से भी बचाते हैं, देखभाल, छंटाई, कटाई, फसल की कटाई, और उपज को बाजार के लिए उपयुक्त बनाना। उपरोक्त वर्णित बुनियादी कार्यों के साथ जुड़ने पर बाद के सभी कार्य कृषि कार्य होंगे, और यह जोर देना व्यर्थ होगा कि वे बिल्कुल भी कृषि कार्य नहीं हैं।

लेकिन भले ही इन बाद के कार्यों को कृषि कार्यों में समाहित किया जा सकता है, जब वे इन बुनियादी कार्यों के साथ संयोजन में होते हैं, क्या यह कहा जा सकता है कि भले ही वे इन बुनियादी कार्यों से अलग हो गए हों, फिर भी वे कृषि कार्य रूपी विशेषता का आनंद लेंगे? क्या कोई इन बुनियादी कार्यों को पूरी तरह से खत्म कर सकता है और कह सकता है कि भले ही ये बुनियादी कार्य किसी दिए गए मामले में नहीं किए जाते हैं, लेकिन इन बाद के कार्यों का किया जाना भूमि पर इन बाद के कार्यों के किए जाने के बराबर होगा ताकि निर्धारिती द्वारा उनसे प्राप्त आय को उस शब्द की परिभाषा के अंतर्गत कृषि आय में शामिल किया जा सकता है?

96. हमारी राय है कि भूमि के उत्पादों पर मात्र इन बाद के कार्यों का क्रियान्वन, जहां ऐसे उत्पादों को हमारे द्वारा ऊपर वर्णित उन बुनियादी कार्यों के क्रियान्वन द्वारा भूमि पर नहीं उगाया गया है, उन्हें कृषि कार्यों के रूप में चित्रित करने के लिए पर्याप्त नहीं होगा। उन्हें कृषि कार्यों के रूप में पहचाने के लिए, इन बाद के कार्यों को आवश्यक रूप से उन

अनुवादित

बुनियादी कार्यों के साथ संयोजन और निरंतरता में होना चाहिए जो भूमि से उत्पादों को उगाने का प्रभावी कारण हैं।

मात्र तभी जब भूमि से उत्पाद इन बुनियादी कार्यों के क्रियान्वन द्वारा उगाया जाता है कि बाद के कार्य खुद को भूमि के उत्पादों से जोड़ लेते हैं और कृषि कार्यों की विशेषता प्राप्त कर लेते हैं। भूमि की खेती में केवल, शब्द के संकीर्ण अर्थ में, भूमि के उत्पादों को उगाना शामिल नहीं है, जैसे भूमि की जुताई, बीज बोना, रोपण और भूमि पर किए गए इसी तरह के कार्य, बल्कि इसके बाद के कार्यों को भी शामिल किया जाता है। यह सभी कार्य, बुनियादी और साथ ही बाद के, कृषक की एक एकीकृत गतिविधि का निर्माण करते हैं और "कृषि" शब्द को कृषक की इस एकीकृत गतिविधि के निहितार्थ के रूप में समझा जाना चाहिए।

कोई भी बुनियादी कार्यों को उत्तरवर्ती कार्यों से अलग नहीं कर सकता है, और यह नहीं कह सकता है कि उत्तरवर्ती कार्य, भले ही वे बुनियादी कार्यों से अलग हों, अपने आप में कृषि कार्य बन सकते हैं। यदि यह एकीकृत गतिविधि, जो कृषि को निर्मित करती है, किसी भी भूमि पर एकीकृत रूप से शुरू और संचालित की जाती है, तो उस भूमि को "कृषि उद्देश्यों" के लिए उपयोग किया गया कहा जा सकता है और उससे प्राप्त आय को कृषि द्वारा भूमि से प्राप्त "कृषि आय" कहा जा सकता है।

...

101. यदि "कृषि" शब्द को इस प्रकार समझा जाता है कि इसके दायरे में कृषि की प्रक्रिया में बुनियादी और साथ ही बाद के कार्यों और भूमि पर ऐसे उत्पादों को उगाना शामिल है जिनकी उपभोग या व्यापार और वाणिज्य के लिए कुछ उपयोगिता है , यह देखा जाएगा कि "कृषि" शब्द को अपने कार्यों के साथ-साथ इसके परिणामों के संबंध में व्यापक व्याख्या मिलती है।

फिर भी यह मूल विचार हर जगह मौजूद है कि इसकी नींव में भूमि की जुताई, बीज

अनुवादित

> बोना, रोपण और भूमि पर इसी तरह का काम करने के अर्थ में भूमि की खेती होनी चाहिए। यह बुनियादी अवधारणा भूमि पर किए जाने वाले किसी भी कृषि कार्य के लिए अनिवार्य शर्त है। यदि बुनियादी कार्य मौजूद हैं, तो बाकी कार्य भी उसी पर आधारित हैं।
>
> लेकिन यदि ये बुनियादी कार्य वांछित हैं तो बाद के कार्य कृषि कार्यों की विशेषता प्राप्त नहीं करते हैं।"

30. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, कानूनी स्थिति इंगित करती है कि यदि उत्पादों को बुनियादी कार्यों के क्रियान्वन द्वारा भूमि से उगाया जाता है जो कि भूमि से उपज को प्रभावी ढंग से बढ़ाने के उद्देश्य से आवश्यक हैं, बाद के कार्य खुद को भूमि के उत्पादों से जोड़ते हैं और कृषि कार्यों की विशेषता प्राप्त करते हैं। यह माना गया है कि भूमि की खेती में, शब्द के संकीर्ण अर्थ में, केवल भूमि की उपज को बढ़ाना शामिल नहीं है जैसे भूमि की जुताई, बीज बोना, रोपण और भूमि पर किए गए इस प्रकार के समान कार्य, बल्कि इसमें उत्तरवर्ती कार्य भी शामिल होंगे। यह सभी कार्य- बुनियादी और साथ ही उत्तरवर्ती, कृषक की एक एकीकृत गतिविधि का निर्माण करेंगे और 'कृषि' शब्द को इस एकीकृत गतिविधि के अर्थ के रूप में समझा जाना चाहिए। ऐसे मामले में जहां कृषि को निर्मित करने वाली यह एकीकृत गतिविधि किसी भी भूमि के संबंध में की जाती है और निष्पादित की जाती है, उस भूमि को 'कृषि उद्देश्यों' के लिए उपयोग किया गया माना जा सकता है।

31. धारा 82 में प्रयुक्त शब्द जिनके आधार पर धारा 80 के तहत की गई घोषणा को रद्द करने की मांग की जा सकती है, वे 'कृषि से जुड़ा कोई भी उद्देश्य' हैं। 'कृषि' शब्द को संहिता, 2006 की धारा 4(2) के तहत बागवानी, पशुपालन, मछलीपालन, फूलों की खेती, मधुमक्खी पालन और मुर्गी पालन को समाहित करने वाला परिभाषित किया गया है।

32. किसी क़ानून के मुख्य भाग में आने वाले शब्दों या वाक्यांशों के अर्थ को विस्तार प्रदान करने के लिए 'समाहित' शब्द का उपयोग अक्सर परिभाषा खंडों में किया जाता देखा गया है। जब इसका उपयोग इस प्रकार किया जाता है तो इन शब्दों और वाक्यांशों को केवल उन चीजों के रूप में नहीं समझा जाना चाहिए जो वे अपनी प्रकृति और आयात के अनुसार दर्शाते हैं, बल्कि उन चीजों को भी समाहित करना चाहिए जिन्हें परिभाषा खंड घोषित करता है कि उन्हें समाहित किया जाएगा।

33. **दिलवर्थ और अन्य बनाम स्टाम्प आयुक्त**, में इसे इस प्रकार देखा है: -

> "... 'समाहित' शब्द का उपयोग आम तौर पर क़ानून के मुख्य भाग में आने वाले शब्दों या वाक्यांशों के अर्थ को बढ़ाने के लिए व्याख्या

अनुवादित

खंडों में किया जाता है; और जब इसका उपयोग इस प्रकार किया जाता है तो इन शब्दों और वाक्यांशों को केवल उस अर्थ में नहीं समझा जाना चाहिए जो वे अपने प्राकृतिक अर्थ के अनुसार दर्शाते हैं, बल्कि उन चीजों को भी समाहित करना चाहिए जिन्हें परिभाषा खंड घोषित करता है कि उन्हें समाहित किया जाएगा।"

34. शब्द 'समाहित' का उपयोग व्याख्या खंडों में किया जाता है जहां यह मंशा होती है कि जिस शब्द को परिभाषित किया जा रहा है उसे अपने सामान्य अर्थ को बनाए रखना चाहिए, परंतु इसके दायरे को कुछ मामलों, जो इसके सामान्य अर्थ में हो सकते है और नहीं भी हो सकते, की विशिष्ट गणना द्वारा विस्तारित किया जाना चाहिए ताकि परिभाषा को गणनात्मक बनाया जा सके न कि सुविस्तृत। जब इसका उपयोग इस प्रकार किया जाता है तो इन शब्दों और वाक्यांशों को केवल उस अर्थ में नहीं समझा जाना चाहिए जो वे अपने प्राकृतिक अर्थ के अनुसार दर्शाते हैं, बल्कि उन चीजों को भी समाहित करना चाहिए जिन्हें परिभाषा खंड घोषित करता है कि उन्हें समाहित किया जाएगा।

35. **स्टेच्यूट लॉ(7वें संस्करण, 1979) में क्रेज़** ने इस प्रकार राय दी है: -

"व्याख्या खंड के दो रूप हैं। एक में, जहां परिभाषित शब्द का "अर्थ" बताया जाता है, परिभाषा व्याख्यात्मक और प्रथम दृष्टया प्रतिबंधात्मक होती है। दूसरे में, जहां परिभाषित शब्द में कुछ चीजें के समाहित होने की घोषणा की गई है, परिभाषा व्यापक है,....."

36. **रमाला सहकारी चीनी मिल्स लिमिटेड उत्तर प्रदेश बनाम आयुक्त, केंद्रीय उत्पाद शुल्क, मेरठ-I** में सुप्रीम कोर्ट ने सेनवैट क्रेडिट नियम, 2002 के नियम 2 (जी) में 'समाहित' शब्द के उपयोग पर विचार करते हुए कहा कि इसकी व्यापक व्याख्या की जानी चाहिए और विधायी मंशा इस मामले में एक व्यापक कानूनी कल्पना का निर्माण करना था और विधायिका का इरादा परिभाषा को प्रतिबंधित अर्थ प्रदान करने का नहीं था। इसे इस प्रकार देखा गया: -

"शब्द "समाहित" की व्यापक व्याख्या की जानी चाहिए क्योंकि उक्त शब्द को नियोजित करके, विधायिका कानूनी कल्पना द्वारा, मूल भाग के स्वीकृत अर्थ के भीतर कुछ लाने का इरादा रखती है। यह भी सुस्थापित है कि यह निर्धारित करने के लिए कि क्या "समाहित" शब्द का प्रभाव व्यापक है, उस संदर्भ पर ध्यान देना चाहिए जिसमें उक्त शब्द प्रकट होता है।

अनुवादित

37. उत्तर प्रदेश जमींदारी विनाश एवं भूमि व्यवस्था अधिनियम, 1950 की धारा 154 में आने वाले 'समाहित' शब्द का दायरा **ओसवाल फैट्स एंड ऑयल्स लिमिटेड बनाम अतिरिक्त आयुक्त (प्रशासन), बरेली डिवीजन, बरेली और अन्य** मामले में विचार के लिए आया था और इस प्रकार कहा गया था:-

> "'समाहित' शब्द का प्रयोग अक्सर क़ानून के मुख्य भाग में आने वाले शब्दों या वाक्यांशों के अर्थ को बढ़ाने के लिए व्याख्या खंडों में किया जाता है। जब इसका उपयोग इस प्रकार किया जाता है, तो इन शब्दों और वाक्यांशों को केवल उस अर्थ में नहीं समझा जाना चाहिए जो वे अपने प्राकृतिक अर्थ के अनुसार दर्शाते हैं, बल्कि उन चीजों को भी समाहित करना चाहिए जिन्हें परिभाषा खंड घोषित करता है कि उन्हें समाहित किया जाएगा।"

38. **भारत डायग्नोस्टिक सेंटर बनाम कस्टम आयुक्त** में ' समाहित' शब्द का उपयोग और इसका दायरा और मंशा फिर से विचार के लिए आया एवं **दक्षिण गुजरात रूफिंग टाइल्स मैन्युफैक्चरर्स एसोसिएशन और अन्य बनाम गुजरात राज्य और अन्य, ईएसआई कॉर्पोरेशन बनाम हाई लैंड कॉफी वर्क्स, आयकर आयुक्त, आंध्र प्रदेश बनाम ताज महल होटल, सिकंदराबाद और बॉम्बे राज्य और अन्य बनाम अस्पताल मजदूर सभा और अन्य**, में पूर्व के निर्णयों को संदर्भित करते हुए यह दोहराया गया कि जब ' समाहित' शब्द का उपयोग इस तरह किया जाता है, तो इन शब्दों और वाक्यांशों को केवल उस अर्थ में नहीं समझा जाना चाहिए जो वे अपने प्राकृतिक अर्थ के अनुसार या सामान्य बोलचाल के अनुसार दर्शाते हैं, बल्कि उन चीजों को भी समाहित करना चाहिए जिन्हें व्याख्या या स्पष्टीकरण खंड घोषित करता है कि उन्हें समाहित किया जाएगा।इसे इस प्रकार देखा गया:-

"9. किसी क़ानून में किसी शब्द या वाक्यांश के अर्थ को परिभाषित या समझाते समय, 'समाहित" शब्द का उपयोग आम तौर पर उन शब्दों या वाक्यांशों के अर्थ को बढ़ाने के लिए किया जाता है। जब ' समाहित' शब्द का उपयोग इस तरह किया जाता है, तो इन शब्दों और वाक्यांशों को केवल उस अर्थ में नहीं समझा जाना चाहिए जो वे अपने प्राकृतिक अर्थ के अनुसार या सामान्य बोलचाल के अनुसार दर्शाते हैं, बल्कि उन चीजों को भी समाहित करना चाहिए जिन्हें व्याख्या या स्पष्टीकरण खंड घोषित करता है कि उन्हें समाहित किया जाएगा। इस न्यायालय के कई निर्णयों में इस सिद्धांत की गणना की गई है।

10. दक्षिण गुजरात रूफिंग टाइल्स मैन्युफैक्चरर्स एसोसिएशन बनाम गुजरात राज्य, (1976) 4 एससीसी 601 के मामले में, इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीश पीठ ने कहा कि:

"। .. यह सच है कि "समाहित" का प्रयोग आमतौर पर विस्तार के शब्द

अनुवादित

के रूप में किया जाता है, लेकिन किसी शब्द या वाक्यांश का अर्थ तब विस्तारित होता है जब यह कहा जाता है कि इसमें ऐसी चीजें समाहित हैं जो इसके सामान्य अर्थ में ठीक से नहीं आती हैं। हम दिलवर्थ बनाम कमिश्नर ऑफ स्टाम्प्स [1899 एसी 99, 105-106] में लॉर्ड वॉटसन के अक्सर उद्धृत अवलोकन का उल्लेख कर सकते हैं कि जब कानून में शब्दों या वाक्यांशों के अर्थ को विस्तार देने के लिए व्याख्या खंडों में "समाहित" शब्द का उपयोग किया जाता है :

"इन शब्दों और वाक्यांशों को केवल उस अर्थ में नहीं समझा जाना चाहिए जो वे अपने प्राकृतिक अर्थ के अनुसार दर्शाते हैं, बल्कि उन चीजों को भी समाहित करना चाहिए जिन्हें व्याख्या खंड घोषित करता है कि उन्हें समाहित किया जाएगा।" इस प्रकार जहां "समाहित" में एक विस्तारित शक्ति होती है, यह शब्द या वाक्यांश में एक ऐसा अर्थ जोड़ता है जो स्वाभाविक रूप से उससे संबंधित नहीं होता है। ..."

11. फिर, ईएसआई कॉर्पोरेशन बनाम हाई लैंड कॉफ़ी वर्क्स, (1991) 3 एससीसी 617 के मामले में तीन-न्यायाधीशों की बेंच के फैसले में, इस न्यायालय ने कहा कि:

"... शब्द "समाहित" वैधानिक परिभाषा में आम तौर पर पूर्ववर्ती शब्दों के अर्थ को बढ़ाने के लिए उपयोग किया जाता है और यह विस्तार के माध्यम से होता है, न कि प्रतिबंध के साथ। कानून के मुख्य भाग में आने वाले शब्दों या वाक्यांशों के अर्थ को बढ़ाने के लिए "समाहित" शब्द का प्रयोग आम तौर पर व्याख्या खंडों में किया जाता है; और जब इसका उपयोग इस प्रकार किया जाता है, तो इन शब्दों और वाक्यांशों को केवल उस अर्थ में नहीं समझा जाना चाहिए जो वे अपने प्राकृतिक अर्थ के अनुसार दर्शाते हैं, बल्कि उन चीजों को भी समाहित करना चाहिए जिन्हें व्याख्या खंड घोषित करता है कि उन्हें समाहित किया जाएगा। [देखें (i) स्ट्राउड्स ज्यूडिशियल डिक्शनरी, 5वां संस्करण, वॉल्यूम. 3, पृ. 1263 और (ii) सीआईटी बनाम ताज महल होटल, (1971) 3 एससीसी 550, (iii) बॉम्बे राज्य बनाम अस्पताल मजदूर सभा, (1960) 2 एससीआर 866।]"

39. इसलिए, यह देखा जाएगा कि ' समाहित' शब्द का प्रयोग आम तौर पर क़ानून के मुख्य भाग में आने वाले शब्दों या वाक्यांशों के अर्थ को विस्तार देने के लिए व्याख्या खंडों में किया जाता है और जब इसका इस प्रकार उपयोग किया जाता है, तो व्यापक अर्थ को, सख्ती से यह परिभाषित करने वाला नही माना जाना चाहिए कि शब्द का सभी परिस्थितियों में क्या अर्थ होना चाहिए, बल्कि केवल यह घोषित करने

अनुवादित

के रूप में कि इसे कैसे समझा जाना चाहिए। जहां एक व्याख्या खंड किसी शब्द को किसी विशेष चीज़ के अर्थ के रूप में परिभाषित करता है, तो परिभाषा व्याख्यात्मक और प्रथम दृष्टया प्रतिबंधात्मक होगी और जहां एक व्याख्या खंड एक शब्द को किसी चीज को समाहित करने के रूप में परिभाषित करता है तो परिभाषा व्यापक होगी।

40. 'समाहित' शब्द को इस प्रकार विस्तार के शब्द के रूप में लिया जाना चाहिए जिसका अर्थ है जोड़ना। यह परिभाषा में पहले से ही शामिल विषय वस्तु को विस्तार देता है।इसे एक अधिक विस्तृत अर्थ दिया जाना चाहिए जहां व्याख्या खंड क़ानून की योजना, उद्देश्य और अभिप्राय को ध्यान में रखते हुए 'समाहित' शब्द का उपयोग करता है।

41. सामान्य बोलचाल की भाषा में 'समाहित' शब्द का उपयोग यह दर्शाता है कि इसके बाद जो आता है वह पूर्ववर्ती शब्द में शामिल है या उसमें निहित है या उस पूरे शब्द का एक हिस्सा है। संहिता, 2006 की धारा 4(2) के संदर्भ में, इसका मतलब यह होगा कि 'कृषि' शब्द उत्तरवर्ती गतिविधियों के समूह तक ही सीमित नहीं होगा, बल्कि केवल उस समूह की समान विशेषता पर जोर देगा। इस मामले में समूह के लिए जो विशेषता समान है वह यह है कि बताई गई सभी गतिविधियाँ कृषि की मुख्य गतिविधि से संबद्ध हैं।

42. यह व्याख्या का स्थापित सिद्धांत है कि वैधानिक प्रावधान में शब्दों को उनके साथी शब्दों के साथ जोड़कर पढ़ा जाना चाहिए। यह सिद्धांत 'नोस्किटूर ए सोसिस' कहावत पर आधारित है कि किसी शब्द का अर्थ उसके साथ आने वाले या सहवर्ती शब्दों से पता चलना चाहिए। संबंधित अर्थ में और सहयोगी प्रकृति की गतिविधियों के संदर्भ में उपयोग किए शब्दों के अर्थ को इस सिद्धांत को लागू करके समझा जा सकता है।

43. संबंधित शब्दों को समान अर्थ में समझने के लिए लागू होने वाले नियम को **मैक्सवेल** ने निम्नलिखित तरीके से बताया है:-

"जहां दो या दो से अधिक शब्द जो समान अर्थ के हो सकते हैं, उन्हें एक साथ जोड़ा जाता है, नोस्किटूर ए सोसिस (किसी शब्द का अर्थ उसके सहवर्ती शब्दों से पता चलना चाहिए), वे अपने संबंधी अर्थ में प्रयुक्त समझे जाते है। वे एक-दूसरे से अपना रंग लेते हैं, अधिक सामान्य का अर्थ कम सामान्य के समान अर्थ तक सीमित होता है।"

44. उपरोक्त सिद्धांत को लागू करते हुए कि जब समान अर्थ वाले शब्दों का एक साथ

अनुवादित

उपयोग किया जाता है तो उन्हें उनके सजातीय अर्थ में लिया जाना चाहिए, इससे यह निकल के आएगा कि संहिता, 2006 की धारा 4(2) के तहत परिभाषित 'कृषि' शब्द, अपनी सहयोगी गतिविधियों को समाहित करने वाला समझा जाएगा और आवश्यक निहितार्थ से, 'नर्सरी से संबंधित गतिविधि करने' को इससे बाहर नहीं माना जा सकता है।

45. वर्तमान मामले के तथ्यों पर वापस आते हुए, याचिकाकर्ता द्वारा संहिता, 2006 की धारा 82 के तहत संबंधित प्राधिकारी के समक्ष, धारा 80 के तहत की गई घोषणा को रद्द करने हेतु प्रस्तुत आवेदन दिनांक 24.10.2019 में कहा गया है कि 08.09.2017 को धारा 80 के तहत प्राप्त घोषणा के परिणामस्वरूप याचिकाकर्ताओं ने विचाराधीन भूमि पर कोई निर्माण नहीं किया था और न ही उनका भविष्य में ऐसा कोई निर्माण करने का इरादा था। आवेदन में यह भी कहा गया कि जिस जमीन की बात हो रही है, उस पर खेती की जा रही थी और उस पर गेहूं की फसल खड़ी थी। तदनुसार, पहले की घोषणा कि भूमि का उपयोग कृषि से संबंधित उद्देश्य के लिए नहीं किया जा रहा था, को रद्द करने की मांग की गई थी।

46. उपरोक्त दावे के समर्थन में, याचिकाकर्ताओं ने खसरा प्रविष्टियों का आधार लेने की मांग की है जो दर्शाती है कि संबंधित समय में गेहूं की फसलें प्रश्नगत भूमि पर खड़ी थीं। क्षेत्रीय लेखपाल द्वारा प्रस्तुत दिनांक 02.03.2020 की एक रिपोर्ट भी रिकॉर्ड पर रखी गई है जिसमें कहा गया है कि गेहूं की फसलें प्रश्नगत भूमि पर खड़ी थीं और इसका उपयोग कृषि उद्देश्य के लिए किया जा रहा था, न कि किसी व्यावसायिक उद्देश्य के लिए।

47. चूँकि उपरोक्त आख्याओं के बावजूद याचिकाकर्ता का आवेदन लंबित रहा, प्रतिवादी प्राधिकारी की ओर से निष्क्रियता से व्यथित याचिकाकर्ताओं ने रिट - सी संख्या -10252 वर्ष 2021 दायर करके इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया जिसका, प्रतिवादी अधिकारियों को चार महीने की निर्धारित समय अवधि के भीतर याचिकाकर्ता के आवेदन पर निर्णय लेने का निर्देश देते हुए, दिनांक 19.07.2021/26.07.2021 के निर्णय द्वारा निपटारा कर दिया गया।

48. इसके बाद याचिकाकर्ता ने रिट याचिका में पारित आदेश के अनुपालन की मांग करते हुए प्रतिवादी नंबर 2 के समक्ष दिनांक 02.08.2021 को एक आवेदन दिया, जिसके अनुसरण में, क्षेत्र के लेखपाल द्वारा दिनांक 25.11.2021 को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई जिसमें यह कहा गया था कि मौके पर निरीक्षण में पाया गया कि जमीन को घेरने वाली 4-5 फीट ऊंची चारदीवारी के अलावा उस पर कोई निर्माण नहीं था और जमीन का इस्तेमाल 'सजावटी' और 'लकड़ी के पौधों' की नर्सरी के रूप में किया जा रहा था। रिपोर्ट के मुताबिक, इसका व्यावसायिक उपयोग किया गया था। उपरोक्त रिपोर्ट के आधार पर, प्रतिवादी संख्या 2 ने दिनांक 16.12.2021 को आदेश पारित कर याचिकाकर्ताओं द्वारा किए गए आवेदन को यह कारण दर्ज करते हुए खारिज कर दिया कि चूंकि भूमि का उपयोग

अप्रमाणित

नर्सरी के प्रयोजनों के लिए किया जा रहा था जो कि एक व्यावसायिक उपयोग था न कि कृषि प्रयोजन के लिए, अतः मांगी गई घोषणा को मंजूरी नहीं दी जा सकी।

49. संहिता, 2006 की धारा 82 के तहत दायर, घोषणा को रद्द करने की मांग वाले आवेदन को अस्वीकार करने का मुख्य कारण यह बताया गया है कि भूमि का उपयोग नर्सरी के प्रयोजनों के लिए किया जा रहा था। प्रतिवादी प्राधिकारी के अनुसार, यह एक व्यावसायिक उपयोग था और इसे कृषि से जुड़ा उद्देश्य नहीं कहा जा सकता।

50. संहिता, 2006 की धारा 4 की उप-धारा (2) के तहत 'कृषि' शब्द की परिभाषा, जैसा कि ऊपर देखा गया है, विस्तृत प्रकृति की है और इसमें विशेष रूप से 'फूलों की खेती' शामिल है। यह, कानूनी स्थिति के साथ, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि भूमि की खेती को केवल संकीर्ण अर्थ में भूमि के उत्पादों की उपज जैसे कि भूमि की खेती, बीज बोना, रोपण और अन्य समान कार्य, के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए बल्कि इसमें उत्तरवर्ती कार्य भी शामिल होंगे, इस निष्कर्ष की ओर ले जाएगा कि वर्तमान मामले के तथ्यों में नर्सरी के प्रयोजनों के लिए भूमि का उपयोग गैर-कृषि उद्देश्य नहीं कहा जा सकता है; बल्कि इसे 'कृषि से जुड़े उद्देश्य' अभिव्यक्ति के अंतर्गत शामिल करना होगा।

51. यह तथ्यात्मक और कानूनी स्थिति होने के कारण, धारा 82 के तहत आवेदन को अस्वीकार करने के लिए निर्दिष्ट कारण को संहिता, 2006 की धारा 80 के तहत घोषणा को रद्द करने की मांग करने वाले आवेदन पर विचार करने के प्रयोजनों के लिए पूरी तरह से अप्रासंगिक माना जाएगा।

52. अपनी विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए, यदि संबंधित प्राधिकारी उन विचारों की अनदेखी करता है या उन पर ध्यान नहीं देता है जो विचाराधीन क़ानून के उद्देश्य के लिए प्रासंगिक हैं, तो उसकी कार्रवाई अमान्य होगी। यह और भी अधिक होगा जहां प्राधिकरण को विवेक प्रदान करने वाले क़ानून ने स्पष्ट रूप से उस विचार को निर्धारित करके विवेक को संरचित किया है जिसे विवेक के प्रयोग के लिए प्राधिकरण द्वारा ध्यान में रखा जाना चाहिए। ऐसे मामले में, यदि विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग उन विचारों से प्रभावित हुआ है जिन्हें विधिक रूप से ध्यान में नहीं रखा जा सकता है या ध्यान में रखे जाने वाले प्रासंगिक विचारों की उपेक्षा की गई है, तो प्राधिकारी द्वारा लिया गया निर्णय अमान्य होगा।

53. 'अप्रासंगिक विचार' सिद्धांत को **आर. बनाम सेंट पैनक्रास वेस्ट्री** में **लॉर्ड एशर एमआर** द्वारा इस प्रकार कहा गया था: -

> "लेकिन उन्हें आवेदन पर निष्पक्ष रूप से विचार करना चाहिए और उस पर अपने विवेक का निष्पक्ष रूप से प्रयोग करना चाहिए, और अपने निर्णय के लिए किसी ऐसे कारण को ध्यान में नहीं रखना चाहिए जो कानूनी नहीं है। यदि वे लोग जिन्हें अपने

अनुवादित

विवेक का उपयोग करके सार्वजनिक कर्तव्य का पालन करना है, उन मामलों को ध्यान में रखते हैं जिन्हें न्यायालय उनके विवेक के मार्गदर्शन के लिए उचित नहीं मानते हैं, तो कानून की नजर में उन्होंने अपने विवेक का प्रयोग नहीं किया है।"

54. किसी प्राधिकारी को क़ानून द्वारा प्रदत्त विवेक के प्रयोग से संबंधित मामलों में न्यायालयों द्वारा हस्तक्षेप का दायरा **एसोसिएटेड प्रोविंशियल पिक्चर हाउसेज़ लिमिटेड बनाम वेडनसबरी कॉर्पोरेशन** में विचार का विषय था, जिसमें **लॉर्ड ग्रीन, एमआर** द्वारा निम्नानुसार कहा गया था :-

"... कानून कुछ सिद्धांतों को मान्यता देता है जिन पर विवेक का प्रयोग किया जाना चाहिए ... वे पूरी तरह से अच्छी तरह से समझे हुए हैं। इस तरह के विवेक का प्रयोग विवेक का वास्तविक अभ्यास होना चाहिए। यदि, विवेक प्रदान करने वाले कानून में, स्पष्ट रूप से या निहितार्थ से, ऐसे मामले पाए जाते हैं जिन पर विवेक का प्रयोग करने वाले प्राधिकारी को ध्यान रखना चाहिए, तो फिर, विवेक का प्रयोग करते समय, उन्हें उन मामलों का ध्यान रखना चाहिए। इसके विपरीत, यदि विषय-वस्तु की प्रकृति और अधिनियम की सामान्य व्याख्या यह स्पष्ट करती है कि कुछ मामले विचाराधीन मामले से संबंधित नहीं होंगे, उन्हें उन मामलों की उपेक्षा करनी चाहिए।

...अदालत को, यह देखने के लिए, स्थानीय प्राधिकारी के कार्य की जांच करने का अधिकार है कि क्या इसने उन मामलों को ध्यान में रखा है जिन पर इसे ध्यान नहीं देना चाहिए, या, इसके विपरीत, उन मामलों को जिन्हें इसे ध्यान में रखना चाहिए, ध्यान देने से इनकार कर दिया है या ध्यान में रखने की उपेक्षा की है।"

55. जिन परिस्थितियों में वैधानिक प्राधिकारी द्वारा विवेकाधीन शक्तियों के प्रयोग को अमान्य माना जा सकता है, वे पैडफील्ड और अन्य बनाम मंत्री, कृषि, मत्स्य पालन एवं खाद्य और अन्य में बताए गए थे, जिसमें लॉर्ड अपजॉन ने निम्नानुसार कहा था: -

"मंत्री द्वारा गैरकानूनी व्यवहार को पर्याप्त सटीकता के साथ कहा जा सकता है ... (ए) प्रासंगिक मामले पर विचार करने से स्पष्ट इनकार करके, या (बी)

अनुवादित

कानून के बिंदु पर खुद को गलत तरीके से निर्देशित करके, या (सी) कुछ पूर्णरूपेण अप्रासंगिक या बाहरी विचारों को ध्यान में रखकर , या (डी) किसी प्रासंगिक विचार को ध्यान में न रखकर।"

56. **पैडफील्ड के मामले** (उपरोक्त) में **हाउस ऑफ लॉर्ड्स** के फैसले में निर्धारित सिद्धांत को **लॉर्ड डेनिंग, एमआर** ने **ब्रीन बनाम अमालामेटेड इंजीनियरिंग यूनियन और अन्य** में इस प्रकार कहते हुए दोहराया था: -

> "एक वैधानिक निकाय का विवेक कभी भी निरंकुश नहीं होता। यह एक विवेक है जिसका प्रयोग कानून के अनुसार किया जाना चाहिए। इसका मतलब कम से कम यह है: वैधानिक निकाय प्रासंगिक विचारों द्वारा मार्गदर्शित होना चाहिए, न कि अप्रासंगिक विचारों द्वारा। यदि उसका निर्णय किन्ही बाह्य कारणों से प्रभावित है जिनपर उसे ध्यान नहीं देना चाहिए था तो निर्णय टिक नहीं सकता। भले ही वैधानिक निकाय ने सद्भावना से कार्य किया हो, फिर भी निर्णय रद्द कर दिया जाएगा।"

57. प्रस्ताव को इस प्रकार मोटे तौर पर यह कहते हुए निर्धारित किया जा सकता है कि किसी क़ानून के तहत विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग करने वाले प्राधिकारी द्वारा निर्णय प्रासंगिक विचारों को ध्यान में रखते हुए और अप्रासंगिक विचारों को त्यागते हुए लिया जाना चाहिए, जिसके अभाव में कार्रवाई को अधिकारातीत और शून्य माना जाएगा।

58. उपरोक्त कानूनी स्थिति को **सीताराम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 2 अन्य** में न्यायालय के एक हालिया फैसले में बताया गया है और **ओमवती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** में दोहराया गया।

59. धारा 80 के तहत की गई घोषणा को रद्द करने की मांग वाले आवेदन पर, संहिता, 2006 की धारा 82 के तहत विचार करते समय जिन शर्तों को पूरा करना आवश्यक है, उन्हें धारा के तहत ही स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट किया गया है, इसलिए आक्षेपित आदेश में किसी अन्य परिस्थिति को किए गए संदर्भ और उसके आधार पर याचिकाकर्ता के आवेदन को अस्वीकार करना, प्राधिकरण को प्रदत्त विवेकाधीन शक्ति के प्रयोग को अधिकारातीत और अमान्य बना देगा। इस प्रकार प्रासंगिक प्रावधानों पर विचार किए बिना और पूरी तरह से अप्रासंगिक विचार पर आधारित होने के कारण पारित किया गया आक्षेपित आदेश कानूनी रूप से बरकरार रखने योग्य नहीं माना जाता है और इसलिए, इसे रद्द किया जाता है।

60. यहां ऊपर की गई चर्चाओं के आलोक में, संहिता, 2006 की धारा 82 के तहत निहित

अनुवादित

प्रावधानों के आधार पर एक नया आदेश पारित करने के लिए मामला प्रतिवादी नंबर 3 को भेजा जाता है। प्रतिवादी प्राधिकारी से अपेक्षा की जाएगी कि वह नई रिपोर्ट प्राप्त करने के बाद, शीघ्रता से और अधिमानतः इस आदेश की प्रमाणित प्रति की प्रस्तुति की तारीख से तीन महीने की अवधि के भीतर, धारा 80 के तहत घोषणा को रद्द करने की मांग करने वाले, धारा 82 के तहत याचिकाकर्ता के आवेदन, पर एक उचित आदेश पारित करेगा।

61. रिट याचिका **ऊपर बताई गई सीमा तक स्वीकार की जाती है**।

(2023) 6 ILRA 968

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 02.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी

माननीय न्यायमूर्ति अनीश कुमार गुप्ता

रिट-सी संख्या 4874 वर्ष 2023

आत्मा प्रसाद शुक्ला याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के वकील: श्री संजय पांडे, श्री सुशील कुमार पाल

प्रतिवादियों के वकील: सी.एस.सी.

सिविल कानून - नगरीय भूमि अधिकतम सीमा एवं विनियमन अधिनियम, 1976- धारा 8(4) - याचिकाकर्ता की भूमि 19349.75 वर्ग मीटर - अधिशेष घोषित - अधिनियम की धारा 8(3) के तहत नोटिस के अधीन - आदेश - अधिनियम की धारा 10(1) और 10(3) के तहत जारी अधिसूचनाएं - अधिनियम की धारा 10(5) के तहत प्रकाशित नोटिस - घोषित अधिशेष भूमि का वास्तविक भौतिक कब्जा कभी नहीं लिया गया - अधिनियम की धारा 10(6) के तहत कार्यवाही शुरू करने के संबंध में कोई साक्ष्य नहीं - कोई मुआवजा नहीं दिया गया - अधिनियम की धारा 10(3) के तहत कार्यवाही - निरसन अधिनियम, 1999 की धारा 3 द्वारा सुरक्षित नहीं - प्रतिवादी सेंट का अपना नाम बदलने का प्रयास अवैध है - याचिका स्वीकृत - प्रतिवादियों को राजस्व अभिलेखों में याचिकाकर्ता का नाम बहाल करने का निर्देश (पैरा 8 और 10)

निर्णय:

चूंकि प्रतिवादियों ने न तो अधिशेष घोषित भूमि पर वास्तविक भौतिक कब्जा लिया है और न ही अधिनियम, 1976 की धारा 10(3) के साथ धारा 11 के अनुसार कोई मुआवजा दिया है, इसलिए अधिनियम, 1976 की धारा 10(3) के तहत कार्यवाही भी निरसन अधिनियम, 1999 की धारा 3 में निहित बचत खंड द्वारा सुरक्षित नहीं है। चूंकि प्रतिवादियों ने न तो अधिनियम, 1976 की धारा 10(3) के साथ धारा 11 के अनुसार कोई मुआवजा दिया है और न ही अधिशेष घोषित भूमि पर वास्तविक और भौतिक कब्जा लिया है, इसलिए प्रश्नगत अधिशेष घोषित भूमि के संबंध में अधिनियम, 1976 के तहत संपूर्ण कार्यवाही निरसन अधिनियम, 1999 की धारा 4 के अनुसार समाप्त हो गई। प्रतिवादियों द्वारा फसली वर्ष 1427-1432 की खतौनी में संत के नाम के उत्परिवर्तन के लिए पत्र दिनांक

अनुवादित

01.04.2014 को प्रस्तुत किया गया। 20.09.2021 को काउंटर हलफनामे के अनुलग्नक-सीए-9 के रूप में दायर किया गया, पूरी तरह से कानून के अधिकार के बिना और अवैध है। (पैरा 10)

याचिका स्वीकार की जाती है। (ई-14)

(माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी और माननीय न्यायमूर्ति अनीश कुमार गुप्ता, जे. द्वारा दिया गया)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री संजय पांडे की ओर से वकालत कर रहे श्री सुशील कुमार पाल और राज्य-प्रतिवादियों के लिए विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री राजीव गुप्ता को सुना।

2. यह रिट याचिका निम्नलिखित राहत की प्रार्थना करते हुए दायर की गई है:

" क) प्रतिवादियों को, याचिकाकर्ता से वास्तविक और भौतिक कब्जा नहीं लेने का निर्देश और आदेश देते हुए परमादेश की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।

ख) प्रतिवादियों को, याचिकाकर्ता की अधिशेष भूमि को निरसन अधिनियम 1999 के अंतर्गत सीलिंग से मुक्त करने और राजस्व अभिलेखों में याचिकाकर्ता का नाम पुनः दर्ज करने के साथ-साथ याचिकाकर्ता के दिनांक 10.10.2022 के आवेदन पर निर्णय देने के लिए परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।"

<u>तथ्य:-</u>

3. वर्तमान मामले के संक्षेप में बताए गए तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता के पिता श्री देवी प्रसाद शुक्ला के पास गाँव सिंहपुर, मुग्दरपुर और खजुही, परगना शिवपुर, तहसील सदर, जिला वाराणसी के विभिन्न खसरा भूखंड थे, जिनमें से 19349.75 वर्ग मीटर भूमि को शहरी भूमि सीमा और विनियमन अधिनियम, 1976 (इसके बाद 'अधिनियम 1976' के रूप में संदर्भित) के प्रावधानों के तहत शहरी सीमा वाद संख्या 600/473/652/5798/83-84 (यूपी राज्य बनाम देवी प्रसाद शुक्ला) में अधिशेष घोषित किया गया था। अधिनियम, 1976 की धारा 8(3) के अन्तर्गत नोटिस दिनांक 12.09.1985 जारी किया गया, जिसकी तामीला उक्त देवी प्रसाद शुक्ला पर दिनांक 13.10.1985 को की गई। जवाबी हलफनामे के पैरा-5 में कहा गया है कि उक्त देवी प्रसाद शुक्ला द्वारा आपत्तियां दाखिल की गई तथा तत्पश्चात अधिनियम की धारा 8(4) के अन्तर्गत दिनांक 17.11.1989 को आदेश पारित किया गया, जिसके द्वारा 19349.75 वर्ग मीटर भूमि अधिशेष घोषित की गई। जवाबी हलफनामे के पैरा-6 एवं 7 में कहा गया है कि अधिनियम, 1976 की धारा 9 के अन्तर्गत नोटिस दिनांक 22.02.1994 जारी किया गया। तत्पश्चात अधिनियम, 1976 की धारा 10(1) एवं धारा 10(3) के अन्तर्गत दिनांक 22.02.1997 एवं 22.08.1998 को अधिसूचनाएं जारी की गई, जो सरकारी राजपत्र में प्रकाशित की गई। अधिनियम, 1976 की धारा 10(5) के तहत कथित तौर पर 23.12.1998 को एक नोटिस जारी किया गया था। जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ-8 और 9 में, प्रतिवादियों ने इस प्रकार कहा है:

"8. यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि अधिशेष घोषित की गई भूमि के संबंध में उसपर राज्य

अनुवादित

सरकार का नाम दर्ज करने के लिए एक अदिनांकित परवाना/आदेश जारी किया गया था। अदिनांकित परवाना/आदेश की एक सत्य फोटोस्टेट प्रति इसके साथ संलग्न की जा रही है तथा इस हलफनामे के ***संलग्नक संख्या सीए-7*** *के रूप में चिह्नित की जा रही है। इसके अलावा, यह भी कहा जाता है कि अधिशेष घोषित की गई भूमि के भौतिक सत्यापन तथा पहचान के लिए सचिव, वाराणसी विकास प्राधिकरण, वाराणसी को 28.03.2000 को एक पत्र भेजा गया था तथा वर्तमान मामले का उल्लेख उक्त पत्र के साथ संलग्न सूची में क्रम संख्या 547 पर किया गया है। दिनांक 28.03.2000 के पत्र की सत्य फोटोस्टेट प्रति इसके साथ संलग्न की जा रही है तथा इस हलफनामे के* ***संलग्नक संख्या सीए-8*** *के रूप चिह्नित की जा रही है।*

9. यहां यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि पूर्व के आदेश/परवाना के अनुसरण में चूंकि राजस्व अभिलेखों में राज्य का नाम दाखिल खारिज नहीं किया गया था और इस कारण एक अनुस्मारक पत्र दिनांक 20.09.2021 तहसीलदार सदर, वाराणसी को भेजा गया था, जिसके आधार पर फसली वर्ष 1427-1432 की खतौनी में, राजस्व अभिलेख में राज्य का नाम दाखिल खारिज किया गया था। फसली वर्ष 1427-1432 की खतौनी के साथ दिनांक 20.09.2021 के पत्र की एक सत्य फोटोस्टेट प्रति यहाँ सामूहिक रूप से संलग्न की जा रही है और इस हलफनामे के साथ ***संलग्नक संख्या सीए-9*** *के रूप में चिह्नित की जा रही है।"*

4. चूंकि प्रतिवादियों ने दिनांक 20.09.2021 के पत्र के माध्यम से, फसली वर्ष 1427-1432 में उपरोक्त भूमि पर राज्य के नाम को दाखिल खारिज करने का प्रयास किया है और याचिकाकर्ता को बेदखल करने का भी प्रयास किया है, इसलिए याचिकाकर्ता ने वर्तमान रिट याचिका दायर की है।

दलीलें:

5. **याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं** कि याचिकाकर्ता के पिता को धारा 8(4) या धारा 10(5) के तहत कोई नोटिस कभी नहीं मिला। उन्होंने आगे कहा कि याचिकाकर्ता या उसके पिता ने न तो कभी अधिनियम, 1976 की धारा 10(5) के तहत कथित नोटिस दिनांक 23.12.1998 के अनुसरण में प्रतिवादियों को विचाराधीन भूमि का कब्जा सौंपा, न ही प्रतिवादियों ने कभी वास्तविक भौतिक कब्जा लिया। वह आगे कहते हैं कि अधिनियम, 1976 की धारा 10(6) के तहत कोई कार्यवाही शुरू नहीं की गई और याचिकाकर्ता विवादित भूमि पर अभी भी काबिज है। उन्होंने दलील दी कि प्रतिवादियों द्वारा अपने जवाबी हलफनामे में दिए गए अपने कथनों के अनुसार भी, विवादित भूमि का वास्तविक और भौतिक कब्ज़ा कभी नहीं लिया गया था और शहरी भूमि (सीमा और विनियमन) निरसन अधिनियम, 1999 (जिसे आगे 'निरसन अधिनियम, 1999' कहा जाएगा) के अधिनियमन के बहुत बाद, प्रतिवादी ने अधिशेष घोषित भूमि के सत्यापन और पहचान के लिए 28.03.2000 को एक पत्र लिखा था। इस प्रकार, प्रतिवादियों द्वारा जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ-8 में दिए गए अपने कथनों से इस बात में कोई संदेह नहीं रह जाता कि प्रतिवादियों ने विवादित भूमि का वास्तविक

अनुवादित

भौतिक कब्ज़ा कभी नहीं लिया और निरसन अधिनियम, 1999 द्वारा अधिनियम, 1976 के तहत पूरी कार्यवाही समाप्त हो गई।

6. **विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता,** राज्य प्रतिवादियों की कार्रवाई का **समर्थन करते हैं**।

<u>चर्चा और निष्कर्ष:-</u>

7. हमने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं के तर्कों पर ध्यानपूर्वक विचार किया है और रिट याचिका के अभिले का अवलोकन किया है।

8. हम पाते हैं कि जवाबी हलफनामे में कहीं भी इस बात का उल्लेख नहीं है कि कथित अधिशेष घोषित भूमि का वास्तविक और भौतिक कब्जा राज्य प्रतिवादियों द्वारा निरसन अधिनियम, 1999 के लागू होने से पहले कभी लिया गया था। इसके विपरीत, जवाबी हलफनामे के पैरा 8 में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि अधिशेष घोषित भूमि के भौतिक सत्यापन और पहचान के लिए सचिव, वाराणसी विकास प्राधिकरण, वाराणसी को एक पत्र 28.03.2000 लिखा गया था। इस प्रकार, 28.03.2000 तक, प्रतिवादियों ने अधिशेष घोषित भूमि की पहचान तक नहीं की है। यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है कि अधिशेष घोषित भूमि का वास्तविक और भौतिक कब्जा कभी भी मालिक देवी प्रसाद शुक्ला द्वारा छोड़ा गया था और न ही यह दिखाने के लिए कोई सबूत है कि अधिनियम, 1976 की धारा 10 (6) के तहत कार्यवाही शुरू की गई थी और अधिशेष भूमि का वास्तविक भौतिक कब्जा लिया गया था। इस प्रकार, जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ-8 में प्रतिवादियों के स्वयं के कथनों के अनुसार, यह स्पष्ट है कि राज्य-प्रतिवादियों ने कभी भी प्रश्नगत अधिशेष घोषित भूमि का भौतिक कब्जा नहीं लिया है और याचिकाकर्ता उक्त भूमि पर भौतिक कब्जे में बना हुआ है। यहां तक कि निरसन अधिनियम, 1999 से पहले राज्य का नाम भी दाखिल खारिज नहीं किया गया था। यह केवल वर्ष 2021 में, अर्थात लगभग 22 वर्षों के बाद है कि प्रतिवादियों ने *फसली* वर्ष 1427-1432 की खतौनी में राज्य का नाम दाखिल खारिज करने का प्रयास किया। देवी प्रसाद शुक्ला की मृत्यु के पश्चात उनके उत्तराधिकारियों अर्थात याचिकाकर्ता व अन्य का नाम *खतौनी* में दाखिल खारिज कर दिया गया और याचिकाकर्ता का नाम *खतौनी* में तब तक जारी रहा जब तक कि 20.09.2021 को *फसली* वर्ष 1427-1432 की *खतौनी* में राज्य का नाम दाखिल खारिज करने का प्रयास नहीं किया गया। प्रतिवादियों ने जवाबी हलफनामे में यह भी नहीं कहा है कि अधिनियम, 1976 की धारा 10(3) के तहत अधिसूचना के बाद याचिकाकर्ता को मुआवजे की किसी राशि का भुगतान किया गया था।

9. निरसन अधिनियम, 1999 की धारा 3 और 4 में निम्नानुसार प्रावधान है:

*"3. **व्यावृत्ति।** - (1) मूल अधिनियम के निरसन से निम्नलिखित प्रभावित नहीं होंगे-*

*(क) धारा 10 की उपधारा (3) के तहत किसी खाली भूमि का निहितीकरण, **जिसका कब्जा राज्य सरकार** या राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किसी व्यक्ति या सक्षम प्राधिकारी **द्वारा लिया गया हो**;*

अनुवादित

(ख) धारा 20 की उपधारा (1) के अधीन छूट प्रदान करने वाले किसी आदेश या उसके अधीन की गई किसी कार्रवाई की वैधता, किसी न्यायालय के किसी विपरीत निर्णय के होते हुए भी;

(ग) धारा 20 की उपधारा (1) के अधीन छूट प्रदान करने की शर्त के रूप में राज्य सरकार को किया गया कोई भुगतान।

(2) ***जहां-***

(क) ***कोई भूमि जो मूल अधिनियम की धारा 10 की उपधारा (3) के अधीन राज्य सरकार में निहित समझी जाती है, किन्तु जिसका कब्जा राज्य सरकार या राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किसी व्यक्ति या सक्षम प्राधिकारी द्वारा नहीं लिया गया है;*** *और*

(ख) ऐसी भूमि के संबंध में राज्य सरकार द्वारा कोई रकम चुकाई गई है, तो ऐसी भूमि तब तक वापस नहीं की जाएगी, जब तक कि चुकाई गई रकम, यदि कोई हो, राज्य सरकार को वापस नहीं कर दी जाती।

4. ***कानूनी कार्यवाहियों का उपशमन- इस अधिनियम के प्रारंभ से ठीक पहले*** *किसी न्यायालय, न्यायाधिकरण या अन्य प्राधिकारी के समक्ष* ***मूल अधिनियम के अधीन*** *किए गए या किए जाने हेतु प्रकल्पित किसी आदेश से संबंधित* ***सभी कार्यवाहियां उपशमित हो जाएंगी:*** *बशर्ते कि यह धारा मूल अधिनियम की धाराओं 11, 12, 13 और 14 से संबंधित कार्यवाहियों पर लागू नहीं होगी, जहां तक ऐसी कार्यवाहियां उस भूमि से संबंधित हैं, जिसका कब्जा राज्य सरकार या राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किसी व्यक्ति या सक्षम प्राधिकारी द्वारा ले लिया गया है।"*

10. चूंकि न तो प्रतिवादियों ने अधिशेष घोषित भूमि पर वास्तविक भौतिक कब्जा लिया है और न ही अधिनियम, 1976 की धारा 11 के साथ पठित धारा 10(3) के अनुसार कोई मुआवजा दिया है, इसलिए अधिनियम, 1976 की धारा 10(3) के तहत कार्यवाही भी निरसन अधिनियम, 1999 की धारा 3 में निहित बचत खंड द्वारा नहीं बचाई गई है। चूंकि प्रतिवादियों ने अधिनियम, 1976 की धारा 11 के साथ पठित धारा 10(3) के अनुसार न तो कोई मुआवजा दिया है और न ही अधिशेष घोषित भूमि का वास्तविक और भौतिक कब्जा लिया है, इसलिए प्रश्नगत अधिशेष घोषित भूमि के संबंध में अधिनियम, 1976 के तहत संपूर्ण कार्यवाही निरसन अधिनियम, 1999 की धारा 4 के अनुसार समाप्त हो गई। जवाबी हलफनामे के संलग्नक-सीए-9 के रूप में दाखिल पत्र दिनांक 20.09.2021 द्वारा *फसली* वर्ष 1427-1432 की *खतौनी* में राज्य के नाम के दाखिल खारिज के लिए प्रतिवादियों का प्रयास, पूरी तरह से कानूनी अधिकार से रहित तथा अवैध है।

11. पूर्वोक्त सभी कारणों से, **रिट याचिका स्वीकार की जाती है**। प्रतिवादियों को निर्देश दिया जाता है कि वे याचिकाकर्ता का नाम राजस्व अभिलेखों अर्थात *खतौनी* और *खसरा* में बहाल करें तथा संबंधित भूमि पर उसके कब्जे, उपयोग और उपभोग में हस्तक्षेप न करें।

(2023) 6 ILRA 674

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

अनुवादित

दिनांक: इलाहाबाद 25.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार

माननीय न्यायमूर्ति राजेंद्र कुमार-IV

रिट-सी संख्या 16743 वर्ष 2023

शिवानी वर्मा **याचिकाकर्ता**

बनाम

यू.पी. राज्य और अन्य **प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री मनोज कुमार मिश्रा, तबस्सुम बानो

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी., श्री मूल चंद्र मौर्य

सिविल कानून - यू.पी. माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरण-पोषण एवं कल्याण अधिनियम 20072 - उत्तर प्रदेश माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरण-पोषण एवं कल्याण नियम 2014 - अधिनियम 2007 का अध्याय II और अध्याय V, नियम 2014 के साथ पठित, वरिष्ठ नागरिक की संपत्ति से संबंधित विभिन्न क्षेत्रों और विभिन्न उद्देश्यों के लिए कार्य करते हैं। 17 में से 14 (ii) अध्याय II न्यायाधिकरण द्वारा पारित किए जाने वाले भरण-पोषण के आदेश तक सीमित है, जिसमें बच्चों/रिश्तेदारों के विरुद्ध वरिष्ठ नागरिक या माता-पिता के लिए आवास का प्रावधान शामिल है, लेकिन नाबालिग बच्चों या तीसरे पक्ष के विरुद्ध नहीं। (iii) अधिनियम 2007 के अध्याय II के साथ पठित, नियम 2014 के अंतर्गत न्यायाधिकरण को अन्य बातों के साथ-साथ बच्चों/रिश्तेदारों के विरुद्ध निवास के प्रावधान के संबंध में भरण-पोषण का आदेश देने का एकमात्र क्षेत्राधिकार है। वरिष्ठ नागरिक द्वारा भरण-पोषण (निवास) के लिए मांगे गए परिसर/संपत्ति पर केवल न्यायाधिकरण का क्षेत्राधिकार होगा। (iv) अध्याय V केवल वरिष्ठ नागरिक के जीवन और संपत्ति की सुरक्षा तक ही सीमित है। संपत्ति की सुरक्षा में मूर्त संपत्ति से अधिभोगी को बेदखल करना भी शामिल होगा। यह शक्ति जिला मजिस्ट्रेट को दी गई है। अधिभोगी बच्चे/रिश्तेदार या तीसरा पक्ष हो सकता है। (v) अध्याय V के तहत जिला मजिस्ट्रेट को संपत्ति के संबंध में अधिकार नहीं होगा, यानी निवास के लिए भरण-पोषण, ऐसी संपत्ति से बच्चों/रिश्तेदारों को बेदखल करने का आदेश देने के लिए। हालांकि, जिला मजिस्ट्रेट के पास वरिष्ठ नागरिक की किसी भी अन्य प्रकार की संपत्ति के संबंध में शक्ति होगी, जिसमें उससे बेदखली का आदेश भी शामिल है। (vi) वरिष्ठ नागरिक की रिश्तेदार होने के नाते बहू को सामान्य जीवन जीने के लिए भरण-पोषण की जरूरतों को पूरा करने के लिए वरिष्ठ नागरिक द्वारा मांगे गए आवास से बेदखल किया जा सकता है। लेकिन न्यायाधिकरण द्वारा बेदखली का ऐसा आदेश घरेलू हिंसा से महिलाओं के संरक्षण अधिनियम 2005 के तहत साझा घर के संबंध में सक्षम मजिस्ट्रेट/सिविल कोर्ट द्वारा पारित आदेश के अधीन है। वरिष्ठ नागरिक और बहू के हितों को उनकी प्रतिस्पर्धी जरूरतों को ध्यान में रखते हुए न्यायाधिकरण द्वारा समायोजित किया जाना होगा। बहू को वरिष्ठ नागरिक के कब्जे या स्वामित्व वाले 'साझा घर' से बेदखल नहीं किया जा सकता है, हालांकि, न्यायाधिकरण द्वारा उपयुक्त समायोजन किया जा सकता है (पैरा 68)

अनुमति दी गई। (ई-5)

अनुवादित

उद्धृत मामलों की सूची:

1. अभिषेक तिवारी एवं अन्य बनाम स्टेट ऑफ यूपी एवं अन्य रिट सी संख्या 30835 ऑफ 2021, 31 मई, 2022 को तय

2. खुशबू शुक्ला बनाम जिला मजिस्ट्रेट, लखनऊ एवं अन्य। विविध एकल संख्या 16212 ऑफ 2021, 2.11.2021 को तय

3. एस वनिता बनाम डिप्टी कमिश्नर, बेंगलुरु शहरी जिला एवं अन्य। [2020] 12 एससीआर 1057

(माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार द्वारा दिया गया)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री मनोज कुमार मिश्रा, प्रतिवादी नंबर 4 की ओर से पेश हुए अधिवक्ता श्री मूल चंद्र मौर्य और राज्य-प्रतिवादी के लिए विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री मुकुल त्रिपाठी को सुना।

2. याचिकाकर्ता चौथे प्रतिवादी की बहू और पांचवें प्रतिवादी की भाभी होने का दावा करता है। पांचवां उत्तरदाता चौथे प्रतिवादी का बेटा है।

3. याचिकाकर्ता, तत्काल रिट याचिका द्वारा, दूसरे प्रतिवादी-जिला मजिस्ट्रेट, जिला-एटा द्वारा पारित 6 अप्रैल 2023 के आदेश और तीसरे प्रतिवादी-उप-विभागीय मजिस्ट्रेट एटा, जिला-एटा द्वारा जारी 29 मार्च 2023 के तथ्यान्वेषी संचार को चुनौती दे रहा है।

4. उप-विभागीय मजिस्ट्रेट एटा, जिला-एटा द्वारा प्रस्तुत 29 मार्च 2023 के तथ्यान्वेषी पत्र के आधार पर 6 अप्रैल 2023 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता को हाउस-ए ब्लॉक, लोदीपुरम, पीपल अड्डा, एटा, थाना-कोतवाली नगर, जिला-एटा से बेदखल करने का निर्देश दिया गया है। चौथे प्रतिवादी द्वारा दायर एक रिट याचिका में इस न्यायालय के निर्देशों पर आदेश पारित किया गया था।

5. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने शुरुआत में कानून का सवाल उठाया है कि उत्तर प्रदेश माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरण-पोषण और कल्याण अधिनियम 2007 के तहत, न तो अधिकरण और न ही जिला मजिस्ट्रेट को आवास/ संपत्ति से बेदखली/ निष्कासन का निर्देश देने की शक्ति या अधिकार प्रदान किया गया है। तदनुसार, लागू आदेश कानून की नजर में अमान्य है।

6. आगे यह प्रस्तुत किया जाता है कि याचिकाकर्ता, निश्चित रूप से, चौथे प्रतिवादी की बहू होने के नाते, परिसर से बेदखल नहीं किया जा सकता है क्योंकि उसे अपने पति की मृत्यु के बाद संपत्ति विरासत में मिली है।

7. याचिकाकर्ता की ओर से पेश अधिवक्ता ने अभिषेक तिवारी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश सरकार और अन्य और खुशबू शुक्ला बनाम जिला मजिस्ट्रेट, लखनऊ और अन्य मामले में इस न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए फैसले पर भरोसा किया है, जिसमें यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि अधिकरण के पास वरिष्ठ नागरिक के निवास से बेदखली का निर्देश देने का अधिकार क्षेत्र नहीं होगा। इसके अलावा, एस. वनिता बनाम उपायुक्त, बंगलुरु शहरी जिला और अन्य पर भरोसा किया गया है।

8. खंडन में, राज्य-प्रतिवादी और प्रतिवादी की ओर से पेश अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि 'रखरखाव' शब्द में निवास शामिल है। इस घटना में वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता के स्वामित्व/कब्जे वाले परिसर में रहने वाले बच्चे/रिश्तेदार अपने बच्चों/रिश्तेदारों को परिसर

अधिवक्ता

से बेदखल करने की मांग कर सकते हैं, यदि वे वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता का भरण-पोषण करने में विफल रहते हैं या उनकी बढ़ती उम्र के कारण उन्हें परेशान कर रहे हैं।

9. आगे यह प्रस्तुत किया जाता है कि विधायिका द्वारा नियोजित 'रखरखाव' और 'संपत्ति' शब्द में अलग-अलग अर्थ हैं। 'संपत्ति' शब्द में 'रखरखाव' के प्रयोजनों के लिए 'निवास' शब्द शामिल नहीं होगा, हालांकि आवासीय आवास एक संपत्ति है। निवास और संपत्ति के रखरखाव के संबंध में क्षेत्राधिकार विभिन्न प्राधिकरणों को और विभिन्न उद्देश्यों के लिए प्रदान किया गया है।

11. प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियाँ विचार के लिए आती हैं।

12. इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि परिसर के संबंध में निषेधाज्ञा की मांग करने वाले कई सिविल मुकदमे परस्पर पक्षकार लंबित हैं। लंबित मुकदमों में मालिकाना हक और कब्जे का सवाल भी शामिल है।

13. प्रारंभ में, गुण-दोष के आधार पर विज्ञापन देने से पहले, विचारार्थ प्रश्न उठता है कि क्या भरण-पोषण अधिकरण और/अथवा जिला मजिस्ट्रेट के पास अधिनियम 2007 के साथ-साथ नियम 2014 के अंतर्गत वरिष्ठ नागरिकों/अभिभावकों के भरण-पोषण के आदेश पर निर्णय लेते समय वरिष्ठ नागरिकों/रिश्तेदारों को बेदखल करने का निर्देश/आदेश देने की शक्ति और अधिकार है।

14. अधिनियम 2007, माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों के भरण-पोषण और कल्याण के लिए और अधिक प्रभावी प्रावधान प्रदान करने के लिए संसद द्वारा अधिनियमित किया गया, जो संविधान के तहत गारंटीकृत और मान्यता प्राप्त है और इससे जुड़े और प्रासंगिक मामलों के लिए है। उद्देश्यों और कारणों के बयान में कहा गया है कि भारतीय समाज के पारंपरिक मानदंडों और मूल्यों ने बुजुर्गों के लिए देखभाल प्रदान करने पर जोर दिया। हालांकि, संयुक्त परिवार प्रणाली के मुरझाने के कारण, बड़ी संख्या में बुजुर्गों की देखभाल उनके परिवार द्वारा नहीं की जा रही है। नतीजतन, कई वृद्ध व्यक्ति, विशेष रूप से विधवा महिलाएं अब अपने गोधूलि वर्षों को अकेले बिताने के लिए मजबूर हैं और भावनात्मक उपेक्षा और शारीरिक वित्तीय सहायता की कमी के संपर्क में हैं। यह स्पष्ट रूप से प्रकट करता है कि वृद्धावस्था एक प्रमुख सामाजिक चुनौती बन गई है और वृद्ध व्यक्तियों की देखभाल और सुरक्षा पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। संक्षेप में, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अंतर्गत भरण-पोषण का प्रावधान होने के बावजूद, अधिनियम में वृद्ध व्यक्तियों के जीवन और संपत्ति की सुरक्षा के लिए एक उपयुक्त तंत्र के संस्थागतकरण का प्रावधान है। अधिनियम, 2007 के अलावा किसी अन्य अधिनियमन में निहित किसी भी असंगत बात के बावजूद, अधिनियम, 2007 का अभिभावी प्रभाव है।

15. अधिनियम 2007 को VII अध्यायों में विभाजित किया गया है। अध्याय II में माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों के भरण-पोषण का प्रावधान है, जबकि अध्याय V वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति की सुरक्षा से संबंधित है।

16. वर्तमान रिट याचिका में उठाया गया प्रश्न विशेष रूप से अधिनियम 2007 के अध्याय II और अध्याय V के तहत प्रावधानों के विश्लेषण

अनुवादित

और व्याख्या तक सीमित है, साथ ही इसके तहत बनाए गए नियम 2014 भी शामिल हैं।

17. विधायिका ने 'वरिष्ठ नागरिक' और 'माता-पिता' शब्द का उपयोग किया है। वरिष्ठ नागरिक वह व्यक्ति है जो साठ वर्ष या उससे अधिक की आयु प्राप्त कर चुका है। [धारा 2 (4)] । धारा 2 के उप-खंड (डी) में 'माता-पिता' को परिभाषित किया गया है जो इस प्रकार है:

> "माता-पिता" का अर्थ पिता या माता से है चाहे वह जैविक, दत्तक या सौतेले पिता या सौतेली माँ हो, जैसा भी मामला हो, चाहे पिता या माता एक वरिष्ठ नागरिक हो या न हो।

18. माता-पिता को वरिष्ठ नागरिक होने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन, यदि कोई माता-पिता खुद को बनाए रखने में असमर्थ है और सामान्य जीवन जीने में असमर्थ है, तो वह रखरखाव के लिए अधिकरण के समक्ष दावा करने का हकदार है। दूसरे शब्दों में, एक वरिष्ठ नागरिक में 'माता-पिता और दादा-दादी' शामिल हैं, लेकिन माता-पिता को वरिष्ठ नागरिक होने की आवश्यकता नहीं है।

19. अध्याय II के तहत धारा 4 में कहा गया है कि एक वरिष्ठ नागरिक, जिसमें माता-पिता भी शामिल हैं, जो अपनी आय से या उसके स्वामित्व वाली संपत्ति से खुद को बनाए रखने में असमर्थ हैं, धारा 5 के तहत अपने एक या अधिक बच्चों के खिलाफ गुजारा भत्ता के लिए आवेदन करने के हकदार होंगे, जो नाबालिग नहीं हैं। एक निःसंतान वरिष्ठ नागरिक अपने रिश्तेदार के खिलाफ गुजारा भत्ता का दावा कर सकता है।

20. धारा 4 की उप-धारा (2) बच्चों या रिश्तेदार पर, जैसा भी मामला हो, एक वरिष्ठ नागरिक को बनाए रखने का दायित्व डालती है जो ऐसे नागरिक की जरूरतों तक फैली हुई है ताकि वरिष्ठ नागरिक सामान्य जीवन जी सकें।

21. धारा 4 की उप-धारा (3) बच्चों पर अपने माता-पिता, यानी, पिता या माता या दोनों, जैसा भी मामला हो, को बनाए रखने का दायित्व डालती है, ताकि ऐसे माता-पिता सामान्य जीवन जी सकें।

22. धारा 4 की उपधारा (4) में यह प्रावधान है कि कोई भी व्यक्ति किसी वरिष्ठ नागरिक का रिश्तेदार होने के नाते और पर्याप्त साधन होने के नाते ऐसे नागरिक का भरण-पोषण करेगा, बशर्ते कि वह ऐसे वरिष्ठ नागरिक की संपत्ति के कब्जे में हो या वह ऐसे वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता की संपत्ति का उत्तराधिकारी हो।

धारा 4 को ध्यान से पढ़ने पर, वरिष्ठ नागरिक अपने बच्चों या रिश्तेदारों से भरण-पोषण का दावा कर सकता है, जैसा भी मामला हो। एक माता-पिता, जबकि, अपने बच्चों से रखरखाव का दावा करना पड़ता है, न कि किसी रिश्तेदार से।

24. धारा 2 का उप-खंड (बी) 'रखरखाव' को परिभाषित करता है जो इस प्रकार है:

> "'रखरखाव' में भोजन, कपड़े, निवास और चिकित्सा उपस्थिति और उपचार का प्रावधान शामिल है।

25. परिभाषा समावेशी है और संपूर्ण नहीं है और विशेष रूप से, निवास के लिए प्रावधान शामिल है। हम बाद में निवास के अर्थ पर लौट आएंगे। गुजारा भत्ता की परिभाषा के साथ धारा 4 को संयुक्त रूप से पढ़ने पर, यह स्पष्ट है कि वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता अपने बच्चों

अद्यतन

या रिश्तेदार से, जैसा भी मामला हो, भरण-पोषण के हकदार हैं, जो ऐसे वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता की आवश्यकताओं तक फैला हुआ है ताकि ऐसे वरिष्ठ नागरिक या माता-पिता सामान्य जीवन जी सकें। यह इस प्रकार है कि निवास रखरखाव का एक पहलू है और वरिष्ठ नागरिक अपने बच्चों/रिश्तेदारों से, अन्य बातों के साथ-साथ, केवल निवास के लिए उनके बहिष्करण के लिए भरण-पोषण का दावा कर सकता है, यदि वरिष्ठ नागरिक की राय में, यह वरिष्ठ नागरिक को गरिमा के साथ सामान्य जीवन जीने में सक्षम बनाने के लिए उसकी आवश्यकताओं तक विस्तारित करता है, बशर्ते, वरिष्ठ नागरिक संपत्ति का मालिक हो, चाहे वह स्वयं अर्जित हो या पैतृक। यदि वरिष्ठ नागरिक के पास निवास नहीं है, तो उस घटना में उसके बच्चों / रिश्तेदार को निवास प्रदान करना होगा, क्योंकि 'रखरखाव' अभिव्यक्ति में निवास शामिल है। ऐसे मामलों में जहां बच्चे/रिश्तेदार किसी भी कारण से वरिष्ठ नागरिक को निवास प्रदान करने में असमर्थ हैं, वरिष्ठ नागरिक को अधिकरण द्वारा जिले के वृद्धाश्रम में स्थापित किया जाएगा।

26. वरिष्ठ नागरिक के भरण-पोषण के लिए केवल उन्हीं रिश्तेदारों को बुलाया जाता है जिन्हें वरिष्ठ नागरिक की संपत्ति का अधिकार है या वह ऐसे वरिष्ठ नागरिक की संपत्ति का उत्तराधिकारी होगा।

27. सापेक्ष को धारा 2 के उप-खंड (जी) में परिभाषित किया गया है जो इस प्रकार है:

> "रिश्तेदार' का अर्थ है निःसंतान वरिष्ठ नागरिक का कोई भी कानूनी उत्तराधिकारी जो नाबालिग नहीं है और उसकी मृत्यु के बाद उसकी संपत्ति के कब्जे में है या उत्तराधिकारी होगा।

28. 'रिश्तेदार' की परिभाषा को ध्यान से पढ़ने पर, यह 'साधन' शब्द का उपयोग करता है, जिससे परिभाषा संपूर्ण हो जाती है और 'एक निःसंतान वरिष्ठ नागरिक के कानूनी उत्तराधिकारी' तक सीमित हो जाती है, जो उसकी मृत्यु के बाद उसकी संपत्ति के कब्जे में है या उत्तराधिकारी होगा। दूसरे शब्दों में, एक वरिष्ठ नागरिक का रिश्तेदार होना:

(i) वरिष्ठ नागरिक निःसंतान होना चाहिए;

(ii) रिश्तेदार नाबालिग नहीं होना चाहिए;

(iii) वरिष्ठ नागरिक का कानूनी उत्तराधिकारी होना चाहिए;

(iv) उसके पास अपनी संपत्ति होनी चाहिए या उसे विरासत में होना चाहिए।

29. प्रयुक्त अभिव्यक्ति संपत्ति है न कि वरिष्ठ नागरिक द्वारा रखरखाव के लिए दावा किया जा रहा निवास। दूसरे शब्दों में, रिश्तेदार जो किसी भी प्रकार की संपत्ति विरासत में प्राप्त करता है, यानी, वरिष्ठ नागरिक का मूर्त या अमूर्त वरिष्ठ नागरिक का रिश्तेदार होगा।

30. वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता को फॉर्म ए में नियम 5 के साथ धारा 5 के तहत अनिवार्य रूप से आवेदन करके भरण-पोषण के लिए अधिकरण से संपर्क करना होगा।

31. धारा 2 का उप-खंड (जे) 'अधिकरण' को परिभाषित करता है जो इस प्रकार है:

> "'अधिकरण' का अर्थ है धारा 7 के तहत गठित रखरखाव न्यायाधिकरण।

32. अधिनियम 2007 की धारा 6 में क्षेत्राधिकार और प्रक्रिया का प्रावधान है और धारा 7 में रखरखाव अधिकरण के गठन का प्रावधान है। राज्य सरकार को सरकारी राजपत्र

अनुवादित

में अधिसूचना के माध्यम से प्रत्येक उप-मंडल के लिए एक या अधिक अधिकरणों का गठन करने के लिए कहा जाता है, जैसा कि अधिसूचना में विनिदष्ट किया जाए, रखरखाव के आदेश पर निर्णय लेने और निर्णय लेने के उद्देश्य से।

33. धारा 8 में सारांश प्रक्रिया का प्रावधान है। धारा 8 की उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट प्रयोजनों के लिए अधिकरण के पास सिविल न्यायालय की शक्तियां होंगी।

34. धारा 9 में प्रावधान है कि यदि बच्चे या रिश्तेदार, जैसा भी मामला हो, किसी वरिष्ठ नागरिक की उपेक्षा करते हैं या उसे बनाए रखने से इनकार करते हैं, तो अधिकरण भरण-पोषण के लिए आदेश पारित करेगा। अधिकतम भरण-पोषण भत्ता जो अधिकरण द्वारा आदेश ति किया जा सकता है, वह राज्य सरकार द्वारा निर्धारित किया जा सकता है लेकिन दस हजार रुपये प्रति माह से अधिक नहीं होगा। [धारा 9 (2)/नियम 15]

35. धारा 11 में भरण-पोषण के आदेश को लागू करने का प्रावधान है। अधिनियम 2007 के तहत किए गए रखरखाव आदेश का दंड प्रक्रिया संहिता 1973 के अध्याय IX के तहत पारित आदेश के समान बल और प्रभाव होगा, और ऐसे आदेशों के निष्पादन के लिए निर्धारित तरीके से निष्पादित किया जाएगा।

36. अध्याय II में निहित प्रावधानों के अवलोकन पर, जिसे 'भरण-पोषण', 'बच्चे', 'माता-पिता' और 'रिश्तेदार' की परिभाषा के साथ पढ़ा जाता है, यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट है कि अधिकरण के पास वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता के बच्चों के खिलाफ या वरिष्ठ नागरिक के रिश्तेदार के खिलाफ, जैसा भी मामला हो, भरण-पोषण के लिए आदेश पारित करने का अधिकार है। दूसरे शब्दों में, अधिकरण के पास तीसरे पक्ष के खिलाफ भरण-पोषण के संबंध में आदेश पारित करने का अधिकार नहीं है, अर्थात, वरिष्ठ नागरिक के बच्चों/रिश्तेदारों के अलावा अन्य के लिए या निवास के लिए अधिकरण के समक्ष मांगी गई वरिष्ठ नागरिक की संपत्ति के कब्जे में, या उस मामले के लिए, रखरखाव के लिए संपत्ति से आय।

37. आगे बढ़ने से पहले, अधिनियम 2007 के अध्याय V के तहत प्रावधानों की जांच करना उचित होगा, जो एक वरिष्ठ नागरिक के 'जीवन और संपत्ति' की सुरक्षा का प्रावधान करता है। अध्याय में 'माता-पिता' या 'रिश्तेदार' का उल्लेख नहीं है।

38. धारा 22 राज्य सरकार को ऐसी शक्तियां प्रदान करने और जिला मजिस्ट्रेट पर ऐसे कर्तव्यों को लागू करने की शक्ति प्रदान करती है जो यह सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक हो सकते हैं कि अधिनियम 2007 के प्रावधानों का ठीक से पालन किया जाए।

39. उपधारा (2) राज्य सरकार को वरिष्ठ नागरिक ों के जीवन और संपत्ति की सुरक्षा प्रदान करने के लिए एक व्यापक कार्य योजना निर्धारित करने का अधिदेश देती है। धारा 22 का उप-खंड (2) निकाला गया है:

> (2) राज्य सरकार वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति की सुरक्षा प्रदान करने के लिए एक व्यापक कार्य योजना निर्धारित करेगी।

40. धारा 23 उन परिस्थितियों का प्रावधान करती है जिनके तहत एक वरिष्ठ नागरिक द्वारा की गई संपत्ति का उपहार या अन्यथा के माध्यम से हस्तांतरण शून्य हो जाएगा।

अनुवादित

हस्तांतरणकर्ता के विकल्प पर इस तरह के स्थानांतरण को शून्य घोषित करने की शक्ति अधिकरण के पास निहित है। दूसरे शब्दों में, अध्याय V के प्रावधानों को पढ़ने पर, जिला मजिस्ट्रेट को वरिष्ठ नागरिक की संपत्ति से किसी निवासी को बेदखल करने का निर्देश देने की स्पष्ट शक्ति प्रदान नहीं की गई है। इसके विपरीत, एक वरिष्ठ नागरिक जो अपनी संपत्ति के हस्तांतरण के संबंध में घोषणा करना चाहता है, उसे अधिकरण के समक्ष सहारा लेना पड़ता है। सिविल न्यायालय के क्षेत्राधिकार पर रोक लगा दी गई है, जिस पर इस अधिनियम 2007 का कोई भी प्रावधान लागू होता है। किसी भी सिविल न्यायालय द्वारा कोई निषेधाज्ञा नहीं दी जाएगी। [धारा 27/नियम 26]

41. इसके विपरीत, राज्य सरकार को वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति की सुरक्षा प्रदान करने के लिए एक व्यापक कार्य योजना निर्धारित करने की शक्ति प्रदान की गई है। [धारा 22 (2)]

42. अध्याय V में यद्यपि संपत्ति और जीवन के संरक्षण का प्रावधान है, जो अन्य बातों के साथ-साथ जीवन को बनाए रखने वाली संपत्ति पर निर्भर है, लेकिन यह राज्य सरकार पर छोड़ दिया गया है कि वह या तो धारा 32 के तहत नियम बनाए या कार्य योजना/नीति निर्धारित करे कि वरिष्ठ नागरिक की संपत्ति की रक्षा कैसे और व्यक्तियों के खिलाफ की जानी है।

43. 'जीवन' शब्द का बहुत व्यापक अर्थ है जिसमें भोजन, स्वास्थ्य, चिकित्सा उपचार, कपड़े, निवास, संपत्ति और गरिमा सहित सभी पहलुओं को शामिल किया गया है, जो जीवन को बनाए रखते हैं और वरिष्ठ नागरिक की जरूरतों को पूरा करते हैं।

44. इस पृष्ठभूमि में, प्रश्न यह उठता है कि क्या अधिकरण या जिला मजिस्ट्रेट को क्रमशः अध्याय II/V के तहत धारा 9/धारा 22 और अधिनियम 2007 के तहत बनाए गए नियम 2014 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए वरिष्ठ नागरिक के कब्जे वाले परिसर से बच्चों/रिश्तेदारों को बेदखल करने का निर्देश देने की शक्तियां होंगी, और/ या, वरिष्ठ नागरिक की संपत्ति पर कब्जा करने वाले तीसरे पक्ष के खिलाफ।

45. धारा 2 की उप-धारा (एफ) के तहत 'संपत्ति' शब्द को परिभाषित किया गया है, जो इस प्रकार है:

> "'संपत्ति' का अर्थ किसी भी प्रकार की संपत्ति से है, चाहे वह चल या अचल, पैतृक या स्व-अर्जित, मूर्त या अमूर्त हो और ऐसी संपत्ति में अधिकार या हित शामिल हैं।

संपत्ति को बहुत व्यापक रूप से परिभाषित किया गया है, जिला मजिस्ट्रेट को वरिष्ठ नागरिक-मूर्त या अमूर्त की संपत्ति की रक्षा करने के लिए शक्ति और अधिकार प्रदान किया गया है।

46. जबकि, अध्याय II में, 'संपत्ति' शब्द को विधायिका द्वारा नियोजित नहीं किया गया है, बल्कि, 'रखरखाव' शब्द में, 'निवास' के प्रावधान को रखरखाव का हिस्सा होने के लिए शामिल किया गया है। 'निवास' शब्द भी 'संपत्ति' के दायरे में आएगा। दूसरे शब्दों में, एक वरिष्ठ नागरिक / माता-पिता के निवास का अधिकार 'रखरखाव' के साथ-साथ 'संपत्ति' के दायरे में आएगा।

अनुवादित

47. 'संपत्ति' शब्द में आवासीय संपत्ति शामिल होगी, लेकिन जिला मजिस्ट्रेट के पास वरिष्ठ नागरिक के बच्चों के खिलाफ निवास का प्रावधान करने या ऐसी संपत्ति (निवास) से उन्हें बेदखल करने का आदेश देने के लिए रखरखाव का आदेश पारित करने की शक्ति और अधिकार नहीं है। इस तरह की शक्ति अध्याय II के तहत अधिकरण को प्रदान की गई है। दूसरे शब्दों में, अधिनियम 2007 के अध्याय V के तहत जिला मजिस्ट्रेट को वरिष्ठ नागरिक द्वारा रखरखाव के लिए मांगी जा रही आवासीय संपत्ति के अलावा वरिष्ठ नागरिक की संपत्ति की रक्षा करने की शक्ति और अधिकार प्रदान किया गया है। अध्याय V के तहत वरिष्ठ नागरिकों की संपत्ति की सुरक्षा का उपयोग बच्चों / पोते / रिश्तेदार और तीसरे पक्ष के खिलाफ किया जा सकता है, लेकिन निश्चित रूप से वरिष्ठ नागरिक द्वारा अपनी जरूरतों को पूरा करने और सम्मान के साथ सामान्य और सार्थक जीवन जीने के लिए 'रखरखाव' के लिए मांगे गए आवास का प्रावधान शामिल नहीं होगा।

48. आगे विज्ञापन देने से पहले, अधिनियम 2007 की धारा 32 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए राज्य सरकार द्वारा अधिनियमित नियम 2014 के प्रावधानों का उल्लेख करना उचित होगा।

49. नियम 2 का उप-खंड (सी) रक्त-संबंधों को परिभाषित करता है जो इस प्रकार है:

> "एक पुरुष और एक महिला कैदी के संदर्भ में 'रक्त संबंध' का अर्थ चचेरे भाई के अलावा पिता-बेटी, मां-बेटा और भाई-बहन है।

50. इन नियमों में संलग्न अनुसूची में विभिन्न प्रपत्रों का प्रावधान है, जिसमें पीड़ित वरिष्ठ नागरिक द्वारा गुजारा भत्ता के आदेश के लिए अधिनियम 2007 की धारा 5 के तहत अधिकरण के समक्ष प्रस्तुत किए जाने वाले आवेदन के निर्धारित प्रारूप का प्रावधान है। नियम 2014 में अपीलीय अधिकरण के गठन और अपील के स्वरूप सहित संबंधित प्रक्रियाओं का प्रावधान है। प्रत्येक जिले में अपीलीय अधिकरण का गठन किया जाना है।

51. नियम 2014 के अध्याय IV में निर्धन वरिष्ठ नागरिकों के लिए वृद्धाश्रमों के प्रबंधन के लिए योजना प्रदान करने का अधिदेश दिया गया है।

52. तत्काल रिट याचिका के प्रयोजनों के लिए प्रासंगिक अध्याय 5 में जिला मजिस्ट्रेटों के कर्तव्यों और शक्तियों का प्रावधान है। नियम 2014 के नियम 21 का प्रासंगिक भाग निकाला गया है:

> 21. जिला मजिस्ट्रेट के कर्तव्य और शक्ति- (1) जिला मजिस्ट्रेट उप-नियमों (2) और (3) में उल्लिखित कर्तव्यों का पालन करेगा और शक्तियों का प्रयोग करेगा ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि अधिनियम के प्रावधानों को उसके जिले में ठीक से किया जा रहा है।
>
> (2) जिला मजिस्ट्रेट का यह कर्तव्य होगा कि:
>
> > (i) यह सुनिश्चित करना कि जिले के वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति की रक्षा की जाए और वे सुरक्षा और

अनुवादित

सम्मान के साथ रहने में सक्षम हों।

53. नियम 21 के उप-नियम (2) के उप-नियम (i) का अवलोकन करने पर, यह 'संपत्ति' शब्द का उपयोग करता है जो अधिनियम 2007 की धारा 2 के उप-खंड (एफ) के तहत परिभाषित 'संपत्ति' की परिभाषा को संदर्भित करता है। दूसरे शब्दों में, 'निवास' शब्द को नियम 2014 में नियोजित नहीं किया गया है। हालांकि 'संपत्ति' में आवासीय संपत्ति शामिल होगी, लेकिन निश्चित रूप से वरिष्ठ नागरिक द्वारा रखरखाव के लिए मांगे गए आवास को शामिल नहीं किया जाएगा। निवास के प्रावधान में वरिष्ठ नागरिक या उसके बच्चों या रिश्तेदार के स्वामित्व वाली संपत्ति शामिल हो सकती है, जैसा कि वरिष्ठ नागरिक द्वारा रखरखाव का दावा करने वाले अधिकरण के समक्ष स्थापित किया जा सकता है।

54. इसके अलावा, नियम 2014 जिला मजिस्ट्रेट को वरिष्ठ नागरिक के निवास से रहने वालों को बेदखल करने की स्पष्ट शक्ति प्रदान नहीं करता है, हालांकि, यह जिला मजिस्ट्रेट को यह सुनिश्चित करने की शक्ति प्रदान करता है कि वरिष्ठ नागरिक के 'जीवन और संपत्ति' की रक्षा की जाए और वे सम्मान के साथ सुरक्षित रूप से रहने में सक्षम हों।

55. राज्य सरकार ने दिनांक 21 मार्च, 2006 के शासनादेश के तहत अधिनियम 2007 की धारा 22 की उपधारा (2) के अधीन शक्तियों का कथित प्रयोग करते हुए वरिष्ठ नागरिकों के लिए नीति तैयार की है। संबंधित भाग इस प्रकार है:

"विषय: उ.प्र. राज्य वरिष्ठ नागरिक नीति के सम्बन्ध में।

महोदय, उपर्युक्त विषय के सन्दर्भ में यह कहने का निर्देश हुआ है कि प्रदेश के ग्रामीण व शहरी छेत्र के वरिष्ठ नागरिकों की समस्याएं अलग-अलग हैं, यथा - स्वास्थ्य सेवाओं की अनुपलब्धता एवं गिरते स्वास्थ्य के कारण दैनिक कार्यों के साथ-साथ जीविकोपार्जन की समस्या परिवार के अन्य सदस्यों के रोजगार हेतु बाहर चले जाने पर उनके स्वयं की देख-भाल करने की समस्या, अधिक आयु एवं शारीरिक असमर्थता के कारण स्वयं की देख-भाल न कर पाने की स्थिति में किसी अन्य के सहायक न होने की समस्या, अधिक उम्र के कारण सक्रियता एवं गतिशीलता काम होने से एकाकीपन की समस्या इत्यादि। वरिष्ठ नागरिको को विभिन्न सुरक्षा उपायों एवं कार्यक्रमों के माध्यम से प्रदेश के शहरी एवं ग्रामीण छेत्र के वरिष्ठ नागरिकों हेतु मा. मंत्रिपरिषद के आदेश अशासकीय पत्र संख्या-४/२/३/२०१६-सी.एक्स.(१), दिनांक १४ मार्च, २०१६ के क्रम में "उ.प्र. राज्य वरिष्ठ नागरिक नीति निम्नवत बनायीं जाती हैं-

१. उत्तर प्रदेश राज्य वरिष्ठ नागरिक नीति के उद्देश्य निम्नवत होंगे -

- प्रदेश के वरिष्ठ नागरिकों की आर्थिक सुरक्षा की उचित एवं प्रभावी व्यस्था सुनिश्चित करना।
- प्रदेश के वरिष्ठ नागरिकों की आर्थिक सुरक्षा, आवासीय सुविधा, उनके समग्र कल्याण तथा उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु यथावश्यक सहयोग की व्यवस्था सुनिश्चित करना। "

अनुवादित

- दुर्व्यवहार एवं शोषण से उनकी रक्षा की व्यवस्था सुनिश्चित करना। "

56. 'जीवन और संपत्ति की सुरक्षा' के संबंध में नीति का अनुच्छेद 2.4 इस प्रकार है:
"वरिष्ठ नागरिकों को जीवन एवं संपत्ति का भय प्राय: तीन तरह के व्यक्तियों यथा - स्वयं के परिवार से, सेवकारों से तथा अपराधीगण से होता है। संपत्ति की चाह में परिवारीगण से होता है। संपत्ति की चाह में परिवारीगण से, अकेले रहने की दशा में घरेलू नौकरों से एवं सुनसान अकेले घरों में रहने के कारण घूमने वाले अपराधियों से वरिष्ठ नागरिक आसानी से शिकार हो जाते है। अतः समाज के उक्त श्रेणी के लोगों से वरिष्ठ नागरिक आसानी से शिकार हो जाते हैं। अतः समाज के उक्त श्रेणी के लोगों से वरिष्ठ नागरिक एवं उनकी संपत्ति की सुरक्षा किया जाना आवश्यक है। सड़क दुर्घटना भी वरिष्ठ नागरिक के लिए घातक है तथा इससे भी बद्धजनो की सुरक्षा की जानी आवश्यक है। वरिष्ठ नागरिकों के जीवन एवं संपत्ति की सुरक्षा हेतु कदम उठाये जायेंगे। "

57. अधिकांश वरिष्ठ नागरिक अपने माता-पिता के साथ रहते हैं। उन्हें विरासत या संपत्ति के विभाजन को लेकर टकराव का सामना करना पड़ता है। बुजुर्गों पर अपनी संपत्ति बेचने या अपने बेटों को स्वामित्व हस्तांतरित करने का तीव्र दबाव होता है और यदि वे झुकते हैं तो उन्हें विभिन्न प्रकार के दुर्व्यवहार का सामना करना पड़ता है। वरिष्ठ नागरिकों को पड़ोसियों से उत्पीड़न और धमकी, संपत्ति के अतिक्रमण आदि का सामना करना पड़ता है।

58. यदि नियम 2014 की धारा 2 के उपखंड (एफ) के तहत परिभाषित एक वरिष्ठ नागरिक की संपत्ति को किसी व्यक्ति से खतरा है, तो जिला मजिस्ट्रेट को वरिष्ठ नागरिक के जीवन और संपत्ति की रक्षा करने की शक्ति प्रदान की गई है।

59. संपत्ति मूर्त वस्तुएं हो सकती हैं, जैसे, घर, कार या उपकरण या यह अमूर्त वस्तुओं को संदर्भित कर सकता है जो भविष्य के मूल्य का वादा करते हैं, जैसे कि स्टॉक और बॉन्ड प्रमाण पत्र। बौद्धिक संपदा लोगो, डिजाइन और पेटेंट जैसे विचार को संदर्भित करती है।

60. अध्याय V, विशेष रूप से, धारा 22, नियम 21 (2) (i) और राज्य सरकार द्वारा बनाई गई सरकारी कार्य योजना/नीति के साथ, यह जिला मजिस्ट्रेट/जिला पुलिस अधिकारियों को वरिष्ठ नागरिक की संपत्ति की रक्षा करने के लिए अधिदेशित और निर्देशित करता है। बेदखली की शक्ति और अधिकार के बिना संपत्ति का संरक्षण इस प्रावधान को अर्थहीन बना देगा। संपत्ति की सुरक्षा में निश्चित रूप से रहने वाले को बेदखल करने और वरिष्ठ नागरिक को संपत्ति की बहाली का आदेश देने की शक्ति शामिल होगी।

61. इसके बाद सवाल यह उठता है कि किस तरह की संपत्ति और किसके खिलाफ। किसी भी प्रकार की संपत्ति [धारा 2 (एफ)] जो वरिष्ठ नागरिक द्वारा रिश्तेदारों, परिवार के सदस्य, सहायकों, सेवा प्रदाताओं या असामाजिक / अपराधियों से कब्जे या बेदखली की धमकी है। परिवार के सदस्यों में वरिष्ठ नागरिकों के बच्चे शामिल होंगे। रखरखाव (निवास) के तहत कवर की गई संपत्ति के अलावा ऐसी संपत्ति के संबंध

अनुवादित

में वरिष्ठ नागरिक को सुरक्षा के लिए जिला मजिस्ट्रेट से संपर्क करना होगा।

62. दूसरे शब्दों में, 'संपत्ति' शब्द में निवास के प्रावधान के लिए अधिकरण के समक्ष 'रखरखाव' के लिए वरिष्ठ नागरिक द्वारा दावा की गई संपत्ति शामिल नहीं होगी। तदनुसार, एक वरिष्ठ नागरिक मौद्रिक रखरखाव के अलावा, अर्थात, अपने बच्चों के बहिष्कार के लिए केवल निवास स्थान और उसके कब्जे में या अन्यथा स्वामित्व वाली संपत्ति के रिश्तेदार, ऐसी संपत्ति (निवास) का उपाय अधिकरण के समक्ष होगा।

63. इस पृष्ठभूमि में, यह इस प्रकार है कि 'जीवन और संपत्ति' का संरक्षण जिला मजिस्ट्रेट को वरिष्ठ नागरिक की संपत्ति से बच्चों/ रिश्तेदार या तीसरे पक्ष सहित संपत्ति के अनधिकृत कब्जेदार को बेदखल करने की अंतर्निहित शक्ति प्रदान करेगा। हालांकि, केवल अधिकरण के पास ही किसी वरिष्ठ नागरिक/माता-पिता की संपत्ति से बेदखली का आदेश देने की शक्ति होगी, जिसमें निवास के प्रति भरण-पोषण का दावा करने वाले आवेदन पर उसके बच्चों/पोते-पोतियों को बाहर रखा जाएगा।

64. अधिकरण के समक्ष आवेदन (फॉर्म ए) करते समय वरिष्ठ नागरिक अपनी आवश्यकता के लिए केवल निवास के रूप में रखरखाव का दावा कर सकता है ताकि वह एक सामान्य और शांतिपूर्ण जीवन जी सके, भले ही उसके बच्चे / रिश्तेदार वरिष्ठ नागरिक को उत्पीड़न के अधीन कर रहे हों या नहीं। उत्पीड़न की दलील निवास के प्रावधान के लिए रखरखाव के आदेश के लिए आवेदन को बनाए रखने के लिए एक शर्त नहीं है। यदि अधिकरण वरिष्ठ नागरिक के दावे से संतुष्ट है, तो यह निवास के लिए रखरखाव का आदेश देगा, जिसमें आवश्यक रूप से रखरखाव आदेश के परिणामस्वरूप निवास के निवासी को बेदखल करना शामिल होगा। [नियम 14] दूसरे शब्दों में, अधिकरण एक वरिष्ठ नागरिक द्वारा निवास के रखरखाव की मांग करने वाले आवेदन पर शक्तियों का प्रयोग करते समय, निवास के प्रावधान के लिए रखरखाव का आदेश देते समय, परिणामस्वरूप रहने वालों यानी बच्चों/ रिश्तेदारों को बेदखल करने का निर्देश दे सकता है, लेकिन नाबालिग बच्चों के खिलाफ नहीं। बेदखली के परिणामी आदेश को पारित किए बिना रखरखाव के लिए निवास का आदेश अधिकरण की शक्ति और अधिकार को अर्थहीन बना देगा।

65. यह इस प्रकार है कि अधिकरण के पास रखरखाव के लिए मांगी गई केवल एक विशेष प्रकार की संपत्ति (निवास) से निपटने की शक्ति है, लेकिन वरिष्ठ नागरिक की किसी अन्य प्रकार की संपत्ति पर निर्णय लेने की शक्तियों का अभाव है। अध्याय V के तहत जिला मजिस्ट्रेट के पास ऐसी शक्ति निहित है कि वह किसी भी व्यक्ति, यानी बच्चों/ रिश्तेदार या तीसरे पक्ष के खिलाफ किसी भी प्रकार की चल या अचल, मूर्त या अमूर्त संपत्ति की रक्षा कर सकता है, लेकिन इसमें वरिष्ठ नागरिक द्वारा अपने बच्चों / रिश्तेदारों से रखरखाव के लिए निवास के लिए मांगी गई संपत्ति शामिल नहीं होगी। कोई अन्य व्याख्या जिला मजिस्ट्रेट को भरण-पोषण के प्रावधान के लिए वरिष्ठ नागरिक द्वारा मांगी गई संपत्ति से निपटने और निर्णय लेने की शक्ति प्रदान करेगी, केवल इस कारण से कि बेदखली की

अनावरित

शक्ति को विशेष रूप से वरिष्ठ नागरिक की संपत्ति की 'सुरक्षा' अभिव्यक्ति में पढ़ा जाना चाहिए। केवल वरिष्ठ नागरिकों के रखरखाव के लिए आवश्यक संपत्ति के मुद्दे पर निर्णय लेते समय अधिकरण के पास सीमित शक्ति है।

66. भरण-पोषण के लिए वरिष्ठ नागरिक या माता-पिता द्वारा अधिकरण से संपर्क किया जा सकता है, जैसा भी मामला हो। जबकि, वरिष्ठ नागरिक अकेले अधिकरण के समक्ष कार्यवाही में शामिल संपत्ति (निवास) के अलावा किसी भी प्रकार के अपने जीवन और संपत्ति की सुरक्षा के लिए जिला मजिस्ट्रेट से संपर्क कर सकते हैं।

67. अधिनियम 2007 के अनुसार, एक वरिष्ठ नागरिक जो अपने बच्चों द्वारा दुर्व्यवहार का शिकार होता है, उसे अपने बच्चों / रिश्तेदार को अपने आवासीय घर से बेदखल करने का अधिकार है। अधिक से अधिक, बच्चे एक लाइसेंसधारी की स्थिति रखते हैं। लाइसेंस उस क्षण समाप्त हो जाता है जब वरिष्ठ नागरिक अपने बच्चों को संपत्ति (घर) छोड़ने के लिए कहता है। दूसरे शब्दों में, बच्चों को एक वरिष्ठ नागरिक के स्वामित्व वाले आवासीय घर पर कानूनी दावा नहीं है। यह तर्क देना उचित होगा कि वरिष्ठ नागरिक को अपने बच्चों को बेदखल करने का अधिकार है, भले ही उन्होंने उसके साथ अनुचित व्यवहार न किया हो।

68. निष्कर्ष:

(i) नियम 2014 के साथ पढ़े गए अधिनियम, 2007 के अध्याय II और अध्याय V विभिन्न क्षेत्रों में और अन्य बातों के साथ-साथ वरिष्ठ नागरिक की संपत्ति से संबंधित विभिन्न प्रयोजनों के लिए कार्य करते हैं।

(ii) अध्याय II अधिकरण द्वारा पारित किए जाने वाले भरण-पोषण के आदेश तक ही सीमित है, जिसमें बच्चों/रिश्तेदारों के विरुद्ध वरिष्ठ नागरिक या माता-पिता के लिए निवास का प्रावधान शामिल है, लेकिन नाबालिग बच्चों या तीसरे पक्ष के विरुद्ध नहीं।

(iii) अधिनियम, 2007 के अध्याय-II के साथ-साथ नियम, 2014 के अंतर्गत अधिकरण के पास अन्य बातों के साथ-साथ बच्चों/संबंधियों के विरुद्ध आवास के प्रावधान के संबंध में भरण-पोषण का आदेश देने का एकमात्र क्षेत्राधिकार है। वरिष्ठ नागरिक, अधिकरण द्वारा रखरखाव (निवास) के लिए मांगे गए परिसर/ संपत्ति के पास केवल अधिकार क्षेत्र होगा। निवास के संबंध में भरण-पोषण के आवेदन को अनुमति देते हुए अधिकरण वरिष्ठ नागरिक के बच्चों/रिश्तेदारों के विरुद्ध उक्त आवासीय संपत्ति से बेदखली का आदेश दे सकता है।

(iv) अध्याय V केवल वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति की सुरक्षा तक ही सीमित है। संपत्ति की सुरक्षा में मूर्त संपत्ति से रहने वाले को बेदखल करना भी शामिल होगा। यह शक्ति जिला मजिस्ट्रेट को प्रदान की जाती है। रहने वाला बच्चे / रिश्तेदार या तीसरा पक्ष हो सकता है।

(v) तथापि, अध्याय V के अधीन जिला मजिस्ट्रेट के पास संपत्ति के संबंध में क्षेत्राधिकार का अभाव होगा, अर्थात् निवास के प्रावधान के लिए भरण-पोषण, ऐसी संपत्ति से बच्चों/संबंधियों को बेदखल करने का आदेश देना। हालांकि, जिला मजिस्ट्रेट के पास वरिष्ठ नागरिक की किसी अन्य प्रकार की संपत्ति के

अनुवादित

संबंध में शक्ति होगी, जिसमें उसे बेदखल करने का आदेश भी शामिल है।

(vi) वरिष्ठ नागरिक की रिश्तेदार होने के नाते बहू को सामान्य जीवन जीने के लिए अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वरिष्ठ नागरिक द्वारा भरण-पोषण के लिए मांगे गए आवास से बेदखल किया जा सकता है। लेकिन अधिकरण द्वारा बेदखली का ऐसा आदेश घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम 2005 के तहत साझा परिवार के संबंध में सक्षम मजिस्ट्रेट/सिविल कोर्ट द्वारा पारित आदेश के अधीन है। वरिष्ठ नागरिक और बहू के हित को अधिकरण द्वारा उनकी प्रतिस्पर्धी जरूरतों के संबंध में समायोजित करना होगा। बहू को वरिष्ठ नागरिक के कब्जे या स्वामित्व में 'साझा घर' से बेदखल नहीं किया जा सकता है, हालांकि, अधिकरण द्वारा उपयुक्त समायोजन किया जा सकता है।

69. ऊपर दिए गए कानून के मद्देनजर, अभिषेक तिवारी (पूर्व) और खुशबू शुक्ला (पूर्व), को खारिज किया जाता है। किसी अन्य मामले में दिया गया निर्णय जो ऊपर उल्लिखित कानून के विपरीत है, उसे भी खारिज कर दिया जाएगा।

70. मामले के तथ्यों पर वापस लौटते हुए, याचिकाकर्ता, चौथे प्रतिवादी की बहू को चौथे प्रतिवादी द्वारा रखरखाव के लिए मांगे गए परिसर से बेदखल करने का निर्देश दिया गया है। याचिकाकर्ता ने स्वीकार किया है कि उसने घरेलू हिंसा अधिनियम के तहत कोई सहारा नहीं लिया है। वह विचाराधीन संपत्ति के पूर्ण स्वामित्व और स्वामित्व का दावा करती है और साझा घर का दावा नहीं करती है।

71. अधिकरण, अधिनियम 2007 के तहत, धारा 2 (बी) के तहत परिकल्पित रखरखाव के ऐसे उपाय प्रदान कर सकता है, लेकिन इसके परिणामस्वरूप अन्य मूर्तियों के तहत प्रतिस्पर्धी उपचार को समाप्त नहीं किया जाएगा।

72. वर्तमान रिट याचिका के तथ्यों में, याचिकाकर्ता अपने पति से विरासत में मिली संपत्ति का मालिक होने का दावा करता है। आरोप है कि घर का स्वामित्व और निर्माण उसके मृत पति द्वारा किया गया था। 2021 के वाद संख्या 181 में चौथे प्रतिवादी ने संपत्ति का एक-चौथाई हिस्सा सह-मालिक होने का दावा किया है। आरोप है कि याचिकाकर्ता पूरी संपत्ति किसी तीसरे पक्ष को बेचना चाहता है। याचिकाकर्ता द्वारा दायर मुकदमे में याचिकाकर्ता द्वारा एक विपरीत दावा किया गया है।

73. इन परिस्थितियों में, दूसरे प्रतिवादी-जिला मजिस्ट्रेट, जिला एटा ने याचिकाकर्ता को पूरी संपत्ति से बेदखल करने का निर्देश देते हुए एक त्रुटि की। तदनुसार, याचिकाकर्ता को संपत्ति के तीन-चौथाई हिस्से से बेदखल नहीं किया जा सकता था, जो कि चौथे प्रतिवादी के मामले के अनुसार, सिविल कोर्ट के समक्ष, यह है कि याचिकाकर्ता संपत्ति का सह-मालिक है।

74. अधिनियम 2007 के तहत अधिकरण के समक्ष एक वरिष्ठ नागरिक द्वारा कार्यवाही को बहू या उस कब्जेदार को बेदखल करने का आधार नहीं बनाया जा सकता है, जिसके पास उस संपत्ति में अधिकार और शीर्षक है जो रखरखाव का विषय है।

75. तदनुसार, रिट याचिका की अनुमति दी जाती है।

अनुवादित

76. जिला मजिस्ट्रेट, जिला एटा द्वारा पारित दिनांक 06 अप्रैल 2023 के आक्षेपित आदेश को निरस्त किया जाता है और रद्द किया जाता है।

77. यह प्रावधान किया गया है कि याचिकाकर्ता अपनी दो बेटियों के साथ तीन-चौथाई हिस्से पर विवाद में संपत्ति में रहना जारी रखेगी और चौथे प्रतिवादी के पास संपत्ति के एक-चौथाई हिस्से का अधिकार और पहुंच होगी।

78. सिविल मुकदमे के लंबित रहने के दौरान विवाद में संपत्ति में तीसरे पक्ष के अधिकार और हित बनाने से मुकाबला करने वाले पक्ष संयम बरत रहे हैं।

79. सिविल वाद या उसमें पारित किसी भी आदेश में निर्णय के बाद, वाद संपत्ति के शीर्षक और स्वामित्व को दर्शाते हुए, उस घटना में, चौथा प्रतिवादी निवास के प्रावधान की दिशा में एक नया आदेश प्राप्त करने के लिए अधिकरण से संपर्क कर सकता है।

80. कोई लागत नहीं।

(2023) 6 ILRA 685

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 19.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल

रिट-सी संख्या 17072/2023

दया शंकर **याचिकाकर्ता**

बनाम

यू.पी. राज्य और अन्य **प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री कीर्त राज यादव, श्री अभिनव जायसवाल

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी., श्री रामेश्वर प्रसाद शुक्ला

सिविल कानून - यू.पी. राजस्व संहिता, 2006 - यू.पी. राजस्व संहिता, 2016- याचिकाकर्ता राजस्व संहिता, 2006 की धारा 116 के तहत मामले की कार्यवाही में तेजी लाने के लिए निर्देश चाहता है-कुछ कार्यवाहियों के लिए-विधानमंडल ने संहिता, 2006 के तहत या नियम, 2016 में समयबद्ध निपटान प्रदान किया है-विधानमंडल द्वारा कोई समय सीमा तय नहीं की गई है-राजस्व अधिकारी को उन्हें कुछ तरीकों से तय करने के निर्देश दिए गए हैं-एसटी ने लंबित समस्या के समाधान के लिए संहिता, 2006 की धारा 13 (6) के तहत उप-विभागीय मजिस्ट्रेट (न्यायिक) और धारा 14 (1) के तहत तहसीलदार (न्यायिक) के पदों को भरने का निर्देश दिया।

डब्ल्यू.पी. का निपटारा किया गया। (ई-9)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. अयोध्या सहाय बनाम जिला न्यायाधीश, जौनपुर एवं अन्य, (1997) 3 यूपीएलबीईसी 1677

2. अनुच्छेद 227 संख्या 2616/2012 के अंतर्गत मामले (राज कुमार देवी एवं अन्य बनाम सिविल न्यायाधीश (जे.डी.) एवं अन्य)

(माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल द्वारा दिया गया)

1. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता, श्री अभिनव जयसवाल, प्रतिवादी संख्या 3 की

अनुवादित

ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री रामेश्वर प्रसाद और राज्य प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

2. वर्तमान याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता वाद संख्या 03108/2020 (दया शंकर बनाम तिलकधारी और अन्य); उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 (इसके बाद 'संहिता 2006', के रूप में संदर्भित) की धारा-116 के तहत दायर कम्प्यूटरीकृत वाद संख्या टी- 202015060303108, प्रत्यर्थी संख्या 2 के समक्ष लंबित कार्यवाही तय करने के लिए निर्देश देने की मांग कर रहा है।

3. इस न्यायालय ने पाया कि राजस्व न्यायालय/प्राधिकरण के समक्ष लंबित कार्यवाही में तेजी लाने के निर्देश मांगने के लिए इस न्यायालय में बड़ी संख्या में याचिकाएं दायर की जा रही हैं।

4. इसी न्यायालय की खण्डपीठ ने अयोध्या सहाय बनाम जिला न्यायधीश, जौनपुर एवं अन्य, (1997) 3 यूपीएलबीईसी 1677 मामले में इसी तरह के मुद्दे पर विचार करने के बाद और सी.पी.सी. और साथ ही साथ सी.आर.पी.सी. के प्रावधान को ध्यान में रखते हुए देखा है कि सभी मुकदमों, आपराधिक मुकदमों और अन्य प्रकार के मामलों का निर्णय एक समयबद्ध कार्यक्रम के आधार पर किया जाना चाहिए और प्रत्येक मामले के लिए न्यायालय द्वारा निर्धारित समयबद्ध कार्यक्रम के आधार पर मुकदमों, आपराधिक मुकदमों, श्रम विवादों, किराया नियंत्रण मामलों और अन्य मामलों का निर्णय करने के लिए राज्य शुक्ला की ओर से प्रस्तुत विद्वान अधिवक्ता, के सभी अधीनस्थ न्यायालयों को पैराग्राफ -12 में दिए गए सामान्य परमादेश को भी जारी किया जाना चाहिए। पैराग्राफ -12 को नीचे उद्धृत किया जा रहा है:-

"12. हम इस राज्य में सभी अधीनस्थ न्यायालयों और न्यायाधिकरणों को प्रत्येक मामले के लिए न्यायालय द्वारा निर्धारित समयबद्ध कार्यक्रम के आधार पर और आमतौर पर मुकदमों, आपराधिक मुकदमों, श्रम विवादों, किराया नियंत्रण मामलों और अन्य मामलों का निर्णय करने के लिए और आमतौर पर दिन-प्रतिदिन की सुनवाई के लिए एक सामान्य परमादेश भी जारी करते हैं। पक्षों को समय-सारणी से विचलित होने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए और न्यायालय को आदेश XVII नियम 1 (2) सी.पी.सी. में उल्लिखित दुर्लभ और असाधारण आधारों को छोड़कर पक्षों के अधिवक्ताओं द्वारा मांगे गए स्थगन को अस्वीकार कर देना चाहिए। इस निर्णय की प्रति प्राप्त होने पर प्रत्येक न्यायालय या न्यायाधिकरण पक्षों की उपस्थिति में प्रत्येक मामले के अंतिम निपटान के लिए एक समय-सारिणी तय करेगा, और विद्वान अधिवक्ता को सूचित किया जाएगा कि उन्हें निर्धारित समय-सारणी से विचलित होने की अनुमति नहीं दी जाएगी। इस निर्णय की प्राप्ति के बाद अगली तारीख से प्रयोग करना शुरू होना चाहिए। विद्वान जिला न्यायाधीश और अन्य पीठासीन अधिकारी इस आदेश में निहित निर्देशों के कड़ाई से अनुपालन के लिए व्यक्तिगत रूप से जिम्मेदार होंगे।"

अनुवादित

5. इसी प्रकार, अनुच्छेद 227 के तहत वर्ष 2012 के संख्या 2616 (राज कुमार देवी और अन्य बनाम सिविल जज (जे.डी.) और अन्य के मामलों में इस न्यायालय की एकल पीठ ने अयोध्या सहाय (उपरोक्त) के उपरोक्त निर्णय को ध्यान में रखते हुए फिर से 10.12.2022 को निर्देश जारी किया कि याचिकाकर्ता को सम्बंधित न्यायालय में शीघ्र निपटान के लिए एक आवेदन करने की अनुमति दी जाए और न्यायालय को इस मामले को अयोध्या सहाय (उपरोक्त मामले के सामान्य परमादेश के आलोक में देखने का निर्देश दिया जाए और उसका निपटान करें।

6. वर्तमान में विद्यमान संहिता, 2006 की धारा 214, जो 11.02.2016 को लागू हुई, यह प्रावधान करती है कि जब तक संहिता, 2006 के तहत अन्यथा स्पष्ट रूप से प्रदान नहीं किया जाता है, सी.पी.सी. का प्रावधान इस संहिता के तहत प्रत्येक वाद, आवेदन या कार्यवाही पर लागू होगा, और तत्पश्चात् उ.प्र. राजस्व संहिता नियमावली, 2016 (एतिस्मिनपश्चात् 'नियमावली, 2016' के रूप में संदर्भित) का नियम 186 संहिता की धारा 214 को स्पष्ट करता है और आदेश देता है कि संहिता या इस नियमावली के तहत संक्षिप्त कार्यवाही पर सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का प्रावधान लागू नहीं होगा लेकिन सिविल प्रक्रिया संहिता में निहित सिद्धांत और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का ऐसी कार्यवाहियों के निस्तारण में विचार किया जाएगा। अतः संहिता, 2006 की धारा 214 तथा नियमावली, 2016 के नियम 186 से यह स्पष्ट है कि संक्षिप्त कार्यवाही में भी सिविल प्रक्रिया संहिता का सिद्धांत लागू होगा।

7. सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XVII नियम 1 (2) का परंतुक भी मामलों के शीघ्र निपटान का प्रावधान करता है और इसे निम्नानुसार उद्धृत किया गया है: -

"स्थगन के ख़र्चे - न्यायालय ऐसे प्रत्येक मामले में वाद की आगे की सुनवाई के लिए दिन नियत करेगा, और [ऐसे स्थगन के कारण हुए ख़र्चे या ऐसे उच्चतर ख़र्चे के सम्बंधित जिन्हें न्यायालय उचित समझे, ऐसे आदेश करेगा] : [परंतु, -

(क) यदि वाद की सुनवाई प्रारम्भ हो गई है तो जब तक न्यायालय उन असाधारण कारणों से जो उसके द्वारा लेखबध्द किए जाएंगे सुनवाई का स्थगन अगले दिन से परे के लिए करना आवश्यक न समझे, वाद की सुनवाई दिन-प्रतिदिन तब तक जारी रहेगी जब तक सभी उपस्थित साक्षियों की परीक्षा न कर ली जाये।

(ख) किसी पक्षकार के अनुरोध पर कोई भी स्थगन ऐसी परिस्तिथियों को छोड़कर जो उस पक्षकार के नियंत्रण से बाहर हों, मंजूर नहीं किया जाएगा,

(ग) यह तथ्य स्थगन के लिए आधार नहीं माना जाएगा कि किसी पक्षकार का अधिवक्ता दूसरे न्यायालय में व्यस्त है,

(घ) जहां एक प्लीडर की रुग्णता या दूसरे न्यायालय में उसके व्यस्त होने से भिन्न कारण से, मुक़दमे का संचालन करने में उसकी असमर्थता को स्थगन के लिए एक आधार के रूप में पेश किया जाता है, वहां न्यायालय तब तक स्थगन मंजूर नहीं करेगा जब तक यह समाधान नहीं हो जाता है कि ऐसे स्थगन के लिए आवेदन करने वाला पक्षकार समय पर दूसरा प्लीडर मुकर्रर नहीं कर सकता था,

अधिवक्ता

(ङ) जहां कोई साक्षी न्यायालय में उपस्थित है, किन्तु कोई पक्षकार या उसका प्लीडर उपस्थित नहीं है अथवा पक्षकार या प्लीडर न्यायालय में उपस्थित होने पर भी किसी साक्षी की परीक्षा या प्रतिपरीक्षा करने के लिए तैयार नहीं है वहां न्यायालय, यदि वह ठीक समझे तो, साक्षी का कथन अभिलिखित कर सकेगा और, यथास्थिति, पक्षकार या उसके प्लीडर द्वारा जो उपस्थित न हो अथवा पूर्वोक्त रूप में तैयार न हो, साक्षी की मुख्य परीक्षा या प्रतिपरीक्षा करने को अभिमुक्त करते हुए ऐसे आदेश पारित कर सकेगा जो वह ठीक समझे।]"

8. उपरोक्त उद्धृत प्रावधान से, यह भी स्पष्ट है कि संहिता, 2006 के तहत वाद या अन्य कार्यवाही को शीघ्रता से निर्णीत करने के लिए नागरिक प्रक्रिया संहिता के तहत विशिष्ट आदेश है।

9. संपूर्ण संहिता, 2006 तथा उसके तहत बनाए गए नियमावली, 2016 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि कानून स्वयं ही अधिकांश कार्यवाहियों के लिए समयबद्ध निस्तारण का प्रावधान करता है, फिर भी, संहिता, 2006 के तहत कार्यवाही पर निर्णय समयबद्ध तरीके से नहीं लिया जा रहा है जैसा कि विधायिका द्वारा निर्देशित है और यह वादकारियों में निराशा का कारण बन रहा है, जिनमें से अधिकांश गरीब किसान हैं, जिन्हें उन विशिष्ट दिनों के लिए अपनी खेती छोड़ने के रूप में कीमत चुका कर तहसील, कलक्ट्रेट और कमिश्नरी में कार्यवाही में भाग लेने के लिए अपना समय बर्बाद करना पड़ता है।

10. संहिता के तहत कार्यवाही के निपटान में देरी के लिए न केवल पीठासीन अधिकारी बल्कि स्थानीय बार भी जिम्मेदार है जो छोटे-छोटे मुद्दों पर हड़ताल पर रहता है, हालांकि यह न तो बार के सदस्यों के हित में है और न ही वादी (किसान) के हित में है और इस लम्बितता के परिणामस्वरूप निचले स्तर पर भ्रष्टाचार के लिए जगह भी बनती है। इसलिए, समयसीमा तय करना और संबंधित अधिकारियों को लम्बित मुकदमों, आवेदनों और पुनरीक्षणों को समयबद्ध तरीके से निपटाने का निर्देश देना उचित होगा।

11. अधिकांश रिट याचिकाएं सीमाओं के विवाद (धारा 24), रास्ते और अन्य सुख सुविधाओं का अधिकार (धारा 25), सार्वजनिक सड़क, पथ, भूमि से बाधा हटाना (धारा 26) उत्परिवर्तन कार्यवाही (धारा 35), रिकॉर्ड में सुधार (धारा 38), सार्वजनिक सड़कों, गलियों, पेड़ों जैसी संपत्ति से संबंधित विवाद (धारा 58), किसी अनधिकृत व्यक्ति से आवंटित भूमि का कब्जा दिलाने के लिए आवेदन (धारा 65), आबादी स्थलों के अवैध आवंटन को रद्द करने के लिए आवेदन (धारा 66), ग्राम पंचायत की संपत्ति के नुकसान, दुरुपयोग और गलत कब्जे को रोकने के लिए कार्यवाही (धारा 67), अनुसूचित जाति की भूमि को हस्तांतरित करने की अनुमति के लिए धारा 98 के तहत आवेदन, जोत के विभाजन के लिए मुकदमा (धारा 116), धारा-116 के अंतर्गत पारित अंतिम डिक्री के निष्पादन हेतु आवेदन (मौके पर कुर्रा का सीमांकन कर), निरस्तीकरण हेतु कार्यवाही कृषि भूमि के अनियमित आवंटन (धारा 128) भूमिधर / आसामी घोषित करने का वाद (धारा 144) से उत्पन्न होने वाली

अनुवादित

कार्यवाही के शीघ्र निपटान के लिए उच्च न्यायालय में दायर की जा रही हैं।

12. ऊपर उल्लिखित कार्यवाही के लिए, विधायिका ने कुछ कार्यवाही के लिए समयबद्ध निपटान प्रदान किया है, लेकिन संहिता, 2006 द्वारा निर्धारित विशिष्ट समय के बावजूद कई कारणों से कार्यवाही का निर्णय नहीं लिया जा सका और अधिकांश मामलों में पीठासीन अधिकारियों की लापरवाही के कारण या पर्याप्त संख्या में पीठासीन अधिकारियों की अनुपस्थिति के साथ-साथ तहसील या कलक्ट्रेट में बार की लगातार हड़ताल के कारण निर्णय नहीं लिया जा सका। संहिता, 2006 के निम्नलिखित प्रावधान कार्यवाही पर निर्णय लेने के लिए एक विशिष्ट समय प्रदान करते हैं:

(i) उप-विभागीय अधिकारी द्वारा सीमाओं के सम्बंधित में विवाद को संहिता, 2006 की धारा 24 (3) के अनुसार आवेदन की तारीख से तीन महीने के भीतर तय किया जाना है, जो नीचे उद्धृत किया गया है: - " "24(3) इस धारा के तहत प्रत्येक कार्यवाही, जहां तक संभव हो, आवेदन की तारीख से तीन महीने के भीतर उप-विभागीय अधिकारी द्वारा समाप्त की जाएगी।"

(ii) संहिता, 2006 की धारा 35 के तहत उत्परिवर्तन कार्यवाही का निर्णय 45 दिनों के भीतर किया जाना है यदि उत्परिवर्तन निर्विवाद है और यदि उत्परिवर्तन विवादित है तो 90 दिनों के भीतर नियमावली, 2016 के नियम 34 (7) के अनुसार निर्णय लिया जाना है, जो नीचे उद्धृत किया गया है: -

"34(7) तहसीलदार मामले के पंजीकरण की तारीख से 45 दिनों की अवधि के भीतर उत्परिवर्तन के अविवादित मामले और 90 दिनों की अवधि के भीतर उत्परिवर्तन के विवादित मामले का निर्णय करने का प्रयास करेगा और यदि ऐसी अवधि के भीतर कार्यवाही निष्कर्षित नहीं की जाती तो उसका कारण दर्ज किया जाएगा"

(iii) संहिता, 2006 की धारा 38 के अनुसार अभिलेख में सुधार हेतु कार्यवाही नियमावली 2016 के नियम 36 (6) के अनुसार रिपोर्ट के साथ आवेदन प्राप्त होने की तारीख से 45 दिनों के भीतर निर्णय लिया जाना है, जो नीचे उद्धृत किया गया है: -

"36(6) रिपोर्ट के साथ आवेदन प्राप्त होने की तारीख से 45 दिनों की अवधि के भीतर धारा 38 के तहत सुधार के लिए कार्यवाही समाप्त करने का प्रयास किया जाएगा और यदि कार्यवाही इतनी अवधि के भीतर समाप्त नहीं होती है तो इसके कारण अभिलिखित किए जाएंगे।

(iv) धारा 66 के अंतर्गत आबादी क्षेत्र के अनियमित आवंटन को रद्द करने के आवेदन पर 2016 के नियम 65 (10) के अनुसार 6 माह के भीतर निर्णय लिया जाना चाहिए, जो नीचे उद्धृत किया गया है:-

"65(10). कलेक्टर वाद के पंजीकरण की दिनांक से 6 माह से अधिक की अवधि के भीतर जांच समाप्त करने का प्रयास करेगा और यदि उपरोक्त अवधि के भीतर जांच समाप्त नहीं होती है तो उसका कारण दर्ज किया जाएगा।

(v) धारा 67 के अंतर्गत ग्राम सभा की संपत्ति पर गलत कब्जे और क्षति को रोकने के लिए कार्यवाही, 2016 के नियम 67 (6) के अनुसार 90 दिनों की अवधि के भीतर निर्णीत किया

अनुवादित

जाना है, जिसे निम्नानुसार उद्धृत किया गया है: -

"67(6). सहायक कलेक्टर कारण बताओ नोटिस जारी होने की दिनांक से 90 दिवस की अवधि के भीतर संहिता की धारा 67 के अंतर्गत कार्यवाही समाप्त करने का प्रयास करेगा और यदि कार्यवाही ऐसी अवधि के भीतर समाप्त नहीं होती है तो इसके कारणों को दर्ज किया जाएगा।"

(vi) धारा-98 के अंतर्गत अनुसूचित जाति की भूमि के हस्तांतरण की अनुमति देने की कार्यवाही नियम 99 (11) के अनुसार 15 दिवस की अवधि के भीतर पूर्ण की जानी चाहिए और जिसे निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:

"99(11). कलेक्टर जांच अधिकारी द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट प्राप्त होने की दिनांक से 15 दिवस की अवधि के भीतर धारा 98 (1) के अंतर्गत आवेदन का निपटान करने का प्रयास करेगा और यदि आवेदन का निपटारा ऐसी अवधि के भीतर नहीं किया जाता है तो उसका कारण दर्ज किया जाएगा।"

(vii) 2006, संहिता की धारा 116 के अंतर्गत होल्डिंग का विभाजन, 2016 के नियम 109 (10) के अनुसार 6 महीने की अवधि के भीतर किया जाना है, जिसे निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:

"109(10). उप प्रभागीय अधिकारी 6 माह की अवधि के भीतर मुकदमे का फैसला करने का प्रयास करेगा और यदि ऐसी अवधि के भीतर मुकदमे का फैसला नहीं होता है, तो कारण दर्ज किया जाएगा।"

(viii) धारा 128 के अंतर्गत कृषि भूमि के अनियमित आवंटन को रद्द करने की कार्यवाही, 2016 के नियम 126 (6) के अनुसार 3 महीने की अवधि के भीतर पूरी की जानी चाहिए, जिसे निम्नानुसार उद्धृत की गई है:

"126(6). कलेक्टर नोटिस निर्गत होने की दिनांक से 3 माह की अवधि के भीतर जांच समाप्त करने का प्रयास करेगा और यदि 3 माह की अवधि के भीतर जांच समाप्त नहीं होती है, तो विलम्ब होने के कारणों को दर्ज किया जाएगा।"

13. उपरोक्त कार्यवाही के अलावा जिसके लिए विधायिका द्वारा 2006 की संहिता में विशिष्ट समय सीमा निर्धारित की गई थी या 2016 के नियम में अन्य कार्यवाही हैं, जिनके लिए 2006 की संहिता या 2016 के नियम में कोई समय सीमा तय नहीं की गई है, इसलिए, संबंधित पीठासीन अधिकारी या राजस्व अधिकारी को इन कार्यवाहियों को निम्नलिखित तरीके से निर्णय करने का प्रयास करना चाहिए:

(i) धारा 25 के तहत रास्ते के अधिकार और अन्य सुख सुविधा के लिए प्रार्थना पत्र पर एक महीने की अवधि के भीतर निर्णय लिया जाना चाहिए और यदि यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सका तो इसका कारण दर्ज किया जाना चाहिए ।

(ii) धारा 26 के तहत गांव की सार्वजनिक सड़क, पथ या सामान्य भूमि से बाधा हटाने के लिए प्रार्थना पत्र पर एक महीने की अवधि के

अनावरित

भीतर निर्णय लेने का प्रयास किया जाना चाहिए और यदि इसका निष्कर्ष नहीं निकाला जा सका तो इसका कारण दर्ज किया जाना चाहिए;

(iii) धारा 54, 56 और 57 में उल्लिखित संपत्ति के संबंध में विवाद को निर्णीत करने के लिए धारा 58 के तहत प्रार्थना पत्र का निर्णय प्रार्थना पत्र दाखिल करने की तारीख से अधिमानतः तीन महीने की अवधि के भीतर किया जाना चाहिए और यदि इसका निर्णय नहीं किया जा सका तो इसका कारण दर्ज किया जाना चाहिए;

(iv) अनाधिकृत व्यक्ति से आवंटित भूमि का कब्जा दिलाने के लिए धारा 65 के तहत प्रार्थना पत्र का निर्णय अधिमानतः तीन महीने की अवधि के भीतर किया जाना चाहिए और यदि यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सका तो इसका कारण दर्ज किया जाना चाहिए;

(v) साइट पर कुर्सी के सीमांकन द्वारा संहिता, 2006 की धारा 116 के तहत पारित अंतिम डिक्री के निष्पादन के लिए प्रार्थना पत्र पर एक महीने की अवधि के भीतर निर्णय लिया जाना चाहिए और यदि यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सका तो इसका कारण दर्ज किया जाना चाहिए;

(vi) संहिता, 2006 की धारा-144 के तहत भूमिधर / आसामी घोषित करने के मुकदमे का फैसला छह महीने की अवधि के भीतर किया जाना चाहिए और यदि इसका निष्कर्ष नहीं निकाला जा सका तो इसका कारण दर्ज किया जाना चाहिए;

(vii) संहिता, 2006 के किसी भी प्रावधान के संदर्भ में किसी अन्य प्रार्थना पत्र पर भी संहिता, 2006 या नियम, 2016 द्वारा निर्धारित अवधि के भीतर निर्णय लिया जाना चाहिए, यदि संहिता, 2006 या नियम, 2016 द्वारा कोई समय निर्धारित नहीं है, तो उसका निर्णय एक माह की अवधि के भीतर किया जाना चाहिए और यदि उपरोक्त अवधि के भीतर उस पर निर्णय नहीं लिया जाता है तो कारण दर्ज किया जाना चाहिए।

14. यदि उपरोक्त उल्लिखित कार्यवाही संहिता, 2006 के प्रावधानों के अनुसार अपील योग्य या पुनरीक्षण योग्य है या दूसरी अपील के अधीन है और यदि संहिता, 2006 द्वारा कोई समय निर्धारित नहीं किया गया है, तो इन कार्यवाहियों का निर्णय भी आयुक्त के स्तर पर छह महीने की अवधि के भीतर और राजस्व मंडल द्वारा एक वर्ष की अवधि के भीतर किया जाना चाहिए, और यदि उक्त अवधि के भीतर निर्णय नहीं लिया जाता है, तो उसका कारण दर्ज किया जाना चाहिए।

15. संहिता, 2006 के तहत विभिन्न कार्यवाहियों पर निर्णय लेने के लिए इस न्यायालय द्वारा निर्देशित उपरोक्त अवधि की गणना करते समय, वह तारीख जिस पर बार की हड़ताल हुई थी और साथ ही वे तारीखें जिन पर इस आदेश का लाभ चाहने वाले व्यक्ति ने स्थगन लिया था, को बाहर रखा जाना चाहिए।

16. यदि उपर्युक्त कार्यवाही के दौरान कोई स्टे प्रार्थना पत्र, रिकॉल प्रार्थना पत्र या कोई अन्य प्रकीर्ण प्रार्थना पत्र दाखिल किया जाता है, तो

अनुवादित

उस पर एक महीने की अवधि के भीतर निर्णय लिया जाना चाहिए और यदि उपरोक्त समय के भीतर निर्णय नहीं लिया जाता है, तो कारण दर्ज किया जाना चाहिए। यह स्पष्ट किया गया है कि रिकॉल प्रार्थना पत्र या स्टे प्रार्थना पत्र के लंबित रहने के दौरान आवेदक के खिलाफ कोई प्रतिरोधी कार्रवाई नहीं की जाएगी।

17. कलेक्टर और कमिश्नर तथा साथ ही राजस्व बोर्ड सहित किसी भी राजस्व अधिकारी द्वारा ऊपर उल्लिखित निर्देशों के उल्लंघन के लिए, वे ऊपर उल्लिखित कार्यवाही तय करने में निर्देशों का पालन नहीं करने के लिए इस न्यायालय की अवमानना के लिए उत्तरदायी होंगे (उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 तथा उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम, 1901 के संगत प्रावधान में लंबित कार्यवाही सहित ।)

18. वादकारी, जिसकी कार्यवाही ऊपर उल्लिखित है, इस न्यायालय द्वारा निर्धारित समय के भीतर इस निर्णय पर भरोसा करने के उसके प्रार्थना पत्र के बावजूद निर्णित नहीं किया गया था, तब वादी शीघ्र निस्तारण हेतु रिट याचिका दायर करने के बजाय संबंधित अधिकारी के विरूद्ध अवमानना कार्यवाही दायर करके सीधे इस न्यायालय से संपर्क कर सकता था।

19. यह स्पष्ट किया गया है कि यदि राज्य सरकार अधिसूचना जारी करके या संशोधन करके कार्यवाही का निस्तारण करने के लिए समय निर्धारित करती है, जिसके लिए इस न्यायालय के पास कार्यवाही का निस्तारण करने हेतु एक निश्चित अवधि है, तो उस अवधि को इस न्यायालय द्वारा निर्दिष्ट अवधि के स्थान पर प्रतिस्थापित किया जाएगा।

20. राज्य को संहिता, 2006 की धारा 13(6) के अनुसार उपखण्ड मजिस्ट्रेट (न्यायिक) के पदों के साथ-साथ संहिता, 2006 की धारा 14(1) के अनुसार तहसीलदार (न्यायिक) के पदों को भरने हेतु निर्देशित किया जाता है, ताकि संहिता, 2006 के तहत लंबित कार्यवाही की समस्या का यथाशीघ्र, अधिमानतः आज से एक वर्ष की अवधि के भीतर समाधान किया जा सके।

21. इस न्यायालय ने यह भी पाया कि 11.02.2016 को उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 के साथ-साथ उत्तर प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 के निरसन के बावजूद, राजस्व प्राधिकरण / न्यायालय निरसन के बाद शुरू की गई नई कार्यवाही में अभी भी उपरोक्त निरसित अधिनियम के प्रावधान का उल्लेख किया जा रहा है, इसलिए, सभी राजस्व प्राधिकारियों को उपरोक्त कार्यवाही में संहिता, 2006 के प्रावधानों का उल्लेख करने का निर्देश दिया जाता है।

22. उपरोक्त निर्देश के साथ याचिका का निस्तारण किया जाता है।

23. इस आदेश की एक प्रति मुख्य सचिव, उ.प्र. को भेजी जाए, जो इसे मंडल आयुक्त के साथ-साथ जिला कलेक्टर को भी इस निर्देश के साथ परिचालित करेंगे कि जिला कलेक्टर अपने

अनुवादित

सभी अधीनस्थ अधिकारियों सहित संबंधित बार एसोसिएशन को सूचित करेंगे।

24. रजिस्ट्रार (अनुपालन) को आवश्यक अनुपालन हेतु इस आदेश की एक प्रति मुख्य सचिव, उ.प्र. को भेजने हेतु निर्देशित किया जाता है।

(2023) 6 ILRA 691

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 25.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र

रिट-सी संख्या 21933/2017

इंडियन ओवरसीज बैंक और अन्य याचिकाकर्ता

बनाम

यूनियन ऑफ इंडिया और अन्य प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

श्री वेद प्रकाश सिंह, श्री अखिलेश कालरा (वरिष्ठ अधिवक्ता), श्री अविनाश चंद्र

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: ए.एस.जी.आई., श्री अनिल कुमार, श्री गौरव श्रीवास्तव, श्री पी.एस. चौहान, एस.सी., श्री सुदर्शन सिंह

सिविल कानून - ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम, 1972- प्रतिवादी कर्मचारी सेवानिवृत्त हो गया, लेकिन उसकी सेवानिवृत्ति के बाद सेवा समाप्ति का आदेश पारित हुआ-प्रतिवादी ने ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम की धारा 4 के तहत सेवा समाप्ति लाभ जारी करने की मांग की-याचिकाकर्ता बैंक द्वारा आपत्ति-अधिकतम ग्रेच्युटी प्रदान की गई-आक्षेपित-अपील खारिज-आक्षेपित-ग्रेच्युटी जब्त करना केवल तभी स्वीकार्य है जब सेवा समाप्ति कदाचार के लिए की गई हो जो नैतिक अधमता से जुड़ा अपराध है और सक्षम न्यायालय द्वारा दोषी ठहराया गया हो-कदाचार का सबूत नहीं चलेगा-आक्षेपित आदेशों में कोई त्रुटि नहीं-बैंक को ग्रेच्युटी जारी करने का निर्देश दिया गया।

डब्ल्यू.पी. खारिज। (ई-9)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. यू.ओ.आई. एवं अन्य बनाम सी.जी. अजय बाबू एवं अन्य, 2018 (158) एफएलआर 948।
2. जसवंत सिंह गिल बनाम भारत कोकिंग कोल लिमिटेड (2007) 1 एससीसी 663 में रिपोर्ट किया गया
3. गुजरात राज्य और अन्य बनाम यूटिलिटी यूनसर वेलफेयर एसोसिएशन और अन्य, (2018) 6 एससीसी 21 में रिपोर्ट किया गया
4. वेस्टर्न कोल फील्ड्स बीएस मनोहर गोविंदा फुलजेले और अन्य, एसएलपी (सी) 10088/2022
5. यूको बैंक और अन्य बनाम राजेंद्र शंकर शुक्ला, 2018 में रिपोर्ट किया गया (157) एफएलआर 482
6. मेसर्स हिंडाल्को इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम अपीलीय प्राधिकरण, ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम के तहत, कानपुर और अन्य, 2004 में रिपोर्ट किया गया (101 एफएलआर 1063
7. जे.बी. माइकल डिसूजा बनाम अपीलीय प्राधिकरण ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम के तहत, बैंगलोर और अन्य, 2002 में रिपोर्ट किया गया (92) एफएलआर 1200
8. प्रबंधक, वेस्टर्न कोलफील्ड्स लिमिटेड बनाम प्रयाग मोदी, 2018 में रिपोर्ट किया गया (157) एफएलआर 323

अनुवादित

9. परमाली वालेंस लिमिटेड बनाम सेंट ऑफ एम.पी. एवं अन्य, 1996 में रिपोर्ट किया गया (72) एफएलआर 748 (एमपी)

10. कृष्णावेनी टेक्सटाइल लिमिटेड बनाम सहायक श्रम आयुक्त, 2002 में रिपोर्ट किया गया (95) एफएलआर 1164 (म.प्र.)

11. भारत गोल्ड माइंस लिमिटेड बनाम क्षेत्रीय श्रम आयुक्त, आईएलआर 1986 केएआर 2755 में रिपोर्ट किया गया

12. जी.एम.डी.सी. सहकारी बैंक बनाम दीनदया गौड़, 2013 में रिपोर्ट किया गया (1) एमपीएलजे 301,

13. बारू राम बनाम प्रसन्नी, एआईआर 1959 एससी 93 में रिपोर्ट किया गया

14. आयकर आयुक्त, मुंबई बनाम अंजुम एम.एच. घासवाला, 2002 में रिपोर्ट किया गया (1) एस.सी.सी. 633

15. यूनाइटेड सेंट्स बनाम वंडरलिच, 342 यू.एस. 98 (1951) में रिपोर्ट किया गया

16. आर. बनाम विल्क्स, 1770 में रिपोर्ट किया गया (4) बूर 2527 बूर पृष्ठ 2539 पर

17. प्राकृतिक संसाधन आवंटन, संदर्भ विशेष संदर्भ संख्या 1 2012 में रिपोर्ट किया गया (10) एस.सी.सी. 1

(माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेंद्र द्वारा दिया गया)

1 - श्री अविनाश चंद्रा की सहायता में विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अखिलेश कालरा के साथ- साथ वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग मोड के माध्यम से याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील श्री वेद प्रकाश सिंह और प्रतिवादी संख्या 4 का प्रतिनिधित्व कर रहे विद्वान वकील श्री गौरव श्रीवास्तव को सुना गया।

2 - प्रतिवादी संख्या 4 (एतद्पश्चात "कर्मचारी" के रूप में संदर्भित) को याचिकाकर्ता- बैंक में 09.08.1978 को श्रॉफ/ गोदाम कीपर के पद पर नियुक्त किया गया था। उन्हें वर्ष 1995 में सेवा से बर्खास्त कर दिया गया और 2000 तक सेवा से बाहर रहे, इसके बाद केंद्र सरकार औद्योगिक न्यायाधिकरण, लखनऊ के समक्ष कुछ कार्यवाही की गई, जिसने यह शर्त लगाते हुए समाप्ति आदेश को रद्द कर दिया कि जिस अवधि के दौरान कर्मचारी निलंबित रहा उसे "काम नहीं तो वेतन नहीं" अवधि के रूप में माना जाएगा। उक्त आदेश की पुष्टि इस न्यायालय द्वारा रिट सी संख्या 49519/2004 में की गई थी। 03.02.2009 को गबन और धन के दुरुपयोग के आरोप में अनुशासनात्मक जांच पर विचार करते हुए कर्मचारी को निलंबित कर दिया गया था। कर्मचारी को 08.05.2009 को एक आरोप पत्र जारी किया गया जिसमें राशि के दुरुपयोग का आरोप था।

3 - कर्मचारी ने रिट याचिका दायर करके आरोप पत्र को चुनौती दी और उसके बाद, विभिन्न विविध और अन्य कार्यवाही की गईं, जिन्हें बताना आवश्यक नहीं है क्योंकि वर्तमान रिट याचिका में शामिल मुद्दा यह है कि क्या कर्मचारी को देय ग्रेच्युटी जो रोक दी गई है वह कर्मचारी कानून के मुताबिक है या नहीं। हालाँकि, यह प्रासंगिक है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही के अनुसरण में, सजा का अंतिम आदेश 29.09.2015 को पारित किया गया था, जिसमें प्रतिवादी संख्या 4 को दिनांक 10.04.2002 के समझौता ज्ञापन के खंड 6 (ए) के संदर्भ में सेवाओं से बर्खास्त कर दिया

अवलोकन

गया था और यह यह माना गया कि चूंकि आरोप जांच में साबित हो गए थे और प्रकृति में गंभीर थे और नैतिक अधमता को प्रकट करते थे, इसलिए निलंबन के तहत कर्मचारी द्वारा बिताई गई अवधि को "ड्यूटी पर नहीं बिताया गया" माना जाएगा और वह किसी भी मौद्रिक लाभ या निर्वाह भत्ते के अलावा अन्य लाभ का हकदार नहीं होगा जो उसे पहले ही भुगतान किया जा चुका है।

4 - यह आरोप लगाया गया है कि प्रतिवादी- कर्मचारी ने रिट ए संख्या 56257/2015 (सत्य प्रकाश त्रिपाठी बनाम अध्यक्ष, इंडियन ओवरसीज बैंक और 3 अन्य) के तहत एक परमादेश रिट याचिका दायर की, जिसमें बैंक को सेवानिवृत्ति लाभ जारी करने का निर्देश देने के लिए की मांग की गई। तथापि, सुनवाई के दौरान न्यायालय को यह सूचित किया गया कि प्रतिवादी- कर्मचारी को 29.09.2015 को सेवाओं से बर्खास्त कर दिया गया था और परिणामस्वरूप, इस न्यायालय द्वारा दिनांक 02.11.2015 के आदेश द्वारा रिट याचिका को वापस ले लिया गया था, जिससे कर्मचारी को दिनांक 29.09.2015 के समाप्ति आदेश को चुनौती देने वाली नई रिट याचिका दायर करने की स्वतंत्रता मिल गई थी । इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं है कि दिनांक 29.09.2015 के आदेश को चुनौती देने वाली कोई रिट याचिका दायर नहीं की गई थी जिसका निर्णय हो गया हो ।

5 - इस बीच, प्रतिवादी- कर्मचारी को दिनांक 31.07.2015 को एक नोटिस जारी किया गया जिसमें उसे सूचित किया गया कि 31.07.2015 को उसकी सेवानिवृत्ति की आयु के 60 वर्ष पूरे होने वाले थे और जहां तक अनुशासनात्मक कार्यवाही का संबंध है, यह सूचित किया गया कि उक्त कार्यवाही जांच चरण में लंबित थी और कर्मचारी को उसकी सेवानिवृत्ति की आयु की तारीख यानी 31.07.2015 के बाद अनुशासनात्मक कार्यवाही पूरी करने के उद्देश्य से सेवा में माना जाएगा। माना जाता है कि, प्रतिवादी- कर्मचारी 31.07.2015 को सेवानिवृत्त हुए और 29.09.2015 को उनकी सेवानिवृत्ति के बाद समाप्ति आदेश पारित किया गया। प्रतिवादी- कर्मचारी ने समापन लाभ जारी करने की मांग करते हुए दिनांक 13.08.2015 को एक आवेदन प्रस्तुत किया और नियंत्रण प्राधिकरण के समक्ष ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम, 1972 (एतद्पश्चात "1972 का अधिनियम" के रूप में संदर्भित) की धारा 4 के तहत एक आवेदन भी 16.11.2015 को दायर किया। जिस पर याचिकाकर्ता- बैंक द्वारा दिनांक 10.02.2016 को लिखित प्रस्तुतियाँ/ आपत्तियाँ दाखिल करके आपत्ति जताई गई थी।

6 - नियंत्रण प्राधिकारी ने आदेश दिनांक 29.09.2016 के माध्यम से 01.08.2015 से कर्मचारी को 10% साधारण ब्याज के साथ ग्रेच्युटी की अधिकतम राशि रु.10,00,000/- (दस लाख रुपये) का भुगतान करने का निर्देश दिया। याचिकाकर्ता- बैंक ने 1972 के अधिनियम की धारा 7 के तहत अपीलीय प्राधिकरण के समक्ष एक वैधानिक अपील दायर करके दिनांक 29.09.2016 के आदेश को चुनौती दी। दिनांक 10.04.2017 के आदेश द्वारा अपील खारिज कर दी गई।

7 - यह रिट याचिका दिनांक 29.09.2016 और 10.04.2017 के उपरोक्त आदेशों को चुनौती देते हुए दायर की गई है। 03.05.2017

को एक परिणामी आदेश भी पारित किया गया जिसमें प्रतिवादी- कर्मचारी के पक्ष में 11,33,699/- (ग्यारह लाख तैंतीस हजार छह सौ निन्यानवे रुपये) रुपये की राशि जारी करने का निर्देश दिया गया। जिसे भी रिट याचिका में संशोधन की मांग करके चुनौती दी गई थी। इसलिए, वर्तमान रिट याचिका में तीन आदेशों को चुनौती दी गई है।

8 - मैंने पक्षों के विद्वान वकील को सुना है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया ।

9. याचिकाकर्ता- बैंक की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अखिलेश कालरा ने निम्नलिखित तर्क उठाए हैं :

(i) - इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि 29.09.2015 के समाप्ति आदेश को प्रतिवादी- कर्मचारी द्वारा चुनौती नहीं दी गई थी, इस तथ्य के बावजूद कि उन्हें रिट ए संख्या 56257/2015 (सत्य प्रकाश त्रिपाठी बनाम अध्यक्ष, इंडियन ओवरसीज बैंक और 3 अन्य) को खारिज करते हुए इस न्यायालय द्वारा स्वतंत्रता दी गई थी , कर्मचारी ग्रेच्युटी का हकदार नहीं था, क्योंकि समाप्ति/ बर्खास्तगी आदेश में स्पष्ट रूप से प्रावधान था कि कर्मचारी द्वारा निलंबन के तहत बिताई गई अवधि को **"ड्यूटी पर नहीं बिताई गई अवधि"** के रूप में माना जाएगा। वह उसे पहले से भुगतान किए गए निर्वाह भत्ते के अलावा किसी भी मौद्रिक या अन्य लाभ का हकदार नहीं होगा।

(ii) - 1972 के अधिनियम की धारा 4(6) (बी) के मद्देनजर, याचिकाकर्ता- बैंक द्वारा ग्रेच्युटी रोकना पूरी तरह से उचित था क्योंकि प्रतिवादी नंबर 4 की सेवाएं एक ऐसे कार्य के लिए समाप्त कर दी गई थीं, जो एक नैतिक अधमता का अपराध था । जो नौकरी के दौरान उसके द्वारा किया गया था।

(iii) - अपीलीय प्राधिकारी ने अधिनियम की धारा 7(7) के प्रावधानों की गलत व्याख्या करके 1972 के अधिनियम की धारा 7 के तहत अपील को खारिज करते समय तथ्यों और कानून की घोर त्रुटि की है क्योंकि अपील समय के भीतर दायर की गई थी। और यद्यपि इसे कुछ दोषों के कारण याचिकाकर्ता- बैंक को वापस कर दिया गया था, इसे समय के भीतर फिर से प्रस्तुत किया गया था और इसलिए, परिसीमन द्वारा वर्जित के रूप में अपील को खारिज करना अवैध है।

(iv) - आक्षेपित आदेश ग्रेच्युटी भुगतान (केंद्रीय) नियम 1972 (इसके बाद "1972 के नियम" के रूप में संदर्भित) के नियम 8 के प्रावधानों के विरुद्ध हैं। नोटिस की आवश्यकता बैंक द्वारा उस मामले में पूरी की गई थी जब बैंक द्वारा ग्रेच्युटी की कोई राशि भुगतान करने के लिए स्वीकार नहीं की गई थी।

(v) - नियंत्रण प्राधिकारी के पास दिनांक 29.09.2015 के समाप्ति आदेश के गुण-दोष से निपटने की कोई क्षमता नहीं थी क्योंकि वह ग्रेच्युटी रोकने के मामले से निपट रहा था।

10 - इसके विपरीत, प्रतिवादी- कर्मचारी के विद्वान वकील श्री गौरव श्रीवास्तव ने रिट याचिका का जोरदार विरोध करते हुए कहा कि 1972 के अधिनियम की धारा 4(6) (बी) के आधार पर किसी भी कारण से ग्रेच्युटी नहीं रोकी जा सकती है। चूँकि कर्मचारी द्वारा कोई अपराध नहीं किया गया पाया गया था और आपराधिक क्षेत्राधिकार की किसी भी अदालत का कोई निर्णय नहीं है कि कर्मचारी को नैतिक

अधमता के अपराध का दोषी माना जाए और केवल इसलिए कि बैंक कर्मचारी के कथित कदाचार को **"नैतिक अधमता"** के रूप में आरोप लगा रहा था , 1972 के अधिनियम की धारा 4 (6) (बी) का उपयोग करके ग्रेच्युटी की किसी भी राशि को रोकने के लिए कर्मचारी की सजा के फैसले के संदर्भ में नैतिक अधमता से जुड़े अपराध का सबूत होना चाहिए। लेकिन रिकॉर्ड पर ऐसा कोई सबूत नहीं है, सिवाय इसके कि केंद्रीय जांच ब्यूरो द्वारा एक पत्र भेजा गया था कि मामले को अंतिम रूप देने तक ग्रेच्युटी रोक दी जाए। याचिकाकर्ता- बैंक की ओर से दी गई दलील में कोई बल नहीं है । याचिकाकर्ता- बैंक की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री गौरव श्रीवास्तव द्वारा उठाए गए अन्य प्रस्तुतियों के संबंध में यह तर्क दिया गया है कि चीजों की पूरी तरह से जांच की जानी चाहिए कि सेवाएं समझौता ज्ञापन, खंड 12.2 द्वारा शासित थीं, जो अध्याय XII में निहित है जो स्पष्ट रूप से प्रावधान करता है कि कदाचार के कारण बर्खास्तगी के लिए ग्रेच्युटी की कोई जब्ती नहीं होगी, सिवाय उन मामलों के जहां ऐसे कदाचार से बैंक को वित्तीय नुकसान होता है और उन मामलों में भी केवल उसी सीमा तक। यह तर्क दिया गया है कि बैंक को कथित तौर पर केवल 1,500/- (एक हजार पांच सौ रुपये मात्र) या रु. 9,000/- (केवल नौ हजार रुपये) रुपये की हानि हुई थी। और भले ही, समाप्ति आदेश में दर्ज निष्कर्षों को अंतिम माना जाता है, यह एक ऐसा मामला होगा जहां अधिक से अधिक बैंक को हुई उपरोक्त वित्तीय हानि की सीमा तक ग्रेच्युटी रोका जा सकता था, लेकिन शेष राशि कर्मचारी को भुगतान करने के लिए बाध्य थी। हालाँकि, परिसीमन की रोक के संबंध में, प्रतिवादी- कर्मचारी के विद्वान वकील ने तर्क दिया है कि अपीलीय प्राधिकारी का आदेश भी गुण- दोष पर था और चूंकि सब कुछ रिकॉर्ड पर स्थापित है, इसलिए नियंत्रक के आदेश की पुष्टि करने में अपीलीय प्राधिकारी द्वारा कोई त्रुटि नहीं की गई है।

11 - मैंने बार में दिए गए प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार किया है और मैं एक- एक करके उनसे निपटता हूं।

प्रथम एवं द्वितीय तर्कों का विश्लेषण

12 - जहां तक समाप्ति/ बर्खास्तगी आदेश दिनांक 29.09.2015 के प्रभाव का संबंध है, हालांकि यह सच है कि रिट ए संख्या 56257/2015 को खारिज करते समय इस न्यायालय द्वारा दी गई स्वतंत्रता के बावजूद न्यायालय को यह देखना होगा क्या समाप्ति आदेश से जुड़ी अंतिम तिथि ग्रेच्युटी को जब्त करने का आधार हो सकती है।

13 - 1972 के अधिनियम की धारा 4 में ग्रेच्युटी का भुगतान करने का प्रावधान है और जहां तक नियोक्ता की ग्रेच्युटी को पूरी तरह या आंशिक रूप से रोकने की शक्ति का संबंध है, 1972 के अधिनियम की धारा 4 की उपधारा (6) इस प्रकार कथन करती है :-

"4. ग्रेच्युटी का भुगतान -

(1) से (5).....

(6) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी,-

(ए) एक कर्मचारी की ग्रेच्युटी, जिसकी सेवाएं किसी कार्य, जानबूझकर की गई चूक या लापरवाही के कारण समाप्त कर दी गई हैं, जिससे नियोक्ता की संपत्ति को कोई नुकसान

या नुकसान हुआ है, क्षति या हानि की सीमा तक जब्त कर लिया जाएगा।

(बी) किसी कर्मचारी को देय ग्रेच्युटी "[पूरी तरह या आंशिक रूप से जब्त की जा सकती है] -

(i) यदि ऐसे कर्मचारी की सेवाएँ उसके उपद्रवी या उच्छृंखलता के कारण समाप्त कर दी गई हैं या उसकी ओर से आचरण या हिंसा का कोई अन्य कार्य, या

(ii) यदि ऐसे कर्मचारी की सेवाएं किसी ऐसे कार्य के लिए समाप्त कर दी गई हैं जो नैतिक अधमता से जुड़ा अपराध है, बशर्ते कि ऐसा अपराध उसके द्वारा अपने रोजगार के दौरान किया गया हो।"

14 - श्री कालरा ने जोरदार तर्क दिया कि चूंकि कर्मचारी ने धन का गबन और दुरुपयोग किया था, इसलिए उसका कृत्य नैतिक अधमता से जुड़ा अपराध था और इसलिए, 1972 के अधिनियम की धारा 4(6) (बी) (ii) के अनुसार, बैंक द्वारा ग्रेच्युटी रोकना उचित था।

15 - मैं याचिकाकर्ता- बैंक के विद्वान वकील की उक्त दलील को स्वीकार करने के लिए इच्छुक नहीं हूं जैसा कि उन्होंने कहा कि मामला बिल्कुल नया नहीं है और **यूनियन बैंक ऑफ इंडिया और अन्य बनाम सी.जी.अजय बाबू और अन्य** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निपटाया जा चुका है। जो कि 2018 (158) एफएलआर 948 में फैसले के पैराग्राफ 16 में उल्लिखित है। यह माना गया कि उप-धारा (6) (ए) के तहत ग्रेच्युटी को केवल क्षति की सीमा या बैंक को हुये नुकसान तक ही जब्त किया जा सकता है यदि कर्मचारी की बर्खास्तगी किसी ऐसे कार्य या जानबूझकर की गई चूक या लापरवाही के लिए हुई है, जिससे नियोक्ता को कोई क्षति या नुकसान हुआ है या नियोक्ता से संबंधित संपत्ति का विनाश हुआ है, तो नुकसान की भरपाई ग्रेच्युटी से जब्ती के माध्यम से की जा सकती है। जबकि उपधारा (6) के उपखण्ड (बी) के तहत ग्रेच्युटी की पूर्ण या आंशिक रूप से जब्ती दो स्थितियों में स्वीकार्य है - (i) यदि किसी कर्मचारी की बर्खास्तगी दंगाई या अव्यवस्थित आचरण या उसकी ओर से हिंसा के किसी अन्य कार्य के कारण होती है, (ii) यदि बर्खास्तगी किसी भी ऐसे कार्य के लिए है जो नैतिक अधमता से जुड़ा अपराध है और यह अपराध कर्मचारी द्वारा उसके रोजगार के दौरान किया गया है। इस प्रकार, अधिनियम की धारा 4 की उपधारा (6) के उप- खंड (ए) और उप- खंड (बी) अलग- अलग क्षेत्रों और विभिन्न परिस्थितियों में संचालित होते हैं। उप- खंड (ए) के तहत, ज़ब्ती कर्मचारी के कदाचार के कारण हुई क्षति या हानि की सीमा तक है, जबकि उप- खंड (बी) के तहत, पूरी तरह से अलग परिस्थितियों में पूरी तरह या आंशिक रूप से ज़ब्ती की अनुमति है। उप- खंड (बी) या तो तब लागू होता है जब बर्खास्तगी - (i) दंगाई या (ii) अव्यवस्थित या (iii) कर्मचारी की ओर से हिंसा के किसी अन्य कार्य के कारण होती है, और उप- खंड (ii) के तहत होती है। उप- धारा (6) (बी) जब बर्खास्तगी किसी ऐसे कार्य के कारण होती है जो रोजगार के दौरान किए गए नैतिक अधमता से जुड़ा अपराध है।

16 - 1972 के अधिनियम की धारा 4 की उप- धारा (6) (बी) (ii) के संबंध में, सुप्रीम कोर्ट ने सामान्य खंड अधिनियम, 1897 के

अनुसार **"अपराध"** की परिभाषा **"कोई भी कार्य या चूक जिसे तत्समय लागू होने वाले किसी भी कानून द्वारा दंडनीय बनाया गया है"** बताया है, और यह माना गया कि किसी व्यक्ति का वह आचरण जिसमें नैतिक अधमता शामिल है, ग्रेच्युटी की जब्ती के लिए आवश्यक नहीं है, बल्कि आचरण या कार्य को नैतिक अधमता वाला अपराध माना जाना चाहिए। अपराध होने के लिए, इस कृत्य को कानून के तहत दंडनीय बनाया जाना चाहिए। यह बिल्कुल आपराधिक कानून के दायरे में है। यह तय करना बैंक का काम नहीं है कि कोई अपराध हुआ है या नहीं। यह न्यायालय के लिए है । अधिनियम की उप- धारा (6) (बी) (ii) के तहत ग्रेच्युटी की जब्ती केवल तभी स्वीकार्य है जब किसी कर्मचारी की बर्खास्तगी किसी कदाचार के लिए होती है जो नैतिक अधमता से जुड़ा अपराध है, और उसे तदनुसार सक्षम न्यायालय द्वारा दोषी ठहराया गया है।

17 - वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता- बैंक के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता यह स्थापित करने में सक्षम नहीं हैं कि प्रतिवादी- कर्मचारी को नैतिक अधमता के कथित अपराध के लिए आपराधिक क्षेत्राधिकार की किसी भी सक्षम अदालत द्वारा दंडित किया गया था। इसलिए, यह न्यायालय **यूनियन बैंक ऑफ इंडिया (पूर्व)** के मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा लिए गए दृष्टिकोण से अलग दृष्टिकोण नहीं अपना सकता है, जहां सुप्रीम कोर्ट ने इस बात पर जोर दिया था कि क़ानून की आवश्यकता इसमें शामिल कृत्यों के कदाचार का प्रमाण नहीं है। लेकिन नैतिक अधमता के कृत्यों को नैतिक अधमता से जुड़ा अपराध माना जाना चाहिए और ऐसे अपराध को कानून की अदालत में विधिवत स्थापित किया जाना चाहिए।

18 - श्री कालरा ने **यूनियन बैंक ऑफ इंडिया और अन्य** (पूर्व) के मामले में शीर्ष न्यायालय के फैसले के संदर्भ में तर्क दिया है कि उक्त निर्णय/राय एक बाध्यकारी मिसाल नहीं है और **जसवंत सिंह गिल बनाम भारत कोकिंग कोल लिमिटेड** के मामले में जो कि (2007)1एससीसी 663 में उल्लिखित है, पहले के फैसले पर भरोसा करते हुए पारित किया गया है, और एक ओबिटर डिक्टा (प्रासंगिक उक्ति) है, जो इस न्यायालय पर बाध्यकारी नहीं है। आगे यह तर्क दिया गया है कि उपरोक्त निर्णय में की गई टिप्पणी को निर्णायक सार नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि इस मामले में शामिल प्रश्न उन मामलों में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष निर्धारण के लिए नहीं उठे थे। आगे यह प्रस्तुत करना है कि ***गुजरात राज्य और अन्य बनाम यूटिलिटी अनसर का वेलफेयर एसोसिएशन और अन्य*** के मामले में जो कि (2018) 6 एससीसी 21 में सूचित है माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के मद्देनजर , जो निर्णय लेने के लिए मानदंड निर्धारित करता है किसी निर्णय की तुलना में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की राय भारत में उच्च न्यायालयों पर बाध्यकारी होगी , यदि राय उस प्रश्न पर थी जो माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष निर्धारण के लिए उठी थी। आगे तर्क यह है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष मुद्दा यह था कि क्या ग्रेच्युटी की जब्ती स्वचालित होगी या नहीं, इस प्रकार माननीय सर्वोच्च

न्यायालय द्वारा व्यक्त की गई राय बाध्यकारी मिसाल नहीं बनेगी।

19 - आगे यह तर्क दिया गया है कि ***यूनियन बैंक ऑफ इंडिया और अन्य*** (पूर्व) के बाद सीधा मुद्दा यह है कि जिस कर्मचारी की सेवाएँ कदाचार के आधार पर समाप्त कर दी गयी थी , जो नैतिक अधमता का अपराध भी हो सकता है, जो ***एसएलपी (सी) 10088/2022 "वेस्टर्न कोल फील्ड्स बीएस मनोहर गोविंदा फुलजेले और अन्य"*** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष लंबित है।

20 - मैं उक्त प्राधिकरण में निर्धारित स्पष्ट सम्बन्ध के मद्देनजर ***यूनियन बैंक ऑफ इंडिया और अन्य (पूर्व)*** के मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले के संबंध में श्री कालरा द्वारा की गई व्याख्या से आश्वस्त नहीं हूं। न्यायालय की राय में, उक्त मामले में पारित निर्णय आज्ञाकारी नहीं है, बल्कि प्रसंगवश है और इसलिए, श्री कालरा की इस आशय की दलील को खारिज किया जाता है। हालाँकि, श्री कालरा ने इस पहलू का उल्लेख किया है कि मामले की जांच केंद्रीय जांच ब्यूरो द्वारा की जा रही थी, लेकिन ऐसा कुछ भी रिकॉर्ड पर नहीं लाया गया है कि केंद्रीय जांच ब्यूरो ने किसी अदालत के समक्ष कोई रिपोर्ट प्रस्तुत की हो या किसी अदालत ने कभी भी कर्मचारी की सजा का कोई आदेश पारित किया हो। बल्कि प्रतिवादी- कर्मचारी का विशिष्ट मामला यह है कि उसे केंद्रीय जांच ब्यूरो या किसी भी अदालत द्वारा दंडित नहीं किया गया था और कथित अपराध स्थापित नहीं किया गया था और न ही इसके परिणामस्वरूप कर्मचारी को दोषी ठहराया गया था। इस दृष्टि से श्री कालरा के प्रथम एवं द्वितीय तर्क में कोई दम नहीं है।

<u>तीसरे विवाद का विश्लेषण</u>

21 - अपील को परिसीमा द्वारा वर्जित मानकर खारिज करने के संबंध में **तीसरे** तर्क के संबंध में, श्री कालरा ने 1972 के अधिनियम की धारा 7(7) का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है :-

7. ग्रेच्युटी की राशि का निर्धारण -

(1) से (6).....

xxxxxxxxxxxx

"(7) उप- धारा (4) के तहत किसी आदेश से व्यथित कोई भी व्यक्ति, ***<u>आदेश की प्राप्ति की तारीख से साठ दिनों के भीतर,</u>*** उपयुक्त सरकार या ऐसे अन्य प्राधिकारी के समक्ष अपील कर सकता है जो इस संबंध में सरकार द्वारा निर्दिष्ट किया जा सकता है। :-

बशर्ते कि उपयुक्त सरकार या अपीलीय प्राधिकारी, जैसा भी मामला हो, यदि वह संतुष्ट है कि अपीलकर्ता को साठ दिनों की उक्त अवधि के भीतर अपील करने से पर्याप्त कारण से रोका गया था, तो ***<u>उक्त अवधि को एक और साठ दिनो की अवधि के लिए बढ़ा सकता है।</u>***

[परंतु यह भी कि किसी नियोक्ता की कोई अपील तब तक स्वीकार नहीं की जाएगी जब तक कि अपील दायर करते समय अपीलकर्ता नियंत्रण प्राधिकारी का इस आशय का प्रमाण पत्र प्रस्तुत नहीं करता है कि अपीलकर्ता ने उसके पास आवश्यक ग्रेच्युटी की राशि के बराबर राशि जमा कर दी है। उप-धारा (4) के तहत, या अपीलीय प्राधिकारी के पास ऐसी राशि जमा करना होगा।]

22 - श्री कालरा का कथन है कि समाप्ति/ बर्खास्तगी आदेश 29.09.2016 को पारित किया गया था और 1972 के अधिनियम की

धारा 7 के तहत अपील 60 दिनों की अवधि के भीतर, यानी 01.12.2016 को की गई थी, हालाँकि, अपील की प्रस्तुति में कुछ निश्चित दोष थे , अपीलीय प्राधिकारी द्वारा 07.12.2016 को कुछ दोषों को इंगित करते हुए एक आदेश पारित किया गया था (रिट याचिका के लिए अनुलग्नक संख्या 4) और यह इंगित किया गया कि अपील आगे के अवलोकन के साथ सुनवाई योग्य नहीं थी , यदि बैंक के प्रबंधन द्वारा दोषों को दूर किया गया और निर्धारित समय के भीतर अपील पुनः प्रस्तुत की गई तो अधिनियम 1972 की धारा 7(7) के प्रावधानों के तहत सुनवाई का अवसर प्रदान किया जाएगा। इस अवलोकन के साथ अपील याचिकाकर्ता- बैंक को वापस कर दी गई ।

23 - श्री कालरा ने तर्क दिया है कि उपरोक्त आदेश दिनांक 07.12.2016 बैंक को 17.12.2016 को प्राप्त हुआ था जैसा कि आदेश के पहले पृष्ठ पर ही पृष्ठांकित है, जो रिट याचिका की पेपर बुक के पृष्ठ 75 पर परिलक्षित होता है। श्री कालरा ने आगे तर्क दिया कि दिनांक 07.12.2016 के आदेश में बताई गई खामियों को दूर करने के बाद, अपील 26.12.2016 को फिर से प्रस्तुत की गई थी, और समय के भीतर अपील की गई थी, इसलिए, अपील खारिज कर दिया जाना परिसीमा द्वारा वर्जित अपील दिनांक 07.12.2016 के आदेश के विपरीत है।

24 - इस संबंध में, मैंने दिनांक 10.04.2017 के लागू आदेश का अवलोकन किया है और मैंने पाया है कि दिनांक 07.12.2016 के आदेश की व्याख्या करते समय, अपीलीय प्राधिकारी ने पाया है कि बैंक द्वारा देरी की माफी की मांग करने वाला कोई भी आवेदन प्रस्तुत नहीं किया गया था और इसकी अनुपस्थिति में ऐसे किसी भी आवेदन में देरी को स्वत: माफ नहीं किया जा सकता। यहां, मुझे लगता है कि अपीलीय प्राधिकारी 1972 के अधिनियम की धारा 7 की उप- धारा (7) से जुड़े पहले प्रावधान में इस्तेमाल की गई भाषा को समझने में पूरी तरह से विफल रहे हैं, जिसमें अपीलकर्ता द्वारा किसी भी आवेदन को आगे बढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं है। बल्कि विलंब के लिए क्षमा उक्त परंतुक एक सक्षम प्रावधान है जो अपीलीय प्राधिकारी को 60 दिनों की प्रारंभिक अवधि को 60 दिनों की अतिरिक्त अवधि के लिए बढ़ाने का अधिकार देता है, यदि वह संतुष्ट है कि अपीलकर्ता को पहली 60 दिन अवधि के भीतर अपील को प्राथमिकता देने से पर्याप्त कारण से रोका गया था।

25 - वर्तमान मामले में, चूँकि दिनांक 07.12.2016 के आदेश में कुछ खामियाँ बताई गई थीं, और अपीलीय प्राधिकारी ने दोषों को दूर करने की अनुमति दी थी और बैंक को अपील वापस करते समय, निर्धारित समय के भीतर पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति दी गई थी, मैं पाया कि 26.12.2016 को पुनः अपील प्रस्तुत करना इसके परन्तुक सहित पठित 1972 के अधिनियम धारा 7 (7) के संयुक्त वाचन के अनुसार समय के भीतर माना जाएगा। इसलिए, यह निष्कर्ष कि अपील परिसीमा के कारण वर्जित थी, गलत है और श्री कालरा का तर्क इस हद तक स्वीकार किया जाता है।

26 - हालाँकि, मुझे लगता है कि अपील को परिसीमा के कारण खारिज करने के अलावा,

अपीलीय प्राधिकारी ने पूरे मामले की खूबियों पर चर्चा की है और उस पर चर्चा करने के बाद, परिसीमा के साथ- साथ योग्यता के आधार पर अपील को खारिज कर दिया है। इसलिए, भले ही, मैं याचिकाकर्ता- बैंक के पक्ष में पूर्वोक्त निष्कर्ष के मद्देनजर परिसीमन द्वारा वर्जित अपील को खारिज कर देता हूं, तब भी न्यायालय को खुद को संतुष्ट करना होगा कि क्या नियंत्रण प्राधिकारी के आदेश की पुष्टि अपीलीय प्राधिकरण कानून के मुताबिक था या नहीं ।

27 - मुझे ग्रेच्युटी रोकने के मुद्दे के संबंध में गुण- दोष के आधार पर अपीलीय प्राधिकारी द्वारा लिए गए दृष्टिकोण में कोई त्रुटि नहीं मिली, सिवाय इसके कि एक स्थान पर अपीलीय प्राधिकारी ने नियोक्ता द्वारा राशि जमा करने की स्वीकार्यता या गैर- स्वीकार्यता को गलत समझा है। लेकिन यह प्रतिवादी- कर्मचारी के मामले की योग्यता को प्रभावित नहीं करेगा, भले ही मैं याचिकाकर्ता- बैंक की इस दलील को स्वीकार कर लूं कि बैंक द्वारा कोई राशि भुगतान या जमा करने के लिए स्वीकार नहीं की गई थी। इसलिए, जब कानून प्रतिवादी- कर्मचारी के दावे का समर्थन करता है और दिनांक 29.09.2015 के समाप्ति आदेश से जुड़ी अंतिम स्थिति के बावजूद, मैंने पहले ही चर्चा की है कि 1972 के अधिनियम धारा 4(6) (बी) (ii) के अनुसार ग्रेच्युटी रोक दिया जाना ***यूनियन बैंक ऑफ इंडिया*** (पूर्व) के मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा निर्धारित कानून के मद्देनजर उचित नहीं था, मुझे लगता है कि अपीलीय प्राधिकरण के आदेश को केवल इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है कि इसमें कुछ टिप्पणियां शामिल हैं , जो रिकॉर्ड के विपरीत हैं, लेकिन नियंत्रण प्राधिकारी के आदेश की पुष्टि करने वाला समग्र दृष्टिकोण सुप्रीम कोर्ट द्वारा निर्धारित कानून और अधिनियम के प्रावधानों के अनुरूप पाया गया है। इसलिए, श्री कालरा द्वारा उठाए गए तीसरे तर्क का उत्तर तदनुसार दिया जाता है।

चौथे विवाद का विश्लेषण

28 - 1972 के नियमों के नियम 8 के संदर्भ में श्री कालरा के चौथे तर्क के संबंध में, प्रस्तुतीकरण यह है कि कर्मचारी को नोटिस जारी करने के अभाव में बैंक की कार्रवाई को अस्वीकार नहीं किया जाना चाहिए था क्योंकि यह एक ऐसा मामला था जहां बैंक ने कर्मचारी को ग्रेच्युटी के रूप में देय किसी भी राशि को स्वीकार नहीं किया था और इसलिए, कर्मचारी को जो भी जानकारी दी गई थी, वह 1972 के नियमों के नियम 8 के प्रावधानों के अनुरूप थी।हालाँकि, वर्तमान मामले में नोटिस जारी करने या न जारी करने के संबंध में विवाद हो सकता है और यह किसी भी पक्ष के प्रस्तुतीकरण के गुणों को प्रभावित नहीं करेगा, खासकर जब इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है कि बैंक ने कभी भी ग्रेच्युटी का भुगतान करने के अपने दायित्व को स्वीकार नहीं किया और न केवल उनकी सेवाएँ समाप्त करके कर्मचारी के खिलाफ कार्रवाई की बल्कि समाप्ति आदेश का ऑपरेटिव हिस्सा जिसके तहत यह प्रावधान किया गया था कि निलंबन के तहत कर्मचारी द्वारा बिताई गई अवधि को **"ड्यूटी पर खर्च नहीं की गई अवधि"** के रूप में माना जाएगा और वह किसी भी मौद्रिक या उसे पहले से ही भुगतान किए गए निर्वाह भत्ते से भी अधिक अन्य लाभ का हकदार नहीं होगा। इसलिए, नियमों के तहत निर्धारित एक

या अन्य रूपों में नोटिस जारी करना या जारी न करना कम से कम इस मामले में याचिकाकर्ता- बैंक के मामले में प्रतिकूल नहीं होगा और इसलिए, मेरा मानना है कि बैंक की कार्रवाई नहीं हो सकती। 1972 के नियमों के नियम 8 का अनुपालन करने में कथित विफलता के बिंदु पर पदावनत किया जाए। इस आशय के चौथे तर्क का तदनुसार उत्तर दिया गया है।

पांचवें विवाद का विश्लेषण

29 - जहां तक इस आशय का **पांचवां** तर्क है कि नियंत्रक प्राधिकारी का दिनांक 29.09.2015 के समाप्ति आदेश में हस्तक्षेप करना या उसकी व्याख्या करना उचित नहीं था, मैंने पाया कि नियंत्रण प्राधिकारी ने पाया है कि समाप्ति आदेश कहीं भी कर्मचारी को देय ग्रेच्युटी की राशि को जब्त करने के बारे में नहीं कहता है और नैतिक अधमता के आरोप का भी आरोप पत्र में उल्लेख नहीं किया गया है। नियंत्रक प्राधिकरण ने पाया है कि जहां तक केंद्रीय जांच ब्यूरो के पत्र का संबंध है, जिसमें बैंक को निर्देश दिया गया है कि उसके पास लंबित मामले को अंतिम रूप देने तक ग्रेच्युटी जारी नहीं की जा सकती है। मुझे इस आधार पर नियंत्रण प्राधिकरण के दृष्टिकोण में कोई त्रुटि नहीं मिली । एक बार जब बैंक ने इस मुद्दे को उठाया कि 29.09.2015 का बर्खास्तगी/ समाप्ति आदेश अंतिम हो गया था और, अन्यथा भी, यह उल्लेख किया गया था कि कर्मचारी किसी भी राशि का हकदार नहीं होगा, नियंत्रण प्राधिकारी बैंक की ओर से ग्रेच्युटी रोकने के औचित्य की क्षमता से निपटने का अधिकारी था। क्योंकि 1972 के अधिनियम के प्रावधान विशेष रूप से हर उस स्थिति से निपटते हैं जिसके तहत ग्रेच्युटी देय है या रोकी जा सकती है। इसलिए, यदि नियंत्रण प्राधिकारी ने समाप्ति आदेश का अवलोकन किया और इसकी सामग्री के संबंध में कुछ टिप्पणियाँ कीं, तो न्यायालय की राय में, इसे समाप्ति आदेश में हस्तक्षेप के रूप में नहीं लिया जा सकता है। तदनुसार, श्री कालरा का इस आशय का तर्क स्वीकार्य नहीं है, जिससे नियंत्रण प्राधिकारी के आदेश में हस्तक्षेप की आवश्यकता हो।

30 - समझौता ज्ञापन के संबंध में प्रतिवादी- कर्मचारी के लिए विद्वान वकील को प्रस्तुत करने के संबंध में, मैंने पाया कि कर्मचारी के खिलाफ आरोप यह था कि उसने रुपये का गबन या दुरुपयोग किया था। 1500/- (एक हजार पांच सौ रुपये) और/ या रु. 9000/- (नौ हजार रुपये) और इसलिए, मुझे लगता है कि समझौता ज्ञापन के खंड 12.2 के अनुसार, उपरोक्त राशि की अधिकतम सीमा तक ग्रेच्युटी रोकी जा सकती है, लेकिन पूरी राशि नहीं।

31 - प्रतिवादी- कर्मचारी के विद्वान वकील ने 2018 (157) एफएलआर 482 में सूचित किए गए ***यूको बैंक और अन्य बनाम राजेंद्र शंकर शुक्ला*** के मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भरोसा किया है और तर्क दिया है कि कर्मचारी की सेवानिवृत्ति के बाद बर्खास्तगी की सजा नहीं दी जा सकती थी। हालाँकि, मुझे लगता है कि प्रतिवादी को उक्त प्राधिकार का कोई लाभ नहीं मिलेगा क्योंकि यह न्यायालय दिनांक 29.09.2015 के समाप्ति आदेश की वैधता पर निर्णय नहीं कर रहा है, जो कि कर्मचारी द्वारा की गई आपत्ति के अभाव में अंतिम हो गया। ग्रेच्युटी रोकने के साथ- साथ भुगतान के मुद्दे

के संबंध में रिट याचिका पर विचार किया जा रहा है और निर्णय लिया जा रहा है, इसलिए, ***यूको बैंक और अन्य*** (पूर्व) के मामले में निर्णय का तथ्यों और परिस्थितियों में कोई अनुप्रयोग नहीं है।

32 - प्रतिवादी- कर्मचारी के विद्वान वकील ने 2004 (101एफएलआर 1063) में सूचित किए गए ***मेसर्स हिंडाल्को इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम अपीलीय प्राधिकरण, ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम के तहत, कानपुर और अन्य*** के मामले में इस न्यायालय के फैसले पर मजबूत भरोसा जताया है। उक्त मामले में इस न्यायालय ने माना है कि ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम, 1972 किसी कर्मचारी को उसकी सेवानिवर्तन , सेवानिवृत्ति या इस्तीफे, या उसकी मृत्यु या दुर्घटना या बीमारी के कारण विकलांगता पर ग्रेच्युटी के भुगतान का वैधानिक अधिकार देता है। अधिनियम की धारा 4(6) (ए) में प्रावधान है कि कर्मचारी की ग्रेच्युटी जिसकी सेवाएँ किसी भी कार्य, जानबूझकर की गई चूक या लापरवाही के कारण , नियोक्ता की संपत्ति को कोई क्षति या हानि या विनाश होने पर समाप्त कर दी गई हैं , इस प्रकार हुई क्षति या हानि की सीमा तक जब्त कर लिया जाएगा। उप- धारा 6 (बी), प्रावधान करता है कि किसी कर्मचारी को देय ग्रेच्युटी पूरी तरह या आंशिक रूप से जब्त की जा सकती है: (i) यदि ऐसे कर्मचारी की सेवाएं उसके दंगाई या उच्छृंखल आचरण, या उसके खिलाफ हिंसा के किसी अन्य कार्य के लिए समाप्त कर दी गई हैं या, (ii) यदि ऐसे कर्मचारी की सेवाएं किसी ऐसे कार्य के लिए समाप्त कर दी गई हैं जो नैतिक अधमता से जुड़ा अपराध है, बशर्ते कि ऐसा अपराध उसके द्वारा अपने रोजगार के दौरान किया गया हो।

33 - आगे यह माना गया है कि अधिनियम की व्यवस्था और धारा 4 (6) (ए) और (बी) के प्रावधानों से पता चलता है कि किसी कर्मचारी को ग्रेच्युटी प्राप्त करने के उसके वैधानिक अधिकार से वंचित करने के लिए ग्रेच्युटी को जब्त करने का आदेश पारित किया जाना चाहिए। और उपधारा (ए) में निर्दिष्ट कारणों और इस प्रकार हुई क्षति या हानि के संबंध में सचेत निर्णय लिया जाना चाहिए। 1984 के अधिनियम संख्या 26 (11.2.1981 से प्रभावी) इसके संशोधन के बाद उप- धारा (बी) द्वारा इस आशय से कि ग्रेच्युटी पूरी तरह या आंशिक रूप से जब्त की जा सकती है , नियोक्ता को दिमाग का उपयोग और कारणों की रिकॉर्डिंग का विवेकाधिकार देता है।

34 - प्रतिवादी- कर्मचारी के विद्वान वकील श्री गौरव श्रीवास्तव ने भी 2002 (92) एफएलआर 1200 में सूचित किए गए ***जे.बी. माइकल डिसूजा बनाम अपीलीय प्राधिकारी अंडर पेमेंट ऑफ ग्रेच्युटी एक्ट, बैंगलोर और अन्य*** के मामले में कर्नाटक उच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा जताया है , जिसमें कर्मचारी को नोटिस जारी करने की आवश्यकता पर विचार किया गया था । मैंने 1972 के नियमों के नियम 8 के आलोक में मामले के उक्त पहलू पर पहले ही विचार कर लिया है और इसलिए, ***बी.माइकल डिसूजा*** (पूर्व) के मामले में कर्नाटक उच्च न्यायालय के फैसले ने प्रतिवादी- कर्मचारी की कोई खास मदद नहीं की।

35 - प्रतिवादी- कर्मचारी के विद्वान वकील ने ***प्रबंधक , वेस्टर्न कोलफील्ड्स लिमिटेड बनाम प्रयाग मोदी*** के मामले में जिसे 2018 (157)

एफएलआर 323 में सूचित किया गया है, मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा जताया है, जिसमें यह माना गया है विभिन्न उच्च न्यायालयों ने ग्रेच्युटी की जब्ती के मामले में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की प्रयोज्यता के संबंध में लगातार विचार किया है। म.प्र. उच्च न्यायालय के वाद ***परमाली वालेंस लिमिटेड बनाम म.प्र. राज्य और अन्य***, जिसे 1996 (72) एफएलआर 748 (एमपी) में सूचित किया गया है, के अलावा वही दृष्टिकोण ***कृष्णावेनी टेक्सटाइल लिमिटेड बनाम सहायक श्रम आयुक्त*** के मामले में जिसे 2002 (95) एफएलआर 1164 (मद्रास) में सूचित किया गया था , अपनाया गया था । ***भारत गोल्ड माइंस लिमिटेड बनाम क्षेत्रीय श्रम आयुक्त***, ILR 1986 KAR 2755 में सूचित किए गए मामले में कर्नाटक उच्च न्यायालय ने भी यही दृष्टिकोण अपनाया। ***क्षेत्रीय प्रबंधक बनाम नीलाबेन सुरेश संघवी*** के मामले में गुजरात हाई कोर्ट की डिविजन बेंच का भी यही मानना है । प्रासंगिक रूप से इस मामले में उच्च न्यायालय ने कहा कि ग्रेच्युटी जब्त करने के किसी विशिष्ट आदेश के अभाव में, ग्रेच्युटी रोकने की कार्रवाई को उचित नहीं ठहराया जा सकता है। मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने ***जी.एम.डी.सी. सहकारी बैंक बनाम दीनदया गौड़,*** 2013 (1) एमपीएलजे 301 में सूचित , में कहा कि ग्रेच्युटी की राशि बिना कोई संबंध तोड़े और कर्मचारी की पीठ पीछे निर्धारित की गई थी और इसलिए , ग्रेच्युटी अधिनियम की धारा 4 के तहत उक्त राशि की वसूली नहीं की जा सकती है।

36 - प्रतिवादी- कर्मचारी के लिए विद्वान वकील द्वारा उद्धृत निर्णयों का सार यह है कि किसी कर्मचारी की ग्रेच्युटी केवल ग्रेच्युटी अधिनियम के तहत निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार ही रोकी जा सकती है , जिस सीमा तक ग्रेच्युटी को रोकना/ जब्त करना स्वीकार्य है। नियोक्ता के पास अपनी इच्छानुसार ग्रेच्युटी रोकने का कोई निरंकुश विवेकाधिकार नहीं है। यह पुराना कानून है कि यदि कोई कानून किसी कार्य को किसी विशेष तरीके से करने का निर्देश देता है, तो उसे उसी तरीके से करना होगा और अन्य तरीकों की मनाही है। [देखें ***बारू राम बनाम प्रसन्नी***, एआईआर 1959 एससी 93 में रिपोर्टित और ***आयकर आयुक्त, मुंबई बनाम अंजुम एम.एच. घासवाला,*** 2002 (1) एससीसी 633 में सूचित] ***संयुक्त राज्य अमेरिका बनाम वंडरलिच*** , 342 यूएस 98 (1951) में सूचित में डगलस, जे. के कथन , 'जब इसने मनुष्य को किसी शासक के असीमित विवेक से मुक्त कर दिया है..... जहां विवेक पूर्ण है, मनुष्य को हमेशा कष्ट सहना पड़ा है।' को सुप्रीम कोर्ट ने माना कि कानून अपने बेहतरीन क्षणों तक पहुंच गया है। इसी अर्थ में कानून के शासन को सनक का कट्टर शत्रु कहा जा सकता है। विवेक, जैसा कि लॉर्ड मैन्सफील्ड ने ***आर बनाम विल्क्स***, 1770 (4) बूर 2527 बूर पृष्ठ 2539 में सूचित , में क्लासिक शब्दों में कहा है, 'का अर्थ है कानून द्वारा निर्देशित ध्वनि विवेक। इसे नियम से नियंत्रित किया जाना चाहिए, हास्य से नहीं: यह मनमाना, अस्पष्ट और काल्पनिक नहीं होना चाहिए।' ***प्राकृतिक संसाधनों के आवंटन 2012*** के विशेष संदर्भ संख्या 1 के संदर्भ में, 2012 (10) एससीसी 1 में सूचित में सुप्रीम कोर्ट द्वारा इस सिद्धांत का पालन किया जाता है ।

37 - प्रतिवादी- कर्मचारी के विद्वान वकील का तर्क यह भी है कि प्रतिवादी- कर्मचारी ने अर्हक सेवा पूरी कर ली है ताकि वह ग्रेच्युटी का भुगतान पाने का हकदार हो सके। याचिकाकर्ता- बैंक के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता उक्त तर्क पर विवाद करने में सक्षम नहीं हैं और इसलिए, मुझे लगता है कि प्रतिवादी- कर्मचारी की सेवाओं की समाप्ति/बर्खास्तगी के बावजूद, एक बार सेवाओं की अर्हता अवधि पूरी होने पर वह ग्रेच्युटी के भुगतान का हकदार बन गया। ग्रेच्युटी रोकना केवल 1972 के अधिनियम की धारा 4(6) (बी) (ii) के संबंध में हो सकता है, अन्यथा नहीं।

38 - तथ्यों और कानून की उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, मुझे लगता है कि बैंक ने ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम, 1972 के प्रावधानों और भावना के विपरीत प्रतिवादी- कर्मचारी को देय ग्रेच्युटी को रोक दिया है , जैसा कि उपरोक्त प्राधिकरणों में शीर्ष न्यायालय और अन्य अदालतों द्वारा समझाया गया है और इसलिए, मुझे आक्षेपित आदेशों में कोई त्रुटि नहीं दिखती है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण क्षेत्राधिकार में हस्तक्षेप का अधिकार देने के लिए आदेश दिए गए हैं ।

39 - रिट याचिका विफल हो जाती है और तदनुसार, उपरोक्त टिप्पणियों के साथ ***खारिज*** कर दी जाती है।

40 - याचिकाकर्ता- बैंक को नियंत्रण प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 29.09.2015 के अनुसार आज तक दिए गए ब्याज सहित गणना करके ग्रेच्युटी की पूरी राशि जारी करने का निर्देश दिया जाता है। इस प्रकार गणना की गई राशि आवेदन के साथ बैंक के समक्ष इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से **दो महीने** की अवधि के भीतर प्रतिवादी- कर्मचारी के पक्ष में जारी की जाएगी।

41 - इस मामले में 29.05.2017 को एक अंतरिम आदेश इस निर्देश के साथ पारित किया गया कि याचिकाकर्ता- बैंक निर्धारित प्राधिकारी के समक्ष 11,00,000/- (ग्यारह लाख रुपये मात्र) रुपये की राशि जमा करे और कुल रु. 5,00,000/- (पांच लाख रुपये मात्र)रूपये प्रतिवादी- कर्मचारी के पक्ष में कथित उक्त प्रतिवादी को 2,00,000/- (दो लाख रुपये मात्र)रुपये की प्रतिभूत के विरूद्ध दिए जाने के लिए निर्गत करे जो उक्त प्रतिवादी को इस निर्देश के साथ प्रस्तुत करना होगा कि शेष राशि रु. 6,00,000/- (छः लाख रूपये मात्र) एक राष्ट्रीयकृत बैंक में ब्याज वाली सावधि जमा योजना में निवेश की जायेगी, जो वर्तमान रिट याचिका में पारित होने वाले अंतिम आदेश का पालन करेगी ।

42 - उपरोक्त के मद्देनजर, देय राशि की गणना करते समय और प्रतिवादी- कर्मचारी को भुगतान करते समय, उपरोक्त राशि का समायोजन किया जाएगा और संबंधित बैंक जहां राशि पड़ी है, द्वारा पारित अंतरिम आदेश के अनुसार निवेश और जमा किया जाएगा। यह न्यायालय, **दो महीने** की पूर्वोक्त अवधि के भीतर इसे प्रतिवादी- कर्मचारी के पक्ष में जारी करेगा।

43 - उपरोक्त टिप्पणियों के साथ **खारिज** किया जाता है।

(2023) 6 ILRA 703

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 29.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र

रिट-सी संख्या 24763/2017

डॉ. वैभव शर्मा **याचिकाकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री अवनीश मिश्रा, श्री अनुराग शर्मा

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी., श्री निपुण सिंह

सिविल कानून - सीमा अधिनियम, 1963-धारा 17 (सी)- याचिकाकर्ता ने एम.बी.बी.एस. में प्रवेश लिया। पाठ्यक्रम पूरा कर लें और संरचना के अनुसार फीस जमा करें-64 छात्र समान रूप से रखे गए-कुछ सरकारी आदेशों आदि के संदर्भ में रिट दाखिल करके अतिरिक्त फीस की वापसी का दावा किया-अनुमति दी गई-संबंधित मामलों में उक्त आदेश के खिलाफ दो विशेष अपीलें दायर की गईं, जिन्हें खारिज कर दिया गया-कॉलेज द्वारा विशेष अनुमति याचिकाएं दायर की गईं-2016 में खारिज कर दी गईं-एसएलपी खारिज होने के तुरंत बाद 2017 में वर्तमान याचिका दायर की गई-इसे अत्यधिक देरी से दायर नहीं कहा जा सकता है, मुकदमा 2004 में शुरू हुआ और अंत में 2016 में समाप्त हुआ-2017 में दायर डब्लू.पी.-हस्तक्षेप से इनकार करने के लिए लापरवाही के कारण वर्जित नहीं माना जा सकता-रिट अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में सीमा अधिनियम लागू नहीं होता-सद्भावनापूर्ण गलती की दलील दी गई-सीमा अधिनियम की धारा 17 (सी) के तहत कवर किया गया-अतिरिक्त फीस वापस करने के लिए परमादेश जारी किया गया।

डब्लू.पी. आंशिक रूप से स्वीकृत। (ई-9)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

तुकाराम काना जोशी और अन्य बनाम महाराष्ट्र औद्योगिक विकास, (2013) 1 एससीसी 353

(माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र द्वारा दिया गया)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अवनीश मिश्रा का <u>विवरण रखने वाले</u> विद्वान अधिवक्ता श्री अनुराग शर्मा, राज्य-प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता और प्रतिवादी 2 एवं 3 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री निपुण सिंह को सुना।

2. याचिकाकर्ता ने शैक्षणिक वर्ष 2002-03 में प्रतिवादी-कॉलेज द्वारा संचालित एमबीबीएस पाठ्यक्रम में प्रवेश लिया और कॉलेज द्वारा निर्धारित संरचना के अनुसार शुल्क जमा की। ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता के समान ही 64 छात्रों ने कुछ सरकारी आदेशों आदि के संदर्भ में उनके द्वारा जमा की गई अतिरिक्त शुल्क की वापसी का दावा किया है। जब कॉलेज द्वारा शुल्क वापस नहीं की गई, तो उक्त 64 छात्रों ने रिट-सी संख्या 12333/2004 (*अभिषेक कादियान और अन्य बनाम उ.प्र. राज्य व अन्य*) दायर की। इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने एक बहुत ही विस्तृत निर्णय द्वारा रिट याचिका को संबंधित

अनुवादित

मामले सहित निम्नलिखित निर्देशों के साथ स्वीकार किया:

"दोनों रिट याचिकाएं परिणामस्वरूप स्वीकार की जाती हैं। सुभारती केकेबी चैरिटेबल ट्रस्ट मेरठ और सुभारती मेडिकल कॉलेज, मेरठ को शैक्षणिक सत्र 2002-03 में प्रवेश लेने वाले छात्रों की भुगतान सीटों की कॉलेज शुल्क और उसी बैच के सभी आगामी वर्षों के लिए 1,26,500/- प्रति माह की दर से शुल्क लेने का अधिकार है, जैसा कि शासनादेश दिनांक 8.1.2003 द्वारा निर्धारित किया गया है। ट्रस्ट और कॉलेज 2002-03 बैच की भुगतान सीटों पर प्रवेश लेने वाले सभी 64 छात्रों और उसी बैच के आगामी वर्षों के लिए एकत्र की गई पूरी अतिरिक्त राशि, एक महीने के भीतर वापस कर देंगे। रिट याचिका संख्या 38368/2006 में 17 याचिकाकर्ताओं को विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित की जाने वाली अगली परीक्षाओं में चौथी व्यावसायिक परीक्षा में बैठने की अनुमति दी जाएगी। उन्हें तीन वर्षों में उनके द्वारा भुगतान की गई अतिरिक्त शुल्क को समायोजित करने की अनुमति दी जाएगी और केवल अंतर (इस प्रकार) प्रति वर्ष रु. 1,26,500/- का भुगतान करना होगा। यह निर्णय केवल शैक्षणिक सत्र 2002-03 के एमबीबीएस पाठ्यक्रम और उसी बैच के आगामी वर्षों में भुगतान सीटों पर प्रवेश लेने वाले छात्रों तक ही सीमित रहेगा। कॉलेज इन याचिकाओं की लागत के रूप में छात्रों को 10,000 रुपये का भुगतान करेगा, जिसे कॉलेज के छात्र कल्याण कोष में जमा किया जाएगा।"

3. संबंधित मामलों में उक्त आदेश के विरूद्ध दो विशेष अपीलें दायर की गईं। हालांकि, उन्हें इस न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा दिनांक 29.9.2010 के विस्तृत निर्णय द्वारा खारिज कर दिया गया था। कॉलेज द्वारा यह मामला माननीय सर्वोच्च न्यायालय में ले जाया गया, जिसमें 10.12.2010 को एक अंतरिम आदेश पारित किया गया जिसमें कॉलेज को तीन महीने की अवधि के भीतर रजिस्ट्री में 4 करोड़ रुपये जमा करने का निर्देश दिया गया। बाद में, 8.5.2015 को विशेष अनुमति याचिकाओं को खारिज कर दिया गया। कॉलेज द्वारा कुछ उपचारात्मक याचिकाएं और समीक्षा याचिकाएं दायर की गईं, हालांकि, उन्हें भी 13.7.2016 को खारिज कर दिया गया।

4. वर्तमान रिट याचिका वर्ष 2017 में इस प्रार्थना के साथ दायर की गई थी कि प्रतिवादी 2 और 3 को एक रिट जारी की जाए, ताकि सरकारी आदेश दिनांक 8.1.2003 के उल्लंघन में याचिकाकर्ता से वसूली गई शुल्क की पूरी अतिरिक्त राशि को अतिरिक्त राशि पर 12% प्रति वर्ष की दर से ब्याज सहित वापस किया जा सके।

5. पक्षों के बीच जवाबी और प्रत्युत्तर हलफनामों का आदान-प्रदान हो चुका है और रिट याचिका पर अंतिम रूप से निर्णय लिया जा रहा है।

6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि चूंकि समान छात्रों को पहले ही अतिरिक्त शुल्क की राशि वापस कर दी गई है, इसलिए याचिकाकर्ता भी उसी राहत का हकदार है।

7. इसके विपरीत, कॉलेज के विद्वान अधिवक्ता श्री निपुण सिंह ने जोरदार तर्क दिया है कि याचिकाकर्ता रिट न्यायालय या विशेष अपीलीय पीठ या सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेशों का कोई लाभ लेने का

अनुवादित

हकदार नहीं है क्योंकि 64 छात्रों ने वर्ष 2004 में अपना दावा किया था जबकि याचिकाकर्ता ने 2017 में इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है और उसका दावा अत्यधिक विलंब के कारण वर्जित है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया है कि सीमा अधिनियम, 1963 के अनुसार किसी भी राशि की वापसी का दावा करने की सीमा तीन वर्ष है और इसलिए, याचिकाकर्ता अतिरिक्त शुल्क की वापसी का दावा नहीं कर सकता है। उन्होंने यह भी तर्क दिया है कि चूंकि याचिकाकर्ता ने प्रवेश लेने के समय कॉलेज के समक्ष एक वचन दिया था कि वह शुल्क-संरचना के अनुसार शुल्क का भुगतान करेगा और एक बार भुगतान की गई शुल्क किसी भी परिस्थिति में वापस नहीं की जाएगी, इसलिए याचिकाकर्ता को किसी भी राहत का दावा करने से रोक दिया गया है।

8. कॉलेज के विद्वान अधिवक्ता की इस दलील के जवाब में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि सीमा अधिनियम, 1963, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्तियों के प्रयोग में लागू नहीं होगा और जब भी किसी वादी को मौलिक अधिकार से वंचित किया जाता है या जहां न्याय की मांग बहुत मजबूर करने वाली होती है, तो उच्च न्यायालय में जाने में देरी से राहत देने में बाधा नहीं आएगी क्योंकि यह न्यायालय के विवेकाधिकार में है कि वह अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग निष्पक्ष और न्यायसंगत तरीके से करे ताकि न्याय को बढ़ावा मिले न कि उसे पराजित करे। अपने निवेदन के समर्थन में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने ***तुकाराम काना जोशी और अन्य बनाम महाराष्ट्र औद्योगिक विकास,*** *(2013) 1 एससीसी 353* मामले में सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय पर भरोसा किया है, जिसमें पैराग्राफ 13 और 14 का संदर्भ दिया गया है, जिसे निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"13. देरी की माफी का सवाल विवेक का है और मामले के तथ्यों के आधार पर तय किया जाना चाहिए, क्योंकि ये मामले दर मामले अलग-अलग हो सकते हैं। यह इस बात पर निर्भर करेगा कि मौलिक अधिकार का उल्लंघन क्या है और किस उपाय का दावा किया गया है और देरी कब और कैसे हुई। ऐसा नहीं है कि न्यायालयों के लिए अनुच्छेद 226 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करने के लिए कोई सीमा अवधि है, न ही ऐसा कभी हो सकता है कि एक निश्चित समय बीत जाने के बाद न्यायालय किसी मामले में हस्तक्षेप न कर सकें। ऐसा मामला हो सकता है जहां न्याय की मांग इतनी मजबूर करने वाली हो कि उच्च न्यायालय देरी के बावजूद हस्तक्षेप करने के लिए इच्छुक हो। अंततः, यह न्यायालय के विवेकाधिकार का मामला होगा और इस तरह के विवेक का प्रयोग निष्पक्ष और न्यायपूर्ण तरीके से किया जाना चाहिए ताकि न्याय को बढ़ावा मिले और उसे पराजित न किया जा सके। पक्ष के बचाव की वैधता को काफी हद तक न्यायसंगत सिद्धांतों पर परखा जाना चाहिए।

14. इस बारे में कोई सख्त नियम नहीं बनाया जा सकता कि उच्च न्यायालय को कब किसी ऐसे पक्ष के पक्ष में अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने से मना कर देना चाहिए जो काफी देरी के बाद इसे दायर करता है और अन्यथा लापरवाही का दोषी है। विवेक का प्रयोग विवेकपूर्ण और उचित तरीके से किया जाना

अनुवादित

चाहिए। यदि आवेदक द्वारा किया गया दावा कानूनी रूप से संधारणीय है, तो देरी को माफ किया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, जहां आचरण को उचित ठहराने वाली परिस्थितियां मौजूद हैं, वहां जो अवैधता स्पष्ट है, उसे केवल लापरवाही के आधार पर बरकरार नहीं रखा जा सकता है। जब पर्याप्त न्याय और तकनीकी विचार एक दूसरे के विरूद्ध खड़े होते हैं, तो पर्याप्त न्याय के कारण को प्राथमिकता दी जानी चाहिए, क्योंकि दूसरा पक्ष जानबूझकर देरी के कारण किए जा रहे अन्याय में निहित अधिकार का दावा नहीं कर सकता है। न्यायालय को निर्दोष पक्षों को नुकसान नहीं पहुंचाना चाहिए यदि उनके अधिकार वास्तव में याचिकाकर्ताओं की ओर से देरी के कारण सामने आए हैं।"

9. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद, मुझे लगता है कि अभिषेक कादियान (उपरोक्त) के मामले में पारित रिट न्यायालय का आदेश घोषणात्मक रूप में है, जिसके द्वारा यह घोषित किया गया है कि कॉलेजों को सरकारी आदेश दिनांक 8.1.2003 द्वारा निर्धारित कॉलेज शुल्क वसूलने का हकदार माना जाता है। इसका मतलब यह है कि कॉलेज इस न्यायालय द्वारा तय की गई शुल्क से अधिक का दावा करने के हकदार नहीं हैं। जहां तक देरी के पहलू का सवाल है, हालांकि रिट याचिकाएं वर्ष 2004 में दायर की गई थीं और वर्ष 2007 में निर्णय सुनाया गया था, कॉलेज इसे विशेष अपीलीय पीठ में ले गया जहां विशेष अपीलें 2010 में खारिज कर दी गईं और फिर मामला सर्वोच्च न्यायालय में ले जाया गया जहां वर्ष 2010 में एक अंतरिम आदेश पारित किया गया था, लेकिन विशेष अनुमति याचिकाएं 2015 में खारिज कर दी गईं और उपचारात्मक और समीक्षा याचिकाएं 2016 में खारिज कर दी गईं।

10. वर्तमान रिट याचिका विशेष अनुमति याचिका खारिज होने के तुरंत बाद वर्ष 2017 में दायर की गई थी, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि इसे अत्यधिक देरी से दायर किया गया है, खासकर तब जब सभी छात्र सर्वोच्च न्यायालय तक मामले का बचाव कर रहे थे, जहां वर्ष 2010 में एक अंतरिम आदेश भी पारित किया गया था, जो वर्ष 2015-16 तक प्रभावी रहा और इससे उक्त छात्रों को कोई लाभ नहीं हुआ।

11. अन्यथा भी, जहां तक सीमा निर्धारण पहलू का संबंध है, यह अच्छी तरह से स्थापित है कि सीमा निर्धारण अधिनियम, 1963, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में लागू नहीं होता है। यदि किसी भी प्रकार से यह कहा जाए कि सीमा अधिनियम, 1963 या इसके सिद्धांत रिट क्षेत्राधिकार में लागू होते हैं, तो भी जहां तक वर्तमान मामले में शामिल विवाद का संबंध है, सीमा अधिनियम, 1963 की धारा 17 का संदर्भ दिया जाना आवश्यक है। उक्त अधिनियम की धारा 17 इस प्रकार है:

"***17. धोखाधड़ी या भूल का प्रभाव। –***

(1) जहां, किसी ऐसे वाद या आवेदन के मामले में जिसके लिए इस अधिनियम द्वारा परिसीमा अवधि निर्धारित की गई है,–

(क) वाद या आवेदन बचाव पक्ष या प्रतिवादी या उसके प्रतिनिधि की धोखाधड़ी पर आधारित है; या

(ख) किसी अधिकार या हक का ज्ञान जिस पर कोई वाद या आवेदन आधारित है, उपरोक्त

अनुवादित

किसी व्यक्ति की धोखाधड़ी से छिपा हुआ है; या

*(ग) वाद या आवेदन **भूल के परिणाम** से राहत के लिए है; या*

(घ) जहां वादी या आवेदक के अधिकार को स्थापित करने के लिए आवश्यक कोई दस्तावेज उससे धोखे से छिपाया गया है।

परिसीमा अवधि तब तक प्रारम्भ नहीं होगी जब तक वादी या आवेदक को धोखाधड़ी या गलती का पता नहीं चल जाता है या वे उचित तत्परता से इसका पता लगा सकते हैं; या किसी छिपे हुए दस्तावेज के मामले में, तब तक जब तक वादी या आवेदक के पास छिपे हुए दस्तावेज को प्रस्तुत करने या उसे प्रस्तुत करने के लिए बाध्य करने के साधन नहीं हो जाते।"

12. मैं पाता हूं कि यदि कोई वाद या आवेदन गलती के परिणामों से राहत के लिए है, तो सीमा अधिनियम, 1963 की धारा 17 (सी) राहत मांगने वाले व्यक्ति के बचाव में आएगी और ऐसे मामलों में, सीमा की अवधि तब तक शुरू नहीं होगी जब तक आवेदक को गलती का पता नहीं चल जाता या वह उचित परिश्रम से इसका पता नहीं लगा लेता।

13. वर्तमान मामले में, रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 22 और 23 में यह दलील दी गई है कि चूंकि विभिन्न छात्रों ने इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था और याचिकाकर्ता की शुल्क की रसीदें भी अभिषेक कादियान व अन्य द्वारा दायर रिट-सी संख्या 12333/2004 के साथ संलग्न की गई थीं, इसलिए याचिकाकर्ता को एक ***सद्भावपूर्ण भूल*** थी या उसे विश्वास था कि उसका मामला भी इस न्यायालय के समक्ष उठाया जा रहा है। हालांकि, उक्त **गलती तब उजागर हुई** जब याचिकाकर्ता अवमानना याचिका दायर करने आया, लेकिन उसे बताया गया कि वह रिट-सी संख्या 12333/2004 में पक्षकार नहीं था और इसलिए, वह विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश के उल्लंघन के कारण अवमानना याचिका दायर नहीं कर सकता।

14. जहां तक रिट याचिका के पैराग्राफ 22 और 23 में किए गए कथनों का संबंध है, मैं पाता हूं कि जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ 9 में कहा गया है कि इस न्यायालय का निर्णय केवल रिट याचिका, रिट-सी संख्या 12333/2004 के याचिकाकर्ताओं और संबंधित मामलों के संबंध में ही लागू हो सकता है और जहां तक रिट याचिका के पैराग्राफ 22 और 23 में याचिकाकर्ता की गलती या विश्वास का तर्क है, उसे स्पष्ट रूप से नकारा नहीं गया है और केवल इतना ही कहा गया है कि छात्रों के अधिवक्ता ने भी याचिकाकर्ता को बताया था कि वह रिट-सी संख्या 12333/2004 दायर करने वालों में शामिल नहीं था।

15. इसलिए, कथित देरी के बिंदु पर, मामला न केवल *तुकाराम काना जोशी* (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अंतर्गत आता है, बल्कि सीमा अधिनियम, 1963 की धारा 17 (सी) के तहत निहित सिद्धांत की प्रयोज्यता भी है।

16. अन्यथा भी, यदि मैं उपर्युक्त प्रावधानों को नजरअंदाज करता हूं, तो मुझे लगता है कि मुकदमा 2004 में शुरू हुआ और अंततः 2016 में उपचारात्मक और समीक्षा याचिकाओं को खारिज करने के साथ समाप्त हुआ और इसलिए, यदि रिट याचिकाकर्ता ने 2017 में

अनुवादित

रिट याचिका दायर की है, तो इसे लापरवाही के कारण वर्जित नहीं माना जा सकता है ताकि मामले में हस्तक्षेप से इनकार किया जा सके।

17. जहां तक कॉलेज के विद्वान अधिवक्ता श्री निपुण सिंह का तर्क है कि याचिकाकर्ताओं ने प्रवेश लेते समय यह वचन दिया था कि जमा की गई शुल्क किसी भी परिस्थिति में वापस नहीं की जाएगी, मैं पाता हूं कि उक्त पहलू पर विशेष अपीलीय न्यायालय ने विशेष अपीलों में दिनांक 29.9.2010 के अपने निर्णय में पहले ही विचार कर लिया है और मैं इसके विपरीत कोई दृष्टिकोण नहीं अपना सकता। खंडपीठ के उक्त निर्णय की पुष्टि माननीय सर्वोच्च न्यायालय तक ने की है।

18. अन्यथा भी, उक्त वचनबद्धता एक मुद्रित प्रपत्र में शपथपत्र के रूप में है जो अनुलग्नक एससीए-1 के रूप में पूरक जवाबी हलफनामा का हिस्सा है और इस तरह के शपथपत्र को विश्वविद्यालय और कॉलेज के अधिकारियों द्वारा ही रूपांकित और तैयार किया गया था और एक छात्र की दुर्दशा को देखते हुए, जो प्रवेश लेने के लिए कॉलेज आता है, इस प्रकृति के सभी दस्तावेजों को भरना उसके विरूद्ध किसी भी राहत की मांग करते समय रोक के रूप में कार्य नहीं कहा जा सकता है, जो किसी विशेष मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में कानून द्वारा अनुमत है।

19. वर्तमान मामले में, चूंकि इस न्यायालय के साथ-साथ सर्वोच्च न्यायालय ने भी कॉलेज के अतिरिक्त शुल्क वसूलने के अधिकार की जांच कर ली है और कॉलेज के विरूद्ध इस मुद्दे पर निर्णय दे दिया है तथा अन्य छात्रों को पूर्वोक्त निर्णयों के अनुसार अतिरिक्त शुल्क वापस कर दिया गया है, इसलिए मुझे संविधान के अनुच्छेद 14 में निहित समानता, समता तथा संवैधानिक समता के सिद्धांतों के आधार पर याचिकाकर्ता को राहत देने से इनकार करने का कोई आधार नहीं दिखता।

20. यहां तक कि याचिकाकर्ता को राहत देने से इनकार करना भी शुल्क की राशि रोककर कॉलेज को अनुचित रूप से समृद्ध करने के समान होगा, जिसका वह हकदार नहीं है, क्योंकि विद्वान एकल न्यायाधीश ने कॉलेज को सरकारी आदेश दिनांक 8.1.2003 के अनुसार शुल्क वसूलने का अधिकार घोषित करते हुए आदेश पारित किया था और उससे आगे नहीं।

21. उपरोक्त सभी कारणों से, रिट याचिका सफल होती है तथा **आंशिक रूप से स्वीकार** की जाती है।

22. प्रतिवादी 2 और 3 को परमादेश रिट जारी की जाती है कि वे इस न्यायालय द्वारा रिट-सी संख्या 12333/2004 (अभिषेक कादियान एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य) में पारित दिनांक 14.8.2007 के निर्णय का अनुपालन करते हुए याचिकाकर्ता से ली गई शुल्क की अतिरिक्त राशि को **तीन महीने** की अवधि के भीतर वापस करें, इस आदेश की प्रमाणित प्रति उक्त प्रतिवादियों के समक्ष प्रस्तुत की जाती है।

23. याचिकाकर्ता को दिनांक 14.8.2007 के आदेश के तहत दिए गए 10,000/- रुपए की लागत की राहत से इनकार किया जाता है। इसके अलावा, याचिकाकर्ता प्रतिवादियों के पास पड़ी अतिरिक्त राशि पर किसी भी ब्याज का हकदार नहीं होगा।

अनुवादित

(2023) 6 ILRA 707

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 29.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सलिल कुमार राय

माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल

रिट-सी संख्या 66886/2006

विजय पाल सिंह **याचिकाकर्ता**

बनाम

यू.पी. राज्य और अन्य **प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री ए.डी. सॉन्डर्स, श्री अखिलेश त्रिपाठी, श्री अनूप त्रिवेदी, श्री एस.पी.एस. राजपूत, शिल्पा आहूजा, श्री शिवम यादव

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी., श्री अनुज श्रीवास्तव, श्री सिद्धार्थ वर्मा, श्री सिद्धार्थ वर्मा, श्री वरद नाथ, श्री एच.एन. सिंह (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिग्रहण की अधिसूचना को रद्द करने के लिए रिट याचिका दायर की गई - इस आधार पर कि याचिकाकर्ता अभी भी भूमि के हिस्से पर काबिज है - उसका होटल उस पर चल रहा है - भूमि का कब्जा स्टेट द्वारा लिया गया था और उसी तारीख को, इसे यू.पी.एस.आई.डी.सी. को सौंप दिया गया था। औद्योगिक भूखंडों के विकास के लिए- इस बात का कोई सबूत नहीं है कि उनसे कब्जा नहीं लिया गया था- अधिग्रहित भूमि का कब्जा मौजूदा प्रक्रिया के अनुसार लिया गया था जिसे माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भी मंजूरी दी थी- कब्जे के प्रमाण पत्र द्वारा समर्थित कब्जा और उसके बाद अधिग्रहित भूमि के बड़े हिस्से पर प्रतिवादी संख्या 4 की फैक्ट्री स्थापित करना इस बात का सबूत है कि अधिग्रहित भूमि का कब्जा लिया गया था और लाभार्थी द्वारा इसका उपयोग भी किया गया था- याचिका स्वयं गंभीर खामियों के कारण प्रतिबंधित है- हालांकि प्रतिवादी संख्या 3 के लिए खुला है- याचिकाकर्ता के अनुरोध पर विचार करने के लिए कि जिस भूमि पर याचिकाकर्ता का होटल मौजूद है उसे आवंटित या पट्टे पर दिया जाए- होटल का व्यवसाय भी उद्योग की परिभाषा में आता है और इक्विटी भी मांग करती है कि इमारत को ध्वस्त करने के बजाय।

रिट याचिका खारिज। (ई-9)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. सावरन लता और अन्य बनाम स्टेट ऑफ हर. और अन्य, 2010(4) एससीसी 532

2. स्वाइका प्रॉपर्टीज प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम स्टेट ऑफ राज. और अन्य, मनु/एससी/0795/2008

3. कमल सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश स्टेट और अन्य, मनु/यूपी/1457/202

4. दिनेश कुमार और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश स्टेट और अन्य, 2018 (5) ADJ 297

5. ए.पी. इंडस्ट्रियल इंफ्रास्ट्रक्चर कॉरपोरेशन लिमिटेड बनाम चिंतामनेनी नरसिम्हा राव और अन्य, एआईआर 2011 एससी 3558

6. अफलातून और अन्य बनाम दिल्ली के उपराज्यपाल और अन्य, एआईआर 1974 एससी 2077

7. महावीर बनाम उत्तर प्रदेश के स्टेट और अन्य 2018(6) ए डी जे 529 में रिपोर्ट किया गया

अनुवादित

8. सचिव के माध्यम से भूमि और भवन विभाग और अन्य बनाम अत्रो देवी और अन्य मनु/एससी/0621/2023 में रिपोर्ट किया गया

9. इंदौर विकास प्राधिकरण बनाम मनोहर लाल और अन्य 2020(8) एससीसी 129 में रिपोर्ट किया गया

10. बांदा विकास प्राधिकरण, बांदा बनाम मोती लाल अग्रवाल 2011 एआईआर एससीडब्लू 2835 में रिपोर्ट किया गया

11. बलवंत नारायण भागड़े बनाम एम.डी., भागवत 1976(1) एससीसी 700 में रिपोर्ट किया गया

(माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल द्वारा दिया गया)

1. याचिकाकर्ता के लिये विद्वान अधिवक्ता श्री अखिलेश त्रिपाठी एवं विद्वान अधिवक्ता शिवम यादव, राज्य प्रत्यर्थी के लिये उपस्थित विद्वान स्थाई अधिवक्ता, उत्तर प्रदेश राज्य औद्योगिक विकास निगम लिमिटेड (जिसे आगे यू.पी.एस.आई.डी.सी. कहा जाएगा) के लिये विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री श्री एच. एन. सिंह और उनके सहायक श्री अनुज श्रीवास्तव एवं प्रत्यर्थी संख्या 4 के लिये विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अमित सक्सेना के सहायक अधिवक्त श्री वरद नाथ को सुना।

2. वर्तमान रिट याचिका याचिकाकर्ता द्वारा मूल रूप से मौजा भानपुर खालसा, परगना हसनपुर, जिला मुरादाबाद में स्थित प्लॉट संख्या 199एम, कुल क्षेत्रफल 1.20 एकड़ के संबंध में दिनांक 16.06.1976 की अधिग्रहण अधिसूचना को रद्द करने की प्रार्थना के लिए दायर की गई है, इस आधार पर कि याचिकाकर्ता अभी भी प्लॉट संख्या 199एम की भूमि के हिस्से पर काबिज है, हालांकि इसे दिनांक 16.06.1976 की अधिसूचना द्वारा अधिग्रहित किया गया था और उसका होटल 1984 से उस पर चल रहा है।

<u>मामले का तथ्यात्मक मैट्रिक्स इस प्रकार है:-</u>

3 (ए). याचिकाकर्ता मौजा भानपुर खालसा, परगना हसनपुर, जिला मुरादाबाद में स्थित प्लॉट संख्या 199 एम क्षेत्रफल 1.91 एकड़ का खातेदार था।

3 (बी). राज्य सरकार ने भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 की धारा 4(1) के तहत दिनांक 16.06.1976 को एक अधिसूचना जारी की (इसके बाद इसे 'अधिनियम, 1894' कहा जाएगा) और 'अधिनियम, 1894' की अत्यावश्यक धारा धारा 17 (1) को भी लागू किया। इस अधिसूचना के द्वारा अन्य भूमि के अतिरिक्त गाटा संख्या 199M क्षेत्रफल 1.20 एकड़ भूमि का भाग भी अधिग्रहीत किया जाना प्रस्तावित था। इस के बाद 'अधिनियम, 1894' की धारा 6 के तहत दिनांक 17.06.1976 को एक और अधिसूचना जारी की गई। और अधिसूचना जारी की गई। उपरोक्त अधिसूचना में अधिनिर्णय भी 07.05.1989 को घोषित किया गया था। वर्तमान याचिकाकर्ता ने दिनांक 07.05.1985 के द्वारा घोषित मुआवजा प्राप्त करने के बाद अधिनियम, 1894 की जिला न्यायाधीश, मुरादाबाद के समक्ष संदर्भ संख्या 268 / 1988 के तहत धारा 18 के तहत जिला न्यायाधीश, संदर्भ भी यर किया और 01.04.2022 को अधिग्रहीत भूमि के लिए मुआवजे की वृद्धि की भी अनुमति दी गई। इसके बाद यूपीएसआईडीसी, जो उपरोक्त अधिसूचना का लाभार्थी था, ने भी रिट याचिका

अनुवादित

संख्या 18453 / 1986 के माध्यम से इस न्यायालय के समक्ष दिनांक 07.05.1985 के फैसले को इस आधार पर चुनौती दी कि दिनांक 07.05.1985 के फैसले को पारित करने से पहले यूपीएसआईडीसी की बात नहीं सुनी गई थी। उपरोक्त रिट याचिका स्वीकार कर ली गई आदेश दिनांक 06.11.2009 द्वारा और अधिनिर्णय दिनांक 07.05.1985 को रद्द कर दिया गया और नया अधिनिर्णय पारित करने का निर्देश दिया गया। इसके बाद रिट याचिका संख्या 18453/1986 में पारित आदेश दिनांक 06.11.2009 के अनुसरण में, 07.10.2010 को एक नया अधिनिर्णय पारित किया गया, जिसके द्वारा मुआवजे की राशि कम कर दी गई। यहां यह उल्लेख करना भी प्रासंगिक है कि रिट याचिका संख्या 18456/1986 में पारित दिनांक 06.11.2009 का आदेश और साथ ही दिनांक 07.10.2010 का नया अधिनिर्णय वर्तमान रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान पारित किया गया था।

3(सी). याचिकाकर्ता की अधिग्रहीत भूमि सहित अधिसूचना दिनांक 16.06.1976 के अनुसरण में, दिनांक 20.11.1976 और 02.03.1977 को लीज डीड के माध्यम से मेसर्स सिवालिक लिमिटेड कंपनी को आवंटित की गई थी। इसके बाद मेसर्स सिवालिक सेलूलोज़ लिमिटेड द्वारा प्रतिवादी संख्या 4 के रूप में पक्षकार बनाने के लिए दिनांक 02.04.2019 को पक्षकार आवेदन दायर किया गया था, जिसे इस न्यायालय ने दिनांक 01.05.2019 के आदेश के तहत अनुमति दी थी और प्रतिवादी संख्या 4 के रूप में पक्षकार अनुमति दी थी। इसके बाद प्रतिवादी संख्या 4 की ओर से भी जवाबी शपथपत्र दाखिल किया गया।

3(डी). याचिकाकर्ता ने अधिनियम, 1894 की धारा 4 और 6 के तहत जारी अधिसूचना दिनांक 16.06.1976 के साथ-साथ अधिसूचना 17.06.1976 को रद्द करने के लिए प्रार्थना को जोड़ने के लिए दिनांक 07.03.2010 को एक संशोधन आवेदन दायर किया है। इस संशोधन आवेदन को 1976 की अधिसूचना (लगभग 34 वर्षों के बाद) को चुनौती देने में गंभीर खामियों के आधार पर अलग द्वारा खारिज कर दिया गया था।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि उसकी अर्जित भूमि का कब्जा प्रत्यर्थियों द्वारा नहीं लिया गया था और वह अभी भी उस भूमि पर काबिज है। इस न्यायालय के दिनांक 13.03.2019 के आदेश के बावजूद राज्य ने कोई सबूत पेश नहीं किया है, जिससे पता चलता हो कि कब्ज़ा उससे लिया गया था और इस पर बसंत होटल नाम का होटल आज भी मौजूद है और इस होटल को चलाने के लिए कलेक्टर कार्यालय द्वारा आवश्यक अनुमति भी दी गई थी। प्लॉट नंबर 199M में अपनी अर्जित भूमि पर याचिकाकर्ता के कब्जे के संबंध में विवाद जिला मजिस्ट्रेट, ज्योतिबा फुले नगर की दिनांक 30.01.2006 की रिपोर्ट पर आधारित है। जिलाधिकारी, ज्योतिबा फुले नगर की रिपोर्ट दिनांक 30.01.2006 से पता चलता है कि गाटा संख्या 199 एम में अर्जित भूमि के कुछ हिस्से में बसंत होटल निकल रहा है और शेष भूमि खाली है जिसका उपयोग कृषि प्रयोजन के लिए किया जा रहा है और उसी पर याचिकाकर्ता का उनका कब्जा है। ऐसा प्रतीत होता है कि उपरोक्त रिपोर्ट दिनांक 30.01.2006 को जिला

अनुवादित

मजिस्ट्रेट, ज्योतिबा फुले नगर द्वारा उत्तर प्रदेश सरकार को प्रस्तुत की गई थी। दिनांक 08.12.2005 के पत्र के अनुसरण में याचिकाकर्ता का अभ्यावेदन प्राप्त होने पर उसकी भूमि को इस आधार पर डी- नोटिफाई करने का अनुरोध किया गया कि उससे कब्ज़ा नहीं लिया गया है।

5. दिनांक 30.01.2006 की रिपोर्ट के आधार पर, याचिकाकर्ता ने गाटा संख्या 199M में अपनी अर्जित भूमि को डी- नोटिफाइड करने या उसे अपने पक्ष में आवंटित करने के लिए फिर से दिनांक 17.02.2006 को प्रतिनिधित्व प्रस्तुत किया था लेकिन आवंटन के संबंध में उपरोक्त अनुरोध को अस्वीकार कर दिया गया था। मुख्य प्रबंधक, औद्योगिक क्षेत्र, लखनऊ द्वारा पत्र दिनांक 03.06.2006 द्वारा, उसके बाद याचिकाकर्ता ने मुख्य प्रबंधक, औद्योगिक क्षेत्र के आदेश दिनांक 03.06.2006 की समीक्षा करने के लिए यूपीएसआईडीसी को निर्देश जारी करने के लिए प्रतिवादी संख्या 1 के समक्ष दिनांक 18.09.2006 को गाटा संख्या 199एम में अर्जित भूमि आवंटित करने के उनके प्रार्थना पत्र पर ट औ वचार हेतु लखनऊ में एक आवेदन दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त आवेदन अभी भी है। रिकॉर्ड पर ऐसा कुछ भी नहीं है कि याचिकाकर्ता की उसकी अर्जित भूमि की अधिसूचना रद्द करने की प्रार्थना खारिज कर दी गई हो।

6. प्रतिवादी क्रमांक 1 एवं 2 की ओर से दायर जवाबी शपथपत्र में कहा गया कि संपूर्ण अर्जित संपत्ति पर कब्जा दिनांक 17.06.1976 की अधिसूचना के अनुसरण में याचिकाकर्ता की भूमि सहित भूमि को 08.07.1976 को 'अधिनियम, 1894' की धारा 9 के तहत ले लिया गया था और अधिनिर्णय के अनुसरण में मुआवजे का भुगतान पहले ही किया जा चुका है, इसलिए भूमि का अधिग्रहण कर लिया गया है। राज्य में निहित है और 'अधिनियम, 1894 की धारा 48 के तहत अधिसूचना रद्द करने का कोई सवाल ही नहीं उठता है और ऊपर उल्लिखित कब्जा लेने के बाद उसे मेसर्स सिवालिका सेलूलोज़ लिमिटेड (प्रतिवादी संख्या 4) को सौंप दिया गया था क्योंकि वही उस कंपनी को यूपीएसआईडीसी द्वारा आवंटित किया गया था। मेसर्स शिवालिका सेलूलोज़ लिमिटेड (प्रतिवादी संख्या 4) ने यू.पी.एस.आई.डी. सी. द्वारा आवंटित उपरोक्त अधिग्रहित भूमि पर पेपर मिल की स्थापना की थी।

7. प्रतिवादी नंबर 4 ने भी एक जवाबी शपथपत्र दायर किया था और अपने जवाबी शपथपत्र में यह तर्क दिया गया था कि अर्जित भूमि दो अलग-अलग पट्टा विलेख दिनांक 20.10.1976 और 02.03.1977 के माध्यम से प्रतिवादी नंबर 4 को 90 वर्षों के लिए पट्टे पर दी गई थी और संपूर्ण औद्योगिक भूखंड (अधिग्रहीत भूमि) क्षेत्रफल 34.76 एकड़ का कब्ज़ा यू. पी. एस.आई.डी. सी. को सौंप दिया गया। प्रतिवादी संख्या 4 को 08.07.1976 को और आवंटित भूमि पर कब्जा करने के बाद, उसने चारदीवारी का निर्माण किया और उसके अंदर कई अन्य निर्माण किए और जून 1979 में कारखाना स्थापित किया। आगे कहा गया कि रिपोर्ट दिनांक 30.01.2006 स्वयं जिला मजिस्ट्रेट द्वारा, यू.पी.एस.आई.डी. सी. द्वारा

अप्रमाणित

प्रतिवादी संख्या 4 के पक्ष में निष्पादित स्वामित्व प्रमाण पत्र और पट्टा विलेख के विपरीत और अंततः प्रतिवादी संख्या 4 4 द्वारा यह तर्क दिया गया कि अधिग्रहण की कार्यवाही अंतिम हो गई है और पर्याप्त देरी के बाद इसे चुनौती नहीं दी जा सकती है।

8. अपने मामले के समर्थन में, प्रतिवादी संख्या 4 के अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया है।

(i) 2010 (4) एससीसी 532 (सवरन लता अन्य बनाम हरियाणा राज्य और अन्य);

(ii) एमएएनयू / एससी/ 0795 / 2008 (स्विका (स्विका प्रॉपर्टीज़ प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम राजस्थान राज्य और अन्य.)

(iii) एमएएनयू /यूपी/1457/2020 (कमल सिंह और अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य);

(iv) 2018 (5) एडीजे 297 (दिनेश कुमार और अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य)

(v) एआईआर 1974 एससी 3558 (ए.पी. इंडस्ट्रियल इंफ्रास्ट्रक्चर कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम चिंतामनेनी नरसिम्हा राव और अन्य)।

(vi) एआईआर 1974 एससी 2077 (अफलातून और अन्य बनाम दिल्ली के उपराज्यपाल और अन्य)

9. आगे यह भी प्रस्तुत किया गया है कि एक बार जब अर्जित भूमि राज्य में निहित हो जाती है, तो उसे विनिवेश नहीं किया जा सकता है। इसलिए इसे अधिनियम, 1894 की धारा 48 के तहत डिनोटिफाइड नहीं किया जा सकता है। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने महावीर बनाम यूपी राज्य और अन्य ने 2018 (6) एडीजे 529 के फैसले पर भरोसा किया।

10. प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया कि भूमि का बड़ा हिस्सा अधिग्रहित किया गया है, तो राज्य एजेंसी को अधिग्रहण की प्रक्रिया पूरी होने के बाद ली गई भूमि के कब्जे की सुरक्षा के लिए पुलिस बल रखने की आवश्यकता नहीं है। इसलिए, भले ही यह स्वीकार किया गया तथ्य हो कि याचिकाकर्ता द्वारा वर्ष 1984 में होटल का निर्माण किया गया था, यह अवैध निर्माण है और अपनी बात के समर्थन में, प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने भूमि और भवन विभाग द्वारा सचिव और अन्य बनाम अत्रो देवी और अन्य ने मनु / एससी / 0621/2023 के फैसले पर भरोसा किया।

11. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिवादियों के अधिवक्ता की दलील के बाद यह भी तर्क " दिया कि जिस भूमि पर होटल स्थित है, उसे यू.पी.एस.आई.डी. सी. द्वारा आवंटित किया जा सकता है और उसके स्थान पर वह समतुल्य भूमि गाटा संख्या 199M देने को तैयार है जो अधिग्रहीत भूमि से सटा हुआ ।

12. प्रतिद्वंद्वी तर्कों पर विचार करने के साथ-साथ रिकॉर्ड के अवलोकन के बाद, यहां विचार के लिए एकमात्र प्रश्न यह उठता है कि याचिकाकर्ता की अर्जित भूमि का कब्जा राज्य द्वारा लिया गया था या नहीं।

13. रिकॉर्ड से, यह स्पष्ट रूप से स्थापित है कि 'अधिनियम, 1894 की धारा 4 और 6 के तहत अधिसूचना क्रमशः 16.06.1976 और 17.06.1976 को जारी की गई थी और

अनुवादित

उपरोक्त अधिसूचना भूमि का कब्ज़ा ले लिया गया था। दिनांक 08.07.1976 को राज्य एवं उसी " तिथि को यू.पी.एस.आई.डी. सी. को औद्योगिक भूखंड विकसित करने के लिए सौंप दिया गया। राज्य द्वारा प्रस्तुत कब्ज़ा पत्र दिनांक 08.07.1976 से, यह स्थापित होता है कि भूमि का कब्ज़ा 08.07.1976 को लिया गया था और दिनांक 08.07.1976 का कब्ज़ा पत्र साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 (3) के अनुसार कब्जे का पर्याप्त प्रमाण है। क्योंकि इसे आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में विधिवत निष्पादित किया गया था और उसी पर कब्जा करने के बाद, वर्तमान याचिकाकर्ता की भूमि सहित कुल 34.76 एकड़ क्षेत्रफल वाली पूरी अधिग्रहित भूमि को पट्टा विलेख के माध्यम से प्रतिवादी संख्या 4 को पट्टे पर / आवंटित कर दिया गया था। दिनांक 20.10.1976 एवं 02.03.1977. यह भी निर्विवाद है कि रकबा 34.76 एकड़ की अर्जित भूमि पर कब्जा करने के बाद, प्रतिवादी संख्या 4 ने आवंटित भूमि पर एक चारदीवारी का निर्माण किया और एक कारखाना स्थापित किया। याचिकाकर्ता का यह स्वीकार किया गया मामला है कि उन्हें वर्ष 1984 में होटल चलाने की अनुमति मिली थी, और उन्होंने दिनांक 07.05.1985 के फैसले के अनुसरण में मुआवजा भी प्राप्त किया था और उसके बाद याचिकाकर्ता ने अधिनियम, 1894 की धारा 18 के तहत अधिनिर्णय दिनांक 07.05.1985 द्वारा प्रदान किया गया मुआवजा के संदर्भ भी दायर किया था। हालाँकि बाद में, दिनांक 07.05.1985 के अधिनिर्णय को इस में न्यायालय द्वारा 06.11.2009 को रिट में रद्द कर दिया गया था यू. पी. एस. आई.डी. सी. द्वारा दायर यू.पी.एस.आई.डी. याचिका संख्या 18453/1986 वर्तमान रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान तकनीकी आधार पर और उसके बाद नया अवार्ड भी दिया गया, लेकिन इस तथ्य से वर्तमान याचिकाकर्ता को कोई लाभ नहीं होगा क्योंकि यहां प्रश्न विवादित भूमि के कब्जे का है।

14. हालाँकि, एक ओर, राज्य ने दिनांक 08.07.1976 को कब्ज़ा प्रमाण पत्र प्रस्तुत करके स्थापित किया है कि भूमि पर कब्ज़ा ले लिया गया था, लेकिन दूसरी ओर याचिकाकर्ता कोई भी सबूत पेश करके उपरोक्त प्रमाण पत्र पर विवाद नहीं कर सका कि कब्ज़ा उससे नहीं लिया गया था उन्हें 08.07.1976 को. हालाँकि दिनांक 30.01.2006 की रिपोर्ट में उल्लेख है कि गाटा संख्या 199M में अर्जित भूमि के कुछ भाग में याची का बसंत होटल मौजूद है।

15. माननीय न्यायालय ने इंदौर विकास प्राधिकरण बनाम मनोहर लाल और अन्य 2020 (8) एससीसी 129 में के मामले में जिसमें पैराग्राफ 366.7 में स्पष्ट रूप से देखा गया कि 'अधिनियम, 1894' के तहत कब्ज़ा लेने का तरीका रिपोर्ट / ज्ञापन करके है। एक बार अधिनियम, 1894 की धारा 16 के तहत कब्ज़ा लेने का निर्णय पारित हो जाने के बाद भूमि राज्य में निहित हो जाती है और उसका कोई विनिवेश नहीं होता है। एक बार कब्ज़ा लेने के बाद भूमि राज्य में निहित हो जाती है, तो मूल किरायेदार की ओर से बाद का कब्ज़ा अवैध है और इसे ध्यान में नहीं रखा जा सकता है। प्रासंगिक पैराग्राफ नं. 247 और 258 यहां नीचे उद्धृत किए गए हैं;

"247. प्रश्न यह उठता है कि क्या 1894 के अधिनियम के तहत कब्ज़ा लेने और धारा 24

अवैधानिक

(2) में प्रयुक्त अभिव्यक्ति "भौतिक कब्ज़ा" के बीच कोई अंतर है। वास्तव में, 1894 के अधिनियम के तहत कब्जा लेने का जो विचार किया गया था, उसका मतलब केवल भूमि का भौतिक कब्जा था। 2013 के अधिनियम के तहत कब्ज़ा लेना हमेशा ज़मीन पर भौतिक कब्ज़ा लेने के बराबर होता है। जब राज्य सरकार भूमि का अधिग्रहण करती है और कब्ज़ा लेने का एक ज्ञापन तैयार करती है, तो यह भूमि का भौतिक कब्ज़ा लेने के बराबर होता है। संपत्ति के बड़े हिस्से पर या अन्यथा अर्जित की गई संपत्ति पर, सरकार से किसी अन्य व्यक्ति या पुलिस बल को शामिल करने की अपेक्षा नहीं की जाती है। इसे बनाए रखने और इस पर खेती करने का अधिकार तब तक रहेगा जब तक कि भूमि का उपयोग उस उद्देश्य के लिए नहीं किया जाता जिसके लिए इसे जिसके लिए इसे अधिग्रहित किया गया है। एक बार कब्ज़ा प्राप्त करने के लिए जांच कार्यवाही शुरू करने के बाद सरकार को उस पर निवास करना शुरू नहीं करना चाहिए या उस पर भौतिक रूप से कब्ज़ा नहीं करना चाहिए। इसके बाद, यदि भूमि को आगे बनाए रखा जाता है या भूमि पर कोई पुनः प्रवेश किया जाता है या कोई खुली भूमि पर खेती शुरू कर देता है या आउटहाउस आदि में निवास करना शुरू कर देता है, तो उसे राज्य के वाली भूमि पर अतिक्रमणकारी माना जाएगा। अतिचारी का कब्ज़ा हमेशा वास्तविक मालिक यानी राज्य सरकार के लाभ के लिए सुनिश्चित होता है।

258. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि निहितीकरण कब्जे के साथ है और क़ानून 1894 के अधिनियम की धारा 16 और 17 के तहत प्रदान करता है कि एक बार कब्ज़ा लेने के बाद, पूर्ण निहितार्थ होता है। यह एक अपरिहार्य अधिकार है और इसके बाद अधिकार के साथ निहित होता है। धारा 16 के तहत निर्दिष्ट अधिकार विभिन्न चरणों के बाद होता है, जैसे धारा 4 के तहत अधिसूचना, धारा 6 के तहत घोषणा, धारा 9 के तहत नोटिस, धारा 11 के तहत अधिनिर्णय और फिर कब्ज़ा। सभी बाधाओं से बिल्कुल मुक्त संपत्ति को निहित करने के वैधानिक प्रावधान को पूर्ण रूप से लागू किया जाना चाहिए। न केवल कब्ज़ा राज्य में निहित है बल्कि अन्य सभी बाधाएँ भी तुरंत हटा दी गई हैं। भूमिधारक का स्वामित्व समाप्त हो जाता है और राज्य संपत्ति का पूर्ण मालिक और कब्ज़ा बन जाता है। इसके बाद जमीन मालिक का संपत्ति पर कोई नियंत्रण नहीं रह जाता है। उसे संपत्ति लेने और उस पर नियंत्रण करने में कोई द्वेष नहीं हो सकता। भले ही उसने राज्य द्वारा कब्ज़ा लेने के बाद भी कब्ज़ा बरकरार रखा हो या अन्यथा उस पर अतिक्रमण किया हो, वह एक अतिचारी है और अतिचारी का ऐसा कब्ज़ा उसके लाभ के लिए सुनिश्चित करता है और मालिक की ओर से राज्य से संपत्ति के विनिवेश पर विचार करता है।

16. इसी प्रकार, 2011 एआईआर एससीडब्ल्यू 2835 में रिपोर्ट किए गए बांदा विकास प्राधिकरण, बांदा बनाम मोती लाल अग्रवाल के मामले में, पैराग्राफ 34 और 35 में यह देखा गया कि कोई भी सख्त नियम नहीं बनाया जा सकता है कि कौन सा कार्य अधिग्रहीत भूमि का कब्ज़ा लेना होगा और यदि अधिग्रहीत भूमि खाली है, तो संबंधित राज्य के अधिकारियों को

अनुवादित

मौके पर जाना होगा और कब्जे की डिलीवरी दिखाते हुए एक पंचनामा तैयार करना होगा, यह पता लगाने के लिए पर्याप्त होगा कि पूरी भूमि का वास्तविक कब्जा ले लिया गया है। अधिग्रहीत भूमि के बड़े हिस्से का सार्वजनिक प्रयोजन के लिए उपयोग, जिसके लिए इसे अधिग्रहित किया गया था, इस तथ्य का स्पष्ट रूप से संकेत है कि अधिग्रहित भूमि का कब्ज़ा ले लिया गया है।

17. बांदा विकास प्राधिकरण (उपरोक्त) मामले के पैराग्राफ 34 और 35 को यहां नीचे उद्धृत किया जा रहा है;

"34. उपर्युक्त निर्णयों से जो सिद्धांत निकाले जा सकते हैं वे हैं:

i) इस बारे में कोई सख्त नियम नहीं बनाया जा सकता कि किस अधिनियम के तहत अधिग्रहीत भूमि पर कब्ज़ा कर लिया जाएगा।

ii) यदि अधिग्रहीत भूमि खाली है, तो संबंधित राज्य प्राधिकरण का मौके पर जाकर पंचनामा तैयार करने का कार्य आमतौर पर कब्ज़ा लेने के लिए पर्याप्त माना जाएगा।

iii) यदि अधिग्रहीत भूमि पर फसल खड़ी है या भवन / संरचना मौजूद है, तो केवल संबंधित प्राधिकारी द्वारा मौके पर जाना, कब्जा लेने के लिए पर्याप्त नहीं होगा। आमतौर पर, ऐसे मामलों में, संबंधित प्राधिकारी को भवन / संरचना के कब्जे वाले या उस व्यक्ति को नोटिस देना होगा जिसने भूमि पर खेती की है और स्वतंत्र गवाहों की उपस्थिति में कब्जा ले लिया है और पंचनामे पर उनके हस्ताक्षर लेने होंगे। निःसंदेह, भूमि या भवन / संरचना के मालिक के इनकार से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि अर्जित भूमि का कब्जा नहीं लिया गया है।

iv) यदि अधिग्रहण भूमि के एक बड़े हिस्से का है, तो अधिग्रहण / नामित प्राधिकारी के लिए भूमि के प्रत्येक टुकड़े पर भौतिक कब्ज़ा लेना संभव नहीं हो सकता है और यह पर्याप्त होगा कि उचित दस्तावेज तैयार करके प्रतीकात्मक कब्ज़ा ले लिया जाए। स्वतंत्र गवाहों की उपस्थिति में और ऐसे दस्तावेज़ पर उनके हस्ताक्षर प्राप्त करना ।

v) यदि अधिग्रहण का लाभार्थी राज्य की एक एजेंसी / साधन है और कुल मुआवजे का 80% धारा 17 (3ए) के अनुसार जमा किया गया है और अधिग्रहित भूमि का पर्याप्त हिस्सा विशेष सार्वजनिक उद्देश्य को आगे बढ़ाने में उपयोग किया गया है, तब न्यायालय उचित रूप से यह मान सकता है कि अर्जित भूमि का कब्ज़ा ले लिया गया है।

35. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, हमारा मानना है कि संबंधित राज्य प्राधिकारियों द्वारा मौके पर जाकर कब्जे की डिलीवरी दिखाते हुए पंचनामा तैयार करने की कार्रवाई इस निष्कर्ष को दर्ज करने के लिए पर्याप्त थी कि संपूर्ण अधिग्रहित भूमि का वास्तविक कब्जा ले लिया गया था और बीडीए को सौंप दिया गया। अधिग्रहीत भूमि के बड़े हिस्से का सार्वजनिक प्रयोजन के लिए उपयोग, जिसके लिए इसे अधिग्रहित किया गया था, स्पष्ट रूप से इस तथ्य का संकेत है कि अधिग्रहीत भूमि का

अनुवादित

वास्तविक कब्ज़ा बीडीए द्वारा ले लिया गया था।

18. इसी प्रकार, बलवंत नारायण बनाम एम. डी. में, भागवत ने 1976 (1) एससीसी 700; जिसमें कोर्ट ने पैरा 28 में पाया कि मौके पर जाकर भूमि का निरीक्षण करने का तहसीलदार का कार्य कब्जा लेने के लिए पर्याप्त था। इसके बाद सरकार या आयुक्त के लिए 'अधिनियम 1894 ' की धारा 48-ए के तहत अधिग्रहण से पीछे हटने का अधिकार नहीं होगा। उपरोक्त निर्णय का पैरा 28 नीचे उद्धृत किया गया है;

'न्यायमूर्ति भगवती, (सहमत) (स्वयं और न्यायमूर्ति गुप्ता के लिए) - हम अपने भाई न्यायमूर्ति उंटवालिया द्वारा दिये गए निष्कर्ष से सहमत हैं, साथ ही उस तर्क से भी जिस पर निष्कर्ष आधारित है। लेकिन हम एक अलग निर्णय लिख रहे हैं क्योंकि हमें लगता है कि आदेश XXI के नियम 35, 36, 95 और 96 सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत 'प्रतीकात्मक' और 'वास्तविक' कब्जे की डिलीवरी के संबंध में वर्तमान अपीलों के निपटान के लिए आवश्यक नहीं है हमारे विद्वान भाई न्यायमूर्ति उंटवालिया के फैसले में चर्चा हुई है और हम उस संबंध में हमारे विद्वान भाई न्यायमूर्ति उंटवालिया द्वारा कही गई बातों पर हस्ताक्षर नहीं करना चाहते हैं, न ही हम अपनी सहमति व्यक्त करना चाहते हैं। अपने निर्णय में उनके द्वारा बनाये गये विभिन्न प्राधिकारियों की चर्चा के साथ हमारा मानना है कि यह कहना पर्याप्त है कि जब सरकार भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 के तहत उसके द्वारा अर्जित भूमि पर कब्जा करने के लिए आगे बढ़ती है, तो उसे भूमि का वास्तविक कब्जा लेना होगा, क्योंकि भूमि में सभी हितों का अधिग्रहण किया जाना है। यह सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत न्यायिक निर्णयों द्वारा समझे जाने वाले अर्थ में 'प्रतीकात्मक' कब्ज़ा लेने का कोई सवाल ही नहीं हो सकता है एवं न ही केवल कागज पर कब्ज़ा पर्याप्त होगा। अधिनियम सरकार में निहित होने की एक आवश्यक शर्त के रूप में विचार करता है और वह है भूमि का वास्तविक कब्ज़ा लेना, इस तरह का कब्ज़ा कैसे लिया जा सकता है यह भूमि की प्रकृति पर निर्भर करेगा। ऐसा कब्ज़ा भूमि की प्रकृति के अनुरूप ही लेना होगा। ऐसा कोई सख्त नियम नहीं हो सकता कि कौन सा कार्य भूमि पर कब्ज़ा लेने के लिए पर्याप्त होगा। इसलिए, हमें एक पूर्ण और अनुल्लंघनीय नियम निर्धारित करने वाले के रूप में नहीं लिया जाना चाहिए कि केवल बर्तन पर जाना और ढोल बजाकर या अन्यथा घोषणा करना हर मामले में भूमि का कब्ज़ा लेने के लिए पर्याप्त होगा। भौतिक समय पर उस पर कोई फसल नहीं हुई थी, इसलिए मौके पर जाकर तहसीलदार का कार्य यह निर्धारित करने के और कृषि योग्य था निर्धारित करना, कब्ज़ यह किया गया कब्जेदार की लेकिन यहां, हमारी राय में, चूंकि भूमि परती थी और से भूमि का निरीक्षण करना था कि कौन सा हिस्सा बंजर इसलिए, इसे कब्ज़ा कर लिया जाना चाहिए और इसकी सीमा लेने के लिए पर्याप्त था। ऐसा प्रतीत होता है कि जब तहसीलदार द्वारा अपीलकर्ता उपस्थित नहीं था, लेकिन कब्जा लेने के लिए भूमि के मालिक या की उपस्थिति आवश्यक नहीं है। कानूनी आवश्यकता के रूप में यह भी सख्ती से आवश्यक नहीं है कि भूमि के मालिक या कब्जेदार को नोटिस दिया जाए

अनुवादित

कि कब्ज़ा एक विशेष समय पर लिया जाएगा, हालांकि यह वांछनीय हो सकता है कि जहां संभव हो, कब्जे से पहले ऐसा नोटिस दिया जाए अधिकारियों द्वारा लिया गया है, क्योंकि इससे केवल कागजी कब्ज़ा लेने के किसी भी धोखाधड़ी या मिलीभगत वाले लेनदेन की संभावना समाप्त हो जाएगी, बिना कब्ज़ा करने वाले या मालिक को इसके बारे में पता चल जाएगा।

19. वर्तमान मामले में अधिग्रहीत भूमि का कब्ज़ा 1976 में मौजूदा प्रक्रिया के अनुसार लिया अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा । गया था जिसे माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भी अनुमोदित किया गया था। इसलिए, उपरोक्त कानूनी स्थिति को ध्यान में रखते हुए, याचिकाकर्ता की अर्जित भूमि का कब्ज़ा 08.07.1976 को लिया गया, जो कि कब्ज़ा प्रमाण पत्र द्वारा समर्थित था और उसके बाद अधिग्रहित भूमि के बड़े हिस्से पर प्रतिवादी क्रमांक 4 की फैक्ट्री स्थापित करने का प्रमाण दिया गया कि कब्ज़ा है अधिग्रहीत भूमि ले ली गई और लाभार्थी द्वारा उसका उपयोग भी कर लिया गया।

20. वर्तमान मामले में, वर्तमान मामला दायर करते समय दिनांक 17.06.1976 की अधिसूचना को चुनौती नहीं दी गई थी और केवल प्रार्थना की गई थी कि धारा 48 के तहत अपनी भूमि को पुर्नअधिसूचित करने के लिए याचिकाकर्ता के आवेदन पर विचार किया जा सकता

21. धारा 48 स्वयं मूल किरायेदार को राज्य को अधिग्रहण से हटने के मजबूर करने का कोई अधिकार नहीं देती है। यह धारा केवल एक सक्षम प्रावधान है जो राज्य को अधिग्रहण से पीछे हटने में सक्षम बनाती है जब अर्जित भूमि का कब्ज़ा नहीं लिया गया था लेकिन वर्तमान मामले में, राज्य के साथ-साथ प्रतिवादी नंबर 3 ने स्पष्ट रूप से कहा कि भूमि का कब्ज़ा ले लिया गया था और इसे फैक्ट्री स्थापित करने के लिए प्रतिवादी नंबर 4 को हस्तांतरित कर दिया गया था। भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 की धारा 48 यहां नीचे उद्धृत की गई है; "धारा 48 अधिग्रहण पूरा करना अनिवार्य नहीं है, लेकिन पूरा न होने पर मुआवज़ा दिया जाएगा।-

(1) धारा 36 में दिए गए मामले को छोड़कर, सरकार किसी भी भूमि के अधिग्रहण से पीछे हटने के लिए > होगी, जिस पर कब्जा नहीं लिया गया है।

(2) जब भी सरकार ऐसे किसी अधिग्रहण से पीछे हटती है, तो कलेक्टर नोटिस या उसके तहत किसी भी कार्यवाही के परिणामस्वरूप मालिक को हुए नुकसान के लिए देय मुआवजे की राशि निर्धारित करेगा, और इच्छुक व्यक्ति को ऐसी राशि का भुगतान करेगा। उक्त भूमि से संबंधित इस अधिनियम के तहत कार्यवाही के अभियोजन में उसके द्वारा किए गए सभी उचित खर्चों के साथ।

(3) इस अधिनियम के भाग III के प्रावधान, इस धारा के तहत देय मुआवजे के निर्धारण के लिए, जहां तक, संभव हो, लागू होंगे।

22. वर्तमान याचिका स्वयं गंभीर बाधाओं से बाधित है क्योंकि याचिकाकर्ता ने वर्ष 2006 में

अनुवादित

कब्जे की जमीन का विरोध किया है, हालांकि भूमि 1976 में अधिग्रहित की गई थी और कब्जा भी वर्ष 1976 में लिया गया था और बाद में वर्ष 1976 और 1977 में प्रतिवादी नंबर 4 को पट्टे पर दे दिया गया था ।

23. इस तथ्य के मद्देनजर, याचिकाकर्ता मौजा भानपुर खालसा, परगना हसनपुर, जिला मुरादाबाद में स्थित गाटा संख्या 199एम में याचिकाकर्ता की अधिग्रहीत भूमि के संबंध में दिनांक 17.06.1976 की अधिसूचना को रद्द करने वाले 'अधिनियम, 1894 की धारा 48 के तहत अपने अभ्यावेदन पर विचार करने के लिए कोई मामला नहीं बना सका, इसलिए याचिका विफल हो जाती है और खारिज की जाती है। हालांकि, प्रतिवादी संख्या 3 के लिए यह स्वतंत्र है कि वह याचिकाकर्ता के अनुरोध पर विचार करे कि जिस भूमि पर याचिकाकर्ता का होटल मौजूद है, उसे आवंटित या पट्टे पर दिया जाए क्योंकि होटल का व्यवसाय भी उद्योग की परिभाषा में आता है और इक्विटी यह भी मांग करती है कि चल रहे होटल की इमारत को ध्वस्त करने के बजाय, होटल की इमारत के नीचे की भूमि याचिकाकर्ता को यू. पी. एस. आई. डी. सी. द्वारा तय की जाने वाली शर्तों के अनुसार आवंटित की जाए, यदि उपरोक्त भूमि अधिग्रहीत भूमि का हिस्सा है।

आदेश दिनांक : 29.05.2023

ए. के. आर.

कोर्ट नंबर-39

केस :- रिट - सी नंबर - 66886 ऑफ 2006

याचिकाकर्ता :- विजय पाल सिंह

प्रतिवादी:- प्रधान सचिव द्वारा उत्तर प्रदेश राज्य इण्डस डेवलपमेटं एवं अन्य

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता :- ए.डी. सॉन्डर्स, अखिलेश त्रिपाठी, अनूप त्रिवेदी, एस.पी.एस. राजपूत, शिल्पा आहूजा

प्रतिवादी के अधिवक्ता :- सी.एस.सी., अनुज श्रीवास्तव, सिद्धार्थ वर्मा, सिद्धार्थ वर्मा, वरद नाथ

माननीय न्यायमूर्ति सलील कुमार राय

माननीय न्यायमूर्ति अरूण कुमार सिंह देशवाल

संशोधन आवेदन पर आदेश

1. वर्तमान संशोधन आवेदन धारा 4 / 17 (1) (4) के तहत अधिसूचना दिनांक 16.06.1976 को चुनौती देने वाली प्रार्थना के साथ-साथ धारा 6/17 (1) (4) के तहत दिनांक 17.06.1976 की अधिसूचना को शामिल करने के लिए दायर किया गया है। अधिग्रहण अधिनियम, 1894.

2. प्रार्थना के रूप में, याचिकाकर्ता अधिसूचना को अत्यधिक देर से यानी 24 साल बाद रद्द करना शामिल करना चाहता है। मामलों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय (i) 2010 (4) SCC 532 (सावरन लता और अन्य बनाम हरियाणा राज्य और अन्य); (ii) MANU/SC/O795/2008 (स्विका प्रॉपर्टीज प्राइवेट लिमिटेड अन्य बनाम राजस्थान राज्य और (iii) AIR 2011 SC 3558 (A.P. इंडस्ट्रियल इंफ्रास्ट्रक्चर कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम चिंतामनेनी नरसिम्हा राव और अन्य) और (iv) AIR 1974 एससी 2077 (अफलातून और अन्य बनाम दिल्ली के उपराज्यपाल और अन्य) में स्पष् रूप से कहा गया है कि अधिग्रहण अधिसूचना को कई वर्षों की काफी

अनुवादित

देरी के बाद रद्द नहीं किया जा सकता है, इसलिए उन अधिसूचनाओं को रद्द करने की प्रार्थना की गई है जिन्हें याचिकाकर्ता पक्षकार आवेदन द्वारा जोड़ना चाहता है लाचेस द्वारा गंभीर रूप से वर्जित है, इसलिए, वर्तमान संशोधन आवेदन खारिज कर दिया गया है।

(2023) 6 ILRA 716

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 10.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्रा

अनुच्छेद 227 के अंतर्गत वाद संख्या 9954 वर्ष 2022

बकर अली खान एवं अन्य.. .याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ... प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता: श्री अरविंद श्रीवास्तव तृतीय

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: जी.ए., श्री बृजेश कुमार यादव

(ए) भारत का संविधान - अनुच्छेद 227 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 145 - प्रक्रिया जहां भूमि या जल से संबंधित विवाद से शांति भंग होने की संभावना है, धारा 146 - विवाद के विषय को कुर्क करने और रिसीवर नियुक्त करने की शक्ति - एक बार जब सिविल न्यायालय मामले को अपने नियंत्रण में ले लेता है, तो यह बिना कहे ही स्पष्ट है कि धारा 145/146 सीआरपीसी के तहत कार्यवाही आगे नहीं बढ़ सकती है और इसे समाप्त होना चाहिए - धारा 145/146 सीआरपीसी के तहत कार्यवाही में, कार्यकारी मजिस्ट्रेट को किसी अन्य पक्ष द्वारा दावा किए गए स्वामित्व और कब्जे की वैधता के प्रश्न पर निर्णय लेने का अधिकार नहीं है - शीर्षक या कब्जे के संबंध में पक्षों के अधिकार अंततः सिविल न्यायालय द्वारा निर्धारित किए जाते हैं। (पैरा - 9,11)

दोनों पक्षों ने सिविल मुकदमा दायर किया - बिक्री विलेख/निषेधाज्ञा को रद्द करने के लिए - जहाँ पक्षकार के अधिकार, शीर्षक या हित के प्रश्न को संलग्न किया जाना है - पक्षों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर - मजिस्ट्रेट ने याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध निषेधाज्ञा आदेश पारित किया - जो विवाद में प्रथम पक्ष थे - विवादित संपत्ति के संबंध में कोई कुर्की आदेश जारी नहीं किया। **(पैरा - 11)**

निर्णय:-मजिस्ट्रेट ने विवादित संपत्ति के लिए कुर्की आदेश जारी नहीं किया है, बल्कि दूसरे पक्ष के विरुद्ध निषेधाज्ञा पारित की है। आदेश धारा 145/146 सीआरपीसी के तहत कार्यकारी मजिस्ट्रेट की शक्तियों से परे है, जो इसे अस्थिर बनाता है और इसे रद्द करने योग्य बनाता है।

पक्षों को सिविल कोर्ट के समक्ष उपचारों तक पहुँचने, विवादित संपत्ति को संरक्षित करने और आगे की कार्रवाई की अनुमति देने के लिए तीन महीने तक यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश दिया जाता है। **(पैरा -11, 13)**

याचिका स्वीकार की गई। (ई-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

मोहम्मद आबिद बनाम रवि नरेश, एसएलपी (सीआरएल.) संख्या 5444/2022

अनुवादित

(माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्रा द्वारा दिया गया)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता, प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता, राज्य के विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता को सुना और रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री का अवलोकन किया।

2. याचिकाकर्ता द्वारा, भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत वर्तमान याचिका, अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश (फास्ट ट्रैक न्यायालय- II), रामपुर द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 78 वर्ष 2022 में पारित आदेश दिनांक 6.10.2022 तथा साथ ही उप जिलाधिकारी, रामपुर द्वारा वाद संख्या 23 वर्ष 2022 अन्तर्गत धारा 145, दंड प्रक्रिया संहिता में पारित आदेश दिनांक 28.2.2022 को चुनौती देते हुए दायर की गयी है। आदेश दिनांक 6.10.2022 के द्वारा, उप जिलाधिकारी, रामपुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 28.2.2022 की पुष्टि की गई है और वर्तमान याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर आपराधिक पुनरीक्षण को खारिज कर दिया गया है।

3. वर्तमान याचिका के प्रयोजन के लिए प्रासंगिक मामले का तथ्यात्मक आव्यूह यह है कि तहसीलदार सदर की दिनांक 3.1.2022 की रिपोर्ट जिसमें बताया गया था कि ग्राम मदाइयाँ नादर बाग, तहसील सदर में स्थित खतौनी/खाता संख्या 10 और 11 के संबंध में तथ्य खोज हेतु जांच की गई थी, पर उप जिलाधिकारी, तहसील सदर, रामपुर की न्यायालय के समक्ष धारा 145 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत कार्यवाही शुरू हुई। तत्कालीन एसडीएम के आदेश दिनांक 4.3.1975 के अनुसार, ग्राम मदाइयाँ, नादर बाग में स्थित 13 बीघा जमीन, जो खेवट नंबर 6 का हिस्सा है, स्वर्गीय अशरफ अली खान के उत्तराधिकारियों के बीच विभाजित की गई थी, जिसमें उनके बेटों इशरत अली खान, अफसर अली खान और मुर्शद अली खान प्रत्येक को 11193 वर्ग गज और बेटी अख्तरी बेगम को 5596.5 वर्ग गज जमीन मिली थी। अफसर अली खां और मुर्शद अली खां ने अलग-अलग तारीखों में अपने हिस्से की 13140 वर्ग गज जमीन के कुल 4 विक्रय विलेख निष्पादित किए। अफसर अली खां ने संपूर्ण 11193 वर्ग गज जमीन बेच दी, जो उन्हें विभिन्न व्यक्तियों के पक्ष में उत्तराधिकार के माध्यम से और विभिन्न विक्रय विलेखों के माध्यम से प्राप्त हुई थी और इसलिए खतौनी/खाता संख्या 10 और 11 में उनका कोई हिस्सा नहीं बचा। अशरफ अली खां के अन्य उत्तराधिकारियों ने भी अपने हिस्से में आने वाली जमीनों को विभिन्न व्यक्तियों के पक्ष में बेच दिया। चूंकि अफसर अली खां ने पहले ही 11193 वर्ग गज जमीन, जो उनके पिता की मृत्यु के बाद उनके हिस्से में आई थी, बेच दी थी, इसलिए उनके बेटों को भूखंड संख्या 178-179 के संबंध में परवेज अख्तर खां, पुत्र कमर अख्तर खां के पक्ष में भूमि को बाउंड्री के माध्यम से रूपांकित करके विक्रय विलेख दिनांक 24.1.2020 निष्पादित करने का कोई अधिकार नहीं था। परवेज अख्तर को बेची गई भूमि क्रेता परवेज अख्तर खान के नाम पर हस्तांतरित कर दी गई थी, लेकिन आवेदक मोहम्मद सुलेमान सिद्दीकी (वर्तमान प्रतिवादी संख्या 2) द्वारा

अधिवक्ता

बहाली आवेदन दायर किया गया था और दाखिल खारिज आवेदन को बहाल कर दिया गया जहां दाखिल खारिज का मामला अभी भी तहसीलदार के समक्ष लंबित है। यह विवादित भूखंड खाली पड़ा था, जिस पर बाकर अली खां और परवेज अख्तर खां दिनांक 14.12.2021 को जमीन हड़पने के उद्देश्य से निर्माण करने का प्रयास कर रहे थे। उन्होंने एक गेट और आंशिक बाउंड्री भी बनाई, जिसे तहसीलदार सदर ने मौके पर जाकर रुकवाया। उन्होंने यह भी कहा कि मौके पर शांति भंग होने की आशंका है। मामला पंजीकृत किया गया था और विपक्षी पक्ष (बाकर अली खां और अन्य) को नोटिस जारी किया गया लेकिन वे उपस्थित होने में विफल रहे और उन्होंने कोई आपत्ति भी दर्ज नहीं की। विवादित भूमि शुरू में नाली की प्रकृति की थी, लेकिन समय के साथ, यह आबादी में परिवर्तित हो गई और उक्त भूखंड पर कई व्यावसायिक और आवासीय भवनों का निर्माण किया गया। प्रथम पक्ष सुलेमान सिद्दीकी का मामला यह था कि उसने विवादित प्लॉट अपनी असली बुआ सगीरा यूसुफ द्वारा निष्पादित पंजीकृत उपहार विलेख के माध्यम से दिनांक 3.9.2017 को प्राप्त किया था, जिन्होंने यह प्लॉट पंजीकृत बिक्री विलेख दिनांक 24.7.2009 के माध्यम से मुकर्रम हुसैन सिद्दीकी से खरीदा था। प्रथम पक्ष का मामला यह था कि वह कथित भूमि पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के तहत प्रारंभिक आदेश की तारीख और उसके दो महीने पहले से उक्त भूमि पर कब्जे में था। अशरफ अली खान के उत्तराधिकारियों के बीच संपूर्ण 13 बीघा जमीन का बंटवारा किये जाने के समय रंगीन मानचित्र भी तैयार किया गया था। अशरफ अली खान के प्रत्येक उत्तराधिकारी को आवंटित भूमि का हिस्सा रंगीन मानचित्र में सीमांकित किया गया था। इसकी एक प्रति प्रथम पक्ष द्वारा उपजिलाधिकारी के न्यायालय में दाखिल की गई थी। मूल मालिक अशरफ अली खान के उत्तराधिकारियों में से एक इशरत अली खान ने अपने हिस्से की जमीन का एक हिस्सा 21 व्यक्तियों के पक्ष में दो पंजीकृत विक्रय पत्रों के माध्यम से बेचा था, जिन्होंने खरीदी गई जमीन को आपस में रास्ता देकर विभाजित कर दिया था, जिस पर राहे मुर्तजा से जुड़ी 12 दुकानें बनाकर 12 खरीदारों को दिनांक 28.7.1983 के विक्रय पत्र के माध्यम से बेच दी गई थीं। 12 दुकानों का कुल क्षेत्रफल सीमा चिन्ह के माध्यम से चिन्हीकरण द्वारा 2 बिस्वा, 10 बिसवांसी था। इशरत अली खां ने 12 दुकानों के पीछे स्थित 1 बीघा, 17 बिस्वा, 11 बिस्वांसी जमीन भी दिनांक 28.7.1983 के दो विक्रय विलेखों के माध्यम से 21 व्यक्तियों को बेच दी, जिसमें 4 बिस्वा, 605 वर्ग गज जमीन शामिल थी और खरीदारों ने उस पर अपने-अपने मकान बना लिए थे। प्रथम पक्ष सुलेमान सिद्दीकी का मामला यह था कि उनका नाम उनकी बुआ श्रीमती सगीरा यूसुफ द्वारा निष्पादित उपहार विलेख दिनांक 13.9.2017 के आधार पर राजस्व अभिलेखों में दाखिल खारिज कर दिया गया था, जबकि बाकर अली खां और अन्य के पक्ष में पारित दाखिल खारिज आदेश तहसीलदार सदर द्वारा पारित आदेश दिनांक 25.1.2022 द्वारा रद्द कर दिया गया है और वे अब खतौनी में दर्ज खातेदार नहीं हैं। बाकर अली खां ने खतौनी में अपने नाम की उपस्थिति का लाभ उठाते हुए 20/24.1.2020 को परवेज अख्तर के पक्ष में

अनुवादित

एक फर्जी विलेख निष्पादित किया था। चूंकि उनके नाम पर कोई जमीन नहीं थी, इसलिए बिक्री विलेख में दर्शाई गई सीमा का कोई मूल्य नहीं था। दिनांक 13.12.2021 के आदेश द्वारा उक्त बिक्री विलेख के आधार पर परवेज अख्तर के पक्ष में नामांतरण आदेश पारित किया गया। प्रथम पक्ष ने बिक्री विलेख को रद्द करने के लिए सिविल वाद संख्या 404 वर्ष 2020 (मोहम्मद सुलेमान सिद्दीकी बनाम परवेज अख्तर एवं अन्य) भी दायर किया है, जो सिविल जज (जूनियर डिविजन), रामगढ़ की न्यायालय में लंबित है। विपक्षी बाकर अली खान एवं अन्य उप जिलाधिकारी के समक्ष कार्यवाही में उपस्थित नहीं हुए। परवेज अख्तर उपस्थित हुए लेकिन उन्होंने आपत्ति दर्ज नहीं की और बाकर अली खान एवं अन्य इस तथ्य के बावजूद उपस्थित नहीं हुए कि उनपर तामीला पर्याप्त मानी गई थी। प्रथम पक्ष की दलीलें सुनने के बाद और रिकॉर्ड के आधार पर, उपजिलाधिकारी ने आदेश दिनांक 28.2.2022 द्वारा दूसरे पक्ष बाकर अली खान और परवेज अख्तर खान और अन्य को निर्देश दिया कि वे पहले पक्ष के कब्जे में पड़ी विवादित भूमि के कब्जे में हस्तक्षेप न करें और आदेश की एक प्रति आवश्यक कार्रवाई के लिए संबंधित एसएचओ और तहसीलदार को भेजी गई।

4. वर्तमान याचिकाकर्ताओं द्वारा आक्षेपित आदेश के विरुद्ध आपराधिक पुनरीक्षण दायर किया गया था, जिसे विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 78 वर्ष 2022 में पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 6.10.2022 द्वारा खारिज कर दिया गया। आक्षेपित आदेश द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण खारिज कर दिया गया तथा उप जिलाधिकारी के आदेश की पुष्टि की गई। विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय ने पाया कि विवाद केवल 24 वर्ग गज भूमि की एक दुकान के संबंध में था।

5. निचले न्यायालयों द्वारा पारित आक्षेपित आदेशों से व्यथित होकर विपक्षी बकर अली खां व अन्य ने वर्तमान याचिका दायर की, जिसमें उन्होंने कहा है कि वे ग्राम मदाइयाँ नगर बाग, तहसील सदर, जिला रामपुर में स्थित भूखण्ड संख्या 169, 170, 171, 173, 177, 178, 180, 167, 172, 179 में सह-हिस्सेदार हैं तथा उक्त भूखण्डों पर अभी भी काबिज हैं। याचिकाकर्ताओं ने इस तथ्य को स्वीकार किया कि विचाराधीन संपत्ति, पूरी तरह से शुरू में अशरफ अली खान की थी और उनकी मृत्यु के बाद, यह उनके तीन बेटों और एक बेटी अख्तरी बेगम को हस्तांतरित हो गई। याचिकाकर्ता अफसर अली खान के उत्तराधिकारी हैं। वे अपने पिता अफसर अली खान द्वारा छोड़ी गई संपत्ति में अपने-अपने हिस्से के कब्जे में हैं। एसडीएम द्वारा पारित किया गया आक्षेपित आदेश एकपक्षीय आदेश है और वास्तव में उन्हें कोई नोटिस नहीं दिया गया था। याचिकाकर्ताओं ने प्रतिवादी नंबर 3 के पक्ष में 24 वर्ग गज क्षेत्रफल भूमि का बिक्री विलेख दिनांक 24.1.2020 निष्पादित किया था और याचिकाकर्ताओं के साथ उसका नाम भी दाखिल खारिज किया गया था। उप जिलाधिकारी ने मामले को निपटाया क्योंकि उन्होंने दावा करने वाले पक्षों के बीच स्वामित्व के मुद्दे पर फैसला किया, जबकि वह इसके लिए अधिकृत नहीं थे। संपत्ति को लेकर कई विवाद न्यायालयों में लंबित हैं, जिनमें से एक मामला सिविल जज (जूनियर डिविजन), रामपुर के

अवलोकित

समक्ष लंबित है, जो मूल वाद संख्या 547 वर्ष 2021 है, जिसे नईम अख्तर और अन्य ने याचिकाकर्ताओं के खिलाफ बिक्री विलेख रद्द करने और स्थायी निषेधाज्ञा के लिए दायर किया है। विवाद का विषय भी उसी जमीन से संबंधित है। याचिकाकर्ताओं ने स्थायी निषेधाज्ञा के लिए प्रतिवादी संख्या 2 और अन्य के खिलाफ सिविल जज (सीनियर डिवीजन), रामपुर की न्यायालय में मूल वाद संख्या 344 वर्ष 2020 के रूप में दीवानी वाद भी दायर किया है। प्रतिवादी संख्या 2 ने भी प्रतिवादी संख्या 3 के पक्ष में याचिकाकर्ताओं द्वारा निष्पादित दिनांक 20.1.2020 के बिक्री विलेख को रद्द करने के लिए एक सिविल वाद दायर किया है, जो वाद संख्या 404 वर्ष 2020 है। सभी मुकदमे रामपुर जिला जजशिप में विभिन्न सिविल न्यायालयों में लंबित हैं। क्योंकि पक्षों के मध्य लंबित दीवानी वाद अभी भी जारी हैं, इसलिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अंतर्गत कार्यवाही पोषणीय नहीं हैं। विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 28.2.2022 एकपक्षीय आदेश है। नोटिस याचिकाकर्ताओं पर विधिवत तामीला नहीं हुई थी।

6. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने वर्तमान रिट याचिका में दी गई दलीलों का आश्रय लिया। उन्होंने दलील दी कि दोनों निचली न्यायालयों द्वारा पारित आक्षेपित आदेश पूरी तरह से अवैध और विकृत हैं क्योंकि सबसे पहले तो एसडीएम ने संबंधित भूमि पर पक्षकारों के बीच शांति भंग की वास्तविकता का पता लगाने के लिए कोई पुलिस रिपोर्ट नहीं मांगी। एसडीएम ने आक्षेपित आदेश पारित करते समय कानूनी त्रुटि की क्योंकि उनके पास दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145/146 के तहत पक्षों के अधिकार और स्वामित्व पर निर्णय लेने के लिए कार्यवाही करने का कोई कानूनी अधिकार नहीं था। वह केवल शांति भंग की आशंका के साथ-साथ विवादित भूमि पर कब्जे की जांच उस तारीख से दो महीने की अवधि के भीतर कर सकते थे, जिस दिन पुलिस अधिकारियों की रिपोर्ट या किसी अन्य सूचना पर मजिस्ट्रेट को सूचना मिली थी। वह धारा 145/146 दंड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत कार्यवाही करके सिविल न्यायालय के रूप में कार्य नहीं कर सकते थे। उन्होंने अंत में प्रस्तुत किया कि विद्वान निचले न्यायालय मामले के इस पहलू पर विचार करने में विफल रहे हैं कि प्रतिवादी संख्या 2 के पास केवल 24 वर्ग गज जमीन थी, लेकिन वह याचिकाकर्ताओं की जमीन पर नहीं थी। प्रतिवादी संख्या 4 एक दर्ज किरायेदार नहीं है क्योंकि उसका नाम कभी भी राजस्व रिकॉर्ड में दर्ज नहीं किया गया था। विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय, विद्वान उप जिलाधिकारी द्वारा पारित आदेश की शुद्धता और वैधानिकता की जांच करने में विफल रहा, केवल इसलिए कि कोई व्यक्ति विवादित भूमि पर कब्जे का दावा कर रहा है, शांति भंग की आशंका का कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता है।शिकायतकर्ता/ प्रतिवादी संख्या 2 विवादित संपत्ति का दर्ज किरायेदार नहीं है, उप जिलाधिकारी ने विवादित संपत्ति पर उसके कब्जे को मानते हुए गलती की। विवादित भूमि पर कब्जे के प्रश्न के निर्धारण के लिए विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा कोई स्वतंत्र साक्ष्य नहीं लिया गया। सत्र न्यायालय द्वारा आपराधिक

अवलोकित

पुनरीक्षण संख्या 78 वर्ष 2022 में पारित आदेश दिनांक 21.5.2022 द्वारा एसडीएम के आदेश पर प्रारंभ में रोक लगा दी गई थी।

7. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने रणवीर सिंह बनाम दलबीर सिंह, 2002 सीआर.एल.जे. 2017 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के एक फैसले का हवाला दिया, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 540 वर्ष 2000 में दिल्ली उच्च न्यायालय के आदेश दिनांक 16.7.2001 की वैधता पर विचार किया था, जिसमें धारा 146(1) के तहत कार्यकारी मजिस्ट्रेट के आदेश को रद्द कर दिया गया था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि धारा 145 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत कार्यवाही से संबंधित मामलों में न्यायालय को मुख्य रूप से प्रारंभिक आदेश की तिथि पर विवादित संपत्ति के कब्जे और उस तिथि से दो महीने पहले बेदखली, यदि कोई हो, से सरोकार है; न्यायालय को संपत्ति के स्वामित्व या उस पर कब्जे के अधिकार का फैसला करने की आवश्यकता नहीं है। वर्तमान मामले में उच्च न्यायालय के समक्ष निर्धारण का प्रश्न, धारा 145(1) दंड प्रक्रिया संहिता के तहत विद्वान उप- जिलाधिकारी द्वारा पारित प्रारंभिक आदेश की वैधता या अन्यथा और धारा 146(1) दंड प्रक्रिया संहिता के तहत पारित कुर्की के आदेश की स्थिरता से संबंधित था। प्रश्नों का निर्णय करने के लिए उच्च न्यायालय के लिए संपत्ति के स्वामित्व और कब्जे के अधिकार से संबंधित मामलों पर विचार करना न तो आवश्यक था और न ही प्रासंगिक था। इसके अलावा, मामले में दोनों पक्षों ने एक-दूसरे के खिलाफ स्थायी निषेधाज्ञा की डिक्री की मांग करते हुए वाद दायर किया है और अपीलकर्ता द्वारा दायर वाद में अंतरिम निषेधाज्ञा का आदेश पारित किया गया है और प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा आपत्ति याचिका दायर की गई है। वाद और अंतरिम आदेश सिविल न्यायालय के समक्ष आगे विचार के लिए लंबित हैं।

8. प्रतिवादी संख्या 2 और 3 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित आदेशों पर जोर दिया और प्रस्तुत किया कि निचली न्यायालयों द्वारा पारित आक्षेपित आदेश बहुत विस्तृत और तर्कसंगत आदेश हैं, जो रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री पर आधारित हैं, और आक्षेपित आदेशों में कोई भी हस्तक्षेप न्यायोचित नहीं है।

9. वर्तमान मामले में, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के तहत विद्वान उप जिलाधिकारी द्वारा पारित अंतिम आक्षेपित आदेश के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने उसमें विवादित भूमि के संबंध में शांति भंग की आशंका के बारे में कोई निष्कर्ष नहीं दिया है। उन्होंने केवल तहसीलदार की रिपोर्ट का आधार लिया है, जिन्होंने जिला मजिस्ट्रेट को सौंपी गई अपनी जांच रिपोर्ट में शांति भंग की आशंका जताई थी। उन्होंने मामले में किसी भी पक्षकार के कब्जे के संबंध में भी कोई विशेष निष्कर्ष नहीं दिया है और न्यायालय के प्रभावी आदेश में विवादित भूमि पर प्रतिवादी संख्या 2 मोहम्मद सुलेमान सिद्दीकी के कब्जे के बारे में निष्कर्ष दिया है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145/146 के तहत कार्यवाही में, कार्यकारी मजिस्ट्रेट को किसी अन्य पक्ष द्वारा दावा किए

अनुवादित

गए कब्जे की वैधता और स्वामित्व के प्रश्न पर निर्णय लेने का अधिकार नहीं है। ऐसी कार्यवाही में, मजिस्ट्रेट केवल वास्तविक भौतिक कब्जे के प्रति चिंतनशील होता है। यदि वह इस बात पर स्वयं का समाधान नहीं कर पाता कि किस पक्षकार के पास ऐसा कब्ज़ा था, या यदि वह यह निर्णय लेता है कि किसी भी पक्षकार के पास ऐसा कब्ज़ा नहीं था, या यदि कोई आपातस्थिति है, तो वह विवाद की विषय-वस्तु को कुर्क कर सकता है। यदि कुर्की का आदेश इनमें से किसी एक निष्कर्ष के बिना दिया जाता है, तो वह संधारणीय नहीं है। वर्तमान मामले में, मजिस्ट्रेट ने आक्षेपित आदेश पारित करते समय यह निष्कर्ष नहीं दिया है कि मामला आपातस्थिति का है।

10. सिविल न्यायालय के समक्ष बिक्री विलेख को रद्द करने और निषेधाज्ञा के लिए वर्तमान प्रतिवादी संख्या 2 मोहम्मद सुलेमान सिद्दीकी द्वारा प्रतिवादी संख्या 3 परवेज अख्तर जिन्होंने याचिकाकर्ताओं से विवादित संपत्ति खरीदी है, के विरुद्ध सिविल वाद संख्या 404 वर्ष 2020 दायर किया गया था। विवादित भूमि से संबंधित स्थायी निषेधाज्ञा के लिए वर्तमान याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रतिवादी संख्या 2 और अन्य के खिलाफ एक और मूल वाद संख्या 344 वर्ष 2020 दायर किया गया है। बिक्री विलेख को रद्द करने और स्थायी निषेधाज्ञा के लिए एक वाद नईम अख्तर और एक अन्य बनाम वर्तमान याचिकाकर्ताओं के बीच ओएस संख्या 547 वर्ष 2021 के रूप में भी लंबित है, जिसके लिए विवादित संपत्ति के संबंध में पक्ष के अधिकार, स्वामित्व और हित को सक्षम न्यायालय द्वारा तय किया जाना है, जैसा कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 146 की उप धारा (1) के तहत परिकल्पित है। मूल वाद संख्या 344 वर्ष 2020 में, वर्तमान याचिकाकर्ताओं ने प्रतिवादी संख्या 2, जो वर्तमान प्रतिवादी संख्या 2 और अन्य हैं, के खिलाफ 4895.65 वर्ग गज भूमि के संबंध में स्थायी निषेधाज्ञा के लिए प्रार्थना की है, जिसके बारे में उनका दावा है कि उन्होंने इसे अपने पिता से उत्तराधिकार के माध्यम से अर्जित किया है, जबकि वर्तमान प्रतिवादी संख्या 2 का मामला यह है कि उनके पिता ने अपने पिता से विरासत के माध्यम से अर्जित नाली भूमि का अपना पूरा 1/3 हिस्सा पहले ही बेच दिया था, और वर्तमान याचिकाकर्ताओं के पास कुछ भी शेष नहीं बचा, जिसे वह किसी अन्य व्यक्ति को हस्तानांतरित कर सकें। सिविल वाद संख्या 344 वर्ष 2020 में, वर्तमान प्रतिवादी नंबर 2 ने उस जमीन के संबंध में बिक्री विलेख को रद्द करने और स्थायी निषेधाज्ञा की राहत मांगी थी, जिसे उन्होंने दिनांक 13.9.2017 को पंजीकृत उपहार विलेख के माध्यम से अपनी बुआ श्रीमती सगीरा यूसुफ से हासिल करने का दावा किया था। इस मुकदमे में भूखंड के संबंध में मुख्य विवाद 0.278 हेक्टेयर, 0.147 हेक्टेयर, 0.425 हेक्टेयर क्षेत्रफल का प्रश्न है, जो 5082.95 वर्ग गज के बराबर है, जिसे सीमा चिह्नों द्वारा सीमांकित किया गया है। इस मुकदमे में प्रतिवादी नंबर 3 के पक्ष में वर्तमान याचिकाकर्ताओं द्वारा निष्पादित बिक्री विलेख को इस आधार पर चुनौती दी गई है कि विक्रेता इस संपत्ति के कब्जे वाले मालिक नहीं थे। आक्षेपित आदेश के प्रभावी भाग में, विद्वान उप जिलाधिकारी ने देखा है कि प्रथम

अनुवादित

पक्ष मो. सुलेमान सिद्दीकी विवादित संपत्ति के कब्जे में थे लेकिन उन्होंने तहसीलदार की रिपोर्ट जिस पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के तहत कार्यवाही शुरू की गई थी, को छोड़कर किसी ऐसे सबूत का हवाला नहीं दिया जिसके आधार पर वह इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं। उन्होंने इस निष्कर्ष के संबंध में कोई सबूत या पुलिस जांच रिपोर्ट का हवाला नहीं दिया कि मौके पर शांति भंग होने की आशंका थी, जिसके लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145/146 के तहत कार्यवाही शुरू करने की आवश्यकता थी। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के तहत कार्यवाही में, कार्यकारी मजिस्ट्रेट किसी पक्ष को, जिसे पुलिस अधिकारी की रिपोर्ट या मजिस्ट्रेट द्वारा प्राप्त की गई अन्य सूचना की तारीख से दो महीने पहले या उस तारीख के बाद और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 की उप-धारा (1) के तहत उनके आदेश की तारीख से पहले, गलत तरीके से बेदखल कर दिया गया है, कब्जे वाला मान सकता है, जहां भूमि या जल से संबंधित विवाद से शांति भंग होने की संभावना हो। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 146 के अंतर्गत, धारा 145 की उपधारा (1) के तहत आदेश देने के पश्चात किसी भी समय यदि मजिस्ट्रेट मामले को आपात स्थिति का समझता है, या यदि वह विनिश्चय करता है कि पक्षकारों में से कोई भी उस समय धारा 145 में निर्दिष्ट ऐसे कब्जे में नहीं था, या यदि वह स्वयं को इस बारे में संतुष्ट करने में असमर्थ है कि उनमें से कौन उस समय विवाद के विषय के ऐसे कब्जे में था, तो वह विवाद के विषय को तब तक कुर्क कर सकता है जब तक कि सक्षम न्यायालय उस पर कब्जे के हकदार व्यक्ति के संबंध में पक्षकारों के अधिकारों का निर्धारण नहीं कर लेता है: परंतु ऐसा मजिस्ट्रेट किसी भी समय कुर्की वापस ले सकता है यदि वह संतुष्ट हो जाता है कि विवाद के विषय के संबंध में शांति भंग होने की अब कोई संभावना नहीं है।

11. वर्तमान मामले में, मजिस्ट्रेट ने विवादित संपत्ति के संबंध में कोई कुर्की आदेश जारी नहीं किया है, इसके बजाय उन्होंने पहले पक्ष के पक्ष में, दूसरे पक्ष जो इस न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता हैं, के खिलाफ निषेधाज्ञा आदेश पारित किया है, और इस प्रकार का आदेश दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145/146 के तहत कार्यवाही में कार्यकारी मजिस्ट्रेट द्वारा प्रयोग की जा सकने वाली शक्तियों के दायरे से बाहर है और इसलिए, आक्षेपित आदेश कानून के तहत बरकरार रखने योग्य नहीं है और इस आधार पर भी, रद्द किए जाने योग्य है। **विशेष अनुमति अपील (फौजदारी) संख्या 5444 वर्ष 2022** से उत्पन्न, **मोहम्मद आबिद बनाम रवि नरेश** के मामले में हाल ही में दिए गए फैसले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 1.11.2022 के फैसले के तहत माना कि यह एक स्वीकृत तथ्य है कि याचिकाकर्ताओं ने पहले ही निषेधाज्ञा के लिए एक वाद दायर किया है, जिसमें फैजाबाद सिविल न्यायालय, उत्तर प्रदेश द्वारा एक पक्षीय अंतरिम निषेधाज्ञा दिनांक 5.12.2020 को पारित की गई है। यदि एक बार सिविल न्यायालय मामले पर विचार कर लेता है, तो यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145/146 के तहत कार्यवाही आगे नहीं बढ़ सकती है और इसे समाप्त होना चाहिए। स्वामित्व या कब्जे के

अनुवादित

संबंध में पक्षों के पारस्परिक अधिकार अंततः सिविल न्यायालय द्वारा निर्धारित किए जाने हैं। वर्तमान मामले में भी, पक्षों की दलीलों के अनुसार, दोनों पक्षों ने सिविल न्यायालय के समक्ष बिक्री विलेख/निषेधाज्ञा को रद्द करने के लिए सिविल वाद दायर किए हैं, जहां पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर पक्षकारों के अधिकार, स्वामित्व या हित के प्रश्न को निर्णित किया जाना है। इसलिए, विद्वान उप जिलाधिकारी द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 28.2.2022 कानून के दायरे में नहीं पाया जाता है और परिणामस्वरूप इसे रद्द किया जाता है। परिणामस्वरूप, मजिस्ट्रेट के आदेश की पुष्टि करने वाले पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 6.10.2022 को भी रद्द किया जाता है।

12. तदनुसार, याचिका **स्वीकार की जाती है**।

13. पक्षों को उनके द्वारा दायर किए गए संबंधित मुकदमों के संबंध में सिविल न्यायालय के समक्ष उपलब्ध उपायों का लाभ उठाने के लिए वापस भेजा जाता है। पक्षकारों को सिविल न्यायालय के समक्ष उपचार का लाभ उठाने में सक्षम बनाने के लिए विवादित संपत्ति को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से, पक्षकारों को आज से तीन महीने की अवधि के लिए विवादित संपत्ति की यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश दिया जाता है, जो उसके बाद स्वतः ही समाप्त हो जाएगी।

(2023) 6 ILRA 722

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 30.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अत्तौ रहमान मसूदी

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती सरोज यादव

आपराधिक अपील संख्या 267/1983

करुणा शंकर एवं अन्य **अपीलकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **विपरीत पक्ष**

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता: श्री राजेश तिवारी

विपरीत पक्ष के अधिवक्ता: सुश्री स्मिति सहाय, ए.जी.ए.

आपराधिक कानून - दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302/34 - हत्या - एफ.आई.आर. घटना के बारे में हर तथ्य का उल्लेख करने के लिए यह विश्वकोश नहीं है - जब चिकित्सा साक्ष्य द्वारा समर्थित पर्याप्त प्रत्यक्ष साक्ष्य मौजूद हैं, तो अपीलकर्ता से हथियार की बरामदगी न होने मात्र से अभियोजन पक्ष के मामले पर कोई भौतिक प्रभाव नहीं पड़ेगा - यदि किसी प्रत्यक्षदर्शी की गवाही अन्यथा विश्वसनीय और भरोसेमंद पाई जाती है, तो उसे केवल इसलिए अविश्वासित और खारिज नहीं किया जा सकता है क्योंकि उसकी गवाही में कुछ महत्वहीन, सामान्य या स्वाभाविक विरोधाभास दिखाई दिए हैं - जहां अपराध का प्रत्यक्ष साक्ष्य है, वहां मकसद अपना महत्व खो देता है। (पैरा - 20, 21, 23)

(बी) साक्ष्य कानून - संबंधित गवाह - संबंधित गवाह की गवाही को केवल इस आधार पर

अनुवादित

खारिज नहीं किया जा सकता है कि वह संबंधित गवाह है - जिस व्यक्ति का करीबी रिश्तेदार मारा जाता है, वह दूसरों को झूठा फंसाने के लिए असली अपराधी को कभी नहीं छोड़ेगा - कानून में ऐसा कोई प्रस्ताव नहीं है कि रिश्तेदारों को झूठे गवाहों के रूप में माना जाए। (पैरा - 24)

दिनदहाड़े हत्या - एफ.आई.आर. तुरंत दर्ज की गई - पी.डब्ल्यू. 1 और पी.डब्ल्यू. के प्रत्यक्ष साक्ष्य से घटना साबित हुई। 2 - चिकित्सा साक्ष्य द्वारा समर्थित - उसी रात जांच की गई - उसी दिन शिकायतकर्ता का बयान दर्ज किया गया - अगले दिन दूसरे गवाह का बयान दर्ज किया गया। **(पैरा - 27)**

निर्णय:- प्रत्यक्षदर्शियों ने अभियोजन पक्ष के मामले को सभी उचित संदेहों से परे साबित कर दिया। प्रत्यक्षदर्शियों की गवाही पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है। मृतक की हत्या दोषियों/अपीलकर्ताओं द्वारा दो अज्ञात बदमाशों के साथ मिलकर की गई थी। ट्रायल कोर्ट ने सही रूप से आरोपी व्यक्तियों को दोषी ठहराया। दोषसिद्धि और सजा में हस्तक्षेप करने का कोई आधार या कारण नहीं है। **(पैरा - 27)**

आपराधिक अपील खारिज कर दी गई। (ई-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. मेकला सिवैया बनाम स्टेट ऑफ ए.पी., (2022) 8 एससीसी 253
2. कलुआ @ कोशल किशोर बनाम स्टेट ऑफ राज., (2019) 16 एससीसी 683
3. सुरिंदर सिंह बनाम स्टेट. (केंद्र शासित प्रदेश चंडीगढ़), 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 1135
4. राहुल बनाम स्टेट ऑफ हर., (2021) 11 एससीसी 149

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती सरोज यादव द्वारा दिया गया)

1. यह आपराधिक अपील दोषीगण /अपीलकर्ताओं करुणा शंकर उर्फ पप्पू और राजकिशोर उर्फ कल्लू (इसके बाद करुणा शंकर और राजकिशोर के रूप में संदर्भित) द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 562 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 15.04.1983 के खिलाफ दायर की गई है। 1982 में चतुर्थ अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, उन्नाव द्वारा दोषियों/अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया गया और भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में भारतीय दंड संहिता) की धारा 34 सहपठित धारा 302 के तहत आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई।

2. इस अपील के निस्तारण हेतु आवश्यक तथ्य इस प्रकार हैं:-

अशोक कुमार नामक शिकायतकर्ता द्वारा प्रस्तुत लिखित रिपोर्ट के आधार पर एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 17.06.1982 को सायं लगभग 7.30 बजे भारतीय दंड संहिता की धारा 302 सहपठित धारा 34 के तहत थाना अचलगंज, जिला उन्नाव में दर्ज की गई थी। लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श क-1) में कहा गया था कि घटना से करीब चार साल पहले कुछ बदमाशों ने उनके घर में लूटपाट की थी. कुछ समय बाद उसे पता चला कि लूट की घटना उसके (शिकायतकर्ता के) गांव के ही रहने वाले राजकिशोर उर्फ कल्लू और राजनारायण उर्फ

अनुवादित

मुन्ना ने करायी है। इसी कारण उनमें शत्रुता उत्पन्न हो गई और वे आपस में बातचीत नहीं करते थे। अक्टूबर 1981 में, ग्राम बदरका निवासी विजय बाजपेयी ने राजकिशोर के परिवार के सत्यनारायण नामक व्यक्ति से एक बाग और 8-9 बीघे जमीन खरीदी थी और उसकी देखभाल शिकायतकर्ता के पिता गौरीशंकर उर्फ बद्री प्रसाद द्वारा की जा रही थी। राजकिशोर ने शिकायतकर्ता के पिता को कई बार उक्त भूमि की देखभाल न करने के लिए कहा और गंभीर परिणाम भुगतने की चेतावनी भी दी, लेकिन उन्होंने (मृतक ने) परवाह नहीं की। इस कारण राजकिशोर उससे (मृतक से) और अधिक द्वेष रखने लगा। इसी दुश्मनी के चलते घटना वाले दिन यानी 17.06.1982 को जब शिकायतकर्ता, उसके पिता और ममेरा भाई राम कुमार पुत्र बैजनाथ, निवासी मवैया, थाना चकेरी, जिला कानपुर, 'अंटा बंथर' बाजार से वापस घर आ रहे थे और शाम करीब 5.30 बजे वे बंशलाल दीक्षित के खेत के पास पहुंचे, तभी करुणा शंकर बंदूक से लैस, राजकिशोर कट्टा (देशी पिस्तौल) से लैस और उनके दो साथी, जिनमें से एक फरसा (कुदाल) और दूसरा कुल्हाड़ी (कुल्हाड़ी) से लैस था, वहां छुपे हुए थे. राजकिशोर ने अपने सहयोगियों से शिकायतकर्ता के पिता को मारने के लिए कहा ताकि उसे दूसरों की जमीन हड़पने के लिए सबक सिखाया जा सके। इस पर वे (शिकायतकर्ता, उसके पिता और चचेरे भाई) मुड़े और भागने लगे। उसी समय राजकिशोर ने उसके पिता पर कट्टा (देशी पिस्तौल) से गोली चला दी जो उनके (मृतक के) पेट के दाहिनी ओर लगी। इस पर वे तीनों अर्थात शिकायतकर्ता, पिता और चचेरा भाई रोते-चिल्लाते हुए दौड़े। उनकी आवाज/चीख सुनकर अपने बागों में मौजूद श्री राम पुत्र लल्लौनू लोध और पुसु रैदास निवासी बदरका दौड़कर आये और उन्होंने राजकिशोर और उसके साथियों को ललकारा लेकिन वे (शिकायतकर्ता और वहां एकत्र लोग) भयवश आसपास नहीं गए। भागते समय राजकिशोर और उसके साथियों ने उसके पिता (मृतक) का पीछा किया और लल्लन दीक्षित के बाग में करुणाशंकर और राजकिशोर ने अपने पास मौजूद बंदूक और देसी पिस्तौल से एक-एक गोली चलाई। उनके पिता गिर गए, फिर उनके दो सहयोगियों ने उनके पिता पर 'कुल्हाड़ी' और फरसा (कुदाल) से हमला किया। इसके बाद चारों बदमाश शिकायतकर्ता और उसके चचेरे भाई की ओर हमला करने के लिए दौड़े, लेकिन गोली चलने की आवाज और शिकायतकर्ता पक्ष की चीख-पुकार सुनकर कई लोगों को आता देख वे ऐसा नहीं कर सके और वे गांव सुपासी की ओर भाग गए। इसके बाद शिकायतकर्ता और अन्य लोग लल्लन दीक्षित के बगीचे में मृतक के पास पहुंचे और शिकायतकर्ता ने अपने पिता को मृत पाया। मृतक का दाहिना हाथ कलाई से कटकर अलग हो गया था। वह बदमाशों राजकिशोर और करुणाशंकर को तो अच्छी तरह पहचानता था, लेकिन अन्य दो बदमाशों का नाम नहीं जानता था। घटनास्थल पर मृतक का शव पड़ा हुआ था।

3. प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज होने के बाद अन्वेषण प्रारम्भ हुआ। उसी दिन रात में मृतक के शव का पंचायतनामा किया गया। शव को पोस्टमार्टम के लिए भेज दिया गया। मृतक के शव का पोस्टमार्टम कराया गया। अन्वेषण

अभियोजित

अधिकारी द्वारा घटना स्थल का नक्शा-नजरी तैयार किया गया। आरोपी व्यक्तियों ने संबंधित न्यायालय में आत्मसमर्पण कर दिया।

4. अन्वेषण पूरा करने के बाद अन्वेषण अधिकारी ने अपराध में दोनों दोषसिद्ध व्यक्तियों/अपीलकर्ताओं की संलिप्तता पाई और उनके खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया। प्रस्तुत किए गए आरोप-पत्र पर संबंधित विद्वान मजिस्ट्रेट ने संज्ञान लिया और मामले को सुनवाई के लिए सत्र न्यायालय को सौंप दिया। सत्र न्यायालय ने करुणाशंकर और राजकिशोर नामक दोषियों/अपीलकर्ताओं के खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के तहत आरोप तय किए। दोनों दोषियों/अपीलकर्ताओं ने आरोपों से इनकार किया और मुकदमा चलाने का दावा किया।

5. अपने मामले को साबित करने के लिए अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित गवाहों की परीक्षा की: -

अभियोजन साक्षी 1- अशोक कुमार (शिकायतकर्ता, एक प्रत्यक्षदर्शी साक्षी);

अभियोजन साक्षी 2- राधे लाल (प्रत्यक्षदर्शी साक्षी);

अभियोजन साक्षी 3- डॉ. जे.एन. बाजपेयी, जिन्होंने मृतक का पोस्टमार्टम किया;

अभियोजन साक्षी 4- सब-इंस्पेक्टर हरदेव सिंह, अन्वेषण अधिकारी;

अभियोजन साक्षी 5- हेड कांस्टेबल अमीर सिंह, जिन्होंने प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की।

उपरोक्त मौखिक साक्ष्य के अलावा अभियोजन पक्ष द्वारा प्रासंगिक दस्तावेज भी साबित किये गये हैं, जो इस प्रकार हैं:-

प्रदर्श क 1- लिखित रिपोर्ट;

प्रदर्श क 2- पोस्टमार्टम रिपोर्ट;

प्रदर्श क 3- पंचायतनामा;

प्रदर्श क 4- पुलिस फॉर्म नंबर 379;

प्रदर्श क 5- पुलिस फॉर्म नंबर 13;

प्रदर्श क 6- पोस्टमार्टम कराने के लिए प्रतिसार निरीक्षक, पुलिस लाइन, उन्नाव को पत्र;

प्रदर्श क 7- प्रभारी चिकित्साधिकारी, पोस्टमार्टम ड्यूटी, उन्नाव को पोस्टमार्टम कराने तथा शरीर पर पाए गए मृतक के कपड़ों को एक सीलबंद बंडल में भेजने के लिए पत्र;

प्रदर्श क 8- घटनास्थल से बरामद खाली कारतूसों का फर्द बरामदगीनामा ;

प्रदर्श क 9- घटना स्थल से रक्तरंजित और सादी मिट्टी के संग्रह का फर्द बरामदगीनामा;

प्रदर्श क 10- घटना स्थल के आसपास के स्थानों से बरामद मृतक के जूतों का फर्द बरामदगीनामा;

प्रदर्श क 11- घटना स्थल का नक्शा नजरी;

प्रदर्श क 12- आरोप पत्र;

प्रदर्श क 13- चिक प्रथम सूचना रिपोर्ट .;

प्रदर्श क -14- संबंधित सामान्य डायरी की प्रति।

6. अभियोजन के साक्ष्य समाप्त होने के बाद, दंड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 313 के तहत दोषियों/अपीलकर्ताओं के बयान दर्ज किए गए। दोनों दोषियों/अपीलकर्ताओं ने अपने बयानों में स्वीकार किया कि गौरी शंकर (मृतक) शिकायतकर्ता (अशोक कुमार) के पिता थे और यह भी स्वीकार किया कि राजकिशोर और राजनारायण सगे भाई थे, लेकिन इस बात से इनकार किया कि उनके द्वारा कोई डकैती

अनुवादित

करवाई गई थी जैसा कि अभियोजन साक्षी- 1 द्वारा बताया गया है। दोनों दोषियों/अपीलकर्ताओं ने शिकायतकर्ता के साथ किसी भी दुश्मनी से इनकार किया। उन्होंने अपने द्वारा की गई घटना से इनकार किया जैसा कि आरोप लगाया गया है और गवाहों द्वारा कहा गया है। उन्होंने घटना स्थल से भी इनकार किया। इसके अलावा उन्होंने कहा कि उन्हें अपराध में झूठा फंसाया गया है। उन्होंने कहा है कि दोनों प्रत्यक्षदर्शी साक्षी ग्राम बदरका के विजय बाजपेयी के आदमी हैं और उन्होंने विजय बाजपेयी के प्रभाव में गवाही दी है। उन्होंने आगे कहा कि उनके पास गौरी शंकर की हत्या करने का कोई कारण नहीं था। दोषी/अपीलकर्ता राजकिशोर द्वारा यह भी कहा गया है कि विजय बाजपेयी आपराधिक चरित्र का व्यक्ति था और उसका गुंडा एक्ट के तहत चालान किया गया था और उसने (अभियुक्त राजकिशोर) और उसके पिता ने उस मामले में पैरवी की थी, इस कारण से विजय बाजपेयी से दुश्मनी थी उसे। उन्होंने आगे कहा कि उन्होंने विजय बाजपेयी के खिलाफ मुकदमा दायर किया है। दोनों दोषियों/अपीलकर्ताओं ने आगे कहा कि गवाहों ने झूठी गवाही दी है क्योंकि वे विजय बाजपेयी के आदमी हैं। आरोपी व्यक्तियों ने अपनी दलीलों के समर्थन में कुछ दस्तावेजी साक्ष्य दाखिल किये। विचारण न्यायालय द्वारा अवसर दिए जाने के बावजूद दोषियों/अपीलकर्ताओं द्वारा बचाव में कोई गवाह पेश नहीं किया गया।

7. विद्वान विचारण न्यायालय ने साक्ष्य पूरा होने के बाद दोनों पक्षों की दलीलें सुनीं। अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों का विश्लेषण करने के बाद, विचारण न्यायालय ने अभियोजन साक्षी-1, अशोक कुमार (शिकायतकर्ता) तथा चिकित्सीय साक्ष्य एवं अन्य साक्ष्यों द्वारा समर्थित अभियोजन साक्षी-2, राधे के साक्ष्यों पर विश्वास किया तथा इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि अभियोजन पक्ष का वाद अभियोजन साक्षी-1 तथा अभियोजन साक्षी-2 द्वारा सिद्ध कर दिया गया है। यद्यपि अभियोजन साक्षी-1 तथा अभियोजन साक्षी-2 के साक्ष्यों में विरोधाभास है किन्तु यह गौण प्रकृति का है। जो कुछ भी प्रथम सूचना रिपोर्ट में लिखा गया है और अभियोजन साक्षी-1 द्वारा कहा गया है, चकित्सक साक्षी अभियोजन साक्षी-3 के चिकित्सकीय साक्ष्य द्वारा समर्थित किया गया है, जिन्होंने पोस्टमार्टम किया। प्रथम सूचना रिपोर्ट तुरंत दर्ज की गई। यह दिनदहाड़े हत्या थी क्योंकि इसे जून महीने में शाम 5.30 बजे अंजाम दिया गया था। दिन के उजाले में घटना को दूर से भी देखा जा सकता है। विद्वान विचारण न्यायालय ने तथ्यों के साक्षियों/प्रत्यक्षदर्शी साक्षी अभियोजन साक्षी-1 और अभियोजन साक्षी-2 के साक्ष्य को विश्वसनीय पाया। घटनास्थल से तीन खाली कारतूस भी बरामद किये गये। अन्वेषण अधिकारी द्वारा घटना स्थल के आस-पास से मृतक के जूते बरामद किये गये जहाँ मृतक का पीछा कर घटना को कारित किया गया। इसलिए विद्वान विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि अभियोजन पक्ष ने सभी उचित संदेहों से परे अपना मामला सिद्ध कर दिया है और दोषसिद्ध व्यक्तियों/अपीलकर्ताओं को भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के तहत दोषी ठहराया और उन्हें आजीवन कारावास की सजा

अनुवादित

सुनाई। इस दोषसिद्धि और सजा से व्यथित होकर यह आपराधिक अपील दायर की गई है।

8. दोषियों/अपीलकर्ताओं के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री राजेश तिवारी, शिकायतकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री आशु दुबे और राज्य प्रतिवादी के लिए विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता सुश्री स्मिति सहाय को सुना गया।

9. दोषियों/अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि आक्षेपित निर्णय और आदेश गलत है और विधि की दृष्टि में संधार्य नहीं है क्योंकि प्रथम सूचना रिपोर्ट में दो और अज्ञात व्यक्तियों का उल्लेख था लेकिन अन्वेषण अधिकारी द्वारा उन अज्ञात व्यक्तियों का पता नहीं लगाया जा सका। अन्वेषण अधिकारी द्वारा कथित तौर पर अपराध में इस्तेमाल किया गया कोई हथियार बरामद नहीं किया गया।विचारण न्यायालय के समक्ष केवल प्रत्यक्षदर्शी साक्षी अशोक कुमार (अभियोजन साक्षी- 1) की परीक्षा की गई है। हालाँकि अभियोजन साक्षी- 2 को प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के रूप में पेश किया गया है लेकिन उसका नाम प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के रूप में प्रथम सूचना रिपोर्ट में नहीं था। इसलिए उसके साक्ष्य पर भरोसा नहीं किया जा सकता। मौके पर उनकी मौजूदगी बेहद संदिग्ध है। उन्होंने आगे कहा कि अपराध करने का जो आशय बताया गया है वह पर्याप्त नहीं है क्योंकि जमीन विजय बाजपेयी ने खरीदी थी, मृतक ने नहीं। मृतक कथित तौर पर खरीदी गई जमीन/बगीचे की देखभाल कर रहा था। डकैती के कारण दुश्मनी का तथ्य भी अभियोजन पक्ष द्वारा सिद्द नहीं किया गया है। उन्होंने आगे कहा कि मृतक के पेट के दाहिनी ओर लगी चोट गवाह के बयान के अनुसार नहीं हो सकती थी कि वह दूसरी ओर मुड़ गया था। इसके अलावा, पेट में चोट लगने के बाद मृतक उतनी दूरी तक नहीं भाग सका, जहां अंततः उसकी मौत हो गई। उन्होंने आगे कहा कि अभियोजन साक्षी- 2 राधे, विजय बाजपेयी का नौकर है, इसलिए उसकी गवाही विश्वसनीय नहीं है क्योंकि वह एक हितबद्ध साक्षी है। उन्होंने आगे कहा कि अभियोजन पक्ष सभी उचित संदेहों से परे दोषियों/अपीलकर्ताओं के खिलाफ मामले को सिद्ध करने में विफल रहा है, इसलिए, आक्षेपित निर्णय और आदेश को रद्द कर दिया जाना चाहिए।

10. इसके विपरीत, राज्य प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता होने के साथ-साथ शिकायतकर्ता के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि वर्तमान मामले में घटना जून के महीने में दिन के उजाले में अर्थात सायं 5.30 बजे हुई। प्रथम सूचना रिपोर्ट तुरंत अर्थात उसी दिन शाम 7.30 बजे दर्ज की गई। पंचायतनामा बिना किसी देरी के किया गया। प्रथम सूचना रिपोर्ट में चार बदमाशों में से दो के नाम थे और वे दोषी/अपीलकर्ता हैं, और दो अज्ञात थें जिन्हें शिकायतकर्ता ने नहीं पहचाना क्योंकि वे अज्ञात व्यक्ति थे, लेकिन उसने प्रथम सूचना रिपोर्ट में लिखा है कि अगर उन्हें उसके सामने लाया जाए तो वह उन्हें पहचान सकता है। चोटें प्रथम सूचना रिपोर्ट में बताई गई बातों की पुष्टि करती हैं। आगे कहा गया है कि अगर प्रत्यक्ष साक्ष्य मौजूद है तो आरोपी को दोषी ठहराने के लिए हथियार की बरामदगी जरूरी नहीं है।

अनुवादित

विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा आगे प्रस्तुत किया गया कि यदि घटना का प्रत्यक्षदर्शी गवाह है तो आशय सिद्ध करना भी आवश्यक नहीं है। उन्होंने आगे कहा कि यह व्यक्ति दर व्यक्ति अलग-अलग होता है और यह व्यक्ति की क्षमता, इच्छाशक्ति और साहस पर निर्भर करता है कि चोट लगने के बाद वह कितनी देर तक दौड़ सकता है। यहां तक कि डॉक्टर ने भी निश्चित तौर पर यह नहीं कहा है कि वह 6-7 कदम ही दौड़ सका होगा। इसलिए दोषियों/अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील द्वारा दिये गए तर्कों में कोई दम नहीं है और अपील खारिज कर दी जानी चाहिए।

11. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए प्रतिद्वंद्वी तर्कों पर विचार किया गया और मूल अभिलेख के साथ-साथ अपील के अभिलेख का भी अवलोकन किया गया।

12. अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य और आक्षेपित निर्णय के अवलोकन से पता चलता है कि घटना के दिन और प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने की तारीख और समय के संबंध में कोई विवाद नहीं है। प्रथम सूचना रिपोर्ट दो नामित व्यक्तियों (अपीलकर्ताओं/दोषियों) और दो अज्ञात व्यक्तियों के खिलाफ दर्ज की गई थी जिसमें आरोप लगाया गया था कि शिकायतकर्ता, उसके पिता और उसका ममेरा भाई 'अंटा बंथर' बाजार से घर वापस आ रहे थे, शाम लगभग 5.30 बजे वे खेत के पास पहुंचे। वंशलाल दीक्षित, तभी करुणा शंकर बंदूक से लैस और राजकिशोर कट्टा (देशी पिस्तौल) से लैस थे और उनके दो साथी जो फरसा (कुदाल) और एक अन्य कुल्हाड़ी (कुल्हाड़ी) से लैस थे, अचानक वहां आ गए। अपीलकर्ता राजकिशोर ने अपने सहयोगियों को शिकायतकर्ता के पिता को मारने के लिए उकसाया ताकि उन्हें दूसरों की जमीन हड़पने के लिए सबक सिखाया जा सके। इसके बाद वे (शिकायतकर्ता, उसके पिता और चचेरे भाई) भागने लगे। उसी समय राजकिशोर ने अपने पिता पर कट्टा (देशी पिस्तौल) से गोली चला दी जो उनके (मृतक के) पेट के दाहिनी ओर लगी। इस पर वे तीनों अर्थात शिकायतकर्ता, पिता और चचेरा भाई चिल्लाते हुए दौड़े। उनकी आवाज/चीख सुनकर अपने बागों में मौजूद श्री राम पुत्र लल्लौनू लोध और पुसु रैदास निवासी बदरका दौड़कर आये और उन्होंने राजकिशोर और उसके साथियों को ललकारा, लेकिन वे (शिकायतकर्ता और वहां एकत्र लोग) भयवश आसपास नहीं गए। भागते समय राजकिशोर और उसके साथियों ने उसके पिता (मृतक) का पीछा किया और लल्लन दीक्षित के बाग में करुणाशंकर और राजकिशोर ने अपने पास मौजूद बंदूक और देसी पिस्तौल से एक-एक गोली चलाई। उनके पिता गिर गए, फिर उनके दो सहयोगियों ने उनके पिता पर 'कुल्हाड़ी' और फरसा (कुदाल) से हमला किया। इसके बाद चारों बदमाश शिकायतकर्ता और उसके चचेरे भाई की ओर हमला करने के लिए दौड़े, लेकिन गोली चलने की की आवाज और शिकायतकर्ता पक्ष की चीख-पुकार सुनकर कई लोगों को आता देख वे ऐसा नहीं कर सके और वे गांव सुपासी की ओर भाग गए। इसके बाद शिकायतकर्ता और अन्य लोग लल्लन दीक्षित के बगीचे में मृतक के पास पहुंचे और शिकायतकर्ता ने अपने पिता को मृत पाया।

13. शिकायतकर्ता अशोक कुमार की परीक्षा अभियोजन साक्षी - 1 के रूप में की गई है।

अनुवादित

उन्होंने अपने मुख्य परीक्षण में कहा है कि उनके पिता गौरी शंकर की हत्या कर दी गई थी। उन्हें बद्री प्रसाद के नाम से भी जाना जाता था। उनके पिता की हत्या से करीब 4-5 साल पहले उनके घर में कुछ लूटपाट हुई थी। कुछ समय बाद पता चला कि लूट रामनारायण उर्फ मुन्ना और राजकिशोर उर्फ कल्लू ने कराई थी। उन्होंने न्यायालय में राजकिशोर की पहचान की। उन्होंने आगे कहा कि रामनारायण राजकिशोर के सगे बड़े भाई हैं। न्यायालय में मौजूद करुणाशंकर की राजकिशोर से दोस्ती है। जब शिकायतकर्ता पक्ष को यह बात पता चली कि शिकायतकर्ता के घर में हुई लूट राजकिशोर ने करवाई है तो राजकिशोर उससे शत्रुता मानने लगा। शिकायतकर्ता के पिता की हत्या से पहले बदरका निवासी विजय नामक व्यक्ति ने राजकिशोर के परिवार के सत्यनारायण नामक व्यक्ति से 8-9 बीघे जमीन खरीदी थी। खरीदी गई जमीन की देखभाल शिकायतकर्ता के पिता करते थे। राजकिशोर ने अपने पिता से कहा कि वह उक्त जमीन की देखभाल न करें अन्यथा उन्हें (मृतक को) गंभीर परिणाम भुगतने होंगे, लेकिन शिकायतकर्ता के पिता नहीं माने। इस कारण वे (अपीलकर्ता राजकिशोर और परिवार) और अधिक शत्रुवत हो गए।

14. घटना 17.06.1982 को घटित हुई। उस दिन वह (शिकायतकर्ता), उसके पिता और उसके मामा का लड़का राम कुमार अंटा बंथर के बाजार गए थे। दोपहर करीब ढाई बजे वे बाजार से वापस निकले। वे बदरका के वंशलाल दीक्षित के खेत के पास पहुंचे। शाम लगभग साढ़े पांच बजे उनके पिता आगे थे और वे (वह और उनका चचेरा भाई) उनसे 8-10 कदम पीछे थे। रास्ते में राजकिशोर, करुणाशंकर और दो अज्ञात व्यक्ति निकले, जो वहीं छिपे हुए थे। करुणाशंकर बंदूक से लैस, राजकिशोर कट्टा (देशी पिस्तौल) से लैस और दो अज्ञात व्यक्तियों में से एक फरसा (कुदाल) से और दूसरा कुल्हाड़ी से लैस था। राजकिशोर ने उसके पिता को चुनौती दी और दूसरों की संपत्ति हड़पने का सबक सिखाने के लिए अपने साथियों से उन्हें मारने को कहा। उसके पिता भागने के लिए मुड़े लेकिन उसी समय राजकिशोर ने उसके पिता पर गोली चला दी, जो उनके पेट के दाहिनी ओर लगी। इस पर उनके पिता बाईं ओर मुड़कर उत्तर की ओर भागे लेकिन बदमाशों ने उनके पिता का पीछा किया और लल्लन दीक्षित के बाग में उन्हें घेर लिया। राजकिशोर और करुणाशंकर ने क्रमशः देशी पिस्तौल और बंदूक से उसके पिता पर एक-एक गोली चलाई। उसके पिता गिर गये तभी दोनों अज्ञात बदमाशों ने उसके पिता पर फरसा (कुदाल) और कुल्हाड़ी से हमला कर दिया। बदमाशों ने उसके पिता का पीछा किया तो फरियादी और उसका चचेरा भाई चिल्लाते हुए भागे। मैथली शरण के बाग के पास बदरका गांव निवासी राधे और पुसू उन्हें मिले और उन सभी ने घटना देखी लेकिन डर के मारे पास नहीं गए। उनके चिल्लाने पर बदरका गांव के कई लोग वहां पहुंच गए और आरोपी व उनके साथी गांव सुपासी की ओर भाग गए। उन्होंने आगे कहा कि आरोपी व्यक्तियों के भागने के बाद शिकायतकर्ता और अन्य लोग उसके पिता के पास गए और उन्हें मृत पाया। उसके घावों से खून बह रहा था। उसने मौके पर मौजूद लोगों से शव की देखभाल करने को कहा, और फिर वह अपने घर गया और अपनी मां को

अनुवादित

घटना बताई और रिपोर्ट लिखाई। इस साक्षी ने लिखित रिपोर्ट प्रदर्श क-1 को अपने हस्तलेख में सिद्ध किया। उसने आगे बताया कि वह चौकीदार के साथ रिपोर्ट दर्ज कराने थाने गया था। उसने लिखित रिपोर्ट थाने में हेड मोहर्रिर को सौंपी और उसने (हेड मोहर्रिर ने) चिक प्रथम सूचना रिपोर्ट बनाकर उन्हें दी। इसके बाद अन्वेषण अधिकारी ने उनका बयान दर्ज किया।

15. अभियोजन साक्षी- 2, राधे लाल एक और प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है, जिसका नाम प्रथम सूचना रिपोर्ट में साक्षी के रूप में नहीं है लेकिन वह घटना के प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के रूप में गवाही देने आया। उसने अपने मुख्य परीक्षण में कहा है कि वह गौरी शंकर (मृतक) को घटना के पहले से जानता था। घटना करीब छह महीने पहले शाम 5-5.30 बजे की है। घटना के समय वह लल्लन दीक्षित के बाग में था। वह मैथली शरण के बाग से लल्लन दीक्षित के बाग में पहुंचे। उस समय वह पुसू के साथ मैथली शरण के बगीचे में आम तोड़ रहा था। पुसु उसी के गांव का रहने वाला है। जब वह मैथली शरण के खेत में था तो उसे गोली चलने की और चीख की आवाज सुनाई दी। इस पर वह लल्लन दीक्षित के बाग में पहुंचा तो देखा कि चार लोग गौरीशंकर का पीछा कर रहे थे, जिनमें राजकिशोर, करुणाशंकर तथा दो अन्य अज्ञात व्यक्ति थे। करुणाशंकर बंदूक से लैस था, राजकिशोर कट्टा (देशी पिस्तौल) से लैस था और दो अन्य अज्ञात व्यक्तियों में से एक 'कुल्हाड़ी' और दूसरा 'फरसा' (कुदाल) से लैस था। लल्लन दीक्षित के बाग में चारों लोगों ने गौरीशंकर को घेर लिया। उसे घेरने के बाद राजकिशोर और करुणाशंकर ने गौरीशंकर पर गोली चला दी। गोली लगने के बाद गौरीशंकर गिर पड़े। इसके बाद दो अज्ञात लोगों ने उस पर कुल्हाड़ी और फरसा से हमला कर दिया। जिस स्थान पर वह (अभियोजन साक्षी- 2) खड़ा था उसी स्थान पर अशोक और उसका एक रिश्तेदार भी खड़े थे। पुसु भी उसके पास खड़ी थी। इन सभी लोगों ने घटना देखी। चीख-पुकार और शोर सुनकर मवैया और बदरका गांव के अन्य लोग वहां आ गए तो आरोपी सुपासी गांव की ओर भाग गए। जब आरोपी भाग गए तो उन्होंने गौरीशंकर को देखा तो वह मृत मिला। उन्होंने आगे कहा कि गौरी शंकर की चोट से मौके पर ही खून निकल आया था। वह 5-7 मिनट तक वहीं रुका रहा और उसके बाद अपने घर चला गया। घटना के अगले दिन अन्वेषण अधिकारी ने उनका बयान दर्ज किया.

16. अभियोजन साक्षी- 3, डॉ. जे.एन. बाजपेयी, रेडियोलॉजिस्ट हैं, जिन्होंने मृतक के शव का पोस्टमार्टम किया। उन्होंने न्यायालय के समक्ष कहा है कि 18.06.1982 को उन्होंने मृतक गौरी शंकर का पोस्टमार्टम कराया था, जिसके शव की पहचान थाना अचलगंज के कांस्टेबल पुलिस 523 राम स्वरूप ने की थी। उन्होंने मृतक के शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाईं:-

(i) बन्दूक की गोली का प्रवेश घाव 1/2" X 1/2", उदरगुहा तक गहरा, कोस्ट्रल मार्जिन से 2" नीचे, कालिमा और गुदने का निशान मौजूद था।

(ii) प्रवेश 1/5" X 1/5" की एकाधिक बंदूक की गोली प्रत्येक छाती के मध्य में 5" X 3" क्षेत्र में फैली।

अनुवादित

(iii) दाहिने हाथ के निचले हिस्से के सामने, दाहिनी कलाई के सामने और दाहिने हाथ के सामने 3-1/2" X 1" X हड्डी तक गहरा घाव। रेडियस और उलना दोनों हड्डियों को उनके निचले हिस्से से काट दिया गया था।

(iv) सिर के पीछे दाहिनी ओर 1" ऊपर और दाहिने कान के पीछे 3-1/2" X 1/2" X हड्डी तक गहरा घाव।

(v) गर्दन के ऊपरी हिस्से के पिछले हिस्से में गहरा 4"X 1"X हड्डी तक कटा हुआ घाव।

(vi) दाहिनी बांह के सामने की ओर 2-1/2" x 1/5" x मांसपेशी तक गहरा घाव।

(vii) दाहिनी बांह के बाहरी मध्य भाग पर 2-1/4" X 1/5" X त्वचा तक गहरा घाव।

(viii) कलाई के जोड़ पर दाहिने हाथ के विच्छेदन के साथ दाहिनी बांह के निचले हिस्से पर 2-1/2" x 2" x हड्डी तक गहरा घाव। कलाई के जोड़ की हड्डियाँ काट दी गईं थीं।

(ix) दाहिने हाथ की पीठ पर 3/4" X1/3" X हड्डी तक गहरा घाव।

(x) 1/3"X 1/3" प्रवेश घाव एकाधिक गोलियों के, प्रत्येक पेट के दाहिनी ओर 11"X 8" क्षेत्र में फैले।

डॉक्टर (अभियोजन साक्षी- 3) के अनुसार मृतक की मृत्यु 17.06.1982 को शाम लगभग 5.30 बजे हुई होगी। बंदूक और पिस्तौल से गोली लगने की चोटें हो सकती हैं। इस बात की संभावना कम है कि कटा हुआ घाव कुल्हाड़ी और फावड़े से आया होगा, लेकिन हो सकता है कि छोटी कुल्हाड़ी से आया हो। उन्होंने आगे कहा कि चोट सं. 8 कुदाल से पहुंचाई गई है। उन्होंने पोस्टमार्टम रिपोर्ट प्रदर्श क-2 को अपने द्वारा तैयार की गई और अपने हस्तलेख में लिखी गई और पोस्टमार्टम परीक्षा के समय उनके द्वारा हस्ताक्षरित सिद्ध किया।

17. अभियोजन साक्षी- 4 अन्वेषण अधिकारी हैं। उन्होंने अपने मुख्य परीक्षण में कहा है कि दिनांक 17.06.1982 को भी वह उपनिरीक्षक के पद पर थाना अचलगंज में तैनात थे। उस दिन इस मामले का अन्वेषण उन्हें सौंपा गया था। उन्होंने पुलिस थाने में शिकायतकर्ता का बयान दर्ज किया, उसके बाद घटनास्थल पर गए। मृतक का शव लल्लन दीक्षित के बाग में पड़ा था। उन्होंने शव को अपने कब्जे में ले लिया और पंचों को नामित कर पंचायतनामा तैयार किया। उन्होंने पंचायतनामा, खाका लैश और चालान लैश (प्रदर्श क- 3 से क- 5) अपने हस्तलेख में तैयार किया और उन पर हस्ताक्षर किए। इसके बाद शव को सील कराकर पोस्टमार्टम के लिए भेज दिया गया। उन्होंने प्रतिसार निरीक्षक (आर.आई.) को पत्र (प्रदर्श क-6) और चिकित्सा अधिकारी को पत्र (प्रदर्श क-7) लिखा। उन्होंने उसी दिन घटना स्थल का निरीक्षण भी किया। उन्होंने घटनास्थल से तीन खाली कारतूस बरामद किए, घटनास्थल से रक्तरंजित और सादी मिट्टी को एकत्र किया और फर्द-बरामदगीनामा (प्रदर्श क-8 और क-9) तैयार किया। उन्होंने घटनास्थल के आस-पास से मृतक के जूते भी बरामद किए, जो दौड़ते समय गिर गए थे और फर्द-बरामदगीनामा (प्रदर्श क-7) तैयार किया। उन्होंने आगे कहा कि उन्होंने नक्शा-नजरी (एक्ज़िबिट का-11) तैयार किया था और इस प्रकार तैयार नक्शा-नजरी सही है। इसके बाद उन्होंने पंचों और फर्द-बरामदगीनामें के अन्य गवाहों के बयान दर्ज किए। उन्होंने आगे कहा

अनुवादित

है कि 18.06.1982 को उन्होंने राम कुमार, राधे लाल और अन्य गवाहों के बयान दर्ज किए थे। उन्होंने आरोपियों की तलाश की, लेकिन वे नहीं मिले। आरोपी व्यक्तियों ने अदालत में आत्मसमर्पण कर दिया, जहां उन्होंने 'हवालात' (पुलिस लॉक-अप) में आरोपी व्यक्तियों का बयान दर्ज किया। अन्वेषण के बाद उन्होंने 31.07.1982 को आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ आरोप पत्र (प्रदर्श क-12) प्रस्तुत किया।

18. अभियोजन साक्षी- 5 हेड कांस्टेबल अमीर सिंह हैं, जिन्होंने चिक प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्रदर्श क-13) और संबंधित जनरल डायरी (जीडी) (प्रदर्श क-14) को साबित किया है। उन्होंने प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कर चिक प्रथम सूचना रिपोर्ट लिखी और अन्वेषण सब इंस्पेक्टर हरदेव सिंह को सौंपा।

19. दोनों प्रत्यक्षदर्शी साक्षी अर्थात अभियोजन साक्षी- 1 और अभियोजन साक्षी-2 से बचाव पक्ष द्वारा विस्तार से प्रतिपरीक्षा की गई लेकिन उनकी प्रतिपरीक्षा में ऐसी कोई भी सामग्री सामने नहीं आ सकी जिससे उनके बयानों को अविश्वसनीय बनाया जा सके। दोनों प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों ने सिलसिलेवार बयान देते हुए घटना को सिद्ध किया है। अभियोजन साक्षी- 1, शिकायतकर्ता ने घटना के संबंध में प्रथम सूचना रिपोर्ट में जो लिखा है उसे सिद्ध कर दिया है। अभियोजन साक्षी- 2 ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि जब आरोपी व्यक्तियों द्वारा घटना को अंजाम दिया जा रहा था तो उसने क्या देखा था। हालाँकि अभियोजन साक्षी- 1 और अभियोजन साक्षी-2 के बयानों में कुछ विरोधाभास भी हैं लेकिन ये विरोधाभास मामूली प्रकृति के हैं और संभव हैं।

20. दोषियों/अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि अभियोजन साक्षी- 2, राधे लाल का नाम प्रथम सूचना रिपोर्ट में नहीं था। यदि उसने घटना देखी होती तो शिकायतकर्ता ने प्रथम सूचना रिपोर्ट में राधे लाल के नाम का उल्लेख किया होता, इसलिए उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता था। बचाव पक्ष द्वारा दिया गया यह तर्क मान्य नहीं था क्योंकि गवाह राधे लाल का बयान घटना के अगले दिन अन्वेषण अधिकारी द्वारा दर्ज किया गया था। अन्वेषण अधिकारी अभियोजन साक्षी- 4 ने अपने बयान में इस बारे में बताया है। प्रथम सूचना रिपोर्ट में मात्र अभियोजन साक्षी-2 पी.डब्लू के नाम का उल्लेख न करना उसकी गवाही को अविश्वसनीय नहीं बनाता। इसके अलावा यह स्थापित कानून है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट घटना के बारे में हर तथ्य का उल्लेख करने वाला कोई विश्वकोश नहीं है। दोनों प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों,अभियोजन साक्षी- 1 और अभियोजन साक्षी-2 का साक्ष्य घटना को सिद्ध करता है और तथ्यों का उनका वर्णन डॉक्टर अभियोजन साक्षी-3 द्वारा दिए गए चिकित्सा साक्ष्य द्वारा भली-भाँति समर्थित है। मृतक के शरीर पर मिली मृत्यु पूर्व चोटें प्रथम सूचना रिपोर्ट में बताए गए तथ्यों की पुष्टि करती हैं, और इसे अभियोजन साक्षी- 1 और अभियोजन साक्षी-2 द्वारा सिद्ध भी किया गया। अभियोजन साक्षी- 1 और अभियोजन साक्षी-2 की गवाही पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है।

अनुवादित

21. दोषियों/अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि अन्वेषण अधिकारी द्वारा दो अज्ञात व्यक्तियों का पता नहीं लगाया जा सका और उनकी पहचान नहीं की जा सकी, इस प्रकार, शिकायतकर्ता द्वारा बताई गई घटना पर विश्वास नहीं किया जा सकता। दोषियों/अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा दिया गया यह तर्क निराधार है क्योंकि उनका पता लगाना अन्वेषण अधिकारी पर निर्भर है, लेकिन अगर उनका पता नहीं चला तो यह नहीं माना जा सकता कि पूरी घटना झूठी है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि अपराध में इस्तेमाल किया गया कोई भी हथियार अन्वेषण अधिकारी द्वारा बरामद नहीं किया गया, न ही आग्नेयास्त्र और न ही 'फरसा' (कुदाल) या कुल्हाड़ी (कुल्हाड़ी), ऐसे में घटना को साबित नहीं माना जा सकता है। अपीलकर्ताओं के वकील का यह तर्क भी मान्य नहीं है क्योंकि अभियोजन पक्ष के मामले को साबित करने के लिए हथियार की बरामदगी हमेशा आवश्यक नहीं होती है, खासकर यदि प्रत्यक्षदर्शी गवाह हो। मौजूदा मामले में दो गवाहों ने घटना को साबित किया है, जिन्होंने इस घटना को देखा था। केवल हथियार की बरामदगी न होना अभियोजन के मामले को ध्वस्त नहीं कर सकता। हाल ही में ***<u>मेकाला सिवैया बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (2022) 8 सुप्रीम कोर्ट केसेस 253</u>*** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस संबंध में निम्नानुसार निर्णय दिया: -

"जब चिकित्सा साक्ष्य द्वारा पुष्टि किए गए पर्याप्त प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य हैं, तो अपीलकर्ता से हथियार की बरामदगी न होने मात्र से अभियोजन के मामले पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

iii. यदि किसी प्रत्यक्षदर्शी साक्षी की गवाही अन्यथा विश्वसनीय पाई जाती है, तो उस पर केवल इसलिए अविश्वास नहीं किया जा सकता है और उसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि उसकी गवाही में कुछ महत्वहीन, सामान्य या प्राकृतिक विरोधाभास सामने आए हैं।

22. ***<u>कलुआ उर्फ कोशल किशोर बनाम राजस्थान राज्य (2019) 16 सुप्रीम कोर्ट केसेस 683</u>*** में भी माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि ***"हथियार की बरामदगी न होने से अभियोजन मामले पर कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ेगा।"***

23. दोषियों/अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया कि हत्या करने का आशय हालांकि कथित है, लेकिन सिद्ध नहीं हुआ है और आरोपी व्यक्तियों द्वारा मृतक की हत्या करने के लिए आशय पर्याप्त नहीं है। दोषियों/अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए इस तर्क में कोई दम नहीं है क्योंकि जहां अपराध का प्रत्यक्ष सबूत है वहां आशय अपना महत्व खो देता है। हालाँकि आम तौर पर अपराध करने का एक आशय होता है लेकिन अपराधियों के मस्तिष्क में वह आशय छिपा रहता है। प्रस्तुत मामले में अभियोजन साक्षी-1 और अभियोजन साक्षी-2 के प्रत्यक्ष साक्ष्य से घटना सिद्ध हो गयी है जो अभियोजन साक्षी-3 के चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा समर्थित है। ***सुरिंदर सिंह बनाम राज्य (केंद्र शासित प्रदेश चंडीगढ़) 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 1135*** में, इस संबंध में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी है: -

अनुवादित

"इस प्रकार हमारी सुविचारित राय है कि हालांकि आशय अचूक रूप से एक महत्वपूर्ण कारक है, और किसी अपराध के घटित होने को साबित करने के लिए एक महत्वपूर्ण घटक है, लेकिन इसकी अनुपस्थिति, हालांकि, ऐसा सर्वोत्कृष्ट घटक नहीं है जिसे इसके लिए घातक माना जा सकता है। अभियोजन पक्ष का मामला, विशेषकर तब जब अन्य सभी कारक अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करते हैं और किसी दुर्भावना की घटना के प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के परिसाक्ष्य अभिलेख में हैं ।"

24. दोषियों/अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि अभियोजन साक्षी-1 मृतक का पुत्र होने के कारण हितबद्ध साक्षी है, इसलिए उसके साक्ष्य पर भरोसा नहीं किया जा सकता। अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क में कोई दम नहीं था क्योंकि यह सुस्थापित विधि है कि हितबद्ध साक्षी के साक्ष्य को मात्र इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है कि वह हितबद्ध साक्षी है। जिस व्यक्ति का निकट रिश्तेदार मारा गया हो वह दूसरों को झूठा फंसाने के लिए वास्तविक अपराधी को कभी नहीं बख्शेगा। ***<u>राहुल बनाम हरियाणा राज्य (2021) 11 सुप्रीम कोर्ट केसेस 149</u>*** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी है:-

"राम चंदर और अन्य बनाम हरियाणा राज्य के मामले में इस दलील को खारिज करते हुए कि गवाह मृतक के करीबी रिश्तेदार थे, इस न्यायालय ने निम्नानुसार माना है:

"33. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता की यह दलील कि चूंकि गुड्डी (पीडब्लू 9) का मृत व्यक्तियों के साथ घनिष्ठ संबंध था, इसलिए किसी भी स्वतंत्र साक्षी के साक्ष्य के अभाव में उस पर विश्वास नहीं किया जाना चाहिए, इस न्यायालय द्वारा दलबीर कौर बनाम पंजाब राज्य (1976) 4 एससीसी 158 और हरबंस कौर बनाम हरियाणा राज्य (2005) 9 एससीसी 195 में प्रतिपादित विधि के आलोक में खारिज किए जाने योग्य है जो निम्नलिखित प्रस्तावना को प्रतिपादित करता है (हरबंस कौर वाद, एससीसी पृष्ठ 198, पैरा 7) :-

"7. कानून में ऐसा कोई प्रस्ताव नहीं है कि रिश्तेदारों को झूठा गवाह माना जाए। इसके विपरीत, जब पक्षपात की दलील दी जाती है तो कारण दिखाना पड़ता है ताकि यह दिखाया जा सके कि साक्षियों के पास वास्तविक अपराधी को बचाने और अभियुक्त को झूठा फंसाने का कारण है।" "राम चंदर और अन्य बनाम हरियाणा राज्य के मामले में इस दलील को खारिज करते हुए कि गवाह मृतक के करीबी रिश्तेदार थे, इस न्यायालय ने निम्नानुसार धारित किया है:

"33. अपीलकर्ताओं के लिए विद्वान अधिवक्ता की यह दलील कि चूंकि गुड्डी (अभियोजन साक्षी-9) का मृत व्यक्तियों के साथ घनिष्ठ संबंध था, इसलिए किसी भी स्वतंत्र गवाह के साक्ष्य के अभाव में उस पर विश्वास नहीं किया जाना चाहिए, इस आलोक में खारिज किए जाने योग्य है। इस न्यायालय द्वारा दलबीर कौर बनाम पंजाब राज्य (1976) 4 एससीसी 158 और हरबंस कौर बनाम हरियाणा राज्य (2005) 9 एससीसी 195 में प्रतिपादित विधि के आलोक में खारिज किए जाने योग्य है जो

अनुवादित

निम्नलिखित प्रस्तावना को प्रतिपादित करता है (हरबंस कौर वाद, एससीसी पृष्ठ 198, पैरा 7)

25. दोषियों/अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि मौके पर अभियोजन साक्षी-2 की उपस्थिति विश्वसनीय नहीं है क्योंकि घटना के समय उसके वहां होने का कोई कारण नहीं है, लेकिन यह तर्क भी आरोपी अपीलकर्ताओं के लिए कोई मदद नहीं करता है क्योंकि अभियोजन साक्षी-2 ने अपनी जिरह में कहा है कि जब वह मैथली शरण के बगीचे में आम तोड़ रहा था, जिससे उसने आम की फसल खरीदी थी, तब वह वहां था, इसलिए मौके पर उसकी उपस्थिति को संदिग्ध नहीं माना जा सकता है।

26. आरोपी अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया कि मृतक आग्नेयास्त्र की चोट लगने के बाद 60-65 कदम की दूरी तय करने के लिए भाग नहीं सकता था, क्योंकि अंततः वह कथित तौर पर वंशलाल दीक्षित के बगीचे में मारा गया था। आरोपी अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील ने आगे अभियोजन साक्षी-3 (डॉक्टर) के बयान का हवाला दिया जिसमें उन्होंने कहा है कि आग्नेयास्त्र से चोट लगने के बाद मृतक 6-7 कदम से अधिक नहीं दौड़ सका होगा। आरोपी अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क में भी कोई दम नहीं है क्योंकि यह व्यक्ति विशेष की क्षमता, इच्छा शक्ति और साहस के आधार पर अलग-अलग होता है कि चोट लगने के बाद कोई कैसे प्रतिक्रिया करता है। यहां तक कि अभियोजन साक्षी-3, डॉक्टर ने कहा है कि वह निश्चित तौर पर ऐसा नहीं कह सकता।

27. उपरोक्त विवेचना से यह स्थापित होता है कि वर्तमान मामले में घटना जून माह में दिनदहाड़े अर्थात् शाम 5.30 बजे की है।प्रथम सूचना रिपोर्ट शाम 7.30 बजे तुरंत दर्ज की गई। उसी रातपंचायतनामा की कार्यवाही संपन्न की गई। शिकायतकर्ता का बयान उसी दिन दर्ज कर लिया गया था। एक अन्य गवाह राधे लाल का बयान अगले दिन अन्वेषण अधिकारी द्वारा दर्ज किया गया जैसा कि अन्वेषण अधिकारी ने बताया है। प्रत्यक्षदर्शियों ने अभियोजन पक्ष के मामले को सभी उचित संदेहों से परे सिद्ध कर दिया है। प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के साक्ष्य पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है। इसलिए अभिलेख पर मौजूद साक्ष्यों से यह भळील-भाँति स्थापित है कि मृतक की हत्या करुणा शंकर और राजकिशोर नामक दोषियों/अपीलकर्ताओं ने दो अज्ञात बदमाशों के साथ मिलकर की थी। इसलिए विचारण न्यायालय ने आरोपी व्यक्तियों को सही ठहराया है और उन्हें आजीवन कारावास की सजा सुनाई है। विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज की गई दोषसिद्धि और सजा में हस्तक्षेप का कोई आधार या कारण प्रतीत नहीं होता है।

28. इसलिए, वर्तमान अपील खारिज करने योग्य है और तदनुसार ***खारिज*** की जाती है।

29. दोषसिद्ध व्यक्ति/अपीलकर्ता करुणा शंकर और राजकिशोर जमानत पर हैं। उन्हें दी गई सजा पूरी करने के लिए दस दिनों के भीतर विचारण न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण करने का निर्देश दिया गया है।

30. इस मामले में विचारण न्यायालय ने दोषसिद्ध व्यक्तियों/अपीलकर्ताओं पर कोई

अनुवादित

जुर्माना नहीं लगाया है, हालांकि भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत जुर्माना अनिवार्य है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि वर्तमान अपील काफी पुरानी है और 1982 से लंबित है, विचारण न्यायालय द्वारा सुनाई गई आजीवन कारावास की सजा के अतिरिक्त प्रत्येक पर 1000/- रुपये का नाममात्र जुर्माना लगाना उचित प्रतीत होता है। इस अभिवृद्धि के साथ आक्षेपित निर्णय और आदेश को बरकरार रखा जाता है।

31. कार्यालय को आवश्यक सूचना और अनुपालन के लिए इस आदेश की एक प्रति के साथ विचारण न्यायालय के अभिलेख संबंधित विचारण न्यायालय को भेजने का निर्देश दिया जाता है।

(2023) 6 ILRA 734

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 31.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजेंद्र कुमार-IV

आपराधिक अपील संख्या 797/1982

कदम सिंह एवं अन्य **अपीलकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **विपरीत पक्ष**

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता: श्री उमेश नारायण मिश्रा, श्री अखिलेश कुमार पांडे, श्री सुकेश कुमार, श्री यू.सी. मिश्रा

विपरीत पक्ष के अधिवक्ता: ए.जी.ए.

(ए) आपराधिक कानून - दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 147, 148, 149, 307 - सत्यनिष्ठ गवाहों के बयानों में छोटे-मोटे विरोधाभास अवश्य होते हैं, क्योंकि कभी-कभी स्मृति गलत साबित हो जाती है - अवलोकन की भावना व्यक्ति दर व्यक्ति भिन्न होती है। (पैरा -19)

(बी) भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 134 - न्यायालय एक गवाह की गवाही पर कार्रवाई कर सकता है, बशर्ते वह पूरी तरह विश्वसनीय हो - साक्ष्य को तौला जाना चाहिए, गिना नहीं जाना चाहिए - परीक्षण यह है कि साक्ष्य में सत्यता है, वह ठोस, विश्वसनीय और भरोसेमंद है या नहीं। (पैरा - 22,23)

(सी) आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - दंड - प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों, अपराध की प्रकृति - जिस तरह से इसे अंजाम दिया गया या किया गया - दंड की मात्रा अपराध की गंभीरता के अनुपात में होनी चाहिए, इन सब पर उचित विचार करने के बाद उचित सजा दी जानी चाहिए। (पैरा-32)

आरोपी-अपीलकर्ता (इंद्र बहादुर सिंह) ने जान से मारने की नीयत से गोली चलाई - जिससे ऊपरी बांह पर गंभीर चोटें आईं -आरोपी-अपीलकर्ता (महाबीर सिंह) की भूमिका स्थापित नहीं हुई - साक्ष्यों से सक्रिय भागीदारी साबित नहीं हुई - मौके पर मौजूदगी स्थापित करने की कोशिश की गई - गोलीबारी का समान उद्देश्य/इरादा - मौके पर मौजूदगी अत्यधिक संदिग्ध। **(पैरा-27)**

निर्णय:- आरोपी-अपीलकर्ता (इंद्र बहादुर सिंह) को दोषी ठहराने में आरोपित निर्णय में कोई अवैधता, अनियमितता, कानूनी या अन्यथा, या विकृति नहीं है, लेकिन आरोपी-अपीलकर्ता (महाबीर सिंह) को दोषी ठहराने का कोई अच्छा आधार नहीं है। आरोपी-अपीलकर्ता (महाबीर

अनुवादित

सिंह) की अपील स्वीकार किए जाने योग्य है, जबकि आरोपी-अपीलकर्ता (इंद्र बहादुर) की अपील खारिज किए जाने योग्य है। ट्रायल कोर्ट द्वारा दी गई सजा को कम करके संशोधित किया गया। आरोपी-अपीलकर्ता सीआरपीसी की धारा 428 का लाभ पाने का हकदार है। **(पैरा - 29, 30, 34)**

आपराधिक अपील आंशिक रूप से स्वीकृत। (ई-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. संपत कुमार बनाम पुलिस निरीक्षक, कृष्णगिरी, (2012) 4 एससीसी 124
2. श्रीमती शमीम बनाम स्टेट ऑफ (एनसीटी ऑफ दिल्ली), (2018) 10 एससीसी 509
3. नामदेव बनाम स्टेट ऑफ महाराष्ट्र, (2007) 14 एससीसी 150
4. याकूब इस्माइलभाई पटेल बनाम स्टेट ऑफ गुजरात, (2004) 12 एससीसी 229,
5. स्टेट ऑफ हरियाणा बनाम इंदर सिंह व अन्य। , (2002) 9 एससीसी 537
6. सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह व अन्य, (2014) 7 एससीसी 323,
7. शाम सुंदर बनाम पूरन, (1990) 4 एससीसी 731,
8. एम.पी. बनाम सलीम, (2005) 5 एससीसी 554,
9. रावजी बनाम स्टेट ऑफ राज., (1996) 2 एससीसी 175

(माननीय न्यायमूर्ति राजेंद्र कुमार-IV द्वारा दिया गया)

1. वर्तमान आपराधिक अपील आरोपी कदम सिंह, छोटे सिंह, सिरनैत सिंह, भूरे सिंह (अब मृत), इंद्र बहादुर सिंह और महाबीर सिंह द्वारा दायर की गई है, जिसमें श्री के.एस. मिश्रा, अतिरिक्त जिला और सत्र न्यायाधीश, इटावा-VI द्वारा धारा 147, 148, 149 के तहत सत्र विचारण संख्या 251/1979 में पारित 26.03.1982 के आक्षेपित निर्णय और आदेश को चुनौती दी गई है। भारतीय दंड संहिता की धारा 307, थाना जसवंत नगर, जिला इटावा, जिसमें अभियुक्त-अपीलकर्ता कदम सिंह, इंद्र बहादुर और श्रीनेत सिंह को भारतीय दंड संहिता की धारा 148, 307 और 149 के तहत दोषी ठहराया गया और सजा सुनाई गई, जबकि आरोपी-अपीलकर्ता महाबीर सिंह, छोटे सिंह और भूरे सिंह को भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 307 के तहत दोषी ठहराया गया और सजा सुनाई गई। सभी आरोपियों-अपीलकर्ताओं को भारतीय दंड संहिता की धारा 307 और अन्य धाराओं के तहत अधिकतम 8 साल की सजा सुनाई गई थी।

2. अभियोजन पक्ष की कहानी संक्षेप में जैसा कि प्राथमिकी में निर्धारित किया गया है, इस प्रकार है: -

घटना की तारीख यानी 12.03.1978 को रात लगभग 08.00 बजे घायल सूरज सिंह और उनकी पत्नी श्रीमती चंद्रावती अपने बच्चों के साथ घर के अंदर थे। आरोपी-अपीलकर्ता इंद्र बहादुर और महाबीर सूरज सिंह के घर पहुंचे और श्रीमती चंद्रावती को बुलाया। उसने दरवाजा खोला और उनसे पूछा कि क्या काम है। दोनों आरोपियों ने बताया कि कुछ चोर उसके घर के बाहर छिपे हुए थे। सूरज सिंह का बेटा, अर्थात् भरत और उसकी माँ श्रीमती चंद्रावती एक हल्की कुप्पी के साथ घर से बाहर आए और दोनों ने देखा कि घर के बाहर कोई चोर नहीं

अनुवादित

था। इस बीच, आरोपी-अपीलकर्ता इंद्र बहादुर सिंह ने बल्लम से भरत को हल्का आघात दिया। उसने ऐसा न करने के लिए कहा। आरोपियों की संख्या छह थी। आरोपी-अपीलकर्ता भूरे सिंह, महाबीर और छोटे लाल लाठी से लैस थे, जबकि आरोपी इंद्र बहादुर सिंह कट्टा और बल्लम से लैस था, सिरनैत सिंह बल्लम के साथ और कदम सिंह फरसा से लैस था। जब सूरज सिंह अपने घर से बाहर आया और आरोपी इंद्र बहादुर सिंह ने उसे जान से मारने की नीयत से अपनी देसी पिस्तौल से उस पर गोली चला दी। सूरज सिंह गोली लगने से घायल हो गया और जमीन पर गिर गया। श्रीमती चंद्रावती ने अपने पति सूरज सिंह को घर के अंदर खींचकर बचा लिया। सभी आरोपियों ने उसके घर पर पथराव किया और दरवाजा खोलने की कोशिश की। गवाहों को आते देख आरोपी-अपीलकर्ता घायल को छोड़कर भाग गए।

3. श्रीमती चंद्रावती घायल सूरज सिंह को पुलिस स्टेशन जसवंत नगर ले गईं, जहां लगभग 1.15 बजे प्राथमिकी (प्रदर्श केए-1) को रखा गया। घायल सूरज सिंह को जिला अस्पताल इटावा ले जाया गया, जहां तड़के 3:40 बजे डॉ. दिवाकर शर्मा, पीडब्ल्यू-5 द्वारा उनकी चिकित्सकीय जांच की गई।

4. जांच अधिकारी ने मामले की जांच शुरू की, जिन्होंने सबूत एकत्र किए, गवाहों के बयान दर्ज किए, नक्शा नजरी तैयार किया और जांच की पूरी औपचारिकताओं को पूरा करने के बाद, आरोपी-अपीलकर्ताओं के खिलाफ आरोप पत्र दायर किया।

5. विचारण न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 148, 149, 307 के तहत आरोपी-अपीलकर्ताओं के खिलाफ आरोप तय किए। अभियुक्त-अपीलकर्ताओं ने खुद को निर्दोष बताया और मुकदमे का दावा किया।

6. अभियोजन पक्ष ने अपने मामले को साबित करने के लिए पी.डब्ल्यू.-1 श्रीमती चंद्रावती, पी.डब्ल्यू.-2 सूरज सिंह, पी.डब्ल्यू.-3 मुलायम सिंह, पी.डब्ल्यू.-4 के हेड कांस्टेबल नवाज खान, पी.डब्ल्यू.-5 डॉ. दिवाकर शर्मा से पूछताछ की, जिनमें से पीडब्ल्यू 1 से 3 तथ्य के गवाह हैं जबकि बाकी दो अन्य औपचारिक गवाह हैं। बचाव पक्ष की ओर से श्री राधेश्याम, राजेंद्र प्रसाद, ज्ञान चंद्र मित्तल और इंद्र बहादुर सिंह से क्रमश: डीडब्ल्यू-1, डीडब्ल्यू-2, डीडब्ल्यू-3 और डीडब्ल्यू-4 के रूप में पूछताछ की गई है।

7. मौखिक एवं दस्तावेजी साक्ष्यों के मूल्यांकन के पश्चात विचारण न्यायालय ने आरोपी-अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया और उन्हें ऊपर बताए अनुसार सजा सुनाई है। आक्षेपित फैसले से असंतुष्ट होने के कारण, आरोपी-अपीलकर्ताओं ने वर्तमान आपराधिक अपील को प्राथमिकता दी।

8. मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट की दिनांक 07.07.2008 और 08.06.2017 की रिपोर्ट के अनुसार, अपीलकर्ता संख्या 1 से 4 अर्थात कदम सिंह, छोटे सिंह, सिरनैत सिंह और भूरे सिंह की मृत्यु हो गई है, इस प्रकार, उनकी अपील इस न्यायालय के दिनांक 17.07.2008 और 07.07.2017 के आदेश द्वारा समाप्त कर दी गई है। इस प्रकार, वर्तमान अपील अपीलकर्ता नंबर 5 इंद्र बहादुर और अपीलकर्ता नंबर 6 महाबीर सिंह के लिए जीवित है।

9. आरोपी-अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के लिए अतिरिक्त सरकारी

अनुवादित

अधिवक्ता श्री सुकेश कुमार को सुना और पक्षों के विद्वान अधिवक्ता की मूल्यवान सहायता से अभिलेखों का अवलोकन किया।

10. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित तरीके से तर्क दिया: -

(i) अभियुक्त-अपीलकर्ता निर्दोष हैं और उन्हें वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है। उन्होंने कोई अपराध नहीं किया है।

(ii) घटना का क्रॉस-केस था और अभियुक्त की ओर से अभियोजन पक्ष के विरुद्ध प्राथमिकी पहले ही दर्ज की जा चुकी है लेकिन क्रॉस-केस में जांच अधिकारी द्वारा कोई आरोप-पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया था।

(iii) घटना में घायल बताए गए गवाह को अभियोजन पक्ष की ओर से पेश नहीं किया गया है। इस प्रकार, अभियोजन की कहानी के सही होने का कोई कारण नहीं है।

(iv) गवाहों के बयानों में कई विरोधाभास और चूक हैं जिससे अभियोजन पक्ष का मामला संदिग्ध हो जाता है।

(v) वर्तमान अपराध को अंजाम देने के लिए अभियुक्त-अपीलकर्ताओं का कोई मजबूत उद्देश्य नहीं है। मकसद के बिना, आरोपी-अपीलकर्ताओं के खिलाफ कोई मामला नहीं हो सकता है। आरोपी-अपीलकर्ता महाबीर सिंह को घटना में कोई भूमिका नहीं है।

(vi) यदि अभियुक्त अपीलकर्ताओं के विरुद्ध कोई मामला पाया जाता है तो उनसे सहानुभूतिपूर्वक विचार किया जाना चाहिए क्योंकि यह घटना वर्ष 1978 से संबंधित है और लगभग 45 वर्ष बीत चुके हैं।

11. इसके विपरीत, अतिरिक्त सरकारी अधिवक्ता ने यह कहते हुए प्रस्तुतियों का विरोध किया कि पीडब्ल्यू -1, 2 और 3 तथ्य के गवाह हैं, जिन्होंने अभियोजन मामले का समर्थन किया है; गवाह प्राकृतिक और विश्वसनीय हैं; और चिकित्सा साक्ष्य पूरी तरह से ओकुलर साक्ष्य के साथ संगत है। यह प्रत्यक्ष साक्ष्य का मामला है जिसमें मकसद का कोई महत्व नहीं है, विचारण न्यायालय ने विवादित निर्णय पारित करने में कोई त्रुटि नहीं की है।

12. अब, मैं अभियोजन पक्ष के गवाहों की जांच करने के लिए आगे बढ़ सकता हूं।

13. पी.डब्ल्यू.-1 श्रीमती चंद्रावती शपथ पर कहती हैं कि आरोपी महाबीर सिंह और छोटे लाल लाठी से लैस थे, आरोपी-अपीलकर्ता कदम सिंह फरसा से लैस थे, इंद्र बहादुर कट्टा और बल्लम से लैस थे, जबकि आरोपी-अपीलकर्ता श्रीनेत सिंह घटना के समय बल्लम से लैस थे। उसने आगे कहा कि आरोपी-अपीलकर्ता इंद्र बहादुर सिंह ने उसके पति (घायल सूरज सिंह) पर जान से मारने के इरादे से गोली चलाई, जिससे उसका पति गंभीर रूप से घायल हो गया, उसका पति जमीन पर गिर गया और वह उसे घर के अंदर ले गई और अंदर से दरवाजा बंद कर दिया, इस प्रकार उसने मौके पर अन्य आरोपी-अपीलकर्ताओं के साथ आरोपी-अपीलकर्ता इंद्र बहादुर सिंह और महाबीर सिंह की उपस्थिति साबित की। कहा जाता है कि घटना का मकसद आरोपी व्यक्तियों द्वारा उसके बेटे से कुछ पैसे लेना था, जिसके लिए उसने मांग की थी, इस आधार पर, आरोपी-अपीलकर्ता नाराज हो गए। उसने आगे कहा कि आरोपी इंद्र बहादुर सिंह ने उसके पति पर गोली चलाई, जिससे उसके ऊपरी दाहिने हाथ में आग लग गई, उसने अंदर से दरवाजा बंद कर दिया। सभी आरोपी अपीलकर्ताओं ने

अनुवादित

दरवाजा तोड़ने की कोशिश की लेकिन सफलता नहीं मिली। उसके द्वारा शोर मचाने पर, गवाह वहां पहुंचे, जहां आरोपी-अपीलकर्ता अपने-अपने हथियार के साथ भाग गए। गवाहों की मदद से उसके घायल पति को बाद में पुलिस स्टेशन और अस्पताल ले जाया गया। वह आगे कहती है कि उसने संबंधित पुलिस स्टेशन में एक लिखित तहरीर (प्रदर्श का -1) लगाई, जिस पर प्राथमिकी दर्ज किया गया था और रोजनामचा (जी.डी.) में प्रविष्टि की गई। उसके पति का अस्पताल में चिकित्सकीय परीक्षण किया गया।

14. पी.डब्ल्यू.2 घायल सूरज सिंह ने शपथ लेकर अपने मुख्य परीक्षा में कहा कि आरोपी-अपीलकर्ता इंद्र बहादुर सिंह बल्लम और कट्टा से लैस थे, श्रीनेत सिंह बल्लम के साथ, कदम सिंह फरसा के साथ, जबकि आरोपी-अपीलकर्ता भूरे सिंह, महाबीर सिंह और छोटे लाल लाठी से लैस थे। घटना के समय, सभी आरोपियों-अपीलकर्ताओं ने उसे पीटना शुरू कर दिया। उन्होंने विशेष रूप से कहा कि इंद्र बहादुर सिंह ने उन पर गोली चला दी जो उनके दाहिने ऊपरी बांह में लगी, जिससे वह गंभीर रूप से जमीन पर गिर गए। वह यह भी कहता है कि इस बीच, उसने अपने बचाव में लाठी चलाई। उन्होंने आगे कहा कि शोर मचाने पर गवाह मुन्ना सिंह, मड़ई, मुलायम सिंह, भगवान सिंह और कुछ अन्य ग्रामीण भी मौके पर पहुंचे। उन्होंने आगे कहा कि कुछ पीएसी अधिकारी भी वहां पहुंचे और उन्हें देखते ही आरोपी-अपीलकर्ता मौके से भाग गए। उनके अनुसार, उन्हें अस्पताल ले जाया गया जहां उनकी चिकित्सकीय जांच की गई।

15. पी.डब्ल्यू.3 अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करते हुए मुलायम सिंह ने कहा कि जब उन्होंने अलार्म सुना, तो वह मौके पर पहुंचे और देखा कि सूरज सिंह और आरोपी-अपीलकर्ता के बीच लाठियां चल रही थीं। गवाह ने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करते हुए कहा कि आरोपी-अपीलकर्ता इंद्र बहादुर सिंह ने सूरज सिंह पर गोली चलाई थी। पीडब्ल्यू-3 द्वारा अन्य अभियुक्तों की उपस्थिति भी साबित की गई है। गवाह ने आगे कहा कि सूरज सिंह जमीन पर गिर गया, घटना में घायल हो गया। वह आगे कहता है कि सूरज सिंह की पत्नी श्रीमती चंद्रावती उसे घर के अंदर ले गई और अंदर से दरवाजा बंद कर दिया। जब आरोपी-अपीलकर्ता मौके से भाग गए, तो सूरज सिंह को घायल अवस्था में बाद में पुलिस स्टेशन और अस्पताल ले जाया गया। गवाह ने मौके पर सभी आरोपी व्यक्तियों की उपस्थिति स्थापित की।

16. पी.डब्ल्यू.-5 डॉ. दिवाकर शर्मा शपथ लेकर कहते हैं कि 13.03.1978 को उन्हें इटावा के सरकारी अस्पताल में चिकित्सा अधिकारी के रूप में तैनात किया गया था। उसी दिन, लगभग 3:40 बजे, उन्होंने सूरज सिंह की जांच की और दाहिने हाथ के ऊपरी भाग पर बन्दूक की गोली का घाव पाया। घाव के चारों ओर ताजा रक्तस्राव और कालापन भी मौजूद था और बाईं तर्जनी उंगली में भी खरोंच था। चोट नंबर 1 बन्दूक की चोट थी जिसे निगरानी में रखा गया था और एक्स-रे की सलाह दी गई थी। डॉक्टर आगे कहते हैं कि रोगी की सामान्य स्थिति अच्छी नहीं थी, उन्होंने चोट की रिपोर्ट (प्रदर्श का -2) तैयार की। उन्होंने आगे कहा कि 12.03.1978 को रात 8:00 बजे चोटें आ सकती हैं। घायल सूरज सिंह के शरीर

अनुवादित

से काफी खून बह गया था, जिसकी वजह से सूखापन आ गया था।

17. सभी तीन गवाहों ने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है, जिससे मौके पर आरोपी-अपीलकर्ताओं की उपस्थिति स्थापित हुई है। बचाव पक्ष द्वारा उनसे लंबी जिरह की गई, लेकिन जिरह में कुछ भी रिकॉर्ड पर प्रतिकूल नहीं लाया जा सका, जिससे कि उनके साक्ष्यों पर अविश्वास किया जा सके।

18. ऐसा प्रतीत होता है कि गवाहों के उनके बयानों में निश्चित रूप से कुछ छोटे मामूली विरोधाभास और चूक हुई है, लेकिन वे इस हद तक नहीं हैं कि अभियोजन की कहानी पर अविश्वास किया जा सके। जहां तक अभियोजन पक्ष के मामले में विसंगतियों, भिन्नताओं और विरोधाभासों का संबंध है, हमने विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए प्रस्तुतियों के अनुरूप पूरे सबूतों का विश्लेषण किया है और पाया है कि वे मामले की जड़ तक नहीं जाते हैं।

19. संपत कुमार बनाम पुलिस निरीक्षक, कृष्णागिरि, (2012) 4 एससीसी 124 मामले में, न्यायालय ने माना है कि सच्चे गवाहों के बयानों में मामूली विरोधाभास दिखाई देते हैं क्योंकि स्मृति कभी-कभी झूठी होती है और अवलोकन की भावना एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में भिन्न होती है।

20. हमें यह न भूलें कि अभियोजन का कोई भी मामला त्रुटिरहित नहीं है और इसमें किसी न किसी कमी का सामना करना ही पड़ता है। जब इस तरह की कमियां मामले की जड़ तक जाती हैं, तभी इसका मामले के परिणाम पर असर पड़ सकता है, अन्यथा ऐसी कमियों को नजरअंदाज किया जाना चाहिए। श्रीमती शमीम बनाम दिल्ली राज्य (एनसीटी) (2018) 10 एससीसी 509 के मामले का संदर्भ दिया जा सकता है।

21. विचारण न्यायालय ने बचाव पक्ष के गवाहों को डीडब्ल्यू -1, डीडब्ल्यू -2, डीडब्ल्यू -3 और डीडब्ल्यू -4 के रूप में भी माना लेकिन उन्होंने अभियोजन पक्ष के मामले को संदिग्ध नहीं पाया।

22. जहां तक अन्य चश्मदीद गवाहों से पूछताछ न करने का संबंध है, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 134 (इसके बाद इसे 'अधिनियम, 1872' के रूप में संदर्भित किया गया है) के मद्देनजर, मुझे अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की प्रस्तुति में कोई आधार नहीं मिला।

23. कानून अच्छी तरह से तय है कि एक सामान्य नियम के रूप में, न्यायालय एक गवाह की गवाही पर कार्य कर सकता है और कर सकता है बशर्ते वह पूरी तरह से विश्वसनीय हो। एक ही गवाह की एकमात्र गवाही पर किसी व्यक्ति को दोषी ठहराने में कोई कानूनी बाधा नहीं है। यह अधिनियम, 1872 की धारा 134 का तर्क है, लेकिन यदि गवाही के बारे में संदेह है, तो न्यायालय पुष्टि पर जोर देगा। वास्तव में, यह संख्या, मात्रा नहीं है, बल्कि गुणवत्ता है जो सामग्री है। समय-सम्मानित सिद्धांत यह है कि साक्ष्य को तौला जाना चाहिए और गिना नहीं जाना चाहिए। परीक्षण यह है कि क्या सबूत में सच्चाई है, ठोस, विश्वसनीय और भरोसेमंद या अन्यथा।

24. नामदेव बनाम महाराष्ट्र राज्य (2007) 14 एससीसी 150 मामले में, न्यायालय ने यह कहते हुए विचार दोहराया कि यह साक्ष्य की

अनुवादित

गुणवत्ता है, न कि साक्ष्य की मात्रा जो किसी तथ्य को साबित करने या अस्वीकार करने के लिए आवश्यक है। कानूनी प्रणाली ने गवाहों की मात्रा, बहुलता या बहुलता के बजाय साक्ष्य के मूल्य, वजन और गुणवत्ता पर जोर दिया है। इसलिए, यह एक सक्षम अदालत के लिए खुला है कि वह पूरी तरह से और पूरी तरह से एक गवाह पर भरोसा करे और दोषसिद्धि दर्ज करे। इसके विपरीत, यदि वह साक्ष्य की गुणवत्ता से संतुष्ट नहीं है तो वह कई गवाहों की गवाही के बावजूद आरोपी को बरी कर सकता है।

25. याकूब इस्माइलभाई पटेल बनाम राज्य पंजरात मामले (2004) 12 एससीसी 229 में अदालत ने कहा कि:-

"एक अकेले चश्मदीद गवाह की गवाही के संबंध में कानूनी स्थिति निर्णयों की एक श्रेणी में अच्छी तरह से तय की गई है, क्योंकि इस अदालत ने हमेशा याद दिलाया है कि इस पर दोषसिद्धि पारित करने के लिए, ऐसी गवाही प्रकृति की होनी चाहिए जो अदालत के विश्वास को प्रेरित करे। इस तरह के सबूतों को देखते हुए, इस अदालत ने हमेशा सावधानी बरतने और अन्य सबूतों से इस तरह की पुष्टि की वकालत की है और यहां तक कि पुष्टि के अभाव में भी, अगर ऐसे एक चश्मदीद गवाह की गवाही आत्मविश्वास को प्रेरित करती है, तो दोषसिद्धि पूरी तरह से इस पर आधारित हो सकती है।

26. हरियाणा राज्य बनाम इंदर सिंह और अन्य के मामले (2002) 9 एससीसी 537 में रिपोर्ट किए गए, अदालत ने कहा कि यह गवाहों की मात्रा नहीं बल्कि गुणवत्ता है जो अभियुक्त के अपराध या निर्दोषता का निर्धारण करने के लिए मायने रखती है। एकमात्र गवाह की गवाही आत्मविश्वास से प्रेरित और संदेह से परे होनी चाहिए, इस प्रकार, अदालत के मन में कोई संदेह नहीं होना चाहिए।

27. दोनों पक्षों द्वारा किए गए सबूतों से, यह स्पष्ट है कि आरोपी-अपीलकर्ता इंद्र बहादुर सिंह ने सूरज सिंह को मारने के इरादे से उस पर गोली चलाई, जिससे उसके ऊपरी बांह पर गंभीर चोटें आईं, लेकिन कथित घटना में आरोपी-अपीलकर्ता महाबीर सिंह की भूमिका स्थापित नहीं हुई है। हालांकि, मौके पर उनकी उपस्थिति स्थापित करने की कोशिश की गई है। यह सामान्य विवेक के अधीन है, अगर वह मौके पर होते, तो वह निश्चित रूप से घटना में सक्रिय भागीदारी निभाते, लेकिन घटना में उनकी सक्रिय भागीदारी सबूतों से साबित नहीं होती है। सबूतों में यह भी नहीं पाया गया है कि उसके पास गोली चलाने का कोई सामान्य उद्देश्य/इरादा था। मौके पर उसकी उपस्थिति बेहद संदिग्ध है और वह संदेह का लाभ पाने का हकदार है।

28. जहां तक अभियुक्त-अपीलकर्ता इंद्र बहादुर सिंह का संबंध है, सबूतों से यह अच्छी तरह से स्थापित हो गया है कि वह मौके पर मौजूद था और उसने जान से मारने के इरादे से सूरज सिंह पर गोली चला दी, जिससे वह गंभीर रूप से घायल हो गया और जमीन पर गिर गया। विचारण न्यायालय ने इस संबंध में सही दृष्टिकोण अपनाया है।

29. पक्षकारों के विद्वान वकीलों को सुनने और रिकॉर्ड पर पूरे सबूतों का अवलोकन करने के बाद, मुझे आरोपी-अपीलकर्ता इंद्र बहादुर सिंह को दोषी ठहराने में आक्षेपित फैसले में कोई अवैधता, अनियमितता, कानूनी या अन्यथा, या विकृति नहीं मिलती है, लेकिन

अनुवादित

मुझे आरोपी-अपीलकर्ता महाबीर सिंह को दोषी ठहराने का कोई अच्छा आधार नहीं दिखता है।

30. ऊपर की गई चर्चा के मद्देनजर, आरोपी अपीलकर्ता महाबीर सिंह की अपील को अनुमति दी जानी चाहिए, जबकि आरोपी-अपीलकर्ता इंद्र बहादुर की अपील खारिज होने के योग्य है।

31. तदनुसार, अभियुक्त-अपीलकर्ता महाबीर सिंह की अपील को अनुमति दी जाएगी। उन्हें उनके खिलाफ लगाए गए आरोपों से बरी कर दिया जाता है। आरोपी-अपीलकर्ता इंद्र बहादुर सिंह की अपील गुण-दोष के आधार पर खारिज की जाती है। उनकी दोषसिद्धि को बरकरार रखा जाता है और बनाए रखा जाता है।

32. जहां तक विचारण न्यायालय द्वारा आरोपी-अपीलकर्ता इंद्र बहादुर सिंह की सजा का संबंध है, यह स्थापित कानूनी स्थिति है कि प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों, अपराध की प्रकृति और इसे निष्पादित करने या करने के तरीके पर उचित विचार करने के बाद उचित सजा दी जानी चाहिए। यह न्यायालय का दायित्व है कि वह लगातार खुद को याद दिलाए कि पीड़ित का अधिकार, और जैसा कि कहा जाता है, कुछ अवसरों पर पीड़ित व्यक्ति के साथ-साथ बड़े पैमाने पर समाज पीड़ित हो सकता है, कभी भी हाशिए पर नहीं डाला जा सकता है। सजा का पैमाना अपराध की गंभीरता के अनुपात में होना चाहिए। सजा का उद्देश्य समाज की रक्षा करना और अपराधी को कानून के उद्देश्य को प्राप्त करने से रोकना होना चाहिए। इसके अलावा, यह उम्मीद की जाती है कि अदालतें सजा प्रणाली को संचालित करेंगी ताकि ऐसी सजा दी जा सके जो समाज के विवेक को दर्शाती है और सजा की प्रक्रिया सख्त होनी चाहिए जहां यह होनी चाहिए। न्यायालय अपने कर्तव्य में विफल हो जाएगा यदि एक अपराध के लिए उचित सजा नहीं दी जाती है जो न केवल व्यक्तिगत पीड़ित के खिलाफ बल्कि समाज के खिलाफ भी किया गया है जिससे अपराधी और पीड़ित संबंधित हैं। किसी अपराध के लिए दी जाने वाली सजा अप्रासंगिक नहीं होनी चाहिए, लेकिन यह अपराध के अत्याचार और क्रूरता के अनुरूप होनी चाहिए, अपराध की विशालता के लिए सार्वजनिक घृणा की आवश्यकता होती है और इसे 'अपराधी के खिलाफ न्याय के लिए समाज की पुकार का जवाब देना चाहिए'। [विदे: सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह और अन्य, (2014) 7 एससीसी 323, शाम सुंदर बनाम पूरन, (1990) 4 एससीसी 731, एमपी बनाम सलीम, (2005) 5 एससीसी 554, रावजी बनाम राजस्थान राज्य, (1996) 2 एससीसी 175]।

33. इसलिए, उपर्युक्त निर्णयों में निर्धारित सिद्धांतों को लागू करना और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्रता, मकसद, अपराध की प्रकृति, हत्या में इस्तेमाल किए गए हथियार और जिस तरह से इसे निष्पादित या किया गया था। समय के साथ, आरोपी-अपीलकर्ता इंद्र बहादुर सिंह की उम्र हो गई होगी और यह घटना वर्ष 1978 से संबंधित होगी और 45 साल बीत चुके होंगे। यदि उसे दी गई सजा को घटाकर पांच वर्ष के सश्रम कारावास में बदल दिया जाता है तो उस पर सहानुभूतिपूर्वक विचार किया जाना चाहिए। यह न्याय के अंत को पूरा करेगा।

34. अभियुक्त-अपीलकर्ता इंद्र बहादुर सिंह की आपराधिक अपील को आंशिक रूप से स्वीकार

अनुवादित

किया जाता है और विचारण न्यायालय द्वारा दी गई सजा को कथित अपराध के तहत पांच साल के कठोर कारावास की सीमा तक कम और संशोधित किया जाता है। अभियुक्त-अपीलकर्ता इंद्र बहादुर सिंह को तदनुसार शेष सजा काटने के लिए हिरासत में लिया जाएगा। किसी अन्य धारा में सजा, यदि कोई हो, साथ-साथ चलेगी। अभियुक्त-अपीलकर्ता दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 428 का लाभ प्राप्त करने के हकदार होंगे।

35. विचारण न्यायालय के रिकॉर्ड के साथ फैसले को संबंधित अदालत को सूचना और आवश्यक अनुपालन के लिए प्रमाणित करें।

(2023) 6 ILRA 741

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 10.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा

माननीय न्यायमूर्ति मनीष कुमार निगम

आपराधिक अपील संख्या 836/1983

गुलाब सिंह एवं अन्य **अपीलकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **विपरीत पक्ष**

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता:

श्री आर.बी. सहाय, श्री आदित्य यादव, श्री अनिल कुमार सिंह, श्री जी.एस. चतुर्वेदी, श्री कमल कृष्ण, श्री लव श्रीवास्तव, श्री मुकेश कुमार पांडे, श्री आर.बी. सिंह, श्री रंजीत सिंह, श्री श्याम श्रीवास्तव, श्री श्याम सुंदर मिश्रा, श्री सुंदर मिश्रा, श्री सुरेंद्र सिंह, श्री सुशील कुमार द्विवेदी, श्री वी.पी. श्रीवास्तव, श्री विकास भटनागर, श्री वीरेन्द्र कुमार यादव, श्री विशेष कुमार

विपक्षी पक्ष के अधिवक्ता:

डीजीए, ए.जी.ए., श्री रमेश सिन्हा

(ए) आपराधिक कानून - दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302/149, 307/149, 148 और 147 - किशोर न्याय (बालकों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2015 - धारा 94(2) - आयु का अनुमान और निर्धारण, धारा 24 (1) - अपराध के निष्कर्ष पर अयोग्यता हटाना, धारा 18(1)(जी) - कानून का उल्लंघन करते पाए गए बालक के संबंध में आदेश, किशोर न्याय (बालकों की देखभाल और संरक्षण) नियम, 2007 - नियम 12(3)(बी) - आयु के निर्धारण में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया, उत्तर प्रदेश। पंचायत राज अधिनियम, 1947 - धारा 110 - राज्य सरकार की नियम बनाने की शक्तियाँ, उत्तर प्रदेश पंचायत राज (परिवार रजिस्टरों का रखरखाव) नियम, 1970 - नियम 5, 6, 73, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 35 - कर्तव्य पालन में सार्वजनिक अभिलेख में की गई प्रविष्टि की प्रासंगिकता।

(बी) आपराधिक कानून - किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम 2005 और किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम 2000 के बीच कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है - 2015 का अधिनियम 16-18 वर्ष की आयु के बच्चों द्वारा किए गए अपराध पर केंद्रित है - बोर्ड द्वारा आयु का निर्धारण कानून के साथ संघर्ष करने वाले बच्चे या किशोर का निर्णायक सबूत है - 2015 के अधिनियम के प्रयोजनों के लिए समिति या

अनुवादित

बोर्ड द्वारा दर्ज की गई आयु को सही आयु माना जाता है। (पैरा - 35)

अपील में पारित निर्णय और आदेश - विशेष अनुमति अपील में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई - न्यायालय ने सजा के आदेश में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया - लेकिन आवेदक संख्या 10 के आवेदन पर विचार करने और आदेश पारित करने के लिए उच्च न्यायालय को निर्देश जारी किया - जिसने घटना की तारीख पर किशोर होने का दावा किया - बोर्ड द्वारा दर्ज किया गया निष्कर्ष - सक्षम प्राधिकारी ने परिवार रजिस्टर कटिंग पर हस्ताक्षर किए - अपीलकर्ता संख्या की जन्म तिथि। 10 को 28.05.1965 से बदलकर 03.06.1965 कर दिया गया - पाँच दिन का अंतर - अपीलकर्ता संख्या 10 को कोई लाभ नहीं दिया गया। **(पैरा-14, 31)**

निर्णय:- बोर्ड ने पाया कि अपीलकर्ता संख्या 10 अपराध के समय यानी 05.12.1982 को किशोर था, जो ठोस सबूतों पर आधारित है। उसे 3 साल की जेल की सजा सुनाई गई, लेकिन वह किशोर होने के कारण 2015 के अधिनियम के तहत लाभ पाने का हकदार है। 2015 अधिनियम की धारा 18(1)(जी) के अनुसार अपीलकर्ता की 3 साल से अधिक की सजा के कारण उसे तीन साल के लिए विशेष गृह में भेजना अन्यायपूर्ण है। आवेदक संख्या 10 को 2015 अधिनियम की धारा 24 के तहत दोषसिद्धि और सजा के कारण अयोग्यता का सामना नहीं करना पड़ेगा। **(पैरा - 36, 37, 38, 40)**

विविध आवेदन स्वीकृत। (ई-7)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

मनोज बनाम हरियाणा राज्य (2022) 6 एससीसी 187

(माननीय न्यायमूर्ति मनीष कुमार निगम द्वारा दिया गया)

1. अपीलकर्ताओं के लिए अधिवक्ता को और राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

2. यह अपील अपीलकर्ता गुलाब सिंह (ए-1), शिव नारायण सिंह (ए-2), मुन्नू सिंह (ए-3), ननका (ए-4), बासदेव (ए-5), छोटकू (ए-6), गिरीश (ए-7), किशोर (ए-8), झूरी सिंह उर्फ चंद्र भूषण सिंह (ए-9) और कल्लू @ अवधेश (ए-10) द्वारा तृतीय अपर सत्र न्यायाधीश, फतेहपुर द्वारा सत्र विचारण संख्या-119 वर्ष 1982 (गुलाब सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 05.04.1983 के खिलाफ दायर की गई थी, जिसके द्वारा अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया गया था और धारा 302 के साथ 149 भ०द०वि०के तहत आजीवन कारावास, धारा 307/149 भ०द०वि० के तहत सात साल के सश्रम कारावास की सजा सुनाई गई थी और शिव नारायण सिंह (ए-2), मुन्नू सिंह (ए-3), ननका (ए-4), बासदेव (ए-5), छोटकू (ए-6), गिरीश (ए-7) और किशोर (ए-8) को भी दोषी ठहराया गया और धारा 147 भ०द०वि० के तहत एक साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई

3. संक्षेप में कहा गया है कि अ०सा०-1 सूचनाकर्ता बृजभूषण द्वारा दिनांक 05.12.1981 को प्रातः 9:30 बजे पुलिस थाना-गाजीपुर, जिला फतेहपुर में दर्ज एक लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श क-1) के आधार पर दिनांक 05.12.1981 को प्रातः 8:15 बजे प्राथमिकी

अनुवादित

दर्ज हुई एक घटना के संबंध में अपीलकर्ताओं के साथ-साथ सह-आरोपी रघुबीर और बाबू सिंह यादव के खिलाफ धारा 147, 149, 302 और 307 भ०द०वि० के तहत कार्रवाई शुरू की गई थी। उक्त घटना में चंद्र भूषण और बान बिहारी की मृत्यु हो गई थी और राम कृपाल, कुंज बिहारी और बृजभूषण घायल हो गए थे।

4. जांच के बाद, पुलिस ने मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, फतेहपुर के समक्ष सभी आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया।

5. चूंकि, आरोप पत्र में उल्लिखित अपराध विशेष रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय थे, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने सभी अभियुक्तों के मामले को सत्र न्यायाधीश, फतेहपुर की अदालत में सौंप दिया, जहां मामला सत्र विचारण संख्या-119 वर्ष 1982 (गुलाब सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) के रूप में दर्ज किया गया था, उसके बाद मामला तृतीय अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, फतेहपुर की अदालत में स्थानांतरित कर दिया गया था जिसने जांच में एकत्र की गई सामग्री के आधार पर और अभियोजन पक्ष के साथ-साथ आरोप के बिंदु पर अभियुक्तों को सुनने के बाद, सभी अपीलकर्ताओं के खिलाफ धारा 302/149 और 307/149 के तहत आरोप तय किए।

6. उपरोक्त आरोपों के अलावा, झूरी सिंह @ चंद्र भूषण (ए-9) और कल्लू @ अवधेश (ए-10) के खिलाफ धारा 148 भ०द०वि० के तहत आरोप तय किया गया था। श्री नारायण सिंह (ए-2), मुन्नू सिंह (ए-3), ननका (ए-4), बासुदेव (ए-5), छोटूकू (ए-6), गिरीश (ए-7) और किशोर (ए-8) के खिलाफ भ०द०वि० की धारा 147 के तहत आरोप तय किए गए थे। आरोपी अपीलकर्ताओं ने अपने खिलाफ लगाए गए आरोपों से इनकार किया और मुकदमे का सामना करने का दावा किया।

7. विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष द्वारा रिकॉर्ड पर लाए गए सबूतों और रिकॉर्ड पर लाई गई सामग्री पर विचार करने के बाद, सभी अपीलकर्ताओं को धारा 149 भ०द०वि० सपठित धारा 302 के तहत दोषी ठहराया और आजीवन कारावास की सजा सुनाई। साथ ही धारा 307/149 भ०द०वि० के तहत 7 साल के सश्रम कारावास की सजा सुनाई गई। शिव नारायण सिंह (ए-2), मुन्नू (ए-3), ननका (ए-4), बासुदेव (ए-5), छोटकू (ए-6), गिरीश (ए-7) और किशोर (ए-8) को धारा 147 भ०द०वि० के तहत एक साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई थी।

9. प्रस्तुत अपील अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 05.04.1983 के खिलाफ दायर की गई थी। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि सभी आरोपी व्यक्ति मुकदमे के दौरान जमानत पर थे।

10. अपील दायर करने के बाद, अपीलकर्ताओं को इस न्यायालय द्वारा दिनांक 06.04.1983 के आदेश द्वारा जमानत दे दी गई थी।

11. इस न्यायालय ने अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता के साथ-साथ राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुनने के बाद अपने फैसले और आदेश दिनांक 16.08.2018 के माध्यम से गुलाब सिंह (ए-1) और कल्लू @ अवधेश (ए-10) के संबंध में विचारण न्यायालय के फैसले की पुष्टि की। शिव नारायण (ए-2), (ए-3), (ए-4), (ए-5), (ए-6) और (ए-7) की अपील को अनुमति दी गई और उन्हें इस न्यायालय द्वारा उनके खिलाफ लगाए गए

अवधवाद

सभी आरोपों से बरी कर दिया गया। अपील को आंशिक रूप से अनुमति दी गई और गुलाब सिंह (ए-1) को खारिज कर दिया गया।

12. दिनांक 23.01.2020 के आदेश द्वारा पूर्व आदेश दिनांक 16.08.2018 को सही किया गया और दिनांक 16.08.2018 के आदेश के तीसरे अंतिम पैराग्राफ-की पहली पंक्ति में कल्लू @ अवधेश (ए-10) का नाम जोड़ा गया और निर्णय के दूसरे अंतिम पैराग्राफ से पहले निम्नलिखित पैराग्राफ जोड़ा गया:

"अपीलकर्ता कल्लू @ अवधेश (ए-10) जमानत पर है। उनके जमानत बांड रद्द किए जाते हैं और जमानतदारों को उन्मोचित किया जाता है। मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, फतेहपुर को निर्देश दिया जाता है कि उसे हिरासत में लिया जाए और उसकी सजा के शेष हिस्से को काटने के लिए जेल भेजा जाए।

13. दिनांक 16.08.2018 के निर्णय और आदेश के बाद, कल्लू @ अवधेश (ए-10) की ओर से आपराधिक प्रकीर्ण आवेदन संख्या-1 वर्ष 2019 दिनांक 06.12.2019 दायर किया गया था, जिसमें प्रार्थना की गई थी कि अपीलकर्ता संख्या-10 कल्लू @ अवधेश को किशोर घोषित किया जाए और कल्लू @ अवधेश के खिलाफ सजा का आदेश रद्द किया जाए।

14. इस अपील में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 16.08.2018 को माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अपील की विशेष अनुमति (सीआरआई) संख्या-3506-3507 वर्ष 2020 (कल्लू @ अवधेश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में चुनौती दी गई थी। अपने दिनांक 31.07.2022 के आदेश के तहत माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दोषसिद्धि के आदेश में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया। हालांकि, इसने एक निर्देश जारी किया, जिसमें उच्च न्यायालय को कल्लू @ अवधेश (ए-10) के आवेदन पर विचार करने और आदेश पारित करने का निर्देश दिया गया, जिसमें घटना की तारीख को किशोर होने का दावा किया गया था।

15. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के दिनांक 21.08.2020 के आदेश के बाद, अपीलकर्ता संख्या-10 कल्लू @ अवधेश की ओर से बच्चों के किशोर न्याय (देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2015 (इसके बाद "अधिनियम वर्ष 2015" के रूप में संदर्भित) की धारा 9 (2) के तहत आपराधिक प्रकीर्ण आवेदन संख्या-1 वर्ष 2019 दिनांक 06.12.2019 को इस न्यायालय के समक्ष रखा गया था।

16. दिनांक 27.09.2021 के आदेश द्वारा, अपीलकर्ता संख्या-10 कल्लू @ अवधेश की किशोरावस्था का निर्धारण करने का प्रश्न किशोर न्याय बोर्ड, फतेहपुर (इसके बाद "बोर्ड" के रूप में संदर्भित) को संदर्भित किया गया था ताकि आदेश दिनांक 27.09.2021 की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से दो महीने के भीतर कानून के अनुसार मामले पर विचार किया जा सके और उसका निपटान किया जा सके।

17. दिनांक 27.09.2021 के आदेश के अनुपालन में, बोर्ड ने अपने आदेश दिनांक 06.01.2022 के माध्यम से 2:1 के निर्णय से माना कि अपीलकर्ता संख्या-10 कल्लू @ अवधेश घटना की तारीख यानी 05.12.1981 को किशोर था।

18. बोर्ड द्वारा दिनांक 06.01.2022 का आदेश पारित किए जाने के बाद, इसे इस अपील के रिकॉर्ड में रखा गया था। राज्य द्वारा

अनुवादित

दिनांक 02.03.2022 को एक जवाबी हलफनामा दायर किया गया था जिसमें उच्च प्राथमिक विद्यालय गम्हारी, बहुआ, फतेहपुर के प्रधानाचार्य द्वारा जारी प्रमाण पत्र के आधार पर और जगत इंटर कॉलेज, गाजीपुर, फतेहपुर के प्रधानाचार्य द्वारा जारी जन्म प्रमाण पत्र के आधार पर दावा किया गया है कि अपीलकर्ता संख्या-10 कल्लू @ अवधेश की जन्म तिथि 05.03.1962 है और अपीलकर्ता संख्या-10 घटना की तारीख को किशोर नहीं था।

19. अपीलकर्ता संख्या-10 कल्लू @ अवधेश की ओर से इसके बाद एक प्रति-उत्तर हलफनामा दायर किया गया है जिसमें विशेष रूप से कहा गया है कि अपीलकर्ता संख्या-10 कल्लू @ अवधेश एक अनपढ़ व्यक्ति है और कभी किसी स्कूल में नहीं गया था। प्रत्युत्तर हलफनामे में आगे कहा गया है कि राज्य की ओर से, जब बोर्ड के समक्ष कार्यवाही चल रही थी, तो ऐसा कोई सबूत दायर नहीं किया गया था। प्रत्युत्तर हलफनामे में आगे कहा गया है कि न तो राज्य और न ही सूचनादाता ने बोर्ड द्वारा पारित दिनांक 06.01.2022 के आदेश के खिलाफ कोई अपील दायर की थी, जिसका अर्थ है कि इन मुद्दों को इस स्तर पर अब नहीं उठाया जा सकता है।

20. आज जब मामला उठाया गया, तो अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा आवेदन संख्या-1 वर्ष 2019 पर दबाव डाला गया। अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अनुसरण में, बोर्ड ने अपीलकर्ता संख्या-10 कल्लू @ अवधेश की आयु निर्धारित करने के लिए बौद्धिक श्रम किया था। जांच करने पर बोर्ड द्वारा बहुमत 2:1 द्वारा यह माना गया था कि घटना के समय, अपीलकर्ता संख्या-10 कल्लू @ अवधेश नाबालिग था। अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा आगे यह तर्क दिया गया है कि बोर्ड द्वारा पारित दिनांक 06.01.2022 का आदेश अंतिम हो गया क्योंकि बोर्ड के आदेश के खिलाफ सूचनाकर्ता या राज्य द्वारा कोई अपील नहीं की गई थी।

21. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि चूंकि अपीलकर्ता संख्या-10 को घटना की तारीख को किशोर माना गया है, इसलिए अधिनियम वर्ष 2015 के प्रावधानों के मद्देनजर, अपीलकर्ता संख्या-10 को तुरंत रिहा किया जाना है क्योंकि वह 3 साल से अधिक समय तक जेल में रहा था और वर्तमान में भी, अपीलकर्ता संख्या-10 की उम्र लगभग 57 वर्ष थी और इसलिए उसे बाल सुधार गृह नहीं भेजा जा सकता है।

22. प्रतिवाद, राज्य द्वारा दायर जवाबी हलफनामे पर भरोसा करते हुए, अपर शासकीय अधिवक्ता ने कहा कि जवाबी हलफनामे के साथ संलग्न प्रमाणपत्रों के अनुसार, अपीलकर्ता संख्या-10, घटना के समय किशोर नहीं था और बोर्ड की रिपोर्ट गलत थी। यह आगे तर्क दिया गया है कि बोर्ड द्वारा की गई जांच कानून के अनुसार नहीं थी और अपीलकर्ता संख्या-10 को अधिनियम वर्ष 2015 के प्रावधानों का लाभ नहीं दिया जा सकता है। अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा आगे यह तर्क दिया गया है कि बोर्ड ने परिवार रजिस्टर में की गई प्रविष्टियों पर गलती से भरोसा किया है। आगे यह तर्क दिया गया है कि परिवार रजिस्टर में की गई प्रविष्टियों में प्रक्षेप थे।

अनुवादित

23. अपर शासकीय अधिवक्ता के तर्क के जवाब में, अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि जवाबी हलफनामे के साथ संलग्न प्रमाण पत्र पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। सबसे पहले क्योंकि जवाबी हलफ़नामे के साथ केवल प्रमाण पत्रों की फोटो प्रतियां दायर की गई थीं और दूसरी बात, उपरोक्त प्रमाण पत्र राज्य द्वारा बोर्ड के समक्ष, जब बोर्ड अपीलकर्ता संख्या-10 की किशोरवस्था के मामले की जांच कर रहा था, कभी भी दायर नहीं किए गए थे।

24. आगे यह तर्क दिया गया है कि बोर्ड के आदेश के खिलाफ, राज्य या सूचनादाता द्वारा कोई अपील नहीं की गई थी और बोर्ड द्वारा पारित आदेश अंतिम हो गया था। बोर्ड द्वारा की गई जांच कानून के अनुसार थी और इसे गलत नहीं ठहराया जा सकता।

25. अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा की गई संबंधित प्रस्तुतियों पर विचार करने और रिकॉर्ड के अवलोकन के बाद, हमारा विचार है कि राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता का यह तर्क कि परिवार रजिस्टर में की गई प्रविष्टियों पर भरोसा नहीं किया जा सकता है, सही नहीं है।

<u>परिवार रजिस्टर</u>

26. परिवार रजिस्टर नियमावली उत्तर प्रदेश राज्य में एक परिवार रजिस्टर तैयार करने का प्रावधान करती है जिसमें गांव सभा से संबंधित गांव में आमतौर पर रहने वाले सभी व्यक्तियों के परिवार-वार नाम और विवरण शामिल होते हैं। ऐसे नियम उ0प्र0 पंचायत राज अधिनियम, 1947 की धारा 110 के अन्तर्गत बनाए गए हैं। इस तरह के नियम निम्नानुसार हैं: "

1. (1) इन नियमों का संक्षिप्त नाम उ0प्र0 पंचायत राज (परिवार रजिस्टरों का अनुरक्षण) नियम, 1970 है।

2. परिवार रजिस्टर का प्रारूप और तैयारी - फार्म क में एक परिवार रजिस्टर तैयार किया जाएगा जिसमें गांव सभा से संबंधित गांव में रहने वाले सभी व्यक्तियों के नाम और विवरण परिवार-वार होंगे। आमतौर पर रजिस्टर में प्रत्येक परिवार को एक पृष्ठ आवंटित किया जाएगा। अनुसूचित जाति के परिवारों के लिए रजिस्टर में एक अलग अनुभाग होगा। रजिस्टर हिंदी में देवनागरी लिपि में तैयार किया जाएगा।

3. रजिस्टर में पंजीकरण के लिए सामान्य शर्तें - प्रत्येक व्यक्ति जो ग्राम सभा के क्षेत्र के भीतर सामान्य रूप से निवासी रहा है, परिवार रजिस्टर में पंजीकृत होने का हकदार होगा।

स्पष्टीकरण- कोई व्यक्ति साधारणतः किसी गांव का निवासी समझा जाएगा यदि वह साधारणतया ऐसे गांव में निवास करता रहा है या उसके कब्जे में कोई ऐसा आवासीय घर है जो कब्जे के लिए तैयार है।

4. परिवार रजिस्टर में त्रैमासिक प्रविष्टियां -- प्रत्येक वर्ष में अप्रैल से आरंभ होने वाली प्रत्येक तिमाही के प्रारंभ में, ग्राम सभा का सचिव प्रत्येक परिवार में पिछली तिमाही में होने वाले जन्म और मृत्यु, यदि कोई हो, के परिणामस्वरूप परिवार रजिस्टर में आवश्यक परिवर्तन करेगा। इस तरह के

अनुवादित

बदलाव ग्राम पंचायत की अगली बैठक से पहले जानकारी के लिए रखे जाएंगे।

5. किसी विद्यमान प्रविष्टि का सुधार -- सहायक विकास अधिकारी (पंचायत) इस निमित्त उसे किए गए आवेदन पर परिवार रजिस्टर में विद्यमान किसी प्रविष्टि के सुधार का आदेश दे सकेगा और ग्राम सभा का सचिव तद्नुसार रजिस्टर में सुधार करेगा।

(1) कोई व्यक्ति जिसका नाम परिवार रजिस्टर में सम्मिलित नहीं है, उसमें अपना नाम सम्मिलित करने के लिए सहायक विकास अधिकारी (पंचायत) को आवेदन कर सकेगा।

(2) सहायक विकास अधिकारी (पंचायत), यदि संतुष्ट हो जाता है, तो ऐसी जांच के पश्चात्, जो वह ठीक समझे, यह निदेश देगा कि आवेदक का नाम उसमें सम्मिलित किया जाए और ग्राम सभा का सचिव तद्नुसार नाम सम्मिलित करेगा।

6-ए. नियम 5 या नियम 6 के अधीन किए गए आदेश से व्यथित कोई भी व्यक्ति, ऐसे आदेश की तारीख से 30 दिनों के भीतर उपखण्ड अधिकारी को अपील कर सकता है जिसका निर्णय अंतिम होगा।

7. रजिस्टर की अभिरक्षा और परिरक्षण--

(1) गाँव सभा का सचिव परिवार रजिस्टर की सुरक्षित अभिरक्षा के लिए उत्तरदायी होगा।

(2) प्रत्येक व्यक्ति को, ऐसी रीति से तथा ऐसी फीस, यदि कोई हो, का भुगतान करने पर, जो उ0प्र0 पंचायत राज नियमावली के नियम 73 में विनिर्दिष्ट की जाये, रजिस्टर का निरीक्षण करने और किसी प्रविष्टि या उद्धरण की सत्यापित प्रति प्राप्त करने का अधिकार होगा।

फॉर्म ए

(नियम 2 देखें)

*****

टिप्पणी कॉलम में आदेश की संख्या और तारीख, यदि कोई हो, जिसके द्वारा कोई नाम जोड़ा या हटाया गया है, प्रविष्टि करने वाले व्यक्ति के हस्ताक्षर के साथ दिया जाना चाहिए।

27. उपर्युक्त नियमों के अवलोकन से संकेत मिलता है कि प्रत्येक परिवार को एक पृष्ठ आवंटित किया गया है और जन्म और मृत्यु के परिणामस्वरूप परिवार में किसी भी परिवर्तन को ऐसे पृष्ठ पर शामिल किया जाना आवश्यक है। इन परिवर्तनों को ग्राम पंचायत की अगली बैठक से पहले भी रखा जाना अपेक्षित है। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि ऐसे नियम वैधानिक रूप से एक अधिनियम के अनुसरण में बनाए जाते हैं। रजिस्टर में प्रविष्टियां ग्राम पंचायत के अधिकारियों द्वारा अपने आधिकारिक कर्तव्य के हिस्से के रूप में की जानी चाहिए।

28. इस न्यायालय ने मनोज बनाम हरियाणा राज्य के मामले में, (2022) 6 एस.सी.सी. 187 में रिपोर्ट किया गया, ऊपर उल्लिखित परिवार रजिस्टर के संबंध में निम्नानुसार अवलोकन किया"-

"39. हम कुछ मामलों में उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए व्यापक दृष्टिकोण को मंजूरी देने में असमर्थ हैं कि परिवार के सदस्यों की उम्र निर्धारित करने के लिए परिवार रजिस्टर प्रासंगिक नहीं है। यह तथ्य का प्रश्न

अनुवादित

है कि परिवार रजिस्टर के साथ कितना साक्ष्य मूल्य संलग्न किया जाना है, लेकिन यह कहना कि यह पूरी तरह से प्रासंगिक नहीं है, कानून का सही प्रतिपादन नहीं होगा। रजिस्टर का रख-रखाव संविधि के अंतर्गत बनाए गए नियमों के अनुसार किया जा रहा है। इस प्रकार पंचायत के मामलों के नियमित क्रम में की गई प्रविष्टियां प्रासंगिक होंगी लेकिन इस तरह की निर्भरता की सीमा प्रत्येक मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए होगी। (महत्त्व सन्निविष्ट)

"23. आयु के निर्धारण के लिए अपनाई जाने वाली प्रक्रिया किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) नियम, 2007 (संक्षेप में 2007 नियम) के नियम 12 (3)(बी) के तहत प्रदान की गई है।

"12. आयु के अवधारण में अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया--(3) विधि का उल्लंघन करने वाले बालक या किशोर से संबंधित प्रत्येक मामले में, आयु अवधारण जांच न्यायालय या बोर्ड या यथास्थिति, समिति द्वारा निम्नलिखित अभिप्राप्त करके साक्ष्य मांगकर की जाएगी-

(क)(i) मैट्रिक या समकक्ष प्रमाण पत्र, यदि उपलब्ध हो; और जिसकी अनुपस्थिति में;

(ii) स्कूल से जन्म प्रमाण पत्र की तारीख (एक प्ले स्कूल के अलावा) पहली बार भाग लिया; और जिसकी अनुपस्थिति में;

(iii) किसी निगम या नगरपालिका प्राधिकरण या पंचायत द्वारा दिया गया जन्म प्रमाणपत्र;

(ख) और केवल उपर्युक्त खंड (क) के (i), (ii) या (iii) में से किसी एक की अनुपस्थिति में, विधिवत गठित मेडिकल बोर्ड से चिकित्सा राय मांगी जाएगी, जो किशोर या बच्चे की आयु घोषित करेगा। यदि आयु का सही-सही निर्धारण नहीं किया जा सकता है तो न्यायालय या बोर्ड या यथास्थिति, समिति, उनके द्वारा अभिलिखित किए जाने वाले कारणों के लिए, यदि आवश्यक समझा जाए, तो बालक अथवा किशोर को एक वर्ष की अवधि के भीतर उसकी आयु को कम करके लाभ दे सकती है।

और, ऐसे मामले में आदेश पारित करते समय, ऐसे साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए, जो उपलब्ध हो सकते हैं, या चिकित्सा राय, जैसा भी मामला हो, उसकी उम्र के संबंध में एक निष्कर्ष दर्ज करेगा और किसी भी खंड में निर्दिष्ट साक्ष्य (ए-)(i), (ii), (iii) या जिसकी अनुपस्थिति में, खंड (बी) ऐसे बच्चे या किशोर के संबंध में उम्र का निर्णायक प्रमाण होगा।

29. अधिनियम वर्ष 2000 अधिनियम वर्ष 2015 द्वारा निरसित हो गया है। आयु का निर्धारण करने की प्रक्रिया अब अधिनियम वर्ष 2015 की धारा 94 का हिस्सा है जो पहले नियमों के उपर्युक्त नियम 12 के तहत प्रदान की गई थी।

30. किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2015 की धारा 94 (2) निम्नानुसार उद्धृत की गई है: -

94. आयु की उपधारणा और अवधारण- (1) जहां, इस अधिनियम के उपबंधों में से किसी के अधीन (साक्ष्य देने के प्रयोजन से भिन्न) उसके समक्ष लाए गए व्यक्ति के प्रकट होने के आधार पर समिति या बोर्ड को यह स्पष्ट है कि उक्त व्यक्ति बालक है तो समिति या बोर्ड बालक की आयु बताते हुए ऐसी टिप्पणी अभिलिखित करेगा, और धारा 14 या धारा 36 के तहत, जैसा भी मामला हो, उम्र की आगे

अनुवादित

की पुष्टि की प्रतीक्षा किए बिना, जांच जारी रखेगा।

(2) समिति या बोर्ड के समक्ष लाया गया व्यक्ति बालक है या नहीं, इस बारे में संदेह के युक्तियुक्त आधार हैं तो यथास्थिति, समिति या बोर्ड निम्नलिखित अभिप्राप्त करके साक्ष्य मांगकर आयु निर्धारण की प्रक्रिया चलाएगा-

(i) स्कूल से जन्म प्रमाण पत्र की तारीख, या संबंधित परीक्षा बोर्ड से मैट्रिक या समकक्ष प्रमाण पत्र, यदि उपलब्ध हो; और उसके अभाव में;

(ii) किसी निगम या नगरपालिका प्राधिकरण या पंचायत द्वारा दिया गया जन्म प्रमाणपत्र;

(iii) और केवल उपरोक्त (i) और (ii) की अनुपस्थिति में, आयु का निर्धारण समिति या बोर्ड के आदेश पर अवधारित अस्थिभंग परीक्षण या किसी अन्य नवीनतम चिकित्सा आयु निर्धारण परीक्षण द्वारा किया जाएगा:

बशर्ते समिति या बोर्ड के आदेश पर अवधारित इस तरह के आयु निर्धारण परीक्षण इस तरह के आदेश की तारीख से पंद्रह दिनों के भीतर पूरा किया जाएगा।

(3) समिति या बोर्ड द्वारा इस प्रकार उसके समक्ष लाए गए व्यक्ति की आयु अभिलिखित आयु इस अधिनियम के प्रयोजन के लिये उस व्यक्ति की वास्तविक आयु समझी जाएगी।

31. हमने बोर्ड की रिपोर्ट का अवलोकन किया है। बोर्ड ने एक निष्कर्ष दर्ज किया है कि परिवार रजिस्टर में की गई कटिंग पर सक्षम प्राधिकारी द्वारा हस्ताक्षर किए गए हैं। बोर्ड द्वारा आगे यह माना गया है कि अपीलकर्ता संख्या-10 की जन्म तिथि 28.05.1965 से बदलकर 03.06.1965 कर दी गई है और केवल पांच दिनों का अंतर है जिससे यह स्पष्ट है कि अपीलकर्ता संख्या-10 को कोई लाभ नहीं दिया गया है। बोर्ड की रिपोर्ट का प्रासंगिक उद्धरण निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:

> **पत्रावली में उपलब्ध साक्ष्य एवं ग्राम पंचायत अधिकारी द्वारा हस्ताक्षरित व प्रमाणित परिवार रजिस्टर की नकल का परिशीलन किया गया। परिवार रजिस्टर के क्रमांक 207 के सामने अंकित विवरण व नाम को काटकर उसके नीचे पुनः नाम एवं अन्य विवरणों का अंकन किया गया है और कटिंग पर हस्ताक्षर बने हैं जिन्हें साक्षी प्रकाश चंद्र ग्राम पंचायत अधिकारी द्वारा सक्षम अधिकारी के हस्ताक्षर होना कहा गया है। कटिंग में अपचारी A के नाम के आगे जन्मतिथि 28.05.1965 अंकित है किंतु कटिंग के उपरांत पुनः नीचे अंकित किए गए विवरण में A अपचारी की जन्म तिथि 03.06.1965 अंकित है जिसमें मात्र 5 दोनों का अंतर है जिससे यह प्रतीत नहीं होता कि उक्त कटिंग किसी तरह से अपचारी को लाभ पहुंचाने की नीयत से की गई है परिवार रजिस्टर जो ग्राम पंचायत अधिकारी द्वारा प्रमाणित करके दाखिल किया गया है, उसमें A के पारिवार जनों का नाम पहले घरेलू अंकित किया गया है, फिर इस कटिंग में उनके सही नाम लिखे गए, फिर संपूर्ण विवरण को काटकर उसके नीचे सही नाम के साथ विवरण अंकित किया गया है। इससे यह प्रतीत होता है कि उक्त कटिंग सही नाम अंकित किए जाने के परिपेक्ष्य में की गई है और**

अनुवादित

उसमें सक्षम अधिकारी के हस्ताक्षर भी बने हैं।

32. इस संबंध में भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 प्रासंगिक है और इसे नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

> "35. कर्तव्य के पालन में किए गए सार्वजनिक रिकॉर्ड में प्रविष्टि की प्रासंगिकता: किसी भी सार्वजनिक या अन्य आधिकारिक पुस्तक, रजिस्टर या [रिकॉर्ड या इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड] में प्रविष्टि, मुद्दे या प्रासंगिक तथ्य में एक तथ्य बताते हुए, और एक लोक सेवक द्वारा अपने आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में, या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा विशेष रूप से देश की विधि द्वारा आदेशित कर्तव्य के प्रदर्शन में की गई प्रविष्टि, जिसमें ऐसी पुस्तक, रजिस्टर, या [रिकॉर्ड या एक इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड] रखा जाता है, विशेष रूप से देश के कानून द्वारा आदेशित कर्तव्य के प्रदर्शन में व्यक्ति है जिसमें ऐसी पुस्तक, रजिस्टर, या [रिकॉर्ड या इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड] रखा जाता है, अपने आप में एक प्रासंगिक तथ्य है।"

33. परिवार रजिस्टर आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में तैयार किया गया है और इसलिए, किसी भी सबूत के अभाव में, इसके विपरीत एक प्रासंगिक साक्ष्य होगा।

34. जहां तक जवाबी हलफनामे के साथ दायर किए गए प्रमाणपत्रों का संबंध है, वे विश्वास को प्रेरित नहीं करते हैं क्योंकि दस्तावेज किसी संस्थान के प्रिंसिपल द्वारा जारी किए गए प्रमाण पत्र हैं। हम पाते हैं कि अपीलकर्ता संख्या-10 कभी किसी स्कूल में नहीं गया था। इसके अलावा, उपरोक्त दस्तावेज राज्य या सूचनादाता द्वारा बोर्ड के समक्ष दायर नहीं किए गए थे, जब बोर्ड द्वारा अपीलकर्ता संख्या-10 की किशोरावस्था के बारे में जांच की जा रही थी। राज्य या सूचनादाता ने अपीलकर्ता संख्या-10 को किशोर घोषित करने वाले बोर्ड द्वारा पारित आदेश को भी चुनौती नहीं दी है और उक्त आदेश को अंतिम रूप दिया गया है।

35. हम पहले ही राम नयन और चार अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के मामले में आपराधिक अपील संख्या-4499 वर्ष 2015 में पारित किया गया, जिसका निर्णय 12.04.2023 को हुआ था कि किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम 2005 (इसके बाद "अधिनियम वर्ष 2005" के रूप में संदर्भित) के प्रावधानों और किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण अधिनियम 2000 के प्रावधानों में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है, (इसके बाद "अधिनियम वर्ष 2000" के रूप में संदर्भित) सिवाय इसके कि अधिनियम वर्ष 2015 आयु वर्ग 16-18 वर्ष के बच्चों द्वारा किए गए अपराध का ध्यान रखता है। नियम 12(3)(बी) वर्ष 2007 नियमों के तहत, बोर्ड द्वारा आयु का निर्धारण कानून के उल्लंघन में एक बच्चे या किशोर के संबंध में उम्र का निर्णायक प्रमाण होगा। इसी प्रकार, अधिनियम वर्ष 2015 की धारा 94(2) के तहत, अधिनियम वर्ष 2015 के प्रयोजन के लिए समिति या बोर्ड द्वारा दर्ज की गई आयु को उस व्यक्ति की वास्तविक आयु माना जाएगा।

36. बोर्ड की रिपोर्ट को ध्यान में रखते हुए हमारी राय है कि सक्षम किशोर न्याय बोर्ड

अधिवक्ता दल

द्वारा दर्ज की गई स्पष्ट खोज, जो इस ठोस साक्ष्य पर आधारित है कि अपीलकर्ता संख्या-10 अपराध के समय यानी 05.12.1982 को किशोर था।

37. वर्तमान मामले में, जैसा कि संबंधित पक्षों के लिए उपस्थित अधिवक्ता द्वारा किए गए रिकॉर्ड और प्रस्तुतियों से स्पष्ट है, अपीलकर्ता संख्या-10 पहले ही लगभग तीन साल की कैद काट चुका है। जैसा कि हम पहले ही कह चुके हैं कि अपीलकर्ता संख्या-10 घटना के समय यानी 05.12.1981 को कानून के उल्लंघन के समय किशोर था, अपीलकर्ता संख्या-10 अधिनियम वर्ष 2015 के लाभ का हकदार है।

38. धारा 18(1)(जी) वर्ष 2015 अधिनियम के मद्देनजर, आवेदक/अपीलकर्ता संख्या-10 के खिलाफ जो सबसे कठोर कार्रवाई की जा सकती थी, वह आवेदक को तीन साल की अवधि के लिए एक विशेष घर में भेजना था। चूंकि अपीलकर्ता तीन साल से अधिक समय से सजा काट चुका है, इसलिए अब आवेदक को किशोर न्याय बोर्ड में भेजना अन्यायपूर्ण होगा।

39. इसलिए, हम आवेदन की अनुमति देते हैं और निर्देश देते हैं कि तृतीय अपर सत्र न्यायाधीश, फतेहपुर द्वारा तय सत्र विचारण संख्या-119 वर्ष 1982 (गुलाब सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में दोषी ठहराए गए और सजा सुनाए जाने वाले आवेदक/अपीलकर्ता संख्या-10 कल्लो उर्फ अवदेश को, बशर्ते कि उसे सक्षम न्यायालय के किसी अन्य आदेश के तहत हिरासत में लेने की आवश्यकता न हो, तुरंत मुक्त किया जाए।

40. अधिनियम वर्ष 2015 की धारा 24 की उपधारा (1) के मद्देनजर, आवेदक/अपीलकर्ता संख्या-10 कल्लो उर्फ अवधेश को उसकी दोषसिद्धि और उसके द्वारा काटी गई सजा की अवधि के कारण कोई अयोग्यता नहीं होगी।

41. प्रकीर्ण आवेदन को उपरोक्त शर्तों पर अनुमति है।

(2023) 6 ILRA 749

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 25.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा

माननीय न्यायमूर्ति मनीष कुमार निगम

आपराधिक अपील संख्या 1343/1999

सूरत सिंह **अपीलकर्ता**

बनाम

यू.पी. राज्य **विपरीत पक्ष**

अपीलकर्ता के अधिवक्ता: श्री अपुल मिश्रा, श्री आलोक रंजन मिश्रा, श्री जनार्दन सिंह, श्री पी.के. सिंह, श्री रण विजय सिंह, श्री वीरेंद्र कुमार शुक्ला (एसी), श्री राजीव नयन, श्री जी.एस. चतुर्वेदी (वरिष्ठ अधिवक्ता), श्री वी.पी. श्रीवास्तव (वरिष्ठ अधिवक्ता)

विपक्षी पक्ष के अधिवक्ता: सरकारी अधिवक्ता, श्री आशुतोष पांडे, श्री जितेन्द्र कुमार, श्री प्रशांत राय, श्री संजीव कुमार राय, श्री आई.के. चतुर्वेदी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302/34 और 307/34 - हत्या के लिए सजा - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 313 - दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील - कठोर कारावास - एफआईआर के अनुसार - आरोपी ने मृतक पर गोली चलाने के लिए तीन

अनुवादित

लोगों को उकसाया था, जिसके बाद उसकी मौके पर ही मौत हो गई - कुछ गोलियां (पीडब्लू-2) को लगीं, घटना को उसने और पड़ोसी दुकानदारों ने देखा - आरोप-पत्र प्रस्तुत - आरोप तय - दोषी - अपीलकर्ता का तर्क है कि पीडब्लू-2 ने आरोपी को उकसाने की भूमिका सौंपी थी और यह पीडब्लू-2 की कल्पना थी - एस.टी. ने तर्क दिया कि हमलावरों के हाथों में बंदूकें थीं, तो इसका मतलब है कि बंदूक का इस्तेमाल किया जाना था - माना गया कि पीडब्लू-2 ने एफआईआर में विपरीत बयान दिए थे, उसकी गवाही विश्वसनीय नहीं थी - जिरह में पीडब्लू-2 ने कहा कि उसे नहीं पता था मृतक के पिता का नाम, इसलिए एफआईआर पीडब्लू-2 द्वारा दर्ज नहीं की गई थी, बल्कि यह पुलिस का काम था, जिसने आरोपी को अन्य दो व्यक्तियों के साथ हमलावर के रूप में फंसाया था - मृतक पर किसी तरह से हमला किया गया था और उसकी हत्या नहीं की गई थी - समझाइश नहीं की गई क्योंकि हमलावरों के लिए दो व्यक्ति अज्ञात थे और इसलिए समझाइश व्यर्थ थी। (पैरा 1, 2, 10, 16, 18, 19, 20)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. जैनुल हक बनाम बिहार राज्य, एआईआर 1974 एससी 45 में रिपोर्ट किया गया
2. मातादीन और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1998) 7 एससीसी 216 में रिपोर्ट किया गया
3. वडिवेलु थेवर बनाम मद्रास राज्य, एआईआर 1957 एससी 614 में रिपोर्ट किया गया

(माननीय न्यायमूर्ति मनीष कुमार निगम द्वारा दिया गया)

यह अपील द्वितीय अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश के दिनांक 29.5.1999 के निर्णय और आदेश के खिलाफ दायर की गई है जिसके द्वारा आरोपी को भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 और 307/34 के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराया गया था और धारा 302/34 भा.दं.सं. के तहत आजीवन कारावास की सजा दी गई थी और धारा 307/34 भा.दं.सं. के तहत अपराध के लिए 7 साल के सश्रम कारावास की सजा सुनाई गई थी।

सोहन सिंह नामक व्यक्ति द्वारा दर्ज की गई प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसार अभियोजन का पक्ष यह था कि जब सोहन लाल और मृतक जसविंदर सिंह एक जिप्सी सं. डीएनसी 4414 पर ट्रॉली के टायर का पंक्चर ठीक कराने गए थे और पंचर ठीक करवा रहे थे, तब रात करीब साढ़े नौ बजे आरोपी सूरत सिंह ने तीन लोगों को मृतक जसविंदर सिंह पर गोली चलाने के लिए उकसाया था। तीनों लोगों ने जसविंदर सिंह को जान से मारने की नियत से उस पर गोली चलाई थी और उसके बाद जसविंदर सिंह की मौत हो गई थी। अभियोजन पक्ष का यह भी कहना है कि प्रथम सूचनादाता को भी कुछ गोलियां भी लगीं थीं। प्रथम सूचनादाता ने प्रथम सूचना रिपोर्ट में कहा है कि जिस स्थान पर घटना घटी, वहां बिजली के बल्ब थे। उसने यह भी कहा है कि इस घटना को प्रथम सूचनादाता और कुछ पड़ोसी दुकानदारों ने देखा था। घटना घटित होने के बाद दिनांक 18.3.1996 को अपराह्न 3.00 बजे सोहन लाल द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करायी गयी। इसके बाद जांच हुई और पुलिस ने अदालत में अपना आरोप पत्र दाखिल किया और द्वितीय अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश,

अद्यतनिक

बिजनौर ने दिनांक 20.8.1996 को अपीलकर्ता के खिलाफ आरोप तय किए। जब अपीलकर्ता को भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 और 307/34 के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराया गया, तो प्रस्तुत अपील दायर की गई है।

विचारण के दौरान अभियोजन पक्ष ने सात गवाह डॉ. आर.एस. राणा-पीडब्लू-1; सोहन लाल-पीडब्लू-2; सुभाष चंद्रा-पीडब्लू-3; राजेंद्र सिंह-पीडब्लू-4; चरण पाल सिंह-पीडब्लू-5; अभियोजन पक्ष की ओर से ब्रह्मपाल सिंह-पीडब्लू-6 एवं विजय कुमार-पीडब्लू-7 का परीक्षण कराया। आरोपी सूरत सिंह ने दं.प्र.सं. की धारा 313 के तहत सवालों के जवाब दिए और निर्दोष होने का दावा किया। बचाव पक्ष की ओर से चार गवाह इस्लाम सिद्दीकी; बरुण कुमार; नरेश कुमार और राजेंद्र कुमार को क्रमशः डीडब्ल्यू-1, 2, 3 और 4 के रूप में लाया गया।

पीडब्लू-1 वह डॉक्टर था जिसने घायल सोहन लाल (पीडब्लू-2) की जांच की थी और चोट की रिपोर्ट को साबित किया था। पीडब्लू-2 सोहन लाल था जो खुद को चश्मदीद गवाह होने का दावा करता है। उसने अपने बयान में कहा है कि वह सूरत सिंह को पहचानता था और जानता था जो कोर्ट में मौजूद था। उसका कहना था कि मृतक जसविंदर सिंह आरोपी का छोटा भाई था। उसने यह भी बताया कि मृतक और आरोपी दोनों आमने-सामने के मकान में रहते थे। उसने आगे कहा है कि दोनों भाइयों के बीच कुछ अंदरूनी विवाद थे। जसविंदर को अपनी जान का खतरा था, इसलिए उसने सोहन लाल को अपने गनमैन के रूप में नियुक्त किया था। उसने कहा है कि जब एक ट्रॉली के टायर में पंक्चर हो गया था तो जसविंदर और पीडब्लू-2 नजीबाबाद गए थे और एक मुस्लिम दुकानदार की दुकान पर अपना टायर ठीक करा रहे थे। रात करीब साढ़े नौ बजे बिजली के बल्बों की रोशनी आ रही थी। अपने आगे के बयान में, उसने कहा कि जब संबंधित दुकान में टायर की मरम्मत की जा रही थी, तो मृतक और वह खुद दुकान के सामने खड़े थे, जो पंचर की दुकान से थोड़ी दूर थी और बंद थी। उसने अपने बयान में कहा है कि नजीबाबाद की ओर से यानी दुकान के दक्षिण से, आरोपी-अपीलकर्ता सूरत सिंह और तीन अन्य लोग मृतक और सोहन लाल की ओर आए और वहां आरोपी ने अपने तीन लोगों को उकसाया जो उसके साथ आए थे और कहा **"मारो साले को यही जसविंदर है"**। आरोपी के साथ आए तीन लोगों ने जसविंदर पर गोलियां चलाईं और गोलियां जसविंदर और पीडब्लू-2 को भी लगीं। जसविंदर की मौके पर ही मौत हो गई और आरोपी कोटद्वार की तरफ भाग गए जो दुकान के उत्तर में था। घटना स्थल पर काफी खून जमा हो गया। घटना स्थल के आसपास एकत्र हुए विभिन्न व्यक्तियों में से एक व्यक्ति से पीडब्लू-2 ने रिपोर्ट लिखने के लिए अनुरोध किया और उसने उस व्यक्ति को रिपोर्ट लिखवाई। रिपोर्ट लिखाने के बाद, रिपोर्ट लिखने वाले व्यक्ति ने पीडब्लू-2 को रिपोर्ट पढ़कर सुनाई और उसके बाद उसने अपना अंगूठा लगाया। इसके बाद यह कहा गया है कि पीडब्लू-2 रिपोर्ट लेकर पुलिस स्टेशन गया और वहां से उसे पुलिस अस्पताल ले गई और पीडब्लू 2 का मेडिकल परीक्षण कराया गया। उसने यह भी बताया कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में उसने कहा था कि जसविंदर और वह खुद उस

अनुवादित

दुकान के बाहर खड़े थे जहां पंचर ठीक किया जा रहा था। उसने यह भी कहा है कि जब हमलावर दुकान के दक्षिणी हिस्से यानी नजीबाबाद की तरफ से आए थे, तो मृतक और पीडब्लू-2 कोटद्वार की ओर उत्तर दिशा में खड़े थे। उसने कहा है कि थाने से उन्हें रिक्शे पर अस्पताल ले जाया गया. मेडिकल जांच के बाद पुलिस पीडब्लू-2 को घटना स्थल पर ले गई थी। उसने अपने बयान में आगे कहा है कि जो हलफनामा (कागज सं. 14/2-ख) उसके द्वारा दिनांक 4.11.1996 को दायर किया गया बताया गया है, वह वास्तव में उसके द्वारा दायर नहीं किया गया था। उसने कहा है कि आरोपी पक्ष के कुछ लोगों ने शपथ पत्र के लिए उससे जबरन फोटो खिंचवा लिया था। यह तथ्य कि उसकी जबरन फोटो खींची गई थी, इसकी सूचना उसने थाना प्रभारी, गोविंदगढ़, पंजाब को मौखिक रूप से भी दी थी। उसने कहा कि उसने पुलिस वालों से कहा था कि उसे रिपोर्ट दर्ज करानी है और उन्होंने उसके कहने पर रिपोर्ट लिख ली थी। उसने कहा है कि रिपोर्ट दर्ज कराने में 10 से 15 मिनट का समय लगा और रिपोर्ट दर्ज होने के बाद उसने रिपोर्ट पर हस्ताक्षर भी किए। उसने कहा है कि चोट लगने की वजह से खून बह रहा था। हालाँकि, यह कहा गया कि रिपोर्ट पर कोई खून नहीं था। उसने कहा है कि जब उसकी तस्वीर खींची गई तो वह एंबेसेडर कार में बैठा हुआ था। उसने विशेष रूप से अपना फोटो नहीं खिंचवाया था। उसने कहा है कि उसने आरोपी सूरत सिंह को पहचान लिया था क्योंकि वह मृतक के घर के सामने रहता था। उसने आगे कहा है कि उसे मृतक और आरोपी के पिता का नाम नहीं पता है। आगे उसने कहा कि उसे नहीं पता कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में आरोपी के पिता का नाम कैसे है।

पीडब्लू-3 कांस्टेबल सुभाष चंद है। उन्हें शव को बिजनौर ले जाने और पोस्टमार्टम कराने की जिम्मेदारी दी गई। उसने कहा है कि वह घटना स्थल से शव को टेंपो पर लेकर सुबह साढ़े नौ बजे बिजनौर पहुंचा था। उसने इस बात को गलत बताया कि वह अगले दिन सुबह 10 बजे नजीबाबाद से चला और दोपहर 1.30 बजे बिजनौर पहुंचा। हालांकि उसने कहा है कि उसने जीडी में यह तथ्य दर्ज नहीं कराया था कि टेंपो खराब हो गया था।

पीडब्लू-4 राजेंद्र सिंह सब-इंस्पेक्टर हैं और उन्होंने कहा है कि उन्होंने पंचायतनामा दाखिल किया था।

पीडब्लू-5 थाना प्रभारी चरण पाल सिंह हैं जो नजीबाबाद में तैनात थे। उन्होंने कहा है कि उन्होंने आरोपी को दिनांक 20.3.1996 को गिरफ्तार किया था।

पीडब्लू-6 ब्रह्मपाल सिंह एक कांस्टेबल है जो अभियुक्त का अंगरक्षक था। उसने कहा है कि वह और कांस्टेबल गंगादास को मार्च 1996 में सूरत सिंह की सुरक्षा के लिए तैनात किया गया था और उसने कहा है कि सूरत सिंह के पास हमेशा तीन या चार लोग आते थे। वे पुखराज, महिपाल उर्फ पप्पू और सुनील थे और जब भी वे आते थे, गार्ड के दूर रहने पर आरोपी उनसे बात करता था। उसने कहा है कि दिनांक 18.3.1996 को वह नजीबाबाद के जिला परिषद के गेस्ट हाउस में ड्यूटी पर थे और उस दिन पुखराज, महिपाल और सुनील सूरत

अनुवादित

सिंह से मिलने आये थे। आरोपी ने अपने गार्डों से एक निश्चित दूरी पर उनसे बात की थी और उसके बाद गार्डों को निर्देश दिया था कि चूंकि उसके पास अपनी बंदूक है, इसलिए पीडब्लू-6 और अन्य गार्डों की कोई आवश्यकता नहीं है। उसने यह भी कहा था कि वह बिल्कुल सुरक्षित हैं और उसे किसी गनर की जरूरत नहीं है.

पीडब्लू-7 वह डॉक्टर है जिसने मृतक के शरीर का पोस्टमार्टम किया था।

अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि पीडब्लू-2-सोहन लाल एकमात्र गवाह था जिसके बयान के आधार पर दोषसिद्धि का आदेश पारित किया गया था। उन्होंने कहा कि पीडब्लू-2 ने आरोपी/अपीलार्थी द्वारा उकसाने की बात कही है। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि उकसाना पीडब्लू-2 की कल्पना की उपज थी और उकसाना, जैसा कि पीडब्लू-2 ने आरोप लगाया था, बिल्कुल अनावश्यक था। पीडब्लू-2 ने कहा है कि आरोपी ने तीन लोगों को गोली चलाने के लिए उकसाया और तीन लोगों द्वारा गोली चलाने पर सूरत सिंह की मौत हो गई थी। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि यदि तीन व्यक्तियों को गोली चलानी होती तो वे आरोपी द्वारा बिना किसी उकसावे के भी मृतक पर गोली चला देते। उनका कहना है कि निश्चित रूप से तीनों व्यक्ति मृतक व्यक्ति को जानते थे। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि यह तब स्पष्ट हो जाता है जब उकसाया गया कि **"मारो साले को यही जसविंदर है"** और अगर गोली चलाने वाले तीन व्यक्ति मृतक सूरत सिंह को नहीं जानते थे, तो वे पीडब्लू-2 सोहन सिंह पर भी गोली चला सकते थे, अगर उन्हें नहीं पता होता कि जसविंदर कौन है। इसलिए, उनका कहना है कि उकसावे की बात निराधार है। इसके अलावा, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि उकसाना एक कमजोर सबूत है। जब दो व्यक्तियों के बीच प्रतिद्वंद्विता होती है तो जिस व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति की प्रतिद्वंद्विता होती है उसे उकसाने की भूमिका देकर फंसाना अक्सर बहुत आसान होता है। विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि जब मृतक की मृत्यु हो गई थी और हमलावर भाग गए थे, तो किसी निर्दोष व्यक्ति को उकसावा देने वाले व्यक्ति के रूप में फंसाना बहुत आसान था। इसलिए, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि जब तक उकसाने के संबंध में साक्ष्य बिल्कुल स्पष्ट, ठोस और विश्वसनीय न हो, उस व्यक्ति के खिलाफ दोषसिद्धि दर्ज नहीं की जा सकती जिसने कथित तौर पर केवल वास्तविक हमलावरों को उकसाया था। इस संबंध में, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **जैनुल हक बनाम बिहार राज्य एआईआर 1974 एससी 45** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का अवलंब लिया है।

अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि यदि उकसाने की बात पर विश्वास कर भी लिया जाए, तो भी धारा 302 भा.दं.सं. के तहत किसी व्यक्ति को हत्या के अपराध में फंसाना बहुत मुश्किल हो जाता है। वह कहते हैं कि जब **"मारो साले को यही जसविंदर है"** शब्दों का उपयोग किया गया था,

अनुवादित

तो यह माना जा सकता है कि उसका यह मतलब कभी नहीं था कि मृतक को वास्तव में मार दिया जाना था। इस संबंध में, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **मातादीन एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य (1998) 7 एससीसी 216** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का अवलंब लिया है।

इसके बाद अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि एक ही गवाह की गवाही के आधार पर दोषसिद्धि बहुत सावधानी से की जानी चाहिए। उनकी दलील है कि गवाहों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है:-

1. पूर्णतः विश्वसनीय;

2. पूर्णतः अविश्वसनीय; और

3. न तो पूर्णतः विश्वसनीय और न ही पूर्णतः अविश्वसनीय।

अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि यदि एकमात्र गवाह "पूर्णतः विश्वसनीय" होता, तो न्यायालय को पूर्णतः विश्वसनीय गवाह पर अपना निर्णय आधारित करने में कोई कठिनाई नहीं होगी। अगर गवाह दूसरी श्रेणी का है यानी कि " पूरी तरह से अविश्वसनीय", तब भी न्यायालय को किसी निष्कर्ष पर पहुंचने में कोई कठिनाई न होती। केवल तीसरी श्रेणी के मामले में ही न्यायालयों को सतर्क रहना पड़ता है और विश्वसनीय प्रत्यक्ष या परिस्थितिजन्य गवाही द्वारा सारवान विवरणों की पुष्टि करना पड़ता है। वर्तमान मामले में, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में, आरोपी के पिता का नाम दिया गया था, जबकि जिरह में, पीडब्लू-2 ने पेपर-बुक के पृष्ठ 39 पर कहा है कि वह आरोपी के पिता का नाम नहीं जानता। उसने यहां तक कहा कि उसे नहीं पता कि एफ.आई.आर. में आरोपी के पिता का नाम कैसे दर्ज हो गया। इसके अलावा, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि पीडब्लू-2 ने दिनांक 4.11.1996 को एक हलफनामा दिया था, जिसे बचाव पक्ष ने सबूत के तौर पर रिकॉर्ड पर रखा था कि पीडब्लू-2 आरोपी व्यक्तियों को गलत तरीके से फंसा रहा था। हालाँकि, रिकॉर्ड से, पीडब्ल्यू -2 ने दिखाया था कि दिनांक 2.12.1996 को उसने एक बयान दिया था कि वह दिनांक 4.11.1996 के पहले के हलफनामे को वापस ले रहा है। इसके बाद अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने कहा कि फोटो खिंचवाने के लिए जबरदस्ती के विषय में, पीडब्लू-2 ने कहा है कि उसने उस मामले रिपोर्ट पंजाब पुलिस को मौखिक रूप से की थी। अपीलकर्ता के अधिवक्ता का कहना है कि एफ.आई.आर. में उसने कहा था कि मृतक और पीडब्लू-2 उस दुकान पर खड़े थे जहां पंचर की मरम्मत की जा रही थी, लेकिन बाद में जिरह में उसने कहा था कि वे दूसरी दुकान के सामने खड़े थे, जिसका शटर गिरा हुआ था और ताला लगा हुआ था। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि वह ऐसा शायद इसलिए कह रहा था क्योंकि नक्सा नजरी में बंद दुकान के शटर पर गोली के निशान थे। इसलिए, विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि यदि एफ.आई.आर. में दिया गया बयान जिरह में दिए गए बयान से अलग है तो गवाह अविश्वसनीय हो जाता है। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि यदि पीडब्लू-2 का अत्यधिक खून बह रहा था, तो

अनुवादित

उसने जो शिकायत दर्ज कराई थी, उस पर खून के कुछ निशान होने चाहिए।

आगे अपीलकर्ता के अधिवक्ता का कहना है कि अगर एफ.आई.आर. देखी जाए तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि इसे किसी अनिल गोयल ने लिखा था, जबकि जिरह में पीडब्लू-2 ने कहा था कि उसने रिपोर्ट किसी पुलिस अधिकारी से लिखवाई थी। विद्वान अधिवक्ता ने यह भी कहा है कि चोट रिपोर्ट से पता चलता है कि जिस समय घायल पीडब्लू-2 अपनी चोटों की जांच करा रहा था, उस समय केवल हेड कांस्टेबल वीरेंद्र कुमार और कांस्टेबल यशवीर सिंह ही मौजूद थे। अनिल गोयल ने कहां से आकर एफ.आई.आर. लिखाई, यह स्पष्ट नहीं है। उनका यह भी कहना है कि अनिल गोयल कभी भी गवाही में उपस्थित नहीं हुए और अभियोजन पक्ष द्वारा उन्हें खोजने और गवाही में पेश करने के लिए कोई प्रयास नहीं किया गया। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **वडिवेलु थेवर बनाम मद्रास राज्य एआईआर 1957 एससी 614** के मामले में उच्चतम न्यायालय के एक निर्णय का अवलंब लेते हुए कहा कि जब गवाह न तो पूरी तरह से विश्वसनीय था और न ही पूरी तरह से अविश्वसनीय था, तो उस गवाह पर भरोसा करके आरोपी को दोषी ठहराना बहुत असुरक्षित था। उनका कहना है कि यह और भी अधिक असुरक्षित था क्योंकि ऐसा गवाह ही एकमात्र गवाह था।

इसके बाद अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि पुलिस ने खुद ही एफ.आई.आर. लिखी थी और आरोपी को क्यों फंसाया गया ये वही जाने। विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि जब पीडब्लू-2 स्वयं कह रहा था कि यदि पुलिस ने उसके कहने पर एफ.आई.आर. लिखी थी तो अनिल गोयल का नाम कैसे आया यह स्पष्ट नहीं है। इसके अलावा, पीडब्लू-3 की गवाही पर भरोसा करते हुए, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि शव को सभी दस्तावेजों के साथ रात 10 बजे पोस्टमार्टम के लिए बिजनौर ले जाना था। बिजनोर और नजीबाबाद के बीच की दूरी करीब 60 किलोमीटर ही थी लेकिन पार्थिव शरीर अगले दिन सुबह 9.30 बजे बिजनोर पहुंचा। इससे पता चलता है कि पुलिस ने आरोपियों को फंसाने में समय लिया और समय से पहले एफ.आई.आर. दर्ज की। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि पुलिस ने सुनील कुमार और महिपाल उर्फ पप्पू को हमलावरों के रूप में फंसाने की कोशिश की थी, लेकिन वे उन्हें दोषी ठहराने में विफल रहे क्योंकि सोहन लाल और सर्वजीत सिंह जिन्होंने पहचान परेड में उनकी पहचान करनी थी, दोनों व्यक्ति सुनील कुमार और महिपाल को हमलावर के रूप में पहचान करने में विफल रहे। इसलिए, उनका मानना है कि पुलिस बिना किसी कारण के एक के बाद एक लोगों को फंसाने की कोशिश कर रही है। वर्तमान मामले में, अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि पूरा मामला बिल्कुल संदिग्ध हो जाता है।

अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया कि सह-अभियुक्त पुखराज, जिसकी भूमिका वास्तविक गोलीबारी

अवलोकित

की बताई गई थी, को सत्र परीक्षण सं. 546 सन् 1997 में बरी कर दिया गया है।

हालांकि विद्वान ए.जी.ए. श्री जे.के. उपाध्याय ने कहा कि "मारो साले को यही जसविंदर है" जैसे उकसावे का अलग मतलब होता अगर हमलावरों के हाथ में केवल डंडा होता। उनका कहना है कि मौजूदा मामले में, हमलावरों के हाथों में बंदूकें थीं तो "मारो साले को यही जसविंदर है" जैसे उकसावे का निश्चित रूप से मतलब यह होगा कि बंदूक चला दो। उन्होंने आगे कहा कि पीडब्लू-2 एक घायल गवाह था और एक घायल की गवाही को हल्के में नहीं लिया जा सकता। इसलिए, उनका कहना है कि भले ही आरोपी सीधे तौर पर हत्या के अपराध में शामिल नहीं था, फिर भी उसे हमलावरों के साथ होने के लिए भा.दं.सं. की धारा 34 के तहत दंडित किया जाना चाहिए।

सूचनादाता की ओर से प्रस्तुत विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आई.के. चतुर्वेदी व उनके सहयोगी श्री सौरभ चतुर्वेदी ने भी विद्वान ए.जी.ए. के तर्कों को अपनाया। उनका कहना है कि इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि पिता का नाम पीडब्लू-2 को पता था या नहीं। उन्होंने आगे कहा कि पीडब्लू-2 एक विश्वसनीय गवाह था क्योंकि वह एक घायल गवाह था और अगर अभियुक्त को उकसाने के लिए दंडित किया गया तो इससे कोई नुकसान नहीं हुआ। उनका यह भी कहना है कि यदि पीडब्लू-2 ने दिनांक 4.11.1996 को एक हलफनामा प्रस्तुत किया था और उसके बाद दिनांक 2.12.1996 को उसे वापस ले लिया था, तो कोई प्रतिकूल निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता था। उनका कहना है कि पीडब्लू-2 द्वारा यह देखने के लिए पर्याप्त रोशनी थी कि कौन मौजूद था और कौन मौजूद नहीं था और इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता कि वह एक संदिग्ध गवाह था या वह कुछ बाहरी कारणों से गवाही दे रहा था।

अपीलार्थी के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जी.एस. चतुर्वेदी और विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री वी.पी. श्रीवास्तव व उनकी सहयोगी अधिवक्ता सुश्री सौम्या चतुर्वेदी, श्री रण विजय सिंह और श्री राजीव नयन एवं सूचनादाता की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आई.के. चतुर्वेदी, व उनके सहयोगी श्री जीतेन्द्र कुमार एवं राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. श्री जे.के. उपाध्याय को सुनने के पश्चात हमारा विचार है कि अपील स्वीकार किये जाने योग्य है। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों से यह स्पष्ट है कि उकसावे की कोई आवश्यकता नहीं थी। न्यायालय का मानना है कि यदि हमलावर मृतक और उसके अंगरक्षक को नहीं जानते थे तो यह उचित होता कि उकसाने वाला व्यक्ति मृतक का नाम लेने के अलावा यह भी बताता कि जसविंदर की पहचान कैसे करनी है। न्यायालय का यह भी विचार है कि यदि दो व्यक्ति थे जिन्हें हमलावर नहीं जानते थे तो जो व्यक्ति उकसा रहा था वह केवल एक व्यक्ति को मरवाना चाहता था तो वह केवल उकसाने की कार्यवाही नहीं करेगा बल्कि वह हमलावरों को किसी संकेत आदि के द्वारा इशारा करेगा कि दोनों में से किस व्यक्ति को मारना है। इसलिए, उकसाना जो कि एक कमजोर सबूत था, जैसा कि उच्चतम न्यायालय ने **जुनैद हक बनाम बिहार राज्य एआईआर 1974 एससी 45** के मामले में धारित किया है कोई ऐसा सबूत नहीं था

अनुवादित

जिसके आधार पर आरोपी की दोषसिद्ध की जाए।

न्यायालय का यह भी मानना है कि जब सोहन लाल ने प्रथम सूचना रिपोर्ट में इसके विपरीत बयान दिया था तो उसकी गवाही बहुत विश्वसनीय नहीं थी। एफ.आई.आर. में कहा गया था कि मृतक और पीडब्लू-2 पंचर रिपेयरिंग की दुकान पर खड़े थे, जबकि जिरह में केवल नक्शा नजरी को समझाने के लिए, जिसमें कहा गया था कि बंद शटर पर गोली के निशान थे, उसने कहा कि वह और जसविंदर एक जगह खड़े थे जहां शटर बंद था। इसलिए, हमारा विचार है कि वह निश्चित रूप से बहुत विश्वसनीय गवाह नहीं था। इसके अलावा, न्यायालय का यह भी मानना है कि जब पीडब्लू-2 ने जिरह में कहा कि वह मृतक के पिता का नाम नहीं जानता था तो निश्चित रूप से पीडब्लू-2 द्वारा एफ.आई.आर. दर्ज नहीं कराई गई थी, बल्कि यह पुलिस की करतूत थी जिसने किसी न किसी कारण से आरोपी को मामले में फंसा दिया और सुनील कुमार और महिपाल उर्फ पप्पू को भी हमलावर के रूप में फंसाने की कोशिश कर रही थी। इसलिए, ऐसा व्यक्ति, जो पूरी तरह से विश्वसनीय नहीं है, उसकी गवाही का उपयोग बिना किसी पुष्ट साक्ष्य के किसी आरोपी को दोषी ठहराने के लिए नहीं किया जा सकता है। कुछ विश्वसनीय साक्ष्यों द्वारा सामग्री विवरण में कुछ और पुष्टि; प्रत्यक्ष या परिस्थितिजन्य होना चाहिए था। हमने पाया कि पुष्टकारक सबूतों के अभाव में आरोपी को दोषी ठहराना बिल्कुल असुरक्षित था।

हमने यह भी पाया कि पुलिस की स्थिति भी साफ नहीं थी। सबसे पहले, जैसा कि ऊपर कहा गया है, एफ.आई.आर. में जो पिता का नाम शामिल किया गया था, वह पुलिस की करतूत का नतीजा था और दूसरी बात यह है कि नजीबाबाद से रात 9.30 बजे भेजा गया शव अगले दिन बिजनौर लगभग सुबह 10.00 बजे पहुंचा और इस देरी के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं है। जीडी में कहीं भी टेंपो खराब होने की बात दर्ज नहीं की गई। हमें उकसावे की कहानी भी मिलती है जिसमें पीडब्लू-2 कहता है कि आरोपी ने कहा था **"मारो साले को यही जसविंदर है"** अभियुक्त को दोषी ठहराने के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सका। कोई यह निष्कर्ष नहीं निकाल सकता कि जब वहां दो व्यक्ति थे तो उसने केवल जसविंदर का नाम क्यों लिया। इसका मतलब ये भी हो सकता था कि मृतक के साथ केवल किसी तरह से मारपीट की जानी थी और उसे मारा नहीं जाना था और यह भी; हम निश्चित रूप से मानते हैं कि उकसावा संभवतः नहीं दिया गया था क्योंकि दो व्यक्ति थे जिन्हें हमलावर नहीं जानते थे और इसलिए, यह बिल्कुल व्यर्थ उकसावा था। हम आगे पाते हैं कि जब हमलावर पुखराज को खुद बरी कर दिया गया था, तो उस व्यक्ति को दंडित करने का कोई उद्देश्य पूरा नहीं होगा जिसने सत्र परीक्षण सं. 546 सन् 1997 में मुख्य आरोपी-हमलावर पुखराज को कथित तौर पर उकसाया था।

ऐसी परिस्थितियों में, हम सत्र परीक्षण सं. 193 सन् 1996 (राज्य बनाम सूरत सिंह) में द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश, बिजनौर

अनुवादित

द्वारा पारित दिनांक 29.5.1999 के निर्णय और आदेश को रद्द करते हैं। यदि अपीलकर्ता किसी अन्य आपराधिक मामले में वांछित न हो तो उसे तुरंत रिहा किया जाए।

तदनुसार, अपील स्वीकार की जाती है।

(2023) 6 ILRA 756

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 23.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा

माननीय न्यायमूर्ति विनोद दिवाकर

आपराधिक अपील संख्या 3832 वर्ष 2014

अंगद राय @ झुल्लन राय @ फुलक एवं अन्य **अपीलकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **विपरीत पक्ष**

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता: श्री दिलीप कुमार, श्री अजय श्रीवास्तव, श्री मोहम्मद. फारूक, श्री राजा उल्लाह खान, श्री राजर्षि गुप्ता, श्री शशि भूषण कुंवर, श्री शेषाद्री त्रिवेदी, सुश्री शंभवी, श्री प्रदीप कुमार राय, श्री कमल कृष्ण (वरिष्ठ अधिवक्ता)

विपक्षी पक्ष के अधिवक्ता: जी.ए., श्री ए.के.राय, श्री डी.के.सिंह

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302 आर/डब्ल्यू 34 और 506 - हत्या के लिए सजा - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161, 313 और 319 - दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील - आजीवन कारावास - पीडब्लू-4 की गवाही, पोस्टमार्टम रिपोर्ट और अन्य साक्ष्यों पर भरोसा करते हुए ट्रायल कोर्ट ने उन्हें दोषी करार दिया - अपीलकर्ताओं का तर्क है कि उन्हें राजनीतिक कारणों से झूठा फंसाया गया है - सेंट ने तर्क दिया कि मृतक की मौत उनके द्वारा विपक्षी पक्ष के कहने पर की गई थी, जिसका क्षेत्र में बहुत बड़ा राजनीतिक प्रभाव था - इस कारण अन्य सभी चश्मदीद गवाह मुकर गए - मुखबिर के बयान और मृतक के करीबी रिश्तेदारों के बयान के अलावा, जांच के दौरान उनके खिलाफ कोई अन्य सामग्री एकत्र नहीं की गई - पीडब्लू-4 एक संबंधित और संयोग गवाह था - एकमात्र चश्मदीद गवाह के रूप में पीडब्लू-4, 80 वर्ष का था, जो बुढ़ापे की बीमारी से पीड़ित था - ऐसी उम्र में मनुष्य की क्षमताएं कुछ सीमित हो जाती हैं - द्वितीय जांच अधिकारी ने पीडब्लू-4 का बयान दर्ज किया था - पीडब्लू-4 ने कभी नहीं कहा कि उसने किसी को घटना की जानकारी दी या अपना बयान दर्ज कराने की पेशकश की - अभियोजन पक्ष के अनुसार घटना के समय को इस आधार पर नजरअंदाज कर दिया गया कि समय के आकलन में कुछ घंटों का अंतर हो सकता है - जिन गवाहों ने अपने बयान से पलट गए हैं, उन्होंने मुख्य परीक्षा में अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया है - विवादित आदेश को खारिज किया जाता है। (पैरा 2, 3, 12, 13, 14, 35, 39, 42, 43, 46, 53, 55)

आपराधिक अपील स्वीकार की गई। (ई-13)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. राजेश यादव एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2022) 12 एससीसी 200, (पैरा 21, 39)

अनुवादित

2. शाहजा @ शाहजान इस्माइल मोहम्मद शेख बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 883, (पैरा 27, 28)

3. मोहम्मद जब्बार अली एवं अन्य बनाम असम राज्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1440 में रिपोर्ट किया गया, (पैरा 55 से 58)

(माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा एवं माननीय न्यायमूर्ति विनोद दिवाकर द्वारा वितरित)

1. श्री कमल कृष्ण, वरिष्ठ अधिवक्ता श्री शशि भूषण कुंवर और श्री प्रदीप कुमार राय द्वारा सहायता प्राप्त, अपीलकर्ता अंगद राय @ झूलन राय @ फुलक के अधिवक्ता; श्री दिलीप कुमार, वरिष्ठ अधिवक्ता सुश्री शंभवी शुक्ला द्वारा सहायता प्राप्त, अपीलकर्ता उमेश राय @ गोरा राय के अधिवक्ता; श्री अरुणेंद्र कुमार सिंह, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता; श्री दुर्गेश कुमार सिंह, सूचनाकर्ता के अधिवक्ता को सुना और निचली अदालत के अभिलेखों सहित रिकॉर्ड पर रखी गई सामग्री का अवलोकन किया।

2. यह अपील अभियुक्त अंगद राय @ झूलन राय @ फुलक और उमेश राय @ गोरा राय द्वारा सत्र परीक्षण संख्या-140 वर्ष 2006 में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 01, गाजीपुर द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 26.09.2014 के तहत उनकी दोषसिद्धि और सजा, जो केस अपराध संख्या-493 वर्ष 2005 से धारा 302, 506 भ०द०वि० के तहत, थाना-मुहम्मदाबाद, जिला गाजीपुर से उत्पन्न हुआ है; जिसमें उन्हें धारा 302 भ०द०वि० सपठित 34 और भ०द०वि० की धारा 506 के तहत एक साल के कारावास की डिफ़ॉल्ट सजा के साथ 10,000 रुपये के जुर्माने के साथ आजीवन कारावास की सजा, पांच साल की कैद और 5000 रुपये का जुर्माना और छह महीने की डिफ़ॉल्ट सजा सुनाई गई है, को चुनौती देते हुए दायर की गई है। सभी सजाएं साथ-साथ चलने का निर्देश दिया गया है।

3. अभियुक्त अपीलकर्ताओं को 27.6.2005 को सुबह राजेंद्र राय (इसके बाद 'मृतक' के रूप में संदर्भित) की हत्या के लिए दोषी ठहराया गया है और सजा सुनाई गई है। मृतक के पिता कपिल देव राय द्वारा घटना के संबंध में एक लिखित रिपोर्ट की गई थी। यह लिखित रिपोर्ट राकेश कुमार राय ने लिखी थी, जो मृतक का बेटा है। लिखित रिपोर्ट में कहा गया है कि सूचनाकर्ता का बेटा राजेंद्र राय राजनीतिक दल का एक सक्रिय सदस्य है (हम पक्ष के नाम का उल्लेख करने से बचना उचित समझते हैं क्योंकि इस मामले के लिए इसकी कोई प्रासंगिकता नहीं है) और चूंकि जिला पंचायत और क्षेत्र पंचायत चुनाव पास में थे, इसलिए अफजाल अंसारी (सांसद गाजीपुर) और उनके छोटे भाई मुख्तार अंसारी (विधायक) मृतक को अपनी पक्ष में लाने का प्रयास कर रहे थे। घटना से लगभग पंद्रह दिन पहले मृतक को मुहम्मदाबाद में रोका गया था और बताया गया था कि चूंकि वह ब्लॉक भवरकोल के पूर्व-ब्लॉक प्रमुख का पति है, अगर वह कृष्णानंद राय की कंपनी छोड़ देता है और उनकी पक्ष में शामिल हो जाता है, तो उसे लाभ होगा और इससे उसके जीवन और संपत्ति की रक्षा होगी। पुन दिनांक 26-27-6-2005 को उपर्युक्त व्यक्तियों ने अभियुक्त उमेश राय @ गोरा राय के माध्यम से तीन अन्य लोगों के साथ संदेश

अनुवादित

भेजा जो वच्छलपुर गांव में सूचनाकर्ता के घर आए और धमकी दी कि चूंकि मृतक उपर्युक्त दो व्यक्तियों की राजनीतिक पक्ष में शामिल नहीं हो रहा है और कृष्णानन्द राय के साथ भी संबंध नहीं तोड़ रहा है, इसलिए उसकी जान को खतरा है। सूचनाकर्ता का बेटा घबरा गया और उसने सूचना देने वाले को धमकी दी। पुलिस को इस तरह की धमकी की सूचना देने के लिए, मृतक के साथ सूचनाकर्ता अगली सुबह लगभग 6.30 बजे थाना जा रहा था, जब ग्राम मठिया में, मुख्तार अंसारी और अफजाल अंसारी की एक योजनाबद्ध साजिश के तहत, आरोपी उमेश राय @ गोरा राय ने तीन अज्ञात व्यक्तियों के साथ कहा कि चूंकि मृतक अफजाल अंसारी और मुख्तार अंसारी की पक्ष में शामिल नहीं हो रहा है, ऐसे में उसे परिणाम भुगतने होंगे। सूचना देने वाले का बेटा खुद को बचाने के लिए दौड़ा लेकिन आरोपी ने शिव कुमार यादव के घर के अंदर उसका पीछा किया और गोली मारकर उसकी हत्या कर दी। तदनुसार सूचनाकर्ता के पुत्र की मृत्यु हो गई है और घटनास्थल पर चंद्रशेखर राय व कई अन्य व्यक्ति पहुंचे हैं, जिन्होंने घटना को देखा है, लेकिन अभियुक्तों के भय से वे कुछ नहीं कर सके। इस प्रकार रिपोर्ट दर्ज करने और दोषी व्यक्तियों के खिलाफ कार्रवाई करने का अनुरोध किया गया था। ऐसी लिखित रिपोर्ट के आधार पर, प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्रदर्श क-7) को थाना-मुहम्मदाबाद, जिला गाजीपुर में सुबह 7.40 बजे धारा 302/506/120 बी भ०द०वि० के तहत केस अपराध संख्या-493 वर्ष 2005 के रूप में दर्ज किया गया। थाने और गांव मठिया के बीच की दूरी करीब ढाई किलोमीटर बताई जा रही है। प्राथमिकी में तीन नामजद आरोपियों को अफजाल अंसारी, उमेश राय @ गोरा राय, मुख्तार अंसारी के रूप में दिखाया गया था और अन्य तीन अज्ञात व्यक्ति थे।

4. प्राथमिकी के अनुसार जांच शुरू की गई और घटनास्थल (शिव कुमार यादव के घर की छत) से खून से सना और सादा प्लास्टर बरामद किया गया और अलग बक्से में रखा गया। इस संबंध में एक फ़र्द बरामदगी तैयार किया गया है, जिसे प्रदर्श क-2 के रूप में विधिवत प्रदर्शित किया गया है। घटनास्थल से दो छर्रों के साथ चार खाली खोखे भी बरामद किए गए थे, जिसके संबंध में फ़र्द बरामदगी भी तैयार किया गया है और प्रदर्श-3 के रूप में प्रदर्शित किया गया है।

5. जांच की कार्यवाही तब घटनास्थल पर आयोजित की गई थी और पंचान रिपोर्ट को विधिवत रूप से प्रदर्श क-9 के रूप में प्रदर्शित किया गया है। पंचान रिपोर्ट के अनुसार, घटना की तारीख यानी 27.6.2005 को सुबह 7.40 बजे थाना-में अपराध की सूचना प्राप्त हुई और जांच 8.15 बजे शुरू हुई। कपिल देव राय (प्रथम सूचनाकर्ता) से घटना के संबंध में सूचना प्राप्त हुई थी। पंचनामा प्रक्रिया सुबह 10.05 बजे समाप्त हुई। पंचनामा के पांच गवाह रामबचन राय, विजय बहादुर राय, तारकेश्वर राय, रविकांत राय और रमाशंकर राय हैं।

6. जांच में शव की हालत शिवकुमार यादव के घर की छत पर पड़ी बताई गई है। पंचनामा के गवाहों को मृतक के सिर और जांघों पर गोली लगने के निशान मिले। मृतक के शरीर पर अन्य चोटें आई हैं। इस प्रकार पूछताछ के गवाहों ने कहा कि मौत के कारण का पता लगाने के लिए मृतक के शव का शव परीक्षण

अनुवादित

किया जाए। तदनुसार शव को सील कर शवगृह भेज दिया गया।

7. मृतक का शव परीक्षण घटना के दिन शाम 4.45 बजे किया गया है, जिसमें मृतक का शरीर भारी पाया गया और मौत का समय करीब आधा दिन बताया गया। शव परीक्षण सर्जन की राय में, मृतक को एक बन्दूक से मृत्यु पूर्व सिर की चोट के परिणामस्वरूप तत्काल मौत का सामना करना पड़ा। शव परीक्षण सर्जन (अ०सा०-3) ने साबित कर दिया है। शव परीक्षण के अनुसार, मृतक पर निम्नलिखित एंटी-मॉर्टम चोटें पाई गई हैं: -

"1. प्रवेश का बन्दूक घाव 1.2 सेमी x 1.0 सेमी रिंग घर्षण के साथ उल्टे मार्जिन, बाएं ओसीसीपटल क्षेत्र के सिर पर बाएं कान के पीछे 7.0 सेमी स्थित है।

2. निकास के बन्दूक घाव 1.6 सेमी x 1.2 सेमी दाएं पार्श्विका खोपड़ी पर अनियमित मार्जिन को उलट, दाहिनी भौं से 6.0 सेमी। सावधानीपूर्वक विच्छेदन और दोनों घावों (1 और 2) की जांच करने पर ओसीसीपटल और दाएं पार्श्विका हड्डी के फ्रैक्चर और मेनिन्जेस और मस्तिष्क पदार्थ के क्षरण के साथ अंतर-संचार पाया गया।

3. बाएं ललाट खोपड़ी और पलक का संलयन 7.0 सेमी x 3.0 सेमी।

4. प्रवेश 1.1 का बन्दूक घाव। सेमी x 1.0 सेमी ग्लूटल क्षेत्र के ठीक नीचे दाईं जांघ के ऊपरी सबसे ऊपरी भाग पर उलटा मार्जिन।

5. निकास का बन्दूक घाव 1.4 सेमी x 1.1 सेमी दाहिनी जांघ के ऊपरी भाग पर 28 सेमी पटेला दाहिने घुटने के जोड़ के बारे में मार्जिन है। विच्छेदन और दोनों घावों (4 और 5) की जांच पर नरम ऊतक और मांसपेशियों में पंगु बनाना के साथ अंतर-संचार पाया गया.

6. घर्षण 36 सेमी x 8 सेमी दाहिनी जांघ और ऊपरी पैर औसत दर्जे का।

7. बाईं ओर 12 सेमी x 8 सेमी का संलयन

शव परीक्षण रिपोर्ट में पेट में अर्ध-पचा हुआ भोजन के साथ-साथ बड़ी और छोटी आंत में गैसों और फेकल पदार्थ का अस्तित्व भी दिखाया गया है।

8. विवेचनाधिकारी ने विभिन्न चश्मदीद गवाहों के बयान दर्ज करने के लिए कार्यवाही की, जिसके बाद धारा 302/506 भ०द०वि० के तहत आरोप पत्र 22.11.2005 को दोनों आरोपियों के खिलाफ प्रस्तुत किया गया, जिसे विधिवत प्रदर्श क-5 के रूप में प्रदर्शित किया गया है। प्रथम सूचनादाता द्वारा प्रस्तुत सूचना के आधार पर विवेचनाधिकारी द्वारा नक़्शा नज़री भी तैयार की गई है, जिसे परीक्षण के दौरान प्रदर्श क-6 के रूप में प्रदर्शित किया गया है।

9. मजिस्ट्रेट ने आरोप पत्र पर संज्ञान लिया और मामले को सत्र न्यायालय में भेज दिया जिसमें आरोपी अपीलकर्ताओं के खिलाफ धारा 302/34 और 506 भ०द०वि० के तहत आरोप तय किए गए। आरोपी अपीलकर्ताओं को 10.1.2007 को उनके खिलाफ लगाए गए आरोपों के बारे में बताया गया, जिससे उन्होंने इनकार किया और विचारण चाहा। तदनुसार विचारण शुरू हुआ जिसमें अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किए हैं -

1. प्राथमिकी दिनांक 27.06.2005 प्रदर्श क-7
2. लिखित रिपोर्ट दिनांक 27.06.2005 प्रदर्श क-4

अनुवादित

3. खून से सना और सादा प्लास्टर प्रदर्श क-2 की रिपोर्ट

4. खाली और छर्रों की फ़र्द बरामदगी प्रदर्श क-3

5. शव परीक्षण रिपोर्ट दिनांक 27.06.2005 प्रदर्श क-1

6. विधि विज्ञान प्रयोगशाला की रिपोर्ट दिनांक 19.01.2006

7. पंचायतनामा दिनांक 27.06.2005 प्रदर्श क-9

8. आरोप पत्र (मूल) दिनांक 22.11.2005 प्रदर्श क-5

10. दस्तावेजी साक्ष्य के अलावा अभियोजन पक्ष ने विजय बहादुर राय (अ०सा०-1) को भी पेश किया है, जो पंचनामा के गवाह हैं। रवि कांत राय को अ०सा०-2 के रूप में पेश किया जाता है, जो पंचनामा का गवाह भी है। डॉ. निसार अहमद, ऑटोप्सी सर्जन को अ०सा०-3 के रूप में पेश किया गया है। चंद्रशेखर राय, जिन्होंने कथित तौर पर घटना देखी है और जिनकी उपस्थिति का प्राथमिकी में उल्लेख किया गया है, को अ०सा०-4 के रूप में पेश किया गया है। दिनेश कुमार पांडेय मृतक का भांजा है, जिसे अ०सा०-5 के रूप में पेश किया गया है। राकेश कुमार राय को अ०सा०-6 के रूप में पेश किया गया है, जो लिखित रिपोर्ट का मुंशी है और मृतक का बेटा है। तारा यादव को अ०सा०-7 के रूप में पेश किया गया है, जो घटना के दिन शिवकुमार यादव के घर के बगल में स्थित अपने मायके आई थी, जहां मृतक की हत्या कर दी गई। योगेंद्र यादव @ जोगी यादव को अ०सा०-8 के रूप में पेश किया गया है, जो गांव मठिया का निवासी है और उसने कथित तौर पर घटना देखी थी। इसी तरह, अशोक सिंह यादव (अ०सा०-9) और त्रिवेणी यादव (अ०सा०-10) गाँव मठिया के निवासी हैं और कथित तौर पर उन्होंने इस घटना को देखा था। कांस्टेबल रामप्रीत चौहान को अ०सा०-11 के रूप में पेश किया गया है, जो पूछताछ की तैयारी में जुड़ा था और शव को शवगृह ले गया। कमलेश यादव को अ०सा०-12 के रूप में पेश किया गया है, वह भी गांव मठिया का निवासी है और उसने कथित तौर पर घटना को देखा था। महेंद्र यादव को अ०सा०-13 के रूप में पेश किया गया है, वह भी गांव मठिया का निवासी है और उसने कथित तौर पर घटना को देखा था। जगदीश कुमार यादव को अ०सा०-14 के रूप में पेश किया गया है, जो प्रस्तुत मामले में दूसरा विवेचनाधिकारी था। अ०सा०-15 हरीश चंद्र मिश्रा इस मामले में पहले विवेचनाधिकारी हैं। राम अवध आदर्श को प्राथमिकी और प्राथमिकी की जी.डी. साबित करने के लिए अ०सा०-16 के रूप में पेश किया गया है। मंगला यादव को अ०सा०-17 के रूप में पेश किया गया है, जिसने पंचनामा की कारवाई की थी।

11. अभियोजन पक्ष द्वारा मामले में पेश किए गए सबूतों के आधार पर, मुकदमे के दौरान पेश की गई दोषकारी सामग्री का सामना दोनों आरोपियों को धारा 313 द०प्र०स० के तहत उनके बयान दर्ज करने के लिए किया गया था। इसके बाद अभियोजन पक्ष ने श्रीमती बृजबाला राय की गवाही को अ०सा०-18 के रूप में पेश किया है, जो मृतक की पत्नी है। इसके बाद आरोपियों का सामना अ०सा०-18 की गवाही में उनके खिलाफ पेश हुई दोषकारी सामग्री से कराया गया और उनका पूरक बयान धारा 313 द०प्र०स० के तहत दर्ज किया गया। हालांकि,

अनुवादित

बचाव पक्ष ने अपनी ओर से कोई गवाह पेश नहीं किया है। विचारण न्यायालय ने गवाहों की गवाही के साथ-साथ दस्तावेजी सबूतों की भी जांच की है और पाया है कि अ०सा०-4 चंद्रशेखर राय को छोड़कर अन्य सभी चश्मदीद गवाह मुकर गए हैं।

12. विचारण न्यायालय ने अ०सा०-4 की गवाही को भरोसेमंद और विश्वसनीय पाया और घटना के स्थान पर उसकी उपस्थिति भी किसी भी संदेह से मुक्त पाई गई। शव परीक्षण रिपोर्ट के साथ-साथ रिकॉर्ड पर लाए गए अन्य सबूतों पर भरोसा करते हुए, विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि अभियोजन पक्ष आरोपी अपीलकर्ताओं के अपराध को उचित संदेह से परे स्थापित करने में सफल रहा है और परिणामस्वरूप उन्हें धारा 302/34 और 506 भ०द०वि० के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराया गया है और उन्हें उपरोक्त के अनुसार आजीवन कारावास और अन्य दंडों की सजा सुनाई गई है।

13. दोषसिद्धि और सजा के फैसले से व्यथित होकर दोनों आरोपियों ने प्रस्तुत अपील दायर की है। अपीलकर्ताओं की ओर से यह आग्रह किया जाता है कि चश्मदीद गवाह अ०सा०-4 की गवाही विश्वसनीय नहीं है और घटनास्थल पर उसकी उपस्थिति भी संदिग्ध है। यह प्रस्तुत करने के लिए विस्तार से प्रस्तुतियाँ दी गई हैं कि अभियोजन पक्ष ने लिखित रिपोर्ट में अ०सा०-4 का संदर्भ शामिल किया था, मुख्य रूप से क्योंकि वह सूचनाकर्ता से निकटता से संबंधित था और आरोपी अपीलकर्ताओं को फंसाने के लिए अभियोजन पक्ष के मामले का आँख बंद करके समर्थन करता। यह भी आग्रह किया जाता है कि अभियोजन पक्ष के नेतृत्व में सबूत किसी भी तरह से आरोपी अपीलकर्ताओं को अपराध के कृत्य से नहीं जोड़ते हैं, क्योंकि न तो आरोपी अपीलकर्ताओं के खिलाफ अपराध करने का मकसद स्थापित किया गया है और न ही अंसारी भाइयों के साथ उनका संबंध स्थापित किया गया है और इसलिए, उनकी दोषसिद्धि और सजा पूरी तरह से बिना किसी आधार के है। यह आग्रह किया जाता है कि आरोपी अपीलकर्ताओं को राजनीतिक कारणों से झूठा फंसाया गया है, विशेष रूप से, आरोपी अंगद राय के भाई राम नारायण राय @ पहलवान राय को मौत के घाट उतार दिया गया था, जिसमें तत्कालीन स्थानीय विधायक कृष्णानंद राय को आरोपी के रूप में नामित किया गया था और यह उनके इशारे पर था कि आरोपी अपीलकर्ताओं को झूठा फंसाया गया है। यह भी आग्रह किया गया है कि अन्य आरोपी अर्थात् गोरा राय अंगद राय (मौसेरा भाई) का चचेरा भाई है। अपीलकर्ताओं की ओर से यह तर्क देने के लिए और कहा गया है कि वे पूरी तरह से निर्दोष हैं और उन्हें झूठा फंसाया गया है और विचारण न्यायालय ने उन्हें दोषी ठहराने और सजा देने में गलती की है।

14. अपील का श्री अरुणेंद्र कुमार सिंह, अपर शासकीय अधिवक्ता और श्री दुर्गेश कुमार सिंह, जो सूचनाकर्ता के लिए उपस्थित हुए हैं, द्वारा दृढ़ता से विरोध किया गया है, जो कहते हैं कि अंसारी भाइयों के इशारे पर दोनों आरोपियों द्वारा मृतक को दिन के उजाले में क्रूर तरीके से मौत के घाट उतार दिया गया था, जिन्होंने क्षेत्र में भारी राजनीतिक प्रभाव का प्रयोग किया था। यह प्रस्तुत किया गया है कि आरोपी अपीलकर्ताओं द्वारा प्रयोग किए गए

अनुवादित

राजनीतिक प्रभाव के कारण अन्य सभी चश्मदीद गवाह मुकर गए हैं और जांच में जानबूझकर ऐसी सामग्री को छोड़ दिया गया है, जो इस मामले में आरोपी अपीलकर्ताओं को फंसा सकती थी।

15. सूचनादाता की ओर से यह आग्रह किया जाता है कि तत्कालीन कानून के अनुसार सूचनादाता को कार्यवाही में सक्रिय रूप से भाग लेने का कोई अधिकार नहीं था और चूंकि अभियोजन पक्ष ने शक्तिशाली व्यक्तियों द्वारा प्रयोग किए गए राजनीतिक प्रभाव के कारण पूरी तरह से अनुचित तरीके से काम किया, इसलिए मामले के तथ्यों की न्यायालय द्वारा सावधानीपूर्वक जांच करने की आवश्यकता है, ताकि मामले में न्याय किया जा सके और आम आदमी का विश्वास व्यवस्था मजबूत किया जा सके। सूचनाकर्ता का यह भी आरोप है कि जांच पूरी तरह से विफल हो गई थी और राजनीतिक प्रभाव के कारण अन्य सभी चश्मदीद गवाहों को उसी दिन पेश किया गया था, और शत्रुतापूर्ण घोषित किया गया था, जो दर्शाता है कि पूरी प्रणाली पक्षपातपूर्ण तरीके से काम कर रही थी ताकि मामले के तथ्यों में उन्हें न्याय से वंचित किया जा सके।

16. उपरोक्त पृष्ठभूमि में इस न्यायालय को यह विचार करने की आवश्यकता है कि क्या अभियोजन पक्ष आरोपी अपीलकर्ताओं के खिलाफ अपने मामले को उचित संदेह से परे मामले में दिए गए सबूतों के आधार पर साबित करने में सफल रहा है और यह भी कि क्या दो आरोपी अपीलकर्ताओं को दी गई दोषसिद्धि और सजा न्यायसंगत और उचित है या नहीं?

17. प्रतिद्वंदी पक्षों की ओर से आग्रह किए गए तर्कों की प्रभावी ढंग से मूल्यांकन करने के लिए, इस मामले में प्रस्तुत किए गए सबूतों को कुछ विस्तार से संदर्भित करना उचित होगा।

18. विजय बहादुर राय को अ०सा०-1 के रूप में पेश किया गया है, जो जांच का गवाह है। उन्होंने अपनी जांच रिपोर्ट में यह साबित कर दिया है । जिरह में उन्होंने कहा है कि घटनास्थल वास्तव में मुहम्मदाबाद शहर का एक वार्ड है, जो एक टाउन एरिया भी है। उन्होंने कहा है कि उन्होंने सुबह लगभग 6.00 बजे मृतक की हत्या के बारे में सुना और लगभग 7.00 बजे बड़ी संख्या में अन्य ग्रामीणों के साथ मठिया गांव पहुंचे। उन्होंने कहा है कि घटनास्थल पर उनके पहुंचने से पहले, बड़ी संख्या में लोग और पुलिस पहले ही वहां पहुंच चुके थे और एकत्र हो गए थे। मुहम्मदाबाद के थानाध्यक्ष दोपहर लगभग 12.00 बजे घटनास्थल पर आए थे, जब मृतक का शव अभी भी वहां पड़ा था। उन्होंने कहा है कि थानाध्यक्ष शव को अ०सा०-1 सहित अन्य ग्रामीणों के साथ थाना ले गए जहां पूछताछ की गई थी। उन्होंने कहा है कि पंचनामा की प्रक्रिया दोपहर लगभग 2.00 बजे पूरी हो गई थी। इसके बाद पुलिस शव को शव परीक्षण के लिए गाजीपुर ले गई। बचाव पक्ष अ०सा०-1 की इस गवाही पर भरोसा करता है कि पुलिस के कागजात फर्जी हैं और विश्वसनीय नहीं हैं।

19. अ०सा०-2 रविकांत भी पंचनामा का गवाह है। उन्होंने भी पंचान रिपोर्ट को साबित किया है। अ०सा०-1 द्वारा जो कहा गया है, उसके विपरीत, अ०सा०-2 ने कहा है कि पंचनामा घटनास्थल पर किया गया था। उन्होंने आगे कहा है कि विवेचनाधिकारी ने उनसे पूछताछ नहीं की थी।

अप्रमाणित

20. अ०सा०-3 डॉ. निसार अहमद हैं, जिन्होंने शव परीक्षण रिपोर्ट को साबित कर मृतक के शरीर पर मिले चोटों को निर्दिष्ट किया है। उनके अनुसार, मृतक के सिर पर गोली लगने से उसकी तत्काल मौत हो गई। डॉक्टर के अनुसार, मृतक ने घटना से लगभग 3-31/2 घंटे पहले कुछ खाया था क्योंकि उसके पेट में बिना पचा हुआ भोजन पाया गया था। उन्होंने अपनी आंत में गैसों और फेकल पदार्थ का अस्तित्व भी पाया और कहा कि या तो मृतक कब्ज से पीड़ित था या उसने शौच नहीं किया था। उन्होंने समझाया है कि चोट संख्या-1 और 4 प्रवेश के बन्दूक घाव हैं जबकि चोट संख्या-2 और 5 बाहर निकास के बन्दूक घाव हैं। गवाह ने कहा है कि मृतक की मृत्यु सुबह लगभग 6.00 बजे हुई होगी और मृत्यु के अनुमानित समय में 2-4 घंटे का अंतर संभव है। उन्होंने यह मत व्यक्त किया है कि यह संभव है कि मृतक की मृत्यु रात में लगभग 2.00 या 3.00 बजे हुई हो।

21. अ०सा०-4 एकमात्र चश्मदीद गवाह है, जिसने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है और इसलिए, उसके बयान की सावधानीपूर्वक जांच की आवश्यकता है। यह गवाह पहले सूचनाकर्ता का चचेरा भाई है और उसने कहा है कि घटना के दिन वह धान के बीज खरीदने के लिए यूसुफपुर बाजार जा रहा था। वह एक उपवन में आराम करने के लिए एक पेड़ के नीचे बैठ गया। उसने उस मोटरसाइकिल पर फायरिंग देखी, जिस पर मृतक सूचनाकर्ता के साथ बैठा था। दोनों आरोपी भी एक मोटरसाइकिल पर सवार थे। अंगद राय इसे चला रहा था जबकि दूसरे आरोपी गोरा राय के दोनों हाथों में पिस्तौल थी, जिससे उसने मृतक पर गोली चला दी। हालांकि गोली लगने से चूक गई। मृतक की मोटरसाइकिल गिर गई और वह खुद को बचाने के लिए मठिया बस्ती की ओर भागा। आरोपी ने मोटरसाइकिल पर मृतक का पीछा किया और करीब 15 कदम चलने के बाद उतरकर गली में भाग गया। गवाह के एक कुएं पर पहुंचने के बाद उसने 4-5 गोलियों की आवाज सुनी और दोनों आरोपियों को शिव कुमार यादव के घर से बाहर आते देखा। वह शिव कुमार यादव के घर के अंदर गया तो देखा कि मृतक शिवकुमार यादव की छत पर गिरा हुआ था।

22. जिरह में, अ०सा०-4 ने कहा है कि काम के लिए वह मुहम्मदाबाद पैदल जाता था जिसमें लगभग एक घंटे का समय लगता था। अ०सा०-4 ने खुलासा किया है कि उसके 25-35 वर्ष आयु वर्ग के दो बेटे हैं, जो कृषि कार्य देखते हैं और गवाह भी उनका समर्थन करता है। यह गवाह पश्चिम बंगाल पुलिस से कांस्टेबल के पद से सेवानिवृत्त हुआ है। उन्होंने स्वीकार किया है कि 1977 में शिव सागर राय की हत्या कर दी गई थी, जिसमें मृतक आरोपी था। उसका सामना मृतक के आपराधिक अतीत से भी कराया गया है। उनका सामना धारा 161 द०प्र०स० के तहत दिए गए उनके पिछले बयान से कराया गया है, जहां उन्होंने विवेचनाधिकारी को बाजार जाने के अपने उद्देश्य यानी बीज खरीदने के बारे में नहीं बताया था। उन्होंने यह भी कहा है कि उनकी काफ़ी उम्र होने के कारण वह तेजी से नहीं चल सकते हैं और अक्सर उनके पैरों में दर्द होता है। अपनी आगे की जिरह में, अ०सा०-4 ने स्वीकार किया है कि मंगलवार और शनिवार को यूसुफपुर में बाजार आयोजित किया जाता

अप्रमाणित

है और अन्य दिनों में कोई बाजार आयोजित नहीं किया जाता है। हालांकि, दुकानें खुली रहती हैं। उसने खुलासा किया है कि घटना के तुरंत बाद वह राजेंद्र की हत्या की सूचना देने के लिए गांव लौटा, लेकिन उसने अपने बेटे को, जब वह रास्ते में उसके पास से गुजरा, इस तथ्य की जानकारी नहीं दी। उन्होंने यह भी कहा है कि घटना के बाद वह बीमार पड़ गए थे और उनका बयान बाद में दर्ज किया गया था। गवाह ने आगे बताया है कि सूचनाकर्ता ने अपने बेटे के शव को देखकर अपना सिर पटक दिया। मृतक को पकड़ने की कोशिश में सूचनाकर्ता द्वारा पहने गए कपड़े खून से लथपथ थे। गवाह ने आगे दावा किया कि शिव कुमार यादव के घर में प्रवेश करने पर उसने केवल 18-20 साल की एक लड़की को खाना बनाते देखा और कोई और मौजूद नहीं था। उनका दावा है कि उन्होंने इस घटना को 100 कदम की दूरी से देखा। गवाह ने स्वीकार किया है कि उसकी आंखों की रोशनी कमजोर है और केवल चश्मा पहनकर ही वह पढ़ या लिख सकता है।

23. अ०सा०-5 दिनेश कुमार पांडे सूचनाकर्ता की बेटी का बेटा है और उसने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है, विशेष रूप से घटना से लगभग 10-15 दिन पहले मृतक द्वारा धमकी प्राप्त करने के संबंध में। उन्होंने दावा किया कि मृतक और परिवार के अन्य सदस्यों ने पिछली रात करीब ढाई बजे भोजन किया था। जिरह में इस गवाह का सामना धारा 161 द०प्र०स० के तहत दिए गए उसके पिछले बयान से कराया गया है, जहां उसने मृतक के पिछली रात लगभग 2.30 बजे भोजन करने के तथ्य का खुलासा नहीं किया था। अ०सा०-5 ने इस बात से इनकार किया है कि रात में 2.30 बजे भोजन करने के बारे में बयान चिकित्सा साक्ष्य की व्याख्या करने के लिए गढ़ा गया है।

24. अ०सा०-6 राकेश कुमार राय मृतक का बेटा है, जिसने अनभिज्ञता का बहाना किया कि उसकी मां ने वर्ष 1995, 1996 में ब्लॉक प्रमुख का चुनाव जीता था, लेकिन बाद में चुनाव हार गई थी। उन्होंने जोर देकर कहा कि जब लिखित रिपोर्ट लिखी गई थी तो केवल उनके दादा मौजूद थे। उनका दावा है कि वह रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए थाना नहीं गए थे।

25. अ०सा०-7 तारा यादव ने बताया है कि घटना के दिन वह मठिया में अपने मायके पर थी। उसने सुना कि उसके घर में किसी की मृत्यु हो गई है और शाम तक वापस नहीं आई। उसने किसी को बंदूक लेकर भागते हुए देखने से इनकार किया। जिरह में, उसने कहा है कि वह खुद को शांत करने के लिए अंधेरा होने पर चली गई और जब तक वह सूर्योदय से पहले लौटी तो उसने पाया कि भीड़ उसके घर पर इकट्ठा हो गई थी। यह गवाह अपनी तीन साल की बेटी को भी अपने साथ ले गई थी। उसने इस बात से इनकार किया है कि घर में 17-18 साल की कोई लड़की थी। उसने दोनों आरोपियों की पहचान नहीं की है। मृतक के परिजन कब पहुंचे, इस बात की उसे कोई जानकारी नहीं थी। उनका दावा है कि जब तक वह वापस लौटीं, उन्होंने पुलिसकर्मियों को मौजूद पाया, लेकिन मृतक के परिवार का कोई भी सदस्य रो नहीं रहा था।

26. अ०सा०-8 योगेंद्र यादव, अ०सा०-9 अशोक सिंह यादव और अ०सा०-10 त्रिवेणी यादव को उसी दिन अभियोजन पक्ष द्वारा निचली अदालत में पेश किया गया। इन तीन गवाहों ने

अनुवादित

अभियोजन पक्ष के मामले का न तो मुख्य परीक्षा में समर्थन किया है और न ही जिरह में। यह तर्क देने के लिए बहुत जोर दिया जाता है कि काम(?) पर एक मजबूत अंतर्धारा और बाहरी प्रभाव था जिसके कारण गवाह मुकर गए और यहां तक कि अभियोजन अधिकारी का आचरण भी संदिग्ध था। मामले के इस पहलू पर बाद में कार्रवाई की जाएगी।

27. अ०सा०-11 रामप्रीत चौहान कांस्टेबल है, जो पंचनामा के समय मौजूद था और मृतक के शव को मोर्चरी में ले गया है। अ०सा०-12 कमलेश यादव व अ०सा०-13 महेंद्र यादव भी गांव मठिया के निवासी हैं, जिन्हें एक ही दिन यानी 5.12.2007 को पेश किया गया है और वे भी मुकर गए हैं।

28. अ०सा०-14 जगदीश कुमार यादव दूसरे विवेचनाधिकारी हैं। उन्होंने कहा है कि जांच के दौरान अभियुक्त मुख्तार अंसारी और अफजाल अंसारी के खिलाफ कोई सबूत नहीं मिला और इसलिए उनके नामों को आगे की जांच से बाहर रखा गया। उनका दावा है कि उन्होंने अ०सा०-4 चंद्रशेखर राय का पता लगाने का प्रयास किया था, लेकिन वह उपलब्ध नहीं थे और इसलिए उनका बयान 9-7-2005 को थाना में दर्ज किया गया था। इस गवाह ने कहा है कि अ०सा०-4 ने उसे यह नहीं बताया था कि वह यूसुफपुर से बीज खरीदने जा रहा है। उन्होंने यह भी कहा है कि अ०सा०-4 ने जांच के दौरान उन्हें सूचित नहीं किया था कि वह घटना से 20 मिनट पहले पहुंचे थे, न ही उन्होंने उन्हें सूचित किया था कि कुछ मिनटों के बाद वह मृतक की हत्या के बारे में सूचित करने के लिए गांव के लिए रवाना हो गए थे। गवाह को किसी भी मोटरसाइकिल का कोई निशान नहीं मिला, न ही ऐसी मोटरसाइकिल विवेचनाधिकारी को उपलब्ध कराई गई और यहां तक कि ऐसी मोटरसाइकिल का विवरण भी प्रस्तुत नहीं किया गया था। जांच के दौरान यह पता नहीं चल सका कि मृतक किस रास्ते से घटनास्थल पर पहुंचा। इस गवाह ने यह भी कहा है कि नक़्शा नज़री में दर्शाए गए बिंदु ख से बिंदु घ को देखना संभव नहीं था क्योंकि बीच में बांस के पौधे थे। उन्होंने दावा किया कि आरोपियों की निशानदेही पर कोई आग्नेयास्त्र बरामद नहीं हुआ। उन्होंने आगे कहा है कि मृतक एक हिस्ट्रीशीटर था और उसकी पत्नी ब्लॉक प्रमुख थी। केस अपराध संख्या-411 वर्ष 2004 में धारा 302 भ०द०वि० के तहत आरोपी अंगद राय के भाई की हत्या कर दी गई थी और उसमें कृष्णानंद राय को साजिशकर्ता के रूप में आरोपी बनाया गया था। उन्होंने दावा किया कि श्री राय ने मामले की प्रगति के बारे में जानने के लिए उन्हें फोन किया था।

29. अ०सा०-15 हरीश चंद्र राय पहले विवेचनाधिकारी हैं और उन्होंने घटनास्थल से की गई बरामदगी को साबित किया है। उन्होंने कहा है कि अ०सा०-5 ने उन्हें कभी नहीं बताया कि मृतक डरा हुआ था या लगभग 15 दिन पहले अंसारी भाइयों से उसे कोई धमकी मिली थी। इस गवाह का अ०सा०-5 के बयान में किए गए विभिन्न सुधारों का भी सामना किया गया है और उसने कहा है कि जांच के दौरान गवाह द्वारा उसे ऐसा खुलासा नहीं किया गया था। जब वह घटनास्थल पर पहुंचे तो उन्हें मृतक का शव शिवकुमार यादव की छत पर मिला, न कि सीढ़ियों पर। उन्होंने यह भी कहा कि कोई मोटरसाइकिल नहीं मिली, न ही उसका विवरण

अनुवादित

प्रस्तुत किया गया। उन्होंने चंद्रशेखर राय का पता लगाने की कोशिश की और उनके घर भी गए थे, लेकिन उन्हें सूचित किया गया कि वह गाजीपुर गए थे और 30 तारीख को उनकी तबीयत ठीक नहीं थी। इस गवाह ने कहा है कि जब तक उसके द्वारा जांच नहीं की गई, तब तक गांव मठिया के किसी भी चश्मदीद गवाह ने अभियोजन मामले के समर्थन में बयान नहीं दिया था। आरोपी अंगद राय को फंसाने के लिए कोई चश्मदीद गवाह सामने नहीं आया था।

30. अ०सा०-16 सब इन्स्पेक्टर राम अवध आदर्श ने अपने बयान में कहा है कि राकेश कुमार राय प्राथमिकी दर्ज कराने के लिए सूचनाकर्ता के साथ आए थे। हालांकि, प्राथमिकी पर सूचनाकर्ता या उसके साथी के हस्ताक्षर नहीं लिए गए थे।

31. अ०सा०-17 मंगला यादव है, जिसने पुलिस के कागजातों को साबित कर जांच कराई थी। उन्होंने कहा है कि सुबह 10.05 बजे जांच किए जाने के बाद, उन्होंने शव को कांस्टेबलों को सौंप दिया, जो इसे एक जीप में ले गए।

32. अ०सा०-18 श्रीमती बृजबाला राय ने मृतक द्वारा धमकी प्राप्त करने, कृष्णानंद राय की कंपनी छोड़ने और अंसारी ब्रदर्स में शामिल होने के संबंध में अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है। उसने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है कि घटना से एक दिन पहले रात 8.00 बजे दो मोटरसाइकिलों पर चार लोग पहुंचे और उसके पति को धमकी दी। उसके पति ने कथित तौर पर ऐसे व्यक्तियों से कहा कि वह कृष्णानंद राय को नहीं छोड़ेगा। बाद में, मृतक ने अ०सा०-18 को सूचित किया कि उसे उमेश राय @ गोरा राय से धमकी मिली थी। उसने कहा है कि इसके बाद सूचनाकर्ता आया और परिवार के विभिन्न सदस्य भी घर पर पहुंचे। साक्षी ने लगभग 11.00 बजे भोजन की पेशकश की, लेकिन जैसा कि वे परेशान थे, वे मामलों पर चर्चा करते रहे और यह केवल 2.30 बजे था कि उन्होंने भोजन किया। उसने यह भी कहा कि उसका पति सूचनाकर्ता के साथ रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए मोटरसाइकिल से निकला था। जिरह में, इस गवाह ने स्वीकार किया है कि उसने दो निजी अधिवक्ताओं को नियुक्त किया है। सभी आवेदन आदि निजी अधिवक्ताओं द्वारा उनकी सहमति से प्रस्तुत किए गए थे; उनके बेटे ने पहले मुकदमे के दौरान उन्हें बरी करने के लिए एक आवेदन दिया था क्योंकि विवेचनाधिकारी ने उनका बयान सही ढंग से दर्ज नहीं किया था। गवाह के रूप में पेश नहीं होने के लिए अधिवक्ता के माध्यम से कोई आवेदन नहीं किया गया था, लेकिन वह बीमार होने के कारण गवाही नहीं दे सकती थी। विवेचनाधिकारी द्वारा उसका बयान गलत तरीके से दर्ज किया गया था। इस गवाह ने अपने पति के आपराधिक पूर्ववृत्त के बारे में अपनी अनभिज्ञता को और दिखाया है। गवाह का सामना धारा 161 द०प्र०स० के तहत दिए गए उसके पिछले बयान से भी कराया गया है, जहां उसने रात में लगभग 2.30 बजे परिवार के सदस्यों के भोजन करने के बारे में गवाही नहीं दी थी।

33. आगे बढ़ने से पहले यह ध्यान देने योग्य होगा कि पहले सूचनाकर्ता कपिल देव राय की घटना के कुछ महीने बाद मृत्यु हो गई थी और इस प्रकार उन्हें साक्ष्य में पेश नहीं किया जा सका। उनका बयान धारा 161 द०प्र०स० के

अनुवादित

तहत दर्ज किया गया है, जिसकी जांच की जानी आवश्यक है, क्योंकि अभियोजन पक्ष और सूचनाकर्ता प्रस्तुत करते हैं कि धारा 161 द०प्र०स० के तहत दिए गए उनके बयान को प्रस्तुत मामले के तथ्यों में साक्ष्य के रूप में पढ़ा जाए। हमने धारा 161 द०प्र०स० के तहत दिए गए सूचनाकर्ता के बयान की जांच की है। सूचनाकर्ता ने अंसारी बंधुओं द्वारा मृतक को अपनी पक्ष में शामिल होने और कृष्णानंद राय की कंपनी छोड़ने की धमकी देने के अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है।

34. सूचनाकर्ता के दो कथन हैं। एक घटना के तत्काल बाद और दूसरा दूसरे विवेचनाधिकारी द्वारा 9-7-2005 को जांच का कार्य अपने हाथ में लेने के बाद। उन्होंने अपने पहले बयान में कहा है कि मृतक ने उन्हें घटना के दिन से पहले रात में दी गई धमकियों के बारे में सूचित किया और फिर फैसला किया कि सुबह ही पुलिस को सूचित किया जाए। सूचनाकर्ता ने आगे कहा कि अंसारी बंधुओं द्वारा रची गई साजिश के कारण, आरोपी उमेश राय ने तीन अज्ञात व्यक्तियों के साथ मृतक को धमकी दी और उस पर गोली चलाने के इरादे से उसका पीछा किया। सूचनाकर्ता के अनुसार उसका बेटा मोटरसाइकिल चला रहा था, जबकि वह पीछे की ओर सवार था। मोटरसाइकिल गिर गई और उसका बेटा इलाके की ओर भागा, जहां आरोपी ने उसका पीछा किया और गोली मारकर उसकी हत्या कर दी। 9-7-2005 को दर्ज किए गए सूचनाकर्ता के दूसरे बयान में पहली बार अन्य अभियुक्त अंगद राय का नाम भी पुरस्थापित किया गया था। यह भी कहा गया है कि दो अन्य व्यक्ति भी मोटरसाइकिल पर इंतजार कर रहे थे, लेकिन उनके नाम ज्ञात नहीं हैं।

35. अभियोजन का मामला अनिवार्य रूप से इस आधार पर आगे बढ़ता है कि मृतक पर अंसारी ब्रदर्स द्वारा अपने पक्ष में शामिल होने और कृष्णानंद राय के साथ खुद को अलग करने के लिए दबाव डाला जा रहा था। हालांकि अभियोजन पक्ष के कुछ गवाहों ने अभियोजन पक्ष के इस कथन का समर्थन किया है, लेकिन यह स्वीकार किया गया है कि इस मामले में अफजाल अंसारी और मुख्तार अंसारी के खिलाफ कोई आरोप पत्र दायर नहीं किया गया था। विवेचनाधिकारी ने विशेष रूप से कहा है कि इन दो व्यक्तियों के खिलाफ जांच के दौरान कोई सामग्री एकत्र नहीं की गई थी और इसलिए, जांच के दौरान ही उनके नामों को मामले से बाहर रखा गया था। मुकदमे के दौरान भी अंसारी बंधुओं को तलब करने के लिए धारा 319 द०प्र०स० के तहत कोई आवेदन नहीं किया गया था। अंसारी ब्रदर्स से धमकी मिलने के बारे में मृतक के करीबी रिश्तेदारों के बयान और सूचनाकर्ता के बयान के अलावा जांच के दौरान उनके खिलाफ कोई अन्य सामग्री एकत्र नहीं की गई थी।

36. हालांकि यह आरोप लगाया गया है कि अंसारी ब्रदर्स ने मृतक को कृष्णानंद की कंपनी छोड़ने और उनकी पक्ष में शामिल होने के लिए कहा और यह उनके जीवन और संपत्ति के हित में होगा, लेकिन इस तरह के खतरे का कोई विशिष्ट समय या स्थान का स्पष्ट रूप से खुलासा नहीं किया गया है। अभियोजन की कहानी का दूसरा हिस्सा गोरा राय और तीन अन्य अज्ञात व्यक्तियों द्वारा घटना से पहले की तारीख पर दो आरोपियों से प्राप्त धमकियों

अनुवादित

के संबंध में है। जांच के इस भाग को किसी ने भी चुनौती नहीं दी है और न ही विचारण के चरण में भी इस पहलू पर जोर दिया गया है। हालांकि हम पाते हैं कि अंसारी भाइयों के खिलाफ मृतक को उनकी पक्ष में शामिल होने के लिए धमकी देने के आरोप लगाए गए थे, लेकिन यह एक तथ्य है कि न तो उन्हें चार्जशीट किया गया था और न ही धारा 319 द०प्र०स० के तहत मुकदमे के दौरान बुलाया गया था। इन दो व्यक्तियों के लिए कोई प्रत्यक्ष कार्य नहीं आरोपित किया गया है और वे इन कार्यवाहियों के लिए एक पक्ष नहीं हैं। इस प्रकार हम 18 साल की समाप्ति के बाद इस मामले में आगे की जांच का निर्देश देकर धारा 391 द०प्र०स० के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का उपयोग करने के इच्छुक नहीं हैं, हालांकि हम उस तरीके से प्रभावित नहीं हैं जिसमें उनके खिलाफ अचानक जांच बंद कर दी गई थी।

37. हम इस मामले में जिस तरह से जांच की गई है, उस पर कुछ टिप्पणियां करने के लिए विवश हैं। हमने मामले के तथ्यों की जांच की है और हमें पता चला है कि यह घटना शिव कुमार यादव के घर में हुई थी। हालांकि, अभियोजन पक्ष द्वारा शिव कुमार यादव को साक्ष्य में पेश नहीं किया गया है। पुलिस रिपोर्ट में नामित राजनीतिक व्यक्तियों द्वारा दी गई धमकियों के संबंध में पहले सूचनाकर्ता द्वारा लगाए गए आरोपों की भी पूरी तरह से और ठीक से जांच नहीं की गई है। विवेचनाधिकारी द्वारा ऐसी कोई सामग्री नहीं दी गई है जिसके आधार पर यह राय बनाई जा सके कि रिपोर्ट में नामित राजनीतिक व्यक्तियों द्वारा मृतक को दी गई धमकी की दलील निराधार थी। हमें धमकियां देने के लिए राजनीतिक व्यक्तियों की भूमिका पर विवेचनाधिकारी की व्यक्तिपरक संतुष्टि अच्छी तरह से स्थापित नहीं लगती है। हालांकि, हम आगे कुछ भी कहने से खुद को रोकते हैं क्योंकि वे व्यक्ति न तो अदालत के समक्ष हैं और न ही जांच के दौरान कोई आरोप पत्र दायर किया गया है। इसलिए, हम इस अपील के दायरे को दो दोषी अभियुक्तों के खिलाफ रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों तक सीमित रखते हैं। इस संबंध में श्री डी. के. सिंह द्वारा की गई भावपूर्ण प्रार्थना को इस प्रकार अनिच्छा से अस्वीकार किया जाता है।

38. घटना वर्ष 27.6.2005 के संबंध में, यह अभियोजन पक्ष का मामला है कि मृतक सुबह जल्दी रिपोर्ट दर्ज करने के लिए सूचनाकर्ता के साथ चला गया था। अभियोजन का मामला आगे यह है कि जब वे थाना की ओर जा रहे थे तो उन्हें मठिया गांव में दो आरोपियों द्वारा रोका गया और उसके बाद मृतक की गोली मारकर हत्या कर दी गई। अभियोजन पक्ष के बयान का यह हिस्सा चश्मदीद गवाहों की गवाही और ऊपर उल्लिखित दस्तावेजी साक्ष्य पर आधारित है।

39. इस मामले में शव परीक्षण रिपोर्ट डॉक्टर द्वारा साबित की गई है, जिसके अनुसार, मृतक को दो बन्दूक की चोटें आई थीं, जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई थी। डॉक्टर की राय में, मृतक की मौत बन्दूक से मृत्यु पूर्व सिर की चोट का परिणाम थी। इसलिए, यह संदेह से परे साबित होता है कि मृतक की मौत एक हत्या से हुई थी। सवाल यह है कि क्या मामले में पेश किए गए सबूतों के आधार पर दो आरोपी अपीलकर्ताओं को अपराध के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है या नहीं?

अप्रमाणित

40. जहां तक पहले सूचनाकर्ता के संस्करण का संबंध है, माना जाता है कि वह मर गया और वह निचली अदालत के समक्ष गवाही नहीं दे सका। धारा 161 द०प्र०स० के तहत दिए गए उनके बयान की अपील सीमित है क्योंकि इसमें न तो उनके हस्ताक्षर हैं और न ही आरोपी अपीलकर्ताओं के पास इस तरह के संस्करण से जिरह करने का कोई अवसर है।

41. अभियोजन पक्ष का मामला अनिवार्य रूप से अ०सा०-4 की गवाही पर निर्भर करता है। अ०सा०-4 पहले सूचनाकर्ता का चचेरा भाई है और मृतक का चाचा है। इस प्रकार वह एक संबंधित गवाह है। इस गवाह ने बताया है कि वह बीज खरीदने के लिए यूसुफपुर बाजार जा रहा था। गवाह के अनुसार, वह सुबह लगभग 5.00 बजे निकला था और जब वह थक गया तो वह आराम करने के लिए एक उपवन में बैठ गया। इसी मोड़ पर उन्होंने इस घटना को देखा।

42. बचाव पक्ष की ओर से घटनास्थल पर गवाह की उपस्थिति पर गंभीरता से सवाल उठाया जाता है। जहां तक धान के बीज खरीदने के लिए सुबह जल्दी यूसुफपुर बाजार जाने के उद्देश्य का संबंध है, हम पाते हैं कि गवाह द्वारा धारा 161 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में बाजार जाने के विशिष्ट उद्देश्य का खुलासा नहीं किया गया है। गवाह ने धारा 161 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में कहा है कि वह बाजार जा रहा था। गवाह ने अपनी जिरह में स्वीकार किया है कि यूसुफपुर बाजार सप्ताह में दो बार यानी मंगलवार और शनिवार को लगाया जाता है। चूंकि घटना का दिन सोमवार था, इसलिए घटना के दिन कोई बाजार नहीं था। घटनास्थल के पास अ०सा०-4 की उपस्थिति इस प्रकार संयोग की बात है। अदालत के समक्ष दिए गए अपने बयान में अ०सा०-4 ने खुलासा किया कि वह घटना से लगभग 20 मिनट पहले मठिया पहुंचा था, जो कि धारा 161 द०प्र०स० के तहत उसके पिछले बयान से स्पष्ट सुधार है, जिसके अनुसार वह घटना के समय पहुंचा था। अ०सा०-4 इस प्रकार एक संबंधित और मौका गवाह है जिसकी गवाही की बारीकी से जांच करनी होगी। बाजार में जाने के बारे में धारा 161 द०प्र०स० के तहत दिए गए बयान पर इस आधार पर सवाल उठाया जाता है कि सोमवार को ऐसा बाजार नहीं होता है और धान के बीज खरीदने का विशिष्ट उद्देश्य परीक्षण के चरण में किया गया सुधार है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि अ०सा०-4 एक संबंधित गवाह है और उसकी उपस्थिति अन्यथा संयोग की बात है, इसलिए, उसकी गवाही का न्यायालय द्वारा सावधानीपूर्वक विश्लेषण करना होगा।

43. इस मोड़ पर, यह कि एक प्रत्यक्षदर्शी की एकान्त गवाही के आधार पर एक अभियुक्त की सजा संभव है, अवलोकन के लायक हो सकता है, लेकिन अदालत इस तरह के उद्देश्य के लिए उसकी सच्चाई के संबंध में संतुष्ट होना होगा। मामले के तथ्यों में, अ०सा०-4, 80 वर्ष का बूढ़ा है। उसने अपने बयान में स्वीकार किया है कि वह वृद्धावस्था की बीमारी से पीड़ित है क्योंकि उसके अंग कमजोर हैं; उसके पैरों में दर्द है और वह तेजी से आगे नहीं बढ़ सकता; उनकी दृष्टि सीमित है और वह केवल चश्मे की मदद से पढ़ या लिख सकते हैं। अन्यथा, 80 वर्ष की आयु में, एक आदमी के संकाय/शारीरिक अंग कुछ हद तक प्रतिबंधित होंगे। ऐसा व्यक्ति किस हद तक 100 क़दम

अनुवादित

की दूरी से घटना को देख सकता है, यह एक तथ्य है जिसका सावधानीपूर्वक मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

44. हमने नक़्शा नज़री का अवलोकन किया है, जिसके अनुसार, अ०सा०-4 मुख्य सड़क से सटे उपवन में एक पेड़ के नीचे बैठा था। उनका दावा है कि जब उसने आरोपी को उस पर गोली चलाते देखा, मृतक 100 क़दम की दूरी पर था। अ०सा०-4 का संस्करण यह है कि मृतक पर चलाई गई गोलियों ने मोटरसाइकिल पर सवार होने के दौरान किसी को नहीं मारा, लेकिन मोटरसाइकिल गिर गई। अ०सा०-4 के संस्करण का यह हिस्सा धारा 161 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में पहले सूचनाकर्ता के बयान द्वारा समर्थित नहीं है और न ही यह प्रथम सूचना रिपोर्ट में निहित है। हम यह भी पाते हैं कि मौके पर कोई मोटरसाइकिल नहीं मिली है। मोटरसाइकिल की कोई बरामदगी नहीं हुई है, न ही अभियोजन पक्ष के किसी गवाह ने मोटरसाइकिल के विवरण का खुलासा किया है। तथ्य यह है कि मोटरसाइकिल न तो मौके पर मिली थी, न ही इसमें प्राथमिकी में कोई विवरण है या धारा 161 द०प्र०स० के तहत सूचनाकर्ता का बयान अभियोजन पक्ष के मामले में संदेह पैदा करता है। अ०सा०-4 ने कहा है कि वह गोलीबारी की जगह की ओर नहीं गया। इसलिए, यह कथन बताता है कि जब सड़क पर गोलीबारी की घटना हुई, अ०सा०-4 उपवन में ही रहा। अ०सा०-4 तब कहता है कि उसने मृतक को गांव की आबादी की ओर भागते हुए देखा। नक़्शा नज़री से पता चलता है कि अ०सा०-4 जिस जगह पर खड़ा था, उसके सामने रामकृत और कमलाकर यादव की झोपड़ी थी। झोपड़ी के पीछे बांस के पौधे भी हैं। अ०सा०-4 ने यह भी स्वीकार किया है कि जिस जगह वह खड़ा था, उसके सामने वाली गली में भी दोनों तरफ मकान थे। इसलिए, हमें यह समझने में थोड़ी मुश्किल होती है कि 80 साल की उम्र में सीमित दृष्टि और कमजोर पैरों के साथ मृतक इतनी दूरी पर कैसे देख सकता था और आरोपी को पहचान सकता था। अ०सा०-4 का आगे का संस्करण यह है कि मृतक तारा यादव के घर की ओर भागा और सीढ़ियों से शिव कुमार यादव की छत पर पहुंच गया। नक़्शा नज़री स्पॉट 'डी' दिखाता है जहां से घटना के इस हिस्से को अ०सा०-4 द्वारा देखा गया है। इलाके में घरों की संख्या है और एक गली मौजूद है जिसके द्वारा गवाह बिंदु 'डी' तक चलने का दावा करता है। इसके बाद गवाह का कहना है कि उसने घर में घुसकर देखा कि मृतक का शव शिवकुमार यादव की छत पर पड़ा था। अपने आगे के बयान में, अ०सा०-4 का दावा है कि पहले सूचनाकर्ता ने सीढ़ी पर अपना सिर पटक दिया और उसे चोटें आईं और उसके कपड़े खून से भीग गए। तथापि, जांच के दौरान सूचना देने वाले के खून से सने कपड़े एकत्र नहीं किए जाते हैं। सूचनाकर्ता पर कोई चोट नहीं पाई गई है। अन्यथा इस तरह की चोटों का पता तब चलता जब सूचनाकर्ता रिपोर्ट दर्ज कराने थाना पहुंचता।

45. अ०सा०-4 आगे कहता है कि, वह लगभग एक मिनट के लिए घटनास्थल पर रहा और तुरंत परिवार और अन्य लोगों को घटना के बारे में सूचित करने के लिए गांव लौट आया। जिरह में अ०सा०-4 ने हालांकि स्वीकार किया कि उसने रास्ते में मृतक के बेटे को पार किया, लेकिन उसे घटना के बारे में कुछ नहीं बताया।

अनुवादित

अ०सा०-4 की गवाही के इस हिस्से पर विश्वास करना मुश्किल है, क्योंकि अगर वह घटना के बारे में सूचित करने के लिए गांव लौट रहा था, तो कोई कारण नहीं था कि वह मृतक के बेटे को घटना के बारे में खुलासा नहीं करेगा। इससे भी मजेदार बात यह है कि अ०सा०-4 न तो घटनास्थल पर वापस आया, न ही दाह संस्कार में भाग लिया और न पुलिस को कोई बयान नहीं दिया। अ०सा०-4 का बयान पहली बार 9-7-2005 को दर्ज किया गया था जो घटना के 13 दिनों के बाद है। अ०सा०-4 ने यह भी स्वीकार किया है कि 9.7.2005 को धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज किए गए बयान से पहले, उसने पूरे गांव में घटना के बारे में किसी को नहीं बताया था। हमें अ०सा०-4 का यह आचरण कुछ असामान्य लगता है। इस तरह के वीभत्स कृत्य को देखने के बाद, किसी व्यक्ति का स्वाभाविक आचरण तुरंत परिवार के सदस्यों या उसके करीबी लोगों को इसका खुलासा करना होगा। मृतक के बेटे या परिवार के किसी अन्य व्यक्ति को 10 दिनों से अधिक समय तक घटना के बारे में नहीं बताने का उसका कृत्य संदिग्ध है।

46. श्री दुर्गेश कुमार सिंह, सूचनाकर्ता के अधिवक्ता का कहना है कि पहले विवेचनाधिकारी ने पक्षपातपूर्ण तरीके से काम किया और दूसरे विवेचनाधिकारी द्वारा जांच संभालने के बाद ही अ०सा०-4 का बयान दर्ज किया गया था, इस स्थिति की जांच करने की आवश्यकता है। यह बात और है कि केवल दूसरे विवेचनाधिकारी ने अ०सा०-4 का बयान दर्ज किया था। हालांकि, अ०सा०-4 ने कभी नहीं कहा कि उसने घटना के बारे में किसी को सूचित किया या अपना बयान दर्ज कराने की पेशकश की या विवेचनाधिकारी द्वारा उसका बयान दर्ज नहीं किया गया। विवेचनाधिकारी ने अदालत के समक्ष अपने बयान में कहा है कि उन्होंने घटना के दिन चंद्रशेखर राय का पता लगाने की कोशिश की लेकिन वह उपलब्ध नहीं थे। वह 28.6.2005 को अ०सा०-4 के घर आया लेकिन उसे सूचित किया गया कि अ०सा०-4 गाजीपुर गया था। 30-6-2005 को अ०सा०-4 इतना अच्छा नहीं था कि उसका बयान दर्ज किया जा सके। चूंकि अ०सा०-4 ने अपनी गवाही में यह आरोप नहीं लगाया है कि वह अपना बयान दर्ज करने के लिए उपलब्ध था या उसका बयान वास्तव में दर्ज नहीं किया गया था, हालांकि उसने इस तरह के तथ्य को सूचित किया था, इसलिए इस न्यायालय के लिए इस आधार पर बयान दर्ज करने में देरी के स्पष्टीकरण को स्वीकार करना मुश्किल होगा कि पहले विवेचनाधिकारी ने निष्पक्ष रूप से कार्य नहीं किया। अ०सा०-4 ने अपनी गवाही में यह भी कहा है कि जब वह शिव कुमार यादव के घर में घुसा, तो उसे केवल 18-20 साल की एक लड़की मिली, जो खाना बना रही थी। हालांकि, इस लड़की से न तो पूछताछ की गई है और न ही सबूत के तौर पर पेश किया गया है। अ०सा०-4 ने ये नहीं कहा है कि घटना के समय घर में कोई और मौजूद था।

47. हमने अ०सा०-4 की गवाही की सावधानीपूर्वक जांच की है और एक हितबद्ध मौका गवाह की कसौटी पर इसका विश्लेषण करने पर हमें उसकी गवाही पर भरोसा करना मुश्किल लगता है जो अन्यथा कई विसंगतियों और सुधारों को अस्पष्ट छोड़ देता है। अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करने वाले अन्य गवाह अ०सा०-5, 6 और 18 हैं।

अवैधानिक

48. जहां तक अ०सा०-5 का संबंध है, वह पहले सूचनाकर्ता का पोता है। इस तरह, वह भी मृतक से संबंधित है। अ०सा०-5 एक गवाह है जिसने खून से सना और सादा मिट्टी आदि की बरामदगी साबित की है। वह दो छर्रों और दो खाली खोखे की बरामदगी का गवाह है। इसके अलावा, उन्होंने कहा है कि उन्होंने मृतक को परेशान देखा और पूछने पर उन्हें सूचित किया गया कि किसी ने उन्हें लगभग 10-15 दिन पहले धमकी दी थी। हालांकि, जिरह में, इस गवाह का सामना धारा 161 द०प्र०स० के तहत उसके पिछले बयान से कराया गया, जिसमें विवेचनाधिकारी को ऐसा कोई खुलासा नहीं किया गया था। अ०सा०-5 का संस्करण मृतक के बारे में घटना से लगभग 10-15 दिन पहले धमकी मिली थी, इस प्रकार उसके द्वारा पहले जो कहा गया था उससे स्पष्ट सुधार है। आरोपी गोरा राय के साथ तीन लोगों ने धमकी दी थी, उसकी आगे की गवाही को भी धारा 161 द०प्र०स० के तहत उसके बयान में उल्लेख नहीं किया गया है। अ०सा०-5 का बयान कि परिवार के सदस्यों ने रात में लगभग 2.30 बजे भोजन किया था, परीक्षण के दौरान उसके बयान में भी सुधार किया गया है, जिसका धारा 161 द०प्र०स० के तहत दिए गए उसके बयान में पहले कोई संदर्भ नहीं दिया गया है। इस प्रकार अ०सा०-5 की गवाही अभियोजन पक्ष के मामले में मदद नहीं करती है।

49. अ०सा०-6 प्राथमिकी का मुंशी है और हालांकि उसका बयान कि वह प्राथमिकी दर्ज करने के लिए थाना नहीं गया था, विवेचनाधिकारी के बयान के संदर्भ में पूछताछ की जाती है, लेकिन हम गहराई से विचार करने का इरादा नहीं रखते हैं क्योंकि हम इसे बहुत महत्व का मामला नहीं पाते हैं। यह निर्विवाद है कि लिखित रिपोर्ट अ०सा०-6 द्वारा लिखी गई थी और यह विधिवत साबित हुई है। अ०सा०-6 की गवाही इस हद तक सीमित है।

50. प्रस्तुत मामले में घटना का स्थान शिव कुमार यादव के घर की छत है। सुनवाई के दौरान शिवकुमार यादव को साक्ष्य के रूप में पेश नहीं किया गया है। हालांकि, उनका बयान धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज किया गया है, जिसमें कहा गया है कि चंद्र देव यादव उनके भाई हैं। चंद्रदेव यादव ने अपना घर अपनी बेटी तारा यादव को दे दिया था, लेकिन आमतौर पर लोग उसके घर को शिव कुमार यादव का ही मानते हैं। तारा यादव को अ०सा०-7 के रूप में पेश किया गया है। उसने स्पष्ट रूप से कहा है कि वह अपनी बेटी के साथ शौच के लिए दिन के समय निकली थी और सूर्योदय से पहले लौट आई थी। उसने अपने घर पर बड़ी संख्या में लोगों को देखा। उसे यह भी पता चला कि एक शव छत पर था और दोपहर में उसे हटा दिया गया था। उसने यह भी कहा कि जब वह सूर्योदय से पहले लौटी, तब तक पुलिस कर्मी पहले ही घटनास्थल पर पहुंच चुके थे।

51. बचाव पक्ष की ओर से, अभियोजन पक्ष द्वारा खुलासा की गई घटना के समय पर सवाल उठाते हुए एक तर्क उठाया गया है। अ०सा०-7 के बयान पर भरोसा किया जाता है कि यह घटना सूर्योदय से पहले हुई थी। हमें बताया गया है कि घटना के दिन सूर्योदय सुबह लगभग 5.06 बजे था। अ०सा०-7 की गवाही पर प्रबल निर्भरता रखी गई है क्योंकि वह एक स्वतंत्र व्यक्ति है। अ०सा०-3 की गवाही पर भी भरोसा किया गया है, जो शव परीक्षण सर्जन है

अनुवादित

और उसने स्पष्ट रूप से गवाही दी है कि मृतक ने घटना से लगभग 3.00 से 3.30 घंटे पहले अपना भोजन किया था। डॉक्टर की ऐसी राय इस तथ्य पर आधारित है कि मृतक के पेट में अर्ध-पचा हुआ भोजन पाया गया था। यह भी आग्रह किया जाता है कि आम तौर पर लोग गांवों में लगभग 8.00-9.00 बजे अपना भोजन करते हैं और इसलिए, यह तथ्य कि मृतक के पेट में अर्ध-पचा हुआ भोजन पाया गया था, यह दर्शाता है कि यह घटना अभियोजन पक्ष द्वारा बताए गए समय से बहुत पहले हुई थी। बचाव पक्ष के अनुसार घटना सुबह लगभग 3.00-4.00 बजे हुई होगी। घटना के समय के बल पर अ०सा०-4 की उपस्थिति पर भी सवाल उठाए जाते हैं।

52. अभियोजन पक्ष चिकित्सीय साक्ष्य को पूरा करने के लिए गवाहों की गवाही के साथ सामने आया है, जिसके अनुसार मृतक सहित पूरे परिवार ने रात में लगभग 2.30 बजे भोजन किया था। हालांकि, इस संबंध में अ०सा०-5 के बयान पर इस आधार पर सवाल उठाया गया है कि धारा 161 द०प्र०स० के तहत उसके बयान में पहले ऐसा खुलासा नहीं किया गया था। दूसरी गवाह, जो इस तरह के स्पष्टीकरण के साथ आती है, वह अ०सा०-18 श्रीमती बृजबाला राय है, जो मृतक की पत्नी है। उनका बयान कुछ अजीबोगरीब परिस्थितियों में उभरता है। आरोप पत्र में अ०सा०-18 को गवाह के तौर पर दिखाया गया है। हालांकि सुनवाई के दौरान उसे पेश नहीं किया गया। 03.04.2008 (पेपर संख्या-101बीए) को अभियोजन अधिकारी और अ०सा०-18 गिरजा शंकर राय द्वारा नियुक्त निजी अधिवक्ता द्वारा परीक्षण के दौरान अ०सा०-18 के निर्वहन के लिए हस्ताक्षरित एक आवेदन प्रस्तुत किया गया था। इस आवेदन को 03-04-2008 को ही अनुमति दे दी गई थी। धारा 313 द०प्र०स० के तहत आरोपी का बयान दर्ज करने के बाद अ०सा०-18 को साक्ष्य में पेश किया गया था। इस गवाह ने विशेष रूप से आरोप लगाया है कि पूरे परिवार और रिश्तेदार मृतक द्वारा प्राप्त धमकी पर चर्चा करने के लिए रात में बैठे थे और रात के लगभग 2.30 बजे ही उन सभी ने भोजन किया था। हालांकि, यह बयान धारा 161 द०प्र०स० के तहत पूछताछ के दौरान इस गवाह द्वारा पहले जो खुलासा किया गया था, उससे स्पष्ट सुधार है। अभियोजन पक्ष द्वारा इस तरह के सुधार के लिए कोई युक्तिसंगत स्पष्टीकरण प्रस्तुत नहीं किया गया है कि कार्यवाही के इतने देर से चरण में अस्तित्व में आया हो। अ०सा०-18 ने भी पहली बार कहा है कि उसका पति मोटरसाइकिल पर गया था। यह तथ्य भी एक सुधार है और धारा 161 द०प्र०स० के तहत उसके बयान में खुलासा नहीं किया गया था। हमें अ०सा०-18 की गवाही विश्वसनीय या भरोसेमंद नहीं लगती है, खासकर इसलिए कि उसके बयान में उसके द्वारा पहले विवेचनाधिकारी को बताए गए विवरण से महत्वपूर्ण और सुसंगत सुधार शामिल हैं। घटना के समय पर एक गंभीर संदेह उठाया जाता है क्योंकि मृतक के पेट में अर्ध-पचा हुआ भोजन का अस्तित्व बचाव पक्ष के संस्करण का समर्थन करता है कि घटना का समय सुबह 6.30 बजे से पहले था। घटना के समय में इस संदेह को अ०सा०-7 की गवाही से समर्थन मिलता है। अभियोजन पक्ष की ओर से अ०सा०-5 और अ०सा०-18 की गवाही में किए गए सुधारों द्वारा समय के पहलू पर चिकित्सा

अनुवादित

साक्ष्य की व्याख्या करने का हताश प्रयास भी अभियोजन पक्ष के मामले में संदेह पैदा करता है।

53. हमने निचली अदालत द्वारा पारित दोषसिद्धि और सजा के फैसले की जांच की है, जिसमें विचारण न्यायालय ने देखा है कि इस मामले में अभियोजन का एकमात्र सबूत अ०सा०-4 है, और उसकी गवाही पर मुख्य रूप से आरोपी अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराने और सजा देने के लिए भरोसा किया गया है। हमने विचारण न्यायालय के फैसले का अवलोकन किया है, जो यह नहीं दर्शाता है कि अ०सा०-4 की गवाही का विचारण न्यायालय द्वारा सावधानीपूर्वक विश्लेषण किया गया था। तथ्य यह है कि अ०सा०-4 एक संबंधित और मौका गवाह था जिसकी गवाही को बंद करने की जांच की आवश्यकता थी, जो निचली अदालत के ध्यान से पूरी तरह से बच गया है। 80 वर्ष की इतनी आयु में अ०सा०-4 के सीमित संकायों की भी अनदेखी की गई है। अभियोजन पक्ष के अनुसार घटना के समय के संबंध में उठाए गए प्रश्नों को भी केवल इस आधार पर अनदेखा किया गया है कि समय के आकलन में कुछ घंटों की भिन्नता की उम्मीद की जा सकती है। हालांकि विवेक के मामले के रूप में इस तरह के अंतर को नजरअंदाज किया जा सकता है, लेकिन जहां अभियोजन पक्ष के मामले को अन्य मापदंडों पर भी गंभीरता से चुनौती दी जाती है, अदालत को सबूतों को पूरी तरह से देखना होगा ताकि यह निर्धारित किया जा सके कि गवाहों के बयान में सच्चाई है या नहीं। अ०सा०-4 के बयान को दर्ज करने में हुई देरी भी निचली अदालत के ध्यान से बच गई है।

54. सूचनाकर्ता की ओर से उपस्थित श्री डी.के सिंह ने राजेश यादव और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2022) 12 एस.सी.सी. 200 में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर यह प्रस्तुत करने के लिए कड़ी मेहनत की है कि जहां जांच के मामले में महत्वपूर्ण और सुसंगत चूक हुई है, यह न्यायालय का कर्तव्य बन जाता है कि वह न्याय की सहायता के लिए कदम उठाए। फैसले के पैरा 21 और 39 पर भरोसा किया गया है, जिन्हें इसके बाद पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

"21. अभिव्यक्ति "पक्षद्रोही गवाह" को साक्ष्य अधिनियम में जगह नहीं मिलती है। इसका अर्थ प्रतिपक्षी के पक्ष में गवाही देने के लिए एक गवाह की गवाही के रूप में गढ़ा गया है। हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि एक गवाह उस पार्टी के पक्ष में गवाही दे सकता है जिसके पक्ष में उसे अपनी मुख्य परीक्षा के माध्यम से देना है, जबकि बाद में प्रतिपक्षी के पक्ष में अपना दृष्टिकोण बदल सकता है। इसी तरह, ऐसे मामले भी होंगे जहां एक गवाह मुख्य परीक्षा से शुरू होने वाले पक्ष के मामले का समर्थन नहीं करता है। इस वर्गीकरण को न्यायालय द्वारा ध्यान में रखा जाना चाहिए। पहली श्रेणी के संबंध में, न्यायालय को इस तरह के गवाह द्वारा दिए गए साक्ष्य का उचित मूल्यांकन करने की अपनी शक्ति से वंचित नहीं किया जाता है। यहां तक कि एक मुख्य परीक्षा को भी सबूत कहा जा सकता है। इस तरह के साक्ष्य जिरह के बाद पूरे हो जाएंगे। एक बार साक्ष्य पूरा हो जाने के बाद, उक्त गवाही समग्र रूप से अदालत के लिए एक तथ्य का आकलन और मूल्यांकन करने के लिए होती है। इसलिए, न केवल उस विशिष्ट

अनुवादित

भाग पर जिसमें एक गवाह मुकर गया है, बल्कि जिन परिस्थितियों में यह हुआ, उन पर भी विचार किया जा सकता है, विशेष रूप से ऐसी स्थिति में जहां मुख्य परीक्षा पूरी हो गई थी और बाद के बयान के पीछे के कारणों को इंगित करने वाली परिस्थितियां हैं, जिन्हें अदालत द्वारा समझा जा सकता है। यह न्यायालय के समक्ष एक मामला होने के नाते मूल्यांकन करने और सही निष्कर्ष पर पहुंचने की शक्तियों के भीतर है।

39. इससे पहले कि हम इस मामले से अलग हों, हम न्याय की तलाश को पटरी से उतारने के जानबूझकर किए गए प्रयास पर अपनी पीड़ा दर्ज करने के लिए विवश हैं। दिन-ब-दिन, हम उस खेदजनक स्थिति को देख रहे हैं जिसमें निजी गवाह स्पष्ट कारणों से मुकर जाते हैं। इस न्यायालय ने पहले ही इस तरह के खतरे को कम करने के लिए एक विधायी उपाय की आवश्यकता पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। विनोद कुमार [विनोद कुमार बनाम पंजाब राज्य, (2015) 3 एस.सी.सी. 220: (2015) 2 एस.सी.सी. (सीआरआई) 226: (2015) 1 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 712] में इस न्यायालय द्वारा जारी उपरोक्त निर्देशों के बावजूद, हम तथ्यात्मक परिदृश्य पर न्यायिक ध्यान देते हैं कि विचारण न्यायालय बिना किसी तुक या कारण के जिरह के समापन के बाद निजी गवाहों की जिरह को पल भर में स्थगित कर रहे हैं। मुख्य परीक्षा के पूरा होने के बाद लंबे समय तक स्थगन दिया जा रहा है, जो केवल समय बीतने के साथ कई बार बचाव पक्ष को उन्हें जीतने में मदद करता है। इस प्रकार, हम यह दोहराना उचित समझते हैं कि विचारण न्यायालय निजी गवाहों की जिरह को यथासंभव एक ही दिन पूरा करने का प्रयास करेंगे। इस खतरे को और कम करने के लिए, हम विचारण न्यायालय से उम्मीद करेंगे कि आधिकारिक गवाहों के साथ आगे बढ़ने से पहले निजी गवाहों की परीक्षा शुरू करें। इस निर्णय की एक प्रति सभी विचारण न्यायालय को परिचालित की जाएगी, जिसे संबंधित उच्च न्यायालयों के माध्यम से सुविधा प्रदान की जाएगी।

55. उच्चतम न्यायालय के समक्ष उपर्युक्त मामले में गवाह ने शुरू में मुख्य परीक्षा में अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया था, लेकिन बाद में, जिरह के चरण में मुकर गया। उच्चतम न्यायालय ने मुख्य परीक्षा में गवाह का बयान दर्ज किए जाने के बाद विचारण के स्थगन की निंदा की है क्योंकि ऐसे समय का उपयोग या तो गवाह का दिल जीतने या धमकियां देने आदि के लिए किया जाता है। प्रस्तुत मामले के तथ्यों में, जो गवाह मुकर गए हैं, उन्होंने मुख्य परीक्षा के स्तर पर अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया है। इसलिए, राजेश यादव में उच्चतम न्यायालय का निर्णय, हालांकि अदालत के मार्गदर्शन के लिए महत्वपूर्ण सिद्धांत निर्धारित करता है, लेकिन इस मामले के तथ्यों पर प्रासंगिकता नहीं दिखाया गया है।

56. श्री डी.के. सिंह ने शाहजा @ शाहजान इस्माइल मो. शेख बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 883, जिसमें उच्चतम न्यायालय ने चक्षुक साक्ष्य की मूल्यांकन के लिए तेरह सिद्धांत विकसित किए हैं। निर्णय के पैरा 27 और 28 जिसमें ये सिद्धांत शामिल हैं, को इसके बाद पुन: प्रस्तुत किया जाता है: - "

अनुवादित

27. चक्षुक साक्ष्य का मूल्यांकन एक कठिन काम है। चक्षुक संबंधी साक्ष्य के मूल्यांकन के लिए कोई निश्चित या सीधे-सटीक सूत्र नहीं है। एक आपराधिक मामले में चक्षुक साक्ष्य के मूल्यांकन के लिए न्यायिक रूप से विकसित सिद्धांतों को निम्नानुसार गिनाया जा सकता है:

I. एक गवाह के साक्ष्य की मूल्यांकन करते समय, दृष्टिकोण यह होना चाहिए कि क्या पूरे पढ़े गए गवाह के साक्ष्य में सच्चाई की रमक प्रतीत होती है। एक बार जब यह धारणा बन जाती है, तो न्यायालय के लिए निस्संदेह यह आवश्यक है कि वह विशेष रूप से साक्ष्य में बताई गई कमियों और दुर्बलताओं को ध्यान में रखते हुए सबूतों की जांच करे और उनका मूल्यांकन करे ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या यह गवाह द्वारा दिए गए साक्ष्य के सामान्य क्रम के खिलाफ है और क्या साक्ष्य का पहले का मूल्यांकन हिल गया है क्योंकि यह विश्वास के योग्य नहीं है।

II. यदि न्यायालय जिसके समक्ष गवाह साक्ष्य देता है, को गवाह द्वारा दिए गए साक्ष्य के सामान्य कार्यकाल के बारे में राय बनाने का अवसर मिलता है, तो अपीलीय न्यायालय को, जिसे यह लाभ नहीं था, को विचारण न्यायालय द्वारा साक्ष्य की मूल्यांकन के लिए उचित वजन देना होगा और जब तक कि वजनदार और दुर्जेय कारण न हों, मामूली बदलाव या दुर्बलता के आधार पर साक्ष्य को तुच्छ विवरण के मामले में अस्वीकार करना उचित नहीं होगा।

III. जब चश्मदीद गवाह की लंबी जांच की जाती है तो उसके लिए कुछ विसंगतियां करना काफी संभव है। लेकिन अदालतों को यह ध्यान में रखना चाहिए कि यह केवल तभी होता है जब किसी गवाह के साक्ष्य में विसंगतियां उसके संस्करण की विश्वसनीयता के साथ इतनी असंगत होती हैं कि अदालत उसके साक्ष्य को खारिज करने में न्यायसंगत होती है।

IV. मामले के मूल को न छूने वाले तुच्छ मामलों पर मामूली विसंगतियां, साक्ष्य से यहां या वहां संदर्भ से बाहर तोड़े-मरोड़े गए वाक्यों को लेकर अति तकनीकी दृष्टिकोण, विवेचनाधिकारी द्वारा की गई कुछ तकनीकी त्रुटि को महत्व देना मामले की जड़ तक नहीं जाना, आमतौर पर समग्र रूप से साक्ष्य की अस्वीकृति की अनुमति नहीं देगा।

V. किसी घटना के वर्णन में आने वाली भिन्नता पर अपनाया जाने वाला बहुत गंभीर दृष्टिकोण (या तो दो गवाहों के साक्ष्य के बीच या एक ही गवाह के दो बयानों के बीच) न्यायिक जांच के लिए एक अवास्तविक दृष्टिकोण है।

VI. बड़े पैमाने पर एक गवाह से फोटोग्राफिक मेमोरी रखने और किसी घटना के विवरण को याद करने की उम्मीद नहीं की जा सकती है। ऐसा नहीं है कि मानसिक स्क्रीन पर वीडियो टेप को फिर से चलाया जाता है।

VII. आमतौर पर ऐसा होता है कि एक गवाह घटनाओं से आगे निकल जाता है। गवाह उस घटना का अनुमान नहीं लगा सकता था जिसमें अक्सर आश्चर्य का तत्व होता है। इसलिए मानसिक संकायों से विवरणों को अवशोषित करने के लिए अभ्यस्त होने की उम्मीद नहीं की जा सकती है।

VIII. अवलोकन की शक्तियाँ एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में भिन्न होती हैं। जो एक नोटिस कर सकता है, दूसरा नहीं कर सकता

अप्रमाणित

है। एक वस्तु या आंदोलन एक व्यक्ति के दिमाग पर अपनी छवि को उभारता हो सकता है जबकि यह दूसरे के हिस्से पर किसी का ध्यान नहीं जा सकता है।

IX. बड़े पैमाने पर लोग बातचीत को सही ढंग से याद नहीं कर सकते हैं और उनके द्वारा उपयोग किए गए या उनके द्वारा सुने गए शब्दों को पुन: पेश नहीं कर सकते हैं। वे केवल बातचीत के मुख्य उद्देश्य को याद कर सकते हैं। गवाह से मानव टेप रिकॉर्डर होने की उम्मीद करना अवास्तविक है।

X. किसी घटना के सही समय, या किसी घटना की समय अवधि के संबंध में, आमतौर पर, लोग पूछताछ के समय उस समय की प्रेरणा पर क़यास लगाकर अपना अनुमान लगाते हैं। और कोई भी लोगों से ऐसे मामलों में बहुत सटीक या विश्वसनीय अनुमान लगाने की उम्मीद नहीं कर सकता है। फिर, यह व्यक्तियों के समय-बोध पर निर्भर करता है जो एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में भिन्न होता है।

XI. आमतौर पर एक गवाह से उन घटनाओं के अनुक्रम को सटीक रूप से याद करने की उम्मीद नहीं की जा सकती है जो तेजी से उत्तराधिकार में या थोड़े समय में होती हैं। एक गवाह भ्रमित होने के लिए उत्तरदायी है, या बाद में पूछताछ करने पर मिश्रित होता है।

XII. एक गवाह, हालांकि पूरी तरह से सच्चा है, अदालत के माहौल और अधिवक्ता द्वारा भेदी जिरह से अभिभूत होने के लिए संभावित है और घबराहट से तथ्यों को मिश्रित कर देता है, घटनाओं के अनुक्रम के बारे में भ्रमित हो जाता है, या क्षणिक उत्तेजना पर कल्पना से विवरण भरता है। गवाह का अवचेतन मन कभी-कभी मूर्ख दिखे जाने या अविश्वास किए जाने के डर से संचालित होता है, हालांकि गवाह उसके द्वारा देखी गई घटना का सच्चा और ईमानदार विवरण दे रहा है।

XIII. एक पूर्व कथन, हालांकि साक्ष्य के साथ असंगत प्रतीत होता है, जरूरी नहीं कि विरोधाभास के लिए पर्याप्त हो। जब तक पूर्व कथन में बाद के कथन को खंडित करने की क्षमता नहीं है, भले ही बाद का कथन कुछ हद तक पूर्व के साथ भिन्न हो, यह उस गवाह का खंडन करने में सहायक नहीं होगा।

[देखें भरवाड़ा भोगीनभाई हिरजीभाई बनाम गुजरात राज्य, 1983 सीआरआई एलजे 1096: (1983) 3 एस.सी.सी. 217: एआईआर 1983 एस.सी. 753, लीला राम बनाम हरियाणा राज्य, (1999) 9 एस.सी.सी. 525: एआईआर 1999 एस.सी. 3717, और तहसीलदार सिंह बनाम यूपी राज्य, एआईआर 1959 एस.सी. 1012]

28. इसे सीधे शब्दों में कहें, चश्मदीद गवाहों के साक्ष्य के मूल्य का आकलन करने में, दो प्रमुख विचार हैं, मामले की परिस्थितियों में, घटनास्थल पर या ऐसी स्थितियों में उनकी उपस्थिति पर विश्वास करना संभव है क्योंकि उनके लिए उनके द्वारा प्रस्तुत तथ्यों को देखना संभव होगा और दूसरी बात, क्या उनके साक्ष्य में स्वाभाविक रूप से असंभव या अविश्वसनीय कुछ भी है। इन दोनों विचारों के संबंध में, परिस्थितियों को या तो उन गवाहों से स्वयं प्राप्त किया गया है या अन्य साक्ष्य द्वारा स्थापित किया गया है जो उनकी उपस्थिति को असंभाव्य बनाने या उनके बयानों की सत्यता को बदनाम करने के लिए प्रवृत्त हैं, उस मूल्य पर असर डालेंगे जो एक न्यायालय उनके साक्ष्य से जोड़ेगा। यद्यपि ऐसे मामलों में

अप्रमाणित

जहां अभियुक्त की दलील केवल इनकार है, फिर भी अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य की जांच अपने गुणों के आधार पर की जानी है, जहां अभियुक्त एक निश्चित दलील देता है या एक सकारात्मक मामला सामने रखता है जो अभियोजन पक्ष के साथ असंगत है, ऐसी दलील या मामले की प्रकृति और इसके संबंध में संभावनाओं को भी अभियोजन पक्ष के साक्ष्य का मूल्य का आकलन करते समय ध्यान में रखना होगा।

57. चक्षुक साक्ष्य के मूल्यांकन के लिए उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित पहला सिद्धांत यह है कि गवाह के साक्ष्य को यह पता लगाने के लिए समग्र रूप से पढ़ा जाना चाहिए कि उसके चारों ओर सच्चाई की रमक है। हमने एक इच्छुक मौका गवाह की कसौटी पर एकमात्र चश्मदीद गवाह की गवाही की सावधानीपूर्वक जांच की है और हम पाते हैं कि उसकी गवाही अस्थिर है और अदालत के विश्वास को प्रेरित नहीं करती है। मोहम्मद जब्बार अली और अन्य बनाम असम राज्य में, 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 1440 में रिपोर्ट किया गया, उच्चतम न्यायालय ने रिपोर्ट के पैराग्राफ संख्या-55 से 58 में हितबद्ध गवाह की गवाही की जांच के लिए पैरामीटर निर्धारित किए, जिन्हें इसके बाद निकाला गया है: -

"55. यह ध्यान दिया जाता है कि इस मामले में गवाहों की गवाही के लिए बहुत वजन जोड़ा गया है। पूर्वोक्त तथ्य के संबंध में कि इस न्यायालय ने कानून की अदालत में दिए गए किसी भी दागी सबूत को खारिज करने के लिए गवाहों की विश्वसनीयता की जांच की है। अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह दलील दी गई कि अभियोजन पक्ष प्रस्तुत मामले में किसी भी स्वतंत्र गवाह की जांच करने में विफल रहा है और गवाह एक दूसरे के रिश्तेदार हैं। इस न्यायालय को कई मामलों में संबंधित/हितबद्ध/पक्षपातपूर्ण गवाहों के उक्त पहलू और ऐसे गवाहों की विश्वसनीयता पर विचार करने का अवसर मिला है। यह न्यायालय इस स्थापित सिद्धांत के प्रति सचेत है कि सिर्फ इसलिए कि गवाह संबंधित/हितबद्ध/पक्षपातपूर्ण गवाह हैं, उनकी गवाही की अवहेलना नहीं की जा सकती है; हालांकि, यह भी सच है कि जब गवाह संबंधित/हितबद्ध होते हैं, तो उनकी गवाही की अधिक सावधानी और सतर्कता से जांच की जानी चाहिए। गंगाधर बेहरा और अन्य बनाम उड़ीसा राज्य (2002) 8 एस.सी.सी. 381 के मामले में, इस न्यायालय ने कहा कि ऐसे संबंधित गवाहों की गवाही का विश्लेषण इसकी विश्वसनीयता के लिए सावधानी के साथ किया जाना चाहिए।

56. राजू उर्फ बालचंद्रन और अन्य बनाम तमिलनाडु राज्य (2012) 12 एस.सी.सी. 701 में, इस न्यायालय ने कहा:

"29. सार यह है कि संबंधित या हितबद्ध गवाह के साक्ष्य की सावधानीपूर्वक और सतर्कतापूर्वक जांच की जानी चाहिए। ऐसे मामले में जहां संबंधित और हितबद्ध गवाह की हमलावर के साथ कुछ दुश्मनी हो सकती है, वज़न को बढ़ाने की आवश्यकता होगी और समझदार जांच के मानक को लागू करके गवाह के साक्ष्य की जांच करनी होगी। हालाँकि, यह केवल विवेक का नियम है और कानून का नहीं है, जैसा कि दलीप सिंह [ए.आई.आर. 1953 एस.सी. 364] में माना गया है और सारवन

अनुवादित

सिंह [(1976) 4 एस.सी.सी. 369] में निम्नलिखित शब्दों में दोहराया गया है: (सरवन सिंह मामला [(1976) 4 एस.सी.सी. 369, पृष्ठ 376, पैरा 10)

"10. ... हितबद्ध गवाह के साक्ष्य में कोई दुर्बलता नहीं होती है, लेकिन न्यायालयों को विवेक के नियम के रूप में आवश्यकता होती है, न कि कानून के नियम के रूप में, कि ऐसे गवाहों के साक्ष्य की थोड़ी सावधानी से जांच की जानी चाहिए। एक बार जब यह दृष्टिकोण बन जाता है और अदालत संतुष्ट हो जाती है कि हितबद्ध गवाहों के साक्ष्य में सच्चाई की रमक है, तो ऐसे सबूतों पर बिना पुष्टि के भी भरोसा किया जा सकता है।

57. इसी मुद्दे पर आगे बढ़ते हुए, यह ध्यान दिया जाता है कि गणपति और अन्य बनाम तमिलनाडु राज्य (2018) 5 एस.सी.सी. 549 के मामले में, इस न्यायालय ने माना कि कई मामलों में जब घटना के समय केवल परिवार के सदस्य मौजूद होते हैं और अभियोजन पक्ष का मामला केवल उनके साक्ष्य पर आधारित होता है, न्यायालयों को सतर्क रहना होगा और मुकदमे की प्रक्रिया में सबूतों का सावधानीपूर्वक मूल्यांकन करना होगा।

58. इस प्रकार यह तय किया गया है कि संबंधित गवाहों के साक्ष्य को विवेकपूर्ण जांच लागू करके विचार किया जाना है। ....."

58. इस मामले में अभियोजन पक्ष के नेतृत्व में साक्ष्य के मूल्यांकन पर और ऊपर की गई चर्चाओं के आधार पर, हम पाते हैं कि धारा 302, 506 भ०द०वि० के तहत आरोपी अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराने के लिए एकमात्र चश्मदीद गवाह, अर्थात् अ०सा०-4 की गवाही पर भरोसा करना सुरक्षित नहीं होगा। इसलिए, आरोपी अपीलकर्ताओं के अपराध के संबंध में निचली अदालत द्वारा प्रतिबिंबित किए गए निष्कर्ष को उलटा जा सकता है।

59. हमने इस तथ्य को भी ध्यान में रखा है कि आरोपी अपीलकर्ता सोलह वर्षों से अधिक समय से कैद में हैं और एक बार उनके निहितार्थ के संबंध में संदेह उठाया जाता है तो उन्हें दोषी ठहराना सुरक्षित नहीं होगा।

60. तदनुसार, यह अपील सफल होती है और अनुमति दी जाती है। दिनांक 26.09.2014 के आक्षेपित निर्णय और आदेश को एतद्द्वारा रद्द किया जाता है और अपीलकर्ताओं को उनके खिलाफ लगाए गए आरोपों से बरी किया जाता है। चूंकि अपीलकर्ताओं को पहले ही उच्चतम न्यायालय द्वारा जमानत पर रिहा कर दिया गया है, इसलिए उनकी ज़मानत और बांड को मुक्त कर दिया जाएगा और उन्हें, जब तक कि वे धारा 437 ए द०प्र०स० के अनुपालन के अधीन किसी अन्य मामले में वांछित न हों, तब तक मुक्त किया जाएगा।

(2023) 6 ILRA 776

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.04.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा

माननीय न्यायमूर्ति मनीष कुमार निगम

आपराधिक अपील संख्या 4499 वर्ष 2015

राम नयन एवं अन्य **अपीलकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **विपरीत पक्ष**

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता:

अप्रमाणित

श्री बिपिन कुमार त्रिपाठी, श्री दिनेश कुमार पांडे, श्री कमलेश कुमार निषाद, श्री मनु शर्मा, श्री नज़रुल इस्लाम जाफ़री, श्री प्रदीप कुमार चौरसिया, श्री राम अवध मौर्य

विपरीत पक्ष के अधिवक्ता:

जी.ए., श्री पवन कुमार, श्री संजीव कुमार सिंह

दंड विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 147, 302/149 और 201 - हत्या के लिए दण्ड - दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील - आजीवन कारावास - किशोर न्याय (बालकों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2000 - धारा 2(एल) - किशोर न्याय (बालकों की देखभाल और संरक्षण) नियम, 2007 - नियम 12(3)(बी) - किशोर न्याय अधिनियम, 1986 - धारा 2(एच) - किशोर न्याय (बालकों की देखभाल और संरक्षण) संशोधन अधिनियम, 2006 - धारा 2(एल) - किशोर न्याय (बालकों की देखभाल एवं संरक्षण) अधिनियम, 2015 - धारा 2(12), 2(13), 9, 94 (2), 111 - किशोर न्याय (बालकों की देखभाल एवं संरक्षण) आदर्श नियम, 2016 - नियम 90 - सूचक का पुत्र (मृतक) अपीलार्थी में से एक के साथ गया था और वापस नहीं लौटा - गुमशुदगी की रिपोर्ट दर्ज की गई - उसी आरोपी की निशानदेही पर शव मिला - आरोप पत्र पेश किया गया - दोषी ठहराया गया - अपील के लंबित रहने के दौरान, अपीलार्थी क्रमांक 3 ने आवेदन दायर किया - घटना की तारीख पर किशोर होने की दलील - रिपोर्ट मांगी गई - किशोर घोषित किया गया - माना गया, जांच करने में जेजेबी द्वारा कोई अवैधता नहीं की गई, उचित प्रक्रिया का पालन किया गया, क्योंकि उक्त आदेश को राज्य या सूचक द्वारा कभी चुनौती नहीं दी गई और यह अंतिम हो गया - 2015 16-18 वर्ष की आयु के बच्चों द्वारा किए गए अपराधों की देखभाल करता है - उक्त प्रावधान अभियुक्त पर लागू होते हैं, भले ही दावा 18 वर्ष की आयु प्राप्त करने के बाद किया गया हो और किसी भी न्यायालय में विधि से संघर्षरत किशोर के संबंध में परीक्षण, जांच, पुनरीक्षण, अपील के अंतिम चरण में किया गया हो। (पैरा 3, 4, 5, 27, 33, 35, 37)

आपराधिक अपील आंशिक रूप से स्वीकृत। (ई-13)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. प्रताप सिंह बनाम झारखंड राज्य और अन्य (2005) 3 एससीसी 551 में रिपोर्ट किया गया
2. धर्मबीर बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) और अन्य (2010) 5 एससीसी 344, (पैरा 10 से 15) में रिपोर्ट की गई
3. अर्नित दास बनाम राज्य ऑफ बिहार (2000) 5 एससीसी 488 में रिपोर्ट की गई
4. उमेश चंद्र बनाम राज्य ऑफ राज (1982) 2 एससीसी 202 में रिपोर्ट की गई
5. विनोद कटारा बनाम राज्य ऑफ यू.पी. (2022) एससीसी ऑनलाइन एससी 1204, (पैरा 26) में रिपोर्ट की गई
6. संजय पटेल बनाम राज्य ऑफ यू.पी. (2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 450 में रिपोर्ट की गई
7. वनीत कुमार गुप्ता @ धर्मिंदर बनाम राज्य ऑफ पंजाब (2009) 17 एससीसी 587 में रिपोर्ट की गई
8. लखनलाल बनाम राज्य ऑफ बिहार (2011) 2 एससीसी 251 में रिपोर्ट की गई

अनुवादित

9. अमित सिंह बनाम राज्य ऑफ महाराष्ट्र और अन्य (2011) 13 एससीसी 744 में रिपोर्ट की गई

10. कालू @ अमित बनाम राज्य ऑफ हर. (2012) 3 एससीसी (सीआरएल) 761 में रिपोर्ट की गई

11. बबला @ दिनेश बनाम राज्य ऑफ उत्तराखंड (2012) 3 एससीसी (सीआरएल) 1067 में रिपोर्ट की गई

(माननीय न्यायमूर्ति मनीष कुमार निगम द्वारा वितरित)

1. अपीलकर्ता संख्या-3, सुरेश @ सुत्तूर और राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

2. वर्तमान आपराधिक अपील अपीलकर्ता संख्या-1-राम नयन, अपीलकर्ता संख्या-2-चेतमान, अपीलकर्ता संख्या-3-सुरेश @ सुत्तूर, अपीलकर्ता संख्या-4-राम सूरत और अपीलकर्ता संख्या-5-राघव शरण द्वारा सत्र विचारण संख्या-40 वर्ष 2000 (राज्य बनाम राघव शरण) में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-2, महाराजगंज द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 30.9.2015 के खिलाफ दायर की गई है, जिसमें अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया गया है और धारा 302/149 के तहत आजीवन कारावास, धारा 147 भ०द०वि० के तहत दो साल की कैद और धारा 201 भ०द०वि० के तहत तीन साल की कैद की सजा सुनाई गई है।

3. सुरेश @ सुत्तूर, चेतमान पुत्र दीप नारायण, राम सूरत पुत्र चेतमान, राम नयन पुत्र चौथी केवट, राघव शरण पुत्र चेतमान के खिलाफ मुकदमा अपराध संख्या-63 वर्ष 1993 में धारा 147, 302, 201 भ०द०वि०, थाना-कोतवाली, जिला महाराजगंज के खिलाफ प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी। अभियोजन पक्ष की कहानी के अनुसार 5.3.1993 को अभियुक्त सुरेश @ सुत्तूर यादव ने पहले सूचनाकर्ता के बेटे उदय राज को उसके घर से ले लिया था और तब से उदय राज वापस नहीं आया था। पुलिस में गुमशुदगी की रिपोर्ट दर्ज कराई गई। सुरेश @ सुत्तूर यादव को गिरफ्तार कर लिया गया था और मृतक उदय राज के शव को पुलिस द्वारा बरामद किया गया था। विवेचना के बाद पुलिस द्वारा अपीलकर्ताओं के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था। हालांकि, राघव शरण के खिलाफ कोई आरोप पत्र दाखिल नहीं किया गया था। शुरुआत में आरोपी राघव शरण को पुलिस द्वारा गिरफ्तार नहीं किया जा सका क्योंकि वह घटना के बाद से फरार था। बाद में जब अभियुक्त राघव शरण को गिरफ्तार किया गया तो पुलिस द्वारा राघव शरण के विरुद्ध पूरक आरोप पत्र दायर किया गया। तत्पश्चात् विद्वान मजिस्ट्रेट ने दिनांक 11-8-1998 और 2-8-2000 के आदेशों के तहत मामले को सत्र न्यायालय के समक्ष विचारण के लिए उपार्पित कर दिया। सत्र परीक्षण संख्या-31 वर्ष 1998 (राज्य बनाम सुरेश @ सुत्तूर और अन्य) और सत्र विचारण संख्या-40 वर्ष 2000 (राज्य बनाम राघव शरण) सत्र न्यायालय द्वारा एक साथ विचारण किया गया था और सभी अभियुक्त-अपीलकर्ताओं को सत्र न्यायाधीश द्वारा निर्णय और आदेश दिनांक 30.9.2015 के तहत दोषी ठहराया गया और सजा सुनाई गई।

4. प्रस्तुत अपील के लंबित रहने के दौरान, अपीलकर्ता संख्या-3 सुरेश @ सुत्तूर द्वारा

अनुवादित

आवेदन संख्या-91499 वर्ष 2016 में एक आवेदन दायर किया गया था, जिसमें प्रार्थना की गई थी कि अपीलकर्ता संख्या-3 की किशोरावस्था के संबंध में एक जांच की जाए, जो अपराध की कथित तारीख यानी 05.03.1993 को नाबालिग था और इस संबंध में आवश्यक आदेश पारित किए जाएं। किशोरावस्था का दावा इस आधार पर किया गया था कि अपीलकर्ता संख्या-3, सुरेश @ सुत्तूर को 05.09.1983 को कक्षा 2 में भर्ती कराया गया था और 25.4.1987 को कक्षा-5 पास की है। उनकी अंकपत्र में उल्लिखित जन्म तिथि 18.3.1977 थी जिसे प्रधानाचार्य, राम आधार जूनियर हाई स्कूल गौशाला, महाराजगंज द्वारा जारी किया गया था। आवेदक/अपीलकर्ता संख्या-3 ने संस्था द्वारा जारी किए गए स्थानांतरण प्रमाण पत्र और अपनी किशोरावस्था पर विचार करने के लिए आवेदन के समर्थन में दायर हलफनामे में उल्लिखित अन्य दस्तावेजों पर भरोसा किया। इस न्यायालय ने दिनांक 10.10.2017 के आदेश के तहत जिला न्यायाधीश, महाराजगंज को अपीलकर्ता संख्या-3 सुरेश @ सुत्तूर द्वारा की गई नाबालिग की दलील के संबंध में संबंधित किशोर न्याय बोर्ड से जांच कराने का निर्देश दिया और उसे आदेश की तारीख से दो महीने के भीतर अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए कहा। दिनांक 08.12.2017 को किशोर न्याय बोर्ड, महाराजगंज द्वारा इस आशय की रिपोर्ट प्रस्तुत की गई कि घटना की तिथि अर्थात 5.3.1993 को अपीलकर्ता संख्या-3, सुरेश @ सुत्तूर की आयु 15 वर्ष 11 माह 17 दिन थी। किशोर न्याय बोर्ड, महराजगंज द्वारा विचार किए गए दस्तावेजों के साथ उपरोक्त रिपोर्ट को प्रस्तुत अपील में रिकॉर्ड पर रखा गया था। दिनांक 31.10.2019 के आदेश द्वारा अपर शासकीय अधिवक्ता को किशोर न्याय बोर्ड, महाराजगंज की रिपोर्ट पर चार सप्ताह के भीतर जवाबी हलफनामा दाखिल करने का समय दिया गया था। दिनांक 02.11.2020 को अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा एक शपथ पत्र दायर किया गया था, जिसमें उल्लेख किया गया था कि थाना-प्रभारी द्वारा लिखित में दिए गए निर्देशों के अनुसार, किशोर न्याय बोर्ड, महाराजगंज द्वारा पारित दिनांक 8.12.2017 के आदेश को चुनौती देने के लिए कोई अपील नहीं की गई है।

5. आज जब अपील की गई, तो अपीलकर्ता संख्या-3 के अधिवक्ता ने किशोर न्याय बोर्ड, महाराजगंज की 8.12.2017 की रिपोर्ट पर भरोसा करते हुए प्रस्तुत किया कि कथित घटना की तारीख यानी 5.3.1993 को, अपीलकर्ता संख्या-3, सुरेश @ सुत्तूर की उम्र लगभग 15 साल 11 महीने और 17 दिन थी यानी अपीलकर्ता संख्या-3 एक किशोर था जो प्रासंगिक तारीख पर कानून के उल्लंघन में था। अपीलकर्ता संख्या-3 के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अपीलकर्ता संख्या-3 को तुरंत रिहा किया जा सकता है। अपीलकर्ता संख्या-3 के अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि अपीलकर्ता संख्या-3 की जमानत याचिका को इस न्यायालय ने दिनांक 8.4.2016 के आदेश के तहत खारिज कर दिया था और आगे प्रस्तुत किया है कि अपीलकर्ता संख्या-3 सुरेश @ सुत्तूर को 29.9.2015 को न्यायिक हिरासत में लिया गया था और तब से, अपीलकर्ता संख्या-3 लगभग 8 साल से जेल में है। यह आगे तर्क दिया गया है कि किशोर न्याय (बच्चों की

अनुवादित

देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2015 (इसके बाद अधिनियम वर्ष 2015 के रूप में संदर्भित) की धारा 18(जी) के मद्देनजर, एक बच्चे को तीन साल से अधिक की अवधि के लिए एक विशेष घर में भेजा जा सकता है और जैसा कि अपीलकर्ता लगभग 8 वर्षों से जेल में रहा है, अपीलकर्ता तत्काल रिहा होने का हकदार है।

6. इसके विपरीत, अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि पहली बार, अपीलकर्ता ने प्रस्तुत अपील में इस न्यायालय के समक्ष किशोरावस्था का दावा उठाया है। इससे पहले यानी जांच के दौरान या अपने मुकदमे के दौरान, अपीलकर्ता संख्या-3 ने कभी भी खुद को किशोर होने का दावा नहीं किया।

7. अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा आगे यह तर्क दिया गया है कि कथित घटना दिनांक 5.3.1993 की है और पूर्वोक्त तिथि पर, किशोर न्याय अधिनियम, 1986 (इसके बाद अधिनियम वर्ष 1986 के रूप में संदर्भित) के प्रावधान लागू थे। किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 (जिसे इसके बाद अधिनियम वर्ष 2000 कहा गया है) की धारा 69 द्वारा अधिनियम वर्ष 1986 को निरस्त कर दिया गया था, जो 1.4.2001 को लागू हुआ था। अपर शासकीय अधिवक्ता प्रताप सिंह बनाम झारखंड राज्य और एक अन्य (2005)3 एस.सी.सी. 551 में रिपोर्ट किया गया, के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के संवैधानिक पीठ के फैसले पर भरोसा करता है जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह माना गया है कि अधिनियम वर्ष 2000, अधिनियम 1986 के तहत शुरू किए गए किसी भी न्यायालय/प्राधिकरण में लंबित कार्यवाही में लागू होगा और अधिनियम वर्ष 2000 के लागू होने पर लंबित था और व्यक्ति दिनांक 01-04-2001 की स्थिति के अनुसार 18 वर्ष की आयु पूरी नहीं की थी। अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा आगे यह तर्क दिया गया है कि 1.4.2001 को, अपीलकर्ता संख्या-3 ने 18 वर्ष की आयु पूरी कर ली थी और इस तरह, अधिनियम वर्ष 2000 के प्रावधान लागू नहीं होंगे। आगे यह तर्क दिया गया है कि अधिनियम वर्ष 1986 को निरस्त कर दिया गया था और अपीलकर्ता ने उस अवधि के दौरान अपनी किशोरावस्था का कोई दावा नहीं किया था जब अधिनियम वर्ष 1986 लागू था और इसलिए प्रताप सिंह (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले को देखते हुए इस पर विचार नहीं किया जा सकता है। अपर शासकीय अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि किशोर न्याय बोर्ड, महाराजगंज द्वारा की गई जांच कानून के अनुसार नहीं थी और उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता है।

8. जवाब में, अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि प्रताप सिंह (उपरोक्त) के मामले के बाद, अधिनियम संख्या-33 वर्ष 2006 द्वारा अधिनियम वर्ष 2000 में कुछ पुनरीक्षण किए गए थे। कानून के उल्लंघन में किशोर को परिभाषित करने वाली धारा 2(एल) को भी अधिनियम संख्या-33 वर्ष 2006 द्वारा संशोधित किया गया था; आगे धारा 7(ए) को अधिनियम वर्ष 2000 में जोड़ा गया था। अधिनियम वर्ष 2000 की धारा 16 के प्रावधान को अधिनियम संख्या-33 वर्ष 2006 की धारा 13 द्वारा भी संशोधित किया गया था।

9. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि धर्मबीर बनाम राज्य (दिल्ली के एनसीटी)

अप्रमाणित

और (2010)5 एस.सी.सी. 344 में रिपोर्ट किए गए एक अन्य मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि सभी व्यक्ति जो 1.4.2001 से पहले भी अपराध के कमीशन की तारीख को अठारह वर्ष से कम आयु के थे, उन्हें किशोर के रूप में माना जाएगा, भले ही किशोर का दावा, अधिनियम वर्ष 2000 के प्रारंभ होने की तारीख को या उससे पहले अठारह वर्ष की आयु प्राप्त करने के बाद और दोषी ठहराए जाने पर सजा भुगत रहे थे।

10. हमने प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार किया है। अधिनियम वर्ष 1986 और अधिनियम वर्ष 2000 के बीच उल्लेखनीय अंतर किशोर की परिभाषा के संबंध में है। अधिनियम वर्ष 1986 की धारा 2(एच) किशोर को निम्नानुसार परिभाषित करती है: -

"2(एच) किशोर का अर्थ है एक लड़का जो वर्ष 16 वर्ष की आयु में शामिल नहीं हुआ है या एक लड़की जो वर्ष 18 वर्ष की आयु में शामिल नहीं हुई है"

अधिनियम वर्ष 2000 की धारा 2 (के) किशोर को निम्नानुसार परिभाषित करती है: -

"2(ट) किशोर या बालक से अभिप्राय ऐसे व्यक्ति से है जिसने 18 वर्ष की आयु पूरी नहीं की है।

11. इस प्रकार अधिनियम वर्ष 1986 और अधिनियम वर्ष 2000 के बीच अंतर यह है कि अधिनियम वर्ष 1986 के तहत, किशोर का अर्थ है एक पुरुष किशोर जिसने 16 वर्ष की आयु प्राप्त नहीं की है और एक महिला किशोर जिसने वर्ष 18 वर्ष प्राप्त नहीं किया है। अधिनियम वर्ष 2000 में किशोर और पुरुष के बीच कोई भेद नहीं किया गया है। अधिनियम वर्ष 1986 में सीमा वर्ष 16 वर्ष को अधिनियम वर्ष 2000 में बढ़ाकर 18 वर्ष कर दिया गया है। अधिनियम वर्ष 2000 में, जहां भी "किशोर" शब्द दिखाई देता है, उसका अर्थ अब उस व्यक्ति से लिया जाएगा जिसने 18 वर्ष की आयु पूरी नहीं की है।

12. प्रताप सिंह (उपरोक्त) में, दिनांक 7.2.2003 के एक आदेश द्वारा एक संदर्भ दिया गया था, जिसमें अर्निट दास बनाम बिहार राज्य (2000) 5 एस.सी.सी. 488 और उमेश चंद्र बनाम राजस्थान राज्य (1982)2 एस.सी.सी. 202 में रिपोर्ट किए गए परस्पर विरोधी विचारों को देखते हुए, संवैधानिक पीठ ने दो प्रश्न तैयार किए, जो निम्नानुसार हैं: -

(क) क्या किशोर अपराधी के रूप में कथित अपराधी की आयु अवधारित करने के लिए घटना की तारीख गणना की जाएगी अथवा वह तारीख जब उसे न्यायालय/सक्षम प्राधिकारी के समक्ष पेश किया जाएगा।

(ख) क्या अधिनियम वर्ष 2000 उस मामले में लागू होगा जब 1986 के अधिनियम के तहत कार्यवाही शुरू की जाती है और लंबित है जब अधिनियम वर्ष 2000, 1.4.2001 से लागू किया गया था।

13. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अधिनियम वर्ष 1986 के प्रावधानों के साथ-साथ अधिनियम वर्ष 2000 के प्रावधानों पर विचार करने के बाद निम्नानुसार प्रश्न का उत्तर दिया: -

अधिनियम 2000, अधिनियम 1986 के तहत शुरू किए गए किसी भी न्यायालय या प्राधिकरण में लंबित कार्यवाही में लागू होगा जो अधिनियम 2000 के लागू होने के समय लंबित है और व्यक्ति ने 1.4.2001 को 18 वर्ष की आयु पूरी नहीं की है।

अनुवादित

पुनरीक्षण से पहले, अधिनियम वर्ष 2000 के तहत कानून के उल्लंघन में किशोर की परिभाषा निम्नानुसार थी: -

"धारा 2 (एल)(असंशोधित): - कानून के उल्लंघन में किशोर का अर्थ है एक किशोर जो कथित रूप से अपराध करने का आरोप है।

14. अधिनियम संख्या-33 वर्ष 2006 द्वारा पुनरीक्षण के बाद संशोधित धारा 2 (1) में कानून के उल्लंघन में किशोर की परिभाषा निम्नानुसार है: -

"2 (एल)(पुनरीक्षण के बाद), "कानून के उल्लंघन में किशोर" का अर्थ है किशोर जिस पर कथित रूप से अपराध करने का आरोप है और इस तरह के अपराध के कमीशन की तारीख को 18 वर्ष की आयु पूरी नहीं की है।

15. धर्मबीर बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) और अन्य (उपरोक्त) में, सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा-10, 11, 12, 13, 14 और 15 (पृष्ठ 346-348 पर) में निम्नानुसार व्यवस्था दी: -

10. अधिनियम वर्ष 2000 की धारा 20, निर्णायक प्रावधान, जैसा कि संशोधित किया गया है, निम्नानुसार है:

"20. लंबित मामलों के संबंध में विशेष उपबंध--इस अधिनियम में किसी बात के होते हुए भी, किसी क्षेत्र के किसी न्यायालय में उस तारीख को, जिस तारीख को यह अधिनियम उस क्षेत्र में प्रवृत्त होता है, किशोर के संबंध में लंबित सभी कार्यवाहियां उस न्यायालय में इस प्रकार जारी रहेंगी मानो यह अधिनियम पारित नहीं किया गया था और यदि न्यायालय पाता है कि किशोर ने कोई अपराध किया है, यह इस तरह के निष्कर्ष को रिकॉर्ड करेगा और किशोर के संबंध में कोई सजा पारित करने के बजाय, किशोर को बोर्ड को अग्रेषित करेगा जो इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार उस किशोर के संबंध में आदेश पारित करेगा जैसे कि इस अधिनियम के तहत जांच पर यह संतुष्ट हो गया था कि एक किशोर ने अपराध किया है: बशर्ते कि बोर्ड, आदेश में उल्लिखित किसी भी पर्याप्त और विशेष कारण के लिए, मामले की समीक्षा कर सकता है और ऐसे किशोर के हित में उचित आदेश पारित कर सकता है।

स्पष्टीकरण- किसी न्यायालय में विधि का उल्लंघन करने वाले किशोर के संबंध में विचारण, पुनरीक्षण, अपील या किसी अन्य आपराधिक कार्यवाही सहित सभी लंबित मामलों में, ऐसे किशोर की किशोरावस्था का निर्धारण धारा 2 के खंड (ठ) के अनुसार होगा, भले ही किशोर इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख को या उससे पहले ऐसा नहीं रह जाता है और इस अधिनियम के प्रावधान इस तरह लागू होंगे जैसे कि उक्त प्रावधान सभी उद्देश्यों के लिए और सभी भौतिक समय पर लागू किया गया था जब कथित अपराध किया गया था।

11. धारा 20 के स्पष्टीकरण की भाषा से यह स्पष्ट है कि सभी लंबित मामलों में, जिसमें न केवल विचारण बल्कि पुनरीक्षण या अपील आदि के माध्यम से बाद की कार्यवाही भी शामिल होगी, किशोर के किशोर होने का निर्धारण धारा 2 के खंड (एल) के संदर्भ में होना चाहिए, भले ही किशोर 1 अप्रैल को या उससे पहले, जब अधिनियम वर्ष 2000 लागू हुआ, किशोर न रहे और अधिनियम 2000 के प्रावधान इस प्रकार लागू होंगे मानो उक्त उपबंध सभी प्रयोजनों के लिए और सभी तात्विक समयों के लिए लागू था जब कथित अपराध किया गया था।

अनुवादित

12. अधिनियम वर्ष 2000 की धारा 2 के खंड (1) में प्रावधान है कि "कानून के उल्लंघन में किशोर" का अर्थ है एक "किशोर" जो कथित रूप से अपराध करता है और इस तरह के अपराध के कमीशन की तारीख को अठारहवें वर्ष की आयु पूरी नहीं करता है। धारा 20 न्यायालय को नियमित न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि के बाद भी किसी व्यक्ति की किशोरवस्था पर विचार करने और उसका निर्धारण करने में समर्थ बनाती है और दोषसिद्धि को बनाए रखते हुए न्यायालय को अधिरोपित दंडादेश को रद्द करने और अधिनियम वर्ष 2000 के उपबंधों के अनुसार दण्ड पारित करने के लिए संबंधित किशोर न्याय बोर्ड को मामले को अग्रेषित करने का अधिकार भी प्रदान करती है।

13. इस समय, 22 अगस्त, 2006 से अधिनियम वर्ष 2000 में अंतःस्थापित धारा 7-क पर ध्यान देना लाभदायक होगा। यह इस प्रकार है:

"7-ए। जब किसी न्यायालय के समक्ष किशोरावस्था का दावा किया जाता है तो अपनाई जाने वाली प्रक्रिया - (1) जब कभी किसी न्यायालय के समक्ष किशोरावस्था का दावा किया जाता है या न्यायालय की यह राय होती है कि कोई अभियुक्त व्यक्ति अपराध किए जाने की तारीख को किशोर था तो न्यायालय जांच करेगा, ऐसे साक्ष्य लेगा जो आवश्यक हों (लेकिन शपथ पत्र नहीं) जिससे ऐसे व्यक्ति की आयु अवधारित की जा सके, और एक निष्कर्ष दर्ज करेगा कि क्या व्यक्ति किशोर है या बच्चा है या नहीं, उसकी उम्र लगभग बताई जा सकती है:

परन्तु किशोरावस्था का कोई दावा किसी न्यायालय के समक्ष उठाया जा सकेगा और उसे मामले के अंतिम निपटान के पश्चात् भी किसी भी स्तर पर मान्यता दी जाएगी और ऐसा दावा इस अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों में अन्तर्विष्ट उपबंधों के निबंधनों के अनुसार अवधारित किया जाएगा, भले ही किशोर इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख को या उससे पहले ऐसा नहीं रह गया हो। उपधारा (1) के अधीन अपराध किए जाने की तारीख को किशोर को उचित आदेश पारित करने के लिए बोर्ड को अग्रेषित करेगा और न्यायालय द्वारा पारित दंड, यदि कोई हो, को कोई प्रभाव नहीं माना जाएगा।

14. धारा 7क की उपधारा (1) के परंतुक में यह विचार किया गया है कि किशोरावस्था का दावा किसी भी न्यायालय के समक्ष उठाया जा सकता है और मामले के निपटान के बाद भी किसी भी स्तर पर मान्यता प्राप्त होनी चाहिए और ऐसे दावे का निर्धारण अधिनियम वर्ष 2000 में निहित प्रावधानों और उसके तहत बनाए गए नियमों के अनुसार किया जाना आवश्यक है, भले ही किशोर अधिनियम वर्ष 2000 के प्रारंभ होने की तारीख को या उससे पहले ऐसा करना बंद कर दिया हो। परंतुक का प्रभाव यह है कि एक किशोर जिसने अपराध करने की तारीख को अठारह वर्ष की आयु पूरी नहीं की थी, वह भी अधिनियम वर्ष 2000 के लाभ का हकदार होगा जैसे कि उक्त अधिनियम की धारा 2(ट) के प्रावधान, जो "किशोर" या "बच्चे" को ऐसे व्यक्ति से अभिप्रेत करता है जिसने अठारहवां वर्ष पूरा नहीं किया है, 1986 के अधिनियम के लागू होने के दौरान भी हमेशा अस्तित्व में रहा था।

अनुवादित

"15. इस प्रकार, यह किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) नियम, 2007 के नियम 12 और 98 सपठित अधिनियम वर्ष 2000 की धारा 2(के), 2(एल), 7ए, 20 और 49 के संयुक्त पढ़ने से प्रकट होता है कि सभी व्यक्ति जो 1 अप्रैल से पहले भी अपराध करने की तारीख को अठारह वर्ष से कम आयु के थे, को किशोर माना जाएगा यदि किशोरावस्था का दावा तब भी किशोर माना जाएगा जब वे अधिनियम 2000 के प्रारंभ की तारीख को या उससे पहले अठारह वर्ष की आयु प्राप्त कर चुके हों और दोषसिद्ध होने पर सजा काट रहे हों। हमने जो दृष्टिकोण अपनाया है, हम हरि राम बनाम राजस्थान राज्य में हाल के फैसले में इस न्यायालय के आदेश से मजबूत हैं।

16. हाल ही में (2022) एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 1204 में रिपोर्ट किए गए विनोद कटारा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ-26 में अवधारित किया है जिसे निम्नानुसार उद्धृत किया गया है: -

26. इस प्रकार यह अच्छी तरह से तय है कि धारा 20 वर्ष 2000 के संदर्भ में, सभी मामलों में, जहां अभियुक्त घटना की तारीख को 16 वर्ष से अधिक था, 18 वर्ष से कम आयु का था, न्यायालय में लंबित कार्यवाही जारी रहेगी और इसे, इस अपवाद के अधीन कि किशोर को दोषी पाए जाने पर, तार्किक अंत तक ले जाया जाएगा। अदालत उसके खिलाफ सजा का आदेश पारित नहीं करेगी, लेकिन किशोर को 2000 अधिनियम के तहत उचित आदेशों के लिए बोर्ड को भेजा जाएगा।

17. अपीलकर्ता के लिए आगे के अधिवक्ता ने अधिनियम वर्ष 2015 में परिभाषित "बच्चे" और "कानून के उल्लंघन में बच्चे" की परिभाषा की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया और तर्क दिया कि अधिनियम वर्ष 2000 में परिभाषित परिभाषा "किशोर" और "कानून के उल्लंघन में किशोर" समरूप सामग्री हैं।

18. अधिनियम वर्ष 2015 की धारा 2 (12) "बच्चे" को निम्नानुसार परिभाषित करती है: -

2(12). "बालक" का अर्थ है एक व्यक्ति जिसने अठारह वर्ष की आयु पूरी नहीं की है।

अधिनियम वर्ष 2015 की धारा 2 (13) "कानून के उल्लंघन में बच्चे" को निम्नानुसार परिभाषित करती है: -

2(13). "कानून के उल्लंघन में बालक" का अर्थ है एक बच्चा जो कथित है या पाया गया है कि उसने अपराध किया है और जिसने अपराध के कमीशन की तारीख को अठारह वर्ष की आयु पूरी नहीं की है।

19. इस प्रकार हमारा विचार है कि अपर शासकीय अधिवक्ता का यह तर्क कि अपीलकर्ता संख्या-3 ने प्रवर्तन की तारीख अर्थात अधिनियम वर्ष 2000 के 1.4.2001 को 18 वर्ष की आयु पूरी कर ली है, अधिनियम वर्ष 2000 के लाभ के लिए हकदार नहीं होगा, तर्कसंगत नहीं है क्योंकि अधिनियम संख्या-33 द्वारा अधिनियम वर्ष 2000 की धारा 2(एल) के तहत प्रदान की गई कानून के उल्लंघन में किशोर की परिभाषा में पुनरीक्षण के बाद वर्ष 2006 और धर्मबीर बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) और अन्य (उपरोक्त) और विनोद कटारा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के मद्देनजर, आरोपी की किशोरवस्था अपराध की तारीख पर निर्धारित की जानी है, और यदि अपराध की तारीख को आरोपी किशोर है, तो

अनुवादित

वह संरक्षण वर्ष 2000 अधिनियम का हकदार होगा। प्रताप सिंह (उपरोक्त) के मामले में निर्णय 2006 के अधिनियम सं 33 द्वारा कानून के उल्लंघन में किशोर की परिभाषा में पुनरीक्षण करने और बाद में ऊपर उल्लिखित माननीय सर्वोच्च न्यायालय की घोषणा के बाद, रास्ते में नहीं आएगा। इसके अलावा, अधिनियम 2015 में प्रदान की गई "बच्चे" और "कानून के उल्लंघन में बच्चे" की परिभाषा के आलोक में, किशोरावस्था का निर्धारण करने के लिए सामग्री तिथि के रूप में कानूनी स्थिति में कोई बदलाव नहीं है, यह अपराध करने की तारीख है न कि प्रताप सिंह (उपरोक्त) में अवधारित अधिनियम वर्ष 2000 के प्रारंभ की तारीख।

20. वर्तमान मामले के तथ्यों पर आते हुए, किशोर न्याय बोर्ड, महाराजगंज ने अपीलकर्ता संख्या-3 को घटना की तारीख यानी 5.3.1993 को वर्ष 15 वर्ष 11 महीने और 17 दिन का पाया है, इसलिए, अधिनियम वर्ष 1986 के तहत प्रावधानों के अनुसार, अपीलकर्ता संख्या-3 किशोर था और अधिनियम वर्ष 2000 या अधिनियम वर्ष 2015 के प्रारंभ होने के बाद, किसी व्यक्ति की किशोरावस्था का परीक्षण घटना की तारीख को किया जाना है और किशोर का अर्थ है वह व्यक्ति जिसने घटना की तारीख को 18 वर्ष की आयु पूरी नहीं की है। इस प्रकार दोनों मामलों में अपीलकर्ता संख्या-3 किशोर न्याय बोर्ड, महाराजगंज की दिनांक 8.12.2017 की रिपोर्ट के अनुसार किशोर था।

21. राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता का तर्क कि किशोर न्याय बोर्ड, महाराजगंज द्वारा की गई जांच कानून के अनुसार नहीं थी, को इस कारण से खारिज कर दिया जाना था कि न तो राज्य और न ही सूचनादाता ने किशोर न्याय बोर्ड, महाराजगंज द्वारा पारित आदेश दिनांक 8.12.2017 के खिलाफ कोई अपील दायर की थी, जिसमें अपीलकर्ता संख्या-3 को 5.3.1993 को किशोर घोषित किया गया था अर्थात घटना की तारीख को और इस तरह किशोर द्वारा पारित आदेश दिनांक 8.12.2017 न्याय बोर्ड, महाराजगंज ने अपीलकर्ता संख्या-3 को किशोर घोषित किया।

22. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने अधिनियम वर्ष 2000 और अधिनियम वर्ष 2015 के तहत प्रदान की गई आयु के निर्धारण के लिए अपनाई जाने वाली प्रक्रिया की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया।

23. आयु निर्धारण के लिए अपनाई जाने वाली प्रक्रिया किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) नियम, 2007 (संक्षेप में 2007 नियम) के नियम 12 (3)(बी) के तहत प्रदान की जाती है।

"12. आयु के अवधारण में अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया--(3) विधि का उल्लंघन करने वाले बालक या किशोर से संबंधित प्रत्येक मामले में, आयु अवधारण जांच न्यायालय या बोर्ड या यथास्थिति, समिति द्वारा निम्नलिखित अभिप्राप्त करके साक्ष्य मांगकर की जाएगी-

(क)(i) मैट्रिक या समकक्ष प्रमाण पत्र, यदि उपलब्ध हो; और जिसकी अनुपस्थिति में;

(ii) स्कूल से जन्म प्रमाण पत्र की तारीख (एक प्ले स्कूल के अलावा) पहली बार भाग लिया; और जिसकी अनुपस्थिति में;

(iii) किसी निगम या नगरपालिका प्राधिकरण या पंचायत द्वारा दिया गया जन्म प्रमाणपत्र;

अप्रमाणित

(ख) और केवल उपर्युक्त खंड (क) के (i), (ii) या (iii) में से किसी एक की अनुपस्थिति में, विधिवत गठित मेडिकल बोर्ड से चिकित्सा राय मांगी जाएगी, जो किशोर या बच्चे की आयु घोषित करेगा। यदि आयु का सही-सही निर्धारण नहीं किया जा सकता है तो न्यायालय या बोर्ड या यथास्थिति, समिति, उनके द्वारा अभिलिखित किए जाने वाले कारणों के लिए, यदि आवश्यक समझा जाए, तो बालक अथवा किशोर को एक वर्ष की अवधि के भीतर उसकी आयु को कम करके लाभ दे सकती है।

और, ऐसे मामले में आदेश पारित करते समय, ऐसे साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए, जो उपलब्ध हो सकते हैं, या चिकित्सा राय, जैसा भी मामला हो, उसकी उम्र के संबंध में एक निष्कर्ष दर्ज करेगा और किसी भी खंड में निर्दिष्ट साक्ष्य (ए)(i), (ii), (iii) या जिसकी अनुपस्थिति में, खंड (बी) ऐसे बच्चे या किशोर के संबंध में उम्र का निर्णायक प्रमाण होगा कानून।

24. अधिनियम वर्ष 2000 अधिनियम वर्ष 2015 द्वारा निरस्त कर दिया गया है। आयु का निर्धारण करने की प्रक्रिया अब अधिनियम वर्ष 2015 की धारा 94 का हिस्सा है जो पहले नियमों के उपर्युक्त नियम 12 के तहत प्रदान की गई थी।

25. किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2015 की धारा 94(2) निम्नानुसार उद्धृत की गई है: -

94. आयु का उपधारणा और अवधारण- (1) जहां, इस अधिनियम के उपबंधों में से किसी के अधीन (साक्ष्य देने के प्रयोजन से भिन्न) उसके समक्ष लाए गए व्यक्ति के प्रकट होने के आधार पर समिति या बोर्ड को यह स्पष्ट है कि उक्त व्यक्ति बालक है तो समिति या बोर्ड बालक की आयु बताते हुए धारा 14 या धारा 36 के तहत, जैसा भी मामला हो, उम्र की आगे की पुष्टि की प्रतीक्षा किए बिना ऐसी टिप्पणी अभिलिखित करेगा और जांच जारी रखेगा।

(2) यदि समिति या बोर्ड के समक्ष लाया गया व्यक्ति बालक है या नहीं, इस बारे में संदेह के युक्तियुक्त आधार हैं तो यथास्थिति, समिति या बोर्ड निम्नलिखित अभिप्राप्त करके साक्ष्य मांगकर आयु निर्धारण की प्रक्रिया चलाएगा-

(i) स्कूल से जन्म प्रमाण पत्र की तारीख, या संबंधित परीक्षा बोर्ड से मैट्रिक या समकक्ष प्रमाण पत्र, यदि उपलब्ध हो; और उसके अभाव में;

(ii) किसी निगम या नगरपालिका प्राधिकरण या पंचायत द्वारा दिया गया जन्म प्रमाणपत्र;

(iii) और केवल उपरोक्त (i) और (ii) की अनुपस्थिति में, आयु का निर्धारण समिति या बोर्ड के आदेश पर अवधारित अस्थिभंग परीक्षण या किसी अन्य नवीनतम चिकित्सा आयु निर्धारण परीक्षण द्वारा किया जाएगा:

बशर्ते समिति या बोर्ड के आदेश पर अवधारित इस तरह के आयु निर्धारण परीक्षण इस तरह के आदेश की तारीख से पंद्रह दिनों के भीतर पूरा किया जाएगा।

(3) समिति या बोर्ड द्वारा इस प्रकार उसके समक्ष लाई गई आयु को इस प्रकार लाए गए व्यक्ति की आयु के रूप में अभिलिखित किया जाएगा, इस अधिनियम के प्रयोजन के लिए, उस व्यक्ति की वास्तविक आयु समझी जाएगी।

26. हमने किशोर न्याय बोर्ड, महराजगंज की दिनांक 8.12.2017 की रिपोर्ट का अवलोकन

अवधारित

किया है। बोर्ड ने अपीलकर्ता संख्या-3 की उम्र के संबंध में उसके समक्ष पेश किए गए प्रासंगिक दस्तावेजी साक्ष्य पर विचार किया और राम आधार जूनियर हाई स्कूल गौशाला, महाराजगंज की प्रिंसिपल श्रीमती सुधा बाला सिंह के मौखिक साक्ष्य पर विचार किया, जिनकी राज्य द्वारा भी जिरह की गई और इसके विपरीत किसी भी सबूत के अभाव में निष्कर्ष पर पहुंचे कि अपीलकर्ता संख्या-3 की आयु घटना की तारीख यानी 5.3.1993 को 15 साल 11 महीने 17 दिन थी। बोर्ड ने नियम 12(3) वर्ष 2007 नियमों के साथ-साथ 2015 अधिनियम की धारा 94 में संदर्भित प्रासंगिक सामग्री पर विचार किया है और आरोपी की आयु निर्धारित करने में कोई अवैधता नहीं की है।

27. इसलिए हमारा विचार है कि किशोर न्याय बोर्ड, महाराजगंज द्वारा जांच करने और अधिनियम के तहत प्रदान की गई उचित प्रक्रिया का पालन करने के बाद अपीलकर्ता संख्या-3 को किशोर घोषित करने में कोई अवैधता नहीं की गई थी, इस तथ्य के साथ कि किशोर न्याय बोर्ड के पूर्वोक्त आदेश को कभी भी राज्य या सूचनाकर्ता द्वारा चुनौती नहीं दी गई थी और यह अंतिम हो गया है।

28. अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा अंततः यह तर्क दिया गया है कि अपीलकर्ता संख्या-3 ने कभी भी जांच के दौरान या सत्र न्यायालय के समक्ष मुकदमे के दौरान किशोरावस्था का दावा नहीं किया और पहली बार 16.3.2016 के आवेदन के माध्यम से प्रस्तुत अपील में इसका दावा किया। दिनांक 16.3.2016 को जब अपीलार्थी द्वारा आवेदन प्रस्तुत किया गया था, किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2000 को भी धारा 111 वर्ष 2015 अधिनियम द्वारा निरस्त कर दिया गया था, और इसलिए, किशोर न्याय बोर्ड, महाराजगंज द्वारा किए गए अधिनियम वर्ष 2000 के तहत किशोर न्याय के दावे का निर्णय नहीं किया जा सकता है।

29. प्रति प्रतिवाद अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि अधिनियम वर्ष 2015 की धारा 9 की उप-धारा (2) के परंतुक के मद्देनजर, किशोरावस्था का दावा किसी भी अदालत के समक्ष उठाया जा सकता है और इसे मामले के अंतिम निपटान के बाद भी किसी भी स्तर पर मान्यता दी जानी चाहिए, और इस तरह के दावे को अधिनियम वर्ष 2015 और नियमों के तहत निहित प्रावधानों के अनुसार निर्धारित किया जाना चाहिए, भले ही व्यक्ति अधिनियम वर्ष 2015 के प्रारंभ होने की तारीख को या उससे पहले एक बच्चा न रहा हो

30. अधिनियम वर्ष 2015 की धारा (9) निम्नानुसार उद्धृत की गई है: -

9. मजिस्ट्रेट द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया, जिसे इस अधिनियम के अधीन सशक्त नहीं किया गया है- (1) जब कोई मजिस्ट्रेट, जो इस अधिनियम के अधीन बोर्ड की शक्तियों का प्रयोग करने के लिए सशक्त नहीं है, की यह राय है कि जिस व्यक्ति ने कथित रूप से अपराध किया है और उसके समक्ष लाया गया है, वह बालक है, तो वह, बिना किसी विलम्ब के, ऐसी राय दर्ज करें और ऐसी कार्यवाही के रिकॉर्ड के साथ बच्चे को तुरंत अधिकार क्षेत्र वाले बोर्ड को अग्रेषित करें।

(2) यदि कोई व्यक्ति जिसने कोई अपराध किया है, बोर्ड के अलावा किसी अन्य न्यायालय के समक्ष दावा करता है कि वह व्यक्ति एक

अनुवादित

बच्चा है या अपराध किए जाने की तारीख को बच्चा था, या यदि न्यायालय की स्वयं राय है कि वह व्यक्ति अपराध किए जाने की तारीख को बच्चा था, उक्त न्यायालय एक जांच करेगा, ऐसे साक्ष्य लेगा जो ऐसे व्यक्ति की आयु निर्धारित करने के लिए आवश्यक हो सकता है (लेकिन हलफनामा नहीं), और इस मामले पर एक निष्कर्ष दर्ज करेगा, जिसमें व्यक्ति की आयु लगभग हो सकती है:

परन्तु ऐसा दावा किसी न्यायालय के समक्ष उठाया जा सकेगा और उसे किसी भी स्तर पर, यहाँ तक कि मामले के अंतिम निपटान के पश्चात् भी मान्यता दी जाएगी और ऐसा दावा इस अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों में अन्तर्विष्ट उपबंधों के अनुसार अवधारित किया जाएगा, भले ही वह व्यक्ति इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख को या उससे पहले बालक नहीं रह गया हो।

(3) यदि न्यायालय यह पाता है कि किसी व्यक्ति ने कोई अपराध किया है और वह ऐसा अपराध किए जाने की तारीख को बालक था तो वह बालक को समुचित आदेश पारित करने के लिए बोर्ड को अग्रेषित करेगा और न्यायालय द्वारा पारित दण्ड, यदि कोई हो, प्रभावी नहीं समझा जाएगा।

(4) यदि इस धारा के अधीन किसी व्यक्ति को संरक्षात्मक अभिरक्षा में रखा जाना अपेक्षित है, जबकि व्यक्ति के बालक होने के दावे की जांच की जा रही है, तो ऐसे व्यक्ति को बीच की अवधि में सुरक्षा के स्थान पर रखा जा सकेगा।

31. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) मॉडल नियम, 2016 के नियम 90 की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया और तर्क दिया कि किसी भी बच्चे को अधिनियम और उसके तहत बनाए गए नियमों के लाभों से वंचित नहीं किया जाना चाहिए और लाभ उन सभी व्यक्तियों को उपलब्ध होना चाहिए जो अपराध के गठन के समय बच्चे थे, भले ही वे जांच या परीक्षण की लम्बितता के दौरान बच्चे न हों।

32. किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) मॉडल नियम, 2016 के नियम 90 को निम्नानुसार उद्धृत किया गया है: -

"90. लंबित मामले--(1) किसी बालक को इस अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों के लाभों से वंचित नहीं किया जाएगा।

(2) उपनियम (1) में निर्दिष्ट लाभ उन सभी व्यक्तियों को उपलब्ध कराए जाएंगे जो अपराध किए जाने के समय बालक थे, भले ही वे जांच या विचारण के लंबित रहने के दौरान बालक ही क्यों न रहे हों।

(3) विधि का उल्लंघन करने वाले बालक के निरोध या रहने या दंडादेश की अवधि की गणना करते समय, ऐसी सभी अवधि, जो बालक ने अभिरक्षा, निरोध, स्थगन या कारावास के दंडादेश में पहले ही बिताई थी, न्यायालय या बोर्ड के अंतिम आदेश में अंतर्विष्ट स्थगन या निरोध या कारावास के दंडादेश की अवधि के भाग के रूप में गिनी जाएगी।

33. अपर शासकीय अधिवक्ता का प्रस्तुतिकरण, जैसा कि पिछले पैराग्राफ में उल्लेख किया गया है, प्रथम दृष्टया बहुत आकर्षक प्रतीत होता है, लेकिन वास्तव में इसमें कोई सार नहीं है। अधिनियम वर्ष 2000 को अधिनियम वर्ष 2015 की धारा 111 द्वारा 15.1.2016 से निरस्त कर दिया गया था।

अनुवादित

अधिनियम वर्ष 2015 की धारा 111 निम्नानुसार उद्धृत की गई है: -

"111. निरसन और बचत--(1) किशोर न्याय किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 एतद्द्वारा निरसित किया जाता है।

(2) ऐसे निरसन के होते हुए भी, उक्त अधिनियम के अधीन की गई कोई बात या की गई कोई कार्रवाई इस अधिनियम के तत्स्थानी उपबंधों के अधीन की गई समझी जाएगी।

34. अधिनियम वर्ष 2015 की धारा 111 की उपधारा (2) में अभिधारणा है कि अधिनियम वर्ष 2000 के अधीन की गई कोई बात या की गई कोई कार्रवाई अधिनियम वर्ष 2015 के संगत उपबंध के अधीन की गई समझी जाएगी।

35. संबंधित अधिवक्ता की दलीलें सुनने के बाद, हमारी राय है कि अधिनियम 2000 और अधिनियम वर्ष 2015 के प्रावधानों के बीच कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है, सिवाय इसके कि अधिनियम वर्ष 2015 आयु वर्ग 16-18 वर्ष की आयु के बच्चों द्वारा किए गए अपराध का ध्यान रखता है।

36. 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 450 में रिपोर्ट किए गए संजय पटेल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उच्चतम न्यायालय द्वारा विशेष अनुमति याचिका खारिज करने के बाद भी अभियुक्त के नाबालिग होने की याचिका पर विचार किया है।

37. इस प्रकार अधिनियम वर्ष 1986, अधिनियम वर्ष 2000, अधिनियम वर्ष 2015 के प्रावधानों और ऊपर उल्लिखित माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों को ध्यान में रखते हुए, हम इस सुविचारित राय के हैं कि यदि अभियुक्त कानून के उल्लंघन में के समय किशोर था अर्थात घटना की तारीख को 18 वर्ष से कम आयु का था तो अधिनियम वर्ष 2000 और अधिनियम वर्ष 2015 का संरक्षण अभियुक्त पर लागू होगा, इस तथ्य के बावजूद कि दावा किया गया था (ग) किशोर के संबंध में विचारण/जांच के अंतिम चरण में या यहां तक कि किसी न्यायालय में कानून का उल्लंघन करने वाले किशोर के संबंध में विचारण/जांच के अंतिम चरण में या यहां तक कि विचारण, पुनरीक्षण, अपील या किसी अन्य आपराधिक कार्यवाही के चरण में भी किया गया था।

38. वर्तमान मामले में, जैसा कि अधिवक्ता द्वारा उठाए गए रिकॉर्ड और प्रस्तुतियों से स्पष्ट है, अपीलकर्ता संख्या-3 पहले ही लगभग 8 साल की कैद काट चुका है। जैसा कि हमने पहले ही माना है कि अपीलकर्ता संख्या-3 घटना की तारीख यानी 3.5.1993 को कानून के उल्लंघन के समय किशोर था, अपीलकर्ता अधिनियम वर्ष 2015 के लाभ का हकदार है।

39. अब, चूंकि अपीलकर्ता संख्या-3 घटना की तारीख को किशोर था और पूर्वोक्त अपराध के लिए आरोपी अपीलकर्ता संख्या-3 की सजा के बारे में कोई तर्क नहीं दिया गया है, इसलिए, इस न्यायालय को अपीलकर्ता संख्या-3 (कानून के उल्लंघन में किशोर) के संबंध में आदेश पारित करने के लिए अधिनियम वर्ष 2015 की धारा 18 के प्रावधानों को ध्यान में रखना होगा। यदि अपीलकर्ता के अधिवक्ता के साथ-साथ अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा उठाए गए सबमिशन को ध्यान में रखा जाता है, तो अपीलकर्ता संख्या-3 को अधिनियम वर्ष 2015

अनुवादित

के तहत कानून के उल्लंघन के समय किशोर घोषित किया जाता है, जिसे अधिकतम 3 साल की अवधि के लिए विशेष घर भेजा जा सकता है। इस समय इस मामले की तरह की स्थिति से निपटने के दौरान सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपात को देखना उचित होगा।

40. (2009)17 एस.सी.सी. 587 में रिपोर्ट किए गए वनीत कुमार गुप्ता @ धरमिंदर बनाम पंजाब राज्य में, अभियुक्त, जिसे धारा 149 भ०द०वि० सपठित धारा 302 के तहत आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई थी, अपराध के गठन के समय किशोर पाया गया था। शीर्ष अदालत ने इस तथ्य को देखते हुए कि आरोपी कई वर्षों से जेल में है, उसे जेल से रिहा करने का निर्देश दिया।

41. (2011)2 एस.सी.सी. 251 में रिपोर्ट किए गए लखनलाल बनाम बिहार राज्य में, अभियुक्त, जिसे धारा 34 भ०द०वि० सपठित धारा 302 के तहत आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई थी, अपराध के समय कानून के उल्लंघन में किशोर पाया गया था। जब तक उनकी अपील उच्चतम न्यायालय पहुंची, तब तक वह 40 साल की उम्र पार कर चुके थे। वह 7 साल से अधिक समय तक जेल में रहे। इन परिस्थितियों में, सर्वोच्च न्यायालय ने उनकी आजीवन कारावास की सजा को रद्द कर दिया और उनकी रिहाई का निर्देश दिया।

42. अमित सिंह बनाम महाराष्ट्र राज्य और (2011)13 एस.सी.सी. 744 में रिपोर्ट किए गए एक अन्य मामले में, अभियुक्त को धारा 396, 506, 341, 379 के साथ धारा 120-बी भ०द०वि० और शस्त्र अधिनियम की धारा 27 सपठित धारा 25 (1-बी),5 के तहत दोषी पाया गया था। कारावास की अन्य सजा के अलावा, उन्हें आजीवन कारावास की सजा भी सुनाई गई थी और बॉम्बे उच्च न्यायालय ने उनकी सजा की पुष्टि की थी। उच्चतम न्यायालय ने उनकी विशेष अनुमति याचिका भी खारिज कर दी। तत्पश्चात्, उसने संविधान के अनुच्छेद 32 के अंतर्गत उच्चतम न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका दायर की जिसमें किशोरावस्था का दावा किया गया जिस पर विचार किया गया और उसे अधिनियम वर्ष 2000 के अंतर्गत लाभ के लिए पात्र पाया गया और इस तथ्य पर विचार करते हुए कि उस समय तक वह 12 वर्षों तक जेल में रहा था, माननीय उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि चूंकि वह उस अधिकतम अवधि से अधिक समय तक जेल में रहा है जिसके लिए एक किशोर को कारावास में रखा जा सकता है। एक विशेष घर और जेल से रिहा होने का निर्देश दिया।

43. कालू @ अमित बनाम हरियाणा राज्य (2012)3 एस.सी.सी. (सीआरएल) 761 में रिपोर्ट किया गया, क्योंकि अपीलकर्ता अधिनियम वर्ष 2000 के अर्थ के भीतर कानून के उल्लंघन के समय एक किशोर था। जब अपराध किया गया था और वह पहले से ही 9 साल से जेल में था और बहुत पहले वयस्कता प्राप्त कर चुका है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता को जेल से रिहा करने का निर्देश दिया और अधिनियम वर्ष 2000 की धारा 19 को भी नोटिस किया यह माना गया कि अभियुक्त को उसकी दोषसिद्धि के कारण कोई अयोग्यता नहीं होगी।

44. (2012) 3 एस.सी.सी. (सीआरएल) 1067 में रिपोर्ट किए गए बबला @ दिनेश बनाम उत्तराखंड राज्य में, अपीलकर्ता को धारा 149 भ०द०वि० सपठित धारा 302 के तहत

अनुवादित

आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई थी, और सत्र न्यायाधीश की रिपोर्ट के आधार पर, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्वीकार किया कि अपीलकर्ता अपराध के कमीशन की तारीख पर कानून के उल्लंघन में किशोर था और चूंकि अपीलकर्ता तीन साल से अधिक समय तक जेल में था। अधिनियम वर्ष 2000 की धारा 15 के तहत निर्धारित अधिकतम अवधि ने उनके आजीवन कारावास की सजा को रद्द कर दिया और जेल से तत्काल रिहाई का निर्देश दिया।

45. संजय पटेल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (उपरोक्त) के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया है:-

"सक्षम किशोर न्याय बोर्ड द्वारा इस मामले में दर्ज किए गए स्पष्ट निष्कर्ष के मद्देनजर, जो दस्तावेजी साक्ष्य पर आधारित है, धारा 7 ए की उप-धारा 2 के मद्देनजर अपीलकर्ता को किशोर न्याय बोर्ड को भेजा जाना आवश्यक है। 2000 अधिनियम की धारा 15 के तहत, आवेदक के खिलाफ जो सबसे कठोर कार्रवाई की जा सकती थी, वह आवेदक को तीन साल की अवधि के लिए एक विशेष घर में भेजना था।

लखनऊ में संबंधित जेल के वरिष्ठ अधीक्षक द्वारा जारी प्रमाण पत्र दिनांक 1.8.2021 में दर्ज किया गया है कि 1.8.2021 तक, आवेदक 17 साल और 3 दिन की सजा काट चुका है।

इसलिए अब आवेदक को किशोर न्याय बोर्ड में भेजना अन्याय होगा। इसलिए, हम आवेदन की अनुमति देते हैं और निर्देश देते हैं कि आवेदक संजय पटेल आरोपी संख्या-2 को राज्य संख्या-28 वर्ष 2004 में सत्र न्यायाधीश, महाराजगंज द्वारा तय किया गया था, बशर्ते उसे सक्षम न्यायालय के किसी अन्य आदेश के तहत हिरासत में लेने की आवश्यकता न हो।

46. यदि उपरोक्त प्राधिकरणों में निर्धारित अनुपात को ध्यान में रखा जाता है और मामले में लागू किया जाता है, तो मामले को किशोर न्याय बोर्ड को भेजने से कोई फलदायी उद्देश्य पूरा नहीं होगा क्योंकि आवेदक/अपीलकर्ता संख्या-3 पहले ही 7 साल से अधिक की सजा काट चुका है। इसके अलावा, वह 3.5.1993 को लगभग 15 साल 11 महीने 17 दिन का था और अब तक 45 साल की उम्र पार कर चुका होगा।

47. अपीलकर्ता संख्या-3 के संबंध में अपील को आंशिक रूप से अनुमति दी जाती है। अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-2, महाराजगंज द्वारा सत्र विचारण संख्या-31 वर्ष 1998 (राज्य बनाम सुरेश @ सुतूर और अन्य) में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 30.9.2015, जहां तक अपीलकर्ता संख्या-3 को धारा 302/149, 147, 201 भ०द०वि० अपराध संख्या-63 वर्ष 1993, थाना-कोतवाली, जिला महाराजगंज के तहत अपराधों के लिए दोषी ठहराया गया है, तो उसकी पुष्टि की जाती है। हालांकि, जहां तक सजा का सवाल है, इसे अपीलकर्ता संख्या-3 द्वारा पहले से ही गुजारी गई अवधि में संशोधित किया गया है। यदि वह किसी अन्य मामले में वांछित नहीं है तो उसे तुरंत रिहा कर दिया जाए।

48. अधिनियम वर्ष 2015 की धारा 24 की उप-धारा (1) के मद्देनजर, अपीलकर्ता संख्या-3 को उसकी दोषसिद्धि और उसके द्वारा काटी गई सजा की अवधि के कारण कोई अयोग्यता नहीं होगी।

अनुवादित

(2023) 6 ILRA 789

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 26.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राहुल चतुर्वेदी

माननीय न्यायमूर्ति गजेंद्र कुमार

जेल अपील संख्या 4769 वर्ष 2017

दिलीप **अपीलकर्ता**

बनाम

यू.पी. स्टेट **विपरीत पक्ष**

अपीलकर्ता के अधिवक्ता: जेल से, सुश्री श्वेता सिंह राणा

विपरीत पक्ष के अधिवक्ता: ए.जी.ए.

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302 - हत्या के लिए सजा - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 313 - दोषसिद्धि के खिलाफ अपील - आजीवन कारावास - परिस्थितिजन्य साक्ष्य - प्रथम सूचक ने पुलिस स्टेशन, स्टेट डी को लिखित रिपोर्ट प्रस्तुत की कि उन्हें ग्रामीणों द्वारा सूचित किया गया था कि एक अज्ञात व्यक्ति का शव खेत में पड़ा है - पोस्टमार्टम में, मौत का कारण गला घोंटने के परिणामस्वरूप दम घुटना था - जांच के बाद, आरोप तय किए गए - अन्य आरोपी व्यक्तियों की सुनवाई के दौरान मृत्यु हो गई - माना, घटना का कोई चश्मदीद गवाह नहीं था - अपीलकर्ता के खिलाफ केवल परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित सबूत पीडब्लू 1, 2 और 3 द्वारा निर्धारित किए गए थे, जो मृतक की मां और बहन हैं - पीडब्लू 1, 2 और 3 के साक्ष्य ने अपीलकर्ता के खिलाफ अविश्वास पैदा किया - पीडब्लू-1 ने अपने बेटे के लापता होने के दो सप्ताह बाद लिखित रिपोर्ट प्रस्तुत की - देरी के संबंध में स्पष्टीकरण नहीं दिया गया बरी कर दिया गया है, मामले में फंसाया गया है - रिकॉर्ड पर कोई कानूनी सबूत उपलब्ध नहीं है - कोई मकसद साबित नहीं हुआ है बल्कि पी.डब्लू.-1, 2, 3 और 6 ने स्पष्ट रूप से कहा है कि अपीलकर्ता की मृतक के साथ कोई दुश्मनी नहीं थी - अपीलकर्ता को सह-आरोपी द्वारा उठाए गए संदेह के आधार पर फंसाया गया है। (पैरा 2, 4, 8, 10, 11, 25, 41)

जेल अपील मंजूर की गई। (ई-13)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. हनुमंत बनाम स्टेट ऑफ एम.पी., एआईआर 1952 एससी 343
2. हुकम सिंह बनाम स्टेट ऑफ राज., एआईआर 1977 एससी 1063
3. शरद बिरधीचंद सारदा बनाम स्टेट ऑफ महाराष्ट्र, एआईआर 1984 एससी 1622
4. अशोक कुमार चटर्जी बनाम स्टेट ऑफ एम.पी., एआईआर 1989 एससी 1890
5. सी. चेंगा रेड्डी और अन्य बनाम स्टेट ऑफ आंध्र प्रदेश, 1996(10) एससीसी 193
6. बोध राज @ बोध और अन्य बनाम स्टेट ऑफ जे.एंड.के., 2002(8) एससीसी 45
7. सुब्रमण्य बनाम स्टेट ऑफ कर्ण, एस.सी.आर. (2022) 14 एस.सी.आर. 828
8. पुलेन फुकन एवं अन्य. बनाम असम स्टेट, 2023 लाइव लॉ (एससी) 265, (पैरा 13)
9. प्रदीप कुमार बनाम छत्तीसगढ़ स्टेट, 2023 लाइव लॉ (एससी) 239, (पैरा 24)
10. नरेंद्रसिंह केशुभाई जाला बनाम गुजरात स्टेट, 2023 लाइव लॉ (एससी) 22, (पैरा 8)

अग्रिम प्रति

11. गुना महतो बनाम झारखंड स्टेट, 2023 लाइव लॉ (एससी) 197, (पैरा 16, 17)
12. निखिल चंद्र मंडल बनाम पश्चिम बंगाल स्टेट, 2023 लाइव लॉ (एससी) 171, (पैरा 11)
13. इंद्रजीत दास बनाम त्रिपुरा स्टेट, 2023 लाइव लॉ (एससी) 152, (पैरा 10, 12, 15)
14. जाबिर एवं अन्य। बनाम द स्टेट ऑफ उत्तराखंड, 2023 लाइव लॉ (एससी) 41, (पैरा 21)

(माननीय न्यायमूर्ति गजेंद्र कुमार द्वारा दिया गया)

1. यह जेल अपील अभियुक्त-अपीलकर्ता दिलीप द्वारा जिला जेल, कन्नौज के अधीक्षक के माध्यम से श्रीमती प्रीती श्रीवास्तव, अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, कोर्ट नंबर 2, कन्नौज सत्र परीक्षण संख्या 363/2010, (राज्य बनाम दिलीप और अन्य), मामला अपराध संख्या 1020/2008 से उत्पन्न, पुलिस स्टेशन कन्नौज, जिला कन्नौज, आईपीसी की धारा 302 के तहत द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 30.11.2016 के खिलाफ दायर की गई है। आक्षेपित निर्णय और आदेश के अनुसार, आरोपी अपीलकर्ता को दोषी ठहराया गया और आईपीसी की धारा 302 के तहत आजीवन कारावास और 5,000/- रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई गई। जुर्माना अदा न करने की स्थिति में उसे अतिरिक्त दो वर्ष का साधारण कारावास भुगतना होगा।

2. अभियोजन की कहानी, संक्षेप में, इस प्रकार है कि दिनांक 21.07.2008 को प्रथम मुखबिर-किशोरी लाल ने पुलिस स्टेशन, कन्नौज में एक लिखित रिपोर्ट प्रदर्श क-2 प्रस्तुत की, जिसमें कहा गया कि 21.07.2008 को लगभग 10:00 बजे, उन्हें ग्रामीणों ने सूचना दी कि शोवरन लाल पुत्र पीतम सिंह निवासी हैबतपुर कटरा, थाना कन्नौज, जिला कन्नौज के खेत में एक अज्ञात व्यक्ति का शव पड़ा है।

3. उक्त सूचना पर पीडब्लू-8, उपनिरीक्षक राजबहादुर सिंह चौहान ने पंच गवाहों को नामित कर अज्ञात व्यक्ति के शव के संबंध में जांच की तथा जांच रिपोर्ट, फोटोनैश, चालान चालान तथा सी.एम.ओ. को पत्र, फर्द रिपोर्ट तैयार की जो क्रमशः प्रदर्श-6, प्रदर्श-7, प्रदर्श-8, प्रदर्श-9, प्रदर्श-10 के रूप में प्रमाणित है और अन्य संबंधित कागजात; शव को सील कर पोस्टमार्टम के लिए भेजा, शव की फोटो तैयार कराई। उन्होंने मृतक का एक तौलिया, एक शर्ट, हल्के नीले रंग की एक पैंट, एक अंडरवियर, एक सेट प्लास्टिक स्लीपर भी एकत्र किया और उसकी फर्द तैयार की।

4. पीडब्लू-4, डॉ. नन्हूमल ने लगभग 25 वर्ष की उम्र के अज्ञात व्यक्ति के शव का पोस्टमॉर्टम किया और गर्दन के चारों ओर 32 x 4 सेमी का एक लिगेचर(लाल रंग की धागा नुमा सरंचना) का निशान पाया गया, जो कि मृत्यु से पहले की चोट थी। डॉक्टर ने आगे कहा कि मौत का कारण पोस्टमार्टम से तीन दिन पहले और पोस्टमार्टम से तीन दिन पहले के निशान के कारण गला घोंटने के कारण दम घुटना था। उन्होंने पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट तैयार की, जिसे Ex.Ka-4 के रूप में प्रमाणित और प्रदर्शित किया गया।

अनुवादित

5. पीडब्लू-9, दयानंद सिंह, तत्कालीन प्रभारी निरीक्षक, थाना कन्नौज, जिला कन्नौज ने 22.07.2008 को धारा 302 आईपीसी के तहत मुकदमा अपराध संख्या 1020/2008 की जांच की और गवाहों का बयान दर्ज किया घटनास्थल का दौरा किया और नक्सा नजरी Ex.Ka-11 तैयार किया। दिनांक 28.07.2008 को उसने मृतक के बारे में जानने का प्रयास किया। उन्होंने आगे पीडब्लू-1 श्रीमती मुन्नी देवी, पीडब्लू-2 श्रीमती सुमन; राजेश, श्रीमती. सरोजिनी और बाबू राम (परीक्षा नहीं की गई) का बयान दर्ज किया।; गिरफ्तार आरोपी मुकेश उर्फ मुरारी और शेरा ने अपने बयान दर्ज किए और जांच की सभी औपचारिकताएं पूरी करने के बाद मूलचंद, शेरा, मुकेश उर्फ मुरारी और आरोपी अपीलकर्ता दिलीप के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया। अपनी जिरह में उसने बताया कि आरोपी मूलचंद ने आरोपी दिलीप को उसके साथ शामिल होने के लिए फंसाया था। आरोपी दिलीप को किसी अन्य आरोपी ने नहीं फंसाया था।

6. दिनांक 05.08.2008 को अ0सा0-1 मुन्नी देवी ने थाना कन्नौज में लिखित रिपोर्ट प्रदर्श क-1 प्रस्तुत करते हुए बताया कि उसके पुत्र सुन्दर लाल को दिनांक 19.07.2008 की सुबह अभियुक्त मुकेश उर्फ मुरारी उसके घर से ले गया था। मज़दूरी के बहाने और तब से वह लापता है। उन्हें पता चला कि ग्राम हैबतपुर कटरा में एक अज्ञात व्यक्ति का शव मिला है और प्रार्थना की गई कि उन्हें शव के कपड़े देखने की अनुमति दी जाए, ताकि पता चल सके उसके बेटे का। उसे मृतक के फोटो और कपड़े दिखाए गए जिससे उसने पहचान लिया कि वह शव उसके बेटे सुंदर लाल का है। उसने आगे कहा कि मुकेश उसके बेटे को घर से ले गया था और अपने साथियों शेरा, मूलचंद और दिलीप के साथ मिलकर हत्या कर दी थी और साक्ष्य मिटाने के लिए शव को कटरा के हैबतपुर में कहीं फेंक दिया था। यह बात मूलचंद ने अपनी शादीशुदा बेटी सुमन को बताई, जिसने उसे इसकी जानकारी दी और यह बात आई.ओ. को बताई गई। जांच के दौरान अपने जिरह में उसने मुकेश के खिलाफ आवेदन दिया था, आरोपी मुकेश के इकबालिया बयान पर पुलिस ने बाकी आरोपियों को फंसाया था। मेरे बेटे को दिलीप नहीं बल्कि मुकेश ले गया था। उसने आगे कहा कि उसने आई.ओ. को दिए अपने बयान में दिलीप को नहीं फंसाया था। उन्होंने आगे कहा कि वह यह नहीं कह सकतीं कि आरोपी दिलीप को सच में या गलत तरीके से आरोपी के रूप में फंसाया गया था।

7. अपराधों का संज्ञान लेने के बाद, मामला सत्र न्यायालय द्वारा विशेष रूप से विचारणीय होने के कारण सत्र न्यायालय को सौंप दिया गया, जहां से इसे कानून के अनुसार निपटान के लिए अतिरिक्त जिला और सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-2, कन्नौज में स्थानांतरित कर दिया गया।

8. विचानण न्यायालय ने 03.07.2012 को आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ आईपीसी की धारा 302 के तहत आरोप तय किए।

9. आरोपी-अपीलकर्ता ने अपने खिलाफ लगाए गए आरोप से इनकार किया, झूठे आरोप

अनुवादित

का दावा किया, दोषी नहीं होने का अनुरोध किया और मुकदमे का दावा किया।

10. अन्य आरोपी व्यक्तियों, मूलचंद और शेरे की मुकदमे के दौरान मृत्यु हो गई और उनका मामला पहले ही समाप्त कर दिया गया है और एक अन्य आरोपी अपीलकर्ता, मुकेश @ मुरारी को इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने दिनांक 11.09.2019 के आदेश के तहत पहले ही बरी कर दिया है।

11. अपने मामले को साबित करने के लिए, अभियोजन पक्ष ने 9 गवाहों की जांच की, जिनमें मुन्नी देवी, पी.डब्ल्यू.1, जो मृतक की मां है, सुमन, पी.डब्ल्यू.2, जो मृतक की बहन है, गोरी, पी.डब्ल्यू.3, जो मृतक की बहन है। मृतक, डॉ. नन्हूमल पी.डब्लू.4 के रूप में, जिन्होंने मृतक का पोस्टमार्टम किया, श्याम कुमार पी.डब्ल्यू.5 के रूप में, जो जांच रिपोर्ट के गवाह हैं, संतोष पी.डब्ल्यू.6 के रूप में, जिन्होंने मृतक के कपड़े आदि की पहचान की, फरमूद अली पुंडीर को P.W.7 के रूप में, जो I.O. है और आरोपी दिलीप, जिसे फरार घोषित किया गया था, के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया, आई.ओ. के रूप में दयानंद सिंह, पी.डब्लू.9, राजबहादुर सिंह चौहान पी.डब्लू.8 जिन्होंने मामले की जांच रिपोर्ट तैयार की। दस्तावेजी साक्ष्य में अभियोजन पक्ष ने मुन्नी देवी की पूर्व पत्नी के रूप में दी गई तहरीर रिपोर्ट को प्रस्तुत और पदर्श क-1, किशोरी लाल द्वारा तहरीर रिपोर्ट प्रदर्श क-2 अज्ञात मृतक की पहचान पूर्व के रूप में करने के संबंध में, फर्द मृतक की पोस्टमार्टम रिपोर्ट पूर्व के रूप में प्रदर्श क3, जीडी की प्रतिलिपी को प्रदर्श क-5, पंचनामा रिपोर्ट को प्रदर्श क-6, सीएमओ को भेजे गये पत्र को प्रदर्श क-9, कपडो एवं चप्पलों के फर्द को प्रदर्श क-10 एवं आरोप पत्र को प्रमाणित किया गया। अभियोजन साक्ष्य बंद होने के बाद, धारा 313 सीआरपीसी के तहत आरोपी का बयान दर्ज किया गया। विचारण न्यायालय द्वारा पूरे साक्ष्य और अन्य आपत्तिजनक परिस्थितियों को समझाते हुए दर्ज किया गया था। बयान में, अभियुक्त-अपीलकर्ता ने सामान्य उत्तर देते हुए कहा कि अभियोजन की पूरी कहानी गलत थी; गवाहों के बयान गलत हैं और वह बचाव पक्ष के साक्ष्य पेश करना चाहते हैं। आगे प्रश्न क्रमांक 15 के उत्तर में उन्होंने बताया कि वह जाति से बाल्मीकि, सफाईकर्मी हैं और उसे वर्तमान मामले में पुलिस द्वारा झूठा फंसाया गया क्योंकि उसने मुफ्त में सफाई का काम करने से इनकार कर दिया था, जबकि वह कानपुर में एक निजी नौकरी करता है।

12. विचारण न्यायालय ने दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताआें को सुनने और अभियोजन पक्ष के नेतृत्व में पूरे साक्ष्य (मौखिक और दस्तावेजी) पर विचार करने के बाद, अभियुक्त-अपीलकर्ता को आईपीसी की धारा 302 के तहत सुंदर लाल की हत्या का अपराध करने का दोषी पाया, दोषी ठहराया और सजा सुनाई। जैसा कि ऊपर कहा।

13. हमने अपीलकर्ता के लिए विद्वान न्याय मित्र को सुना है और राज्य के लिए विद्वान एजीए को सुना है और पार्टियों के लिए विद्वान अधिवक्ता की बहुमूल्य सहायता से रिकॉर्ड का अध्ययन किया है।

14. अभियुक्त-अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित निर्णय और दोषसिद्धि

अनुवादित

तथा सजा के आदेश का विरोध किया, हमें रिकॉर्ड के माध्यम से बताया और निम्नलिखित प्रस्तुतियाँ दीं: -

i. किसी ने भी आरोपी-अपीलकर्ता को सुंदर लाल की हत्या करते नहीं देखा है।

ii. पीडब्लू 1, 2, 3 और 6 के बयान से साबित होता है कि अपीलकर्ता मृतक की हत्या में शामिल नहीं है।

iii. अभियुक्त-अपीलकर्ता को वर्तमान अपराध से जोड़ने के लिए कोई अन्य प्रत्यक्ष या परिस्थितिजन्य साक्ष्य नहीं है।

iv. आरोपी-अपीलकर्ता का सुंदर लाल की हत्या करने का कोई मकसद नहीं है।

v. मुख्य आरोपी मुकेश उर्फ मुरारी को इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने दिनांक 11.09.2019 के आदेश के तहत पहले ही बरी कर दिया है। अभियोजन पक्ष के अनुसार, सुंदर लाल का शव कथित तौर पर शोवरन लाल निवासी हैबतपुर कटरा, थाना कन्नौज के खेत में पड़ा था। मृतक की गुमशुदगी की कोई रिपोर्ट नहीं है। मृतक के शव की पहचान उसकी हत्या के दो सप्ताह बाद पीडब्लू-1 और अन्य गवाहों द्वारा तस्वीरों और उसके कपड़ों के साथ-साथ अन्य लेखों के आधार पर की गई।

vi. अभियुक्त-अपीलकर्ता को दोषी ठहराने वाले परिस्थितिजन्य साक्ष्यों की कोई पूरी श्रृंखला नहीं है।

vii. गवाहों के बयानों में बड़े विरोधाभास हैं जो अभियोजन पक्ष के मामले को संदिग्ध और अविश्वसनीय बनाते हैं।

viii. अभियोजन उचित संदेह से परे अपना मामला स्थापित करने में विफल रहा और आरोपी-अपीलकर्ता संदेह का लाभ पाने का हकदार है।

15. विद्वान एजीए ने उपरोक्त प्रस्तुतियों का विरोध किया और प्रस्तुत किया कि अभियोजन पक्ष के पास आरोपी-अपीलकर्ता को हत्या जैसे वर्तमान अपराध में झूठा फंसाने या जोड़ने का कोई कारण नहीं है; मृतक सुंदर लाल की पहचान उसकी मां और अन्य गवाहों ने उसके कपड़े और अन्य सामान देखकर की; अभियुक्त-अपीलकर्ता ने कोई उचित स्पष्टीकरण नहीं दिया है और उपरोक्त अपराध करने में शामिल है; इसलिए विचारण न्यायालय ने आरोपी-अपीलकर्ता को सही ढंग से दोषी ठहराया है।

16. हालाँकि बचाव पक्ष की ओर से सुंदर लाल की हत्या पर विवाद नहीं किया जा सका, लेकिन अभियुक्त-अपीलकर्ता के अधिवक्ता के अनुसार, वह सुंदर लाल की मौत के लिए ज़िम्मेदार नहीं है। पीडब्लू-8 एस.आई., राजबहादुर सिंह चौहान और पीडब्लू-4 डॉ. नन्हूमल के साक्ष्य से पता चला कि अज्ञात व्यक्ति का शव, जिसकी पहचान बाद में सुंदर लाल के रूप में हुई, हैबतपुर कटरा निवासी शोवरन के खेत में पाया गया था और उसकी कुछ लोगों ने गला घोंटकर हत्या की गई और उसकी गर्दन पर पोस्टमार्टम के बाद लिगेचर मार्क पाया गया।

17. इस प्रकार, विचार के लिए एकमात्र प्रश्न यह है कि "क्या अभियुक्त-अपीलकर्ता ने सुंदर

अनुवादित

लाल की हत्या की है या नहीं और विचारण न्यायालय ने उसे ऊपर बताए अनुसार सही दोषी ठहराया है या नहीं?"

18. हमारे लिए यह उपयुक्त होगा कि हम अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयानों के साथ-साथ पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर संक्षेप में विचार करें।

19. पीडब्लू-1 मुन्नी देवी ने बताया कि उस दुर्भाग्यपूर्ण दिन सुबह लगभग 08:00 बजे, वह अपनी बेटी गौरी और अपने बेटे सुंदर लाल के साथ अपने घर में मौजूद थी; सह-अभियुक्त मुकेश, जो आरोपी-अपीलकर्ता (दिलीप) का बड़ा भाई है, आया और नौकरी (मजदूरी) के बहाने उसके बेटे सुंदर लाल को ले गया; जब उसके बेटे ने उसके साथ जाने से इनकार कर दिया, तो सह-अभियुक्त (मुकेश) ने जिद की और कुछ समय बाद आने का आश्वासन दिया और सह-अभियुक्त (मुकेश) और उसका बेटा एक साथ चले गए; उसके बाद मृतक अपने घर वापस नहीं आया; सुबह में, उसने सह आरोपी (मुकेश) से संपर्क किया और अपने बेटे सुंदर लाल (मृतक) के बारे में पूछा, जिसने जवाब दिया कि उसने उसे (मृतक) फूलमती मंदिर के पास छोड़ दिया था; उसके बाद सह अभियुक्त (मुकेश) गायब हो गया; तीन दिन बाद उसे पता चला कि हैबतपुर कटरा में खेत में एक शव मिला है; उसने थाने में फोटो और कपड़े देखकर शव की पहचान अपने बेटे सुंदर लाल के रूप में की; और उसने तहरीर को प्रदर्श का-1 साबित कर दिया। उसने आगे कहा कि उसकी विवाहित बेटी सुमन ने उसे बताया था, जिसे सह-अभियुक्त मूलचंद ने सूचित किया था कि मुकेश ने अपने साथियों शेरा, मूलचंद और दिलीप के साथ मिलकर उसके बेटे की हत्या कर दी है और हैबतपुर कटरा में साक्ष्य मिटाने के लिए शव को कहीं फेंक दिया है। उन्होंने जिरह में स्वीकार किया कि मेरे बेटे और दिलीप के बीच कोई लड़ाई (दुश्मनी) नहीं थी. उसने सिर्फ मुकेश के खिलाफ ही आवेदन दिया था, बाकी आरोपियों को पुलिस ने मुकेश के इकबालिया बयान पर फंसाया था. उसने आगे कहा कि आरोपी दिलीप उसके बेटे को नहीं ले गया था, बल्कि मुकेश ही उसके बेटे सुंदर लाल को ले गया था। उसने आगे स्वीकार किया कि उसने जांच अधिकारी को मुकेश का नाम नहीं बताया था। वह यह नहीं कह सकती कि दिलीप को सच में फंसाया गया है या गलत.

20. पीडब्लू-2, मृतक सुंदर लाल की बहन श्रीमती सुमन ने बताया कि वह अपने पति और बच्चों के साथ अपनी मां के घर में रह रही थी; मृतक सुंदर लाल उसका भाई था; उस दुर्भाग्यपूर्ण दिन सुबह लगभग 07:30 बजे, सह-अभियुक्त (मुकेश) उसके भाई को उसकी उपस्थिति में नौकरी (मजदूरी) के बहाने ले गया; उस समय घर में उनकी मां, बहन गौरी और सीता भी मौजूद थीं; जब उसका भाई सुंदर लाल शाम को उसके घर नहीं लौटा तो उसकी मां सह-अभियुक्त (मुकेश) के घर गई लेकिन न तो वह, सह-अभियुक्त (मुकेश) और न ही उसका भाई (सुंदर लाल) वहां पाया गया; तीसरे दिन जब वह सरायमीर आई तो उसने सह-अभियुक्त मूलचंद को पानी की टंकी के पास देखा और उसने उसे बताया कि कैसे मुकेश और शेरा ने सुंदर लाल की हत्या की और उसे धमकी दी। घटना के लगभग 15 या 16 दिन

अनुवादित

बाद उसे पता चला कि हैबतपुर कटरा में एक अज्ञात व्यक्ति का शव मिला है, तब वह, उसकी बहन गौरी और उसकी मां संतोष और बाबू के साथ पुलिस स्टेशन गईं और देखा। उसके भाई की तस्वीरें और कपड़े; उन्होंने इसकी पहचान मृतक सुंदर लाल के रूप में की। उसने आगे कहा कि अदालत में मौजूद आरोपी दिलीप उसके भाई को घर से नहीं ले गया था और न ही उसकी जानकारी में वह हत्या में शामिल है। जिरह में उस ने स्वीकार किया कि दिलीप ने उस के भाई सुंदर की हत्या नहीं की है. दिलीप की सुंदर से कोई दुश्मनी नहीं थी।

21. पीडब्लू-3, गौरी, जो मृतक की बहन है, ने बताया कि घटना के दिन सुबह लगभग 08:00 बजे, वह (गौरी), उसकी मां (पीडब्लू 1 मुन्नी देवी) और मृतक (सुंदर लाल) घर में थे; सह-अभियुक्त (मुकेश) उसके घर आया और नौकरी (मजदूरी) के बहाने मृतक को अपने साथ ले गया; जब वह वापस नहीं आया, तो उसने और उसकी माँ ने उसे हर जगह खोजा, लेकिन काफी खोजबीन के बाद भी मृतक नहीं मिला; उसी रात और अगली सुबह, उसने सह-अभियुक्त (मुकेश) से अपने भाई के बारे में पूछा लेकिन उसने जवाब दिया कि उसने मृतक को फूलमती मंदिर के पास छोड़ दिया था; तीन दिन बाद, उसे पता चला कि हैबतपुर कटरा में एक शव मिला है, वह पुलिस स्टेशन गई और तस्वीरें देखीं और उसके भाई की जींस पैंट, हरी शर्ट और काली स्लीपर देखी और पहचान की कि वे उसके भाई सुंदर लाल के हैं। ; पुलिस ने उन्हें बताया कि शव के पैर एक ही तौलिए से बंधे हुए थे, जिसे उसे दिखाया गया और उसने पहचान लिया कि यह मुकेश का तौलिया है। उसने आगे कहा कि उसकी बहन सुमन ने उसे और परिवार को बताया कि मूलचंद ने कबूल किया है कि मुकेश और शेरा ने सुंदर लाल की हत्या की है और साक्ष्य मिटाने के लिए शव को हैबतपुर कटरा के पास एक खेत में फेंक दिया है। उसने स्वीकार किया कि अदालत में उपस्थित आरोपी दिलीप उसके भाई सुंदर लाल को घर से नहीं ले गया है और जहां तक उसकी जानकारी है। आरोपी दिलीप उसके भाई की हत्या में शामिल नहीं है। जिरह में उसने स्वीकार किया कि उसके भाई सुंदर लाल की दिलीप से कोई दुश्मनी नहीं थी और उसने उसके भाई की हत्या नहीं की है।

22. पी.डब्लू. 6, संतोष जो मृतक सुन्दर लाल के पड़ोस का है। उन्होंने मृतक की मां और बहनों के साथ थाने में कपड़ों की पहचान सुंदर लाल के कपड़ों से की है। जिरह में उन्होंने स्वीकार किया कि सुंदर लाल को कभी दिलीप के साथ नहीं देखा गया था। दिलीप की सुंदर लाल से कोई दुश्मनी या झगड़ा नहीं था. दिलीप ने सुंदर लाल की हत्या नहीं की है, जहां तक उसकी जानकारी है तो दिलीप निर्दोष है।

23. पीडब्लू 1, 2 और 3 आखिरी बार देखे गए गवाह हैं, जिन्होंने मृतक को आखिरी बार सह-अभियुक्त (मुकेश) के साथ देखा था और वर्तमान आरोपी-अपीलकर्ता का छोटा भाई होने के नाते- दिलीप को वर्तमान मामले में फंसाया गया है और यहां तक कि सह-अभियुक्त मूलचंद के बयान को छोड़कर, किसी अन्य सह-अभियुक्त व्यक्ति और गवाह ने उपरोक्त अपराध में शामिल होने के संबंध में वर्तमान अपीलकर्ता दिलीप का नाम नहीं लिया है। पी.डब्ल्यू.9, आई.ओ. ने अपनी जिरह में

अनुवादित

स्वीकार किया है कि सह-अभियुक्त मूलचंद के इकबालिया बयान के अलावा कोई अन्य साक्ष्य रिकॉर्ड पर उपलब्ध नहीं है, जिससे आरोपी-अपीलकर्ता को वर्तमान अपराध से जोड़ा जा सके। रिकॉर्ड से यह स्पष्ट है कि आरोपी मुकेश के खिलाफ एकमात्र साक्ष्य मृतक सुंदर लाल के साथ आखिरी बार देखी गई परिस्थितियों का है और मुकेश मृतक सुंदर लाल को नौकरी (मजदूरी) के बहाने ले गया था। दिलचस्प बात यह है कि मुकेश को इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ द्वारा जेल अपील संख्या 4771/2017 में दिनांक 11.09.2019 के आदेश के तहत पहले ही बरी कर दिया गया है।

24. एक मामले में, जो परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है, कानून कहता है कि दोहरी आवश्यकताओं को पूरा किया जाना चाहिए। सबसे पहले, परिस्थितियों की श्रृंखला में प्रत्येक कड़ी, जो अभियुक्त के अपराध को स्थापित करने के लिए आवश्यक है, उचित संदेह से परे अभियोजन द्वारा स्थापित की जानी चाहिए; और दूसरा, सभी परिस्थितियाँ केवल अभियुक्त के अपराध के अनुरूप होनी चाहिए।

25. मौजूदा मामले में घटना का कोई चश्मदीद गवाह नहीं है और अभियोजन का मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर टिका है। कानून के सुस्थापित प्रस्ताव के बारे में कोई विवाद नहीं हो सकता है कि जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए वह "होना चाहिए या होना चाहिए" न कि केवल "पूरी तरह से स्थापित" हो सकता है। इस प्रकार स्थापित तथ्य केवल अभियुक्त के अपराध के अनुरूप होने चाहिए, अर्थात्, उन्हें किसी अन्य परिकल्पना के माध्यम से स्पष्ट नहीं किया जाना चाहिए सिवाय इसके कि अभियुक्त दोषी था। इसके अलावा, परिस्थितियाँ होनी चाहिए प्रकृति में निर्णायक साक्ष्यों की एक श्रृंखला इतनी पूर्ण होनी चाहिए कि अभियुक्त की बेगुनाही के अनुरूप निष्कर्ष के लिए कोई उचित आधार न छूटे, और यह दिखाना चाहिए कि सभी मानवीय संभावनाओं में, अपराध अभियुक्त द्वारा किया गया था।

26. हनुमंत बनाम मध्य प्रदेश राज्य, एआईआर 1952 एससी 343 में, बहुत पहले 1952 में, माननीय न्यायमूर्ति महाजन ने परिस्थितिजन्य साक्ष्यों पर आधारित एक मामले के विभिन्न सहवर्ती साक्ष्यों की व्याख्या की थी और कहा था:

> *"...परिस्थितियां निर्णायक प्रकृति और प्रवृति की होनी चाहिए और वे ऐसी होनी चाहिए जो साबित होने के लिए प्रस्तावित परिकल्पना को छोड़कर हर परिकल्पना को बाहर कर दें..... यह ऐसी होनी चाहिए जिससे यह पता चले कि सभी मानवीय संभावनाओं के भीतर कार्य यह काम आरोपी ने ही किया होगा."*

27. हुकम सिंह बनाम राजस्थान राज्य, एआईआर 1977 एससी 1063 में, न्यायालय ने कहा, जहां एक मामला स्पष्ट रूप से परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है, अपराध का अनुमान तभी उचित ठहराया जा सकता है जब सभी आपत्तिजनक तथ्य और परिस्थितियां निर्दोषता के साथ असंगत पाई जाएं। किसी

अनुवादित

अन्य व्यक्ति पर आरोप लगाया गया या दोषी ठहराया गया।

28. शरद बिरधीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य, एआईआर 1984 एससी 1622 में, न्यायालय ने परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर एक मामले से निपटते हुए कहा कि यह साबित करने का दायित्व अभियोजन पक्ष पर है कि श्रृंखला पूरी हो गई है। अभियोजन में कमज़ोरी या कमी को झूठे बचाव या दलील से ठीक नहीं किया जा सकता। परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि से पहले की शर्तें पूरी तरह से स्थापित की जानी चाहिए। न्यायालय ने निम्नलिखित शर्त उदाहरण का वर्णन किया:-

"(1) जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, उन्हें पूरी तरह से स्थापित किया जाना चाहिए। संबंधित परिस्थितियों को स्थापित किया जाना चाहिए या होना चाहिए, न कि स्थापित किया जा सकता है।

(2) इस प्रकार स्थापित तथ्य केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप होने चाहिए, अर्थात, उन्हें किसी अन्य परिकल्पना पर स्पष्ट नहीं किया जाना चाहिए सिवाय इसके कि अभियुक्त दोषी है।

(3) परिस्थितियाँ निर्णायक प्रकृति एवं प्रवृत्ति की होनी चाहिए।

(4) उन्हें सिद्ध की जाने वाली परिकल्पना को छोड़कर हर संभावित परिकल्पना को बाहर कर देना चाहिए, और

(5) साक्ष्यों की एक श्रृंखला इतनी पूर्ण होनी चाहिए कि अभियुक्त की बेगुनाही के अनुरूप निष्कर्ष के लिए कोई उचित आधार न छूटे और यह दर्शाया जाए कि सभी मानवीय संभावनाओं में कार्य अभियुक्त द्वारा किया गया होगा।

29. अशोक कुमार चटर्जी बनाम मध्य प्रदेश राज्य, एआईआर 1989 एससी 1890 में, न्यायालय ने कहा:

> *"...जब कोई मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर टिका होता है तो ऐसे साक्ष्य को निम्नलिखित परीक्षणों को पूरा करना चाहिए:-*
>
> *(1) जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, उन्हें सुसंगत और दृढ़ता से स्थापित किया जाना चाहिए;*
>
> *(2) वे परिस्थितियाँ एक निश्चित प्रवृत्ति की होनी चाहिए जो त्रुटिहीन रूप से अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करती हों;*
>
> *(3) परिस्थितियाँ, संचयी रूप से ली गईं; एक श्रृंखला इतनी पूर्ण बनाई जानी चाहिए कि इस निष्कर्ष से कोई बच न सके कि पूरी मानवीय संभावना के तहत अपराध आरोपी द्वारा किया गया था और किसी और ने नहीं; और,*
>
> *(4) दोषसिद्धि को बनाए रखने के लिए परिस्थितिजन्य साक्ष्य पूर्ण होने चाहिए और अभियुक्त के अपराध के*

अनुवादित

अलावा किसी भी अन्य परिकल्पना की व्याख्या करने में असमर्थ होने चाहिए और ऐसे साक्ष्य न केवल अभियुक्त के अपराध के अनुरूप होने चाहिए बल्कि उसके साथ अज्ञानता से असंगत होने चाहिए।"

30. सी. चेंगा रेड्डी और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, 1996(10) एससीसी 193 में, कोर्ट ने कहा:

"परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर एक मामले में, स्थापित कानून यह है कि जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाता है, उन्हें पूरी तरह से साबित किया जाना चाहिए और ऐसी परिस्थितियां प्रकृति में निर्णायक होनी चाहिए। इसके अलावा, सभी परिस्थितियां पूर्ण होनी चाहिए और कोई नहीं होना चाहिए साक्ष्यों की शृंखला में छोड़ा गया अंतर। इसके अलावा, सिद्ध परिस्थितियां केवल आरोपी के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप होनी चाहिए और उसकी बेगुनाही के साथ पूरी तरह से असंगत होनी चाहिए।"

31. बोध राज @ बोधा और अन्य बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य, 2002(8) एससीसी 45, कोर्ट ने सर अल्फ्रेड विल्स, "विल्स' से उद्धृत किया परिस्थितिजन्य साक्ष्य" (अध्याय VI) और फैसले के पैरा 15 में कहा गया है:

"(1) किसी भी कानूनी अनुमान के आधार के रूप में कथित तथ्यों को स्पष्ट रूप से साबित किया जाना चाहिए और तथ्यात्मक जांच से जुड़े उचित संदेह से परे होना चाहिए;

(2) साक्ष्य का बोझ हमेशा उस पक्ष पर होता है जो किसी तथ्य के अस्तित्व का दावा करता है, जो कानूनी जवाबदेही का अनुमान लगाता है;

(3) सभी मामलों में, चाहे प्रत्यक्ष साक्ष्य हो या परिस्थितिजन्य साक्ष्य, सर्वोत्तम साक्ष्य प्रस्तुत किया जाना चाहिए जिसे मामले की प्रकृति स्वीकार करती है;

(4) अपराध के अनुमान को उचित ठहराने के लिए, दोषी तथ्यों को अभियुक्त की बेगुनाही के साथ असंगत होना चाहिए और उसके अपराध के अलावा किसी अन्य उचित परिकल्पना पर स्पष्टीकरण देने में असमर्थ होना चाहिए,

(5) यदि अभियुक्त के अपराध पर कोई उचित संदेह है, तो वह बरी होने का अधिकार रखता है।"

32. **सुब्रमण्य बनाम कर्नाटक राज्य में, एस.सी.आर. [2022] 14 एस.सी.आर. 828** शीर्ष न्यायालय ने हाल ही में टिप्पणी की और कहा:-

अनुवादित

"परिस्थितिजन्य साक्ष्य की सराहना को नियंत्रित करने वाले सिद्धांत"

47. शरद बिरधीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1984) 4 एससीसी 116 में इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने निम्नानुसार निर्णय दिया:

"152. उच्च न्यायालय द्वारा भरोसा किए गए मामलों पर चर्चा करने से पहले हम एक आपराधिक मामले में आवश्यक प्रकृति, चरित्र और आवश्यक साक्ष्य पर कुछ निर्णयों का हवाला देना चाहेंगे जो केवल परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित हैं। इस न्यायालय का सबसे मौलिक और बुनियादी निर्णय हनुमंत बनाम मध्य प्रदेश राज्य [एआईआर 1952 एससी 343: 1952 एससीआर 1091: 1953, सुब्रमण्य बनाम कर्नाटक राज्य [जे. बी पारदीवाला, जे.] ए बी सी डी ई एफ जी एच 860 [2022] 14 एस.सी.आर. सीआरआई एलजे 129]। इस मामले को इस न्यायालय द्वारा बाद के कई निर्णयों में समान रूप से लागू किया गया है, उदाहरण के लिए, तुफैल (उर्फ) सिम्मी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(1969) 3 एससीसी 198: 1970 एससीसी (सीआरआई) 55] और रामगोपाल बनाम महाराष्ट्र राज्य [(1972) 4 एससीसी 625: एआईआर 1972 एससी656], हनुमंत मामले में न्यायमूर्ति महाजन ने जो कहा है, उसे समझना उपयोगी हो सकता है [एआईआर 1952 एससी 343: 1952 एससीआर 1091: 1953 सीआरआई एलजे 129]: यह याद रखना अच्छा होगा कि ऐसे मामलों में जहां साक्ष्य परिस्थितिजन्य प्रकृति का है, जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, उन्हें पहली बार में पूरी तरह से स्थापित किया जाना चाहिए, और इस प्रकार स्थापित सभी तथ्य केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप होने चाहिए। फिर, परिस्थितियाँ निर्णायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिए और वे ऐसी होनी चाहिए जो सिद्ध होने के लिए प्रस्तावित परिकल्पना को छोड़कर प्रत्येक परिकल्पना को बाहर कर दें।

अनुवादित

दूसरे शब्दों में, साक्ष्यों की एक श्रृंखला अब तक पूरी होनी चाहिए ताकि आरोपी की बेगुनाही के अनुरूप निष्कर्ष के लिए कोई उचित आधार न छूटे और यह ऐसा होना चाहिए जो यह दिखाए कि आरोपी द्वारा सभी मानवीय संभावनाओं के भीतर कार्य किया गया होगा।

153. इस निर्णय के गहन विश्लेषण से पता चलेगा कि किसी आरोपी के खिलाफ मामला पूरी तरह से स्थापित होने से पहले निम्नलिखित शर्तों को पूरा किया जाना चाहिए: (1) जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, उन्हें पूरी तरह से स्थापित किया जाना चाहिए। यहां यह ध्यान दिया जा सकता है कि इस न्यायालय ने संकेत दिया है कि संबंधित परिस्थितियों को 'स्थापित किया जाना चाहिए' और 'नहीं' किया जा सकता है। 'साबित किया जा सकता है' और 'साबित किया जाना चाहिए' के बीच न केवल व्याकरणिक बल्कि कानूनी अंतर है, जैसा कि इस न्यायालय ने शिवाजी साहबराव बोबडे बनाम महाराष्ट्र राज्य [(1973) 2 एससीसी 793: 1973 एससीसी (सीआरआई) 1033: 1973 सीआरआई एलजे 1783] में माना था, जहां निम्नलिखित टिप्पणियां की गईं: [एससीसी पैरा 19, पी। 807 : एससीसी (सीआरआई) पी. 1047] निश्चित रूप से, यह एक प्राथमिक सिद्धांत है कि अदालत द्वारा ए बी सी डी ई एफ जी एच 861 को दोषी ठहराए जाने से पहले आरोपी को दोषी होना चाहिए न कि केवल दोषी होना चाहिए और 'हो सकता है' और 'होना चाहिए' के बीच की मानसिक दूरी लंबी है और अस्पष्ट अनुमानों को निश्चित निष्कर्षों से विभाजित करती है। (2) इस प्रकार स्थापित तथ्य केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप होने चाहिए, अर्थात, उन्हें किसी अन्य परिकल्पना पर समझाने योग्य नहीं होना चाहिए सिवाय इसके कि अभियुक्त दोषी है, (3) परिस्थितियाँ होनी चाहिए एक निर्णायक प्रकृति और

अनुवादित

प्रवृत्ति, (4) उन्हें साबित की जाने वाली परिकल्पना को छोड़कर हर संभावित परिकल्पना को बाहर करना चाहिए, और (5) साक्ष्यों की एक श्रृंखला होनी चाहिए ताकि कोई भी न छूटे निष्कर्ष के लिए उचित आधार अभियुक्त की बेगुनाही के अनुरूप होना चाहिए और यह दिखाना चाहिए कि सभी मानवीय संभावनाओं में कार्य अभियुक्त द्वारा किया गया होगा।

154. ये पांच सुनहरे सिद्धांत, अगर हम ऐसा कह सकते हैं, परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर किसी मामले को साबित करने के पंचशील का गठन करते हैं।

48. विलियम विल्स द्वारा परिस्थितिजन्य साक्ष्य के सिद्धांतों पर एक निबंध में टी. और जे.डब्ल्यू. द्वारा जॉनसन एंड कंपनी 1872, इसे इस प्रकार समझाया गया है: "प्रत्यक्ष गवाही के मामलों में, यदि संबंधियों को विश्वास दिया जाए, तो सुनने का कार्य और विश्वास का कार्य, हालांकि वास्तव में ऐसा नहीं है, समसामयिक प्रतीत होते हैं। लेकिन मामला बहुत अलग है जब हमें परिस्थितिजन्य साक्ष्यों के आधार पर निर्णय लेना होता है, जिसके संबंध में निर्णय अनिवार्य रूप से अनुमानात्मक होता है। तथ्यों और अनुमान के बीच कोई स्पष्ट आवश्यक संबंध नहीं है; तथ्य सत्य हो सकते हैं, और अनुमान ग़लत हो सकता है, और केवल समान या समान परिस्थितियों में अवलोकन के परिणामों की तुलना करके ही हम अपने निष्कर्षों की सटीकता में विश्वास प्राप्त करते हैं। प्रकल्पित शब्द का प्रयोग अक्सर परिस्थितिजन्य साक्ष्य के पर्याय के रूप में किया जाता है; लेकिन इसका उपयोग सख्त सटीकता के साथ नहीं किया जाता है, शब्द "अनुमान," परिस्थितिजनक साक्ष्यों का पर्यायवाची है; शब्द "अनुमान," पूर्व वी टर्मिनी, तथ्यों से एक अनुमान लगाता है; और सहायक "अनुमानित", जैसा कि सुब्रमण्य बनाम कर्नाटक राज्य [जे बी पारदीवाला, जे.] ए बी सी डी ई एफ जी

अनुवादित

एच 862 सुप्रीम कोर्ट रिपोर्ट [2022] 14 एस.सी.आर. साक्ष्यात्मक तथ्यों पर लागू, तथ्यों और अनुमान के बीच कुछ संबंध की निश्चितता का तात्पर्य है। परिस्थितियाँ आम तौर पर, लेकिन जरूरी नहीं, विशेष निष्कर्ष तक ले जाती हैं; क्योंकि तथ्य निर्विवाद हो सकते हैं, और फिर भी मुख्य तथ्य से उनका संबंध केवल स्पष्ट हो सकता है, वास्तविक नहीं; और जब कनेक्शन वास्तविक हो, तब भी कटौती गलत हो सकती है। इसलिए, जीनस और प्रजाति के रूप में।परिस्थितिजन्य साक्ष्य की शक्ति और प्रभाव उस तथ्य की सत्यता के अलावा किसी अन्य अनुमान के साथ इसकी असंगति, स्पष्टीकरण या समाधान की अक्षमता पर निर्भर करता है जिसे साबित करने के लिए इसे प्रस्तुत किया गया है; तर्क का तरीका रिडक्टियो एड एब्सर्डम उक्ति द्वारा प्रदर्शन की विधि से मिलता जुलता है।"

49. इस प्रकार, उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय को उपरोक्त स्थापित कानूनी प्रस्तावों के आलोक में परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर विचार करना चाहिए। परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में, निर्णय अनिवार्य रूप से अनुमानात्मक रहता है। निष्कर्ष स्थापित तथ्यों से निकाला जाता है क्योंकि परिस्थितियाँ विशेष निष्कर्षों की ओर ले जाती हैं। न्यायालय को इस संबंध में एक निष्कर्ष निकालना होगा कि क्या परिस्थितियों की श्रृंखला पूरी है, और जब उन परिस्थितियों पर सामूहिक रूप से विचार किया जाता है, तो इससे केवल इस अप्रतिरोध्य निष्कर्ष पर पहुंचना चाहिए कि केवल अभियुक्त ही विचाराधीन अपराध का अपराधी है। इस प्रकार स्थापित सभी परिस्थितियाँ निर्णायक प्रकृति की होनी चाहिए, और केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप होनी चाहिए।"

33. पुलेन फुकन और अन्य बनाम असम राज्य, 2023 लाइव लॉ (एससी) 265 में सर्वोच्च न्यायालय ने उचित और निष्पक्ष निष्कर्ष के संबंध में जांच अधिकारी और

अनुवादित

विचारण न्यायालय के कर्तव्य के बारे में निम्नलिखित निर्णय लिया है: -

"13. अभियोजन पक्ष का काम शिकायतकर्ता के बयान को सुसमाचार सत्य के रूप में स्वीकार करना और उस दिशा में आगे बढ़ना नहीं है, बल्कि जांच निष्पक्ष और पारदर्शी तरीके से की जानी चाहिए और सच्चाई का पता लगाना चाहिए। जांच के दौरान एकत्र किए गए साक्ष्यों का विश्लेषण किया जाना चाहिए जांच अधिकारी द्वारा और तदनुसार सीआरपीसी की धारा 173 (2) के तहत एक रिपोर्ट प्रस्तुत की जानी चाहिए। इसके अलावा, विचारण न्यायालय का कर्तव्य साक्ष्यों की सावधानीपूर्वक जांच करना है, साक्ष्यों के आधार पर सच्चाई का पता लगाने का प्रयास करना है। जहां भी हो आवश्यक है कि विचारण न्यायालय उन तथ्यों और परिस्थितियों के संबंध में स्वयं आगे की जांच कर सकता है जो विचारण के दौरान न्यायालय के मन में संदेह पैदा कर सकते हैं। यदि जांच अनुचित और दागदार है तो विचारण न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह उन सभी पहलुओं पर स्पष्टीकरण जो सामने आ सकते हैं या साक्ष्य द्वारा प्रतिबिंबित हो सकते हैं ताकि यह एक उचित और उचित निष्कर्ष पर पहुंच सके। यदि विचारण न्यायालय इस शक्ति और उसमें निहित विवेक का प्रयोग करने में विफल रहता है तो विचारण न्यायालय का निर्णय हो सकता है कहा जाता है कि यह दूषित है।"

34. प्रदीप कुमार बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, 2023 लाइव लॉ (एससी) 239 में सर्वोच्च न्यायालय ने परिस्थितिजन्य साक्ष्य की सराहना के संबंध में सिद्धांत को निम्नानुसार रखा है: -

> *"24. यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि जिन मामलों में परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर भारी निर्भरता होती है, वहां आपराधिक न्याय प्रशासन में मुख्य सिद्धांत यह है कि जहां दो दृष्टिकोण संभव हैं, एक आरोपी के अपराध की ओर इशारा करता है और दूसरा उसकी बेगुनाही की ओर इशारा करता है। , जो अभियुक्त के अनुकूल हो उसे अपनाया जाना चाहिए। [काली राम बनाम एच.पी. राज्य। (1973) 2 एससीसी 808]।"*

35. नरेंद्रसिंह केशुभाई ज़ला बनाम गुजरात राज्य, 2023 लाइव लॉ (एससी) 227 में सर्वोच्च न्यायालय ने परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में साक्ष्य के संबंध में सिद्धांत को निम्नानुसार रखा है: -

"8. यह कानून का स्थापित सिद्धांत है कि संदेह साक्ष्य की जगह नहीं ले सकता, संदेह, चाहे वह कितना भी बड़ा क्यों न हो, आपराधिक न्यायशास्त्र में साक्ष्य का कोई विकल्प नहीं है [जग्गा सिंह बनाम पंजाब राज्य, 1994 सप्लिमेंट (3) एससीसी 463]। "

36. गुना महतो बनाम झारखंड राज्य, 2023 लाइव लॉ (एससी) 197 में सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायालय के कर्तव्य के बारे में सिद्धांत

अनुवादित

दिया कि न्याय के गर्भपात से बचा जाना चाहिए: -

"16. हम दोहरा सकते हैं कि संदेह चाहे कितना भी गंभीर क्यों न हो, किसी भी उचित संदेह से परे अपना मामला स्थापित करने के लिए अभियोजन पक्ष द्वारा प्रचारित कहानी में केवल एक संदिग्ध वर्ण बना हुआ है। वेंकटेश बनाम कर्नाटक राज्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 765; शत्रुघ्न बबन मेश्राम बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2021) 1 एससीसी 596; पप्पू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2022) 10 एससीसी 321]। उपरोक्त को छोड़कर, कोई साक्ष्य नहीं है: नेत्र संबंधी, परिस्थितिजन्य या अन्यथा, जो अभियुक्त के अपराध को स्थापित किया जा सकता है। जिस अपराध को साबित करने की मांग की गई है, उससे अभियुक्त को जोड़ने वाले किसी भी तथ्य की कोई खोज नहीं हुई है, अभियोजन पक्ष द्वारा उचित संदेह से परे स्थापित तो बिल्कुल भी नहीं किया गया है।

17. यह सुनिश्चित करना हमारा कर्तव्य है कि हर कीमत पर न्याय की हानि से बचा जाए और संदेह का लाभ, यदि कोई हो, आरोपी को दिया जाए। [हनुमंत गोविंद नरगुंडकर बनाम मध्य प्रदेश राज्य। (1952) 2 एससीसी 71]।"

37. निखिल चंद्र मंडल बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, 2023 लाइव लॉ (एससी) 171 में सर्वोच्च न्यायालय ने आपराधिक मामलों में कानून के सिद्धांत के संबंध में निम्नानुसार टिप्पणी की और कहा: -

> *"11. यह कानून का स्थापित सिद्धांत है कि संदेह कितना भी मजबूत क्यों न हो, वह बिना किसी तर्कसम्मत संदेह के स्थापन पर साक्ष्य की जगह नहीं ले सकता....."*

38. इंद्रजीत दास बनाम त्रिपुरा राज्य, 2023 लाइव लॉ (एससी) 152 में, परिस्थितिजन्य साक्ष्यों के आधार पर मामलों में बुनियादी कड़ियों वाली श्रृंखला में परिस्थितियों के अनुक्रम के संबंध में, शीर्ष न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की और कहा: -

> *"10. वर्तमान मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य का मामला है क्योंकि किसी ने भी अपराध होते नहीं देखा है। परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में कानून अच्छी तरह से तय है। प्रमुख मामला शरद बिरधीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य है। इसके अनुसार , परिस्थितियाँ एक निश्चित प्रवृत्ति की होनी चाहिए जो त्रुटिहीन रूप से अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करती हैं; संचयी रूप से ली गई परिस्थितियों को इतनी पूर्ण श्रृंखला बनानी चाहिए कि इस निष्कर्ष से बच न सकें कि सभी मानवीय संभावनाओं के भीतर अपराध अभियुक्त द्वारा किया गया था और उन्होंने*

अनुवादित

अभियुक्त के अपराध के अलावा और उसकी बेगुनाही के साथ असंगत किसी भी परिकल्पना पर स्पष्टीकरण देने में असमर्थ होना चाहिए। शरद बिरधीचंद सारदा (उपरोक्त) के मामले में निर्धारित उक्त सिद्धांत का इस न्यायालय द्वारा लगातार पालन किया गया है। एक हालिया मामले में - शैलेन्द्र राजदेव पासवान और अन्य बनाम गुजरात राज्य आदि, इस न्यायालय ने कहा कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में, कानून दो गुना आवश्यकताओं को निर्धारित करता है। सबसे पहले, परिस्थितियों की श्रृंखला में प्रत्येक लिंक आरोपी के अपराध को स्थापित करने के लिए आवश्यक है। अभियोजन पक्ष द्वारा उचित संदेह से परे स्थापित किया जाना चाहिए और दूसरी बात, सभी परिस्थितियाँ केवल अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करने वाली होनी चाहिए। हमें अन्य निर्णयों का हवाला देकर इस फैसले पर बोझ डालने की जरूरत नहीं है क्योंकि उपरोक्त सिद्धांतों का लगातार पालन किया गया है और इस न्यायालय द्वारा बार-बार अनुमोदित किया गया है।

12. परिस्थितियों की श्रृंखला में मूल कड़ियाँ उद्देश्य से शुरू होती हैं, फिर अंतिम बार देखे गए सिद्धांत, पुनर्प्राप्ति, चिकित्सा साक्ष्य, विशेषज्ञ की राय, यदि कोई हो, और किसी अन्य अतिरिक्त लिंक पर आगे बढ़ें जो परिस्थितियों की श्रृंखला का हिस्सा हो सकता है।

15. परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में मकसद की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। प्रत्यक्ष साक्ष्य के मामले में भी मकसद की भूमिका हो सकती है, लेकिन प्रत्यक्ष साक्ष्य के मामले की तुलना में परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में इसका अधिक महत्व होता है। यह परिस्थितियों की शृंखला की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। निम्नलिखित दो का संदर्भ लिया जा सकता है परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में मकसद के महत्व पर निर्णय:

(1) कुना उर्फ संजय बेहरा बनाम ओडिशा राज्य;

अनुवादित

(2018) 1 एससीसी 296 और (2) पुलिस निरीक्षक द्वारा रंगनायकी बनाम राज्य; (2004) 12 एससीसी 521।"

39. हाल ही में जाबिर और अन्य बनाम उत्तराखंड राज्य; 2023 लाइव लॉ (एससी) 41, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आपराधिक मामलों में परिस्थितिजन्य साक्ष्य की सराहना के संबंध में निर्धारित सिद्धांतों को दोहराया, जो इस प्रकार है:

"21. आपराधिक न्यायशास्त्र का एक बुनियादी सिद्धांत यह है कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामलों में, अभियोजन पक्ष प्रत्येक परिस्थिति को, उचित संदेह से परे, साथ ही सभी परिस्थितियों के बीच संबंधों को साबित करने के लिए बाध्य है; ऐसी परिस्थितियों को, संचयी रूप से लेते हुए, एक श्रृंखला बनानी चाहिए पूरा करें कि इस निष्कर्ष से कोई बच नहीं सकता है कि सभी मानवीय संभावनाओं के भीतर, अपराध आरोपी द्वारा किया गया था और किसी और ने नहीं; इसके अलावा, साबित किए गए तथ्यों को आरोपी के अपराध की ओर इंगित करना चाहिए। परिस्थितिजन्य साक्ष्य, कायम रखने के लिए दोषसिद्धि, पूर्ण होनी चाहिए और अभियुक्त के अपराध के अलावा किसी भी अन्य परिकल्पना की व्याख्या करने में असमर्थ होनी चाहिए, और ऐसे साक्ष्य न केवल अभियुक्त के अपराध के अनुरूप होने चाहिए, बल्कि उसकी बेगुनाही के साथ असंगत होने चाहिए।5 ये इस प्रकार कहा गया था सरद बिरदीचंद सारदा (उपरोक्त) जहां अदालत ने हनुमंत के उद्धरण के बाद कहा कि:

"153. इस निर्णय का बारीकी से विश्लेषण करने पर पता चलेगा कि किसी आरोपी के खिलाफ मामला पूरी तरह से स्थापित होने से पहले निम्नलिखित शर्तों को पूरा किया जाना चाहिए:

(1) जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, उन्हें पूरी तरह से स्थापित किया जाना चाहिए।

यहां यह ध्यान दिया जा सकता है कि इस न्यायालय ने संकेत दिया है कि संबंधित परिस्थितियों को 'स्थापित किया जाना चाहिए' और 'नहीं' किया जा सकता है। 'साबित किया जा सकता है'

अनुवादित

और 'साबित होना चाहिए' और 'साबित होना चाहिए' के बीच न केवल व्याकरणिक बल्कि कानूनी अंतर है, जैसा कि इस न्यायालय ने शिवाजी साहबराव बोबडे बनाम महाराष्ट्र राज्य में माना था; (1973) 2 एससीसी 793 जहां निम्नलिखित टिप्पणियाँ की गईं: [एससीसी पैरा 19, पृ. 807: एससीसी (क्रि.) पी. 1047] निश्चित रूप से, यह एक प्राथमिक सिद्धांत है जो अभियुक्त को करना चाहिएअदालत द्वारा दोषी ठहराए जाने से पहले केवल दोषी होना और न होना और 'हो सकता है' और 'होना चाहिए' के बीच की मानसिक दूरी लंबी है और अस्पष्ट अनुमानों को निश्चित निष्कर्षों से विभाजित करती है।

(2) इस प्रकार स्थापित तथ्य केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप होने चाहिए, अर्थात, उन्हें किसी अन्य परिकल्पना पर स्पष्ट नहीं किया जाना चाहिए सिवाय इसके कि अभियुक्त दोषी है, (3) परिस्थितियाँ निर्णायक प्रकृति एवं प्रवृत्ति की होनी चाहिए, (4) उन्हें साबित की जाने वाली परिकल्पना को छोड़कर हर संभावित परिकल्पना को बाहर करना चाहिए, और (5) साक्ष्य की एक श्रृंखला होनी चाहिए ताकि निष्कर्ष के लिए कोई उचित आधार न छूटे जो अभियुक्त की बेगुनाही के अनुरूप हो और यह दिखाना होगा कि पूरी मानवीय संभावना में यह कार्य अभियुक्त द्वारा किया गया होगा।"

154. ये पांच सुनहरे सिद्धांत, अगर हम ऐसा कह सकते हैं, परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर किसी मामले के सबूत के पंचशील का गठन करते हैं। ऐसा कहने के लिए, ये पंचशील सिद्धांत अब मौलिक नियम हैं, जिन्हें बार-बार दोहराया जाता है, और न केवल उनके पूर्ववर्ती वजन के लिए पालन की आवश्यकता होती है, बल्कि एकमात्र सुरक्षित आधार के रूप में जिस पर परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामलों में दोषसिद्धि पूरी तरह से टिकी रह सकती है।

41. वर्तमान मामले में, आरोपी अपीलकर्ता (दिलीप) के खिलाफ वर्तमान अपराध से जुड़ने का एकमात्र साक्ष्य पीडब्लू 1, 2 और 3, जो

अवलोकन

मृतक की मां और बहनें हैं, द्वारा निर्धारित परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है। पीडब्लू 1, 2 और 3 के साक्ष्य भी आरोपी-अपीलकर्ता के खिलाफ अविश्वास को प्रेरित करते हैं। जाहिर तौर पर पीडब्लू-1 अपने बेटे के लापता होने के दो सप्ताह बाद संबंधित पुलिस स्टेशन गई और लिखित रिपोर्ट प्रदर्श क-1 सौंपी। इस बात का कोई विश्वसनीय स्पष्टीकरण नहीं है कि मृतक की गुमशुदगी की रिपोर्ट पहले पुलिस स्टेशन में क्यों दर्ज नहीं कराई गई। परिस्थितिजन्य साक्ष्य के अन्य लिंक पूरी तरह से गायब हैं और सह-अभियुक्त (मुकेश) का छोटा भाई होने के नाते, जिसे पहले ही इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा बरी कर दिया गया है, को वर्तमान मामले में फंसाया गया है। इस प्रकार, रिकॉर्ड पर आरोपी (दिलीप) के खिलाफ कोई कानूनी साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। आरोपी के खिलाफ कोई मकसद नहीं बताया गया है या साबित नहीं किया गया है, बल्कि P.W.-1, 2, 3 और 6 ने अपने बयानों में विशेष रूप से कहा है कि आरोपी (दिलीप) की मृतक (सुंदर लाल) के साथ कोई दुश्मनी नहीं थी। वर्तमान मामले में आरोपी (दिलीप) को केवल सह-अभियुक्त(मूलचंद) द्वारा उठाए गए संदेह के आधार पर फंसाया गया है। यह स्थापित कानून है कि संदेह चाहे कितना ही गंभीर क्यों न हो, वह प्रमाण का स्थान नहीं ले सकता। कथित अपराध में आरोपी (दिलीप) की संलिप्तता के संबंध में कोई साक्ष्य नहीं है। कथित अपराध में संलिप्तता/सहभागिता के संबंध में आरोपी (दिलीप) द्वारा कोई खोज या बरामदगी या न्यायेतर स्वीकारोक्ति नहीं की गई है।

42. ऊपर चर्चा किए गए संपूर्ण साक्ष्यों और कानूनी प्रस्तावों को ध्यान में रखते हुए, हमारे विचार में, आरोपी (दिलीप) के खिलाफ कोई कानूनी साक्ष्य नहीं है, परिणामस्वरूप, अभियोजन पक्ष कथित अपराध में आरोपी (दिलीप) की

संलिप्तता/मिश्रितता के संबंध में श्रृंखला को पूरा करने के लिए परिस्थितिजन्य साक्ष्य साबित करने और स्थापित करने में बुरी तरह विफल रहा है। ।

43. इसलिए, हमारी सुविचारित राय में, हमारा विचार है कि अभियोजन पक्ष आरोपी-अपीलकर्ता (दिलीप) के खिलाफ उचित संदेह से परे परिस्थितिजन्य साक्ष्यों की पूरी कड़ी / श्रृंखला साबित नहीं कर सका और विचारण न्यायालय ने आईपीसी की धारा 302 के तहत परिस्थितिजन्य साक्ष्यों की गुम कड़ियों/श्रृंखला को नजरअंदाज करके आरोपी-अपीलकर्ता को दोषी ठहराने में त्रुटि की।

44. उपरोक्त चर्चा और कानूनी प्रस्तावों के साथ-साथ मुख्य सह-अभियुक्त (मुकेश @ मुरारी) को पहले ही इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ द्वारा बरी कर दिया गया है, इसी तरह के साक्ष्यों पर, वर्तमान जेल अपील की अनुमति दी गई है। सत्र परीक्षण संख्या 363 /2010(राज्य बनाम दिलीप और अन्य) में विद्वान अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, कोर्ट संख्या 2, कन्नौज द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांक 30.11.2016, जो केस अपराध संख्या 1020/ 2008 से उत्पन्न हुआ था।, थाना कन्नौज, जिला कन्नौज को

अनुवादित

धारा 302 आईपीसी के अंतर्गत अपास्त किया गया है।

45. अभियुक्त-अपीलार्थी को उसके विरुद्ध लगाये गये आरोप से बरी किया जाता है। यदि वह किसी अन्य अपराध में वांछित नहीं है तो उसे तुरंत रिहा कर दिया जाएगा।

46. सीआरपीसी की धारा 437-ए के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, अपीलकर्ता को विचारण न्यायालय के समक्ष उसकी संतुष्टि के लिए एक व्यक्तिगत बांड और दो जमानतदार प्रस्तुत करने का निर्देश दिया जाता है, जो छह महीने की अवधि के लिए प्रभावी होगा, साथ ही एक वचन पत्र भी देना होगा। तत्काल निर्णय के खिलाफ या छुट्टी की मंजूरी के लिए विशेष अनुमति याचिका दायर करने की स्थिति में, नोटिस प्राप्त होने पर अपीलकर्ता को माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष उपस्थित होना होगा।

47. निचली अदालत के रिकार्ड के साथ इस फैसले की प्रति भी होगी संबंधित जिला न्यायालय को वापस भेजा जाएगा और इस निर्णय की प्रति तत्काल अनुपालन और आगे की आवश्यक कार्रवाई के लिए संबंधित जिला न्यायाधीश के माध्यम से संबंधित जेल अधीक्षक को भी भेजी जाएगी।

48. मामले के समाप्त होने से पहले हम सुश्री श्वेता सिंह राणा, अधिवक्ता,जो वर्तमान जेल अपील में अपीलकर्ता के लिए एमिकस क्यूरी के रूप में उपस्थित हुए हैं, उन्हें अधिवक्ता की फीस के रूप में 10,000/- रुपये का भुगतान किया जाएगा। राज्य सरकार को निर्देश दिया जाता है कि वह बिना किसी देरी के, किसी भी मामले में, इस फैसले की प्रति प्राप्त होने की तारीख से एक महीने के भीतर, इलाहाबाद में महाधिवक्ता के कार्यालय में तैनात अतिरिक्त कानूनी अनुस्मारक के माध्यम से उपरोक्त शुल्क का भुगतान सुनिश्चित करे।

(2023) 6 ILRA 803

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 25.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा

माननीय न्यायमूर्ति मनीष कुमार निगम

आपराधिक अपील संख्या 8093/2008

कृष्ण कुमार एवं अन्य **अपीलकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **विपरीत पक्ष**

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता:

श्री आई.के. चतुर्वेदी (वरिष्ठ अधिवक्ता), श्री सौरभ चतुर्वेदी

विपक्षी पक्ष के अधिवक्ता:

जी.ए., श्री हरि बंस सिंह, श्री धर्म जीत सिंह

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 147, 148, 302, 323 और 149 - हत्या के लिए सजा - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 313 - दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील - आजीवन कारावास - एफआईआर के अनुसार आरोपी प्रथम सूचनाकर्ता की बहन को चिढ़ा रहा था - सूचनाकर्ता और उसके भाई (मृतक) ने आरोपी और उसकी मां से इस बारे में पूछताछ की -

अनुवादित

उसी समय, आरोपी के पुरुष परिवार के सदस्य हाथों में लाठियां लेकर वहां आ गए - आरोपी की मां ने भी दरांती के विपरीत हिस्से से उन पर वार किया - जांच के बाद आरोप तय किए गए - दो आरोपियों को किशोर घोषित किया गया और जेजेबी ने उन्हें बरी कर दिया - अचानक उकसावे की दलील - माना गया कि पीडब्लू-1 के बयान से स्पष्ट संकेत मिलता है कि अन्य आरोपी भी आरोपी थे। सह-आरोपी मौके पर नहीं थे और वे प्रथम सूचनाकर्ता द्वारा पूछताछ के परिणामस्वरूप चिल्लाने के कारण भाग गए थे - यदि कोई पूर्व नियोजित अपराध था तो दरांती का उपयोग तेज धार से किया जा सकता था - ऐसा अभियुक्त द्वारा किए गए प्रहार के कारण हुआ, मृतक नीचे गिर गया, उसने खुद को किसी कठोर वस्तु से मारा, जिससे उसे चोटें आईं, अंततः उसकी मृत्यु हो गई - घटना पूर्व नियोजित नहीं थी, अचानक हुई और मृतक को मारने का कोई सामान्य इरादा नहीं था - दोषसिद्धि को खारिज कर दिया गया, तदनुसार निर्देश दिए गए। (पैरा 3, 4, 5, 13, 14)

आपराधिक अपील आंशिक रूप से स्वीकार की गई। (ई-13)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

सुरैन सिंह बनाम सेंट ऑफ पुणे (2017) 5 एससीसी 796 में रिपोर्ट किया गया

(माननीय न्यायमूर्ति मनीष कुमार निगम द्वारा दिया गया)

1. यह अपील विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, वाराणसी द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांकित 22.11.2008 को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जिसके द्वारा अपीलकर्ता कृष्ण कुमार, हीरावती और लालमन को सत्र विचारण सं. 291 सन् 2022 अन्तर्गत मुकदमा अपराध सं. 167 सन् 2000 अन्तर्गत धारा 147, 148, 302, 323 और 149 भारतीय दंड संहिता, में आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई थी और अपीलकर्ता राम अचल को सत्र विचारण सं. 291-ए सन् 2002 अन्तर्गत मुकदमा अपराध सं. 167 सन् 2000 अन्तर्गत धारा 147, 148, 149, 302 और 323 भारतीय दंड संहिता, में आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई थी।

2. दिनांक 15.9.2000 को शाम लगभग 4.00 बजे हुई एक घटना पर, प्रथम सूचनादाता दिनेश कुमार यादव ने उसी दिन लगभग 23.05 बजे प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई।

3. अभियोजन पक्ष के अनुसार, जिसे प्रथम सूचना रिपोर्ट से स्पष्ट किया जा सकता है, प्रथम सूचनादाता ने अपने भाई रमेश की मृत्यु हो जाने पर प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराया था। प्रथम सूचना रिपोर्ट में कहा गया था कि लालमन यादव का पुत्र शिव कुमार यादव अपनी बहन सरोजा को ताना मार रहा था और ताना सुनने पर, दिनेश कुमार-प्रथम सूचनादाता और रमेश-मृतक, शिव कुमार यादव के पास गए, जहां उसकी मां श्रीमती हीरावती भी वहां थी और उन्होंने शिव कुमार यादव और हीरावती (मां) से पूछा कि वे क्यों ताना मार रहे थे। प्रथम सूचनादाता का यह भी कहना है कि उनके द्वारा यह पूछने के कारण, कि क्यों ताना दिया जा रहा है, शिव कुमार के परिवार के पुरुष सदस्य लालमन यादव, कमलेश यादव,

अनुवादित

कृष्ण इमर यादव और राम अचल यादव अपने हाथों में लाठियां लेकर वहां आए। आरोपी की मां हीरावती जो खुद एफआईआर में आरोपी बनाई गई थी, उसके हाथ में हसिया थी। प्राथमिकी में आगे कहा गया है कि मृतक रमेश और प्रथम सूचनादाता दिनेश कुमार को लाठी-डंडे और हसिया से पीटा गया और पिटाई के कारण रमेश जमीन पर गिर गया और बेहोश हो गया। यह भी कहा गया है कि दिनेश कुमार (प्रथम सूचनादाता) को भी पीटा गया था। इसके बाद दिनेश अपनी मां और पिता के साथ रमेश को एक ऑटो-रिक्शा में सरकारी अस्पताल ले गया जहां सरकारी अस्पताल के डॉक्टरों ने रमेश को कबीर चौरा अस्पताल रेफर कर दिया और चूंकि कबीर चौरा अस्पताल भी रमेश का इलाज करने में असमर्थ था, इसलिए उसने रमेश को आगे के लिए बी.एच.यू. रेफर कर दिया। आरोप है कि उपचार के दौरान रात 8.40 बजे रमेश की मृत्यु हो गई, इसलिए प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई। एफआईआर के परिणामस्वरूप मुकदमा अपराध सं. 167 सन् 2000 पंजीकृत कर विवेचना की गई।

4. विवेचना के उपरांत, आरोप तय किए गए और सत्र न्यायालय में प्रस्तुत किए गए, जिसने आरोप विरचित करने के बाद आरोपी कृष्ण कुमार, हीरावती और लालमन पर सत्र विचारण संख्या 291 सन् 2002 के अन्तर्गत और राम अचल पर सत्र विचारण संख्या 291-ए सन् 2002 के अन्तर्गत मुकदमा चलाया। दोनों सत्र विचारण की सुनवाई एक साथ की गई और जब दिनांक 21.11.2008 के निर्णय और आदेश द्वारा अभियुक्तों को भा.दं.सं. की धारा 147 और 302 सपठित धारा 149 और भा.दं.सं. की धारा 323 सपठित धारा 149 के तहत दोषी पाया गया, मौजूदा अपील अभियुक्त कृष्ण कुमार, श्रीमती हीरावती, लालमन और राम अचल द्वारा दायर की गई है।

5. शिव कुमार और कमलेश कुमार नाम के दो आरोपियों को किशोर घोषित किया गया था और अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह कहा गया है कि किशोर न्याय बोर्ड, वाराणसी ने दिनांक 25.11.2021 को उन्हें बरी कर दिया था।

6. विचारण चरण में, पहले सूचनादाता दिनेश कुमार यादव ने अपना मुख्य बयान दिया और पीडब्लू-1 के रूप में उनसे जिरह भी की गई। श्रीमती फूलपत्ती, मृतक की मां और पहले सूचनादाता पीडब्लू-2 के रूप में गवाह बॉक्स में आई थीं। डॉ. बी.के. दुबे, जिन्होंने दिनेश कुमार यादव के शरीर पर चोटों की जांच की थी, का परीक्षण पीडब्लू-3 के रूप में की गई थी। डॉ. डी.के. सिंह, सरकारी अस्पताल, फूलपुर, वाराणसी के प्रभारी चिकित्सक, जिन्होंने सरकारी अस्पताल में रमेश (मृतक) की चोटों की जांच की थी और श्रीमती गीता के शरीर पर आई चोटों की भी जांच की थी, से पीडब्लू-4 के रूप में पूछताछ की गई। डॉ. आर.ए. सिंह, सर्जन, जिला अस्पताल, जौनपुर से पीडब्लू-5 के रूप में पूछताछ की गई और उन्होंने मृतक रमेश का पोस्टमार्टम साबित किया है। पीडब्लू-6 कांस्टेबल राम अवध यादव; पीडब्लू-7 राम कुमार चौधरी और पीडब्लू-8 उप-निरीक्षक भरत दयाल सिंह से औपचारिक गवाह के रूप में पूछताछ की गई जिन्होंने विवेचना की थी।

अप्रमाणित

लालमन जो एक अभियुक्त था, को अदालत के गवाह के रूप में लाया गया था। अभियोजन पक्ष के गवाहों की जांच के बाद आरोपियों ने दं.प्र.सं. की धारा 313 के तहत अपना बयान दिया और निर्दोष होने का दावा किया।

7. पीडब्लू-1 दिनेश कुमार यादव ने कहा है कि शिव कुमार द्वारा उसकी बहन सरोजा के बारे में जो ताना मारा गया था, उसके कारण और मौखिक विवाद के कारण वह यानी दिनेश कुमार यादव वहां पहुंच गया था, जहां उसकी बहन सरोजा मवेशी चरा रही थी। जब वह वहां पहुंचा, तो हीरावती भी हाथ में हसिया (दरांती) लेकर वहां पहुंच गयी। इसी तरह, जब दिनेश कुमार यादव (प्रथम सूचनादाता) और शिव कुमार के बीच मौखिक विवाद जारी था, तो अन्य आरोपी कृष्ण कुमार, लालमन, राम अचल और कमलेश लाठी और डंडों के साथ मौके पर पहुंचे और दिनेश और रमेश को मारना शुरू कर दिया। उनके मुख्य परीक्षण में कहा गया है, कि हीरावती ने उन्हें हंसिया के दूसरी ओर से मारा, यानी उस तरफ से जो तेज नहीं था। जब दिनेश और रमेश चिल्लाए तो उनकी मां फूपत्ती देवी (पीडब्लू-2) और उनकी भाभी गीता देवी उन्हें बचाने के लिए मौके पर आईं। उन पर भी आरोपियों ने हमला किया और उन सभी को चोटें आईं। उसने आगे कहा है कि मारपीट से उसके भाई रमेश को गंभीर चोटें आईं और उसके हाथ और कमर पर भी चोटें आईं। उसने आगे बताया कि गोली लगने के बाद रमेश मौके से भाग निकला और धान की फसल में छिपकर अपनी जान बचायी। उसने आगे कहा है कि करीब 15-20 कदम जाने के बाद रमेश बेहोश हो गया था और गिर भी गया था। बताया गया है कि अन्य ग्रामीण भी मौके पर पहुंच गये। पीडब्लू-1 ने कहा है कि वह अपने भाई को प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, बसानी ले गया था जहां डॉक्टरों द्वारा जांच की गई और प्राथमिक दवा भी दी गई। चूंकि रमेश की हालत ठीक नहीं थी, इसलिए डॉक्टरों ने उसे कबीर चौरा अस्पताल रेफर कर दिया था और कबीर चौरा अस्पताल से मामला बनारस हिंदू विश्वविद्यालय रेफर कर दिया गया था, जहां रात 8.40 बजे उसके भाई रमेश की मौत हो गई थी। उसने अपनी लिखित तहरीर भी साबित की जो उसने पुलिस को दी थी। आगे अपनी जिरह में, पीडब्लू-1 ने कहा था कि शुरुआत में हीरावती मौके पर नहीं थी और शिव कुमार द्वारा पीटे जाने के कारण उसके भाई के चिल्लाने पर अन्य लोग आ गए थे। हालाँकि, अभियोजन पक्ष के गवाह दिनेश कुमार यादव ने कहा था कि परिवारों के बीच पहले से कोई दुश्मनी नहीं थी और यह घटना केवल शिव कुमार द्वारा बोले गए अश्लील शब्दों के कुछ मौखिक विवाद के कारण हुई थी। हालाँकि, उसने पूरे समय कहा है कि मारपीट अचानक उकसावे पर हुई थी।

8. पीडब्लू-2 फूलपत्ती ने भी यह कहा है कि झगड़ा इस बात को लेकर हुआ था कि सह-अभियुक्त शिव कुमार ने उसकी बेटी सरोजा को ताना मारा था। पीडब्लू-2 ने वस्तुतः वही दोहराया है जो पीडब्लू-1 ने कहा था। हालाँकि, उसने कहा है कि हमलावर आरोपी व्यक्ति थे, न कि उसके बेटे।

अनुवादित

9. डॉक्टर पीडब्लू-3, पीडब्लू-4 और पीडब्लू-5 ने चोट रिपोर्ट और पोस्टमार्टम रिपोर्ट को साबित किया है।

10. अपीलकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आई.के. चतुर्वेदी व उनके सहयोगी श्री सौरभ चतुर्वेदी ने दलील दिया है कि यदि सभी साक्ष्यों को उनकी समग्रता में पढ़ा जाए, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि घटना स्थल पर कोई भी आरोपी व्यक्ति मौजूद नहीं था और उन सभी को झूठा फंसाया गया है। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया है कि निश्चित रूप से हत्या के अपराध को अंजाम देने के लिए आरोपी व्यक्तियों की कोई पूर्व योजना नहीं थी। उनका कहना है कि अगर सभी सबूतों को एक साथ पढ़ा जाए तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि अगर घटना हुई थी तो यह अचानक हुई लड़ाई का मामला था और यह कोई सुनियोजित हत्या नहीं थी। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अभियोजन पक्ष के कुछ बयानों पर भरोसा करते हुए तर्क दिया:-

(i) अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि यदि एफआईआर और पीडब्लू-1 और पीडब्लू-2 के बयान पढ़े जाए, तो दिखता है कि हत्या का अपराध करने की किसी पूर्व-योजना, या आपसी राय के क्षण भर में हुआ था। दरअसल, उनका कहना है कि पूरी घटना इतनी अचानक थी कि एफआईआर में भी उन शब्दों को दोहराया नहीं गया जो आरोपी शिव कुमार ने कहे होंगे और सरोजा को पसंद नहीं आए होंगे। उनका कहना है कि वास्तव में कोई अन्य व्यक्ति, जैसा कि घटनास्थल पर होने का आरोप लगाया गया है और जिनके नाम एफआईआर में पाए गए हैं, गवाह बॉक्स में नहीं आए हैं। यहां तक कि भाभी गीता देवी भी विटनेस बॉक्स में नहीं आई थीं। वास्तव में, अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता यह तर्क देना चाहते हैं कि मौके पर कोई नहीं था और जब उन्होंने कुछ झगड़े के बारे में सुना, तो वे मौके पर पहुंचे।

(ii) घटना दिन के उजाले में हुई थी और मृतक की माँ के अलावा कोई भी स्वतंत्र गवाह गवाह बॉक्स में नहीं आया था।

(iii) मृतक के अलावा अन्य सभी की चोटें सामान्य प्रकृति की थीं।

(iv) यह दिखाने के लिए कि घटना अचानक और गंभीर उकसावे के कारण हुई थी, अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने विशेष रूप से जिरह के एक निश्चित पैराग्राफ पर जोर दिया। चूंकि अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने पेपर बुक के पृष्ठ 30 पर पैराग्राफ 3 पढ़ा था, उसे यहां निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है: -:

> "इस घटना से पहले भूत प्रेत को लेकर विवाद चल रहा था। कोई मारपीट नहीं हुई थी। इस घटना के पहले मेरी बहन के साथ मुल्जिमान ने कोई छेड़खानी नहीं किया था। घटना वाले दिन भी हमारी बीच कोई वाद विवाद नहीं हुआ था। शिवकुमार सरोज के प्रति बोली बोलने से अचानक यह मारपीट हो गयी। अन्य मुल्जिमान एस साथ आये थे,

अनुवादित

क्रमशः नहीं। शिवकुमार व उनकी माँ के चिल्लाने पर अन्य मुल्जिमान आये। तब तक हम लोगों ने शोर नहीं किया था। जब अन्य मुल्जिमान और मारपीट व साथ में तब हमने शोर किया। उसके पहले शोर नहीं किया था। अन्य मुल्जिमान के आने के बाद 2-3 मिनट मारपीट हुई"

पीडब्लू-5 डॉ. आर.ए. सिंह के बयान पर भरोसा करते हुए अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि मृतक के सिर पर लगी चोटों के कारण मौत हुई है। उनका कहना है कि यह निश्चित नहीं है कि चोट का कारण लाठी का प्रहार था या मृतक गिर गया था और वहां पड़ी ईंटों पर गिरने से उसे कुछ चोटें आईं। इसलिए, विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि केवल आरोपी व्यक्तियों द्वारा किया गया लाठियों का वार ही मृतक की मौत के लिए जिम्मेदार था।

(vi) अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने पीडब्लू-7 राम कुमार चौधरी के बयान पर भरोसा करते हुए कहा कि जिस स्थान पर घटना घटी थी, वह समतल नहीं था, बल्कि वहां लकड़ी आदि के कुछ टुकड़े उभरे हुए थे, जो मृतक के सिर पर चोटों का कारण हो सकते थे, जो बेहोश होने के कारण नीचे गिर गया था।

(vii) अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि मौके पर कोई खून नहीं पाया गया।

(viii) इसलिए, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि अपीलकर्ताओं की ओर से कोई पूर्वचिन्तन या पूर्व योजना नहीं थी। उन्होंने कहा कि मृतक के परिवार और आरोपी व्यक्तियों के परिवार के बीच अचानक उकसावे के कारण यह घटना घटी, इसलिए आरोपी को हत्या के अपराध के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता। उन्होंने तर्क दिया कि जैसा कि **सुरैन सिंह बनाम पंजाब राज्य (2017) 5 एससीसी 796** के मामले में धारित किया गया है, जब कोई पूर्वचिन्तन न हो तो धारा 300 का अपवाद 4 लागू होता है। चूंकि विद्वान अधिवक्ता ने विशेष रूप से निर्णय के पैराग्राफ 7 पर भरोसा किया था, इसलिए इसे यहां निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:

"7. भारतीय दंड संहिता की धारा 300 का अपवाद 4 किसी पूर्वचिन्तन के अभाव में लागू होता है। यह अपवाद के शब्दों से ही स्पष्ट है। अपवाद इस बात पर विचार करता है कि अचानक लड़ाई, अचानक झगड़े पर जुनून की गर्मी से शुरू होगी। भारतीय दंड संहिता की धारा 300 का चौथा अपवाद अचानक लड़ाई में किए गए कृत्यों को शामिल करता है। उक्त अपवाद उकसावे के ऐसे मामले से संबंधित है जो पहले अपवाद में शामिल नहीं है, जिसके बाद इसका स्थान अधिक उपयुक्त होता। अपवाद एक ही सिद्धांत पर आधारित है, क्योंकि दोनों में पूर्वचिन्तन का अभाव है। लेकिन, यद्यपि अपवाद 1 के मामले में आत्म-नियंत्रण का पूर्ण अभाव है, अपवाद 4 के

अनुवादित

मामले में, केवल जुनून की गर्मी पुरुषों के विवेक को ढक देती है और उन्हें ऐसे कार्यों के लिए प्रेरित करती है जो वे अन्यथा नहीं करते। अपवाद 1 की तरह अपवाद 4 में भी उकसावे की स्थिति है, लेकिन हुई चोट उस उकसावे का प्रत्यक्ष परिणाम नहीं है। वास्तव में, अपवाद 4 उन मामलों से संबंधित है जिनमें भले ही चोट की गई हो, या विवाद के मूल में कोई उकसावा हो या किसी भी तरह से झगड़ा उत्पन्न हुआ हो, ***फिर भी दोनों पक्षों के बाद के आचरण उन्हें अपराध बोध के समान स्तर पर रखते हैं।*** *एक "अचानक लड़ाई" का तात्पर्य आपसी उकसावे और प्रत्येक पक्ष पर मारपीट से है। तब की गई हत्या को स्पष्ट रूप से एकतरफा उकसावे के कारण नहीं देखा जा सकता है, न ही ऐसे मामलों में पूरा दोष एक तरफ रखा जा सकता है। यदि ऐसा होता, तो अधिक उपयुक्त रूप से लागू होने वाला अपवाद, अपवाद 1 होता। लड़ने के लिए कोई पूर्व विचार-विमर्श या दृढ़ संकल्प नहीं होता है। अचानक झगड़ा हो जाता है, जिसके लिए कमोबेश दोनों पक्ष दोषी होते हैं। हो सकता है कि उनमें से* ***एक ने इसे शुरू किया हो,*** *लेकिन* ***अगर दूसरे ने इसे अपने आचरण से नहीं बढ़ाया होता*** *तो इसने इतना गंभीर रूप नहीं लिया होता। इसके बाद आपसी उकसावे और उत्तेजना होती है, और प्रत्येक लड़ने वाले के दोष को निश्चित करना कठिन होता है। पर जो दोष लगता है, उसे बांटना मुश्किल होता है।*

अपवाद 4 की सहायता तब ली जा सकती है जब मृत्यु (क) बिना पूर्वचिन्तन के, (ख) अचानक लड़ाई में, (ग) अपराधियों द्वारा अनुचित लाभ उठाए बिना या क्रूर या असामान्य तरीके से कार्य किए बिना हुई हो, और (घ) लड़ाई मारे गए व्यक्ति से ही हुई होगी। किसी मामले को अपवाद 4 के अंतर्गत लाने के लिए उसमें उल्लिखित सभी तत्व होने चाहिए। गौरतलब है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के अपवाद 4 में होने वाली "लड़ाई" को भारतीय दंड संहिता में परिभाषित नहीं किया गया है। लड़ाई करने के लिए दो लोगों की जरूरत होती है। जुनून की गर्मी के लिए जरूरी है कि जुनून को ठंडा होने का समय न मिले और इस मामले में, पक्षकारों ने शुरुआत में मौखिक विवाद के कारण खुद को क्रोधित कर लिया था। लड़ाई दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच की लड़ाई है चाहे वे हथियारों के साथ हों या उनके बिना। अचानक होने वाला झगड़ा किसे माना जाएगा, इसके बारे में कोई सामान्य नियम बताना संभव नहीं है। यह तथ्य का प्रश्न है और झगड़ा अचानक हुआ है या नहीं, ***यह आवश्यक रूप से प्रत्येक मामले के सिद्ध तथ्यों पर निर्भर होना चाहिए।*** *अपवाद 4 को लागू करने के लिए, यह दिखाना पर्याप्त नहीं है कि अचानक झगड़ा हुआ था और कोई पूर्वचिन्तन नहीं था। यह भी दिखाया जाना चाहिए कि अपराधी ने अनुचित लाभ नहीं उठाया है या क्रूर या असामान्य तरीके से कार्य नहीं किया है। प्रावधान में प्रयुक्त पद "अनुचित लाभ" का अर्थ "अनुचित लाभ" है। "*

(प्रभाव वर्धित)

11. विरोध में विद्वान ए.जी.ए. श्री एस.एन. मिश्रा ने कहा है कि आरोपी व्यक्तियों द्वारा किए गए प्रहार क्रूर प्रकृति के थे, इस हद तक कि उनके कारण मृतक रमेश की मृत्यु हो गई और घटनास्थल पर मौजूद व्यक्तियों को भी

अप्रमाणित

चोटें आईं। इसलिए, उनका कहना है कि अपील खारिज कर दी जाए और दोषसिद्धि के आदेश में हस्तक्षेप न किया जाए।

12. अपीलार्थीगण के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आई.के. चौतुर्वेदी और उनके सहयोगी श्री सौरभ चौतुर्वेदी ; सूचनादाता की ओर से उपस्थित विद्वान ए.जी.ए. श्री एस.एन. मिश्रा और विद्वान अधिवक्ता श्री हरिवंश सिंह को सुनने के पश्चात, हमारा विचार है कि अपील स्वीकार किये जाने योग्य है।

13. अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयानों और अन्य सभी रिकॉर्डों का परिशीलन अनिवार्य रूप से हमें इस निष्कर्ष पर ले जाता है कि शिव कुमार द्वारा पहले सूचनादाता और मृतक की बहन सरोजा के संबंध में कुछ ताना मारा जा रहा था और इस ताने से नाराज होकर, वे शिव कुमार के पास गए और उससे सवाल किया था कि वह उसे क्यों ताना मार रहा था। इससे संभवत: अचानक झगड़ा हो गया था। गांवों में अधिकतर लोग अपने साथ लाठियां रखते हैं। चीख-पुकार आदि सुनकर आरोपी पक्ष के पुरुष परिजन मदद के लिए दौड़ पड़े। ऐसा प्रतीत होता है कि चीख-पुकार के कारण मामले में आरोपी बनाए गए मां, पिता और अन्य भाई मौके पर पहुंचे। वे पहले मौके पर मौजूद नहीं थे। पीडब्लू-1 का बयान स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि अन्य सह-अभियुक्त घटनास्थल पर नहीं थे और वे दिनेश कुमार द्वारा पूछताछ के परिणामस्वरूप हुई चीख-पुकार आदि के कारण वहां पहुंचे थे। इसके अलावा हम देखते हैं कि हीरावती, जो शिव कुमार की मां हैं और मामले में आरोपी भी थीं, ने अभियोजन पक्ष के गवाह दिनेश के अनुसार, उन पर दरांती के कुंद हिस्से से मारने की कोशिश की थी। यदि कोई पूर्व नियोजित अपराध होता तो दरांती का प्रयोग और भी तेज किया जा सकता था। मृतक की हत्या का मकसद निश्चित तौर पर नहीं था।

14. ऐसी परिस्थितियों में, हमारे पास रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों के आधार पर यह मानने के अलावा कोई अन्य निष्कर्ष नहीं है कि अपीलकर्ता-अभियुक्तों ने मृतक रमेश पर लाठी और डंडा से हमला किया था, जिसमें यह संभव था कि मृतक के सिर पर डंडा इस प्रकार मारा गया कि उसकी मौत हो गयी। यह भी संभव था कि किसी एक वार के कारण मृतक ऐसे नीचे गिर गया हो कि उसे किसी कठोर वस्तु से चोट लग गई हो, अंततः उसकी मृत्यु हो गई। निश्चित तौर पर घटना पूर्व नियोजित नहीं थी। यह सब अचानक हुआ और मृतक रमेश को मारने का कोई सामान्य इरादा नहीं था। यदि मारपीट आदि की भी गई थी तो वह रमेश को सबक सिखाने के इरादे से ही की गई थी।

15. चूंकि हत्या करने का कोई इरादा नहीं था, इसलिए हम निश्चित रूप से इस बात से इनकार करते हैं कि आरोपी हत्या के दोषी हैं यानी भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत अपराध है। हालाँकि, इतना तो तय है कि जब मृतक को लाठियों और डंडों से मारा जा रहा था, तो अपीलकर्ताओं ने अत्यधिक बल का प्रयोग किया था। हालाँकि, चूँकि मृतक की हत्या के संबंध में कोई पूर्व-योजना नहीं थी और चूँकि सब कुछ अचानक हुआ, इसलिए हमारा विचार है कि मारने का कोई इरादा नहीं

अनुवादित

था या ऐसा कोई सामान्य इरादा जिससे मौत हो।

16. ऐसी परिस्थितियों में, हम मानते हैं कि आरोपी अपीलकर्ता अधिक से अधिक भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के भाग- II के तहत अपराध के लिए दोषी हैं।

17. जहां तक सजा का प्रश्न है, अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया कि अपीलकर्ता अपराधी नहीं हैं और उन्हें जेल में डालने से वे अपराधी में बदल जायेंगे। इसलिए, उन्होंने प्रार्थना की कि उन्हें न्यूनतम संभव सजा दी जाए।

18. सजा के प्रश्न पर अपीलकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता और विद्वान एजीए को सुनने के बाद, हमारा निश्चित विचार है कि सभी अपीलकर्ता निर्दोष व्यक्ति हैं जिनका कभी कोई आपराधिक रिकॉर्ड नहीं था। वे इस न्यायालय से जमानत पर भी हैं। ऐसी परिस्थितियों में, हमारा मानना है कि अपीलकर्ताओं पर प्रत्येक पर 20,000/- रुपये का जुर्माना लगाया जाए। यह जुर्माना मृतक रमेश के माता-पिता के लिए मुआवजा राशि के रूप में माना जा सकता है। अपीलकर्ताओं द्वारा आज से तीन महीने की अवधि के भीतर राज्य कोषागार में राशि जमा करने के बाद, पूरी राशि मृतक के माता-पिता को मुआवजे के रूप में दी जाएगी।

19. इस प्रकार ऊपर जो कहा गया है, उसके मद्देनजर, हम अपील को आंशिक रूप से स्वीकार करते हैं। भारतीय दंड संहिता की धारा 148, 302 और 323 के तहत दोषसिद्धि को अब भा.दं.सं. की धारा 304 (II) के तहत दोषसिद्धि माना जाएगा। इसके अलावा, चूंकि कोई सामान्य इरादा नहीं था, भा.दं.सं. की धारा 147 और 149 के तहत दोषसिद्धि को रद्द किया जाता है। जहां तक सज़ा का सवाल है, हम पहले ही कह चुके हैं कि अपीलकर्ताओं पर अब 20,000/- रुपये का जुर्माना लगाया जाएगा और यह जुर्माना मृतक के माता-पिता को मुआवजे के रूप में दिया जाएगा।

(2023) 6 ILRA 810

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 25.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ

आपराधिक अपील संख्या 9226/2022

राघवेंद्र **अपीलकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **विपरीत पक्ष**

अपीलकर्ता के अधिवक्ता: श्री बृज राज, श्री अभिषेक श्रीवास्तव, श्री कृष्ण कुमार, श्री कुलदीप सिंह यादव, श्री सतेंद्र सिंह, वरिष्ठ अधिवक्ता

विपरीत पक्ष के अधिवक्ता: जी.ए., श्री हरे कृष्ण मिश्रा, श्री जितेंद्र कुमार, श्री पुरुषोत्तम दीक्षित, श्री साइमा साहेर

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 147, 148, 149, 323, 504, 506, 307 और 302 - हत्या के लिए सजा - एससी/एसटी अधिनियम, 1989 - धारा 3(2)(वी) - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद

अनुवादित

21 - दूसरी जमानत अस्वीकृति के खिलाफ - स्थिरता - अपीलकर्ता ने प्रस्तुत किया कि अपीलकर्ता की पहली आपराधिक अपील में, अस्वीकृति आदेश अलग था और वर्तमान अपील अलग जमानत अस्वीकृति आदेश के खिलाफ दायर की गई है जो एक अन्य समन्वय पीठ द्वारा पहली आपराधिक अपील की अस्वीकृति के बाद पारित की गई है - आगे प्रस्तुत किया गया कि अपील की सुनवाई इस न्यायालय द्वारा की जानी चाहिए, जिसके पास वर्तमान में क्षेत्राधिकार है - सेंट ने प्रार्थना का विरोध किया - निर्णय दिया गया कि अपील में न्यायालय को यह विचार करना आवश्यक था कि क्या विशेष न्यायालय ने चुनौती दिए गए आदेश के आधार पर अपीलकर्ता को राहत देने/अस्वीकार करने में कोई गलती की है - यह भी देखना आवश्यक था कि क्या निचली अदालत के आदेश को कायम रखा जा सकता है और उसके निष्कर्ष कानूनी और तथ्यात्मक मुद्दों के अनुरूप हैं - धारा 438/439 सीआरपीसी के तहत आवेदन का उद्देश्य और विषय, एससी/एसटी अधिनियम की धारा 14-ए (2) के तहत अपील के उद्देश्य और विषय से भिन्न है - इसलिए, अपीलकर्ता का तर्क स्वीकार किया गया - आरोपित आदेश को रद्द किया गया। (पैरा 6, 15, 17)

आपराधिक अपील स्वीकार की गई। (ई-13)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

शकर करबा जाधव और अन्य बनाम स्टेट ऑफ महाराष्ट्र 1969 (2) एससीसी 793

1. अपीलकर्ता के लिए अधिवक्ता; प्रतिपक्षी संख्या-1 के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता; सुश्री साएमा सहेर और सूचनाकर्ता के अधिवक्ता को सुना और रिकॉर्ड पर रखी गई सामग्री का अवलोकन किया।

2. धारा 14-ए (2) अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम के तहत प्रस्तुत आपराधिक अपील अपीलकर्ता द्वारा दिनांक 30.06.2022 के आक्षेपित आदेश को रद्द करने के लिए दायर की गई है, जिसके तहत विशेष न्यायाधीश, एस.सी./एस.टी. अधिनियम, इटावा ने केस अपराध संख्या-0088 वर्ष 2021, धारा 147, 148, 149, 323, 504, 506, 307 और 302 भा.द.वि. और एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 3 (2) (वी), थाना- सैफई, जिला इटावा में अपीलकर्ता द्वारा दायर जमानत याचिका को खारिज कर दिया है।

3. विशेष न्यायाधीश (एस.सी./एस.टी. अधिनियम), कोर्ट संख्या-2, इटावा द्वारा पारित जमानत खारिज आदेश दिनांक 30.06.2022 के खिलाफ दायर अपीलकर्ता की यह दूसरी आपराधिक अपील है, जिसमें सत्र विचारण संख्या-766/2021, केस अपराध संख्या-0088 वर्ष 2021 में अपीलकर्ता की जमानत याचिका खारिज कर दी गई थी।

4. निचली अदालत द्वारा पारित पूर्वोक्त आदेश को रद्द करने और मुकदमे की पेंडेंसी के दौरान अपीलकर्ता को जमानत पर बढ़ाने के लिए दायर जमानत आवेदन के साथ इस अपील को अनुमति देने के लिए प्रार्थना की गई है।

5. अतिरिक्त महाधिवक्ता, श्री ज्ञान नारायण कन्नौजिया ने अपीलकर्ता की जमानत के लिए प्रार्थना का जोरदार विरोध किया है और प्रस्तुत किया है कि अपीलकर्ता की पहली आपराधिक

अप्रमाणित

अपील संख्या-4861 वर्ष 2021 को इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा 05.04.2022 को खारिज कर दिया गया था, जो उपलब्ध है और इसलिए इस अपील को अपीलकर्ता की दूसरी आपराधिक अपील की सुनवाई के लिए उसी पीठ के समक्ष रखने का निर्देश दिया जा सकता है क्योंकि यह आपराधिक अपील पहले की अपील के समान है और इसलिए इलाहाबाद उच्च न्यायालय के नियमों के अध्याय V, नियम 13 के अनुसार, उसी पीठ द्वारा इसकी सुनवाई की जानी आवश्यक है।

6. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि प्रस्तुत आपराधिक अपील निचली अदालत द्वारा अपीलकर्ता की दूसरी जमानत याचिका की अस्वीकृति के बाद दायर की गई है। अपीलकर्ता की पहली आपराधिक अपील में, अस्वीकृति आदेश अलग था और यह अपील दिनांक 30.06.2022 के एक अलग जमानत अस्वीकृति आदेश के खिलाफ दायर की गई है, जिसे इस न्यायालय की एक अन्य समन्वय पीठ द्वारा दिनांक 05.04.2022 के आदेश द्वारा अपीलकर्ता की पहली आपराधिक अपील को खारिज करने के बाद पारित किया गया है। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि न्यायालय के नियमों के अध्याय V, नियम 13 के प्रावधान एस.सी./एस.टी. अधिनियम के प्रावधानों के तहत फंसे अभियुक्त की बाद की आपराधिक अपील को उसी पीठ के समक्ष सुनवाई के लिए पोस्ट करने पर विचार नहीं करते हैं या प्रदान नहीं करते हैं। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि इस अपील को इस न्यायालय द्वारा सुना जाना आवश्यक है, जिसके पास वर्तमान में सुनवाई के लिए अधिकार क्षेत्र है।

7. प्रतिद्वंद्वी दलीलों को सुनने के बाद, इस न्यायालय ने पाया कि आगे बढ़ने से पहले, यह तय किया जाना आवश्यक है कि क्या एक बार अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 14-ए (2) के तहत अपील को इस न्यायालय की एक पीठ द्वारा खारिज कर दिया गया है, फिर निचली अदालत द्वारा दूसरी जमानत याचिका की अस्वीकृति के बाद, इस न्यायालय के समक्ष फिर से आपराधिक अपील को दायर की गई, लेकिन एक अलग अस्वीकृति आदेश के खिलाफ, उसी बेंच द्वारा सुना जाएगा जिसने पहले की अपील को खारिज कर दिया था और अलग-अलग अधिकार क्षेत्र में बैठी है, या उस बेंच द्वारा सुनवाई की जाएगी जिसके पास वर्तमान में सुनवाई करने का अधिकार क्षेत्र है। इस विवाद का निर्णय करने के लिए आवश्यक प्रासंगिक प्रावधान धारा 14-ए (2), एस.सी. / सत्र विचारण अधिनियम और अध्याय V, नियम, न्यायालय के नियमों के 13 हैं जो नीचे उद्धृत किए गए हैं: -

14क. अपील. (2) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974) की धारा 378 की उपधारा (3) में किसी बात के होते हुए भी, जमानत देने से इंकार करने वाले विशेष न्यायालय या अनन्य विशेष न्यायालय के आदेश के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील की जाएगी।

13. उसी विषय पर अनुवर्ती आवेदन उसी न्यायपीठ द्वारा सुना जाना :- पिछले आवेदन के समान प्रभाव का या उसी उद्देश्य से कोई आवेदन, जिस पर किसी न्यायपीठ ने किसी अन्य न्यायाधीश या न्यायाधीशों के संदर्भ आदेश के अलावा कोई आदेश पारित किया है,

अनुवादित

अपील के माध्यम को छोड़कर, आमतौर पर किसी अन्य बेंच द्वारा सुना जाएगा।

8. एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 14ए(2) के अवलोकन से पता चलता है कि विशेष अदालत या विशेष अदालत के आदेश के खिलाफ इस अदालत में अपील की जा सकती है जो किसी आरोपी को जमानत देने या इनकार करने से इनकार करता है।

9. यह स्पष्ट है कि विशेष न्यायालय द्वारा जमानत देने या इनकार करने पर इस न्यायालय के समक्ष अलग से अपील की जा सकती है। धारा 438/439 द०प्र०स० के तहत दूसरी जमानत याचिका की तरह, एस.सी./एस.टी. अधिनियम में दूसरी अपील प्रदान नहीं की जाती है। द०प्र०स० की धारा 438 के तहत अग्रिम जमानत आवेदन, और धारा 439 द०प्र०स० के तहत जमानत आवेदन, निचली अदालत में किसी भी दृष्टिकोण के बिना सीधे इस अदालत के समक्ष दायर किया जा सकता है। यह निचली अदालत/अदालतों द्वारा किसी अभियुक्त की जमानत याचिका खारिज होने के बाद भी दायर किया जा सकता है। धारा 438/439 द०प्र०स० के तहत आवेदन किसी आरोपी की जमानत याचिका को खारिज करने वाली अदालत/अदालतों द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों के खिलाफ दायर नहीं किए गए हैं। निचली अदालत/न्यायालयों द्वारा पारित आदेश के गुण-दोष को देखने की आवश्यकता नहीं है और उसमें दर्ज निष्कर्षों को धारा 438/439 द०प्र०स० के तहत शक्तियों का प्रयोग करके किसी अभियुक्त को अग्रिम जमानत/जमानत देने से पहले उच्च न्यायालय द्वारा संदर्भित या रद्द करने की आवश्यकता नहीं है।

10. द०प्र०स० के तहत अग्रिम जमानत/जमानत के उपरोक्त प्रावधानों की तुलना में, एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 14-ए (2) में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि विशेष अदालत या विशेष विशेष अदालत के आदेश के खिलाफ उच्च न्यायालय में अपील की जाएगी या जमानत देने या इनकार करने के लिए।

11. यह धारा इस बात पर विचार नहीं करती है कि विशेष न्यायालय के उसी अस्वीकृति आदेश के खिलाफ उच्च न्यायालय में दूसरी आपराधिक अपील होगी, यदि उच्च न्यायालय ने पहले निचली अदालत द्वारा पारित अस्वीकृति के आदेश के खिलाफ अपील को खारिज कर दिया था। यह सही है, क्योंकि उच्च न्यायालय द्वारा अपील में एक बार पुष्टि किए गए या रद्द किए गए आदेश को बाद में दायर की गई किसी अन्य आपराधिक अपील के माध्यम से फिर से नहीं देखा जा सकता है, इसलिए हर बार जब कोई अभियुक्त जमानत देने के लिए निचली अदालत में जाता है, तो उसे इस न्यायालय के समक्ष पारित आदेश के खिलाफ एक नई आपराधिक अपील को दायर देनी पड़ती है।

12. उच्च न्यायालय के नियमों के अध्याय V, नियम 13 के अवलोकन से पता चलता है कि यह प्रदान करता है कि उसी विषय पर बाद के आवेदन की सुनवाई उसी बेंच द्वारा की जाएगी। यह उपबंध करता है कि पिछले आवेदन के समान प्रभाव या उसी उद्देश्य से कोई आवेदन, जिस पर किसी न्यायपीठ ने किसी न्यायाधीश या न्यायाधीश के संदर्भ आदेश के अलावा कोई आदेश पारित किया है, अपील के माध्यम को छोड़कर, आमतौर पर किसी अन्य न्यायपीठ द्वारा नहीं सुना जाएगा।

अनुवादित

13. उच्च न्यायालय के नियमों के अध्याय V, नियम 13 के अवलोकन से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि यह उसी विषय के संबंध में या पिछले आवेदन के समान उद्देश्य के साथ एक ही बेंच द्वारा बाद में सुनवाई के लिए प्रदान करता है। हालांकि, यह किसी अन्य न्यायाधीश या न्यायाधीश को संदर्भ के आदेश और अपील के माध्यम से आदेश देने से छूट देता है।

14. यह सच है कि न्यायालयों ने माना है कि एक आवेदन में एक अपील भी शामिल है। वर्तमान विवाद को तय करने के उद्देश्य से, आवेदन और अपील के बीच अंतर पर विचार करने की आवश्यकता है। जैसा कि ऊपर माना गया है, न्यायालय के नियमों के अध्याय V, नियम 13 एक अपील से एक आवेदन को अलग करता है। इसका कारण यह है कि एस.सी./एस.टी. की धारा 14- ए (2) के तहत अपील धारा 438/439 द०प्र०स० के तहत निचली अदालत द्वारा जमानत देने से इनकार करने के बाद उच्च न्यायालय के समक्ष दायर आवेदन के समान नहीं है। जहां तक निचली अदालत के आदेश का संबंध है, निचली अदालत के फैसले की पुष्टि करने या उसे रद्द करने वाली अपील कार्यवाही को अंतिम रूप देती है। हालांकि, एक अभियुक्त को एक बार जमानत देने या देने से इनकार करने के बाद इस न्यायालय के विवेक के प्रयोग के बाद राहत देने के लिए आवेदन बाद में सुनवाई योग्य है, भले ही निचली अदालत का आदेश कुछ भी हो। निचली अदालत द्वारा जमानत की अस्वीकृति या मंजूरी के बाद दायर अग्रिम जमानत आवेदन/जमानत आवेदन नीचे के न्यायालय के किसी भी आदेश के खिलाफ निर्देशित नहीं हैं, लेकिन इस आधार पर जमानत देने / रद्द करने के लिए प्रार्थना करते हुए दायर किए जाते हैं कि निचली अदालत ने अभियुक्त के मामले की उचित रूप से मूल्यांकन नहीं की है और इसलिए उच्च न्यायालय का विवेक है, व्यायाम करने की आवश्यकता है।

15. एस.सी./एस.टी. अधिनियम के तहत विशेष न्यायालय निस्संदेह जमानत की समान शक्तियों का प्रयोग करता है और जमानत देने/इनकार करने के समान सिद्धांतों द्वारा शासित होता है, लेकिन इस अदालत के समक्ष अपील में, विचार धारा 438/439 द०प्र०स० के तहत अग्रिम जमानत आवेदन/जमानत आवेदनों में विचार के समान नहीं रहते हैं। अपीलीय न्यायालय की शक्तियां और क्षेत्राधिकार किसी आवेदन पर विचार करते समय इस न्यायालय की शक्तियों से भिन्न हैं। अपील में, इस अदालत को यह विचार करने की आवश्यकता है कि क्या विशेष अदालत ने चुनौती के तहत आदेश के आधार पर अपीलकर्ता को राहत देने से इनकार करने में गलती की है। इस अदालत को यह देखने की आवश्यकता है कि क्या निचली अदालत के आदेश को बरकरार रखा जा सकता है और इसके निष्कर्ष विशेष अदालत द्वारा अभियुक्त की जमानत याचिका पर विचार करने में शामिल कानूनी और तथ्यात्मक मुद्दों के अनुसार हैं या नहीं। शकर केरबा जाधव और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य 1969(2) एस.सी.सी. 793 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि अपील की अदालत एक "त्रुटिगत न्यायालय" है और इसका सामान्य कार्य अपील में निचली अदालत के आदेश को सही करना है। इसका अधिकार क्षेत्र विचारण न्यायालय के साथ व्यापक होना

अनुवादित

चाहिए। इसलिए, यह न्यायालय एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 14-ए (2) के तहत अपील की सुनवाई करते हुए, विशेष न्यायालय द्वारा की गई त्रुटियों पर विचार करता है और इस तरह के विचार के बाद राहत देता है। यह विचारण न्यायालय के साथ सह-व्यापक शक्तियों का प्रयोग करता है। धारा 438/439 द०प्र०स० के तहत आवेदनों पर विचार करने के संबंध में, यह न्यायालय आवेदक को राहत देने/इनकार करने में निचली अदालत द्वारा की गई त्रुटि को कभी नहीं सुधारता है और न ही सत्र न्यायालय पर विचारण न्यायालय के साथ किसी भी व्यापक शक्ति का प्रयोग करता है। इसलिए, धारा 438/439 द०प्र०स० के तहत आवेदन का प्रभाव और उद्देश्य, एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 14-ए (2) के तहत अपील से अलग है।

16. द ब्लैक्स लॉ डिक्शनरी, आठवां संस्करण, दक्षिण एशियाई संस्करण उच्च न्यायालय द्वारा "निचली अदालत के फैसले से समीक्षा की मांग करने" की अपील को परिभाषित करता है।

17. यह पूरी तरह से स्पष्ट है कि धारा 438/439 द०प्र०स० के तहत आवेदन का उद्देश्य और विषय, एस.सी./एस.टी., अधिनियम की धारा 14-ए (2) के तहत अपील के उद्देश्य और विषय से अलग है। इसलिए, यह माना जाता है कि विशेष न्यायालय द्वारा बाद में जमानत आवेदन की अस्वीकृति के बाद एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 14 ए - (2) के तहत इस न्यायालय के समक्ष दायर आपराधिक अपील को इस तरह की अपील सुनने के अधिकार क्षेत्र वाली पीठ द्वारा सुना जा सकता है और इसे पहले की बेंच के समक्ष रखने की आवश्यकता नहीं है जिसने पहले की अपील को खारिज कर दिया था जिसे विशेष अदालत द्वारा जमानत देने के विभिन्न आदेशों के खिलाफ दायर दायर किया गया था।

18. अब गुण-दोष के आधार पर इस अपील की सुनवाई करते हुए, अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि विचारण न्यायालय के समक्ष केवल एक अभियोजन गवाह की जांच की गई है, जिसने कहा है कि उसने किसी को कथित घटना का कारण बनते नहीं देखा। गवाह ने कहा है कि उसने इंस्पेक्टर द्वारा दिए गए निर्देश के अनुसार अपीलकर्ता और सह-आरोपी को फंसाया। अपीलकर्ता और सह-आरोपी मुरारी लाल इस मामले में शामिल नहीं हैं। अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि अपीलकर्ता को इस मामले में झूठा फंसाया गया है। यह एस.सी./एस.टी. अधिनियम के प्रावधानों के तहत अपीलकर्ता के दुर्भावनापूर्ण अभियोजन का मामला है। उसका कोई आपराधिक इतिहास नहीं है और वह 28.05.2021 से जेल में बंद है। यदि अपीलकर्ता को जमानत पर रिहा किया जाता है, तो वह जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं करेगा।

19. पक्षकारों के अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों और रिकॉर्ड पर सामग्री के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि निचली अदालत ने मामले के तथ्यों पर ठीक से विचार नहीं किया है। इसलिए, उपरोक्त विचार के मद्देनजर, निचली अदालत द्वारा दिनांक 30.06.2022 पारित जमानत की अस्वीकृति के आदेश को रद्द किया जाता है।

20. ऊपर उल्लिखित पक्षों की प्रस्तुतियों पर विचार करने के बाद, अपीलकर्ता के अधिवक्ता

अनुवादित

द्वारा किए गए प्रस्तुतियों में बल पाना; विचारण के समापन के संबंध में अनिश्चितता को ध्यान में रखते हुए; आरोपी पक्ष के मामले की अनदेखी करते हुए पुलिस द्वारा एकतरफा जांच में; अपीलकर्ता विचाराधीन होने के कारण शीघ्रता का मौलिक अधिकार रखता है; भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के बड़े जनादेश, विचाराधीन कैदियों द्वारा जेलों में उनकी क्षमता से 5-6 गुना अधिक भीड़ को देखते हुए और मामले के गुण-दोष पर कोई राय व्यक्त किए बिना, अदालत की राय है कि अपीलकर्ता जमानत पर छोड़े जाने का हकदार है।

21. अपीलकर्ता, राघवेंद्र, को उपरोक्त मामले में उपरोक्त अपराध संख्या में जमानत पर रिहा किया जाए, जिसमें उसने निम्नलिखित शर्तों के अधीन संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के लिए एक व्यक्तिगत बांड और दो विश्वसनीय जमानतदार प्रस्तुत किए हैं:

(i) अपीलकर्ता प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मामले के तथ्यों से परिचित किसी भी व्यक्ति को कोई प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेगा कि उसे अदालत या किसी पुलिस अधिकारी को ऐसे तथ्यों का खुलासा करने से रोका जा सके या सबूतों के साथ छेड़छाड़ न की जा सके।

(ii) अपीलकर्ता अभियोजन पक्ष के गवाहों पर दबाव/धमकाएगा नहीं।

(iii) अपीलकर्ता, निम्नलिखित के लिए निर्धारित तारीखों पर विचारण न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित रहेगा (i) मामला खोलना, (ii) आरोप तय करना और (iii) द०प्र०स० की धारा 313 के तहत बयान दर्ज करना।

(iv) अपीलकर्ता इस आशय का एक वचन पत्र दायर करेगा कि जब गवाह विचारण न्यायालय में मौजूद हों तो वह साक्ष्य के लिए निर्धारित तारीखों पर कोई स्थगन नहीं मांगेगा।

(v) अपीलकर्ता व्यक्तिगत रूप से या अपने अधिवक्ता के माध्यम से निर्धारित प्रत्येक तारीख को विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित रहेगा।

(vi) अपीलकर्ता जमानत पर रिहा होने के बाद किसी भी आपराधिक गतिविधि या किसी भी अपराध में लिप्त नहीं होगा।

22. उपरोक्त शर्तों में से किसी के उल्लंघन के मामले में, यह जमानत रद्द करने का आधार होगा। यदि विचारण न्यायालय की राय में अपीलकर्ता की अनुपस्थिति जानबूझकर या पर्याप्त कारण के बिना है, तो विचारण न्यायालय के लिए यह खुला होगा कि वह इस तरह के डिफ़ॉल्ट को जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग माने और कानून के अनुसार आगे बढ़े।

23. विचारण न्यायालय हर संभव प्रयास कर सकता है और अपीलकर्ता की रिहाई के बाद कानून के अनुसार मुकदमे को शीघ्रता से समाप्त करने का प्रयास कर सकता है, यदि कोई अन्य कानूनी बाधा नहीं है।

24. यह स्पष्ट किया जाता है कि इस आदेश में की गई टिप्पणियां इस जमानत आवेदन के निर्धारण के उद्देश्य तक सीमित हैं और किसी भी तरह से मामले के गुण-दोष पर अभिव्यक्ति के रूप में नहीं मानी जाएंगी। विचारण न्यायालय इस आदेश में कही गई किसी भी बात से अप्रभावित साक्ष्य के आधार पर अपने स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए पूरी तरह से स्वतंत्र होगा।

25. आपराधिक अपील की अनुमति है।

अप्रमाणित

26. इस मामले से अलग होने से पहले, यह न्यायालय श्री राजीव लोचन शुक्ला, एडवोकेट के लिए प्रशंसा दर्ज करना उचित समझता है, जो इस मामले में अधिवक्ता नहीं थे, लेकिन उपरोक्त विवाद को तय करने में इस न्यायालय को बहुमूल्य सहायता प्रदान की है, जिसे विशेष न्यायालय द्वारा राहत से इनकार करने के कारण इस न्यायालय के समक्ष उसी अभियुक्त द्वारा दायर बाद की आपराधिक अपीलों में बार-बार उठाया जा रहा था।

(2023) 6 ILRA 815

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 11.01.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन इदरीसी

आपराधिक संशोधन संख्या 3630 वर्ष 2022

श्रीमती शैलजा संशोधनवादी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य प्रतिवादी

संशोधनकर्ता के अधिवक्ता: श्री ऐश्वर्या कृष्णा, श्री अनुराग शर्मा, श्री सर्वेश चौबे

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: जी.ए., श्री जी.ए., हेमंत कुमार, श्री प्रदीप कुमार केशरी

ए. आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 397/401 और घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005-धारा 23, 2(5) और 3-साझा घर-संशोधनकर्ता ने विपरीत पक्षों से विवाह किया-दोनों ही विवाह के आरंभ से ही संबंधित घर में रह रहे थे-आवास खाली पड़ा है, संशोधनकर्ता के साथ संबंधित घर में रहने वाला कोई नहीं है-इस प्रकार, संशोधनकर्ता को किराए के रूप में 10,000/- रुपये का प्रावधान भी संधारणीय नहीं है। (पैरा 1 से 18)

संशोधन की अनुमति दी जाती है। (ई-6)

(माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन इदरीसी द्वारा दिया गया)

1. प्रारंभ में, यह उल्लेख करना उचित है कि पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता ने एक अन्य स्थगन आवेदन के साथ कुछ दस्तावेज दायर किए हैं, लेकिन रिकॉर्ड के अवलोकन से पता चलता है कि उसने पहले ही पुनरीक्षण के ज्ञापन के साथ स्थगन आवेदन दायर कर दिया है। इसलिए पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता इस अतिरिक्त स्थगन आवेदन को वापस लेना चाहते हैं। प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता को इस पर कोई आपत्ति नहीं है, इसलिए, इस अतिरिक्त स्थगन आवेदन को वापस लेने की उनकी प्रार्थना को स्वीकार किया जाता है।

2. तदनुसार, स्थगन की मांग करने वाले अतिरिक्त आवेदन को वापस लिया गया मानकर खारिज किया जाता है।

3. पुनरीक्षणकर्ता के लिए अधिवक्ता, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता के साथ-साथ श्री हेमंत कुमार, प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता को सुना। रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

4. अपील संख्या-84 वर्ष 2021 (संदीप मित्तल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-3, मेरठ द्वारा पारित निर्णय और

अनुवादित

आदेश दिनांक 20.08.2022 के खिलाफ प्रस्तुत आपराधिक पुनरीक्षण को दायर दी गई है, जिसके तहत अपील की अनुमति दी गई थी और सिविल जज (जेडी) द्वारा पारित आदेश दिनांक 24.9.2021 को पारित किया गया था। (फास्ट ट्रैक कोर्ट), महिलाओं के खिलाफ अपराध, मेरठ को रद्द कर दिया गया था और और अपीलकर्ता नंबर 2 को 2015 के केस नंबर 6504 (91556 वर्ष 2015) (श्रीमती शैलजा मित्तल बनाम संदीप मित्तल) में किराये के घर के लिए अपनी पत्नी (वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता) को 10,000 रुपये का भुगतान करने का निर्देश दिया गया था, जिसमें घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 की धारा 23 के तहत आवेदन की अनुमति दी गई थी, जिसमें विपक्षी नंबर 1 (संदीप मित्तल) को निर्देश दिया गया था कि साझा घर यानी 28 मीरा एन्क्लेव, गढ़ रोड, मेरठ में उसके निवास को परेशान न करें।

5. पुनरीक्षण के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि पुनरीक्षणकर्ता का विवाह 26.02.1995 को हिंदू संस्कारों और अनुष्ठानों के अनुसार प्रतिपक्षी संख्या-2 के साथ संपन्न हुआ था। उनके विवाह से एक पुरुष बच्चे का जन्म हुआ। आरोप है कि समय के साथ पति-पत्नी में मतभेद पैदा हो गए। इस पर, पुनरीक्षणकर्ता (पत्नी) ने घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 23 के तहत दिनांक 16.03.2021 को एक आवेदन सिविल जज (जेडी) (फास्ट ट्रैक कोर्ट), महिलाओं के खिलाफ अपराध, मेरठ, के समक्ष दायर किया। जिस पर प्रतिपक्षी संख्या-2 (पति) ने आपत्ति दर्ज की। पक्षों के लिए अधिवक्ताओं की प्रस्तुतियों और रिकॉर्ड पर साक्ष्य पर विचार करते हुए, संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा अपने आदेश दिनांक 24.09.2021 के तहत पारित किया गया, जिसमें पुनरीक्षणकर्ता के आवेदन को 28 मीरा एन्क्लेव, गढ़ रोड, मेरठ में स्थित आम/साझा घर में रहने की अनुमति दी गई। उक्त आदेश का अनुपालन किया गया। इस आदेश से व्यथित होकर, प्रतिपक्षी संख्या-2, संदीप मित्तल ने विद्वान जिला एवं सत्र न्यायाधीश, मेरठ के समक्ष अपील संख्या-84 वर्ष 2021 दायर की, जिसे उनके द्वारा आक्षेपित आदेश दिनांक 20.8.2022 द्वारा अनुमति दी गई और दिनांक 20.8.2022 के आदेश को इस आधार पर रद्द कर दिया गया कि पक्षों के बीच विवाद है, उनके एक-दूसरे के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध नहीं हैं, और अपीलकर्ता पुनरीक्षणकर्ता को अपने निवास के लिए किराये का घर किराए पर लेने के लिए प्रति माह 10,000/और पुनरीक्षणकर्ता ने अंतरिम भरण-पोषण के लिए धारा 125 द०प्र०स० के तहत मुकदमा संख्या-165 वर्ष 2016 भी दायर किया था, जिसकी अनुमति दी गई थी और प्रतिपक्षी संख्या-2 को पुनरीक्षणकर्ता को भरण-पोषण राशि के रूप में 7,500/- रुपये प्रति माह का भुगतान करने का निर्देश दिया गया था। दिनांक 28.8.2022 के आदेश से व्यथित होकर पुनरीक्षणकर्ता ने प्रस्तुत पुनरीक्षण दायर किया।

6. सुलभ संदर्भ के लिए, विचारण मजिस्ट्रेट द्वारा 24.9.2021 को और अपीलीय न्यायालय द्वारा 20.8.2022 को पारित आदेशों को यहां पुन: प्रस्तुत किया जाता है: -

(1) सिविल जज (जेडी) (फास्ट ट्रैक कोर्ट), महिलाओं के खिलाफ अपराध, मेरठ द्वारा 24.9.2021 को पारित आदेश:

प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 23 घरेलू हिंसा से महिलाओं का

अनुवादित

संरक्षण अधिनियम स्वीकार किया जाता है। आपत्ती तदनुसार निस्तारित् । विपक्षी संख्या 1 को आदेशित किया जाता है कि वह प्रार्थनी को मकान नंबर 28 मीरा एनक्लेव गढ़ रोड थाना नौचंदी मेरठ में साझा ग्रहस्ती में रहने से प्रभावित नहीं करेगा। आदेश की एक प्रति थाना संबंधित को अनुपालनार्थ प्रेषित की जाए । पत्रावली वास्ते जिरह दिनांक 13.10.2021 को पेश हो ।

(2) अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, न्यायालय क्रमांक 3, मेरठ द्वारा दिनांक 20.8.2022 को पारित आदेश:

अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत दाण्डिक अपील स्वीकार की जाती है। अवर न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांकित 24.09.2021 अपास्त किया जाता है। अपीलार्थी को आदेशित किया जाता है कि वह प्रत्यर्थी सं० 2 को निवास हेतु किराये के मकान के लिए प्रतिमाह अंकन 10,000/- रूपये अदा करेगा।

7. पुनरीक्षणकर्ता (पत्नी) के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि वह पुनरीक्षणकर्ता अपनी शादी की तारीख यानी 26.02.1995 से 20.06.2016 तक प्रतिपक्षी संख्या-2 (पति) के साथ संयुक्त/आम घर में रहती थी। समय के साथ प्रतिपक्षी संख्या-2 अपनी नौकरानी गीता के साथ विवाहेतर संबंधों में व्यस्त हो गया। पति के इस घिनौने कृत्य के विरोध में पुनरीक्षक (पत्नी) और उसके बेटे पर घरेलू हिंसा और क्रूरता करने लगे। 26.6.2016 को प्रतिपक्षी संख्या-2 (पति) ने पुनरीक्षणकर्ता (पत्नी) पर उसे मारने के इरादे से हमला किया। उसे गंभीर चोटें आईं और उसने दयावती मोदी नर्सिंग होम मेरठ से अपना इलाज कराया। इलाज के बाद जब वह घर लौटी तो पति ने उसे और उसके बेटे को घर में घुसने नहीं दिया। उसने आगे प्रस्तुत किया कि आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांक 20.8.2022 को सही परिप्रेक्ष्य में रिकॉर्ड पर साक्ष्य की मूल्यांकन किए बिना अवैध रूप से पारित किया गया है। अपीलीय न्यायालय ने रिकॉर्ड में मौजूद सबूतों को पूरी तरह से गलत तरीके से पढ़ा है, गलत व्याख्या की है और गलत तरीके से मूल्यांकन किया है। इसलिए, दिनांक 20.8.2022 के आक्षेपित निर्णय और आदेश को रद्द किया जा सकता है।

8. प्रतिपक्षी संख्या-2 और अपर शासकीय अधिवक्ता के अधिवक्ता ने पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता द्वारा की गई प्रस्तुतियों का जोरदार विरोध किया उपरोक्त प्रस्तुतियों की संचयी ताकत पर, यह जोरदार आग्रह किया जाता है कि पुनरीक्षण के तहत आदेश कानून में किसी भी गंभीर अवैधता और विकृति से ग्रस्त नहीं है, इस तरह अपीलीय न्यायालय ने 20.8.2022 को आक्षेपित आदेश पारित किया है।

9. प्रस्तुत विवाद में प्रयुक्त विभिन्न शब्दों "घरेलू संबंध, "साझा परिवार" और "घरेलू हिंसा" आदि की शुद्धता से निपटने के लिए, प्रस्तुत पुनरीक्षण में शामिल मुद्दों पर सामग्री वाले ऐसे शब्दों का एक संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत

अदालत

आपराधिक पुनरीक्षण में शामिल विवाद को स्थगित करने में सहायक होगा। डीवी अधिनियम की धारा 2 और 3 में निम्नलिखित प्रासंगिक शर्तों को परिभाषित किया गया है। जिन्हें यहां नीचे उद्धृत किया गया है:

2. परिभाषाएं--इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, --

(च) "घरेलू संबंध" से ऐसे दो व्यक्तियों के बीच संबंध अभिप्रेत है जो किसी साझी गृहस्थी में रहते हैं, जब वे संसाहरण, विवाह द्वारा या विवाह, दत्तक ग्रहण की प्रकृति के संबंध में संबंध रखते हैं या संयुक्त परिवार के रूप में एक साथ रह रहे परिवार के सदस्य हैं;

.....

(ध) "साझी गृहस्थी" से ऐसा गृहस्थी अभिप्रेत है जहां व्यथित व्यक्ति रहता है या किसी भी अवस्था में या तो अकेले या प्रतिपक्षी के साथ घरेलू संबंध में रहा है और इसके अंतर्गत ऐसी गृहस्थी भी है, चाहे व्यथित व्यक्ति और प्रतिपक्षी द्वारा संयुक्त रूप से स्वामित्व में हो या किरायेदार हो, या उनमें से किसी के स्वामित्व में हो या किरायेदार हो, जिसके संबंध में या तो व्यथित व्यक्ति या प्रतिपक्षी या दोनों को संयुक्त रूप से या अकेले ही कोई अधिकार हो, इसमें ऐसा परिवार शामिल है जो संयुक्त परिवार से संबंधित हो सकता है, जिसका प्रतिपक्षी सदस्य है, भले ही प्रतिपक्षी या पीड़ित व्यक्ति का साझा परिवार में कोई अधिकार, शीर्षक या हित हो।

धारा 3. घरेलू हिंसा की परिभाषा--इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए, प्रतिपक्षी का कोई कार्य, लोप या कमीशन या आचरण घरेलू हिंसा का गठन करेगा, यदि वह-

(ए) पीड़ित व्यक्ति के स्वास्थ्य, सुरक्षा, जीवन, अंग या कल्याण, चाहे वह मानसिक या शारीरिक हो, को नुकसान पहुंचाता है या चोट पहुंचाता है या खतरे में डालता है या ऐसा करने की प्रवृत्ति रखता है और इसके अंतर्गत शारीरिक शोषण, यौन शोषण, मौखिक और भावनात्मक दुर्व्यवहार और आर्थिक शोषण कारित करना भी है; नहीं तो

(ख) व्यथित व्यक्ति को दहेज या अन्य संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति की किसी विधिविरुद्ध मांग को पूरा करने के लिए उसे या उससे संबंधित किसी अन्य व्यक्ति को विवश करने की दृष्टि से उत्पीड़ित, हानि, चोट पहुँचाता या खतरे में डालता है; नहीं तो

(ग) खंड (क) या खंड (ख) में उल्लिखित किसी आचरण द्वारा व्यथित व्यक्ति या उससे संबंधित किसी व्यक्ति को धमकाने का प्रभाव है; नहीं तो

(घ) अन्यथा व्यथित व्यक्ति को, चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक, चोट पहुँचाता है या हानि कारित करता है। स्पष्टीकरण I.--इस खंड के प्रयोजनों के लिए, -

(i) "शारीरिक दुर्व्यवहार" से कोई ऐसा कार्य या आचरण अभिप्रेत है जो ऐसी प्रकृति का है जिससे शारीरिक पीड़ा, क्षति या जीवन, अंग या स्वास्थ्य को खतरा हो या व्यथित व्यक्ति के स्वास्थ्य या विकास को हानि हो और जिसके अंतर्गत हमला, आपराधिक अभित्रास और आपराधिक बल भी है;

(ii) "यौन दुर्व्यवहार" के अन्तर्गत लैंगिक प्रकृति का कोई आचरण भी है जो स्त्री के साथ दुर्व्यवहार, अपमान, नीचा दिखाता है या अन्यथा उसका उल्लंघन करता है;

अनुवादित

(iii) "मौखिक और भावनात्मक दुर्व्यवहार" में शामिल हैं-

(ए) अपमान, उपहास, अपमान, नाम पुकारना और अपमान या उपहास विशेष रूप से बच्चा या पुरुष बच्चा नहीं होने के संबंध में; और

(ख) किसी ऐसे व्यक्ति को, जिसमें व्यथित व्यक्ति का हित है, शारीरिक कष्ट पहुंचाने की बार-बार धमकी देना।

(iv) "आर्थिक दुरुपयोग" में शामिल हैं-

(क) व्यथित व्यक्ति किसी विधि या रीति के अधीन उन सभी या किन्हीं आथक या वित्तीय संसाधनों से वंचित करना, जिनके लिए व्यथित व्यक्ति किसी विधि या रीति-रिवाज के अधीन संदेय है, चाहे वह न्यायालय के आदेश के अधीन संदेय हो या जिसकी व्यथित व्यक्ति आवश्यकता से अपेक्षा करता है, जिसके अंतर्गत व्यथित व्यक्ति और उसके बालकों के लिए घरेलू आवश्यकताएं, यदि कोई हों, भी शामिल हैं, किंतु इन्हीं तक सीमित नहीं हैं, स्त्रीधन, संपत्ति, संयुक्त रूप से या अलग से पीड़ित व्यक्ति के स्वामित्व में, साझा घर और रखरखाव से संबंधित किराए का भुगतान;

(ख) घरेलू प्रभावों का निपटान, संपत्ति का कोई भी हस्तांतरण चाहे चल या अचल, कीमती सामान, शेयर, प्रतिभूतियां, बांड और इसी तरह या अन्य संपत्ति जिसमें पीड़ित व्यक्ति का हित है या घरेलू संबंध के आधार पर उपयोग करने का हकदार है या जो व्यथित व्यक्ति या उसके बच्चों या उसके स्त्रीधन या पीड़ित व्यक्ति द्वारा संयुक्त रूप से या अलग से धारित किसी अन्य संपत्ति द्वारा उचित रूप से अपेक्षित हो सकता है; और

(ग) उन संसाधनों या सुविधाओं तक निरंतर पहुंच का निषेध या प्रतिबंध, जिनका पीड़ित व्यक्ति घरेलू संबंधों के कारण उपयोग करने या आनंद लेने का हकदार है, जिसमें साझा परिवार तक पहुंच भी शामिल है।

स्पष्टीकरण II. -- यह अवधारित करने के प्रयोजन के लिए कि क्या प्रतिपक्षी का कोई कार्य, लोप, कमीशन या आचरण इस धारा के अधीन "घरेलू हिंसा" का गठन करता है, मामले के समग्र तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार किया जाएगा।

10. यह दोनों पक्षों के लिए एक स्वीकृत मामला है कि उनके के बीच वैवाहिक संबंध आज तक मौजूद हैं। वे कानूनी रूप से पति-पत्नी के रूप में विवाहित हैं। विवाह से उन्होंने एक पुत्र को जन्म दिया, जो पुनरीक्षणकर्ता के साथ भी रह रहा है। प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता द्वारा यह भी विवादित नहीं है कि उनकी शादी के बाद पुनरीक्षणकर्ता प्रतिपक्षी संख्या-2 के साथ 28 मीरा एन्क्लेव, गढ़ रोड, मेरठ में स्थित घर में रहता था। इस प्रकार, घरेलू संबंध की परिभाषा के अनुसार डीवी अधिनियम, 2005 की धारा 2 (एफ) के तहत है, क्योंकि वे दोनों अपनी शादी की शुरुआत से यानी 26.02.1995 को प्रश्नगत घर में एक ही घर में रह रहे थे और उन्होंने डीवी अधिनियम की धारा 2 (एस) के तहत परिभाषित साझा घर धारण किया था। समय के साथ उनके बीच विवाद पैदा हुआ, जैसा कि पुनरीक्षणकर्ता द्वारा था, पति प्रतिपक्षी संख्या-2 के अपनी नौकरानी गीत के साथ विवाहेतर संबंध होने के कारण आरोप लगाया गया। यह पुनरीक्षणकर्ता प्रतिबद्ध, घरेलू हिंसा द्वारा भी आरोप लगाया जाता है क्योंकि उसने अपने बुरे कृत्य के चलते पुनरीक्षणकर्ता पर हमला किया था; वह 26.6.2016 को गंभीर रूप से घायल हो गई

अनुवादित

और दयावती मोदी नर्सिंग होम मेरठ में उसका इलाज चल रहा था। जब वह अपने निवास यानी साझा ससुराल लौटी, तब प्रतिपक्षी संख्या-2 ने उसे घर में प्रवेश करने की अनुमति नहीं दी। घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005 से महिलाओं के संरक्षण की धारा 3 के तहत परिभाषा के अनुसार, प्रतिपक्षी संख्या-2 का यह कार्य घरेलू हिंसा के अंतर्गत आता है।

11. प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि इसके अलावा, प्रतिपक्षी संख्या-2 के उनके सगे भाई, उनके पिता और परिवार के अन्य सदस्य भी विचाराधीन घर में रह रहे हैं। पुनरीक्षणकर्ता द्वारा उस घर को साझा करने से अनावश्यक झगड़ा, बकवास, हाथापाई भी हो सकती है और इन सदस्यों की शांति और सद्भाव को भंग कर सकता है। इसके अलावा, वर्तमान विवाद 2016 से चल रहा है और पक्षों के बीच गंभीर मुकदमेबाजी हैं। इसलिए उनका एक छत के नीचे रहना प्रतिपक्षी संख्या-2 और उसके परिवार के सदस्यों के जीवन और स्वास्थ्य के लिए खतरनाक है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि प्रतिपक्षी संख्या-2 किराए के घर में रहने के लिए पुनरीक्षणकर्ता की सुविधा के लिए किराए के रूप में 10,000/देने के लिए राज़ी है।

12. पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता के पूर्वोक्त तर्क का खंडन करते हुए, पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि विचाराधीन घर एक बड़ा घर है, जिसमें वर्ष 16 बड़े और छोटे कमरे हैं। पुनरीक्षणकर्ता के पास विचाराधीन घर की पहली मंजिल पर केवल दो कमरे हैं।

13. पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि यह एक स्वीकृत तथ्य है कि प्रतिपक्षी संख्या-2 के पिता प्रश्नगत घर के मालिक थे। उनके पिता शोभा लाल मित्तल (पुनरीक्षणकर्ता के ससुर) का 07.12.2020 को निधन हो गया था। उनके भाई डॉ. प्रदीप मित्तल ए-38 मोती प्रयाग कॉलोनी गढ़ रोड, मेरठ में रहते हैं, जैसा कि वाद संख्या-1057 वर्ष 2020 में दायर डब्ल्यूएस के अवलोकन से स्पष्ट है, जिसमें उन्होंने प्रतिपक्षी संख्या-2 डॉ. प्रदीप मित्तल के भाई के उपरोक्त पते का उल्लेख किया था।

14. प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि पुनरीक्षणकर्ता मीरा कॉलोनी में स्थित पूरे घर को अपने कब्जे में लेना चाहता है और उस घर का मालिक बनना चाहता है। पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता ने प्रतिपक्षी संख्या-2 के इस तर्क का खंडन किया और स्पष्ट किया कि पुनरीक्षणकर्ता के मन में कोई आशंका नहीं है कि वह विचाराधीन घर का स्वामित्व ले लेगी क्योंकि पिता की मृत्यु के बाद, घर का स्वामित्व होने के कारण, स्वामित्व मृत मालिक के एल.आर? में चला जाता है। इसलिए, प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता द्वारा व्यक्त की गई यह आशंका निराधार और अनुचित है और उनका तर्क मान्य नहीं है।

15. यह भी एक स्वीकृत तथ्य है कि प्रतिपक्षी संख्या-2 भी विचाराधीन घर में पुनरीक्षणकर्ता के साथ नहीं रह रहा है। यह तथ्य इस बात से भी स्पष्ट है कि उन्होंने मेमो ऑफ अपील में अपना प्रस्तुत आवासीय पता मकान संख्या-468 फूल बाग कॉलोनी, मेरठ के निवासी के रूप में दिया है। इन परिस्थितियों में, कोई अन्य व्यक्ति पुनरीक्षणकर्ता के साथ नहीं रहता है। उस घर में किसी को झगड़ने का सवाल ही

अप्रमाणित

नहीं उठता। अपीलीय अदालत ने इस संबंध में अपना निष्कर्ष दर्ज करने में गलती की।

16. इस प्रकार, पुनरीक्षणकर्ता 24.09.2021 से साझा घर में रह रहा है। प्रतिपक्षी संख्या-2 भी सत्र न्यायाधीश के समक्ष अपील दायर करने तक उस घर में उसके साथ रह रहा था और वह दो कमरों में पहली मंजिल के कब्जे में है। जबकि निवास खाली पड़ा है; पुनरीक्षणकर्ता के पास प्रश्नगत घर में रहने के लिए कोई नहीं है, यह किसी अन्य आवास में रहने के लिए किराए के रूप में खर्च किए जाने वाले 10,000/- रुपये के पुनरीक्षणकर्ता किराये के पैसे प्रदान करके धन की सरासर बर्बादी होगी। यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि कुछ समय के लिए प्रतिपक्षी संख्या-2 ने पुनरीक्षणकर्ता को निष्कासित कर दिया है, लेकिन सिविल जज (जेडी), एस.एस.पी मेरठ द्वारा पारित आदेश दिनांक 24.9.2021 के अनुपालन में, पुनरीक्षणकर्ता को प्रश्नगत साझा घर में पुन: प्रवेश प्रदान किया। 24.9.2021 से, वह लगातार 28 मीरा एन्क्लेव गढ़ रोड, मेरठ में स्थित साझा घर में रह रही है।

17. प्रतिपक्षी संख्या-2 सत्र न्यायाधीश के समक्ष अपील दायर करने के समय अपने घर में रह रहा था और वह दो कमरों के सेट में पहली मंजिल पर कब्जा में थी।

18. उपरोक्त के मद्देनजर, पुनरीक्षक को किराये के पैसे के रूप में 10,000/- रुपये के प्रावधान के संबंध में अपीलीय न्यायालय द्वारा दर्ज निष्कर्ष भी टिकाऊ/पुख्ता नहीं है।

19. तदनुसार, अपीलीय न्यायालय द्वारा दिनांक 20.08.2022 के आदेश के तहत दर्ज किए गए निष्कर्षों को रद्द किया जा सकता है और सिविल जज (जेडी) (फास्ट ट्रैक कोर्ट), महिलाओं के खिलाफ अपराध, मेरठ द्वारा पारित आदेश अपीलीय अदालत के निष्कर्षों को बरकरार रखे जाने योग्य है।

20. परिणामत:, पुनरीक्षण की अनुमति है। अपीलीय न्यायालय के दिनांक 20.08.2022 के आक्षेपित आदेश को रद्द किया जाता है। सिविल जज (जेडी) (फास्ट ट्रैक कोर्ट) द्वारा पारित आदेश की पुष्टि की जाती है। प्रतिपक्षी संख्या-2 (पति) को निर्देश दिया जाता है कि वह प्रश्नगत साझा घर में पुनरीक्षणकर्ता के निवास में हस्तक्षेप न करें।

(2023) 6 ILRA 821

मूल न्यायाधिकार

नागरिक पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 26.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राहुल चतुर्वेदी

माननीय न्यायमूर्ति गजेन्द्र कुमार

बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका संख्या 2023 की 350

युवराज यादव याचिकाकर्ता

बनाम

अधीक्षक केन्द्रीय कार्यकर्ता नैनी, प्रयागराज एवं अनु प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री प्रभा शंकर चतुर्वेदी, श्री अभिषेक कुमार मिश्रा, श्री चंद्रकेश मिश्रा, श्री डी.एस. मिश्रा (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: जी.ए., श्री दान बहादुर यादव, श्री परमेश्वर यादव

भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद-226-बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट-जब कोई व्यक्ति किसी सक्षम

अनुवादित

न्यायालय द्वारा न्यायिक हिरासत या पुलिस हिरासत में भेजा जाता है, तो बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट पर विचार नहीं किया जा सकता-आरोपी की हिरासत को पहले के रिमांड आदेशों में हुई कुछ अनियमितताओं के कारण अमान्य नहीं कहा जा सकता और आरोपी को ऐसी तकनीकी त्रुटियों का लाभ नहीं मिल सकता-याचिकाकर्ता ने पहले ही धारा 482 सीआरपीसी के प्रावधानों का आह्वान किया है, इसलिए आपराधिक न्याय का प्रशासन पहले ही लागू हो चुका है और इसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण उपाय का आह्वान करके रद्द नहीं किया जा सकता है, जो अधिकार का एक उपाय हो सकता है, लेकिन स्थापित कानून के अनुसार इसे स्वाभाविक रूप से जारी नहीं किया जा सकता है। इसके अलावा, जब कॉर्पस वैध रिमांड आदेश के तहत कानूनी हिरासत में है, तो वर्तमान रिट याचिका सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ उच्च न्यायालयों द्वारा स्थापित कानून के अनुसार बनाए रखने योग्य नहीं है। (पैरा 25, 27 और 31)

याचिका खारिज। (ई-15)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. राम नारायण सिंह बनाम दिल्ली राज्य और अन्य 1953 0 सुप्रीम (एससी) 27
2. केशव सिंह बनाम विधानसभा अध्यक्ष, एआईआर 1965 सभी 349
3. गौतम नवलखा बनाम राष्ट्रीय जांच एजेंसी 2021 0 सुप्रीम (एससी) 334
4. सुरजीत सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1984 सभी एल.जे. 375
5. उरूज अब्बास बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1971 0 सुप्रीम (सभी) 211
6. सुनील कुमार शर्मा बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली)
7. साकिब अब्दुल हामिद नाचन और अन्य मह के बनाम राज्य. (2006) 108 बीओएमएलआर 339, 2006 क्रिएलजे 2196,
8. मनुभाई रतिलाल पटेल बनाम राज्य गुजरात। और अन्य. [2013 1 एससीसी 314],
9. सौरभ कुमार बनाम जेलर, कोनिला जेल एवं अन्य। [2014 13 एससीसी 436]
10. मह के राज्य. बनाम तस्नीम रिज़वान सिद्दीकी [एआईआर 2018 एससी (आपराधिक) 1449]

(माननीय न्यायमूर्ति गजेंद्र कुमार द्वारा दिया गया)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री डी.एस. मिश्रा के सहायक वरिष्ठ अधिवक्ता श्री प्रभाशंकर चतुर्वेदी, अभिषेक कुमार मिश्रा और चंद्रकेश मिश्रा, और राज्य प्रतिवादीगणों की ओर से उपस्थित विद्वान ए.जी.ए. श्री सत्येन्द्र तिवारी को सुना।

2. वर्तमान याचिका निम्नलिखित प्रार्थनाओं के साथ दायर की गई है:-

"1- यह कि सम्माननीय न्यायालय बंदी प्रत्यक्षीकरण प्रकृति के याचिकादेश, आदेश/निर्देश के माध्यम से याची को सशरीर/सदेह माननीय न्यायालय के समक्ष उपस्थित करने हेतु उत्तरवादीगण को आदेशित/निर्देशित करने की महती कृपा करें।

2- यह कि सम्माननीय न्यायालय बंदी प्रत्यक्षीकरण प्रकृति के याचिकादेश, आदेश/निर्देश के माध्यम से याची की आद्योपान्त क्रमानुगत/लगातार वर्तमान

अनुवादित

निरूद्धि व अभिरक्षा को युक्तयुक्तिक ढंग से पूर्णरूपेण व संदेहरहित विधिक प्रक्रिया के अनुकूल व अनुरूप सिद्ध करने हेतु उत्तरवादीगण समेत उनके सहयोगी /सहकर्मी को आदेशित / निर्देशित करने की महती कृपा करें।

3- यह कि सम्माननीय न्यायालय बंदी प्रत्यक्षीकरण प्रकृति के याचिकादेश, आदेश / निर्देश के माध्यम से याचिका के लम्बन अवधि तक जमानत पर अभिरक्षा से मुक्त करने हेतु आदेशित / निर्देशित करने की महती कृपा करें।

4- यह कि माननीय न्यायालय बंदी प्रत्यक्षीकरण प्रकृति के याचिकादेश, आदेश / निर्देश के माध्यम से याची की आद्योपान्त लगातार, वर्तमान अभिरक्षा निरूद्धि को अविधिक, असंवैधानिक घोषित करते हुए याची को अभिरक्षा से अविलम्ब मुक्त / स्वतंत्र करने की महती कृपा करें।"

3. यह याचिका याचिकाकर्ता युवराज यादव (कॉर्पस) की ओर से दायर की गई है, जिसका दावा है कि उसे मुकदमा अपराध संख्या 558 सन् 2022 में आईपीसी की धारा 376, 506, 342 और पॉक्सो अधिनियम की धारा 3/4 के तहत झूठा फंसाया गया है। यह भी दावा किया गया है कि एफआईआर पीड़िता के पिता ने दर्ज कराई है और उसमें उसकी उम्र 15 साल दिखाई गई है, जो सच नहीं है। आरोप है कि याचिकाकर्ता को अवैध हिरासत में रखा गया है, जो असंवैधानिक और कानून के विपरीत है। याचिकाकर्ता की ओर से दिनांक 15.09.2022 को एक आवेदन इस प्रार्थना के साथ दायर किया गया था कि कृपया रिमांड आदेश को रद्द कर दिया जाए जो कि पॉक्सो अधिनियम की धारा 3/4 के तहत है। दिनांक 15.09.2022 को विचारण न्यायालय ने बिना क्षेत्राधिकार के यांत्रिक एवं मनमाने ढंग से दिनांक 02.09.2022 से 15.09.2022 तक के हिरासत वारंट पर हस्ताक्षर कर दिये। बाद में, रिमांड आदेश पर यंत्रवत् हस्ताक्षर किए गए, क्योंकि वहां कोई केस डायरी नहीं थी और मामले से संबंधित कोई दस्तावेज/कागजात विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए थे। आवेदन दिनांक 15.09.2022 में विशेष रूप से उल्लेख किया गया है कि सूचना का अधिकार अधिनियम के तहत पीड़िता की जन्मतिथि खंड शिक्षा अधिकारी, मऊआइमा, प्रयागराज से प्राथमिक विद्यालय में पढ़ने के दौरान मांगी गई थी, जिसके अनुसार पीड़िता बालिग थी और उसकी उम्र 20 साल से ज्यादा थी। अपर सत्र न्यायाधीश एवं विशेष न्यायाधीश, पॉक्सो अधिनियम, प्रयागराज द्वारा पीड़िता की रेडियोलॉजिस्ट रिपोर्ट के निस्तारण एवं आदेश हेतु दिनांक 21.09.2022 नियत की गयी। पीड़िता के पिता ने दिनांक 11.10.2022 को शपथ पत्र प्रस्तुत किया कि चूंकि पीड़िता का मेडिकल परीक्षण नहीं हुआ है, इसलिए वह दिनांक 21.09.2022 के आदेश के अनुसार अपनी बेटी/पीड़िता की रेडियोलॉजिकल जांच नहीं कराना चाहता है और इसे अस्वीकार करने और उसे रेडियोलॉजिकल जांच से मुक्त करने की प्रार्थना की गई थी। पीड़िता की ओर से वर्ष 2021 की हाईस्कूल परीक्षा का प्रमाण पत्र/मार्कशीट जिसमें जन्मतिथि 18.07.2022 दर्शाई गई है, के साथ आपत्ति भी दाखिल की गई। विचारण न्यायालय ने दिनांक 11.10.2022 को मनमाने तरीके से याचिकाकर्ता की अर्जी खारिज कर दी है, जो निस्तारित केस कानून के विपरीत है। विचारण न्यायालय ने दिनांक 15.09.2022 के आवेदन

अनुवादित

को खारिज करते हुए आक्षेपित आदेश दिनांक 11.10.2022 पारित किया जिसके द्वारा उसने पॉक्सो अधिनियम की धारा 3/4 और आईपीसी की धारा 376, 506, 342 के तहत रिमांड आदेश पर हस्ताक्षर किए हैं जो कानून के प्रावधानों के खिलाफ है। याचिकाकर्ता की ओर से **ऋषिपाल सिंह सोलंकी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** और **संजीव कुमार गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** के केस लॉ को जे.जे. अधिनियम, 2015 के प्रावधानों के साथ अवलोकनार्थ प्रस्तुत किया गया लेकिन उन पर विचार नहीं किया गया और इस आशय का आदेश पारित किया गया कि आठवीं कक्षा की मार्कशीट में दी गई उम्र पीड़िता की उम्र के संबंध में मान्य होगी। विचारण न्यायालय ने जे.जे. अधिनियम, 2015 की धारा 94 (2) (i) में दिए गए प्रावधानों पर विचार नहीं किया है, जैसा कि प्राथमिक विद्यालय, उमरी के कक्षा-1 के रिकार्ड के अनुसार, पीड़िता नाबालिग नहीं थी, बल्कि वह बालिग थी क्योंकि उसकी जन्मतिथि 03.03.2002 थी। विचारण न्यायालय द्वारा इस महत्वपूर्ण बिंदु और तथ्य पर विचार नहीं किया गया और यंत्रवत रिमांड आदेश पर हस्ताक्षर कर दिये गये। विचारण न्यायालय ने इस महत्वपूर्ण तथ्य एवं परिस्थिति पर भी विचार नहीं किया है कि विचारण न्यायालय ने दिनांक 21.09.2022 को विवेचक को आदेश दिया था कि पीड़िता की उम्र के निर्धारण के लिए उसकी रेडियोलॉजिकल जांच कराई जाए, लेकिन पीड़िता की ओर से इस पर आपत्ति जताई गई और उम्र के निर्धारण के लिए उसकी जांच नहीं कराई गई। रिमांड आदेश औपचारिक नहीं हैं बल्कि वे कानूनी और न्यायिक आदेश हैं, जिन्हें किसी दिए गए मामले की परिस्थितियों में दस्तावेजों/कागजातों के अवलोकन के बाद पारित किया जाना आवश्यक है। विचारण न्यायालय के समक्ष कोई केस डायरी और कागजात अवलोकन के लिए प्रस्तुत नहीं किए गए और रिमांड का आदेश यांत्रिक और औपचारिक तरीके से पारित किया गया। दिनांक 21 सितम्बर, 01 अक्टूबर, 07 अक्टूबर, 11 अक्टूबर, 15 अक्टूबर, 28 अक्टूबर को विचारण न्यायालय के समक्ष कोई केस डायरी और कागजात प्रस्तुत नहीं किए गए और आदेश यांत्रिक तरीके से पारित किया गया और कोई न्यायिक हिरासत नहीं बढ़ाई गई। अपर सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश पॉक्सो अधिनियम के पास संज्ञान लेने और रिमांड आदेश पारित करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है, इसलिए इस परिस्थिति में दिनांक 11.10.2022 से 27.03.2023 तक की गई कार्यवाही, पारित रिमांड आदेश क्षेत्राधिकार से परे हैं। याचिकाकर्ता को कानूनी प्रक्रिया के विरुद्ध और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 सपठित अनुच्छेद 21 के प्रावधानों का उल्लंघन करते हुए उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित किया गया है। अपर सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश पॉक्सो अधिनियम ने दिनांक 03.11.2022 को, याचिकाकर्ता की हिरासत को उसी तरह बढ़ाने के लिए कोई रिमांड आदेश पारित नहीं किया है, दिनांक 21.11.2022, 21.12.2022, 25.01.2023, 07.02.2023, 04.03.2023, 27.03.2023 को न तो कोई रिमांड आदेश पारित नहीं किया गया है और न ही रिकॉर्ड पर उपलब्ध है। सीआरपीसी की धारा 309 के प्रावधानों के अनुसार, असीमित अवधि तक हिरासत में रखने के लिए कोई रिमांड आदेश पारित नहीं

अप्रमाणित

किया जा सकता है। मध्यवर्ती हिरासत आदेश निरर्थक हैं और उनके आधार पर याचिकाकर्ता को जेल में निरुद्ध नहीं किया जा सकता है। मध्यवर्ती हिरासत आदेश दिनांक 21.12.2022, 25.01.2023, 07.02.2023, 04.03.2023, 22.03.2023 सीआरपीसी की धारा 309 साथ ही साथ भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के प्रावधानों के विरुद्ध हैं। अपर सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश पॉक्सो अधिनियम के पास मुकदमा अपराध संख्या 558 सन् 2022 से उत्पन्न एसएसटी संख्या 326 सन् 2022 पर मुकदमा चलाने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है क्योंकि यह न्यायालय को समर्पित नहीं किया गया है। आगे कहा गया है कि आपराधिक प्रकीर्ण आवेदन संख्या 37471 सन् 2022 के रूप में सीआरपीसी की धारा 482 के तहत एक आवेदन दायर किया गया है, जिसमें इस न्यायालय द्वारा दिनांक 23.01.2023 के आदेश के तहत अंतरिम स्थगन आदेश दिया गया है, जिसे 24.04.2023 तक बढ़ा दिया गया है। याचिकाकर्ता को अवैध हिरासत में रखा गया है जो कानूनी प्रक्रिया के विपरीत, असंवैधानिक और कानून के विपरीत है। याचिकाकर्ता द्वारा इस आधार पर बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्रार्थना की गई है कि वह निर्दोष है और उसे मुकदमा अपराध संख्या 558 सन् 2022 में झूठा फंसाया गया है। कथित अपराध की पीड़िता प्रमुख है। उसकी जन्मतिथि 03.03.2002 है। जे.जे. अधिनियम, 2015 की धारा 94(2)(i) के प्रावधानों के अनुसार, पीड़िता की कक्षा-1 के स्कूल में दर्शाई गई जन्मतिथि हाई स्कूल प्रमाणपत्र/मार्कशीट में दर्शाई गई जन्मतिथि से अधिक मान्य होगी। विचारण न्यायालय ने इन सभी प्रावधानों पर विचार नहीं किया है। याचिकाकर्ता को जेल में हिरासत में रखने के लिए किसी भी सक्षम अदालत द्वारा कोई रिमांड आदेश पारित नहीं किया गया है, जो रिकॉर्ड पर उपलब्ध है। याचिकाकर्ता को जेल में हिरासत में रखने के लिए निर्धारित प्रोफार्मा पर कोई मध्यवर्ती हिरासत वारंट पारित नहीं किया गया है। याचिकाकर्ता को मनमाने तरीके से कानूनी प्रक्रिया के विरुद्ध उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित किया गया है जो गैरकानूनी और असंवैधानिक है।

4. एफआईआर कथानक के अनुसार दिनांक 07.08.2022 को जब प्रथम सूचनादाता की बेटी किताबें खरीदने जा रही थी, तो रास्ते में ददौली नहर (सोरांव हाईवे) के पास दोपहर लगभग 1:00 बजे याचिकाकर्ता ने उसकी बेटी को रोक लिया और उसे अपने घर के अंदर खींच लिया, और अंदर से कुंडी लगाकर उसके साथ बलात्कार किया और उसे चार घंटे तक बंधक बनाकर रखा। प्रथम सूचनादाता की बेटी जोर-जोर से रोती रही, इसके बावजूद याचिकाकर्ता उसके साथ दुष्कर्म करता रहा और काफी समय बाद जब प्रथम सूचनादाता ने अपने परिवार के सदस्यों के साथ उसकी तलाश की, तो उसकी बेटी याचिकाकर्ता के घर में पाई गई। याचिकाकर्ता के लिए यह भी कहा गया है कि उसने प्रथम सूचनादाता और उसके परिवार के सदस्यों को उसकी बेटी का वीडियो वायरल करने की धमकी दी थी। जब पीड़िता को घर लाया गया तो उसने सारी घटना अपनी मां को बताई।

5. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता के तर्क का पहला पहलू यह है कि कथित घटना के समय पीड़िता बालिग थी, सूचना का अधिकार

अनुवादित

अधिनियम के माध्यम से प्राप्त उसके कक्षा-1 रिकॉर्ड के अनुसार इसे विधिवत अदालत के संज्ञान में लाया गया और रिमांड आदेश को इस आशय से रद्द करने की प्रार्थना की गई कि पॉक्सो अधिनियम के तहत कोई अपराध नहीं बनता है, लेकिन विद्वान विचारण न्यायालय ने कानून के प्रावधानों के खिलाफ हाई स्कूल प्रमाणपत्र पर अवलम्ब लिया और प्रार्थना अस्वीकार कर दी गई, जो अधिकार क्षेत्र के बिना और कानून के खिलाफ है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह स्वीकार किया कि उस आदेश के खिलाफ इस अदालत के समक्ष सीआरपीसी की धारा 482 के तहत एक आवेदन दायर किया गया है, जिसमें मुकदमा अपराध संख्या 558/2022 की कार्यवाही पर रोक लगा दी गई है और अभी भी रोक दी गई है।तर्क का दूसरा पहलू यह है कि संबंधित विचारण न्यायालय ने कानून के अनुसार मध्यवर्ती रिमांड आदेश पारित नहीं किया है और रिकॉर्ड पर कोई कानूनी रिमांड आदेश नहीं है। याचिकाकर्ता बिना किसी कानूनी रिमांड आदेश के जेल में है, इसलिए, याचिकाकर्ता कानून की प्रक्रिया के खिलाफ अवैध हिरासत में है जो भारत के संविधान के तहत प्रदान की गई और संरक्षित उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता का उल्लंघन है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कई निर्णयों पर अवलम्ब लिया जो इस प्रकार हैं:-

1. संजीव कुमार गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2019 0 सुप्रीम (एससी) 783

2. ऋषिपाल सिंह सोलंकी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एआईआर आनलाइन 2021 एससी 1050

3. राम नारायण सिंह बनाम दिल्ली राज्य एवं अन्य 1953 0 सुप्रीम (एससी) 27

4. केशव सिंह बनाम अध्यक्ष, विधान सभा एआईआर 1965 ऑल 349

5. उरूज अब्बास बनाम यूपी राज्य 1971 0 सुप्रीम (ऑल) 211

6. सुरजीत सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1984 ऑल. एल. जे. 375

7. सुनील कुमार शर्मा बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली)

8. साकिब अब्दुल हामिद नाचन और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य, 2006 क्रि. एल.जे. 2196

9. गौतम नवलखा बनाम राष्ट्रीय जांच एजेंसी, 2021 0 सुप्रीम (एससी) 334

6. इसके विपरीत, विद्वान ए.जी.ए. ने याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों का खंडन किया और प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता सक्षम क्षेत्राधिकार की अदालत द्वारा पारित वैध आदेश के तहत न्यायिक हिरासत में है।

बंदी प्रत्यक्षीकरण का कोई भी रिट न्यायिक आदेश के विरुद्ध नहीं है क्योंकि इस मामले में याचिकाकर्ता न्यायिक आदेश के आधार पर कानूनी हिरासत में है, इसलिए, याचिकाकर्ता का रिट इसी आधार पर खारिज किया जा सकता है। इसके अलावा, उन्होंने प्रस्तुत किया कि दिनांक 11.10.2022 के आक्षेपित आदेश को सीआरपीसी की धारा 482 के तहत दायर आवेदन संख्या 37471 सन् 2022 में चुनौती दी गई है। याचिकाकर्ता को एक ही समय में एक ही अदालत से दो उपचारों का लाभ उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती। इसलिए, यह बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका अपास्त किये जाने योग्य है। विद्वान ए.जी.ए. ने **मनुभाई पटेल बनाम गुजरात राज्य और अन्य 2013**

अवैधानिक

सीआरआई. एल.जे. 160, सौरभ कुमार बनाम जेलर राज्य 2014 (13) एससीसी 436, कोनिला जेल और अन्य, महाराष्ट्र राज्य बनाम तसनीम रिजवान सिद्दीकी एआईआर 2018 एससी (आपराधिक) 1449 मामले में उच्चतम न्यायालय के विभिन्न निर्णयों पर अवलम्ब लिया है।

7. आगे बढ़ने से पहले, भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 पर ध्यान देना प्रासंगिक होगा, जिसे निम्नानुसार उद्धृत किया गया है: -

"21. प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण- किसी व्यक्ति को उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं।"

8. अनुच्छेद 21 स्पष्ट रूप से प्रावधान करता है कि किसी भी व्यक्ति को "कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार" के अलावा उसके जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा।

9. "बंदी प्रत्यक्षीकरण" के अर्थ पर ध्यान देना भी प्रासंगिक है जैसा कि वी.जी. रामचंद्रन सातवें संस्करण द्वारा लिखित कानून के तहत पृष्ठ 5 पर प्रदान किया गया है, जिसे निम्नानुसार उद्धृत किया गया है: -

"बंदी प्रत्यक्षीकरण का अर्थ

> *"बंदी प्रत्यक्षीकरण" एक लैटिन शब्द है। इसका अर्थ है "सदेह रखना", "उसको सशरीर लाओ" या "सदेह लाओ"। बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट द्वारा, अदालत उस व्यक्ति (या प्राधिकारी) को निर्देश देती है जिसने किसी अन्य को गिरफ्तार किया है, हिरासत में लिया है या कैद किया है, ताकि अदालत को यह पता चल सके कि उसे किस आधार पर गिरफ्तार किया गया है और हिरासत में लिया गया है। यदि गिरफ्तारी, नजरबंदी, कारावास या हिरासत के लिए कोई कानूनी औचित्य नहीं है तो उसे कैद या सीमित कर दिया जाए और उसे मुक्त कर दिया जाए।*
>
> *शब्दकोष के अर्थ के अनुसार, "बंदी प्रत्यक्षीकरण" का अर्थ है "सशरीर रखना", "शरीर-व्यक्ति को हमारे सामने लाना"। बंदी प्रत्यक्षीकरण एक रिट है जिसमें व्यक्ति की स्वतंत्रता में बाधा की जांच के लिए किसी व्यक्ति को न्यायाधीश या अदालत के सामने लाने की आवश्यकता होती है, जिसका उपयोग अवैध कारावास के खिलाफ सुरक्षा के रूप में किया जाता है।*
>
> *यह एक जेलर को एक रिट है कि वह किसी कैदी को व्यक्तिगत रूप से पेश करे, और हिरासत के कारणों को बताए।*
>
> *बंदी प्रत्यक्षीकरण एक रिट है जिसमें किसी व्यक्ति को*

अनुवादित

व्यक्ति की स्वतंत्रता में बाधा की जांच के लिए न्यायाधीश या अदालत के सामने लाने की आवश्यकता होती है, जिसका उपयोग अवैध कारावास के खिलाफ सुरक्षा के रूप में किया जाता है।

बंदी प्रत्यक्षीकरण एक रिट है जिसमें गिरफ़्तार व्यक्ति को किसी न्यायाधीश के समक्ष या अदालत में लाने की आवश्यकता होती है ताकि उस व्यक्ति की रिहाई सुनिश्चित की जा सके जब तक कि उसकी हिरासत के लिए वैध आधार न दिखाए जाएं।"

10. हमने संबंधित पक्षों की दलीलों के आलोक में याचिकाकर्ता के साथ-साथ प्रतिवादीगणों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णयों का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है और याचिका के रिकॉर्ड का परिशीलन किया है।

11. जैसा कि इस मामले में, मुख्य विवाद दिनांक 11.10.2022 के आदेश पर टिका है जिसके द्वारा पॉक्सो अधिनियम की धारा 3/4 के संबंध में रिमांड आदेश को रद्द करने के लिए दिनांक 15.09.2022 के आवेदन को अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश पॉक्सो अधिनियम, इलाहाबाद द्वारा खारिज कर दिया गया था जो इस प्रकार है :-

"पत्रावली पेश हुई। प्रार्थी/अभियुक्त की ओर से प्रार्थनापत्र दिनांकित 15-09-22 वास्ते प्रार्थी /अभियुक्त के विरूद्ध धारा 3/4 पाक्सो अधिनियम का रिमाण्ड निरस्त करने हेतु प्रस्तुत प्रार्थनापत्र पर आदेश हेतु नियत है। पत्रावली के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि दिनांक 21.09.22 को विवेचक को पीड़िता की आयु निर्धारण हेतु रेडियोलाजिकल जांच कराये जाने हेतु निर्देशित किया गया था, परन्तु पीड़िता की ओर से अभियुक्त की ओर से प्रस्तुत प्रार्थनापत्र के विरूद्ध आपत्ति दाखिल की गयी है, जिसके अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि पीड़िता द्वारा आयु निर्धारण हेतु अपनी जांच कराने से इंकार किया गया है। ऐसी स्थिति में पीड़िता की आयु के संबंध में दो जन्म तिथियां उपलब्ध हैं।

1. अभियुक्त की ओर से प्रस्तुत जन सूचना अधिकार के तहत प्राप्त सूचना कार्यालय खण्ड शिक्षा अधिकारी मऊआइमा प्रयागराज पत्रांक संख्या 467/2022-2023 दिनांक 07-09-22 जनहित अधिकार 2005 दाखिल की गयी है, जिसके अनुसार पीड़िता की जन्म तिथि 03-03-2002 अंकित है तथा पीड़िता की

अनुवादित

ओर से अपनी आपत्ति दिनांक 11-10-22 के साथ हाईस्कूल 2021 परीक्षा की प्रमाणपत्र सह अंक पत्र दाखिल किया गया है, जिसके अनुसार उसकी जन्म तिथि 18 जुलाई, 2007 है।

अभियुक्त की ओर से क्रिमिनल अपील नम्बर 1240/21 रिषीपाल सिंह सोलंकी बनाम स्टेट आफ उ.प्र. अन्य के पैरा 28 (एच.) संजीव कुमार गुप्ता बनाम स्टेट आफ यू.पी. व अन्य (2019) 12 एस.सी.सी. 370 में हाईस्कूल की सत्यता साबित न होने पर उसको नहीं माना गया है और कक्षा-4 तक अंकित जन्म तिथि को सही माना गया है।

पीड़िता की आयु का निर्धारण किशोर न्याय अधिनियम 2015 के अनुसार किया जाना है, जिसके धारा 94 में स्कूल से प्राप्त जन्म तिथि या मैट्रीकुलेशन सर्टीफिकेट संबंधित बोर्ड को वरीयता दी गयी है।

दोनों ही जन्म तिथियों की सत्यता का निर्धारण साक्ष्य के उपरान्त होना है जो विचारण के समय साक्ष्य का विषय है। ऐसी स्थिति में धारा 94 किशोर न्याय अधिनियम के अनुसार बोर्ड द्वारा हाईस्कूल प्रमाणपत्र सह अंक पत्र को प्रथम दृष्टया वरीयता देते हुये पीड़िता को घटना की तिथि पर नाबालिक माना जाता है तथा अभियुक्त की ओर से प्रस्तुत प्रार्थनापत्र दिनांकित 15-09-22 जो पीड़िता को बालिग घोषित किये जाने व धारा पाक्सो अधिनियम में रिमाण्ड निरस्त करने हेतु प्रस्तुत प्रार्थनापत्र निरस्त किया जाता है तथा अभियुक्त का रिमाण्ड मु. अ. सं. 558/22, अ. धारा 376, 506, 342 भा.द.सं. व धारा 3/4 पाक्सो एक्ट थाना सोरांव प्रयागराज में दिनांक 15-10-22 तक स्वीकृत किया जाता है।"

12. आवेदन दिनांक 15.09.2022 में धारा 3/4 पॉक्सो अधिनियम के तहत रिमांड आदेश को अपास्त करने का आधार यह लिया गया कि सूचना के अधिकार अधिनियम के तहत प्राप्त दस्तावेजों के अनुसार जिस प्राथमिक विद्यालय में पीड़िता ने दाखिला लिया और अध्ययन किया, उसके कक्षा-1 के रिकार्ड में जन्मतिथि 03.03.2002 थी, जो कि पीड़िता की सही जन्मतिथि है, जो होनी चाहिए और घटना की तारीख पर पीड़िता नाबालिग थी या बालिग, यह तय करने के लिए विचारण न्यायालय द्वारा विचार किया गया और उस पर अवलम्ब लिया गया लेकिन विचारण न्यायालय ने

अनुवादित

पीड़िता की हाई स्कूल की मार्कशीट/प्रमाण पत्र पर अवलम्ब लिया, जो याचिकाकर्ता की ओर से दिए गए आवेदन पर आपत्ति के रूप में पीड़िता की ओर से दायर किया गया था, जो कानून के प्रावधानों, विशेष रूप से जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 94 के विरूद्ध है। दिनांक 11.10.2022 के आदेश के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि दोनों पक्षों को सुनवाई का पर्याप्त अवसर देने के बाद विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि दोनों जन्म-तिथियां सत्यता के निर्धारण के लिए साक्ष्य के अधीन हैं जो कि साक्ष्य संलग्न होने के बाद विचारण के चरण में निर्णय लिया जाएगा। इन परिस्थितियों में, जे.जे. अधिनियम, 2015 की धारा 94 के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, हाई स्कूल की मार्कशीट/प्रमाण पत्र में पीड़िता प्रथम दृष्टया नाबालिग पाई गई तथा अभियुक्त की ओर से पीड़िता को बालिग घोषित करने एवं धारा 3/4 पॉक्सो एक्ट के तहत रिमांड निरस्त करने हेतु प्रार्थना पत्र दिनांक 15.09.2022 को खारिज कर दिया गया। अभियुक्त को मुकदमा अपराध संख्या 558सन् 2022, आईपीसी की धारा 376, 506, 342 और पॉक्सो अधिनियम की धारा 3, थाना सोरांव, प्रयागराज में दिनांक 15.10.2022 तक रिमांड पर लिया गया। दिनांक 11.10.2022 के आदेश को इस न्यायालय के समक्ष सीआरपीसी की धारा 482 के तहत दायर एक आवेदन के आधार पर चुनौती दी गई है जिसमें न्यायालय द्वारा एक आदेश पारित किया गया है जो इस प्रकार है:-*"कोर्ट नं.-66*

मामला:- आवेदन अन्तर्गत धारा 482 संख्या-37471 सन् 2022

आवेदक :- युवराज यादव

विरोधी पक्ष :- उत्तर प्रदेश राज्य और 4 अन्य

आवेदक के अधिवक्ता:- अभिषेक कुमार मिश्रा, चंद्रकेश मिश्रा, प्रभा शंकर चतुर्वेदी

विपक्षी पक्ष के अधिवक्ता:- जी.ए., प्रदीप कुमार यादव, प्रकाश चन्द्र त्रिवेदी, रवीन्द्र कुमार मिश्र

माननीय न्यायमूर्ति राजीव मिश्रा

आवेदक के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री डी.एस. मिश्रा के विद्वान सहायक अधिवक्ता श्री अभिषेक कुमार मिश्रा और श्री प्रभा शंकर चतुर्वेदी, राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए. और प्रथम सूचनादाता-प्रतिपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रदीप कुमार यादव के ब्रीफ धारक श्री अजय कुमार यादव को सुना गया।

वर्तमान आवेदन अन्तर्गत धारा 482 सीआरपीसी के तहत मुकदमा अपराध संख्या 558सन् 2022 से उत्पन्न, आईपीसी की धारा 376, 506, 342 और पॉक्सो अधिनियम की धारा 3/4, पुलिस स्टेशन सोरांव, जिला-प्रयागराज के तहत अपर जिला और सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश, इलाहाबाद द्वारा पारित आदेश दिनांक 11.10.2022 को चुनौती देते हुए दायर किया गया है, जिससे आवेदक की न्यायिक रिमांड 15.10.2022 तक बढ़ा दी गई है, साथ ही प्रार्थना की गई है कि दिनांक 11.10.2022 के आदेश को वापस लेने के लिए आवेदक द्वारा प्रस्तुत दिनांक 15.09.2022 के आवेदन पर निर्णय लिया जाए।

आवेदक के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि वर्तमान आपराधिक कार्यवाही को जन्म देते हुए एफआईआर दिनांक 09.08.2022 में अभियोक्त्री अर्थात् 'X माइनर' की उम्र 15 वर्ष बताई गई है। तत्पश्चात, आवेदक ने उस

अनुवादित

संस्थान से प्रमाण पत्र प्राप्त किया जिसमें अभियोक्त्री सर्वप्रथम शामिल हुई थी। संबंधित संस्थान के प्राचार्य द्वारा जारी उक्त प्रमाण पत्र के अनुसार स्कूल रिकॉर्ड में दर्ज उसकी जन्मतिथि 03.03.2002 है। इस प्रकार, घटना की तिथि पर, अभियोक्त्री की आयु लगभग 20 वर्ष थी। तब विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया कि उपरोक्त के मद्देनजर, किसी भी कल्पना से, पॉक्सो अधिनियम की धारा 3/4 के तहत अपराध को वर्तमान आवेदक द्वारा किया गया नहीं कहा जा सकता है। आवेदक के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि उपरोक्त तथ्यों के आलोक में, आवेदक ने दिनांक 15.09.2022 को निचली अदालत के समक्ष एक आवेदन दायर किया कि आवेदक को धारा 3/4 पॉक्सो अधिनियम के तहत न्यायिक रिमांड पर नहीं भेजा जाए क्योंकि कोई अपराध नहीं बनता है। हालाँकि, निचली अदालत ने दिनांक 11.10.2022 के आदेश के माध्यम से इसे खारिज कर दिया और आवेदक को 15.10.2022 तक न्यायिक रिमांड के लिए भेज दिया।

उपरोक्त आधार पर, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि चूंकि आवेदक के खिलाफ धारा 3/4 पॉक्सो अधिनियम के तहत कोई अपराध नहीं बनता है, इसलिए, संबंधित विशेष न्यायालय द्वारा बढ़ाया गया न्यायिक रिमांड स्पष्ट रूप से अवैध और अधिकार क्षेत्र के बिना है। अन्यथा भी, पॉक्सो अधिनियम की धारा 3/4 के तहत आवेदक के खिलाफ पूरी कार्यवाही बरकरार नहीं रह सकती है और इसलिए इस न्यायालय द्वारा इसे रद्द किया जाने योग्य है।

इसके विपरीत, विद्वान एजीए और विपरीत पक्ष-2 के विद्वान अधिवक्ता श्री अजय कुमार यादव ने इस आवेदन का विरोध किया है। हालाँकि, वे इस स्तर पर आवेदक के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा आग्रह किए गए तथ्यात्मक और कानूनी प्रस्तुतियों को अस्वीकार नहीं कर सके।

आवेदक के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, राज्य के विद्वान ए.जी.ए., विपक्षी पक्षकार-2 के विद्वान अधिवक्ता को सुनने और रिकॉर्ड के परिशीलन के बाद, मामले पर विचार करने की आवश्यकता है।

विपक्षी पक्ष-1 की ओर से नोटिस विद्वान एजीए द्वारा स्वीकार कर ली गई है। विपक्षी-3 की ओर से अधिवक्ता श्री प्रदीप कुमार यादव ने उपस्थिति दर्ज करायी। उन्होंने प्रार्थना की है और उन्हें प्रति शपथपत्र दायर करने के लिए तीन सप्ताह का समय दिया जाता है। इसके बाद आवेदक के पास प्रत्युत्तर शपथपत्र दाखिल करने के लिए एक सप्ताह का समय होगा।

इस मामले को दिनांक 23.02.2023 को नये सिरे से प्रस्तुत करें।

दिनांक 23.02.2023 तक आवेदक के विरुद्ध मुकदमा अपराध संख्या 558 सन् 2022 में आईपीसी की धारा 376, 506, 342 व पॉक्सो अधिनियम की धारा 3/4, थाना सोरांव, जिला-प्रयागराज में आगे की कार्यवाही पर रोक रहेगी।

आदेश दिनांकः- 23.1.2023

ए.कुमार"

13. इस मामले की विशिष्ट परिस्थितियों में, हालांकि हम पाते हैं कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार को लागू करने के संबंध में कानून में कोई विवाद नहीं है, लेकिन वैकल्पिक

अनुवादित

उपचार की उपलब्धता एक पूर्ण बाधा नहीं है। हालाँकि, यह कानून भी समान रूप से स्थापित है कि यदि प्रभावी वैकल्पिक वैधानिक उपाय उपलब्ध है तो न्यायालयों को अपने असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में बेहद धीमी गति से काम करना चाहिए। हमने पाया कि याचिकाकर्ता ने पहले ही सीआरपीसी की धारा 482 के प्रावधानों को लागू कर दिया है, जो एक प्रभावी वैधानिक उपाय है, इसलिए, यह ऐसा प्रश्न नहीं है जहां प्रारंभिक आपत्ति केवल इस आधार पर उठाई जा रही है कि प्रभावी वैधानिक उपाय उपलब्ध है। वास्तव में, आपत्ति यह है कि याचिकाकर्ता द्वारा पहले ही प्रभावी वैकल्पिक वैधानिक उपाय का लाभ उठाया जा चुका है, जो अभी भी लंबित है और याचिकाकर्ता द्वारा इसका अनुसरण किया जा रहा है। इसलिए, इस आपत्ति का जवाब कि प्रभावी वैधानिक उपाय का लाभ पहले ही उठाया जा चुका है, केवल यह कहकर कि वैकल्पिक उपाय एक पूर्ण बाधा नहीं है, हमारी राय में, याचिकाकर्ता के लिए कोई मदद नहीं है क्योंकि माना जाता है कि इसका लाभ पहले ही लिया जा चुका है। इस स्वीकृत तथ्य पर आपत्ति कायम रहने योग्य है। इसके अलावा, जहां तक दिनांक 11.10.2022 के आदेश की वैधता और वैधानिकता का सवाल है, यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत किसी याचिका में उस पर अपील नहीं कर सकता है।

14. याचिकाकर्ता की ओर से एक और तर्क यह दिया गया है कि याचिकाकर्ता अवैध हिरासत में है क्योंकि न तो कोई वैध रिमांड आदेश पारित किया गया है और न ही रिकॉर्ड पर है। यदि रिमांड आदेश अवैध है, तो इसका स्वाभाविक परिणाम यह है कि हिरासत भी अवैध है और अवैध हिरासत बंदी प्रत्यक्षीकरण का उपचार है। चूँकि याचिकाकर्ता को भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत उसके संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन करते हुए कानूनी प्रक्रिया के विरुद्ध अवैध हिरासत में रखा गया है। वह तुरंत स्वतंत्र होने का हकदार है। दूसरी ओर, विद्वान ए.जी.ए. द्वारा कहा गया है कि याचिकाकर्ता न्यायिक आदेश द्वारा निरूद्ध है जो वैध है, इसलिए वैध हिरासत के खिलाफ बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट पोषणीय नहीं है क्योंकि याचिकाकर्ता सी.आर.पी.सी. के तहत प्रदान की गई स्थापित प्रक्रिया के अनुसार न्यायिक हिरासत में है।

15. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने राम नारायण सिंह (उपरोक्त) मामले पर अवलम्ब लिया है जिसमें निम्नानुसार यह अवधारित किया गया:-

> "रिमांड आदेश की समाप्ति के बाद किसी व्यक्ति को रिमांड के किसी नए आदेश के बिना हिरासत में रखना, सीआरपीसी की धारा 344 के तहत मामले को स्थगित करते हुए उसे आगे की हिरासत में भेजना अवैध है।- मामले का स्थगन- अभियुक्त को हिरासत में भेजने का कोई आदेश नहीं, हिरासत की वैधता- बंदी प्रत्यक्षीकरण- आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 344।"

16. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा अवलम्ब लिया गया एक अन्य मामला केशव सिंह

अवधारित

(उपरोक्ता) है जिसमें याचिकाकर्ता को भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत दायर याचिका में जमानत पर स्वीकार किया गया था, जिसका पैरा 17 प्रासंगिक है:-

> "17. याचिकाकर्ता या तो उल्लंघन के आधार पर या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के आधार पर या इस आधार पर प्रतिबद्धता को चुनौती देने का हकदार नहीं है कि विधान सभा द्वारा पाए गए तथ्य उसकी अवमानना नहीं हैं। एक बार जब हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि विधानसभा के पास अपनी अवमानना करने और याचिकाकर्ता पर पारित दण्ड अधिरोपित करने की शक्ति और क्षेत्राधिकार है, तो हम प्रतिबद्धता की शुद्धता, औचित्य या वैधता के सवाल पर नहीं जा सकते। यह न्यायालय, संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत किसी याचिका में, याचिकाकर्ता को उसकी अवमानना के लिए दोषी ठहराने वाले विधान सभा के फैसले पर अपील नहीं कर सकता है। विधान सभा अपनी प्रक्रिया की स्वामी है और इस प्रश्न का एकमात्र न्यायाधीश है कि उसकी अवमानना हुई है या नहीं। इस संबंध में, हम उल्लेख कर सकते हैं कि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया कि यूपी विधान सभा की प्रक्रिया और कार्य संचालन नियमों के नियम 74 और 76 अधिकारातीत हैं, नियम 74 इस प्रकार है:"

17. **गौतम नवलखा बनाम राष्ट्रीय जांच एजेंसी 2021 0 सुप्रीम (एससी) 334** मामले में, बंदी प्रत्यक्षीकरण और न्यायिक हिरासत की रिट के संबंध में, उच्चतम न्यायालय ने अवधारित किया:-

> "61. बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका अवैध हिरासत के मामले में निवारण की मांग करने वाली याचिका है। इसका उद्देश्य सबसे शीघ्र उपाय है क्योंकि स्वतंत्रता दांव पर है। क्या बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका तब लागू की जाती है जब किसी व्यक्ति को न्यायिक हिरासत या पुलिस हिरासत में भेज दिया जाता है, यह एकीकृत नहीं है। हम इस न्यायालय के केवल दो निर्णयों पर ध्यान दे सकते हैं। मनुभाई रतिलाल पटेल बनाम गुजरात राज्य और अन्य मामले में हम पैराग्राफ 24 पर ध्यान दे सकते हैं।
>
> "(24) किसी अभियुक्त की रिमांड का निर्देश देने का

अधिवक्ता

कार्य मूल रूप से एक न्यायिक कार्य है। किसी आरोपी को हिरासत में लेने का आदेश देते समय मजिस्ट्रेट कार्यकारी क्षमता में कार्य नहीं करता है। इस न्यायिक अधिनियम का प्रयोग करते समय, मजिस्ट्रेट के लिए खुद को संतुष्ट करना अनिवार्य है कि क्या उसके सामने रखी गई सामग्री ऐसी रिमांड को उचित ठहराती है या, इसे अलग तरीके से कहें तो, क्या आरोपी को हिरासत में लेने और उसकी रिमांड बढ़ाने के लिए उचित आधार मौजूद हैं। धारा 167 के तहत रिमांड का उद्देश्य यह है कि जांच 24 घंटे के भीतर पूरी नहीं की जा सकती। यह मजिस्ट्रेट को यह देखने में सक्षम बनाता है कि रिमांड वास्तव में आवश्यक है।

इसके लिए जांच एजेंसी को रिमांड रिपोर्ट के साथ केस डायरी भेजने की आवश्यकता होती है ताकि मजिस्ट्रेट तथ्यात्मक परिदृश्य की मूल्यांकन कर सके और उस पर विचार कर सके कि क्या पुलिस रिमांड के लिए वारंट है या न्यायिक रिमांड के लिए औचित्य है या किसी भी रिमांड की आवश्यकता नहीं है। मजिस्ट्रेट के लिए यह अनिवार्य है कि वह विवेक का प्रयोग करे और यांत्रिक रूप से रिमांड का आदेश पारित न करे।" हालाँकि, न्यायालय ने यह भी अवधारित किया:

"31. यह सुस्थापित स्वीकृत सिद्धांत है कि जब किसी व्यक्ति को सक्षम अदालत द्वारा न्यायिक हिरासत या पुलिस हिरासत में ऐसे आदेश द्वारा भेजा जाता है जो प्रथम दृष्टया अधिकार क्षेत्र के बिना नहीं लगता है या बिल्कुल यांत्रिक तरीके से पारित किया गया है या पूरी तरह से अवैध है तो बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट पर विचार नहीं किया जाना चाहिए। जैसा कि बी.रामचंद्र राव [(1972) 3 एससीसी 256: 1972 एससीसी (सीआरआई) 481: एआईआर 1971 एससी 2197] और कानू सान्याल [(1974) 4 एससीसी 141: 1974 एससीसी (सीआरआई) 280] मामलों में अवधारित किया गया है, न्यायालय द्वारा पारित किए गए हिरासत के आदेश की वैधता की जांच करना आवश्यक है।

अनुवादित

जब तक अदालत इस बात से संतुष्ट नहीं हो जाती कि किसी व्यक्ति को ऐसे आदेश के आधार पर जेल हिरासत में रखा गया है जो क्षेत्राधिकार रहित या पूर्ण अवैधता से ग्रस्त है, तो बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट नहीं दी जा सकती है।

62. हममें से एक (न्यायमूर्ति यू.यू. ललित) ने डबल बेंच के लिए बोलते हुए, सीरियस फ्रॉड इन्वेस्टिगेशन ऑफिस और अन्य बनाम राहुल मोदी और अन्य मामले के निर्णय में उपरोक्त विचारधारा का पालन किया और यह अवधारित किया:

"(21) इस प्रकार किसी अभियुक्त की रिमांड का निर्देश देने का कार्य एक न्यायिक कार्य माना जाता है और बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका में रिमांड के आदेश को चुनौती पर विचार नहीं किया जाना चाहिए।" हम इसी फैसले से पैराग्राफ 19 पर भी गौर कर सकते हैं।

"(19) कानून इस प्रकार स्पष्ट है कि" बंदी प्रत्यक्षीकरण कार्यवाही में अदालत को वापसी के समय हिरासत की वैधता या अन्यथा को ध्यान में रखना है, न कि कार्यवाही की संस्था के संदर्भ में।"

63. इस प्रकार, हम इस प्रकार अवधारित करेंगे कि यदि रिमांड बिल्कुल अवैध है या रिमांड क्षेत्राधिकार की कमी के दोष से ग्रस्त है, तो बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका वास्तव में झूठ होगी। इसी तरह, यदि रिमांड का आदेश बिल्कुल यांत्रिक तरीके से पारित किया जाता है, तो प्रभावित व्यक्ति बंदी प्रत्यक्षीकरण का उपाय ढूंढ सकता है। ऐसी स्थितियों को छोड़कर, बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका झूठ नहीं होगी।"

18. **सुरजीत सिंह बनाम यूपी राज्य 1984 ऑल एल.जे. 375** मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ ने इस संबंध में निम्नानुसार अवधारित किया कि क्या सीआरपीसी की धारा 309 (2) में प्रयुक्त '**हिरासत**' शब्द का अर्थ कानूनी और अवैध दोनों प्रकार की हिरासत है, जो इस प्रकार है:-

"7. उपर्युक्त धारा को पढ़ने से पता चलता है कि यदि अभियुक्त हिरासत में है तो वारंट द्वारा अभियुक्त को रिमांड पर लेने की शक्ति न्यायालय को दी जाती है। उपरोक्त धारा में यह उल्लेख नहीं है कि जब वारंट द्वारा रिमांड की शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है तो

अनुवादित

अभियुक्त को कानूनी हिरासत में होना चाहिए। उपर्युक्त मामलों में केवल यह उल्लेख किया गया है कि 'हिरासत' का अर्थ कानूनी हिरासत है। उनमें यह मानने का कोई कारण नहीं दिया गया है कि हिरासत का मतलब कानूनी हिरासत है। क़ानून की व्याख्या का मुख्य सिद्धांत यह है कि किसी क़ानून में प्रयुक्त शब्दों को उनका सामान्य, सामान्य और व्याकरणिक अर्थ दिया जाना चाहिए। उनके सामान्य अर्थ को न तो बढ़ाया जाना चाहिए और न ही प्रतिबंधित किया जाना चाहिए जब तक कि यह सामंजस्यपूर्ण निर्माण के लिए आवश्यक न हो। लंदन रबर कंपनी लिमिटेड बनाम ड्यूरेक्स प्रोडक्ट्स इनकॉर्पोरेटेड मामले में यह अवधारित किया गया है:

वास्तव में, विधायिका द्वारा उपयोग की जाने वाली भाषा को पूर्ण प्रभाव देना न्यायालय का कर्तव्य है। इसके पास उस भाषा को शाब्दिक अर्थ से अधिक व्यापक या संकीर्ण अर्थ देने की कोई शक्ति नहीं है, जब तक कि अधिनियम के अन्य प्रावधान उसे ऐसे अन्य अर्थ देने के लिए मजबूर न करें।

10. निरंजन सिंह बनाम प्रभाकर राजाराम खरोटे मामले में यह अवधारित किया गया था:

"सीआरपीसी की धारा 439 के अर्थ के अंतर्गत कोई व्यक्ति कब हिरासत में है?

जब वह दबाव में हो, क्योंकि या तो इसलिए कि वह जांच एजेंसी या अन्य पुलिस या संबद्ध प्राधिकारी द्वारा पकड़ा गया है या न्यायिक आदेश द्वारा रिमांड पर लिए जाने के कारण न्यायालय के नियंत्रण में है, या उसने खुद को न्यायालय के क्षेत्राधिकार में पेश किया है और भौतिक उपस्थिति द्वारा उसके आदेशों का पालन किया है। इस यथार्थवादी निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए किसी शाब्दिक निपुणता या पूर्ववर्ती प्रचुरता की आवश्यकता नहीं है कि जो व्यक्ति न्यायालय के नियंत्रण में है या किसी बलपूर्वक शक्ति वाले अधिकारी की शारीरिक पकड़ में है, वह धारा 439 के प्रयोजन के लिए हिरासत में है।

अनुवादित

12. धारा 41(1)(ई) इस प्रकार है:

"41(1) कोई पुलिस अधिकारी मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना और वारंट के बिना किसी ऐसे व्यक्ति को गिरफ्तार कर सकता है। (ग) जो पुलिस अधिकारी को उस समय बाधा पहुंचाता है जब वह अपना कर्तव्य कर रहा है, या जो विधिपूर्ण अभिरक्षा से निकल भागा है या निकल भागने का प्रयत्न करता है।

19. उरूज अब्बास बनाम यूपी राज्य 1971 0 सुप्रीम (ऑल) 211 में, इस अदालत ने रिमांड के आदेश के बारे में निम्नानुसार अवधारित किया:-

"17. विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया दूसरा मुद्दा यह है कि किसी बंदी को जेल भेजते समय मजिस्ट्रेट के लिए यह अनिवार्य है कि वह उसे जेल हिरासत में भेजने के लिए एक अलग या स्वतंत्र आदेश पारित करे, जैसा कि केवल वारंट जारी करना है। कानूनी तौर पर रिमांड पर्याप्त नहीं होगा। उन्होंने इस प्रस्ताव के लिए अतीक अहमद बनाम राज्य पर अवलम्ब लिया, जो इस न्यायालय की एक डिवीजन बेंच का एक असूचित निर्णय था, जिसका मैं सदस्य था। राम नारायण सिंह के मामले में, उच्चतम न्यायालय ने एक आरोपी की हिरासत की वैधता पर विचार किया था, जिसके संबंध में मजिस्ट्रेट द्वारा उसे हिरासत में भेजने का कोई आदेश अदालत के सामने नहीं रखा गया था, कागज की चार पर्चियां पेश की गईं लेकिन अदालत ने इन दस्तावेजों पर कोई ध्यान नहीं दिया क्योंकि वे थे उचित स्तर पर प्रस्तुत नहीं किया गया। इसलिए, उस निर्णय को इस प्रस्ताव के लिए प्राधिकारी नहीं माना जा सकता है कि अकेले रिमांड का वारंट अपर्याप्त है। ओझा के मामले में, एक अवलोकन निश्चित रूप से किया गया था कि रिमांड के एक विशिष्ट आदेश के बिना एक रिमांड , अमान्य और अवैध था। हालाँकि, पूरे सम्मान के साथ, मैं उस विचार से सहमत होने में असमर्थ हूँ। मेरे विचार से विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिया गया तर्क सीआरपीसी की धारा 344 (1-क) में प्रयुक्त भाषा से प्रेरित नहीं है। यह धारा कहती है कि यदि किसी गवाह की अनुपस्थिति से, या किसी

अनुवादित

अन्य उचित कारण से किसी भी जांच या मुकदमे की शुरुआत को स्थगित करना या स्थगित करना आवश्यक या उचित हो जाता है, तो यदि न्यायालय उचित समझे तो समय-समय पर कारण बताते हुए लिखित आदेश द्वारा उसे ऐसी शर्तों पर, जो वह उचित समझे, उतने समय के लिए जब वह उचित समझे, स्थगित कर सकता है और वारंट द्वारा आरोपी को हिरासत में भेज सकता है। यह केवल एक स्थगन है जिसके लिए लिखित आदेश और उसके कारणों की आवश्यकता होती है, न कि रिमांडिंग का कार्य, जिसे, अगर मैं ऐसा कह सकता हूं, मजिस्ट्रेट द्वारा हस्ताक्षरित रिमांड के वारंट द्वारा प्रमाणित किया जा सकता है। यह केवल स्थगन है जिसके लिए लिखित आदेश की आवश्यकता होती है और इसलिए कारण, न कि रिमांडिंग का कार्य, जिसे, अगर मैं ऐसा कह सकता हूं, मजिस्ट्रेट द्वारा हस्ताक्षरित रिमांड के मात्र वारंट द्वारा प्रमाणित किया जा सकता है। अतीक अहमद के मामले में क्रिमिनल मिसलेनियस मामला संख्या 737 सन् 1969, डी/- 27-10-1969 (ऑल) अब हमारे सामने मौजूद मुद्दे से संबंधित नहीं है क्योंकि यह वारंट की अमान्यता पर आधारित है। निर्णय के लिए यह प्रश्न आया कि क्या रिमांड का एक अलग आदेश आवश्यक है या नहीं, एफएन री कुंजन नादर, एआईआर 1955 ट्रैव-सीओ 74: 1955 सीआरआई एलजे 740 जहां माननीय मुख्य न्यायाधीश कोशी ने मामले पर विचार करते हुए इस प्रकार अवधारित किया:

उपरोक्त प्रावधान के अनुसार बताए जाने वाले कारण मामले के स्थगन के कारण हैं न कि रिमांड के कारण।

जब किसी व्यक्ति पर गैर-जमानती अपराध करने का आरोप लगाया जाता है, तो उसे अदालत में पेश किया जाता है, जब तक कि उसे जमानत नहीं मिल जाती, अदालत उसे हिरासत में भेज देती है। यह स्वाभाविक रूप से किया जाता है और उसे परीक्षण के लिए उपलब्ध कराने का यही एकमात्र तरीका है।"

20. सुनील कुमार शर्मा बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) के मामले में दिनांक

अनुवादित

27.06.2005 को दिल्ली उच्च न्यायालय ने निम्नलिखित निर्णय दिया है:-

> "16. ये विचार मुझे आश्वस्त करते हैं कि अदालत को धारा 309 के तहत रिमांड से पहले आरोपी की हिरासत की वैधानिकता पर विचार करने की आवश्यकता या अपेक्षा नहीं है। अदालत का एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या आरोपी को आगे भी हिरासत में रखना आवश्यक है। इसे भविष्य पर ध्यान देना चाहिए न कि अतीत पर। उस धारा के प्रयोजनों के लिए यह पर्याप्त है कि आरोपी मुक्त होने के बजाय शारीरिक रूप से हिरासत में है। हिरासत की वैधता किसी क्षण की नहीं है।"

अंत में, सुरजीत सिंह बनाम यूपी राज्य: 1984 ऑल एल जे 375 (एफबी) मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के फैसले पर कुछ चर्चा की आवश्यकता है। उस अदालत की पूर्ण पीठ के समक्ष प्रश्न यह था कि क्या सीआरपीसी की धारा 309 में प्रयुक्त शब्द "हिरासत" का मतलब कानूनी और अवैध दोनों तरह से कारावास है? इसका उत्तर हां में दिया गया। पूर्ण पीठ ने अवधारित किया:

"हिरासत" शब्द के सामान्य अर्थ को ध्यान में रखते हुए, किसी व्यक्ति की वास्तविक या शारीरिक कारावास, कानूनी और अवैध, दोनों ही उसके हिरासत में होने के बराबर है। सीआरपीसी की धारा 309(2) में "हिरासत" शब्द के अर्थ को केवल कानूनी कारावास तक सीमित करके, सामान्य अर्थ को स्पष्ट रूप से कम कर दिया गया है। आपराधिक प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के सामंजस्यपूर्ण निर्माण के लिए धारा 309(2), सीआरपीसी में "हिरासत" शब्द के अर्थ को केवल कानूनी कारावास तक सीमित करना बिल्कुल भी आवश्यक नहीं है। वास्तव में, यदि यह प्रतिबंध "हिरासत" शब्द के अर्थ पर लगाया जाता है तो गंभीर परिणाम सामने आते हैं, अदालत की गलती के कारण वैध आदेश या रिमांड के वारंट के बिना जेल में बंद होने से आरोपी की हिरासत अवैध हो जाती है। आरोपी को सीआरपीसी की धारा 309(2) के तहत हिरासत में भेजने और अपनी

अनुवादित

त्रुटि को सुधारने में शक्तिहीन हो जाएगी।"

"हमारी राय में, सीआरपीसी की धारा 309 में "हिरासत" शब्द का अर्थ शारीरिक कारावास है, जो जमानत पर होने से अलग है। भले ही आरोपी किसी आपराधिक मामले में गिरफ्तारी के बाद रिमांड के आदेश या वारंट के बिना जेल में हो। एक सक्षम न्यायालय द्वारा वह जमानत पर होने से अलग हिरासत में है। इसलिए "हिरासत" शब्द में कानूनी कारावास के साथ-साथ अवैध कारावास दोनों शामिल हैं।"

"न्यायालय सीआरपीसी की धारा 309(2) के तहत आरोपी को हिरासत में भेजने में सक्षम है, भले ही वह अवैध कारावास में हो। इस प्रकार यह अपनी गलती को सुधार सकता है और उसके अवैध कारावास को कानूनी कारावास में बदल सकता है।"

स्पष्ट रूप से, जिस दिन सीआरपीसी की धारा 309(2) के तहत रिमांड आदेश दिया जाता है, उस दिन यह आवश्यक नहीं है कि याचिकाकर्ता/अभियुक्त "कानूनी" हिरासत में रहा हो। यदि वह हिरासत में था तो यह पर्याप्त है। वर्तमान मामले के तथ्यों के संदर्भ में, भले ही हम मान लें कि रिमांड आदेश 26.4.2005 को किया गया था, न कि 25.4.2005 को और याचिकाकर्ता की 25.4.2005 और 26.4.2005 के बीच हिरासत गैरकानूनी थी, तो यह 26.4.2005 को जब आरोपी को उसके सामने पेश किया गया था, तब सीआरपीसी की धारा 309 के तहत रिमांड का वैध आदेश पारित करने की मजिस्ट्रेट की शक्ति के खिलाफ नहीं होगा। दिनांक 26.4.2005 के रिमांड आदेश को कथित तौर पर 16 दिनों की अवधि (यानी "पंद्रह दिन से अधिक) के लिए अवैध होने के संबंध में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आग्रह किए गए दूसरे आधार पर जाना भी आवश्यक नहीं है। ऐसा इसलिए है क्योंकि सीआरपीसी की धारा 309 के तहत पारित बाद के रिमांड आदेशों ने आज तक याचिकाकर्ता की हिरासत को वैध बना दिया है।"

21. साकिब अब्दुल हामिद नाचन और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य (2006) 108 बीओएमएलआर 339, 2006 क्रिएलजे 2196

अनुवादित

मामले में, बॉम्बे हाई कोर्ट ने निम्नानुसार अवधारित किया है: -

"11. जांच करते समय, विशेष अदालत एक मजिस्ट्रेट के रूप में कार्य करती है और जाहिर तौर पर धारा 309 मजिस्ट्रेट/विशेष अदालत को जांच पूरी होने तक आरोपी को हिरासत में भेजने में सक्षम बनाती है और विशेष अदालत, यदि अपराध का संज्ञान लेने के बाद या विचारण शुरू होने पर, किसी भी जांच या परीक्षण को स्थगित करना आवश्यक या उचित लगता है, तो यह समय-समय पर दर्ज किए जाने वाले कारणों से ऐसी शर्तों पर इसे स्थगित कर सकता है जो इसे उचित समझे और ऐसे समय के लिए उचित समझे और वारंट द्वारा आरोपी को हिरासत में भेज सकता है। लक्ष्मी ब्राह्मण (उपरोक्त) मामले में निर्धारित कानून का पालन करने से, यह स्पष्ट है कि वर्तमान मामले में विशेष न्यायालय द्वारा 22/7/2003 को पारित रिमांड का आदेश सीआरपीसी की धारा 309(2) के तहत पारित आदेश है और उक्त आदेश में विशेष रूप से कहा गया है कि मामले के निस्तारण तक आरोपियों को न्यायिक हिरासत में भेज दिया गया है। यह मामले के निपटारे तक सीआरपीसी की धारा 309(2) के तहत पारित एक वैध और कानूनी आदेश है और किसी भी तरह से विशेष न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किए जाने के कारण याचिकाकर्ताओं की हिरासत गलत नहीं होती है, हालांकि विशेष मामले की सुनवाई पर फिलहाल रोक लगा दी गई है। तर्क यह है कि मामले की सुनवाई के खिलाफ रोक के बावजूद, याचिकाकर्ताओं को विशेष न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत किया जाना आवश्यक है और जब तक अदालत उपस्थिति के प्रत्येक दिन रिमांड का आदेश पारित नहीं करती, तब तक उनकी हिरासत अवैध या असंवैधानिक है, पेज 350 स्वीकार नहीं किया जा सकता। सीआरपीसी की धारा 309(2) विशेष न्यायालय को विशेष मामले के निस्तारण होने तक रिमांड आदेश पारित करने का अधिकार देता है। यह ध्यान रखना उचित है कि सीआरपीसी की धारा 317(1) के तहत पारित उपस्थिति व्यवस्था के आदेश

अनुवादित

के साथ-साथ 22/7/2003 को पारित रिमांड के आदेश और हमारे द्वारा संहिता की धारा 309(2) के तहत पारित आदेश को इस याचिका में चुनौती नहीं दी गई है और न ही उन्हें अतीत में किसी भी समय चुनौती दी गई थी। हमने रिकॉर्ड से यह भी नोट किया है कि सीआरपीसी की धारा 317(1) के तहत पारित आदेश बाद में 17/11/2003 को रद्द कर दिया गया था क्योंकि आरोपियों को 24/11/2003 को विशेष अदालत के सामने पेश करने का निर्देश दिया गया था और आरोपी शेरिस्टेडर, सिटी सिविल और सेशन कोर्ट, जीआर बॉम्बे द्वारा हस्ताक्षरित उत्पादन वारंट के आधार पर 10/10/2005 तक उपस्थित रहे और इससे पता चलता है कि अभियुक्तों को मुकदमे के पूरा होने तक 22/7/2003 को पारित किए गए रिमांड आदेश के बारे में पता था। इसलिए, हम मानते हैं कि याचिकाकर्ताओं की यह दलील कि उन्हें वर्तमान में अवैध रूप से या संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत उनके अधिकारों का उल्लंघन करते हुए हिरासत में रखा गया है, स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि उनके पास कानून में कोई बल नहीं है और इसलिए, यह याचिका रद्द की जानी चाहिए'"

22. मनुभाई रतिलाल पटेल बनाम गुजरात राज्य और अन्य [2013 1 एससीसी 314] मामले में, जब याचिकाकर्ता न्यायिक हिरासत में है तो बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट पर विचार नहीं किया जा सकता है, उच्चतम न्यायालय ने देखा और अवधारित किया-

"32. मामले की बात करें तो यह प्रमाणित है कि गिरफ्तारी स्थगन आदेश पारित होने से एक दिन पहले हुई थी। यह भी स्पष्ट है कि रिमांड का आदेश विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा एफआईआर में आरोपों पर विचार करने के बाद पारित किया गया था, लेकिन नियमित या यांत्रिक तरीके से नहीं। यह ध्यान में रखना होगा कि जांच पर रोक के संबंध में उच्च न्यायालय के आदेश का प्रभाव केवल जांच एजेंसी की कार्रवाई पर पड़ सकता है। रिमांड का आदेश जो है एक न्यायिक कार्य, जैसा कि हम समझते हैं, किसी भी कमी से ग्रस्त नहीं है। एकमात्र आधार जो उच्च न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय के समक्ष भी उजागर किया गया था,

अवैधानिक

वह यह है कि एक बार जांच पर रोक लगने के बाद, रिमांड का आदेश संवेदनशील रूप से अतिसंवेदनशील होता है और इसलिए तार्किक परिणाम के रूप में, हिरासत अस्थिर है। यह ध्यान देने योग्य है कि जांच पहले ही शुरू हो चुकी थी और परिणामस्वरूप, आरोपी को गिरफ्तार कर लिया गया। इस प्रकार, हम यह सोचने के लिए तैयार हैं कि रिमांड के आदेश को कानून में अस्थिर नहीं माना जा सकता है। यह अच्छी तरह से स्वीकृत सिद्धांत है कि बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट पर विचार नहीं किया जाना चाहिए जब किसी व्यक्ति को सक्षम अदालत द्वारा न्यायिक हिरासत या पुलिस हिरासत में ऐसे आदेश द्वारा भेजा जाता है जो प्रथम दृष्टया अधिकार क्षेत्र के बिना नहीं लगता है या बिल्कुल यांत्रिक तरीके से पारित किया गया है या पूरी तरह से अवैध है। जैसा कि बीआर राव (उपरोक्त) और कानू सान्याल (उपरोक्त) के मामलों में कहा गया है, अदालत को पारित किए गए हिरासत के आदेश की वैधता या अन्यथा की जांच करने की आवश्यकता है। जब तक अदालत इस बात से संतुष्ट नहीं हो जाती कि किसी व्यक्ति को ऐसे आदेश के आधार पर जेल हिरासत में रखा गया है जो अधिकार क्षेत्र की कमी या पूर्ण अवैधता के दोष से ग्रस्त है, बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट नहीं दी जा सकती है। जैसा कि इस न्यायालय के विभिन्न प्राधिकारियों में विचार किया गया है, यह ध्यान रखना उचित है कि जांच न तो पूछताछ है और न ही विचारण। इसकी जांच करना पुलिस के विशेष अधिकार क्षेत्र में है और मजिस्ट्रेट के किसी भी नियंत्रण से स्वतंत्र है। गतिविधि का क्षेत्र स्पष्ट और अच्छी तरह से सीमांकित है। इस प्रकार देखा जाए तो, हमें बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट देने से इनकार करने वाले उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश में कोई त्रुटि नहीं दिखती है क्योंकि मजिस्ट्रेट द्वारा आरोपी को हिरासत में भेजने के पारित न्यायिक आदेश के आधार पर हिरासत कानून में वैध है।"

23. सौरभ कुमार बनाम जेलर, कोनिला जेल और अन्य [2014 13 एससीसी 436] मामले

अनुवादित

में सर्वोच्च न्यायालय (न्यायमूर्ति एनवी रमना के सन्दर्भ से) ने निम्नानुसार अवधारित किया है:-

"13. तथ्यों के उक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश के आधार पर न्यायिक हिरासत में है। इसे मूल रिकॉर्ड से भी सुनिश्चित किया जाता है, जिसे इस न्यायालय ने दिनांक 9 अप्रैल, 2014 के आदेश द्वारा, अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, दलसिंगसराय, जिला समस्तीपुर, बिहार की अदालत से मंगवाया था। इसलिए याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का यह तर्क कि बिना किसी मामले के अवैध हिरासत में रखा गया था, गलत है। इसलिए, याचिकाकर्ता द्वारा मांगी गई राहत नहीं दी जा सकती। हालाँकि रिट याचिका में कई अन्य मुद्दे भी उठाए गए हैं, ऊपर बताए गए तथ्यों को देखते हुए, हमें उन मुद्दों पर जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। हालाँकि, याचिकाकर्ता विद्वान अपर मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, दलसिंगसराय न्यायालय के समक्ष लंबित आपराधिक मामले संख्या 129/13 में अपनी रिहाई के लिए आवेदन करने के लिए स्वतंत्र है।"

न्यायमूर्ति टी.एस. ठाकुर के सन्दरभ से निम्नानुसार अवधारित किया गया है:-

"6. उपरोक्त पृष्ठभूमि में हम जिस एकमात्र प्रश्न को लेकर चिंतित हैं, वह यह है कि क्या याचिकाकर्ता को गैरकानूनी हिरासत में कहा जा सकता है। उस प्रश्न का हमारा उत्तर नकारात्मक है। हमने जो रिकॉर्ड ध्यानपूर्वक देखा है, उससे पता चलता है कि याचिकाकर्ता एक अभियुक्त है जो अपराधों के लिए अभियोजन का सामना कर रहा है, जिसका संज्ञान सक्षम न्यायालय द्वारा पहले ही लिया जा चुका है। वह वर्तमान में उक्त न्यायालय द्वारा दिए गए रिमांड के आदेश के अनुसार हिरासत में है। इन परिस्थितियों में, बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट पूरी तरह से गलत है। इतना कहने के बाद, हमारा विचार है कि याचिकाकर्ता को जमानत देने के लिए एक आवेदन दायर करना चाहिए था और उसे याचिकाकर्ता द्वारा कथित रूप से किए गए अपराधों की प्रकृति और संबंधित परिस्थितियों को ध्यान में

अनुवादित

रखते हुए निचली अदालत द्वारा अनुमति दी जा सकती थी। याचिकाकर्ता ने किसी भी कारण से ऐसा न करने का निर्णय लिया है। इसके बजाय, उसे इस न्यायालय में वर्तमान याचिका दायर करने की सलाह दी गई है जो हिरासत से उसकी रिहाई का कोई विकल्प नहीं है। हमारा यह भी विचार है कि मजिस्ट्रेट ने यहां आरोपी याचिकाकर्ता को न्यायिक हिरासत में भेजने में यांत्रिक रूप से काम किया है, बिना यह सुनिश्चित किए कि शेष आरोपी व्यक्तियों को अदालत की प्रक्रिया के साथ जल्दी से तामील किया जाए और/या मामले के शीघ्र निस्तारण के लिए अदालत के समक्ष पेश किया जाए। ऐसा प्रतीत होता है कि मजिस्ट्रेट ने इस प्रक्रिया को लापरवाही से लिया है जो जेल में बंद एक नागरिक की व्यक्तिगत स्वतंत्रता से इनकार करने के प्रति उनकी असंवेदनशीलता को दर्शाता है क्योंकि पुलिस ने अन्य आरोपियों की गिरफ्तारी और पेशी के लिए कोई कार्रवाई नहीं की है। कम से कम इतना तो कहा ही जा सकता है कि इस प्रकार की उदासीनता खेदजनक है। हमें इस तर्क को स्वीकार करना भी मुश्किल लगता है कि अन्य आरोपी व्यक्ति, जो सभी एक ही परिवार से हैं, फरार हो गए हैं। कथित तौर पर किए गए अपराधों की प्रकृति भी इतनी गंभीर नहीं है कि प्रतिवादी के बयान की संभावना हो कि आरोपी वास्तव में फरार हो गए हैं। यह कहने के लिए पर्याप्त है कि याचिकाकर्ता संबंधित न्यायालय में जमानत देने के लिए आवेदन करने के लिए स्वतंत्र है, जो मामला दायर होने के तुरंत बाद उस पर विचार करेगा और उस पर शीघ्रता से उचित आदेश पारित करेगा।"

24. महाराष्ट्र राज्य बनाम तस्नीम रिज़वान सिद्दीकी [एआईआर 2018 एससी (आपराधिक) 1449] मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया:-

"9. यह सवाल कि क्या किसी ऐसे व्यक्ति के संबंध में बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट कायम रखी जा सकती है जो जांच के तहत अपराध के संबंध में न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा पारित रिमांड आदेश के अनुसार पुलिस हिरासत में है, इस मुद्दे पर सौरभ कुमार

अनुवादित

द्वारा उनके पिता बनाम जेलर, कोनिला जेल और अन्य और मनुभाई रतिलाल पटेल बनाम गुजरात राज्य और अन्य मामले में विचार किया गया है।

यह अब एकीकृत नहीं है। वर्तमान मामले में, स्वीकार्य रूप से, जब बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट जारी करने के लिए रिट याचिका (2014) 13 एससीसी 436 (2013) 1 एससीसी 314 प्रतिवादी द्वारा 18/19 मार्च, 2018 को दायर की गई थी और 21 मार्च, 2018 को उच्च न्यायालय द्वारा निर्णय लिया गया था तो उनके पति रिज़वान आलम सिद्दीकी 17 मार्च, 2018 के आदेश के तहत एफआईआर संख्या ।31 के संबंध में मजिस्ट्रेट द्वारा उनकी पुलिस हिरासत देने के आदेश के अनुसार पुलिस हिरासत में थे और पुलिस रिमांड 23 मार्च, 2018 तक होनी थी। इसके अलावा, मजिस्ट्रेट के कथित आदेश को चुनौती दिए बिना, बंदी प्रत्यक्षीकरण की राहत तक सीमित एक रिट याचिका दायर की गई थी। इस मामले को देखते हुए, यह लगातार अवैध हिरासत का मामला नहीं था, बल्कि न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा पारित एक आदेश के आधार पर पदधारी न्यायिक हिरासत में था, जो एक आपराधिक मामले की जांच के दौरान पुलिस रिमांड देने के लिए लागू था। परिणामस्वरूप, बंदी प्रत्यक्षीकरण की कोई रिट जारी नहीं की जा सकी। "

25. इस प्रकार, उपरोक्त सभी केस कानूनों को संयुक्त रूप से पढ़ने से, कानूनी स्थिति स्पष्ट है कि बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट पर तब विचार नहीं किया जा सकता है जब किसी व्यक्ति को सक्षम न्यायालय द्वारा एक आदेश द्वारा न्यायिक हिरासत या पुलिस हिरासत में भेजा जाता है, जो प्रथम दृष्टया ऐसा प्रतीत नहीं होता कि यह क्षेत्राधिकार के बिना है या बिल्कुल यांत्रिक तरीके से पारित किया गया है या पूरी तरह से अवैध है।

26. रिकार्ड से पता चलता है कि याचिकाकर्ता मुकदमा अपराध संख्या 558/2022 से उत्पन्न एसएसटी संख्या 326/2022 में आईपीसी की धारा 376, 506, 342 और पॉक्सो अधिनियम की धारा 3/4, के तहत पुलिस स्टेशन सोरांव, जिला प्रयागराज में आरोपी है। उसे एफआईआर में आरोपी बनाया गया है और आरोप पत्र प्रस्तुत करने और संज्ञान लेने के बाद वह न्यायिक हिरासत में हैं, उसकी रिमांड को सीआरपीसी की धारा 167 से सीआरपीसी की धारा 309 (2) के तहत बदल दिया गया है। बाद में, उपरोक्त विशेष एसएसटी 326 सन् 2022 की कार्यवाही को न्यायालय द्वारा आवेदन अन्तर्गत 482 संख्या 37471 सन्

अनुवादित

2022 में दिनांक 23.01.2023 के आदेश के माध्यम से रोक दिया गया है। आदेश दिनांक 07.02.2023 इस प्रकार है:

"पत्रावली पेश हुई। पुकार करायी गयी। अभियुक्त युवराज यादव की से अप्लीकेशन अन्तर्गत धारा 482 नम्बर 37471/22 युवराज बनाम स्टेट आफ यू.पी. एवं 4 अन्य में माननीय उच्च न्यायालय के आदेश दिनांक 23.01.23 अभियुक्त द्वारा आज प्रस्तुत किया गया। उक्त आदेश का अवलोकन किया गया। उक्त आदेश के अनुसार माननीय उच्च न्यायालय द्वारा अन्तर्गत धारा 376, 506, 342 भा.दं.सं व धारा 3/4 पाक्सो एक्ट, थाना सोरांव जिला प्रयागराज की कार्यवाही स्थगित की गयी है। अतः माननीय न्यायालय द्वारा अप्लीकेशन अन्तर्गत धारा 482 नंबर 37471/22 युवराज यादव बनाम स्टेट आफ यू.पी. एवं 4 अन्य में पारित दिनांक 23.01.23 के अनुपालन में कार्यवाही स्थगित की जाती है। पत्रावली दिनांक 04.03.23 को वास्ते एफ.ओ. पेश हो।"

27. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्क के संबंध में कोई विवाद नहीं है कि रिमांड आदेश बिना विचार किये पारित नहीं किया जा सकता है और यह नियमित और यांत्रिक तरीके से नहीं होना चाहिए। लेकिन फिर भी, यह आवश्यक नहीं है कि ऑर्डर शीट पूरी सुनवाई के बाद दिए गए फैसले की तरह दिखे। इस मामले को देखते हुए, हम पाते हैं कि चूंकि आरोपी को जिला जेल, प्रयागराज में हिरासत में रखने का अधिकार देने वाला रिमांड आदेश क्षेत्राधिकार के भीतर वैध है, इस न्यायालय द्वारा पारित स्थगन आदेश पर विचार करने के बाद, आरोपी की हिरासत को नहीं कहा जा सकता है। पिछले रिमांड आदेशों में हुई कुछ अनियमितताओं के कारण अमान्य है और आरोपी को ऐसी तकनीकी त्रुटियों का लाभ नहीं मिल सकता है। हमने आगे माना कि स्थगन के लिए सीआरपीसी की धारा 309(2) में जिन कारणों पर विचार किया गया है, उन्हें विस्तृत करने की आवश्यकता नहीं है। उन्हें केवल यह बताना चाहिए कि किसी विशेष तिथि पर न्यायालय में कार्यवाही क्यों स्थगित की गई थी। यह दिखाने के लिए पर्याप्त है कि आवेदन अन्तर्गत धारा धारा 482 सीआरपीसी संख्या 37471 सन् 2022 में मुकदमा अपराध संख्या 558 सन् 2022 से उत्पन्न एस.एस.टी. संख्या 326/2022 की कार्यवाही पर इस न्यायालय के आदेश से आईपीसी की धारा 376, 506, 342 और पॉक्सो अधिनियम की धारा 3/4, पुलिस स्टेशन सोरांव, जिला प्रयागराज के तहत रोक लगा दी गई है जो अभी भी प्रचलित है। इसलिए, यदि इतना संकेत रिकॉर्ड से उपलब्ध है, तो निष्कर्ष यह होगा कि सीआरपीसी की धारा 309(2) का पूर्ण अनुपालन किया गया है और आरोपी अधिकार क्षेत्र के भीतर पारित वैध रिमांड आदेश के तहत कानूनी हिरासत में है और उसे इसका कोई लाभ नहीं मिल सकता है।

28. अंत में, याचिकाकर्ता की ओर से तर्क दिया गया कि याचिकाकर्ता सीआरपीसी की धारा 309(2) के तहत रिमांड आदेश के रूप में अवैध हिरासत में है। विचारण न्यायालय द्वारा आज तक इसे बढ़ाया नहीं गया है। ऊपर चर्चा किए गए केस कानून से, यह तय हुआ है कि यदि सीआरपीसी की धारा 167 और 309(2) के तहत आरोपी को रिमांड पर लेने में कोई अनियमितता पाई जाती है, तो संबंधित

अनुवादित

न्यायालय के संज्ञान में लाए जाने पर उक्त अनियमितता को सुधारा जा सकता है। रिकॉर्ड से यह स्पष्ट नहीं है कि यह संबंधित अदालत के संज्ञान में लाया गया है कि सीआरपीसी की धारा 309 (2) के तहत आरोपी की रिमांड बढ़ाने में अवैधता/अनियमितता है, इसके अलावा रिमांड आदेश की अवैधता/अनियमितता के सुधार के लिए न्यायालय या कानून द्वारा कोई अवधि तय नहीं की गई है। इसलिए, इस मामले के विशेष तथ्यों और परिस्थितियों में याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा दिया गया तर्क मान्य नहीं है।

29. पुनर्याचिका के मूल्य पर यह दोहराया जाता है कि अनुच्छेद 21 स्पष्ट रूप से जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सुरक्षा प्रदान करता है, हालांकि, इसमें स्पष्ट रूप से प्रावधान किया गया है कि किसी भी व्यक्ति को "कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर" उसके जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा।

30. वर्तमान मामले में, वर्तमान याचिका पर आपत्ति उठाते समय राज्य द्वारा अपनाया गया रुख यह है कि याचिकाकर्ता रिमांड के वैध आदेश के तहत न्यायिक / कानूनी हिरासत में है, जो कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया है। रिकॉर्ड से यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है कि याचिकाकर्ता ने पहले ही अदालत के समक्ष सीआरपीसी की धारा 482 के प्रावधानों को लागू कर दिया है। इस प्रकार, उसने प्रभावी वैधानिक उपाय का लाभ उठाया है और इस प्रकार, न्यायिक आपराधिक प्रशासन में तेजी ला दी है और स्थापित कानून के अनुसार इसे दूषित करने के लिए बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट जारी नहीं की जा सकती है।

31. संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि याचिकाकर्ता ने पहले ही सीआरपीसी की धारा 482 के प्रावधानों को लागू कर दिया है, इसलिए आपराधिक न्याय का प्रशासन पहले ही लागू हो चुका है और इसे एक साथ असाधारण उपाय लागू करके ख़त्म नहीं किया जा सकता है। भारत के संविधान का अनुच्छेद 226, जो अधिकार का एक उपाय हो सकता है लेकिन स्थापित कानून के अनुसार इसे जारी नहीं किया जा सकता। इसके अलावा, जब वैध रिमांड आदेश के तहत सशरीर कानूनी हिरासत में है, तो वर्तमान रिट याचिका उच्चतम न्यायालय के साथ-साथ उच्च न्यायालयों द्वारा तय किए गए कानून के अनुसार सुनवाई योग्य नहीं है।

32. परिणामस्वरूप, यहां ऊपर की गई चर्चाओं के मद्देनजर राज्य द्वारा आपत्ति उठाई गई है कि वर्तमान याचिका पोषणीय नहीं है क्योंकि याचिकाकर्ता ने पहले ही सीआरपीसी की धारा 482 के प्रावधानों को लागू कर दिया है और अदालत का दरवाजा खटखटाया है, जिसे बरकरार रखा गया है।

33. तदनुसार, वर्तमान याचिका खारिज की जाती है।

34. हालाँकि, यह स्पष्ट किया जाता है कि उपरोक्त निर्णय में की गई टिप्पणियों का किसी अन्य लंबित या भविष्य की कार्यवाही पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

अनुवादित

(2023) 6 ILRA 972

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 20.04.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती सुनीता अग्रवाल

माननीय न्यायमूर्ति विकास बुधवार

विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 172 वर्ष 2023

साथ में

विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 192 वर्ष 2023

साथ में

विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 249 वर्ष 2023

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य अपीलकर्ता

बनाम

सुरेंद्र सिंह एवं अन्य प्रतिवादी

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता: सी.एस.सी.

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: श्री चन्द्र शेखर सिंह, श्री वी.के. सिंह (वरिष्ठ अधिवक्ता)

सिविल कानून - सेवा कानून- उत्तर प्रदेश अनुसूचित जनजाति सहायता प्राप्त शैक्षिक संस्थान कर्मचारी अंशदायी भविष्य निधि, बीमा पेंशन नियम, 1964 - चुनौती के तहत शिक्षक-शिक्षिकाओं के एकल न्यायाधीश के निर्देश- सेवा में नियमितीकरण के पश्चात पेंशन की गणना के लिए तदर्थ सेवाओं को शामिल किया जाना- उत्तर प्रदेश अनुसूचित जनजाति सहायता प्राप्त शैक्षिक संस्थान कर्मचारी अंशदायी भविष्य निधि, बीमा पेंशन नियम, 1964- संशोधन अधिनियम संख्या 7/2016 दिनांक 22.03.2016 से उत्तर प्रदेश अनुसूचित जनजाति सहायता प्राप्त शैक्षिक संस्थान कर्मचारी अंशदायी भविष्य निधि, बीमा पेंशन नियम, 1964- संशोधन अधिनियम संख्या 7/2016 दिनांक 22.03.2016 से प्रभावी। माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड अधिनियम, 1982- याचिकाकर्ताओं की सेवाएं नियमित की गईं- अधिनियम की धारा 33 जी- नियम 18, 19, 21, 34- स्थायीकरण और नियमितीकरण में कोई अंतर नहीं- प्रक्रिया का समुचित पालन- एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए निर्णय में कोई त्रुटि नहीं- याचिकाकर्ता पेंशन का हकदार- विशेष अपील खारिज। (पैरा 22, 23, 29, 30, 32, 34, 40, 41, 43 और 46)

निर्णय:

इस प्रकार चयन बोर्ड अधिनियम, 1982 की धारा 33जी के अन्तर्गत निर्धारित प्रक्रिया के अन्तर्गत केवल उन्हीं अध्यापकों को मान्यता दी गई थी, जिनकी नियुक्ति तत्कालीन नियुक्ति नियमावली के अन्तर्गत की गई थी। उनका चयन सुसंगत नियमों में निर्धारित प्रक्रिया के अन्तर्गत सुसंगत समय पर किया गया था, मौलिक नियुक्ति के लिए नियमितीकरण पर केवल उन्हीं अध्यापकों का चयन किया गया था, जिन्हें उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड अधिनियम, 1982 के अन्तर्गत गठित चयन समिति द्वारा उपयुक्त पाया गया था। (पैरा 22)

परिणाम यह हुआ कि इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 के अन्तर्गत मान्यता प्राप्त संस्थाओं में मौलिक पदों के विरूद्ध अध्यापकों द्वारा की गई लम्बी निरन्तर सेवाओं को राज्य सरकार द्वारा वर्षों से चली आ रही अल्पकालिक या तदर्थ नियुक्तियों के नियमितीकरण का प्रावधान लाकर मान्यता दे दी गई थी। हमारे समक्ष प्रस्तुत किसी भी रिट याचिका में प्रतिवादी का यह मामला नहीं है कि

अनुवादित

सेवानिवृत्त अध्यापक नियमितीकरण के लिए पात्र नहीं थे। इसके अलावा, जैसा कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने कहा है कि रिट याचिकाकर्ताओं ने 22.03.2016 से स्थायी कर्मचारी का कानूनी दर्जा प्राप्त कर लिया है, इसलिए पद के लिए उनकी पात्रता पर कोई विवाद नहीं हो सकता है। रिट याचिकाकर्ताओं ने मूल पदों पर अपने स्थायी रोजगार की अवधि पूरी कर ली है और वे सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने पर सेवा से सेवानिवृत्त हो गए हैं। (पैरा 23)

नियम 19 में स्पष्ट भाषा का प्रयोग किया गया है कि किसी कर्मचारी द्वारा की गई सेवाओं को पेंशन के लिए नहीं गिना जाएगा, जब तक कि वह स्थायी प्रतिष्ठान में मूल पद पर न हो। उसी या किसी अन्य पद पर स्थायीकरण द्वारा बिना किसी रुकावट के की गई निरंतर अस्थायी या स्थानापन्न सेवा को अर्हक सेवाओं के रूप में गिना जाएगा। (पैरा 29)

नियम 21 में आगे प्रावधान है कि कोई कर्मचारी 10 वर्ष की अर्हक सेवा पूरी करने के बाद ही सेवानिवृत्ति/सेवानिवृत्ति/अमान्य पेंशन के लिए पात्र होगा, इस प्रकार, 10 वर्ष या उससे अधिक अर्हक सेवा पूरी करने वाले कर्मचारी को देय पेंशन की अधिकतम सीमा प्रदान की गई है। (पैरा 30)

यह दलील दी गई है कि नियम 19(बी) में प्रयुक्त शब्द "पद पर स्थायीकरण" "अस्थायी या स्थानापन्न सेवा के जारी रहने पर व्यवधान" है, जबकि इस मामले में रिट याचिकाकर्ताओं को 22.03.2016 को क़ानून की किताब में लाए गए प्रावधान के आधार पर नियमित किया गया था। अधिनियम, 1982 की धारा 33जी के आवेदन द्वारा एक तदर्थ शिक्षक की सेवा के नियमितीकरण को चयन नियमों के तहत परिवीक्षा पर एक मूल पद पर नियुक्त कर्मचारी की अस्थायी या स्थानापन्न सेवाओं की पुष्टि के बराबर नहीं माना जा सकता है। (पैरा 34)

मूलभूत रिक्तियों या अल्पकालिक रिक्तियों के विरुद्ध शिक्षकों की तदर्थ नियुक्ति के कारणों और प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, जिन्हें बाद में मूल रिक्तियों में परिवर्तित कर दिया गया था, हम पाते हैं कि उपर्युक्त प्रावधानों के तहत की गई तदर्थ नियुक्ति के नियमितीकरण के लिए धारा 33जी मूलभूत रिक्तियों या अल्पकालिक रिक्तियों के विरुद्ध तदर्थ आधार पर नियुक्त शिक्षकों द्वारा दी गई लंबी सेवाओं को मान्यता प्रदान करती है, जिन्हें बाद में मूल रिक्तियों में परिवर्तित कर दिया गया था। धारा 33जी के तहत नियमितीकरण की प्रक्रिया में इस बात का ध्यान रखा गया था कि तदर्थ आधार पर नियुक्त शिक्षकों के पास वैधानिक प्रावधानों में निर्धारित योग्यताएं हों और वे मूल क्षमता में नियुक्ति के लिए उपयुक्त हों। (पैरा 40)

धारा 33जी में यह प्रावधान किया गया था कि ऐसे शिक्षक अपनी नियुक्ति की तिथि से लेकर 22.03.2016 से नियमितीकरण प्रावधान के लागू होने तक लगातार संस्था में सेवारत रहे होंगे। ऐसे शिक्षक मौलिक रिक्तियों के विरुद्ध काम कर रहे थे और पद के लिए उनकी उपयुक्तता का आकलन करने के लिए वैधानिक प्रावधानों/अधिनियम, 1982 के तहत गठित चयन समिति द्वारा उनके चयन पर मौलिक नियुक्ति के लिए उनके नामों की संस्तुति की गई थी। ऐसे शिक्षकों की मौलिक नियुक्ति को

अनुवादित

परिवीक्षा पर रखा गया और उपयुक्त पाए जाने के बाद ही उन्हें स्थायी किया गया। (पैरा 41) चयन बोर्ड अधिनियम, 1982 की धारा 33जी में तदर्थ शिक्षक के नियमितीकरण के लिए अपनाई गई प्रक्रिया अस्थायी या स्थानापन्न क्षमता में कार्यरत कर्मचारी या शिक्षक की पुष्टि या स्थायी प्रतिष्ठान में मौलिक पदों पर कार्यरत तदर्थ शिक्षकों की पुष्टि के बीच कोई अंतर करने की गुंजाइश नहीं देती है। ब्लैक लॉ डिक्शनरी 8वें संस्करण (दक्षिण एशियाई संस्करण) से "पुष्टि" शब्द का शब्दकोश अर्थ पुष्टि शब्द का अर्थ दर्शाता है:- (i) औपचारिक स्वीकृति देने का कार्य; (ii) सत्यापन या पुष्टि करने का कार्य; (iii) शून्यकरणीय ईएसटी की पुष्टि करने का कार्य; (iv) एक घोषणा जो प्रावधान को लागू करने योग्य बनाने के लिए किसी दायित्व के शून्य प्रावधान को सही करती है। (पैरा 43)

हम आगे ध्यान दें कि नियम, 1964 यूपी के राज्य में सहायता प्राप्त शैक्षिक संस्थानों में सेवारत शिक्षकों और गैर-शिक्षण कर्मचारियों के लिए लागू विशेष प्रावधान हैं। यूपी पेंशन और सत्यापन अधिनियम, 2021 के सामान्य प्रावधान यूपी में 'अर्हक सेवा' शब्द को परिभाषित करते हैं। सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 1961 01.04.1961 से प्रभावी, नियम 1961 के नियम 3(6) में परिभाषित 'अधिकारियों' पर लागू है, जिसका अर्थ है कि "सरकार" के अधीन स्थायी पेंशन योग्य पद पर धारणाधिकार रखने वाला सरकारी कर्मचारी रिट याचिकाकर्ताओं पर लागू नहीं होगा। नंद लाल (सुप्रा) में दिनांक 30.09.2022 के विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय की सत्यता को चुनौती देने के लिए विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता के सभी तर्क, संबंधित विशेष अपीलों में चुनौती का विषय, बिना किसी बल के पाए जाते हैं। (पैरा 46)

अपील खारिज। (ई-14)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. सुनीता शर्मा बनाम स्टेट ऑफ यू.पी. और अन्य। रिट-ए संख्या 25431/2018 का निर्णय 20.12.2018 को हुआ, जिसे विशेष अपीलीय न्यायालय द्वारा विशेष अपील (डी) संख्या 181/2020 (स्टेट ऑफ यू.पी. बनाम सुनीता शर्मा) में दिनांक 11.06.2020 के निर्णय और आदेश के माध्यम से पुष्टि की गई

2. नंद लाल बनाम स्टेट ऑफ यू.पी. और अन्य रिट ए संख्या 12070/2022

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती सुनीता अग्रवाल और माननीय न्यायमूर्ति विकास बुधवार द्वारा दिया गया)

1. इन तीनों संबद्ध अपीलों में विचारार्थ विवाद्यक एक ही है। इन्हें एक साथ सुना जा रहा है तथा इस एक ही निर्णय द्वारा विनिश्चित किया जा रहा है।

2. राज्य तथा शिक्षा विभाग द्वारा दाखिल अन्तर न्यायालय अपील विद्वान एकल न्यायमूर्ति के आदेशों के विरूद्ध निदेशित है जिसमें उ0प्र0 राज्य सहायता प्राप्त शैक्षणिक संस्था कर्मचारी अभिदायी भविष्य निधि, बीमा पेंशन नियमावली 1964 के अनुसार अर्हक सेवा में अपने सेवा के नियमितीकरण के पहले स्वयं द्वारा दिये गये तदर्थ सेवाओं सहित रिट याचीगण के दावा को अनुकूल विचार पाया गया था। विद्वान एकल न्यायमूर्ति द्वारा

अनुवादित

आक्षेपित निर्णय में समयबद्ध अवधि के अन्दर देयों के साथ पेंशन की गणना करने तथा भुगतान करने के लिए निदेश जारी किया गया था। एक संबंधित मामलों में याचीगण को इसमें उपलब्ध कराये गये समय के अन्दर भुगतान करने में असफल होने की दशा में आदेश की तिथि से वास्तविक भुगतान के तिथि तक 8 प्रतिशत की दर पर ब्याज का हकदार ठहराया गया है।

3. मामले का निर्विवादित सुसंगत तथ्य यह है कि इसमें सभी रिट याचीगण को उ0प्र0 माध्यमिक शिक्षा सेवा आयोग (कठिनाइयों का निराकरण) (द्वितीय) आदेश 1981 के अनुसार प्रश्नगत संस्था में अधिष्ठायी रिक्तियों के विरूद्ध तदर्थ आधार पर सहायक शिक्षक के रूप में नियुक्त किया गया था।

4. उ0प्र0 माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड अधिनियम 1982 82 (एतस्मिन् प अधिनियम के रूप में निर्दिष्ट) में 22-03-2016 से संशोधन अधिनियम सं0 7/2016 के प्रवर्तन के साथ रिट याचीगण के सेवाओं को 22-03-2016 से नियमित किया गया था। यह भी विवादित नहीं है कि इसमें सभी रिट याचीगण/प्रत्यर्थीगण ने अधिवर्षिता की आयु को प्राप्त करने पर अपने सेवानिवृत्ति के तिथि तक अधिष्ठायी के विरूद्ध स्थायी क्षमता में लगातार कार्य किया था। इसमें रिट याचीगण / प्रत्यर्थीगण को वेतनभत्ता तथा अन्य देयों को संदत्त किया गया है। फिर भी, विवाद पेंशन सहित सेवानिवृत्ति देयों के दावा से संबंधित है। अपीलार्थीगण ने पेंशन के भुगतान हेतु रिट आए थे। 5. के दावा को नामंजूर किया था तथा इसलिए ये लोग रिट न्यायालय आए थे।

5. रिट याचीगण के कथन तथा निर्णय तथा आदेश दिनांक 11-06-2020 द्वारा विशेष अपील (डी) सं0 181 वर्ष 2020 (उ0प्र0 राज्य बनाम सुनीता शर्मा) में विशेष अपीलीय न्यायालय द्वारा अभिपुष्ट 20-12-2018 को विनिश्चित सुनीता शर्मा बनाम उ0प्र0 राज्य तथा अन्य रिट ए सं0 25431 वर्ष 2018 में इस न्यायालय के निर्णयों तथा सुसंगत कानूनी प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए अन्य रिट याचिकाओं के साथ संयोजित नंदलाल बनाम उ0प्र0 राज्य तथा अन्य रिट ए सं0 12070 वर्ष 2022 के मामले में निर्णय तथा आदेश दिनांक 30-09-2022 में विद्वान एकल न्यायमूर्ति द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया था कि रिट याचीगण द्वारा दिये गये दावे का खण्डन विधि विरूद्ध है।

6. यह अभिनिर्धारित किया गया कि नियमावली 1964 विनिर्दिष्ट संवर्ग के राज्य सहायता प्राप्त शिक्षा संस्थाओं में सेवारत् स्थायी कर्मचारियों पर लागू विनिर्दिष्ट नियमावली है। नियम 3 तथा 4 संख्या के संवर्ग तथा राज्य सहायता प्राप्त शिक्षा संस्थाओं के कर्मचारियों का उपबंध करता है जिसके लिए 1964 नियमावली के अन्तर्गत लाभ लागू होगा। यह अभिनिर्धारित किया गया कि विवाद न होने के नाते कि रिट याचीगण 22-03-2016 से अधिनियम की धारा 33 - जी के अधीन अनुदत्त नियमितीकरण पर सेवानिवृत्ति के तिथि को स्थायी कर्मचारीगण थे, इन्हें नियमावली 1964 के नियम 5 (जी) में परिभाषित शब्द "कर्मचारी" के अर्थान्तगत शामिल किया जायेगा। नियमावली 1964 के नियम 19 तथा 21 के अनुसार, प्रतिष्ठान का

अनुवादित

अधिष्ठायी पद धारण करते हैं, जिन्होंने अपने अधिवर्षि "मचारी जो स्थायी दस वर्षों की सेवा किया है, पेंशन तथा अन्य देयों के लाभ हकदार होंगें। 19 (ख) के अन्तर्गत, एक ही या एक दूसरे पद में अनुमोदन द्वारा बाधा के बिना किये गये अर्हक सेवा सतत अस्थायी या स्थानापन्न सेवाओं की गणना जायेगी। इस प्रकार यह अभिनिर्धारित समय अर्हक सेवाओं के रूप में गणना की गया कि नियम 19 (क) तथा (ख) तथा नियम 21 को पढ़ने से शर्त यह है कि संबंधित कर्मचारी ने अपने सेवानिवृत्ति के तिथि को स्थायी स्थापन पर अधिष्ठायी पद धारण किया हो (ii) इस प्रकार के कर्मचारी द्वारा अपने अधिवर्षिता के तिथि को 10 वर्ष अर्हक सेवा को किया होना चाहिए। यह उल्लेखनीय है कि सेवानिवृत्त कर्मचारी पेंशन का पात्र होगा, यदि इसने अपने सेवानिवृत्ति के तिथि को 10 वर्ष के अर्हक सेवा को पूरा कर लिया है। अर्हक सेवा की गणना हेतु, नियम 19 (क) तथा (ख) के प्रावधानों को ध्यान में रखना चाहिए।

7. इसमें राज्य अपीलार्थीगण/प्रत्यर्थी का तर्क कि इसे रिट याचीगण जिन्हें व्यवच्छेदन तिथि अर्थात 1-4-2005 के बाद स्थायी रिक्ति में नियमित किया गया है जिसके बाद नये पेंशन स्कीम को प्रभावी बनाया गया है, नियमावली 1964 के अधीन पेंशन के पात्र नहीं होगें को अस्वीकार किया गया है। तर्क कि नियमावली 1964 का नियम 19 (क) तथा (ख) लागू नहीं होगा क्योंकि अधिनियम की धारा 33 जी के अधीन रिट याचीगण के नियमितीकरण की तिथि 4 22-03-2016 है, व्यवच्छेदन तिथि अर्थात 31-03-2005 के परे होने के नाते याचीगण पेंशन के भुगतान के हकदार नहीं है क्योंकि ये लोग 22-3-2016 तक कैडर में थे को भी अस्वीकार किया गया है। उ0प्र0 सेवा निवृत्ति लाभ नियमावली 1961 तथा पेंशन हेतु उ0प्र0 अर्हक सेवा तथा विधि मान्यकरण अधिनियम 2021 को इस आधार पर अप्रयोज्य अभिनिर्धारित किया गया है कि उक्त अधिनियमिति में ऐसे अधिकारीगण, इस प्रकार के सरकारी कर्मचारीगण आच्छादित थे जो सरकार के अधीन स्थायी पेंशन योग्य पद पर धारणाधिकार रख सकते हैं। रिट याचीगण जो राज्य सहायता प्राप्त शिक्षा संस्थान में कार्यरत शिक्षकगण ने न कि राज्य के स्वामित्वाधीन संस्थाओं में, राज्य सरकार के " अधिकारियों" के अर्थान्तरगत आच्छादित नही हो सकते हैं। इनके बीच कभी किसी स्वामी - सेवक संबंध का अस्तित्व नही था तथा राज्य सरकार इन्हें हमेशा राज्य सरकार के "अधिकारीगण " के रूप में बताने की अनुमति दे सकती

8. आगे यह उल्लेखनीय है कि नियमावली के दोनों सेट अर्थात उ0प्र0 सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली 1961 तथा राज्य सहायता प्राप्त शिक्षा संस्थाओं के शिक्षकों पर लागू नियमावली 1964 भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के अन्तर्गत विरचित नियमावली है। राज्य ने राज्य सहायता प्राप्त शिक्षा संस्थाओं पर शिक्षकों पर लागू नियमावली 1964 के एक दूसरे सेट का संशोधन करने के लिए किसी समाना प्रयास को किये बिना सरकारी कर्मचारी पेंशन नियमावली 1961 में संशोधन मान ले था। इस प्रकार यह विचार करना असंभव है कि याची के पेंशन के अधिकार को 1-4-2005 से उ0प्र0 सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली 1961 में

अनुवादित

किये गये संशोधन द्वारा किया गया है। रिट याचीगण का दावा नियमावली 1964 द्वारा आच्छादित होने के नाते अवैध तरीके से 04-04-2005 से उ0प्र0 सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली 1961 को लागू करते हुए नियमावली 1964 के अधीन (पेंशन सहित सेवानिवृत्ति लाभों को अनुदत्त किये जाने के प्रयोजन हेतु) अर्हक सेवाओं में इन लोगों द्वारा दिये गये तदर्थ सेवाओं सहित नामंजूर किया गया था।

9. विद्वान एकल न्यायमूर्ति के अन्य निर्णयों दिनांक 25-07-2022 तथा 23-05-2022 में जिसे हमारे समक्ष चुनौती दिया गया है, यह धारित करने के लिए सुनीता शर्मा (ऊपर) में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा रखा गया है कि नियमावली 1964 के अन्तर्गत राज्य सहायता प्राप्त शिक्षा संस्थाओं के सहायक अध्यापकों को पेंशनिक फायदों को अनुदत्त किये जाने से संबंधित विवाद्यकों को समाप्त किया गया था। रिट याचीगण को नियमावली 1964 के अनुसार पेंशनिक फायदों का हकदार ठहराया गया है।

10. इस अन्तर न्यायालय अपीलों पर बल देते हुए, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री नीरज त्रिपाठी द्वारा जोरदार तर्क दिया है कि अधिनियम की धारा 33जी के अनुसार 22-3-2016 से इनके नियमितीकरण के पहले सहायक अध्यापकों द्वारा दिये गये तदर्थ सेवाओं की गणना नियमावली 1964 के अर्थान्तरगत अर्हक सेवा के रूप में इसकी गणना करने के लिए प्रश्नगत पद पर अस्थायी या स्थानापन्न सेवा के रूप में नहीं की जा सकती है। यह निवेदन किया गया है कि अधिनियम की धारा 33जी के अधीन नियमित सहायक शिक्षकगण अपने नियमितीकरण के तिथि को काडर में थे जो 22-03-2016 है। उक्त तिथि तक, संशोधनों को उ0प्र0 सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली 1961 में सम्मिलित किया गया था तथा 01-04-2005 से नियमावली 1961 में नियम 2 के उपनियम (3) के सम्मिलित जाने साथ 1 अप्रैल 2005 को या बाद में उक्त नियमावली को सेवा तथा पद में आने वाले कर्मचारियों के संबंध में अप्रयोज्य अभिनिर्धारित किया गया है।

11. यह तर्क दिया गया है कि पुरानी के अधीन राज्य के कर्मचारियों के संपशन स्कीम जैसा सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली 1961 लागू होता है पेंशन योग्य स्थापन पर कर्मचारियों के संबंध में अप्रयोज्य अभिनिर्धारित किया गया है चाहे 01-04-2005 को या बाद में सेवाओं तथा पद पर आने पर अस्थायी

12. यह प्राख्यान स्थायी के लिए नियमावली 1964 के नियम 34 को लागू किया गया है कि पेंशन से संबंधित मामले में जो विशेष रूप से नियमावली 1964 के अधीन उपबंधित नही है, राज्य सरकार के कर्मचारियों के संबंध में अधिकथित प्रावधान आवश्यक परिवर्तन के साथ लागू होगा यह तर्क दिया गया है कि नियमावली 1964 केवल उन्हीं कर्मचारियों के संबंध में लागू होगा, जो नियमावली 1964 के नियम 5 (जी) में परिभाषा "कर्मचारी" में आच्छादित है, सहायता प्राप्त संस्थाओं के स्थापन पर स्थायी रूप से नियोजित व्यक्ति । रिट याचीगण जिन्हें नियमितीकरण पर स्थायी क्षमता में नियुक्त किया गया है सहायता प्राप्त

अनुवादित

संस्था के पूर्णकालिक शिक्षण स्थापन में होना नही कहा जा सकता है, जो नियमावली 1964 के नियम 5 (जी) के अधीन "कर्मचारी" के परिभाषा द्वारा आच्छादित हो। इसलिए, नियम 19 (क) एवं (ख) का प्रावधान लागू नहीं होगा जिससे इनके नियमितीकरण के पहले रिट याचीगण द्वारा दिये गये तदर्थ सेवाओं की गणना किया जा सके जिससे इनकी गणना नियमावली 1964 के अर्थान्तरगण अर्हक सेवाओं के रूप में की जा सके।

13. अन्यथा भी, उ0प्र0 अर्हक सेवा पेंशन विधिमान्यकरण अध्यादेश 2020 को प्रख्यापित किये जाने के साथ, उ0प्र0 सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली 1961 के अनुसार शब्द अर्हक सेवा में केवल पद हेतु सरकारी सेवा के लिए विहित सेवा नियमावली के प्रावधानों के अनुसार अस्थायी या स्थायी पद पर नियुक्त अधिकारी द्वारा दी गई सेवाएं शामिल होगी। चूंकि इसमें रिट याचीगण/ प्रत्यर्थीगण के उक्त पद हेतु सरकार द्वारा विहित सेवा नियमावली के प्रावधानों के अनुसार अस्थायी या स्थायी पद पर नियुक्त नहीं किया गया है, कठिनाइयों के निराकरण आदेश 1981 के अन्तर्गत इनके नियुक्ति के कारण तदर्थ पद पर इनके गणना अर्हक सेवा के रूप में नहीं किया जा सकता है। यह तर्क आरंभिक नियुक्ति कठिनाइयों के निराकरण (द्वितीय) अल्पावधि रिक्तियों के विरूद्ध थी जिसे बाद में उ0प्र0 माध्यमिक शिक्षा (सेवा) चयन बोर्ड रिक्तियों के विरूद्ध तदर्थ आधार पर द्वारा दिये गये सेवाओं की द्वा गया है कि याचीगण की 1981 के पैरा 2 के अनुसार रिक्ति में परिवर्तित किया गया था। 1982 की धारा 18 के अनुसार अधिष्ठायी याचीगण/प्रत्यर्थीगण का बने रहने का कोई लाभ नही होगा। तर्क यह है कि 22-03-2016 को लाये गये संशोधनों के साथ अधिनियम 1982 की धारा 33जी के अधीन पूरा होने पर जा सकती है। की बराबरी नियुक्ति की तिथि के बाद निषेध अवधि के सफल रिक्तियों के विरूद्ध अनुमोदित कर्मचारी के नियुक्ति के साथ नही की

14. उ0प्र0 माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड (अधिनियम 1982) की धारा 33जी के उपधारा (6) के प्रावधान को यह प्राख्यान करने के लिए हमारे समक्ष पेश किया गया है कि तदर्थ शिक्षकों तथा ऐसे शिक्षकों की सेवाएं जिन्हें अल्पकालिक रिक्तियों के विरूद्ध नियुक्त किया गया है को उ0प्र0 माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड (संशोधन) अधिनियम 2016 के आरंभ के तिथि से नियमित किया गया था, जो 22-03-2016 है। इस प्रकार संबंधित संस्था में शिक्षक के रूप में रिट याचीगण की अधिष्ठायी नियुक्ति केवल 22-03-2016 को अस्तित्व में आया था। इसलिए रिट याचीगण तदर्थ या अल्पावधि क्षमता में स्वयं द्वारा दिये गये सेवाओं का लाभ प्राप्त नही कर सकते हैं क्योंकि इस प्रकार के क्षमता में इनके नियुक्तियों को सेवा नियमावली के अनुसार किया गया नहीं कहा जा सकता है।

15. अपीलार्थीगण के अधिवक्ता के उपरोक्त आधार पर विचार करते हुए हम यह उल्लेख कर सकते हैं कि उ0प्र0 माध्यमिक शिक्षा (सेवा चयन बोर्ड) अधिनियम 1982 27-7-1998 को अस्तित्व में आया था, इसे इण्टरमीडिएट शिक्षा अधिनियम 1921 के अधीन मान्यता प्राप्त

अनुवादित

संस्थाओं में शिक्षकों के चयन हेतु माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड नामक बोर्ड स्थापित करने के लिए अधिनियम किया गया था।

16. अधिनियम 1982 के अनुसार, अधिसूचना द्वारा बोर्ड स्थापित करना राज्य सरकार का कर्तव्य है, जिसे उ0प्र0 माध्यमिक शिक्षा (सेवा चयन बोर्ड) के रूप में कहा जायेगा।

17. उ0प्र0 माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड अधिनियम 1982 की धारा 18 प्रबंधन को इस शर्त के अधीन अपेक्षित अर्हता रखने वाले व्यक्तियों से नियुक्ति करने की शक्ति प्रदान करता है कि इस प्रकार रूप से तदर्थ आधार पर NO" नियुक्ति आयोग द्वारा अनुशिं अभ्यर्थी द्वारा पद ग्रहण पर समाप्त हो जायेगी ।

18. उ0प्र0 माध्यमिक शिक्षा सेवा आयोग (कठिनाइयों का निराकरण) आदेश 1981 उन परिस्थितियों में अस्तित्व में आया था जहाँ उ0प्र0 माध्यमिक शिक्षा सेवा आयोग अध्यादेश 1981 को इण्टरमीडिएट शिक्षा हेतु माध्यमिक शिक्षा सेवा के अधीन मान्यता प्राप्त संस्था में शिक्षकों के चयन तथा छह या अधिक माध्यमिक चयन बोर्डो को स्थापित करने के विचार से 10 स्थापना में कुछ समय लगना संभाव्य था तथा उक्त आयोग तथा बोर्ड के स्थापना के बाद भी, पहले कुछ महीनों के लिए शिक्षकों का चयन करना संभव नहीं था। 1981 को प्रख्यापित किया गया था।

19. (कठिनाइयों के निराकरण) आदेश 1981 के प्रख्यापित किये जाने का उद्देश्य तथा लक्ष्य, जैसा ऊपर उल्लिखित है, आगे उल्लिखित है कि विद्यमान इण्टरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 के अधीन मान्यता प्राप्त विभिन्न संस्थाओं में शिक्षकों के पद हेतु कई रिक्तियों थी तथा इस प्रकार के रिक्तियों को भरने में विफलता या विलम्ब से कठिनाइयों का पैदा होना संभाव्य था।

20. विशुद्ध रूप से तदर्थ आधार पर शिक्षक के प्रोन्नति द्वारा या प्रत्यक्ष भर्ती द्वारा चयन / नियुक्ति हेतु प्रक्रिया का इसमें उपबंध किया गया था। उ0प्र0 माध्यमिक शिक्षा सेवा आयोग (कठिनाइयों का निराकरण) (द्वितीय) आदेश 1981 को उन्हीं उद्देश्य के लिए लागू किया गया था जैसा पहले आदेश 1981 के प्रवर्तन हेतु था। फिर भी, द्वितीय आदेश 1981 में इण्टरमीडिएट शिक्षा अधिनियम 1921 के अधीन मान्यता प्राप्त संस्थाओं में शिक्षकों के पदों पर अल्पकालिक रिक्तियों को भरने के लिए प्रक्रिया का उपबंध किया गया था।

21. उपरोक्त प्रावधानों के आलोक में, जब हम धारा 33जी को पढ़ते हैं, जिसे 22-03-2016 को लागू किया गया था, इसमें उपबंध किया था कि (i) कोई शिक्षक जिसे -

(क) (कठिनाइयों के निराकरण) (द्वितीय) आदेश 1981, जैसा समय-समय पर संशोधित किया गया है के पैरा 21 के अनुसार प्रोन्नति द्वारा या सीधी भर्ती द्वारा तथा इस प्रकार के रिक्ति को तत्पश्चात् अधिष्ठायी रिक्ति में परिवर्तित किया गया था।

(ख) धारा 18 के अनुसार अधिष्ठायी रिक्ति के विरूद्ध नियुक्त किया गया था, नियुक्त किया गया है किया गया था। विरूद्ध

अनुवादित

तदर्थ आधार रिक्ति पर नियुक्त किया गया था।

(ग) इण्टरमीडिएट शिक्षा अधिनियम 1921 के प्रावधानों के अनुसार विहित अर्हताएं रखता है।

(घ) इस प्रकार के के तिथि से 22-3-2016 को संशोधन अधिनियम 2016 के आरम्भ होने की तिथि तक संस्था में लगातार काम कर रहा है,

(ड.) धारा 33ग की उपधारा (2) के खण्ड (क) सपठित उक्त उपधारा के खण्ड (ख) में विहित प्रक्रिया अनुसार चयन समिति द्वारा अधिष्ठायी क्षमता में नियुक्ति हेतु उपयुक्त पाया गया है, को प्रबंधन द्वारा अधिष्ठायी नियुक्तियाँ दी जायेगी ।

(ii) धारा 33 - जी की उपधारा (3) उपबंध करता है कि अधिष्ठायी क्षमता में चयन समिति के सिफारिश पर नियुक्त इस प्रकार के प्रत्येक शिक्षक को इस प्रकार के अधिष्ठायी नियुक्ति की तिथि से परिवीक्षा पर होना माना जायेगा ।

(iii) अल्पकालिक रिक्तियों के विरूद्ध या तदर्थ आधार पर नियुक्त शिक्षकों के अधिष्ठायी नियुक्ति की तिथि जिसे बाद में अधिष्ठायी रिक्तियों में बदल दिया गया था, को इस प्रकार संशोधन अधिनियम 2016 के आदेश की तिथि से इस प्रकार के शिक्षक के सेवाओं के नियमितीकरण की तिथि 23-03-2016 के रूप में माना गया था।

(iv) धारा 33जी की उपधारा (8) स्पष्ट रूप से उपबंध करता है कि तदर्थ शिक्षकगण जिन्हें (कठिनाइयों के निराकरण) आदेश 1981 के प्रावधानों के अनुसार या उ0प्र0 माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड अधिनियम 1982 की धारा 18 के अनुसार नियुक्त नहीं किया गया है तथा अन्यथा मात्र न्यायालय के अंतरिम / अंतिम आदेशों के आधार पर वेतन प्राप्त कर रहे हैं नियमितीकरण हेतु हकदार नही होगे ।

22. इस प्रकार चयन बोर्ड अधिनियम 1982 की धारा 33जी के अधीन विहित प्रक्रिया ने केवल इस प्रकार के शिक्षकों को मान्यता प्रदान किया था जिन्हें तत्कालीन के अनुसार नियुक्त किया गया था। इनका चयन अधिष्ठायी सुसंगत समय पर सुसंगत नियमावली में विहित प्रक्रिया के उन्हीं शिक्षकों का किया गया था जिन्हें उ0प्र0 न नियुक्ति नियमावली हेतु नियमितीकरण पर किया गया था, चयन केवल " माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड अधिनियम 1982 के प्रावधानों के अन्तर्गत गठित चयन समिति द्वारा उपयुक्त पाया गया था।

23. परिणाम यह है कि इण्टरमीडिएट अधिनियम 1921 के प्रावधानों के अन्तर्गत मान्यता प्राप्त संस्थाओं में अधिष्ठायी के विरूद्ध शिक्षकों द्वारा दिये गये लंबे लगातार सेवाओं को राज्य सरकार अल्पकालिक या तदर्थ नियुक्तियाँ जो वर्षों जारी थी के नियमितीकरण हेतु प्रावधान लाकर मान्यता प्रदान किया गया था। हमारे समक्ष किन्हीं भी रिट याचिकाओं में प्रत्यर्थी का मामला यह नहीं है कि सेवा निवृत्त शिक्षकगण नियमितीकरण हेतु पात्र नहीं है। इसके अलावा, जैसा विद्वान एकल न्यायमूर्ति द्वारा संप्रेक्षित किया गया है रिट याचीगण द्वारा 22-03-2016 से स्थायी कर्मचारी का विधिक दर्जा प्राप्त करने के बाद,

अनुवादित

पद हेतु इनके अर्हता के संबंध में कोई विवाद नही हो सकता है। रिट याचीगण ने अधिष्ठायी पदों पर अपने स्थायी नियोजन की अवधि को पूरा करने के बाद अधिवर्षिता की आयु प्राप्त करने पर सेवा निवृत्त हो चुके थे।

24. विद्वान अपर महाधिवक्ता का निवेदन कि रिट याचीगण अपने नियमितीकरण की तिथि अर्थात 22-03-2016 के कैडर में थे उपरोक्त तथ्यों तथा राज्य सहायता प्राप्त संस्थाओं में सेवारत् शिक्षकों के लिए पेंशन अन्य सेवानिवृत्ति लाभों का उपबंध करने वाले नियमावली के आलोक में देख जाना चाहिए। नियमावली 1964 जो नियम 3 (4) (क) में उपबंधित 01-10- 1964 को निम्नवत् लागू हुआ था:-

"3 यह नियमावली स्थानीय निकाय द्वारा या प्राइवेट प्रबंधन द्वारा संचालित तथा इस प्रकार सहायता अनुदान के भुगतान के प्रयोजन हेतु सक्षम प्राधिकरण द्वारा मान्यता प्राप्त निम्न श्रेणियों के राज्य सहायता प्राप्त शैक्षणिक संस्थाओं में कार्यरत स्थायी कर्मचारीगण के संबंध में लागू होगा-

(1) प्राथमिक विद्यालयों

(2) जूनियर हाईस्कूलों

(3) उच्च माध्यमिक विद्यालयों

(4) डिग्री कालेजों

(5) प्रशिक्षण कालेजों

4(क) यह नियमावली राज्य सहायता प्राप्त के कर्मचारियों, तीन प्रकार के सेवा लाभों अर्थात अभिदायी भविष्य क्षणिक सर बीमा तथा पेंशन (तिगुना लाभ स्कीम) के संबंध में आशयित है। लाभों की मात्रा तथा शर्ते जिसके द्वारा ये शासित होते हैं आने वाले अध्यायों में वर्णित है।"

25. शब्द "कर्मचारी" को निम्न शब्दों में 1964 नियमावली के नियम 5 (जी) परिभाषित किया गया है:-

"कर्मचारी (क) अधीनस्थ कर्मचारी तथा (ख) स्थानीय निकाय द्वारा संपोषित संस्थाओं के कर्मचारी को छोड़कर सहायता प्राप्त संस्था के पूर्णकालिक शिक्षण या शिक्षणेतर प्रतिष्ठान पर स्थायी रूप से नियोजित व्यक्ति अभिप्रेत है।

26. अध्याय 5 में अन्तर्विष्ट नियम 17 पेंशन तथा इसमें उपबंधित अन्य शर्तों हेतु ऊपर परिभाषित कर्मचारी के अर्हता का उपबंध करता है।

(i) अधिवर्षिता की उम्र प्राप्त करने पर सेवानिवृत्ति

27. उपर्युक्त अध्याय में अन्तर्विष्ट नियम 18 आगे उपबंध करता है कि पेंशन की धनराशि जिसे अनुदत्त की जा सकती है का अवधारण अर्हक सेवा के समय विस्तार द्वारा किया जायेगा तथा उपबंध करता है कि कैसे इस प्रकार की गणना की जायेगी ।

28. अपने प्रयोजन हेतु सुसंगत नियम 19 को निम्नवत् उदधृत किया जाता है:-

"19 (क) सेवा की गणना पेंशन हेतु नही की जायेगी, जब तक कि कर्मचारी स्थायी प्रतिष्ठान पर अधिष्ठायी पद धारण नहीं करता है।

अधिवर्षिता

(ख) उपर्युक्त मे अनुमोदन द्वारा बाधा के बिना की गई सतत् अस्थायी या स्थानापन्न सेवा या एक दूसरे पद की गणना अर्हक सेवा के रूप में भी की जायेगी। (देखिए सी0एस0आर0 पैरा 422)

(ग) अवकाश बिना भत्ता के, विनिर्दिष्ट शास्ति के रूप में निलम्बन, कार्यभार संभालने के समय से अधिक ठहरने या अवकाश जिसे बाद में नियमित नहीं किया गया है तथा सेवा में व्यवधान की अवधि को अर्हक सेवा के रूप में नहीं गिना जायेगा,

(घ) सेवा समाप्ति के कारण सेवा के 2 अवधि के बीच व्यवधान की अवधि, जिसमें कर्मचारी का दोष नहीं है बाधा के रूप में नहीं माना जिसमें पद अर्हक सेवा का समपहरण शामिल है। अन्य मामलो में अन्य कारणों के कारण व्यवधान के परिणामस्वरूप विगत सेवा का समपहरण तब तक नहीं किया जायेगा जब तक सरकार द्वारा माफ नहीं कर दिया जाता है।

(ड.) अर्जित अवकाश पर बिताये समय की गणना पूर्णतया अर्हक सेवा के रूप में की जायेगी, लेकिन भत्ता के साथ अन्य प्रकार के अवकाश पर बिताये गये समय की गणना अर्हक सेवा के रूप में निम्नवत् की जायेगीः-

(i) यदि छुट्टी 13 वर्ष से कम नहीं है, लेकिन 30 वर्ष से कम है, इस प्रकार के एक वर्ष की गणना अर्हक सेवा के रूप में की जायेगी ।

(ii) यदि कुल सेवा 30 वर्ष से कम नहीं है, इस प्रकार के छुट्टी के दो वर्षों के गणना अर्हक सेवा के रूप में की जायेगी।

नोटः- (1) शब्द "उपार्जित छुट्टी" पूरे औसत वेतन पर छुट्टी अभिप्रेत है।

(2) विवाहिता स्त्री कर्मचारी की दशा में प्रसूति छुट्टी पर व्यतीत समय की गणना अर्हक सेवा के रूप में करने की अनुमति की जा सकती है, परन्तु इस प्रकार के छुट्टी द्वारा, आच्छादित अवधि तथा उपार्जित छुट्टी उससे अधिक नहीं होगी जो ग्राह्य रहा होता यदि इसने सम्पूर्ण उपार्जित छुट्टी का लाभ उठाया होता जिसके लिए वह नियमावली के अन्तर्गत हकदार थी।

(3) कुल सेवा पेंशन हेतु अर्हक सेवा के आरम्भ होने की तिथि से गणना की गयी कुल सेवा से अभिप्रेत है तथा इसमें ऊपर निर्दिष्ट छुट्टी की अवधि शामिल है।

(4) कर्मचारी द्वारा 18 वर्ष की उम्र पूरा करने के पहले या अधिवर्षिता की उम्र प्राप्त करने के बाद की गई सेवा जब तक सक्षम अधिकारी द्वारा विस्तारित नहीं किया जाता है या सेवा निवृत्ति के बाद पुनर्नियोजन पर पेंशन के योग्य नहीं होगा ।

(5) सेवा पुस्तिका में कर्मचारी के पुष्टि से संबंधित प्रविष्टि प्रति हस्ताक्षरित की जायेगी।

(6) इन नियमावली द्वारा अच्छादित न होने की दशा में अर्हक सेवा का अवधारणा सरकार द्वारा किया जायेगा तथा इसका निर्णय अंतिम होगा ।

29. उक्त नियम 19 में प्रयुक्त स्पष्ट भाषा यह है कि कर्मचारी द्वारा दिये गये सेवाओं की

अनुवादित

गणना पेंशन हेतु तब तक नहीं की जायेगी जब तक वह स्थायी स्थापन पर अधिष्ठायी पद धारण नहीं करता है। एक ही या एक दूसरे पद में पुष्टि द्वारा बाधा के बिना किये गये सतत अस्थायी या स्थानापन्न सेवा की गणना अर्हक सेवाओं के रूप में की जायेगी।

30. नियम 21 आगे उपबंध करता है कि कर्मचारी केवल 10 वर्ष के अर्हक सेवा को पूरा निवृत्ति/अवैध पेंशन हेतु पात्र होगा, इस प्रकार परन्तु कर्मचारी को करने के बाद देय पेंशन की अधिकतम सीमा अर्हक सेवा के 10 वर्ष या अधिक को पूरा करता हो ।

31. उक्त प्रावधान के प्रयोज्यता के संबंध में इसके तर्क पर विचार करने के लिए विद्वान अपर महाधिवक्ता द्वारा भरोसा किये गये नियम 34 को भी ध्यान में रखा जा सकता है। नियम 34 निम्नवत् पठित है:-

"34 पेंशन / कुटुम्ब पेंशन से संबंधित मामलों में जो विशेष रूप से इन नियमों में उपबंधित नहीं है, राज्य सरकार के कर्मचारियों के संबंध में अधिकथित तत्सम प्रक्रिया आवश्यक परिवर्तनों के साथ लागू होगा।

32. नियमावली 1964 के सुसंगत प्रावधानों तथा इसमें प्रयुक्त भाषा को सावधानीपूर्वक तथा एक साथ पढ़ने से कोई संदेह नही बचता है कि सहायता प्राप्त संस्था के स्थायी स्थापन में कार्यरत् स्थायी कर्मचारी, पूर्ण कालिक शिक्षक जिसने 10 वर्ष या अधिक के अर्हक सेवा को दिया है, जिसमें एक ही या एक दूसरे पद में पुष्टि द्वारा बाधा के बिना की गई सतत् अस्थायी या स्थानापन्न सेवाएं शामिल होगी, अधिवर्षिता पेंशन तथा नियमावली 1964 के अधीन ग्राहय अन्य सेवानिवृत्ति लाभों के लिए पात्र होगा ।

33. विद्वान अपर महाधिवक्ता ने यह निवेदन करने के लिए शब्द "पुष्टि" तथा "नियमितीकरण" के विभिन्न अर्थ को उपलब्ध कराते हुए वर्गीकरण / अंतर को पैदा करने का प्रयास किया है कि सहायता प्राप्त संस्थाओं में शिक्षकों द्वारा दिये गये तदर्थ सेवाओं के सातत्य में नियमितीकरण द्वारा अधिष्ठायी पद पर नियुक्ति नियमावली 1964 के नियम 19 के उप नियम (ख) में अर्हक सेवा को दिये गये अर्थ द्वारा आच्छादित नही होगा ।

34. निवेदन यह है कि नियम 19 (ख) में प्रयुक्त शब्द "पद पर "बाधा युक्त अस्थायी या स्थानापन्न सेवा के सातत्य में" है जबकि वर्तमान मामले में रिट याचिका को प्रावधान के आधार पर नियमित किया गया था जिसे 22-03-2016 को कानून की पुस्तक में लाया गया था। अधिनियम 1982 की धारा 33जी के प्रयोग द्वारा तदर्थ शिक्षक के सेवा के नियमितीकरण की बराबरी चयन नियमावली के अन्तर्गत अस्थायी या स्थानापन्न सेवाओं के पुष्टि से नहीं की जा सकती है।

35. तर्क यह है कि नियमित शिक्ष पर अधिष्ठायी पद पर नियुक्त कर्मचारी के से नहीं की जा सकती है। को इनके अधिष्ठायी नियुक्ति की तिथि जो 22-03- 2016 था से इनके चयन बाद अधिष्ठायी क्षमता में परिवीक्षा पर नियुक्त किया गया था। इनके

अनुवादित

नियमितीकरण तिथि के पहले, तदर्थ क्षमता में इनके द्वारा दिये गये सेवाओं की बराबरी नियमावली 1964 के नियम 19 (ख) के अर्थान्तरगत 'अर्हक सेवा' के रूप में गणना किये जाने वाले एक ही या एक दूसरे पद में पुष्टि के बाद अधिष्ठायी पद पर दिये गये अस्थायी स्थानापन्न सेवाओं के साथ नहीं की जा सकती है।

36. इस कारण, नियमावली 1964 का नियम 34, जैसा ऊपर उल्लिखित है, लागू होगा तथा पेंशन से संबंधित तत्सम प्रक्रिया जैसा राज्य सरकार के कर्मचारियों के संबंध में अधिकथित है यथाआवश्यक परिवर्तनों सहित लागू होगा। परिणाम यह है कि उ0प्र0 सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली 1961 तथा उ0प्र0 पेंशन हेतु अर्हक सेवा तथा विधिमान्यकरण अधिनियम 2021 इस प्रकार के कर्मचारियों/शिक्षकों के संबंध में लागू होगा जो 01-04-2005 को या बाद में सेवा में आए थे। पेंशन स्थापन द्वारा धारित चाहे अस्थायी या स्थायी, 01-04-2005 के बाद किसी भी रिट याचीगण को उ0प्र0 पेंशन हेतु अर्हक सेवा तथा विधिमान्यकरण अधिनियम 2021 के अर्थान्तरगत पेंशन के हकदारी के प्रयोजन हेतु 'अर्हक सेवा' पूरा किया नहीं कहा जा सकता है जिसे उ0प्र0 सेवा निवृत्ति लाभ नियमावली 1961 के आरंभ की तिथि 01-04-1961 से लागू किया गया है।

37. इस प्रकार यह तर्क दिया गया है कि रिट याचीगण को पेंशन के हकदारी के प्रयोजन हेतु 'अर्हक सेवा' पूरा किया नही कहा जा सकता है न ही ये लोग पुराने पेंशन स्कीम के लाभ के हकदार है जैसा सहायता प्राप्त संस्था के स्थापन में स्थायी रूप से नियोजित पूर्ण कालिक शिक्षकों के संबंध में लागू होता है।

38. रिट याचीगण जो मात्र 22-03-2016 से सहायता प्राप्त संस्था के स्थायी स्थापन के कैडर के रहे हैं को नियमावली 1964 के अधीन पेंशन या अन्य ठहराया जा सकता है। लाभों का हकदार नहीं ठहराया जा सकता है।

39. हम शब्द "पुष्टि" तथा "नियमितीकरण" के बीच अंतर करने का प्रयास करने के लिए विद्वान अपर महाधिवक्ता के तर्कों में अंतर्निहित दोष पाते हैं।

40. अधिष्ठायी रिक्तियाँ या परिवर्तित किया गया था, केर्हित दोष पाते हैं। रिक्तियाँ जिसे बाद में अधिष्ठायी रिक्तियों में शिक्षकों के तदर्थ नियुक्ति के प्रावधानों तथा कारणों को ध्यान में रखने के बाद, हम आते है कि उपरोक्त प्रावधानों के अन्तर्गत किये गये तदर्थ नियुक्ति के नियमितीकरण धारा 33जी अधिष्ठायी रिक्ति या अल्पावधि रिक्ति जिसे वाद में अधिष्ठायी रिक्ति में परिवर्तित किया गया था, के विरूद्ध तदर्थ आधार पर नियुक्त शिक्षकों द्वारा दिये गये लंबी सेवाओं के मान्यता में था। धारा 33जी के अन्तर्गत नियमितीकरण हेतु प्रक्रिया को ध्यान में रखा गया था कि तदर्थ आधार पर नियुक्त शिक्षकगण कानूनी प्रावधानों में विहित अर्हता रखते थे तथा अधिष्ठायी क्षमता में नियुक्ति के लिए उपयुक्त थे।

41. धारा 33जी में यह उपबंधित है कि इस प्रकार के शिक्षकों को अपने नियुक्ति की तिथि से नियमितीकरण प्रावधान के आरंभ 22-03-

अनुवादित

2016 तक संस्था की लगातार सेवा किया होना चाहिए। इस प्रकार के शिक्षकगण अधिष्ठायी रिक्तियों के विरूद्ध काम कर रहे थे तथा इनके नाम की सिफारिश पद पर इनके उपयुक्तता का मूल्यांकन करने के लिए कानूनी प्रावधानों/ अधिनियम 1982 के अधीन गठित चयन समिति द्वारा इनके चयन पर अधिष्ठायी नियुक्ति के लिए किया गया था। इस प्रकार के शिक्षकों के अधिष्ठायी नियुक्ति को परिवीक्षा पर रखा गया था तथा इनके उपयुक्त पाये जाने के बाद, इन्हें स्थायी बनाया गया था।

42. हम आगे उल्लेख कर सकते हैं कि इस प्रकार के शिक्षकगण जिन्हें चयन समिति द्वारा उपयुक्त नहीं पाया गया था तथा पूर्वोक्त प्रावधानों के अन्तर्गत अधिष्ठायी नियुक्ति प्राप्त करने अयोग्य पाये गये थे, नियुक्ति से प्रविरत हो गये थे, तत्पश्चात् जिसका मतलब है कि केवल वही शिक्षकगण जो अर्हता योग्यता रखते थे तथा चयन समिति द्वारा तदर्थ क्षमता में नियुक्ति हेतु उपयुक्त पाये गये थे, को अधिष्ठायी क्षमता में नियुक्त किया गया था तथा स्थायी आधार पर बनाये रखने की अनुमति दी गई थी। इसमें सभी रिट याचीगण को अधिष्ठायी पद पर कार्य करते हुए स्थायी बनाया गया है तथा स्थायी क्षमता में अधिवार्षिकी किया गया है।

43. तदर्थ शिक्षक के नियमितीकरण हेतु अपनाई गई प्रक्रिया जैसा चयन बोर्ड अधिनियम, 1982 के धारा 33जी से उपबंधित है, अस्थायी या स्थानापन्न क्षमता के कार्यरत कर्मचारी या शिक्षक के पुष्टि का स्थायी स्थापन में अधिष्ठायी पदों पर कार्यरत तदर्थ शिक्षकों के पुष्टि के बीच किसी अंतर को करने की कोई गुंजाइश नही छोड़ता है। ब्लैक के विधि शब्द कोष 8वाँ संस्करण (दक्षिण एशिया संस्करण) से शब्द "पुष्टि" का शब्द कोष अर्थ शब्द पुष्टि का अर्थ प्रदर्शित करता है:- (i) औपचारिक अनुमोदन देने के कार्य के रूप में करने का कार्य के रूप में (पप) सत्यापन या संपुष्ट करने का कार्य (iii) शून्यीकरण संपदा के अनुमोदन का कार्य (iv) घोषणा जो प्रावधान को प्रवर्तनीय बनाने के लिए बाध्यता के अकृत प्रावधान को ठीक करता है।

44. तदर्थ नियुक्त व्यक्ति के सेवाओं के नियमितीकरण हेतु शब्द "नियमितीकरण" को उपर्युक्त अर्थ दिया जा सकता है।

45. नियमावली 1964 के नियम 19 (ख) में उपबंधित शब्द " पुष्टि" तथा सहायता प्राप्त संस्था के स्थायी स्थापन में कार्यरत तदर्थ शिक्षकों के अधिष्ठायी नियुक्ति हेतु धारा 33जी में प्रयुक्त "नियमितीकरण" के बीच विद्वान अपर महाधिवक्ता द्वारा किया गया अंतर काल्पनिक है। कानूनी प्रावधान के अनुसार चयन बोर्ड द्वारा चयन पर अधिष्ठायी पद पर अपने सेवाओं के पुष्टि द्वारा, बाधा के बिना शिक्षकों द्वारा दिये गये सतत् तदर्थ सेवाएं माना जायेगा तथा नियमावली 1964 के नियम 19 (ख) के अर्थान्तरगत "अर्हक सेवा" के रूप में गिना जायेगा। ऐसे रिट याचीगण जिन्होंने नियमावली 1964, जैसा ऊपर उल्लिखित है, के अर्थान्तरगत 10 वर्ष के अर्हक सेवा को पूरा किया है, अधिवर्षिता पेंशन तथा अन्य सेवानिवृत्ति लाभ के हकदार होंगें जैसा नियमावली 1964 के अधीन लागू होता है।

अनुवादित

46. हम आगे यह उल्लेख कर सकते हैं कि नियमावली, 1964 विशेष प्रावधान है जो उ0प्र0 राज्य में राज्य सहायता प्राप्त शैक्षणिक संस्थाओं में कार्यरत शिक्षकों तथा शिक्षणेत्तर कर्मचारियों के संबंध में लागू होता है। नियमावली 1961 क नियम 3 (6) में परिभाषित अधिकारियों के संबंध में लागू 01-04-1961 से उ0प्र0 सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 1961 में शब्द अर्हक सेवा को परिभाषित करने वाले उ0प्र0 पेंशन हेतु अर्हक सेवा तथा विधि मान्य करण अधिनियम, 2021 का सामान्य प्रावधान जिसका मतलब है ऐसे सरकारी कर्मचारी जिनका "सरकार" के अधीन स्थायी पेंशन योग्य पद पर धारणाधिकार है, रिट याचीगण के में लागू नहीं होगा।) में विद्वान एकल न्यायमूर्ति संबंधित विशेष अपीलों में चुनौती की विषयवस्तु नंदलाल (उपग संबंध : के निर्णय दिनांक 30-09-2022 के विशुद्धता को देने वाले विद्वान अपर महाधिवक्ता के सभी तर्कों को किसी बल के बिना पाया गया है।

47. रिट याचिकाओं को अनुज्ञात करने के लिए आक्षेपित नंदलाल (उपरोक्त) के निर्णय में विद्वान एकल न्यायमूर्ति द्वारा दिये तर्क के संबंध में उपरोक्त दिये गये जोड़े गये कारणों पर अपील में गुणावगुण नही पाया जाता है। सुनीता शर्मा (उपरोक्त) के इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा रखते याचिकाओं को अनुज्ञात करने में विद्वान एकल न्यायमूर्ति के अन्य निर्णयों 25-07-2022 तथा 23-05-2022 ऊपर दिये गये कारणों पर किसी हस्तक्षेप का समुचित आधार नहीं है तथा नंदलाल (उपरोक्त) में निर्णय तथा आदेश दिनांक 30- 09-2022 में विद्वान एकल न्यायमूर्ति के तर्क की एतस्मिन् उपरोक्त पुष्टि की जाती है।

48. उपरोक्त विवेचना पर सभी संबद्ध विशेष अपीलों को गुणावगुण रहित पाया जाता है तथा इसलिए खारिज किया जाता है।

(2023) 6 ILRA 984

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 09.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती सुनीता अग्रवाल

माननीय न्यायमूर्ति विकास बुधवार

विशेष अपील संख्या 184 वर्ष 2023

अंकित चौधरी **अपीलकर्ता**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **प्रतिवादी**

अपीलकर्ता के अधिवक्ता: श्री सिद्धार्थ खरे, श्री अशोक खरे (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी.

सिविल कानून - सेवा कानून - याचिकाकर्ता की नियुक्ति रद्द करने के फैसले को बरकरार रखने वाला विद्वान एकल न्यायाधीश का आदेश - याचिकाकर्ता को कांस्टेबल के रूप में नियुक्त किया गया - प्रतिरूपण के आधार पर नियुक्ति रद्द की गई - नियुक्ति रद्द करने के बीच अंतर - बर्खास्तगी, हटाने या समाप्ति के माध्यम से सेवाओं का वितरण - अनुशासनात्मक कार्यवाही की आवश्यकता नहीं - आरोपित आदेश याचिकाकर्ता द्वारा प्रदान की गई फोरेंसिक रिपोर्ट पर विचार नहीं करता - आरोपित आदेश प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों

अनुवादित

का उल्लंघन करता है - आरोपित आदेश को रद्द किया जाता है - विशेष अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। (पैरा 20, 21, 23, 27, 29 और 30)

निर्णय:

प्राथमिक मुद्दा जिस पर विचार करने की आवश्यकता है, सबसे पहले यह है कि क्या अपीलकर्ता / रिट याचिकाकर्ता के लिए उम्मीदवारी रद्द करने और चयनित उम्मीदवारों की सूची से उसका नाम हटाने के मामले में नियमित विभागीय जांच करने पर जोर देना कानूनी रूप से खुला था या नहीं। हालांकि प्रतिद्वंद्वी पक्षों ने असंख्य निर्णयों का हवाला दिया है, लेकिन हम बाद में उनसे निपटेंगे। उक्त मुद्दे पर गहराई से विचार करने से पहले, हमें उस आदेश की प्रकृति को ध्यान में रखना होगा, जो किसी कर्मचारी/उम्मीदवार के लिए नुकसानदेह है। दंडात्मक आदेश के दो सेट हैं, अर्थात् किसी भी कारण से नियुक्ति को रद्द करने का आदेश और दूसरा, बर्खास्तगी, निष्कासन या सेवा समाप्ति का सहारा लेकर किसी कर्मचारी/उम्मीदवार की सेवाओं से छुटकारा पाने का आदेश। एक अन्य सहायक मुद्दा, जो किसी कर्मचारी/उम्मीदवार के आचरण से संबंधित है, अर्थात् नियुक्ति से पहले और नियुक्ति के बाद का आचरण। पहली श्रेणी में, नियुक्ति प्राप्त करते समय आचरण को धोखाधड़ी का कार्य कहा जा सकता है। दूसरी श्रेणी में, रोजगार के दौरान किया गया कदाचार शामिल है जो निश्चित रूप से कर्मचारी के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई करने के लिए विभागीय नियमों के दायरे में आता है, चाहे वह मामूली सजा या बड़ी सजा की प्रक्रिया का सहारा लेकर हो। धोखाधड़ी से नियुक्ति प्राप्त करने से संबंधित नियुक्ति रद्द करने के मामलों में, हमारे सामने पक्षों ने नियमित विभागीय कार्यवाही करने के लिए कोई नियम नहीं पेश किया है। हालांकि, प्रतिद्वंद्वी पक्षों द्वारा उद्धृत निर्णय से यह सुरक्षित रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि नियुक्ति के बाद रोजगार के दौरान किसी ऐसे कदाचार के मामले में जो आचरण नियमों के अनुसार निषिद्ध या अपेक्षित नहीं किसी कार्य या चूक से संबंधित हो, नियमित विभागीय कार्यवाही की जानी चाहिए। (पैरा 20)

यहाँ, वर्तमान मामले में, कोई नियमित विभागीय जाँच किए जाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह नियुक्ति रद्द करने का मामला है। जहाँ तक सुभाष चंद मौर्य (उपरोक्त) के मामले पर भरोसा करने का सवाल है, वह भी अपीलकर्ता/रिट याचिकाकर्ता के लिए कोई सहायता नहीं करता है क्योंकि वह एक ऐसा मामला था, जिसमें एक कर्मचारी की सेवाओं को समाप्त कर दिया गया था। इसी तरह, रीता यादव का मामला (उपरोक्त) भी वर्तमान मामले पर लागू नहीं होता है, यह विभाग में नियुक्ति प्राप्त करने के लिए जाली दस्तावेज़ प्रस्तुत करने के आरोप से उत्पन्न बर्खास्तगी की सजा से संबंधित है। (पैरा 23)

हाल ही में, सेंट ऑफ बिहार और अन्य बनाम देवेंद्र शर्मा (2020) 15 एससीसी 466 के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने देखा है कि जालसाजी के आधार पर की गई नियुक्ति शुरू से ही शून्य है। हाल ही में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने मुख्य कार्यकारी अधिकारी, भिलाई स्टील प्लांट, भिलाई बनाम महेश कुमार गोनाडे, एआईआर 2022 एससी 3356 के मामले में माना है कि झूठे प्रमाण

अनुवादित

पत्र के आधार पर प्राप्त नियुक्ति किसी भी तरह की इक्विटी नहीं बनाती है। (पैरा 27)

अब सवाल यह उठता है कि क्या अपीलकर्ता/रिट याचिकाकर्ता द्वारा भरोसा किए गए फोरेंसिक विशेषज्ञ की रिपोर्ट पर विचार न करने से रिट कोर्ट के समक्ष दिए गए आदेशों का उल्लंघन होगा या नहीं। मूल रूप से कारण बताओ नोटिस जारी करने का उद्देश्य दूसरे पक्ष को उन आरोपों से अवगत कराना है जिनका उसे सामना करना है, जिससे दूसरे पक्ष को अपना जवाब प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करने की आवश्यकता होती है। वर्तमान मामले में कारण बताओ नोटिस जारी करने के बाद, रिट याचिकाकर्ता ने 07.09.2022 को फोरेंसिक विशेषज्ञ की रिपोर्ट दिनांक 24.08.2022 के साथ अपना जवाब प्रस्तुत किया, जिसमें प्रतिवादियों द्वारा भरोसा किए गए फोरेंसिक विशेषज्ञ की रिपोर्ट की सत्यता, विश्वसनीयता और सटीकता पर विवाद किया गया। एक बार जब विशेषज्ञ की फोरेंसिक रिपोर्ट के आधार पर ऐसा बचाव किया गया है, तो प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुसार प्राधिकारी को नोटिस प्राप्तकर्ता द्वारा उठाए गए तर्कों पर विचार करने के बाद निर्णय लेने की आवश्यकता होती है। दूसरे प्रतिवादी के दिनांक 07.10.2022 के आदेश से पता चलता है कि उक्त अभ्यास में कमी है। न्यायालय की राय में, दूसरे प्रतिवादी, यू.पी. पुलिस भर्ती एवं प्रोन्नति बोर्ड, लखनऊ को अंतिम निष्कर्ष पर पहुंचते समय उक्त मुद्दे पर विचार करने और उसका समाधान करने की आवश्यकता थी कि प्रतिरूपण के कृत्य के कमीशन के बारे में एक निश्चित और निर्णायक राय बनाते समय दो रिपोर्टों में से किस पर विचार किया जाना था, एक अपीलकर्ता/रिट याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत चूंकि उक्त कार्यवाही नहीं की गई है, इसलिए हम पाते हैं कि द्वितीय प्रतिवादी, उत्तर प्रदेश पुलिस भर्ती एवं प्रोन्नति बोर्ड, लखनऊ द्वारा विधि में ज्ञात प्रक्रिया का अनुपालन नहीं किया गया है। (पैरा 29)

अपील खारिज। (ई-14)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. यू.ओ.आई. एवं अन्य बनाम देवेन्द्र कुमार चौधरी, 2018(9) एडीजे 570
2. अवतार सिंह बनाम यू.ओ.आई., (2016) 8 एससीसी 471
3. श्रीमती। रीता यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, रिट-ए संख्या 11046/2022, 01.08.2022 को निर्णय हुआ
4. सुभाष चंद मौर्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, रिट-ए संख्या 8117/2021, 20.09.2021 को निर्णय हुआ
5. आर. विश्वनाथ पिल्लई बनाम केरल राज्य, (2004) 2 एससीसी 105
6. देवेंद्र कुमार बनाम उत्तरांचल राज्य (2013) 9 एससीसी 363
7. बिहार राज्य और अन्य बनाम कीर्ति नारायण प्रसाद, (2019) 13 एससीसी 250
8. बिहार राज्य और अन्य बनाम देवेन्द्र शर्मा (2020) 15 एससीसी 466
9. मुख्य कार्यकारी अधिकारी, भिलाई स्टील प्लांट, भिलाई बनाम महेश कुमार गोन्नाडे, एआईआर 2022 एससी 3356

(माननीय न्यायमूर्ति विकास बुधवार द्वारा दिया गया)

1. अपीलकर्ता/रिट याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ खरे और राज्य उत्तरदाताओं के

अनुवादित

अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री सुरेश सिंह द्वारा सहायता प्राप्त वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे को सुना।

2. यह इंट्रा-कोर्ट अपील रिट-ए संख्या-22096 वर्ष 2022, (अंकित चौधरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और तीन अन्य) में पारित एकल न्यायाधीश के निर्णय और आदेश दिनांक 28.02.2023 के खिलाफ है, जिसके तहत याचिकाकर्ता की रिट याचिका खारिज कर दी गई थी।

3. एकल न्यायाधीश के समक्ष अपीलकर्ता-रिट याचिकाकर्ता का मामला यह था कि कांस्टेबल सिविल पुलिस और कांस्टेबल प्रांतीय सशस्त्र कांस्टेबुलरी के पद पर भर्ती के लिए जनवरी 2018 के महीने में एक विज्ञापन प्रकाशित किया गया था। रिट याचिकाकर्ता के अनुसार, वह पूरी तरह से पात्र और सभी मामलों में योग्य होने के कारण ओबीसी श्रेणी के तहत कांस्टेबल के पद पर चयन और नियुक्ति के लिए आवेदन किया। रिट याचिकाकर्ता का दावा है कि उसे रोल संख्या-3311050244 और पंजीकरण संख्या-105166994282 आवंटित किया गया। रिट याचिकाकर्ता ने आगे दावा किया है कि उसने 19.06.2018 को आयोजित लिखित परीक्षा में भाग लिया था और शारीरिक परीक्षा को सफलतापूर्वक पास करने के बाद और दस्तावेज़ सत्यापन/शारीरिक मानक परीक्षण (इसके बाद "डी.वी./पी.एस.टी." के रूप में संदर्भित) के अधीन होने के बाद चिकित्सा परीक्षा को 15.05.2019 को नियुक्ति दी गई थी। नियुक्ति के बाद, रिट याचिकाकर्ता का दावा है कि उसे फतेहपुर और उसके बाद मैनपुरी में प्रशिक्षण के लिए भेजा गया।

4. जबकि रिट याचिकाकर्ता पुलिस में कांस्टेबल के पद पर ड्यूटी का निर्वहन कर रहा था, कहा जाता है कि प्रतिरूपण के आरोप में उसके खिलाफ शिकायत दर्ज की गई थी, क्योंकि रिट याचिकाकर्ता के स्थान पर, कोई और चयन प्रक्रिया में उपस्थित हुआ और रिट याचिकाकर्ता ने धोखाधड़ी करते हुए नियुक्ति प्राप्त की। आगे यह आरोप लगाया गया है कि अन्य पुलिस कांस्टेबल थे, जिन्होंने प्रतिरूपण का सहारा लेते हुए नियुक्ति प्राप्त की थी और इस प्रकार, पुलिस अधिकारियों द्वारा थाना-एत्मादौला, आगरा के समक्ष 08.06.2021 को प्राथमिकी संख्या-0389 के रूप में दर्ज की गई थी, हालांकि रिट याचिकाकर्ता को उक्त प्राथमिकी में आरोपी के रूप में चिह्नित नहीं किया गया था। रिट याचिकाकर्ता का दावा है कि 20.07.2021 को जांच करने के लिए लखनऊ में दूसरे प्रतिपक्षी, यू.पी. पुलिस भर्ती और पदोन्नति बोर्ड के समक्ष बुलाया गया था और यह भी आरोप लगाया गया है कि रिट याचिकाकर्ता के फोटोग्राफ और बायोमेट्रिक्स लिए गए थे और उसके बाद, उसे आगरा जिला जेल, आगरा भेज दिया गया था। इसके बाद रिट याचिकाकर्ता ने एक आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-34570 वर्ष 2021, (अंकित चौधरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) दायर किया, जिसमें 01.10.2021 को इस न्यायालय ने आवेदक को जमानत पर रिहा कर दिया, परिणामस्वरूप, रिट याचिकाकर्ता को 26.10.2021 को जेल से रिहा कर दिया गया।

5. इसके बाद, रिट याचिकाकर्ता ने दावा किया कि उसने यहां उत्तरदाताओं से संपर्क किया, लेकिन इसे अस्वीकार कर दिया गया। 30.07.2021 को, दूसरे प्रतिपक्षी, अध्यक्ष, उत्तर

अनुवादित

प्रदेश पुलिस भर्ती और प्रोन्नति बोर्ड, लखनऊ द्वारा एक आदेश पारित किया गया, जिसके तहत एक पक्षीय जांच के आधार पर, यह पाया गया कि रिट याचिकाकर्ता ने प्रतिरूपण का सहारा लेकर और धोखाधड़ी से पुलिस कांस्टेबल के रूप में नियुक्ति प्राप्त की थी, इस प्रकार, उसकी उम्मीदवारी खारिज कर दी गई और उसका नाम चयनित उम्मीदवारों की सूची से हटा दिया गया। दूसरे प्रतिपक्षी के दिनांक 30.07.2021 के आदेश की निरंतरता में, चौथे प्रतिपक्षी, वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, फतेहपुर द्वारा एक परिणामी आदेश पारित किया गया, जिसमें रिट याचिकाकर्ता की नियुक्ति को रद्द कर दिया गया और उसे चयनित उम्मीदवारों की सूची से हटा दिया गया।

6. आगे रिट याचिकाकर्ता ने दावा किया है कि उसने इस न्यायालय के समक्ष रिट-ए संख्या-19036 वर्ष 2021, (अंकित चौधरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 3 अन्य) को दायर की है, जिसे एकल न्यायाधीश द्वारा निम्नलिखित निर्देशों के साथ निपटाया गया था: -

> *"ऐसी परिस्थितियों में, अध्यक्ष, यू.पी. पुलिस भर्ती एवं प्रोन्नति बोर्ड, लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 30.07.2021 के आदेश और पुलिस अधीक्षक, फतेहपुर द्वारा पारित दिनांक 07.12.2021 के आदेश को कानून की नजर में कायम नहीं रखा जा सकता है और इसलिए इसे रद्द किया जाता है। हालांकि, उत्तरदाताओं के लिए ऐसे सबूतों पर भरोसा करने के बाद याचिकाकर्ता के खिलाफ आगे बढ़ना खुला होगा, जो कानून में स्वीकार्य हो सकते हैं। याचिकाकर्ता को निश्चित रूप से मामले में अपना पक्ष रखने का अवसर दिया जाएगा। यह प्रक्रिया इस आदेश की प्रमाणित प्रति की प्रस्तुति से दो महीने की अवधि के भीतर पूरी की जाएगी।*
>
> *कहने की जरूरत नहीं है कि यदि याचिकाकर्ता के खिलाफ किसी भी सबूत का इस्तेमाल किया जा रहा है तो यह हमेशा याचिकाकर्ता को दिया जाएगा ताकि उसे इसका खंडन करने का अवसर मिले।*
>
> *तदनुसार, इस रिट याचिका को आंशिक रूप से अनुमति दी जाती है।*

7. रिट-ए संख्या-19036 वर्ष 2021 में दिनांक 11.04.2022 के आदेश को पारित करने के परिणामस्वरूप, अतिरिक्त सचिव, भर्ती, उत्तर प्रदेश पुलिस भर्ती और पदोन्नति बोर्ड द्वारा दिनांक 02.08.2022 को एक कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था। दूसरे प्रतिपक्षी ने रिट याचिकाकर्ता को पांच दिनों की अवधि के भीतर कारण बताने की आवश्यकता थी कि उसकी उम्मीदवारी को रद्द करने और चयनित उम्मीदवारों की सूची से याचिकाकर्ता का नाम क्यों नहीं हटाया जाए। दिनांक 02.08.2022 को कारण बताओ नोटिस के बाद 18.08.2022 को एक और नोटिस जारी किया गया। उपर्युक्त कारण बताओ नोटिस प्राप्त होने पर, रिट याचिकाकर्ता ने 07.09.2022 को स्पष्ट रूप से इसका जवाब दिया कि उसने प्रतिरूपण के किसी भी कार्य का सहारा नहीं लिया था और उसने प्रतिपक्षी की फोरेंसिक रिपोर्ट पर भी विवाद किया, जिसे प्रतिकूल निष्कर्ष निकालने का आधार बनाया गया था और 24.08.2022 की फोरेंसिक जांच रिपोर्ट को भी संलग्न किया

अनुवादित

था। इसके अलावा, फोरेंसिक विशेषज्ञ रिपोर्ट, जिसकी प्रतिवादियों द्वारा भरोसा किया गया था, की प्रतिपरीक्षा के लिए अनुरोध करने वाले रिट याचिकाकर्ता ने पुलिस विभाग के कांस्टेबलों पर लागू सेवा नियमों के अनुसार नियमित विभागीय जांच आयोजित करने पर जोर दिया। दूसरे प्रतिपक्षी, अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश पुलिस भर्ती और प्रोन्नति बोर्ड, लखनऊ ने इसके बाद, रिट याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी को रद्द करने और चयनित उम्मीदवारों की सूची से उसका नाम हटाने के पिछले रुख को बनाए रखते हुए रिट याचिकाकर्ता द्वारा स्थापित दावे को नकारते हुए बिना किसी नियमित विभागीय जांच के, दिनांक 07.10.2022 को एक आदेश पारित किया।

8. दूसरे प्रतिपक्षी, उत्तर प्रदेश पुलिस भर्ती एवं प्रोन्नति बोर्ड, लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 07.10.2022 के आदेश को चुनौती देते हुए, रिट याचिकाकर्ता ने निम्नलिखित राहत की मांग करते हुए रिट-ए संख्या-22096 वर्ष 2022, (अंकित चौधरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) को दायर की:

"(i) अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश पुलिस भर्ती एवं प्रोन्नति बोर्ड, लखनऊ (इस रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या-14) द्वारा पारित दिनांक 07.10.2022 के आदेश को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश;

(ii) परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जिसमें प्रतिपक्षी प्राधिकारियों को कांस्टेबल के पद पर सभी परिणामी लाभों के साथ याचिकाकर्ता को सेवा में बहाल करने का आदेश दिया गया हो।

9. रिट याचिकाकर्ता द्वारा दायर की गई उपरोक्त रिट याचिका को एकल न्यायाधीश द्वारा निर्णय और आदेश दिनांक 28.02.2023 के आधार पर खारिज कर दिया गया।

10. रिट-ए संख्या-22096 वर्ष 2022 में पारित आदेश दिनांक 28.02.2023 से व्यथित, अपीलकर्ता/रिट याचिकाकर्ता ने प्रस्तुत इंट्रा-कोर्ट अपील को दायर की है।

11. अपील के समर्थन में श्री अशोक खरे, श्री सिद्धार्थ खरे द्वारा सहायता प्राप्त वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि एकल न्यायाधीश ने याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी को रद्द करने और पुलिस कांस्टेबल के चयनित उम्मीदवारों की सूची से उसका नाम हटाने के आदेश दिनांक 07.10.2022 को चुनौती देते हुए रिट याचिका को खारिज करने में कानून में गलती की है। चूंकि प्रस्तुत मामला उत्तरदाताओं द्वारा की गई अवैधता का एक उत्कृष्ट उदाहरण है क्योंकि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का सहारा लिए बिना, अपीलकर्ता/रिट याचिकाकर्ता की नियुक्ति रद्द कर दी गई है, जो 11.04.2022 को तय की गई रिट संख्या-19036 वर्ष 2021 में मुकदमेबाजी के पहले दौर में इस न्यायालय के फैसले के सीधे उल्लंघन में है, जिसमें उत्तरदाताओं को कोई भी प्रतिकूल कार्रवाई करने से पहले रिट याचिकाकर्ता के खिलाफ प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करने का आदेश दिया गया है। दूसरे शब्दों में, निवेदन यह है कि चूंकि फोरेंसिक रिपोर्ट एक विशेषज्ञ की राय के अलावा और कुछ नहीं है और यह एक निर्णायक साक्ष्य के स्वरूप का हिस्सा नहीं है। जब तक रिट याचिकाकर्ता को इसका खंडन करने का अवसर नहीं दिया जाता है, तब तक

अनुवादित

उक्त फोरेंसिक रिपोर्ट को एक सुसमाचार सत्य के रूप में नहीं माना जा सकता है। एक बार जब उक्त प्रक्रिया नहीं की गई, तो पूरी कार्यवाही दूषित हो गई।

12. इसके अतिरिक्त, अपीलकर्ता/रिट याचिकाकर्ता की ओर से यह तर्क देने की मांग की जाती है कि एक बार दूसरे प्रतिपक्षी द्वारा कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था, जिससे अपीलकर्ता/रिट याचिकाकर्ता को अपना जवाब प्रस्तुत करने में सक्षम बनाया गया था और अपीलकर्ता/रिट याचिकाकर्ता ने एक अन्य फोरेंसिक रिपोर्ट पर भरोसा करते हुए अपना जवाब दिया था, जो उत्तरदाताओं द्वारा भरोसा की गई फोरेंसिक रिपोर्ट के विपरीत था। दूसरे प्रतिपक्षी के लिए यह आवश्यक था कि वह इस बात के कारणों को दर्ज करे कि अपीलकर्ता/रिट याचिकाकर्ता की रिपोर्ट को दायर क्यों नहीं की जानी चाहिए।

13. संक्षेप में, प्रस्तुत करना यह है कि दूसरे प्रतिपक्षी द्वारा रिट याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी को रद्द करने और चयनित उम्मीदवारों की सूची से उसका नाम हटाने का आदेश एक गंभीर मुद्दा है, जिसे हल्के में नहीं लिया जा सकता है। एक स्वतंत्र फोरेंसिक विशेषज्ञ रिपोर्ट पर भरोसा करते हुए कारण बताओ नोटिस के लिए रिट याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर पर विचार किया जाना चाहिए और एकल न्यायाधीश द्वारा आक्षेपित आदेश में ध्यान दिया जाना चाहिए।

14. अंत में, यह अपीलकर्ता/रिट याचिकाकर्ता की ओर से प्रस्तुत किया गया है और रिट याचिकाकर्ता ने विशेष रूप से आरोपों से इनकार किया है और आरोपों की सच्चाई का पता लगाने के लिए सेवा नियमों के अनुसार एक नियमित विभागीय जांच आयोजित करने का अनुरोध किया है, फिर नियमित विभागीय जांच किए बिना नियुक्ति रद्द करने की एक शॉर्टकट विधि का सहारा लेना प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन के बराबर है, विशेष रूप से, जब रिट याचिकाकर्ता 2017 में संशोधित उत्तर प्रदेश पुलिस कांस्टेबल और हेड कांस्टेबल सेवा नियम, 2015 के अनुसार दो साल की परिवीक्षा सफलतापूर्वक पूरी करने वाला एक निश्चित और नियमित कर्मचारी पद बन गया। श्री अशोक खरे, वरिष्ठ अधिवक्ता ने भारत संघ और अन्य बनाम देवेंद्र कुमार चौधरी, 2018 (9) एडीजे 570; अवतार सिंह बनाम भारत संघ, (2016) 8 एस.सी.सी. 471; श्रीमती रीता यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, रिट-ए संख्या-11046 वर्ष 2022, जिसका निर्णय 01.08.2022 को हुआ और सुभाष चंद मौर्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, रिट-ए संख्या-8117 वर्ष 2021 का निर्णय 20.09.2021 को उपरोक्त प्रस्तुतियों को प्रमाणित करने के लिए किया गया।

15. श्री सुरेश सिंह, अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता, जिन्होंने अपीलकर्ता के लिए वरिष्ठ अधिवक्ता के प्रस्तुतीकरण का विरोध करते हुए राज्य के उत्तरदाताओं की ओर से पेश होते हुए यह तर्क देने की मांग की है कि एकल न्यायाधीश के निर्णय और आदेश को प्रस्तुत कार्यवाही में हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि यह एक स्वीकृत मामला है कि रिट याचिकाकर्ता ने धोखाधड़ी करके प्रतिरूपण किया था और नियुक्ति प्राप्त की थी। आगे यह प्रस्तुत करना है कि रिट याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी को रद्द करने और चयनित उम्मीदवारों की सूची

अनुवादित

से उसका नाम हटाने का आदेश फोरेंसिक विशेषज्ञ की रिपोर्ट पर आधारित है, जिसकी प्रति अपीलकर्ता/रिट याचिकाकर्ता को विधिवत प्रदान की गई थी। अपीलकर्ता/रिट याचिकाकर्ता को विशेषज्ञ रिपोर्ट की सामग्री और नियुक्ति रद्द करने के कारणों से अवगत कराया गया था, केवल इसलिए कि नियमित विभागीय जांच नहीं की गई थी, यह एकल न्यायाधीश के आदेश को खराब या दूषित मानने का आधार नहीं होगा, विशेष रूप से, जब धोखाधड़ी के परिणामस्वरूप प्रारंभिक नियुक्ति को रद्द करने के मामले में नियमित विभागीय कार्यवाही आयोजित करने की आवश्यकता नहीं है। श्री सुरेश सिंह ने उक्त सबमिशन को विस्तृत करते हुए तर्क दिया है कि बर्खास्तगी, हटाने या समाप्ति के माध्यम से नियुक्ति को रद्द करने और सेवाओं के वितरण के बीच एक स्पष्ट अंतर है। उनके अनुसार, चूंकि प्रस्तुत मामला प्रतिरूपण द्वारा धोखाधड़ी करने के आधार पर नियुक्ति को रद्द करने की श्रेणी में आता है, इसलिए नियमित विभागीय जांच आयोजित करने के लिए विचार की गई प्रक्रिया को लागू नहीं किया जाएगा। उत्तरदाताओं की ओर से आगे यह तर्क दिया गया है कि दूसरे प्रतिपक्षी ने सभी कोणों से रिट याचिकाकर्ता के मामले पर विचार किया है और फोरेंसिक विशेषज्ञ की रिपोर्ट के आधार पर एक दृढ़ राय बनाई है कि रिट याचिकाकर्ता ने धोखाधड़ी करके नियुक्ति प्राप्त की थी। उपरोक्त प्रस्तुतियों को पुष्ट करने के लिए, आर विश्वनाथ पिल्लई बनाम केरल राज्य, (2004) 2 एस.सी.सी. 105, देवेंद्र कुमार बनाम उत्तरांचल राज्य (2013) 9 एस.सी.सी. 363 और बिहार राज्य और अन्य बनाम कीर्ति नारायण प्रसाद, (2019) 13 एस.सी.सी. 250 के न्यायिक फैसले पर भरोसा किया गया है।

16. हमने संबंधित पक्षों के अधिवक्ताओं को सुना है और रिकॉर्ड को ध्यान से देखा है।

17. निर्विवाद रूप से, जनवरी 2018 के महीने में विज्ञापन के प्रकाशन के माध्यम से दूसरे प्रतिपक्षी, यू.पी. पुलिस भर्ती और प्रोन्नति बोर्ड, लखनऊ द्वारा की गई भर्ती प्रक्रिया के आधार पर, रिट याचिकाकर्ता ने ओबीसी श्रेणी के तहत कांस्टेबल के पद के लिए आवेदन किया और उसे रोल संख्या-3311050244 और पंजीकरण संख्या-105166994282 आवंटित किया गया। याचिकाकर्ता ने 19.06.2018 को आयोजित लिखित परीक्षा को मंजूरी दे दी, डी.वी./पी.एस.टी., शारीरिक दक्षता परीक्षा और चिकित्सा परीक्षा के अधीन किया गया और 15.05.2019 को नियुक्ति प्रदान की गई। रिट याचिकाकर्ता और अन्य उम्मीदवारों के खिलाफ एक शिकायत दर्ज की गई थी कि उन्होंने प्रतिरूपण का सहारा लेते हुए और धोखाधड़ी का अभ्यास करते हुए नियुक्ति प्राप्त की थी और उसके बाद, रिट याचिकाकर्ता को गिरफ्तार कर लिया गया था और परिणामस्वरूप, इस न्यायालय के एक आदेश द्वारा जमानत पर रिहा किया गया था।

18. रिट याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी को रद्द करने और चयनित उम्मीदवारों की सूची से उसका नाम हटाने के दिनांक 30.07.2021 और 07.12.2021 के आदेश को चुनौती देते हुए, रिट याचिकाकर्ता ने रिट-ए संख्या-19036 वर्ष 2021 (अंकित चौधरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) को इस आधार पर दायर की कि बिना किसी कारण बताओ नोटिस जारी किए और रिट याचिकाकर्ता को और इस

अवलोकित

न्यायालय ने दिनांक 11.04.2022 के आदेश के आधार पर उत्तरदाताओं के दिनांक 30.07.2021 और 07.12.2021 के आदेशों को रद्द कर दिया, जो प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए उनके लिए सबूतों पर भरोसा करने के बाद रिट याचिकाकर्ता के खिलाफ आगे बढ़ने के लिए खुला छोड़ दिया, जो कानून में उपलब्ध हो सकता है और उत्तरदाताओं को निर्देश दिया गया था कि वे रिट याचिकाकर्ता को मामले में अपना पक्ष रखने का अवसर दें। यह आगे प्रदान किया गया था कि यदि रिट याचिकाकर्ता के खिलाफ किसी भी सबूत का इस्तेमाल किया जा रहा है, तो इसे रिट याचिकाकर्ता के रूप में आपूर्ति की जाएगी ताकि उसे इसका खंडन करने का अवसर मिल सके।

19. रिमांड, उत्तरदाताओं ने 02.08.2022 को रिट याचिकाकर्ता को एक कारण बताओ नोटिस जारी किया, इसके बाद 18.08.2022 को एक और नोटिस जारी किया, जिसमें रिट याचिकाकर्ता को प्रतिरूपण के आरोपों के साथ-साथ फोरेंसिक रिपोर्ट के आकार में इनपुट के संबंध में अपना रुख सामने रखने की आवश्यकता थी, जिस पर रिट याचिकाकर्ता को प्रतिरूपण का दोषी ठहराने के लिए भरोसा किया गया था। रिट याचिकाकर्ता ने दो मुद्दों को उठाते हुए 07.09.2022 को अपना जवाब प्रस्तुत किया; (क) सेवा नियमावली के अंतर्गत नियमित विभागीय जांच की जाए; (ख) विधि विज्ञान रिपोर्ट के लेखक से प्रतिपरीक्षा करने का अवसर उसे दिया जाए; (ग) कार्यवाही को छोड़ दिया जाए क्योंकि रिट याचिकाकर्ता 24.08.2022 की फोरेंसिक रिपोर्ट पर भरोसा करता है, जो बदले में उत्तरदाताओं की फोरेंसिक रिपोर्ट को नकारता है और अविश्वसनीय और गलत बनाता है। अपीलकर्ता/रिट याचिकाकर्ता के अधिवक्ता के अनुसार, पूरी तरह से अन-आख्यापक और अनुचित आदेश द्वारा, जबकि रिट याचिकाकर्ता के किसी भी तर्क पर विचार नहीं किया गया है, उसकी उम्मीदवारी रद्द कर दी गई है और उसके बाद चयनित उम्मीदवारों की सूची से उसका नाम हटा दिया गया है।

20. प्राथमिक मुद्दा जिस पर विचार करने की आवश्यकता है, सबसे पहले यह है कि क्या अपीलकर्ता/रिट याचिकाकर्ता के लिए उम्मीदवारी को रद्द करने और चयनित उम्मीदवारों की सूची से अपना नाम हटाने के मामले में नियमित विभागीय जांच करने पर जोर देना कानूनी रूप से खुला था या नहीं। हालांकि प्रतिद्वंद्वी पक्षों ने कई फैसलों का हवाला दिया है, लेकिन हम उनसे बाद में निपटेंगे। उक्त मुद्दे पर जाने से पहले, हमें उस आदेश की प्रकृति को ध्यान में रखना होगा, जो किसी कर्मचारी/उम्मीदवार को नुकसान पहुंचाने के लिए पारित किया जा रहा है। दंडात्मक आदेश के दो संकलन हैं, अर्थात् एक आदेश जो किसी भी कारण से नियुक्ति को रद्द करता है और दूसरा, बर्खास्तगी, हटाने या बर्खास्तगी का सहारा लेकर कर्मचारी/उम्मीदवार की सेवाओं को समाप्त करने का आदेश। एक अन्य सहायक मुद्दा, जो एक कर्मचारी/उम्मीदवार के आचरण से संबंधित है, अर्थात् नियुक्ति और नियुक्ति के बाद का आचरण। पहली श्रेणी में, नियुक्ति प्राप्त करते समय आचरण को धोखाधड़ी का कार्य कहा जा सकता है। दूसरी श्रेणी रोजगार के दौरान एक कदाचार को व्यक्त करती है जो निश्चित रूप से कर्मचारी के खिलाफ अनुशासनात्मक

अनुवादित

कार्रवाई करने के लिए विभागीय नियमों के दायरे में आती है, या तो छोटी सजा या बड़ी सजा के लिए प्रक्रिया का सहारा लेकर, जैसा भी मामला हो। धोखाधड़ी से नियुक्ति प्राप्त करने से संबंधित नियुक्ति रद्द करने के मामलों में, हमारे समक्ष मौजूद पक्षों ने नियमित विभागीय कार्यवाही आयोजित करने के लिए कोई नियम नहीं बनाया है। हालांकि, प्रतिद्वंद्वी पक्षों द्वारा उद्धृत निर्णय से, यह सुरक्षित रूप से पता लगाया जा सकता है कि नियुक्ति के बाद रोजगार के दौरान कदाचार के मामले में कुछ कार्य या चूक से संबंधित आचरण नियमों के अनुसार निषिद्ध या प्रतिबद्ध होने की आवश्यकता नहीं है, नियमित विभागीय कार्यवाही आयोजित की जानी है।

21. यहां, प्रस्तुत मामले में, रिट याचिकाकर्ता पर लगाए गए पूरे आरोप नियुक्ति प्राप्त करते समय प्रतिरूपण के कार्य से संबंधित हैं। उत्तरदाताओं ने फोरेंसिक विशेषज्ञ की रिपोर्ट पर भरोसा किया है, जो दिनांक 30.07.2021 और 07.12.2021 के आदेश पारित होने से पहले रिट याचिकाकर्ता को नहीं दी गई थी और कारण बताओ नोटिस जारी किए बिना प्रतिकूल आदेश पारित किए गए थे। रिट याचिकाकर्ता द्वारा चुनौती दिए जाने पर, इस न्यायालय ने दिनांक 11.04.2022 के आदेश के तहत मुकदमेबाजी के पहले दौर में हालांकि रिट याचिकाकर्ता के तर्क पर ध्यान दिया कि नियमित विभागीय जांच लागू सेवा नियमों के अनुसार की जानी चाहिए थी, लेकिन आदेश के ऑपरेटिव हिस्से में, जिसे चुनौती के तहत आदेशों को रद्द करते हुए निर्णय के पहले हिस्से में निकाला गया है, इसे उत्तरदाताओं को उन सबूतों पर भरोसा करने के बाद रिट याचिकाकर्ता के खिलाफ आगे बढ़ना चाहिए जो कानून में स्वीकार्य हो सकते हैं और रिट याचिकाकर्ता को अपना संस्करण रखने का अवसर देने का हकदार बनाया गया था और किसी भी इनपुट, जिस पर भरोसा किया जाएगा, उसे खंडन करने के लिए रिट याचिकाकर्ता को आपूर्ति की जानी थी। उक्त अवलोकन न केवल निर्णायक हैं, बल्कि आगे की कार्रवाई को भी नियंत्रित करते हैं, जिसे दिनांक 11.04.2022 के आदेश पारित होने के बाद अपनाया जाना है। यह अपीलकर्ता/रिट याचिकाकर्ता का मामला नहीं है कि उसे कारण बताओ नोटिस जारी नहीं किया गया था क्योंकि रिट याचिकाकर्ता के अनुसार, उसे 02.08.2022 को कारण बताओ नोटिस दिया गया था और उसके बाद 18.08.2022 को फोरेंसिक विशेषज्ञ की रिपोर्ट के साथ एक और दिनांक 18.08.2022 को रिट याचिकाकर्ता ने अपना जवाब दिया दिनांक 24.08.2022 को फोरेंसिक विशेषज्ञ की एक अन्य रिपोर्ट पर भरोसा करते हुए। इस प्रकार, प्रतिवादियों द्वारा मुकदमेबाजी के पहले दौर में एकल न्यायाधीश के आदेशों का अनुपालन किया गया है।

22. फिर भी, अपीलकर्ता/रिट याचिकाकर्ता द्वारा देवेंद्र कुमार चौधरी (उपरोक्त) का मामला नियमित विभागीय जांच का मामला है, जिसमें विभागीय कार्यवाही के दौरान, नियोक्ताओं ने फोरेंसिक विशेषज्ञ की रिपोर्ट पर भरोसा किया और अपराधी को उसी के लेखक से जिरह करने के अवसर से वंचित कर दिया गया और उस संदर्भ में, इस न्यायालय ने कहा कि फोरेंसिक विशेषज्ञ की रिपोर्ट केवल एक राय है और इसे एक स्वीकार्य साक्ष्य बनाने के

अनुवादित

लिए, विशेषज्ञों को जांच प्राधिकारी के समक्ष उपस्थित होना चाहिए ताकि प्रभावित व्यक्ति जिसके खिलाफ विशेषज्ञ की राय दी जा रही है, उसे जिरह करने का अवसर मिल सके। कानून के उक्त प्रस्ताव पर कोई झगड़ा नहीं है, लेकिन नियमित विभागीय जांच आयोजित करने के लिए लागू सिद्धांत नियुक्ति रद्द करने के मामले में लागू नहीं किए जा सकते हैं।

23. यहां, प्रस्तुत मामले में, कोई नियमित विभागीय जांच करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह नियुक्ति रद्द करने का मामला है। जहां तक सुभाष चंद मौर्य (उपरोक्त) के मामले पर निर्भरता का संबंध है, यह अपीलकर्ता/रिट याचिकाकर्ता के लिए भी कोई सहायता नहीं है क्योंकि यह एक ऐसा मामला था, जिसमें एक कर्मचारी की सेवाओं को समाप्त कर दिया गया था। इसी तरह, रीता यादव का मामला (उपरोक्त) भी प्रस्तुत मामले पर लागू नहीं होता है, वही विभाग में नियुक्ति प्राप्त करने के लिए जाली दस्तावेज जमा करने के आरोप से उत्पन्न बर्खास्तगी की सजा से संबंधित है।

24. अवतार सिंह (उपरोक्त) मामले में माननीय न्यायमूर्ति सर्वोच्च न्यायालय ने पूर्ववृत्त के सत्यापन के दौरान भौतिक तथ्यों को छिपाने के संबंध में जारी किए गए मुद्दे पर विचार करते हुए पैरा-35 (9) में निम्नानुसार अवलोकन किया था: -

यदि कर्मचारी की सेवा में पुष्टि हो जाती है, तो सत्यापन फॉर्म में गलत जानकारी जमा करने या गलत जानकारी जमा करने के आधार पर बर्खास्तगी या बर्खास्तगी का आदेश पारित करने से पहले विभागीय जांच करना आवश्यक होगा।

25. निष्कर्ष के रूप में पूर्वोक्त टिप्पणियां केवल दमन के आधार पर समाप्ति, हटाने या बर्खास्तगी के आदेश पारित करने या झूठी जानकारी प्रस्तुत करने से पहले एक नियमित विभागीय जांच करने तक ही सीमित हैं।

26. श्री सुरेश सिंह, अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता जो उत्तरदाताओं के लिए उपस्थित होता है, ने कहा आर विश्वनाथ पिल्लई (उपरोक्त) के मामले में एक मामला है, जिसमें यह माना गया है कि एक बार नियुक्ति झूठे प्रमाण पत्र के आधार पर प्राप्त की गई है, तो कर्मचारी एक सिविल पद धारण नहीं करता है और इस प्रकार, वह भारत के संविधान के अनुच्छेद 311(2) के तहत संरक्षण का हकदार नहीं है। देवेंद्र कुमार (उपरोक्त) के मामले में बाद के फैसले में उक्त कानून को दोहराते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि एक बार जब कोई कर्मचारी भौतिक तथ्य को छिपाते हुए नियुक्ति प्राप्त कर लेता है, तो वह कानून के तहत उपलब्ध लाभों का हकदार नहीं है। कीर्ति नारायण प्रसाद (उपरोक्त) के मामले में फैसले के संबंध में, यह भी माना जाता है कि अस्पष्ट या जाली नियुक्ति पत्रों के आधार पर की गई नियुक्ति शुरू से ही एक अवैध नियुक्ति शून्य है और इस प्रकार, ऐसे कर्मचारी के पक्ष में कोई अधिकार अर्जित नहीं होता है।

27. हाल ही में, बिहार राज्य और अन्य बनाम देवेंद्र शर्मा (2020) 15 एस.सी.सी. 466 के मामले में, माननीय न्यायमूर्ति सर्वोच्च न्यायालय ने देखा है कि जालसाजी के आधार पर की गई नियुक्ति शुरू से ही शून्य है। हाल ही में, मुख्य कार्यकारी अधिकारी, भिलाई स्टील प्लांट, भिलाई बनाम महेश कुमार गोनाडे, ए.आई.आर. 2022 एस.सी. 3356 के मामले में

अधिवक्ता

माननीय न्यायमूर्ति सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि झूठे प्रमाण पत्र के आधार पर प्राप्त नियुक्ति से कोई इक्विटी नहीं बनती है।

28. दिलचस्प बात यह है कि अपीलकर्ता/रिट याचिकाकर्ता का यह मामला नहीं है कि रिट ए संख्या-19036 वर्ष 2021 में पारित आदेश दिनांक 11.04.2022 के बाद, उसे प्रतिरूपण का दोषी ठहराने के लिए उत्तरदाताओं द्वारा भरोसा की गई फोरेंसिक रिपोर्ट की प्रति प्रदान नहीं की गई थी। यह अपीलकर्ता/रिट याचिकाकर्ता का मामला भी नहीं है कि उसे किसी भी दस्तावेज तक पहुंच से वंचित कर दिया गया था, जिसे उसके नुकसान के लिए प्रस्ताव में रखा गया था। दलीलों से आगे पता चलता है कि प्रतिवादियों के किसी भी अधिकारी के खिलाफ दुर्भावना का कोई आरोप नहीं है। मुख्य रूप से शिकायत उस विशेषज्ञ से जिरह करने का अवसर प्रदान करने के लिए है जिसकी फोरेंसिक रिपोर्ट पर भरोसा किया गया है ताकि अपीलकर्ता/रिट याचिकाकर्ता को प्रतिरूपण का दोषी ठहराया जा सके और नियमों के अनुसार नियमित विभागीय जांच की जा सके। नियुक्ति रद्द करने के मामले में नियमित विभागीय जांच आयोजित करने का प्रश्न नियमों के तहत प्रदान नहीं किया गया है, और इस प्रकार, हमारे लिए प्रतिवादियों को जांच करने का निर्देश देना उचित नहीं होगा जो नियमों के तहत नहीं माना जाता है। जहां तक विशेषज्ञ की प्रतिपरीक्षा के मुद्दे का संबंध है, जिसकी फोरेंसिक रिपोर्ट पर उत्तरदाताओं द्वारा भरोसा किया गया है, रिट याचिकाकर्ता को विशेषज्ञ से जिरह करने का अधिकार देने वाले किसी प्रावधान के अभाव में हम डरते हैं कि इस प्रकार के निर्देश जारी नहीं किए जा सकते हैं। इसके अलावा, रिट याचिकाकर्ता के लिए नियमित विभागीय जांच कराने पर जोर देना भी खुला नहीं है क्योंकि उक्त मुद्दा पहले ही रिट ए संख्या-19036 वर्ष 2021 (अंकित चौधरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 3 अन्य) में मुकदमेबाजी के पहले दौर में उठाया जा चुका था, जिसका फैसला 11.04.2022 को हुआ था और इस प्रकार, उत्तरदाताओं को नियमित विभागीय जांच करने का निर्देश देते हुए रिट याचिकाकर्ता को दी गई किसी भी प्रभावी राहत के अभाव में, उक्त निर्देश भी जारी नहीं किया जा सकता है ताकि उस विशेषज्ञ से जिरह करने के अनुरोध को स्वीकार किया जा सके जिसकी फोरेंसिक रिपोर्ट पर उत्तरदाताओं द्वारा भरोसा किया गया था।

29. अब एक सवाल उठता है कि क्या अपीलकर्ता/रिट याचिकाकर्ता द्वारा भरोसा किए गए फोरेंसिक विशेषज्ञ की रिपोर्ट पर विचार न करने से रिट कोर्ट के समक्ष आक्षेपित आदेश समाप्त हो जाएंगे या नहीं। मूल रूप से कारण बताओ नोटिस जारी करने का उद्देश्य दूसरे व्यक्ति को उन आरोपों के बारे में अवगत कराना है जो उसे मिलने हैं, जिससे दूसरे पक्ष को प्रभावी ढंग से अपना जवाब प्रस्तुत करने की आवश्यकता होती है। यहां प्रस्तुत मामले में कारण बताओ नोटिस जारी करने के बाद, रिट याचिकाकर्ता ने 07.09.2022 को फोरेंसिक विशेषज्ञ की रिपोर्ट दिनांक 24.08.2022 के साथ अपना जवाब प्रस्तुत किया, जिसमें उत्तरदाताओं द्वारा भरोसा किए गए फोरेंसिक विशेषज्ञ की रिपोर्ट की शुद्धता, विश्वसनीयता और सटीकता पर विवाद था। एक बार विशेषज्ञ की फोरेंसिक रिपोर्ट के आधार पर इस तरह का बचाव किया गया है, तो प्राकृतिक न्याय के

अनुवादित

सिद्धांतों के अनुसार प्राधिकरण को नोटिस प्राप्तकर्ता द्वारा उठाए गए तर्कों पर विचार करने के बाद निर्णय लेने की आवश्यकता होती है। दूसरे प्रतिपक्षी के दिनांक 07.10.2022 के आदेश से पता चलता है कि उक्त प्रक्रिया में कमी है। न्यायालय की राय में, दूसरे प्रतिपक्षी, यू.पी. पुलिस भर्ती और पदोन्नति बोर्ड, लखनऊ को अंतिम निष्कर्ष पर पहुंचने के दौरान उक्त मुद्दे पर विचार करने और संबोधित करने की आवश्यकता थी कि दो रिपोर्टों में से कौन सी रिपोर्ट, अपीलकर्ता/रिट याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत की गई और दूसरी उत्तरदाताओं द्वारा प्राप्त की गई, प्रतिरूपण के कार्य के कमीशन की एक निश्चित और निर्णायक राय बनाते समय ध्यान में रखा जाना था। चूंकि उक्त अभ्यास नहीं किया गया है, हम पाते हैं कि कानून के लिए ज्ञात प्रक्रिया का दूसरे प्रतिपक्षी, यू.पी. पुलिस भर्ती और पदोन्नति बोर्ड, लखनऊ द्वारा अनुपालन नहीं किया गया है।

30. तदनुसार, रिट ए संख्या-22096 वर्ष 2022 में पारित एकल न्यायाधीश के दिनांक 28.02.2023 के निर्णय और आदेश के साथ-साथ दूसरे प्रतिपक्षी, अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश पुलिस भर्ती एवं प्रोन्नति बोर्ड, लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 07.10.2022 को रद्द किया जाता है। इस मामले को दूसरे प्रतिपक्षी, उत्तर प्रदेश पुलिस भर्ती एवं प्रोन्नति बोर्ड, लखनऊ को वापस भेज दिया जाता है, ताकि ऊपर की गई टिप्पणियों के आलोक में, कानून के अनुसार एक तर्कसंगत और आख्यापक आदेश पारित करके, अधिमानतः आदेश की प्रमाणित प्रति के उत्पादन की तारीख से दो महीने की अवधि के भीतर अधिमानतः इसे फिर से देखा जा सके।

31. आगे यह प्रदान किया गया है कि दूसरे प्रतिपक्षी, उत्तर प्रदेश पुलिस भर्ती और पदोन्नति बोर्ड, लखनऊ के एकल न्यायाधीश दिनांक 28.02.2023 और 07.10.2022 के निर्णय और आदेशों को रद्द करते हुए, यह नहीं माना जाएगा कि अपीलकर्ता/रिट याचिकाकर्ता बहाली और परिणामी लाभों के अनुदान का, यदि कोई हो, हकदार होगा, जो दूसरे प्रतिपक्षी द्वारा पारित किए जाने वाले नए आदेश के अंतिम परिणाम के अधीन होगा।

32. पूर्वोक्त अवलोकन के साथ, आंशिक रूप से विशेष अपील की अनुमति दी जाती है।

(2023) 6 ILRA 838

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 30.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया

रिट-सी संख्या 581/2010

नानकू एवं अन्य याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता: डॉ. एल.पी. मिश्रा, श्री राजीउ कुमार त्रिपाठी

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी., श्री जय कुमार, श्री पंकज गुप्ता, श्री वाई.के. मिश्रा

सिविल कानून- सिविल कानून- सिविल प्रक्रिया संहिता-1908-आदेश 9 नियम 13, आदेश 17 नियम 2- सामान्य नियम सिविल-89-ए- संबंधित न्यायालय के आदेश पत्र से पता चलता है कि हस्तांतरित न्यायालय ने कोई

अनुवादित

संतुष्टि दर्ज नहीं की है कि प्रतिवादियों को जीआरसी के नियम 89-ए के उप-नियम 4 के अनुसार स्थानांतरण के बारे में सूचित किया गया था- यदि "किसी भी पक्ष" का साक्ष्य या साक्ष्य का पर्याप्त हिस्सा पेश किया गया है और "ऐसा पक्ष" किसी भी तारीख को उपस्थित होने में विफल रहता है, जिस पर मुकदमे की सुनवाई स्थगित हो जाती है, तो उस स्थिति में, आदेश 9 नियम 13 सीपीसी के तहत उक्त पक्ष की ओर से आवेदन बनाए रखने योग्य नहीं होगा। अभिव्यक्ति "कोई भी पक्ष" और अभिव्यक्ति "ऐसा पक्ष" प्रासंगिक हैं। इस मामले में, गांव सभा का साक्ष्य राजस्व न्यायालय अपर अधिकारी-प्रथम, जिला बहराइच (स्थानांतरित न्यायालय) में 26.05.1995 को दर्ज किया गया था, लेकिन मूल वादी-देवता दीन की पुत्रवधू गांव सभा की साक्षी को राजस्व न्यायालय अपर अधिकारी-प्रथम, बहराइच में मामले के लंबित होने के बारे में कैसे पता चला, यह अभिलेखों से स्पष्ट नहीं है, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है। हालांकि, उत्तर प्रदेश के संत (मुकदमे में प्रतिवादी) का साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया।

विवादित मामले के हस्तांतरण के बारे में कोई नोटिस कभी भी तामील या प्राप्त या जारी या अधिसूचित नहीं किया गया था और उत्तर प्रदेश के संत (प्रतिवादियों में से एक) के गवाह का बयान, जिसने अलग से लिखित बयान दाखिल किया था, दर्ज नहीं किया गया था, इस प्रकार आवेदन आदेश 9 नियम 13 सीपीसी के तहत पोषणीय था और संबंधित पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा सही रूप से अनुमति दी गई और पुष्टि की गई।

याचिका खारिज। (ई-15)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. जी. रत्न राज (मृत) कानूनी प्रतिनिधियों बनाम श्री मुथुकुमारसामी परमानेंट फंड लिमिटेड और अन्य 2019 (11) एससीसी 301 में रिपोर्ट किया गया।
2. श्री पीताम्बर प्रसाद बनाम सोहन लाल और अन्य 1956 एससीसी ऑनलाइन ऑल 182 में रिपोर्ट किया गया।
3. एम.एस. खालसा बनाम चिरंजी लाल ने 1975 एससीसी ऑनलाइन ऑल 364 में रिपोर्ट की।
4. प्रकाश चंदर मनचंदा और अन्य बनाम जानकी मनचंदा ने एआईआर 1987 एससी 42 में रिपोर्ट की
5. बलबीर सिंह चौहान बनाम विजय कुमार अग्रवाल की रिपोर्ट 1986 में एससीसी ऑनलाइन ऑल 694
6. अक्तारयार खान बनाम अज़हर यार खान की रिपोर्ट 1993 एससीसी ऑनलाइन ऑल 156 में दी गई
7. सिकंदर बनाम अखलाक 2008 एससीसी ऑनलाइन ऑल 140 में रिपोर्ट किया गया
8. 2012 की रिट याचिका संख्या 1899 (एमएस) (जग्गन नाथ और अन्य बनाम जिला न्यायाधीश, बाराबंकी और अन्य)
9. अनामिका मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2019 एससीसी ऑनलाइन सभी 4599 में रिपोर्ट की गई

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया द्वारा वितरित)

याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री राजिउ कुमार त्रिपाठी की सहायता से बार के विद्वान वरिष्ठ सदस्य डॉ. एल.पी. मिश्रा

अनुवादित

और उत्तर प्रदेश राज्य के विद्वान अधिवक्ता श्री हेमन्त कुमार पांडे, साथ ही संबंधित प्रतिवादी संख्या 7/भूमि प्रबंधन समिति के विद्वान अधिवक्ता श्री पंकज गुप्ता की भी बात सुनी गई।

प्रारंभ में, वर्तमान याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रतिवादी संख्या 4-तहसीलदार, महसी, जिला-बहराइच द्वारा पारित दिनांक 22.12.2009 के आदेश, जिसके अंतर्गत तहसीलदार, महसी ने आसपास के राजस्व निरीक्षक को भूमि (आदेश में उल्लिखित गाटा) का कब्जा लेने का और पात्र व्यक्तियों को भूमि आवंटन का प्रस्ताव रखने निर्देश दिया था, की आलोचना की गई है और परिणामी राहत की भी मांग की गई। इसके पश्चात याचिका में संशोधन किया गया। यह क्रमशः प्रतिवादी संख्या 9-आयुक्त, देवी पाटन मंडल, गोंडा और प्रतिवादी संख्या 10-उप प्रभागीय मजिस्ट्रेट, बहराईच द्वारा पारित दिनांक 14.12.2009 और 24.02.2010 के आदेशों की आलोचना करने के उद्देश्य से था।

आक्षेपित आदेश दिनांक 14.12.2009 द्वारा, प्रतिवादी संख्या 10-उप प्रभागीय मजिस्ट्रेट, बहराईच ने सीपीसी के आदेश 9 नियम 13 के अंतर्गत अधिमान्य, डी.जी.सी. राजस्व, जिला-बहराइच के माध्यम से यू.पी राज्य एवं ग्राम सभा-बभनौटी शंकरपुर के दिनांक 27.03.2008 के आवेदन एवं मामले की बहाली के लिए एक और आवेदन, जो राजित राम नामक व्यक्ति द्वारा दाखिल किया गया था, को अनुमति दी। दिनांक 14.12.2009 के आदेश को याचिकाकर्ताओं ने पुनरीक्षण संख्या 130 में चुनौती दी थी, जो कि यू.पी जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (संक्षेप में "1950 का अधिनियम") की धारा 333 के अन्तर्गत दाखिल किया गया था। डी.जी.सी. राजस्व द्वारा प्रस्तुत आवेदन के संबंध में याचिकाकर्ताओं द्वारा दाखिल पुनरीक्षण को दिनांक 24.02.2010 के आक्षेपित आदेश द्वारा निरस्त कर दिया गया।

यहां यह बताना अनुचित नहीं होगा कि सीपीसी के आदेश 9 नियम 13 के अंतर्गत आवेदन दाखिल करने में सीमा से संबंधित मुद्दे को इस न्यायालय के समक्ष नहीं रखा गया है। यह, इस तथ्य के दृष्टिकोण से है कि पुनरीक्षण संख्या 131 दिनांक 07.12.2009 के आदेश को चुनौती देते हुए दाखिल किया गया था जिसके अन्तर्गत संबंधित एस.डी.ओ. ने अवलोकन किया कि परिसीमा के मुद्दे पर, अंतिम आदेश पारित करने के चरण में विचार किया जाएगा। इसके पश्चात, दोनों संशोधनों को एक साथ जोड़ दिया गया और पुनरीक्षण प्राधिकारी/प्रतिवादी संख्या 9-आयुक्त, देवी पाटन मंडल, गोंडा द्वारा सामान्य आदेश दिनांक 24.02.2010 द्वारा निस्तारित किया गया।

इस स्तर पर, यह न्यायालय वर्तमान याचिका में मांगी गई मुख्य राहत(राहतों) को दोबारा प्रस्तुत करना उचित समझता है:-

> *"(i) जैसा कि अनुलग्नक संख्या 19 में निहित है, तहसीलदार, महसी, जिला बहराईच द्वारा पारित दिनांक 22.12.2009 के आक्षेपित आदेश को अपास्त करते हुए, उत्प्रेषण की प्रकृति में एक*

अप्रमाणित

रिट आदेश या निर्देश जारी करें।

(i)(ए) प्रतिवादी संख्या 9 और 10 द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 14.12.2009 और 24.02.2010 के आक्षेपित आदेशों को अपास्त करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें जैसा कि क्रमशः अनुलग्नक संख्या 15 और 25 में निहित है।

(ii) परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें, जिसमें विरोधी पक्षों को विधि के नियमों का पालन करने और उसे लागू करने का आदेश दिया जाए और आयुक्त, देवीपाटन मण्डल, गोण्डा द्वारा पुनरीक्षण संख्या 366 में धारा 333 उ.प्र. जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 दिनांक 21.12.2009 को पारित आदेश के उल्लंघन में कार्य न किया जाए और ग्राम बभनौटी शंकरपुर, परगना-फखरपुर, तहसील-महसी, जिला-बहराइच में स्थित खाता संख्या 172, की विवादित जमीन पर याचिकाकर्ता किसानों के शांतिपूर्ण कब्जे और खड़ी फसल की कटाई में हस्तक्षेप न किया जाए।

(iii) परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें, जिसमें विरोधी पक्षों को आदेश दिया जाए कि वे खड़ी फसलों और पेड़ों को नष्ट न करें और याचिकाकर्ताओं को गांव बभनौटी शंकरपुर, परगना-फखरपुर, तहसील-महसी, जिला-बहराइच में स्थित खाता नंबर 172 की विवादित भूमि से बेदखल न करें। और, इस प्रकार, वाद की लम्बित अवधि के दौरान आवंटन की कार्यवाही जारी न रखें।"

कहने की आवश्यकता नहीं है कि दिनांक 28.03.2023 के आदेश के अन्तर्गत मामले का मूल अभिलेख मंगवाया गया था, जो इस न्यायालय के समक्ष है।

मामले के तथ्य, जो मामले के निस्तारण के प्रयोजनों के लिए प्रासंगिक हैं, संक्षेप में इस प्रकार हैं: -

(i) मूल वादी अर्थात् पूर्ववर्ती देवता दीन द्वारा 1950 के अधिनियम की धारा 229-बी के अंतर्गत याचिकाकर्ताओं के हित में घोषणा के लिए एक वाद संख्या 881/194/143 (संक्षेप में "वाद") दाखिल किया गया था।

(ii) वाद में गोपाल सिंह, ग्राम प्रधान के माध्यम से ग्राम सभा-बभनौटी शंकरपुर, परगना-फखरपुर, तहसील-महसी, जिला-बहराइच को पक्षकार बनाया गया है एवं जिलाधिकारी,बहराइच के माध्यम से उ.प्र. राज्य को पक्षकार बनाया गया है।

अनुवादित

(iii) जैसा कि अभिलेख से प्रतीत होता है , वाद सहायक उपमंडल अधिकारी (के) के समक्ष दाखिल किया गया था, 'के' का तात्पर्य 'कैसरगंज', जिला-बहराइच से है।

(iv) अभिलेख से प्रकट होता है कि सूचना की तामील के पश्चात, ग्राम सभा द्वारा लिखित बयान दाखिल किया गया था, जिस पर गोपाल सिंह, ग्राम प्रधान के हस्ताक्षर हैं। ग्राम सभा के लिखित बयान से यह भी प्रतीत होता है कि वादी मामले का विरोध किया गया था।

(v) शिव नारायण सिंह, एडवोकेट पैनल अधिवक्ता / उप डी.जी.सी. (मॉल) के हस्ताक्षर वाला एक अन्य लिखित बयान भी दाखिल किया गया था जिससे भी यह प्रतीत होता है कि वादी मामले का विरोध किया गया था। यह लिखित बयान, जैसा कि अभिलेख से प्रतीत होता है, एक प्रारूप लिखित बयान है और इसमें गांव सभा का नाम नहीं दर्शाया गया है।

(vi) उपरोक्त तथ्यों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मूल वादी देवतादीन के दावे का विरोध करते हुए एक लिखित बयान ग्राम सभा द्वारा दाखिल किया गया था और दूसरा लिखित बयान यू.पी. राज्य द्वारा दाखिल किया गया था।

(vii) इस स्तर पर, यह इंगित करना उचित होगा कि अभिलेख से, ऐसा प्रतीत होता है कि वकालतनामा ग्राम सभा की ओर से कुछ अधिवक्ताओं द्वारा दाखिल किया गया था।

(viii) अभिलेख से यह भी से प्रकट होता है कि देवता दीन द्वारा दाखिल अधिनियम 1950 की धारा 229-बी के अन्तर्गत अधिकारों की घोषणा का मामला कई अवसरों पर स्थानांतरित किया गया था और वाद आगे बढ़ाया गया था। हालाँकि, इस न्यायालय के विचार में, ये तथ्य और तारीखें प्रासंगिक नहीं हैं। पिछली कुछ तारीखें और उक्त तारीखों पर पारित आदेश प्रासंगिक हैं। यह इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए है कि मामले में अंतिम निर्णय दिनांक 31.05.1995 से पहले, जिसे आदेश दिनांक 14.12.2009 के माध्यम से वापस ले लिया गया था, मामला एस.डी.ओ. (के) के राजस्व न्यायालय में स्थानांतरित कर दिया गया था और उसके पश्चात, अतिरिक्त अधिकारी प्रथम, बहराईच के राजस्व न्यायालय में, जिन्होंने दिनांक 31.06.1995 को अंतिम आदेश पारित किया और यू.पी. राज्य और गांव सभा की दलीलों में से एक कि आवेदकों को संबंधित राजस्व न्यायालय में वाद के लंबित होने के बारे में जानकारी नहीं थी, ने वाद में पारित अंतिम आदेश दिनांक 31.05.1995 को वापस लेने के लिए सीपीसी के आदेश 9 नियम 13 के अन्तर्गत आवेदन दाखिल की। आवेदन का उक्त प्रासंगिक भाग इस प्रकार है।

"सेवा में निवेदन है कि वाद इब्तिदाई श्रीमानजी की न्यायालय से दिनांक *31.05.95* ई० को एक

पक्षीय रूप से निर्गत हुई है उक्त वाद की कोई जानकारी आवेदक गण किसी भी प्रकार विधिक रूप से नहीं हुई"

(ix) एक तथ्य, जो दिनांक 14.12.2009 के आक्षेपित आदेश से प्रकट होता है, वह यह है कि गवाहों के बयानअभिलिखित करने और दिनांक 31.05.1995 को अंतिम आदेश पारित करने के समय, मूल वादी देवता दीन का पुत्र , याचिकाकर्ता संख्या 4,लल्लन (जिसे वाद में

अनुवादित

प्रतिस्थापित किया गया था) संबंधित गांव का प्रधान था और उसकी पत्नी श्रीमती रमा देवी उपप्रधान थी जिन्होंने अपने बयान में वादी मामले का समर्थन किया, जो अतिरिक्त अधिकारी प्रथम, बहराईच के राजस्व न्यायालय में मामले के स्थानांतरण के पश्चात दिनांक 26.05.1995 को अभिलिखित किया गया था।

(x) इस न्यायालय के विचार में, मामले में पारित प्रासंगिक आदेश (आदेशों) का प्रभाव, पुनरुत्पादन पर निम्नानुसार हैं:-

"31.01.95

प्रस्तुत। वादी हाजिर न्यायालय पत्रावली SDO (K) के नयायालय में स्थानान्तरण हेतु प्रस्तुत हुई।

अतः आदेश हुआ कि पत्रावली 12.02.95 को पेश हो।

12.02.95 .....

8.3.95

.....

29.03.85

.....

1.4.95

.....

11.4.95

.....

29.4.95

.....

13.5.95

.....

14.5.95

.....

15.5.95

.....

17.5.95

.....

प्रस्तुत। पुकार कराई गई पक्ष हाजिर आये। P.W. 1 रामहेतु व PW 2 ननकऊ का बयान कराया गया साक्ष्य समाप्त।

अतः प्रतिवादी साक्ष्य हेतु दिनांक 26.5.95 पेश हो।

ह० अपठनीय

जिलाधिकारी महोदय के आदेश दि० 05.5.95 के अनुपालन में पत्रावली अति० अधि० प्रथम के न्यायालय पर हस्तान्तरित की जाती है पक्ष दिनांक 26.5.95 अति० अधि० प्रथम के न्याया० पर उपस्थित हों।

ह० अपठनीय

20.1.95

26.5.95

पत्रावली न्यायालय **SDO**(महसी) से प्राप्त होकर पेश हुई। पुकार कराई गई-

द्वितीय पक्ष की तरफ से प्रधान गांव **अपठनीय** के साक्ष्य अंकित किए गए सा० समाप्त हुए।

पत्रावली वास्ते बहस दिनांक 28.5.95 को पेश हो।

ह० अपठनीय

28.5.95

प्रस्तुत। पुकार पर वादी मय अधिवक्ता हाजिर आए। बहस सुनी गयी।

पत्रावली वास्ते आदेश दि० 31.5.95 को पेश हो।

अनुवादित

ह० अपठनीय

31.5.95

पत्रावली पेश हुई। बहस हो चुकी है। मैंने पत्रावली का अध्ययन मनन कर अवलोकन किया। दावा वादी डिकी किया जाता है। 2 किता आदेश संलग्न पत्रावली है। वाद आवश्यक कार्यवाही पत्रावली दाखिल दफ्तर हो।

० अपठनीय

EO-I

31.5.95"

(xi) ऊपर उद्धृत आदेशों सहित मामले की आदेश पत्र से जो प्रतिबिंबित होता है, वह इस प्रकार है:-

(ए) दिनांक 31.01.1995 के आदेश से ऐसा प्रतीत होता है कि सम्बंधित वाद की पेपर बुक दिनांक 31.01.1995 को एस.डी.ओ., महसी के न्यायालय में, एस.डी.ओ. (के) से प्राप्त हुई थी, 'के' का तात्पर्य 'कैसरगंज' से है।

(बी) एस0डी0ओ0, महसी के राजस्व न्यायालय में पत्रावली प्राप्त होने के पश्चात अलग-अलग तिथियों पर पक्षकार उपस्थित हुए तथा दिनांक 17.05.1995 को पी0डब्लू0-1/रामहेतु एवं पी0डब्लू0-2/ननकऊ का बयानअभिलिखित किया गया तथा प्रतिवादी/विपक्षी पक्ष की गवाही हेतु दिनांक 26.05.1995 को वाद नियत किया गया।

(सी) जिला मजिस्ट्रेट द्वारा दिनांक 05.05.1995 को पारित आदेश के अन्तर्गत, वाद एस.डी.ओ., महसी, जिला-बहराइच के राजस्व न्यायालय से अतिरिक्त अधिकारी प्रथम, जिला-बहराइच के राजस्व न्यायालय को स्थानांतरित कर दिया गया था और उसी के आधार पर आदेश पत्र तैयार किया गया जिसमें दोनों पक्षों को अतिरिक्त अधिकारी प्रथम, जिला-बहराइच के राजस्व न्यायालय के समक्ष दिनाँक 26.05.1995 को उपस्थित होने का निर्देश दिया गया था और यह आदेश दिनाँक 21.01.1995 को पारित किया जाना प्रतीत होता है।

(डी) दिनाँक यानि 21.01.1995, का उल्लेख अनजाने में किया गया प्रतीत होता है। तथ्य(यों) को ध्यान में रखते हुए आदेश दिनांक 31.01.1995 से पता चलता है कि सम्बंधित वाद की पेपरबुक, एस.डी.ओ., (के) के राजस्व न्यायालय से एस.डी.ओ., महसी के राजस्व न्यायालय में दिनाँक 31.01.1995 प्राप्त हुई थी और दिनाँक 17.05.1995 को पीडब्लू-1 एवं पीडब्लू-2 के गवाहों के बयान अभिलिखित किये गये। इस प्रकार, ऐसा प्रतीत होता है कि दिनांकित 05.05.1995 को जिला मजिस्ट्रेट द्वारा मामले का स्थानांतरण सम्बन्धी पारित आदेश प्रतिवादियों/विपक्षी पक्षों के साक्ष्यअभिलिखित करने के लिए दिनाँक 17.05.1995 को की गई कार्यवाही से पहले प्राप्त नहीं हुई जिसमें अगली तिथि 26.05.1995 को_नियत की गई। यदि यह 17.05.1995 से पहले प्राप्त हुआ होता तो उस स्थिति में गवाहों के बयान 17.05.1995 को अभिलिखित नहीं किए जाते ।

(ई) जिला मजिस्ट्रेट के दिनांक 05.05.1995 का आदेश, प्रकरण में नियत दिनांक 17.05.1995 से 26.05.1995 के बीच एस.डी.ओ., महसी के राजस्व न्यायालय में प्राप्त नहीं हुआ तथा जिला मजिस्ट्रेट का दिनांक 05.05.1995 का आदेश प्राप्त होने पर 21.01.1995 (गलत तरीके से इंगित) की तिथि वाला एक आदेश पारित किया गया जिसमें मामले को अतिरिक्त अधिकारी प्रथम, बहराईच

अनुवादित

के राजस्व न्यायालय में स्थानांतरित करते हुए, पक्षों को दिनांक 26.05.1995 को अतिरिक्त अधिकारी प्रथम के राजस्व न्यायालय में उपस्थित होने का निर्देश दिया गया, जो कि दिनांक 17.05.1995 के आदेश द्वारा पहले से ही निर्धारित तिथि थी।

(एफ) उपरोक्त से, यह स्पष्ट है कि दिनांक21.01.1995 को (गलत तरीके से इंगित), पक्ष उपस्थित नहीं थे और तदनुसार, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पक्षों को मामले के स्थानांतरण के बारे में जानकारी नहीं थी।

(जी) अतिरिक्त अधिकारी प्रथम के राजस्व न्यायालय में मामले के स्थानांतरण के संबंध में न तो सूचना जारी किया गया, न ही सूचित किया गया और न ही अतिरिक्त अधिकारी प्रथम के न्यायालय में मामले के स्थानांतरण और लंबित होने के संबंध में एस.डी.ओ., महसी या अतिरिक्त अधिकारी प्रथम द्वारा पक्षों को सूचित किया गया।

(एच) दिनांक 26.05.1995 को, वाद के एक प्रतिवादी अर्थात् "ग्राम सभा" की गवाह (श्रीमती रमा देवी, मूलवादी-देवता दीन की बहू) का बयानअभिलिखित किया गया था, लेकिन संबंधित राजस्व न्यायालयों द्वारा तैयार की गई आदेश पत्र /कार्यवाही में यह स्पष्ट नहीं है कि कैसे और किस तरीके से, प्रतिवादी-गांव सभा की यह गवाह अर्थात श्रीमती रमा देवी पत्नी लल्लन पुत्र देवता दीन (मूल वादी), जिन्होंने वादी मामले का समर्थन किया था, को अतिरिक्त अधिकारी प्रथम के राजस्व न्यायालय में मामले के लंबित होने के बारे में पता चला।

(आई) न्यायालय द्वारा दिनांक 31.01.1995 से 31.05.1995 तक तैयार आदेश पत्र पर गांव सभा का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता और यू.पी. राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता के भी हस्ताक्षर नहीं हैं।

मामले की उपरोक्त पृष्ठभूमि में, श्री राजिउ कुमार त्रिपाठी, याचिकाकर्ताओं का प्रतिनिधित्व कर रहे विद्वान अधिवक्ता द्वारा सहायता प्राप्त बार के विद्वान वरिष्ठ सदस्य डॉ. एल.पी. मिश्रा ने कहा कि सीपीसी के आदेश 9 नियम 13 के अंतर्गत दिनांक 31.05.1995 के आदेश को वापस लेने के लिए दो आवेदन प्रस्तुत किए गए थे। एक राजित राम के माध्यम से गांव सभा द्वारा और दूसरा डी.जी.सी. राजस्व द्वारा, जो इंगित करता है कि इसे यू.पी. राज्य और ग्राम सभा द्वारा प्राथमिकता दी गई थी। इन दोनों आवेदनों को प्रतिवादी क्रमांक 10/उपविभागीय मजिस्ट्रेट, बहराईच द्वारा दिनांक 14.12.2009 के आक्षेपित आदेश द्वारा अनुमति दी गई थी जो हालाँकि, सीपीसी के आदेश 17 के नियम 2 के स्पष्टीकरण के दृष्टिकोण से और सीपीसी के आदेश 9 नियम 6 को सीपीसी के आदेश 17 नियम 1 और 2 के साथ पढ़ने पर, जो विशेष रूप से उसी का स्पष्टीकरण है, सीपीसी के आदेश 9 नियम 13 के अंतर्गत पोषणीय नहीं थे। इसी कारण से वाद एस.डी.ओ. (के) से एस.डी.ओ., महसी के न्यायालय को स्थानांतरित कर दिया गया, जैसा कि आदेश दिनांक 31.01.1995 से प्रतीत होता है, जो संबंधित प्राधिकारी के अभिलेख पर उपलब्ध है और उक्त स्थानांतरण के पश्चात प्रतिवादियों के बयान/साक्ष्यअभिलिखित करने के लिए

अनुवादित

दिनांक 26.05.1995 की तिथि नियत करते हुए दिनांक 17.05.1995 को पीडब्लू-1 और पीडब्लू-2 के बयान अभिलिखित किए गए और उसके पश्चात, यद्यपि मामला एस.डी.ओ. महसी के न्यायालय से अतिरिक्त अधिकारी, प्रथम के राजस्व न्यायालय में स्थानांतरित कर दिया गया था जैसा कि आदेश पत्र दिनांक 26.05.1995 से प्रतीत होता है फिर भी वाद के प्रतिवादी अर्थात् संबंधित ग्राम सभा का साक्ष्य दिनांक 26.05.1995 को ही अभिलिखित किया गया था। और सीपीसी के आदेश 17 नियम 2 के साथ संलग्न स्पष्टीकरण से पता चलता है कि यदि पक्षकार द्वारा उसकी ओर से पर्याप्त साक्ष्य जोड़े गए हैं तो सीपीसी के आदेश 9 नियम 13 के अंतर्गत आवेदन पोषणीय नहीं होगा।इस प्रकार, उप विभागीय मजिस्ट्रेट द्वारा दिनांक 14.12.2009 को पारित आदेश धारणीय नहीं है।

आगे प्रस्तुतीकरण यह है कि दिनांक 14.12.2009 के आदेश को पुनरीक्षण संख्या 130 और 131 के माध्यम से पुनरीक्षण प्राधिकरण के समक्ष चुनौती दी गई थी। पुनरीक्षण प्राधिकरण ने 24.02.2010 के एक आदेश द्वारा पुनरीक्षण का निर्णय लिया, जो इस याचिका में भी विवादित है। इस आदेश का कार्यकारी भाग इंगित करता है कि प्रतिवादी/राजित राम के विरुद्ध पुनरीक्षण की अनुमति दी गई और इसे ही यू.पी. राज्य और ग्राम सभा की ओर से डी.जी.सी, राजस्व द्वारा दिनांक 27.03.2008 को दिए गए आवेदन के क्रम में सीपीसी के आदेश 9 नियम 13 अंतर्गत निरस्त कर दिया गया,जिसे दिनांक 14.12.2009 के आदेश द्वारा अनुमति दी गई थी।

श्री मिश्र ने आगे कहा कि मामले का उपरोक्त पहलू, जो इस तथ्य पर आधारित है कि मामले को एस.डी.ओ., महसी से अतिरिक्त अधिकारी, प्रथम, बहराईच को स्थानांतरित करने के पश्चात प्रतिवादी-गांव सभा के पर्याप्त साक्ष्यअभिलिखित किए गए थे और तदनुसार,सीपीसी के आदेश 9 नियम 13 के अंतर्गत आवेदन पोषणीय नहीं था, की पुनरीक्षण प्राधिकरण द्वारा अनदेखी की गई थी, हालांकि, इस पर विचार किया जाना चाहिए था। इस प्रकार, दिनांक 24.02.2010 का आदेश भी इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप के लिए उत्तरदायी है।

श्री मिश्रा ने मामले की खूबियों पर कुछ तथ्यों का भी संकेत दिया, जिसमें मूल वादी-देवता दीन के विरुद्ध दो बार कार्यवाही शुरू करने का संबंध भी शामिल है, जो कि 1950 के अधिनियम की धारा 229-बी के अंतर्गत गांव सभा द्वारा शुरू की गई थी। इस न्यायालय की दृष्टि में, मामले के तथ्यात्मक पहलू पर विचार करना आवश्यक नहीं है। यह वर्तमान मामले में शामिल मुद्दे को ध्यान में रखते हुए है। इस प्रकार, तर्कों के उक्त भाग को इस निर्णय का भाग नहीं बनाया जा रहा है।

श्री मिश्रा ने अपने तर्क (तर्कों) के समर्थन में मामले में पारित निम्नलिखित निर्णय (निर्णयों) का आश्रय लिया है: -

1. 2019 (11) एससीसी 301 में रिपोर्ट किया गया **विधिक प्रतिनिधियों द्वारा जी. रत्ना राज (मृत) बनाम श्री मुथुकुमारसामी परमानेंट फंड लिमिटेड और एक अन्य।**

अनुवादित

2. (2003) 5 एससीसी 641 में रिपोर्ट किया गया **बी जानकीरमैया चेट्टी बनाम ए.के. पार्थसारथी और अन्य**।

3. 1956 एससीसी ऑनलाइन ऑल 182 में रिपोर्ट किया गया **श्री पीताम्बर प्रसाद बनाम सोहन लाल और अन्य**।

4. [2018 (138) आरडी 282] में रिपोर्ट किया गया **श्रीमती सरोज और अन्य बनाम यू.पी. राज्य और अन्य**।

5. (2004) 1 एससीसी 769 में रिपोर्ट किया गया **एलआर द्वारा रामे गौड़ा (मृत) बनाम एलआर द्वारा एम. वरदप्पा नायडू (मृत) और एक अन्य**।

6. (1977) 1 एससीसी 188 में रिपोर्ट किया गया **राम रतन और अन्य बनाम. यूपी राज्य**।

7. दीवानी अपील संख्या 4257/2009 [एलआरएस के माध्यम से पूना राम बनाम मोती राम (मृत) और अन्य]

8. (1975) 4 एससीसी 518 में रिपोर्ट किया गया **पूरन सिंह एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य**।

9. (2022) 2 एससीसी 573में रिपोर्ट किया गया **इलेक्ट्रोस्टील कास्टिंग्स लिमिटेड बनाम यूवी एसेट रिकंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड और अन्य**।

10. 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1063 में रिपोर्ट किया गया **माई पैलेस म्युचुअली एडेड को-ऑपरेटिव सोसायटी बनाम बी. महेश और अन्य**।

11. 1975 एससीसी ऑनलाइन ऑल 364 में रिपोर्ट किया गया **एम.एस. खालसा बनाम. चिरंजी लाल**।

इस न्यायालय के दृष्टिकोण में, निम्नलिखित निर्णयों का संदर्भ पर्याप्त होगा क्योंकि ये तत्काल मामले में उठाए गए/शामिल मुद्दे पर हैं, जो सीपीसी के आदेश 17 नियम 2 के स्पष्टीकरण पर आधारित है।

(i) विधिक प्रतिनिधियों द्वारा जी. रत्ना राज (मृत) बनाम श्री मुथुकुमारसामी परमानेंट फंड लिमिटेड और एक अन्य जिसे **2019 (11) एससीसी 301** में रिपोर्ट किया गया।

(ii) श्री पीताम्बर प्रसाद बनाम सोहन लाल और अन्य जिसे **1956 एससीसी ऑनलाइन ऑल 182** में रिपोर्ट किया गया।

(iii) एम.एस. खालसा बनाम चिरंजी लाल जिसे **1975 एससीसी ऑनलाइन ऑल 364** में रिपोर्ट किया गया।

श्री मिश्र द्वारा संदर्भित **जी. रत्न राज (मृत)** (उपरोक्त) के मामले में पारित निर्णय के प्रासंगिक अनुच्छेद इस प्रकार हैं:-

> **"14.** हमारी राय में, इन अपीलों में शामिल प्रश्न को संहिता के आदेश 9 नियम 6(1)(ए) और आदेश 17 नियम 2 और 3 के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए निस्तारित किया जाना आवश्यक है।
>
> "
>
> **आदेश 9 नियम 6(1)(ए)**
>
> **6. प्रक्रिया जब केवल वादी उपसंजात होता है-** (1) जहां वाद की सुनवाई के लिए पुकार होने पर वादी उपसंजात होता है और प्रतिवादी उपसंजात नहीं होता है वहां-

अनुवादित

(ए) जब समन की तामील सम्यक् रूप से की गई है - यदि यह साबित हो जाता है कि समन की तामील सम्यक् रूप से की गई थी तो न्यायालय आदेश कर सकेगा कि वाद की एकपक्षीय सुनवाई की जाए ,"

15. नियम 6(1)(ए) में प्रावधान है कि जहां वाद की सुनवाई के लिए पुकार होने पर वादी उपसंजात होता है और प्रतिवादी उपसंजात नहीं होता है वहां यदि समन की तामील प्रतिवादी को सम्यक् रूप से की गई है तो न्यायालय आदेश दे सकता है कि वाद की एकपक्षीय सुनवाई की जाए ,

16. आदेश 17 नियम 2 और 3 इस प्रकार पढ़ें:

आदेश 17 नियम 2 और 3

2. प्रक्रिया यदि पक्षकार नियत दिन पर उपसंजात होने में असफल रहते है- वाद की सुनवाई जिस दिन के लिए स्थगित हुई है, यदि उस दिन पक्षकार या उनमें से कोई उपसंजात होने में असफल रहते हैं, तो न्यायालय आदेश 9 द्वारा उस निमित्त निदिष्ट उपायों में से एक से वाद का निस्तारण करने के लिए अग्रसर हो सकेगा या ऐसा अन्य आदेश कर सकेगा जो वह ठीक समझे।

स्पष्टीकरण- जहाँ किसी पक्षकार का साक्ष्य या साक्ष्य का पर्याप्त भाग पहले ही अभिलिखित किया जा चुका है और ऐसा पक्षकार किसी ऐसे दिन जिस दिन के लिए वाद की सुनवाई स्थगित की गई है, उपसंजात होने में असफल रहता है वहाँ न्यायालय स्वविवेकानुसार उस मामले में इस प्रकार अग्रसर हो सकेगा, मानो ऐसा पक्षकार उपस्थित हो।

3. पक्षकारों में से किसी पक्षकार के साक्ष्य, आदि पेश करने में असफल रहने पर भी न्यायालय आगे कार्यवाही कर सकेगा- जहां वाद का कोई ऐसा पक्षकार जिसे समय अनुदत्त किया गया है, अपना साक्ष्य पेश करने में या अपने साक्षियों को हाजिर कराने में या वाद को आगे प्रगति के लिए आवश्यक कोई ऐसा अन्य कार्य करने में जिसके लिए समय अनुज्ञात किया गया है, असफल रहता है तो वहां न्यायालय ऐसे व्यतिक्रम के होते हुए भी-

(ए) यदि पक्षकार, उपस्थित हों तो वाद की विनिश्चित करने

अनुवादित

के लिए अग्रसर हो सकेगा अथवा

(बी) यदि पक्षकार या उनमें से कोई अनुपस्थित हों तो नियम 2 के अधीन कार्यवाही कर सकेगा।

17. संहिता के आदेश 17 नियम 2 में प्रावधान है कि जहां, किसी भी दिन, जिस दिन वाद की सुनवाई स्थगित की जाती है तथा पक्षकार या उनमें से कोई भी उपस्थित होने में विफल रहता है, तो आदेश 9 द्वारा इस संबंध में निर्देशित तरीकों में से न्यायालय किसी एक तरीके से वाद का निस्तारण करने के लिए आगे बढ़ सकता है या जो वह उचित समझे ऐसा कोई अन्य आदेश दे सकता है।

18. संहिता के आदेश 17 नियम 2 से जुड़े स्पष्टीकरण में यह प्रावधान है कि जहां किसी भी पक्ष के साक्ष्य या साक्ष्य का एक बड़ा भाग पहले ही अभिलिखित किया जा चुका है और ऐसा पक्ष किसी भी उस दिन उपस्थित होने में विफल रहता है, जिस दिन वाद की सुनवाई स्थगित कर दी जाती है , न्यायालय अपने विवेक से मामले को ऐसे आगे बढ़ा सकती है जैसे कि ऐसा पक्ष उपस्थित था।

20. संहिता के आदेश 17 नियम 2 और आदेश 17 नियम 3 की व्यापकता *बी. जानकीरमैया चेट्टी बनाम ए.के.पार्थसारथी[बी. जानकीरमैया चेट्टी बनाम ए.के. पार्थसारथी,* (2003) 5 एससीसी 641] मामले में इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए आया था जिसमें न्यायमूर्ति अरिजीत पसायत, पीठ के लिए बोल रहे हैं जो पैरा 7 से 10 में निम्नवत है : (एससीसी पीपी. 645-46)

"7. यह निर्धारित करने के लिए कि क्या आदेश 9 के अंतर्गत उपाय उपस्थित है या नहीं, यह देखना आवश्यक है कि क्या प्रथम घटना में न्यायालय ने नियम 2 के स्पष्टीकरण का सहारा लिया था।

8. यह स्पष्टीकरण न्यायालय को अपने विवेक से ऐसे मामले में आगे बढ़ने की अनुमति देता है जहां किसी भी पक्ष के साक्ष्य का बड़ा भाग पहले ही अभिलिखित किया जा चुका है और ऐसा पक्ष किसी भी दिन जिस दिन वाद की सुनवाई स्थगित हो जाती है, उपस्थित होने में विफल

अनुवादित

रहता है। जैसा कि प्रावधान से ही पता चलता है, न्यायालय को दी गई विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग किसी दिए गए परिस्थिति में किया जाना है। प्रावधान को लागू करने के लिए, न्यायालय को खुद को इस प्रकार संतुष्ट करना है कि : (ए) किसी भी पक्ष के साक्ष्य का बड़ा भाग पहले ही अभिलिखित किया जा चुका है; (बी) ऐसी पार्टी किसी भी दिन उपस्थित होने में विफल रही है; और (सी) एक वह दिन है जब वाद की सुनवाई स्थगित कर दी जाती है। जब किसी भी दिन जिस दिन वाद की सुनवाई स्थगित हो जाती है तथा पक्षकार या उनमें से कोई भी उपस्थित होने में विफल रहता है, नियम 2 न्यायालय को आदेश 9 में दिए गए किसी भी तरीके को अपनाने या ऐसा आदेश देने की अनुमति देता है जो वह उचित समझता है। स्पष्टीकरण, नियम के अंतर्गत दी गई सामान्य शक्ति के अपवाद की प्रकृति में है, जो न्यायालय को निर्दिष्ट परिस्थिति में कार्य करने का विवेक प्रदान करता है, यानी जहां किसी भी पक्ष के साक्ष्य या साक्ष्य का बड़ा भाग पहले ही अभिलिखित किया जा चुका है और ऐसा पक्ष किसी भी दिन जब वाद की सुनवाई स्थगित हो जाती है, उपस्थित होने में विफल रहता_है।यदि तथ्यात्मक स्थिति ऐसी है तो न्यायालय अपने विवेक से मान सकती है कि ऐसा पक्ष उपस्थित था। जब वाद की सुनवाई के लिए बुलाए जाने पर कोई भी पक्ष उपस्थित न हो तब आदेश 9 नियम 3 के अंतर्गत न्यायालय यह निर्देश देते हुए आदेश दे सकती है कि वाद निरस्त कर दिया जाए । नियम 2, 6 और 8 में वाद को निरस्त करने के लिए अन्य प्रावधान हैं। हम मुख्य रूप से नियम 6 के अंतर्गत आने वाली स्थिति से चिंतित हैं। स्पष्टीकरण में महत्वपूर्ण शब्द हैं "मामले के साथ आगे बढ़ें"। अत: तथ्यों के आधार पर प्रत्येक मामले में यह देखना होगा कि न्यायालय द्वारा स्पष्टीकरण लागू किया गया था अथवा नहीं।

9. नियम 2 में, आदेश 9 द्वारा निर्देशित तरीकों में से किसी एक को अपनाने के विकल्प के रूप में प्रयुक्त अभिव्यक्ति "ऐसा आदेश करें जो वह उचित समझे" है।

अनुवादित

आदेश 17 नियम 3 (बी) के अंतर्गत, जब कोई पक्ष अनुपस्थित हो तो न्यायालय के लिए एकमात्र रास्ता खुला है कि वह नियम 2 के अंतर्गत कार्यवाही करे । इसका स्पष्टीकरण न्यायालय को नियम 3 के अंतर्गत आगे बढ़ने का विवेक प्रदान करता है, भले ही कोई पक्ष अनुपस्थित हो। लेकिन ऐसा रास्ता तभी अपनाया जा सकता है जब अनुपस्थित पक्ष पहले ही साक्ष्य या उसका एक बड़ा भाग प्रस्तुत कर चुका हो। यदि स्थिति ऐसी नहीं है, तो न्यायालय के पास नियम 2 में दिए गए नियम के अनुसार आगे बढ़ने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। नियम 2 और 3 अलग-अलग और विशिष्ट परिस्थितियों के समूह में कार्य करते हैं। नियम 2 तब लागू होता है जब स्थगन किसी विशेष उद्देश्य के लिए नहीं बल्कि आम तौर पर दिया गया हो। दूसरी ओर, नियम 3 वहां लागू होता है जहां नियम में उल्लिखित उद्देश्यों में से किसी एक के लिए स्थगन दिया गया है। नियम 2 निर्दिष्ट तरीकों में से एक में वाद के निस्तारण की बात करता है, जबकि नियम 3 न्यायालय को वाद पर तुरंत निर्णय लेने का अधिकार देता है। हालाँकि, दोनों नियमों के बीच मूलभूत अंतर यह है कि पूर्ववर्ती नियम में कोई भी पक्ष सुनवाई में उपस्थित होने में विफल रहा है जबकि उत्तरवर्ती नियम में पक्ष ने उपस्थित होते हुए भी प्रगणित चूकों में से एक या अधिक को प्रतिबद्ध किया है। नियम 2 और नियम 3 के स्पष्टीकरण का संयुक्त प्रभाव यह है कि न्यायालय को विवेकाधिकार प्रदान किया गया है। प्रदत्त शक्ति अनुज्ञाप्रद है और अनिवार्य नहीं है। स्पष्टीकरण एक मान्य प्रावधान की प्रकृति में है, जब दी गई परिस्थितियों में अनुपस्थित पक्ष को उपस्थित माना जाता है।

10. <u>स्पष्टीकरण में महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति 'जहां किसी पक्ष के साक्ष्य या साक्ष्य का एक बड़ा भाग है।</u> इस विधायी अभिव्यक्ति का एक सकारात्मक उद्देश्य है. इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि अभिलेख पर उपस्थित साक्ष्य अनुपस्थित पक्ष के रुख को सिद्ध करने और वाद केनिस्तारण के लिए पर्याप्त है। इस स्पष्ट उद्देश्य के लिए

अनुवादित

अनुपस्थित पक्ष को उपस्थित माना जाता है। अगर प्रथम दृष्टया ऐसी स्थिति आती है तो न्यायालय स्पष्टीकरण के अंतर्गत कार्रवाई करते हुए मामला आगे बढ़ा सकता है। न्यायालय को इस अपेक्षित स्वरूप के बारे में प्रत्येक मामले के तथ्यों पर संतुष्ट होना होगा। इस परिप्रेक्ष्य में न्यायालय के लिए अपनी संतुष्टि अभिलिखित करना भी अनिवार्य होगा। यह नहीं कहा जा सकता कि स्पष्टीकरण को लागू करने के लिए साक्ष्य की या साक्ष्य के बड़े हिस्से की आवश्यकता का कोई उद्देश्य नहीं है। यदि अभिलेख पर उपस्थित साक्ष्य वाद के निस्तारण के लिए पर्याप्त है, तो वाद को स्थगित करने या निर्णय को टालने की कोई आवश्यकता नहीं है।"

पुनरुत्पादन पर, श्री मिश्रा द्वारा संदर्भित **श्री पीताम्बर प्रसाद** (उपरोक्त) के मामले में पारित निर्णय के प्रासंगिक वाक्य खण्ड,इस प्रकार पढ़ा जाय: -

"3. निर्णय विधि और सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रासंगिक प्रावधानों पर विचार करने पर हमें यह प्रतीत होता है कि प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता का तर्क सही है। सभी मामलों में जिनमें से किसी मामले में स्थगित तिथि पर किसी एक पक्ष की अनुपस्थिति में उसके विरुद्ध अंतिम आदेश पारित किया गया है, हमेशा दो प्रश्नों पर विचार किया जाना चाहिए:

(1) न्यायालय को क्या करने का अधिकार था- O. IX के अंतर्गत आगे बढ़ने का या योग्यता के आधार पर निर्णय लेने का?

(2) न्यायालय ने वास्तव में क्या किया है- क्या वह आदेश IX के अंतर्गत आगे बढ़ा है या गुण-दोष के आधार पर निर्णय लिया है

4. सबसे पहले न्यायालय की शक्ति के बारे में।

5. सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश XVII, स्थगन को संदर्भित करता है। अगर पर्याप्त कारण दिखाया जाता है तो नियम 1, वाद के किसी भी चरण में न्यायालय को मामले को समय-समय पर स्थगित करने का अधिकार देता है। नियम 2 जैसा कि इस न्यायालय द्वारा संशोधित किया गया है और वर्तमान में जिस स्थिति में है, वह इस प्रकार है:-

"जहां, किसी भी दिन, जिस दिन वाद की सुनवाई स्थगित की जाती है, पक्षकार या उनमें

अनुवादित

से कोई भी उपस्थित होने में विफल रहता है, न्यायालय आदेश IX द्वारा निर्देशित तरीके में से किसी एक तरीके से वाद का निस्तारण करने के लिए आगे बढ़ सकती है, या ऐसे अन्य आदेश जो वह उचित समझे, कर सकती है। जहां किसी पक्ष का साक्ष्य, या साक्ष्य का एक बड़ा भाग पहले हीअभिलिखित किया जा चुका है, और ऐसा पक्ष उस दिन उपस्थित होने में विफल रहता है, तो न्यायालय अपने विवेक से मामले को आगे बढ़ा सकती है जैसे कि ऐसा पक्ष उपस्थित था, और गुण-दोष के आधार पर इसका निस्तारण कर सकती है।

स्पष्टीकरण:- "किसी भी पक्ष को उपस्थित होने में विफल नहीं माना जाएगा यदि वह या तो उपस्थित है या उसका प्रतिनिधित्व किसी प्रतिनिधि या अधिवक्ता द्वारा न्यायालय में किया गया है, भले ही आवेदन करने के उद्देश्य से नियुक्त किया गया हो।"

6. नियम 2, इसलिए, ऐसे मामले से संबंधित है जिसमें पक्षकारो में से एक पक्ष सुनवाई स्थगित वाले दिन उपस्थित होने में वास्तव में विफल रहता है। यदि अनुपस्थित पक्ष का कोई साक्ष्य या साक्ष्य का एक बड़ा भाग अभिलिखित नहीं किया गया है तो न्यायालय दो आदेशों में से कोई भी एक आदेश पारित कर सकती है यानी, (ए) यदि वादी अनुपस्थित है, तो O, IX, नियम 8 के अंतर्गत अनुपस्थिति के लिए वाद को निरस्त कर सकती है और यदि प्रतिवादी अनुपस्थित है, तो आदेश IX, नियम 6, 11 या 12 के अंतर्गत वाद को एक पक्षीय डिक्री कर सकती है । , या (बी) यह ऐसा अन्य आदेश दे सकती है जैसा वह उचित समझे, यानी मामले को स्थगित कर सकती है।

7. हालाँकि, यदि किसी पक्ष के साक्ष्य या साक्ष्य का एक बड़ा भाग अभिलिखित किया गया है और ऐसा पक्ष निर्धारित तिथि पर उपस्थित होने में विफल रहता है तो न्यायालय गुण-दोष के आधार पर मामले का निर्णय करने के लिए आगे बढ़ सकती है भले ही पक्ष अनुपस्थित हो या यह ऊपर उल्लिखित किसी भी आदेश यानी O. IX के अंतर्गत एक आदेश या स्थगन का आदेश पारित कर सकती है।

अनुवादित

8. स्पष्टीकरण में उन परिस्थितियों को बताया गया है जिनके अंतर्गत किसी पक्ष को उपस्थित होने में विफल नहीं माना जाएगा। यदि मामला स्पष्टीकरण के अंतर्गत आता है तो संबंधित पक्ष को अनुपस्थित नहीं माना जा सकता है और O. IX के अंतर्गत कोई आदेश पारित नहीं किया जा सकता है और न्यायालय या तो मामले को स्थगित कर सकती है या गुण-दोष के आधार पर निर्णय ले सकती है।

9. विधानमंडल द्वारा मूल रूप से अधिनियमित नियम 3 इस प्रकार था:

"जहां ऐसे मामले में जिसमें नियम 2 लागू नहीं होता है, वाद का कोई भी पक्ष जिसे समय दिया गया है, अपना साक्ष्य प्रस्तुत करने या अपने गवाहों की उपस्थिति का कारण बनने या कोई अन्य कार्य करने में विफल रहता है, जो वाद की आगे की प्रगति के लिए आवश्यक हो और जिसके लिए समय की अनुमति दी गई है तो न्यायालय ऐसी चूक के बावजूद वाद पर तुरंत निस्तारण करने के लिए आगे बढ़ सकती है।"

10. इसे इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा अधिसूचना संख्या 6324/35(ए), दिनांक 2 दिसंबर 1926 द्वारा संशोधित करके इस प्रकार पढ़ा गया:-

"जहां किसी वाद का कोई भी पक्ष जिसे समय दिया गया है, बिना किसी उचित कारण के अपना साक्ष्य प्रस्तुत करने या अपने गवाहों की उपस्थिति कराने या किसी पिछले आदेश का पालन करने या कोई अन्य आवश्यक कार्य करने में विफल रहता है जो वाद की आगे की प्रगति के लिए आवश्यक हो और जिसके लिए समय की अनुमति दी गई है तो न्यायालय, चाहे ऐसा पक्ष उपस्थित हो या नहीं, गुण-दोष के आधार पर वाद का निस्तारण करने के लिए आगे बढ़ सकती है।"

11. इसलिए जैसा संशोधन किया गया, भले ही पक्ष अनुपस्थित हो, इस नियम के अंतर्गत किसी वाद का निर्णय गुण-दोष के आधार पर किया जा सकता था। दिनांक 1-7-1944 के एक संशोधन द्वारा इस संशोधन को न्यायालय द्वारा निरस्त कर दिया गया और विधानमंडल द्वारा अधिनियमित मूल नियम को

अनुवादित

बहाल कर दिया गया। इस न्यायालय की एक खण्ड पीठ द्वारा आयोजित एक मामले में इस मूल नियम को बहाल किया गया था (कुद्रुतुल्ला बनाम मोहम्मद करीम खान 11 देखें)। यह चर्चित नियम तब लागू नहीं होता था_जब कोई पक्ष जिसको समय दिया गया था,अनुपस्थित था और यह तब लागू होता था जब संबंधित पक्ष उपस्थित था। लेकिन श्री किशन बनाम राधा किशन *2* मामले में एक अन्य खण्ड पीठ ने माना कि नियम तब भी लागू हो सकता था जब संबंधित पक्ष अनुपस्थित हो, बशर्ते कि नियम में निर्धारित शर्तें संतुष्टिजनक हों। हालाँकि, विचारों के इस मतभेद को वर्ष 1953 में किए गए बाद के नियम संशोधन द्वारा टाला गया था जिसके द्वारा यह स्पष्ट किया गया था कि संबंधित पक्ष के अनुपस्थित होने पर नियम लागू नहीं होता है। इस प्रकार नियम 3 इस न्यायालय में वर्तमान में उपस्थित है, यह केवल तभी लागू हो सकता है जब संबंधित पक्ष स्थगित तिथि पर उपस्थित हो या नियम 2 के स्पष्टीकरण के अंतर्गत उन्हें उपस्थित माना जाए और वह उन चीजों को करने में विफल रहे जिसके लिए उसे स्थगन दिया गया था तो ऐसे मामले में न्यायालय गुण-दोष के आधार पर मामले का निस्तारण कर सकती है या इसे स्थगित कर सकती है, लेकिन उसे O. 9 के अंतर्गत आदेश पारित करने की कोई शक्ति नहीं है।

12. <u>O. IX के अंतर्गत वाद को निरस्त करने या डिक्री करने और गुण-दोष के आधार पर वाद को डिक्री करने या निरस्त करने के बीच अंतर है।</u> पूर्ववर्ती मामले में, वाद को पुनर्स्थापित करने या एकपक्षीय डिक्री को अपास्त करने के लिए एक आवेदन उस न्यायालय को दिया जाता है जिसने आदेश पारित किया था। उत्तरवर्ती मामले में, ऐसा कोई आवेदन नहीं दिया जा सकता है और पीड़ित पक्ष को या तो पुनर्विचार के लिए आवेदन के माध्यम से या उच्च न्यायालय में याचिका के माध्यम से आगे बढ़ना होगा।"

जैसा कि श्री मिश्रा ने संकेत दिया है **एम.एस. खालसा** (उपरोक्त), के मामले में पारित निर्णय के प्रासंगिक वाक्य खण्ड इस प्रकार हैं: -

अनुवादित

"51. इस न्यायालय द्वारा काल्पनिक रूप से जोडा गया स्पष्टीकरण, एक पक्ष को उपस्थित बनाता है (जहां उसका अधिवक्ता स्थगन का आवेदन करता है)। जब एक पक्ष को उपस्थित माना जाता है, तो यह वही स्थिति होती है जब वह वास्तव में उपस्थित होता है लेकिन सुनवाई में भाग नहीं लेता है। क्योंकि वह उपस्थित है, न्यायालय **एकपक्षीय** कार्रवाई नहीं कर सकती है। सुनवाई स्वाभाविक रूप से गुण-दोष के आधार पर होगी और यदि उस दिन वाद का निस्तारण हो जाता है, तो डिक्री गुण-दोष के आधार पर होगी जिसे, सी.पी.सी. के आदेश IX, नियम 9 या 13, के अंतर्गत किसी आवेदन पर अपास्त नहीं किया जा सकता है।

77. आदेश IX, नियम 13, प्रतिवादी को उस न्यायालय में आवेदन करने के लिए अधिकृत करता है जिसके द्वारा डिक्री पारित की गई थी ताकि इसे "किसी भी मामले में जिसमें प्रतिवादी के विरुद्ध **एकपक्षीय** डिक्री पारित की गई हो" को अपास्त करने का आदेश दिया जा सके। जब वाद सुनवाई के लिए बुलाया जाता है जहां वादी तो उपस्थित होता है और प्रतिवादी उपस्थित नहीं होता है तब आदेश IX, नियम 6(1)(ए) न्यायालय को एकपक्षीय कार्यवाही करने का अधिकार देता है।

इस न्यायालय के उपर्युक्त निर्णयों में, इस न्यायालय द्वारा संशोधित सीपीसी के आदेश 17 का नियम 2 पर भी ध्यान दिया गया।

उपरोक्त निर्णय के आधार पर, श्री मिश्र ने यह भी कहा कि जहां किसी पक्ष के साक्ष्य या साक्ष्य का पर्याप्त भाग अभिलिखित किया गया है और ऐसा पक्ष उस तिथि पर उपस्थित होने में विफल रहता है जिस तिथि को वाद की सुनवाई स्थगित कर दी गई है, तो न्यायालय अपने विवेक से मामले को आगे बढ़ा सकता है जैसे कि ऐसा पक्ष उपस्थित था। वर्तमान मामले में, प्रतिवादी-ग्राम सभा के पर्याप्त साक्ष्य अभिलिखित किए गए थे और ऐसा होने पर, यह माना जाता है कि संबंधित पक्ष न्यायालय के समक्ष उपस्थित था और उसे कार्यवाही की उचित जानकारी थी और इस कारण से, सीपीसी के आदेश 9 नियम 13 के अंतर्गत प्रस्तुत किया गया आवेदन पोषणीय नहीं था।

उन्होंने आगे कहा कि इस न्यायालय द्वारा जोड़े गए आदेश 17 के नियम 2 के स्पष्टीकरण में, एक कल्पना द्वारा, एक पक्ष को उपस्थित किया जाता है (जहां उसका अधिवक्ता स्थगन का आवेदन करता है)। जब किसी पक्ष को उपस्थित माना जाता है, तो यह वही स्थिति होती है जो तब होती है जब वह

अनुवादित

वास्तव में उपस्थित होता है लेकिन सुनवाई में भाग नहीं लेता है। चूँकि वह उपस्थित है, न्यायालय एक पक्षीय कार्यवाही नहीं कर सकता। सुनवाई स्वाभाविक रूप से गुण-दोष के आधार पर होगी और यदि उस दिन वाद का निस्तारण हो जाता है, तो डिक्री गुण-दोष के आधार पर होगी, जिसे सी.पी.सी. के आदेश IX, नियम 9 या 13, के अंतर्गत एक आवेदन पर अपास्त नहीं किया जा सकता है और फिर उस स्थिति में, निर्णय अपील योग्य होगा और ऐसा होने पर, इसे एक पक्षीय निर्णय कहकर निर्णय को अपास्त करने के लिए दिया गया एक आवेदन पोषणीय नहीं होगा।

उन्होंने आगे कहा कि सीपीसी के आदेश 9 नियम 13 के अंतर्गत आवेदन केवल तभी विचारणीय होगा यदि संबंधित पक्ष न्यायालय को संतुष्ट करता है कि समन की विधिवत तामील नहीं की गई और उसी के कारण, वह निर्धारित तिथि पर उपस्थित होने में विफल रहा या कोई ऐसा पर्याप्त कारण जिसके द्वारा उसे उपस्थित होने से रोक दिया गया, जब वाद को सुनवाई के लिए बुलाया गया। इस प्रकार, यह मामला सीपीसी के आदेश 9 नियम 13 के अंतर्गत आच्छादित नहीं होगा। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह संकेत दिया गया है कि सीपीसी के आदेश 9 नियम 13 के अंतर्गत आवेदन करने के प्रयोजनों के लिए, संबंधित को गैर-उपस्थिति का पर्याप्त कारण दिखाना होगा। वर्तमान मामले में प्रतिवादी का गवाह उपस्थित हुआ था और उसकी विधिवत जांच की गई और जिरह भी की गई इस प्रकार वर्तमान मामला सीपीसी के आदेश 17 नियम 2 के स्पष्टीकरण के अंतर्गत आएगा। मामले को इस दृष्टि से देखते हुए, वर्तमान याचिका स्वीकार किये जाने योग्य है और आक्षेपित आदेश अपास्त किये जाने योग्य हैं।

वर्तमान याचिका का विरोध करते हुए, श्री हेमंत कुमार पांडे, राज्य के विद्वान अधिवक्ता और श्री पंकज गुप्ता, विपरीत पक्ष संख्या 7/सम्बंधित ग्राम सभा की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि सीपीसी के आदेश 9 नियम 13 के अंतर्गत आवेदन पोषणीय था क्योंकि मामले को एस.डी.ओ., महसी के राजस्व न्यायालय से अतिरिक्त अधिकारी-प्रथम, बहराईच को स्थानांतरित करने के पश्चात, सम्बंधित ग्राम सभा के साथ-साथ यू.पी. राज्य को भी कोई सूचना तामील नहीं कराई गई।

विपरीत पक्ष की ओर से यह भी कहा गया कि मामला शुरू में ए.एस.डी.ओ.(के) की न्यायालय में दाखिल किया गया था और उसके पश्चात कई बार इसे स्थानांतरित किया गया था। कुछ अवसरों पर, सूचना तामील कराई गई और अन्य अवसरों पर इसे तामील नहीं कराई गई। हालाँकि एस.डी.ओ. महसी के राजस्व न्यायालय से स्थानांतरित होने के पश्चात ग्राम सभा या यू.पी. राज्य को कोई सूचना नहीं दी गई जिससे संकेत मिले कि अब मामला अपर अधिकारी प्रथम, बहराइच की न्यायालय में चलेगा। इस प्रकार, आवेदन पोषणीय था।

यह भी प्रस्तुत किया गया है कि गैर-उपस्थिति की तिथि पर पर्याप्त कारण दिखाया जाना है और जैसा कि वर्तमान मामले में कोई सूचना नहीं दी गई थी अतः दिनांक 31.05.1995 के एकपक्षीय अंतिम आदेश के बारे में पता चलने पर, सीपीसी के आदेश 9 नियम 13 के अंतर्गत मामले का पुनर्स्थापन

अनुवादित

और गुण-दोष के आधार पर मामले की सुनवाई के लिए डीजीसी, राजस्व, बहराईच के माध्यम से एक आवेदन प्रस्तुत किया गया था। इस प्रकार आवेदन समय के भीतर किया गया। यह आवेदन दिनांक 31.05.1995 के आदेश की जानकारी की तिथि से है, जो आवेदन के अनुसार 27.03.2008 का है तथा उसी दिन यानी 27.03.2008 को सीपीसी के आदेश 9 नियम 13 के अंतर्गत आवेदन दाखिल किया गया था।

सामान्य नियम, 1957 के नियम 89-ए के अंतर्गत परिकल्पित प्रावधानों के आधार पर राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि स्थानांतरण के पश्चात, स्थानांतरित करने वाला न्यायालय खुद को संतुष्ट करने के लिए बाध्य है कि क्या मामले के हस्तांतरण के संबंध में की गई कार्यवाही की सूचना पक्षकारो को दी गई है या नहीं। इस मामले में, एस.डी.ओ., महसी के राजस्व न्यायालय से अतिरिक्त अधिकारी-प्रथम, बहराईच के राजस्व न्यायालय में फ़ाइल प्राप्त होने के पश्चात यानी दिनांक 26.05.1995 को निकाले गए आदेश पत्र में प्रतिस्पर्धी पक्षों पर सूचना की तामील के संबंध में कोई संकेत नहीं है। उन्होंने आगे कहा कि यह प्रावधान अनिवार्य प्रकृति का है और इसका अक्षरश: अनुपालन किया जाना चाहिए। अपनी प्रस्तुतीकरण के समर्थन में, श्री पांडे ने निम्नलिखित निर्णयों का आश्रय लिया है: -

1. वंदना पटेल बनाम फूलकली एवं अन्य जिसे **एआईआर 2010 ऑल 2** में रिपोर्ट किया गया।

2. विजय सिंह और अन्य बनाम द्वितीय अपर जिला न्यायाधीश, मुजफ्फरनगर एवं अन्य जिसे **मनु/यूपी /1359/1992** में रिपोर्ट किया गया।

3. यू.पी. राज्य बनाम उपनिदेशक, चकबन्दी एवं अन्य जिसे **एआईआर 1996 एससी 2432** में रिपोर्ट किया गया।

4. बलबीर सिंह चौहान बनाम विजय कुमार अगरवाल जिसे **1986 एससीसी ऑन लाइन आल694** में रिपोर्ट किया गया।

5. 2016 के अनुच्छेद 227 संख्या 2026 के अंतर्गत (राम नरेश बनाम हरि नाम प्रसाद) के मामलों में इस न्यायालय द्वारा दिनांक 04.04.2016 को पारित निर्णय।

6. जी.पी. श्रीवास्तव बनाम. आर.के. रायज़ादा और अन्य जिसे **एआईआर 2000 एससी 1221** में रिपोर्ट किया गया।

7. सुशील कुमार सभरवाल बनाम. गुरप्रीत सिंह और अन्य जिसे **एआईआर 2002 एससी 2370** में रिपोर्ट किया गया।

8. विनोद कुमार पांडे एवं अन्य बनाम यू.पी. राज्य और अन्य जिसे **मनु/यूपी /1038/2005** में रिपोर्ट किया गया।

9.अवधेश कुमार एवं अन्य बनाम जिलाधिकारी, लखनऊ और अन्य जिसे **मनु/यूपी /2566/2022** में रिपोर्ट किया गया ।

10. अक्तारयार खान बनाम अज़हर यार खान जिसे **1993 एससीसी ऑनलाइन ऑल 156** में रिपोर्ट किया गया।

11. बिशन सिंह बनाम नौवीं अतिरिक्त. जिला न्यायाधीश, आगरा एवं अन्य जिसे **मनु/यूपी /1871/1996** में रिपोर्ट किया गया।

12. राम पदारथ एवं अन्य बनाम चिरौंजी देवी जिसे **मनु/यूपी/2689/2014** में रिपोर्ट किया गया।

अनुवादित

13. पूनम गुप्ता एवं अन्य बनाम अनिल अग्रवाल जिसे **मनु/यूपी/5483/2018** में रिपोर्ट किया गया ।

14. यू.पी. राज्य और अन्य बनाम सुनील कुमार बाजपेयी एवं अन्य जिसे **मनु/यूपी/1002/1989** में रिपोर्ट किया गया ।

15. अनामिका मिश्रा बनाम यू.पी. राज्य और एक अन्य जिसे **2019 एससीसी ऑनलाइन ऑल 4599** में रिपोर्ट किया गया।

16. सौरभ अग्रवाल बनाम अपर आयुक्त (न्यायिक) आगरा मण्डल, आगरा एवं अन्य जिसे **मनु/यूपी/2350/2011** में रिपोर्ट किया गया।

17. मुमताज अहमद और अन्य बनाम उप निदेशक चकबन्दी, लखनऊ एवं अन्य जिसे **मनु/यूपी/2315/2015** में रिपोर्ट किया गया ।

18. प्रकाश चंदर मनचंदा और अन्य बनाम जानकी मनचंदा जिसे **एआईआर 1987 एससी 42** में रिपोर्ट किया गया।

19. दीवानी विविध रिट याचिका संख्या 8587/1988 (कृष्ण कुमार शर्मा बनाम राज गर्ग एवं अन्य) में पारित आदेश दिनांक 16.09.1988 ।

संक्षेप में, विपरीत पक्ष द्वारा यह कहा गया है कि किसी भी सूचना के अभाव में, न्यायालय ने मामले का निस्तारण करने के लिए कदम उठाया इस प्रकार दिनांक 24.02.2010 के आदेश द्वारा दिनांक 14.12.2009 के आदेश की पुष्टि न्यायसंगत है और मामले में इस न्यायालय का कोई हस्तक्षेप आवश्यक नहीं है।

विपरीत पक्ष के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी कहा गया है कि लिखित बयान, जो ग्राम सभा द्वारा दाखिल किया गया था, में मूल वादी- देवता दीन के दावे का विरोध किया गया था। हालाँकि, साक्ष्य इंगित करता है कि अतिरिक्त अधिकारी-प्रथम, बहराईच के राजस्व न्यायालय में स्थानांतरित होने के पश्चात, मामला जो मूल वादी का था उसे ग्राम सभा की प्रधान अर्थात् रमा देवी पत्नी लल्लन पुत्र देवता दीन (मूल वादी) द्वारा स्वीकार किया गया था। इस संबंध में एस.डी.ओ./प्रतिवादी संख्या 10 द्वारा दिनांक के 14.12.2009 आदेश में की गई टिप्पणियों का सन्दर्भ लिया गया है। यहां यह बताना उचित होगा कि मामले के इस स्वरुप पर याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा विवाद नहीं किया गया है।

उपरोक्त के आधार पर, यह भी प्रस्तुत किया गया है कि जब अंतिम आदेश दिनांक को 31.05.1995 पारित किया गया था तब लल्लन वादी था, क्योंकि उसे मूल वादी देवता दीन की मृत्यु के पश्चात प्रतिस्थापित किया गया था और अतिरिक्त अधिकारी-प्रथम के राजस्व न्यायालय के समक्ष उसकी पत्नी रमा देवी जो ग्राम सभा के गवाह के रूप में थी, को हटा दिया गया था और वाद के पक्षकारों को सूचना दिए जाने के संबंध में दिनांक 26.05.1995 के आदेश में कोई संकेत नहीं है। इन सभी तथ्यों से संकेत मिलता है कि अतिरिक्त अधिकारी-प्रथम के राजस्व न्यायालय में वाद लंबित होने के संबंध में वाद के पक्षकारों को कोई सूचना नहीं दी गई थी और दिनांक 31.05.1995 का निर्णय/अंतिम आदेश एक कपटपूर्ण आदेश है। इन परिस्थितियों में वर्तमान याचिका निरस्त किये जाने योग्य है।

इस न्यायालय के विचार में राज्य के विद्वान अधिवक्ता श्री हेमन्त कुमार पांडे

अनुवादित

द्वारा संदर्भित सभी निर्णय, इस मामले में विस्तार से संदर्भित किए जाने योग्य नहीं हैं। जो निर्णय इस न्यायालय के दृष्टिकोण से प्रासंगिक हैं, वे नीचे दिए गए हैं: -

एआईआर 1987 एससी 42 में रिपोर्ट की गई **प्रकाश चंद्र मनचंदा और अन्य बनाम जानकी मनचंदा** के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की: -

> **"6.** कुछ निर्णयों में, उच्च न्यायालयों ने यहां तक कहा है कि भले ही विचारण न्यायालय मामले का निस्तारण ऐसे करता है जैसे कि वह इसे आदेश 17 नियम 3 के अंतर्गत गुण-दोष के आधार पर निस्तारित कर रहा हो, फिर भी यदि वह पक्ष जिसके विरुद्ध निर्णय सुनाया गया था, के अनुपस्थित होने पर इसे आदेश 17 नियम 3 के अनुसार निस्तारित नहीं माना जा सकता है और आदेश 9 के प्रावधान ऐसे पक्ष को या तो पुनर्स्थापन के लिए या एकपक्षीय डिक्री को अपास्त करने के लिए उपलब्ध होंगे। मामले के इस पहलू पर विद्वान अधिवक्ता ने विभिन्न उच्च न्यायालयों के फैसले हमारे समक्ष रखे ।लेकिन हमारी राय में इन दो नियमों में संशोधन केदृष्टिकोण से , जो 1976 में नागरिक प्रक्रिया संहिता के संशोधन द्वारा बनाए गए हैं, इस मामले के तथ्यों पर कोई विवाद नहीं है कि संशोधित सिविल प्रक्रिया संहिता लागू होगी और इसलिए हमारे लिए उस प्रश्न पर विचार करना आवश्यक नहीं है।

आदेश 17 नियम 2 और नियम 3 को अब वर्तमान स्थिति में ऐसे पढ़ा जाय:

"*आदेश 17, नियम 2. प्रक्रिया यदि पक्षकार नियत दिन पर उपस्थित होने में विफल रहते हैं-* जहां, किसी भी दिन जब वाद की सुनवाई को स्थगित कर दिया जाता है तथा पक्षकार या उनमें से कोई उपस्थित होने में विफल रहता है, तो न्यायालय आदेश 9 द्वारा निर्देशित तरीके में से किसी एक तरीके से वाद का निस्तारण करने के लिए आगे बढ़ सकता है या ऐसा अन्य आदेश दे सकता है जो वह उचित समझे।

स्पष्टीकरण - जहां किसी पक्ष के साक्ष्य या साक्ष्य का एक बड़ा भाग पहले ही अभिलिखित किया जा चुका है और ऐसा पक्ष किसी भी दिन जिस दिन वाद की सुनवाई स्थगित हो, उपस्थित होने में विफल रहता है, तो न्यायालय अपने विवेक से

अनुवादित

मामले को आगे बढ़ा सकता है जैसे कि वह पक्ष उपस्थित था।

आदेश 17 नियम 3. न्यायालय तब भी आगे बढ़ सकता है जब कोई भी पक्ष साक्ष्य आदि प्रस्तुत करने में विफल रहता है- जहां किसी वाद का कोई भी पक्ष, जिसे समय दिया गया है, अपना साक्ष्य प्रस्तुत करने, या अपने गवाहों की उपस्थिति कराने, या कोई अन्य कार्य करने में विफल रहता है जो वाद की आगे की प्रगति के लिए आवश्यक है और जिसके लिए समय की अनुमति दी गई है, न्यायालय ऐसी चूक के बावजूद,-

(ए) यदि पक्ष उपस्थित हैं तो वाद का निस्तारण करने के लिए तुरंत आगे बढ़ें, या

(बी) यदि पक्षकार हैं या उनमें से कोई अनुपस्थित है, तो नियम 2 के अंतर्गत आगे बढ़ें।"

यह स्पष्ट है कि ऐसे मामलों में जहां कोई पक्ष अनुपस्थित है, आदेश 17 नियम 3 (बी) में उल्लिखित एकमात्र तरीका नियम 2 के अंतर्गत आगे बढ़ना है। इसलिए यह स्पष्ट है कि प्रतिवादी की अनुपस्थिति में न्यायालय के पास नियम 2 के अंतर्गत आगे बढ़ने के अलावा कोई विकल्प नहीं था। इसी प्रकार नियम 2 की भाषा वर्तमान स्थिति में भी स्पष्ट रूप से बताती है कि यदि कोई भी पक्ष उपस्थित होने में विफल रहता है, तो न्यायालय को आदेश 9 के अंतर्गत निर्देशित तरीकों में से एक से वाद का निस्तारण करने के लिए आगे बढ़ना होगा। नियम 2 का स्पष्टीकरण न्यायालय को नियम 3 के अंतर्गत आगे बढ़ने का विवेक देता है, भले ही कोई पक्ष अनुपस्थित हो लेकिन वह विवेक केवल उन मामलों तक सीमित है जहां अनुपस्थित पक्ष ने कुछ साक्ष्य प्रस्तुत किए हैं या अपने साक्ष्यों के बड़े हिस्से की जांच की है। इसलिए यह स्पष्ट है कि यदि नियत तिथि पर, पक्षकारों में से एक अनुपस्थित रहता है और उस पक्षके लिए उस तिथि तक कोई साक्ष्य की जांच नहीं की गई है, तो न्यायालय के पास सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9 के अंतर्गत निर्धारित तरीकों में से किसी एक में, आदेश 17 नियम 2 के अनुसार मामले को निस्तारित करने के लिए

अनुवादित

आगे बढ़ने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। अतः यह स्पष्ट है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 17 नियम 2 एवं 3 में इस संशोधन के पश्चात कोई संदेह नहीं रह जाता है और इसलिए किसी भी विवाद की संभावना नहीं है। मामले के इस दृष्टिकोण से यह स्पष्ट है कि जब वर्तमान मामले में 30 अक्टूबर 1985 को वाद को बुलाया गया तो प्रतिवादी की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं था। यह भी स्पष्ट है कि उस तिथि तक वादी के साक्ष्यअभिलिखित किए गए हैं लेकिन प्रतिवादी की ओर से कोई भी साक्ष्यअभिलिखित नहीं किया गया। प्रतिवादी को इस तिथि से या पहले की तिथि से केवल शुरुआत करनी थी, जब मामला स्थगित किया गया था। इसलिए यह स्पष्ट है कि उस तिथि तक यानी 30 अक्टूबर 1985 तक जब विचारण न्यायालय ने प्रतिवादी का मामला समाप्त कर दिया था तब प्रतिवादी की ओर से अभिलेख पर कोई साक्ष्य नहीं था। इस मामले को ध्यान में रखते हुए आदेश 17 नियम 2 का स्पष्टीकरण बिल्कुल भी लागू नहीं था। स्पष्ट रूप से जब प्रतिवादी अनुपस्थित था तो आदेश 17 नियम 2 ने न्यायालय को आदेश 9 के अंतर्गत प्रदान किए गए तरीकों में से किसी एक से मामले को निस्तारित करने के लिए आगे बढ़ने की अनुमति दी।

7. यह भी स्पष्ट है कि आदेश 17 नियम 3 जैसा है वह इस मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता है क्योंकि निश्चय ही जिस तिथि को प्रतिवादी का साक्ष्य अभिलिखित करना बंद कर दिया गया था उस दिन प्रतिवादी की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ था। मामले के इस दृष्टिकोण से इस बात पर विवाद नहीं किया जा सकता कि जब न्यायालय ने गुण-दोष के आधार पर वाद का निस्तारण किया तो उसने एक त्रुटि की थी। दुर्भाग्य से पुनर्विलोकन आवेदन पर भी, विद्वान विचारण न्यायालय ने आदेश 17 नियम 2 और 3 के बारे में विवाद जारी रखा, जो संशोधन से पहले उपस्थित था और पुनर्विलोकन आवेदन को अस्वीकार कर दिया और निवेदन करने पर, उच्च न्यायालय ने भी दुर्भाग्य से एक शब्द में अपील को निरस्तकरदिया।"

अनुवादित

1986 एससीसी ऑनलाइन ऑल 694 में रिपोर्ट किए गए **बलबीर सिंह चौहान बनाम विजय कुमार अग्रवाल** के मामले में, इस न्यायालय ने इस न्यायालय के अधीनस्थ दीवानी न्यायालयों के लिए सामान्य नियमों (सिविल) के नियम 89-ए पर विचार किया और निम्नानुसार देखा:

"7. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि आवेदक या उसके अधिवक्ता को वाद के हस्तांतरण के संबंध में कभी भी कोई जानकारी नहीं दी गई थी। इस प्रकार, निचली न्यायालय ने आवेदक की अनुपस्थिति में वाद के निस्तारण के लिए अवैध रूप से एक पक्षीय कार्रवाई की । इस प्रस्तुतिकरण में योग्यता है। उच्च न्यायालय के अधीनस्थ दीवानी न्यायालयों के लिए बने सामान्य नियमों (सिविल) के नियम 89ए, जिसे नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है, मामलों के स्थानांतरण या वापसी का प्रावधान करता है।

"89ए(1) जब एक मामला, यानी एक वाद, अपील या अन्य कार्यवाही जिसमें किसी विशेष न्यायालय में किसी पक्ष या पक्षकारो की उपस्थिति की तिथि नियत की गई है, उस न्यायालय से दूसरे में स्थानांतरित किया जाता है, तो पूर्व न्यायालय स्थानांतरण का आदेश, आदेश-पत्र में अभिलिखित करेगी और इसे पक्ष या पक्षकारो केअधिवक्ता द्वारा हस्ताक्षरित करवाएगी और यदि कोई भी पक्ष गैर-प्रतिनिधित्वित है, तो मामले की सूचना उसके पंजीकृत पते पर भेज दी जाएगी । स्थानांतरण न्यायालय द्वारा पहले से नियत तिथि पर मामले को अन्य न्यायालय द्वारा बुलाया जाएगा और पक्षकारो की उपस्थिति का उल्लेख किया जायेगा ।

(2) इस आशय की एक टिप्पणी कि किसी पक्ष या पक्षकारो को उप-नियम (1) के अनुसार सूचित किया गया है, स्थानांतरित करने वाले न्यायालय द्वारा अभिलेख पर अभिलिखित किया जाएगा।

(3) जहां मामले बड़ी संख्या में स्थानांतरित किए जाते हैं वहाँ वह न्यायालय, जहां से उन्हें स्थानांतरित किया जाता है, उप-नियम (1) में निर्धारित प्रक्रिया का पालन करने के अलावा, एक सूची तैयार करेगा जिसमें वाद संख्या और उनके वर्षों के साथ पक्षकार और उनके अधिवक्ताओं के नाम का उल्लेख होगा और इसकी एक प्रति बार के सदस्यों की जानकारी के लिए स्थानीय अधिवक्ता परिषद के सूचना पटल पर चिपका दी जाएगी, और दूसरी प्रति आम जनता की जानकारी के लिए न्यायालय के सूचना पटल पर चिपका दी जाएगी। स्थानांतरित मामलों के अभिलेखों के साथ , सूची की एक प्रति (या इसके प्रासंगिक उद्धरण) अन्य न्यायालय को भी भेजा जाएगा जिसे अन्य न्यायालय इसे अपने सूचना पटल पर चिपकाएगी। यदि अन्य न्यायालय किसी भिन्न स्थान पर स्थित है जहां कोई अन्य अधिवक्ता परिषद है, तो सूची की एक अतिरिक्त प्रति अधिवक्ता परिषद के सूचना पटल पर चिपकाने के लिए भेजी जाएगी।

(4) जिस न्यायालय में मामले स्थानांतरित किए जाते हैं, वह इस बात से संतुष्ट हुए बिना आगे नहीं बढ़ेगी कि पक्षकारो या उनके अधिवक्ता, जैसा भी मामला हो, को स्थानांतरण के बारे में सूचित कर दिया गया है।"

8. नियम 89ए का उप-नियम (1) किसी मामले को एक न्यायालय से दूसरे न्यायालय

अनुवादित

में स्थानांतरित करने की स्थिति में अपनाई जाने वाली पद्धति और प्रक्रिया का उल्लेख करता है। यह मामला 18-2-86 को नियत किया गया था। मामले को स्थानांतरित करने का आदेश 21-2-86 को स्पष्ट रूप से पक्षों की अनुपस्थिति में किया गया था। यद्यपि इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह आदेश दिया गया था कि मामले को स्थानांतरण न्यायालय द्वारा निर्धारित तिथि 18-3-86 को लिया जाए और यह स्थानांतरण न्यायालय के लिए स्वयं को संतुष्ट करने के लिए बाध्यकारी था कि पक्षकारो या उनके अधिवक्ता को सूचित किया गया है और पक्षकारो की उपस्थिति का उल्लेख उस दिनांक पर किया गया। नियम 89ए के उप-नियम (2) के अंतर्गत यह भी आवश्यक था कि इस आशय का एक व्याख्यान भी बनाया जाए कि पक्ष या पक्षकारो को हस्तांतरण के बारे में सूचित किया गया है। आदेश पत्र के किनारे पर दिनांक 18-3-86 को दर्शाया गया है तथा पक्षकारों के अधिवक्ता के नाम स्पष्ट रूप से उन्हें सूचित करने के उद्देश्य से दर्शाये गये हैं लेकिन कभी कोई सूचना नहीं भेजी गई ।हालाँकि, स्वयं को संतुष्ट किए बिना, स्थानांतरित न्यायालय भी इस बात से संतुष्ट हुए बिना आगे बढ़ गया कि उनके पक्षकारो के अधिवक्ता को इस तरह के स्थानांतरण के बारे में सूचित किया गया है। न्यायालय द्वारा, पूरी जल्दबाजी के साथ विपरीत पक्ष (वादी) के बयान को अभिलिखित किया गया एवं स्वयं संतुष्ट होने के बजाय आवेदक (प्रतिवादी)की अनुपस्थितिअभिलिखित करते हुए उसी तिथि जो दिनांक 18-3-86 थी, मामले का एकपक्षीय निस्तारण कर दिया गया। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि स्थानांतरित करने वाले न्यायालय और साथ ही स्थानांतरी न्यायालय, दोनों ने सामान्य नियम (सिविल) के नियम 89 ए के प्रावधानों की अनदेखी की, जिससे आवेदक पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। इस प्रकार, न्यायालय ने वाद पर एक पक्षीय निर्णय सुनाते हुए एक त्रुटि की है, जिसे न्यायालय की त्रुटि माना जाएगा और जिसके लिए किसी भी पक्ष को दंडित नहीं किया जा सकता है। यहां यह उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं होगा कि वर्तमान परिस्थितियों में जब आवास की कमी लोगों को घेर रही है तो किरायेदारी स्वाभाविक रूप से एक मूल्यवान अधिकार बन जाती है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी किरायेदारी पर आक्रमण से बचने का अवसर देना होगा। किसी व्यक्ति की किरायेदारी से जुड़े वाद और विशेष रूप से उसके पीछे, का निस्तारण करते समय विवेकपूर्ण सावधानी बरतने की आवश्यकता होगी। अदालतों को खुद को आश्वस्त करना चाहिए कि किरायेदार को निष्कासन का विरोध करने का पर्याप्त अवसर दिया गया है और ऐसे किरायेदार को निष्कासित करने के आदेश का सहारा तभी लिया जाएगा जब यह पाया जाएगा कि किरायेदार कुछ लापरवाही या निष्क्रियता का दोषी है या जानबूझकर कार्यवाही में भागीदारी से बचने की कोशिश कर रहा है।

9. सी.पी.सी. के आदेश 9, नियम 13 के अंतर्गत आवेदन का निस्तारण करते हुए निम्न न्यायालय ने स्वयं माना है कि आवेदक को दिनांक 18-3-1986 को स्थानांतरी न्यायालय के समक्ष मामले की सुनवाई के बारे में सूचित नहीं किया गया था और निर्धारित

अनुवादित

तिथि पर उसकी गैर-उपस्थिति के लिए पर्याप्त मामला बनाया गया था। इसमें आगे यह भी जोड़ा जा सकता है कि सी.पी.सी. के आदेश 9, नियम 13 के अंतर्गत आवेदक द्वारा अपने आवेदन के समर्थन में दाखिल किए गए हलफनामे में आवेदक को चूक या निष्क्रियता का दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। साथ ही इस न्यायालय में दाखिल शपथ पत्र में कहा गया है कि दिनांक 19-4-86 को मामले के स्थानांतरण के बारे में पता चलने पर तुरंत दिनांक 21-4-86 (दिनांक 20-4-86 को रविवार होने के कारण) को एक आवेदन दाखिल किया गया था और इसे दिनांक 23-4-86 पंजीकृत किया गया था। जब न्यायालय को उसके द्वारा की गई कोई त्रुटि या गलती का एहसास हो गया था तो उस त्रुटि को समाप्त करना और गलती को सुधारना अधिक उचित होता। अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते समय यह न्यायालय का कर्तव्य था कि एकपक्षीय डिक्री को अपास्त कर दिया जाए और प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम की धारा 17 का अनुपालन बनाए रखने के बजाय शक्तियों के प्रयोग का सहारा लिया जाना चाहिए था।

10. एक विलक्षण तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि पक्षकारो के अधिवक्ता को और विशेष रूप से प्रतिवादी के अधिवक्ता को मामले का स्थानांतरण जिला न्यायाधीश के न्यायालय से 8वें अतिरिक्त जिला न्यायाधीशके न्यायालय में होने के बारे में सूचित नहीं किया गया था,यह नहीं माना जा सकता कि प्रतिवादी अनुपस्थित था। अतः न्यायालय आवेदक की अनुपस्थि में एक पक्षीय रूप से वाद के निस्तारण में आगे बढ़ने में सक्षम नहीं था। न्यायालय की एक कार्यवाही के कारण गलती या त्रुटि उत्पन्न हुई थी और न्यायालय पर यह दायित्व था कि वह अपनी गलती सुधारे। ऐसी स्थिति में भी सी.पी.सी. के आदेश 9, नियम 13 के अंतर्गत एक आवेदन दिया गया जो आवश्यक नहीं था और ऐसे प्रावधान सख्ती से लागू नहीं थे। मामले के तथ्यों के आधार पर किसी भी आवेदन की आवश्यकता नहीं थी और न ही प्रतिवादी को अधिनियम की धारा 17 के

अनुवादित

प्रावधानों का अनुपालन करने की आवश्यकता थी। ऐसे तथ्यों से अवगत होने और ऐसे तथ्यों की सूचना न्यायालय की जानकारी में लाए जाने के पश्चात उसे स्वयं ही एक पक्षीय डिक्री को अपास्त कर देना चाहिए था। "एक्टस क्यूरिया नेमिनेम ग्रेवाबिट" का सिद्धांत यानी न्यायालय का कोई भी कार्य किसी पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालेगा, सख्ती से लागू होता है और तत्काल मामले के तथ्यों से पूरी तरह आकर्षित होता है। मुन्नू बनाम श्रीमती चंपकाफी, 1979 एएलएल एलजे 534 के मामले में इस न्यायालय द्वारा एक समान दृष्टिकोण अपनाया गया था, जहां यह माना गया था कि जहां प्रतिवादी के अधिवक्ता को वाद की कार्यवाही की तिथि में बदलाव की जानकारी की कमी के कारण, यह नहीं माना जा सकता है कि न्यायालय ने वाद की सुनवाई के लिए जो तिथि नियत की थी उस पर इसका निस्तारण कर दिया है और परिणामस्वरूप, सी.पी.सी. के आदेश 9, नियम 13. के प्रावधान लागू नहीं थे। आगे यह माना गया कि ऐसी परिस्थितियों में प्रतिवादी-आवेदकों को प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम की धारा 17 के प्रावधानों का पालन करने की आवश्यकता नहीं थी। मोहम्मद अली बनाम गवर्नर जनरल इन काउंसिल, एआईआर 1949 एएलएल36 के मामले में इस न्यायालय ने माना है कि जहां प्रतिवादियों को सुनवाई की तिथि की सूचना दिए बिना याचिका निरस्त कर दी गई थी, याचिका की ऐसी निरस्तता आदेश 41 नियम 17के अंतर्गत नहीं होगी। ऐसी निरस्तता के आदेश को अपास्त करने का दावा करते समय परिसीमा अधिनियम, 1908 के अनुच्छेद 168 के प्रावधान लागू नहीं होंगे। इस न्यायालय के एक विद्वान न्यायाधीश ने मोहम्मद अली बनाम गवर्नर जनरल इन काउंसिल (उपरोक्त) के मामले में निम्नानुसार निर्णय दिया: - "यह हमेशा न्यायालय के लिए खुला है और न्यायालय को अपनी त्रुटि सुधारने के लिए खुला रहना चाहिए। न्यायालय ने यही किया है।"

11. भगवती प्रसाद बनाम राम रूप तिवारी, एआईआर 1962 एएलएल 622 के मामले में

अनुवादित

इस न्यायालय द्वारा एक ही सिद्धांत रखा गया है।

12. ऊपर उद्धृत मामलों में विधि की उक्ति इस मामले के तथ्यों पर पूरी तरह लागू होती है। यह स्पष्ट है कि आवेदक (प्रतिवादी) की अनुपस्थिति में वाद की सुनवाई की गई और एकपक्षीय निस्तारण किया गया, क्योंकि न तो आवेदक को और न ही उसके अधिवक्ता को स्थानांतरण न्यायालय या स्थानांतरी न्यायालय द्वारा कोई सूचना दी गई थी। आवेदक की अनुपस्थिति न तो जानबूझकर थी और न ही उसे लापरवाही बरतने के लिए दोषी ठहराया जा सकता है। प्रतिवादी की अनुपस्थिति न्यायालय की एक गलती के कारण हुई। न्यायालय की एक गलती, त्रुटि या चूक के कारण स्वाभाविक रूप से आवेदक को कष्ट नहीं सहने दिया जा सकता हैं और गैर-उपस्थिति के लिए आवेदक को दोषी नहीं ठहराया जा सकता है । सी.पी.सी. के आदेश 9, नियम 13 के अंतर्गत आवेदन निचली न्यायालय द्वारा इसे अस्वीकार नहीं किया जाना चाहिए था। इस प्रकार, निचली न्यायालय ने इस आधार पर आवेदन को अस्वीकार कर दिया कि सी.पी.सी. के आदेश 9, नियम 13 के अंतर्गत आवेदन प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम की धारा 17 की आवश्यकताओं को पूरा नहीं किया परिणामस्वरूप उस क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में गलती की, जो अन्यथा विधि द्वारा उसमें निहित था । विपरीत पक्ष के विद्वान अधिवक्ता श्री एस.एम. दयाल ने बहुत सीधे तौर पर विधि के प्रस्तावों को स्वीकार कर लिया है, लेकिन हल्के ढंग से अपनी प्रस्तुतीकरण पर अड़े रहे कि जहां एक विधि एक पक्षीय डिक्री को अपास्त करने के लिए स्पष्ट प्रावधान प्रदान करता है, वहां न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति को लागू नहीं किया जा सकता है। मुझे इस तथ्य के दृश्टिकोण से इस प्रस्तुतीकरण में ज्यादा दम नजर नहीं आता कि न्यायालय के पास हमेशा अपनी गलतियों या त्रुटियों को सुधारने की शक्ति होती है और इसके लिए किसी पक्ष को दंडित नहीं किया जा सकता है। न्यायालय अपनी अंतर्निहित शक्ति का उपयोग करते हुए किसी पक्ष के साथ उसकी गलतियों के कारण हुए

अनुवादित

अपकार को दोषमुक्त करने में पूरी तरह सक्षम है। विपरीत पक्ष के विद्वान अधिवक्ता ने जी.डी. मुखर्जी बनाम शिव कुमार गुप्ता, (1983) 2 ऑल रेन कैस 315 के मामले का आश्रय लिया । इस उद्धरण का विपरीत पक्ष के लिए कोई फायदा नहीं है क्योंकि वर्तमान मामले में शामिल विवाद से उस मामले के तथ्य भिन्न हैं। लेफ्टिनेंट कमांडर, जी.डी. मुखर्जी बनाम शिव कुमार गुप्ता (उपरोक्त) के मामले में यह पाया गया कि आवेदक को सूचना प्रदान की गई थी, लेकिन कुछ अति व्यस्तताओं के कारण वह अपने मामले में उपस्थित नहीं हो सका। उस मामले में न्यायालय की कोई गलती नहीं थी और ऐसे में यह आवश्यक था कि सी.पी.सी. के आदेश 9, नियम 13के अंतर्गत आवेदन दाखिल करते समय धारा 17 के अनुपालन का सहारा लेना होगा। यह मामला वर्तमान मामले में सामने आ रहे तथ्यों से भी उतना ही अलग है।"

अक्तारयार खान बनाम अज़हर यार खान के मामले में **1993 एससीसी ऑनलाइन ऑल 156** में रिपोर्ट की गई, इस न्यायालय ने निम्नानुसार देखा: -

"आगे प्रस्तुत किया गया कि निचली न्यायालय ने आक्षेपित आदेश में कहा है कि स्थानांतरण न्यायालय ने प्रतिवादी-आवेदकों को समन भी जारी किया था और परिणामस्वरूप सामान्य नियम (सिविल) के नियम 89 ए के प्रावधानों की आवश्यकता का अनुपालन किया गया था और प्रतिवादी-आवेदकों की ओर से की गई प्रस्तुति धारणीय नहीं थी। सामान्य नियम सिविल) का नियम 89ए, जिस पर मजबूत निर्भरता रखी गई है, इस प्रकार है:-

"नियम 89ए(1) जब कोई मामला यानी वाद, अपील या अन्य कार्यवाही जिसमें किसी पक्ष या पक्षकारों की उपस्थिति किसी विशेष न्यायालय में एक तिथि को नियत कर दिया गया है और मामला उस न्यायालय से दूसरे न्यायालय में स्थानांतरित कर दिया गया है तो पूर्व न्यायालय स्थानान्तरण के आदेश को आदेश पत्रक में अभिलिखित करेगी और पक्ष अथवा पक्षकारों के अधिवक्ता द्वारा हस्ताक्षरित करायेगी।यदि कोई पक्षकार गैर-प्रतिनिधित्वित है तो सूचना उसके पंजीकृत पते पर भेज दी जायेगी। मामले को स्थानांतरित करने वाली न्यायालय द्वारा पहले से ही नियत की गई तिथि और लिखे गए पक्षों की उपस्थिति पर अन्य न्यायालय द्वारा बुलाया जाएगा।

(2) <u>इस आशय का एक टिप्पणी कि किसी पक्ष या पक्षकारों को उप-नियम (1) के अनुसार सूचित किया गया है, स्थानांतरित करने वाले न्यायालय द्वारा अभिलेख पर अभिलिखित किया जाएगा।</u>

(3) जहां मामले बड़ी संख्या में स्थानांतरित किए जाते हैं वहाँ वह न्यायालय, जहां से उन्हें स्थानांतरित किया जाता है, उप-नियम (1) में

अनुवादित

निर्धारित प्रक्रिया का पालन करने के अलावा, एक सूची तैयार करेगा जिसमें वाद संख्या और उनके वर्षों के साथ पक्षकार और उनके अधिवक्ताओं के नाम का उल्लेख होगा और इसकी एक प्रति बार के सदस्यों की जानकारी के लिए स्थानीय अधिवक्ता परिषद के सूचना पटल पर चिपका दी जाएगी, और दूसरी प्रति आम जनता की जानकारी के लिए न्यायालय के सूचना पटल पर चिपका दी जाएगी। स्थानांतरित मामलों के अभिलेखों के साथ , सूची की एक प्रति (या इसके प्रासंगिक उद्धरण) अन्य न्यायालय को भी भेजा जाएगा जिसे अन्य न्यायालय इसे अपने सूचना पटल पर चिपकाएगी। यदि अन्य न्यायालय किसी भिन्न स्थान पर स्थित है जहां कोई अन्य अधिवक्ता परिषद है, तो सूची की एक अतिरिक्त प्रति अधिवक्ता परिषद के सूचना पटल पर चिपकाने के लिए भेजी जाएगी।

(4) जिस न्यायालय में मामले स्थानांतरित किए जाते हैं, वह इस बात से संतुष्ट हुए बिना आगे नहीं बढ़ेगी कि पक्षकारों या उनके अधिवक्ता, जैसा भी मामला हो, को स्थानांतरण के बारे में सूचित कर दिया गया है।"

5. उपरोक्त उद्धृत सामान्य नियम (सिविल) के नियम 89ए के प्रावधानों को वर्तमान मामले के तथ्यों में लागू करने पर, आदेश पत्रक (जिसकी एक प्रति स्थगन आवेदन के समर्थन में दाखिल शपथ पत्र के साथ दाखिल की गई है) से देखा जाएगा कि वाद दिनांक 8-10- 1991 को जिला न्यायाधीश, बरेली की न्यायालय में पंजीकृत किया गया था और दिनांक 11-11-1991 को प्रतिवादियों की उपस्थिति के लिए नियत किया गया था, जिसके लिए सम्मन जारी किए गए थे। दिनांक 30-10-1991 को मामला अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, तृतीय की न्यायालय में स्थानांतरित कर दिया गया जहां यह दिनांक 2-11-1991 को प्राप्त हुआ। उसी दिन स्थानांतरण न्यायालय ने मामले को नियत तिथि यानी दिनांक 11-11-1991 पर प्रस्तुत करने का आदेश दिया। दिनांक 11-11-1991 को न्यायालय ने पाया कि प्रतिवादी अनुपस्थित थे और कोई लिखित बयान दाखिल नहीं किया गया था। इसलिए न्यायालय ने अंतिम सुनवाई के लिए दिनांक 20-12-1991 की तिथि नियत की। उक्त तिथि को न्यायालय की व्यस्तता के कारण मामला दिनांक 3-2-1992 के लिए स्थगित कर दिया गया। दिनांक 3-2-1992 को अधिवक्ता हड़ताल पर थे और अंतिम सुनवाई के लिए दिनांक 9-4-1992 की तिथि नियत की गई। वाद के आदेश पत्र

अनुवादित

से ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि सामान्य नियम (सिविल) के नियम 80ए(1) के अंतर्गत आवश्यक कोई सूचना प्रतिवादियों को जारी किया गया था। आदेश पत्र से यह भी प्रतीत नहीं होता है कि चूंकि प्रतिवादियों का प्रतिनिधित्व नहीं था, इसलिए इस हस्तांतरण की कोई भी जानकारी उनके पंजीकृत पते पर भेजी गई थी। स्थानांतरित करने वाली न्यायालय ने यह अभिलिखित नहीं किया है कि प्रतिवादियों को स्थानांतरण के बारे में सूचित किया गया था। जैसा कि नियम 89ए के उप-नियम (4) के अंतर्गत आवश्यक है, आदेश पत्र में यह भी नहीं दिखाया गया है कि स्थानांतरण न्यायालय ने ऐसी कोई संतुष्टि दिखाई है कि प्रतिवादियों को स्थानांतरण के बारे में सूचित किया गया था। इस प्रकार वर्तमान मामले के तथ्यों से यह स्पष्ट है कि सामान्य नियम (सिविल) के नियम 89ए का कोई अनुपालन नहीं किया गया है। हालाँकि, वादी-विरोधी पक्ष के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि जब मामलों को स्थानांतरित किया जाता है तो सूचना के लिए न्यायालय के सूचना पटल और स्थानीय अधिवक्ता परिषद के सूचना पटल पर एक सामान्य सूचना चिपकाई जाती है और जैसे की सामान्य नियम (सिविल) के नियम 89ए के अंतर्गत आवश्यक है, इसे पर्याप्त जानकारी माना जाएगा। उन्होंने यह भी तर्क दिया है कि आक्षेपित आदेश के उपांत्य वाक्य खण्ड में न्यायालय ने उल्लेख किया है कि स्थानांतरण न्यायालय ने प्रतिवादियों को समन भेजा था और इसलिए नियम 89ए का अनुपालन भी किया गया था। हालाँकि, मैं वादी विरोधी पक्ष के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए प्रस्तुतीकरण से सहमत होने में असमर्थ हूँ। सामान्य नियम (सिविल) के नियम 89ए के उप-नियम (3) के अवलोकन से यह स्पष्ट होगा कि हस्तांतरणकर्ता न्यायालय को नियमों के नियम 89ए के उप-नियम (1) में निर्धारित प्रक्रिया का पालन करना आवश्यक है और तो और, इसके लिए सूचना पटल पर सूची की एक प्रति भी चिपकानी होगी, लेकिन ऐसा तभी किया जाता है जब बड़ी संख्या में मामले स्थानांतरण कर्ता न्यायालय से किसी अन्य

अनुवादित

न्यायालय में स्थानांतरित किए जाते हैं। यहां, इस तथ्य के अलावा कि नियम 89ए के उप-नियम (1) की आवश्यकताओं का अनुपालन नहीं किया गया है, यह दिखाने के लिए कोई निष्कर्ष या साक्ष्य नहीं है कि मामले के हस्तांतरण के संबंध में जानकारी के लिए सूचना को सूचना पटल पर चिपकाया गया था। वाद के आदेश पत्र से यह भी प्रतीत नहीं होता है कि प्रतिवादियों को स्थानांतरण न्यायालय द्वारा कोई समन जारी किया गया था और आदेश के उपांत्य वाक्य खण्ड में छिटपुट टिप्पणी न्यायालय द्वारा किसी मिथ्याबोध के अंतर्गत की गई प्रतीत होती है। इसलिए, मैं प्रतिवादी आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता से सहमत हूं कि सामान्य नियम (सिविल) के नियम 89ए के प्रावधानों का कोई अनुपालन नहीं हुआ है। जहां तक निचली न्यायालय द्वारा दिए गए तर्क की बात है कि लघु वाद न्यायालय अधिनियम की धारा 17(1) परंतुक का अनुपालन अनिवार्य था और एक पक्षीय डिक्री को अपास्त नहीं किया जा सकता था क्योंकि प्रतिवादी-आवेदकों द्वारा उक्त प्रावधान अनुपालन नहीं किया गया,आवेदकों के अधिवक्ता ने बलबीर सिंह चौहान (उपरोक्त) के मामले का मजबूत आश्रय लिया है। उक्त मामले में प्रतिवादियों के विरुद्ध बेदखली और बकाया किराया का वाद दाखिल किया गया था जिसे दूसरे न्यायालय में स्थानांतरित कर दिया गया था लेकिन हस्तांतरण की कोई जानकारी पक्षकारो को नहीं दी गई थी। वाद का एकपक्षीय निस्तारण किया गया और उसके पश्चात प्रतिवादियों ने सी.पी.सी. के आदेश 9 नियम 13 के अंतर्गत एक आवेदन दाखिल किया। न्यायालय ने प्रतिवादियों की अनुपस्थिति के कारण को पर्याप्त पाया लेकिन लघु वाद न्यायालय अधिनियम की धारा 17(1) के प्रावधानों के परंतुक का अनुपालन न करने के आधार पर आवेदन को निरस्त कर दिया। इस न्यायालय ने माना कि, मामले के तथ्यों में, सामान्य नियम (सिविल) के नियम 89ए के अंतर्गत आवश्यक वाद के हस्तांतरण के बारे में अधिवक्ता या पक्ष को सूचित नहीं करने के लिए न्यायालय स्वयं दोषी थी और ऐसी स्थिति में सी.पी.सी. के आदेश

अनुवादित

> 9, नियम 13 के अंतर्गत न तो कोई आवेदन आवश्यक था और न ही लघु वाद न्यायालय अधिनियम की धारा 17(1) का अनुपालन आवश्यक था। न्यायालय को सी.पी.सी. के धारा 151,के अंतर्गत अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए एक पक्षीय डिक्री कोअपास्त करने की आवश्यकता थी और ऐसा करने में विफलता निर्णय को दूषित कर देती है और यह अधिकार क्षेत्र के गलत प्रयोग के समान है। इस मामले का निर्णय प्रतिवादी-आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता के तर्क का समर्थन करता है। वादी-विरोधी पक्ष के विद्वान अधिवक्ता कोई अन्य निर्णय दिखाने में विफल रहे है जिसमें विपरीत दृष्टिकोण लिया गया हो। इसलिए, मुझे प्रतिवादी-आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए प्रस्तुति में पर्याप्त बल लगता है।"

2008 एससीसी ऑनलाइन एएलएल 140 में रिपोर्ट किए गए **सिकंदर बनाम अखलाक** के मामले में पारित फैसले के प्रासंगिक वाक्य खण्ड नीचे पुन: प्रस्तुत किए गए हैं: -

> "यह विवाद में नहीं है कि विचारण न्यायालय ने 11 मई, 2000 को एक आदेश पारित किया था कि प्रतिवादी के विरुद्ध वाद एकपक्षीय रूप से आगे बढ़ेगा। याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का तर्क है कि भले ही वाद को पूर्वव्यापी रूप से आगे बढ़ाने का आदेश पक्षकारों के बीच अंतिम हो सकता है, फिर भी न्यायालय, नियमों के नियम 89-ए के प्रावधानों का पालन करने के लिए बाध्य था और अपने तर्क के समर्थन में उन्होंने इस न्यायालय के मामले अष्टोष श्रोत्रिय (उपरोक्त) में हुए निर्णय का आश्रय लिया है। नियमों का नियम 89-ए इस प्रकार है:
> "89-ए। मामलों के स्थानांतरण या वापसी पर अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया-(1) जब कोई मामला यानी वाद, अपील या अन्य कार्यवाही जिसमें किसी पक्ष या पक्षकारों की उपस्थिति किसी विशेष न्यायालय में एक तिथि को नियत कर दिया गया है और मामला उस न्यायालय से दूसरे न्यायालय में स्थानांतरित कर दिया गया है तो पूर्व न्यायालय स्थानान्तरण के आदेश को आदेश पत्रक में अभिलिखित करेगी और पक्ष अथवा पक्षकारों के अधिवक्ता द्वारा हस्ताक्षरित

अनुवादित

करायेगी।यदि कोई पक्षकार गैर-प्रतिनिधित्वित है तो सूचना उसके पंजीकृत पते पर भेज दी जायेगी। मामले को स्थानांतरित करने वाली न्यायालय द्वारा पहले से ही नियत की गई तिथि और लिखे गए पक्षों की उपस्थिति पर अन्य न्यायालय द्वारा बुलाया जाएगा।

(2) इस आशय की एक और बात कि स्थानांतरित करने वाले न्यायालय द्वारा अभिलेख में यह अभिलिखित किया जाएगा कि किसी पक्ष या पक्षकारों को उप-नियम (1) के अनुसार सूचित किया गया है।

(3) जहां मामले बड़ी संख्या में स्थानांतरित किए जाते हैं वहाँ वह न्यायालय, जहां से उन्हें स्थानांतरित किया जाता है, उप-नियम (1) में निर्धारित प्रक्रिया का पालन करने के अलावा, एक सूची तैयार करेगा जिसमें वाद संख्या और उनके वर्षों के साथ पक्षकार और उनके अधिवक्ताओं के नाम का उल्लेख होगा और इसकी एक प्रति बार के सदस्यों की जानकारी के लिए स्थानीय अधिवक्ता परिषद के सूचना पटल पर चिपका दी जाएगी, और दूसरी प्रति आम जनता की जानकारी के लिए न्यायालय के सूचना पटल पर चिपका दी जाएगी। स्थानांतरित मामलों के अभिलेखों के साथ , सूची की एक प्रति (या इसके प्रासंगिक उद्धरण) अन्य न्यायालय को भी भेजा जाएगा जिसे अन्य न्यायालय इसे अपने सूचना पटल पर चिपकाएगी। यदि अन्य न्यायालय किसी भिन्न स्थान पर स्थित है जहां कोई अन्य अधिवक्ता परिषद है, तो सूची की एक अतिरिक्त प्रति अधिवक्ता परिषद के सूचना पटल पर चिपकाने के लिए भेजी जाएगी।

(4) <u>जिस न्यायालय में मामले स्थानांतरित किए जाते हैं, वह इस बात से संतुष्ट हुए बिना आगे नहीं बढ़ेगी कि पक्षकारो या उनके अधिवक्ता, जैसा भी मामला हो, को स्थानांतरण के बारे में सूचित कर दिया गया है।</u>

(5) उप-नियम (1) से (4) में 'स्थानांतरण' में मामले की वापसी शामिल है।"

8. इस न्यायालय ने अष्टोष श्रोत्रिय (उपरोक्त) मामले में नियमों के नियम 89-ए का संबंध निम्नानुसार देखा:

"तत्काल मामले में विचार करने योग्य बिंदु यह हैं कि

अनुवादित

संहिता के आदेश IX, नियम 6 के अंतर्गत 'वाद की एकपक्षीय सुनवाई की जाए' अभिव्यक्ति की क्या संरचना और अर्थ दिया जाना चाहिए, और क्या विद्वान जिला न्यायाधीश सामान्य नियमों (सिविल) के नियम 89-ए के प्रावधानों के उल्लंघन में मामला या वाद स्थानांतरित कर सकते हैं और क्या संहिता की धारा 115 में गिनाए गए आधार इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप के लिए बनाए गए हैं।

.....

संहिता के आदेश IX के नियम 6(1)(ए) के अंतर्गत विधायिका द्वारा अपनाई गई अभिव्यक्ति 'वाद की एकपक्षीय सुनवाई की जाए'का सीधा सा मतलब है कि न्यायालय वाद के विभिन्न चरण की सुनवाई के लिए आगे बढ़ सकता है लेकिन निश्चित रूप से एक पक्षीय गुण-दोष के आधार पर इसका निर्णय नहीं किया जाना चाहिए। इसे अलग ढंग से कहें तो, 'वाद की एकपक्षीय सुनवाई की जाए' अभिव्यक्ति का उद्देश्य एकपक्षीय डिक्री पारित करना नहीं है।

9. संग्राम सिंह बनाम चुनाव न्यायाधिकरण, कोटा, *2* मामले में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश गण ने निम्नानुसार देखा:

"जैसा कि हमने पहले ही देखा है, प्रक्रिया के विधि इस सिद्धांत पर आधारित हैं कि, जहां तक संभव हो, किसी व्यक्ति की अनुपस्थिति में न्यायालय में कोई भी कार्यवाही उसके नुकसान के लिए नहीं की जानी चाहिए। निश्चित रूप से अपवाद हैं, और यह उनमें से एक है। जब प्रतिवादी को सूचना दी गई है और उसे उपस्थित होने का अवसर दिया गया है, तो, यदि वह उपस्थित नहीं होता है तो न्यायालय उसकी अनुपस्थिति में आगे बढ़ सकती है, लेकिन ध्यान दें, न्यायालय को एक पक्षीय आदेश करने का निर्देश नहीं दिया गया है।

निश्चित रूप से यह तथ्य कि यह 'एकपक्षीय' कार्यवाही कर रहा है, इसकी कार्यवाही के विवरण में अभिलिखित किया जाएगा लेकिन यह केवल तथ्य का एक बयान है और 'एकपक्षीय' के अंतर्गत प्रतिवादी के विरुद्ध, डिक्री या अन्य 'एकपक्षीय आदेश जिसे देने के लिए न्यायालय अधिकृत है, दिया गया कोई आदेश नहीं है। । नियम

अनुवादित

6(1)(ए) केवल एक अवरोध को हटाने से अधिक कुछ नहीं करता है । केवल किसी एक पक्ष की अनुपस्थिति में आगे बढ़ने के लिए यह न्यायालय को केवल वह करने के लिए अधिकृत करता है जो वह इस अधिकार के बिना नहीं कर सकता था । नियम 7 और नियम 13 के बीच भाषा में विरोधाभास इस पर जोर देता है।"

उपरोक्त टिप्पणी यह नहीं दर्शाती है कि न्यायालय में कोई भी कार्यवाही किसी व्यक्ति की हानि के लिए की जा सकती है और 'वाद की एकपक्षीय सुनवाई की जाए' अभिव्यक्ति का अर्थ यह नहीं है कि न्यायालय एकपक्षीय डिक्री या आदेश पारित कर सकता है । किसी भी घटना में, अभिव्यक्ति का अर्थ यह नहीं है कि प्रतिवादी आवेदक को वाद की प्रक्रिया में भाग लेने से रोक दिया जाना चाहिए। इस मामले के औचित्य को देखते हुए, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि एकपक्षीय कार्यवाही का आदेश प्रतिवादी को वाद की आगे की कार्यवाही में भाग लेने से नहीं रोकता है।

सामान्य नियम (सिविल) के नियम 89-ए को पक्षों के बीच न्याय करने और जब भी किसी मामले को एक न्यायालय से दूसरे न्यायालय में स्थानांतरित करने का आदेश दिया जाता है, तो दूसरे पक्ष को सूचित करने की दृष्टि से बनाया गया है। मामले को स्थानांतरित करने वाले न्यायालय को आदेश पत्र में स्थानांतरण के आदेश को अभिलिखित करने और उस पर पक्षकारों के अधिवक्ता द्वारा हस्ताक्षर कराने का कर्तव्य सौंपा गया है। वर्तमान मामले में ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि आदेश पत्र पर आदेश पारित किया गया है और पक्षकारों या उनके अधिवक्ता को हस्ताक्षर करने के लिए बुलाया गया था ताकि उन्हें मामले की जानकारी मिल सके की वाद को किसी अन्य न्यायालय में स्थानांतरित किया जा रहा था। सामान्य नियम (सिविल) के नियम 89-ए के अंतर्गत यह भी प्रावधान किया गया है कि मामले के हस्तांतरण की जानकारी संबंधित पक्ष को उसके पंजीकृत पते पर भेजनी होगी। जिस न्यायालय में मामला स्थानांतरित किया

अनुवादित

गया था, वह पार्टियों की उपस्थिति की जांच करने के लिए बाध्य है और इसे अभिलिखित किया जाना चाहिए। नियम 89-ए के उप-नियम (4) में यह भी प्रावधान है कि जिस न्यायालय में मामला स्थानांतरित किया गया है, वह इस बात से संतुष्ट हुए बिना आगे नहीं बढ़ेगा कि पक्षों को सूचित कर दिया गया है। इस प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया और ग्यारहवें अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, जिनके न्यायालय में मामला स्थानांतरित किया गया था,ने यह सुनिश्चित नहीं किया कि प्रतिवादी आवेदक को मामले के हस्तांतरण के बारे में सूचित किया गया था या नहीं। इस प्रकार, जब मामला एक न्यायालय से दूसरे न्यायालय में स्थानांतरित किया जाता है, तो नियम 89-ए में निर्धारित प्रक्रिया का पालन किया जाना चाहिए ताकि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पर्याप्त रूप से अनुपालन किया जा सके। वर्तमान मामले में, ऐसा प्रतीत होता है कि न तो स्थानांतरण करने वाले प्रथम न्यायालय ने और न ही अंतरिती न्यायालय ने अपने कर्तव्यों का पालन किया है और ऐसा प्रतीत होता है कि अंतरिती न्यायालय ने सामान्य नियम (सिविल) के नियम 89-ए के प्रावधानों का उल्लंघन करते हुए मामले का निर्णय लिया है। ऐसी स्थिति में, यह सुनिश्चित किए बिना कि क्या प्रतिवादी के अधिवक्ता को स्थानांतरण के आदेश के बारे में सूचित किया गया था या यह सुनिश्चित किए बिना कि क्या दोनों पक्षों को अंतरिती न्यायालय में निर्धारित तिथि के बारे में सूचित किया गया था, आक्षेपित आदेश पारित किया गया है, यह स्पष्ट रूप से था गलत था है और निचली अदालतों ने निश्चय ही अवैध रूप से और भौतिक अनियमितता के साथ अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया है। परिणामस्वरुप, दिया गया निर्णय, प्रदान की गई प्रक्रिया के विरुद्ध है और इसे बनाए नहीं रखा जा सकता है।

.....

वर्तमान मामले में, सामान्य नियम (सिविल) के नियम *89*-ए के अनुसार प्रतिवादी या उसके अधिवक्ता को कोई जानकारी दिए बिना मामला जिला न्यायाधीश की

अनुवादित

न्यायालय से ग्यारहवें अतिरिक्त जिला न्यायाधीश की न्यायालय में स्थानांतरित कर दिया गया था और यह निश्चित रूप से गैर-उपस्थिति के लिए पर्याप्त कारण है।"

इस न्यायालय ने रिट याचिका संख्या **1899/2012 (एमएस) (जग्गन नाथ और अन्य बनाम जिला न्यायाधीश, बाराबंकी और अन्य)** में पारित फैसले में निम्नानुसार कहा: -

"नियम 89-ए (1) इस प्रकार है:-

मामलों के स्थानांतरण या वापसी पर अपनाई जाने वाली प्रक्रिया:-

(1)"जब कोई मामला यानी वाद, अपील या अन्य कार्यवाही जिसमें किसी पक्ष या पक्षकारों की उपस्थिति किसी विशेष न्यायालय में एक तिथि को नियत कर दिया गया है और मामला उस न्यायालय से दूसरे न्यायालय में स्थानांतरित कर दिया गया है तो पूर्व न्यायालय स्थानान्तरण के आदेश को आदेश पत्र में अभिलिखित करेगी और पक्ष अथवा पक्षकारों के अधिवक्ता द्वारा हस्ताक्षरित करायेगी।यदि कोई पक्षकार गैर-प्रतिनिधित्वित है तो सूचना उसके पंजीकृत पते पर भेज दी जायेगी। मामले को स्थानांतरित करने वाली न्यायालय द्वारा पहले से ही नियत की गई तिथि और लिखे गए पक्षों की उपस्थिति पर अन्य न्यायालय द्वारा बुलाया जाएगा।"

<u>रीना साध बनाम अंजना एंटरप्राइजेज (2009) (1060 आरडी 725 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि नियम 89-ए अनिवार्य है। इसलिए, ऐसा माना गया है कि इसका सख्ती से अनुपालन की आवश्यकता है।"</u>

अनामिका मिश्रा बनाम स्टेट ऑफ यूपी और एक अन्य जो **एससीसी ऑनलाइन ऑल 4599** में रिपोर्ट की गई **,** के मामले में पारित फैसले में कहा गया है कि:-

"7. प्राकृतिक न्याय में प्रशासनिक विधि एक महत्वपूर्ण अवधारणा है। मेगारी जे के शब्दों में, यह "न्याय जो सरल और प्राथमिक है, जटिल, परिष्कृत और तकनीकी न्याय से भिन्न है।" प्रशासनिक कार्रवाई की प्रक्रिया में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत या मौलिक नियम न तो किसी संहिता में नियत की गई है और न ही निर्धारित है। वे वर्णित करने की तुलना में बेहतर तरीके से ज्ञात हैं और इसे परिभाषित करने की

अनुवादित

तुलना में घोषित करना आसान है।

8. प्राकृतिक न्याय, सामान्य ज्ञान न्याय का दूसरा नाम है। प्राकृतिक न्याय के नियम संहिताबद्ध नहीं हैं। लेकिन वे मनुष्य के विवेक में रचे-बसे सिद्धांत हैं। प्राकृतिक न्याय सामान्य ज्ञान के उदार तरीके से न्याय का प्रशासन है। न्याय काफी हद तक प्राकृतिक आदर्शों और मानवीय मूल्यों पर आधारित है। न्याय प्रशासन को उन संकीर्ण और प्रतिबंधित विचारों से मुक्त किया जाना चाहिए जो आमतौर पर सूत्रबद्ध विधि से जुड़े होते हैं जिसमे भाषाई तकनीकी और व्याकरण संबंधी बारीकियां शामिल हैं । यह न्याय का तत्व है जिसे इसके स्वरूप का निर्धारण करना है।

9. अभिव्यक्ति, "प्राकृतिक न्याय" और " विधिक न्याय" एक निर्विवाद वर्गीकरण प्रस्तुत नहीं करते हैं। यह न्याय का सार है जिसे दोनों द्वारा सुरक्षित किया जाना है, और जब भी विधिक न्याय इस गंभीर उद्देश्य को प्राप्त करने में विफल रहता है, तो विधिक न्याय की सहायता के लिए प्राकृतिक न्याय का सहारा लिया जाता है। प्राकृतिक न्याय विधिक न्याय को अनावश्यक तकनीकिता, व्याकरणिक पांडित्य या तार्किक पूर्वाग्रह से मुक्त करता है। यह सूत्रबद्ध विधि से मुक्ति दिलाता है। जैसा कि लॉर्ड बकमास्टर ने कहा था, किसी भी वादी के बचाव के प्रयास को अपवर्जित करने के लिए किसी भी तरीके या प्रक्रिया को कभी भी अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

10. सभी सभ्य राज्यों द्वारा मान्यता प्राप्त प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन सर्वोच्च महत्व का हो जाता है जब एक अर्ध-न्यायिक निकाय पक्षकारों के बीच विवादों का निर्धारण करता है या नागरिक परिणामों से जुड़ी कोई प्रशासनिक कार्रवाई मुद्दा होती है। वहां सिद्धांत अच्छी तरह से स्थापित हैं।प्रथम और अग्रगण्य सिद्धांत वह है जिसे आमतौर पर ऑडी अल्टरम पार्टम नियम के रूप में जाना जाता है। इसमें कहा गया है कि किसी की भी अनसुनी निंदा नहीं की जानी चाहिए। सूचना इस सिद्धांत का पहला अंग है। यह सटीक और स्पष्ट होना चाहिए। इसे, उस पक्ष को मामले के बारे में निश्चित रूप से अवगत

अनुवादित

कराना चाहिए जिसे उसे पूरा करना है। इस उद्देश्य के लिए दिया गया समय पर्याप्त होना चाहिए ताकि वह अपना प्रतिनिधित्व करने में सक्षम हो सके। इस प्रकार की सूचना के अभाव में और ऐसे उचित अवसर के अभाव में, पारित आदेश पूरी तरह से निष्प्रभावी हो जाता है। इस प्रकार, यह आवश्यक है कि उसके विरुद्ध कोई भी प्रतिकूल आदेश पारित करने से पहले उस पक्ष को मामले की जानकारी दी जाए। यह प्राकृतिक न्याय के सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांतों में से एक है। आख़िरकार यह निष्पक्ष खेल का एक स्वीकृत नियम है। समय के साथ इस अवधारणा का महत्व और आच्छादन बढ़ गया है। जब 1215 में रननीमेड में ऐतिहासिक दस्तावेज़ बनाया गया, तो इस सिद्धांत को पहली वैधानिक मान्यता "मैग्ना कार्टा" में मिली। प्राकृतिक न्याय के बारे में सर एडवर्ड कोक की उत्कृष्ट व्याख्या में "मतदान, पूछताछ और निर्णय" का अहम स्थान है। कूपर बनाम वैंड्सवर्थ बोर्ड ऑफ वर्क्स के प्रसिद्ध मामले में सिद्धांत इस प्रकार बताए गए थे:

"यहां तक कि स्वयं ईश्वर ने भी आदम को अपना बचाव करने के लिए बुलाए जाने से पहले सजा नहीं दी। 'एडम' (भगवान कहते हैं), 'तू कहां है? क्या तूने उस पेड़ का फल नहीं खाया, जिसके लिए, मैंने तुझे आज्ञा दी थी कि तुझे नहीं खाना चाहिए ।"

11. तब से इस सिद्धांत को स्पष्ट, तराशा और परिष्कृत किया गया है, जिससे इसकी विषय वस्तु समृद्ध हुई है। न्यायिक उपचार ने हीरे को चमकाने की तरह इस अवधारणा में रोशनी और चमक जोड़ दी है।

12. "प्राकृतिक न्याय" अभिव्यक्ति को सटीक एवं वैज्ञानिक रूप से परिभाषित करना संभव नहीं है। अत्यधिक आकर्षक और संभावित होने के बावजूद, यह एक अस्पष्ट और संदिग्ध अवधारणा है और "दुखद रूप से सटीकता की कमी है, कहकर इसकी आलोचना की गई है और इसे एक से अधिक बार अप्रयुक्त कक्ष में भेज दिया गया है। यह एक भ्रामक और अनुचित अवधारणा है और नैतिकता के क्षेत्र का अतिक्रमण करती है । यद्यपि प्रख्यात न्यायाधीशों ने कई

अनुवादित

बार "प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत" वाक्यांश का प्रयोग किया है, लेकिन अब भी आमतौर पर सभ्य कहे जाने वाले देशों में यह अवधारणा व्यापक रूप से भिन्न है।

13. यह सत्य है कि नैसर्गिक न्याय की अवधारणा बहुत स्पष्ट नहीं है और इसलिए इसे परिभाषित करना संभव नहीं है, फिर भी अभी तक प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को स्वीकार किया जाता है और लागू किया जाता है। प्राकृतिक न्याय के विरुद्ध उपरोक्त आलोचना के उत्तर में लॉर्ड रीड ने रिज बनाम बाल्डविन, *(1963) 2* ऑल ईआर *66* (एचएल) के ऐतिहासिक फैसले में कहा:

"आधुनिक समय में कभी-कभी इस आशय की राय व्यक्त की गई है कि प्राकृतिक न्याय इतना अस्पष्ट है कि व्यावहारिक रूप से निरर्थक है। लेकिन मैं इन्हें इस बारहमासी भ्रांति से दूषित मानूंगा कि क्योंकि अगर किसी चीज़ को काटा और सुखाया नहीं जा सकता है, या अच्छी तरह से तौला या मापा नहीं जा सकता है, तो क्या इसलिए यह उपस्थित नहीं होगा?"

इसके अलावा, प्राकृतिक न्याय सार्वजनिक विधि की एक शाखा है। यह एक दुर्जेय हथियार है जिसका उपयोग नागरिकों को न्याय दिलाने के लिए किया जा सकता है। प्राकृतिक न्याय के नियम " आधारभूत मूल्य" हैं जिन्हें मनुष्य ने सदियों से संजोकर रखा है। वे हमारे संवैधानिक ढांचे में अंतर्निहित हैं और उनकी प्राचीन महिमा और प्रधानता को विशेष परिस्थितियों या मामलों की अनिवार्यता के कारण नष्ट होने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत तर्कसंगतता, सद्भावना और न्याय, समानता और अच्छे विवेक से संबंधित नियमों को लागू करके सार्वजनिक अधिकारियों के सभी कार्यों को नियंत्रित करते हैं। प्राकृतिक न्याय, विधि का एक भाग है जो न्याय प्रशासन से संबंधित है। प्राकृतिक न्याय के नियम वास्तव में न्याय और निष्पक्षता का महान आश्वासन हैं।

सुनहरा नियम जो दृढ़ता से स्थापित है वह यह है कि प्राकृतिक न्याय का सिद्धांत न केवल न्याय सुरक्षित करने

अनुवादित

के लिए है बल्कि न्याय की हत्या को रोकने के लिए भी है। इसका सार,अधिक कुछ नहीं-लेकिन कुछ कम भी नहीं, किसी भी स्थिति में अच्छा विवेक है।

जैसा कि लॉर्ड डेनिंग ने कांडा बनाम मलाया सरकार *1962* एसी *322* के मामले में कहा कि "यदि सुनवाई का अधिकार एक वास्तविक अधिकार है जो किसी भी महत्व का है, तो इसमें आरोपी व्यक्ति को यह जानने का अधिकार होना चाहिए कि उसके विरुद्ध क्या मामला बनाया गया है। उसे अवश्य जानना चाहिए क्या साक्ष्य दिए गए हैं और कौन से बयान दिए गए हैं जो उसे प्रभावित कर रहे हैं और फिर उसे उन्हें सही करने या उनका खंडन करने का उचित अवसर दिया जाना चाहिए।

बिशंभर नाथ कोहली बनाम यू.पी. राज्य, एआईआर *1955* एससी *65* के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि "पुनरीक्षण कार्यवाही में, अभिरक्षक जनरल ने एक पक्ष द्वारा प्रस्तुत नए साक्ष्य को स्वीकार कर लिया, लेकिन इसे पूरा करने के लिए दूसरे पक्ष को कोई अवसर नहीं दिया गया। सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन किया गया था ।"

14. *रामजी दास बनाम मोहन सिंह, 1978* एआरसी 496 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि जहां तक संभव हो, अदालतों के विवेक का प्रयोग सुनवाई के पक्ष में किया जाना चाहिए, न कि सुनवाई बंद करने के लिए किया जाना चाहिए । उस मामले में एक पक्षीय डिक्री के विरुद्ध आठ साल पश्चात अपील दाखिल किया गया था और जिला न्यायालय के साथ-साथ उच्च न्यायालय ने भी देरी के आधार पर मामले को निरस्त कर दिया था। हालाँकि, उच्च न्यायालय के आदेश को अपास्त करते हुए, माननीय न्यायाधीश वी.आर. कृष्णा अय्यर ने निम्नानुसार कहा:

"... हमारा मानना है कि जहां तक संभव हो, न्यायालयों के विवेक का प्रयोग सुनवाई के पक्ष में किया जाना चाहिए न कि सुनवाई बंद करने के लिए किया जाना चाहिए । इसलिए, हमारा मानना है कि न्याय के हित में उच्च न्यायालय का आदेश पारित नहीं किया जाना चाहिए था जो हमेशा सी.पी.सी. के अंतर्गत धारा

अनुवादित

115 के अंतर्गत शक्ति को सूचित करता है..."

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए प्रस्तुतिकरण पर विचार किया गया और अभिलेख का अवलोकन किया गया तथा ऊपर उल्लिखित निर्णयों पर भी विचार किया गया।

मामले की पूर्वोक्त पृष्ठभूमि में, इस न्यायालय के समक्ष प्रश्न यह है कि क्या सीपीसी के आदेश 9 नियम 13 के अंतर्गत आवेदन जो आदेश 17 के नियम 2 में संलग्न स्पष्टीकरण पर आधारित है, याचिकाकर्ताओं की ओर से किए गए प्रस्तुतीकरण के आलोक में विचारणीय था।

उपरोक्त प्रश्न का उत्तर 'हाँ' है। इसके कारण इस प्रकार हैं:-

(i) मुख्य मुद्दे पर विचार करने के लिए आगे बढ़ने से पहले, यह न्यायालय सामान्य नियम सिविल (जीआरसी) के नियम 89-ए की प्रयोज्यता के संबंध में अवलोकन करना उचित समझता है।

(ii) सामान्य नियम सिविल (जीआरसी) का नियम 89-ए, उच्च न्यायालयों के अधीनस्थ न्यायालयों में लागू होगा। हालाँकि, चूंकि जीआरसी के नियम 89-ए के अंतर्गत सन्निहित प्रक्रिया ऑडी अल्टरम पार्टम और एक्टस क्यूरिया नेमिनम ग्रेवबिट सिद्धांत पर आधारित है इसलिए इस न्यायालय का मानना है कि जीआरसी के नियम 89-ए के अंतर्गत सन्निहित प्रक्रिया उल्लिखित मामले सहित राजस्व न्यायालय के समक्ष आये मामले में भी लागू होगी, जिसे अतिरिक्त अधिकारी- प्रथम, बहराईच द्वारा निस्तारित किया गया।

(iii) जैसा कि पहले ही देखा जा चुका है, जीआरसी के नियम 89-ए के अंतर्गत सन्निहित प्रक्रिया वर्तमान मामले में भी लागू होगी और वर्तमान मामले के तथ्यों, विशेष रूप से आदेश पत्र के आलोक में इस पर ध्यान दिया जाना चाहिए जो इस न्यायालय के समक्ष उपलब्ध है। गौरतलब है कि आदेश से जुड़े तथ्य का संकेत इस निर्णय के पूर्ववर्ती वाक्य खण्ड में पहले ही दिया जा चुका है इसलिए सबसे प्रासंगिक तथ्यों पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

(iv) जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश दिनांक 05.05.1995 के अंतर्गत, वाद को एस.डी.ओ., महसी, जिला बहराईच के राजस्व न्यायालय से अतिरिक्त अधिकारी-प्रथम, जिला बहराईच के न्यायालय में स्थानांतरित कर दिया गया था। दिनांक 17.05.1995 को एस0डी0ओ0, महसी, जिला बहराईच के राजस्व न्यायालय में पी.डब्लू.-1/रामहेतु तथा पी.डब्लू.-2/ननकऊ के बयान अभिलिखि किये गये तथा प्रतिवादी/विपक्षी पक्षकारों (ग्राम सभा और उत्तर प्रदेश राज्य) के साक्ष्य हेतु मामले की तिथि 26.05.1995 नियत की गयी।

(v) उपरोक्त से यह पता चलता है कि जिला मजिस्ट्रेट द्वारा एस.डी.ओ., महसी, जिला बहराईच के राजस्व न्यायालय से अतिरिक्त अधिकारी-प्रथम, जिला बहराईच को वाद स्थानांतरित करने का दिनांक 05.05.1995 का आदेश एस.डी.ओ. महसी, जिला बहराईच के राजस्व न्यायालय में दिनांक 17.05.1995 के पश्चात प्राप्त हुआ था, यह वह तिथि है जिस पर वादी के गवाहों के बयानअभिलिखित किए गए थे, और

अनुवादित

प्रतिवादी/विपक्षी पक्षों के साक्ष्य के लिए मामला 26.05.1995 के लिए स्थगित कर दिया गया था।

(vi) उपरोक्त से यह भी स्पष्ट है कि 17.05.1995 को, पक्षकारों को राजस्व न्यायालय, एस.डी.ओ., महसी, जिला बहराईच से अतिरिक्त अधिकारी-प्रथम, जिला बहराईच में मामले के स्थानांतरण के संबंध में न तो सूचित किया गया था और न ही उन्हें कोई जानकारी थी।

(vii) विचारण न्यायालय के आदेश पत्र से यह स्पष्ट है कि स्थानांतरण या अंतरिती न्यायालय द्वारा वाद के पक्षकारों को कोई सूचना जारी नहीं किया गया था, जिसमें प्रतिवादी अर्थात् गांव सभा और यू.पी. राज्य शामिल थे, जिन्होंने सी.पी.सी के आदेश 9 नियम 13 के अंतर्गत आवेदन को प्राथमिकता दी थी जिसे दिनांक 14.12.2009 के आदेश द्वारा अनुमति दी गई थी जिसकी इस याचिका में दिनांक 24.02.2010 के आदेश द्वारा पुष्टि की गई।

(viii) संबंधित न्यायालय के आदेश पत्र से यह भी पता चलता है कि अंतरिती न्यायालय ने कोई संतुष्टि अभिलिखित नहीं की है कि प्रतिवादियों को जीआरसी के नियम 89-ए के उप-नियम 4 के अनुसार स्थानांतरण के बारे में सूचित किया गया था। आदेश पत्र से ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि प्रतिवादियों को उनके पंजीकृत पते पर मामले के स्थानांतरित होने की जानकारी दी गयी थी।

(ix) इस प्रकार, उपरोक्त तथ्यों केदृष्टिकोण से, यह न्यायालय पाता है कि जीआरसी के नियम 89-ए के अंतर्गत सन्निहित प्रक्रिया का अनुपालन नहीं हुआ है।

(x) इसके अलावा, यदि यह माना जाता है कि यह सामान्य स्थानांतरण का मामला है और स्थानांतरण के संबंध में सूचना स्थानीय अधिवक्ता परिषद के सूचना पटल पर चिपकाया गया है तो तामील को पर्याप्त माना जाएगा, तो उस स्थिति में याचिकाकर्ता तदनुसार अभिवचन करने के लिए बाध्य थे।, हालांकि, मौजूदा मामले में, याचिकाकर्ताओं द्वारा ऐसा कुछ भी अभिवचन नहीं किया गया है जिसके आधार पर यह माना जा सके कि नियम 89-ए जीआरसी के प्रावधानों का अनुपालन किया गया था।

(xi) इसके अलावा, आदेश पत्र में और अतिरिक्त अधिकारी-प्रथम, जिला बहराईच के राजस्व न्यायालय द्वारा पारित अंतिम निर्णय दिनांक 31.05.1995 में भी, ऐसा कोई निष्कर्ष नहीं निकला कि मामले के स्थानांतरण के संबंध में जानकारी के लिए सूचना को सूचना पटल पर चिपकाया गया था। आदेश पत्र से यह प्रतिबिंबित नहीं होता है कि वाद के पक्षकारों को सम्मन जारी किए गए थे, जिसमें वाद विवाद करने वाले प्रतिवादी अर्थात् गांव सभा और यूपी राज्य शामिल थे।

(xii) यह उल्लेख करना उचित होगा कि ग्राम सभा ने अपने अलग लिखित बयान में मूल वादी- देवता दीन के दावे का विरोध किया था और श्रीमती रमा देवी पत्नी लल्लन पुत्र देवता दीन (मूल वादी) के मामले में दिनांक 26.05.1995 को अभिलिखित किए गए बयान से यह स्पष्ट है कि ग्राम सभा के इस

अनुवादित

गवाह ने मूल वादी के दावे को स्वीकार कर लिया था।

(xiii) निस्संदेह, ग्राम सभा के गवाह का बयान अभिलिखित किया गया था लेकिन संबंधित राजस्व न्यायालयों द्वारा तैयार आदेश पत्र/कार्यवाही से यह स्पष्ट नहीं है कि प्रतिवादी/ग्राम सभा के उक्त गवाह को अतिरिक्त अधिकारी-प्रथम, जिला बहराईच के राजस्व न्यायालय में मामले के लंबित होने के जानकारी का कैसे और किस तरह से पता चला, विशेष रूप से इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि जब दिनांक 17.05.1995 को एस.डी.ओ., महसी, जिला बहराईच के राजस्व न्यायालय में कार्यवाही समाप्त हो गई थी, यहां तक कि उक्त राजस्व न्यायालय को भी जिला मजिस्ट्रेट के दिनांक 05.05.1995 के आदेश के बारे में जिसमें मामले को एस.डी.ओ., महसी, जिला बहराईच के राजस्व न्यायालय से अतिरिक्त अधिकारी-प्रथम, जिला बहराईच के न्यायालय में स्थानांतरित कर दिया गया था, जानकारी नहीं थी। इसके अलावा, 31.01.1995 से 31.05.1995 तक न्यायालयों द्वारा तैयार की गई आदेश पत्र में ग्राम सभा और उत्तर प्रदेश राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता के हस्ताक्षर का उल्लेख नहीं है।

(xiv) आदेश 17 के नियम 2 के स्पष्टीकरण के आधार पर याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता के प्रस्तुतीकरण के संबंध में इस न्यायालय ने पाया कि स्पष्टीकरण के अनुसार, यदि "किसी पक्ष" के साक्ष्य या साक्ष्य का एक बड़ा भाग जोड़ा गया है और "ऐसा पक्ष" किसी भी उस तिथि पर उपस्थित होने में विफल रहता है, जिस दिन वाद की सुनवाई स्थगित कर दी जाती है तो उस स्थिति में सीपीसी के आदेश 9 नियम 13 के अंतर्गत उक्त पक्ष की ओर से आवेदन पोषणीय नहीं होगा। अभिव्यक्ति "कोई भी पक्ष" और अभिव्यक्ति "ऐसा पक्ष" प्रासंगिक हैं। इस मामले में, ग्राम सभा की गवाही अतिरिक्त अधिकारी-प्रथम, जिला बहराईच (स्थानांतरित न्यायालय) के राजस्व न्यायालय में 26.05.1995 को अभिलिखित की गई थी लेकिन जैसा कि ऊपर देखा गया है, ग्राम सभा की गवाह, मूल वादी-देवता दीन की बहू को अतिरिक्त अधिकारी प्रथम,बहराइच के राजस्व न्यायालय में मामला के लंबित होने के बारे में कैसे पता चला, यह अभिलेख से स्पष्ट नहीं है। हालाँकि, यू.पी. राज्य के साक्ष्य (वाद में प्रतिवादी) को अभिवर्तित नहीं किया गया।

(xv) पूर्वोक्त से, यह स्पष्ट है कि उक्त मामले के हस्तांतरण के संबंध में कोई सूचना, कभी भी तामील या प्राप्त या जारी या अधिसूचित नहीं किया गया था और यू.पी. राज्य के गवाह (प्रतिवादियों में से एक) का बयान जिसने अलग लिखित बयान दाखिल किया था, अभिलिखित नहीं किया गया था। इस प्रकार इस न्यायालय के विचार में सीपीसी के आदेश 9 नियम 13 के अंतर्गत आवेदन पोषणीय था जिसे संबंधित राजस्व न्यायालय द्वारा स्वीकार किया गया था और संबंधित पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा जिसकी पुष्टि की गई थी और ऐसा होने पर, इस न्यायालय को लागू आदेशों को चुनौती देने वाली इस याचिका में कोई योग्यता नहीं दिखती है।

राहत(राहतों) की संख्या (i), (iii) और (iv) के संबंध में इस न्यायालय का विचार है कि वाद के लंबित रहने के दौरान, संपत्ति/भूमि पर अधिकार/कब्जे की रक्षा के लिए, जो

अनुवादित

सम्बंधित वाद का विषय है, याचिकाकर्ताओं के पास 1950 के अधिनियम की धारा 229-डी के अंतर्गत वैधानिक उपचार है और जिसके लिए वे एक आवेदन चुन सकते हैं। इस प्रकार, यह न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए राहत संख्या (i), (iii) और (iv) देने का इच्छुक नहीं है।

यह प्रदान किया जाता है कि यदि अंतरिम सुरक्षा की मांग करने वाले याचिकाकर्ताओं द्वारा कोई आवेदन दिया जाता है, तो संबंधित न्यायालय आवेदन की तिथि से दो महीने की अवधि के भीतर, पक्षों को सुनवाई का उचित अवसर प्रदान करने के पश्चात, उस पर विधि के अनुसार सख्ती से विचार करेगा और उसका निस्तारण करेगा। चूंकि इस न्यायालय द्वारा दिनांक 20.03.2023 को दो महीने की अवधि के लिए अंतरिम सुरक्षा प्रदान की गई थी, जो जारी है अतः याचिकाकर्ताओं को इस मामले में संपत्ति से बेदखल नहीं किया जाएगा।

वाद की अवधि को देखते हुए, यह भी प्रावधान किया गया है कि संबंधित राजस्व न्यायालय इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से एक वर्ष की अवधि के भीतर कार्यवाही समाप्त कर देगा। निर्दिष्ट समय के भीतर कार्यवाही समाप्त करने के लिए, संबंधित राजस्व न्यायालय को अनावश्यक स्थगन से बचना होगा।

उपरोक्त के साथ, याचिका **खारिज** की जाती है। अपना वादव्यय स्वयं वहन करें।

(2023) 6 ILRA 867

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 31.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी

रिट-सी संख्या 747/2023

सी/एम श्री पारस नाथ अनुसूचित प्राथमिक पाठशाला इसके प्रबंधक एवं अन्य के माध्यम से याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता: गिरीश चंद्र वर्मा

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी.

ए. भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - क्षेत्रीय क्षेत्राधिकार - जब कार्रवाई का कारण एक से अधिक स्थानों पर उत्पन्न होता है - डोमिनस लिटिस के सिद्धांत - फोरम कन्वीनियंस - फोरम नॉन कन्वीनियंस के सिद्धांत - एक सिविल कार्यवाही में, जब कार्रवाई का कारण एक से अधिक स्थानों पर उत्पन्न होता है, तो वादी डोमिनस लिटिस होता है, यह वादी/याचिकाकर्ता होता है जिसके पास वह स्थान चुनने का विवेक होता है जहां वह याचिका दायर करना चाहता है। हालाँकि, यह विवेकाधिकार निरपेक्ष नहीं है। फोरम नॉन कन्वीनियंस के सिद्धांत के आधार पर एक अपवाद उत्पन्न होता है, न्यायालय सुविधाजनक फोरम निर्धारित कर सकता है और ऐसे क्षेत्राधिकार के प्रयोग के लिए न्याय के हित में शर्तें लगा सकता है। न्यायालय, उपयुक्त मामलों में, पक्षों, गवाहों, न्यायालय

अनुवादित

और कार्यवाही को प्रभावित करने वाले अन्य प्रासंगिक कारकों की सुविधा पर विचार करते हुए फोरम तय करने के लिए अपने अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर सकता मंचों को स्थानांतरित करने से न्यायिक के दावे को स्वीकार कर लिया - नियोक्ता द्वारा वैधता को चुनौती दी गई - निर्णय दिया गया कि किसी कर्मचारी की सेवा समाप्ति से पहले न्यूनतम अनिवार्य आवश्यकता यह है कि उसे आरोप पत्र जारी करके आरोपों की जानकारी दी जाए, उसके बाद घरेलू जांच की जाए, जहां कर्मचारी को उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों के खिलाफ अपना औचित्य प्रस्तुत करने का अवसर मिले - कर्मचारी को पर्याप्त अवसर दिए जाने के बाद ही उसकी सेवाएं समाप्त की जा सकती हैं - श्री करण सिंह के मामले पर भरोसा किया गया। (पैरा 7 और 14)

बी. श्रम कानून - रिट - पहली बार कुंडी लगाने का आधार उठाया गया - अनुमति - श्रम न्यायालय की कार्यवाही उसकी सेवा समाप्त होने की तिथि से 4 वर्ष की अवधि के बाद शुरू की गई थी - श्रम न्यायालय के समक्ष कुंडी लगाने के संबंध में कोई आधार नहीं उठाया गया था - प्रभाव - यह माना गया कि याचिकाकर्ताओं ने श्रम न्यायालय और इस न्यायालय के समक्ष कुंडी लगाने का तर्क नहीं उठाया है और साथ ही वर्तमान रिट याचिका में याचिकाकर्ता द्वारा कोई तर्क या आधार नहीं उठाया गया है, इसलिए यह न्यायालय उक्त मुद्दे पर निर्णय देने से वंचित है। (पैरा 15)

सी. भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - न्यायिक समीक्षा - दायरा - श्रम न्यायालय के आदेश की न्यायिक समीक्षा करते समय अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्ति, प्रक्रियागत अनुचितता या प्रत्यक्ष रूप से स्पष्ट त्रुटि की जांच करने तक सीमित है - कानून का यह भी स्थापित प्रस्ताव है कि अनुच्छेद 226 के तहत न्यायिक समीक्षा की शक्ति निर्णय के विरुद्ध नहीं बल्कि निर्णय लेने की प्रक्रिया के विरुद्ध है। (पैरा 15)

रिट याचिका खारिज। (ई-1)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. पंजाब और सिंध बैंक और अन्य बनाम सकत्तर सिंह; (2001) 1 सुप्रीम कोर्ट मामले 214
2. क्षेत्रीय प्रबंधक, बैंक ऑफ बड़ौदा बनाम अनीता नंदराजोग; 2009 (9) एससीसी 462।
3. दिनेश कुमार सिंह बनाम पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, आगरा; 2005 एएलएल एलजे 732
4. रिट सी संख्या 39842/2019; श्री करण सिंह बनाम पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय एवं अन्य।

(माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर द्वारा दिया गया)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री एम. एस. विनायक के साथ-साथ प्रतिवादी संख्या 1 और 2 के लिए विद्वान स्थायी अधिवक्ता, प्रतिवादी संख्या 3 - कामगार के लिए श्री शेखर श्रीवास्तव को सुना ।

2. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता ने पीठासीन अधिकारी, श्रम

अनुवादित

न्यायालय, नोएडा, जिला गौतम बुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश द्वारा पारित दिनांक 24.11.2022 के पुरस्कार पर आपत्ति जताई है, जिसके तहत प्रतिवादी संख्या 3 - कामगार के दावे की अनुमति दी गई है।

3. वर्तमान मामले में संक्षेप में उत्पन्न होने वाले तथ्य यह हैं कि प्रतिवादी संख्या 3 पुणे, महाराष्ट्र में याचिकाकर्ता कंपनी की स्थापना के समय ग्रेड जीओ में सहायक के पद पर कार्यरत था और 30.3.2004 को नियुक्ति पत्र जारी किया गया था। नियुक्ति पत्र के अनुसार उन्हें नोएडा में काम करना था और यह भी प्रदान किया गया था कि प्रतिवादी संख्या 3 की सेवाओं को किसी भी पक्ष द्वारा पूर्व लिखित नोटिस देकर समाप्त कर दिया जाएगा। नियुक्ति पत्र में आगे यह प्रदान किया गया था कि प्रतिवादी - कामगार की सेवाएं हस्तांतरणीय होंगी और उसे याचिकाकर्ता के किसी भी प्रतिष्ठान में स्थानांतरित किया जा सकता है, चाहे वह भारत में हो या विदेश में। याचिकाकर्ता ने अपनी नियुक्ति की तारीख से 5.12.2008 तक काम करना जारी रखा जब उसकी सेवाओं को याचिकाकर्ता की चेन्नई शाखा में स्थानांतरित कर दिया गया। उन्हें 11-12-2008 तक चेन्नई में कार्यभार ग्रहण करने के लिए कहा गया। प्रतिवादी संख्या 3 चेन्नई में शामिल नहीं हुआ और याचिकाकर्ता के अनुसार वह अनधिकृत रूप से अनुपस्थित रहा। उन्हें दिनांक 15-12-2008 के पत्र के साथ-साथ 22-12-2009 को चेन्नई में कार्यभार ग्रहण करने के लिए कहा गया था, ऐसा न करने पर यह माना जाएगा कि वह अपनी सेवाओं को जारी रखने में रुचि नहीं रखते हैं और उनकी सेवाओं को समाप्त कर दिया जाएगा। इस तथ्य के बावजूद कि प्रतिवादी चेन्नई में शामिल नहीं हुआ था, 2.1.2009 को समाप्ति का आदेश पारित किया गया था। समूह प्रबंधक, मानव संसाधन द्वारा जारी 2 जनवरी, 2009 के आदेश के अनुसार यह कहा गया था कि प्रतिवादी को चेन्नई कार्यालय में रिपोर्ट करने का पर्याप्त अवसर दिया गया था लेकिन उसने न तो रिपोर्ट की है और न ही कोई पत्र भेजा है और इसलिए उसकी सेवाएं तत्काल प्रभाव से समाप्त की जाती हैं।

4. प्रतिवादी संख्या 3 ने 2 जनवरी, 2009 के समाप्ति आदेश से व्यथित होने के कारण श्रम न्यायालय, नोएडा के समक्ष एक औद्योगिक विवाद उठाया, जिसे विधिवत संदर्भित किया गया था और संदर्भ के अनुसार यह कहा गया था कि प्रतिवादी संख्या 3 ड्राइवर के पद पर काम कर रहा था और उसकी सेवाओं को 2 जनवरी, 2009 से समाप्त कर दिया गया है और श्रम न्यायालय को समाप्ति आदेश की वैधता का परीक्षण करने के लिए बुलाया गया था। याचिकाकर्ता को नोटिस जारी किए गए जो प्रतिवादी के दावे का विरोध करने के लिए पेश हुए और विरोध किया। श्रम न्यायालय के समक्ष दायर लिखित प्रस्तुतियों में यह कहा गया था कि प्रतिवादी को 30.3.2004 को नियुक्त किया गया था और दिनांक 5.12.2008 के आदेश के तहत चेन्नई कार्यालय में स्थानांतरित कर दिया गया था, उसे 11 दिसंबर, 2008 तक रिपोर्ट करना था, लेकिन उसने उक्त कार्यालय को रिपोर्ट नहीं किया। यह आगे कहा गया है कि चेन्नई कार्यालय में शामिल नहीं होने से प्रतिवादी ने

अनुवादित

कंपनी की अनुशासनात्मक नीति का उल्लंघन किया था। इससे पहले भी कई अवसरों पर उन्हें अपने कर्तव्यों में शामिल होने के लिए चेतावनी पत्र भी दिए गए हैं और वह याचिकाकर्ता के प्रबंधक को पूर्व सूचना दिए बिना 5.12.2008 से अनुपस्थित भी रहे हैं। यह आगे कहा गया कि कंपनी की नीति के अनुसार याचिकाकर्ता ने वास्तव में याचिकाकर्ता को अंतिम राशि का भुगतान किया था। आगे यह कहा गया कि प्रतिवादी की बर्खास्तगी कंपनी की नीति के अनुसार कानूनी थी।

5. श्रम न्यायालय ने उक्त प्रतिक्रिया के साथ-साथ कामगार के साथ-साथ याचिकाकर्ता द्वारा पेश किए गए साक्ष्य पर विचार करने के बाद कामगार के दावे की अनुमति दी थी और उक्त दावे की अनुमति देते हुए श्रम न्यायालय ने दर्ज किया है कि कामगार को 30.3.2004 से याचिकाकर्ता संगठन के साथ 11261/- रुपये प्रति माह की दैनिक मजदूरी पर नियुक्त किया गया था। आगे कहा गया है कि कामगार द्वारा आरोप लगाया गया था कि याचिकाकर्ता ने उसे उचित मजदूरी नहीं दी है और उसे सामान्य कामकाजी घंटों से अधिक समय तक काम करने के लिए कहा गया है और यहां तक कि अतिरिक्त समय के लिए मजदूरी भी प्रतिवादी को भुगतान नहीं की गई थी। आगे यह कहा गया था कि दावे में, कि कामगार को उसकी सेवाओं की समाप्ति से पहले कोई नोटिस या सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया था। यह भी कहा गया कि प्रतिवादी एक स्थायी कर्मचारी था और उसने याचिकाकर्ता को कई पत्र लिखकर अपनी मांगों को उठाया, जिनमें से किसी का भी जवाब नहीं दिया गया और परिणामस्वरूप सेवाओं की समाप्ति के बाद, कोई अन्य उपाय नहीं होने पर, उसने अपनी शिकायतों को उठाते हुए श्रम न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था।

6. विद्वान श्रम न्यायालय ने इस तथ्य के संबंध में याचिकाकर्ता के तर्कों पर भी विचार किया है कि प्रतिवादी को दिनांक 5.12.2008 के आदेश के तहत चेन्नई कार्यालय में स्थानांतरित कर दिया गया था और 11.12.2008 तक शामिल होने की आवश्यकता थी, लेकिन प्रतिवादी - कामगार ने स्थानांतरण के आदेश का पालन नहीं किया और उसे शामिल होने के लिए कई चेतावनी पत्र भी दिए गए, जिनका पालन भी उसके द्वारा नहीं किया गया और परिणामस्वरूप यह निष्कर्ष निकाला गया कि प्रतिवादी है याचिकाकर्ता कंपनी के साथ काम करने के इच्छुक नहीं थे और इस तथ्य पर भी विचार करते हुए कि इस अवधि के दौरान उन्होंने छुट्टी के लिए अनुरोध नहीं किया था, यह निष्कर्ष निकाला गया था कि उन्हें अपने रोजगार में कोई दिलचस्पी नहीं है और वास्तव में, उन्होंने इसे छोड़ दिया है। इस निष्कर्ष पर पहुंचने के बाद कि कामगार ने अपनी सेवाएं छोड़ दी हैं, उसकी देय राशियों की विधिवत गणना की गई और 2-1-2009 को भुगतान कर दिया गया और यह मानते हुए कि उसने 16-12-2008 को त्यागपत्र दे दिया है।

7. श्रम न्यायालय के समक्ष प्रतिवादी / कर्मचारी ने अपने दावे के समर्थन में स्वयं परीक्षण किया था, जबकि याचिकाकर्ता की ओर से कंपनी के श्री मुकुल साह से विधिवत

अवैधानिक

परीक्षण कराया था। श्रम न्यायालय को इस तथ्य से राजी किया गया था कि कोई आरोप पत्र नहीं दिया गया था और न ही उनकी सेवाओं को समाप्त करने से पहले कोई अनुशासनात्मक जांच की गई थी जो प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का घोर उल्लंघन है जो उनकी सेवाओं को समाप्त करने से पहले अनिवार्य था । यह उपरोक्त परिसर में है कि श्रम न्यायालय ने प्रतिवादी - कामगार के दावे की अनुमति दी है और याचिकाकर्ता को दो महीने के भीतर कामगार के दावे की अनुमति देने और पूर्ण वेतन और अन्य लाभों के साथ सेवा में काम करने वालों को बहाल करने का निर्देश दिया है, जिसके लिए वह हकदार है।

8. पहला आधार जो इस न्यायालय के विचार के लिए आता है, वह यह है कि क्या वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में प्रतिवादी कामगार ने अपनी सेवाओं को छोड़ दिया था और क्या याचिकाकर्ता का उसकी सेवाओं को समाप्त करना उचित था। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने उक्त फैसले का विरोध करते हुए प्रस्तुत किया है कि उक्त फैसला अवैध और मनमाना है क्योंकि याचिकाकर्ता की तर्कों पर श्रम न्यायालय द्वारा उसके वास्तविक परिप्रेक्ष्य में विचार नहीं किया गया था। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि एक बार जब यह रिकॉर्ड पर आ गया है कि प्रतिवादी कामगार स्थानांतरण के आदेश के अनुसरण में शामिल नहीं हुआ था और बिना किसी छुट्टी के अनुपस्थित हो गया था, तो यह माना गया कि उसने अपनी सेवाओं को छोड़ दिया होगा और वे पूरी तरह से सक्षम थे और प्रतिवादी कामगार की सेवाओं को समाप्त करना उनके अधिकार क्षेत्र में था। अपनी तर्कों के समर्थन में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने निर्णयों की श्रृंखला पर भरोसा किया है। पहला मामला पंजाब और सिंध बैंक और अन्य बनाम सकतार सिंह, (2001) 1 उच्चतम न्यायालय मामले 214 के साथ-साथ क्षेत्रीय प्रबंधक, बैंक ऑफ बड़ौदा बनाम अनीता नंदराजोग 2009 (9) एससीसी 462 का है। इन दोनों मामलों में जहां कामगार अनधिकृत रूप से अनुपस्थित रहा था और द्विपक्षीय समझौते के IV के खंड XVI में निहित शर्तों के अनुसार तीस दिनों के भीतर ड्यूटी के लिए रिपोर्ट नहीं किया था, उनकी सेवाएं समाप्त कर दी गई थीं और उक्त समाप्ति को उच्चतम न्यायालय द्वारा बरकरार रखा गया था, जो श्रमिक संघ और बैंक के बीच हुए द्विपक्षीय समझौते पर निर्भर करता था ।

9. प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता के तर्क का विरोध किया है। वह प्रस्तुत करता है कि यह कानून के स्थापित सिद्धांतों है कि यदि कामगार की सेवाओं को समाप्त करने की आवश्यकता होती है तो औद्योगिक विवादित अधिनियम, 1947 की धारा 6N और 6 (P) में निहित वैधानिक प्रावधानों का पालन करना होगा। धारा 6एन के अनुसार यह स्पष्ट रूप से प्रदान किया गया है कि छंटनी के कारणों का हवाला देते हुए या तो एक महीने का नोटिस लिखित रूप में दिया जाना है और नोटिस के बदले मजदूरी दी जानी है। समाप्ति के कारणों को समाप्ति के आदेश में बताया गया है जिसके अनुसार याचिकाकर्ता इस स्थानांतरण के अनुसरण में शामिल नहीं

अनुवादित

हुआ और परिणामस्वरूप उसकी सेवाओं को समाप्त कर दिया गया। यह माना जाता है कि याचिकाकर्ता द्वारा कोई घरेलू जांच नहीं की गई थी, न ही उसकी सेवा समाप्त करने से पहले कामगार को कोई कारण बताओ नोटिस दिया गया था। याचिकाकर्ता द्वारा प्रतिवादी-कामगार को 15.12.2008 या 22.12.2008 को दिए गए नोटिस को घरेलू जांच के दौरान दिया गया नोटिस नहीं माना जा सकता है। वे केवल उन्हें चेन्नई में शामिल होने की आवश्यकता वाले नोटिस थे।

10. याचिकाकर्ता द्वारा की गई प्रस्तुतियों पर विचार करते हुए कि वे सेवा के परित्याग के आधार पर सेवाओं को समाप्त करने में न्यायसंगत थे, यह देखा गया है कि प्रतिवादी कामगार ने अपने स्थानांतरण की तारीख यानी 05/12/2008 से काम पर रिपोर्ट करना बंद कर दिया। याचिकाकर्ता ने 15/12/2008 और 22/12/2008 को 2 नोटिस भेजे थे, लेकिन वह अभी भी काम के लिए रिपोर्ट नहीं किया और परिणामस्वरूप दिनांक 02/01/2009 के आदेश द्वारा समाप्ति का आदेश पारित किया गया था। यह देखा गया है कि प्रतिवादी कामगार लगभग 3 सप्ताह तक काम के लिए रिपोर्ट नहीं करता था, जब समाप्ति का आदेश पारित किया गया था। यह भी देखा गया है कि ड्यूटी से अनुपस्थित रहने और सेवा छोड़ने के बीच अंतर है। सेवा के परित्याग के आधार पर कर्मचारी की सेवाओं को समाप्त करने के लिए दावा हकदार, यह साबित करना होगा कि सेवाओं को कामगार द्वारा छोड़ दिया गया है, जिसके लिए रिकॉर्ड पर सबूत होना चाहिए जो इसे इंगित करता है। कुछ दिनों या लगभग 3 सप्ताह के लिए ड्यूटी से अनुपस्थिति जैसा कि वर्तमान मामले में है, सेवा छोड़ने के लिए नहीं ठहराया जा सकता है।

11. याचिकाकर्ता ने पंजाब और सिंध बैंक और अन्य बनाम सकतार सिंह, (2001) 1 सर्वोच्च न्यायालय केस 214 के साथ-साथ क्षेत्रीय प्रबंधक, बैंक ऑफ बड़ौदा बनाम अनीता नंदराजोग, 2009 (9) एससीसी 462 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है। इन दोनों मामलों में जहां कामगार अनधिकृत रूप से अनुपस्थित रहा था और द्विपक्षीय समझौते के IV के खंड XVI में निहित शर्तों के अनुसार तीस दिनों के भीतर ड्यूटी के लिए रिपोर्ट नहीं किया था, उनकी सेवाएं समाप्त कर दी गई थीं और उक्त समाप्ति को उच्चतम न्यायालय द्वारा बरकरार रखा गया था, जो श्रमिक संघ और बैंक के बीच हुए द्विपक्षीय समझौते पर निर्भर करता था। उक्त मामले में, उच्चतम न्यायालय द्विपक्षीय समझौते के समझौते को बढ़ा रहा था जहां एक विशेष अवधि के बाद ड्यूटी से अनुपस्थित रहने वाले कामगार की सेवाओं को समाप्त करने के संबंध में विशिष्ट शर्त थी, जिसे द्विपक्षीय समझौते के भीतर भी निर्धारित किया गया था और तदनुसार द्विपक्षीय समझौते में निर्धारित अवधि से अधिक समय तक अनुपस्थित रहने वाले कर्मचारी की सेवाओं को समाप्त करने के लिए बैंक के आदेश को सर्वोच्च न्यायालय ने बरकरार रखा था।

12. मैंने उपरोक्त निर्णयों का अध्ययन किया है और मेरी सुविचारित राय है कि उक्त निर्णय

अनुवादित

वर्तमान मामले के तथ्यों से स्पष्ट रूप से अलग है जहां कामगार और याचिकाकर्ता के बीच ऐसी कोई शर्त या अनुबंध मौजूद नहीं है, जहां यह प्रावधान है कि यदि वह एक विशेष अवधि से अधिक अनुपस्थित रहता है तो यह माना जाएगा कि उसने अपनी सेवाएं छोड़ दी हैं और नियोक्ता के पास उसकी सेवाएं समाप्त करने का अधिकार होगा।

13. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दिनेश कुमार सिंह बनाम पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, आगरा के मामले में इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ के फैसले पर भरोसा किया है, जिसकी रिपोर्ट 2005 में ऑल एलजे 732 में की गई थी। उक्त मामले में नियोक्ता ने कहा था कि उसने उस कामगार की सेवाओं को कभी समाप्त नहीं किया था, जिसने वास्तव में स्वयं अपनी सेवा छोड़ दी थी। यहां तक कि उक्त मामले में श्रम न्यायालय ने भी स्पष्ट निष्कर्ष दिया है कि याचिकाकर्ता ने अपनी सेवाओं को छोड़ दिया था और सेवाओं को कभी समाप्त नहीं किया गया था और इसलिए यह निष्कर्ष निकाला गया था कि कामगार की सेवाओं की कोई छंटनी नहीं हुई थी। उक्त मामला तथ्यों के आधार पर अलग है क्योंकि वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता द्वारा 02.01.2009 को बर्खास्तगी का आदेश पारित किया गया है। उक्त पत्र को समाप्ति के आदेश के रूप में शीर्षक दिया गया है, यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि याचिकाकर्ता की सेवा समाप्त हो गई है। एक बार समाप्ति का आदेश पारित हो जाने के बाद इसकी वैधता श्रम न्यायालय द्वारा देखी जाएगी, और वर्तमान मामले में, श्रम न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला है कि समाप्ति का आदेश अवैध और मनमाना है क्योंकि उक्त आदेश पारित होने से पहले सुनवाई या किसी भी घरेलू जांच का कोई अवसर नहीं है ।

14. मुझे प्रतिवादी की ओर से किए गए तर्क में बल मिलता है कि भले ही यह मान लिया गया था कि कामगार ने अपनी सेवाओं को छोड़ दिया था, याचिकाकर्ता के लिए अपनी सेवाओं को समाप्त करने से पहले घरेलू जांच करना अनिवार्य था। यहां तक कि सेवा का परित्याग भी विवादित तथ्य का प्रश्न है जिसे साबित किया जाना है, जो घरेलू जांच में किया जा सकता था, याचिकाकर्ता द्वारा किया जा सकता था। इस संबंध में अपनी प्रस्तुतियों के समर्थन में उन्होंने श्री कर्ण सिंह बनाम पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय और अन्य के मामले में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है, जो रिट सी संख्या 39842/2019 में पारित किया गया था। किसी कामगार की सेवाओं की समाप्ति से पहले, न्यूनतम अनिवार्य अपेक्षा आरोप पत्र जारी करके उसे आरोपों के बारे में सूचित करना है, उसके बाद घरेलू जांच करना है जहां कर्मकार को उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों के विरुद्ध अपना औचित्य प्रस्तुत करने का अवसर मिलता है। कामगार को पर्याप्त अवसर दिए जाने के बाद ही उसकी सेवाएं समाप्त की जा सकती हैं। याचिकाकर्ता द्वारा इस तरह की जांच के अभाव में और सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना प्रतिवादी की सेवाओं को समाप्त करने में की गई कार्रवाई अवैध और मनमानी है और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है जैसा कि श्रम न्यायालय द्वारा

अनुवादित

सही ठहराया गया है, और परिणामस्वरूप, आक्षेपित आदेश में कोई दुर्बलता नहीं है।

15. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने भी इस आधार पर पुरस्कार का विरोध किया है कि यह लॉचेस के सिद्धांत द्वारा वर्जित है क्योंकि श्रम न्यायालय के समक्ष कार्यवाही उस तारीख से 4 साल की अवधि के बाद शुरू की गई थी जब उसकी सेवाएं समाप्त कर दी गई थीं। हमने प्रतिवादी कामगार द्वारा प्रस्तुत दावे का विरोध करने वाले याचिकाकर्ता द्वारा उठाई गई आपत्तियों पर विचार किया है और पाया है कि श्रम न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता द्वारा देरी और लॉचेस के संबंध में कोई आधार नहीं उठाया गया था, और इसलिए श्रम न्यायालय के पास उक्त विवाद की जांच करने का अवसर नहीं था। यहां तक कि इस न्यायालय के समक्ष भी वर्तमान रिट याचिका में याचिकाकर्ता द्वारा श्रम न्यायालय के फैसले की आलोचना करने का कोई आधार नहीं है, और इसलिए इस न्यायालय के लिए याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए विवाद की जांच करने का कोई अवसर नहीं है क्योंकि इसे श्रम न्यायालय के समक्ष नहीं लिया गया था, और न ही वर्तमान रिट याचिका में इसकी जांच करने के लिए इस संबंध में कोई तर्क है। श्रम न्यायालय के आदेश की न्यायिक समीक्षा करते समय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत इस न्यायालय द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्ति, प्रक्रियात्मक अनौचित्य या प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने वाली त्रुटि की जांच करने तक सीमित है। कानून का यह भी स्थापित प्रस्ताव है कि अनुच्छेद 226 के तहत न्यायिक समीक्षा की शक्ति निर्णय के विरुद्ध नहीं बल्कि निर्णय लेने की प्रक्रिया के विरुद्ध है। याचिकाकर्ताओं ने श्रम न्यायालय और इस न्यायालय के समक्ष लॉचेस की तर्क नहीं दी है और साथ ही वर्तमान रिट याचिका में याचिकाकर्ता द्वारा कोई तर्क या आधार नहीं उठाया गया है, इस न्यायालय को उक्त मुद्दे पर निर्णय लेने से रोकता है। तदनुसार, इस संबंध में याचिकाकर्ता के तर्क खारिज की जाती हैं।

16. अंत में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता और प्रतिवादी कामगार के बीच मामला सुलझा लिया गया है क्योंकि याचिकाकर्ता और प्रतिवादियों के बीच विवाद का पूर्ण और अंतिम समाधान हो गया है, इसलिए, रिट याचिका की अनुमति दी जानी चाहिए। अपनी तर्कों के समर्थन में, उन्होंने रिट याचिका के साथ संलग्न "पूर्ण और अंतिम निपटान" शीर्षक वाले दस्तावेज पर भरोसा किया। उक्त दस्तावेज के अवलोकन से पता चलता है कि प्रतिवादी कामगार को 18,763/- रुपये की राशि देय है, जो प्रतिवादी कामगार को देय है, जिसमें वाहन भत्ता, मकान किराया भत्ता, व्यक्तिगत भत्ता आदि सहित विभिन्न सेवा लाभ शामिल हैं। इस बात का कोई सबूत नहीं है कि यह वास्तव में प्रतिवादी कामगार को भुगतान किया गया है या नहीं। उक्त दस्तावेजों में एक रसीद भी है, लेकिन वह अहस्ताक्षरित है, जो स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि इसे प्रतिवादी कामगार द्वारा स्वीकार नहीं किया गया है, या यह याचिकाकर्ता द्वारा कामगारों को कभी नहीं दिया गया था। यह

अनुवादित

आगे देखा गया है कि याचिकाकर्ता द्वारा श्रम न्यायालय के समक्ष पैराग्राफ संख्या 10 में दायर आपत्तियों में कहा गया है कि:

"इसके अलावा, कंपनी की नीति के अनुसार, यदि ऐसा है तो प्रतिवादी कंपनी ने आवेदक का पूर्ण और अंतिम निस्तारण तैयार कर लिया था और आवेदक को बकाया पूर्ण और अंतिम राशि दे दी थी"।

17. श्रम न्यायालय और इस न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता के रुख में स्पष्ट रूप से भिन्नता है। श्रम न्यायालय के समक्ष इस बात का कोई उल्लेख नहीं था कि प्रतिवादी कामगार द्वारा पूर्ण और अंतिम निस्तारण स्वीकार कर लिया गया है, और वर्तमान रिट याचिका के पैराग्राफ 21 में यह कहा गया है कि कामगार ने 14/01/2009 को अपनी देय राशि की उचित स्वीकृति में एक वाउचर पर हस्ताक्षर किए हैं। उक्त कथनों के समर्थन में संलग्न दस्तावेज में प्रतिवादी द्वारा हस्ताक्षरित कोई दस्तावेज शामिल नहीं है, बल्कि एक अहस्ताक्षरित दस्तावेज संलग्न किया गया है। स्पष्ट रूप से, उपरोक्त से याचिकाकर्ता से इस न्यायालय के समक्ष झूठे दावे करने की उम्मीद नहीं थी। यदि प्रतिवादी ने वास्तव में उक्त पूर्ण और अंतिम समझौते पर हस्ताक्षर किए थे, तो उसे श्रम न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय के समक्ष भी पेश किया जाना चाहिए था। श्रम न्यायालय के समक्ष यह कभी नहीं कहा गया था कि कामगारों ने पूर्ण और अंतिम निस्तारण को स्वीकार कर लिया था, और इस न्यायालय के समक्ष यह बदला हुआ रुख, स्पष्ट रूप से एक बाद में विचार और रिकॉर्ड पर सामग्री के विपरीत प्रतीत होता है, और याचिकाकर्ता के पक्ष में विचार करने योग्य नहीं है। कामगार द्वारा उक्त समझौते की स्वीकृति के अभाव में इसे करार अथवा समझौता नहीं माना जा सकता। इस संबंध में याचिकाकर्ता की तर्कों को भी खारिज कर दिया गया।

18. उपरोक्त के आलोक में, रिट याचिका योग्यता से रहित है और तदनुसार खारिज कर दी गई है।

(2023) 6 ILRA 874

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 25.04.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर

रिट-सी संख्या 12616/2023

टेक. महिंद्रा लिमिटेड, जी.बी. नगर **याचिकाकर्ता**

बनाम

पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, नोएडा और अन्य **प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: गुंजन जादवानी, श्री चंद्रिका पटेल, श्री एम.एस. विनायक, श्री करुणानिधि यादव

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी., श्री शेखर श्रीवास्तव

ए. श्रम कानून - सेवा समाप्ति - प्राकृतिक न्याय का सिद्धांत - आवेदन - कोई आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया और न ही कोई अनुशासनात्मक जांच की गई - प्रभाव - श्रम न्यायालय ने कर्मचारी के दावे को स्वीकार कर

अनुवादित

लिया - नियोक्ता द्वारा वैधता को चुनौती दी गई - निर्णय दिया गया कि किसी कर्मचारी की सेवा समाप्ति से पहले न्यूनतम अनिवार्य आवश्यकता यह है कि उसे आरोप पत्र जारी करके आरोपों की जानकारी दी जाए, उसके बाद घरेलू जांच की जाए, जहां कर्मचारी को उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों के खिलाफ अपना औचित्य प्रस्तुत करने का अवसर मिले - कर्मचारी को पर्याप्त अवसर दिए जाने के बाद ही उसकी सेवाएं समाप्त की जा सकती हैं - श्री करण सिंह के मामले पर भरोसा किया गया। (पैरा 7 और 14)

बी. श्रम कानून - रिट - पहली बार कुंडी लगाने का आधार उठाया गया - अनुमति - श्रम न्यायालय की कार्यवाही उसकी सेवा समाप्त होने की तिथि से 4 वर्ष की अवधि के बाद शुरू की गई थी - श्रम न्यायालय के समक्ष कुंडी लगाने के संबंध में कोई आधार नहीं उठाया गया था - प्रभाव - यह माना गया कि याचिकाकर्ताओं ने श्रम न्यायालय और इस न्यायालय के समक्ष कुंडी लगाने का तर्क नहीं उठाया है और साथ ही वर्तमान रिट याचिका में याचिकाकर्ता द्वारा कोई तर्क या आधार नहीं उठाया गया है, इसलिए यह न्यायालय उक्त मुद्दे पर निर्णय देने से वंचित है। (पैरा 15)

सी. भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - न्यायिक समीक्षा - दायरा - श्रम न्यायालय के आदेश की न्यायिक समीक्षा करते समय अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्ति, प्रक्रियागत अनुचितता या प्रत्यक्ष रूप से स्पष्ट त्रुटि की जांच करने तक सीमित है - कानून का यह भी स्थापित प्रस्ताव है कि अनुच्छेद 226 के तहत न्यायिक समीक्षा की शक्ति निर्णय के विरुद्ध नहीं बल्कि निर्णय लेने की प्रक्रिया के विरुद्ध है। (पैरा 15)

रिट याचिका खारिज। (ई-1)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. पंजाब और सिंध बैंक और अन्य बनाम सकत्तर सिंह; (2001) 1 सुप्रीम कोर्ट मामले 214
2. क्षेत्रीय प्रबंधक, बैंक ऑफ बड़ौदा बनाम अनीता नंदराजोग; 2009 (9) एससीसी 462।
3. दिनेश कुमार सिंह बनाम पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, आगरा; 2005 एएलएल एलजे 732
4. रिट सी संख्या 39842/2019; श्री करण सिंह बनाम पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय एवं अन्य।

(माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर द्वारा दिया गया)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री एम. एस. विनायक के साथ-साथ प्रतिवादी संख्या 1 और 2 के लिए विद्वान स्थायी अधिवक्ता, प्रतिवादी संख्या 3 - कामगार के लिए श्री शेखर श्रीवास्तव को सुना ।

2. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता ने पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, नोएडा, जिला गौतम बुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश द्वारा पारित दिनांक 24.11.2022 के पुरस्कार पर आपत्ति जताई है, जिसके तहत प्रतिवादी संख्या 3 - कामगार के दावे की अनुमति दी गई है।

अनुवादित

3. वर्तमान मामले में संक्षेप में उत्पन्न होने वाले तथ्य यह हैं कि प्रतिवादी संख्या 3 पुणे, महाराष्ट्र में याचिकाकर्ता कंपनी की स्थापना के समय ग्रेड जीओ में सहायक के पद पर कार्यरत था और 30.3.2004 को नियुक्ति पत्र जारी किया गया था। नियुक्ति पत्र के अनुसार उन्हें नोएडा में काम करना था और यह भी प्रदान किया गया था कि प्रतिवादी संख्या 3 की सेवाओं को किसी भी पक्ष द्वारा पूर्व लिखित नोटिस देकर समाप्त कर दिया जाएगा। नियुक्ति पत्र में आगे यह प्रदान किया गया था कि प्रतिवादी - कामगार की सेवाएं हस्तांतरणीय होंगी और उसे याचिकाकर्ता के किसी भी प्रतिष्ठान में स्थानांतरित किया जा सकता है, चाहे वह भारत में हो या विदेश में। याचिकाकर्ता ने अपनी नियुक्ति की तारीख से 5.12.2008 तक काम करना जारी रखा जब उसकी सेवाओं को याचिकाकर्ता की चेन्नई शाखा में स्थानांतरित कर दिया गया। उन्हें 11-12-2008 तक चेन्नई में कार्यभार ग्रहण करने के लिए कहा गया। प्रतिवादी संख्या 3 चेन्नई में शामिल नहीं हुआ और याचिकाकर्ता के अनुसार वह अनधिकृत रूप से अनुपस्थित रहा। उन्हें दिनांक 15-12-2008 के पत्र के साथ-साथ 22-12-2009 को चेन्नई में कार्यभार ग्रहण करने के लिए कहा गया था, ऐसा न करने पर यह माना जाएगा कि वह अपनी सेवाओं को जारी रखने में रुचि नहीं रखते हैं और उनकी सेवाओं को समाप्त कर दिया जाएगा। इस तथ्य के बावजूद कि प्रतिवादी चेन्नई में शामिल नहीं हुआ था, 2.1.2009 को समाप्ति का आदेश पारित किया गया था। समूह प्रबंधक, मानव संसाधन द्वारा जारी 2 जनवरी, 2009 के आदेश के अनुसार यह कहा गया था कि प्रतिवादी को चेन्नई कार्यालय में रिपोर्ट करने का पर्याप्त अवसर दिया गया था लेकिन उसने न तो रिपोर्ट की है और न ही कोई पत्र भेजा है और इसलिए उसकी सेवाएं तत्काल प्रभाव से समाप्त की जाती हैं।

4. प्रतिवादी संख्या 3 ने 2 जनवरी, 2009 के समाप्ति आदेश से व्यथित होने के कारण श्रम न्यायालय, नोएडा के समक्ष एक औद्योगिक विवाद उठाया, जिसे विधिवत संदर्भित किया गया था और संदर्भ के अनुसार यह कहा गया था कि प्रतिवादी संख्या 3 ड्राइवर के पद पर काम कर रहा था और उसकी सेवाओं को 2 जनवरी, 2009 से समाप्त कर दिया गया है और श्रम न्यायालय को समाप्ति आदेश की वैधता का परीक्षण करने के लिए बुलाया गया था। याचिकाकर्ता को नोटिस जारी किए गए जो प्रतिवादी के दावे का विरोध करने के लिए पेश हुए और विरोध किया। श्रम न्यायालय के समक्ष दायर लिखित प्रस्तुतियों में यह कहा गया था कि प्रतिवादी को 30.3.2004 को नियुक्त किया गया था और दिनांक 5.12.2008 के आदेश के तहत चेन्नई कार्यालय में स्थानांतरित कर दिया गया था, उसे 11 दिसंबर, 2008 तक रिपोर्ट करना था, लेकिन उसने उक्त कार्यालय को रिपोर्ट नहीं किया। यह आगे कहा गया है कि चेन्नई कार्यालय में शामिल नहीं होने से प्रतिवादी ने कंपनी की अनुशासनात्मक नीति का उल्लंघन किया था। इससे पहले भी कई अवसरों पर उन्हें अपने कर्तव्यों में शामिल होने के लिए चेतावनी पत्र भी दिए गए हैं और वह याचिकाकर्ता के प्रबंधक को पूर्व सूचना दिए बिना 5.12.2008 से अनुपस्थित भी रहे हैं।

अनुवादित

यह आगे कहा गया कि कंपनी की नीति के अनुसार याचिकाकर्ता ने वास्तव में याचिकाकर्ता को अंतिम राशि का भुगतान किया था। आगे यह कहा गया कि प्रतिवादी की बर्खास्तगी कंपनी की नीति के अनुसार कानूनी थी।

5. श्रम न्यायालय ने उक्त प्रतिक्रिया के साथ-साथ कामगार के साथ-साथ याचिकाकर्ता द्वारा पेश किए गए साक्ष्य पर विचार करने के बाद कामगार के दावे की अनुमति दी थी और उक्त दावे की अनुमति देते हुए श्रम न्यायालय ने दर्ज किया है कि कामगार को 30.3.2004 से याचिकाकर्ता संगठन के साथ 11261/- रुपये प्रति माह की दैनिक मजदूरी पर नियुक्त किया गया था। आगे कहा गया है कि कामगार द्वारा आरोप लगाया गया था कि याचिकाकर्ता ने उसे उचित मजदूरी नहीं दी है और उसे सामान्य कामकाजी घंटों से अधिक समय तक काम करने के लिए कहा गया है और यहां तक कि अतिरिक्त समय के लिए मजदूरी भी प्रतिवादी को भुगतान नहीं की गई थी। आगे यह कहा गया था कि दावे में, कि कामगार को उसकी सेवाओं की समाप्ति से पहले कोई नोटिस या सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया था। यह भी कहा गया कि प्रतिवादी एक स्थायी कर्मचारी था और उसने याचिकाकर्ता को कई पत्र लिखकर अपनी मांगों को उठाया, जिनमें से किसी का भी जवाब नहीं दिया गया और परिणामस्वरूप सेवाओं की समाप्ति के बाद, कोई अन्य उपाय नहीं होने पर, उसने अपनी शिकायतों को उठाते हुए श्रम न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था।

6. विद्वान श्रम न्यायालय ने इस तथ्य के संबंध में याचिकाकर्ता के तर्कों पर भी विचार किया है कि प्रतिवादी को दिनांक 5.12.2008 के आदेश के तहत चेन्नई कार्यालय में स्थानांतरित कर दिया गया था और 11.12.2008 तक शामिल होने की आवश्यकता थी, लेकिन प्रतिवादी - कामगार ने स्थानांतरण के आदेश का पालन नहीं किया और उसे शामिल होने के लिए कई चेतावनी पत्र भी दिए गए, जिनका पालन भी उसके द्वारा नहीं किया गया और परिणामस्वरूप यह निष्कर्ष निकाला गया कि प्रतिवादी है याचिकाकर्ता कंपनी के साथ काम करने के इच्छुक नहीं थे और इस तथ्य पर भी विचार करते हुए कि इस अवधि के दौरान उन्होंने छुट्टी के लिए अनुरोध नहीं किया था, यह निष्कर्ष निकाला गया था कि उन्हें अपने रोजगार में कोई दिलचस्पी नहीं है और वास्तव में, उन्होंने इसे छोड़ दिया है। इस निष्कर्ष पर पहुंचने के बाद कि कामगार ने अपनी सेवाएं छोड़ दी हैं, उसकी देय राशियों की विधिवत गणना की गई और 2-1-2009 को भुगतान कर दिया गया और यह मानते हुए कि उसने 16-12-2008 को त्यागपत्र दे दिया है।

7. श्रम न्यायालय के समक्ष प्रतिवादी / कर्मचारी ने अपने दावे के समर्थन में स्वयं परीक्षण किया था, जबकि याचिकाकर्ता की ओर से कंपनी के श्री मुकुल साह से विधिवत परीक्षण कराया था। श्रम न्यायालय को इस तथ्य से राजी किया गया था कि कोई आरोप पत्र नहीं दिया गया था और न ही उनकी सेवाओं को समाप्त करने से पहले कोई अनुशासनात्मक जांच की गई थी जो प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का घोर उल्लंघन है जो उनकी सेवाओं को समाप्त करने से पहले अनिवार्य था । यह उपरोक्त परिसर में है कि

अनुवादित

श्रम न्यायालय ने प्रतिवादी - कामगार के दावे की अनुमति दी है और याचिकाकर्ता को दो महीने के भीतर कामगार के दावे की अनुमति देने और पूर्ण वेतन और अन्य लाभों के साथ सेवा में काम करने वालों को बहाल करने का निर्देश दिया है, जिसके लिए वह हकदार है।

8. पहला आधार जो इस न्यायालय के विचार के लिए आता है, वह यह है कि क्या वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में प्रतिवादी कामगार ने अपनी सेवाओं को छोड़ दिया था और क्या याचिकाकर्ता का उसकी सेवाओं को समाप्त करना उचित था। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने उक्त फैसले का विरोध करते हुए प्रस्तुत किया है कि उक्त फैसला अवैध और मनमाना है क्योंकि याचिकाकर्ता की तर्कों पर श्रम न्यायालय द्वारा उसके वास्तविक परिप्रेक्ष्य में विचार नहीं किया गया था। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि एक बार जब यह रिकॉर्ड पर आ गया है कि प्रतिवादी कामगार स्थानांतरण के आदेश के अनुसरण में शामिल नहीं हुआ था और बिना किसी छुट्टी के अनुपस्थित हो गया था, तो यह माना गया कि उसने अपनी सेवाओं को छोड़ दिया होगा और वे पूरी तरह से सक्षम थे और प्रतिवादी कामगार की सेवाओं को समाप्त करना उनके अधिकार क्षेत्र में था। अपनी तर्कों के समर्थन में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने निर्णयों की श्रृंखला पर भरोसा किया है। पहला मामला पंजाब और सिंध बैंक और अन्य बनाम सकतार सिंह, (2001) 1 उच्चतम न्यायालय मामले 214 के साथ-साथ क्षेत्रीय प्रबंधक, बैंक ऑफ बड़ौदा बनाम अनीता नंदराजोग 2009 (9) एससीसी 462 का है। इन दोनों मामलों में जहां कामगार अनधिकृत रूप से अनुपस्थित रहा था और द्विपक्षीय समझौते के IV के खंड XVI में निहित शर्तों के अनुसार तीस दिनों के भीतर ड्यूटी के लिए रिपोर्ट नहीं किया था, उनकी सेवाएं समाप्त कर दी गई थीं और उक्त समाप्ति को उच्चतम न्यायालय द्वारा बरकरार रखा गया था, जो श्रमिक संघ और बैंक के बीच हुए द्विपक्षीय समझौते पर निर्भर करता था ।

9. प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता के तर्क का विरोध किया है। वह प्रस्तुत करता है कि यह कानून के स्थापित सिद्धांतों है कि यदि कामगार की सेवाओं को समाप्त करने की आवश्यकता होती है तो औद्योगिक विवादित अधिनियम, 1947 की धारा 6N और 6 (P) में निहित वैधानिक प्रावधानों का पालन करना होगा। धारा 6एन के अनुसार यह स्पष्ट रूप से प्रदान किया गया है कि छंटनी के कारणों का हवाला देते हुए या तो एक महीने का नोटिस लिखित रूप में दिया जाना है और नोटिस के बदले मजदूरी दी जानी है। समाप्ति के कारणों को समाप्ति के आदेश में बताया गया है जिसके अनुसार याचिकाकर्ता इस स्थानांतरण के अनुसरण में शामिल नहीं हुआ और परिणामस्वरूप उसकी सेवाओं को समाप्त कर दिया गया। यह माना जाता है कि याचिकाकर्ता द्वारा कोई घरेलू जांच नहीं की गई थी, न ही उसकी सेवा समाप्त करने से पहले कामगार को कोई कारण बताओ नोटिस दिया गया था। याचिकाकर्ता द्वारा प्रतिवादी-कामगार को 15.12.2008 या 22.12.2008 को दिए गए नोटिस को घरेलू जांच के दौरान दिया गया नोटिस नहीं माना जा सकता है। वे केवल

अनुवादित

उन्हें चेन्नई में शामिल होने की आवश्यकता वाले नोटिस थे।

10. याचिकाकर्ता द्वारा की गई प्रस्तुतियों पर विचार करते हुए कि वे सेवा के परित्याग के आधार पर सेवाओं को समाप्त करने में न्यायसंगत थे, यह देखा गया है कि प्रतिवादी कामगार ने अपने स्थानांतरण की तारीख यानी 05/12/2008 से काम पर रिपोर्ट करना बंद कर दिया। याचिकाकर्ता ने 15/12/2008 और 22/12/2008 को 2 नोटिस भेजे थे, लेकिन वह अभी भी काम के लिए रिपोर्ट नहीं किया और परिणामस्वरूप दिनांक 02/01/2009 के आदेश द्वारा समाप्ति का आदेश पारित किया गया था। यह देखा गया है कि प्रतिवादी कामगार लगभग 3 सप्ताह तक काम के लिए रिपोर्ट नहीं करता था, जब समाप्ति का आदेश पारित किया गया था। यह भी देखा गया है कि ड्यूटी से अनुपस्थित रहने और सेवा छोड़ने के बीच अंतर है। सेवा के परित्याग के आधार पर कर्मचारी की सेवाओं को समाप्त करने के लिए दावा हकदार, यह साबित करना होगा कि सेवाओं को कामगार द्वारा छोड़ दिया गया है, जिसके लिए रिकॉर्ड पर सबूत होना चाहिए जो इसे इंगित करता है। कुछ दिनों या लगभग 3 सप्ताह के लिए ड्यूटी से अनुपस्थिति जैसा कि वर्तमान मामले में है, सेवा छोड़ने के लिए नहीं ठहराया जा सकता है।

11. याचिकाकर्ता ने पंजाब और सिंध बैंक और अन्य बनाम सकतार सिंह, (2001) 1 सर्वोच्च न्यायालय केस 214 के साथ-साथ क्षेत्रीय प्रबंधक, बैंक ऑफ बड़ौदा बनाम अनीता नंदराजोग, 2009 (9) एससीसी 462 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है। इन दोनों मामलों में जहां कामगार अनधिकृत रूप से अनुपस्थित रहा था और द्विपक्षीय समझौते के IV के खंड XVI में निहित शर्तों के अनुसार तीस दिनों के भीतर ड्यूटी के लिए रिपोर्ट नहीं किया था, उनकी सेवाएं समाप्त कर दी गई थीं और उक्त समाप्ति को उच्चतम न्यायालय द्वारा बरकरार रखा गया था, जो श्रमिक संघ और बैंक के बीच हुए द्विपक्षीय समझौते पर निर्भर करता था। उक्त मामले में, उच्चतम न्यायालय द्विपक्षीय समझौते के समझौते को बढ़ा रहा था जहां एक विशेष अवधि के बाद ड्यूटी से अनुपस्थित रहने वाले कामगार की सेवाओं को समाप्त करने के संबंध में विशिष्ट शर्त थी, जिसे द्विपक्षीय समझौते के भीतर भी निर्धारित किया गया था और तदनुसार द्विपक्षीय समझौते में निर्धारित अवधि से अधिक समय तक अनुपस्थित रहने वाले कर्मचारी की सेवाओं को समाप्त करने के लिए बैंक के आदेश को सर्वोच्च न्यायालय ने बरकरार रखा था।

12. मैंने उपरोक्त निर्णयों का अध्ययन किया है और मेरी सुविचारित राय है कि उक्त निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों से स्पष्ट रूप से अलग है जहां कामगार और याचिकाकर्ता के बीच ऐसी कोई शर्त या अनुबंध मौजूद नहीं है, जहां यह प्रावधान है कि यदि वह एक विशेष अवधि से अधिक अनुपस्थित रहता है तो यह माना जाएगा कि उसने अपनी सेवाएं छोड़ दी हैं और नियोक्ता के पास उसकी सेवाएं समाप्त करने का अधिकार होगा।

अनुवादित

13. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दिनेश कुमार सिंह बनाम पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, आगरा के मामले में इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ के फैसले पर भरोसा किया है, जिसकी रिपोर्ट 2005 में ऑल एलजे 732 में की गई थी। उक्त मामले में नियोक्ता ने कहा था कि उसने उस कामगार की सेवाओं को कभी समाप्त नहीं किया था, जिसने वास्तव में स्वयं अपनी सेवा छोड़ दी थी। यहां तक कि उक्त मामले में श्रम न्यायालय ने भी स्पष्ट निष्कर्ष दिया है कि याचिकाकर्ता ने अपनी सेवाओं को छोड़ दिया था और सेवाओं को कभी समाप्त नहीं किया गया था और इसलिए यह निष्कर्ष निकाला गया था कि कामगार की सेवाओं की कोई छंटनी नहीं हुई थी। उक्त मामला तथ्यों के आधार पर अलग है क्योंकि वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता द्वारा 02.01.2009 को बर्खास्तगी का आदेश पारित किया गया है। उक्त पत्र को समाप्ति के आदेश के रूप में शीर्षक दिया गया है, यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि याचिकाकर्ता की सेवा समाप्त हो गई है। एक बार समाप्ति का आदेश पारित हो जाने के बाद इसकी वैधता श्रम न्यायालय द्वारा देखी जाएगी, और वर्तमान मामले में, श्रम न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला है कि समाप्ति का आदेश अवैध और मनमाना है क्योंकि उक्त आदेश पारित होने से पहले सुनवाई या किसी भी घरेलू जांच का कोई अवसर नहीं है ।

14. मुझे प्रतिवादी की ओर से किए गए तर्क में बल मिलता है कि भले ही यह मान लिया गया था कि कामगार ने अपनी सेवाओं को छोड़ दिया था, याचिकाकर्ता के लिए अपनी सेवाओं को समाप्त करने से पहले घरेलू जांच करना अनिवार्य था। यहां तक कि सेवा का परित्याग भी विवादित तथ्य का प्रश्न है जिसे साबित किया जाना है, जो घरेलू जांच में किया जा सकता था, याचिकाकर्ता द्वारा किया जा सकता था। इस संबंध में अपनी प्रस्तुतियों के समर्थन में उन्होंने श्री कर्ण सिंह बनाम पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय और अन्य के मामले में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है, जो रिट सी संख्या 39842/2019 में पारित किया गया था। किसी कामगार की सेवाओं की समाप्ति से पहले, न्यूनतम अनिवार्य अपेक्षा आरोप पत्र जारी करके उसे आरोपों के बारे में सूचित करना है, उसके बाद घरेलू जांच करना है जहां कर्मकार को उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों के विरुद्ध अपना औचित्य प्रस्तुत करने का अवसर मिलता है। कामगार को पर्याप्त अवसर दिए जाने के बाद ही उसकी सेवाएं समाप्त की जा सकती हैं। याचिकाकर्ता द्वारा इस तरह की जांच के अभाव में और सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना प्रतिवादी की सेवाओं को समाप्त करने में की गई कार्रवाई अवैध और मनमानी है और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है जैसा कि श्रम न्यायालय द्वारा सही ठहराया गया है, और परिणामस्वरूप, आक्षेपित आदेश में कोई दुर्बलता नहीं है।

15. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने भी इस आधार पर पुरस्कार का विरोध किया है कि यह लॉचेस के सिद्धांत द्वारा वर्जित है क्योंकि श्रम न्यायालय के समक्ष कार्यवाही उस तारीख से 4 साल की अवधि के बाद शुरू की गई थी जब उसकी सेवाएं समाप्त कर दी गई थीं।

अनुवादित

हमने प्रतिवादी कामगार द्वारा प्रस्तुत दावे का विरोध करने वाले याचिकाकर्ता द्वारा उठाई गई आपत्तियों पर विचार किया है और पाया है कि श्रम न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता द्वारा देरी और लॉचेस के संबंध में कोई आधार नहीं उठाया गया था, और इसलिए श्रम न्यायालय के पास उक्त विवाद की जांच करने का अवसर नहीं था। यहां तक कि इस न्यायालय के समक्ष भी वर्तमान रिट याचिका में याचिकाकर्ता द्वारा श्रम न्यायालय के फैसले की आलोचना करने का कोई आधार नहीं है, और इसलिए इस न्यायालय के लिए याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए विवाद की जांच करने का कोई अवसर नहीं है क्योंकि इसे श्रम न्यायालय के समक्ष नहीं लिया गया था, और न ही वर्तमान रिट याचिका में इसकी जांच करने के लिए इस संबंध में कोई तर्क है। श्रम न्यायालय के आदेश की न्यायिक समीक्षा करते समय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत इस न्यायालय द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्ति, प्रक्रियात्मक अनौचित्य या प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने वाली त्रुटि की जांच करने तक सीमित है। कानून का यह भी स्थापित प्रस्ताव है कि अनुच्छेद 226 के तहत न्यायिक समीक्षा की शक्ति निर्णय के विरुद्ध नहीं बल्कि निर्णय लेने की प्रक्रिया के विरुद्ध है। याचिकाकर्ताओं ने श्रम न्यायालय और इस न्यायालय के समक्ष लॉचेस की तर्क नहीं दी है और साथ ही वर्तमान रिट याचिका में याचिकाकर्ता द्वारा कोई तर्क या आधार नहीं उठाया गया है, इस न्यायालय को उक्त मुद्दे पर निर्णय लेने से रोकता है। तदनुसार, इस संबंध में याचिकाकर्ता के तर्क खारिज की जाती हैं।

16. अंत में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता और प्रतिवादी कामगार के बीच मामला सुलझा लिया गया है क्योंकि याचिकाकर्ता और प्रतिवादियों के बीच विवाद का पूर्ण और अंतिम समाधान हो गया है, इसलिए, रिट याचिका की अनुमति दी जानी चाहिए। अपनी तर्कों के समर्थन में, उन्होंने रिट याचिका के साथ संलग्न "पूर्ण और अंतिम निपटान" शीर्षक वाले दस्तावेज पर भरोसा किया। उक्त दस्तावेज के अवलोकन से पता चलता है कि प्रतिवादी कामगार को 18,763/- रुपये की राशि देय है, जो प्रतिवादी कामगार को देय है, जिसमें वाहन भत्ता, मकान किराया भत्ता, व्यक्तिगत भत्ता आदि सहित विभिन्न सेवा लाभ शामिल हैं। इस बात का कोई सबूत नहीं है कि यह वास्तव में प्रतिवादी कामगार को भुगतान किया गया है या नहीं। उक्त दस्तावेजों में एक रसीद भी है, लेकिन वह अहस्ताक्षरित है, जो स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि इसे प्रतिवादी कामगार द्वारा स्वीकार नहीं किया गया है, या यह याचिकाकर्ता द्वारा कामगारों को कभी नहीं दिया गया था। यह आगे देखा गया है कि याचिकाकर्ता द्वारा श्रम न्यायालय के समक्ष पैराग्राफ संख्या 10 में दायर आपत्तियों में कहा गया है कि:

"इसके अलावा, कंपनी की नीति के अनुसार, यदि ऐसा है तो प्रतिवादी कंपनी ने आवेदक का पूर्ण और अंतिम निस्तारण तैयार कर लिया था और आवेदक को बकाया पूर्ण और अंतिम राशि दे दी थी"।

17. श्रम न्यायालय और इस न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता के रुख में स्पष्ट रूप से

अनुवादित

भिन्नता है। श्रम न्यायालय के समक्ष इस बात का कोई उल्लेख नहीं था कि प्रतिवादी कामगार द्वारा पूर्ण और अंतिम निस्तारण स्वीकार कर लिया गया है, और वर्तमान रिट याचिका के पैराग्राफ 21 में यह कहा गया है कि कामगार ने 14/01/2009 को अपनी देय राशि की उचित स्वीकृति में एक वाउचर पर हस्ताक्षर किए हैं। उक्त कथनों के समर्थन में संलग्न दस्तावेज में प्रतिवादी द्वारा हस्ताक्षरित कोई दस्तावेज शामिल नहीं है, बल्कि एक अहस्ताक्षरित दस्तावेज संलग्न किया गया है। स्पष्ट रूप से, उपरोक्त से याचिकाकर्ता से इस न्यायालय के समक्ष झूठे दावे करने की उम्मीद नहीं थी। यदि प्रतिवादी ने वास्तव में उक्त पूर्ण और अंतिम समझौते पर हस्ताक्षर किए थे, तो उसे श्रम न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय के समक्ष भी पेश किया जाना चाहिए था। श्रम न्यायालय के समक्ष यह कभी नहीं कहा गया था कि कामगारों ने पूर्ण और अंतिम निस्तारण को स्वीकार कर लिया था, और इस न्यायालय के समक्ष यह बदला हुआ रुख, स्पष्ट रूप से एक बाद में विचार और रिकॉर्ड पर सामग्री के विपरीत प्रतीत होता है, और याचिकाकर्ता के पक्ष में विचार करने योग्य नहीं है। कामगार द्वारा उक्त समझौते की स्वीकृति के अभाव में इसे करार अथवा समझौता नहीं माना जा सकता। इस संबंध में याचिकाकर्ता की तर्कों को भी खारिज कर दिया गया।

18. उपरोक्त के आलोक में, रिट याचिका योग्यता से रहित है और तदनुसार खारिज कर दी गई है।

(2023) 6 ILRA 880

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 31.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी

रिट-सी संख्या 23756 वर्ष 2021

पल्लवी सोनी **याचिकाकर्ता**

बनाम

यू.पी. राज्य और अन्य **प्रतिवादी**

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: ए.जेड. सिद्दीकी

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी., अतुल कुमार द्विवेदी

ए. शिक्षा कानून - डॉ. शकुंतला मिश्रा पुनर्वास, यू.पी. अधिनियम, 2009 - पीएच.डी. अध्यादेश, 2014 - अध्यादेश जारी करने का विश्वविद्यालय का अधिकार - ऐसे अधिकार का स्रोत, प्रश्नगत - विश्वविद्यालय कानून का कोई प्रावधान नहीं रख पाया, जो विश्वविद्यालय को अध्यादेश जारी करने का अधिकार देता हो - प्रभाव - माना गया कि, 2009 के सेंट अधिनियम संख्या 1 के अनुसार, विश्वविद्यालय के पास केवल क़ानून बनाने की शक्ति है। इस प्रकार, प्रथम दृष्टया, अध्यादेश अधिकार क्षेत्र से बाहर प्रतीत होता है। (पैरा 8)

बी. शिक्षा कानून - पीएच.डी. पाठ्यक्रम - बंद करना - पांच साल बाद, याचिकाकर्ता को प्रवेश में अनियमितता के आधार पर पाठ्यक्रम पूरा करने से रोक दिया गया - वैधता को चुनौती दी गई - विश्वविद्यालय के प्रबंधन की गलती के लिए छात्रों को पीड़ित नहीं बनाया जा सकता - अशोक चंद सिंघवी के मामले पर भरोसा किया गया - माना गया कि, एक बार, विश्वविद्यालय ने प्रवेश दिया है और

अनुवादित

याचिकाकर्ता को पांच साल तक जारी रखने की अनुमति दी है और उसकी पीएच.डी. पाठ्यक्रम पूरा होने के कगार पर है, अब विश्वविद्यालय के लिए याचिकाकर्ता को पाठ्यक्रम पूरा करने से रोकना संभव नहीं है - यहां तक कि यह मानते हुए कि पीएचडी पाठ्यक्रम में प्रवेश के समय कुछ अनियमितता हुई थी, अब इसे याचिकाकर्ता को पाठ्यक्रम पूरा करने से मना करने का आधार नहीं बनाया जा सकता है। (पैरा 14 और 16)

रिट याचिका स्वीकार की गई। (ई-1)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. आभा जॉर्ज और अन्य बनाम अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (एम्स) और अन्य; 2022 एससीसी ऑनलाइन डेल 366
2. जावेद अख्तर बनाम जामिया हमदर्द; 2006 एससीसी ऑनलाइन डेल 1504
3. अशोक चंद सिंघवी बनाम जोधपुर विश्वविद्यालय और अन्य; (1989) 1 एससीसी 399
4. राजेंद्र प्रसाद माथुर बनाम कर्नाटक विश्वविद्यालय और अन्य; एआईआर 1986 सप. एससीसी 740

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी द्वारा वितरित)

याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री ए.जेड. सिद्दीकी, राज्य की ओर से विद्वान स्थायी अधिवक्ता, और प्रतिवादी विश्वविद्यालय के विद्वान अधिवक्ता श्री अतुल कुमार द्विवेदी की सहायता से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सुदीप सेठ को सुना।

याचिकाकर्ता जो प्रतिवादी विश्वविद्यालय में अध्ययनरत ललित कला की पीएच.डी. छात्रा है, ने वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से इस न्यायालय से अनुरोध किया है कि प्रतिवादी विश्वविद्यालय उसे पीएच.डी. पाठ्यक्रम पूरा करने से स्वैच्छिक ढंग से रोक रहा है, जिसमें उसने पहले ही पाँच वर्ष लगा दिए हैं, इस आधार पर कि उसके प्रवेश में कुछ अनियमितता है।

प्रकरण के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि डॉ. शकुंतला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय (दिव्यांगों हेतु) उत्तर प्रदेश (जिसे आगे विश्वविद्यालय कहा जाएगा) को राज्य अधिनियम संख्या 1/2009 द्वारा निगमित किया गया था। विश्वविद्यालय द्वारा 25.08.2015 को प्रवेश परीक्षा के माध्यम से पीएच.डी. हेतु प्रवेश प्रक्रिया आयोजित करने हेतु एक नोटिस जारी किया गया था। याचिकाकर्ता ने ललित कला में पीएच.डी. हेतु आवेदन किया और चयन प्रक्रिया में भाग लिया। चयन प्रक्रिया के बाद याचिकाकर्ता मेरिट सूची में पांचवें स्थान पर रही और चूंकि ललित कला में पीएच.डी. हेतु मात्र चार रिक्तियाँ उपलब्ध थीं, इसलिए उसका चयन नहीं किया जा सका। इस बीच विश्वविद्यालय के कुलपति ने नेट/गेट/स्लेट उम्मीदवारों से पीएच.डी. हेतु आवेदन स्वीकार कर लिए। याचिकाकर्ता जिसने यू.जी.सी. नेट (तीन बार नेट पास) उत्तीर्ण किया था, ने भी आवेदन किया और कुलपति ने चयन समिति द्वारा उसे योग्य पाते हुए की

अनुवादित

गई उचित सिफारिश पर उसके प्रवेश को मंजूरी दे दी। याचिकाकर्ता ने नवंबर, 2015 में अपना प्रवेश प्राप्त किया और अपना शोध कार्य जारी रखा। उसके प्रवेश के संबंध में कभी कोई आपत्ति नहीं उठाई गई। ऐसा प्रतीत होता है कि विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति के कामकाज के संबंध में कुछ आरोप थे और इस प्रकार उन्हें हटा दिया गया था। याचिकाकर्ता ने पीएच.डी. में पाँच वर्ष पूरे करने के बाद नियमों के अनुसार अपना काम पूरा करने हेतु एक वर्ष का विस्तार मांगा, यद्यपि, विश्वविद्यालय ने याचिकाकर्ता को शोध कार्य जारी रखने और उसकी आगे की फीस स्वीकार करने से मना कर दिया। विश्वविद्यालय ने 11.05.2018 के अकादमिक परिषद के प्रस्ताव के अनुसरण में 15.03.2019 को तीन सदस्यीय समिति का गठन किया ताकि यह देखा जा सके कि किस तरह से तत्कालीन कुलपति ने पीएच.डी. पाठ्यक्रमों में प्रवेश की अनुमति दी थी। 30.05.2019 को समिति ने एक अंतरिम रिपोर्ट प्रस्तुत की और ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त रिपोर्ट के आधार पर याचिकाकर्ता और अन्य उम्मीदवारों को एक घोषणा और शपथपत्र प्रस्तुत करना आवश्यक था कि उनका चयन परीक्षा और साक्षात्कार के माध्यम से किया गया था। चूंकि याचिकाकर्ता विश्वविद्यालय द्वारा अपेक्षित भाषा में शपथपत्र दाखिल नहीं कर सकी,इसलिए उसे अपना शोध कार्य जारी रखने की अनुमति नहीं दी जा रही है। इसलिए याचिकाकर्ता ने वर्तमान रिट याचिका दायर की है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया, कि याचिकाकर्ता की ओर से कोई त्रुटि नहीं हुई है और उसे विश्वविद्यालय अधिकारियों द्वारा नियमों के अनुसार प्रवेश दिया गया था। प्रवेश पर पाँच वर्ष तक कोई आपत्ति नहीं की गई और अब जब याचिकाकर्ता अपनी पीएच.डी. पूरी करने के निकट है, तो उसे अनावश्यक रूप से इसे पूरा करने से रोका जा रहा है। उन्होंने निम्नलिखित मामलों पर विश्वास व्यक्त किया:-

(i) आभा जॉर्ज और अन्य बनाम अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (एम्स) और अन्य [022 एससीसी ऑनलाइन डेल 366],

(ii)जावेद अख्तर बनाम जामिया हमदर्द [2006 एससीसी ऑनलाइन डेल 1504],

(iii)अशोक चंद सिंघवी बनाम जोधपुर विश्वविद्यालय और अन्य [(1989) 1 एससीसी 399]और

(iv)राजेंद्र प्रसाद माथुर बनाम कर्नाटक विश्वविद्यालय और अन्य। [एआईआर 1986 उपरिवर्णित। एससीसी 740]

विश्वविद्यालय के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि विश्वविद्यालय के पीएच.डी. अध्यादेश 2014 के अनुसार, पीएच.डी. पाठ्यक्रम में प्रवेश मात्र ललित कला में चार

अनुवादित

रिक्तियों हेतु लिखित परीक्षा और साक्षात्कार के बाद उपलब्ध हो सकता है। याचिकाकर्ता मेरिट में पांचवें स्थान पर थी, परन्तु ललित कला में मात्र चार सीटें उपलब्ध थीं, इसलिए उसे उक्त चयन प्रक्रिया में प्रवेश नहीं दिया जा सका। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि विश्वविद्यालय के कुलपति ने नियमों का उल्लंघन करते हुए याचिकाकर्ता को अवैध रूप से प्रवेश दिया है और इसलिए याचिकाकर्ता को अब उक्त पीएच.डी. जारी रखने से रोक दिया गया है।

यू.जी.सी. (विश्वविद्यालय अनुदान आयोग) ने दिनांक 01.06.2009 की अधिसूचना द्वारा एम.फिल/पीएच.डी. में चयन हेतु प्रक्रिया प्रदान की है। इसकी धारा 9 और 10 इस प्रकार है:-

"9- i) समस्त विश्वविद्यालय, मानित विश्वविद्यालय, एवं कॉलेज/ राष्ट्रीय महत्व कि संस्थाएँ एम. फिल. एवं शोध छात्रों का प्रवेश अपने स्तर पर विश्विद्यालय,मानित विश्वविद्यालय एवं कॉलेज / राष्ट्रीय महत्व कि संस्थाओं द्वारा आयोजित प्रवेश परीक्षा द्वारा होगा। जो लोग वि. अ. आ./सी एस.आई.आर.(जे. आर. एफ.)परीक्षा,स्लेट / गेट उत्तीर्ण हैं या शिक्षक अध्ययातवृत्तियां धारक हैं और जिन्होंने एम.फिल कार्यक्रम पी.एच.डी प्रवेश परीक्षा हेतु उत्तीर्ण कर लिया है। उनके लिए विश्वविद्यालय अलग से शर्तों का निर्धारण कर सकता है। यही तरीका एम. फिल. कार्यक्रम की प्रवेश परीक्षा मे भी अपनाया जा सकता है।

ii)इसके पश्चात् स्कूल /विभाग /संस्था /विश्विद्यालय जैसा मामला हो एक साक्षात्कार का आयोजन करेगा।

iii)साक्षात्कार के समय शोध छात्रों से अपेक्षा की जाती है वे अपने शोध रूचि/ क्षेत्र पर विचार विमर्श करें।

10. पी.एच .डी. कार्यक्रम में प्रवेश या तो सीधे या एम. फिल माध्यम से होगा ।"

7. प्रतिवादी विश्वविद्यालय के विद्वान अधिवक्ता का दावा है कि यू.जी.सी. के उक्त दिशा-निर्देशों के अनुपालन में विश्वविद्यालय द्वारा पीएच.डी. अध्यादेश, 2014 जारी किया गया है। उक्त अध्यादेश में लिखित परीक्षा के साथ-साथ साक्षात्कार का भी प्रावधान है।

8. प्रतिवादी विश्वविद्यालय के विद्वान अधिवक्ता द्वारा कहा गया कि वह कानून का वह प्रावधान प्रस्तुत करें जिसके तहत विश्वविद्यालय द्वारा उक्त अध्यादेश जारी किया गया था। वह ऐसा कोई कानून का प्रावधान प्रस्तुत नहीं कर सके जो विश्वविद्यालय को अध्यादेश जारी करने का अधिकार देता हो। राज्य अधिनियम संख्या 1/2009 के अनुसार विश्वविद्यालय के पास मात्र कानून बनाने की शक्ति है। इस प्रकार, प्रथम दृष्टया यह अध्यादेश अधिकार क्षेत्र से बाहर प्रतीत होता है। अन्यथा भी, यू.जी.सी. दिशा-निर्देश 9(i) में यह प्रावधान है कि विश्वविद्यालय सी.एस.आई.आर. परीक्षा (जे.आर.एफ.)/स्लेट/गेट/एम.फिल. उत्तीर्ण करने वाले व्यक्तियों हेतु प्रवेश परीक्षा के माध्यम से चयन से अलग शर्तें प्रदान कर सकता है। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि उक्त अध्यादेश द्वारा भी यू.जी.सी. दिशा-निर्देशों के पैरा 9(i) द्वारा दी गई विश्वविद्यालय की शक्ति छीन ली गई है। उक्त शक्ति को आगे बढ़ाने हेतु विश्वविद्यालय की शैक्षणिक परिषद

अनुवादित

ने दिनांक 03.10.2015 की अपनी तीसरी बैठक में निम्नलिखित निर्णय लिया:-

"ख) उपरोक्त के अतिरिक्त यू. जी. सी. एवं/ सी. एस.आई.आर. के जे.आर.एफ/गेट/ नेट/ स्लेट/ एम.फिल./ धारक तथा सेवारत अधिकारी एवं ख्यातिलब्ध विशेषज्ञ, जिनका पी.- एच. डी. शोध कार्य विश्वविद्यालय एवं समाज के उन्नयन तथा नीति -नियोजन में उपयोगी हो, को पीएच. डी. में अतिरिक्त सीट का प्राविधान कर सीधे प्रवेश प्रदान करने हेतु कुलपति को अधिकृत किये जाने का निर्णय मा0 विद्या परिषद् द्वारा लिया गया।"

9. उक्त प्रस्ताव द्वारा विद्या परिषद ने कुलपति को पीएच.डी. हेतु अतिरिक्त सीटें सृजित करने तथा जेआरएफ/गेट/नेट/स्लेट/एमफिल उत्तीर्ण व्यक्तियों को प्रवेश देने का अधिकार दिया। उक्त विद्या परिषद के प्रस्ताव पर विधिवत कार्रवाई की गई तथा इसके अनुरूप विश्वविद्यालय के कुलपति ने अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए नवंबर, 2015 में याचिकाकर्ता को प्रवेश प्रदान किया। इसलिए विश्वविद्यालय के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क कि प्रदान किया गया प्रवेश यू.जी.सी. के दिशा-निर्देशों अथवा विश्वविद्यालय के अध्यादेश का उल्लंघन है, कोई मायने नहीं रखता। विश्वविद्यालय की विद्या परिषद ने कुलपति को अतिरिक्त सीटें सृजित करके प्रवेश देने का अधिकार दिया। विद्या परिषद का उक्त प्रस्ताव आज तक प्रभावी है। विश्वविद्यालय के किसी भी अधिकारी ने आज तक उक्त प्रस्ताव पर आपत्ति नहीं की है तथा न ही उसे वापस लिया गया है। इसलिए, कुलपति को उक्त प्रस्ताव के तहत अधिकार दिया गया और उन्होंने याचिकाकर्ता को ललित कला में पीएच.डी. में एक अतिरिक्त सीट बनाकर प्रवेश प्रदान किया, क्योंकि याचिकाकर्ता पूरी तरह से योग्य थी।

10. प्रतिवादी विश्वविद्यालय के विद्वान अधिवक्ता ने न्यायालय का ध्यान राज्य अधिनियम संख्या 1/2009 की धारा 13.1 की ओर आकर्षित किया है तथा दावा किया है कि प्रवेश आदि के संबंध में समस्त शक्तियाँ कार्यकारी परिषद के पास हैं तथा न तो शैक्षणिक परिषद और न ही कुलपति के पास ऐसी कोई शक्ति है।

11. विश्वविद्यालय के संबंधित प्राधिकारियों की शक्तियों के संबंध में अधिनियम संख्या 1 /2009 की प्रासंगिक धाराएं इस प्रकार हैं:-

"13.1 कार्यकारी परिषद विश्वविद्यालय का मुख्य कार्यकारी निकाय होगा।

(2)विश्वविद्यालय का प्रशासन, प्रबंधन और नियंत्रण तथा उसकी आय कार्यकारी परिषद में निहित होगी जो विश्वविद्यालय की संपत्ति और निधियों को नियंत्रित और प्रशासित करेगी।

20.शैक्षणिक परिषद विश्वविद्यालय का शैक्षणिक निकाय होगा और शैक्षणिक परिषद, इस अधिनियम और विधियों के प्रावधानों के अधीन, विश्वविद्यालय के निर्देशों, शिक्षा और परीक्षा के मानकों के रखरखाव हेतु जिम्मेदार होगी और नियंत्रण और सामान्य विनियमन की शक्ति रखेगी और ऐसी अन्य शक्तियों का प्रयोग करेगी और ऐसे अन्य कार्य करेगी जो इस अधिनियम या विधियों द्वारा उसे प्रदान

अनुवादित

किए जा सकते हैं या उसे सौंपे जा सकते हैं, उसे सभी शैक्षणिक मामलों पर कार्यकारी परिषद को सलाह देने का अधिकार होगा।

22. इस अधिनियम या विधियों के प्रावधानों के अधीन, अकादमिक परिषद को इसमें निहित अन्य सभी शक्तियों के अतिरिक्त निम्नलिखित शक्तियाँ भी होंगी, अर्थात्:-

(i) सामान्य परिषद या कार्यकारी परिषद द्वारा संदर्भित या प्रत्यायोजित किसी मामले पर रिपोर्ट में;

(ii) विश्वविद्यालय में शिक्षण पदों के सृजन, उन्मूलन या वर्गीकरण तथा उनसे जुड़ी योग्यताओं, पारिश्रमिकों और कर्तव्यों के संबंध में कार्यकारी परिषद को सिफारिशें करना;

(iii) संकायों के संगठन हेतु योजनाएँ तैयार करना, उनमें संशोधन करना या उन्हें संशोधित करना तथा ऐसे संकायों को उनके संबंधित विषय सौंपना और किसी संकाय को समाप्त करने या उपविभाजित करने अथवा एक संकाय को दूसरे के साथ मिलाने की समीचीनता के बारे में कार्यकारी परिषद को रिपोर्ट करना;

(iv) **विश्वविद्यालय के भीतर अनुसंधान को बढ़ावा देना और समय-समय पर ऐसे अनुसंधान पर रिपोर्ट मांगना;**

(v) संकायों द्वारा प्रस्तुत प्रस्तावों पर विचार करना,

(vi) विश्वविद्यालय में प्रवेश हेतु मानदंड निर्धारित करना और समितियाँ नियुक्त करना;

(vii) अन्य विश्वविद्यालयों और संस्थानों के डिप्लोमा और डिग्री को मान्यता देना और विश्वविद्यालय के डिप्लोमा और डिग्री के संबंध में उनकी समतुल्यता निर्धारित करना;

(viii) सामान्य परिषद द्वारा स्वीकृत किसी भी शर्त के अधीन, फेलोशिप, छात्रवृत्ति और अन्य पुरस्कारों हेतु प्रतियोगिताओं का समय, तरीका और शर्तें तय करना और उन्हें प्रदान करना;

(ix) परीक्षकों की नियुक्ति और यदि आवश्यक हो तो उन्हें हटाने तथा उनकी फीस, पारिश्रमिक और यात्रा एवं अन्य व्यय के निर्धारण के संबंध में कार्यकारी परिषद को सिफारिशें करना;

(x) परीक्षाओं के आयोजन की व्यवस्था करना तथा उनके आयोजन की तिथियां तय करना;

(xi) विभिन्न परीक्षाओं के परिणाम घोषित करना अथवा ऐसा करने हेतु समितियों अथवा अधिकारियों की नियुक्ति करना, तथा डिग्री, सम्मान, डिप्लोमा, लाइसेंस, उपाधियाँ और सम्मान चिह्न प्रदान करने अथवा प्रदान करने के संबंध में सिफारिशें करना;

(xii) वजीफा, छात्रवृत्ति, पदक और पुरस्कार प्रदान करना तथा विनियमों और पुरस्कारों से जुड़ी अन्य शर्तों के अनुसार अन्य पुरस्कार प्रदान करना।

(xiii) निर्धारित या अनुशंसित पाठ्य पुस्तकों की सूची प्रकाशित करना तथा निर्धारित अध्ययन पाठ्यक्रमों का पाठ्यक्रम प्रकाशित करना।

(xv) शैक्षणिक मामलों के संबंध में ऐसे सभी कर्तव्यों का पालन करना तथा ऐसे सभी अध्यादेशों को पारित करना जो इस अधिनियम और परिनियमों के उपबंधों को उचित रूप से क्रियान्वित करने हेतु आवश्यक हों।

27(11) कुलपति को -

(A) यह सुनिश्चित करना कि इस अधिनियम और विधियों के प्रावधानों का विधिवत पालन किया जाए और उसके पास उस उद्देश्य हेतु आवश्यक सभी शक्तियाँ होंगी;

(B) **कार्यकारी परिषद के विशिष्ट एवं सामान्य निर्देशों के अधीन कुलपति विश्वविद्यालय के**

अनुवादित

प्रबंधन एवं प्रशासन में कार्यकारी परिषद की सभी शक्तियों का प्रयोग करेंगे;

(E) सामान्य परिषद, कार्यकारी परिषद, शैक्षणिक परिषद की बैठकें बुलाएगा और इस अधिनियम के प्रावधानों को प्रभावी करने हेतु आवश्यक सभी अन्य कार्य करेगा।

(D) विश्वविद्यालय में अनुशासन के उचित रखरखाव से संबंधित सभी शक्तियाँ होंगी।

12. उपर्युक्त प्रावधानों के अवलोकन से पता चलता है कि यद्यपि कार्यकारिणी परिषद विश्वविद्यालय का कार्यकारी निकाय है तथा विश्वविद्यालय के प्रशासन, प्रबंधन और नियंत्रण हेतु उत्तरदायी है, किन्तु धारा 27(11)(ख) में यह प्रावधान है कि कार्यकारी परिषद के विशिष्ट और सामान्य निर्देशों के अधीन कुलपति विश्वविद्यालय के प्रबंधन और प्रशासन में कार्यकारी परिषद की सभी शक्तियों का प्रयोग करेंगे। अतः जब तक कार्यकारी परिषद द्वारा विशिष्ट या सामान्य निर्देश न दिए जाएँ, कुलपति को विश्वविद्यालय के कार्यों का प्रशासन, प्रबंधन और नियंत्रण करने की शक्ति है। पीएच.डी. अध्यादेश, 2014 मात्र चयन के माध्यम से भरी जाने वाली पीएच.डी. सीटों के संबंध में प्रावधान करता है। यह उन व्यक्तियों के संबंध में मौन है जिन्होंने नेट/गेट/स्लेट आदि उत्तीर्ण किया है। पूरे अध्यादेश में ऐसे व्यक्तियों के संबंध में कोई निर्देश नहीं है जिन्हें यू.जी.सी. विनियमन 2009 द्वारा विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार विश्वविद्यालय में प्रवेश दिए जाने की अनुमति है। इस प्रकार, चूंकि कार्यकारी परिषद द्वारा ऐसे व्यक्तियों के संबंध में कोई विशिष्ट या सामान्य निर्देश नहीं दिया गया है, इसलिए कुलपति को निर्णय लेने का अधिकार है। अकादमिक परिषद ने अपने तीसरे प्रस्ताव द्वारा प्रस्तावित किया था कि ऐसे व्यक्तियों को कुलपति द्वारा अतिरिक्त सीट बनाकर प्रवेश दिया जा सकता है और कुलपति ने ऐसी शक्ति का प्रयोग किया है। वर्ष 2015 से आज तक कार्यकारी परिषद ने अकादमिक परिषद और कुलपति के उक्त निर्णय में कोई बदलाव नहीं किया है। याचिकाकर्ता ने पाँच वर्षों तक विश्वविद्यालय में अपनी पीएच.डी. जारी रखी। कार्यकारी परिषद ने कभी भी इसका विरोध नहीं किया। इस प्रकार, यह अच्छी तरह से समझा जा सकता है कि कार्यकारी परिषद ने याचिकाकर्ता को उसके पीएच.डी. पाठ्यक्रम को जारी रखने की अनुमति दी।उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता की प्रवेश प्रक्रिया में कोई अवैधता नहीं पाई गई है। प्रतिवादी विश्वविद्यालय के विद्वान वकील कानून के किसी भी प्रावधान को इंगित नहीं कर सके जिसके तहत याचिकाकर्ता के प्रवेश को अवैध माना जा सके।

13. अब याचिकाकर्ता के वकील द्वारा संदर्भित निर्णयों पर आते हैं, **राजेंद्र प्रसाद माथुर (उपरिवर्णित)** के मामले में विवाद बी.ई. कोर्स में प्रवेश रद्द करने का था। उच्च न्यायालय ने रिट याचिका को स्वीकार कर लिया और सर्वोच्च न्यायालय ने अपीलों को खारिज करते हुए कहा कि:

"8.तदनुसार हम विद्वान न्यायाधीश द्वारा लिए गए दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं और उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा इसकी पुष्टि. की गई है। परन्तु सवाल अभी भी बना हुआ है कि क्या हमें अपीलकर्ताओं को संबंधित इंजीनियरिंग कॉलेजों में अपनी पढ़ाई जारी रखने की

अनुवादित

अनुमति देनी चाहिए, जिसमें उन्हें प्रवेश दिया गया था। अपीलकर्ताओं की ओर से दृढ़तापूर्वक यह कहा गया कि, पहले विद्वान न्यायाधीश और उसके बाद इस न्यायालय के आदेशों के तहत वे संबंधित इंजीनियरिंग कॉलेजों में अपनी पढ़ाई जारी रख रहे हैं और अब उनके प्रवेश में बाधा नहीं आनी चाहिए क्योंकि अगर उन्हें प्रवेश के लगभग चार वर्ष बाद बाहर निकाल दिया जाता है तो उनका पूरा भविष्य बर्बाद हो जाएगा। अब यह सच है कि अपीलकर्ता इंजीनियरिंग डिग्री कोर्स में प्रवेश हेतु पात्र नहीं थे और उनके पास ऐसे प्रवेश का कोई वैध दावा नहीं था। ***परन्तु यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि उनके गलत प्रवेश हेतु अपीलकर्ताओं की तुलना में प्रवेश देने वाले इंजीनियरिंग कॉलेजों पर अधिक दोष है। यह संभव है कि अपीलकर्ताओं को यह पता नहीं था कि न तो माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान की उच्चतर माध्यमिक परीक्षा और न ही राजस्थान और उदयपुर विश्वविद्यालयों की प्रथम वर्ष की बीएससी परीक्षा को प्री-यूनिवर्सिटी शिक्षा बोर्ड, बैंगलोर की प्री-यूनिवर्सिटी परीक्षा के समकक्ष मान्यता दी गई थी।*** *राजस्थान के युवा छात्र होने के कारण अपीलकर्ताओं ने यह मान लिया होगा कि चूंकि उन्होंने राजस्थान या उदयपुर विश्वविद्यालय की प्रथम वर्ष की बीएससी परीक्षा या किसी भी मामले में माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान की उच्चतर माध्यमिक परीक्षा उत्तीर्ण की है, इसलिए वे प्रवेश हेतु पात्र हैं।* ***दोष इंजीनियरिंग कॉलेजों का है, जिन्होंने अपीलकर्ताओं को प्रवेश दिया, क्योंकि इन इंजीनियरिंग कॉलेजों के प्राचार्यों को पता होगा कि अपीलकर्ता प्रवेश हेतु पात्र नहीं हैं और फिर भी कुछ मामलों में कैपिटेशन फीस के नाम पर उन्होंने अपीलकर्ताओं को प्रवेश दे दिया। हम नहीं समझते कि इन इंजीनियरिंग कॉलेजों के प्रबंधन की गलतियों हेतु अपीलकर्ताओं को क्यों भुगतना चाहिए। इसलिए, इस निर्णय में हमारे द्वारा लिए गए दृष्टिकोण के बावजूद, हम अपीलकर्ताओं को संबंधित इंजीनियरिंग कॉलेजों में अपनी पढ़ाई जारी रखने की अनुमति देते हैं, जिसमें उन्हें प्रवेश दिया गया था। परन्तु हमें लगता है कि कर्नाटक विश्वविद्यालय को दोषी इंजीनियरिंग कॉलेजों के खिलाफ उचित कार्रवाई करनी चाहिए क्योंकि इन इंजीनियरिंग कॉलेजों के प्रबंधन ने न मात्र प्रवेश हेतु अयोग्य छात्रों को प्रवेश दिया है, बल्कि इस तरह से समान संख्या में योग्य छात्रों को इंजीनियरिंग डिग्री कोर्स में प्रवेश पाने से वंचित कर दिया है।*** *हम अयोग्य छात्रों के प्रवेश को रोकने के उद्देश्य से विद्वान न्यायाधीश द्वारा उनके निर्णय के अंतिम पैराग्राफ में दिए गए निर्देशों का भी समर्थन करते हैं। (बल दिया गया)*

14. इसके अलावा, **अशोक चंद सिंघवी (उपरिवर्णित)** के मामले में, जहां तथ्य वर्तमान मामले के समान थे,न्यायालय ने कहा कि विश्वविद्यालय के प्रबंधन की त्रुटि हेतु छात्रों को पीड़ित नहीं बनाया जा सकता। निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ इस प्रकार हैं:

अप्रमाणित

"14. प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री मेहरोत्रा द्वारा यह आग्रह किया गया है कि अपीलकर्ता को प्रवेश नहीं दिया जा सकता है तथा उसका प्रवेश अवैध है। ***विद्वान अधिवक्ता का तर्क कुछ तार्किक हो सकता है, परन्तु जब सभी तथ्य विश्वविद्यालय के समक्ष थे तथा अपीलकर्ता द्वारा कुछ भी नहीं छिपाया गया था, तो क्या अपीलकर्ता को उसकी किसी त्रुटि के बिना दंडित करना उचित होगा? अपीलकर्ता का प्रवेश असावधानी या त्रुटि से नहीं हुआ था, बल्कि उक्त प्रभारी अधिकारी, प्रवेश द्वारा अपने नोट में उठाई गई सभी आपत्तियों पर विचार करने के बाद हुआ था। अपीलकर्ता को डीन के निर्णय से अवगत कराया गया, जिसे कुलपति द्वारा अनुमोदित किया गया था, जिसमें उसे द्वितीय वर्ष बी.ई.पाठ्यक्रम में प्रवेश दिया गया था।*** *अपीलकर्ता ने अपेक्षित शुल्क जमा किया तथा कक्षाओं में भाग लेना शुरू किया,तभी उसे बताया गया कि बिना कोई कारण बताए उसके प्रवेश को अगले आदेश तक स्थगित कर दिया गया है।*

15. यह आश्चर्य की बात है कि यद्यपि विश्वविद्यालय के बी.ई. डिग्री पाठ्यक्रम में प्रवेश विश्वविद्यालय के नियमों और प्रवेश नियमों द्वारा शासित है,फिर भी सिंडिकेट के दिनांक 13-12-1970 के उक्त प्रस्ताव को भी बरकरार रखा गया है। न तो डीन और न ही कुलपति को वास्तविक स्थिति की जानकारी थी, अर्थात्, क्या उक्त प्रस्ताव नियमों और प्रवेश नियमों के मद्देनजर निष्फल हो गया था। उक्त प्रस्ताव से शिक्षक अभ्यर्थी के गुमराह होने की संभावना है।विश्वविद्यालय का यह कर्तव्य है कि वह देखे कि उसके नियम, नियम और प्रस्ताव स्पष्ट हों और वास्तविक अभ्यर्थियों को गुमराह न करें। विश्वविद्यालय को प्रवेश के मामले में किसी भी अस्पष्टता को दूर करने हेतु उक्त प्रस्ताव को रद्द कर देना चाहिए था या प्रवेश नियमों के भाग के रूप में इसे नियमों में शामिल करना चाहिए था।

16. जब अपीलकर्ता ने अंतिम तिथि के बाद आवेदन किया था, तो उसके आवेदन पर विचार नहीं किया जाना चाहिए था। परन्तु संभवतः सिंडिकेट के उक्त संकल्प के आधार पर आवेदन पर विचार किया गया था। अपीलकर्ता ने डीन के ध्यान में उक्त संकल्प और सात शिक्षक उम्मीदवारों को प्रवेश देकर उसके कार्यान्वयन की बात भी लाई।

17. विश्वविद्यालय की ओर से यह प्रस्तुत किया गया है कि अपीलकर्ता को त्रुटि से प्रवेश दिया गया था। हम इस तर्क को स्वीकार करने में असमर्थ हैं। यह पूर्व में ही देखा जा चुका है कि डीन और कुलपति दोनों ने प्रभारी अधिकारी, प्रवेश द्वारा उठाई गई आपत्तियों पर विचार किया और उसके बाद अपीलकर्ता को प्रवेश देने का निर्देश दिया गया। ***जब सभी तथ्यों और परिस्थितियों और***

अनुवादित

उम्मीदवार के प्रवेश पर कार्यालय द्वारा आपत्तियों पर विचार करने के बाद, कुलपति ऐसे उम्मीदवार को प्रवेश देने का निर्देश देते हैं तो ऐसा प्रवेश त्रुटि से नहीं कहा जा सकता है। यह मानते हुए कि अपीलकर्ता को त्रुटि से प्रवेश दिया गया था, अपीलकर्ता की कोई त्रुटि नहीं है, अपीलकर्ता के प्रवेश को रोकने के आदेश को बनाए रखना मुश्किल है। *इस संबंध में, हम राजेंद्र प्रसाद माथुर बनाम कर्नाटक विश्वविद्यालय [1986 उपरिवर्णित एससीसी 740] में इस न्यायालय के एक निर्णय का उल्लेख कर सकते हैं। उस मामले में, अपीलकर्ताओं को बी.ई.डिग्री कोर्स हेतु कुछ निजी इंजीनियरिंग कॉलेजों में प्रवेश दिया गया था, यद्यपि वे प्रवेश हेतु पात्र नहीं थे। उस मामले में, इस न्यायालय ने उन छात्रों द्वारा दायर अपीलों को खारिज कर दिया, जिनके प्रवेश बाद में रद्द कर दिए गए थे और रद्द करने के आदेश को उच्च न्यायालय ने बरकरार रखा था। साथ ही, इस न्यायालय ने यह विचार किया कि त्रुटि उन इंजीनियरिंग कॉलेजों की है, जिन्होंने अपीलकर्ताओं को प्रवेश दिया और कोई कारण नहीं है कि अपीलकर्ताओं को इन इंजीनियरिंग कॉलेजों के प्रबंधन की त्रुटियों हेतु भुगतना पड़े। तदनुसार, इस न्यायालय ने अपीलकर्ताओं को संबंधित इंजीनियरिंग कॉलेजों में अपनी पढ़ाई जारी रखने की अनुमति दी, जिसमें उन्हें प्रवेश दिया गया था। उसी सिद्धांत को जो इस न्यायालय ने उस मामले में लागू किया था, उसे इस मामले में भी लागू किया जाना चाहिए। अपीलकर्ता की कोई त्रुटि नहीं थी और हम नहीं देखते कि कुलपति और इंजीनियरिंग संकाय के डीन द्वारा की गई त्रुटि हेतु उसे क्यों भुगतना चाहिए। (बल दिया गया)*

15. उक्त निर्णयों का पालन किया जाता है और इसी प्रकार का दृष्टिकोण दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा **आभा जॉर्ज (उपरिवर्णित)** के मामले में अपनाया गया है, दिल्ली उच्च न्यायालय का मत था कि:

"18. जावेद अख्तर मामले में [जावेद अख्तर बनाम जामिया हमदर्द, 2006 एससीसी ऑनलाइन डेल 1504], इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने एक मामले पर विचार किया,जिसमें प्रवेश परीक्षाओं में शामिल होने हेतु याचिकाकर्ताओं की उम्मीदवारी स्वीकार कर ली गई थी, और उन्हें संबंधित संस्थान में प्रवेश दिया गया था। एक महीने तक कक्षाओं में उपस्थित रहने के बाद उनके प्रवेश रद्द कर दिए गए थे। मामले के तथ्य वर्तमान मामले से बहुत मिलते-जुलते हैं। न्यायालय द्वारा तैयार किया गया प्रश्न निम्नलिखित शब्दों में था:

"21.... यह विवादित नहीं है कि याचिकाकर्ताओं ने प्रवेश परीक्षा में शामिल होने हेतु फॉर्म भरे थे और अपनी सही जन्मतिथि दी थी। याचिकाकर्ताओं के फॉर्म पर विचार किया गया और उन्हें परीक्षा में शामिल होने की अनुमति दी गई। उनके नाम आने के बाद उन्हें काउंसलिंग हेतु बुलाया गया और याचिकाकर्ताओं के दस्तावेजों और प्रमाण पत्रों

अनुवादित

की जांच के बाद उन्हें प्रवेश दिया गया। याचिकाकर्ताओं से कोर्स की फीस लेने के बाद उन्हें पहचान पत्र जारी किए गए और याचिकाकर्ताओं को एक महीने हेतु कक्षाओं में शामिल होने की अनुमति दी गई और उसके बाद 8-8-2006 के सूचना द्वारा याचिकाकर्ताओं का प्रवेश रद्द कर दिया गया। ***क्या प्रतिवादी स. 1 को तथ्यों और परिस्थितियों में प्रवेश को बीच में ही रद्द करने की अनुमति दी जा सकती है, जब याचिकाकर्ताओं ने कोई बात नहीं छिपाई है और न ही प्रतिवादी स. 1 गुमराह करने हेतु कोई दस्तावेज पेश किया है ? क्या प्रतिवादी स. 1 को तथ्यों और परिस्थितियों में याचिकाकर्ताओं के प्रवेश को रद्द करने से रोका जाएगा?" [बल दिया गया]***

19. न्यायालय ने इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार दियाः

"38. *इसलिए,* ***प्रवेश देते समय यदि शैक्षणिक निकाय ने असावधानी और यंत्रवत् कार्य किया है, तो उन्हें यह तर्क देने की अनुमति नहीं दी जा सकती कि प्रवेश कभी वैध नहीं था और याचिकाकर्ता शुरू से ही अयोग्य थे और अयोग्यता को जानते हुए भी उन्होंने प्रवेश हेतु आवेदन किया। प्रतिवादियों को वर्ष के किसी भी समय अपनी सुविधानुसार प्रवेश रद्द करने की अनुमति नहीं दी जा सकती, बिना इस तथ्य पर विचार किए कि यदि वे सत्र शुरू होने के बाद प्रवेश रद्द करते हैं तो याचिकाकर्ताओं का पूरा वर्ष खराब हो जाएगा क्योंकि याचिकाकर्ता किसी अन्य कॉलेज/विश्वविद्यालय में प्रवेश लेने की स्थिति में नहीं होंगे।*** *यदि प्रवेश हेतु उनकी अयोग्यता का यह तथ्य उन्हें शुरू में ही बता दिया जाता तो वे किसी अन्य कॉलेज/विश्वविद्यालय में प्रवेश ले लेते।*

39. *ऐसी स्थिति में, संगीता श्रीवास्तव बनाम यू.एन. सिंह [संगीता श्रीवास्तव बनाम यू.एन.सिंह, 1979 एस.सी.सी. ऑनलाइन डेल 202]* ***के निर्णय के मद्देनजर, याचिकाकर्ताओं को अधिकारियों की लापरवाही हेतु दंडित नहीं किया जा सकता है। यह समझना महत्वपूर्ण है कि तथ्यों और परिस्थितियों में याचिकाकर्ताओं पर किसी के सामने कोई झूठा बयान देने या किसी प्रासंगिक तथ्य को छिपाने का आरोप नहीं लगाया जा सकता है*** *उन्होंने प्रवेश हेतु आवेदन पत्र में अपनी जन्म तिथि स्पष्ट रूप से लिखी है,और वे किसी भी धोखाधड़ी या गलत बयानी के दोषी नहीं हैं। विश्वविद्यालय का यह कर्तव्य था कि वह याचिकाकर्ताओं को प्रवेश देने और उन्हें कक्षाओं में भाग लेने की अनुमति देने से पहले आवेदन पत्र और प्रमाण पत्रों की अच्छी तरह से जांच करता और ऐसा न करने पर वे उसके बाद प्रवेश रद्द नहीं कर सकते। आवेदन पत्र स्वीकार करके तथा तत्पश्चात प्रवेश प्रदान करके प्रतिवादियों द्वारा यह अभिवेदन किया गया कि याचिकाकर्ता प्रवेश हेतु पात्र थे तथा याचिकाकर्ताओं ने उसी के आधार पर प्रवेश लिया तथा इस प्रकार याचिकाकर्ताओं को हानि हुई। यदि प्रतिवादियों ने यह अभिवेदन नहीं किया होता कि आवेदन स्वीकृत हो गया है तथा प्रवेश प्रदान कर दिया गया है तो याचिकाकर्ताओं ने कहीं और आवेदन किया होता तथा प्रवेश लिया होता। इसलिए प्रतिवादियों को यह दलील देने से रोका जाता है कि याचिकाकर्ता प्रारंभ से ही सीट के हकदार नहीं थे तथा प्रवेश प्रारंभ से ही अमान्य है तथा*

अनुवादित

पात्रता मानदंड को पूरा किए बिना प्रवेश अमान्य है।

40. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में ***प्रतिवादियों को अपने स्वयं के गलत कामों का लाभ उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है और उन्हें यह तर्क देने की अनुमति नहीं दी जा सकती है कि प्रॉस्पेक्टस के तहत उनके पास अयोग्य छात्रों के प्रवेश को रद्द करने की शक्ति थी और विबंधन का सिद्धांत उनके खिलाफ काम करेगा।*** *प्रतिवादियों को याचिकाकर्ताओं के प्रवेश को रद्द करने और उन्हें वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों में 'प्री टिब' कोर्स करने से रोकने से रोका जाता है। [बल दिया गया]*

20. वर्तमान मामले में इन प्राधिकरणों को लागू करते हुए, ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ताओं के दस्तावेजों को एम्स के संबंधित केंद्रों द्वारा स्वीकार किया गया था, इस तथ्य के बावजूद कि उनके योग्यता परीक्षा परिणाम प्रॉस्पेक्टस में निर्धारित समय से एक सप्ताह बाद घोषित किए गए थे। याचिकाकर्ताओं ने 18-10-2021 के आपत्तिजनक ओएम जारी करने से पहले लगभग दो महीने तक अपनी पढ़ाई का मुकदमा चलाया है। ऐसा कोई आरोप नहीं है कि याचिकाकर्ताओं ने एम्स से कोई जानकारी गलत तरीके से प्रस्तुत की या छिपाई - वास्तव में, ऐसा हो ही नहीं सकता, क्योंकि योग्यता परीक्षा एम्स द्वारा ही आयोजित की गई थी। राजेंद्र प्रसाद माथुर मामले में सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियों को लागू करते हुए [राजेंद्र प्रसाद माथुर बनाम कर्नाटक विश्वविद्यालय, 1986 उपरिवर्णित एससीसी 740], वर्तमान मामले मे भी, याचिकाकर्ताओं की तुलना में संस्थान पर अधिक दोष है।

उम्मीदवारों ने आवेदन किया; उनके परिणाम एम्स, नई दिल्ली द्वारा घोषित किए गए; उन परिणामों को उन क्षेत्रीय केंद्रों में जमा किया गया था, जहां उन्हें नियुक्त किया गया था, और उन्हें प्रवेश दिया गया था।पाठ्यक्रम में लगभग दो महीने बिताने के बाद उनके प्रवेश रद्द कर दिए गए थे जावेद अख्तर मामले में इस न्यायालय का निर्णय [जावेद अख्तर बनाम जामिया हमदर्द, 2006 एससीसी ऑनलाइन डेल 1504], वास्तव में, यह मानता है कि किसी शैक्षणिक संस्थान को पाठ्यक्रम शुरू होने के बाद वर्ष के दौरान किसी भी समय प्रवेश रद्द करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है, क्योंकि इससे प्रवेश पाने वाले उम्मीदवारों को नुकसान होगा क्योंकि तब तक वे किसी अन्य विश्वविद्यालय में प्रवेश लेने में असमर्थ होंगे, जिसमें उन्हें प्रवेश दिया गया हो।

16. इस प्रकार, कानून इस मुद्दे पर पूरी तरह से स्थापित है। एक बार जब विश्वविद्यालय ने प्रवेश दिया है और याचिकाकर्ता को पाँच वर्ष तक जारी रखने की अनुमति दी है और उसका पीएच.डी. कोर्स पूरा होने वाला है, तो अब विश्वविद्यालय हेतु याचिकाकर्ता को अपना कोर्स पूरा करने से रोकना संभव नहीं है। यहां तक कि यह मानते हुए कि पीएच.डी. कोर्स में प्रवेश के समय कुछ

अनुवादित

अनियमितता हुई थी, अब इसे याचिकाकर्ता को अपना कोर्स पूरा करने से मना करने का आधार नहीं बनाया जा सकता है। प्रतिवादी विश्वविद्यालय के विद्वान वकील रिकॉर्ड से यह नहीं दिखा सके कि याचिकाकर्ता ने किसी भी तरह से गलत बयान दिया है या धोखाधड़ी की है या अन्यथा दुर्भावनापूर्ण तरीके से उक्त प्रवेश प्रक्रिया में शामिल थी। यह निर्णय विश्वविद्यालय के अधिकारियों द्वारा अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए लिया गया था। इस प्रकार, यह न्यायालय पाता है कि प्रतिवादी विश्वविद्यालय याचिकाकर्ता को अपना पीएच.डी. कोर्स पूरा करने से नहीं रोक सकता है और नियमों के अनुसार एक वर्ष की अवधि बढ़ाने हेतु उसके आवेदन पर विचार करने हेतु बाध्य है।

17. इस न्यायालय ने यह भी पाया कि देश विकासशील से विकसित राष्ट्र बनने हेतु अपना सर्वश्रेष्ठ प्रयास कर रहा है। बार-बार यह कहा जाता है कि विकसित राष्ट्र बनने हेतु देश में बहुत अधिक शोध कार्य किए जाने की आवश्यकता है। अब, जब छात्र अपना शोध कार्य कर रहे हैं और पूरा होने के कगार पर हैं, तो उन्हें कानूनी तकनीक पर अपना शोध पूरा करने से रोकना बहुत अनुचित है। देश को शोध कार्य की बहुत आवश्यकता है। याचिकाकर्ता ने अपने पीएच.डी. पाठ्यक्रम में पाँच वर्ष से अधिक समय लगाया है और इसे जमा करने के कगार पर है। अब राष्ट्र को उक्त शोध कार्य का लाभ देने से इनकार करना अपने आप में बहुत बड़ा नुकसान होगा। उक्त परिस्थितियों में भी यह न्यायालय याचिकाकर्ता के पक्ष में और प्रतिवादी विश्वविद्यालय के खिलाफ अपने विवेकाधीन अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने हेतु इच्छुक है।

18. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, रिट याचिका स्वीकार की जाती है और प्रतिवादी विश्वविद्यालय को आदेश दिया जाता है कि वह याचिकाकर्ता के पाँच वर्ष के पीएच.डी. कोर्स के बाद एक वर्ष के विस्तार के आवेदन पर विचार करें और उसे विधि के अनुसार फीस जमा करने की अनुमति दे। ऐसा निर्णय प्रतिवादी विश्वविद्यालय द्वारा 15 दिनों की अवधि के भीतर लिया जाएगा और याचिकाकर्ता को सूचित किया जाएगा और तदनुसार याचिकाकर्ता को विधि के अनुसार अपना पीएच.डी. कोर्स पूरा करने की अनुमति दी जाएगी।

(2023) 6 ILRA 890

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 31.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी

रिट-सी संख्या 1001023 वर्ष 1999

अवध शुगर मिल्स लिमिटेड याचिकाकर्ता

बनाम

यू.ओ.आई. और अन्य प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: डॉ. आर.के. श्रीवास्तव

अनुवादित

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: बी.बी. सक्सेना, दीपक सेठ, गौस बेग

ए. कर कानून - केंद्रीय उत्पाद शुल्क अधिनियम, 1944 - नियम 9-बी और 10 - उत्पाद शुल्क - नियम 10 के तहत जारी किया गया मांग नोटिस - समय-बाधित नोटिस - छूट - याचिकाकर्ता द्वारा छूट प्राप्त करने के लिए धोखाधड़ी, मिलीभगत, जानबूझकर गलत बयान या तथ्यों को छिपाने का कोई संदर्भ नहीं - मांग नोटिस में केवल यही आधार लिया गया है कि शुल्क से छूट स्वयं लगाए जाने वाले शुल्क से अधिक नहीं हो सकती - अपनी मांग के समर्थन में अधिकारियों द्वारा किए गए किसी भी अंतिम मूल्यांकन का कोई संदर्भ नहीं - प्रभाव - किसी मूल्यांकन को अनंतिम मूल्यांकन कहलाने के लिए 1944 के नियम 9बी में प्रदान की गई शर्तों को पूरा करना आवश्यक है - नेशनल टोबैको के मामले पर भरोसा किया गया - उच्च न्यायालय ने मांग नोटिस को समय-बाधित मानते हुए रद्द कर दिया (पैरा 6, 8, 12 और 13)

रिट याचिका स्वीकार की गई। (ई-1)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. राज बहादुर नारायण सिंह शुगर मिल्स लिमिटेड बनाम यू.ओ.आई. एवं अन्य; (1997) 6 एस.सी.सी. 81

2. सोमेश्वर सहकारी साखर कारखाना लिमिटेड बनाम यू.ओ.आई. एवं अन्य 1988 (34) ई.एल.टी. 522 (बॉम्बे)

3. सहायक कलेक्टर, केंद्रीय उत्पाद शुल्क, कलकत्ता डिवीजन बनाम नेशनल टोबैको कंपनी इंडिया लिमिटेड; एआईआर 1972 एससी 2563

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी द्वारा दिया गया)

1. वर्तमान रिट याचिका द्वारा, याचिकाकर्ता सहायक कलेक्टर, आबकारी, सीतापुर द्वारा पारित दिनांक 26.08.1992 के आदेशों को रद्द करने की प्रार्थना कर रहा है, जिसके द्वारा कर देयता की मांग की पुष्टि की गई थी और साथ ही सहायक कलेक्टर (अपील) द्वारा पारित दिनांक 08.01.1993 के आदेश को भी रद्द करने की प्रार्थना कर रहा है, जिसमें सीमा शुल्क, उत्पाद शुल्क और स्वर्ण अपीलीय न्यायाधिकरण द्वारा पारित दिनांक 26.08.1992 के आदेश और दिनांक 05.02.1999 के आदेश के खिलाफ याचिकाकर्ता की अपील को खारिज कर दिया गया था।

2. मामले के संक्षिप्त तथ्य ये हैं कि याचिकाकर्ता कंपनी चीनी के विनिर्माण में शामिल है, जिस पर केंद्रीय उत्पाद शुल्क लगता है। चीनी मिलों को कम उत्पादन के मौसम में भी विनिर्माण जारी रखने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए केंद्र सरकार ने 28.04.1978 की अधिसूचना द्वारा 01.05.1978 से 30.09.1978 के बीच उत्पादित सभी चीनी पर लगाए गए केंद्रीय उत्पाद शुल्क में छूट की पेशकश की, जो पिछले तीन वर्षों की इसी अवधि के औसत उत्पादन से अधिक थी। 14.08.1978 को पिछली अधिसूचना को संशोधित किया गया और अब छूट 01.05.1978 से 15.08.1978 के बीच अतिरिक्त उत्पादन पर लागू थी। याचिकाकर्ता ने भी प्रासंगिक अवधि के लिए अतिरिक्त उत्पादन पर छूट के लिए अपना दावा प्रस्तुत किया। इसे 04.10.1978 के आदेश के अनुसार अनुमति दी गई तथा 16,79,339.65 रुपये की छूट याचिकाकर्ता

अनुवादित

मिल के व्यक्तिगत खाता बही में जमा कर दिए गए। 08.04.1980 को केंद्रीय उत्पाद शुल्क नियमावली, 1944 (इसके बाद 1944 के नियमावली के रूप में संदर्भित) के नियम 10 के तहत याचिकाकर्ता को कथित रूप से याचिकाकर्ता मिल को देय वास्तविक छूट से अधिक 1,65,878.34 रुपये का दावा और प्राप्त करने की मांग के लिए मांग सह कारण बताओ नोटिस दिया गया था। याचिकाकर्ता के जवाब के आधार पर, 26.08.1992 के प्रश्नगत आदेश द्वारा याचिकाकर्ता के खिलाफ 1,65,878.34 रुपये की मांग की पुष्टि की गई और अपीलीय अधिकारियों ने भी 08.01.1993 और 05.02.1999 के प्रश्नगत आदेशों द्वारा उनकी अपील को खारिज कर दिया।

3. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने इस आधार पर प्रश्नगत आदेशों को चुनौती दी है कि 04.10.1978 का आदेश, जिसमें याचिकाकर्ता के 16,79,339.65 रुपये की छूट के दावे को मंजूरी दी गई थी, अंतिम है और इसलिए 1,65,878.34 रुपये की वसूली के लिए 08.04.1980 का डिमांड नोटिस समय-सीमा पार कर चुका है। नियमावली 1944 के नियम 10 के अनुसार छह महीने की अवधि के बाद कोई मांग नहीं की जा सकती है, जबकि छूट की वसूली के लिए कारण बताओ नोटिस लगभग अठारह महीने बाद जारी किया जाता है और इसलिए यह स्पष्ट रूप से समय-सीमा पार कर चुका है। उन्होंने आगे इस निष्कर्ष को चुनौती दी कि छूट को मंजूरी देने वाला दिनांक 04.10.1978 का आदेश अनंतिम मूल्यांकन के आधार पर पारित किया गया था और इसलिए यह नियमावली 1944 के नियम 10 की वैधानिक सीमा से प्रभावित नहीं है। उन्होंने आगे दलील दी कि छह महीने की सीमा केवल ऐसे अंतिम मूल्यांकन पर लागू नहीं होती है जो धोखाधड़ी, मिलीभगत, जानबूझकर गलत बयान या तथ्यों को छिपाने से प्राप्त किए गए हों और चूंकि इसका कारण बताओ नोटिस में आरोप नहीं लगाया गया है, इसलिए उक्त नियम वर्तमान मामले में लागू नहीं है। अपने मामले के समर्थन में याचिकाकर्ता के अधिवक्ता **राज बहादुर नारायण सिंह शुगर मिल्स लिमिटेड बनाम भारत संघ और अन्य (1997) 6 एस सी सी 81** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हैं।

4. प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता, श्री दीपक सेठ ने याचिकाकर्ता के अधिवक्ता की दलीलों का विरोध किया और दावा किया कि प्रश्नगत आदेश में कोई अवैधता नहीं है। उन्होंने कहा कि 04.10.1978 के आदेश में ही कहा गया है कि यह केवल एक अनंतिम आदेश है और इसलिए यह 1944 के नियम 10 के तहत निर्धारित सीमा के अंतर्गत नहीं आता है । प्रतिवादियों के अधिवक्ता ने कहा कि **राज बहादुर (सुप्रा)** में मामले के तथ्य वर्तमान मामले से अलग हैं क्योंकि यह अंतिम आदेश के संबंध में है। यह तथ्य निर्णय के प्रस्तर 2 से स्पष्ट है जिसमें कहा गया है कि अपीलकर्ता के छूट के दावे को अधिसूचना के तहत स्वीकार्य के रूप में पूर्व-लेखापरीक्षित किया गया है। इसका मतलब है कि रिकॉर्ड के ऑडिट के बाद छूट के दावे को मंजूरी दी गई थी और इस प्रकार यह अनंतिम आदेश नहीं था। इसलिए, उन्होंने कहा कि याचिकाकर्ता के

अनुवादित

अधिवक्ता का यह तर्क कि 04.10.1978 का आदेश अंतिम था, अपना आधार नहीं रखता है। नियमावली 1944 के नियम 10 द्वारा छह महीने के बाद मांगों पर लगाई गई रोक केवल मूल्यांकन के अंतिम आदेशों पर लागू होती है। अपने तर्क के समर्थन में प्रतिवादी के अधिवक्ता ने **सोमेश्वर सहकारी साखा कारखाना लिमिटेड बनाम भारत संघ और अन्य 1988 (34) ई.एल.टी. 522 (बोम्बे)** के मामले में बॉम्बे उच्च न्यायालय की खंडपीठ के फैसले पर भरोसा किया। बॉम्बे उच्च न्यायालय की खंडपीठ को भी ऐसे ही तथ्यों का सामना करना पड़ा, जहां याचिकाकर्ता ने मांग नोटिस के खिलाफ नियमावली 1944 के नियम 10 के तहत प्रदान की गई वैधानिक सीमा का आह्वान किया था। याचिकाकर्ताओं के तर्क को खारिज करते हुए बॉम्बे उच्च न्यायालय ने माना कि छूट को मंजूरी देने वाला आदेश केवल एक अनंतिम मूल्यांकन था और इसीलिये मांग नोटिस सीमा से वर्जित नहीं है |

5. मैंने पक्षकारों के अधिवक्ताओं की बात सुनी है तथा उनकी सहायता से अभिलेख का अवलोकन किया है।

6. दिनांक 08.04.1980 के मांग नोटिस के अवलोकन से पता चलता है कि याचिकाकर्ता द्वारा छूट प्राप्त करने के लिए धोखाधड़ी, मिलीभगत, जानबूझकर गलत बयान या तथ्यों को छिपाने का कोई संदर्भ नहीं है। मांग नोटिस में लिया गया एकमात्र आधार यह है कि शुल्क से छूट स्वयं देय शुल्क से अधिक नहीं हो सकती। दिनांक 08.04.1980 के मांग सह कारण बताओ नोटिस का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है,

"*चूंकि ऐसा प्रतीत होता है कि मेसर्स अवध शुगर मिल्स लिमिटेड, हरगांव जिला सीतापुर (एल.4 संख्या 15/सुग/बीली/54) ने केंद्रीय उत्पाद शुल्क नियमावली, 1944 के नियम 10 के प्रावधानों का उल्लंघन किया है, क्योंकि उन्होंने अधिसूचना संख्या 108/78 दिनांक 28.4.78 के तहत वर्ष 1977-78 के दौरान चीनी की मुफ्त बिक्री पर 23379.83 क्विंटल पर 1,65,878.34 पैसे की अतिरिक्त छूट का दावा किया और प्राप्त किया है, जैसा कि विवरण नीचे दिया गया है। यह भारत सरकार, वित्त मंत्रालय द्वारा निर्धारित सिद्धांतों का उल्लंघन है कि शुल्क से छूट स्वयं लागू शुल्क से अधिक नहीं हो सकती है। केन्द्रीय उत्पाद शुल्क नियमावली, 1944 के नियम 10 के अन्तर्गत इस मामले में मेसर्स अवध शुगर मिल्स लिमिटेड, हरगांव ने उत्पाद शुल्क से अधिक स्तर पर छूट का दावा किया गया और प्राप्त किया गया है, जिसे मेसर्स अवध शुगर मिल्स द्वारा वापस/जमा किया जाना है।*

7. **राज बहादुर (सुप्रा**) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने इस तरह के नोटिस को नियमावली 1944 के नियम 10 का उल्लंघन माना है । **राज बहादुर (सुप्रा)** के मामले में फैसले के प्रासंगिक प्रस्तर इस प्रकार हैं:

"3. 30-7-1979 को अधीक्षक, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क, हरिद्वार ने अपीलकर्ताओं को एक नोटिस जारी किया। इसमें कहा गया कि अपीलकर्ताओं को "1-5-1978 से 15-8-1978

अनुवादित

की अवधि के दौरान प्राप्त 62,022.76 क्विंटल चीनी के अतिरिक्त उत्पादन पर 12,90,966.42 रुपये के मुकाबले 15,59,252.18 रुपये की छूट गलत तरीके से मंजूर की गई थी..." नोटिस में दी गई छूट और निकासी का विवरण दिया गया था और कहा गया था कि, इन विवरणों से, "यह स्पष्ट है कि कारखाने ने 2,68,285.76 रुपये की अतिरिक्त छूट का लाभ उठाया है जो उनके लिए स्वीकार्य नहीं थी"। अपीलकर्ताओं को यह दिखाने की आवश्यकता थी कि "उन्हें गलत तरीके से दी गई ऐसी अतिरिक्त छूट उनसे केन्द्रीय उत्पाद शुल्क नियमावली, 1944 के नियम 10 के तहत क्यों न वसूल की जाए"।

4. *अपीलकर्ताओं ने कारण बताया और तर्क दिया कि नियम 10 के तहत नोटिस की समय-सीमा समाप्त हो चुकी थी। छह महीने की अवधि जिसके भीतर राशि वापस मांगने के लिए नोटिस जारी किया जाना चाहिए था, 17-4-1979 को समाप्त हो गई। चूंकि नोटिस 30-7-1979 को जारी किया गया था, जो छह महीने की अवधि से परे था, इसलिए मांग की समय-सीमा समाप्त हो गई थी। नोटिस में यह उल्लेख नहीं किया गया था कि शुल्क की वापसी धोखाधड़ी, मिलीभगत, जानबूझकर गलत बयान या तथ्यों को छिपाकर प्राप्त की गई थी, जिसके लिए पांच साल की सीमा अवधि थी। दावा पेश किए जाने के समय अधिकारियों को पूरा डेटा बता दिया गया था, इसलिए छह महीने की अवधि के बाद नोटिस का कोई औचित्य नहीं था। नोटिस के जवाब में छूट के दावे की खूबियों के बारे में भी बताया गया।*

5. *10-2-1983 को सहारनपुर के केंद्रीय उत्पाद शुल्क के सहायक कलेक्टर ने नोटिस द्वारा की गई मांग की पुष्टि की। उन्होंने सबसे पहले छूट के दावे के गुण-दोष पर विचार किया और फिर कहा:*

"चूंकि छूट की राशि वास्तव में भुगतान किए गए शुल्क से बहुत अधिक थी, इसलिए पार्टी को इस तथ्य के बारे में विभाग को सूचित करना चाहिए था और साथ ही पी/एलए/सी में डेबिट प्रविष्टि करके अतिरिक्त राशि का भुगतान स्वयं करना चाहिए था और .206 फ्री सेल चीनी जिसे उन्होंने लेवी चीनी के रूप में मंजूरी दे दी है और 9.60 रुपये के बजाय 54 रुपये की छूट का आनंद लिया है, गलत था। यह तथ्य भी उन्हें विभाग को सूचित करना चाहिए था और इन सभी तथ्यों को छिपाकर उन्होंने जानबूझकर गलत बयान दिया है और शुल्क के भुगतान से बचने के इरादे से तथ्य को दबा दिया है। नियम 10 के तहत जारी कारण बताओ नोटिस भी सही था क्योंकि कारण बताओ नोटिस जारी करने के समय यह लागू था।"

.....

.....

9. *हमने कारण बताओ नोटिस के प्रासंगिक हिस्से बताए हैं। इसमें गलत तरीके से दी गई छूट की बात कही गई है। इसमें नियम 10 के तहत नोटिस जारी करने के लिए पांच साल की बड़ी अवधि का लाभ उठाने के उद्देश्य से अपीलकर्ताओं द्वारा किसी मिलीभगत, जानबूझकर गलत बयान या तथ्य को छिपाने का कोई उल्लेख नहीं है। जिस पक्ष को नियम 10 के तहत कारण बताओ नोटिस जारी किया जाता है, उसे अवगत कराया जाना चाहिए कि*

अनुवादित

उसके खिलाफ आरोप मिलीभगत या जानबूझकर गलत बयान या तथ्य को छिपाने का है। यह प्राकृतिक न्याय की आवश्यकता है। यह भी कानून है, जिसे इस न्यायालय ने सीसीई बनाम एचएमएम लिमिटेड [एमएएनयू/एससी/1196/1995 : 1995 सप (3) एससीसी 322: (1995) 76 ईएलटी 497] में निर्धारित किया है। केंद्रीय उत्पाद शुल्क और नमक अधिनियम, 1944 की धारा 11-ए के संदर्भ में, जिसने नियम 10 को प्रतिस्थापित किया, यह कहा गया है कि यदि अधिकारी धारा 11-ए(1) के प्रावधान को लागू करने का प्रस्ताव करते हैं, तो कारण बताओ नोटिस में करदाता को यह नोटिस देना चाहिए कि प्रावधान में बताए गए विभिन्न कमीशन और चूक में से कौन सी अवधि छह महीने से पांच साल तक बढ़ाने के लिए प्रतिबद्ध है। जब तक करदाता को नोटिस नहीं दिया जाता है, करदाता को अधिकारियों के मामले से मिलने का कोई अवसर नहीं मिलेगा। परंतुक में उल्लिखित चूक एक से अधिक थीं और यदि प्राधिकारी परंतुक पर भरोसा करते थे, तो कारण बताओ नोटिस में इसका स्पष्ट उल्लेख किया जाना चाहिए था, जो कि करदाता के विरुद्ध आरोप था, जो उक्त परंतुक के चारों कोनों के अंतर्गत आता था।

10. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि नोटिस में नियम 10 के प्रासंगिक प्रावधान में उल्लिखित किसी भी कार्य या चूक का उल्लेख नहीं किया गया है , वापसी के आदेश की तारीख के छह महीने से अधिक समय बाद दिया गया नोटिस समय-बाधित है। दूसरे शब्दों में कहें तो इसे जारी करने वाले अधीक्षक के पास ऐसा करने का कोई अधिकार नहीं था।"

8. इस प्रकार सीमा अवधि बढ़ाने के लिए आधार बताने में उत्पाद शुल्क प्राधिकरण की विफलता ऐसे मांग नोटिस को रद्द करने के लिए पर्याप्त आधार है और इसलिए ऐसे दोषपूर्ण नोटिस के आधार पर आगे की कार्यवाही अधिकार क्षेत्र से बाहर है। **सोमेश्वर सहकारी साख कारखाना लिमिटेड (सुप्रा)** के मामले में बॉम्बे उच्च न्यायालय की खंडपीठ का निर्णय भी **राज बहादुर (सुप्रा)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णय के प्रकाश में सही नहीं है।

9. प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता का अगला तर्क यह है कि दिनांक 04.10.1978 का आदेश जिसके द्वारा छूट दी गई थी, एक अनंतिम आदेश था न कि अंतिम आदेश, इसलिए, सीमा अवधि के साथ-साथ नियमावली 1944 के नियम 10 की शर्तों को पूरा करने की आवश्यकता नहीं थी। उन्होंने आगे कहा कि नियमावली 1944 के नियम 10 केवल अंतिम आदेश के मामले में लागू होंगे। उक्त उद्देश्यों के लिए उन्होंने दिनांक 04.10.1978 के उक्त आदेश की भाषा पर भरोसा किया।

10. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस पर आपत्ति जताई और कहा कि दिनांक 04.10.1978 का उक्त आदेश अंतिम आदेश है। दिनांक 04.10.1978 का उपरोक्त आदेश इस प्रकार है:-

"1. भारत सरकार की अधिसूचना संख्या 108/78-सीई दिनांक 28.4.78 के अनुसार मेसर्स अवध शुगर मिल्स हरगांव को मई 78 से सितम्बर 78 के महीनों के दौरान क्रमशः लेवी चीनी और फ्री सेल चीनी के विरुद्ध अधिक मात्रा में उत्पादित चीनी की मात्रा पर अनंतिम रूप से छूट दी जाती है

अनुवादित

। यह राशि फैक्ट्री द्वारा मूल उत्पाद शुल्क के रूप में व्यक्तिगत बही खाते में जमा की जानी चाहिए।

2. यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि मई से सितम्बर 78 माह के दौरान उत्पादित सम्पूर्ण मात्रा फैक्ट्री से निकाल ली जाए तथा यदि किसी कारणवश कोई हानि होती है तो छूट की मात्रा तदनुसार कम की जा सकेगी।

3. व्यक्तिगत बही खाता में छूट दावे के समायोजन का विवरण कृपया इस कार्यालय के साथ-साथ अधीक्षक केन्द्रीय उत्पाद शुल्क रेलवे द्वितीय सीतापुर और मुख्य लेखा अधिकारी केन्द्रीय उत्पाद शुल्क इलाहाबाद को भी सूचित किया जाए।

4. छूट को व्यक्तिगत बही खाता में जमा करने से पहले कृपया इस प्रयोजन के लिए क्षेत्राधिकार अधीक्षक से संपर्क किया जाए।"

11. दिनांक 04.10.1978 के उक्त आदेश के प्रथम एवं द्वितीय प्रस्तर के अवलोकन से पता चलता है कि यह आदेश केवल इस सीमा तक अनंतिम है कि इसमें मई से सितंबर, 1978 के महीनों के दौरान उत्पादित संपूर्ण मात्रा की निकासी करने का उल्लेख है और यदि मई से सितंबर, 1978 के महीनों के दौरान उत्पादित मात्रा से कम मात्रा की कारखाने से निकासी किया जाता है, तो उसके कारण होने वाले नुकसान को तदनुसार कम किया जा सकता है। इसलिए, उक्त शर्त को छोड़कर याचिकाकर्ता को दी गई छूट के संबंध में आदेश अंतिम है। यह किसी भी तरह से अनंतिम छूट का अनुदान नहीं हो सकता है। इसलिए, उक्त आदेश एक अंतिम आदेश है। इस प्रकार, प्रतिवादियों के अधिवक्ता की यह दलील भी कोई बल नहीं रखती है।

12. वैसे भी कर प्राधिकरण के अधिवक्ता इस न्यायालय के समक्ष कोई अंतिम मूल्यांकन प्रस्तुत नहीं कर सके। इसके अलावा, 1944 के नियम 9बी के तहत अनंतिम मूल्यांकन प्रदान किया गया है । इसके अनुसार, अनंतिम मूल्यांकन का उदाहरण तब उत्पन्न होता है जब (ए) करदाता उत्पाद शुल्क योग्य वस्तुओं का मूल्य निर्धारित करने में असमर्थ होता है और (बी) जब करदाता वस्तुओं का सही वर्गीकरण निर्धारित करने में असमर्थ होता है। अनंतिम मूल्यांकन को मंजूरी देने से पहले करदाता को एक सुरक्षा बांड प्रस्तुत करने के लिए भी कहा जाता है। वर्तमान मामले में, प्राधिकारियों के विद्वान अधिवक्ता अनंतिम मूल्यांकन को मंजूरी देने वाला ऐसा कोई बांड या आदेश नहीं दिखा सके। मांग सह कारण बताओ नोटिस नियम 10 के तहत जारी किया गया है, लेकिन प्राधिकारियों द्वारा अपनी मांग के समर्थन में किए गए किसी अंतिम मूल्यांकन का कोई संदर्भ नहीं है। केंद्रीय उत्पाद शुल्क के **सहायक कलेक्टर, कलकत्ता डिवीजन बनाम नेशनल टोबैको कंपनी इंडिया लिमिटेड ए.आई.आर. 1972 एससी 2563** के मामले में; में सुप्रीम कोर्ट की तीन जजों की बेंच ने माना है कि नियमावली 1944 के नियमों के नियम 9बी में दी गई शर्तों को पूरा करना आवश्यक है, तभी मूल्यांकन को अनंतिम मूल्यांकन कहा जा सकता है। नेशनल टोबैको (सुप्रा) के मामले में फैसले का प्रासंगिक प्रस्तर इस प्रकार है,

"27. हालांकि, उस बिंदु के गुण-दोष पर उठाए गए तर्कों पर विचार करने पर, हम पाते हैं कि यह मानना मुश्किल है कि कोई अनंतिम

अनुवादित

मूल्यांकन था। सीईजीएटी ने इस तरह के निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कुछ कारणों का उल्लेख किया है। केंद्रीय उत्पाद शुल्क नियमों के नियम 9-बी को विवादित निर्णय में उद्धृत किया गया है। नियम का शीर्षक "अनंतिम मूल्यांकन" है, जिसमें उन स्थितियों का विवरण दिया गया है जब अनंतिम मूल्यांकन किया जा सकता है। सीईजीएटी ने निर्णय में विभाग द्वारा की गई कुछ स्वीकारोक्ति की ओर इशारा किया जैसे कि नियम 9-बी के तहत अपेक्षित अनंतिम मूल्यांकन के किसी भी स्पष्ट आदेश की अनुपस्थिति, अनंतिम मूल्यांकन करने के लिए किसी भी परिस्थिति की अनुपस्थिति और यह कि कारण बताओ नोटिस में यह नहीं बताया गया था कि प्रासंगिक अवधि के दौरान किया गया मूल्यांकन अनंतिम था। सहायक कलेक्टर ने मूल्यांकन को केवल इस आधार पर अनंतिम माना था कि मामला विचाराधीन था और इसलिए "अप्रैल 1981 से 15.3.1983 की अवधि के लिए सभी मूल्यांकन अनंतिम थे"। सीईजीएटी ने सही पाया है कि उक्त मानदंड किसी आकलन को अनंतिम बनाने के लिए पर्याप्त नहीं था।"

13. पूर्वोक्त के आलोक में, दिनांक 08.04.1980 का मांग सह कारण बताओ नोटिस समय-बाधित माना जाता है और इसलिए उक्त समय-बाधित नोटिस के आधार पर पारित दिनांक 26.08.1992, 08.01.1993 और 05.02.1999 के प्रश्नगत आदेश अपास्त किए जाते हैं।

14. रिट याचिका **स्वीकार की जाती है।**

15. प्रतिवादियों को निर्देश दिया जाता है कि वे याचिकाकर्ता द्वारा जमा की गई धनराशि विधि के अनुसार वापस करें।

(2023) 6 ILRA 896

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 31.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी

रिट-सी संख्या 1002443 वर्ष 2012

प्रधानाचार्य एम.आर. जयपुरिया स्कूल, लखनऊ याचिकाकर्ता

बनाम

उप परिवहन आयुक्त पैसेंजर टैक्स लखनऊ एवं अन्य प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: गौस बेग

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी.

ए. मोटर वाहन कानून - यूपी मोटर वाहन कराधान अधिनियम, 1997 - धारा 4 (3) - स्कूल बस पंजीकरण - जब्ती - बिना अनुमति के शादी के मेहमान को ले जाने का आरोप - सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया - मोटर वाहन मालिक / याचिकाकर्ता द्वारा गलती स्वीकार की गई है - प्रभाव - कर लगाया गया - वैधता को चुनौती दी गई - माना गया, कर का आकलन मालिक के अपने अपराध को स्वीकार करने के आवेदन के आधार पर किया जाता है - इसलिए, याचिकाकर्ता को सुनवाई का कोई अवसर प्रदान करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। (पैरा 5

अनुवादित

और 6) बी. मोटर वाहन कानून - मोटर वाहन अधिनियम, 1988 - यूपी मोटर वाहन कराधान अधिनियम, 1997 - उल्लंघन - 1988 के अधिनियम के तहत और 1997 के अधिनियम के तहत एक ही अधिनियम के लिए दो अलग-अलग कार्यवाही शुरू की गई - अनुमति - माना गया कि दो अलग-अलग अधिनियम हैं, यानी मोटर वाहन अधिनियम, 1988 और यूपी मोटर वाहन कराधान अधिनियम, 1997, जिनका याचिकाकर्ता के कृत्य द्वारा उल्लंघन किया गया है, इसलिए, दोनों अधिनियमों के तहत कार्यवाही की जानी चाहिए। (पैरा 7)

सी. मोटर वाहन कानून - मोटर वाहन अधिनियम, 1988 - धारा 2(47) - यूपी मोटर वाहन कराधान अधिनियम, 1997 - धारा 2(एन) - शब्द 'परिवहन वाहन' - दायरा और प्रयोज्यता - कराधान अधिनियम 1997 के तहत, एक परिवहन वाहन केवल एक अच्छा वाहन और एक सार्वजनिक सेवा वाहन है। 'सार्वजनिक वाहन' शब्द में केवल वे वाहन शामिल हैं जिनमें यात्री किराये पर ले जाए जा रहे हैं - स्कूल बस कराधान अधिनियम 1997 के अंतर्गत 'सार्वजनिक सेवा वाहन' की परिभाषा में शामिल नहीं है - इस प्रकार, जहां तक कराधान अधिनियम 1997 का संबंध है, स्कूल बस परिवहन वाहन नहीं है, जबकि 1988 के अधिनियम के अंतर्गत यह परिवहन वाहन है - जबकि 1988 का अधिनियम एक केंद्रीय अधिनियम है, वहीं 1997 का कराधान अधिनियम एक राज्य अधिनियम है, जो परिवहन और वाणिज्यिक वाहनों पर कराधान का प्रावधान करता है - चूंकि उक्त दोनों कानूनों का दायरा और विषय-वस्तु पूरी तरह से अलग-अलग विषयों से संबंधित है, इसलिए परिभाषा उधार लेना उचित नहीं होगा, जबकि अधिनियम के अंतर्गत पहले से ही इसका प्रावधान है। (पैरा 11, 13 और 14)

रिट याचिका खारिज। (ई-1)

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी द्वारा दिया गया)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता तथा राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

2. वर्तमान रिट याचिका द्वारा याचिकाकर्ता दिनांक 06.02.2010 के आदेश को, जिससे याचिकाकर्ता के नाम पर पंजीकृत एक स्कूल बस को जब्त किया गया है, दिनांक 15.01.2011 के आदेश को जिससे याचिकाकर्ता पर कर देयता निर्धारित की गई है तथा दिनांक 09.02.2012 के आदेश को जिससे उपरोक्त के विरुद्ध की गई अपील भी निरस्त कर दी गई, को आक्षेपित कर रहा है।

3. वाद का संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि एम.आर. जयपुरिया स्कूल के प्रिंसिपल के नाम पर पंजीकृत, पंजीकरण संख्या UP42A8602 वाली एक स्कूल बस को सहायक क्षेत्रीय परिवहन अधिकारी, रायबरेली द्वारा 06.02.2010 को बछरावां, रायबरेली के पास जब्त किया गया था। लगाए गए आरोपों में से एक यह भी शामिल था कि बिना किसी अनुज्ञा-पत्र के शादी के मेहमानों को ले जाया गया। याचिकाकर्ता की बस के पास केवल "स्कूली बच्चों को ले जाने का अनुज्ञा-पत्र" था। यह अभिकथित कृत्य उत्तर प्रदेश मोटर वाहन कराधान अधिनियम, 1997 (संक्षेप में 'कराधान अधिनियम, 1997') की

धारा 4(3) के उल्लंघन में था और इस प्रकार 15.01.2011 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता को बिना किसी परमिट के परिवहन वाहन के रूप में स्कूल बस का उपयोग करने के लिए करों का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी बनाया गया था। याचिकाकर्ता ने इसके विरूद्ध अपील प्रस्तुत की 09.02.2012 के आदेश द्वारा इसे भी निरस्त कर दिया गया।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित आधारों पर आरोपित आदेशों की वैधता को चुनौती दी है:

(i) याचिकाकर्ता को दिनांक 15.1.2011 को अंतिम मूल्यांकन आदेश पारित करने से पहले सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया;

(ii) याचिकाकर्ता के विरुद्ध दो कार्यवाहियाँ शुरू की गई हैं; एक उत्तर प्रदेश मोटर वाहन अधिनियम, 1988 (संक्षेप में '1988 का अधिनियम') के अधीन तथा दूसरी कराधान अधिनियम, 1997 के अधीन और एक ही अपराध के लिए दो कार्यवाहियाँ शुरू नहीं की जा सकतीं; एवं

(iii) कि प्रतिवादी-प्राधिकारियों ने 'परिवहन वाहन' शब्द की परिभाषा को कराधान अधिनियम, 1997 से गलत तरीके से लिया है तथा इसे 1988 के अधिनियम के अधीन निर्धारित किया जाना चाहिए था।

5. जहां तक दिनांक 15.1.2011 के विवादित आदेश को पारित करने से पहले सुनवाई के अवसर के संबंध में याचिकाकर्ता के विद्वान अद्धिवक्ता के प्रथम प्रस्तुति का संबंध है, अपीलीय प्राधिकारी ने उस पर विचार किया है तथा यह निष्कर्ष दिया है कि याचिकाकर्ता/अपीलकर्ता ने अपनी गलती की स्वीकृति का आवेदन प्रस्तुत किया था तथा कर का निर्धारण याचिकाकर्ता की उक्त स्वीकृति के आधार पर किया गया है। इसलिए, याचिकाकर्ता को सुनवाई का कोई अवसर प्रदान करने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता उक्त निष्कर्ष का विरोध नहीं कर सके क्योंकि वे यह प्रस्तुत नहीं कर सके कि कर का निर्धारण उनके दोष स्वीकार करने वाले आवेदन के आधार पर किया गया है। इसलिए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की उक्त प्रस्तुति का कोई प्रभाव नहीं है और इसे निरस्त किया जाता है।

7. जहां तक याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के दूसरी प्रस्तुति का संबंध है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध एक ही कार्य के लिए दो कार्यवाही प्रारंभ की गई है, दो अलग-अलग अधिनियम हैं अर्थात उत्तर प्रदेश मोटर वाहन अधिनियम, 1988 और उत्तर प्रदेश मोटर वाहन कराधान अधिनियम, 1997, जिनका याचिकाकर्ता के कार्य द्वारा उल्लंघन किया गया है, इसलिए दोनों अधिनियमों के अधीन कार्यवाही की जानी आवश्यक है।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता अपनी प्रस्तुति के समर्थन में कोई विधि या विनिर्णयो का उपबंध नहीं दिखा सके, जिससे जब किसी व्यक्ति का कार्य दो अलग-अलग अधिनियमों, एक सामान्य विधि और एक कर विधि का उल्लंघन करता है, तो दो अलग-अलग कार्यवाही शुरू नहीं की जा सकती। इसलिए,

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की दूसरी प्रस्तुति भी प्रभावहीन है और उसे निरस्त किया जाता है।

9. अब, याचिकाकर्ता के विद्वान आदिवक्ता के तीसरी प्रस्तुति पर आते हैं कि प्राधिकारियों को 1988 के अधिनियम की धारा 2(47) के तहत 'परिवहन वाहन' को परिभाषित करने की आवश्यकता थी, न कि 1997 के कराधान अधिनियम की धारा 2(एन) से, इस सम्बन्ध में प्रासंगिक प्रावधानों का भी अवलोकन करना आवश्यक है।

10. 1988 के अधिनियम की धारा 2(47) में प्रावधान है:

"2(47) "परिवहन वाहन" का अर्थ है सार्वजनिक सेवा वाहन, माल गाड़ी, शैक्षणिक संस्थान बस या निजी सेवा वाहन।"

उक्त परिभाषा की परिधि में सार्वजनिक सेवा वाहन, मालवाहक वाहन के साथ-साथ शैक्षणिक संस्थान बस या निजी सेवा वाहन भी शामिल हैं। उक्त परिभाषा कराधान अधिनियम 1997 की धारा 2(एन) के अधीन प्रदान की गई 'परिवहन वाहन' शब्द की परिभाषा से पूरी तरह अलग है, जो इस प्रकार है:

"2(एन) "परिवहन वाहन" से तात्पर्य किसी अच्छी गाड़ी या सार्वजनिक सेवा वाहन से है।"

11. कराधान अधिनियम 1997 के अधीन, परिवहन वाहन केवल एक अच्छा वाहन और एक सार्वजनिक सेवा वाहन है। 'सार्वजनिक सेवा वाहन' शब्द को 1988 के अधिनियम की धारा 2(35) द्वारा आगे परिभाषित किया गया है, जो इस प्रकार है:

"2(35) "सार्वजनिक सेवा वाहन" से ऐसा कोई मोटर वाहन अभिप्रेत है जो किराये या पारिश्रमिक पर यात्रियों के परिवहन के लिए उपयोग या उपयोग के लिए अनुकूलित किया जाता है, और इसमें एक मैक्सीकैब, एक मोटरकैब, अनुबंधित गाड़ी तथा किराये की गाड़ी सम्मिलित हैं।"

इसलिए, 'सार्वजनिक वाहन' शब्द में केवल वे वाहन सम्मिलित हैं जिनमें किराए पर यात्री ले जाए जाते हैं। स्कूल बस 1997 के कराधान अधिनियम के तहत 'सार्वजनिक सेवा वाहन' की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आती है और इसलिए, 'परिवहन वाहन' की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आती है । इस प्रकार, जहाँ तक कराधान अधिनियम 1997 का संबंध है, स्कूल बस एक परिवहन वाहन नहीं है, जबकि 1988 के अधिनियम के तहत यह एक परिवहन वाहन है।

12. कराधान अधिनियम, 1997 की धारा 2(ओ) में प्रावधान है:

"2(ओ) शब्द और अभिव्यक्तियाँ जो इस अधिनियम में प्रयुक्त हैं लेकिन परिभाषित नहीं हैं और मोटर वाहन अधिनियम, 1988 में परिभाषित हैं, उनका वही अर्थ होगा जो उन्हें उस अधिनियम में दिया गया है।"

पूर्वकथित धारा 2(ओ) के अनुसार, 1988 के अधिनियम से केवल उन्हीं परिभाषाओं का सन्दर्भ लिया जाना आवश्यक है जो कराधान अधिनियम, 1997 के अंतर्गत प्रदान नहीं की गई हैं।

13. चूंकि 'परिवहन वाहन' की परिभाषा कराधान अधिनियम, 1997 द्वारा प्रदत्त वाहन की है, इसलिए इसे 1988 के अधिनियम से नहीं लिया जा सकता। अन्यथा भी, दोनों

अधिनियम पूरी तरह से अलग-अलग क्षेत्रों में काम कर रहे हैं, जबकि 1988 का अधिनियम एक केन्द्रीय अधिनियम है जिसे 1988 के अधिनियम से संबंधित विधियों को समेकित करने के लिए अधिनियमित किया गया है, जो पूरे देश में लागू है और कराधान अधिनियम, 1997 एक राज्य अधिनियम है, जो परिवहन और वाणिज्यिक वाहनों पर कराधान का प्रावधान करता है।

14. इसलिए, क्योकि पूर्वकथित दोनों विधियों का विस्तार और विषय-वस्तु पूर्ण रूप से अलग-अलग विषयों से संबंधित है, इसलिए परिभाषा को कही और से ग्रहण करना उचित नहीं होगा, जबकि अधिनियम के अधीन पहले से ही प्रावधान है। यदि विधानमंडल ऐसा चाहता, तो उसने 1997 के कराधान अधिनियम के अधीन 'परिवहन वाहन' शब्द की अलग परिभाषा नहीं दी होती। इसलिए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की उक्त प्रस्तुति भी प्रभावहीन है ।

15. उपरोक्त के दृष्टिगत, वर्तमान रिट याचिका में प्रभाव नहीं है। तदनुसार इसे निरस्त किया जाता है।

(2023) 6 ILRA 899

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.05.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय

रिट-बी संख्या 218 वर्ष 2022

विजय नारायण याचिकाकर्ता

बनाम

उप निदेशक चकबंदी, बस्ती व अन्य प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री आनंद कुमार श्रीवास्तव

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी., श्री आशुतोष पांडेय, श्री पंकज कुमार गुप्ता

ए. सिविल लॉ - यू.पी. चकबंदी अधिनियम, 1953-धारा 11, 12 एवं 52-प्रतिवादी प्रतिवादियों द्वारा अधिनियम की धारा 11 के अंतर्गत दायर अपील पर विचार नहीं किया जा सकता, क्योंकि प्रतिवादी निजी व्यक्ति होने के कारण चकबंदी अधिकारी के समक्ष कार्यवाही में पक्षकार नहीं थे, न ही प्रतिवादी प्रतिवादियों के पास विवादित भूखंड के संबंध में हक है, बल्कि उनका कहना है कि वे राज्य/गांव सभा की संपत्ति की रक्षा कर रहे हैं, ऐसे में अपील दायर करने में विलंब को माफ करने तथा गुण-दोष के आधार पर निर्णय के लिए नियत करने का प्रश्न ही नहीं उठता।-प्रतिवादी प्रतिवादियों के कहने पर इस आधार पर अपील कार्यवाही जारी रखना कि आक्षेपित आदेश द्वारा केवल अपील दायर करने में विलंब को माफ किया गया है तथा शेष मामले पर बाद में निर्णय किया जाएगा, विधि प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा। अधिनियम की धारा 9-ए(2) के अंतर्गत निजी व्यक्ति द्वारा आपत्ति दायर नहीं की जा सकती, क्योंकि गांव सभा संपत्ति के संबंध में कार्यवाही संचालित करने या आरंभ करने के लिए गांव सभा मैनुअल के पैरा 128 में प्रक्रिया निर्धारित की गई है।-अतः आक्षेपित आदेश ग्राह्य है। अपास्त किया जाए। (पैरा 1 से 16) रिट याचिका स्वीकार की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत मामलों की सूची:</u>

1. दोदराम बनाम कलेक्टर पीलीभीत (2014) 125 आरडी 333

2. त्रिपाल सिंह पुत्र सोने लाल बनाम स्टेट ऑफ यू.पी. व अन्य (2006) खंड 1 एडब्ल्यूसी 205

3. राम जियावन व अपर आयुक्त विंध्याचल मंडल मिर्जापुर व अन्य (2014) 124 आरडी 2019

4. श्रीमती सुखजिंदर जीत कौर व अन्य बनाम डीडीसी, रामपुर व अन्य (2003) 94 आरडी 79

(माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय द्वारा दिया गया)

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता श्री आनन्द कुमार श्रीवास्तव, प्रत्यर्थी सं. 3 की ओर से अधिवक्ता श्री आशुतोष पाण्डेय, राज्य प्रत्यर्थीगणों की ओर से विद्वान स्थाई अधिवक्ता और प्रत्यर्थी सं. 7 ग्राम सभा की ओर से अधिवक्ता श्री पंकज गुप्ता को सुना।

मामले के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं कि सहायक चकबंदी अधिकारी द्वारा मुकदमा सं. 425 में ग्राम मरवत टप्पा पुरैना अमरोहा तहसील - हरैया जनपद-बस्ती स्थित प्लॉट सं. 60, नये सं. 176, 177, 302, 303 और 304 के संबंध में, उ. प्र. जोत चकबंदी अधिनयम की धारा 12 के तहत पारित आदेश दिनांकित 04.09.1976 द्वारा याचिकाकर्ता का नाम राजस्व अभिलेखों में दर्ज करने का आदेश दिया था। याचिकाकर्ता का नाम आदेश दिनांकित 04.09.1976 के आधार पर राजस्व अभिलेखों में दर्ज कर लिया गया था। सी.एच. फॉर्म 45 रिट याचिका के साथ संलग्नक 1 के रूप में संलग्न किया जा चुका है। याचिकाकर्ता आदेश दिनांकित 04.09.1976 के आधार पर विवादित प्लॉट में कब्जाधारी बना था । यू.पी. सी. एच. अधिनिमय की धारा 50 के तहत 08.02.1978 को प्रश्नगत ग्राम के संबंध में अधिसूचना जारी की गयी थी। प्राइवेट - प्रत्यर्थी सं. 3-5 ने आदेश दिनांकित 04.09.1976 के विरूद्ध यू.पी.सी.एच. अधिनिमय की 11 (1) के तहत विलम्ब माफी आवेदन के साथ अपील दायर की। अपील 26.04.2017 को अपील सं. 512 के रूप में पंजीकृत की गयी । यायिकाकर्ता ने 18.12.2017 को उपरोक्त उल्लिखित अपील सं. 512 को विशेष तौर पर यह कहते हुए अपनी आपत्ति दाखिल की कि यू.पी.सी.एच. अधिनिमय की धारा 52 के तहत 08.02.1978 को गांव को निकाल दिया गया है। इसलिए यह अपील परिसीमा के आधार पर खारिज किये जाने योग्य है, अपील में उठाई गयी आपत्ति में यह भी आधार लिया गया कि प्रत्यर्थी सं. 3-5 के पास आदेश दिनांकित 04.06.1976 के विरूद्ध अपील दायर करने का आधार नहीं है। बन्दोबस्त अधिकारी, चकबंदी ने आदेश दिनांकित 19.09.2019 द्वारा विलम्ब माफी पर अनुमति प्रदान करते हुए अपील को गुण दोष के आधार पर निस्तारित करने की तिथि निर्धारित कर दी। याचिकाकर्ता ने यू.पी. सी. एच. अधिनिमय की धारा 48 के तहत आदेश दिनांकित 19.09.2019 के विरूद्ध पुनरीक्षण दाखिल किया जिसको पोषणीयता के आधार पर आदेश दिनांकित 12.10.2021 द्वारा खारिज कर दिया गया था। याचिकाकर्ता ने आदेश दिनांकित 12.10.2021 के विरूद्ध पुनर्स्थापना आवेदन दाखिल किया इसको भी 21.12.2021 को खारिज कर दिया था।

अनुवादित

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि 41 वर्षों के बाद प्रत्यर्थी सं. 3, 4 और 5, जिनके पास आवेदन करने का कोई आधार नहीं है, की ओर से यू.पी.सी.एच. अधिनिमय की धारा 11 (1) के तहत दायर अपील साथ-साथ परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत आवेदन को बन्दोबस्त अधिकारी, चकबन्दी द्वारा अवैधानिक रूप से सुना गया है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि बन्दोबस्त अधिकारी, चकबन्दी द्वारा 41 वर्षों के विलम्ब को मनमाने तरीके से माफ किया गया है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि गांव को बहुत पहले निकाल किया जा चुका है, इस प्रकार, प्रत्यर्थी सं. 3-5 द्वारा यू.पी. सी. एच. अधिनिमय की धारा 11(1) के तहत दायर अपील चकबन्दी न्यायायलय के समक्ष पोषणीय नहीं थी। उन्होंने आगे तर्क दिया कि प्रत्यर्थी सं. 3-5 के पास आदेश दिनांकित 04.09.1976 के विरूद्ध अपील दायर करने का कोई आधार नहीं था, किन्तु बन्दोबस्त अधिकारी, चकबन्दी ने अपील दायर करने में परिसीमा अधिनियम 5 का अवैधानिक तरीके से लाभ प्रदान किया है जिसमें 41 वर्षों का विलम्ब हुआ था। उन्होंने आगे तर्क दिया कि पुनरीक्षण न्यायालय ने पुनरीक्षण साथ-साथ पुनः स्थापन आवेदन को मनमाने तरीके से इस आधार पर खारिज कर दिया है कि अपील दायर करने में हुए विलम्ब को माफ करते हुए पारित आदेश के विरूद्ध पुनरीक्षण पोषणीय नहीं है। उन्होंने तर्क दिया कि आक्षेपित आदेश को अपास्त कर दिया जाना चाहिए क्योंकि प्रत्यर्थी सं.- 3,4 और 5 द्वारा 41 वर्षों के बाद अपील दायर करना विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग है।

दूसरी तरफ, प्रत्यर्थी सं. 3, 4 और 5 की ओर से उपस्थित श्री आशुतोष पाण्डेय ने तर्क दिया कि प्रत्यर्थी सं. 3, 4 और 5 ग्राम मरावत के निवासी हैं जो ग्राम पंचायत गोभिया के अन्तर्गत आता है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि विजय नारायण वर्ष 1975-1976 में लेखपाल के तौर पर तैनात था और उसने अपने पद का दुरुपयोग किया। उन्होंने आगे तर्क दिया कि आदेश दिनांकित 04.09.1976 याचिकाकर्ता, विजय नारायण का कपटपूर्ण कृत्य है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि भूमि प्रबंधन समिति द्वारा विवादित प्लॉट के संबंध में याचिकाकर्ता, विजय नारायण, के पक्ष में कोई पट्टा निष्पादित नहीं किया गया था और विवादित भूमि ग्राम सभा की एक बचत भूमि थी, तदनुसार, यू.पी.सी.एच अधिनियम की धारा 11 (1) के तहत अपील सहायक चकबन्दी अधिकारी के आदेश दिनांकित 04.09.1976 के विरूद्ध सही दाखिल की गयी थी और अपील में विलम्ब को माफ करने की प्रार्थना की गयी थी। उन्होंने आगे तर्क दिया कि आक्षेपित आदेश द्वारा केवल अपील दायर करने में हुए विलम्ब को क्षमा किया गया है, इस प्रकार, अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित उस आक्षेपित आदेश के विरुद्ध हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है जिसमें न्यायालय ने अपील दायर करने में हुए विलम्ब को माफ कर दिया है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि अपील विधि के अनुसार गुण-दोष के आधार पर निस्तारित की जाएगी और याचिकाकर्ता प्रत्यर्थी सं. 3, 4 और 5 द्वारा यू.पी.सी.एच. अधिनिमय की धारा 11 (1) के तहत दायर अपील पर निर्णय के लिए अपील न्यायालय के समक्ष उपस्थित हो सकता है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि पुनरीक्षण

अनुवादित

न्यायालय ने पुनरीक्षण न्यायालय के आदेश दिनांकित 04.11.2020, 07.09.2011 और 14.09.2021 की प्रामाणिक प्रति को रखते हुए विधि के अनुसार पुनरीक्षण में यह प्रदर्शित करने के लिए सही निर्णय दिया है कि याचिकाकर्ताओं द्वारा यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 48 के तहत दायर पुनरीक्षण को निस्तारित करने से पूर्व पक्षकारों को सुनवाई का उचित अवसर प्रदान किया गया था।

प्रत्यर्थी सं. 3-5 के अधिवक्ता ने इस न्यायालय के निर्णय दोदराम बनाम कलेक्टर पीलीभीत, 2014 (125) आर. डी. 333, त्रिपाल सिंह सुपुत्र सोनेलाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2006 संस्करण 1 एडब्ल्यूसी 205, राम जीवन और अपर आयुक्त विन्ध्यांचल मण्डल मीरजापुर और अन्य का यह प्रदर्शित करने के लिए अवलम्ब लिया है कि मामले को गुण-दोष के आधार पर निस्तारित किया जाना चाहिए न कि तकनीकी आधारों पर।

मैंने पक्षकारों के अधिवक्ता के द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार किया है और अभिलेख का परिशीलन किया है। इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है कि सहायक चकबन्दी अधिकारी ने वाद सं. 425 में यू.पी. सी. एच. अधिनियम की धारा 12 के तहत दिनांक 04.09.1976 को विवादित प्लॉट के संबंध में एक आदेश पारित किया था।

इस तथ्य के बारे में भी कोई विवाद नहीं है कि प्रत्यर्थी सं. 3-5 ने 26.04.2017 को यू.पी. सी. एच. अधिनियम की धारा 11 (1) के तहत विलम्ब की माफी के आवेदन के साथ एक अपील सं. 512 है दाखिल की थी। इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है कि बंदोबस्त अधिकारी चकबन्दी ने आदेश दिनांकित 19.09.2019 द्वारा उपरोक्त अपील को दाखिल करने में हुए विलम्ब को माफ कर दिया है और अपील को गुण-दोष पर निस्तारित करने करने के लिए आरक्षित कर लिया है। इस तथ्य के बारे में भी कोई विवाद नहीं है कि याचिकाकर्ता द्वारा यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 48 के अधीन दाखिल पुनरीक्षण और पुनरीक्षणों में दाखिल पुनःस्थापन आवेदन उपनिदेशक चकबंदी द्वारा खारिज कर दिया गया है।

इस विवाद का समझने के लिए उ. प्र. जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 11 का परिशीलन सुसंगत है जो इस प्रकार है

" (1) धारा 9-ए के अधीन होने वाली कार्यवाहियों का कोई पक्ष जो उस धारा के अधीन सहायक चकबंदी अधिकारी या चकबन्दी अधिकारी के आदेश से क्षुब्ध है, उस आज्ञा के दिनांक से 21 दिन के भीतर बंदोबस्त अधिकारी (चकबन्दी) के समक्ष अपील प्रस्तुत कर सकता है उक्त अधिकारी संबंधित पक्षों को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के पश्चात् उस पर अपना निर्णय देगा, जो कि इस अधिनियम द्वारा या इसके अधीन की गई अन्यथा व्यस्था के अधीन रहते हुए, अन्तिम होगा और उस पर किसी विधि - न्यायालय में आपत्ति नहीं की जा सकेगी।

(2) उपधारा (1) के तहत अपील की सुनवाई करने वाला बन्दोबस्त अधिकारी (चकबन्दी) सक्षम अधिकारिता वाला न्यायालय समझा जाएगा, भले ही तत्समय प्रचलित किसी अन्य विधि में कोई विपरीत बातें दी हों। "

अनुवादित

यू.पी.एच.सी. अधिनियम की धारा 11 का परिशीलन करने से प्रकट होता है कि अपील कार्रवाही के किसी पक्षकार द्वारा यू. पी. सी. एच अधिनिमय की धारा 9 - ए के तहत दायर की जा सकती है। इस न्यायालय ने श्रीमती सुखिंदरजीत कौर अन्य बनाम डिप्टी कलेक्टर चकबंदी, रामपुर (2003) 94 आर. डी. 79 में यू. पी. सी. एच. अधिनियम की धारा 11 के क्षेत्र पर विचार कर अभिनिर्धारित किया है कि केवल कार्यवाही के पक्षकार यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 11 के तहत अपील दायर कर सकते हैं। इस निर्णय का सुसंगत पैरा 9, 10, 11 और 12 इस प्रकार है:-

"9. जहां तक राज्य द्वारा दायर अपील की पोषणीयता का प्रश्न है, जैसा कि विद्वान स्थाई अधिवक्ता द्वारा स्वीकृत किया गया, राज्य सरकार सहायक चकबंदी अधिकारी के समक्ष कार्यवाहियों के पक्षकार नहीं था। अतः राज्य सरकार के पास इस अधिनिमय की धारा 11 (1) के संशोधित प्रावधानों के आलोक में अपील दायर करने का कोई अधिकार नहीं है, जो इस प्रकार है:-

"11. अपील- " (1) धारा 9-ए के अधीन होने वाली कार्यवाहियों का कोई पक्ष जो उस धारा के अधीन सहायक चकबंदी अधिकारी या चकबन्दी अधिकारी के आदेश से क्षुब्ध है, उस आज्ञा के दिनांक से 21 दिन के भीतर बंदोबस्त अधिकारी (चकबन्दी) के समक्ष अपील प्रस्तुत कर सकता है उक्त अधिकारी संबंधित पक्षों को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के पश्चात् उस पर अपना निर्णय देगा, जो कि इस अधिनियम द्वारा या इसके अधीन की गई अन्यथा व्यस्था के अधीन रहते हुए, अन्तिम होगा और उस पर किसी विधि न्यायालय में आपत्ति नहीं की जा सकेगी।

10. उपरोक्त वैधानिक प्रावधान की व्याख्या करने के लिए इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका सं. 32233 सन् 1991, ग्राम सभा (प्रधान के माध्यम से) बनाम उपनिदेशक चकबंदी बस्ती, निर्णीत दिनांक 03.12.2002, में आया। इस न्यायालय ने धारा 11 के प्रावधानों का संदर्भ देकर निम्नानुसार अभिनिर्धारित कियाः " उपरोक्त वैधानिक प्रावधान को पढ़ने यह प्रकट होता है कि अपील केवल कार्यवाही के पक्षकार द्वारा दायर की जा सकती है। यह सुस्थापित विधि है कि अपील, पुनरीक्षण, पुनर्विलोकन के अधिकार विधिक अधिकार हैं। ये अधिकार संविधियों द्वारा प्रदान किये गये हैं, जब तक ये अधिकार प्रदान नहीं किये जाते है तब तक कोई व्यक्ति इसका लाभ नहीं उठा सकता है और कोई प्राधिकारी किसी अपील, पुनरीक्षण, पुनर्विलोकन पर विचार नहीं कर सकता है जब तक कोई उक्त प्राधिकारी उसको स्वीकार करने के लिए विधि द्वारा प्राधिकृत न हो। इस उपनिदेश चकबंदी यह अभिनिर्धारित करने में सही था कि उपरोक्त याचीगण कार्यवाही के पक्षकार नहीं थे और उनके पास अपील दायर करने का कोई अधिकार नहीं था। उनके द्वारा दायर अपील विधिक रूप से पोषणीय नहीं थी।

11. इसके अतिरिक्त इस अधिनिमय की धारा 47 निम्नानुसार उपबंधित है:-

"47. अधिनियम द्वारा स्वीकृत की जाने वाली अपीलें आदि- इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन जारी की किसी आज्ञा के विरुद्ध अपील

अनुवादित

या पुनरीक्षण के विरूद्ध आज्ञ-पत्र न प्रस्तुत किया जा सकेगा, जब तक कि इस संबंध में इस अधिनियम के अधीन या इसके द्वारा कोई व्यवस्था न की गई हो ।"

12. उपरोक्त धारा स्पष्ट रूप से उपबंध करती है कि इस अधिनियम द्वारा उपबंधित या इसके अधीन के सिवाय, इस अधिनियम के प्रावधानों के तहत पारित किसी आदेश से पुनरीक्षण करने के लिए कोई अपील अथवा आवेदन नहीं होगा । इस प्रकार, सहायक चकबंदी अधिकारी के आदेश के विरुद्ध छः "क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बंधित प्रयोग के लिए है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जाएगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिए मान्य होगा । " वर्षों के बाद राज्य सरकार द्वारा कार्यवाहियों में ऐसी अपील दाखिल की गयी थी जिसमें राज्य सरकार स्वीकार्य रूप से कार्यवाहियों की पक्षकार नहीं थी और उक्त अपीलों में सहायक बंदोबस्त अधिकारी ने अवैधानिक रूप से और क्षेत्राधिकार से परे कार्य किया है। इसके अतिरिक्त, राज्य सरकार को कोई अनुतोष प्रदान करने से इंकार करके, बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी के पास संबंधित वाद में याचिकाकर्ताओं के पक्ष में कोई अनुतोष प्रदान करने का कोई औचित्य नहीं था। वह निर्णय हेतु मामले को चकबंदी अधिकारी को संदर्भित करने के लिए वाद सहायक चकबंदी अधिकारी को प्रतिप्रेषित कर सकता था। बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी द्वारा पारित आदेश दिनांकित 12.01.2001 अवैध है और खारिज किये जाने योग्य है। याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने इस महत्वपूर्ण मामले में यह कहने का प्रयास किया कि बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी द्वारा उसके क्लाइंट के पक्ष में पारित आदेश वैध और विधिसम्मत था। उन्होंने पलकधारी बनाम उप-निदेशक, चकबन्दी, बस्ती 1992 (1) एडब्ल्यूसी 228 1992 आरडी 111 में पारित निर्णय का संदर्भ देकर अवलम्ब लिया। उक्त निर्णय में ऐसा व्यक्ति जो कार्यवाही का पक्षकार नहीं है उसके द्वारा इस अधिनियम की धारा 11 के अधीन दायर अपील की पोषीणता का प्रश्न न तो उठाया गया था न ही न्यायालय द्वावा विचारित किया गया था। इसलिए याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता उक्त वाद के आधार पर किसी भी लाभ का दावा नहीं कर सकते हैं। उक्त वाद में न्यायालय द्वारा जो निर्णय दिया गया था वह इस आशय का था कि याचिकाकर्ता, जो ग्राम सभा का सदस्य था, ग्राम सभा की ओर से आपत्ति कर सकता था। यह उल्लेख किया जा सकता है कि इस अधिनियम की धारा 11 यू. पी. एक्ट सं. VII सन् 1963 द्वारा संशोधित की गई थी। संशोधन से पूर्व, "धारा 9 के अन्तर्गत सहायक चकबंदी अधिकारी या धारा 10 के अन्तर्गत चकबन्दी अधिकारी को आदेश से व्यथित कोई कोई व्यक्ति" शब्दों का प्रयोग किया गया था, किन्तु संशोधन के पश्चात्, "व्यथित व्यक्ति" शब्दों को हटा दिया गया है और उन शब्दों के स्थान पर "धारा 9 ए के अन्तर्गत कार्यवाही में उस धारा के अधीन सहायक चकबन्दी अधिकारी या चकबंदी अधिकारी के किसी आदेश से व्यथित कोई पक्षकार" शब्दों से

अनुवादित

प्रतिस्थापित कर दिया गया है। इस अधिनियम के धारा 11 के प्रावधानों के दृष्टिगत, जिसका ऊपर संदर्भ दिया गया है, राज्य सरकार द्वारा दायर अपीलें वैधानिक रूप से पोषणीय नहीं थीं। बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी साथ-साथ उप-निदेशक चकबंदी ने अवैधानिक रूप से कार्य किया है और वह राज्य सरकार द्वारा दायर अपीलों और पुनरीक्षणों को विचार कर उस पर अनुमति प्रदान करने में अपने क्षेत्राधिकार से परे चले गये हैं क्योंकि राज्य सरकार सहायक चकबंदी अधिकारी के समक्ष चल रही कार्यवाही की पक्षकार नहीं थी । इस प्रकार निचले प्राधिकारियों द्वारा पारित आदेश पूर्णयतः अवैध और क्षेत्राधिकारविहीन है।"

बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी द्वारा पारित आदेश दिनांकित 19.09.2019 परिशीलन करने हेतु सुसंगत होगा जो इस प्रकार है:-

मैंने पक्षकारों की ओर से पक्षों को सुना तथा पत्रावली का अवलोकन किया। प्रस्तुत अपील अनंत कुमार आदि के विजय नारायण आदि को पक्षकार बनाते हुए सहायक चकबंदी अधिकारी के आदेश दिनांक 04.09.1976 के विरुद्ध दिनांक 26.04.2017 के शपथपत्र के साथ प्रस्तुत किया गया। पत्रावली के अवलोकन से प्रथम दृष्टया यह विदित होता है कि प्रकरण ग्राम समाज से संबंधित है, जिसका परीक्षण करने के उपरान्त निर्णय किया जाना विधिसंगत होगा। ऐसी स्थिति में पोषणीयता और मियाद के बिन्दु पर अपील निरस्त किया जाना उचित नहीं है।

<u>आदेश</u>

अतः उपरोक्त विवेचना के आधार पर आदेश हुआ कि प्रस्तुत अपील पोषणीय है तथा अपील में प्रस्तुत शपथपत्र विश्वास करते दफा - 5 मियाद कानून का लाभ प्रदान किया जाता है। पत्रावली वास्ते गुण-दोष पर बहस हेतु दिनांक 29.09.19 को पेश हो ।

दिनांक 19.09.19 (अनिल कुमार)

हस्ताक्षर (अपठनीय)

19.09.19

बन्दोबस्त अधिकारी चकबंदी, बस्ती।

बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी द्वारा पारित आदेश दिनांकित 19.09.2019 के परिशीलन करने पर यह प्रकट होता है कि यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 11 (1) तहत अपील को दायर करने में हुए विलम्ब को माफ कर दिया गया है और अपील को भी पोषणीय अभिनिर्धारित किया गया है।

इस न्यायालय ने सियाराम बनाम उपनिदेशक चकबंदी और अन्य 1982 ए. एल. जे. 76 के मामले में अभिनिर्धारित किया है कि प्राइवेट व्यक्ति द्वारा यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 9-ए (2) के तहत आपत्ति दायर नहीं किया जा सकता है क्योंकि ग्राम समाज की सम्पत्ति के संबंध में कार्यवाही को संचालित और प्रारम्भ करने की प्रक्रिया ग्राम सभा मैनुअल के पैरा- 128 में विहित किया गया है। इस निर्णय का पैरा सं. 21 और 22 का सुसंगत है जो इस प्रकार है:-

21. ग्राम सभा कॉरपोरेट निकाय है और भूमि प्रबंधन समिति ग्राम सभा की कार्यकारी निकाय है जिसका कार्य ग्राम समाज में निहित भूमि का पर्यवेक्षण और संरक्षण करना है और इसको यह कार्य विधि द्वारा उपबंधित रीति से करना होगा। ग्राम सभा मैनुअल के पैरा 128 और उ. प्र. जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार नियमावली के नियम 110 ए में अन्तर्वलित प्रावधान ऐसी रीति का उपबंध करते हैं जिसमें

अनुवादित

वाद ग्राम सभा द्वारा / की ओर लाया जाना चाहिए। ये आज्ञापक प्रावधान उ. प्र. जोत चकबंदी अधिनियम के प्रावधानों के अन्तर्गत कार्यवाहियों में ग्राम सभा की ओर से संचालित किए जाने वाले सभी मुकदमों को शासित करेगें ।

22. इस प्रकार, उक्त के दृष्टिगत, मेरी राय यह है कि विरोधी पक्षकार सं. 3, शिवप्रसाद द्वारा दाखिल आपत्ति को उ. प्र. जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 9 - ए (2) के तहत ग्राम सभा की ओर से इस आधार पर वैध आपत्ति नहीं मानी जा सकता है कि वह स्वयं इस अधिनियम की धारा 9 - ए (2) के तहत हितबद्ध व्यक्ति था जैसा कि स्वीकृत रूप से ग्राम सभा की भूमि प्रबंधन समिति ने आपत्ति, अपील और पुनरीक्षण दाखिल करने का निर्णय लेते हुए कोई प्रस्ताव पारित नहीं किया था और न ही विरोधी पक्षकार सं. 3 ग्राम सभी की ओर से उन्हें दाखिल करने के लिए प्राधिकृत था। इस पर भी विवाद नहीं है कि ग्राम सभा की ओर से आपत्ति, अपील, पुनरीक्षण दाखिल करने में विरोधी पक्षकार सं. 3 द्वारा की गई कार्यवाही को भूमि प्रबंधन समिति ने अपनी बैठक में अभिपुष्टि नहीं किया था। इस प्रकार ग्राम सभा की ओर से विरोधी पक्षकार सं. 3, शिव प्रसाद, द्वारा दाखिल आपत्तियां, अपील और पुनरीक्षण पूरी तौर से अक्षम थे और विरोधी पक्षकार सं. 1 और 2 ने आक्षेपित आदेश पारित करने में अवैध रूप से और बिना क्षेत्राधिकार के कार्य किया।

श्रीमती सुखिंदर जीत कौर (उपरोक्त) साथ-साथ सीताराम (उपरोक्त) में प्रतिपादित विधि के अनुपात के दृष्टिगत, विरोधी प्रत्यर्थियों द्वारा यू.पी. सी. एच अधिनिमय की धारा 11 के तहत दायर अपील को स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि विरोधी पक्षकार चकबंदी अधिकारी के समक्ष चल रही कार्यवाही के पक्षकार नहीं थे न ही विरोधी प्रत्यर्थीगण के विवादित प्लॉट के संबंध में स्वत्व है बल्कि उनका रूख यह है कि वे राज्य / ग्राम सभा की संपत्ति को संरक्षित कर रहे हैं, इस प्रकार, अपील दाखिल करने में हुए विलम्ब को माफ करने और गुण-दोष पर उसे निर्धारित करने का कोई प्रश्न नहीं था। विरोधी प्रत्यर्थियों के पहल पर इस आधार पर अपीलीय कार्यवाही को जारी रखना कि अपील दायर करने में हुए विलम्ब को केवल आक्षेपित आदेश द्वारा माफ किया गया है और शेष मामले पर बाद में निर्णय लिया जाएगा, विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा। सीताराम (उपरोक्त) के मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि ग्राम सभा के वाद को ग्राम सभा मैनुअल के पैरा 128 के उल्लंघन में शुरू करना / संचालित करना अवैध|

यह भी सुसंगत है कि यू.पी.सी.एच. की धारा 11 (1) के अधीन दायर अपील विरोधी प्रत्यर्थियों द्वारा 26.04.2017 को सहायक चकबंदी अधिकारी के आदेश दिनांकित 04.09.1976 के विरूद्ध दाखिल की गई है और 08.02.1978 को यू. पी. सी. एच अधिनियम की धार 52 के तहत गांव को निकाल कर दिया गया है, इस प्रकार, 41 वर्षों के बाद अपील को स्वीकार करना विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा ।

विरोधी प्रत्यर्थी सं. 3 की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णयज विधियां यू.पी.सी.एच. अधिनियम द्वारा उद्भूत इस

अनुवादित

विवाद वहां में लागू नहीं होती हैं जहां पर कार्यवाही की शुरुआत करने के लिए प्राधिकृत व्यक्ति द्वारा उचित स्तर पर आपत्ति, अपील और पुनरीक्षण दायर करने की प्रक्रिया का उपबंध किया गया है। सम्पूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों साथ-साथ श्रीमती सुखजिंदर जीत कौर (उपरोक्त) और सीताराम (उपरोक्त) में प्रतिपादित विधिक सार पर विचार करने के उपरान्त बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांकित 19.09.2019 और उप-निदेशक चकबंदी द्वारा पारित आदेश दिनांकित 21.12.2021 और 12.10.2021 अपास्त किये जाने योग्य है और एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है। यह रिट याचिका अनुज्ञात को अनुज्ञात की जाती है। खर्च के संबंध में कोई आदेश नहीं किया जा रहा है।

अनुवादित